ॐ

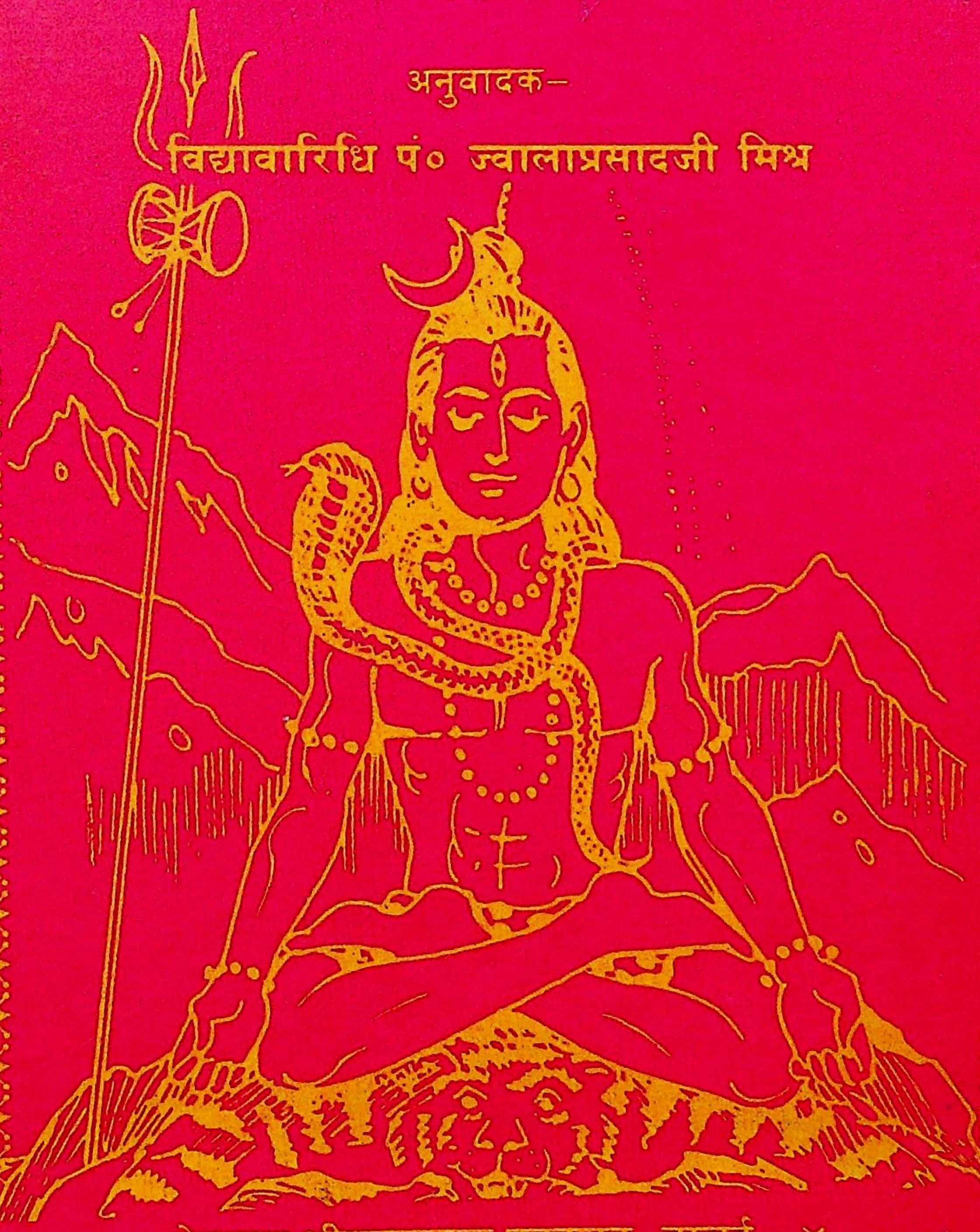
श्रीकृष्णद्वैपायनप्रणीत

शिवमहापुराण

भाषा

अनुवादक–

विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र



खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४.

ॐ

श्रीकृष्णद्वैपायनप्रणीत

शिवमहापुराण

भाषा

अनुवादक—

विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र



खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४.

Edition : May, 2012
संस्करण : मई २०१२, सम्वत् २०६९

Price : Rs. 600 /-
मूल्य ६०० रुपये मात्र।

मुद्रक एवं प्रकाशक :
खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बम्बई–४०० ००४.

Printers & Publishers
Khemraj Shrikrishnadass
Prop: Shri Venkateshwar Press
Khemraj Shrikrishnadass Marg,
7th Khetwadi, Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.khe-shri.com
E-mail : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj for M/s Khemraj Shrikrishnadass
Prop. Shri Venkateshwar Press, Mumbai-400004,
at their Shri Venkateshwar Press,
66 Hadapsar Industrial Estate, Pune -411 013.

ॐ

श्रीकृष्णद्वैपायनप्रणीत

शिवमहापुराण

भाषा

अनुवादक-

विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र



खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४.

मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers
Khemraj Shrikrishnadass
Prop: Shri Venkateshwar Press
Khemraj Shrikrishnadass Marg,
7th Khetwadi, Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.khe-shri.com
E-mail : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj for M/s Khemraj Shrikrishnadass
Prop. Shri Venkateshwar Press, Mumbai-400004,
at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate,
Pune -411 013.

भूमिका

***

अनादि काल से ईश्वरोक्त ऋक्, यजु, साम, अथर्व यह चार वेद त्रिकाल में रहनेवाले मुक्ति के साधन संसार में वर्तमान हैं, इन्हीं के अनुकूल इनका गूढ़ आशय प्रकट करने के लिये छः शास्त्र और अठारह पुराण व्यासादि ऋषियों ने निर्माण किये हैं, वेद में तीन ही वर्णों का अधिकार है, स्त्री तथा शूद्र का नहीं, इस कारण परम कारुणिक भगवान् वेदव्यासजी ने चारों वर्ण और स्त्री मात्र तथा अन्य जाति के परमपद प्राप्ति के निमित्त प्राचीन गाथाओं के सहित वेदों का आश्रय लेकर पुराण निर्माण किये हैं। वे पुराण अठारह हैं, यथा- श्रीमद्भागवत स्कन्ध १२- अ०७

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं लैङ्गं सगारुडम्।
नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कान्दसहितम्।।२३।।
भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं सवामनम्।
वाराहं मात्स्यं कौर्मश्च ब्रह्माण्डाख्यामिति त्रिषट्।।२४।।

ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, लिंगपुराण, गरुडपुराण, नारदपुराण, भागवतपुराण, अग्निपुराण, स्कन्दपुराण, भविष्यपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, मार्कण्डेयपुराण, वामनपुराण, वाराहपुराण, मत्स्यपुराण, कूर्मपुराण, ब्रह्माण्डपुराण और "**चतुर्विंशतिसाहस्रं शैवमत्र निरूपितं।** (ब्रह्मवैवर्त), **ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवञ्च शैवं भागवतं तथा।**" (विष्णुपुराण) इत्यादि पुराणों के प्रमाण में क्या प्रमाण है ? इस पर कहते हैं कि, इनको श्रवण करने की विधि वेदादि शास्त्रों में बहुत प्रकार से लिखी है। अथर्ववेद १५-प्र०२, अ०१, मन्त्र०४ में पुराण का नाम आया है यथा "**तमितिहासश्च पुराणश्च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलत**" और "**अस्य महतो भूतस्य विश्वसितमे तद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो अथर्वांगिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकः सूत्राण्यनुव्याख्यानानीति**"- श० ४ प्र० ब्रा० ४। इसमें पुराण का नाम पाया जाता है तथा "**चतुर्थमितिहास पुराणं पञ्चमं वेदानां वेदमिति**" छा० प्र० ७, इससे पुराण का पढ़ना विदित होता है, तथा यजुर्वेदीय शतपथब्राह्मण में "**नवमेऽहनि किञ्चित् पुराणमाचक्षीत्।**" अर्थात्- नवमें दिन कुछ पुराण का पारायण अश्वमेध यज्ञ में करना चाहिये तथा मनु अध्याय तीन के श्लोक २३२ में -

स्वाध्यायं श्रावयेत्पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि।
आख्यानानीतिहासांश्च पुराणान्यखिलानि च।।

श्राद्धकाल में वेद, मानवादि धर्मशास्त्र, सौपर्ण मैत्रावरुणादिक आख्यान, महाभारतादि इतिहास, ब्राह्मादि पुराण, श्रीसूक्त, शैव आदि अखिल सुनना चाहिये, भागवत् के बारहवें स्कन्ध के छठे अध्याय में (ब्रह्मणैतत्समाख्यातम्) सब पुराणों के पूर्वकर्ता ब्रह्माजी को कहा है। महाभारत के स्वर्गारोहण पर्व के छठे अध्याय में (अष्टादशपुराणानां श्रवणाद्यत्फलं भवेत्) अठारह पुराणों को सुनने के फल का विधान किया है। गरुडपुराण के २२७ वें अध्याय में (अष्टादश पुराणानि यैर्वेद्यो हरिरेव हि) इस दशवें श्लोक से सब पुराणों को हरिविद्या कहकर पारायण-श्रवण से स्वर्गादि की प्राप्ति कही है, अग्निपुराण के २७१ वें अध्याय में अठारहों पुराणों को विष्णु विद्यारूप वर्णन किया है, इत्यादि अनेकप्रकार से पुराणों का

उल्लेख किया है (यदि विशेष देखना हो तो हमारे बनाये 'दयानन्दतिमिरभास्कर' के पुराण प्रकरण को अथवा अष्टादशपुराणदर्पण को देखें) इन अठारह पुराणों में व्यासजी ने प्रसंग से २४ अवतार और सत्, रज, तम रूप तीन गुण तथा तीन देवताओं का विशेष रूप से वर्णन किया है और ज्ञान दृढ़ होने के निमित्त बड़े-बड़े आलंकारिक विषय भी वर्णन किये हैं। प्रत्येक पुराण को सर्वश्रेष्ठ इस कारण कहा है कि, उपासक जिस देवता की उपासना करे, उस देवता को ही सर्वश्रेष्ठ जानें और विश्वास रखें, इन्द्रियादिकों के समान अपने-अपने विषय में सब प्रमाण हैं। ऊपर लिखे वाक्यों से अठारहों पुराणों के श्रवण की विधि एक सी पाई जाती है, किसी में कोई भेद नहीं है, इस कारण पुराणों को छोटा-बड़ा कहना उचित नहीं है, कारण कि सम्पूर्ण पुराणों में तीनों देवताओं की तथा शक्ति की महिमा बराबर कथन की है, इस कारण सब एक रूप ही हैं और तीनों देवताओं में भी कुछ भेद नहीं है, कारण कि- **"तस्य प्रोक्ता अग्न्यास्तन्वो ब्रह्मा विष्णु रुद्रः स ब्रह्मा स शिवः"** इत्यादि श्रुतियाँ तीनों देवताओं का अभेद प्रतिपादन करती हैं और अग्निपुराण के १२ वें अध्याय में उदाहरण स्थल में कहा है- **"आवयोर्नास्ति भेदो वै भेदी नरकमाप्नुयात्"** जो पुरुष हमारे-तुम्हारे बीच में भेद जानता है वह नरक को प्राप्त होता है, इससे विदित यह होता है कि, वही सर्व रूप है, कुछ भेद नहीं है। अब इसमें यह प्रश्न होता है कि, कोई-कोई पुराणों को राजसी-तामसी आदि संज्ञाओं में बांधकर तामस पुराणों को सुनने का निषेध करते हैं, इसका उत्तर तो ऊपर लिखे वचनों से ही हो सकता है कि, वेदादि शास्त्रों में सब पुराणों का बराबर श्रवण करना लिखा है, फिर- **"तथैव तामसा देवि निरयप्राप्तिहेतवः ।।"** (तामसी पुराण सुनने से नरक होता है।) यह वाक्य किस प्रकार माना जा सकता है ? कारण कि जो ब्रह्माजी से निर्गत उपदेश और परमात्मा के गुण कथन करनेवाला पुरातन वृत्त है, तो वह सर्वथा सुख और स्वर्गदायक ही होगा- **"मात्स्यं कौर्मं तथा लैङ्गं शैवं स्कान्दं तथैव च। आग्नेयं च षडेतानि तामसानि प्रचक्षते"**- इस श्लोक से मत्स्य, कूर्म, लिंग, शिव, स्कान्द और अग्नि इन छः पुराणों को तामसी कहा है। इस श्लोक और ऊपर के श्लोक का परस्पर सम्बन्ध है। प्रथम तो इसमें पुराणानि नपुंसकलिंग का विशेषण **'तामसा निरयप्रदाः'** पुलिंग दिया है, इसी से बनानेवाले की विद्या झलकती है कि, इन्होंने लिंग का भी ध्यान नहीं किया और अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये श्लोक निर्माण करके लिख दिया, परन्तु बुद्धिमानों के सामने बनावट कहां तक चल सकती है ? बनावटी बात में अवश्य झोल पड़ता है, क्योंकि जिन-जिन पुराणों में महादेवजी का महत्त्व पाया, उन-उन को तामसी कहकर नरकप्राप्ति का कारण कहा। यदि इनके सुनने से नरकप्राप्ति है, तो बनानेवाले की क्या गति होगी ? और पुराणविद्या का एक अंश नरकप्राप्ति का कारण ठहर जायगा, इससे यह श्लोक व्यासादि महर्षियों के निमित्त विदित नहीं होते, यह हठ तथा दुराग्रह से निर्माण किये गये हैं,* केवल संज्ञामात्र का जहां लक्षण है। वहां यह आशय है कि, इस पुराण में इस गुण का अधिकार करके वर्णन किया है, बढ़ाई-छुटाई नहीं। नरकादि की प्राप्ति द्रोह करनेवाले का कार्य है और यदि शिवमहिमा के प्रतिपादन से ही तामसी और नरक प्राप्ति होती है, तो जिन्होंने वेदादि सब शास्त्र और सब पुराणों में शिवजी को प्रधान कहकर उल्लेख किया है, उनकी क्या गति होगी ? जैसा कि आगे दिखाते हैं -

*- यह ऐसे श्लोक सम्प्रदायवालों ने दूसरों की निन्दा के लिये जहां-तहां मिलाये हैं। हमने अष्टादश-पुराणदर्पण में इसका निर्णय किया है, इस समय भी सम्प्रदाय के आग्रही पुरुष मनु के ग्रन्थ की शिखासूत्र की निन्दा करते हैं, ग्रन्थ बना रहे हैं, जैसा स्मार्तधर्म का एक ग्रन्थ वृंदावन के एक गोसाईंजी ने निकालकर अपने हठ का परिचय दिया है। हमने इसी अनुमान को पुराणदर्पण में लिखा था, जिसपर राघवेन्द्र सम्पादक ने उछलकूद की, पर अन्त में अस्त हो गये, सांच को आंच कहां है ?

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च
मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च।
(यजुर्वेद-अ॰१६, मन्त्र ४१।)

सुख, भोग, मोक्ष रूप सुख देनेवाले भक्तों को भोग, मोक्ष, सुख के दाता कल्याण रूप, कल्याणकारी शिवजी के निमित्त नमस्कार है, इत्यादि यजुर्वेद में १६ वां अध्याय रुद्र की महिमा कहता हुआ '**रुद्राध्याय**' के नाम से विख्यात है तथा श्वेताश्वतरोपनिषद् में अ॰३, मन्त्र२ "**एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः**" और "**ज्ञात्वा शिवंशान्तिमत्यन्तमेति**" अर्थात् अन्तकाल में एक रुद्र ही अवशेष रहते हैं, शिवजी के ज्ञान से ही मुक्ति होती है तथा बौधायन सूत्र में- "**अथातो महादेवस्याहरहः परिचर्या-विधिं व्याख्यास्यामः स्नात्वा शुचौ देशे गोमयेनोपलिप्य प्रतिकृतिं कृत्वाऽक्षतपुष्पैर्यथा-लाभमर्चयेत्। सह पुष्पोदकेन महादेवमावाहयेत्। ओम् भूर्महादेवमावाहयामि। महत्स्व-स्त्यनमित्याचक्षत इत्याह भगवान् बौधायनः।**" स्नान करने के उपरान्त पवित्र स्थान में गोबर से भूमि को लीपकर, मृत्तिका आदि का लिंग निर्माण करके, पुष्प मिश्रित जल हाथ में लेकर महादेवजी का आवाहन करे और अक्षत, पुष्प आदि से पूजा करे। बौधायन मुनि ने इसे महास्वस्तिवाचन कहा है तथा ऋग्वेद में नीलसूक्त और यजुर्वेद में- "**त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्**" यह मन्त्र है। अथ **(सुगन्धिम्)** श्रेष्ठ गन्ध विशिष्ट द्रव्य से भूषित **(पुष्टिवर्धनम्)** भोग-मोक्षरूप पुष्टि की वृद्धि करनेवाले **(त्र्यम्बकम्)** तीनों लोक के पिता अथवा तीन काल में वेदरूप शब्दवाले, तीन अक्षर अकार, उकार, मकार से सिद्ध होनेवाले अथवा पृथ्वी, अन्तरिक्ष, स्वर्गरूप नेत्रवाले शिवजी का **(यजामहे)** पूजन करते हैं, वे हमें **(मृत्योर्मुक्षीय)** मृत्यु से छुड़ाकर जो जन्म-मरण का क्लेश देते हैं, उससे पृथक् करके **(उर्वारुकमिव बन्धनात्)** जैसे पका कर्कन्धु फल शाखा से स्खलित होता है, उस प्रकार से मुझे मृत्यु से छुड़ाकर **(अमृतात्)** मुक्ति से मत छुड़ाओ अर्थात् मुझे मुक्ति का भागी करो। फिर श्वेताश्वतर उपनिषद् के तीसरे अध्याय में -

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु।। अ॰ मं॰-४

देवताओं की उत्पत्ति, पालन, प्रलय करनेवाले संसार के अधिपति रुद्र महर्षिजी ने प्रथम ब्रह्माजी को उत्पन्न किया है, वह हमारी बुद्धि श्रेष्ठ कार्य में लगावें। इस मन्त्र से शिवजी को सब संसार का कारण कह कर -

विश्वस्यैकं परिचेष्टितारमीशं तं ज्ञात्वाऽमृता भवन्ति।

समस्त संसार के नियन्ता महादेवजी को जानकर मुक्त होते हैं और -

तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।। यजु॰।।

उसी महादेवजी के ज्ञान से मुक्ति होती है; इससे अन्य मुक्ति का उपाय नहीं है। फिर-

"सर्वव्यापी भगवान् तस्मात् सर्वगतः शिवः"- (श्वेता॰ अ॰३, मन्त्र११)

भगवान् शिवजी सर्वव्यापी, सर्वगत हैं-

य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःखमेवापयन्ति।। श्वेता॰।।

जो पुरुष महादेवजी की उपासना करते हैं, वे मुक्त होते हैं और अन्य पुरुष जन्ममृत्युरूप दुःख भोगते हैं, फिर चौथे अध्याय के २१ वें मन्त्र में -

रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम्।। श्वेता॰।।

हे रुद्र ! जो आपका दक्षिण मुख है, उससे नित्य हमारी रक्षा कीजिये तथा वाल्मीकीय रामायण के लंकाकाण्ड के १२५ वें सर्ग में (हमारा भाषानुवाद देखें)

अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः ।।

श्रीरामचन्द्रजी ने लंका से अयोध्या चलते समय पुष्पक विमान में बैठी जानकीजी से कहा था, रावण को मारने से पहले यहां सागर तट पर हमने महादेवजी का पूजन किया था, जिससे वे हमारे ऊपर प्रसन्न हुए थे।

तथा महाभारत वनपर्व अ०३९, श्लो०६५

शरण्यं शरण्यं गत्वा भगवन्तं पिनाकिनम्।
मृन्मयं स्थण्डिलं कृत्वा माल्येनापूजयद्भवम्।।

अर्जुन ने शरणागत रक्षक महादेवजी की शरण को प्राप्त होकर, महादेवजी की मृन्मयी मूर्ति बनाकर गन्ध-मालादि से पूजन किया था। तथा वनपर्व के ८३ वें अध्याय में मृगधूम तीर्थप्रसंग में अगस्तजी ने कहा है- श्लो०१००/१०१

मृगधूमं ततो गच्छेत्त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
तत्राभिषेकं कुर्वीत गंगायां नृपसत्तम।
अर्चयित्वा महादेवमश्वमेधफलं लभेत्।।१०१।।

मृगधूमतीर्थ में जाकर गंगास्नान करके महादेवजी का पूजन करने से अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। फिर वहीं पञ्चवटी तीर्थयात्रा में -

यत्र योगेश्वरः स्थाणुः स्वयमेव वृषध्वजः।
अर्चयित्वा देवेशं गमनादेव सिद्ध्यति।।१६५।।

जहां योगेश्वर वृषभध्वज स्वयं स्थित है, उनकी अर्चना से व वहाँ जाने से ही सिद्धि हो जाती है, फिर उसी प्रसंग में -

तत्रैव च महाराज विश्वेश्वरमुमापतिम्।
अभिगम्य महादेवं मुच्यते सर्वकिल्विषैः।।१७३।।

हे महाराज ! उसी स्थान में विश्वेश्वर उमापति का अर्चन करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, फिर ८४ वें अध्याय में -

ततो वाराणसीं गत्वा अर्चयित्वा वृषध्वजम्।
कपिलाह्रदे नरः स्नात्वा राजसूयफलं लभेत्।।७८।।

फिर काशी में जाकर उमापति का पूजन करके कपिलाह्रद में स्नान करने से राजसूययज्ञ का फल प्राप्त होता है। द्रोण पर्व -

जन्मकर्मतपोयोगास्तयोस्तव च पुष्कलम्।
ताभ्यां लिङ्गेऽर्चितो देवस्त्वयाऽर्चायां युगे युगे।।९२।।
सर्वरूपं भवं ज्ञात्वा लिङ्गे योऽर्चयति प्रभुम्।
आत्मयोगाश्च तस्मिन्वै शास्त्रयोगाश्च शाश्वताः।।९३।।
सर्वभूतभवं ज्ञात्वा लिङ्गमर्चति यः प्रभोः।
तस्मिन्नभ्यधिकां प्रीतिं करोति वृषभध्वजः।।९६।।

द्रोणाचार्यजी के मरनेपर जब अश्वत्थामा के अस्त्र कृष्णार्जुन पर निष्फल हुए, तब अश्वत्थामा ने

उनको धिक्कार दिया, तब व्यासजी ने आकर कहा, कि तुम्हारा जन्म, कर्म, तप, योग सब कृष्णार्जुन के तुल्य ही है, परन्तु उन दोनों ने शिवलिंग का और तुमने शिवमूर्ति का पूजन किया है ।।९२।। जो शिवजी को सर्वरूप जानकर लिंगार्चन करता है, उसमें आत्मयोग और सम्पूर्ण शास्त्रयोग प्राप्त हो जाते हैं ।।९३।। जो शिवजी को सर्वभूतमय जानकर पूजते हैं, शिवजी उनके ऊपर महाप्रीति करते हैं ।।९६।। फिर इसी पर्व के अध्याय २०३ में -

ऋषयश्चैव देवाश्च गन्धर्वाप्सरसस्तथा ।
लिङ्गमस्यार्चयन्ति स्म तच्चाप्यूर्ध्वं समास्थितम् ।।२५।।

व्यासजी ने अर्जुन से कहा- ऋषि, देवता, गन्धर्व, अप्सरा इनकी ऊर्ध्वस्थिति लिंग की अर्चा करने से हुई हैं ।।२५।।

यस्य ब्रह्मा च विष्णुश्च त्वं चापि सह दैवतैः ।
अर्चयेथाः सदा लिङ्गं तस्माच्छ्रेष्ठतमो हि सः ।।१४।।

महाभारत अनुशाशन पर्व के अध्याय १४ में उपमन्यु ने श्रीकृष्णजी से कहा है, जिनके लिंग को ब्रह्मा, विष्णु और देवताओं के सहित सदा आप पूजते हो, इस कारण वह सर्वश्रेष्ठ है। इस प्रकार महाभारत में अनेक स्थलों में महादेवजी के पूजन से मुक्ति की प्राप्ति लिखी है। अब कुछ पुराणों के श्लोकों का उल्लेख करते हैं। ब्रह्मवैवर्तपुराण के कृष्णजन्मखण्ड अध्याय ३७ में श्रीकृष्णजी ने राधिका से कहा है।

मम भक्तिं च दास्यं च मुक्तिं च सर्वसम्पदाम् ।
सर्वसिद्धिं दातुमिशो न दाता शङ्करात्परः ।।

मेरी भक्ति, दास्यता, भुक्ति, मुक्ति, सर्व संपत्ति देनेवाले महादेवजी के सिवाय कोई दाता नहीं है, विष्णुपुराण के पञ्चम अंश के ३३ वें अध्याय में लिखा है -

मत्तोऽविभिन्नमात्मानं द्रष्टुमर्हसि शङ्कर ।।४७।।
योहं स त्वं जगच्चेदं सदेवासुरमानुषम् ।
अविद्यामोहितात्मानः पुरुषा भिन्नदर्शिनः ।।४८।।

श्रीकृष्णचन्द्रजी ने शिवजी से कहा- हे शंकर ! आपने बाणासुर को अभयदान दिया, सो मैंने ही दिया है, कारण कि हम और आप एक ही हैं, जो मैं हूँ सो आप हैं। देवता, असुर, मनुष्यों के सहित यह सब जंगत् हमारा और आपका ही रूप है, भिन्नदर्शी पुरुष अविद्या से मोहित हो रहे हैं, इस कारण भेद मानते हैं, भागवत दशम स्कन्ध अध्याय १२, श्लोक ४० -

क्षेमी स्यात्किमु विश्वेशे कृतपापो जगद्गुरौ ।

श्रीविष्णुजी ने कहा- आप जगत् के गुरु हैं और आप में जो दुर्ध्यान करता है, उसका कल्याण कैसे हो सकता है ? तथा दशमस्कन्ध के ६८ वें अध्याय में कहा है -

आराध्य देवदेवेशं शङ्करं लोकशङ्करम् ।
तपसा तोषयित्वा तं कैलासगिरिवासिनम् ।।
रुक्मिण्यां तनयं लेभे दग्धकामं पुनर्हरिः ।।२।।

लोकेश लोकपावन शंकरजी का आराधन करके और उन कैलासवासी शिवजी को तप से सन्तुष्ट करके शिवजी से दग्ध हुए काम को पुत्र रूप से प्राप्त किया। पद्मपुराण का सत्ताईसवां अध्याय सृष्टिखण्ड का महादेवजी के पूजा विधान से पूर्ण है। शातातपमुनि ने प्रायश्चित्त प्रकरण के धर्मशास्त्र में कहा है -

मद्यं पीत्वा गुरुदारांश्च गत्वा स्तेयं कृत्वा ब्रह्महत्यां च कृत्वा।
भस्मच्छन्नो भस्मशय्यां शयानो रुद्राध्यायी मुच्यते सर्वपापै: ।।

मद्यपान, गुरुदारा गमन, चोरी, ब्रह्महत्या करनेवाला भी भस्म के ऊपर शयन करने से तथा रुद्राध्याय का पाठ करने से सब पापों से छूट जाता है- याज्ञवल्क्यजी कहते हैं- **"ब्राह्मण: स्वर्णहारी तु रुद्रजापी जले स्थित:"** सोने की चोरी करके ब्राह्मण जल में रुद्र का जप करने से शुद्ध होता है। अत्रिजी कहते हैं- **"एकादश गुणान्वापि रुद्रानावर्त्य शुद्ध्यति"** ग्यारह बार शिवस्मरण करके रुद्र का पाठ करने से शुद्ध होता है। अग्निपुराण ५४ अध्याय -

पूज्यो हरस्तु सर्वत्र लिङ्गे पूर्णार्चनं भवेत्।

सर्वत्र लिंग में शिवपूजन करने से पूर्णार्चन होता है। स्कन्दपुराण में लिखा है -

एक एव शिव: साक्षात्सृष्टिस्थित्यन्तसिद्धये।
ब्रह्मविष्णुशिवाख्याभि: कलनाभिर्विजृम्भते ।।

अर्थात् साक्षात् एक शिवजी ही सृष्टि, उत्पत्ति, पालन, लय करने के लिये ब्रह्मा, विष्णु, रुद्ररूप होते हैं। कैवल्योपनिषदि -

उमासहायं परमेश्वरं विभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षिं तमस: परस्तात् ।।

पार्वतीसहाय परमेश्वर, सर्वव्यापक, त्रिलोचन, शान्त, नीलकण्ठ का ध्यान करके समस्त के साक्षी, अन्धकार से परे शिवजी को प्राप्त होता है। इसी प्रकार गोपालतापनी, रामतापनी आदि उपनिषदों में लिखा है। अब विचार करना चाहिये कि, शिवमहिमा विधायक शास्त्रों से कुगति होती है और इसी कारण वे तामसी हैं, तो ऊपर लिखे प्रमाणों से सात्त्विकी पुराण भी तामसी हुए और वेदस्मृति आदि सूत्र भी तामसी और कुगतिदायक होने के कारण मुक्ति का साधन कौन सा ग्रन्थ माना जाएगा ? इस कारण अष्टादशपुराणों में न्यूनाधिक कोई नहीं है। सब ही ब्रह्म के प्रतिपादन करनेवाले और मुक्तिविधायक हैं; जो भेद मानते हैं, वे इस तात्पर्य के ज्ञान से शून्य हैं, व्यासजी ने समस्त पुराणों को पृथक्-पृथक् देवताओं के निमित्त इस कारण कहा है कि, उपासक उस-उस देवताओं की उपासना विश्वासयुक्त होकर करें, तो संसार से पार हो जायँगे। जब सब पुराणों में तीनों देवताओं की उपासना बराबर देखी जाती है, तो उनके विपरीत जो वाक्य सुने जाते हैं, वह अवश्य ही दुराशाग्रस्त, अल्पज्ञ, स्वार्थपरायणों द्वारा बनाये हुए हैं। जिनके कारण महा सम्प्रदाय भेद उपस्थित हुआ है। महाभारत से पहले इस प्रकार के अनेक सम्प्रदाय नहीं थे। जिसे जिस देवता की इच्छा हो वह उसकी उपासना करते थे और पूर्ण ज्ञानी होने से किसी से कोई द्वेष नहीं करते थे और तभी तक यह भारतवर्ष उन्नति के पूर्ण शिखर पर आरूढ़ था। जो विद्या, बुद्धि, कला-कौशल यहां थी उसकी शिक्षा के निमित्त अन्य देशों के निवासी यहां आते थे। ब्राह्मणों के तेज से क्षत्रबल अश्वत्थपत्र के समान कम्पित होता था। धर्म में एक भी त्रुटि होने से सारे संसार में हलचल मच जाती थी। बड़े-बड़े शास्त्रार्थ के ग्रन्थ जिनका आज दिन आशय समझना कठिन है, निर्माण किये जाते थे। वेदशास्त्रादि ग्रन्थ और सत्यवचनादि में सब आरूढ़ थे। इस समय के समान छिन्नविद्या न होकर विद्वान् पूर्ण तथा सर्वज्ञ होते थे। शास्त्र का मर्म हस्तामलक रहता था, इस कारण किसी की हठ तथा दुराग्रह की बात चल नहीं सकती थी, परन्तु जगत् का अर्थ ही यह है कि, एक स्वरूप में स्थित नहीं रहता। जो ऊपर जाता है उसे समय पर नीचे आना ही पड़ता है। द्वापर बीतकर कलियुग का प्रारम्भ हुआ। महाभारत में मनुष्यों की ही नहीं, किन्तु शास्त्रादि की भी एक प्रकार की प्रलय सी हो गई।

सहस्रों ग्रन्थ और वेदों की शाखाएँ लोप हो गई। भारतवर्ष धन, जन, विद्या से शून्यप्राय हो गया, जैसे सूर्यास्त में खद्योत का प्रकाश होता है, इसी प्रकार पूर्ण विद्वानों के न होन से पण्डित मानियों की भी न बन पड़ी। अपने-अपने सहयोगियों को साथ करके अपना एक नवीन मार्ग स्थापित करने लगे और विविध प्रकार की नास्तिकता अधिकतर फैलने लगी। अधिकार के अनुसार जिसकी जहां तक बन पड़ी, वहां तक उसने संस्कृत शुद्ध देववाणी को त्यागकर नवीन अक्षर और नवीन भाषा के बोलने की परिपाटी निकाली। इस एक ही भारतवर्ष में संस्कृत का अपभ्रंश होकर अनेक प्रकार की भाषाएं और भिन्न-भिन्न मत प्रचलित हो गये। जिसके कारण देशभर में विद्रोह मच गया। केवल मतभेद ही नहीं हुआ, किन्तु भारतवर्ष के प्रेम का सूत्र जिससे कि सारा भारतवर्ष एकरूप हो रहा था, सर्वथा छिन्न-भिन्न हो गया। इसी अवसर में नास्तिक शिरोमणि चार्वाक् बौद्धादिक का मत यहां तक प्रबल हुआ कि, चीन से लेकर कन्याकुमारी तक सर्वत्र बौद्ध ही दृष्टिगोचर होते थे। उनकी बाहरी चटक **"अहिंसा परमो धर्मः"** ने मनुष्यों को ऐसा मोहित किया कि, उन्हें विद्याहीन होने से इस बात का भी कुछ ज्ञान नहीं था कि, हमारे यहां भी अहिंसा ही धर्म माना है। सनातनधर्म केवल काशी से ही पुण्यक्षेत्रों में दृष्टिगोचर होता था। इस प्रकार महा अधर्म के प्रवृत्त होने में शिवपरमात्मा की इच्छा से ही स्वामी श्रीशंकराचार्यजी का जन्म हुआ। उन्हों ने अल्प समय में ही वेद-वेदान्त के पारगामी होकर बड़े-बड़े शास्त्रार्थ करके, सर्वथा बौद्धों को परास्त करके भारतवर्ष से बाहर करके सब सीमाओं पर संन्यासियों के मठ स्थापन करके, शुद्ध सनातनधर्म का पुनरुद्धार किया। अल्प अवस्था में इस प्रकार का कार्य करना उन्हीं का काम था औरों का नहीं। उनके इस कार्य से भारतवर्ष के बुद्धिमान् पुरुष सदा कृतज्ञ रहेंगे। जब कार्य करने के उपरान्त वह कैलास को पधारे, तब बौद्धों द्वारा भ्रष्ट किये हुए इस देश में धर्म विषयक बड़ा गोलमाल उपस्थित हुआ, कारण कि सर्वसाधारण की बुद्धि में तो वेदान्त का आशय आ नहीं सकता था। इस कारण धर्म से संशय को प्राप्त होनेवाले पुरुषों का फिर विवाद उपस्थित हुआ और अपने सिद्धान्तों को प्रत्येक भिन्न-भिन्न प्रकार से मानकर विवाद करने लगे। कालक्रम से नीचे लिखे महात्माओं का प्रादुर्भाव हुआ। उन्हों ने प्राणियों को छिन्न-भिन्न देखकर अपने स्वीकार किये मतानुकूल पुरुषों का संकलन करके पृथक्-पृथक् सम्प्रदायों की स्थिति और तिलक आदि का विधान अधिकतर इस कारण किया कि, जिससे किसी को पूछताछ न करनी पड़े कि, तुम किस सम्प्रदाय के हो? उनमें श्रीसम्प्रदाय के प्रचारक श्रीस्वामी रामानुजजी, शिवसम्प्रदाय के प्रचारक श्रीविष्णुस्वामीजी, ब्रह्मसम्प्रदाय के प्रचारक मध्वाचार्यजी, सनकादि सम्प्रदाय के प्रचारक श्रीनिम्बार्काचार्यजी, राघवानन्दजी, रामानन्दजी, व्यास सहित हरिवंश आदि ने जो सम्प्रदायों का प्रचार किया है, सो इन्हीं का अवान्तर भेद है। इनके तिलक अलग-अलग और मुद्रा भी श्रीसम्प्रदाय के अलावा सबमें प्रायः शीतल ही धारण की जाती है, परन्तु श्रीनिवासाचार्यजी कृत दिव्यसूरिचरित के चतुर्थ सर्ग में गुरुपरम्परा देखने से विदित होता है कि, श्रीसम्प्रदाय के प्रथम आचार्य श्रीशठकोपाचार्यजी हुए हैं, यथा हि -

अस्ति पूर्वं पयोराशेः कापि पश्चिमरोधसि।
मण्डले पाण्डुभूपस्य नगरी कुरुकाह्वया।।
तत्रासीत्पादजातेषु कश्चिद्भागवताग्रणीः।
श्रीमत्पल्लीहि शूद्रेन्द्रः, सीमातीतगुणोल्बणः।।
तस्य धर्मपरो नाम तनय समजायत।
चक्रपाणिस्ततोजातश्चक्रपाणि परायणः।।

अजायतततस्तस्माद्रत्नरायेतिसंज्ञितः।
सुमतिं सुषुवे सोऽपि पुत्रं पाटललोचनम्।।
ततो जातः सुतस्तस्माच्छठकोप इतीरितः।
तमाहुः कारिजं सन्तः शठकोपं परांकुशम्।।
बकुलाभरणाख्यञ्च तमेव कारिनन्दनम्।

इत्यादि श्लोकों से पश्चिम सागर के तटपर पाण्डुभूप के राज्य में कुरुका नगरी में पल्ली नामक शूद्र के वंश में कारी के पुत्र महात्मा शठकोपजी का जन्म हुआ था। वह बकुल वस्त्र धारण किये रहते थे। इनसे ही प्रथम श्रीसम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ है। वास्तव में यह पूर्वज महात्मा रागद्वेषादि शून्य थे और परमात्मा के भजन में मग्न रहते थे। जब तक इन सम्प्रदायों में राग-द्वेष युक्त पुरुषों का प्रवेश नहीं हुआ था, तब तक किसी में विवाद उपस्थित नहीं हुआ था। परन्तु कुछ दिनों के उपरान्त द्वेष-क्रोध युक्त पुरुषों ने सम्प्रदायों में प्रवेश करके अपने को दूसरे से श्रेष्ठ मानकर और दूसरे को नीच जानकर द्रोह का अंकुर बोया अर्थात् कुछ दिनों के उपरान्त ऐसे श्लोक श्रवण-गोचर होने लगे।

शिवार्चनाद् ब्राह्मणस्तु शूद्रेण समतामियात्।
तिर्यक्पुण्ड्रधरं विप्रं चाण्डालमिव सन्त्यजेत्।।
वैष्णवः पुरुषो यस्तु शिवब्रह्मादि देवताः।
प्रणमेदर्चयेद्वापि विष्ठाया जायते कृमिः।।

अर्थात् शिवजी का पूजन करने से ब्राह्मण शूद्र के समान हो जाता है। त्रिपुण्ड्रधारी ब्राह्मण को चाण्डाल के समान त्याग दे, जो वैष्णव शिवादि देवताओं को प्रणाम करे वा पूजन करे वह विष्ठा का कीड़ा होता है और-

विष्णुदर्शनमात्रेण शिवद्रोहः प्रजायते।
शिवद्रोहान्न सन्देहो नरकं याति दारुणम्।।
तस्माच्च विष्णुनामापि न वक्तव्यं कदाचन।।१।।
यस्तु सन्तप्तशङ्खादिलिङ्गाङ्किततनुर्नरः।
स सर्वयातनाभोगी चाण्डालः कोटिजन्मसु।।२।।

अर्थात्- जो पुरुष तप्तशंखादि से चिह्नित होता है, वह मनुष्य सम्पूर्ण नरक की यातना को भोगकर कोटि जन्मों तक चाण्डाल होता है। विष्णुजी के दर्शनमात्र से शिवद्रोह होता है, शिवद्रोह से अवश्य ही दारुण नरक को जाता है, इस कारण कभी विष्णुजी का नाम नहीं लेना चाहिये, इत्यादि श्लोक पद्मादि पुराणों के नाम से सुने जाते हैं। अब इस पर बुद्धिमान् विचार कर सकते हैं कि, यह श्लोक अज्ञानियों ने ईर्ष्यापरवश होकर कल्पना किये हैं, जो द्रोह के मूल हैं। फिर यह द्रोह परस्पर ऐसे बढ़ा कि शैव और वैष्णवों में बड़े-बड़े युद्ध हो गये और यह अज्ञानियों का युद्ध क्रम से हमारे धर्मग्रन्थ पुराणों में भी प्रवेश कर गया।

पूर्वकाल में छापा नहीं जाता था, इस कारण पुस्तकें हाथ की लिखी मिलती थी। इस कारण कहीं-कहीं ही कोई-कोई पुस्तक मिलती थी। जो जिसके पास हुई, दूसरे से द्रोह के कारण अपनी प्रशंसा के एक दो श्लोक बनाकर, दूसरे की निन्दा के बनाकर लिख दिये और प्रमाण दे दिया। इसलिये यदि पुराणादि में ऐसे श्लोक मिलते, तो बुद्धिमान् उनको मिथ्या कल्पित मानते हैं, कारण कि ऐसे कुवाच्य द्रोह के ही कारण निकलते हैं। कहीं-कहीं बड़े ग्रन्थों में भी कोई-कोई शिवशून्यता के प्रसंग बड़ी

बुद्धिमानी से मिलाये गये हैं, जिन्हें सर्वसाधारण समझ नहीं सकते, परन्तु बड़े सूक्ष्म विचार से वह समझ में आ जाते हैं कि, यह प्रक्षिप्त ही है। हम इस बात को बड़ी खोज और सिद्धान्त के साथ कहते हैं कि, वेदान्तशास्त्र के कर्ता ईश्वरावतार व्यासजी जो तीनों देवताओं को एकरूप जानते थे, उनका किसी देवता की निन्दा करना किसी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता। इसलिये ऐसे श्लोकों का प्रमाण किस प्रकार हो सकता है ? जब कि उससे प्रत्यक्ष द्वेष की धारा प्रवाहित हो रही है। व्यासजी ने पुराणों में जिस देवता की महिमा वर्णन की है, उसको प्रधान निर्देश किया है और सब ब्रह्मरूप है, इस कारण सब ब्रह्मपरत्व का निर्देश दिया है। इस प्रकार भक्तों की जिस देवता में श्रद्धा हो उसी देवता की महिमा का पुराण पढ़ना तथा सुनना उनके विश्वास को दृढ़ करके परम श्रेय का देनेवाला है। दूसरे पुराणों की निन्दा करना या दूसरे देवताओं की निन्दा करना कोई धर्म नहीं, किन्तु अधोगति का कारण है। यह विचार करके समस्त पुराणों को एक दृष्टि से देखना चाहिये। तीनों देवता शक्ति सहित एक ही तीन रूप से कहे जाते हैं, उनमें कोई भेद नहीं है। तीनों वेदों के एक-एक देवता प्रधान है और युगों में भी यथाक्रम से प्रधानता होती है और सृष्टि का कार्यनिर्वाह होता है। जिस प्रकार कि काल का आदि नहीं है, इससे यह बात स्पष्ट प्रतीत होती है, कि, अनन्त बार प्रलय और अनन्त बार सृष्टि हो चुकी है। जिस कल्प में जिस देवता से सृष्टि प्रादुर्भूत होती है, वह देवता उसी के अनुसार उस युग में प्रधान गिना जाता है। अनन्त बार यह सृष्टि ब्रह्मा, विष्णु, महेशजी से प्रगट हुई है। कालवेत्ता पुरुष इस मर्म को अच्छी प्रकार जानते हैं। इस थोड़े से लेख से ही विद्वान् जान सकते हैं कि, पुराणों में न किसी प्रकार का द्वेष है, न परस्पर विरोध है और अपने-अपने विषयों में सभी इन्द्रियों को समान प्रमाण है। जैसे आँख का काम कोई अन्य इन्द्रिय नहीं कर सकती, इस कारण अन्य इन्द्रियों की अपेक्षा नेत्रों की जो महिमा कही जाय सो थोड़ी है। इस प्रकार कर्णेन्द्रिय का काम अन्य इन्द्रिय नहीं दे सकती, इससे नेत्रादि की अपेक्षा जो उसकी महिमा कही जाय सो थोड़ी है। इसी प्रकार सब देवता हैं, सब पुराणों में इसी प्रकार प्रधानता से देवताओं का उद्देश्य किया है, सो बुद्धिमान् समझ सकते हैं। यद्यपि जो पुराण देखने में आये हैं, उनमें इस प्रकार किसी की निंदा नहीं की गई है और यदि कहीं यह बात पाई जाय तो वह मिथ्या कल्पित जानना। हम जिस पुराण के ऊपर यह बात लिख रहे हैं, उस शिवमहापुराण में कोई श्लोक इस प्रकार के कुवाक्यों के नहीं आये हैं और हमने इसका बहुत विचार के साथ अवलोकन करके टीका किया है। तो इसे देखने से शिव और विष्णु एक ही रूप विदित होते हैं। जहां-तहां एक ही रूप प्रतिपादित किया है, इस प्रकार इसे प्रक्षिप्त श्लोकों से रहित व्यासप्रोक्त पवित्र आख्यानों को देखकर चार पदार्थों का साधक विचार सर्वसाधारण को इसका मर्म अवगत होना उचित समझा गया।

इस बात को सब विद्वान् मान चुके हैं कि, भारतवर्ष के लिये यवनों का समय महाकठिन हो गया था। उस राज्य में सहस्रों अमूल्य ग्रन्थ नष्ट-भ्रष्ट हो गये। सैकड़ों दुःख उठाकर ब्राह्मणों ने किसी प्रकार अपने ग्रन्थों की रक्षा की, परन्तु वे खण्ड-खण्ड हो गये। किसी एक के पास पूर्ण ग्रन्थ नहीं रहा। महीनों तक संस्कृत के ग्रन्थों से यवन सम्राटों के स्नान करने का पानी गरम होता रहा।

परन्तु समय सदा एकसा नहीं रहता, बहुत अनीति ईश्वर को नहीं भाती। कालक्रम से भारतवर्ष के पुनरुद्धार के लिये ईश्वरेच्छा से भारतवर्ष इंग्लेण्डेश्वरी, भारतवर्ष की महारानी क्वीन विक्टोरिया कैसरहिन्द के हस्तगत हुआ। जिसके राज्य में प्राचीन नवीन अनेक प्रकार की कला-कौशल के प्रचार का पूर्ण अवकाश मिला और उनके सुप्रबन्ध से प्राचीन ग्रन्थों के छापने का प्रबन्ध हुआ। जहां-तहां से द्रव्य व्यय करके पुराने ग्रन्थ छापे जाने लगे और नये प्रकार से पश्चिमी विद्या के साथ-साथ संस्कृत के ग्रन्थ

यंत्रों द्वारा निकलने लगे।

न्यायपरायण माननीय गवर्नमेन्ट ने अपने व्यय से ग्रन्थों को मुद्रित करके प्रकाशित किया और सर्वसाधारण लोगों में रुचि बढ़ने से प्रथम कलकत्ता और बम्बई में यन्त्रालय खोले गये। मुद्रित ग्रन्थ स्वल्प मूल्य में प्राप्त और शुद्ध होने लगे, इस कारण उनकी निकासी होने लगी। शास्त्र-पुराणों की खोज होने लगी और प्रत्येक स्थान से ग्रन्थों की प्रतियां मंगाकर उन सबको मिलाकर ग्रन्थ छापे जाने लगे। कोई-कोई पुराण तो सम्पूर्ण मिल गये और कोई बड़े परिश्रम से ही पूर्ण हुए। उनमें से शिवपुराण की भिन्न-भिन्न संहिता भिन्न-भिन्न स्थानों में पाई गई। उन सबको एकत्र करके संस्कृत टीका सहित महाशिवपुराण बम्बई में प्रकाशित किया गया, परन्तु उसमें टीकाकारों के मत से त्रुटि जानी गई और बड़ी खोज करने से उस समय छः संहिताओंवाला शिवपुराण प्राप्त हुआ। इस अवसर में जगद्विख्यात "श्रीवेङ्कटेश्वर" यंत्रालयाध्यक्ष वैश्यवंशातंस श्रेष्ठी श्रीयुत खेमराज श्रीकृष्णदासजी ने-जिन्होंने सर्वथा प्राचीन और नवीन ग्रन्थ संस्कृत तथा भाषा टीका सहित मुद्रित कराकर जगत् का बड़ा उपकार साधन किया और अष्टादशपुराणों को प्रकाशित करने का दृढ़ विचार किया। १७ पुराण प्रकाशित हो चुके हैं, समस्त हरभक्तों के निमित्त शिवपुराण को भाषा टीका सहित छापने की अभिलाषा से मुझे इसकी भाषा टीका करने की प्रेरणा दी और यह भी निश्चित किया गया कि, जहां कहीं इसमें न्यूनता रह गई हो तो यथाशक्ति दूसरे स्थानों में से संहिता मंगाकर और छापी हुई प्रतियों से मिलाकर ग्रन्थ पूर्ण किया जाए। उक्त सेठजी ने भी इसे पूर्ण करने का बहुत कुछ यत्न करके हस्तलिखित और यन्त्रित प्रति मेरे पास प्रेषण की। उस समय मैंने उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करके कलकत्ता आदि जगहों में छपी पुस्तकों को मँगाया और मिलान किया तो कहीं-कहीं कुछ न्यूनाधिक पाया गया। तब इसकी पूर्णता करने के लिये हस्तलिखित प्रतियों की खोज की गई।

इस प्रकार पांच प्रतियों के अवलम्बन से जहां-तहां पाठभेद निदर्शन सहित तथा पूर्व में जो कहीं कहीं रह गया था, उसकी पूर्ति के सहित इसे सर्वांग सुन्दर करके शिवपुराण भाषा निर्माण किया गया।

शिवपुराण को देखने से विदित होता है कि, पूर्वकाल में यह लक्ष श्लोकात्मक शिवपुराण द्वादश संहिताओं में विभक्त था। यह बात वायुसंहिता में स्पष्ट लिखी है। विद्येश्वरसंहिता, रुद्रसंहिता, विनायकसंहिता, उमासंहिता, मातृसंहिता, एकादशरुद्रसंहिता, कोटिरुद्रसंहिता, सहस्रकोटिरुद्रसंहिता, वायवीयसंहिता, धर्मसंहिता, कैलाससंहिता, शतरुद्रसंहिता इन संहिताओं को संक्षेप करके व्यासजी ने सात संहिताओं में विभक्त किया। यथा विद्येश्वरसंहिता, रुद्रसंहिता, शतरुद्रसंहिता, कोटिरुद्रसंहिता, उमासंहिता, कैलाससंहिता और वायवीयसंहिता। यद्यपि व्यासप्रोक्त शिवपुराण सात संहिता युक्त २४००० चौबीस सहस्र श्लोकों का था, परंतु हमें इससे पहले जो शिवपुराण प्राप्त हुए तथा छपे हुए मिले उन सबमें विद्येश्वरसंहिता, कैलाससंहिता, वायवीयसंहिता, सनत्कुमारसंहिता, धर्मसंहिता और ज्ञानसंहिता यही छः संहिता थीं। उस समय सम्वत् १९५२ में हमने उन्हीं छः संहिताओं को भाषानुवाद क़रके सर्वसाधारण के सम्मुख उपस्थित किया, परन्तु हमारे मन में यह लालसा बनी रही कि, व्यासप्रोक्त असली शिवपुराण सात संहिताओं में होना चाहिये। कालक्रम से बड़ी खोज करने पर वह सात संहिता युक्त शिवपुराण प्राप्त हो गया और पुराणशैली से बहुत रोचक और क्रमबद्ध कथायें इसमें प्रतीत हुई। तब पहले श्रीवेङ्कटेश्वर यन्त्रालय में इसका मूल प्रकाशित हुआ और शिवभक्तों को यथार्थ शिवतत्त्व का रहस्य प्राप्त हो जाए इसलिये इसकी भाषा टीका करके इसे प्रकाशित करना परम उपयोगी समझा गया और आज यह शिवपुराण की भाषा पाठकों के सामने उपस्थित है। मुझे आशा है कि, आप इसे देखकर

बहुत प्रसन्न होंगे।

पुराणों में किसी-किसी स्थल में ऐसे इतिहास विदित होते हैं, जो सर्वथा लोक विरुद्ध से प्रतीत होते हैं। उनको इस प्रकार से नहीं समझना चाहिये, वह केवल अलंकार हैं, जैसे कि ब्रह्माजी और सरस्वती का संवाद है, वेद ब्राह्मणों में उनको अलंकारपरत्व वर्णन किया है। यथा हि ऐ०पं०, ३का० ३३-३४।

प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायद्दिवमित्यन्य आहुरुषसमित्यन्ये। तामृश्योभूत्वा रोहितं भूतामभ्यैत् तस्य यद्रेतसः प्रथममुददीप्यद-सावादित्योभवदिति।। प्रजापतिर्वै सुपर्णो गुरुत्मानेष सविता

श०का०-१०, अ०ब्रा०-७, कं०-४

तत्र पिता दुहितुर्गर्भं दधाति पर्ज्यन्यः पृथिव्याः।

नि०अ०-४, ख०-२१

ऋग्वेद में भी यह कथा आई है। इन प्रमाणों से विदित है कि, प्रजापतिरूप सूर्य की उषा और प्रकाश दो कन्या उससे उत्पन्न होने के कारण कहलाती हैं। उषाकाल पिछले पहर पूर्वदिशा की लाली का नाम है, वह सूर्य की किरणों से उत्पन्न होने से उसकी कन्या हैं। उसके सम्मुख प्रथम सूर्य की किरणें पड़ने से वीर्य स्थापन होकर पुत्ररूपी दिन उत्पन्न होता है। यही बात शतपथ और निरुक्त में है। ऐसे ही गौतम, अहल्या और इन्द्र की कथा है। श० कां० ३ ब्रा० १ की १८ में देखे-

इसी एक आख्यान से समझ लीजिये कि लोक में और अलंकार में कितना अन्तर है, अलंकार-शास्त्र के पूर्ण आख्यानों को पुराणाचार्यों ने वेद की रक्षा के लिये ज्यों का त्यों रहने दिया है। क्योंकि, **"परोक्षप्रियाः हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः"** देवता परोक्षवाद प्रिय हैं, प्रत्यक्ष से द्वेष करते हैं, इस कारण बहुत से प्रसंग परोक्षवाद के जहां-तहां लिखे जाते हैं। बहुत से प्रसंग अध्यात्मपर हैं, जिनका संबंध वेदांत से है। भागवत में जैसे पुरञ्जन का उपाख्यान, हरिवंश में पुष्कर प्रादुर्भाव, शिवपुराण में जैसे शिवजी का नग्नावस्थान युक्त तपोवन में ऋषियों के निकट जाना। बहुत सी गाथाएं प्रहेलिका के समान हैं, प्रगट में कुछ और प्रकार और वास्तव में कुछ और प्रकार है। सब कोई इस बात को नहीं जान सकते, कोई शुद्ध मनवाले महात्मा ही इन प्रसंगों को यथार्थ जानते हैं। पुराण सर्वथा ब्रह्म के प्रतिपादन करनेवाले हैं, उनमें कोई विरुद्ध बात नहीं हैं।

बहुत से कुतर्की ऐसी ही बात गढ़ते हैं कि, जिससे लोगों को धर्म में अरुचि हो। शिवलिंग का अर्थ ही अश्लील करते हैं। उनको यह विचार नहीं कि, लिंग का अर्थ उस आदि में प्रगट होनेवाली अण्डाकार ज्योति से है, जिसने सब संसार को प्रगट किया है। यही आकृति संसार का उपादान कारण है, वह ज्योतिर्लिंग कहलाता है, **"यथा हि तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुभमप्रमम्।"** मनु० द्वादश ज्योतिर्लिंगों का तात्पर्य यही है कि, शिवजी के उपासकों को परमभक्ति से द्वादश स्थानों में ज्योतिः-स्वरूप का दर्शन होता है। यदि अश्लील अर्थ मानो तो **"मनसो लिङ्गम्, आत्मनो लिङ्गम्, अङ्गारलिङ्गो अग्निः"** यहां भी अश्लील मानना होगा, पर यह नहीं हो सकता, यह मन की पहचान है, यह आत्मा की पहचान है, अंगार अग्नि का चिन्ह है, यही अर्थ मानना होगा। यह संक्षेप से लिख दिया है, सज्जन इसका विस्तार कर लेंगे।

इसी प्रकार शिवजी का दारुकावन में गमन करना है। वह शिवतत्त्व सर्वत्र एक रस से प्रविष्ट हो रहा है, वह आत्मस्वरूप है, वह सदा दिगम्बर है, उसे नंगा सावरण सब एक सा है, वह सर्वगत पतिव्रताओं की दृष्टि कैसी होती है? यह दिखाने के लिये दारुकावन में गमन किया और अरुन्धती का यश बढ़ाया कि,

उसने पुत्ररूप से शिवजी को ग्रहण किया और कोई विकार न हुआ। इसी प्रकार वह सर्वगत निर्विकार है, दूसरे पक्ष में प्रकृति के पुरुष वशी हो तो, उसका तिरस्कार कर सकता है। यही बात शंकरजी ने ऋषिपत्नियों पर दिखाई कि, उस तत्त्व को बिना जाने, अपने में बिना देखे इधर-उधर धावमान होती हैं और तिरस्कार पाती हैं। अपने अधिकार के अनुसार स्वपुरुष की ओर धावमान होना चाहिये, ऋषियों ने उस तत्त्व को बिना जाने शाप दिया कि, यह लिंग पतित हो जाए अर्थात् उपादान कारण कि सामर्थ्य लोप हो जाए, तब आपने उन्हें उसमें स्थित ज्योति का दर्शन कराया और वह महान् बन गईं। तात्पर्य यह है कि, यह ज्योति अविनाशी है, सर्वत्र व्याप्त हो रही है, यह कभी पतित वा नष्ट नहीं हो सकती और यह ज्योति शक्तिरूप पार्वती ही धारण कर सकती है, दूसरे का इसमें अधिकार नहीं है। जैसे महान् विद्युत लोहे के शलाका में प्रवेश कर जाती है, यह रहस्य की गाथा है, इसी प्रकार और भी जान लेना -

वेदविद्या सर्वसाधारण को सुलभ नहीं होती। इसी कारण वेदव्यासजी ने उन पवित्र धर्मों की शिक्षा लोकवृत्त इतिहासों के सहित पुराणों में कही है, जिसे जान कर मनुष्य श्रेय प्राप्त कर सकता है। कालक्रम से पुराणों का श्रवण, पठन, पाठन अन्य वर्णों के सिवाय ब्राह्मणों में भी बहुत न्यून हो गया है, इसका कारण संस्कृत विद्या की न्यूनता है और साधारण परिश्रम से संस्कृत ग्रंथों का मर्म समझना बड़ा कठिन है, विदेशीय राज्य के लिये तो इस विषय में कुछ कह भी नहीं सकते। भारतवर्षीय महाराजा भी सर्वगुण आगर नागरिकों को अपने राजकाज में अधिकार नहीं देते। इस विषय में महाराजाधिराज क्षत्रकुल-कमल दिवाकर श्री १०८ महाराज रीवाँधिपति महाशय को हम कोटिशः धन्यवाद देते हैं कि, जिन्होंने राजसिंहासन पर आरूढ़ होकर अपने राज्य में नागरी अक्षरों में राजकाज करने की आज्ञा दे दी थी। यदि समस्त महाराजा इस ओर दत्तचित्त हों, तो थोड़े ही दिनों में नागरी का भण्डार पूर्ण हो जाए और ग्रंथकारों का उत्साह बढ़े। अब भी अनेक महानुभाव नागरी और अपने प्राचीन शास्त्रों को बड़े प्रेम से अवलोकन करते हैं। इसका प्रमाण यही है कि सैकड़ों ग्रंथ प्रतिवर्ष नवीन छपते हैं और यंत्रालय से बाहर हो जाते हैं और यथाशक्ति पुरातन ग्रंथों को देखने का सभी महात्माओं का पूरा उत्साह रहता है। खोज करके उनके प्रकाशन करने कि अभिलाषा करते हैं, परंतु हमारा धर्म पवित्र संस्कृत में विद्यमान है और उसके बिना जाने धर्म से च्युति होती जाती है और नवीन पाखंड भरे अनेक पंथ प्रचलित होते जाते हैं और नास्तिकजन सनातन धर्मावलम्बियों को धर्म से भ्रष्ट करके अधोगति को प्राप्त करने में तत्पर देखे जाते हैं। वेदशास्त्र के नाम से मिथ्या श्लोकादि लिखकर लोगों को वंचित करते हैं। श्रद्धा, भक्ति, संयम, नियम, तीर्थ, श्राद्ध, अवतार आदि की मिथ्या निंदा का गोलमाल करते हैं। जिससे अल्पज्ञ, अल्पश्रुत, विद्या रहित जन उनके मार्ग में प्रवृत्त होकर उभय लोक से भ्रष्ट हो जाते हैं तथा इतर जन कथा श्रवण करने का भी सर्वथा अवकाश नहीं पाते।

एक ओर तो भगवत्पूजन, अवतार, श्राद्ध, व्रत, जप, पूजापाठ पर दयानंदी समाज ने कुठाराघात करना आरंभ किया है, दूसरी ओर इन्हीं में से विषयी पुरुषों ने विधवाविवाह वेदशास्त्र के विरुद्ध खड़ा करके वर्णसंकरता का बीज बोना प्रारंभ किया है, धन्य कलि! तुम्हारे राज में अभी क्या-क्या देखना पड़ेगा? धर्मवीर उत्साही पुरुषों ने इनके निराकरण के लिये उपाय आरंभ किये, सच्चे महोपदेशकों ने धर्म के व्याख्यान सुनाकर अधर्मी जनों की कलई खोल कर शास्त्रार्थ करके जहां-तहां विधर्मी पुरुषों के दांत खट्टे किये, परंतु उनमें भी स्वार्थी घुस पड़े, धर्मसभाओं के मूल में दीमक लगने लगी, महामंडल ने नया रूप धारण किया। कहना कुछ, करना कुछ, बातें लंबी चौड़ी पर भीतर अपना कुछ और ही ध्यान है। धर्म चाहे हो या न हो पर हम तो बड़े बन जाय, दूसरों को आशा में ही टालते जाय, विराट कार्यों में से

एक भी न करे, परन्तु विराट का नाम १०० बार आ जाए, पुस्तक प्रचार विभाग में से वेदशास्त्र के मर्म का कहनेवाला एक भी ग्रन्थ उपयोगी न निकले, परन्तु स्वप्रशंसा के ढेर वर्णन किये जाएँ, सनातन धर्म अब तू कहां जाएगा ? कहीं उपदेशक मण्डल अपनी खिचड़ी पकाते हैं, वैतनिक उपदेशक जब तनख्वाह से अधिक कमा कर मण्डलों को दे, तो वे उन्हें नौकर रखें, नहीं तो घर बैठो, यही धर्म का विस्तार और प्रचार है। एक-एक धर्मसभा पर कितने मंगता आकर चिपटते हैं कि, उसमें कुछ विद्वत्ता नहीं रहने पाती। अब केवल भूखे ही मांगनेवाले नहीं है, अब तो सभी मांगते हैं। उत्सव के लिये चन्दा हुआ, पाठशाला को लाओ, यतीमखाने को लाओ, गोशाला को लाओ, मकान बनाने को लाओ, उपदेशक मण्डल को लाओ, महामण्डल को लाओ, महामण्डल के पत्र को लाओ, साधारण तथा विशेष मेम्बरी को लाओ, वैतनिक के आने-जाने का खर्चा लाओ, महामण्डल का वार्षिक लाओ, अवैतनिकों की भेंट पूजा लाओ। बस, लाओ लाओ में विचारी धर्मसभा निष्पत्र वृक्ष के समान ठूंठ रह जाती है, यदि नहीं देते हैं तो अलग फण्ड खुलते हैं, उसमें धर्म की हानि होती है। तात्पर्य यह है कि धर्मप्रचार की रीति बिलकुल उलटी हो गई है। धर्म आपके संस्कृत ग्रन्थों में विद्यमान हैं। उनका पठन-पाठन सर्वथा उठता जाता है। लोग धार्मिकग्रन्थ को पढ़ने से विमुख होते जाते हैं। इस ओर महानुभावों का ध्यान नहीं कि, प्राचीन वेदशास्त्रादि धर्मग्रन्थों का अनुवाद करके सर्वसाधारण के समझने योग्य संस्कृत से भाषा में अनुवाद करके सर्वसाधारण के दृष्टिगोचर करना ही पाखण्ड को दूर कर सकता है। इसमें थोड़े से ही व्यय से भक्तजन अपने धर्म-कर्म को यथायोग्य जान सकते हैं। इसी विचार से हमने वाल्मीकि रामायणादि का अनुवाद और दयानन्दतिमिरभास्कर आदि का निर्माण करके लोकोपकार के निमित्त प्रकाशित किया है, जिनसे बहुत कुछ उपकार सर्वसाधारण को प्राप्त हुआ है। यजुर्वेद का भाषा में भाष्य भी इसी निमित्त किया गया है।

यह शिवपुराण शैवों का सर्वस्व विधिप्रकार की गाथा, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, विधायक आख्यान, कर्मज्ञान, उपासना, योग, व्रत, तीर्थ, भूगोल, खगोल, शिवजी के निर्गुण-सगुणरूप का वर्णन, सतीचरित्र, गिरिजाचरित्र, स्कन्धकथा, त्रिपुरासुरवध, लिंगमाहात्म्य, शिवक्षेत्रकथा, रुद्राक्ष तथा भस्म माहात्म्य, काशी-कैलास माहात्म्य, शिवभक्ति की महिमा, पाशुपत योग आदि अनेक विषयों से विभूषित है। चारों वर्ण, चारों आश्रम इससे धर्म का पूर्ण उपदेश प्राप्त कर सकते हैं। इसके पाठ करने से चित्त शुद्ध होता है और सनातन गूढ़ इतिहासों का मर्म अवगत होता है। आदि से अन्त तक इसका पाठ करने से विज्ञानात्मा का प्रकाश होता है। बहुत कहने से क्या है ? इसका अवलोकन करके पाठक महाशय इसका गौरव जान सकते हैं।

इन धर्मग्रन्थों का अवलोकन करने से सन्त महात्मा तो आनन्द को प्राप्त होंगे, परन्तु पर दूषण भूषणधारी, असहनशील, कुतर्की तथा अभिमानी पुरुषों को हास्यरस के सिवाय और जो लाभ होगा, इसको वे ही अनुभव कर सकते हैं, कारण कि -

जे पर दोष लखहिं सह साखी, परहित घृत जिनके मन माखी।
पर अकाज लगि तनु परि हरहीं, जिमि हिम उपल कृषीदल गरही।

गोस्वामी तुलसीदासजी की इन दो चौपाइयों से उनकी प्रकृति वैसी ही जानकर उनसे बिना प्रयोजन दाहिने से बाँये हो जाने के कारण पुष्पाञ्जलि प्रदान करनी उचित समझी गई।

इस प्रकार इस ग्रन्थ की पूर्ति करके सद्गुण संपन्न निजधर्म सावधान, गुणवान् वैश्य वंशदिवाकर सर्वगुण आगर गौ ब्राह्मण भक्तिनिरत गुणग्राहक श्रीवेङ्कटेश्वर यन्त्रालयाधिपति परमोदार सेठजी श्रीखेमराज

श्रीकृष्णदासजी महाशय को प्रकाशन करने के लिये समर्पण करते हैं। जिन्होंने सब प्रकार से हमको सन्तुष्ट किया है और बहुत काल से परमसद्भाव युक्त अलौकिक प्रीति हमसे रखते हैं। अतएव परब्रह्म परमात्मा से प्रार्थना है कि, उक्त सेठजी के यहां अनेक मङ्गल और पुत्र सम्पत्ति की सदैव वृद्धि होती रहे, यही हमारी परम अभिलाषा है।

पाठक महाशयों से निवेदन है कि, आपके विनोद और भक्ति प्राप्ति के निमित्त इसके अनुवाद में कोई प्रसंग छोड़ा नहीं गया है। इसके उपरान्त भी अगर जहां कहीं भूल-चूक हो गई हो, तो आप अनुग्रह करके उसे क्षमा करके हंस के समान गुणग्राही होंगे और जो सूचित करेंगे, वह उचित होने पर दूसरी बार सुधार दिया जायेगा।

इस महापुराण के मुद्रित करने का सब रजिस्टरी अधिकार श्रीवेङ्कटेश्वर यन्त्रालय के अधिपति खेमराज श्रीकृष्णदास को दिया गया है, वे ही इसके छापने के अधिकारी हैं।

दोहा- सकल पुराणन को कह्यो, शिवपुराण में सार।
पढ़िये सुनिये प्रेम से, मिलहिं पदारथ चार।।

पौष कृष्ण पक्ष ५
संवत् १९६५

सज्जनों का अनुगृहीत-
पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र
दीनदारपुरा, मुरादाबाद

अथ शिवमहापुराणभाषा विषयानुक्रमणिका

अध्याय पृष्ठांक

प्रथमा विद्येश्वरसंहिता

।। इति प्रथमा विद्येश्वर संहिता ।।

*****

द्वितीया रुद्रसंहिता-प्रथम सृष्टिखण्ड

।। इति सृष्टिखण्ड ।।

*****

रुद्रसंहिता – द्वितीय सतीखण्ड

सतीखण्ड की समाप्ति

*****

रुद्रसंहितान्तर्गत – तृतीय पार्वतीखण्ड

पार्वतीखण्ड की समाप्ति

*****

रुद्रसंहितान्तर्गत – चतुर्थ कुमारखण्ड

कुमारखण्ड की समाप्ति

*****

अध्याय पृष्ठांक

रुद्रसंहितान्तर्गत – पञ्चम युद्धखण्ड

।। इति द्वितीया रुद्रसंहिता ।।

*****

तृतीया शतरुद्रसंहिता

इति शतरुद्रसंहिता

*****

अध्याय पृष्ठांक

चतुर्थी कोटिरुद्रसंहिता

इति कोटिरुद्रसंहिता

*****

पञ्चम उमासंहिता

इति उमासंहिता

*****

छठी कैलाससंहिता

इति कैलाससंहिता

*****

सप्तमी वायुसंहिता – पूर्वभाग

पूर्वखण्ड की पूर्ति

*****

वायुसंहिता – उत्तरभाग

इति वायुसंहिता

*****

इति श्री शिवमहापुराणभाषा विषयानुक्रमणिका समाप्ता

*****

।। श्रीः ।।

श्रीमदुमाकान्ताय नमः ।

अथ

शिवमहापुराणमाहात्म्य भाषा

*****

पहला अध्याय

दोहा–

गौरि गिरा गणपति गिरीश, गुरु गंगहि शिरनाय ।।
शिवमाहात्म्य भाषा तिलक, जनहित लिखत बनाय ।।१।।

शौनकजी बोले– हे महापण्डित सूतजी ! सब सिद्धान्तो को जाननेवाले महाप्रभो ! मुझे आप विशेष करके पुराणों की कथा का सार सुनाइये ।।१।। सपुत्र भक्ति से विवेक किस प्रकार से वृद्धि को प्राप्त होता है ? सज्जन अपने विकार किस प्रकार शोधम करते हैं ? सो आप कहिये ।।२।। इस घोर कुलियुग में जीव असुरता को प्राप्त हुए हैं, उनके शोधन का क्या प्रकार है ? सो आप कहिये।।३।। हे तात ! जो वस्तु परम और उत्तम कल्याणदायक है, जो पावनों की भी पावन तथा उत्तम साधन होवे, जिस साधन से आत्मा शीघ्र ही शुद्ध हो जाती है तथा सदा निर्मल चित्तवालों को शिवजी की प्राप्ति होती है, वह आप हमसे कहिये ।।४–५।। सूतजी बोले– हे मुनिश्रेष्ठो ! आप धन्य हो, जो यह कथा श्रवण करने में आपकी प्रीति है। इस कारण मैं बुद्धिपूर्वक विचार करके इस उत्तम शास्त्र को कहता हूँ ।।६।। सब सिद्धान्तो से युक्त भक्ति आदि को बढ़ानेवाला, शिवजी को सन्तुष्ट करनेवाला, परमदिव्य रसायन रूप, कालरूपी महासर्प का विध्वंस करनेवाला परमोत्तम शिवपुराण है। हे मुने ! यह शिवजी का कहा है ।।७–८।। और सनत्कुमारमुनि के उपदेश से कलियुगी प्राणियों के निमित्त व्यासजी ने इसे संक्षेप में कहा है।।९।। हे मुने ! कलियुगी मनुष्यों के मन को शुद्ध करनेवाला इस शिवपुराण से

अधिक दूसरा नहीं है ।।१०।। जिसने जन्मान्तर में बड़े–बड़े पुण्य किये हैं, उसकी इस महापुराण को सुनने में महाप्रीति होती है ।।११।। यह शिवपुराण परम उत्तम शास्त्र है, पृथ्वी पर इसे शिवरूप जानकर इसे आदर से सदा श्रवण–मनन करना चाहिये ।।१२।। इसे पढ़ने–सुनने से मनुष्य श्रेष्ठ भक्तिमान् होकर उसे शीघ्र ही शिवसाधनरूप परमपद की प्राप्ति हो जाती है ।।१३।। इस कारण सर्व प्रकार से मनुष्यों को इसे पढ़ना उचित है और इसे प्रेम से पढ़ने से भी सब कामनाओं की प्राप्ति होती है ।।१४।। शिवपुराण सुनने से मनुष्य पाप रहित हो जाता है और अनेक भोग भोगकर अन्त में शिवलोक को जाता है ।।१५।। जो पुण्य राजसूय यज्ञ, सौ अग्निष्टोम यज्ञों से प्राप्त होता है, वह फल शिवजी की कथा के श्रवणमात्र से प्राप्त हो जाता है ।।१६।। हे मुने! जो इस उत्तम शिवपुराण को सुनते हैं, वे मनुष्य नहीं किन्तु रुद्ररूप हैं, इसमें सन्देह नहीं ।।१७।। इसे श्रवण और कीर्तन करनेवालों के चरणों की रज तीर्थ स्वरूप हैं, ऐसा मुनियों ने कहा है ।।१८।। जो प्राणी कल्याणस्थान में जाने की इच्छा करते हैं, वे भक्ति से नित्यप्रति शिवजी के इस निर्मल पुराण को श्रवण करें ।।१९।। यदि सर्व काल सुनने को असमर्थ हो तो नियमित होकर दो घड़ी सुना करे ।।२०।। और यदि प्रतिदिन सुनने को असमर्थ हो तो पवित्र महीनों में शिवपुराण सुने ।।२१।। जो एक मुहूर्त्त, उसका आधा वा उससे भी आधा अथवा क्षणमात्र को भी शिवपुराण सुनते हैं, उनकी दुर्गति नहीं होती ।।२२।। हे मुनीश्वर! जो इस पुराण को सुनते हैं, वह कर्मरूपी महावन को भस्म करके संसार से तर जाते हैं ।।२३।। हे मुने! जो पुण्य उन सम्पूर्ण यज्ञों से होता है, वह फल शिवपुराण के श्रवणमात्र से ही अवश्य प्राप्त होता है ।।२४।। विशेष करके कलियुग में मनुष्यों को मुक्तिसाधन करानेवाला शिवपुराण के सिवाय दूसरा धर्म नहीं है ।।२५।। शिवपुराण का श्रवण वा उसका नामसंकीर्तन मनुष्यों को कल्पवृक्ष के समान फल देनेवाला है, इसमें सन्देह नहीं ।।२६।। कलियुग में जिन दुर्मेधी पुरुषों ने अपना धर्म त्याग दिया हैं, उनको भी यह सुधारूपी शिवपुराण हितकारक है ।।२७।। जो पुरुष इस अमृत का पान करता है, वह अजर–अमर हो जाता है और इस शंभुजी की कथारूपी अमृत से अपने कुल को अजर–अमर कर देता है ।।२८।। विशेष करके इसका सदा सेवन करे, इस शिवपुराण की कथा परमपावनी है ।।२९।। इस शिवपुराण की कथा के श्रवणमात्र से ही जो फल होता है, वह मैं क्या वर्णन करूं? शिवजी में अपना मन समर्पण कर दे ।।३०।। यह ग्रन्थ चौबीस सहस्र श्लोकों में सात संहिताओं से युक्त है। भक्ति, ज्ञान तथा वैराग्य के सहित इसे परम आदर से सुने ।।३१।। पहली विद्येश्वरसंहिता, दूसरी रुद्रसंहिता, तीसरी शतरुद्रिय संहिता, चौथी कोटिरुद्रसंहिता, पांचवीं उमासंहिता, छठी कैलाससंहिता और सातवीं वायुसंहिता, इस प्रकार यह सात संहिता हैं, यह सातों संहिताओं के अन्तर्गत है ।।३२–३३।। इन सात संहिताओं के सहित दिव्य शिवपुराण वर्णन किया है। इसे

सर्वोपरि गति देनेवाला ब्रह्मतुल्य कहा गया है ।।३४।। इस पुराण की सातों संहिताओं को जो आदर से पूर्ण पढ़ता है, वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ।।३५।। हे मुने! यह प्राणी अज्ञान से तभी तक संसार में भ्रमता है, जब तक शिवपुराण कर्णगोचर नहीं होता ।।३६।। दूसरे शास्त्र और विविध विषयों के पुराणों से क्या है ? एक शिवपुराण ही मुक्तिदान से सर्वोपरि गर्जता है ।।३७।। जिस घर में इस शिवपुराण की कथा होती है वह घर तीर्थ रूप है, वहां रहने से पाप नष्ट होता है ।।३८।। सहस्र अश्वमेध, सौ वाजपेय यज्ञ शिवपुराण की सोलहवीं कला के भी समान नहीं है ।।३९।। हे मुनिश्रेष्ठ! तभी तक पापी पापकारी कहा जाता है, जब तक वह भक्ति से शिवपुराण नहीं सुनता ।।४०।। सहस्र गंगादि सात नदियां और सात पुरियां तथा गया भी इस शिवपुराण की समता को प्राप्त नहीं होती है ।।४१।। जो परमगति की इच्छा करे वह भक्ति से नित्य ही शिवपुराण का एक या अर्द्ध श्लोक पढ़े ।।४२।। इस शिवपुराण को जो भक्ति से पढ़ता है और नित्य सुनता है, वह पुण्यात्मा है, इसमें सन्देह नहीं ।।४३।। जो बुद्धिमान् अंतकाल में भक्ति से इसे पढ़ता है, शिवजी प्रसन्न होकर उसे अपना पद प्रदान करते हैं ।।४४।। जो आदर से नित्य इस शिवपुराण का पूजन करते हैं, वह यहां सब कामनाओं को भोगकर अन्त में शिवपुर को जाते हैं अर्थात् उन्हें शिवपद की प्राप्ति होती है ।।४५।। आलस्य रहित होकर इस शिवपुराण को नित्य पढ़ने से, पट्टवस्त्रादि से नित्य सत्कार करने से सदा सुख मिलता है ।।४६।। यह शिवपुराण परम निर्मल है, यह सर्वस्व है, जिसे दोनों लोकों में सुख की इच्छा हो, वह इसे आदर से पढ़े ।।४७।। यह निर्मल शिवपुराण चतुर्वर्ग का देनेवाला है, इसे सदा प्रीति से पढ़ना और सुनना चाहिये ।।४८।। वेद, इतिहास और शास्त्र में यह परमश्रेय का करनेवाला है । मुमुक्षुओं को सदा शिवपुराण को जानना चाहिये ।।४९।। यह शिवपुराण आत्मज्ञानियों के लिये अत्यन्त श्रेष्ठ है, यह परमवस्तु सदा सेवनी चाहिये । यह सत्पुरुषों को पूजनीय है । तीनः तापों का नाश करनेवाला तथा सदा सुखदायक हैं, ब्रह्मा, हरि आदि देवतादिकों को भी प्राणों के समान प्रिय है ।।५०।। मैं प्रसन्न होकर शिवपुराण को सदा प्रणाम करता हूँ, शिवजी इसमें प्रसन्न होकर अपने चरणों की प्रीति दें ।।५१।।

इति श्रीस्कान्देमहापुराणे शिवमहापुराणमाहात्म्ये भाषायां
तन्महिमवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ।। १ ।।

*****

दूसरा अध्याय

शौनकजी बोले– हे परमार्थ के जाननेवाले महाभाग सूतजी! आप धन्य हो। आपने हम पर कृपा करके यह अद्भुत कथा हमें सुनाई ।।१।। पापनाशिनी, मन को शुद्ध करनेवाली तथा शिवजी को सन्तुष्ट करनेवाली परम कथा आपने हमें सुनाई ।।२।। इस कथा के समान पृथ्वी पर कुछ भी नहीं है, आपकी कृपा से यह हमने निश्चय जान लिया है ।।३।। हे सूतजी! कलि में इस कथा से कौन–कौन शुद्ध होंगे? यह आप कृपा करके कहिये और संसार को कृतार्थ कीजिये ।।४।। सूतजी बोले– जो मनुष्य पापी, दुराचारी, खल कामादि में निरत हैं, वे भी इससे शुद्ध हो जायेंगे ।।५।। यह परम भुक्ति–मुक्ति देनेवाला ज्ञानयज्ञ है, सब पापों का शोधक और शिवजी को सन्तुष्ट करनेवाला है ।।६।। तृष्णा से आकुल, सत्य से हीन, पिता–माता के विदूषक, दाम्भिक तथा हिंसक भी इससे शुद्ध हो जाते हैं ।।७।। जो अपने वर्ण तथा आश्रम के धर्म से रहित मत्सरी हैं, वे भी कलि में इस ज्ञानयज्ञ से तर जायेंगे ।।८।। जो छलछन्दी क्रूर निर्दयी हैं, वे भी कलि में इस ज्ञानयज्ञ से तर जायेंगे ।।९।। जो ब्राह्मणों के धन से पुष्ट हुए व्यभिचारी हैं, वे भी कलि में इस ज्ञानयज्ञ से तर जायेंगे ।।१०।। जो सदा पापी तथा शठ दुराशावाले हैं, वे भी कलियुग में इस ज्ञानयज्ञ से तर जायेंगे ।।११।। मलीन दुर्बुद्धि, शान्त देवताओं के द्रव्य खानेवाले भी कलियुग में इस ज्ञानयज्ञ से तर जायेंगे ।।१२।। इस पुराण का पुण्य महापातक नष्ट करनेवाला है, भुक्ति–मुक्ति और शिवसन्तोष का कारण है ।।१३।। इसमें एक पुरातन इतिहास कहते हैं, जिसे सुनने से पापहानि होती है और बड़ा फल मिलता है ।।१४।। किरातनगर में एक ज्ञानदुर्लभ ब्राह्मण रहता था। वह दरिद्री रस का बेचनेवाला देवधर्म से पराङ्मुख था ।।१५।। सन्ध्या स्नान से भ्रष्ट, वैश्यवृत्ति में परायण वह देवराज ब्राह्मण विश्वासीजनों को ठगनेवाला था ।।१६।। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य जाति को भारकर अनेक प्रकार से उनका धन हर लेता था ।।१७।। उसने अधर्म से बहुत धन इकट्ठा किया था और उस पापी का धन कभी भी किसी भी धर्म में नहीं लगा था ।।१८।। एक समय वह ब्राह्मण तड़ाग में स्नान करने गया। वहां एक भावती नामक वेश्या को देखकर वह विह्वल हो गया ।।१९।। वह सुन्दरी भी उस धनी ब्राह्मण को अपने वश में देखकर प्रसन्न हुई और वार्तालाप से उसका चित्त भी प्रीतिमान् हो गया ।।२०।। उस ब्राह्मण ने उसे अपनी स्त्री और उस स्त्री ने उस ब्राह्मण को अपना पति समझा। इस प्रकार वह दोनों काम के वशीभूत होकर बहुत काल तक विहार करते रहे ।।२१।। आसन, शयन, पान, भोजन, क्रीड़ा में उन दोनों

स्त्री–पुरुषों ने परस्पर समय बिताया ।।२२।। माता–पिता तथा पत्नी से बारंबार निवारित होकर भी उस पापात्मा ने उनके वचन न माने ।।२३।। एक दिन रात्रि होने पर उसने ईर्षा में से अपनी माता–पिता और बहू को सोते में ही मार डाला और उनका सब धन हर लिया ।।२४।। अपना और पिता का जो धन था, वह सब कामासक्तचित्त होकर उसने वेश्या को दिया ।।२५।। वह पापी अभक्ष्य पदार्थों को भक्षण करने लगा और मदिरा पीने की इच्छा करते हुए वह नीच ब्राह्मण सदा उस वेश्या के साथ एक ही पात्र में भोजन करता था ।।२६।। एक समय दैवयोग से प्रतिष्ठानपुर में आया। वहां पर उसने साधुजनों से युक्त एक शिवालय देखा ।।२७।। वह ब्राह्मण ज्वर से पीड़ित होकर वहां स्थित हुआ। वहां उसने ब्राह्मण के मुख से शिवसम्बन्धिनी कथा श्रवण की ।।२८।। ज्वर से पीड़ित हुआ वह देवराज ब्राह्मण यमदूतों द्वारा पाशबन्धन प्राप्त कराके बलपूर्वक यमपुर को ले जाया गया ।।२९।। उसी समय त्रिशूल हाथ में लिये, सर्वांग में भस्म लगाये हुए, शरीर में रुद्राक्ष पहने हुऐ शिवजी के गण शिवलोक से क्रोध से आकर यमपुरी के प्रति गये और उन्होंने यमदूतों को ताड़न करके बारंबार उनका तर्जन किया ।।३०–३१।। और देवराज ब्राह्मण को उस संकट से छुड़ाकर उसे परमोत्तम राजसिंहासन पर बैठाकर वे शिवदूत कैलास पर ले जाने की इच्छा करने लगे ।।३२।। उस समय यमपुरी में महा कोलाहल हुआ। उसे सुनकर धर्मराज अपने मन्दिर से बाहर आये ।।३३।। साक्षात् रुद्र के समान दूसरे दूतों को वहां देखकर धर्मराज ने विधानपूर्वक उनका पूजन किया और अपने ज्ञानचक्षु से यमराज ने उनका सब वृत्तान्त जान लिया, परन्तु भय के कारण महात्मा शिवजी के दूतों से उन्होंने कुछ न कहा ।।३४–३५।। और वह शिवदूत पूजित होकर कैलास पर गये और उस ब्राह्मण के पापहानि के इच्छा से उन्होंने उसे पार्वतीजी के सहित शिवजी को दिया ।।३६।। परमपावनी शिवपुराण की कथा धन्य है, जिसके श्रवणमात्र से पापत्माओं भी मुक्ति को प्राप्त हा जाते है ।।३७।। सदाशिवजी ही महास्थान और परमधाम कहे हैं। वेद जाननेवाले पण्डितों ने कहा है कि, शिवलोक सब लोकों के ऊपर है ।।३८।। धन के लोभ से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य दूसरे प्राणियों को तथा अपने माता–पिता तथा भार्या को मारनेवाला देवराज ब्राह्मण क्षण में उस स्थान में जाकर मुक्त हो गया ।।३९–४०।।

इति श्रीस्कन्देमहापुराणे शिवमहापुराणमाहात्म्ये भाषायां
देवराजमुक्तिवर्णनं नाम द्वितीयोऽधायः ।। २ ।।

*****

तीसरा अध्याय

शौनकजी बोले– हे महाभाग सूतजी ! आप सर्वज्ञ और महाबुद्धिमान् हो। आपके प्रसाद से मैं बारंबार कृतार्थ हूं।।१।। इस इतिहास को सुनकर मेरा मन बहुत प्रसन्न हुआ है, अब प्रेम बढ़ानेवाली शिवजी की अन्य कथा कहिये।।२।। अमृतपान करनेवालों को लोक में और मुक्ति क्या है ? शिवकथामृतपान ही प्रत्यक्ष मुक्ति देनेवाला है, जिसे श्रवण करते ही प्राणी शिवलोक को जाता है। शिवजी की कथा धन्य है और आप भी धन्य हो।।३–४।। सूतजी बोले– हे शौनकजी ! मैं आपके आगे परमगुह्य कथा वर्णन करता हूँ, हे वेदवित्तम ! जिस कारण आप शिवभक्तों में अग्रणी हो।।५।। समुद्र के निकट एक देश में बाष्कल नामक ग्राम था, जिसमें वेदधर्म को छोड़नेवाले पापिष्ठी निवास करते थे।।६।। जो दुष्ट, दुर्विषयी, कुटिलवृत्ति, निर्दैव जिह्वावृत्ति, खेती करनेवाले, शस्त्रबलवाले, परस्त्री भोगी, खल, ज्ञान–वैराग्यरूपी अपने धर्म के हेतु को न जाननेवाले वे पशुबुद्धि थे और कुकथा श्रवण करने में ही प्रीति करते थे, कारण कि वे पशुबुद्धि थे।।७–८।। दूसरे वर्ण भी अपने धर्म से विमुख कुबुद्धि थे, सदा खल कुकर्म करनेवाले वे विषयी थे।।९।। सब स्त्रियां कुटिल और पापलालसावाली स्वैरिणी, व्यभिचारिणी, सत्व्रत और आचार से हीन थीं।।१०।। इस प्रकार कुजनों से पूर्ण उस बाष्कल ग्राम में एक बिन्दुग नामक महाअधर्मी ब्राह्मण था।।११।। वह महापापी दुरात्मा स्त्री सहित कुमार्गी था, फिर काम से व्याकुलचित्त होकर वह वेश्यापति हुआ।।१२।। वह अपनी सहधर्मिणी पत्नी चंचुला को छोड़कर कामबाण से पीड़ित होकर वेश्या के साथ रमने लगा।।१३।। इस प्रकार उस कुकर्मी का बहुत समय बीत गया। कामाक्रान्त होकर भी अपने धर्म के भय और क्लेश से महातरुणाई को प्राप्त हो महाविषम काम की पीड़ा से उस चंचुला ने भी अपना धर्म छोड़ दिया।।१४–१५।। जार से संगति कर रात्रि में अपने धर्म से विराम को प्राप्त होकर पति की दृष्टि बचाकर भ्रष्टसत्त्व और कुमार्गगामिनी होकर रहने लगी।।१६।। किसी समय उस ब्राह्मण ने अपनी दुराचारिणी पत्नी चंचुला को रात्रि के समय जार के सहित देखा।।१७।। कुमार्ग में रत उस दुष्टिनी अपनी भार्या को रात्रि में जार के संग रमण करते हुए देखकर वह क्रोध से दौड़ा।।१८।। उस बिन्दुग ब्राह्मण को रात्रि के समय अपने घर में आया देख स्त्री के संकेत से वह दुष्ट जार पलायन कर गया, कारण कि वह छली था।।१९।। तब बिन्दुग ने अपनी दुश्चरित्रा पत्नी को पकड़कर घूंसों से बारंबार ताड़न किया।।२०।। वह चंचुला अपने भर्ता से ताड़ित हो क्रोध से निर्भय होकर अपने पति से बोली।।२१।।

चंचुला कहने लगी–"मैं प्रतिदिन आपकी सेवा करती हूँ, और आप मुझे छोड़ प्रतिदिन वेश्या के साथ रमण करते हो?।।२२।। जो रूपवती स्त्री काम से व्याकुलचित्त है, पति के विहार के बिना उसकी क्या गति होगी? यह आप मुझसे कहिये।।२३।। मैं महारूपवती, नवयौवना और विह्वल हूँ, आपके संग हुए बिना काम का दुःख मैं किस प्रकार सहन कर सकती हूँ?"।।२४।। सूतजी बोले– ऐसा कहनेपर वह मूढ़धी, ब्राह्मणों में नीच, अपने धर्म से हिन नीचमति पापी कहने लगा।।२५।। बिन्दुग बोला–"हे काम से व्याकुलचित्त कान्ते! मैं तेरे हित की बात कहता हूँ, तू उसे भय त्यागकर सुनकर तू निर्भयचित्त होकर जार के साथ रमण कर, परन्तु उसे प्रसन्न करके उससे धन भी तो ले।।२६–२७।। और वह सब धन मुझ वेश्यागामी को प्रदान कर, इसमें मेरा और तेरा दोनों का स्वार्थ होगा"।।२८।। सूतजी बोले– यह वचन सुनकर चंचुला ने कहा 'बहुत अच्छा' और फिर महाप्रसन्न होकर दोनों दुष्ट मन परस्पर प्रतिज्ञा करके निर्भयचित्त से महाकुकर्मी हो गये।।२९–३०।। इस प्रकार दुराचार में प्रवृत्त हुए उन दोनों स्त्री–पुरुषों का बहुत काल बीत गया और वे मूढ़चित्त निष्फल रहे।।३१।। एक समय वह मूर्ख वृषलीपति समयानुसार मृत्यु को प्राप्त होकर नरक में गया।।३२।। वह मूर्ख महापापी बहुत समय तक नरक का दुःख भोगकर विन्ध्यपर्वत पर बड़ा भयंकर पिशाच हुआ।।३३।। जिस समय दुराचारी बिन्दुग मर गया, वह मूर्खा चंचुला बहुत काल तक पुत्रों के सहित घर में रही।।३४।। और जारों के साथ बराबर रमण करती रही। जब उस काम से प्रसन्न होनेवाली का कुछ यौवन बीत गया।।३५।। तब एक समय दैवयोग से पुण्यपर्व का उदय होने पर बन्धुजनों के सहित वह नारी चन्चुला गोकर्णक्षेत्र को प्राप्त हुई।।३६।। प्रसंग से वह किसी एक तीर्थ के जल में स्नान करके बन्धुजनों के साथ इधर–उधर भ्रमण करने लगी।।३७।। वहां किसी देवालय में जाकर एक पण्डित के मुख से शिवपुराण की कथा सुनी।।३८।। कि जो स्त्री जार के संग रमण करती है, उसे यमकिंकर नरक में ले जाकर तप्त लोह का मूसल उसके कामस्थान में प्रवेश कराते हैं।।३९।। इस प्रकार विराग–वर्धिनी पुराणकथा सुनकर वह महाभय से उद्विग्न होकर वहीं भय से कम्पित हुई।।४०।। जब कथा पूर्ण हुई और सब मनुष्य चले गये, तब वह नारी डरकर उस कथा पढ़नेवाले ब्राह्मण से एकान्त में पूछने लगी।।४१।। चंचुला बोली– हे ब्रह्मन्! आप यह जानिये कि, मैं असत् वृत्तिवाली हूँ। मेरे वृत्तान्त को सुनकर मुझ पर बड़ी कृपा करके मेरा उद्धार कीजिये।।४२।। मेरे महाघृणित चरित्र हैं। मुझ मूढ़ा ने अज्ञान से अपना सब यौवन व्यभिचार में गुमा दिया, उस समय मैं मदान्ध हो गई थी।।४३।। आपके यह वैराग्यरस भरे वचन सुनकर मैं महाभयभीत हुई हूँ और मेरा हृदय वियोग से कम्पित हो रहा है।।४४।। काम से मोहितचित्त, मूढ़ बुद्धिवाली मुझको धिक्कार है। जो मैं निन्दित कुधर्म में स्वधर्म से विमुख होकर प्राप्त

हुई हूँ।।४५।। जो थोड़े सुख के कारण अपने कार्य के विनाश करनेवाले, महाकष्ट देनेवाले घोर कर्म में प्रवृत्त हुई हूँ।।४६।। हां! मैं कौनसी घोर कष्टदायिनी दुर्गति को प्राप्त होऊंगी, कुमार्ग में मन लगानेवाली मेरी रक्षा वहां कौन करेगा?।।४७।। मरण को प्राप्त होकर उन यमदूतों को किस प्रकार देखूंगी? जिस समय वह कठिन पाशों से मुझे बांधेंगे, तब किस प्रकार मुझे विश्राम मिलेगा?।।४८।। नरक में जब देह के खण्ड-खण्ड होंगे, तब वह मुझसे कैसे सहा जायेगा? वहां तो बड़ी-बड़ी दुःसह यातना होती हैं।।४९।। इन इन्द्रियों की चेष्टा सोचती हुई मैं कैसे देखूंगी? दुःख से युक्त होकर मैं रात्रि में कैसे निद्रा को प्राप्त होऊंगी?।।५०।। हां! मैं विदीर्ण हृदया हत और दग्ध हो गई हूँ, सब प्रकार मैं नष्ट हुई हूँ, कारण कि महापापिनी हूँ।।५१।। हे विधाता! हठ ने मुझे महापाप में दुर्बुद्धि देकर क्या किया? जो सब सुखों को देनेवाले अपने धर्म से रहित कर देती है।।५२।। हे महात्मन्! शूल से पोहने से, पर्वत से गिरने से जो दुःख होता है मुझे उससे करोड़ गुना है।।५३।। सौ अश्वमेध यज्ञ करके तथा सौ वर्ष गंगास्नान करके भी मेरे बड़े पाप की शुद्धि नहीं होगी।।५४।। क्या करूं, कहा जाऊँ, किसकी शरण लूं? नरकसागर में पड़ी हुई मेरी रक्षा करने को इस लोक में कौन समर्थ है?।।५५।। हे ब्रह्मन्? आप ही मेरे गुरु और माता-पिता हो, मुझ दीन का उद्धार कीजिये, मैं आपकी शरण हूँ।।५६।। सूतजी बोले- जब इस प्रकार निर्वेद को प्राप्त होकर वह चरणों में गिरी, तब उस पर कृपा करके उसे उठाकर ब्राह्मण ने कहा।।५७।।

इति श्रीस्कन्दे महापुराणे शिवपुराणमाहात्म्ये भाषायां
चंचुलावैराग्यवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

*****

चौथा अध्याय

ब्राह्मण बोला- भाग्य से ही तू समय पर ज्ञान को प्राप्त हुई हो, तेरे ऊपर शिवजी का अनुग्रह है, जो तू इस शिवपुराण की वैराग्यवत् कथा को सुनकर ज्ञान को प्राप्त हुई हो।।१।। हे द्विजपत्नी! मत डर और शिवजी की शरण को प्राप्त हो। शिवजी के अनुग्रह से शीघ्र ही सबके पाप नष्ट हो जाते हैं।।२।। मैं शिवकीर्ति संयुक्त परमवस्तु का तेरे प्रति वर्णन करता हूँ, जिससे सर्व प्रकार तेरी सुखदायक गति होगी।।३।। उनकी सत्कथा श्रवण से तेरी ऐसी मति हुई जो तू पश्चाताप से युक्त होकर शुद्ध हुई हो और विषयों से तुझे वैराग्य हुआ है।।४।। जो पश्चात्ताप करता वही पापों की परम निष्कृति है, विद्वानों ने सर्व प्रकार के पापों की शुद्धि कही है।।५।। जिसकी पश्चात्ताप से शुद्धि

न हो वह प्रायश्चित्त करे, सत्पुरुषों ने यथेष्ट सब पापों का शोधक कहा है।।६।। पुरुष अनेक प्रकार के प्रायश्चित्त विधिपूर्वक करके भी निर्भय नहीं होता, किन्तु पश्चात्ताप करनेवाला अवश्य सुगति को प्राप्त होता है।।७।। परन्तु जैसी चित्तशुद्धि शिवपुराण के श्रवण से होती है, ऐसी अन्य उपायों से नहीं होती है।।८।। जैसे शोधा हुआ दर्पण निर्मल हो जाता है, इसी प्रकार शिवपुराण की कथा सुननेवाले की अवश्य शुद्धि होती है, इसमें सन्देह नहीं।।९।। जब विशुद्ध चित्तवाले मनुष्य के हृदय में पार्वती सहित शिवजी स्थित रहते हैं, तब वह विशुद्धात्मा शिवपार्वती के विशुद्ध लोक को जाता है।।१०।। इस कारण सब वर्णों को यह कथा श्रवण करनी चाहिये। इसी कारण महादेवजी ने इसे निर्माण किया है, यह सर्व वर्गों का साधक है।।११।। इस कथा से गिरिजापति का ध्यान सिद्ध होता है। ध्यान से ज्ञान और उससे कैवल्य होता है।।१२।। जिसे शिवजी का ध्यान असिद्ध है, यदि वह कथा श्रवण करे तो भी उसे शिवजी का ध्यान प्राप्त होकर परमगति होती है।।१३।। इस कथा को श्रवण कर उमापति का ध्यान कर पश्चात्ताप करनेवाले अनेक पापी भी सिद्ध हो गये है।।१४।। जो मनुष्य इस सत्कथा को सुनते हैं, वे सब मङ्गल को प्राप्त होते हैं। शिवजी का यथायोग्य आराधन करने से संसाररोग से छूट जाता है।।१५।। शिवजी की कथा श्रवण करके हृदय में मनन करने से तथा निदिध्यासन से पूर्ण चित्तशुद्धि हो जाती है।।१६।। इससे शिवजी के पुत्रों से अवश्य भक्ति होती है, इसके अनुग्रह से दिव्य भक्ति होती है, इसमें सन्देह नहीं।।१७।। इसके बिना माया में लगा हुआ पशुवत् जानना, वह कभी संसारबन्धन से मुक्त नहीं होता।।१८।। हे द्विजपत्नी! इस कारण तू विषय से मन को पृथक् करके परमपावनी शिवजी की कथा सुन।।१९।। परमात्मा शिवजी की कथा सुनने से तेरा चित्त शुद्ध होगा उससे तेरी मुक्ति हो जायेगी।।२०।। निर्मलचित्त से शिवजी के चरणकमल ध्यान करते हुए एक ही जन्म में तेरी मुक्ति हो जायेगी, यह मैं सत्य-सत्य कहता हूँ।।२१।। सूतजी बोले- इस प्रकार कृपापूर्वक उसे कहकर वह शुद्धात्मा ब्राह्मण शिवध्यान में परायण हुआ।।२२।। तब बिन्दुगपत्नी चंचुला प्रसन्न हुई और उनके वचन सुनकर उसके नेत्रों में जल भर आया।।२३।। और प्रसन्न होकर ब्राह्मण के चरणों पर गिर पड़ी और हाथ जोड़कर चंचुला ने कहा-"मैं कृतार्थ हो गई"।।२४।। और परमशान्ति से उठकर प्रसन्न होकर गद्गद वाणी से वैराग्य युक्त उस महाशैव से कहने लगी।।२५।। चंचुला बोली- हे ब्रह्मन्! हे शिवभक्तों में श्रेष्ठ स्वामिन्! आप धन्य हो और परमार्थ को देखनेवाले हो। आप परोपकार में निरत होकर साधुओं में वर्णनीय हो।।२६।। हे भगवन्! मैं नरक के सागर में गिरती हूँ, आप मेरा उद्धार कीजिये। जिस पुराण के अर्थ से संयुक्त शैवीकथा को सुनकर सर्व प्रकार विषयों से मैं विरक्त हुई हूँ, पुराण श्रवण में मुझे इस समय बड़ी श्रद्धा है।।२७-२८।। सूतजी बोले- इस प्रकार हाथ जोड़कर ब्राह्मण के प्रति कथन करके

तथा उनके अनुग्रह को प्राप्त करके तथा शिवपुराण सुनने की इच्छा से उनके समीप स्थित हुई।।२९।। वह शैवश्रेष्ठ ब्राह्मण उस स्थल में शिवपुराण की पवित्र कथा उस स्त्री को सुनाने लगे।।३०।। इस प्रकार उस महाक्षेत्र में उस ब्राह्मणश्रेष्ठ के मुख से उसने महाउत्तम शिवपुराण की कथा श्रवण की, जो भक्ति तथा ज्ञान–वैराग्य को बढ़ानेवाली, मुक्ति देनेवाली थी, वह उस कथा को सुनकर कृतार्थ हो गई।।३२।। वह सद्‌गुरु की कृपा से शीघ्र ही शुद्धचित्त होकर उसने शिवजी के अनुग्रह से उनका ध्यान प्राप्त किया।।३३।। इस प्रकार सद्‌गुरु के आश्रय से शिवजी की सम्मति प्राप्त करके शिवजी के चिदानन्द शरीर का बारंबार ध्यान करने लगी।।३४।। तीर्थजल में नित्य स्नान करके जटा वल्कल धारण करके, सम्पूर्ण अंग पर भस्म लगाके रुद्राक्ष पहनकर शिवनाम को जपनेवाली, मौन–मित भोजन करनेवाली उसने गुरु के उपदेश किये मार्ग से शिवजी को सन्तुष्ट किया।।३५–३६।। इस प्रकार उत्तम ध्यान करते हुए उस चंचुला का बहुत समय बीत गया।।३७।। जब इस प्रकार शिवभक्ति में उसका बहुत काल बीत गया, तब अनायास उसने अपनी देह त्याग दी।।३८।। तब शिवजी ने उसके निमित्त विमान भेजा, जो उनके गणों से युक्त दिव्य तथा अनेक प्रकार की शोभा से संयुक्त था।।३९।। शिवजी के अनुचरों ने उसे उसमें चढ़ाकर शिवलोक को प्राप्त किया, उसके सब पाप दूर हो गये।।४०।। वह दिव्य रूप धारण करके दिव्य अवयव से युक्त, चन्द्रार्धशेखर गौरी दिव्य भूषण धारण किये हो गई।।४१।। महादेवजी के समीप स्थित देखने लगी। महादेव त्रिलोचन सनातन देव को ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं के सहित सेवित देखा।।४२।। गणेश, श्रृङ्गी, नन्दीश्वर आदि जिनकी उपासना करते हैं, कोटि सूर्य के समान जिनकी कान्ति है और भक्तिपूर्वक जिनकी उपासना की जाती है।।४३।। उन नीलग्रीव पञ्चमुख त्र्यम्बक चन्द्रशेखर, जिनके वाम ओर बिजली के समान प्रभायुक्त गौरी शोभित है।।४४।। कपूर के समान गोरे गौरीश, सम्पूर्ण अलंकारधारी, श्वेतभस्म देह में लगाये, महा उज्ज्वल श्वेतवस्त्र पहने।।४५।। ऐसे शिवजी को देखकर चंचुला बहुत प्रसन्न हुई और सम्भ्रम को प्राप्त होकर बारंबार प्रणाम करने लगी।।४६।। अंजलि बांधकर बड़े प्रेम से उसने शिवजी को सन्तुष्ट किया। प्रेम से उसके नेत्रों में आनन्द के आंसू आ गये और रोयें खड़े हो गये।।४७।। तब करुणाकर शिवजी और पार्वती ने उसकी ओर देखा और कृपादृष्टि से उसे अपने समीप बैठाया।।४८।। पार्वती ने उस दिव्यरूपिणी को अपनी सखी बनाया, यह बिन्दुगप्रिया चंचुला नित्य दिव्य सुख को प्राप्त होकर रहने लगी।।४९।। उस ज्योतिरूप निरन्तर लोक में महान् आनन्दपूर्वक अचल निवास करके अनाहत सुख भोगने लगी।।५०।।

इति श्रीस्कन्दमहापुराणे शिवमहापुराण भाषाया

चंचुलामाहात्म्ये चंचुलासद्‌गति वर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

पाँचवाँ अध्याय

शौनकजी बोले– हे महाभाग सूतजी! शिवजी में मन लगानेवाले आप धन्य हो। यह भक्ति बढ़ानेवाली अद्भुत कथा आपने हमें सुनाई ।।१।। वह चंचुला सद्गति को प्राप्त होकर वहां क्या करने लगी? वह आप विशेष करके वर्णन कीजिये ।।२।। सूतजी बोले– एक समय वह चंचुला उमादेवी के निकट जाकर प्रणाम करके परमानंद को प्राप्त होकर हाथ जोड़कर प्रसन्न करने लगी ।।३।। चंचुला बोली– हे गिरिजा! आप स्कन्दमाता हो, सर्वदा मनुष्यों से सेवित हो, हे शंभुप्रिये! आप सर्वदा सुख देनेवाली ब्रह्मस्वरूप हो ।।४।। ब्रह्मा, विष्णु आदि से सेवनीय सगुण–निर्गुणरूप आप आद्या–प्रकृति सूक्ष्म सच्चिदानन्दरूपिणी हो ।।५।। सृष्टि, स्थिति, लय करनेवाली त्रिगुणा–त्रिसुरालया ब्रह्मा, विष्णु, महेशों की सुप्रतिष्ठा करनेवाली हो ।।६।। सूतजी बोले– जब सद्गति को प्राप्त होनेवाली चंचुला ने उसकी स्तुति की और आंसू भरे प्रेमपूर्ण नेत्र होकर विराम को प्राप्त हुई ।।७।। तब करुणा को प्राप्त होकर शंकरप्रिया भक्तवत्सला पार्वती उस चंचुला से कहने लगी– हे चंचुले! इस स्तुति से मैं बहुत प्रसन्न हुई हूँ, क्या मांगती है? वर मांग, तेरे लिये कुछ भी अदेय नहीं है ।।८–९।। सूतजी बोले– गिरिजा द्वारा यह वचन सुनकर वह चंचुला उसे प्रणाम करके, हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर पूछने लगी ।।१०।। चंचुला बोली– हे भगवती! इस समय मेरे स्वामी कहां है? मैं उनकी गति नहीं जानती। हे दीनवत्सले गिरिजे! हे कल्याणि! जिस प्रकार मैं उनसे युक्त होऊं, ऐसी कृपा मुझपर कीजिये ।।११।। हे महादेवि! हे महेशानि! मेरे भर्ता वृषलीपति थे, वह पापी मुझसे पूर्व मृतक होकर न जाने किस गति को गये?।।१२।। सूतजी बोले– पार्वती इस प्रकार चंचुला के वचन सुनकर परम प्रसन्न होकर कहने लगी ।।१३।। पार्वती बोली– हे पुत्री! तेरा स्वामी बिन्दुग महापापी, दुराशय वेश्याभोगी, महामूढ़ मृतक होकर नरक में गया ।।१४।। और बहुत वर्षों तक नरक के दुःख भोगकर पापशेष से वह पापात्मा विन्ध्याचल में पिशाच हुआ है ।।१५।। इस समय वह क्लेशों से युक्त पिशाच है, वहां वह पवन भोजन करके सब कष्ट उठाता है ।।१६।। सूतजी बोले– गौरी के यह वचन सुन वह शुभव्रता चंचुला पति के महादुःख से बड़ी दुःखी हुई ।।१७।। उसमें चित्त लगाकर महेश्वरी को प्रणाम करके, दुःखी हृदय से वह फिर पूछने लगी ।।१८।। चंचुला बोली– हे महादेवि महेश्वरी! मेरे ऊपर कृपा कीजिये। दुष्टकर्म के फल से कष्ट पाते हुए मेरे पति का उद्धार कीजिये ।।१९।। हे देवि! किस उपाय से मेरे पापात्मा भर्ता बुद्धिमान् होकर सद्गति को प्राप्त हो जायेंगे? सो कहिये, मैं आपको प्रणाम करती

हूं।।२०।। सूतजी बोले– उसके यह वचन सुनकर भक्तवत्सला पार्वती प्रसन्नात्मा होकर अपनी सखी चंचुला से कहने लगी।।२१।। पार्वती बोली– यदि तेरा स्वामी पवित्र शिवकथा को सुने, तो वह दुर्गति से तरकर श्रेष्ठगति को प्राप्त हो जायेगा।।२२।। पार्वती का यह अमृतरूपी वचन सुनकर आदरपूर्वक हाथ जोड़कर बारंबार प्रणाम करती हुई वह भर्ता की पापविशुद्धि के निमित्त कथा सुनने की इच्छा करने लगी। कथा की संगति के निमित्त फिर प्रार्थना करने लगी।।२३–२४।। सूतजी बोले– जब उस नारी ने बारंबार शिवप्रिया की प्रार्थना की, तब वह भक्तवत्सला महेश्वरी ने कृपायुक्त होकर शिवजी की सत्कीर्ति गानेवाले तुम्बरु गन्धर्व को बुलाकर गन्धर्वराज से प्रीतिपूर्वक यह वचन कहने लगी।।२५–२६।। पार्वती बोली– शिवजी की प्रीति और मेरे वचन करनेवाले हे तुम्बरु! तुम इस चंचुला के साथ विन्ध्याचल पर्वत पर जाओ।।२७।। वहां एक भयंकर महाघोर पिशाच रहता है, उसकी कथा प्रसन्न होकर सुनो, मैं तुमसे कहती हूँ।।२८।। पिशाच होने के पहले वह बिन्दुग नामक ब्राह्मण था। वह दुष्ट मेरी सखी इस नारी का पति वेश्यागामी था। स्नान सन्ध्या की क्रिया से हीन, अपवित्र, क्रोध से मूर्ख बुद्धिवाला, दुर्भक्षी, सज्जनद्वेषी, दुष्परिग्रह करनेवाला।।२९–३०।। हिंसक शस्त्रधारी, वाम हाथ से भोजन करनेवाला, दीनों को पीड़ा देनेवाला क्रूर पीड़क, तथा पराये घर में अग्नि लगानेवाला, चाण्डालों में प्रीति करनेवाला वेश्याभोगी महाखल, अपनी पत्नी का त्याग करनेवाला पापी, सदा दुष्ट संग में प्रीति करनेवाला था।।३१–३२।। वेश्या की संगति से उसने अपने सब सुकृतों को नष्ट कर दिया और धन के लोभ से अपने महिषी को निर्भय जारिणी कर दिया।।३३।। मृत्युपर्यन्त वह दुराचारी रहा। समय आने पर मर गया और यमलोक में पापियों के घोरस्थान को प्राप्त हुआ।।३४।। वहां वह दुष्टात्मा अनेक नरक भोगकर इस समय विन्ध्याचल पर्वत पर पिशाच हुआ है।।३५।। उसके आगे सर्व पापों को नष्ट करनेवाली परम पवित्र शिवपुराण की दिव्य कथा सुनाओ।।३६।। शिवपुराण की कथा श्रवण करते ही वह सर्व पापों से रहित होकर प्रेतता का त्याग करेगा।।३७।। वह दुर्गति से रहित होकर पिशाचपन का त्याग करेगा। मेरी आज्ञा से उसे विमान पर बैठाकर शिवजी के समीप ले जाओ।।३८।। सूतजी बोले– जब भवानी ने इस प्रकार तुम्बरु गन्धर्व से कहा, तब वह अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने भाग्य को वर्णन करने लगा।।३९।। उस पिशाच की भार्या के सहित वह विमान में बैठकर विन्ध्याचल पर्वत पर गया।।४०।। वहां उस महाकाय, महाहनुवाले पिशाच को देखा, जो विकटाकार कभी हंसता, कभी कूदता, कभी यथेच्छ बोलता था।।४१।। उस भयंकर पिशाच को बलपूर्वक पाशों में ग्रहण किया। फिर महाबलि तुम्बरु ने शिवकीर्ति का गाना प्रारम्भ किया।।४२।। फिर तुम्बरु ने शिवपुराण पढ़ने के निमित्त महोत्सव युक्त रचना की।।४३।। देवी की आज्ञा से तुम्बरु उस पिशाच को तारने गया।

वह विन्ध्याचल पर शिवपुराण की कथा पढ़ेंगे ।।४४।। यह कोलाहल सब लोकों में हो गया, तब उसे सुनने के निमित्त देवता और ऋषि वहां आये ।।४५।। वहां बड़ा अद्भुत दृश्य और श्रेष्ठ समाज हुआ। वे सब कोई आदर से शिवपुराण सुनने को आये ।।४६।। पाशों से बंधा हुआ पिशाच भी वहां स्थित हुआ। तुम्बरु ने वीणा हाथ में लेकर गौरीपति की कथा गाना प्रारम्भ किया ।।४७।। माहात्म्य सहित प्रथम संहिता से लेकर सातवीं संहिता तक सम्पूर्ण शिवपुराण का वर्णन किया ।।४८।। आदरपूर्वक शिवपुराण की संहिता सुनकर वे सब श्रोता कृतार्थ हो गये ।।४९।। उस पिशाच ने शिवपुराण की कथा सुनकर सब पापों से रहित होने से अपने पिशाच शरीर का त्याग कर दिया ।।५०।। और वह तत्काल गौरवर्ण, श्वेतवस्त्रधारी हो गया। सम्पूर्ण अलंकारों से दीप्त शरीर, त्रिनेत्र चन्द्रशेखर, दिव्य शरीर होकर अपनी कान्ता के सहित स्वयं पार्वतीपति के गुण गाने लगा ।।५१-५२।। उसकी वधू को देखकर वह सब देव, देवर्षि चित्त में विस्मित होकर परमानन्द को प्राप्त हुए ।।५३।। शिवजी के अद्भुत चरित्र को देखकर सब कृतार्थ हो गये और शंकरजी के गुणानुवाद गाते सब अपने-अपने स्थानों को गये ।।५४।। वह बिन्दुग दिव्यात्मा होकर विमान पर सुखपूर्वक स्थित हुआ। वह लक्ष्मीवान् अपनी कान्ता के सहित शोभित होकर आकाश में स्थित हुआ ।।५५।। फिर महेश के मनोहर गुण गाता हुआ तुम्बरु के साथ अपनी स्त्री सहित शंकरजी के स्थान को गया ।।५६।। उस बिन्दुग का पार्वती और शिवजी ने भली प्रकार सत्कार किया और शिवजी ने प्रीति से उसे अपना गण और पार्वती ने उसे अपनी सखी बनाई ।।५७।। उस महान् शाश्वत् परमानन्द लोक में अचल निवास को प्राप्त होकर परमसुखी हुआ ।।५८।। आपसे यह पापहारी इतिहास वर्णन किया, यह शिवाशिव का परानन्द भक्ति का बढ़ानेवाला है ।।५९।। जो इसे सुने वा भक्तिपूर्वक कीर्तन करे वह अनेक भोग भोगकर अन्त में मुक्ति को प्राप्त होता है ।।६०।।

इति श्रीस्कन्देमहापुराणे शिवपुराणमाहात्म्ये भाषाया
बिन्दुगसद्गतिवर्णनो नाम पंचमोऽध्यायः ।। ५ ।।

*****

छठवाँ अध्याय

शौनकजी बोले- हे व्यासशिष्य महाभाग सूतजी! आपको नमस्कार है। आप धन्य और शैवश्रेष्ठ हो, आपके गुण वर्णन करने योग्य हैं ।।१।। श्रीशिवमहापुराण के श्रवण की विधि आप कहिये, जिससे श्रोताओं को उत्तम फल की प्राप्ति होती हो ।।२।।

सूतजी बोले– मैं फल के निमित्त आपको शिवपुराण की विधि कहता हूँ। हे शौनकजी! आप सुनिये ।।३।। ज्योतिषी को बुलाकर कुटुम्बसहित उसे सन्तुष्ट करके निर्विघ्न समाप्ति के निमित्त मुहूर्त्त शोधे ।।४।। फिर देश–देश में वार्ता भिजवा दे कि, अमुक–अमुक स्थान पर शिवकथा होगी, इस शिवकथा को सुनने के निमित्त सबको आना चाहिये ।।५।। जिससे शिवकथा से दूर और शंकरकीर्तन से दूर जो स्त्री, शूद्र तथा बन्धुजन हो उनको बोध हो जाए ।।६।। देश–देश में शिवभक्त जो कीर्तन श्रवण में उत्कण्ठित हैं, उन्हें आदरपूर्वक बुलाना चाहिये ।।७।। यहां साधुओं का परम मङ्गलमय समाज होगा। परम अद्भुत शिवपुराण का पारायण होगा ।।८।। श्रीमच्छिवपुराण के रसपान के लिये आदर से प्रेमपूर्वक आप सब कोई पधारिये ।।९।। जो अवकाश न हो तो प्रेम से एक दिन ही आइये, सर्वथा वहां आना चाहिये, वहां क्षणमात्र की भी स्थिति दुर्लभ है ।।१०।। इस प्रकार विनयसहित उन्हें बुलाना चाहिये। उन आये हुओं का आदर करना चाहिये ।।११।। शिवालय तीर्थ बनाकर शिवपुराण की कथा कराने का उत्तम स्थल है ।।१२।। पृथ्वी को लीपना चाहिये, धातुओं से मण्डित करना चाहिये, विचित्र रचना और महोत्सव करना चाहिये ।।१३।। घर की चीजवस्तु एकान्त में निवेशित कर दे, जिससे अयोग्यता लक्षित न हो ।।१४।। केलों का बड़ा ऊँचा मण्डप बनावे, फल पुष्पादि के सहित अच्छी प्रकार से पूजन करे ।।१५।। चारों ओर ध्वजा पताका आरोपण करे और सब आनन्द की देनेवाली सुभक्ति सर्व प्रकार करे ।।१६।। संकल्प करके परमात्मा शिवजी को दिव्य आसन दे और वक्ता के लिये भी दिव्य आसन दे ।।१७।। श्रोताओं के निमित्त यथायोग्य सुन्दर स्थल कल्पना करना चाहिये। दूसरे अन्य स्थान भी साधारणता से बनावे ।।१८।। विवाह में जैसा चित्त होता है, वैसा ही उत्साह कथा में करना चाहिये। हे शौनकजी! सब लौकिकी की चिन्ता छोड़कर वक्ता उत्तर की ओर मुख करे, श्रोता पूर्व की ओर मुख करे, पालथी मारकर बैठे, कथा के सम्मुख चरण न हो, किसी प्रकार विरोध न हो ।।१९–२०।। अथवा पूज्य और पूज्यक के मध्य में पूर्वादिक् होनी चाहिये अथवा कथा कहनेवाले के सम्मुख श्रोताओं के मुख होने चाहिये ।।२१।। और सदा स्पृहा रखे, जिस समय पौराणिक ब्राह्मण व्यासासन पर स्थित हो, तब प्रसंग के (अध्याय) समाप्त हुए बिना किसी को प्रणाम न करे ।।२२।। बालक, वृद्ध, दरिद्र, दुर्बल पुराणज्ञाता वक्ता भी पुण्य की इच्छा करनेवालों को सदा पूजनीय और वन्दनीय हैं ।।२३।। पुराणज्ञाता में किसी प्रकार नीच बुद्धि न करे, क्योंकि उसके मुख से निकली हुई वाणी शरीरधारियों को कामधेनुवत् होती है ।।२४।। जन्म से, गुण से गुरु बहुत है, परन्तु उन सब में पुराण का जाननेवाला गुरु विशेष होता है ।।२५।। कारण कि संसार में अनेक योनियां पाकर कष्ट पानेवालों को जो मुक्ति देता है, उससे परे गुरु कौन है? ।।२६।। पवित्र, चतुर, शान्त, मदहीन, साधु, दयावान्, वाग्मी पुराणज्ञाता इस पुण्य कथा को बोलता है ।।२७।।

सूर्योदय से पहले आरम्भ करके साढ़े तीन पहर तक शिवपुराण की कथा बुद्धिमान् को बांचनी चाहिये ।।२८।। जो धूर्त दुर्वृत्त है, जो जीतने की इच्छा करनेवाले हैं, उनके आगे कभी कथा न कहें ।।२९।। जहां दुर्जनों की स्थिति हो वा जहां चोरों की स्थिति हो, धूर्तों के घर में वा देश में इस कथा को न कहे ।।३०।। मलमूत्र के उत्सर्जन करने के निमित्त मध्याह्न में दो घड़ी कथा को विराम करे। कथा कीर्तन करनवाले वक्ता को कथा आरम्भ से एक दिन पहले हजामत बनवानी चाहिये। सब कर्म यत्नपूर्वक संक्षेप से करने चाहिये ।।३१-३२।। वक्ता के निकट उसे सहाय करने के लिये अन्य पुरुष को स्थित करना चाहिये। वह पण्डित भी सन्देह छेदन करने में तथा लोगों को समझाने में चतुर हो ।।३३।। कथा के विघ्न को दूर करने के निमित्त गणेशजी का पूजन करे। कथाधीश और शिवजी का भक्ति से पूजन करे और विशेष करके पुस्तक का पूजन करे ।।३४।। आदर से शिवपुराण की कथा बुद्धिमान् सुने, श्रोता विधिपूर्वक शुद्ध होकर प्रसन्नचित्त रहे ।।३५।। अनेक कर्मों से विभ्रान्त हुए कामादि षट् विकारों को करनेवाले, चोर, पाखण्डवादी वक्ता और श्रोता पुण्यभागी नहीं होते हैं ।।३६।। लोकचिन्ता, धन अगार की चिन्ता, पुत्रचिन्ता छोड़कर केवल जो कथा में मन लगाता है, वही उत्तम फल को प्राप्त होता है ।।३७।। जो श्रद्धाभक्ति से युक्त है, जिनकी दूसरे कार्य में लालसा नहीं है, वाणी रोके हुए, व्यग्रता रहित सुननेवाले पुण्यभागी होते हैं ।।३८।। जो नराधम अभक्त इस पवित्र कथा को सुनते हैं, उन्हें सुनने का फल नहीं होता, संसार में केवल दुःख ही मिलता है ।।३९।। जो यथाशक्ति भेंट देकर पुराण का पूजन नहीं करते, वे मूर्ख कथा को सुनकर भी दरिद्री होते हैं, पवित्र नहीं होते ।।४०।। जो मनुष्य कथा कीर्तन में उठकर अन्य स्थान को चले जाते हैं, भोगान्तर में उनकी दारादि सम्पदा नष्ट होती है ।।४१।। जो पगड़ी बांधकर कथा सुनते हैं, उनके पुत्र पापी और कुलदूषक होते हैं ।।४२।। जो मनुष्य इस कथा को श्रवण करते समय ताम्बूल भक्षण करते हैं, नरक में यमकिंकर उन्हें उनकी विष्ठा खिलाते हैं ।।४३।। और जो ऊँचे आसन पर बैठकर कथा को श्रवण करते हैं, वे सब नरक भोगकर फिर काक होते हैं ।।४४।। जो वीरादि आसन पर स्थित होकर इस कथा को श्रवण करते हैं, वे सब नरक भोगकर विषवृक्ष होते हैं ।।४५।। वक्ता को प्रणाम किये बिना जो मनुष्य कथा को सुनते हैं, वे सब नरक भोगकर अर्जुनवृक्ष होते हैं ।।४६।। जो रोग के बिना लेटकर कथा सुनते हैं, वे सब नरक भोगकर अजगरादि होते हैं ।।४७।। जो वक्ता के बराबर ऊँचे आसन पर स्थित होकर इस कथा को सुनते हैं, उनको नरक में सदा गुरु की सेज पर चढ़ने का पाप होता है ।।४८।। जो वक्ता और इस पवित्र कथा की निन्दा करते हैं, वे दुःख भोगकर सौ जन्म तक कुत्ते होते हैं ।।४९।। जो कथा होने पर दुर्वचन बोलते हैं, वे घोर नरक भोगकर फिर गधे होते हैं ।।५०।। जो कभी भी इस पवित्र कथा को नहीं सुनते हैं, वे घोर नरक भोगकर वनसूकर होते हैं ।।५१।।

कथा होती समय जो दुष्ट विघ्न करते हैं, वे करोड़ वर्षों तक नरक भोगकर ग्रामसूकर होते हैं।।५२।। इसलिये विचारपूर्वक शुद्धात्मा होकर श्रोता तथा वक्ता कथा श्रवण के निमित्त भक्ति से तथा प्रीति से बुद्धिपूर्वक उद्यत हों।।५३।। कथा के विघ्ननाश के निमित्त प्रथम गणेशजी का पूजन करे। संक्षेप में सर्व नित्यकर्म करके प्रायश्चित्त करे।।५४।। नवग्रह और सर्वतोभद्र के देवताओं का पूजन करके शिवपूजा की विधि से पुस्तक की पूजा करे।।५५।। पूजन के अन्त में भक्ति से दोनों हाथ बांधकर साक्षात् शिवस्वरूप पुस्तक की स्तुति करे।।५६।। यह श्रीमान् शिवपुराण प्रत्यक्ष शिवरूप है, श्रवण के निमित्त सत्कार करने से मेरे ऊपर सन्तुष्ट हो।।५७।। आप यह मेरे मनोरथ सफल कीजिये। विघ्न रहित मेरी कथा पूर्ण हो जाए।।५८।। संसारसागर में पड़े हुए मेरा संसार से उद्धार करे। हे शंकर! कर्मरूपी ग्राह से गृहीतशरीर मैं आपका दास हूँ।।५९।। शिवपुराण साक्षात् शिवस्वरूप है, इस प्रकार स्तुति करके नम्रतापूर्वक वचनों से व्यासजी की पूजा करे।।६०।। शिवपूजा की विधि से वक्ता की पूजा करे। उसे पुष्प, भूषण, वस्त्र, धूप, दीप से पूजे।।६१।। उसके आगे शुद्ध चित्त से नियम करे, समाप्ति पर्यन्त शक्ति के अनुसार नियमों को धारण करे।।६२।। हे व्यासरूपी! हे ज्ञानदाता! हे सकल शास्त्रविशारद! इस कथा को कहकर आप मेरे अज्ञान को दूर कीजिये।।६३।। पाँच ब्राह्मणों को भक्तिपूर्वक वरण करना चाहिये और वे भक्ति से शिवजी के पञ्चाक्षरमन्त्र का जप करे।।६४।। हे मुने! यह आपसे भक्तिपूर्वक कथा श्रवण की विधि कही है। यह भक्त तथा श्रोताओं के निमित्त है। अब क्या सुनने की इच्छा है?।।६५।।

इति श्रीस्कन्देमहापुराणे शिवपुराणमाहात्म्ये भाषायां
श्रवणविधिवर्णनं नामषष्ठोऽध्यायः ।। ६ ।।

*****

सातवाँ अध्याय

शौनकजी बोले– हे महाभाग सूतजी! आप शैवश्रेष्ठ हो, शिवजी के भक्त हो। यह आपने अद्भुत शुभ कथा हमें सुनाई।।१।। हे मुने! सम्पूर्ण लोक के शिवपुराण के व्रत करनेवालों के हित के निमित्त आप कृपा करके नियम कहिये।।२।। सूतजी बोले– हे शौनकजी! भक्ति से उनके नियम श्रवण कीजिये। नियम से सत्कथा का श्रवण करे, जिससे निर्विघ्नता से उत्तम फल मिले।।३।। दीक्षाहीन पुरुषों का कथा के श्रवण में अधिकार नहीं है, इसलिये सुननेवालों को वक्ता से दीक्षा लेनी उचित है।।४।। ब्रह्मचर्य, पृथ्वी पर सोना, पत्तल में भोजन करना, कथा समाप्त होने पर भोजन करना।।५।। पुराण

समाप्त होने तक बुद्धिमान् शक्ति के सहित व्रती होकर भक्ति से श्रद्धा के सहित शिवपुराण सुने ।।६।। घृतपान दुग्धपान कर कथा सुने अथवा फलाहार वा एक समय भोजन कर कथा सुने ।।७।। इस कथा को सुननेवाला एक बार हविष्यान्न भोजन करे, जिस प्रकार सुखसाध्य हो सके, उसी प्रकार श्रवण कार्य करे ।।८।। अच्छी प्रकार कथा में मन लगे, इस कारण थोड़ा बहुत भोजन अवश्य करे, उपवास न करे, इससे कथा में विघ्न होता है ।।९।। गरिष्ठ, द्विदल अन्न, दग्ध निष्पाव (चौरा वा राजसिंवी के वीज), मसुरि का भावदुष्ट, बांसी इनको कथाव्रती न खाए ।।१०।। बैंगन, कलिन्द, चिचौड़ा, मूली, पेठा, नालि का शाक मूल यह नित्य कथाव्रती न खाये ।।११।। पलाण्डु (प्याज), लहसन, हींग, गाजर, मादक द्रव्य तथा आमिषसंज्ञक वस्तु सदा वर्जित करे ।।१२।। कामादि छः विकार, ब्राह्मणों की निन्दा, पतिव्रता तथा सत्पुरुषों की निन्दा कथाव्रती सदा त्यागे ।।१३।। रजस्वला को न देखे, पतितों से कथा न कहे, ब्राह्मणद्वेषी, वेद में वर्जनीय पुरुषों से कथा न कहे ।।१४।। सत्य, शौच, दया, मौन, आर्जव, विनय, मन में उदारता कथा सुननेवाला नित्य करे ।।१५।। निष्काम वा सकाम कोई हो नियम से कथा सुने। सकाम पुरुष कामना को और निष्काम मोक्ष को प्राप्त होता है ।।१६।। दरिद्री, क्षयीरोगी, पापी, निर्भाग्य, सन्तान रहित भी अपने दुःख दूर होने के निमित्त इस कथा को अवश्य सुने ।।१७।। काकवन्ध्यादि जो सात प्रकार की स्त्रियां हैं तथा जिन स्त्रियों को गर्भस्राव होता है, उनको निरन्तर कथा सुननी चाहिये ।।१८।। इस प्रकार स्त्री और पुरुष दोनों को यत्न से कथा सुननी चाहिये। इस शिवपुराण की कथा को विधान से सुने ।।१९।। हे मुने! इस शिवपुराण के पारायण दिन अति उत्तम हैं, कोटि यज्ञों के समान हैं ।।२०।। इनमें जो थोड़ी वस्तु भी दान की जाय, तो इन श्रेष्ठ दिनों में दान का अक्षय फल होता है ।।२१।। इस प्रकार व्रतविधि करके इस परम कथा को सुनकर परानन्द को प्राप्त होकर उद्यापन करे ।।२२।। इसके उद्यापन की विधि चौदश के दिन धनी पुरुषों को फल की इच्छा से करनी चाहिये ।।२३।। अकिंचन भक्तों को उद्यापन की आवश्यकता नहीं है, वह सुनते ही पवित्र होते हैं, कारण कि वे निष्काम होते हैं ।।२४।। इस प्रकार शिवपुराण के पारायण महोत्सव समाप्त होने पर विधान से पूजा करनी चाहिये ।।२५।। हे मुने! शिवपूजन के समान पुस्तक के आगे विधिपूर्वक पूजा करे, तत्पश्चात् वक्ता की पूजा करे ।।२६।। पुस्तक के आच्छादन करने के लिये नवीन वस्त्र और बन्धन के निमित्त सुन्दर रेशमीन तागा दे ।।२७।। जो नवीन सूत्र और वस्त्र पुराण के निमित्त देते हैं, वे भोगी और युगायुग में ज्ञानसम्पन्न होते हैं ।।२८।। वक्ता को बड़े-बड़े मोल की अनेक वस्तु दान करे। वस्त्र, भूषण, पात्र और दिव्य पदार्थ दे ।।२९।। जो मनुष्य पुराण के आसन के नमित्त रेशमी वस्त्र, ऊनी वस्त्र, चौकी, तख्ता देते हैं ।।३०।। वे स्वर्गलोक को प्राप्त होकर अनेक भोग भोगकर ब्रह्मलोक को प्राप्त होकर कल्पान्त में शिवलोक को जाते

हैं ।।३१।। इस प्रकार विधि से पुस्तक पूजन करके महोत्सव से वक्ता के सहित उनके निकट सहाय उन्हें सहाय करने जो पण्डित स्थित है, उसकी पूजा वक्ता से कुछ न्यून धन से करे ।।३२-३३।। आये हुए ब्राह्मणादिकों का भी अन्न और धन से सत्कार करना चाहिये ।।३४।। जो श्रोता विरक्त हो, तो दूसरे दिन विशेष करके शिवगीता का पाठ करे, जिसका उपदेश शिवजी ने श्रीरामचन्द्रजी को किया है ।।३५।। और जो गृहस्थ श्रोता हो, तो शुद्ध हवि से इस कर्मशान्त के निमित्त हवन करे ।।३६।। अथवा रुद्रसंहिता के प्रत्येक श्लोक से होम करे अथवा तन्मयगायत्री वा उस पुराण के तत्त्व से हवन करे ।।३७।। अथवा मूलमन्त्र वा पञ्चवर्णात्मक शिवमन्त्र से हवन करे। यदि हवन में अशक्त हो तो होम की हवि ब्राह्मण को दे ।।३८।। न्यूनाधिक दोषों की शान्ति के निमित्त भक्ति से शिवसहस्रनाम का पाठ करे ।।३९।। उससे सब श्रवण सफल हो जायेगा, इसमें सन्देह नहीं, कारण कि त्रिलोकी में इससे अधिक कोई वस्तु नहीं है ।।४०।। मधु, खीर आदि से ग्यारह ब्राह्मणों को जिमावे और ब्रह्मपूर्णत्त्व सिद्धि के लिये उन्हें कोई दक्षिणा दे ।।४१।। हे मुने! शक्ति के अनुसार तीन पल सुवर्ण का एक सिंहासन बनाकर उस पर इस पुराण के लेख लिखकर विधिपूर्वक स्थापन कर पूजन करे, आवाहनादि के उपचार और दक्षिणासहित वस्त्र, भूषण, गन्धादि से पूजा करके यतात्मा आचार्य को यह मूर्ति शिवजी के सन्तोष के निमित्त दे ।।४२-४३-४४।। हे शौनकजी! उस दान के प्रभाव से इस पुराण की सफलता होती है और शिवजी के अनुग्रह से भवबन्धन से मुक्त हो जाता है ।।४५।। इस प्रकार विधान से श्रीशिवपुराण पूर्ण फल देनेवाला होता है तथा भुक्ति-मुक्ति का फल देता है ।।४६।। यह आपसे सब वर्णन किया, अब क्या सुनने की इच्छा है ? शिवपुराण का माहात्म्य सर्व कामनाओं को देनेवाला है ।।४७।। यह श्रीशिवपुराण सर्व पुराणों का तिलक रूप है, यह शिवजी का प्रिय तथा भवरोग निवारक है ।।४८।। जो विश्वनाथजी का सदा ध्यान करते हैं, वे जीव लोक में सुखभागी होते हैं। वाणी से गुणों की स्तुति करते हुए दो कानों से इस कथा को श्रवण करके प्राणी भवसागर में तर जाते हैं ।।४९।। सम्पूर्ण गुणों के विभेद से नित्य अस्पष्टरूप जगत् के बाहर-भीतर महिमा से प्रकाशमान मन के बाहर भीतर वाणी मनोवृत्तिरूप परमशिव अनन्तानन्द से पूर्ण की शरण में प्राप्त होता हूँ ।।५०।।

इति श्रीस्कन्देमहापुराणे सनत्कुमारसंहितायां पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र कृत भाषायां श्रीशिवपुराणश्रवणव्रतिनां विधिनिषेधपुस्तक वक्तृपूजनवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ।। ७ ।।

।। शुभमस्तु ।।

*****

ॐ

श्रीकृष्णद्वैपायनमहर्षिवेदव्यासविरचित

शिवमहापुराणभाषा

(विद्येश्वरसंहिता १)

***

कात्यायनगोत्रोद्भव मुरादाबाद निवासी श्रीयुत पंडित
ज्वालाप्रसादजी मिश्र ने संस्कृत से अत्युत्तम
देवनागरी में भाषांतर किया

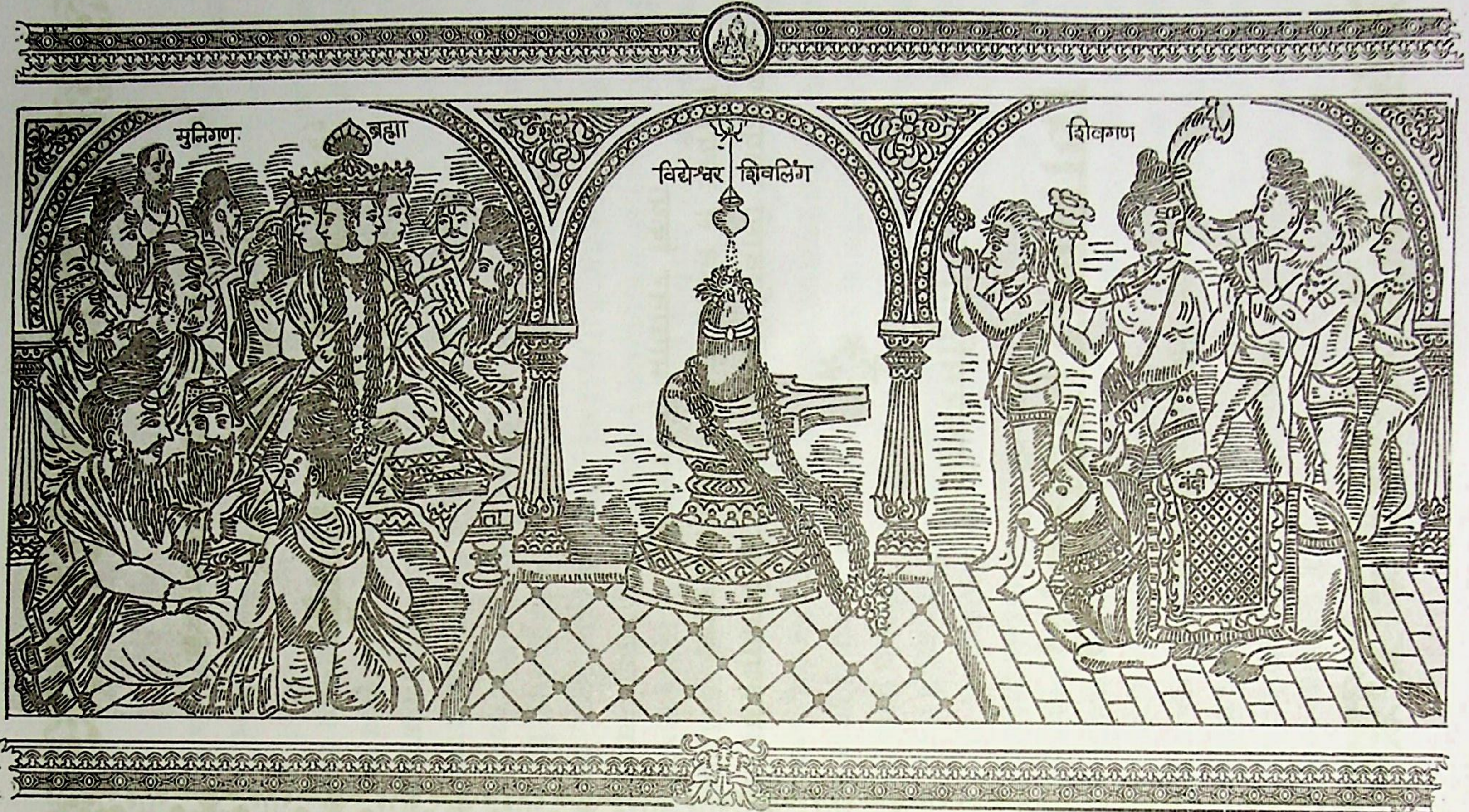
मुद्रक एवं प्रकाशकः

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बम्बई-४०० ००४

(विद्येश्वरसंहिता १)



ॐ

अथ

शिवमहापुराणभाषा

***

प्रथमा–विद्येश्वरसंहिताप्रारम्भ

पहिला अध्याय

दोहा–

गौरीशंकर पदकमल, प्रेमसहित हियलाय।
श्रीमच्छम्भुपुराण की, भाषा रचहुँ सुभाय।।१।।
श्रुतिसम्वेद्य अनादि शिव, साम्ब सच्चिदानन्द।
निर्गुण ब्रह्म विलक्ष इक, ध्यायामि सुखकन्द।।२।।
जेहिकी माया पाय जग, भव पालन लय होय।
स्वम्भू स्वयम्भुज जासु बल, पावत गौरव दोय।।३।।
तिनको माधव रविगणाधीश, शिवायुत ध्याय।
जो निज जन के अघ सकल, छिन में देत बहाय।।४।।
मातु पिता गुरु भारती, वेदव्यास मुनीश।
प्रेमसहित कर जोर कर, सबहिं नवाऊं शीश।।५।।
सप्तसंहिता सहित श्री, –शिवपुराण सुखदान।
भुक्तिमुक्तिदायक सुगम, भक्तन जीवन प्रान।।६।।
काशी पालक शिव सुमिरि, गिरिजा गणपति ध्याय।
शुभ विद्येश्वरसंहिता, टीका लिखत बनाय।।७।।

श्रीभगवान् वेदव्यासजी शिवजी के ब्रह्मत्त्वप्राप्ति के निमित्त उपायभूत विद्यायुक्त 'विद्येश्वरसंहिता' वर्णन करने के निमित्त मङ्गल विधान करते हैं। जो सृष्टि के आदि और अन्त में मङ्गलरूप हैं, जिनके समान किसी में भी समान भाव नहीं है अर्थात् भक्तजनों के कल्याण करने में सबसे अधिक हैं, आद्यन्त में भी कारणात्मा से जिनमें विश्व

स्थित है, जो जरा-मरण रहित है, स्वप्रकाश स्वरूप पञ्चमुख प्रबल पञ्चमहापातकों को दूर करनेवाले अथवा प्रबल भक्तों की मुक्ति के प्रतिबन्धक पाँच शब्दादि विषयों को हरनेवाले तथा भक्तों का कल्याण करनेवाले अम्बिकापति शंकरजी का मैं हृदयपूर्वक ध्यान करता हूँ। व्यासजी बोले- उस धर्म के महाक्षेत्र में जहां गङ्गा और कालिन्दी का संगम हुआ है, उस ब्रह्मलोक के मार्गभूत परमपुण्य प्रयाग देश में ।।१।। सत्यव्रत में परायण ज्ञानी, बड़े व्रती, बड़े पराक्रमी, महाभाग्यवान् ऋषि दीर्घयज्ञ करने लगे ।।२।। उस यज्ञ की वार्ता सुनकर व्यासजी के शिष्य, पुराण जाननेवालों में श्रेष्ठ महामुनि सूतजी उस स्थान में आकर प्राप्त हुए ।।३।। सूतजी को आए हुए देखकर वह मुनि बड़े प्रसन्न हुए और प्रसन्नचित्त से उनकी विधिपूर्वक पूजा करने लगे ।।४।। तब विनय के संयुक्त होकर वह मुनिजन उन प्रसन्न हुए महात्मा की विधिपूर्वक स्तुति करने लगे और हाथ जोड़कर कहने लगे ।।५।। हे सर्वज्ञ! हे रोमहर्षण! आप भाग्य के गौरव से व्यासजी से सम्पूर्ण पुराणविद्या को अर्थ सहित जान चुके हो ।।६।। इस कारण आप उन आश्चर्यभूत कथाओं के पात्र हो, जैसे श्रेष्ठ रत्नों का स्थान सागर है ।।७।। जो कुछ भूत, भविष्य, वर्तमान वस्तु है, वह त्रिलोकी में आपको कुछ भी अविदित नहीं है ।।८।। आप हमारे भाग्य से ही इस स्थान में आकर प्राप्त हुए हो, हमारा कुछ भी मङ्गल किये बिना आपका यहां से वृथा जाना योग्य नहीं है ।।९।। हमने पूर्व में भी आपसे अनेक शुभाशुभ वार्ता श्रवण की है, सो भी हम तृप्ति को प्राप्त नहीं होते हैं, बारंबार सुनने की इच्छा होती है ।।१०।। हे महाबुद्धिमान्! इस समय जो रहस्य की बात सुनने के योग्य रही है, वह कृपा करके आप हमसे कहिये ।।११।। इस घोर कलियुग के प्राप्त होने पर यहां पुण्यहीन मनुष्य ही प्राप्त हुए हैं। सब दुराचार में प्रीति करते हैं और पुण्य से तथा सत्य बात से हीन हैं ।।१२।। पराई बुराई करने में निरत, पराये द्रव्य की अभिलाषा करनेवाले, पराई स्त्रियों में मन लगानेवाले, पराई हिंसा करने में तत्पर ।।१३।। देह में आत्मा की दृष्टि करनेवाले, नास्तिक बुद्धिवाले मूर्ख, माता-पिता का द्वेष करनेवाले, स्त्री को ही माननेवाले काम के किंकर हैं ।।१४।। ब्राह्मण लोभ में ग्रस्त हैं, वेदों को बेचकर जीनेवाले, धन प्राप्ति के निमित्त विद्या पढ़ानेवाले, विद्या के मद से मोहित ।।१५।। अपनी जाति के कर्मों को त्यागे हुए, बहुधा दूसरों को ठगनेवाले, त्रिकाल सन्ध्या से हीन, ब्रह्म के बोध से वर्जित, दया रहित, अपने आपको ही पण्डित माननेवाले, अपने आचार और व्रत को लोप करनेवाले, कृषि के उद्यम में रत, क्रूर स्वभाव, मलीन मनवाले हैं ।।१६-१७।। इसी प्रकार सब क्षत्रिय अपने धर्म को त्यागनेवाले, कुसंगत में रत, पापी, व्यभिचार में परायण ।।१८।। कायर, शूद्रों में प्रीति करनेवाले, पलायन में तत्पर, कुत्सित, चोरों की वृत्ति करनेवाले, शूद्र काम के किंकर ।।१९।। शस्त्र-अस्त्र की विद्या से हीन, धेनु और ब्राह्मणों को न पालनेवाले, शरणागतों की रक्षा न करनेवाले और धन से हीन, कामिनी

के लीला के हरिण ।।२०।। प्रजापालन के सद्धर्म से हीन, भोगों में तत्पर, प्रजा को नष्ट करनेवाले दुष्टजीव, हिंसा करने में प्रसन्न होनेवाले ।।२१।। इसी प्रकार संस्कारहीन, वैश्य होकर अपने धर्म को त्यागे हुए, कुमार्ग से द्रव्य लेने में तत्पर, तराजू का कर्म और कुत्सित आजीविका करनेवाले ।।२२।। गुरुदेव, ब्राह्मणादि की भक्ति से हीन, कुबुद्धि, ब्राह्मणों को भोजन न करानेवाले, प्रायः कृपण, मूठी बांधनेवाले ।।२३।। जारभाव से स्त्रियों के साथ रमण करनेवाले, मलिन मन, लोभ मोह से विचेत, पूर्तादि में धर्म का त्याग करनेवाले ।।२४।। इसी प्रकार से जो शूद्र हैं, वह ब्राह्मणों जैसे आचार करते हैं, उज्ज्वल आकृतिवाले मूढ़, अपने धर्म को त्यागनेवाले ।।२५।। तप करने और ब्राह्मणों का तेज हरनेवाले, बालक की अल्पमृत्यु में मारणादि मन्त्रों का उच्चारण करने में परायण ।।२६।। शालिग्रामादि का पूजन करके होम करनेवाले, प्रतिकूल विचारवाले कुटिल, ब्राह्मणों का द्वेष करनेवाले ।।२७।। धनवान् कुकर्मी, विद्यावान् विवादी, कथा और धर्म उपासना को कहनेवाले, धर्म का लोप करनेवाले ।।२८।। राजाओं जैसी चेष्टा करनेवाले, पाखण्डी, दाता के समान रहनेवाले, महामद से युक्त, ब्राह्मणों को सेवक और अपने को प्रभु माननेवाले ।।२९।। अपने धर्म से रहित, मूढ़ वर्णसंकर, क्रूरबुद्धि, नित्य महा अभिमान करनेवाले, चारों वर्णों को लोप करनेवाले ।।३०।। अपने को कुलीन मानकर चारों वर्णों की वृत्तिवाले, सब वर्णों को भ्रष्ट करनेवाले, मूढ़ सत्कर्म करनेवाले हैं ।।३१।। विशेषकर स्त्रियां अपने स्वामी की आज्ञा नहीं मानतीं, सास–श्वसुर से द्रोह करनेवाली, निर्भय, मलिन भोजन करनेवाली ।।३२।। कुहावभाव में निरत, कुत्सित स्वभाववाली, काम से विह्वला, नित्य राजा के संग में रत, अपने स्वामी से विमुख ।।३३।। कन्या माता–पिता की भक्ति से हीन, दुराशय से युक्त, नित्य अविद्या का पाठ करनेवाली, रोग से ग्रसित देहवाली ।।३४।। हे सूतजी! अपने धर्म को त्यागनेवाले इन नष्टबुद्धियों की इस लोक और परलोक में कैसी गति होगी?।।३५।। इस चिन्ता से हमारा मन सदा व्याकुल रहता है, पराये उपकार के समान और कोई धर्म नहीं है ।।३६।। जिस छोटे उपाय से इनके पाप शीघ्र शान्त हो, वह आप कृपा करके कहिये, कारण कि आप सब सिद्धान्तों को जाननेवाले हो ।।३७।। व्यासजी बोले– ज्ञानात्मावाले उन मुनियों के यह वचन सुनकर सूतजी मन से शिवजी का स्मरण करके उन मुनियों से बोले ।।३८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमाविद्येश्वरसंहिताया भाषायां

मुनिप्रश्नवर्णनो नाम प्रथमोऽध्यायः ।। १ ।।

*****

दूसरा अध्याय

सूतजी बोले– हे महात्माओ! आपने यह अच्छा पूछा है, इससे जगत् का मङ्गल होगा। मैं अपने गुरु को स्मरण करके आपके स्नेह से कहता हूँ, आदर से सुनिये ।।१।। जो वेदान्तसार का सर्वस्व शिवपुराण है, वह सब पापों के समूह का उद्धार करनेवाला, दूसरे लोकों में परमार्थ का देनेवाला है ।।२।। जिसमें शिवजी का यश है, वह कलि में पापों को नष्ट करनेवाला है, हे ब्राह्मणो! यह पुराण सदा चारों वर्ग का फल देनेवाला स्थित है ।।३।। हे ब्राह्मणो! इस पुराण के अध्ययन मात्र से प्राणी अन्त में सबसे उत्तम सद्गति को प्राप्त होते हैं ।।४।। तब हीं तक ब्रह्महत्यादि पाप विद्यमान रहते हैं, जब तक जगत् में आश्चर्यरूप शिवपुराण का उदय नहीं होता है ।।५।। तभी तक कलि के महाउत्पात निर्भय चलते हैं, अहो जब तक जगत् में शिवपुराण का उदय नहीं होता है ।।६।। तभी तक सब शास्त्र परस्पर विवाद करते हैं, जब तक जगत् में शिवपुराण का उदय नहीं होता है ।।७।। तभी तक शिवजी का स्वरूप महान् पुरुषों को भी दुर्बोध दीखता है, जब तक जगत् में शिवपुराण का उदय नहीं होता है ।।८।। तभी तक यमराज के क्रूर योद्धा निर्भय विचरते हैं, जब तक आश्चर्यरूप शिवपुराण का उदय नहीं होता है ।।९।। तभी तक दूसरे पुराण पृथ्वी पर गर्जते हैं, जब तक आश्चर्यरूप शिवपुराण का उदय नहीं होता है ।।१०।। तभी तक सब तीर्थ पृथ्वी पर विवाद करते हैं, जब तक शिवपुराण का उदय नहीं होता है ।।११।। तभी तक सब मन्त्र पृथ्वी पर विवाद करते हैं, जब तक शिवपुराण का उदय नहीं होता है ।।१२।। तभी तक सब क्षेत्र पृथ्वी पर विवाद करते हैं, जब तक शिवपुराण का पृथ्वी पर उदय नहीं होता है ।।१३।। तभी तक सब पीठ पृथ्वी पर विवाद करते हैं, जब तक शिवपुराण का उदय नहीं होता है ।।१४।। तभी तक सब दान पृथ्वी पर विवाद करते हैं, जब तक आश्चर्यरूप शिवपुराण का उदय नहीं होता है ।।१५।। तभी तक यह देवता पृथ्वी पर विवाद करते हैं, जब तक शिवपुराण का उदय नहीं होता है ।।१६।। तभी तक सब सिद्धान्त पृथ्वी पर विवाद करते हैं, जब तक शिवपुराण का उदय नहीं होता है ।।१७।। हे ब्राह्मणो! इस शिवपुराण के श्रवण–कीर्तन से जो फल होता है, उसका मैं सम्पूर्ण वर्णन नहीं कर सकता ।।१८।। हे पाप रहित! तो भी मैं उसका कुछ माहात्म्य कहता हूँ, जो मुझे व्यासजी ने कहा है, चित्त से सावधान होकर सुनिये ।।१९।। इस शिवपुराण का एक श्लोक अथवा आधा श्लोक जो भक्ति से सुनते हैं, वह उसी समय अपने सब पापों से छूट जाते हैं।।२०।। जो इस शिवपुराण को प्रतिदिन आलस्य रहित होकर यथाशक्ति भक्ति से पढ़ते हैं, वह जीवन्मुक्त होते हैं ।।२१।।

इस शिवपुराण की जो सदा भक्ति से पूजा करते हैं, वे दिन–दिन अश्वमेध के फल को प्राप्त होंगे, इसमें सन्देह नहीं ।।२२।। यह जो शिवपुराण है, इसके साधारण पद वा अक्षर जो कि दूसरे से श्रवण करता है, वह मत्त भी पातक से छूट जाता है ।।२३।। जो इस शिवपुराण के निकट होकर नमस्कार करते हैं, वह समस्त देवताओं के अर्चन को प्राप्त हो जाते है, इसमें सन्देह नहीं ।।२४।। यह शिवपुराण लिखकर जो शिवभक्तों के निमित्त देता है, उसके पुण्य का फल सुनिये ।।२५।। शास्त्रों के अध्ययन तथा वेदों के व्याख्यान करने पर जो फल लोक में दुर्लभ है, वह फल उसे प्राप्त होता है ।।२६।। चतुर्दशी के दिन व्रत रखकर जो इस शिवपुराण का सभा में व्याख्यान करते हैं, वह उत्तम हैं ।।२७।। जो गायत्री के प्रत्येक अक्षर के पुरश्चरण का फल है, वह इससे मिलता है, उससे यहां सब भोगों को भोगकर अन्त में मुक्त हो जाता है ।।२८।। जो चौदश के दिन व्रती होकर रात्रि में जागरण करते हैं, जो इसे पढ़ते और सुनते हैं, मैं उनके पुण्य का फल कहता हूँ ।।२९।। कुरुक्षेत्रादि अनेक पुण्यस्थानों में सूर्यग्रहण में अपने तुल्य धन कथा कहनेवाले ब्राह्मणों को देने से जो फल होता है, वह फल उन्हें अवश्य प्राप्त होता है, जो कथा सुनते हैं, इसमें सन्देह नहीं ।।३०–३१।। इस पुराण को जो दिन–रात पढ़ते हैं, उनकी आज्ञा की इन्द्रादि देवता प्रतीक्षा करते हैं ।।३२।। जो इस शिवपुराण को नित्य पढ़ते–सुनते हैं, वे जो सत्कर्म करते हैं, उसका कोटि गुणा फल होता है ।।३३।। जो इसकी रुद्रसंहिता को सावधान होकर पढ़ता है, वह तीन दिनों में ब्रह्महत्या से छूट जाता है ।।३४।। इसकी रुद्रसंहिता को जो भैरवजी की प्रतिमा के निकट प्रतिदिन तीन बार मौन होकर पढ़ता है, वह समस्त मनोरथों को प्राप्त हो जाता है ।।३५।। अथवा रुद्रसंहिता को जो वट और बिल्व की प्रदक्षिणा करके पढ़ता है, उसकी ब्रह्महत्या भी निवृत्त होती है ।।३६।। इससे परे कैलास संहिता का और भी अधिक माहात्म्य है, जो साक्षात् ब्रह्मस्वरूपिणी ॐ कार के अर्थ को प्रकाश करनेवाली है ।।३७।। हे ब्राह्मणो! कैलाससंहिता का सम्पूर्ण माहात्म्य शिवजी ही जानते हैं, व्यासजी आधा और उससे आधा मैं जानता हूँ ।।३८।। सब तो कह नहीं सकता उसमें से कुछ वर्णन करता हूँ, जिसे जानने से तत्काल चित्तशुद्धि होती है ।।३९।। हे मुनियो! रुद्रसंहिता लोक में जिस पाप को नष्ट नहीं करती, वह तो ढूंढ़ने से भी नहीं मिलता ।।४०।। शिवजी ने जो उपनिषद्रूपी समुद्र से मथकर निकाली और वह कुमार को अर्पण की, जिसका ज्ञानामृत पान करने से प्राणी अमर हो जाता है ।।४१।। ब्रह्महत्यादि पापों की निष्कृति करने को उद्यत होकर इस संहिता को एक महीना पढ़कर प्राणी सब पापों से मुक्त हो जाता है ।।४२।। दुष्प्रतिग्रह, दुर्भोजन, दुर्वचन आदि से उत्पन्न हुआ पाप इस संहिता के पाठ करने से नष्ट हो जाता है ।।४३।। शिवालय वा बेलपत्र के वन में इस संहिता को जो भक्ति से पढ़ता है, वह ऐसे फल को प्राप्त है, जो कहा नहीं जाता ।।४४।। भक्ति से

उमासंहिता को पढ़ते हुए श्राद्ध में ब्राह्मणों को जिमावे तो उसके सब पितर शिवजी के लोक को चले जाते हैं।।४५।। जो चतुर्दशी के दिन निराहार होकर इस संहिता को पढ़ता है और जो बिल्वमूल में पढ़ता है, वह साक्षात् शिवरूप होकर पूजित होता है और देवता उसकी पूजा करते हैं।।४६।। अन्य दूसरी संहिता भी सब कामनाओं और फलों को देनेवाली है। दोनों श्रेष्ठ हैं, जिनमें शिवजी की श्रेष्ठ लीलाओं का वर्णन है।।४७।। यह शिवपुराण वेदसम्मत कहा गया है, यह ब्रह्मसंमित पुराण पहले शिवजी ने बनाया था।।४८।। विद्येश्वरसंहिता, रुद्रसंहिता, विनायकसंहिता, उमासंहिता, मातृसंहिता, एकादश रुद्रसंहिता, कैलाससंहिता, शतरुद्रसंहिता।।४९।। कोटिरुद्र-संहिता, सहस्रकोटि रुद्रसंहिता, वायवीयसंहिता, धर्मसंहिता इतनी संहिता इस पुराण में हैं।।५०।। यह बारह संहिता महापुण्यरूप हैं। हे ब्राह्मणो! सुनिये, हम उनके श्लोकों की संख्या कहते हैं।।५१।। विद्येश्वरसंहिता १००००, इतनी ही विनायकसंहिता है, उमासंहिता ८०००, मातृसंहिता ८०००।।५२।। एकादशरुद्रसंहिता १३०००, कैलास-संहिता ६०००, शतरुद्रसंहिता ३०००।।५३।। कोटिरुद्रसंहिता ९०००, सहस्रकोटि-रुद्रसंहिता ११०००, वायवीयसंहिता १००००, धर्मसंहिता १२००० इस संख्या से यह शिवपुराण एक लक्ष श्लोकों का था, तब व्यासजी ने उसे संक्षेप करके इसे चौबीस सहस्र श्लोकों का किया। व्यासजी ने यह सात संहिताओं से युक्त चौथा शिवपुराण बनाया, इससे पूर्व तीन दूसरे पुराण हैं।।५४-५५-५६।। और सृष्टि के प्रारम्भ में यह पुराण शिवजी ने सौ कोटि श्लोकों में कहा था परन्तु वह विस्मृत हो गया।।५७।। फिर व्यासादि ने द्वापर के आदि में उनके अठारह भेद करके इसे चार लक्ष श्लोकों में संक्षिप्त किया।।५८।। उसमें शिवपुराण में चौबीस सहस्र श्लोक हैं और ब्रह्मसम्मित इसमें सात संहिता है।।५९।। उनका क्रम यह है- विद्येश्वरसंहिता पहली, रुद्रसंहिता दूसरी, शतरुद्रसंहिता तीसरी, कोटिरुद्र चौथी संहिता है।।६०।। पांचवीं उमासंहिता, छठी कैलाससंहिता और सातवीं वायवीयसंहिता, इस प्रकार सात संहिता हैं।।६१।। यह दिव्य शिवपुराण सात संहिताओं से युक्त सर्वोपरि विराजित है, सबसे सुन्दर गति देता है और ब्रह्मतुल्य है।।६२।। इस शिवपुराण की सातों संहिताओं को जो पूर्ण आदर से पढ़ता है, वह जीवन्मुक्त होता है।।६३।। श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास, अनेक शास्त्र शिवपुराण की अल्प कला को भी प्राप्त नहीं होते।।६४।। यह निर्मल पुराण शिवजी ने कहा है और शिवधर्म में चतुर व्यासजी ने इसे संग्रह किया है। समस्त जीवों के उपकार के निमित्त संक्षेप किया है, यह तीनों तापों को दूर करनेवाला और सत्पुरुषों को मङ्गल देनेवाला है।।६५।। इसमें छल रहित धर्म का कीर्तन किया है, यह वेदान्त के विज्ञान से युक्त और प्रधान है, यह मत्सरहीन विद्वानों की जानने योग्य वस्तु है और सत्पुरुषों के कृत्य से युक्त त्रिवर्ग का देनेवाला है।।६६।। यह शिवपुराण सत्पुराणों

का तिलकरूप है, इसमें वेदान्त और वेद में होनेवाली सद्वस्तु का वर्णन किया है, जो इसे आदर से पढ़ता–सुनता है, वह शिवजी का प्रिय होकर परमगति को प्राप्त हो जाता है ।।६७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहिता भाषायां द्वितीयोऽध्यायः ।। २ ।।

*****

तीसरा अध्याय

व्यासजी बोले– सूतजी के वचन सुनकर वे परमऋषि बोले, आप हमें वेदान्तसार का सर्वस्वरूप पुराण सुनाइये ।।१ ।। श्रेष्ठ मुनियों के वचन सुनकर सूतजी महाप्रसन्न होकर शिवजी को स्मरण करते हुए कहने लगे ।।२।। सूतजी बोले– हे समस्त ऋषियो! सुनिये, मैं अनामय शिवजी को प्रणाम करके वेदों का सार, पुराणों में श्रेष्ठ शिवपुराण कहता हूँ।।३।। जिसमें प्रीति से भक्ति, ज्ञान और वैराग्य वर्णन किया है।।४।। और विशेष करके वेदान्त से जानने योग्य सद्वस्तु वर्णन की है।।५।। सूतजी बोले– हे ऋषियो! वेद का साररूप पुराण सुनिये। पूर्व समय में इस महान् कल्प के बारंबार बीतने पर।।६।। इस श्वेतवाराह कल्प के होने और सृष्टि उत्पन्न होने पर और त्रिवेणी के निकट षट्कुल में उत्पन्न हुए मुनियों के परस्पर वार्ता करने से ।।७।। 'यही पर है, यही ब्रह्म है, ऐसा नहीं'' इस प्रकार महाविवाद होने लगा, तब वे सब मुनि अविनाशी ब्रह्माजी के निकठ यह प्रश्न पूछने गये ।।८।। विनययुक्त वाणी से वे सब मुनि हाथ जोड़कर बोले– आप ही सर्व जगत् के विधाता, सब कारणों के कारण हो।।९।। वह कौन है जो पुराण है और प्रकृति तथा महत् से उत्पन्न हुए तत्त्वों से परे है, जिसको मन वाणी नहीं पहुंच सकती? ब्रह्माजी बोले– जिसे प्राप्त न होकर मन सहित वाणी निवृत्त हो जाती है।।१०।। जिससे यह सब ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, भूतेंद्रियों के सहित प्रथम उत्पन्न होते हैं।।११।। वही देव महादेव सर्वज्ञ और जगत् के ईश्वर हैं। वह शंकरजी परमभक्ति से दीखते हैं, अन्यथा इनका दर्शन नहीं होता।।१२।। रुद्र, हरि, हर तथा अन्य देवेश्वर भी परमभक्ति से उनके दर्शन की इच्छा करते हैं।।१३।। बहुत कहने से क्या है? शिवजी में भक्ति करने से यह प्राणी मुक्त हो जाता है, प्रसाद से देवता की भक्ति और भक्ति से प्रसाद की प्राप्ति होती है, जैसे अंकुर से बीज और बीज से अंकुर उत्पन्न होता है।।१४।। हे ब्राह्मणो! इस कारण आप शिवजी को प्रसन्न करने के लिये पृथ्वी पर जाकर सहस्र वर्ष के दीर्घ सत्र का अनुष्ठान करें।।१५।। इस यज्ञ में प्रभु शिवजी की प्रसन्नता से वेदोक्त विद्या का सार साध्य का साधक विदित हो जाएगा।।१६।।

मुनि बोले– परमसाध्य क्या है और उसका साधन क्या है और उसका साधक किस प्रकार का होना चाहिये? सो आप हमें तत्त्वरूप वर्णन कीजिये ।।१७।। ब्रह्माजी बोले– साध्य शिवपद की प्राप्ति और उनकी सेवा करना साधन है और नित्य–नैमित्तिक आदि कर्मों के फल स्वर्गादि की स्पृहा न करनेवाला उनके प्रसाद से साधक होता है ।।१८।। वेदोक्त कर्म करके उसका फल जो परमपद की प्राप्ति के निमित्त शिवजी को समर्पण किया जाता है, उसके क्रम से सायुज्यादि मुक्ति प्राप्त होती है ।।१९।। उस–उस भक्ति के अनुसार सबको वह परमफल प्राप्त होता है, बहुत प्रकार से उसके साधन साक्षात् शिवजी ने कथन किये हैं ।।२०।। उनका संक्षेप करके सारमात्र मैं आपसे वर्णन करता हूँ। कानों से उनके गुण सुनना, वाणी से कीर्तन करना ।।२१।। और मन से उनका मनन करना, यही महासाधन कहलाता है। महेश्वरजी का श्रवण, कीर्तन और मनन करना चाहिये ।।२२।। "आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः" इति। यह श्रुति इसमें प्रमाण है, इससे परे और साधन नहीं, इस कारण सब प्रकार एक शिवपरायणता के साध्य को प्राप्त हो ।।२३।। और वेद में जो आत्मा को देखें और सुने ऐसा प्रथम देखकर फिर श्रवण करने को कहा है, तो बिना देखे कैसे सुने ? उस पर कहते हैं कि, लोक की प्रवृत्ति नेत्रों से देखकर उस पदार्थ में होती है, परन्तु वह सर्वत्र अप्रत्यक्ष है, इस कारण श्रवण से ही प्रथम आरम्भ करे ।।२४।। और बुद्धिमान् को उचित है कि, प्रथम गुरुमुख से उसका श्रवण करके फिर कीर्तन और मनन को साधन करे ।।२५।। क्रम से जब मनन का साधन होगा, तब शिवयोग की प्राप्ति होने से क्रम से शिवजी की सालोक्यादि मुक्ति प्राप्त होगी ।।२६।। प्रथम सम्पूर्ण अंग की व्याधि और पश्चात् सर्वानन्द भी ब्रह्म में लय हो जाता है। जब तक अभ्यास नहीं, तब तक साधन में कष्ट है, तत्पश्चात् सब प्रकार आदि–अंत में मङ्गल होता है ।।२७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहिताभाषायां तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

*****

चौथा अध्याय

मुनि बोले– हे ब्रह्माजी! मनन और श्रवण किस प्रकार से होता है और कीर्तन किस प्रकार से किया जाता है ? सो आप यथार्थ कीर्तन कीजिये ।।१।। ब्रह्माजी बोले– पूजा, जप ईश्वर के गुणरूप विलास और नामों से तथा युक्ति से जो मन को शुद्ध करता है, वही मनन ईश्वर की कृपादृष्टि से प्राप्त होता है, यही सब श्रेष्ठ साधनों में मुख्य है ।।२।। गान करके तथा वैदिक शब्द करके और भाषा में शंभुजी के प्रताप गुणरूप और नामों का विलास और मनोहर रसीली वाणी से जो इनकी स्तुति की जाती है, उसका नाम कीर्तन

है, यह मध्यसाधन है ।।३।। जिस किसी कारण से शिवमाहात्म्य सूचक शब्दसमूह जहां कहीं श्रवणेन्द्रियगोचर होता है और जो स्त्री-क्रीड़ा के समान शिवचरित्र श्रवण में ही नित्य दृढ़ रमण करता है, उसे पण्डितों ने श्रवण कहा है, यह जगत्प्रसिद्ध है ।।४।। सत्संगति से प्रथम तो श्रवण, फिर पशुपति के गुणों का दृढ़तर कीर्तन होता है, पश्चात् सर्वोत्तम मनन होता है, परन्तु यह सब कुछ शिवजी की कृपादृष्टि से ही होता है ।।५।। सूतजी बोले- इन साधनों में हम एक पुराना इतिहास कहते हैं। हे ऋषियो! आप सावधान होकर सुनिये ।।६।। प्रथम पराशरमुनि के पुत्र हमारे गुरुजी व्यासजी सम्भ्रान्त होकर सरस्वती के सुन्दर किनारे पर तप करने लगे ।।७।। वहां अपनी इच्छा से विमान पर बैठे हुए सूर्य के समान कान्तिमान् भगवान् सनत्कुमारजी को हमारे गुरुजी ने देखा ।।८।। हमारे गुरुजी ने ध्यान से जागकर इन ब्रह्माजी के पुत्र को भेजा और प्रणाम करके परम कौतूहल से मुनि ने पूछा ।।९।। अर्घ्य प्रदान करके देवताओं के योग्य आसन दिया और प्रसन्न होकर सनत्कुमारजी ने गम्भीरवाणी से कहा ।।१०।। सनत्कुमार बोले- हे मुने! क्या आप सत्य वस्तु शिवतत्त्व का ध्यान करते हो? तो जो ध्यान करनेवाले के कर्णगोचर (प्रत्यक्ष) होते हैं, वह शिवजी आपके सहायक हैं, फिर आप किनके निमित्त तप करते हो?।।११।। जब कुमार ने ऐसा कहा तब मुनि अपने आशय को प्रगट करने लगे। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इनका वेदमार्ग में आदर है ।।१२।। और आपकी कृपा से मैंने लोक में अनेक प्रकार से इनकी स्थापना की है, इस प्रकार मैं सबका गुरु भी हूँ, परन्तु परम अद्वैत मुक्ति का ज्ञान मुझे उदय नहीं होता, मैं उसका कारण नहीं जानता, इस कारण मुक्ति के निमित्त तप करता हूँ ।।१३-१४।। इस प्रकार जब व्यासजी ने भगवान् सनत्कुमारजी से कहा तब; हे मुनियो! उन समर्थ ने मुक्ति का कारण वर्णन किया कि ।।१५।। शिवजी का श्रवण, कीर्तन, मनन यह मुक्ति के तीन महान् साधन वेदसम्मत हैं ।।१६।। प्रथम मुझे भी अन्य साधनों में सम्भ्रम हुआ था, तब मैं मन्दराचल पर्वत पर तप करने लगा ।।१७।। तब शिवजी की आज्ञा से भगवान् नन्दिकेश्वरजी वहां आये। वह सबके साक्षी महादयालु गणेश्वर मुझसे स्नेहपूर्वक मुक्ति के साधन कहने लगे, शिवजी का श्रवण, कीर्तन और मनन ही वेदसम्मत है ।।१८-१९।। यही तीन मुक्ति के साधन शिवजी ने मुझे कहे हैं, इस कारण, हे ब्रह्मन्! आप यही तीनों साधन बारंबार कीजिये ।।२०।। इस प्रकार विधिपूर्वक कहकर सनत्कुमारजी विमान में स्थित होकर परमस्थान को चले गये ।।२१।। हे ऋषियो! संक्षेप से हमने यह आपके प्रति पहला वृत्तान्त वर्णन किया। ऋषि बोले- हे सूतजी! आपने मुक्ति के श्रवणादि तीन उपाय हमसे कहे ।।२२।। जो इन तीनों के करने में असमर्थ हो, वह किस प्रकार पाप से छूट सकता है? किस कर्म से बिना यत्न के मुक्ति हो जाती है?।।२३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहिता भाषायां चतुर्थोऽध्यायः ।। ४ ।।

पांचवाँ अध्याय

सूतजी कहते हैं- जो श्रवणादि तीनों कार्यों में अशक्त हो, वह शिवजी के लिंगबेर की पूजा करे, जो कोई शंकरजी की मूर्ति बनाकर स्थापन करके पूजन करे, वह भी संसार के पार हो जाता है।।१।। वंचना रहित शिवजी के ऊपर अपनी शक्ति के अनुसार द्रव्य चढ़ावे और वे सब वस्तु बेरलिंग के ऊपर चढ़ाकर निरन्तर पूजा करे।।२।। मण्डप निर्माण, गोपुर, तीर्थ, मठ, क्षेत्र में गमन, उत्सव, वस्त्र, गन्ध, माला, धूप, दीप से भक्तिपूर्वक प्रसन्न करे।।३।। मालपुए सहित शिवजी को अनेक प्रकार के अन्न चढ़ावे, छत्र, ध्वजा, व्यजन, चमर आदि से सांग पूजा करे।।४।। सर्व उपचार बेरलिंग के राजा के समान करे, प्रदक्षिणा, नमस्कार, यथाशक्ति जप।।५।। आवाहनादि, विसर्जन तक नित्य भक्तिपूर्वक करे। इस प्रकार लिंगबेर में देवदेव शंकरजी का पूजन करे।।६।। श्रवणादि छोड़कर जो भक्तिपूर्वक इस प्रकार शिवजी का पूजन करता है, वह सिद्ध हो जाता है। लिंगबेर की अर्चना से ही पहले महाजन मुक्त हो गये हैं।।७।। मुनि बोले- बेरमात्र में तो सर्वत्र देवतागण पूजित होते हैं, परन्तु लिंगबेर में सर्वत्र शिवजी कैसे पूजित होते हैं?।।८।। सूतजी बोले- अहो मुनीश्वरो! यह आपका प्रश्न महापवित्र है और अद्‌भुत है, इसके वक्ता महादेवजी ही हैं, दूसरा कोई नहीं।।९।। मैं शिवजी का कथन कहता हूँ, जो मैंने क्रम से गुरुमुख से सुना है। शिवजी ही एक ब्रह्मरूप होने से निष्कल कहलाते हैं।।१०।। रूपी होने से वह सगुण हो जाते है, इस कारण वह सगुण-निर्गुण कहलाते हैं, निष्कल होने से वह निराकार है, लिंग में उनकी प्राप्ति है।।११।। और सगुण होने से साकार बेररूप हैं। यह सगुण-निर्गुण रूप होने से शब्दब्रह्म नाम से सबसे परे हैं।।१२।। लिंग और बेर में प्राणी इनकी सदा पूजा करते हैं, शिवजी को छोड़कर अन्य देवता ब्रह्म नहीं हैं, इस कारण वे निष्कल नहीं हो सकते।।१३।। इस कारण वे दूसरे देवता निर्गुणलिंग में आराधना नहीं किये जाते, कारण कि वे ब्रह्म नहीं, जीव हैं। इस प्रकार अन्य देवता।।१४।। मौनरूप कलामात्र होने से बेर में अर्चन करते हैं, शंकरजी के सिवाय औरों में जीवत्त्व है और शंकरजी में ब्रह्मत्त्व है।।१५।। ॐ कार के निमित्त ब्रह्मरूप से शंकरत्त्व प्रकाश करने से उपनिषद् सिद्ध हैं। यही वार्ता मन्दर पर्वत पर नन्दिकेश्वरजी से।।१६।। बुद्धिमान् ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार मुनि ने पूछी थी। सनत्कुमारजी बोले- शिवजी से अन्य देवता अपने सब भक्तों के सब प्रकार अधीन हो जाते हैं।।१७।। केवल बेरमात्र में पूजा अनेक प्रकार सुनी और देखी है, परन्तु शिवजी की पूजा में बेरलिंग देखा गया है।।१८।। इस कारण आप सुगमता से मुझे कल्याणतत्त्व

श्रवण कराइये। नन्दिकेश्वरजी बोले– आपका यह प्रश्न ब्रह्मस्वरूप विषयक है और कहने में अशक्य है ।।१९।। परन्तु आप पाप रहित और भक्ति युक्त हो, इस कारण जैसा शिवजी से सुना है, वह मैं कहता हूँ। शिवजी ब्रह्मरूप और कला रहित होने से निर्गुण कहलाते हैं।।२०।। पूजा करने में सब वेदसम्मत लिंगपूजा है और वही निर्गुण है, कलायुक्त होने के कारण सकल (सगुण) कहलाते है ।।२१।। सगुण पूजा में लोकसम्मत बेर में पूजन करना और शिवजी से अन्य देवता जीवरूप होने से सब प्रकार कलायुक्त ही है ।।२२।। वेद में निर्णय करके पूजन में बेरमात्र का परिमाण कहा है, कारण कि देवता के आविर्भाव होने से उसका सकल रूप दीखता है ।।२३।। शिवजी का लिंगबेर शिवशास्त्र में दीखता तो है, परन्तु वह निर्गुण होने से प्रमाण रहित भी है, सनत्कुमारजी बोले– हे महाभाग! आपने लिंगबेर का अर्चन कहा ।।२४।। शिवजी का तथा दूसरे देवताओं का भी विभागपूर्वक परमार्थ से वर्णन किया, इस कारण उस परमात्मा के लिंग का बेरादि में जिस प्रकार प्रादुर्भाव हुआ है ।।२५।। हे योगीन्द्र! मैं उस लिंगाविर्भाव का लक्षण सुनना चाहता हूँ। नन्दिकेश्वरजी बोले– हे वत्स! सुनिये, मैं आपकी प्रीति से कहता हूँ।।२६।। पूर्वकाल में जो पहला कल्प था, जो लोक में विख्यात है, उस समय महात्मा ब्रह्माजी और विष्णुजी का परस्पर युद्ध हुआ था।।२७।। उनका मान दूर करने निमित्त उन निष्कल परमात्मा ने उन दोनों के बीच में अपना स्तम्भरूप स्वरूप दिखाया।।२८।। तब जगत् के हित की इच्छा से निर्गुण शिवजी ने उस तेजोमय स्तम्भ से अपने लिंगाकार का स्वरूप दिखाया।।२९।। उसी दिन से वह निष्कल शिवजी का लिंग विख्यात हुआ और सगुणरूप में बेररूप की कल्पना की गयी ।।३०।। देवताओं की वह बेरपूजा इच्छानुसार भोगों को देनेवाली है, परन्तु शिवजी का लिंगबेर भोग और मोक्ष दोनों का देनेवाला है ।।३१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहिता भाषायां पंचमोऽध्यायः ।। ५ ।।

*****

छठवाँ अध्याय

नन्दिकेश्वरजी बोले– हे योगीन्द्र! पहले एक समय अपने गरुड़ादि पार्षदों से संयुक्त भगवान् विष्णुजी लक्ष्मी सहित शेषशय्या पर शयन करते थे ।।१।। उस समय ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ ब्रह्माजी अपनी इच्छा से ही वहां आये। सर्व प्रकार सुन्दर सेज पर शयन करते हुए कमललोचन विष्णुजी से पूछने लगे ।।२।। तुम कौन हो, जो मुझे देखकर अभिमानी पुरुष के समान शयन करते हो? हे वत्स? उठो, देखो मैं तुम्हारा स्वामी आया हूँ।।३।।

आये हुए गुरु को देखकर जो अभिमान करता है, उस द्रोही मूढ़ का प्रायश्चित्त होना उचित है ।।४।। यह सुनकर विष्णुजी के अन्तर में क्रोध तो हुआ, परन्तु बाहर से शान्त रहे और बोले, हे वत्स! आपका मङ्गल हो। बैठिये, इस आसन पर विराजिये ।।५।। इस समय आपका नेत्र कुटिल और मुख वक्र क्यों हो रहा है? ब्रह्माजी बोले– हे वत्स विष्णु! तुमको समय के प्रभाव से अभिमान है ।।६।। हे पुत्र! मैं आपका रक्षक और जगत् का पितामह हूँ। विष्णुजी बोले– यह तो सब जगत् मुझमें स्थित है, फिर आप चोर के समान किस प्रकार अपना कहते हो?।।७।। आप मेरी नाभिकमल से उत्पन्न हुए हो, इस कारण मेरे पुत्र हो, आपका मुझे पुत्र कहना वृथा है। नन्दिकेश्वरजी बोले– इस प्रकार ब्रह्मा तथा विष्णुजी दोनों ही रजोगुण से मुग्ध होकर विवाद करने लगे ।।८।। "मैं श्रेष्ठ हूँ, मैं स्वामी हूँ" ऐसा कहकर एक दूसरे को मारने की इच्छा से युद्ध करने में उत्सुक हुए ।।९।। और अपने हंस और गरुड़ वाहन पर स्थित होकर वे दोनों देव युद्ध करने में लगे। तब ब्रह्मा और विष्णुजी के वाहनगण भी युद्ध करने लगे ।।१०।। तब सर्व देवता विमानों में बैठकर उस महाअद्भुत युद्ध को देखने चले आये ।।११।। और आकाश से उनके ऊपर फूल वर्षाने लगे तब विष्णुजी ने क्रोध कर ब्रह्माजी की छाती में ।।१२।। अनेक प्रकार के बाण और अस्त्र मारे और ब्रह्माजी ने भी महा क्रोध कर विष्णुजी के हृदय में अग्नि के समान दुःसह बाण और अनेक शस्त्र मारे। उस युद्ध में यह बड़े आश्चर्य का व्यापार होने लगा ।।१३–१४।। और उनका युद्ध देखकर देवता अत्यन्त व्याकुल होकर कहने लगे। तब विष्णुजी ने श्वास लेते हुए युद्ध से कुछ श्रान्त होकर, क्रोध करके ।।१५।। बुद्धिमानी से ब्रह्माजी के ऊपर माहेश्वर अस्त्र का प्रयोग किया तब ब्रह्माजी ने महाक्रोध कर विश्व को कम्पित करते हुए ।।१६।। घोर पाशुपतास्त्र विष्णुजी की छाती पर चलाया, उस समय आकाश में दशसहस्र सूर्य के समान तेज उठा ।।१७।। जिसके सहस्र मुख जो अति उग्र और तीक्ष्ण था। उस समय महाभयंकर तीक्ष्ण पवन चलने लगी। जब ब्रह्मा और विष्णुजी के दोनों भयंकर अस्त्र उदय हुए, तब घोर उपद्रव हुए। जब इस प्रकार ब्रह्मा और विष्णुजी का परस्पर युद्ध हुआ तब समस्त देवता अत्यन्त व्याकुल और उद्विग्न हो गये ।।१८–१९।। हे तात! जैसे राजविग्रह में ब्राह्मण क्षुभित होते हैं, उसी प्रकार वे व्याकुल होकर बोले– सृष्टि की स्थिति, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह जिनसे होता है उन त्रिशूलधारी ब्रह्म के अनुग्रह के बिना अपनी इच्छा से कोई भी एक तृण को भी नष्ट करने को समर्थ नहीं है ।।२०–२१।। इस प्रकार भयभीत होकर सर्व देवता शिवजी के स्थान की खोज करते–करते कैलास के शिखर पर शिवजी के पास गये ।।२२।। देखते ही देवता प्रसन्न हो उस परमेश्वरपद प्रणवाकार को देखकर प्रणाम करके स्थित हुए और उस स्थान में प्रवेश करके ।।२३।। उस सभामण्डल में मणि के विस्तर पर पार्वती सहित विराजमान देवश्रेष्ठ को देखा ।।२४।।

वाम पद के ऊपर दक्षिण पद रखे हुए शिवजी के निमित्त अपना करकमल अर्पण किये अपने गणों से सब प्रकार वेष्टित सम्पूर्ण लक्षणों से लक्षित ।।२५।। महाभक्ति युक्त स्त्रीजन जो विशेष उपचार जानती थीं, वे पंखा कर रहीं थीं। वेद स्तुति करते थे और अनुग्रह की दृष्टि से सबको देखते थे ।।२६।। हे कुमार! दूर से ही शिवजी का दर्शन करके सन्तोष का जल नेत्रों में भरे वह देवताओं का महासमूह दूर से नमस्कार करने लगा ।।२७।। उन देवताओं को देखकर गणों द्वारा उन्हें बुलाकर देवदेव महादेव उन देवताओं को प्रसन्न करते हुए मधुर और मङ्गलयुक्त वचन गम्भीर वाणी से बोले ।।२८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहिताभाषायां षष्ठोऽध्यायः ।। ६ ।।

*****

सातवाँ अध्याय

ईश्वर बोले– हे पुत्रो! हमारी आज्ञा में वर्तनेवाले आपका मङ्गल है। जगत् और सब देवता अपने–अपने कर्म करने में प्रवृत्त हैं या नहीं?।।१।। पहले ही मैंने ब्रह्मा और विष्णुजी के युद्ध को जान लिया है। आपने अपने दु:ख के साथ पुनरुक्तता से प्रकाश किया है ।।२।। हे कुमार! इस प्रकार मधुरवाणी से पार्वतीपति शंकरजी ने उन सर्व देवताओं को सन्तुष्ट किया ।।३।। तब शिवजी ने अपने सौ गणों को उस समरस्थान में जाने की आज्ञा दी, जहां ब्रह्मा और विष्णुजी थे ।।४।। तब शंकरजी के प्रयाण समय में अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे, अनेक प्रकार के वाहनों पर चढ़कर विविध भूषण पहने गणेश्वर चलने को उद्यत हुए ।।५।। प्रणव के समान आकार से सर्वत्र व्याप्त पंचमण्डल से मण्डित भद्ररथ में अम्बिकापति गिरीश चढ़े और पुत्र तथा गण भी संग हुए। उस समय इन्द्रादि देवता उनके पीछे चलने लगे ।।६।। सुन्दर ध्वजा, व्यजन, चमर, पुष्पवर्षा, संगीत, नृत्य, बाजों से सम्मानित होकर शिवजी पार्वती सहित ब्रह्मा और विष्णुजी के समीप समरभूमि में सेना सहित गये ।।७।। वहां जाकर मेघों के मध्य में छिपकर उनका निरन्तर होनेवाला युद्ध देखा। उस समय बाजों की ध्वनि नहीं होती थी और बड़ा गणों का भी शब्द शान्त हो गया था ।।८।। उस समय ब्रह्मा और विष्णुजी परस्पर एक दूसरे को मारने की इच्छा से माहेश्वरास्त्र और पाशुपतास्त्र से ।।९।। तथा अस्त्रों की ज्वाला से मानो त्रिलोकी को भस्म करने लगे, तब शिवजी ने वह अकाल प्रलय देखकर ।।१०।। महाअग्नि के स्तम्भ के समान, महाभयंकर आकृति के समान उन दोनों के बीच में वह निर्गुणब्रह्म स्थित हुए ।।११।। उस महाअग्नि के प्रगट होते ही वे लोकक्षय करने में समर्थ अस्त्र क्षणमात्र में निपतित हो गये ।।१२।। वह अस्त्र शान्त

होने का अद्‌भुत चित्र देखकर, यह अद्‌भुत आकार क्या है? ऐसा ब्रह्मा और विष्णुजी परस्पर कहने लगे* ।।१३।। यह इन्द्रिय अगोचर स्तम्भ अग्निरूप सा क्या उठा है? हम दोनों को इसका ऊपर और नीचे का भाग देखना चाहिये कि, यह कहां से हुआ है?।।१४।। इस प्रकार कहकर वह दोनों मानी वीर परस्पर मिलकर उसकी परीक्षा करने के लिये बहुत शीघ्रता से गये।।१५।। हम दोनों के मिलने से यह कार्य नहीं होगा, ऐसा कहकर विष्णुजी शूकर शरीर धारण करके उसका मूल भाग देखने को नीचे चले गये।।१६।। और ब्रह्माजी हंस का रूप धारण करके उसका ऊपर का भाग देखने गये। हरि पातालस्थान को भेदकर दूर तक चले गये।।१७।। परन्तु उस अग्नि के समान प्रज्ज्वलित स्तम्भ का पार नहीं पाया और शान्त होकर हरि उस युद्धस्थान में चले आये।।१८।। और ब्रह्माजी आकाशमार्ग में चले गये। उन्होंने वहां केतकी का किंचित च्युत होता अद्‌भुत पुष्प देखा।।१९।। यद्यपि वो बहुत वर्षों से टूटा था, परन्तु उसमें बड़ी सुगन्ध थी और मलिन न था, ब्रह्मा और विष्णुजी के कृत्यों को देखकर भगवान् परमेश्वर ने परिहास किया और कम्पित होने से उनका शिर चलायमान हुआ, उसीसे वह पुष्प गिरा, तब केतकी के गिरे हुए उत्तम फूल को ग्रहण करने की इच्छा से ब्रह्माजी ने कहा।।२०-२१।। हे पुष्पों के राजा पुष्पपति! तू क्यों गिरता है? तुझे किसने धारण किया है? तब पुष्प ने कहा- इस सबके प्रथम प्रादुर्भूत हुए प्रमाद रहित स्तम्भ के मध्यस्थान से मैं गिरा हूँ (आदिमस्य के स्थान अहमस्य भी पाठ है, जिसके अर्थ में इस स्तम्भ के होते हैं) और मुझे बहुत समय बीत गया।।२२।। परन्तु आज तक मुझे इसका अन्त नहीं मिला, गिरा ही चला जाता हूँ, इस कारण आप इसका अन्त देखने की आशा छोड़ दीजिये। ब्रह्माजी बोले- इसका अन्त देखने के को मैं हंसरूप धारण करके आया हूँ।।२३।। अब, हे सखा! तुम्हें हमारा मनोरथ पूर्ण करना चाहिये। मेरे साथ चलकर विष्णुजी के निकट तुम्हें यह कहना चाहिये।।२४।। कि ब्रह्माजी ने इस स्तम्भ का अन्त देख लिया है, इसमें मैं साक्षी हूँ। ऐसा कहकर ब्रह्माजी ने बारंबार केतकी के पुष्प को प्रणाम किया और कहा यह आज्ञा है कि, आपदा में झूंठ बोलने में दोष नहीं होता।।२५।। जाकर ब्रह्माजी ने जब विष्णुजी को थकित देखा कि, उनमें प्रसन्नता नहीं है, तब हर्षित होकर नृत्य करने लगे और षंढ के समान वाद करते हुए अच्युत से ब्रह्माजी बोले।।२६।। हे विष्णु! हमने स्तम्भ का अन्त देख लिया, उसमें यह केतकी का फूल साक्षी है और ब्रह्माजी के कहने के अनुसार उस केतकी के पुष्प ने भी असत्य भाषण किया।।२७।। हरि ने उनका कहा सत्य मानकर स्वयं ब्रह्माजी को प्रणाम किया और षोडशोपचारों से ब्रह्माजी का पूजन किया।।२८।। तब ब्रह्माजी का

*- यह ब्रह्मा और विष्णुजी का युद्ध एक अलंकार है, कि सत रज प्रबल होकर जब अपने से भिन्न नहीं जाने, तब उनके संघर्षणरूप युद्ध से शिवतत्त्व प्रगट होता है, जिससे वह अपनी पूर्व अवस्था को प्राप्त होते हैं।

कपट देखकर उनको प्रहार करने के लिये उसी अग्निरूप स्तम्भ से वह ईश्वर साकार होकर प्रादुर्भूत हुए। स्वामी को देखते ही कांपते हुए हाथों से विष्णुजी ने उनके चरण पकड़ लिये ।।२९।। और बोले– हे आद्यन्तहीन शरीरवाले! आपको अज्ञानबुद्धि से कामनापूर्वक ढूंढ़कर भी आप प्राप्त नहीं होते हैं। हे करुणाकर! इससे आप हमारे ऊपर प्रसन्न हो और हमारे कश्मल (पाप) नष्ट करके हमें क्षमा कीजिये, आपकी क्रीड़ा हमने जानी ।।३०।। ईश्वर बोले– हे वत्स! हे विष्णु! मैं आपके ऊपर प्रसन्न हूँ, कारण कि आप ईशत्त्व की इच्छा करके भी सत्यवक्ता हो, इसी कारण से संसार में ईशत्त्व को प्राप्त होकर साम्यता और मुझसे सत्कार को भी प्राप्त होंगे ।।३१।। और आज से आपकी पृथक् मूर्ति की क्षेत्रों में प्रतिष्ठा और उत्सव, पूजन होगा ।।३२।। इस प्रकार सत्य कहने से शिवजी विष्णुजी पर बहुत प्रसन्न हुए और देवसमूह के देखते–देखते उन्होंने अपनी समानता विष्णुजी को दी ।।३३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहिता भाषायां सप्तमोऽध्यायः ।। ७ ।।

*****

आठवाँ अध्याय

नन्दिकेश्वरजी बोले– तब महादेवजी ने ब्रह्माजी का मद दूर करने के निमित्त अपनी भृकुटी के मध्य से एक अद्भुत पुरुष भैरवजी की रचना की ।।१।। उत्पन्न होते ही समरांगण में उस पुरुष ने शिवजी को प्रणाम करके कहा– हे भगवन्! मैं क्या करूं? शीघ्र आज्ञा दीजिये ।।२।। शिवजी ने कहा–हे वत्स! यह जो जगत् के आदिदेवता ब्रह्मा हैं, इनकी तीक्ष्ण धारवाले वेगवान् खड्ग से अर्चा करो अर्थात् प्रहार करो ।।३।। सो सुनते ही भैरव ने एक हाथ से केश पकड़कर वह ब्रह्माजी का पाँचवां* असत्यभाषी सिर काटकर स्फुरायमान होते हुए खड्ग से उनके दूसरे भी शिर काटने की इच्छा की ।।४।। तब आपके पिता ब्रह्माजी गहने, माला और उत्तरीय वस्त्र त्यागकर, केश खोले हुए, हवा चलने से केले और वेल के समान कम्पित होकर भैरवजी के चरणकमलों में गिर पड़े ।।५।। ब्रह्माजी की यह दशा देखते ही विष्णुजी ने हमारे स्वामी के चरणकमलों में अश्रुमोचन करते–करते हाथ जोड़कर कहा; जैसे बालक पिता से कहते हैं ।।६।। विष्णुजी बोले– हे भगवन्! प्रथम आपने कृपा करके इनको पाँच सिर दिये थे, अब एक जाता रहा, इस कारण क्षमा करके अब ब्रह्माजी पर प्रसन्नता कीजिये ।।७।। जब विष्णुजी ने इस प्रकार कहा, तब शिवजी देवताओं से सेवित होकर

*–रजोगुण में जितना तम का अंश था वही पंचम शिर है, जो शिवजी ने हर लिया।

गणों के मध्य में स्थित हो गये और उन्होंने ब्रह्माजी को दण्ड देने से भैरवजी को निवृत्त किया ।।८।। तब एक कन्धरा रहित ब्रह्माजी से शिवजी बोले कि, आपने कपट किया और अपनी पूजा और ईश्वर होने की इच्छा से छल किया ।।९।। इस कारण लोक में आपका सत्कार न होगा, आपका स्थान और उत्सवादिक न होगा। ब्रह्माजी बोले– हे स्वामी! हे महाविभूति युक्त! प्रसन्न हो, और हे वर देनेवाले! मेरा शिर मोक्ष हो, यही वर दीजिये ।।१०।। हे भगवन्! हे जगद्बन्धु! संसार के कारण सब दोषों को सहनेवाले, हे शैलधनुषधारी शंभुजी! आपको नमस्कार है ।।११।। शिवजी बोले– अराज के भय से यह सब जगत् स्थिर न रहेगा, इस कारण से जो दण्ड के योग्य है, आप उनको दण्ड दो और लोक की धुरी धारण करो ।।१२।। हे पुत्र! मैं आपको दुर्लभ वर देता हूँ, सो ग्रहण करो। अग्निहोत्र, स्मार्तकर्म और यज्ञों के गुरु आप ही होंगे, उसमें आपका सत्कार होगा ।।१३।। सांग और दक्षिणा सहित भी यज्ञ आपके बिना पूर्ण न होगा, किन्तु निष्फल हो जाएगा। यह कहकर देव ने असत्य भाषी केतकीपुष्प से कहा ।।१४।। अरे असत्यभाषी केतक, दुष्ट! तू यहां से दूर हो, आज से मेरा प्रेम तुझमें नहीं और मेरी पूजा में तू न होगा ।।१५।। देव के ऐसा कहते ही शिवजी के निकटवर्ती देवजाती केतक को वहां से दूर करने लगी ।।१६।। तब केतक बोला– हे नाथ! नमस्कार है। आज से आपकी आज्ञा से मेरा जन्म निष्फल हुआ। हे स्वामिन्! कुछ तो सफल कीजिये। अब मेरा पाप दूर कीजिये ।।१७।। आपके तो स्मरण से ही ज्ञान होता है और अज्ञान कृत पाप नष्ट हो जाते हैं, फिर आपका दर्शन करने से मेरा मिथ्याभाषण दोष क्यों न नष्ट होगा?।।१८।। जब केतक ने सभा में भगवान् की इस प्रकार प्रार्थना की, तब शिवजी ने कहा– हमारी वाणी असत्य नहीं होती, हम तुझे धारण नहीं करेंगे ।।१९।। परन्तु विष्णुजी आदि हमारे भक्तदेवता तुझे धारण करेंगे। इससे तेरा जन्म सफल होगा और मण्डप रचना के निमित्त मेरे भी ऊपर तू होगा ।।२०।। इस प्रकार केतक, ब्रह्मा और विष्णुजी पर अनुग्रह करके भगवान् शिवजी सब देवताओं से पूजित होकर सभा में विराजे ।।२१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहिता भाषायां अष्टमोऽध्यायः ।। ८ ।।

*****

नववाँ अध्याय

इस समय में ब्रह्मा और विष्णुजी शिवजी को प्रणाम करके, हाथ जोड़कर, मौन होकर क्रम से शिवजी के दक्षिण और वामभाग में स्थित हुए।।१।। उन दोनों ने कुटुम्ब सहित देव को सुन्दर आसन पर बैठाकर अन्य पवित्र पुरुषों के योग्य पदार्थों से उन पूज्य की पूजा की।।२।। और पुरुष के संकल्प से उत्पन्न हुई वस्तु कोई दीर्घ, कोई अल्पकाल में जानी जाती है, वह भी देने योग्य सब वस्तु हार, नूपुर, केयूर, किरिट, मणि, कुण्डल।।३।। यज्ञसूत्र, उत्तरीयवस्त्र, माला, रेशमीवस्त्र, पुष्पमाला, अँगूठी, चन्दन, फूल, ताम्बूल, कपूर, अगर, लेपन।।४।। धूप, दीप, श्वेतछत्र, व्यजन, ध्वजा, चमर और भी दिव्य उपहार, वाणी मन से परे ऐश्वर्य।।५।। स्वामी की पूजा के योग्य अन्य जीवों को अप्राप्य वस्तुओं से उन दोनों ने शंकरजी की पूजा की। हे श्रेष्ठ सनत्कुमारजी! जो–जो जगत् में श्रेष्ठ वस्तु हैं, वह सब शंकरजी के योग्य है।।६।। इस कारण परंपरा से चले आये क्रम को करने की इच्छा से उन सबके स्वामी ने भी प्रसन्नतापूर्वक सबके निमित्त पृथक्–पृथक् वस्तु प्रदान की।।७।। तब वहां उन वस्तुओं को ग्रहण करनेवालों का बड़ा भारी कोलाहल हुआ। प्रथम ब्रह्मा और विष्णुजी से पूजित होकर।।८।। भक्ति बढ़ानेवाले शिवजी ने नम्र हुए उन ब्रह्मा और विष्णुजी से प्रसन्न होकर कहा, ईश्वर बोले– हे वत्स! आज हम आपके पूजन और उत्सव से इस महादिन में प्रसन्न हुए।।९।। यह दिन महापवित्र होगा, यह हमारी प्रिय शिवरात्रि तिथि होगी।।१०।। इस समय जो हमारी लिंग वा बेरबेर की पूजा करेगा, वह पुरुष जगत् स्थिति और सर्गादि क्रम कर सकेगा।।११।। जो–जो जितेन्द्रिय होकर निराहार एक रात–दिन यथान्याय, यथाशक्ति प्रपंच रहित पूजन करेगा।।१२।। जो फल मेरा पूजन निरन्तर एक वर्ष तक करने से मिलता है, वह एक शिवरात्रि के दिन मेरा अर्चन करने से मिलता है।।१३।। जैसे चन्द्रमा को देखकर सागर बढ़ता है, इसी प्रकार यह मेरी वृद्धि का समय है। जहां–जहां मेरा मङ्गलदायक प्रतिष्ठादि उत्सव होता है।।१४।। और जो मैं पूर्व में स्तम्भरूप से आविर्भूत हुआ हूँ, वह समय मार्गशीर्ष में आर्द्रा नक्षत्र युक्त है, सो जानना।।१५।। मार्गशीर्ष में जो आर्द्रा नक्षत्र के समय पार्वती सहित मेरा दर्शन करता है अथवा बेरलिंग का दर्शन करता है, वह मुझे कार्तिकेय से भी अधिक प्रिय है।।१६।। उस श्रेष्ठ दिन में दर्शन से ही महाफल होता है और जो उस दिन पूजन करते हैं, उसका फल वाणी से कथन नहीं किया जा सकता।।१७।। इस रणभूमि में जो मैं लिंगदेह से प्रादुर्भूत हुआ हूँ, इससे यह लिंगस्थान कहलायेगा।।१८।। हे पुत्रो! जो यह

जो आदि–अन्त रहित स्तम्भ है, सो जगत् के दर्शन और पूजन के निमित्त अणुमात्र (बहुत छोटा) हो जायेगा ।।१९।। यह लिंग भुक्ति और मुक्ति का साधक होगा, इसके दर्शन, स्पर्शन और ध्यान से ही प्राणियों के जन्म–मरण छूट जायेंगे ।।२०।। यह जो अग्नि पर्वत के समान प्रादुर्भूत हुआ है, सो यह अरुणाचल नाम से जगत् में विख्यात होगा ।।२१।। यह बड़ा भारी तीर्थ होगा। यहां प्राणियों के निवास करने से या तनु त्यागने से मुक्ति हो जायेगी ।।२२।। रथयात्रा, उत्सव, कल्याण और जनों के निवास करने के योग्य यह स्थान होगा। यहां किया हुआ तप, जप, हवन करोड़ गुणा हो जाएगा ।।२३।। हमारे समस्त क्षेत्रों में यह श्रेष्ठ होगा, यहां मेरा स्मरण करते ही प्राणी मुक्त हो जायेंगे ।।२४।। इस कारण यह क्षेत्र महान् और अत्यन्त शोभित होगा। सब प्रकार से कल्याणदायक और सब प्रकार मुक्तिदायक होगा ।।२५।। जो यहां लिंग में मुझ लिंगेश्वर की पूजा करेंगे उन्हें सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सार्ष्टि, सायुज्य इन पाँचों मुक्तियों के क्रिया के फल को प्राप्त हो जाएंगे और यहां पूजन करने से आप भी सब मनोरथों को प्राप्त हो जाओगे ।।२६–२७।। नन्दिकेश्वरजी बोले– इस प्रकार भगवान् शिवजी ने उन नम्र हुए ब्रह्मा और विष्णुजी पर अनुग्रह करके उनके युद्ध में जो परस्पर उनकी सेना मारी गई थी ।।२८।। उन सबको जिस शक्ति में अमृत की धारा रहती है उस अपनी शक्ति से जीवित कर उठाया और उन दोनों ब्रह्मा और विष्णुजी की अज्ञानता और बैर को दूर करने के निमित्त दोनों से कहा ।।२९।। मेरे सकल और निष्कल भेद के दो स्वरूप हैं, परन्तु और ईश्वर नहीं, इस कारण उनके दो रूप नहीं हो सकते ।।३०।। पहला स्तम्भरूप और पश्चात् मूर्तिमान्‌रूप धारण किया है, इसमें ब्रह्मरूप निष्कल है और ईशरूप सगुण है ।।३१।। मेरे यह दोनों रूप सिद्ध हैं, दूसरे किसी के नहीं हो सकते। इस कारण आप दोनों को अथवा दूसरों को ईश्वरत्त्व की प्राप्ति नहीं हो सकती ।।३२।। आपने जो अज्ञान से अपने को ईश माना यह बड़ा अद्भुत हुआ। उसे दूर करने को ही मैं रणस्थान में आया हूँ ।।३३।। अब आप अपने अभिमान को त्यागकर मुझ ईश्वर में अपनी बुद्धि लगाओ। मेरे प्रसाद से लोक में सब अर्थ प्रकाश करते हैं ।।३४।। मुझ गुरु के वचन से ही आपको बारंबार प्रणाम है, आपकी प्रीति से ही यह गूढ़ ब्रह्मत्त्व मैं आपसे कहता हूँ ।।३५।। मैं ही परब्रह्म हूँ और मेरा ही कल–अकल रूप है। ब्रह्म होने से मैं ईश्वर हूँ, अनुग्रहादिक ही मेरा कृत्य है ।।३६।। सर्वव्यापी होने से और जगत् के वर्द्धक होने से मैं ब्रह्मा हूँ, हे ब्रह्मकेशव! समत्व और व्यापक होने से मैं आत्मा हूँ ।।३७।। अन्य सम्पूर्ण जीव आत्मा नहीं हैं, इसमें सन्देह नहीं। अनुग्रह से ही यह सर्ग के अन्त तक जो जगत् का कृत्य और पंचक है ।।३८।। मैं उन सबका ईश हूँ, यह मेरा है, मेरे सिवाय किसी दूसरे का नहीं है। प्रथम तो ब्रह्मत्त्वज्ञान के निमित्त निष्कलब्रह्म का प्रादुर्भाव हुआ है ।।३९।। इसीसे मैं अज्ञात

स्वरूप हूँ, पीछे आपको प्रगट दर्शन देने के निमित्त मैं साक्षात् ईश्वर तत्क्षण ही सगुण रूप हुआ हूँ।।४०।। मेरे ईशत्त्व रूप को सकलत्त्व जानो और यह निष्कलत्त्व स्तम्भ ब्रह्म का बोधक है।।४१।। लिंग भक्षण होने से यह मेरा लिंगस्वरूप निर्गुण होगा। इस कारण, हे पुत्रो! आप नित्य इनकी अर्चना करना।।४२।। यह सदा मेरी आत्मारूप है और मेरी निकटता का कारण है, लिंग और लिंगी के अभेद से यह महत्त्व नित्य पूजनीय है।।४३।। जहां कहीं किसी ने मेरे इस लिंग की प्रतिष्ठा की है, हे पुत्रो! वहां मैं अप्रतिष्ठित भी स्थित हूँ।।४४।। एक लिंग के स्थापन से मेरे समान रूप की प्राप्ति यह फल होता है और दूसरे लिंग के स्थापन करने में मेरी एकता की प्राप्ति होती है।।४५।। वह लिंग प्रधान है और बेरलिंग गौण है। लिंग के अभाव से बेर सहित भी वह स्थान क्षेत्र नहीं होता।।४६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहिता भाषायां नवमोऽध्यायः ।।९।।

*****

दशवाँ अध्याय

ब्रह्मा और विष्णुजी बोले- हे प्रभो! आप हमसे सर्गादि पंचकृत्यों का लक्षण कहिये। शिवजी बोले- हमारा कृत्य और ज्ञान दुर्लभ है। मैं कृपापूर्वक आपसे कहता हूँ।।१।। हे ब्रह्मा विष्णु! सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव, अनुग्रह यह हमारे जगत् के पाँच कृत्य नित्य सिद्ध हैं।।२।। संसार के आरम्भ का नाम सर्ग, उसकी वृद्धि का नाम स्थिति है, उसके नष्ट करने का नाम संहार, उद्धार का नाम उत्क्रम है।।३।। उस संसार से मोक्ष करने का नाम अनुग्रह है। बस यही मेरे पाँच कृत्य हैं और इन मेरे कृत्यों को पृथ्वी आदि गोपुर के बिम्ब के समान मौन होकर धारण करते हैं।।४।। यह सर्गादि चार कृत्य तो सृष्टि के कर्म में प्रवेश करते हैं और पाँचवां मुक्ति का कारण सदा मुझ में ही स्थित रहता है।।५।। इस कारण यह पंचभूतों में मेरे जनों द्वारा दीखता है। पृथ्वी में सृष्टि, जल में स्थिति,अग्नि में संहार।।६।। पवन में तिरोभाव, आकाश में अनुग्रह है, सब कुछ पृथ्वी उत्पन्न करती है, जल से सबकी वृद्धि होती है।।७।। तेज से सब नष्ट होते वायु में सब लय होते हैं और आकाश द्वारा सब पर अनुग्रह होता है। ऐसा प्राचीन कवियों को जानना चाहिये।।८।। इन्हीं पाँचों कृत्यों को धारण करने के लिये मेरे पाँच मुख हैं। चार दिशाओं में चार और मध्य में पाँचवां मुख है।।९।। हे पुत्रो! यह कृत्य आपने तप से प्राप्त किया है, जो कि सृष्टि की उत्पत्ति और पालन कहलाता है, सो मैंने प्रसन्न होकर आपको दिया है।।१०।। इसी प्रकार से दूसरे दो कृत्य रुद्र और महेश को

प्रदान किये हैं, परन्तु अनुग्रह कृत्य पाने को कोई भी समर्थ नहीं है ।।११।। सो पूर्व के कर्म आपने समय से बिसार दिये। रुद्र और महेश ने उनको नहीं भुलाया है ।।१२।। रूपवेश कृत्य, आसन, वाहन और आयुधादि में हमारी साम्यता थी ।।१३।। हे सौम्य! मेरे ज्ञान के विमुख होने से आपमें अज्ञानता आ गई। मेरा ज्ञान होने से ऐसा नहीं होता। ज्ञान और रूप महेश के तुल्य हो जाता है ।।१४।। इस कारण उस ज्ञान की सिद्धि के निमित्त ॐ कार नामक मन्त्र का जप करो, यह अभिमान को दूर करनेवाला है ।।१५।। सोई निज मन्त्र उपदेश करते हैं। यह ॐ कार मेरे मुख से उत्पन्न होने से मेरे ही रूप का बोधक है और महामङ्गल करनेवाला है ।।१६।। यह वाचक है और मैं वाच्य हूँ। यह मन्त्र मेरी आत्मा है, उसके स्मरण करने से मेरा ही स्मरण होता है ।।१७।। उत्तर की ओर के मुख से अकार, पश्चिम के मुख से उकार, दक्षिण के मुख से मकार, पूर्व के मुख से बिन्दु ।।१८।। और मध्य के मुख से नाद उत्पन्न हुआ। इस प्रकार पाँच प्रकार से वह निर्गत हुआ, वह सब एक होकर 'ॐ' ऐसा एकाक्षर हो जाता है ।।१९।। यह सब नामरूपात्मक वेदभूत दोनों कुल अर्थात् स्त्री-पुरुष भेद से भौतिक शरीर वर्ग दो का भेदवाला है, वह इसी मन्त्र से व्याप्त है और शिवशक्ति का बोधक है ।।२०।। इसी ॐ कार से सर्व जगत् का बोधक प्रणव उत्पन्न हुआ है। अकारादि क्रम से अर्थात् अकार से नकार, उकार से मकार, मकार से 'शि', बिन्दु से 'वा', नाद से 'य' प्रगट हुआ है ।।२१।। और इसी पंचाक्षर के पाँच भेदों से मातृका अकार से ऌकार पर्यन्त हुई, उससे शिरोमन्त्र और चार मुखों से त्रिपदागायत्री हुई ।।२२।। उससे सर्व वेद उत्पन्न हुए, उससे करोड़ मन्त्र उत्पन्न हुए, उन मन्त्रों से उनके कथनानुसार सिद्धि होती है, परन्तु पंचाक्षर मन्त्र से सम्पूर्ण सिद्धि होती है ।।२३।। इस श्रेष्ठ मूलमन्त्र से सब सिद्ध भोग और मोक्ष की सिद्धि होती है। कला सहित सब राजमन्त्र साक्षात् भोग देनेवाले हैं ।।२४।। नन्दिकेश्वरजी बोले- तब उन दोनों के गुरु शिवजी ने उन दोनों के शिर पर वस्त्र रख और अपना करकमल धारण करके पार्वती सहित उत्तर की ओर को मुख कल्पना करके उन दोनों को मन्त्र दिया ।।२५।। यन्त्र, तन्त्र और युक्तिपूर्वक तीन बार उस मन्त्र को उच्चारण कराकर मन्त्र प्रदान किया, तब उन दोनों ने दक्षिणा में उनको अपनी आत्मा निवेदन कर दी ।।२६।। और हाथ जोड़कर उन दोनों ने देवदेव जगत् के गुरु से यह वचन कहे ।।२७।। ब्रह्माजी और अच्युत बोले- निष्कलरूप और निष्कल तेजस्वी सबके स्वामी सम्पूर्ण के आत्मा के निमित्त नमस्कार है ।।२८।। ॐ कार वाच्य तथा ॐ कार है लिंग जिनका उनके निमित्त नमस्कार है तथा सृष्टि के कर्ता पंचमुखवाले आपको नमस्कार है ।।२९।। पंचब्रह्मस्वरूप पंचकृत्य आत्मास्वरूप ब्रह्म अनन्तगुण शक्तिमान् के निमित्त नमस्कार है ।।३०।। सकल-अकलरूप शंभु गुरु के निमित्त नमस्कार है। इस प्रकार स्तुति करके ब्रह्माजी और विष्णुजी ने शिवजी को नमस्कार

किया ।।३१।। ईश्वर बोले– हे पुत्र! आपको सब तत्त्व कहा और दिखाया भी, इस दिव्य पवित्र मन्त्र का जप करना, यह साक्षात् मेरा ही स्वरूप है ।।३२।। इससे ज्ञान सुस्थिर होता है तथा सर्वत्र श्रेष्ठ भाग्य होता है। आर्द्रायुक्त चौदश में जप करने से अक्षय पुण्य होता है ।।३३।। आर्द्रा सूर्य हो तो एक मन्त्र जपने से कोटि गुणा फल होता है। मृगशीर्ष का अन्तिम और पुनर्वसु का आदि का भाग ।।३४।। यह पूजा, होम, तर्पण करने में आदि ही के समान सदा फलदायक है, प्रात:काल में दर्शन और प्रभात की सन्धि में दर्शन का महाफल है ।।३५।। और अर्द्धरात्रि व्यापिनी चतुर्दशी लेनी चाहिये, कोई प्रदोष व्यापिनी भी कहते हैं, यह भी श्रेष्ठ है, कोई परतिथि से युक्त लेते हैं ।।३६।। मेरे तुल्य सुन्दर लिंगबेर का यजन करना चाहिये। इस कारण मुक्ति की इच्छा करनेवाले को बेर से भी परलिंग का पूजन करना चाहिये ।।३७।। लिंग को ॐ कार मन्त्र से, बेर को पंचाक्षर मन्त्र से पूजे, स्वयंलिंग को श्रेष्ठ द्रव्य से पूजे और दूसरे लिंग की प्रतिष्ठा करके ।।३८।। उपचारादि द्वारा पूजन करे तो मेरा पद सुलभ हो जाता है। इस प्रकार शिष्यों को उपदेश देकर शिवजी वहां ही अंतर्धान हो गये ।।३९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहिता पण्डित ज्वालाप्रसादजी मिश्र कृत भाषायां
साध्य साधनखण्डे पञ्चकृत्यादि वर्णनं नाम दशमोऽध्याय: ।।१०।।

*****

ग्यारहवाँ अध्याय

ऋषि बोले– लिंग की प्रतिष्ठा किस प्रकार करनी चाहिये, उसका क्या लक्षण है, किस देशकाल में किस प्रकार उसकी अर्चना करनी चाहिये?।।१।। सूतजी बोले– मैं आपके निमित्त कहता हूँ, सावधान होकर सुनिये। सुन्दर समय, पुण्यतीर्थ अथवा तट में ।।२।। जहां नित्य पूजा संभव हो ऐसे स्थान में नित्य अर्चन करे, पृथ्वी सम्बन्धी द्रव्य, जलमय अथवा किसी भी धातु से, जैसी इच्छा हो लिंग निर्माण करे ।।३।। शैवशास्त्रों में जो उसका विधान लिखा है, उसके अनुसार करके लिंगपूजा का फल ग्रहण करे, कारण कि सब लक्षण सामान्य होने से पूजा फल देनेवाली होती है ।।४।। चरमूर्ति हो तो छोटी बनावे। स्थावर अचर हो तो स्थूल निर्माण करे, लक्षण और सिंहासन सहित शिवजी की स्थापना करें।।५।। चर का मण्डल अथवा त्रिकोण बनाकर खट्वांग (दण्ड में आरोपित शिरकपालात्मक ध्वज) के समान मध्य में सूक्ष्मलिंग की चौकी (जिस पर स्थापना होती है) महाफल देनेवाली है ।।६।। प्रथम मिट्टी, शिला और लोहादि धातुओं से लिंग बनावे. जिस वस्तु का लिंग हो उसी का पीठ बनावे, केवल

स्थावर लिंग में विशेषता है ।।७।। केवल बाणलिंग को छोड़कर लिंगपीठ एक ही में निर्माण करे, लिंग बारह अंगुल प्रमाण का करे ।।८।। न्यून होने से फल भी थोड़ा होगा, अधिक होने में कोई दोष नहीं होता अथवा ग्यारह अंगुल भी द्वादश के समान ही है ।।९।। प्रथम शिल्पविद्या से देवताओं के गणों सहित विमान करावे, उसके भीतर के सुन्दर स्थानों में जो दृढ़ और दर्पण के समान प्रकाशित हो ।।१०।। उन्हें नवरत्नों से भूषित करे, पूर्व और पश्चिम की ओर उसका मुख्य गृहद्वार बनावे। नीलरत्न, वैदूर्य्यमणि, श्याम, मरकतमणि, मोती, मूँगा, प्रवाल, गोमेद, हीरा यह नौ रत्न हैं। लिंग के स्थापन के मध्यदेश में यह नवरत्न वस्तु स्थापन कर दे।।११-१२।। फिर सद्योजातादि मन्त्रों से लिंग का पूजन कर और पूर्वादि दिशाओं के मध्य में अर्चन कर अग्नि में अनेक प्रकार की आहुतियां देकर और परिवार सहित मेरा पूजन कर गुरु और आचार्य का भी पूजन कर, अर्थ और काम से बन्धुजनों का सत्कार करके, अर्थियों के निमित्त घर, बगीचा और गोदानादि देना चाहिये ।।१३-१४।। फिर यत्नपूर्वक स्थावर-जंगमादि सब जीवों को सन्तुष्ट करके सुवर्ण और नवरत्नों से पूरित उस गर्त में सद्योजातादि पाँच मन्त्रों का उच्चारण कर और परमसुभग देव का ध्यान कर ॐ कार के नाद से शोधित कर महामन्त्रों का उच्चारण कर ।।१५-१६।। उसमें लिंग स्थापन कर, फिर लिंग और पीठ को जोड़कर उस लिंग और पीठ को दृढ़ जोड़नेवाले द्रव्य से जोड़ दे ।।१७।। इसी विधि से बेरलिंग की भी वहां स्थापना करे। पंचाक्षरमन्त्र से बेर को उत्सवादि के निमित्त बाहर रखे ।।१८।। बेरलिंग को महात्मा अथवा साधु से ग्रहण करना चाहिये अथवा गुरु से ग्रहण करे। इस प्रकार लिंग और बेर में महादेवजी की पूजा शिवजी के पद की देनेवाली है ।।१९।। फिर भी स्थावर-जंगम के भेद से यह दो प्रकार के हैं, तरु गुल्मादि के लिंग को स्थावर कहते हैं ।।२०।। कृमि कीटादि जंगम लिंग है। स्थावर की शुश्रूषा अर्थात् जलादि सेचन और उनका तर्पण अर्थात् जल अन्नादि से सन्तुष्ट करना है ।।२१।। उस-उस सुख के अनुराग से शिवजी की पूजा पण्डितों ने कही है। पीठ प्रकृतिमय है और शिवलिंग ज्ञानस्वरूप है ।।२२।। जिस प्रकार शिवजी पार्वतीदेवी को अंक में लेकर स्थित रहते हैं, उसी प्रकार से लिंग इस पीठ को धारण करके स्थित रहता है ।।२३।। इस प्रकार लिंग को स्थापन करके उपचार से पूजा करे। यथाशक्ति नित्य पूजा और ध्वजादि का उत्सव करे ।।२४।। इस प्रकार शिवपद को देनेवाले लिंग की नित्य पूजा करे अथवा चरलिंग की षोडशोपचारों से पूजा करे ।।२५।। यथायोग्य पूजन करे तो शिवजी के पद की प्राप्ति हो जाती है। आवाहन, आसन, अर्घ्य, पाद्य ।।२६।। अंग, आचमन, तैलाभ्यंगपूर्वक आचमन, वस्त्र, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप से निवेदन करे ।।२७।। नीराजन, ताम्बूल, नमस्कार, विसर्जन अथवा नैवेद्य के अन्त तक यथावत् अर्घ्यादि करके ।।२८।। अभिषेक, नैवेद्य, नमस्कार, तर्पण यथाशक्ति सदा करे, तो क्रम

से शिवपद की प्राप्ति होती है ।।२९।। अथवा मनुष्य द्वारा स्थापित किये अथवा ऋषियों द्वारा स्थापित किये हुए अथवा स्वयं प्रादुर्भूत हुए अथवा नये स्थापन किये हुए लिंग में यथा तथा उपचार और पूजा सामग्री निवेदन करने से जो कुछ फल की प्राप्ति होती है, वह यहां प्रदक्षिणा नमस्कार से ही क्रम से शिवपद की प्राप्ति होती है ।।३०-३१।। नियम से शिवदर्शन करने से भी शिवलोक की प्राप्ति होती है। पिसी मिट्टी में गोबर मिलाकर लिंग को यत्नपूर्वक निर्मित करके उसे कनेर के फूल अथवा अनेक प्रकार के फल, गुड़, नवनीत, भस्म, अन्न अथवा जैसी रुचि हो, उसी प्रकार उसी के अनुसार यजन करे ।।३२-३३।। इसी प्रकार कोई अंगुष्ठ में ही शिवजी की पूजा करते हैं। लिंगपूजा चाहे जहां करे, इसका निषेध नहीं है ।।३४।। श्रम के अनुसार शिवजी सर्वत्र ही फल देते हैं और लिंगदान अथवा लिंग का मूल्य ।।३५।। श्रद्धापूर्वक शिवजी के भक्त को देने से भी महाफल की प्राप्ति होती है, शिवजी का पद ही मिल जाता है अथवा नित्यप्रति दशसहस्र ॐ कार का जप करे ।।३६।। अथवा दोनों सन्ध्याओं में सहस्र-सहस्र बार जप करने से भी शिवपद की प्राप्ति होती है। जपकाल में मकारान्त ही (ओम) मनशुद्धि करनेवाला होता है ।।३७।। समाधि में मानसिक जप कहा है, उपांशु अर्थात् दूसरे को न सुन पड़े ऐसा जप सर्वकाल में कहा है और बिन्दुनाद युक्त प्रणव सर्वकाल में एक ही है ।।३८।। अथवा प्रेम से नित्य दश सहस्र पंचाक्षर जपे अथवा दोनों सन्ध्याओं में सहस्र-सहस्र बार जपने से शिवपद की प्राप्ति होती है ।।३९।। ब्राह्मणों को पंचाक्षर के जप में ॐ लगाना उचित है और फल की प्राप्ति के निमित्त गुरु से दीक्षापूर्वक मन्त्र ग्रहण करना चाहिये ।।४०।। घटस्नान, मन्त्रदीक्षा, मातृकान्यास करना और सत्य बोलने से पवित्र आत्मा ज्ञानी गुरु होना चाहिये ।।४१।। ब्राह्मणों को नमः पहले और दूसरे वर्णों को नमः अन्त में विधिपूर्वक लगाना चाहिये। स्त्रियों को अन्त में नमः लगाना चाहिये ।।४२।। कोई कहते हैं, ब्राह्मणों की स्त्रियों को भी मन्त्र में नमः पहले ही उच्चारण करना चाहिये (ॐ नमः शिवाय), यह पंचाक्षर का पाँच करोड़ जप करके सदाशिव के समान हो जाता है ।।४३।। एक, दो, तीन, चार करोड़ जप करके ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, महेश के पद को प्राप्त होता है अथवा मन्त्राक्षरों में से एक-एक अक्षर का एक-एक लाख जप करे ।।४४।। अथवा मन्त्र के जितने अक्षर हों उतने ही लक्ष जप करने से शिवपद की प्राप्ति होती है अथवा सहस्र दिन में दशलक्ष जप करे ।।४५।। नित्य ब्राह्मणभोजन करावे, मन्त्र जपे, इष्ट की सिद्धि होगी और १००८ (एक सहस्र और आठ) गायत्री प्रातःकाल ही नित्य जपे ।।४६।। इस प्रकार जप करने से ब्राह्मण क्रम से शिवपद को प्राप्त हो जाता है। वेद के मन्त्र और सूक्त नियम से जपे ।।४७।। एक दशार्ण अर्थात् दश अक्षर मन्त्र सौ से अधिक सहस्रादि जपे, सौ से कमती न करे, दशसहस्र अथवा सहस्र एक सौ के बिना करे ।।४८।। वेद पारायण से भी शिवपद की

प्राप्ति होती है और भी बहुत मन्त्र है, उनके जितने अक्षर हो उतने ही लाख जपे ।।४९।। एकाक्षर मन्त्र को एक करोड़ जपे, उसके उपरान्त भक्तिपूर्वक सहस्र ॐ कार का जप करे ।।५०।। इस प्रकार यथाशक्ति करने से क्रम से शिवजी के पद को प्राप्त हो जाता है। नित्यप्रति जीवनपर्यन्त 'ॐ' ऐसा एक मन्त्र का जप सहस्रबार करता रहे तो शिवजी की आज्ञा से सम्पूर्ण अभीष्ट की प्राप्ति हो जाती है। पुष्पबाग तथा सम्मार्जन शिवजी के निमित्त करने से कल्याण और शिवपद की प्राप्ति होती है। नित्य भक्तिपूर्वक शिवक्षेत्र में निवास करे ।।५१-५२-५३।। यह जड़-अजड़ सबको ही मुक्ति देते हैं, इस कारण बुद्धिमान् को उचित है कि, शिवक्षेत्र में मरणपर्यन्त वास करे ।।५४।। जहां मनुष्यों ने लिंग स्थापित किया है, वहां सौ हाथ तक पुण्यजनक स्थान होता है और पुण्यक्षेत्र में जहां ऋषियों ने लिंग स्थापित किया है, वहां सहस्र अरत्नि (हाथ भर) तक स्थान पवित्र होता है।।५५।। देवताओं के स्थापित लिंग के चारों ओर सहस्र अरत्नि स्थान पवित्र होता है और स्वयम्भूलिंग अर्थात् जहां लिंग स्वयं प्रादुर्भूत हुआ है, वहां सहस्र धनुष तक स्थान पवित्र हो जाता है (चार हाथ का एक धनुष होता है)।।५६।। पुण्यक्षेत्र के कुएं, बावड़ी, पुष्कर (सरोवर) यह सब शिवगंगा स्वरूप हैं, यह शिवजी का वचन है।।५७।। वहां स्नान, दान और जप करने से शिवलोक की प्राप्ति होती है, शिवक्षेत्र को प्राप्त होकर मरणपर्यन्त वहां निवास करना उचित है।।५८।। दाह, दशाह मासिक-कर्म, सपिण्डीकरण, श्राद्ध, सांवत्सरिक कर्म, क्षेत्रपिण्ड जो कुछ शिवक्षेत्र में किया जाता है।।५९।। उसके सब पाप दूर होकर शीघ्र ही वह शिवपद को प्राप्त होता है। अथवा जो कोई सात रात वा पाँच रात तक निवास करे।।६०।। तीन रात वा एक रात निवास करे तो भी क्रम से शिवपद की प्राप्ति होती है। ब्राह्मणादि अपने-अपने वर्ण के अनुरूप उसके फल की अधिकता सुन्दर आचरण से प्राप्त करते हैं।।६१।। और भक्तिपूर्वक करने से मनुष्य को महाफल प्राप्त हो जाता है, जिससे उसका वर्णोद्धार होता है। जो कुछ कामना करे शीघ्र ही उसका फल प्राप्त होता है।।६२।। सर्व प्रकार से कामना रहित होकर पूजन करने से साक्षात् शिवफल की प्राप्ति होती है। प्रातःकाल, मध्याह्न और सन्ध्या समय प्रतिदिन को शिवाराधन प्रत्येक समय में करे।।६३।। प्रातःकाल का जप नित्यविधि सम्पादन करना है, मध्याह्न का कामना का और सन्ध्या का शान्तिदायक और रात्रि का भी इसी प्रकार का है।।६४।। दो पहर रात बीतने पर आधी रात होती है, उस समय शिवजी का पूजन विशेष फल देनेवाला है, सब सिद्धि होती है।।६५।। इस प्रकार जानकर पूजन करने से मनुष्य यथोक्त फलभागी होता है, विशेषकर कलियुग में फलसिद्धि कर्म से होती है।।६६।। वर्णन किये हुए किसी अधिकार के भेद से श्रेष्ठ आचरणी अन्य पापों से डरे तो उपरोक्त सम्पूर्ण फल प्राप्त करता है।।६७।। ऋषि बोले- हे सूतजी! संक्षेप से आप हमसे उन पवित्र क्षेत्रों का

वर्णन कीजिये। जिनका आश्रय करके सर्व स्त्री-पुरुष शिवपद को प्राप्त होते हैं ।।६८।। हे सूतजी! आप श्रेष्ठ योगी हो और शिवजी के क्षेत्रों को जाननेवाले हो। सूतजी बोले- आप श्रद्धा से उन सब क्षेत्रों और उनके माहात्म्य प्रतिपादक वेदविभाग को श्रवण कीजिये ।।६९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहिताभाषायामेकादशोऽध्यायः ।।११।।

*****

बारहवाँ अध्याय

सूतजी बोले- हे ऋषियो! मुक्ति देनेवाले शिवजी के क्षेत्रों को श्रवण कीजिये। हे महापण्डितो! लोकरक्षा के निमित्त उनके माहात्म्य को भी कहते हैं ।।१।। यह पृथ्वी पचास करोड़ योजन शैल, वन, कानन सहित शिवजी की आज्ञा से लोकों को धारण करती है ।।२।। वहां-वहां के शिवक्षेत्र और वहां के निवासियों के मोक्ष के निमित्त कृपा करके प्रभु ने क्षेत्रों की कल्पना की है ।।३।। ऋषि और देवताओं के परिग्रह से लोकरक्षा के निमित्त जो स्वयंभूत क्षेत्र उत्पन्न हुए हैं ।।४।। उन तीर्थों और क्षेत्रों में स्नान जपादिक सदा करना चाहिये, न करने से मनुष्य रोगी, दरिद्री होता है और उसे जड़ता की प्राप्ति होती है ।।५।। जो मनुष्य इस भारतवर्ष में मृत्यु को प्राप्त होता है, वह स्वयम्भू के स्थान में निवास करके फिर मनुष्यलोक में आता है ।।६।। हे ब्राह्मणो! क्षेत्र में जो पाप किये जाते हैं वह पाप दृढ़ हो जाते है, इस कारण पवित्र क्षेत्र में निवास करके अणुमात्र भी पाप न करे ।।७।। जिस किसी उपाय से मनुष्य पुण्यक्षेत्र में निवास करें। सिन्धु और गंगा के किनारे जो अनेक तीर्थ हैं ।।८।। और पवित्र सरस्वती नदी साठ मुखवाली कहलाती है, उसके निकट वास करने से मनुष्य को शिवपद की प्राप्ति होती है ।।९।। हिमालय से निकली हुई पवित्र गंगा सौ मुखोंवाली है, उसके किनारे पर भी काशी आदि अनेक क्षेत्र हैं ।।१०।। मकर के सूर्य और मकर के बृहस्पति होने पर दश मुखवाली शोणभद्र भी महापवित्र और अभीष्ट की देनेवाली है ।।११।। वहां स्नान और उपवास करने से विनायक के पद की प्राप्ति होती है और नर्मदा नदी महापवित्र और चौबीस मुखवाली है ।।१२।। उसमें स्नान करने और उपवास करने से वैष्णवपद की प्राप्ति हो जाती है। तमसा द्वादश मुखी और रेवा दश मुखी नदीयाँ है ।।१३।। महापवित्र गोदावरी नदी ब्रह्महत्या और गोहत्या का पातक दूर करनेवाली है, यह इक्कीस मुखवाली और रुद्रलोक की देनेवाली है ।।१४।। कृष्णा वेणी पवित्र नदी सर्व पापों को दूर करनेवाली है, वह अठारह मुखी है और विष्णुलोक की देनेवाली है ।।१५।। दश मुखी तुंगभद्रा

ब्रह्मलोक की देनेवाली है, नव मुखी सुवर्णमुखरी महापवित्र कही है ।।१६।। ब्रह्मलोक से च्युत होकर प्राणी इसी स्थान में जन्म लेते हैं। सरस्वती कन्या पंपा श्वेतनदी इनके तीर पर निवास करने से इन्द्रलोक की प्राप्ति होती है। सह्यपर्वत से उत्पन्न हुई महानदी कावेरी महापवित्र है ।।१७-१८।। यह सप्तविंश मुखी महानदी सम्पूर्ण अभीष्ट देनेवाली है, उसके किनारे महापवित्र स्वर्गदाता ब्रह्मा तथा विष्णुजी के पद को देनेवाले हैं ।।१९।। शैवस्थान शिवलोक और सम्पूर्ण इष्ट की प्राप्ति करनेवाले हैं। नैमिषारण्य में बद्रिकाश्रम में मेष के बृहस्पति और मेष के सूर्य होने में स्नान करना उचित है ।।२०।। सिन्धुनदी में सिंह और वृश्चिक के सूर्य होने में स्नान करने से और वहां तप पूजन करने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है ।।२१।। केदार का जलपान और स्नान ज्ञान का देनेवाला है, गोदावरी में सिंह के सूर्य और सिंह के बृहस्पति होने में स्नान करने से ।।२२।। शिवलोक की प्राप्ति होती है, यह स्वयं शिवजी ने कहा है। कन्या के गुरु और सूर्य होने में यमुना और शोणभद्र में स्नान करे तो ।।२३।। धर्मलोक तथा गणेशलोक में महाभोग की प्राप्ति होती है। जो तुला के गुरु सूर्य होने में जो कावेरी में स्नान करता है ।।२४।। वह विष्णुजी के वचन के माहात्म्य से सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त होता है। वृश्चिक के गुरु और सूर्य होने में ।।२५।। नर्मदा नदी में स्नान करने से विष्णुलोक की प्राप्ति होती है। धनु के गुरु और सूर्य हो तो सुवर्णमुखरी में स्नान करने से ।।२६।। शिवलोक की प्राप्ति होती है, ऐसा ब्रह्माजी का वचन है। मकर के सूर्य और गुरु होने पर माघ में गंगाजी में स्नान करे तो ।।२७।। शिवलोक की प्राप्ति होती है, ऐसा ब्रह्माजी का वचन है। फिर वह ब्रह्मा तथा विष्णुजी के पद का उपभोग करके उसके उपरान्त ज्ञान को प्राप्त होता है ।।२८।। माघ के महीने में गंगा में स्नान करने से, कुम्भ के सूर्य में श्राद्ध, पिण्डदान अथवा तिलोदक देने से ।।२९।। अपने दोनों वंश और पितरों के असंख्य कुलों का उद्धार करता है। मीन के गुरु और सूर्य होने में ।।३०।। उन-उन तीर्थों में उन-उन महीनों में स्नान करने से इन्द्रपद की प्राप्ति होती है। गंगा वा कावेरी के निकट बुद्धिमान् निवास करे ।।३१।। तो तत्काल का किया हुआ पाप अवश्य नष्ट हो जाता है, रुद्रलोक देनेवाले भी अनेक क्षेत्र हैं ।।३२।। ताम्रपर्णी और वेगवती ब्रह्मलोक का फल देनेवाली है। इनके किनारे स्वर्गदायक बहुत से क्षेत्र हैं ।।३३।। और इनके बीच में पुण्यदायक अनेक क्षेत्र हैं, वहां-वहां निवास करके बुद्धिमान् उनके अनुसार फल पाता है ।।३४।। सदाचार, सद्व्रत और श्रेष्ठभावना से बद्धिमान् दया युक्त रहे, अन्यथा फल की प्राप्ति नहीं होती ।।३५।। पुण्यक्षेत्र में किये पुण्य अनेक प्रकार की ऋद्धि प्रदान करते हैं, इसी प्रकार पुण्यक्षेत्र में किया अणुमात्र भी पाप बड़ा हो जाता है ।।३६।। उसके प्रायश्चित्त के निमित्त उतने ही काल तक पुण्य करे तो पापक्षय हो जाता है, कारण कि पुण्य ही ऐश्वर्य का देनेवाला है तथा कायिक, वाचिक ।।३७।। और मानसिक ये उसके पाप नष्ट हो जाते हैं। मानसिक

पाप वज्रलेप के समान हैं, अन्य कल्पकल्पान्त के किये पाप ।।३८।। वह केवल ध्यान मात्र से ही नष्ट होते हैं, दूसरे प्रकार से नहीं। वाचिक पाप जपसमूह करने और कायिक पाप कायाशोषण से नष्ट हो जाते हैं ।।३९।। धन का पाप दान करने से नष्ट होता है अन्यथा सौ करोड़ वर्ष में भी नष्ट नहीं होता है। कहीं बढ़े हुए पापों से पुण्य नष्ट हो जाता है ।।४०।। बीजअंश, वृद्धिअंश और भोगअंश यह पापपुण्य से होते है, बीजांश से ज्ञान की नष्टता और पूर्वोक्त प्रकार से वृद्धि होती है ।।४१।। भोगने से ही नाश होता है और कोटिविधि पुण्य करने से भी नष्ट नहीं होता। बीजांकुर नष्ट हो जाने से शेष भोग करने से मिट जाता है ।।४२।। देवताओं की पूजा और ब्राह्मणों को दान देने से और अधिक तप करने से समय पाकर मनुष्य भोग में सह्य हो जाता है। कही (भोगनाशो) ऐसा पाठ है कि, भोग नष्ट हो जाते हैं। इस कारण सुख की इच्छा करनेवालों को क्षेत्र में पाप रहित होकर निवास करना चाहिये ।।४३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहिता भाषायां द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

*****

तेरहवाँ अध्याय

ऋषि बोले- हे सूतजी! अब आप हमें सदाचार श्रवण कराइये। जिससे यह प्राणी लोकों को जय करता है। वह धर्म और अधर्म कौन से आचरणों से होता है? कौन से स्वर्ग और कौन से नरक देनेवाले है?।।१।। सूतजी बोले- सदाचार युक्त विद्वान् ब्राह्मण वेदाचार युक्त होने से आगे कहे हुए एक-एक गुणों से द्विज कहलाता है ।।२।। थोड़ा वेद पढ़ा हुआ अल्पाचारवाला राजसेवक ब्राह्मण क्षत्रियब्राह्मण है और खेती वाणिज्य करनेवाला कुछ आचारवाला वैश्यब्राह्मण कहलाता है ।।३।। और जो स्वयं हल जोते वह शूद्रब्राह्मण है। निन्दा करनेवाला, पराया द्रोह करनेवाला चण्डालब्राह्मण है ।।४।। अब राजा तथा क्षत्रियों का विवेक कहते हैं। पृथ्वी का पालन करनेवाला राजा और दूसरे क्षत्रिय कहलाते हैं। धान्यादि बेचनेवाले वैश्य और मणिमुक्तादि बेचनेवाले वणिक कहलाते हैं ।।५।। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों की सेवा करनेवाला शूद्र है, खेती करनेवाला वृषल और दूसरे शुद्र दस्यु कहलाते हैं ।।६।। सब वर्णों को उचित है कि, ऊषःकाल में उठकर पूर्व की ओर मुख करके देवताओं को ध्यान करके धर्म, अर्थ, उनके क्लेश, प्राप्ति और व्यय को विचारे ।।७।। क्रम से पूर्वादि दिशाओं की ओर मुख करके उठने का फल कहते हैं। आयु, द्वेष, मरण, पाप, शुभाशुभकर्म, व्याधि, पुष्टि, शक्ति यह पूर्वादि आठ दिशाओं की ओर मुख करके उठने से होती है ।।८।। निशा का अंत

ऊषःकाल है, उसमें आधे पहर की सन्धि कहलाती है, उसी समय उठकर ब्राह्मण शौचादि कर्म करे।।९।। घर से दूर जाकर और सिर पर कपड़ा लपेटकर उत्तर की ओर मुख कर बैठे और अन्य दिशाओं को न देखे।।१०।। जल, अग्नि, ब्राह्मण और देवताओं के सम्मुख को न बैठे। बायें हाथ से लिंग और दाहिने हाथ से मुख ढ़ककर मल त्याग करे और मल त्याग करने के उपरान्त फिर उस मल को न देखे। फिर जल से पृथक् स्थान में पात्र के जल से शौच करे।।११-१२।। अथवा देवता, पितर, ऋषियों के तीर्थों के सिवाय अन्य जलस्थान अल्प सरोवर (डहर) के जल से सात बार, पाँच बार वा तीन बार पहले मिट्टी से गुदा को पवित्र करे।।१३।। लिंग की शुद्धता में कर्कोटक के फल मात्र मिट्टी और गुदा के निमित्त आधी अंजली मृत्तिका ले। उसके उपरान्त उठकर हाथ पैर धोवे और आठ कुल्ले करे।।१४।। किसी वृक्ष के पत्र से अथवा काष्ठ से जल के बाहर बैठकर तर्जनी अंगुली को त्यागकर दन्तधावन करना चाहिये।।१५।। फिर जलदेवताओं को नमस्कार करके मन्त्रपूर्वक स्नान करे। जो कण्ठपर्यन्त अथवा कमरपर्यन्त जल में स्नान करने की शक्ति न हो तो जानुपर्यन्त जल में स्थित होकर समन्त्र स्नान करे और विद्वान् को उचित है कि, उस तीर्थ के जल से देवादिकों का तर्पण करे।।१६-१७।। फिर धोती लेकर पंचकच्छ (अर्थात् आगे दो, बायें दक्षिण में दो और एक पीठ में धारण करे) उत्तरीय दुपट्टा वस्त्र ही सब कर्मों में धारण करना चाहिये।।१८।। नदी आदि तीर्थ में स्नान करके वस्त्रशुद्धि न करे और वापी, कूप, तड़ागादि में स्नान करके वस्त्रशुद्धि करे।।१९।। शिला, काठ, जल वा स्थल में धोती अँगोछे को पवित्र करके वस्त्र निचोड़कर पितरों की तृप्ति करे।।२०।। जाबालकोपनिषद् में कहा है- 'अग्निरीति भस्म०' इस मन्त्र से भस्म का त्रिपुण्ड्र लगावे, इस विधि को बिना किये जो वृथा ही भस्म को जल में डालता है, वह नरक में जाता है।।२१।। 'आपोहिष्ठेति०' इस मन्त्र से पापशान्ति के निमित्त सिर पर जल छिड़के, इसी मन्त्र के एक-एक चरण से चरणादि नौ स्थानों में क्रम से प्रोक्षण करके मन्त्रस्नान करे, 'यस्येति०' यही उसका मन्त्र है, यही सन्धिप्रोक्षण कहा है।।२२।। पाँव शिर हृदय, शिर हृदय चरण, हृदय चरण शिर इस क्रम से प्रोक्षण करके मन्त्रस्नान करे।।२३।। शरीर के रोगग्रस्त होने में तथा राजा राष्ट्र के भय तथा मार्ग के गमन में तथा अपवित्र वस्तु के स्पर्श में मन्त्रस्नान ही करे।।२४।। 'सूर्य्याश्चमामन्युश्चेति०' प्रातःकाल में इस सूर्य के अनुवाक से और सन्ध्या को 'अग्निश्चमामन्युश्चेति०' इस अग्नि के अनुवाक से मध्य में जलपान करके फिर पूर्ववत् मार्जन करे।।२५।। गायत्रीमन्त्र के जप करने उपरान्त, फिर तीन बार ऊपर को जल फेंके। मध्याह्न सन्ध्या की विधि कहते हैं। मन्त्र सहित मध्य में सूर्य को अर्घ्य दे।।२६।। इस प्रकार कर चुकने पर जब सन्ध्या हो तब पश्चिम की ओर मुख करके बैठे, प्रातः और मध्याह्न के जल को देवतीर्थ से अंगुलियों से जल देना उचित है।।२७।।

तत्पश्चात् अंगुलियों के छिद्र से दिवाकर को अस्त होता देखे और अपनी प्रदक्षिणा कर शुद्ध आचमन करे।।२८।। जो सन्ध्या के मुहूर्त्त से पहले सन्ध्या करे तो उसकी सन्ध्या वृथा हो जाती है। इस कारण सन्ध्या असमय में न करके समय में करे और दिन व्यतीत होने पर यदि सन्ध्या न करे, तो उसका यह प्रायश्चित्त है कि।।२९।। नित्य जप से सौ गायत्री अधिक जपे और जो दश दिन बीत जाँए तो लाख गायत्री जपे।।३०।। महीना बीत जाय तो फिर उपनयन करे। ईश, गौरी, स्कन्द, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, यम।।३१।। इन सर्व देवताओं को एकरूप जानकर अर्थसिद्धि के निमित्त तृप्त करे, फिर ब्रह्मार्पण करके शुद्ध आचमन करे।।३२।। तीर्थ के दक्षिण स्थान अथवा मठ में, मन्त्रालय में, देवालय में, अपने घर में, नियत स्थल में।।३३।। सर्व देवताओं को नमस्कार करके स्थिर बुद्धि और स्थिर आसन से प्रथम ॐ कार और फिर गायत्री का अभ्यास करे।।३४।। जीव और ब्रह्म की एकता देखकर ॐ कार का जप करे, त्रिलोकी के सृष्टिकर्ता ब्रह्मा और स्थितिकर्ता नारायण।।३५।। और संहारकर्ता भगवान् रुद्र की हम उपासना करते हैं। ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, मन की वृत्ति और बुद्धि को।।३६।। वह परमात्मा भोग और मोक्ष देनेवाले धर्म में सदा लगावे। इस प्रकार अर्थ विधि से ध्यान करता हुआ निश्चय ब्रह्म को प्राप्त होता है।।३७।। अर्थज्ञान के बिना भी ब्राह्मणत्त्व पूर्ति के निमित्त भी नित्य उठकर श्रेष्ठ ब्राह्मण इसका सहस्र बार जप करे।।३८।। अन्य दूसरे क्षत्रिय, वैश्य मध्याह्न में सौ बार जप करें और सन्ध्या में एक सहस्र और आठ अथवा बीस बार जप करें।।३९।। मूलाधारचक्र से प्रारम्भ करके ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त स्थित चक्रों में विद्येश, ब्रह्मा, विष्णु, ईश जीवात्मा परमेश्वरों को।।४०।। ब्रह्मबुद्धि से एक ही जानकर सोऽहं भावना से जप करे। उन्हीं विद्येशादि को ब्रह्मरन्ध्रादि में काया से बाहर ध्यान करे।।४१।। महतत्त्व (प्रकृति) से आरम्भ करके प्रारब्ध भोगवश से हुए सहस्रों शरीरों के समूह की प्राप्ति को एक जप से एक–एक शरीर को अतिक्रमण करके शनैः–शनैः।।४२।। जीव को परब्रह्म में लगावे, यह जपतत्त्व है, यह जप दो सहस्र संख्या तक और उससे आठ अधिक करना चाहिये।।४३।। मन्त्रों के जप में प्रथम क्रम यही है, सहस्र जप से ब्रह्मपद और सौ जप से इन्द्रपद की प्राप्ति होती है।।४४।। और इससे न्यूनादि करने से ब्राह्मणकुल में जन्म होता है, सूर्य के सम्मुख स्थित होकर नित्यप्रति ऐसा ही करे।।४५।। बारह लाख जप करने से पूर्ण ब्राह्मण होता है। जिसने लाख गायत्री न पढ़ी हो उसे वेदकार्य में न लगावे।।४६।। सत्तर वर्ष तक नियम से रहे, पश्चात् संन्यासी हो जाए। संन्यासी को उचित है कि, प्रातःकाल बारह सहस्र ॐ कार का जप करे।।४७।। इस प्रकार नियम से प्रतिदिन जपता रहे, जब क्रम से महीना बीत जाए, तब उसका डेढ़ लाख जप हो जाता है।।४८।। इससे दोषशान्ति हो जाती है। जप इससे अधिक हो जाए तब संन्यासमन्त्र को ग्रहण करे, इस प्रकार करने से दोष की शान्ति होती है। अन्यथा

रौरव में जाता है ।।४९।। और संन्यासी से इतर वर्ण, धर्म, अर्थ आदि में यत्न करे और यदि ब्राह्मण को मुक्ति ही की इच्छा हो, तो सदा ब्रह्मज्ञान का अभ्यास करे ।।५०।। जहां धर्म से अर्थ उपार्जन किया जाता है, वह कामना के निमित्त नहीं होता किन्तु वैराग्य ही उत्पन्न करता है, उस धर्म से अर्थ, अर्थ से भोग और भोग से वैराग्य का सम्भव अर्थात् धर्म से उत्पन्न हुए भोग से वैराग्य होता है ।।५१।। और विपरीत अर्थ के भोग से रोग ही हो जाता है। धर्म दो प्रकार का है, एक देह से, दूसरा धन से ।।५२।। द्रव्य से यज्ञादि रूप धर्म होता है और शरीर से तीर्थस्नानादि रूप धर्म होता है, धन से धन और तप से दिव्य रूपता प्राप्त होती है ।।५३।। निष्काम कर्म से शुद्धि, शुद्धि से ज्ञान प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं। सतयुग आदि में तप ही साध्य था, कलियुग में द्रव्यधर्म है ।।५४।। सतयुग में ध्यान से ही ज्ञान की सिद्धि होती थी, त्रेता में तप से, द्वापर में यज्ञ से ज्ञान होता था और कलियुग में प्रतिमा पूजन से ही ज्ञान होता है ।।५५।। जैसा कोई पुण्य–पाप करता है, उसे वैसा ही फल मिलता है। द्रव्य और देह के भेद से पुण्य–पाप की न्यूनता, वृद्धि और क्षयादिता होती है ।।५६।। विधि बिना जो कुत्सित हिंसा की जाती है, वही महा अधर्म है और विधि युक्त कार्य सुख रूप धर्म है। अधर्म से दुःख और धर्म से सुख मिलता है ।।५७।। दुर्वृत्ति से दुःख और सुवृत्ति से सुख प्राप्त होता है, इस कारण भोग और मोक्ष की सिद्धि के निमित्त धर्म से ही अर्चन करना चाहिये ।।५८।। कुल–परिवार युक्त ब्राह्मण सौ वर्ष तक श्रेष्ठ आचार युक्त रहे इतनी वृत्ति (जीविका) उसे देवे, तो उसे ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है ।।५९।। सहस्र चान्द्रायण व्रत करने से भी ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। जो क्षत्रिय सहस्र कुटुम्बों की आजीविका करता है।।६०।। उसे इन्द्रलोक और दशसहस्र की आजीविका करे, तो ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। मनुष्य जिस–जिस देवता के उद्देश्य से दान करता है ।।६१।। उसी–उसी देवता के लोक को वह जाता है, ऐसा वेद के जाननेवाले कहते हैं। जो धनहीन हैं, उन्हें सदा तपरूपी धन एकत्र करना चाहिये ।।६२।। जो धर्म तीर्थ और तप से मिलता है, उससे भी अक्षय सुख मिलता है और धन को भी न्यायपूर्वक सावधानी से संग्रह करना चाहिये ।।६३।। यज्ञ प्रतिग्रह (दान लेना) यजन शुद्धि से और दीनता रहित, क्लेश रहित, वृत्तिपूर्वक ब्राह्मण धन संग्रह करे ।।६४।। क्षत्रिय बाहुबल से, वैश्य कृषि वाणिज्य से धन संग्रह करे। न्याय से उपार्जन किये दान से सिद्धि की प्राप्ति होती है ।।६५।। ज्ञानसिद्धि से मोक्ष होता है और सब किसी को गुरु की कृपा से मोक्ष होकर मोक्ष से स्वरूप की सिद्धि होकर परानन्द की प्राप्ति होती है ।।६६।। हे ब्राह्मणो ! यह सब कुछ सत्संग से ही प्राप्त होता है। गृहस्थी को धनधान्य आदि अनेक पदार्थ दान करने चाहिये ।।६७।। जिस काल जो वस्तु, फल, धान्य होते हैं, वह सब हित की इच्छा से ब्राह्मणों को देने चाहिये ।।६८।। भूख प्यास की शान्ति के निमित्त जल और अन्न

सदा देना चाहिये। क्षेत्र, धान्य, कच्चा अन्न तथा अन्य भी अन्न, लेह्य चोष्यादि चार प्रकार के भोजन।।६९।। जिसका अन्न भोजन करके वह प्राणी जो कुछ आत्मविचार श्रवणादि करता है, उसके पुण्य का आधा फल दाता को होता है, इसमें सन्देह नहीं।।७०।। दान ग्रहण करनेवाले को उचित है कि, ग्रहण किये हुए दान से अथवा तप से उसका पाप मार्जन करे, नहीं तो रौरव में जाता है।।७१।। अपने धन के तीन भाग करे, एक भाग धर्म, दूसरा वृद्धि, तीसरा भोग के निमित्त। नित्य–नैमित्तिक काम्यकर्म भी धर्मपूर्वक करे।।७२।। साधक को उचित है कि, वृद्धि के अंशव्याज से धन की वृद्धि करे और किसी को पीड़ा न दे और निषिद्ध व्यापार से धन न बढ़ावे और भोग के अंश से स्वल्प भोग भोगे।।७३।। कृषि के उत्पन्न हुए धन के दशवें अंश को पापशुद्धि के निमित्त दान करे, शेष द्रव्य से धर्मादि करे, नहीं तो रौरव में जाता है।।७४।। और जो पाप से वृद्धि करेगा तो उसके खेती का क्षय होगा, छठा अंश वाणिज्य व्यापार की वृद्धि में बुद्धिमान् को लगाना चाहिये।।७५।। चतुर्थांश में शुद्ध प्रतिग्रह ब्राह्मणादि को देना चाहिये और अकस्मात् कहीं से धन मिल जाए तो उसमें से आधा दान कर दे।।७६।। और असत्प्रतिग्रह किया हो तो, वह सब दुर्दान समुद्र में डाल दे। अपनी भोग समृद्धि के निमित्त बुलाकर दान करना चाहिये।।७७।। और याचना करनेवाले को अपनी शक्ति के अनुसार सदा दान करना चाहिये। कहकर जो फिर नहीं दे तो वो जन्मान्तर में ऋणी होता है।।७८।। बुद्धिमान् को उचित है कि, दूसरों का दोष कथन न करे, विशेष करके सुने और देखे दोषों को भी न कहे।।७९।। ऐसी वार्ता कभी न कहे जो सब प्राणियों के हृदय में क्रोध उत्पन्न करे और ऐश्वर्य सिद्धि के निमित्त दोनों सन्ध्याओं में अग्निहोत्र करे।।८०।। और जो दोनों समय न कर सके तो यथाविधि एक ही समय सूर्य तथा अग्नि की उपासना तर्पण करे। चावल, धान्य, घृत, कन्द, हवि।।८१।। आदि विधिपूर्वक स्थालीपाक करके जो हव्य न हो तो प्रधान होम मात्र ही करे।।८२।। नित्य स्थापित अग्नि को पण्डित अजस्र कहते हैं अथवा केवल जप मात्र और सूर्य का वन्दन ही करे।।८३।। इस प्रकार आत्मा की प्राप्ति की इच्छावाले सदा विधिपूर्वक करे। सदा ब्रह्मयज्ञ में प्रीति करनेवाले और देवताओं की पूजा करनेवाले।।८४।। नित्य अग्नि और गुरुपूजा प्रेम से करनेवाले तथा ब्राह्मणों को तृप्त करनेवाले सब स्वर्ग में जाते हैं।।८५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहिता भाषायां त्रयोदशोऽध्यायः।।१३।।

*****

चौदहवाँ अध्याय

ऋषि बोले- अग्नियज्ञ, देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, गुरुपूजा, ब्रह्मतृप्ति यह क्रम से आप हमसे कहिये ।।१।। सूतजी बोले- जो द्रव्य अग्नि में हवन किया जाता है, उसे द्रव्ययज्ञ कहते है। ब्रह्मचर्य आश्रम में स्थित पुरुषों को समिधा आहरणपूर्वक अग्निहोत्र करना चाहिये ।।२।। हे ब्राह्मणो! जहां समिधा अग्नि में हवन की जाती है वहीं ब्रह्मचर्याग्नि है, यह ब्रह्मचर्य व्रतादि में होते हैं और यह विशेष यजन जब तक विवाह न हो, ब्रह्मचारियों का कर्तव्य है ।।३।। विवाह होने पर दो समय करे और जिन्होंने आत्मा में अग्नि आरोपण की है। हे ब्राह्मणो! ऐसे वनवासी यतियों को थोड़ा पवित्र अन्न भोजन करना ही अग्निहोत्र है ।।४।। "यन्मुखं तदाहवनीयम्। इत्यादि श्रुतेः" उपासना, अग्निसन्धान इनकी रक्षा सम्यक् प्रकार से करनी चाहिये। कुण्ड में अथवा बर्तन में (अँगीठी में) सदा उस अग्नि को रखना चाहिये ।।५।। अग्नि वा राजा और दैव के भयवश से समिधा में धारण करना, अग्नित्याग भय से ही उसका समारोपण कहा है ।।६।। ब्राह्मणों की सन्ध्याकाल में दी हुई आहुति अग्नि को आत्मा में सम्पत्ति की करनेवाली है और प्रातःकाल में दी हुई सूर्य आहुति आयु को बढ़ानेवाली है ।।७।। दिन में सूर्य के अग्नि में प्रवेश करने से यह अग्नियज्ञ कहा है। इन्द्रादि समस्त देवताओं के उद्देश्य से जो अग्नि में हवन करता है ।।८।। दर्श पूर्णमास स्थालीपाकादि संसार के यज्ञ, देवयज्ञ और गर्भाधानादि उपासना लौकिकाग्नि की प्रतिष्ठा है ।।९।। और देवताओं की प्रीति के निमित्त ब्राह्मणों को सदा ब्रह्मयज्ञ करना चाहिये। उसमें वेदपाठ होता है, इसीसे वह ब्रह्मयज्ञ कहलाता है ।।१०।। नित्यकर्म के अनन्तर सायंकाल पर्यन्त और सन्ध्या के उपरान्त रात्रि में उसका विधान नहीं है। जिस प्रकार बिना अग्नि देवयजन होता है, वह आदर से सुनिये ।।११।। सृष्टि की आदि में करुणाकर महादेवजी ने सब लोकों के निमित्त वारों की कल्पना की है ।।१२।। संसार के वैद्य सर्वज्ञ प्रभु ने पहिले सब औषधियों के औषधिस्वरूप आरोग्यदायक अपना वार (आदित्यवार) किया ।।१३।। इसके उपरान्त सम्पत्ति करनेवाला अपनी माया का वार किया, इसके पश्चात् पुत्रादि जन्म में कष्ट युक्त स्कन्द का वार किया ।।१४।। आलस्यादि को नाश करनेवाला वार कल्पना किया, फिर लोक के हित की इच्छा से रक्षा करनेवाले विष्णुजी का वार बनाया ।।१५।। पुष्टि और रक्षा के निमित्त प्रभु ने वारों की कल्पना की। इसके उपरान्त आयु वृद्धि की इच्छावालों के निमित्त आयुष करनेवाले वार की कल्पना की ।।१६।। तत्पश्चात् जगत् की आयु के निमित्त त्रिलोकी की सृष्टि करनेवाले परमेष्ठी ब्रह्माजी का वार प्रभु

ने बनाया।।१७।। प्रथम त्रिलोक की वृद्धि के निमित्त प्रभु ने पुण्य और पाप के उत्पन्न करनेवाले इन्द्र और यम के वारों की कल्पना की।।१८।। इस प्रकार यह सुख-दुःख के सूचक आदित्यादि वार भोग देनेवाले और लोकों की मृत्यु हरनेवाले कल्पित किये हैं। आदित्यवार के शिवजी, चन्द्रवार की दुर्गा, मङ्गलवार के स्कन्द, बुध के विष्णुजी, बृहस्पति के यम, शुक्र के ब्रह्माजी, शनि के इन्द्र स्वामी हैं।।१९।। नक्षत्रों के चक्र में प्रतिष्ठित करके इन वारों के ईशों की कल्पना करके अपने-अपने वारों में उन-उन देवताओं की पूजा करे, तो उसके अनुसार फल की प्राप्ति होती है।।२०।। आरोग्य, सम्पत्ति, व्याधियों की शान्ति, पुष्टि, आयु, भोग, मृत्यु की हानि ये यथाक्रम से मनुष्य को प्राप्त होते हैं।।२१।। उन-उन देवताओं के वार उन-उन देवताओं की प्रीति के करनेवाले हैं और उन देवताओं की पूजा के फल देनेवाले शिवजी ही हैं।।२२।। देवताओं की प्रीति के निमित्त पाँच प्रकार की पूजा कही है, उनका मन्त्र, जप, होम, दान, तप।।२३।। स्थल में स्थापित प्रतिमा अग्नि और ब्राह्मण के शरीर में षोडशोपचारों सहित पूजन करना चाहिये।।२४।। इन तीनों में उत्तरोत्तर पूजन श्रेष्ठ है, नेत्ररोग, शिररोग और कुष्ठरोग की शान्ति के निमित्त जो।।२५।। आदित्य की पूजा करके ब्राह्मणों को भोजन करावे, इस प्रकार दिन, महीने, वर्ष और तीन वर्ष तक करता रहे।।२६।। जब प्रारब्ध प्रबल हो जाएगा तब ज्वरादिक रोग शान्त हो जायेंगे। इष्टदेवता का तप, होम, दानादि करने से उनके वार अनुसार वे फल देते हैं।।२७।। विशेष करके रविवार के दिन पापशान्ति करने के निमित्त पूजा करे और उस देवता के प्रीतिकारक द्रव्य निवेदन करे। आदित्यवार ही देवता और ब्राह्मणों को विशेष फल देनेवाला है।।२८।। सोमवार के दिन विद्वान् को लक्ष्मी आदि की पूजा करनी चाहिये। इस दिन घृत अन्नादि से स्त्री सहित ब्राह्मणों को भोजन करावे।।२९।। मङ्गल के दिन रोगशान्ति के निमित्त काली आदि का भजन-पूजन करे। उर्द, मूँग एक आढ़क (चार सेर) लेकर ब्राह्मणों को भोजन करावे।।३०।। बुधवार के दिन विष्णुजी का दही अन्न से पूजन करे तो सर्वदा पुत्र, मित्र, कलत्रादि की पुष्टि होती है।।३१।। आयु की इच्छा करनेवाला देवताओं की पुष्टि की सिद्धि के निमित्त गुरुवार के दिन उपवीत वस्त्र, दूध और घी से यजन करे।।३२।। भोग की इच्छा हो तो शुक्रवार के दिन सावधान होकर देवताओं का यजन करे और ब्राह्मणों की तृप्ति करने के लिये षट्रस भोजन करावे।।३३।। स्त्रियों की तृप्ति के लिये वस्त्रादिक प्रदान करे, अपमृत्यु दूर करने के निमित्त शनिवार के दिन रुद्रादिकों का यजन करना चाहिये।।३४।। तिलहोम, दान और तिल मिश्रित अन्न का भोजन करावे, इस प्रकार देवताओं का यजन करने से आरोग्यादि की प्राप्ति होती है।।३५।। देवताओं के नित्य यजन तथा विशेष यजन में भी स्नान, दान, जप, होम और ब्राह्मणों के तर्पण में।।३६।। तिथि, नक्षत्र के योग में उन-उन देवताओं के पूजन करने से सब

वारों में प्रथम दिन में सर्वज्ञ जगदीश्वर ही ।।३७।। उन-उन देवताओं के रूप से सबको आरोग्यादि दान करते हैं। देश, काल और पात्र के अनुसार ।।३८।। द्रव्य की श्रद्धा के अनुसार तथा लोकानुसार तारतम्य के क्रम से शिवजी सबको फल प्रदान करते हैं।।३९।। मङ्गलकार्य के आरम्भ में और अन्त में तथा जन्मनक्षत्र में गृहस्थी को आरोग्यादि प्राप्ति के निमित्त आदित्यादि ग्रहों का यजन करना चाहिये ।।४०।। इस कारण से देवयजन सम्पूर्ण इच्छित फल देनेवाला है। ब्राह्मणों को मन्त्रपूर्वक और शूद्रादिकों को तन्त्रोक्त पूजन करावे ।।४१।। मनुष्यों को यथाशक्ति सातों वारों में शुभ फल की इच्छा से सदा पूजन करना चाहिये ।।४२।। दरिद्रों को तप से देवताओं का यजन करना चाहिये। धनी को पूजन करना चाहिये, इस प्रकार जो श्रद्धा से धर्म करता है।।४३।। वह स्वर्ग में अनेक भोग भोगकर पृथ्वी पर उत्पन्न होता है, वृक्षारोपण, सरोवर निर्माण, पाठशाला बनाना, धर्मबोधक पुस्तकादि का संग्रह ।।४४।। यह धनी को भोगसिद्धि के निमित्त सदा करना चाहिये। इस प्रकार जब पुण्य का परिपाक हो जाएगा, तब समय पर ज्ञान की सिद्धि हो जाएगी ।।४५।। जो ब्राह्मण इस अध्याय को पढ़ते व सुनते हैं अथवा सुनाते हैं, वे देवयज्ञ का फल पाते हैं।।४६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहिता भाषायां चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

*****

पन्द्रहवाँ अध्याय

ऋषि बोले- हे सूतजी! आप पूजा के योग्य देश और काल का वर्णन कीजिये, कारण कि आप सब कुछ जानते हैं। सूतजी बोले- देवयज्ञादि कर्म में शुद्ध घर कहे मात्र फल को देता है।।१।। उससे दशगुण गौओं के स्थान में, उससे दशगुण जल के स्थान में, उससे दशगुण बेल, तुलसी और पीपल के वृक्ष के नीचे ।।२।। उससे दशगुण देवालय में, उससे दशगुण तीर्थ के किनारे, उससे दशगुण नदी और उससे दशगुण फल तीर्थ नदी के किनारे ।।३।। उससे दशगुण फल सप्तगंगा नदी के किनारे। (गंगा, गोदावरी, कावेरी, ताम्रपर्णी ।।४।। सिन्धु, सरयू, रेवा यह नदियां सप्तगंगा कहलाती हैं।) उससे दशगुण फल सागर और उससे दशगुण फल पर्वताग्र पर पूजन करने से होता है।।५।। और जहां मन रमे वहां पूजन का फल सबसे अधिक होता है। सतयुग में यज्ञदानादि का पूर्ण फल होता है।।६।। त्रेतायुग में तिहाई, द्वापर में आधा, कलियुग में चौथाई और अधिक आधा, कलियुग बीतने पर इससे भी न्यून फल होगा ।।७।। शुद्धात्मा होकर पवित्र दिन में पुण्यसमान फल देनेवाला है, इससे दशगुण फल

संक्रान्ति के दिन होता है।।८।। तुला और मेष की संक्रान्ति में उससे दशगुण, अनय में उससे दशगुण, चन्द्रग्रहण में उससे दशगुण।।९।। उससे दशगुण फल सूर्य के ग्रहण में होता है। यह उत्तम और पूर्णकाल है। जगत्रूप सूर्य अन्धकाररूप हो जाने से तथा विषय का योग होने से यह समय रोगदायक है।।१०।। इस कारण इस विषशान्ति के निमित्त स्नान और दान करना चाहिये। विषशान्ति करनेवाला होने से ही यह समय पुण्य देनेवाला कहा है।।११।। जन्मनक्षत्र और व्रत के अन्त में दान का फल सूर्यग्रहण की तुल्य ही है और सत्पुरुषों की संगति का फल कोटि सूर्य के समान है।।१२।। तपोनिष्ठ ज्ञान में निष्ठावाले योगी और यती यह पूजा के पात्र हैं। इनका सत्कार करने से पापक्षय होता है।।१३।। अथवा जिसने चौबीस लाख गायत्री का जप किया है, वह ब्राह्मण पूर्ण फल का देनेवाला है, वह यथार्थ पात्र है।।१४।। पतन से रक्षा करनेवाले का नाम शास्त्र में पात्र कहा है, दाता की पातकों से रक्षा करता है, इसी कारण वह पात्र है।।१५।। और अपने गुण गानेवाले की पाप से रक्षा करती है, इसी से गायत्री कहलाती है। जिस प्रकार धनहीन इस लोक में किसी को धन नहीं दे सकता।।१६।। और जो इस लोक में अर्थवान् है, वह धन दे सकता है। उसी प्रकार से जो स्वयं पवित्र है, वही लोक में दूसरों की रक्षा कर सकता है।।१७।। गायत्री के जप से शुद्ध हुआ ब्राह्मण ही शुद्ध है। इस कारण दान, जप, होम और पूजा सब कर्मों में।।१८।। दान और रक्षा करने में एक ब्राह्मण ही पात्र है और अन्नदान नारी या नर जो कोई भी हो, जो भूखा हो वही अन्नदान का पात्र है।।१९ ।। जिस समय श्रेष्ठ ब्राह्मण को बुलाकर और सावधान होकर उसे दान दे, उसका शब्द और अर्थ सत्वस्तु का बोधक और इष्ट देनेवाला है।।२०।। इच्छावाले को उसे देना सम्पूर्ण फल का देनेवाला है और जो मांगने के बाद दिया जाता है, वह आधे फल का देनेवाला है।।२१।। और जो सेवक को दिया जाता है, उससे चौथाई फल होता है। हे ब्राह्मणो! जो जातिमात्र दीन ब्राह्मण हो, तो।।२२।। उसे दान देने से भूर्लोक में दश वर्ष फल होता है। तप, शास्त्र, विद्या से हीन ब्राह्मण जातिब्राह्मण है यथा- "पातञ्जलभाष्ये तपः श्रुतं च योनि-श्चेत्यतद्ब्राह्मणलक्षणम्।। तपःश्रुताभ्यां योहीनो जातिब्राह्मण एव सः" वेदयुक्त ब्राह्मण को दान देने में दशवर्ष स्वर्ग में फल होता है।।२३।। जो गायत्री के जप से युक्त है, उसे सत्यलोक में दश वर्ष फल होता है और विष्णुभक्त ब्राह्मण को दान देने से वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है।।२४।। शिवभक्त को दान देने से कैलास की प्राप्ति होती है। सब प्रकार के दान जिस उद्देश्य से दिये जाएं, उसी प्रकार उन लोकों का फल मिलता है।।२५।। जो रविवार के दिन ब्राह्मण को दशांग युक्त दान करता है, वह दूसरे जन्म में आरोग्यता को दश वर्ष तक प्राप्त होता है।।२६।। दशांग कहते हैं- बहुत सम्मान करना, बुलाना, उबटना, चरण सेवन, वस्त्र गन्धादि से अर्चन, घृत, मालपुए, रस।।२७।। षट्रस,

व्यंजन, ताम्बूल, दक्षिणा, नमस्कार, कुछ दूर संग जाना यह दशांग अन्नदान है ।।२८।। जो रविवार के दिन दश ब्राह्मणों को दशांग अन्नदान करता है, वह सौ वर्ष तक आरोग्यता पाता है ।।२९।। सोमवार आदि वारों में उनके गुणों के अनुसार फल होता है। अन्नदान से दूसरे जन्म में भूर्लोक की प्राप्ति होती है ।।३०।। सातों वारों में दश ब्राह्मणों को दशांग अन्न देकर सौ वर्ष आरोग्यादि की प्राप्ति होती है ।।३१।। इस प्रकार सौ ब्राह्मणों को सूर्यवार के दिन अन्नदान करने से सहस्र वर्ष शिवलोक में आरोग्य रहता है ।।३२।। सहस्र ब्राह्मणों को दशांग दान देने से दश सहस्र वर्ष सुखभोग करता है। इसी प्रकार सोमवारादि वारों का भी फल जानना ।।३३।। रविवार के दिन गायत्री से पवित्र चित्त सहस्र ब्राह्मणों को अन्न देने से सत्यलोक में आरोग्यादि की प्राप्ति होती है ।।३४।। दश सहस्र को देकर विष्णुलोक और लक्ष को अन्नदान करने से रुद्रलोक की प्राप्ति होती है ।।३५।। बालक विद्यार्थियों को ब्रह्मबुद्धि से अन्नदान करना, युवाओं को विष्णुबुद्धि से पुत्र की इच्छावाले मनुष्यों को दान करना चाहिये ।।३६।। ज्ञान की इच्छावालों को वृद्धों के निमित्त रुद्रबुद्धि से दान करना चाहिये और बालक स्त्रियों को सरस्वती की बुद्धि से बुद्धि की इच्छावाले मनुष्यों को पूजन करना चाहिये ।।३७।। और ऐश्वर्य की इच्छावाले मनुष्यों को युवा स्त्री में लक्ष्मी की बुद्धि से पूजा करनी चाहिये और आत्मा की इच्छा करनेवाले पुरुषों को वृद्धा स्त्रियों को पार्वती की बुद्धि से दान करना चाहिये ।।३८।। उञ्छशिलवृत्ति, कण चुनना और गुरुदक्षिणा से बचा हुआ दशांश द्रव्य शुद्ध होता है और वह पूर्ण फल का देनेवाला है ।।३९।। ब्राह्मणों से दान लिया द्रव्य मध्यम है, कृषि वाणिज्य से प्राप्त हुआ धन अधम द्रव्य कहलाता है ।।४०।। क्षत्रिय का शूरता से और वैश्य का वाणिज्य से उत्पन्न किया द्रव्य उत्तम है और शूद्र का सेवा से अर्जन किया द्रव्य उत्तम है ।।४१।। स्त्रियों को स्वामी और उनके पिता का दिया हुआ द्रव्य धर्मवाला है। चैत्रादि मासों में गौ आदि को लेकर बारह वस्तु का यथाक्रम दान दे ।।४२।। यह सब पुण्यकाल में इष्टसिद्धि के निमित्त दान करे। गौ, पृथ्वी, तिल, सुवर्ण, घृत, वस्त्र, धान्य, गुड ।।४३ ।। चांदी, लवण, पेठा और कन्या यह बारह वस्तु हैं। गोदान से, गव्य से और उपकारी गोबर से ।।४४।। और धन-धान्य से आश्रितों के कष्ट का निवारण करना चाहिये। जलस्नेह से तथा गोमूत्र से आश्रितों कें कष्ट निवारण होते हैं ।।४५।। इसी प्रकार क्षीर, दधि और घृत से कायिक, वाचिक, मानसिक यह तीन प्रकार के पाप दूर होते हैं। इस प्रकार गोदान से तथा गव्य से पुष्टि होती है, सो विद्वानों को जानना उचित है ।।४६।। हे ब्राह्मणो! भूदान करने से दोनों लोकों में प्रतिष्ठा होती है, तिलदान से बल और मृत्यु पर जय होती है ।।४७।। हिरण्यदान से जठराग्नि की प्रबलता और वीर्य की वृद्धि होती है, घृत से पुष्टि और वस्त्रदान से आयुष्य की वृद्धि होती है ।।४८।। धान्यदान से ऐश्वर्य की वृद्धि, गुड़दान से मधुर आहार की प्राप्ति

होती है।।४९।। सब ऐश्वर्य और पुष्टि का देनेवाला पेठा है। हे ब्राह्मणो! यह दोनों लोकों में सब भोगों की प्राप्ति करनेवाला है।।५०।। कन्यादान से जन्मपर्यन्त भोग की प्राप्ति होती है। पनस, आम, कैथ वृक्षों के फल।।५१।। कदली (केला), औषधि फल जो लता गुल्म से उत्पन्न हुए हैं, उर्द, मूँगफली, शाकादि।।५२।। मिरच, सरसों तथा अन्य शाक की सामग्री, जिस ऋतु में जो फल हो, वही बुद्धिमान् को देना चाहिये।।५३।। और बुद्धिमान् को उचित है कि, श्रोत्रादि इन्द्रिय तृप्तिकारक भोग भी प्रदान करे। शब्द स्पर्शादि की दशविधि वस्तु देने से दशोंदिशाओं की तुष्टि होती है।।५४।। वेदशास्त्र को लेकर और स्वयं गुरु के मुख से सुनकर, उन्हें जानकर (कर्मों का फल है) इस प्रकार की बुद्धि का नाम आस्तिक्य है।।५५।। और बन्धु तथा राजभय से आस्तिक्यबुद्धि होनी यह कनिष्ठ श्रद्धा है। सब प्रकार द्रव्यों का अभाव हो तो वाणी अथवा कर्म से ही यजन करे।।५६।। मन्त्र और स्तोत्रादि जप का नाम वाचिक यजन है। तीर्थयात्रा, व्रत इत्यादि कायिक यजन है।।५७।। जिस प्रकार हो सके उसी प्रकार से देवता के अर्पण बुद्धि से कर्म करे तो महाभोग की प्राप्ति होती है।।५८।। तपश्चर्या और दान ये दोनों कर्म सदा करने चाहिये। अपने वर्ण और गुण से शोभित गृह दान करना चाहिये।।५९।। देवताओं की तृप्ति के निमित्त दान करने से सब भोग की प्राप्ति होती है, इस कर्म से इस लोक परलोक के जन्म से सदा भोग की प्राप्ति होती है और ईश्वरार्पण बुद्धि से करने से मुक्ति हो जाती है।।६०।। जो मनुष्य इस अध्याय को पढ़ते और सदा सुनते हैं उन्हें धर्म, बुद्धि और ज्ञान की सिद्धि होती है।।६१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहिता भाषायां पञ्चदशोऽध्यायः।।१५।।

*****

सोलहवाँ अध्याय

ऋषि बोले- हे सूतजी! आप हमसे पार्थिवपूजा का विधान कहिये। जिस पूजा विधान से सम्पूर्ण इष्टसिद्धि होती है।।१।। सूतजी बोले- आपने बहुत श्रेष्ठ बात पूछी है, यह सदा सब अर्थों की सिद्धि करनेवाली है, इसे कहते ही शीघ्र ही दुःख की शान्ति हो जाती है। मैं आपसे कहता हूँ, आप सुनिये।।२।। यह अपमृत्यु (अकालमृत्यु) को भी हरनेवाला, सदा धन-धान्य, स्त्री-पुत्रों का देनेवाला विधान है, हे ब्राह्मणो!।।३।। जिससे अन्नादि भोजन, वस्त्र सब कुछ उत्पन्न होते हैं, इसी कारण वह मृत्तिका आदि की प्रतिमा पृथ्वी पर मनुष्यों को अभीष्ट की देनेवाली है।।४।। इसमें स्त्री पुरुष दोनों का अधिकार है। नदी, तड़ाग, कूप अथवा जल के नीचे की मृत्तिका लावे।।५।। पश्चात्

सुगन्धित द्रव्य के चूर्ण से शोधित करके उस मृत्तिका को अच्छे मण्डप में मर्दित करे। उस पश्चात् दूध डालकर हाथ से प्रतिमा बनावे।।६।। सब अंग-प्रत्यंग बनाकर आयुधों सहित कल्पना कर पद्मासन से बैठकर आदर से पूजा करे।।७।। गणेश, आदित्य, विष्णुजी, पार्वती, शिवजी और शिवलिंग की मूर्ति की सदा ब्राह्मण पूजा करे।।८।। फलसिद्धि के निमित्त षोडशोपचारों से पूजा करे, पुष्प से प्रोक्षण करके मन्त्रपूर्वक अभिषेक करे।।९।। शालिअन्न नैवेद्य संग्रह करके एक कुडव अर्थात पावभर लेकर घर में स्थापित लिंग की पावभर नैवेद्य से और मनुष्यों द्वारा स्थापित लिंग की एक प्रस्थ (एक सेर) नैवेद्य से पूजा करे।।१०।। देवताओं द्वारा स्थापित किये लिंग पर तीन प्रस्थ और प्रादुर्भूत हुए लिंग पर पाँच प्रस्थ नैवेद्य चढ़ावे। इस प्रकार छः सात प्रस्थ (सेर) नैवेद्य चढ़ाने से पूर्ण फल होता है।।११।। और सहस्र प्रस्थ नैवेद्य से पूजा करने से ब्राह्मण को सत्यलोक की प्राप्ति होती है। बारह अंगुल चौड़ा, चौबीस अंगुल लंबा।।१२।। और एक अंगुल अधिक इस प्रकार पच्चीस अंगुल लंबा, पन्द्रह अंगुल ऊँचा लोहे वा काष्ठ के पात्र का नाम शिव है।।१३।। उसके आठवें भाग का नाम प्रस्थ, चौथे भाग का नाम कुडव है। दशप्रस्थ, शतप्रस्थ, सहस्रप्रस्थ।।१४।। जल, तैल, गन्ध से यथोक्त प्रमाण द्वारा मनुष्य के स्थापन किये लिंग की पूजा दशप्रस्थ नैवेद्यादि से करे, ऋषि द्वारा स्थापित किये लिंग की पूजा सौ और स्वयं उत्पन्न हुए लिंग की सहस्रप्रस्थ नैवेद्यादि से पूजा करे, यह महापूजा कहलाती है।।१५।। अभिषेक करने से आत्मशुद्धि, गन्ध चढ़ाने से पुण्य प्राप्ति, नैवेद्य से आयु और तृप्ति और धूप से पुण्य की प्राप्ति होती है।।१६।। दीपक से ज्ञान, ताम्बूल से भोग की प्राप्ति होती है, इस कारण स्नानादि छः वस्तु यत्नपूर्वक कल्पना करे।।१७।। भोग और मोक्ष की इच्छावाले को पूजा के अन्त में नमस्कार और जप सदा करने चाहिये, यह दोनों सम्पूर्ण अभीष्ट सिद्ध करनेवाले हैं।।१८।। मानसिक पूजन में भी वह सब उपचार करने चाहिये, देवताओं की भी इसी प्रकार पूजा करने से उन-उनके लोकों की प्राप्ति होती है।।१९।। और उनके बीच के लोकों में भी यथेष्ट भोग की प्राप्ति होती है। हे ब्राह्मणो! मैं इसमें विशेष कहता हूँ, आप सुनिये।।२०।। गणेशजी की सम्यक प्रकार पूजा करने से भूर्लोक में इष्ट की प्राप्ति होती है। शुक्रवार के दिन भाद्रमास वा श्रावणमास की शुक्ल चतुर्थी के दिन।।२१।। शतभिषा नक्षत्र में धनु के सूर्य होने में गणेशजी की विधिपूर्वक पूजा करे, शतवार पूजन करने से तथा सहस्रवार पूजन करने से उसी संख्या युक्त दिन तक भोग की प्राप्ति होती है।।२२।। देवता तथा अग्नि की श्रद्धा से पूजा करे तो, मनुष्यों को पुत्र और मनोरथ की प्राप्ति होती है, सब पापों का और दुःखों का नाश हो जाता है।।२३।। शिवादि के वार की पूजा करने से आत्मशुद्धि होती है। तिथि और नक्षत्र योगों का आधार, श्रेष्ठ दिन सब कामना का देनेवाला है।।२४।। इस प्रकार ब्रह्म का साधर्म्य

से वृद्धि क्षयदोष रहित दिन ग्रहण करना चाहिये, वह पूर्णफल देनेवाला है और ब्राह्मणादि कर्मों में वार और तिथि उदय में ग्रहण की है ।।२५।। उस तिथि के आदि में पूजा मनुष्यों को पूर्ण भोग की देनेवाली है और जो मध्याह्न के अनन्तर भी तिथि हो तो रात्रियुक्त उस तिथि का पूर्वभाग प्रति कर्म में लेना चाहिये ।।२६।। और परदिन युक्त तिथि का दिवस देवताओं के कार्यों में श्रेष्ठ है "पूर्वाह्णे वै देवानामपराह्ण पितृणामिति श्रुतेः" देवकार्य पूर्वतिथि में और पितृकार्य मध्याह्न व्यापिनी तिथि में करे, यह भाव है। यदि उदयतिथि मध्याह्न व्यापिनी हो तो उसे ग्रहण करनी चाहिये ।।२७।। वह शुभनक्षत्र युक्त तिथि देवकार्य में ग्रहण करनी चाहिये, वार को सम्यक विचार करके पूजा और जप करे। जो उदयतिथि मध्याह्न व्यापिनी न हो वह खण्ड तिथि होती है, व्रत के निमित्त ठीक नहीं ।।२८।। इस प्रकार पूजा करने से वेदार्थ का पूर्ण फल होता है और इस प्रकार के कर्म से भोगसिद्धि और पूर्ण फल मिलता है ।।२९।। मन से इच्छित अर्थ और ज्ञान जिसके द्वारा प्राप्त होकर इष्ट भोग मिलते हैं, उसे ही पूजा कहते हैं। यह पूजा का अर्थ लोक और वेदविदित है ।।३०।। नित्य–नैमित्तिक पूजादि कर्म कालान्तर में फल देते हैं और काम्यफल फल शीघ्र देते हैं। नित्य मास, पक्ष, वर्ष में क्रमानुसार पूजा से उसी–उसी कर्म से फल की प्राप्ति और इच्छानुसार पापक्षय होता है। कृष्ण पक्ष की चौथ को महागणपति की पूजा करनी चाहिये ।।३१–३२।। यह पूजा पक्ष के पापक्षय करनेवाली और पक्ष के भोग और फल देनेवाली है। चैत्र में चतुर्थी के दिन पूजा करे तो एक मास का फल मिलता है ।।३३।। और भादों मास में सिंह के सूर्य होने में पूजा करे तो, वर्ष दिन का पाप दूर होकर भोग की प्राप्ति होती है। श्रावण में आदित्यवार और हस्त नक्षत्र युक्त सप्तमी के दिन ।।३४।। और माघ शुक्ला सप्तमी के दिन आदित्य का यजन करे, ज्येष्ठ और भादों में बुधवार श्रवण नक्षत्र युक्त द्वादशी में ।।३५।। भगवान् विष्णुजी का यजन सम्पूर्ण सम्पत्ति का देनेवाला है, श्रावण में भगवान् विष्णुजी का पूजन इष्टफल और आरोग्य देनेवाला है ।।३६।। गौ आदि बारह अर्थों को सांग देने का फल द्वादशी के दिन विष्णुजी का पूजन करने से प्राप्त हो जाता है ।।३७।। जो द्वादशी के दिन बारह ब्राह्मणों को विष्णुजी के बारह नामों से षोडशोपचारों से पूजन करके भोजन कराता है, वह भगवान् की शक्ति को प्राप्त होता है ।।३८।। इसी प्रकार द्वादश नामों से समस्त देवताओं के निमित्त बारह ब्राह्मण भोजन कराने से उन–उन देवताओं की प्रसन्नता होती है ।।३९।। कर्क के सूर्य होने में मृगशिर नक्षत्र युक्त नौमी के दिन ऐश्वर्य की इच्छा से पार्वती का पूजन करने से सब भोग और फल की प्राप्ति होती है ।।४०।। आश्विन शुक्ला नवमी में देवी की पूजा सम्पूर्ण इष्टफल की देनेवाली है अथवा आदित्यवार को कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी में आर्द्रा नक्षत्र में तथा महाआर्द्रा में की हुई शिवपूजा विशेष फलदायक होती है और माघ कृष्ण चतुर्दशी को शिवपूजा सब

मनोरथों के फल की देनेवाली है ।।४२।। आयु करनेवाली, मृत्यु हरनेवाली, मनुष्यों को सब सिद्धि देनेवाली है। ज्येष्ठ मास में भी सूर्य संयुक्त आर्द्रा होने में चतुर्दशी के दिन शिवपूजा करे ।।४३।। अथवा जो मार्गशीर्ष में आर्द्रा नक्षत्र में षोडशोपचारों से उन–उन मूर्तियों में जो शिवजी का पूजन करते हैं, उनके चरणों को देखे ।।४४।। शिवजी का यजन भोग और मोक्ष का देनेवाला है, अन्य वारादि के देवताओं का कार्तिक में यजन करने का बड़ा फल होता है ।।४५।। कार्तिक मास में विद्वानों को उचित है कि, सर्व देवताओं का यजन करे। दान, तप, जप, होम ।।४६।। षोडशोपचार और प्रतिमा के मन्त्रों से पूजन करके निष्काम काम–क्रोधादि रहित ब्राह्मणों को भोजन करावे, तो सब दुःख दूर हो जाते हैं ।।४७।। कार्तिक मास में देव पूजन सम्पूर्ण भोगों का देनेवाला है, पूजन से व्याधियों का नाश और भूतग्रह का क्षय होता है ।।४८।। जो मनुष्य कार्तिक मास में आदित्यवार के दिन आदित्य का पूजन करते हैं, तिल और कपास आदि का दान करते हैं, उनका कुष्ठरोग नष्ट हो जाता है ।।४९।। हरीतकी(हरडै), मिरच, वस्त्र और दूध के दान से और ब्रह्मप्रतिष्ठा से क्षयरोग का भी नाश हो जाता है ।।५०।। दीप और सरसों के दान से अपस्मार रोग क्षय हो जाता है। जो कृत्तिका नक्षत्र युक्त सोमवार के दिन शिवजी का पूजन करते हैं ।।५१।। उनके महादारिद्र भी नष्ट होते हैं और उन्हें सब सम्पत्ति मिलती है। गृह क्षेत्रादि का दान और गृह की सामग्री आदि दान करने से सब सम्पत्ति होती है ।।५२।। कृत्तिका नक्षत्र युक्त मङ्गलवार केदिन स्कन्द का पूजन करने से और दीप, घण्टादि के दान से मनुष्यों को सब प्रकार की सिद्धि होती है और वाक्सिद्धि शीघ्र होती है ।।५३।। कृत्तिका नक्षत्र युक्त बुधवार के दिन विष्णुजी का पूजन करने से और दही चावल का दान करने से सन्तान की प्राप्ति होती है ।।५४।। जो कृत्तिका नक्षत्र युक्त गुरुवार के दिन धन से ब्रह्माजी का पूजन करते हैं और शहद, सुवर्ण, घृत का दान करते हैं, उन्हें भोगसिद्धि होती है ।।५५।। कृतिका नक्षत्र युक्त शुक्रवार के दिन गणेशजी का यजन करने से और गन्ध, पुष्प, अन्नदान करने से मनुष्यों को भोग की वृद्धि होती है ।।५६।। सुवर्ण और चांदी के दान करने से वन्ध्या को भी पुत्र होता है। कृत्तिका नक्षत्र युक्त शनिवार के दिन दिक्पालों का वन्दन पूजन करना चाहिये ।।५७।। दिग्गज, नाग और मर्यादापालकों का पूजन करना चाहिये। त्र्यम्बक, रुद्र और पापहारी विष्णुजी का, ज्ञान देनेवाले ब्रह्माजी का, धन्वन्तरी अश्विनीकुमारजी का पूजन रोग और अपमृत्यु को हरनेवाला है और व्याधि को तत्काल शान्त करता है ।।५८–५९।। सुवर्ण, लोहा, तेल, उर्द के दान से सोंठ, मिरच, पीपल, गन्ध और जलदान से ।।६०।। दुग्धादि, धान्यादि को सोलह पलात्मक एक प्रस्थ धनु के सूर्य होने में दान करने और उषःकाल में पूजन करने से ।।६१।। शिवादि किसी देवता का पूजन करे तो क्रम से सिद्धि प्राप्त हो जाती है। शालिअन्न और नैवेद्य यह हवि के श्रेष्ठ पदार्थ

हैं।।६२।। और अनेक प्रकार का नैवेद्य धनु के सूर्य होने में देने से महाफल होता है। मार्गशीर्ष में अन्नदान करने से सब मनोरथ पूर्ण होते हैं।।६३।। पापक्षय, इष्टसिद्धि, आरोग्य, धर्मसम्यक् प्रकार वेदान्त का ज्ञान, सत् अनुष्ठान।।६४।। दोनों लोकों में अनेक प्रकार के योग्य और अन्त में शाश्वत योग वेदान्तज्ञान की सिद्धि मार्गशीर्ष में अन्नदान से होती है।।६५।। मार्गशीर्ष महीने में तीन दिन ऊष:काल में ही भोग की इच्छावाला देवताओं का पूजन करे, परन्तु धनु की संक्रान्ति न बीतने दे।।६६।। जब तक दूसरी संक्रान्ति न आवे, तब तक धनुमास रहता है। धनु की संक्रान्ति के महीने में निराहार जितेन्द्रिय होकर।।६७।। एक मासपर्यन्त मध्याह्न तक गायत्री का जप करता रहे। ब्राह्मण को यही गायत्री जपनी चाहिये, यह वेदों की माता है। पश्चात् निद्रा आने तक पंचाक्षरादि मन्त्रों का जप करता रहे।।६८।। ऐसा करने से ब्राह्मण ज्ञान को प्राप्त होकर देहान्त में मुक्त हो जायेगा, अन्य नर तथा नारियों को तीन काल स्नान और जप करने से।।६९।। सदा पंचाक्षर मन्त्र का ही जप करना चाहिये, इससे विशुद्ध ज्ञान प्राप्त हो जाता है। अपने इष्टमन्त्रों का जप करे तो महापातक क्षय हो जाते हैं।।७०।। धनु के सूर्य होने में विशेष कर उस मास में महानैवेद्य पूजन करे, धान्य तण्डुल एक भार[1], मिरच काली एक प्रस्थ।।७१।। और आगे कहे हुए सब गुणन में बारह गुणा करने चाहिये, शहद और घी पाव भर, मूँग द्रोण भर (१६ सेर) और बारह व्यंजन।।७२।। घृत में उतारे पुए, मोदक, शाली आदि बारह अन्न, दही और दूध बारह सेर।।७३।। तथा नारियल फलों की गणना करके बारह क्रमुक (सुपारी) से युक्त छत्तीस ताम्बूल के पत्र।।७४।। कपूर और खुरनाम वृक्ष[2] का चूर्ण, इलायची, कंकोल, लवंगपुष्प, जायफल यह पाँच सुगन्धि और ताम्बूल यह महानैवेद्य का लक्षण है।।७५।। यह महानैवेद्य देवताओं को अर्पण करके वर्ण के अनुसार क्रम से उन देवताओं के भक्तों को इसका प्रसाद बाँटना चाहिये।।७६।। इस प्रकार भात और नैवेद्य के दान से पृथ्वी के राज्य की प्राप्ति होती है। महानैवेद्य के दान से मनुष्य स्वर्गलोक को जाता है।।७७।। हे ब्राह्मणो! सहस्र महानैवेद्य के दान से सत्यलोक में निवास और पूर्ण आयु की प्राप्ति होती है।।७८।। जो तीस सहस्र महानैवेद्य दान करते हैं, वह ऊर्ध्वलोक को प्राप्त होकर फिर संसार में जन्म नहीं लेते।।७९।। छत्तीस सहस्र महानैवेद्य को जन्मनैवेद्य कहते हैं, उतने नैवेद्य का दान महापूर्ण कहलाता है।।८०।। शिवजी का महापूर्ण नैवेद्य जन्मनैवेद्य कहलाता है, जन्मनैवेद्य के दान से पुनर्जन्म नहीं होता।।८१।। कार्तिक मास के पवित्र दिन में जन्मनैवेद्य का विधान करे, उस दिन संक्रान्ति व्यतीपात, जन्मनक्षत्र अथवा पूर्णमासी हो।।८२।। अथवा वर्ष जन्मदिन में जन्मनैवेद्य करे अथवा दूसरे महीनों में

१)–दो तोले का एक कर्ष,चार कर्ष का एग पल, एक सौ पल की एक तुला, बीस तुला की एक भार।

२)– ककून्दनि वा नंखगंधद्रव्य।

अपने जन्मनक्षत्र और पूर्णयोगदिन में ।।८३।। अथवा पुण्ययोगों के संयोग में अथवा शनि के योग होने में उतने ही सहस्र नैवेद्य दे। जन्मनैवेद्य के दान से जन्मार्पण के फल की प्राप्ति होती है ।।८४।। जन्मार्पण से प्रसन्न होकर शिवजी अपनी सायुज्य मुक्ति प्रदान करते हैं, यह जन्मनैवेद्य शिवजी को ही देना उचित है ।।८५।। योनि और लिंग के स्वरूप से शिवजी ही जन्म के देनेवाले हैं, इस कारण जन्मनिवृत्ति के निमित्त जन्मनैवेद्य से शिवजी की ही पूजा करे ।।८६।। सब स्थावर जंगमात्मक संसार बिन्दु और नादरूप हैं। बिन्दु शक्ति, शिव नादरूप है, इस प्रकार यह जगत् शिव और शक्ति आत्मक हैं ।।८७।। नाद के आधार बिन्दु और बिन्दु के आधार जगत् और जगत् के आधार बिन्दु और नाद स्थित है ।।८८।। और बिन्दु नाद से युक्त होकर यह सब कलाओं से मिलता है, मिलने से ही निःसन्देह इस जगत् की उत्पत्ति होती है ।।८९।। यह बिन्दु नादात्मक लिंग ही जगत् का कारण है, बिन्दु देवी और शिव नाद है, इसी प्रकार लिंगरूप शिवजी है ।।९०।। इसी कारण जन्मनिवृत्ति के निमित्त शिवलिंग की पूजा करनी चाहिये। बिन्दुरूप देवी माता और लिंगरूप शिवजी ही पिता हैं ।।९१।। माता–पिता के पूजन करने से परमानन्द की प्राप्ति होती है, परमानन्द की प्राप्ति के निमित्त शिवलिंग का पूजन करना चाहिये ।।९२।। वही देवी जगत् की माता और शिवजी जगत् के पिता हैं। जो इन माता–पिता का पूजन करते हैं, उनके ऊपर पार्वती परमेश्वर बड़ी कृपा करते हैं ।।९३।। हे मुनिश्रेष्ठो! कृपा करते ही पूजन करनेवालों को ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, इस कारण ऐश्वर्य और ज्ञान के निमित्त उनका पूजन करे ।।९४।। हे मुनिश्रेष्ठो! पिता–माता स्वरूप शिवलिंग की नित्य पूजा करे। भर्ग पुरुषरूप और भर्गा प्रकृति कहलाती है ।।९५।। उनके अन्तर रहनेवाले सूक्ष्म उपादान गर्भ को पुरुष कहते हैं और व्यक्त महत्तत्त्वादि के अन्तर रहनेवाले गर्भ को प्रकृति कहते हैं ।।९६।। आदिगर्भ पुरुष ही प्रकृतिरूप गर्भ सम्बन्ध से गर्भवाला होता है, इसी से वह उत्पन्न करनेवाला है। पुरुष से प्रकृति में प्रथम जन्म होता है ।।९७।। प्रकृति से प्रकट रूप होने से दूसरा जन्म होता है, यह जीव पुरुष से ही मृत्यु और जन्म को प्राप्त होता है ।।९८।। प्रगट किया जाता है, उत्पन्न किया जाता है और माया से जन्म प्राप्त किया जाता है। जो जन्म और कालादि से जीर्ण हो उसे जीव कहते हैं ।।९९।। जन्म होते ही पाशों से बँध जाता है, इसी कारण वह जीव कहलाता है। जन्म और पाश से निवृत्त होने के निमित्त शिवलिंग का पूजन करे ।।१००।। (भं) वृद्धि को (गच्छति) प्राप्त होता है, जिसमें इस कारण उसे प्रकृति कहते हैं, प्रकृत शब्द मात्रादिकों से इन्द्रिय भोग कारण से जो यह (भग) प्रकृति का है, इसीसे भोग कहलाता है, यही भग शब्द का शब्दार्थ है, मुख्य भगरूप प्रकृति से हैं और भगवान् शिव कहलाते हैं ।।१०१–१०२।। भोगदाता भगवान् ही है और भोग देनेवाला दूसरा कोई नहीं है। भगवान् भग के स्वामी हैं, भर्ग कहलाते हैं ।।१०३।। भग सहित

लिंग और लिंग सहित भग यही दोनों भोग के निमित्त और नित्य भोग के निमित्त हैं।।१०४।। लिंगरूप भगवान् शिवजी का पूजन करे, उस लोक में उत्पन्न करनेवाले का चिह्न होने से और लोक उत्पन्न करने से सूर्य का नाम भी भग है।।१०५।। लिंगरूप में जगत् को उत्पन्न करनेवाले शिवजी का यजन करे, लिंग अर्थ में जाननेवाला चिह्न लिंग कहलाता है।।१०६।। और लिंग अर्थ में पुरुष शिवजी में जानेवाला है। शिवशक्ति के चिह्न का मेलन का नाम लिंग है।।१०७।। शिवजी अपने चिह्न के पूजन करने से प्रसन्न हो जाते हैं, इससे चिह्नकार्य नहीं प्राप्त होता किन्तु चिह्नकार्य जन्मादि है, इस चिह्न के पूजन करने से जन्मादि निवृत्त हो जाता है।।१०८।। प्राकृत्य पुरुषों को भी बाह्य और आभ्यन्तर लिंग का षोडश उपचारों से पूजन करना चाहिये।।१०९।। इस प्रकार आदित्यवार के दिन पूजा करने से फिर जन्म नहीं होता। आदित्यवार के दिन महालिंग का ॐ कारपूर्वक पूजन करे।।११०।। आदित्यवार के दिन पंचगव्य से शिवजी को स्नान कराना चाहिये। (गोबर, गोमूत्र, गो का दूध, दही और घी ये पाँच वस्तुए पंचगव्य कहलाती हैं)।।१११।। क्षीरादि से पृथक् स्नान करावे। शहद, गन्ने का रस और गौ के दूध से अन्न नैवेद्य बनाकर ओंकार पूर्वक चढ़ावे।।११२।। प्रणव की ध्वनि लिंग है, बिन्दुलिंग यन्त्र है, नादलिंग स्वयम्भू है, उसमें मकार प्रतिष्ठित है।।११३।। उकार चरलिंग है, अकार गुरु शरीर है, इस प्रकार षट्लिंग की पूजा करने से निःसन्देह यह प्राणी जीवमुक्त हो जाता है।।११४।। भक्तिपूर्वक शिवजी की पूजा करने से मनुष्य जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है। रुद्राक्ष धारण करने से चौथाई, विभूति धारण करने से आधा।।११५।। मन्त्र जपने से पौन और पूजा से सम्पूर्ण भक्तिमान् होता है। शिवलिंग और उनके भक्त का पूजन करके मनुष्य मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं।।११६।। जो इस अध्याय को पढ़ते अथवा सावधान होकर सुनते हैं, हे ब्राह्मणो! उनकी शिवजी में दृढ़ भक्ति होती है।।११७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहिता भाषायां षोडशोऽध्यायः।।१६।।

*****

सत्रहवाँ अध्याय

ऋषि बोले- हे मुने! प्रणव का माहात्म्य और षट्लिंग का माहात्म्य और शिवभक्त की पूजा का विधान क्रम से आप हमसे कहिये।।१।। सूतजी बोले- आप महात्मा तपस्वियों ने अच्छा प्रश्न किया है। इसका उत्तर एक महादेवजी ही जानते हैं, दूसरा नहीं।।२।। तो भी मैं शिवजी की कृपा से कहता हूँ, शिवजी हमारी और आपकी सब प्रकार से रक्षा करें।।३।। प्रणव का अर्थ कहते हैं, (प्र) प्रकृति से उत्पन्न हुए संसारसागर

को (नवम्) नौकारूप है, इसी कारण पण्डित इसे प्रणव कहते हैं।।४।। अथवा (प्र) प्रपंच (न) नहीं है (व) तुम में अर्थात् आत्मा में कुछ प्रपंच नहीं है, यह प्रणव का अर्थ है अथवा प्रकृष्टता से जपनेवाले को मोक्ष देता है, इस कारण इसे प्रणव कहते हैं।।५।। अपने जप करनेवाले योगियों को और अपने मन्त्र पूजन करनेवालों को सब कर्म क्षय करके दिव्यज्ञान देने से प्रणव कहलाता है।।६।। माया रहित होने से प्रणव को नूतन कहते हैं, प्रकर्षता से महात्मा उसे अधिक नया शुद्ध स्वरूप कर देता है।।७।। और नूतन कर देने से ही पण्डित इसे प्रणव कहते हैं। स्थूल-सूक्ष्म भेद से प्रणव दो प्रकार का है।।८।। एकाक्षर सूक्ष्म और पंचाक्षर स्थूल है। सूक्ष्म रूप अव्यक्त अर्थात् प्रगट पंचाक्षरवाला है और स्थूल प्रगट पंचाक्षर युक्त है।।९।। जीवन्मुक्त के निमित्त सबका भर सूक्ष्म रूप है, यही उसका हित करनेवाला है। मन्त्र के अनुसन्धान और अपने देहान्त में देह में ही लय करना सूक्ष्म उपासना है।।१०।। इस प्रकार उपासना करने से देहान्त में शिवरूप हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं और केवल मन्त्र का जप करनेवाला योग को प्राप्त होता है।।११।। छत्तीस करोड़ मन्त्र जपनेवाला योगी हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं। सूक्ष्म भी ह्रस्व दीर्घ के भेद से दो प्रकार है।।१२।। अकार, उकार, मकार, बिन्दुनाद सहित (अर्द्धचन्द्र बिन्दु सहित वर्ण और मात्रा रहित) और शब्द कालकला से युक्त।।१३।। अ, उ, म् इन तीन अक्षर मात्र का दीर्घप्रणव कहलाता है। यह योगियों के हृदय में निवास करता है और आ, उ, म् इन तीन अक्षर मात्र का ह्रस्वप्रणव कहलाता है।।१४।। शिव और शक्ति की एकता होने से मकार त्रितात्मक अर्थात् तीनों तत्त्वस्वरूप है। सब पाप दूर होने की इच्छा करनेवालों को ह्रस्वप्रणव का जप करना चाहिये।।१५।। पृथ्वी, वायु, तेज, जल, आकाश और शब्दादि और दशदिशा के सम्बन्ध होने से दश पुरुष प्रवृत्तिमार्ग में प्रवृत्त हैं, ऐसा कहा जाता है। शब्द स्पर्शादि विषय युक्त प्राणी संसार में पड़ते हैं, इससे भिन्न निवृत्त होते हैं।।१६।। जिनकी संसार में प्रवृत्ति है, उन्हें ह्रस्व ॐ कार का जप करना चाहिये, निवृत्ति की इच्छावालों को दीर्घ ॐ कार का जप करना चाहिये, जो यथेच्छ शब्दकलायुक्त प्रथम वर्णन कर चुके हैं।।१७।। वेद के आदि में प्रथम ॐ कार का ही प्रयोग करना चाहिये। दोनों सन्ध्यावन्दन में भी ॐ कार का प्रयोग करना, नौ करोड़ जप करने से पुरुष शुद्ध हो जाता है।।१८।। फिर नव करोड़ का जप करने से पृथ्वी पर जय होता है, फिर नौ करोड़ जप से जल पर।।१९।। फिर नौ करोड़ से तेज पर, फिर नौ करोड़ से वायु पर, फिर नौ करोड़ जप से आकाश पर जय होता है।।२०।। फिर क्रम से नौ-नौ करोड़ जप से गन्धादि पर, फिर नौ करोड़ जप से अहंकार पर जय होता है।।२१।। नित्य सहस्र मन्त्र जपने से पुरुष नित्य शुद्ध रहता है, इसके उपरान्त हे ब्राह्मणो! फिर आत्मज्ञान की सिद्धि के निमित्त जप होता है।।२२।। इस प्रकार एक सौ आठ करोड़ जप करने से ॐ कार से प्रबुद्ध होकर शुद्धयोग को प्राप्त

होता है ।।२३।। शुद्धयोग से जीवन्मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं । प्रणव रूप शिवजी का सदा जप करे, सदा ध्यान करे ।।२४।। समाधि में स्थित होकर महायोगी शिवरूप ही हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं । ऋषि, छन्द और देवतादि का देह में प्रथम न्यास करके जप करना प्रारम्भ करे ।।२५।। अ, इ, उ मात्रा युक्त प्रणव को देह में न्यास करके ऋषि होता है । अ, इ, उ आदि दश मात्रा और छः अध्वमार्ग आदि करने से सम्पूर्ण न्यास का फल होता है ।।२६।। संसार में प्रवृत्त अथवा प्रवृत्ति-निवृत्ति दोनों को स्थूलप्रणव का जप करना चाहिये । क्रिया, तप और जप से शिवजी के योगी तीन प्रकार के हैं ।।२७।। धनादि ऐश्वर्य और करादि अंगों से सेवा नमस्कारादि क्रियापूर्वक पूजा करनेवाले क्रियायोगी कहलाते हैं ।।२८।। पूजायुक्त भोजन करनेवाले, बाह्येन्द्रिय जीतनेवाले, परद्रोह आदि से रहित तपयोगी कहलाते हैं ।।२९।। और इन सब बातों से युक्त सदा शुद्ध, सब कामना रहित, सदा जप में तत्पर, शान्तचित्त जपयोगी कहलाता है ।।३०।। षोडश उपचारों से शिवयोगियों की जो पूजा करें, वह मनुष्य क्रम से सालोक्यादि मुक्ति को प्राप्त होता है ।।३१।। हे ब्राह्मणो ! अब जप योग्य कहते हैं, आप सुनिये । तप करनेवालों को जप का विधान है, जिस जप से उनके पाप दूर हो जाते हैं ।।३२।। "नमः शिवाय" इस प्रकार यह चतुर्थ्यन्त पदयुक्त पंचतत्त्वात्मक मन्त्र जपे, स्थूलप्रणव रूप ही शिवजी का पंचाक्षर रूप है ।।३३।। पंचाक्षर के जप से ही मनुष्य को सब प्रकार की सिद्धियां प्राप्त होती हैं । आदि में ॐ कार लगाकर सदा पंचाक्षर मन्त्र जप करे ।।३४।। गुरु के आदेश को प्राप्त होकर, सुन्दर वस्त्र पहनकर, पृथ्वी पर बैठकर, शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी से कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी पर्यन्त जप करे ।।३५।। हे ब्राह्मणो ! माघ और भादों का महीना सबसे श्रेष्ठ है । एक बार भोजन करे, वाणी को रोके, जितेन्द्रिय रहे ।।३६।। अपने पालन करनेवालों की और पितरों की नित्य सुश्रूषा करनी चाहिये, सहस्र जप करने से शुद्धि होती है, अन्यथा ऋणी रहता है ।।३७।। शिवजी का स्मरण करते हुए पाँच लाख पंचाक्षर मन्त्र जपे । पद्मासन में स्थित कल्याण के देनेवाले, गंगा और चन्द्रकला से युक्त हैं ।।३८।। वाम ऊरू के ऊपर स्थित शक्ति और गणों से विराजित, मृगटंक धारण किये देव वरदायक तथा अभयदान देनेवाले हाथों से युक्त सदा अनुग्रह करनेवाले सदाशिवजी को स्मरण करते हुए पहले मन से शिवजी का पूजन करके, हृदय अथवा सूर्यमण्डल में पूजन करके ।।३९-४०।। पूर्व की ओर मुख करके शुद्धकर्म की इच्छा से पंचाक्षरी विद्या का जप करे । प्रातःकाल कृष्ण चतुर्दशी के दिन नित्यकर्म समाप्त करके ।।४१।। मनोरम पवित्र देश में नियम से मन शुद्ध करके पंचाक्षर मन्त्र का बारह सहस्र जप करे ।।४२।। और पत्नी सहित शैवब्राह्मणों का वरण करे और अपने श्रेष्ठगुरु शिवपार्वती स्वरूप का वरण करे ।।४३।। ईशान, पुरुष, अघोर, वाम, सद्योजातरूप पाँच शिवभक्त ब्राह्मणों की पूजा करके ।।४४।। और उनका

सत्कार करके शिवजी की पूजा का प्रारम्भ करे, विधिपूर्वक शिवजी की पूजा करके हवन करे।।४५।। अग्निमुख पर्यन्त अपने सूत्रों के अनुसार हवन करे। कपिला गौ के घृत की दश, सौ अथवा सहस्र आहुति अग्नि में स्वयं प्रदान करे अथवा शिवभक्तों से एक सौ आठ आहुति दिलावे।।४६-४७।। होम के अन्त में पूर्वोक्त गुरु को दक्षिणा दे, अथवा एक गौ, एक बैल दे और वह जो पूर्वोक्त ईशानादि स्वरूप के ब्राह्मण हैं उनका तथा साम्बगुरु का स्नानादि से सत्कार करे।।४८।। उनके अभिषेक से बचे जल से स्वयं स्नान करे, तो छत्तीस करोड़ तीर्थों में स्नान करने का फल मिलता है।।४९।। उन्हीं को भक्तिपूर्वक दशांग अन्न दे। परमेश्वर की शक्ति की बुद्धिपूर्वक गुरुपत्नी का पूजन करे। ईशानादि ब्राह्मणों को शिवभावना से पूजन करे।।५०।। शक्ति अनुसार परमान्न से उनका पूजन करके रुद्राक्ष, वस्त्र, वटक, पुए आदि से युक्त।।५१।। बलिदान करके बहुत भोजन का भोग लगावे, फिर देवेश की प्रार्थना करके जप को समाप्त करे।।५२।। इस प्रकार पुरश्चरण करके मनुष्य मन्त्रसिद्ध होता है। फिर पाँच लाख जप करने से सम्पूर्ण पाप क्षय हो जाते हैं।।५३।। अतललोक से प्रारम्भ करके सत्यलोक पर्यन्त पाँच लाख के जप से क्रम से उस-उस लोक के ऐश्वर्य को प्राप्त होता है।।५४।। और जो जप के मध्य में ही मृतक हो जाय तो भोग के अन्त में पृथ्वी पर जन्म हो जाता है और जापक होता है। फिर पाँच लाख का जप करने से ब्रह्म की समीपता प्राप्त होती है।।५५।। फिर पाँच लाख के जप से सारूप्य के ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। एक करोड़ मन्त्र जपने से साक्षात् ब्रह्मतुल्य हो जाता है।।५६।। इस प्रकार हिरण्यगर्भ के सायुज्य को प्राप्त होकर ब्रह्माजी की प्रलय तक यथेष्ट भोग को प्राप्त करता है।।५७।। पुनः कल्पान्तर होने में ब्रह्माजी का पुत्र होता है। फिर महातप से दीप्तिमान् होकर क्रम से मुक्त हो जाता है।।५८।। पृथ्वी आदि कार्य पञ्चमहाभूतों से यह लोक क्रम से निर्मित हुए हैं। पाताल से लेकर सत्यलोक तक सब चौदह लोक हैं।।५९।। सत्य से आगे वैकुण्ठलोक तक चौदह लोक विष्णुजी के हैं, क्षमालोक जहां सुन्दर वैकुण्ठ में कार्य विष्णुजी है।।६०।। वहां यह महाभोगी लक्ष्मी सहित रक्षा करके स्थित है। इससे ऊपर शुचिलोक पर्यन्त अट्ठाईस लोक हैं।।६१।। शुचिलोक में कैलास से ऊपर प्राणियों के हरनेवाले रुद्र स्थित हैं। उससे आगे अहिंसालोक तक छप्पन लोक स्थित हैं।।६२।। अहिंसालोक में स्थित होकर ज्ञानकैलासपुर में सबका तिरोभाव करके कार्येश्वर स्थित हैं।।६३।। अहिंसालोक के ऊपर कालचक्र, इसके उपरान्त कालातीत हैं, वहां कालचक्रेश्वर नाम से शिवजी स्थित रहते हैं।।६४।। और धर्म में स्थित होकर सबको काल से संयुक्त करते हैं। असत्य, अशुचि, हिंसा, निर्घृण।।६५।। यह असत्यादि चतुष्पाद कामरूपधारी शिवजी का अंश है, नास्तिक्यमयी लक्ष्मी दुःसंग और वेदबाह्य शब्द।।६६।। क्रोध का संग कृष्णवर्ण यह महामहिष के रूपवाले हैं, इनके अधिपति महेश्वरजी हैं, इन्हीं की कृपा से इनका

तिरोधान होता है ।।६७।। इसके आगे कर्मभोग, उससे आगे ज्ञानभोग, उसके आगे कर्ममाया, उससे आगे ज्ञानमाया ।।६८।। माया शब्द का अर्थ कहते हैं-(मा) लक्ष्मी ज्ञान को भोग को (या) प्राप्त होती है अर्थात् जो कर्मभोग अनुसार लक्ष्मी को प्राप्त कराके मोहित करती है, इसीसे उसे माया कहते हैं, अथवा-(मा) लक्ष्मी (या) ज्ञान भोग करने के निमित्त प्राणियों को प्राप्त होती है, इस कारण उसे माया कहते हैं ।।६९।। उसके आगे नित्यभोग, उसके पहले नश्वर, उससे पहले तिरोधान, उसके आगे तिरोधान नहीं है ।।७०।। उसके पहले पाशबन्ध, उसके आगे फिर बन्धन नहीं है। उसके पहले-पहले ही काम्यकर्म के अनुसार प्राणी लौटते हैं ।।७१।। उसके आगे निष्काम कर्म का भोग है, उसके पहले बिन्दुपूजा करनेवालों के लोक हैं ।।७२।। उसके ऊपर निष्काम लिंगपूजा करनेवाले प्राप्त होते हैं, उसके पहले-पहले शिवजी से अन्य देवताओं के पूजन करनेवाले रहते हैं ।।७३।। जो केवल एक शिवपूजा में ही निरत हैं, वे उसके ऊपर के लोक में जाते हैं। उससे पहले जीवकोटि और उसके आगे ईश्वरकोटि हैं ।।७४।। उसके पहले सांसारिक और उसके पीछे मुक्त स्थित है, उसके पहले प्राकृतद्रव्यों के पूजक ।।७५।। उसके आगे पौरुषद्रव्य के पूजक जाते हैं, उसके पहले शक्तिलिंग, उसके पीछे शिवलिंग ।।७६।। उसके पहले सगुणलिंग, उसके आगे निर्गुणलिंग, उसके आगे कल्पितलिंग, उसके आगे अकल्पितलिंग ।।७७।। उसके आगे आधिभौतिक बाह्यलिंग, उसके आगे आध्यात्मिक अन्तरंगलिंग, उसके आगे एक सौ बारह शक्तिलोक ।।७८।। उसके आगे बिन्दुरूप, उसके आगे नादरूप, उसके आगे कर्मलोक, उसके आगे ज्ञानलोक ।।७९।। उसके आगे नमस्कारलोक मद और अहंकार का नाशक है। उसके आगे जन, उसके आगे तिरोधान, जहां से फिर आगमन नहीं होता है ।।८०।। ज्ञान शब्द का अर्थ यही है कि, तिरोधान (अहंकार) का निवारण करना। उसके आगे आधिभौतिक पूजावाले रहते हैं ।।८१।। आध्यात्मिक पूजावाले इससे ऊपर जाते हैं, वे आत्मलिंग महालोक में तब तक सुख भोगते हैं ।।८२।। प्रकृति, महतत्त्व, अहंकार, पञ्चतन्मात्रा इन आठ बन्धनों को वहां स्थित होनेवाले जानते हैं। इस प्रकार से यह सम्पूर्ण लौकिक और वैदिक जानना ।।८३।। जो सत्यधर्म युक्त शिवजी की पूजा करते हैं, वह अधर्मरूपी महिषपर आरूढ़ होकर कालचक्र से तर जाते हैं ।।८४।। इसके ऊपर वृषभरूपी धर्म ब्रह्मचर्य के रूप धारण करके स्थित हैं, वह सत्यादि चार पादयुक्त शिवलोक के आगे स्थित है ।।८५।। उस वृष का वर्णन करते हैं- क्षमाश्रृङ्ग शमश्रोत्र वेदरूपी ध्वनि से विभूषित, आस्तिक्यरूपी नेत्र, वेदाक्षरमय निश्वासरूप, उदार मन बुद्धि से युक्त सबसे श्रेष्ठ वृष ।।८६।। पूजन, क्रिया, तप, ज्ञान, ध्यान रूपादि धर्म कारण ब्रह्म में स्थित है, उस क्रियारूप वृषभ धर्म में कालातीत स्थित रहता है, यह वृष शिवलोक के अग्रभाग में स्थित हैं ।।८७।। ब्रह्मा, विष्णु और महेशजी की आयु शिवजी

का दिन कहलाता है, उसके आगे न दिन है न रात्रि न, न जन्म है न मरण है।।८८।। फिर कारण सत्यलोक तक और कारणब्रह्मा का लोक गन्धादि भूतों से ऊपर रहता है।।८९।। चौदह लोक सूक्ष्म गन्धरूप से स्थित हैं, फिर कारणविष्णु के चौदह लोक स्थित हैं।।९०।। फिर कारणरुद्र के अट्ठाइस लोक हैं, फिर उसके ऊपर कारणईश के छप्पन लोग हैं।।९१।। उसके आगे शिवसम्मत ब्रह्मचर्यलोक है, वहीं पञ्चावरण संयुक्त ज्ञानकैलास है।।९२।। उसमें पाँच मण्डल संयुक्त पञ्चब्रह्म कला सहित आदिशक्ति से शोभित आदिलिंग विराजता है।।९३।। यही परमात्मा शिवजी का शिवालय है, परशक्ति के सहित यहां ही परमेश्वर स्थित रहते हैं।।९४।। सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव, अनुग्रह इन पाँच कार्यों में यह सच्चिदानन्द स्वरूप सदा प्रवीण है।।९५।। जो दान धर्म आचरण करता है, उसके ऊपर सदा अनुग्रह करते हैं, वह समाधि आसन में स्थित स्वात्माराम (अत्यानन्द आनन्दस्वरूप) विराजते हैं।।९६।। उनका दर्शन कर्म और ध्यानादि क्रम से होता है, नित्यकर्म में यजन करने से शिवकर्म में प्रीति होती है।।९७।। क्रियादि शिवकर्मों में से शिवजी का ज्ञान सिद्ध करना चाहिये, उनके दर्शन करते ही सब मुक्त हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं।।९८।। आत्मस्वरूप का जो अतिशय आनन्द है उसी को मुक्ति कहते है, वह क्रिया तप, जप, ज्ञान, ध्यान, धर्मों में स्थित है।।९९।। शिवजी के दर्शन करने से स्वात्मारामत्व की प्राप्ति होती है, जैसे सूर्य अपनी किरणों से अशुद्धि दूर करते हैं।।१००।। उसी प्रकार कृपा करने में विचक्षण शिवजी अज्ञान दूर करते हैं, अज्ञान निवृत्त होने से शिवज्ञान की प्राप्ति होती है।।१०१।। शिवजी के ज्ञान से अपने स्वरूप आत्माराम को प्राप्त हो जाता है, आत्माराम की प्राप्ति में यह मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है।।१०२।। सौ लाख जपने से ब्रह्मपद और फिर सौ लाख जपने से विष्णुजी के पद की प्राप्ति होती है, इसमें सन्देह नहीं।।१०३।। फिर सौ लाख जपने से रुद्रपद और फिर सौ लाख जपने से ऐश्वर्य के पद की प्राप्ति होती है।।१०४।। फिर सावधान होकर इसी प्रकार का जप करने से शिवलोकादि से प्रादुर्भूत हुए कालचक्र को।।१०५।। फिर काल पञ्चचक्र को क्रम से प्राप्त होता है। सृष्टि और मोह, ब्रह्मचक्र, भोग और मोह वैष्णवचक्र।।१०६।। कोप और मोह रौद्रचक्र और भ्रमण नाम ईश्वरचक्र, ज्ञान और मोह शिवचक्र इस प्रकार यह पाँच चक्र कहलाते हैं, ऐसा पण्डितजन कहते हैं।।१०७।। फिर दश करोड़ जप से कारणब्रह्म की प्राप्ति होती है, फिर दश करोड़ जप से तत्पद ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।।१०८।। इस प्रकार क्रम से विष्णुजी आदि के पद को प्राप्त होकर क्रम से उन महात्माओं के ऐश्वर्य पद को प्राप्त होता है।।१०९।। फिर जितेन्द्रिय होकर एक सौ पाँच करोड़ जप करके पाँच आवरणों से बाहर शिवलोक को प्राप्त हो जाता है।।११०।। वहां राजमण्डप है और उत्तम नन्दीस्थान है और तपरूप वृषभ भी वहीं दीखता है।।१११।। वह पाँच आवरणों से परे सद्योजात का स्थान है, चौथे आवरण में

वामदेव का स्थान है ।।११२।। पीछे तीसरे आवरण से परे अघोर का स्थान है, साम्बपुरुष का स्थान दूसरे आवरण में है ।।११३।। ईशान पर का स्थान प्रथमावरण कहलाता है, पीछे ध्यानधर्म का स्थान पाँचवां मण्डप है।।११४।। बलिनाथ का शिवजी का स्थान पूर्ण अमृत का देनेवाला है, यह पाँचवा मण्डप है, पीछे चौथा मण्डप चन्द्रशेखर की मूर्तियुक्त है ।।११५।। सोमस्कन्द का स्थान तृतीय मण्डप और दूसरा नृत्यमण्डप आस्तिक पुरुषों द्वारा कहा गया है ।।११६।। प्रथम मण्डप में मूलमाया का सुन्दर स्थान है, उसके परे गर्भगृह, पीछे लिंग का स्थान है ।।११७।। उसके पीछे नन्दि का स्थान है, नन्दिस्थान के आगे शिववैभव को कोई नहीं जानता, वहां नन्दिकेश्वरजी बाहर स्थित होकर शिवपञ्चाक्षर मन्त्र की उपासना करते हैं ।।११८।। इस प्रकार सनत्कुमारजी और नन्दीश्वरजी के संवाद को गुरुक्रम से मैंने जाना है। इसके आगे शिवजी से अनुभावित परमस्थान परमानन्दरूप होकर स्वयं जाना जाता है ।।११९।। ऐसा महात्माओं ने कहा है कि, शिवलोक का वैभव साक्षात् शिवजी की कृपा से ही जाना जाता है और किसी प्रकार से नहीं ।।१२०।। इस प्रकार जितेन्द्रिय ब्राह्मण क्रम से मुक्त हो जाते हैं। अब आप दूसरे क्षत्रियादिकों का क्रम सुनिये ।।१२१।। ब्राह्मणों को गुरु के उपदेश से अन्त में नमः लगाकर पाँच लाख जप करना चाहिये, इस प्रकार करने से मनुष्य की आयु बढ़ती है।।१२२।। स्त्री इसे पाँच लाख जपकर पुरुषरूप को प्राप्त होकर क्रम से मुक्त हो जाती है अर्थात् पाँच लाख जपने से स्त्रीभाव दूर हो जाता है ।।१२३।। पाँच लाख से क्षत्रिय का क्षत्रीपन दूर होकर फिर पाँच लाख जपने से वह ब्राह्मण के तुल्य हो जाता है वा परजन्म में ब्राह्मण हो जाता है ।।१२४।। फिर जप करने से मन्त्रसिद्धि और क्रम से यह पुरुष मुक्त हो जाता है, पाँच लाख जप से वैश्य वैश्यत्व से छूटता है ।।१२५।। फिर पाँच लाख मन्त्र जपने से वह मन्त्रक्षत्रिय कहलाता है, फिर पाँच लाख जपने से क्षत्रियत्व से छूटता है ।।१२६।। फिर पाँच लाख जपने से वह मन्त्रब्राह्मण कहलाता है। इसी प्रकार शूद्र अन्त में नमः लगाकर पचीस लाख मन्त्र जपे ।।१२७।। तो मन्त्रब्राह्मणता को प्राप्त होकर शुद्ध हो जाता है। स्त्री, पुरुष, ब्राह्मण अथवा अन्य कोई हो, सब शुद्ध हो जाते हैं ।।१२८।। आतुर पुरुष नमः चाहे आदि में लगाकर जप करे। गुरु को उचित है कि, स्त्री और शुद्र को प्रणव रहित मन्त्र का उपदेश करे ।।१२९।। साधक जब पाँच लक्ष जप कर चुके तो शिवजी की प्रीति के निमित्त महाअभिषेक और नैवेद्य करके शिवजी के भक्तों का पूजन करे ।।१३०।। शिवभक्त की पूजा करने से शिवजी महाप्रसन्न होते हैं। शिवजी में और शिवभक्त में कुछ भेद नहीं है, वह साक्षात् शिवस्वरूप ही होते है ।।१३१।। शिवस्वरूप मन्त्र की धारणा करने से शिवरूप ही हो जाता है। शरीर में शिवभक्ति होने से वह शिवभक्त प्रधान शिवस्वरूप हो जाता है ।।१३२।। वेदोक्त सम्पूर्ण क्रिया से युक्त शिवभक्त सब क्रियाओं को जानते हैं, जितना–जितना जिसने क्रम से शिवजी का

मन्त्र जप किया है ।।१३३।। उतनी ही उसके देह में शिवजी की सन्निकटता प्राप्त होती है, इसमें सन्देह नहीं और शिवभक्त स्त्रियां देवीलिंगरूप हो जाती हैं ।।१३४।। वे जितना मन्त्र जपती हैं, उतनी ही उनके देह में भगवती की निकटता प्राप्त होती है। जो बुद्धिमान् शिवजी का पूजन करते हैं, वे स्वयं शब्दरूप के भागी हो जाते हैं ।।१३५।। स्वयं शिवरूप होकर पराशक्ति का पूजन करे, शक्ति और बेरलिंग को लिंगकर माया रहित पूजन करे ।।१३६।। शिवलिंग को शिवस्वरूप और आत्मा को शक्तिरूप और शक्तिलिंग को देवी और अपने को शिवस्वरूप मानकर ।।१३७।। शिवलिंग को नामरूप और शक्ति को बिन्दुरूप आकाराद्यात्मक प्रधानभूत ॐ कार के समीपभाव से परस्पर लिंगशक्ति जान कर ।।१३८।। शिवजी की ही चिन्ता करता हुआ शिव और शक्ति का ध्यान करे। शिवमन्त्ररूप शिवमन्त्रात्मक शिवभक्तों को ।।१३९।। सोलह प्रकार से पूजन करे तो इष्ट की प्राप्ति होती है, शिवभक्त और लिंगधारियों के पूजन करने से ही ।।१४०।। विद्वान् को आनन्द की प्राप्ति होती है और शिवजी प्रसन्न होते है। शिवजी के भक्तों को सदा स्त्री सहित भोजन आदि से पूजन करे, वे पाँच, दश अथवा सौ हों। धन, देह और मन्त्र में शिवभावना कपट रहित करे ।।१४१-१४२।। तब वह शिवशक्ति स्वरूप होकर फिर पृथ्वी पर जन्म नहीं लेता हैं। नाभी से नीचे ब्रह्माजी का और नाभी से कण्ठ पर्यन्त विष्णुजी का स्थान है और शिवभक्त का मुख शिवलिंग स्वरूप है, इस प्रकार शिवभक्त का शरीर शिवस्वरूप है। मृत हुए दाहादि युक्त अथवा दाहादि रहित मृतक हुए ।।१४३-१४४।। पितरों के उद्देश्य से आदि पितर शिवजी का पूजन करे, पश्चात् आदिमाता शिवशक्ति का पूजन करके ।।१४५।। पितरलोक को प्राप्त होकर मर कर क्रम से मुक्त हो जाता है। कृपा युक्त दश ब्राह्मणों से एक अधिक तप करनेवाला विशेष है ।।१४६।। सौ तपस्वियों से एक जप करनेवाला श्रेष्ठ है, सहस्र जप करनेवालों से एक शिवज्ञानी श्रेष्ठ है ।।१४७।। लाख शिवज्ञानियों से ध्यानयोगी श्रेष्ठ है, करोड़ ध्यानयोगियों से समाधिवाला अधिक है ।।१४८।। इनकी उत्तरोत्तर श्रेष्ठता से और उत्तरोत्तर पूजन से जो फल मिलता है, उसे विद्वान् भी नहीं जान सकते ।।१४९।। इस कारण शिवभक्त की महिमा को कौन मनुष्य जान सकता है ? शिवभक्त का पूजन ही शिव और शक्ति का पूजन है ।।१५०।। जो मनुष्य भक्ति से पूजन करता है, वह शिवरूप होकर शिवजी को प्राप्त होता है। जो इस वेदसम्मत अध्याय को अर्थ सहित पढ़ता है ।।१५१।। वह ब्राह्मण शिवज्ञानी होकर शिवजी के संग आनन्द करता है। हे मुनिश्वरो ! विशेष जाननेवाले को यह अध्याय शिवभक्तों को सुनाना चाहिये ।।१५२।। हे ब्राह्मणो ! उसे शिवजी के प्रसाद और कृपा से सिद्धि हो जाती है ।।१५३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे विद्येश्वरसंहिता भाषायां सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।

*****

अठारहवाँ अध्याय

ऋषि बोले- हे सर्वार्थ जाननेवाले सूतजी! आप हमसे बन्ध और मोक्ष का स्वरूप कहिये, सूतजी बोले- बन्ध और मोक्ष के उपाय को आपसे कहते हैं, आप आदर से सुनिये ।।१।। प्रकृति आदि आठ बन्धनों से बन्धन के कारण आत्मा की जीव संज्ञा है और इन प्रकृति आदि आठ बन्धनों से छूटने से मुक्त हो जाता है ।।२।। प्रकृति आदि को वश में करने का नाम मोक्ष है, बन्धा हुआ जीव और निर्मुक्त हुआ मुक्त होता है ।।३।। प्रकृति के आगे बुद्धि और बुद्धि के आगे गुणात्मक अहंकार और पञ्चतन्मात्रा यह सब आठ प्रकृतियां कहलाती हैं।।४।। इन्हीं प्रकृति आदि आठ से यह देह और देह से किये जाने के नाम कर्म हैं, फिर कर्म से देह है, इस प्रकार जन्मकर्म बारंबार होते हैं ।।५।। स्थूल, सुक्ष्म और कारण यह तीन प्रकार के शरीर हैं, स्थूल व्यापार देनेवाला और सूक्ष्म इन्द्रिय का भोग देनेवाला है ।।६।। और कारणशरीर जीव के कर्मानुसार आत्मा के भोग के निमित्त है, कर्मों से ही सुख-दुःख पाप-पुण्यों के द्वारा प्राप्त होते हैं ।।७।। इस कारण यह जीव कर्मरूपी रस्सी से बारंबार बन्धकर कर्मों से तीनों शरीर सहित चक्र के समान बारंबार सदा भ्रमण करता है ।।८।। चक्र भ्रमण के दूर करने के लिये चक्रकर्ता का पूजन करे। प्रकृति आदि यह आठ महाचक्र हैं, इनसे परे शिवजी हैं ।।९।। वे प्रकृति से महेश ही चक्र के कर्ता हैं, जिस प्रकार वृक्षों के थाले जल को पान करके उसे वृक्षों में उगलते हैं ।।१०।। उसी प्रकार शिवजी प्रकृति आदि को वश में करके स्थित हैं, सबके वशीभूत करने से वह शिव कहलाते है। शिवजी ही सर्वज्ञ परिपूर्ण और निःस्पृह है ।।११।। वह अपनी सर्वज्ञता से तृप्त अनादि बोध है और स्वतन्त्रता से नित्य जागरित शक्ति है, उन महेश की अनन्त शक्ति हैं, उनके मन के षड्गुणैश्वर्य को वेद जानता है ।।१२।। इस कारण शिवजी के ही प्रसाद से प्रकृति आदि वश में होती है। शिवजी की प्रसन्नता प्राप्त होने के लिये शिवजी का ही पूजन करना चाहिये ।।१३।। इच्छा रहित और परिपूर्ण की पूजा किस प्रकार हो सकती है? इस कारण शिवजी के उद्देश्य से जो कर्म किया जाता है, वही शिवजी को प्रसन्न करनेवाला होता है ।।१४।। बेरलिंग में वा भक्तजन में शिवभावना करके पूजा करनी चाहिये। काया, मन, वचन और धन से भी पूजा करे ।।१५।। पूजा करने से वह महेश प्रकृति से परे परम शिवजी पूजा करनेवाले के ऊपर अवश्य प्रसन्न होते हैं, इसमें सन्देह नहीं ।।१६।। शिवजी के प्रसाद से कर्मादिक क्रम से अपने वश में हो जाते हैं, जिस समय कर्म से प्रकृति पर्यन्त सम्पूर्ण अपने वश में हो जायें ।।१७।। उसी समय वह भुक्त और आत्माराम कहा जाता है। परमेश्वर के प्रसाद

से जिस समय कर्म देह अपने वश में हो जाता है ।।१८।। उसी समय शिवलोक में वास होता है अर्थात् सालोक्य की प्राप्ति होती है और तन्मात्रा को वश में करने से साम्ब की सामीप्यता को प्राप्त होता है ।।१९ ।। तत्पश्चात् क्रिया आयुधों से शिवजी की सायुज्यता को प्राप्त होता है अर्थात् त्रिशूलादि से शिवजी की समानता को प्राप्त होता है। महाप्रसाद के लाभ से बुद्धि भी अपने वश में होती है ।।२०।। प्रकृति का कार्य बुद्धि है, वह सार्ष्टि कहलाती है, फिर महाप्रसाद से प्रकृति वश में हो जाती है ।।२१।। ऐसा होने से शिवजी का मानस ऐश्वर्य विना ही यत्न से ही प्राप्त हो जाता है। सर्वज्ञता आदि शिवजी का ऐश्वर्य प्राप्त करके अपने आत्मा में विराजमान होता है ।।२२।। वेदशास्त्र के जाननेवाले इसी को सायुज्यमुक्ति कहते हैं, इसी प्रकार लिंगादि पूजा करनेवालों को क्रम से स्वयं मुक्ति हो जाती है ।।२३।। इस कारण शिवजी की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिये क्रियादि से शिवजी की पूजा करे। शिवजी की क्रिया, शिवजी का तप, शिवमन्त्र का जप ।।२४।। शिवज्ञान, शिवध्यान यह उत्तरोत्तर अभ्यास करता रहे। जब तक शयन न करे, तब तक शिवजी का ही ध्यान करता रहे। इस प्रकार मरणपर्यन्त समय बिताये ।।२५।। और पूर्वोक्त मन्त्रों द्वारा फूल चढ़ाकर शिवजी का अर्चन करे तो मङ्गल होता है। ऋषि बोले– हे सुव्रत ! लिंगादि में शिवपूजा का विधान वर्णन कीजिये ।।२६।। सूतजी बोले– हे ब्राह्मणो ! सुनिये, हम लिंगादि का क्रम से पूजाविधान कहते हैं। प्रथम सब कामनाओं को प्रदान करनेवाला प्रणवलिंग है ।।२७।। वह सूक्ष्म प्रणवरूप निष्कल है और स्थूललिंग कलायुक्त है, उसी को पञ्चाक्षर कहते हैं ।।२८।। उन्हीं की पूजा का नाम तप है। यह दोनों साक्षात् मोक्ष के देनेवाले हैं। पुरुषार्थ से प्रकृति के बनाये हुए बहुत से लिंग है ।।२९।। उनको विस्तार से शिवजी ही जानते हैं, दूसरा कोई नहीं जानता, परन्तु पृथ्वी विकार के लिंग मैं मति अनुसार आपसे कहता हूँ।।३०।। स्वयम्भूलिंग १, बिन्दुलिंग २, प्रतिष्ठा किये लिंग ३, चरलिंग ४, गुरुलिंग ५ ।।३१।। देवता और ऋषियों के तप से सन्तुष्ट होकर उनके निकट प्राप्त होने के लिये पृथ्वी के अन्तर्गत बीज और नादरूप से रहनेवाले शिवजी ।।३२।। जिस प्रकार अंकुर पृथ्वी को भेदकर निकलते हैं, उसी प्रकार पृथ्वी के अन्तर से निकले हुए लिंग को स्वयम्भू लिंग कहते हैं ।।३३।। उस लिंग की पूजा करने से स्वयं ज्ञान की वृद्धि होती है। सुवर्ण, चांदी, पृथ्वी अथवा वेदिका में ।।३४।। अपने हाथ से लिखे हुए शुद्ध प्रणवयुक्त मन्त्र को और लिंग को यन्त्र पर लिखकर उसकी प्रतिष्ठा और आवाहन करे ।।३४–३५।। यही बिन्दुनादमय लिंग स्थावर और जंगमरूप है, भावना से ही इसमें निःसन्देह शिवजी का दर्शन होता है ।।३६।। जिसमें शिवजी का विश्वास करे, उसमें ही वह निःसन्देह फल देते हैं। अपने हाथ से लिखे यन्त्र स्थावरादि अथवा कृत्रिम स्थान में लिखकर ।।३७।। आवाहन कर सोलह प्रकार से शिवजी का पूजन करे तो ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है और अभ्यास

करने से ज्ञान भी होता है ।।३८।। जो देवता तथा ऋषियों ने अपनी आत्मसिद्धि करने के लिये अपने हाथ से शुभक्षेत्र में जो शुभभावना से मन्त्रपूर्वक लिंग स्थापित किया है, वही लिंग पौरुष अर्थात् प्रतिष्ठित कहलाता है ।।३९-४०।। उस लिंग की नित्य पूजा करने से पौरुष ऐश्वर्य मिलता है। बड़े ब्राह्मणों और राजाओं ने महाधनों से शिल्पविद्या से लिंग की कल्पना करके जो मन्त्र द्वारा स्थापित किया है, जो मनुष्यों ने प्रतिष्ठित किया है, वह प्राकृत है, उसका पूजन करने से प्राकृत ऐश्वर्य प्राप्त हो जाता है ।।४१-४२।। प्राकृतलिङ्ग से पौरुषलिङ्ग श्रेष्ठ है, कारण कि जो बलयुक्त और नित्य है, उसे पौरुषलिंग कहते हैं, जो दुर्बल और अनित्य है, वह प्राकृतलिंग है ।।४३।। चरलिंग का वर्णन करते हैं- लिंग नाभि, जिह्वा, नासाग्र, शिखा के क्रम से कटि से आदि लेकर हृदय, आनन, तीनों स्थानों में आध्यात्मिक लिंग की कल्पना चरलिंग है ।।४४।। पर्वत पर पौरुषलिंग और पृथ्वी पर प्राकृतलिंग है, वृक्षादि पौरुष और गुल्मादि में प्राकृतलिंग जानना ।।४५।। साठि धान्यात्मक प्राकृत और शालि तथा गेहूँ पौरुष से जानने। पौरुष से ऐश्वर्य और अणिमादि अष्टसिद्धियों की प्राप्ति होती है ।।४६।। और अच्छी स्त्री तथा धनादि देनेवाला प्राकृतलिंग है। प्रथम चरलिंगों में रसलिंग कहा है ।।४७।। रसलिंग ब्राह्मण को सम्पूर्ण मनोरथों का देनेवाला है और बाणलिंग क्षत्रियों को महाराज्य पद का देनेवाला है ।।४८।। सुवर्णलिंग वैश्यों को महाधन का स्वामी करता है, शिवलिंग शूद्रों को शुद्ध करनेवाला है ।।४९।। स्फटिक और बाणलिंग सबको सब कामना देनेवाला है। जो अपने निमित्त कहा हुआ लिंग है, उसके अभाव में दूसरे लिंग के पूजन में दोष नहीं ।।५०।। सधवा स्त्रियों को पार्थिवलिंग की पूजा करनी चाहिये, विशेष करके प्रवृत्ति मार्गरत सधवा और विधवा स्त्रियों को स्फटिकलिंग की पूजा करनी चाहिये, परन्तु यह भोग की इच्छावालियों के लिये विधान है ।।५१।। और जो संसार की कामना से निवृत्त हैं उन्हें रसलिंग का पूजन करना चाहिये। हे सुव्रत! बालक, युवा, वृद्धावस्था में स्त्रियों को स्फटिकलिंग सम्पूर्ण कामनाओं का देनेवाला है। संसारभोग की इच्छावालियों को पीठपूजा सदा मङ्गल देनेवाली है ।।५२-५३।। योग्य गुरु के सहित संसारसुखवालों को सब प्रकार से पूजा करनी चाहिये। अभिषेक के अन्त में शालीअन्न सहित नैवेद्य देना चाहिये ।।५४।। पूजा के अन्त में लिंग को सम्पुटपात्र में रखकर घर में एकान्त स्थापन करे। हाथ की पूजा से निवृत्त हुए उपासकों को भोजन निवेदन करना चाहिये ।।५५।। निवृत्तों के निमित्त सूक्ष्मलिंग की पूजा कही है। विभूति से अर्चन करके विभूति ही निवेदन करे ।।५६।। पूजा करके लिंग को सदा शिर पर धारण करे, लोक वेद शिवाग्नि से हुई विभूति तीन प्रकार की है ।।५७।। लौकिक अग्नि की भस्म द्रव्यशुद्धि के निमित्त लेनी, मृत्तिका, काठ, लोहरूप, धान्य ।।५८।। तिलादि द्रव्य, वस्त्रादि तथा बासी वस्तु की शुद्धि लौकिकाग्नि से होती है ।।५९।। कुत्ते आदि से दूषित हुई वस्तु की

भी भस्म से शुद्धि हो जाती है। सजल निर्जल भस्म से यथायोग्य शुद्धि करे। जैसी वस्तु हो उसके अनुसार ही भस्म से शुद्धि करे।।६०।। गार्हपत्याग्नि की भस्म वेदाग्नि की भस्म है, कर्मान्त में उसे धारण करना चाहिये। मन्त्र और क्रिया से उत्पन्न हुई कर्माग्नि ही भस्म रूप धारण किये हैं।।६१।। उस भस्म के धारण करने से वे कर्म अपनी आत्मा में आरोपित होते हैं। अघोरमन्त्र से बेलकाष्ठ की भस्म करे।।६२।। उसी का नाम शिवाग्नि है। उससे जलाये हुए से शिवाग्निभस्म होती है। कपिला के गोबर से अथवा किसी गौ के गोबर से शमी, पीपल, ढाक, वट, आरग्वध (अमलतास), बेल इनको शिवाग्नि से जलाने से शिवाग्नि से उत्पन्न हुई भस्म शुद्ध होती है।।६४।। अथवा शिवमन्त्र उच्चारण करके दर्भाग्नि से काठ को जलाने से उत्पन्न हुई भस्म को वस्त्र से अच्छी प्रकार छानकर घड़े में भर रखे।।६५।। दीप्ति के निमित्त भस्म ग्रहण करनी चाहिये, उससे मान्य और पूजनीय होता है। शिवजी ने पूर्वकाल में भस्म शब्द का अर्थ इस प्रकार कहा है।।६६।। जिस प्रकार राजा अपने राज्य से साररूप करके ग्रहण करता है, जैसे मनुष्य धान्यादि को जलाकर सार ग्रहण करते हैं।।६७।। जिस प्रकार जठराग्नि भक्ष्यादि अनेक प्रकार के पदार्थों को भस्म करके उसके सार से देहपुष्ट करती है।।६८।। उसी प्रकार प्रपंचकर्ता परमेश्वर शिवजी अपने अधीन प्रपंच को जलाकर अपने अधिष्ठान प्रपंच को ग्रहण करके सारग्रहण करते हैं।।६९।। प्रपंच को भस्म करके उस भस्म को शिवजी अपने में आरोपण करते हैं। उद्धूलन विभूति मलने के बहाने से ही उन्होंने जगत् का सार ग्रहण किया है।।७०।। अपने शरीर में ही उन्होंने अपना रत्न स्थापित किया है। आकाश के सार से केश, वायु के सार से मुख।।७१।। अग्नि के सार से हृदय, जलों के सार से कटि, पृथ्वी के सार से जानु इसी प्रकार उनका सब अंग है।।७२।। यह त्रिपुण्ड्र ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र का सार है और तिलकरूप से ललाट के अन्त में महेश्वरजी हैं।।७३।। जिस कारण से यह महेश्वरजी (भं) जगत् की वृद्धि के निमित्त शोभित होते हैं और इस सब सार को स्वयं समर्थ मानते हैं, इससे उन्होंने सब प्रपंच का सार वशीभूत कर लिया है।।७४।। इस कारण इसे वश करनेवाला और कोई नहीं, केवल शिवजी ही हैं। जिस प्रकार हिंसक सिंह सब मृगों की हिंसा करता है।।७५।। उसका कोई हिंसामृग (मारनेवाला) नहीं है, इसी कारण वह सिंह कहलाता है। इसी प्रकार (शं) नित्यसुख आनन्दरूप (इ) पुरुष (व) शक्ति अमृतस्वरूप इन तीनों को मिलाकर 'शिव' शब्द होता है अर्थात् नित्य आनन्दस्वरूप शक्तिमान् अमृतमय पुरुष को शिव कहते हैं, यह शिव शब्द का अर्थ हुआ। इस कारण इसी लक्षण से अपनी आत्मा को शिवरूप करके शिवजी की पूजा करे।।७६-७७।। उससे पहले भस्म लगावे, त्रिपुण्ड्रधारण करे, पूजा समय में जल सहित भस्म धारण करे और शुद्धि के निमित्त निर्जल धारण करे।।७८।। दिन में, रात में, स्त्री या पुरुष कोई भी हो पूजा के निमित्त सजल भस्म करके त्रिपुण्ड्र

धारण करे ।।७९।। जो सजल भस्म से त्रिपुण्ड्र धारण कर पूजा करता है, उसे शिवपूजा करने का पूर्ण फल मिलता है, यह निश्चय है ।।८०।। शिवमन्त्र से भस्म धारण करके उत्तम आश्रमी होता है, शिवजी का परायण होने से शिवाश्रमी कहलाता है ।।८१।। जिसकी शिवव्रत में निष्ठा है, उसे अशौच और सूतक नहीं लगता। ललाट के अग्रभाग में सफेद भस्म और मृत्तिका का तिलक धारण करे ।।८२।। तिलक अपने हाथ से वा गुरु के हाथ से धारण करे, यह शिवभक्त का लक्षण है। जो (गु) गुणों को शिष्य से (रु) आरोपण करता है, उसका नाम गुरु है, यही गुरु शब्द का अर्थ है ।।८३।। अथवा जो विकार रहित राजस गुणों को दूर करता है वह गुणातीत परमशिव गुरुरूप कहा गया है, गुरु शिवरूप है ।।८४।। अथवा जो विश्वस्त शिष्यों के तीनों गुणों दूर करके शिवजी का बोधन करता है, उसी का नाम गुरु है ।।८५।। इस कारण पण्डित गुरु का शरीर पूज्यलिंग है, गुरुलिंग की पूजा ही गुरुसुश्रूषा है ।।८६।। मन, वचन, कर्म से गुरु की सेवा करे तो शास्त्र की प्राप्ति होती है। जो कुछ गुरु ने आदेश दिया है, वह शक्य हो वा अशक्य हो ।।८७।। प्राण या धन के द्वारा सम्पादन करने से पवित्र आत्मा हो जाता है, इसी कारण जो शासन के योग्य हो उसी का नाम शिष्य है ।।८८।। सुशिष्य शरीरादि निमित्त सब गुरु के निकट प्रदान करके भोजन की सामग्री पहले उन्हें निवेदन करके फिर उनकी आज्ञा से भोजन करे ।।८९।। शिष्य सदा शिष्यत्त्व के योग्य होने से पुत्र ही है, इस कारण प्रमाण यह है कि, जिह्वारूपी लिंग से मन्त्ररूपी वीर्य कर्णरूपी योनि में प्रवेश करने से ।।९०।। यह उत्पन्न होता है, इसी कारण यह मन्त्रपुत्र कहलाता है। उसे उचित है कि, गुरुरूप पिता का सदा पूजन करे। उत्पन्न करनेवाला पिता पुत्र को संसार में डालता है ।।९०।। और ज्ञानदाता गुरुरूप पिता संसार से तार देता है। इस प्रकार दोनों में अन्तर जानकर गुरुरूप पिता का विशेष पूजन करे ।।९२।। और अपने उत्पन्न हुए धनों से गुरु की अंगसुश्रूषा करे। पाँव से लेकर शिर केशपर्यन्त गुरु का सम्पूर्ण शरीर शिवलिंग स्वरूप है ।।९३।। उनका धनरूप पादुकादि चरण दबाने और अभिषेक नैवेद्य और भोजन से सत्कार करे ।।९४।। गुरु की पूजा से ही परमात्मा शिवजी की पूजा हो जाती है। गुरु की पूजा से बचा हुआ सब द्रव्य आत्मशुद्धि करनेवाला है ।।९५।। जल और अन्नादि से बने हुए पदार्थ गुरुपूजा से अवशेष रहने से शिवजी की उच्छिष्टता के समान हैं, वह शिष्यों तथा शिवभक्तों को ग्रहण करना चाहिये। हे ब्राह्मणो! वह भोजन के योग्य है ।।९६।। गुरु की अनुमति बिना ग्रहण की गई कोई भी वस्तु चोरी की गई वस्तु के समान है। गुरु भी विशेष ज्ञाता होना चाहिये, उसे यत्नपूर्वक ग्रहण करे ।।९७।। अज्ञान को दूर करना ही गुरु का साध्य है, सो विशेष ज्ञानी गुरु ही अज्ञान दूर कर सकता है। प्रथम कर्मपूर्ति के निमित्त विघ्न शान्त करना चाहिये ।।९८।। निर्विघ्न और पूर्ण अंग से किया हुआ कर्म ही सफल होता है, इस कारण सब कर्मों के प्रारम्भ में गणेशजी का

पूजन करना चाहिये ।।९९।। सब बाधा शान्त करने के निमित्त पण्डित सर्व देवताओं का यजन करे, ज्वरादिक और ग्रन्थिरोग बाह्य और आध्यात्मिकादि सम्पूर्ण बाधाओं को निवृत्त करनेवाला है ।।१००।। पिशाच जम्बुकादि, वाल्मीकादि का उपद्रव और अकस्मात् ही गोधादि जन्तुओं का पात ।।१०१।। घर में कच्छप, सर्प, स्त्री दुर्जनों का दर्शन, वृक्ष, नारी और गवादि का प्रसव देखना ।।१०२।। इनके दर्शन से भविष्य में दुःख होना जाना जाता है, इस कारण यह भौतिक पातक होते हैं। अपवित्र वस्तु, वज्रपात, महामारी, ज्वरमारी, विषूचिका (हैजा), गौमारी, वसन्तरोग, जन्मनक्षत्र पर ग्रहों का आगमन, संक्रान्ति ग्रहयोग अपनी राशि पर होना ।।१०३-१०४।। और स्वप्न का देखना यह सब आधिदैविक कहलाते हैं। मृतक चाण्डाल, पतित का स्पर्श होना अथवा चाण्डालादि अन्तरगृह में प्रवेश करें ।।१०५।। ऐसे अरिष्ट होने से भी होनहार दुःख सूचित होता है, बुद्धिमान् को उचित है कि, उस दोष की शान्ति के लिये शान्तियज्ञ का अनुष्ठान करें ।।१०६।। देवालय, गोठ, यज्ञस्थान, गृहांगण ऊँचे स्थान में दो हाथ परिमाण की वेदी बनाकर, उसे अलंकृत करके ।।१०७।। भार मात्र (आठ हजार तोले) व्रीही (जौ) धान्य स्थापन करके फैलावे, बीच में कमल लिखे और फिर दिशाओं में कमल लिखे ।।१०८।। सूत से लपेटे नये घड़े को धूप देकर बीच में उस महाकुम्भ को स्थापन करके दिशाओं के स्थान में भी कुम्भ स्थापन करें ।।१०९।। नाल सहित आम की कूंची आदि को आठ कलशों में पञ्चद्रव्य (लौंग, कंकोल, अगर, जायफल, कपूर) सहित मन्त्र पढ़कर जल से पूर्ण करें ।।११०।। और क्रम से नीलादि नवरत्नों को भी उसमें डाले और कर्म के जाननेवाले आचार्य को स्त्री सहित वरण करे ।।१११।। उस घट में विष्णुजी की और इन्द्रादि की सुवर्ण की प्रतिमाओं को रखे, पूर्णपात्र युक्त उस मध्यम कुम्भ में विष्णुजी का आवाहन करके पूजा करें ।।११२।। पूर्वादि दिशाओं में इन्द्रादि देवताओं का मन्त्रपूर्वक क्रम से पूजन करे, उन-उन देवताओं के नाम चतुर्थी विभक्ति युक्त लेकर अन्त में नमः लगावे ।।११३।। आचार्य से आवाहनादि सब कृत्य करावे। आचार्य उन विष्णुजी आदि के मन्त्रों को ऋत्विजों के सहित सौ बार जपे ।।११४।। जप के अन्त में कुम्भ के पश्चिम भाग में हवन करें। करोड़, लाख, सहस्र अथवा १०८ एक सौ आठ आहुति दे ।।११५।। एक दिन अथवा नौ दिन अथवा चालीस दिन काल देश के अनुसार यथायोग्य जप होम करे ।।११६।। शान्ति के लिये शमी का होम, वृद्धि के निमित्त पलाश का होम और समिधा, अन्न, घृत के पदार्थ नाममन्त्र उच्चारण करके हवन करें ।।११७।। जो द्रव्य प्रारम्भ में किया है वह क्रिया के अन्त तक करे और पुण्याहवाचन करके अन्त में कलशों के जल से प्रोक्षण करें ।।११८।। ब्राह्मणों को आहुति की संख्या अनुसार भोजन करावे। जितनी आहुति दी हों उतने ही ब्राह्मणों को भोजन करावें, आचार्य और ऋत्विज हविष भोजन करें ।।११९।। होम के अन्त में

आदित्यादि सर्व देवताओं की पूजा करें, ऋत्विजों को यथाक्रम से नवरत्नादि दक्षिणा दे।।१२०।। दश दान करें अथवा बहुत दान करें वा सुवर्ण दान करें। यज्ञोपवीत हुए बालकों को, गृहस्थियों को, वनवासियों को।।१२१।। सौभाग्यवती स्त्रियों को, कन्याओं को, इसके पश्चात् विधवाओं को दान दे और तन्त्रोपकरण पूजनादि की सम्पूर्ण सामग्री आचार्य को दे दे।।१२२।। उत्पातमारी और दुःख के स्वामी यमराज हैं, इस कारण यमराज की प्रीति के निमित्त कालप्रतिमा का दान करें।।१२३।। सौ निष्क की अथवा दशनिष्क की मूर्ति बनावे (अस्सी चोटली का एक कर्ष, एक सौ आठ कर्ष का एक निष्क होता है) काल को पाशांकुशधारी पुरुषरूप बनावे।।१२४।। उस सुवर्ण की प्रतिमा का दान दक्षिणा के सहित करे, फिर पूर्णायु की सिद्धि के निमित्त तिल का दान करे।।१२५।। फिर घृतपात्र को शोध कर व्याधि दूर करने के निमित्त दान दे, सहस्र ब्राह्मणों को भोजन करावे, दरिद्र हो तो सौ ब्राह्मणों को भोजन करावे।।१२६।। अथवा धन न हो तो यथाशक्ति जिमावे। भूतादि की शान्ति के निमित्त भैरव की महापूजा करे।।१२७।। अन्त में शिवजी का महाअभिषेक करके नैवेद्य समर्पण करे। तत्पश्चात् अनेक प्रकार के व्यञ्जनों से ब्राह्मणों को भोजन करावे।।१२८।। इस प्रकार यज्ञ करने से दोष शान्त हो जाता है। यह शान्तियज्ञ प्रतिवर्ष फाल्गुन में करना चाहिये।।१२९।। और दुर्दर्शनादि में एक मास पर्यन्त अनुष्ठान करे और महापाप हो जाने पर भैरव का पूजन करे।।१३०।। महाव्याधि और उत्पात में संकल्प करके फिर आचमन करे और सब वस्तु का अभाव हो तो दरिद्री दीप दान करे।।१३१।। इसमें भी असमर्थ हो तो स्नान करके कुछ दान करे और एक सौ आठ मन्त्र जप कर सूर्य को नमस्कार करे।।१३२।। अथवा दश सहस्र, लक्ष अथवा करोड़ नमस्कार करे। इस नमस्कारात्मक यज्ञ से भी समस्त देवता प्रसन्न हो जाते हैं।।१३३।। शिवजी से यह प्रार्थना करे कि, हे शिव! आपके सगुण और दीप्यमान स्वरूप में नम्र मैंने अपनी बुद्धि अर्पण कर दी है, जो कुछ भी हमारा है वह मुझ सहित आपका है। आपके देखने से कोई वर्जित नहीं है।।१३४।। मैं अपनी देह से नम्र हूँ। हे प्रभो! आप महान् हो। आप ही का होने से मेरा स्वरूप शून्य नहीं है, मैं आपका दास हूँ।।१३५।। ऐसा कहकर आत्मयज्ञ नमस्कार पूर्वक करे, फिर शिवजी को नैवेद्य समर्पण करके ताम्बूल दे।।१३६।। शिवजी की एक सौ आठ प्रदक्षिणा करे अथवा सहस्र, दश सहस्र वा लक्ष वा करोड़ प्रदक्षिणा करे।।१३७।। शिवजी की प्रदक्षिणा करने से क्षणमात्र में सब पाप नष्ट हो जाते हैं। दुःख का मूल व्याधि और व्याधि का मूल पातक है।।१३८।। धर्म से ही पाप दूर होते हैं, यह शास्त्र ने कहा है। शिवजी के उद्देश्य से जो धर्म किया जाता है, वही पाप दूर करने में समर्थ है।।१३९।। शिवधर्मों में प्रदक्षिणा सबसे श्रेष्ठ है, क्रियायुक्त जपरूप ॐ कार ही प्रदक्षिणा है।।१४०।। जन्म-मरण यह दोनों मायाचक्र कहे हैं, शिवजी का

मायाचक्र बलिपीठ कहलाता है।।१४१।। बलिपीठ से आरम्भ करके प्रदक्षिणा के क्रम से दो चरण चलकर बलिपीठ के निकट जाकर।।१४१।। नमस्कार करे, इसी का नाम प्रदक्षिणा है। प्रदक्षिणा गमन से जन्म और नमस्कार करने से आत्मसमर्पण होता है।।१४३।। जन्म-मरण यह दोनों शिवजी की माया में समर्पण करे, शिवजी की माया में समर्पण करने से फिर आत्मा को यह दोनों नहीं होते।।१४४।। जब तक यह देह क्रिया के अधीन है, तब तक और बद्ध होने से जीव कहलाता है और स्थूल, सूक्ष्म, कारण तीनों देहों को वश करने को यही मुक्त हो जाता है।।१४५।। मायाचक्र के प्रणेता शिवजी ही परम कारण हैं, शिवजी की माया से अर्पण किये द्वन्द्व को शिवजी ही दूर करते हैं।।१४६।। शिवजी के कल्पित हृदय को शिवजी में समर्पण कर दे। हे ब्राह्मणो! शिवजी को प्रदक्षिणा और नमस्कार बहुत प्रिय हैं।।१४७।। शिवपरमात्मा के निमित्त प्रदक्षिणा और नमस्कार और सोलह उपचारों से पूजा करने का महाफल होता है।।१४८।। ऐसा कोई पातक नहीं जो प्रदक्षिणा करने से नष्ट न हो जाए। इस कारण प्रदक्षिणा से ही सब पापों का नाश करें।।१४९।। शिवपूजा करने में तत्पर मौनी सत्यादि गुणों से संयुक्त क्रिया, जप, तप, ज्ञान, ध्यान में सम्पूर्ण वस्तु क्रम से करे।।१५०।। ऐश्वर्य, दिव्यदेह, ज्ञान की प्राप्ति, अज्ञान का संशय, शिवजी की निकटता यह क्रियादि का फल है।।१५१।। क्रियादि आचरण करने से अज्ञान का नाश होता है और ब्रह्म द्वारा प्रेरित हुई बुद्धि से जन्म के पापों को दूर करता है।।१५२।। देश, काल, शक्ति, धन के अनुसार शिवजी का भक्त यथायोग्य क्रियाओं को करे।।१५३।। बुद्धिमान् को उचित है कि, शिवक्षेत्र में न्याय से अर्जित हुए धन से वास करे अर्थात् न्याय के धन से ही आजीविका करे, जीवहिंसा और क्लेश को न करे।।१५४।। पञ्चाक्षर मन्त्र से जप करने से जल और अन्न सुखदायक है अथवा दरिद्र को भिक्षा का अन्न ज्ञान देनेवाला है।।१५५।। शिवभक्त को भिक्षा का अन्न शिवजी में भक्ति बढ़ानेवाला है, शिवयोगियों को भिक्षान्न शिवयज्ञ के समान कहा है।।१५६।। जिस किसी उपाय से जहां कहीं भी पृथ्वी पर शुद्ध अन्न भक्षण करके मौन साधकर रहे और शिवजी का गूढ़ रहस्य प्रकाश न करे।।१५७।। शिवजी के भक्तों को शिवजी का माहात्म्य प्रकाश करके सुनावे, शिवमन्त्र का रहस्य शिवजी ही जानते हैं, दूसरा कोई नहीं।।१५८।। शिवजी का भक्त नित्य शिवलिंग के समीप वास करे। हे ब्राह्मणो! स्थाणुलिंग के आश्रय करने से शिवरूप ही अचल समाधि युक्त हो जाते हैं।।१५९।। चरलिंग की पूजा करने से विद्वान् क्रम से मुक्त हो जाता है। इस संहिता में शिवपद प्राप्ति के साधन उत्तम रीति से संक्षेप में वर्णन किये हैं। यह सब साधनों में मुख्य है, इसी से इसका नाम 'विद्येश्वरसंहिता' है।।१६०।। जो कुछ पूर्वकाल में व्यासजी ने कहा है, जो मैंने उनसे सुना है, सो आपको सुनाया। आपका और हमारा मङ्गल हो और आप में शिवजी की वह भक्ति

दृढ़ हो।।१६१।। जो मनुष्य सदा इस अध्याय को सुनते और पढ़ते हैं, हे महात्माओं! वह शिवजी की कृपा से शिवजी के ज्ञान को प्राप्त होते हैं।।१६२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमविद्येश्वरसंहिता भाषायां साध्यसाधनखण्डे शिवलिङ्गमहिमावर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः।।१८।।

*****

उन्नीसवाँ अध्याय

ऋषि बोले- हे सूतजी! आप चिरकाल तक जिओ, आप धन्य हो और शिवजी के भक्त हो। आपने लिंग की महिमा और फल का विषय सम्यक् प्रकार से कहा।।१।। पार्थिव महेश्वरजी की महिमा आपने सर्वोत्कृष्ट कही है, वह आपने व्यासजी से सुनी है और वह सुनने की हमारी इच्छा है।।२।। सूतजी बोले- हे समस्त ऋषियो! आप सुनिये, मैं आपकी भक्ति और आदर से प्रसन्न होकर कहता हूँ। मैं शिवजी के पार्थिवलिंग की महिमा कहता हूँ।।३।। हे ब्राह्मणो! कहे हुए सब लिंगों में पार्थिवलिंग श्रेष्ठ है, उसका पूजन करके बहुत सिद्धि को प्राप्त हो गये हैं।।४।। हरि, ब्रह्मा, ऋषि, प्रजापति पार्थिवलिंग का पूजन करके सब अपने मनोरथों को प्राप्त हुए हैं।।५।। देवता, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, उरग, राक्षस और भी बहुत उनका पूजन करके परमसिद्धि को प्राप्त हुए।।६।। सत्ययुग में रत्न का लिंग, त्रेता में सुवर्ण का लिंग, द्वापर में पारे का लिंग और कलियुग में पार्थिवलिंग श्रेष्ठ है।।७।। सब आठ मूर्तियों में पार्थिवमूर्ति श्रेष्ठ है। हे ब्राह्मणो! उसका पूजन करने से तप से भी अधिक फल मिलता है।।८।। जैसे सर्व देवताओं में महेश्वरजी ज्येष्ठ और श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सब लिंगों में पार्थिवलिंग श्रेष्ठ है।।९।। जैसे सब नदियों में गंगा श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सब लिंगों में पार्थिवलिंग श्रेष्ठ है।।१०।। जैसे सब मन्त्रों में ॐ कार श्रेष्ठ है, उसी प्रकार पार्थिवलिंग श्रेष्ठ और पूजनीय है।।११।। जैसे सब वर्णों मे ब्राह्मण श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सब लिंगों में पार्थिवलिंग श्रेष्ठ है।।१२।। जैसे सब पुरियों में काशी श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सब लिंगों में पार्थिवलिंग श्रेष्ठ है।।१३।। जैसे सब व्रतों में शिवरात्रिव्रत श्रेष्ठ है, ऐसे ही सब लिंगों में पार्थिवलिंग श्रेष्ठ है।।१४।। जिस प्रकार सब शक्तियों में शैवी पराशक्ति श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सब लिंगों में पार्थिवलिंग श्रेष्ठ है।।१५।। पार्थिवलिंग करके जो अन्य देवताओं की पूजा करता है, उसकी वह पूजा और स्नानदानादिक वृथा होता है।।१६।। पार्थिव आराधन पवित्र और पुण्यरूप है, धन तथा आयु को बढ़ानेवाला है। तुष्टि, पुष्टि तथा लक्ष्मी का देनेवाला और कार्य को साधन करनेवाला है।।१७।। जो अच्छे उपचार और भक्ति, श्रद्धा के

सहित सब कामनाओं को प्रदान करनेवाले पार्थिवलिंग का पूजन करता है।।१८।। और जो पार्थिवलिंग करके वेदी का पूजन करता है, वह धनवान् लक्ष्मीवान् होकर अन्त में रुद्रलोक को जाता है।।१९।। जो बिल्वपत्र से तीनों सन्ध्याओं में दस, ग्यारह या बारह बार पूजन करता है, उसके पुण्य का फल सुनिये।।२०।। इसी देह से वह रुद्रलोक को प्राप्त होता है, उसके दर्शन और स्पर्श से मनुष्यों के सब पाप जाते रहते हैं।।२१।। जीवन्मुक्त हुआ वह ज्ञानी शिवरूप ही है, इसमें सन्देह नहीं, उसके दर्शनमात्र से भुक्ति-मुक्ति हो जाती है।।२२।। जो पार्थिवलिंग बनाकर नित्य शिवजी का पूजन करता है और जीवनपर्यन्त पूजन करनेवाला शिवजी के लोक में जाता है।।२३।। वह शिवपूजन से अनन्त वर्षों तक शिवलोक में स्थित होता है और सकाम पूजन करने से भरतखण्ड का राजा होता है।।२४।। और जो नित्य पार्थिवलिंग को कामना रहित पूजन करता है, वह सदा शिवलोक में स्थित होकर सायुज्य मुक्ति को प्राप्त होता है।।२५।। यदि ब्राह्मण शिवजी के पार्थिवलिंग का पूजन न करे, तो वह शूल नामक घोर नरक को प्राप्त होता है।।२६।। जिस किसी विधि से हो लिंग को मनोहर बनावे, पञ्चसूत्र का विचार पार्थिवलिंग में न करे।।२७।। अखण्डलिंग करना चाहिये, खण्ड युक्त न करे। लिंग दो खण्ड का करने से पूजा-फल की प्राप्ति नहीं होती।।२८।। रत्न, सुवर्ण, पारद, स्फटिक, पार्थिव, पुष्पराग से उत्पन्न अखण्ड लिंग की कल्पना करे।।२९।। चरलिंग अखण्ड और अचर द्विखण्ड कहलाता है। यह खण्ड-अखण्ड का विचार चराचर में होता है।।३०।। वेदिका महाविद्या है, महेश्वरदेव लिंगरूप है, इस कारण स्थावरलिंग में द्विखण्डता कही है।।३१।। विधान से स्थावरलिंग दो खण्ड का करना चाहिये। शैव सिद्धान्त के जाननेवालों ने जंगम को अखण्ड कहा है।।३२।। चरलिंग को अज्ञान से मोहित हुए दो खण्ड का करते हैं, वे मुनि शास्त्र में पण्डित और सिद्धान्त के जाननेवाले नहीं हैं।।३३।। स्थावरलिंग अखण्ड और चरलिंग द्विखण्ड है, जो विधि का उल्लंघन करते हैं वे पूजा के फलभागी नहीं हैं।।३४।। इस कारण शास्त्रोक्त विधान से अखण्ड और चरसंज्ञक लिंग को और दो खण्ड युक्त स्थावरलिंग को निर्माण करे।।३५।। अखण्डरूप चरलिंग में की हुई पूजा सम्पूर्णतः फल की देनेवाली है। दो खण्ड युक्त चर में पूजा महा हानि देती है।।३६।। अखण्ड स्थावर में की हुई पूजा काम युक्त फल को नहीं देती है और विघ्न करनेवाली है, ऐसा शास्त्र जाननेवालों ने कहा है।।३७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमाविद्येश्वरसंहिता भाषायां
साध्यसाधनखण्डे पार्थिवशिवलिङ्गपूजन माहात्म्यवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः।।१९।।

*****

बीसवाँ अध्याय

सूतजी बोले- वेदज्ञाता भक्तों को पार्थिवपूजा कहते हैं, जो वैदिकमार्ग से भुक्ति-मुक्ति की देनेवाली है।।१।। अपने कहे सूत्र की विधि से स्नान कर, विधिपूर्वक सन्ध्या करके, प्रथम ब्रह्मयज्ञ करके फिर तर्पण करे।।२।। फिर यह पुरुष सम्पूर्ण नित्य कर्म करके शिवजी का स्मरण कर भस्म और रुद्राक्ष धारण करे।।३।। वेद की विधि से सम्पूर्ण फल की सिद्धि के निमित्त परमभक्ति से पार्थिवलिंग का पूजन करे।।४।। नदी के किनारे, सरोवर के तट पर, पर्वत पर अथवा वन में, शिवालय अथवा पवित्र देश में पार्थिवपूजा करनी कही है।।५।। हे ब्राह्मणो! शुद्ध देश में उत्पन्न हुई मृत्तिका यत्न से लाकर सावधान होकर शिवलिंग की पूजा करे।।६।। ब्राह्मण में गौर, रक्त क्षत्रिय में, पीतवर्ण वैश्य में और शूद्र में कृष्ण अथवा जैसी हो।।७।। मृत्तिका लेकर यत्न से लिंग बनावे, उस मृत्तिका को अत्यन्त पवित्र देश में स्थापन करे।।८।। उसे जल से संशोधन करके शनैः-शनैः उसके पिंड बनाकर वेदमार्ग से सुन्दर लिंग को बनावे।।९।। फिर भुक्ति-मुक्ति फल की प्राप्ति के निमित्त उसका पूजन करे। उसका प्रकार मैं कहता हूँ, आप सावधान होकर सुनिये।।१०।। 'नमः शिवाय' इस मन्त्र से पूजा के द्रव्यों को प्रोक्षण करे, 'भूरसि०' इस मन्त्र से क्षेत्रसिद्धि करे।।११।। 'आपोस्मान्०' इस मन्त्र से जल का संस्कार करे, 'नमस्तेरुद्र०' इस मन्त्र से स्फटिकबन्ध करे।।१२।। 'नमः शम्भवाय०' इस मन्त्र से क्षेत्रशुद्धि करे और नमः पूर्वक पञ्चामृत का प्रोक्षण करे।।१३।। 'नमो नीलग्रीवाय०' इस मन्त्र से भक्तिमान् मनुष्य शिवलिंग की प्रतिष्ठा करे।।१४।। 'एतत्ते रुद्राय०' इस मन्त्र से भक्तिपूर्वक वेदमार्ग से रमणीय आसन दे।।१५।। 'मानो महान्त०' इस मन्त्र से आवाहन करे, 'याते रुद्र०' इस मन्त्र से उपवेश करे।।१६।। 'यामिषुम्०' इस मन्त्र से शिवजी का न्यास करके 'अवोचदिति०' इस मन्त्र से प्रेमपूर्वक अधिवासन करे।।१७।। 'असौ जीव०' इति इस मन्त्र से देवतान्यास करे, 'असौयोऽवसर्पतीति०' इस मन्त्र से उपसर्पण करे।।१८।। 'नमोस्तु नीलग्रीवाय०' इस मन्त्र से पाद्यस्नान करे, रुद्रगायत्री से अर्घ्य दे, त्र्यम्बकमन्त्र से आचमन करावे।।१९।। 'दधिक्राव्ण०' इस मन्त्र से दधि स्नान करावे, 'घृतंयाव०' इस मन्त्र से घृतस्नान करावे, 'पयः पृथिव्याम्०' इस मन्त्र से दूध से स्नान करावे।।२०।। 'मधुवाता०, मधुनक्तं०, मधुमान्०' इन मन्त्रों से।।२१।। मधु और खाण्ड से स्नान करावे। यह पञ्चामृत है अथवा पाद्यमन्त्रों से और पञ्चामृत से स्नान करावे।।२२।। 'मानस्तोके इस मन्त्र से कटिबन्धन करे, 'नमो धृष्णवे०' इससे उत्तरीय वस्त्र धारण करावे।।२३।।

'याते हेति०' इन चार मन्त्रों से भक्तजन प्रेमपूर्वक वस्त्र समर्पण करे ।।२४।। 'नमः श्वभ्य:०' इस मन्त्र से प्रेमपूर्वक गन्ध समर्पण करे। 'नमस्तक्षभ्य:०' इस मन्त्र से अक्षत दे ।।२५।। 'नमः पार्याय०' इस मन्त्र से पुष्प चढ़ावे। 'नमः पर्ण्याय०' इस मन्त्र से बिल्वपत्र समर्पण करे ।।२६।। 'नमः कपर्दिने०' इस मन्त्र से यथा विधि धूप दे, 'नमः आशवे०' इस मन्त्र से दीप दे ।।२७।। 'नमो ज्येष्ठाय०' इस मन्त्र से नैवेद्य दे, 'त्र्यम्बकम्०' इस मन्त्र से फिर आचमन करावे ।।२८।। 'इमा रुद्राय०' इस मन्त्र से फल समर्पण करे, 'नमो व्रज्याय०' इस मन्त्र से कलश अर्पण करे ।।२९।। 'मानो महान्त०'' और 'मानस्तोके०'' इन दो मन्त्रों से रुद्रों को अक्षत चढ़ावे ।।३०।। 'हिरण्यगर्भ०' इस मन्त्र से दक्षिणा दे, 'देवस्यत्वो०' इस मन्त्र से अभिषेक करे ।।३१।। दीपमन्त्र से शिवजी का नीराजन करे और 'इमारुद्राय०'' इस मन्त्र से पुष्पाञ्जलि दे ।।३२।। 'मानो महान्त०'' इस मन्त्र से प्रदक्षिणा करे और 'मानस्तोके०'' इस मन्त्र से साष्टांग प्रणाम करे ।।३३।। 'एषते०' इस मन्त्र से शिवजी को मुद्रा दिखावे, 'यतोयत:०'' इस मन्त्र से, 'त्र्यम्बकं०'' इस मन्त्र से ।।३४।। 'नमः 'सेनान्ये०' इस मन्त्र से महामुद्रा दिखावे* ।। 'नमोगोभ्य०'' इस मन्त्र से धेनुमुद्र दिखावे ।।३५।। फिर पाँच मुद्रा दिखाकर शिवमन्त्र का जप करे। वेदज्ञाता शतरुद्रिय मन्त्र का जप करे ।।३६।। फिर वेदज्ञाता पञ्चाङ्ग का पाठ करे। 'देवागातु०' इस मन्त्र से शिवजी का विसर्जन करे ।।३७।। यह विस्तार से शिवपूजन की वैदिक विधि आपसे कही है। अब इस श्रेष्ठ वैदिक विधि को आप संक्षेप से सुनिये ।।३८।। 'सद्योजात०' इस मन्त्र से मृत्तिका लावे, 'वामदेवाय०' इस मन्त्र से उसमें जल डाले ।।३९।। 'अघो०' इस मन्त्र से लिंग निर्माण करे, 'तत्पुरुषाय-विद्महे०' इस मन्त्र से विधिपूर्वक आह्वान करे ।।४०।। 'ईशानः सर्वविद्यानाम्०' इस मन्त्र से वेदिका में शिवजी का स्थापन करे, अन्य सर्व विधान भी संक्षेप से करे ।।४१।। पञ्चाक्षरमन्त्र वा गुरु के दिये हुए मन्त्रों से बुद्धिमान् विधि पूर्वक तथा षोडशोपचार पूर्वक पूजा करे ।।४२।। भव भवनाशक महादेवजी का हम ध्यान करते हैं। उग्र स्वरूप, उग्रों का नाश करनेवाले शर्व शशिमौलि के निमित्त नमस्कार है ।।४३।। इस मन्त्र से शिवजी का पूजन करे, अपनी भक्ति से भ्रम को त्यागकर पूजे, भक्ति से ही शिवजी फल देनेवाले हैं ।।४४।। यह आदर से वैदिक पूजन वर्णन किया है। हे ब्राह्मणो! दूसरी साधारण विधि भी वर्णन करते हैं ।।४५।। शिवजी के नामों से भी पार्थिवलिंग की पूजा कही है। हे मुनिश्रेष्ठो! उस सब कामना देनेवाली विधि को सुनिये ।।४६।। हर, महेश्वर, शंभु, शूलपाणि, पिनाकधारी, शिव, पशुपति, महादेव इस क्रम से ।।४७।। मृत्तिका का आहरण करके, मिलाप प्रतिष्ठा और आह्वान करके, स्नान पूजन और क्षमा कराकर विसर्जन करे ।।४८।। आदि में ॐ कार करके अन्त में नमः लगाकर

*- प्राय: ये सब मन्त्र रुद्राध्याय के है, जो यजुर्वेद में सोलहवां है।

चतुर्थ्यन्त पूर्वक नाम लेकर सर्व क्रिया परमभक्ति से करनी चाहिये ।।४९।। सम्यक् षडङ्गविधि से न्यास करे, फिर षडाक्षर मन्त्र से ध्यान करे ।।५०।। कैलास पर सिंहासन के ऊपर स्थित भक्तिपूर्वक नन्दी आदि से तथा भक्तिपूर्वक भक्तों से पूजित होकर उनके दुःख दूर करनेवाले अप्रमेय उमा को आलिंगन करते हुए शिवजी का ध्यान करता हूँ। जो विश्व के भूषण हैं।।५१।। उन महेश्वरजी का नित्य ध्यान करता हूँ, जो चांदी के पर्वत के समान सुन्दर, चन्द्रमा को धारण करनेवाले, रत्नों के समान उज्ज्वल शरीर, परशु और मृग हाथ में लिये, पद्मासन पर बैठे हुए प्रसन्न मूर्ति, चारों ओर से अमरगणों से सेवित, व्याघ्र का चर्म धारण किये हुए, विश्व के पापहारी, विश्व के बीज, सम्पूर्ण भयहारी, पञ्चवक्र त्रिनेत्र हैं।।५२।। इस प्रकार ध्यान करके पार्थिवलिंग का पूजन करें। गुरु के दिये हुए पञ्चाक्षर मन्त्र का विधिपूर्वक जप करे ।।५३।। और स्तुतियों से देवेश को प्रणाम करे और अनेक प्रकार से शतरुद्रिय मन्त्र जपे ।।५४।। फिर हाथ में अक्षत और पुष्प लेकर भक्तिपूर्वक इन मन्त्रों से शिवजी की प्रार्थना करे ।।५५।। हे शिवजी! आपके गुणानुवाद को गानेवाला मैं आप में मन लगाये हूँ, हे कृपानिधि भूतनाथ! ऐसा जानकर आप हम पर प्रसन्न हो ।।५६।। अज्ञान से वा ज्ञान से हमने जो जप और पूजा आदि की है, हे शंकर ! वह आपकी कृपा से सफल हो ।।५७।। मैं महापापी हूँ और आप महापवित्र करनेवाले हैं, ऐसा जानकर, हे गौरीश! जो आपकी इच्छा हो वैसा कीजिये।।५८।। वेद, पुराण और सिद्धान्तों में अनेक ऋषियों ने भी आपको नहीं जाना, हे महादेव! फिर मैं कैसे जान सकता हूँ?।।५९।। जैसे हो वैसे मैं सर्व भावों से आपका ही हूँ। हे परमेश्वर! प्रसन्न होकर आप हमारी रक्षा कीजिये।।६०।। इस प्रकार शिवजी के ऊपर अक्षत और पुष्पों को आरोपण करके, हे मुने! विधिपूर्वक शिवजी को साष्टाङ्ग प्रणाम करे।।६१।। फिर विधिपूर्वक प्रदक्षिणा करे, फिर स्तुति से श्रद्धापूर्वक देवेश की स्तुति करे।।६२।। फिर गले से शब्द करके नम्रतापूर्वक शब्द करे, फिर विज्ञप्ति करके विसर्जन करे।।६३।। हे मुनिशार्दूलो! इस प्रकार आपसे यह पार्थिव पूजा कही है। यह भुक्ति-मुक्ति तथा शिवजी की भक्ति बढ़ानेवाली है।।६४।। जो इस अध्याय को अच्छे मन से प्रसन्नतापूर्वक पढ़ता है, वह सर्व पापों से विशुद्ध होकर सर्व कामनाओं को प्राप्त हो जाता है।।६५।। यह उत्तम आख्यान आयु, आरोग्य, यश और स्वर्ग का देनेवाला तथा पुत्र-पौत्र का सुख देनेवाला है।।६६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमाविद्येश्वरसंहिता भाषायां

साध्यसाधनखण्डे पार्थिवशिवलिङ्गपूजाविधिवर्णनोनाम विंशोऽध्यायः ।।२०।।

*****

इक्कीसवाँ अध्याय

ऋषि बोले– हे महाभाग सूतजी! हे व्यासशिष्य! आपको नमस्कार है। आपने भली प्रकार पार्थिवपूजा का विधान कहा है।।१।। अब आप कामनाभेद के अनुसार शिवजी के पार्थिवलिंग की पूजा वर्णन कीजिये। हे दिनवत्सल! आप हमारे ऊपर कृपा कीजिये।।२।। सूतजी बोले– हे समस्त ऋषियो! पार्थिवपूजा का विधान सुनिये, जिसके अनुष्ठान से यह प्राणी कृतकृत्य हो जाता है।।३।। बिना पार्थिवलिंग की पूजा किये जो दूसरे देवताओं की पूजा करता है, उसकी वह पूजा और दम–दानादिक वृथा हो जाते हैं।।४।। पार्थिवलिंग की संख्या कामना के अनुसार कही है। हे मुनिश्रेष्ठो! विशेष करके यह संख्या निश्चय से अधिक फल देनेवाली है।।५।। पहले आवाहन, फिर प्रतिमा पूजन प्रतिष्ठा करनी चाहिये। लिंगाकार के समान पृथक्–पृथक् करना चाहिये।।६।। विद्यार्थी पुरुष प्रसन्न होकर सहस्र पार्थिवलिंग बनाकर पूजे, तो निश्चय वह पूजन फल देनेवाला होगा।।७।। धन की इच्छावाला पाँचसौ, पुत्रार्थी डेढ़ हजार और वस्त्रार्थी पाँचसौ शिवलिंगों का पूजन करे।।८।। मोक्ष की इच्छावाला एक करोड़, पृथ्वी का कामनावाला एक सहस्र, दया की इच्छावाला तीन सहस्र, तीर्थ की इच्छावाला दो सहस्र।।९।। सुहृद की इच्छावाला तीन सहस्र, वशीकरण की इच्छावाला आठसौ, मारण की इच्छावाला सातसौ, मोहन की इच्छावाला आठसौ।।१०।। उच्चाटन में एक सहस्र, स्तम्भन में एक सहस्र, द्वेष में पाँचसौ।।११।। बन्धन से छूटने की इच्छावाला डेढ़ सहस्र, महाराज से भय होने में पाँचसौ।।१२।। चोर और राजा के भय में दोसौ, डाकिनी आदि के भय में पाँचसौ।।१३।। दरिद्रता में पाँच सहस्र, सब काम में दश सहस्र शिवलिङ्ग पूजे। हे मुनिश्रेष्ठो! अब मैं नित्यविधि कहता हूँ, आप सुनिये।।१४।। एक लिङ्ग पापहारी, दो अर्थसिद्धि करनेवाले, तीन लिंग सब कामनाओं के परम कारण कहे हैं।।१५।। यह पूर्वोक्त गणना की विधि उत्तरोत्तर जाननी है। संख्या में मुनियों के भेद से मतान्तर का वर्णन करते हैं।।१६।। बुद्धिमान् दश सहस्र पार्थिवलिंग बनाकर निर्भय होकर महाराज के भय से दूर होता है।।१७।। कारागृह से छूटने के निमित्त दश सहस्र का पूजन करे, डाकिनी आदि के भय में सात सहस्र बनावे।।१८।। पुत्र के निमित्त पचपन सहस्र का पूजन करे। दश सहस्र लिंगों के पूजन से कन्या सन्तान होती है।।१९।। दश सहस्र लिंगों के पूजन में विष्णुजी के ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है तथा दश सहस्र लिंगों के पूजन से अतुल ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।।२०।। जो मनुष्य एक कोटि लिङ्गों का पूजन करता है, वह शिवरूप हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं।।२१।।

पार्थिवलिंग की पूजा कोटि यज्ञों के फल देनेवाली है, कामार्थी मनुष्यों को नित्य भुक्ति–मुक्ति देनेवाली है ।।२२।। जिसका समय लिंगार्चन के बिना व्यतीत होता है, उस दुरात्मा दुर्वृत्त की महाहानि होती है ।।२३।। एक ओर तो सब दान और व्रत हैं तथा तीर्थ, नियम और यज्ञ हैं और एक ओर लिंग की पूजा है ।।२४।। कलियुग में लोक में लिंगार्चन ही श्रेष्ठ कहा है और दूसरा ऐसा पदार्थ नहीं है, यह शास्त्र का निश्चय है ।।२५।। भुक्ति–मुक्ति का देनेवाला लिंग अनेक आपत्तियों को निवारण करता है। नित्य पूजन करके मनुष्य शिवजी के सायुज्य को प्राप्त होता है ।।२६।। शिवनाममय लिङ्ग की पूजा महर्षियों को नित्य करनी चाहिये, जिससे कि सब लिंगों में विधान से पूजन कहा है ।।२७।। उत्तम, मध्यम, निकृष्ट तीन प्रकार का लिंग कहा है, यह इसका मान है। हे मुनिजनो! उसका प्रमाण श्रवण कीजिये ।।२८।। शास्त्र जाननेवालों ने मनोहर वेदी से युक्त चार अंगुल ऊँचा लिंग उत्तम कहा है ।।२९।। उससे आधा मध्यम और उससे आधा अधम है। इस प्रकार उत्तरोत्तर लिंग तीन प्रकार का कहा है ।।३०।। जो भक्ति और श्रद्धा से युक्त होकर अनेक लिंगों का पूजन करता है, वह सम्पूर्ण मनोकामनाओं को प्राप्त होता है ।।३१।। लिंग की आराधना करने के समान चारों वेदों में कोई दूसरा पुण्य नहीं है, यह सब शास्त्रों का निश्चय है ।।३२।। यह सब कर्मजाल छोड़कर पण्डित परमभक्ति से एक लिंग का ही आराधन करे ।।३३।। लिंग के अर्चन करने से स्थावर–जङ्गमात्मक सम्पूर्ण जगत् पूजित हो जाता है, जो संसारसागर में मग्न हुओं को तारने का साधन है ।।३४।। अज्ञान तिमिर से अन्धे हुओं को तथा विषयासक्त चित्तवालों को लिंगाराधन के सिवाय और कोई उपाय नहीं है ।।३५।। हरि, ब्रह्मादिक देवता, मुनि, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, चारण, सिद्ध, दैत्य, दानव ।।३६।। नाग, शेष, गरुड़ पक्षी, प्रजापति, मनु, किन्नर, नर ।।३७।। महाभक्ति से सर्वार्थ साधक लिंग का पूजन करके अपने हृदय में स्थित कामनाओं को प्राप्त होते हैं ।।३८।। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा दूसरी जाति उस–उस मन्त्र से आदरपूर्वक लिंग का पूजन करते हैं ।।३९।। हे मुनियो! बहुत कहने से क्या है? स्त्री तथा अन्य जाति हो शिवजी के पूजन में सबका अधिकार है ।।४०।। ब्राह्मणों को वैदिकमार्ग से पूजन करना श्रेष्ठ है, दूसरे प्राणियों को वेद से पूजन का अधिकार नहीं है ।।४१।। वैदिक ब्राह्मणों को वैदिकमार्ग से पूजा कही है, उनको अन्य मार्ग से पूजा न करनी चाहिये। यह भगवान् शिवजी ने कहा है ।।४२।। दधीचि, गौतम आदि ब्राह्मणों के शाप से दग्धचित्तवालों की वैदिककर्म में श्रद्धा नहीं होती वा शाप से दग्धचित्त दधीच, गौतमादि के वंशोत्पन्नों की वैदिककर्म में श्रद्धा नहीं होती ।।४३।। जो कोई वेद और स्मृति के कर्म को अनादर करके दूसरा कर्म करता है, उसे उसका फल नहीं होता ।।४४।। इस प्रकार शिवजी का विधिपूर्वक नैवेद्य पर्यन्त अर्चन करके त्रिजगन्मयी आठ मूर्तियों का पूजन करे ।।४५।। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु,

आकाश, चन्द्र, सूर्य और यजमान ये आठ मूर्तियां पूज्यमान हैं ।।४६।। शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, ईश्वर, महादेव, पशुपति इनका मूर्ति द्वारा अर्चन करे ।।४७।। फिर भक्ति से शिवजी के परिवार की पूजा करे। ईशानादि के क्रम से चन्दन, अक्षत, पत्र चढ़ावे ।।४८।। ईशान, नन्दी, चण्ड, महाकाल, भृङ्गि, वृष, स्कन्द, कपर्दी, सोम, शुक्र इनको क्रम से पूजे ।।४९।। फिर वीरभद्र का पूजन करे, पीठ की ओर कीर्तिमुख का पूजन करके फिर ग्यारह रुद्रों को विधिपूर्वक पूजे ।।५०।। फिर पञ्चाक्षर का जप करके, शतरुद्रीय पाठ करके, अनेक प्रकार की स्तुति करके पञ्चाङ्ग पाठ करे ।।५१।। फिर प्रदक्षिणा कर, लिंग को प्रणाम कर विसर्जन करे। यह आदर से शिवजी का सम्पूर्ण पूजन कथन किया ।।५२।। यह कर्म रात्रि में सदा उत्तर की ओर मुख करके करना चाहिये। इसी प्रकार उत्तर की ओर मुख करके सदाशिव का पूजन करे ।।५३।। शिवजी के आगे पूर्व को न बैठे, न शक्ति सहित उत्तर को, न प्रतीची (पश्चिम) को बैठे, उत्तर की ओर बैठे ।।५४।। भस्म, त्रिपुण्ड्र और रुद्राक्ष की माला बिना तथा बिल्वपत्र के बिना शंकरजी का पूजन न करे ।।५५।। हे मुनश्रेष्ठो! यदि शिवपूजन में भस्म न मिले तो मृत्तिका का ही त्रिपुण्ड्र मस्तक पर धारण करना चाहिये ।।५६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमविद्येश्वरसंहिता भाषायां

साध्यसाधनखण्डे पार्थिवपूजनवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ।।२१।।

*****

बाइसवाँ अध्याय

ऋषि बोले– हमने सुना है शिवनैवेद्य अग्राह्य है, सो वह और बिल्व का माहात्म्य भी वर्णन किजिये ।।१।। सूतजी बोले–हे मुनियो! सावधान होकर सुनिये, मैं प्रीति से सब कहता हूँ। आप शिवजी के भक्त धन्य हो ।।२।। पवित्र, शुद्ध, सद्व्रती, दृढ़निश्चय शिवजी का भक्त शिवजी का नैवेद्य भक्षण कर ले, अग्राह्य भावना को छोड़ दे ।।३।। शिवनैवेद्य को देखते ही पाप दूर से ही भाग जाते हैं और उसे भक्षण करने से अनेक पुण्य प्राप्त होते हैं ।।४।। सहस्र और अरब यज्ञ करने से क्या है? शिवजी का नैवेद्य भक्षण करने से शिवजी के सायुज्य की प्राप्ति होती है ।।५।। जिसके घर में शिवनैवेद्य का प्रचार है, वह घर महापवित्र है और वह दूसरे घरों को भी पवित्र करता है ।।६।। शिवजी के नैवेद्य को आया देखकर उसे शिर से ग्रहण करे और.शिवजी का स्मरण करके प्रयत्न से भक्षण करे ।।७।। और आए हुए शिवनैवेद्य को अग्राह्य मानकर भक्षण करने में देर करने से मनुष्य को पाप लगता है ।।८।। शिवनैवेद्य ग्रहण में जिसकी इच्छा

नहीं होती, वह महापापी अवश्य नरक में पड़ेगा ।।९।। हृदय में सुवर्ण, चांदी आदि की बनी हुई चन्द्रकान्तवाले शिवभक्त से यह भक्षण करने योग्य है, ऐसा कहा जाता है ।।१०।। शिवदीक्षा से युक्त भक्त महाप्रसाद संज्ञक सब लिंगों का नैवेद्य भक्षण करे, वह शुभ है ।।११।। दीक्षा से युक्त शिवभक्ति में प्रीति करनेवाले मनुष्यों का शिवनैवेद्य के भक्षण में अन्य निर्णय भी सुनिये ।।१२।। हे ब्राह्मणो! शालिग्राम से उद्भवलिंग में तथा रसलिंग में तथा पाषाण, रजत, सुवर्ण के बने, देवताओं की सिद्धि से प्रतिष्ठित लिंग में ।।१३।। काश्मीर में स्फटिक रत्नज्योतिर्लिंगों में शिवनैवेद्य भक्षण करना चान्द्रायणव्रत के समान फल देनेवाला है ।।१४।। ब्रह्महत्यारा भी पवित्र होकर जो निर्माल्य धारण करे उसके भक्षण करे, उसके भक्षण करने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं ।।१५।। जहां चण्डाधिकार है वहां मनुष्यों को शिवनैवेद्य भक्षण करना उचित नहीं है, जहां चण्ड का अधिकार नहीं है, उसे भक्ति से भोजन करना चाहिये ।।१६।। बाणलिंग, लोहलिंग, सिद्धलिंग में, स्वयम्भूलिंग में तथा सम्पूर्ण प्रतिमाओं में चण्ड का अधिकार नहीं है ।।१७।। विधानपूर्वक स्नान कराये हुए लिंग का जो जल है, उसे तीन बार पान करने से तीनों पाप शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ।।१८।। अग्राह्य शिवजी का नैवेद्य पत्र, पुष्प, फल, जल यह शालिग्रामशिला के संग से सब पवित्र हो जाता है ।।१९।। हे मुनिश्वरो! जो लिंग के ऊपर का द्रव्य है, वह अग्राह्य है और जो लिंग के स्पर्श से पृथक् है, उसे पवित्र जानना चाहिये ।।२०।। हे मुनिश्रेष्ठो! इस प्रकार आपसे नैवेद्य का निर्णय कहा है। अब आप सावधान होकर आदर से बिल्वपत्र का माहात्म्य सुनिये ।।२१।। यह बिल्व देवताओं से स्तुति को प्राप्त हुआ महादेवजी का स्वरूप है, इसकी महिमा कठिनता से जानी जाती है ।।२२।। लोक में जितने प्रसिद्ध पवित्र तीर्थ हैं, वे सब तीर्थ बिल्वमूल में निवास करते हैं ।।२३।। लिंग के मूल में लिंगरूपी अविनाशी महादेवजी को जो पुण्यात्मा पूजन करता है, वह ध्रुवकल्याण को प्राप्त होता है ।।२४।। जो बिल्व के मूल में शिवजी के ऊपर जल चढ़ाता है, वह सब तीर्थों में स्नान कर चुका और वह पृथ्वी पर पवित्र रूप है ।।२५।। इस बिल्वमूल के चारों ओर जल से भरा हुआ आलवाल देखकर महादेवजी प्रसन्न हो जाते हैं ।।२६।। जो मनुष्य बिल्वमूल में गन्ध पुष्पादि से पूजन करता है, वह शिवलोक को प्राप्त होता है, उसकी सन्तान और सुख की वृद्धि होती है ।।२७।। जो आदर से बिल्व के मूल में दीपमाला की कल्पना करते हैं, वह तत्त्वज्ञान से सम्पन्न होकर महेश के अन्तर्गत होता है ।।२८।। बिल्व की शाखा को लेकर हाथ से नये पत्ते ग्रहण करके जो बिल्व को पूजता है, वह सब पापों से छूट जाता है ।।२९।। बिल्वमूल में जो शिवभक्त को भक्ति से भोजन कराता है, उसे एक के भोजन कराने में करोड़ गुणा फल होता है ।।३०।। बिल्व के मूल में दुग्ध से युक्त घृत और अन्न जो शिवभक्त के निमित्त देता है, वह दरिद्री नहीं होता ।।३१।।

शिवलिंग का पूजन सांगोपांग कहा है, हे ब्राह्मणो! यह प्रवृत्ति और निवृत्ति धर्मवालों का दो भेद से कहा है ।।३२।। प्रवृत्तों को पीठपूजा पृथ्वी पर सम्पूर्ण अभीष्टफल को देनेवाली है, पात्र द्वारा प्रवृत्त होकर सब पूजा का आचरण करे ।।३३।। पूजा के अन्त में लिंग को घर में शुद्ध स्थान में स्थापन करे। अभिषेक के अन्त में नैवेद्य और शालीअन्न को दे ।।३४।। पूजा के उपरान्त भोजन निवेदन करे, निवृत्तमार्गों को सूक्ष्मलिंग पूजन कहा है ।।३५।। विभूति से अर्चन करके विभूति निवेदन करे, पूजा करके लिंग को सदा शिर पर धारण करे ।।३६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमविद्येश्वरसंहिता भाषायां

साध्यसाधनखण्डे शिवनैवेद्यबिल्वमाहात्म्यवर्णनोनाम द्वाविंशोऽध्यायः ।।२२।।

*****

तेइसवाँ अध्याय

ऋषि बोले– हे महाभाग सूतजी! हे व्यासजी के शिष्य! आपको नमस्कार है। आप हमसे भस्म का माहात्म्य, रुद्राक्षमाहात्म्य तथा नाममाहात्म्य वर्णन कीजिये। यह तीनों वार्ता हमारे प्रसन्नता के निमित्त कहिये ।।१–२।। सूतजी बोले– लोकों के हित के निमित्त आपने भली वार्ता पूछी। आप धन्य, पवित्र और कुल के भूषण हो ।।३।। जिनको साक्षात् शिवजी ही परमदेवता है, उनको लोक में शिवजी की कथा सदैव प्रिय है ।।४।। जो शिवजी की उपासना करते हैं वे धन्य और कृतार्थ हैं, उनका देह धारण करना सफल है, उन्हों ने अपने कुल का उद्धार किया है ।।५।। जिसके मुख में सदा 'शिव शिव' ऐसा नाम है, उसे पाप ऐसे स्पर्श नहीं करते हैं, जैसे खैर अंगार को स्पर्श नहीं कर सकते ।।६।। "श्रीशिवजी के निमित्त नमस्कार है" ऐसा जो कोई कहता है, उसका पावन मुख तीर्थ सब पापों का नाश करनेवाला है ।।७।। जो प्रीतिमान् मनुष्य उसके मुख को देखता है, उसे तीर्थ का फल प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं ।।८।। हे ब्राह्मणो! यह शुभ प्राणी जहां–जहां स्थित होता है, उसके दर्शनमात्र से त्रिवेणी के स्नान का फल होता है ।।९।। शिवनाम, विभूति, रुद्राक्ष यह तीनों महापवित्र त्रिवेणी के फल के समान हैं ।।१०।। इन तीनों को जो शरीर में स्थित नित्य देखता है, उस पापहारी का दर्शन लोक में दुर्लभ है ।।११।। उसका दर्शन त्रिवेणी के समान है, इसमें कुछ भी अन्तर नहीं है, जो ऐसा नहीं जानता वह पापीष्ठ है, इसमें सन्देह नहीं ।।१२।। जिसके मस्तक पर विभूति नहीं, अंग पर रुद्राक्ष नहीं, मुख में शिवमयी वाणी नहीं उसे अधम के समान त्याग दे ।।१३।। शिवनाम गंगा, विभूति यमुना और रुद्राक्ष पापनाशिनी सरस्वती

है ।।१४।। जिसके शरीर में यह तीनों हैं, उसका फल इसमें स्थित है, एक से ही त्रिवेणी के स्नान का फल पण्डितों ने कहा है ।।१५।। ब्रह्माजी ने जगत् के हित के निमित्त इसकी तौल की है, तो बराबर ही हुआ था, इस कारण पण्डितों को सदा विभूति धारण करनी चाहिये ।।१६।। उस दिन से लेकर ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं ने इन तीनों के धारण का नियम किया है, जो दर्शन से ही पाप हरनेवाली है ।।१७।। ऋषि बोले– जब तीनों के नामों का ऐसा फल कहा है, तो हे सुव्रत! विशेष करके उनका माहात्म्य आप हमसे कहिये ।।१८।। सूतजी बोले– हे ऋषियो! आप महापण्डित, ज्ञानियों में श्रेष्ठ शिवजी के भक्त हो, आप आदर से इनका माहात्म्य श्रवण कीजिये ।।१९।। यह शास्त्र, पुराण और श्रुतियों में गूढ़ है। हे ब्राह्मणो! आपके स्नेह से मैं अब प्रकट करता हूँ ।।२०।। हे ब्राह्मणो! कौन सम्पूर्णता से इन तीनों का माहात्म्य जान सकता है? इस ब्रह्माण्ड में केवल सत्–असत् से परे शिवजी ही जानते हैं ।।२१।। यथाशक्ति संक्षेप से नाममाहात्म्य कहता हूँ। हे ब्राह्मणो! उस सब पाप हरनेवाले नाम की महिमा प्रीति से सुनिये ।।२२।। 'शिव' इतना नाम ही पापरूपी महापर्वतों को जलाने के लिये दावाग्नि है, नाम लेते ही पाप अनायास दग्ध हो जाते हैं, यह सत्य है, इसमें सन्देह नहीं ।।२३।। हे शौनकजी! पाप से उत्पन्न हुए अनेक प्रकार के दुःख हैं, वे एक शिवजी के नाम से नष्ट हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं ।।२४।। वही वैदिक, वही पुण्यात्मा, वही धन्य और पण्डित है, जो नित्य पृथ्वी पर शिवनाम का जप करता है ।।२५।। उसको शीघ्र फल देनेवाले अनेक धर्म होते हैं। हे मुने! जिसको शिवनाम के जप में विश्वास होता है ।।२६।। शिवजी के नाम से पातक नष्ट होते और पवित्रता होती है। हे मुने! इतने भी तो पाप पृथ्वी पर नहीं हैं, न इतने पाप मनुष्य करते हैं, जितने नष्ट हो जाते हैं ।।२७।। हे मुने! ब्रह्महत्यादि पापों के ढेर भी शिवनाम के लेते ही नष्ट हो जाते हैं ।।२८।। शिवनाम की नौका को प्राप्त होकर जो संसारसागर को तर जाते हैं, उनके संसारमूल के पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं ।।२९।। हे महामुने! संसार के मूलभूत पातकों का शिवनाम के कुठार से नाश हो जाता है ।।३०।। पापरूपी दावानल से अर्दित हुओं को शिवनाम रूपी अमृत पान करना चाहिये। उसके बिना पाप रूपी दावाग्नि से दग्ध हुओं को शान्ति नहीं होती है ।।३१।। 'शिव' इस नाम की अमृतधारा से प्लुत हुए, संसार अग्नि के मध्य में स्थित हुए भी कभी शोक नहीं करते ।।३२।। जिन महात्माओं को शिवनाम की महाशक्ति है, उनकी तत्काल मुक्ति हो जाती है ।।३३।। हे मुनिश्वरो! जिन्होंने अनेक जन्म तक तप किया है, उनको सब पाप हरनेवाली शिवनाम की भक्ति होती है ।।३४।। जिसको शिवजी के साधारण नाम की अखण्ड भक्ति है, उसी को मोक्ष सुलभ है, दुसरों को नहीं, यह मेरा निश्चय है ।।३५।। अनेक पाप करके भी जो आदर से शिवनाम जपता है, वह निःसन्देह सब पापों से छूट जाता है ।।३६।। जैसे वन में दावाग्नि से वृक्ष भस्म हो

जाते हैं, उसी प्रकार शिवनाम से सब पाप दूर हो जाते हैं।।३७।। जो नित्य शरीर पर भस्म लगाकर आदर से शिवजी का नाम जपता है, हे शौनकजी! वह घोर संसार से तर जाता है।।३८।। ब्राह्मणों का द्रव्य हरण करके, ब्राह्मणों को मारकर भी शिवनाम भक्ति से जपनेवाला पाप से लिप्त नहीं होता।।३९।। सम्पूर्ण वेदों को देखकर शिवनाम ही परम जप है, संसार तरने का उपाय है, यही पूर्वजों ने निश्चय किया है।।४०।। हे मुनीश्वरो! बहुत कहने से क्या है? एक ही श्लोक से मैं कहता हूँ, शिवनाम की महिमा सब पापों को हरनेवाली है।।४१।। पापों को हरने में शिवजी की शक्ति महापावनी है, मनुष्य इतना पाप तो कर भी नहीं सकता।।४२।। शिवनाम के प्रभाव से उत्तम सद्गति प्राप्त होती है। हे मुने! पूर्वकाल में इन्द्रद्युम्न राजा बड़ा पापी था।।४३।। और एक ब्राह्मण की स्त्री महापापिनी थी। इनकी भी शिवनाम के प्रताप से पवित्रगति हो गई।।४४।। हे ब्राह्मणो! इस प्रकार आपसे नाम का उत्तम माहात्म्य कहा है। अब सब पाप दूर करनेवाला भस्ममाहात्म्य सुनिये।।४५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमविद्येश्वरसंहिता भाषायां
साध्यसाधनखण्डे नाममाहात्म्यवर्णनंनाम त्रयोविंशोऽध्यायः।।२३।।

*****

चौबीसवाँ अध्याय

सूतजी बोले– सब मङ्गल के देनेवाली दो प्रकार की भस्म कही हैं, उसका प्रकार मैं कहता हूँ, सावधान होकर सुनिये।।१।। एक महाभस्म, दूसरी स्वल्पसंज्ञक है, महाभस्म नाना प्रकार की भस्म कही है।।२।। श्रौत, स्मार्त, लौकिक तीन प्रकार की भस्म कही है, स्वल्पसंज्ञक भस्म भी बहुधा कही है।।३।। श्रौत, स्मार्त भस्म ब्राह्मणों को कही है और दूसरों को लौकिक भस्म कही है।।४।। ब्राह्मणों को मन्त्रों से भस्म धारण करना कहा है, दूसरों को मन्त्रवर्जित धारण करना कहा है।।५।। गोबर से बनी हुई भस्म आग्नेय है। हे महामुने! त्रिपुण्ड्र का यह द्रव्य है।।६।। अथवा विद्वानों को अग्निहोत्र की भस्म धारण करनी चाहिये तथा दूसरे यज्ञ से प्रादुर्भूत भस्म त्रिपुण्ड्र धारण में युक्त है।।७।। जाबाल उपनिषद् में लिखे हुए अग्निरित्यादि मन्त्रों से सात बार भस्म जल से उद्धूलन* करनी चाहिये।।८।। वर्णों के आश्रमों को मन्त्रों से आदर से जाबालि ने मन्त्रपूर्वक त्रिपुण्ड्र उद्धूलन करना कहा है।।९।। भस्म से उद्धूलन और तिरछा त्रिपुण्ड्रप्रमाद से भी मोक्षार्थी न त्यागे, ऐसी श्रुति है।।१०।। शिव विष्णु से

*– उद्धूलन का नाम शरीर में भस्म लगाना है।

तिर्यक त्रिपुण्ड्र धारण किया हुआ उमादेवी और लक्ष्मीजी से नित्य प्रशंसित होता है ।।११।। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, संकरजाति तथा अपभ्रंशों से भी त्रिपुण्ड्रद्वारा भस्म और उद्धूलन धारण किया गया है ।।१२।। भस्मलेप और त्रिपुण्ड्र जो श्रद्धा से नहीं लगाते उनका वर्णाश्रम युक्त आचरण नहीं है ।।१३।। उद्धूलन और त्रिपुण्ड्र जो श्रद्धा से नहीं करते हैं, वह संसारसागर से कोटिजन्मों में भी मुक्त नहीं होते ।।१४।। उद्धूलन और त्रिपुण्ड्र जो श्रद्धा से नहीं करते हैं, उनको सौ करोड़ कल्प में भी शिवज्ञान नहीं होता है ।।१५।। उद्धूलन और त्रिपुण्ड्र जो श्रद्धा से धारण नहीं करते वे महापातकी हैं, यह शास्त्रीय निर्णय है ।।१६।। उद्धूलन और त्रिपुण्ड्र जो श्रद्धा से नहीं करते हैं, उनका सब आचरण विपरीत फल के निमित्त है ।।१७।। हे मुने! सब प्राणियों का द्वेष करनेवाले जो महापातकों से युक्त प्राणी हैं, उन्हीं का त्रिपुण्ड्र और भस्म से द्वेष है ।।१८।। जो ज्ञानी 'त्र्यायुषेति॰' इस मन्त्र से शिवाग्नि से भस्म लेकर लगाता है, वह भस्म के स्पर्श करते ही सब पापों से छूट जाता है ।।१९।। जो श्वेतभस्म से तीनों सन्ध्याओं में त्रिपुण्ड्र लगाता है, वह सब पापों से मुक्त होकर शिवजी के संग प्रसन्न होता है ।।२०।। जो श्वेत भस्म से ललाट पर त्रिपुण्ड्र लगाता है, वह अनादि भूतलोकों में अमृत होता है ।।२१।। जो भस्म से स्नान नहीं किया हो, तो षडाक्षर मन्त्र का जप न करे । भस्म का त्रिपुण्ड्र लगाकर विधिपूर्वक जप करे ।।२२।। दया रहित वा अधम वा जो सब पापों से युक्त है, वध से युक्त है, मूर्ख वा पतित कैसा भी हो ।।२३।। भस्म धारण किये जिस देश में निवास करता है, वहां सर्व तीर्थों और यज्ञों का निवास है ।।२४।। त्रिपुण्ड सहित जीव सुर–असुर प्राणियों से पूजित होता है, वह पापी होकर भी शुद्धात्मा हो जाता है । फिर श्रद्धा युक्त करनेवाले की तो बात ही क्या है ?।।२५।। जिस देश में शिवज्ञानी भूति शासन से युक्त रहता है, वह आते–जाते सम्पूर्ण तीर्थों का स्थान है ।।२६।। बहुत कहने से क्या ? विद्वानों को सदा भस्म धारण करनी चाहिये । सदा लिंगार्चन करके षड़ाक्षर मन्त्र का जप करना चाहिये ।।२७।। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, मुनि, देवता भी भस्म धारण के माहात्म्य को नहीं कह सकते ।।२८।। इस प्रकार वर्ण आचार और वर्ण की क्रिया जिसने लुप्त कर दी है, वह एक बार त्रिपुण्ड्र के धारण से सब पापों से छूट जाता है ।।२९।। जो मनुष्य भस्मधारी को त्यागकर कर्म करते हैं, उनकी संसार में करोड़ जन्म से भी मुक्ति नहीं होती ।।३०।। उसने गुरु के पास सब पढ़ा और सब अनुष्ठान किया, जिस ब्राह्मण ने शिर पर त्रिपुण्ड्र धारण किया है ।।३१।। जो मनुष्य भस्मधारी को देखकर ताड़ना करते हैं, उनका जन्म चाण्डाल से उत्पन्न जानना ।।३२।। 'मानस्तोके॰' इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करके भस्म धारण करे । ब्राह्मण तथा क्षत्रिय भक्ति युक्त होकर शरीर पर भस्म लगावे ।।३३।। वैश्य त्र्यम्बकमन्त्र से और शूद्र पञ्चाक्षर मन्त्र से भस्म लगावे तथा अन्य विधवा स्त्रीयां भी पञ्चाक्षर मन्त्र से भस्म

लगावे।।३४।। मनु ने गृहस्थी को पञ्चब्रह्म के मन्त्रों को कहा है और ब्रह्मचारी को 'त्र्यम्बक०' इस मन्त्र से विधि कही है।।३५।। अघोरमन्त्र से वन में स्थितों की विधि कही है, यति प्रणव से ही त्रिपुण्ड्रादि लगावे।।३६।। अतिवर्णाश्रमी नित्य 'शिवोहं' ऐसी भावना से भस्म धारण करे, शिवयोगी ईशानमन्त्र से भस्म धारणा करे।।३७।। किसी वर्ण को भस्म धारण त्यागना उचित नहीं है, अन्य जीवों को भी भस्म धारण करना उचित है, यह शिवजी की आज्ञा है।।३८।। भस्म स्नान से जितने भस्म के कण अपने अंग में प्रविष्ट होते हैं, उतने ही वह अपने शरीर में शिवलिंग धारण करते हैं।।३९।। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, संकरजाति, स्त्री या विधवा, बाल, पाखण्डी, ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वनी, संन्यासी, व्रती, नारी यह भस्म धारण करने से मुक्त होते हैं, इसमें सन्देह नहीं।।४०-४१।। ज्ञान-अज्ञान से धारण की हुई भस्म अग्नि दाह के समान है, ज्ञान-अज्ञान से धारण की हुई भस्म सर्वथा मनुष्य को पवित्र कर देती है।।४२।। जो भस्म और जो रुद्राक्ष धारण नहीं करते उनका अन्न और जल थोड़ा भी ग्रहण न करे। वनी, यती, वर्णी अथवा संकरजाति इनके यहां का भोजन करके गृहस्थी पाप खानेवाला होता है और नरक में जाता है, उनके यहां का भोजन करके तीनों वर्ण गायत्री के जप से और संन्यासी प्रणव के जप से पवित्र होता है।।४३।। जो त्रिपुण्ड्र की निन्दा करते हैं, मानो वे शिवजी की निन्दा करते हैं और जो त्रिपुण्ड्र को धारण करते हैं, वे शिवजी को धारण करते हैं।।४४।। भस्म रहित मस्तक, शिवालय रहित ग्राम, ईश्वर के अर्चन रहित जन्म, शिवाश्रयहीन विद्या को धिक्कार है।।४५।। जो तीनों जगत् के आधारभूत हर की निन्दा करते हैं और जो त्रिपुण्ड्र धारण करनेवाले की निन्दा करते हैं, उनके दर्शन में दोष हैं, वे निश्चिय वर्णसंकर शूकर, असुर, खर, श्वान, गीदड़, कीट के समान हैं। वे पापरूप उत्पन्न हुए हैं, केवल नरक में जाने के लिये ही जन्म ले आये हैं।।४६।। वे रात-दिन, चन्द्र-सूर्य को प्रत्यक्ष देखकर भी नहीं देखते हैं, वहां वे आदर से रुद्रसूक्त का जप करने से मुक्त हो सकते हैं। उन प्रायश्चित्तियों से वार्ता नहीं करनी चाहिये, ऐसा करने से नरक होता है, जिससे फिर निस्तार नहीं है। जो भस्मधारी पुरुष की निन्दा करते हैं, वे महामन्द है।।४७।। जो ऊर्ध्वपुण्ड्रधारी तान्त्रिक है उनका तथा तप्त शंख चक्र बाहों में जगानेवालों का इस शिवयज्ञ में अधिकार नहीं है।।४८।। बृहज्जाबाल से प्रेरित हुए बहुत से लोक हैं, उनको विचार करके प्रयत्न से भस्म धारण करे।।४९।। जो चन्दन में मिलाकर विभूति धारण करते हैं, वह भी उचित है। कुछ भी हो बुद्धिमान् को माथे पर विभूति अवश्य धारण करनी चाहिये।।५०।। स्त्रियों को त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये, ब्राह्मणों को तथा विधवाओं को भी धारण करना चाहिये। इस प्रकार सम्पूर्ण आश्रमवालों को अपवर्ग की देनेवाली और सब पाप दूर करनेवाली विभूति सदा धारण करनी चाहिये।।५१।। जो भस्म से विधिपूर्वक त्रिपुण्ड्र

लगाता है, वह महापातक और उपपातकों से भी छूट जाता है।।५२।। ब्रह्मचारी, गृहस्थी अथवा यती, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा दूसरे पतित और अधम।।५३।। यह भस्म और त्रिपुण्ड्र धारण करने से शुद्ध हो जाते हैं, विधिपूर्वक भस्म धारण करके पापराशि को छोड़कर शुद्ध हो जाते है।।५४।। भस्म धारण करनेवाला विशेष करके स्त्रीहत्या और गोहत्यादि पातकों से तथा वीर घोरहत्या के पातक से मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं।।५५।। पराये द्रव्य का हरना, पराई स्त्रियों का घर्षण करना, पराई निन्दा करना, पराया क्षेत्र हरना, दूसरों को पीड़ा देना।।५६।। खेती और बगीचों का हरण करना, घरों में अग्नि लगाना तथा गो, सुवर्ण, महिषी आदि का हरण करना तथा तिल, कम्बल, वस्त्र।।५७।। नीचों से अन्न--धान्य जलादि का लेना तथा देशवेश्या, चाण्डाली, शूद्र, नटी।।५८।। रजस्वला कन्या, विधवा से मैथुन करना, तथा मांस, चर्म, रस और लवण का विक्रय करना।।५९।। चुगली, कूटवाद, झूँठी साक्षी देना इस प्रकार के अनेक पाप त्रिपुण्ड्रके धारण करने से नष्ट हो जाते हैं।।६०।। शिवजी के द्रव्य का हरना, शिवजी की निन्दा करना, शिवजी की भक्तों की निन्दा करना यह पाप प्रायश्चित्त से भी नहीं जाते।।६१।। जिसके शरीर पर रुद्राक्ष और माथे पर त्रिपुण्ड्र है, वह चाण्डाल होने पर भी पूजनीय और वर्णों में उत्तम है।।६२।। जिसके माथे पर त्रिपुण्ड्र है, मानो वह इस लोक में जितने तीर्थ और गंगादि नदियां हैं, उन सब स्थानों में स्नान कर चुका।।६३।। पञ्चाक्षरादि सात करोड़ महामन्त्र तथा और भी करोड़ों मन्त्र शिवमुक्ति के दाता हैं।।६४।। हे मुने! अन्य दूसरे देवताओं के मन्त्र भी सुख देनेवाले हैं, परन्तु वे सब त्रिपुण्ड्र धारण करनेवाले के वश में हैं।।६५।। सहस्त्रों पहले हुए और सहस्त्रों आगे होनेवाले अपने जातिवालों को उद्धार कर देता है, जो त्रिपुण्ड्र का धारण करनेवाला है।।६६।। यहां सम्पूर्ण भोगों को भोगकर व्याधि से वर्जित दीर्घायु होकर सुख से शरीर को त्यागकर।।६७।। आठ ऐश्वर्य से युक्त दिव्य कल्याण युक्त शरीर को प्राप्त होकर दिव्य विमान पर आरोहण करके दिव्य स्त्रियों से सेवित होकर।।६८।। सम्पूर्ण विद्याधर महापराक्रमी गन्धर्व इन्द्रादि लोकपालों के लोक में यथा क्रम से।।६९।। अनेक भोगों को भोग कर प्रजापतियों के लोक में तथा ब्रह्माजी के पद को प्राप्त होकर सौ कन्याओं से रमता हुआ।।७०।। वहां ब्रह्मा की आयुपर्यन्त अनेक भोगों को भोग कर ब्रह्माजी की सौ आयु तक वहां रहता है।।७१।। फिर शिवलोक को प्राप्त होकर अक्षय कामना को लेता है, फिर शिवजी के सायुज्य को प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं है।।७२।। बारंबार सम्पूर्ण उपनिषदों के सार को देखकर यही निर्णय किया है कि, त्रिपुण्ड्र धारण करना श्रेष्ठ है।।७३।। जो विभूति की निन्दा करता है, वह ब्राह्मण नहीं अन्य जाति है, वह ब्रह्मा की आयुपर्यन्त नरक को जाता है।।७४।। श्राद्ध, यज्ञ, जप, होम, वैश्वदेव देवार्चन में त्रिपुण्ड्र का धारण करनेवाला मृत्यु को

जीतता है ।।७५।। मलत्याग में जलस्नान है, भस्मस्नान सदा पवित्र है, मन्त्रस्नान पाप हरता है, ज्ञानस्नान से परमपद होता है ।।७६।। सब तीर्थों में स्नान का जो पुण्य और फल है, वह फल भस्म से स्नान करनेवाले मनुष्य को प्राप्त होता है ।।७७।। भस्मस्नान परमतीर्थ है, दिन-दिन गंगास्नान है, भस्मरूपी साक्षात् शिवजी है, भस्म त्रिलोकी को पवित्र करती है ।।७८।। बिना त्रिपुण्ड्र धारण किये ब्राह्मण जो अनुष्ठान करता है, वह स्नान, दान, ध्यान, जप नहीं है ।।७९।। वानप्रस्थ को, कन्या को, दीक्षाहीन मनुष्यों को मध्याह्न से पहले जल से स्नान कर्तव्य है, फिर जल वर्जित है ।।८०।। जो नित्य-नियमित मनपूर्वक त्रिपुण्ड्र धारण करता है, वह शिवभक्त है, वह भुक्ति-मुक्ति को प्राप्त होता है ।।८१।। जिसके अंग में अनेक पुण्यों का देनेवाला एक भी रुद्राक्ष नहीं है और त्रिपुण्ड्र से भी रहित है, तो उसका जन्म निरर्थक है ।।८२।। यह त्रिपुण्ड्र का माहात्म्य मैंने संक्षेप से कहा है, यह सब प्राणियों का रहस्य आपको गुप्त रखना उचित है ।।८३।। हे मुने! ललाटादि अंगों में त्रिपुण्ड्र की तीन रेखा होती हैं, यह पण्डितों ने कहा है ।।८४।। भौं के मध्य से प्रारम्भ करके जहां तक भौं का अन्त हो उतने प्रमाण का माथे पर त्रिपुण्ड्र धारण करे ।।८५।। मध्यमा और अनामिका अंगुली से मध्य में प्रतिलोम से अंगुष्ठ से की हुई रेखा त्रिपुण्ड्र कहलाती है ।।८६।। तीन अंगुलियों के मध्य में भस्म को यत्नपूर्वक ग्रहण करके भक्ति से त्रिपुण्ड्र धारण करे, यह भुक्ति-मुक्ति का देनेवाला है ।।८७।। तीनों रेखाओं के क्रम से नौ देवता हैं, वह सब अंगों में है, मैं उनको कहता हूँ,सावधान होकर सुनिये ।।८८।। अकार गार्हपत्य अग्नि है, भू रजोगुण है, ऋग्वेद क्रियाशक्ति और प्रायः सवन है ।।८९।। प्रथम रेखा के महादेवजी देवता हैं। हे मुनिश्रेष्ठ! शिवदीक्षा में परायणों को यह जानना उचित है ।।९०।। उकार दक्षिणाग्नि आकाश सत्त्वगुण यजुर्वेद है, मध्यदिन का सवन इच्छाशक्ति अन्तरात्मा है ।।९१।। दूसरी रेखा के महेश्वरजी देवता हैं। हे मुनिश्रेष्ठ! यह शिवदीक्षावाले लोगों को जानना उचित है ।।९२।। मकार आहवनीय परमात्मरूप तमोगुण स्वर्गस्वरूप ज्ञानशक्ति सामवेद तृतीय सवनस्वरूप है ।।९३।। तीसरी रेखा के शिवजी देवता हैं। हे मुनिश्रेष्ठो! यह शिवदीक्षावालों को जानना चाहिये ।।९४।। इस प्रकार सद्भक्ति से स्थान के देवताओं को नमस्कार करके शुद्ध होकर त्रिपुण्ड्र धारण करने से भुक्ति-मुक्ति को प्राप्त होता है ।।९५।। हे मुनीश्वर! इस प्रकार सब अंगों के स्थानदेवता कीर्तन किये हैं, अब उनके सम्बन्धी स्थान सुनिये ।।९६।। बत्तीस स्थान में, सोलह स्थान में, आठ स्थानों में तथा पाँच स्थानों में न्यास न करे ।।९७।। शिर, मस्तक, ललाट, कान, नेत्र, नासिका, मुख, गला, दोनों हाथ ।।९८।। कर्पूर, मणिबन्ध, हृदय, दोनों पार्श्व, नाभि, मुष्कदेश, ऊरू, गुल्फ, जानु ।।९९।। दोनों जंघा, दोनों पैर, यह बत्तीस स्थान श्रेष्ठ है। अग्नि, भू, वायु, दिग्देश, वसुओं के सहित दिक्पाल ।।१००।। धरा, ध्रुव, सोम, जल, पवन, अग्नि,

प्रत्यूष, प्रभास, आठों वसु ।।१०१।। इनके नाममात्र को पण्डितजन त्रिपुण्ड्र धारण करे अथवा सोलह स्थानों में त्रिपुण्ड्र धारण करें ।।१०२।। शिर, ललाट, कण्ठ, दोनों कन्धे, दोनों भुजा, कर्पूर, मणिबन्ध, हृदय, नाभि, दोनों पार्श्व ।।१०३।। तथा पीठ में स्थापित कर अश्विनीकुमार का यजन करें। शिव, शक्ति, रुद्र, ईश, नारद ।।१०४।। और वामादि नौ शक्तियां यह सोलह देवता, नासत्य और दस्र ये दो अश्विनीकुमार ।।१०५।। अथवा शिवा केश, कान, मुख, बाहु, हृदय, नाभि, दोनों ऊरू ।।१०६।। दोनों जानु, चरण, पृष्ठभाग इन सोलह स्थानों में लगावे। शिव, चन्द्र, रुद्र, ब्रह्मा, विघ्नेश, विष्णु ।।१०७।। श्री हृदय में, शिवजी नाभि में, प्रजापति, नाग, नागकन्या, दोनों ऋषिकन्या ।।१०८।। चरणों के समुद्र पृष्ठ में तीर्थ यह सोलह स्थान है। अब आठ स्थान कहते हैं ।।१०९।। गुह्यस्थान, ललाट, दोनों कान, दोनों कन्धे, हृदय और नाभि यह आठ स्थान हैं ।।११०।। ब्रह्माजी और सात ऋषि इनके देवता हैं। हे मुनिश्वरो! भस्म के जाननेवालों ने यह विधान कहा है ।।१११।। अथवा मस्तक, दोनों बाहु, हृदय, नाभि इन पाँच स्थानों में भस्म धारण करे, ऐसा मुनिजन कहते हैं ।।११२।। देश काल की अपेक्षा से यथासम्भव कार्य करे, उद्धूलन में असमर्थ हो तो त्रिपुण्ड्र आदिक धारण करे ।।११३।। तीन नेत्र, त्रिगुणाधार, त्रिदेव उत्पादक शिवजी को स्मरण करता हुआ 'नमः शिवाय' इस मंत्र से त्रिपुण्ड्र धारण करे ।।११४।। 'इशाभ्यां नमः' ऐसा कहकर दोनों पार्श्वों में त्रिपुण्ड लगावे, 'बीजाभ्यां नमः' यह मन्त्र पढ़कर प्रकोष्ठ में लगावे ।।११५।। 'कर्पूराय नमः' इससे नीचे, 'पितृभ्यां नमः' दोनों ओर, 'ईशाभ्यां नमः' इससे ऊपर, 'भीमाय नमः' कहकर पृष्ठ में और शिर के पश्चिम भाग में लगावे ।।११६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमविद्येश्वरसंहिता भाषायां
साध्यसाधनखण्डे भस्मधारणावर्णनोनाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।।२४।।

*****

पच्चीसवाँ अध्याय

सूतजी बोले- हे महाभाग महाबुद्धिमान शौनकजी! शिवरूप रुद्राक्ष का माहात्म्य सुनिये, मैं संक्षेप में कहता हूँ ।।१।। परमपावन रुद्राक्ष शिवजी का अत्यन्त प्रिय है। दर्शन, स्पर्शन और जप से सब पाप हरनेवाला है ।।२।। हे मुने! पहले परमात्मा शिवजी ने लोक के उपकार के निमित्त देवी के आगे रुद्राक्ष की महिमा कही थी ।।३।। शिवजी बोले- हे देवि! हे महेशानि! रुद्राक्ष की महिमा सुनो, भक्तों के हित की

इच्छा करके तुम्हारी प्रीति के कारण कहता हूँ।।४।। हे महेशानि! पहले सहस्र वर्ष दिव्य तक तप करते हुए और एकाग्र मन करते हुए मेरा मन क्षुभित हुआ।।५।। हे परमेशानि! स्वतन्त्र परमेश्वर लोक के उपकार के निमित्त मैंने लीला से ही नेत्र मीच लिये।।६।। तब मेरे नेत्रपुट से जल के बिन्दु गिरे, उन आंसुओं से रुद्राक्ष के वृक्ष उत्पन्न हुए।।७।। वे भक्तों के अनुग्रह करने के लिये स्थावरत्त्व को प्राप्त हो गये, यह विष्णुजी के भक्त और चारों वर्णों के निमित्त देने।।८।। वे गौड देश में रुद्राक्ष के वृक्ष हुए। यह शिवजी के प्रिय मथुरा, अयोध्या, लंका, मलयाचल।।९।। सह्यपर्वत, काशी तथा दूसरे देशों में पाप के समूह के नाश करने के लिये बलात्कार से हुए हैं।।१०।। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र वर्णवाले मेरी आज्ञा से हुए हैं। पृथ्वी पर रुद्राक्षों के यह भेद हैं, शुभाक्ष (भद्राक्ष) उनकी जाती के ही हैं।।११।। क्रम से विद्वानों को इनके श्वेत, रक्त, पीत, कृष्ण यह भेद जानने उचित हैं। वर्णों के अनुसार प्राणियों को अपनी जाति के रुद्राक्ष धारण करने उचित हैं।।१२।। भुक्ति-मुक्ति की इच्छा करनेवालों को इसका फल अवश्य धारण करना चाहिये, विशेष करके शिवजी के भक्तों को शिवाशिव की प्रीति के निमित्त यह धारण करना चाहिये।।१३।। जो आमले के फल के समान है वह श्रेष्ठ है, बदरीफल के समान मध्यम है।।१४।। चनेमात्र का अधम है, इनकी प्रक्रिया कहते हैं, हे पार्वती! मन लगाकर सुनो, भक्तों के हित की कामना से कहता हूँ।।१५।। हे महेश्वरी! बेर के बराबर भी रुद्राक्ष हो तो भी लोक में सुख-सौभाग्य का बढ़ानेवाला है।।१६।। जो धात्रीफल के समान है, वह सम्पूर्ण अरिष्टों को शान्त करता है। जो चौटली के फल के समान है वह सम्पूर्ण अर्थ का साधनेवाला है।।१७।। जैसा-जैसा छोटा होता है वैसा-वैसा अधिक फल देनेवाला है। एक दूसरे से एक-एक दशांश फल अधिक देता है।।१८।। रुद्राक्ष का धारण पाप नाश के निमित्त है, इस कारण इसे सम्पूर्ण अर्थ के साधनेवालों को धारण करना चाहिये।।१९।। जैसा लोक में फल देनेवाला रुद्राक्ष है, हे परमेश्वरि! वैसी और माला नहीं है।।२०।। सम स्निग्ध, दृढ़, स्थूल, कण्टकों से युक्त शुभ रुद्राक्ष कामना को देनेवाले हैं। हे देवि! यह सदा भुक्ति-मुक्ति के देनेवाले हैं।।२१।। कृमि के खाये हुए, छिन्न-भिन्न, कण्टकों से हीन, व्रणयुक्त, गोलाई से हीन ऐसे छः दोषों से युक्त रुद्राक्षों को त्याग दे।।२२।। जिसमें स्वयं छिद्र हो वहीं उत्तम रुद्राक्ष है, पुरुष द्वारा छिद्र किया हुआ मध्यम है।।२३।। रुद्राक्ष के धारण से महापातक नष्ट होते हैं। एकादश, सौ रुद्राक्ष धारण करने से मनुष्य रुद्ररूप हो जाता है।।२४।। ग्यारह सौ रुद्राक्ष धारण करने से जो फल प्राप्त होता है, वह सौ वर्ष में नहीं कह सकते।।२५।। जो साढ़े पाँच सौ रुद्राक्षों का मुकुट भक्तिपूर्वक धारण करता है, वह भक्तिमान् पुरुष श्रेष्ठ होता है।।२६।। जो तीन सौ साठ रुद्राक्षों की तीन लडी करके यज्ञोपवीत धारण करता है और भक्ति करता है।।२७।। शिखा में

तीन, बायें और दक्षिण दोनों में कानों में छः-छः पहने ।।२८।। कंठ में एक सौ एक, बाहों में ग्यारह, कर्पूर और मणिबन्ध में इसी प्रकार ।।२९।। शिवभक्त मनुष्य को यज्ञोपवीत में तीन रुद्राक्ष धारण करने चाहिये, कटि में पाँच रुद्राक्ष धारण करे ।।३०।। हे परमेश्वरि! इस प्रकार यह रुद्राक्ष जिसने धारण किये हैं, उसका रूप शिवजी के समान होता है, वह स्तुति के योग्य होता है ।।३१।। इस प्रकार रूप करके ध्यान में स्थित होकर आसन पर स्थित होकर शिवजी का नाम उच्चारण करते हुए मनुष्य को देखकर यह प्राणी सब पापों से छूट जाता है ।।३२।। यह ग्यारह सौ की विधि कही है। इसके अभाव में दूसरा प्रकार है, वह मैं आपसे कहता हूँ ।।३३।। शिखा में एक रुद्राक्ष, शिर पर तीस धारण करे, पचास गले में और भुजाओं में सोलह-सोलह धारण करे ।।३४।। मणिबन्ध में बारह, स्कन्ध में पाँचसौ, एकसौ आठ रुद्राक्षों का यज्ञोपवित कल्पित करे ।।३५।। इस प्रकार जो दृढ़व्रत होकर सहस्र रुद्राक्षों को धारण करता है, उसे सर्व देवता नमस्कार करते हैं, वह रुद्र के समान है ।।३६।। शिखा में एक रुद्राक्ष, मस्तक पर चालीस, कण्ठ में बत्तीस, हृदय में एक सौ आठ ।।३७।। एक-एक कानों में छः-छः, भुजाओं में सोलह-सोलह, हाथ में बारह-बारह अथवा चौबीस-चौबीस ।।३८।। इतने जिसने प्रीति से धारण किये हैं, वह भी शिवजी का भक्त है, वह निरन्तर सबसे पूजनीय और वन्दनीय है ।।३९।। ईशानमन्त्र से शिर पर, तत्पुरुषमन्त्र से कानों में, अघोरमन्त्र से गले और हृदय में धारण करने चाहिये ।।४०।। अघोर और बीजमन्त्र से हाथों में धारण करे, पन्द्रह रुद्राक्ष वामदेवमन्त्र से उदर में धारण करे ।।४१।। सद्योजातादि पञ्चब्रह्ममन्त्रों से दूसरे अंगों में तीन माला पाँच वा सात धारण करे अथवा मूलमंत्र से संपूर्ण रुद्राक्षों को धारण करे ।।४२।। मद्य, मांस, लशुन, पलाण्डु (प्याज), शिग्रु (सैंजना), श्लेषान्तक (बहुयारवृक्ष), विड्वराह (लहसन) इनको न खाए ।।४३।। श्वेत रुद्राक्ष ब्राह्मणों को हितकारी है, क्षत्रियों को लाल, वैश्यों को पीले और शुद्रों को कृष्णवर्ण के रुद्राक्ष धारण करने चाहिये, यह वेदमार्ग की विधि है ।।४४।। सब वर्णों को और यतियों को भी रुद्राक्ष धारण करने चाहिये, यह परम रहस्य है, यह रुद्राक्ष बड़े पुण्य से प्राप्त होता है। इसका त्याग करने से नरक की प्राप्ति होती है ।।४५।। आमले से छोटे अत्यंत लघु, भग्न या और किसी प्रकार से हीन हुए, कण्टक हीन, कृमि ने खाये हुए, छिद्रहीन ऐसे रुद्राक्ष मङ्गल की इच्छावाला धारण न करे और चने के समान सूक्ष्म की प्रशंसा की गई है। शिवजी कहते हैं- यह हमारा चिह्न स्वरूप सदा धारण करना चाहिये ।।४६।। सम्पूर्ण आश्रम और वर्णों को, स्त्री शुद्रों को शिवजी की आज्ञा से सदा रुद्राक्ष धारण करने चाहिये और यतियों को ॐ कारपूर्वक धारण करने चाहिये ।।४७।। दिन में धारण करने से रात्रि के, रात्रि में धारण करने से दिन के इसी प्रकार प्रभात, मध्याह्न और सन्ध्याकाल के सब पातक दूर हो जाते हैं ।।४८।। जो-जो त्रिपुण्ड्र धारण करनेवाले

हैं अथवा जो जटा धारण करनेवाले हैं, जो रुद्राक्ष धारण करनेवाले हैं, वे यमलोक को नहीं जाते ।।४९।। जो एक रुद्राक्ष शिर पर और माथे पर त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं और पञ्चाक्षर मन्त्र का जप करते हैं वे महात्मा पूज्य हैं ।।५०।। जिसके अंग पर रुद्राक्ष, माथे पर त्रिपुण्ड्र तिलक, मुख में पञ्चाक्षर मन्त्र नहीं है, उनको मेरे यमलोक को लावो ।।५१।। भस्म, रुद्राक्ष धारण करनेवालों के उन-उन प्रभावों को जानकर पूजनीय जानों, उन्हें हमारे लोक को मत लाओ ।।५२।। यह यमराज ने अपने किंकरों से कहा है। यह सुनकर वे विस्मय को प्राप्त होकर मौन हुए ।।५३।। हे महादेवि! इस प्रकार रुद्राक्ष महापाप नष्ट करनेवाला है। हे पार्वती! उसे धारण करनेवाला अधिक पापी भी हो तथापि हाथ, बाहु, शिर पर जो रुद्राक्ष धारण करता है, वह सब प्राणियों से अवध्य रुद्र रूप होकर पृथ्वी पर विचरण करता है ।।५५।। वह सुर-असुर सदा सबको वन्दनीय है वह देखते ही पूजनीय है, शिवजी के समान पापों को दूर करनेवाला है ।।५६।। ध्यान, ज्ञान से अवमुक्त हुआ भी जो रुद्राक्ष धारण करता है, वह सब पापों से छूटकर परमगति को प्राप्त होता है ।।५७।। रुद्राक्ष से मन्त्र जपने से करोड़ गुणा पुण्य होता है, उसे धारण करने से मनुष्य दश करोड़ गुणा पुण्य पाता है ।।५८।। जब तक जीता है तब तक स्वस्थ शरीर है। हे देवी! उसे कभी अकाल मृत्यु नहीं होती ।।५९।। त्रिपुण्ड्र के सहित जिसके अंग पर रुद्राक्ष शोभित होता है और जो मृत्युञ्जय का जप करता है, उसके दर्शन से रुद्रदर्शन का फल होता है ।।६०।। हे प्रिये! पाँच देवताओं की उपासना करनेवाला सर्व देवताओं के प्रिय रुद्राक्षमाला से सर्व देवताओं का जप करे ।।६१।। इसे विष्णुजी आदि देवताओं के भक्त भी धारण करे, इसमें सन्देह नहीं। रुद्र के भक्त तो विशेष करके रुद्राक्ष धारण करे ।।६२।। रुद्राक्ष बहुत प्रकार के होते हैं। मैं उनके भेद कहता हूँ। हे पार्वती! सद्भक्ति से उन भुक्ति-मुक्ति देनेवालों का चरित्र सुनो ।।६३।। एक मुखी रुद्राक्ष साक्षात् भुक्ति-मुक्ति का देनेवाला शिवरूप है, उसके दर्शनमात्र से ब्रह्महत्या नष्ट होती है ।।६४।। जहां वह पूजित होता है, वहां से लक्ष्मी दूर नहीं हैं, सब उपद्रव शान्त होकर सब कामनाएँ सिद्ध होती है ।।६५।। दो मुखवाला देवदेवेश सर्व काम और फल का देनेवाला है, यह विशेष रुद्राक्ष गोहत्या दूर करता है ।।६६।। तीन मुखी रुद्राक्ष सदा साधन देनेवाला है, उसके प्रभाव से सर्व विद्या प्रतिष्ठित होती है ।।६७।। चार मुखी ब्रह्मरूप है, नरहत्या दूर करनेवाला है, वह दर्शन-स्पर्शन से चारों वर्ग का देनेवाला है ।।६८।। पाँच मुखी स्वयं रुद्ररूप है, उसी का नाम कालाग्नि है, सब मुक्ति और सब कामना का देनेवाला है ।।६९।। अगम्या में गमन करने, अभक्ष्य भक्षण करने से जो पाप है, इत्यादि और भी पाप पञ्चमुखी रुद्राक्ष दूर करता है ।।७०।। छः मुखी रुद्राक्ष कार्तिकेय स्वरूप है, उसे दक्षिण भुजा में धारण करे, तो वह ब्रह्महत्यादि पापों से छूट जाता है, इसमें सन्देह नहीं ।।७१।। हे महेशानि!

सात मुख का अनङ्ग होता है, उसे धारण करने से दरिद्र भी ईश्वर हो जाता है।।७२।। आठ मुख का रुद्राक्ष वसुमूर्ति भैरवरूप है, उसे धारण से पूर्णायु होती है और शरीर के अन्त में शिवरूप होता है।।७३।। नौ मुख का भैरव और कपिलमुनि है या उसकी अधिष्ठात्री देवता दुर्गा महेश्वरी है।।७४।। उस रुद्राक्ष को भक्ति में तत्पर होकर बायें हाथ में धारण करे, सर्वेश्वर तथा मेरी तुल्य हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं।।७५।। हे महेशानि! दशमुखी रुद्राक्ष स्वयं जनार्दन देव है, हे देवेशि! उसे धारण करने से सब कामनाओं को प्राप्त होता है।।७६।। ग्यारहमुखी रुद्राक्ष धारण करने से रुद्ररूपी होकर सर्वत्र विजयी होता है।।७७।। जो बारह मुख का रुद्राक्ष केशदेश में धारण करता है, वह बारह आदित्यों के समान है।।७८।। तेरह मुख का रुद्राक्ष धारण करने से विश्वदेव की तुल्य होता है, वह सब कामनाओं को प्राप्त होकर सौभाग्य और मङ्गल को प्राप्त करता है।।७९।। चौदह मुखी रुद्राक्ष परम शिवरूप है, उसे भक्ति से शिर पर धारण करने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं।।८०।। मुखभेद से इतने रुद्राक्षों के भेद वर्णन किये हैं। हे पर्वतराजपुत्रि! अब क्रम से प्रीतिपूर्वक उनके मन्त्रों को सुनो।।८१।। "ॐ ह्रीं नमः १, ॐ नमः २, ॐ क्लीं नमः ३, ॐ ह्रीं नमः ४, ॐ ह्रीं नमः ५, ॐ ह्रीं हूं नमः ६, ॐ हूं नमः ७, ॐ हूं नमः ८, ॐ ह्रीं हूं नमः ९, ॐ ह्रीं नमः १०, ॐ ह्रीं हूं नमः ११, ॐ क्रौं क्षौं रौं नमः १२, ॐ ह्रीं नमो नमः १३, ॐ नमः १४" भक्ति और श्रद्धा के सहित सम्पूर्ण काम, अर्थ की सिद्धि के निमित्त इन मन्त्रों से रुद्राक्षों को धारण करे, आलस्य न करे। चौदहमुखी रुद्राक्षों तक के चौदह मन्त्र हैं। पहले मन्त्र से एक मुखी, दूसरे से दो मुखी इसी क्रम से धारण करें।।८२।। पृथ्वी पर जो मनुष्य बिना मन्त्र से रुद्राक्ष को धारण करता है, वह चौदह इन्द्र की आयु अर्थात् एक कल्प तक घोर नरक में पड़ता है।।८३।। रुद्राक्ष की मालावाले को देखकर भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी अथवा जो दूसरे द्रोह करनेवाले जीव हैं और जो कुछ कृत्रिम अभिचारादिक हैं, वह दूर से ही रुद्राक्षधारी को देखकर पलायन करते हैं।।८४-८५।। रुद्राक्षमालाधारी को देखकर शिवजी और विष्णुजी प्रसन्न होते हैं। हे पार्वती! देवी, गणपति, सूर्य तथा अन्य दूसरे देवता प्रसन्न होते हैं।।८६।। हे महेश्वरि! इस प्रकार रुद्राक्ष का माहात्म्य जानकर मन्त्र और भक्ति से धर्मवृद्धि के निमित्त सम्यक् प्रकार से रुद्राक्ष धारण करने चाहिये।।८७।। इस प्रकार पार्वती के आगे परमात्मा शिवजी ने वर्णन किया था। भस्म और रुद्राक्ष का माहात्म्य भुक्ति-मुक्ति के फल का देनेवाला है।।८८।। भस्म और रुद्राक्ष धारण करनेवाले शिवजी के अतिप्रिय जानने, उसे धारण के प्रभाव से भुक्ति-मुक्ति होती है, इसमें सन्देह नहीं।।८९।। हे गौरि! भस्म और रुद्राक्ष धारण करनेवाला शिवभक्त कहलाता है। जो पञ्चाक्षर जप में आसक्ति है वह परिपूर्ण है।।९०।। बिना भस्म और त्रिपुण्ड्र के बिना रुद्राक्षमाला के पूजित हुए महादेवजी अभीष्ट फल नहीं

देते ।।९१।। हे मुनिश्वरो! जो आपने पूछा, वह सब आपसे वर्णन किया। भस्म और रुद्राक्ष का माहात्म्य सब कामना और समृद्धि का देनेवाला है ।।९२।। जो इस परम शुभ माहात्म्य को नित्यप्रति श्रवण करते हैं, रुद्राक्ष और भस्म में भक्ति करते हैं, वह सब कामनाओं को प्राप्त होते हैं ।।९३।। यहां सब सुख भोगकर पुत्रपौत्रादि से संयुक्त होकर फिर मुक्ति में शिवजी के सायुज्य को प्राप्त होते हैं ।।९४।। हे मुनिश्वरो! यह आपसे विद्येश्वरसंहिता कही है। शिवजी की आज्ञा से यह सब सिद्धि और मुक्ति की देनेवाली है ।।९५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमविद्येश्वरसंहितायां साध्यसाधनखण्डे

पण्डितज्वालाप्रसादजी मिश्र कृत भाषायांरुद्राक्षमाहात्म्यवर्णनोनाम पञ्चविंशोऽध्यायः ।।२४।।

।। इति श्रीविद्येश्वरसंहिता समाप्ता ।।

श्लोकः

भूमिबाणांकचन्द्रब्दे माङ्गल्ये भृगुवासरे ।

भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्यां टीका पूर्तिमुपागमत् ।।१।।

*****

ॐ

श्रीकृष्णद्वैपायनमहर्षिवेदव्यासविरचित

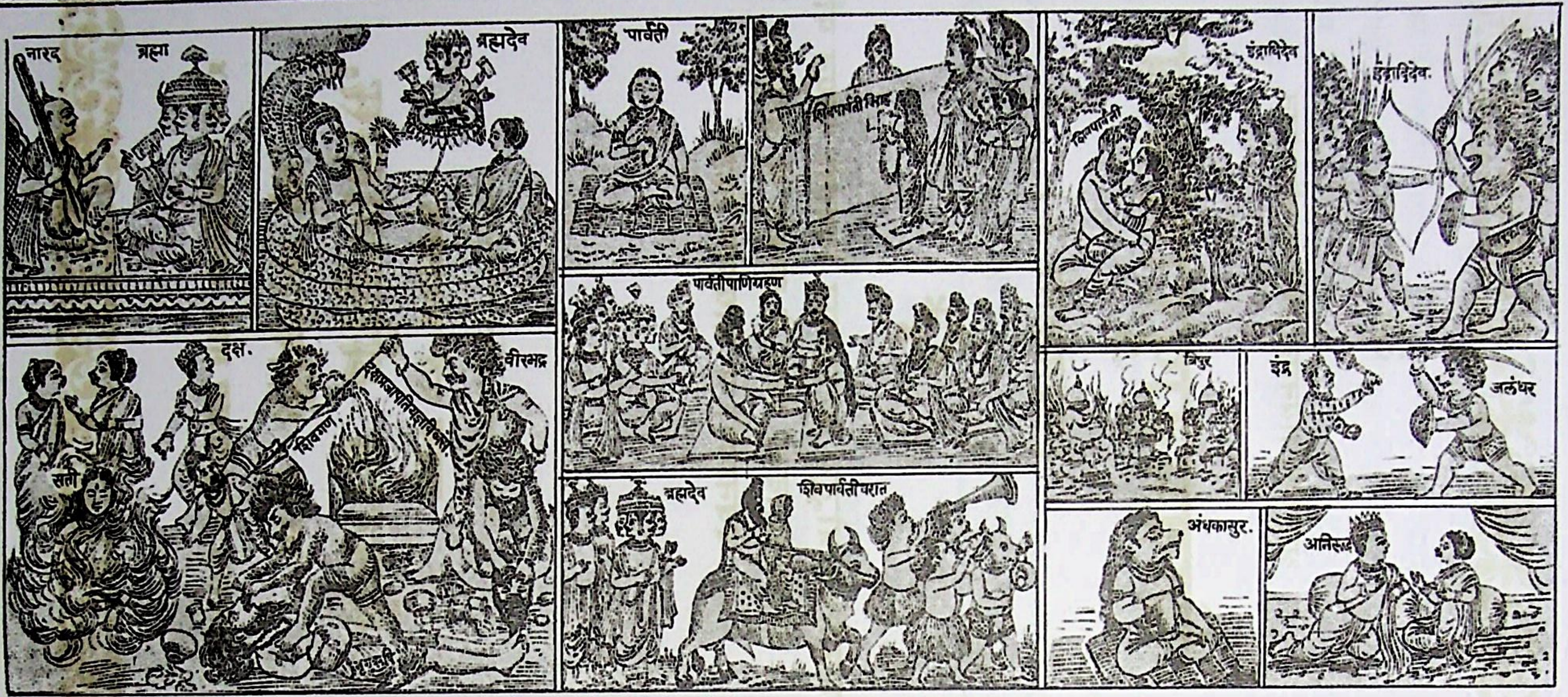
शिवमहापुराणभाषा

(रुद्रसंहिता २)

कात्यायनगोत्रोद्भव मुरादाबाद निवासी श्रीयुत पंडित
ज्वालाप्रसादजी मिश्र ने संस्कृत से अत्युत्तम
देवनागरी में भाषांतर किया

मुद्रक एवं प्रकाशकः
खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बम्बई-४०० ००४

(रुद्रसंहिता २)


नारद
ब्रह्मा
ब्रह्मदेव
पार्वती
इंद्रादिदेव
पार्वतीपाणिग्रहण
दक्ष.
वीरभद्र
सती
त्रिपुर
इंद्र
जलंधर
ब्रह्मदेव
अंधकासुर.
अनिरुद्ध

ॐ

अथ

शिवमहापुराणभाषा

द्वितीया रुद्रसंहिताप्रारम्भ

सृष्टिखण्ड

पहला अध्याय

दोहा–

शंकर गुणनिधि ज्ञाननिधि, मङ्गल नित दातार।
तिनके पग वन्दन करूं, टीका लिखूं विचार।।१।।

जो संसार की उत्पत्ति, पालन और लय के एक हेतु हैं, जो सब तत्त्वों को जाननेवाले गौरीपति, अनन्त कीर्तिमान्, माया के आश्रित और माया से रहित हैं, उन अचिन्त्यरूप, बोधस्वरूप, निर्मल शंकरजी को नमस्कार करता हूँ।।१।। प्रकृति से परे अनादि प्रशान्त, एक ही पुरुषोत्तम, अपनी माया से इस सब जगत् को निर्माण करके अन्तर–बाहर में स्थित हुए शंकरजी को नित्य प्रणाम करता हूँ।।२।। सबके अन्तर में स्थित अपने गूढ़ रूप में विराजमान, जो बिना किसी की सहायता के इस जगत् को निर्माण करके चेष्टा कर रहे हैं और जिनकी निकटता से सारा संसार इस प्रकार से भ्रमण करता है, जैसे चुम्बक की सन्निधि से लोहा चेष्टा करता है, ऐसे शंकरजी को प्रणाम करता हूँ।।३।। व्यासजी बोले– जगत् के पिता शिवजी, जगत् की माता पार्वतीजी और उनके पुत्र गणेशजी को प्रणाम करके हम 'रुद्रसंहिता' वर्णन करते हैं।।४।। एक समय नैमिषारण्य के रहनेवाले शौनकादि सब मुनीश्वर परमभक्ति से सूतजी से पूछने लगे।।५।। मुनीश्वर बोले– विद्येश्वरसंहिता की सुन्दर कथा तो हमने सुनी, जो साध्य–साधन खण्ड नामवाली अति मनोहर कथा भक्तों को अत्यन्त प्रिय है।।६।। हे सूतजी! हे महाभाग! आप बहुत

काल तक जियें और सुखी रहें। जो आप हम को श्रीशिवजी की सुन्दर कथा सुनाते हो ।।७।। आपके मुख से निकले हुए ज्ञानरूपी अमृत को पान करते हुए भी हम तृप्त नहीं होते, इससे हे तात! आपसे फिर पूछते हैं ।।८।। व्यासजी के प्रसाद से आप सर्वज्ञ और कृतकृत्य हो, इससे आपको भूत–भविष्य–वर्तमान में कुछ भी अविदित नहीं है ।।९।। व्यासजी की सद्भक्ति से उनकी परमकृपा को प्राप्त करके आपने सबको भली प्रकार जान लिया है और सब मनुष्यों को कृतार्थ किया है ।।१०।। हे प्राज्ञ ! अब इस समय शिवजी का श्रेष्ठ रूप कहिये और पार्वतीजी तथा शिवजी के दिव्य चरित्र हमको सुनाइये ।।११।। लोक में निर्गुण महेश्वर सगुण कैसे हो जाते हैं? हम विचार कर भी शिवजी का तत्त्व नहीं जान सकते ।।१२।। सृष्टि के पहले शिवजी अपने स्वरूप में किस प्रकार स्थित रहते हैं और वह प्रभु सृष्टि के मध्य में किस प्रकार क्रीड़ा करते हैं?।।१३।। और वह देव सृष्टि के अन्त में किस प्रकार स्थित होते हैं, लोकों के कल्याण करनेवाले शंकरजी किस प्रकार प्रसन्न होते हैं?।।१४।। और प्रसन्न होकर वह शंकरजी क्या फल देते हैं? अपने भक्तों को और दूसरों को क्या फल देते हैं? सो हम से कहिये ।।१५।। हमने सुना है, वह भगवान् शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं और दया के कारण भक्ति का महाप्रयास नहीं देखते हैं ।।१६।। ब्रह्मा–विष्णु–महेश यह तीनों देवता शिवजी के अंग से प्रकट हैं, उनमें पूर्णांश महेश स्वयं शिवजी ही हैं ।।१७।। उनका आविर्भाव और चरित्र विशेष रूप से हमसे कहिये। उमा का आविर्भाव और विवाह हमसे कहिये ।।१८।। विशेष करके शिवजी का गृहस्थपना और लीला भी हमसे कहिये। हे पाप रहित! यह तथा उनके अन्य चरित्र भी कहिये ।।१९।। व्यासजी बोले– जब इस प्रकार से पूछा, तब सूतजी बड़े प्रसन्न हुए और शिवजी के चरणकमलों को स्मरण कर मुनीश्वरों से बोले ।।२०।। सूतजी बोले– आपने बहुत अच्छी बात पूछी, हे मुनीश्वरो! आप धन्य हो। जो सदाशिवजी की कथा में आपकी निष्ठावाली मति है ।।२१।। सदाशिवजी की कथा के प्रश्न तीन पुरुषों को पवित्र करते हैं; कहनेवाले, पूछनेवाले और सुननेवालों को पवित्र करते हैं, जैसे गंगाजल ।।२२।। हे ब्राह्मणो! बिना पशुघ्न के तीन प्रकार से लोगों को आनन्द करनेवाले शिवजी के गुणानुवादों से कौन पुरुष विरक्त हो सकता है? ।।२३।। तृष्णा रहित पुरुषों से गायमान शिवचरित्र संसाररोग की औषधि है, मन और कानों को आनन्ददायक और सब अर्थ का देनेवाला है ।।२४।। आपके प्रश्न के अनुसार मैं यथा बुद्धि कहता हूँ; हे ब्राह्मणो! प्रयत्न से सादर शिवलीला सुनिये ।।२५।। जिस प्रकार से आपने प्रश्न पूछा है, इसी प्रकार से शिवरूप हरि से प्रेरित होकर नारदजी ने अपने पिता ब्रह्माजी से यही बात पूँछी थी ।।२६।। शिवभक्त ब्रह्माजी अपने पुत्र के यह वचन सुन प्रसन्न हो मुनिश्रेष्ठ को प्रसन्न करते हुए प्रीतिपूर्वक शिवजी का यश कथन करने लगे ।।२७।। व्यासजी बोले– वह श्रेष्ठ ब्राह्मण इस प्रकार

से सूतजी के कहे वचनों को सुनकर कुतूहल पूर्वक उस संवाद को पूछने लगे ।।२८।। ऋषि बोले– हे महाभाग सूतजी! हे शिवजी के भक्तों में उत्तम! हे महामते! आपके यह मनोहर वचन सुनकर हमारे चित्त में बड़ा कुतूहल हुआ है ।।२९।। ब्रह्माजी और नारदजी का यह सुखदायी संवाद कब हुआ है, जिसमें संसार का भय मुक्त करनेवाली शंकरजी की लीला कही गई है?।।३०।। विधि और नारदजी के संवादपूर्वक जो शंकरजी का यश है; हे तात! उनके प्रश्न के अनुसार आप हमें कहिये ।।३१।। इस प्रकार उन भावितात्मा मुनियों के वचन सुनकर तथा प्रसन्न हो उस संवाद के अनुसार सूतजी कहने लगे ।।३२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां पण्डित ज्वालाप्रसादजी मिश्र कृत भाषायां
प्रथम सृष्टिखण्डे मुनि प्रश्नवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ।।१।।

*****

दूसरा अध्याय

सूतजी बोले– हे ब्राह्मणो! एक समय ब्रह्माजी के पुत्र विनीतात्मा मुनिश्रेष्ठ नारदजी को तप करने की इच्छा करते हुए ।।१।। हिमालय पर्वत पर बड़े वेग से बहनेवाली गंगा के किनारे एक परम शोभायमान गुफा है ।।२।। वहां अनेक शोभाओं से शोभायमान एक दिव्य आश्रम है, वहां दिव्यदर्शन नारदजी तप के लिये गये ।।३।। उस स्थान को देखकर मुनिशार्दूल बहुत काल तक तप करते रहे और मौन हो, आसन लगाकर, प्राणायाम कर, शुद्ध मन से ।।४।। मुनि ने समाधि लगा दी, जिसमें 'अहम् ब्रह्म' यह ब्रह्मसाक्षात्कार करनेवाला विज्ञान होता है ।।५।। इस प्रकार जब मुनिश्रेष्ठ नारदजी ने तप करना आरम्भ किया, तब इन्द्र कम्पायमान हो गया और मन के सन्ताप से विह्वल हो गया ।।६।। और यह विचार किया कि, कदाचित् मुनिराज मेरा राज्य चाहते हों, तब उनके तप में विघ्न उत्पन्न करने की इन्द्र ने इच्छा की ।।७।। तब देवनायक इन्द्र ने मन से कामदेव का स्मरण किया, उस समय समान बुद्धिवाला कामदेव वहां आकर स्थित हुआ ।।८।। कामदेव को आया हुआ देखकर प्रभु देवराज स्वार्थ से कुटिल बुद्धि होने के कारण शीघ्रता से बोले ।।९।। इन्द्र बोले– हे मित्रवर्य! हे सदा हित करनेवाले महावीर! प्रीति से तुम मेरे वचन सुनकर मेरी सहायता करो ।।१०।। तुम्हारे ही बल से मैंने बहुतों के तप का गर्व नष्ट कर दिया है। हे मित्र! तुम्हारे ही अनुग्रह से मेरे राज्य में स्थिरता है ।।११।। हिमालय पर्वत की गुफा में मुनिश्रेष्ठ नारदजी तप कर रहे हैं, मन में शंकरजी का उद्देश्य धारण करके महासंयमी हो रहे हैं, दृढ़ता से स्थित हैं ।।१२।। कहीं ब्रह्माजी से वह मेरा राज्य तो न मांगे, यही मुझे शंका है, तुन अभी जाओ और उनके

तप में विघ्न करो ।।१३।। महेन्द्र से यह वचन सुनते ही मधुप्रिय काम बड़े गर्व से उस स्थल में गया और अपना उपाय करने लगा ।।१४।। और वहां अपनी सम्पूर्ण कला उसने रची और वसन्त ने भी मद से अपने अनेक प्रकार के प्रभाव दिखाये ।।१५।। हे मुनिश्रेष्ठो! पर नारदजी के मन में कुछ भी विकार नहीं आया और शंकरजी के अनुग्रह से इन्द्र का गर्व भ्रष्ट हो गया ।।१६।। हे शौनकादि मुनियो! आदर से इसका कारण सुनिये। यह सब ईश्वर का अनुग्रह है, कामदेव का प्रभाव नहीं ।।१७।। यहीं पर कामारि शंकरजी ने बड़ा तप किया था और यहीं पर मुनि के तप में विघ्नकर्ता काम दग्ध किया गया था ।।१८।। तब रति ने और सब देवताओं ने कामदेव के जीवन के लिये शिवजी से प्रार्थना की, तब लोक के कल्याणकर्ता शिवजी कहने लगे ।।१९।। हे देवताओ! कुछ समय के पश्चात् कामदेव जीवित हो जायेगा, परन्तु इस स्थल में कामदेव का प्रभाव कभी भी, कुछ भी न चलेगा ।।२०।। यहां की जो भूमि आपको दिखाई देती है; हे देवताओ! यहां स्थित होने से किसी प्रकार भी कामदेव का प्रभाव न चल सकेगा, इसमें सन्देह नहीं ।।२१।। इस प्रकार शिवजी की उक्ति से काम अपनी मिथ्या गति समझकर नारदजी के समीप से इन्द्र के पास स्वर्गलोक में गया ।।२२।। और वहां कामदेव ने नारदजी का सब वृत्तान्त सुनाया और उनकी आज्ञा से वसन्त के सहित अपने स्थान को चला गया ।।२३।। तब इन्द्र यह सुनकर बड़ा विस्मित हुआ और नारदजी की प्रशंसा की, कारण कि शिवजी की माया से मोहित होने के कारण वह उनके वृत्तान्त को न जान सका ।।२४।। सब प्राणियों को शिवजी की माया दुर्ज्ञेय है, भक्त के बिना अर्पित आत्मा होने से वह सब जगत् को मोहित करते हैं ।।२५।। और शिवजी के अनुग्रह से नारदजी वहां बहुत काल तक स्थित रहे और फिर अपना तप पूर्ण समझकर तपस्या से विराम किया ।।२६।। हमने को काम जीता, इस बात का मुनिराज को गर्व हुआ और शिवजी की माया से मोहित होने के कारण ज्ञान से रहित हो गये ।।२७।। हे मुनीश्वरो! शांकरी महामाया को धन्य है, विष्णु–ब्रह्मादिक कोई भी उनकी गति को नहीं जान सकते ।।२८।। उस समय उस माया ने नारदजी को अत्यन्त मोहित कर दिया था और वह अभिमान से अपना वृत्तान्त कहने के लिये कैलास पर गये ।।२९।। वहां शंकरजी को प्रणाम कर, अपने को महात्मा मानकर तथा कामजय में अपने को प्रभु मानते हुये गर्व से अपना सब वृत्तान्त सुनाया ।।३०।। यह सुनकर भक्तवत्सल शिवजी ने नारदजी से कहा; जो नारदजी भगवान् की माया से मोहित होकर भ्रष्टचित्त हो गये थे ।।३१।। रुद्र बोले– हे तात! हे नारद! तुम धन्य हो, मेरे वचन सुनो, यह बात जो तुमने मुझसे कही, सो नारायण के आगे मत कहना ।।३२।। और यदि पूछें तो भी उनसे यह वृत्तान्त न कहना सर्वथा इसे गुप्त रखकर किसी प्रकार भी प्रकाशित न करना ।।३३।। मैं तुमको विशेष रूप से कहता हूँ; कारण कि तुम मुझे प्रिय

हो। तुम विष्णुजी के भक्त हो और विष्णुभक्त मेरे अनुगामी होते हैं।।३४।। इस प्रकार बहुत भाँति से उन्होंने समझाया, कारण कि सबको स्मृति करनेवाले वहीं प्रभु हैं। शिवजी की माया से मोहित होने के कारण नारदजी ने इस बात को हितकर न माना।।३५।। भाविनी कर्मगति चतुर जन ही जान सकते हैं, उस शांकरी इच्छा को निवारण करने में कोई भी समर्थ नहीं है।।३६।। तब मुनिराज ब्रह्मलोक को चले गये और ब्रह्माजी को प्रणाम कर अपने तपोबल से काम का जय वर्णन किया।।३७।। यह सुनकर ब्रह्माजी शिवजी के चरणकमल को प्रणाम कर तथा सब कारण जानकर निजपुत्र से निषेध करने लगे।।३८।। ज्ञानियों में श्रेष्ठ नारदजी ने इस बात को हितकर नहीं जाना, शिवजी की माया से मोहित होने के कारण उनके मन मद का अंकुर उत्पन्न हो गया।।३९।। जैसी लोक में शिवजी की इच्छा होती है, वैसा ही हुआ करता है। उनके अधीन सब जगत् है; कारण कि उनके वचन में सब स्थित हैं।।४०।। बुद्धि नष्ट हो गई, तब नारदजी विष्णुलोक को चले, जो काम के जय का अहंकार था, उसे कहने के निमित्त नारदजी चले।।४१।। नारदजी को आया हुआ देखकर विष्णुजी ने शीघ्रता से उठकर आदरपूर्वक उनका सत्कार किया; क्योंकि वह सब हेतु जानते थे।।४२।। अपने आसन पर बैठाकर शिवजी के चरणकमल को स्मरण कर भगवान् ने नारदजी को मदनाशक वचन कहे।।४३।। विष्णुजी बोले- हे तात! तुम कहां से किस कारण यहां आये हो? हे मुनिशार्दूल! तुम धन्य हो, तुम्हारे आने से मैं पवित्र हो गया हूँ।।४४।। विष्णुजी के यह वचन सुनकर नारदमुनि बड़े गर्वित हुए, मद से मोहित हो अहंकार सहित अपना सब वृत्तान्त सुनाया।।४५।। नारदजी के मदपूर्वक तथा सहेतुक वचन सुनकर भगवान् ने सब कारण जान लिया और भगवान् शिवजी का हृदय में स्मरण कर।।४६।। बड़ी भक्ति से शिवात्मा शैवों के अधिपति भगवान् विष्णुजी शिवजी की स्तुति करने लगे और अञ्जलिपूर्वक मस्तक झुकाकर परमेश्वर को बोले।।४७।। विष्णुजी बोले- हे देवदेव महादेव! हे परमेश्वर! आप हम पर प्रसन्न हो, आप धन्य हो और सबको मोहने वाली आपकी माया भी धन्य है।।४८।। इत्यादि परमात्मा शिवजी की स्तुति करके, नेत्र मीच कर शिवजी के पदाम्बुज का ध्यान करके मौन हुए।।४९।। जो कुछ शिवजी करना चाहते हैं, विश्वपालक वह सब जानकर शिवजी की आज्ञा से मुनिश्रेष्ठ से कहने लगे।।५०।। विष्णुजी बोले- हे मुनिशार्दूल तपोनिधि! हे उदारबुद्धि! तुम धन्य हो। हे मुनिराज! जिसके हृदय में तीन देवताओं की भक्ति नहीं होती, उसको काम-मोहादिक सताते हैं।।५१।। उसी को यह दुखदाई विकार होते हैं। तुम नैष्ठिक ब्रह्मचारी सदा ज्ञान-विज्ञानवाले हो।।५२।। तुमको किस प्रकार काम का विकार हो सकता है? तुम जन्म से ही विकार रहित सुन्दर बुद्धिवाले हो, इस प्रकार से वह मुनिश्रेष्ठ यह वचन सुनकर।।५३।। हृदयपूर्वक नमस्कार कर हँसे और भगवान् से बोले; नारदजी

बोले– हे भगवन्! यदि आपकी कृपा मेरे ऊपर है, तो कामदेव क्या कर सकता है?।।५४।। यह कहकर नारायण को प्रणाम कर मुनि यथेच्छ स्थान को गये।।५५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां भाषायां
प्रथम सृष्टिखण्डे नारदतपोवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः।।२।।

*****

तीसरा अध्याय

ऋषि बोले– हे महाभाग सूतजी! हे व्यासशिष्य! आपको प्रणाम है, हे तात! आपने कृपा करके यह अद्भुत कथा वर्णन की।।१।। हे तात! मुनि के जाने पर फिर भगवान् ने क्या किया और नारदजी फिर कहां गये? सो आप हमसे कहिये।।२।। व्यासजी बोले– पौराणिकों में उत्तम सूतजी उनके वे वचन सुनकर शिवजी को स्तुति वाक्यों से प्रणाम कर बोले।।३।। नारदजी जब यदृच्छा से चले गये, तब विष्णुजी ने शिवजी की इच्छा से माया की प्रेरणा की।।४।। उन्होंने मुनि के मार्ग में एक नगर रचा, जो सौ योजन विस्तारवाला, मनोहर था।।५।। अपने लोक से भी अधिक मनोहर, अनेक वस्तुओं से विराजित, नर–नारियों के विहारों से युक्त, चारों वर्णों से आकुल।।६।। वहां का शीलनिधि नाम राजा अनेक ऐश्वर्य से संयुक्त था। सुता के स्वयंवर में उद्युत महोत्सव से युक्त था।।७।। चारों ओर से राजा लोग आये हुए थे, जो कन्या के वरण में उत्कण्ठित हुए थे, अनेक वेषों से शोभित थे।।८।। ऐसे पुर को देखकर नारदजी को मोह हो गया और काममद से कौतुकाक्रान्त होकर राजदरबार में पहुँचे।।९।। शीलनिधि राजा ने मुनिश्रेष्ठ को आया हुआ देखकर उनको रत्नसिंहासन पर बैठाकर पूजा की।।१०।। तब राजा ने श्रीमती नामवाली अपनी कन्या को लाकर नारदजी के चरणों में डाला।।११।। उस कन्या को देख मुनिश्रेष्ठ नारदजी विस्मित होकर बोले;– हे राजन्! देवताओं की कन्या के समान यह महाभागा कन्या कौन है?।।१२।। उनके यह वचन सुनकर राजा हाथ जोड़कर बोले;– हे मुनि! यह श्रीमती नामवाली मेरी कन्या है।।१३।। अब इसके प्रदान का समय है, यह वर की खोज में है, वह सम्पूर्ण लक्षणों से लक्षित स्वयंवर में प्राप्त हुई है।।१४।। हे मुनिराज! आप इसका जातक और भाग्य कहिये। यह मेरी कन्या कैसे वर को प्राप्त होगी? सो कहिये।।१५।। यह सुनते ही काम से व्याकुल होकर नारदजी ने उसे पाने की इच्छा की और राजा से सम्भाषण करके नारदजी बोले।।१६।। हे राजन! आपकी यह कन्या सब लक्षणों से लक्षित है, यह सब लक्षणों से लक्षित, महाभाग्यवती धन्य है।।१७।। सर्वेश्वर अजित वीर शिवजी के सदृश विभु

काम को जीतनेवाला, देवताओं में श्रेष्ठ अवश्य इसका पति होगा ।।१८।। ऐसा कहकर नारदजी राजा को आमन्त्रण कर अपनी इच्छा से चले गये और शिवजी की माया से मोहित होने के कारण काम के वशीभूत हो गये ।।१९।। नारदजी मन में सोचने लगे कि, मैं इसे कैसे प्राप्त करूं? स्वयंवर में आये राजाओं में से यह एक मुझ ही को किस प्रकार वरण करेगी?।।२०।। स्त्रियों को प्राय: सुन्दरता बहुत प्यारी होती है, सो वह सुन्दरता देखते ही मुझपर प्रसन्न हो जायगी, इसमें सन्देह नहीं ।।२१।। यह मन में विचार कर मुनिश्रेष्ठ नारदजी काम से व्याकुल होकर विष्णुजी का रूप ग्रहण करने के लिये शीघ्र ही विष्णुजी के लोक को गये ।।२२।। और भगवान् को प्रणाम कर यह वचन बोले;- मैं एकान्त में आप से अपना सब वृत्तान्त कहता हूँ ।।२३।। इस प्रकार शिवजी की इच्छा कार्यकर्ता में होने से भगवान् विष्णुजी ने नारदजी से कहा;- कहो, तब केशव से मुनि कहने लगे ।।२४।। नारदजी बोले- शीलनिधि राजा आप ही के धर्म में तत्पर हुआ है, उसकी कमललोचनी कन्या श्रीमती वरग्रहण की इच्छा किये है ।।२५।। वह जगत् को मोहने में विख्यात् और त्रिलोकी में सबसे अधिक सुन्दर है। हे विष्णुजी? मैं आज शीघ्र ही उसे वरण करने की इच्छा करता हूँ ।।२६।। वह राजा अपनी कन्या का स्वयंवर कर रहा है, सहस्रों राजपुत्र चारों दिशाओं से आ रहे हैं ।।२७।। यदि आप अपना रूप मुझे दें, तो वह कन्या मुझे अवश्य प्राप्त हो सकती है, आपके स्वरूप को पाये बिना वह मेरे कण्ठ में जयमाला न डालेगी ।।२८।। हे नाथ! आप मुझे अपना स्वरूप दीजिये, मैं आपका प्रिय सेवक हूँ। जैसे वह राजा की कन्या श्रीमती मुझे वरण कर ले सो कीजिये ।।२९।। सूतजी बोले- मुनिराज के यह वचन सुन हँसते हुए भगवान् शिवजी की प्रभुता को जानकर दया से यह वचन बोले ।।३०।। विष्णुजी बोले- हे मुनिराज! तुम अपने अभिलषित देश को जाओ, मैं तुम्हारा प्रिय कार्य करूंगा, जैसे सद्वैद्य रोगी का हित करता है; कारण कि तुम मेरे प्रिय हो ।।३१।। यह कहकर विष्णुजी ने मुनि को बन्दर का मुख दे दिया और उन पर अनुग्रह करने के निमित्त अन्तर्धान हो गये ।।३२।। ऐसा कहने पर मुनि हरि का स्वरूप प्राप्त कर बड़े प्रसन्न हुए और अपने आपको कृतार्थ मानकर उनके यत्न को न जाना ।।३३।। तब शीघ्र ही नारदजी उस स्थान पर आये, जहां राजपुत्रों के मध्य में स्वयंवर हो रहा था ।।३४।। वह स्वयंवर की दिव्यसभा राजपुत्रों से व्याप्त थी। हे ब्राह्मणो! वह सभा उस समय इन्द्रसभा के समान दीप्तिमान् थी ।।३५।। नारदजी उस सभा में जाकर प्राप्त हुए और वहाँ जाकर प्रीति युक्त चित्त से विचार करने लगे ।।३६।। मुझ विष्णुरूपधारी को वह अवश्य वरण करेगी। मुनिश्रेष्ठ ने अपने मुख का कुरूपत्त्व न जाना ।।३७।। सब मनुष्यों ने मुनि का पूर्वरूप ही देखा, उन राजपुत्रादि ने उस भेद को न जाना ।।३८।। ब्राह्मण का रूप गूढता से धारे हुए दो रुद्रगण यह भेद जानते थे, वह दोनों गण नारदजी की रक्षा के लिये आये थे ।।३९।।

वह दोनों गण मुनि को मूढ़ हुआ जानकर उनके समीप गये और परस्पर सम्भाषण करते नारदजी का परिहास करने लगे ।।४०।। देखो तो नारदजी का रूप साक्षात् विष्णुजी के समान हो रहा है और मुख वानर के समान बड़ा भयंकर है ।।४१।। यह काम से मोहित होकर वृथा ही नृपकन्या को चाहते हैं, इस प्रकार छल के वाक्यों से उपहास करने लगे ।।४२।। काम से व्याकुल होने के कारण नारदजी ने यथार्थ रूप से वह वाक्य नहीं सुना और उस श्रीमती को देखते हुए उसी के रूप से मोहित हो गये ।।४३।। इसी अवसर में वह श्रेष्ठ राजकन्या अन्त:पुर से स्त्रियों के साथ वर वरने की इच्छा से चली ।।४४।। वह शुभलक्षणवाली सोने की माला हाथ में धारण कर उस स्वयंवर के मध्य में साक्षात् लक्ष्मी के समान स्थित हुई ।।४५।। वह सुव्रता माला हाथ में लेकर सारी सभा में घूमी और वह नृपसुता अपने अनुरूप वर खोजने लगी ।।४६।। विष्णुजी जैसा सब शरीर और मुख वानर जैसा, ऐसे मुनि को देखकर वह बड़ी क्रुद्ध हुई और वहां से दृष्टि बचाकर फिर प्रसन्न मन से चली ।।४७।। जब स्वयंवर में अपना मनचाहा वर नहीं पाया तब बड़ी व्याकुल हुई और सभा के बीच में खडी हो गई, वह माला किसी को न पहनाई ।।४८।। उसी समय मनुष्य का रूप धारण कर विष्णुजी वहां आये । राजकन्या के सिवाय किसी ने नहीं देखा ।।४९।। भगवान् को देखते ही उसका मुखकमल खिल गया और उस वरवर्णिनी ने वह माला भगवान् विष्णुजी के गले में डाल दी ।।५०।। राजरूपधारी समर्थ विष्णुजी उस कन्या को लेकर तुरन्त अन्तर्धान होकर अपने स्थान को चले गये।।५१।। तब उस श्रीमती के प्रति सब राजकुमार निराश हो गये और नारदजी कामातुर होने के कारण बड़े विह्वल हो गये ।।५२।। तब काम से व्याकुल हुए नारदजी से ब्राह्मण रूपधारी ज्ञानविशारद वे दोनों रुद्रगण बोले ।।५३।। गण बोले– हे नारदजी ! आप तो वृथा कामदेव से मोहित होकर उसको पाने की इच्छा करते हो, परन्तु अपना मुख तो देखिये, जो वानर के समान गर्हित है ।।५४।। सूतजी बोले– इस प्रकार दोनों के वचन सुनकर नारदजी बड़े विस्मित हुए और शिवजी के माया से मोहित होकर दर्पण में अपना मुख देखा ।।५५।। वानर के समान अपना मुख देखकर बड़े क्रुद्ध हो गये और मोहित हुए मुनि ने उन गणों को शाप दिया ।।५६।। जिस कारण आपने मुझ ब्राह्मण का उपहास किया है, इस कारण आप ब्राह्मण के बीज से उत्पन्न होकर भी राक्षस होंगे ।।५७।। ज्ञानियों में श्रेष्ठ शिवजी के गण इस प्रकार से शाप सुनकर मुनि को मोहित हुआ जानकर कुछ भी न बोले ।।५८।। और उदासीन होकर शिवजी की स्तुति करते हुए अपने स्थान को चले गये और उन्होंने यही माना कि यह सब कुछ शिवजी की इच्छा है ।।५९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

प्रथम सृष्टिखण्डे नारदमोहनवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

चौथा अध्याय

ऋषि बोले- हे महापण्डित सूतजी! आपने यह सुन्दर कथा कही। चर-अचर जिनके अधीन है, उन शिवजी की माया धन्य है।।१।। हे सूतजी! जब वह शिवजी के गण अपनी इच्छा से चले गये, तब काम से व्याकुल क्रुद्ध हुए नारदजी ने क्या किया?।।२।। सूतजी बोले- मोहित हुए मुनिराज ने उनको यथोचित शाप देकर जल में अपना मुख देखा, शिवजी की इच्छा से मन व्याकुल हो गया।।३।। और शिवजी की इच्छा से ही उनको समय का बोध न रहा, यही समझे कि भगवान् विष्णुजी नें छल किया और महाक्रोध करके विष्णुजी के लोक को गये।।४।। और जलती हुई अग्नि के समान क्रोध करते यह वचन बोले, उस समय शिवजी की इच्छा से नारदजी का ज्ञान नष्ट हो गया था, इससे दुरुक्ति से गर्वित व्यंगवचन बोले।।५।। नारदजी बोले- हे विष्णुजी! आप महाकुटिल कपटी हो, संसार को मोहनेवाले हो। मायावी मलिन आशयवाले आप किसी के उत्साह को नहीं सहते हो।।६।। पहले मोहिनी रूप धारण कर आपने कपट किया, असुरों को आपने वारुणी पिलायी, अमृत नहीं दिया।।७।। यदि दया करके महादेवजी विषपान नहीं करते, तब हे व्याजरत नारायण! आपकी सब माया नष्ट हो जाती।।८।। हे विष्णुजी! विशेष कर आपको कपटगति प्रिय है, आप साधु स्वभाव के नहीं हो, आपको प्रभु ने स्वतन्त्र किया है।।९।। यह परमात्मा शिवजी ने उचित नहीं किया, उनके प्रभाव और बल का ध्यान करके स्वतन्त्र कृति करनेवाले भगवान्।।१०।। आपकी गति को जानकर बहुत पछताते हैं। उन्होंने अपने वेद के प्रमाण से ब्राह्मण को सर्वोपरि कहा है।।११।। यह जानकर उन्हीं के वस से हे हरि! मैं आपको शाप देता हूँ, जिससे भविष्य में फिर आप ऐसा कर्म न करे।।१२।। अब तक भी आप निर्भय हो, कभी वेगवालों से पाला नहीं पड़ा है; हे विष्णो! इस समय आप अपने कर्म का फल पाओगे।।१३।। इस प्रकार विष्णुजी से कहकर माया से मोहित हुए नारदजी अपना ब्रह्मतेज दिखाते हुए दुःखी होकर भगवान् को शाप देने लगे।।१४।। हे विष्णो! स्त्री के निमित्त आपने मुझे मोहित और व्याकुल किया है और जिस स्वरूप से आपने मेरे साथ कपट किया है।।१५।। उसी स्वरूप से आप मनुष्य होकर दुःख पाओगे, जैसा आपने मेरा मुख किया है, वैसे मुखवाले ही आपकी सहायता करेंगे।।१६।। दूसरों को दुःख देनेवाले आप स्त्री के वियोग का दुःख पाओगे और अज्ञान से मोहित होकर आपको मानुषी लीला करनी पड़ेगी।।१७।। अज्ञान से मोहित हुए नारदजी इस प्रकार भगवान् को शाप देकर मौन हो गये और विष्णुजी ने शिवजी

की माया ऐसा ही करना चाहती है, यह जानकर उस शाप को स्वीकार किया ।।१८।। तब शिवजी ने विश्व को मोहनेवाली अपनी माया खींच ली, जिस मोहिनी माया से ज्ञानी मुनि नारदजी मोहित हो रहे थे ।।१९।। ज्यों ही माया हटी कि, नारदजी पूर्व के समान मतिमान हो गये और ज्ञान होने से बड़े विस्मित तथा व्याकुलता रहित हो गये ।।२०।। बड़ा पश्चाताप करते हुए बारंबार अपनी निन्दा करने लगे और ज्ञानियों को मोहनेवाली शिवजी की माया की प्रशंसा करने लगे ।।२१।। तब वैष्णवों में उत्तम मुनिजी सब माया का विभ्रम समझकर भगवान् विष्णुजी के चरणों में पड़ गये ।।२२।। जब भगवान् ने उठाया तब नारदजी बोले;- मैं बड़ा नष्ट दुर्मति हूँ, मुझ कुबुद्धि ने मोहित होकर बहुत बुरे वचन कहे ।।२३।। हे नाथ! आपको जो शाप दिया है उसे आप मिथ्या कीजिये। मैंने महापाप किया है, इससे अवश्य मैं नरक को जाऊंगा ।।२४।। हे भगवन्! मैं क्या उपाय करूं? आप आदेश कीजिये, जिससे मेरे पाप नष्ट हो जाएं और मुझे नरक न हो ।।२५।। यह कहकर मुनिश्रेष्ठ फिर विष्णुजी के चरणों में गिरे और सुमति भक्ति से बड़ा पछतावा करने लगे ।।२६।। तब भगवान् विष्णुजी नारदजी को उठाकर सत्यवाणी बोले;- हे मेरे भक्त! खेद मत करो, इसमें सन्देह नहीं कि, तुम मेरे भक्त और श्रेष्ठ हो ।।२७।। हे तात! सुनो, निश्चय से तुम्हारे हितकर वाक्य कहता हूँ, तुमको नरक न होगा और शिवजी तुम्हारा कल्याण करेंगे ।।२८।। जो कि तुमने मद से मोहित होकर शिवजी के वचन उल्लंघन किये, इसीसे कर्मफल के देनेवाले शिवजी ने तुमको यह फल दिया है ।।२९।। शिवजी की इच्छा से ही यह सब कुछ हुआ है, ऐसी निर्मल मति रखो, वही परमेश्वर शंकरस्वामी गर्व के हरनेवाले हैं ।।३०।। वह परब्रह्म परमात्मा सच्चिदानन्द बोधस्वरूप हैं, निर्गुण, निर्विकार, सत, रज, तम से परे हैं ।।३१।। वही अपनी माया को स्वीकार करके ब्रह्मा-विष्णु-महेश इन तीन रूपों से होते हैं, वही निर्गुण-सगुण होते हैं ।।३२।। निर्गुण में शिवरूप वही परमात्मा महेश्वर होते हैं, परब्रह्म अविनाशी अनन्त महादेव उन्हीं को कहते हैं ।।३३।। उनकी सेवा करने के लिये मुझे जगत् का विधाता किया है और रुद्ररूप से वह सब जगत् का संहार करते हैं ।।३४।। वह साक्षी शिवस्वरूप निर्गुण माया से भिन्न है, वह स्वेच्छाचारी समान विहारी भक्तों के ऊपर अनुग्रह करनेवाले हैं ।।३५।। हे नारद! तुम सुखदाई श्रेष्ठ उपाय को सुनो; जो सब पापों को हरनेवाला, भुक्ति-मुक्ति का देनेवाला है ।।३६।। सम्पूर्ण सन्देह का त्याग करके शिवजी का श्रेष्ठ यश गान करो और अनन्यमति से शिवजी के शतनाम स्तोत्र को सदा जप करो ।।३७।। जिसे जपने से तुम्हारे सब पाप शीघ्र ही नष्ट हो जायेंगे। नारदजी से यह कहकर फिर भी दया करके विष्णुजी बोले ।।३८।। हे मुनिराज! तुम शोक मत करो। तुमने कुछ नहीं किया है, इसमें सन्देह नहीं। यह सब शिवजी ने अपनी इच्छा से किया है ।।३९।। तुम्हारे काम, क्लेश, मद से उन्होंने तुम्हारी मति को

हर लिया और उन्हीं महेश्वरजी ने तुम्हारे मुख से मुझे शाप दिलवाया।।४०।। इस प्रकार लोक में स्वयं अपना यह चरित्र प्रकट किया। वह मृत्युंजय काल के काल, भक्तों का उद्धार करनेवाले हैं।।४१।। शिवजी के समान सुखदायक मेरा कोई प्रिय स्वामी नहीं है, वही परमेश्वर मुझे सब शक्ति के देनेवाले हैं।।४२।। हे मुने! उन्हीं की उपासना करो, उन्हीं का सदा भजन करो, उनका यश सुनो और गावो और उन्हीं का नित्य अर्चन करो।।४३।। जो मन, वचन, कर्म से शंकरजी के यश को प्राप्त होता है, वही पण्डित और जीवन्मुक्त कहलाता है।।४४।। शिवनाम की दावाग्नि से महापातकरूपी पर्वत अनायास भस्म हो जाते हैं, यह बात सत्य है, इसमें सन्देह नहीं।।४५।। पापमूलवाले दुःख अनेक प्रकार के हैं, पर वे शिवजी की ही पूजा से नष्ट होते हैं, कोई दूसरा उपाय नहीं है।।४६।। हे मुने! वही वैदिक, वही पुण्यात्मा, वही पण्डित, वही धन्य है जो सदा मन, वचन, कर्म से शिवजी के शरण में जाता है।।४७।। यद्यपि अनेक धर्म हैं, पर उनमें शीघ्र ही फल देनेवाला धर्म शिवजी का पूजन है, जो ऐसा जानते हैं वह शिवजी का पूजन करते हैं और शिवजी के पूजन में उनका विश्वास होता है।।४८।। हे महामुने! शिवजी के पूजन से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं, शिवपूजन से जितने पाप नष्ट हो जाते हैं, उतने तो पृथ्वी पर हैं ही नहीं।।४९।। हे मुने! ब्रह्महत्या आदि सहस्रों पाप हैं, वह सब शिवजी के स्मरण से नष्ट हो जाते हैं, यह मैं सत्य-सत्य कहता हूँ।।५०।। जो शिवनाम की नौका को प्राप्त होकर संसार-सागर को पार होते हैं, संसारमूल के उनके पाप अवश्य नष्ट हो जाते हैं।।५१।। हे मुने! संसार के मूलभूत पातकों का शिवनाम के कुठार से अवश्य ही नाश हो जाता है।।५२।। पापरूपी दावानल से घबराये हुओं को शिवनामरूप अमृतपान करना चाहिये, पापरूपी दावाग्नि से तप्त हुओं को इसके बिना शान्ति नहीं होती।।५३।। शिवनामरूपी अमृत की वर्षाधारा से गीले होकर संसाररूपी अग्नि में पड़े हुए शोक नहीं करते हैं, इसमें सन्देह नहीं।।५४।। रागद्वेष में प्रीति करनेवालों की शंकरजी के चरणों में भक्ति नहीं होती और द्वेषादि से रहितों की सहसा मुक्ति होती है।।५५।। जिसने अनन्त जन्म तक तपस्या की होगी, उसी की भक्ति भवानीपति में होती है।।५६।। यदि शंकरजी में अनन्यसाधारणी भक्ति हो तो वह वृथा है, शिवजी में अव्यभिचारिणी भक्ति होनी चाहिये।।५७।। जिसकी शिवजी में अनन्यसाधारणी, अव्यभिचारिणी भक्ति होती है, उसीको मोक्ष सुलभ है, औरों को नहीं, ऐसा मेरा मत है।।५८।। अनन्त पाप करके भी यदि शंकरजी में प्रीति हो, तो निःसन्देह उसके सब पाप दूर हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं।।५९।। जैसे वन में दावाग्नि से वृक्ष भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार शंकरजी के नाम से पाप दग्ध हो जाते हैं।।६०।। जो नित्य भस्म लगाने से पवित्रअंग होकर शिवपूजन में रत होता है, वह अतिदारुण संसार-सागर के पार हो जाता है।।६१।। ब्राह्मण का द्रव्य हरण कर तथा अनेक ब्राह्मणों को मारकर भी शंकरजी

का सेवक पापों से लिप्त नहीं होता ।।६२।। सब वेदों को देखकर शिवजी का पूजन ही संसारभय को छुड़ानेवाला है, यह पूर्वपुरुषों ने निश्चय किया है ।।६३।। आज से लेकर यत्नपूर्वक यथाविधि भक्ति से साम्बसदाशिव महेश्वरजी का नित्य भजन करो ।।६४।। चरणों से लेकर मस्तक तक भस्म लगाकर सब वेदों में प्रसिद्ध "ॐ नमो शिवाय" इस शिवजी के षडाक्षर मन्त्र का जप करो ।।६५।। और शिवजी के प्रिय रुद्राक्षों को सर्वांग में यत्नपूर्वक धारण करो। यह भक्ति और मन्त्रों से धारण करने चाहिये ।।६६।। यहां शैवीकथा सुनो और जपो और बारंबार शिवभक्तों का यत्न से प्रेमपूर्वक पूजन करो ।।६७।। और अप्रमाद से नित्य एक शिवजी की ही शरण में हो; क्योंकि शिवार्चन से ही नित्य आनन्द की प्राप्ति होती है ।।६८।। शिवजी के चरणकमल अपने हृदय में धारण करके; हे मुनिसत्तम! शिवजी के तीर्थों में विचरण करो ।।६९।। और परमात्मा शंकरजी के निर्मल माहात्म्य को देखते हुए, हे मुने! शिवजी के आनन्दवन में जाओ ।।७०।। वहां विश्वेश्वर को देखकर भक्ति से पूजन करो, उनको विशेष रूप से नमस्कार और भक्ति करके निर्विकल्प हो जाओगे ।।७१।। हे मुने! फिर आप चाहे जहां गमन करना और फिर मेरे शासना से भक्तिपूर्वक ब्रह्मलोक में जाना ।।७२।। हे मुने! अपने स्वामी की विशेष रूप से भक्ति और नमस्कार करने से बड़ी प्रीति से जहां-तहां शिवजी का माहात्म्य अनेक प्रकार से पूछना चाहिये ।।७३।। वह शिवजी के भक्तों में श्रेष्ठ ब्रह्माजी तुमको शंकरजी का माहात्म्य सुनायेंगे और प्रीति से शंकरजी के शतनामों का स्तोत्र भी कहेंगे ।।७४।। हे मुने! आज से तुम शिवजी के भक्त शैव हो जाओ। शिवजी तुम्हारा कल्याण करेंगे और तुम विशेष रूप से मुक्ति के भागी होगे ।।७५।। इस प्रकार प्रसन्नात्मा विष्णुजी मुनि को उपदेश देकर शिवजी की स्तुति और स्मरण कर अन्तर्धान हो गये ।।७६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
प्रथम सृष्टिखण्डे विष्णूपदेशवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

*****

पाँचवाँ अध्याय

सूतजी बोले- हे ब्राह्मणो! जब विष्णुजी अन्तर्धान हो गये, तब मुनिश्रेष्ठ नारदजी भक्ति से शिवलिंगों का दर्शन करते हुए पृथ्वी पर विचरण करने लगे ।।१।। पृथ्वी पर विचरण करते हुए उन्होंने भुक्ति-मुक्ति देनेवाले अनेक शिवलिंगों का प्रेम से दर्शन किया ।।२।। जब इस प्रकार से दिव्यदर्शन नारदजी पृथ्वी पर विचरने लगे तब रुद्रगणों ने

उनको शान्त जानकर उनके समीप गमन किया ।।३।। और शिर से प्रणाम कर चरण पकड़कर शापोद्धार की इच्छा की और आदर से वे गण बोले ।।४।। शिवगण बोले– हे ब्रह्मपुत्र नारदजी! प्रेम से हमारा वचन सुनिये, आपका अपराध करनेवाले हम दोनों वास्तव में ब्राह्मण नहीं हैं ।।५।। हे मुने! आपके अपराधी हम दोनों शिवजी के गण हैं, राजपुत्री के स्वयंवर में माया से मोहितचित्त होकर ।।६।। परेश की प्रेरणा से आपने हमें शाप दिया, कुसमय जानकर उस समय हमने मौन रहना ही उत्तम जाना ।।७।। हमने अपने कर्म का फल पाया, इसमें किसी का दोष नहीं है। हे विभो! अब प्रसन्न होकर हमारे ऊपर अनुग्रह कीजिये ।।८।। सूतजी बोले– इस प्रकार भक्ति से भरे आदरपूर्वक उन गणों के वचन सुनकर पछतावा करते हुए मुनि प्रेम से उनसे बोले ।।९।। नारदजी बोले– हे सत्पुरुषों में मान पाने योग्य महादेवजी के गणो! सुनिये, मेरा सुखदायक वचन मोह से निर्मुक्त और यथार्थ है ।।१०।। निश्चय ही शिवेच्छा से पहले मेरी मति भ्रष्ट हो गई थी, सर्वथा मोह के वश में होकर ही मुझ कुबुद्धि ने आपको शाप दिया ।।११।। जो कुछ कह दिया है, वैसा तो होना ही है, पर आप मेरे वचन सुनिये, मेरा अपराध क्षमा कीजिये, मै आपके शापोद्धार का उपाय कहता हूँ ।।१२।। आप मुनिराज के वीर्य से जन्म लेकर बड़े ऐश्वर्यसंयुक्त और प्रतापशाली राक्षस होंगे ।।१३।। सब ब्रह्माण्ड के राजा, जितेन्द्रिय शिवभक्त होंगे, शिवजी के दूसरे शरीर से ही मृत्यु को प्राप्त होकर अपने पद को प्राप्त होंगे ।।१४।। सूतजी बोले– महात्मा नारदजी के इस प्रकार के वचन सुनकर शिवजी के दोनों गण प्रसन्न होकर अपने स्थान को चले गये ।।१५।। नारदजी भी प्रसन्न होकर अनन्य मन से शिवजी का ध्यान करते हुए बारंबार शिवतीर्थों का दर्शन करते पृथ्वी पर विचरने लगे ।।१६।। तब वह मुनि सबसे ऊपर शोभा में विराजमान शिवजी की प्रिया, शिवजी को सुख देनेवाली शिवस्वरूपिणी काशीपुरी में प्राप्त होकर ।।१७।। वहां काशीनाथ का दर्शन करके कृतार्थ हो गये। परम प्रीति और परम आनन्द से उनका पूजन किया ।।१८।। आनन्द से काशीपुरी का सेवन करते हुए मुनिश्रेष्ठ कृतार्थ हो गये, भक्ति से नम्र होकर महिमा वर्णन करते और स्मरण करते प्रेम से विह्वल हो गये ।।१९।। और शिवजी के स्मरण से निर्मलमति होकर ब्रह्मलोक को गये। वहां नारदजी विशेष रूप से शिवतत्त्व जानने की इच्छा से ।।२०।। ब्रह्माजी को भक्तिपूर्वक प्रणाम और स्तुति करके शिवजी में मन लगाकर नारदजी शिवजी का तत्त्व पूछने लगे ।।२१।। नारदजी बोले– हे ब्रह्मन्! ब्रह्म के स्वरूप को जाननेवाले हे विभो! हे सब जगत् के पितामह! आपके प्रसाद से मैंने विष्णुजी का समस्त माहात्म्य ।।२२।। भक्तिमार्ग, ज्ञानमार्ग और दुस्तर तपोमार्ग, दानमार्ग तथा तीर्थों का मार्ग भी मैंने सुना है ।।२३।। मैंने शिवतत्त्व और क्रम से पूजा का मार्ग अभी नहीं जाना है; हे प्रभो! उनके अनेक प्रकार के चरित्र मुझसे कहिये ।।२४।। हे तात! वह निर्गुण पुरुष सगुण ब्रह्म

किस प्रकार से हुए हैं? शिवजी की माया से मोहित हुआ मैं शिवतत्त्व नहीं जानता हूँ।।२५।। सृष्टि के पूर्व में किस प्रकार शंकरजी अपने स्वरूप में अवस्थान करते हैं और वह प्रभु सृष्टि के मध्य में किस प्रकार से क्रीड़ा करते हैं?।।२६।। और अन्त में किस प्रकार से वह महेश्वरजी स्थित होते हैं? लोक के कल्याणकर्ता शंकरजी किस प्रकार से प्रसन्न होते हैं?।।२७।। और वह महेश्वरजी सन्तुष्ट होकर अपने भक्त तथा दूसरों को क्या फल देते हैं? हे ब्रह्माजी! सो मुझसे कहिये।।२८।। हमने सुना है कि, भगवान् शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं, वह दयापरायण, भक्त के प्रयास को नहीं देखते हैं।।२९।। ब्रह्मा-विष्णु-महेश तीनों देवता शिवजी के अंग से प्रकट हैं, उनमें महेश ही पूर्णांश हैं और शिवजी ही स्वयं परमतत्त्व हैं।।३०।। उन शिवजी के आविर्भाव और चरित्र हमसे कहिये, उमा का आविर्भाव और उनका शिवजी के साथ विवाह का वर्णन कीजिये।।३१।। विशेष कर उनका गृहस्थ तथा उनकी अन्य लीलाएँ भी कहिये। हे पाप रहित! यह सब तथा और भी दूसरे चरित्र भी कहिये।।३२।। उनकी की उत्पत्ति और पार्वतीजी का विवाह विशेष रूप से कहिये। हे प्रजानाथ! और साथ में स्कन्द का जन्म भी कहिये।।३३।। यद्यपि मैंने पहले बहुत कुछ सुना है, परन्तु हे प्रभो! मैं अभी तक सन्तुष्ट नहीं हूँ, इस कारण आपकी शरण को प्राप्त हुआ हूँ, आप मेरे ऊपर कृपा करे।।३४।। इस प्रकार अपने पुत्र नारदजी के वचन सुनकर लोकपितामह ब्रह्माजी उनसे कहने लगे।।३५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

प्रथम सृष्टिखण्डे नारदप्रश्नवर्णनो नाम पञ्चमोऽध्यायः।।५।।

*****

छठवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले- हे ब्रह्मन्! हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी, तुझ लोकोपकारी ने लोक के हित की कामना से यह पूछा है।।१।। जिसे सुनकर लोकों के सब पाप क्षय हो जाते हैं, वह अनामय शिवतत्त्व मैं तुमको सुनाता हूँ।।२।। यथार्थ रूप में तो न मैं, न विष्णुजी ही शिवतत्त्व नहीं जान सके तथा अन्य भी कोई इस परमअद्भुत रूप को जान पाया हैं।।३।। जब महाप्रलयकाल में स्थावर-जंगम सब नष्ट हो गया, जिस समय ग्रह, नक्षत्र, तारा, सूर्य न होने से सब अन्धकार रूप था।।४।। चन्द्रमा, दिन, रात, अग्नि, वायु, पृथ्वी, जल कुछ नहीं था, तथा प्रधान आकाश तथा दूसरा तेज भी नहीं था।।५।। शब्द, स्पर्श तथा इष्ट पदार्थ कुछ भी नहीं थे, गन्ध, रूप, रस, दिशा आदि

सब अव्यक्त (अप्रकट) था ।।६।। इस प्रकार सूचीभेद्य निरन्तर अन्धकार में वह सद्ब्रह्म ही था, जिसे सत् कहते हैं ।।७।। जब इस प्रकार से सत्-असदात्मक कुछ नहीं था, जिसे योगी अपने हृदयाकाश में निरन्तर अवलोकन करते हैं ।।८।। जो मन, वाणी के अगोचर हैं किसी इन्द्रिय का विषय नहीं है, जो नामरूप वर्ण से रहित स्थूल तथा सूक्ष्म नहीं है ।।९।। जो ह्रस्व, दीर्घ, लघु, गुरुत्व से वर्जित है, जिसमें उपचय और अपचय नहीं है ।।१०।। श्रुति भी जिसे चकित होकर कहती है कि; वह सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, अनन्तस्वरूप, परानन्द परम पुरुष है ।।११।। प्रभा रहित, आधार रहित, विकार रहित और आकृति रहित है, निर्गुण योगिगम्य सर्वव्यापक एकाकार है।।१२।। निर्विकल्प निरारम्भ, माया रहित, उपद्रव रहित, अद्वितीय आद्यन्त रहित, विकार रहित, चिदात्मक ।।१३।। जिसके इस प्रकार संज्ञा संज्ञोक्ति विकल्प करके होते हैं, उसे कितने काल में दूसरे की इच्छा हुई ?।।१४।। तब उस अमूर्त ने इच्छा से ही अपनी मूर्ति कल्पित की, जो सब ऐश्वर्य गुणों से युक्त सर्वज्ञानमयी शोभायमान है ।।१५।। जो सर्वगामिनी सर्वरूपा सबको देखनेवाली, सबकी कर्तृ है, सबको एक ही वन्दनीया, सबकी आद्या, सर्वदा सबका संस्कार करनेवाली है ।।१६।। इस ऐश्वर्य सम्बन्धी शुद्धरूपवाली मूर्ति की कल्पना करके वह अद्वितीय अनादि अनन्त, सर्वभासा, चिदात्मा, सर्वगामी, अविनाशी, पराख्य ब्रह्म अन्तर्धान हो गये ।।१७।। जो अमूर्ति परतत्त्व है उसी की मूर्ति सदाशिवजी हैं, यही अर्वाचीन पराधीन मूर्ति जिसे पण्डित ईश्वर कहते हैं ।।१८।। उसने अपने शरीर से ही स्वच्छन्द शरीरवाली अनपायिनी शक्ति प्रकट की है ।।१९।। वही प्रधान प्रकृति गुणवती परा माया है, वही बुद्धितत्त्व की जननी है, इसीको विकार रहित कहते हैं ।।२०।। वही शक्ति अम्बिका प्रकृति सब लोकों की ईश्वरी, तीनों देवताओं की जननी नित्या और मूल कारण कही जाती है ।।२१।। इसकी आठ भुजा हैं, यही विचित्र मुखवाली शुभा है, पूर्णमासी के सहस्र चन्द्र के समान इसकी कान्ति है ।।२२।। अनेक आभूषण और अनेक गति से संयुक्त है, अनेक प्रकार के आयुध धारण किये हुए हैं, फूले कमल के समान नेत्रवाली ।।२३।। अचिन्त्य तेज से युक्त सबको उत्पन्न करनेवाली वह एकाकिनी माया जब संयोग से अनेक प्रकार की होती है ।।२४।। तब परम पुरुष ईश्वर शिवशंकर जिनका कोई ईश्वर नहीं, शिर पर गंगा धारण करनेवाले, माथे पर चन्द्र, तीन नेत्र ।।२५।। पाँच मुख, प्रसन्नात्मा, दश भुजा, त्रिशूलधारी, कर्पूरगौरांग, शरीर पर भस्म लगाये हुए ।।२६।। भगवान् ने उस कालरूपिणी शक्ति को लेकर एक साथ ही शिवलोक नामक क्षेत्र निर्माण किया ।।२७।। उसी उत्तम क्षेत्र को काशी क्षेत्र कहते हैं, वह परम निर्वाण का देनेवाला सबके ऊपर विराजमान है ।।२८।। उस क्षेत्र में जो कि सबका मन रमानेवाला है, उन परमानन्द रूपिणी शिवाशिव द्वारा परमानन्द रूपिणी ।।२९।। शक्ति के सहित निवास करते हैं। हे मुने ! प्रलयकाल में भी कभी वह क्षेत्र शिवाशिव से रहित

नहीं होता, इससे यह क्षेत्र अवियुक्त कहलाता है ।।३०।। शिवजी ने पहले इसमें एक आनन्द नाम वन निर्माण किया था, क्षेत्र आनन्द का हेतु होने से आनन्दकानन और फिर अविमुक्त कहलाया ।।३१।। शिवाशिव के उस आनन्दवन में रमण करने पर, हे नारदजी! यह इच्छा हुई कि, कोई दूसरा पुरुष निर्माण किया जाय ।।३२।। जिस पर स्वच्छन्द विहार करनेवाले हम यह महाभार अर्पण करके निर्वाण शान्ति को धारण कर केवल काशी में शयन करें ।।३३।। वही सब करे और रक्षा करे, जो हमारे अनुग्रह से वह सब विवृत करे ।।३४।। चित्तरूपी समुद्र को आकुंचित कर चिन्तारूपी तरंगों से दोलायमान सत्त्वरूपी रत्न तमोरूप ग्रह रजोगुणरूप विद्रुम से विस्तारित ।।३५।। जिसके प्रसाद से हम सुखरूप आनन्दकानन में विहार करें, मन की वृत्ति भी उसमें आरोपण कर बाहरी चिन्ता को छोड़कर शान्ति को प्राप्त हों ।।३६।। वह प्रभु इस प्रकार निश्चय कर उस पराशक्ति के दशवें अंग में सुधारूपी आसव सत्यभाग से व्यापार करने लगे ।।३७।। तब उससे त्रिलोकी में एक अति सुन्दर पुरुष प्रकट हुआ, जो शान्त सत्त्वगुण से युक्त गम्भीरता में सागर के समान था ।।३८।। पृथ्वी के समान क्षमा से युक्त, हे मुने! जिनकी उपमा किसी से नहीं दे सकते, इन्द्रनील मणि के समान कान्तिमान, उत्तम कमल के समान नेत्र ।।३९।। सुवर्ण के समान कान्ति धारण किये, दो दुकूलों से आवृत प्रचण्ड भुजाओं से शोभायमान, जो दोनों भुजा कहीं पराजित न होनेवाली थीं ।।४०।। तब वह पुरुष परमेश्वर शिवजी को प्रणाम करके बोले– हे स्वामिन्! मेरा नाम रखकर मेरे कर्म भी कहिये ।।४१।। यह वचन सुनकर समर्थ प्रभु शंकरजी हँसते हुए मेघ के समान गम्भीरवाणी से बोले ।।४२।। शिवजी बोले– व्यापक होने से जगत् में आपका नाम विष्णु होगा और भी भक्तों के सुख करनेवाले आपके बहुत से नाम होंगे ।।४३।। आप दृढ़तापूर्वक परम कार्यसाधक तपस्या करो, यह कहकर शंकरजी ने अपने श्वास मार्ग से उनको वेद प्रदान किये ।।४४।। तब अच्युत ने शिवजी को नमस्कार कर बड़ा तप किया और शक्ति सहित परमेश्वर अन्तर्धान हो अपने लोक में गये ।।४५।। इधर विष्णुजी ने द्वादश सहस्र दिव्य वर्ष तक तपस्या की, परन्तु अपने अभिलषित कल्याणकारी शंकरजी का दर्शन नहीं पाया ।।४६।। तब सन्देह को प्राप्त होकर मन में चिन्ता करने लगे, मैं अब क्या करूं? इस प्रकार शिवजी का स्मरण करने लगे ।।४७।। उसी अवसर पर में शिवजी की सुन्दर वाणी प्रकट हुई कि, संशय को दूर करने के निमित्त फिर तपस्या करो ।।४८।। विष्णुजी ने यह सुनकर फिर भी दारुण तप किया, जब बहुत समय बीत गया, तब ब्रह्म ध्यानमार्ग के द्वारा विदित हुए ।।४९।। तब पुरुष विष्णुजी ध्यानमार्ग से जागे और प्रसन्नता से विस्मय को प्राप्त होकर बोले कि, यह महान् तत्त्व क्या है?।।५०।। तब विष्णुजी के परिश्रम करने से उनके शरीर से शिवजी की माया से जलधारायें निकलनी लगीं ।।५१।। हे महामुने! वह सब महान् जल शून्य

में व्याप्त हो गया, वह जल ब्रह्मरूप हुआ, जिसके स्पर्शमात्र से पाप नष्ट होते हैं ।।५२।। तब वह विष्णुजी शान्त होकर उसी जल में विमोहित होकर बहुत काल तक शयन करते रहे ।।५३।। उस समय उनका श्रुतिसम्मत नाम नारायण हुआ, उस समय प्रकृतिपुरुष के बिना और कुछ नहीं था ।।५४।। उसी समय उन महात्मा से तत्त्व प्रकट हुए। हे महामते ! हे महापण्डित ! मैं उसका प्रकार कहता हूँ, सो आप मुझसे सुनिये ।।५५।। प्रकृति से महान् और महान् से तीन गुण हुए, उससे अहंकार और उससे गुणभेद से तीन गुण हुए ।।५६।। उससे तन्मात्रा और उनसे पाँच भूत प्रकट हुए, उनसे ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय उत्पन्न हुईं ।।५७।। हे ऋषिसत्तम ! आपसे तत्त्वों का वर्णन ज्ञान पूर्व ही कहा है, प्रकृति का यह सब जडात्मक कार्य पुरुष को छोड़कर जानना ।।५८।। वह चौबीस संख्यावाले तत्त्व शिवजी की इच्छा से ग्रहण करके ब्रह्मरूप जल में शयन कर गये ।।५९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
प्रथम सृष्टिखण्डे विष्णूत्पत्तिवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

*****

सातवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– नारायण देव के शयन कर जाने से सहसा उनकी नाभि से एक बड़ा कमल प्रकट हुआ ।।१।। जिसकी नाल अनन्त थी, जो कर्णिकार के समान् कान्ति, महान अनन्त योजन विस्तार और अनन्न योजन तक ऊँचा था ।।२।। कोटि सूर्य के समान कान्तिमान्, सुन्दर तत्त्वों से युक्त, अत्यन्त अद्भुत महामनोहर और महादर्शनीय था ।।३।। उन शंकर परमेश्वर साम्बशम्भुजी ने पूर्ववत् यत्न करके दक्षिण अंग से मुझे प्रकट किया ।।४।। हे मुने ! शीघ्र ही माया से मोहित करके उन महेशजी ने लीला से ही उस नाभिपंकज से मुझे प्रकट किया ।।५।। हे नारदजी ! इस प्रकार उस कमल से मैं हिरण्यगर्भ प्रकट हुआ। चार मुख, रक्तवर्ण, त्रिपुण्ड्र से शोभायमान मस्तक ।।६।। उनकी माया से मोहित होकर कमल के बिना मैंने और कुछ न जाना, हे तात ! मैंने ज्ञानहीन होने के कारण अपने देह को उत्पन्न करनेवाले को न जाना ।।७।। मैं कौन हूँ ? कहां से आया हूँ ? मेरा क्या कार्य है ? मैं किसका पुत्र, किस निमित्त निर्मित हुआ हूँ ? यह कुछ न जाना ।।८।। तब यह शंका करते हुए मुझे बुद्धि प्राप्त हुई, मैं मोह को क्यों प्राप्त हूँ, इसका ज्ञान तो सुलभ है ।।९।। इस कमलपत्र के निचले भाग को पकड़कर नीचे–नीचे चला जाऊं, वहां मेरा कर्ता अवश्य प्राप्त होगा, इसमें सन्देह नहीं ।।१०।। ऐसी बुद्धि करके मैं कमल से नीचे उतरा, हे मुने ! सौ वर्ष तक उसकी नाभि पकड़े–पकड़े नीचे

चला गया ।।११।। परन्तु मुझे उस कमलनाल का अन्त न मिला, फिर सन्देह को प्राप्त होकर कमल के ऊपर जाने की इच्छा की ।।१२।। हे मुने! फिर नाल के द्वारा मैं ऊपर आया, तब मोहित होकर कमलकली को न प्राप्त हुआ ।।१३।। उस नालमार्ग में घूमते हुए मुझे बहुत वर्ष अर्थात् सौ वर्ष बीत गये, तब मोहित हुआ मैं क्षणमात्र को स्थित हुआ ।।१४।। तब मुझे ''तप करो'' यह शुभवाणी सुनाई दी। हे मुने! जब परमाकाश से मोह का नाश करनेवाली यह वाणी सुनाई दी ।।१५।। तब आकाशवाणी का वह वचन सुनकर मैंने अपने जनक को देखने के लिये बड़े प्रयत्न से बारह वर्ष तक घोर तप किया ।।१६।। तब मुझ पर अनुग्रह करने के लिये चार भुजाधारी, सुन्दर नेत्रवाले, भगवान् विष्णुजी प्रकट हुए ।।१७।। शंख, चक्र, गदा, पद्मादि आयुधधारी, पीताम्बरधारी घनश्याम अंगवाले ।।१८।। महाराजाओं के समान मुकुटादि धारण किये, प्रसन्न मुखकमलवाले, कोटिकामदेव के समान उनको मैंने मोहित होकर देखा ।।१९।। उस सुन्दर रूप को देखकर मुझे परम विस्मय हुआ, काल के समान, सुवर्ण के समान सर्वात्मा चतुर्भुज ।।२०।। महाभुज, सदसन्मय नारायण भगवान् को इस प्रकार देखकर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ ।।२१।। जो बड़ी लीला करते हैं, उन शिवजी की माया से मोहित होकर, उनको अपना जनक न जानकर प्रसन्न होकर विष्णुजी से कहा ।।२२।। ब्रह्माजी बोले– आप कौन हो ? ऐसा कहकर उस सनातन पुरुष को हाथ लगाया, तब उस तीव्र और दृढ़ हाथ के प्रहार से ।।२३।। जागकर क्षणमात्र के लिये वह वशी स्थित हुए और निद्रा से श्रम रहित नेत्रों से उन्होंने मुझे देखा ।।२४।। जब भगवान् हरि ने मुझे वहां स्थित देखा तब हँसते हुए प्रेम से मुझ ब्रह्मा से कहने लगे ।।२५।। विष्णुजी बोले– हे वत्स! हे पितामह! आप भले आये, भले आये, हे महाकान्तिमान्! आप निर्भय हो, निःसन्देह मैं आपको सब कामना दान करूंगा ।।२६।। हे देवर्षि! हँसते हुए विष्णुजी के यह वचन सुनकर रजोगुण से बैर मानकर विष्णुजी से मैं बोला ।।२७।। ब्रह्माजी बोले– हे पाप रहित! हे सबके संहार के कारण! मुझे यहाँ आया देखकर भक्तवत्सल कहते हो और गुरुशिष्य के समान मेरा शासन करते हो ।।२८।। साक्षात् जगत् के कर्ता, प्रकृति के प्रवर्तक, सनातन अज, विष्णु विरंचि, विष्णुसम्भव ।।२९।। विश्व के आत्मा, विधाता, धाता, कमललोचन मुझे मोह से वत्स कैसे कहते हो ? सो शीघ्र कहो ।।३०।। वेद मुझे नियम से स्वयम्भू, विभू और अज कहते हैं तथा पितामह, स्वराट्, परेष्ठी और श्रेष्ठ कहते हैं ।।३१।। यह वचन श्रवण कर रमापति मेरे ऊपर क्रुद्ध हुए और मुझसे कहा, हम जानते हैं आप जैसे लोक के कर्ता हो ।।३२।। विष्णुजी बोले– करने–धरने को आप मेरे अविनाशी अंग से प्रकट हुए हो, आप अनामय नारायण जगन्नाथ को भूल गये हो ।।३३।। जो पुरुष परमात्मा पुरुहूत पुरुषों से स्तुति को प्राप्त है, जो विष्णुजी, अच्युत, ईशान विश्व की उत्पत्ति तथा पालन करते हैं ।।३४।। जो महाबाहु नारायण सर्वव्यापक

ईश्वर हैं, उन मेरे नाभिपद्म से आप प्रकट हुए हो, इसमें सन्देह नहीं।।३५।। इसमें आपका अपराध नहीं है, आप मेरी माया से मोहित हो, हे ब्रह्माजी! सुनिये, हे चतुर्मुख! यह मेरा वचन सत्य है, सब देवताओं का ईश्वर मैं।।३६।। कर्ता, हर्ता, भर्ता व्यापक मेरे समान कोई नहीं है। हे पितामह! मैं ही परब्रह्म और परमतत्त्व हूँ।।३७।। मैं ही परमज्योति, परमात्मा और विभु हूँ, आज देखा-सुना हुआ जो यह चराचर जगत् है।।३८।। हे ब्रह्माजी! यह सब आप मुझमें ही जानिये, मैंने पहले चौबीस तत्त्वों से यह अव्यक्त निर्माण किया है।।३९।। उनमें नित्य ही अणु बद्ध हैं, उससे क्रोध, भयादि सृष्टि हुई है, मेरे ही प्रभाव से आप और लीला से सब अंग हुए हैं।।४०।। मैंने बुद्धि निर्माण की है, उससे तीन प्रकार से अहंकार हुआ है, उससे पंचतन्मात्रा, उससे मन, देह, इन्द्रिय।।४१।। आकाशादि भूत, भौतिक पदार्थ लीला से ही निर्माण किये हैं। हे प्रजापति ब्रह्माजी! ऐसा जानकर आप मेरी शरण को प्राप्त हो।।४२।। इसमें सन्देह नहीं, मैं आपकी सब दुःखों से रक्षा करूंगा। ब्रह्माजी बोले- विष्णुजी के यह वचन सुनकर मुझ ब्रह्मा को बड़ा क्रोध हुआ और माया से मोहित होकर ललकार कर कहा कि, आप होते कौन हो?।।४३।। बहुत से अनर्थकारी वचन क्यो कहते हो? आप परब्रह्म ईश्वर नहीं हो, कोई आपका भी कर्ता होगा।।४४।। तब मैंने महाप्रभु शिवजी की माया से मोहित होकर विष्णुजी से दारुण युद्ध किया।।४५।। इस प्रकार मेरा और विष्णुजी का रोमहर्षण संग्राम हुआ, उस प्रलयसागर में रजोगुण से बैर करके हम दोनों संग्राम करने लगे।।४६।। इसी अवसर पर हम दोनों के मध्य में शिवलिंग का आविर्भाव हुआ, हमारे विवाद शमन करने और बोध देने के निमित्त वे प्रकट हुए।।४७।। सहस्रों ज्वाला-माला से व्याप्त सौ कालानल के समान, क्षय और वृद्धि तथा आदि-मध्य-अन्त से वर्जित।।४८।। उपमा रहित अनिर्देश्य अव्यक्त स्वरूप, जिनसे विश्व प्रकट होता है, उनकी सहस्रों ज्वालाओं से भगवान् हरि मोहित हो गये।।४९।। और मुझे मोहित हुआ देखकर बोले कि, किस निमित्त आपने अपनी बढ़ाई की थी? यह हमारे बीच में तीसरा पदार्थ क्या प्रकट हुआ है? इससे युद्ध रहने दो।।५०।। यह अग्निसम्भव ज्योति कहां से प्रकट हुई है? इसकी हम परीक्षा करें, मैं इस अग्निस्तम्भ को देखने को नीचे जाता हूँ।।५१।। हे प्रजानाथ! आप इसे देखने के निमित्त वायुवेग से शीघ्र ही ऊपर को जाइये।।५२।। ब्रह्माजी बोले- हे मुने! इस प्रकार कहकर विश्वात्मा विष्णुजी ने अपना वाराह रूप धारण किया और मैंने हंस रूप धारण किया।।५३।। उस दिन से मुझे 'हंस हंस विराट्' कहते हैं। जो 'हंसः हंसः' ऐसा जप करते हैं, वह हंस (ब्रह्म) हो जाते हैं।।५४।। अत्यन्त श्वेत अग्नि के समान कान्तिमान् दोनों ओर के पक्षों से व्याप्त वायु के समान वेगवान् होकर मैं ऊपर-ऊपर चला गया।।५५।। और विश्वात्मा नारायण भी सौ योजन को विस्तार करनेवाले दश योजन के चौडाई में श्वेतवाराह बने।।५६।। मेरुपर्वत के समान

ठोढी का अग्रभाग, गोरी और तीक्ष्ण डाढोंवाले, काल रूपी सूर्य के समान कान्तिमान्, दीर्घ घोणा (नासिका) महाशब्दवाले ।।५७।। छोटे चरण, विचित्र अंग, दृढ़ जैत्र (जयशील), उपमा रहित वाराह के आकार में स्थित होकर बड़े वेग से नीचे गये ।।५८।। इस प्रकार सहस्र वर्ष तक विष्णुजी नीचे-नीचे चले गये, उसी दिन से लोक में श्वेतवाराह संज्ञक कल्प ।।५९।। हे नारदजी ! मनुष्यों को कालसंख्या के लिये हुआ । समर्थ विष्णुजी नीचे-नीचे जाकर बहुधा भ्रमे ।।६०।। परन्तु उन वाराह रूप ने इस लिंग के मूल का अल्पचिह्न भी नहीं देखा और इतने ही समय तक मैं शत्रुसूदन भी ऊपर को गया ।।६१।। मैंने भी सब यत्न से उसका अन्त जानने की इच्छा से चेष्टा की, थक गया पर उसका अन्त न पाया, तब मैं समय पर नीचे आया ।।६२।। इसी प्रकार वह महाशरीरवाले सर्वदेवमय कमललोचन भगवान् विष्णुजी भी शान्त होकर ऊपर आये ।।६३।। हम दोनों एक साथ ही वहां उपस्थित हुए और शिवजी को बारंबार प्रणाम करके शिवजी की माया से मोहित होकर चञ्चल चित्त से स्थित हुए ।।६४।। पृष्ठ से, पार्श्वभाग से, आगे से उस परमात्मा को मेरे साथ प्रणाम करके स्मरण करने लगे कि, यह क्या है ?।।६५।। वह रूप निर्देश करने के अयोग्य, नाम और कर्म से रहित, लिंग (चिह्न) रहित लिंगता को प्राप्त हुए । ध्यानमार्ग में भी न आनेवाले ।।६६।। देव को स्वस्थचित्त करके नमस्कार करने लगे, इस प्रकार जब मैं और हरि प्रणाम कर कहने लगे ।।६७।। हे महाप्रभो ! आप जो कुछ भी हो हम आपके रूप को नहीं जानते, हे महेशान ! आपको प्रणाम है, शीघ्र ही आप अपना रूप हमें दिखाइये ।।६८।। हे मुनिश्रेष्ठ ! मद में स्थित हम दोनों के इस प्रकार नमस्कार करते सौ वर्ष बीत गये ।।६९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
प्रथम सृष्टिखण्डे विष्णुब्रह्मविवादवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

*****

आठवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले- हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार दर्शन की इच्छा करनेवाले उन दोनों देवताओं का जब गर्व जाता रहा ।।१।। तब दोनों का पालन करनेवाले शिवजी दयालु हुए, जो गर्वियों के गर्व दूर करनेवाले हैं और अविनाशी प्रभु हैं ।।२।। उस समय वहां शब्द लक्षणवाला नाद प्रकट हुआ । हे देवताओ ! यह 'ॐ ॐ' लक्षणवाला शब्द प्रकट हुआ जो प्लुत लक्षणवाला था ।।३।। यह क्या है ? इस प्रकार से महान् शब्द हुआ, सब देवताओं के पूजनीय निर्वैर होने से विष्णुजी सन्तुष्ट हुए ।।४।। तब उन्होंने लिंग के

दक्षिण भाग में सनातन आद्य अकार वर्ण और उसके उत्तर भाग में उकार को ।।५।। मध्य भाग में मकार को, अन्त में नाद को देखा, इस प्रकार ॐ को देखा, आदिवर्ण को दक्षिण में सूर्यमण्डल के समान देखा ।।६।। हे ऋषिसत्तम! उत्तर में पावक के समान उकार को देखा और शीतांशु चन्द्रमण्डल के समान मकार उसके मध्यस्थान में देखा ।।७।। फिर उसके ऊपर शुद्ध स्फटिकमणि के समान तुरीयातीत निर्मल,निष्कल,ऊपद्रव रहित ।।८।। निर्द्वन्द्व, केवल शून्य बाह्य और आभ्यन्तर से वर्जित, बाहर–भीतर के बाह्य आभ्यन्तर में संस्थित ।।९।। आदि, मध्य, अन्त रहित, आनन्द का भी कारण, सत्य आनन्दामृत, परब्रह्म परायण दिखाई दिया ।।१०।। यह कहां से प्रकट हुआ है? इस अग्निसम्भव की हम परीक्षा करें, हम इस स्तम्भ के नीचे की ओर जाकर देखें ।।११।। तब वेद शब्द से उभय वेशवाले इस विश्वात्मा को विचारने लगे, तव उस समय वहां एक ऋषि हुआ, जो ऋषि का सारतम समझा जाता है ।।१२।। उसी ऋषि से विष्णुजी ने परमेश्वर को जाना, जो महादेवजी परब्रह्म शब्द ब्रह्मपर दूसरा ब्रह्मशरीर है ।।१३।। यह रुद्रचिन्ता में नहीं आते, इनके विचार में मन सहित वाणी निवृत्त हो जाती है, वह एकाक्षर 'ॐ' से ही जाने जाते हैं ।।१४।। एकाक्षररूप उनका वाक्य ऋत और परम कारण है। सत्य स्वरूप, आनन्द स्वरूप, परम अमृत ब्रह्मपरात्पर अर्थात् परे से परे है ।।१५।। एकाक्षर अकार से भगवान् बीज स्वरूप अण्डोत्पन्न ब्रह्माजी हैं तथा एकाक्षर उकार से परमकारण हरि हैं ।।१६।। एकाक्षर मकार से भगवान्नीललोहित हैं। अकार सृष्टिकर्ता, उकार मोहन करनेवाला ।।१७।। और मकार नित्य ही अनुग्रह करनेवाला है। मकार विभुबीजी और अकार बीज कहलाता है ।।१८।। उकार हरि की योनि प्रधान पुरुषेश्वर है, बीजी और बीज उसकी योनि और नारसंज्ञक महेश्वर है ।।१९।। बीजी आत्मा को विभाग करके स्वेच्छा से ही स्थित हुआ है, इस प्रभुलिंगी के बीज से अकार हुआ है ।।२०।। यह उकाररूप योनि में पड़कर सब ओर से बढ़ने लगा, उससे सोने का यह अण्ड हुआ, उस समय यह अण्ड अवेद्य और अलक्षण था ।।२१।। यह दिव्य अण्ड अनेक वर्षों तक जल में स्थित रहा, सहस्र वर्षों के पीछे ब्रह्माजी ने इसके दो भाग किये ।।२२।। इस जल में स्थित हुए अण्ड को परमेश्वर ने व्याघात किया, तब इसका एक कपाल ऊर्ध्वस्थित होकर शोभित हुआ ।।२३।। उससे द्युलोक हुआ और नीचे के कपाल से पाँच तत्त्वों की पृथ्वी प्रकट हुई, उस अण्ड से भव (शंकर) और ककार नामवाले चतुर्मुख प्रकट हुए ।।२४।। वह सब लोकों के स्रष्टा और वही तीन रूपधारी हैं, इसी से यजुर्वेदी इनको 'ॐ ॐ' ऐसा कहते हैं ।।२५।। यजु के वचन सुनकर ऋक् और साम आदर से, हे हरे! हे ब्रह्मन्! इस प्रकार हम दोनों को कहते हैं ।।२६।। तब देवेश को जानकर यथायोग्य अपनी शक्ति से, सम्भव मन्त्रों से महादेव महेश्वरदेव को प्रसन्न करने लगे ।।२७।। इसी समय संसार के पालन करनेवाले विष्णु भगवान् मेरे संग

एक बहुत सुन्दर अद्भुत रूप देखने लगे ।।२८।। हे मुने! पाँच मुख, दशभुजा, गौर कपूर के समान सुन्दर अनेक कान्तियों से युक्त और अनेक भूषणों से भूषित ।।२९।। महोदर महावीर्यवान् महापुरुष के लक्षणों से युक्त था, उस स्वरूप को देखकर गुरु सहित हरि कृतार्थ हो गये ।।३०।। तब भगवान् महेश्वर परमेश्वर प्रसन्न होकर दिव्य शब्दमय रूप करके स्थित हुए ।।३१।। उनका शिर अकार और माथा आकार दीर्घ था, इकार दक्षिण नेत्र, ईकार वाम कमलनेत्र था ।।३२।। उकार दाहिना और ऊकार बायां कान था और ऋकार उन परमेष्ठी का दहिना कपोल था ।।३३।। ॠकार बायां कपोल, ऌ ॡ दोनों नासापुट, एकार ऊपर का होंठ और ऐकार नीचे का होंठ था ।।३४।। ओ और औ यह क्रम से ऊपर–नीचे की दन्त पंक्तियां थी, उन देवदेव शूलधारी का 'अं' तालु हुआ ।।३५।। क ख ग घ ङ यह पाँच दाहिने हाथ हैं, च छ ज झ ञ यह वाम ओर के पाँच हाथ हैं ।।३६।। ट ठ ड ढ ण यह पाँच अक्षर दाहिना चरण, त थ द ध न यह पाँच अक्षर वाम चरण हैं, पकार उदर और फकार पार्श्वभाग कहलाते है ।।३७।। बकार वामपार्श्व, भकार स्कन्ध कहलाता है, मकार महादेव योगी शंभुजी का हृदय है ।।३८।। यकार से सकार तक उस विभु की सात धातु हैं, हकार नाभि और क्षकार घ्राण है ।।३९।। इस प्रकार उस अगुणगुणात्मा का शब्दमय रूप देखकर मुझ सहित विष्णुजी कृतार्थ हो गये ।।४०।। इस प्रकार महेशान का शब्दब्रह्ममय शरीर देखकर मुझ सहित विष्णुजी उनको प्रणाम कर फिर ऊपर को देखने लगे ।।४१।। वहां ओंकार से प्रकट हुआ मन्त्र पाँच कला से संयुक्त शुद्ध स्फटिकमणि के समान स्वच्छ सुन्दर अड़तीस अक्षरों से सम्पन्न है ।।४२।। बुद्धि का करनेवाला सबका मत था अर्थ का साधक है, गायत्री से प्रकट चौबीस वर्णवाला वह मन्त्र वश करनेवाला यथा ''तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नोरुद्रः प्रचोदयात्'' अथवा ''तत्सवितु०'' यह गायत्री लेनी ।।४३।। यह चौबीस वर्णों से युक्त चारों काल में श्रेष्ठ है और पंचसित मन्त्र 'ॐ नमः शिवाय' आठ कलाओं से युक्त ।।४४।। आभिचारक मन्त्र प्रायः तीस अक्षरों से सम्पन्न यजुर्वेद से युक्त पच्चीस शुभाक्षरों से सम्पन्न ।।४५।। आठ कलाओं से सम्पन्न सुश्वेत और शान्तिदायक मन्त्र और तेरह कलाओं से युक्त बालादि के सहित लेहित ।।४६।। यह उत्पत्ति, पालन और संहार का कारण है और इस मन्त्र के ६१ वर्ण हैं ।।४७।। फिर मृत्युंजय मन्त्र (ॐ जूं सः) अथवा (त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्) इसके उपरान्त (नमः शिवाय) यह पञ्चाक्षर मन्त्र और (क्ष्म्यौं) यह चिन्तामणि मन्त्र यथा (अग्निः सम्वर्तकादित्यावनिलौ षष्ठ बिन्दुमत्। चिन्तामणिरिति ख्यातं बीजं सर्व समृद्धिदम) और (ॐ नमो भगवते दक्षिणामूर्तये मह्यं मेधां प्रयच्छ स्वाहा) यह चिन्तामणि और दक्षिणामूर्ति मन्त्र है ।।४८।। तत्त्वमसि यह शिवजी का महावाक्य है, इन पाँचों मन्त्रों को लेकर भगवान् जप करने लगे ।।४९।। फिर ॠक्, यजु, साम रूपी

कला वर्ण को देखकर जो ईशान ईश मुकुट पुरुष पुरातन हैं।।५०।। अघोर हृदय मनोहर सब में गुह्य सदाशिवजी वामपद महादेव महाभोगीन्द्र का भूषण धारे।।५१।। सब ओर चरण और सब ओर नेत्रोंवाले ब्रह्मा के अधिपति सर्ग, स्थिति और संहार करनेवाले।।५२।। वरदाई साम्बशिवजी के वाणियों से सन्तुष्ट करने लगे, इस प्रकार मैंने और विष्णुजी ने बड़े प्रेम से उनकी स्तुति की।।५३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
प्रथम सृष्टिखण्डे शब्दब्रह्मचतुर्वर्णनो नामाअष्टमोऽध्यायः।।८।।

*****

नववाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले- विष्णुजी द्वारा की हुई स्तुति को सुनकर महेश्वर प्रेम से दया करके दोनों के सम्मुख प्रकट हुए।।१।। पाँच मुख, तीन नेत्र, भालचन्द्र, जटाधारी, गौरवर्ण, विशाल नेत्र, शरीर में भस्म लगाये।।२।। दश बाहु, नीलकण्ठ, सम्पूर्ण आभूषणों से भूषित सर्वांग से सुन्दर, भस्म और त्रिपुण्ड्र से अंकित मस्तक।।३।। इस प्रकार के शक्ति सहित परमेश्वर को देखकर मुझ सहित विष्णुजी सुन्दर वचनों से स्तुति करने लगे।।४।। तब शिवजी ने श्वास रूप से उनके निमित्त वेद दिये, यह प्रसन्नात्मा महेश्वरजी ने बड़ी कृपा करके किया।।५।। फिर हरिपरमात्मा के निमित्त ज्ञान दिया, हे मुने! हरि ने फिर कृपा करके मुझे ज्ञान दिया।।६।। इस प्रकार निगम को प्राप्त करके विष्णुजी ने फिर पूछा और मुझ सहित हाथ जोड़कर बोले।।७।। विष्णुजी बोले- हे देव! किस प्रकार आप प्रसन्न होते हो और मैं किस प्रकार आपका पूजन करूं? आपका ध्यान किस प्रकार से करना चाहिये? किस प्रकार आप वशीभूत होते हो?।।८।। हे महादेव! आपकी आज्ञा से हमें क्या करना चाहिये? हे शंकरजी! प्रीति के निमित्त आप सदा हमें आज्ञा करते रहिये।।९।। हे महाराज! हे शंकर! हम दोनों को अपने अनुगामी जानकर यह सब कहिये।।१०।। ब्रह्माजी बोले- यह वचन सुनकर कृपानिधि भगवान् हर प्रसन्न होकर प्रसन्नता से कहने लगे।।११।। श्रीशिवजी बोले- हे श्रेष्ठ देवताओ! आपकी भक्ति से मैं प्रसन्न हूँ, मुझ महादेव को देखते हुए आप सब भय का त्याग करो।।१२।। सदा मेरे लिंग की पूजा करो और सदा मेरा ध्यान करो, इस समय जैसा दीखता है वैसा प्रयत्न से करना चाहिये।।१३।। मैं लिंगरूप से पूजित होकर अनेक प्रकार के फलों को सब लोकों के मन के अभीष्टों को देता हूँ।।१४।। हे श्रेष्ठ देवताओ! जब किसी प्रकार के दुःख की प्राप्ति हो, तो मेरा लिंग पूजने से सब दुःख मिट जायेंगे।।१५।। आप दोनों

महाबली मेरी प्रकृति और मेरे दाहिने–बायें अंग से प्रकट हुए हो ।।१६।। यह लोकपितामह ब्रह्माजी मेरे दक्षिणपार्श्व से प्रकट हुए हैं, हे विष्णुजी! आप परात्मा के वामपार्श्व से प्रकट हुए हो ।।१७।। मैं आप दोनों से बहुत प्रसन्न हूँ, ईप्सित वर देता हूँ, मेरी इच्छा से मेरी दृढ़ भक्ति हो ।।१८।। आप दोनों मेरी पार्थिवमूर्ति बनाकर और अनेक प्रकार से सेवा पूजा करोगे, तो आप दोनों महात्मा सुख पाओगे ।।१९।। हे ब्रह्माजी! मेरी आज्ञा के पालन करनेवाले, आप सृष्टि करो और हे वत्स! हे नारायण! आप चराचर का पालन करें ।।२०।। ब्रह्माजी बोले– ऐसा कहकर विभु ने हम दोनों को अपनी श्रेष्ठ पूजाविधि दी, जिसके द्वारा पूजित होकर शिवजी अनेक प्रकार के फल देते हैं ।।२१।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार मुझ सहित भगवान् विष्णुजी शिवजी के वचन सुनकर हाथ जोड़कर प्रणाम करके शिवजी से बोले ।।२२।। विष्णुजी बोले– यदि आप प्रसन्न हो और हम दोनों को वर देते हो, तो हमारी आपमें निश्चला भक्ति हो ।।२३।। और निर्गुण होकर भी लीला से आप अवतार लेकर हमारी सहायता करें, कारण की आप परमेश्वर हो ।।२४।। हे देवदेवेश! हम दोनों का विवाद भी अच्छा हुआ, जो हम दोनों के विवाद शान्ति के लिये आपने दर्शन दिया ।।२५।। ब्रह्माजी बोले– उनके यह वचन सुन फिर विष्णुजी से शिवजी ने कहा और विष्णुजी प्रणाम कर हाथ जोड़कर, शिर झुकाकर खड़े रहे ।।२६।। श्रीशिवजी बोले– मैं निर्गुण–सगुण होकर भी सृष्टि पालन और संहार करता हूँ, मैं परब्रह्म विकार रहित सच्चिदानन्द लक्षणवाला हूँ ।।२७।। हे विष्णुजी! विष्णु, ब्रह्मा और शिव नाम से मैं तीन प्रकार से स्थित हूँ। हे हरे! मैं उत्पत्ति, रक्षा, लय इन गुणों से सदा निष्कल हूँ ।।२८।। हे विष्णुजी! जो आपने मेरी स्तुति की है और ब्रह्माजी ने युद्ध में रक्षा के निमित्त मेरी स्तुति की है, तो मैं भक्तवत्सलता के कारण इस प्रार्थना को सत्य करूंगा ।।२९।। हे ब्रह्माजी! आपके अंग से जो मेरा रूप प्रकट हुआ है, लोक में उसका नाम रुद्र होगा ।।३०।। मेरे अंश होने से उसकी सामर्थ्य न्यून न होगी, जो मैं हूँ सो वह है, पूजा के विधान से हम दोनों में भेद न होगा ।।३१।। जैसे ज्योति के संग होने पर भी जलादि में स्पर्शता नहीं है, इसी प्रकार मुझ निर्गुण को संयोग से बन्धन नहीं होता है ।।३२।। मेरा रूप यही है, रुद्र भी शिवरूप ही है, हे महामुने! इसमें परपूर्व का भेद नहीं जानना ।।३३।। वस्तुतः एक रूप ही यह जगत् में दो रूप दिखाई देते हैं, इससे शिव और रुद्र में कदाचित भी भेद न जानना ।।३४।। हे देव! एक ही सुवर्ण की अनेक वस्तुएं बनती हैं,अलंकार नाम आकृति का भेद है, वास्तव में भेद नहीं है ।।३५।। जैसे एक ही मिट्टी के अनेक नामवाले पात्र बनते हैं, नाम से उनमें भेद है, पर वास्तव में वह सब मृत्तिका ही है। इसी प्रकार कार्य में भेद है, कारण में नहीं, यह दृष्टान्त बहुत है ।।३६।। हे ब्रह्मा, विष्णु! निर्मल ज्ञानवाले पण्डितों को यह बात भली भाँति जाननी चाहिये, ऐसा जानकर आप दोनों को भी भेद नहीं

मानना चाहिये ।।३७।। मेरे मत में वस्तु के समान सर्वत्र शिवरूप देखना चाहिये । मैं, आप, ब्रह्मा और जो यह रुद्र होंगे ।।३८।। यह सब एक रूप हैं, इनमें भेद नहीं है और जो भेद मानेंगे उनको बन्धन होगा, तो भी मेरा सनातन शिवरूप ।।३९।। मूलभूत सत् सत्यज्ञान और अनन्त है, इस प्रकार तत्त्व से सदा मन लगाकर जानना चाहिये ।।४०।। हे ब्रह्मन्! जो मैं गुप्तवाद आपसे कहता हूँ, सो आप सुनिये । आप दोनों प्रकृति से प्रकट हुए हो, पर यह रुद्र वैसे नहीं हैं ।।४१।। मैं अपनी इच्छा से ही आप ब्रह्माजी की भृकुटी से प्रकट हुआ हूँ और गुणों में जो रुद्र को प्रकृति का तामस गुण कहा है ।।४२।। उसे वैकारिक जानना, वास्तव में नहीं । वह वही है जिसे अहंकार कहते हैं, नाम से है पर वास्तव में तामस नहीं कहलाता ।।४३।। हे ब्रह्माजी! इस कारण आपको यह करना चाहिये कि, आप सृष्टि के कर्ता बनो और यह नारायण सृष्टि के पालक होंगे ।।४४।। और मेरे अंश यह रुद्र लयकर्ता होंगे और जो यह उमा नामक परमेश्वरी प्रकृति देवी है ।।४५।। इसी की शक्ति वाग्देवी ब्रह्माजी की अर्द्धांगिनी होगी और जो दूसरी शक्ति है, वह प्रकृति से उत्पन्न होगी ।।४६।। वह लक्ष्मीरूप होकर विष्णुजी का आश्रय करेगी और फिर काली नाम से निश्चय मेरे अंश को प्राप्त होगी ।।४७।। वहां वह ज्योतिरूप से कार्य के लिये प्रकट होगी, इस प्रकार देवी की तीन प्रकार की शक्तियाँ कहीं गई हैं ।।४८।। और क्रम से उनका कार्य सृष्टि, स्तिथि और संहार करना है । हे देवताओ! उत्तम क्रम से इस मेरी प्यारी प्रकृति के अंश ।।४९।। लक्ष्मी को ग्रहण कर आप अपने कार्य करो, और हे ब्रह्माजी! आप मेरी प्रकृति के अंश गिरादेवी को प्राप्त होकर ।।५०।। मेरी आज्ञा से सृष्टि का कार्य करो और जो मेरी प्रिया का अंश परात्पर काली है उसे ।।५१।। प्राप्त करके मैं रुद्र रूप से प्रलय करूंगा । सब आश्रम और चारों वर्णोंवाले लोक के विभाग को ।।५२।। इसके सिवाय और भी दूसरे कार्य करके सुख पाओ, ज्ञान-विज्ञान से संयुक्त होकर लोकों के हित करने के लिये ।।५३।। मेरी आज्ञा से आप लोकों को मुक्ति देनेवाले हो । जो मेरे दर्शन का फल है वही आपके दर्शन का फल होगा ।।५४।। यह जो मैंने आपको वर दिया है यह सत्य होगा, इसमें सन्देह नहीं । मेरे हृदय में विष्णु और विष्णु के हृदय में मैं हूँ ।।५५।। हम दोनों में जो अन्तर नहीं जानता है वही मेरे सम्मत है, हरि मेरे वामांग से उत्पन्न और ब्रह्माजी मेरे दक्षिणांग से उत्पन्न हैं ।।५६।। और महाप्रलय करनेवाले विश्वात्मा रुद्र मेरे हृदय से उत्पन्न हैं । हे विष्णु! मैं ही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र रूप से तीन प्रकार का हूँ ।।५७।। और तीन गुणों से उत्पत्ति, पालन और प्रलय करता हूँ, शिवजी साक्षात् गुणों से भिन्न, प्रकृतिपुरुष से परे हैं ।।५८।। वह परब्रह्म अद्वय अविनाशी अनन्त पूर्ण निरंजन हैं । भीतर तम, बाहर सत्त्व इस प्रकार तीन जगत् के पालन करनेवाले हरि हैं ।।५९।। भीतर सत्त्व, बाहर तम ऐसे तीनों लोकों के लय करनेवाले महादेवजी हैं ।।६०।। अन्तर्बाहर रजोगुणवाले तीनों लोकों की सृष्टि

करनेवाले ब्रह्माजी हैं, इस प्रकार तीनों देवताओं में गुण है और सदाशिव गुणों से भिन्न हैं ।।६१।। हे विष्णुजी ! इन सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजी को आप प्रेम से पालन करना, मेरी आज्ञा से आप त्रिलोकों में पूजित होगे ।।६२।। आपके और ब्रह्माजी के भी सेव्य यह सब होंगे, तीन जगत् के लय करनेवाले रुद्रजी पूर्णावतार हैं ।।६३।। पद्मकल्प में पितामह आपके पुत्र होंगे, तब उस समय आप मुझे देखोगे और ब्रह्माजी भी देखेंगे ।।६४।। इस प्रकार महेश ने कहकर और अतुल कृपा करके फिर वह सर्वेश्वर प्रभु विष्णुजी से कहने लगे ।।६५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीय रुद्रसंहितायां भाषायां प्रथम सृष्टिखण्डे
शिवतत्त्ववर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ।।९।।

*****

दसवाँ अध्याय

परमेश्वर बोले– हे हरि ! हे विष्णुजी ! मेरी अन्य आज्ञा को भी सुनिये, हे सुव्रत ! आप सदा सब लोकों में मान्य और पूज्य होंगे ।।१।। ब्रह्माजी द्वारा निर्माण किये लोक में जब दुःख होगा, तब आप सब लोकों के दुःखनाश करने में तत्पर होगे ।।२।। मैं आपके सब दुःसह कार्यों में सहायक हूँगा, मैं आपके दुःसाध्य परम उत्कट शत्रुओं का भी संहार करूंगा ।।३।। हे विष्णुजी ! आप भी अनेक प्रकार के अवतार धारण करके संसार के जीवों का उद्धार करने के लिये अपनी कीर्ति का विस्तार कीजिये, लोगों के दुःख नाश करने में तत्पर हो ।।४।। मैं गुणरूप रुद्र सदा इस शरीर से आपका और लोकों का अशक्य कार्य करूंगा, इसमें सन्देह नहीं ।।५।। आप दोनों को रुद्र का ध्यान करना चाहिये और हे ब्रह्माजी ! आपके ध्येय हरि हैं, आप दोनों में और आप में, रुद्र में कुछ अन्तर नहीं है ।।६।। वास्तव में आप तीनों का तत्त्व एक ही है, हे विष्णो ! यह लीलामात्र का भेद है, वास्तव में नहीं, यह सत्य–सत्य है ।।७।। जो रुद्र का भक्त मनुष्य आपकी निन्दा करेगा, उसका सम्पूर्ण पुण्य तत्काल भस्म हो जायेगा ।।८।। हे पुरुषोत्तम ! आपसे द्वेष करने से पुरुष नरक में गिरेगा । हे विष्णुजी ! इसमें सन्देह नहीं । यह सब मेरी आज्ञा से होगा ।।९।। इस लोक में आप मनुष्यों को मुक्ति देनेवाले, भोग देनेवाले होंगे, भक्त आपका ध्यान पूजन करेंगे, आप निग्रह–अनुग्रह में समर्थ होंगे ।।१०।। यह कहकर मुझ विधाता को हरि के हाथ में धर कर शंकरजी ने कहा, आप इनके दुःख में सदा सहाय करना ।।११।। आप सबके अध्यक्ष, सबको मुक्ति देनेवाले होंगे और सब काम के साधक आप सबसे श्रेष्ठ होंगे ।।१२।। मेरी आज्ञा से आप सबके प्राण होंगे, शंकर में

मेरे शरीर रुद्रशरीर का सदा भजन करना ।।१३।। जो आपको आश्रय किये हैं, वह मुझे आश्रय किये हैं, जो हम और आप में अन्तर करता है, वह अवश्य नरक में गिरेगा ।।१४।। आप विषेश करके देवताओं के आयुर्बल को सुनिये। ब्रह्मा, विष्णु और शिव की एकता में सन्देह न करना चाहिये ।।१५।। चार सहस्र युगों का ब्रह्माजी एक दिन कहलाता है, इतनी ही इस क्रम से रात्रि जाननी ।।१६।। इस प्रकार इन तीस दिनों से महीना और बारह महीनों से वर्ष होता है, ऐसे सौ वर्ष की आयु का ब्रह्माजी का दिन कहलाता है ।।१७।। ब्रह्माजी का एक वर्ष विष्णुजी का दिन कहलाता है, वह भी अपने मान से सौ वर्ष तक जीता है ।।१८।। विष्णुजी के एक वर्ष में रुद्र का एक दिन होता है, नररूप रुद्र की स्थिति के जब सौ वर्ष बीत जाते हैं ।।१९।। तब सदाशिवजी के मुख का एक श्वास निकलता है, यह श्वास जब तक निकलता है, तब तक शक्ति प्राप्त होती है ।।२०।। निश्वास लेने में सब देहधारी ब्रह्मा, विष्णु, हर, गन्धर्व, उरग, राक्षस हो जाते हैं ।।२१।। इक्कीस सहस्र सौ और छः सौ दिन-रात कहे गये हैं ।।२२।। हे सुरसत्तमो ! छः निश्वास और उच्छ्वासों से एक पल होता है, साठ पल की एक घड़ी और साठ घड़ी का एक दिन-रात होता है ।।२३।। शिवजी के निश्वास-उच्छ्वासों की संख्या नहीं है, इसी से सदाशिवजी का उत्थान अक्षय कहलाता है ।।२४।। इस मेरी आज्ञा से मेरे रूप की आपको रक्षा करनी चाहिये और अनेक गुणों से सृष्टि का कार्य करना चाहिये ।।२५।। ब्रह्माजी बोले- मैं और भगवान् हरि इस प्रकार शिवजी के वचन सुनकर विश्वेश्वर को प्रणाम करके हमारे अन्तर में वह वशी बोले ।।२६।। विष्णुजी बोले- हे कृपासागर! हे जगत्पते ! हे शंकर! सुनिये, आपकी आज्ञा के वशीभूत होकर मैं सब करूंगा ।।२७।। आप सदा मेरे ध्येय होंगे इसमें सन्देह नहीं है, आपसे ही मैंने पहले सामर्थ्य प्राप्त की है ।।२८।। हे स्वामिन् ! क्षणमात्र को भी आपका ध्यान मेरे चित्त से न उतरे, न भूले यही चाहता हूँ ।।२९।। हे स्वामिन् ! जो कोई मेरा भक्त आपकी निन्दा करेगा, उसे आप निश्चय ही नरक में वास देना ।।३०।। हे स्वामिन् ! जो आपका भक्त होगा वह मेरा प्रिय होगा, इस प्रकार जो जानता है, उसे मुक्ति दुर्लभ नहीं है ।।३१।। आपने जो निश्चय हमारी महिमा बढ़ाई है, कदाचित् अवगुणों में ऐसा नहीं होता, आप क्षमा कीजिये ।।३२।। ब्रह्माजी बोले- तब विष्णुजी के यह उत्तम वचन सुनकर शिवजी प्रेम से बोले, हमने आपके अवगुणों को क्षमा किया ।।३३।। परमेश्वर ने हम दोनों से यह बात कहकर अपने हाथ से कृपा करके कृपानिधि ने सब अंगों को स्पर्श किया ।।३४।। सब दुःख हरनेवाले हर ने अनेक धर्मों का उपदेश करके हम दोनों के हित की इच्छा से अनेक वर दिये ।।३५।। तब भक्तवत्सल भगवान् शिवजी हम दोनों को कृपा से देखकर वहां ही अन्तर्धान हो गये ।।३६।। तभी से इस लोक में लिंगपूजा विधि चली है, लिंग में प्रतिष्ठित शिवजी भुक्ति-मुक्ति देनेवाले हैं ।।३७।। लिंगवेदी महादेवी है, लिंग साक्षात्

महेश्वर है, लय कर लेने से ही इसका नाम लिंग है, इसी में सब जगत् है ।।३८।। जो शिवलिंग के समीप में इस लिंग के व्याख्यान को सुनता है, वह छः महीने में शिवरूप हो जाता है, इसमें विचार कर्तव्य नहीं है ।।३९।। जो कोई लिंग के समीप में कुछ कार्य करता है, हे महामुने! उसके पुण्यफल कहने को मैं समर्थ नहीं हूँ ।।४०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

प्रथम सृष्टिखण्डे दशमोऽध्यायः ।।१०।।

*****

ग्यारहवाँ अध्याय

ऋषि बोले– हे महाभाग सूतजी! हे व्यासशिष्य! आपको नमस्कार है। आपने परमपावनी शिवकथा हमको सुनाई ।।१।। उसमें परम अद्भुत दिव्य लिंगोत्पत्ति सुनी, जिसका प्रभाव सुनकर इस संसार में दुःखनाश होता है ।।२।। हे दयानिधे! ब्रह्माजी और नारदजी का संवाद स्मरण करके अब आप शिवार्चन की विधि कहिये, जिससे शिवजी सन्तुष्ट होते हैं ।।३।। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण शिवजी का पूजन करते हैं, व्यासजी ने इसे कैसा करना लिखा है, सो आप कहिये ।।४।। कल्याणदायक श्रुतिसम्मत उनके यह वचन सुनकर सूतजी प्रश्न के अनुसार सब कहने लगे ।।५।। हे मुनीश्वरो! आपने यह बात बहुत अच्छी पूछी, सो मैंने जैसा सुना है, वैसा कहता हूँ।।६।। जैसा आप पूँछते हो, पूर्वकाल में व्यासजी ने सनत्कुमारजी से पूछा और जो उन्होंने कहा और उपमन्यु ने सुना।।७।। फिर शिवपूजादिक जो कुछ है, सो व्यासजी ने लोकों के हित की कामना से मुझे पढ़ाया ।।८।। महात्मा उपमन्युजी ने वह सब श्रीकृष्णजी से कहा, वह सब मैं आपसे कहता हूँ, जैसे पहले ब्रह्माजी ने कहा है ।।९।। ब्रह्माजी बोले– हे नारदजी! सुनिये, संक्षेप से लिंगपूजन की विधि कहता हूँ। हे मुने! विस्तार से तो कोई इसे सौ वर्ष में भी नहीं कह सकता है ।।१०।। इस प्रकार शिवजी का सुखदायक स्वच्छ सनातन रूप है, सब काम और फल की प्राप्ति के लियें परम भक्ति से उनका पूजन करना चाहिये ।।११।। दरिद्र, रोग, दुःख, शत्रु की पीड़ा यह चार प्रकार के दुःख और पाप, जब तक शंकरजी की पूजा नहीं की, तब तक ही रहते हैं ।।१२।। देव शिवशंकरजी का पूजन करने से सब दुःख बिला जाते हैं, सब सुख होकर पश्चात् मुक्ति प्राप्त होती है ।।१३।। मनुष्य जन्म को प्राप्त होकर मुख्य सुख सन्तान का है, इसलिये सर्व कार्य तथा अर्थ के साधक महादेवजी का पूजन करना चाहिये ।।१४।। सब कामसिद्धि के लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र क्रम से शिवजी का पूजन करे ।।१५।।

प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में उठकर गुरु और शिवजी का स्मरण करके ।।१६।। तीर्थों का स्मरण कर शंकरजी का ध्यान धरके मेरा, देवताओं और मुनियों का ध्यान करे ।।१७।। शिवनाम का स्तोत्र विधिपूर्वक जपे, फिर उठकर दक्षिण दिशा में मलोत्सर्ग करे ।।१८।। एकान्त में शास्त्रानुसार मलोत्सर्ग विधि करे। हे मुने! सो मैं आपसे कहता हूँ, आप मन लगाकर सुनिये ।।१९।। शुद्धि के लिये ब्राह्मण पाँच बार मृत्तिका से हाथ धोवे और क्षत्रिय चार बार, वैश्य तीन बार ।।२०।। और शूद्र दो बार शुद्धि के लिये मृत्तिका ग्रहण करे, गुदा और लिंग में एक बार प्रयत्न से मृत्तिका लगावे ।।२१।। वाम हाथ में दश बार, फिर दोनों हाथों में सात-सात बार मृत्तिका लगावे, हे तात! प्रत्येक चरणतल में तीन बार, फिर तीन बार हाथ धोवे ।।२२।। स्त्री जनों को शूद्र के समान मृत्तिका ग्रहण करनी चाहिये, हाथ पैर धोकर पूर्ववत् मृत्तिका लावे ।।२३।। फिर मनुष्य अपने वर्णक्रम से दँतौन करे ।।२४।। ब्राह्मण बारह अंगुल की दँतौन करे, क्षत्रिय ग्यारह अंगुल की, वैश्य दश अंगुल की दँतौन करे ।।२५।। शूद्र नौ अंगुल की करे, इस प्रकार यह मान कहा गया है। कालदोष को इस प्रकार विचार कर मनुदृष्ट को वर्जित कर दे ।।२६।। छठ, अमावस, नवमी, व्रत का दिन, अस्त के समय, रविवार के दिन तथा श्राद्ध के दिन दँतौन न करे ।।२७।। तीर्थादि में क्रम से विधिपूर्वक स्नान करना चाहिये, विशेष करके देशकाल के अनुसार समन्त्रक स्नान करे ।।२८।। प्रथम स्नान करके धौत वस्त्र धारण करे, एकान्त में अच्छे स्थल में बैठकर सन्ध्या करे ।।२९।। यथायोग्य विधि करके पूजा आरम्भ करे, मन स्थिर करके पूजास्थान में प्रवेश करके ।।३०।। पूजाविधि को लेकर अपने आसन पर बैठकर न्यासादिक का विधान करके क्रम से शंकरजी का पूजन करे ।।३१।। पहले गणेशजी, फिर द्वारपाल, दिक्पालों को पूजकर सिंहासन की कल्पना करे ।।३२।। अथवा पूजाद्रव्य के समीप अष्टदल कमल करके आप बैठकर और शंकर प्रभु को वहां स्थापन करके ।।३३।। तीन आचमन करने के पश्चात् हाथ धोकर तीन प्राणायाम करके मध्य में त्र्यम्बकदेव का ध्यान करे ।।३४।। पाँच मुख, दश भुजा, शुद्ध स्फटिकमणि के समान उज्ज्वल, सब आभूषण, व्याघ्रचर्म और उत्तरीय के सहित शोभायमान ।।३५।। शिवजी की सारूप्यता को प्राप्त होकर प्राणी अपने पाप सदा नष्ट करे, फिर परमेश्वर शिवजी को उढ़ाकर पूजन करे ।।३६।। फिर देहशुद्धि करके क्रम से मूलमन्त्र का न्यास करे, सर्वत्र ओंकार के सहित षडङ्गन्यास करे ।।३७।। हृदय में प्रयोग कर फिर पूजा आरम्भ करे। पाद्य, अर्घ, आचमन के लिये पात्रों की कल्पना करे ।।३८।। बुद्धिमान् यथाविधि नये घड़ों को स्थापन कर उन्हें कुशाओं से आच्छादित करे जल छिड़ककर ।।३९।। उन सब पात्रों में शीतल जल छोड़े और बुद्धिमान् द्रव्यों को देखकर ओंकारपूर्वक उनमें डाले ।।४०।। पाद्य में उशीर और चन्दन दे। जायफल, कंकोल, कपूर, वटमूल, तमाल ।।४१।। यथायोग्य चूर्ण करके आचमन में डाले, इन सब पदार्थों

में चन्दनादिक डाले ।।४२।। देवदेव के पार्श्वभाग में नन्दीश्वर की पूजा करे, विविध गन्ध, धूप, दीप से शिवजी की पूजा करे ।।४३।। फिर मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक लिंगशुद्धि कर चित्त के अनुसार ओंकार नमस्कार युक्त बोलकर ।।४४।। ओंकारपूर्वक स्वस्तिपद्मादि आसन की कल्पना करे, उससे पूर्व की ओर साक्षात् अणिमामय अक्षर को ।।४५।। लघिमा सिद्धि दक्षिण को, महिमा पश्चिम को, प्राप्ति की उत्तर को, प्राकाम्य को अग्निदिशा में ।।४६।। ईशि को नैर्ऋत्य दिशा में, वशित्व को वायुकोण से दल में सर्वज्ञ सिद्धि को ईशान में कल्पना करे, कर्णिका सोम कहलाती है ।।४७।। सोम के नीचे सूर्य, उसके नीचे पावक, उसके नीचे धर्मादि क्रम से कल्पना करे ।।४८।। अव्यक्तादि को चारों दिशाओं में सोम के अन्त के तीनों गुणों को कल्पना करे, ''सद्योजातं प्रवक्ष्यामि०'' इस मन्त्र से परमेश्वर का आवाहन करे ।।४९।। ''वामदेवाय०'' इस मन्त्र से आसन पर बैठे, रुद्रगायत्री से उनकी समीपता और ''अघोरेभ्यो०'' इस मन्त्र से निरोध करे ।।५०।। *''इशानः सर्वविद्यानाम्०'' इस मन्त्र से पूजन करे, पाद्य आचमन का विधान करके फिर अर्घ्य दे ।।५१।। विधिपूर्वक गन्ध तथा चन्दन के जल से रुद्र की स्थापना करे, फिर पञ्चगव्य के विधान से गृहापात्र में अभिमन्त्रित करके ।।५२।। प्रणवपूर्वक पंचगव्य से शंकरजी को स्नान करावे। दही, शहद और गन्ने के रस से ।।५३।। तथा घी से सब कामना और हित करनेवाले का पूजन करना चाहिये, पवित्र द्रव्यों से ओंकारपूर्वक महादेवजी का पूजन करे, अभिषेक करे ।।५४।। पवित्र जलों के पात्रों में मन्त्रों से जल डाले और वह साधक यथायोग्य श्वेतवस्त्र से जल को छान के ।।५५।। तब तक दूर न करे जब तक चन्दन न डाले और शंकरजी का सुन्दर चावलों से आनन्दपूर्वक पूजन करे ।।५६।। कुशा, चिरचिटा, कपूर, जाती, चम्पक, पाटल, कनेर के फूल, मल्लिका और कमल ।।५७।। तथा अनेक दूसरे अपूर्व फूल, चन्दनादि से पूजन करके परमेश्वर पर जल की धारा छोड़नी चाहिये ।।५८।। अनेक प्रकार के पात्रों में जल भरकर देवदेव परमेश्वर का पूजन करे। मन्त्रपूर्वक की हुई पूजा सब कामना और फल देनेवाली होती है ।।५९।। हे तात! सब काम की सिद्धि के लिये मैं मन्त्रों को संक्षेप से कहता हूँ, आप सावधान होकर सुनिये ।।६०।। पढ़ाये हुए मन्त्र तथा वाङ्मय कण्ठस्थ मन्त्र, रुद्रसूक्त के मन्त्र, नीलसूक्त के मन्त्र, शुक्लयजुर्वेद के सुन्दर मन्त्रों से ।।६१।। 'होतारम्०' यजु के मन्त्र, अथर्वशीर्ष के मन्त्र, शान्ति पुनः शान्ति आरुणि मन्त्र, अरुण मन्त्रों से ।।६२।। जो अपने को अभीष्ट हो, ऐसे अर्थ और साम द्वारा तथा देवव्रत मन्त्र से ।।६३।। रथान्तर मन्त्र, पुष्पसूक्त से, 'युक्तेन०' इस मन्त्र से मृत्युंजय मन्त्र तथा पंचाक्षर मन्त्र से ।।६४।। वेदमार्ग वा नाममन्त्रों से शिवजी के ऊपर सहस्र जलधारा वा एक सौ एक जलधारा करनी चाहिये ।।६५।। फिर शिवजी के ऊपर चन्दन पुष्पादि चढ़ाने चाहिये,

*– रुद्राष्टाध्यायी में यह मंत्र लिखे हैं।

तथा मुखवासादि के निमित्त सामग्री ओंकारपूर्वक देनी चाहिये ।।६६।। पश्चात् स्फटिकमणि के समान देव निष्कल अक्षय सब लोकों के कारण, सब लोकमय परम रूप ।।६७।। ब्रह्मा, इन्द्र, उपेन्द्र, विष्णु आदि के भी अगोचर तथा वेदज्ञाताओं को भी वेदान्त में अगोचर ।।६८।। आदि, मध्य, अन्त रहित, सब रोगियों की औषधि स्वरूप विख्यात शिवतत्त्व शिवलिंग व्यवस्थित है ।।६९।। धूप, दीप देकर नैवेद्य ताम्बूल सुन्दर शिवलिंग पर चढ़ावे और प्रत्येक बार वस्तु चढ़ाने में ओंकार का उच्चारण करे ।।७०।। फिर यथोक्त विधि से मनोहर नीराजन करे, नमस्कार, स्तुति और अनेक प्रकार के मन्त्र पढ़े ।।७१।। अर्घ्य देकर पीछे शिवजी के चरणों में फूल बिखेरे, फिर देवेश को प्रणाम करके आराधन करे ।।७२।। फिर उठकर हाथ में पुष्प लेकर इस अगले लिखे मन्त्र से ईशानदेव की प्रार्थना करे ।।७३।। ''जो ज्ञान वा अज्ञान से मैंने पूजा की है; हे शंकर! वह आपकी कृपा से सब सफल हो'' ।।७४।। यह पढ़कर शंकरजी के ऊपर प्रेम से फूल चढ़ावे, फिर स्वस्तिवाचन कर आशीर्वाद ले ।।७५।। फिर शिवजी के ऊपर मार्जन करे। नमस्कार, अपराध क्षमापन करके फिर आचमन करावे ।।७६।। फिर अघोरमन्त्र उच्चारण करके नमस्कार की कल्पना करे, फिर सब भाव से शंकरजी की प्रार्थना करे ।।७७।। शिवजी में भक्ति हो, शिवजी में भक्ति निरन्तर हो, आपके सिवाय मुझे शरण देनेवाला कोई नहीं, आप ही शरण देनेवाले हो ।।७८।। इस प्रकार सब सिद्धि देनेवाले देवेश की प्रार्थना करके परमभक्ति और विशेष कर गलनाद के शब्दों से प्रसन्न करे ।।७९।। फिर परिवार गणों सहित नमस्कार करके बड़ी प्रसन्नता को प्राप्त होकर यथा सुख कार्य करे ।।८०।। शिवभक्ति में परायण होकर, जो इस प्रकार से नित्य पूजन करते हैं, उनको पद-पद में सब सिद्धि होती है ।।८१।। वह वाग्मी होता है और मन इच्छित फल अवश्य मिलता है। रोग, दुःख, शोक, उद्वेग, बनावट ।।८२।। कुटिलता तथा विष प्रयोग दुःखों का कल्याण करनेवाले शिवजी नाश करते हैं ।।८३।। शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान उसका कल्याण होता है और शंकरजी के पूजन से अवश्य सद्गुण बढ़ते हैं ।।८४।। हे मुनिसत्तम! इस प्रकार आपसे शिवजी की पूजाविधि कही। हे नारद! इसके उपरान्त क्या सुनना चाहते हो? ।।८५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

प्रथम सृष्टिखण्डे पूजाविधिवर्णनो नामैकादशोऽध्यायः ।।११।।

*****

बारहवाँ अध्याय

नारदजी बोले– हे तात! ब्रह्मन्! हे प्रजा के पति! शिवजी में मन लगानेवाले आप धन्य हैं। हे ब्रह्माजी! आप इस बात को हम से विस्तारपूर्वक कहिये।।१।। ब्रह्माजी बोले– हे पुत्र! एक समय सब ऋषियों को बुलाकर प्रीतिपूर्वक मैं सब देवताओं से कहने लगा।।२।। जो आपकी नित्य सुख में श्रद्धा है और जो आप नित्य सिद्धि की इच्छा करनेवाले हो, तो मेरे साथ क्षीरसागर में आइये।।३।। यह वचन सुनकर वह सब मेरे साथ चले, जहां सबके हितकारक भगवान् विष्णुजी विराजमान हैं।।४।। वहां जाकर सब देवता देवदेव जगन्नाथ जनार्दन की स्तुति करने हाथ जोड़कर स्थित हुए।।५।। ब्रह्माजी को आदि लेकर सब देवताओं को उपस्थित हुए देखकर शिवजी के चरणकमलों को स्मरण करते हुए भगवान् विष्णुजी बोले।।६।। विष्णुजी बोले– ब्रह्माजी को आदि लेकर आप देवता यहां क्यों आये हो? वह सब कहिये कि, आपका इस समय क्या कार्य है?।।७।। ब्रह्माजी बोले– जब इस प्रकार भगवान् विष्णुजी के यह वचन मैंने और देवताओं ने सुने, तब प्रीति से उनको प्रणाम करके, उस समय क्या कार्य है, वह अपना कार्य निवेदन करने के लिये इस प्रकार सुन्दर वचन बोले।।८।। देवता बोले– दुःखों को दूर करनेवाली नित्य सेवा किसकी करनी चाहिये?।।९।। यह वचन सुनकर भक्तवत्सल भगवान् देवताओं की प्रीति से कृपापूर्वक यह वचन बोले।।१०।। श्रीभगवान् बोले– हे ब्रह्मन्! सुनिये, आपने और देवताओं ने यह भली प्रकार सुना है; परन्तु तो भी आपके और देवताओं के पूँछने पर फिर से कहते हैं।।११।। जो अब देखा है और देख रहे हो, उसे इस समय क्या पूँछते हो? हे ब्रह्मन्! सम्पूर्ण देवता बहुधा कार्य में तत्पर रहते हैं।।१२।। सदा सब दुःखों को दूर करनेवाले भगवान् शंकरजी ही सेव्य हैं। मैंने और विशेष कर ब्रह्माजी ने भी यह बात कही है।।१३।। और प्रत्यक्ष भी आपने सब दृष्टान्त देखा है, सुख की इच्छावालों को कभी भी शंकरजी का पूजन नहीं त्यागना चाहिये।।१४।। लिंगमूर्ति महेश्वर देवदेव का त्याग करके तार के पुत्र बांधवों के सहित नष्ट हो गये थे।।१५।। और मेरे द्वारा मेरी माया से मोहित होकर वे दूर कर दिये और शिवजी से रहित होकर यह सब नष्ट और ध्वस्त हो गये।।१६।। इस कारण लिंगमूर्तिधारी शंकरजी का सदा पूजन करना चाहिये। हे देवताओ में श्रेष्ठो! विशेष करके उनकी सेवा करनी चाहिये।।१७।। शिवलिंग के अर्चन से देवता और दैत्य और आप सब भी श्रेष्ठ हुए हैं, हे ब्रह्मन्! यह आपने किस प्रकार भुला दिया?।।१८।। इस लिंगमूर्ति का किसी न किसी कारण से नित्य अर्चन करना चाहिये। हे ब्रह्माजी! इसी कारण सब काम और

फल की इच्छा से शिवजी का सदा सेवन करे ।।१९।। वही बड़ी हानि, वही महाछिद्र, वही अन्धता और मुग्धता है कि जो मुहूर्त और क्षण शिवजी के अर्चन के विना जाता है ।।२०।। जो शिवजी की भक्ति में तत्पर हैं, जो शंकरजी में मन लगाये हैं, जो शिवजी का स्मरण करते हैं, उनको कभी दुःख नहीं होते हैं ।।२१।। जो मनोहर भवन, मनोहर आभूषण पहने स्त्रियां तुष्टि पर्यन्त धन, पुत्र, पौत्रादि की सन्तति ।।२२।। शरीर की आरोग्यता, अलौकिकी, प्रतिष्ठा वा जो महाभाग वैकुण्ठ में सुख चाहते हैं, उनकी सब सिद्धि सफल होती है और वह पापों से लिप्त नहीं होते हैं ।।२३।। अन्त में मुक्ति का फल वा परमेश्वर की भक्ति होती है। पूर्वपुण्य के प्रभाव से वे सदाशिवजी की अर्चना करते हैं।।२४।। जो नित्य भक्ति में परायण होकर शिवलिंग की अर्चना करता है उसकी सिद्धि सफल है और वह पापों से लिप्त नहीं होता है ।।२५।। ब्रह्माजी बोले- ऐसा कहने पर देवताओं ने नारायण को प्रणाम करके सब कामनाओं की प्राप्ति के लिये शिवलिंगों की प्रार्थना की ।।२६।। यह सुनकर विष्णुजी ने विश्वकर्मा से कहा; हे मुनिशार्दूल! मैं तो जीवों के उद्धार में परायण हूँ।।२७।। विश्वकर्माजी से कहा; हे विश्वकर्मन्! आप शिवजी के शुभ लिंगों की कल्पना करके उन्हें मेरे वचन से सब देवताओं को देना ।।२८।। ब्रह्माजी बोले- तब विश्वकर्माजी ने अधिकार के अनुसार लिंगों की कल्पना करके मेरी और हरि की आज्ञा से सब देवताओं को दे दिये ।।२९।। हे ऋषिश्रेष्ठ! वही कहता हूँ, सो आप सुनिये। पद्मरागमणि का इन्द्र को, सुवर्ण का कुबेर को ।।३०।। पीतमणिमय धर्मराज को, श्याम वरुण को, इन्द्रनील मणि का विष्णुजी को, हेम का ब्रह्माजी को ।।३१।। चांदी का विश्वेदेवाओं को, वसुओं को चांदी का, तथा हे मुनि! आरकूट (पीतल) वा पार्थिवलिंग अश्विनीकुमारों को ।।३२।। स्फटिक मणि का लक्ष्मी को, ताम्बे का आदित्यों को, मोती का चन्द्रमा को, वज्रलिंग अग्नि को ।।३३।। ब्राह्मण और ब्राह्मणों की स्त्रियों को मिट्टी का, नागों को चन्दन का तथा मूँगे का लिंग आदर से दिया ।।३४।। देवी को मक्खन का, योगी को भस्म का, यक्षों को दही का, छाया को पिट्ठी का लिंग दिया ।।३५।। ब्रह्माणी रत्नमय शिंवलिंग का पूजन करती है, पारे का पार्थिव लिंग बाण को दिया और भी उनका पूजन करते हैं ।।३६।। इस प्रकार के लिंग विश्वकर्माजी ने दिये। देवता और ऋषिगण उन लिंगों की पूजा करते हैं ।।३७।। इस प्रकार विष्णुजी ने देवताओं के हित की कामना से लिंग देकर फिर मुझसे शिवजी की पूजा का विधान कहा ।।३८।। उनके यह वचन सुनकर मैं ब्रह्मा देवताओं के सहित अपने स्थान पर आया और अपने स्थान पर आकर हर्ष से मन पूर्ण हो गया ।।३९।। हे मुने! वहां आकर सब ऋषि और देवताओं से सब अभीष्ट देनेवाली शिवजी की पूजाविधि मैंने कही ।।४०।। ब्रह्माजी बोले-- सब देवता और ऋषि प्रेम में तत्पर होकर सुनिये, भुक्ति-मुक्ति की देनेवाली शिवजी की पूजाविधि कहते हैं।।४१।। सब प्राणियों में

मनुष्य जन्म बड़ा दुर्लभ होता है। हे देवताओ! हे मुनियो! उसमें भी सत्कुल में जन्म होना बड़ा दुर्लभ है।।४२।। ब्राह्मणों में व्यंगता न करता हुआ, पुण्यरूप आचरण करता हुआ, शिवजी के सन्तोष के हेतु अपने कर्म करे।।४३।। जो अपनी जाति में कहा है, उस कर्म को उल्लंघन न करे, जहां तक दान की सम्पत्ति हो, तब तक कर्म आरम्भ करे।।४४।। सहस्रकर्म यज्ञ से तपोयज्ञ विशेष है, सहस्र तपयज्ञ से जपयज्ञ विशेष है।।४५।। ध्यानयज्ञ से परे कुछ नहीं है। ध्यान ही ज्ञान का साधन है; कारण कि समरस से योगी ध्यान से ही अपने शान्तिरस को प्राप्त होता है।।४६।। जो ध्यानयज्ञ में निरत हैं, शंकरजी सदा उनके समीप है। विज्ञानियों को प्रायश्चित्तादि शोधन कुछ नहीं है।।४७।। हे ब्रह्मन्! इस विशुद्ध विद्या से जो ब्रह्मज्ञानी इस परम शिवतत्त्व को जानते हैं, उनको सुख--दुःख के विचार की कुछ क्रिया नहीं है।।४८।। धर्म, अधर्म, जप, होम, ध्यान और ध्यान की विधि इसमें इस विद्या से वह सदा निर्विकार हैं। हे देवताओ!।।४९।। यह शिवलिंग परम आनन्द का करनेवाला विशुद्ध कल्याणदायक अक्षर स्वरूप है। यह निष्कल सर्वगामी योगियों के हृदय में सदा स्थित है।।५०।। हे ब्राह्मणो! बाह्य और आभ्यन्तर भेद से लिंग दो प्रकार के हैं। स्थूललिंग बाह्य कहा गया है और सूक्ष्म आभ्यन्तर लिंग है।।५१।। जो कर्मयज्ञ में प्रीति करते हैं, वह स्थूललिंग में प्रेम करते हैं, जो उस तत्त्व को नहीं जानते हैं, उनकी भावना के लिये सूक्ष्म ही स्थूल विग्रह हुआ है।।५२।। जो आध्यात्मिक लिंग है, जिसका प्रत्यक्ष नहीं होता, वह उस लिंग तथा स्थूललिंग में पूजा की कल्पना करे, इसमें अन्यथा नहीं है।।५३।। ज्ञानियों को सूक्ष्मलिंग निर्मलता का कारण है, वह अविनाशी भाव से ही प्रत्यक्ष होता है, जैसे अयोगियों को स्थूललिंग उत्कृष्टता का करनेवाला है।।५४।। और तत्त्वार्थवादियों को तो विचार से कोई भेद नहीं है, कारण कि सबके चित्त में निष्कल है और सारा जगत् शिवरूप है।।५५।। ज्ञान रहित लोगों को दोष नहीं है, उनको कोई विधिनिषेध भी नहीं है।।५६।। जैसा कमल जल में रहकर भी जल से लिप्त नहीं होता, इसी प्रकार ज्ञानी घर में स्थित होकर भी कर्मों से बद्ध नहीं होता।।५७।। इस प्रकार का ज्ञान जब तक मनुष्य को उदय नहीं होता, तब तक कर्म द्वारा देवदेव शंकरजी की आराधना करता रहे।।५८।। जगत् के विश्वास के निमित्त स्थित हुआ एक ही दिवाकर जलधारादि वस्तुओं में अनेक रूप से दिखाई देता है।।५९।। हे देवताओ! जो कुछ लोक में सद्–असदात्मक दिखाई देता है, वह सब आप परब्रह्म शिवात्मक जानिये।।६०।। जलों का भेद इस लोक में विचार के अभाव से है, इसी प्रकार से शंकरजी में भेद विचार से नहीं है, ऐसा सब वेदार्थ तत्त्व के जाननेवाले कहते हैं।।६१।। सब संसारियों के हृदय में साक्षात् परमेश्वर विद्यमान् है, जब जिस पुरुष को ऐसा ज्ञान हो जाए, तब चाहे तो वह प्रतिमादि में पूजन न करे तो उसे दोष नहीं है।।६२।। जब तक ऐसा पूर्ण ज्ञान न हो, तब तक उसे प्रतिमा में पूजन

करना सर्वथा उचित है, उच्च पद पर चढ़ने के लिये यह पुरुष को परम अवलम्बन है ।।६३।। अवलम्बन के बिना ऊँचे पद पर चढ़ना बड़ा कठिन है, निर्गुणपद प्राप्ति के लिये मनुष्यों को प्रतिमा का अवलम्बन कहा है ।।६४।। सगुण से निर्गुण की प्राप्ति होती है, यह निश्चय है। इस प्रकार सब देवताओं की प्रतिमायें विश्वास को बढ़ानेवाली हैं ।।६५।। यह महादेवजी बड़े देवता हैं, इस कारण इनके निमित्त यह पूजन है। प्रतिमा के बिना गन्ध, अक्षत, चन्दन, पुष्पादि कुछ नहीं है ।।६६।। जब तक विज्ञान की प्राप्ति न हो, तब तक बराबर प्रतिमा पूजन करता रहे और जो ज्ञान के बिना ही पूजन त्याग देता है वह निश्चय पतित हो जाता है ।।६७।। हे ब्राह्मणो ! इस कारण आप परमार्थ से मेरा वचन सुनिये। अपनी जात का कहा हुआ जो कर्म है, उसे प्रयत्न से करना चाहिये ।।६८।। जहां-जहां जैसी भक्ति हो वैसा पूजन करना चाहिये। बिना पूजन, दानादि के पातक लगता है ।।६९।। जब तक देह में पातक हैं, तब तक सिद्धि नहीं होती, पातक नष्ट होते ही सब सफलता मिल जाती है ।।७०।। जैसे मलीन वस्त्र पर अच्छा रंग नहीं चढ़ता और धोकर शुद्ध करने से सब रंग चढ़ जाते हैं ।।७१।। ऐसे ही निर्मल देह में देवताओं की भली प्रकार पूजा करने से ज्ञान का रंग लगता है और विज्ञान हो जाता है ।।७२।। विज्ञान से अव्यभिचारिणी भक्ति उत्पन्न होती है, कारण कि संसार में भक्ति ही ज्ञान का मूल है ।।७३।। भक्ति का मूल सत्कर्म और अपने इष्ट देवता का पूजन है, उसका मूल सद्गुरु और उसका मूल महात्माओं की संगति है ।।७४।। संगति से ही गुरु की प्राप्ति और गुरु के मिलने पर मन्त्रादि से पूजन होता है, पूजन से भक्ति और भक्ति से ज्ञान होता है ।।७५।। ज्ञान से विज्ञान और उससे ब्रह्म का प्रकाश होता है। जिस समय विज्ञान हुआ कि उसी समय भेद निवृत्त हो जाता है ।।७६।। भेद के निवृत्त होते ही सब दुःख द्वन्द्व निवृत्त हो जाते हैं। द्वन्द्व दुःख से विहीन होकर यह शिवरूप हो जाता है ।।७७।। हे ऋषियो ! द्वन्द्व की निवृत्ति में सुख-दुःख निवृत्त हो जाते हैं, फिर उसको कुछ विधिनिषेध भी नहीं रहता ।।७८।। गृहस्थाश्रम से वर्जित इस प्रकार के लोग संसार में कोई विरले ही हैं, यदि कोई ऐसा इस लोक में हो तो उसके दर्शन से पाप हरे जाते हैं ।।७९।। तीर्थों की श्लाघा जैसी है, वैसे ही ज्ञानी की है। सब देवता और मुनि परब्रह्मात्मक शिवजी को ध्याते हैं ।।८०।। वैसे तीर्थ नहीं है, न देवता केवल मूर्तियों में ही हैं (किन्तु विज्ञानी में देवता और तीर्थ दोनों निवास करते हैं) कारण कि केवल तीर्थ अवगाहन और प्रतिमा में पूजन दीर्घकाल में मनुष्य को पवित्र करते हैं और विज्ञानी दर्शनमात्र से ही पवित्र कर देता है ।।८१।। जब तक गृहस्थाश्रम में रहे, तब तक आकार (प्रतिमा) में पंचदेवताओं के प्रेम से पूजा करता रहे ।।८२।। अथवा एक शिवजी का ही पूजन कर लेना चाहिये; कारण कि यही सबके मूल हैं। मूल के सींचने से सब शाखाएं सिंच जाती हैं, वैसे ही एक शिवजी के पूजन से सब देवता पूजित हो जाते हैं ।।८३।। शाखाओं को सिंचने से मूल

कभी नहीं तृप्त होता। हे मुनिश्रेष्ठो! इसी प्रकार सब देवताओं के तृप्त होने से ।।८४।। सर्वथा शिवजी तृप्त नहीं होते, यह सूक्ष्म बुद्धिवाले जानते हैं और शिवजी का पूजन करने से सब देवता पूजित हो जाते हैं ।।८५।। इस कारण लोक के कल्याण करनेवाले देवदेव शंकरजी का पूजन सब कामना और फल के लिये तथा सब प्राणियों के हित के लिये करना चाहिये ।।८६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वि० रुद्रसंहितायां भाषायां प्रथम सृष्टिखण्डे

पूजाविधिर्नाम द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

*****

तेरहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– अब इसके उपरान्त मैं श्रेष्ठ पूजाविधि कहता हूँ। हे देवताओ! सुनिये, यह सब कामना और सुख की देनेवाली है ।।१।। ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर शिव और पार्वती का स्मरण करे और हाथ जोड़कर, मस्तक झुकाकर भक्ति से उनकी प्रार्थना करे ।।२।। हे देवेश! हे हृदय में शयन करनेवाले! आप उठिये, हे उमास्वामी! आप उठिये और ब्रह्माण्ड का मङ्गल कीजिये ।।३।। मैं धर्म जानता हूँ, पर मेरी उसमें प्रवृत्ति नहीं है, मैं अधर्म को जानता हूँ पर उससे मेरी निवृत्ति नहीं है; हे महादेव! आप हृदय में स्थित होकर जैसी प्रेरणा करते हो, वैसा करता हूँ ।।४।। इस प्रकार भक्ति से वचन कहकर तथा गुरुपादुका का स्मरण कर मल–मूत्र के त्यागने को ग्राम से बाहर दक्षिण दिशा में जाए ।।५।। मृत्तिका और जल से देहशुद्धि करके हाथ पैर धोकर दँतौन करे ।।६।। सूर्य के निकलने से पहले दँतौन करके जल से सोलह कुल्ले करे ।।७।। हे देवताओ, ऋषियो! छठादि यम की तिथि, नौमी, रविवार इन दिनों में दँतौन नहीं करना चाहिये ।।८।। अवकाश के अनुसार नदी आदि अथवा घर में स्नान करे, मनुष्य को देश काल के अनुसार स्नान करना चाहिये ।।९।। रविवार, श्राद्ध, संक्रान्ति, ग्रहण, तीर्थ और उपवास के दिन ।।१०।। और अशौच की प्राप्ति में गरम जल से स्नान न करे, भक्तिमान् पुरुष तीर्थादि में उनके अभिमुख स्नान करे ।।११।। वारों को देखकर क्रमानुसार तेल लगावे, नित्य तेल लगानेवाले को वासित दूषित नहीं है ।।१२।। श्राद्ध में, ग्रहण में, उपवास में, पड़वा में सरसों का तेल ग्रहण के बिना दूषित नहीं है ।।१३।। देशकाल को विचार कर यथाविधि से स्नान करे, उत्तर अथवा पूर्व को मुख कर स्नान करे ।।१४।। उच्छिष्ट वस्त्र से कभी स्नान न करे, अपने देवता के स्मरणपूर्वक शुद्ध वस्त्र से स्नान करे ।।१५।। दूसरे का धारण किया उच्छिष्ट है तथा जो एक रात्रि का धारण किया है, वह उच्छिष्ट नहीं,

इससे सदा स्नान करना चाहिये और फिर धोये हुए को छोड़ दे।।१६।। फिर देवता, ऋषियों की तृप्ति के लिये सदा तर्पण करना चाहिये, फिर धुले वस्त्र को धारण करके फिर आचमन करे।।१७।। हे ब्राह्मणो! पीछे गोबर से लिपे हुए पवित्र स्थान में जाकर, वहां सुन्दर आसन रचना चाहिये।।१८।। जो शुद्ध काष्ठ का पूर्ण चिकना हो, ऐसा सब काम और फल का देनेवाला चित्रासन बनावे।।१९।। फिर मृगचर्म आदि यथायोग्य ग्रहण करने चाहिये, उस पर बैठकर बुद्धिमान् भस्म से त्रिपुण्ड्र लगावे।।२०।। त्रिपुण्ड्र लगाने से जप, तप और दान सब सफल हो जाता है, भस्म न हो तो जल से ही त्रिपुण्ड्र लगावे।।२१।। इस प्रकार त्रिपुण्ड्र लगाकर फिर मनुष्य रुद्राक्षों को धारण करे; इस प्रकार अपना कर्म सम्पादन करके फिर शिवजी की आराधना करे।।२२।। फिर तीन बार मन्त्रपूर्वक आचमन करके गंगा विष्णु कहता हुआ एक बार तिलक करे।।२३।। फिर शिवजी की पूजा के लिये अन्न, जल वा और जो कुछ वस्तु हो, यथाशक्ति समीप में लावे।।२४।। यह सब करके धीरतापूर्वक वहां बैठे, फिर जल, गन्ध, अक्षत से युक्त एक अर्घ्यपात्र लेकर।।२५।। उपचार की पूर्ति के लिये अपने दक्षिणांस में स्थापन करके गुरु का स्मरण करे और उनकी आज्ञा प्राप्त करके।।२६।। विधिपूर्वक संकल्प करके और उसमें अपनी कामना लगाकर परमभक्ति से परिवार सहित शिवजी का पूजन करे।।२७।। फिर एक मुद्रा भेंट की दिखाकर विघ्नेश्वर का पूजन करे। इनको सिन्दूरादि पदार्थ चढ़ावे और सिद्धि बुद्धि से पूजा करे।।२८।। लक्षलाभ से युक्त पूजा करके फिर नमस्कार करे; जब प्रणाम करे, तब ॐ कार सहित नाम में चतुर्थी विभक्ति लगावे, अन्त में नमः लगावे।।२९।। फिर देव से क्षमा कराकर स्कन्दभ्राता के सहित परमभक्ति से पूजन कर बारंबार प्रणाम करे।।३०।। और महोदर नाम द्वारपाल जो सदा द्वार स्थित रहता है, उसका पूजन कर फिर सती गिरिजा का पूजन करे।।३१।। चन्दन, कुंकुम, धूप, दीप और नैवेद्य से फिर शिवजी का पूजन करे।।३२।। फिर नमस्कार करके शिवजी के समीप जाकर, जो घर में पार्थिव, सुवर्ण, चांदी।।३३।। वा अन्य धातु की वा पारे की मूर्ति हो, उसे नमस्कार कर भक्ति में तत्पर होकर पूजन करे।।३४।। उसका पूजन करने से सब पूजित हो जाते हैं, विधिपूर्वक मृत्तिका का लिंग स्थापन करना चाहिये।।३५।। अपने घर में स्थित होकर नियम करने चाहिये, भूतशुद्धि करके प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये।।३६।। शिवालय में स्थापित करके दिक्पालों का पूजन करना चाहिये, मूलमन्त्र से घर में सदा शिवजी का पूजन करना चाहिये।।३७।। वहां द्वारपालों का नियम नहीं है, घर में जो लिंग पूजित है, उसमें सब प्रतिष्ठित हैं।।३८।। पूजा के समय सांगपरिवार के सहित आवाहन कर देव का पूजन करे, इसमें कोई नियम नहीं है।।३९।। शिवजी के समीप में अपना आसन कल्पना करे, फिर उत्तर को मुख कर बैठेकर आचमन करे।।४०।। फिर हाथ धोकर प्राणायाम करे, मूलमन्त्र से दश बार

प्राणायाम करे ।।४१।। फिर पाँचों मुद्रा दिखावे; कारण कि इसमें पूजा हाथ में स्थित होती है। इन मुद्राओं को दिखाकर ही मनुष्य पूजाविधि सम्पन्न करे ।।४२।। फिर दीप करके और गुरु को नमस्कार करके पद्मासन अथवा भद्रासन बाँधकर ।।४३।। उत्तानासन वा पर्यंकासन करके यथासुख बैठकर प्रयोग करे ।।४४।। पूर्व के समान पूजा करके वट्टक से तारण (?) करे और यदि अपने घर में ही हो, तो इस बात का नियम नहीं है ।।४५।। फिर अर्घ्यपात्र में शिवलिंग को स्नान करावे, फिर अनन्य मन होकर पूजाद्रव्य का विधान कर ।।४६।। इस अगले मन्त्र से देव का आवाहन करे। कैलास के शिखर पर स्थित पार्वतीपति उत्तम ।।४७।। निर्गुण-सगुण, यथोक्त रूप शंकरजी पाँच मुख, दश भुजा, तीन नेत्र, वृषभध्वज ।।४८।। कपूर के समान गौरवर्ण, माथे पर चन्द्र जटाजूट से शोभायमान, व्याघ्रचर्म का उत्तरीय वस्त्र और सुन्दर गजचर्म धारण किये ।।४९।। वासुकी आदि सर्प अंग पर लपेटे हुए, पिनाकादि आयुध हाथ में लिये, जिनके आगे आठों सिद्धियां निरन्तर नृत्य करती रहती हैं ।।५०।। जिनके चारों ओर भक्तजन जय-जय शब्द कर रहे हैं, जो दुःसह तेज से देवताओं से सेवित होकर दुर्लक्षित हो रहे हैं ।।५१।। सब जीवों को शरण देनेवाले, प्रसन्न मुखकमल वाले, वेदशास्त्रों से गीतमान, विष्णु तथा ब्रह्माजी से स्तुति को प्राप्त ।।५२।। भक्तवत्सल आनन्द स्वरूप सदाशिवजी को मैं आवाहन करता हूँ, इस प्रकार साम्बशिवजी का ध्यान करके पश्चात् आसन की कल्पना करे ।।५३।। सब वस्तुओं का समर्पण चतुर्थ्यन्त पद से करे, फिर शंकरजी के निमित्त पाद्य अर्घ्य दे ।।५४।। फिर आचमन करके परमात्मा शंभुजी के निमित्त पंचद्रव्य घृत, शर्करा, जलादि से प्रसन्न होकर स्नान करावे ।।५५।। वेदमन्त्रों से वा नाममन्त्रों से चतुर्थ्यन्त पद से भक्तिपूर्वक सब वस्तु समर्पित करे ।।५६।। सब अभिलषित पदार्थों को शिवजी के ऊपर अर्पण करे, फिर पार्वती को जल से स्नान करावे ।।५७।। सुगन्ध युक्त चन्दन तथा दूसरे अनुलेपन पदार्थ लगावे, फिर सुगन्धित जल की धारा चढ़ावे ।।५८।। फिर वेदमन्त्र, षडङ्ग वा एकादश नामों से स्नान कराकर फिर वस्त्र से मार्जन करे ।।५९।। फिर आचमन कराकर वस्त्र समर्पण करे, तिल, जौ, गेहूँ, मूँग यह नाममन्त्र पढ़-पढ़कर शिवजी को समर्पित करे, फिर महात्मा के पाँचों मुखों पर पाँच पुष्प चढ़ावे ।।६०-६१।। प्रतिमुख का अभिलाषा के अनुसार ध्यान करे। कमल, शतपत्र तथा शंखपुष्पों के फूल ।।६२।। कुशपुष्प, धतूरा, मन्दार, द्रोण, तुलसीपत्र, बेलपत्रों से ।।६३।। भक्तवत्सल शंकरजी का परमभक्ति से पूजन करे यदि और वस्तु न मिले तो बेलपत्र ही शिवजी को चढ़ावे ।।६४।। बेलपत्र के अर्पण से ही सब पूजा सिद्ध हो जाती है, फिर सुगन्धित चूर्ण से वासित सुन्दर तैल ।।६५।। परम प्रसन्नता से शिवजी को अर्पण करना चाहिये, फिर गूगल और अगर की धूप प्रेम से अर्पण करे ।।६६।। फिर घृत से भरा हुआ दीपक शंकरजी के निमित्त देना चाहिये और फिर इस मन्त्र से भक्तिपूर्वक अर्घ्य दे ।।६७।।

फिर भावभक्ति से वस्त्र से मुखमार्जन करे, प्रार्थना करे; हे देव! मुझे रूप, यश और भोग दीजिये ।।६८।। हे भगवन्! आपको प्रणाम है। आप भुक्ति-मुक्ति का फल अर्घ्य ग्रहण कीजिये, तब शिवजी के निमित्त सुन्दर नैवेद्य देनी चाहिये ।।६९।। फिर विलम्ब से प्रीतिपूर्वक आचमन करावे, पीछे शिवजी के लिये ताम्बूल सांगोपांग विधान करके ।।७०।। पाँच बत्तीयों से आरती करे; चरणों में चार बार, नाभि मण्डल में दो बार।।७१।। मुख पर एक बार, सर्वांग में सात बार, फिर यथोक्त ध्यान करके मन्त्र का उच्चारण करे ।।७२।। यथासंख्य और यथाज्ञान मनुष्य को मन्त्रविधि करनी चाहिये और गुरु के उपदिष्टमार्ग में बुद्धिमान् मन्त्र जपता हुआ ।।७३।। गुरु के उपदिष्टमार्ग के अनुसार ही मन्त्र का उच्चारण करे, यथासंख्य यथाज्ञान मन्त्र की विधि करनी चाहिये ।।७४।। और प्रसन्न होकर अनेक प्रकार स्तोत्रों से शिवजी की स्तुति करे, फिर शनैः-शनैः शिवजी की प्रदक्षिणा करे ।।७५।। विधिपूर्वक साष्टांग नमस्कार करे, फिर इस मन्त्र से भक्तिपूर्वक पुष्पाञ्जलि दे ।।७६।। शंकरपरेश शिवजी के सन्तोष के लिये ज्ञान वा अज्ञान से जो मैंने पूजादिक की है ।।७७।। हे शंकर! आपकी कृपा से यह सब सफल हो, मेरे प्राण आप में हैं। हे शिवजी! हे सुखदायक! मेरा चित्त आप में है ।।७८।। ऐसा जानकर; हे गौरीश! हे भूतनाथ! आप मुझ पर प्रसन्न हो। जिनका चरण पृथ्वी से फिसलता है, उनको पृथ्वी ही अवलम्बन है ।।७९।। आप में जो अपराध मुझसे हुए हैं, उसमें आप ही शरण हैं, इस प्रकार विधिपूर्वक बहुत सी विज्ञप्ति करके ।।८०।। पुष्पांजलि देकर बारंबार प्रणाम करे और कहे; हे प्रभो! अब परिवार के साथ आप अपने स्थान को जाइये ।।८१।। हे नाथ! पूजा के समय फिर आदर से इस स्थान में आना। इस प्रकार भक्तवत्सल शंकरजी की बहुत प्रकार से प्रार्थना करके ।।८२।। विसर्जन करके उनकी जलमयमूर्त्ति अपने हृदय में धारण करे। हे मुनियो! यह शिवजी का पूजन आपसे हम ने विस्तारपूर्वक कहा, यह भुक्ति-मुक्ति का देनेवाला है। अब आगे क्या सुनने की इच्छा है? ।।८३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
प्रथम सृष्टिखण्डे शिवपूजनवर्णनो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

*****

चौदहवाँ अध्याय

ऋषि बोले- व्यासशिष्य! हे महाभाग! किन-किन फूलों से पूजने से शिवजी क्या-क्या फल देते हैं? यह आप कहिये ।।१।। सूतजी बोले- हे शौनकादि ऋषियो! आदर से इस बात को सुनिये, मैं क्रम से पुष्पों के अर्पण का निर्णय कहता हूँ ।।२।।

यही विधि परमर्षि नारदजी ने पूछी थी, तब ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर उनको पुष्प अर्पण की विधि सुनाई थी ।।३।। ब्रह्माजी बोले– कमल, बेलपत्र, शतपत्र, शंखपुष्पों से देव का पूजन करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ।।४।। यदि इन लाख फूलों से शिवजी का पूजन करे तो, हे ब्राह्मणो ! पाप की हानि होती है और निःसन्देह लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ।।५।। बीस कमलों का एक प्रस्थ होता है और सहस्र बेलपत्रों का आधा प्रस्थ होता है ।।६।। और सहस्र शतपत्र का आधा प्रस्थ होता है, सोलह पल का एक प्रस्थ और दशटंक का एक पल होता है ।।७।। जब इस मान से तराजू पर चढ़ावे तो सब कामना पाता है। यदि निष्काम इतने पुष्पों से पूजे तो शिवरूप हो जाता है ।।८।। हे मुनीश्वरो ! जिसे राज्य की कामना हो वह दश करोड़ पार्थिव पूजा से शिवजी को सन्तुष्ट करे ।।९।। शिवलिंगपर जो पुष्प, अखण्ड चावल चढ़ाकर चन्दन और जलधारा से चर्चित करे ।।१०।। प्रतिरूप प्रतिमन्त्र से बेलपत्र चढ़ावे अथवा शतपत्र वा कमल चढ़ावे ।।११।। पुरातन पुरुषों ने शंखपुष्पों के पुष्पों से विशेष पूजन कहा है, यह दोनों लोकों में दिव्य सब काम फल देते हैं ।।१२।। धूप, दीप, नैवेद्य, अर्घ्य, आरती, प्रदक्षिणा, नमस्कार, क्षमापन, विसर्जन ।।१३।। यह सांग करके जिसने महेश्वरजी को भोग लगाया है, उसे शंकरजी अवश्य राज्य प्रदान करते हैं ।।१४।। और जो अपना प्राधान्य चाहता हो, वह इससे आधा शंकरजी का पूजन करे। कारागार से मुक्ति के लिये लक्ष कमलों से शिवजी का पूजन करे ।।१५।। जो रोगग्रस्त हो वह पचास सहस्र कमलों से पूजन करे, कन्या की कामनावाला पच्चीस सहस्र से ।।१६।। विद्या की कामनावाला इससे आधा, वाणी की कामनावाला घी से शंकरजी की पूजा करे ।।१७।। शत्रुओं के उच्चाटन के निमित्त भी उतना ही पूजन करे, मारण में लक्ष और मोहन में पचास सहस्र पूजन करे ।।१८।। सामन्तों के जय में एक कोटि पूजा करनी चाहिये, राजाओं के वशीकरण में दश लक्ष पूजा है ।।१९।। यश के लिये भी इतनी ही और वाहनादि के प्राप्ति के लिये एक सहस्र पूजा करनी चाहिये, मुक्ति की इच्छावाला भक्ति से पाँच करोड़ पूजन करे ।।२०।। ज्ञान की इच्छावाला लोकों के कल्याण करनेवाले शंकरजी की एक करोड़ से पूजा करे। शिवजी के दर्शन की इच्छावाला इससे आधा पूजन करे ।।२१।। अन्य कामना फल के लिये मृत्युंजय का जप करना चाहिये। पाँच लक्ष जप करने से शिवजी प्रत्यक्ष होते हैं ।।२२।। कोई एक लाख से पूजन करते हैं, दो लाख से जाति का सम्भव होता है, तीसरे लाख में कामना लाभ और चौथे लाख में शिवजी का दर्शन होता है ।।२३।। फिर पाँच लाख में निःसन्देह पूर्ण फल मिलता है, इसी मन्त्र से दश लाख में पूर्ण फल होता है ।।२४।। मुक्ति की कामनावाला कुशाओं से पूजन करे। हे ऋषियो ! इस पूजा में सर्वत्र लक्ष संख्यक सामग्री जाननी ।।२५।। आयु की इच्छावाला लक्ष दूर्वा से शिवजी का पूजन करे, पुत्र की इच्छावाला लाख धतूरे से पूजा करे ।।२६।। पूजन में लाल दण्डीवाला

धतूरा लेना चाहिये, अगस्त्य के फूलों से पूजने से बड़ा यश मिलता है ।।२७।। तुलसी से पूजन से भुक्ति-मुक्ति मिलती है। कुब्ज, कल्हार और आक के फूलों के पूजन से प्रताप बढ़ता है ।।२८।। जपा के फूलों से पूजे तो शत्रुओं का नाश होता है, रोग और उच्चाटन कर्म में कनेर के फूलों से पूजा करे ।।२९।। बन्धूक के फूलों से भूषणों की प्राप्ति, जाति (चमेली) के फूलों से पूजने से निश्चय ही वाहन की प्राप्ति होती है, अलसी के फूलों से पूजने से विष्णुजी का प्रिय होता है ।।३०।। शमीपत्र से पूजने से पुरुष की मुक्ति होती है, मल्लिका के फूलों से पूजने से शिवजी सुन्दर स्त्रियां देते हैं ।।३१।। यूथिका के फूलों से पूजने से घर में धान्यों का अभाव नहीं होता है, कर्णिका के फूलों से पूजने से वस्त्र तथा सम्पत्ति होती है ।।३२।। निर्गुण्डी के फूलों से मन निर्मल होता है, लाख बेलपत्रों से पूजे तो सर्व कामना पूर्ण होती है ।।३३।। हारसिंगार के फूलों से पूजे तो सुखसम्पत्ति बढ़ती है, ऋतु के उत्पन्न हुए फूल निःसन्देह मुक्ति देनेवाले हैं ।।३४।। राजिका (राई) के फूलों से पूजे तो शत्रुओं की मृत्यु होती है, यदि यह लाख फूल शिवजीपर चढ़ाये जाये तो बड़ा फल होता है ।।३५।। ऐसा कोई फूल नहीं है जो शिवजी को प्रिय न हो। चम्पा और केतकी को छोड़कर अन्य सब फूल चढ़ावे ।।३६।। इसके आगे धान्य द्वारा शंकरजी के पूजन का फल और प्रमाण प्रीति से सुनिये ।।३७।। चावल चढ़ाने से मनुष्य को लक्ष्मी की वृद्धि होती है, पर वे चावल अखण्ड भक्ति से शिवजी के ऊपर चढ़ाये जायें ।।३८।। वे छः प्रस्थ वा तीन प्रस्थ वा दो पल वा संख्या में एक लक्ष हों ।।३९।। रुद्र की प्रधानता से पूजा करे। फिर एक सुन्दर वस्त्र शिवजी के ऊपर उढ़ावे, यह उत्तम तन्दुल अर्पण की विधि है ।।४०।। फिर उसके ऊपर एक श्रीफल और गन्ध-पुष्पादि चढ़ावे, फिर धूप-दीपादि देकर पूजा का फल प्राप्त होता है ।।४१।। प्रजापति देवतावाले दो रुपये वा माष की संख्या से दक्षिणा दे अथवा उपदेष्टा के निमित्त शक्ति के अनुसार दक्षिणा ।।४२।। और बारह ब्राह्मणों को भोजन करावे, जब सांग मन्त्रपूर्वक लक्ष पूजा हो जाए ।।४३।। तब मन्त्र की विधि एक सौ आठ वर्ण की है। लाख पल तिल चढ़ाने से महापातक दूर होते हैं ।।४४।। ग्यारह पल (६४ मासे) तोल में एक लाख तिल हो जाते हैं। हित की कामना से पूर्व के समान पूजन करना चाहिये ।।४५।। और ब्राह्मणों को भक्तिपूर्वक भोजन कराना चाहिये, जो महापातक से उत्पन्न हुआ दुःख तत्काल नाश हो जाता है ।।४६।। हे शिवजी! जब इसी प्रकार लाख जौ से शिवजी की पूजा करनी कही है, आठ प्रस्थ अथवा चार प्रस्थ ।।४७।। वा दो पल का इसका मान कहा है, जौ की पूजा मुनियों ने स्वर्ग और सौभाग्य बढ़ानेवाली कही है ।।४८।। फल की इच्छावालों को प्रजापति के उद्देश्य से ब्राह्मण जिमाने चाहिये। गोधूम अन्न से की हुई पूजा भी शंकरजी का सन्तुष्ट करती है ।।४९।। लाख गोधूम से की हुई शिवजी की पूजा सन्तान को बढ़ानेवाली है। आधे द्रोण (८ सेर) में एक लाख गेहूँ होते हैं, इसका विधिपूर्वक विधान है ।।५०।। मूँग के

द्वारा पूजन करने से शिवजी सुख देते हैं, सात प्रस्थ अथवा आधे प्रस्थ से ।।५१।। और दो पल में एक लाख मूँग हो जायगी, ऐसा पुरातन महात्माओं ने कहा है और ग्यारह ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये ।।५२।। धर्माध्यक्ष परमात्मा का प्रियंगु से पूजन करे तो धर्मार्थ काम की वृद्धि होती है और वह पूजा सब सुखों की देने वाली है ।।५३।। एक प्रस्थ में एक लाख प्रियंगु (ककुनी) होते हैं, ऐसा पुरातन पुरुषों ने कहा है, इसमें भी बारह ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये ।।५४।। राई से शिवजी का पूजन करे तो शत्रुओं की मृत्यु होती है। बीस *पल (१६० तोले) में एक लाख राजिका (राई) होती हैं ।।५५।। उनसे पूजन करने से शत्रु की मृत्यु होती है। आढकी (अरहर) वा शमी के पत्तों से शिवजी का पूजन करके शोभित करे ।।५६।। प्रीति के निमित्त एक गौ और एक बैल देना चाहिये। मिरचों से पूजा करने से भी शत्रु का नाश होता है ।।५७।। आढकी के पत्तों से रंजित कर शिवजी को पूजे, यह पूजा अनेक प्रकार के सुख करने वाली और सब फल देनेवाली है ।।५८।। हे मुनिश्रेष्ठ! यह आपसे हमने धान्यों का मान कहा। हे मुनीश्वर! अब प्रसन्नता से फूलों का लक्ष मान सुनिये ।।५९।। सूक्ष्म मान के जानने वाले व्यासजी ने एक प्रस्थ में लाख शंखपुष्पों का मान कहा है। ग्यारह प्रस्थ में एक लाख जाति (चमेली) के फूल होते हैं, इतना ही यूथिका (चमेली विशेष) का मान है और राजिका (राई) का उससे आधा है।।६०-६१।। बीस प्रस्थ में मल्लीका के एक लाख फूल होते हैं, एक सेर से कुछ कम में तिल के फूल एक लाख होते हैं ।।६२।। कनेर के फूल दो सेर में एक लाख होते हैं, इतना ही निर्गुण्डी के फूलों का मान पण्डितों ने कहा है ।।६३।। कर्णिकार शिरस के फूल तथा बन्धुजीवक, दुपहरिया फूल दश सेर में एक लाख होते हैं ।।६४।। इस प्रकार उनके मान देखकर शिवजी का पूजन करना चाहिये। सब प्रकार की समृद्धि और मुक्ति के निमित्त कामना त्याग कर पूजन करे ।।६५।। अब धारापूजा का महाफल कहता हूँ, जिसके श्रवणमात्र से मनुष्यों का कल्याण हो जाता है ।।६६।। भक्तिपूर्वक विधान करके शिवजी की पूजा करके पीछे भक्तिपूर्वक शिवजी के ऊपर जलधारा करनी चाहिये ।।६७।। ज्वर, प्रलाप की शान्ति के लिये जलधारा बड़ी शोभायमान है। शतरुद्रिय मन्त्र वा एकादश रुद्रमन्त्र से ।।६८।। वा रुद्रजाप्य, रुद्रसूक्त वा पुरुषसूक्त, षडंग वा महामृत्युंजय ।।६९।। गायत्री वा अन्त में नमः लगाकर वा ॐ कार मन्त्र वा दूसरे आगमोक्त मन्त्रों से जलधारा करनी चाहिये ।।७०।। सुख और सन्तान की वृद्धि के लिये धारापूजन बड़ा श्रेष्ठ है, अनेक प्रकार के सुन्दर दिव्य तथा प्रीति से सद्भस्म धारण करने से ।।७१।। सहस्र मन्त्र पढ़कर शिवजी के ऊपर घृत की धारा करनी चाहिये, तब निःसन्देह वंश का विस्तार होता है ।।७२।। इस प्रकार मेरे कहे मन्त्रों से शिवजी का पूजन कराना चाहिये और प्रजापति संख्यक बारह ब्राह्मणों को भोजन कराना

*–पांच चौटली का एक मासा, सोलह मासे का एक कर्ष, चार कर्ष वा आठ तोले का एक पल होता है।

चाहिये ।।७३।। यदि किसी की जडबुद्धि हो तो शर्करा मिलाकर दुग्धधार देनी चाहिये ।।७४।। तब उसकी बृहस्पति के समान उत्तम बुद्धि हो जाती है। जब तक मन्त्र १०००० न हो जाए, तब तक धारा से पूजन ।।७५।। और जब बिना कारण ही देह में उच्चाटन हो जाय, जहां कहीं प्रेम हो वह न्यून हो जाय और दुःख ही की वृद्धि हो ।।७६।। और अपने घर में नित्य ही कलह होता हो, तो इस धारा के करने से सब दुःख शान्त हो जाते हैं।।७७।। शत्रुओं को ताप देने के लिये शिवजी के ऊपर तेल की धारा देनी चाहिये; प्रयत्नपूर्वक यह कार्य करने से कार्यसिद्धि होती है ।।७८।। सुगन्धित तेल से भोग वृद्धि होती है और सरसों के तेल से शत्रुओं का अवश्य नाश होता है ।।७९।। मधु द्वारा शिवजी की पूजा करने से यक्षराज हो जाता है। हे पार्वती! गन्ने के रस की धारा भी सब आनन्द करनेवाली है ।।८०।। गंगाजल की धारा भुक्ति-मुक्ति की देनेवाली है, यह सब मृत्युंजय से ही प्रकट है ।।८१।। इसमें विधि से अयुत १०००० संख्या का विधान करना चाहिये और ग्यारह ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये ।।८२।। हे मुनीश्वर! जो आपने पूछा, सो सब आपको सुनाया। यही लोक में सफल और सब काम तथा हित का करनेवाला है ।।८३।। शिवजी को स्कन्द उमा के सहित पूजन करके भक्ति से जो फल मिलता है, वह कहता हूँ, जैसा सुना है ।।८४।। यहां पुत्र-पौत्रादि के सम्पूर्ण सुखों को प्राप्त करके शिवजी के सब सुखदायक लोक को जाते हैं ।।८५।। कोटि सूर्य के समान प्रकाशमान कामगामी विमानों पर स्थित होकर गीत, बाजे और रुद्रकन्याओं से सेवित होकर ।।८६।। प्रलय पर्यन्त शंकरजी के जनों के साथ क्रीड़ा करते हैं, फिर अविनाशी विज्ञान को प्राप्त होकर मोक्ष को प्राप्त जाते हैं ।।८७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
प्रथम सृष्टिखण्डे शिवपूजाविधिवर्णनो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

*****

पन्द्रहवाँ अध्याय

नारदजी बोले- हे देवताओं में श्रेष्ठ महाभाग ब्रह्माजी! हे देव! आप धन्य हो। आपने हमें शिवजी की परम पावनी कथा सुनाई है ।।१।। महादिव्य और सुन्दर लिंगोत्पत्ति आपने सुनाई, जिसका प्रभाव सुनकर सब दुःख नष्ट हो जाते हैं ।।२।। इसके उपरान्त जो माहात्म्य और चरित्र हुआ तथा सृष्टि का प्रकार आप विशेष कर कहिये ।।३।। ब्रह्माजी बोले- आपने भली बात पूँछी। इसके पश्चात् जो हुआ सो जैसा मैने सुना है, संक्षेप से कहता हूँ ।।४।। जब शिवरूप सनातन देव अन्तर्धान हो गये। हे विप्रेन्द्र! तब मैंने और

विष्णुजी ने बड़ा सुख पाया ।।५।। मैंने और विष्णुजी ने हंस और वाराह का रूप धारण करके उन रूपों से लोकों को संवृत्त कर लिया और सर्ग की इच्छा की ।।६।। नारदजी बोले– हे विधे ! हे महापण्डित! हे महाप्राज्ञ ! मेरे हृदय में बड़ा सन्देह है, सो आप अतुल कृपा करके मेरे हृदय का सन्देह शीघ्र नाश कीजिये ।।७।। आपने हंस और वाराह का रूप क्यों धारण किया ? अन्य रूपों को छोड़कर इन रूप को धारण करने का क्या कारण है ?।।८।। सूतजी बोले– महात्मा नारदजी के यह वचन सुनकर शिवजी के चरणकमल को स्मरण करके ब्रह्माजी आदर से बोले ।।९।। ब्रह्माजी बोले– ऊपर गमन में हंस की निश्चल गति होती है और जलदुग्ध के विभाग के समान तत्त्व और अतत्त्व का विवेक होता है ।।१०।। हंस अज्ञान और ज्ञान के निर्णय में समर्थ है, इस कारण सृष्टिकारी ब्रह्माजी ने हंस का रूप धारण किया ।।११।। विवेक प्राप्त न होने से यह हंस (मैं वह हूँ) लीन हो जाता है। ज्योतिरूप शिवतत्त्व के जानने से प्रकट होता है ।।१२।। फिर जिसकी सृष्टि की प्रवृत्ति में कामना हो, उसे किस प्रकार से ज्ञान होता है ? इस कारण से मुझ हंसरूप ने विवेक प्राप्त न किया ।।१३।। अधोगमन में वराह की गति निश्चल होती है, इस कारण विष्णुजी ने वनचारी वराह का रूप धारण किया ।।१४।। अथवा भव (वाराह) कल्प के निमित्त उन्होंने यह रूप धारण किया, भुवन के नमनकारी विष्णुजी ने इस प्रकार यह रूप धारण किया ।।१५।। जिस दिन से विष्णुजी ने यह रूप धारण किया, उस दिन से यह कल्प वाराहकल्प कहलाया ।।१६।। जिस दिन से उस रूप को धारण करने की भगवान् विष्णुजी की इच्छा हो गई, उस दिन से प्रतिकल्प में यह कल्प वाराहकल्प कहलाया ।।१७।। हे नारदजी ! इस प्रकार आप अपने प्रश्नोत्तर को सुन चुके। हे मुने ! अब शंकरजी के चरणकमलों को स्मरण करके सृष्टि का विधान कहता हूँ।।१८।। महादेवजी के अन्तर्धान होने पर मैं लोकपितामह ब्रह्मा उनके वचन करने को ध्यान में तत्पर होकर ध्यान करने लगा ।।१९।। शिवजी को प्रणाम करके उस समय हरि से ज्ञान प्राप्त करके परम आनन्द को प्राप्त होकर सृष्टि करने में मन लगाया ।।२०।। और विष्णुजी भी सदाशिवजी को प्रणाम करके मुझे समझा–बुझाकर अन्तर्धान हो गये ।।२१।। तब ब्रह्माण्ड से बाहर होकर शिवजी का अनुग्रह प्राप्त करके विष्णुजी ने तो वैकुण्ठ में निवास किया ।।२२।। और मैंने सृष्टि की कामना से विष्णुजी और शिवजी को प्रणाम करके उस पूर्व निर्माण किये जल में एक अंजली जल उठाकर डाला ।।२३।। तब हे विप्र ! चौबीस तत्त्वों का उसमें एक अण्ड प्रकट हुआ, उस जलरूप को देखते हुए विराट् रूप हो गया ।।२४।। तब मैं सन्देह को प्राप्त होकर कठिन तप करने लगा और बारह वर्ष तक विष्णुजी का ध्यान करता रहा ।।२५।। हे तात ! उस समय फिर विष्णुजी प्रकट हो गये और प्रेम से मेरा अंग छूते हुए मुझसे बोले ।।२६।। विष्णुजी बोले– हे ब्रह्माजी ! आप वर मांगो, मैं प्रसन्न हूँ। आपके लिये मुझे कोई वस्तु अदेय

नहीं है। हे ब्रह्मन्! शिवजी के प्रसाद से मैं सब कुछ देने में समर्थ हूँ।।२७।। ब्रह्माजी बोले- हे महाभाग! यह आपका कथन युक्त ही है, शिवजी ने मुझे आपको दे दिया है, सो मैं उन्हीं का कहा मांगता हूँ, आप दीजिये, आपको प्रणाम है।।२८।। चौबीस तत्त्वों का यह विराट्रूपी अण्ड है, सो चैतन्य नहीं होता, जडरूपी दीखता है।।२९।। हे हरे! आप शिवजी के अनुग्रह से प्रादुर्भूत हुए हो। अब शंकरजी की सम्भूति से इस अण्ड को चैतन्य कीजिये।।३०।। यह कहने पर शिवजी की आज्ञा में परायण महाविष्णुजी अनन्त रूप से उस अण्ड में प्रवेश कर गये।।३१।। वह पुरुष सहस्रों सिर, सहस्रों नेत्रों, सहस्रों चरणों से समस्त भूमि पर आक्रमण कर उस अण्ड में व्याप्त हो गये।।३२।। मेरी स्तुति से जब विष्णुजी उस अण्ड में प्रवेश कर गये, तब वह चौबीस तत्त्व का अण्ड चैतन्य हो गया।।३३।। पाताल में आरम्भ करके सातलोक के अधिपति हरि विराट् पुरुष रूप से विराजमान हुए।।३४।। उसमें कैलास नगर सबके ऊपर विराजमान हुआ, उसे शंकरजी ने अपने निवास के लिये किया।।३५।। हे देवर्षे! ब्रह्माण्ड और वैकुण्ठ का भी जिस समय अभाव हो जाता है, उस समय भी कैलास का नाश नहीं होता।।३६।। हे मुनिश्रेष्ठ! मैं सत्यपद को प्राप्त होकर स्थित हुआ हूँ। हे तात! महादेवजी की आज्ञा से मैं सृष्टि की कामना से।।३७।। जब रचना करने लगा तब प्रथम पापसृष्टि होने लगी, वह बुद्धिपूर्वक अविद्यापंचक, तमप्रधान थे।।३८।। तब मैंने प्रसन्नचित्त होकर स्थावर पदार्थों की रचना की, फिर मुख्यसर्ग के निमित्त शिवजी की आज्ञा से ध्यान करने लगा।।३९।। तब उस सृष्टि को देखकर मैं अपने कार्यसाधन के लिये फिर रचना करने लगा, तब तिरछे चलनेवाले जीव प्रकट हुए, जो दुःखरूप थे, वह भी कार्यसाधक न हुए।।४०।। उस सृष्टि को असाधक मानकर जब फिर मैंने विचार किया, तब ऊर्ध्वगामी सात्त्विक सृष्टि प्रकट हुई।।४१।। वह देवताओं की सृष्टि बहुत ही सुखदायक हुई, पर उसे भी असाधक मानकर मैं फिर विचार करने लगा।।४२।। तब शंकरजी की आज्ञा से राजस सर्ग प्रकट हुआ, वह मनुष्य नाम अर्वाक्स्रोत परसाधक है।।४३।। फिर महादेवजी की आज्ञा से भूतादि सर्ग प्रकट हुआ। इस प्रकार मेरी की हुई सृष्टि पाँच प्रकार की हुई।।४४।। प्रकृति के तीन सर्ग ब्रह्म द्वारा हुए हैं। उनमें पहला महत्सर्ग और दूसरा सूक्ष्म भौतिक और तीसरा वैकारिक सर्ग सृष्टि का किया है। इस प्रकार यह आठ प्रकार की सृष्टि प्राकृतिक और विकृति के साथ है।।४५-४६।। नौवाँ कुमार सर्ग है, वहीं प्रकृति और विकृतिवाला है और इनके अवान्तर भेद इतने हैं कि, जिन्हें मैं कह नहीं सकता।।४७।। थोड़ा और उपयोगी जानकर द्विजात्मक सृष्टि कहता हूँ। सनकादिकों का जहां महान् सर्ग हुआ है।।४८।। यह सनकादि मेरे मानसपुत्र ब्रह्मसम्मित हैं, यह पाँचों सुव्रत महावैराग्य से सम्पन्न हुए।।४९।। वे पाँचों पण्डित मेरी आज्ञा से ही संसार से विमुख हुए हैं और शिवजी के ही ध्यान में मन लगाकर सृष्टि के करने में इन्होंने मति नहीं की।।५०।। हे मुनिश्रेष्ठ!

उनका सृष्टिनिषेध का उत्तर सुनकर मोह को प्राप्त होकर मैंने बहुत क्रोध किया ।।५१।। हे मुने! जब मैं क्रोध से व्याकुल हो गया, तब मेरे नेत्रों से जल की बूँदें गिरीं ।।५२।। उसी समय मन से स्मरण करते ही तुरन्त आकर विष्णुजी ने मुझे समझाया ।।५३।। कि, आप अभी शंकरजी के सन्तोष के लिये घोर तप कीजिये। जब भगवान् विष्णुजी ने यह शिक्षा दी, तब हे मुनिसत्तम! मैंने घोर तप किया ।।५४।। तब सृष्टि के लिये तप करते हुए भौंह और घ्राण के मध्य से अविमुक्त नाम देश से और विशेष करके मुझसे ।।५५।। त्रिमूर्त्ति के आदिकारण कृपानिधि सकलेश्वर अर्द्धनारीश्वर होकर पूर्णांश सकलेश्वर प्रकट हुए ।।५६।। उन अजन्मा तेजोराशि साक्षात् उमापति, सर्वज्ञ, सबके कर्त्ता नीललोहित शंकरजी को देखकर ।।५७।। महाभक्ति से स्तुति और नमस्कार करके मैं बड़ा प्रसन्न हुआ और देवदेव से कहा, आप अनेक प्रकार की सृष्टि करे ।।५८।। तब यह देवदेव महेश्वरजी मेरे वचन को सुनकर अपने समान बहुत से रुद्रों की सृष्टि करने लगे ।।५९।। तब महारुद्र महेश्वरजी से मैंने फिर कहा, हे देव! आप जन्ममृत्यु के भयवाली प्रजा की रचना कीजिये ।।६०।। हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार से मेरे वचन सुनकर करुणानिधि महादेवजी हँसते हुए कहने लगे ।।६१।। महादेवजी बोले– हे ब्रह्माजी! मैं जन्ममृत्यु के भयवाली प्रजा नहीं रचूंगा, जो अशोभन कर्मवश दुःखसागर में मग्न हो ।।६२।। मैं तो दुःखसागर में मग्न हुई प्रजा का उद्धार करता हूँ, मैं उनको भली प्रकार अपनी गुरुमूर्ति से ज्ञान देता हूँ ।।६३।। हे प्रजापते! यह दुःख से व्याकुल प्रजा आप ही निर्माण कीजिये, मेरी आज्ञा से आप माया से बद्ध न होंगे ।।६४।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार मुझसे कहकर वह नीललोहित भगवान् मेरे देखते–देखते गणों सहित अन्तर्धान हो गये ।।६५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

प्रथम सृष्टिखण्डे रुद्रातारवर्णनो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।।१५।।

*****

सोलहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– हे नारद! मैंने स्वयं शब्दादि पंचभूतों द्वारा पंचीकरण करके उनसे स्थूल आकाश, वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी ।।१।। तथा पर्वत, समुद्र, वृक्षादि और कलादि युग पर्यन्त कालों की भी मैंने रचना की ।।२।। हे मुने! और भी सृष्टि के पदार्थों की रचना की, पर मैं सन्तुष्ट नहीं हुआ, तब मैंने साम्बशंकरजी का ध्यान करके सृष्टि के पदार्थ निर्माण किये ।।३।। अपने नेत्रों से मरीचि को, हृदय से भृगु को, शिर से अंगिरा को, व्यान से ऋषिश्रेष्ठ पुलह को निर्माण किया ।।४।। उदान से पुलस्त्य को, समान से

वसिष्ठजी को, अपान से क्रतु को, श्रोत्र से अत्रि को और प्राण से दक्षजी को निर्माण किया। हे नारदजी! गोदी से आपको और छाया से कर्दमजी को निर्माण किया।।५।। और सब साधन के साधन धर्म को संकल्प से निर्माण किया।।६।। हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार से मैं महादेवजी की कृपा से इन सृष्टि के साधनों को निर्माण करके कृतार्थ हो गया।।७।। हे तात! फिर मेरी आज्ञा से संकल्प संभव धर्मसाधकों के साथ मनुष्यरूप से प्रवृत्त हुआ।।८।। हे मुने! फिर मैंने अपने शरीर से सुर-असुर आदि अनेक पुत्र बनाये और उनको उन-उनके अनुरूप पुत्र दिये।।९।। तब अन्तर्यामी शंकरजी की प्रेरणा से मैंने अपने दो भाग करके दो रूप किये।।१०।। हे मुने! मैं आधे से नारी और आधे से पुरुष हुआ। उससे सबका साधन परमोत्तम एक मिथुन बनाया।।११।। इसमें पुरुष परम साधक स्वायम्भुव मनु हुआ और योगिनी तपस्विनी शतरूपा स्त्री हुई।।१२।। उस अत्यन्त शोभावाली स्त्री को मनु ने ग्रहण किया। हे तात! उन्होंने विवाह की विधि से मैथुनी सृष्टि उत्पन्न की।।१३।। उसमें उन्होंने प्रियव्रत पुत्र को उत्पन्न किया, दूसरा पुत्र उत्तानपाद और तीन कन्याएं जन्मी।।१४।। जो आकूती, देवहूती और प्रसूती नामवाली थीं। रुचि के निमित्त आकूती और कर्दम के निमित्त देवहूती दी।।१५।। उत्तानपाद की छोटी बहन प्रसूती दक्षप्रजापति के निमित्त दी। उनमें प्रसूती की सन्तान से चराचर जगत् व्याप्त हो गया।।१६।। आकूती में रुचि से दक्षिणा सहित यज्ञ उत्पन्न हुआ, यज्ञ के दक्षिणा में बारह पुत्र उत्पन्न हुए।।१७।। हे मुने! देवहूती में कर्दम से बहुत से पुत्र उत्पन्न हुए, दक्ष को चौबीस कन्याएं हुईं।।१८।। दक्षजी ने श्रद्धा को आदि लेकर तेरह कन्या धर्म को दीं। हे मुनीश्वर! उन धर्म की स्त्रियों के नाम सुनिये।।१९।। श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वसु, शान्ति, सिद्धि, कीर्ति यह तेरह धर्म की स्त्रियां हैं।।२०।। उनसे छोटी जो ग्यारह कन्याएं थीं वह ख्याति, सत्पथ, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा।।२१।। सन्नति, अनुरूपा, ऊर्जा, स्वाहा और स्वधा। भृगु, भव, मरीचि, अंगिरामुनि।।२२।। पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि, वशिष्ठ, वह्नि तथा पितर इन ग्यारह को यथाक्रम से।।२३।। यह श्रेष्ठ कन्याएं व्याही गईं, इनकी सन्तानों से चराचर सहित त्रिलोकी व्याप्त हो गई।।२४।। इस प्रकार अम्बिकापति की आज्ञा से कर्मानुसार अनेक प्राणी और ब्राह्मणश्रेष्ठ उत्पन्न हुए।।२५।। कल्पभेद से दक्ष की साठ कन्याएं कही गई हैं। उनमें से दश धर्म को, सत्ताईस चन्द्रमा को।।२६।। और विधि से तेरह कश्यप को दी हैं। हे नारदजी! और चार पररूप ताक्ष्र्य (गरुड़) को दीं।।२७।। भृगु, अंगिरा और कृशाश्व को दो-दो कन्याएं दीं। उनसे चराचर बहुतसी सृष्टि हुई।।२८।। हे मुनिश्रेष्ठ! जो दक्षजी ने विधिपूर्वक तेरह कन्याएं कश्यपजी को दी थीं।।२९।। उनकी सन्तानों से चराचर त्रिलोकी व्याप्त हो गई। स्थावर-जंगम इनमें कहीं भी शून्यता न रही।।३०।। देवता, ऋषि और दैत्य प्रकट हुए। वृक्ष, पक्षी, पर्वत,

वीरुध (छोटे वृक्ष) हुए ।।३१।। इस प्रकार दक्ष की कन्याओं से यह चराचर जगत् व्याप्त हो गया । पाताल से लेकर सत्यलोक तक ।।३२।। सब ब्रह्माण्ड व्याप्त हो गया, स्थान खाली न रहा, इस प्रकार शिवजी की आज्ञा से ब्रह्माजी ने यह सृष्टि की ।।३३।। सती के त्रिशूल के अग्रभाग से सदाशिवजी ने रक्षा की । सर्वव्यापी शिवजी ने उसे तप के निमित्त ही निर्माण किया था ।।३४।। वह दक्षजी से लोक के कल्याण के निमित्त ही प्रकट हुई थी, भक्तों के उद्धार के निमित्त उन्होंने बहुत सी लीलाएँ की ।।३५।। जिसका वामांग वैकुण्ठ है, दक्षिणांग मैं हूँ, रुद्र जिसके हृदय से हैं, इस प्रकार शिवजी को त्रिविध कहते हैं ।।३६।। मैं, विष्णु और रुद्र यह तीनों गुण हैं, परब्रह्म अविनाशी शिवजी स्वयं सदा निर्गुण हैं ।।३७।। विष्णु सत्वगुण, मैं रजोगुण और रुद्र तमोगुण के अधिष्ठाता हैं । लोकाचार में इस प्रकार नाम हैं, वास्तव में तो ।।३८।। अन्तर में तम, बाहर में सत्व ऐसे विष्णुजी हैं, बाहर में तम अन्तर में सत्वगुणी रुद्र हैं, भीतर में सत्व और तम बाहर में रजोगुण प्रधान मैं ब्रह्मा हूँ ।।३९।। रजोगुणी सुरादेवी हैं, सत्यरूपा वह सती है, तमोमयी लक्ष्मी है, इस प्रकार परा शिवा तीन रूपोंवाली हैं ।।४०।। इस प्रकार शिवा सती होकर शंकरजी के साथ व्याही गई । पिता के यज्ञ में शरीर छोड़कर नारदजी से उस अपने पद को प्राप्त हुईं ।।४१।। फिर देवताओं की प्रार्थना से वह शिवा पार्वती हुईं । बड़ी तपस्या करके फिर शिवजी के समीप प्राप्त हुईं ।।४२।। हे मुनीश्वर ! शिवा के अनेक नाम हुए । कालिका, चण्डिका, भद्रा, चामुण्डा, विजया, जया ।।४३।। जयन्ती, भद्रकाली, दुर्गा, भगवती, कामख्या, कामदा, अम्बा, मृडानी, सर्वमङ्गला ।।४४।। यह नाम अनेक भुक्ति-मुक्ति देनेवाले हैं, गुणकर्म के अनुसार प्रायशः पार्वती ।।४५।। गुणमयी तीनों देवी और गुणमय तीनों देवता मिलकर सृष्टि के उत्तम कार्य करते हैं ।।४६।। हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार से आपसे यह सृष्टि का प्रकार वर्णन किया, शिवजी की आज्ञा से मैंने सब ब्रह्माण्ड की रचना की है ।।४७।। परब्रह्म शिवजी हैं, उनके तीन रूप हैं । मैं, विष्णुजी और रुद्र यह तीनों गुणभेद से हैं ।।४८।। निर्गुण, स्वगुण, स्वतन्त्र परमात्मा शिवजी शिवा के सहित मनोहर शिवलोक में रमण करते हैं ।।४९।। उनके पूर्णावतार रुद्र साक्षात् शिवजी हैं, उन पंचमुखी देव ने कैलास में अपना मनोहर भवन बनाया है । ब्रह्माण्ड के नाश होनेपर भी जिसका नाश नहीं होता ।।५०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

प्रथमसृष्टिखण्डे सृष्टिवर्णनोनाम षोडशोऽध्यायः ।।१६।।

*****

सत्रहवाँ अध्याय

सूतजी बोले– हे मुनियो! ब्रह्माजी के यह वचन सुनकर फिर नमस्कार कर नारदजी पूछने लगे।।१।। नारदजी बोले– भक्तवत्सल शंकरजी किस समय कैलास पर गये और महात्मा कुबेर के साथ उनकी मित्रता कहां हुई?।।२।। तथा परिपूर्ण शिवाकृति हरि ने वहां क्या किया? यह सब कुछ मुझसे कहिये, इस बात का मुझे परमकौतूहल है।।३।। ब्रह्माजी बोले– हे नारदजी! सुनिये, जिस प्रकार कुबेर से मित्रता हुई, वह शंकरजी का चरित्र मैं कहता हूँ।।४।। काम्पिल्य नगर में एक सोमयाजी के कुल में उत्पन्न यज्ञविद्या में विशारद यज्ञदत्त नामक दीक्षित था।।५।। वह ब्राह्मण वेद–वेदाङ्ग का जाननेवाला वेदान्तादि में चतुर, राजमान्य, बोलने में चतुर कीर्तिभाजन था।।६।। अग्नि की शुश्रूषा में रत, वेद पढ़ने में तत्पर, सुन्दर रमणीय अंग चन्द्रबिम्ब के समान आकृतिवाला था।।७।। उस यज्ञदत्त दीक्षित का गुणनिधि नामक पुत्र था। आठ ही वर्ष में यज्ञोपवीत होकर जिसे पढ़ने भेजा था, पर पिता के अनजाने में वह द्यूत खेलने लगा।।८।। माता के पास से बहुतसा धन ला–लाकर अभिमान से जुवारियों के साथ हो मित्रता करने लगा।।९।। क्रम से ब्राह्मणों के आचार उसने छोड़ दिये, सन्ध्या स्नान से पराङ्मुख होकर वेदशास्त्र और देवब्राह्मणों की निन्दा करने लगा।।१०।। स्मृति आचार से विहीन होकर गीत बाजे के खेल में बन गया। नट, पाखण्डी और भाण्डों के साथ प्रेम करने लगा।।११।। माता के कहने से भी वह पिता के समीप न जाता था। वह पिता अपने कार्य तथा दीक्षा में ही लगा रहता।।१२।। जब कभी वह अपनी स्त्री से पूछता कि; हे कल्याणि! इस समय हमारा पुत्र गुणनिधि घर में नहीं है, कहो तो क्या करता है?।।१३।। तब वह कहती कि, अभी तो बाहर गया है, वह पाप रहित अभी स्नान करके देवपूजन करता है।।१४।। कभी कहती पढ़ने के निमित्त वह दो तीन मित्रों के साथ गया है। एक ही पुत्र होने के कारण माता दीक्षित की प्रतारणा कर देती थी।।१५।। इससे दीक्षित ने उस पुत्र के कर्म और वृत्त को कुछ भी न जाना, फिर उसने सोलहवें वर्ष में उसका केशान्त कर्म किया।।१६।। पीछे यज्ञदत्त दीक्षित ने उस पुत्र का गृह्योक्त विधान से विवाह कराया।।१७।। हे नारदजी! प्रतिदिन उसकी माता उस गुणनिधि को एकान्त में बैठाकर बहुत समझाती और प्यार से कहती।।१८।। हे पुत्र! तुम्हारे महात्मा पिता बड़े क्रोधी हैं, यदि वह तुम्हारा और मेरा चरित्र जान लेंगे, तो तुझे और मुझे मारेंगे।।१९।। मैं तेरे पिता के आगे नित्य तेरी कुचेष्टाओं को छिपाये रहती हूँ। तुम्हारे पिता की प्रतिष्ठा सदाचार से ही है, धन से नहीं है।।२०।। हे तात! ब्राह्मणों का धन सद्विद्या और साधुओं का समागम है, तू प्रसन्नता से

इसमें अपना मन क्यों नहीं लगाता ? ।।२१।। सोमयाजी अच्छे श्रोत्रिय यथायोग्य कर्म करनेवाले दीक्षित हैं, ऐसी विख्याती तुम्हारे दादा की चली आती है ।।२२।। तुम दुर्वृत्त का संसर्ग छोड़कर साधुओं के संग में प्रीति करो, अच्छी विद्या में मन लगाओ, ब्राह्मणों जैसे आचार करो ।।२३।। पिता के समान यश कुलशील से चलो, उनके जैसे कार्य न करके तू लज्जित क्यों नहीं होता ? यह अपनी बुरी चाल छोड़ ।।२४।। उन्नीस वर्ष का तू है और सोलह वर्ष की यह तेरी बहू है। इस सद्‌वृत्तवाली से युक्त होकर पिता की भक्ति में युक्त हो ।।२५।। तुम्हारे श्वशुर भी गुण और शील से मान्य हैं, तो भी तू लज्जित नहीं होता, अरे इस दुर्वृत्तता का त्याग कर ।।२६।। हे पुत्र ! तेरे मामा भी विद्या, कुल, शील में श्रेष्ठ हैं। दोनों वंशों में शुद्ध होकर भी तू उनसे नहीं डरता ।।२७।। इन अपने स्थान में स्थित ब्राह्मणकुमारों को देख और इन विनय परायण घर के शिष्यों को तो देख ।।२८।। हे पुत्र ! जब राजा इस तेरी कुचेष्टा को सुनेगा, तो तेरे पिता से श्रद्धा हटाकर उनकी आजीविका नष्ट कर देगा ।।२९।। अभी तो लोग तेरी बालचेष्टा कह देते हैं, अनन्तर वे दीक्षितपना हरण कर लेंगे ।।३०।। पीछे सब ही तेरे पिता को और मुझे दुर्नाम करेंगे, कि यह बालक माता के चरित्र पर गया है ।।३१।। कारण कि तेरा पिता तो पापी नहीं है, श्रुतिस्मृति का अनुगामी है। मैं भी उनके चरणों में मन लगानेवाली हूँ, इस बात के साक्षी महेश्वरजी हैं ।।३२।। ऋतुस्नान के समय मैंने तो किसी दुष्ट का मुख भी नहीं देखा। अहो विधाता की गति बड़ी बलवान है, जिससे तुझ सरीखा पुत्र उत्पन्न हुआ ।।३३।। इस प्रकार प्रतिक्षण माता उसे शिक्षा देती, पर उसने उस कर्म को न छोड़ा, कारण कि वह निर्बोध उसके व्यसन में रत हो गया था ।।३४।। मृगया, मद्य, चुगली, असत्यभाषण, चोरी, पाशक्रीडा, वारांगणा इनमें पड़कर कौन खण्डित नहीं हुआ है ?।।३५।। वह दुर्मति घर में जो-जो देखे वह-वह ले जाकर वस्त्र, पेटी आदि सब जुआरियों को दे आता ।।३६।। एक समय उसने अपने पिता के हाथ की रत्नमयी अँगूठी जो घर में थी, वह लेकर जुआरी को दे दी ।।३७।। संयोग वश दीक्षित ने उसे जुआरी के हाथ में देखा और उससे पूछा कि, यह अँगूठी तुमने कहां से पाई ? ।।३८।। जब उससे बारंबार पूछा तब उसने कहा, हे ब्राह्मण ! मुझ पर आक्षेप क्यों करते हो? क्या मैंने चोरी से यह अँगूठी ली है ? रुपया देकर आपके पुत्र से मोल ली है। अपनी माता की साड़ी पूर्वदिन जीत करके गया था ।।३९-४०।। केवल उसने मुझे ही यह अँगूठी नहीं दी है, दूसरे जुआरियों भी को उसने बड़ा धन समर्पित किया है ।।४१।। रत्नों की पेटी, दुकूल वस्त्र, झारी आदि कांसी ताम्बे के विचित्र पात्र दिये हैं ।।४२।। जुआरी उसे प्रतिदिन नंगा करके बांध लेते हैं, तब वह धन देता है। उसके समान तो अब पृथ्वी पर कोई द्यूतकारी नहीं है ।।४३।। हे दीक्षितजी ! अब तक आपने द्यूतकारियों में शिरोमणि, अविनय अनीति में पण्डित ऐसे अपने पुत्र को क्यों न जाना ?।।४४।।

यह सुनकर लज्जा से दीक्षित का शिर नीचा हो गया और वस्त्र से मुख ढ़ककर अपने घर आया ।।४५।। उसकी स्त्री महापतिव्रता थी, उससे श्रौतकर्म में परायण यज्ञदत्त दीक्षित कहने लगा ।।४६।। यज्ञदत्त बोले– हे दीक्षितायनि! हे धूर्ते! वह गुणनिधि पुत्र कहां है? अच्छा इससे क्या है? कहीं भी हो, वह मेरी अँगूठी कहां है?।।४७।। जो उबटना करते समय तुमने मेरे हाथ से ले ली थी, वह मेरी रत्नमयी अँगूठी लाकर शीघ्र मुझे दो ।।४८।। यह वचन सुनते ही दीक्षितायिनी डर गई और बोली– इस समय मैं मध्याह्न स्नान की क्रिया में व्यग्र हूँ। हे देव! इस समय पूजा के निमित्त सामग्री एकत्र करती हूँ। हे प्रियातिथि! अतिथियों के आगमन का यह समय बीता जाता है ।।४९–५०।। मैं इस समय पक्वान्न बनाने में व्यग्र हो रही हूँ, मैं उसे किसी बर्तन में रखकर भूल गई हूँ, अभी तक मुझे याद नहीं आई है ।।५१।। दीक्षित ने कहा ठीक, अरे असत्पुत्र को उत्पन्न करनेवाली, असत्य बोलनेवाली! जब–जब तुझसे पूछा कि, पुत्र कहां गया है?।।५२।। तब–तब तूने कहा कि, अभी दो–तीन मित्रों के साथ पढ़ने को बाहर गया है ।।५३।। हे पत्नि! वह मजीठ रंग की साड़ी जो मैंने तुझे दी थी, सो कहां है? जो रोज यहां टँगी रहती थी, तू भय को छोड़कर सत्य कह ।।५४।। इस समय वह मणिजटित कारी भी दिखाई नहीं देती और रेशम की जो त्रिपटी (वस्त्र विशेष) मैंने तुझे दी थी ।।५५।। हे दीक्षितायिनी! वह दक्षिणदेश का कांस्यपात्र, गौडी ताम्रघटी कहां है? और हाथीदांत की बनी हुई वह सुखकौतुक मंचिका (झूलेदार पलगीरी) कहां है?।।५६।। और वह पर्वतदेश की बनी हुई चन्द्रकान्तमणि के समान शोभायमान दीपक हाथ में लिये श्रृंगारवाली पुतलियां कहां हैं?।।५७।। हे कुलोत्पन्ने! बहुत कहने से क्या है? और तेरे ऊपर क्रोध करना वृथा है, मैं अब तब ही भोजन करूंगा, जब मैं दूसरा विवाह कर लूंगा ।।५८।। उस कुल को कलंक लगानेवाले दुष्ट पुत्र से तो मैं सन्तान रहित ही अच्छा। जल्दी उठ, पात्र ला, ताकि मैं उसे तिलाञ्जलि दूं ।।५९।। कलंकी कुपुत्र होने से मनुष्य का सन्तानहीन रहना ही अच्छा है। कुल के लिये एक को त्याग देना ही श्रेष्ठ है, यह सनातनी रीति है ।।६०।। यह कहकर दीक्षित ने स्नान करके नित्य विधि करके उसी दिन किसी श्रोत्रिय कन्या से अपना पाणिग्रहण कर लिया ।।६१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

प्रथम सृष्टिखण्डे गुणनिधिचरित्रवर्णनो नाम सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।

*****

अठारहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– यह वृत्तान्त सुनकर अपने भाग्य की निन्दा करता हुआ वह दीक्षित का पुत्र किसी ओर को चल दिया ।।१।। वह यज्ञदत्त का पुत्र कुछ दूर जाकर उत्साह रहित होकर एक स्थान पर स्थित हुआ ।।२।। और बड़ी चिन्ता को प्राप्त होकर बोला– कहां जाऊं, क्या करूं ? न मैंने विद्या पढ़ी है और न मैं धनी हूँ ।।३।। जिसके पास धन है वही देशान्तर में सुख पाता है। धन होने से चोर का भय होता है, वह विघ्न भी सब ओर से प्राप्त है ।।४।। याचक के कुल में जन्म लेकर मुझे यह व्यसन क्यों लगा ? अहो प्रारब्ध बलवान है, होनहार कर्म का यह फल है ।।५।। मैं तो भिक्षा मांगना भी नहीं जानता, न मेरा कोई पहचानवाला है, न मेरे पास कुछ धन है, फिर अब किसके पास जाऊं ?।।६।। सूर्य उदय होते ही सदा मेरी माता मुझे मिष्ठान्न दे देती थी। अब किससे याचना करूं, वह माता तो यहां नहीं है ।।७।। ब्रह्माजी बोले– हे नारदजी! जब इस प्रकार वह बहुत चिन्तातुर हुआ और अति दीन हो गया, तब वृक्ष के नीचे ही सूर्य भगवान् अस्ताचल को प्राप्त हो गये ।।८।। इसी समय कोई शंकरजी का पूजन करनेवाला पूजन की सामग्री लिये नगर से बाहर आया ।।९।। वह अनेक प्रकार के दिव्य वस्त्र धारण किये स्वजनों के संग शिवरात्रि के व्रत में शिवजी के पूजन के लिये आया ।।१०।। शिवालय में प्रवेश करके शिवजी के उस बुद्धिमान् भक्त ने प्रेमभक्ति से शिवजी की पूजा की ।।११।। पक्वान्न की गन्ध सूंघकर यज्ञदत्त के पुत्र ने पिता–माता के त्याग से व्याकुल होकर भूँख के कारण उसका पीछा किया ।।१२।। कि जो कुछ इसने शिवजी पर अन्न चढ़ाया है, वह सब मैं ले लूंगा। यह शिवजी के भक्त जब सो जायेंगे, तब ही सब ले लूंगा ।।१३।। ऐसी आशा में वह शिवजी के मन्दिर के द्वार पर बैठकर उस भक्त ने की हुई महापूजा को देखने लगा ।।१४।। जब नृत्य–गीतादि करके क्षणमात्र को भक्तजन सो गये, तब उसने नैवेद्य लेने को मन्दिर में प्रवेश किया ।।१५।। दीपक को मन्द देखकर पक्वान्न देखने के लिये उसने अपने वस्त्र से बत्ती बनाकर दीपक को प्रकाशित किया ।।१६।। तब यज्ञदत्त के पुत्र ने आदर से शिवजी के नैवेद्य को पक्वान्न के सहित प्रेम से ग्रहण किया ।।१७।। जब ही पक्वान्न लेकर वह शीघ्रता से बाहर चला जा रहा था, उसके चरणप्रहार के आघात से कोई पुरुष जाग उठा ।।१८।। यह कौन है ? कौन है ? पकड़ो, पकड़ो! ऐसा वह भय की वाणी से चिल्लाने लगा ।।१९।। जब तक वह भय से भागा तब तक पुर के रक्षकों ने उसे मारा और वह क्षण में अन्धा हो गया ।।२०।। हे मुने! उस यज्ञदत्त के पुत्र ने नैवेद्य भक्षण नहीं किया था, यह भावीपुण्य

का बल था और केवल शिवजी का अनुग्रह था ।।२१।। इतने ही में पाश, मुद्गर हाथ में लिये संयमनीपुरी के यमदूत विकटभट उसे लेने आये ।।२२।। इतने ही में किंकणीजाल से मण्डित दिव्य विमान लिये शिवजी के शूलधारी पार्षद भी आकर प्राप्त हुए ।।२३।। शिवगण बोले- हे यमराज के गणो! इस परम धर्मात्मा को छोड़ दो, यह ब्राह्मण दण्ड के योग्य नहीं है, इसके सब पाप नष्ट हो गये हैं ।।२४।। यह उनके वचन सुनकर यमराज के गण बहुत चकित होकर महादेवजी के गणों से बोले ।।२५।। शिवजी के गणों को देखकर भयभीत हुए यम के गणों ने यह कहा कि, हे गणो! यह ब्राह्मण तो बड़ा दुर्वृत्त है ।।२६।। यमगण बोले- इसने कुलाचार को त्याग कर दिया, माता-पिता के वचन न माने। सत्य, शौच और स्नान सन्ध्या से भी यह भ्रष्ट है ।।२७।। भला और कर्म तो अलग रहे, इसने तो शिवनिर्माल्य को उल्लंघन किया है, यह आप प्रत्यक्ष से देखिये। बल्कि यह आप सरीखों को स्पर्श के भी योग्य नहीं है ।।२८।। शिवनिर्माल्य खानेवाले, शिवनिर्माल्य के उल्लंघन करनेवाले, शिवनिर्माल्य के देनेवाले इनका स्पर्श अपुण्य का करनेवाला है ।।२९।। विष को देखकर पीना चाहिये व उसे स्पर्श करना चाहिये, कण्ठ में प्राण आ जानेपर भी शिवजी का धन स्वयं सेवन न करे ।।३०।। धर्म में जैसे आप प्रमाण हैं, वैसे हम नहीं है, यदि इसमें कुछ धर्म का लेश हो तो, हे गणो! हम भी सुनना चाहते हैं ।।३१।। शिवजी के गण इस प्रकार यमदूतों के वचन श्रवण कर शिवजी के चरणकमलों को स्मरण कर उनसे वोले ।।३२।। शिवजी के गण बोले- हे यमकिंकरो! जो सूक्ष्म शिवधर्म हैं, जिनको सूक्ष्म दृष्टिवाले जान सकते हैं, उनको स्थूल लक्ष्यवाले आप कैसे जान सकते हो ?।।३३।। हे गणो! इस पाप रहित यज्ञदत्त के पुत्र ने जो कर्म किया है, उसे सावधान होकर सुनिये ।।३४।। लिंग के शिर पर गिरती हुई दीपक की छाया को इसने निवारण किया और रात्रि में इसने अपना वस्त्र फाड़कर उसमें बत्ती डाली ।।३५।। हे किंकरो! और भी इसने धर्म किया है, जो प्रसंग से दूसरे लोगों के लिए शिवनामों को भी इसने सुना है ।।३६।। औरों से विधिपूर्वक की हुई पूजा इसने देखी और स्थिरचित्त से निराहार बैठा रहा ।।३७।। इसी कारण यह हमारे साथ अब शिवलोक को जायेगा और शिवजी का अनुगामी होकर कुछ समय तक महाभोगों को भोगेगा ।।३८।। फिर पाप रहित होकर यह कलिंगदेश का राजा होगा, यह ब्राह्मणश्रेष्ठ अवश्य ही शिवजी को प्रिय है ।।३९।। और कुछ मत कहिये, आप जहां से आये हो वहीं पर चले जाइये, तब यम के दूत प्रसन्नचित्त से अपने लोक को चले गये ।।४०।। ब्रह्माजी बोले- हे नारदजी! जब यह वचन सुनकर वह यमराज के दूत पराङ्मुख होकर अपने लोक को चले गये ।।४१।। हे मुने! और यमराज को यह सब चरित्र निवेदन किया तथा शिवजी के दूतों का भी आदि से सब वृत्तान्त कहा ।।४२।। तब धर्मराज बोले- हे गणो! सावधान होकर मेरे वचन सुनो और प्रसन्न होकर प्रीति से सब मेरा

शासन मानो।।४३।। हे गणो! संसार में जितने त्रिपुण्ड्रधारी हैं, जितने सफेद विभूति लगाये हुए हैं, उन सबको तुम छोड़ देना, हमारे पास कभी मत लाना।।४४।। हे गणो! जो श्वेतविभूति अपने अंग में लगाये हुए हैं, उन सबको छोड़ देना, हमारे पास न लाना।।४५।। जो किसी प्रकार भी लोक में शिववेषधारी हैं, वह सब ही त्यागने, हमारे पास उनको कभी न लाना।।४६।। जो लोक में जटाधारी हैं, जो लोक में रुद्राक्षधारी हैं, उन सबको छोड़ना, उनको मेरे पास न लाना।।४७।। जो जीविका के निमित्त शिववेष को धारण करनेवाले हैं, उनको भी छोड़ देना, मेरे पास न लाना।।४८।। जो दम्भ और छल से शिववेष धारण करनेवाले हैं, वह सब छोड़ देना, मेरे पास न लाना।।४९।। इस प्रकार यमराज ने अपने किंकरों को आज्ञा दी, 'बहुत अच्छा' ऐसा कहकर वे हँसते हुए चुप हो गये।।५०।। ब्रह्मांजी बोले– यमराज के दूतों से छुड़ाया जाकर वह ब्राह्मण पवित्र मन होकर शिवजी के दूतों द्वारा कैलास को गया।।५१।। वहां अनेक भोग भोगकर और शिवाशिव का सेवन करके कलिंग के राजा अरिंदम का पुत्र हुआ।।५२।। उसका नाम दम और यह शिवजी की सेवा में परायण हुआ। बालक अवस्था में ही बालकों के साथ शिवजी की भक्ति करने लगा।।५३।। क्रम से पिता के उपराम होने पर युवावस्था में राज्य पाकर उसने प्रीति से बहुत से शिवधर्मों को प्रवृत्त किया।।५४।। वह दमन के अयोग्य राजा दम दूसरे धर्म को नहीं जानता था, सब शिवालयों में दीपदान के सिवाय और नहीं जानता था।।५५।। अपने राज्य के सब ग्रामाधीशों को बुलाकर यही आज्ञा दी कि, प्रति शिवालय में दीपदान करो।।५६।। ऐसा न करनेवाले को मैं दण्ड दूँगा। वेद में कहा है, दीपदान से शिवजी सन्तुष्ट होते हैं।।५७।। जिस–जिस ग्राम में जितने–जितने शिवालय हैं, वहां–वहां बिना विचारे सदा दीपदान करने चाहिये।।५८।। जो मेरी आज्ञा का भंग करेगा उसका शिरच्छेद करूंगा, तब इस भय से सब शिवालयों में दीपावलि होने लगी।।५९।। इस धर्म में राजा दम अपनी सारी अवस्था बिताकर बड़े धर्म को प्राप्त होकर कालधर्म के वशीभूत हुआ।।६०।। वह दीपों की वासना के योग से बहुत से दीपों को प्रज्ज्वलित करके रत्नों के दीपों के शिखा में आश्रय करनेवाला अलका का पति हुआ।।६१।। इस प्रकार थोड़ी शिवजी की सेवा भी समय पर बहुत फलती है, ऐसा जानकर सुखार्थियों को शिवजी का भजन करना चाहिये।।६२।। कहां तो वह सर्व धर्मों से रहित दीक्षित का पुत्र, जो दैवयोग से शिवालय में धन चुराने चला, अपने स्वार्थ के निमित्त बत्ती बालकर लिंग के मस्तक का अन्धकार दूर किया।।६३।। और इतने ही से कलिंगदेश का राज्य पाया। पहिली वासना के उदय से शिवालय में बहुत से दीपक बालकर।।६४।। हे मुनीश्वर! यह तो देखिये कि, दिक्पाल पदवी को पाकर मनुष्य धर्मवाले ने इस समय अलकापुरी का भोग भोगा।।६५।। यह मैंने यज्ञदत्त के पुत्र गुणनिधि का चरित्र आपसे कहा है। यह शिवजी का चरित्र सन्तोष करके सुननेवालों को सब

कामना देता है।।६६।। जैसे यह सर्व देवताओं के शिरमौर शिवजी के सखापने को प्राप्त होकर वह आप एकान्त मन से सुनिये। हे तात! मैं आपसे कहता हूँ।।६७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

प्रथम सृष्टिखण्डे गुणनिधिसद्गतिवर्णनो नामाष्टादशोऽध्यायः ।।१८।।

*****

उन्नीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले- पहले पद्मकल्प में मेरे मानसपुत्र पुलस्त्यजी से विश्रवा का जन्म हुआ, उनका पुत्र वैश्रवण हुआ।।१।। उन्होंने विश्वकर्माजी की निर्माण की हुई इस अलकापुरी को भोगा और महातपस्या से शंकरजी को सन्तुष्ट किया।।२।। जब वह कल्प बीतकर मेघवाहन कल्प आरम्भ हुआ और यज्ञदत्त के पुत्र श्रीमान ने बड़ा तप किया।।३।। दीपदान मात्र से शिवजी की उस भक्ति के प्रभाव को जानकर चित्त को प्रकाश करनेवाली शिवजी के काशी में प्राप्त होकर।।४।। ग्यारह रुद्रों के समीप चित्तरत्न के दीपक बालकर अनन्य भक्ति से तन्मय होकर ज्ञान में निश्चल हो।।५।। शिवजी का ही एक महापात्र तप की अग्नि से वृद्धि को प्राप्त कामक्रोधरूपी महाविघ्नों के पतंग आघात से वर्जित।।६।। प्राणायाम करने से वात रहित निर्मल दृष्टि से निर्मल शिवजी के लिंग की स्थापना करके सद्भाव के फूलों से पूजा करके।।७।। तब तक तपस्या करता रहा जब तक कि अस्थिमात्र ही शेष रह गयी और इस अवसर में दश सहस्र सौ वर्ष व्यतीत हो गये।।८।। तब विश्वेश्वरदेव विशालाक्षि उमा के सहित प्रसन्न मन से अलकापति को देखकर।।९।। कि, जो अलकापति स्थाणुरूप से स्थित शिवलिंग में मन लगा रहे थे, ऐसा देखकर बोले- हे अलकापते! जो इच्छा हो सो वर मांगो।।१०।। जब तक वह तपोधन नेत्र खोलकर देखते हैं कि, तब तक सहस्र सूर्य से भी अधिक तेजसम्पन्न।।११।। चन्द्रचूड उमापति शंकरजी को आगे देखा, उस तेज से तिरस्कृत होकर उनके नेत्र मिच गये।।१२।। और मनोरथ देनेवाले देवदेव से कहा, हे नाथ! आपके चरणकमलों के दर्शन की सामर्थ्य मेरे नेत्रों को दीजिये।।१३।। हे नाथ! यही वर है कि, आपका साक्षात् दर्शन हो और हे शशिशेखर! दूसरे वर से क्या है? आपको नमस्कार है।।१४।। देवदेव उमापति ने इस प्रकार उसके वचन सुनकर पाणितल से स्पर्श करके उसे दर्शन की सामर्थ्य दी।।१५।। उन्होंने नेत्र फैलाकर पहले उमा का ही दर्शन किया, तब यह यज्ञदत्त का पुत्र उस सामर्थ्य को प्राप्त करके।।१६।। विचारने लगे, शिवजी के समीप में यह सर्वांग सुन्दरी कौन है? इसने क्या तप किया है? क्या

इसका तप मुझसे विशेष है ?।।१७।। अहो इनका रूप, प्रेम, सौभाग्य, लक्ष्मी आश्चर्यरूप है। इस प्रकार यज्ञदत्त के पुत्र ने बारंबार यह बात कही ।।१८।। और बारंबार यही कहते हुए क्रूरदृष्टि से उमा को देखने लगे, तब कुटिलता से देखने के कारण उनका बायाँ नेत्र फूट गया ।।१९।। तब देवी ने शंकरजी से कहा, यह दुष्ट तपस्वी कौन है ? बारंबार मुझे देखकर कहता है, आप मेरे तप के प्रभाव को कहिये ।।२०।। बारंबार दक्षिणनेत्र से फिर मुझे देखता है। प्रेम, सौभाग्य, सम्पत्ति से मेरे रूप की असूया करता है ।।२१।। देवी के यह वचन सुनकर हँसकर शिवजी उनसे बोले– हे उमा! यह तुम्हारा पुत्र है। क्रूरदृष्टि से तुमको नहीं देखता, किन्तु यह सोचता है कि, तुम्हारी तपोलक्ष्मी कितनी अधिक है, ऐसे देवी से कहकर फिर शंकरजी ने यज्ञदत्त के पुत्र से कहा ।।२२-२३।। हे वत्स! तुम्हारे इस तप से प्रसन्न होकर मैं तुमको वर देता हूँ, तुम निधियों के अधिपति और गुह्यों के ईश्वर होगे ।।२४।। यक्ष और किन्नरों के राजाओं के राजा होगे, पुण्यजनों के पति और सबको धन देनेवाले होगे ।।२५।। मैं तुमसे नित्य मित्रता करके सदा तुम्हारे समीप निवास करूंगा। हे मित्र! तुम्हारी प्रीति के बढ़ाने के निमित्त अलका के समीप रहूंगा ।।२६।। हे यज्ञदत्त के पुत्र! आ, यह उमा तेरी माता है। हे महाभक्त! तू इसके चरणों में प्रणाम कर और प्रसन्नचित्त से दण्डवत कर।।२७।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार शिवजी उसे वर देकर फिर उमा से बोले– हे देवेशि! इस अपने अंगज पुत्र पर प्रसन्न हो ।।२८।। शिवजी के यह वचन सुनकर जगदम्बा पार्वती प्रसन्नचित्त से यज्ञदत्त के पुत्र से बोली ।।२९।। देवी बोली– हे वत्स! सदा शंकरजी में तुम्हारी निर्मल भक्ति हो, तुम एक नेत्र से रहित होगे, तुम्हारा वामनेत्र न होगा ।।३०।। और जो वर देवदेव ने तुमको दिये हैं, ठीक उसी प्रकार रहेंगे, हे पुत्र! मेरा रूप देखकर जो तुमने ईर्ष्या की है, इससे तुम्हारा नाम कुबेर होगा।।३१।। इस प्रकार देवी सहित महेश्वरजी ने वर देकर वैश्वेश्वर नामक स्थान में कुबेर को प्रवेशित करा दिया ।।३२।। इस कुबेर ने शंकरजी का सखात्व पूर्वकाल में इस प्रकार पाया था,अलका के निकट ही शंकरजी का स्थान कैलास हुआ।।३३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
प्रथम सृष्टिखण्डे कुबेरस्य शिवमित्रत्ववर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ।।१९।।

*****

बीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले- हे नारदजी! अब आप पर्वतश्रेष्ठ कैलास पर कुबेर के तपोबल से शिवजी का आगमन सुनिये ।।१।। कुबेर को वर देकर और अपने श्रेष्ठस्थान में जाकर वह कुबेर को वर देनेवाले विश्वेश हृदय में विचार करने लगे ।।२।। विधाता के अंग से प्रकट हुआ मेरा स्वरूप पूर्ण प्रलयकार्य करता है, उस स्वरूप से गुह्यक के स्थान कैलास को जाऊंगा ।।३।। पूर्णांश निष्कल रुद्र मेरे हृदय से प्रकट हैं, वह निरंजन मुझसे अभिन्न हरि और ब्रह्मादि से सेवनीय हैं ।।४।। इस कारण वहां मैं सुहृदयता के कारण उसी स्वरूप से कुबेर के समीप निवास करता हुआ महा तप करूंगा ।।५।। यह विचार कर रुद्र शिवेच्छा से वहां जाने की इच्छा करके अपनी सुगतिदायक नादरूपिणी ढक्का बजाने लगे ।।६।। उसकी उत्साहकारक ध्वनि से त्रैलाक्य व्याकुल हो गया, जो आह्वान गति से संयुक्त विचित्र मनोहर शब्दयुक्त था ।।७।। वह शब्द सुनकर विष्णु, ब्रह्मादि देवता और मुनि, आगम-निगम मूर्त्ति, सिद्ध सब गमन करने लगे ।।८।। सुर-असुर बड़े उत्सव के सहित वहां गमन करने लगे, जहां कहीं भी स्थित थे सब प्रमथगण चले ।।९।। महाभाग्यवान, सब लोकों से नमस्कृत गण भी उस स्थान में गये। उनकी संख्या कहता हूँ, सावधान होकर सुनिये ।।१०।। शंखकर्ण नामक गणेश्वरों की एक कोटि, दश कोटि केकराक्ष, आठ कोटि विकृत ।।११।। चौसठ कोटि विशाख, नौ कोटि पारियात्रक, छः कोटि सर्वान्तक, आठ कोटि श्रीमान दुन्दुभिः ।।१२।। बारह कोटि जालंक नामक श्रेष्ठगण, सात कोटि श्रीमान् समद, इतने ही विकृतानन ।।१३।। पाँच कोटि कपाली, छः कोटि शुभसन्दारक, कण्डुक कुण्डक एक-एक कोटि ।।१४।। विष्टभ आठ कोटि, चन्द्रतापन आठ कोटि ।।१५।। महाकेश सहस्रकोटि गणपतियों से युक्त आया ।।१६।। कुण्डीवाह और श्रेष्ठ पर्वतक बारह कोटि, काल कालक महाकाल सौ कोटि ।।१७।। अग्निक सौ कोटि, अभिमुख एक कोटि, आदित्यमूर्धा और धनावह एक-एक कोटि ।।१८।। सन्नाह सौ कोटि, कुमुद भी इतने ही कोटि, अमोघ कोकिल सुमन्त्रक एक-एक कोटि ।।१९।। काकपाद और सन्तानक प्रभु साठ-साठ कोटि, महाबल नौ कोटि, इतने ही मधुपिंग और पिंगल ।।२०।। पूर्णभद्र और नील नब्बे कोटि सहित देवेश के समीप आये, महाबली चतुर्वक्त्र सात कोटि लेकर आया ।।२१।। कोटि-कोटि सहस्र और एक सौ बीस कोटि से युक्त सर्वेश कैलास जाने के लिये आया ।।२२।। सुकेश, वृषभ और काष्ठगूढ चौंसठ कोटि सहित, चैत्र सात कोटि सहित, इतने ही स्वयं प्रभु नकुलीश ।।२३।। लोकान्तक दीप्तात्मा, दैत्यान्तक प्रभुदेव, भृंगी,

रिटि, श्रीमान् देवदेवप्रिय ।।२४।। अशनि, भानुक, सनातन यह चौंसठ–चौंसठ कोटियों सहित आये, महाबली गणाधीश नन्दीश्वर सौ कोटि गणपतियों के साथ आया ।।२५।। यह तथा और भी महाबली असंख्यात गण सब ही सहस्र–सहस्र हाथवाले, जटामुकुटधारी ।।२६।। सब ही माथे पर चन्द्रमाधारी नीलकण्ठ, त्रिलोचन, हार कुण्डल बाजूबन्द मुकुट आदि से अलंकृत ।।२७।। ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु के समान अणिमादि गणों से आवृत, कोटि सूर्य के समान कान्तिमान गणेश्वर वहां आये ।।२८।। यह तथा और भी निर्मल कान्तिवाले महात्मा शिवदर्शन की लालसा से बड़े प्रेम से वहां गये ।।२९।। वहां जाकर और शिवजी को देखकर बड़ी स्तुति करने लगे और विष्णुजी आदि हाथ जोडकर, मस्तक झुकाकर खडे हो गये ।।३०।। इस प्रकार विष्णुजी आदि के संग परमेश्वर महेश प्रेमपूर्वक महात्मा कुबेर के कैलास को गये ।।३१।। कुबेर ने भी शिवजी को आया देखकर आदर से उनकी पूजा की, भक्तिपूर्वक परिवार के सहित नाना प्रकार से पूजा की ।।३२।। और फिर शंकरजी के सन्तोष के निमित्त विष्णुजी आदि देवता तथा अन्य शिवजी के अनुगामी गणों की पूजा की ।।३३।। फिर प्रसन्न मन से शिवजी ने कुबेर को आलिंगन किया और उसका शिर सूंघकर सर्व गणों के सहित वहां निवास किया ।।३४।। फिर शिवजी ने उस पर्वत पर अपने और दूसरे देवताओं के भक्तों के निवास योग्य अनेक स्थान बनाने की आज्ञा दी ।।३५।। हे मुने! शिवजी की आज्ञा से विश्वकर्माजी ने वहां जाकर बहुत शीघ्र ही सुन्दर स्थान बनाये ।।३६।। तब हरि की प्रार्थना से शिवजी प्रसन्न हुए ।।३७।। कुबेर पर अनुग्रह करके कैलास पर्वत को गये। परमेश्वर ने अपने स्थान में शुभमुहूर्त्त में प्रवेश किया ।।३८।। तब विष्णुजी को आदि लेकर सब देवता, मुनि और सिद्ध परम भक्ति से शिवजी का अभिषेक करने लगे ।।३९।। अनेक सामग्रियों से क्रम से सब पूजा करने लगे और महोत्सवपूर्वक नीराजन करने लगे ।।४०।। हे मुने! उस समय मङ्गलकारिणी फूलों की वर्षा होने लगी और गान में तत्पर अप्सरायें प्रसन्नता से नाचने लगीं ।।४१।। उस समय सब कोई 'जय' शब्द, 'नमः' शब्द कहने लगे। उस समय सबके सुख बढ़ानेवाला महाउत्साह हुआ ।।४२।। सिंहासन पर स्थित होकर शिवजी महा शोभित होकर विष्णुजी आदि समस्त देवताओं से अत्यन्त सेवित हुए ।।४३।। फिर सर्व देवता पृथक्–पृथक् स्तुति करने लगे, बड़े–बड़े अर्थवाली इष्ट वाणियों से लोक के आनन्द देनेवाले शंकरजी की स्तुति की ।।४४।। स्तुति सुनकर प्रसन्न होकर शिवजी ने उनको अनेक कामनाएं दीं, सर्वेश्वर प्रभु ने सबको मनवांछित वर दिये ।।४५।। हे मुने! शिवजी की आज्ञा से वे सब कोई अपने–अपने स्थानों को चले गये। मेरे और विष्णुजी के सहित कामना पाकर सब प्रसन्न हुए ।।४६।। आसन पर बैठाकर शिवजी ने मुझसे और विष्णुजी से प्रीति और अनुग्रह करके सम्बोधन देकर कहा ।।४७।। शिवजी बोले– हे विष्णु! हे ब्रह्मा!

आप दोनों देवताओं में श्रेष्ठ हो और मेरे प्रिय हो। तीनों जगत् की उत्पत्ति और पालन सदा करो।।४८।। आप मेरी आज्ञा से निर्भय होकर अपने स्थान को गमन करो, मैं आप दोनों का सुखदाता और विशेष निरीक्षक रहूंगा।।४९।। यह शिवजी के वचन सुनकर उनकी आज्ञा लेकर प्रेम से उनको प्रणाम करके मैं और हरि अपने स्थान को आये।।५०।। उसी समय प्रसन्न होकर शिवजी कुबेर के पास आकर उनका हाथ पकड़कर यह शुभ वचन बोले।।५१।। शिवजी बोले– हे मित्र! मैं तुम्हारी मित्रता और तुम्हारे प्रेम से तुम्हारे वशीभूत हूँ, भय रहित अब तुम अपने स्थान को जाओ। हे पाप रहित! मैं सदा तुम्हारा सहायक हूँ।।५२।। यह शिवजी के वचन सुनकर कुबेरजी प्रसन्न होकर शंकरजी की आज्ञा से अपने स्थान को गये।।५३।। और शिवजी पर्वतश्रेष्ठ कैलास में निवास करने लगे। गणों सहित योग में निरत होकर स्वच्छन्दता से ध्यान में तत्पर हुए।।५४।। कभी अपनी आत्मा का ध्यान करते, कभी योग में निरत होते, कभी स्वच्छन्द मन से प्रसन्न होकर गणों से कोई इतिहास कहते।।५५।। महेश्वरजी कभी कैलास पर्वत के श्रेष्ठ स्थानों में प्रीतिपूर्वक विहार करते।।५६।। इस प्रकार रुद्र के स्वरूप परमेश्वर शंकरजी अनेक योगिवरों के साथ अपने पर्वत में अनेक लीला करने लगे।।५७।। इस प्रकार पत्नी के बिना शंकरजी कितना एक समय व्यतीत करके पीछे दक्ष की पत्नी में उत्पन्न सती से विवाह करके।।५८।। उस दक्ष की पुत्री सती के साथ विहार करने लगे। हे नारदजी! लोकाचार में परायण होकर बहुत सुखी हुए।।५९।। हे मुनीश्वर! इस प्रकार आपसे यह रुद्र का अवतार वर्णन किया। जिस प्रकार शिवजी कैलास में आये और कुबेर से मित्रता की।।६०।। और इसके अन्तर्गत ज्ञान को बढ़ानेवाली लीला का वर्णन किया, जो इस लोक और परलोक में सदा सब काम और फल की देनेवाली है।।६१।। जो इस कथा को पढ़ते वा सावधान होकर सुनते हैं, वे यहां भोग प्राप्त करके परलोक में मुक्ति पाते हैं।।६२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
प्रथम सृष्टिखण्डे कैलासोपाख्याने शिवस्यकैलासगमनं नाम विंशोऽध्यायः।।२०।।

*****

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पञ्चखण्डात्मिक
द्वितीयरुद्रसंहितायां प्रथमः सृष्टिखण्डः समाप्तः।।

*****



श्री

द्वितीया रुद्रसंहितान्तर्गत

द्वितीय सतीखण्ड

*****

पहला अध्याय

नारदजी बोले– हे ब्रह्माजी! आप महादेवजी की कृपा से सब जानते हैं। आपने पार्वती और शिवजी की कथा मुझसे कही ।।१।। हे प्रभु! आपके कमल रूपी मुख से शिवजी की उत्तम कथा सुन कर अतृप्त मैं फिर उनकी कथा सुनना चाहता हूँ ।।२।। आपने जो शंकरजी का ही पूर्णांश कैलासवासी जितेन्द्रिय रुद्र को कहा ।।३।। विष्णुजी से आदि ले कर सब देवताओं से पूजनीय, साधुओं की गति निर्विकार महाप्रभु, वह योगी सर्वदा निर्द्वन्द्वता से क्रीड़ा करते हैं ।।४।। वही भगवान् की प्रार्थना से प्रसन्न हो कर अपने ही को ध्यान करती हुई मङ्गलरूपिणी श्रेष्ठ स्त्री से विवाह कर गृहस्थ हुए ।।५।। पहले दक्ष की पुत्री, फिर हिमालय की पुत्री, एक ही शरीर से दोनों की कन्या कैसी हुई ?।।६।। वह पतिव्रता पार्वती महादेवजी को कैसी मिली ? यह सब और भी आप कहिये ।।७।। सूतजी बोले– इस प्रकार शिवभक्त सुरर्षि नारदजी के वचन सुन कर प्रसन्न हो ब्रह्माजी बोले ।।८।। ब्रह्माजी ने कहा– हे पुत्र ! कल्याण देनेवाली कथा कहता हूँ, जिसे सुन कर निःसन्देह जन्म सफल होता है ।।९।। पहले पुत्रों के साथ सन्ध्या नाम्नी अपनी कन्या को देख कर मैं कामबाण से पीड़ित हो गया ।।१०।। वह महायोगी परमप्रभु रुद्र धर्म को स्मरण करते हुए पुत्रों के साथ मुझे धिक्कार दे कर कैलास पर चले गये ।।११।। जिनकी माया से मोहित हो कर मुझ वेदवक्ता मूर्ख ने परमप्रभु महादेवजी के साथ वैर किया ।।१२।। शिवजी की माया से मोहित मूर्ख पुत्रों के सहित मैंने द्वेष से उनको मोहित करने के लिये बहुत यत्न किया ।।१३।। हे मुनि! परन्तु उस परमप्रभु शम्भुजी में मेरे और मेरे सुतों के सब उपाय निष्फल हो गये ।।१४।। तब पुत्रों सहित मुझ निष्फल ने भगवान् विष्णुजी का ध्यान किया, तब शिवभक्त भगवान् विष्णुजी ने आ कर मुझे समझाया ।।१५।। शिवतत्त्व को जानने वाले विष्णुजी से समझाये हुए मोहित मैंने उनसे द्वेष छोड़ दिया, परन्तु हठ न छोड़ा ।।१६।। मुझ हठी ने शक्ति की सेवा कर के महादेवजी को मोहित करने के लिये अपने पुत्र दक्ष से अक्सिनी वीरिणी दुःसह

तप कर के प्रसन्नता से रुद्र की पत्नी हुई ।।१८।। वह शुद्धबुद्धि रुद्र अपने विवाह में मुझे मोहित कर के पार्वती के साथ गृहस्थी हो कर उत्तम लीला करने लगे ।।१९।। उमा से विवाह कर के अपने पर्वत पर आ कर स्वतन्त्र हो सन्तान की इच्छा से मोहित हो कर रमण करने लगे ।।२०।। उमा के साथ विवाह करते हुए उन निर्विकार शम्भुजी का बहुत समय बीत गया ।।२१।। फिर शिवजी की माया से मोहित अहङ्कारी मूर्ख दक्ष के साथ रुद्र का वैर हुआ ।।२२।। उन्हीं के प्रभाव से मोहित मूर्ख अहङ्कारी दक्ष ने शान्त निर्विकार रुद्र की निन्दा की ।।२३।। फिर संसार के स्वामी दक्ष ने सर्व देवताओं, विष्णुजी और मुझे बुला कर शिवजी के बिना अहङ्कार यज्ञ किया ।।२४।। महादेवजी के द्वेष से आकुल, द्वेष से मोहित दक्ष ने सती नाम्नी अपनी पुत्री को नहीं बुलाया, तब उस पतिव्रता ने आगे कहा हुआ चरित्र किया ।।२५-२६।। अहङ्कारी दक्ष द्वारा बिना बुलाए हुए भी सती शिवजी की आज्ञा ले कर अपने पिता के घर गई ।।२७।। वहां महादेवजी का भाग न देख कर पिता से अपमानित सती ने सबकी निन्दा कर के शरीर छोड़ दिया ।।२८।। यह सुन कर शिवजी ने महा क्रोध करते हुए जटा उखाड़ कर वीरभद्र को उत्पन्न किया ।।२९।। गणों के सहित वीरभद्र को उत्पन्न कर के, 'क्या करें' यह कहते हुए वीरभद्र को अपना तिरस्कार कथन पूर्वक दक्ष के यज्ञ को नाश करने की आज्ञा दी ।।३०।। उनकी आज्ञा पा कर बहुत बलों से युक्त गणाधीश वहां गये ।।३१।। और उनकी आज्ञा से गणों ने महाउपद्रव कर सबको दण्डित किया, किसी को भी नहीं छोड़ा ।।३२।। विष्णुजी और देवताओं को यत्न पूर्वक जीत कर दक्षजी का शिर काट कर अग्नि में हवन कर दिया ।।३३।। महाउपद्रव करते हुए गणों ने यज्ञ का विध्वंस कर कैलास पर्वत पर जा कर महादेवजी को प्रणाम किया ।।३४।। देवताओं के देखते ही देखते वीरभद्रादि रुद्र के अनुचरों द्वारा यज्ञ का विध्वंस हो गया ।।३५।। उत्तम प्रभु रुद्र के रुष्ट होने पर लोक का कल्याण कैसे हो? हे मुनि! यह नीति, श्रुति और स्मृति द्वारा सम्मति से जानिये ।।३६।। तत्पश्चात् स्तुति को सुन कर दीनवत्सल रुद्र ने प्रसन्न हो सबकी विज्ञप्ति को सफल किया ।।३७।। नाना लीला और विहार करने वाले महात्मा शंकर महादेवजी ने अपनी कृपा से सब पूर्ववत् कर दिया ।।३८।। दक्ष को जीवित कर के उनके द्वारा सबका सत्कार कराकर कृपालु शंकरजी ने यज्ञ करवाया ।।३९।। तब यज्ञ में विश्वादिक समस्त देवताओं ने अत्यन्त प्रसन्न हो रुद्र का पूजन किया ।।४०।। और सती के देह से उत्पन्न, लोकों को सुख देने वाली ज्वाला पर्वत पर जा कर गिरी, पूजित होने पर वह सुखदायिनी ।।४१।। सम्पूर्ण कामों के फल को देने वाली ज्वालामुखी के नाम से विख्यात हो कर दर्शन से ही पातकों का नाश करनेवाली श्रेष्ठ देवी हुई ।।४२।। अब भी सम्पूर्ण कामों के फल की इच्छा कर के महोत्सव में परस्पर बहुत से उपचारों द्वारा संसार उनका पूजन करता है ।।४३।। तत्पश्चात् वह सतीदेवी हिमालय की कन्या

होकर पार्वती नाम से प्रसिद्ध हुई।।४४।। फिर कठिन तपस्या के द्वारा आराधना कर वह उसी परम ईश पति को प्राप्त हुई।।४५।। हे मुनीश्वर! जो आपने पूँछा वह सब हमने कहा, जिसे सुनने से मनुष्य सम्पूर्ण पापों से छूट जाता है, इसमें सन्देह नहीं।।४६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
द्वितीये सतीखण्डे सतीसंक्षेपचरित्रवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः।।१।।

*****

दूसरा अध्याय

सूतजी बोले– हे नैमिषारण्यवासियो! इस प्रकार उनके वचन सुन कर नारदजी ने पापनाश करने वाली कथा को पूँछा।।१।। नारदजी बोले– हे विधि! हे महाभाग! शम्भुजी की शुभदायिनी कथा को आपके कमल रूपी मुख से सुन कर भी, हे महाप्रभु! मैं तृप्त नहीं हुआ।।२।। हे विश्व के रचने वाले! वह दिव्य सतीजी की कीर्ति से युक्त शिवजी के सम्पूर्ण शुभ चरित्र कहिये, मुझे सुनने की इच्छा है।।३।। किस प्रकार सती दक्ष की स्त्री में उत्पन्न हुईं और कैसे महादेवजी ने अपनी स्त्री करने में मन दिया?।।४।। पूर्व ही किस प्रकार दक्ष के कोप से सतीजी ने शरीर छोड़ा और हिमवान् की कन्या हो कर फिर आकाश में आई?।।५।। पार्वती का उग्र तप और उनका विवाह किस प्रकार हुआ और स्मर को नाश करने वाले महादेवजी की अर्द्धांगिनी कैसे हुईं?।।६।। हे महामति! यह सब आप विस्तार से कहिये, आपके समान संशय का नाश करने वाला दूसरा नहीं है।।७।। ब्रह्माजी बोले– हे नारदजी! सती और शिवजी का परमपवित्र, गुप्त से गुप्त दिव्य शुभयश सुनिये।।८।। विष्णुजी द्वारा बड़ी प्रीति से पूंछने पर शिवजी ने परोपकारी भक्तश्रेष्ठ विष्णुजी से यह प्रथम कहा था।।९।। फिर हमारे पूँछने पर भगवान् ने प्रेम से विस्तार पूर्वक कहा।।१०।। सब कामों को देनेवाली सती और शिवजी के यश से युक्त उसी पुरानी कथा को मैं कहता हूँ।।११।। प्रथम निर्गुण, निर्विकल्प, रूप रहित, शक्ति रहित, चिन्मात्र सत्त्व स्वरूप शिवजी।।१२।। परे से भी परे, निर्विकार, वह उमा के सहित द्विरूप सगुण शक्तिमान् हुए।।१३।। उनके बाँये अंग से विष्णुजी, दक्षिण अंग से मैं ब्रह्मा तथा हृदय से रुद्र उत्पन्न हुए।।१४।। सृष्टि करने वाला मैं ब्रह्मा, पालन करने वाले विष्णुजी, लय करने वाले वे स्वयं शिवजी हुए।।१५।। लोकपितामह मैंने उन्हीं का आराधन कर के सर्व प्रजा, देवताओं, दैत्यों और मनुष्यादिकों को बनाया।।१६।। देवश्रेष्ठ दक्षादिक प्रजापतियों को बना कर प्रसन्न मैंने अपने को सब तेजों से युक्त माना।।१७।। मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, अङ्गिरस, क्रतु, वशिष्ठ, नारद, दक्ष, भृगु

को ।।१८।। जिस समय मैंने मन से उत्पन्न किया, उसी समय मेरे मन से एक सुन्दर कन्या उत्पन्न हुई ।।१९।। दिवस के अन्त में सायंकाल की सन्ध्या के समान सुन्दर, सुष्ठु भौंहों वाली, मुनियों के भी चित्त को मोहित करने वाली उस कन्या का नाम सन्ध्या था ।।२०।। निश्चय ही सब गुणों से युक्त तीनों काल और तीनों लोकों में वैसी नारी नहीं थी ।।२१।। उसे देखते ही उठ कर मैं और सृष्टि करने वाले दक्षादिक और मरीच्यादिक मेरे पुत्र सोचने लगे ।।२२।। सोचते हुए मेरे हृदय से एक बड़ा अद्भुत सुन्दर पुरुष उत्पन्न हुआ ।।२३।। जो तपे हुए सुवर्ण के समान कान्तिधारी, मोटे वक्ष:स्थल वाला और उत्तम नासिकावाला, सुन्दर मुख, उर, कटि, जङ्घा से युक्त और भ्रमर के समान काले बालों से शोभित ।।२४।। मिली हुई दोनों भौंहें, प्यारा पूर्ण चन्द्रमा की तरह दीप्ति वाला, कपाट के समान दीर्घ हृदय, रोमरूपी कमल से शोभित ।।२५।। श्यामगज के सदृश आकार वाला, स्थूल, नील, उत्तम सुगन्धियों से युक्त और रक्तवर्ण के हाथ पैर, मुख, नेत्रों से शोभायमान, क्षीण मध्यभाग और सुन्दर दांत वाला, मत वाले गज के समान, गन्ध से युक्त खिले कमलपत्र के समान नेत्र, बालों की सुगन्ध से सुवासित करता हुआ ।।२६-२७।। सुन्दर गर्दन वाला, जिसके ध्वजा में मीन है ऐसा मकरवाहन, पञ्चपुष्पायुध, शीघ्रगामी, पुष्प के धनुष से शोभित, ऐसा काम ।।२८।। हे तात! कटाक्षों से दोनों नेत्रों को घुमाता हुआ, सबका प्रिय सुगन्धित श्वासवाला, शृङ्गाररस से सेवित ।।२९।। ऐसे उस पुरुष को देख कर चकित हुए मेरे दक्षादिक पुत्र प्रसन्न हो कर बड़ी आश्चर्यता को प्राप्त हुए ।।३०।। शीघ्र ही कामबाण से पीड़ित उन मेरे पुत्रों का चित्त विकृत हो गया और धीर नहीं रहा ।।३१।। विनय पूर्वक स्कन्धों को झुका कर वह पुरुष संसार के स्वामी, प्रजाओं के रचयिता मुझ ब्रह्मा को देख कर प्रणाम कर के बोला ।।३२।। पुरुष बोला–हे ब्रह्मन्! मैं क्या करूं? मुझे ऐसे कर्म में नियोजित कीजिये, जिससे मैं पुरुषों को माननीय होऊँ ।।३३।। और हे त्रिलोकेश! हे जगत् के पति! हे सृष्टि करने वाले! आप मेरा अभिमान योग्य स्थान और जो मेरी पत्नी है उसे मुझसे कहिये ।।३४।। ब्रह्माजी बोले– महात्मा काम का यह वचन सुन कर अति चकित हो कर थोड़ी देर तक मैं कुछ न बोला ।।३५।। फिर मन को सावधान कर विस्मय को छोड़ कर काम को समीप बुला कर मैं ब्रह्मा बोला ।।३६।। ब्रह्माजी बोले– तुम इस अपने रूप और पुष्पों के पाँच बाणों से पुरुष और स्त्रियों को मोहित करते हुए सृष्टि करो, त्रिलोकी में तुम्हारे सम्मुख चराचर, देवता और जीवों में कोई भी न ठहर सकेगा ।।३७-३८।। मैं, वासुदेव और शिवजी भी तुम्हारे वश होंगे, अन्य जीवों की तो बात ही क्या है?।।३९।। तुम सर्वदा प्राणधारियों के हृदय में गुप्त रूप से प्रवेश करते हुए सुख रूप हो कर सनातनी सृष्टि को उत्पन्न करो ।।४०।। तुम्हारे पुष्पबाण सब प्राणियों के मन को सदा सुखकारक आश्चर्य देने वाले तथा सब नित्य मद देने वाले होगे ।।४१।।

यह सृष्टि को चलाने वाला कर्म मैंने तुमसे कहा फिर यह मेरे पुत्र वास्तव में तुम्हारे नाम कहेंगे ।।४२।। ब्रह्माजी बोले– हे सुरश्रेष्ठ! यह कह कर अपने पुत्रों का मुख देख कर मैं अपने कमलासन पर बैठ गया ।।४३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां द्वितीये सतीखण्डे द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

*****

तीसरा अध्याय

फिर उसके अभिप्राय को जानने वाले मरीच्यादिकों ने कामदेव का उचित नाम रख दिया ।।१।। सृष्टि करने वाले दक्षादिकों ने दूसरों से उसका वृत्तान्त जान कर उसका मुख देखते ही उसे स्थान और स्त्री को दे दिया ।।२।। फिर मरीच्यादि मेरे पुत्रों ने उसके नाम निश्चित कर के उसे कह दिये ।।३।। ऋषि बोले– जो तुमने पहले ही हमारा और ब्रह्माजी का चित्त मथ दिया, इससे संसार में तुम्हारा नाम मन्मथ होगा ।।४।। संसार में तुम्हारे समान कोई सुन्दर नहीं है, इससे काम भी तुम्हारा नाम होगा ।।५।। मोहन से मदन, अहङ्कार से अहङ्कारी कन्दर्प भी तुम्हारा नाम होगा ।।६।। तुम्हारे समान किसी देवता में पराक्रम न होगा, इससे तुम्हारे सब स्थान और तुम सर्वव्यापी होंगे ।।७।। प्रजाओं के स्वामी पुरुषोत्तम दक्षजी तुम्हें यथेष्ट कामिनी स्त्री देंगे ।।८।। यह ब्रह्माजी के मनें से उत्पन्न सुन्दरी संसार में सन्ध्या नाम वाली होगी ।।९।। यह अच्छी प्रकार ध्यान करते हुए ब्रह्माजी के हृदय से उत्पन्न हुई है, इस कारण इसका नाम सन्ध्या है ।।१०।। ब्रह्माजी बोले– गुप्त रूप कामदेव पुष्प रूपी पाँच अस्त्र ले कर वहीं सोचने लगा ।।११।। रोचन, हर्षण, मोहन, शोषण और मारण यह पाँच बाण मुनियों के भी चित्त को मोहित करने वाले हैं ।।१२।। जो सनातन कर्म ब्रह्माजी ने मुझसे कहा है, उसकी परीक्षा यहीं इन मुनियों के समीप करूं ।।१३।। यहां बहुत से ऋषि और साक्षात् प्रजापतिजी भी उपस्थित हैं, इनके सामने कर्म की सत्यता निश्चय ही हो जायेगी ।।१४।। ब्रह्माजी की कही हुई सन्ध्या भी कर्मों की परीक्षा करने के निमित्त बोली ।।१५।। ब्रह्माजी बोले– यह मन में सोच कर और निश्चय कर के काम ने धनुष को योजित किया ।।१६।। सुन्दर स्थान में पहुँचकर यत्न से धनुष खींचकर धन्वीवर काम ने धनुष को चूड़ी की तरह बना दिया ।।१७।। उसके धनुष को ठीक करते ही प्रसन्न करने वाली सुगन्धित वायु चलने लगी ।।१८।। फिर मोहन (कामदेव) ने अलग–अलग तेज पुष्पबाणों से ब्रह्माजी आदि सबके मन मोहित कर लिये ।।१९।। तब मैं और सब मुनि मोहित हो गये और परस्पर मिल कर विकार को प्राप्त हुए ।।२०।। बार–बार सन्ध्या को देखने लगे, जिस कामरूपी

अग्नि की ईंधन स्त्री होती है, ऐसे काम से अन्धे हो गये ।।२१।। उस काम ने बारंबार उन सबको मोहित कर के उन्हें इन्द्रिय विकार प्राप्त कर दिया ।।२२।। उसे देख कर उठी हुई इन्द्रिय वाले मुझ ब्रह्मा के शरीर से ४९ भाव उत्पन्न हो गये ।।२३।। कामरूपी बाण के गिरने से उन लोगों से देखती कटाक्ष रूपी आवरणों को करती हुई ।।२४।। स्वभाव से ही सुन्दर उस सन्ध्या ने मन से उत्पन्न उन भावों को अपने शरीर की दीप्ति से बढ़ा दिया ।।२५।। धर्म से व्याप्त शरीर वाले प्रजापति ने भाव युक्त सन्ध्या को देख कर उसमें अभिलाषा की ।।२६।। फिर मरीच्यादिक और दक्षादिक इन्द्रियों के विकार को प्राप्त हो गये ।।२७।। इस प्रकार मरीच्यादिकों को, मुझे और सन्ध्या को देख कर काम ने अपने कार्य में विश्वास कर लिया ।।२८।। जो कुछ ब्रह्माजी ने मेरे कर्म नियत किये, मैं वह करने को समर्थ हुआ हूँ ।।२९।। इस प्रकार भाइयों और पिता की पापबुद्धि को देख कर धर्म ने धर्ममूर्त्ति शिवजी का स्मरण किया ।।३०।। धर्म के पालक शिवजी को मन से स्मरण करता हुआ वह धर्म दीन हो कर नाना वाक्यों से शिवजी की स्तुति करने लगा ।।३१।। धर्म बोला– हे धर्मपालक देवदेव महादेव! आपको नमस्कार है, हे शम्भु! सृष्टि की स्थिति और विनाश करने वाले आप ही हैं ।।३२।। सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी, स्थितिकर्ता विष्णुजी और प्रलयकर्ता हर हैं, परन्तु हे प्रभु! आप सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणों से रहित हो ।।३३।। प्रकृति से परे तीनों गुणों से रहित, निर्गुण विकार रहित, नाना प्रकार की लीलाओं को करने वाले, हे शिवजी! वह चतुर्थ साक्षात् आप ही हैं ।।३४।। हे महादेव! यह मेरे पिता और भाई पापबुद्धि हैं, उनकी इन दुस्तर पापों से रक्षा कीजिये ।।३५।। ब्रह्माजी बोले– जब धर्म ने इस प्रकार परमप्रभु महादेवजी की स्तुति की, तब उसी समय धर्म की रक्षा करने के निमित्त मैं ब्रह्मा वहां गया ।।३६।। शम्भुजी मुझ ब्रह्मा को आया देख कर मुझे और दक्षादिकों को मन में हँसने लगे ।।३७।। उन सबको बारंबार हँस कर मुझ ब्रह्मा को लज्जित करते हुए वह वृषभध्वज बोले ।।३८।। शिवजी बोले– हे ब्रह्मा! कन्या को देख कर आपके मन में काम का भाव कैसे प्रकट हो गया? जो वेद के मतानुसार योग्य नहीं है ।।३९।। जैसे माता, भगिनी और भाई की स्त्री होती है, वैसे ही कन्या को भी जानिये। भूल कर भी उसे कुदृष्टि से नहीं देखना चाहिये ।।४०।। इस वेद के मार्ग का निश्चय आपके मुख में स्थित है। हे विधि! कैसे काममात्र ही से आपने उसे भुला दिया?।।४१।। हे चतुरानन ब्रह्मन्! आपके मन में किस प्रकार धैर्य का जागरण न हुआ? जिससे एक क्षुद्र काम से ही रति की इच्छा का विधान किया ।।४२।। सदा सूर्य का दर्शन करने वाले दक्ष मरीच्यादि एकान्त योगियों का चित्त स्त्री में कैसे लोलुप हो गया?।।४३।। और किस प्रकार अकालज्ञ मन्द बुद्धि वाले मन्दात्मा कामदेव ने प्रबलता से बाणों के द्वारा विकृत किया?।।४४।। धैर्य को छोड़ कर चपलता में जिसका मन डूबा है और सदा जिसके मन को स्त्रियाँ हरती हैं,

उसके सत्सङ्ग को धिक्कार है ।।४५।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार श्रीशिवजी का वचन सुन कर लोकेश मैं द्विगुण लज्जा को प्राप्त हो पसीने में डूब गया ।।४६।। उस कामरूपिणी सन्ध्या को चाहता हुआ भी मैंने शिवजी के भय से काम को रोक कर विकार को छोड़ दिया ।।४७।। हे द्विजोत्तम ! जो मेरे शरीर से जल गिरा उससे अग्निष्वात्तादि पितृगण उत्पन्न हुए ।।४८।। मेघ के समान कान्ति वाले फूले हुए कमल के समान आँख वाले, नित्य यतिभाव से रहने वाले, पुण्य रूप संसार से विमुख ।।४९।। चौंसट हजार अग्निष्वात्ता पितर, ८६ हजार बर्हिषद पितर हैं ।।५०।। दक्ष के शरीर से जो जल गिरा, उससे समस्त गुणयुक्त एक कन्या उत्पन्न हुई ।।५१।। दुर्बल शरीर वाली, सूक्ष्म कमर वाली, मृदु अंग वाली, सुन्दर दांत और सोने के समान दीप्ति वाली ।।५२।। सम्पूर्ण अंग रमणीय, पूर्णचन्द्र के समान मुख वाली, कमल के समान कान्ति वाली, मुनियों के भी मन को मोहित करने में समर्थ, रति नामवाली स्त्री को देख कर ।।५३।। निगृहीत इन्द्रिय क्रियाओं वाले मरीच्यादिक छहों में से वसिष्ठजी और क्रतु को छोड़ कर दूसरे चारों पुलस्त्य और अङ्गिरस का भी वीर्य पृथ्वी पर गिर पड़ा, उससे दूसरे पितृगण उत्पन्न हुए ।।५४–५५।। सोमपा, आज्यपा, सुकाली, हविष्मान् कव्यवाह संज्ञक हुए ।।५६।। क्रतु से सोमप, वसिष्ठ से सुकाली, पुलस्त्य से आज्यपा, अङ्गिरस से हविष्मान् उत्पन्न हुए ।।५७।। हे विप्रेन्द्र ! चारों दिशाओं ने संसार के पितर कव्यवाट और अग्निष्वात्तादिकों के उत्पन्न होने पर धर्म–कर्म से परायण शम्भुजी के द्वारा सन्दृष्ट निर्दोष सन्ध्या पितरों को उत्पन्न करने वाली हो कर उनके उद्देश्य से युक्त हो गई ।।५९।। फिर शंकरजी के वचन से लज्जित मैं पितामह भौंहें टेढी कर के कन्दर्प से क्रोधित हुआ ।।६०।। इसी बीच में महादेवजी समस्त मुनियों को अनुगृहीत कर के और धर्म की भी रक्षा कर के शीघ्र ही अन्तर्धान हो गये ।।६१।। मुख देख कर अभिप्राय जान कर महादेवजी से भयभीत काम ने शीघ्र ही अपने बाण खींच लिये ।।६२।। अतिबली क्रोधित कमल को उत्पत्ति वाला मैं जलती हुई अग्नि के समान जलने लगा ।।६३।। महादेवजी में दुष्कर कर्म कर अहङ्कार से मोहित हे कन्दर्प ! तू शिवजी के नेत्र से जल जायगा ।।६४।। यती, मुनियों और पितृगणों के सामने मैंने काम को यह शाप दे दिया ।।६५।। इस प्रकार बड़ा कठिन शाप सुन कर भयभीत रतिपति धन्वा को छोड़ कर प्रकट हुआ ।।६६।। हे मुने ! दक्षादिक मेरे सुत वा पितृसमूह और सन्ध्या इन सबके सामने काम मुझसे बोला ।।६७।। काम बोला– मुझ अनपराधी को आप न्यायी से ऐसा कठिन शाप कैसे दिया गया ?।।६८।। हे ब्रह्माजी ! जो कुछ मुझे आपने कर्म बताया वही मैंने किया, इस लिये मुझे शाप देना अनुचित था ।।६९।। ब्रह्मा, विष्णु, शिव ये सब तुम्हारे बाण से पीड़ित होंगे, यह जो आपने कहा था, मैंने उसकी परीक्षा की थी ।।७०।। हे जगत्पिता ब्रह्माजी ! मैं निरपराध हूँ, मेरा अपराध नहीं है, यह शाप और यह समय कठिन है ।।७१।। ब्रह्माजी बोले– मैं जगत्पति

ब्रह्मा इस उसके वचन सुन कर बारंबार काम को डाँटते हुआ बोला ।।७२।। ब्रह्माजी बोले– तुमने जो इस मेरी कन्या सन्ध्या को काम से लक्षित किया, इस कारण मैंने शाप दिया ।।७३।। हे काम! शान्तक्रोध हो कर मैं तुमसे कहता हूँ, गतसन्देह हो कर भय छोड़ कर सुखी हो ।।७४।। महादेवजी के नेत्ररूपी अग्नि से भस्मित हो कर शीघ्र ही तुम शरीर पाओगे ।।७५।। जिस समय महादेवजी अनायास विवाह करेंगे, तब वे ही तुमको शरीर देंगे ।।७६।। ब्रह्माजी बोले– मैं लोकपितामह काम से यह कह कर मुनियों के देखते हुए अन्तर्धान हो गया ।।७७।। इस प्रकार मेरे वचन सुन कर वे मुनि और काम सुखी हो कर शीघ्र ही अपने स्थान को चले गये ।।७८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
द्वितीये सतीखण्डे कामशापानुग्रहो नाम तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

*****

चौथा अध्याय

नारदजी बोले– हे विधि! हे महाप्रज्ञ! हे लोक रचने वाले प्रभु! हे विष्णुशिष्य! शिवलीला रूपी अमृत से युक्त यह अद्भुत कथा आपने कही ।।१।। हे पिता! उस पश्चात् क्या चरित्र हुआ? सो अब कहिये। श्रीशम्भुजी की कथा सुनने में मेरी रुचि है ।।२।। ब्रह्माजी बोले– जब शम्भुजी निजस्थान को गये और मैं ब्रह्मा अन्तर्धान हो गया, तब मेरी बात का स्मरण कर के दक्ष कन्दर्प से बोले ।।३।। दक्ष बोले– हे कामदेव! मेरी देह से उत्पन्न उत्तम रूप और गुणों से युक्त इसको आप अपनी भार्या रूप में ग्रहण कीजिये, यह आपके सदृश गुणों वाली है ।।४।। यह महातेजा स्त्री सदा आपकी सहचारिणी और यथा काम वशवर्त्तिनी होगी ।।५।। ब्रह्माजी बोले– यह कह कर देह के पसीने से उत्पन्न स्त्री का रति नाम रख कर आगे कर के कन्दर्प को दे दिया ।।६।। हे नारदजी! मुनियों का भी मन मोहने वाली दक्ष से उत्पन्न उस उत्तम कन्या से विवाह कर के काम भी अत्यन्त प्रसन्न हुआ ।।७।। फिर मदन अपने गुणों के सदृश उस रति नाम्नी उत्तम स्त्री को देख कर रति से रंजित हो कर मोह को प्राप्त हुआ ।।८।। गौरी मृगदृशी चंचलाङ्गी वह रति उस काम की भार्या हुई ।।९।। उसकी दोनों भौंहें देख कर काम को यह सन्देह हुआ कि, मानो ब्रह्माजी ने मेरे धन्वा के छेदनार्थ इसमें निवेशित किया है ।।१०।। हे नारदजी! उसके कटाक्ष की शीघ्रगति और सुन्दरता को देख कर उसके सम्मुख अपने अस्त्रों को मन्दगति माना ।।११।। उसका स्वभाव उत्तम वायु के समान मन्द श्वास को सूंघ कर मदन ने मलयाचल के समीप की श्रद्धा छोड़ दी ।।१२।। लक्ष्मी से लक्षित,

पूर्णचन्द्र के समान मुख को देख कर मदन उसके मुख और चन्द्रमा में कुछ भेद न समझ सका ।।१३।। सुवर्णकमल की कली के समान उसके दोनों कुच जिन पर दोनों चूचुक भ्रमर के समान शोभित थे ।।१४।। दृढ़ मोटे और उन्नत स्तन, नाभि पर्यन्त लटकने वाली माला को धारण किये कृशोदरी चन्द्रवदनी सुन्दरी को देख कर मोहित हुआ ।।१५।। पुष्पायुध कामदेव भौंरों की पंक्ति रूपी प्रत्यञ्चा को भूल कर उसे छोड़ कर इसे देखने लगे ।।१६।। नाभिरन्ध्र बड़ा गम्भीर था, चारों ओर से मानो घिरा हुआ, मुख बड़ा श्रेष्ठ, दोनों नेत्र बड़े कमल के समान रक्तवर्ण थे ।।१७।। कामदेव से भ्रमर की तरह कान्ति वाली, सोने की बेदी क्षीण मध्यभाग वाली के समान वह रति देखी गई ।।१८।। कदलीस्तम्भ सदृश चिकने मनोहर दोनों जङ्घाओं को अपनी शक्ति के समान कामदेव ने देखा ।।१९।। दोनों पैरों के पार्श्व और अग्रभाग में रक्तवर्ण वाली रति को देख कर कामदेव प्रेम से उसका मित्र हो गया ।।२०।। उसके दोनों हाथ टेसू के पुष्प के सदृश लाल नखों और सूक्ष्म अग्रभाग गोल अंगुलियों से मनोहर थे ।।२१।। कमल की नाल के सदृश लम्बे मृदुल मूँगों के सदृश चिक्कण और कान्ति वाले दोनों हाथ थे ।।२२।। काले मेघ के समान चमरी की तरह घुंघराले मनोहर बालवाली ।।२३।। जिस प्रकार हिमालय से उत्पन्न गङ्गाजी को शिवजी ने ग्रहण किया, उसी प्रकार प्रसन्न हो काम ने ऐसी रति को ग्रहण किया ।।२४।। चक्र पद्मों से युक्त सुन्दर कर, जिनमें कमल को धारण किये और लहरियों के समान दोनों भौंहों के विभ्रम से शोभित ।।२५।। कटाक्षपात के सदृश धारा वाली, कमल रूपी नेत्रों से युक्त, सेवार रूपी रोम से युक्त मन रूपी वृक्षों में विलास करने वाली ।।२६।। भँवर रूप नाभि से युक्त ऐसी सर्वांग सुन्दरी, सम्पूर्ण सुन्दरता की सदन, लक्ष्मी के समान शोभायमान ।।२७।। बारह प्रकार के आभूषण और षोडष शृङ्गारों से युक्त, सम्पूर्ण लोकों को मोहित करने वाली, अपनी कान्ति से दशों दिशाओं को पूरित करती ।।२८।। इस प्रकार रति को देख कर काम ने ग्रहण किया (जैसे गङ्गाजी को महादेवजी ने ग्रहण किया था) प्रेम से आई हुई उत्तम लक्ष्मी को विष्णुजी के समान ग्रहण कर के ।।२९।। काम ब्रह्माजी के कठिन शाप को भूल कर आनन्द के मारे दक्ष से उस समय न बोला ।।३०।। हे नारद! उस समय सुख बढ़ाने वाला महोत्सव हुआ और मेरी कन्या प्रसन्न हुई, दक्ष भी बहुत प्रसन्न हुए ।।३१।। काम अत्यन्त सुखी हो कर दुःख से छूट गया। दक्ष से उत्पन्न होने वाली रति भी काम को पा कर अत्यन्त प्रसन्न हो गयी ।।३२।। सन्ध्या समय मनोज्ञ बिजली से युक्त, मेघ के समान दक्ष की कन्या के साथ पृथक् विराजित हुआ ।।३३।। काम ने रति को ग्रहण किया, जैसे योगी विद्या को ग्रहण करते हैं। रति भी काम को पा कर अति प्रसन्न हुई, जैसे पूर्णचन्द्र के समान मुखवाली लक्ष्मी विष्णुजी को पाकर प्रसन्न होती है ।।३४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां द्वितीये सतीखण्डे कामविवाहवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

पांचवाँ अध्याय

सूतजी बोले- ब्रह्माजी के वचनों को सुन कर प्रसन्नचित्त मुनिश्रेष्ठ नारदजी शंकरजी का स्मरण कर बोले ।।१।। नारदजी बोले- हे महाभाग! हे विष्णुशिष्य ब्रह्माजी ! हे महामति ! आपने शिवजी की अद्भुत कथा कही ।।२।। स्त्री को पा कर प्रसन्न काम के और दक्ष के तथा आपके घर चले जाने पर ।।३।। तथा मन से उत्पन्न होने वाले पुत्र भी अपने-अपने स्थानों को चले जाने पर ब्रह्मापुत्री सन्ध्या कहां गई ?।।४।। उसने क्या किया और किस के साथ उसका विवाह हुआ ? यह सब तथा सन्ध्या का अन्य भी चरित्र कहिये ।।५।। सूतजी बोले- तत्त्वज्ञाता ब्रह्माजी इस प्रकार नारदजी के वाक्यों को सुन कर शंकरजी का स्मरण कर के बोले ।।६।। ब्रह्माजी बोले-हे नारदजी ! आप सन्ध्या का सम्पूर्ण शुभचरित्र सुनिये, जिसे सुनने से सर्वदा सब स्त्रियां पतिव्रता होती हैं ।।७।। प्रथम मेरे मन से सन्ध्या उत्पन्न हुई, वही तपस्या कर के शरीर को छोड अरुन्धती हुई ।।८।। ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी के वचन को मान व्रत धारण करने वाली ।।९।। सन्ध्या ने वसिष्ठजी को अपना पति स्वीकार किया और वह पूज्य, वन्द्य और पतिव्रता हुई ।।१०।। नारदजी बोले- उसने तप क्यों किया ? कहां किया ? और किस प्रकार शरीर छोड़ कर मेधामुनि की कन्या हुई ?।।११।। किस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवजी से कथित वसिष्ठजी को अपना पति स्वीकार किया ?।।१२।। हे ब्रह्माजी ? मुझ सुनने वाले से अरुन्धती का सुन्दर चरित्र कहिये ।।१३।। ब्रह्माजी बोले- मैंने प्रथम सन्ध्या नाम्नी अपनी कन्या को देख कर शीघ्र ही अपने चित्त को काम की ओर आकर्षित किया, परन्तु शिवजी के भय से छोड़ दिया ।।१४।। जितेन्द्रिय महात्मा ऋषियों और सन्ध्या का चित्त भी काम में चलायमान हो गया ।।१५।। शिवजी के उपहास युक्त वचन से ऋषियों में मेरी अप्रतिष्ठा हुई ।।१६।। मुनियों को भी मोहित करने वाले उस कामभाव को बारंबार देख कर सन्ध्या अत्यन्त दुःखी हुई ।।१७।। फिर शिवजी के कैलास जाने पर मुझ ब्रह्मा से काम के शाप होने पर मैं अन्तर्धान हो गया ।।१८।। आमर्षयुक्त वह मेरी पुत्री सन्ध्या विचार कर ध्यान करने में तत्पर हो गई ।।१९।। बुद्धिमती सन्ध्या कुछ देर पूर्ववृत्त का ध्यान करते, वह उस समय यथायोग्य विचार करने लगी ।।२०।। सन्ध्या बोली- उत्पन्न हुई मुझ युवती को देख, काम से प्रेरित मेरे पिता ने मेरी इच्छा की ।।२१।। मानसमुनियों को देखते हुए मुझे देख कर उनका चित्त मर्यादा छोड़ कर काम से युक्त हो गया ।।२२।। और दुष्ट काम ने मेरे चित्त को भी चलित कर दिया, जिससे मुनियों को देख कर मेरा चित्त अत्यन्त चलायमान हो गया ।।२३।। इस पाप का फल स्वयं पाया कि, महादेवजी

के आगे कुपित पितामह ने उसे शाप दिया ।।२४।। मैं पापिनी भी इस पाप का फल पाऊंगी, इस पाप के नाश का साधन मैं शीघ्र ही चाहती हूँ ।।२५।। जो मुझे देख कर पिता और भाई काम की इच्छा करने लगे, इससे मुझ से बड़ी पापिनी नहीं है ।।२६।। उनको देख पिता और भाइयों में जो अमर्याद मेरा काम से चित्त चला ।।२७।। इस पाप का प्रायश्चित्त मैं स्वयं करूंगी । वेदमार्ग के अनुसार मैं अपने शरीर को जला दूंगी ।।२८।। इस संसार में उत्पन्न होते ही मनुष्य जैसे कभी न हो ऐसी मर्यादा स्थापित करूंगी ।।२९।। इसी लिये मैं कठिन तप कर के मर्यादा स्थापित करूंगी और फिर शरीर छोड़ूंगी ।।३०।। जिस मेरे शरीर में पिता और भाइयों ने कामभाव किया, वह अच्छे काम का नहीं है ।।३१।। सन्ध्या इस प्रकार मन में विचार कर चन्द्रभागा नदीवाले श्रेष्ठ चन्द्रभाग पर्वत पर गई ।।३२–३३।। और तपस्या के निमित्त सन्ध्या को श्रेष्ठ पर्वत पर गई जान कर ब्रह्माजी समीप बैठे वेदवेदाङ्ग के ज्ञाता योगी वसिष्ठजी से बोले ।।३४–३५।। ब्रह्माजी बोले– हे पुत्र ! हे सर्वज्ञ वसिष्ठ ! तपस्या के लिये जाती हुई मनस्विनी सन्ध्या को आप जा कर अच्छे प्रकार से विधि पूर्वक दीक्षा दीजिये ।।३६।। हे मुनिश्रेष्ठ ! पहले आपको तथा मुझे कामुक देख कर और स्वयं को सकामा समझ कर उसके नेत्रों की चपलता जाती रही ।।३७।। आपके दुष्कर्मों तथा अपनी पूर्व मृत्यु को विचार कर वह अपने प्राणों को छोड़ने की इच्छा करती है ।।३८।। वह तप के द्वारा मर्यादा में भी मर्यादा स्थापित करेगी, इस कारण वह साध्वी तप करने चन्द्रभाग पर्वत पर गई है ।।३९।। हे तात ! तप के किसी भाव को वह नहीं जानती है, इस लिये जिस प्रकार वह उपदेश से अपने इष्ट को प्राप्त हो, वैसा कीजिये ।।४०।। हे मुनि ! अपने इस रूप को छोड़ कर दूसरा रूप धारण कर उसके समीप जा कर तप की क्रियाओं को दिखाइये ।।४१।। पहले उसने मेरे और आपके इस रूप को देखा है, इस लिये वह कुछ न प्राप्त करेगी, इससे दूसरा रूप धारण कीजिये ।।४२।। ब्रह्माजी बोले– हे नारदजी ! इस प्रकार दयावान् वसिष्ठजी मेरी आज्ञा को पा कर 'ऐसा ही होगा' यह कहकर सन्ध्या के समीप गये ।।४३।। और वहां जाकर मन के समान गुणों से पूर्ण देवसर और उसके समीप में गई हुई सन्ध्या को देखा ।।४४।। कमल से युक्त उस सर के समीप में गई हुई सन्ध्या को और सर को सन्ध्या समय में उदय हुये उत्तम नक्षत्र चन्द्रमा से युक्त आकाश के समान देखा ।।४५।। मुनि ने वहां स्थित कौतुक युक्त सन्ध्या तथा रक्तवर्ण के तालाब को देख कर उसे देखने की इच्छा की ।।४६।। और उस श्रेष्ठ पर्वत के दक्षिण से समुद्र में जाती हुई चन्द्रभागा नदी को देखा ।।४७।। जिस प्रकार हिमालय से श्रीगङ्गाजी सागर में जाती हैं, उसी प्रकार यह चन्द्रभागा नदी चन्द्रभाग पर्वत को पश्चिम से काट कर समुद्र में जाती है ।।४८।। उस चन्द्रभाग पर्वत में रक्तवर्ण सर के समीप सन्ध्या को देख कर वसिष्ठजी ने सत्कार पूर्वक पूँछा ।।४९।। वसिष्ठजी बोले– हे भद्रे ! इस निर्जन पर्वत पर तुम किस लिये आई हो ?

तुम किस की कन्या हो और तुम्हारा यहां आने का क्या प्रयोजन है ?।।५०।। यह सुनने की मेरी इच्छा है, अगर छिपाने के योग्य नहीं है, तो कहो, तथा पूर्णचन्द्रमा के समान यह तुम्हारा मुख मलीन क्यों है ?।।५१।। ब्रह्माजी बोले– प्रज्ज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी महात्मा वसिष्ठजी को देख कर और उनके वचन सुन कर ।।५२।। सन्ध्या जटा धारण करने वाले ब्रह्मचारी, तपोधन श्रीवसिष्ठजी को प्रणाम कर के आदर पूर्वक बोली ।।५३।। सन्ध्या बोली– जिस लिये मैं इस पर्वत पर आई हूँ, वह मेरे सर्व मनोरथ आपके दर्शनमात्र से ही पूर्ण होंगे ।।५४।। हे ब्रह्मन्! मैं सन्ध्या नाम्नी ब्रह्माजी की कन्या हूँ और तप करने के निमित्त इस निर्जन पर्वत पर आई हूँ।।५५।। यदि आपको सुगम जान पड़े तो मुझे उपदेश दीजिये। यही मेरा गुप्त कार्य है और कुछ नहीं ।।५६।। मैं तप के भाव से अज्ञात इस तपोवन में आयी हूँ, इसी चिन्ता से सूखती हूँ और मेरा मन कांपता है ।।५७।। ब्रह्माजी बोले– ब्रह्मज्ञानी श्रीवसिष्ठजी ने उसका वचन सुन कर फिर उससे कुछ नहीं पूँछा, क्योंकि उनको सब ज्ञात था ।।५८।। मन में भक्तवत्सल श्रीशंकरजी का स्मरण कर के नियतात्मा उस तप में उद्यम को धारण करने वाली सन्ध्या से बोले ।।५९।। वसिष्ठजी बोले– जो परम महान् तेज, जो परम महान तप और जो परम आराधना करने योग्य है, उन श्रीशम्भुजी को मन में धारण करो ।।६०।। जो एक ही धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के आदिकारण हैं, उन्हीं एक जगत् के आदि पुरुषोत्तम का भजन करो ।।६१।। हे शुभानने! इस मन्त्र से देवेश शंकरजी का तुम भजन करो, इसी से तुम्हारी सम्पूर्ण इच्छायें पूर्ण होंगी, इसमें सन्देह नहीं ।।६२।। ''ॐ नमः शंकराय ॐ'' अन्त में ओंकार योजित कर, मौन तप प्रारम्भ करो, सो मैं कहता हूँ, सुनो ।।६३।। प्रथम दोनों षष्ठकाल में पूर्णजल का आहार करते मौन धारण कर स्नान कर के हर पूजन करो ।।६४।। तीसरे षष्ठकाल में उपवास करना, इस प्रकार तप की समाप्ति होने पर छठें काल में क्रिया होती है ।।६५।। हे देवि! इस प्रकार की मौन तपस्या सम्पूर्ण फल की देने वाली और ब्रह्मचर्य के फल की देने वाली सत्य है, इसमें सन्देह नहीं ।।६६।। इस प्रकार उद्देश्य चित्त में धारण कर शंकरजी का चिन्तन करो, वह तुम से प्रसन्न हो कर शीघ्र ही तुम्हारे मनोरथ को पूर्ण करेंगे ।।६७।। ब्रह्माजी बोले– वसिष्ठजी वहां बैठ कर सन्ध्या को तपस्या की सम्पूर्ण क्रिया बता कर अन्तर्धान हो गये ।।६८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
द्वितीये सतीखण्डे सन्ध्याचरित्रवर्णनो नाम पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

*****

छठवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले- हे बुद्धिमान्! हे पुत्रवर! सन्ध्या के बड़े श्रेष्ठ तप को सुनो, जिसे सुनने से पाप का समूह निश्चय ही नष्ट हो जाता है।।१।। वसिष्ठजी के घर जाने पर, तप की क्रिया सुन कर और तप का प्रभाव जान कर सन्ध्या प्रसन्न हुई।।२।। बृहल्लोहित को समीप गई हुई सन्ध्या ने प्रसन्नचित्त हो कर उसी प्रकार का वेष कर के तप करना प्रारम्भ किया।।३।। तप साधन में वसिष्ठजी ने जैसा मन्त्र कहा था, उसी मन्त्र से भक्ति पूर्वक शंकरजी का पूजन किया।।४।। उस एकान्त चित्त वाली सन्ध्या को शम्भुजी में चित्त लगा कर बड़ा भारी तप करते हुए एक चतुर्युग बीत गया।।५।। उस तप से सन्तुष्ट प्रसन्न हो कर महादेवजी बाहर-भीतर और आकाश में अपना शरीर दिखा कर जिस रूप का वह ध्यान कर रही थी, उसी रूप में प्रकट हो गये।।६-७।। मन से चिन्तित प्रसन्नमुख शान्त शंकरजी को आगे देख कर सन्ध्या बड़ी प्रसन्न हुई।।८।। मैं क्या कहूँ और कैसे शिवजी की स्तुति करूं? इस चिन्ता में मग्न हो सन्ध्या ने आँखें मूँद लीं।।९।। निमीलित चक्षु उसके हृदय में प्रवेश कर के शंकरजी ने उसे दिव्य ज्ञान, दिव्य वाणी, दिव्य आँखें दीं।।१०।। यह सब प्राप्त होने से पार्वतीपति जगत्पति को सामने देख कर स्तुति करने लगी।।११।। सन्ध्या बोली- निराकार ज्ञान से परे, न स्थूल न उच्च अतएव आपका रूप योगियों से चिन्त्य है, ऐसे आप लोककर्ता के लिये नमस्कार है।।१२।। शान्त, निर्मल, निर्विकार, ज्ञान से अगम्य, अपने प्रकाश में विकार रहित, परब्रह्ममार्ग के ज्ञाता, ध्वान्त मार्ग से परे रूप वाले प्रसन्नचित्त आपको नमस्कार करती हूँ।।१३।। एक मात्र शुद्ध प्रकाशमान अज, चिदानन्द, सहज विकार रहित नित्यानन्द, सत्यैश्वर्य से प्रसन्न रूप वाले आपके निमित्त नमस्कार है।।१४।। मन्त्र रूप विद्या से प्राप्त अभिन्न, सत्य स्वरूप ध्यान के योग्य, आत्म स्वरूपसार, पवित्रों से भी पवित्र रूप वाले आपको प्रणाम है।।१५।। जो आकार शुद्धरूप है, जिनकी मनोज्ञ रत्नवत् शरीर की कान्ति है, स्वच्छ कपूर के सदृश गौर, सेवक को अभय देने वाले, हाथों में शूल और मुण्ड को धारण करने वाले, योगयुक्त आपके लिये नमस्कार है।।१६।। आकाश, पृथ्वी, दिक्, जल, ज्योति, समय रूपवाले, आपके निमित्त नमस्कार है।।१७।। जिनके शरीर से ब्रह्मा और विष्णुजी उत्पन्न हुए, ऐसे अव्यक्त रूप आपके लिये नमस्कार है।।१८।। जो ब्रह्माजी सृष्टि करते हैं, विष्णुजी पालते हैं और रुद्र संहार करते हैं, ऐसे रूपत्रय युक्त आपके लिये नमस्कार है।।१९।। कारणों के कारण, दिव्यज्ञान तथा ऐश्वर्य के दाता, संसार को ऐश्वर्य देने वाले, प्रकाश रूप, परे से परे शंकरजी के लिये नमस्कार है।।२०।। जिनके पैर से

पृथ्वी, दिशायें, सूर्य, चन्द्रमा, काम और नाभि से बहिर्मुख और आकाश उत्पन्न हुए हैं, ऐसे आपके लिये नमस्कार है ।।२१।। हे शंकरजी! आप पर हैं, परमात्मा हैं, नाना प्रकार की विद्याएं आपकी हैं। सद्ब्रह्म और परब्रह्म आप ही हैं और विचार चतुर आप ही हैं ।।२२।। जिनका न आदि है न अन्त, न मध्य है, वाणी और मन से परे देव शिवजी की स्तुति कैसे करूं?।।२३।। जिनके रूप को ब्रह्मादिक देवता, तपरूपी धनवाले मुनि नहीं जान सकते, उन्हें मैं कैसे जान सकती हूं?।।२४।। आपके जिस रूप को इन्द्रादिक देवता और दैत्य नहीं जानते हैं, उन निर्गुण आपके गुण को क्या मैं स्त्री हो कर जान सकती हूं? अर्थात् कदापि नहीं ।।२५।। हे महेशान! आपके लिये नमस्कार है। हे देवेश! आप प्रसन्न हो। आपके लिये बारंबार नमस्कार है ।।२६।। ब्रह्माजी बोले– भक्तवत्सल परमेश्वर शिवजी उस के स्तुति युक्त वचनों को सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए ।।२७।। शरीर पर वल्कल और मृगचर्म धारण किये हुए, देदीप्यमान जटासमूहों से युक्त सिर पर कुशपवित्र विराजमान थे ।।२८।। जैसे कमल के ऊपर तुषार पड़ी हो, उस प्रकार से उसका मुखकमल मुरझा रहा था। इस प्रकार उसे देख कर कृपा करते भक्तवत्सल शंकरजी ने उससे कहा ।।२९।। शिवजी बोले– हे भद्रे! मैं तेरे परम तप से प्रसन्न हूं। हे शुभे! तेरे स्तोत्र से भी प्रसन्न हूं, जो तेरे मन में आवे सो वर मांगो ।।३०।। जिससे तुम्हारा कार्य हो, जो तेरे मन में हो, हे भद्रे! वही करूंगा। हे भद्रे! तेरे व्रत से मैं प्रसन्न हूं।।३१।। ब्रह्माजी बोले– जब शंकरजी के इस प्रकार वचन सुनने पर सन्ध्या बड़ी प्रसन्न हो कर बारंबार प्रणाम कर कहने लगी ।।३२।। सन्ध्या बोली– हे महेश्वर! यदि आप प्रेम से वर देते हो, यदि मैं वर के योग्य हूं, यदि मैं उस पाप से शुद्ध हूं।।३३।। हे देव! यदि आप मेरी तपस्या से प्रसन्न हो, तो पहले आप मुझे यह वर दीजिये ।।३४।। हे देवेश! इस संसार में प्राणीजनों में कोई भी उत्पन्न होते ही तुरन्त कामी न हो ।।३५।। यदि मैं तीनों लोकों में विख्यात और व्रत वाली हूं, तो जैसी मैं हूं वैसी दूसरी न हो, यह वर मुझे दीजिये ।।३६।। मेरी सृष्टि सकामा कहीं न हो। हे नाथ! मेरे जो पति हो वह भी मित्र के समान हो, महाकामी न हो ।।३७।। सिवाय पति के जो पुरुष मुझको अभिलाषा से देखे, उसका पुरुषार्थ नष्ट हो जाए, वह नपुंसक हो जाए ।।३८।। ब्रह्माजी बोले– भक्तवत्सल शंकरजी ने इस प्रकार उसके वचन सुन कर प्रसन्नता से कहा– तुझ में कोई पाप नहीं है ।।३९।। शिवजी बोले– हे देवि सन्ध्या! सुनो, तुम्हारा सब पाप शान्त हो गया है, मेरा क्रोध तुम पर नहीं है, तू शुद्ध हो गई हो ।।४०।। हे भद्रे! जो–जो तुमने मांगा, सो–सो सब मैंने तुझे दिया। हे सन्ध्या! तेरे तप और वर की इच्छा से मैं प्रसन्न हूं।।४१।। पहला शैशवभाव, दूसरा कुमारभाव, तीसरा यौवनभाव और चौथा वार्द्धक्य होगा ।।४२।। जब शरीरधारी तीसरी अवस्था यौवन को प्राप्त होंगे, तब वे सकाम होंगे और कोई–कोई दूसरी अवस्था के अन्त में सकाम होंगे ।।४३।। तेरे

तप से मैं जगत् में यह मर्यादा स्थापित करता हूँ कि कोई शरीरधारी उत्पन्न होते ही से सकाम न होंगे ।।४४।। तथा तुम इस लोक में ऐसे सतीभाव को प्राप्त हो जाओगी कि, तीनों लोकों में तुझ समान कोई न होगा ।।४५।। पाणिग्रहण वाले पति को छोड़ कर जो कोई तुझे सकाम दृष्टि से देखेगा, वह तत्काल क्लीवता को प्राप्त हो कर दुर्बल हो जायगा ।।४६।। हे महाभागे! तेरा पति महातपस्वी होगा और तेरे साथ सात कल्पों पर्यन्त जीवित रहेगा ।।४७।। इस प्रकार तुमने मुझसे जो वर मांगे सो मैंने तुझे दिये और भी पूर्वजन्म की बात तुम्हें कहता हूँ ।।४८।। तेरा अग्नि में शरीर त्यागना पहले से ही निश्चित है, उसका उपाय मैं तुम्हें कहता हूँ, निश्चय उसे करो ।।४९।। उन मेधातिथि की द्वादश वर्ष की यज्ञ में बड़ी प्रबलता से जलती हुई अग्नि में तुम शीघ्र ही प्रवेश करो ।।५०।। पर्वत श्रेणियों में चन्द्रभागा नदी के तीर पर तपोभूमि में मेधातिथि ऋषि यज्ञ करते हैं ।।५१।। वहां तुम स्वच्छन्दता से जा कर मुनियों से दृष्टिगोचर न होती हुई अग्नि में प्रविष्ट हो कर मेधातिथि की पुत्री होगी ।।५२।। जो स्वामी वर में तुम्हें मांगना हो उसे स्मरण कर के अग्नि में शरीर छोड़ना ।।५३।। सतयुग के चार युग व्यतीत होने पर जब तुम पर्वतों में घोर तप करोगी ।।५४।। तब त्रेतायुग के प्रथमभाग में दक्ष के कन्या रूप से उत्पन्न होगी और यथायोग्य विवाही जाओगी ।।५५।। दक्ष उनमें से सत्ताइस कन्याएं चन्द्रमा को देंगे, सबको छोड़ कर शशि रोहिणी से प्रसन्न होंगे ।।५६।। तब दक्षजी कुपित हो कर चन्द्रमा को शाप देंगे और सब देवता तुम्हारी शरण आएंगे ।।५७।। हे सन्ध्या! तुमने उन देवताओं को ब्रह्माजी के साथ नहीं देखा, मुझे मन में धारण कर के आकाश को देख कर फिर प्राप्त करोगी ।।५८।। चन्द्रमा के शाप के मोक्ष के लिये ब्रह्माजी वहीं चन्द्रभागा नदी उत्पन्न करेंगे और वहीं मेधातिथि ऋषि प्राप्त होंगे ।।५९।। तप में उनके समान न कोई है, न हुआ है और न होगा, उन्हों ने ज्योतिष्टोम यज्ञ प्रारम्भ किया है ।।६०।। तुम वहां जा कर जलती हुई अग्नि में अपने शरीर को छोड़ो, तुम्हारी प्रतिज्ञा पूर्ण होगी ।।६१।। यह स्थान मैंने अपने लिये सोचा था, परन्तु तुम जाओ और अपना कार्य सिद्ध करो। यह कह कर देवेश अन्तर्धान हो गये ।।६२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

द्वितीये सतीखण्डे सन्ध्याचरित्रवर्णनो नाम षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

*****

सातवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार वर दे कर शम्भुजी अन्तर्धान हो जाने के पश्चात् सन्ध्या मेधातिथि नामक मुनि के समीप गई।।१।। महादेवजी के प्रसाद से उसे किसी ने न देखा। उस समय सन्ध्या ने अपने तपोपदेश कर्ता को स्मरण किया।।२।। हे मुनि! पहले ब्रह्माजी की आज्ञा से वसिष्ठजी ने तप के लिये उसे उपदेश किया था।।३।। उस तपश्चर्या का उपदेश करने वाले ब्रह्मचारी ब्राह्मण को मन में धारण कर सन्ध्या अग्नि में गिरी।।४।। उस महायज्ञ के निमित्त की हुई होम की अग्नि में गिरते हुए उसे किसी मुनि ने न देखा, महादेवजी के प्रसाद से वह ब्रह्माजी की कन्या उस अग्नि में प्रवेश कर गई।।५।। पुरोडाश हव्य के समान उसका शरीर तत्काल भस्म हो गया और उसके अलक्षित शरीर से हव्य के समान गन्ध निकली।।६।। फिर शम्भुजी की आज्ञा से अग्नि ने उसके शरीर को भस्म कर के शुद्ध शरीर ले कर सूर्यमण्डल में प्रवेश किया।।७।। सूर्य ने अपने रथ में उसके शरीर का विभाग कर के देवता और पितरों की प्रसन्नता के लिये उसे स्थापित किया।।८।। हे मुनीश्वर! उसके शरीर के ऊपर वाले भाग से रात्रि तथा दिन के मध्य में होने वाली प्रातःसन्ध्या हो गई।।९।। और शेष भाग से पितरों को प्रसन्न करने वाली दिन के अन्त में होने वाली सायंसन्ध्या हो गई।।१०।। सूर्योदय से पहले जो अरुणोदय होता है, वह देवताओं को प्रसन्न करने वाली प्रातःसन्ध्या है।।११।। और सूर्य के अस्त होने पर जो लालकमल के समान उदय होती है, वह पितरों को प्रसन्न करने वाली सायंसन्ध्या है।।१२।। उसके प्राण को दयालु श्रीशंकरजी ने अपने दिव्य शरीर में सम्मिलित कर लिया।।१३।। हे मुनि! यज्ञ की समाप्ति होने पर सर्व मुनियों ने तपे हुए सुवर्ण समान कान्तिवाली कन्या को अग्नि में पाया।।१४।। उस पुत्री को ले कर मुनि बड़े प्रसन्न हो कर उसे यज्ञ के निमित्त स्नान करा कर गोदी में ले लिया।।१५।। और मुनियों ने उसका अरुन्धती नाम रखा। शिष्यों सहित मेधातिथि मुनि बड़े प्रसन्न हुए।।१६।। उन्होंने किसी कारण से भी धर्म का अवरोधन नहीं किया, इस कारण तीनों लोकों में विदित हो कर उस नाम को स्वयं प्राप्त हुई।।१७।। यज्ञ समाप्त कर के वह मुनि कृतकृत्यता के भाव को प्राप्त हो कर कन्या के लाभ से सम्पदा युक्त हो कर शिष्य वर्गों के साथ उस अपने आश्रम में उसका पालन करने लगे।।१८।। उस चन्द्रभागा नदी के तापसारण्य वाले मेधातिथि मुनि के आश्रम में वह कन्या बढ़ने लगी।।१९।। पाँच वर्ष की अवस्था को प्राप्त हो कर अपने गुणों द्वारा चन्द्रभागा नदी और तापसारण्य दोनों को पवित्र करने लगी।।२०।। फिर ब्रह्मा, विष्णु, शिवजी ने ब्रह्मपुत्र वशिष्ठजी के

साथ उस अरुन्धती का विवाह कराया ।।२१।। हे मुनि! उसके विवाह के समय सुख बढ़ाने वाला बड़ा ही उत्सव हुआ। सम्पूर्ण देवता और मुनि सुख को प्राप्त हुए ।।२२।। और ब्रह्मा, विष्णु, शिवजी के हाथ से निकले हुए जल के द्वारा क्षिप्रादिक सात पवित्र नदियां हुईं ।।२३।। पतिव्रताओं में श्रेष्ठ उत्तम महापतिव्रता अरुन्धती मेधातिथि मुनि की कन्या वशिष्ठजी को पा कर रमण करने लगी ।।२४।। और उसके शक्त्यादिक श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए। ऐसे वसिष्ठजी कान्त को पा कर वह रमण करने लगी ।।२५।। हे मुनिसत्तम! इस प्रकार सन्ध्या का चरित्र मैंने आपसे कहा, जो अत्यन्त पवित्र, दिव्य, पावन और सम्पूर्ण कामों के मूल को देने वाला है ।।२६।। जो स्त्री या पुरुष शुद्धचित्त से इसे सुनेंगे, वह सम्पूर्ण कामों को प्राप्त होंगे, इसमें सन्देह नहीं ।।२७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

*****

आठवाँ अध्याय

सुतजी बोले– इस प्रकार प्रजापति ब्रह्माजी का वचन सुन कर प्रसन्न हो नारदजी बोले ।।१।। हे ब्रह्मन्! हे विधि! हे महाभाग! हे विष्णुशिष्य! हे महामति! आप परतत्त्व के जानने वाले शिवभक्त हो ।।२।। आपने शिवभक्ति को बढ़ाने वाली अरुन्धती और उसके स्वरूप की दिव्य कथा कही ।।३।। हे धर्म के जानने वाले! अब पापों का नाश करने वाला तथा उत्तम मङ्गल देने वाला, शिवजी का दूसरा पवित्र चरित्र कहिये ।।४।। स्त्री ग्रहण कर काम को जाते हुए देख सन्ध्या ने जा कर कौन सा तप किया?।।५।। सूतजी बोले– इस प्रकार नारदजी के वचन सुन कर प्रसन्न होकर ब्रह्माजी बोले ।।६।। ब्रह्माजी बोले– हे विप्रेन्द्र नारद! शिवलीला से युक्त वह शुभचरित्र भक्ति पूर्वक सुनिये, आप शिवजी के सेवक धन्य हो ।।७।। जब पूर्व ही मोहित हो कर मैं अन्तर्धान हो गया, तब से सदाशिवजी के वाक्य से दुःखी हो कर सोचता रहा ।।८।। शिवजी की माया से मोहित बहुत दिन तक सोच कर शिवजी से ईर्ष्या की; वह सुनिये, आपसे कहता हूँ ।।९।। उस मदन व रति को देख कर किञ्चित मद से युक्त हो मैं दक्षादिकों के समीप आया ।।१०।। हे नारद! शिवजी की माया से मोहित मैंने दक्षादिक पुत्रों से प्रसन्नता पूर्वक कहा ।।११।। ब्रह्माजी बोले– हे मरीच्यादि सुत दक्ष! मेरी बात को सुन कर मेरे कष्ट दूर होने का उपाय करो ।।१२।। स्त्री के अभिलाष मात्र से ही महायोगी महादेवजी ने मुझे और तुम्हें बहुत धिक्कारा ।।१३।। उस दुःख से दुःखी हुए मुझको कहीं चैन नहीं पड़ता, जिस प्रकार महादेवजी स्त्री को ग्रहण करें, वह यत्न करो ।।१४।। जब वह स्त्री

को ग्रहण करेंगे, तब मैं दुःख से रहित हो कर सुखी होऊं। परन्तु मेरे विचार से यह काम दुर्लभ है।।१५।। मुनियों के सम्मुख कान्ता के अभिलाषा मात्र से ही शम्भुजी ने मुझे धिक्कारा, तो वह कैसे स्त्री को ग्रहण करेंगे?।।१६।। तीनों लोकों में ऐसी कौन सी स्त्री है, जो उनके मन में स्थित हो सके और योग मार्ग को जान कर उन्हें मोहित करे?।।१७।। उनके मोहन में मन्मथ भी समर्थ नहीं होगा, वे निरन्तर योगी स्त्रियों के नाम को भी सहन नहीं करते।।१८।। वे आदिहर तो वाणी से भी स्त्रियों को नहीं कहते हैं, तो भला बताइये विवाह कर के वे सृष्टि कैसे करेंगे?।।१९।। संसार में कोई महासुर मेरे वध्य होंगे, कोई हरि के वध्य होंगे, कोई निश्चय से श्रीशम्भुजी द्वारा मारे जायेंगे।।२०।। एकान्त विरागी, संसार से विमुख शम्भुजी इस से विपरीत दूसरा कर्म नहीं करेंगे, इसमें सन्देह नहीं।।२१।। यह कह कर मैंने दक्षादिक पुत्रों को देखा, उसी समय रति और मदन दोनों आनन्द पूर्वक वहां आ कर प्राप्त हुए।।२२।। ब्रह्माजी बाले- सर्वदा सुख देने वाले मेरे श्रेष्ठ पुत्र, हे पितृवत्सल काम! तुम स्त्री सहित प्रसन्नता पूर्वक मेरे वचन सुनो।।२३।। हे काम! इस स्त्री के साथ तुम शोभा दे रहे हो और यह तुमसे युक्त शोभित है।।२४।। जैसे हृषीकेश स्त्रियों से और हरि लक्ष्मी से, रोहिणी चन्द्रमा से और चन्द्रमा रोहिणी से शोभित हैं।।२५।। उसी प्रकार तुम्हारी स्त्री-पुरुषों की शोभा है, इस लिये तुम जगत् और संसार के केतु होंगे।।२६।। हे वत्स! संसार के हित के लिये तुम महादेवजी को मोहित करो, जिससे प्रसन्न हो शंकरजी शीघ्र ही स्त्री को ग्रहण करें।।२७।। निर्जन स्थान में, उत्तम देश में, पर्वत पर, तालाब में जहां-जहां ईश जाएं, वहां-वहां तुम इसके साथ जा कर।।२८।। तुम वनिता से विमुख इन्द्रीजित शंकरजी का मोहन करो, तुम्हारे सिवाय उनको मोहन करने वाला अन्य दूसरा नहीं है।।२९।। हे काम! प्राणियों पर महादेवजी के अनुराग करने से तुम्हारे शापों की भी शान्ति होगी, इस लिये तुम अपना हित करो।।३०।। अनुराग से युक्त हो कर शंकरजी जब उत्तम स्त्री की इच्छा करेंगे, तब महादेवजी तुमको तार देंगे।।३१।। इसलिये महादेवजी के मोहनार्थ दूसरी स्त्री उत्पन्न करो, इस प्रकार महादेवजी को मोहित कर के तुम संसार के केतु हो जाओ।।३२।। ब्रह्माजी बोले- संसार के प्रभु मुझ अपने पिता की बात सुन कर मुझ जगत् के पति से मन्मथ ने कहा 'ठीक-ठीक'।।३३।। मन्मथ बोला- हे स्वामी! आपकी आज्ञा से मैं शम्भुजी को मोहन करूंगा, परन्तु हे भगवन्! आप मेरे अस्त्र तथा स्त्री को बनाइये।।३४।। जिसमें मेरे महादेवजी को मोहित करने पर उसका मोहन न हो जाए। हे ब्रह्माजी! इस कारण आप दूसरा उपाय कीजिये।।३५।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार कन्दर्प की बातों को सुन कर मैं ब्रह्मा और प्रजापति दक्ष किसके द्वारा उन को सम्मोहित करें, यह सोचने लगे।।३६।। चिन्ता में प्रविष्ट हुए मेरे श्वास के द्वारा पुष्पबाण से विभूषित वसन्त उत्पन्न हुआ।।३७।। फूले हुए कमल के समान कान्ति, फूले हुए

तामरस के समान नेत्र और सन्ध्या समय उदय होने वाले चन्द्रखण्ड के समान उत्तम नासिका ।।३८।। शार्ङ्ग के समान चरणों के आवर्त, काले घुँघुराले बाल, सन्ध्या समय के सूर्य के सदृश दो कुण्डलों से मण्डित ।।३९।। मतवारे हाथी जैसी चाल, चिकने व चौड़े जंघा, ऊँचे कन्धे वाला, कबूतर के समान गर्दन, चौड़ी छाती, सम्मुख का भाग उठा हुवा ।।४०।। सम्पूर्ण अंग सुन्दर श्याम, सब लक्षणों से युक्त देखने योग्य, सबको मोहित करने वाले, काम को बढ़ाने वाले ।।४१।। इस प्रकार के पुष्पों को उत्पन्न करने वाले वसन्त उत्पन्न होने पर सुगन्धित वायु चलने लगी और वृक्ष फूल गये ।।४२।। कोकिल मीठे पञ्चम स्वर से बोलने लगे, कमल व कोकावेली फूल गई, तालाब स्वच्छ हो गये ।।४३।। इस प्रकार उत्तम उसे उत्पन्न हुआ देख कर हिरण्यगर्भ मदन से मैंने मधुर वचन में कहा ।।४४।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार का मन्मथ के समान कान्ति वाले वसन्त तुम सदा काम के सहचर हो, देव तुम्हारी सदा अनुकूलता करें ।।४५।। जिस प्रकार अग्नि का मित्र पवन सर्वत्र उपकार करता है, उसी प्रकार यह तुम्हारा मित्र सदा तुम्हारे साथ रहे ।।४६।। यह रमण का हेतु है, इस लिये इसका नाम वसन्त हो। इसका कर्म तुम्हारा अनुगमन और संसार का रञ्जन है ।।४७।। इस वसन्त का शृङ्गार सदा मलयाचल की पवन में बसे तथा सदा तुम्हारा और इसका मित्रभाव हो, सदा तुम्हारे वश में रहे ।।४८।। रति के किये हुए विवेकादि भाव और चौंसठ कला तुम्हारी प्रसन्नता के लिये तुम्हारे सुहृद हों ।।४९।। हे काम! इस अपने सहचर वसन्त और रति के साथ उद्यत हो महादेवजी को मोहित करो ।।५०।। हे पुत्र! मैं उस स्त्री को यत्न पूर्वक विचार कर कहूंगा, जो महादेवजी को मोहित करेगी ।।५१।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार मेरे कहने पर काम ने प्रसन्न हो कर मेरे चरणों में सपत्नीक प्रणाम किया ।।५२।। फिर दक्ष को तथा मन से उत्पन्न होने वाले मेरे पुत्रों को प्रणाम कर के जिस स्थान में महादेवजी गये थे, वहां मन्मथ गया ।।५३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

द्वितीये सतीखण्डे सन्ध्याचरित्रे वसन्तरूपवर्णनो नाम अष्टमोऽध्यायः ।।८।।

*****

नववाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले- अनुचरों के साथ उस काम के शिवजी के स्थान में जाने पर जो कुछ विचित्र चरित्र हुआ उसे सुनिये ।।१।। मोह करन वाले महावीर काम ने वहां जा कर अपने प्रभाव को विस्तारित कर के प्राणियों को मोहित कर लिया ।।२।। वसन्त ऋतु ने भी महादेवजी को मोहित करने वाला अपना प्रभाव किया, सभी वृक्ष एक साथ प्रफुल्लित हो गये ।।३।। रति के साथ काम ने नाना प्रकार यत्न किये । सब जीव वश हो गये, परन्तु शिवजी और गणेशजी वश न हुए ।।४।। इस प्रकार काम के सब प्रयास निष्फल हो गये और वह मद रहित हो कर अपने स्थान को चला गया ।।५।। मुझ ब्रह्मा को प्रणाम कर के अहङ्कार रहित उदासीन काम गद्गद वाणी से मुझ से बोला ।।६।। काम ने कहा- योगपरायण शम्भुजी मोहित होने वाले नहीं हैं। उन शम्भुजी को मोहित करने में दूसरों की और मेरी सामर्थ्य नहीं है ।।७।। मित्र सहित मैंने नाना उपाय किये, परन्तु रति के साथ सर्व उपाय शिवजी में निष्फल हो गये ।।८।। हे ब्रह्माजी! शिवजी के मोहन में जो कुछ उपाय हम ने किये वह कहता हूँ, उन प्रयासों को आप मुझसे सुनिये ।।९।। जब शिवजी समाधि लगा कर बैठ गये, तब अतिशीतल सुगन्धित वायु चलने लगी ।।१०।। मोहनकारी पवन से समाधिस्थ त्रिलोचन शिवजी को नित्य ही उद्वीजन किया ।।११।। अपने पाँच बाणों को ले कर शिवजी के सामने घूमता हुआ मैं उनके गणों को मोहित करने लगा ।।१२।। मेरे प्रवेश करते ही सब प्राणी वश हो गये, परन्तु गणों के सहित शिवजी वश न हुए ।।१३।। जब शिवजी हिमवान् पर्वत पर गये, हे विधि! उसी समय रति और वसन्त को साथ में ले कर मैं वहां गया ।।१४।। जब शिवजी मेरुपर्वत पर गये, तब मैं वहां गया, जब नागकेशर गये, तब मैं वहां गया, जब कैलास गये तब मैं वहां गया ।।१५।। जब शिवजी ने किसी भी प्रकार समाधि न छोड़ी, तब मैंने दो चक्र बनाये ।।१६।। हावभाव युक्त उस भ्रूयुगल ने स्त्री-पुरुष के क्रम से नाना प्रकारों के उत्तम भावों को किया ।।१७।। गणों के सहित नीलकण्ठ शिवजी के समीप स्थित मृग और पक्षियों ने मोहित हो कर नाना भाव किये ।।१८।। उनके चारों ओर नाना प्रकार की गतियों का आश्रयण कर के रसोत्सुक मयूरों ने वहां मैथुन किया ।।१९।। मेरे बाणों ने उन शिवजी में कदाचित् स्थान नहीं पाया, सत्य कहता हूँ, उनको मोहित करने में मेरी शक्ति नहीं है ।।२०।। उनके मोहन में युक्त जो कुछ कर्म वसन्त ने किये, सत्य-सत्य कहता हूँ, उनको सुनिये ।।२१।। चम्पक, केशर, कटहल, पाटल, नागकेशर, पुन्नाग, किंशुक, केतकी और कुरबक, मालती,

चमेली, पत्र, कुरबकों को जहां शिवजी बैठे थे, वहां प्रफुल्लित किया।।२२-२३।। शिवजी के आश्रम में फूले कमल वाले सरों को मलयागिरी के वायु से यत्न पूर्वक सुगन्धित कर दिया।।२४।। धतूरे के अंकुर के समूह और फूली हुई सब लतायें बड़े प्रेम से वृक्षों को लिपट गईं।।२५।। सुगन्धित पवनों से उन वृक्षों को प्रफुल्लित देख कर मुनि भी काम के वश हो गये, औरों की तो क्या बात है?।।२६।। इस प्रकार होने पर भी शम्भुजी के मोहन का कारण भावमात्र भी न देखा और अपने पर शंकरजी का कोप देख कर और उनकी भावना को जान कर शम्भुजी के मोह से जिस प्रकार मैं विमुख हुआ, वह आपसे कहता हूँ।।२७-२८।। कोप से मोहित समाधि को छोड़े हुए शम्भुजी के सम्मुख मैं ठहर न सका, भला उन्हें कौन मोह सकता है?।।२९।। जिनके जलती हुई शिखाओं से युक्त अग्नि के समान नेत्र हैं, ऐसे शृङ्गी को देख कर उनके समीप कौन ठहर सकता है?।।३०।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार काम के वचन सुन कर मैं चतुरानन (ब्रह्मा) चिन्ता में मग्न हो कर फिर कुछ पूँछने के लिये भी नहीं बोल सका।।३१।। मैं महादेवजी के मोहन में समर्थ नहीं हूँ, इस प्रकार काम का वचन सुन बड़े दुःख से मैं श्वास रहित हो गया।।३२।। फिर प्रकट हुए मेरे श्वास की पवन से चञ्चल जिह्वा को लपलपानेवाले नाना प्रकार के रूपधारी बड़े बली, बड़े भयंकर गण प्रकट हुए।।३३।। कोलाहल करने वाले असंख्य विकराल गण जो नाना प्रकार के पटहादि वाद्यों को बजाते थे।।३४।। मेरे श्वास से उत्पन्न हुए वे महागण मेरे समीप 'मारो, काटो' इस प्रकार का शब्द करने लगे।।३५।। मुझे मारने काटने का वाक्य सुन कर काम कुछ कहने के लिये तत्पर हो गया।।३६।। यह देख कर काम उनको निवारित कर के गणों के सम्मुख मुझसे बोला।।३७।। हे ब्रह्मन्! हे प्रजानाथ! सम्पूर्ण सृष्टि के प्रवर्तक! आपने इन विकराल भयङ्कर किन वीरों को उत्पन्न किया?।।३८।। हे ब्रह्माजी! इनका क्या काम है, यह कहां रहेंगे, इनका क्या नाम है? वह कहिये और वहां इनको नियोजित कीजिये।।३९।। हे देवेश! इनको अपने कृत्य में नियोजित कर के नाम और स्थान दे कर कृपा कर के जो उचित हो वह मुझे आज्ञा दीजिये।।४०।। ब्रह्माजी बोले-हे मुनि! मुझ लोककर्ता ने उसकी इस बात को सुन कर उन गणों को कर्मादिक की आज्ञा दे कर उस मदन से कहा।।४१।। ब्रह्माजी बोले- यह उत्पन्न होते ही बारंबार 'मारय मारय' इस प्रकार का वचन कहने लगे, इसलिये इनका नाम 'मार' हो।।४२।। यह गण सदैव जन्तुओं को विघ्न करें और नाना कामों में रत यह गण अपनी पूजा के बिना प्रसन्न न हों।।४३।। हे काम! सदा तुम्हारे अनुकूल रहना यह इनका मुख्य कर्म है और सदा तुम्हारे सहायक होंगे, इसमें सन्देह नहीं।।४४।। जब-जब जहां तुम अपने काम के लिये जाओगे, तब-तब वहां तुम्हारे सहायतार्थ जाया करेंगे।।४५।। तुम्हारे अस्त्र के वश में चलने वाले मनुष्यों के चित्त को भ्रमित कर दिया करेंगे और ज्ञानियों के ज्ञानमार्ग में सदा

विघ्न करेंगे ।।४६।। ब्रह्माजी बोले- यह मेरा वचन सुन कर रति और काम दोनों कुछ प्रसन्न हुए।।४७।। वह सुन कर सब गण मुझे और काम को छोड़ वहां कार्य के अनुकूल अपनी आकृति में बैठे।।४८।। यह कह कर ब्रह्माजी ने फिर काम से कहा कि, हे काम! तुम अनुत्तर हो कर मेरी आज्ञा का पालन करो, इनको साथ ले कर फिर महादेवजी के मोहन के लिये जाओ।।४९।। मन को स्थिर कर के मारगणों के साथ यत्न करो, जिससे स्त्री ग्रहणार्थ महादेवजी का मोहन हो।।५०।। हे नारदजी! यह वचन सुन कर, गौरव मान विनय पूर्वक मुझे प्रणाम कर के काम फिर बोला।।५१।। काम बोला- हे तात! मैंने युक्ति पूर्वक उनके मोहन के निमित्त सम्पूर्ण उपाय किये, परन्तु वे मोहित न हुए, न अब होंगे।।५२।। परन्तु आपकी आज्ञा से आपकी वार्ता का गौरव मान और मारगणों को देख कर मैं फिर उस समारोह में जाऊंगा।।५३।। हे ब्रह्माजी! मेरे मन में यह निश्चय है कि, उनका मोहन न होगा और मुझे शंका है कि, कदाचित वह मेरे शरीर को भस्म न कर दें।।५४।। हे मुनीश्वर! यह कह कर वसन्त, रति और मारगणों को साथ ले कर काम शिवजी के स्थान में गया।।५५।। और वहां जा कर पहले के समान काम और मधु ने बुद्धिमानी से बहुत प्रकार के उपाय और अपने प्रभावों को किया।।५६।। और मारगणों ने भी बहुत से उपाय किये, परन्तु परमात्मा शम्भुजी मोह को प्राप्त नहीं हुए।।५७।। तब निवृत्त हो कर काम फिर मेरे पास आया और गर्व व हर्ष रहित वे दोनों काम और मारगण वहां से आ कर मेरे सामने खड़े हो गये।।५८।। निरुत्सव हो कर मार और मधु दोनों मेरे समीप में बैठकर काम ने प्रणाम कर के मुझसे कहा कि।।५९।। महादेवजी के मोहन में पूर्व से अधिक कर्म किया, परन्तु ध्यान में रत आत्मा वाले शिवजी मोहित नहीं हुए।।६०।। उन दयालु निर्विकारी प्रभु ने पूर्वपुण्य के कारण मेरे शरीर को दग्ध नहीं किया।।६१।। हे ब्रह्माजी! यदि आपकी यह इच्छा है कि, महादेवजी स्त्री को ग्रहण करें, तो अहङ्कार रहित हो कर दूसरा उपाय कीजिये, यह मेरी सम्मति है।।६२।। ब्रह्माजी बोले- यह कह कर गर्व के देनेवाले दीनवत्सल शम्भुजी का स्मरण कर और मुझे प्रणाम कर काम सपरिवार अपने आश्रम को गया।।६३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

द्वितीये सतीखण्डे कामप्रभावमारगणोत्पत्तिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ।।९।।

*****

दसवाँ अध्याय

नारदजी बोले– हे ब्रह्मन्! हे विधे! हे महाभाग! शिवजी में आसक्त बुद्धि वाले आप धन्य हैं, परमात्मा श्रीशंकरजी का चरित्र आपने कहा।।१।। रति और गणों के सहित काम अपने आश्रम में चले जाने पर क्या हुआ, आपने क्या किया? वह चरित्र इस समय कहिये।।२।। ब्रह्माजी बोले– हे नारदजी! प्रसन्नता पूर्वक महादेवजी के चरित्र सुनिये, जिसके श्रवणमात्र से मनुष्य निर्विकार हो जाता है।।३।। काम सपरिवार अपने आश्रम में चले जाने पर उस समय जो चरित्र हुआ वह मुझसे सुनिये।।४।। हे नारद! श्रीशिवजी में अपना मनोरथ अपूर्ण देख कर मेरे हृदय में विस्मय उत्पन्न हो गया, मेरा मद नष्ट हो गया।।५।। मैं अपने चित्त में बहुत सोचता रहा कि, वह विकार रहित निजात्मा, योग में तत्पर शंकरजी किस प्रकार स्त्री को ग्रहण करें?।।६।। हे नारद! इस प्रकार बहुत सोच कर मद रहित होकर मैंने शिव आत्मा वाले, स्वदेह देने वाले हरिजी का भक्ति पूर्वक स्मरण किया।।७।। और दीन वाक्यों से युक्त उत्तम स्तोत्रों द्वारा स्तुति की। वह सुन कर भगवान् शीघ्र ही मेरे समीप प्रकट हो गये।।८।। जो चतुर्भुज, कमलनयन, शङ्ख, पद्म, गदाधारी, पीतपट धारण किये श्यामवर्ण अंग, भक्तप्रिय श्रीहरिजी।।९।। शरणागतवत्सल को बारंबार देख नेत्रों में जल भर कर गद्गद वाणी से फिर प्रेम पूर्वक स्तुति की।।१०।। मुझ ब्रह्मा को शरण आये हुए देख कर तथा मैंने की हुई स्तुति को सुन कर अपने भक्तों के दुःख का नाश करने वाले हरि प्रसन्न हो कर मुझसे बोले।।११।। हरि बोले– हे विधे! हे ब्रह्मन्! हे महाप्राज्ञ! हे लोक के कर्त्ता! आप धन्य हो। किस लिये मेरा स्मरण कर के स्तुति करते हो?।।१२।। आपको क्या दुःख हुआ? वह मेरे सम्मुख कहिये, वह सब मैं नाश करूंगा, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है।।१३।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार विष्णुजी का वचन सुन कर कुछ उलटी श्वास ले कर हाथ जोड़, प्रणाम कर, विष्णुजी से मैं बोला।।१४।। ब्रह्माजी बोले– हे देवों के देव! हे रमानाथ! हे मान के देने वाले! मेरी वार्ता को सुन कर कृपा कर मेरा दुःख दूर कर सुखी कीजिये।।१५।। हे विष्णुजी! रुद्र के सम्मोहनार्थ मैंने सपरिवार मारगण और वसन्त के साथ काम को भेजा था।।१६।। उन्होंने जा कर वहां बहुत से उपाय किये, परन्तु वह सब निष्फल हो गये, उन समदर्शी योगी को मोह नहीं हुआ।।१७।। शिवतत्त्व विशारद सर्वज्ञ विज्ञ श्रीहरिजी इस प्रकार मेरे वचन सुन कर विस्मित हो कर मुझसे बोले।।१८।। विष्णुजी बोले– हे पितामह! किस कारण इस प्रकार की आपकी बुद्धि हुई? हे ब्रह्मन्! यह सब विचार कर के

मुझसे सत्य-सत्य कहिये ।।१९।। ब्रह्माजी बोले- हे तात! उस चरित्र को सुनिये, मोहन करने वाली आपकी माया है, जिसके अधीन सम्पूर्ण जगत् है और वही सुख-दुःखों को देने वाली है ।।२०।। उसी ने मुझे पाप करने के लिये उद्यत किया। हे देवेश! सो मैं आपकी आज्ञा से कहता हूँ ।।२१।। सृष्टि के प्रारम्भ में दक्षादिक दश पुत्र उत्पन्न हुए और वाणी के द्वारा एक अत्यन्त सुन्दर कन्या उत्पन्न हुई ।।२२।। छाती से धर्म, मन से काम, देह से और बहुत हुए। हे हरि! तब उस कन्या को देख कर मुझे मोह उत्पन्न हुआ ।।२३।। और आपकी माया से मोहित हो कर मैंने उस कन्या को कुदृष्टि से देखा, तब उसी समय महादेवजी ने आकर मुझे और मेरे पुत्रों को बहुत धिक्कारा ।।२४।। हे नाथ! ऐसे ज्ञानी योगी भोग रहित इन्द्रिजित परमप्रभु ने अपना समझ कर सबको धिक्कार दिया ।।२५।। हे हरे! मेरे पुत्र हो कर सबके सम्मुख मेरी निन्दा की यह मुझे बड़ा दुःख है, वही आपके सम्मुख कहा ।।२६।। हे केशव! वह स्त्री का ग्रहण करें, तब मेरे दुःख दूर हों और मैं सुखी होऊँ, इसी लिये मैं आपकी शरण आया हूँ ।।२७।। ब्रह्माजी बोले- मुझ ब्रह्मा के इस प्रकार वचन सुन कर मधुसूदन भगवान् ने हँस कर संसार के करने वाले मुझे प्रसन्न करते हुए शीघ्र कहा ।।२८।। विष्णुजी बोले- हे विधि! सम्पूर्ण वेद और आगमों का सम्मत परम अर्थ से युक्त सम्पूर्ण भ्रमों को निवारण करने वाला मेरा वचन सुनिये ।।२९।। हे विधि! आप सम्पूर्ण लोकों के कर्त्ता और वेद के वक्ता हो कर महामूढ़मति कैसे हो गये?।।३०।। हे मन्दात्मा! जड़ता को छोड़ो, ऐसी बुद्धि मत करो। आप स्मरण कीजिये कि, सम्पूर्ण वेदस्तुति के द्वारा उन्हें क्या कहते हैं?।।३१।। हे खलबुद्धि! रुद्र परमेश्वर को अपना पुत्र जानते हो, हे विधि! आप अखिल वेदों के वक्ता हो कर भी विज्ञान को भूल गये ।।३२।। शंकरजी को सामान्य देवता समझ कर उनसे द्रोह करते हो, आपकी उत्तम बुद्धि नष्ट हो गई और आप में कुमति का आविर्भाव हुआ ।।३३।। निगम में कहे हुए कल्याण के देने वाले तत्त्व के सिद्धान्त को यथार्थ निर्णय कर आपसे कहता हूँ, सो उसे चित्त दे कर सुनिये ।।३४।। शिवजी सबके कर्त्ता, देने वाले और हर्त्ता, परे से परे परब्रह्म, परम ईश, निर्गुण, नित्य, अनिर्देश्य, विकार रहित, परमात्मा, द्वैतभाव से रहित, अच्युत, अनन्त ॐ कार, यम के स्वामी, सर्वव्यापक परमेश्वर हैं ।।३५-३६।। सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, विनाश के कारण के तीनों गुणों से युक्त संसार के स्वामी, ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन नामों को धारण करने वाले, सत्त्व, रज, तम से परे ।।३७।। माया से भिन्न, निरीह, माया की माया को जानने वाले गुणों से युक्त, स्वतन्त्र, अपने ही में आनन्द मानने वाले निर्विकल्पक ।।३८।। अपने ही में रमण करने वाले, निर्द्वन्द्व, भक्त के आधीन, उत्तम शरीर वाले योगी, योग में रत, नित्य योगमार्ग को दिखाने वाले ।।३९।। गर्व को हरने वाले, सम्पूर्ण लोकों के पति, सदैव दीनों पर प्रसन्न होने वाले इस प्रकार

के जो स्वामी हैं, आप उन्हें पुत्र मानते हो?।।४०।। इस अपने अज्ञान को छोड़ कर उनकी शरण में जाओ और सब प्रकार आत्मा से शम्भुजी का भजन कीजिये, वह आपको सन्तोष देंगे।।४१।। हे ब्रह्मन्! यदि आपका विचार है कि, शिवजी स्त्री को ग्रहण करें, तो पार्वती के उद्देश्य से शिवजी का स्मरण कर के तप कीजिये।।४२।। अपने काम का उद्देश्य कर के हृदय में पार्वती का ध्यान कीजिये। यदि वह भगवती प्रसन्न होगी तो आपके सब काम पूर्ण होंगे।।४३।। वह पार्वती अवतार लेकर गुण से युक्त हो कर लोक में किसी की मानुषीकन्या होगी, तब वह शीघ्र ही शिवजी की पत्नी होगी।।४४।। हे ब्रह्मन्! आप दक्ष को तप करने के लिये आज्ञा दीजिये। वह पार्वती को उत्पन्न करने के लिये युक्ति से भक्ति पूर्वक तप करें।।४५।। हे तात! उन दोनों शिवा–शिव को भक्त के अधीन जानिये, वह परब्रह्म स्वरूपी अपनी इच्छा से सगुण होते हैं।।४६।। ब्रह्माजी बोले– यह कह कर उसी क्षण अपने प्रभु शिवजी का स्मरण कर के उनकी कृपा से ज्ञान को पा कर मुझे बोले।।४७।। विष्णुजी बोले– हे विधि! उनकी इच्छा से उत्पन्न हुए हम दोनों के प्रार्थना करने पर शंकरजी ने जो वचन कहे थे, उनका स्मरण कीजिये।।४८।। वह शंकरजी की माया धन्य है, जिसके द्वारा मोहित हो कर वह सब भूल गये जो शिवजी के बिना दुःख से जानने योग्य है।।४९।। जब निर्गुण शिवजी अपनी इच्छा से सगुण हुए, तब मुझे और आपको उत्पन्न कर के अपनी शक्ति में विहार करने लगे।।५०।। हे ब्रह्मन्! तब उत्पन्न करने वाले अव्यय प्रभु शंकरजी ने आपको सृष्टि करने का कार्य और मुझे उनके पालन का उपदेश दिया।।५१।। हाथ जोड़, नतमस्तक हो, आप और हम दोनों ने शिवजी के समीप जा कर यह कहा कि, इच्छा से अवतार लेने वाले, सगुण रूपों को धारण करने वाले, सबके ईश आप ही हैं।।५२।। इस प्रकार कहने पर नाना लीलाओं में प्रवीण, करुणा से युक्त वे शिवजी हँस कर स्वर्ग को देख कर बड़ी प्रसन्नता से बोले।।५३।। विष्णुजी मेरा ही रूप हैं, इसी प्रकार विधि से प्रकट हो कर लोक में रुद्र नाम से प्रसिद्ध होने वाला भी मैं ही हूँ।।५४।। वे लय करने वाले, मेरे पूर्ण रूप निर्विशेष योगों को करने वाले गुणों के स्वरूप, आप लोगों के कार्य को पूर्ण करने वाले, सब लोगों से पूजनीय हैं।।५५।। विष्णु, ब्रह्मा, शिव मेरे ही रूप हैं, परन्तु विशेष कर हर मेरे पूर्ण रूप हैं। पार्वतीजी के भी इसी प्रकार तीन रूप होंगे।।५६।। विष्णुजी की लक्ष्मी, ब्रह्माजी की सरस्वती, शिवजी की पूर्ण रूप सती होंगी।।५७।। विष्णुजी बोले– कृपा करने वाले महेश्वरजी यह कह कर अन्तर्धान हो गये, फिर अपने कार्य में मग्न हम और आप सुखी हुए।।५८।। हे ब्रह्मन्! समय पा कर हम दोनों सपत्नीक हो गये और शंकरजी ने रुद्र नाम से कैलास पर्वत पर अवतार लिया है।।५९।। अब उनके उत्पादनार्थ यत्न कीजिये, जिसमें शिवा पार्वती प्रजेश दक्ष के यहां सती नाम से अवतार ले।।६०।।

अत्यन्त करुणा कर के इस प्रकार कह कर विष्णुजी अन्तर्धान हो गये, तब मैं अहङ्कार से मुक्त हो कर अधिक प्रसन्न हुआ।।६१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
द्वितीये सतीखण्डे ब्रह्माविष्णुसंवादो नाम दशमोऽध्यायः।।१०।।

*****

ग्यारहवाँ अध्याय

नारदजी बोले– हे ब्रह्मन्! हे तात! हे महाप्राज्ञ! हे वक्ताओं में श्रेष्ठ! विष्णुजी के जाने पर क्या हुआ, आपने क्या किया ? सो मुझे कहिये।।१।। ब्रह्माजी बोले– हे श्रेष्ठ विप्रपुत्र! विष्णुजी के जाने पर भगवती के निमित्त जो मैंने किया, वह आप सावधान हो कर सुनिये।।२।। विद्या का स्वरूप, शुद्ध परब्रह्मरूप शिवजी की प्रिया दुर्गा, संसार की माता देवीजी की सदा मैं स्तुति करता रहा।।३।। हे सर्वस्थानवासिनी! नित्य अवलंब रहित निराकुल, तीनों देवताओं को उत्पन्न करनेवाली, स्थूल से स्थूल रूप रहित भगवती आपको नमस्कार है।।४।। चिति परम आनन्द परमात्मा के रूप को धारण करने वाली आप, प्रसन्न हो कर मेरा कार्य करें, आपको नमस्कार है।।५।। ब्रह्माजी बोले– हे मुनि! मेरे इस प्रकार स्तुति करने पर योगनिद्रा चण्डिका मेरे सम्मुख प्रकट हो गई।।६।। चिकने अंजन के समान जिनकी द्युति, सुन्दर दिव्य रूप, चतुर्भुज, सिंहासन पर सवार, वर को हाथ में लिये, मुक्तामणि के समान, बालों का टेढ़ापन।।७।। शरत्काल के चन्द्रमा के समान उत्तम मुखचन्द्रमा, मस्तक पर तीन नेत्र, सम्पूर्ण अंग सुन्दर कमल के समान, चरणों के नखों की द्युति।।८।। हे मुनि! मैं उस शिवजी की शक्ति उमा को सम्मुख देखकर साष्टांग प्रणाम करके स्तुति करने लगा।।९।। ब्रह्माजी बोले-- जगत् की प्रवृत्ति–निवृत्ति–स्थिति रूप को धारण करने वाली, चर और अचरों की सनातनी शक्ति, सबको मोहित करने वाली आपको नमस्कार है।।१०।। जो लक्ष्मी सदा भगवान् के मूर्त्ति की माला, संसार का पालन करने वाली और सब को धारण करने वाली है, जो आप पहले सृष्टि करने वाली, हरने वाली और गुणों के द्वारा तीनों लोकों से परे।।११।। जो योगियों के चित्त की हेतु और परमाणुओं का सार है, उस आपको नमस्कार है, यमादिक और योगियों के पवित्र हृदय में जो विराजमान, जिसे योगी ध्यानमार्ग से देखते हैं।।१२।। शुद्ध प्रकाश से युक्त, मोह रहित नाना प्रकार के अवलम्बों से युक्त वह विद्या आप ही हैं, कूट में स्थित अव्यक्त, बहुत से रूपों को धारण करने वाली आप काल रूप से संसार को धारण करती हैं।।१३।। निश्चय से सम्पूर्ण

प्राणियों में नित्य ही गुण से युक्त विकार के बीज को प्रकट करती हो, हे पार्वती! आप तीनों गुणों की निदानभूत हो और उससे परे हो ।।१४।। सत्त्व-रज-तम इन तीनों गुणों के विकार से हीन, आप संसार के गुणों की एक हेतु ब्रह्म को धारण करने वाली, आप रक्षा करो ।।१५।। सम्पूर्ण संसार का बीज जानने वाली और ज्ञान की स्वरूप, संसार की हित, शिवजी की पत्नी, आपको नमस्कार है ।।१६।। ब्रह्माजी बोले- यह मेरा वचन सुन संसार की पूज्य काली प्रीति पूर्वक मुझ संसार को उत्पन्न करने वाले ब्रह्मा से बोली ।।१७।। देवी बोली- हे ब्रह्मन्! किस लिये आपने मेरी स्तुति की? यदि वह कथन करने योग्य हो, तो मेरे समीप शीघ्र कहिये ।।१८।। मेरे प्रत्यक्ष होने पर संसार के कार्य सिद्ध होते हैं यह निश्चित है, इस लिये आप अपना मनोरथ कहिये, जिसे मैं प्रसन्नता से करूं ।।१९।। ब्रह्माजी बोले- हे देवि! हे महेशानि! मुझ पर कृपा कर के सुनिये। हे सर्वज्ञे! आपकी आज्ञा से मैं अपने मनोरथ को कहता हूँ ।।२०।। हे देवेशि! जो आपके पति, पहले मेरे मस्तक से हुए थे, वह रुद्र नाम के शिवयोगी कैलास में विद्यमान हैं ।।२१।। जो प्राणियों में एक ही विकल्प रहित तप करते हैं, वह अपत्नीक विकार रहित दूसरे की इच्छा नहीं करते ।।२२।। उनको आप मोहित कीजिये, जिससे वे दूसरे की ओर देखें, आपको छोड़ कर अन्य दूसरी उनके मन को हरनेवाली कोई न हो ।।२३।। हे शिवे! इस लिये आप ही दक्ष की कन्या हो कर, रूप के द्वारा हर को मोहित कर रुद्र की पत्नी हो ।।२४।। जिस प्रकार लक्ष्मी का रूप धारण कर विष्णुजी को प्रसन्न करती हो, उसी प्रकार संसार के हित के लिये उनको भी वैसा ही करो ।।२५।। हे देवि! कान्ता की अभिलाषामात्र ही देख कर महादेवजी ने मेरी निन्दा की, सो वह अपनी इच्छा से किस प्रकार स्त्री को ग्रहण करेंगे?।।२६।। और महादेवजी के स्त्री ग्रहण करने पर भी कैसे उत्तम सृष्टि होगी? क्योंकि आदि-मध्य-अन्त इन तीनों अवस्था में वह विराग युक्त हैं ।।२७।। इस प्रकार चिन्ता से युक्त मुझे आपके सिवाय दूसरे की शरण हित नहीं है, इस कारण संसार के हित के निमित्त यह कीजिये ।।२८।। न विष्णु, न लक्ष्मी, न काम, न मैं उनके मोहन में समर्थ हुआ। हे जगन्माता! आपके बिना अन्य दूसरा कोई समर्थ नहीं है ।।२९।। हे महेश्वरी! इस लिये आप दिव्यरूप वाली दक्ष की कन्या हो कर मेरी भक्ति से उन योगी महेश्वरजी की स्त्री हो ।।३०।। हे देवेशि! क्षीरसागर के उत्तर तीर पर दक्ष दृढ़व्रत हो कर अपने मन को लगा कर आप ही के उद्देश्य से तप करते हैं ।।३१।। ब्रह्माजी बोले- यह मेरा वचन सुन कर शिवा चिन्ता को प्राप्त हो गयी और वह जगदम्बिका अपने मन में सोचने लगी ।।३२।। देवी बोली- अहो यह बड़ा आश्चर्य है कि, वेद के वक्ता संसार को रचने वाले विधाता महा अज्ञान से युक्त हो कर क्या कह रहे हैं?।।३३।। यह सुख रहित महामोह विधि के चित्त में उत्पन्न हुआ, जिससे निर्विकार शिवजी को मोहित करना चाहते हैं ।।३४।। महादेवजी के मोह का

वर मुझ से ब्रह्माजी चाहते हैं, उन संसार के स्वामी निर्मोह निर्विकल्प के मोहन करने में क्या लाभ है?।।३५।। वह परब्रह्म शिवजी निर्गुण, विकार रहित हैं, मैं सदा उनकी आज्ञा की वशवर्तिनी दासी हूँ।।३६।। वह स्वतन्त्र परमेश्वर भक्त के उद्धार के हेतु शिवजी पूर्णरूप से रुद्र हुए।।३७।। वह हरि और विधि के स्वामी शिवजी किसी प्रकार से कम नहीं हैं, वह योगी माया से रहित और माया के स्वामी परे से भी परे हैं।।३८।। अज्ञान से मोहित ब्रह्माजी ऐसे रुद्र को अपना पुत्र मान कर सामान्य देवता के सदृश जान कर मोहन करने की इच्छा करते हैं।।३९।। यदि मैं वर न दूं, तो वेद की नीति भ्रष्ट होती है, मैं क्या कहूं जिसमें वह स्वामी महेश्वरजी क्रुद्ध न हों?।।४०।। ब्रह्माजी बोले– शिवा ने यह सोच कर, महादेवजी का स्मरण कर, महादेवजी की आज्ञा को पा कर दुर्गा ने मुझसे कहा।।४१।। दुर्गा बोली– हे ब्रह्मन्! जो आपने कहा सब सत्य है, मुझे छोड़ शंकरजी को मोहित करने वाली दूसरी नहीं है।।४२।। और यह आपका कथन सत्य है कि, महादेवजी के स्त्री ग्रहण न करने पर सनातनी सृष्टि न होगी।।४३।। मैं भी उन महाप्रभु के मोहन में समर्थ नहीं हूँ, परन्तु आपके वाक्य से मुझमें द्विगुण प्रयत्न हुआ।।४४।। हे विधि! मैं वह उपाय करूंगी, जिससे शंकरजी मोहित हो कर स्वयं स्त्री का ग्रहण करे।।४५।। जिस प्रकार महाभागा लक्ष्मीजी विष्णुजी की प्रिया है, उसी प्रकार मैं सती का रूप धारण कर के उनकी वशवर्तिनी होऊंगी।।४६।। और उन्हीं की कृपा से मैं वह उपाय करूंगी, जिससे वह सदा मेरे वशवर्ती रहें।।४७।। हे पितामह! दक्ष की स्त्री में सती रूप से उत्पन्न हो कर, मैं लीला ही से शंकरजी को जीत लूंगी।।४८।। जिस प्रकार दूसरे जन्तु स्त्री के वश में होते हैं, उसी प्रकार मेरी भक्ति से वह महादेवजी स्त्री के वश हो जायेंगे।।४९।। ब्रह्माजी बोले– हे तात! मुझसे यह कह कर वह जगत् की माता पार्वती मेरे देखते ही देखते अन्तर्धान हो गई।।५०।। उनके अन्तर्धान हो जाने पर मुझ संसार के पितामह ब्रह्मा ने अपने पुत्रों के पास आकर सब कहा।।५१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

द्वितीये सतीखण्डे दुर्गास्तुतिब्रह्मवरप्राप्तिवर्णनंनामैकादशोऽध्यायः।।११।।

*****

बारहवाँ अध्याय

नारदजी बोले- हे ब्रह्माजी! हे प्राज्ञ! हे पाप रहित! हे शिवभक्त! आपने कल्याण देने वाले पार्वती और शिवजी के चरित्र को कहा और मेरा जन्म पवित्र किया।।१।। इस समय यह कहिये कि, दृढ़व्रत दक्षजी ने शिवजी का तप करके किस वर को प्राप्त किया और शिवा कैसे दक्ष की कन्या हुई ?।।२।। ब्रह्माजी बोले- हे नारदजी! आप सब मुनियों में धन्य हैं, जैसे दक्ष ने तप किया और वर पाया सो भक्ति से सुनिये।।३।। मेरी आज्ञा से दक्ष ने उस काम के लिये जगत् की माता देवी की धारणा कर दर्शन के निमित्त क्षीरोद के उत्तर तीर पर उनको मन में धारण कर प्रत्यक्ष जगदम्बिका को देखने के लिये तप करना प्रारम्भ किया।।४-५।। दक्ष ने तीन हजार वर्ष तक नियतात्मा और दृढ़ता से नियम पूर्वक तप किया।।६।। उस जगन्मयी शिवा का ध्यान करते हुए दक्ष ने पत्ते और वायु भक्षण करते और निराहार होकर समय व्यतीत किया।।७।। शिवा के ध्यान में कदाचित् बहुत दिन तक अनेक नियमों से देवी का आराधन करते हुए तप करने लगे।।८।। हे मुने! यमादिकों से युक्त जगदम्बा का पूजन करते हुए दक्ष के सामने शिवा प्रकट हो गईं।।९।। जगन्मयी जगत् की माता शिवा को देख कर प्रजापति दक्ष ने अपने को कृतकृत्य माना।।१०।। सिंह पर बैठी हुई, कृष्णवर्ण सुन्दर मुखवाली, चार भुजा धारण करने वाली, वर देने वाली, नीलकमल के समान हस्त में खड्ग धारण किये हुए, मनोहर लाल नेत्र वाली, खुले केश, जगत् की सृष्टि की कारणी, सुन्दर कान्ति वाली शिवा को प्रणाम कर, दक्ष ने विचित्र वाणियों से शिवा की स्तुति की।।११-१२।। दक्ष बोले- हे जगन्माता! हे महामाया! हे जगत् की स्वामिनी! हे महेश्वरी! आपने बड़ी कृपा कर के अपना सदेह दर्शन दिया है, इस कारण आपको नमस्कार है।।१३।। शिवस्वरूपिणी, आद्या शक्ति, भक्तों को वर देने वाली, संसार की माता आप प्रसन्न हो, आपके लिए नमस्कार है।।१४।। ब्रह्माजी बोले- व्रतसंयम वाले दक्ष द्वारा इस प्रकार स्तुति की हुई शिवा, उस दक्ष के ईप्सित को जान कर, दक्ष से बोली।।१५।। देवी बोली- हे दक्षजी ! आपकी इस सद्भक्ति से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ, स्वाभीष्ट वर मांगो, आपके लिए कुछ भी अदेय नहीं।।१६।। ब्रह्माजी बोले- प्रजापति दक्षजी जगदम्बा के वचन को सुन कर महाप्रसन्न हो कर शिवा को प्रणाम करते हुए बोले।।१७।। दक्ष बोले- हे जगन्माता! हे महामाया! यदि आप प्रसन्न हो, तो मेरे वचन को सुनिये और प्रसन्नता से मेरे काम को पूर्ण कीजिये।।१८।। जो शिवजी मेरे स्वामी हैं, वे परमात्मा ब्रह्म के पूर्ण अवतार ब्रह्माजी के पुत्र रूप से हुए हैं।।१९।। हे शिवे!

आपका अन्य अवतार नहीं हुआ है, उनकी स्त्री कौन हो? अतः आप ही पृथ्वी पर अवतार ले कर उन्हें मोहित कीजिये ।।२०।। आपको छोड़ कर उनको मोहित करने की किसी की शक्ति नहीं है, इस लिये आप मेरी पुत्री हो कर शिवजी की पत्नी होवें ।।२१।। इस प्रकार लीला कर के आप हरमोहिनी होवें, यही हमारा वर है, सो आपके सामने सत्य कहा ।।२२।। ब्रह्मा-विष्णु-शिवजी और सर्व संसार के कल्याण ही के लिये केवल ब्रह्माजी ने मुझे भेजा है ।।२३।। ब्रह्माजी बोले- ऐसे दक्ष के वचन सुन कर शिवजी को मन में स्मरण करते जगदम्बा शिवा हँस कर बोली ।।२४।। देवी बोली- हे पुत्र! हे प्रजापति दक्ष! सुनो, तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हो कर मैं सत्य कहती हूँ ।।२५।। आपकी भक्ति से वशीभूत मैं, आपकी स्त्री में आपकी पुत्री होऊंगी, इसमें सन्देह नहीं है ।।२६।। ऐसा दुःसह तप कर के यत्न करूंगी, जिस तप से वर पा कर शिवजी की पत्नी हो जाऊं ।।२७।। ब्रह्मा, विष्णुजी से सेवित निर्विकारी उन पूर्ण शिवजी में बिना तप के कार्यसिद्धि न होगी ।।२८।। मैं उनकी प्रत्त्येक जन्म में दासी ही हूँ और नाना रूप धारण करने वाले वे मेरे पति हैं ।।२९।। ब्रह्माजी के वर के प्रभाव से वे रुद्र हुए हैं, मैं भी उन्हीं के वर और आज्ञा से अवतार लूंगी ।।३०।। हे पुत्र! घर जाओ, शीघ्र ही मैं आपकी कन्या हो कर शिवपत्नी होऊंगी ।।३१।। इस प्रकार दक्षजी को वर दिया और घर जाने की आज्ञा दे कर, शिवजी के चरणारविन्द को स्मरण करते हुए शिवा फिर बोली ।।३२।। हे दक्षजी! मेरे प्रण को चित्त से याद रखो कि, मैं जो कुछ कहती हूँ वह सत्य ही है, झूंठ न समझना ।।३३।। यदि आप मेरा निरादर करेंगे, तो मैं अपना शरीर छोड़ दूंगी, मैं अपने में वशीभूत हूँ ।।३४।। हे दक्षजी! मैं प्रत्त्येक सृष्टि में आपकी सुता हो कर शिवजी की पत्नी होऊंगी, यह वर आपको दिया ।।३५।। ब्रह्माजी बोले- मुख्य प्रजापति दक्ष से यह कह कर महेशानि शिवा शीघ्र ही दक्ष के देखते हुए अन्तर्धान हो गई ।।३६।। दुर्गाजी के अन्तर्धान होने पर दक्ष भी अपने आश्रम को चले गये, यह हमारी सुता होंगी यह मान कर हर्ष को प्राप्त हुए ।।३७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

द्वितीये सतीखण्डे दक्षवरप्राप्तिवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

*****

तेरहवाँ अध्याय

नारदजी बोले– हे ब्रह्मन्! हे विधे! हे महाप्राज्ञ! हे वर्णन करने वालों में श्रेष्ठ! प्रीति पूर्वक कहिये कि, दक्ष के घर जाने पर क्या हुआ?।।१।। ब्रह्माजी बोले– प्रसन्न हो कर घर जाने पर दक्ष ने मेरी आज्ञा से बहुत सी मानसी सृष्टि की रचना की।।२।। उस प्रजासर्ग को न बढ़ता हुआ देख कर, प्रजा उत्पन्न करने वाले मुझ ब्रह्मा से दक्ष बोले।।३।। दक्ष बोले– हे ब्रह्मन्! हे तात! हे प्रजानाथ! मैंने बहुत विचार कर देखा है कि, आपके प्रजा की वृद्धि नहीं होती, उतनी ही विद्यमान हैं।।४।। हे प्रजानाथ! मैं क्या करूं? अपने को किस प्रकार बढ़ाऊं? वह उपाय आप बताइये, जिससे मैं निःसन्देह प्रजा की सृष्टि करूं।।५।। ब्रह्माजी बोले– हे दक्ष प्रजापति! हे तात! मेरा वचन सुनो, तुम वही करो, शिवजी तुम्हारा कल्याण करेंगे।।६।। हे प्रजापति! जो पंचजन के अंग से उत्पन्न असिक्नी नाम की कन्या है, हे प्रजेश! उसे तुम स्त्री कर के ग्रहण करो।।७।। स्त्री के व्यवाय रूपी धर्म के द्वारा फिर इस प्रजासर्ग को करो और तुम उस कामिनी में बहुत से भाव करो।।८।। ब्रह्माजी बोले– फिर मेरी आज्ञा से मेरे पुत्र ने मैथुनधर्म के द्वारा वीरिणी से प्रजा को उत्पन्न करना प्रारम्भ किया।।९।। और प्रजापति ने उस अपनी वीरिणी स्त्री में हर्यश्व नाम के पुत्रों को उत्पन्न किया।।१०।। हे मुनि! वह पुत्र वेद मार्ग में परायण पिता के समान धर्म वाले, नित्य ही पिता की भक्ति में रत हुए।।११।। वह सब दक्ष के द्वारा उत्पन्न होने वाले पुत्र, पिता की आज्ञा से प्रजा उत्पन्न करने के निमित्त तप करने के निमित्त पूर्व दिशा को गये।।१२।। वे उत्तम सिन्धुसमुद्र संगम में नारायणसर नामक परम पवित्र तीर्थ पर गये।।१३।। जिसके स्पर्शमात्र से बुद्धि निर्मल हो कर मल के आशयों से छूट कर परमहंसधर्म में स्थित हो कर।।१४।। पिता की आज्ञा से दक्ष के पुत्र दृढ़व्रत हो कर प्रजावृद्धि करने के उद्देश्य से वहां उत्तम तप करने लगे।।१५।। हे नारदजी! तब आप उनको सृष्टि के निमित्त तप करते हुए जान कर लक्ष्मीपति के हार्द को जान कर वहां गये।।१६।। और दक्ष के पुत्र हर्यश्वादिकों से सत्कार पूर्वक बोले कि, पृथ्वी को बिना देखे हुए किस प्रकार सृष्टि करने के निमित्त उद्यत हो गये हो?।।१७।। ब्रह्माजी बोले– तब हर्यश्वों ने आपकी बात को सुन, सृष्टि उत्पन्न करने वाली बुद्धि को स्वयं भूल गये।।१८।। पिता द्वारा उपदेश किये हुए निवृत्ति देनेवाले उत्तम शास्त्र को जो नहीं जानता, वह गुण रहित किस प्रकार सर्ग को कर सकता है?।।१९।। उत्तम बुद्धि व एक ही चित्तवाले वह पुत्र यह निश्चय कर परिक्रमा व प्रणाम कर ऐसे मार्ग में गये, जहां से लौट न सके।।२०।। हे नारद मुने! लोकों में

घूमने वाले शंकरजी के मन आप निर्विकारी शंकरजी के मन की वृत्ति को सदा करने वाले हैं।।२१।। फिर बहुत काल बीत जाने के पश्चात् मेरे पुत्र प्रजापति, अपने हर्यश्वादिक पुत्रों का नाश जान कर नारदजी से क्रुद्ध हुए।।२२।। आप पवित्र पद वाले उत्तम प्रजा से युक्त, इस प्रकार बारंबार कह कर शिवजी की माया से मोहित दक्ष अत्यन्त शोक करने लगे।।२३।। तब मैंने आ कर अपने पुत्र दक्ष को दैव की प्रबलता बता कर शान्ति का भाव दिखा कर प्रीति पूर्वक शान्त किया।।२४।। मेरे द्वारा शान्त किये हुए दक्ष ने पञ्चजन्या में सबलाश्व नाम वाले हजारों पुत्र उत्पन्न किये।।२५।। पिता की आज्ञा से दृढ़व्रत वह पुत्र भी वहीं गये, जिस सिद्धाश्रम में प्रजा उत्पन्न करने के लिये उनके पहले भाई गये थे।।२६।। उसके स्पर्श से पाप को नष्ट कर, निर्मल बुद्धि हो कर उत्तम व्रत से ब्रह्म को जपते हुए कठिन तप करने लगे।।२७।। ईश्वर की गति का स्मरण कर, उनको प्रजासर्ग में उद्यत जान कर आप नारदजी ने वहां जाकर पहले ही के समान उनसे भी कहा।।२८।। हे मुने! आपने उन्हें भी भाइयों के मार्ग को दिखाया, तब वे पुत्र भी अपने बड़े भाइयों के मार्ग को चले गये।।२९।। वह प्रजापति अपने उत्पन्न किये हुए बहुत से पुत्रों को न आया देख कर मेरे पुत्र दक्ष विस्मय को प्राप्त हो कर, मन में दुःखी होते हुए।।३०।। पहले के समान आपके किये को सुन कर चकित हो कर पुत्रों का नाश जान कर शोक करते, दक्ष पुत्र के शोक से मूर्छित हो गये।।३१।। क्रोध कर दक्ष ने आपको कहा कि, यह दुष्ट है। उसी समय अनुग्रह करने वाले देवता आ गये।।३२।। शोक से आविष्ट और क्रोध से जिसके होंठ हिल रहे हैं, ऐसे दक्ष ने उनके समीप धिक्कार पूर्वक आपकी निन्दा की।।३३।। दक्षजी बोले— हे अधमश्रेष्ठ! यह आपने क्या किया? हे भिक्षुक! यह कैसा विरक्त करने वाला मार्ग मेरे पुत्रों को आपने दिखाया?।।३४।। आप शठ ने दोनों लोकों में मेरे पुत्रों को तीन प्रकार के ऋणों से अमुक्त किया और हे निर्दय! आपने मेरे इस कल्याण में घात किया।।३५।। बिना तीनों ऋणों से छुट्टी पाये, जो मनुष्य माता–पिता को छोड़ कर मोक्ष की इच्छा कर, घर से विरक्त होने की इच्छा से जाता है, वह नीची गति को प्राप्त होता है।।३६।। हे निर्दय! हे निर्लज्ज! हे यश का नाश करने वाले! आपने पुत्रों की बुद्धि का भेद किया, हे मूर्ख! तू हरि के पार्षदों में वृथा फिरते हो।।३७।। हे अधमाधम! आपने बार–बार मेरा अकल्याण किया है, इस लिये घूमने से संसार में आपका पैर स्थिर न रहे।।३८।। शिवजी की माया से मोहित ईश्वर की इच्छा को न जान कर, पवित्रता पूर्वक दक्ष ने आपको शाप दिया।।३९।। हे मुनि! निर्मल बुद्धि वाले आपने शाप को ग्रहण किया, ब्रह्मज्ञानी साधु इसी प्रकार स्वयं सहन करते हैं।।४०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

द्वितीये सतीखण्डे दक्षसृष्टि नारदशापवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः।।१३।।

चौदहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– हे मुने! उसी समय लोकपितामह मैं देवचरित्र जानने के लिये शीघ्र वहां गया।।१।। पहिले के समान जब मैंने दक्ष को शान्त किया, तब वह उत्तम प्रीति को धारण करते हुए आपसे उत्तम स्नेह करने लगे।।२।। देवताओं के प्रिय अपने पुत्र, मुनियों में श्रेष्ठ, आपको प्रीतिपूर्वक समझा कर साथ में ले कर मैं अपने स्थान को आया।।३।। तत्पश्चात् प्रजापति दक्ष ने अपनी स्त्रियों से साठ कन्याएं उत्पन्न कीं।।४।। हे मुनीश्वर! दक्ष ने उनका विवाह धर्मादिकों से किया, वह मैं प्रीतिपूर्वक कहता हूँ, सुनिये।।५।। दक्ष ने दश कन्याएं धर्म को दीं और तेरह कश्यप को और अत्रिमुनि को उन्नीस दीं।।६।। भूतांगिरस और कृशाश्व को दो–दो कन्याएं दीं और शेष कन्याएं तार्क्ष्य (गरुड) को सृष्टि करने के निमित्त दीं।।७।। उनसे तीन लोक पूरित हो गये। बहुत बढ़ जाने के भय से मैं नहीं कहता हूँ।।८।। कोई शिवा को ज्येष्ठ कहते हैं, कोई मध्यमा कहते हैं, कोई सब से अन्त में होनेवाली कहते हैं, कल्प के भेद से वह तीनों सत्य हैं।।९।। उसके अनन्तर सुतोत्पत्ति से प्रजापति दक्ष ने सपत्नीक प्रसन्नतापूर्वक मन में उस जगदम्बिका को धारण किया।।१०।। और गद्गद स्वर से प्रेमपूर्वक स्तुति करते हुए हाथ जोड़ कर विनयपूर्वक बारंबार नमस्कार करने लगे।।११।। तब देवी ने सन्तुष्ट हो कर मन में विचार किया कि, मैं अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिये वीरिणी में अवतार धारण करूं।।१२।। हे मुनिसत्तम! यह सोच कर जगदम्बिका ने दक्ष के मन में वास किया, तब वह दक्ष अत्यन्त शोभित हुए।।१३।। दक्ष ने प्रसन्न हो कर उत्तम मुहूर्त्त में उन्हें अपनी स्त्री में रख दिया, तब वह दया से युक्त शिवा दक्ष की पत्नी के चित्त में वास करने लगी।।१४।। और कन्या के सम्पूर्ण चिह्न प्रकट हो गये।।१५।। हे तात! महामङ्गल रूप को धारण करने वाली शिवा के वास के प्रभाव से वीरिणी अधिक प्रसन्नचित्त हो कर शोभित हुई।।१६।। दक्ष ने वेदविहित कुल की सम्प्रदाय के द्वारा प्रसन्न हो कर प्रीतिपूर्वक पुंसवनादि क्रियाओं को किया।।१७।। प्रजापतिजी-ने उस कर्म में अत्यन्त उत्सव कर के ब्राह्मणों को यथा रुचि बहुत द्रव्य दिया।।१८।। उसी समय हरि आदिक सर्व देवता वीरिणी के गर्भ में गई हुई देवी को जान कर प्रसन्नतापूर्वक वहां गये।।१९।। और वहां जा कर उस लोक के उपकार करने वाली जगदम्बिका की स्तुति कर के बारंबार प्रणाम करने लगे।।२०।। फिर दक्ष प्रजापति और वीरिणी की बहुत प्रशंसा कर प्रसन्न हो कर अपने घर गये।।२१।। हे नारदजी! हे मुनि! नव मास पूर्ण होने पर लौकिक गति को आश्रय कर, पूर्ण दशवें मास में सुख

देने वाले उत्तम मुहूर्त्त और चन्द्र, ग्रह, तारा के अनुकूल होने पर शीघ्र ही शिवा माता के समीप प्रकट हो गईं ।।२२-२३।। उनके उत्पन्न होते ही प्रसन्न हो कर प्रजापति ने उन्हें तेज रूप देख कर शिव की देवी माना ।।२४।। हे मुनीश्वर! उनके उत्पन्न होते ही उत्तम फूलों की वृष्टि हुई और मेघों ने जल बरसाया और शीघ्र ही सब दिशायें शान्त हो गईं ।।२५।। देवताओं ने आकाश में आ कर उत्तम शुभ बाजे बजाये, जलती हुई अग्नि शान्त हो गई, सब उत्तम मङ्गल हो गये ।।२६।। दक्ष ने वीरिणी में उत्पन्न जगदम्बिका को देख कर भक्तिपूर्वक हाथ जोड़ कर, नमस्कार कर बहुत स्तुति की ।।२७।। दक्ष बोले- हे जगत् की माता सनातनी शिवा! आपको नमस्कार है। सत्य में सत्य रूप को धारण करने वाली, हे महादेवी! कृपा करो ।।२८।। हे शिवा! हे शान्ता! हे महामाया! हे संसारमयी! हे योगनिद्रा! वेद के ज्ञाता इस प्रकार आपको कहते हैं। हे संसार के हित करने वाली! आपको नमस्कार है ।।२९।। जिन्हों ने पहले ही ब्रह्माजी को उत्पन्न कर, जगत् की सृष्टि में नियुक्त किया, ऐसी परमा जगत् की माता महेश्वरी आपको नमस्कार है ।।३०।। जिन्होंने संसार की स्थिति के निमित्त विष्णुजी को नियुक्त किया, उन परमा जगद्धात्री महेश्वरी को नमस्कार है ।।३१।। जिन्होंने संसार के नाश करने के निमित्त रुद्र को नियुक्त किया, उन परमा जगन्माता महेश्वरी को नमस्कार है ।।३२।। सत्त्व, रज, तम रूपों को धारण करने वाली और सम्पूर्ण कार्यों को साधने वाली, देवताओं को उत्पन्न करने वाली शिवादेवी आपको नमस्कार है ।।३३।। हे देवी! जो आपको विद्या रूप सब से परे चिन्तन करते हैं, भुक्ति और मुक्ति सदा उनके हाथ में विद्यमान है ।।३४।। हे विद्या को प्रकाश करने वाली विद्यादेवी! जो प्रत्यक्ष पवित्र शिवा आपको देखते हैं, अवश्य उनकी मुक्ति होती है ।।३५।। जो आपकी जगन्माता, भवानी, अम्बिका, संसारमयी दुर्गा इन नामों से स्तुति करते हैं, सब उनके हैं, इसमें सन्देह नहीं ।।३६।। ब्रह्माजी बोले- जब इस प्रकार जगन्माता शिवा की दक्ष ने स्तुति की, तब वह दक्ष से उस प्रकार बोली कि, जिससे माता न सुन सके ।।३७।। अनेक प्रकार की क्रीड़ा करने वाली परमेश्वरी सब को मोहित कर, इस प्रकार सत्यवाक्य कहने लगी, जिसे केवल दक्ष ही सुने, दूसरा न सुने ।।३८।। देवी बोली- हे प्रजापति! आपने सुता के निमित्त पहले मेरी आराधना की, सो आपका अभीष्ट पूर्ण हुआ, अब तप धारण कीजिये ।।३९।। ब्रह्माजी बोले- दक्ष से यह कह कर देवी अपनी माया में बैठे शिशु का भाव कर के माता के पास रोने लगी ।।४०।। रुदन सुन कर संभ्रम युक्त हो कर, स्त्रियां बोलने लगीं और दासियां सम्भ्रम से युक्त हो कर प्रीतिपूर्वक वहां आईं ।।४१।। देवी को सुता के रूप में देख कर सब स्त्रियां प्रसन्न हुईं और नगर में बसने वाले सम्पूर्ण जनों ने जय-जय शब्द किया ।।४२।। गान वाद्य के द्वारा बड़ा उत्सव हुआ और कन्या का मुख देख कर, सपत्नीक दक्ष बड़े प्रसन्न हो गये ।।४३।।

और दक्ष ने विधिपूर्वक वेदोक्त कुलाचार कर, ब्राह्मण तथा अन्य मनुष्यों को नाना प्रकार के दान दिये।।४४।। मङ्गलाचारपूर्वक नाना प्रकार के गान तथा नृत्य और मङ्गल के बाजे बजे।।४५।। जन्मोत्सव के समय अनुचरों के साथ और मुनियों के वृन्दों से युक्त हरि आदिक देवताओं ने आ कर नाना प्रकार का उत्सव किया।।४६।। सम्पूर्ण देवताओं ने जगत् की परमेश्वरी दक्ष कन्या को देख कर नम्रतापूर्वक प्रणाम कर, नाना प्रकार के स्तोत्रों द्वारा स्तुति की।।४७।। सर्व देवता जय-जय शब्द कर, दक्ष और दक्षपत्नी वीरिणी की प्रशंसा करने लगे।।४८।। सम्पूर्ण गुणों से युक्त होने से प्रशस्त उस देवी का हरि आदिक देवताओं की आज्ञा से दक्ष ने प्रसन्न हो कर उसका 'उमा' ऐसा नाम रखा।।४९।। तदनन्तर मङ्गल देने वाली और विशेष कर दुःखों को दूर करने वाली भगवती के अनेक नाम लोक में हुए।।५०।। दक्ष प्रजापति ने हरि को, मुझे और सम्पूर्ण देवता व मुनियों को हाथ जोड़ कर प्रणाम किया तथा विधिपूर्वक भक्ति से सब का पूजन किया।।५१।। तब विष्णुजी आदि सब देवता ब्रह्माजी के दश पुत्रों की प्रशंसा कर के कल्याण रूप शंकरजी को स्मरण करते हुए अपने स्थानों को गये।।५२।। माता वीरिणी ने उस कन्या का विधिपूर्वक संस्कार कर, बालकों के स्तनपान के विधान से उसे दूध पीने को दिया।।५३।। वीरिणी और महात्मा दक्ष उस कन्या का पालन करने लगे। वह कन्या शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान प्रतिदिन बढ़ने लगी।।५४।। हे द्विजसत्तम! उस कन्या में सम्पूर्ण गुणों ने आ कर निवास किया, जैसे बालकपन में भी चन्द्रमा की सब कलाएं मनोहर होती हैं।।५५।। वह अपने भाव से सब सखियों में क्रीड़ा करती हुई प्रतिदिन भगवान् शंकरजी की प्रतिमा निर्माण करती थी।।५६।। जिस समय शिवा बालकों के उचित गीत गाती थी, तब-तब कामशासन करने वाले शंकरजी का स्मरण करती थी।।५७।। दोनों स्त्री-पुरुषों का प्रेम उस पर प्रतिदिन बढ़ता था, यद्यपि वह बालक थी, तथापि दोनों स्त्री-पुरुष उसे बड़ा प्यार करते थे।।५९।। सम्पूर्ण बालगुणों को अतिक्रमण करने वाली, गृहकार्य में निपुण, भगवती माता-पिता को बारंबार प्रसन्न करने लगीं।।५८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
द्वितीये सतीखण्डे दुर्गोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः।।१४।।

*****

पंद्रहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– एक समय वह त्रिलोकी की सारभूत सती, पिता की गोद में बैठी थी कि, मैंने आपके साथ जा कर उसे देखा।।१।। पिता से हम दोनों को नमस्कार किया जाता देख कर लोकलीला का अनुसरण करते हुए भक्ति से प्रणाम किया।।२।। प्रणाम के पश्चात् आप सती को देख कर नम्रता को प्राप्त हो कर, दक्ष के दिये हुए आसन पर बैठ गये और सती से बोले।।३।। हे सती! जो आपकी इच्छा करते हैं और आप जिसकी इच्छा करती हो, उस सर्वज्ञ जगदीश्वर पति को आप प्राप्त होगी।।४।। जिसने अन्य स्त्री को ग्रहण नहीं किया, न ग्रहण करते, न ग्रहण करेंगे। हे शुभे! वही अनन्य सदृश आपका पति होगा।।५।। चिरकाल में वह आपको ग्रहण करेंगे, इस प्रकार सती से कह कर, दक्ष से पूजित हो कर, हम दोनों अपने स्थानों को गये।।६।। यह सुन कर दक्ष परम प्रसन्न और चिन्ता रहित हुए और अपनी कन्या को परमेश्वरी जान कर बड़ा सत्कार किया।।७।। अपनी इच्छा से मनुष्य शरीर धारण करने वाली भक्तवत्सल देवी ने सुन्दर कौमार विहारों के साथ कौमार अवस्था को अतिक्रमण किया।।८।। अत्यन्त तप के प्रभाव से सर्वांग से मनोहर सती बाल्यावस्था को बिता कर कुछ युवावस्था को प्राप्त हुई।।९।। लोकेश दक्षजी युवावस्था में स्थित उस सती को देख कर, इस पुत्री को शिवजी को कैसे देवें, यह सोचने लगे।।१०।। पिता के मन की बात जान कर, वह भी माता के समीप आ कर शिवजी की प्राप्ति के लिये स्वयं इच्छा करने लगी।।११।। शंकरजी के तप के कारण विशालबुद्धि परमेश्वरी सतीजी अपनी माता वीरिणी की आज्ञा को पाने की इच्छा करने लगीं।।१२।। शिवजी को पति रूप में पाने के लिये दृढ़व्रता सती ने माता की आज्ञा से घर में ही उनका आराधन किया।।१३।। आश्विन की नन्दा तिथि में गुड और चावल तथा लवण से सती ने हर का पूजन किया।।१४।। कार्तिक की चतुर्दशी को खीर और पुओं से शिवजी की आराधना कर, उनको स्मरण करने लगी।।१५।। अगहन के कृष्णपक्ष की अष्टमी को यव, तिल, चावलों से शिवजी का पूजन कर के दिन बिताया।।१६।। पौष शुक्ल सप्तमी की रात्रि को जागरण कर, प्रातःकाल में खिचड़ी से शिवजी का पूजन किया।।१७।। माघ की पूर्णमासी की रात्रि को जागरण और भीगे कपड़े धारण कर, नदी के किनारे शिवजी का पूजन किया।।१८।। फाल्गुन वदी चतुर्दशी की रात्रि को जागरण और शैलूष बिल्वफल से शिवजी की पूजा की। विशेष कर फाल्गुन में प्रायः सब रात्रियों में जागरण और पूजन किया।।१९।। चैत्र शुक्ल चतुर्दशी को दिन–रात्रि शिवजी का

स्मरण करती हुई सती ने पलाश और दवना से शिवजी का पूजन किया ।।२०।। वैशाख शुक्ल तृतीया को नव्य तिल, यव, चावलों से शिवजी का पूजन कर, उस मास को व्यतीत किया ।।२१।। ज्येष्ठ की पूर्णमासी को वस्त्र और मालती के फूलों से शिवजी का पूजन कर, उस मास को व्यतीत किया ।।२२।। आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशी को काले वस्त्र अथवा कस्तूरी और मालती के पुष्पों से शिवजी को पूजा ।।२३।। श्रावण शुक्ल अष्टमी-चतुर्दशी को यज्ञोपवीत और वस्त्रों से पूजन किया ।।२४।। भादों कृष्ण तेरस-चौदश को नाना पुष्प और फलों से पूजन करके जल पी कर रह गई ।।२५।। नाना प्रकार के पुष्प, फल और अन्न जो जिस ऋतु में होते हैं, उनसे निराहार रह कर शंकरजी का पूजन किया ।।२६।। अपनी इच्छा से मनुष्य की आकृति को धारण करने वाली देवी दृढ़व्रत हो कर सब मासों के सब दिनों में शिवपूजन में रत होती रही ।।२७।। इस प्रकार विधिपूर्वक सम्पूर्ण नन्दाव्रत को समाप्त कर, अनन्य भाव को धारण करती हुई सती ने प्रेमपूर्वक शिवजी को धारण किया ।।२८।। उसी समय सम्पूर्ण देवता और मुनि और मुझे आगे कर सती की तपस्या देखने के निमित्त गये ।।२९।। शिवजी के ध्यान में मग्न सिद्ध अवस्था को प्राप्त वह सती आ कर देवताओं से दूसरी सिद्धि के समान देखी गई ।।३०।। विष्णु आदिक सब देवताओं सहित सब मुनि प्रेमपूर्वक हाथ जोड़ कर प्रणाम करने लगे ।।३१।। प्रसन्न हो कर विष्णुजी आदिक देवता और सुरर्षि विस्मित हो कर, उन सती के तप की प्रशंसा करने लगे ।।३२।। उन सतीजी को प्रणाम करके वे देवता और मुनि शिवजी के प्रिय कैलास को चले गये ।।३३।। प्रसन्न सावित्री के सहित मैं, लक्ष्मी के सहित विष्णुजी, महादेवजी के पास गये ।।३४।। वहां पहुँच कर शिवजी को देख, चकित हो कर, प्रणाम कर, हाथ जोड़, नम्र हो कर नाना स्तोत्रों से स्तुति करने लगे ।।३५।। देवता बोले- जो कुछ यह चर और अचर है, सब आप ही का है, ऐसे छहों ऐश्वर्यों से युक्त आपके लिये नमस्कार है। पुरुष, महेश, परेश, महात्मा ।।३६।। सबके प्रथम कारण, चिद्रूप निर्विकार प्रकृति और पुरुष से परे हो ।।३७।। जो इसको विरचते है, जिनसे यह प्रकाशमान होते है, जिनसे यह है, जिनका यह है और जहां से आप ।।३८।। जो इनसे और परे से परे है और जो निर्विकारी महाप्रभु अपनी आत्मा को देखते हैं, स्वयं होने वाले उस देव को हम लोग प्रणाम करते हैं ।।३९।। दिवाचक्षु, परसाक्षी, सबकी आत्मा, अनेक रूप धारण करने वाले, स्वयं होने वाले, तप करते हुए उस परब्रह्म की हम लोग शरण आये हैं ।।४०।। जिनके पद को देवता, ऋषि और सिद्धों ने नहीं जाना, फिर दूसरा कौन जन्तु उनके पद को जान सकता है? अर्थात् कोई नहीं ।।४१।। सत्यलोक के कर्त्ता व्रण रहित जिनके पद को मुक्ति के चाहने वाले सुकर्मा दिदृक्षु सज्जनगण चाहते हैं ।।४२।। दुःख देने वाले जन्मादि विकार जिनको प्राप्त नहीं होते, तो भी आप

अपनी माया से कृपा कर, उनको ग्रहण करते हैं।।४३।। आश्चर्यकर्म करने वाले परेश, वाणी से परे परमात्मा, ब्रह्मस्वरूप, ऐसे आपके लिये नमस्कार है।।४४।। रूप रहित सर्वस्वरूप, पर अनन्तशक्ति, त्रिलोकपति, सबके साक्षी, सर्वत्र गतिशील।।४५।। आत्मप्रदीप, निर्वाणपद के सुखरूपी सम्पत्ति ज्ञानस्वरूप, व्यापक ईश्वर, आपके लिये नमस्कार है।।४६।। सुकर्म से प्राप्त कैवल्यपति, पुरुष, परेश, सब कुछ दाता, आपके लिये नमस्कार है।।४७।। क्षेत्रज्ञ, आत्मस्वरूप, सब प्रत्ययों के कारण, पुरुष परेश, सब कुछ देने वाले, आपको नमस्कार है।।४८।। सबके अध्यक्ष, महान् मूलप्रकृति पुरुष परेश, सब कुछ देने वाले, आपको नमस्कार है।।४९।। त्रिनेत्र, पञ्चमुख, सर्वदा तेजस्वरूप, सब इन्द्री और गुणों को देखने वाले, निष्कारण, आपके लिये नमस्कार है।।५०।। त्रैलोक्य के कारण, अपवर्ग के दाता, शरणागत को शीघ्र ही तारने वाले, आपके लिये नमस्कार है।।५१।। सब आम्नाय आगमों के समुद्र, परमेष्ठी, भक्त और गुणों के परायण, आपके लिये नमस्कार है।।५२।। गुण की अरणी से आच्छन्नचित्त ऊष्मारूप महेश्वर, मूढ़ों के लिये दुष्प्राप्य रूप वाले, सदा ज्ञानियों के हृदय में वास करने वाले, आपको नमस्कार है।।५३।। पशुओं के पाश को दूर करने वाले, भक्तों के सन्मुक्ति दाता, स्वयंप्रकाश, नित्य अव्यय निरन्तर सर्वेश।।५४।। सम्यक्द्रष्टा विकार से रहित, उत्कृष्ट ऐश्वर्य को धारण करने वाले, इष्ट के दाता, जिन शिवजी को धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष भजते हैं और अपनी इच्छा पूर्ण करते हैं, ऐसे कारुणिक, आप हमारे ऊपर प्रसन्न हों, आपके लिये नमस्कार है।।५५।। जो आपके अनन्य भक्त किसी अर्थ की इच्छा नहीं करते, किन्तु आपके परम मङ्गल गुणों का ही ध्यान करते हैं, उनको नमस्कार है।।५६।। अव्यक्ताकृति विभु, ब्रह्म परम अध्यात्म योग से प्राप्त परिपूर्ण अक्षर की हम लोग स्तुति करते हैं।।५७।। इन्द्रिय से परे, आधार रहित, सबके आधार, कारण रहित, जिनका अन्त नहीं है, आदि-सूक्ष्म-सम्पूर्ण के स्वामी के लिये नमस्कार है।।५८।। हरि आदिक सम्पूर्ण देवता और लोक तथा चर और अचर कार्य के लिये नाम-रूप-भेद से आप अलग स्थित करते हो, ऐसे विश्व स्वरूप आपके लिये नमस्कार है।।५९।। अग्नि के तेज और सविता अर्थात् सूर्य का प्रभाव और वायु यह जो कुछ हैं, सब आपके गौण-प्रभाव हैं, ऐसे सूर्य ग्रीवा द्युस्वरूप, आपके लिये नमस्कार है।।६०।। हे प्रभु! न आप देवता हैं, न असुर, न मनुष्य हैं, न तिर्यक्, न ब्राह्मण हैं, न स्त्री हैं, न नपुंसक हैं, न पुरुष हैं और आप सत्-असत् कुछ नहीं करते।।६१।। हे संसार के करने वाले, संसार के पालक और संसार के लोप करने वाले, संसार की आत्मा! सम्पूर्ण निषेध के शेष, आप ही हैं, ऐसे आप ईश्वर को मैं प्रणाम करता हूँ।।६२।। कर्मयोग में मन लगाने वाले योगी, लोग योग में लग्नचित्त हो कर योगीश आपको देखते हैं, ऐसे आपके लिये नमस्कार है।।६३।। असह्य वेग, तीनों शक्तियों से युक्त, प्रसन्नचित्त

महाशक्ति पालक, आपके लिये नमस्कार है ।।६४।। हे दुर्गेश! जो विषयलग्न मनुष्य आत्मा को नहीं प्राप्त कर सकते, उनके भी शरण में आने से उनके उद्धार में चित्त लगाने वाले गूढ़बुद्धि, आपके लिये नमस्कार है ।।६५।। मूर्ख मनुष्य जिसकी माया से अपने को नहीं जानते, ऐसे अकथनीय माहात्म्य वाले महाप्रभु आपके लिये नमस्कार है ।।६६।। ब्रह्माजी बोले- शिर झुकाये हुये विष्णुजी आदिक सब देवता महादेवजी की इस प्रकार स्तुति कर मौन हो गये ।।६७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
द्वितीये सतीखण्डे नन्दाव्रतविधान शिवस्तुतिवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।।१५।।

*****

सोलहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार हरि इत्यादिकों की स्तुति को सुन कर सृष्टिकर्ता शिवजी प्रसन्न हो कर हँसे ।।१।। स्त्रियों के सहित ब्रह्माजी और विष्णुजी को देख, हर यथोचित कह, उनके कारण पूँछने लगे ।।२।। रुद्र बोले- हे विष्णु! हे विधि! हे देवताओ! हे मुनियो! निर्भय हो कर अपने आगमन का यथार्थ कारण कहिये ।।३।। आपकी स्तुति से मैं प्रसन्न हूँ। आप किस निमित्त आये हों और आपका यहां क्या कार्य है? वह सब सुनने की इच्छा है ।।४।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार जब महादेवजी ने पूँछा, तब सब लोकों का पितामह मैं ब्रह्मा विष्णुजी से प्रेरित हो कर महादेवजी से बोला ।।५।। हे करुणासागर! हे देवदेव! जिस कारण हम आये हैं, वह आप सुरर्षियों से सुनिये ।।६।। हे वृषभध्वज! विशेष कर के हम आप ही के निमित्त आये हैं, आप सदा हमारी सहायता कीजिये, नहीं तो जगत् न होगा ।।७।। हे महेश्वर! कोई असुर तो मेरे वध्य होंगे, कोई हरि के और कोई आप द्वारा मरेंगे ।।८।। हे महाप्रभो! कोई आपके वीर्य से उत्पन्न हुए पुत्र द्वारा मरेंगे। हे प्रभो! कोई दैत्य आदिशक्ति के द्वारा मारे जायेंगे ।।९।। हे शिवजी! आप ही की कृपा से देवताओं को उत्तम सुख होगा, घोर असुरों को मार कर आप जगत् का श्रेष्ठ मङ्गल करें ।।१०।। आप राग-द्वेष से रहित, सदा योग युक्त हों, आप दया में रत हों, आप किसी का वध नहीं करते ।।११।। हे देवेश! उनके आराधना में फिर सृष्टि की स्थिति कैसी होगी? हे वृषभध्वज! इस कारण आपको योग्य कार्यों में मिलित होना उचित है ।।१२।।-यदि सृष्टि-स्थिति और अन्त के कर्म न किये जाएं, तो उस समय हमारा शरीरभेद माया से युक्त न होगा ।।१३।। हमारा एक ही स्वरूप है, हम कार्य के भेद से पृथक् हैं, यदि कार्यभेद न हो, तो रूपभेद की आवश्यकता नहीं है ।।१४।। परमात्मा

महेश्वर एक ही कार्यवश तीन भेदों को प्राप्त हुए हैं, माया ही इससे कारण है, प्रभुलीला से स्वतन्त्र हैं।।१५।। हरि उनके वाम अंग से और मैं दक्षिण अंग से उत्पन्न हुआ हूँ, आप पूर्णशरीर शिवशंकरजी के हृदय से उत्पन्न हुए हो।।१६।। हे प्रभो! इस प्रकार से हम भिन्न स्वरूप तीन प्रकार से हुए हैं, एक प्रकार से हमें शिवाशिव का पुत्र जानिये। हे सनातन!।।१७।। कार्य के कारण हम और विष्णुजी तो स्त्री सहित हो गये हैं। हे प्रभो! आपकी आज्ञा से प्रेमपूर्वक लोक का कार्य करते हैं।।१८।। इस कारण संसार और देवताओं के सुख के निमित्त भार्या रूप से आप किसी स्त्री को ग्रहण करें।।१९।। हे महेशान! और भी एक पुरानी बात मैं कहता हूँ, आप उसे सुनें, जो शिव रूप पहले आपने हमारे सामने कहा था।।२०।। हे ब्रह्माजी! मेरा जो परम रूप है, वह आपके अंग से रुद्रनाम कहलाने वाला प्रकट होगा।।२१।। सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, पालन करने वाले विष्णु और गुणाकृति मैं, रुद्र नाम से लय करने वाला हूंगा।।२२।। एक स्त्री को व्याह कर लोक का उत्तम कार्य करूंगा, यह अपना कहा स्मरण कर के आप अपना प्रण पूर्ण करें।।२३।। हे स्वामिन्! आपकी आज्ञा से मैं सृष्टिकर्ता, विष्णुजी पालनकर्ता और आदिभूत स्वयं शिव आप लयकारी हैं।।२४।। आपके बिना हम अपना कार्य करने में समर्थ नहीं हैं, इस कारण लोककार्य में तत्पर आप एक स्त्री को ग्रहण करें।।२५।। जैसे विष्णुजी की लक्ष्मी, मेरी सावित्री, वैसे आप भी कोई कान्ता गृहीत कीजिये।।२६।। ब्रह्माजी बोले– मुझ ब्रह्मा के इन वचनों को सुन कर विष्णुजी के समीप प्रसन्न मुख वाले, लोकों के ईश महादेवजी मुझसे बोले।।२७।। ईश्वर बोले– हे ब्रह्मा! हे हरि! आप दोनों सदा मेरे अत्यन्त प्रिय हों, आप दोनों को देख कर निश्चय कर के मुझे बड़ा आनन्द होता है।।२८।। देवताओं में श्रेष्ठ आप दोनों निश्चय कर के तीनों लोकों के स्वामी हों, आप दोनों कथन में गरिष्ठ हों, आप सदा संसार के कार्यों में रत हों।।२९।। हे सुरश्रेष्ठ! मुझे विवाह करना उचित नहीं है; क्योंकि, मैं सदा तप में रत, विरक्त और विदित योगी हूँ।।३०।। जो सदा निवृत्ति के उत्तम मार्ग में स्थित, अपनी ही आत्मा में रमण करने वाले निरञ्जन अवधूत तनु ज्ञानी, अपने को देखने वाले काम से वर्जित, विकार रहित, भोग रहित, सदा अशुचि और अमङ्गल रूप हैं, इस संसार में उन्हें स्त्री का क्या प्रयोजन है? सो इस समय कहिये।।३१-३२।। केवल योग में ही लगे रहने से मुझे आनन्द है, ज्ञानहीन पुरुष काम की इच्छा करते हैं।।३३।। संसार में विवाह करना यह परम बन्धन समझिये, इस लिये मुझे उसमें रुचि नहीं है, यह मैं सत्य-सत्य कहता हूँ।।३४।। सम्यक् प्रकार से स्वार्थ का विचार करने से उस पर भी आपके कहने से और संसार के हित के निमित्त करूंगा।।३५।। सदा भक्त के वश में आप लोगों के वचन मान कर इस कार्य की प्रीति के लिये विवाह करूंगा।।३६।। हे हरि! हे ब्रह्मा! जैसी स्त्री को मैं ग्रहण करूंगा, वह मेरा प्रण तथा वचन सुनिये।।३७।। उस काम रूपिणी योगिनी को स्त्री के लिये

आप उपदेश दें, जो विभागपूर्वक मेरे तेज को ग्रहण करने में समर्थ हो ।।३८।। जब मैं योग में युक्त हो जाऊं, तब वह योगिनी हो जाए और जब काम से युक्त हो जाऊं, तब वह कामिनी हो जाए ।।३९।। जिस अक्षर को वेद के जानने वाले बुद्धिमान कहते है, उसे सनातन ज्योतिरूप शिवजी की चिन्तना करती रहे ।।४०।। हे ब्रह्मन्! उसकी चिन्ता में जब मैं आसक्त हो जाऊं, उस समय वह विघ्न करने वाली न हो, अन्यथा वह हतयोगी होगी ।।४१।। आप ब्रह्मा, विष्णु और मैं महाभाग ब्रह्म रूपी श्रीशिवजी के अंश हैं, इस कारण उनका चिन्तन योग्य है ।।४२।। हे कमलासन! उसकी चिन्ता के बिना मैं विवाहकर्म में स्थिति करूंगा, इस कारण आप मेरे अनुकूल चलने वाली स्त्री का चिन्तन करें ।।४३।। हे ब्रह्मन्! मेरे एक प्रण को सुनिये, यदि मेरे वाक्य में उसे विश्वास न होगा, तो मैं उसे त्याग दूंगा ।।४४।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार के उनके वचन सुन कर मैं और विष्णुजी प्रसन्न हो, हँस कर अत्यन्त नम्र हो कर बोले ।।४५।। हे महान् ईश! हे नाथ! सुनिये, जिस प्रकार की स्त्री आपने बताई, हे प्रभो! उसी प्रकार की उस स्त्री को मैं प्रसन्नतापूर्वक निवेदन करूंगा ।।४६।। कार्य का साधन करने वाली उमा भिन्न रूप से उत्पन्न हुई हैं। हे प्रभु! जिस प्रकार पहले उन्होंने सरस्वती तथा लक्ष्मी के दो रूप धारण किये थे ।।४७।। लक्ष्मी भगवान् विष्णुजी की और सरस्वती मेरी कान्ता हुईं, लोक के कार्य रूप हित को करने वाली भगवती ने तीसरा रूप नहीं धरा था ।।४८।। हे विभो! जो दक्ष की सती नाम से प्रसिद्ध कन्या हैं, वह हित करने वाली उसी प्रकार की स्त्री होगी ।।४९।। हे देवेश! आप उनके पति होवे इस इच्छा से वह महातेज वाली सती दृढ़व्रत हो, आपके निमित्त तप करती हैं ।।५०।। हे महेश्वर! कृपा कर, उनको वर देने आइये और उसी प्रकार का वर दे कर प्रीतिपूर्वक उनसे विवाह कीजिये ।।५१।। हे शंकर! विष्णुजी की, मेरी और देवताओं की यही इच्छा है, उसे पूर्ण कीजिये, जिसमें आदरपूर्वक इस उत्सव को अपनी दृष्टि से देखें ।।५२।। तथा तीनों लोकों में सुख देने वाला परममङ्गल हो, सबके सम्पूर्ण ज्वर नष्ट हो, इसमें सन्देह नहीं ।।५३।। हे अच्युत! हे मधुसूदन! हे अपनी लीला से रूप धारण करने वाले! भक्तवत्सल शिवजी से कहते हुए मेरे वचन में जो अवशिष्ट हो उसे आप कहिये ।।५४।। विष्णुजी बोले– हे देवों के देव शिवजी! हे करुणाकर! जो ब्रह्माजी ने कहा वह सब मेरा ही कहा जानिये, इसमें संशय नहीं ।।५५।। हे महान् ईश! मुझ पर कृपा कर के उनका विवाह कर तीनों लोकों को सनाथ कीजिये ।।५६।। ब्रह्माजी बोले– यह कह, विष्णुजी चुप हो गये और भक्तवत्सल प्रभु शिवजी ने हँस कर 'तथास्तु' कहा ।।५७।। हम लोग शिवजी की आज्ञा पा कर हर्षित हो, स्त्रियों के साथ, देवऋषियों सहित अपने स्थान को चले गये ।।५८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

द्वितीये सतीखण्डे विष्णुब्रह्मकृत शिवप्रार्थना नाम षोडशोऽध्यायः ।।१६।।

सत्रहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– हे मुनि! इस प्रकार सब देवताओं ने शिवजी की प्रार्थना की और सत्कारपूर्वक उनसे वर पाया, वह कथा आप आदर से सुनिये ।।१।। फिर सतीजी ने आश्विन शुक्ल अष्टमी को भक्तिपूर्वक महादेवजी का पूजन किया ।।२।। इस प्रकार नन्दाव्रत के पूर्ण होने पर नवमी को उन्हीं के ध्यान में मग्न पार्वतीजी के सम्मुख शिवजी प्रकट हुए ।।३।। सर्वांग सुन्दर, गौरवर्ण, पाँच मुख, तीन नेत्र वाले, चन्द्रभाल, प्रसन्न शरीर, नीलकण्ठ, चतुर्भुज ।।४।। श्रेष्ठ ब्रह्मादिकों को अभय देने वाले, त्रिशूल धारण किये हुए, भस्म से दैदीप्यमान मस्तक पर गंगा को धारण किये हुए, सर्वांग सुन्दर।।५।। सम्पूर्ण शोभा के घर करोड़ों चन्द्रमा के समान मुख वाले, करोड़ों कामदेवों की कान्ति को लजाने वाले, सर्वथा स्त्रियों को मोद देने वाले ।।६।। शिवजी को प्रत्यक्ष देख कर लज्जा से नीचा मुख कर के सती ने उनके चरणों में प्रणाम किया ।।७।। तपस्या के फल को देने वाले शिवजी पाणिग्रहण की इच्छा करते हुये भी नन्दाव्रत को धारण करने वाली सती से बोले ।।८।। महादेव बोले– हे दक्षपुत्री! तुम्हारे इस व्रत से मैं प्रसन्न हूँ, जो कुछ तुम्हारी इच्छा हो, सो वर माँगो, मैं देने के लिये उद्यत हूँ।।९।। ब्रह्माजी बोले– जगत्पति शिवजी ने उनके चित्त के भाव को जानते हुए भी उनके वाक्य सुनने की इच्छा से कहा 'वर माँगो' ।।१०।। लज्जा से युक्त वह जो कुछ हृदय में था, वह कहने को समर्थ न हुईं ।।११।। शिवजी के प्रिय वचन को सुन कर प्रेम में मग्न हो गईं, भक्तवत्सल शंकरजी उसे जान कर अत्यन्त प्रसन्न हो गये।।१२।। सज्जनों की गति अन्तर्यामी शिवजी सती की भक्ति के वश हो कर शीघ्र ही फिर 'वर माँगो, वर माँगो' यह कहने लगे ।।१३।। लज्जा को धारण कर सती ने शिवजी से कहा, जो कुछ आपकी इच्छा हो, वही वर दे दीजिये ।।१४।। भक्तवत्सल वृषभध्वज ने सती के वाक्य को सुन कर कहा "तुम हमारी वामाङ्गी हो" ।।१५।। इस प्रकार शिवजी का वचन सुन कर जो कुछ मन में इच्छा थी, उसे पा कर, अत्यन्त प्रसन्न हो कर, सती चुप हो गईं ।।१६।। कामयुक्त शिवजी के सामने स्थित सुन्दर हास्य करती हुईं सती ने काम को बढ़ाने वाले हावभावों को किया ।।१७।। उस समय उसके भावों को स्वीकार कर, शृङ्गाररस उन दोनों के चित्त में शीघ्र ही प्रवेश कर गया ।।१८।। संसार की लीला के अनुकरण करने वाले उनके चित्त में शृङ्गाररस के प्रवेश होने से कोई चित्र इच्छा उत्पन्न हुई ।।१९।। सुन्दर कान्तिवाली सती चन्द्रोदय से स्फटिक पत्थर के समान श्वेत बालू में पीली रेखा के समान शिवजी को पा कर शोभित हुई ।।२०।। तब वह प्रसन्न सती

दोनों हाथ जोड़ कर भक्तवत्सल शिवजी से नम्र हो कर फिर बोली ।।२१।। सती बोली– हे जगत्पति! हे देवों के देव! पिता के सम्मुख विवाह की विधि से आप मुझे स्वीकार कीजिये ।।२२।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार सती के वचन सुन कर तथा उसे प्रेमलग्न देख कर भक्तवत्सल शिवजी 'तथास्तु' बोले ।।२३।। सती भी शिवजी को भक्तिपूर्वक प्रणाम कर के शिवजी की आज्ञा पा कर, प्रसन्नता से माता के समीप चली गईं ।।२४।। शिवजी ने भी अपने आश्रम में जा कर सती के वियोग से ध्यान को घटा दिया ।।२५।। हे मुने! सांसारिक गति को स्वीकार किये हुए शिवजी ने चित्त समाधान कर, ध्यान में मुझे स्मरण किया ।।२६।। त्रिशूली शिवजी द्वारा ध्यान किया हुआ मैं, शिवजी की सिद्धि से प्रेरित हो कर शीघ्र ही उनके समीप पहुंच गया ।।२७।। जहां सती के वियोग में शिवजी बैठे थे, वहीं पर सरस्वती के साथ मैं भी पहुंच गया ।।२८।। वे सरस्वती युक्त मुझे देख कर, उत्सुक सती के प्रेम में बद्ध शिवजी बोले ।।२९।। शिवजी बोले– हे ब्रह्माजी! हम बड़े स्वार्थी हैं, जो इस समय आपको कष्ट दिया, अतएव इस समय मेरी स्वार्थता चमक रही है ।।३०।। दक्षपुत्री सती ने मेरी आराधना बड़े प्रेम से की थी, उससे मैंने नन्दाव्रत के प्रभाव से उसे यह वर दिया ।।३१।। उन्हों ने कहा कि, 'आप मेरे पति होवें' और मैंने उसे कहा कि, 'आप मेरी वामाङ्गी होवें' ।।३२।। फिर सती ने कहा कि, 'आप मुझे पिता के सम्मुख विवाहविधि से स्वीकार करें' ।।३३।। उसकी भक्ति से प्रसन्न हो कर मैंने वह भी स्वीकार किया, वह अपनी माता के समीप गईं और मैं यहां चला आया ।।३४।। अतः आप मेरी आज्ञा से जा कर दक्ष से कह दीजिये, जिससे कि वे शीघ्र ही अपनी कन्या मुझे दे देवें ।।३५।। मुझसे सती का वियोग छूट जावे, वैसे ही सब विद्याविशारद आप, दक्ष को समझा देवें ।।३६।। ब्रह्माजी बोले– दक्ष के समीप जाने के लिये मुझे कह कर, सरस्वती को देख कर, शिवजी सती के वियोग में मग्न हो गये ।।३७।। उनसे आज्ञा पा कर, कृतकृत्य तथा प्रसन्न हो कर, मैं उन जगत्पति भक्तवत्सल से कहने लगा ।।३८।। ब्रह्माजी बोले– हे भगवन् शम्भु! जो कुछ आपने विचार कर के निश्चित किया है, उसमें मेरा और देवताओं का हित है ।।३९।। दक्ष स्वयं अपनी कन्या आपको देंगे, मैं भी आपके वचन दक्ष से कहूंगा ।।४०।। ब्रह्माजी बोले– सबके ईश्वर प्रभु महादेवजी के यह कहने पर अत्यन्त वेग से युक्त रथ पर सवार हो कर मैं दक्ष के भवन में आया ।।४१।। नारदजी बोले– हे विधे! हे कहने वालों में श्रेष्ठ महाभाग! यह मुझसे कहिये कि, उसके गृह आने पर दक्ष ने क्या किया ?।।४२।। ब्रह्माजी बोले– सती ने तप के द्वारा मनोभिलषित वर पा कर घर में आये माता–पिता को प्रणाम किया ।।४३।। फिर सती की भक्ति से प्रसन्न हो कर, जिस प्रकार सती ने महादेवजी से वर पाया वह सब वृत्तान्त उनकी सखी ने माता–पिता से कहा ।।४४।। माता–पिता ने सखी के मुख से सब वृत्तान्त सुन परम आनन्द में मग्न हो कर बड़ा उत्सव किया ।।४५।।

अत्यन्त उत्साह वाली माता वीरिणी ने उदार बुद्धि से ब्राह्मण और अन्धे दीनों को उनकी रुचि के अनुसार द्रव्य दिया ।।४६।। माता वीरिणी प्रीति को बढ़ाने वाली, अपनी पुत्री का आलिंगन कर के, प्रसन्नता से मस्तक चूमकर बारंबार प्रशंसा करने लगी ।।४७।। अब कुछ काल के बीतने पर धर्म को जानने वाले दक्ष सोचने लगे कि इस कन्या को किस प्रकार महादेवजी को दें ।।४८।। श्रीमहादेवजी आ कर यहां से प्रसन्न हो कर गये, अब वह फिर किस प्रकार कन्या के लिये यहाँ आयेंगे ।।४९।। यदि मैं किसी को शिवजी के समीप भेजूं तो यह योग्य नहीं। कदाचित वह अंगीकार न करें, तो यह उद्योग ही व्यर्थ होगा ।।५०।। अथवा भक्ति से उन्हीं वृषभध्वज शिवजी का पूजन करूंगा, जिससे वह स्वयं मेरी कन्या के पति होवें ।।५१।। और उनसे पूजित वे उसे भार्या बनाने की इच्छा प्रकट करेंगे और शिवजी उनके पति होंगे, जैसा कि प्रथम वर प्राप्त हो चुका है ।।५२।। इस प्रकार चिन्ता करते हुए दक्ष के समीप सरस्वती से युक्त मैं सहसा उपस्थित हुआ ।।५३।। दक्ष ने मुझ पिता को देख कर, मस्तक झुका कर प्रणाम करके, अपने कल्याण के निमित्त मुझे यथोचित आसन दिया ।।५४।। चिन्ता से व्याकुल होने पर भी दक्ष ने प्रसन्न हो कर मुझ सम्पूर्ण लोकों के कर्ता को देख कर, शीघ्र ही अपने यहाँ के आगमन का कारण पूँछा ।।५५।। दक्ष बोला– हे सृष्टि के करने वाले जगत् के गुरु! मुझ पर प्रसन्न हो कर, अपने यहां आने का हेतु कहिये ।।५६।। हे लोक के करने वाले! आपके दर्शन से सन्तुष्ट मेरे आश्रम में पुत्र के प्रेम से अथवा किसी दूसरे कार्य से आप आये हो? ।।५७।। ब्रह्माजी बोले– हे मुनिसत्तम! अपने पुत्र दक्ष के इस प्रकार पूँछने पर प्रजापति दक्ष को प्रसन्न करते हुए मैं बोला ।।५८।। ब्रह्माजी बोले– हे दक्ष! जिस लिये मैं तुम्हारे पास आया हूँ, वह तुम सुनो, तुमसे अधिक और कौन मेरा हित है, जिस लिये मैं तुम्हारे पास आया हूँ, वह तुम्हें भी ईप्सित है ।।५९।। तुम्हारी पुत्री ने जगत्पति महादेवजी की आराधना कर के जो वर मांगा है, अब यह उसका समय उपस्थित हुआ है ।।६०।। महादेवजी ने तुम्हारी पुत्री के लिये शीघ्र ही मुझे तुम्हारे पास भेजा है, इसमें जो उत्तम कृत्य हो उसे ग्रहण करो ।।६१।। श्रीशंकरजी वर दे कर जब से गये, तब से तुम्हारी पुत्री के वियोग से उन्हें कल नहीं पड़ती ।।६२।। जिसका भेद नहीं प्राप्त हो सकता, ऐसा वह काम भी अपने सब पुष्पों के बाणों से अनेक प्रकार के यत्न कर के भी उनको न जीत सका, इस समय उसने इन्हें जीत लिया है।।६३।। वह कामबाण से विद्ध आत्मचिन्तन को छोड़ कर प्राकृत मनुष्य के समान व्याकुल हो कर सती के चिन्तन में प्रवृत्त हैं।।६४।। उस प्रश्रुतवाणी को भूल कर गणों के सम्मुख 'सती कहां हैं' इस प्रकार के शब्द कहते हैं।।६५।। मैं, तुम, काम और मरीच्यादि ने जो पहले चाहा था, हे सुत! वह अब सिद्ध है।।६६।। तुम्हारी पुत्री ने शम्भुजी की तपस्या की और वे भी उत्सुक हो कर उनके चिन्तन में मग्न हिमालय पर्वत पर हैं।।६७।। जैसे नन्दाव्रत से

नाना भावों से सती ने शम्भुजी की आराधना की, वैसी ही शम्भुजी ने सती की इच्छा की है ।।६८।। हे दक्ष! इस लिये शम्भुजी के अर्थ कन्या को अलंकृत कर के शीघ्र ही उमको दो ।।६९।। मैं और नारदजी उन्हें तुम्हारे स्थान में ले आयेंगे और उनके लिये तुम इस कन्या को अलंकृत कर के उनको दे दो ।।७०।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार वचन सुन कर मेरे पुत्र दक्ष प्रसन्न हो कर मुझसे बोले कि 'ऐसा ही होगा'।।७१।। हे मुने! तब मैं अत्यन्त हर्षित हो कर वहां आया, जहां लोक में रत अत्यन्त उत्सुक महादेवजी थे।।७२।। हे नारदजी! मेरे चले जाने के पश्चात् सहकुटुम्ब दक्ष भी मानो अमृत से पूरित हो कर पूर्णकाम हो गये ।।७३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
द्वितीये सतीखण्डे सतीवरलाभो नाम सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।

*****

अठारहवाँ अध्याय

नारदजी बोले– आपके रुद्र के समीप जाने पर क्या चरित्र और क्या वार्ता हुई और स्वयं महादेवजी ने क्या किया? सो कहिये ।।१।। ब्रह्माजी बोले– उसके पश्चात् मैं प्रसन्नता से हिमालय पर्वत पर स्थित परमेश्वर महादेव शिवजी को लाने के निमित्त गया ।।२।। वृषभध्वज महादेव शिवजी ने लोक के करने वाले मुझे आते हुए देख कर मन में सती के प्राप्ति की बारंबार चिन्तना की ।।३।। महादेवजी अपनी लीला से लोक की गति में स्थित हो कर प्राकृत मनुष्य के समान सती की भक्ति से मुझसे शीघ्र ही बोले ।।४।। ईश्वर बोले– हे देवताओं में ज्येष्ठ! उस आपके पुत्र ने मेरे निमित्त सती के प्रति क्या विचार किया? वह कहिये, जिसमें मन्मथ मेरे अन्तःकरण को न विदीर्ण करे ।।५।। हे सुरश्रेष्ठ! वियोगी मैं शिव अन्य वामा को छोड़ कर सती ही की इच्छा करता हूँ, अन्य के प्रति मेरा मन नहीं है ।।६।। हे ब्रह्माजी! आप निरन्तर यही सती से कहें कि, मैं निरन्तर तुम्हारा ध्यान रूप कार्य करता हूँ, हे विधाता! वह मेरी अभेद प्रिया हो जाए, सो आप करें ।।७।। ब्रह्माजी बोले– हे नारद! इस प्रकार रुद्रजी के लोकाचार के वचन सुन कर मैं समझते हुए शिवजी से बोला ।।८।। हे वृषभध्वज! सती के विषय में जो मेरा पुत्र कहता है, वह सुनिये, उस कार्य को साध्य और सिद्ध समझिये ।।९।। उन्हीं के निमित्त परिकल्पित इस पुत्री को मैं उन्हें दूंगा, मेरा अभीष्ट कार्य है, फिर उस पर आपकी आज्ञा ।।१०।। मेरी पुत्री ने इसी निमित्त शम्भुजी की आराधना की है और वह भी मुझसे इच्छा करते हैं, इस कारण मैं महादेवजी को कन्या दूंगा ।।११।।

हे विधि! शुभलग्न, शुभमुहूर्त्त में वह आवें, तब महादेवजी को भिक्षा के निमित्त कन्या दूं।।१२।। हे वृषभध्वज! दक्ष ने मुझसे कहा है, इस कारण आप शुभलग्न, शुभमुहूर्त्त में उनके घर जाइये।।१३।। ब्रह्माजी बोले– हे मुने! लौकिकी गति का आश्रय ले कर भक्तवत्सल रुद्र इन मेरे वचनों को सुन हँस कर मुझसे बोले।।१४।। रुद्र बोले– आपके और नारदजी के साथ मैं उनके घर जाऊंगा, इस लिये हे जगत् के रचने वाले ब्रह्माजी! आप नारदजी का स्मरण करें।।१५।। हे विधे! मरीच्यादि अपने मानसपुत्रों का भी स्मरण कीजिये, उनके साथ गणों के सहित मैं दक्ष के स्थान को चलूंगा।।१६।। ब्रह्माजी बोले– लोकाचार से युक्त ईश ने जब इस प्रकार मुझे आज्ञा दी, तब मैंने नारदजी तुम्हारा तथा अपने पुत्र मरीच्यादिकों का स्मरण किया।।१७।। तब मेरे स्मरण करते ही शीघ्र ही प्रसन्न हो कर तुम तथा मरीच्यादि मेरे मानसपुत्र आ गये।।१८।। और रुद्र के स्मरण करने पर लक्ष्मीसह गरुडारूढ शैवराज विष्णुजी शीघ्र सैन्य सहित आ गये।।१९।। चैत्र शुक्ल पक्ष त्रयोदशी, रविवार, पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र में शिवजी ने यात्रा की।।२०।। ब्रह्मा, विष्णु आदि सम्पूर्ण देवता और मुनियों के साथ जाते हुए मार्ग में श्रीशिवजी अत्यन्त शोभा को प्राप्त हुए।।२१।। अत्यन्त आनन्द से युक्त देवता और हरगणों के मार्ग पर चलने पर बड़ा उत्सव हुआ।।२२।। शिवजी की आज्ञा से यथायोग्य भूषण के निमित्त हाथी, गऊ, बाघ, सर्प, जटा चन्द्रमा की कलायुक्त जाते हुए।।२३।। वेगवान् बलीवर्द के द्वारा विष्णुजी आदि देवताओं सहित प्रसन्नतापूर्वक महादेवजी दक्ष के स्थान में पहुँच गये।।२४।। विनीतात्मा दक्ष अपने सम्पूर्ण सहचरों को साथ ले कर प्रसन्न हो कर रुद्र के सम्मुख गये।।२५।। फिर दक्ष ने सम्पूर्ण देवता और समीप में स्थित मुनियों का यथायोग्य सत्कार किया।।२६।। फिर सम्पूर्ण देवता और मुनियों को परिवारित कर के दक्ष शिवजी को अपने घर ले गये।।२७।। और दक्ष ने प्रसन्नतापूर्वक सर्वेश्वर हर का विधिवत् पूजन कर उत्तम आसन दिया।।२८।। फिर यथोचित विधान से दक्ष ने भक्तिपूर्वक विष्णुजी, मुझ ब्रह्मा, मुनिगण और समस्त देवताओं का पूजन किया।।२९।। इस प्रकार पूजा आदि से दक्ष ने उन सबका सत्कार कर सर्व मानस मुनियों के साथ आसनादि का सत्कार किया।।३०।। मेरे सुत दक्ष प्रसन्नता पूर्वक अपने पिता मुझे प्रणाम कर बोले कि, हे विभो! आप विवाह के कार्यों को कीजिये।।३१।। तब प्रसन्न हो कर 'बहुत अच्छा' कहते उठकर मैंने सम्पूर्ण कार्यों को किया।।३२।। शुभमुहूर्त्त और ग्रहों से युक्त बलीलग्न में दक्ष ने हर्षपूर्वक अपनी कन्या सती महादेवजी को दी।।३३।। दक्ष की स्त्री द्वारा पूजित वृषभध्वजजी ने विवाह की विधि से हर्षित हो कर सती का पाणिग्रहण किया।।३४।। फिर मैं, हरि, तुम को आदि ले कर सर्व मुनि और देवतागण नमस्कार कर के स्तुति के द्वारा ईश्वर को प्रसन्न करने लगे।।३५।। नृत्यगान के द्वारा बड़ा उत्सव हुआ और सम्पूर्ण देवताओं सहित मुनिगण परम आनन्द

को प्राप्त हुए ।।३६।। कन्या को दे कर मेरे सुत दक्ष कृतार्थ हुए और सम्पूर्ण मङ्गल के स्थान शिवपार्वती दोनों प्रसन्न हो गये ।।३७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
द्वितीये सतीखण्डे कन्यादानवर्णनो नामाष्टदशोऽध्यायः ।।१८।।

*****

उन्नीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले- दक्ष ने प्रसन्न हो कर कन्यादान कर के महादेवजी को बहुत कुछ दायज दे कर, ब्राह्मणों को बहुत द्रव्य दिया ।।१।। लक्ष्मी सहित गरुडध्वज विष्णुजी उठ कर, हाथ जोड़ कर शिवजी के समीप आ कर बोले ।।२।। विष्णुजी बोले- हे देवों के देव महादेव! हे करुणासागर प्रभु! आप संसार के पिता हैं और सती अखिल संसार की माता हैं ।।३।। सर्वदा सज्जनों के कल्याण के निमित्त और खलों के निग्रह के निमित्त आप दोनों लीलावतारी हैं, यह सनातनी श्रुति है ।।४।। हे हर! आप चिकने नीलअञ्जन के श्याम शोभा के समान दक्षकन्या से शोभित हैं, जैसे विपरीतता से लक्ष्मी और मैं ।।५।। हे शिवजी! इस सती से युक्त आप देवता और मनुष्यों की रक्षा कर के संसारियों का सर्वदा मङ्गल कीजिये ।।६।। हे सम्पूर्ण प्राणियों के ईश! जो इन्हें साभिलाष देखें अथवा सुनें उसका हनन कीजिये, हे प्रभु! यह मेरी प्रार्थना है ।।७।। ब्रह्माजी बोले- परमेश्वर सर्वज्ञ शिवजी ने विष्णुजी के इन वचनों को सुन कर हँसते हुए मधुसूदन से 'एवमस्तु' कहा ।।८।। हे मुनीश्वर! तदनन्तर हरिजी ने अपने स्थान में आ कर उत्सव कर के स्थित हो कर उस चरित्र को छिपाया ।।९।। और मैंने देवी के समीप आ कर गृह्योक्त विधि से विस्तारपूर्वक यथोदिष्ट अग्नि का कार्य किया ।।१०।। तत्पश्चात् मुझ ब्राह्मण आचार्य की आज्ञा से शिवा और शिवजी ने प्रसन्न हो कर यथाविधि अग्नि की प्रदक्षिणा की ।।११।। हे नारदजी! तब गीत-नृत्य के द्वारा सब को सुख देने वाला अद्‌भुत महाउत्सव हुआ ।।१२।। हे तात! उस समय वहां विस्मय करने वाला अद्‌भुत चरित्र हुआ, सो आपसे कहता हूँ, उसे सुनिये ।।१३।। शंकरजी की माया दुःख से जानने योग्य है, उसी ने चर-अचर मनुष्यों से युक्त संसार और देवताओं को मोहित कर रखा है ।।१४।। जो मैं कपट के द्वारा पूर्व ही शंकरजी को मोहित करना चाहता था, हे तात! उन्हीं शंकरजी ने मुझे अपनी लीला से मोहित कर लिया ।।१५।। जो दूसरे का अपकार चाहता है, उसका शीघ्र ही वह हो जाता है, यह मान कर पुरुष किसी का अपकार न करे ।।१६।। हे द्विजश्रेष्ठ मुने! सती के अग्नि की परिक्रमा करने

समय वस्त्र उड़ने से जो पदद्वय का दर्शन हुआ, उसे देख कर मैं शिवमाया से मोहित, मदन से आविष्टचित्त हो सती के अंगों का अवलोकन करने लगा।।१७-१८।। कौतुक से सती के जैसे-जैसे उत्तम अंगों को देखता वैसे-वैसे मैं प्रसन्न होने लगा।।१९।। हे मुने! दक्ष से उत्पन्न हुई पतिव्रता सती को इस प्रकार देख कर मैं काम से आविष्टचित्त हो मुख देखने की इच्छा करने लगा।।२०।। न मैंने शिवजी की लज्जा से उनका मुख देखा और न उन्होंने लज्जा के मारे मुख खोला।।२१।। काम से दुःखी हो कर मैंने उसे देखने के लिये अत्यन्त धुआं करने की इच्छा की, तत्पश्चात् इसका मुख देखें यही सोचते हुए मैंने यह किया कि।।२२।। अग्नि में खूब गीली लकड़ी छोड़ी और धीरे-धीरे थोड़ी-थोड़ी आहुति के छोड़ने से गीले द्रव्यों से उत्पन्न बहुत धुआं चारों ओर फैल गया और धूमाधिक्य होने के कारण वेदी के आसपास की पृथ्वी धुम्र युक्त हो गई।।२३-२४।। नाना लीलाओं को करने वाले समर्थ परमेश्वर शिवजी ने धूम्र से व्याकुल हो कर दोनों हाथों से अपने नेत्र मूँद लिये।।२५।। फिर प्रसन्न हो कर मुझ कामार्त ने सती के मुख के वस्त्र को हटा कर सती का मुख देखा।।२६।। हे पुत्र! मैं बार-बार सती के मुख को देखने लगा और इन्द्रिय विकार को भी प्राप्त हो कर मेरा चार बिन्दु वीर्य पृथ्वी पर गिर गया।।२७-२८।। तब चकित मौनी मैं, अत्यन्त आश्चर्य को प्राप्त हो गया और मैंने उस वीर्य को छिपाया, जिससे और कोई न जाने।।२९।। भगवान् शम्भुजी दिव्य चक्षु द्वारा यह वीर्यस्खलन जान कर क्रुद्ध हो कर बोले।।३०।। रुद्र बोले- जो आपने विवाह में मेरी कान्ता के मुख को राग से देखा, यह कैसा कुत्सित कर्म आपने किया?।।३१।। आपने सोचा, कि शिवजी ने यह कर्म कुछ नहीं जाना, परन्तु ऐसी कौन सी बात संसार में है, जिसे मैं नहीं जानता?।।३२।। जैसे तिल में तैल, वैसे ही तीनों लोकों और स्थावर-जंगम में मैं हूँ।।३३।। ब्रह्माजी बोले- यह कह कर विष्णुप्रिय शंकरजी विष्णुजी के वचन को स्मरण करते हुए शूल ले कर मुझ ब्रह्मा को मारने की इच्छा करने लगे।।३४।। मुझे मारने के निमित्त शम्भुजी ने शूल लेते ही मरीच्यादिकों ने हाहाकार किया।।३५।। तब सब देवता और मुनियों ने व्याकुल हो कर क्रोधित हुए शिवजी की स्तुति की।।३६।। देवता बोले- हे शरणागतवत्सल देवदेव परमेश्वर शिवजी! कृपा कीजिये और ब्रह्माजी की रक्षा कीजिये।।३७।। आप संसार के पिता और सतीजी संसार की माता है और ब्रह्मादिक देवता सब आपके दास हैं।।३८।। आपकी लीला अद्भुत है और आपकी माया अद्भुत है, उसी ने आपकी भक्ति से विरक्त रहने वाले को मोह रखा है।।३९।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार वृद्ध मुनियों ने नम्रतापूर्वक देवताओं के साथ नम्र हो कर क्रोध युक्त देवदेवेश शिवजी की स्तुति की।।४०।। उसी समय महासन्देह को प्राप्त हो कर दक्षजी ने शिवजी के समीप आ कर हाथ उठा कर कहा कि, कृपा कर के ऐसा न कीजिये।।४१।। फिर शिवजी आगे दक्ष

को देख कर और विष्णुजी की प्रार्थना को स्मरण करते हुए यह प्रिय वचन बोले ।।४२।। महेश्वरजी बोले- हे दक्षजी! जो प्राप्तभक्ति विष्णुजी ने इस समय कहा, उसे मैंने स्वीकार कर लिया ।।४३।। जो सती को काम की अभिलाषा से देखे, उसे आप मारे, विष्णुजी के इस वचन से ब्रह्माजी को मार कर प्रण सत्य करूंगा ।।४४।। ब्रह्माजी ने सती को साभिलाष कैसे देखा? अतएव अपराधी ब्रह्माजी को हम जरूर मारेंगे ।।४५।। ब्रह्माजी बोले- क्रोध युक्त महेशजी के यह कहने पर देवता, देवेश, मुनि, मनुष्य सब कांप उठे ।।४६।। चारों ओर हाहाकार और उदासीनता छा गई और मैं मोहित हो कर अति विकल हो गया ।।४७।। तब कार्य में चतुर, सुधी महेशप्रिय विष्णुजी ने इस प्रकार कहते हुये रुद्रजी की स्तुति की ।।४८।। भक्तवत्सल शिवजी की नाना स्तोत्रों से स्तुति कर के शीघ्र ही आगे हो कर वारण करते हुए बोले ।।४९।। विष्णुजी बोले- हे भूतों के प्रभु! आप जगत् के बनाने वाले ब्रह्माजी को न मारिये, वे आज आपकी शरण में हैं ।।५०।। आप मुझे भक्तराज कहते हैं और मैं आपका बड़ा प्रिय हूँ, मेरी विज्ञप्ति हृदय में धर कर मेरे ऊपर कृपा कीजिये ।।५१।। हे शिवजी मेरे ऊपर कृपा कर के हेतु युक्त मेरे दूसरे भी वचनों को सुनिये ।।५२।। हे शिवजी! प्रजाओं की सृष्टि करने के लिये यह चतुर्मुख उत्पन्न हुये हैं, इनके मरने के पश्चात् इस समय प्रजा का कोई स्रष्टा नहीं है ।।५३।। आपकी आज्ञा से हम तीनों देवता सृष्टि के कर्मों को करते हैं ।।५४।। इन्हें मारने पर आपका काम कौन करेगा? अतः सृष्टि के लय करने वाले आप इन्हें न मारें ।।५५।। इन्होंने ही दक्ष की कन्या सती को आपकी भार्या के रुप में प्रकल्पित किया है ।।५६।। ब्रह्माजी बोले- शिवजी इस प्रकार विष्णुजी की विज्ञप्ति को सुन कर सबको सुनाते हुए बोले ।।५७।। महेश बोले- हे देवदेव रमापति, मेरे प्राणप्रिय विष्णुजी! इन्हें मारने से आप मुझे निवारण न करें, क्योंकि यह दुष्ट है ।।५८।। प्रथम अंगीकृत आपकी विज्ञप्ति को मैं पूर्ण करूंगा और इस पापी चतुरानन को मारूंगा ।।५९।। मैं स्वयं ही प्रजाओं को बना लूंगा अथवा अपने तेज से सृष्टि करने वाले दूसरे को उत्पन्न करूंगा ।।६०।। इस ब्रह्माजी को मार कर अपने प्रण को पूर्ण कर के एक उत्पन्न करने वाले को उत्पन्न करूंगा, मुझे न रोकिये ।।६१।। ब्रह्माजी बोले- महादेवजी के इन वचनों को सुन कर निषेध करते हुए भगवान् मुस्कुरा कर फिर बोले ।।६२।। अच्युत बोले- हे प्रभु! प्रतिज्ञा पूर्ण करना दूसरे पुरुषों में योग्य है, अपने में नहीं, हे ईश! इस वध्य ब्रह्माजी के प्रति विचार कीजिये ।।६३।। हे शम्भुजी! हम तीनों देवता आपकी ही आत्मा हैं, दूसरे नहीं, एक ही रूप हैं, भिन्न नहीं, इसका तत्त्वपूर्वक विचार कीजिये ।।६४।। अत्यन्त प्रिय विष्णुजी के इन वचनों को सुन कर अपनी गति को कहते हुए शम्भुजी फिर बोले ।।६५।। शम्भुजी बोले- हे समस्त भक्तों के ईश विष्णुजी! ब्रह्माजी कैसे मेरी आत्मा हैं? यह प्रत्यक्ष आगे बैठे हुए भिन्न दिखलाई पड़ते हैं ।।६६।। ब्रह्माजी बोले-

सबके सम्मुख महादेवजी ने जब यह आज्ञा की, तब भगवान् विष्णुजी महादेवजी को प्रसन्न करते हुए यह बोले ।।६७।। विष्णुजी बोले– हे सदाशिव! ब्रह्माजी आपसे भिन्न नहीं हैं, न आप उनसे भिन्न हैं और हे परमेश्वर! न मैं आपसे भिन्न हूँ न आप मुझसे भिन्न हैं ।।६८।। हे सदाशिव! हे परमेश्वर! हे सर्वज्ञ! आप सब जानते हैं, जो आप सम्मुख कह रहे हैं, यह केवल सबको सुनाने की इच्छा से है ।।६९।। हे ईश! आपकी आज्ञा से मैं कहता हूँ, सम्पूर्ण देवताओं तथा मुनियों सुनिये, आप लोग अपने मन में शैवतत्त्व को धारण कीजिये ।।७०।। हे प्रभु! प्रधान–अप्रधान, भाग–अभाग रूप वाले ज्योतिर्मय भाग से हम तीनों देवता हैं ।।७१।। आप कौन हैं, मैं कौन हूँ और ब्रह्माजी कौन हैं? आप ही परमात्मा से सृष्टि, पालन और अन्त करने के लिये तीन अंश भिन्न हुए हैं ।।७२।। अपनी आत्मा से अपने को विचारिये, अपनी लीला के द्वारा आपने रूपों को धारण किया है, एक आप ही ब्रह्म हैं, गुण से युक्त हम तीनों आपके अंशभूत हैं ।।७३।। हे हर! जिस प्रकार एक ही शरीर में शिर, ग्रीवा आदि भेद होते हैं, उसी प्रकार आपके तथा उस ईश के यह तीनों भाग अंग हैं ।।७४।। जो ज्योति अभ्रस्वरूप पुराणपुरुष कूटस्थ, अव्यक्त, अनन्त, नित्य दीर्घादि विशेषणों से हीन कहा जाता है, जो एक रस अनादि निर्विकार हैं, वही सर्वरूप शिव आप हैं, यह विचारिये ।।७५।। ब्रह्माजी बोले– हे मुनीश्वर! विष्णुजी के इन वचनों को सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हो कर महादेवजी ने मुझे नहीं मारा* ।।७६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

द्वितीये सतीखण्डे सतीविवाह शिवलीलावर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ।।१९।।

*****

बीसवाँ अध्याय

नारदजी बोले– हे ब्रह्मन्! हे विधि! हे महाभाग! हे श्रेष्ठ शिवभक्त! हे प्रभु! मङ्गल का स्थान ऐसा अद्भुत शिवजी का चरित्र आपने सुनाया ।।१।। हे तात! फिर सम्पूर्ण पापों का नाश करने वाला महादेवजी और सती का कैसा दिव्य चरित्र हुआ? सो कहिये ।।२।। ब्रह्माजी बोले– भक्त पर दया करने वाले शंकरजी के मेरे वध से निवृत्त होने पर सब सुखी और प्रसन्न हो कर निर्भय हो गये ।।३।। वह सब हाथ जोड़ कर गर्दन नीची कर के प्रणाम करने लगे और भक्तिपूर्वक शंकरजी की स्तुति कर के जय–जय शब्द करने लगे ।।४।। हे मुनि! उसी समय मैंने प्रसन्न और निर्भय हो कर नाना प्रकार

*– यह कथा अध्यात्मवाद की है, इसमें गूढ़ तत्त्व है।

के उत्तम स्तोत्रों द्वारा भक्तिपूर्वक शंकरजी की स्तुति की ।।५।। हे मुनि! अनेक प्रकार की लीला करने वाले प्रभु शंकरजी प्रसन्नचित्त हो कर सबके सम्मुख मुझसे बोले ।।६।। रुद्र बोले- हे ब्रह्मन्! हे तात! मैं प्रसन्न हूँ, अब आप निर्भय और संशय रहित हो कर मेरी आज्ञा का पालन करते हुए हाथ से अपने मस्तक का स्पर्श कीजिये ।।७।। ब्रह्माजी बोले- अनेक प्रकार की लीला करने वाले प्रभु महादेवजी के वचन सुन कर उसी प्रकार शिवजी की आज्ञा मानते हुए अपने शिर को स्पर्श करने लगा ।।८।। जब तक मैं अपने हाथ से अपने शिर का स्पर्श करूं, तब तक शीघ्र ही उसी रूप में वृषभध्वज को स्थित पाया ।।९।। तब इन्द्रादिक देवताओं के देखते हुये मैं लज्जा से अधोमुख हो कर स्थित रहा ।।१०।। फिर मैंने लज्जा से युक्त हो कर महादेवजी की स्तुति की और प्रणाम कर 'क्षमा कीजिये-क्षमा कीजिये' कहने लगा ।।११।। हे प्रभु! इस पाप की शुद्धता के निमित्त प्रायश्चित्त कहिये, जिससे मेरा पाप दूर हो ।।१२।। सबके ईश भक्तवत्सल शम्भुजी प्रसन्न हो कर मेरे इस कहने पर बोले ।।१३।। शम्भुजी बोले- प्रसन्न हो कर मेरी आराधना में तत्पर हो कर इसी मेरे अधिष्ठित रूप से तप करो ।।१४।। पृथ्वी पर सर्वत्र रुद्रशिर नाम से आपकी प्रसिद्धि होगी और आप सर्व कार्यों के साधक ब्राह्मणों में तेजस्वी होंगे ।।१५।। आपने यह जो वीर्यपात किया यह कृत्य मनुष्यों के जैसा है, इस लिये आप मनुष्य हो कर पृथ्वी पर विचरण करोगे ।।१६।। इस रूप से पृथ्वी पर घूमते हुए जो आपको देखेंगे, तब वे कहेंगे कि, यह ब्रह्माजी के मस्तक में यह क्या है?।।१७।। तब आपके किये हुए को कौतुक से जो सुनेंगे, सो दूसरे की स्त्री का त्याग कर शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त होंगे ।।१८।। जिस-जिस प्रकार मनुष्य आपकी इस कीर्ति को कहेंगे, उसी-उसी प्रकार आपके पापों की शुद्धि होगी ।।१९।। हे ब्रह्मन्! संसार में आपकी निन्दा करने वाला और आपको हँसने वाला यह प्रायश्चित्त मैंने आपसे कहा ।।२०।। काम से दुःखी यह आपका वीर्य वेदी के मध्य में पतित मैंने देखा, इस कारण यह धारण करने योग्य न होगा ।।२१।। जो आपका चार बिन्दु वीर्य पृथ्वी पर गिरा है, वह प्रलय करने वाले चार मेघ आकाश में होंगे ।।२२।। उसी समय शीघ्र ही देवर्षियों के समीप वह वीर्य उसी संख्या के चार मेघ हो गये ।।२३।। हे तात! सम्वर्त, आवर्त, पुष्कर, द्रोण, यह चार प्रकार के प्रलय करने वाले महामेघ हो गये ।।२४।। हे मुनिश्रेष्ठ! शिवजी की इच्छा से गर्जते, थोड़ा-थोड़ा जल बरसाते, एक ही से उत्पन्न होने वाले मेघ आकाश में चले गये ।।२५।। जब वह मेघ जा कर आकाश में गर्जे, तब भगवान् शंकरजी दाक्षायणि देवी के सहित शान्त हुए ।।२६।। हे मुने! तब मैंने भय रहित हो कर शंकरजी की आज्ञा से विवाह के शेष कर्म समाप्त किये ।।२७।। हे मुनिश्रेष्ठ! सर्वत्र प्रसन्नतापूर्वक देवताओं के द्वारा छोड़े हुए पुष्पों की शिवजी और सती के मस्तक पर वृष्टि हुई ।।२८।। भक्ति से युक्त ब्राह्मणों द्वारा पढ़ने, बाजन बजने और गान होने पर ।।२९।। हे नारद!

रंभादि अप्सराओं के नाचने पर देवताओं की स्त्रियों में बड़ा उत्सव हुआ ।।३०।। फिर कर्मरूप परमेश्वर प्रसन्न हो कर संसारगति में स्थित हो कर प्रीतिपूर्वक मुझसे बोले ।।३१।। ईश्वर बोले– हे ब्रह्मन्! सम्पूर्ण वैवाहिक सुकृत कर्म जो था, वह समाप्त हुआ, अब मैं प्रसन्न हूँ, आप आचार्य हैं, आपको क्या दक्षिणा दूँ?।।३२।। हे देवताओं में ज्येष्ठ! दुर्लभ होने पर भी उसे मांगिये, हे महाभाग! उसे शीघ्र ही कहिये, मेरे लिये कुछ भी अदेय नहीं है ।।३३।। ब्रह्माजी बोले– हे मुनि! वह मैं शंकरजी के इन वचनों को सुन कर हाथ जोड़, ईश को बारंबार प्रणाम कर बोला ।।३४।। ब्रह्माजी बोले– हे देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं और मैं वर के योग्य हूँ तो, हे महान् ईश! जो मैं कहता हूँ उसे आप प्रसन्नतापूर्वक कीजिये ।।३५।। हे महेश्वर! मनुष्यों के पाप की शुद्धि के लिये सदैव यहां इसी रूप से इसी वेदी में स्थित रहिये ।।३६।। हे शशिशेखर शंकर! जिसमें इसी के समीप अपना आश्रम बना कर अपने पाप के विनाश के निमित्त मैं तप करूँ ।।३७।। चैत्र शुक्ल त्रयोदशी, भगदैवत नक्षत्र, रविवार को पृथ्वी पर जो मनुष्य भक्तिपूर्वक आपको देखेंगे ।।३८।। तभी उनके पाप नष्ट होंगे, अत्यन्त पुण्य बढ़ेगा और समस्त रोग नष्ट होंगे ।।३९।। जो स्त्री दुर्भगा, वन्ध्या, कानी, कुरूप होगी वह भी उस मुहूर्त्त में आपका दर्शन कर के शीघ्र ही निर्दोष हो जायेगी ।।४०।। ब्रह्माजी बोले– अपने सम्पूर्ण सुख देने वाले मेरे इन वचनों को सुन कर शिवजी ने प्रसन्न हो कर 'तथास्तु' कहा ।।४१।। शिवजी बोले– हे विधि! आपके वचन से समस्त लोकों के हित के निमित्त उस वेदी में अपनी पत्नी सती के सहित वास करूंगा ।।४२।। ब्रह्माजी बोले– यह कह कर वृषभध्वज भगवान् ने उत्तममूर्ति को कर वहां उस वेदी के मध्य में वास किया ।।४३।। अपने जनों पर दया करने वाले परमेश्वर शिवजी ने दक्ष से सम्मति कर सतीपत्नी सहित जाने की इच्छा की ।।४४।। उस समय दक्षजी हाथ जोड़ कर, प्रीति से विनयपूर्वक वृषभध्वज की स्तुति करने लगे ।।४५।। विष्णुजी आदि सम्पूर्ण देवता और मुनिगण स्तुतिपूर्वक नमस्कार करते 'जय–जय' शब्द करने लगे ।।४६।। दक्ष की आज्ञा से प्रसन्न हो कर महादेवजी ने सती को बैल पर बैठा कर स्वयं भी वृषभ पर सवार हो कर हिमालय पर्वत को गमन किया ।।४७।। शंकरजी के समीप बैल पर बैठी वह चारुहासिनी सती चन्द्रमा के कृष्णरेखा के समान शोभित हुई ।।४८।। विष्णुजी आदि सम्पूर्ण देवता और मरीच्यादि सब ऋषि, दक्षजी तथा और भी बहुत से मनुष्य मोहित हो गये ।।४९।। कोई बाजे बजाते हुए, कोई शुद्ध कल्याण के देने वाले शिवजी का यश प्रसन्नतापूर्वक गाते हुए शिवजी के साथ चले ।।५०।। दक्ष प्रीतिपूर्वक महादेवजी को आधे मार्ग तक पहुँचा कर, गणों सहित अपने स्थान को लौट आये, उधर शम्भुजी प्रेम से आकुल हो कर चले गये ।।५१।। शिवजी ने उन विष्णुजी आदि सब देवताओं को बिदा किया, तो भी वे सब परमभक्ति और प्रेम से शंकरजी के संग–संग कैलास तक गये ।।५२।। उन

सबों के साथ स्त्री युक्त सगण शम्भुजी अपने धाम में शोभित हिमगिरि पर पहुँच गये ।।५३।। वहां जाकर सम्पूर्ण देवताओं और मुनियों को प्रसन्नता से सन्मानपूर्वक बिदा किया ।।५४।। वह सब विष्णुजी आदि देवता और मुनि महादेवजी से कह कर स्तुति और नमस्कार कर के अपने–अपने स्थानों को गये ।।५५।। शिवजी भी मुदित हो कर अपनी स्त्री दक्षकन्या के सहित हिमालय पर्वत पर स्थित हो कर विहार करने लगे ।।५६।। गणों से युक्त शंकरजी सती सहित प्रसन्नतापूर्वक पर्वतों में अपने उत्तम स्थान कैलास पर्वत पर प्राप्त हुए ।।५७।। हे मुनि! यह स्वायम्भुवमनु के समय में होने वाले महादेवजी के विवाह का वर्णन किया, जैसा पहले हुआ था ।।५८।। जो मनुष्य महादेवजी का पूजन कर के, इस कथा को विवाह के समय अथवा यज्ञ के आरम्भ में सुनते हैं ।।५९।। उनके सम्पूर्ण वैवाहिक कर्म तथा जितने शुभकर्म हैं, वह सब सदैव निर्विघ्न पूर्ण हो जाते हैं ।।६०।। इस उत्तम कथा को प्रीतिपूर्वक सुन कर कन्या सुख, सौभाग्य, उत्तम शील तथा आचार रूपी गुणों से युक्त हो कर पतिव्रता और पुत्रवती होती है ।।६१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

द्वितीये सतीखण्डे सतीविवाहवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ।।२०।।

*****

इकीसवाँ अध्याय

नारदजी बोले– हे तात! आप सर्वज्ञ हैं, आपके उत्तम वचनों द्वारा मैंने शिवजी का महाअद्‌भुत शुभचरित्र सुना ।।१।। सम्पूर्ण मोहों के करने वाला, परमज्ञान से युक्त, मङ्गलों का उत्तम स्थान, श्रीशिवजी के विवाह को अच्छे प्रकार से सुना ।।२।। हे महाप्राज्ञ! मेरी शिवजी का शुभचरित्र सुनने की फिर भी इच्छा है, सो मुझ पर कृपा कर के वर्णन कीजिये ।।३।। ब्रह्माजी बोले– हे मुनि! अच्छे प्रकार करुणा करने वाले शिवजी की लीला वर्णन में जो आपसे कहा, और जो नहीं कहा उसे सुनिये ।।४।। दक्ष से उत्पन्न होने वाली, तीनों लोकों की माता सतीदेवी से विवाह कर के प्रीतिपूर्वक अपने स्थान पर जा कर जो किया, वह मुझसे सुनिये ।।५।। महादेवजी गणों सहित अपने स्थान पर पहुँच कर अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक बैल से उतरे ।।६।। हे देवऋषि! संसारी लीला करने वाले शिवजी यथायोग्य अपने स्थान में प्रवेश कर अत्यन्त प्रसन्न हुए ।।७।। तब शिवजी ने सती को पा कर नन्दी और गणों को पहाड़ी की कन्दरा से अन्य स्थान पर भेज दिया ।।८।। करुणासागर प्रभु शिवजी संसारी रीति से इन सबसे बोले ।।९।।

महेश बोले– जब मैं आप लोगों का बड़े प्रेम से स्मरण करूं, तब आप लोग शीघ्र ही मेरे पास आ जावें।।१०।। शिवजी के यह कहते ही शीघ्रगामी वीरगण और नन्दी आदि नाना स्थानों को चले गये।।११।। उनके चले जाने पर अत्यन्त प्रसन्न हो कर शिवजी सतीजी के साथ रमण करने लगे।।१२।। वे शिवजी कभी वन के फूल तोड़ कर सुन्दर माला बना कर, सती को हार के स्थान में पहनाते।।१३।। कभी सतीजी दर्पण में अपना मुख देखती हो, तो आप भी पीछे से जा कर अपना मुख देखने लगते।।१४।। सतीजी द्वारा रोकने पर भी उनके कुण्डलों को बार–बार उघार कर कभी खोले, कभी बांधे, कभी वह भगवान् शंकरजी स्वभाव से रक्तवर्ण अग्नि के समान निर्मल, उन सतीजी के चरणों को प्रसन्नता से रंग लगा कर बहुत लाल कर देते।।१५–१६।। जो कुछ बात दूसरे मनुष्यों के सामने भी सती से कहने योग्य थी, उसे भी सती को देखने की इच्छा से कान में कहते।।१७।। शंकरजी कभी दूर न जाते, जाते भी तो छिप कर पीठ पीछे आ कर खड़े होते कि, देखें सती का मन किन बातों में लगा हुआ है?।।१८।। कभी अपनी माया से अन्तर्धान हो कर सतीजी का आलिंगन कर लेते और सतीजी चकित हो कर अत्यन्त व्याकुल होतीं।।१९।। सुवर्ण की कली के समान उनके दोनों स्तन भ्रमरों का आकार धारण किये थे और मृगनाभि की उपमा के थे।।२०।। कभी बड़ी शीघ्रता से उनके स्तनों के स्पर्श की इच्छा कर के स्तनों के बीच से हार उठाते और फिर छोड़ देते।।२१।। बाजूबन्द, कंगन और कड़ों को बार–बार निकालते और पहनाते और जहां की जो वस्तु होती, फिर उसे उसी स्थान में पहना देते थे।।२२।। कालिका नाम्नी तुम्हारी सखी आती है, उसके साथ जाओ, यह कहने पर उसे देखते हुए सती के ऊंचे स्तनों का स्पर्श करते।।२३।। काम से व्यथितचित्त कभी प्रिया से अत्यन्त प्रसन्न हो कर लज्जा को छोड़ देते।।२४।। कभी कमल और सुन्दर–सुन्दर पुष्पों को ला कर बड़े प्रेम से सर्व शरीर पर फूलों के आभूषण पहनाते।।२५।। भक्तवत्सल शिवजी सम्पूर्ण रमणीय कुञ्जों में सतीजी के साथ विहार करते।।२६।। न उनके बिना कहीं गये, न बैठे, न देखा, उनके बिना क्षणभर भी शिवजी सुख न पाते।।२७।। कैलास पर्वत के कुञ्जों में बहुत दिनों तक विहार कर के हिमालय पर आ गये और अपनी इच्छा से काम का स्मरण करने लगे।।२८।। काम के शिवजी के पास जाने पर वसन्त ने अपना हार्दभाव को शिवजी पर फैलाया।।२९।। सम्पूर्ण वृक्ष प्रफुल्लित हो गये, लताएँ फूल गई हैं, जल कमलों सहित और कमल भ्रमरों सहित हो गये हैं।।३०।। वसन्त के प्रविष्ट होते ही सुगन्धित पुष्पों की गन्ध से युक्त सुन्दर मलयवायु बहने लगी।।३१।। सन्ध्या के अर्धचन्द्र के समान पलाश शोभित हो रहे थे और उनमें जो पुष्प फूल रहे थे, वही मानो कामदेव के अस्त्र थे।।३२।। तडाग में कमल के पुष्प शोभित हो रहे थे और वायुदेवता मनुष्यों को मोहित करने उद्यत थी।।३३।। वहां शंकरजी के समीप में नागकेशर के वृक्ष

अपने स्वर्णवर्ण के पुष्पों से मदनकेतु के समान शोभित हो रहे थे।।३४।। लवंगलता सुन्दर सुगन्ध से वायु को वासित कर के कामीजनों के चित्त को बारंबार मोहित कर रही थी।।३५।। सुन्दर अग्नि के समान चर्चित सुन्दर स्वर वाले, आम पर बैठने वाले भ्रमर काम के बाण के समूह और काम से व्याप्त वे मदन के पर्यंक जाने गये।।३६।। ज्ञान के बल से जिनके हृदयान्धकार दूर हो गये हैं, ऐसे मुनियों के चित्त के समान फूले हुए कमलों से पूरित निर्मल जल शोभा दे रहे थे।।३७।। सूर्य की किरणों के लगने से बरफ गल कर बह रहीं थी, तडागों के मध्य गाध हो रहे थे।।३८।। रात्रि चन्द्रमा के साथ होने के कारण वैसे ही शोभित हो रही थी, जैसे अपने प्रियतम के साथ सुन्दर स्त्री हो।।३९।। उस समय महादेवजी ने उस पर्वत पर स्थित निकुञ्ज और नदियों में सती के साथ बहुत काल पर्यन्त स्वच्छन्द रमण किया।।४०।। हे मुने! दक्ष की पुत्री महादेवजी के साथ अतिशय शोभित हुई और शिवजी भी उनके बिना क्षणभर भी न शान्त रहते थे।।४१।। सती भी शिवजी के मन को प्रसन्न करती हुई और मानो सम्भोग का रसपान कराती हुई, शिवजी के शरीर में प्रविष्ट सी हुई जा रही थीं।।४२।। और शंकरजी भी उनके अंगों को पुष्पों की माला से शोभित करते हुये नवीन-नवीन प्रकार के मङ्गल कर रहे थे।।४३।। शिवजी भी आलापवीक्षित हास्य और सम्भाषण से उस विषय में अपने ज्ञान का परिचय दे रहे थे।।४४।। उसके चन्द्ररूपी मुख के अमृत के पान से प्रसन्न हुए शिवजी अपनी विशिष्ट अवस्था का कुछ ध्यान न करते थे।।४५।। उसके मुखकमल की आवास से, उसकी सुन्दरता से, उसकी क्रीड़ा से महादेवजी ऐसे बँधे थे, जैसे कोई हाथी रस्सियों से बँधा हो।।४६।। इस प्रकार से हिमालय के कुञ्जों में, सानुओं पर और गुफाओं में शिवजी सती के साथ प्रतिदिन रमण करते थे, शिवजी के ऐसे क्रीड़ा करते हुए देवताओं के पचीस वर्ष गत हो गये।।४७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

द्वितीये सतीखण्डे एकविंशोऽध्यायः।।२१।।

*****

बाईसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– कभी वर्षा ऋतु में, जब कि महादेवजी कैलास पर्वत के एक शिखर पर बैठे थे, तब सती ने यह प्रश्न किया ।।१।। सती बोली– हे देवताओं के देवता! हे मेरे प्राण के वल्लभ! हे मानद! हे नाथ! मेरे वचन सुनिये और वैसा कीजिये ।।२।। हे नाथ! यह परम दुस्सह वर्षाकाल आ कर प्राप्त हुआ, नाना वर्ण के मेघ दशों दिशाओं में घिरे हैं ।।३।। हृदय को हरने वाली वायु बह रही है, कदम्ब के मकरन्द से मिले हुए जल के सीकर आ रहे हैं ।।४।। धाराओं का समूह बरसाते हुए, बिजली को चमकाते हुए और गर्जते हुए मेघों को देख कर किस का मन क्षुभित नहीं हो जाता ?।।५।। यह ऋतु विरहियों को दुःख देने वाला, जिसमें न तो दिन में सूर्य प्रकाशित होता है और न रात्रि को चन्द्रमा, ऐसा दिन को भी रात्रि के समान रखने वाला शोभित हो रहा है ।।६।। हे शंकर! वायु के वेग से प्रेरित शब्द करते हुए मेघ भी एकत्र नहीं ठहरते, किन्तु लोगों के शिर पर गिरते हुए दिखाई देते हैं ।।७।। हे शंकर! वायु से प्रेरित बड़े–बड़े वृक्ष अन्तरिक्ष में नाचते से दिखाई देते हैं, जो डरने वालों को डरावने और कामियों को सुख देने वाले हैं ।।८।। चिकने और काले अञ्जन के समान मेघ के ऊपर उड़ती हुई बकपंक्ति ऐसी शोभा दे रही है, जैसे यमुना नदी के पृष्ठ पर फेन बहता हो ।।९।। रात्रि आ जाने पर श्यामता आ जाने से विद्युत वलयाकार दीखती है, जैसे समुद्र में प्रदीप्त वडवामुख अग्नि होती है ।।१०।। हे विरूपाक्ष! ऐसे समय में मन्दराचल पर छोटे वृक्ष जम रहे हैं, दूसरे स्थान की क्या चर्चा है ?।।११।। काले, सफेद और लाल मेघों से घिरा हुआ यह पर्वत वैसे ही शोभा देता है, जैसे पक्षियों से घिरा हुआ दुग्ध का समुद्र ।।१२।। भिन्न–भिन्न प्रकार की शोभा दिखाते हुए वृक्षों के पल्लव शोभित हो रहे हैं, जैसे कलिकाल में सज्जनों को छोड़ कर नीचे–ऊँचे पुरुषों को लक्ष्मी प्राप्त होती है ।।१३।। मन्दर पर्वत के मेघों की ध्वनि से प्रसन्न हुए ये मयूर वन में अपनी पीठ दिखा कर नाच रहे हैं ।।१४।। और मेघों के लिए उत्सुक यह चातकों की मधुर ध्वनि सुनाई पड़ रही है ।।१५।। मेघों की यह दुर्नीति जो कि, अपने अनुगामी मयूर और चातकों को ओलों से ढंकता है ।।१६।। मयूर और सारंग का मित्र से भी पराजय देख कर उनका मन हर्ष को प्राप्त होता है ।।१७।। इस विषम काल में काक और मयूर भी अपना घोंसला बनाते हैं, भला कहो कि, आप बिना घर के कैसे शान्ति पाओगे ?।।१८।। हे पिनाकी! मुझे मेघों से बड़ा डर लगता है, इस कारण मेरे कहने से कहीं घर का प्रबन्ध कीजिये ।।१९।। हे वृषभध्वज! कैलास में अथवा हिमालय में अथवा महाकाशी में अथवा पृथ्वी पर जहां

उचित हो, वहां प्रबन्ध कीजिये ।।२०।। ब्रह्माजी बोले- ऐसी दाक्षायणी की विनती सुन कर शंकरजी बारंबार हँसे और उनके मस्तक पर स्थित अर्धचन्द्र के प्रकाश से वह स्थान प्रकाशित हो गया ।।२१।। अनन्तर सब तत्त्वों के जानने वाले परमेश्वर, सती को प्रसन्न करते हुए हँस कर बोले ।।२२।। ईश्वर बोले- हे प्रिये! जहां तेरी प्रसन्नता के लिये मैं स्थान बनाऊंगा, वहां मेघ नहीं जाएंगे ।।२३।। हे मनोहरे! वर्षाकाल में भी हिमालय के शिखर के नीचे मेघ भ्रमण करते रहते हैं ।।२४।। और कैलास के तो नीचे ही मेघ रहते हैं, ऊपर कदापि नहीं जाते ।।२५।। पुष्करावर्तक आदि मेघ जम्बू के मूल तक प्राप्त हो कर सुमेरु के शिखर के ऊपर नहीं जाते ।।२६।। इतने कहे हुए पर्वतों में से जिस पर निवास करने की तुम्हारे मन की इच्छा हो, उसे मुझसे शीघ्र कहो ।।२७।। हिमालय पर्वत पर सुवर्ण पक्ष वाले अनिलवृन्द नामक पक्षियों के समूह अपने ऊँचे-ऊँचे मधुर शब्दों से तुम्हारी इच्छानुसार विहार के कौतुकों का गान करेंगे ।।२८।। वहां सिद्धों की स्त्रियां तुम्हारे स्वेच्छा विहार के समय मणियों में जड़-जड़ कर बनाई हुई वेदी रूप आसन की भूमि को कौतुक के साथ तुम्हें अर्पण करेंगी और नाना प्रकार के फल आदि भी ला कर तुम्हारे सामने रखना चाहेंगी ।।२९।। नागकन्या, पर्वतकन्या तथा तुरङ्गमुखी नागकन्या (किन्नरी) यह सब निरन्तर क्रीड़ा के समय सुन्दर-सुन्दर वचन कह कर तुम्हारी सहायता करेंगी ।।३०।। वहां की अति सुन्दर देवांगनायें तुम्हारे इस अनुपम रूप और परम मनोहर मुख को देख कर अपने शरीर में रूप और गुण को धिक्कार करेंगी और तुम्हारी ओर टकटकी लगा कर देखेंगी ।।३१।। जो पर्वतराज की स्त्री मेनका रूप गुण से त्रिलोकी में विख्यात है, वह भी तुम्हारे मन की प्रसन्नता अनेक प्रकार से करेगी और तुम्हारी अनुकूलता करेगी ।।३२।। गिरिराज को वन्दन करने वाले सब पुर के परिवार के लोग तुम्हारी उदार रूप प्रीति करेंगे, यदि तुम्हें कुछ शोक भी होगा, तो वह तुम्हारी शिक्षा करेंगे ओर तुम्हें समझायेंगे ।।३३।। कोकिलाओं के बड़े विचित्र आलाप और मोद वाले कुञ्जों के समूहों से घिरे हुए स्थान में, हे प्रिये! क्या सदा वसन्त की उत्पत्ति वाले स्थान में जाना चाहती हो ।।३४।। अनेक बहुत से जलों से पूर्ण सरस शीत से युक्त, सैकड़ों कमलिनियों से युक्त अचलराज हिमालय है ।।३५।। सब कामना देने वाले शाद्वल तथा कल्पवृक्षों से सम्पन्न फूलों को अश्वकरि गोव्रज के समान क्षणमात्र को देखो ।।३६।। यहां के सब हिंसक जीव शान्त हैं, यह मुनि-यतियों से सम्पन्न देवालय है, हे महामाये! यह अनेक मृगगणों से युक्त है ।।३७।। स्फटिक मणि और सुवर्ण की गोखादि तथा चांदी के स्थानों से विराजमान मानसादि सरोवर के रंगों से सब प्रकार से शोभित ।।३८।। सुवर्ण और रत्नों की डण्डी वाले कमल और बबूलों से सम्पन्न, शिशुमार तथा असंख्य कच्छप, मकरों से व्याप्त, बड़े उज्ज्वल नीलकमलादिकों से सम्पन्न हैं, हे देवेशि! इसी कारण कुम्कुमादि की सब ओर से गन्ध प्राप्त हो रही

है ।।४०।। जलों में से सुगन्ध आ रही है, स्वच्छ कान्ति वाले सरोवर भर रहे हैं, बड़े तरुण ऊँचे वृक्षों तथा शाद्वलों से शोभायमान हैं ।।४१।। यहां के अखरोटों के वृक्ष मानो अपनी शाखा हिला कर नृत्य कर रहे हैं, कामदेव सारस और मत वाले चकवा-चकवियों से शोभित हैं ।।४२।। भ्रमरादि मधुर ध्वनि गुंजार रहे हैं और प्रेम से शब्दायमान कामोद्दीपन करने वाले शब्द हो रहे हैं ।।४३।। इन्द्र, कुबेर, यम, वरुण, अग्नि, कोणपति, पवनादि की पुरियें जिनके शिखर पर शोभायमान हो रही हैं, मेरु पर्वत पर इस प्रकार सब देवता निवास करते हैं। रंभा, शची, मेनका आदि अप्सराओं से सेवित हैं ।।४४-४५।। हे देवि ! क्या तुम इन समस्त भूमियों के सारभूत महामनोहर महापर्वतों पर विहार करने की इच्छा करती हो ?।।४६।। यहां जाने से सखियों से युक्त अप्सरागणों से मण्डित शचीदेवी तुम्हारी नित्य सहायता करेगी ।।४७।। अथवा पर्वतराज सब वस्तुओं से शोभायमान मेरे पर्वतराज कैलास में जो कुबेर की पुरी के भी ऊपर भाग में विराजमान है, वहां तुम रहने की इच्छा करती हो ?।।४८।। जहां पूर्ण चन्द्रमा की कान्ति के समान नित्य जल बहता है, जहां की गुफाओं (कन्दराओं) में ब्रह्मकन्या सुन्दर गान करती हैं, वहां रहना चाहती हो?।।४९।। जो अनेक मृगगणों से युक्त सैकड़ों कमलों से व्याप्त सब गुणों में श्रेष्ठ सुमेरु से भी सुन्दर है ।।५०।। हे देवि ! इन स्थानों में से जहां तुम्हारे मन में इच्छा हो, उस वृक्षादि के स्थान को कहो, वहीं मैं स्थान बना कर निवास करूं ।।५१।। ब्रह्माजी बोले- जब शंकरजी ने ऐसा कहा तब सती शनैः-शनैः महादेवजी से अपने रहने के लक्षण प्रकाश करने लगी ।।५२।। सती बोली- मैं आपके सहित हिमालय में निवास करने की इच्छा करती हूँ, उसी महापर्वत पर शीघ्र ही निवास करिये ।।५३।। ब्रह्माजी बोले- सती के वचन सुन कर मोहित हुए शंकरजी हिमालय के ऊँचे शिखर पर पार्वती के सहित गये ।।५४।। जो सिद्धों की स्त्रियों से सेवित है, जहां पक्षी भी नहीं जा सकते, उस कमलों के बन से विराजमान मनोहर शिखर पर शिवजी गये ।।५५।। विचित्र रूप वाले कमलों से वह शिखर चित्रित हो रहा था, प्रभात के सूर्य के समान शोभायमान उस शिखर पर सती सहित शिवजी प्राप्त हुए ।।५६।। स्फटिकमणि और अभ्रमय शाद्वल वृक्षों से विराजमान विचित्र पुष्पराजी और कमलिनियों से संयुक्त ।।५७।। फूले वृक्षों की अग्रशाखावाले गुंजार करते हुए फूले पंकरुह और नीले कमलों से शोभायमान ।।५८।। चक्रवाक, कादम्ब, हंस, शंकु, मतवाले सारस और नीली गर्दन वाले क्रौंच पक्षियों से सेवित तथा शब्दायमान ।।५९।। पुंस्कोयलों के मधुरालाप तथा गणों से सेवित, तुरङ्गवदन वाले सिद्ध और अप्सराओं के समूहों से व्याप्त ।।६०।। विद्याधरी देवी और किन्नरियों के विहार से सम्पन्न पर्वत की रहने वाली स्त्री और कन्याओं से संघटित ।।६१।। मृदंग, पटह, वीणा, सितार के बाजों पर नाचती हुई अप्सराओं के कौतुकों से नित्य व्याप्त ।।६२।। देवताओं द्वारा निर्माण की हुई बावड़ी और उनमें आती हुई कमलगन्धि से

व्याप्त, फूले हुए फूलों वाले वृक्षों की कुंजों से नित्य शोभायमान ।।६३।। शैलराज के इस प्रकार सब प्राणियों से शोभायमान उत्तम शिखर पर सती के सहित शंकरजी बहुत काल तक रमण करते रहे ।।६४।। उस स्वर्ग के समान स्थान पर महादेवजी सती के साथ परम प्रसन्नता से देवताओं के दश सहस्र वर्ष तक विहार करते रहे ।।६५।। कभी उस स्थान से शिवजी अन्य स्थान में जाते, कभी देवीदेवताओं से व्याप्त मेरु शिखर पर जाते ।।६६।। पृथ्वी के अनेक द्वीप तथा दिव्य उद्यानों में पृथ्वी पर विचरण करते सती के साथ रमण करने लगे ।।६७।। यज्ञ, तप, निजरूप चिन्तन यह सब छोड़ कर शिवजी ने सती में ही मन लगाया ।।६८।। इस प्रकार सती सदा महादेवजी का ही मुख देखती और महादेवजी सदा सती का मुख देखते थे ।।६९।। इस प्रकार परस्पर एक दूसरे के अनुराग से परस्पर शिव–काली ने भाव का जल छिड़क कर प्रेमरूपी वृक्ष को बढ़ाया ।।७०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

द्वितीये सतीखण्डे द्वाविंशोऽध्यायः ।।२२।।

*****

तेईसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार वह सती शंकरजी के साथ विहार कर के सन्तुष्ट हो कर फिर काम से विरक्त हुई ।।१।। एक समय एकान्त में सुख से बैठी हुई सती, श्रेष्ठ भक्ति से शिवजी को प्रणाम कर और हाथ जोड़ कर ।।२।। वह दक्षकन्या सती प्रसन्न हुए अपने प्रभु को प्रणाम कर के बड़ी नम्र और भक्ति से कहने लगी ।।३।। सती बोली– हे देवदेव महादेव ! हे करुणासागर ! हे प्रभो ! दीनों का उद्धार करने वाले, हे महायोगी ! मुझ पर कृपा करें ।।४।। हे स्वामी ! आप परम पुरुष हो। आप रज, सत, तम से परे तथा निर्गुण–सगुण के साक्षी निर्विकारी महाप्रभु हो ।।५।। मैं स्त्रियों में धन्य हूँ, जो विहारशील आप की प्रिया हूँ, हे हर ! भक्तवत्सलता से आप मेरे स्वामी हुए हो ।।६।। हे नाथ ! आपने मेरे साथ बहुत काल तक विहार किया, हे महेशान ! उससे मैं सन्तुष्ट हुई और मेरा मन निवृत्त हो गया ।।७।। हे देवेश ! अब सुख देने वाले परमतत्त्व को जानने की इच्छा करती हूँ, हे हर ! जिसके कारण से यह जीव संसार के पार हो सकता है ।।८।। विषयी जीव जिसे प्राप्त कर के परम पद को लेता है हे नाथ ! और फिर भी वह संसारी न हो, कृपा कर के वह तत्त्व कहिये ।।९।। ब्रह्माजी बोले– हे मुने ! जब सती ने श्रेष्ठ भक्ति कर केशंकरजी से ऐसा पूंछा और आदिशक्ति महेशानी ने केवल जीवों के उद्धार की

इच्छा की ।।१०।। तब अपनी इच्छा से शरीर धारण करने वाले शिवजी, यह वचन सुन कर योग से विरक्त बुद्धि होने के कारण, परम प्रेम से सती से बोले ।।११।। शिवजी बोले– हे दाक्षायणि महेश्वरी! सुनो, मैं तुमसे कहता हूँ, जिस परम तत्त्व को जान कर यह अनुशयी जीव मुक्त हो जाता है ।।१२।। हे परमेश्वरी! तुम विज्ञान को ही परम तत्त्व जानो, दूसरा स्मरण उस स्थल पर नहीं, शुद्ध बुद्धि से केवल ब्रह्म का स्मरण है ।।१३।। हे प्रिये! इस तत्त्व को जानने वाला कोई विरला ही होता है और त्रिलोकी में दुर्लभ है, मैं दास हूँ और ब्रह्म साक्षात् परे से परे है ।।१४।। भुक्ति और मुक्ति का फल देने वाली उस विज्ञान की माता मेरी भक्ति है, वह भक्ति भी मेरी ही कृपा से सुलभ होती है और वह नौ प्रकार की है ।।१५।। भक्ति और ज्ञान में कुछ भेद नहीं है, भक्ति करने वाले को सदा सुख होता है, भक्ति से विरोध करने वाले को कभी विज्ञान की प्राप्ति नहीं होती ।।१६।। हे देवि! मैं सदा भक्ति के आधीन हूँ, भक्ति के प्रभाव के कारण जाति से हीन नीच पुरुषों के घरों में भी जाता हूँ, हे देवि! इसमें सन्देह नहीं है ।।१७।। हे देवि! सगुण–निर्गुण के भेद से वह भक्ति दो प्रकार की है, नियम सम्बन्धी और स्वाभाव की, इसमें पहली श्रेष्ठ और दूसरी अवर है ।।१८।। वह दोनों प्रकार की भक्ति नैष्ठिकी और अनैष्ठिकी भेद से दो–दो प्रकार की है, इसमें नैष्ठिकी छः प्रकार की और अनैष्ठिकी एक ही प्रकार की है ।।१९।। इसको विहित–अविहित भेद से पण्डित अनेक प्रकार की कहते हैं और वह अनेक प्रकार की होने से उनका तत्त्व अन्यत्र वर्णन किया है ।।२०।। हे प्रिये! उन दोनों के अंग मुनियों ने नौ प्रकार के वर्णन किये हैं, हे देवि! उन नौ अंगों के लक्षणों को पृथक्–पृथक् कहता हूँ, सावधान हो कर प्रेम से सुनो ।।२१।। श्रवण करना, कीर्तन करना, स्मरण, सेवन, दास्यपन, अर्चन और वन्दन करना ।।२२।। सख्यता और पश्चात् आत्मसमर्पण, यह नौ अंग विद्वानों ने कहे हैं, हे शिवे! उसके उपांग तो बहुत ही हैं ।।२३।। हे देवि! अब नवांगों का लक्षण पृथक्–पृथक् कहता हूँ। जो मेरा भक्त इनमें मन लगावे, तो उसको भुक्ति–मुक्ति की प्राप्ति होती है ।।२४।। कथा आदि में देहादि से नित्य सन्मान करे, स्थिर आसन से बैठ कर उसका पान करे, यह 'श्रवण' कहलाता है ।।२५।। मेरे जन्मकर्म को हृदय रूपी आकाश में देखते हुए उनको प्रीति से उच्चारण करे, इसका नाम 'कीर्तन' है ।।२६।। हे देवि! मुझे नित्य सर्वत्र सर्वदा व्यापक जान कर निर्भय हो कर लोक में सदा विचरे ।।२७।। अरुणोदय से आरम्भ कर के सेवाकाल में हृदय से विचार कर के सदा निर्भय हो कर स्मरण करे, इसका नाम 'स्मरण' है ।।२८।। सदा सेवा के अनुकूल हो कर अपनी इन्द्रियों को भगवत्सेवा में लगावे, हृदय से उनके अमृत का भोग करे, उनका प्रिय चिन्तन करे, इसका नाम 'दास्य' है ।।२९।। भृत्य के समान मेरी सदा अनुकूलता करे और सोलह प्रकार से मेरा पूजन करे। पाद्य, अर्घ्य दे, यह 'अर्चन' है ।।३०।। मन, वचन, कर्म से मन्त्रोच्चारण और ध्यान करे, आठों अंगों से

भूमि को स्पर्श करे, इसका नाम 'वन्दन' है।।३१।। मङ्गल-अमङ्गल जो कुछ ईश्वर मेरे लिये विधान करता है, वह सब मङ्गल है, ऐसा जो विश्वास है, यह 'मित्रता' का लक्षण है।।३२।। प्रीति से देहादि सब उसके निर्वाह को अर्पण कर देना, आप शून्यत्व समझना, यही 'आत्मसमर्पण' है।।३३।। यह मेरी भक्ति के नौ अंग भुक्ति-मुक्ति के देने वाले हैं, यह ज्ञान के उत्पन्न करने वाले मुझे बहुत प्यारे हैं।।३४।। और मेरी भक्ति के उपाङ्ग तो बहुत ही हैं, जैसे बेलपत्र आदि से सेवन, यह विचार से जान लेने।।३५।। हे प्रिये! इस प्रकार से साङ्गोपाङ्ग मेरी भक्ति सर्वोत्तम है, यह ज्ञानवैराग्य उत्पन्न करने वाली है, इसकी मुक्ति दासी हो कर रहती है, यह सदा शोभायमान है।।३६।। हे प्रिये! इसी से सब कर्म और फल की उत्पत्ति होती है, सदा तुम्हारे समान प्रिया है, जिसके चित्त में यह स्थित हो, वह सदा मेरा प्रिय है।।३७।। तीनों लोकों में भक्ति के समान कोई मार्ग सुखदायी नहीं है, हे देवेशि! यह चारों युगों में प्रधान है, पर कलि में विशेष है।।३८।। कलियुग में ज्ञानवैराग्य वृद्ध और निरुत्सव हैं, हे देवि! ग्राहक के अभाव से वे जर्जर हो रहे हैं।।३९।। सब युगों में और विशेष कर कलि में भक्ति विशेष फल देने वाली है, इसके प्रत्यक्ष प्रभाव से मैं सदा इसके वशीभूत रहता हूँ।।४०।। जो पुरुष लोक में भक्तिमान् होता है, मैं सदा उसकी सहायता करता हूँ, मैं विघ्नों का हरने वाला उसके यहां जो विघ्न करता है, उसका शत्रु होता हूँ, इसमें सन्देह नहीं।।४१।। हे देवि! भक्तों के निमित्त ही मैं कालक्रोध से व्याप्त होता हूँ, मैंने भक्तों के निमित्त ही अपने नेत्रों की अग्नि से उसे दग्ध किया था।।४२।। हे देवि! भक्तों के निमित्त ही मैं सूर्य से ऊपर हुआ और बड़े क्रोध से शूल उठा कर उसको जय किया।।४३।। हे देवि! भक्त के निमित्त ही मैंने रावण को क्रोध कर के गणों के सहित त्याग दिया, उसका पक्षपात नहीं किया।।४४।। हे देवि! भक्तों के निमित्त ही मैंने एक बार कुमति करने पर व्यासजी को नन्दी द्वारा काशी से निकलवा दिया था।।४५।। हे देवेशि! बहुत कहने से क्या? मैं सदा भक्ति के अधीन हूँ और भक्ति करने वाले पुरुष के अधीन रहता हूँ, इसमें सन्देह नहीं।।४६।। ब्रह्माजी बोले- दक्षकन्या सती इस प्रकार भक्ति का माहात्म्य सुन कर बड़ी प्रसन्न हुई और उसने प्रेम से प्रणाम किया।।४७।। हे मुने! फिर भी भक्तिकाण्ड के विषय में पूछने लगी, जो शास्त्र लोक में सुखदायक तथा जीवों का उद्धार करने वाला है।।४८।। यन्त्र, मन्त्र, शास्त्र और विशेष कर उसका माहात्म्य तथा जीवों का उद्धार करने वाली और भी अनेक धर्म वस्तुओं को पूछा।।४९।। शिवजी भी सती के प्रश्न सुन कर बड़े प्रसन्न हुए और जीवों के उद्धार के निमित्त परम भक्ति से उसका वर्णन करने लगे।।५०।। यन्त्र और पञ्चाङ्ग के सहित देव शंकरजी ने उस शास्त्र को महिमा सहित वर्णन किया।।५१।। इतिहास और भक्ति के माहात्म्य सहित वह सब कथा वर्णाश्रम धर्म, राजधर्म।।५२।। पुत्र और स्त्री धर्म के माहात्म्य वर्णाश्रम के अविनाशी धर्म तथा

जीवों का उद्धार करने वाले वैद्यक और ज्योतिषशास्त्र ।।५३।। सामुद्रिकशास्त्र तथा और भी दूसरे शास्त्र कृपा कर के शिवजी ने तत्त्व से वर्णन किये ।।५४।। इस प्रकार त्रिलोकी को सुख देने वाले सर्वज्ञ सती और शिवजी ने भक्तों के निमित्त शरीर धारण कर के यह सब वर्णन किया ।।५५।। इस प्रकार हिमालय पर्वत पर अनेक प्रकार से क्रीड़ा करने लगे तथा परब्रह्म स्वरूप शिवाशिव अन्य स्थलों में विहार करने लगे ।।५६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

द्वितीये सतीखण्डे त्रयोविंशोऽध्यायः ।।२३।।

*****

चौबीसवाँ अध्याय

नारदजी बोले– हे ब्रह्मन्! हे विधे! हे महाभाग! हे प्रजानाथ! हे महापण्डित! हे कृपासागर! आपने शिवाशिव का परम सुन्दर यश श्रवण कराया ।।१।। इसी प्रकार से अब फिर भी उनका उत्तम यश कहिये, वहां स्थित हो कर शिवाशिवजी ने क्या चरित्र किया?।।२।। ब्रह्माजी बोले– हे मुने! प्रेम से शिवाशिव का चरित्र श्रवण कीजिये। वह लौकिकी गति को आश्रय कर के सदा क्रीड़ा करने लगे ।।३।। हे मुने! तब शंकरजी के शयन करने पर महादेवी सती ने वियोग की प्राप्ति की, ऐसा कोई–कोई सुबुद्धि कहते हैं ।।४।। यथार्थ में तो शिवाशिव चित्त से वाणी और अर्थ के समान मिले हुए हैं, हे मुने! तत्त्व से उनका वियोग कैसे सम्भव हो सकता है?।।५।। अथवा लीला करने में वह सब संगठित हो जाता है, जो–जो भवरीति से शिवाशिव करते थे ।।६।। फिर शंकरजी से त्यक्त हो कर सती ने पिताजी के यज्ञ में जा कर शिवजी के अनादर के कारण अपना शरीर त्याग दिया ।।७।। फिर वह सती हिमालय के यहां जा कर प्रकट हुई और तप कर के फिर भी शंकरजी को प्राप्त हुई और वहां पार्वती नाम वाली हुई ।।८।। सूतजी बोले– नारदजी ब्रह्माजी के यह वचन सुन कर फिर भी विधाता से शिवाशिव के महान् यश को पूछने लगे ।।९।। नारदजी बोले– हे विष्णुशिष्य महाभाग ब्रह्माजी! आप विस्तार सहित यह लोकलीला का शिवाशिव का चरित्र वर्णन कीजिये ।।१०।। प्राणों की प्यारी जाया का शिवजी ने किस प्रकार से त्याग किया? हे तात! मैं इस बात को बड़ी विचित्र मानता हूँ, आप मुझसे इस चरित्र को कहिये ।।११।। किस प्रकार आपके पुत्र से शंकरजी का अनादर हुआ? और पिता के यज्ञ में जा कर सती ने किस प्रकार से देह का त्याग किया?।।१२।। फिर उसके पश्चात् क्या हुआ? और शंकरजी ने क्या किया? मैं श्रद्धा से सुनना चाहता हूँ, आप यह सब मुझसे कहिये ।।१३।। ब्रह्माजी

बोले- हे नारदजी! मुनियों के साथ परम प्रीति से इस बात को सुनिये, हे पण्डित पुत्र! मैं शंकरजी का चरित्र कहता हूँ।।१४।। हरि आदि से सेवित महेशान को प्रणाम कर के परमब्रह्म का महाअद्भुत चरित्र कहता हूँ।।१५।. अनेक लीला करने वाले प्रभु शंकरजी की यह अद्भुत लीला है, वह स्वतन्त्र और निर्विकार है, सती भी उसी प्रकार है।।१६।। हे मुने! अन्यथा उस कर्म के करने में कौन समर्थ है? परमात्मा परब्रह्म वही परमेश्वर है।।१७।। जिनका भजन सदा श्रीपति विष्णुजी, मैं और सब देवता करते हैं। महात्मा, मुनि और सिद्ध सनकादिक जिनका भजन करते हैं।।१८।। शेषजी सदा जिनके यश को प्रेम से गाते हैं, हे तात! और उसका पार नहीं पाते, वही प्रभु सर्वेश्वर शंकरजी हैं।।१९।। उन्हीं की लीला से यह सब तत्त्व का विलास दिखाई देता है, उसमें किसी का दोष नहीं है, वह सर्वव्यापक सबका प्रेरक है।।२०।। एक समय लीला करने में चतुर शंकरजी सती के सहित वृषभ पर स्थित हो कर त्रिभुवन भूमि पर विचरण करने लगे।।२१।। सागर पर्यन्त जब भूमि पर भ्रमण करते हुए दण्डकारण्य में आये, तब सत्यप्रतिज्ञ शिवजी सती को भूमि की शोभा दिखाने लगे।।२२।। उस समय शिवजी ने राम-लक्ष्मण को उस स्थान में देखा, जो छल कर के रावण द्वारा हरण की गई हुई जानकी को खोज रहे थे।।२३।। उस समय रामचन्द्रजी 'हा सीता!' ऐसा कह कर विरह से व्याकुल हो रहे थे और इधर-उधर खोजते हुए रो रहे थे और जानकी को खोज रहे थे।।२४।। उसकी प्राप्ति की इच्छा से उसकी गति की खोज करते हुए बुद्धि रहित हो जाने से वृक्षों से पूँछते थे, शोक से व्याकुल थे।।२५।। इस प्रकार सूर्यवंश में उत्पन्न वीर दशरथपुत्र भरत के बड़े भ्राता आनन्द और प्रभा रहित।।२६।। शोक के अधीन हो कर बन में भ्रमण करते हुए लक्ष्मण सहित रामजी को देख कर उदारबुद्धि शंकरजी ने प्रणाम किया।।२७।। और 'जय' ऐसा उच्चारण कर के दूसरी ओर से अपना दर्शन दिया, जब भक्तवत्सल शंकरजी ने रामचन्द्रजी को अपना दर्शन दिया।।२८।। तब ऐसी मोहने वाली शिवजी की लीला को देख कर माया से मोहित हो कर सती शिवजी से बोली।।२९।। सती बोली- हे देवदेव! हे परब्रह्म! हे सर्वेश! हे परमेश्वर! आपको हरि, ब्रह्मादि देवता सदा सेवन करते हैं।।३०।। आप ही सबके प्रणाम, ध्यान और सेवन करने वाले हो, आप यत्न से वेदान्त से जानने योग्य निर्विकारी परमप्रभु हो।।३१।। हे नाथ! विरह से आकुल आकृति किये यह दोनों पुरुष कौन हैं? जो धनुष धारण किये वीर वन में विचरण करते हैं पर, विरह से व्याकुल हैं!।।३२।। उनमें श्यामकमल के समान ज्येष्ठ पुरुष को देख कर आप भक्त के समान किस प्रकार से प्रसन्न हुए?।।३३।। हे शंकर नाथ! आप इस प्रकार मेरे सन्देह को दूर कीजिये, हे प्रभो! स्वामी का सेवक को प्रणाम करना ठीक नहीं होता।।३४।। ब्रह्माजी बोले- सती देवी आदिशक्ति शिवा परमेश्वरी है. शिवजी की माया से वशीभूत हो कर उसने

परमेश्वर शिवजी से ऐसा पूँछा ।।३५।। सती के यह वचन सुन कर हृदय में हँसते हुए, लीला करने में चतुर शंकर परमेश्वर बोले ।।३६।। शिवजी बोले– हे सती! हे देवी! मैं यथार्थ कहता हूँ, तुम सुनो कि, इसमें कुछ सन्देह नहीं, वरदान के प्रभाव से मैंने आदर से प्रणाम किया है ।।३७।। यह राम–लक्ष्मण नाम वाले दोनों भाई वीर सम्मत सूर्यवंश में उत्पन्न महाप्राज्ञ दशरथपुत्र हैं ।।३८।। जो गौरवर्ण इनका छोटा भ्राता है वह वीर सम्मत शेष है, ज्येष्ठ राम नाम वाले पूर्णांश निरुपद्रव विष्णुरूप हैं ।।३९।। यह भूमि पर साधुओं की रक्षा के निमित्त अवतार ले आये हैं, यह कह कर जगत्कर्ता शंकरजी मौन हो गये ।।४०।। शिवजी के यह वचन सुन कर भी सती के मन में विश्वास नहीं आया, शिवजी की माया बड़ी बलवती है और सब लोकों को मोहित करने वाली है ।।४१।। शिवजी के यह वचन सुन कर स्त्री को अविश्वास युक्त जान कर लीला करने की इच्छा से यह वचन कहे ।।४२।। शिवजी बोले– हे देवि! मेरे वचन सुनो, यदि तुम्हारे मन में विश्वास नहीं आता है, तो अपनी बुद्धि से रामचन्द्रजी की परीक्षा करो ।।४३।। हे प्रिये सती! जिस प्रकार से तुम्हारा मोह नष्ट हो जाए वैसा करो, मैं तब तक वट की छाया में स्थित होता हूँ, तब तक तुम जा कर परीक्षा लो ।।४४।। ब्रह्माजी बोले– शिवजी की आज्ञा से ईश्वरी सती जा कर विचार करने लगी कि, मैं इन वनचरी राम की परीक्षा किस प्रकार करूं?।।४५।। मैं सीता का रूप धारण कर के रामचन्द्रजी के समीप जाऊं, यदि राम हरि होंगे, तो मेरी बात को सब प्रकार जान जायेंगे ।।४६।। इस प्रकार सीताजी का रूप धारण कर के वह राम के समीप गई और मोहपरायण हो कर परीक्षा की इच्छा की। सती का सीता का रूप देख कर शिवनाम जपते हुए इस बात को जान कर हँसते हुए प्रणाम कर के रामचन्द्रजी बोले ।।४७–४८।। रामचन्द्रजी बोले– हे सतीजी! आपको प्रणाम है, प्रेम से कहिये कि, शंकरजी इस समय कहां हैं, पति के बिना आप अकेली वन में क्यों आई हो? ।।४९।। हे सतीजी! अपना रूप छोड़ कर आपने यह रूप क्यों धारण किया है? हे देवि! मेरे ऊपर कृपा कर के इसका कारण कहिये ।।५०।। ब्रह्माजी बोले– रामचन्द्रजी के यह वचन सुन कर सती बड़ी चकित हुई और शिवजी के वचन स्मरण कर बहुत लज्जित हुई ।।५१।। रामचन्द्रजी को साक्षात् विष्णु ही जाना, तब अपना रूप धारण कर; चित्त में शिवजी को स्मरण कर प्रसन्न हो कर सती बोली ।।५२।। मेरे और गणों के सहित भूमिपर्यटन करने शिवजी यहां आये और स्वतन्त्र हो कर वह परमेश्वर वन में विचरने लगे ।।५३।। यहां उन्होंने सीता को खोजने में तत्पर आपको देखा कि, सीताजी के बिना लक्ष्मण सहित आप दुःखी हो रहे हो ।।५४।। आपको प्रणाम कर के वह वट के मूल में स्थित हो रहे हैं और आपकी वैष्णवी महिमा की प्रशंसा कर रहे हैं ।।५५।। आपको बिना चतुर्भुज देखते हुए भी वह बहुत प्रसन्न हुए हैं, इस निर्मल रूप को देख कर उन्होंने बहुत आनन्द माना है ।।५६।। पर शिवजी के वचनों से मेरे

मन में भ्रम हो गया, हे राघव! उन्हीं की आज्ञा से मैं आपकी परीक्षा लेने आई थी ।।५७।। हे राम! मैंने आपकी प्रभुता देखी, आपको साक्षात् विष्णु जाना, मैं सन्देह रहित हो गई हूँ। हे महामते! तो भी मुझे कुछ कहना है, सो आप सुनिये ।।५८।। आप यह बात मुझसे सत्य–सत्य कहें कि, शिवजी ने आपको प्रणाम क्यों किया? आप शीघ्र ही मुझे सन्देह रहित कर के कल्याण को प्राप्त करो ।।५९।। ब्रह्माजी बोले– सती के यह वचन सुन कर श्रीरामचन्द्रजी के नेत्र हर्ष से प्रफुल्लित हो गये और अपने प्रभु शंकरजी को स्मरण कर के उनके हृदय में विशेष प्रेम हुआ ।।६०।। हे मुने! सती की आज्ञा के बिना शिवजी के समीप न गये और उस महिमा का वर्णन करते हुए श्रीरामजी सती से बोले ।।६१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

द्वितीये सतीखण्डे चतुर्विंशोऽध्यायः ।।२४।।

*****

पच्चीसवाँ अध्याय

रामचन्द्रजी बोले– हे देवि! परम कल्याणकारी शंकरजी ने एक समय पहले परे से परे अपने लोक में विश्वकर्माजी को बुलाया ।।१।। और उनसे अपनी बड़ी मनोहर गोशाला बनवाई और एक बड़ा मनोहर भवन और एक परम मनोहर सिंहासन बनवाया ।।२।। और बड़ा अद्भुत परम मनोहर छत्र भी शिवजी ने विश्वकर्माजी से गणेशजी के निमित्त बनवाया ।।३।। और इन्द्रादिक सम्पूर्ण देवताओं को बुलाया तथा गण, सिद्ध, गन्धर्व, नागादि सबको बुलाया ।।४।। सब देवता और ब्रह्माजी के पुत्रों को भी बुलाया और सब देवियां अप्सराओं के साथ अनेक स्थानों से आईं ।।५।। देवता, सिद्ध, ऋषि तथा सर्पादि यह सब आये और सोलह–सोलह कन्या आदि वीणा, मृदंग आदि अनेक प्रकार के बाजे बजाने लगे और गायनाचार्यों को बुलावा दे कर उत्सव कराया गया।।६–७।। राजा के अभिषेक के योग्य सब द्रव्य और औषधि और तीर्थों के जलों के भरे हुए पांच घट तथा दूसरी प्रकार की भी सब सामग्री शिवजी के गण लाये, उस समय शंकरजी की आज्ञा से ब्रह्मघोष होने लगा ।।८–९।। तब बड़े प्रेम से वैकुण्ठ से श्रीहरि को बुला कर, हे देवि! उनकी सद्भक्ति से शंकरजी बड़े प्रसन्न हुए ।।१०।। तब उस श्रेष्ठ मुहूर्त्त में महादेवजी ने उस श्रेष्ठ सिंहासन पर हरि को बैठा कर उनको भूषणों से सजाया ।।११।। कौतुक मङ्गल कर के उनके मस्तक पर मुकुट बांधा और ब्रह्माण्ड मण्डप में स्वयं शंकरजी ने उनका अभिषेक किया ।।१२।। जो कभी

दूसरों पर नहीं जाता, वह सब अपना ऐश्वर्य शंकरजी ने हरि को दिया और भक्तवत्सल स्वतन्त्र परमेश्वर विष्णुजी की स्तुति करने लगे ।।१३।। और लोककर्ता ब्रह्माजी से इस प्रकार के वचन बोले और भक्तवत्सल स्वतन्त्र परमेश्वर ने अपनी भक्तवत्सलता सर्वत्र व्याप्त कर दी ।।१४।। शिवजी बोले– हे लोकेश! आप और सब लोक सुनें, आज से ले कर यह हरि औरों को तो क्या मेरे भी वन्दनीय हुए ।।१५।। हे तात! सब देवताओं के सहित आप इन हरि को प्रणाम करो और यह वेद भी मेरी आज्ञा से हरि के यश का वर्णन करेंगे ।।१६।। रामचन्द्रजी बोले– ऐसा कह कर शंकरजी ने गरुडध्वज को प्रणाम किया और भक्तवत्सल शंकरजी विष्णुजी की भक्ति से प्रसन्न वरदायक हुए ।।१७।। तब उस समय ब्रह्मादि देवता, मुनि, सर्व रूप सिद्ध देवता सब ने हरि को प्रणाम किया ।।१८।। तब शिवजी देवताओं के समक्ष विष्णुजी की बड़ाई करते हुए प्रसन्न हो कर भक्तवत्सलता के कारण विष्णुजी को अनेक वरदान देने लगे ।।१९।। महेश्वरजी बोले– आप मेरी आज्ञा से सब लोकों के कर्ता, हर्ता, भर्ता होंगे। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के देने वाले तथा अधर्मियों के शासन करने वाले होंगे ।।२०।। आप जगदीश जगत्पूज्य महाबल पराक्रमी होंगे, आप युद्ध में अजेय होंगे तथा कभी मुझको भी अजेय होंगे ।।२१।। मुझसे दी हुई तीन शक्तियों को आप ग्रहण कीजिये, अनेक लीला के करने वाले आप तीनों भुवनों में प्रतापी होंगे ।।२२।। हे विष्णुजी! जो आपसे द्वेष करेंगे, मैं अवश्य उनका शासन करूंगा, हे विष्णुजी! आपके भक्तों को मैं अवश्य निर्वाणपद दूंगा ।।२३।। और जिसका कोई देवता भेद नहीं कर सकते, उस माया को भी आप मुझसे ग्रहण कीजिये, जिससे मोहित हुआ यह संसार अचिद्रूप होगा ।।२४।। हे हरे! आप साक्षात् मेरा ही रूप हो, यह विधाता मेरी दक्षिण भुजा हैं, आप इन विधाता के उत्पादक और रक्षक भी होंगे ।।२५।। मेरा हृदय जो रुद्र है, सो साक्षात् मैं ही हूँ, वह रुद्र आपसे तथा ब्रह्मादि से पूज्य होंगे, इसमें सन्देह नहीं ।।२६।। यहां स्थित हो कर आप सब जगत् का पालन करें, अनेक अवतार धारण कर के आप अनेक लीला करें ।।२७।। मेरे लोक में आपका यह स्थान महासमृद्धिवाला होगा और यह परम उज्ज्वल स्थान 'गोलोक' नाम से प्रसिद्ध होगा ।।२८।। हे विष्णुजी! आपके जो अवतार पृथ्वी पर रक्षा रूप से होंगे, मेरे वर से प्रसन्न हुए मेरे भक्तजन अवश्य उनका दर्शन करेंगे ।।२९।। रामचन्द्रजी बोले– इस प्रकार शंकरजी से विष्णुजी ने अखण्ड ऐश्वर्य प्राप्त किया और कैलास पर शिवजी उमा के साथ क्रीड़ा करने लगे ।।३०।। उसी समय से कमलापति ने भी गोपवेष धारण किया और गोप-गोपी तथा गौओं के रक्षक हो कर स्वयं वहां निवास करने लगे ।।३१।। और प्रसन्न हो कर विष्णुजी सब जगत् का पालन करने लगे और शिवजी की आज्ञा से अनेक अवतार धारण कर रक्षा करने लगे ।।३२।। इस समय उन्होंने शिवजी की आज्ञा से चार प्रकार से अवतार धारण किये हैं, वह मैं राम और दूसरे लक्ष्मण, भरत और

शत्रुघ्न हैं।।३३।। हे देवि! मैं पिता की आज्ञा से लक्ष्मण और सीता के सहित वन में आया हूँ और दैववश दुःखी हुआ हूँ।।३४।। मेरी भार्या सीता किसी निशाचर ने हर ली है, सो मैं वियोगी हो कर भ्राता सहित उसे वन में खोज रहा हूँ।।३५।। हे माता सति! अब आपका दर्शन पाया है, तो सदा कुशल ही होगी, यदि आपकी कृपा होगी तो सर्वथा मङ्गल होगा।।३६।। हे देवि! सीता की प्राप्ति का वर प्राप्त होगा, इसमें सन्देह नहीं और उस दुःखदाई राक्षस को मैं अवश्य मारूंगा, इसमें सन्देह नहीं, पर यह सब आपकी कृपा से होगा।।३७।। आज मेरे बड़े भाग्य हैं, जो आप दोनों ने कृपा की, जिसके ऊपर आप दोनों की कृपा हो वह पुरुष धन्य है।।३८।। इस प्रकार बहुत कुछ कह कर और सती को प्रणाम कर के उनकी आज्ञा ले कर रघुनाथजी वन में विचरने लगे।।३९।। तब सतीजी जितेन्द्रिय रघुनाथजी के यह वचन सुन कर, उनको शिवजी का भक्त जान कर हृदय से प्रशंसा करने लगीं।।४०।। और अपना कर्म जान कर हृदय में बड़ा शोक किया, तब उदासीन और विवर्ण मुख से शिवजी के समीप गमन किया।।४१।। मार्ग में देवी बारंबार विचार करने लगी, मैंने शिवजी के वचन न मान कर रामचन्द्रजी के प्रति कुचेष्टा की।।४२।। अब शिवजी के समीप जा कर मैं क्या उत्तर दूंगी? ऐसा बारंबार विचार कर सती पछताने लगीं।।४३।। और शिवजी के समीप जा कर उनको हृदय से प्रणाम किया, शोक से व्याकुलमुख हो गई, शरीर की कान्ति जाती रही।।४४।। सती को दुःखी देख कर शिवजी ने कुशल पूँछी और प्रेम से बोले– कहो किस प्रकार से परीक्षा ली?।।४५।। शिवजी के वचन सुन कर सती ने मस्तक झुका लिया और कहा, कुछ भी परीक्षा न ली, यह कह कर शोक से व्याकुल हो कर शिवजी के समीप स्थित हुई।।४६।। तब शिवजी ने ध्यान कर के सब चरित्र जान लिया, नाना लीला करने में चतुर महायोगी शिवजी ने दक्षसुता का सब चरित्र जान लिया।।४७।। और अपना पहला प्रण हरि के कोप से समय का स्मरण किया, जो मर्यादा के प्रतिपालक रुद्र को अभीष्ट था।।४८।। शंकरजी को उस समय बहुत विषाद हुआ और धर्म के वक्ता, धर्म के कर्ता, धर्म के रक्षक ने मन में यह कहा।।४९।। शिवजी बोले– यदि में दक्ष की कन्या से पूर्ववत् स्नेह करूं, तो लोकलीला की अनुसरण करने वाली मेरी प्रतिज्ञा भंग हो जाएगी।।५०।। ब्रह्माजी बोले– वेदधर्म के प्रतिपालक शंकरजी ने अपनी प्रतिज्ञा नहीं छोड़ी और बहुत प्रकार से हृदय में विचार कर सती को त्याग दिया।।५१।। इस प्रकार परमेश्वर ने मन से सती को त्याग कर अपने पर्वत को गमन किया और इस भेद को प्रकाश न किया; कारण कि प्रभु हैं।।५२।। तब मार्ग में चलते हुए आकाशवाणी हुई, जिस वाणी को सबने और विशेष कर सती ने सुना।।५३।। आकाशवाणी बोली– हे परमेशान महायोगी महाप्रभु! आप धन्य हो, आपके समान त्रिलोकी में कोई प्रतिज्ञा की रक्षा नहीं कर सकता।।५४।। ब्रह्माजी बोले– व्योमवाणी सुन कर सती शिवजी से

पूँछने लगी, हे नाथ! हे परमेश्वर! आपने क्या प्रण किया है? सो आप कहिये ।।५५।। हित कर के भी सती ने शंकरजी से पूँछा, तथापि शिवजी ने ब्रह्मा, विष्णुजी के आगे की हुई अपनी प्रतिज्ञा को न कहा ।।५६।। तब सती ने प्राणप्यारे अपने पति शंकरजी का ध्यान कर के वह अपने त्याग सम्बन्धी सब विषय को जान लिया ।।५७।। तब अपना त्याग जान कर सती बड़ा शोक करने लगी और वह दक्षसुता शिवजी के निमित्त बारंबार श्वास लेने लगी ।।५८।। शिवजी ने सती के हृदय में अपनी प्रतिज्ञा गुप्त रूप से प्रकट हुई, ऐसा विचार कर उसका मन बहलाने को बहुत सी कथाएं कहीं ।।५९।। इस प्रकार अनेक कथा कहते हुए सती के साथ कैलास पर पहुँचे और वहां स्थित हो कर समाधि लगा कर अपने निज रूप का ध्यान करने लगे ।।६०।। और सती महाव्याकुल हो कर वहां स्थिति करने लगी, हे मुने! शिवाशिव के इस चरित्र को वहां किसी ने भी नहीं जाना ।।६१।। हे महामुने! इस प्रकार से वहां दोनों का महासमय व्यतीत हो गया, इस प्रकार लोकलीला करने के कारण वह देह धारण कर के चरित्र करने लगे ।।६२।। जब भगवान् शंकरजी ने समाधि त्यागी, तब यह जान कर सती उनके समीप गई ।।६३।। और व्याकुल हृदय से देवी ने उनको प्रणाम किया, उदारबुद्धि शंकरजी ने उनको अपने सम्मुख आसन दिया ।।६४।। और प्रेम से बहुत सी मनोरम कथाएं सुनाईं और वैसी लीला कर के सती को शीघ्र ही शोक रहित कर दिया ।।६५।। और सती को पूर्ववत् सुख प्राप्त हुआ, मानो शंकरजी ने अपनी प्रतिज्ञा छोड़ दी, हे तात! परमात्मा शिवजी में यह सुख के व्यापार का कोई आश्चर्य नहीं है ।।६६।। हे मुने! मुनिजन इस प्रकार से शिवाशिव की कथा कहते हैं, अविद्वान ही उनका वियोग कहते हैं ।।६७।। परमार्थ से शिवाशिव के चरित्र को कौन जान सकता है? वे दोनों अपनी इच्छा से क्रीड़ा करते हुए चरित्र करते हैं ।।६८।। सती और शिवजी सदा वाणी और अर्थ के समान मिले हुए हैं, उनके वियोग की फिर संभावना कहां। जो कुछ उनकी इच्छा है, सो ही होता है ।।६९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

द्वितीये सतीखण्डे पञ्चविंशोऽध्यायः ।।२५।।

*****

छब्बीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले- पूर्वकाल में प्रयागराज में एकत्र मुनिजनों का एक महान् यज्ञ हुआ था ।।१।। सिद्ध, परमर्षि, सुरर्षि, सनकादिक प्रजापति, ब्रह्मज्ञानी देवता वहां एकत्रित हुए थे ।।२।। मैं भी अपने परिवार के सहित वहां उपस्थित हुआ था, निगमागम मूर्ति धारण किये मेरे संग थे ।।३।। उत्सव के सहित उनका वह विचित्र समागम हुआ, वहां अनेक शास्त्रों का ज्ञानवाद उपस्थित हुआ ।।४।। उस समय त्रिलोकी का हित और पालन करने वाले भवानीपति रुद्र भी अपने गणों को साथ ले कर वहां आये ।।५।। शिवजी को देखते ही सब सिद्ध, देवता, ऋषि और मुनि उन्हें अपना प्रभु मान कर प्रणाम करने लगे और मैं भक्ति से उनकी स्तुति करने लगा ।।६।। तब शिवजी की आज्ञा से सब कोई अपने स्थानों पर स्थित हुए और प्रभु के दर्शन से सन्तुष्ट हो कर सब कोई अपने भाग्य की सराहना करने लगे ।।७।। उसी समय प्रजापतियों के भी पति महातेजस्वी दक्षजी प्रसन्नतापूर्वक अपनी इच्छा से वहां आये ।।८।। ब्रह्माण्ड के अधिपति के मान्य तत्त्व से बहिर्मुख अभिमानी दक्षजी केवल मुझे ही प्रणाम कर मेरी आज्ञा से वहां बैठ गये ।।९।। उस समय सर्व देवता, ऋषियों ने उन महातेजस्वी दक्षजी की स्तुति और प्रणामों से प्रतिष्ठा की और पूजा कर के नम्र हो कर हाथ जोड़ कर प्रशंसा की ।।१०।। परन्तु अनेक प्रकार की लीलाविहार करने वाले परम स्वतन्त्र महेश्वरजी अपने आसन पर बैठे रहे, उन्होंने दक्षजी को प्रणाम नहीं किया ।।११।। तब शिवजी को प्रणाम न करता हुआ देख कर मेरा पुत्र दक्ष बड़ा अप्रसन्न हुआ और उसने शिवजी पर बड़ा क्रोध किया ।।१२।। और महागर्व से क्रूर दृष्टि से शिवजी को देखते हुए, ज्ञान से रहित हो कर सबको सुनाते हुए दक्षजी ने कहा ।।१३।। दक्ष बोले- यह सब सुर, असुर, ब्राह्मण, ऋषि मुझे देख कर प्रणाम करते हैं, परन्तु यह प्रेत-पिशाचों से आवृत, महामानी, दुर्जन के समान किस प्रकार से स्थित है ?।।१४।। इस श्मशानसेवी, निर्लज्ज, क्रियाहीन, भूतपिशाचों से सेवित मत वाले, विधिहीन विदूषक ने मुझे प्रणाम क्यों नहीं किया ?।।१५।। पाखण्डी, दुर्जन, पापशील, ब्राह्मणों की निन्दा करने वाले, सदा वधू में आसक्त, रति में प्रवीण होने से मैं इनको शाप देने के निमित्त प्रवृत्त होता हूँ।।१६।। ब्रह्माजी बोले- यह कह कर महादुष्ट प्रजापति ने क्रोध कर के रुद्र के प्रति यह वचन कहे, हे ब्राह्मणो ! हे देवताओ ! सब सुनिये, यह मुझसे वध्य होने के योग्य है ।।१७।। दक्षजी बोले- इन रुद्र को मैंने यज्ञ से बाहर किया है, वर्णों से भी बाहर हैं, विवर्ण रूप हैं, यह आज से देवताओं के मध्य में भाग न पावेंगे, कारण कि यह श्मशानवासी

कुलजन्म से हीन हैं।।१८।। ब्रह्माजी बोले– भृगु आदि बहुत से ऋषि दक्षजी के यह वचन सुन कर देवताओं के समान रुद्र को जान कर निन्दा करने लगे।।१९।। परन्तु प्रजापति के वचनों से नन्दी की आँखें लाल हो गईं और वह श्रेष्ठ गण दक्ष को शाप देते हुए बोले।।२०।। नन्दीश्वर बोले– अरे शठ, महामूढ़ दुष्टमति दक्ष! तुमने मेरे स्वामी महेश्वरजी को किस कारण यज्ञ से बाहर किया?।।२१।। जिनके स्मरणमात्र से यज्ञ सफल होते हैं, तीर्थ पवित्र होते हैं, उन शंकरजी को तुमने कैसे शाप दिया?।।२२।। हे दुर्मति दक्ष! ब्रह्मचपलता से तुमने शंकरजी को वृथा ही शाप दिया, इन सरल महाप्रभु रुद्र का वृथा ही तूने उपहास किया।।२३।। जो जगत् का पालन कर के सृष्टि के अन्त में विनाश करते हैं, हे ब्राह्मणाधम! उन रुद्र को तुमने कैसे शाप दिया?।।२४।। इस प्रकार जब नन्दी ने प्रजापति की भर्त्सना की, तब क्रोध कर के दक्ष ने नन्दी को शाप दिया।।२५।। दक्ष बोला– तुम सब रुद्र के गण वेद से बाहर होंगे, वेद और महर्षियों से त्यागे जाओगे।।२६।। पाखण्डवाद में निरत, शिष्टाचार से हीन, मदिरापान करने वाले, जटा, भस्म और अस्थियों को धारण करने वाले होंगे।।२७।। ब्रह्माजी बोले– जब इस प्रकार दक्ष ने शिवजी के किंकरों को शाप दिया, तब यह सुन शिवजी के प्रिय नन्दी महाक्रोधित हुए।।२८।। और उस घमण्डी महादुष्ट दक्ष से शीघ्रतापूर्वक शिवजी के प्रिय शिलादपुत्र नन्दी ने कहा।।२९।। नन्दीश्वर बोले– रे शठ दुर्बुद्धि दक्ष! शिवजी के तत्त्व को न जानने वाले तुमने ब्रह्मचपलता से वृथा ही शिवजी के किंकरों को शाप दिया।।३०।। दुष्टचित्त वाले भृगु आदि जनों से हँसी कराई, ब्राह्मणत्व के अहंकार से महाप्रभु महेशान का निरादर किया।।३१।। जो रुद्र से विमुख तेरे समान खल ब्राह्मण हैं, रुद्र के तेज के प्रभाव से मैं उनको शाप देता हूँ।।३२।। वेदवाद में रत हो कर भी तुम वेद का तत्त्व न जान सकोगे और तुम निरन्तर और कुछ नहीं है, ऐसा कहने वाले होगे।।३३।। केवल कामना से ही अनुष्ठान करने वाले स्वर्गपरायण क्रोध, लोभ, मद से युक्त होगे और भिक्षा मांगने वाले लज्जा रहित होंगे।।३४।। वेदमार्ग को आगे कर के ब्राह्मण शूद्रों को यज्ञ कराओगे और सदा कुदान लेने वाले दरिद्री होगे।।३५।। असत्प्रतिग्रह लेने के कारण नरकगामी होगे, हे दक्ष! इनमें कोई–कोई ब्रह्मराक्षस होंगे।।३६।। जिन शिवजी परमेश्वर को तुम देवताओं में सामान्य देव जानते हो, उनसे जो दुष्टमति द्रोह करेगा, वह तत्त्व से विमुख होगा।।३७।। यह शिवजी के द्रोही कूटधर्म में तत्पर घर में पड़े हुए ग्राम्यसुख की इच्छा करेंगे, कर्मतन्त्र में लग कर वेदवाद करेंगे।।३८।। इसके आनन्द नष्ट हो जायेंगे, अपनी गति भूल जाने से प्राय: पशु रूप हो जायगा, कर्मनीति से विमुख होने से शीघ्र ही दक्ष का मुख बकरे का हो जाएगा।।३९।। जिस समय नन्दी ने क्रोध कर के ब्राह्मण को शाप दिया, उस समय हाहाकार मच गया, जब कि दक्ष ने भी शंकरजी को शाप दिया।।४०।। यह सुन कर मैंने दक्ष आदि तथा भृगु आदि दूसरे

ब्राह्मणों की निन्दा की कि, वेद और शिवतत्त्व जान कर भी ऐसा किया ।।४१।। शंकरजी नन्दी के यह वचन सुन कर हँसते हुए उसे समझाते हुए बोले ।।४२।। सदाशिवजी बोले- हे महाप्राज्ञ नन्दी! तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिये, भ्रम से मुझे शाप देता हुआ देख कर तुमने वृथा ही ब्रह्मकुल को शाप दिया ।।४३।। वेद मन्त्राक्षरमय है, वह साक्षात् सूक्तमय है और सूक्त में सब देहधारियों की आत्मा प्रतिष्ठित है ।।४४।। इस कारण आत्मज्ञानी होने के कारण तुम क्रोध कर के शाप मत दो, किसी दुर्बुद्धि से भी कभी वेद शापित नहीं हो सकते ।।४५।। तुम तत्त्व से जान सकते हो कि मैं शापित नहीं हो सकता, हे बुद्धिमान्! तुमने सनकादिकों को बोध दिया है, इससे शान्त हो ।।४६।। यज्ञ, यज्ञ के कर्म, यज्ञ के अंग, यज्ञात्मा, यज्ञ में निरत, यज्ञ से बाह्य, सब मैं ही हूँ ।।४७।। यह तुम सब कौन हो ? तत्त्व से विचारो, सब मैं ही हूँ, ऐसी बुद्धि से विचार करने से विदित होगा कि, ब्राह्मणों को वृथा शाप दिया ।।४८।। तत्त्वज्ञान से इस प्रपञ्च की बात को जान कर तुम शान्त हो जाओ, हे महाबुद्धि वाले! क्रोध छोड़ कर स्वस्थ हो और इस बात को समझो ।।४९।। ब्रह्माजी बोले- जब इस प्रकार से नन्दिकेश्वर को समझाया, तब वे परमज्ञान को प्राप्त हो कर, क्रोध त्याग कर शान्त हो गये ।।५०।। इस प्रकार शिवजी अपने प्राणप्यारे गण को समझा कर प्रसन्नतापूर्वक गणों सहित उस स्थान से चले गये ।।५१।। इधर दक्षजी भी क्रोध में भरे हुए ब्राह्मणों के सहित मन में शिवजी का द्रोह कर के उस स्थान से अपने स्थान को चले गये ।।५२।। इस प्रकार रुद्र को शाप दे कर परम क्रोध में भर कर दक्ष श्रद्धा को त्याग कर के मूढ़ता के कारण शिवजी के पूजकों की निन्दा में तत्पर हुए ।।५३।। हे तात! दुर्बुद्धि दक्षजी की यह धृष्टता शंकरजी के प्रति वर्णन की, अब जो उनकी धर्षणा शंकरजी के द्वारा हुई उसे आप श्रवण कीजिये ।।५४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
द्वितीये सतीखण्डे शिवदक्षविरोधो नाम षड्विंशोऽध्यायः ।।२६।।

***

सत्ताईसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले- हे नारदजी! एक समय उस दक्ष ने एक महान् यज्ञ का आरम्भ किया और दीक्षा ले कर सब महर्षियों को बुलाया ।।१।। शिवजी की माया से मोहित हो कर देवता और ऋषि उस स्थान पर यज्ञ कराने के निमित्त आये ।।२।। अगस्त्य, कश्यप, अत्रि, वामदेव, भृगु, दधीचि, भगवान् व्यासजी, भरद्वाज, गौतम, पैल, पराशर, गर्ग, भार्गव, ककुपसित, सुमन्तु, त्रिक, कंक, वैशंपायन ।।३-४।। इनको

आदि ले कर और भी बहुत से मुनि प्रसन्न हो कर आए। यह सब मेरे पुत्र दक्ष के यज्ञ में स्त्री-पुत्रों सहित आए।।५।। इसी प्रकार अन्य सब देवता, लोकपाल आदि, इसी प्रकार उपकरण तथा बल से सम्पन्न दूसरे देवता भी आए।।६।। सत्यलोक से प्रार्थना कर मुझ विश्वस्रष्टा को भी बुलाया। पुत्र, परिवार और मूर्ति युक्त वेदशास्त्रादि संयुक्त मैं आया।।७।। और बड़े आदर से प्रार्थना कर के वैकुण्ठ से विष्णुजी को बुलाया, वह भी अपने पार्षद, परिवार युक्त वैकुण्ठ से यज्ञ में आए।।८।। और भी बहुत से महात्मा मोहित हो कर दक्ष के यज्ञ में आए और उस द्रोही दक्ष ने उन सबका सम्मान किया।।९।। विश्वकर्माजी द्वारा बनाये बड़े-बड़े प्रकाशमान भवन उनको रहने को दिये।।१०।। उन स्थानों में देवता आदि सम्मानित हो कर मेरे और विष्णुजी के सहित विराजमान हो गये।।११।। जिस समय कनखल तीर्थ में वह महायज्ञ प्रारम्भ हुआ, उस समय तपस्वी भृगु आदि उसमें ऋत्विक् हुए।।१२।। और सब मरुद्गणों सहित विष्णुजी उसमें अधिष्ठाता हुए और वेदत्रयी की विधि जानने वाला मैं उस यज्ञ में ब्रह्मा हुआ।।१३।। इसी प्रकार सब दिक्पाल द्वारपाल रूप से रक्षक हुए, वे आयुध लिये हुए परिवार सहित कुतूहल में तत्पर थे।।१४।। उस यज्ञ में यज्ञ भी अपने स्वरूप से स्थित हो गया, समस्त महामुनि स्वयं वेदधारी हो गये।।१५।। अग्नि ने भी अपने सहस्रों रूप धारण किये और उस महाउत्सव वाले यज्ञ में आहुति ग्रहण करने लगे।।१६।। अठासी सहस्र ऋषि अग्नि में आहुति देते थे, चौंसठ हजार ऋषि उस यज्ञ में उद्गाता थे।।१७।। इतने ही अध्वर्यु और होता थे और नारद आदि सप्तऋषि पृथक्-पृथक् गाथा करते थे।।१८।। गन्धर्व, विद्याधर, सिद्धों के समूह, आदित्यगण, यज्ञों के गण, समस्त संख्यावाले नाग, समस्त चर दक्ष ने अपने यज्ञ में वरण किये।।१९।। ब्रह्मर्षि, राजर्षि, सुरर्षि, मित्र, मन्त्री और सेना सहित समस्त राजा, वसु तथा गण देवता इन सबको दक्ष ने वरण किया।।२०।। तब कौतूहल मङ्गल करने के उपरान्त दक्ष ने दीक्षा ली और स्वस्तिवाचन के उपरान्त भार्या सहित अत्यन्त शोभायमान हुआ।।२१।। पर दुरात्मा दक्ष ने उस यज्ञ में शिवजी को नहीं बुलाया; क्योंकि वे कपाली हैं, उनकी यज्ञ में योग्यता नहीं, ऐसा कह दिया।।२२।। यद्यपि अपनी कन्या सती प्यारी थी, पर कपाली की भार्या है, ऐसा विचार कर अगुणीदर्शी दक्ष ने सती को यज्ञ में नहीं बुलाया।।२३।। जब इस प्रकार से दक्ष के यज्ञ का महोत्सव आरम्भ हुआ और वे सब अध्वर्यु अपने-अपने कार्यों में तत्पर हुए।।२४।। तब वहां अपने प्रभु शंकरजी को स्थित न देख कर उद्विग्न मन से परम शैव दधीचि कहने लगे।।२५।। दधिचि बोले- सब देवता, ऋषि इस सभा में मेरा वचन सुने, इस महोत्सव यज्ञ में शिवजी क्यों नहीं आये ?।।२६।। यह सब सुरेश्वर, मुनिजन, लोकपाल इस यज्ञ में आये हैं, पर महात्मा शंकरजी के बिना यह यज्ञ शोभायमान नहीं होता।।२७।। महात्मा कहते हैं कि, जिसके द्वारा समस्त मङ्गल होते हैं, वहीं पुराणपुरुष

नीलकण्ठ परेश वृषभध्वज यहां दिखाई नहीं देते ।।२८।। जिनकी प्राप्ति से अमङ्गल भी मङ्गल रूप हो जाते हैं और आठों दिशाओं में सब ओर से मङ्गल दिखाई देते हैं ।।२९।। इस कारण आपको बहुत शीघ्र ब्रह्माजी वा विष्णुजी महाराज को भेज कर शिवजी को शीघ्र बुलाना चाहिये ।।३०।। इन्द्र वा लोकपाल वा सिद्ध ब्राह्मणों के सहित आपकों यज्ञ की पूर्ति के निमित्त शिवजी को शीघ्र ही बुलाना चाहिये ।।३१।। आप सब को महेश्वर शंकरजी के समीप जाना चाहिये और उन्हें शीघ्र ही दाक्षायणी के सहित लाना चाहिये ।।३२।। यदि वह देवेश शंकरजी सती सहित यहां आ गये, तो यह सर्व यज्ञ पवित्र हो जाएगा; कारण कि वह परमात्मा हैं ।।३३।। जिनके स्मरण और नाम उच्चारण से सब सुकृत हो जाता है, इस कारण वृषभध्वज को सब प्रयत्न से लाना चाहिये ।।३४।। शंकरजी के आते ही यज्ञ पवित्र हो जाएगा, नहीं तो अपूर्ण रहेगा, यह मैं सत्य कहता हूँ ।।३५।। ब्रह्माजी बोले- दधीच के यह वचन सुनते ही दक्ष को बड़ा क्रोध हुआ और वह दुष्टबुद्धि मूढ़ हँसता हुआ बोला ।।३६।। देवताओं के मूल विष्णुजी हैं, जिनमें सनातनधर्म स्थित है, सो मैंने यज्ञ में बुला ही लिये हैं, अब इस यज्ञ में न्यूनता क्या है?।।३७।। जिनमें अनेक विधि के कर्म, यज्ञ और वेद स्थित हैं वह विष्णुजी यहां आ ही गये हैं ।।३८।। लोकपितामह ब्रह्माजी सत्यलोक से आ गये हैं। वेद, उपनिषद और आगम इनके साथ हैं ।।३९।। इसी प्रकार देवताओं के साथ स्वयं सुरपति ने आगमन किया है, इसी प्रकार पाप रहित आप सब ऋषि यहां आये हैं ।।४०।। जो-जो यज्ञ में उचित पात्र रूप शान्त वेदवेदार्थ के तत्त्व जानने वाले दृढ़व्रत हैं, वे सब यहां आ गये हैं ।।४१।। तब रुद्र से अब हमारा प्रयोजन क्या है ? हे विप्र! ब्रह्माजी के कहने से मैंने अपनी कन्या उनको दे दी थी ।।४२।। हे विप्र! रुद्र तो अकुलीन, पिता-माता से रहित, भूत, प्रेत, पिशाचों के पति, दुर्गम हैं ।।४३।। तथा आत्मा की संभावना वाले मूढ़, स्तब्ध, मौनी और अहंकारी हैं, न इनमें कर्म है, न योग्यता है, इस कारण मैंने उन्हें नहीं बुलाया ।।४४।। इस कारण फिर आप इस प्रकार के वचन न कहना, आप सब मिल कर ही इस मेरे यज्ञ को सफल कीजिये ।।४५।। ब्रह्माजी बोले- दक्ष के यह वचन सुन कर दधीच कहने लगे, वह उनके सारे वचन देवता, मुनि सब ने सुने ।।४६।। दधीच ने कहा- शंकरजी के बिना यह यज्ञ अयज्ञ ही हुआ है, विशेष कर इसमें आपका नाश होगा ।।४७।। यह कह कर अकेले दधीच ही वहां से चले गए और दक्ष के यहां से उठ कर तुरन्त अपने आश्रम में चले आये ।।४८।। इस पश्चात् और भी जो शिवभक्त थे, वे भी दक्ष को शाप दे कर शीघ्र ही अपने स्थानों को चले गये ।।४९।। जब दूसरे मुनि भी वहां से उठ गए, तब वह मूढ़बुद्धि शिवद्रोही दक्ष हँसता हुआ दूसरे मुनियों से बोला ।।५०।। दक्ष बोला- शिवजी का प्रिय दधीच यहां से चला गया तथा उस सरीखे और भी यहां से उठ गए ।।५१।। यह बहुत अच्छा हुआ और मैं चाहता भी था, हे देवेश! देवताओ और

मुनियों यह मैं सत्य ही कहता हूँ।।५२।। नष्टबुद्धि, मन्दात्मा, मिथ्यावाद में निरत, इन वेदबाह्य दुराचारीयों को तो यज्ञ में बुलाना ही नहीं चाहिये।।५३।। आप विष्णुजी आदि समस्त वेदवाद में रत हो, हे ब्राह्मणो तथा देवताओ! आप शीघ्र ही मेरे यज्ञ को सफल कीजिये।।५४।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार दक्ष के वचन सुन कर शिवजी की माया से मोहित हुए देवता, ऋषि उस यज्ञ में देवयजन करने लगे।।५५।। हे मुनीश्वर! इस प्रकार से यज्ञ में शाप का वर्णन किया, अब आदर से यज्ञ के विध्वंस होने का वृत्तान्त सुनिये।।५६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
द्वितीये सतीखण्डे यज्ञप्रारम्भो नाम सप्तविंशोऽध्यायः।।२७।।

*****

अट्ठाईसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– जिस समय दक्ष के यज्ञ में देवता, ऋषि जा रहे थे, उस समय सती देवी गन्धमादन पर्वत के धारधर के विनात के नीचे अपनी सखियों सहित अनेक प्रकार की क्रीड़ा कर रही थीं।।१–२।। उस समय क्रीड़ा करते–करते देवी ने दक्षयज्ञ में जाती हुई रोहिणी से पूछा।।३।। उसे शृङ्गार किये देख कर सती विजया से बोली, यह विजया सती की निजसखी, प्राणप्रिया, बड़ी हितकारिणी थी।।४।। सती बोली– हे विजया! तू मेरी प्राणों के समान प्यारी है, यह चन्द्रमा कहां जाता है? सो तू रोहिणी से आदरपूर्वक पूछ।।५।। ब्रह्माजी बोले– यह सुन कर विजया उस स्थान में जा कर चन्द्रमा से पूछने लगी, आप कहां जाते हो?।।६।। विजया के वचन सुन कर चन्द्रमा ने दक्ष के यज्ञोत्सव का वृत्तान्त और उसमें अपना गमन आदरपूर्वक वर्णन किया।।७।। वह सुन कर विजया को बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने आ कर देवी से सब वृत्तान्त तत्काल वर्णन किया, जो कुछ चन्द्रमा ने कहा था।।८।। वह सुन कर कालिकादेवी सती को बड़ा आश्चर्य हुआ और उसका कारण विचार में न आने से सोचने लगीं।।९।। दक्ष मेरे पिता, वीरिणी मेरी माता, इन्होंने मुझे क्यों न बुलाया, मुझ अपनी प्यारी को भुला दिया?।।१०।। मैं चल कर इसका कारण शंकरजी से पूछूँ, ऐसा विचार कर शंकरजी के समीप जाने का निश्चय किया।।११।। तब सतीदेवी सखी विजया को वहीं ठहरा कर शीघ्रता से शिवजी के समीप गईं।।१२।। वहां जा कर देखा कि सभा जुड़ रही है, नन्दी आदि महागण बैठे हैं, बीच में शंकरजी शोभायमान हो रहे हैं।।१३।। दक्षकुमारी इस प्रकार अपने पति को यूथपों के मध्य में देख कर उस कारण पूछने शीघ्र ही शंकरजी के समीप गई।।१४।। शिवजी ने प्रेम से अपनी प्रिया को गोदी में बैठाया

और बड़े मान के वचनों से उसे प्रसन्न किया ।।१५।। तब महालीला करने वाले, सत्पुरुषों को सुख देने वाले शिवजी गणों के मध्य में ही सती से आदरपूर्वक बोले ।।१६।। शिवजी बोले– इतनी शीघ्रता से विस्मित हुई तुम सभा के मध्य में कैसे आ गई? हे सुमध्यमे! प्रेमपूर्वक शीघ्र इसका कारण कहो ।।१७।। ब्रह्माजी बोले– हे मुनीश्वर! जब शंकरजी ने ऐसा कहा, तब हाथ जोड़ कर शिवा अपने पति से बोली ।।१८।। सती बोली– मैंने सुना है, मेरे पिता के यहां महान् यज्ञ हो रहा है, वहां बड़ा उत्सव हो रहा है, सब ऋषि–मुनि एकत्र हुए हैं ।।१९।। सो मेरे पिता का यज्ञ आपको क्यों न अच्छा लगा? हे देव! आप वहां क्यों नहीं गए? यह सब मुझसे कहिये ।।२०।। सुहृदों का सुहृदों के साथ मिलना परमधर्म है, हे महादेवजी! आप भी इस प्रेम बढ़ाने वाली रीति का पालन कीजिये ।।२१।। हे प्रभो! इस कारण यत्न से मेरे साथ आप वहां चलें, हे स्वामिन्! मेरी प्रार्थना है कि, आप मेरे पिता के यज्ञवाट में चलें ।।२२।। ब्रह्माजी बोले– महेश्वरदेव सती के यह वचन सुन कर दक्ष के वचनों को हृदय में स्मरण करते सत्य वचन बोले ।।२३।। महेश्वरजी बोले– हे देवि! तुम्हारे पिता दक्ष मुझसे वैर रखते हैं ।।२४।। उनके जो देवता, ऋषि मान्य हैं, वे ही मूढ़बुद्धि तुम्हारे पिता के यज्ञ में प्राप्त हुए हैं ।।२५।। हे देवि! जो बिना बुलाये किसी के घर जाते हैं, वह महातिरस्कार तथा कहीं मरणादिक भी पाते हैं ।।२६।। पराये घर जाने में इन्द्र को भी लघुता प्राप्त होती है, दूसरों की तो बात ही क्या है? ऐसी यात्रा अनर्थकारी होती है ।।२७।। इस कारण मुझे दक्ष के यज्ञ में जाना उचित नहीं, यह मैंने सत्य ही कहा है ।।२८।। इस प्रकार शत्रुओं के बाणों से व्याकुल नहीं होता, जैसे अपने बन्धुओं की दुरुक्ति से मनुष्यों के अन्तःकरण व्यथित होते हैं ।।२९।। हे प्रिये! विद्या आदि छः गुणों से युक्त भी अपने सम्पन्न विदित नहीं होते, खल उनका तेज हत करते हैं, उनको देखते नहीं ।।३०।। ब्रह्माजी बोले– जब महात्मा महेश्वरजी ने सती से ऐसा कहा, तब बोलने वालों में श्रेष्ठ शंकरजी से क्रोधित हो कर सती बोली ।।३१।। सती बोली– हे शंकरजी! आप सबके ईश्वर हो, आपके जाने से वह यज्ञ सफल हो जाता, पर दुष्टकर्मा मेरे पिता ने आपको नहीं बुलाया ।।३२।। सो मैं उस दुरात्मा के भाव जानने की इच्छा करती हूँ, हे शंकरजी! जो दुरात्मा हो कर देवता, ऋषि वहां गये हैं ।।३३।। इससे मैं उस अपने पिता के यज्ञ में जाती हूँ, हे महेश्वरजी! आप मुझे वहां जाने की आज्ञा दें ।।३४।। ब्रह्माजी बोले– जब इस प्रकार स्वयं देवी ने शंकरजी से कहा, तब सब कुछ जानने वाले लीलाकारी शंकरजी देवी से बोले ।।३५।। शिवजी बोले– हे देवि! यदि तुम्हारी वहां जाने की अवश्य ही रुचि है, तो हे सुव्रते! तुम मेरे वचन से पिता के यज्ञ में शीघ्र जाओ ।।३६।। इस नन्दी नामक वृषभ को आदर से सजा कर, उस पर चढ़ कर, महाराजाओं के सम्बन्ध के सब उपचार सजा कर, अपने सब गहने पहन कर रथ पर चढ़ो, यह सुनते ही सती सब कुछ पहन–ओढ़ कर

पिता के मन्दिर को चली ।।३७-३८।। परमात्मा शिवजी ने महाराजाओं के सम्बन्ध की सब वस्तुएं प्रदान की। छत्र, चमर, सद्वस्तु और आभूषण दिये ।।३९।। शिवजी की आज्ञा से शिवजी के साठ हजार गण सती के साथ चले, वे महोत्सव और कौतूहल करते चले ।।४०।। उस समय उस देवयजन स्थान में महाउत्सव आरम्भ हुआ, शिवजी की प्रिया सती के साथ बहुत से वामदेवगण चले ।।४१।। शिवाशिव का यश गाते हुए गण कुतूहल करते चले, वह महावीर शिवजी के प्रिय दूर-दूर तक कूदने लगे ।।४२।। सब प्रकार से जगदम्बा के चलने में महा शोभा हुई, उनके मुख के शब्दों से तीनों भुवन भर गये ।।५३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

द्वितीये सतीखण्डे अष्टाविंशोऽध्यायः ।।२८।।

*****

उनतीसवाँ अध्याय

तब सती वहां गई जहां वह महाप्रभावशाली यज्ञ हो रहा था। सुर, असुर, मुनि और इन्द्रादिक वहां कौतूहल कर रहे थे ।।१।। उस समय अपने पिता के स्थान को अनेक आश्चर्यों से संयुक्त देखा, जो देवता मुनियों से संयुक्त बड़ा मनोहर था ।।२।। द्वार में स्थित होते ही देवी अपने आसन से उतरीं और केवल नन्दी ही के साथ यज्ञभूमि में गई ।।३।। सती को आया देख कर उसकी यशस्वी माता असिक्री तथा भगिनियों ने यथोचित आदर किया ।।४।। पर दक्ष ने उसे देख कर कुछ भी आदर नहीं किया और शिवजी की माया से मोहित होने के कारण औरों ने भी आदर नहीं किया ।।५।। तब देवी ने अपने माता-पिता को बड़े विस्मय के साथ प्रणाम किया और सब जनों के पराभव से महादुःख माना ।।६।। उस यज्ञ में हरि आदि देवताओं का पृथक्-पृथक् भाग सती ने देखा, पर शम्भुजी का भाग न देखने से सती ने बड़ा क्रोध किया ।।७।। तब परम क्रोध से सती क्रूर दृष्टि से मानो दक्ष को भस्म करती हुई, सब से अपमानित हो कर बोलीं ।।८।। सती बोलीं- जिसकी कृपा से यह चराचर विश्व पवित्र हो जाता है, उन परम शोभायमान शंकरजी को आपने किस कारण से नहीं बुलाया?।।९।। यज्ञस्वरूप, यज्ञ जानने वालों में श्रेष्ठ, यज्ञ के अंग, यज्ञ के दक्षिणा स्वरूप, यज्ञ के कर्ता, शिवजी के बिना यज्ञ कैसे सम्पादन हो सकता है?।।१०।। जिनके स्मरण मात्र से यह सब पवित्र हो जाता है, उनके बिना सब ही अपवित्र होगा ।।११।। सब द्रव्य, मन्त्र, हव्य, क्रव्य शंकरजी के बिना निरर्थक है, उनके बिना यह यज्ञ किस प्रकार से

प्रवृत्त हुआ ?।।१२।। क्या शंकरजी को सामान्य देवता जान कर आपने अनादर किया ? हे पिताधम! आप बड़े भ्रष्टबुद्धि हो ।।१३।। विष्णुजी, ब्रह्मादिक देवता जिन महेश्वरजी की सेवा कर के अपनी पदवी को प्राप्त हुए हैं, क्या आप उन शंकरजी को नहीं जानते ?।।१४।। यह विष्णु–ब्रह्मादि देवता यहां कैसे आ गये और इन देवता, मुनियों ने अपने प्रभु शंकरजी के बिना यहां कैसे आगमन किया ?।।१५।। ब्रह्माजी बोले– परमेशानि विष्णुजी आदि सब देवताओं के प्रति ऐसा कह कर पीछे सबको पृथक्–पृथक् घुड़कती हुई बोलीं ।।१६।। सती बोलीं– हे विष्णुजी! क्या आप तत्त्व से महादेवजी को नहीं जानते ? जिन्हें श्रुतियां सगुण–निर्गुण कहती हैं ।।१७।। हे विष्णुजी! यद्यपि बहुत बार शंकरजी ने हाथ दे कर शाल्वादि के समय आपको शिक्षा दी है ।।१८।। हे मति से हीन! तो भी आपके चित्त में ज्ञान नहीं आया, अपने स्वामी शिवजी के भाग के बिना अपना भाग स्वीकार कर लिया।।१९।। ब्रह्माजी पहले आप पाँच मुख वाले थे, गर्वित हो कर सदाशिवजी के प्रति द्रोह किया, जिससे आपको चार मुख वाला किया, यह आप बहुत शीघ्र ही भूल गये ।।२०।। हे इन्द्र! क्या आप महादेवजी का पराक्रम नहीं जानते ? कठिनकर्मा शंकरजी ने आपका वज्र भस्म कर दिया था ।।२१।। हे देवताओ! क्या आप महादेवजी का कर्म नहीं जानते ? हे अत्रि! हे वसिष्ठ! आपने यह क्या किया ?।।२२।। जब प्रभु दारुकावन में भिक्षा मांगने गये थे और उस समय आप मुनियों ने भिक्षुक रूपधारी उन शंकरजी को शाप दिया था ।।२३।। सो शापित हो कर रुद्र ने जो कुछ किया, सो क्या आपने भुला दिया ? उस शिवलिंग से चराचर विश्व दग्ध होने लगा था ।।२४।। उस समय विष्णु ब्रह्मादिक देवता सब ही मूढ़ हो गये। अच्छा शिवजी के बिना जो देवता मुनि इस यज्ञ में आये हैं ।।२५।। अंगों सहित सब वेद और शास्त्र जिनमें मौन हैं, पर उन वेदान्त से जानने योग्य शंकरजी को जानने को कोई भी समर्थ नहीं है ।।२६।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार जगदम्बा ने अनेक वचन कहे और दुःखी हृदय से सती बड़ी क्रोधित हुईं ।।२७।। विष्णुजी आदि सब देवता और मुनि पार्वती के वचन सुन कर भय से व्याकुलमन हो कर मौन हो गये ।।२८।। तब दक्ष ने अपनी पुत्री के इस प्रकार के वचन सुन कर क्रूरदृष्टि से सती को देख कर क्रोधपूर्वक कहा ।।२९।। दक्ष बोला– हे भद्रे! बहुत कहने से क्या है, यहां तेरा क्या काम है ? चाहें रह या जा, परन्तु यहां क्यों आई ?।।३०।। सब पण्डित जानते हैं, तुम्हारे स्वामी शिव अमङ्गलीक है, अकुलीन, वेदबाह्य, भूत–प्रेत–पिशाचों के स्वामी हैं ।।३१।। इस कारण उस कुवेषधारी शंकर को मैंने नहीं बुलाया, मैंने बुद्धिमानी से विचार किया कि, देवता तथा ऋषियों की सभा में उनका क्या काम ?।।३२।। मुझ मन्द पापी ने ब्रह्माजी के कहने से तुझे रुद्र को दिया, मैंने यह नहीं जाना कि, रुद्र अविदित अर्थ वाले क्रोधी और दुरात्मा हैं ।।३३।। हे शुचिस्मिते! इस कारण कोप का त्याग कर के स्वस्थ

हो। यदि तू इस यज्ञ में आई है, तो अपना भाग ग्रहण कर ।।३४।। ब्रह्माजी बोले- दक्ष के वैसा कहने पर वह त्रैलोक्य पूजिता सती निन्दा युक्त अपने पिता को देख कर बड़ी रुष्ट हुई ।।३५।। और सोचने लगी; किस प्रकार मैं शंकरजी के पास जाऊं? मैं शिवजी को देखने की इच्छा करती हूँ, पर जब वह पूँछेंगे तब क्या उत्तर दूँगी ?।।३६।। तीनों लोकों को प्रकट करने वाली देवी क्रोध से बारंबार श्वास लेती हुई दुष्ट मन वाले अपने पिता दक्ष से बोली ।।३७।। सती बोली- जो महादेवजी की निन्दा करते हैं वा निन्दा करते हुए को सुनते हैं, वह चन्द्र-सूर्य की स्थिति पर्यन्त नरक में जाते हैं ।।३८।। इस कारण मैं अग्नि में प्रवेश कर के देहत्याग करती हूँ। हे तात! स्वामी का अनादर सुनने से फिर मुझे जीने से क्या प्रयोजन है ?।।३९।। यदि समर्थ हो तो निन्दक की रसना को बलपूर्वक छेद करे, तब शुद्धि होगी, इसमें सन्देह नहीं ।।४०।। यदि समर्थ न हो तो कानों पर हाथ धर के बुद्धिमान् वहां से चला जाय, यह बुधजनों ने कहा है ।।४१।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार धर्मनीति कह कर पीछे देवी को बड़ा ताप हुआ और दुःखीचित्त से शंकरजी के वचन स्मरण करने लगी ।।४२।। फिर क्रोध कर के निःशंक भाव से विष्णुजी आदि सर्व देवता और मुनियों से निश्चयपूर्वक बोली ।।४३।। सती बोली- हे तात! आप शिवजी की निन्दा करते हो, इस कारण बड़े पश्चाताप को प्राप्त होंगे, यहां महादुःख प्राप्त कर के अन्त में यमयातना को प्राप्त होगे ।।४४।। संसार में जिनका कोई अप्रिय नहीं है, जिन परमात्मा के सब ही प्रिय हैं, उन वैर रहित शंकरजी से आपके सिवाय कौन वैर करता है ?।।४५।। इसमें आश्चर्य भी नहीं, असत्पुरुषों महत्पुरुषों की निन्दा करते हैं। हां, महत्पुरुषों के चरणों की रज से अज्ञान नष्ट करना यही शोभा है ।।४६।। जिसने शिव इन दो अक्षरों को वाणी से उच्चारण किया है, वह एक बार के उच्चारण से अपने समस्त पापों को नष्ट करते हैं ।।४७।। अहो, शिवजी का शासन यद्यपि अलंघ्य है, पवित्र कीर्तन है, परन्तु आप अमङ्गलरूप से उनसे वैर करते हो ।।४८।। जिनके चरणकमलों में बड़े-बड़े पुरुषों का मन लगा रहता है, जो ब्रह्मरस द्वारा सम्पूर्ण अर्थियों को आदर से सब प्रकार कामना के अनुसार फल देते हैं ।।४९।। जो अतिथियों पर शीघ्र ही कामना की वर्षा करते हैं, आदर करते हैं, उन लोकबन्धु शंकरजी से आप द्वेष करते हो ।।५०।। उन शिवजी को अशिव तेरे सिवाय दूसरे नहीं जानते, ब्रह्मादि तथा सनकादि दूसरे मुनि क्या नहीं जानते?।।५१।। वह जटा खोल कर भूतगणों के साथ श्मशान में कपाल धारण करते हैं, मृतक की अस्थियों की माला और भस्म को उदारबुद्धि प्रेम से धारण करते हैं ।।५२।। जो उनके चरणों की रज को आदर से सिर पर धारण करते हैं, वे पाप रहित होते हैं। मुनि, देवता जिनके निर्माल्य की इच्छा करते हैं, वही देव परमेश्वर शिवजी हैं ।।५३।। प्रवृत्ति-निवृत्ति के भेद से दो प्रकार के कर्म कहे हैं, वेद में वह निर्णय है, बुद्धिमानों को विचारना चाहिये ।।५४।।

एक ही कर्ता में वे दोनों विरोधी हैं, परब्रह्म शंकरजी में कुछ कर्मादि की इच्छा नहीं है।।५५।। हे पिता! आपके पद का व्यय न हो, जो हमारे कारण से आपको उपस्थित हुआ है। यज्ञशाला में आपके धूम्र अपना मार्ग त्याग करे।।५६।। वह अव्यक्त लिंग सदा अवधूत गणों से सेवित है, हे तात! कुबुद्धि से उनमें अभिमान मत कीजिये।।५७।। बहुत कहने से क्या है? कुबुद्धि के कारण आप महादुष्ट हो, आपसे प्रकट इस देह से मेरा कुछ भी प्रयोजन नहीं है।।५८।। उस जन्म को धिक्कार है जिस जन्म में महान् पुरुषों की निन्दा हो, बुद्धिमान् को विशेष कर आपका सम्बन्ध त्याग देना चाहिये।।५९।। आपके गोत्र से जो शंकरजी मुझे दाक्षायणी कहते हैं, मैं अब इससे दुःखी हूँगी।।६०।। इस कारण आपके शरीर से उत्पन्न हुए इस गर्हित देह को मैं अभी त्याग कर के सुखी हूँगी।।६१।। हे देवताओ, मुनियो! सब मेरे वचन सुनिये, दुष्टचित्त वाले आप लोगों का यह कर्म सर्वथा निन्दित हुआ है।।६२।। आप सब मूढ़ हो गये हो, कलिप्रिय आपने शिवजी की निन्दा की है, इसका दण्ड आप शंकरजी से पाओगे।।६३।। ब्रह्माजी बोले– दक्ष के यज्ञ में यह बात कह कर सती मौन हुई और दुःखी चित्त से प्राणवल्लभ शंकरजी का स्मरण करने लगी।।६४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

द्वितीये सतीखण्डे एकोनत्रिंशोऽध्यायः।।२९।।

*****

तीसवाँ अध्याय

नारदजी बोले– जिस समय शंकर की प्रिया मौन हुई, हे ब्रह्माजी! तब क्या हुआ? सो आप आदरपूर्वक मुझसे कहिये।।१।। ब्रह्माजी बोले– जब आदर से अपने पति को स्मरण कर सती मौन हो गई, तब शान्त हो कर उत्तर की ओर भूमि पर बैठी।।२।। विधिपूर्वक आचमन कर के नियम में तत्पर हो कर, शुद्धवस्त्र धारण कर, नेत्र मूँद कर, पति को स्मरण कर योगमार्ग में तत्पर हुई।।३।। उस श्वेतमुख वाली ने प्राण–अपान वायु को समान कर और नाभिचक्र से यत्नपूर्वक उदान को उठा कर।।४।। बुद्धिपूर्वक उनको हृदय में स्थापन कर, पीछे निन्दा रहित शंकरजी की प्राणवल्लभा सती ने कण्ठ में ला कर, पीछे भौं के मध्य में प्राणवायु को स्थापित किया।।५।। इस प्रकार दक्ष के कोप से सहसा अपने देह को त्यागने की इच्छा करती हुई सती ने योगधारणा की वायु से शरीर को भस्म करना आरम्भ किया।।६।। उस समय वह केवल अपने भर्ता के ही चरणों को स्मरण करने लगी और कुछ नहीं, उसने स्वामी का ध्यान कर योगमार्ग में

अपनी बुद्धि लगाई ।।७।। उसका देह सर्वथा विकार रहित हो गया और चारों ओर से उसमें अग्नि लग उठी, हे मुनिश्रेष्ठ! उसकी इच्छा से तत्काल ही देह भस्म हो गया ।।८।। यह देखते ही आकाश और भूमि पर बड़ा कोलाहल हुआ, देवताओं के हाहाकार से ध्वनि हुई, क्या अद्भुत, क्या विचित्र बात हुई?।।९।। खेद है कि, परम देवता शंकरजी की प्रिया सतीदेवी ने अपने प्राणों को त्याग दिया, किस दुष्ट ने इसे कोपित किया?।।१०।। अहो! इस दक्ष की महामूर्खता को देखो, जिस प्रजापति की चराचर प्रजा पुत्ररूप है, उसका अज्ञान देखो ।।११।। अहो! आज सतीदेवी विमना हुई, वह शंकरजी की प्रिया निश्चय ही मान योग्य थी ।।१२।। परन्तु यह प्रजापति महाअभिमानी ब्रह्मद्रोही हुआ, इसने सब संसार में महा अपकीर्ति पाई ।।१३।। जिसने अपने अंग से उत्पन्न हुई सुता को शिवजी से द्रोह तिरस्कार किया, वह अन्त में महानरक का भागी होगा, यह बड़ा अपराध हुआ ।।१४।। सती के प्राण त्यागने पर जब कोई ऐसा कह रहे थे, तब वह देख कर शंकरजी के गण हाथ में आयुध ले कर उठ खड़े हुए ।।१५।। द्वार में भी सात सहस्र गण स्थित थे, वे शंकरजी के महाबली गण महाक्रोध को प्राप्त हुए।।१६।। वे सब हाहाकार करते हुए बोले, ''हमें धिक्कार है, हमें धिक्कार है'', ऐसा कह कर वे शंकरजी के वीरगण ऊँचे स्वर से चिल्लाये ।।१७।। उनके हाहाकार से भूमि और आकाश भर गया। सब देवता, मुनि जो वहां थे महाभयभीत हुए ।।१८।। गणों ने परस्पर सम्मति कर अस्त्र उठाये, उनके वाद्य और शस्त्रों के शब्दों से मानो प्रलय उपस्थित हुई ।।१९।। किन्हीं-किन्हीं ने तो शस्त्रों से अपने अंग ही छेद डाले, हे नारद! किन्हीं-किन्हीं ने तीक्ष्णशस्त्रों से अपने शिर और मुख नष्ट कर दिये ।।२०।। इस प्रकार वे सती के साथ ही नाश को प्राप्त हुए, इस प्रकार बीस सहस्र गण नष्ट हुए, यह बड़ी अद्भुत बात हुई ।।२१।। और जो महात्मा शंकरजी के गण अवशिष्ट रहे, वे क्रोध कर के दक्ष को मारने को आयुध ले कर उठे ।।२२।। भृगुजी महर्षि ने उनके इस आक्रमण को देख कर यज्ञविघ्न दूर करने वाले यजुर्मन्त्रों से दक्षिणाग्नि में हवन करना आरम्भ किया ।।२३।। भृगुजी के उस हवन करने पर ऋभव नाम वाले सहस्रों महावीर उस कुण्ड से प्रकट हुए।।२४।। हे मुनीश्वर! उनके चक्रायुधों से शंकरजी के सहस्रों प्रमथवीर युद्ध करने लगे और वहां उनका बड़ा भयंकर रोमहर्षण संग्राम होने लगा ।।२५।। ऋभु और महावीर गण परस्पर एक दूसरे पर प्रहार करने लगे, ब्रह्मतेज के कारण बिना ही यत्न के शंकरजी के गण नष्ट होने लगे ।।२६।। शिवजी के इच्छा रूप महाशक्ति से यह गण हत और विद्रावित हो गये, यह बात अद्भुत सी हुई ।।२७।। इस बात को देख कर इन्द्रादि सब देवता मरुद्गणों के सहित विश्वेदेवा, अश्विनीकुमार आदि सब लोकपाल मौन हो गये ।।२८।। कोई उस समय स्वामी विष्णुजी की प्रार्थना करने लगे, कोई उद्विग्न हो कर विघ्नों के अभाव की प्रार्थना करने लगे ।।२९।। अगले होने वाले फल को

विचार कर विष्णुजी आदि देवता शोक करने लगे और उस विघ्न को दूर कर न सकने के कारण उद्विग्न हो गये ।।३०।। इस प्रकार उस ब्रह्मबन्धु शंकरजी के द्रोही दुरात्मा दक्ष के यज्ञ में विघ्न हो गया ।।३१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

द्वितीये सतीखण्डे त्रिंशोऽध्यायः ।।३०।।

*****

एकतीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले- हे मुनीश्वर! उसी समय वहां दक्ष और देवता आदि के सुनते ही आकाशवाणी हुई ।।१।। आकाशवाणी बोली- अरे दुराचारी दक्ष! दम्भ आचार में परायण अरे मूढ़! यह तुमने क्या अनर्थकारी कर्म किया ?।।२।। अरे मूढ़! तुमने सब आनन्द का देने वाला शैवराज दधीच का श्रेष्ठ वचन न सुना ?।।३।। वह ब्राह्मण घोर शाप दे कर तुम्हारे यज्ञ से चला गया, तो भी तुझ मूर्ख ने चित्त में कुछ न समझा ?।।४।। फिर तुमने अपनी कन्या का भी आदर न किया, जो मङ्गला सती स्वयं तेरे घर आई थी ।।५।। अरे अज्ञानी! तुमने सती और शंकरजी का आदर न किया, मोहित हो कर तुम ब्रह्माजी का पुत्र हूँ, इस बात में गर्व करता है ।।६।। सब पुण्यों के फल देने वाली सती की आराधना तुझे करनी उचित थी, वह त्रिलोकी की माता कल्याणी सदा शंकरजी के अर्द्धांग में निवास करने वाली थी ।।७।। उस सब सौभाग्य देने वाली सती की सदा सेवा करनी चाहिये थी, वह माहेश्वरी अपने भक्तों को सदा मङ्गल की देने वाली है ।।८।। वह नित्य पूजन करने से संसार का भय नष्ट करने वाली है, वह देवी मन का अभीष्ट दे कर सब उपद्रवों का नाश करने वाली हैं ।।९।। वह नित्य पूजित होने से कीर्ति और सम्पत देने वाली हैं, वह परमा परमेशानी भुक्ति-मुक्ति देने वाली हैं ।।१०।। वह जगत् की माता सती जगत् रक्षण करने वाली हैं, वह अनादि शक्ति कल्पान्त में जगत् का संहार करने वाली हैं ।।११।। वह सती ही विष्णुमाता जगन्माता विलासिनी ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र, अग्नि, सूर्यादि की अनादि जननी हैं ।।१२।। वह सती ही तपस्या, दान, धर्म के फल को देने वाली हैं, वह शिवजी की शक्ति महादेवी दुष्टों को मारने वाली परे से परे हैं ।।१३।। इस प्रकार की सतीदेवी जिसकी प्रियपत्नी हैं, अरे मूढ़ कुविचारी! तुमने उनको भाग नहीं दिया ?।।१४।। शिवजी ही परमेशान, सबके स्वामी परात्पर हैं, वह विष्णु, ब्रह्मादि से सेवित सबके कल्याणकर्ता हैं ।।१५।। उनके दर्शन की इच्छा कर के सिद्ध जन तप करते हैं, इन्हीं के दर्शन की इच्छा से योगी योग करते हैं ।।१६।। अनन्त

धन–धान्य तथा यज्ञादि का फल शंकरजी के दर्शन से ही हो जाता है।।१७।। शिवजी ही जगत् के धाता, सब विद्या के पति प्रभु हैं, वही आदि विद्या के श्रेष्ठ स्वामी सब मङ्गलों के मङ्गल करने वाले हैं।।१८।। अरे खल! जो कि तुमने उनकी शक्ति का सत्कार नहीं किया, इस कारण इस यज्ञ का विनाश हो जाएगा।।१९।। जहां पूज्यजनों की पूजा नहीं होती, वहां अमङ्गल ही होता है, क्या यह सब शिवा तुम सबको पूज्यमाना नहीं थी?।।२०।। शेषजी जिसके चरणों की रज को सहस्र शिर से प्रति दिन प्रीतिपूर्वक धारण करते हैं, वही यह शिवा हैं।।२१।। जिसके चरणों का प्रतिदिन ध्यान कर के विष्णुजी विष्णुपन को प्राप्त हुए हैं, वही यह सती शिवजी की प्रिया हैं।।२२।। जिनके चरणों का ध्यान और पूजन करने से ब्रह्माजी ब्रह्मापन को प्राप्त हुए हैं, यही सती शिवजी की प्रिया हैं।।२३।। जिनके चरणों का ध्यान और पूजन कर के इन्द्रादिक लोकपालों ने अपना पद पाया है।।२४।। शिवजी जगत् के पिता, सती जगत् की माता हैं। हे मूढ़! तुमने उनका सत्कार न किया, तेरा कल्याण कैसे होगा?।।२५।। तुझमें दुर्भाग्य और आपत्ति आ कर प्राप्त हो गई, जो तुमने भक्ति से भवानी शंकरजी का आराधन नहीं किया।।२६।। शिवशंकरजी का बिना अर्चन किये मैं कल्याण कर लूंगा, इस तेरे दुर्वार गर्व का आज खण्डन हो जाएगा।।२७।। सर्वेश शंकरजी से विमुख हो कर देवताओं में तेरी कौन तेरी सहायता करेगा? मैं उसे सर्वथा नहीं देखता।।२८।। यदि इस समय देवता तेरी सहायता करेंगे, तो वे भी अग्नि में शलभ के समान नाश हो जायेंगे।।२९।। तेरा मुख जल जाए और यह यज्ञ ध्वंस हो जाए और तेरे सहायक हैं, वह भी जल जाए।।३०।। सब देवताओं को तेरे अमङ्गल के लिये शपथ है कि, वे इस दुरात्मा की सहायता न करे।।३१।। देवता बहुत शीघ्र इस मण्डप से निकल जाए, नहीं तो सर्वथा उनका नाश हो जाएगा।।३२।। मुनि नागादि शीघ्र इस यज्ञ से निकल जाए, नहीं तो सर्वथा नाश हो जाएगा।।३३।। हे विष्णुजी! आप भी शीघ्र इस मण्डप से निकल जाइये, नहीं तो सर्वथा आपका नाश हो जाएगा।।३४।। हे विधाता! आप शीघ्र इस स्थान से निकलो, नहीं तो सर्वथा आपका नाश होगा।।३५।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार सबके बैठे हुए यज्ञशाला में सबके कल्याण के निमित्त बोल कर वह आकाशवाणी मौन हुई।।३६।। हरि आदि सब देवता और मुनि आकाशवाणी के इस प्रकार वचन सुन कर बड़ा विस्मय मानने लगे।।३७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

द्वितीये सतीखण्डे एकत्रिंशोऽध्यायः।।३१।।

*****

बत्तीसवाँ अध्याय

नारदजी बोले- आकाशवाणी सुन कर अदूरदर्शी दक्ष ने क्या किया तथा और दूसरों ने क्या किया? आप इस बात को कहिये।।१।। जब शिवजी के गण भृगुजी के मन्त्रबल से पराजित हो गये, तब उन्होंने क्या किया, वे कहां गये? हे महामते! यह आप तत्त्व से कहिये।।२।। ब्रह्माजी बोले- आकाशवाणी सुन कर सब देवता विस्मय को प्राप्त हुए और किसी ने कुछ न कहा, मोहित हो कर बैठे रह गये।।३।। उधर भृगुजी के मन्त्रबल से जो वीर भाग गये थे, वह अवशिष्ट शंकरजी के गण शिवजी की शरण में गये।।४।। और अमित तेजस्वी शंकरजी के निकट जा कर प्रणाम कर के आदर से उन्होंने सब चरित्र सुनाया।।५।। गण बोले- हे देवदेव महादेव! हम शरण में आये हुओं की रक्षा कीजिये, हे नाथ! आदर से विस्तारपूर्वक सती की वार्ता सुनिये।।६।। हे महेशान! उस दुरात्मा दक्ष ने महागर्व से देवताओं के सहित सती का अनादर किया है।।७।। आपको भाग न दे कर उन्होंने अन्य देवताओं को भाग दिया है और गर्वित हो कर दक्ष ने बड़े-बड़े दुर्वचन कहे हैं।।८।। हे प्रभो! यज्ञ में आपका भाग न देख कर सती बड़ी कुपित हुईं और अपने पिता की निन्दा कर के उन्होंने शरीर त्याग दिया।।९।। लज्जा के मारे दश-बीस सहस्र गणों ने भी अपने शरीर त्याग दिये, अपने शरीरों को शस्त्रों से काट डाला और शेष हम लोगों ने शस्त्र ग्रहण किये।।१०।। और भय दे कर हम उस यज्ञ को नष्ट करने को तत्पर हुए, उस समय आपके विरोधी भृगुजी ने मन्त्रबल से हमारा तिरस्कार किया।।११।। हे शंकर प्रभो! हम भय से व्याकुल हो कर आपकी शरण हुए हैं, हमारा निर्दयता के साथ तिरस्कार हुआ है, आप हम पर दया करें, हमें निर्भय करें।।१२।। हे महाप्रभो! उस यज्ञ में हमारा बड़ा अपमान हुआ है और उन दुष्ट दक्ष आदि ने गर्व से यह अपमान किया है।।१३।। यह हमने अपना और सती का सब वृत्तान्त आपसे कहा, उन मूढ़बुद्धियों के अपमान की बात कही, अब आपकी जो इच्छा हो सो कीजिये।।१४।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार महाप्रभु ने अपने गणों के मुख से इस बात को सुन कर उस चरित्र को शीघ्र जानने की इच्छा कर, मन से नारदजी को स्मरण किया।।१५।। हे दिव्यदर्शन नारदजी! आप बहुत शीघ्र वहां पहुँचे और भक्तिपूर्वक प्रणाम कर, हाथ जोड़ कर स्थित हुए।।१६।। आपकी प्रशंसा कर के स्वामी ने सती की बात पूछी तथा दक्ष के यज्ञ में जाने के सब समाचर पूछे।।१७।। हे तात! जब शिवात्मा शंकरजी ने आपसे यह पूछा, तब आपने जो कुछ वहां हुआ था, सो सब कह सुनाया।।१८।। हे मुने! तब आपके मुख से शिवजी वह सब चरित्र सुन कर महारौद्र

पराक्रमी शंकरजी अत्यन्त कुपित हो गये ।।१९।। लोकसंहारकारी रुद्र ने अपनी एक जटा उखाड़ कर बड़े क्रोध से पर्वत के ऊपर दे मारी ।।२०।। हे प्रभो! पटकते ही उस जटा के दो खण्ड हो गये और महाप्रलय के समान उसमें से भयंकर शब्द हुआ ।।२१।। उस जटा से महाबली वीरभद्र उत्पन्न हुआ, वह महाभयंकर वीरों में अग्रणी जटा के पूर्व भाग से उत्पन्न हुआ ।।२२।। वह समस्त भूमि को व्याप्त कर के दशांगुल परिमित स्थान में स्थित हुआ, प्रलयाग्नि के समान तेजस्वी, दो सहस्र भुजा वाला था ।।२३।। उस समय महारुद्र के कोप से सौ ज्वर और तेरह प्रकार के सन्निपात प्रकट हुए ।।२४।। जटा के दूसरे भाग से महाकाली प्रकट हुई, हे नारदजी! वह महाभयंकर और कोटिभूतों से आवृत्त हुई ।।२५।। यह सब ज्वर महाभयंकर क्रूरमूर्ति धारण किये थे, अपने तेज से प्रज्ज्वलित हुए मानो सब ओर को जलाने लगे ।।२६।। तब वीर वीरभद्र परमेश्वर को प्रणाम कर के हाथ जोड़ कर, बोलने वालों में श्रेष्ठ, इस प्रकार से कहने लगा ।।२७।। वीरभद्र बोले– हे महारुद्र, हे महारौद्र! हे सोमसूर्य अग्नि नेत्र वाले! हे प्रभो! मुझे क्या कार्य करना होगा? सो आप शीघ्र आज्ञा दीजिये ।।२८।। हे इशान! क्या क्षणमात्र में समुद्र को सोख डालूं? हे देव! क्या क्षण में ही पर्वतों को चूर्ण कर डालूं?।।२९।। हे हर! क्या क्षणमात्र में ब्रह्माण्ड को भस्म कर डालूं अथवा क्षणमात्र में देवता वा मुनीश्वरों को भस्म कर डालूं?।।३०।। हे शंकर! क्या सब लोकों को अस्तव्यस्त कर डालू?।।३१।। हे महेशान! क्या मैं सब प्रणियों को नष्ट कर डालूं? हे महेश्वर! आपके प्रसाद से मुझे कुछ भी अशक्य नहीं है, पराक्रम में मेरे समान न हुआ है, न होगा ।।३२।। हे प्रभो! जिस–जिस कार्य के उद्देश्य से आप मुझे भेजेंगे, वह–वह कार्य मैं आपकी कृपा से सम्पादन करूंगा ।।३३।। हे शंकर! आपके शासन से क्षुद्रपुरुष भी संसार–सागर के पार हो जाते हैं, फिर क्या मैं आपकी कृपा से महाआपत्ति के सागर से तरने को समर्थ नहीं हूँ?।।३४।। हे शंकर! आपकी कृपा से तृण भी महत् कार्य करने को समर्थ हो सकता है और क्षणमात्र में कर सकता है, इसमें सन्देह नहीं ।।३५।। हे शम्भो! यद्यपि आपकी लीलामात्र से सब सिद्ध कार्य होता है, तो भी अनुग्रह कर के कार्य के निमित्त मुझे भेजो ।।३६।। हे शंकर! आपके अनुग्रह से मुझमें इतनी शक्ति है; हे शंकर! आपके अनुग्रह के बिना किसी में वह शक्ति नहीं ।।३७।। आपकी आज्ञा के बिना कोई तृण को चलायमान करने में भी समर्थ नहीं हो सकता, यह सत्य कहता हूँ, इसमें सन्देह नहीं ।।३८।। हे शंकर! जिस प्रकार से सब देवता आपके नियम में स्थित हैं, हे देव! उसी प्रकार से मैं भी आपके नियम में स्थित हूँ।।३९।। हे महादेवजी! मैं आपको बारंबार प्रणाम करता हूँ; हे हर! अपनी इष्ट सिद्धि के लिये आप मुझे प्रेषित कीजिये ।।४०।। हे शिवजी! मेरे दाहिने अंग बारंबार फड़क रहे हैं, हे प्रभो! आप जहां मुझे भेजेंगे, वहीं विजय होगी ।।४१।। मुझे किसी प्रकार का हर्ष और विशेष उत्साह

हो रहा था, हे शिवजी! मेरा मन आपके चरणकमल में लग रहा है ।।४२।। प्रतिपद में अच्छे सन्तान की सन्तति होती है ।।४३।। उसी की नित्य विजय और उसी का निरन्तर कल्याण होगा जिसकी सुन्दर आश्रय वाले आप शंकरजी के चरणों में भक्ति हो ।।४४।। ब्रह्माजी बोले- मङ्गलापति भगवान् ऐसा सुन कर सन्तुष्ट हुए और हे वीरभद्र! ''तेरी जय हो'' इस प्रकार का आशीर्वाद दिया ।।४५।। महेश्वरजी बोले- हे तात! हे वीरभद्र! अच्छे चित्त से मेरे वचन सुनो, मेरे सन्तोष के निमित्त शीघ्र ही मेरा वचन मानो ।।४६।। ब्रह्माजी का पुत्र दुष्ट दक्ष यज्ञ कर रहा है, वह विशेष कर मेरा विरोधी, महाअहंकारी, मूर्ख है ।।४७।। याग परिवार सहित उसका यज्ञ भस्म कर के, हे गण! शीघ्र ही मेरे समीप आओ ।।४८।। देवता, गन्धर्व, यक्ष वा जो कोई भी वहां हो, सहसा उन सबको शीघ्र ही भस्म कर डालो ।।४९।। विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, यम कोई भी वहां हो, सबको जा कर नष्ट कर डालो ।।५०।। देवता, गन्धर्व, यक्ष वा कोई जो हो, उन सबको शीघ्र ही भस्म कर डालो ।।५१।। दधीचि के कृत्यों को उल्लंघन कर के, जो उनकी शपथ को उल्लंघन कर के, वहां स्थित हुए हैं, उनको तुम शीघ्र ही भस्म कर डालो ।।५२।। यदि प्रमथों के संग विष्णुजी भ्रम से कोई कार्य करें, तो अनेक प्रकार के आकर्षण मन्त्रों से उनको प्रज्ज्वलित कर डालो ।।५३।। जो उस ऋषि की शपथ को उल्लंघन कर के गर्व से वहां स्थित हुए हैं, वे मेरे द्रोही हैं। अग्नि की ज्वाला-माला से उन सबको भस्म कर डालो ।।५४।। जितने दक्ष के यज्ञ में स्थित हैं, उनको स्त्री, धन आदि के सहित भस्म कर के शीघ्र मेरे पास चले आओ ।।५५।। तुम्हारे जाने पर विश्वादि देवता तुम्हारी स्तुति करेंगे, तो भी तुम न मान कर उनको अग्नि से भस्म कर देना ।।५६।। जितने देवता हम से द्रोह करते हैं, उनको शीघ्र ही ज्वाला-माला से आकुल कर के अग्नि से जला डालना, ध्यान मत करना कि, यह मन्त्रपालक हैं ।।५७।। और सपत्नीक तथा गन्धर्वों सहित सब दक्षादि को भस्म कर के, हे वीर! पीछे नीलधारा का जल पीना ।।५८।। ब्रह्माजी बोले- क्रोध से लाल नेत्र वाले, काल के शत्रु, सकलेश्वर, वेदमर्यादा पालक शिवजी महावीर से ऐसा कह कर मौन हुए ।।५९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

द्वितीये सतीखण्डे द्वात्रिंशोऽध्यायः ।।३२।।

*****

तैंतीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार महेश्वरजी के कहे हुए वचन आदर से सुन कर वीरभद्र ने बहुत सन्तुष्ट हो कर महेश्वरजी को प्रणाम किया ।।१।। देवदेव शंकरजी के शासन को शिर पर धारण कर वीरभद्र बहुत शीघ्र यज्ञस्थान को चला ।।२।। शोभा के लिये शंकरजी ने और भी कोटियों गणों को भेजा, वह महावीर प्रलयाग्नि के समान उसके साथ चले ।।३।। तब वे सब प्रबल गण वीरभद्र के आगे–आगे और पीछे–पीछे बड़े कुतूहल करते चले ।।४।। वीरभद्र के साथ जो प्रबल गण थे, वे काल के काल शंकरजी के पार्षद थे, वह सब ही रुद्र के स्वरूप थे ।।५।। वह महात्मा वीरभद्र शिवजी का वेष धारण किये, सहस्र भुजा धारे, सर्पराज से वेष्टित महाप्रबल शत्रुओं को भय देने वाले, रथ के ऊपर स्थित हो चला ।।६।। उसके रथ का प्रमाण दो सहस्र नल्व (४०० हाथ) था और उसे दश सहस्र सिंह वहन करते थे ।।७।। इसी प्रकार से पार्श्वरक्षक भी बहुत से सिंह थे। शार्दूल, मकर, मत्स्य और सहस्रों हाथी चले ।।८।। जिस समय दक्ष का नाश करने के निमित्त वीरभद्र ने गमन किया, उस समय उन पर कल्पवृक्ष के पुष्पों की वर्षा हुई ।।९।। शिवजी की चेष्टा वाले उस वीर की गण स्तुति करने लगे और उसके गमन में सब कोई कौतूहल करने लगे ।।१०।। काली, कात्यायनी, ईशानी, चामुण्डा, मुण्डमर्दिनी, भद्रकाली, भद्रा, त्वरिता, वैष्णवी ।।११।। इन नौ दुर्गाओं के संग महाकाली दक्ष को नाश करने के निमित्त भूतगणों के साथ चली ।।१२।। डाकिनी, शाकिनी, भूत, प्रमथ, गुह्यक, कूष्माण्ड, पर्पट, चटक, ब्रह्मराक्षस ।।१३।। भैरव, क्षेत्रपाल यह सब शिवजी की आज्ञा से दक्ष के यज्ञ के विनाश के लिये बहुत शीघ्रता से चले ।।१४।। इसी प्रकार चौंसठ योगिनी गणों के साथ चलीं, यह सब क्रोध कर दक्ष का यज्ञ नाश करने के लिये चले ।।१५।। हे नारदजी ! मैं आपसे उन गणों की संख्या कहता हूँ। उन धैर्यशील महाबलियों में संघगण मुख्य था ।।१६।। शंकुकर्ण दशकोटि गण ले कर चला, केकराक्ष दशकोटि, विकृत आठ कोटि ।।१७।। विशाख चौंसठ कोटि, पारियात्र नौ कोटि, सर्वांकक छः कोटि, वीरविकृतानन छः कोटि ।।१८।। गणश्रेष्ठ ज्वालकोश बारह कोटि, समद सात कोटि, दद्रुस आठ कोटि ।।१९।। कपालीश पाँच कोटि, सन्दारक छः कोटि, कोटिकुण्ड एक–एक कोटि ।।२०।। विष्टम्भवीर आठ कोटि, वीर सात कोटि, शन्नाद और पिप्पल सहस्र कोटि ।।२१।। आवेशन आठ कोटि, चन्द्रतापन आठ कोटि, महावेश गणपति सहस्र कोटि ।।२२।। कुण्डी और पर्वतक बारह कोटि सेना ले कर दक्षयज्ञ का नाश करने चले ।।२३।। काल, कालक और महाकाल

यह सौ-सौ कोटि सेना ले कर दक्ष का यज्ञ नाश करने को चले ।।२४।। अग्निकृत शत कोटि, अग्निमुख एक कोटि, आदित्यमूर्धा और घनावह एक-एक कोटि ।।२५।। सन्रा सौ कोटि, कुमुद एक कोटि, अमोघ, कोकिल, गणाधिप एक-एक कोटि ।।२६।। काष्टागूढ़, सुकेशी, वृषभ, गणाधीश, सुमन्त्रक यज्ञ सब चौंसठ-चौंसठ कोटि सेना ले कर चले ।।२७।। काकपादोदर साठ कोटि, सन्तानक गण साठ कोटि ।।२८।। श्रेष्ठगण महाबल नौ कोटि ।।२९।। इसी प्रकार गणाधीश, मधुपिंग चला, नील और पूर्णभद्र नब्बे कोटि ।।३०।। चतुवक्त्र सौ कोटि ले कर चला। काष्ठागूढ़, सुकेश, वृषभ चौंसठ कोटि ।।३१।। गणेश्वर, विरूपाक्ष चौंसठ कोटि, तालकेतु, षट्मुख, पञ्चमुख गणेश्वर ।।३२।। संवर्तक कुलिश स्वयं प्रभु, हे मुने! लोकान्तक दीप्तात्मा तथा दौयान्तक ।।३३।। देव देव के प्रिय श्रीमान् भृंगीरिटि, अशनी और भालकगण चौंसठ सहस्र कोटि ले कर चले ।।३४।। इस प्रकार वीरेश, वीरभद्र शिवजी की आज्ञा से सहस्रों, सैंकड़ों, बीसियों कोटियों सेना से आवृत हो कर चला ।।३५।। सहस्रों कोटि भूत, तीन कोटि दूसरी जाति के भूत, रोमज और श्वगणों के साथ वीरभद्र चला ।।३६।। उस समय भेरी शंख का बड़ा शब्द होने लगा। जटाहर और मुखों के अनेक प्रकार के शब्द होने लगे, शृङ्गों के शब्द हुए ।।३७।। वे बन्धस्थानों पर सुखदायक शब्द विस्तृत होने लगे, उस उत्सव में अनेक प्रकार के शब्द होने लगे ।।३८।। हे महामुने! सबल वीरभद्र की यात्रा में अनेक सुखदायक शकुन हुए ।।३९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

द्वितीये सतीखण्डे त्रयत्रिंशोऽध्यायः ।।३३।।

*****

चौतीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले- जब इस प्रकार के गणों के सहित वीरभद्र चला, तब दक्ष ने और देवताओं ने चिन्ह सब जान लिये ।।१।। हे देवर्षे! उस समय यज्ञ के विध्वंस होने वाले तीन प्रकार के उत्पात वीरभद्र के चलने में हुए ।।२।। दक्ष की बाईं आँख, बाहू, ऊरु फड़कने लगी और भी अनेक प्रकार के कष्टप्रद उत्पाद दिखाई देने लगे ।।३।। उस समय दक्ष के यज्ञ में भूमि कम्पायमान होने लगी, मध्याह्न में ही दक्ष को नक्षत्र दिखाई देने लगे ।।४।। दिशाएं मलीन हो गई, सूर्य में काले दाग दिखाई देने लगे और सैकड़ों भयंकर परिवेश दिखाई देने लगे ।।५।। और बिजली और अग्नि के समान नक्षत्र गिरने लगे और नक्षत्रों की गति वक्र हो गई तथा अधोमुखी गति हो गई ।।६।। सैकड़ों गृद्ध

दक्ष का शिर स्पर्श कर के उड़ने लगे, ग्रहों की छाया से यज्ञमण्डप आच्छादित हो गया ।।७।। गीदड़ और नेत्रक पक्षी उस समय शब्द करने लगे, श्वेत वृश्चिकों के साथ उल्का वृष्टि होने लगी ।।८।। पांशुवृष्टि के साथ तीक्ष्ण पवन बहने लगी, चारों ओर से शलभ प्रकट हो गये, आवर्त की पवन बड़े वेग से चलने लगी ।।९।। रीतिवाली पवनों से दक्ष का मण्डप उड़ने लगा, दैव से दक्ष के याग में यह नूतन अद्भुत बात हुई ।।१०।। दक्षादिक सब रुधिर वमन करने लगे तथा शल्य सहित मांस के खण्ड वमन करने लगे ।।११।। वात से सब दीपक हत के समान कम्पित हो गये, शस्त्रधारा से हत हुए के समान सब कोई दुःखी हो गये ।।१२।। उस समय बड़े शब्द से आंसू बरसने लगे, जैसे सबेरे ओस की बून्दों से कमल व्याप्त हों, ऐसे सब के मुख हो गये ।।१३।। अकस्मात् दक्षादि के नेत्र विशद हो गये, जैसे रात में कुमुद हो जाते हैं ।।१४।। आकाश से रुधिर बरसने लगा, दिशाएं अन्धकार से व्याप्त हो गइँ, विशेष कर सब जनों को दुःख देने वाला दिग्दाह होने लगा ।।१५।। इस प्रकार देवताओं ने अनेक अरिष्ट देखे, हे मुने! विष्णुजी आदिकों ने बड़ा भय पाया ।।१६।। ''हा! हम मरे'' ऐसा कह कर वे भूमि पर गिर पड़े, जैसे नदी के वेग से किनारे के वृक्ष गिर जाते हैं ।।१७।। क्रूर सर्प से हत हुए के समान पतित हो कर भूमि पर स्थित हो कर गेंद के समान वे उठते और गिर पड़ते थे ।।१८।। फिर वे ताप से संतप्त हो कर कुररी के समान रोने लगे, उक्ति-प्रत्युक्ति कर के रोने लगे ।।१९।। विष्णुजी सहित सब की शक्ति कुण्ठित हो गई, कमल के समान अपने-अपने स्थानों में लौटने लगे ।।२०।। उसी समय वहां आकाशवाणी हुई, वह सब देवताओं ने विशेष कर दक्ष ने सुनी ।।२१।। आकाशवाणी बोली- ''हे दक्ष! तुमको धिक्कार है, तुम बड़े पापी मूढ़ हो, तुझ को हर से अनिवार्य दुःख प्राप्त होगा ।।२२।। खेद है कि, यहां जितने देवता स्थित हैं, उन सबको भी महादुःख उपस्थित होगा, इसमें सन्देह नहीं'' ।।२३।। ब्रह्माजी बोले- यह आकाश के वचन सुन और अरिष्ट देख कर दक्ष और दूसरे देवताओं ने बड़ा दुःख माना ।।२४।। दक्ष कम्पायमान हो कर चित्त में बड़ा व्याकुल हुआ और अपने प्रभु लक्ष्मीपति की शरण में गया ।।२५।। प्रणाम कर के स्तुति की, भय के मारे व्याकुल अचेतन हो कर भक्तवत्सल विष्णुजी बोले ।।२६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

द्वितीये सतीखण्डे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।।३४।।

*****

पैंतीसवाँ अध्याय

दक्षजी बोले- हे देव देव हरे! हे विष्णो! हे दीनबन्धु! हे कृपासागर! इस यज्ञ में मेरी रक्षा जैसी हो वैसी करनी चाहिये ।।१।। आप यज्ञ के रक्षक मख के कर्म वाले साक्षात् यज्ञात्मा हो, हे प्रभो! ऐसी कृपा कीजिये, जिसमें यज्ञ का भंग नहो ।।२।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार आदर से दक्ष ने बहुत विज्ञप्ति की और भय से व्याकुल मन हो कर दक्ष विष्णुजी के चरणों में गिरे ।।३।। तब व्याकुल मन वाले दक्षजी को विष्णुजी ने उठा कर और उस कुमति के वचनों को सुन कर शिवजी को स्मरण किया ।।४।। अपने प्रभु महेशान परमेश शिवजी को स्मरण कर शिवतत्त्व के जानने वाले हरि दक्ष को समझाते हुए बोले ।।५।। हरि बोले- हे दक्षजी! आप तत्त्व से मेरे वचन सुनिये, मैं कहता हूँ, सर्वथा मैं आपका हित करने वाले महामन्त्र कहता हूँ ।।६।। हे दक्षजी! आपने सबके अधीश्वर परमात्मा शंकरजी का तत्त्व न जान कर उनका निरादर किया है ।।७।। ईश्वर की अवज्ञा करने से केवल कार्य ही विफल नहीं होता किंतु पद-पद में विपत्ति पड़ती है ।।८।। जहां अपूज्यों का पूजन और पूज्यों का असत्कार होता है, वहां दारिद्र, मरण और भय यह तीन बातें होती हैं ।।९।। इस कारण शिवजी सब प्रयत्न से मान्य हैं, शिवजी को मान्य न करने से ही यह महाभय उपस्थित हो गया है ।।१०।। आपकी दुर्नीति से ही इस समय हमारा किसी का प्रभाव नहीं रहेगा, यह मैं सत्य ही कहता हूँ ।।११।। ब्रह्माजी बोले- विष्णुजी के यह वचन सुन कर दक्षजी को बड़ी चिन्ता हुई और व्याकुल मन, विविर्ण मुख हो कर, पृथ्वी पर मौन हो कर स्थित हुए ।।१२।। इसी अवसर में रुद्र से प्रेरित गणनायक वीरभद्र महासेना के साथ वहां उपस्थित हुआ ।।१३।। कोई गण उसके पीछे और कोई आकाश से आये, कोई दिशा-विदिशा से आ कर वहां स्थित हुए ।।१४।। वह गण शिवजी की आज्ञा से निर्भय, महाशूर, भयंकर पराक्रमी थे, वह वीरश्रेष्ठ असंख्य सिंहनाद करने लगे ।।१५।। उनके नाद से तीनों भुवन शब्दायमान हो गये, रज से आकाश और अन्धकार से दिशाएं व्याप्त हो गई ।।१६।। भय के मारे सात द्वीपवाली पृथ्वी चलायमान हो गई, पर्वत, वनों सहित समुद्र चलायमान हो गये ।।१७।। इस प्रकार वह लोक को क्षय करने वाली महासेना उपस्थित हुई। उसे देख कर देवतादिक सब ही क्षुभित हो गये ।।१८।। सेना का उद्योग देख कर दक्ष का सिर नीचा हो गया और विष्णुजी के आगे दण्ड के समान गिर कर कलत्र के सहित कहने लगा ।।१९।। दक्ष बोला- आप ही के बल से मैंने यह महान् यज्ञ आरम्भ किया है,

हे प्रभो विष्णुजी! इस सत्कर्म की सिद्धि में आप ही प्रमाण हैं।।२०।। हे विष्णुजी! आप कर्मों के साक्षी, यज्ञों के पालन करने वाले हैं, हे महाप्रभो! धर्म के, वेद के भीतर आप ही अधिष्ठान ब्रह्म हो।।२१।। हे प्रभो! इस कारण हमारे इस यज्ञ की रक्षा करनी आपको उचित है, आपके सिवाय और कौन रक्षा करने में समर्थ है? कारण कि आप सबके प्रभु हैं।।२२।। ब्रह्माजी बोले- दक्ष के वचन सुन कर विष्णुजी बहुत दीन हो गये और शिवतत्त्व से पराङ्मुख दक्ष को समझाते हुए बोले।।२३।। विष्णुजी बोले- हे दक्षजी! मैं आपके यज्ञ की रक्षा करूंगा, कारण कि धर्म का पालन करना मेरा प्रण है।।२४।। आपने सत्य कहा है, अब उसका व्यतिक्रम नहीं हो सकता, हे दक्ष! मैं जो आपसे कहता हूँ, सो सुनिये। इस समय क्रूरबुद्धि को त्याग दो।।२५।। नैमिषारण्य में जो अद्भुत वृत्तान्त हुआ, क्या वह स्मरण नहीं? हे दक्ष! क्रूरबुद्धि से आपने उसे भुला दिया।।२६।। रुद्र के कोप से आपकी रक्षा करने में कौन समर्थ है? हे दक्ष! आपकी रक्षा करना भी दुर्मति है।।२७।। हे दुर्मते! आप कर्म और अकर्म कुछ नहीं देखते हो, केवल सदा सब बातों में कर्म ही सफल नहीं होता।।२८।। वही अपना कर्म जानो, जिसमें समर्थपन हो जाय, पर शिवजी के बिना तो कोई भी कर्म का फल देने को समर्थ नहीं है।।२९।। जो भक्ति से शान्त हो कर ईश्वर में मन लगाता है, सदाशिवजी उसी को कर्म का फल देते हैं।।३०।। जो ईश्वर को नहीं मानने वाले मनुष्य केवल ज्ञान का आश्रय कर के उन्नति चाहते हैं, वे सैकड़ों-करोड़ो वर्ष तक नरक में जाते हैं।।३१।। फिर जन्म-जन्मान्तर कर्म की फांसी से बन्धते हैं, केवल कर्मरूपी नगर में बारंबार पड़ते हैं।।३२।। यह रुद्र के गण अधीश्वर शत्रुनाशी वीरभद्र है, रुद्र की क्रोधाग्नि से प्रकट हो कर यज्ञ में आया है।।३३।। इसमें सन्देह नहीं कि, यह हमारे विनाश के निमित्त ही आया है, इसका निवारण करना कल्पान्त में भी अशक्य है, वास्तव में तो क्या?।।३४।। यह महाप्रभु स्वयं ही इस यज्ञ में हम सबको प्रज्ज्वलित करने के पश्चात् शान्त होगा, इसमें सन्देह नहीं।।३५।। भ्रम से मैंने श्रीमहादेवजी की शपथ को उल्लंघन कर के जो यहां स्थिति की उसका दुःख हमने आप सहित यह प्राप्त किया।।३६।। हे दक्ष! अब इस उपद्रव के निवारण में मेरी सामर्थ्य नहीं है, शपथ के उल्लंघन करने से मैं शिवद्रोही हुआ।।३७।। तीन काल में भी शंकरजी के द्रोही को सुख नहीं मिलता, इस कारण मैंने आपके सहित दुःख पाया।।३८।। सुदर्शनचक्र भी इस पर प्रहार नहीं कर सकेगा, कारण कि यह शैवचक्र अशैवों पर ही चलता है।।३९।। यह शिवजी का चक्र छोड़ते ही वीरभद्र पर बिना प्रहार किये शिवजी के पास चला जाएगा।।४०।। शिवजी की शपथ को उल्लंघन कर के यह चक्र मेरे पास स्थित है, तो समझना कि उनकी परम कृपा है।।४१।। नहीं तो यह चक्र किसी प्रकार भी स्थित नहीं रह सकता और ज्वाला-माला से आकुल

हो कर शीघ्र ही चला जायेगा।।४२।। यहां हम आदर से यदि वीरभद्र का पूजन करें, तो भी यह शंकरजी के क्रोधित होने के कारण किसी प्रकार हमारी रक्षा नहीं कर सकेगा।।४३।। अहो! इस समय कुसमय हमारी प्रलय हुई, हां खेद! हमारा आपका इस समय नाश उपस्थित हुआ।।४४।। त्रिलोकी में इस समय हमारा कोई रक्षक नहीं, ठीक भी है। शंकरद्रोही को त्रिलोकी में कौन रक्षा कर सकता है?।।४५।। शरीर का नाश हो जाए, यमयातना भोगनी पड़े, पर यह दु:ख तो इस समय सहा न जाएगा।।४६।। कारण कि शिवद्रोही को देखते ही यमराज दांत पीसने लगते हैं और नि:सन्देह उसे तेल के तपते कराह में डाल देते हैं।।४७।। मैं सर्वथा शपथ के उत्तर जा सकता हूँ, पर दुष्ट संसर्ग के पाप से मैं न पहुँच सका।।४८।। यदि अब हम यहां से भाग जाएँ, तो शिवजी अपने आकर्षण शस्त्रों से हम सबको आकर्षित कर लेंगे।।४९।। स्वर्ग, भूमि, पाताल कहीं भी हो, वीरभद्र के शस्त्र सब स्थानों में जा सकते हैं।।५०।। त्रिशूली भगवान् शंकरजी के जितने गण हैं, उन सबकी निश्चय ऐसी ही शक्ति है।।५१।। काशी में शिवजी की आज्ञा से श्रीकालभैरव ने लीलापूर्वक अपने नखों से ब्रह्माजी के पाँचवें शिर को छेद कर दिया।।५२।। यह कह कर विष्णुजी बड़े व्याकुल मुख से स्थित हुए, इधर वीरभद्र भी यज्ञमण्डप में आ कर प्राप्त हुए।।५३।। गोविन्द के ऐसा कहते सैन्यसागर आ कर उपस्थित हुआ, वीरभद्र के साथ इस सेना को देवताओं ने देखा।।५४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
द्वितीये सतीखण्डे विष्णुवाक्यवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः।।३५।।

*****

छत्तीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– उस समय इन्द्र विष्णुजी का हास्य करते हुए आत्मप्रशंसा करते वीरभद्र से युद्ध करने को वज्र हाथ में ले कर देवताओं के सहित स्थित हुए।।१।। उस समय हाथी पर इन्द्र, मेंढे पर अग्नि, महिष पर यम, प्रेत पर निर्ऋति।।२।। मकर पर वरुण, मृग पर वायु, पुष्पक पर कुबेर आरूढ़ हुए और भी सब तैयार हुए।।३।। इसी प्रकार और भी बहुत से देवता, यक्ष, चारण, गुह्यक अपने–अपने प्रतापी वाहनों के ऊपर चढ़ कर चले।।४।। उनका उद्योग देख कर मुख नीचे किये हुए दक्षजी इन्द्र के समीप आ कर बोले।।५।। दक्ष ने कहा कि, आप ही के भरोसे पर मैंने महायज्ञ आरम्भ किया है, आप महाप्रभाव वाले हैं, इस सत्कर्म की सिद्धि के लिये आप ही

महानुभाव प्रमाण हैं ।।६।। दक्ष के यह वचन सुन कर इन्द्र के सहित सब देवता शीघ्रता से युद्ध करने के निमित्त चले ।।७।। तब वे सब बलवान् देवता युद्ध करने लगे, वह और वे इन्द्रादि देवता शिवजी की माया से मोहित हो गये ।।८।। उस समय देवता और शिवगणों का भयंकर संग्राम हुआ, तीक्ष्ण तोमर और नाराचों से वे परस्पर युद्ध करने लगे ।।९।। उस युद्ध के महोत्सव में शंख और भेरियां बजने लगीं, महादुंदुभी, पटह और डिमडिम बजने लगे ।।१०।। उस महाशब्द से सब देवता श्लाध्यमान हो कर लोकपालों के सहित उन शिवजी किंकरों को मारने लगे ।।११।। हे मुनिश्रेष्ठ! भृगु के मन्त्रबल से इन्द्रादि लोकपालों ने शिवजी के गणों को छेद डाला ।।१२।। यज्ञ करने वाले भृगु ने सबका उच्चाटन किया, यह कार्य देवताओं के यजन और दक्ष के सन्तोष के कारण किया ।।१३।। उन भूत, प्रेत, पिशाचों को पराजित होते देख कर वीरभद्र ने क्रोध कर के उनको पीछे किया ।।१४।। महाबली ने वृषभ में स्थित उनको आगे कर के महात्रिशूल ले कर देवताओं को गिराना आरम्भ किया ।।१५।। देवता, यक्ष, साध्य, गुह्यक, चारण इन सबको शूलघात से गिरा दिया ।।१६।। किन्हीं के खड्ग से दो खण्ड कर दिये, किन्हीं पर मुद्गर का प्रहार किया, इसी प्रकार दूसरे गणों ने शस्त्रों से भी देवता विदीर्ण होने लगे ।।१७।। इस प्रकार देवता पराजित हो कर परस्पर एक दूसरे को त्याग कर पलायमान होते हुए स्वर्ग को गये ।।१८।। केवल महाबलवान् इन्द्रादि दिक्पाल ही उस दारुण संग्राम में धैर्य धर के उत्साह से स्थित हुए ।।१९।। तब इन्द्र आदि सब देवता संग्रामस्थल में इकट्ठे हो कर बड़ी नम्रता से बृहस्पति से पूंछने लगे ।।२०।। लोकपाल बोले– हे गुरो! हे बृहस्तते! हे तात! महापण्डित! हे दयासागर! शीघ्र ही आप हमसे कहें, जिसमें हमारी जय हो ।।२१।। ब्रह्माजी बोले– बृहस्पति उन सबके इस प्रकार के वचन सुन कर शंकरजी का स्मरण कर के ज्ञान में दुर्बल इन्द्र से कहने लगे ।।२२।। बृहस्पति बोले– जो पहले विष्णुजी ने कहा था, वही सब अब हुआ, हे इन्द्र! मैं अब सब कहता हूँ, सावधान हो कर सुनो ।।२३।। जो कोई सब कर्मों के फल देने वाला ईश्वर है, वह भी कर्त्ता की अपेक्षा करता है, वह भी स्वयं करने में प्रभु नहीं है ।।२४।। मन्त्र, औषधि अभिचार, लौकिककर्म, वेद, दोनों मीमांसा ।।२५।। और दूसरे भी वेद युक्त सम्पूर्ण शास्त्र यह उनके बिना कुछ नहीं है, न उन्हें जानने में समर्थ हो सकते हैं, ऐसा पुरातन कहते हैं ।।२६।। सर्व वेद के ज्ञाता भी महेश्वरजी को नहीं जान सकते है, अनन्य शरण भक्त ही उन्हें जान सकते हैं, ऐसी श्रुति है ।।२७।। शान्त निर्विकार परदृष्टि हो और उनका अनुग्रह हो, तब शंकरतत्त्व जाना जाता है ।।२८।। हे इन्द्र! तो भी कार्याकार्य के निर्णय में मैं सिद्ध अंश को आपसे कहता हूँ, सावधान हो कर सुनो ।।२९।। हे इन्द्र! तुम मूर्खता के वश हो कर लोकपालों सहित दक्ष के यज्ञ में आये हो, भला तुम क्या पराक्रम कर सकते हो ?।।३०।। यह रुद्र के परमकोप वाले गण

यज्ञ के विघ्न के लिये आये हैं, अवश्य विघ्न करेंगे ।।३१।। यह मैं सत्य ही सत्य कहता हूँ, कि यहां कोई भी उपाय इस यज्ञ के विघ्न विनाश करने का नहीं है ।।३२।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार बृहस्पति के वचन सुन कर इन्द्र तथा लोकपालों के सहित वह सब देवता चिन्ता करने लगे ।।३३।। तब गणों के सहित महावीर वीरभद्र ने सब इन्द्रादिक लोकपालों से बड़े क्रोधपूर्वक कहा ।।३४।। वीरभद्र ने कहा, आप सब मूर्खता से इस यज्ञ में प्राप्त हुए हो, अब मेरे समीप आइये, मैं आपको इसका फल चखाऊंगा ।।३५।। हे इन्द्र! अग्नि, चन्द्र, कुबेर, वरुण, वायु, निर्ऋति, यम, शेष ।।३६।। हे देवताओ! हे चतुरो! अब मैं आपको इसका फल देता हूँ, आप अच्छी प्रकार से इसका फल भोगो ।।३७।। ब्रह्माजी बोले– यह कह कर तीक्ष्ण बाणों से उन पर प्रहार करने लगे, जब गणों में अग्रणी वीरभद्र तीक्ष्ण बाणों से प्रहार करने लगा, तब इन्द्रादि सब देवता उन बाणों से बड़े व्यथित हो गए ।।३८।। तब वे सब दशों दिशाओं में भागने लगे, जब लोकपाल दशों दिशाओं में भाग गये, तब वीरभद्र गणों के सहित यज्ञस्थल में आया ।।३९।। तब वे समस्त ऋषि डर कर शीघ्रता से विष्णुजी के पास आ कर विज्ञप्ति करने लगे ।।४०।। ऋषि बोले– हे रमानाथ! हे सर्वेश्वर! हे महाप्रभो! आप दक्ष के यज्ञ की रक्षा कीजिये, कारण कि आप साक्षात् यज्ञ स्वरूप हो ।।४१।। यज्ञ के कर्म, यज्ञ के रूप, यज्ञ के अंग, यज्ञ के रक्षक आप हो, इससे आप यज्ञ की रक्षा कीजिये। आपके बिना कोई रक्षक नहीं हैं ।।४२।। ब्रह्माजी बोले– विष्णुजी इस प्रकार से उन सबके वचन सुन कर वीरभद्र से भय कर के भी उससे युद्ध की इच्छा करने लगे ।।४३।। चार भुजा धारण किये, हाथ में सुदर्शनचक्र लिये, महाबली देवताओं को साथ ले कर यज्ञस्थान से बाहर निकले ।।४४।। इधर अनेक गणों के साथ शूल हाथ में लिये वीरभद्र ने युद्ध करने की इच्छा किये महाप्रभु विष्णुजी को सन्नद्ध देखा ।।४५।। वीरभद्र ने विष्णुजी को देखते ही बड़ी टेढ़ी भौं कर ली और जैसे काल पापी को देखता है अथवा जैसे सिंह हाथी को देखता है ।।४६।। उस प्रकार से शत्रुनाशी वीरभद्र ने विष्णुजी को देखा और वीर गणों से आवृत्त हो कर बहुत क्रोध कर के शीघ्रता से बोले ।।४७।। वीरभद्र ने कहा, हे विष्णुजी! आपने महादेवजी की शपथ का उल्लंघन किया, यह आपका चित्त कैसे हुआ और आपने किस बात का अभिमान किया है?।।४८।। क्या शंकरजी की शपथ उल्लंघन करने की आपकी शक्ति है? आप कौन हो और त्रिलोकी में आपका रक्षक कौन है?।।४९।। आप यहां कैसे आये हो? इस बात को मैं नहीं जानता, आप दक्ष के यज्ञ की रक्षा किस प्रकार कर सकते? सो कहिये ।।५०।। जो कुछ सती ने किया, सो क्या आपने नहीं देखा? जो दधीच ने कहा था, सो क्या आपने नहीं सुना?।।५१।। क्या आप भी इस दक्ष के यज्ञ में कुत्सित दान के निमित्त आये हो? हे महाभुज! मैं आपको इसका कुत्सित दान देता हूँ।।५२।। हे हरे! त्रिशूल से मैं

आपकी छाती को विदीर्ण कर दूंगा, जो कोई आपका रक्षक हो, वह मेरे समीप आवे ।।५३।। मैं आपको पृथ्वी पर पटककर पृथ्वी में प्रज्ज्वलित कर दूंगा और आपको जला कर पीस डालूंगा ।।५४।। हे दुराचारी हरे! हे महेशजी से विमुख अधम! क्या आप महेश्वरजी के पवित्र माहात्म्य को नहीं जानते ?।।५५।। तो भी आप महाभुज हो कर युद्ध की कामना कर के आगे हुए हो, यदि आप स्थित रहोगे, तो मैं आपको ऐसे स्थान में भेजूंगा कि लौटना न पड़े ।।५६।। ब्रह्माजी बोले– बुद्धिमान् सुरेश्वर विष्णुजी वीरभद्र के वचन सुन कर हँसते हुए बोले ।।५७।। विष्णुजी बोले– हे वीरभद्र! सुनो मैं तुमसे तत्त्व से कहता हूँ, मुझ शंकरजी के सेवक को तुम रुद्र से विमुख मत जानो ।।५८।। इस दक्ष ने यज्ञ के लिये बारंबार प्रार्थना की थी, यह कर्मनिष्ठ तो है, पर इसने मूर्खता की ।।५९।। मैं भक्तों के पराधीन हूँ और महेश्वरजी भी भक्ताधीन हैं, हे तात! दक्ष मेरा भक्त है, इससे मैं यज्ञ में आया हूँ ।।६०।। हे रुद्रकोप से उत्पन्न वीर! तुम मेरी प्रतिज्ञा को सुनो, तुम रुद्र के तेज से उत्पन्न हो और प्रभु प्रताप के स्थान हो ।।६१।। मैं तुमको और तुम मुझको निवारण करो, जो होना होगा सो होगा, मैं पराक्रम करूंगा ।।६२।। ब्रह्माजी बोले– जब गोविंद ने ऐसा कहा, तब वह महाभुज वीरभद्र बोला– मैं आपको अपने प्रभु का प्रिय जान कर प्रसन्न हूँ ।।६३।। फिर गणों में अग्रणी वीरभद्र प्रसन्न हो कर नम्रतापूर्वक तत्त्व से विष्णु देवता से बोला ।।६४।। वीरभद्र ने कहा– हे महाप्रभो! आपके भाव की परीक्षा के निमित्त ही मैंने आपसे यह वचन कहे थे, इस समय जो विचार से कहूं वह आप सावधान हो कर सुनिये ।।६५।। जैसे शिवजी वैसे आप, जैसे आप वैसे ही शिवजी, हे हरे! शिवजी की आज्ञा से वेद ऐसा कहते हैं ।।६६।। शिवजी की ही आज्ञा से हम सब उनके सेवक हैं, तो भी, हे रमानाथ! आदर से यह प्रवाद उचित है ।।६७।। ब्रह्माजी बोले– वीरभद्र के यह वचन सुन कर भगवान् हँसते हुए वीरभद्र से यह वचन बोले ।।६८।। विष्णुजी बोले– हे महावीर! मेरे साथ शंका रहित हो कर युद्ध करो, मैं तुम्हारे अस्त्रों से पूर्ण हो कर अपने स्थान को जाऊंगा ।।६९।। ब्रह्माजी बोले– विष्णुजी ऐसा कह कर विराम को प्राप्त हो कर युद्ध के लिये तत्पर हुए और अपने गणों के सहित महाबली वीरभद्र भी युद्ध को तैयार हुआ ।।७०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

द्वितीये सतीखण्डे षट्त्रिंशोऽध्यायः ।।३६।।

*****

सैंतीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– तब महाबली वीरभद्र सब आपत्ति के निवारण करने वाले शंकरजी को मन में स्मरण कर के विष्णुजी के साथ युद्ध को तैयार हुआ ।।१।। सब वैरियों को मारने वाला वह वीरभद्र दिव्य रथ पर चढ़ कर परम अस्त्र ग्रहण कर के सिंहनाद से गर्जने लगा ।।२।। इधर महाबली विष्णुजी अनेक पक्ष के देवताओं को प्रसन्न करते हुए अपने पाञ्चजन्य शंख का महाशब्द करने लगे ।।३।। उस शंख का शब्द सुन कर जो देवता भाग गये थे, वे शीघ्र ही संग्राम स्थान में आये ।।४।। तब वे इन्द्रादि सब लोकपाल भी बड़े ऊँचे स्वर से सिंहनाद कर के वीरभद्र के साथ युद्ध करने लगे ।।५।। सिंहनाद करते गर्जते हुए गण और लोकपालों का बड़ा भयंकर युद्ध हुआ ।।६।। नन्दी से इन्द्र का, अनल से वैष्णवों का और कूष्माण्डपति महाबली कुबेर से युद्ध करने लगे ।।७।। उस समय सौ पर्व वाले वज्र से इन्द्र ने नन्दी को ताड़न किया ।।८।। नन्दी ने त्रिशूल द्वारा इन्द्र की छाती में आघात किया ।।९।। इस प्रकार दोनों बली बड़े उत्साह से परस्पर युद्ध करने लगे, नन्दी और इन्द्र जीतने की इच्छा से अनेक प्रकार के प्रहार करने लगे ।।१०।। परमकोपन स्वभाव वाले अग्नि ने शक्ति से अश्मा को ताडन किया, उसने भी बड़े वेग से सौ धार वाले शूल से अग्नि पर प्रहार किया ।।११।। यम के साथ महालोक नामक गण का संग्राम होने लगा, यह वीर प्रसन्नता से महादेवजी को स्मरण कर के संग्राम करने लगा ।।१२।। बलवान् चण्ड ने नैर्ऋत्य के साथ आ कर उसको बंचना करते हुए परम अस्त्रों से युद्ध आरम्भ किया ।।१३।। वरुण के साथ वीरमुण्ड का संग्राम होने लगा, यह त्रिलोकी को विस्मय करते हुए परमशक्ति से संग्राम करने लगे ।।१४।। वायु ने अपने परम अस्त्र से भृंगी पर प्रहार किया और भृंगी ने बड़े प्रतापी शूल से वायु पर प्रहार किया ।।१५।। तब कुष्माण्डपति ने बड़े उत्साह से हृदय में महेश्वरजी का ध्यान कर के बड़े वेग से कुबेर के साथ युद्ध आरम्भ किया ।।१६।। योगिनीचक्र के सहित भैरवीनायक ने सब देवताओं को विद्रावित कर के उनका रुधिर पान करना आरम्भ किया ।।१७।। इसी प्रकार क्षेत्रपाल भी देवताओं का भक्षण करने लगे, काली भी उनको विदीर्ण कर के उनका रुधिर पान करने लगी ।।१८।। इधर महातेजस्वी विष्णुजी भी युद्ध करने लगे और दशों दिशाओं को भस्म करते हुए उन्होंने अपने चक्र का प्रहार किया ।।१९।। तब क्षेत्रपालों ने वेग से उस चक्र को आता देख कर, वह महावीर वहां सहसा सम्मुख उपस्थित हो गये और उस चक्र को ग्रसित कर लिया ।।२०।। शत्रुओं के पुर जीतने वाले विष्णुजी ने उस चक्र को ग्रसित हुआ देख कर

उसका मुख पकड़ कर उस चक्र को उगलवा लिया।।२१।। तब वह संसार के एक स्वामी अपना चक्र ले कर बड़े क्रोधित हुए और वह महाबली अनेक प्रकार के अस्त्र और आयुध धारण कर के बड़े क्रोध से युद्ध करने लगे।।२२।। उनसे उत्साह के साथ युद्ध करते हुए विष्णुजी ने बड़ा क्रोध किया और अनेक आयुधों को निःक्षेप कर के भयंकर युद्ध किया।।२३।। भैरवादिक अनेक उनके साथ युद्ध करने लगे और परम क्रोध कर के अनेक प्रकार के शस्त्र त्यागने लगे।।२४।। इस प्रकार उनका युद्ध देख कर भगवान् भी लौट कर फिर उनके साथ युद्ध करने लगे।।२५।। तब विष्णुजी ने महाक्रोध किया और चक्र उठा कर परम वेग से वीरभद्र के साथ युद्ध करने लगे।।२६।। उन दोनों का महाघोर रोमहर्षक युद्ध हुआ, विष्णुजी उस समय अनेक अस्त्रों का प्रहार करने लगे।।२७।। विष्णुजी की देह से योगबल के कारण हाथ में शंख, चक्र, गदा लिये असंख्य वीर प्रकट हुए।।२८।। वे सब विष्णुजी के समान महाबली अनेक प्रकार के आयुध धारण कर के वीरभद्र के साथ युद्ध करने लगे।।२९।। वे महावीर नारायण के समान प्रभाव वाले थे, वीरभद्र ने शंकरजी को स्मरण कर के उन सबको शूल से भस्म कर दिया।।३०।। उसी समय महाबली वीरभद्र ने अपने त्रिशूल से विष्णुजी को युद्ध में प्रहार किया।।३१।। उस घात से सहसा पुरुषोत्तम भगवान् ताड़ित हुए, हे मुने! उस आघात से सहसा मूर्च्छित हो कर भगवान् हरि पृथ्वी पर गिरे।।३२।। उस समय वीरों को भय देने वाले प्रलय अग्नि के समान त्रिलोकी को दाह करने वाला तेज प्रकट हुआ।।३३।। और क्रोध से नेत्र लाल कर के श्रीमान् महाप्रभु फिर उठ कर महाक्रोध कर के फिर चक्र उठा कर मारने को उद्यत हुए।।३४।। वीरभद्र शिवप्रभु ने महात्मा से कालादित्य के समान कान्तिमान उस चक्र को स्तम्भित कर दिया।।३५।। महाप्रभु मायेश शंकरजी के प्रभाव से विष्णुजी के हाथ में स्थित वह सुदर्शनचक्र स्तम्भित हो गया।।३६।। उस समय महावीर गणेश्वर वीरभद्र द्वारा स्तम्भित हुए भगवान् विष्णुजी निश्चल पर्वत के समान स्थित हुए।।३७।। हे नारदजी! जब विष्णुजी को वीरभद्र ने स्तम्भित किया, तब यज्ञ के मन्त्र के स्तम्भन कारण मुक्त हो गया।।३८।। जब शार्ङ्गधनुषधारी ने उस स्तम्भन से मुक्त हो कर अपना शार्ङ्गधनुष उठाया और उस पर बाण चढ़ाया।।३९।। हरि के उस शार्ङ्गधनुष से निकले तीन बाणों से वीरभद्र ताड़ित हुए, हे तात! वीरभद्र ने उनका तीन प्रकार से छेद कर दिया।।४०।। तब मैंने और सरस्वती ने उस समय विष्णुजी को उस गण के विषय में समझाया और वीरभद्रजी को असह्य कान्तिवाला जान कर अन्तर्धान होने की इच्छा की।।४१।। तब यह बात जान कर कि, सती के मरण का दुःसह पाप है, तब भगवान् विष्णुजी अपने स्वामी, स्वतन्त्र शंकरजी का स्मरण करते हुए अपने गणों के सहित अपने लोक में गये।।४२।। मैं पुत्र शोक से पीड़ित हो कर सत्यलोक को चला आया और दुःखी हो कर सोचने लगा कि, मैं अब क्या करूं?।।४३।। जब मैं और

विष्णुजी वहां से चले आये, तब वीरभद्र ने यज्ञ के सब देवता और मुनियों को जीत लिया।।४४।। यह महाउपद्रव और यज्ञ का विध्वंस देख कर यज्ञ भी महाभयभीत हो कर मृग का रूप धारण कर के वहां से पलायमान हुआ।।४५।। जब वह मृग का रूप धारण कर के आकाशमार्ग से धावमान हुआ, तब वीरभद्र ने उसे ग्रहण कर के उसका शिर छेद दिया।।४६।। तब प्रजापति, धर्म, कश्यप, अरिष्टनेमि, बहुपत्रमुनि।।४७।। तथा अंगिरस, कृशाश्वमुनि को वह महावीर ग्रहण कर इन महामुनियों के शिर पर अपना चरण प्रहार किया।।४८।। सरस्वती देवमाता की नासा छेद डाली। प्रतापी वीरभद्र ने अपने हस्तलाघव से यह कार्य किया।।४९।। फिर और भी देवताओं को विदीर्ण कर के महाक्रोधित नेत्र हो कर वीरभद्र ने पृथ्वी पर गिरा दिया।।५०।। इस प्रकार वीरभद्र मुख्यदेवता और मुनियों को विदीर्ण कर के क्रोधित सर्पराज के समान शान्त न हुआ।।५१।। जिस प्रकार सिंह वन के हाथियों को भगा कर चारों ओर देखे, इस प्रकार वीरभद्र देखने लगा।।५२।। जब तक प्रतापी गण मणिभद्र ने भृगुजी को दबोच कर उनकी छाती पर पैर रख कर उनकी डाढ़ी उखाड़ डाली।।५३।। और चण्ड ने बड़े वेग से पूषों के दांत उखाड़ लिये कि, तुम ही हर के शप्यमान होने पर पहले दांत खोल कर हँसे थे।।५४।। नन्दी ने क्रोध कर के भगदेवता के नेत्र निकाल लिये, दक्ष के कारण शंकरजी की निन्दा से उसकी आँख उखाड़ी गई।।५५।। स्वधा, स्वाहा, दक्षिणा, मन्त्र, तन्त्र जो कुछ भी थे, गणनायकों ने उन पर प्रहार किया।।५६।। और गणों ने क्रोध कर के वितानि पर पुरीष की वर्षा की, महावीर गणों ने उस यज्ञ को अनिर्वाच्य कर दिया।।५७।। यह दक्ष इस बली वीरभद्र के भय से अन्तर्वेदी में छिप गया जान कर वीरभद्र दक्ष को वहां से ले आया।।५८।। तब कपोल को ग्रहण कर के वीरभद्र ने दक्ष के सिर पर खड्ग का प्रहार किया, परन्तु योग के प्रभाव से उसका सिर अभेद हो गया।।५९।। जब शस्त्र-अस्त्रों से उसका सिर अभेद जाना, तब उसके हृदय पर चरण रख कर हाथ से उसका सिर नोच लिया।।६०।। शंकरजी के वैरी उस दुष्ट दक्ष का सिर महागण वीरभद्र ने अग्निकुण्ड में डाल दिया।।६१।। तब उस समय हाथ से त्रिशूल घुमाते हुए वीरभद्र ने रण में बड़ी शोभा पाई और युद्ध की संवर्त अग्नि पर्वत के समान इसे क्रोध कर के जलाने लगी।।६२।। इस प्रकार वीरभद्र ने अनायास ही इन सबको प्रदीप्त अग्नि में शलभ के समान भस्म करना आरम्भ किया।।६३।। तब वीरभद्र ने दक्ष आदि सबको भस्म कर के तीनों जगत् को पूर्ण करने के लिये बड़ा अट्टाहास किया।।६४।। उस समय वह वीरभद्र लक्ष्मी से आवृत्त हुआ और वीरभद्र के ऊपर नन्दनवन वाले फूलों की वर्षा होने लगी और सब गण प्रसन्न हुए।।६५।। सुखदायक, शीतल, सुगन्धसनी पवन चलने लगी और उसी समय देवताओं की दुन्दुभी बजने लगी।।६६।। इसके उपरान्त कृतकार्य हो कर वह वीर कैलास पर्वत को गया और

सूर्य के समान सब अन्धकार दूर कर दिया ।।६७।। वीरभद्र को कृतकार्य देख कर सन्तुष्ट हो कर परमेश्वर ने वीरभद्र को गणेश्वर कर दिया ।।६८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
द्वितीये सतीखण्डे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।।३७।।

*****

अड़तीसवाँ अध्याय

सूतजी बोले– महाबुद्धिमान् विधाता के वचन सुन कर द्विजोत्तम नारदजी के प्रेम से विस्मित हो कर पूछने लगे ।।१।। नारदजी बोले– हे ब्रह्माजी! शिवजी के बिना विष्णुजी दक्ष के यज्ञ में कैसे चले गये ? इस कारण को आप हमारे आगे प्रकाश कीजिये ।।२।। क्या शंकरजी का प्रलय के समान पराक्रम हरि नहीं जानते थे? और अपण्डित के समान उनके गुण न जान कर कैसे युद्ध किया ?।।३।। हे करुणानिधे! यह मुझे बड़ा सन्देह है, सो आप इसे छेदन कीजिये, हे प्रभो! चित्त में उत्साह करने वाले शंकरजी के चरित्र आप कहिये ।।४।। ब्रह्माजी बोले– हे द्विजश्रेष्ठ! प्रेम से शंकरजी के चरित्र को सुनो, जो पूछने वाले के सब सन्देह दूर करता है ।।५।। पहले दधीच के शाप से हरि का ज्ञान भ्रष्ट हो गया था, इससे वह दक्ष की सहायता करने दक्ष के यज्ञ में आये ।।६।। नारदजी बोले– मुनिश्रेष्ठ दधीच ने विष्णुजी को कैसा शाप दिया था, उनके सहायक हरि ने उनको कैसे क्रोध दिलाया ?।।७।। ब्रह्माजी बोले– क्षुव नामक एक तेजस्वी राजा था और वह महातेजस्वी दधीच का मित्र था ।।८।। कुछ काल में तप के प्रसंग से क्षुव और दधीच का विवाद हुआ, वह महाअनर्थ करने वाला त्रिलोकी में विख्यात हुआ ।।९।। वेद के जानने वाले शिवजी के भक्त दधीच ने कहा कि, ब्राह्मण तीनों वर्णों में श्रेष्ठ है ।।१०।। महामुनि दधीच के यह वचन सुन कर श्री के मद से मोहित हो कर क्षुव बोला ।।११।। क्षुव बोला– राजा आठ लोकपालों का शरीर धारण करता है, इस कारण वर्णाश्रम का पति राजा परमश्रेष्ठ है ।।१२।। यह श्रुति कहती है कि, राजा सम्पूर्ण देवमय है, जो महादेवता है, हे मुने! सो मैं हूँ ।।१३।। हे च्यवनपुत्र! इस कारण यह बात समझो कि, राजा बड़ा होता है, राजा का कभी निरादर नहीं करना चाहिये, मैं सर्वथा तुम्हारा पूज्य हूँ ।।१४।। ब्रह्माजी बोले– यह क्षुव के वचन सुन कर उस मुनिश्रेष्ठ ने यह श्रुतिस्मृति के विरुद्ध जान कर उस पर बड़ा कोप किया ।।१५।। महातेजस्वी दधीच ने अपने गौरव से महाक्रोध कर बायां घूंसा क्षुव के सिर में मारा ।।१६।। क्षुव ने ताडित हो कर दधीच पर वज्र का प्रहार किया और वह ब्रह्माण्ड के अधिपति ने बड़े वेग से

गर्जना की ।।१७।। भार्गव दधीच उस वज्र से ताडित हो कर पृथ्वी पर गिर पड़े और भार्गव ने राजा के निमित्त शुक्र का स्मरण किया ।।१८।। शुक्र ने तत्काल आ कर क्षुव के प्रहार के सन्धान को ठीक कर दिया अर्थात् योगी दधीच का शरीर ।।१८।। पूर्ववत् ठीक कर दिया, कारण कि वह शिवभक्तों में अग्रणी और मृत्युञ्जयविद्या के प्रवर्तक हैं ।।२०।। शुक्र बोले- हे तात दधीच ! सर्वेश्वर शंकरजी का पूजन कर के महामृत्युंजय वैदिक मन्त्र मैं तुमको देता हूँ, उसे कहता हूँ।।२१।। त्रिलोकी के पिता श्रेष्ठ शंकरजी का यजन करते हैं, जो तीनों मण्डलों के पितर त्रिगुण महेश्वरजी हैं ।।२२।। तीन तत्त्व, तीन अग्नि तीन प्रकार से तीन देव, तीन बाहु तथा तीन प्रकार से स्थित हैं ।।२३।। वह तीन देवताओं के महादेवजी सुगन्धि और पुष्टि के बढ़ाने वाले हैं, सब भूतों में सर्वत्र तीन गुणों में सत् के समान हैं।।२४।। सब इन्द्रिय तथा दूसरे देवतागणों पुष्पों में सुगन्धि के समान सूर सुगन्धि युक्त परमेश्वर हैं।।२५।। हे द्विजोत्तम! जिस प्रकार कि, प्रकृति से पुष्टि होती है, हे सुव्रत! महदादि से विशेष पर्यन्त उसी से विकल्प है ।।२६।। हे महामुने! विष्णुजी और महामुनियों के भी वह पितामह हैं तथा देवताओं की इन्द्रियों की भी पुष्टि करते है, इस कारण उन्हें पुष्टिवर्धन कहते हैं ।।२७।। उन देव अमृत रूप रुद्रकर्म वा तप से स्वाध्याय योग और ध्यान से प्रकट करते हैं ।।२८।। वे सत्य से सूक्ष्म मृत्युपाशों का छेद करते हैं अर्थात् सत्य से बन्ध को उर्वारुक (फल विशेष) के समान मोक्ष करते हैं, इससे प्रभु हैं ।।२९।। यह मेरा मृतसञ्जीवनी मन्त्र सबसे उत्तम है, नियमपूर्वक शिवजी का स्मरण करते हुए इस मन्त्र का जप करो ।।३०।। इसके जप-होम के साथ अभिमन्त्रण कर के जलपान करो, रात-दिन शंकरजी के समीप स्थित हो कर ध्यान करने से मृत्यु का भय नहीं है ।।३१।। सब न्यासादि कर के विधिपूर्वक शंकरजी का पूजन इस प्रकार कर निर्व्यग्र हो कर भक्तवत्सल शंकरजी का ध्यान करो ।।३२।। मैं इनका ध्यान कहता हूँ, जो कर के मन्त्र जपा जायेगा, जिस प्रकार शंकरजी के प्रभाव से मन्त्र सिद्ध हो जायेगा ।।३३।। दोनों कमल से हाथों से घट को उठा कर सिर के ऊपर जल छोड़ते हुए और दो हाथों से अपनी गोदी में घट धरे हुए रुद्राक्ष की माला, मृग और कमल हाथ में लिये सिर पर स्थित चन्द्रमा से निकलते हुए अमृत से आर्द्रशरीर मृत्युंजय तीन नेत्र शंकरजी को भवानी सहित स्मरण करता हूँ।।३४।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार से शुक्राचार्यजी ने दधीचजी को उपदेश कर शंकरजी को स्मरण करते हुए अपने स्थान को गमन किया ।।३५।। उनके यह वचन सुन कर महामुनि दधीचजी ने महाप्रीति से शंकरजी को स्मरण कर तप के निमित्त वन को गमन किया ।।३६।। वहां जा कर प्रेम से विधिपूर्वक महामृत्युंजय मन्त्र जपते हुए, शिवजी का स्मरण करते हुए, वन को गमन किया ।।३७।। वहां बहुत काल तक उस मन्त्र का जप करते हुए महामृत्युंजय के आराधन से शंकरजी को स्मरण किया ।।३८।। तब भक्तवत्सल शंकरजी उस मन्त्र से

प्रसन्न हो कर प्रेम से उस मुनि के आगे प्रकट हुए।।३९।। महामुनि अपने प्रभु शंकरजी को बहुत प्रसन्न हुए और वे विधिपूर्वक भक्ति से प्रणाम कर के, हाथ जोड़ कर स्तुति करने लगे।।४०।। हे मुने! तब दधीच ऋषि पर शंकरजी परम प्रसन्न हो कर प्रसन्न चित्त से वर मांगने के लिये बोले।।४१।। भक्तश्रेष्ठ दधीचजी शंकरजी के यह वचन सुन कर, हाथ जोड़ कर भक्तवत्सल शंकरजी से बोले।।४२।। दधीच बोले– हे देव देव महादेव! आप मुझे तीन वर दीजिये। मेरी अस्थि वज्र के समान हो जाए, सबसे अवध्य हूँ और सर्वथा दीन न हूँ।।४३।। ब्रह्माजी बोले– ऋषि के यह वचन सुन कर शंकरजी बड़े प्रसन्न हुए और 'तथास्तु' कह कर शंकरजी ने उनको तीन वर दिये।।४४।। शिवजी से तीन वर पा कर मुनि बड़े आनन्द को प्राप्त हुए और वेदमार्ग में प्रतिष्ठित हो कर शीघ्र ही क्षुव के स्थान में प्राप्त हुए।।४५।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार से वह ऋषि शंकरजी से अवध्यत्व और उग्रत्व पा कर फिर जाकर उस राजा के सिर पर चरण का प्रहार किया।।४६।। तब राजा ने दधीच की छाती में वज्र का प्रहार किया, यह विष्णुजी के गौरव के कारण राजा ने विशेष क्रोध किया।।४७।। उसके लगने से महात्मा दधीच की कुछ भी हानि नहीं हुई, यह सब शंकरजी का प्रभाव था, उससे विधाता का पुत्र बड़े विस्मय को प्राप्त हुआ।।४८।। महाप्रभाव वाले वज्र से उसे अदीनता प्राप्त होने और अवध्यत्व प्राप्त होने से महामुनि की दृढ़ता देख कर क्षुव बड़े विस्मय को प्राप्त हुआ।।४९।। उसने वन में जा कर हरि, मुकुन्द, इन्द्र के अनुज दीनों के पालक नारायण का आराधन किया कि, मृत्युंजय का सेवक दधीच मुझ से परास्त हो जाए।।५०।। भगवान् मधुसूदन उसके तप से सन्तुष्ट हो गये और गरुडध्वज ने अपना दिव्य दर्शन उनको दिखाया।।५१।। जनार्दन देव का दिव्य दर्शन देख कर सुन्दर वाणी से गरुडध्वज की स्तुति करने लगा।।५२।। देवता आदि के सहित उनका पूजन कर के, अजेय ईश्वर की स्तुति कर के, परम भक्ति से विज्ञापना की और भक्तिपूर्वक प्रेम से प्रणाम किया।।५३।। राजा बोला– हे भगवान्! कोई दधीच नामक ब्राह्मण है, वह धर्म का ज्ञाता, विनीतात्मा, पहले मेरा मित्र था।।५४।। वह शंकरजी के प्रभाव से अब सदा अवध्य है, उसने मृत्युंजय अनामय शंकरदेव की आराधना की है।।५५।। उसने सभा के बीच में अवज्ञा पूर्वक मेरे सिर पर बायें चरण का प्रहार किया, वह महातप से गर्वित है।।५६।। और गर्व से उसने मुझ से कहा कि, मैं कहीं किसी से नहीं डरता हूँ। हे हरि! वह मृत्युंजय का वर प्राप्त कर गर्व से महा अभिमानी हो रहा है।।५७।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार महात्मा दधीच का अवध्यत्व श्रवण कर के हरि ने उसे महेश्वरजी का अतुल प्रभाव स्मरण कराया।।५८।। इस प्रकार शंकरजी को स्मरण कर हरि ने क्षुव से कहा, हे राजन! ब्राह्मणों को कहीं भी किसी से भय नहीं है।।५९।। हे भूपते! विशेष कर शंकरजी के भक्तों को कहीं भी भय नहीं है, उनको दुःख देने से मुझे और देवताओं को शाप होता है।।६०।। हे राजन्!

दक्ष के यज्ञ में उस ऋषि के शाप से मेरा विनाश और पुनः उत्थान होना है ।।६१।। हे राजन्! इस कारण सब यज्ञों में वा कार्यों में साहस नहीं किया जाता, पर मैं दधीच के विजय लिये कोई यत्न करता हूँ ।।६२।। यह वचन सुन कर क्षुव ने कहा, ''ऐसा ही होगा'' और बड़े प्रेम से उस कामना के लिये उसने वहां स्थिति की ।।६३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

द्वितीये सतीखण्डे अष्टत्रिंशोऽध्यायः ।।३८।।

*****

उन्तालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– क्षुव के कार्य के निमित्त भक्तवत्सल भगवान् ब्राह्मण रूप धारण कर दधीच के आश्रम में गये ।।१।। जगद्गुरु ने दधीच को प्रणाम कर के कहा, उस समय छल से क्षुव के कार्य के निमित्त विष्णुजी उद्यत हुए ।।२।। विष्णुजी बोले– हे ब्रह्मर्षि दधीच! हे शंकरजी के पूजन में तत्पर! हे अविनाशी! मैं आपसे एक वर मांगता हूँ, सो आप मुझे दीजिये ।।३।। ब्रह्माजी बोले– जब देव देव ने ऋषिश्रेष्ठ से इस प्रकार की याचना की,तब क्षुव के कार्य करने वाले हरि से दधीच बोले ।।४।। दधीच बोले– हे विप्रर्षे! मैं आपके भाव को जान गया कि, आप क्षुव के कार्य के निमित्त आये हो, आप माया से ब्राह्मण रूप धारण कर के आये हो, साक्षात् हरि हो ।।५।। हे देवेश! हे जनार्दन! जो भूत, भविष्यत् वर्तमान है, यह तीन काल का ज्ञान शंकरजी की कृपा से मुझे सदा प्राप्त है ।।६।। मैं आपको हरि विष्णु जानता हूँ, आप यह रूप त्याग दीजिये, दुष्टबुद्धि क्षुव ने आपकी आराधना की है यह भी मैं जानता हूँ।।७।। हे हरे! मैं आपकी भक्तवत्सलता को भी जानता हूँ, छल त्याग कर शंकरजी को स्मरण कर के अपना पूर्वरूप धारण कीजिये ।।८।। शंकरजी के पूजन करते हुए मुझे यदि कहीं से भय हो, तो सत्य धारणपूर्वक आप यत्न से मुझसे कहें ।।९।। शंकरजी को स्मरण करते हुए मैं कभी असत्य नहीं बोलता हूँ और इस जगत् में देवता, दैत्य किसी से भी मैं नहीं डरता ।।१०।। विष्णुजी बोले– हे सुव्रत दधीच! सब ओर से आपका भय नष्ट हो गया है और शंकरजी के पूजन से आप सर्वज्ञ भी हो ।।११।। परन्तु हम आपको नमस्कार करते हैं, आप एक बार क्षुव राजा के पास जा कर यह कह दीजिये कि, मैं तुमसे डरता हूँ ।।१२।। ब्रह्माजी बोले– विष्णुजी के इस प्रकार के वचन सुन कर वह शैवश्रेष्ठ महामुनि दधीच ऋषि हँसते हुए निर्भय हो कर बोले ।।१३।। दधीच बोले– मैं कभी किसी से कहीं भी नहीं डरता, यह सब भगवान् पिनाकी, साक्षात् शंकरजी का प्रभाव है ।।१४।। ब्रह्माजी बोले–

ऋषि के यह वचन सुन कर विष्णुजी महाकुपित हुए और मुनि को भस्म करने की इच्छा से अपना चक्र उठाया ।।१५।। राजा के समीप में देखते हुए ही भगवान् का वह कठिन चक्र शंकरजी के प्रभाव से कुण्ठित हो गया ।।१६।। उस चक्र को कुण्ठित हुआ देख कर दधीच ने साक्षात् सद्–असद् व्यक्ति के कारण विष्णुजी से हँसते हुए कहा ।।१७।। दधीच ने कहा– विष्णुजी आपने तो बड़े प्रयत्न से यह दारुण सुदर्शनचक्र पाया था ।।१८।। इस कारण यह शिवजी का दिया हुआ चक्र मुझे बाधा नहीं दे सकता, तब हरि भगवान् ने क्रोध कर के उन पर सब अस्त्रों का प्रहार किया। दधीच ने कहा, यह क्या आप ब्रह्मास्त्र का प्रहार कीजिये ।।१९।। ब्रह्माजी बोले– हरि ने उसके यह वचन सुन कर उसे निर्वीर्य मनुष्य जान कर क्रोध कर के, उसके ऊपर सम्पूर्ण शस्त्र चलाये ।।२०।। और देवताओं ने भी उत्साह से विष्णुजी की सहायता की, एक ब्राह्मण से युद्ध करने को सबने अपनी बुद्धि चलाई ।।२१।। और सबने ही अपने–अपने अस्त्र–शस्त्र चलाये, इन्द्रादि हरि के पक्षपाती देवताओं ने दधीच पर प्रहार किया ।।२२।। दधीचजी ने शंकरजी को स्मरण करते हुए कुशा की मुट्ठी उठा कर सब देवताओं का प्रहार बचाने के लिये वज्रों की अस्थि की रचना की ।।२३।। शिवजी के प्रभाव से मुनि की वह कुशाओं की मुट्ठी कालाग्नि के समान दिव्य त्रिशूल हो गई ।।२४।। तब वह परमशैव दधीच का त्रिशूल सब ओर से जलता हुआ प्रलयाग्नि के समान आयुध और शिखा सहित देवताओं को जलाने की इच्छा करने लगा ।।२५।। नारायण, चन्द्र, इन्द्र जिन मुख्य देवताओं ने जो अनेक अस्त्र–शस्त्र छोड़े थे, उन सबने दधीच ऋषि के शूल को प्रणाम किया ।।२६।। तब पराक्रम नष्ट हो जाने से सर्व देवता भागने लगे, केवल माया जानने वालों में श्रेष्ठ हरि ही वहां स्थित रहे ।।२७।। तब पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुजी ने अपनी देह से अपने समान दिव्य लक्षणवाले सहस्रों गण प्रकट किये ।।२८।। हे नारदजी! शिवात्मा वाले अकेले दधीच ऋषि के संग वे सब वीर अस्त्र–शस्त्र ले कर युद्ध करने लगे ।।२९।। इस प्रकार विष्णुजी के गण बहुत काल तक संग्राम कर के थक गये, शैवश्रेष्ठ दधीच ने उन सबको भस्म कर दिया ।।३०।। तब हरि ने दधीच ऋषि को विस्मय प्रकट करने के निमित्त महामाया के आश्रित हो कर शीघ्र ही विश्वमूर्त्ति धारण की ।।३१।। ब्राह्मणश्रेष्ठ दधीच ने उस समय विष्णुजी के शरीर में देवता और सहस्रों जीवों का दर्शन किया ।।३२।। करोड़ों भूतगण, करोड़ों अण्डकटाह उस विश्वमूर्त्ति के शरीर में दिखाई दिये ।।३३।। दधीच ऋषि ने यह सब देख कर जगत्पति, जगत् के स्तुति योग्य अज अविनाशी विष्णुजी से कहा ।।३४।। दधीच बोले– हे महाबाहो! आप माया का त्याग कीजिये, विचार से यह सब प्रतिभास है। हे माधव! मैं सहस्रों कठिनाई से जानने योग्य पदार्थों को जानता हूँ।।३५।। मैं आपको दिव्य दृष्टि देता हूँ, आप सावधान हो कर मुझ में सब जगत्, ब्रह्मा और रुद्र के सहित देखिये ।।३६।। ब्रह्माजी बोले– यह

कह कर ऋषि ने अपने शरीर में शिवजी के तेज से पूर्ण देह हो कर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड दिखाया।।३७।। और शैवश्रेष्ठ दधीचजी शिवजी को स्मरण करते, मन में हँसते, निर्भय श्रेष्ठबुद्धि सहित विष्णुजी को प्रज्ज्वलित करने लगे।।३८।। दधीच ने कहा– इस माया वा मन्त्रशक्ति से क्या है ? आप श्रेष्ठ कामना कर के यत्न के साथ युद्ध कीजिये।।३९।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार उन मुनि के निर्भय वचन सुन कर शिवजी के तेजरूप विष्णुजी ने मुनि पर बड़ा कोप किया।।४०।। देवनारायण के साथ महाप्रतापी दधीच मुनि को युद्ध की कामना से स्थित देख कर सब भागने लगे।।४१।। इसी समय वहां पर क्षुव के संग में मैं आया और निश्शेष्ट देवता तथा हरि को उस कार्य से निवारण किया।।४२।। और मैंने कहा, यह ब्राह्मण नहीं जीता गया, तब विष्णुजी ने मुनिराज के निकट जा कर प्रणाम किया।।४३।। और क्षुव भी महादीन हो कर मुनि के निकट जा कर व्याकुल हो प्रणाम कर के दधीच की प्रार्थना करने लगा।।४४।। क्षुव बोला– हे शिवजी के भक्तों में शिरमौर मुनिश्रेष्ठ! आप प्रसन्न हो, हे परमेश! प्रसन्न हो, दुर्जन आपको जानने में समर्थ नहीं हो सकते।।४५।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार राजा और सब देवताओं के वचन सुन कर तपस्वी दधीचजी ने उन सबके ऊपर कृपा की।।४६।। पर विष्णुजी आदि को देख कर मुनि को बड़ा क्रोध हुआ, हृदय में शंकरजी को स्मरण कर के ऋषि ने विष्णुजी और देवताओं को शाप दिया।।४७।। दधीच बोले– इन्द्रादि देवता और मुनीश्वरों के सहित विष्णुजी अपने गणों के सहित रुद्र की कोपाग्नि से ध्वस्त हो जायेंगे।।४८।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार देवता आदि को शाप दे कर, क्षुव को देख कर मुनि ने कहा, हे राजेन्द्र! आपने जाना कि, ब्राह्मण देवता और राजा से भी पूज्य हैं।।४९।। हे राजेन्द्र! ब्राह्मण ही बली और समर्थ होते हैं, यह स्पष्ट कह कर ऋषि ने अपने आश्रम में प्रवेश किया।।५०।। दधीच को प्रणाम कर के क्षुव भी अपने आश्रम में गया और विष्णुजी देवताओं के साथ अपने लोक को गये।।५१।। वह स्थान उस समय से स्थानेश्वर (थानेश्वर) तीर्थ हुआ, यहां शंकरजी का दर्शन कर के मनुष्य शिवजी की सायुज्य मुक्ति को प्राप्त होता है।।५२।। यह आपसे क्षुव और दधीच का विवाद संक्षेपपूर्वक कहा, इस प्रकार राजा के कारण से उनको शाप मिला।।५३।। जो इस क्षुव–दधीच के वाद को नित्य कीर्तन करते हैं, वह अकालमृत्यु को जीत कर अन्त में ब्रह्मलोक को जाते हैं।।५४।। जो इसे कीर्तन कर के युद्ध में प्रवेश करते हैं, उनको मृत्यु का भय नहीं होता और वह विजयी होते हैं।।५५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

द्वितीये सतीखण्डे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः।।३९।।

चालीसवाँ अध्याय

नारदजी बोले– हे महाभाग ब्रह्माजी! हे शिवतत्त्व के प्रवृत्त करने वाले! आपने यह महा अद्भुत, परम मनोहर, शिवजी की लीला मुझे सुनाई ।।१।। जिस समय वीरभद्र ने दक्ष का यज्ञ विनाश किया और वह कैलास को चला गया, उस समय क्या हुआ?।।२।। ब्रह्माजी बोले– उस समय सब देवता और मुनि पराजित हो कर रुद्र की सेना से छिन्न–भिन्न अंग हो कर मेरे लोक को गये ।।३।। मुझ ब्रह्माजी को नमस्कार कर के और मेरी बड़ी स्तुति कर के अपना सब क्लेश विशेष कर के वर्णन किया ।।४।। यह सब सुन कर मैं दक्ष की मृत्यु से बड़ा शोकित हुआ और दुःखी चित्त से व्याकुल हो कर सोचने लगा ।।५।। इस समय देवताओं के सुख के निमित्त शीघ्रता से क्या करूं? जिससे यह दक्ष जिवित हो जाए और यज्ञ पूर्ण हो जाए?।।६।। हे मुने! ऐसा बहुत विचार करने से भी मुझे शान्ति प्राप्त न हुई, उस समय भक्ति से विष्णुजी का स्मरण करने से यथोचित ज्ञान पाया ।।७।। तब देवता और मुनियों को साथ ले कर मैं विष्णुलोक को गया और बड़ी स्तुति कर के मैंने उनसे सब दुःख निवेदन किया ।।८।। जिस प्रकार से उस देवयज्ञ करने वाले का यज्ञ पूर्ण हो जाए, देवता, मुनि सब सुखी हो जाएं, आप वैसा करें ।।९।। हे देव देव रमानाथ! हे देवताओं को सुख देने वाले विष्णुजी! हम देवता, मुनियों के सहित आपकी शरण में प्राप्त हुए हैं ।।१०।। ब्रह्माजी बोले– विष्णुजी इस प्रकार से मेरे वचन सुन कर दीन हो कर शिवजी को स्मरण कर के शिवात्मा हो कर बोले ।।११।। विष्णुजी बोले– यदि तेजस्वी का अपराध किया जाए, तो फिर नम्रता उनके लिये भूषण नहीं, हां! अपराधियों पर क्षमा ही बड़े पुरुषों का भूषण है ।।१२।। परमेश्वर शिवजी का सब देवताओं ने अपराध किया है, जो कि इन सब ने उन शंकरजी को यज्ञभाग नहीं दिया ।।१३।। आप सब देवता शुद्धचित्त से भगवान् शंकरजी को प्रसन्न कर के उनके चरणकमल पकड़ो, वे प्रसन्न हो जायेंगे ।।१४।। जिन शंकरजी के कोप करने पर सब जगत् नष्ट हो जाता है। लोकपाल, यक्ष सब उन्हीं के शासन से जीवित होते हैं ।।१५।। उन देव को, जो इस समय प्रिया से विहीन हैं, दक्ष ने बड़ी दुरुक्तियों से बेधित किया है, उनसे वह अपराध क्षमा कराइये ।।१६।। हे विधाता! यही उनकी शान्ति का परम उपाय है, मैं इसी से शम्भुजी का सन्तोष मानता हूँ, यह मैंने सत्य ही कहा है ।।१७।। मैं, आप तथा दूसरे देवता और मुनि कोई भी उनके बलवीर्य का पराक्रम नहीं जान सकते ।।१८।। तथापि स्वाधीन परम परमात्मा से विरोध कर के कौन उपाय कर सकता है?।।१९।। हे ब्रह्माजी! सब के साथ मैं भी

कैलास पर चलता हूँ और शिवजी से अपना अपराध क्षमा करावें ।।२०।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार से मुझे और सब देवताओं को समझा कर विष्णुजी ने देवताओं सहित कैलास पर जाने की इच्छा की ।।२१।। उस समय भगवान् विष्णुजी देवता, मुनि और प्रजापतियों के सहित शिवजी के कैलास पर्वत पर गये ।।२२।। जो प्रभु का नित्यप्रिय स्थान है। किन्नरादि से सेवित है, देवता, अप्सरा, योगसिद्ध जनों से महा उत्पत्ति को प्राप्त है ।।२३।। चारों ओर अनेक मणिमय शृङ्गों से व्याप्त है, अनेक धातुओं से विचित्र, अनेक द्रुमलताओं से सम्पन्न है ।।२४।। अनेक मृगगणों से व्याप्त, अनेक पक्षियों से संयुक्त, जलों के टपकने वाले अनेक झरनों से तथा अमर सिद्धों को योषाओं से व्याप्त ।।२५।। पर्वतों की अनेक कन्दराओं में अनेक प्यारों से विहार करती हुई जो अनेक प्रकार के लता-वृक्षों से सम्पन्न और चान्दी के समान कान्तिमान् ।।२६।। व्याघ्र आदि महाजीवों से सेवित, जिन जीवों ने क्रूरता त्याग दी है, जो सब शोभाओं से युक्त महादिव्य तथा महाविस्मय करने वाला है ।।२७।। गङ्गा सती से सब ओर से वेष्ठित पुण्यरूप उदय वाला है, सबको पवित्र करने वाला तथा विष्णुपदी से निर्मल है ।।२८।। इस प्रकार कैलास नामक शिवजी के प्रिय पर्वत को देख कर विष्णुजी आदि देवता, मुनिश्वर सब विस्मय को प्राप्त हो गये ।।२९।। उसी के समीप उन्होंने परम मनोहर अलकापुरी देखी, जो रुद्र के मित्र कुबेर की महादिव्य अलकापुरी है ।।३०।। उसके समीप में उन्होंने सुगन्धित बन देखा, जो सब वृक्षों से युक्त दिव्य, अनेक नादों से अद्‌भुत था ।।३१।। उसके बाहर दो परम दिव्य नदियां बहती है, नन्दा, अलकनन्दा नदी दर्शन से पाप हरने वाली है ।।३२।। देवस्त्रियां अपने लोक से आ कर उसका जलपान करती हैं और रति से कर्शित हो कर पुरुषों के साथ क्रीड़ा करती हैं ।।३३।। यक्षेश्वर की पुरी और सुगन्धित बन को छोड़ कर वे देवता आगे बढ़े और वहां उन्होंने शिवजी का वट देखा ।।३४।। जिसके चारों ओर अचल छाया थी, एक चरण से प्रकट सौ योजन का जिसका घेरा था, पक्षियों के घोसलों से रहित, ताप वर्जित ।।३५।। पुण्यात्माओं के देखने योग्य बड़ा मनोहर और श्रेष्ठ, साक्षात् शिवजी का योगस्थल, दिव्य योगियों से सेवित, परम मनोहर ।।३६।। मुमुक्षुओं को शरण देने वाले उस महा योगमय वृक्ष के नीचे बैठे हुए शंकरजी को सब देवताओं ने देखा ।।३७।। शिवभक्ति में तत्पर विधाता के सनकादि पुत्रों से सेवित और शान्त विग्रह वाले महात्माओं से आनन्दपूर्वक उपासित ।।३८।। इसी प्रकार गुह्यक राक्षसजनों के स्वामी, अपने सखा कुबेर और विशेष कर अपने ज्ञातिगणों से सेवित ।।३९।। तब से भक्तों की इच्छानुसार मनोहर सद्रूप धारण किये, वत्सलता से विश्व के सुहृद, भस्मादि से विराजमान ।।४०।। हे नारदजी! उत्तम ज्ञान पूछते हुए आपसे कुछ कह रहे कुशासन पर बैठे उनका सब कोई उपदेश सुन रहे थे ।।४१।। दक्षिण जंघा पर वामचरण धारण किये, भुजा और पहुँची में रुद्राक्ष माला

धारण किये, तर्कमुद्रा से स्थित ।।४२।। विष्णुजी आदि देवता इस प्रकार शिवजी को देख कर, हाथ जोड़, नम्र हो कर स्तुति करने लगे ।।४३।। जब सत्पुरुषों की गति रुद्र ने मुझे देखा, तो उन प्रभु ने उठ कर शिर से अभिवादन किया ।।४४।। जब विष्णुजी आदि सब देवताओं ने शिवजी के चरणों को प्रणाम किया, तब लोकों के सद्गति ने विष्णुजी और कश्यपजी को प्रणाम किया ।।४५।। सुरसिद्ध गणाधिश और महर्षियों से नमस्कृत उन्होंने आदरपूर्वक विष्णुजी और देवताओं से सम्भाषण किया ।।४६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

द्वितीये सतीखण्डे चत्वारिंशोऽध्यायः ।।४०।।

*****

इकतालीसवाँ अध्याय

विष्णुजी आदि देवता बोले- हे देव देव महादेव! हे लौकिकाचार करने वाले! हे महाप्रभो! हम आपकी कृपा से आपको ब्रह्म, ईश्वर, शिव जानते हैं ।।१।। हे तात! परमाया से आप हमें क्यों मोहित करते हो? हे महेश्वर! वह आपकी मोहिनी माया प्राणियों को सदा दुर्ज्ञेय है ।।२।। जगत् के योनिबीज प्रकृतिपुरुष से भी आप परे हैं। मन, वचन, इन्द्रियों से परे आप मन, वाणी से परे हो ।।३।। आप ही विश्व को उत्पन्न कर के फिर पालन करते हो, अपनी स्वरूप वाली शिवभक्ति में आप ऊर्णपट के समान क्रीड़ा करते हो ।।४।। हे ईशान! आपने ही कृपा कर के यज्ञ की सृष्टि की है, हे विभो! वेदत्रयी की रक्षा के लिये यह आपने दक्षिणसूत्र से किया है ।।५।। जो आपने मर्यादा बांध दी है, उन पर वेदमार्ग में चतुर ब्राह्मण श्रद्धा करते हैं और वे शुद्ध व्रतधारी उनके अनुसार चलते हैं ।।६।। हे विभो! अपने और पराये सुख के निमित्त आप मङ्गल करते हो, हितकारी को मङ्गल और अहितकारी को अमङ्गल मिश्रित प्रदान करते हो ।।७।। सदा सब कर्मों के फल देने वाले आप ही हो, वेद कहते हैं और सब कहते हैं कि सब यशों के आप पति हैं ।।८।। पृथक् बुद्धि के बल कर्म की दृष्टि वाले दुराशय मर्म से पीड़ित होते हैं, वे मूढ़ दुरुक्तियों से दूसरों को पीड़ित करते हैं ।।९।। हे विभो! प्रारब्ध के कारण, आप उनका वध करते हो। हे भगवन्! हे परमेशान! अब देवताओं पर आप कृपा करें ।।१०।। रुद्र, शान्त, ब्रह्म, परमात्मा, कपर्दा, महेश, ज्योति स्वरूप, आपको प्रणाम हैं ।।११।। आप प्रजापतियों के भी स्रष्टा, आप ही धाता, प्रपितामह, त्रिगुणात्मा, निर्गुण प्रकृति पुरुष से परे हो ।।१२।।

नीलकण्ठ, विधाता, परमात्मा, संसार, संसार के बीज, जगत् के आनन्द के कारण, आपको प्रणाम है।।१३।। ॐ कार, वषट्कार, सब आरम्भ करने वाले हन्तकार, स्वधाकार, सदा हव्य-कव्य अन्न के भोक्ता आप हो।।१४।। हे धर्मपरायण! आपने यज्ञ का भंग किस कारण से किया? हे विभो! आप ब्रह्मण्य महादेव हो, आपने यज्ञ को कैसे नष्ट किया?।।१५।। हे प्रभो! आप तो ब्राह्मण, गौ, शरणागतों के रक्षक, धर्मों के पालक हो, सब प्राणियों की अनन्तगति आप ही हो।।१६।। हे रुद्र! हे भास्कर! हे अमित तेजस्वी! आपको प्रणाम है। भवदेव रसाम्बुमय, आपको प्रणाम है।।१७।। सर्व पृथ्वी रूप, सदा सुरभी रूप, आपको नमस्कार है, रुद्र अग्नि स्वरूप महातेजस्वी, आपको नमस्कार है।।१८।। ईश, वायु स्वरूप, स्पर्श रूप पशुपति, यजमान रूप, विधाता रूप, आपको नमस्कार है।।१९।। भीम, व्योम रूप शब्दमात्रा महादेव चन्द्र और प्रवृत्ति रूप आपको नमस्कार है।।२०।। उस सूर्य रूप कर्मयोगी, काल के काल, आपको नमस्कार है। हे रुद्र! आपके क्रोध को नमस्कार है।।२१।। कल्याण रूप, भयंकर कर्मकारी शंकर, शिव, उग्र, सब प्राणियों के नियन्ता, हमारे निमित्त मङ्गल करते हो।।२२।। सुख करने वाले विश्व रूप, हमारे कष्ट दूर करने वाले अम्बिकापति, उमापति आपको नमस्कार है।।२३।। जगत् के संहारकर्ता, सर्व रूप सर्व शरीर में व्यापक परात्मा, सत्-असत् व्यक्ति से हीन, महान् कारण आपको प्रणाम है।।२४।। लोक में अनेक प्रकार से होने वाले, आपको प्रणाम है। नील, नीलरुद्र, कद्रुद्र, प्रचेता रूप आपको नमस्कार है।।२५।। भक्तों पर मनोरथों की वर्षा करने वाले दिव्यगुण शिपिविष्ट आपको नमस्कार है, महानुभाव देवशत्रुओं को मारने वाले, आपको प्रणाम है।।२६।। तारकमन्त्र रूप सुतार तरुण तेजस्वी हरिकेश देव महेश, आपको नमस्कार है।।२७।। आप देवताओं के कल्याणकारक विभु परमात्मा हो, परम कालकण्ठ रूप, आपको नमस्कार है।।२८।। सुवर्ण रूप परेश, सुवर्णमय शरीर, भीभ, भीम रूप, भीमकार्य में तत्पर, आपको प्रणाम है।।२९।। शरीर में भस्म लगाये, रुद्राक्ष के आभूषण धारण करने वाले, ह्रस्व दीर्घ और वामन रूप धारण करने वाले, आपको प्रणाम है।।३०।। दूरस्थित को भी मारने वाले देव, आगे चलते को वध करने वाले, धनुष, शूल, गदा, हल को धारण करने वाले, आपको प्रणाम है।।३१।। अनेक आयुध धारण करने वाले, दैत्य दानवों का नाश करने वाले, सद्य तत्काल रूपधारी सद्योजात, आपको प्रणाम है।।३२।। वाम (सुन्दर) वाम रूप, वामनेत्र, अधोर परेश, विराट रूप, आपको प्रणाम है।।३३।। तत्पुरुषनाथ, पुराण पुरुष, पुरुषार्थ के देने वाले, व्रती, परमेष्ठी, आपको नमस्कार है।।३४।। ईशान और ईश्वर रूप, आपको नमस्कार है। ब्रह्म, ब्रह्म रूप, साक्षात्परमात्मा रूप आपको नमस्कार है।।३५।। उग्र रूप, सब दुष्टों के नियन्ता,

हमारा कल्याण करने वाले, कालकूट पान करने वाले, देवताओं को पालन करने वाले।।३६।। वीर वीरभद्र, वीरों के रक्षक, शूलधारी महादेव, महान् पशुओं के पति, आपको प्रणाम है।।३७।। वीरात्मा, श्रेष्ठ विद्या वाले, श्रीकण्ठ, पिनाक धनुषधारी, अनन्त, सूक्ष्म रूप, मृत्यु, क्रोध रूप, आपको नमस्कार है।।३८।। परे, परमेश्वर, परे से परे, परात्पर, सर्वव्यापक विश्वमूर्ति, आपको नमस्कार है।।३९।। विष्णुजी के कुटुम्ब रूप वा विष्णुजी को कलत्र मानने वाले, विष्णुक्षेत्र भानु रूप भैरव, शरण देने वाले त्रिलोचन, विहारशील, आपको प्रणाम है।।४०।। मृत्यु को जीतने वाले, शोक रूप सत–रज–तम, त्रिगुणात्मक गुणों के आत्मा, चन्द्र, सूर्य और अग्नि नेत्र वाले सबके कारण और मर्यादा रूप, आपको प्रणाम है।।४१।। आपने ही अपने तेज से सब जगत् व्याप्त कर रखा है, आप परब्रह्म, निर्विकारी, चिदानन्द, प्रकाशवान् हो।।४२।। हे महेश्वर! ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, चन्द्र आदि सब देवता और सब मुनीश्वर आपसे प्रकट हैं।।४३।। जो कि, आप अपना आठ प्रकार का शरीर धारण कर के सृष्टि का पालन करते हो, आप करुणामय आद्य अष्टमूर्ति ईश्वर हो।।४४।। आपके भय से ही पवन चलती है, आपके भय से अग्नि तपती है, आपके भय से सूर्य तपता है और सब ओर से मृत्यु धावमान होती है।।४५।। हे दयासागर महेशान परमेश्वर! आप प्रसन्न हो। आप सदा हमारी रक्षा करें; कारण कि हम नष्ट और विचेतन हैं।।४६।। हे करुणानिधान करुणासागर! आप सदा हमारी रक्षा करें, हे शंकर! अनेक आपत्तियों से आपको हमारी रक्षा करनी चाहिये।।४७।। हे नाथ! कृपा कर के शीघ्र ही यज्ञ का उद्धार कीजिये, हे दुर्गेश! प्रजापति दक्ष के यज्ञ की समाप्ति नहीं है।।४८।। भगदेवता को आँखें प्राप्त हो जाए, यजमान जी जाए, पूषा के दांत फिर प्राप्त हो जाए, भृगु की डाढ़ी पूर्ववत् हो जाए।।४९।। आपके अनुग्रह से इन सब देवताओं को आरोग्य हो और वीरभद्र के आयुधों से भग्नगात्र हुए इनके शरीर ठीक हो जाए।।५०।। हे नाथ! इस अवशिष्ट अध्वरकर्म में आपको भाग प्राप्त होगा। हे रुद्र! यज्ञ में आपको भाग अवश्य मिलेगा इसमें सन्देह नहीं।।५१।। इस प्रकार कह कर पृथ्वी पर दण्डवत् करते हुए प्रजापति और विष्णुजी ने अपराध क्षमा कराया।।५२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

द्वितीये सतीखण्डे एकचत्वारिंशोऽध्यायः।।४१।।

*****

बयालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले- जब मुझ ब्रह्मा, विष्णुजी, प्रजापति, मुनि, सिद्धों ने इस प्रकार से शंकरजी की प्रार्थना की, तब परमेश्वर प्रसन्न हुए।।१।। करुणानिधि ने हँस कर देवता आदि को आश्वासन (धीरज) दिया और उन पर अनुग्रह करते हुए शिवजी बोले।।२।। श्रीमहादेव बोले- आप दोनों देवता परम सावधानी के साथ मेरे वचन सुनिये, हे तात! आपके क्रोध को सहता हुआ मैं यथार्थ ही कहता हूँ।।३।। मेरी माया में पड़े हुए इन बालकों का मैं कुछ भी अपराध चिन्तन नहीं करता, परन्तु सावधानी के निमित्त मैंने दण्ड दिया था।।४।। मैंने दक्ष के यज्ञ का भंग नहीं किया, परन्तु जो दूसरों से विरोध करता है, उसके लिये वैसा होता है।।५।। इससे दूसरों को क्लेश देने का कर्म किसी प्रकार भी न करना चाहिये, जो दूसरों से द्वेष करता है, उसके लिये स्वयं वही बात उपस्थित होती है।।६।। दक्ष ही यज्ञ का सिर है, इस लिये उसका सिर बकरे का होगा, भग मित्र के नेत्रों से देखने लगेगा और देवताओं के अंग ठीक हो कर यज्ञ कार्य करेंगे।।७।। पूषा के दांत हो जायेंगे, इस प्रकार यह मन की पुष्टि करेंगे, यह सब अंगों से पुष्ट हो कर यजन का कार्य करेंगे, यह मैंने सत्य कहा है।।८।। भृगु जो मेरे विरोधी हैं, उनके बकरे की डाढ़ी लगा दी जायेगी, जिन्होंने वीरभद्र से छेदन-भेदन प्राप्त किया है, वे सब देवता सब अंगों से सम्पन्न हो जायेंगे।।९।। अश्विनीकुमारों की बाहु और पूषा के हाथों से सब कार्य होगा और भी सब अध्वर्यु प्रसन्न हो जायेंगे, यह सब मैंने आपके प्रेम से किया।।१०।। ब्रह्माजी बोले- यह कह कर दयालु परमेश्वर मौन हुए, चराचर के पति देव स्वयं विराजमान होने वाले ने सब वेदों के अनुसार ही किया।।११।। तब वे सब देवता शंकरजी के भाषण को सुन कर, सन्तुष्ट हो कर धन्य-धन्य कहने लगे।।१२।। तब मैंने और विष्णुजी आदि सब देवताओं ने शंकरजी को आमन्त्रित किया और वह परम प्रसन्नता से उस देवयजन स्थान में गये।।१३।। इस प्रकार उन विष्णुजी आदि देवताओं की प्रार्थना से शिवजी कनखल में प्रजापति के यज्ञस्थल में गये।।१४।। और जो कुछ वीरभद्र ने किया था वह रुद्र ने वहां जा कर सब देखा, यज्ञ का विध्वंस और देवर्षियों का वहां विशेष अनिष्ट हुआ था।।१५।। स्वाहा, स्वधा, पूषा, तुष्टि, धृति, सरस्वती और भी सब ऋषि, पितर, अग्नि।।१६।। और भी जो अनेक वह गन्धर्व यह राक्षस थे, कोई भग्न, कोई लुंचित और कोई मृतक हुए पड़े थे।।१७।। इस प्रकार यज्ञ की दशा देख कर गणाधिप महाबली वीरभद्र को

बुला कर शिवजी हँसते हुए बोले ।।१८।। हे महाबाहो वीरभद्र! आपने यह क्या कर्म किया, हे तात! आपने महान् दण्ड देवता, ऋषियों में धारण किया ।।१९।। तुम शीघ्र ही दक्ष को लाओ, जिसने यह किया, हे तात! यह यज्ञ बड़ा विलक्षण था, जिसका फल ऐसा हुआ ।।२०।। ब्रह्माजी बोले– जब शिवजी ने ऐसा कहा तब वीरभद्र ने बहुत शीघ्रता से दक्ष का कबन्ध ला कर शिवजी के आगे धर दिया ।।२१।। लोकशंकर शंकरजी ने उसे शिरहीन देख कर, हे मुनिसत्तम! हँसते हुए वीरभद्र से कहा कि, इसका शिर कहां है, तब वीरभद्र ने कहा, हे प्रभु! उसे तो अग्नि में हवन कर दिया ।।२२-२३।। तब शंकरजी ने वीरभद्र के यह वचन सुन कर देवताओं को प्रेम से अपने पहले वाक्य का स्मरण कराया ।।२४।। जो भगवान् ने कहा था, उस सबको यथायोग्य सम्पादन करने को कहा, तब मैं और विष्णुजी आदि सब देवता बहुत ही शीघ्र भृगु आदि के समीप गये ।।२५।। तब भगवान् शंकरजी ने सवन के पशु का शिर ले कर प्रजापति दक्ष के देह पर जोड़ दिया ।।२६।। जब वह शिर जोड़ा गया और शिवजी ने कृपादृष्टि से देखा, तब प्रजापति तत्काल ही प्राण युक्त हो कर शीघ्र ही सोते हुए के समान उठ बैठा ।।२७।। उठते ही अपने आगे करुणामय शंकरजी को देखा, तब परम प्रेम से प्रसन्न हो गया ।।२८।। पहले तो महादेवजी से बड़ा द्वेष करता था, इससे उसकी आत्मा पापी थी, अब शंकरजी के दर्शन से शरद्चन्द्र के समान निर्मल हो गया ।।२९।। शंकरजी की स्तुति करने की इच्छा की, पर अनुराग से स्तुति न कर सका और अपनी कन्या को मृतक जान कर बड़ा व्याकुल हुआ ।।३०।। फिर दक्ष प्रसन्न हो कर, लज्जा से संयुक्त हो कर, नम्र हो कर, लोकशंकर की प्रार्थना करने लगा ।।३१।। दक्ष कहने लगा, देवता वरेण्य वरदायक महेश्वर, ज्ञान के निधि, सनातन देवताओं के अधिपति, ईश्वर, हर, सदा सुख देने वाले जगत् के एक बन्धु, शंकरजी को प्रणाम करता हूँ ।।३२।। विश्व के ईश्वर, विश्व रूप पुरातन ब्रह्म, निज रूप आत्म रूप शर्व, भवभाव (शिवरूपता) के देने वाले, परे से परे शंकरजी को प्रणाम करता हूँ ।।३३।। हे देवदेव महादेव! आप कृपा कीजिये, आपको नमस्कार करता हूँ, हे कृपानिधे शंकर! आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये ।।३४।। हे शंकर! दण्ड के बहाने से आपने अनुग्रह किया, मैं बड़ा खल मूढ़ बुद्धि हूँ, आपका तत्त्व नहीं जाना ।।३५।। आपको मैंने अब जाना कि, आप सबके ऊपर हैं, आप विष्णुजी, ब्रह्माजी आदि सब देवताओं से सेव्य, वेदों से वेद्य महेश्वर हो ।।३६।। आप साधुओं को कल्पवृक्ष, सदा दुष्टों को दण्ड देने वाले स्वतन्त्र परमात्मा और भक्तों को सदा अभीष्ट वर देने वाले हो ।।३७।। आपने ही पहले विद्या, तप, व्रत धारण करने वाले ब्राह्मणों को उत्पन्न किया था, हे परमेश्वर! आत्मतत्त्व में लाने के लिये आपने उनको मुख से सृजन किया ।।३८।। आप ही सब

आपत्तियों से पालन करते हो, जैसे गोपाल गायों की रक्षा करता है और दुष्टों के ऊपर दण्ड धारण कर के आप मर्यादा के पालन करने वाले हैं।।३९।। मैंने परमेश्वर को बहुत दुरुक्ति कही थी, आपने दीन आशा वाले देवताओं के और मेरे ऊपर अनुग्रह किया।।४०।। सो वह आप भगवान् शम्भु दीनबन्धु परात्पर हो, आप भक्तवत्सल अपने ही कर्तव्य से आप प्रसन्न होते हो।।४१।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार लोक के कल्याण करने वाले महाप्रभु शंकरजी की स्तुति करके नम्र हो कर प्रजापति मौन हुआ।।४२।। तब प्रसन्नात्मा विष्णुजी हाथ जोड़ कर गद्गद्वाणी से प्रणाम कर के शंकरजी की स्तुति करने लगे।।४३।। विष्णुजी बोले- हे महादेव! हे महेशान! हे लोकों पर अनुग्रह करने वाले परब्रह्म परमात्मा, दीनबन्धु, दया के सागर।।४४।। सर्वव्यापी, अपनी इच्छा वर्तने वाले, वेदों से जानने योग्य यश वाले, आपने हमारे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया, हमारा उद्धार कर दिया।।४५।। यह दक्ष मेरा भक्त है, जो खल आपकी निन्दा कर चुका है, हे महेश! सो आप क्षमा कीजिये, कारण कि आप निर्विकार हो।।४६।। हे शंकर! मूढ़ता से मैंने आपका अपराध किया है, जो मैंने पक्षपात से आपके गण वीरभद्र के साथ युद्ध किया।।४७।। आप परब्रह्म, मेरे स्वामी दीनबन्धु दयासागर हो, हे सदाशिव! मैं आपका दास हूँ, आपको सदा हमारा पालन करना चाहिये, कारण कि आप हम सब के पिता हो।।४८।। ब्रह्माजी बोले- हे देव देव महादेव, करुणासागर, हे प्रभो! आप स्वतन्त्र परमात्मा परमेश्वर अद्वैत अविनाशी हो।।४९।। हे ईश्वर! हे देव! आपने मेरे पुत्र पर अनुग्रह किया, आप अपने अपमान को न गिन कर दक्ष के यज्ञ का उद्धार कीजिये।।५०।। हे देवेश! प्रसन्न हो कर सबका शाप दूर कीजिये, ज्ञान रूप आप ही सबके प्रेरक और निवारक हो।।५१।। हे महामुने! इस प्रकार से नम्र हो कर, शिर झुका कर, हाथ जोड़ कर विष्णुजी ने परमात्मा शंकरजी की स्तुति की।।५२।। तब इन्द्रादिक सब देवता और लोकपाल सावधान चित्त से प्रसन्न मुख वाले शंकरदेव की स्तुति करने लगे।।५३।। इसी प्रकार प्रसन्न मन से अन्य भी सब देवता, सिद्ध, ऋषि, प्रजापति शंकरजी की स्तुति करने लगे।।५४।। इसी प्रकार उपदेवता, नाग, सदस्य, ब्राह्मण परम भक्ति से प्रणाम करके पृथक्-पृथक् स्तुति करने लगे।।५५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

द्वितीये सतीखण्डे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः।।४२।।

*****

तैतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– जब इस प्रकार से मैंने, विष्णुजी तथा सुरर्षियों ने तथा दूसरे देवताओं ने स्तुति की तब महादेवजी प्रसन्न हुए।।१।। तब शिवजी ने कृपादृष्टि से सर्व देवता, ऋषि, मुनि और ब्रह्मा, विष्णुजी को देख कर दक्ष से इस प्रकार कहा।।२।। महादेवजी बोले– हे प्रजापति दक्ष! मैं प्रसन्न हूँ, जो कहता हूँ सो सुनो, यद्यपि मैं इसका ईश्वर स्वतन्त्र हूँ, तथापि भक्तों के अधीन हूँ।।३।। पुण्यात्मजन चार प्रकार के हो कर सदा मेरा भजन करते हैं, हे दक्ष प्रजापति! उन आर्त जिज्ञासु कामना वाले और ज्ञानियों में उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं।।४।। आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी इनमें पहले तीन सामान्य हैं और चौथा ज्ञानी विशेष है।।५।। उनमें ज्ञानी मुझे विशेष प्रिय है, कारण कि वह मेरा ही रूप है, उससे मुझे कोई विशेष प्रिय नहीं है, मैं सत्य–सत्य कहता हूँ।।६।। मैं वेदान्त और श्रुतियों के पारगामियों में ज्ञानगम्य और आत्मा का जानने वाला हूँ, बिना ज्ञान के मुझे प्राप्त करने को अल्पबुद्धि यत्न करते हैं।।७।। वेद, यज्ञ, दान, तप, यज्ञों से कर्मपरायण मूढ़ नर मुझे यथार्थ जानने को समर्थ नहीं होते।।८।। तू केवल कर्म कर के ही संसार से तरने की इच्छा करता है, इस कारण मैंने रुष्ट हो कर तेरा यज्ञ विध्वंस किया।।९।। हे दक्ष! अब से ले कर मुझे परमेश्वर मानता हुआ, बुद्धि से ज्ञान में तत्पर हो कर सावधानी से कर्म कर।।१०।। हे प्रजापते! और भी सद्बुद्धि से मेरे वचन सुन, मैं इस समय सगुण हो कर धर्म के कारण गुह्य वचन तुझसे कहता हूँ।।११।। मैं, ब्रह्माजी, विष्णुजी यह त्रिदेव जगत् के कारण हैं, परन्तु मैं ही आत्मेश्वर सब जगत् को विशेष रूप से देखने वाला हूँ।।१२।। हे मुने! मैं गुणमयी अपनी माया में प्रवेश कर के जगत् के उत्पत्ति, पालन और संहार करता हुआ क्रिया के अनुसार नाम धारण करता हूँ, वास्तव में मैं एक ही हूँ।।१३।। उस पर ब्रह्म आत्म स्वरूप अद्वितीय केवल मैं हूँ, अज्ञानीजन भेददृष्टि से प्राणी, ब्रह्म, ईश्वर पृथक्–पृथक् देखते हैं।।१४।। जैसे सिर, हाथ, पैर अपने अंगादि में मनुष्य अन्य मति नहीं करता, ऐसा मेरा परायण ज्ञानी देवादि में भिन्नमति नहीं करता।।१५।। हे दक्ष! सर्व भूतात्माओं को जो एक भाव से नहीं देखता, जो तीनों देवताओं में भेद नहीं देखता, वही शान्ति को प्राप्त होता है।।१६।। जो नराधम तीनों देवताओं में भेदबुद्धि करता है, वह चन्द्रसूर्य की स्थिति पर्यन्त नरक में जाता है।।१७।। बुद्धिमान् मुझ में मन लगा कर सर्व देवताओं को पूजे तो उसे ज्ञान प्राप्त होता है, जिससे निरन्तर की मुक्ति मिलती है।।१८।। विधाता की भक्ति के बिना विष्णुजी की और विष्णुजी की भक्ति के बिना मेरी भक्ति किसी

प्रकार नहीं मिलती।।१९।। सबके परमेश्वर स्वामी शंकरजी ऐसा कह कर सब के सुनते हुए फिर भी कहने लगे।।२०।। जो हरिभक्त हो कर मेरी निन्दा करे अथवा मेरा भक्त हो कर विष्णुजी की निन्दा करे, तो हम दोनों देवताओं के शाप से उसे तत्त्व की प्राप्ति नहीं होगी।।२१।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार शंकरजी के सुखकारक वचन सुन कर, हे नारदजी! वहां के देवता, मुनि आदि सब प्रसन्न हुए।।२२।। दक्ष भी महाप्रेम से शिवभक्ति में तत्पर हो गया। कुटुम्ब सहित सर्व देवता शंकरजी को परमेश्वर मान कर प्रसन्न हुए।।२३।। जिसने जैसी परमात्मा शंकरजी की स्तुति की थी, प्रसन्न चित्त हो कर शंकरजी ने उसके निमित्त वैसा ही वर दिया।।२४।। प्रसन्न बुद्धि दक्ष तत्काल ही शिवजी का नाम जपने लगा। हे मुने! शिवजी के अनुग्रह से उसने अपना यज्ञ पूर्ण किया।।२५।। सर्व देवताओं को भाग दिया गया और शिवजी को पूर्ण भाग दिया और शिवजी का अनुग्रह प्राप्त कर के ब्राह्मणों को बहुत सा दान दिया।।२६।। तब देव शंकरजी की कृपा से वह दक्ष प्रजापति ने विधिपूर्वक ऋत्विजों के सहित यज्ञ के उस महाकर्म को पूर्ण किया।।२७।। हे मुनीश्वर! इस प्रकार से वह दक्ष का यज्ञ पूर्ण हुआ, परब्रह्म स्वरूप शंकरजी की प्रसन्नता से यह सब हुआ।।२८।। उस समय सर्व देवता, ऋषि तथा दूसरे जन भी सुखी और सन्तुष्ट हो कर शंकरजी का यश करते हुए प्रसन्नता से अपने-अपने स्थानों को गये।।२९।। मैं और विष्णुजी भी बड़े प्रेम से शंकरजी का यश गाते हुए और सब मङ्गल देने वाले उनके नाम को उच्चारण करते हुए अपने-अपने स्थानों को गये।।३०।। सत्पुरुषों के गति महादेवजी ने प्रेम से दक्ष का सन्मान किया और प्रेम से अपने गणों के सहित कैलास को गमन किया।।३१।। अपने पर्वत में आ कर शिवजी ने अपनी प्रिया सती का स्मरण किया और प्रधान गणों से उसकी कथा कहने लगे।।३२।। वह विज्ञानी सती का चरित्र कहते समय बिताने लगे और लौकिकी गति का आश्रय कर के प्रभु ने कामियों की गति दिखाई।।३३।। परब्रह्म सत्पुरुषों की गति स्वामी ने कभी अनीति नहीं की। हे मुने! वास्तव में उनको मोह, शोक और विकार नहीं है।।३४।। मैं और विष्णुजी भी तो उनके भेद को नहीं जान सकते, फिर मुनि, देवता और मनुष्य योगी तो क्या हैं?।।३५।। शंकरजी की महिमा अनन्त है, मनीषी भी उसे नहीं जान सकते, उनकी कृपा से श्रेष्ठ भक्त ही सद्भक्ति के द्वारा विना श्रम उनको जान सकते हैं।।३६।। शिव परमात्मा एक ही उनमें कोई विकार नहीं है, वह लोकों को वैसी गति कर के दिखाते हैं।।३७।। हे मुने! इस चरित्र को पढ़-सुन कर सुधी मनुष्य दिव्य सद्गति और उत्तम सुख को प्राप्त होता है।।३८।। इस प्रकार से दक्षकन्या सती ने अपनी देह को त्याग कर फिर हिमालय के यहां जन्म लिया, यह विख्यात है।।३९।। फिर महातप कर के उसने शिवजी को पाया और गौरी तथा अर्द्धवामाङ्गी हो कर उसने अद्भुत लीला की।।४०।।

इस प्रकार से यह परम दिव्य सब कामना और भुक्ति–मुक्ति देने वाला परम अद्भुत सतीचरित्र आपसे वर्णन किया।।४१।। यह आख्यान पाप रहित, परम पवित्र, दूसरों को पवित्र करने वाला है। स्वर्ग, यश, आयु और पुत्र–पौत्र के फल देने वाला है।।४२।। जो इसे भक्ति से सुनता वा भक्तिमानों को सुनाता है; हे तात! वह सब मनोरथों को प्राप्त हो कर अन्त में परम गति को प्राप्त करता है।।४३।। जो इस श्रेष्ठ आख्यान को पढ़ता–पढ़ाता है, वह सब भोगों को प्राप्त होकर अन्त में मोक्ष को प्राप्त होता है।।४४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां द्वितीये सतीखण्डे

पण्डित ज्वालाप्रसादजी मिश्र कृत भाषायां

दक्षयज्ञानुसन्धानवर्णनं त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः।।४३।।

*****

दोहा :

शिवा भवानी शारदा, शंकरदेव मनाय।
सतीखण्ड भाषा कियो, भक्तजनन सुखदाय।।१।।
पढ़हि सुनहि पावहि सुजन, नितनूतन अहलाद।
शंकरभक्ति हिये धरहु, जन ज्वालापरसाद।।२।।

।। शिवमस्तु ।।

*****

श्री

द्वितीयरुद्रसंहितान्तर्गत

तृतीय पार्वतीखण्ड

पहिला अध्याय

दोहा–

श्रीगुरु पदरज शीश धरि, पारवती को व्याह ।
खण्ड तीसरे में लिखत, जेहि सुनि होय उछाह।।१।।

नारदजी बोले– जब देवी सती ने पिता के यज्ञ में अपना देह त्याग कर दिया, हे ब्रह्माजी! फिर वह हिमालय की पुत्री कैसे हुई?।।१।। और बड़ी उग्र तपस्या कर के वह शिवजी को कैसे प्राप्त हुई? मेरे पूछने पर यह आप विशेष रूप से मुझसे कहें।।२।। ब्रह्माजी बोले– हे मुनिश्रेष्ठ! आदर से आप उत्तम शिवचरित्र को मुझसे सुनिये। जो पावन, परमदिव्य और सब पापों को हरने वाला तथा श्रेष्ठ है।।३।। जिस समय देवी सती आनंन्द से शिवजी के साथ हिमालय पर क्रीड़ा करती थी और वह परमेश्वरी अनेक लीला करती थी।।४।। उस समय हिमाचल की प्रिय मेना सब ऋद्धि–सिद्धि से संयुक्त हो अपनी कन्या मान कर भगवती की सेवा करती थी।।५।। जब आदर न पाने से रोष कर के शिवप्रिया ने अपने शरीर का त्याग किया और उस यज्ञ में पिता दक्ष के सामने ही परलोक को गई।।६।। हे मुने! उसी समय हिमाचल की प्रिय मेना शिवलोक में स्थित देवी की आराधना करने के निमित्त उद्यत थी।।७।। सती ने मन में यह विचार किया कि मैं हिमाचल की कन्या बनूं, तत्काल देह त्याग करते समय हिमालय की सुता होने का ध्यान किया।।८।। फिर वह देवी, सब देवता हैं सुत जिसके, ऐसी भी समय को

प्राप्त होकर शरीर त्याग कर प्रेम से मेना की पुत्री हुई।।९।। पार्वतीदेवी नाम हुआ, वहां भी नारदजी के वचन से परम दुष्कर तपस्या कर के फिर अपने पति शंकरजी को प्राप्त हुई।।१०।। नारदजी बोले– हे भगवान्! हे विधे! हे महाप्राज्ञ! हे बोलने वालों में श्रेष्ठ! मेना की उत्पत्ति और विवाह तथा चरित्र कहिये।।११।। मेनकादेवी बड़ी धन्य है, जिसके यहां सती सी कन्या प्रकट हुई, इस कारण वह पतिव्रता सब की मान्य और धन्य है।।१२।। ब्रह्माजी बोले– हे मुने! आप पार्वती की माता की उत्पत्ति तथा विवाह और चरित्र सुनिये, वह परम पवित्र और भक्ति का बढ़ाने वाला है।।१३।। उत्तर दिशा में देवता शरीर वाला हिमालय नामक महापर्वतराज है, हे मुनिराज! वह महातेजस्वी समृद्धिशाली है।।१४।। स्थावर–जंगम के भेद से उसके दो रूप हैं, संक्षेप से उसका सूक्ष्म स्वरूप कहता हूँ।।१५।। वह पूर्व–पश्चिम के दोनों सागरों को अवगाहन कर के स्थित हो रहा है, वह अनेक रत्नों की खानि, मानो भूमि का मानदण्ड हो रहा है।।१६।। अनेक वृक्षों से व्याप्त और अनेक शृङ्गों से चित्र–विचित्र है, सिंह, व्याघ्रादि पशु जहां सुखपूर्वक विचरते हैं।।१७।। जिसके ऊपर महान् तुषार पड़ती है, अनेक आश्चर्यों से विचित्र, देवता, ऋषि, सिद्ध, मुनि आदि शिवजी के प्रियों से सदा युक्त है।।१८।। यही महात्मा पवित्रजनों के तप करने का पवित्र स्थान है, यह अनेक प्रकार की तपस्याओं की सिद्धि करने वाला, अनेक धातुओं की खानि है।।१९।। वही यह दिव्यरूप सर्वांग सुन्दर है, यह शैलराज विकार रहित सत्पुरुषों का प्रिय है।।२०।। कुल की स्थिति और धर्म बढ़ाने के निमित्त तथा पितृदेवताओं की हितेच्छा से पर्वतराज ने अपना विवाह करने की इच्छा की।।२१।। उस समय सम्पूर्ण देवता अपने स्वार्थ को विचार कर, हे मुनीश्रेष्ठ! दिव्य पितरों के पास जा कर बोले।।२२।। देवता बोले– सुप्रसन्न मन हो कर सब पितर हमारे वचन सुनिये, जो देवकार्य की इच्छा वाले हो, तो शीघ्रता कीजिये।।२३।। जो मेना नाम की आपकी मङ्गल रूपिणी बड़ी सुता है, उस सुव्रता का विवाह हिमालय नामक पर्वतराज से करा दो।।२४।। इससे सबका बड़ा लाभ होगा, आपकी और देवताओं की पद–पद में दुःख हानि होगी।।२५।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार देवताओं के वचन सुन कर उन सब पितरों ने विचार कर सुताओं के शाप को स्मरण कर के यह बात स्वीकार की।।२६।। और अपनी आत्मजा को हिमालय के निमित्त प्रदान किया, उस सुमंगल विवाह में बड़ा उत्सव हुआ।।२७।। हरि आदि सब देवता और सब ऋषि वामदेवजी का स्मरण कर के वहां आये।।२८।। अनेक प्रकार के दान दे कर बड़ा उत्सव कराया, पितृगण और हिमालय की बड़ी प्रशंसा की।।२९।। वह सब देवता और मुनि महाप्रसन्न हुए और शिवाशिव को स्मरण करते अपने–अपने स्थानों को गये।।३०।। बहुत दहेज को प्राप्त हो कर और उस प्रिया से विवाह कर के गिरि अपने घर आ कर बड़ी प्रसन्नता को प्राप्त हुए।।३१।। ब्रह्माजी

बोले- हे मुनीश्वर! यह मेना का समागम और सुन्दर विवाह आपसे कहा, यह बड़ा सुख देने वाला है, अब आप क्या सुनना चाहते हो।।३२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
तृतीये पार्वतीखण्डे हिमाचलविवाह वर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ।। १ ।।

*****

दूसरा अध्याय

नारदजी बोले- हे विधाता! आप अब प्रेम से मेना की उत्पत्ति मुझसे कहिये और शाप की कथा भी कह कर सन्देह का निराकरण कीजिये।।१।। ब्रह्माजी बोले- हे नारदजी! विवेकपूर्वक आप मेना की उत्पत्ति मुनियों के साथ सुनिये। हे महापण्डित! हे पुत्र! मैं कहता हूँ।।२।। हे मुने! जो मैंने पहले अपने दक्ष नामक पुत्र की बात कही है, उसकी सृष्टि को प्रकट करने वाली साठ कन्याएं हुईं।।३।। उसने कश्यपादि के साथ कन्याओं का विवाह किया। हे नारद! वह तो आपको सब विदित है, अब उपयोगी कथा को सुनिये।।४।। उनमें स्वधा नाम वाली कन्या पितरों को दी, उसके धर्म की मूर्ति तीन कन्याएं हुईं।।५।। हे मुनीश्वर! उनके पवित्र नामों को सुनिये, जो सदा विघ्न हरने वाले तथा महामङ्गल देने वाले हैं।।६।। मेना नाम वाली ज्येष्ठ कन्या, मध्या धन्या, कलावती सबसे छोटी थी। यह सब पितरों की मानसी कन्याएं हैं।।७।। यह तीनों कन्याएं अयोनिजा स्वधा से प्रकट लोक में उसकी कन्या कहलाती है, इनके नाम उच्चारण करने से मनुष्य सब कामनाओं को प्राप्त होते हैं।।८।। यह लोकमाताएँ जगत्पूज्य और दूसरों को परम आनन्द देने वाली हैं, यह योगिनियां परमज्ञान की निधान त्रिलोक में यात्रा करने वाली हैं।।९।। हे मुनीश्वर! एक समय यह तीनों बहनें श्वेतद्वीप में भगवान् विष्णुजी का दर्शन करने गई।।१०।। वहां विष्णुजी को प्रणाम कर के भक्तिपूर्वक स्तुति की और उनकी आज्ञा से वहां स्थित हुईं तथा वहां बड़ा समाज हुआ।।११।। हे मुने! उसी समय सनकादिक सिद्ध ब्रह्मपुत्र वहां आये और उन्होंने भगवान् को प्रणाम कर के उनकी स्तुति की और वहां उनकी आज्ञा से स्थित हो गये।।१२।। सनकादिक मुनियों को देख, सब कोई सावधान हो कर उत्थित हुए, वहां स्थानों पर स्थित हो कर लोकवन्दित देवादिकों से मुनि नमस्कृत हो कर बैठे।।१३।। हे मुने! शिवजी की माया से मोहित होने के कारण वह तीनों बहनें वहां ही स्थित रहीं, खड़ी न हुई, जब उस प्रकार वह परमात्मा शंकरजी की माया से दैववश मोहित हुईं।।१४।। जो सब लोकों को मोहने वाली शिवजी की माया है, जिसके अधीन सब

जगत् है, वह शिवजी की इच्छा कहलाती है ।।१५।। उसीको प्रारब्ध कहते हैं। उनके नाम भी अनेक हैं, वह शिवजी की इच्छा से ही प्रवृत्त होती हैं, इसमें सन्देह नहीं ।।१६।। उसी माया के वशीभूत हो कर उन्होंने प्रणाम नहीं किया और विस्मित हो कर केवल देखती ही रह गईं ।।१७।। सनकादिक मुनिजनों ने उनकी यह गति देख कर ज्ञानी हो कर भी उन पर परम क्रोध किया ।।१८।। शिवजी की इच्छा से मोहित हो कर योगीश्वर सनत्कुमारजी ने उनको क्रोधपूर्वक दण्ड रूप शाप दिया ।।१९।। सनत्कुमारजी बोले– आप पितृकन्या हो कर भी श्रुति का तत्त्व नहीं जानती हो और आप तीनों मूढ़ हो ।।२०।। आपने हमारा अभ्युत्थान न किया, गर्व से नमस्कार भी न किया, आप नरभाव से मोहित हो, इस कारण आप स्वर्ग से दूर होवो ।।२१।। और तीनों ही ज्ञान से मोहित होने के कारण मनुष्यों की स्त्री होओगी, अपने कर्मों के बल से ऐसा फल पाओगी ।।२२।। ब्रह्माजी बोले– यह वचन सुन कर वह तीनों कन्याएं बहुत ही चकित हुईं और पतित हो कर सनत्कुमारजी के चरणों में प्रणाम कर बोली ।।२३।। पितृकन्याएं बोली– हे मुनिश्रेष्ठ, हे दयासागर! अब हमारे ऊपर कृपा कीजिये, हमने जो मूढ़ हो कर आपको प्रणाम न किया ।।२४।। हे विप्र! उसका फल हमने पाया। हे मुने! आपका इसमें कुछ दोष नहीं, आप अनुग्रह कीजिये, जिससे हम फिर स्वर्ग को प्राप्त हों ।।२५।। ब्रह्माजी बोले– यह वचन सुन कर वह सनत्कुमारजी शिवजी की माया से प्रेरित हो कर तथा प्रसन्न हो कर शापोद्धार कहने लगे ।।२६।। सनत्कुमारजी बोले– आप तीनों पितरों की कन्याएं प्रसन्न हो कर सुनिये, मेरा वचन शोक दूर करने वाला और आपको सदा सुख देने वाला है ।।२७।। विष्णुजी का अंश रूप, जो हिमालय पर्वत है, जो हिम का आधार है, यह ज्येष्ठा उसकी कामिनी होगी, इसीकी कन्या पार्वती होगी ।।२८।। और यह दूसरी महायोगिनी कन्या जनक की स्त्री होगी, जिसके यहां महालक्ष्मी सीता उत्पन्न होगी ।।२९।। कलावती वैश्य वृषभान की प्रिया होगी, द्वापर के अन्त में उससे राधा प्रकट होगी ।।३०।। मेनका योगिनी पार्वतीजी से अपने श्रेष्ठ वर को प्राप्त हो कर उसी देह से परमपद कैलास को जाएगी ।।३१।। और धन्या सीता को उत्पन्न कर के जनक वंशोत्पन्न सीरध्वज को प्राप्त हो कर वैकुण्ठ को चली जाएगी ।।३२।। और कलावती वृषभान को प्राप्त हो कर कौतुक से राधा के साथ जीवन्मुक्त हो कर गोलोक को जायेगी, इसमें सन्देह नहीं ।।३३।। बिना विपत्ति के किसी की कहां महिमा होती है? सुकर्मियों को दुःख के गत होने में परमोत्कृष्ट सुख ही है ।।३४।। आप पितरों की कन्याएं स्वर्गविनासिनी हो विष्णुजी के दर्शन से आपका कर्मक्षय हो गया ।।३५।। मुनीश्वर यह कह कर फिर बोले तथा ज्ञान और मुक्ति देने वाले शिवजी का स्मरण किया ।।३६।। और भी प्रेम से मेरा सुखदायक वचन सुनिये, आप शिवजी में भक्ति करने वाली धन्य हो, निरन्तर मान्य और पूज्य हो ।।३७।। मेना में जगदम्बिका पार्वतीदेवी

उत्पन्न हो कर परम दुष्कर तप कर के शिवजी की प्रिया होगी ।।३८।। और धन्या की सुता सीता रामचन्द्र की पत्नी होगी, लौकिकाचारों को आश्रय कर के श्रीरामजी के साथ विहार करेगी ।।३९।। कलावती की सुता राधा, साक्षात् गोलोक की निवास करने वाली गुप्त स्नेह में निबद्ध हुई श्रीकृष्णजी की पत्नी होगी ।।४०।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार कथन कर के मुनिराज अपने भाइयों सहित वहीं अन्तर्हित हो गये ।।४१।। और पितरों की मानसी सुताएं वह तीनों बहनें पाप रहित हो कर सुख को प्राप्त हो कर अपने-अपने धामों को गई ।।४२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायांतृतीये
पार्वतीखण्डे पूर्वगतिवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।। २ ।।

*****

तीसरा अध्याय

नारदजी बोले- हे ब्रह्माजी! हे महापण्डित! हे बुद्धिमान! हे बोलने वालों में श्रेष्ठ! हे विष्णुसदुरो! इसके पीछे फिर क्या चरित्र हुआ? सो आप कहिये ।।१।। यह आपने मेना की पूर्वगति की अद्भुत कथा सुनाई और विवाह भी भली प्रकार सुनाया, अब आप इसका परम चरित्र कहिये ।।२।। वह गिरि मेना से विवाह कर फिर क्या करने लगे और उसमें जगदम्बिका पार्वती किस प्रकार उत्पन्न हुई?।।३।। और किस प्रकार से दुःसह तप कर के शंकरजी को प्राप्त हुई? यह शंकरजी का यश विस्तारपूर्वक मुझ से कहिये ।।४।। ब्रह्माजी बोले- हे मुने! आप प्रेम से शंकरजी का यश सुनिये, जिसे सुन कर ब्रह्महत्यारा भी शुद्ध हो कर सब कामनाओं को प्राप्त होता है ।।५।। जब मेना से विवाह कर के गिरिराज अपने घर गये, हे नारदजी! उस समय त्रिलोकी में उत्सव हुआ ।।६।। हिमाचल ने भी प्रसन्न हो कर परम उत्सव किया, ब्राह्मण, बन्धुजन तथा दूसरे जनों को भी परम बुद्धि से उनका अर्चन किया ।।७।। सब ब्राह्मणों ने प्रसन्न हो कर आशीर्वाद दिया और दूसरे बन्धुजन भी अपने-अपने स्थानों को गये ।।८।। हिमाचल भी प्रसन्न हो कर अपने घर में आनन्द करने लगे और मेना के साथ अपने स्थान तथा नन्दनवन में विहार करने लगे ।।९।। उस समय विष्णुजी आदि सम्पूर्ण देवता तथा और महात्मा मुनि हिमालय के समीप गये ।।१०।। उन देवताओं को आये हुए देख कर गिरिराज ने प्रणाम किया और अपने सुकृत की प्रशंसा करते हुए भक्ति से बड़ा सत्कार किया ।।११।। हाथ जोड़, सिर झुका कर भक्ति स्तुति से प्रसन्न करते हुए गिरिराज के रोयें खड़े हो गये और प्रेम के आँसू नेत्रों से पतित हुए ।।१२।। हे मुने! तब प्रसन्न हो कर

हिमालय प्रणाम कर विष्णुजी आदि देवताओं से कहने लगे ।।१३।। हिमालय बोले– आज मेरा जन्म सफल है, आज मेरा तप सफल है, आज मेरा ज्ञान और क्रिया सफल हैं ।।१४।। आज मैं धन्य और मेरी भूमि धन्य है, मेरा कुल, दारा सब धन्य है, इसमें सन्देह नहीं ।।१५।। जिस करण कि, आप सब मिल कर आये हो, इस कारण प्रीति से मुझे अपना सेवक जान कर आज्ञा कीजिये ।।१६।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार से वे देवता हिमालय के वचन सुन कर, प्रसन्न हो कर अपने कार्य की सिद्धि मानते हुए बोले ।।१७।। देवता बोले– हे हिमालय! हे महाबुद्धिसम्पन्न! हमारे हितकारी वचन सुनिये, जिस कारण हम यहां आये हैं, वह प्रेम से कहते हैं ।।१८।। हे गिरे! जिस समय जगत् की माता उमा दक्ष की कन्या हो कर, रुद्रपत्नी हो कर भूमि पर बहुत काल तक क्रीड़ा करती रही ।।१९।। पश्चात् पिता से अनादर को प्राप्त हो कर, अपना प्रण स्मरण कर, अपने शरीर को त्याग कर, अम्बिका अपने पद को प्राप्त हुई ।।२०।। हे हिमालय! वह कथा लोक में और आपको भी विदित है, ऐसा होने से देवताओं का महान् लाभ होगा ।।२१।। और शिवजी के वशवर्ती सब देवता भी आपके वशीभूत हो जायेंगे ।।२२।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार हिमालय ने हरि आदि के वचन श्रवण कर; ''ऐसा ही होगा'' ऐसा प्रसन्न मन से कहा, न कि आदरमात्र से ही ।।२३।। तब सब देवता परम आदर से उस विधि को गिरि से कह कर शंकरप्रिया उमा की शरण को प्राप्त हुए ।।२४।। अच्छे स्थल में स्थित हो कर मन से जगदम्बा का स्मरण करने लगे और अनेक प्रकार से प्रणाम कर, श्रद्धा कर के स्तुति करने लगे ।।२५।। देवता बोले– हे देवि उमे, जगन्माते! हे शिवलोक निवासिनी! हे सदाशिव प्रिये दुर्गे महेश्वरी! आपको प्रणाम करते हैं ।।२६।। श्रीशक्ति पावनी शान्ता पुष्टि परम पावनी अव्यक्तरूपिणी को हृदय से प्रणाम करते हैं ।।२७।। जो शिवा कल्याणकारिणी शुद्ध सूक्ष्म स्थूल रूप वाली है, अन्तर्विद्या सुविद्या से प्रसन्न होने वाली, आपको हम प्रणाम करते हैं ।।२८।। आप ही श्रद्धा, आप ही धृति, आप ही सर्वगोचर हो, आप ही सूर्य की किरण रूप तथा स्वप्रपञ्च की प्रकाश करने वाली हो ।।२९।। जो ब्रह्माण्ड संस्था में तथा अन्य समय में जगत् के जीवों को और ब्रह्मा से ले कर तृण पर्यन्त को जो बढ़ाती है, हम उसे प्रणाम करते हैं ।।३०।। आप ही वेदमाता गायत्री सरस्वती हो, आप ही सब जगत् की वार्ता और वेदत्रय स्वरूप वाली हो ।।३१।। सब प्राणियों में निद्रा रूप आप ही हो, क्षुधा और तृप्ति आप ही हो। तृष्णा, कान्ति, छबि, तुष्टि और सब आनन्द देने वाली आप हो ।।३२।। पुण्य करने वालों में आप लक्ष्मी हो, पापियों को दण्ड देने में आप ही ज्येष्ठा हो, आप सब जगत् की शान्ति धात्री और प्राण पोषिणी हो ।।३३।। प्राणियों में आप अन्तरूपिणी, पाँच तत्त्वों में सार रूप हो, आप नीति वालों में नीति रूप तथा व्यवसाय स्वरूपिणी हो ।।३४।। सामवेद में आप गीति रूप, यजुर्वेद की आहुति और ग्रन्थि रूप हो, ऋग्वेद की मात्रा और अथर्व की

परागति हो।।३५।। सम्पूर्ण देवसमूहों की शक्ति रूप, तमःप्रधान धात्री, गुणों की एक ही दृश्य रूप, रजोगुण के प्रपञ्च में एक भव रूपा हो, जो हम ने शास्त्रों से सुनी है, जो कल्याणकारी स्तुति को प्राप्त होती है।।३६।। कराल संसार–सागर में जो महान् दुःख हैं, उनसे आप निस्तार करने वाली निवीत (नौका सञ्चालक पाल नाम का वस्त्र) रहित नौका हो, अष्टाङ्गयोग के पालने के लिये चतुरा, विन्ध्याचल पर्वत पर निवास करने वाली भगवती को हम प्रणाम करते हैं।।३७।। जो प्राणियों के नासिका, नेत्र, मुख, भुजा, वक्षःस्थल, मनों में और मुखों में धृति को धारण कराती है, जगत् के कल्याण के निमित्त उनमें निद्रा रूप से प्रवृत्त होती है, वह संसार की स्थिति और पालना के निमित्त हम से प्रसन्न हो।।३८।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार जगदम्बा महेशानी उमा की स्तुति कर सब देव प्रेम से उनके दर्शन के निमित्त स्थित हुए।।३९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

तृतीये पार्वतीखण्डे देवस्तुतिर्नाम तृतीयोऽध्यायः।।३।।

*****

चौथा अध्याय

ब्रह्माजी बोले– जब इस प्रकार से देवताओं ने बड़े कष्ट दूर करने वाली दुर्गा की स्तुति की, तब जगम्बिका देवताओं के आगे प्रकट हुई।।१।। परम अद्भुत रत्नों के दिव्य रथ में बैठी हुई, जिस में क्षुद्रघण्टिका बँधी हुई थी और मनोहर बिछौने बिछे थे।।२।। कोटि सूर्य के समान कान्तिमान्, मनोहर अंग–प्रत्यंग से शोभायमान, अपनी तेजोराशि के मध्य में स्थित वररूपा समान छबि वाली।।३।। उपमा रहित महामाया, सदाशिवजी के साथ विलास करने वाली त्रिगुणात्मिका, निर्गुण, नित्य शिवलोक में निवास करने वाली।।४।। तीनों देवताओं को प्रकट करने वाली जननी चण्डिका, कल्याणदायिनी, सब दुःखों का नाश करने वाली, सबकी माता, महानिद्रा, सब स्वजनों को तारने वाली।।५।। उस तेजराशि के प्रभाव से देवताओं को शिवा का दर्शन हुआ, वे दर्शन की इच्छा से भगवती की फिर स्तुति करने लगे।।६।। तब विष्णुजी आदि सब देवता भगवती के दर्शन की इच्छा से कृपा को प्राप्त हो कर भगवती के दर्शन करने को समर्थ हुए।।७।। उस समय सम्पूर्ण देवताओं को बड़ा आनन्द हुआ, बारंबार प्रणाम कर भगवती की स्तुति करने लगे।।८।। देवता बोले– हे शिवे! हे शर्वाणि! हे कल्याण करने वाली! हे जगत् की माता महेश्वरी! आप सब दुःखों को दूर करने वाली हो। हम सब देवता आपको प्रणाम करते हैं।।९।। हे देवी! वेदशास्त्र भी आपकी

महिमा को सर्वथा नहीं जान सकते, हे शिवे! आपकी महिमा और ध्यान, वाणी और मन से परे हैं।।१०।। उसे भली प्रकार न जानने से निगम सदा चकित रहता है, जब वेद की यह दशा है, तो दूसरों की कथा क्या होगी?।।११।। हां! आपकी कृपा को प्राप्त हो कर कोई-कोई भक्त ही आपकी महिमा को जानते हैं, शरण में आये हुए को कहीं भी भय नहीं है।।१२।। हे जगदम्बे! अपने भक्तों की प्रार्थना प्रेम से सुनिये। हे देवि! हम दास आपकी महिमा क्या वर्णन करें? जो कहेंगे वह लघु होगी।।१३।। पहले आप दक्षकन्या हो कर शिवजी की प्रिया हुई, ब्रह्माजी का व दूसरों का गर्व उस समय खर्व हुआ।।१४।। पिता से अनादर को प्राप्त हो कर आपने अपने प्राण त्याग किये और अपने लोक को चली आई, उससे शंकरजी को बड़ा दुःख हुआ।।१५।। हे महेश्वरि! उस समय भी देवकार्य पूर्ण नहीं हुआ। हम मुनि, देवता व्याकुल हो कर आपकी शरण में आये हैं।।१६।। हे महेशानि! आप देवताओं के मनोरथ पूर्ण कीजिये। हे शिवे! जिस प्रकार से सनत्कुमारजी के वचन सफल हो, सो कीजिये।।१७।। हे देवि! आप फिर पृथ्वी पर अवतार ले कर, शिवजी की पत्नी बन कर, यथायोग्य लीला करें, जिस से देवताओं को सुख हो।।१८।। हे देवि! इस प्रकार से कैलासाचल में स्थित शंकरजी भी प्रसन्न होंगे, सब सुखी हों और सब प्रकार के दुःख नाश हो जायें।।१९।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार से विष्णुजी आदि प्रेम से युक्त हो कर, भक्ति से सिर झुकाये मौन हो कर खड़े रह गये।।२०।। शिवा भी देवताओं की स्तुति सुन कर प्रसन्न हुई और उस हेतु का विचार कर अपने प्रभु शंकरजी को स्मरण कर।।२१।। उस समय देवी उमा सब देवताओं को सम्बोधन कर बोली- वह भक्तवत्सला हँस कर विष्णुजी आदि से कहने लगी।।२२।। भगवती बोली- हे हरि! हे ब्रह्माजी! हे देव! हे मुनियो! आप दुःख रहित हो जाइये, निःसन्देह मैं प्रसन्न हूँ, आप सब कोई मेरे वचन सुनिये।।२३।। मेरा चरित्र त्रिलोकी को सुख देने वाला है, दक्ष को जो मोह हुआ, यह सब मैंने ही किया है।।२४।। इसमें सन्देह नहीं कि, मैं पृथ्वी पर अपना पूर्ण अवतार करूंगी, इसमें बहुत से हेतु हैं, सो मैं आदरपूर्वक आपसे कहती हूँ।।२५।। पहले हिमाचल और उनकी स्त्री ने बड़े प्रेम से सतीशरीर से माता-पिता के समान मेरी सेवा की थी।।२६।। इस समय भी भक्ति से मेरी सेवा करते हैं और विशेष कर पुत्री रूप से मेना मेरी सेवा करती है, इसमें सन्देह नहीं।।२७।। अब रुद्र तथा दूसरे देवताओ जाइये, मैं हिमालय के घर प्रकट हूंगी, उस समय उनके सब दुःख नाश हो जायेंगे।।२८।। अब आप सब अपने-अपने स्थानों पर जाकर सुख पाओ। मैं मेना की कन्या हो कर उसे सुख दूंगी।।२९।। यह मेरा गुप्त मत है कि मैं शिवजी की पत्नी हूँगी। शिवजी की लीला बड़ी अद्भुत है, जो ज्ञानियों को भी मोहित करती है।।३०।। हे देवताओ! जब कि मैंने दक्ष की कन्या हो कर पिता से अनादर पा कर, उनके यज्ञ में जा कर अपने स्वामी के निमित्त अपना शरीर त्याग

दिया।।३१।। उस समय वह हमारे स्वामी कालाग्नि रूप हो कर दिगम्बर रहते हुए, मेरी ही चिन्ता करते हैं।।३२।। पिता के यज्ञ में गई सती ने मेरे ऊपर रुष्ट दक्ष के रोष से शरीर त्याग दिया, इससे मेरी प्रीति है और धर्मज्ञता को विचार कर वे बड़े दुःखी होते हैं।।३३।। अपने योग्य स्थान को त्याग कर अलौकिक वेष किये मुझ सती रूप के वियोग को शिवजी योगी हो कर भी नहीं सह सकते हैं।।३४।। मेरे निमित्त ही कुवेश धारण कर वह महा दुःखी हुए, उसी दिन से उन्हों ने सब काम से उत्पन्न हुए उत्तम सुखों को त्याग दिया है।।३५।। हे विष्णुजी! हे विधाता! हे देवताओ! हे मुनियो! महाप्रभु महेशजी की अन्य भुवनपालिनी लीला भी सुनिये।।३६।। वह प्रेम से मेरी अस्थियों की पवित्र माला को प्रेम से गले में धारण कर के भी कहीं शान्ति को प्राप्त नहीं होते और निरन्तर जागृत रहते हैं।।३७।। और अनीश के समान वह प्रभु इधर-उधर ऊँचे स्वर से रोदन करते हैं, योग्य-अयोग्य के ज्ञान से रहित सर्वदा सर्वत्र भ्रमते रहते हैं।।३८।। इस प्रकार कामियों की गति दिखाते हुए शंकरजी लीला करते हैं और विरह से व्याकुल हो कर कामियों की वाणी बोलते हैं।।३९।। वास्तव में प्रभु विकार रहित, दीनता रहित, अजित अविनाशी परमेश्वर है, वह परिपूर्ण स्वामी शिवजी माया के अधीश्वर, सबके अधिपति हैं।।४०।। नहीं तो मोह और काम से उनको क्या प्रयोजन है? किसी विकार और माया से वह प्रभु लिप्त नहीं है।।४१।। वह प्रभु रुद्र मेरा पाणिग्रहण करने की इच्छा करते हैं। हे देवताओ! मैं हिमाचल के घर में जा कर अवतार लूंगी।।४२।। रुद्र के सन्तोष के निमित्त मैं अवतार लूंगी, हिमालय की पत्नी मेना में लौकिक गति दिखाऊंगी।।४३।। भक्ति से रुद्र की प्रिया हो कर और महातपस्या कर के देवताओं का कार्य करूंगी, इसमें सन्देह नहीं, यह सत्य है।।४४।। आप सब देवता अपने-अपने स्थानों को जाइये और शंकरजी का भजन कीजिये, उनकी कृपा से ही सब दुःख दूर हो जायेंगे, इसमें सन्देह नहीं।।४५।। उन कृपालु की कृपा से सदा मंगल होगा। मैं उनकी जाया हो कर त्रिलोकी में वन्दित और पूजित हो जाऊंगी।।४६।। ऐसा कह कर वह जगदम्बा देवताओं के देखते-देखते अन्तर्धान होकर अपने लोक को प्राप्त हो गई।।४७।। विष्णुजी आदि सब देवता और मुनि प्रसन्न हो कर उस दिशा को प्रणाम करते हुए अपने-अपने स्थानों को गये।।४८।। हे मुनीश्वर! इस प्रकार आपसे दुर्गाजी का चरित्र वर्णन किया, जो मनुष्य को सदा सुख देने वाला तथा भुक्ति-मुक्ति का देने वाला है।।४९।। जो इसे नित्य सुनते वा भक्ति से सुनाते हैं, जो पढ़ते वा पढ़ाते हैं, वे सब कामनाओं को प्राप्त होते हैं।।५०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
तृतीये पार्वतीखण्डे देवसान्त्वनं नाम चतुर्थोऽध्यायः।।४।।

*****

पाँचवां अध्याय

नारदजी बोले– जब भगवती दुर्गा अन्तर्धान हो कर अपने स्थान को गई और देवसमूह भी अपने–अपने स्थान को गया, तब क्या हुआ?।।१।। मेना और हिमालय ने किस प्रकार परम तप किया और भगवती किस प्रकार उनकी सुता हुई? सो आप हम से कहिये।।२।। ब्रह्माजी बोले– हे विप्रवर्य! हे श्रेष्ठपुत्र! इस चरित्र को सुनिये, मैं शिवजी को प्रणाम कर उस भक्तिवर्धक चरित्र को कहता हूँ।।३।। जब देवता हिमालय और मेना को उपदेश दे कर चले गये, तब हिमालय और मेना विष्णुजी की आज्ञा से महा तप करने लगी।।४।। दोनों स्त्री–पुरुष दिन–रात शिवाशिव का ध्यान करते हुए भक्तियुक्त चित्त से भली प्रकार आराधना करने लगे।।५।। गिरि की प्रिया बड़ी प्रसन्नता से शिवजी के सहित भगवती का पूजन कर के ब्राह्मणों के सन्तोष के निमित्त ब्राह्मणों को दान देने लगी।।६।। चैत्र मास के आरम्भ से सत्ताइस वर्ष तक पुत्री होने के निमित्त शिवा की बराबर आराधना करती रही।।७।। अष्टमी को उपवास कर के नवमी के दिन मोदक, पिट्ठी, खीर, गन्ध, पुष्पों से भगवती को पूजा।।८।। गंगा तटवर्ती औषधिप्रस्थ पर शिव संयुक्त भगवती की मृन्मयी मूर्ति बना कर अनेक वस्तुओं को समर्पण कर भगवती की पूजा करने लगी।।९।। कभी निराहार रह जाती, कभी व्रत धारण करती, कभी पवन के आहार से रह जाती, कभी जलमात्र के आहार से रहती।।१०।। इस प्रकार शिवाशिव में मन लगाये पश्चात् अखण्ड सत्ताइस वर्ष मेना ने निराहार ही रह कर प्रेम, भक्तिपूर्वक बिता दिये।।११।। सत्ताइस वर्ष के पीछे जगन्मयी जगन्माता शंकरप्रिया उमा मेना पर प्रसन्न हुई।।१२।। उसकी भक्ति से सन्तुष्ट हो कर परमेश्वरी अनुग्रह करने के निमित्त मेना के आगे प्रकट हुई।।१३।। दिव्य अवयव से संयुक्त तेजोमण्डल के मध्य में स्थित हँसती हुई प्रत्यक्ष हो कर मेना से बोली।।१४।। देवी बोली– हे महासाध्वि! जो तुम्हारे मन में हो, सो वर मांगो। हे गिरिकामिनि! मैं तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हूँ।।१५।। हे मेना! तपोव्रत समाधि से जो तुमने प्रार्थना की है, जो–जो तुम्हें वांछित होगा, सो मैं तुम्हें सब दूँगी।।१६।। तब मेनकादेवी भगवती को प्रत्यक्ष देख कर प्रणाम कर के इस प्रकार कहने लगी।।१७।। मेना बोली– हे देवि! मैंने इस समय आपका रूप प्रत्यक्ष देखा है, मैं आपकी स्तुति करने की इच्छा करती हूँ। हे कालिके! आप प्रसन्न हो।।१८।। ब्रह्माजी बोले– जब इस प्रकार मेना ने कहा तब सबको मोहने वाली भगवती ने प्रसन्न हो कर अपनी दोनों भुजाओं से मेना को आलिंगन किया।।१९।। तब मेन को महाज्ञान को प्राप्त हो कर शिवाशक्ति को प्रत्यक्ष देख कर परम भक्ति से प्रसन्न करने लगी।।२०।।

मेना बोली- हे महामाया जगद्धात्री चण्डिके! हे लोक की धारणा करने वाली महादेवि! सब काम और अर्थ की देने वाली, आप को मैं प्रणाम करती हूँ।।२१।। नित्य आनन्द करने वाली माया योगनिद्रा, जगत् को उत्पन्न करने वाली, सिद्ध स्वरूप, दिव्य कमलों की माला वाली को प्रणाम करती हूँ।।२२।। हे माता! आप ही सदा आनन्द रूपिणी, भक्तों के शोक दूर करने वाली, कल्प पर्यन्त स्त्री जनों तथा प्राणियों की बुद्धि रूपिणी हो।।२३।। ऐसी आप यतियों के बन्धन का छेद करने वाली हो, मुझ सरीखी कौन आपका प्रभाव जान सकती है? हिंसा वा अथर्ववेद में नित्य स्थित, आप मेरी कामना और इष्ट का विधान कीजिये।।२४।। आप नित्य-अनित्य भावहीनों से परास्त उन-उन की मात्राओं से प्राणिवर्गों को युक्त करती हो, उनकी शक्ति आप सदा नित्य रूपा हो, समय पर आप योग युक्त और समर्थ हो।।२५।। जगत् का कारण रूप और जगत् को धारण करने वाली आप ही हो, आप ही परे से परे नित्यप्रकृति हो, जिस प्रकार से आप ब्रह्मरूप को वशीभूत करती हो, हे माता! आप नित्यरूप हो कर मेरे ऊपर प्रसन्न हो।।२६।। आप ही अग्नि में उग्र शक्ति से वर्तमान हो, आप ही दाहिका और सूर्य की किरणों की उग्र शक्ति हो, चन्द्रिका (चान्दिनी) में आह्लादक शक्ति हो, आप चण्डिका हो, मैं आपको प्रणाम करती हूँ।।२७।। स्त्रियों में सत्प्रिया आप हो, ऊर्ध्वरितसों की ध्यानगम्या आप हो, सब जगत् की वांछनीय हो, आप ही हरि की माया हो।।२८।। हे देवि! आप इष्ट रूपों को धारण कर के सृष्टि की स्थिति-पालन और संहार करती हो और ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर के शरीरों का हेतु हो, सो आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो, आपको बारंबार प्रणाम है।।२९।। ब्रह्माजी बोले- जब भगवती कालिका की इस प्रकार से स्तुति की, तब भगवती ने मेना से कहा, तुम वर मांगो।।३०।। देवी बोली- हे हिमाचलवासिनी! तुम मुझे प्राणों के समान प्रिय हो, जो इच्छा करोगी वह अवश्य दूंगी, तुम्हारे लिये मुझे कोई भी वस्तु अदेय नहीं है।।३१।। इस प्रकार भगवती के अमृत के समान वचन सुन कर, सन्तुष्ट हो कर गिरिकामिनी भगवती से बोली।।३२।। मेना बोली- हे शिवे! हे महाचतुरे! हे महेश्वरी! हे जगदम्बिका भवानी! आप की जय हो। जो मैं वर के योग्य हूँ, तो मैं आपसे वर मांगती हूँ।।३३।। हे जगदम्बिके! एक वर तो यह है कि, मेरे सौ पुत्र बड़ी आयुवाले, वीर्यवान्, ऋद्धि-सिद्धि संयुक्त हों।।३४।। पीछे एक पुत्री रूप-गुण सम्पन्न, दोनों कुलों को आनन्द करने वाली, त्रिलोकी में पूजित हो।।३५।। हे शिवे! देवकार्य के निमित्त आप ही मेरी सुता हो, हे अम्बिके! रुद्रपत्नी हो कर आप लीला करें।।३६।। ब्रह्माजी बोले- मेना के यह वचन सुन कर, देवी प्रसन्न हो कर बोली और हँसती हुई मेना का मनोरथ पूर्ण करती बोली।।३७।। देवी बोली- तुम्हारे सौ पुत्र बड़े विक्रमशाली होंगे, जिस में एक मुख्य बड़ा बली प्रथम होगा।।३८।। तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हुई मैं तुम्हारी सुता हूँगी और देवताओं से सेवित

हो कर देवकार्य करूंगी ।।३९।। ब्रह्माजी बोले- कालिका परमेश्वरी जगद्धात्री यह वचन कह कर मेनका के देखते-देखते अन्तर्धान हो गई ।।४०।। मेना भी महेशानी से इच्छित वर को प्राप्त हो कर बड़े आनन्द को प्राप्त हुई और तप का क्लेश भी निवृत्त हो गया ।।४१।। वह सती प्रसन्न हो कर उस दिशा को नमस्कार कर जय शब्द उच्चारण करती अपने स्थान में आई ।।४२।। और अपने पति से उस वर की बात अपने मुख की प्रसन्नता के चिह्न से पहले ही कही गई को पुन: वचनों से कहा ।।४३।। ऐसे मेना के वचन सुन कर शैलराज बड़े प्रसन्न हुए और शिवा में भक्ति करने वाली मेना की बड़ी प्रशंसा की ।।४४।। हे मुने! फिर समय पर उन्हीं के सुरत प्रवृत्त होने से मेना को गर्भ रहा और प्रतिदिन बढ़ने लगा ।।४५।। समय पर उसने नागवधुओं को भोगने योग्य पुत्र को उत्पन्न किया, जिस मैनाक नाम के पुत्र ने समुद्र से मित्रता की ।।४६।। जिस समय इन्द्र पर्वतों पर क्रुद्ध हुए थे, उस समय भी उसने इन्द्र के वज्र के घावों की व्यथा नहीं जानी। हे नारद! वज्र से औरों के पक्ष काटे गये, परन्तु इसके पक्ष वर्तमान ही हैं ।।४७।। महाबली महापराक्रमी सौ पुत्रों में यही श्रेष्ठ हुआ, हिमालय के अन्य सब पुत्र भी इसी प्रकार प्रकट हुए ।।४८।। उस समय हिमालय के पुर में बड़ा उत्सव हुआ। दोनों स्त्री-पुरुष आनन्दित हुए, क्लेश नाश हुआ ।।४९।। ब्राह्मणों को दान और दूसरे द्विजों को अनेक प्रकार से धन दिये और दोनों का शिवशिवा के चरणों में बड़ा स्नेह हुआ ।।५०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
तृतीये पार्वतीखण्डे मेनालाभवर्णनो नाम पञ्चमोऽध्याय: ।। ५ ।।

*****

छठवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले- कुछ काल बीतने पर दोनों स्त्री-पुरुषों ने भक्ति से जगदम्बिका का स्मरण किया, कि वह देवकार्य के निमित्त यहां आ कर प्रकट हों ।।१।। योग से अपना शरीर त्याग कर सती ने मेना के यहां प्रकट होने की इच्छा की ।।२।। वह प्रसन्नमूर्ति सब कामनाओं की देने वाली है, अपना वचन सत्य करने के निमित्त पूर्णांश से हिमालय के चित्त में महेश्वरी ने प्रवेश किया ।।३।। अपूर्व कान्ति से उस समय मेना की भी शोभा हुई, उस समय हिमालय का तेज भी अग्नि के समान सब को दुर्धर्ष हो गया ।।४।। तब गिरिराज ने वह शिवा का पूर्ण अंश समाधि द्वारा सुसमय में अपनी प्रिया मेना में धारण किया ।।५।। देवी के प्रसाद से हिमालय की पत्नी ने उसी समय गर्भ धारण किया, वह करुणामयी इस प्रकार पर्वतराज के चित्त में सब सुख देने वाली स्थित हो हिमालय की

पत्नी के हृदय में प्राप्त हुई।।६।। तब वह गिरिप्रिया सब जगत् की निवास भूतों के प्राप्त होने से, तेजोमण्डल के मध्य स्थित होने से, अधिक शोभायमान हुई।।७।। अपने स्वामी से प्राप्त होने योग्य उस गर्भलक्षण को मेना ने धारण किया, जो सब देवताओं को आनन्द स्वरूप और ईप्सित जैसा था।।८।। देह के दुर्बल हो जाने से उसने अपने बहुत से आभूषण उतार रखे। लोध्र के समान उसका मुखमण्डल श्वेत हो गया, जैसे प्रभातकाल के समय रात्रि का चन्द्रमा श्वेत हो जाता है और गिनने योग्य थोड़े तारे हो जाते हैं।।९।। मिट्टी की गन्ध वाले उसके मुख को एकान्त में सूँघ कर गिरिराज तृप्ति को प्राप्त न हुए और बड़े आनन्द को प्राप्त हुए।।१०।। और बारंबार मेना की सखी से गिरिराज पूछने लगे कि, मेना की किस वस्तु में इच्छा है? मेरी लज्जा से वह कुछ नहीं बताती, तुम पूछो।।११।। इस प्रकार दोहद के कष्ट से पार हो कर जो–जो मेना ने इच्छा की, सो–सो प्राप्त हुआ देखा, कारण कि गिरिराज को स्वर्ग में भी कोई वस्तु असाध्य नहीं थी।।१२।। फिर पुष्ट अवयव वाली वह मेना गर्भव्यथा से पार हो कर हरे पत्तों से युक्त बाललता के समान शोभायमान हुई।।१३।। जिस प्रकार से धरणी के भीतर रत्न रहते हैं वा जैसे शमी के भीतर अग्नि रहती है, इस प्रकार पर्वतराज ने सगर्भा महिषी को रत्नगर्भा माना।।१४।। वह जैसा प्रिया को प्यार करते थे, जैसा उन्होंने धन एकत्रित किया था, जैसा शास्त्र पढ़ा था, उसी ने समस्त गर्भाधानादि क्रियाओं को किया।।१५।। फिर प्रसन्नता से समय पर अपनी प्रिया को प्रसवोन्मुखी देखा, जिस प्रकार मेघ सहित आकाश देख कर जलवर्षण विचार लिया जाता है, तथा वैद्यों ने भी गर्भपुष्टि के अनेक उपचार किये थे।।१६।। इस प्रकार सुन्दर अंग वाली प्रिया को देख कर गिरिराज बहुत प्रसन्न हुए, जिसके गर्भ में महातेजस्वी जगदम्बा विराजमान थी।।१७।। उसी अवसर में विष्णुजी आदि देवता और मुनिजन आ कर गर्भ में स्थित जगदम्बा की स्तुति करने लगे।।१८।। देवता बोले– हे दुर्गे! हे प्राज्ञे! हे जगदम्बे! आपकी जय हो। हे सत्यव्रत! हे सत्यनारायण! हे सत्य! हे सत्य स्वरूपिणी!।।१९।। हे सत्य में स्थित! हे सत्य में प्रेम करने वाली! हे सत्य रूप कार्य की कारण रूप वाली! हे सत्य रूप सत्य नेत्र! हम सब आपकी शरण हैं।।२०।। हे शिवप्रिये! हे महेशानि! देवताओं के दुःखक्षय करने वाली! त्रिलोकी की माता शिवप्रिया, सर्वत्र व्यापक भक्तवत्सला!।।२१।। हे त्रिलोकेशी! आप प्रकट हो कर देवताओं का कार्य कीजिये। हे महेश्वरी! आपकी कृपा से हम सब सनाथ होंगे।।२२।। आपसे ही सब सुखी हो कर उत्तम सुख को पाते हैं, आपके बिना तो त्रिलोकी में कुछ भी शोभा नहीं होती।।२३।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार गर्भ में स्थित महेशानी की बहुत सी स्तुति कर के देवता प्रसन्न मन से अपने–अपने स्थानों में गये।।२४।। जब नौ महीने बीत कर दशवां महीना पूर्ण हुआ, उस समय जगदम्बा ने गर्भ से बहिर्भूत होने की इच्छा की।।२५।। उस समय स्वच्छ

समय हो गया, नक्षत्र, ग्रह, तारे शान्त हो गये, आकाश निर्मल हो गया, सब दिशायें प्रकाशित हो गईं ।।२६।। वन, ग्राम, सागर के सहित पृथ्वी मङ्गलमय हो गई, बावड़ी सरोवरों में निर्मल जल हो गये और उनमें कमल खिल गये ।।२७।। हे मुनीश्वरो! सुखस्पर्श वाली सुन्दर पवन उस समय चलने लगीं, सब महात्मा प्रसन्न हुए और असत्पुरुषों को दुःख हुआ ।।२८।। आकाश में आ कर देवता दुन्दुभी बजाने लगे, फूलों की वर्षा हुई, गन्धर्व गाने लगे ।।२९।। आकाश में विद्याधरों की स्त्रियां और अप्सराएं नृत्य करने लगीं, आकाशस्थल में देवताओं का बड़ा उत्सव हुआ ।।३०।। उसी समय देवी भगवती सती शिवा अपनी पूर्ण शक्ति से मेना के सम्मुख अपने निज रूप से प्रकट हुई (गर्भ मायामय था) ।।३१।। वसन्त ऋतु, चैत्र का महीना, नौमी तिथि, मृगशिरा नक्षत्र में आधी रात के समय चन्द्रमण्डल से गंगा के समान भगवती प्रकट हुई ।।३२।। उस समय अपने स्वरूप से मेनका के जठर से भगवती सागर से लक्ष्मी के समान प्रकट हुई ।।३३।। उस समय उस भगवती के प्रगट होने से शंकरजी प्रसन्न हुए, उस समय पवन गम्भीर वेग से अनुकूल गन्ध युक्त शुभसूचक गमन करने लगा ।।३४।। मन्द-मन्द वारिवृष्टि और पुष्पवृष्टि होने लगी, शान्त हुई अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी और मेघ गर्जने लगे ।।३५।। भगवती के प्रकट होने में हिमालय के यहां सर्वस्व हो गया और उस नगर के सब दुःख मिट गये ।।३६।। उसी समय विष्णुजी आदि सब देवता सुखी हो कर प्रेम से जगदम्बा का दर्शन करने आये ।।३७।। और शिवा, अम्बा, कालिका, शिवकामिनी की स्तुति करने लगे, जो दिव्यरूपा महामाया शिवलोक में निवास करने वाली है ।।३८।। देवता बोले– हे महादेवी जगदम्बे! हे सब के सिद्धि के विधान करने वाली! आप देवताओं का कार्य करने वाली हो, हम आपको प्रणाम करते हैं ।।३९।। हे भक्तवत्सले! सर्वथा आप देवताओं का कल्याण करें, मेना का मनोरथ पूर्ण किया, अब शंकरजी का भी मनोरथ पूर्ण कीजिये ।।४०।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार से विष्णुजी आदि देवता शिवा की स्तुति और प्रणाम कर के भगवती की परमगति की प्रशंसा करते-करते अपने-अपने स्थानों को गये ।।४१।। नीलकमल के समान कान्तिमती उस भगवती श्यामा का दर्शन कर मेना बड़ी प्रसन्न हुई ।।४२।। भगवती का दिव्य रूप देख कर गिरिप्रिया ने ज्ञान प्राप्त किया और उसे परमेशानी जान कर स्तुति करने लगी ।।४३।। मेना बोली– हे जगदम्बे महेशानि! आपने बड़ी कृपा की। हे अम्बिके! जो मेरे सामने आविर्भूत हो कर आप क्रीड़ा करती हो ।।४४।। हे शिवे! आप त्रिलोकजननी, सब शक्तियों की आद्या हो। हे देवि! आप शिवजी की प्रिया, सदा सब देवताओं से स्तुति को प्राप्त हो ।।४५।। हे महेशानि! कृपा कर के मेरे ध्यान में स्थित हो, इस रूप से प्रत्यक्ष हो कर आप कन्या के समान रूप धारण करें ।।४६।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार हिमाचल की प्रिया मेना के वचन सुन कर

प्रसन्न हो कर गिरिप्रिया से देवी बोली ।।४७।। देवी बोली- हे मेना! तुमने पहले मेरी सेवा की है, तुम्हारी भक्ति से मैं प्रसन्न हो कर वर देने के लिये तुम्हारे समीप गई ।।४८।। और वर मांगो ऐसे वचन से तुमने यह वर मांगा, हे महादेवि! आप मेरी कन्या हो कर देवताओं का हित करें ।।४९।। आदर से मैं तुम्हें वर दे कर अपने स्थान को चली गई। हे गिरिकामिनी! अब समय को प्राप्त हो कर मैं तुम्हारी कन्या हुई हूँ ।।५०।। यह दिव्य रूप इस कारण धारण किया कि, तुम्हें मेरा स्मरण हो जाए, अन्यथा मर्त्यभाव से मुझ में तुम्हें मानुषीज्ञान होता ।।५१।। तुम दोनों ही मुझे पुत्री भाव से अथवा दिव्य भाव से ध्यान कर स्नेह करोगे तो मेरी गति को प्राप्त होगे ।।५२।। पृथ्वी पर अद्‌भुत लीला कर मैं देवकार्य करूंगी, शिवपत्नी हो कर सज्जनों को तारूंगी ।।५३।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार से कह कर जगदम्बा शिवा मौन हो गई और अपनी माया से माता को प्रीति से देखती हुई तत्काल बालिका हो गई ।।५४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
तृतीये पार्वतीखण्डे पार्वतीजन्मवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ।। ६ ।।

*****

सातवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले- तब वह महाकान्तिमान् मेना के सम्मुख महाकान्तिमती कन्या हो कर लौकिकी गति को आश्रय कर रोदन करने लगी ।।१।। सावैर की शय्या में उस के मुख के तेज से अर्द्धरात्रि के दीपक निस्तेज चित्र के समान रह गये ।।२।। उस मनोहर रोदन को सुन कर गृह की सब्र स्त्रियां चली आईं और प्रीतिपूर्वक बड़ी प्रसन्न हुईं ।।३।। शुद्धान्तः पुरचारी ने यह समाचार राजा को सुनाया, कि देवताओं को सुखदायक पार्वती का जन्म हुआ है ।।४।। पुत्री का जन्म सुन कर गिरिराज ने श्वेतछत्र के सिवाय उसे समस्त मनोरथ देने की इच्छा की ।।५।। पुरोहित ब्राह्मणों के सहित गिरिराज वहां गये और अपनी कान्ति से शोभायमान कन्या को वहां देखा ।।६।। जो नीलोत्पल दल के समान श्यामवर्ण श्रेष्ठ द्युति से मनोहर ऐसी कन्या को देख कर गिरिराज बड़े प्रसन्न हुए ।।७।। सब पुरवासी पुरुष और स्त्रियां प्रसन्न हुईं, वहां बड़ा उत्सव हुआ और अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे ।।८।। मङ्गलगान होने लगा, वेश्या नृत्य करने लगी, जातकर्म कर के ब्राह्मणों को बड़ा दान दिया गया ।।९।। फिर द्वार पर आ कर भी गिरिराज ने बड़ा उत्सव किया, हिमाचल ने प्रसन्न हो कर भिक्षुकों को बड़ा धन दिया ।।१०।। तब अच्छे मुहूर्त्त पर हिमालय ने मुनियों के साथ सुता के काली

इत्यादि सुखदायक नाम किये। काली, तारा, महाविद्या, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, विद्या, धूमावती, बगलामुखी, सिद्धविद्या, मातङ्गी, कमलात्मिका।।११।। उस समय ब्राह्मणों को आदर से बड़ा दान दिया और गानपूर्वक बहुत सा उत्सव कराया।।१२।। देवी को बारंबार देखते हुए इस प्रकार बड़ा उत्सव कराया। बहुत पुत्रवाले गिरिराज ने पत्नी सहित बड़ा सुख माना।।१३।। इस प्रकार गिरिराज के घर शिवा बढ़ने लगी, जैसे वर्षा समय में गंगा वा शरद ऋतु की चान्दनी।।१४।। इस प्रकार से सुन्दर अंग वाली, सुन्दर दर्शन वाली कालिकादेवी प्रतिदिन चन्द्रमा के समान सुन्दरता को बढ़ाने लगी।।१५।। कुलोचित पार्वती नाम ले कर सब उच्चारण करने लगे, बन्धुप्रिय बन्धुजन सुशीलता और गुणों से युक्त नाम लेने लगे।।१६।। जब माता ने भगवती को तप के लिये निषेध किया, हे मुने! तब से वह सुमुखी उमा नाम से विख्यात हुई।।१७।। सब सौभाग्य से युक्त पार्वती को देखते हुए अनेक पुत्र होने पर भी पर्वतराज तृप्त नहीं होते थे।।१८।। हे मुनीश्वरे! जिस प्रकार वसन्त में अनन्त पुष्पों के रस होने पर भृङ्गावलि विशेष कर आम के मौर पर ही बैठती है।।१९।। इसी प्रकार भगवती से पर्वतराज पवित्र और भूषित हुए, जैसे पण्डित व्याकरणादि संस्कार वाली वाणी से विभूषित और पवित्र होता है, उसी प्रकार हिमालय हुए।।२०।। जैसे दीपक की बड़ी शिखा से मन्दिर वेदत्रय के मार्ग से मार्ग शोभित होता है, उसी प्रकार पर्वतराज पार्वती से शोभायमान हुए।।२१।। वह भगवती अपनी सखीजनों के मध्य में प्राप्त हो कर गंगा के किनारे की भूमियों में बारंबार कन्दुकों से अथ च बनाकटी पुत्रों से और घरों से इत्यादिकों से रमण करने लगी।।२२।। हे मुने! तदनन्तर शिवादेवी उपदेश के समय में गुरु से मन लगा कर विद्या पढ़ने लगी।।२३।। शरद ऋतु में हंसाली स्वर्ण नदी को और रात्रि में प्रकाश औषधियों को जैसा प्राप्त होता है, इन्हीं के समान प्राक्तन विद्या उसको प्राप्त हो गई।।२४।। इस प्रकार यह कुछ भगवती की लीला आपसे कही, हे मुने! अब प्रसन्नता से दूसरी लीलाएँ सुनिये।।२५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
तृतीये पार्वतीखण्डे पार्वतीबाल्यलीलावर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः।। ७ ।।

*****

आठवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले- एक समय आप शिवज्ञानी, शिवलीला जानने वालों में चतुर, शिवजी से प्रेरित हो कर प्रेम से हिमालय के यहां गये ।।१।। हे मुने! गिरिराज ने आपको देखते ही आपका सत्कार कर अपनी तनया को बुला कर आपके चरणों में गिराया ।।२।। हे मुनीश! फिर आपको प्रणाम कर, हाथ जोड़ कर, अपने भाग्य को सराहते विधिपूर्वक मस्तक झुका कर हिमालय ने कहा ।।३।। हिमालय बोले- हे नारदमुनि! हे ज्ञानी, हे ब्रह्मपुत्र! हे प्रभो! आप सर्वज्ञ करुणा ही कर के परोपकार करने में तत्पर हो ।।४।। आप मेरी कन्या के गुण दोष कहिये, मेरी कन्या का पति कौन होगा और वह कैसी भाग्यवती कन्या होगी? ।।५।। ब्रह्माजी बोले- हे मुनिश्रेष्ठ! जब इस प्रकार से हिमालय ने कहा, तब नारदजी भवानी का हाथ और मुख चरणादि अंग देख कर ।।६।। कौतुकपूर्वक बोलने वालों में चतुर आप कहने लगे; हे नारदजी! आप तो ज्ञानी और सब वृत्तान्त जानने वाले हो ।।७।। नारदजी बोले- यह आपकी कन्या चन्द्रकला के समान बढ़ती है। हे मैने! हे शैलराज! यह सब लक्षण संयुक्त आद्या कला है ।।८।। अपने पति को अत्यन्त सुखदायिनी और पति की कीर्ति बढ़ाने वाली होगी। सब नारियों में महापतिव्रता होगी और सब को महा आनन्द करने वाली होगी ।।९।। हे पर्वतराज! आपकी सुता के हाथ में सम्पूर्ण सुलक्षण हैं और एक रेखा बड़ी विलक्षण है, उसका फल सुनिये ।।१०।। योगी, नंगा, गुण रहित, अकाम, माता-पिता से रहित, अमङ्गलवेष ऐसा स्वामी इसे मिलेगा ।।११।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार आपके वचन सुन कर यह दोनों स्त्री-पुरुष सत्य मान कर मेना और हिमाचल दोनों दुःखी हुए ।।१२।। जगदम्बिका शिवा इस प्रकार के वचन सुन कर शिवजी में यह लक्षण विचार कर मन में बड़ी प्रसन्न हुई ।।१३।। भगवती ने विचार किया कि, नारदजी के वचन असत्य नहीं होंगे, हृदय से शिवजी के चरणों में बड़ा प्रेम किया ।।१४।। तब हे नारदजी! दुःखी हो कर पर्वतराज आपसे कहने लगे, हे मुने! मैं क्या उपाय करूं? मुझे तो बड़ा दुःख है ।।१५।। हे मुने! यह वचन सुन कर महाकौतुकी आप हिमालय को शुभ वचनों से प्रसन्न करते हुए बोले ।।१६।। नारदजी बोले- हे गिरे! स्नेह से मेरा वचन सुनिये, जो कभी मिथ्या नहीं होता। कर रेखा तथा ब्रह्माजी की लिपि कभी मिथ्या नहीं होती ।।१७।। हे शैल! पति तो इसे वैसा ही मिलेगा, इसमें सन्देह नहीं। अब प्रेम से यह उपाय कीजिये, जिसे करने से सुख मिले ।।१८।। इस प्रकार के लक्षण लीलारूपधारी शंकरजी में पाये जाते हैं, जितने कुलक्षण हैं शंकरजी में वह सब सुलक्षण ही हैं ।।१९।।

प्रभुओं में दोष भी दुःख के निमित्त नहीं होते; कारण कि वह दुःख दूर करने में समर्थ हैं। रविपावक और गंगा में अशुभ वस्तु पड़ने से जैसे वह कुछ दोष नहीं होता है ।।२०।। इस कारण ज्ञानपूर्वक इस अपनी कन्या को शिवजी के निमित्त प्रदान करें। शिवजी ही सर्वेश्वर, सेव्य, अविकारी, अविनाशी हैं ।।२१।। शीघ्र प्रसाद देने वाले शिवजी शिवा को अवश्य ग्रहण करेंगे, सो शंकरजी तप से सिद्ध हो सकते हैं, यदि आपकी पुत्री तपस्या करे ।।२२।। तो सकलेश्वर शिवजी सदा ही समर्थ हैं, वज्र का भी विध्वंस कर सकते हैं। ब्रह्माजी उनके आधीन हैं तथा शुभगति देने वाले हैं ।।२३।। ब्रह्माजी बोले- कौतुकी ब्रह्मवित् आप इस प्रकार हिमाचल से कह कर सुन्दर वचनों से शैलराज को प्रसन्न करते फिर बोले ।।२४।। यह तो शिवजी की ही भाविनी दयिता है, शिवजी में सदा सानुकूल है; कारण कि यह महासाध्वी सुव्रता, माता-पिता के सुख को बढ़ाने वाली है ।।२५।। यह शिवजी का चित्त अपने वश में करेगी, इस तपस्विनी के सिवाय शिवजी अन्य को विवाहेंगे नहीं ।।२६।। इन शिवाशिव के प्रेम के समान किसी का प्रेम न होगा, न है, न किसी का हुआ ।।२७।। यही दोनों देवताओं के नष्ट हुए कार्यों को करेंगे। हे श्रेष्ठ! जो-जो कार्य हैं, वह-वह सब किये जायेंगे ।।२८।। हे पर्वतराज! इस आपकी कन्या से शिवजी अर्द्धनारीश्वर कहलायेंगे, इनका यह मेल प्राथमिक नहीं है, पुनर्मेल है ।।२९।। यह आपकी सुता शिवजी का आधा शरीर हरण करेगी, तप के प्रभाव से सकलेश्वर शिवजी को सन्तुष्ट करेगी ।।३०।। यह आपकी पुत्री स्वर्ण गौरी, सुवर्ण की कान्ति वाली तप से शिवजी को सन्तुष्ट कर बिजली के समान गौरवर्ण वाली होगी ।।३१।। गौरी नाम से आपकी कन्या विख्यात होगी। हरि, ब्रह्मादि सब देवताओं से आपकी कन्या पूज्य होगी ।।३२।। हे पर्वतराज! इसे आप और किसी को नहीं दे सकते, यह देवताओं के समीप भी प्रकाशित नहीं करना ।।३३।। ब्रह्माजी बोले- हे देवर्षि नारदजी! आपके यह वचन सुन कर बोलने वालों में चतुर हिमालय कहने लगे ।।३४।। हिमालय बोले- हे मुने! हे नारदजी! हे पण्डित वर! मेरी यह विज्ञप्ति है, मैं जो प्रेम से विज्ञप्ति करता हूँ, उसे आप प्रेम से सुनिये ।।३५।। ऐसा सुना जाता है कि, महादेवजी संग रहित यतात्मा हैं, वह देवताओं को अगोचर नित्य तपस्या करते हैं ।।३६।। वह ध्यानमार्ग में स्थित परब्रह्म अपने रूप में मन लगाये किस प्रकार संसारी कार्य करेंगे, यह मुझे बड़ा सन्देह है ।।३७।। परब्रह्म अक्षर प्रदीप कलिका के समान हैं, वह सदाशिव वाला उनका निज रूप निर्विकार, अजन्मा और पद है ।।३८।। वह निर्गुण-सगुण निर्विशेष निरीह है, वह सर्वत्र देखते हैं, बाह्य विषयों को मन से नहीं देखते हैं ।।३९।। हे मुने! यह बात यहां आये हुए किन्नरों के मुख से प्रीति से कही नित्य सुनी जाती है, वह मिथ्या कैसी हो सकती है?।।४०।। विशेष कर साक्षात् नाम से महेश्वर हर सुने जाते हैं, उन्होंने जो पहले प्रतिज्ञा की है, उसे मुझ से सुनिये ।।४१।। हे प्रिये!

हे दाक्षायणी! तुम्हारे सिवाय दूसरी को मैं नहीं वरूंगा, भार्या के निमित्त मैं तुम्हें ही ग्रहण करूंगा, यह मेरा वचन सत्य है।।४२।। यह सती के साथ उन्हों ने पहले ही प्रतिज्ञा कर ली है, उसके मरने पर वह और को कैसे ग्रहण करेंगे।।४३।। यह कह कर गिरिराज उनके आगे मौन हो गये, यह सुन कर नारदजी आप इस प्रकार तत्त्व से कहने लगे।।४४।। नारदजी बोले- हे महामते गिरिराज! यह चिन्ता नहीं करनी चाहिये, यह आपकी सुता काली पहले दक्षकन्या हो चुकी है।।४५।। इसका नाम सती था और यह सब मंगल की देने वाली थी, यह सती दक्ष की कन्या रुद्र की प्रिया हुई।।४६।। पिता के यज्ञ में शंकरजी के अनादर को प्राप्त हो कर, कोप को प्राप्त हो कर सती ने देह त्याग कर दिया।।४७।। वही अम्बिका शिवा फिर आपके घर में प्रकट हुई, यह पार्वती शंकरजी की पत्नी होगी, इसमें सन्देह नहीं है।।४८।। हे मुने! यह सब बात आपने विस्तार से पर्वतराज से कही थी, जो पार्वती का पूर्व रूप और चरित्र प्रीति का बढ़ाने वाला था।।४९।। आपके मुख से काली के उस सम्पूर्ण पूर्व वृत्तान्त को सुन कर पर्वतराज पुत्र-स्त्री के सहित सन्देह रहित हो गये।।५०।। तब काली नारदजी के मुख से यह कथा सुन कर लज्जा से मुख नीचा कर के कुछेक हास्यमुखी हो गई।।५१।। गिरिराज ने यह सब चरित्र सुन कर और हाथ से उसे स्पर्श कर तथा सिर सूंघ कर उसे अपने आसन के समीप बैठाया।।५२।। तब आप, हे मुनि! वहां भगवती को स्थित हुए देख कर पुत्रों सहित गिरिराज और मैना को प्रसन्न करते हुए बोले।।५३।। हे शैलराज! इसके बैठने का उत्तम सिंहासन रूप आसन तो सदाशिवजी की जंघा होगी।।५४।। आपकी तनया रत्नसिंहासन पर भी निरन्तर शिवजी की ऊरू ही को आसन प्राप्त करेगी, जहां पर किस का मन और दृष्टि नहीं जायेगी।।५५।। ब्रह्माजी बोले- हे नारदजी! इस प्रकार आप उदार वचन कह कर गिरिराज से बिदा हो कर स्वर्ग को गये और प्रसन्न हो कर गिरिराज भी सब सम्पत्ति से उदार समृद्ध अपने घर में प्रविष्ट हुए।।५६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
तृतीये पार्वतीखण्डे नारदहिमालयसंवादवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः।। ८ ।।

*****

नववाँ अध्याय

नारदजी बोले- हे विधे! हे तात! हे शैववर! आपने शिवजी की बड़ी अद्भुत कथा सुनाई, करुणा कर आपने जो कथा मुझ से कही इस से मेरे मन में बहुत प्रीति बढ़ी ।।१।। हे विधे! जब मैं अपने स्थान को चला गया और दिव्यदर्शन हिमवान् अपने स्थान को गये, हे तात! तब क्या हुआ? कृपा कर के मुझसे आप यह सब कहिये ।।२।। ब्रह्माजी बोले-- हे मुने! आपके स्वर्ग जाने पर कुछ काल के बीतने पर एक समय मेना गिरिराज के निकट आ कर प्रणाम कर के बोली ।।३।। प्राणसदृश प्रिय है पुत्री जिसको, ऐसी वह गिरिकामिनी सती विनयपूर्वक अपने नाथ शैलनाथ से बोली ।।४।। मेना बोली- हे स्वामी! नारी के स्वभाव से मैंने मुनिराज के वचन भली प्रकार नहीं समझे, कन्या का विवाह तो सुन्दर वर के साथ होना चाहिये ।।५।। कारण कि अपूर्व सुख देने वाला विवाह सर्वदा ही सुखदायक होता है, इस से गिरिजा को सुलक्षण और कुलीन वर मिलना चाहिये ।।६।। हे प्रिय! जिस प्रकार मेरी प्राणप्रिया कन्या अच्छा वर प्राप्त हो कर सुखी हो, सो कीजिये, आपको प्रणाम है ।।७।। ब्रह्माजी बोले- यह कह कर आँखों में आँसू भर कर मेना पति के चरणों में गिरी, चतुर गिरिराज उसे उठा कर कहने लगे ।।८।। हिमालय बोले- हे मेनकादेवि! मैं यथार्थ कहता हूँ, तुम तत्त्व से सुनो, तुम भ्रम का त्याग करो, मुनि के वचन कभी असत्य नहीं होते हैं ।।९।। यदि पुत्री पर तुम्हारा प्रेम है, तो आदर से जा कर उसे शिक्षा दो कि वह भक्तिपूर्वक स्थिरचित्त से शिवजी का तप करे ।।१०।। हे मेना! यदि प्रसन्न हो कर शिवजी काली का पाणिग्रहण करें तो सब शुभ हो जायेगा और नारदजी का कहा अममंल दूर हो जायेगा ।।११।। सम्पूर्ण अमंगल सदाशिवजी में मंगल हो जाते हैं, इस कारण शिवजी की प्राप्ति के लिये सुता को तप करने के लिये शिक्षा दो ।।१२।। ब्रह्माजी बोले- पर्वतराज के यह वचन सुन कर मेना बहुत प्रसन्न हुई और तप करने की शिक्षा देने के निमित्त सुता के समीप गई ।।१३।। सुता के अंग अत्यन्त सुकुमार देख कर मेनका व्याकुल हुई और तत्काल उस के दोनों नेत्रों में जल भर आया ।।१४।। गिरिप्रिया सुता को उपदेश देने में समर्थ न हुई, परन्तु पार्वती ने माता की समस्त चेष्टा समझ ली ।।१५।। तब सर्वज्ञा परमेश्वरी कालिकादेवी अपनी जननी माता को बारंबार समझाती हुई बोली ।।१६।। पार्वती बोली- हे मैया! हे महाचतुरे! आज रात्रि के ब्राह्ममुहूर्त्त में मैंने एक स्वप्न देखा है; कहती हूँ, कृपा कर के सुनो ।।१७।। एक तपस्वी ब्राह्मण मुझ से दया और प्रीति के सहित शिवजी के उद्देश्य से तप करने के लिये कहता है ।।१८।। ब्रह्माजी बोले-

यह सुनते ही मेना ने शीघ्र ही पति को बुला कर उन्हें सुता ने देखा हुआ वह स्वप्न सुनाया ।।१९।। गिरिराज मेना के मुख से सुता ने देखा हुआ स्वप्न सुन कर परम प्रसन्न हो कर अपनी प्रिया से बोले ।।२०।। गिरिराज बोले- हे प्रिये! रात्रि बीतने में मैंने भी स्वप्न देखा है, उसे तुम सुनो, मैं आदर से कहता हूँ।।२१।। एक परम उत्तम तपस्वी वर नारदजी के कहे हुए अंग को धारण किये, मेरे पुर के समीप तपस्या करने आया ।।२२।। मैं बहुत प्रसन्न हो कर, अपनी सुता को ले कर उसके समीप गया और मैंने जाना कि, नारदजी के कहे हुए वर शिवजी हैं।।२३।। उन तपस्वी की सेवा के लिये अपनी तनया को समर्पण कर के मैंने सेवा के लिये प्रार्थना की, पर उन्हों ने कन्या द्वारा सेवा स्वीकार न की।।२४।। उस समय सांख्य और वेदान्त सम्मत बहुत विवाद हुआ, तब उनकी आज्ञा से सेवा के निमित्त मेरी सुता स्थित हुई।।२५।। हृदय में उनकी इच्छा को धारण कर मेरी कन्या भक्तिपूर्वक उनकी सेवा करने लगी। हे वरानने! यही स्वप्न मैंने देखा था, सो तुम्हें सुना दिया।।२६।। हे प्रिये! सो कुछ समय तक इस बात की प्रतीक्षा करो, जो योग्य समझो, तो मेरी सम्मति स्वीकार करो।।२७।। ब्रह्माजी बोले- जब गिरिराज ने ऐसा कहा तब मेनका और गिरिराज शुद्धचित्त से कुछ काल तक इस बात की प्रतिक्षा करते रहे।।२८।। कुछ समय जब बीता, तब वह परमेश सत्पुरुषों की गति सती के विरह में सर्वत्र भ्रमण करते हुए।।२९।। प्रभु अपने कुछेक गण साथ में ले कर सती के प्रेम से विरहाकुल मन से तप करने के निमित्त वहां आये।।३०।। और वहां तप करने लगे और पार्वती उनकी सेवा करने लगी, सखियों के सहित नित्य उनको प्रसन्न करने लगी।।३१।। कामबाण से विद्ध हो कर भी शंकरजी विकार को प्राप्त न हुए, देवताओं ने उनके मोहने के निमित्त कामदेव को भेजा।।३२।। तब शंकरजी ने अपनी नेत्राग्नि से कामदेव को भस्म कर दिया और मेरे वचन स्मरण कर, आप अन्तर्धान हो गये।।३३।। फिर कितने एक समय के पश्चात् गिरिजा ने मद दूर कर के महातप किया; जिस से शिवजी प्रसन्न हो गये।।३४।। लौकिकाचार को मान कर विष्णुजी ने शंकरजी को प्रसन्न किया, शिवजी ने पार्वती के साथ विवाह किया, उस अवसर में बड़ा मंगल हुआ।।३५।। हे तात! इस प्रकार संक्षेप से यह शिवजी का चरित्र आपसे कहा, यह शंकरजी का परमदिव्य चरित्र है, अब क्या सुनने की इच्छा है?।।३६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

तृतीये पार्वतीखण्डे स्वप्नवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः।। ९ ।।

*****

दसवाँ अध्याय

नारदजी बोले– हे विष्णुशिष्य! हे महाभाग! हे विधे! हे प्रभो! हे शैवश्रेष्ठ! आप इस शिवलीला को विस्तार पूर्वक मुझ से कहिये।।१।। सती के विरह को प्राप्त हुए शिवजी ने फिर क्या किया? वह हिमालय पर्वत के ऊपर किस समय तपस्या करने आये?।।२।। शिवा–शिव का विवाद किस प्रकार हुआ? कामक्षय किस प्रकार हुआ? पार्वती ने तप कर के शिवजी को किस प्रकार प्राप्त किया?।।३।। हे ब्रह्मन्! यह सब तथा महान् आनन्द करने वाला शिवजी का दूसरा चरित्र भी मुझसे कहिये।।४।। सूतजी बोले– इस प्रकार से नारदजी के वचन सुन कर शिवजी के चरणकमलों को स्मरण कर विधाता प्रसन्न हो कर बोले।।५।। ब्रह्माजी बोले– हे देवर्षे नारदजी! हे शैवश्रेष्ठ! आदर से शिवजी का यश सुनिये, जो उत्तम, परमपवित्र, मंगल करने वाला और उत्तम भक्ति को बढ़ाने वाला है।।६।। प्रिया के विरह में कातर शिवजी अपने पर्वत पर आ कर, अपनी प्राणप्यारी सती देवी को हृदय से स्मरण करने लगे।।७।। सोचते हुए गणों से सती के प्रेम बढ़ाने वाले गुण कहने लगे और लौकिक की गति को स्मरण करते हुए, पुरातन गाथा कहने लगे।।८।। फिर गृहस्थ की सद्गति को छोड़ कर, सब लीलाओं में विशारद शंकरजी दिगम्बर रहने लगे और सब लोकों में भ्रमण करने लगे।।९।। सती के विरह से दुःखी हुए, कहीं उसके दर्शन को प्राप्त न हो कर ,फिर भी कल्याणकारी शंकरजी भक्त गिर के स्थान पर आये।।१०।। फिर यत्न से मन को सावधान कर, दुःखनाशिनी समाधि लगा कर अपना अविनाशी रूप देखने लगे।।११।। इस प्रकार त्रिगुणों से परे शंकरजी बहुत समय तक अपने पर्वत पर स्थित रहे, वह निर्विकार परब्रह्म, मायाधीश, स्वयं प्रभु हैं।।१२।। फिर बहुत दिनों के बीत जाने पर शंकरजी ने समाधि त्याग दी, उस समय जो–जो चरित्र हुआ, वह–वह मैं सब कहता हूँ।।१३।। तप करते समय प्रभु के ललाटस्थान से जो पसीना गिरा, उससे एक बालक प्रकट हुआ।।१४।। चार भुजा, अरुण आकार, मनोहर आकृति, अलौकिक, श्रीमान् तेजस्वी, शत्रुओं को दुःसह था।।१५।। वह बालक परमेश्वर शंकरजी के समीप रोने लगा, जैसे कोई साधारण बालक रोता हो, इस प्रकार वह भवाचार रत शिवजी का पुत्र हुआ।।१६।। फिर बुद्धि से विचार कर, पृथ्वीदेवी स्वयं स्त्री का शरीर धारण कर के शंकरजी से भय मान कर प्रकट हो गई।।१७।। और उस बालक को उठा कर खिलाने लगी तथा अपना दूध पिलाने लगी।।१८।। हँस कर प्रेम से उसका मुख चूमने लगी और

सत्यभाव से बालक के प्रेम से माता परमेश का हित करने लगी ।।१९।। कौतुकी शंकरजी कृती इस प्रकार के चरित्र को देख कर, अन्तर्यामी हँसते हुए पृथ्वी से बोले ।।२०।। हे भूमि! तुम धन्य हो, प्रेम से इस मेरे बालक को पालो, मेरे श्रम के जल से यह तुझ में उत्पन्न हुआ यह महातेजस्वी श्रेष्ठ होगा, तुम इससे अद्भुत प्रेम करो ।।२१।। यद्यपि यह बालक पृथ्वी पर मेरा प्रियकारी होगा, तो भी हे भूमि! तेरे नाम से यह विख्यात हो कर सदा तीनों तापों से रहित होगा ।।२२।। यह बालक भूमिदानी बड़ा गुणी होगा और यह मुझे भी सुख देने वाला होगा, यथा रुचि तुम इसे ग्रहण करो ।।२३।। ब्रह्माजी बोले– यह कह कर कुछेक वियोग से बुद्धि को हटा कर शंकरजी विराम को प्राप्त हुए। यह भगवान् शंकर निर्विकारी हैं, परन्तु सत्पुरुषों की प्रियता के कारण लोकाचार करते हैं ।।२४।। तब पृथ्वी शिवजी का आज्ञा पा कर चली गई और सुत सहित अपने स्थान को प्राप्त हो कर बड़ा सुख माना ।।२५।। वह बालक भौम नाम को प्राप्त हो कर तत्काल ही युवा हो गया और काशी में चिरकाल तक भगवान् शंकरजी की सेवा करता रहा ।।२६।। वह भूमिपुत्र शिवजी की कृपा से ग्रहत्व को प्राप्त हो कर शुक्रलोक से भी आगे दिव्यलोक को प्राप्त हुआ ।।२७।। यह सती के विरह के समय का शिवजी का चरित्र आपसे कहा। हे मुने! अब आदर से शिवजी की तपस्या का वर्णन सुनिये ।।२८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
तृतीये पार्वतीखण्डे भौमोत्पत्तिवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ।। १० ।।

*****

ग्यारहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– जिस समय वह लोकपूजित हिमालय की पुत्री साक्षात् शक्ति रूप से हिमालय के घर में बढ़ने लगी और हिमालय के घर में सती आठ वर्ष की हुई ।।१।। तब कैलासपति पार्वती का जन्म जान कर विरह से कातर हो गये, और हे नारदजी! उसे जान कर मन में बड़े प्रसन्न हुए ।।२।। शिवजी उसी समय लौकिकी गति का आश्रय कर मन सावधान करने की इच्छा से तपस्या में मन लगाने की इच्छा करने लगे ।।३।। कुछ एक नन्दी आदि शान्त और श्रेष्ठ गणों को साथ ले कर हिमालय के शिखर के समीप गंगावतरण स्थान पर आये ।।४।। हे मुने! जहां ब्रह्माजी के कमण्डलु से गंगाजी निपतित हुई हैं, जो समस्त पाप दूर करने वाली परम पावनी हैं ।।५।। वहां शिवजी मन के निग्रह पूर्वक तपस्या करने लगे और आलस्य रहित हो कर एकाग्र चित्त से अपनी

आत्मा को चिन्तन करने लगे ।।६।। जो सबका चैतन्य करने वाला ज्ञान से प्रकट नित्य ज्योति स्वरूप निरामय जगत् में व्याप्त चिदानन्द द्वैत हीन किसी के आश्रय में रहने वाले नहीं हैं ।।७।। जिस समय भगवान् शंकरजी अपने आत्मा का ध्यान करने लगे, उस समय प्रमथ और नन्दी आदि गण तथा भृङ्गी आदि गण भी ध्यान में तत्पर हो गये ।।८।। और कोई-कोई गण परात्मा शंकरजी की सेवा करने लगे और कोई मौन हो कर कुछ भी न बोले, केवल द्वारपालता करने लगे ।।९।। उसी समय वहां हिमालय आये, उस औषधी वाले शिखर में शंकरजी का आगमन सुन कर आदर से ।।१०।। पर्वतराज अपने सेवक वर्गों के सहित प्रभु को प्रणाम करने आये और गणों सहित उनकी पूजा कर हाथ जोड़ कर प्रणाम कर स्तुति करने लगे ।।११।। हिमालय बोले- हे देव देव महादेव! हे कपर्दिग! हे प्रभो! हे शंकरजी! आप लोकनाथ ने तीनों भुवनों की पालना की है ।।१२।। हे देवदेवेश! हे योगी रूपधारी! आपको प्रणाम है। निर्गुण भी सगुण रूप से विहार करने वाले आपको प्रणाम है ।।१३।। आप कैलासवासी शिव, सब लोक में विचरने वाले परमेश्वर, लीला करने वाले शूलधारी हो, आपको नमस्कार है ।।१४।। आप परिपूर्ण गुणों के आकार-विकार रहित हैं, स्वयं इच्छा रहित भी भक्तों के निमित्त इच्छा वाले हो, इस से धीर और परमात्मा आप ही जाने जाते हो ।।१५।। बाहर के भोग न करने वाले, भक्तों के ऊपर कृपा करने वाले आपको नमस्कार है, तीनों गुणों के अधीश्वर, माया के पति परमात्मा ब्रह्म आपको नमस्कार है ।।१६।। ब्रह्मा-विष्णु आदि आपकी सेवा करते हैं, आप ब्रह्मा और विष्णु के स्वरूप हो, आप ब्रह्मा-विष्णुजी को सब कुछ देते हो, भक्तों के प्यारे हो, आपको नमस्कार है ।।१७।। आप तपस्या में रत, तपस्या के स्थान, अच्छे तप का फल देने वाले हो, तप को प्यार करने वाले शान्त ब्रह्म रूप, आपको प्रणाम है ।।१८।। आप व्यवहार और लोकाचार भी करते हैं, सगुण परेश परमात्मरूप आपको प्रणाम है ।।१९।। हे परमेशान! आपकी लीला को कोई नहीं जानता है, आपकी लीला साधुओं को सुख देने वाली है, आप भक्तों के अधीन स्वरूप वाले हो, आप भक्तों के वशीभूत हो कर कर्म करते हो ।।२०।। हे प्रभो! मेरे भाग्योदय के कारण से आप यहां आये हो, हे दीनवत्सल! आपने मुझे सनाथ कर दिया है ।।२१।। आज मेरा जीवन और जन्म सफल है, आज मेरा सब ही सफल है जो कि, आपका यहां आगमन हुआ है ।।२२।। हे महेश्वरजी! अपना दास जान कर मुझे आप निस्संकोच आज्ञा दीजिये। मैं अनन्य बुद्धि हो कर प्रेम से आपकी सेवा करूंगा ।।२३।। ब्रह्माजी बोले- गिरीश के यह वचन सुन कर महेश्वर कुछेक नेत्र खोल कर गणों सहित गिरीश को देखने लगे ।।२४।। वृषभध्वज ने इस प्रकार गणों सहित गिरिराज को देखा और जगत्पति ध्यानयोग में स्थित हो कर कुछ हँसते हुए बोले ।।२५।। शंकरजी बोले- मैं एकान्त में आपके स्थान में तपस्या करने आया हूँ,

आप ऐसा कीजिये कि, कोई मेरे समीप न आवे ।।२६।। आप बड़े महात्मा तप के स्थान हो, तपोधन मुनि सदा आपके आश्रित रहते हैं। देवता, राक्षस तथा दूसरे महात्माओं के आश्रय हो ।।२७।। सदा आप में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य निवास करते हैं। परम पवित्र गंगा सदा आपके शिखर पर वहन करती है, आप सबमें श्रेष्ठ परोपकारी हो, गिरियों केअधिपति प्रभु हो ।।२८।। इस गंगावतरण में मैं तपस्या करूंगा। हे गिरिराज! आप इन्द्रिय निग्रह में परायण हो, मैं प्रेम से आपका आश्रित रहूंगा ।।२९।। हे गिरिश्रेष्ठ! जिस कारण से मेरी तपस्या निर्विघ्न हो, इस प्रकार से यत्न आपको करना चाहिये ।।३०।। हे पर्वतश्रेष्ठ! मेरी यही परम सेवा है कि, आप घर जा कर प्रेम से मेरी तपश्चर्या निर्विघ्न होने का यत्न कीजिये ।।३१।। ब्रह्माजी बोले- जगत् के स्वामी भगवान् इस प्रकार की आज्ञा दे कर मौन हुए और गिरिराज बहुत नम्र हो कर इस प्रकार के वचन शिवजी से बोले ।।३२।। हिमालय बोले- हे जगत्पति! हे नाथ! मैंने आपकी पूजा की है, आपका स्वागत हो, यहां आप स्थित होइये, मैं आपकी और क्या प्रार्थना करूं? ।।३३।। हे महेशान! देवताओं के बड़े-बड़े यत्न और तपस्या से भी आप प्राप्त नहीं हो सकते, सो आप स्वयं ही मेरे स्थान पर पधारे हैं ।।३४।। मेरे समान भाग्यवान् बड़ाई के योग्य कोई दूसरा नहीं, मेरे पृष्ठ पर जो आप तप करने आये हैं, यह मेरा बड़ा भाग्य है ।।३५।। हे परमेश्वर! मैं तो अपने को देवेन्द्र आदि से भी विशेष मानता हूँ, आपने गणों सहित यहां पधार कर मुझे अनुग्रह का भाजन बना दिया है ।।३६।। हे देव! आप यहां स्वतन्त्रता से निर्विघ्न तपस्या कीजिये, मैं आपकी सेवा करूंगा। हे प्रभो! मैं आपका सदा का दास हूँ।।३७।। ब्रह्माजी बोले- गिरिराज ऐसा कह कर शीघ्रता से अपने स्थान को आये और आदर से अपनी प्रिया से सब वृत्तान्त कहा ।।३८।। हे नारदजी! उस समय हिमालय ने अपने परिवार के सब सेवकों को बुला कर यह वचन कहे ।।३९।। हिमालय बाले- आज से ले कर कोई भी गंगावतरण स्थान की ओर मत जाना, यह मेरी आज्ञा है, इसे सब मानना, यह मैं सत्य कहता हूँ।।४०।। और यदि कोई वहां जायगा, तो मैं उस दुष्ट को अवश्य दण्ड दूंगा, यह मैं सत्य ही कहता हूँ।।४१।। हे मुने! इस प्रकार अपने सब सेवक वर्गों को समझा कर शैलराज ने जो सुयत्न किया था, सो सुनिये। मैं आपसे कहता हूँ।।४२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
तृतीये पार्वतीखण्डे शिवशैलसमागमवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ।। ११ ।।

*****

बारहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले- तब हिमालय प्रसन्न हो कर अच्छे पुष्प और फलों को ले कर अपनी पुत्री के सहित शिवजी के समीप गये।।१।। और जा कर ध्यान में तत्पर त्रिलोकीनाथ को प्रणाम कर काली नाम की अपनी अद्भुत कन्या को शंकरजी को अर्पण किया।।२।। और उन सब पुष्प-फलादि को शंकरजी के आगे रख कर और सुता को आगे कर के इस प्रकार के वचन कहे।।३।। हिमालय ने कहा- हे भगवन्! यह मेरी कन्या आपकी सेवा करने को उत्सुक है, इस कारण इसे मैं आपके समीप लाया हूँ।।४।। सखियों के सहित यह नित्य आपकी सेवा करेगी, इस कारण यदि आपकी मेरे ऊपर कृपा है, तो आप अवश्य इसे सेवा में स्वीकार करने की आज्ञा दीजिये।।५।। ब्रह्माजी बोले- भगवान् शंकरजी ने उस कन्या को यौवनावस्था की प्रथमावस्था में देखा, जो फूले नीलकमल के समान कान्ति वाली, पूर्णचन्द्र के समान मुखवाली थी।।६।। सम्पूर्ण लीलाओं का स्थान, सुन्दर वेष से प्रकाशित, शंख के समान गर्दन, विशाल नेत्र, सुन्दर दोनों कानों के कर्णभूषणों से उज्ज्वल।।७।। मृणाल के समान चिकनी लम्बायमान भुजा, कमलकली के समान घने दृढ़ दोनों स्तन।।८।। धारण किये, पतली कमर, त्रिवली युक्त मध्यभाग से शोभायमान, स्थलपद्म के समान दोनों चरणों से विराजमान।।९।। जो ध्यान में निमग्न मन को वशीभूत करने वाले मुनियों के भी मन को दर्शन मात्र से हरण करने में समर्थ स्त्रियों की शिरोमणि थी।।१०।। हे नारदजी! इस प्रकार ध्यानियों के भी मन को हरण करने वाली तन्त्र-मन्त्रों को बढ़ाने वाली उस कामरूपिणी कन्या को देख कर।।११।। ऐसे उत्तम रूप का दर्शन कर शिवजी ने अपने नेत्र मीच लिये; कारण कि आप ही परतत्त्व महायोगी त्रिगुण से परे अविनाशी हैं।।१२।। इस प्रकार सब के ईश्वर, सर्वव्यापक, तप में तत्पर नेत्र मूँदे, जटाजूट धारे, चन्द्रकला का भूषण धारे, वेदान्त से जानने योग्य, परमासन में स्थित शंकरजी को देख कर।।१३।। संशय पूर्वक शंकरजी के चरणों में हिमालय ने प्रणाम किया और वाक्य बोलने वालों में श्रेष्ठ गिरीश जगत् के एक मात्र बन्धु शंकरजी से फिर बोले।।१४।। हिमालय बोले- हे देवदेव महादेव! हे करुणाकर! हे शंकर! हे विभो! नेत्र खोल कर देखिये, मैं आपकी शरण में प्राप्त हुआ हूँ।।१५।। हे शिव! शर्व! हे महेशान! जगत् के आनन्द करने वाले, हे महादेव! सब आपत्तियों को दूर करने वाले, मैं आपको प्रणाम करता हूँ।।१६।। हे देवेश! सम्पूर्ण वेदशास्त्रादि भी आपको नहीं जान सकते, वाणी और मन से आपकी महिमा सदा परे है।।१७।। आपके पास न

पहुँच कर भी शास्त्र सदा चकित रहता है, जब श्रुति की यह दशा है, तब दूसरों की क्या कथा है ?।।१८।। भक्ति से आपकी महिमा को आपके कुछ ही भक्त जानते हैं, शरण में आये भक्तों को कहीं भी भ्रमादिक नहीं हैं।।१९।। इस समय प्रेम पूर्वक आप अपने इस दास की विज्ञप्ति को सुनिये। हे देव! आपकी आज्ञा से मैं इस समय कुछ वर्णन करता हूँ।।२०।। हे शंकर! हे महादेव! आपके प्रसाद से मैं बड़ा भाग्यवान् हूँ, अपना दास जान कर आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये। हे नाथ! आपको प्रणाम है।।२१।। हे प्रभो! आपके दर्शन के निमित्त मैं प्रतिदिन आया करूंगा और सुता के साथ आऊंगा, यह आप आज्ञा दीजिये।।२२।। ब्रह्माजी बोले– गिरिराज के यह वचन सुन कर महेश्वरजी अपने दोनों नेत्र खोल कर ध्यान छोड़ कर विचार कर देवदेव यह वचन बोले।।२३।। महेश्वरजी बोले– हे हिमालय! आप नित्य मेरा दर्शन करने आ सकते हैं, परन्तु अपनी इस कन्या को घर ही रखिये, नहीं तो मेरा दर्शन न होगा।।२४।। ब्रह्माजी बोले– पार्वती के पिता शिवजी के यह वचन सुन कर सिर झुका कर शंकरजी से बोले।।२५।। भगवन् आप तो यह कहें कि, दर्शन के निमित्त इस कन्या को छोड़ आऊं, क्या यह आपकी सेवा करने के अयोग्य है ? मैं इसमें कोई कारण नहीं देखता हूँ।।२६।। ब्रह्माजी बोले– तब हँसते हुए भगवान् शंकरजी हिमालय से बोले– विशेष कर कुयोगियों का लोकाचार दिखाने लगे।।२७।। शिवजी बोले– सुन्दर नितम्ब वाली, क्षीण मध्यभाग वाली, श्रेष्ठ चन्द्रमा के समान मुख वाली, इस कुमारी को आप मेरे समीप मत लाना, इस विषय में मैं आपको बारंबार निषेध करता हूँ।।२८।। वेदपारगामी ब्राह्मणों ने स्त्री को माया रूपिणी कहा है, विशेष कर युवती तपस्वियों को विघ्न करने वाली होती है।।२९।। मैं तपस्वी योगी माया से सदा पृथक् हूँ। हे भूधर! युवती स्त्री से मेरा प्रयोजन ही क्या है ?।।३०।। हे तपस्वियों के आश्रित! इस प्रकार से फिर आप न कहना, आप वेदधर्म के ज्ञाता, ज्ञानियों में श्रेष्ठ हो।।३१।। हे पर्वतराज! स्त्रियों के संग से शीघ्र ही विषयोत्पत्ति होती है, उस से वैराग्य और श्रेष्ठ तप नष्ट हो जाता है।।३२।। हे शैलराज! इस कारण तपस्वियों को स्त्रियों का संग नहीं करना चाहिये, यह महाविषय का मूल ज्ञान–वैराग्य का नाश करने वाला होता है।।३३।। ब्रह्माजी बोले– महायोगी महेश्वरजी इस भाँति गिरीश से बहुत कुछ कह कर योगेश्वर मौन हुए।।३४।। इस प्रकार शिवजी के स्पृहाहीन कालातीत निष्ठुर वचन सुन कर हिमालय बड़े विस्मित हुए। हे नारदजी! व्याकुल हो कर कुछ देर मौन हुए।।३५।। इस प्रकार तप में तत्पर शिवजी के वचन सुन कर और गिरिराज को चकित विचार कर, स्वयं भवानी शिवजी का प्रणाम कर उस समय उज्ज्वल वचन बोली।।३६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

तृतीये पार्वतीखण्डे द्वादशोऽध्यायः ।। १२ ।।

तेरहवाँ अध्याय

भवानी बोली– हे योगिन्! तपस्वी हो कर आपने जो मेरे पिता से कहा, हे ज्ञानियों में विशारद! हे विभो! उस का उत्तर आप मुझ से सुनिये।।१।। हे शिव! तप की शक्ति से युक्त हो कर ही आप महातपस्या करते हो, सो आप महात्मा की भी तपस्या करने में बुद्धि लगी।।२।। वह सब के कर्मों की शक्ति प्रकृति कहलाती है, उसी से सबकी उत्पत्ति, पालन और संहार होता है।।३।। हे भगवन्! आप कौन है और वह सूक्ष्म प्रकृति कौन है? इस का विचार कीजिये, प्रकृति के बिना लिंग रूप महेश्वर किस प्रकार हो सकते हैं?।।४।। प्रकृति के कारण ही प्राणी आपका सदा अर्चन, वन्दन और ध्यान करते हैं। हृदय में यह बात धारण कर के आप विचार करें।।५।। ब्रह्माजी बोले– पार्वती के यह वचन सुन कर उग्र तपस्या में निरत प्रसन्नात्मा शंकरजी हँस कर बोले।।६।। मंहेश्वरजी बोले– मैं परम तपस्या से ही प्रकृति का नाश कर देता हूँ, मैं शंकर प्रकृति से रहित हो कर नित्य स्थित रहता हूँ और तत्त्व से स्थित रहता हूँ।।७।। इस कारण सत्पुरुषों को प्रकृति का संग्रह नहीं करना चाहिये और लोकाचार से रहित निर्विकार स्थित रहना चाहिये।।८।। ब्रह्माजी बोले– हे तात! जब लोकव्यवहार से शिवजी ने ऐसा कहा, तब कालीजी हृदय में हँस कर शंकरजी से मधुर वचन बोली।।९।। काली बोली– हे प्रभो शंकर! हे योगिराज! आपने जो वचन कहे हैं, सो यह क्या प्रकृति नहीं है, फिर आप प्रकृति से परे कैसे हैं?।।१०।। यह विचार कर के तत्त्व से यथा योग्य कहिये, यह सब कुछ ही प्रकृति से निरन्तर बद्ध हो रहा है।।११।। इस कारण आपको यह नहीं कहना चाहिये कि, इस से कुछ कार्य नहीं है, सम्पूर्ण वचन और रचना प्रकृति से ही है, यह आप जानिये।।१२।। जो आप सुनते, खाते, देखते और करते हो वह सब प्रकृति का ही कार्य है, मिथ्यावाद निरर्थक है।।१३।। यदि आप प्रकृति से परे हो, तो तपस्या क्यों करते हो? हे प्रभो शंकर! यदि ऐसा ही है, तो यहां एकान्त तप की आवश्यकता क्या है?।।१४।। हे हर! प्रकृति से गलित हो कर ही तो आप निज को नहीं जानते, यदि हे ईश! आप निज को नहीं जानते, तो तप क्यों करते हो?।।१५।। हे योगिन्! आप के साथ मुझे विवाद से क्या प्रयोजन है! प्रत्यक्ष होने पर पण्डित अनुमान का प्रमाण नहीं करते।।१६।। जब तक देहधारियों के इन्द्रिय गोचर हुआ जाता है, तब तक बुद्धि से ज्ञानियों को सब प्रकृति का कार्य जानना उचित है।।१७।। हे योगीश! बहुत कहने से क्या है? आप मेरे वचन सुनिये। वह प्रकृति मैं हूँ, आप पुरुष हैं, यह सत्य है, इस में कुछ सन्देह नहीं है।।१८।। मेरे अनुग्रह से ही आप सगुण ब्रह्म रूप वाले हुए हैं, मेरे बिना आप निरीह हो और कुछ भी करने को समर्थ नहीं हो।।१९।। आप वशी हो

कर भी अनेक कर्म करने वाले हो। आप निर्विकारी कैसे हो? मुझ से कैसे लिप्त नहीं हो?।।२०।। यदि आप प्रकृति से परे हो और यह आपके वचन सत्य हैं, तो हे शंकर! मेरे समीप रहने से आपको भय नहीं करना चाहिये।।२१।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार शिवजी सांख्यशास्त्र के समस्त पार्वती के वचन सुन कर वेदान्तमत के आश्रित हो कर पार्वती से बोले।।२२।। श्रीशिवजी बोले– हे गिरजा! इस प्रकार से यदि तुम सांख्य के अनुसार वचन कहती हो, हे सुभाषिणी! तो तुम प्रतिदिन मेरी सेवा करो, मैं इस में तुम्हें निषेध नहीं करता।।२३।। जब कि मैं ब्रह्म माया से निर्लिप्त परमेश्वर वेदान्त से जानने योग्य हूँ, तब तुम मेरा क्या कर सकती हो?।।२४।। ब्रह्माजी बाले– भगवान् शंकर पार्वती से ऐसा कह कर, फिर गिरिराज से बोले– जो भगवान् भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने वाले और उनको प्रसन्न करने वाले हैं।।२५।। हे गिरिराज! मैं यहां आपके मनोहर पर्वत पर परम तपस्या करता हुआ परमार्थ भाव से अपना स्वरूप विचारता हुआ विचरण करूंगा।।२६।। हे पर्वतराज! अब आपको तप करने की मुझे अनुज्ञा देनी चाहिये, अनुज्ञा के बिना किसी प्रकार का तप नहीं हो सकता।।२७।। ब्रह्माजी बोले– देवदेव शूलधारी के यह वचन सुन कर हिमालय शिवजी को प्रणाम कर के यह वचन बोले।।२८।। हिमालय ने कहा– देवता, असुर, मनुष्यों के सहित यह सब जगत् आप ही का है, हे महादेवजी! मैं तुच्छ आपसे क्या कहूं।।२९।। ब्रह्माजी बोले– जब लोक कल्याणकारी शंकरजी से हिमालय ने ऐसा कहा, तब शिवजी ने हँस कर गिरिराज से कहा कि आप सादर घर जाइये।।३०।। शिवजी के यह वचन सुन कर हिमालय पार्वती सहित आनन्द से अपने घर गये और प्रतिदिन दर्शन को जाने लगे।।३१।। पार्वती पिता के बिना भी नित्य अपनी सखीजनों के साथ भक्ति में तत्पर हो कर शंकरजी की सेवा के लिये सदा गमन करती।।३२।। नन्दीश्वर आदि गण कोई भी पार्वती को निषेध नहीं करते, कारण कि शिवजी की ऐसी ही आज्ञा थी और वह पवित्र आज्ञाकारी थे।।३३।। सांख्य और वेदान्त के मत को ले कर शिवाशिव का संवाद सुखकारी हो गया, वास्तव में दोनों अभिन्न ही हैं।।३४।। इन्द्रियों से परे हो कर भी भगवान शंकरजी ने गिरिराज के वचन गौरव से पार्वती को अपनी सेवा में ग्रहण किया।।३५।। और वशी भगवान् शंकरजी ने सखियों के सहित पार्वती से यह वचन कहे कि, तुम नित्य मेरी सेवा करने आओ और निर्भय हो कर स्थित हो।।३६।। इस प्रकार कह कर शिवजी ने देवी को सेवा में ग्रहण किया, जो प्रभु निर्विकार महायोगी, अनेक लीला करने वाले हैं।।३७।। धीर तपस्वियों का यही महाधैर्य है, जो विघ्नों को प्राप्त हो कर भी विघ्नों से विचलित नहीं होते।।३८।। जब गिरिराज परिचारकों के साथ अपने स्थान को आये, हे मुनीश्वर! तब वह अपने प्रियजनों के सहित मन में बहुत प्रसन्न हुए।।३९।। और उस समय भगवान् शंकरजी ध्यानयोग से अपने परमात्मा रूप

को निर्विघ्न मन से विचारने लगे ।।४०।। और काली अपनी सखियों के साथ नित्यप्रति शिवजी की सेवा करती हुई यमनागमन में स्थित हुई ।।४१।। शिवजी के चरण धो कर उनका चरणामृत लिया, वह्नि शौच वस्त्र से उनके अंगों का मार्जन किया ।।४२।। षोडशोपचार से विधि पूर्वक शंकरजी का पूजन कर के, बारंबार प्रणाम कर के फिर अपने पिता के समीप जाती ।।४३।। हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार से पार्वती को शिवजी की सेवा करते-करते बहुत समय व्यतीत हो गया ।।४४।। किसी समय पार्वती अपनी सखियों के साथ शंकरजी के आश्रम में मधुर स्वर से कन्दर्पोद्दीपक गान करने लगती ।।४५।। कभी कुश पुष्प और समिधाओं को स्वयं ले आती और कभी सखियों के साथ स्नान का संस्कार करती ।।४६।। कभी नियतकाल तक शंकरजी के समीप रहती और कभी सकाम हो कर विस्मय से चन्द्रशेखर को देखने लगती ।।४७।। तब सब प्राणिजनों के अधिपति शंकरजी ने उसे तप करते हुए देखा कि, निस्संग हो कर सेवा करती है और भगवती को देख कर विचारने लगे कि, यह पंचभूत देह में स्थित है ।।४८।। यद्यपि यह मुनियों के मन को मोहित करने वाली महासुन्दरी शंकरजी के नित्य समीप रहती थीं, तो भी शंकरजी ने इसे भार्या रूप से ग्रहण नहीं किया ।।४९।। महादेवजी ने जब भगवती को इस प्रकार इन्द्रिय संयम में तत्पर देखा कि, निरन्तर मेरी सेवा में तत्पर है, तब दया कर के विचारने लगे ।।५०।। कि जिस समय यह काली महातपस्या करेगी, तब गर्व का बीज रहित होने से मैं इसे ग्रहण करूंगा ।।५१।। ब्रह्माजी बोले- भूतेश्वर यह बात मन में विचार कर ध्यान में तत्पर हो गये; कारण कि महालीला करने वाले प्रभु महा योगीश्वर हैं ।।५२।। जिस समय परमात्मा शंकरजी ध्यान में स्थित हुए, हे मुने! उस समय भी उनके मन में कोई दूसरी चिन्ता उदय नहीं हुई ।।५३।। भगवती काली भगवान् शंकरजी का रूप निरन्तर विचारती हुई सद्भक्ति से निरन्तर शंकरजी की सेवा करने लगी ।।५४।। शिवजी भी नित्य ध्यान में तत्पर हो कर पार्वती की स्थिति विचार लेते और पूर्व चिन्ता को भुला कर देखते हुए भी मानो भगवती को नहीं देखते थे ।।५५।। इसी अवसर में इन्द्रादिक देवता और मुनियों ने ब्रह्माजी की आज्ञा से आदर पूर्वक वहां काम को भेजा ।।५६।। कारण कि वे सब देवता महाबली तारकासुर से बड़े पीड़ित हो गये थे और शिवजी के पुत्र से उस असुर की मृत्यु थी, इस से देवताओं ने शिवपार्वती का योग करना चाहा ।।५७।। वहां जाकर कामदेव ने अपना पूरा पराक्रम किया, पर शिवजी उस से कुछ भी क्षुभित न हुए, किन्तु उसे भस्मभूत कर दिया ।।५८।। हे नारदजी! पार्वती भी गर्व रहित हो कर बराबर तपस्या करती रही और फिर महातपस्या कर के सती ने शिवजी को पाया ।।५९।। तब पार्वती और परमेश्वर बड़े प्रसन्न हुए और परोपकार में रत हो कर देवकार्य में तत्पर हुए ।।६०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां तृतीये पार्वतीखण्डे त्रयोदशोऽध्यायः ।। १३ ।।

चौदहवाँ अध्याय

नारदजी बोले– हे विष्णुशिष्य महाशैव! हे ब्रह्माजी! आपने उत्तम बात कही, शिवा और शिवजी का चरित्र परम उत्तम है।।१।। हे भगवन्! यह तारकासुर कौन है? जिसने देवताओं को पीड़ित किया, वह किसका पुत्र था? वह शिवसम्बधी कथा आप मुझसे कहें।।२।। और वशी शंकरजी ने कामदेव को किस प्रकार से भस्म किया था? यह चरित्र बड़ा अद्भुत है, आप इस को विस्तार से कहिये।।३।। पार्वती ने सुख के निमित्त किस प्रकार से अद्भुत तप किया? वह आदिशक्ति जगत्परायण किस प्रकार से शिवजी को प्राप्त हुई?।।४।। हे महापण्डित! यह सब चरित्र विशेष रूप से वर्णन कीजिये। मैं शिवोपासक श्रद्धा वाला आपका पुत्र हूँ।।५।। ब्रह्माजी बोले– हे पुत्रवर्य! महापण्डित देवर्षि! इन्द्रिय संयम में तत्पर शंकरजी को प्रणाम कर के मैं उनका सम्पूर्ण चरित्र कहता हूँ, सो आप सुनिये।।६।। हे नारदजी! पहले तारकासुर का चरित्र सुनिये, जिसके वध के निमित्त शंकरजी के आश्रित हो कर देवताओं ने बड़ा यत्न किया था।।७।। मेरा पुत्र मरीचि हुआ, उस का पुत्र कश्यप हुआ, उस कश्यप की तेरह स्त्रियां थीं, वह दक्षकन्याएं थीं।।८।। उनकी बड़ी स्त्री दिति के दो पुत्र हुए, बड़ा हिरण्यकशिपु, छोटा हिरण्याक्ष।।९।। भगवान् विष्णुजी ने इन दोनों को नृसिंह और वाराह रूप से मार डाला, इन दुःख देने वालों के मर जाने से देवता निर्भय हो कर सुखी हुए।।१०।। तब दिति बड़ी दुःखी हो कर कश्यपजी की शरण में गई और फिर उनकी सेवा कर के उस सुव्रता ने गर्भ धारण किया।।११।। महा उद्यमी इन्द्र को जब यह समाचार मिला, तब छिद्र देखने लगा और दिति को अशुद्ध जानते ही वज्र ले कर उस के उदर में प्रवेश कर गया और गर्भ के टुकड़े–टुकड़े कर डाले।।१२।। पर उस व्रत के प्रभाव से वह गर्भ नहीं मरा और दैवयोग से उस सोती हुई के गर्भ के टुकड़े ४९ पुत्र हो कर निकले।।१३।। वह सब पुत्र मरुत् नामवाले देवता हो गये और इन्द्र को अपना भ्राता मानकर इन्द्र के साथ स्वर्ग को चले गये।।१४।। फिर भी दिति अपने कर्म से अनुतप्त हो कर पति की सेवा करने लगी और परम सेवा से उस मुनिराज को प्रसन्न कर लिया।।१५।। कश्यपजी बोले– पवित्र हो कर ब्रह्माजी के दश सहस्र वर्ष तक तपस्या करे, तो तेरे महापराक्रमी पुत्र का जन्म होगा।।१६।। हे मुने! तब दिति ने परम श्रद्धा से तपस्या आरम्भ की, तब पति के गर्भ को प्राप्त हो कर वैसा ही पुत्र उत्पन्न किया।।१७।। वह दिति का पुत्र देवताओं के समान वज्राङ्ग नाम हुआ, नाम समान ही उसका शरीर बड़ा वीर अपने प्रतांप से बड़ा बली था।।१८।। माता की आज्ञा से उस पुत्र ने बल पूर्वक इन्द्र को

निग्रह कर के दण्ड दिया और देवताओं को भी इसी प्रकार से दण्ड दिया ।।१९।। इन्द्रादि देवताओं की दुर्दशा देख कर दिति को परम हर्ष हुआ और इन्द्रादि देवता अपने कर्म से दुःख को प्राप्त हो गये ।।२०।। तब देवताओं के सदा हित करने में तत्पर मैं कश्यपजी के पास गया और वहां जा कर मैंने देवताओं को छुड़ाया ।।२१।। देवताओं को छोड़ कर वज्राङ्ग ने आदर पूर्वक कहा, जो शुद्धात्मा शिवभक्त निर्विकार, प्रसन्न बुद्धि वाला था ।।२२।। वज्राङ्ग बोला– यह इन्द्र बड़ा स्वार्थ साधन करने वाला बड़ा दुष्ट है, मेरी माता की सन्तान को नष्ट करने वाला है, इस से उस ने कर्म का फल पाया, अब अपना राज्य पालन करे ।।२३।। हे ब्रह्माजी! यह सब कुछ मैंने अपनी माता की आज्ञा से किया है, मुझे किसी भी भुवन को भोगने की अभिलाषा नहीं है ।।२४।। हे वेद जानने वालों में श्रेष्ठ ब्रह्माजी! आप मुझसे तत्त्व का सार कहिये, जिसे जानने से मैं निर्विकार, प्रसन्न मुख, नित्य आनन्द से रहूं ।।२५।। हे मुने! यह सुन कर मैंने कहा, यह वचन सात्विक भाव के हैं, सो मैं प्रसन्नता से तत्त्व की सार एक स्त्री को निर्माण करता हूँ ।।२६।। उस वरांगी नाम वाली स्त्री को उस दितिपुत्र के लिये दे कर मैं प्रसन्न हो कर कश्यप सहित अपने स्थान को गया ।।२७।। तब वह दैत्य वज्राङ्ग सात्विकभाव को प्राप्त हो कर, आसुर भाव छोड़ कर, सबसे निर्वैर हो कर सुखी हुआ ।।२८।। वह वरांगी अपने हृदय में सात्विकभाव धारण किये बड़ी श्रद्धा से सकामा हो कर पति की सेवा करने लगी ।।२९।। तब उसकी सेवा से वज्राङ्ग महाप्रभु सन्तुष्ट हो गये और इस प्रकार से बोले ।।३०।। वज्राङ्ग ने कहा– हे प्रिये! तेरी क्या इच्छा है? सो तू कह। तेरे मन में क्या वर्तता है? यह सुन कर वह बड़ी नम्रता से अपना मनोरथ कहने लगी ।।३१।। वरांगी बोली– जो आप प्रसन्न हो, तो मुझे पुत्र दो, जो महाबली त्रिलोकी को जीतने वाला तथा इन्द्र को दुःख देने वाला हो ।।३२।। ब्रह्माजी बोले– प्रिया के यह वचन सुन कर वह बड़ा विस्मित और व्याकुल हुआ और सात्विकभाव से वैर रहित हो कर वह ज्ञानी कहने लगा ।।३३।। हे प्रिये! तुम वैर की इच्छा करती हो, परन्तु देवताओं से वैर करना मुझे अच्छा नहीं लगता, मैं क्या करूं, कहां जाऊं, किस प्रकार से मेरी प्रतिज्ञा नष्ट न हो?।।३४।। और प्रिया का मनोरथ पूर्ण किया जाय तो त्रिलोकी के देवता और मुनियों को महाकष्ट होगा ।।३५।। और प्रिया के वचन न पूर्ण होने से मुझे नरक होगा, दोनों प्रकार से ही धर्महानि है, यह मैं जानता हूँ।।३६।। हे मुने! इस प्रकार धर्मसंकट में पड़ कर वज्राङ्ग विचलित होने लगा और अपनी बुद्धि से उसने बल–अबल दोनों का विचार कर ।।३७।। हे मुने! शिवजी की इच्छा से उसने स्त्री का ही वचन मानने की इच्छा की और उस दैत्यपति ने अपनी प्रिया से कहा, 'ऐसा ही होगा'।।३८।। तब उस निमित्त उसने बड़ी कठिन तपस्या की और जितेन्द्रिय हो कर उसने मेरे उद्देश्य से बहुत काल तक तप किया ।।३९।। तब उसका महातप देख कर मैं

उसके समीप वर देने को गया और प्रसन्न हो कर उससे जा कर बोला– 'जो इच्छा हो सो वर मांगो'।।४०।। तब वज्राङ्ग ने प्रसन्नचित्त मुझ विभु को आकाश में स्थित देख कर, प्रणाम कर के, बहुत स्तुति करते हुए, अपनी प्रिया का हितकारी वर मांगा।।४१।। वज्राङ्ग बोला– हे भगवन्! आप मुझे इस प्रकर का वर दीजिये, जिस से हमारा बहुत हित करने वाला महाबली, महाप्रतापी, समर्थ और तपोनिधि पुत्र हो।।४२।। ब्रह्माजी बोले– हे मुने! इस प्रकार उसके वचन सुन कर मैंने 'तथास्तु' कहा और शिवजी को स्मरण कर, विमन हो कर अपने स्थान को चला आया।।४३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
तृतीये पार्वतीखण्डे चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

*****

पन्द्रहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– तब उस वरांगी ने आदर से गर्भधारण किया और बहुत वर्षों तक अपने तेज से भीतर से ही वह गर्भ बढ़ता रहा।।१।। तब समय के पूर्ण होने पर वरांगी ने पुत्र उत्पन्न किया, वह बड़े शरीर वाला महाबली, दशों दिशाओं को प्रकाश करने वाला था।।२।। उस समय दुःख को प्रकाश करने वाले बहुत से उत्पात हुए, जिस समय वह देवताओं को दुःख देने वाला पुत्र वरांगी से उत्पन्न हुआ था।।३।। स्वर्ग, भूमि और अन्तरिक्ष में सब लोकों के भयदायक तीन प्रकार के उत्पात हुए, उन अनर्थ सूचकों का मैं वर्णन करता हूँ।।४।। महाशब्द करते हुए भयंकर उल्कापात होने लगे, जहां–तहां दुःखदाई केतुओं का उदय हो गया।।५।। पर्वतों के सहित पृथ्वी चलायमान होने लगी, सब दिशाएं प्रज्ज्वलित हो उठी, सब नदियाँ क्षुभित हो गई, विशेष कर समुद्र चलायमान हो गये।।६।। मेघों से हूत्कार शब्द होने लगा, तीक्ष्ण स्पर्श वायु चलने लगी, बड़े–बड़े वृक्षों को उखाडती हुई पवन की सेना मानो रजो रूप केतु वाली वहन करने लगी।।७।। सूर्य, चन्द्र के ऊपर राहु की बारंबार परिधि होने लगी। हे राजेन्द्र! इस कारण सुख को हरने वाला महाभय हुआ।।८।। पर्वतों के विवरों से भयसूचक शब्द होने लगे, रथ की नेमि के समान उस समय घर–घर शब्द होने लगा।।९।। शृङ्गाल और उलूक टंकार शब्द से मुख से अग्नि उगलने लगे और ग्रामों के भीतर ही भयंकर रूप से गीदड़ी बोलने लगी।।१०।। इधर–उधर ग्रामसिंह अपनी गर्दन उठा कर संगीत और रोदन के समान अनेक प्रकार के शब्द करने लगे।।११।। गर्दभ भी मत्त हो कर खुर के अग्रभाग से पृथ्वी को खोदने लगे। हे तात! इधर–उधर उनके झुण्ड के झुण्ड विचरने लगे।।१२।।

पक्षी अपने घोसलों से उडने लगे, गर्दभगण व्याकुल हो गये और व्याकुल हो कर शब्द करने लगे, कहीं उनको शान्ति प्राप्त न हुई ।।१३।। पशुसमूह अपनी गोड में बारंबार मूत्र करने लगे, वन के पशु भी व्याकुल हो गये, ताडित हुए के समान इधर-उधर घूमने लगे, कहीं भी उनको शान्ति प्राप्त न हुई ।।१४।। गायों के थनों से रुधिर निकलने लगा, उनके नेत्र भय से व्याकुल हो गये, मेघ भी उस समय रौद्र रूप दुर्गन्ध की वर्षा करने के कारण भयदाई हुए ।।१५।। देवताओं की प्रतिमाएं रोने और गिरने लगी, विना ही आँधी के वृक्ष गिरने लगे और आकाश में ग्रहयुद्ध होने लगा ।।१६।। हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार से बहुत से उत्पात होने लगे और अज्ञानीजन उस प्रलय समय मानने लगे ।।१७।। तब प्रजापति कश्यपजी ने बहुत विचार कर उस बालक का नाम तारक रखा; कारण कि यह असुर महापराक्रमी था ।।१८।। वह महाबली सहसा अपने पुरुषार्थ को प्रकट करते हुए पत्थर के समान दृढ़ताई वाली काया से पर्वतराज के समान बढ़ने लगा ।।१९।। तब उस महाबली, पराक्रमी मनस्वी तारकनामा दैत्य ने अपनी माता से तपस्या करने की आज्ञा मांगी ।।२०।। वह महामाया वाला मायियों को भी मोहित करने वाला, सब देवताओं को जीतने के लिये तपस्या करने में मन लगाता हुआ ।।२१।। वह गुरु की आज्ञा का पालन करने वाला मधुबन में आ कर विधाता को प्रसन्न करने के लिये विधिपूर्वक महातपस्या करने लगा ।।२२।। एक पांव पर खड़ा हो कर, भुजा ऊपर कर, नेत्रों से सूर्य को देखते हुए दृढ़चित्त और दृढ़व्रत से बराबर सौ वर्ष तक तपस्या करता रहा ।।२३।। अँगूठे से पृथ्वी को स्पर्श कर के उसने सौ वर्ष उसी प्रकार से बिता दिये, इस प्रकार से वह असुरों का राजा दृढ़ता से सौ वर्ष तक तप करता रहा ।।२४।। सौ वर्ष तक मात्र जल पिया, सौ वर्ष तक मात्र वायु भक्षण कर के रहा, सौ वर्ष तक जल में और सौ वर्ष तक मैदान में बैठ कर तपस्या करता रहा ।।२५।। सौ वर्ष तक अग्नितापी, सौ वर्ष नीचे को मुख, ऊपर को पैर किये रहा, सौ वर्ष हाथों से पृथ्वी को स्पर्श कर के सब शरीर उठा कर रहा ।।२६।। हे मुने! सौ वर्ष तक पैरों से वृक्ष की शाखा को पकड़ कर नीचे मुख कर के अग्निहोत्र का पवित्र धूम सूंघता रहा ।।२७।। इस प्रकार उस दैत्यराज ने सुनने वालों को भी दुःसह-महाकठिन तपस्या विधिपूर्वक की ।।२८।। तब तपस्या करते-करते उसके शरीर से महातेज निकलने लगा। हे मुने! वह शिर से निकला तेज सब को स्पर्श कर के महा उपद्रव करने वाला था ।।२९।। उस तेज से प्रायः देवताओं के लोक दग्ध होने लगे। हे मुने! सब देवता और ऋषि चारों ओर से दुःख पाने लगे ।।३०।। सब में देवेश्वर इन्द्र को बड़ा भय हुआ। वह जो इस समय तप कर रहा है, वह अवश्य मेरा सिंहासन छीन लेगा ।।३१।। अथवा बिना समय ही प्रभु प्रलय करना चाहते हैं, इस सन्देह के प्राप्त होने में किसी प्रकार का निश्चय न हुआ ।।३२।। तब वे सब देवता और ऋषि परस्पर सम्मति कर के, भीत और दीन हो कर सब मेरे स्थान

पर आये ।।३३।। वे सब प्रणाम कर के मेरी स्तुति करने लगे और व्याकुल हो कर, हाथ जोड़ कर, मुझे सब वृत्तान्त निवेदन किया ।।३४।। मैंने बुद्धिपूर्वक उस सब कारण को निश्चय कर, वहां वर देने गया, जहां वह असुर तपस्या करता था ।।३५।। हे मुने! वहां जा कर मैंने उसे वर माँगने को कहा, कि तुमने बड़ी तपस्या की है, कोई भी वस्तु मुझे तुम्हारे लिये अदेय नहीं है ।।३६।। वह महाअसुर तारक इस प्रकार मेरे वचन सुन कर स्तुतिपूर्वक मुझे प्रणाम कर के, बड़ा दारुण वर मांगने लगा ।।३७।। तारक ने कहा- जब वर देने वाले आप उपस्थित हैं, तब मुझे कोई वस्तु असाध्य नहीं है, इस कारण हे पितामह! मैं आपसे वर मांगता हूँ, सो आप सुनिये ।।३८।। हे देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं, यदि आप मुझे वर देते हैं, तो मेरे ऊपर कृपा कर के मुझे दो वरदान दीजिये ।।३९।। हे भगवन्! जहां तक आपके बनाये लोग हैं, उनमें मेरे समान बलवान् कोई न हो ।।४०।। जिस समय शिवजी के वीर्य से सेनापति पुत्र उत्पन्न हो और वह मेरे ऊपर शस्त्र चलाये तो मेरा मरण हो ।।४१।। हे मुनीश्वर! जब उस दैत्यराज ने इस प्रकार मुझ से वचन कहे, तब मैं उसको वैसा ही वर दे कर अपने स्थान को आया ।।४२।। वह दैत्येश्वर भी अपने मन के अनुसार उत्तम वर पा कर, महाप्रसन्न हो शोणितपुर को गया ।।४३।। वहां दैत्यगुरु शुक्राचार्य ने उसका असुरों के साथ त्रिलोकी के आधिपत्य में अभिषेक किया, उनको यह आज्ञा मैंने ही दी थी ।।४४।। तब वह महादैत्य त्रिलोकी का नायक हुआ। उसने चर-अचर को पीड़ित कर के सर्वत्र अपनी आज्ञा प्रचार की ।।४५।। वह तारक विधिपूर्वक त्रिलोकी का राज्य करने लगा और देवता आदि को पीड़ित कर के प्रजा का पालन करने लगा ।।४६।। तब दैत्येश्वर ने उन इन्द्रादि देवताओं से जो जिस के यहां रत्न थे मांगे और उन्हों ने उसके भय से स्वयं दे दिये ।।४७।। इन्द्र ने डर के मारे उसे ऐरावत दे दिया, कुबेर ने नौओं निधियां उसे दे दीं ।।४८।। वरुण ने श्वेत वर्ण के घोडे, ऋषियों ने कामधेनु, *सूर्य ने दिव्य उच्चैःश्रवा घोडा भय से उसे अर्पण कर दिया ।।४९।। उस असुर ने जहां-जहां उत्तम वस्तु देखी वह-वह बल से ग्रहण कर ली, बहुत क्या त्रिलोकी निस्सार हो गई ।।५०।। हे मुने! भय के मारे समुद्र ने उसे रत्न प्रदान किये, पृथ्वी बिना जोते बीज ग्रहण कर फल देने लगी, सब प्रजा उससे कामना के अनुसार वस्तु दुहने लगी ।।५१।। सूर्य उतना ही तपता जितने से किसी को दुःख न हो, चन्द्रमा अपनी कान्ति सहित देखता और वायु निरन्तर अनुकूल चलता ।।५२।। देवता और पितृ आदि का जो द्रव्य था, उस दुरात्मा असुर ने वह सब ग्रहण कर लिया ।।५३।। त्रिलोकी को वश कर के वह स्वयं इन्द्र हुआ, वह अद्भुत स्वामी बना और उसने अद्वितीय राज्य किया ।।५४।। सब स्थानों से देवताओं को निकाल कर, उसने वहां दैत्यों को स्थापित किया और देवयोनियों को उन-उनके कर्मों में उसने स्वयं स्थापन

*- यहां पर सूर्य के स्थान में जब इन्द्र ऐसा पाठ है, तब इन्द्र ने ऐसा अर्थ करना।

किया ।।५५।। हे मुने! तब सब इन्द्रादि देवता उस से बाधित हो कर अनाथ और अतिविह्वल हो कर मेरी शरण आये ।।५६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
तृतीये पार्वतीखण्डे पञ्चदशोऽध्यायः ।।१५ ।।

*****

सोलहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– तब तारकासुर से पीड़ित हुए वे सब देवता परम भक्ति से प्रजापति को प्रणाम करने और स्तुति करने लगे ।।१।। तब मैं यथार्थ और हृदय को प्रिय लगने वाली उस देवस्तुति को सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हो कर देवताओं से बोला ।।२।। हे देवताओ! आपका स्वागत हो, आप अपने अधिकार पर प्रसन्न हो, आपको कोई विघ्न तो नहीं है? आप किस निमित्त यहां आये हो? सो सब मुझ से कहिये ।।३।। मेरे ये वचन सुन कर, मुझे प्रणाम कर के, दीन हो कर, मस्तक झुका कर, तारकासुर से भयभीत हुए वे, सब देवता मुझसे कहने लगे ।।४।। देवता बोले– हे लोकेश! तारक नामक दैत्य आपके वरदान से अभिमानी हो कर, हमें हमारे स्थानों से निकाल कर, हमारे अधिकारों को हम से ग्रहण कर रहा है ।।५।। जो हमें दुःख उपस्थित हुआ है, क्या आप उसे नहीं जानते? वह दुःख आप शीघ्र नष्ट कीजिये, हम आपकी शरण में आये हैं ।।६।। जहां कहीं हम स्थित होते हैं, वह रात–दिन हमें पीड़ित करता है, जहां कहीं हम भाग कर जाते हैं, वहां हमें असुर ही दिखाई देते है ।।७।। हे सकलेश्वर! हमें तारकासुर से जो दुःख प्राप्त हुआ है, सो कहा नहीं जाता। हे तात! हम बड़े विकल और पीड़ित हैं ।।८।। अग्नि, यम, वरुण, निवृति, वायु और दूसरे दिक्पाल भी सब उसकी शरण हैं ।।९।। सब ही मनुष्य धर्म वाले और सब ही उसकी परिकर से युक्त हैं, सब ही उस महादैत्य की सेवा करते हैं और कोई भी स्वतन्त्र नहीं है ।।१०।। उस प्रकार देवता भी उससे व्याकुल हो कर उसके वशीभूत हुए हैं, उसकी इच्छा से कार्य में निरत हो कर सब ही उसके अनुजीवी हैं ।।११।। जितनी सुन्दर स्त्रियां और जितनी अप्सरायें हैं, उस महाबली तारकासुर ने उन सब को ग्रहण कर लिया है ।।१२।। न ही यज्ञ किये जाते हैं, न तपस्वी तपस्या करते हैं, लोक में कोई दान, धर्मादिक में नहीं प्रवृत्त होता है ।।१३।। क्रौंच नामक एक महादानव उसका सेनापति है, वह पाताल में भी जा कर वहां की प्रजाओं को निरन्तर पीडित करता है ।।१४।। हे जगत्पति! उस करुणा रहित पापी तारक ने यह सब त्रिजगत् हठ से अपने वश में कर लिया है ।।१५।। हम सभी

वहीं जायेंगे, जहां हमारे लिये आप जो स्थान नियत कर दें, हे लोकनाथ! उस दैत्य से महापीड़ित हुए हम स्वस्थ हो कर कहां रह सकेंगे?।।१६।। आप ही हमारी गति, हमारे पोषक और विधाता हो, हम सब तारक नामक अग्नि से व्याकुल हो कर दग्ध हो रहे हैं।।१७।। उसने क्रूरता के उपायों से हम सब को हतबल कर दिया है, विकार वा सन्निपात में बलवान् औषधियां ही काम देती हैं।।१८।। जिस नारायण के सुदर्शन चक्र में हमें जय की आशा थी, वह भी उसके कण्ठ में पुष्प के समान लग कर कुण्ठित हो गया।।१९।। ब्रह्माजी बोले- हे मुनिराज! इस प्रकार से देवताओं के वचन सुन कर, मैं सब देवताओं से, उस काल के समान यह वचन बोला।।२०।। ब्रह्माजी बोले- मेरे ही वचन से वह तारक नाम दैत्य वृद्धि को प्राप्त हुआ है। हे देवताओ! मेरे द्वारा उसका मरण ठीक नहीं है।।२१।। जिस से जो बढ़ाया जाए, वह उस से मारने के योग्य नहीं होता। विषवृक्ष को भी लगा कर कोई उसे छेदने की इच्छा नहीं करता।।२२।। हां! शिवजी आपके सम्पूर्ण कार्य कर सकते हैं, परन्तु बिना प्रेरणा के वह कुछ कार्य नहीं करेंगे।।२३।। यह तारक नाम वाला दैत्य अपने पाप से स्वयं ही नाश हो जाएगा, जैसे कार्य सिद्ध होगा, वैसा मैं आपको उपदेश करता हूँ।।२४।। मैं, विष्णुजी, इन्द्र वा कोई अन्य देवता तारक असुर को नहीं मार सकते, यह मेरा वर सत्य है।।२५।। हे देवताओ! यदि शिवजी के वीर्य से कोई पुत्र उत्पन्न हो, वहीं तारक नामक दैत्य को मार सकता है, दूसरा नहीं।।२६।। हे श्रेष्ठ देवताओ! जो उपाय मैं आप से कहता हूँ, सो आप करें, महादेवजी के प्रसाद से सब सिद्धि होगी।।२७।। पहले जो दक्ष की कन्या सती ने अपना देह त्याग किया था, वही मेनका के गर्भ से उत्पन्न हुई है, यह कथा आप जानते ही हैं।।२८।। शिवजी अवश्य उसका कर ग्रहण करेंगे। हे देवताओ! तो भी आप उस के लिये उपाय किजीये।।२९।। हे देवताओ! अब इस प्रकार आप उपाय किजीये कि, पार्वती के साथ शिवजी का विवाह हो।।३०।। कारण की ऊर्ध्वरेता शंभुजी के वीर्य को आकर्षण करने में वहीं समर्थ हैं, दूसरी अबला कुछ नहीं कर सकती।।३१।। वह गिरिराज की सुता इस समय युवा हो गई है, हिमालय में तपस्या करते हुए शंकरजी की नित्य सेवा करती है।।३२।। वह पार्वती अपने पिता के वचन से हठपूर्वक, अपनी सखियों के साथ ध्यान में स्थित परमेश्वर की नित्य सेवा करती है।।३३।। यद्यपि वह त्रिलोक सुन्दरी परमेश्वर के आगे नित्य रहती और पूजा करती है, पर ध्यान में मन लगाये शिवजी कभी मन से भी तो नहीं विच्युत होते।।३४।। हे देवताओ! जिस प्रकार चन्द्रशेखर काली को अपनी भार्या जानें, यत्नपूर्वक आप बहुत शीघ्र वैसा विधान कीजिये।।३५।। और मैं भी उस तारक दैत्य के स्थान में जा कर, उसे बुरी हठ से निवारण करता हूँ, इससे आप अपने स्थानों में जाओ।।३६।। देवताओ से यह कह कर मैं तारक के समीप गया और प्रेम से बातचीत कर के उसे इस प्रकार कहा।।३७।।

ब्रह्माजी बोले- यह स्वर्ग तेजों का सार है, सो तुम हमारे राज्य को पालन करते हो, जिस कारण तुमने तप किया था, सो तू उससे अधिक की इच्छा करता है ।।३८।। मैंने दूसरी प्रकार का वर दिया है, स्वर्ग के राज्य का वर नहीं दिया है, इस लिये स्वर्ग को त्याग कर भूमण्डल का राज्य करो ।।३९।। हे असुरोत्तम! वहां देवताओं के ही योग्य सम्पूर्ण कार्य हैं, इसमें सन्देह नहीं ।।४०।। सकलेश्वर मैं इस प्रकार से उसे सब बातें समझा कर शिवाशिव को स्मरण कर उसके आगे से अन्तर्धान हो गया ।।४१।। तारक भी स्वर्ग को त्याग कर भूमि पर आ गया और शोणितपुर में आ कर अपना राज्य करने लगा ।।४२।। उधर सब देवता मेरे वचन सुन कर मुझे प्रणाम कर के प्रसन्न हो कर इन्द्र के साथ इन्द्र के स्थान में चले गये ।।४३।। वहां जा कर, परस्पर मिल कर और विचार कर के वे सब मरुत आदि प्रसन्न हो कर इन्द्र से कहने लगे ।।४४।। देवता बोले- जिस प्रकार शिवजी को पार्वती में कामनापूर्वक रुचि हो जाय, हे इन्द्र! ब्रह्माजी के बताये उपाय के अनुसार वह कार्य आपको शीघ्र ही करना चाहिये ।।४५।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार से सब देवता सुरेश्वर से यह उपाय निवेदन कर के प्रसन्न हो कर अपने-अपने स्थानों में चले गये ।।४६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
तृतीये पार्वतीखण्डे षोडशोऽध्यायः ।। १६ ।।

*****

सत्रहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले- देवताओं के चले जाने पर इन्द्र ने कामदेव को स्मरण किया; कारण कि उस समय इन्द्र भी दुरात्मा तारक से बहुत पीड़ित हो गये थे ।।१।। उसी समय रतिप्रिय कामदेव वसन्त के साथ उपस्थित हुआ, यह त्रिलोकी को जीतने वाला प्रभु रति के सहित साभिमान उपस्थित हुआ ।।२।। प्रणाम कर के कामदेव इन्द्र के आगे उपस्थित हुआ और बड़े उन्नत मन से महेन्द्रजी से बोला ।।३।। आपका क्या कार्य उत्पन्न हुआ है, आपने किस कारण मुझे स्मरण किया है? हे देवेश! शीघ्र कहिये। वह सब करने के लिये मैं उपस्थित हूँ ।।४।। ब्रह्माजी बोले- कामदेव के यह वचन सुन कर इन्द्र परम प्रसन्न हो कर, उसकी बड़ाई करते हुए यह वचन बोले ।।५।। इन्द्र ने कहा- तुम्हारा आरम्भ उत्तम है, जो मेरा कार्य उपस्थित हुआ है। हे मकरध्वज! तुम जो उसे करने को उपस्थित हुए हो, इससे तुम धन्य हो ।।६।। अब मेरे वचन सुनो, मैं तुम्हारे आगे कहता हूँ, जो मेरा कार्य है, वह तुम्हारा भी है, इसमें अन्यथा नहीं है ।।७।। मेरे

बहुत से महानुभाव मित्र हैं, परन्तु हे काम! तेरे समान मेरा कोई मित्र नहीं है ।।८।। मेरे जय के लिये, हे तात! एक तुम और वज्र यही दो उत्तम वस्तु हैं। वज्र तो कभी निष्फल भी हो जाता है, परन्तु तुम कभी निष्फल नहीं हो सकते ।।९।। जिससे अपना हित हो उससे प्रिय कौन है? इस कारण; हे मित्रवर! तुम मेरे इस कार्य को करने के योग्य हो ।।१०।। मुझे जो यह असाध्य और काल से उत्पन्न दुःख उत्पन्न हुआ है, उसे दूर करने को तुम्हारे सिवाय कोई समर्थ नहीं है ।।११।। दुर्भिक्ष में दाता की, युद्ध में शूर की, आपत्ति में मित्र की, असमर्थ होने पर स्त्रीकुल की परीक्षा होती है ।।१२।। हे तात! विनय में संकट की प्राप्ति में परीक्षा में, जो सत्यता वही सत्यता कही गई है, इस दशा में सत्य का रखना कठिन होता है, वैसे इन्हीं स्थलों में स्नेह का रखना भी कठिन है, इन ही स्थलों में रहने वाली सत्यता को जैसे सत्यता कहते हैं, वैसे इन ही स्थलों में रहने वाले स्नेह को ही स्नेह कहते हैं। यही श्रेष्ठ सत्यता तथा श्रेष्ठ स्नेह का लक्षण कहा गया है, यह अन्यथा नहीं है, मैं सत्य कहता हूँ ।।१३।। जो कि दूसरे के निवारण करने के अयोग्य मुझ पर विपत्ति प्राप्त है, तभी हे मित्रवर्य! इस विपत्ति ही में आज तुम्हारी परीक्षा प्राप्त हुई ।।१४।। यह केवल मेरे ही सुख का कार्य नहीं है, किन्तु यह सब देवताओं का कार्य है, इसमें सन्देह नहीं ।।१५।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार से इन्द्र के वचन सुन कर कामदेव हँसते हुए गम्भीरता से यह वचन बोला ।।१६।। काम ने कहा– इतना आप क्यों कहते हो? मैं आपके कथन पर उत्तर नहीं देता, उपकारी और कृत्रिम लोक में दीखे जाते हैं, कहने का क्या प्रयोजन है? ।।१७।। संकट में जो बहुत बोलता है, वह क्या कार्य करेगा? हे महाराज! तो भी मैं जो कहता हूँ सो आप सुनिये ।।१८।। जो आपका पद ग्रहण करने की इच्छा से कोई तप करता है, मैं आपके उस शत्रु को अवश्य गिरा दूंगा; कारण कि आप मेरे मित्र हैं ।।१९।। वर स्त्रियों के कटाक्ष से क्षणमात्र में नष्ट कर दूंगा, चाहे देवर्षि वा दानव क्यों न हो? अन्य मनुष्यों की तो इसमें गणना ही नहीं है ।।२०।। वज्र और दूसरे अस्त्र–शस्त्र दूर ही रहें, मुझ मित्र के विद्यमान होते वे मेरा क्या कर सकते हैं? ।।२१।। ब्रह्माजी और हरि को भी मैं तप से चलायमान कर सकता हूँ, औरों की गणना तो क्या है? शंकरजी को भी समाधि से चलायमान कर सकता हूँ ।।२२।। मेरे फूलों के यह पाँच कोमल बाण और पुष्पों की तीन स्थान में झुकी हुई धनु ही और भ्रमरों के गुञ्जार रूपी ज्या सुन्दरी स्त्री ही बल और वसन्त का सखापन है ।।२३।। मैं पाँच बलों का देवता हूँ, चन्द्रमा मेरा मित्र है ।।२४।। शृङ्गार सेनापति और हावभाव सेना के लोग हैं, हे इन्द्र! हमारे ये सब मृदु रूप हैं और मैं भी उसी प्रकार का हूँ ।।२५।। जिससे जो कार्य पूर्ण हो, बुद्धिमान् उसको उसी कार्य में लगावें, मेरे योग्य जो कार्य हो उसमें आप मुझे नियुक्त कीजिये ।।२६।। ब्रह्माजी बोले– यह वचन सुनकर इन्द्र बड़े प्रसन्न हुए और प्रसन्नता के वचन कान्ताओं के

सुखदायक काम के प्रति कहे ।।२७।। इन्द्र ने कहा– हे तात कामदेव! जो कार्य मैंने मन में विचारा है, तुम वह करने में समर्थ हो, औरों से उसका सम्भव नहीं है ।।२८।। हे काम! हे यथार्थ मित्र! सुन, मैं तुझसे कार्य कहता हूँ, हे मनोभव! जिस निमित्त मुझे स्पृहा हुई है ।।२९।। तारक नामक महादैत्य ब्रह्माजी के अद्भुत वरदान से सब से अजेय हो गया है और सबको दुःख देता है ।।३०।। वह लोकों को बड़ी पीड़ा देता है, अनेक धर्म नष्ट हो गये हैं, देवता और सब ऋषि महादुःखी हो रहे हैं ।।३१।। देवताओं ने उससे अपने बल के समान युद्ध किया, परन्तु सबके आयुध उसके सामने निष्फल हो गये ।।३२।। वरुण की पाश (फांसी) उसके कण्ठ में पड़ कर टूट गई और कण्ठदेश में मारा हुआ नारायण का सुदर्शन चक्र छूते ही कुण्ठित हो गया ।।३३।। प्रजापति ने उस दुरात्मा का मरण महायोगीश्वर शिवजी के वीर्य से उत्पन्न पुत्र से निर्धारित किया है ।।३४।। यह कार्य तुम्हें यत्नपूर्वक करना चाहिये, हे मित्रवर्य! तब देवताओं को परम सुख की प्राप्ति हो सकती है ।।३५।। मैंने यह सब लोकों को आनन्दकारी कर्म विचारा है, हृदय में मित्रधर्म का स्मरण कर के इस समय कार्य कीजिये ।।३६।। शिवजी महाराज पर्वतराज हिमालय पर परम तपस्या कर रहे हैं, उन प्रभु को कामना नहीं है, कारण कि वह स्वतन्त्र परमेश्वर हैं ।।३७।। और मैंने यह सुना है, उनके समीप सखियों सहित पार्वती उन्हें अपना पति करने के लिये पिता की आज्ञा से सेवा करती हुई उपस्थित रहती है ।।३८।। हे काम! जिस प्रकार से शंकरजी की रुचि अवश्य ही पार्वती में हो जाय वह बात तुम्हें अवश्य करनी चाहिये ।।३९।। यह करने से ही तुम कृतार्थ हो जाओगे, तुम्हारे सब दुःख नाश हो जायेंगे, इसमें सन्देह नहीं। संसार में तुम्हारा प्रताप चिरस्थायी हो जायेगा ।।४०।। ब्रह्माजी बोले– यह कहने पर कामदेव का मुखकमल खिल गया और इन्द्र से प्रेमपूर्वक कहा कि, मैं आपका यह कार्य अवश्य करूंगा ।।४१।। यह वचन कहने पर 'ॐ' अर्थात् 'ऐसा ही हो' यह कह कर वचन स्वीकार किया। शिवजी की माया से मोहित हो कर काम ने यह बात स्वीकार की ।।४२।। जहां साक्षात् योगीश्वर परम तप करते थे, वहां प्रसन्न हो कर स्त्री और वसन्त के सहित कामदेव गया ।।४३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

तृतीये पार्वतीखण्डे सप्तदशोऽध्यायः ।। १७ ।।

*****

अठारहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले- वहां वह अभिमानी काम शिवजी की माया से मोहित हो कर मधु के साथ में अपना मोहने वाला धर्म विस्तारीत करने लगा ।।१।। जो वसन्त का धर्म है, वह सर्वत्र फैल गया; हे मुनीश्वर! उस औषधियों के स्थान में जहां महेश्वरजी तप करते थे, सर्वत्र वसन्त की महिमा दिखाई दी ।।२।। हे मुनीश्वर! उस काम के प्रभाव से उस वन के सब वृक्ष फूल गये और बहुत सी बातों में विशेषता होने लगी ।।३।। आम के मौर प्रकाशित होने लगे, अशोकवाटिका खिल उठी, काम को उद्दीपन करने वाली उनकी सुगन्ध बढ़ने लगी ।।४।। कैवर के फूल भ्रमरों के गुञ्जारव से शोभायमान होने लगे, इन सब से काम का वेग बढ़ने लगा ।।५।। काम को बढ़ाने वाला कोकिला का शब्द बढ़ने लगा, वह मनोहर और प्यारा लगने लगा ।।६।। हे मुने! इसी प्रकार से भौरें के शब्द अनेक प्रकार से होने लगे, वह सब को मनोहर और काम को बढ़ाने वाला हुआ ।।७।। चारों ओर चन्द्रमा की निर्मल कान्ति छिटकने लगी, यह कामिनियों और कामीजनों को दुति के समान हुई ।।८।। उस समय कालदीपिका मानी और मानिनियों को विहार का उत्तम समय बतलाने वाली और प्रेरणा करने वाली हुई तथा विरही जनों को अप्रिय सुन्दर पवन वहने लगी ।।९।। इस प्रकार से उस वन में मुनिजनों को दुःसह काम को बढ़ाने वाले वसन्त का विस्तार वनवासी और मुनिजनों को दुःसह हो उठा ।।१०।। हे मुने! उस समय अचेतनों को भी काम की आसक्ति हो गई और सचेतन जीवों की कथा तो क्या कही जाय?।।११।। इस प्रकार वसन्त ने अपना दुःसह प्रभाव फैलाया, इससे सब जीवों में कामोद्दीपन हो गया ।।१२।। हे तात! इस प्रकार से शंकरजी अकाल में वसन्त का प्रभाव देख कर परम आश्चर्य करने लगे; कारण कि प्रभु ने लीला के निमित्त शरीर धारण किया है ।।१३।। तब दुःख हरने वाले परम वशी प्रभु लीलापूर्वक दुष्कर तपस्या करने लगे ।।१४।। जब इस प्रकार वसन्त का प्रभाव बढ़ गया, तब कामदेव रति के सहित आम्रमञ्जरी का बाण चढ़ा कर उनके वामपार्श्व में स्थित हो गया ।।१५।। सब जनों को मोहित करता हुआ अपना प्रभाव विस्तार करने लगा, उस रति सहित कामदेव को देख कर कौन मोहित न होता?।।१६।। जब इस प्रकार से रति प्रवृत्त हुई, तब शृङ्गार भी गणों के साथ हावभाव के साथ शिवजी के समीप प्रविष्ट हुआ ।।१७।। वहां कामदेव प्रकट हुआ, वह यद्यपि मनोज है तथापि चित्त के बाहर ही स्थित रहा, वहां उसने शंकरजी में कोई छिद्र नहीं पाया, जिस के द्वारा

हृदय में प्रवेश करे।।१८।। जब कामदेव ने उस योगिराज के हृदय में विकार उत्पन्न करने का अवकाश नहीं पाया, तब स्मर महादेवजी से महान् देव हो कर भी भयभीत हो मोहित हो गया।।१९।। जिन के मस्तक का नेत्र महाप्रज्ज्वलित अग्नि के समान प्रकाशित हो रहा था, ध्यान में स्थित शंकरजी को अपने अधीन करने की किस की सामर्थ्य है?।।२०।। इसी समय पार्वती भी अपनी सखियों के साथ बहुत से पुष्प ले कर शंकरजी की पूजा करने आईं।।२१।। पृथ्वी पर जितनी सुन्दरताई का वर्णन होता है, उस से भी अधिक सुन्दरताई की जहां तक सम्भावना पाई जाती है, वह सब उन पार्वतीजी में थी।।२२।। जिस समय वह ऋतु सम्बन्धी पुष्प धारण कर के चली, वह सुन्दरता तो सैकड़ों वर्ष में भी उत्तम वर्णन करने वालों से भी वर्णन नहीं हो सकती।।२३।। जिस समय पार्वती शिवजी के समीप गई, उसी समय शिवजी ध्यान छोड़ कर समाधि से क्षणभर के लिये जागे थे।।२४।। बस कामदेव ने यही छिद्र पाया। बड़ा प्रसन्न हो कर पार्श्वस्थित हो कर शिवजी को अपने बाण से प्रसन्न करने लगा।।२५।। हे मुने! उस समय पार्वती शृङ्गार और भावों के सहित मानो कामदेव की सहायता के लिये ही सुन्दर सुगन्धी वायु के साथ शिवजी के समीप आई।।२६।। उसी समय शूलधर की पार्वतीजी के निरीक्षणादि व्यापारों में रुचि बढ़ाने के लिये धनुष चढ़ा कर बड़ी सावधानी से कामदेव ने शंकरजी के ऊपर पुष्पबाण का प्रहार किया।।२७।। जिस प्रकार से पार्वती नित्यप्रति शिवजी के समीप आ कर प्रणाम पूजन कर के स्तुति करती, उसी प्रकार से प्रणाम और पूजादिक कर के स्तुति करने के निमित्त शंकरजी के सम्मुख स्थित हो गयी।।२८।। जिस समय प्रभु शंकरजी ने पार्वती को देखा, शिवजी को उसी दिन विशेष देखते जब ही जाना कि, वह लज्जा से तथा स्त्री स्वभाव से अपने अंगों को संकुचित करने लगीं।।२९।। उसे जो वर विधाता ने दिया था, वह वर स्मरण कर के प्रभु शिवजी पार्वती के अंगों की बड़ाई करने लगे।।३०।। शिवजी बोले– क्या मुख है वा चन्द्रमा? क्या यह नेत्र हैं वा कमल? क्या यह दोनों भृकुटी हैं? वा यह महात्मा कामदेव का धनुष है?।।३१।। यह नीचे का अधर है वा बिम्बाफल? नासिका है वा तोते की चोंच? क्या स्वर है वा कोकिला का आलाप? क्या मध्यभाग है अथवा वेदी?।।३२।। इसकी अनूठी गति का वर्णन किया जाय वा अनूठे रूप का वर्णन किया जाय वा इसके अनूठे पुष्प के गहने वा वस्त्रों का वर्णन किया जाय?।।३३।। सृष्टि में जो लालित्य है मानो वह विधाता ने इसमें ही एकत्र निर्माण किया है, इसमें सन्देह नहीं, इसके सर्वांग सर्वथा मनोहर हैं।।३४।। अहो अद्भुत रूप वाली पार्वती को धन्य है, इसके समान लोक में कोई स्वरूप वाली स्त्री नहीं है।।३५।। यह लावण्य की निधान अद्भुत अंगों को धारण करती है, मुनियों को मोहने वाली और महासुख को बढ़ाने वाली है।।३६।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार से शिवजी बारंबार पार्वती के

अंगों का वर्णन कर के विधाता के दिये वरदान के अध्यास से विराम को प्राप्त हो गये।।३७।। और ज्यों ही शंकरजी हाथ चलाने के स्थान में अपना हाथ वस्त्रान्तर शरीर वस्त्र के मध्य की ओर जब तक चलावें कि, ऐसे शिवजी को जान कर प्रथम ही स्त्री स्वभाव से लज्जित हो कर पार्वती दूर स्थित हो गई।।३८।। और बारंबार शरीर शिवजी की ओर कटाक्ष कर के देखती हुई अपने अंगों को प्रकाशित करती मुसकुराने लगीं। हे मुने! उनके ऐसे चरित्र के महाआनन्द से पार्वती को कुछ मुस्कान हो गई।।३९।। इस प्रकार पार्वती की चेष्टा देख कर शंकरजी को मोह हो गया और महालीला करने वाले महेश्वरजी कहने लगे।।४०।। जब कि इस पार्वती के दर्शनमात्र से महाआनन्द होता है, फिर जब इसका आलिंगन करूं, तो उस सुख की सीमा कब हो सकती है?।।४१।। क्षणमात्र में ही ऐसा विचार करते और गिरिजा की बढ़ाई करते, ज्यों ही वह योगी चैतन्य हुए, कि त्यों ही विरक्त हो कर इस प्रकार बोले।।४२।। यह क्या विचित्र चरित्र हुआ, मुझे किस प्रकार से मोह हुआ, प्रभु ईश्वर हो कर भी काम ने मुझे किस प्रकार से विकृत किया?।।४३।। जब मैं समर्थ हो कर दूसरे के अंगस्पर्श की इच्छा करूं, तो अन्य असमर्थ क्षुद्र पुरुष क्या–क्या न करेंगे?।।४४।। इस प्रकार वैराग्य को प्राप्त हो कर उस पार्वती से पर्यंक आसादन को शंकरजी ने निवारण किया। क्या सर्वात्मा परेश कहीं पतित हो सकते हैं?।।४५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

तृतीये पार्वतीखण्डे कामकृतविकारवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः।। १८ ।।

*****

उन्नीसवाँ अध्याय

नारदजी बोले– हे ब्रह्मन्! हे महाभाग! इसके पीछे फिर क्या हुआ? आप कृपा कर के इस पापनाशिनी कथा का वर्णन कीजिये।।१।। ब्रह्माजी बोले– हे तात! इसके पीछे जो हुआ सो सुनिये, आपके स्नेह से मैं शिवलीला का वर्णन करता हूँ।।२।। महायोगी महेश्वरजी ने अपनी धीरता में विघ्न देख कर बड़े विस्मित हो कर विचार किया और इस बात में बड़ा आश्चर्य माना।।३।। शिवजी बोले– उत्तम तपस्या करते हुए यह क्या विघ्न उत्पन्न हुआ है, किस कुकर्मी ने मेरे चित्त में यह विकार प्रकट किया?।।४।। मैंने प्रेम से अन्य स्त्री का वर्णन किया, यह बड़ा धर्म के विरुद्ध हुआ और शास्त्र की मर्यादा उल्लंघन की।।५।। ब्रह्माजी बोले– परमेश सतांगति महायोगी इस प्रकार विचार कर के शंकित हो कर सब दिशाओं का अवलोकन करने

लगे ।।६।। तब देखा कि वाम ओर धनुष चढाये हुए कामदेव विद्यमान है और बाण छोडने की इच्छा से वह मूढ़ महागर्वित हो रहा है ।।७।। इस प्रकार से कामदेव को देख कर परमात्मा गिरीशजी को उस समय महाक्रोध उत्पन्न हो गया ।।८।। हे मुने! उसी समय कामदेव ने भय से धन्वाबाण छोड़ कर अन्तरिक्ष में स्थिति की थी, कि मैंने दुर्निवार अमोघ अस्त्र शंकरजी के उपर चलाया है ।।९।। वह अमोघ अस्त्र उन परमात्मा में मोघ निष्फल ही शान्त हो गया, अनन्तर परमेश्वर के क्रोध करने में ।।१०।। शिवजी के ऊपर अस्त्र के मोघ होने में कामदेव को भय प्राप्त हुआ और मृत्युञ्जय प्रभु को देख कर वह कम्पित हो गया ।।११।। तब भय से व्याकुल हो कर कामदेव ने इन्द्रादि देवताओं का स्मरण किया। हे मुनिश्रेष्ठ! जब कामदेव का प्रयास निरर्थक हुआ ।।१२।। हे मुनीश्वर! जब कामदेव ने उन इन्द्रादि देवताओं का स्मरण किया, तब वे सब देवता आ कर प्रणाम कर के शिवजी की स्तुति करने लगे ।।१३।। जिस समय वह देवता शिवजी की स्तुति कर रहे थे, उस समय क्रुद्ध हुए शिवजी के तीसरे नेत्र से महान् ।।१४।। ललाट के मध्य से अग्नि का पुंज प्रकट हो गया और वह प्रलयाग्नि के समान ऊर्ध्व शिखा से प्रदीप्त हो कर जल उठा ।।१५।। तत्काल आकाश की ओर धावमान हो कर और फिर भूमि की ओर धावमान हो कर, अपने चारों ओर धावमान होती हुई अग्नि को देख कर कामदेव पृथ्वी पर गिर पड़ा ।।१६।। जब तक देवता यह कह रहे थे कि, 'क्षमा करो, क्षमा करो', तब तक उस अग्नि ने कामदेव को भस्म कर दिया ।।१७।। उस वीर कामदेव के नष्ट होने से देवताओं को बड़ा दुःख हुआ और व्याकुल हो कर रोने लगे कि, यह क्या हुआ ?।।१८।। उसी समय भय से श्वेतांग (पीसने वाली) विकृतात्मा हुई गिरिराज की पुत्री भी अपनी सखियों को साथ लिये अपने मन्दिर में गई ।।१९।। क्षणमात्र के निमित्त तो रति उस समय संज्ञाहीन हो गई और स्वामी की मृत्यु के दुःख से पतित होकर मृतक के समान हो गई ।।२०।। संज्ञा को प्राप्त होकर रति दुःख से व्याकुल हो कर विलाप करती हुई अनेक प्रकार के वचन बोलने लगी ।।२१।। रति बोली– क्या करूं, कहां जाऊं, यह देवताओं ने क्या किया ? मेरे स्वामी को यहां भेज कर नाश कर दिया ।।२२।। हा हा नाथ! हे स्मर! हे स्वामी! हां मेरे प्राणनाथ! सुख के देने वाले हे प्रिय! हाय, यह क्या हुआ ?।।२३।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार से विलाप करती अनेक प्रकार के वचन बोलने लगी, हाथ पैर पटकने और केशों को नोंचने लगी ।।२४।। उस विलाप को सुन कर वन के सब चर–अचर दुःखी हो गये ।।२५।। हे नारदजी! उस समय इन्द्रादि सब देवता महेश्वरजी का स्मरण करते हुए रति के समीप आ कर पूंछने लगे ।।२६।। देवता बोले– हे रति! काम की थोड़ी भस्म ले कर तू यत्न से उसकी रक्षा कर, तेरा स्वामी फिर जीवित होगा और तू उसे फिर प्राप्त होगी ।।२७।। सुख–दुःख का देने वाला किसी को कोई नहीं है, सब अपना कर्म

भोगते हैं, तू वृथा ही देवताओं को पति के नाश में निमित्त समझती हो ।।२८।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार रति से कह कर सब देवता शिवजी के पास गये और भक्ति से शिवजी को प्रसन्न कर के यह वचन बोले ।।२९।। देवता बोले– हे प्रभो शंकर! हे शरणागतवत्सल ! हे महेशान !आप हमारे ऊपर कृपा कर के हमारे वचन सुनिये ।।३०।। हे शंकर! प्रीति से कामदेव के कर्त्तव्य को आप विचारें, कामदेव ने यह जो कुछ किया है, हे महेश्वरजी! अपने स्वार्थ के लिये नहीं किया है ।।३१।। हे प्रभो! जब कि दुष्ट तारकासुर ने सब देवताओं को पीड़ित कर रखा है, तब हमने ही यह कर्म कामदेव से कराया है। हे शंकर! इसमें अन्यथा नहीं है ।।३२।। हे देव! यह अकेली रति विलाप कर के महादुःखी हो कर रो रही है। हे गिरीश! आप इसे तो आश्वासन दे ।।३३।। हे शंकर! यदि क्रोध से काम को नष्ट करने की इच्छा की, तो मानो सब देवताओं को ही आपने मार दिया ।।३४।। रति का दुःख देख कर सब देवता मृतप्राय हो रहे हैं। इस कारण आपको रति का शोक दूर करना चाहिये ।।३५।। ब्रह्माजी बोले– यह उनके वचन सुन कर भगवान् शंकरजी सब देवताओं से प्रसन्न हो कर इस प्रकार के वचन बोले ।।३६।। शिवजी बोले– देवता और ऋषि सब कोई आदर से मेरे वचन सुनें, मेरे क्रोध से जो कुछ हो गया है, वह अन्यथा नहीं हो सकता ।।३७।। रतिपति काम अनंग रूप से रहेगा, जब तक रुक्मिणीपति श्रीकृष्ण का संसार में अवतार होगा ।।३८।। जब द्वारका में स्थित हो कर श्रीकृष्णजी पुत्रों को उत्पन्न करेंगे, तब वह रुक्मिणी में काम को भी उत्पन्न करेंगे ।।३९।। इसमें सन्देह नहीं, उसका नाम प्रद्युम्न होगा, उसके उत्पन्न होते ही शंबर उसे हर कर ले जायेगा ।।४०।। वह दानवोत्तम शंबर उसे हरण कर के समुद्र में डाल देगा और उसे मृतक जान कर वह मूढ़ अपने घर चला जायेगा ।।४१।। तब तक रति को उसके नगर में सुखपूर्वक रहना चाहिये, वहीं इसे इसके पति प्रद्युम्न की अवश्य प्राप्ति होगी ।।४२।। हे देवताओ! वह काम उससे मिल कर संग्राम में शंबर को मार कर अपनी कामिनी को प्राप्त कर के सुखी होगा ।।४३।। हे देवताओं! उसका सब द्रव्य ले कर रति के साथ वह द्वारकापुरी में जायेगा, यह मेरा वचन सत्य है ।।४४।। ब्रह्माजी बोले– शिवजी के यह वचन सुन कर देवता शंकरजी को प्रणाम कर के कुछेक दुःख से निश्वास ले कर हाथ जोड़ कर स्थित हुए ।।४५।। देवता बोले– हे देव देव महादेव! हे करुणासागर! हे प्रभो! आप शीघ्र ही काम को जीवनदान दे कर रति के प्राणों की रक्षा कीजिये ।।४६।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार देवताओं के वचन सुन कर परमेश्वर प्रसन्न हुए और करुणासागर सकलेश्वर ने फिर कहा ।।४७।। शिवजी बोले– हे देवताओ! मैं प्रसन्न हूँ। इस अवधि के मध्य में भी काम को मैं जीवित करूंगा, वह काम मेरा गण हो कर नित्य विहार करेगा ।।४८।। हे देवताओ! आप इस आख्यान को किसी से मत कहना, आप अपने स्थान को जाओ। मैं आपके सब दुःख नाश करूंगा ।।४९।।

ब्रह्माजी बोले– यह वचन सुन कर देवता ज्यों ही स्तुति करने लगे कि, शिवजी अन्तर्धान हो गये और सब देवता दुःख छूट जाने से विस्मय रहित हो गये ।।५०।। और रति को समझा कर रुद्र के वचन में स्थित हुए और रति को शंकरजी के वचन सुना कर अपने–अपने स्थानों को गये ।।५१।। हे मुने! रति भी शंबर के स्थान को गई। हे मुनीश्वर! वहां वह शिवजी के बताये काल की प्रतीक्षा करने लगी ।।५२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
तृतीये पार्वतीखण्डे कामनाशवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्याय: ।। १९ ।।

*****

बीसवाँ अध्याय

नारदजी बोले– हे ब्रह्माजी! वह शिवजी के नेत्र से निकली हुई अग्नि की ज्वाला कहां गई? यह शिवजी का चरित्र हमसे कहिये ।।१।। ब्रह्माजी बोले– जब तीसरे नेत्र की अग्नि ने कामदेव को भस्म कर दिया, तब वह अग्नि बिना प्रयोजन ही सब ओर को धावमान हुई ।।२।। तब चर–अचर त्रिलोकी में सब ओर से हाहाकार मच गया। हे तात! उस समय सब देवता और ऋषि मेरी शरण में आये ।।३।। और व्याकुल हो कर सब ने मुझ से दुःख निवेदन किया और प्रणाम कर हाथ जोड़ कर खड़े रह गये और सिर झुका लिया ।।४।। यह मैं सुन कर शिवजी को प्रणाम कर उसका हेतु विचार कर त्रिलोकी की रक्षा के लिये जहां वह अग्नि थी उस स्थान पर गया ।।५।। वह काम को जलाने वाली अग्नि ज्वालामाला से बहुत प्रचण्ड हो रही थी, मैंने शिवजी की कृपा से उस महाप्रदीप्त तेज को स्तम्भित कर दिया ।।६।। जब वह क्रोधमयी अग्नि त्रिलोकी को जलाने की इच्छा करने लगी, हे मुने! हे सौम्य! तब उस वाडव ज्वालामुखी अग्नि को मैंने आकर्षित कर के ।।७।। शिवजी की इच्छा से सब वाडव शरीरधारी अग्नि को लेकर मैं जगत् की रक्षा करने वाला, लोक के उपकार के लिये उसे सागर में ले गया ।।८।। हे मुने! मुझे आता हुआ देख कर समुद्र हाथ जोड़ कर पुरुष का रूप धारण कर के, मेरे समीप आया ।।९।। वह समुद्र मुझे प्रणाम कर के, यथा विधि स्तुति कर के, सब मुझ लोक के पितामह से प्रेमपूर्वक कहने लगा ।।१०।। समुद्र ने कहा– हे ब्रह्मन्! हे सब जगत् के पति! आप यहां कैसे आये हो? मुझे अपना सेवक मान कर प्रेम से आप कहिये ।।११।। तब मैं समुद्र के यह वचन सुन कर, प्रेमपूर्वक शिवजी को स्मरण करते, लोकों का हित चाहते हुए बोला ।।१२।। ब्रह्माजी बोले– हे तात! हे महाबुद्धिमान्! हे सब लोकों के हितकारी! आप सुनिये; हे सागर! शिवजी इच्छा से प्रेरित हो कर मैं

तुम से कहता हूँ।।१३।। यह वाडव रूप महाअग्नि शिवजी का महाक्रोध है, कामदेव को भस्म कर के अब यह सब को दग्ध करने की इच्छा करती है।।१४।। शंकरजी की इच्छा से पीड़ित हुए सब देवताओं की प्रार्थना से मैंने शीघ्र ही वहां जा कर इस अग्नि को स्तम्भित किया।।१५।। इस प्रकार वाडव रूप धारण कर के इसे ले कर यहां आया हूँ। मैं इसे तुम्हारे जल में रहने का निर्देश करता हूँ। हे सागर! तुम करुणाकर हो, इसे ग्रहण करो।।१६।। यह महेश्वरजी के क्रोध की अग्नि वाडवा रूप धारण कर के ज्वालामुख से स्थित है, इसे तुम प्रलय पर्यन्त धारण किये रहो।।१७।। हे नदियों के पति! जब कि मैं यहां आ कर निवास करूंगा, तब मुझे यह शंकरजी की क्रोधाग्नि त्याग देनी होगी।।१८।। यह नित्य तुम्हारे जल का भोजन करता रहेगा, इसे तुम यत्न से धारण करना, जिस से कुछ अन्तर न पड़े।।१९।। ब्रह्माजी बोले– मेरे ऐसा कहने पर समुद्र ने मेरी बात स्वीकार की; कारण कि यह रुद्र के कोप की महाभयानक अग्नि रुद्र के सिवाय कोई ग्रहण करने को समर्थ नहीं था।।२०।। तब वह वडवाग्नि समुद्र में प्रवेश कर गई और उसकी ज्वालामाला से दीप्त हो कर जल के समूह भस्मीभूत होने लगे।।२१।। हे मुने! तब मैं सन्तुष्ट चित्त हो कर अपने स्थान में आया और दिव्य रूप सागर भी मुझे प्रणाम कर के अन्तर्धान हो गया।।२२।। जब यह भय छूट गया, तब सब जगत् स्वस्थ हो गया। हे मुने! देवता और मुनि सब महा सुखी हुए।।२३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

तृतीये पार्वतीखण्डे विंशोऽध्यायः।। २० ।।

*****

इक्कीसवाँ अध्याय

नारदजी बोले– हे तात ब्रह्माजी! हे महापण्डित! हे विष्णुजी के शिष्य! त्रिलोकी के रचनेवाले यह महात्मा शंकरजी की बड़ी अद्भुत कथा आपने कही है।।१।। जब कामदेव शंकरजी के तीसरे नेत्र की अग्नि से भस्म हो गया और वह अग्नि सागर में प्रविष्ट हो गई, तब क्या हुआ?।।२।। हिमालय की पुत्री देवी पार्वती ने तब क्या किया, वह सखियों सहित कहां गई? हे दयानिधे! सो आप कहिये।।३।। ब्रह्माजी बोले– हे तात! हे महाप्राज्ञ! आप शंकरजी के चरित्र सुनिये। वह मेरे स्वामी बड़े कर्तव्य करते हैं, आदर से उनके चरित्र सुनिये।।४।। जिस समय शंकरजी की नेत्राग्नि से कामदेव भस्म हो गया, उस समय एक ऐसा भयंकर शब्द हुआ, जिससे आकाश पूर्ण हो गया।।५।। उस महाशब्द से कामदेव को दग्ध हुआ विचार कर पार्वती व्याकुल हो कर सखियों के साथ

अपने स्थान को गई ।।६।। और उस शब्द से हिमालय भी अपने परिवार के सहित बड़े विस्मित हो कर अपनी पुत्री को स्मरण करते वहां गये ।।७।। सुता को विह्वल देख कर शैलराज को बड़ा कष्ट हुआ ।।८।। जो कि शिवजी के विरह से व्याकुल थी, उसी समय वहां पर्वतराज आ कर प्राप्त हुए ।।९।। और वहां पहुँच कर पार्वती के नेत्रों के आँसू अपने हाथों से पोंछे। हे शिवे! 'मत डरो, मत रोओ', ऐसा कह कर उसे ग्रहण किया ।।१०।। अचलेश्वर हिमालय ने शीघ्र ही उसे अपनी गोदी में बैठाया और घबराई हुई को समझाते हुए अपने स्थानों में ले गये ।।११।। कामदेव को भस्म कर के शिवजी अन्तर्धान हो गये, तब पार्वती उनके विरह से महाव्याकुल हुई और किसी प्रकार कहीं उसे शान्ति न मिली ।।१२।। तब पार्वती पिता के घर जा कर माता से मिलीं, उस पार्वती ने मानो अपने को फिर नवीन जन्म माना ।।१३।। और अपने रूप की निन्दा करती हुई, 'हां! मैं मरी' ऐसा कहने लगी। सखियों के समझाने पर भी पार्वती कुछ न समझी ।।१४।। सोते, पीते, स्नान करते जाते हुए तथा सखिजनों के मध्य में बैठते हुए, उसे कहीं कुछ सुख न मिला ।।१५।। मेरे स्वरूप और जन्म कर्म को धिक्कार है, इस प्रकार कहती हुई निरन्तर हर की चेष्टा स्मरण करने लगी ।।१६।। इस प्रकार पार्वती शिवजी के विरह से व्याकुल हो कर कहीं सुख को प्राप्त न हो कर 'शिव शिव' कहने लगी ।।१७।। पिता के घर निवास करती, शंकरजी में ही मन लगाये रही और हे तात! पार्वती शोक करती बारंबार मोह को प्राप्त हो गई ।।१८।। शैलराज उनकी स्त्री मेना और मैनाक को आदि ले कर उनके सब पुत्र पार्वती को बहुत प्रकार से समझाने लगे, पर वह बड़े धैर्य वाली तब भी शंकरजी को किसी प्रकार न बिसारती हुई ।।१९।। हे नारदजी! तब इन्द्र ने बुद्धिमान् हिमालय के स्थान पर आपको नियुक्त किया और विचरते-विचरते आप वहां पहुँचे ।।२०।। तब महात्मा भूधर ने आपकी पूजा की और पश्चात् श्रेष्ठ आसन पर बैठ कर आपने उनसे कुशल पूंछी ।।२१।। तब हिमालय ने पार्वती की सेवा का चरित्र और शिवजी के द्वारा कामदहन वर्णन किया ।।२२।। यह सुन कर आप मुनिराज ने कहा कि, शैलेश आप शिवजी का भजन करे और उनका आमन्त्रण कर के मन में शंकरजी का भजन कर, आप उठ कर चले ।।२३।। फिर लोकोपकारी शंकरजी के प्रिय, परमज्ञानी, आपने उन्हें छोड़ कर एकान्त में पार्वतीजी के समीप शीघ्रता से कहा ।।२४।। तब आप काली के समीप जा कर और आदर से उनके हित के निमित्त सम्बोधन कर के सब ज्ञानियों में श्रेष्ठ आप श्रेष्ठ वचन बोले ।।२५।। नारदजी बोले- हे काली! मेरे वचन सुनो, मैं दया में तत्पर हो कर वचन कहता हूँ, जो सर्वथा आपके हितकारी, निर्विकार कामना के देने वाले हैं ।।२६।। आपने तपस्या के बिना महादेवजी की सेवा की और गर्व के साथ सेवा की और वे दीनों पर अनुग्रह करने वाले हैं, उन्हों ने आपका गर्व नष्ट कर दिया ।।२७।। वह आपके स्वामी महायोगी

महेश्वरजी विरक्त हैं, हे शिवे! भक्तवत्सलता के कारण ही तो कामदेव को नष्ट कर के आपको छोड़ दिया ।।२८।। इस कारण आप बहुत काल तक तपस्या कर के महादेवजी की आराधना करें, तप से संस्कार को प्राप्त हुई आपको भगवान् स्वीकार करेंगे ।।२९।। आप भी कभी शंकरजी को त्याग नहीं करोगी । हे देवी! शंकरजी के सिवाय आप भी दूसरे पति को हठ से ग्रहण नहीं करोगी ।।३०।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार पार्वती नारदजी के वचन सुन कर, कुछेक ऊँची श्वास ले कर, हाथ जोड़ कर, आपसे बोली ।।३१।। पार्वती बोली– हे नारदजी! आप तो सब जगत् के उपकार करने वाले हो, रुद्र की आराधना करने के निमित्त आप मुझे मन्त्र दीजिये ।।३२।। सद्गुरु के बिना किसी को कोई क्रिया भी सिद्ध नहीं होती, यह मैंने सुन रखा है, यह सनातनी श्रुति है ।।३३।। ब्रह्माजी बोले– हे मुनिराज! इस प्रकार से आपने पार्वती के वचन सुन कर विधिपूर्वक उसे शिवजी के पंचाक्षर मन्त्र का उपदेश दिया ।।३४।। हे मुने! श्रद्धा को उत्पन्न करते हुए आपने उस मन्त्रराज का प्रभाव सब से श्रेष्ठ वर्णन करते हुए कहा ।।३५।। नारदजी बोले– हे देवि! इस मन्त्र का परम अद्भुत प्रभाव सुनो, जिसके श्रवणमात्र से भगवान् शंकरजी प्रसन्न हो जाते हैं ।।३६।। यह मन्त्र सब मन्त्रों का महाराजा है, कामना और भुक्ति–मुक्ति का देने वाला यह मन्त्र शंकरजी को परम प्रिय है ।।३७।। हे सुभगे! जब विधिपूर्वक आप इसे जपोगे तो आपकी आराधना से वह प्रभु शीघ्र ही प्रत्यक्ष हो जायेंगे, इसमें सन्देह नहीं ।।३८।। नियम में स्थित हो कर उन्हीं का रूप विचारती हुई पंचाक्षर मन्त्र का जप करो। हे शिवे! इस मन्त्र के जपने से शिवजी आपके ऊपर शीघ्र ही प्रसन्न हो जायेंगे ।।३९।। हे साध्वि! इस प्रकार से आप तप करें, महेश्वरजी तप से ही साध्य हो सकते हैं। सब तपस्या ही से फल प्राप्त करते हैं, इसमें अन्यथा नहीं है ।।४०।। ब्रह्माजी बोले– हे शिवप्रिय नारदजी! आप इस प्रकार से काली से कह कर देवताओं के हित में प्रीति करते हुए, अपनी इच्छा से स्वर्ग को चले गये ।।४१।। हे नारदजी! तब पार्वती उस समय आपके वचन सुन कर, पंचाक्षर मन्त्र को प्राप्त हो कर बहुत प्रसन्न हुई ।।४२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

तृतीये पार्वतीखण्डे एकविंशोऽध्यायः ।। २१ ।।

*****

बाईसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– हे मुनिराज! आपके जाने पर पार्वती बहुत प्रसन्न हुई, शिवजी को तप से साध्य मान कर पार्वती ने तप में ही मन लगाया।।१।। तब अपनी जया और विजया नामक सखियों को ले जा कर माता–पिता और सखीजनों से पूछा।।२।। पहले अपने पिता पर्वतराज हिमालय से बड़ी नम्रता और भक्ति से प्रणाम कर पूछा।।३।। दोनों सखियां बोलीं– हे राजन्! पार्वती जो वचन कहती है उसे सुनिये, वह अपने देह और रूप को सफल करने तथा आपके कुल को सफल करने की इच्छा करती है। यह शंकरजी तप से ही साध्य हो सकते हैं, अन्यथा किसी के दृष्टिगोचर नहीं हो सकते।।४–५।। इस कारण, हे गिरिराज! इस समय आपको यह आज्ञा देनी चाहिये कि, पार्वती वन में जाकर तपस्या करे।।६।। ब्रह्माजी बोले– जब इस प्रकार पार्वती की सखियों ने पूंछा, तब विचार कर गिरिराज इस प्रकार के वचन बोले।।७।। गिरिराज ने कहा– मुझे तो यह बात अच्छी लगती ही है, पर पार्वती की माता से पूंछना चाहिये, जो ऐसा हो जाय, तो उससे उत्तम और बात क्या है?।।८।। इसमें हमारा कुल निश्चय धन्य हो जायेगा। यदि मेना को भी यह बात रुचे, तो उससे उत्तम और क्या है?।।९।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार वे दोनों सखियां पार्वती के पिता के वचन सुन कर पार्वती की माता से इस बात की अनुमति लेने को गईं।।१०।। हे नारदजी! वे पार्वती की माता के पास जा कर, प्रणाम कर, हाथ बांध कर आदर से बोलीं।।११।। सखियां बोलीं- हे मैय्या! आप आदर से पार्वती के वचन सुनिये, आपको प्रणाम है। सुन कर प्रसन्नता से उस बात के करने को आप योग्य हो।।१२।। आपकी पुत्री शिवजी के प्राप्ति के निमित्त परम तपस्या करने की इच्छा करती हैं। पिता से आज्ञा प्राप्त हुई, वह अब आपसे पूंछती हैं।।१३।। हे पतिव्रते! पार्वती इस रूप को सफल करने की इच्छा करती है, जो आपकी आज्ञा हो जाय, तो वह परम तपस्या करे।।१४।। हे मुनीश्वर! इस प्रकार कह कर वे सखियां मौन हुई, पर मेना ने व्याकुलता के कारण उस पार्वती के वचन को स्वीकार न किया।।१५।। तब पार्वती ने स्वयं ही माता से कहा, दोनों हाथ जोड़ कर, विनय से शिवजी के चरणकमल स्मरण करती हुई बोली।।१६।। पार्वती बोली– हे मातः! मैं महेश्वरजी के प्राप्त होने के निमित्त प्रभात ही तपोवन में तपस्या करने जाऊंगी, हे मातः! इस समय मुझे तपोवन जाने की आज्ञा दीजिये।।१७।। ब्रह्माजी बोले– पुत्री के यह वचन सुन कर मेना को बड़ा दुःख हुआ, विकल हो कर पुत्री को निकट बैठाती हुई बोली।।१८।। मेना बोली– हे पुत्री शिवे! यदि तू दुःखी है और तप

करने की ही यदि तेरी इच्छा है, तो तू घर में ही तपस्या कर बाहर मत जा ।।१९।। तप करने कहां जाती है ? मेरे घर में देवता विद्यमान हैं, समस्त तीर्थ और अनेक क्षेत्र यहां विद्यमान हैं ।।२०।। हे पुत्रि! इसमें हठ मत करो, तप करने बाहर मत जाओ। पहले तुमने क्या साधा और अब क्या साधोगी ?।।२१।। हे वत्से! तेरा शरीर बड़ा कोमल है और तप करना बड़ा कठिन है, इस लिये तुम यहीं तपस्या करो, बाहर मत जाओ ।।२२।। हे कामना की इच्छा वाली! स्त्रियों की तपोवन में गति नहीं सुनी है, इस कारण तपस्या के लिये वन में गमन मत करो ।।२३।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार से मेना ने बहुत प्रकार से पुत्री को समझाया, पर उसने शंकरजी की आराधना के सिवाय किसी प्रकार से सुख न माना ।।२४।। मेना ने जो बारंबार तपस्या को जाने के निमित्त पार्वती से निषेध किया, इस कारण से शिवा का नाम उमा पड़ा ।।२५।। हे मुने! तब मेना ने शैल की प्यारी शिवा को दुःखी जान कर, पार्वती को तप करने के निमित्त आज्ञा दे दी ।।२६।। हे मुनिश्रेष्ठ! उस सुव्रता ने माता की आज्ञा को प्राप्त हो कर शंकरजी को स्मरण करते हुए अपने मन में बड़ा सुख माना ।।२७।। वह शिवा प्रसन्नतापूर्वक माता-पिता को प्रणाम कर के शिवजी को स्मरण करते, दो सखियों को साथ ले कर तप करने गई ।।२८।। अनेक प्रकार के मत और अनेक प्रकार के वस्त्रों को छोड़ कर पार्वती ने सुन्दर मौंजी कमर में बांध कर वल्कल वस्त्र धारण किये ।।२९।। हार को छोड़ कर मृगचर्म धारण किया और गंगोत्तरी के समीप तपस्या करने गई ।।३०।। जहां शिवजी ने समाधि लगाई थी, जहां कामदेव भस्म हुआ था, वही गंगावतरण नामक हिमालय का प्रस्थ है ।।३१।। हे तात! उस समय वह स्थान शिवजी से रहित था, काली जगदम्बा पार्वती पहले उसी स्थान में गई ।।३२।। जहां प्रथम शिवजी ने दुष्कर तप किया था। क्षणमात्र स्थित हो कर पार्वती विरह से बहुत व्याकुल हुई ।।३३।। 'हा शंकर' इस प्रकार कह कर पार्वती रोने लगी, बड़े दुःख और चिन्ता शोक से व्याकुल हो कर रोने लगी ।।३४।। फिर बहुत समय पीछे पार्वती ने धैर्य से मोह को स्तम्भित कर के दीक्षित हो कर तपस्या के निमित्त नियम धारण किया ।।३५।। तब उस महा उत्तम शृंगितीर्थ में तपस्या करने लगी, इसी कारण उस स्थान में तपस्या करने से उस स्थान का नाम 'गौरीशिखर' हुआ ।।३६।। हे मुने! शिवा के वहां पधारने से वृक्षादि हरे हो गये, जो पार्वती ने तप की परीक्षा के लिये लगाये थे कि, तपस्या का फल किस प्रकार से होगा ? ।।३७।। तब सुन्दरी ने भूमिशुद्धि कर के और उस स्थान में वेदी निर्माण कर के मुनियों को भी दुष्कर ऐसी तपस्या आरम्भ की ।।३८।। मन के साथ शीघ्र ही सम्पूर्ण इन्द्रियों को रोक कर, वहां स्थित हो कर परम तपस्या करने लगी ।।३९।। ग्रीष्मकाल में दिन-रात अपने चारों ओर अग्नि प्रज्ज्वलित कर के स्थित रही और उसके मध्य में स्थित हो कर मन्त्र जपने लगी ।।४०।। और वर्षा के समय मैदान में आसन लगा कर बैठी,

शिलापृष्ठ पर स्थित हो कर अपने ऊपर जल की धारा को सहन करने लगी ।।४१।। शीत काल में शंकरजी की भक्ति में तत्पर हो कर बिना आहार किये शीत काल की कठिन रात्रियों में जल के भीतर स्थित रही ।।४२।। इस प्रकार तपस्या करती पंचाक्षर का जप करने लगी और सब काम फल के देनेवाले शिवजी का ध्यान करने लगी ।।४३।। अपने लगाये हुए वृक्षों को सखिजनों से सिंचित कराती तथा अवकाश पा कर स्वयं भी सींचती और अतिथि सत्कार भी करती ।।४४।। वात तथा शीतकाल की अनेक प्रकार की वर्षा और गरमी की दुःसह धूप को भी सावधान चित्त से सहने लगी ।।४५।। और भी अनेक प्रकार के दुःख आये, पर उसने एक भी न माना । हे मुने! वह केवल शिवजी में मन लगा कर स्थित हुई ।।४६।। पहले वर्ष में फल भोजन, दूसरे वर्ष में पर्णाहार करते हुए तपस्या से देवी को क्रम से बहुत वर्ष बीत गये ।।४७।। तब वह हिमवत्सुता शिवादेवी पर्ण भोजन भी छोड़ कर, निराहार हो कर, तपस्या करने लगी ।।४८।। जब कि शिवा ने पर्ण भोजन तक त्याग दिया, तब देवताओं ने शिवा का नाम 'अपर्णा' उच्चारण किया ।।४९।। पार्वती तब एक चरण पर स्थित हो कर शिवजी का स्मरण करते हुए पंचाक्षर मन्त्र जपती महातपस्या करने लगी ।।५०।। चीर वल्कल पहने, जटाजूटधारी शिवजी को ही चिन्तन करते पार्वती ने मुनियों को जीत लिया ।।५१।। इस प्रकार तपस्या करते और महेश्वरजी की चिन्ता करते पार्वती को तपोवन में तीन सहस्र वर्ष बीत गये ।।५२।। जहां शंकरजी ने साठ सहस्र वर्ष तक तपस्या की थी, वहां क्षणमात्र को स्थित हो कर पार्वती विचार करने लगी ।।५३।। क्या महादेवजी यह नहीं जानते कि, यह मेरे निमित्त तपस्या में निरत है, जिससे कि इतने समय तक तप करते हुए भी उन्होंने मेरी सुधि न ली ?।।५४।। लोक, वेद तथा मुनिजनों में यह बात प्रसिद्ध है कि, शंकरजी सर्वज्ञ हैं, सर्वात्मा और सर्वदर्शी हैं ।।५५।। वह देव सब ऐश्वर्य देने वाले सब भावों से अनुभावित हैं, निरन्तर भक्तों के मनोरथ पूर्ण करने वाले तथा सब क्लेशों के निवारण करने वाले हैं ।।५६।। यदि मैं सब कामनाओं को त्याग कर शंकरजी में अनुरक्त हुई हूँ, तो वह शंकरजी मुझ अनुरागिनी पर प्रसन्न होंगे ।।५७।। यदि नारदतन्त्र का कहा हुआ पंचाक्षर मन्त्र भक्ति और विधि से मैंने नित्य जपा है, तो शिवजी मेरे ऊपर प्रसन्न हों ।।५८।। यदि भक्ति से मैंने निर्विकार शंकरजी की यथायोग्य आराधना की है, तो वह सर्वेश्वर शंकरजी मेरे ऊपर प्रसन्न होंगे ।।५९।। इस प्रकार महाचिन्ता करती वह महातपस्या करने लगी । वह निर्विकार जटामण्डल धारण कर के नीचे को मुख कर के, इस प्रकार तप करने लगी, जो मुनियों को भी बड़ा दुष्कर था । उसे स्मरण कर के सब कोई परम विस्मय को प्राप्त हुए ।।६०-६१।। उस तप को सुन कर बहुत से ऋषि-मुनि देखने को आये और अपने को धन्य मान कर पार्वती की बड़ाई करने लगे तथा बड़े विस्मय को प्राप्त हुए ।।६२।। महान् पुरुषों का धर्मवृद्धों में गमन

परम कल्याणकारी है, तप का प्रमाण नहीं है। पण्डितों को सदा धर्म को मान्य करना ही चाहिये।।६३।। इसका तप देख कर और सुन कर फिर दूसरे क्या तप करते हैं? ऐसा तप होना चाहिये, जैसा कि श्रीशिवजी का है। इससे विशेष तप लोक में न किसी का हुआ है न होगा।।६४।। इस प्रकार वे सब लोग कहते हुए पार्वती की प्रशंसा करते प्रसन्न हो कर अपने–अपने स्थान को चले गये, यद्यपि वे कठिन अंग वाले थे।।६५।। हे महर्षे! और भी आप तपस्या का प्रभाव सुनिये। जो–जो जगदम्बा पार्वती का परम अद्‌भुत चरित्र है।।६६।। स्वभाव से परस्पर विरोध करने वाले जो कोई उस आश्रम में जाते हैं, वे भी पार्वती के प्रभाव से विरोध रहित हो जाते हैं।।६७।। सिंह और गाय परस्पर रागादि दोष से संयुक्त हैं। पार्वती की महिमा से परस्पर किसी ने किसी को बाधा नहीं दी।।६८।। हे मूनिश्रेष्ठ! और भी जो मार्जार–मूषकादि हैं, जो स्वाभाविक वैर करने वाले हैं, वे किसी प्रकार से भी विकार नहीं करते थे।।६९।। वृक्ष और तृण यह सब फल वाले हो गये, हे मुनिश्रेष्ठ! उस समय पुष्प भी बड़े विचित्र लग गये।।७०।। उस समय वह सम्पूर्ण वन कैलास के समान उपमा वाला हो गया, यह सब पार्वती के तप का प्रभाव था, इस प्रकार से वह सिद्ध रूप हो गई।।७१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
तृतीये पार्वतीखण्डे द्वाविंशोऽध्यायः।। २२ ।।

*****

तेईसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– हे नारदजी! इस प्रकार पार्वती को तप करते–करते जब बहुत समय बीत गया और शिवदर्शन की लालसा करते–करते उसको शिवजी की प्राप्ति न हुई।।१।। तब निश्चय वाली पार्वती के निकट गिरिराज हिमालय अपनी स्त्री, पुत्र और मन्त्रियों सहित प्राप्त हुए और परमेश्वरी से बोले।।२।। हे महाभागे पार्वती! इस तप से तू खेदित मत होना। हे बाले! तुझे रुद्र दिखाई नहीं देते, इसमें सन्देह नहीं, वह विरक्त है।।३।। तू सूक्ष्म शरीर वाली, सुकुमार अंगों वाली, तप से मोहित हो गई है, इसमें सन्देह नहीं, यह मैं तुझसे सत्य–सत्य कहता हूँ।।४।। हे वरवर्णिनी! इस कारण उठो और अपने घर को आओ, उन रुद्र से तुम्हारा क्या काम चलेगा? जिन्हों ने प्रथम ही कामदेव को भस्म कर दिया।।५।। इस कारण से निर्विकार होने से शिवजी तुम्हें ग्रहण करने को नहीं आयेंगे। हे देवेशि! तुम उनकी क्यों प्रार्थना करती हो?।।६।। जैसे कि आकाश में स्थित चन्द्रमा को कोई ग्रहण नहीं कर सकता, इसी प्रकार हे पाप रहिते! तुम शिवजी

को दुर्गम जानो ।।७।। ब्रह्माजी बोले– इसी प्रकार मेना सती ने भी पार्वती को समझाया। सह्य, मेरु, मन्दर और मैनाक ने भी समझाया ।।८।। तथा दूसरे क्रौंचादि पर्वतों ने भी आतुरता रहित पार्वती को समझाया और अनेक हेतु दिखाये ।।९।। इस प्रकार से जब सब ने तपस्या में स्थित पार्वती को समझाया, तब हँसती हुई पवित्र हास्यवाली देवी हिमवान् से बोली ।।१०।। पार्वती बोली– हे तात! हे मातः! मैंने पहले जो कहा था, क्या इस समय आपने भुला दिया? इस समय बन्धुजन मेरी प्रतिज्ञा को सुनो ।।११।। निश्चय ही महादेवजी विरक्त हैं, जिन्हों ने क्रोध से कामदेव को भस्म किया, उन भक्तवत्सल शंकरजी को मैं तपस्या से सन्तुष्ट करूंगी ।।१२।। आप सब प्रसन्नता से अपने-अपने स्थान को जाओ। शंकरजी मेरे ऊपर प्रसन्न होंगे, इसमें सन्देह नहीं है ।।१३।। जिन्हों ने कामदेव को भस्म किया, जिन्हों ने गिरि का वन दग्ध किया, मैं उन्हें केवल तपस्या के प्रभाव से यहां बुला लूंगी ।।१४।। हे महाभागो! मैं सत्य ही कहती हूँ। महाभाग शंकरजी केवल महान् तपस्या के बल से ही सेवित हो सकते हैं, सो जानो ।।१५।। ब्रह्माजी बोले– पर्वतराज की पुत्री शिवा गिरिजा माता मेनका, भ्राता मैनाक तथा पिता हिमालय से इस प्रकार कह कर तथा मन्दर को भी समझा कर, वह सुभाषिणी मौन हो गई ।।१६।। पार्वती के ऐसा कहने पर वे विचक्षण पर्वतराज आदि तथा सुमेरु आदि बारंबार पार्वती की प्रशंसा कर के जहां से आये थे, विस्मित हो कर वहां चले गये ।।१७।। जब से सब चले गये, तब से पार्वती अपनी सखियों के साथ परमार्थ के निश्चय से महातपस्या करने लगी ।।१८।। तब उसकी महातपस्या से चर-अचर सन्तप्त हो गये। हे मुनिश्रेष्ठ! त्रिलोकी और देवता, असुर सब कोई सन्तप्त हो गये ।।१९।। तब सुर, असुर, यक्ष, किन्नर, चारण, सिद्ध, साध्य, मुनि, विद्याधर, महोरग, प्रजापति और गुह्यक बड़े कष्ट को प्राप्त हुए और इसके कारण को किसी ने न जाना ।।२०-२१।। इन्द्रादि सर्व देवता मिल कर बृहस्पति से सम्मति कर, बड़े व्याकुल हुए और सुमेरु में सर्वांग से तप्त हो कर सब विधाता की शरण में गये ।।२२।। वहां जा कर मुझे प्रणाम किया। विह्वल होने से सब की कान्ति नष्ट हो गई थी। वे एक पद से मेरी स्तुति करते हुए कहने लगे ।।२३।। देवता बोले– हे देव! यह चराचर जगत् आपका निर्माण किया हुआ है, सो यह किस कारण से सन्तप्त हो रहा है? हे विभो! इसका कोई कारण हम नहीं जानते ।।२४।। हे विभो! हे ब्रह्मन्! सो आप इसका कारण कहिये। सब देवताओं के शरीर दग्ध हैं, आपसे अधिक कोई रक्षक नहीं है ।।२५।। ब्रह्माजी बोले– उनके यह वचन सुन कर मैं हृदय से शिवजी का स्मरण कर मन में विचारता हुआ कि, यह सब पार्वती के तप का फल है ।।२६।। इस प्रकार से उन सब ने विश्व को दग्ध जान कर क्षीरसागर में जा कर, यह सब बात नारायण से कही ।।२७।। वहां जा कर नारायण को सुख के आसन पर बैठा हुआ देख कर, वे सब देवता प्रणाम कर, हाथ

जोड़ कर स्तुति करते हुए बोले ।।२८।। हे नारायण! तेज से व्याकुल हो कर हम आपकी शरण में आये हैं, आप हमारी रक्षा करें, हम पार्वती की परम उग्र तपस्या से सन्तप्त हो गये हैं ।।२९।। इस प्रकार हम सब देवताओं के वचन सुन कर, शेषासन पर बैठे हुए वे रमेश्वर भगवान् हम सब देवताओं से बोले ।।३०।। भगवान् विष्णुजी बोले– पार्वती की तपस्या का सब कारण हमने जान लिया, आप लोगों के सहित मैं परमेश्वर के स्थान पर चलता हूँ।।३१।। हम गिरिजा के पाणिग्रहण के निमित्त शिवजी से प्रार्थना करेंगे। हे देवताओ! इस पाणिग्रहण से लोकों का कल्याण होगा ।।३२।। वह देव देव पिनाकधारी पार्वती को वर देने के निमित्त जिस प्रकार वहां जायेंगे, हम सब वही बात करेंगे ।।३३।। इस कारण जहां वह महाप्रभु परम उग्र तपस्या से परम मङ्गल सम्पन्न हो कर तप करते हैं, हम वहीं जाएंगे ।।३४।। ब्रह्माजी बोले– विष्णुजी के यह वचन सुन कर सब देवता बोले– हम उन शंकरजी से महाभीत हैं, जो प्रलय के करने वाले हैं, जिन्हों ने हठ से कामदेव को नष्ट कर दिया ।।३५।। देवता बोले– महाभयंकर क्रोध को प्राप्त कालानल के समान कान्ति वाले, विरूपाक्ष, महाप्रभा वाले, शिवजी के समीप हम नहीं जायेंगे ।।३६।। जिस प्रकार से महादुःसह कामदेव को उन्हों ने दग्ध किया, इसी प्रकार से क्रोधयुक्त वे, हम को भस्म कर देंगे, इसमें सन्देह नहीं ।।३७।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार रमेश्वर ने उन इन्द्रादि के वचन सुन कर सब देवताओं को सांत्वना करते हुए, वह हरि कहने लगे ।।३८।। हरि बोले– हे देवताओ! मेरे वचन आप आदर से सुनिये, देवताओं के भय नाश करने वाले स्वामी आपको दग्ध नहीं करेंगे ।।३९।। इस कारण आप सब हमारे साथ आओ। शिवजी शुभ करने वाले हैं और उस शुभ करने वाले के शरण में जाओ ।।४०।। शिवजी कल्याणकारी पुरुष, अधीश्वर, वरेण्य रूप, परे से परे, तप का सेवन करने वाले परमात्मा रूप हैं, हम उनकी शरण जाते हैं।।४१।। ब्रह्माजी बोले– जब समर्थ विष्णुजी ने इस प्रकार से कहा, तब सब शंकरजी को देखने की इच्छा से चले ।।४२।। प्रथम शैलपुत्री का आश्रम और तपस्या देखी, मार्ग में आने के कारण विष्णुजी आदि देवताओं ने यह भगवती का आश्रम देखा ।।४३।। तब पार्वती का तप देखा कि, तेज से व्याप्त हो रहा है, तब उन जगत् की धात्री को प्रणाम किया, जो तप के तेज रूप से स्थित थी ।।४४।। तप करते हुए देख कर सब देवता प्रशंसा करने लगे, मानो साक्षात् सिद्धि का शरीर है, तब वे सब देवता शंकरजी के समीप चले ।।४५।। हे मुने! वहां आ कर सब देवताओं ने आपको शंकरजी के समीप भेजा और काम को भस्म करने वाले शंकरजी को दूर से देख कर स्थित हो गये।।४६।। हे नारदजी! उस समय आप अभय हो कर शिवजी के स्थान को गये, विशेष कर के आपने प्रभु शंकरजी को प्रसन्न देखा ।।४७।। फिर आप आ कर यत्न से देवताओं को बुला कर शंकरजी के स्थान पर ले गये, हे मुने! तब विष्णुजी आदि सब देवता गये ।।४८।।

तब विष्णुजी आदि सब देवता प्रभु शिवजी के स्थान में जा कर सुख से बैठे हुए उन प्रसन्नमन भक्तवत्सल को देखने लगे ।।४९।। उस समय शंकरजी योगासन पर बैठे हुए थे, गण उनको घेर रहे थे, वह परमेश्वर रूप उस समय तपस्या का रूप धारण किये हुए थे ।।५०।। तब विष्णुजी और मैं, सुर, सिद्ध, मुनीश्वर भगवान् को प्रणाम कर वेद और उपनिषदों के सूक्तों से स्तुति करने लगे ।।५१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

तृतीये पार्वतीखण्डे त्रयोविंशोऽध्याय: ।। २३ ।।

*****

चौबीसवाँ अध्याय

देवता बोले– कामदेव का अन्त करने वाले हे रुद्रदेव! स्तुति के योग्य अत्यन्त कान्ति वाले, तीन नेत्रधारी शंकरजी के निमित्त नमस्कार है ।।१।। हे शिपिविष्ट भीम भीमाक्ष! आपके निमित्त नमस्कार है। महादेव, जगत् के उत्पादक, स्वर्ग के पति के निमित्त नमस्कार है ।।२।। आप सब लोकों के नाथ, पिता, माता और ईश्वर हो। शंभु, ईश, शंकर और दयालु हो ।।३।। आप सब जगत् के विधाता, हमारी रक्षा कीजिये। हे महेश्वर! आपके बिना दु:ख नाश करने में कोई भी समर्थ नहीं है ।।४।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार से देवताओं के वचन सुन कर नन्दिकेश्वर परम कृपा से युक्त हो कर शिवजी से विज्ञप्ति करने लगे ।।५।। नन्दिकेश्वर बोले– हे भगवन् शंकरजी! विष्णुजी से आदि ले कर सब देवता, मुनि, सिद्ध आपको देखने के निमित्त आये हैं। हे सुरवर्य! दैत्यों से व्याकुल हो कर उन से ताडित और तिरस्कृत हो कर सब आपकी शरण में आये हैं ।।६।। हे सर्वेश! इस कारण आपको मुनि देवताओं की रक्षा करनी चाहिये। हे दीनबन्धु! विशेष कर आप भक्तवत्सल कहलाते हो ।।७।। ब्रह्माजी बोले– जब इस प्रकार नन्दी ने दया वाले शिवजी से प्रार्थना की, तब ध्यान से शनै:–शनै: जाग कर शिवजी ने नेत्र खोले ।।८।। उस समय परम कोविद शंकरजी शनै:–शनै: उपराम को प्राप्त हो कर, वह परमात्मा समाधि से जाग कर सब देवताओं से बोले ।।९।। शंकरजी बोले– हे देवताओ! आप हमारे समीप क्या आये हो? हरि ब्रह्मादि आप सब अपने आने का कारण हम से कहिये ।।१०।। ब्रह्माजी बोले– शिवजी के यह वचन सुन कर सब देवता बड़े प्रसन्न हुए और विज्ञप्ति के निमित्त भगवान् विष्णुजी का मुख देखने लगे ।।११।। सब देवताओं के हितकारी विष्णुजी इस देवताओं के महत्कार्य के लिये शंकरजी से बोले ।।१२।। हे शंकरजी! तारक असुर से देवताओं को महान् कष्ट आ कर

प्राप्त हुआ है, इस कारण सब देवता आपसे विज्ञप्ति करने आये हैं ।।१३।। हे भगवन्! जब कोई आपका औरस पुत्र होगा उस से ही तारक दैत्य मारा जायेगा, यह मेरा कथन अन्यथा नहीं है ।।१४।। हे महादेवजी! इस प्रकार से विचार कर आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये, आपको प्रणाम है। हे स्वामिन्! तारकासुर से महाकष्ट प्राप्त हुआ है, उस से उद्धार कीजिये ।।१५।। हे शंकर! इस कारण दक्षिण हाथ से आपको गिरिजा का पाणिग्रहण करना चाहिये। उस महाभाग्या को गिरिराज आपको देना चाहते हैं, आप उसे स्वीकार करें ।।१६।। विष्णुजी के यह वचन सुन कर शिवजी प्रसन्न हो कर और योग में तत्पर सर्व देवताओं को समीचीन व्यवहार की गति दिखाते हुए यह वचन बोले ।।१७।। शिवजी बोले- जिस समय सर्व सुन्दरी गिरिजादेवी मुझ से स्वीकृत होगी, उस समय सब सुरेन्द्र, ऋषि और मुनि सब सकाम हो जायेंगे और परममार्ग में समर्थ न होंगे और पाणिग्रहण होने से दुर्गा मृतक हुए कामदेव को फिर जीवित करेगी ।।१८-१९।। सब की कार्यसिद्धि के निमित्त मैंने कामदेव को दग्ध किया, हे विष्णुजी! यह ब्रह्मा के ही वचन से किया गया है, इसमें सन्देह नहीं ।।२०।। इस प्रकार कार्य-अकार्य की व्यवस्था मन से विचार कर सब देवताओं के साथ, हे बुद्धि वाले देवेन्द्र! आप हठ न करें ।।२१।। हे विष्णो! काम के दग्ध होने पर मैंने देवताओं का महत्कार्य किया है। मेरे सहित निश्चय सब देवता कामना रहित होकर स्थित हो ।।२२।। हे देवताओ! जिस प्रकार से मैं तपस्या करता हूँ, इसी प्रकार से आप सब दुष्कर तपस्या करें ।।२३।। हे देवताओ! आप समाधि पूर्वक उस काम के बिना परमानन्द पूर्वक विघ्न रहित होकर तपस्या करें ।।२४।। हे विधाता! हे विष्णुजी, महेन्द्र, मुनि और देवता! यदि आपने कामदेव की पुरातन बात भुला दी हो, तो सब उसी पुरातन बात को विचारें ।।२५।। हे देवताओ! उस महाधनुर्धर कामदेव ने महेन्द्र, मुनि और देवताओं की जो दशा की है, आप सब उसे विचारें, उस ने प्रथम सब ही का ध्यान नष्ट कर दिया है ।।२६।। काम ही नरक का द्वार है, इसी कारण क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोध से मोह और मोह से स्मृति में भ्रम और भ्रम से तपस्या नष्ट हो जाती है ।।२७।। हे देवताओ! आप काम और क्रोध का त्याग कर देवें और आप सब को मेरे वचन मानने चाहिये, इसमें अन्यथा नहीं है ।।२८।। ब्रह्माजी बोले- महादेव वृषभध्वज सब को इस प्रकार से सुना कर विधाता विष्णुजी, मुनि और देवताओं से उत्तर सुनने की इच्छा करने लगे ।।२९।। जब शिवजी ध्यान लगा कर फिर मौन हो गये और गणों से परिवारित हो कर स्थाणु के समान अचल हो गये ।।३०।। और आत्मा से ही अपनी आत्मा का ध्यान करने लगे, जो निरंजन, निराभास, निर्विकार, निरामय है ।।३१।। परे से अत्यन्त परे, नित्य स्वरूप, ममता रहित, निरवग्रह शब्द से परे निर्गुण ज्ञानगम्य और परे से परे है ।।३२।। इस परमस्वरूप को चिन्तन करते हुए, परम ध्यान में स्थित हुए और अनेक प्रकार जगत् की सृष्टि करने वाले

परमानन्द में मग्न हो गये ।।३३।। सब देवता शंकरजी को ध्यान में स्थित देख कर, तब इन्द्र और विष्णुजी नन्दिकेश्वरजी से बोले ।।३४।। देवता बोले– अब हम क्या कहे? शंकरजी तो विरक्त हो कर ध्यान में मग्न हो रहे हैं और आप शिवजी के परम सखा, सर्वज्ञ परम पवित्र सेवक हो ।।३५।। हे गणाधिप! किस उपाय से शिवजी प्रसन्न हो सकते हैं? वह उपाय आप कहिये, हम सब आपकी शरण हैं ।।३६।। हे मुने! जब देवताओं ने प्रसन्नता से इस प्रकार स्तुति की, तब शिवजी के प्रिय नन्दी ने इस प्रकार सब देवताओं से कहा ।।३७।। नन्दीकेश्वर ने कहा– हे विष्णुजी! हे ब्रह्माजी! हे इन्द्रादि देवताओ! हे मुनियो! शिवजी का सन्तोष करने वाला मेरा वचन सुनिये ।।३८।। यदि शिवजी के दारा परिग्रह करने में आपको बड़ा ही हठ है, तो सब दीनता से शंकरजी की स्तुति करें ।।३९।। हे देवताओ! शिवजी भक्ति के वशीभूत होते हैं, साधारण रूप से नहीं, वह परमेश्वर भक्ति के वश हो कर अकार्य को भी कर सकते है ।।४०।। इस प्रकार से ब्रह्मा, विष्णु आदि सब देवता करें, नहीं तो आप शीघ्र जहां से आये हैं वहां पधारें ।।४१।। ब्रह्माजी बोले– विष्णजीु आदि इस प्रकार से उनके वचन सुन कर 'बहुत अच्छा' ऐसा कह कर शंकरजी की स्तुति करने लगे ।।४२।। हे देवदेव महादेव! हे करुणासागर! हे प्रभो! महाक्लेश से हमारा उद्धार कीजिये, शरण आये हुओं की रक्षा कीजिये ।।४३।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार बड़ी दीनता से देवताओं ने शंकरजी की स्तुति की और प्रेम से व्याकुल मन से सब रोने लगे ।।४४।। मैंने और हरि ने बड़ी दीनता से विज्ञप्ति की और परमभक्ति से मन लगा कर शंकरजी को स्मरण किया ।।४५।। ब्रह्माजी बोले– जब इस प्रकार से मैंने, हरि ने और सब देवताओं ने मन से शंकरजी का स्मरण किया, तो भक्तवत्सलता के कारण शिवजी ध्यान में उपराम को प्राप्त हो गये ।।४६।। और शिवजी प्रसन्न हो कर विष्णुजी आदि को प्रसन्न करते हुए बोले और भक्तवत्सल शंकरजी ने सबको करुणा दृष्टि से देखा ।।४७।। शिवजी बोले– हे हरे! हे विधाता! हे इन्द्रादि देवताओ! आप सब सत्य कहिये, किस निमित्त आपका आगमन हुआ है?।।४८।। हरि बोले– हे महेशान! आप सर्वज्ञ हो, सब के अन्तर की बात जानने वाले अखिलेश्वर हो, तो क्या आप हमारे मन की नहीं जानते? तो भी मैं आपके शासन से कहता हूँ।।४९।। हे शिवजी! तारकासुर से हम को बड़ा दुःख प्राप्त हुआ है, इस कारण सब देवता आपको प्रसन्न करने के निमित्त आये हैं।।५०।। वह पार्वती हिमालय के यहां आप ही के निमित्त उत्पन्न हुई हैं। पार्वती में उत्पन्न हुए पुत्र से ही उस तारकासुर की मृत्यु है, इसमें अन्यथा नहीं है ।।५१।। इस प्रकार का ब्रह्माजी ने उस दैत्य को वर दिया है, इस कारण अन्य किसी से मृत्यु न होने के कारण, वह सम्पूर्ण जगत् को बाधा देता है।।५२।। नारदजी के उपदेश से पार्वती कठिन तपस्या कर रही हैं, उन के तेज से त्रिलोकी, चराचर सब व्याप्त हो गये हैं।।५३।। हे परमेश्वर! आप पार्वती को वर

देने के निमित्त वहां गमन करें। हे स्वामिन्! आप देवताओ के दुःख दूर कर के हमें प्रसन्न कीजिये।।५४।। हे शंकरजी! देवताओ के और हमारे मन में यह उत्साह है, कि आपका विवाह देखें, सो उचित हो, तो आप इसे स्वीकार करें।।५५।। हे परात्पर! जो आपने रति को वर दिया है, उसका भी अवसर आ पहुंचा है, सो उसे आप सफल करें।।५६।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार से विष्णुजी और महर्षि तथा दूसरे देवता कह कर और प्रणाम कर, अनेक स्तोत्रों से स्तुति कर, सब शंकरजी के आगे स्थित हुए।।५७।। भक्ताधीन शंकरजी भी देवताओं के वचन सुन कर वेद की मर्यादा पालन करने वाले वे हँसते हुए तत्काल बोले।।५८।। शिवजी बोले– हे हरे! हे विधाता! हे सब देवताओ! हमारे वचन सुनिये, मैं ज्ञान से यथोचित विशेषता पूर्वक कहता हूँ।।५९।। जहां तक बने मनुष्यों तक को विवाह बन्धन उचित नहीं है, यह दृढ़ बन्धन विवाह महानिगड बन्धन है।।६०।। लोकों को संसार में बहुत से कुसंग हैं, उन में स्त्री संग महा हानिकारक है, सब बन्धनों से उद्धार हो सकता है, परन्तु स्त्री बन्धन से छुटकारा नहीं होता।।६१।। लोहे की तथा दारुमय पाशों से दृढ़ बंधा हुआ भी पुरुष छुटकारा पा सकता है, परन्तु स्त्री संग के पाश से बंधा हुआ कभी छुटकारा नहीं पा सकता।।६२।। इससे महाबन्धन के करने वाले विषय निरन्तर बढ़ते हैं। जब मन में विषय बढ़ गये, तो स्वप्न में भी मोक्ष दुर्लभ है।।६३।। यदि बुद्धिमान् सुख चाहे तो, विषयों को विधिपूर्वक त्याग दे। यह विषय विष के ही समान है, जिन विषयों से यह प्राणी मारा जाता है।।६४।। पुरुष विषयी पुरुषों के संग वार्तामात्र से ही क्षण में पतित हो जाता है और हे इन्द्र! आचार्यों ने विषय को मिश्री से चुपरी हुई वारुणी कहा है।।६५।। यद्यपि मैं इस बात को जानता हूँ, विशेष कर मुझे सब ज्ञान है, तो भी मैं आपकी प्रार्थना सफल करूंगा।।६६।। मैं भक्तों के अधीन हो कर उन की प्रार्थना से सब कार्य करता हूँ और तीनों भुवनों में बड़े समर्थों से न हो सके, ऐसा जो अशक्य अनुचित है उस का भी करने वाला 'अनुचितकर्ता' नाम से मैं प्रसिद्ध हूँ।।६७।। कामरूप देश के राजा की प्रतिज्ञा मैंने सफल की, भैम बन्धन में प्राप्त हुए सुदक्षिण राजा का प्रण पूर्ण कर दिया।।६८।। गौतम को मैंने क्लेश दिया, मैं त्रम्बकात्मा सुख को प्राप्त करने वाला हूँ, जो भक्तों को दुःख देते हैं, विशेष कर उन दुष्टों को मैं कष्ट और शाप देता हूँ।।६९।। भक्तवत्सल भाव दिखाते हुए देवताओं के निमित्त ही मैंने विष पान किया था। हे देवताओं! आपका कष्ट तो मैंने सदा ही यत्न से दूर किया है।।७०।। भक्तों के निमित्त मैंने बहुत बार बहुत से कष्ट उठाये हैं और गृहपति हो कर विश्वानर मुनि के दुःख दूर किये।।७१।। हे हरि! हे विधाता! बहुत कहने से क्या है? मैं सत्य कहता हूँ, मेरे भाषण को आप सब सत्त्व से जानिये।।७२।। जब कभी किसी प्रकार भक्तों को विपत्ति होती है, उसी–उसी समय में उसे सब प्रकार से दूर करता हूँ।।७३।। तारक से जो आप सब को दुःख उपस्थित हुआ है, वह मैं सब जानता हूँ, वह दुःख मैं

हरण करूंगा, यह सत्य है, इसमें सन्देह नहीं ।।७४।। यद्यपि मुझे विहार करने की कुछ भी रुचि नहीं है, तथापि पुत्रोत्पादन के निमित्त गिरिजा को विवाहूंगा ।।७५।। हे समस्त देवताओ! अब आप निर्भय हो कर अपने घरों को जाइये। मैं आपका कार्य सिद्ध करूंगा, इसमें विशेष विचार की आवश्यकता नहीं है ।।७६।। ऐसा कह कर शिवजी मौन होकर समाधि में स्थित हो गये। हे मुने! विष्णुजी आदि सब देवता अपने स्थानों को गये ।।७७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
तृतीये पार्वतीखण्डे चतुर्विंशोऽध्यायः ।। २४ ।।

*****

पच्चीसवाँ अध्याय

नारदजी बोले– जब विधाता और विष्णुजी आदि सब देवता चले गये तथा प्रेम से सब मुनियों ने गमन किया, तब क्या हुआ? ।।१।। हे तात! शिवजी ने क्या किया, कैसे वर देने को आये, कितने समय पर कैसा वर दिया? सो आप प्रेम से कहिये ।।२।। ब्रह्माजी बोले– जब ब्रह्मादि देवता अपने आश्रमों में गये, तब पार्वती की तपस्या की परीक्षा के निमित्त शिवजी समाधि में स्थित हुए ।।३।। अपनी आत्मा से ही आत्मा को विचारने लगे, जो तत्त्व परे से परे माया रहित स्वतन्त्र निरवग्रह है ।।४।। वस्तुतः भगवान् ईश्वर वृषभध्वज, अविज्ञातगति जगत् के उत्पादक परमेश्वर विचारने लगे ।।५।। ब्रह्माजी बोले– हे तात! उस समय पार्वती ने भी परम तपस्या आरम्भ की, उस तप से शंकरजी भी परम विस्मय को प्राप्त हुए ।।६।। और बात नहीं भक्ताधीन होने से ही शंकरजी की समाधि चलायमान हुई और जगत्कर्ता हर ने वशिष्ठादि सप्तमुनियों का स्मरण किया ।।७।। स्मरण करते ही वे सातों ऋषि वहां आ कर प्राप्त हुए और सब प्रसन्न मुख से विधि की बहुत बढ़ाई करते हुए आये ।।८।। और प्रसन्नता से महेश्वरजी को प्रणाम कर स्तुति करने लगे, वाणी से गद्गद हो कर, हाथ जोड़ कर सिर झुका लिया ।।९।। सप्तर्षि बोले– हे देव देव महादेव! हे करुणासागर! हे प्रभो! हम बड़े धन्य हैं, जो आज आपने हमें स्मरण किया ।।१०।। हे नाथ! आपने हमें किस निमित्त स्मरण किया है? सो आज्ञा दीजिये। हे स्वामिन्! अपने दास के सदृश कृपा कीजिये, आपको प्रणाम है ।।११।। मुनियों की इस प्रकार से विज्ञप्ति को सुन कर उत्फुल्ल नेत्रों से प्रीति दिखाते हुए हँस कर करुणानिधि शिवजी बोले ।।१२।। शंकरजी बोले– हे सप्त मुनियो! हे तात! आप मेरे वचन सुनिये, सब ज्ञान में चतुर आप हमारे हित करने वाले हो ।।१३।। गौरीशिखर

नामक पर्वत पर देवेशी पर्वतराज की पुत्री दृढ़ मन से तपस्या कर रही है ।।१४।। हे ऋषियो! सखियो से सेवित हुई वह मुझे पति बनाने की इच्छा करती है, सब काम को छोड़ कर मुझ में ही वह परम निश्चय किये है ।।१५।। हे मुनिश्रेष्ठ! मेरे शासन से आप वहां जाइये और प्रेमचित्त से उस की दृढ़ता की परीक्षा लीजिये ।।१६।। सर्वथा छल वा वंचना के वचन बोल कर परीक्षा लेनी, हे सुव्रतो! शासन से संशय न करना ।।१७।। ब्रह्माजी बोले-इस प्रकार मेरे वचन से मुनि वहां गये, जहां वह जगन्माता पर्वतराजपुत्री विराजमान थी ।।१८।। वहां जा कर उन्हों ने शिवा को देखा कि, मानो दूसरी तप की सिद्धि है। परम तेजोमयी मूर्ति से मानो विराजमान हो रही है ।।१९।। वे सुव्रत सातों ऋषि हृदय से भगवती को प्रणाम कर पूजित हुए एकत्र हो कर वचन बोले ।।२०।। ऋषि बोले- हे शैलपुत्री देवि! हमारे वचन सुनो। तुम किस निमित्त तपस्या करती हो? तुम किसी देवता या किसी फल को चाहती हो? सो अब कहो ।।२१।। ब्रह्माजी बोले- जब उन सप्त ऋषियों ने इस प्रकार पार्वतीदेवी से कहा, तब पार्वती उनके आगे परम गूढ़ सत्य वचन बोली ।।२२।। पार्वती बोली- हे मुनियों! आप प्रेम से मेरे वचन सुनिये। मैं अपने विचारों को आपसे कहती हूँ, जो मैंने अपने मन में विचार किया है ।।२३।। आप मेरे असम्भव वचनों को सुन कर मेरा परिहास करोगे। हे विप्रो! मैं क्या करूं? इसे वर्णन करने में मुझे संकोच होता है ।।२४।। यह मेरा मन दृढ़ता से परवश हो गया है, यह जलों के ऊपर महा ऊँची भीत बनाना चाहता है ।।२५।। नारदजी की आज्ञा से मैं कठिन तपस्या कर रही हूँ, शंकरजी मेरे पति हो जाँय, यही दृढ़ मनोरथ मेरे मन में है ।।२६।। बिना पंखों के मेरा मन रूपी पक्षी हठ से आकाश में उड़ता है, उस आशा को करुणानिधि स्वामी शंकरजी ही पूर्ण करेंगे ।।२७।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार पार्वती के वचन सुन कर वे मुनि हँस कर गिरिजा को सम्मान देते हुए छल से बोले ।।२८।। ऋषि बोले- हे देवि! वृथा पण्डितमानी उन शंकरजी का चरित्र तुम नहीं जानती, हे पार्वती! विचारवती हो कर भी तुम ने क्रूर मन वाले नारदजी का अभिप्राय न जाना ।।२९।। यह नारदजी बड़े कूटावादी, दूसरों का चित्त मथन करने वाले हैं, उन की बात सुनने से सर्वथा मनुष्यों की हानि होती है ।।३०।। सो तुम श्रेष्ठ बुद्धि से इस इतिहास को सुनो, हम तुम्हें क्रम से समझाते, उसे प्रेम से मन में धारण करो ।।३१।। ब्रह्माजी के पुत्र दक्षजी ने पिता की आज्ञा से दस सहस्र पुत्र उत्पन्न कर के उन्हें तप करने में नियुक्त किया ।।३२।। वे पुत्र पश्चिम दिशा में नारायण सरोवर में तप के निमित्त गये, उसी समय वहाँ नारदजी पहुँचे। नारदजी ने उन्हें कूट उपदेश सुना कर विरक्त कर दिया, जिस से वे लौट कर फिर पिता के घर न गये ।।३४।। यह सुन कर दक्षजी बड़े व्याकुल हुए और क्रोध भी किया, और सहस्र पुत्र उत्पन्न कर उन्हें तप के निमित्त भेजा ।।३५।। पिता की आज्ञा से तप के निमित्त वे पुत्र भी वहीं गये, नारदजी ने भी वहां जा कर उन को

वहीं वैराग्य का उपदेश दिया।।३६।। जब उन को उपदेश दिया, तब वे भी भ्राताओं के मार्ग को प्राप्त हुए और भिक्षावृत्ति करते रहे पर फिर पिता के स्थान को न आये।।३७।। हे पार्वती! इस प्रकार से नारदजी की सद्वृत्तियाँ विख्यात है; और भी मनुष्यों को वैराग्य करने वाला उनका चरित्र तुम सुनो।।३८।। चित्रकेतु नामक विद्याधर, जो पहले रहा, उसे अपना उपदेश दे कर नारदजी ने उस का घर शून्य कर दिया।।३९।। प्रह्लाद को उपदेश दे कर हिरण्यकश्यप से उसे परम दुःख दिलवाया, बहुधा वे दूसरों की बुद्धि में भेद डलवा देते हैं।।४०।। उस मुनि ने जिसे अपनी विद्या सुनाई वे अपना घर छोड़ कर भिक्षावृत्ति करने लगा।।४१।। यह नारदजी बड़े मलिनात्मा हैं, देखने में सदा उज्ज्वल देह वाले हैं, अन्तःकरण के साफ नहीं हैं, हम उन्हें विशेष रूप से जानते हैं।।४२।। जैसे बगले को देह से स्वच्छ और उस की पहले की क्रिया को देख कर, कभी देखने वाले उसे साधु कहते हैं, कि यह मच्छी नहीं खाता, पर वह सर्वथा मच्छी खाता है, सहवासी ही सहवासियों का चरित्र जानता है।।४३।। ऐसी बुद्धिमती हो कर तुम भी उनका उपदेश मान गई, तुम भी वृता ही मूर्ख हो कर दुश्चर तपस्या करती हो।।४४।। हा बाले! जिन के निमित्त तुम तप करती हो, वह उदासीन, निर्विकार, कामदेव को भस्म करने वाले हैं, इसमें सन्देह नहीं।।४५।। अमङ्गल वेषधारण करने वाले, निर्लज्ज, अकुलीन, घर से रहित, कुवेष वाले, भूत-प्रेतादि का संग करने वाले, नग्न शूलधारी शिव हैं।।४६।। नारदजी ने धूर्तता कर के अपनी माया से तुम्हारा ज्ञान नष्ट कर के सद्युक्ति से मोहित करके तुम से तपस्या कराई।।४७।। इस प्रकार के वर को प्राप्त हो कर तुम्हें क्या सुख मिलेगा। हे देवेशि! तूम ही इस विषय में विचार करो।।४८।। पहले मूढ़ता से इन्हों ने दक्ष के यहां उत्पन्न हुई साध्वी सती को विवाह कर के कुछ दिन भी उनसे निर्वाह नहीं किया।।४९।। और सती को ही दोष लगा कर उन्हों ने त्याग कर दिया, वह निरुपम रूप का ध्यान करते हुए अशोक हो कर रमण करते हैं।।५०।। वह अद्वितीय पर निर्वाणस्वरूप असंग और अद्वैत हैं। हे देवि! उन से स्त्रियों का निर्वाह किस प्रकार हो सकता है।।५१।। अब भी हमारी बात मान कर तुम अपने घर जाओ, हमारे कहने से दुर्मति को त्यागो। हे महाभागे! आपका मंगल होगा।।५२।। तुम्हारे योग्य तो सब सद्गुणों से सम्पन्न विष्णुजी ही हैं, वह वैकुण्ठवासी लक्ष्मीपति अनेक क्रीड़ाओं में चतुर हैं।।५३।। उनके साथ आपका सब सुखदायक विवाह करावेंगे, इस प्रकार की हठ को छोड़ कर हे पार्वती! आप सुखी हो।।५४।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार के वचन सुन कर जगदम्बिका पार्वती हँसती हुई उन ज्ञानविशारद मुनियों से बोली।।५५।। पार्वती बोली- हे मुनियो! आपने अपने ज्ञान से सत्य ही कहा है, हे ब्राह्मणो! उस पर भी मेरी हठ नहीं जाती।।५६।। पर्वत से उत्पन्न होने के कारण यह मेरा शरीर बहुत कठिन है, अपनी बुद्धि से विचार कर के अब मुझे निषेध

मत करो ।।५७।। नारदजी के वचन ही पथ्य हैं, मैं उन को कभी त्याग नहीं करूंगी, वेदविद कहते हैं, कि गुरुजनों के वचन सर्वदा मानने योग्य होते हैं ।।५८।। जिनकी ऐसी दृढ़ मति है कि गुरुजनों के वचन सत्य होते हैं, उन्हें यहां–वहां दोनों लोकों में सुख होता है, कभी असुख नहीं होता ।।५९।। गुरुजनों के वचन सत्य होते हैं, इस प्रकार की जिनके मन में धृति नहीं है, उनको दोनों लोकों में ही दुःख है, कभी सुख नहीं है ।।६०।। हे द्विजो! किसी प्रकार भी गुरुजनों के वचन त्याग करना उचित नहीं हैं। घर उजड़ो या वसो, पर मेरी हठ नहीं जायेगी ।।६१।। हे मुनिश्रेष्ठो! जो वचन आपने कहे हैं, उन से विपरीत जो तात्पर्य है, संक्षेप से उस का वर्णन करती हूँ।।६२।। विष्णुजी सत्य ही गुणों के स्थान विहार करने वाले हैं, सदाशिवजी अगुण है, इसमें एक कारण है ।।६३।। शिवजी ब्रह्म हैं, निर्विकार हैं, गेहादिक न होने से यदि विकार युक्त दीखे, तो ऐसा जानो उन्हों ने भक्त के निमित्त शरीर धारण किया है, वे संसार की प्रभुता दिखाने की इच्छा नहीं करते हैं।।६४।। इस कारण वह शिवजी अवधूत स्वरूप से परमानन्द में मग्न परम हंसों की गति धारण किये हैं ।।६५।। भूषणादि रुचि यह माया की बात है, वह ब्रह्म कुछ उस समय अवलिप्त नहीं हैं, यह प्रभु निर्गुण अज, माया रहित, अलक्ष्यगति, विराट् है ।।६६।। हे ब्राह्मणो! शंकरजी धर्म, जाति आदि में अनुग्रह नहीं करते, इसी कारण कुलादि रहित दीखते हैं, केवल गुरु के अनुग्रह से ही शिवजी अनुग्रह करते हैं, तत्त्व से मैं ऐसा जानती हूँ।।६७।। हे ब्राह्मणो! जो शंकरजी मेरे साथ विवाह नहीं करेंगे, तो मैं सदा विवाह रहित ही रहूंगी, यह मैं सत्य–सत्य ही कहती हूँ।।६८।। चाहे सूर्य पश्चिम की ओर उदित हो, चाहे सुमेरु पर्वत चलायमान हो जाए, चाहे अग्नि शीतल हो जाए, चाहे पर्वत की शिलाओं पर कमल खिल जाए, तो भी मेरी हठ नहीं जाएगी, यह मैं सत्य ही कहती हूँ।।६९।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार से पर्वतात्मजा उन मुनियों को प्रणाम कर के शिवजी को स्मरण कर निर्विकार चित्त से मौन हो गई।।७०।। ऋषियों ने भी इस प्रकार गिरिजा का निश्चय जान कर जय शब्द उच्चारण कर उसे उत्तम आशीष दी ।।७१।। तब वे मुनि उस देवी को प्रसन्न मन से प्रणाम कर के परीक्षा ले कर, हे मुने! शीघ्रता से शिवजी के समीप में गये ।।७२।। वहां जा कर शिवजी को प्रणाम कर के सब वृत्तान्त निवेदन किया और उनकी आज्ञा ले कर आदर से अपने लोक को गये ।।७३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
तृतीये पार्वतीखण्डे पञ्चविंशोऽध्यायः ।। २५ ।।

*****

छब्बीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– जब सप्तर्षि अपने स्थानों को गये, तब जगत्पति शंकरजी ने स्वयं पार्वती की परीक्षा लेने की इच्छा की ।।१।। प्रसन्न मन से शिवजी परीक्षा के बहाने (छल) से ब्रह्मचारी का वेष बना कर पार्वती को देखने उनके तपोवन में गये ।।२।। बहुत बूढ़े ब्राह्मण का वेष बना कर अपने तेज से प्रकाशित मन से प्रसन्न हृष्टमन दण्ड, छत्र धारण कर जा कर देखा, कि सखियां देवी की सेवा कर रही हैं, वेदी के ऊपर ऐसी बैठी है मानो चन्द्रमा की कला हो ।।३-४।। ब्रह्मचारी स्वरूपधारी शिवजी ने जब देवी को देखा, तब भक्तवत्सल उस देवी के समीप गये ।।५।। उस तेजस्वी अद्भुत ब्राह्मण को आया हुआ देख कर देवी ने पूजा की सब सामग्री से उनका पूजन किया ।।६।। परम सत्कार की अनेक सामग्रियों से शिवा ने पूजन किया और पार्वती ने आदर से ब्राह्मण की कुशल पूंछी ।।७।। पार्वती बोली– आप ब्रह्मचारी स्वरूप से कौन हो, कहां से आये हो? जो इस वन को प्रकाशित करते हो; हे वेदविदांवर! सो आप कहिये ।।८।। ब्राह्मण ने कहा– मेरी जहां इच्छा होती वहीं मैं जाता हूँ। मैं वृद्ध विप्र हूँ, शरीर निर्बल है, दूसरों को सुख देने वाला परोपकारी तपस्वी हूँ, इसमें सन्देह नहीं ।।९।। तुम कौन हो, किसकी कन्या हो, निर्जन वन में किस कारण से तप करती हो? जो मुनिजनों को परम दुर्लभ है ।।१०।। तुम बाला और वृद्धा नहीं हो सर्वथा तरुणी दिखती हो, पति के बिना वन में किस प्रकार से तीक्ष्ण तपस्या करती हो?।।११।। हे तपस्विनी भद्रे! तुम किस की सहचारिणी हो? हे देवि! वह तपस्वी क्या तुम्हारा पोषण नहीं करता, कहीं अन्यत्र गया है?।।१२।। बताओ तुम किस कुल में उत्पन्न हुई हो? तुम्हारे पिता का क्या नाम है और तुम्हारा क्या नाम है? तुम महासौभाग्य रूप वाली हो, तुम वृथा तपस्या क्यो करती हों?।।१३।। क्या तुम वेदप्रसू सावित्री हो वा लक्ष्मी हो अथवा क्या सुन्दर रूप वाली सरस्वती हो? इनमें में से तुम कौन हो? इस बात का तर्क करने को मैं उत्साह नहीं करता ।।१४।। पार्वतीजी बोली– हे विप्र! न तो मैं वेद रूप सावित्री, न लक्ष्मी और न सरस्वती हूँ, हिमालय की कन्या हूँ, इस समय मेरा नाम पार्वती है ।।१५।। पहले जन्म में मैं दक्षकन्या थी, मेरा नाम सती था। जब मेरे पिता ने मेरे पति की निन्दा की, तब योगमार्ग से मैंने शरीर त्याग दिया ।।१६।। इस जन्म में भी शंकरजी प्राप्त हुए थे, प्रारब्धवश से मुझे छोड़ कर कामदेव को भस्म कर वे अन्तर्धान हो गये ।।१७।। शंकरजी के चले जाने से मुझे बड़ा उद्वेग हुआ, हे ब्राह्मण! तब मैं पिता के घर से चल कर, इस गंगा के किनारे तप करने चली आई ।।१८।।

मैंने प्राणवल्लभ की प्राप्ति के लिये महाकठिन तपस्या की है, परन्तु उनकी प्राप्ति न हुई, इस कारण अग्नि में प्रवेश करती हूँ, आपको देख कर क्षणमात्र के निमित्त विलम्ब करती हूँ।।१९।। आप पधारें, मुझे शिवजी ने अंगीकार नहीं किया, इसी कारण मैं अग्नि में प्रवेश करती हूँ, जहां कहीं जन्म होगा, पति होंगे तो शंकरजी ही होंगे।।२०।। ब्रह्माजी बोले- ऐसा कह कर पार्वती उस ब्रह्मचारी के बारंबार निषेध करने पर भी अग्नि में प्रवेश कर गईं।।२१।। जिस समय पार्वती ने अग्नि में प्रवेश किया, उस समय उन ब्राह्मण रूप शिवजी के प्रभाव से अग्नि चन्दन के समान शीतल हो गई।।२२।। क्षणमात्र में उस अग्नि में स्थित हो कर, उसे शीतल जान कर जब पार्वती स्वयं द्युलोक को गमन करने लगीं, तब शिवजी अपने शरीर की निन्दा करते हुए हँस कर उसे बोले।।२३।। ब्राह्मण ने कहा- अहो भद्रे! तुम्हारी तपस्या से क्या होगा? तुम ने कुछ भी न जाना, अग्नि ने तुम्हारी देह न जलाई, न तुम्हारा मनोरथ पुरा हुआ।।२४।। इस कारण निश्चय कर के ठीक तुम अपना मनोरथ कहो, मैं ब्राह्मणों में श्रेष्ठ सब को आनन्द देने वाला हूँ, मुझ से सत्य कहो।।२५।। हे देवि! सर्वथा तुम्हें अपना वृत्तान्त कहना चाहिये; कारण कि अब मेरी तुम्हारी मित्रता हो गई है, इस कारण तुम्हें इस कार्य को छिपाने की आवश्यकता नहीं।।२६।। हे देवि! इसके उपरान्त तुम किस वर की इच्छा करती हो, यह सुनने की मेरी इच्छा है; कारण कि सम्पूर्ण फल तुझ में ही दिखाई देता है।।२७।। यदि दूसरे के निमित्त तपस्या है, तो तप करो, परन्तु तुम्हें क्या? यह तो ऐसा है कि, हाथ का रत्न छोड़ कर मानो कांच धारण करना है।।२८।। इस प्रकार अपनी सुन्दरता को तुमने व्यर्थ क्यों कर दिया है? अनेक प्रकार के वस्त्र छोड़ कर तुमने मृगचर्मादि धारण किये हैं।।२९।। इस कारण इस तपस्या करने का सत्य-सत्य कारण कहो, जिसे सुन कर मैं प्रसन्नता को प्राप्त करूं।।३०।। जब इस प्रकार से ब्राह्मण ने पूछा, तब अम्बिका ने इस विषय में अपनी सखी को प्रेरणा की और उसके मुख से ही सब सुव्रता ने कहलाया।।३१।। इस प्रकार से जब पार्वती ने विजया नामक सखी से प्रेरणा की, तब वह पार्वती की प्राणप्रिया सुव्रतज्ञा सखी उस जटाधारी ब्राह्मण से बोली।।३२।। सखी बोली- हे साधो! सुनिये, मैं पार्वती का परम चरित्र कहती हूँ। तप का कारण भी सब कहती हूँ, जो आपको सुनने की इच्छा है।।३३।। यह हमारी सखी गिरिराज हिमालय की सुता है, यह पार्वती और काली नामसे माता मेनका कर के विख्यात हुई है।।३४।। अभी तक इसका विवाह नहीं हुआ और शिवजी के सिवाय यह किसी की इच्छा नहीं करती, इसे तप करते ही तीन सहस्र वर्ष बीत गये।।३५।। उन्हीं के निमित्त हमारी सखी ने इस प्रकार तप आरम्भ किया है, सो हे ब्राह्मण! मैं इसमें कारण कहती हूँ, आप सुनिये।।३६।। इन्द्र आदि देवताओं को छोड़ कर तथा हरि और ब्रह्माजी को छोड़ कर पार्वती पिनाकपाणि शंकरजी को प्राप्त

करने की इच्छा करती है ।।३७।। इस मेरी सखी ने पहले जिन वृक्षों का आरोपण किया था, हे द्विज! देखिये उन वृक्षों में फूल-फल अनेक बार आ चुके हैं ।।३८।। रूप के सार्थत्व के लिये और पिता के वंश को शोभित करने के लिये महेशजी के उद्देश्य से तथा काम के अनुग्रह के लिये ।।३९।। मेरी सखी नारदजी के उपदेश से दारुण तपस्या कर रही है। हे तपस्वी! इसका मनोरथ क्यों नहीं सफल होगा ?।।४०।। हे द्विजश्रेष्ठ! जो आपने मेरी सखी का मनोरथ पूंछा, वह मैंने प्रेम से वर्णन किया, अब क्या सुनने की इच्छा है ?।।४१।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार यथार्थ रूप से विजया के वचन सुन कर, हे मुने! वह जटिल रुद्र हँस कर वचन कहने लगे ।।४२।। जटिल बोले- यह जो कुछ सखी ने कहा है, यह परिहास तर्कित होता है, यदि यह बात यथार्थ हो, तो देवी अपने मुख से इसे प्रतिपादन करे ।।४३।। ब्रह्माजी बोले- जब द्विजन्मा ब्रह्मचारी ने इस प्रकार कहा, तब पार्वतीदेवी अपने मुख से उस सखी के कहे हुए वृत्तान्त को ब्राह्मण से बोली ।।४४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
तृतीये पार्वतीखण्डे षड्विंशोऽध्यायः ।। २६ ।।

*****

सत्ताईसवाँ अध्याय

पार्वती बोली- हे ब्राह्मण! यह सब आप मेरा वृत्तान्त सुनिये, जो कुछ मेरी सखी ने कहा है, वह सब सत्य है, इसमें अन्यथा नहीं है ।।१।। मैंने वचन कर्म से पतिभाव से ही शंकरजी की आराधना की है, मैं सत्य कहती हूँ असत्य नहीं है। मैंने शंकरजी का ही वरण किया है ।।२।। मैं भी जानती हूँ कि दुर्लभ वस्तु मैं कैसे पा सकती हूँ? तो भी मन की उत्कण्ठा से मैं तप करती हूँ।।३।। ब्रह्माजी बोले- जब इस प्रकार के वचन कह कर पार्वती स्थित हुई, तो यह पार्वती के वचन सुन कर ब्राह्मण ने कहा ।।४।। ब्राह्मण बोला- इतने समय तक मुझे यह बड़ी इच्छा थी, कि यह देवी किस वस्तु की इच्छा करती है, जो ऐसा तप करती है ?।।५।। हे देवि! सो अब वह सब बात तुम्हारे मुख से सुन कर मैं यहां से जाता हूँ, जो तुम्हारी इच्छा हो, सो तुम करना ।।६।। यदि तुम मुझ से नहीं कहती, तो यह मित्रत्व में निष्फलता होती है, जैसा कार्य और जैसी होनहार हो, वह सुखपूर्वक कहनी चाहिये, तुमने कुछ न कहा ।।७।। ब्रह्माजी बोले- उससे यह वचन कह कर जब तक वह ब्राह्मण जाने की इच्छा करने लगा, तब तक पार्वतीदेवी उस ब्राह्मण को प्रणाम कर के बोली ।।८।। पार्वती

बोली– हे विप्रेन्द्र! आप क्यों जाते हो? ठहरिये और हित की बात कहिये। जब पार्वती ने ऐसा कहा, तब वह दण्डधारी ब्राह्मण स्थित हो कर बोला।।९।। ब्राह्मण बोला– हे देवि! यदि भक्ति से मुझे बैठा कर तुम कुछ सुनने की इच्छा करती हो, तो मैं वह सब तत्त्व कहता हूँ, जिससे तुम्हारा कल्याण हो।।१०।। मैं महादेव को जानता हूँ, वह सर्वथा धर्म से गुरु हैं, यथार्थ कहता हूँ, तुम सावधान हो कर सुनो।।११।। वृषभध्वज महादेव भस्म, जटा धारे, व्याघ्रचर्म के वस्त्र धारे, हाथी का चर्म ओढ़ते हैं।।१२।। वह कपालधारी सर्पों के समूह शरीर में लपेटे रहते हैं, विष को धारण किये, अभक्ष भक्षण करते, तीन नेत्र धारे देखने में भयंकर हैं।।१३।। उनके जन्म की ही किसी को खबर नहीं है, वह गृहस्थों के भोग से रहित हैं, वह दिगम्बर दश भुजा वाले भूत–प्रेतों से सदा युक्त रहते हैं।।१४।। तुम किस कारण से ऐसे स्वामी की इच्छा करती हो। हे देवि! तुम्हारा ज्ञान कहां गया? सो आप विचार से इस समय कहें।।१५।। मैंने पहले ही उनका भयंकर व्रत सुना है, जो तुम्हारे सुनने की रुचि है, तो सुनो, मैं कहता हूँ।।१६।। पहले साध्वी दक्ष की सुता ने शिव को वरण किया था, वृषभवाहन का उससे कैसा सम्भोग हुआ, वह तुमने सुना होगा।।१७।। कपाली की स्त्री है, ऐसा जान कर दक्ष ने अपनी कन्या को छोड़ दिया और यज्ञ में शिव को भी भाग नहीं दिया।।१८।। इस अपमान से सती को महाकोप हुआ। उसने अपने प्राणों को पिता के यज्ञ में त्याग दिया, ऐसे शिव सती कर के छोडे ही गये।।१९।। तुम स्त्रियों में रत्न हो, तुम्हारे पिता भी तो सब पर्वतों के राजा हैं, तब ऐसे पति को ऐसी कठिन तपस्या से कैसे इच्छा करती हो?।।२०।। सुवर्ण की मुद्रा (अशर्फी) अथवा अँगूठी रूप तपस्या के बदले में, तुम काँच ग्रहण करने अथवा पहिनने की कैसे इच्छा करती हो? सुन्दर चन्दन को छोड़ कर, कर्दम लगाने की क्यों इच्छा करती हो?।।२१।। सूर्य का तेज छोड़ कर, खद्योत (जुगनू) पटवीजने की कान्ति की इच्छा करती हो, चीन देश के रेशमी वस्त्र छोड़ कर चर्म वस्त्रों की इच्छा करती हो।।२२।। घर का वास त्याग कर, वनवास की इच्छा करती हो। हे देवेशि! शेवधि (कल्याणनिधि) को त्याग कर, तुम लोहे की इच्छा करती हो।।२३।। तुम इन्द्रादि लोकपालों को छोड़ कर, शिव में अनुरक्त हुई हो, मैं इसे अच्छा नहीं समझता, यह बात लोक के भी विरुद्ध है।।२४।। कहां तुम कमल लोचना और कहां वे त्रिलोचन, कहां तुम चन्द्रमुखी कहां वे जो पंचमुखी कहे जाते हैं।।२५।। तुम्हारे शिर पर सर्पिणी के समान दिव्य वेणी है और मस्तक पर जटाजूट प्रसिद्ध शिव ही का है।।२६।। तुम्हारे अंग में चन्दन है और शिव के अंग में चिताभस्म हैं, कहां तुम्हारा दुकूल वस्त्र और कहां शिव का गजचर्म।।२७।। कहां तुम्हारे दिव्य भूषण और कहां शंकर का सर्प, कहां तुम्हारे अनुचर देवता और

कहां शंकर भूतों के प्रिय तथा बलिप्रिय ।।२८।। कहां इधर मृदंगों का नाद और कहां उधर डमरू, कहां भेरी का शब्द और कहां उनका श्रृंगीनाद ।।२९।। कहां ढक्का नामक बाजे का शब्द और कहां उनका गलनाद, जो अशुभ है। तुम्हारे और शिव के रूप की कोई समता नहीं है ।।३०।। यदि उनके पास द्रव्य होता तो, वे दिगम्बर क्यों होते ? उनका वाहन बलीवर्द है। तात्पर्य यह कि उनके पास कोई सामग्री नहीं है ।।३१।। स्त्रियों को सुखदायक गुण वरों में होने चाहिये, उनमें से शंकर में एक गुण भी नहीं है ।।३२।। काम तो तुमको भी प्यारा होगा, वह भी शंकर ने भस्म कर दिया, यह भी तुम्हारा अनादर किया जो तुम्हें छोड़ कर अन्यत्र चले गये ।।३३।। उनकी जाति, विद्या, ज्ञान कुछ विदित नहीं होता। पिशाच उनके सहायक और कण्ठ में विष रहता है ।।३४।। सदा अकेले ही रहते हैं और विशेष कर वैरागी हैं, इस कारण तुम शंकर में मन मत लगाओ ।।३५।। कहां तुम्हारे हृदय का हार और कहां मुण्डों की माला, कहां तुम्हारे शरीर का अंगराग और कहां उनके शरीर की चिताभस्म ।।३६।। हे देवि! तुम्हारे और शंकर के रूपादि सब विरुद्ध हैं, मुझे यह बात नहीं रुची, जो तुम्हारी इच्छा में आवे सो करो ।।३७।। जो असद्वस्तु है, स्वयं उसकी इच्छा करती हो, शंकर से मन हटा लो, आगे जो मन में आवे सो करो ।।३८।। ब्रह्माजी बोले– उस ब्राह्मण के यह वचन सुन कर पार्वती क्रोध कर के शिवनिन्दक ब्राह्मण से बोली ।।३९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
तृतीये पार्वतीखण्डे सप्तविंशोऽध्यायः ।। २७ ।।

*****

अट्ठाइसवाँ अध्याय

पार्वती बोली– मैंने इतना जाना था, कि यह कोई अन्य है, पर इस समय आपकी सब बात जान ली, क्या करूं? क्रोध तो बहुत है, पर ब्रह्मचारी अवध्य होते हैं ।।१।। हे देव! जो कुछ आपने कहा वह सब मिथ्या है, जो आपने कहा, कि हम उनको जानते हैं, यह सब आपका कहना मिथ्या है, यदि आप जानते होते, तो ऐसे वचन कभी न कहते ।।२।। कभी वैसे वेषधारी भी महेश्वरजी दिखाई देते हैं? उन परब्रह्म ने अपनी लीला से ही शरीर धारण किया है ।।३।। आप ब्रह्मचारी के स्वरूप से मुझे छलने को उद्यत हुए हो और आ कर कुयुक्ति से छल के भरे वचन कहते हो ।।४।। शंकरजी के स्वरूप को विशेष कर मैं जानती हूँ, यथार्थता से विचार कर शिवतत्त्व मैं कहती हूँ, आप सुनिये ।।५।। यथार्थता में वह निर्गुण ब्रह्म हैं, कारणवश सगुण

हो जाते हैं, निर्गुण गुणात्मा की जाति किस प्रकार से हो सकती है?।।६।। वह सदाशिवजी सब विद्याओं के अधिष्ठान हैं, उन पूर्ण परमात्मा को साधारण विद्या से क्या काम है?।।७।। जिन्हों ने उच्छ्वास रूप से विष्णुजी को प्रथम वेद दिये थे, यह कल्प के आदि में शिवजी ने किया था, उनके समान प्रभु कौन है?।।८।। जो सबके आदिकारण हैं, उनकी अवस्था का मान क्या हो सकता है? उनके पश्चात् प्रकृति प्रकट हुई है, वह शक्ति क्या शिवजी के प्रति कारण हो सकती है?।।९।। जो प्रेम से शक्ति के ईश्वर शंकरजी का सदा भजन करते हैं, शिवजी उन्हें सदैव रहने वाली ऐसी तीन शक्तियों को प्रदान करते हैं।।१०।। उन्हींके भजन से यह जीव निर्भय हो कर मृत्यु को जीतता है, इस कारण त्रिलोकी में वह मृत्युञ्जय नाम से प्रसिद्ध हैं।।११।। उन्हीं के पक्षपात से विष्णुजी विष्णुत्व को प्राप्त होते हैं, ब्रह्माजी ब्रह्मत्व को और देवता देवत्व को प्राप्त होते हैं।।१२।। जैसे आदि में शिवजी के दर्शन के लिये देवराज जाते हैं, शिवानन्य शिवजी के द्वारपाल भूतादि गमन करते ही रहते हैं।।१३।। कभी-कभी उन गणों के दण्डों के प्रहार से उनका मुकुट चमकीला हो गया है, बहुत पक्ष लेने से क्या है? वह स्वयं ही महाप्रभु हैं।।१४।। उन कल्याण रूपी की सेवा करने से यहां क्या नहीं हो सकता? उन देव के पास कमी किस बात की है? जो वह सदाशिवजी मेरी इच्छा करें।।१५।। जो शंकरजी की सेवा न करे, वह सात जन्म दरिद्री होता है, उन्हीं की सेवा से लोक में अनपावनी लक्ष्मी प्राप्त होती है।।१६।। जिनके आगे उन्हें सन्तुष्ट करने के लिये नित्य ही आठों सिद्धियां नृत्य करती रहती हैं, सदा नीचा मुख किये रहती हैं, उन्हें दुर्लभ ही क्या है?।।१७।। यद्यपि इन शंकरजी की मङ्गल सेवा नहीं करते अर्थात् वह मङ्गल वेष धारण नहीं करते, तो भी उन्हें स्मरण करने से मङ्गल होता है।।१८।। जिनकी पूजा के प्रभाव से निरन्तर काम सिद्ध हो जाते हैं, उन सदा निर्विकार रहने वाले शंकरजी में विकार कहां हो सकता है।।१९।। जिसके मुख से 'शिव' ऐसा मङ्गल नाम निरन्तर निकलता है, उसके दर्शन से दूसरे प्राणी भी सदा पवित्र हो जाते हैं।।२०।। जो आपने कहा कि, चिता की भस्म अपवित्र होती है, तो वह उनके अंग की भस्म देवता निरन्तर क्यों धारण करते हैं?।।२१।। जो देव जगत् के कर्ता, पोषक और संहार करने वाले हैं तथा गुणों से संयुक्त हैं, जो निर्गुण होते हुए भी शिव हैं, उनको कोई किस प्रकार से जान सकता है?।।२२।। परमात्मा शिवजी का ब्रह्मरूप निर्गुण है, आप सरीखे उनसे विमुख उस रूप को कैसे जान सकते हैं?।।२३।। जो दुराचारी पापी वेद और देवताओं से विमुख हैं, वे अगुणरूपी शिवजी का तत्त्व नहीं जान सकते।।२४।। जो पुरुष तत्त्व को न जान कर शिवजी की निन्दा करता है, उसका जन्म भर का किया हुआ पुण्य भस्म हो जाता है।।२५।। आपने जो यहां महातेजस्वी शिवजी की निन्दा की है और मैंने

जो आपकी पूजा की है, इससे मुझे पाप लगा है।।२६।। शिवद्रोही को देख कर वस्त्रों सहित स्नान करना चाहिये, शिवद्रोही को देखने से प्रायश्चित्त करना चाहिये।।२७।। अरे दुष्ट! आपने जो कहा, मैं शंकरजी को जानता हूँ, सो आपने सनातन शिवजी को निश्चय से कुछ भी जाना नहीं।।२८।। और बहुत क्या? वे चाहें जैसे भी हो, वे निविकारी, सत्पुरुषों को प्रिय वे नित्य मेरे मनोरथ पूर्ण करने वाले हैं, वे चाहे जैसे रूपवान् या अरूपवान् हों।।२९।। उन महात्मा की विष्णुजी और ब्रह्माजी भी समता नहीं कर सकते हैं, फिर दूसरे देवताओं की तो कौन कहे? वे तो सदा काल के अधीन हैं।।३०।। इस प्रकार अपने सत्य और बुद्धि से विचार कर शिवजी के लिये वन में आकर मैं बड़ी तपस्या करती हूँ।।३१।। वही परमेशान सर्वेश भक्तवत्सल हैं, इस समय मेरी उनमें यह अभिलाषा है कि वे दीनों पर अनुग्रह करते हैं।।३२।। ब्रह्माजी बोले– हे मुने! इस प्रकार कह कर वह गिरिराजसुता गिरिजा निर्विकार चित्त से मौन धारण कर विराम को प्राप्त हुई।।३३।। ब्रह्मचारी ब्राह्मण इस प्रकार पार्वती के वचन सुन कर जब ही कुछ कहने की इच्छा करने लगे कि।।३४।। उसी समय शिवजी में मन लगाये शिवनिन्दा के सुनने की इच्छा न करने वाली पार्वती ने अपनी सखी विजया से शीघ्रता पूर्वक कहा।।३५।। पार्वती बोली– हे सखि! यह द्विजाधम फिर कुछ शिवजी की निन्दा करने की इच्छा करते हैं, इस द्विजाधम को यत्न से निवारण करना चाहिये।।३६।। केवल शिवजी की निन्दा करने से ही पाप नहीं होता, जो उस निन्दा को सुनता है, वह भी पापभागी होता है।।३७।। शिवजी की निन्दा करने वाला शिवजी के किंकरों से सदा वध्य है, यदि वह ब्राह्मण हो, तो उसे त्याग देना चाहिये और उस स्थल से शीघ्र चला जाय।।३८।। और यह दुष्ट फिर शिवजी की निन्दा करेगा, पर यह ब्राह्मण होने से अवध्य है वा अज्ञात हो, तो सर्वथा त्याग देना चाहिये।।३९।। इस स्थान को छोड़ कर मैं अभी दूसरे स्थान को चलती हूँ। जिससे इस मूर्ख के साथ मेरा फिर सम्भाषण न हो।।४०।। ब्रह्माजी बोले– ऐसा कह कर ज्यों ही पार्वती ने जाने के निमित्त पग उठाया, तब तक इस ब्रह्मचारी रूप साक्षात् शिवजी ने अपने हाथ से प्रिया को ग्रहण किया।।४१।। जैसा पार्वती ध्यान कर रही थी, वैसा ही स्वरूप धारण कर पार्वती को दर्शन दिया और लज्जा से नीचे को मुख किये हुए पार्वती से शिवजी बोले।।४२।। शिवजी बोले– अब मुझे छोड़ कर कहां जायेगी? मैं तुझे नहीं छोडूंगा। मैं प्रसन्न हूँ, वर मांग, तेरे लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है।।४३।। आज से तुमने अपने तप से मुझे मोल लिया है, मैं तेरा दास हूँ, तेरी सुन्दरता से मैं बिक गया हूँ, तेरे बिना एक क्षण भी युग के समान बीतता है।।४४।। तुम लाज त्याग दो, मेरी सनातनी पत्नी हो। हे महेश्वरि! गिरिजा तुम ही हो, सुबुद्धि से विचार करो।।४५।। हे दृढ़मन वाली! मैंने तुम्हें बहुत प्रकार से

परीक्षा कर देखा, सो परीक्षणादि लोकलीला अनुसरण रूप मेरा अपराध तुम क्षमा करो।।४६।। त्रिलोकी में तुम्हारे समान मुझे कोई प्यारी नहीं है, मैं सर्वथा तेरे अधीन हूँ। हे शिवे! तुम अपनी कामना पूर्ण करो।।४७।। हे प्रिये! तुम मेरे समीप आओ, तुम मेरी पत्नी और मैं तुम्हारा वर हूँ। अब तेरे साथ मैं अपने पर्वतोत्तम घर में गमन करूंगा।।४८।। ब्रह्माजी बोले- देवदेव के यह कहते ही पार्वती को बड़ा आनन्द हुआ, तप में जो कष्ट हुआ था, उसी समय वह पुरातन कष्ट दूर हो गया।।४९।। हे मुनिसत्तम! सती का वह सब श्रम जाता रहा, कारण कि फल के उत्पन्न होने में प्राणी का पहला श्रम नष्ट हो जाता है।।५०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

तृतीये पार्वतीखण्डे अष्टविंशोऽध्यायः।। २८ ।।

*****

उनतीसवाँ अध्याय

नारदजी बोले- हे ब्रह्मन्! हे विधे! हे महाभाग! इसके उपरान्त फिर क्या हुआ? वह सब सुनने की मेरी इच्छा है। आप शिवजी का यश मुझसे कहिये।।१।। ब्रह्माजी बोले- हे देवर्षे! सुनिये, मैं इस कथा को प्रसन्नता से कहता हूँ। जो यह कथा महापाप की नाशक और शिवभक्ति को बढ़ाने वाली है।।२।। इस प्रकार पार्वती महात्मा शिवजी के वचन सुन कर, हे मुनि! उस आनन्दकारी रूप को देख कर परम प्रसन्न हुई।।३।। वह महासाध्वी अपने समीप में स्थित हुए शंकरजी से महाप्रसन्नता से नेत्र खिल जाने से महासुखी हो कर बोली।।४।। पार्वती बोली- हे देवेश! आप तो मेरे नाथ हैं, क्या आपने यह बात भुला दी, जिस निमित्त पहले आपने दक्ष के यज्ञ का विनाश किया था?।।५।। आप वही हैं, और अब मैं कार्यसिद्धि के निमित्त मेना में उत्पन्न हुई हूँ। हे देवेश! देवता तारक असुर से बड़े तप्त हो रहे हैं।।६।। हे देवेश! यदि आप प्रसन्न हो, यदि आप कृपा करते हो, तो हे महेशान! मेरे वचन मान कर आप मेरे पति हो जाइये।।७।। मैं आपकी आज्ञा से अपने पिता के घर जाती हूँ, वह आपका विशुद्ध यश (विवाह रूप) प्रसिद्ध किया जाय।।८।। हे नाथ! आपको मेरे पिता के समीप जाना चाहिये, आप तो अनेक लीलाओं में विशारद है। आपको मेरे पिता से मुझे मांगना चाहिये।।९।। हे भगवन्! लोकों में अपना यश विस्तार करते हुए आपको इस प्रकार से करना चाहिये, जिससे मेरे पिता का गृहाश्रम सफल हो।।१०।। ऋषियों द्वारा प्रेम से बोधित हुआ अपने बन्धुजनों से परिवारित मेरे पिता

आपके वाक्य में सन्देह न करेंगे ।।११।। जब मैं दक्षकन्या थी, तब मेरे पिता ने आपको दिया था, उस समय यथा विधि से आपने विवाह नहीं किया था ।।१२।। मेरे पिता दक्षजी ने उस समय ग्रहों का पूजन नहीं किया, उन ग्रहों के कारण ही उस विवाह में छिद्रदोष रहा ।।१३।। हे महादेवजी! हे महाप्रभो! इस कारण देवताओं की कार्यसिद्धि के लिये आप यथोक्त विधि से मेरे साथ विवाह कीजिये ।।१४।। विवाह की जो रीति है, उसे अवश्य करना चाहिये, जिससे हिमालय यह बात जान जाए, कि इसने महातपस्या की है ।।१५।। ब्रह्माजी बोले– यह वचन सुन कर सदाशिवजी बहुत प्रसन्न हुए और हँसते हुए प्रेम से पार्वती से बोले ।।१६।। हे महेशानि! देवि! मेरा वचन सुनो, यथोचित और मङ्गलकारी, जैसा उचित जानो, वैसा करो ।।१७।। हे भामिनी! ब्रह्माजी से आदि ले कर जितने स्थावर–जंगम दिखाई देते हैं, सब नश्वर जानो ।।१८।। यह एक ही अनेकत्व को प्राप्त हुआ है, यह निर्गुण ही गुणों से युक्त है, यह अपने ही प्रकाश से प्रकाशित है, दूसरे की ज्योति इसमें नहीं है ।।१९।। हे देवि! मैं सदा स्वतन्त्र हूँ, परन्तु तुमने परतन्त्र कर दिया है। सबकी करने वाली प्रकृति महामाया तुम ही हो ।।२०।। यह सम्पूर्ण जगत् मायामय ही किया है, मुझ सर्वात्मा ने परमबुद्धि से इसे धारण किया है। अपने परमात्मभाव और सर्वात्माकृति से इसे रच कर तथा सेवन कर के गणों से परिवेष्टित कर दिया है ।।२१।। तेरे सिवाय कौन ऋतु तथा ग्रह है? हे देवी! इस समय तुम शिव के निमित्त क्या कहती हो?।।२२।। गुण कार्य के भेद से ही हमारा प्रादुर्भाव है। भक्तवत्सलता के भाव से भक्तों के सब कार्य करता हूँ।।२३।। रज, सत्त्व, तमोमयी तुम सूक्ष्म प्रकृति हो, निरन्तर व्यापार में दक्ष, सगुण और निर्गुण रूप हो ।।२४।। इन सब भूतों का मैं आत्मा हूँ। हे सुमध्यमे! निर्विकारी, निरीह हो कर भी मैं भक्त के निमित्त शरीर धारण करता हूँ।।२५।। हे शैलपुत्रि! मैं तुम्हारे पिता हिमालय के पास नहीं जाऊंगा और किसी प्रकार से भी भिक्षुक हो कर मैं तुम्हारे पिता से तुम्हें नहीं मागूंगा ।।२६।। चाहे कोई बड़े गुणों में गरिष्ठ महात्मा कैसा भी क्यों न हो? हे गिरीन्द्रजे! 'दो' ऐसा कहते ही यह पुरुष लघुता को प्राप्त हो जाता है ।।२७।। हे कल्याणी! यह बात जान कर तुम मुझ से ऐसा क्यों कहती हो? हे भद्रे! अन्य कार्य तुम्हारे कहने से सब होगा, अब इस में जैसा उचित जानो, वैसा करो ।।२८।। ब्रह्माजी बोले– वह कमललोचनी साध्वी शिवजी के ऐसा कहने पर शंकरजी को बारंबार भक्ति से प्रणाम कर के कहने लगी ।।२९।। पार्वती बोली– इस में कोई विचार की बात नहीं है, कि आप आत्मा हो और मैं प्रकृति हूँ, हम दोनों स्वतन्त्र और निर्गुण हो कर भी भक्तों के वशीभूत हो कर सगुण होते हैं ।।३०।। हे प्रभो शंकर! आपको तो प्रयत्नपूर्वक मेरे वचन पूर्ण करने चाहिये। हे शंकरजी! आप हिमालय से याचना कर के मुझे सौभाग्य दीजिये ।।३१।। हे महेशान! आप कृपा कीजिये, मैं आपकी नित्य भक्त हूँ।

हे नाथ! मैं तो जन्मजन्मान्तर में सदा आपकी पत्नी हूँ।।३२।। आप ब्रह्म परमात्मा निर्गुण प्रकृति से परे हो, विकार रहित, इच्छा रहित स्वतन्त्र परमेश्वर हो।।३३।। तथापि भक्तों के उद्धार के निमित्त आप सगुण भी हो, आप विहार करने वाले आत्मा में रत, अनेक लीला करने में चतुर हो।।३४।। मैं सदा आपको महादेव महेश्वर जानती हूँ। हे सर्वज्ञ! आप मुक्त स्वरूप हो कर दया कीजिये।।३५।। अद्भुत लीला कर के आप लोक में अपना यश विस्तार कीजिये। हे नाथ! जिस लीला को गा–गा कर आपके भक्त संसार–सागर से पार हो जाए।।३६।। यह कह कर गिरिजा शंकरजी को बारंबार प्रणाम कर के हाथ जोड़ कर, सिर झुका कर प्रार्थना कर के मौन हुई।।३७।। जब पार्वती ने ऐसा कहा, तब महात्मा लोक के विडम्बन के निमित्त हँसते हुए महाप्रसन्न हो कर उस कार्य करने की इच्छा से बोले, 'ऐसा ही होगा'।।३८।। पश्चात् प्रसन्न हो कर शिवजी अन्तर्धान हो गये और काली के विरह से आकृष्ट चित्त हो कर शिवजी कैलास को गये।।३९।। वहां जा कर शिवजी ने नन्दी आदि से यह वृत्तान्त परम आनन्द में भर कर सुनाया।।४०।। वह भैरव आदि सम्पूर्ण गण यह वृत्तान्त सुन कर परम सुखी हो कर उत्सव मनाने लगे।।४१।। हे द्विजश्रेष्ठ! उस समय परम उत्सव हुआ, सब का दुःख नाश हुआ और शिवजी को परम प्रसन्नता हुई।।४२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
तृतीये पार्वतीखण्डे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।। २९ ।।

*****

तीसवाँ अध्याय

नारदजी बोले– विधे! हे महाभाग! हे परमार्थ के देने वाले! आप धन्य हो। आपने अनुग्रह कर के यह अद्भुत कथा मुझे सुनाई।।१।। जब शिवजी अपने पर्वत को चले गये, तब सर्वमङ्गला पार्वती ने क्या किया? वह कहां गई? हे महामते! सो यह बात आप मुझ से कहिये।।२।। ब्रह्माजी बोले– हे तात! प्रेमपूर्वक सुनिये, जो बात इसके पीछे हुई। शिवजी को स्मरण कर के शिवजी के निजस्थान जाने का चरित्र कहता हूँ।।३।। पार्वती ने अपना रूप सार्थक कर के 'महादेव' शब्द उच्चारण कर के अपने पिता के घर गमन किया।।४।। पार्वती का आगमन सुन कर मेना और हिमालय दिव्य यान में चढ़ कर, हर्ष में विह्वल हो कर चले।।५।। पुरोहित, पुरवासी और भी अनेक सखियां तथा दूसरे सम्बन्धी, वे सब ही इस स्थान पर आये।।६।। और मैनाक आदि सब भाई भी उस स्थान पर आये। यह सब महाप्रसन्न होकर 'जय' शब्द बोलते चले।।७।।

राजमार्ग में शोभायमान मंगल वट की स्थापना कर के और उस वट में चन्दन, अगर, कस्तूरी उस की फल शाखाओं में लगाया ।।८।। पुरोहित, ब्राह्मण तथा ब्रह्मवादी मुनि, नारी, नर्तक तथा गजेन्द्रादि से शोभायमान ।।९।। नगर के सब ओर केले के स्तम्भ लगाये, पति-पुत्र वाली स्त्रियां हाथ में दीपक लिये खड़ी हो गई ।।१०।। ब्राह्मणों के समूह मंगलध्वनि करने लगे, अनेक प्रकार के बाजे और शंखध्वनियां उस समय होने लगीं ।।११।। इसी समय दुर्गा अपने नगर के समीप में आई, नगर में प्रवेश करते हुए देवी ने अपने पिता-माता का दर्शन किया ।।१२।। जो देखते ही हर्ष से विह्वल मन हो प्रसन्न हो कर दौड़ पड़े और पार्वती ने माता-पिता को देखते ही सखियों सहित दोनों को प्रणाम किया ।।१३।। माता-पिता ने आशीर्वाद दे कर काली को अपनी गोदी में लिया, हे वत्से! ऐसा उच्चारण कर प्रेम से विह्वल हो कर रोने लगे ।।१४।। तब इसकी अपनी और भी सम्बन्ध की स्त्रियां तथा भ्राताओं की स्त्रियां प्रीति से दृढ़ आलिंगन करने लगीं ।।१५।। और बोलीं- तुमने अपने कुल को तारने का कार्य भलीभांति से साधन किया, तुम्हारे सदाचरण से हम सब पवित्र हो गए ।।१६।। इस प्रकार सब कोई गिरिजा की बढ़ाई कर के प्रेम से प्रणाम करने लगे और पुष्प तथा चन्दन से पूजन कर पार्वती को प्रसन्नता से प्रणाम करने लगे ।।१७।। उसी समय देवता भी आकाश से विमानों में स्थित हो कर फूलों की वर्षा कर के श्रेष्ठ स्तोत्रों से स्तुति करने लगे ।।१८।। उस समय सब ब्राह्मणादि ने बड़ी प्रसन्नता से पार्वती को रथ में बैठा कर पुर में प्रवेश कराया ।।१९।। तब ब्राह्मण, पुरोहित, सखी तथा स्त्रियों ने पार्वती को बड़े मान के सहित घर में प्रवेश कराया ।।२०।। स्त्रियां मंगलाचार करने लगीं और ब्राह्मण आशीर्वाद देने लगे। हे मुनीश्वर! हिमालय और पार्वती की माता मेनका बड़ी प्रसन्न हुई ।।२१।। उन्होंने अपने आश्रम को सफल माना, कि कुपुत्र से तो पुत्री ही अच्छी होती है। हे नारदजी! हिमालय ने 'आपको धन्य-धन्य' कह कर स्तुति की ।।२२।। पर्वतराज ने ब्राह्मण और बन्दीजनों को धन दिया और ब्राह्मणों द्वारा मंगल पाठ करा के महोत्सव किया ।।२३।। हे मुने! इस प्रकार से पिता, माता और भ्राता तथा भगिनियां पार्वती सहित आंगन में बैठीं ।।२४।। हे तात! उस समय हिमालय बड़ी प्रसन्नता को प्राप्त हो कर सब का प्रेम से सम्मान कर के गंगा में स्नान करने गये ।।२५।। उसी समय लीला करने में तत्पर भक्तवत्सल भगवान् शंकरजी नाचने वाले नट का रूप धारण कर के मेनका के समीप गये ।।२६।। बायें हाथ में शृङ्गी और दाहिने हाथ में डमरू, पीठ पर गुदड़ी धारे, लाल वस्त्र पहिने, नृत्य और गान में चतुर ।।२७।। इस प्रकार का रूप धारण कर मेनका के द्वार पर बड़ी प्रसन्नता से अनेक प्रकार का नृत्य और मनोहर गान करने लगे ।।२८।। शृङ्गी और डमरू को बड़ी ध्वनि के साथ शिवजी ने बजाया और भी विविध प्रकार की मनोहर वीणादि बजाने की क्रीडा की ।।२९।। तब सब नगरवासी स्त्री तथा पुरुष,

बालक, बूढ़े सब कोई उन्हें देखने की इच्छा से आये ।।३०।। वह गीत और मनोहर नृत्य देख कर, हे मुने! मेना और दूसरे लोग सब मोहित हो गये ।।३१।। शंकरजी का रूप हृदय में विचार कर पार्वती मूर्छित हो गई, उस समय पार्वती को त्रिशूल आदि चिह्न धारण किये अति सुन्दर दिखाई दिये ।।३२।। विभूति लगाये, अत्यन्त मनोहर अस्थिमाला से शोभायमान, तीन नेत्रों से उज्ज्वल मुख, नागों का यज्ञोपवित पहने ।।३३।। गौरवर्ण, दीनबन्धु, दयासागर, सर्वथा मनोहर गौरवर्ण महेश्वरजी 'वर मांगो' इस प्रकार कहने लगे ।।३४।। इस प्रकार हृदय में स्थित शंकरजी को देख कर पार्वती ने उनको प्रणाम किया और मन में ही वर मांगा कि, 'आप मेरे पति हो' ।।३५।। इस प्रकार से हृदय में ही शिवजी पार्वती को वर दे कर, अन्तर्धान हो कर, फिर भिक्षुक के रूप से नृत्य करने लगे ।।३६।। तब मेना उनसे बहुत प्रसन्न हो कर सुवर्ण के पात्र में बहुत से रत्न रख कर प्रेम से उनके निमित्त देने गई ।।३७।। नर्तक ने यह स्वीकार न किये और भिक्षा में शिवा को मांगा और फिर कौतुक से नृत्य तथा गान करने लगे ।।३८।। मेना उसके वचन सुन कर विस्मय पूर्वक बड़ी क्रोधित हुई और भिक्षुक को घुड़क कर बाहर निकालने की इच्छा की ।।३९।। इसी समय हिमालय भी गंगाजी से आ गये और आंगन में नराकार उस भिक्षुक को देखा ।।४०।। मेना के मुख से यह वृत्तान्त सुन कर हिमालय को बड़ा क्रोध हुआ और अपने सेवकों को नट को बाहर निकालने की आज्ञा दी ।।४१।। जो महा अग्नि के समान छूने से अयोग्य तेज से दुःसह थे, हे मुनिसत्तम! उनको बाहर निकालने की किसी को भी सामर्थ्य न हुई ।।४२।। हे नारदजी! उस समय अनेक लीला करने में चतुर वह भिक्षुक पर्वतराज के निमित्त अपना अत्यन्त प्रभाव दिखाने लगे ।।४३।। शैलराज ने देखा, कि उनका अद्भुत विष्णु रूप हो गया है। किरीट, मुकुट, कुण्डल धारे, पीत वस्त्र और चार भुजा हैं ।।४४।। पूजा के समय विष्णुजी को हिमालय ने जो पुष्पपूजा दी थी, वह हिमालय ने भिक्षुक के शरीर तथा सिर पर देखी ।।४५।। फिर थोड़ी देर में ही उनको हिमालय ने जगत् के स्रष्टा ब्रह्माजी के रूप में चार मुख वाला देखा, कि लालवर्ण है और वेदों के सूक्त उच्चारण कर रहे हैं ।।४६।। फिर उनको जगत् के नेत्र सूर्य के स्वरूप में देखा, गिरिराज ने देखा कि क्षण–क्षण में नट अनेक कौतुक करते हैं ।।४७।। हे तात! फिर हिमालय ने उनका महा अद्भुत रुद्र रूप देखा, जो कि पार्वती के सहित परम मनोहर अपने तेज से प्रकाशित हो रहे थे ।।४८।। फिर उनका स्वरूप निराकार और निरंजन उपाधि रहित निरीह ऐसा महा अद्भुत देखा ।।४९।। इस प्रकार से उनके बहुत से रूप हिमालय ने देखे और परम आनन्द से संयुक्त हो कर वह बड़े विस्मय को प्राप्त हुए ।।५०।। तब सृष्टि उत्पन्न करने वाले भिक्षुक ने फिर दुर्गा की ही याचना की और कुछ नहीं मांगा ।।५१।। शिवजी की माया से मोहित होने के कारण हिमालय ने यह बात स्वीकार नहीं की, तब भिक्षुक ने

कुछ भी ग्रहण न किया और अन्तर्धान हो गये।।५२।। तब मेना और हिमालय को यह ज्ञान हुआ कि प्रभु शंकरजी हम दोनों को वंचित कर के अपने स्थान को गये।।५३।। जब उन्होंने इस बात का विचार किया, तब महा मोक्ष करने वाली परम दिव्य, सब आनन्द की देने वाली भक्ति शिवजी में हुई।।५४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

तृतीये पार्वतीखण्डे त्रिंशोऽध्याय: ।। ३० ।।

*****

इकतीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– हे नारद! इस प्रकार उन दोनों की शिवजी में अव्यभिचारिणी भक्ति जान कर इन्द्रादि सब देवता विचार करने लगे।।१।। देवता बोले– यदि हिमालय अनन्य भक्ति करेंगे और शंकरजी को अपनी कन्या देंगे, तो भारत में वह शीघ्र ही निश्चय निर्वाणपद को प्राप्त होंगे।।२।। जो अनन्त रत्नों की आधार पृथ्वी को त्याग कर जायेंगे, तो यह रत्नगर्भा भूमि मिथ्या नाम वाली होगी।।३।। स्थावर रूप को छोड़ कर वह दिव्य रूप धारण कर शिवजी को अपनी कन्या दे कर शिवलोक में जायेंगे।।४।। इसमें सन्देह नहीं, वह महादेवजी के सारूप्य को प्राप्त होंगे, वहां अनेक भोग भोग कर अन्त में मोक्ष को प्राप्त होंगे।।५।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार से सब देवता आलोचना कर परस्पर सम्मति कर के विस्मित हो कर गुरु को उस स्थान में भेजने की इच्छा करने लगे।।६।। तब इन्द्रादिक सब देवता गुरु बृहस्पतिजी के स्थान को प्रीति और नम्रता से स्वार्थ साधन के निमित्त गये।।७।। हे नारदजी! वह सब देवता इन्द्रादि के साथ मिल कर गुरुजी को प्रणाम कर, आदर से सब वृत्तान्त निवेदन करने लगे।।८।। देवता बोले– हे गुरो! हमारे कार्य की सिद्धि के निमित्त आप हिमालय के घर गमन कीजिये, वहां जा कर प्रयत्न से शिवजी की निन्दा कीजिये।।९।। शिवजी के बिना पार्वती दूसरा वर ग्रहण नहीं करेगी, बिना इच्छा के सुता को दे कर शीघ्र फल न मिलेगा।।१०।। हे गुरो! समयानुसार इस समय हिमालय भूलोक में स्थिति करे, उस अनेक रत्नों के आधार को आप भूलोक में स्थापन कीजिये, नहीं तो भक्ति से विवाह करते ही उनकी मोक्ष हो जायेगी।।११।। ब्रह्माजी बोले– यह देवताओं के वचन सुन कर गुरु बृहस्पति ने कानों पर हाथ रखे और शिवजी का नाम स्मरण करते हुए इस बात को स्वीकार न किया।।१२।। और उदार बुद्धि वाले बृहस्पतिजी महादेवजी को

स्मरण कर उन देवताओं को बारंबार धिक्कार दे कर कहने लगे ।।१३।। बृहस्पतिजी बोले- आप सब देवता स्वार्थ साधन में तत्पर हो कर पराया अर्थ ध्वंस करने वाले हो, शंकरजी की निन्दा करने से मुझे अवश्य नरक होगा ।।१४।। हे देवताओ! कोई आपके मध्य में ऐसा हो, जो हिमालय के समीप जाये और हिमालय को समझा कर पहले अपना प्रयोजन सिद्ध कर ले ।।१५।। अनिच्छा से वह अपनी कन्या दे कर भारत में सुख से निवास करे और भक्तिपूर्वक शंकरजी को कन्या दे कर निश्चय मोक्ष की प्राप्ति होगी ।।१६।। पीछे सब सातों ऋषि पर्वतराज को समझावेंगे कि, शिवजी के सिवाय पार्वती दूसरे को वर नहीं करेगी ।।१७।। अथवा हे देवताओ! आप सब इन्द्र के सहित ब्रह्मलोक को जाइये और अपना सब वृत्तान्त सुनाइये, तो वह आपका सब कार्य करेंगे ।।१८।। ब्रह्माजी बोले- यह वचन सुन कर विचार कर के, वे सब देवता मेरी सभा में आये और प्रणाम कर के आदर से सब ने उस वृत्तान्त का वर्णन किया ।।१९।। देवताओं के शिवनिन्दा सम्बन्धी वचनों को सुन कर; हे मुने! वेदवक्ता हो कर भी दुःखी हो कर मैं उन से कहने लगा ।।२०।। ब्रह्माजी बोले- हे वत्सो! मैं दुःसह शिवनिन्दा करने में समर्थ नहीं हूँ, शिवजी की निन्दा सम्पत्ति की विनाश करने वाली और विपत्ति की बीज रूप है ।।२१।। हे देवताओ! आप कैलास में जा कर शिवजी को सन्तुष्ट कीजिये और शीघ्र ही उनको हिमालय के घर भिजवाये ।।२२।। वही स्वयं हिमालय के यहां जा कर अपनी निन्दा करें, पराई निन्दा नाश के निमित्त और अपनी निन्दा सदा यश के निमित्त होती है ।।२३।। ब्रह्माजी बोले- वे सब देवता इस प्रकार से मेरे वचन सुन कर प्रेम से मुझे प्रणाम कर के, शीघ्र ही कैलासपति शंकरजी के समीप गये ।।२४।। वहां जा कर शिवजी को देख कर, गर्दन झुका कर खड़े हुए और सब देवता हाथ जोड़ कर शंकरजी की स्तुति करने लगे ।।२५।। देवता बोले- हे देवदेव महादेव! हे करुणाकर! हे शंकर! हम आपके शरण हैं, आप कृपा कीजिये, आपको प्रणाम है ।।२६।। हे स्वामिन्! आप भक्तवत्सल, सदा देवताओं के कार्य करते रहते हैं, आप दीनों का उद्धार करने वाले, कृपासिन्धु, भक्तों की आपत्ति दूर करने वाले हैं ।।२७।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार इन्द्रादि सब देवताओं ने शिवजी की स्तुति कर के आदर से वह सब वृत्तान्त निवेदन किया ।।२८।। देवताओं के यह वचन सुन कर शिवजी ने यह बात स्वीकार कर ली और हँस कर तथा समझा कर उन सब देवताओं को विदा कर दिया ।।२९।। देवता बड़े प्रसन्न हो कर शीघ्र ही अपने स्थानों को चले गये। अपने कार्य की सिद्धि मान कर सदाशिवजी की प्रशंसा करने लगे ।।३०।। तब विकार रहित मायापति, भक्तवत्सल भगवान् शंकरजी शैलराज के यहां गये ।।३१।। जिस समय शैलराज अपने बन्धुवर्गों के साथ तथा पार्वती सहित सभा में विराजमान थे ।।३२।। उसी समय दण्ड, छत्र, दिव्य वस्त्र और तिलक धारण किये

हुए सदाशिवजी वहां आ कर प्राप्त हुए।।३३।। हाथ में स्फटिक की माला, गले में शालिग्राम लटकाये, भक्ति से नारायण का नाम जपते हुए, साधु वेषधारी साक्षात् ब्राह्मण।।३४।। इस प्रकार उन्हें देख कर हिमालय बन्धु-बान्धवों सहित उठ कर खड़े हो गये और अपूर्व अतिथि को देख कर भक्तिपूर्वक पृथ्वी में दण्डवत् प्रणाम किया।।३५।। और पार्वती ने भी परम भक्ति से विप्र रूपी प्राणेश को प्रणाम किया और उनका स्वरूप जान कर देवी ने उनको मन से प्रणाम कर के स्तुति की।।३६।। ब्राह्मण रूपधारी शंकरजी ने सबको प्रेमपूर्वक आशीर्वाद दिया। हे तात! विशेष कर पार्वती को मनपूर्वक आशीर्वाद दिया।।३७।। ब्राह्मण ने प्रेमपूर्वक मधुपर्कादिक सब सामग्री ग्रहण की, जो शैलाधिराज हिमालय ने बहुत आदर से दी।।३८।। हे मुने! पर्वतश्रेष्ठ हिमालय ने बहुत प्रीति से उस ब्राह्मण की पूजा कर के उस ब्राह्मण की कुशल पूंछी।।३९।। और फिर पर्वतराज ने पूंछा कि, आप कौन हैं? तब वह ब्राह्मण शीघ्र ही हिमालय से आदरपूर्वक कहने लगे।।४०।। ब्राह्मणश्रेष्ठ ने कहा-हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ पर्वतराज! मैं ब्राह्मण हूँ। घटिकी (ज्योतिष को) वृत्ति का आश्रय कर के मैं पृथ्वी पर विचरण करता हूँ।।४१।। मैं अपने गुरु के आशीर्वाद रूप बल से मन के समान वेग वाला, सब स्थानों में पहुंचने की सामर्थ्य वाला हूं, परायों पर उपकार करने वाला शुद्धात्मा, दयामय और विकारों को हरने वाला हूँ।।४२।। मुझे यह विदित हुआ है, कि आप शिवजी को अपनी कन्या देने की इच्छा करते हो। यह आपकी कन्या कमल के समान दिव्य रूप और श्रेष्ठ लक्षणों से सम्पन्न है।।४३।। इसे आप आश्रय रहित, असंग, कुरूप, गुणहीन, श्मशानवासी, सर्पधारी, योगी।।४४।। नग्न, मलीन शरीर, सर्पों के भूषण धारण करने वाले, कुल नाम से अज्ञात, कुशील, विहार हीन।।४५।। शरीर में भस्म मलने वाले, क्रोधी, अज्ञानी, अज्ञात आयु वाले, सदा विकट जटाधारी।।४६।। सबके आश्रय देने वाले, सदा भ्रमण करने वाले, नागों के हार धारण करने वाले, भिक्षुक, कुमार्ग में निरत, हठ से वेदमार्ग को त्यागने वाले के निमित्त देना चाहते हो।।४७।। हे हिमालय! यह आपकी बुद्धि निश्चय ही मंगल की देने वाली नहीं है। हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ! नारायण के कुल में उत्पन्न आप इस बात को समझो।।४८।। आपने पार्वती का दान जिस पात्र में करने का विचारा है, वह पात्र अनुरूप नहीं है। यह बात सुनते ही सब बड़े लोग आपकी हँसी उड़ायेंगे।।४९।। हे शैलराज! इस बात का तो आप विचार करो, कि उनके कोई बन्धु नहीं है। आपके यहां रत्नों के ढेर हैं और उनके पास किञ्चित् भी धन नहीं है।।५०।। हे शैलराज! आप अपने बन्धुजनों से, मेनका से तथा दूसरे पण्डितों से, बहुत क्या? पार्वती के सिवाय सबसे पूंछिये।।५१।। हे गिरिसत्तम! रोगी को औषधि अच्छी नहीं लगती, उसे तो महादोष करने वाला कुपथ्य ही निश्चय अच्छा लगता है।।५२।। ब्रह्माजी बोले- यह

कह कर वह ब्राह्मण गिरिराज के दिये पदार्थों को शीघ्रता से भोजन कर प्रसन्नता और शान्ति दिखाते हुए लीला करने वाले शंकरजी अपने स्थान को गये ।।५३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
तृतीये पार्वतीखण्डे एकत्रिंशोऽध्यायः ।। ३१ ।।

*****

बत्तीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– ब्राह्मण के वचन सुन कर मेना के हृदय में बड़ा दुःख हुआ, उनके नेत्रों में शोक छा गया, हृदय में दुःखी हो कर हिमालय से बोली ।।१।। हे शैलेन्द्र! परिणाम में सुख देने वाले मेरे वचन को आप सुने, जो कुछ बात इस ब्राह्मण ने कही है, यह बात आप सब शैवों से निश्चय करें ।।२।। इस वैष्णव ब्राह्मण ने शिवजी की निन्दा की है। हे नगेश्वर! उसे सुन कर मेरा मन बहुत व्याकुल हुआ ।।३।। हे शैलेश! जो रुद्र ऐसे हैं, तो मैं उनको अपनी कन्या नहीं दूंगी। इस सुलक्षणी सुता को कुरूपशाली शंकरजी को कैसे दे सकती हूँ ?।।४।। यदि आप मेरे वचन नहीं मानोगे, तो मैं अपने प्राण दे दूंगी। मैं यह घर छोड़ दूंगी वा विष खा लूंगी ।।५।। गले में रस्सी से अम्बिका को बांध कर वन में चली जाऊंगी, महासागर में डूब जाऊंगी, परन्तु शंकरजी को अपनी सुता नहीं दूंगी ।।६।। यह कह कर शोक के मारे मेना शीघ्र ही कोपभवन को चली गई। हार भूषण त्याग कर, रोती हुई पृथ्वी पर लोटने लगी ।।७।। हे तात! उसी समय विरह से व्याकुल हो कर शिवजी ने उन सातों ऋषियों को स्मरण किया ।।८।। ज्यों ही शिवजी ने उन सातों ऋषियों को स्मरण किया, वे दूसरे कल्पवृक्षों के समान तत्काल वहां आ कर प्राप्त हुए ।।९।। अरुन्धती तथा दूसरी उनकी स्त्रियां साक्षात् सिद्धि के समान आ कर प्राप्त हुई। सूर्य के समान उन ऋषियों को देख कर शिवजी ने जप से विराम किया ।।१०।। हे मुने! वे तपस्वी ऋषि शिवजी के आगे स्थित हो कर प्रणाम तथा स्तुति कर के अपने आपको कृतार्थ मानने लगे ।।११।। फिर विस्मय को प्राप्त हो कर नमस्कार करके स्थित हो कर लोकों से नमस्कार को प्राप्त शंकरजी से हाथ जोड़ कर कहने लगे ।।१२।। ऋषि बोले– हे सब में श्रेष्ठ, महाराज! हे देवताओं के चक्र में चूड़ामणि सम्राट्! हम इस समय अपने सर्वश्रेष्ठ भाग्य वर्णन करते हैं ।।१३।। जो हम ने पूर्वकाल में तीन प्रकार का तप किया है, उत्तम वेदाध्ययन किया है, अग्नि में आहुति दी है, अनेक तीर्थ किये हैं ।।१४।। मन, वचन, कर्म से जो तीन प्रकार का पुण्य किया है, वह आज आपके स्मरण और अनुग्रह से सफल हुआ है ।।१५।। जो

मनुष्य नित्य आपका भजन करता है, वह कृतकृत्य हो जाता है और जिनको आप स्मरण करते हैं उनके पुण्य की कथा तो कौन वर्णन कर सकता है?।।१६।। हे सदाशिव! आपके स्मरण करने से हम सब से उत्कृष्ट हो गये, आप साक्षात् तो कौन कहे किसी के मनोरथ में भी नहीं आते हो।।१७।। जैसे बौने को फल, अन्धे को नेत्र, गूंगे को वाणी और कंगाल को निधि का दर्शन हो जाए।।१८।। लूला पर्वतों पर चढ़ने लगे, वन्ध्या को पुत्र हो जाए। हे प्रभो? इसी प्रकार आपका दुर्लभ दर्शन हम को प्राप्त हुआ है।।१९।। आज से ले कर हम मुनीश्वर लोकों में मान्य और पूज्य हुए। हे देव! आपके दर्शन से इस उच्च पद को हम प्राप्त हुए हैं।।२०।। हे देव देवेश! आप सर्वेश्वर के दर्शन से ही हम सर्वथा मान्यता को प्राप्त हुए हैं, इस में बहुत कहने से क्या है?।।२१।। पूर्णों को क्या करना चाहिये? यदि आपकी हमारे ऊपर परम कृपा है, तो आपको सेवकों पर कृपा कर के अब आज्ञा देनी चाहिये।।२२।। ब्रह्माजी बोले– महेश्वर शंकरजी ने इस प्रकार से उनके वचन श्रवण कर लौकिकाचार के आश्रित हो कर उन से मनोहर वचन कहे।।२३।। शिवजी बोले– ऋषिलोग सदा पुज्य हैं और आप उनमें विशेष रूप से पूज्य हो। हे ब्राह्मणों! एक विशेष कारण से मैंने आपका स्मरण किया है।।२४।। आप जानते ही हो, कि हमारी अवस्था उपकारी है, लोकसिद्धि के निमित्त विशेष रूप से उसे साधनी चाहिये।।२५।। दुरात्मा तारक असुर से देवताओं को बहुत दुःख हुआ है, मैं क्या करूं? ब्रह्माजी ने उसे बड़ा विकट वरदान दिया है।।२६।। हे महर्षियो! जो मेरी आठ प्रकार की मूर्तियां कही जाती हैं, वह सब उपकार के ही निमित्त हैं, स्वार्थ के निमित्त नहीं, यह बात स्पष्ट है।।२७।। इसी निमित्त मैं शिवा के संग विवाह करने की इच्छा करता हूँ। उस ने परम महर्षियों को भी कठिन तपस्या मेरे निमित्त की है।।२८।। उस के मनोरथों को पूर्ण करने वाला और हित करने वाला फल उसे देना चाहिये। भक्तों को आनन्द देने वाली मेरी प्रतिज्ञा सर्वत्र प्रकट है।।२९।। मैं पार्वती के वचन से भिक्षुक रूप धारण कर के हिमालय के घर गया था। अनेक लीलाओं में विशारद मैंने काली को मांगा।।३०।। तब दोनों स्त्री–पुरुषों ने मुझे परब्रह्म जान कर परम भक्ति से वेदरीतिपूर्वक अपनी सुता मुझे देने की इच्छा की।।३१।। तब देवताओं की प्रेरणा से मैंने अपनी निन्दा दोनों को सुनाई और वैष्णव रूप से मैंने उनकी वह भक्ति दूर करने की चेष्टा की।।३२।। यह मेरे वचन सुन कर वह दोनों स्त्री–पुरुष व्याकुल हो कर उस भक्ति से हीन हुए हैं। हे मुनियो! अब वह मुझे अपनी कन्या देने की इच्छा नहीं करते।।३३।। इस कारण आप अवश्य ही हिमालय के घर जाइये। वहां जा कर हिमालय और मेना को समझाइये।।३४।। यत्नपूर्वक उनसे वेदसम्मत वचन कहिये। सब प्रकार से वही करना जिससे कार्यसिद्धि हो।।३५।। हे महानुभाव महर्षियो! मैं हिमालय की पुत्री के साथ विवाह करने की

इच्छा करता हूँ। मैंने उस विवाह को स्वीकार कर के पार्वती को वैसा वर दिया है।।३६।। इसमें बहुत कहने से क्या है? आपको हिमालय को समझाना चाहिये और देवताओं की कार्यसिद्धि के निमित्त मेना को भी समझाना चाहिये।।३७।। जो आपने कल्पना की है उस से अधिक विधि होगी। यह आप ही का कार्य है और आप ही इस कार्य के भागी हैं।।३८।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार शिवजी के वचन सुन कर वे निर्मल मन वाले महर्षि शिवजी के अनुग्रह को प्राप्त हो कर बड़े आनन्द को प्राप्त हो गये।।३९।। और बोले- आज हम धन्य और कृतकृत्य हुए, हम सब के वन्दनीय और पूजनीय विशेष रूप से हुए।।४०।। जिनको ब्रह्माजी और विष्णुजी नमस्कार करते हैं, जो सबके अर्थसिद्ध करने वाले हैं, वह हमें लोक के सुखदायक प्रियकार्य में प्रेरणा करते हैं।।४१।। यह जगत् के स्वामी पिता हैं और वह जगत् की स्वामिनी माता है। यह जगत् का कल्याणकारक सम्बन्ध सदा चन्द्रमा के समान वृद्धि को प्राप्त होता रहे।।४२।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार से वह दिव्य ऋषि सदाशिवजी को प्रणाम कर के हिमालय के नगर को आकाशमार्ग हो कर गये।।४३।। उस दिव्य पुर को देख कर वे ऋषि बड़े विस्मित हुए और अपना पुण्य वर्णन करते हुए परस्पर कहने लगे।।४४।। ऋषि बोले- हम बड़े पुण्यवान् और धन्य हैं, जो आज हिमालय का नगर देखते हैं; धन्य हैं हम जो शिवजी ने इस कार्य में हम को नियुक्त किया है।।४५।। यह हिमालय की पुरी अलकापुरी से, स्वर्ग से, सर्पों की भोगवतीपुरी से तथा अमरावती से भी विशेष दिखाई देती है।।४६।। स्फटिकमणि के इस में सुन्दर-सुन्दर अनेक घर हैं, इस में मणियों के बड़े विचित्र आंगन बने हैं।।४७।। सूर्यकान्त और चन्द्रकान्त मणि घर-घर में हैं, इसी प्रकार घर-घर में स्वर्ग के वृक्ष दिखाई देते हैं।।४८।। तोरण, वन्दनवार और लक्ष्मी घर-घर में दिखाई देती है, अनेक प्रकार के विमानों में विचित्र तोते और हंस बोलते हैं।।४८।। विचित्र वितान हैं, विचित्र कपड़े के बने हैं, उन में वन्दनवारें बंध रही हैं, अनेक जलाशय हैं और अनेक घरों में बावडी हैं।।५०।। अनेक प्रकार के विचित्र उद्यान मनोहर बने हुए हैं, सब मनुष्य देवता हैं और स्त्रियां अप्सरायें हैं।।५१।। कर्मभूमि में याज्ञिक और स्वर्ग की कामना से पुरातन लोग जो यज्ञानुष्ठान करते हैं, वे इस हिमालय पुर के सामने वृथा ही हैं।।५२।। जब तक हिमालय का नगर नहीं देखा है, तभी तक मनुष्य स्वर्ग की कामना करते हैं। हे ब्राह्मणो! जब इसे देख लिया, तब स्वर्ग से क्या प्रयोजन है?।।५३।। ब्रह्माजी बोले- हे ऋषिश्रेष्ठ! इस प्रकार से विचारते और उस पुर का वर्णन करते वे सब समृद्धि वाले हिमालय के घर गये।।५४।। उन देवताओं के समान ऋषियों को देख कर हिमालय विस्मित हो कर देखने लगे कि, सात महातेजस्वी पुरुष दूर आकाशमार्ग से आते हैं, उन्हें देख कर बोले।।५५।। हिमालय बोले- जो सात पुरुष सूर्य के समान हमारे समीप आते हैं,

इन मुनियों की विशेष रूप से अब मुझे पूजा करनी चाहिये ।।५६।। हम गृहस्थी लोग धन्य हैं, जिन के यहां सब को सुख देने वाले आपके समान महात्मा आते हैं।।५७।। ब्रह्माजी बोले– इसी अवसर में आकाश से पृथ्वी पर आकर स्थित हुए उन ऋषियों को अवलोकन कर हिमालय मानपूर्वक उनको लेने गये।।५८।। सिर झुका कर, हाथ जोड़ कर उन सप्तऋषियों को प्रणाम कर के बड़े मान के साथ हिमालय ने उनकी पूजा की।।५९।। वे सातों ऋषि हिमालय की उस हितकारणी पूजा को ग्रहण कर के प्रसन्न मुख से हिमालय से वचन बोले।।६०।। हिमालय ने उनका यथायोग्य सत्कार कर के कहा– मेरा गृहस्थाश्रम धन्य है, ऐसा कह कर उनको भक्तिपूर्वक आसन ला कर दिया।।६१।। जब ऋषि आसनों पर बैठ चुके, तब हिमालय उनकी आज्ञा से स्वयं भी आसन पर बैठे और हिमालय ने उन ज्योतिस्वरूप मुनियों से यह वचन कहे।।६२।। हिमालय बोले– मैं निश्चय धन्य और कृतकृत्य हूँ, मेरा जीवन सफल है, मैं लोकों में अब दर्शनीय और बहुतीर्थ रूप हुआ हूँ।।६३।। जिस कारण से कि विष्णुरूपी आप लोग मेरे घर आये हैं, आप तो स्वयं पूर्णकाम हैं, हम कृपणों के गृहों में आपका क्या कार्य हो सकता है?।।६४।। तो भी मुझ सेवक के योग्य जो कुछ कार्य हो, तो दया कर के कहिये, जिस से मेरा जन्म सफल हो जाए।।६५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
तृतीये पार्वतीखण्डे द्वात्रिंशोऽध्यायः ।। ३२ ।।

*****

तैतीसवाँ अध्याय

ऋषि बोले– शिवजी जगत् के पिता कहे जाते हैं, शिवा जगन्माता कही जाती हैं, इस कारण महात्मा शंकरजी के निमित्त आप अपनी कन्या दे दो।।१।। हे हिमालय! ऐसा करने पर आपका जन्म सफल हो जायेगा, इसमें सन्देह नहीं। आप जगद्गुरु के गुरु हो जाओगे।।२।। ब्रह्माजी बोले– हे मुनीश्वर! इस प्रकार से सप्तऋषियों के वचन सुन कर प्रणाम कर के हाथ जोड़ कर इस प्रकार से गिरिराज बोले।।३।। हिमालय बोले– हे सप्तऋषियो! हे महाभाग्यवानो! जो कुछ आपने कहा है, वह शिवजी की इच्छा से मैंने पहले ही स्वीकार किया है।।४।। अभी थोड़ा समय हुआ कि, एक वैष्णव ब्राह्मण ने प्रेम से शिवजी को लक्ष्य कर के कुछ वचन कहे, जिस में शंकरजी की निन्दा थी।।५।। उसी समय से पार्वती की माता ज्ञानभ्रष्ट हो गई और योगी रुद्र से अपनी कन्या का विवाह करना नहीं चाहती।।६।। बहुत क्रोध कर के मलीन वस्त्र धारण कर

वह कोपभवन में चली गई, और हे ब्राह्मणो! उसे ऐसी हठ हुई है कि समझाने से नहीं मानती।।७।। मैं भी ज्ञान से भ्रष्ट हो गया हूँ, आप से सत्य कहता हूँ। भिक्षुक रूपधारी शंकरजी को अब अपनी कन्या देने की मुझे इच्छा नहीं है।।८।। हे मुने! शैलराज इस प्रकार से कह कर शिवजी की माया से मोहित हो कर उन मुनियों के मध्य में मौन हो कर स्थित हुए।।९।। तब वे सातों ऋषियों ने शिवजी की माया की प्रशंसा कर अरुन्धती को मेनका के समीप भेजा।।१०।। वह ज्ञान की देने वाली अरुन्धती पति की आज्ञा पा कर शीघ्रता से मेना और पार्वती के समीप गई।।११।। जा कर देखा कि, मेना शोक से मूर्च्छित हुई पड़ी है, पतिव्रता ने बड़ी सावधानी से उसे मनोहर वचन कहे।।१२।। अरुन्धती बोली- हे पतिव्रते मेना! उठो तो, मैं अरुन्धती तुम्हारे घर आई हूँ और सातों दयालु मुनि भी आये हैं।।१३।। ब्रह्माजी बोले- अरुन्धती के बोल सुनते ही मेना बड़ी शीघ्रता से उठ बैठी और तेज से लक्ष्मी के समान प्रकाशमान उसको देख कर सिर झुका कर प्रणाम कर के बोली।।१४।। मेना बोली- अहो आज हम जीवधारियों का कितना पुण्य है, जो जगत् के विधाता वशिष्ठजी की पत्नी हमारे घर आई हैं।।१५।। हे देवि! आप किस निमित्त पधारी हो? सो विशेष रूप से मुझ से कहिये। मैं आपकी दासी के समान हूँ, मेरे ऊपर कृपा कीजिये, मुझे अपनी पुत्री जानिये।।१६।। ब्रह्माजी बोले- जब इस प्रकार उस ने कहा, तब साध्वी अरुन्धती ने मेना का बहुत समझाया और फिर प्रेम से वह उस स्थान में गयी, जहां वे सप्तऋषि थे।।१७।। तब वे शैलराज को आदर से समझाने लगे। वे सब बोलने में चतुर थे, शिवजी के चरणों को स्मरण कर के समझाने लगे।।१८।। ऋषि बोले- हे शैलराज! हमारे शुभ वचन सुनिये, आप शिवजी को पार्वती दे कर उन संहारकर्ता के श्वशुर हो जाइये।।१९।। वह सर्वेश किसी से कुछ याचना नहीं करते, तो भी तारक असुर के वध के निमित्त ब्रह्माजी ने इस सम्बन्ध में बहुत प्रार्थना की है।।२०।। योगियों में श्रेष्ठ शिवजी यद्यपि दारसंग्रह में उत्सुक नहीं हैं, पर वह देव विधाता की प्रार्थना से आपकी कन्या को ग्रहण करेंगे।।२१।। आपकी कन्या ने भी उनकी प्राप्ति के लिये तप किया है, जिसके लिये उन्हों ने वर दिया है, इन्हीं दो कारणों से वह आपकी कन्या को ग्रहण करेंगे।।२२।। ब्रह्माजी बोले- ऋषियों के वचन सुन कर हिमालय हँस पड़े और फिर कुछ भीत हो कर विनयपूर्वक बोले।।२३।। हिमालय ने कहा- मैं शंकरजी के पास कोई भी राजसामग्री नहीं देखता हूँ, कोई ऐश्वर्य का आश्रय वा उनके स्वजन बन्धु नहीं हैं।।२४।। ऐसे कहीं लिप्त न होने वाले योगी को मैं अपनी कन्या देने की इच्छा नहीं करता हूँ, आप भी तो वेद-विधान कर्ता विधाता के पुत्र हो, इस में निश्चय कर के कहिये।।२५।। जो पिता प्रतिकूल वर के निमित्त कन्या को काम, मोह, भय वा लोभ से देता है, वह नष्ट हो कर नरक में जाता है।।२६।। मैं अपनी इच्छा से तो शंकरजी के निमित्त अपनी कन्या नहीं दूंगा, परन्तु

जो योग्य वर हो आप लोग उसका विचार करें।।२७।। ब्रह्माजी बोले– हे नारदजी! हिमालय के यह वचन सुन कर, बोलने वालों में श्रेष्ठ वशिष्ठजी हिमालय से कहने लगे।।२८।। वशिष्ठजी बोले– हे शैलेन्द्र! जो मैं सर्वथा आपके हित का ही वचन कहता हूँ, उसको सुनिये यह वचन धर्म के अनुकूल और दोनों लोकों में आनन्द करने वाले हैं।।२९।। हे शैल! लोक और वेद में तीन प्रकार के वचन होते हैं। शास्त्र को जानने वाला निर्मल ज्ञान दृष्टि से उन सब को जानता है।।३०।। सुनने में अच्छे लगें, परन्तु असत्य हों और पीछे अनहित करने वाले हों, वह वचन शत्रु ही कहते हैं, वे किसी प्रकार हितकारी नहीं होते हैं।।३१।। आदि में सुनने में कठोर लगे, परन्तु परिणाम में सुखकारी हों, इस प्रकार के वचन दयालु धर्मशील बन्धुजन बोलते हैं।।३२।। परन्तु जो सुनने में भी अमृत के समान हो और सब काल में सुखदायक हो, सत्य का सार और हितकारी हो, ऐसा वचन श्रेष्ठ कहा है।।३३।। हे शैल! यह तीन प्रकार के वचन नीतिशास्त्र में कहे हैं, कहो तो इन तीनों में आपसे कौन से वचन कहे जाए?।।३४।। देवताओं के स्वामी शंकरजी रजोगुणी सम्पत्ति से तो हीन हैं, पर तत्त्वज्ञान के समुद्र में उनका मन सदा निमग्न रहता है।।३५।। जो ज्ञानानन्द का अधिपति है, उसे रजोगुणी वस्तुओं में क्या इच्छा हो सकती है? गृहस्थी अपनी कन्या को राजस सम्पत्ति वालों को देते हैं।।३६।। दुःखी को कन्या देने से पिता कन्याघाती होता है, शंकरजी को दुःखी दरिद्री कौन कह सकता है? जिनके कुबेर दास हैं।।३७।। जो केवल अपनी भौं के विलास मात्र से सृष्टि के सृजन, पालन और संहार करने को समर्थ हैं, वह निर्गुण परमात्मा परेश प्रकृत्ति से परे हैं।।३८।। जिनकी सृष्टि के कार्य करने में तीन प्रकार की मूर्ति ब्रह्मा, विष्णु, हर नाम वाली उत्पत्ति, पालन और संहार करती है।।३९।। ब्रह्माजी ब्रह्मलोक में और विष्णुजी क्षीरसागर में वास करते हैं, हर कैलास में वास करते हैं। यह सब शिवजी की विभूतियां हैं।।४०।। शिवजी से उत्पन्न हो कर प्रकृति तीन प्रकार के रूप धारण करती है, यद्यपि उसकी बहुत कला हैं, तथापि लीला सृष्टि में अंशों से अनेक अवतार लेती है।।४१।। ब्रह्माजी के मुख से उत्पन्न हो कर वाणी की अधिष्ठात्री देवता हो कर वह सरस्वती हुई है। वक्षस्थल से उत्पन्न होने से लक्ष्मी सब सम्पत् की रूप वाली है।।४२।। देवताओं के तेज से शिवा का प्रादुर्भाव हुआ है, उस ने सब दानवों को मार कर देवताओं के निमित्त लक्ष्मी दी है।।४३।। कल्पान्तर में दक्ष की स्त्री के जठर से जन्म ले कर सती नाम वाली यही हुई थी, वहां दक्ष ने उसे शंकरजी ही को दिया।।४४।। वहां पिता के यज्ञ में सती ने अपने स्वामी शंकरजी की निन्दा सुन कर योग से देह त्याग दिया, वही शिवा इस समय मेना के जठर से प्रकट हुई।।४५।। हे शैल! जन्म–जन्म में शिवा, शिवजी की पत्नी रही है, कल्प–कल्प में यही ज्ञानियों की माता, श्रेष्ठ बुद्धि रूपिणी है।।४६।। यह सदा सिद्धों की सिद्धि रुपिणी हो कर प्रकट होती है,

सती की अस्थियों चिता की भस्म भक्ति से शिवजी सदा धारण करते हैं।।४७।। इस कारण आप अपनी इच्छा से ही इस कल्याणी कन्या को शंकरजी के निमित्त दीजिये अथवा आपके न देने से वह स्वयं अपने स्वामी के पास चली जायेगी।।४८।। देवेश ने प्रतिज्ञा कर के जब देखा, कि आपकी सुता ने तप कर के असंख्य क्लेश पाये, तब वह ब्राह्मण का रूप धारण कर के उस स्थान पर गये।।४९।। उसे आश्वस्त कर के, वर दे कर अपने स्थान को गये। हे गिरिराज! उसी की प्रार्थना से शिवजी आपसे शिवा को मांगते हैं।।५०।। शिवजी की भक्ति में तत्पर आप दोनों ने तप की बात स्वीकार कर ली थी, हे गिरिश्वर! कहिये तो अब आपकी विपरीति बुद्धि किस प्रकार से हुई?।।५१।। हे गिरिराज! वहां से जा कर प्रभु ने हमें प्रार्थना करने के लिये भेजा है और अरुन्धती भी इसी निमित्त मेना के पास गई है।।५२।। हम भी आपको शिक्षा देते हैं, कि आप रुद्र के निमित्त पार्वती को दे दीजिये। हे शैल! ऐसा करने से आपको महाआनन्द की प्राप्ति होगी।।५३।। हे शैलराज! यदि आप अपनी इच्छा से पार्वती शिवजी को न दोगे, तो भवितव्य बल से यह विवाह शंकरजी से ही होगा।।५४।। हे तात! पार्वती के तप करने से शिवजी ने उसे वर दिया है, ईश्वर की प्रतिज्ञा की हुई निष्फल नहीं होती।।५५।। ईश्वर के वशवर्ती महात्माओं की प्रतिज्ञा ही जब विफल नहीं होती, तब सर्व जगत् के अधिपति ईश्वर की प्रतिज्ञा कौन विपरीत कर सकता है?।।५६।। एक महेन्द्र ने लीला से पर्वतों के पंख काट डाले थे और पार्वती ने लीला से मेरु का शृङ्ग भंग कर दिया।।५७।। हे शैलेश! एक के प्रयोजन से सब सम्पत्ति नष्ट करना नहीं, कुल के निमित्त एक को त्याग कर दे, यह सनातनी श्रुति है।।५८।। अनरण्य राजा ने अपनी कन्या को ब्राह्मण के निमित्त दे कर उसके भय से अपनी सब सम्पत्ति की रक्षा की।।५९।। ब्राह्मण के शाप से भीत उस राजा को गुरु और ज्ञाति के नीतिशास्त्र के जानने वाले लोगों ने बहुत प्रकार से समझाया था।।६०।। हे शैलराज! इसी प्रकार आप भी अपनी कन्या शिवजी के निमित्त दे कर सब बन्धुवर्गों की रक्षा कर के देवताओं को अपने वश में कीजिये।।६१।। ब्रह्माजी बोले– वशिष्ठजी के यह वचन श्रवण कर हिमालय हँस कर दुःखी चित्त से उस राजा का चरित्र पूछने लगे।।६२।। हिमालय ने कहा– हे ब्रह्मन्! वह अनरण्य राजा किस वंश में उत्पन्न हुआ था और अपनी सुता को दे कर उस ने किस प्रकार से सब सम्पत्तियों की रक्षा की थी?।।६३।। ब्रह्माजी बोले– वशिष्ठजी इस प्रकार से हिमालय के वचन सुन कर प्रसन्न हो कर उस राजा का सुखदायक वृत्तान्त कहने लगे।।६४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

तृतीये पार्वतीखण्डे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः।। ३३।।

*****

चौतीसवाँ अध्याय

वसिष्ठजी बोले- इन्द्रसावर्णि नाम वाले चौदहवें मनु के वंश में एक अनरण्य राजा ने जन्म लिया ।।१।। वह नृपश्रेष्ठ सात द्वीपों का राजा था, वह मंगलारण्य का पुत्र महाबली विशेष कर शिवजी का भक्त था ।।२।। भृगुजी को पुरोहित बना कर उस ने सौ यज्ञ किये, देवता उसे इन्द्रपद देते थे, परन्तु उस ने यह बात स्वीकार न की ।।३।। हे हिमालय! उस राजा के सौ पुत्र हुए और लक्ष्मी के समान सुन्दरी नाम की एक कन्या हुई ।।४।। उस का प्रेम सौ पुत्रों की अपेक्षा कन्या में विशेष था। हे राजन्! और कन्या भी पिता को बड़ा प्यार करती थी ।।५।। और सब स्त्रियां भी प्राणों के समान प्यारी थी, सब सौभाग्य से युक्त उस राजा की पाँच रानियां थीं ।।६।। वह कन्या जब अपने पिता के घर में युवा हुई, तब उसने अपने वर को खोजने के लिये पत्र भेजा ।।७।। एक समय पिप्पलाद ऋषि अपने स्थान को जाते थे, कि उस निर्जन तप के स्थान में उन्हों ने एक गन्धर्व को देखा ।।८।। कि वह स्त्रियों के साथ है, शृङ्गार के रससमुद्र में उस का चित्त मग्न हो रहा है, वह कामशास्त्र में विशारद महाप्रेम से विहार कर रहा है ।।९।। उसे देख कर मुनिश्रेष्ठ काम के वशीभूत हो गये और तप से चित्त हटा कर दारसंग्रह की इच्छा करने लगे ।।१०।। इस प्रकार काम से व्याकुल मन वाले श्रेष्ठ ऋषि पिप्लाद को किनना एक समय बीत गया ।।११।। एक समय वह मुनीश्वर पुष्पभद्रा नदी में स्नान करने गये, वहां उन्होंने लक्ष्मी के समान मनोहर सुन्दरी पद्मा को देखा ।।१२।। तब मुनि ने उन समीप वालों से पूंछा, कि यह किस की कन्या है, शाप के डर से व्याकुल हो कर उस के आदमियों ने उस का परिचय दिया ।।१३।। मनुष्यों ने कहा, यह पद्मा नाम की लक्ष्मी के समान सुन्दरी, अनरण्य की कन्या है, इस गुणवती सुमुखी की अनेक राजा प्रार्थना करते हैं ।।१४।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार वह सत्यवादी आदमियों के सत्य वचन सुन कर मन में बड़े क्षुभित हुए और उसे लेने की इच्छा की ।।१५।। हे गिरिराज! तब मुनि स्नान कर के और अपने इष्टदेव शंकरजी का विधिपूर्वक पूजन कर के काम के वशीभूत हो कर कन्या की प्राप्ति के लिये राजा अनरण्य की सभा में गये ।।१६।। राजा ने मुनि को देखते ही भय से प्रणाम किया और मधुपर्कादि दे कर भक्ति से पूजा की ।।१७।। मुनि ने सब पूजा को ग्रहण कर राजा से कन्या को मांगा, राजा सुनते ही अवाक् हो गया और कुछ भी कहने को समर्थ न हुआ ।।१८।। मुनि ने कहा- हे राजन्! अपनी कन्या

आप हमें दो, नहीं तो क्षण में सब भस्म कर दूंगा ।।१९।। हे मुने! मुनि के तेज से सब सेवक गण व्याप्त हो गये और उस समय राजा कन्या के लिये रोने लगे, कि ब्राह्मण तो जरा से बहुत ही व्याकुल हो रहे हैं ।।२०।। रानियां भी कर्तव्यमूढ़ हो कर रोने लगीं और कन्या की माता महाराज़ी शोक से व्याकुल हो कर रोने लगी ।।२१।। और राजा के सब पुत्र शोक से व्याकुल मन वाले हो गये। हे शैलराज! जितने राजा के सम्बन्धी थे सब व्याकुल हो गये ।।२२।। इसी समय राजा के महापण्डित पुरोहित और बुद्धिमान् गुरु राजा के पास आ कर प्राप्त हुए ।।२३।। राजा ने प्रणाम कर के पुरोहितजी का सत्कार किया और उन के आगे रो कर सब वृत्तान्त निवेदन किया और पूंछने लगे, कि अब कर्तव्य शीघ्रता से बताइये ।।२४।। तब राजा के गुरु, विप्र और पुरोहित पण्डित दोनों शास्त्र और नीति के जानने वाले राजा को समझाने लगे ।।२५।। रानियां शोक से व्याकुल हो रही थीं और नृप की बाला कन्या भी व्याकुल हो रही थी, पुरोहितजी उत्तम नीति को आश्रय कर सब के हितकारी वचन बोले ।।२६।। गुरु और पुरोहित बोले- हे राजन्! हम दोनों के हितकारी वचन सुनें, परिवार सहित शोक मत करो, शास्त्र में सुन्दर मति करो ।।२७।। आज वा वर्ष दिन में एक दिन तो आपको कन्यादान करना ही होगा, किसी पात्र वा दूसरे किसी को अवश्य दोगे ।।२८।। ब्राह्मण को छोड़ कर हम त्रिलोकी में दूसरा कोई सत्पात्र नहीं देखते हैं। मुनि को अपनी कन्या दे कर सब सम्पत्ति की रक्षा करें ।।२९।। हे राजन्! नहीं तो एक के निमित्त सब सम्पत्ति नष्ट हो जायेगी, उसे दे कर सब की रक्षा करना श्रेष्ठ है। शरणागत के सिवाय दूसरा उपाय नहीं है ।।३०।। वसिष्ठजी बोले- राजा ने उन दोनों के वचन सुन कर बारंबार विलाप कर के कन्या को भूषण, वस्त्र पहना कर ऋषि को दान किया ।।३१।। हे गिरिराज! वह ऋषि उस मनोहर कन्या को पा कर विधिपूर्वक विवाह कर के पद्मा के समान उपमा वाली उस पद्मा को ले कर अपने मन्दिर गये ।।३२।। राजा ने जब वृद्ध को इस प्रकार से कन्या दी, तब इस ग्लानि से सब राजपट छोड़ कर पुत्रों को राज्य दे कर वन में तप करने चला गया ।।३३।। हे गिरिराज! जब प्राणपति वन को गये, तब राजा की भार्या सुन्दरी ने भर्ता और अपनी कन्या के शोक से प्राण त्याग दिये ।।३४।। पूज्य पुत्र और भृत्य राजा के बिना मूर्छा को प्राप्त हुए और दूसरे पुरुष भी श्वास ले कर इस बात का शोक करने लगे ।।३५।। अनरण्य भी वन में जा कर शंकरजी के निमित्त दुष्कर तपस्या कर के और भक्ति से उन का आराधन कर उत्तम शिवलोक में चले गये ।।३६।। राजा का परम धर्मात्मा कीर्तिमान नाम वाला श्रेष्ठपुत्र, प्रजा का पुत्र के समान पालन करते हुए राज्य करने लगा ।।३७।। हे शैलराज! इस प्रकार आपसे यह श्रेष्ठ अनरण्य का चरित्र वर्णन किया। जैसे उस ने कन्या दे कर अपना वंश और धन बचाया ।।३८।। हे शैलराज!

आप भी अपनी कन्या शिवजी को दे कर अपने कुल की रक्षा कर के देवताओं को अपने वशीभूत करो ।।३९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
तृतीये पार्वतीखण्डे अनरण्यचरित्रवर्णनो नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।। ३४ ।।

*****

पैतीसवाँ अध्याय

नारदजी बोले– हे पिताजी! पुत्रीदान सम्बन्धी अनरण्य का चरित्र सुन कर गिरिराज ने क्या किया ? उसे आप कहिये ।।१।। ब्रह्माजी बोले– हे तात! कन्यादान सम्बन्धी अनरण्य के चरित्र सुन कर, फिर हाथ जोड़ कर शैलेश वशिष्ठजी से कहने लगे ।।२।। गिरि ने कहा– हे वशिष्ठजी! हे मुनिराज! हे ब्रह्मपुत्र! हे कृपानिधे! आपने अनरण्य का परम अद्‌भुत चरित्र कहा ।।३।। अनरण्य की सुता ने पिप्पलाद नामक पति को प्राप्त कर के क्या किया? यह सुखदायक चरित्र कहिये ।।४।। वसिष्ठजी बोले– मुनिश्रेष्ठ पिप्पलाद तो जरा से व्याकुल हुए थे, जब उस अनरण्य की सुता के साथ वे अपने आश्रम में गये ।।५।। तब वे तपस्वी परम प्रीति से वहां निवास करने लगे, बहुत लम्पटता भी न की। हे गिरिराज! उस वन में वह नित्य अपना धर्म करते थे ।।६।। और वह अनरण्य की कन्या भी भक्ति से मुनि की सेवा करने लगी। मन, वचन, कर्म से जैसी लक्ष्मी नारायण की सेवा करती है, वैसे करने लगी ।।७।। एक समय वह मिष्टभाषिणी सुरनदी में स्नान करने गई और माया से मनुष्य रूपधारी धर्मराज मार्ग में मिले ।।८।। जिनका रत्नों से खचित रथ था, अनेक अलंकार धारण किये थे, वह नवयौवन वाले श्रीमान् कामदेव के समान कान्ति वाले थे ।।९।। वह प्रभु धर्म उस सुन्दरी पद्मा को देख कर, उस मुनिकन्या के भाव को जानने की परीक्षा करते हुए कहने लगे ।।१०।। धर्मराज बोले– हे सुन्दरी लक्ष्मी! राज्य के योग्य परम मनोहर अति यौवन में स्थित हे कामिनी! हे स्थिर यौवन वाली! ।।११।। तुम इस जरा से आतुर पिप्पलाद मुनि के समीप शोभा को नहीं प्राप्त होती। हे तन्वंगि! मैं यह सत्य कहता हूँ ।।१२।। वह ब्राह्मण केवल तपस्या में निरत, घृणा रहित मरण के समीप हो रहे हैं, उनको छोड़ कर मुझे देखो, जो मैं रतिशूर और काम से व्याकुल हो रहा हूँ ।।१३।। हे सुन्दरि! पूर्वजन्म के कर्म से सुन्दरता प्राप्त होती है। रसिक के आलिंगन से वह सब सफल होता है ।।१४।। मैं सहस्र स्त्रियों का पति, कामशास्त्र में चतुर हूँ। हे सुन्दरि! उस बूढ़े पति को त्याग कर के तुम मुझे अपना पति बनाओ ।।१५।। निर्जन मनोहर

वन में पर्वत और नदी के किनारे में मेरे संग विहार कर के इस जन्म को सफल करो।।१६।। वसिष्ठजी बोले– जब ऐसा कह कर धर्म रथ से उतर कर उसका हाथ पकड़ने को आतुर हुए, कि इसी समय पतिव्रता बोली।।१७।। हे नराधिप! तुम पापी हो। यदि कामना सहित मुझे देखोगे तो शीघ्र ही नष्ट हो जाओगे।।१८।। तप से पवित्र शरीर वाले मुनिश्रेष्ठ पिप्पलाद का त्याग कर के, तुझ रतिलम्पट स्त्रीजित को कैसे स्वीकार कर सकती हूँ?।।१९।। स्त्रीजित के स्पर्शमात्र से प्राणियों का सब पुण्य नष्ट हो जाता है। स्त्रीजित और दूसरे के निमित्त पाप करने वाले इनका दर्शन पापकारी होता है।।२०।। जो पुरुष स्त्रियों से जीता हुआ है, वह सत्क्रिय हो कर भी नित्य अपवित्र है। पितर, देवता और मनुष्य सब उसकी निन्दा करते हैं।।२१।। उसके ज्ञान, तप, जप, होम, पूजन, विद्या और दान से क्या है? जिस का मन स्त्रियों ने हरण कर लिया है।।२२।। मैं तेरी माता के समान हूँ। मुझ में जो तू स्त्रीभाव से यह वचन कहता है, इससे समय पर तू मेरे शाप से क्षय को प्राप्त होगा।।२३।। वसिष्ठजी बोले– जब धर्मराज ने सती का शाप सुना, तब अपनी राजमूर्त्ति छोड़ कर देवमूर्त्ति धारण कर वह देवेश कांपते हुए बोले।।२४।। धर्म बोले– हे मातः! मैं धर्म हूँ, ज्ञानियों का भी गुरु हूँ। हे सती! मैं पराई स्त्रियों में सदा मातृबुद्धि करता हूँ।।२५।। मैं तुम्हारे मन का भाव जानने के निमित्त ही तुम्हारे समीप आया था, मैं तुम्हारा मन जानता हूँ, तो भी विधि से प्रेरित हो कर।।२६।। हे साध्वि! तुमने मेरा दमन किया है, यह उचित है। उन्मार्गगामियों को वह शासन करता ही है, यह ईश्वर द्वारा ही निर्मित है।।२७।। जो सब को सुख–दुःख स्वयं देते हैं तथा उसे दूर करने में भी समर्थ हैं, जो सम्पद, विपद, कर्माधीन देते हैं, उन शिवजी के निमित्त नमस्कार है।।२८।। जो शत्रु, मित्र प्रीति और क्लेश विधान करने में समर्थ हैं तथा सृष्टि के संहार और सृजन में समर्थ हैं, उन शिवजी के निमित्त नमस्कार है।।२९।। जिन्हों ने दूध को श्वेत और जल में शीतलता की, अग्नि को दाहक शक्ति दी उन शिवजी को नमस्कार है।।३०।। जिन्हों ने प्रकृति निर्माण की है, जिन्हों ने महत् से आदि ले कर तप कर के निर्माण की है, जिन्हों ने ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि निर्माण किये हैं, उन शिवजी के निमित्त प्रणाम है।।३१।। ब्रह्माजी बोले– ऐसा कह कर वह जगद्गुरु धर्म उसके आगे स्थित हुए और उसके पतिव्रत से सन्तुष्ट हो कर कुछ भी न बोले।।३२।। हे नृपति! वह नृपकन्या पद्मा, पिप्पलाद की प्रिया साध्वी धर्म को जान कर विस्मित हो कर बोली।।३३।। पद्मा बोली– हे नृप! आप ही सब कर्मों के साक्षी हो, फिर मेरा मन जानने के लिये आपने ऐसा किया था। हे प्रभो! ऐसा कहने में आप मुझे क्यों वंचित करते हो?।।३४।। हे ब्रह्मन्! यह जो कुछ भी हुआ है, इसमें मेरा अपराध नहीं है। मैंने अज्ञान से आपको शाप दिया। हे धर्म! स्त्रीस्वभाव से वृथा ही मैंने आपको शाप दिया।।३५।। इस शाप की क्या व्यवस्था होगी? मैं यह चिन्ता

करती हूँ, मेरे चित्त में वह बुद्धि स्फुरायमान हो, जिससे मुझे शान्ति हो।।३६।। आकाश, सब दिशाएँ और वायु आदि भी सब चाहे नष्ट हो जायँ, परन्तु पतिव्रता का शाप कभी नष्ट नहीं होता।।३७।। हे देवराज! सतयुग में चारों चरणों से पूर्ण पूर्णमास के चन्द्रमा के समान सब काल में दिन-रात आप ही विराजमान होते हैं।।३८।। यदि आपका नाश हो जाय, तो सम्पूर्ण सृष्टि ही नाश हो जायेगी, ऐसी कर्तव्यता से मूढ़ हो कर मैं वृथा ही बोलती हूँ।।३९।। हे सुरोत्तम! त्रेतायुग में आपका एक पाद क्षय हो जायेगा, द्वापर में दूसरा और कलि में तीसरा पाद क्षय हो जाएगा।।४०।। कलि के शेष में आपके चारों चरण क्षीण हो जायेंगे, फिर सतयुग आने से आप पूर्ण हो जाओगे, इसमें सन्देह नहीं।।४१।। सतयुग में आप सर्वव्यापक होगे, दूसरे युगों में कहीं-कहीं व्यापक होगे, युग की व्यवस्था से आप उस-उस प्रकार के हो जाओगे।।४२।। इस प्रकार से यह मेरे सत्य वचन आपको सुखदायक होंगे। हे विभो! मैं पतिसेवा के निमित्त जाती हूँ, आप अपने घर जाइये।।४३।। ब्रह्माजी बोले- हे नारदजी! पद्मा के यह वचन सुन कर धर्मराज बड़े प्रसन्न हुए और इस प्रकार से उस साध्वी को कहने लगे।।४४।। धर्म बोले- हे पतिव्रते! तुम धन्य और पति की भक्त हो। हे पतिव्रते! तुम्हारा मङ्गल हो। अपने स्वामी की रक्षा के निमित्त वर लो।।४५।। मैं वर देता हूँ, तुम्हारे स्वामी युवा हो कर रति में शूर, और परम धार्मिक हो कर रूपवान्, गुणी वक्ता होंगे और निरन्तर उनमें यौवनावस्था रहेगी।।४६।। हे शुभे! वह मार्कण्डेय से भी विशेष चिरञ्जीव रहेंगे, कुबेर से विशेष धनवान् और ऐश्वर्य में इन्द्र से अधिक हो।।४७।। हरि के समान शिवजी के भक्त, सिद्धि में कपिलदेवजी से भी विशेष, बुद्धि में बृहस्पति के समान और समता में दूसरे विधाता होंगे।।४८।। तुम जीवनपर्यन्त स्वामी के सौभाग्य से संयुक्त होगी और हे सुभगे! इसी प्रकार तुम भी स्थिर यौवन वाली होगी।।४९।। तू गुणी और चिरञ्जीवी दश पुत्रों की माता होगी। तेरे स्वामी से विशेष गुणी विज्ञात पुत्र होंगे।।५०।। हे साध्वि! तुम्हारे घर सर्वसम्पत्ति से युक्त होंगे और निरन्तर प्रकाश वाले कुबेर के भवन से श्रेष्ठ होंगे।।५१।। वसिष्ठजी बोले- हे गिरिसत्तम! ऐसा कह कर धर्मराज स्थित हो गये और पद्मा उनकी प्रदक्षिणा कर के अपने घर गई।।५२।। और धर्म भी उसे आशीष दे कर अपने स्थान को गये और प्रत्येक समागमों में पद्मा की प्रशंसा करते रहे।।५३।। और फिर अपने युवा स्वामी के साथ वह निरन्तर रमण करने लगी। पीछे गुणों में उसके स्वामी से भी विशेष ऐसे उसके पुत्र हुए।।५४।। दोनों स्त्री-पुरुषों को सुख बढ़ाने वाली सब सम्पत्ति उनके हुई और दोनों लोकों में कल्याण करने वाली, सब आनन्द और वृद्धि करने वाली हुई।।५५।। हे शैलेन्द्र! आपसे यह सब पुरातन इतिहास वर्णन किया, सो दोनों स्त्री-पुरुषों का यह चरित्र आपने परम आदर से सुना।।५६।। इस तत्त्व को जान कर अपनी सुता ईश्वर को प्रदान करो। हे शैलराज!

अपनी स्त्री मेना के सहित कुवासना को त्याग दो ।।५७।। एक सप्ताह बीतने पर एक दुर्लभ योग है, लग्न का स्वामी लग्न में स्थित है और चन्द्रमा बुध के साथ स्थित होगा ।।५८।। और रोहिणी से युक्त होगा। चन्द्रतारागणों का योग विशुद्ध होगा, मार्गशीर्ष महीना, सब दोष रहित चन्द्रवार ।।५९।। सब श्रेष्ठ ग्रहों के योग से युक्त, असद्ग्रहों से रहित, श्रेष्ठ सन्तान देने वाले बृहस्पति के प्राप्त होने पर जो सब सौभाग्य देने वाले हैं ।।६०।। ऐसे समय में मूल प्रकृति की रूप वाली ईश्वरी जगदम्बा कन्या को शंकरजी के निमित्त प्रदान कर के, हे गिरिराज ! आप कृतार्थ हो जाइये ।।६१।। ब्रह्माजी बोले– ज्ञानियों में श्रेष्ठ मुनिशार्दूल वसिष्ठजी ऐसा कह कर नाना लीला करने वाले महाप्रभु शिवजी को स्मरण कर के मौन हो गये ।।६२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषाया
तृतीये पार्वतीखण्डे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।। ३५ ।।

*****

छतीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– हिमालय वसिष्ठजी के वचन सुन कर अपने गणों सहित विस्मित हो कर तथा भार्या के सहित आश्चर्य को प्राप्त हो कर गिरीश्वर बोले ।।१।। हिमालय बोले– हे मेरो, हे गिरिराज ! हे सह्य ! हे गन्धमादन ! हे मन्दर ! हे मैनाक ! हे विन्ध्य ! हे शैलेन्द्र! हमारे वचन सुनिये ।।२।। जब कि वसिष्ठजी ऐसा कहते हैं, तब मेरा क्या कार्य है ? ऐसा विचार करता हूँ। आप सब अपने मन में विचार कर के निर्णय कीजिये ।।३।। ब्रह्माजी बोले– हिमालय के वचन सुन कर वे सुमेरु आदि गिरि परस्पर निर्णय कर के प्रेम से कहने लगे ।।४।। शैल बोले– हे महाभाग ! अब बहुत विचार से क्या है ? कार्य तो हो ही गया है। हे महाभाग ! यह तो देवकार्य के निमित्त ही उत्पन्न हुई है ।।५।। इसका अवतार शिवजी के निमित्त हुआ है, इस कारण इसे शिवजी के निमित्त ही देनी चाहिये। इसने शंकरजी की आराधना की है, रुद्र से वह स्वीकृत हो चुकी है ।।६।। ब्रह्माजी बोले– मेरु आदि के यह वचन सुन कर हिमालय बहुत प्रसन्न हुए और गिरिजा मन में हँसने लगी ।।७।। इधर अरुन्धती ने मेना को कारण रूप से बोधन किया, अनेक प्रकार के वाक्य और अनेक इतिहास सुनाये ।।८।। तब शैलपत्नी उसे समझ कर प्रसन्न हुई और मुनि, अरुन्धती और शैलराज को भोजन करा कर उसने स्वयं भोजन किया ।।९।। तब ज्ञानी शैलराज ने उन मुनिश्रेष्ठों की भली प्रकार से सेवा कर के, हाथ जोड़ कर प्रसन्नता से भ्रम रहित वचन कहे ।।१०।। हिमालय बोले– हे महभाग वाले सप्तऋषियो ! आप

मेरे वचन सुनिये, मैंने शिवा–शिव का चरित्र सुना, अब मेरा विस्मय जाता रहा ।।११।। मेरा शरीर, पत्नी मेना, पुत्री ऋद्धि–सिद्धि और जो कुछ भी है, सब शिवजी का ही है, इसमें सन्देह नहीं ।।१२।। ब्रह्माजी बोले– हिमालय ने इस प्रकार के वचन कह कर आदरपूर्वक उस पुत्री को देख कर भूषण वस्त्रों से सजा कर ऋषि की गोदी में बैठा दिया ।।१३।। और प्रसन्न हो कर शैलराज ने ऋषियों से कहा– यह भाग मैं शंकरजी को अवश्य दूंगा, यह मैंने निश्चय कर लिया है ।।१४।। ऋषि बोले– शंकरजी तो ग्रहीता हैं और आप दाता हैं, पार्वतीदेवी भिक्षा है, इससे अधिक उत्तमता और क्या होगी ?।।१५।। हे हिमालय ! जो आपके शिखरों की जिस निमित्त ऐसी गति है, इस कारण आप धन्य हो, सब शैलों के अधिपति सर्वश्रेष्ठ हो ।।१६।। ब्रह्माजी बोले– ऐसा कह कर वे निर्मल हृदय वाले ऋषि कन्या को आशीर्वाद देने लगे, कि तू शिवजी के निमित्त सुखदायक हो ।।१७।। और हाथ से स्पर्श कर के कहा, कि तुम्हारा कल्याण होगा । शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा के समान तुम अपने गुणों से वृद्धि को प्राप्त हो ।।१८।। यह कह कर ऋषियों ने गिरिराज को पुष्प–फल दे कर विश्वास दिलाया ।।१९।। उस ओर सुमुखी अरुन्धती ने प्रसन्नता से शिवजी के गुणों से साध्वी मेना को लुभाया ।।२०।। हरिद्रा और कुमकुम से शैल की डाढ़ी मूछें मार्जित की, लौकिक आचारपूर्वक सब मंगल किये ।।२१।। फिर वे चौथे दिन की उत्तम लग्न निश्चित कर के परस्पर सन्तुष्ट हो कर शिवजी के समीप गये ।।२२।। वहां जा कर शिवजी को प्रणाम कर के, अनेक सूक्तों से स्तुति कर के वह सब वसिष्ठादि ऋषि परमेश्वर से कहने लगे ।।२३।। ऋषि बोले– हे देव देव महादेव ! हे परमेश्वर ! हे महाप्रभो ! हमारे वचन प्रेम से सुनिये, जो कुछ आपके सेवकों ने किया है ।।२४।। हे महेशान ! हम ने गिरिराज और मेना को बड़े–बड़े इतिहास कह कर बड़े उपायों से समझाया है, इसमें सन्देह नहीं, अब वह समझ गये हैं ।।२५।। गिरीन्द्र ने वाणी से आपको पार्वती दे दी, इसमें सन्देह नहीं । अब आप देवता और गणों के सहित व्याह करने चलिये ।।२६।। हे महादेव ! हे प्रभो ! आप शीघ्र हिमालय के घर चलिये, यथा रीति से आप पार्वती से व्याह कीजिये ।।२७।। ब्रह्माजी बोले– यह वचन सुन कर शिवजी प्रसन्न हुए और लौकिकाचार में तत्पर हो कर हँसते हुए इस प्रकार बोले ।।२८।। शिवजी बोले– हे महाभाग ! हम ने तो विवाह न देखा न सुना, जैसी पूर्व में आपने विधि कही है, वह कीजिये ।।२९।। ब्रह्माजी बोले– शिवजी के इस प्रकार से सुन्दर वचन सुन कर हँसते हुए देव देव सदाशिवजी से कहने लगे ।।३०।। ऋषि बोले– समाज सहित शीघ्रता से विष्णुजी को बुलाइये, प्रेम से पुत्रों सहित ब्रह्माजी तथा देवताओं सहित इन्द्र को बुलाइये ।।३१।। और फिर सब ऋषि, गण, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, विद्याधर और अप्सरा गणों को बुलाइये ।।३२।। हे प्रभो ! इनके सिवाय दूसरे महानुभावों को यथायोग्य बुलाइये । यह सब आपका कार्य साध लेंगे, इसमें सन्देह नहीं ।।३३।। ब्रह्माजी बोले–

सप्त ऋषि इस प्रकार के वचन कह कर प्रसन्नता से शिवजी की आज्ञा को प्राप्त हो कर शिवजी की महिमा वर्णन करते हुए अपने–अपने स्थानों को गये ।।३४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

तृतीये पार्वतीखण्डे सपतर्षिवचनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ।। ३६ ।।

*****

सैंतीसवाँ अध्याय

नारदजी बोले– हे तात ! जब अरुन्धती सहित सप्तर्षि अपने स्थानों को चले गये, तब पीछे हिमालय ने जो किया सो कहिये ।।१।। ब्रह्माजी बोले– अरुन्धती के सहित जब सप्तऋषि चले गये, तब हिमवान् ने जो कुछ किया, सो सुनिये ।।२।। तब वह अपने भाई मेरु आदि को पुत्रादि सहित आमन्त्रण देकर हिमवान् पर्वतेश्वर बहुत प्रसन्न हुए ।।३।। उनकी आज्ञा से बहुत प्रसन्न हो कर अपने गणों को बुलाकर अपने गर्ग ने पुरोहित से लग्न लिखाई ।।४।। तब उस पत्रिका को शिवजी के समीप भेजा और प्रसन्न होकर अपने जनों सहित नाना प्रकार की सामग्री भेज दी ।।५।। उन जनों ने कैलास में शिवजी के समीप जाकर शिवजी को वह पत्र और तिलक दिया ।।६।। विशेषकर प्रभु ने उनका बड़ा सन्मान किया और वह सब प्रसन्न होकर शैलराज के समीप गये ।।७।। शिवजी ने आये हुए जनों का विशेष सत्कार किया, उनको देखकर शैलराज बड़े प्रसन्न हुए ।।८।। और फिर आनन्द से अपने बन्धुजनों को निमन्त्रण किया, जो अनेक देशों में स्थित थे और सब सम्पत्तियों के अधिकारी थे ।।९।। तब आदर से गिरिराज ने अन्न संग्रह कराया और विवाह करण के उपयोगी अनेक प्रकार की सामग्री एकत्रित की ।।१०।। बहुत से चावल और पृथुक (च्युरा) गुड़, शर्करा, लवण ।।११।। दूध, घी, दही इनके ढेर के ढेर, यवादि और पीसे हुए घान्य और लड्डू ।।१२।। पुरी, स्वस्तिका (पिट्ठी के पदार्थ) शर्करा, अमृत, इक्षुरस इनकी बावडी की बावडी कर डाली ।।१३।। बहुतसी मक्खन तथा आसवों के ढेर तथा अनेक पक्वान, महास्वाद वाले रसों के ढेर के ढेर ।।१४।। नाना व्यंजन की वस्तुएँ गण और देवताओं के हित की करनेवाली तथा दूसरे अमूल्य वस्त्र जो धूपमात्र के लगने से पवित्र गिने जाते हैं ।।१५।। मणि, रत्नों के प्रकार, सुवर्ण, चान्दी के गहने, यह तथा दूसरे भी विधिपूर्वक ग्रहण करके ।।१६।। मंगलदायक दिन में गिरिराज ने यह सब मंगलाचार आरम्भ किया, पर्वत की स्त्रियां पार्वती का संस्कार करने लगी ।।१७।। और भूषणों से भूषित होकर, वे प्रसन्नता से मंगलाचार करने लगी। पुर और ब्राह्मणों की स्त्रियां प्रसन्न होकर लोकाचार करने लगी ।।१८।। वहा मंगलपूर्वक

बड़ा उत्सव होने लगा। हिमालय ने भी प्रसन्न हो कर मंगलाचार किया ।।१९।। वह सब प्रकार से प्रसन्न हुआ और बन्धुवर्गों के आगमन में उत्सुक हुआ, इसी अवसर में निमन्त्रित हुए वह सब बांधव ।।२०।। अपनी स्त्री-पुत्रादि के साथ बड़ी प्रसन्नता से आये। हे देवर्षे! उन पर्वतों का आगमन आदर से सुनो ।।२१।। मैं शिवप्रीति बढ़ाने के निमित्त संक्षेप से वर्णन करता हूँ, दिव्य रूप धारण किये देवालय गिरि ।।२२।। अनेक रत्नों को धारे, अपने समाज और कुटुम्ब के साथ आये, उनके साथ अनेक मणि और रत्नों के सार थे ।।२३।। सुवेष धारे अलंकार धारे, वह श्रीमान् हिमालय के घर आये। इसी प्रकार सब शोभा की खान स्त्री-पुत्रों सहित पर्वतराज मन्दर ।।२४।। अनेक भेंट की वस्तु लेकर हिमालय के स्थान में आये। इसी प्रकार दिव्य शरीरधारी अस्ताचल भी अनेक सामग्री सहित प्राप्त हुआ ।।२५।। इसी प्रकार बहुतसी शोभा और सामग्री सहित अनेक रत्न और मणि लेकर उदयाचल आया ।।२६।। मलयाचल पर्वत अपने बड़े परिवार के सहित महासुखपूर्वक आया ।।२७।। सह्य और दर्दुर नामवाला पर्वत बड़े परिवार युक्त दिव्य रचना के सहित आये और प्रसन्नता से साथ में अपनी स्त्रियां भी लाये ।।२८।। यह सब बड़ी शोभा से युक्त हिमालय के घर आये। इसी प्रकार निषध पर्वत भी कुटुम्ब सहित आया ।।२९।। यह अपने पुत्र और स्त्री सहित प्रसन्न होकर हिमालय के घर गये। इसी प्रकार महाभाग गन्धमादन पर्वत आया ।।३०।। इसी प्रकार महाऐश्वर्य के सहित करवीर पर्वत आया। इसी प्रकार पर्वतश्रेष्ठ महेन्द्र भी हिमालय के यहां आया ।।३१।। यह अपने गण और स्त्री को लेकर शोभा के सहित आया। पारियात्र नामक महात्मा पर्वत मणी और रत्नों के ढेर लेकर आया ।।३२।। यह अपने गण और परिवार को लेकर हिमालय के घर आये। इसी प्रकार पर्वराज क्रौंच महाबल और सामग्री के साथ भेंट लेकर गिरिश्रेष्ठ के यहां आये ।।३३।। पुरुषोत्तम पर्वत भी अपने समाज सहित आदर से बड़ी सामग्री ले कर हिमालय के समीप आया ।।३४।। नील-सुनील पर्वत भी अपनी स्त्री, पुत्र और द्रव्य सहित हिमालय के घर आनन्दपूर्वक आया ।।३५।। त्रिकूट, चित्रकूट, वेङ्कट, श्रीगिरि, गोकासुखी और नारद यह हिमालय के घर आये ।।३६।। विन्ध्य नामक पर्वतश्रेष्ठ अनेक सम्पत्तियों के सहित स्त्री-पुत्रों सहित बड़ी प्रसन्नता से हिमालय के घर आया ।।३७।। महाशैल कालिंजर बड़ी प्रसन्नता से अपने गण और धन सहित हिमालय के घर आया ।।३८।। कैलास नाम महाशैल बड़ी प्रसन्नता के सहित बड़ी कृपा कर हिमालय के गेह पधारे। यह सब पर्वतों के अधिष्ठात्री देवता थे ।।३९।। हे नारदजी! जो दूसरे द्वीपों में दूसरे पर्वत थे तथा जो भारतवर्ष के पर्वत थे, वे सब हिमालय के घर आये ।।४०।। हे मुने! उसने पहले सब पर्वतों को प्रेम से निमन्त्रण किया था, वे सब प्रेम से शिवा-शिव का विवाह देखने आये ।।४१।। उस समय शोणभद्रादिक नद सभी आये और सब ने महाप्रसन्नता प्राप्त की, कि शिवा-शिव

का विवाह है ।।४२।। अनेक अलंकारों से संयुक्त सब नदियां आई । यह सब दिव्य रूप धारण कर प्रेम से शिवजी का विवाह देखने आये ।।४३।। गोदावरी, यमुना, ब्रह्मपुत्रा, त्रिवेणी यह सब शिवा-शिव का विवाह देखने हिमालय के यहां आये ।।४४।। गंगा तो महाप्रसन्न होकर अनेक प्रकार के भूषण धारण कर प्रेम से दिव्य रूप धारण करके हिमालय के यहां आई ।।४५।। नर्मदा, महामोदा, सरीद्वरा, रुद्रकन्या यह सब महाप्रेम से शिवा-शिव का विवाह देखने आई ।।४६।। जिस समय यह चारों ओर से सब आ गये, उस समय सब शोभा से युक्त हिमालय की दिव्यपुरी इन से व्याप्त हो गई ।।४७।। ध्वजा तोरणों से महाउत्सव उस समय होने लगा । वितान ताने गये, जिन से धूप निवृत्त हो जाती है तथा अनेक और भी शोभा हो रही है ।।४८।। हिमालय ने भी प्रेम और बड़े आदर से उनका यथा योग्य सम्मान किया ।।४९।। सबको पृथक्-पृथक् अच्छे-अच्छे स्थानों में बैठाया और अनेक सामग्रीयों से सबको सन्तुष्ट किया ।।५०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
तृतीये पार्वतीखण्डे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।। ३७ ।।

*****

अड़तीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले- हे नारदजी ! तब प्रसन्न होकर हिमालय ने अपने पुर में विचित्र परम उत्सव करने की आज्ञा दी ।।१।। मार्ग सब प्रकार से छिड़कवा दिये गये, परम ऋद्धि से सब शोभित कर दिये गये, प्रत्येक द्वार पर केले और मंगलद्रव्य सम्पादन किये गये ।।२।। आंगन में केले के खम्भ लगाये गये और रेशम की डोरी में आम के पत्ते बांधकर बन्दनवारें लगाई ।।३।। मालतीमाला में संयुक्त तोरण बांधी, यह चारों ओर मंगलद्रव्य से संयुक्त हो कर लगाई गई ।।४।। इसी प्रकार से सब बातें पर्वतराज ने परम आनन्द से अपनी पुत्री की प्रसन्नता के निमित्त की । महाप्रभाववाले गर्गजी को आगे करके सब सामग्री प्रस्तुत की ।।५।। विश्वकर्माजी को बुलाकर आदर से मण्डप और मनोहर वेदिका की रचना कराई ।।६।। हे नारदजी ! वह वितान १०००० योजन के विस्तार में था, जो अनेक लक्षणोंवाला, अनेक आश्चर्यों से युक्त था ।।७।। स्थावर-जंगम सबको ही रचना से मनोहर था, सबको ही अद्भुत रूप था, नाना वस्तुओं से चमत्कृत ।।८।। वहां की स्थावर रचना ने जंगम विशेष रूप से जीत लिया था और जंगम ने स्थावर को जय कर लिया था ।।९।। जल की रचना ने स्थल भूमि को जीत लिया था । तात्पर्य यह, कि जल कौनसा है, यह चतुर जन भी नहीं जान सकते थे ।।१०।। कहीं कृत्रिम सिंह और कहीं सारस की पंक्तियां

निर्माण की गई थीं और कहीं कृत्रिम मोर बनाये गये थे ।।११।। कहीं मनोहर कृत्रिम स्त्रियां पुरुषों के साथ नृत्य करती थीं, वह कृत्रिम होकर भी देखने वालों के मन मोहित करती थीं ।।१२।। इसी प्रकार हाथ में धनुष लिये मनोहर द्वारपाल बनाये गये, वे स्थावर होकर भी सच्चे प्राणधारी विदित होते थे ।।१३।। द्वारे बनाई हुई महालक्ष्मी परम अद्भुत थीं, वह सब लक्षणों से सम्पन्न साक्षात् क्षीरसागर से आई विदित होती थीं ।।१४।। इसी प्रकार कृत्रिम हाथी भी असली दिखाई देते थे । इसी प्रकार अश्व अश्वारोहियों से, हाथी हाथी पर चढ़नेवालों से प्रसन्न हो रहे थे ।।१५।। महाआश्चर्य से संयुक्त रथ रथी चलाते थे तथा दूसरे वाहनों को पैदल चलाते थे, यह सब कृत्रिम थे ।।१६।। इस प्रकार सबके मोहने को विश्वकर्माजी ने रचना की । हे मुने! इस कौशल से देवता और मुनि सब प्रसन्न हो गये ।।१७।। महाद्वार पर कृत्रिम नन्दी बनवाकर स्थित किया, वह शुद्ध स्फटिक मणि के समान कान्तिमान् मानो साक्षात् नन्दी ही था ।।१८।। उसके ऊपर महादिव्य रत्नों से भूषित पुष्पक सुन्दर पल्लव और चामरों से शोभायमान विराजमान था ।।१९।। बाईं ओर दो हाथी शुद्ध काश्मीर देश के, चार-चार दांत वाले साठ वर्ष के महाकान्तिवाले स्थित थे ।।२०।। इसी प्रकार सूर्य के समान कान्तिवाले दो अश्व निर्माण किये, जो चंवरों से अलंकृत दिव्य अलंकारों से भूषित थे ।।२१।। इसी प्रकार श्रेष्ठरत्नों से युक्त लोकपाल बनाये, इस प्रकार विश्वकर्माजी ने सब देवता यथार्थ रूप से बनाये ।।२२।। इसी प्रकार भृगु आदि सब तपोधन, दूसरे सिद्ध और देवता सब कृत्रिम बनाये ।।२३।। इधर विष्णुजी को पार्षद और गरुड़ के सहित निर्माण किया, इनका रूप परम आश्चर्य का बनाया ।।२४।। इसी प्रकार पुत्र वेद और कुटुम्ब सहित मेरा रूप बनाया । हे नारद! ऐसा विदित होता था, मानो वे सूक्त पढ़ रहे हैं ।।२५।। ऐरावत पर चढ़े हुए अपने गणों सहित इन्द्र को निर्माण किया, यह मूर्ति पूर्ण चन्द्रमा के समान प्रकाशमान् थी ।।२६।। हे देवर्षे! बहुत कहने से क्या है ? विश्वकर्माजी ने सम्पूर्ण रचना हिमालय के कथनानुसार की ।।२७।। इस प्रकार से दिव्य रूप मण्डप अनेक आश्चर्य से संयुक्त निमार्ण किया, जो देवताओं को भी मोहित करता था ।।२८।। तब महामति विश्वकर्माजी ने हिमालय की आज्ञा पा कर देवताओं के निवास के लिये उनके लोकों के समान स्थान बनाये ।।२९।। इसी प्रकार परम अद्भुत महामंच चौकी बनाई, विश्वकर्माजी ने और भी बहुत दिव्य रचना की ।।३०।। इसी प्रकार सात लोक क्षणमात्र में परम अद्भुत बनाये, जो परम दीप्ति से स्वयम्भू के निवास के निमित्त बनाये थे ।।३१।। इसी प्रकार विष्णुजी के लिये वैकुण्ठ नामक स्थान बनाया, यह क्षणमात्र में अनेक आश्चर्य से संयुक्त बनाया ।।३२।। इसी प्रकार से इन्द्र का परम अद्भुत घर निर्माण किया । इस प्रकार विश्वकर्माजी ने सब ऐश्वर्य के सहित गृह निर्माण किये ।।३३।। इसी प्रकार लोकपालों के सुन्दर गृह निर्माण किये, परम प्रेम से यह सब दिव्य अद्भुत रचना की ।।३४।। तब क्रम से अन्य सब देवताओं के

भी घर उन्होंने बड़े विचित्र निर्माण किये ।।३५।। महाबुद्धिमान् विश्वकर्माजी ने शिवजी से वर प्राप्त होने के कारण क्षणमात्र में शिवजी के सन्तोष के निमित्त स्थान निर्माण किये ।।३६।। उसी प्रकार से परम उज्ज्वल विचित्र महाप्रभावशाली देवताओं से पूजित गिरीश के चिह्नवाला शिवलोक में स्थित शंकरजी का गृह निर्माण किया ।।३७।। इस प्रकार की उस विश्वकर्माजी ने रचना की जो बड़ी विचित्र परम आश्चर्य करनेवाली, परम उज्ज्वल थी, जो शिवजी के सन्तोषार्थ थी ।।३८।। इस प्रकार से यह सब लौकिक व्यवहार करके वह हिमालय बड़े प्रेम से शिवजी के आगमन की प्रतिक्षा करने लगे ।।३९।। हे नारदजी ! इस प्रकार आपसे ये महाआनन्द देनेवाले हिमालय के यहां का सब वृत्तान्त कहा । अब तुम क्या सुनने की इच्छा करते हो ? ।।४०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
तृतीये पार्वतीखण्डे अष्टत्रिंशोऽध्यायः ।। ३८ ।।

*****

उन्तालीसवाँ अध्याय

नारदजी बोले– हे विधे! हे तात! हे महाभाग! हे विष्णुशिष्य! आपको प्रणाम है। हे कृपानिधे! आपने यह हमें अद्भुत कथा सुनाई ।।१।। इस समय मैं शिवजी के चरित्र सुनना चाहता हूँ, जो सब पाप का नाश करने वाला, शिवजी के मंगल विवाह सम्बन्धी है ।।२।। मंगलपत्रिका पा कर महादेवजी ने क्या किया ? उन परमात्मा शंकरजी की दिव्य कथा आप हमें सुनाइये ।।३।। ब्रह्माजी बोले– हे महाभाग ! हे वत्स ! आप शिवजी का परम यश सुनिये, महादेवजी ने मंगलपत्रिका पा कर जो किया ।।४।। शिवजी ने प्रसन्नता से उस मंगलपत्रिका को पा कर हँसते हुए उन मंगलपत्रिकावालों का परम सम्मान किया ।।५।। उस लग्नपत्रिका को पढ़कर विधिपूर्वक स्वीकार किया, बहुत सन्मान से उन पुरुषों का सम्मान किया ।।६।। और उन मुनियों से यह कहा कि आपने अच्छा कार्य किया, मेरे विवाह में आप आवें, मैंने विवाह स्वीकार किया है ।।७।। शिवजी के यह वचन सुनकर वे बड़े प्रसन्न हुए और शिवजी को प्रणामकर उनकी प्रशंसा करते हुए परिक्रमा करके अपने स्थान को गये ।।८।। तब महालीला करनेवाले प्रभु देवेश्वर शिवजी ने देवताओं के सहित लौकिकाचार को आश्रय कर , हे मुने! आपको स्मरण किया ।।९।। हे मुने! उस समय आप परम प्रीति से विधि की प्रशंसा करते हुए वहां गये और नम्र होकर, सिर झुकाकर, हाथ जोड़कर आपने प्रणाम किया ।।१०।। जय शब्द को बारंबार उच्चारण करके आपने स्तुति की। हे मुने! और

बड़ी प्रशंसा प्रार्थना करके आपने शिवजी से आज्ञा की प्रार्थना की ।।११।। तब प्रसन्नमन होकर लौकिकगति को दिखाते हुए शिवजी ने शुभवचनों से प्रसन्न करते हुए आपसे कहा ।।१२।। श्रीशिवजी बोले– हे मुनिश्रेष्ठ! जो मैं प्रेम से कहता हूँ, वह आप सुनिये। हे भक्तराज शिरोमणि! जो मुझे प्रिय है, वह मैं आपसे कहता हूँ ।।१३।। आपके शासन से पार्वती ने जो महातपस्या की थी, मैंने सन्तुष्ट होकर पतिवरण में उनको वर दे दिया है ।।१४।। मैं भक्ति के वशीभूत होकर पार्वती से विवाह करूंगा। सप्तर्षियों ने यह बात साधन की और उन्होंने ही लग्न शोधी है ।।१५।। हे नारदजी ! आज से सातवें दिन वह विवाह मैं लौकिकगति को आश्रय करके परिणय का महोत्सव करूंगा ।।१६।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार परात्मा शंकरजी के वचन सुनकर, हे तात! आप प्रसन्नमन हो कर प्रभु को प्रणाम करके इस प्रकार के वचन बोले ।।१७।। नारदजी बोले– हे प्रभो! भक्तों की आधीनता तो आपका व्रत ही है। पार्वती के मन की अभिलाषा पूर्ण करने का आपने उचित प्रबन्ध किया है ।।१८।। हे विभो! अब जो मेरे योग्य कार्य हो, आप उसे कहें, मुझे अपना सेवक मानकर आप मेरे ऊपर कृपा करें, आपको प्रणाम है ।।१९।। ब्रह्माजी बोले– जब आपने इस प्रकार से कहा, तब भक्तवत्सल शंकरजी ने प्रसन्न हो कर आदरपूर्वक आपसे कहा ।।२०।। शिवजी बोले– हे मुने! विष्णुजी आदि सब देवता, मुनि और सिद्ध तथा दूसरे महात्माओं को भी मेरी ओर से निमन्त्रण दे आओ ।।२१।। सब उत्साह और सब शोभा के सहित आवें, मेरी आज्ञा से अपनी स्त्री–पुत्र गणों के सहित सब आवें ।।२२।। हे मुने! जो कोई इस मेरे विवाहोत्सव में नहीं आयेंगे, मैं निश्चय ही उन देवताओं को अपना नहीं मानूंगा ।।२३।। ब्रह्माजी बोले– हे मुने! जब इस प्रकार से शिवजी ने कहा तब शंकरजी के प्रिय आपने वह आज्ञा सिर पर धारण कर बड़ी शीघ्रता से जाकर सबको निमन्त्रण दिया ।।२४।। हे नारदजी! फिर आप मुनिराज ने बहुत शीघ्रता से सबको निमन्त्रण देकर और उनकी आज्ञा से वहां स्थित होकर कार्य किया ।।२५।। उनके आगमन की लालसा से शिवजी वहां स्थित हुए, उनके गण परम उत्सव से उस समय सब ओर से नृत्य करने लगे ।।२६।। इसी समय विष्णुजी ने अपना वेष रच कर गणों को साथ लेकर पार्षदों सहित कैलास को गमन किया ।।२७।। सद्भक्ति से स्त्री और अपने दलों सहित शिवजी को प्रणामकर और प्रसन्नमन से उनकी आज्ञा प्राप्त कर स्थित हुए ।।२८।। और मैं भी अपने गणों के साथ कैलास पर्वत पर गया और अपने गणों के सहित आनन्दित होकर वहां स्थित हुआ ।।२९।। उसी समय इन्द्रादिक लोकपाल भी अपने कुटुम्ब और सेवक वर्गों के सहित उपस्थित हुए, उसी प्रकार से सब अलंकार धारण करके वे परम उत्सव के साथ आये ।।३०।। इसी प्रकार मुनि, नाग, सिद्ध तथा दूसरे देवताओं समान सम्मान पानेवाले तथा दूसरे लोग भी निमन्त्रित होकर वहाँ आये ।।३१।। महेश्वरजी ने निमन्त्रित होकर

आये हुए उन सब देवताओं का प्रसन्नता से पृथक्–पृथक् सत्कार किया।।३२।। उस समय कैलास में उन सबके आने का परम उत्सव आरम्भ हुआ, देवताओं की स्त्रियां यथायोग्य नृत्य करने लगीं।।३३।। हे मुने! उस समय जो विष्णुजी आदि देवता उस स्थान में आये थे, हे मुने! वह सब शिवजी को यात्रा कराने के लिये स्थित हुए।।३४।। तब वे सब शिवजी की आज्ञा पाकर और मेरे द्वारा प्रेरित हो कर, कि यह सब शिवजी का कार्य है, ऐसा विचार कर शिवजी की सेवा करने लगे।।३५।। सातों माताएँ उस समय शिवजी को दूलहा के वेष में प्रेम से सजाने लगीं और परम प्रसन्न हुई।।३६।। उनका स्वाभाविक वेष ही अत्यन्त शोभायमान था, परन्तु जब उनका वेष सजाया गया, हे मुनिश्रेष्ठ! उस परमेश्वर की इच्छा से यह सब कुछ हुआ।।३७।। चन्द्र ने मुकुट के स्थान में समीपता स्वीकार की और तीसरा नेत्र मानो तिलक रूप से शोभायमान हुआ।।३८।। उनके कर्णभूषण मानों दोनों सर्प स्थित किये गये और नाना रत्नों से युक्त उनके दोनों कुण्डल शोभायमान हुए।।३९।। और भी जो उनके अंग में सर्प स्थित थे, वे सब ही अनेक रत्नों से जटित बड़े मनोहर रत्न हो गये।।४०।। वह विभूति चन्दनादि से उत्पन्न एक प्रकार का उत्तम अंगराग हो गया और वह गजचर्म बड़ा सुन्दर दुकूल हो गया।।४१।। इस प्रकार शंकरजी का वह सुन्दर रूप हो गया, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता, साक्षात् ईश्वर ने उस समय ऐश्वर्य धारण किया।।४२।। उस समय देवताओं के पक्ष के दानव, नाग, पतंग, अप्सरा, महर्षि ये सब उस समय शिवजी के समीप आकर प्रसन्नता से महोत्सव को कथन करने लगे।।४३।। वे सब बोले– हे महेश्वर! आप विवाह के निमित्त गमन कीजिये और महादेवी गिरिजा और हम पर कृपा कीजिये।।४४।। तब विष्णुजी ने प्रस्ताव के समान यह वचन प्रेम से शंकरजी को प्रणाम कर कहे।।४५।। विष्णुजी बोले– हे देवदेव महादेव! हे शरणागतवत्सल! आप अपने भक्तों के कार्य करनेवाले हैं। आप अपने भक्तों की प्रार्थना सुनिये।।४६।। हे शंकर ! आप गृह्यसूत्र की विधि से गिरीशसुता के संग अपने सब विवाहकर्म करने को योग्य हो।।४७।। हे हर! जब आप इस प्रकार से विवाह विधि करेंगे, तब यह रीति सर्वत्र विख्यात हो जायेगी।।४८।। मण्डप स्थापन, नान्दीमुख श्राद्ध यह कुलधर्म के अनुसार करना चाहिये। हे नाथ! सब लोक में अपना यश स्थापन करते हुए आप वह सब कीजिये।।४९।। ब्रह्माजी बोले– जब विष्णुजी ने परमेश्वर शंकरजी से ऐसा कहा, तब लौकिकाचार विधि से शंकरजी ने यह सब किया।।५०।। मुझे अभ्युदय के सब कार्यों में शंकरजी ने अधिकार दिया और दूसरे मुनियों ने भी प्रीति से वह कार्य किया।।५१।। कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, गौतम, भागुरि, बृहस्पति, कण्व, जमदग्नि, पराशर।।५२।। मार्कण्डेय, शिलापाक, अरुणपाल, अकृतश्रम, अगस्त, च्यवन, गर्ग, शिलाद।।५३।। दधीचि, उपमन्यु, भरद्वाज, अकृतव्रण, पिप्पलाद, कुशिक,

कौत्स, शिष्यों सहित व्यासजी ।।५४।। इनके सिवाय और भी बहुत से मनुष्य मुझसे प्रेरित होकर शिवजी के समीप आकर सत्कार्य करने लगे ।।५५।। वेदवेदाङ्ग के पारगामी वे सब कौतुक मंगलपूर्वक शंकरजी की रक्षा करने लगे ।।५६।। ऋक्, यजु और साम के सूक्तों से तथा अनेक प्रकार के स्तोत्रों से तथा और भी अनेक प्रकार के मंगल ऋषिजन करने लगे ।।५७।। और शिवजी से तथा मुझ से ऋषियों ने ग्रहों का पूजन कराया तथा विघ्नशान्ति के निमित्त मण्डल में स्थित सब देवताओं का पूजन कराया ।।५८।। तब शिवजी ने सन्तुष्ट होकर सब यथोचित कार्य करके तथा लौकिक, वैदिक कार्य करके ब्राह्मणों को प्रणाम किया ।।५९।। तब वह सर्वेश्वर देवता ब्राह्मणों को आगे करके प्रसन्नतापूर्वक उस पर्वतोत्तम कैलास पर्वत से चले ।।६०।। प्रसन्नतापूर्वक शिवजी कैलास के बहिर्भाग में स्थित हुए उन लीला करनेवाले प्रभु के साथ देवता और ब्राह्मण भी स्थित हुए ।।६१।। देवताओं ने उस समय महेश्वरजी के सन्तोष के निमित्त गाने बजाने का नृत्य सम्बन्धी महान् उत्सव किया ।।६२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
तृतीये पार्वतीखण्डे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।। ३९ ।।

*****

चालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– तब शिवजी ने नन्दी आदि सब गणों को बुलाकर अपने साथ चलने के निमित्त सब से कहा ।।१।। शिवजी बोले– तुम सब हमारे साथ हिमालय के नगर को चलो। कुछ गण यहां रहें, शेष सब महोत्सवपूर्वक चलें ।।२।। ब्रह्माजी बोले– गणराज यह बात सुनकर प्रसन्नता से अपनी–अपनी टोली लेकर जैसे चले, मैं वह कुछ वर्णन करता हूँ।।३।। गणेश्वर शंखकर्ण एक कोटि गण लेकर शिवजी के साथ हिमालय के पुर को चला ।।४।। केकराक्ष गणराज दश कोटि गण लेकर महाउत्साह से चला, आठ कोटि सेना लेकर गणराज विकृत चला ।।५।। गणनायक विशाख चार कोटि गण लेकर चला, पारिजातगण नौ कोटि गण लेकर चला ।।६।। श्रीमान् सर्वान्तक तथा विकृतानन साठ–साठ कोटि लेकर चले, दुन्दुभ नाम गणनायक आठ कोटि लेकर चला ।।७।। कपाल नामक गणेश्वर पाँच कोटि गण लेकर चला, सन्दारक वीर गणेश्वर छः कोटि लेकर चला ।।८।। कन्दुक और कुण्डक एक–एक कोटि लेकर चले, विष्टंभ गणराज आठ कोटि गण ले कर चला ।।९।। गणेश्वर पिप्पल एक सहस्र कोटि ले कर चला, इसी प्रकार सनादक गणेश्वर वीर चला ।।१०।। आवेशन नामक

गणनायक आठ कोटि सेना लेकर चला, महाकेश गणाधीश सहस्र कोटि लेकर चला ।।११।। हे मुने! इसी प्रकार कुण्ड और पर्वतक बारह कोटि दल लेकर चले, वीर चन्द्रतापन आठ कोटि लेकर चला ।।१२।। कालकालक, महाकाल तथा अग्निक यह गणनाथ सौ–सौ कोटि लेकर चले ।।१३।। अग्निमुख गणनायक एक कोटि लेकर चला, आदित्यमूर्धा और घनावह भी एक–एक कोटि लेकर चले ।।१४।। सन्नाह, कुमुद, गणराज अमोघ और कोकिल सौ–सौ कोटि दल लेकर चले ।।१५।। गणनायक सुमन्त्र एक कोटि, काकयादोदर और सन्तानक साठ कोटि लेकर चले ।।१६।। महाबल नौ कोटि, मधुपिंग, कोकिल, नील और पूर्णभद्र नब्बे कोटि लेकर आये ।।१७।। चतुवक्त्र सात कोटि, करण बीस कोटि और रोमक नामक गणेश्वर नब्बे कोटि लेकर आये ।।१८।। हे नारद! यज्वाक्ष, शतमन्यु, मेघमन्यु यह सब नब्बे–नब्बे कोटि लेकर सब चले ।।१९।। काष्ठांगुष्ठ गणनायक चौंसठ कोटि लेकर चले, विरूपाक्ष, सुकेश, सनातन, वृषभ भी चले ।।२०।। तालकेतु, षण्मुख, चंचुमुख, सनातन, संवर्तक, चैत्र, लकुलीश, स्वयंप्रभु ।।२१।। हे मुने! लोकान्तक, दीप्तात्मा, दैत्यान्तक, देव भृंगिरिटि, श्रीमान् देवदेवप्रिय ।।२२।। अशनि, भानुक, चौंसठ हजार गणेश्वर बड़े उत्साह से शिवजी के विवाहोत्सव में चले ।।२३।। एक सहस्र कोटि भूत, तीन कोटि प्रमथ, वीरभद्र चौंसठ कोटि, रोमज तीन कोटि चले ।।२४।। यह सब कोटि–कोटि, सहस्र और वीस सहस्र कोटियों से युक्त होकर चले। इस प्रकार से नन्दी आदि गण शंकरजी के उत्सव में चले ।।२५।। क्षेत्रपाली और भैरव कोटि–कोटि गणों से व्याप्त होकर शिवजी के विवाह महोसव में बड़े प्रेम से चले ।।२६।। इस प्रकार से और भी असंख्यात महाबली गणेश्वर महाप्रीति से शंकरजी के उत्सव में गये ।।२७।। अनेक सहस्रों हाथों वाले, जटा मुकुटधारी, माथे पर चन्द्ररेखा धारे नीलकण्ठ तीन नेत्र ।।२८।। सब ही रुद्राक्ष धारण करनेवाले, सद्भस्म धारण किये, हार, कुण्डल, केयूर, मुकुट आदि से अलंकृत ।।२९।। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र के समान अणिमादि गुणों से अलंकृत, कोटि सूर्य के समान प्रकाश वाले गणेश्वर शोभित हुए ।।३०।। कोई पृथ्वी पर और कोई पाताल में विचरनेवाले, कोई आकाशाचारी और कोई सात स्वर्ग में विचरनेवाले थे ।।३१।। हे देवऋषि! बहुत कहने से क्या है? सब लोक के रहनेवाले गण बड़े प्रेम से शंकरजी के विवाह का महोत्सव देखने आये ।।३२।। इस प्रकार प्रभु शंकरजी अन्य देवताओं के सहित अपने विवाह के निमित्त हिमालय के पुर में गये ।।३३।। हे नारदजी! जिस समय वह सर्वेश, देवता आदि के सहित अपना विवाह करने गये, उस समय जो वृत्तान्त हुआ सो सुनिये ।।३४।। शत्रुओं को भय देनेवाली चण्डी भी बड़े उत्सव के सहित रुद्र की भगिनी होकर बड़े प्रेम से वहां आई ।।३५।। प्रेत के आसन पर स्थित, सर्पों के भूषणों से भूषित, सिर पर महाकान्तिवाले सुवर्ण के कलश को

लेकर ।।३६।। अपने परिवार से संयुक्त दीप्तमुख और दीप्तिमान् लोचनवाली, कुतूहल करती हुई, प्रसन्न मुख महाबलवति ।।३७।। भगवती आई। हे मुने! और भी कोटियों दिव्यभूत तथा अनेकों विरूपाक्ष नाना प्रकार के बहुत से वहां शोभित होने लगे ।।३८।। उन सबके सहित विकटमुख चण्डी वहां आकर प्राप्त हुई। यह बड़े प्रेम से प्रीति के उपद्रव करनेवाली वहां आई।।३९।। चण्डी ने सम्पूर्ण रुद्रगणों को अपने पीछे कर दिया, वह सब रुद्र के गण, रुद्र के प्रिय संख्या में ग्यारह कोटि थे ।।४०।। उस समय डमरू के शब्दों से त्रिलोकी व्याकुल हो गई, भेरी का झंकार और शंखों का शब्द होने लगा।।४१।। इसी प्रकार दुन्दुभी के निर्घोष से कोलाहल होने लगा, जिस से सम्पूर्ण अमंगल दूर हो और सब जगत् मंगलरूप हो जाय।।४२।। उन गणों के पीछे सब देवता उत्कण्ठा सहित चले। हे मुने! उनके पीछे सब सिद्धि और लोकपालादि चले ।।४३।। सबके मध्य में गरुड़ासन पर स्थित हो कर वैकुण्ठनाथ चले। हे मुने! उनके ऊपर बड़ा छत्र शोभायमान हो रहा था।।४४।। चमर से वीज्यमान होकर अपने गणों से युक्त तथा पार्षदों से शोभायमान होते हुए, अपने गहनों से शोभित थे।।४५।। इसी प्रकार मार्ग में जाता हुआ मैं भी शोभायमान था और मूर्त्ति धारण किये वेद, शास्त्र और पुराण मेरे संग थे।।४६।। सनकादिक महासिद्ध और प्रजापति पुत्रों से तथा अपने परिवार सहित मैं शिवजी की सेवा करने में तत्पर था।।४७।। इसी प्रकार ऐरावत हाथी पर चढ़े देवराज इन्द्र अपनी सेना में शोभायमान थे और अनेक प्रकार के गहने पहने मार्ग में जाते बड़ी शोभा हुई।।४८।। इस प्रकार वे बहुत से ऋषि मार्ग में जाते हुए शिवजी का विवाह देखने में उत्कण्ठा सहित बड़ी शोभा को प्राप्त हुए।।४९।। शाकिनी, यातुधानी, वेताल, ब्रह्मराक्षस, भूत, प्रेत, निशाच और भी प्रमथ आदि।।५०।। तुम्बरु, नारद, हाहा, हूहू, श्रेष्ठ गन्धर्व, किन्नर गण बड़ी प्रसन्नता से मुख के और हाथ के बाजे बजाते चले।।५१।। सम्पूर्ण जगत् की माताएँ तथा सब देवकन्यायें, गायत्री, सावित्री, लक्ष्मी तथा अन्य देवताओं की स्त्रियां।।५२।। यह तथा अन्य देवताओं की स्त्रियां तथा जगत् की मातायें, यह सब शिवजी के विवाह में प्रसन्नतापूर्वक चलीं।।५३।। शुद्ध स्फटिक मणि के समान सब प्रकार से सुन्दर वृषभ जिसको शास्त्र में सिद्ध और महर्षियों ने धर्म कहा है।।५४।। धर्मवत्सल महादेवजी उस वृषभ पर आरूढ़ हुए। हे देवर्षि! वह सबके सहित जाते हुए अत्यन्त शोभा को प्राप्त हुए।।५५।। इस प्रकार इन और सब महर्षियों के सहित जाते हुए महेश्वरजी अलंकृत होकर बड़ी शोभा को प्राप्त हुए और सब देखने लगे कि आज शंकरजी पार्वती के पाणिग्रहण के निमित्त हिमालय के स्थान में जाते हैं।।५६।। इस प्रकार से यह शिवजी के गमन का परम सुन्दर चरित्र कहा। हे नारदजी! अब हिमालय के पुर का श्रेष्ठ वृत्तान्त सुनिये।।५७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां तृतीये पार्वतीखण्डे चत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४० ।।

इकतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– हे नारदजी ! तब परस्पर सम्मति कर और फिर शंकरजी की आज्ञा पाकर हरि ने आपको हिमालय के यहां भेजा ।।१।। हे नारदजी ! तब सर्वेश्वर को प्रणाम कर आप आगे चले और प्रेम से विष्णुजी बोले– आप हिमालय के घर जाइये ।।२।। हे मुने ! आपने वहां जाकर विश्वकर्मा द्वारा बनाई अपनी कृत्रिम मूर्त्ति लज्जा युक्त देखी, उसे देखकर आप बड़े विस्मित हुए ।।३।। हे मुने ! जिस समय आपने विश्वकर्मा का वह चरित्र देखा, आप उसी समय शान्त हो गये और अपनी कृत्रिम मूर्त्ति को देखकर परम विस्मय माना ।।४।। फिर आपने हिमालय के रचे हुए रत्नों से चित्रित सुवर्ण कलशों से शोभायमान केले के वृक्षों से युक्त मण्डप को देखा ।।५।। यह सहस्र स्तम्भों से संयुक्त विचित्र परम अद्भुत था, उस वेदिका को देखकर आप बड़े विस्मय को प्राप्त हुए ।।६।। हे नारद ! पश्चात् आपने नरेश्वर से यह बात कही, उस समय आपके मन में बड़ा विस्मय था, जिस से आपकी बुद्धि और ज्ञान नष्ट हो गया था ।।७।। आप सोचने लगे कि, क्या इस स्थल में विष्णुजी आदि देवता, सब महर्षि, सिद्ध और उपदेवता पहले ही आ गये ।।८।। हे पर्वतराज ! श्वेत वृष पर आरूढ़ अपने गणों को साथ लिये हुए; क्या महादेवजी विवाह के निमित्त पधार चुके हैं ? यह आप सत्य कहिये ।।९।। ब्रह्माजी बोले– विस्मय युक्त चित्तवाले आपके यह वचन सुनकर वह हिमालय आपसे श्रेष्ठ और सत्य वचन बोले ।।१०।। हिमालय बोले– हे महापण्डित नारदजी ! अभी शिवजी नहीं आये हैं, अभी गणों को और बारातियों को लेकर नहीं पधारे हैं ।।११।। हे नारदजी ! आप बुद्धि लगाकर देखिये कि, यह विश्वकर्मा की कारीगरी है । हे देवर्षे ! आप विस्मय को त्यागकर स्वस्थ हो जाइये ।।१२।। आप मेरे ऊपर कृपा करके, भोजन कर के विश्राम करें और फिर मैनाक आदि पुत्रों के साथ–साथ आप शंकरजी के समीप जाइये ।।१३।। हे महामते ! इन सबके साथ जाकर आप प्रार्थना कर के शिवजी को यहां ले आइये, सब देवता, महर्षि समूह, सुर, असुरों से पूजित चरणकमलवाले शंकरजी को यहां ले आइये ।।१४।। ब्रह्माजी बोले– हे मुने ! जब हिमालय ने ऐसा कहा, तब आप शीघ्र ही हिमालय पुत्रों सहित जाकर वहां के सब कृत्यों को कर के भोजन कर, बड़ी प्रसन्नता से शिवजी के समीप आये ।।१५।। वहां आपने देवताओं से घिरे हुए महादेवजी को देखा । आपने और पर्वतराज के पुत्रों ने बड़े प्रेम से तथा भक्ति से प्रणाम किया ।।१६।। तब मैं, विष्णुजी और इन्द्र को आदि लेकर सब देवता तथा रुद्र के अनुचर यह सब आपसे पूछने लगे ।।१७।। हे नारदजी ! आपको और पर्वत के सन्तान गणों को विस्मित

देखकर सब विस्मय से व्याकुल हो गये। मैनाक, सह्य, मेरु आदि यह सब अनेक अलंकार धारण किये थे, इनको देखकर देवता बोले ।।१८।। देवता कहने लगे– हे नारदजी ! हे महापण्डित! आप इस समय विस्मित दिखाई देते हो, क्या हिमालय ने आपका सत्कार नहीं किया ? यह बात आप विस्तार से कहिये ।।१९।। और यह श्रेष्ठ पर्वत यहां किस कारण से आये हैं ? यह मैनाक, सह्य, मेरु आदि अपने प्रताप से अलंकृत हैं ।।२०।। हे नारदजी ! यह हिमालय शंकरजी को अपनी कन्या देंगे या नहीं ? हे तात ! इस समय हिमालय के यहां क्या हो रहा है ? सो आप कहिये ।।२१।। हे सुव्रत ! आपके इस प्रकार के आचरण से हम सब देवताओं को सन्देह हो रहा है। आप भी संदिग्ध हो, इस कारण हम पूछनेवालों का सन्देह दूर कीजिये ।।२२।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार से उन विष्णुजी आदि देवताओं के वचन सुनकर विश्वकर्मा की माया से मोहित हो कर आप कहने लगे ।।२३।। हे मुने ! तब आप मुझे और विष्णुजी को एकान्त में ले जाकर इस प्रकार के वचन कहने लगे तथा सब देवताओं के अधिपति शचीपति, पर्वतों के पंख छेदनेवाले इन्द्र को भी बुलाकर बोले ।।२४।। नारदजी बोले– विश्वकर्मा ने ऐसी विचित्र रचना की है, जिसे देखकर सब देवता मोहित हो जायेंगे। वह प्रेम और युक्ति से सब देवताओं को मोहित करने की इच्छा कर रहे हैं ।।२५।। हे शचीपति इन्द्र! पहले भी उसने आपको मोहित कर दिया है, सो क्या आपने भुला दिया है ? इस कारण अब भी वह आपको जीतने की इच्छा करता है और महात्मा हिमालय के यहां विश्वकर्मा विद्यमान हैं ।।२६।। मैं अपने कृत्रिम रूप को देखकर मोहित हो गया। इसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र को भी निर्माण किया है ।।२७।। हे देवेश ! बहुत कहने से क्या है ? उन्होंने कृत्रिम तथा चित्र रूप से इस प्रकार देवताओं का निर्माण किया है कि कुछ भी अन्तर दिखाई नहीं देता ।।२८।। विशेष कर सब देवताओं को मोहित करने के निमित्त उसने परिहास करनेवाली चित्र रूपी माया की है ।।२९।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार से नारदजी के वचन सुनकर भय से व्याकुल शरीर होकर विष्णुजी की ओर देखकर इन्द्र ने शीघ्रता से कहा ।।३०।। देवेन्द्र बोले– हे देव देव ! हे रमानाथ ! वह त्वष्टा पुत्रशोक से व्याकुल होकर मुझ से द्रोह करता है, वह इसी बहाने से मुझे मार देगा ।।३१।। ब्रह्माजी बोले– देव देव जनार्दन इन्द्र के इस प्रकार से वचन सुनकर इन्द्र को समझाते हुए हँस कर इस प्रकार से कहने लगे ।।३२।। विष्णुजी बोले– हे इन्द्र ! पहले निवात कवचों ने आपको मोहित किया था, पूर्व से बैर करनेवाले दानवों ने महाविद्या के बल से आपको मोहित किया ।।३३।। इसी प्रकार इस पर्वतराज हिमालय के तथा दूसरे सब पर्वतों के पक्ष आपने मेरी आज्ञा से छेदन कर दिये ।।३४।। इस कारण यह पर्वत उस माया को देखकर, सुनकर जो आपको जीतना चाहता है वह मूर्ख है, आपको शत्रु से भय न करना चाहिये ।।३५।। हे इन्द्र ! इसमें कोई सन्देह नहीं, वह भक्तवत्सल भगवान्

शंकरजी सर्वथा हमारा मंगल करेंगे ।।३६।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार से व्याकुल मन इन्द्र को देखकर जब भगवान् विष्णुजी ने समझाया, तब लौकिकीगति को आश्रय करके भगवान् शंकरजी बोले ।।३७।। ईश्वर बोले- हे हरे! हे सुरपति! आप परस्पर क्या विचार कर रहे हो? हे मुने! महेश्वरजी ने उन दोनों से ऐसा कहकर फिर आपसे कहा ।।३८।। हे नारद! शैलराज ने क्या कहा है, वह आप यथार्थ रूप से कहिये। सब वृत्तान्त कहिये, गुप्त रखने की आवश्यकता नहीं ।।३९।। आप शीघ्र कह दीजिये, शैल की कन्यादान करने की इच्छा है वा नहीं? हे तात! आपने वहां जाकर क्या देखा और क्या किया? हे तात! प्रेम से वह सब बात हमसे कहिये ।।४०।। ब्रह्माजी बोले- हे मुने! जब देवदर्शन आपसे शिवजी ने ऐसा कहा, तब आपने जो कुछ मण्डप में देखा था, वह सब रहस्य कहा ।।४१।। नारदजी बोले- हे देव देव! आप मेरे शुभ वचन सुनिये। हे नाथ! इस विवाह में तो किसी प्रकार का विघ्न वा भय नहीं है ।।४२।। हिमालय अवश्य ही आपको कन्या देंगे। हे देव! इसमें सन्देह नहीं, यह सब शैल आपको लेने के निमित्त ही आये हैं ।।४३।। हे सर्वज्ञ! परन्तु देवताओं के मोहने के लिए वहां एक माया रची गई है, जो बड़ी अद्भुत और सबको कौतुहल प्रकट करनेवाली है, दूसरा कोई विघ्न नहीं है ।।४४।। हे विभो! महामाया करनेवाले विश्वकर्मा ने हिमालय की आज्ञा से उनके यहां महा आश्चर्य युक्त मण्डप की रचना की है ।।४५।। और सब देवताओं के समाज को मोहित करनेवाला वह मण्डप निर्माण किया है, उसकी माया से मोहित होकर मैं बड़े विस्मय को प्राप्त हुआ हूँ ।।४६।। ब्रह्माजी बोले- हे तात! उनके यह वचन सुनकर लोकाचार करनेवाले प्रभु शिवजी हरि आदि का हास्य करते हुए सब देवताओं से बोले ।।४७।। ईश्वर बोले- यदि हिमालय पर्वत मुझे कन्या देंगे, हे विष्णुजी! तब आप कहिये, कि माया से हमारा क्या प्रयोजन है ।।४८।। हे ब्रह्माजी, इन्द्र, मुनियो, देवताओ! आप यथार्थ से कहिये, जो गिरि कन्या देते हैं, तो माया से मेरा क्या कार्य है?।।४९।। न्याय के जानने वाले पण्डितों ने कहा है, जैसे बने वैसे किसी उपाय से फल सिद्धि करें, इस कारण सब ही कार्य की इच्छा से विष्णुजी को आदि लेकर शीघ्र ही चलिये ।।५०।। ब्रह्माजी बोले- जब शंकरजी ने सब देवताओं से ऐसा कहा, तब प्राकृतजनों के समान देवेश के वशीभूत हो गये ।।५१।। तब शिवजी की आज्ञा से वे सब विष्णुजी आदि देवता तथा ऋषिजन मोह तथा भ्रम से रहित और प्रसन्न हुए ।।५२।। हे मुने! वे सब देवतादिक आपको और उन पर्वतों को आगे करके हिमालय के परम मन्दिर में गये ।।५३।। तब विष्णुजी आदि के सहित और अपने परिवार सहित शिवजी हिमालय के नगर के समीप प्राप्त हुए ।।५४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

तृतीये पार्वतीखण्डे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४१ ।।

बयालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– इधर गिरिराज ने जब यह बात सुनी कि सब बारात शिवजी के सहित नगर के समीप आ गई है, तब वह बड़ा प्रसन्न हुआ ।।१।। तब सब सम्भार सजाकर ईश्वर की अगौनी करने के निमित्त बहुत से ब्राह्मण और पर्वतों को वहां भेजा ।।२।। और प्राणप्रिय ईश्वर के अवलोकन करने को सद्भक्ति से स्वयं भी गमन किया। शैल के मन में भक्ति बढ़ गई, वह अपने भाग्य की बढ़ाई करने लगे ।।३।। उस समय देवताओं की सेना को देखकर हिमालय बड़े विस्मय को प्राप्त हुए और अपने को धन्य मानते हुए उनके सम्मुख गये ।।४।। देवता भी हिमालय के समुदाय को देखकर परम विस्मय को प्राप्त हुए। इस प्रकार देवता और पर्वतों को बड़ा आनन्द हुआ ।।५।। हे मुने ! वह देवता और पर्वतों की महासेना मिल कर पूर्व–पश्चिम के सागर के समान शोभायमान हुई ।।६।। वह देवता और पर्वत परस्पर मिलकर परम प्रसन्नता से अपने को कृतकृत्य मानने लगे ।।७।। तब हिमालय ने ईश्वर को सम्मुख देखकर प्रणाम किया। सब पर्वतों और ब्राह्मणों ने भी शंकरजी को प्रणाम किया ।।८।। बैल के ऊपर आरूढ़ हुए, प्रसन्नमुख, अनेक अलंकारों से शोभायमान, दिव्य शरीर की शोभा से दिगन्तरों को प्रकाशित करने वाले ।।९।। सूक्ष्म बारीक रेशमी वस्त्रों से जिनका शरीर शोभायमान हो रहा है, सिर पर श्रेष्ठ रत्नों का मुकुट, शुभ्रकान्ति से हँसते हुए ।।१०।। गहनों से शोभित शरीर, शरीर के अवयवों की अद्भुत कान्ति, दिव्य कान्ति, हाथ में चमर लिये देवताओं से शोभित ।।११।। वाम ओर दक्ष के भाग्य की स्थिति, व्यापक प्रभु के पीछे इन्द्र स्थित, उनके पीछे और पार्श्व भाग में देवता स्थित हैं ।।१२।। उन लोक के कर्ता की देवतागण अनेक प्रकार से स्तुति कर रहे थे, उन ब्रह्म ने अपने कारण से शरीर धारण किया है और वह सर्वेश वर देनेवाले हैं ।।१३।। वे सगुण–निर्गुण दोनों प्रकार से भक्तों के अधीन होकर कृपा करने वाले हैं, वे प्रकृति पुरुष से भी परे सत् चित् आनन्दरूप वाले हैं ।।१४।। प्रभु के दक्षिण भाग में अच्युत हरि विराजमान थे, जो गरुड़ पर चढ़े अनेक गहनों से भूषित थे ।।१५।। हे मुने ! प्रभु के वामभाग में उन्हों ने मुझे देखा, मैं चतुर्मुख महाशोभा धारण किये अपने परिवार से संयुक्त था ।।१६।। सदाशिवजी के प्यारे इन दोनों सुरेश्वरों को देखकर गिरीशजी ने परिवार सहित आदर से इनको प्रणाम किया ।।१७।। इसी प्रकार शिवजी के पृष्ठभाग में तथा पार्श्वभाग में विराजमान देवताओं को देखकर गिरीश ने प्रणाम किया ।।१८।। शिवजी की आज्ञा से आगे होकर हिमालय अपने पुर में प्रविष्ट हुए तथा शेष, हरि, ब्रह्माजी और देवता भी ।।१९।। हे नारदजी ! सब मुनि और देवता प्रभु के संग जाते हुए

प्रसन्नता से हिमालय के नगर की प्रशंसा करने लगे ।।२०।। देवतादिकों को एक परम मनोहर शिखर पर स्थापन कर के हिमालय वहां गये, जहां विधिवेदिका स्थापित थी ।।२१।। तोरणों से विशेष रूप वह स्थान चौकोन कराया गया था, वहां स्नान, दान करके परीक्षा ली ।।२२।। और उस समय शिवजी के समीप में अपने पुत्रों को भेजा। शैलराज हिमालय ने विष्णुजी आदि सबको परिवार सहित बुलाया ।।२३।। महाउत्सव के सहित वर के आचार करने की इच्छा की और शैलराज ने महाहर्ष सहित सब बन्धुजनों को बुलाया ।।२४।। तब उन पर्वतपुत्रों ने अपने समूह सहित विष्णुजी आदि के पास जाकर शैलेश्वर के वचन सुनाये और उनसे प्रार्थना की ।।२५।। तब वे शैलपुत्र उनकी आज्ञा से अपने स्थानों को आये और शैलराज ने जाकर कहा, सब देवता प्रसन्न हो रहे हैं ।।२६।। तब सब देवता गिरि की प्रार्थना सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। हे नारदजी! इसी प्रकार ईश्वर सहित सब विष्णुजी आदि देवता प्रसन्न हुए ।।२७।। तब सब देवता और मुनिजन अपना सुन्दर वेष धारण करके शंकरजी के संग प्रसन्नता से हिमालय के घर गये ।।२८।। हे मुने! उस समय मेना ने आपको देखने की इच्छा की और आप मुनिश्रेष्ठ को प्रभु ने बुलाया ।।२९।। हे मुने! प्रभु की प्रेरणा से उस समय आप वहां गये और शिवजी की इच्छा से शिवजी के हृदय की अभिलाषा पूर्ण करने की इच्छा की ।।३०।। हे मुने! आपको प्रणाम करके मेना विस्मित हो कर मद हरनेवाले शंकरजी का रूप देखने की इच्छा से बोली ।।३१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
तृतीये पार्वतीखण्डे देवगिरिसमागमवर्णनं नाम द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४२ ।।

*****

तैतालीसवाँ अध्याय

मेना बोली– हे नारदजी! पहले मैं उन गिरिजापति को देखने की इच्छा करती हूँ। जिनके निमित्त पुत्री ने उत्तम तप किया है, उनका कैसा रूप है?।।१।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार अज्ञान में तत्पर होकर वह शिवजी को देखने की इच्छा से आपके साथ चन्द्रशाला में आई ।।२।। शिवजी ने भी उसके मन का अहंकार जानकर अद्भुत लीला करने की इच्छा से प्रभु ने मुझ से और विष्णुजी से कहा ।।३।। हे तात! मेरी आज्ञा से आप दोनों सर्व देवताओं के सहित गिरि के द्वार पर जाइये और हम पीछे जायेंगे ।।४।। ब्रह्माजी बोले– हरि ने यह वचन सुनकर सब देवताओं को बुलाकर कहा और सब देवता उसी प्रकार गमन करने लगे ।।५।। हे मुने! तब आपको साथ लेकर

मेना महल के शिखर पर चढ़ी, आप इस प्रकार से दिखाने लगे, जिस से हृदय विदीर्ण हो ।।६।। हे मुने! उस समय मेना परम शोभायमान देवताओं की सेना को देखकर सामान्यरूप से प्रसन्न हुई ।।७।। सब से पहले सुन्दर शोभायमान वस्त्र धारण किये, अनेक अलंकार धारण किये गन्धर्वगण आये ।।८।। अनेक वाहनों पर चढ़े, अनेक बाजे बजाने में तत्पर, विचित्र पताका और अप्सरागणों से संयुक्त आये ।।९।। तब मेना उनके परमपति प्रभु वसु को देखकर प्रसन्न हुई और बोली- क्या यही शिवजी हैं ?।।१०।। हे ऋषिश्रेष्ठ! तब आपने मेना से कहा, यह शिवजी के गण हैं, शिवा के पति शंकरजी नहीं हैं ।।११।। तब मेना यह वचन सुनकर भ्रम में पड़ गई, जो इन से भी अधिक है, वह कैसा होगा ?।।१२।। उसी समय मेना ने मणिवीरादि पक्षों की सेना देखी, जिनकी शोभा दूनी थी ।।१३।। और उनके पति मणिग्रीव की शोभा देखकर वह यही शिवा के स्वामी रुद्र हैं, ऐसा जानकर बड़ी प्रसन्न हुई ।।१४।। हे नारद! तब आपने कहा, यह शिवजी नहीं; किन्तु यह शिवजी के सेवक हैं, जब आपने ऐसा कहा, इसी अवसर में अग्नि की सेना देखी ।।१५।। पूर्व से दूनी उनकी शोभा देखकर यह कहा- क्या यही गिरिजापति रुद्र हैं ? आपने कहा नहीं ।।१६।। तब तक उससे दुगुनी कान्ति धारण करनेवाले यमराज आये, उनको देखकर प्रसन्न हो मेना ने कहा- क्या यह रुद्र हैं ?।।१७।। आपने कहा नहीं। इसी अवसर में निर्ऋति आये, यह प्रभु पुण्यजन उनसे भी दूनी शोभा धारण किये थे ।।१८।। उनको देखकर मेना ने प्रसन्न हो कहा- क्या यह रुद्र हैं ? आपने कहा नहीं। तब तक वरुणजी आये ।।१९।। उनकी भी दूनी शोभा देखकर मेना ने कहा- क्या यहीं गिरिजापति रुद्र हैं ? आपने कहा नहीं ।।२०।। तब तक उनसे भी दूनी कान्ति धारण किये वायुदेवता आये, उनको देखकर मेना ने कहा- क्या यह रुद्र हैं ?।।२१।। आपने कहा नहीं। तब तक कुबेर आये, यह गुह्यकपति कुबेर उनसे दूनी शोभा धारण किये थे ।।२२।। उनको देखकर प्रसन्न हो मेना ने कहा- क्या यही रुद्र हैं ? आपने कहा नहीं। तब तक ईशान आये ।।२३।। उनकी भी दूनी शोभा देखकर मेना बोली- क्या यही गिरिजापति रुद्र हैं ? आपने कहा नहीं ।।२४।। तब उनसे भी दूनी कान्तिवाले इन्द्र आये, जो सब देवताओं में श्रेष्ठ और अनेक अलंकार धारण किये हुए, सबके अधिपति थे ।।२५।। उनको देख कर मेना ने कहा- क्या यही शंकर हैं ? आपने कहा नहीं, यह तो देवराज इन्द्र हैं ।।२६।। तब तक उन से दूनी शोभा धारण किये चन्द्रमा आये, उसे देखकर मेना ने कहा- क्या यही रुद्र हैं ? आपने कहा नहीं ।।२७।। तब तक उन से दूनी शोभा धारण किये सूर्य आये, उनको देखकर मेना ने कहा- क्या यही रुद्र हैं ? आपने कहा नहीं ।।२८।। तब तक भृगु आदि मुनीश्वर आ कर प्राप्त हुए, यह अपने शिष्यों सहित महातेज की राशि धारण किये थे ।।२९।। उनके बीच में वागीश बृहस्ततिजी को देखकर मेना ने कहा- क्या यही गिरिजास्वामी रुद्र हैं ? आपने कहा

नहीं।।३०।। तब तक तेजों की उत्तम राशि धर्मपुञ्ज के समान महाश्रेष्ठ मैं ब्रह्मा ऋषि और पुत्रों के सहित आया।।३१।। हे मुने! मुझे देखकर मेना बड़ी प्रसन्न हुई और कहा– क्या यही शिवजी हैं? आपने कहा नहीं।।३२।। उसी समय सब शोभाओं से युक्त मेघ के समान श्यामवर्ण, चतुर्भुज, श्रीमान् विष्णुजी देवताओं के सहित दिखाई दिये।।३३।। कोटि कामदेव के समान शोभायमान, पीताम्बर धारण किये, अपने तेज से प्रकाशित, कमललोचन, शान्तचित्त, गरुड़ पर चढ़े।।३४।। शंखादि लक्षणों से युक्त, मुकुट आदि से शोभायमान, वक्षस्थल पर शोभायमान श्रीवत्सचिह्न, लक्ष्मीपति, अप्रमेय प्रभावाले विष्णुजी को देखकर महाप्रसन्नता से मेना चकित हो गई और कहा– इसमें सन्देह नहीं, यही साक्षात् गिरिजा के पति हैं।।३५–३६।। तब कौतुक करनेवाले आपने मेना के वचन सुनकर कहा कि, यह भी शिवजी नहीं; किन्तु यह केशव हरि हैं।।३७।। यह शिवजी के सम्पूर्ण कार्यों के अधिकारी और उनके प्रिय हैं। इनसे भी अधिक प्रभाववाले पार्वती पति शंकरजी हैं।।३८।। हे मेना! उनकी शोभा वर्णन करने की मुझमें सामर्थ्य नहीं है। वही सब ब्रह्माण्डों के अधिपति सर्वेश्वर स्वराट् हैं।।३९।। ब्रह्माजी बोले– नारदजी के यह वचन सुनकर मेना ने अपनी कन्या को महाधना, भाग्यवती, तीनों कुलों की सुखदायिनी जाना।।४०।। और प्रीति युक्त चित्त से प्रसन्न होकर कहा और अपने भाग्य की बारंबार बढ़ाई की।।४१।। मेना बोली– पार्वती के जन्म से मैं सर्वथा धन्य हुई, गिरिश्वर और मैं भी सब प्रकार से धन्य हूँ।।४२।। जो–जो नायक देवता मैंने देखे हैं, बड़ी–बड़ी कान्तिवाले हैं, जो इनके भी स्वामी हैं, वह मेरी पुत्री के पति होंगे, अहोभाग्य।।४३।। सौ वर्ष तक भी मेरी पुत्री का भाग्य वर्णन नहीं हो सकता। उसे प्रभु की प्राप्ति होगी, तब उसके दर्शन से महाफल होगा।।४४।। ब्रह्माजी को माया से पृथक् निर्विकार दिखाया।।४६।। हे नारद! शंकरजी को आया हुआ देख कर परम प्रेम से आपने शिवापति शिवजी को दिखाते हुए कहा।।४७।। नारदजी बोले– हे सुन्दरी! देखिये, यही साक्षात् शंकरजी हैं, जिनके निमित्त वन में जाकर पार्वती ने कठिन तपस्या की थी।।४८।। ब्रह्माजी बोले– यह वचन सुनकर मेना बहुत प्रसन्न होकर और अद्भुत आकारवाले, अद्भुत गणोंवाले शंकरजी को देखने लगी।।४९।। उसी समय महाअद्भुत रुद्र की सेना आकर प्राप्त हुई, जो प्रेतादि से संयुक्त, अनेक गणों के साथ थी।।५०।। कोई वायु का रूप धारण किये हुए पताका के समान मर्मर शब्दवाले वक्रतुण्ड और कोई विरूपाक्ष थे।।५१।। किन्हीं की विकराल दाढ़ी मूछें, कोई खंजे, कोई नेत्रहीन, कोई दण्ड पाश और कोई मुद्गर हाथों में लिये थे।।५२।। कोई–कोई विरुद्ध वाहनों पर चढ़े, शृङ्गीनाद करनेवाले, कोई डमरू बजाते और कोई–कोई मुख से शब्द करते थे।।५३।। कोई मुख रहित, कोई विकटमुख, कोई गण बहुत मुखोंवाले थे, कोई हाथ रहित, कोई विकट हाथवाले

और कोई बहुत हाथोंवाले थे।।५४।। नेत्रहीन, बहुत नेत्रोंवाले, सिर से हीन, बुरे सिरवाले, कान रहित, बहुत कानवाले इस प्रकार नाना वेषधारी गण थे।।५५।। इस प्रकार से विकृत आकारवाले अनेक प्रबल गण थे। हे तात! वह असंख्यात महावीर बड़े भयंकर थे।।५६।। हे नारद! जब आपने अंगुली से रुद्रगणों को दिखाया और कहा– हे वरानने! आप शंकरजी और शंकरजी के सेवकों को भी देखो।।५७।। हे मुने! मेना असंख्य गण और भूत प्रेतादि को देखकर उसी समय बड़ा शोक करने लगी।।५८।। उन्हीं के बीच में निर्गुण–सगुण, रूप वृष पर चढ़े, पाँच मुख, तीन नेत्र, विभूति से भूषित शंकरजी को देखा।।५९।। जो जटाजूट बांधे माथे पर चन्द्रमा, दश हाथ कपाल धारे, व्याघ्रचर्म ओढ़े, हाथ में पिनाक धनुष लिये।।६०।। शूलयुक्त विरूपाक्ष, विकट रूप, व्याकुल, गजचर्म ओढ़े शंकरजी को देखकर पार्वती की माता बड़ी व्याकुल हुई।।६१।। उसे चकित, कांपती हुई, व्याकुल और बुद्धि में भ्रम पाये देखकर, हे नारदजी! आपने अंगुली से दिखाकर कहा, कि यही शिवजी हैं।।६२।। आपके यह वचन सुनकर वह सती मेना बहुत दुःखी होकर वात से गिरी हुई वेली के समान पृथ्वी पर गिर पड़ी।।६३।। मैं इस विकृति को देखकर कैसी वञ्चित हो गई, यह कैसे दुराग्रह की बात है? ऐसा कहकर मेना क्षणमात्र में मूर्छित हो गई।।६४।। तब सखियों ने अनेक प्रकार के प्रयत्न किये, तब बड़ी कठिनता से गिरीश्वर की प्रिया संज्ञा को प्राप्त हुई।।६५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

तृतीये पार्वतीखण्डे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः।। ४३।।

*****

चौतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– जब शैलप्रिया सती मेना को चैतन्य प्राप्त हुई, तब बड़े क्षोभ से विलाप करके तिरस्कार करने लगी।।१।। उनमें पहले तो व्याकुल होकर अपने पुत्रों की निन्दा करने लगी और फिर अपनी पुत्री को दुर्वचन कहे।।२।। मेना बोली– हे मुने! आपने ही यह बात पहले कही थी, कि पार्वती शिवजी को वरण करेगी, तब ही हिमालय ने उसे शिवजी की पूजा में नियुक्त किया।।३।। सो यह उसका बड़ा अनर्थकारी विपरीत फल उपस्थित हुआ है। हे मुने! हे दुर्बुद्धे! हे अधम! आपने सब प्रकार से मुझे ठग लिया।।४।। मेरी पुत्री ने ऐसा कठिन तप किया है, जिसे मुनि भी नहीं कर सकते, उसका यह दुःखदायक फल उपस्थित हुआ, सो देखिये।।५।। मैं क्या करूं, कहां जाऊं, मेरे दुःख को कौन दूर करेगा? मेरा कुलादिक और जीवन नष्ट हो गया।।६।।

वे दिव्य ऋषि कहां गये ? जो मैं उनकी डाढ़ी मूछें उखाड़ लूं। वह वसिष्ठजी की पत्नी तपस्विनी अरुन्धती बड़ी धूर्ता निकली ।।७।। किसी के अपराध से मेरा तो सब ही नष्ट हो गया। यह कह कर अपनी कन्या को देखकर कटुवचन कहने लगी ।।८।। हे दुष्टे! यह तुमने क्या किया ? मेरा कर्म फूट गया। हे मूर्खे! तुमने सुवर्ण गमाकर स्वयं काँच ग्रहण किया ।।९।। चन्दन को छोड़कर तुमने कीच ग्रहण की, तुमने हंस उड़ाकर हाथ के पिंजरे में कौआ ग्रहण किया ।।१०।। तुमने ब्रह्मजल दूर बहाकर कूप का जल ग्रहण किया, सूर्य को छोड़कर तुमने यत्न से खद्योत ग्रहण किया ।।११।। चावलों को छोड़कर तुमने भूमि ग्रहण की, तुमने घृत और तैल को फेंककर करण्ड को खाया और आदर किया ।।१२।। शेर की सेवा छोड़कर तुमने शृङ्गाल की सेवा की, ब्रह्मविद्या को छोड़कर तुमने कुत्सित गाथा सुनी ।।१३।। हे पुत्रि! तुमने घर की मांगलिक यज्ञविभूति दूरकर के अमंगल चिताभस्म ग्रहण की ।।१४।। विष्णुजी आदि परमेश्वर सब देवताओं को ग्रहण न करके तुमने कुबुद्धि से शिवजी के निमित्त इस प्रकार का तप किया ।।१५।। तेरी बुद्धि, तेरे रूप, तेरे चरित्र को तुझे तेरे उपदेश कर्ता और तेरी सखियों को धिक्कार है ।।१६।। हे पुत्रि! हम तेरे माता–पिता को भी धिक्कार है, जो तुझे जन्म देनेवाले हैं। हे नारदजी! आपकी और सप्तर्षियों की बुद्धि को धिक्कार है ।।१७।। कुलक्रिया की दक्षता और जो कुछ आपने किया, सबको धिक्कार है। आपने मेरा घर नष्ट कर दिया, अब मेरा मरण ही होगा ।।१८।। यह पर्वतों का राजा मेरे समीप क्यों नहीं आता ? वह सप्तर्षि आकर स्वयं मेरे मुख को नहीं देखते ? ।।१९।। अथवा क्या सब ने मिलकर यह बात साधी है ? मेरा कुल नष्ट कर दिया, मैं वन्ध्या क्यों न हुई ? मेरा गर्भ क्यों नहीं गिर गया ?।।२०।। अथवा मैं या यह पुत्री ही क्यों न मर गई ? अथवा हमको आकाश में राक्षसों ने क्यों न खा लिया ?।।२१।। मैं अभी तेरा सिर छेदन कर दूंगी। कलेवर से क्या करूंगी ? तुझे छोड़कर मैं कहां जाऊं ? खेद है कि, मेरा जीवन नष्ट हो गया ।।२२।। ब्रह्माजी बोले– ऐसा कहकर मेना मूर्च्छित हो कर पृथ्वी पर गिर पड़ी और शोक रोष से व्याकुल होकर अपने स्वामी के समीप भी नहीं गई ।।२३।। हे मुनीश्वर! उस समय बड़ा हाहाकार मच गया और फिर क्रम से सब देवता उसके समीप आयें ।।२४।। हे मुने! पहले मैं स्वयं ही उसके समीप गया। हे ऋषिश्रेष्ठ! मुझे देखकर आप उस से इस प्रकार के वचन बोले ।।२५।। नारदजी बोले– हे मेना! आपने शिवजी का यथार्थ सुन्दर रूप नहीं देखा है, यह इन्होंने लीला के निमित्त रूप धारण किया है। यथार्थ में शंकरजी का ऐसा रूप नहीं है ।।२६।। हे पतिव्रते! इस कारण क्रोध छोड़कर, सावधान होकर, हठ को छोड़कर कार्य करो और पार्वती शंकरजी को प्रदान करो ।।२७।। ब्रह्माजी बोले– यह वचन सुनकर मेना आपसे कहने लगी, आप बड़े दुष्ट और अधम हो, यहां से उठकर दूर चले जाओ ।।२८।। जब उसने ऐसा कहा, तब क्रम से इन्द्रादिक सब देवता

तथा दिक्पाल भी आ कर इस प्रकार के वचन बोले ।।२९।। देवता बोले- हे मेना! हे पितृकन्या! तुम हमारे वचन सुनो, यह साक्षात् परम शिवजी दूसरों को सुख देनेवाले हैं।।३०।। तुम्हारी पुत्री का दुष्कर तप देखकर वह सद्भक्तवत्सल ने परम कृपा से उसे वर दिया ।।३१।। ब्रह्माजी बोले- तब बारंबार विलाप करती हुई मेना देवताओं से बोली- उग्ररूपी शंकरजी के निमित्त मैं अपनी कन्या नहीं दूंगी ।।३२।। किस कारण आप सब देवता मिलकर प्रपञ्च कर के इस मेरी पुत्री के रूप को व्यर्थ करने को उद्यत हुए हो ।।३३।। हे मुनीश्वर! जब मेना ने ऐसा कहा, तब वे सब वसिष्ठ आदि ऋषि आकर मेना से कहने लगे ।।३४।' सप्तर्षि बोले- हे पितृकन्ये! हे गिरिराज की प्यारी! हम यहां कार्य साधन करने को प्राप्त हुए हैं, इस अर्थ में हम किसी प्रकार विरुद्ध नहीं मान सकते ।।३५।। ब्रह्माजी बोले- यही परम लाभ है, जो तुम्हें शंकरजी का दर्शन हुआ और वह दान पात्र होकर स्वयं तुम्हारे मन्दिर में आये ।।३६।। ब्रह्माजी बोले- यह सुनकर भी मेना ने ऋषियों के वचनों को व्यर्थ कर दिया और वह लघु ज्ञान वाली रुष्ट होकर उन ऋषियों से कहने लगी ।।३७।। मेना बोली- मैं शस्त्रादि से घात कर डालूंगी, परन्तु शंकरजी के निमित्त पार्वती को न दूंगी। आप सब दूर हो जाइये, आज से कभी मेरे समीप न आना ।।३८।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार कह कर मेना व्याकुल होकर मौन रह गई। हे मुने! उस समय इस वृत्तान्त से वहां महा हाहाकार मच गया ।।३९।। तब इस वृत्तान्त को सुनकर मेना को समझाने के निमित्त स्वयं हिमालय आये और प्रीति से तत्त्व दिखाते हुए बोले ।।४०।। हिमालय बोले- हे मेना! तू मेरा वचन सुन, किस प्रकार से तू व्याकुल है? घर में कौन-कौन आये हैं? तुम उनकी निन्दा क्यों करती हो? ।।४१।। तू शंकरजी को नहीं जानती, उनका रूप देख कर ही व्याकुल हो गई हो। उनका विकट रूप इस कारण जानती हो कि वह अनेक रूप धारण करते हैं।।४२।। सबके पालन करनेवाले शंकरजी को मैं जानता हूँ। वह पूज्यों के भी पूज्य, सबके कर्ता, निग्रह और अनुग्रह में समर्थ हैं।।४३।। हे पापरहित प्राणप्रिये! हठ मत करो, दुःख को त्यागो, उठो और शीघ्रता से कार्य करो। हे सुन्दर व्रतवाली!।।४४।। जो शिवजी विकट रूप धारण करके द्वार पर आये हैं, तो उन्होंने नाना लीलायें की हैं, कि मैं मेना को खिजाऊं।।४५।। उनका परम माहात्म्य देखकर तुमने और मैंने कन्यादान करना अंगीकार किया। हे प्रिये! उनको प्रणाम करो।।४६।। ब्रह्माजी बोले- ऐसा कहकर हिमालय मौन हुए। यह सुनकर पार्वती की माता मेना हिमालय से बोली।।४७।। हे नाथ! आप मेरे वचन सुनिये और वैसा ही करने को आप योग्य हो, इस अपनी कन्या पार्वती को लेकर और उसके कण्ठ में बांधकर।।४८।। निश्शंक होकर नीचे गिरा दो। मैं शंकरजी के निमित्त पार्वती नहीं दूंगी अथवा हे नाथ! इस कन्या को ले जाकर समुद्र में।।४९।। दयारहित हो कर डुबा दो और सुखी हो और यदि

आप विकट मुखवाले शंकरजी के निमित्त पार्वती दोगे तो, हे स्वामिन्! मैं निश्चय ही कलेवर त्याग दूंगी ।।५०।। ब्रह्माजी बोले– जब इस प्रकार से मेना ने हठ से वचन कहे, तब स्वयं आ कर पार्वती मनोहर वचन कहने लगीं ।।५१।। पार्वती बोली– हे माताजी! आपकी शोभन बुद्धि इस समय विपरीत कैसे हो गई? आप धर्म की अवलम्बन करने वाली धर्म को कैसे त्याग करती हो?।।५२।। यह रुद्र परमप्रभु साक्षात् सब के ईश्वर और समर्थ हैं। शिवजी का सुखदायक रूप सब शास्त्रों में वर्णन किया गया है ।।५३।। यह महेश्वर शंकरजी सबके प्रभु स्वराट् हैं। हे माता! यह हरि और ब्रह्माजी से सेवित, अनेक प्रकार के रूप धारण करनेवाले हैं ।।५४।। यही सबके हर्ता, कर्ता और अधिष्ठान हैं। वे निर्विकारी, त्रिदेवताओं के ईश्वर, सनातन अविनाशी हैं ।।५५।। जिनके निमित्त सब देवता दासरूप होकर प्राप्त हुए हैं और आपके द्वार पर इस समय सब का उत्सव है, इससे विशेष और क्या सुख होगा?।।५६।। इस लिये प्रयत्नपूर्वक उठो और अपना जीवन सफल करो और मुझे शंकरजी को देकर अपना गृहस्थाश्रम सफल करो ।।५७।। हे मातः! आप शंका छोड़कर मुझे परमेश के निमित्त दो। हे मातः! जो मैं कहती हूँ, इस विनती को आप स्वीकार करो।।५८।। यदि शंकरजी को मुझे न दोगी, तो मैं दूसरों को वरण नहीं करूंगी। सिंह के भाग को परवंचक श्रृंगाल कैसे प्राप्त कर सकता है।।५९।। हे मातः! मैं मन, वचन, कर्म से शंकरजी को दृढ़ता से वरण कर चुकी हूँ, अब जो आपकी इच्छा हो सो करो।।६०।। ब्रह्माजी बोले– शैलेश्वर प्रिया मेना इस प्रकार से शिवा के वचन सुनकर बहुत विलाप कर के महाक्रुद्ध हो कर पार्वती को ग्रहण कर।।६१।। मुट्ठी–पहुचों से पुत्री को ताड़न करने लगी और व्याकुल तथा रोष करके दाँतों से ताड़न करने लगी।।६२।। हे तात! हे मुने! आपको आदि लेकर जो दूसरे ऋषि वहां विद्यमान थे, उस मेना के हाथ से पुत्री को छीनकर दूर ले गये ।।६३।। इस प्रकार उन ऋषियों को देखकर बारंबार फटकारने और उनसे बारंबार दुर्वचन कहने लगी ।।६४।। मेना बोली– मैं अब क्या करूं? इस दुष्ट आग्रह वाली शिवा को या तो मैं कूप में डाल दूंगी या विष दे दूंगी।।६५।। अथवा बड़े शस्त्र–अस्त्रों से इसके खण्ड–खण्ड कर डालूंगी अथवा इस अपनी कन्या पार्वती को समुद्र में डाल दूंगी।।६६।। अथवा मैं निश्चय अपना शरीर त्याग कर दूंगी, पर विकटरूपी शंकरजी को अपनी कन्या नहीं दूंगी।।६७।। इस दुष्टा ने कैसे भयंकर वर को ग्रहण किया है? मेरा, गिरिराज का और इस कुल का उपहास कराया।।६८।। इन शंकरजी के माता, पिता, भाई, बन्धु, गोत्र, रूप, चातुर्य वा घर, कुछ भी नहीं है।।६९।। वस्त्र, अलंकार वा सहायक इनके कोई भी नहीं है, न सुन्दर सवारी, न कुछ धन ही है ।।७०।। इनमें पवित्रता, विद्या कुछ भी नहीं है, शरीर देखने से भी कैसा दुःख होता है, मैं क्या देखकर सुमंगली पुत्री को इनको दे सकती हूँ?।।७१।। ब्रह्माजी बोले– हे मुने! मेना इस प्रकार कह कर बड़े ऊँचे स्वर से

रोने लगी और विलाप करने लगी ।।७२।। तब मैंने शीघ्रता से जाकर मेना से अज्ञान को हरनेवाला परम शिवतत्त्व आकर वर्णन किया ।।७३।। ब्रह्माजी बोले– हे मेना! मेरे सुन्दर वचन प्रेम से सुनो, जिनके श्रवण करने से तेरी कुबुद्धि नष्ट हो जायेगी ।।७४।। यह शंकरजी जगत् के कर्ता, हर्ता और विद्या दाता हैं, तुम इनके रूप को न जानकर इस प्रकार से विलाप करती हो ।।७५।। यह प्रभु अनेक लीला करनेवाले, अनेक रूप और नामोंवाले हैं, सबके स्वामी, स्वतन्त्र, माया के अधीश्वर, विकल्प रहित हैं ।।७६।। हे मेना! ऐसा जानकर तुम शंकरजी के निमित्त पार्वती दे दो और सब कार्यों को नाश करनेवाले इस दुराग्रह और अज्ञान का त्याग करो ।।७७।। ब्रह्माजी बोले– हे मुने! जब मैंने ऐसा कहा, तब मेना बारंबार विलाप करती हुई शनैः-शनैः लज्जा को त्याग करके मुझसे कहने लगी ।।७८।। मेना बोली– हे भगवन्! किस निमित्त आप मेरी पुत्री के महाश्रेष्ठ रूप को व्यर्थ करते हो, यदि ऐसा ही है, तो इसको मार क्यों नहीं डालते? ।।७९।। यह तो आप कहिये ही मत, कि शिवजी के निमित्त कन्या दे दो, अपनी प्राणप्यारी सुता को मैं शंकरजी के निमित्त नहीं दूंगी ।।८०।। ब्रह्माजी बोले– हे महामुने! इस प्रकार कहने पर सनकादि सिद्धजन आकर महा प्रीति से इस प्रकार के वचन कहने लगे ।।८१।। सिद्ध बोले– यह दूसरों को सुख देनेवाले भगवान् शंकरजी परम शिव हैं, तुम्हारी पुत्री पर कृपा कर के इन प्रभु ने दर्शन दिया है ।।८२।। ब्रह्माजी बोले– तब मेना ने बारंबार विलाप करते उन से भी यही कहा कि, मैं उग्र रूपवाले शंकरजी को अपनी कन्या नहीं दूंगी ।।८३।। आप सब प्रपञ्च करके क्यों मेरी पुत्री के रूप को व्यर्थ करने को उद्यत हुए हो ।।८४।। हे मुने! जब उसने ऐसा कहा, तब मैं चकित हो गया और देव, सिद्ध, ऋषि तथा मनुष्य सब ही विस्मय को प्राप्त हुए ।।८५।। इसी समय मेना की दृढ़ महान् हठ सुनकर शिवजी के प्रिय विष्णुजी वहां आकर इस प्रकार के वचन बोले ।।८६।। विष्णुजी बोले– तुम पितृगणों की प्यारी मानसी पुत्री अनेक गुणों से युक्त हो, साक्षात् हिमालय की पत्नी हो, तुम्हारा उत्तम ब्रह्मकुल है ।।८७।। वैसे ही तुम्हारे सहायक हैं, लोक में तुम धन्य हो, इसमें विशेष क्या कहूं? तुम धर्म की आधार होकर किस प्रकार धर्म को त्याग करती हो? ।।८८।। देवता, ऋषि, ब्रह्माजी तथा मैं यह सब विरुद्ध ही कहते हैं, भला तुम इतना तो विचारो ।।८९।। तुम निर्गुण-सगुण रूप शिवतत्त्व को नहीं जानती हो, यह सत्पुरुषों की गति विरूप और सुरूप होकर भी सबके सेवनीय हैं ।।९०।। मूल प्रकृति ईश्वरी यह देवी इन्होंने ही निर्माण की है। उसीके पार्श्व में इन्होंने पुरुषोत्तम का निर्माण किया है ।।९१।। उन्हीं प्रकृति पुरुष से मैं तथा ब्रह्माजी हुए हैं और लोकों पर हित करने की इच्छा से सगुण रूप से रुद्र स्वयं प्रकट हुए हैं ।।९२।। इनके उपरान्त वेद तथा देवता, स्थावर-जंगम यह जो कुछ जगत् दीखता है, सब शंकरजी से हुआ है ।।९३।। उनका रूप कौन वर्णन कर सकता है

और जान सकता है? जिसे मैं और ब्रह्माजी तक नहीं जान सकते ।।९४।। ब्रह्म से लेकर स्तम्भ पर्यन्त जो कुछ जगत् दीखता है, वह सब ही शिवरूप जानो, इसमें विचार की आवश्यकता नहीं ।।९५।। वही इस प्रकार के स्वरूप से अपनी लीला से उत्पन्न हुए हैं। वह पार्वती के तप के प्रभाव से ही तुम्हारे द्वार पर आये हैं ।।९६।। हे हिमालय की पत्नी! इस कारण तुम दुःख को छोड़कर शिवजी का भजन करो। ऐसा करने से महाआनन्द होगा और क्लेश का भी नाश होगा ।।९७।। ब्रह्माजी बोले- हे मुने! जब विष्णुजी ने इस प्रकार से मेना को समझाया, तब मेना का चित्त कुछ-कुछ कोमल हुआ ।।९८।। परन्तु शिवजी को कन्या न देने की हठ उसने न छोड़ी; कारण कि वह उस समय शिवजी की माया से मोहित हो रही थी ।।९९।। गिरिप्रिया, पार्वती की माता मेना विष्णुजी के मनोहर वचन सुनकर कुछेक रोष से बोली ।।१००।। यदि शंकरजी का शरीर मनोहर हो जाये, तो मैं अपनी कन्या शंकरजी को दे सकती हूँ, नहीं तो कोटि प्रयत्न करो, तो भी मैं कन्या शंकरजी को नहीं दूंगी, यह मेरा सत्य और दृढ़ वचन है ।।१०१।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार से धन्य और दृढ़व्रतवाली मेना, शिवजी की जगत् मोहनेवाली माया से प्रेरित होकर यह वचन कहकर मौन हुई ।।१०२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

तृतीये पार्वतीखण्डे मेनाप्रबोधोनाम चतुश्त्वारिंशोऽध्यायः ।। ४४ ।।

*****

पैतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले- इसी अवसर में आप विष्णुजी से प्रेरित होकर शीघ्रता से शिवजी को प्रसन्न करने के लिये उनके समीप गये ।।१।। वहां जाकर आपने रुद्र को समझाया और देवकार्य करने की इच्छा से अनेक प्रकार के स्तोत्रों से स्तुति की ।।२।। आपके यह वचन सुनकर कृपालुता दिखाने के निमित्त शिवजी ने बड़ा दिव्य और अद्भुत रूप दिखाया ।।३।। इस प्रकार से कामदेव से भी अधिक सुन्दर शिवजी का रूप देखकर तथा दूसरों के मान चूर्ण करनेवाला लावण्य देखकर आप बड़े प्रसन्न हुए ।।४।। परमानन्द से संयुक्त होकर अनेक प्रकार के स्तोत्रों से स्तुति करके, हे मुने! आप वहां आये, जहां मेना स्थित थी ।।५।। हे मुने! आप प्रसन्नता से वहां जाकर गिरिराज पत्नी मेना को प्रसन्न करते हुए इस प्रकार से बोले ।।६।। नारदजी बोले- हे मेना! हे विशाल नेत्रवाली! तुम शिवजी का अद्भु रूप देखो, जो करुणामय शंकरजी ने तुम पर बड़ी कृपा करके धारण किया है ।।७।। ब्रह्माजी बोले- शैलकामिनी मेना यह वचन सुनते ही विस्मित होकर

परम आनन्द देनेवाले उन शिवजी के रूप को देखने लगी ।।८।। कोटि सूर्य के समान कान्तिमान् सम्पूर्ण अवयवों से सुन्दर विचित्र वस्त्र और अनेक प्रकार के भूषण धारण किये ।।९।। सुन्दर, प्रसन्नता से युक्त, लावण्यता से मनोहर, गौरकान्ति, चन्द्रशेखर से विभूषित ।।१०।। विष्णुजी आदि सब देवता प्रेम से जिनकी सेवा कर रहे, सिर के ऊपर सुन्दर छत्र और चन्द्रमा विशेष रूप से शोभायमान हो रहा है ।।११।। सब प्रकार गहनों से भूषित होने से मनोहर थे और वाहन की जो शोभा थी, वह किसी से वर्णन नहीं हो सकती ।।१२।। गंगा और यमुना ने उस समय उन पर चमर धारण किया हैं, आठों सिद्धियां उनके आगे नृत्य कर रही हैं ।।१३।। मैं, विष्णुजी तथा इन्द्रादि समस्त देवता अपने-अपने सुन्दर वेष सजा कर गिरीशजी के आचार से संयुक्त हैं ।।१४।। और शिवजी के गण उस समय 'जय-जय' उच्चारण कर रहे हैं और अनेक प्रकार के गहने पहने बड़े आनन्द से गिरीशजी के आगे चल रहे हैं ।।१५।। सिद्ध, उपदेवता और मुनि महामंगल से तथा दूसरे जन भी बड़े प्रेम से शिवजी के आगे-आगे चल रहे हैं ।।१६।। इस प्रकार से सब देवता महाकौतूहल को प्राप्त होकर अपनी-अपनी स्त्रियों को साथ लिये परब्रह्म की स्तुति करते हैं ।।१७।। विश्वावसु को आदि लेकर समस्त गन्धर्व सम्पूर्ण अप्सराओं के समूहों को साथ लेकर शंकरजी का परम यश गाते हुए आगे-आगे जा रहे हैं ।।१८।। हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार से वहां पर परम महोत्सव हुआ। जिस समय भगवान् शंकरजी शैलराज के स्थान को चले ।।१९।। उस समय जैसी परमात्मा शंकरजी की शोभा थी, हे मुनीश्वर! विशेष रूप से उसे कौन वर्णन कर सकता है?।।२०।। इस प्रकार से उनको देखकर मेना चित्रलिखित के समान हो गई। हे मुने! क्षणमात्र स्थित होकर फिर वचन बोली ।।२१।। मेरी पुत्री धन्य है, जिसने इस प्रकार की तपस्या की है। हे महेशान! जिसके प्रताप से आप मुझे प्राप्त हुए होकर मेरे घर आये ।।२२।। मैंने जो पहले शिवजी की महा निन्दा की थी, हे स्वामिन्! उसे आप क्षमा करके अब प्रसन्न हो जाइये ।।२३।। ब्रह्माजी बोले- वह मेना इस प्रकार से कह कर और चन्द्रमौलि की स्तुति कर के हाथ जोड़कर, शैलप्रिया परम लज्जा से युक्त हो गई ।।२४।। उतने ही में अपने-अपने कार्यों को छोड़कर अनेक स्त्रियां आकर प्राप्त हुई। वह बहुत सी पुरवासिनी शिवदर्शन की लालसा से आईं ।।२५।। कोई मज्जन कर रही थी, वह एक हाथ में चूर्ण लिये हुए ही कुतूहल से गिरीजावर शंकरजी को देखने के लिये चलीं ।।२६।। कोई सखी सहित अपने स्वामी की सेवा कर रही थी, उसे छोड़कर हाथ में चँवर लिये ही प्रेम से शंकरजी को देखने चली गई ।।२७।। कोई आदर से स्तन पीते हुए अपने बालक को छोड़कर उसकी तृप्ति का ध्यान न करते दर्शन की लालसा से शंकरजी को देखने को गई ।।२७।। कोई कौंधनी बांध रही थी, सो वैसे ही उठकर चली गई, कोई विपरीत वस्त्र

*- विशाल नेत्र वाली कहने का भाव यह, कि आज शंकर का दर्शन कर के इनकी विशालता सार्थक हुई।

धारण किये ही चली गई ।।२९।। कोई अपने स्वामी को भोजन करता हुआ छोड़कर चली गई, शिवजी दुलहे के देखने को उनकी तृष्णा और कुतूहल बहुत बढ़ गया था ।।३०।। कोई स्त्री आँख में सुरमा लगा रही थी सो एक हाथ में सुरमें की सलाई लिये ही दूसरे नेत्र में बिना सुरमा लगाये पार्वती के वर को देखने की इच्छा से चली ।।३१।। कोई स्त्री पैर में महावर लगा रही थी, वह बारात का शब्द सुनकर उसे छोड़कर उठ दौडी ।।३२।। इस प्रकार से अपने घर के बहुत से कामकाज छोड़ कर स्त्रियां चलीं और शिवजी के रूप को देखकर सब कोई मोह को प्राप्त हो गईं ।।३३।। तब वे सब प्रेम से व्याकुल होकर शिवदर्शन की इच्छा करके उनकी मूर्ति हृदय में धारण करके यह वचन बोलीं ।।३४।। पुरवासिनी बोली– हिमालय के नगर में रहनेवालों के नेत्र सफल हुए, जिस–जिसने यह शंकरजी का रूप देखा, उस–उस का जन्म सफल हो गया ।।३५।। उसी का सफल जन्म और उसी की क्रिया सफल है, जिसने सब पापों को नाश करनेवाले साक्षात् शंकरजी का दर्शन किया ।।३६।। पार्वती ने ही यह सब बात साध ली, जिसने शिवजी के निमित्त तपस्या की, यह पार्वती धन्य और कृतकृत्य है, जिसने शिवजी को पति रूप में पाया है ।।३७।। यदि ब्रह्माजी यह शिवा–शिव की जोड़ी न बनाते, तो जगत् के निर्माण का उनका सब ही श्रम वृथा हो जाता ।।३८।। यह उन्होंने बहुत ही उत्तम किया, जो यह जोडा मिलाया, सब कार्यों की और सब की सार्थकता हो गई ।।३९।। बिना तपस्या के मनुष्यों को शिवजी का दर्शन दुर्लभ है। शंकरजी के दर्शन से सब ही कृतार्थता को प्राप्त हुए ।।४०।। जैसे पूर्वकाल में लक्ष्मी ने नारायण को प्राप्त किया था, वैसे ही यह पार्वतीदेवी शिवजी को प्राप्त होकर शोभायमान हुई हैं ।।४१।। पहले जिस प्रकार सरस्वती ने अपने स्वामी ब्रह्माजी को पाया था, वैसे ही यह पार्वतीदेवी शिवजी को प्राप्त होकर शोभायमान हुई है ।।४२।। हम सब स्त्री और पुरुष धन्य हैं, जो सर्वेश गिरिजापति शंकरजी का दर्शन करते हैं ।।४३।। ब्रह्माजी बोले– यह वचन कहकर स्त्रियों ने चन्दन और अक्षत से शंकरजी की पूजा की और उनके ऊपर खीलैं बरसाईं ।।४४।। वहां सब स्त्रियां मेनका के साथ उत्कण्ठा सहित स्थित हुईं और मेना तथा हिमालय का महाभाग्य वर्णन करने लगीं ।।४५।। उन स्त्रियों की कही हुई अनेक प्रकार की वार्ता सुनते विष्णुजी आदि देव और मुनियों के साथ भगवान् शंकरजी प्रविष्ट हुए ।।४६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

तृतीये पार्वतीखण्डे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४५ ।।

*****

छयालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– तब शिवजी महाराज प्रसन्न होकर अपने गण, दूत और देवताओं के साथ तथा और सब को ले कर कुतूहल से हिमालय के यहां चले ।।१।। हिमाचल की श्रेष्ठ प्रिया मेना भी सब स्त्रियों के साथ उठकर अपने घर के भीतर गई ।।२।। वह सती शिवजी के निराजन के निमित्त हाथ में दीपक लेकर सब स्त्रियों को साथ लेकर बड़े आदर से द्वार पर आई ।।३।। वहां जाकर मेना ने सब देवताओं से सेवित महेशान गिरिजापति शंकरजी को बड़े प्रेम से देखा ।।४।। जो सुन्दर चम्पक के वर्ण के समान कान्ति वाले पञ्चमुख, तीन नेत्र, कुछेक हास्य से प्रसन्न मुख, रत्न और सुवर्णादि से भूषित ।।५।। मालती की माला पहने, अच्छे रत्नों का उज्ज्वल मुकुट पहने, कण्ठ में सुन्दर भूषण धारण किये, कंगन और बाजूबन्दों से शोभायमान ।।६।। अतिसूक्ष्म मनोहर विभूति लगाये, अमूल्य शोभायमान वस्त्र धारण किये ।।७।। चन्दन, अगर, कस्तूरी और कुमकुम से भूषित, रत्नदर्पण हाथ में शोभित और नेत्रों में सुन्दर काजल लगाये ।।८।। सब ओर अपने कान्ति से व्याप्त अत्यन्त मनोहर, बहुत ही तरुण शोभायमान, गहनेवाले अंगों से भूषित ।।९।। कामिनियों को मनोहर व्यग्रता रहित, कोटिचन्द्रमा के समान प्रकाशमान मुखकमल, कोटि कामदेव से अधिक सर्वांग सुन्दर शरीर की छबि ।।१०।। इस प्रकार के देव जामाता प्रभु को अपने आगे स्थित देखकर मेना ने सब शोक भुला दिया और बहुत प्रसन्न हुई ।।११।। और अपने भाग्य तथा भूधर के कुल की प्रशंसा करने लगी और अपने को कृतार्थ मान कर बारंबार प्रसन्न होने लगी ।।१२।। और प्रसन्न वदन से इतना नीराजन किया और प्रसन्नता से मेना जमाई को देखती रह गई ।।१३।। गिरिजा की कही बात को स्मरण करके मेना विस्मय को प्राप्त हुई और प्रसन्नता से मुख, नेत्र में प्रसन्नता प्रकट करती मन में ही कहने लगी ।।१४।। जो कुछ पार्वती ने मुझसे कहा था, इन परमेश्वर में मैं उनसे अधिक प्रसन्नता देखती हूँ ।।१५।। महेशजी का स्वरूप इस समय वर्णन नहीं हो सकता, इस प्रकार विस्मय को प्राप्त हो कर मेना मन्दिर के भीतर गई ।।१६।। उधर युवतियां प्रशंसा करने लगी कि, गिरिराजसुता धन्य है, कोई कहने लगी कि, यह दुर्गा भगवती है ।।१७।। हमने तो इस प्रकार के वर का कहीं दर्शन नहीं किया, गिरिजादेवी धन्य है, इस प्रकार कोई कन्यायें कहनी लगीं ।।१८।। श्रेष्ठ गन्धर्व गाने लगे, अप्सरायें नाचने लगीं, शंकरजी का रूप देखकर सब देवता प्रसन्न हुए ।।१९।। बाजे बजानेवाले आदरपूर्वक कौशल से अनेक प्रकार के बाजे बजा कर मीठे स्वरों से गाने लगे ।।२०।। हिमालय ने भी प्रसन्न होकर द्वारचार

किया और मेना ने भी सब नारियों के सहित महोत्सव किया ।।२१।। परछन करके प्रसन्न होकर अपने घर गई और शिवजी भी अपने गणों सहित वताये हुए स्थानों में गये ।।२२।। इसी समय शैलराज के अन्तःपुरचारी दुर्गा भगवती को कुलदेवता के पूजन करने को बाहर ले चले ।।२३।। वहां जाकर देखा कि, देवता निमेष रहित हैं, यह नीलअंजन पर्वत के वर्णवाली अपने अंगों से भूषित है ।।२४।। जिनके नेत्र भगवान् शंकरजी से आदर किये गये हैं, दूसरों से जो निवारण किये गये हैं, कुछेक हास्य से प्रसन्न मुख, कटाक्षों से मनोहर ।।२५।। सुन्दर कबरी (केशपाश) के भार से व्याप्त, सुन्दर पत्ररचना से शोभायमान, कस्तूरी की बिन्दी लगाये, सिन्दुर के बिन्दु से शोभायमान ।।२६।। वक्षस्थल पर रत्नेन्द्र सारहार शोभायमान हो रहा है, रत्न बाजूबन्द और रत्नों के कंकणों से मण्डित ।।२७।। अच्छे रत्नों के जड़े कुण्डल पहने, सुन्दर कपालों से शोभायमान मणि और रत्नों की कान्ति से दांतों की पंक्ति विराजमान हो रही ।।२८।। बिम्बफल के समान रक्तवर्ण के मधुर होंठ, रत्नों और महावर से शोभायमान हाथ में रत्नों का दर्पण लिये, क्रीड़ा के कमल से शोभायमान ।।२९।। चन्दन, अगर, कस्तूरी और कुमकुम से चर्चित चरणों में मंजीर शब्द कर रहे चरणतलों की लाली शोभायमान हो रही ।।३०।। मेनका सहित सब किसी ने भक्तिपूर्वक देवी को प्रणाम किया और सब देवतादि जगत् को प्रकट करनेवाली आद्या भवानी का दर्शन किया ।।३१।। त्रिनेत्र शंकरजी ने नेत्र के कोने से भगवती को देखकर प्रसन्नता प्राप्त की, शिवजी ने इस प्रकार सती की आकृति शिवा को देखकर विरहव्यथा त्याग दी ।।३२।। शिवा को अवलोकन करते ही शिवजी अन्य समस्त भूल गये, सर्वांग हर्ष से पुलकित हो गया, गौरी को देखने लगे ।।३३।। तब काली पुरी के बाहर जाकर कुलदेवी का पूजन करके द्विजांगनाओं के सहित अपने पिता के भवन में आयी ।।३४।। शिवजी विष्णु, ब्रह्मा आदि देवताओं के सहित हिमालय के दिखाये हुए स्थान में प्रसन्नता से आये ।।३५।। वहां सुखपूर्वक निवास करके अनेक प्रकार से शिवजी की सेवा करने लगे और हिमालय ने भी अनेक प्रकार की सम्पत्तियों से उनका सत्कार किया ।।३६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
तृतीये पार्वतीखण्डे वरागमादिवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४६ ।।

*****

सैंतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– तब शैलराज ने प्रीतिपूर्वक वेदमन्त्रों से उत्साहपूर्वक दुर्गा का जनेऊ कराया ।।१।। तब विष्णुजी आदि देवता और मुनि कुतूहलपूर्वक हिमालय की प्रार्थना से घर के अन्तर प्रविष्ट हुए ।।२।। वेद और संसार की रीति यथायोग्य करके शिवजी की ओर से दिये हुए भूषणों से पार्वती को अलंकृत किया ।।३।। पहले उनको स्नान कराया और सब प्रकार से भूषित करके सखी और ब्राह्मणों की स्त्रियों ने नीराजन किया ।।४।। सदा निर्मल रहनेवाले वस्त्र से सुमुखी शोभायमान हुई और शैलसुता शंकरजी की प्रिया बड़ी शोभा को प्राप्त हुई ।।५।। परमदिव्य, परम अद्‌भुत कंचुकी, जो अनेक रत्नों से शोभायमान थी, देवी ने वह धारण की, जिससे देवी की बड़ी शोभा हुई ।।६।। और दिव्य रत्नों का बड़ा सुन्दर हार उसने धारण किया और बड़े मोल के शुद्ध सुवर्ण के हार भी धारण किये ।।७।। वह सुभगा मन से शिवजी का ध्यान करती हुई त्रिजगत् को प्रकट करनेवाली वह शैलकन्या बड़ी शोभा को प्राप्त हुई ।।८।। दोनों ओर का आनन्द करनेवाला बड़ा महोत्सव उस समय हुआ और ब्राह्मणों को अनेक प्रकार से दान दिया गया ।।९।। और दूसरे मांगनेवालों को भी बड़ा दान दिया गया। गीत बाजे और विनोद से बड़ा उत्सव मनाया गया ।।१०।। तब विष्णुजी, मैं ब्रह्मा, इन्द्र और दूसरे सब देवता और मुनिजन भी महोत्साह से महाउत्सव करने लगे ।।११।। भक्ति से शिवजी को प्रणाम करके और शिवजी के पदकमल को स्मरण करके गिरि आज्ञा पाकर सब अपने–अपने स्थानों में बैठ गये ।।१२।। इसी समय ज्योतिषशास्त्र में पण्डित गर्गाचार्यजी हिमालय से इस प्रकार के वचन कहने लगे ।।१३।। गर्गजी बोले– हे हिमाचल! हे धराधीश! हे स्वामिन्! हे प्रभो! हे काली के पिता! पाणिग्रहण के निमित्त शिवजी को अपने मन्दिर में ले जाइये ।।१४।। ब्रह्माजी बोले– तब गिरिराज कन्यादान का उचित समय जानकर, गर्गजी का कथन सुनकर मन में बड़े प्रसन्न हो गये ।।१५।। तब गिरिराज ने प्रसन्न होकर महीधर और दूसरे ब्राह्मणादि को शिवजी के आगमन की इच्छा से भेज दिया ।।१६।। वे पर्वत और द्विज मंगल हाथ में लिये, सब मिलकर महाउत्सव और प्रेम से शिवजी के समीप गये ।।१७।। उस समय बाजों का शब्द और वेदों का शब्द होने लगा और गीत–नृत्य आदि से महामहोत्सव होने लगा, गीत और नृत्य होने लगा ।।१८।। उनके बाजों के शब्द सुन कर शिवजी देवता, ऋषिगणों के सहित वे सब एक साथ ही उठकर खड़े हुए ।।१९।। और हर्ष से निर्भरमन होकर परस्पर कहने लगे, हिमालय यहां शिवजी को बुलाने की इच्छा से आ रहे हैं ।।२०।।

इस समय यह पाणिग्रहण का समय प्राप्त हुआ है, इस समय हम सबका बड़ा भाग्य है, यह हम मानते हैं।।२१।। शिवा–शिव का विवाह देखेंगे, इस कारण हम विशेष कर धन्य हैं, यह विवाह जगत् का मंगल स्वरूप है।।२२।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार से जब आदरपूर्वक उनका संवाद हुआ, उसी समय हिमालय सब मन्त्रीयों के सहित आकर प्राप्त हुए।।२३।। उन्होंने विष्णुजी से और शिवजी से प्रार्थना की, कि यह कन्यादान का उचित समय आ गया है, आप चलिये।।२४।। वे सब देवता और विष्णुजी आदिक सब मन में प्रसन्न होकर जयजयकार करने लगे।।२५।। और काली के प्राप्त होने की लालसा से शिवजी बड़े प्रसन्न हो गये और मन में अद्भुत आकृति थी, पर उस प्रेम के चिह्न को गुप्त रखा।।२६।। फिर मंगलद्रव्य के सहित शंकरजी ने स्नान किया, लोक के अनुग्रह करने वाले शिवजी बड़े प्रसन्न हुए।।२७।। उन सबके सहित शिवजी ने स्नान किया और सब सेवकों ने, लोकपालों ने शिवजी को वृषभ के स्कन्ध पर चढ़ाया।।२८।। उस समय प्रभु को आगे करके सब कोई हिमालय के घर गये। सब बाजे बजाते और कुतूहल करते चले।।२९।। हिमालय के भेजे हुए विप्र और वे दिव्यदेहधारी पर्वत कुतूहल करते हुए शिवजी के आगे–आगे चले।।३०।। शिवजी के ऊपर शोभायमान छत्र लगाया गया और दूसरे सेवक महेश्वरजी पर चमर करने लगे।।३१।। मैं, विष्णुजी, इन्द्र और सब लोकपाल परम लक्ष्मी के सहित अव्यग्रता से शोभायमान हुए।।३२।। उसी समय शंख, भेरी, पटह, आनक, गोमुख आदि बाजे उस महोत्सव में बारंबार बजाये जाने लगे।।३३।। इसी प्रकार सब गाने वाले परम मंगल से गाने लगे और नाचनेवाली अनेक तालों से नृत्य करने लगीं।।३४।। इस प्रकार इन सबके सहित जगत् के एक बन्धु परमेश की कान्ति धारण करनेवाले सब देवेश्वरों से सेवित हुए स्त्रियों के वर्षाये फूलों की वर्षा को ग्रहण करने लगे।।३५।। इस प्रकार से पूजित होकर शिवजी यज्ञमण्डप में प्रविष्ट हुए। उस समय परमेश्वर की अनेक प्रकार से स्तुति होने लगी।।३६।। पर्वतोत्तम ने महेश्वर को वृषभ पर से उतारा और महोत्सवपूर्वक प्रेम से घर के भीतर ले गये।।३७।। और देवता और गणों सहित शंकरजी को आया हुआ देखकर हिमालय ने परम प्रेम से नीराजन किया।।३८।। और महोत्सव सहित सब देवता और अन्य मुनियों को प्रणाम करके अपनी विधि से प्रशंसापूर्वक उन सबका सन्मान किया।।३९।। इस प्रकार से पर्वतराज भगवान् शंकरजी, विष्णुजी और मुख्य देवगणों को अर्घ्यदान देकर अपने घर में ले गये।।४०।। और आंगन में उन सबको रत्नों के सिंहासन पर बैठाकर विशेष कर विष्णुजी, शिवजी और दूसरे देवताओं का सत्कार किया।।४१।। मेना ने अपनी सखीजनों तथा ब्राह्मणों की स्त्रीजनों सहित तथा पुर की अन्य स्त्रियों सहित प्रेम से नीराजन किया।।४२।। कृत्य के जाननेवाले पुरोहित ने महात्मा शंकरजी का मधुपर्कादि सब कृत्य किये।।४३।।

तब पुरोहितजी ने बड़े प्रेम से मुझ से प्रेरित होकर जितने मंगल के कर्म है, वह सब प्रस्ताव के समान किये ।।४४।। हे मुने! जहां वह पार्वतीदेवी सब आभूषणों से भूषित हुई स्थित थी, वहां हिमालय बड़े प्रेम से गये ।।४५।। वहां वह सूक्ष्मांगी वेदिका के ऊपर विराजमान थी, वहां हिमालय के साथ शंकरजी, विष्णुजी और मैंने प्रवेश किया ।।४६।। बृहस्पति आदि सब देवता लग्न को देख कर वहां कन्यादान का परम उत्सव करने लगे ।।४७।। वहां गर्गजी भी विराजमान थे, उन्होंने उस समय घड़ी का समय विचारा, जब तक एक घड़ी शेष थी, तब तक प्रणव भाषण किया ।।४८।। गर्गजी ने पुण्याहवाचन करके चावलों की अञ्जलि धारण की और पार्वती को दी और भगवती ने वह शिवजी के ऊपर धारण की ।।४९।। पार्वती ने दधि, अक्षत, कुशा और जलों से परम मोद और रुचि से शंकरजी की पूजा की ।।५०।। और रुचि भरे मुख से शिवजी को देखकर विचारने लगी कि, जिनके निमित्त मैंने परम प्रीति से महातपस्या की थी, वही शंकरजी यहां विराजमान हैं?।।५१।। हे मुने! पार्वती के ऐसा विचार करने पर तब मैंने गर्गादि से कहा और उनकी अनुमति से शिवजी ने लौकिकाचार के साथ पार्वती का पूजन किया ।।५२।। इस प्रकार से पार्वती परमेश्वर एक दूसरे का परस्पर सत्कार करते हुए, वह जगन्मय उस समय शोभा को प्राप्त हुए ।।५३।। परस्पर एक दूसरे को देखते हुए त्रिलोकी की लक्ष्मी से शोभायमान हुए, तब लक्ष्मी आदि स्त्रियों ने विशेष रूप से नीराजन किया ।।५४।। पीछे ब्राह्मणों की स्त्रियों ने, फिर पुर की स्त्रियों ने उनका नीराजन किया। शिवा और शम्भु परस्पर एक दूसरे को अवलोकन करते हुए बड़ी प्रसन्नता को प्राप्त हुए ।।५५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
तृतीये पार्वतीखण्डे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४७ ।।

*****

अड़तालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– उसी अवसर में गर्गाचार्यजी से प्रेरित होकर हिमालय मेना के साथ कन्यादान करने की इच्छा करने लगे ।।१।। सुवर्ण का कलश लेकर मेना हिमालय के वामांग में स्थित हुई, महाभाग्यवाली मेना उस समय वस्त्र और अलंकार धारण किये थी ।।२।। तब हिमालय ने प्रसन्न होकर अपने पुराहित के सहित अर्घ्य, पाद्य देकर तथा वस्त्र, चन्दन देकर वर का वरण किया ।।३।। तब हिमालय ने ब्राह्मणों का तिथ्यादि कीर्तन में नियुक्त किया कि, अब समय आ गया है, अब तिथि आदि का प्रयोग किया

जाय ।।४।। यह बात सुनते ही समय के जाननेवाले वे श्रेष्ठ ब्राह्मण परम शान्ति और प्रीति से तिथि आदि का कीर्तन करने लगे ।।५।। तब हिमालय ने परम प्रसन्नता से हृदय में शिवजी से प्रेरित होकर हँसते हुए उन सृष्टिकर्ता शिवजी से कहा ।।६।। हे शंकर! आप अपना गोत्र, प्रवर और कुल कहिये तथा अपना नाम, अपना वेद और अपनी शाखा बताइये, समय का व्यतीत करना ठीक नहीं ।।७।। ब्रह्माजी बोले- भगवान् शंकरजी इस प्रकार हिमालय के वचन सुनकर तत्काल ही सोचने लगे, यद्यपि आप शोच रहित हैं, तो भी सुमुखों से विमुख न होनेवाले विचारने लगे ।।८।। जब इस प्रकार से उस समय श्रेष्ठ देवता, मुनि, गन्धर्व, यक्ष, सिद्धगणों ने शिवजी को निरुत्तर देखा, तब हे नारदजी! आपने इस प्रकार से उस समय उनकी सहायता की ।।९।। हे नारदजी! उस समय ब्रह्मतत्त्व के जाननेवाले आप मन में शिवजी से प्रेरित होकर वीणा बजाने लगे ।।१०।। हे बुद्धिमान्! उस समय हठ से हिमालय, विष्णुजी, देवता और सब मुनियों ने आपका निवारण किया ।।११।। जिस समय शंकरजी की इच्छा से आप निवृत्त न हुए, तब फिर हिमालय ने आपसे कहा, हे नारदजी! आप अब वीणा मत बजाओ ।।१२।। हे पण्डित! हे देवर्षे! जब हठ से आपको उन्होंने निवृत्त किया, तब आप महेश्वरजी को स्मरण करके गिरीश से कहने लगे ।।१३।। नारदजी बोले- आप बड़े मूढ़ हो, इस विषय में आप कुछ भी नहीं जानते हो, जो महेश्वरजी के विषय में ऐसा पूछते हो, आप बड़े विमुख हो ।।१४।। आपने जो साक्षात् शंकरजी से गोत्र के विषय में प्रश्न किया है, यह इस समय आपका वचन महा उपहास करनेवाला है ।।१५।। हे पर्वतराज! इनका गोत्र, कुल जानने को मुझ ब्रह्मा, विष्णुजी की भी सामर्थ्य नहीं है, दूसरे की तो क्या कथा है?।।१६।। हे शैल! जिनके एक दिन में कोटि ब्रह्म लय हो जाते हैं, उन शंकरजी का आपने काली के तपोबल से दर्शन किया है।।१७।। यह अरूप परब्रह्म निर्गुण प्रकृति से परे हैं, यह निराकार, निर्विकार मायाधीश परे से परे हैं।।१८।। यह स्वतन्त्र भक्तवत्सल कुल, गोत्र और नाम से रहित हैं, यह उनकी इच्छा से ही सगुण शरीरधारी और बहुत नामवाले हुए हैं।।१९।। जिनके समान किसी का श्रेष्ठ गोत्र नहीं, जो गोत्रहीन, कुलहीन और कुलीन भी हैं। वह इस समय निःसन्देह पार्वती के तप से आपके जामाता हैं, इसमें सन्देह नहीं।।२०।। उस लीलाविहारी ने चराचर को मोहित कर लिया है। हे गिरिसत्तम! कोई महापण्डित भी यथार्थ रूप से शंकरजी को नहीं जान सकता।।२१।। लिंगाकार महेशजी का मस्तक आज तक कोई न देख पाया। विष्णुजी पाताल तक गये और अन्त न पाकर विस्मित हुए।।२२।। हे पर्वतराज! बहुत कहने से क्या है? शिवजी की माया बड़ी दुस्तर है, उनके अधीन तीनों लोक तथा हरि ब्रह्मादि भी हैं।।२३।। हे पार्वती के पिता! इस कारण आपको इस प्रकार के वर में कुछ भी विचार न करना चाहिये और प्रयत्न से कन्यादान करना चाहिये।।२४।। ब्रह्माजी बोले- हे

ज्ञानी मुनि! शिवजी की इच्छा से कार्य करनेवाले आप इस प्रकार से कहकर शिवजी की प्रेरणा से शैलेन्द्र को प्रसन्न करते हुए बोले ।।२५।। नारदजी बोले– हे तात! हे शैलराज! आप सुनिये, हे पार्वती के पिता! मेरे वचन सुनकर आप शंकरजी के निमित्त अपनी कन्या प्रदान कीजिये ।।२६।। यह सगुण महेशजी लीला से अनेक रूप धारण करते हैं, इनका गोत्र और कुल केवल नाद ही है ।।२७।। सत्य ही शिव नादमय है और नाद शिवमय है और नाद और शिव इन दोनों में भेद नहीं है ।।२८।। सृष्टि में प्रथम उत्पन्न होने से लीला के सगुण रूप धारण करनेवाले शिवजी से ही नाद की महिमा प्रकट हुई है, इसी कारण इसे सबसे श्रेष्ठ कहा है ।।२९।। हे हिमालय! इसीसे मैंने मन में सर्वेश्वर शंकरजी से प्रेरित होकर वीणा बजाई थी ।।३०।। ब्रह्माजी बोले– हे मुने! इस प्रकार से गिरीश्वर हिमालय ने जब आपके वचन सुने, तब मन से उनका विस्मय जाता रहा और बहुत सन्तुष्ट हुए ।।३१।। तब सब देवता और मुनि विस्मय रहित होकर धन्य–धन्य कहने लगे ।।३२।। इस प्रकार से सब चतुर शिवजी का गाम्भीर्य जानकर विस्मित होकर महामोद से परस्पर कहने लगे ।।३३।। जिसकी आज्ञा से यह विशाल जगत् प्रकट हुआ है, जो परे से परे भी बोधरूप है, जो जगत् के संहारकर्ता, स्वतन्त्र गति करनेवाले, परमभाव से जानने योग्य हैं, यह त्रिलोकपति आज हम ने देखे, हमारे बड़े भाग्य हैं ।।३४।। तब वे पर्वतश्रेष्ठ मेरु आदि संभ्रम से एक साथ ही पर्वतश्रेष्ठ हिमालय से कहने लगे ।।३५।। पर्वत बोले– हे शैलराज! इस समय कन्यादान में आप स्थित हो जाइये, देर करने से कार्य नाश होता है, हम सत्य कहते हैं। अब विचार की आवश्यकता नहीं, इस कारण ईश्वर को अपनी कन्या दीजिये ।।३६।। ब्रह्माजी बोले– तब हिमालय ने इस प्रकार अपने सुहृदों के वचन सुनकर विधिपूर्वक अपनी कन्या का दान किया ।।३७।। हे परमेश्वर! मैं आपको इस कन्या का दान करता हूँ। हे सबके ईश्वर आप इसे अपनी भार्या के रूप में ग्रहण करें ।।३८।। तब त्रिजगत् की उत्पन्न करनेवाली अपनी कन्या को हिमालय ने मन्त्रपूर्वक शंकरजी के निमित्त दान कर दिया ।।३९।। इस प्रकार से पार्वती का हाथ शिवजी के हाथ में रखकर जैसे कोई समुद्र के पार हो जाय, इस प्रकार मन में बड़ा प्रसन्न हुआ ।।४०।। जब हिमालय ने वेदमन्त्र पढ़कर कन्या परमेश्वर को समर्पित की, तब प्रसन्न होकर शंकरजी ने पार्वती का हाथ ग्रहण किया ।।४१।। हे मुने! फिर पृथ्वी को स्पर्श करके 'कोदात् कस्मादात्' इस मन्त्र को लौकिकीगति दिखाते हुए शिवजी ने प्रेम से पढ़ा ।।४२।। उस समय आनन्द का देनेवाला सर्वत्र ही महोत्सव हुआ, दिवि, भूमि और अन्तरिक्ष सर्वत्र ही जय शब्द होने लगा ।।४३।। सब कोई प्रसन्न होकर 'साधु' शब्द और 'नमः' शब्द उच्चारण करने लगे, प्रेम से गन्धर्व गाने और अप्सरायें नृत्य करने लगीं ।।४४।। हिमालय के पुरवासी भी मन में बड़े प्रसन्न हुए। उस समय महोत्सवपूर्वक बड़ा मंगल हुआ ।।४५।। मैं,

विष्णुजी, इन्द्र तथा दूसरे देवता, सब मुनि सब कोई प्रसन्न हो गये। उनके मुखकमल प्रफुल्लित हो गये ।।४६।। तब हिमालय ने कन्यादान की सांगता प्रसन्न होकर शिवजी के निमित्त यथोचित्त प्रदान की ।।४७।। तब उनके बन्धुजनों ने भक्ति से पार्वती का पूजन करके शिवजी के निमित्त अनेक विधि–विधान से श्रेष्ठ द्रव्य दिया ।।४८।। और हिमालय ने भी प्रसन्न होकर पार्वती और शिवजी को प्रसन्नता के निमित्त अनेक प्रकार के द्रव्य दिये ।।४९।। हे मुनीश्वर! दहेज में अनेक प्रकार के रत्न, रत्नजटित पात्र तथा अनेक प्रकार के रत्नपात्र प्रदान किये ।।५०।। एक लाख गौ और सजे–सजाये सौ घोड़े, पार्वती में प्रेम करनेवाली श्रेष्ठ रत्नों से विभूषित एक लक्ष दासियां ।।५१।। एक कोटि हाथी और इतने ही रथ, जो सुवर्ण से जड़े और रत्नों के सार से निर्मित थे ।।५२।। इस प्रकार से हिमालय ने अपनी पुत्री गिरिजा शिवा परमेश शिवजी को विधिपूर्वक देकर कृतार्थता प्राप्त की ।।५३।। तब हिमालय ने यजुर्वेदी माध्यन्दिनी शाखा के स्तोत्र से परमेशान शंकरजी को हाथ जोड़कर श्रेष्ठवाणी से प्रसन्न किया ।।५४।। तब वेद के जाननेवाले उसने आज्ञा ले कर वे परम उत्सव से शिवा का अभिषेक करने लगे ।।५५।। देव अभिधान उच्चारण करके फिर उन्होंने पर्य्युक्षण विधि का विधान किया, हे मुने उस समय बड़े आनन्द का करनेवाला उत्सव हुआ ।।५६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

तृतीये पार्वतीखण्डे कन्यादानवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४८ ।।

*****

उनचासवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– तब ईश्वर ने मेरी आज्ञा से ब्राह्मणों द्वारा अग्नि को स्थापन करके पार्वती को अंक में लेकर होम किया ।।१।। ऋक्, यजु और सामवेद के मन्त्रों से अग्नि में शिवजी ने आहुति दी और काली के भ्राता मैनाक ने लाजाञ्जलि दी ।।२।। हे तात! तब लोकाचार का विधान करके शिवजी और पार्वती ने विधिपूर्वक अग्नि की प्रदक्षिणा की ।।३।। हे मुने! उस समय गिरिजापति शंकरजी ने एक अद्भुत चरित्र किया, वह सुनिये। मैं आपके प्रेम के कारण उसे वर्णन करता हूँ ।।४।। उसी समय शिवजी की माया से मोहित होकर मैंने देवी के मनोहर नखचन्द्र का दर्शन किया[१] ।।५।। हे मुने! दर्शनमात्र से ही मैं क्षुभित हो गया और काम से मेरा मन क्षोभ को प्राप्त हो गया[२] ।।६।।

१– यह अध्याय अध्यात्म तत्त्व के लिये हुए हैं।

२– आशय यह है कि, इस कथा में ब्रह्माजी का रजोगुण पात हो गया है।

बारंबार मोहित होकर मैं देवी के नखचन्द्र को देखने लगा और उसी के दर्शन से मेरा रेत पृथ्वी पर पतित हुआ (अर्थात् सृष्टि रचना का अहंकार पतित हुआ)।।७।। उस रेत के पात होने से मैं बड़ा लज्जित हुआ और चरणों से उसे छिपाते हुए गुप्तांग को मर्दित किया।।८।। हे नारदजी! यह देखकर महादेवजी को बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ और मुझ काममोहित को शीघ्र ही मारने की इच्छा की।।९।। हे नारदजी! उस समय सर्वत्र महान् हाहाकार होने लगा, सब मनुष्य कांप गये, संसार भयभीत हो गया।।१०।। हे मुने! तब विष्णुजी आदि देवता शिवजी की स्तुति करने लगे। उस समय उनके कोप का तेज मानो मार डालना ही चाहता था।।११।। देवता बोले– हे देव देव! हे जगत् में व्यापक! हे परमेश! हे सदाशिव! हे जगत्पति जगन्नाथ! हे जगन्मय! आप प्रसन्न हो।।१२।। हे ईश्वर! सब भावों के आप आत्मा, हेतु और ईश्वर हो, निर्विकार, अविनाशी, नित्य निर्विकल्प अक्षर और सबसे परे हो।।१३।। आपका आदि, अन्त, मध्य यह सब कुछ नहीं है, बाहर–भीतर सबसे आप परे हो, यह जो कुछ है, सो आप नहीं हो, आप सत्य स्वरूप ब्रह्म और चिद्रूप हो।।१४।। मुक्ति की कामनावाले दृढ़व्रत मुनिजन आप ही के चरणों को सब संग छोड़कर उपासना करते हैं।।१५।। आप पूर्णब्रह्म, अमृत स्वरूप, शोक रहित, निर्गुण और परम हो, आनन्दमात्र व्यग्रता रहित, विकार रहित आत्मा से भी परे हो।।१६।। संसार के उत्पत्ति, पालन और प्रलय के आप ही हेतु हो, हे विभु! हे आत्मा के ईश्वर! आपको कुछ अपेक्षा नहीं और दूसरे आपकी अपेक्षा करते हैं।।१७।। आप एक ही सत्–असत्, द्वैत–अद्वैत हो, जैसे सुवर्ण की वस्तुओं में सुवर्ण से कुछ भेद नहीं है।।१८।। अज्ञान से पुरुषों ने आप में विकल्प का आरोप किया है, इससे उपाधि में भ्रम है, निरुपाधि में भ्रम का प्रतीकार हो जाता है।।१९।। हे महेशान! हम धन्य हैं, जो आपके दर्शनमात्र से हम भक्तजनों को दृढ़ आनन्द मिला है। हे भक्तवत्सल! अब दया करें।।२०।। आप ही आदि–अनादि प्रकृति से परे पुरुष हो, आप विश्वेश्वर जगन्नाथ निर्विकार, परे से परे हो।।२१।। यह पितामह ब्रह्माजी रजोगुण की विश्वमूर्ति हैं और आपके प्रसाद से पुरुषोत्तम विष्णुजी सत्वगुण की मूर्ति हैं।।२२।। कालाग्नि रुद्र परमात्मा तम और गुणों से परे हैं, वह आप सदाशिव महेशान सर्वव्यापी महेश्वर हैं।।२३।। व्यक्त, महतत्त्व, पञ्चमहाभूत, तन्मात्रा और इन्द्रिय; हे महेश्वर! हे विश्व की मूर्ति! यह सब आपमें ही अधिष्ठान किये हुए हैं।।२४।। हे महादेव! हे परेश! हे करुणामय! हे शंकर! हे देवदेवेश पुरुषोत्तम! अब आप प्रसन्न हो जाइये।।२५।। सातों समुद्र आपके वस्त्र, दशों दिशा आपकी दश भुजा, हे विभो! द्युलोक आपका सिर, आकाश नाभि और वायु आपकी नासिका है।।२६।। अग्नि, रवि और सोम आपके नेत्र हैं, हे विभो! मेघ आपके केश हैं, नक्षत्र, तारे और ग्रह यह आपके भूषण हैं।।२७।। हे व्यापक परमेश्वर! हे देवेश! मैं किस प्रकार आपकी स्तुति कर सकता हूँ? हे शंकर!

आप मन वचन से तो परे हो।।२८।। आप पंचमुख रुद्र पचास कोटि मूर्तिवाले हो, तीनों लोकों के अधिपति, सर्वश्रेष्ठ विद्यातत्त्व के अधिपति आपको प्रणाम है।।२९।। आप कहने में नहीं आते, नित्य स्वरूप विद्युत के ज्वाला के रूपवाले हो, अग्निवर्ण देव शंकरजी के निमित्त हम प्रणाम करते हैं।।३०।। कोटि बिजली के समान प्रकाशमान, आठ कोण मनोहर रूप धारण करके आप इस लोक में स्थित हैं, आपको प्रणाम है।।३१।। ब्रह्माजी बोले- उनके यह वचन सुनकर परमेश्वर प्रसन्न हुए और मुझ ब्रह्माजी के निमित्त भक्तवत्सल ने शीघ्र ही अभय दिया।।३२।। उसी समय विष्णुजी आदि सब देवता और मुनि कुछेक मुस्कुराकर परम उत्सव करने लगे।।३३।। हे तात! मेरे उस रेत के बारंबार मर्दित होने से बहुत से परम उज्ज्वल कनके हो गये।।३४।। जिससे सहस्रों बालखिल्य ऋषि प्रकट हुए और वे वीर्य के कनकों से प्रगट होकर अपने तेज से प्रज्ज्वलित होने लगे।।३५।। हे मुने! तब वे सब ऋषि मेरे समीप स्थित होकर परम प्रीति से पिता-पिता कहने लगे।।३६।। तब ईश्वर की इच्छा से नारदजी ने चित्त में क्रोध कर बालखिल्य ऋषियों से कहा।।३७।। नारदजी बोले- आप सब एक साथ ही गन्धमादन पर्वत पर जाओ, आप यहां स्थित मत हो, आपका यहां प्रयोजन नहीं है।।३८।। वहां आप बहुतसा तप करके मुनीश्वर हो जाओगे और सूर्य के शिष्य हो जाओगे, मैंने यह बात शिवजी की आज्ञा से कही है।।३९।। ब्रह्माजी बोले- यह वचन सुनते ही वे सब ऋषि भगवान् शंकरजी को प्रणाम करके बहुत शीघ्र गन्धमादन पर्वत पर चले गये।।४०।। हे मुनीश्वर! विष्णुजी आदि ने भी उस समय मुझे समझाया और महात्माओं की प्रेरणा से मैं निर्भय हुआ।।४१।। उस समय सब कार्य के करनेवाले तथा दुष्टों के गर्व हरण करनेवाले भक्तवत्सल शंकरजी की स्तुति करने लगा।।४२।। हे देव देव! हे महादेव! हे करुणा सागर! हे प्रभो! आप ही सबके कर्ता, भर्ता और सर्वथा हर्ता हो।।४३।। आपकी इच्छा से ही यह चराचर स्थित हो रहा है, जैसे नाथ से बैल नथे होते हैं, इस प्रकार आपसे यह सब नथ रहा है।।४४।। यह कह कर मैंने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और विष्णुजी आदि ने भी महेश्वरजी की स्तुति करके उनको प्रसन्न किया।।४५।। सब की शुद्ध स्तुति सुनकर और मेरी दीनता देखकर महेश्वरजी विष्णुजी आदि सब पर प्रसन्न हुए।।४६।। और अभय करके प्रीति युक्त मन से मुझे सृष्टि करने का वर दिया। हे मुने! उस समय सबने ही सुख और आनन्द माना।।४८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
तृतीये पार्वतीखण्डे एकोनपञ्चाशोऽध्यायः।। ४९ ।।

*****

पचासवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– हे मुने! तब मैंने शिवजी की आज्ञा से मुनिगणों के साथ परम प्रीति से पार्वती और शिवजी के शेष कृत्यों का सम्पादन किया ।।१।। हे नारदजी! तब दोनों के सिर पर अभिषेक किया गया और ब्राह्मणों ने आदर से शिवजी का दर्शन कराया ।।२।। इसके उपरान्त हृदय स्पर्श का कार्य कराया गया। हे विप्रेन्द्र! बड़े महोत्सव पूर्वक स्वस्तिवाचन हुआ ।।३।। फिर शिवजी ने ब्राह्मणों की आज्ञा से पार्वती के सिर में सिन्दूर लगाया, उस समय पार्वती की शोभा अद्‌भुत और वर्णन योग्य हो गई ।।४।। फिर ब्राह्मणों की आज्ञा से शिवा शिव दोनों एक आसन पर विराजे और भक्तों के चित्त में आनन्द उपजानेवाली परम शोभा को प्राप्त हुए ।।५।। फिर अपने स्थान पर आकर अद्‌भुत लीला करनेवाले उन दोनों ने प्रतिज्ञापूर्वक मिष्ट प्राशन किया ।।६।। जब इस प्रकार से विवाह का कृत्य पूर्ण हो चुका, तब शिवजी ने लोकलीला के अनुसार मुझ ब्रह्मा को पूर्ण पात्र दिया ।।७।। फिर शिवजी ने आचार्य के निमित्त विधिपूर्वक गोदान किया, दूसरे जो मंगल देनेवाले महादान हैं, वे भी परम प्रेम से किये ।।८।। फिर पृथक्–पृथक् ब्राह्मणों के निमित्त शत–शत सुवर्ण मुद्राएँ दीं तथा अनेकों रत्न कोटि और अनेक प्रकार के द्रव्य दिये ।।९।। उस समय सब देवता और चराचर दूसरे जीव बड़े प्रसन्न होकर जयजयकार करने लगे ।।१०।। और सब प्रकार से चारों ओर मंगलगान होने लगा और सब आनन्द देने वाली बाजाओं की ध्वनि होने लगी ।।११।। विष्णुजी, मैं तथा दूसरे देवता, ऋषि, मुनि गिरि की आज्ञा से परम प्रसन्न होकर अपने–अपने ठहरने के स्थानों को गये ।।१२।। उस समय हिमालय के नगर की स्त्रियाँ शिवजी को लेकर लहकोर के स्थान में गईं ।।१३।। और वे स्त्रियाँ परम आदर से लौकिकाचार करने लगीं और सब ओर से आनन्द करनेवाला महोत्साह हुआ ।।१४।। तब वे शिवा शिव को लिवा ले जाकर दिव्य वासालय में ले जाकर लौकिकाचार करने लगीं ।।१५।। इस प्रकार गिरिराज के नगर की स्त्रियों ने समीप आकर मंगल कर्म से निवृत्त होकर दोनों स्त्री–पुरुषों को घर में प्रविष्ट किया ।।१६।। और जय ध्वनि कर के ग्रन्थि खोलने लगीं, इसी समय हास्य और कटाक्षों से उनके शरीर पुलकायमान हो गये ।।१७।। वे स्त्रियाँ निवासघर में प्रविष्ट होकर पार्वती परमेश्वर को देखकर अपने भाग्य की बड़ाई करने लगीं ।।१८।। वह महास्वरूपवाला वेष सम्पूर्ण मनोहरता से युक्त तथा नवीन यौवन में स्थित कामिनियों का चित्त मोहित करनेवाला था ।।१९।। कुछेक हास्य से प्रसन्न मुख कटाक्षों से सुन्दर, अनेक रत्नों से विभूषित महीन वस्त्र धारण

किये हुए।।२०।। उस समय उन दोनों के दर्शन करने की परम प्रीति और आदर से षोडश (वर्षीया) दिव्य नारियाँ वहां आकर प्राप्त हुईं।।२१।। सरस्वती, लक्ष्मी, सावित्री, गंगा, अदिति, शची-इन्द्राणी, लोपमुद्रा, अरुन्धती।।२२।। अहल्या, तुलसी, स्वाहा, रोहिणी, वसुन्धरा, शतरूपा और संज्ञा तथा रति यह देवताओं की स्त्रियाँ आईं।।२३।। देवकन्या, नागकन्या, मनोहर मुनिकन्या इत्यादि जो वहां आईं थी, उनकी संख्या करने में कौन समर्थ है?।।२४।। उनको भी रत्नों के आसन दिये गये, वे शिवजी के समीप बैठीं और वह क्रम से मधुर परिहास के मधुर वचन बोलीं।।२५।। सरस्वती बोली- हे महादेव! इस समय प्राणों से अधिक प्यारी सतीदेवी आपके समीप प्राप्त हुई, हे कामुक! अब इनका मुखचन्द्र देखकर विरह का दुःख त्याग दीजिये।।२६।। हे काल के अधिपति! आप इस सती के साथ आलिङ्गनपूर्वक अपना समय बिताइये और मेरे आश्रम से किसी समय भी आपका वियोग न हो।।२७।। लक्ष्मी बोली- हे देवेश! अब लज्जा को छोड़कर सती को अपनी गोदी में लो, जिसके बिना प्राण जाते थे, अब उसके प्रति लज्जा कैसी?।।२८।। सावित्री बोली- हे शिवजी! प्रेम से सती को भोजन कराके आप शीघ्र भोजन कीजिये, किसी बात का खेद मत माने, आचमन करके सती को कर्पूर मिश्रित ताम्बूल दीजिये।।२९।। जाह्नवी बोली- आप सुवर्ण की कान्तिवाली कन्घी को हाथ में लेकर प्यारी के केशों को मार्जन कीजिये, स्वामी के सौभाग्यवाली स्त्रियों को इससे अधिक और सुख नहीं है।।३०।। अदिति बोली- हे शंकर! भोजन कर चुकने पर आप मुखशुद्धि के निमित्त आचमन कराने को पार्वती को जल दीजिये, ऐसा दम्पत्ति का प्रेम दुर्लभ है।।३१।। इन्द्राणी बोली- जिसके निमित्त इतने विलाप किये थे तथा जिसके निमित्त मोह से भ्रमते फिरे थे, उसे गोदी में लेने से आपको अब क्या लज्जा है?।।३२।। लोपमुद्रा बोली- हे शंकर! यह व्यवहार है, वासगृह में भोजन करके शिवा को ताम्बूल देकर शयन कीजिये, यही स्त्रियों का व्यवहार है।।३३।। अरुन्धती बोली- मेना आपको शिवा नहीं देना चाहती थी, मैंने ही अनेक प्रकार से समझा कर राजी किया था, अब इनके संग सुरति करें।।३४।। अहल्या बोली-आप वृद्धा अवस्था को छोड़ कर तरुण हो जाइये, जिससे मेना पुत्रीदान करके आपको माने।।३५।। तुलसी बोली- पहले आपने सती को त्यागा, फिर कामदेव को जलाया, फिर पार्वती के निमित्त आपने वसिष्ठजी को कैसे भेजा?।।३६।। स्वाहा बोली- हे महादेव! स्थिर होकर इस समय स्त्रियों के वचन सुनिये, विवाहों में यह व्यवहार होता है कि स्त्रियाँ प्रगल्भ हो जाती हैं।।३७।। रोहिणी बोली- हे कामशास्त्र में पण्डित! आप पार्वती की कामना पूर्ण कीजिये, हे कामी! आप स्वयं कामिनीरूप कामसागर को पार कीजिये।।३८।। वसुन्धरा बोली- हे भाव के ज्ञाता! आप काम से आर्त हुई स्त्रियों के भाव को जानते हो, हे शंकर! अपने स्वामी ईश्वर की कौन नहीं

निरन्तर रक्षा करता है ।।३९।। शतरूपा बोली– भूखा पुरुष दिव्य भोग के भोगे बिना सन्तुष्ट नहीं होता है, शंकरजी जिस प्रकार से तुष्ट हों, वह स्त्रियों को करना उचित है ।।४०।। संज्ञा बोली– हे सखीजनो! रत्न का दीपक जलाकर और ताम्बूल रखकर परम प्रीति से एकान्त में पलंग बिछाकर उस पर शीघ्र ही पार्वती और शंकरजी को स्थापन कर दें।।४१।। ब्रह्माजी बोले– स्त्रियों के यह वचन सुनकर स्वयं शिवजी उनसे कहने लगे, जो भगवान् निर्विकार और योगीन्द्रों के गुरु के गुरु हैं।।४२।। शंकरजी बोले– हे देवियो! इस प्रकार के वचन हमारे समीप मत कहो, आप साध्वी, जगत् की माता हो, अपने पुत्र से चपलता किस प्रकार करती हो।।४३।। ब्रह्माजी बोले– शिवजी के यह वचन सुनकर सब देवताओं की स्त्रियाँ लज्जित हो गईं और संभ्रम से मौन होकर चित्रपुतली के समान लिखी रह गईं।।४४।। फिर मिष्ठान्न भोजन कर तथा आचमन कर शिवजी बड़े प्रसन्न हुए तथा भार्या सहित कर्पूर युक्त ताम्बूल का सेवन किया।।४५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
तृतीये पार्वतीखण्डे परिहासवर्णनं नाम पञ्चशत्तमोऽध्यायः ।। ५० ।।

*****

एकावनवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– उस समय अनुकूल समय जानकर प्रसन्न होकर भक्तवत्सल दीनानाथ शंकरजी से रति बोली।।१।। रति बोली– आपको ग्रहण करके पार्वती ने अति दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त किया है, मेरे प्राणनाथ को आपने किस निमित्त भस्म किया?।।२।। आत्मा में कामव्यापार होने से मेरे पति की जीवयात्रा सम्पादन कीजिये और मेरे वियोग का सन्ताप दूर कीजिये।।३।। आपके विवाहोत्सव में सभी मनुष्य प्रसन्न हैं, हे महेशान! अकेली मैं ही अपने पति के बिना दुःखिनी हूँ।।४।। हे देव शंकर! प्रसन्न होकर आप मुझे सनाथ कीजिये, हे दीनबन्धु! हे परम प्रभु! जो–जो आपने कहा है, उसे सत्य कीजिये।।५।। इस चराचर त्रिलोकी में आपके बिना मेरा दुःख नष्ट करने को कौन समर्थ है? ऐसा जान कर आप मेरे ऊपर कृपा करें।।६।। सबको आनन्द देनेवाले आपके इस विवाहोत्सव में सब आनन्दी हैं, हे नाथ! हे कृपासागर! हे दीनरक्षक! मेरा मनोरथ पूर्ण कर के मुझे भी उत्सववाली कीजिये।।७।। इसमें सन्देह नहीं कि, मेरे स्वामी जीवित होते ही पार्वती के सहित आपका विहार पूर्ण होगा।।८।। आप परमेश्वर हो, इस कारण सब कुछ पूर्ण करने में समर्थ हो। हे सबके ईश्वर! बहुत कहने से क्या है? आप मेरे पति को जीवित कीजिये।।९।। ब्रह्माजी बोले– यह कह

कर वह गांठ में बंधी हुई काम की भस्म शंकरजी के आगे रखकर उनके सम्मुख 'हा नाथ! हा नाथ!' कहकर रुदन करने लगी ।।१०।। रति का रोना सुन कर दूसरे देवताओं की स्त्रियाँ भी रोने लगीं और वे सब बड़े दीन वचन बोलने लगीं ।।११।। देवियाँ बोलीं- आप भक्तवत्सल नामवाले दीनबन्धु दयासागर हो, आप काम को जीवित करके रति को भी प्रसन्न कीजिये, आपको प्रणाम हैं ।।१२।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार उनके वचन सुनकर महेश्वरजी प्रसन्न हुए और करुणासागर प्रभु ने तत्काल कृपादृष्टि की ।।१३।। शिवजी की अमृतमयी दृष्टि से उस भस्म में से कामदेव वैसे ही रूप, वेष, चिह्न, आत्मा से अद्भुत सुन्दर और मूर्तिमान् हो कर निकल खड़ा हुआ ।।१४।। वही रूप, वही आकार, वही हास्य, उक्त धनुषबाण हाथ में लिये पति को देखकर रति ने महेश्वरजी को प्रणाम किया ।।१५।। और प्राणनाथ पति को जीवित देखकर कृतार्थ हो गई, हाथ जोड़कर देव शंकरजी को प्रणाम करने लगी ।।१६।। स्त्री सहित कामदेव की स्तुति सुनकर शंकरजी करुणामय उन दोनों स्त्री-पुरुषों से कहने लगे ।।१७।। शंकरजी बोले- हे काम! स्त्री सहित तुम्हारी स्तुति सुनकर मैं प्रसन्न हुआ हूँ, हे स्वयम्भव! वर मांगो, मैं तुमको शीघ्र वर देना चाहता हूँ।।१८।। ब्रह्माजी बोले- शिवजी के यह वचन सुनकर कामदेव बड़े आनन्द को प्राप्त हुआ और नम्रता से हाथ जोड़कर गद्गद वाणी से कहने लगा ।।१९ ।। काम बोला- हे देव देव महादेव! हे करुणासागर प्रभो! हे सर्वेश! यदि आप प्रसन्न हैं, तो मुझे आनन्दित कीजिये ।।२०।। हे प्रभो! जो पहले हुआ है, उस मेरे अपराध को आप क्षमा कीजिये, अपने जनों में परम प्रीति और अपने चरणों की भक्ति आप मुझे दीजिये ।।२१।। ब्रह्माजी बोले- कामदेव के यह वचन सुनकर परमेश्वर प्रसन्न हुए और हँसते हुए करुणासागर ने कहा कि, 'ऐसा ही होगा' ।।२२।। ईश्वर ने कहा- हे काम! हे महामते! मैं प्रसन्न हूँ, तुम भय त्याग करो, अब तुम विष्णुजी के समीप जाकर बाहर स्थित हो ।।२३।। ब्रह्माजी बोले- शिवजी प्रभु के ऐसे वचन सुनकर कामदेव ने स्तुति और परिक्रमा करके बाहर जाकर हरि आदि देवताओं को प्रणाम कर स्थिति की ।।२४।। देवताओं ने काम से सम्भाषण कर उसे शुभ आशीर्वाद दिया और शिवजी को हृदय में स्मरण करके वे विष्णुजी आदि देवता प्रसन्न होकर बोले ।।२५।। देवता बोले- हे काम! तुम धन्य हो जो शिवजी से दग्ध होकर फिर जीवित हुए, सबके ईश्वर ने सत्त्वांश कृपादृष्टि से तुमको जीवित किया है ।।२६।। कोई सुख-दुःख का देनेवाला नहीं है, पुरुष अपना सुख-दुःख भोगता है, समय पर ही रक्षा और विवाह होता है, यह निषेक (होनहार) कौन निवारण कर सकता है?।।२७।। ब्रह्माजी बोले- देवताओं ने इस प्रकार से कहकर सुखपूर्वक उसका सम्मान किया और मनोरथों को प्राप्त होकर विष्णुजी आदि सब देवता वहां स्थित हुए ।।२८।। और कामदेव ने भी शिवजी की आज्ञा से वहां निवास किया, उस समय 'जय' शब्द, 'नमस्कार'

शब्द और 'साधु' शब्द होने लगा ।।२९।। उस समय शिवजी ने निवासघर में पार्वती को बांई ओर बैठाकर उन्हें मिष्टान्न भोजन कराया और पार्वती ने प्रसन्न होकर शंकरजी को मिष्टान्न भोजन कराया ।।३०।। तब शिवजी ने वहां सम्पूर्ण लोकाचार करके मेना और शैलराज से पूछकर जनवासे में गमन किया ।।३१।। हे मुने! उस समय बड़ा महोत्सव और वेदध्वनि हुई और वहां के लोग चार प्रकार के बाजे बजाने लगे ।।३२।। शिवजी ने अपने स्थान में आकर मुनियों को प्रणाम किया, यद्यपि सब देवता उनको प्रणाम करते हैं, तथापि लौकिक आचार से मुझे और विष्णुजी को प्रणाम किया ।।३३।। उस समय जय 'शब्द' और 'नमस्कार' शब्द उच्चारण होने लगा और सब विघ्नों को दूर करनेवाली सुन्दर वेदध्वनि होने लगी ।।३४।। उस समय विष्णुजी, मैं, इन्द्र, सब देवता, सुर, ऋषि, सिद्ध, उपदेवता और नाग पृथक्-पृथक् शिवजी की स्तुति करने लगे ।।३५।। देवता बोले- हे शंकर! हे सबके आधार! हे जय नामवाले! आपकी जय हो। हे महादेव! हे विश्व का पालन करनेवाले प्रभो! आपकी जय हो ।।३६।। हे कालीपते! हे स्वामिन्! हे जय और आनन्द के बढ़ानेवाले! आपकी जय हो, हे त्र्यम्बक (त्रिलोचन) सबके पति, माया के पति! हे व्यापके! आपकी जय हो ।।३७।। हे निर्गुण! हे निष्काम! हे कारण से परे! हे सर्वगामी! हे सब लीला के आधार अनेक रूपधारी! आपको प्रणाम है ।।३८।। हे अपने भक्त की कामना पूर्ण करनेवाले, उसी स्थल में प्रकट होनेवाले करुणामय! आपकी जय हो, हे आनन्दमय सद्रूप माया गुणों की आकृति वाले! आपकी जय हो ।।३९।। हे उग्ररूप, सबके सुखदायक, सबके आत्मा, दीनबन्धु, दयामय, विकार रहित, मायापति, वाणी-मन से परे विग्रहवाले, आपकी जय हो ।।४०।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार गिरिजापति प्रभु महेशान की स्तुति कर विष्णुजी आदि देवता परमप्रीति से शिवजी की सेवा करने लगे ।।४१।। हे नारदजी! तब लीला से शरीर धारण करनेवाले महेशान शंकरजी ने उन सब देवताओं का अधिक सम्मान किया ।।४२।। हे तात! फिर वे सब विष्णुजी आदि देवता उन महेश्वरजी की परम आज्ञा को प्राप्त होकर बहुत सुख और प्रसन्नता से सादर अपने-अपने जनवास के स्थान को गये ।।४३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

एकपञ्चशत्तमोऽध्यायः ।। ५१ ।।

*****

बावनवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले- हे तात! तब भाग्यवान् हिमालय ने सबके भोजन के निमित्त अपने आंगन में समारोह किया ।।१।। उस आंगन को भली प्रकार धुलाकर लिपाया और अनेक प्रकार की सुगन्धित वस्तुओं से उसे अलंकृत किया ।।२।। तब हिमालय ने सब देवता तथा दूसरे बृहत् देवताओं को अपने पुत्रों तथा दूसरे शैलों द्वारा बुलवाया ।।३।। हे मुने! हिमालय के बुलावे को सुनकर शंकरजी, विष्णुजी तथा अन्य सब देवता परम प्रसन्नता से भोजन करने के निमित्त चले ।।४।। हिमालय ने प्रभु और सब देवताओं का यथाविधि सत्कार करके अपने घर में प्रसन्नतापूर्वक श्रेष्ठ आसनों पर बैठाया ।।५।। फिर भोजन करने की अनेक वस्तुओं को परोस कर हाथ जोड़कर सबसे भोजन के निमित्त प्रार्थना की ।।६।। तब वे विष्णुजी आदि सब देवता प्रसन्न तथा सम्मानित होकर सदाशिवजी को आगे करके भोजन करने लगे ।।७।। तब वे सब मिलकर एक साथ पंक्ति बांधकर हास्य करते हुए पृथक्-पृथक् भोजन करने लगे ।।८।। नन्दी, भृंगी, वीरभद्र तथा वीरभद्र के गण यह सब महाभाग कुतूहल सहित पृथक्-पृथक् भोजन करने लगे ।।९।। इन्द्र के सहित सब देवता और लोकपाल अनेक शोभा के सहित महाभाग्यता के कारण अनेक रसों के सहित भोजन करने लगे ।।१०।। सब मुनि, विप्र, भृगु आदि ऋषि पंक्ति में बैठकर बड़े आनन्द से पृथक्-पृथक् भोजन करने लगे ।।११।। इसी प्रकार चण्डी के सब गण आनन्द से भोजन करने लगे और प्रसन्नता से महाहास-परिहास करते, कुतूहल करने लगे ।।१२।। इस प्रकार सब ने आनन्द से भोजन कर आचमन किया और फिर विष्णुजी आदि देवता आनन्द से अपने-अपने निवासस्थान को गये ।।१३।। मेना की आज्ञा से सब स्त्रियों ने शिवजी से भक्तिपूर्वक प्रार्थना करके उनको निवास के घर में ठहराया ।।१४।। मेना के बिछाये हुए परम मनोहर रत्नों के सिंहासन पर शिवजी बैठे और प्रसन्नता से उस वासमन्दिर को देखा ।।१५।। जहां सैकड़ों रत्नों के दीपक प्रकाशित हो रहे थे, जो रत्नों के पात्र और रत्नों से शोभायमान था तथा मोती और मणियों से विराजमान था ।।१६।। रत्नों के दर्पणों से शोभायमान श्वेत चामरों से मण्डित तथा मुक्तामणियों की मालाओं से वेष्टित परम ऋद्धिवाला ।।१७।। अनुपम, महादिव्य, परम विचित्र और चित्त को प्रसन्न करनेवाला मनोहर था, अनेक रचना उस स्थल में की गई थीं ।।१८।। शिवजी के वरदान से उसका महाप्रभाव हो रहा था तथा शिवलोक के समान उसकी कान्ति हो रही थी ।।१९।। अनेक प्रकार के सुगन्धित द्रव्यों से वह स्थान सुवासित था, जिसमें बड़ा प्रकाश था, चन्दन अगर से संयुक्त और

फूलों की शय्या से युक्त ।।२०।। अनेक प्रकार के चित्र–विचित्र पदार्थों से युक्त रत्नों के सारों से रचित श्रेष्ठ हार से युक्त विश्वकर्मा द्वारा निर्माण किया गया ।।२१।। कहीं देवताओं के निमित्त निर्माण किया हुआ मनोहर वैकुण्ठ, कहीं ब्रह्मलोक और कहीं लोकपालों का लोक था ।।२२।। कहीं मनोहर कैलास, कहीं इन्द्र का मन्दिर, कहीं सबके ऊपर विराजमान शिवलोक था ।।२३।। महेश्वरजी इस प्रकार के घर और आश्चर्य को देखकर पर्वतराज हिमालय की प्रशंसा करते हुए बड़े प्रसन्न हुए ।।२४।। वहां अतिरमणीय रत्नों के उत्तम पलंग पर लीलापूर्वक प्रसन्नता से वह परमेश्वर स्थित हुए ।।२५।। इधर हिमालय ने अपने सब भाइयों को आनन्द सहित भोजन कराया और प्रेम से दूसरे लोगों का भी सत्कार करके उसने शेष कृत्य पूर्ण किया ।।२६।। इस प्रकार शैलेश के सब कार्य करने और शंकरजी के सो रहने पर सारी रात बीत गई, प्रभात काल हुआ ।।२७।। प्रभात काल होने पर धैर्य और उत्साह में भरकर वादक लोग अनेक प्रकार के बाजे बजाने लगे ।।२८।। विष्णुजी को आदि लेकर सब देवता वहां उपस्थित हुए और अपने इष्टदेव शंकरजी को स्मरण करके सब सज गये ।।२९।। अपने–अपने वाहन सजाकर सब कैलास पर जाने के लिये उत्कण्ठित हुए और यह सब करके धर्म को शिवजी के समीप भेजा ।।३०।। नारायण की आज्ञा से धर्म शिवजी के निवास घर में जा कर वह योगी योगेश्वर शंकरजी से समयोचित वचन कहने लगे ।।३१।। धर्म ने कहा– हे शंकर! हे भव! आपका कल्याण हो, आप उठिये। हे प्रमथों के अधिपति! जनवासे में चलकर अपने भक्तों को कृतार्थ कीजिये ।।३२।। ब्रह्माजी बोले– धर्मराज के यह वचन सुनकर शंकरजी ने हँसकर कृपादृष्टि से देखा और पलंग पर से उठ बैठे ।।३३।। और हँसते हुए धर्म से कहा– तुम आगे चलो, मैं शीघ्र ही निःसन्देह पीछे आता हूँ ।।३४।। ब्रह्माजी बोले– शंकरजी के इस प्रकार से कहने पर वह जनवास में गये और पीछे से भगवान् शंकरजी ने भी वहां जाने की इच्छा की ।।३५।। यह बात देखकर शंकरजी के पदकमलों का दर्शन करके स्त्रीजनों ने मंगलगान और महोत्सव किया ।।३६।। तब शिवजी लोकाचार के निमित्त प्रातःक्रिया सम्पादन करके मेना और हिमालय से पूछ कर जनवासे में गये ।।३७।। हे मुने! उस समय बड़ा महोत्सव और वेद की ध्वनि हुई और मनुष्यों ने चार प्रकार के बाजे बजाये ।।३८।। शिवजी ने जनवासे में अपने स्थान पर जाकर मुनियों को प्रणाम किया तथा लोकाचार से हरि को और मुझे प्रणाम किया, सब देवताओं ने उनको प्रणाम किया ।।३९।। उस समय 'जय' शब्द, 'नमः' शब्द होने लगा और सुखदायक वेदध्वनि से महाकोलाहल होने लगा ।।४०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
तृतीये पार्वतीखण्डे वरभोजनशिवशयन वर्णनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।। ५२ ।।

*****

तिरपनवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– हे नारदजी ! तब विष्णुजी आदि सब देवता, मुनि तपोधन आवश्यक कर्म करके गिरि से विदा के लिये कहने लगे ।।१।। तब हिमालय स्नान करके और यत्न से अपने इष्ट वर्गों को पूजन करके पुर के बन्धुजनों को बुलाकर प्रेम से जनवासे को चले ।।२।। वहां शंकरजी की पूजा करके प्रेम से प्रार्थना की, कुछ दिन तक सबके सहित मेरे स्थान पर रहिये ।।३।। हे शम्भो ! मैं आपके दर्शन से ही कृतार्थ हो गया हूँ, इसमें सन्देह नहीं। मेरा घर धन्य है, जो आप देवताओं सहित मेरे घर पधारे हैं ।।४।। ब्रह्माजी बोले– शैलराज ने इस प्रकार से बहुत कुछ कह कर दोनों हाथ जोड़ प्रणाम करके विष्णुजी आदि देवताओं के साथ प्रभु को निमन्त्रित किया ।।५।। तब वे शिवजी के सहित आदर मन से वहां प्राप्त होकर मुनि और देवता विष्णुजी आदि के सहित बोले ।।६।। हे गिरिराज! आप धन्य है, आपकी कीर्ति महान् है, आपके समान त्रिलोकी में कोई पुण्यात्मा नहीं है ।।७।। जिनके द्वार पर परब्रह्म सत्पुरुषों को गति भक्तवत्सल भगवान् शंकरजी अपने भक्तों सहित कृपा कर पधारे ।।८।। आपने परम मनोहर जनवासा देकर हमारा बड़ा सम्मान किया है, हे गिरीश्वर! ऐसे अपूर्व भोजन आपने हमको दिये है, जिनका हम वर्णन नहीं कर सकते ।।९।। यह बात वहां कुछ आश्चर्य की नहीं है, जहां साक्षात् अम्बिकादेवी निवास करती है, सब ही बात परिपूर्ण है और आनेवाले हम भी धन्य हैं ।।१०।। इस प्रकार से परस्पर एक ने दूसरे की प्रशंसा की। वेद, साधू और जयध्वनिपूर्वक वहां परस्पर बड़ा उत्सव हुआ ।।११।। मङ्गलगान होने लगा, अप्सरागण नृत्य करने लगीं, मागध स्तुति करने लगे और बहुतसा द्रव्य दान दिया ।।१२।। इस प्रकार देवेश को आमन्त्रण कर गिरिराज अपने घर आये और अनेक विधि–विधान से भोजन के उत्सव का आरम्भ किया ।।१३।। और भोजन कराने के लिये परम प्रीति से प्रभु को ले आये, बड़े कुतूहलपूर्वक शंकरजी सब बरातियों सहित आये ।।१४।। तब हिमालय ने आदर से शंकरजी के, विष्णुजी के और मेरे चरणों को धो कर पश्चात् सब देवताओं और मुनियों के चरण धोये ।।१५।। तब गिरिराज ने उस मण्डप में आये हुए अपने अन्य बन्धुजनों को प्रेमपूर्वक बुलाया ।।१६।। उन सबको बड़े रसीले स्वादिष्ट अन्नों से गिरिराज ने तृप्त किया और शिवजी, विष्णुजी तथा मुझ सहित सब देवता भोजन करने लगे ।।१७।। उस समय पुर की स्त्रियां प्रेम से गारी गाने लगीं और मृदुवाणी से हंसती हुई यत्न से देवताओं को देखने लगीं ।।१८।। हे नारदजी! वे सब विधिपूर्वक भोजन के उपरान्त आचमन करके मुदित और तृप्त होकर सब अपने

स्थानों को गये ।।१९।। मुने! इस प्रकार तीसरे दिन भी सबका सम्मान हुआ, गिरीश ने विधिपूर्वक दान, मान और आदर किया ।।२०।। चौथा दिन प्राप्त होने पर शुद्धतापूर्वक विधिपूर्वक अखण्डित चतुर्थी कर्म किया ।।२१।। उस समय साधुवाद और जयध्वनि पूर्वक महान् उत्सव हुआ, बहुतसा दान, गान और नृत्य विधि हुई ।।२२।। पाँचवां दिन प्राप्त होने पर प्रसन्न होकर सब देवता अति प्रेम से गिरिराज से बिदा के निमित्त कहने लगे ।।२३।। यह सुनकर गिरिराज हाथ जोड़कर देवताओं से बोले– हे देवताओ! मेरे ऊपर कृपा करके आप और कुछ दिन यहां रहें ।।२४।। ऐसी प्रार्थना करके स्नेह से शंकरजी को, विष्णुजी को, मुझे और सब देवताओं को कितने ही दिनों तक आदर से टिकाया ।।२५।। इस प्रकार वहां निवास करते बहुत से दिन बीत गये, तब देवताओं ने हिमालय के समीप सप्तर्षियों को भेजा ।।२६।। उन्होंने गिरिराज और मेना को समयोचित बातें कहकर समझाया और विधिपूर्वक प्रेम से प्रशंसा करते हुए शिवतत्त्व कहा ।।२७।। हे मुने! उनके समझाने से हिमालय ने बिदा स्वीकार की और शिवजी देवताओं के सहित बिदा होने के लिये हिमालय के घर गये ।।२८।। जब देवेश अपने कैलास को देवताओं सहित चलने को उद्युक्त हुए, उस समय मेना ऊँचे स्वर से रोकर कृपासागर शंकरजी से बोली ।।२९।। मेना बोली– हे कृपासागर! कृपा करके आप मेरी पुत्री का पालन कीजिये, आप आशुतोष हो, पार्वती के सहस्र दोषों को भी आप क्षमा कीजिये ।।३०।। यह मेरी कन्या जन्म से आपके चरणकमल की भक्त है, सोते-जागते में महादेव प्रभु के बिना दूसरे का स्मरण नहीं है ।।३१।। आपकी भक्ति के सुनते ही इसके नेत्रों में हर्ष के आंसू आते हैं और तनु रोमाञ्चित हो जाती है। हे मृत्युञ्जय! आपकी निन्दा से यह मृतक के समान मौन हो जाती है ।।३२।। ब्रह्माजी बोले– ऐसा कहकर मेना उस समय शंकरजी को अपनी पुत्री सौंपकर बहुत ऊँचे स्वर से रोते हुए उन दोनों के आगे गिर पड़ी ।।३३।। तब शंकरजी ने मेना को समझाया और हिमालय को आमन्त्रित कर महोत्सव के सहित देवताओं के साथ यात्रा की ।।३४।। तब वे सब देवता हिमालय की बड़ाई करते हुए शंकरजी और अपने गणों के सहित मौन होकर वहां से चले ।।३५।। पुरी के बाहर हिमालय के एक उपवन में प्रसन्न होकर विष्णुजी के सहित सब देवता शिवजी के आगमन की इच्छा करते हुए ठहरे ।।३६।। हे मुनीश्वर! इस प्रकार देवताओं सहित शिवजी के बिदा होने का वृत्तान्त कहा, शिवजी की यात्रा सुनकर सब कोई विरह और उत्सव से आकुल हो गये ।।३७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
तृतीये पार्वतीखण्डे शिवयात्रावर्णनं नाम त्रिपञ्चशत्तमोऽध्यायः ।। ५३ ।।

*****

चौपनवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले- तब सप्तर्षियों ने जाकर हिमालय से कहा, हे गिरे! आज अच्छा दिन है, अब अपनी पुत्री की यात्रा कीजिये ।।१।। हे मुनीश्वर! यह वचन सुनकर हिमालय भी पार्वती के महावियोग से कुछ काल तक तो व्याकुल हो गये ।।२।। फिर पर्वतराज ने कुछ काल में चेतना को प्राप्त होकर 'ऐसा ही होगा' यह कहकर मेना को सन्देशा भेजा ।।३।। हे मुने! पति का सन्देशा सुनकर मेना ने हर्ष शोक से संयुक्त हो कर पुत्री को बिदा करने की सामग्री एकत्रित की ।।४।। हे मुने! वेद और कुल का आचार विधिपूर्वक किया और हिमालय की पत्नी ने सब उत्सव विधि सम्पादन की ।।५।। पार्वती को अनेक रत्नों के गहनों से तथा श्रेष्ठ वस्त्रों से भूषित किया, बारह आभूषणों से युक्त राजसम्मत शृङ्गार किया ।।६।। मेना की मन की बात जानकर एक ब्राह्मण की पतिव्रता गिरिजा को पतिव्रता धर्म की शिक्षा देने लगी ।।७।। द्विजपत्नी बोली- हे पार्वती! धर्म बढ़ानेवाले वचन मेरे वचन प्रेम से सुनो, जो दोनों लोकों में आनन्द करनेवाले और सुननेवालों को सुखदायक हैं ।।८।। पतिव्रता स्त्री ही धन्य है, उसके सिवाय स्त्रियों में अन्य कोई पूज्य नहीं है, वह सब लोकों को पवित्र करनेवाली तथा सब पापों को दूर करनेवाली है ।।९।। जो अपने स्वामी की प्रेम से परमेश्वर के समान सेवा करती है, हे शिवे! वह यहां अनेक भोगों को भोगकर अन्त में पतिलोक को प्राप्त होती है ।।१०।। सावित्री, लोपमुद्रा, अरुन्धती, शाण्डिल्या, शतसूया, अनुसूया, लक्ष्मी, स्वधा, सती यह पतिव्रता हैं ।।११।। संज्ञा, सुमति, श्रद्धा, मेना, स्वाहा और भी बहुत पतिव्रता हैं, जिनको मैं विस्तार के भय से नहीं कहती ।।१२।। पतिव्रताधर्म के प्रभाव से ही यह जगत में मान्य और पूज्य हुई तथा ब्रह्मा, विष्णु और महेश तथा अन्य मुनीश्वरों ने भी उनका सम्मान किया है ।।१३।। इस कारण सदा तुम अपने पति शंकरजी की सेवा करती रहना, यह सत्पुरुषों के गतिदाता दीनों पर कृपा करनेवाले सब से सेवित हैं ।।१४।। पतिव्रताओं का महान धर्म श्रुति-स्मृतियों में लिखा हुआ है, जैसा उनमें श्रेष्ठता से लिखा गया है, वैसा अन्यत्र नहीं है, यह निश्चय है ।।१५।। जब स्वामी भोजन कर चुकें, तब पति की भक्ति में परायण होकर स्वयं भोजन करे, इस प्रकार करने से स्त्री सदा आनन्द में रहती है ।।१६।। उनके सो जाने पर आप सोवे और स्वामी के प्रथम जागे और छल रहित होकर, स्वामी की प्रिय होकर उनका हित करे ।।१७।। और कभी अपने को बिना अलंकार के स्वामी को न दिखावे और जब स्वामी परदेश में हो तो कभी श्रृंगार न करे ।।१८।। पति का नाम

पतिव्रता कभी न ग्रहण करे, स्वामी बुरे वचन कहे, तो भी आप बुरे वचन न कहे, पति के मारने पर भी प्रसन्न रहे, मारने पर भी यही कहे, हे स्वामिन्! आप कृपा कीजिये ।।१९।। स्वामी के बुलाने पर सब कार्य छोड़कर उनके समीप जाएँ और शीघ्रता से हाथ जोड़कर प्रणाम कर उनसे कहें ।।२०।। हे स्वामिन्! किस निमित्त आप बुलाते हैं, कृपा करके कहिये, वह जो आज्ञा दे वह सब कार्य प्रसन्न चित्त से करे ।।२१।। द्वार पर बहुत काल तक स्थिति न करे, दूसरे के घरों में न जाएँ, जो कुछ बात सुनें उसे दूसरों से न कहें ।।२२।। पूजा की सर्व सामग्री बिना कहे सम्पादन करें और यथा समय हितकारी समय का अवसर देखती रहें ।।२३।। पति की आज्ञा के विना कभी तीर्थयात्रा को न जाएँ, समाज और उत्सव में जाने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है ।।२४।। जिस स्त्री को तीर्थ दर्शन की बड़ी अभिलाषा हो, वह अपने स्वामी के चरणामृत को ले, इसमें सब क्षेत्र और तीर्थ निवास करते हैं, इसमें सन्देह नहीं ।।२५।। भर्ता के भोजन कर चुकने पर जो कुछ मिष्ठान्नादि शेष हो वही सब भोजन करे, पति का दिया हुआ महाप्रसाद जानकर पतिव्रता भोजन करे ।।२६।। देवता, पितर, अतिथियों को बिना समर्पण किये न खाए तथा सेवकवर्ग, गौ, भिक्षुक इनको भी देना चाहिये ।।२७।। सब सामग्री एकत्रित करने में चतुर रहे, प्रसन्न रहे, बहुत खर्च न करे, इस प्रकार से देवी सदा पतिव्रतधर्म में परायण रहे ।।२८।। पति की आज्ञा के बिना उपवास व्रतादिक न करे अन्यथा उस से कुछ फल नहीं होता और परलोक में नरक की प्राप्ति होती है ।।२९।। सुखपूर्वक बैठे हुए अपनी इच्छा से रमण करते हुए पति को कार्यान्तर में न उठावे ।।३०।। नपुंसक, व्याधिग्रस्त, दुरावस्था को प्राप्त, वृद्ध, सुखी-दुःखी कैसा भी पति हो, उस की आज्ञा का उल्लंघन न करे ।।३१।। जब मासिकधर्म हो, तब तीन रात अपना मुख न दिखावे, जब तक स्नान से शुद्ध न हो, तब तक अपना शब्द न सुनावे ।।३२।। फिर स्नान करके अपने स्वामी का ही मुख देखे, दुसरे का नहीं अथवा पति समीप न हो, तो पति का ध्यान करके सूर्य का दर्शन करे ।।३३।। हलदी, कुमकुम, सिन्दूर, कज्जल, कूर्पासक (चोली), ताम्बूल, मंगल सम्बन्धी भूषण धारण करे ।।३४।। केशों का संस्कार करे, केशपाश संभाले, हाथ और कानों में भूषण धारण करे, भर्ता की आयु बढ़ाने की इच्छा करते हुए पतिव्रता पति से दूर न रहे ।।३५।। धोवन, वन्धकी (व्यभिचारिणी) श्रवणा (संन्यासिनी) और दुर्भागिनी से मित्रता न करे ।।३६।। जो स्त्री अपने पति से द्वेष करती हो उससे बात भी न करे, न ही कहीं अकेली रहे, न कभी नंगी होकर स्नान करे ।।३७।। ओखली, मूसल, बुहारी, पाषाणयन्त्र और देहली में सती स्त्री कभी निवास न करे अर्थात् इन स्थानों पर न सोवे ।।३८।। बिना उपयुक्त समय के प्रगल्भता न करे, जिस-जिस में स्वामी की रुचि हो उस-उस में प्रेम करे ।।३९।। जो वह विषण्ण हो, तो आप भी

दुःख माने, जो प्रसन्न हो, तो आप प्रसन्न हो, प्रिय में प्रिय आचरण करे, इस प्रकार से देवी पतिव्रता सब की हितकारिणी हो।।४०।। सम्पत्–विपत् में एक रूप पुण्यरूप रहे, धैर्य धारणकर सदा पति की हितकारिणी रहे।।४१।। पतिव्रता घृत, लवण, तेल आदि के न होने पर भी 'नहीं है' ऐसा पति से न कहे, उसे परिश्रम में युक्त न करे।।४२।। ब्रह्मा, विष्णु और शिव से भी पति विशेष कहा गया है। हे देवेशि! पतिव्रता को अपना पति ही शिवरूप जानना चाहिये।।४३।। जो पति को उल्लंघन करके व्रत, उपवास और नियम करती है, वह स्वामी की आयु को हरण करती है और मरने के बाद नरक में जाती है।।४४।। जो नारी क्रोध में तत्पर होकर अपने स्वामी से प्रत्युत्तर करती है, वह ग्राम की कुतिया और निर्जन वन में गीदड़ होती है।।४५।। पति से ऊँचे स्थान पर न बैठे, दुष्टों के समीप न जाए और पति से कभी कातर वाक्य न कहे।।४६।। न पति की निन्दा करे, क्लेश को तो दूर से ही त्याग दे, गुरुजनों की स्थिति में जोर से न बोले, न ऊँचे स्वर से हँसे।।४७।। पति को बाहर से आया हुआ देखते ही शीघ्र ही अन्न, जल, भोजन, ताम्बूल, वसन और चरण धोने आदि से पति का सत्कार करे।।४८।। इसी प्रकार मनोहर वचन तथा पसीना सुखाने को पंखा कर के जो अपने स्वामी को प्रसन्न करती है, जानो उस ने त्रिलोकी जीत ली।।४९।। माता, पिता, पुत्र, भाई परिमित सुख देते हैं, परन्तु पति अमित सुख देता है, इस कारण उसे सदा पूजे।।५०।। भर्ता ही देवता, भर्ता ही गुरु, धर्म, तीर्थ, व्रत सब कुछ स्वामी ही हैं, इस कारण सब कुछ छोड़कर, मात्र पति की ही पूजा करे।।५१।। जो दुर्मति स्त्री अपने स्वामी को छोड़कर एकान्त में दूसरे के पास जाती है, वह वृक्ष की खखोड़ल में रहनेवाली उलूकी होती है।।५२।। जो स्वामी के मारने पर उसे मारने को दौड़ती है, वह दूसरे जन्म में व्याघ्री और वृषदंशिका होती है और जो स्वामी को कुटिल आँख से देखती है, वह केकराक्षी (नीची ऊँची आँखों वाली) होती है।।५३।। जो स्वामी को छोड़कर केवल आप ही मिष्ठान्न खाती है, वह ग्राम की सुअरिया वा वल्गु (छागी), अपनी विष्ठा खानेवाली होती है।।५४।। जो अपने स्वामी को 'तू' कहकर बोलती है, वह मूकी होती है और जो अपनी सौतन से हमेशा ईर्षा करती है, वह बारंबार दुर्भगा होती है।।५५।। जो स्वामी से दृष्टि चुरा कर किसी अन्य को देखती है, वह कानी, कुमुखी और विरूपा होती है।।५६।। जैसे जीव के बिना देह क्षणमात्र में अपवित्र हो जाता है, इसी प्रकार अपने स्वामी के बिना स्नान करने पर भी स्त्री सदा अपवित्र रहती है।।५७।। उसके माता–पिता जगत् में धन्य हैं, जिसके घर में पतिव्रता स्त्री विद्यमान है, उसका घर भी धन्य है ।।५८।। माता, पिता और पति के वंश के तीन–तीन पुरुष पतिव्रता के पुण्य से स्वर्ग में सुख भोगते हैं।।५९।। और शील के भंग करने से तीन कुल नरक में जाते हैं, वह माता, पिता और पति के

तीन कुल को नरक में डालती है और यहां भी वहां भी दुःखी रहती है।।६०।। पतिव्रता के चरण जहां-जहां पृथ्वी पर पड़ते हैं, वहां-वहां वह पाप हरनेवाली पवित्र होती है।।६१।। वह व्यापक सूर्य, सोम और पवन अपनी पवित्रता के लिये पतिव्रता को स्पर्श करते हैं, इसमें सन्देह नहीं।।६२।। पतिव्रता के स्पर्श की जल सदा वांछा करते हैं, आज तुम्हारे स्पर्श से हमारी जड़ता का नाश हो गया।।६३।। भार्या ही गृहस्थ और सुख का मूल है, धर्मफल की प्राप्ति और सन्तान वृद्धि के लिये भार्या ही है।।६४।। क्या अनेक घरों में रूप और सुन्दरता से युक्त स्त्रियां नहीं हैं, पर पतिव्रता स्त्री को ही शंकरजी की गति और भक्ति प्राप्त होती है।।६५।। भार्या से ही दोनों लोकों का सुख, जय किया जाता है। देवता, पितर, अतिथि, यज्ञकर्म बिना भार्या के नहीं होते।।६६।। उसीको गृहस्थ जानो, जिसके घर में पतिव्रता स्त्री है, अन्य जो दिन-रात जरा समान राक्षसी को ग्रास करती हैं।।६७।। जैसे गङ्गा स्नान से शरीर पवित्र हो जाता है, ऐसे ही पतिव्रता को देखकर सब पवित्र हो जाते हैं।।६८।। पतिव्रता और गङ्गा इन दोनों में कोई भेद नहीं है, शिव और पार्वती के समान वे दोनों स्त्री-पुरुष हैं, इस कारण विद्वान् को उनका निरन्तर पूजन करना चाहिये।।६९।। पति ॐ कार है, स्त्री वेदश्रुति है, स्त्री क्षमा है, तो पति तप है, पति फल है, स्त्री सत्क्रिया है; हे पार्वती! जो ऐसे हैं, वे दोनों स्त्री-पुरुष धन्य हैं।।७०।। हे पार्वती! इस प्रकार से मैंने तुम से पतिव्रताओं का धर्म वर्णन किया, अब प्रेम और सावधानी से पतिव्रता के भेदों को सुनो।।७१।। पतिव्रता उत्तमादि के भेद से चार प्रकार की होती है, जो स्मरण करने से पाप हरनेवाली हैं।।७२।। उत्तम, मध्यम, अधम, अति निकृष्ट। अब इनके लक्षण कहती हूँ, वह सावधान होकर सुनो।।७३।। स्वप्न में भी जिस का मन अपने पति को ही देखता है, कभी परपति में नहीं जाता वह उत्तमा है।।७४।। जो दूसरों के पति को पिता, भ्राता और पुत्र के समान देखती है, हे पार्वती! वह पतिव्रता मध्यम कोटि की कही गई है।।७५।। जो स्त्री मन में अपना धर्म समझकर व्यभिचार नहीं करती है, हे पार्वती! वह सुचरित्रवाली स्त्री भी निकृष्ट (अधम) कही है।।७६।। जो मन में इच्छा करने पर भी पति और कुल के भय से व्यभिचार नहीं करती, उसे पुरातन पण्डितों ने अति निकृष्ट कहा है।।७७।। हे शिवे! यह चार प्रकार की पतिव्रता पाप हरनेवाली हैं और दोनों लोकों को पवित्र करनेवाली कही गई हैं।।७८।। पतिव्रत धर्म के प्रभाव से अत्रिऋषि की स्त्री ने तीन देवताओं की प्रार्थना से वाराह के शाप से मरे हुए एक ब्राह्मण को जीवित किया था।।७९।। हे शिवे! ऐसा जानकर नित्य पति की सेवा करनी चाहिये। हे शैलपुत्री! ऐसा करने से तुम को सब कामनाओं की प्राप्ति होगी।।८०।। तुम जगत् की माता महेशी हो, साक्षात् शिवजी तुम्हारे पति हैं, तुम्हारा नाम स्मरण करके स्त्रियां पतिव्रता होंगी।।८१।। हे देवी! तुम्हारे आगे

विशेष कहने का प्रयोजन क्या है? तो भी हे कल्याणि! जगत् के आचार के निमित्त मैंने ऐसा कहा है।।८२।। ब्रह्माजी बोले- ऐसा कहकर वह ब्राह्मण की स्त्री भगवती को प्रणाम कर मौन हुई और शंकरजी की प्रिया पार्वती भी बड़े आनन्द को प्राप्त हुई।।८३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
तृतीये पार्वतीखण्डे पतिव्रताधर्मवर्णनं नाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।। ५४ ।।

*****

पचपनवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार उस ब्राह्मणी देवी ने भगवती को पतिव्रतधर्म की शिक्षा देकर मेना से कहा, अब इनकी यात्रा कराओ।।१।। 'बहुत अच्छा' ऐसा कहकर मेना प्रेम के वशीभूत हो गई और धीरज धर पार्वती को बुलाकर विरह से व्याकुल होकर।।२।। बारंबार आलिङ्गन कर ऊँचे स्वर से रोने लगी और दीन वचन कहकर पार्वती भी ऊँचे स्वर से रोने लगी।।३।। और शोक से व्याकुल होकर मेना और पार्वती दोनों मूर्च्छित हो गईं और पार्वती के रोने से देवपत्नियां भी मूर्छित हो गईं।।४।। सब ही स्त्रियां रोने लगीं और सब ही अचेतन हो गई औरों की तो क्या कहे? बिदा के समय योगीश्वर परमप्रभु भी स्वयं रोने लगे।।५।। उसी समय से हिमालय शीघ्रता से आये, उनके साथ उन के सब पुत्र और श्रेष्ठ ब्राह्मण थे।।६।। पार्वती को गोद में लेकर मोह से स्वयं रोने लगे, 'कहां जाती है?' इस प्रकार बारंबार शब्द करने लगे।।७।। तब उस समय श्रेष्ठ ब्राह्मणों के साथ उनके ज्ञान में श्रेष्ठ पुरोहित ने कृपापूर्वक सब को अध्यात्मविद्या से समझाया।।८।। पार्वती ने परमभक्ति से अपने माता, पिता और गुरु को प्रणाम किया और लोकाचार से महामाया रोने लगी।।९।। पार्वती का रोदन देखकर दूसरी भी सब स्त्रियां रोने लगीं, परन्तु पार्वती की माता मेना, भगिनी और भाई बड़े व्याकुल हो गये।।१०।। बारंबार मेना तथा भगिनी और दूसरी स्त्रियां, भ्राता और पिता प्रेम से बद्ध हो कर रोने लगे।।११।। तब ब्राह्मणों ने आकर आदर से सब को समझाया और कहा यात्रा की सुख देनेवाली लग्न टली जाती है, देर मत कीजिये।।१२।। तब हिमालय ने धीरज धर मेना को समझाकर पार्वती को चढ़ने के निमित्त पालकी मंगवाई।।१३।। और ब्राह्मणों की स्त्रियों ने पार्वती को पालकी पर चढ़ाया, माता, पिता और ब्राह्मण सब ने आशीर्वाद दिये।।१४।। मेना और हिमालय ने महाराजाओं के जैसे उपचार दिये और भी अनेक प्रकार के द्रव्यसमूह, जो दूसरों को परम दुर्लभ थे दिये।।१५।। सब गुरुजन, माता, पिता, ब्राह्मण, पुरोहित, भगिनी तथा अन्य स्त्री

जनों को प्रणाम कर पार्वती चली ।।१६।। बुद्धिमान् हिमालय भी प्रेम के वशीभूत होकर संग-संग चले और वहां प्राप्त हुए, जहां सब देवता ठहरे हुए थे ।।१७।। और प्रीति से सब कोई उत्सव करने लगे और प्रशंसा करते हुए भक्ति से प्रभु को प्रणाम करने लगे और वहां से बिदा होकर अपने पुर में प्रविष्ट हुए ।।१८।। इस ओर शिवजी पार्वती सहित अपने स्थान पर पहुंचकर बोले- हे देवेशि! तुमको मैं जातिस्मरण कराता हूँ, जिसे तुम लीला से स्मरण करती हो, उसे प्राणों के समान प्रिय हो ।।१९।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार अपने स्वामी महेशजी के वचन सुनकर शंकरजी की प्रिया सती पार्वती कुछेक हँसती हुई बोलीं ।।२०।। पार्वती बोली- हे देव! मैं सब स्मरण करती हूँ, मैं मौन हूँ, आपको प्रणाम करती हूँ, प्रस्ताव के उचित कार्य हो, सो आप करें ।।२१।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार अमृत के समान पार्वती के वचन सुनकर लौकिक आचार दिखाते हुए शिवजी बहुत प्रसन्न हुए ।।२२।। शिवजी ने अनेक वस्तुओं का सम्भार सजाया और विष्णुजी आदि देवताओं को भोजन कराया ।।२३।। तथा अपने विवाह में आये हुए सब देवताओं को यथायोग्य बहुत प्रकार से भोजन कराया ।।२४।। तब वे सब देवता भोजन करके अनेक रत्नों से भूषित होकर अपनी-अपनी स्त्रियों के सहित भवानीपति शंकरजी को प्रणाम करके ।।२५।। तथा सुन्दर वाणियों से स्तुति करके और प्रेम से परिक्रमा करके विवाह की बढ़ाई करते हुए अपने-अपने स्थानों को गये ।।२६।। हे नारदजी! मुझे और विष्णुजी को शिवजी ने स्वयं प्रणाम किया, जैसे लोकाचार को प्राप्त होकर विष्णुजी कश्यपजी को प्रणाम करते हैं ।।२७।। मैंने आलिंगन करके उन को आशीर्वाद दिया और फिर शंकरजी के आगे स्थित होकर उन को परब्रह्म जानकर स्तुति की ।।२८।। मैं और विष्णुजी हाथ जोड़कर शिवा-शिव को प्रणाम कर विवाह की प्रशंसा करते हुए अपने स्थानों को गये ।।२९।। शिवजी भी कैलास में स्थित होकर पार्वती के साथ विहार करने लगे और सब गण आनन्द को प्राप्त होकर प्रेम से शिवजी का भजन करने लगे ।।३०।। हे तात! इस प्रकार शिव और पार्वती का मंगलदायक विवाह वर्णन किया है, यह शोक को दूर करनेवाला, आनन्द को बढ़ानेवाला और आयु को बढ़ानेवाला है ।।३१।। जो पवित्र होकर शिवजी में मन लगाकर नित्य इस कथा को सुनते हैं वा नियम से सुनते हैं, वे शिवलोक को प्राप्त होते हैं ।।३२।। यह आख्यान बड़ा अद्भुत और मंगल का करनेवाला है, सब विघ्नों को शान्त करनेवाला और सब व्याधियों का नाश करनेवाला है ।।३३।। यह आख्यान यश देनेवाला, स्वर्ग और आयु देनेवाला, पुत्रपौत्र को बढ़ानेवाला, सब कामना और सदा भुक्ति-मुक्ति देनेवाला है ।।३४।। अपमृत्यु को दूर करनेवाला तथा महाशान्ति और शुभ करनेवाला और बुद्धि-ज्ञान देनेवाला है ।।३५।। इसे शिवजी के सम्पूर्ण उत्सवों में पाठ करना चाहिये, शिवजी को प्रसन्न करने की इच्छा वालों को तथा शिवजी का

सन्तोष करनेवालों को यह योग्य है ।।३६।। विशेषकर इसे देवता आदि की प्रतिष्ठा के समय पढ़ा जाए तथा शिवसम्वन्धी समस्त कार्यों के आरम्भ में पढ़ा जाए, तो शिवजी प्रसन्न होते हैं ।।३७।। और पवित्र होकर शिवा–शिव के चरित्र जो पढ़ते हैं, उनके सब कार्य सिद्ध होते हैं, यह सत्य–सत्य है, इसमें सन्देह नहीं ।।३८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे ब्रह्मनारद संवादे द्वितीया रुद्रसंहितान्तर्गत तृतीये पार्वतीखण्डे पण्डित ज्वालाप्रसादमिश्र कृत भाषायां शिवकैलासगमनवर्णनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।। ५५ ।।

*****

समाप्तोऽयं तृतीय–पार्वतीखण्डः ।। ३ ।।

*****



श्री

द्वितीयरुद्रसंहितान्तर्गत

चतुर्थ कुमारखण्ड

पहिला अध्याय

दोहा–

श्रीगुरुचरण सरोज रज, प्रेम सहित हिय लाय ।
भाषाटीका सुखद अति, कुमारखण्ड की गाय ।।१।।

जो नमस्कार करने से प्रसन्न हो जाते हैं, जिनका मन बड़ा निर्मल है, जो प्रेमप्रिय और प्रेम के देनेवाले हैं, जो पूर्ण स्वरूप भक्तों के मनोरथ पूर्ण करनेवाले, सब प्रकार से पूर्ण, सम्पूर्ण ऐश्वर्य के एक स्थान सत्य स्वरूप, सत्य सत्यमय, तोनों काल में सत्य ऐश्वर्यवाले, सत्य के प्रिय, सत्य के देनेवाले, विष्णुजी और ब्रह्माजी से स्तुति को प्राप्त, अपनी कृपा से शरीर धारण करनेवाले कल्याणकारी शंकरजी को प्रणाम करता हूँ।।१।। नारदजी बोले– हे ब्रह्मन्! जब लोककल्याणकारी शंकरजी ने पार्वती के साथ विवाह कर अपने कैलास पर्वत को गमन किया, तब वहां क्या किया ? सो कहिये ।।२।। परमात्मा शिवजी के किस प्रकार से पुत्र हुआ, जिसके निमित्त आत्माराम प्रभु शंकरजी ने शिवा से विवाह किया ।।३।। हे ब्रह्मन्! तारकासुर का वध किस प्रकार से हुआ, मेरे ऊपर दया करके यह सब विस्तार के साथ कहिये ।।४।। सूतजी बोले– इस प्रकार नारदजी के वचन सुनकर शंकरजी को स्मरण करके प्रसन्न मन से प्रजापति कहने लगे ।।५।। ब्रह्माजी बोले– हे नारदजी! शिवजी का चरित्र सुनिये, गुह के जन्म की दिव्य कथा तथा तारकासुर का वध की कहता हूँ।।६।। सुनिये, मैं इस समय पापनाशि कथा को कहता हूँ, जिसे सुनकर मनुष्य निश्चय ही सब पापों से छूट जाता है ।।" आख्यान पाप रहित, रहस्यरूप, गोपनीय और परम अद्भुत है, पाप, सन्त विघ्नों को नष्ट करनेवाला है ।।८।। सब मंगल देनेवाला, सार रूप

मनोहर, सुख और मोक्ष देनेवाला तथा कर्ममूल का नाश करनेवाला है।।९।। शिवा से विवाह करके कैलास पर आकर शिवजी भी बड़ी शोभा को प्राप्त हुए और देवताओं के कृत्यों पर विचार करने लगे तथा देवताओं की पीड़ा का भी विचार किया।।१०।। साक्षात् भगवान् शिवजी जब कैलास पर आये, तब सब गण प्रसन्न होकर अनेक प्रकार के सुख मनाने लगे।।११।। शिवजी के कैलास आने पर बड़ा महोत्सव हुआ, देवता बड़े प्रसन्न होकर अपने स्थानों में गये।।१२।। तब महादेव शंकरजी शिवा गिरिजा से विवाह करके महा दिव्य मनोहर एकान्त स्थान में गये।।१३।। पुष्प, चन्दन से चर्चित रति की बढ़ानेवाली सेज बनाकर, जो बड़ी अद्‌भुत थी और जिसमें सम्पूर्ण भोग की वस्तुएँ विद्यमान थीं।।१४।। भगवान् शिवजी पार्वती सहित उस स्थान में रमण करने लगे और वह मान के देनेवाले देवताओं के सहस्र वर्ष तक विहार करते रहे।।१५।। दुर्गा के अंग के स्पर्श मात्र से लीला से ही शिवजी मूर्छित हो गये और भगवती भी शिवजी के अंग स्पर्श से मूर्छित हो गई और दिन–रात कुछ नहीं जाना।।१६।। जिस समय शिवजी भोग में प्रवृत्त हुए तब उनको बहुत समय भी क्षणमात्र के समान बीत गया।।१७।। तब सब देवता एक समय इकट्ठे होकर इन्द्रादि के साथ सलाह करने लगे और सब एकत्र हुए।।१८।। देवता बोले– ईश्वर शंकरजी ने हमारे निमित्त विवाह किया, यह योगीश्वर निर्विकार, स्वात्माराम, निरंजन हैं।।१९।। सो उन्हें अब तक कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ है, इसका कारण हम नहीं जानते, देवेश्वर इसमें क्यों विलम्ब कर रहे हैं?।।२०।। उसी समय देवता नारदजी से देवदर्शन उन दोनों के रमण करने के समय को अपरिमित जानकर।।२१।। उनका भोग बहुत समय का जानकर, वे देवता चिन्ता करने लगे, मुझ ब्रह्मा को आगे करके वे नारायण के समीप गये।।२२।। नारायण को प्रणाम करके मैंने सब वृत्तान्त सुनाया और समस्त देवता चित्रलिखी पुतली के समान हो गये।।२३।। ब्रह्माजी बोले– शिवजी देवताओं के सहस्र वर्ष पर्यन्त रति में रत हुए हैं, वह निश्चेष्ट योगी होकर विराम को प्राप्त नहीं होते।।२४।। श्रीभगवान् बोले– हे जगत् के विधाता! चिन्ता करने की कोई बात नहीं, सब कल्याण होगा, हे देवेश! आप महाप्रभु शंकरजी की शरण में जाइये।।२५।। जो मनुष्य मन से सदा महेशजी की शरण जाते हैं, हे प्रजापति! उन शंकरजी के भक्तों को कहीं से कुछ भय नहीं है।।२६।। हे विधाता! परन्तु यह समय शृंगार भंग करने का नहीं है, समय पर किये प्रयोग सिद्धि देनेवाले होते हैं, अन्यथा नहीं।।२७।। शंकरजी का सम्भोग भंग करने को कौन समर्थ हो सकता है? सहस्र वर्ष पूर्ण होने में अपनी इच्छा से ही विराम करेंगे।।२८।। जो पुरुष किसी उपाय से स्त्री–पुरुष का वियोग करा देता है, जन्म–जन्म उसके स्त्री–पुत्र का भेद होता है।।२९।। फिर इस लोक में ज्ञान से भ्रष्ट, कीर्ति से नष्ट होकर तथा लक्ष्मी से हीन होकर जन्म लेता है और फिर वह पातकी लाख वर्ष तप कालसूत्र नाम नरक में

पड़ता है।।३०।। रम्भा से युक्त इन्द्र को महामुनि दुर्वासा ने वियुक्त किया था, इस कारण उनके भी स्त्री का भेद हुआ।।३१।। फिर दूसरी स्त्री को प्राप्त होकर शुभपाणिग्रहण को प्राप्त हो दिव्य सहस्र वर्ष रमण करके वियोग का दुःख मिटाया।।३२।। घृताची के संग मिलते हुए काम को बृहस्पति ने निवारण किया था, छः महीने के भीतर ही चन्द्रमा ने उनकी पत्नी को हरण किया।।३३।। फिर शिवजी की आराधना करके और तारा के निमित्त संग्राम करके सगर्भा तारा को प्राप्त होकर विरह व्यथा मिटाई।।३४।। महर्षि गौतम ने मोहिनी के साथ मिलते हुए चन्द्रमा का वियोग किया था, इस कारण उनका स्त्री से वियोग हुआ।।३५।। हरिश्चन्द्र ने हालिक को वृषली के साथ निर्जन में मिलते हुए निवारण कर निश्चेष्ट किया था, उसका फल सुनिये।।३६।। वह विश्वामित्र से ताडित होकर स्त्री, पुत्र और राज्य से भी भ्रष्ट हुआ, तब शिवजी की आराधना करके पाप से मुक्त हुआ।।३७।। द्विजश्रेष्ठ अजामिल वृषली का संग करते थे, हे देवताओ! भय के कारण उन्हें किसी ने भी निवारण नहीं किया।।३८।। सब ही निषेक साध्य है, हे विधाता! निषेक बलवान् है, यह कर्म ही फल देता है, इस कर्मफल को कौन निवारण कर सकता है?।।३९।। यह शंकरजी के सम्भोग का कर्म दिव्य सहस्र वर्ष तक है, हे देवताओ! जब सहस्र वर्ष पूर्ण हो जायें, तब वहां जाकर।।४०।। वह प्रकार करना, जिससे शंकरजी का वीर्य भूमि में पतित हो जाय, उस वीर्य से स्कन्द नामवाला प्रभु का एक पुत्र होगा।।४१।। हे विधाता! इस समय देवताओं के साथ अपने स्थान पर जाइये, शिवजी को पार्वती के साथ निर्जन में आनन्द करने दीजिये।।४२।। ब्रह्माजी बोले- लक्ष्मीपति यह कहकर शीघ्र ही अन्तःपुर में चले गये, हे मुनीश्वर! मेरे सहित सब देवता अपने स्थानों पर गये।।४३।। पश्चात् शक्ति और शक्तिमान् के विहार से यह पृथ्वी भार से व्याकुल होकर शेष और कच्छपजी के साथ कांप उठी।।४४।। तब कच्छपजी के भार से सब का आधार पवन स्तम्भित हो गया और त्रिलोकी भय से व्याकुल हो गई।।४५।। तब सब देवता व्याकुल होकर मुझ सहित नारायण की शरण में गये और दीन मन से वह सब वृत्तान्त निवेदन किया।।४६।। देवता बोले- हे देव देव रमानाथ! हे सबकी रक्षा करनेवाले प्रभो! हम भय व्याकुल मन से आपकी शरण आये हैं, आप हम सब की रक्षा करें।।४७।। न जाने किस कारण से त्रिलोकी के प्राण स्तम्भित हुए हैं, मुनि और देवताओं सहित त्रिलोकी व्याकुल हो गई है।।४८।। ब्रह्माजी बोले- हे मुनीश्वर! मुझ सहित जब समस्त देवताओं ने ऐसा कहा और दीन तथा मौन होकर दुःख से विष्णुजी के आगे स्थित हुए।।४९।। तब हम सब देवताओं की वाणी सुनकर नारायणजी शिवजी के प्रिय कैलास पर्वत पर गये।।५०।। वह सुरवल्लभ नारायण मेरे और देवताओं के साथ वहां जाकर शिवजी के स्थान पर उन्हें देखने की इच्छा से गये।।५१।। वहां शिवजी को न देखकर देवताओं सहित विष्णुजी ने बड़ा

विस्मय माना और वहां स्थित हुए गणों से विनयपूर्वक पूछा ।।५२।। विष्णुजी बोले– हे गणो! हे शिवजी के सेवको! वह आपके प्रभु शंकरजी कहां हैं? आप कृपा करनेवाले हो, हम दु:खियों के समाचार उनसे कहिये ।।५३।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार से देवताओं सहित नारायण के वचन सुनकर वे शिवजी के गण प्रीतिपूर्वक भगवान् से शंकरजी का वृत्तान्त कहने लगे ।।५४।। शिवगण बोले– हे नारायण! प्रेम से सुनिये, हम यथार्थ कहते हैं। ब्रह्माजी और सब देवता इस शंकरजी के वृत्तान्त को सुनें ।।५५।। अनेक लीला करने में चतुर भगवान् शंकरजी हम सब को यहां स्थापित करके, वे सर्वेश्वर पार्वतीजी के मन्दिर में गये हैं ।।५६।। सो महेश्वर शंकरजी घर के भीतर क्या करते हैं, सो हम नहीं जानते, हे रमानाथ! यहां हमें बहुत वर्ष बीत गये ।।५७।। ब्रह्माजी बोले– भगवान् विष्णुजी ने देवता और मेरे सहित यह वचन सुनकर, हे मुनिश्रेष्ठ! बड़े विस्मित होकर शंकरजी के द्वार पर गमन किया ।।५८।। देवताओं के प्यारे वह हरि वहां मेरे साथ जाकर ऊँची आर्त वाणी से शब्द सुनाने लगे ।।५९।। देवताओं के और मेरे साथ भगवान् विष्णुजी शिवजी की स्तुति करने लगे और हे मुनिश्रेष्ठ! वहीं स्थित होकर सब देवताओं के प्रिय शंकरजी की स्तुति की ।।६०।। विष्णुजी बोले– हे महादेव! हे परमेश्वर! आप मन्दिर के भीतर क्या करते हो? तारक असुर से भीत होकर हम सब देवता आपकी शरण में आये हैं, हमारी रक्षा कीजिये ।।६१।। इस प्रकार मेरे और देवताओं के सहित विष्णुजी ने बहुत प्रकार से स्तुति की, हे मुनीश्वर! तारकासुर की विपत्ति कहते–कहते भगवान् नारायण के नेत्रों से जल निकलने लगा ।।६२।। वहां देवताओं के दु:ख से कोलाहल होने लगा, हे मुनीश्वर! जिसमें देवताओं की आर्त वाणी और शिवजी की स्तुति मिली हुई थी ।।६३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
चतुर्थ कुमारखण्डे शिवविहारवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ।। १ ।।

*****

दूसरा अध्याय

ब्रह्माजी बोले– योगज्ञान में विशारद महादेवजी यह वचन सुनकर त्यक्तकाम होकर भी पार्वती के भय से सम्भोग को न त्यागते हुए ।।१।। शिवजी घर के द्वार पर देवताओं के निकट आ गये, भक्तवत्सल शंकरजी ने उनको दैत्य से पीड़ित देखा ।।२।। सब देवताओं ने, मैंने और भगवान् विष्णुजी ने शंकरजी को देखा और सब कोई उन भक्तवत्सल को देखकर बड़े प्रसन्न हुए ।।३।। भगवान् शंकरजी देवताओं के वचन

सुनकर कुछ दुःखी चित्त से देवताओं से बोले ।।४।। उधर देवता महाप्रेम से प्रणाम कर, मस्तक झुकाकर, मेरे और नारायण के सहित भगवान् शंकरजी की स्तुति करने लगे ।।५।। देवता बोले- हे देव देव महादेव! हे करुणासागर! हे प्रभो! आप सबके अन्तर्यामी और सब जाननेवाले हो ।।६।। हे विभो! देवताओं का कार्य कीजिये, हे महेश्वर! देवताओं की रक्षा कीजिये, हे प्रभु! कृपा करके तारकादि महादैत्यों का नाश कीजिये ।।७।। शिवजी बोले-हे विष्णो! हे विधाता! आप हम सबके मन को जाननेवाले हो, जो कुछ होता है, वह नहीं मिटता, कोई उसका निवारण करनेवाला नहीं है ।।८।। जो हुआ है वह होना ही था, अब इस समय जो प्रस्तुत है, सो सुनिये, सिर से स्खलित हुए मेरे वार्य को कौन ग्रहण कर सकता है?।।९।। वह कौन ग्रहण करेगा? ऐसा कहकर उसे पृथ्वी पर गिरा दिया, तब सब देवताओं ने अग्नि को प्रेरणा की, कि तुम कपोत रूप से इस वीर्य को ग्रहण करो ।।१०।। वह चोंच से शिवजी का समस्त वीर्य भक्षण कर गया, हे मुने! उसी समय वहां पार्वती आ गईं ।।११।। वह इस कारण आईं कि, शिवजी के आगमन में विलम्ब हुआ, परन्तु यहां यह सब वृत्तान्त देखकर महा क्रोधित हुई ।।१२।। और हरि आदि सब देवताओं को देखकर बोलीं ।।१३।। देवी बोली- अरे देवताओ! आप सब बड़े दुष्ट हो, आप स्वार्थ साधन करनेवाले हो और दूसरों को दुःख देते हो ।।१४।। स्वार्थ के निमित्त परम प्रभु शिवजी ने आराधना करके मेरा विहार भंग किया, इस कारण मैं वन्ध्या हुईं ।।१५।। मुझसे विरोध करके किसी भी देवता को सुख नहीं मिलेगा, इस कारण आप दुष्ट देवताओं को महादुःख मिलेगा ।।१६।। ब्रह्मजी बोले- ऐसा कहकर भगवती ने विष्णुजी आदि सब देवताओं को शाप दिया, उस समय पार्वती क्रोध से प्रज्ज्वलित हो उठी ।।१७।। पार्वती बोली- आज से सब देवताओं की स्त्रियां बांझ हो जायेंगी और मेरे विरोधी सब देवता दुःख पायेंगे ।।१८।। सबकी ईश्वरी ने इस प्रकार विष्णुजी आदि देवताओं को शाप देकर क्रोध से अग्नि को कहा, तुमने शिवजी का वीर्य भक्षण किया है ।।१९।। पार्वती बोली- हे अग्नि! आज से तुम सबभक्षी होकर सदा पीड़ित होगे, तुम शिवजी का तत्त्व नहीं जानोगे, देवताओं के ही कार्यसाधक रहे, इस कारण मूर्ख हुए ।।२०।। रे रे धूर्त! महादुष्ट! दुष्टों का बोध करनेवाले! जो कि तुमने शिवजी का वीर्य भक्षण किया, यह बहुत बुरा किया ।।२१।। ब्रह्माजी बोले- जब इस प्रकार क्रोध से पार्वती ने अग्नि को शाप दिया, हे मुने! और महारुष्ट होकर अपने स्थान को चली गई ।।२२।। तब पार्वती के पास जाकर शिवजी ने उसे बहुत समझाया, हे मुनीश्वर! फिर पार्वती के गणेश नामक पुत्र उत्पन्न हुए ।।२३।। हे मुनिराज! वह वृत्तान्त आगे वर्णन करेंगे, इस समय प्रेम से आप गुह की उत्पत्ति सुनिये ।।२४।। देवता अग्नि के द्वारा ही अन्नों को भोग लगाते हैं, यह वेदवाणी है; इस कारण सब देवता सगर्भ होते हैं ।।२५।। तब उनके वीर्य को न

सहने के कारण सब देवता पीड़ित हुए, विष्णुजी आदि सब देवताओं की यही दशा हुई, शिवजी की इच्छा से उनकी बुद्धि नष्ट हो गई ।।२६।। तब विष्णुजी आदि सब देवता मोहित होकर वीर्य की अग्नि से दह्यमान होकर भगवान् शंकरजी की शरण में गये ।।२७।। वे सब देवता शिवजी के मन्दिर के द्वार पर जाकर नम्र होकर, हाथ जोड़ कर बड़ी प्रीति से भगवान् शंकरजी की स्तुति करने लगे ।।२८।। देवता बोले– हे देव देव महादेव! हे गिरिजापति! हे महाप्रभो! हे नाथ! अब क्या हुआ? हम सब आपके वीर्य की अग्नि से व्याकुल हैं, आपकी माया बड़ी विलक्षण है ।।२९।। हम सब सगर्भ हैं, आपके वीर्य से सब दग्ध होते हैं, हे शंकर! कृपा करके हमारी यह दशा निवारण कीजिये ।।३०।। ब्रह्माजी बोले– परमेश शिवापति इस प्रकार देवताओं द्वारा की स्तुति को सुनकर, हे मुने! जहां देवता थे शीघ्रता से द्वार पर आये ।।३१।। जब शंकरजी द्वार पर आये, तब भगवान् के सहित सब देवता उन भक्तवत्सल शंकरजी को प्रणाम करके सिर झुकाकर स्तुति करने लगे ।।३२।। देवता बोले– हे शम्भो! हे शिव! हे महेशान! हम सब विशेष कर आपकी स्तुति करते हैं, आपके वीर्य से हम दग्ध हो रहे हैं, शरण में आये हुए हमारी आप रक्षा कीजिये ।।३३।। हे हर! आप हमारे इस दुःख को हरण कीजिये, हम मृतक हो रहे हैं, देवताओं के दुःख निवारण में आपके बिना कौन समर्थ है?।।३४।। ब्रह्माजी बोले– देवताओं के अधिपति शंकरजी देवताओं के यह दीनतर वचन सुन कर, वह भक्तवत्सल हँसते हुए सब देवताओं से बोले ।।३५।। शिवजी बोले– हे विष्णुजी! हे ब्रह्माजी! हे सब देवताओ! हमारे वचन सुनिये, आपको सुख होगा, आप सब सावधान हो जाइये ।।३६।। हे देवताओ! आप बहुत शीघ्र इस हमारे रेत को वमन कर दीजिये, हे देव! मेरे शासन से आप शीघ्र ही सुखी हो जाओगे ।।३७।। ब्रह्माजी बोले– विष्णुजी आदि सब देवताओं ने इस प्रकार शंकरजी की आज्ञा को सिर पर धारण करके, अविनाशी शंकरजी का स्मरण करते हुए उस वीर्य को वमन कर दिया ।।३८।। पृथ्वी पर गिरते हुए ही वह शंकरजी का वीर्य स्वर्ण के समान चमकता हुआ पर्वताकार होकर स्वर्ग को स्पर्श करने लगा ।।३९।। उस समय विष्णुजी आदि सब देवता सुखी हो गये और भक्तवत्सल परमेशान शंकरजी की स्तुति करने लगे ।।४०।। हे मुनीश्वर! परन्तु अग्नि प्रसन्न न हुआ, उसे शंकरजी ने परम आज्ञा दी थी ।।४१।। हे मुने! तब वह अग्नि हाथ जोड़ कर, मस्तक झुकाकर असुखी होने के कारण शिवजी की स्तुति करता हुआ वचन बोला ।।४२।। अग्नि ने कहा–हे देव देव! हे महादेव! मैं आपका सेवक बड़ा मूढ़ हूँ, मेरा अपराध क्षमा करके मेरा दाह निवारण कीजिये ।।४३।। हे स्वामिन्! आप दीनवत्सल परमेश्वर हो, सुख और कल्याण करनेवाले हो, जब इस प्रकार प्रसन्न चित्त से अग्नि ने परमेश्वर की स्तुति की, तब वह बोले ।।४४।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार परमेश्वर शिवजी अग्नि की वाणी सुनकर वह दीनवत्सल प्रसन्न होकर अग्नि से कहने लगे ।।४५।।

तुमने यह बड़ा अनुचित कर्म किया था, जो मेरा वीर्य भक्षण किया, इस कारण मेरी आज्ञा से तेरा दाह निवृत्त न हुआ, कारण कि तुमने विशेष पाप किया था ।।४६।। इस समय तू शुचि होकर सुख के निमित्त मेरी शरण हुआ है, इससे मैं प्रसन्न हुआ हूँ, अब तेरा सब दुःख नष्ट हो जायेगा ।।४७।। तुम यत्न पूर्वक इस मेरे वीर्य का किसी स्त्री की योनि में त्याग करो, तब तुम्हारा दाह मिट जायेगा और तुम सुखी होगा ।।४८।। ब्रह्माजी बोले– शिवजी के यह वचन सुनकर शनैः–शनै हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर भक्तों का कल्याण करनेवाले शंकरजी से बोला ।।४९।। हे महेश्वर! हे नाथ! आपका यह तेज बड़ा कठिन है। तीनों लोकों में शक्ति के बिना, इसे अपनी योनि में धारण करने की किसी में सामर्थ्य नहीं है ।।५०।। हे मुनिराज! जिस समय अग्निदेवता यह वचन कह रहे थे, उस समय आप शंकरजी की प्रेरणा से वहां प्राप्त हुए और अग्नि के उपकार के निमित्त बोले ।।५१।। नारदजी बोले– हे अग्नि! तुम मेरे वचन सुनो, जिन से तुम्हारा दाह दूर होगा, जो वचन परम आनन्द देनेवाले, रमणीय और सब कष्टों को दूर करनेवाले हैं ।।५२।। हे अग्नि! इसमें मेरे कहे उपाय को कर तुम सुखी हो जाओंगे, हे तात! शिवजी की इच्छा से ही मैंने इसे तुझ को कहने की इच्छा की है ।।५३।। हे अग्नि! माघ के महीने में जो स्त्री प्रयाग में स्नान करने के निमित्त गमन करें, उनकी देह में तुम इस महत् वीर्य के स्थापन कर दो ।।५४।। ब्रह्माजी बोले– इसी समय वहां सातों मुनियों की स्त्रियां आकर प्राप्त हुईं, हे मुने! माघ के महीने में वे सबेरे ही स्नान के निमित्त आईं ।।५५।। स्नान करके उनमें छः स्त्रियां शीत से महा व्याकुल हुईं, हे मुने! वे शीघ्रता से अग्नि की ज्वाला के समीप आईं ।।५६।। उनको मोहित देखकर सच्चरित्रा पतिव्रता अरून्धती ने शिवजी की आज्ञा से उनको विशेष रूप से निषेध किया ।।५७।। हे मुने! वे छः स्त्रियां मोह और हठ से उस स्थान में शिवजी की माया से मोहित होकर अपना शीत निवारण करने के निमित्त वहां गईं ।।५८।। हे मुने! अग्नि के तापते ही शिववीर्य के कण उनके शरीर में रुयें के द्वारा प्रवेश कर गये, जिस से अग्नि का दाह निवृत्त हो गया ।।५९।। उसी समय अग्नि वहां से अन्तर्धान होकर ज्वाला रूप होकर शिवजी को स्मरण करता हुआ अपने लोक को चला गया ।।६०।। वह छहों स्त्रियां सगर्भा होकर दाह से पीड़ित हो गईं और अपने–अपने स्थानों को गईं, अरुन्धती ने उनको इस प्रकार अग्नि से दुःखी देखा ।।६१।। और उन मुनियों ने उन स्त्रियों को इस प्रकार गर्भ युक्त देखकर क्रोध से व्याकुल होकर उनको त्याग दिया ।।६२।। वे छहों स्त्रियां इस प्रकार अपना व्यभिचार देखकर महादुःख से व्याकुल हो गईं ।।६३।। उन मुनियों की स्त्रियों ने गर्भ रूप उस शिववीर्य को त्याग दिया, हिमालय के पृष्ठ पर उस गर्भ को त्यागकर, वह सुखी हो गईं ।।६४।। उस वीर्य को सहने की सामर्थ्य न रखने के कारण हिमालय कम्पित होने लगा, उस दाह को न सह सकने के कारण, उसने

उस वीर्य को गंगाजी में डाल दिया ।।६५।। श्रीगंगाजी भी शंकरजी के वीर्य को न सह सकी और पीड़ित होकर उसने अपनी तरंगों से उस वीर्य को शरकण्डे के बन में त्याग कर दिया ।।६६।। वहां वह वीर्य पतित होते ही तत्काल बालक हो गया, जो सुन्दर, सुभग, श्रीमान्, तेजस्वी, प्रीति का बढ़ानेवाला था ।।६७।। हे मुनीश्वर! मार्गशीर्ष शुक्ला षष्ठी के दिन भूतल में शिवपुत्र का प्रादुर्भाव हुआ ।।६८।। हे नारदजी! उस समय अकस्मात् हिमालय पर्वत की पुत्री और शिवजी ये दोनों प्रसन्न हुए ।।६९।। पार्वती के स्तनों से आनन्द का दूध चूसने लगा, हे मुने! वहां जाकर सब ने विशेष सुख माना ।।७०।। हे तात! त्रिलोकी को सुख देनेवाला मंगल विशेषरूप से हुआ, खल और दैत्यों को विशेषरूप से विघ्न हुआ ।।७१।। आकाश से अकस्मात् देवदुन्दुभी का शब्द होने लगा, हे नारदजी! बालक के ऊपर आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी ।।७२।। हे मुनीश्रेष्ठ! विष्णुजी आदि सब देवताओं को अकस्मात् परम आनन्द का उत्सव हुआ ।।७३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
चतुर्थ कुमारखण्डे शिवपुत्रजन्मवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।। २ ।।

*****

तीसरा अध्याय

नारदजी बोले– हे देव देव प्रजानाथ! हे ब्रह्मन्! हे सृष्टि करनेवाले! हे प्रभो! इसके पीछे क्या हुआ ? सो कृपा करके हमसे कहिये ।।१।। ब्रह्माजी बोले– हे तात! इसी अवसर में प्रतापवान् विश्वामित्रजी विधाता से प्रेरित होकर वहां अपनी इच्छा से आये ।।२।। उस तेजस्वी बालक का अलौकिक तेज देखकर पूर्णकाम और प्रसन्न होकर नमस्कार किया ।।३।। और प्रसन्न चित्त से उस बालक की स्तुति करने लगे, प्रताप के जाननेवाले विश्वामित्रजी विधि की प्रेरित वाणियों से स्तुति करने लगे ।।४।। तब वह बालक बहुत प्रसन्न होकर विश्वामित्रजी से कहने लगा ।।५।। शिवजी के पुत्र ने कहा– हे महाज्ञानी! शिवजी की इच्छा से आप अकस्मात् यहां आ गये हो, हे तात! आप यथोक्त मेरा वेदसम्मत संस्कार कीजिये ।।६।। और आज से आप मुझे प्रसन्न करनेवाले मेरे पुरोहित हुए और इसमें सन्देह नहीं, आप सबके पूज्य होंगे ।।७।। ब्रह्माजी बोले– बालक के यह वचन सुनकर विश्वामित्रजी प्रसन्न हुए और विस्मित होकर ऊँचे स्वर से बालक से कहने लगे ।।८।। विश्वामित्रजी बोले– हे तात! सुनो, मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, गाधि क्षत्रिय कुमार हूँ, मैं क्षत्रिय ब्राह्मण सेवक विश्वामित्र नाम से विख्यात हूँ ।।९।। हे श्रेष्ठ बालक! इस प्रकार मैंने तुम्हें अपना चरित्र कहा, तुम कौन

हो, अपना चरित्र कहो, मुझे तुम्हारी बात से बड़ा आश्चर्य हो रहा है ।।१०।। ब्रह्माजी बोले– जब यह वचन सुनकर वह बालक प्रसन्न होकर उन विश्वामित्रजी से अपना चरित्र कहने लगा ।।११।। शिवपुत्र ने कहा– हे विश्वामित्रजी! मेरे वर से आप ब्रह्मर्षि होंगे, इसमें सन्देह नहीं, वशिष्ठजी आदि आदर से नित्य आपकी प्रशंसा करेंगे ।।१२।। इस कारण मेरी आज्ञा से आप मेरे संस्कार कीजिये और यह गुप्त रहस्य आपको किसी से भी नहीं कहना चाहिये ।।१३।। हे देवर्षि! तब उन्होंने बढ़े प्रेम से शिवपुत्र के वेदानुसार संस्कार किये ।।१४।। तब शिवजी के पुत्र ने महाउपकार कर विश्वामित्र ऋषि के निमित्त प्रसन्न होकर दिव्य ज्ञान दिया ।।१५।। और उस अग्निपुत्र ने विश्वामित्रजी को पुरोहित किया, उसी दिन से अनेक चरित्र करने में पण्डित वह ब्राह्मण श्रेष्ठ पुरोहित हुए ।।१६।। हे मुने! इस प्रकार जो बालक ने लीला की सो मैंने कही, हे तात! अब प्रेम से दूसरी लीला सुनिये, मैं कहता हूँ ।।१७।। हे तात! उस समय श्वेत नामक एक महात्मा ने उस दिव्य परम पावन बालक को देखा ।।१८।। और अग्नि ने जाते ही उसे आलिंगन करके चूमा और पुत्र! इस प्रकार कहकर उसे शक्ति और अस्त्र दिया ।।१९।। गुह उस शक्ति को लेकर क्रौंच पर्वत के शिखर पर चढ़ गये और उस शक्ति से पर्वत श्रृंग पर प्रहार किया, जिस से वह शिखर-पृथ्वी पर गिर पड़ा ।।२०।। यह देखकर दश पद्म वीर राक्षस उसे मारने के लिये आ गये और कुमार के प्रहार से सब नष्ट हो गये ।।२१।। उस समय महा हाहाकार मच गया, और सब पृथ्वी कांपने लगी, उस समय त्रिलोकी व्याकुल हुई, तब इन्द्रादि देवता वहां आकर प्राप्त हुए ।।२२।। उन के दक्षिण पार्श्व में इन्द्र ने वज्र का प्रहार किया, उस समय शाख नामक एक महाबली पुरुष प्रकट हो गया ।।२३।। फिर इन्द्र ने उसके वाम पार्श्व में प्रहार किया, तब उस वज्र के लगने से विशाख नामक एक दूसरा महाबली पुरुष उत्पन्न हुआ ।।२४।। तब इन्द्र ने उस बालक के हृदय में वज्र का प्रहार किया, तब वहां से नैगम नामक एक महाबली पुरुष उत्पन्न हुआ ।।२५।। तब वह स्कन्दादि चारों महाबली महावीर इन्द्र को मारने के लिये शीघ्रता से चले, सो यह उनकी शरण में गया ।।२६।। तब इन्द्र देवताओं के सहित महाभय को प्राप्त होकर, चकित होकर अपने लोक को चला गया, हे मुने! उसने कुछ भेद नहीं जाना ।।२७।। और वह बालक आनन्द पूर्वक वहीं स्थित हुआ, हे तात! वह अनेक लीला करनेवाले प्रभु पूर्व के समान निर्भय रहे ।।२८।। उसी समय कृत्तिका नामक छः स्त्रियां वहां स्नान के निमित्त आईं, उन्होंने उस बालक को वहां देखा, जो बड़ी कान्तिवाला था ।।२९।। उन कृत्तिकादि छहों स्त्रियों ने उस बालक को ग्रहण करने की इच्छा की, हे मुने! बालक के ग्रहण करने की इच्छा से उनमें विवाद होने लगा ।।३०।। उनका विवाद देखकर उस बालक ने छः मुख धारण कर लिये और सब का दूध पिया, हे मुने! इस कारण वे सब प्रसन्न हुईं ।।३१।। उस बालक के मन की गति जानकर वह छहों

कृत्तिका उस बालक को लेकर प्रसन्न होकर अपने लोक को गईं ।।३२।। सूर्य से भी अधिक कान्तिवाले, दूध पीने की इच्छा करनेवाले उस शिवजी के पुत्र कुमार को वे छहों अपना दूध पिला कर बढ़ाने लगीं ।।३३।। वे किसी भी समय बालक को अपनी आँखों की ओट न करती और प्राणों से भी अधिक प्रेमपात्र कुमार को रखतीं, कारण कि वह सब उनकी पोषक थीं ।।३४।। जो-जो वस्त्र और श्रेष्ठ भूषण त्रिलोकी में दुर्लभ हैं, वे प्रेमपूर्वक उस बालक को लाकर दे देतीं ।।३५।। महा कान्तिवाले उस बालक को वे दिन-दिन पुष्टि करती जाती थीं, विशेषकर प्रशंसित और स्वादु अन्न भोजन करातीं ।।३६।। हे तात! एक समय कृत्तिका का पुत्र उस बालक ने देवसभा में जाकर एक सुन्दर चरित्र किया ।।३७।। वह महाउन्नति करनेवाला बालक देवसभा में विष्णुजी और सब देवताओं को अपनी महिमा दिखाने लगा ।।३८।। उस कर्तव्य को देखकर वे विष्णुजी आदि देवता और ऋषि महाविस्मय को प्राप्त होकर उस बालक से पूछने लगे ।।३९।। आप कौन हो? यह वचन सुनकर उस बालक ने कुछ न कहा और अपने स्थान में आकर पूर्ववत् गुप्त रहना स्वीकार किया ।।४०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
चतुर्थ कुमारखण्डे तृतीयोऽध्यायः ।। ३ ।।

*****

चौथा अध्याय

नारदजी बोले- हे देव देव! हे प्रजानाथ! इसके पश्चात् फिर क्या हुआ? कृपा करके शिवलीला से युक्त इस बात को आप कहिये ।।१।। ब्रह्माजी बोले- हे मुने! जिस समय उस शिवजी के पुत्र को कृत्तिकाओं ने ग्रहण कर लिया, कुछ समय बीत गया, परन्तु पार्वती को यह समाचार न मिला ।।२।। उस समय हँसते हुए मुखकमल से दुर्गा ने अपने स्वामी देवेश्वर प्रभु शंकरजी से इस प्रकार के वचन कहे ।।३।। पार्वती बोली- हे देव देव महादेव! आप मेरे शुभ वचन सुनिये, हे ईश्वर! पूर्व जन्म के पुण्य के कारण ही आप मुझे प्राप्त हुए हैं ।।४।। हे योगियों में श्रेष्ठ! आप कृपा करके जब विहार में तत्पर हुए थे, उस समय देवताओं ने मेरी रति भंग कर दी थी ।।५।। हे विभो! आपका वीर्य भूमि पर गिरा, मेरे उदर में नहीं गिरा, हे देव! वह वीर्य कहां गया? किस देवता ने उसे छिपा लिया? ।।६।। हे महेश्वर! हे स्वामिन्! वह आपका अमोघ वीर्य क्या मोघ हो गया? या कहीं उससे कोई बालक प्रकट हुआ? ।।७।। ब्रह्माजी बोले- पार्वती के यह वचन सुनकर जगदीश्वर हंसते हुए देवताओं और मुनियों को बुलाकर बोले ।।८।।

महेश्वर बोले– हे देवताओ! मेरे वचन सुनिये, आपने पार्वती के वचन सुने, मेरा अमोघ वीर्य कहां है? उसे किस ने छिपाया ? ।।९।। क्या भय से शीघ्रता से उसे कोई नहीं प्राप्त होगा ? जो शीघ्र कहेगा तो दण्ड के योग्य न होगा, जो शक्तिसम्पन्न होने पर राजा अच्छा शासक न हो, तो वह प्रजा को बाधा होने से रक्षक नहीं भक्षक कहलाता है ।।१० ।। शिवजी के यह वचन सुनकर सब देवता व्याकुल हो गये और परस्पर सम्मति करके क्रम से सब बोले ।।११ ।। विष्णुजी बोले– जिस ने यह गुरु का वीर्य छिपाया है, वह मिथ्यावादी होकर वह भारत में गुरुदारा और गुरु निन्दा के पाप को प्राप्त होगा ।।१२ ।। ब्रह्माजी बोले– पुण्यक्षेत्र भारत में जिसने यह पवित्र वीर्य चुराया है, वह आपकी सेवा पूजा में युक्त न होगा ।।१३ ।। लोकपाल बोले– जिस पापी ने पतित होने के कारण भ्रम से उस वीर्य को छिपाया है, वह उस पाप को प्राप्त होगा, दुःख पायेगा और निरन्तर उसके कर्मों से उसे ताप होगा ।।१४।। देवता बोले– जो मूर्ख प्रतिज्ञा करके उसे पूर्ण नहीं करता, वही उस पाप का भागी होगा, जिसने वह वीर्य छिपाया हो ।।१५।। देवपत्नी बोलीं– जो स्त्री अपने स्वामी की निन्दा करके दूसरे पुरुष के पास जाती है, वे माता और बन्धुओं से हीन होकर जिस पाप को प्राप्त होती है, शिवजी के वीर्य चुराने का वही पाप लगेगा ।।१६।। ब्रह्माजी बोले– देव देव महादेव महेश्वर देवताओं के वचन सुनकर धर्मादिक कर्म के साक्षी देवताओं से बोले ।।१७।। श्रीशिवजी बोले– किसी देवता ने वीर्य छिपाया है, मुझ समर्थ महेश्वर का वीर्य मोघ कैसे हुआ ? ।।१८।। हे विश्व देवताओ! आप सब कर्म के साक्षी हो, क्या आपको कहीं उस वीर्य के रखने की सुध है? आप उसे जानने के योग्य हो, कहीं विदित हो तो कहिये ।।१९।। ब्रह्माजी बोले– ईश्वर के वचन सुनकर सब सभा के लोग कम्पित हो गये और परस्पर एक दूसरे को देखकर क्रम से प्रभु के आगे बोले ।।२०।। ब्रह्माजी बोले– रति में वीर्य स्थित रहा सो पृथ्वी पर गिरा, वह शंकरजी के प्रकोप से अमोघ रहा, पृथ्वी को समाचार विदित होगा ।।२१।। पृथ्वी बोली– मैं यह वीर्य सहने में असमर्थ थी, सो मैंने अग्नि को सौंप दिया, हे ब्रह्मन्! मुझ में उसे उठाने की सामर्थ्य नहीं थी, सो आप मुझ अबला को क्षमा करने के योग्य हैं ।।२२।। अग्नि बोला– हे शंकरजी! मैं भी आपका वीर्य सहन करने में असमर्थ हुआ था, सो मैंने कपोत रूप में उसे कैलास पर ही त्याग दिया ।।२३।। गिरिराज बोले– हे शंकरजी! हे लोकप! मैं भी आपका वीर्य सहन करने में असमर्थ हूँ, हे परमेश्वर! दुःसह होने से मैंने उस वीर्य को गंगाजी में डाल दिया ।।२४।। गंगाजी बोली– हे शंकर! हे लोकपति! मैं भी आपका वीर्य सहन करने में अशक्त हुई, हे प्रभो! तब मैंने व्याकुल होकर उसे शरकण्डे के वन में डाल दिया ।।२५।। वायु बोले– पतित हुआ वह वीर्य तत्काल एक बालक हो गया, हे शिवजी! स्वर्नदी के पवित्र तट पर वह बड़ा सुन्दर बालक जन्मा है ।।२६।। सूर्य बोले– हे प्रभो! बालक को रोता हुआ देखकर

मैं अस्ताचल को चला गया, कालचक्र से प्रेरित हो मैं ठहरने को असमर्थ हुआ ।।२७।। चन्द्रमा ने कहा– रोते हुए बालक को देखकर कृत्तिकायें उसे स्वच्छन्दता से बद्रिकाश्रम की ओर अपने स्थानों को ले गईं ।।२८।। जलों ने कहा– हे प्रभो! उस रोते हुए बालक को लेकर उन कृत्तिकाओं ने अपने स्तनपान से उसे बढ़ाया है, हे ईश! वह आपका पुत्र सूर्य के समान कान्तिवाला है ।।२९।। सन्ध्या बोली– इस समय वह कृत्तिकायें वन में उस पुत्र को पालन करके कौतुक से उस बालक का नाम कार्तिकेय रख चुकी हैं ।।३०।। रात्रि ने कहा– वे कभी बालक को आँखों की ओट नहीं करतीं, उसे प्राणों से भी अधिक प्रीतिमान माना है, वह उसका भली प्रकार पोषण करती हैं ।।३१।। दिन ने कहा– पृथ्वी पर जितने श्रेष्ठ भूषण और वस्त्र हैं, वह पहनाती हैं तथा जितने स्वादिष्ट भोजन हैं, वह आपके पुत्र को कराती हैं ।।३२।। उनके यह वचन सुनकर शिवजी परम प्रसन्न हुए और आनन्दपूर्वक ब्राह्मणों को बहुतसी दक्षिणा दी ।।३३।। पुत्र के यह समाचार सुनकर पार्वती बहुत प्रसन्न हो गई, ब्राह्मणों को कोटि रत्न और बहुतसी दक्षिणा दी ।।३४।। लक्ष्मी, सरस्वती, मेना, सावित्री आदि सब स्त्रियों ने तथा विष्णुजी आदि देवताओं ने ब्राह्मणों के निमित्त बहुतसा धन दिया ।।३५।। उन प्रभु ने देवता, मुनि और पर्वतों से प्रेरित होकर अपने गणों और दूतों को पुत्र के समीप भेजा ।।३६।। वीरभद्र, विशालाक्ष, शंकुकर्ण, कराक्रम, नन्दीश्वर, महाकाल, वज्रदंष्ट्र, महोन्मद ।।३७।। गोकर्णास्य, दधिमुख जो प्रज्ज्वलित अग्नि के समान मुखवाला था, उसे तथा लाख क्षेत्रपाल और तीन लाख भूत ।।३८।। शिवजी के तुल्य पराक्रमवाले रुद्र और भैरवों को और भी असंख्य विकृत आकारवाले असंख्य गणों को भेजा ।।३९।। वे सब शिवजी के दूतों ने अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र ग्रहण करके कृत्तिकाओं के भवनों को घेर लिया ।।४०।। उन सब को देखकर कृत्तिका भय से व्याकुल हो गईं, ब्रह्मतेज से प्रकाशमान कार्तिकेय से कहने लगी ।।४१।। कृत्तिका बोली– हे वत्स! असंख्य सेनाओं ने हमारे भवन को घेर लिया है, अब क्या करें? कहां जायें? महाभय उपस्थित हुआ है ।।४२।। कार्तिकेय बोले– हे कल्याणियो! भय त्याग करो, मेरे होते भय का कारण नहीं है, हे मातः! मैं बालक होकर भी दुर्निवार हूँ, मुझे कौन निवारण कर सकता है? ।।४३।। उसी समय सेनापति नन्दिकेश्वर कार्तिकेय के आगे स्थित होकर इस प्रकार से कहने लगा ।।४४।। हे भ्रातः! मेरी प्रवृत्ति सुनो और माताएँ भी शुभ समाचार सुनो, जगत् के संहर्ता महेशजी ने मुझे भेजा है ।।४५।। कैलास पर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि विद्यमान हैं, हे तात! उस महा उत्सव मंगल की सभा में सब स्थित थे ।।४६।। उस सभा में पार्वती ने सबके कल्याणकर्ता शंकरजी को सम्बोधन देकर तुम्हें खोजने के निमित्त कहा ।।४७।। क्रम से शंकरजी ने सब देवताओं से तुम्हारी प्राप्ति के निमित्त पूछा, उनमें प्रत्येक ने यथोचित उत्तर दिया ।।४८।। पीछे सब धर्मादिकों ने और

कर्म के साक्षी देवताओं ने ईश्वर से तुम्हें इन कृत्तिकाओं के स्थान में बताया है ।।४९।। प्रथम शिव–पार्वती में बहुत काल तक विहार होता रहा, उसे देवताओं ने अवलोकन किया और शंकरजी का वीर्य भूमि पर गिरा ।।५०।। भूमि ने उसे अग्नि में और अग्नि ने पर्वत पर और गिरिराज ने उसे गङ्गा में प्रक्षेप किया, पीछे गङ्गाजी ने उसे शरकण्डों के वन में प्रक्षेप किया ।।५१।। वहां देवताओं का कार्य करने में समर्थ तुम्हारा जन्म हुआ, वहां तुम्हें कृत्तिकाओं ने प्राप्त किया, सो तुम इस समय भूमि पर चलो ।।५२।। शिवजी देवताओं के साथ तुम्हारा अभिषेक करेंगे, वहां तुम्हें सम्पूर्ण शस्त्र प्राप्त होंगे, जिससे तुम तारक असुर को मारोगे ।।५३।। तुम विश्व के संहर्ता के पुत्र हो, तुम्हें प्राप्त करने के लिये वह असमर्थ हैं, जिस प्रकार सूखा वृक्ष अग्नि को अपनी खखोडल में रखने के लिये समर्थ नहीं होता ।।५४।। तुम संसार भर में प्रकाशित होकर इनके घर में शोभा को प्राप्त नहीं हो सकते, जैसे महाकूप में पतित हुआ गिरिराज शोभा को प्राप्त नहीं होता ।।५५।। जिस प्रकार से हमारे तेज से नहीं आच्छन्न हुए तुम प्रकाश हो, जैसे सूर्य कला से आच्छादित होकर मनुष्यों को प्रकाश देता है ।।५६।। वैसे तुम जगत् में व्यापी साक्षात् विष्णु हो, हे शिवपुत्र! और नहीं हो, जैसे किसी दूसरे से व्याप्त न होकर आकाश ही सर्वत्र व्यापक है, ऐसे तुम हो ।।५७।। योगीन्द्र होकर तुम अनुलिप्त नहीं होते, परन्तु पुष्ट करने में भागी हो, जिस प्रकार आत्मा जीवधारीयों के कर्मयोग से लिप्त नहीं होता ।।५८।। ऐसे ही ईश से सब कुछ होता है, परन्तु उनकी स्थिति लिप्तता किसी में नहीं हो तो, वा पुत्र में भी उनकी स्थिति नहीं है, जिस प्रकार योगियों को गुण और तेज की राशि वाले ऐश्वर्य में अभिलाषा नहीं होती ।।५९।। हे भाई! जो तुम्हें नहीं जानते, वे हतबुद्धि हैं, वे ऐसे हैं, जैसे भेक कमलों को नहीं जानते हैं, कारण कि वह सब एक ही स्थान में स्थित हैं, तो भी उनके गुण नहीं जानते, ऐसे ही मनुष्य तुम्हें नहीं जानते ।।६०।।

कार्तिकेय बोले– हे भ्रातः! तुम सब जानते हो, जो त्रैकालिक ज्ञान है, तुम ज्ञानी हो, तुम्हारी क्या प्रशंसा की जाय, कारण कि तुम साक्षात् शंकरजी के आश्रित हो ।।६१।। जिन–जिन योगियों में कर्मवश यह प्राणी हैं, हे भ्रातः! उनमें वे सुखी होते है ।।६२।। यह कृत्तिका ज्ञानवाली योगिनी प्रकृति के कला हैं, उनके उपकार और दुग्धपान करके वृद्धि को प्राप्त हुआ हूँ ।।६३।। मैं इनका पोष्य पुत्र हूँ और यह स्त्रियां मेरे अंशवाली हैं, उन प्रकृति के अंश उस स्वामी के वीर्य से होते हैं ।।६४।। नन्दिकेश्वर शैलेन्द्रकन्या से मेरा प्रादुर्भाव नहीं है, वह मेरी धर्म की माता हैं, जैसे यह सब कृत्तिकायें हैं ।।६५।। जो शिवजी ने मुझे अपना पुत्र मानकर आपको भेजा है, तो मैं आपके साथ चलकर देवसमूहों को देखूंगा ।।६६।। यह कहकर और शीघ्रता से कृत्तिकाओं को बुलाकर उनसे पूछा और शिवजी के पार्षदों के साथ कुमार ने गमन किया ।।६७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां चतुर्थ कुमारखण्डे चतुर्थोऽध्यायः ।। ४ ।।

पाँचवा अध्याय

ब्रह्माजी बोले– उसी समय एक बड़ा सुन्दर रथ दिखाई दिया, जो विश्वकर्माजी का बनाया हुआ, बहुत अद्भुत शोभायमान था।।१।। जो सौ पहियों के लगने से बड़े विस्तार वाला, मन के समान वेगवान्, बड़ा मनोहर, जो पार्वती ने भेजा था और जिसे श्रेष्ठ पार्षद वेष्टित कर रहे थे।।२।। उस पर परमज्ञानी कार्तिकेयजी शिवजी के वीर्य से सम्भूत अनन्त पराक्रमी, कुछ दुःखी हृदय से सवार हुए।।३।। उसी समय शोक से व्याकुल, बाल खोले हुई कृत्तिकाएँ वहां आकर प्राप्त हुईं और आकर उन्मत्त के समान वचन कहने लगीं।।४।। कृत्तिकायें बोलीं– हे कृपासिन्धो! हमें छोड़ कर तुम निर्दयी होकर जाते हो, पुत्रों का यह धर्म नहीं है, जो माता पालन करें उन्हें छोड़कर चले जांय।।५।। हम ने तुम्हें स्नेह से बढ़ाया है, तुम हमारे धर्म के पुत्र हो, अब हम क्या करें, कहां जांय और क्या कर्तव्य करें? ।।६।। यह कहकर सब कृत्तिकायें कुमार को हृदय से लगा कर वियोग के कारण तत्काल ही मूर्छित हो गईं।।७।। कुमार ने उन्हें ज्ञान के वचनों से समझाया, हे मुने! और उनके साथ ही रथ के ऊपर कुमार चढ़े।।८।। बहुत प्रकार से सुखदायक मंगल देखकर और सुनकर कुमार पार्षदों के साथ पिता के मन्दिर में चले।।९।। साथ में नन्दिकेश्वर मन के समान वेगवान् रथ पर चढ़े, कुमार, न्यग्रोध और अक्षयमूल वृक्ष वाले कैलास पर्वत पर पहुंचे।।१०।। वहां कृत्तिका और पार्षदों के साथ स्थित हुए अनेक लीलाओं में चतुर कुमार शंकरजी के प्रीति से वहां ठहरे।।११।। तब सब देवता, ऋषि, सिद्ध, चारण, ब्रह्माजी और विष्णुजी ने शिवजी से गुह का आगमन कहा।।१२।। तब गंगा से प्रकट कुमार को देखने के लिये सदाशिवजी चले और साथ में विष्णुजी आदि देवता तथा दूसरे महर्षि थे।।१३।। उस समय शंख भेरी आदि बजने लगे और सन्तुष्ट चित्तवाले देवताओं का परम उत्सव हुआ।।१४।। उस समय वीरभद्रादि सब गण अनेक ताल और लय से शब्द करते हुए स्तुति करने लगे।।१५।। स्तुति पढ़नेवाले गुणकिर्तन करने लगे और प्रसन्न मन से जय शब्द करने लगे।।१६।। और शिवजी के श्रेष्ठ पुत्र शरकण्डों में प्रकट हुए को देखने के लिये सब चले।।१७।। पार्वती ने उस समय बहुत मंगल मनाया, राजमार्ग मनोहर किया गया और पद्मरागादि मणियों से सब ओर से पुर सझाया गया।।१८।। पति पुत्र वाली सुहागनें तथा लक्ष्मी आदि तीस देवियों को आगे करके पार्वती चलीं।।१९।। रंभा आदि दिव्य अप्सरायें सुन्दर वेष धारणकर शिवजी की आज्ञा से गाने और नृत्य करने लगीं।।२०।। जिन्होंने गङ्गा के पुत्र शंकरजी के समान तेजस्वी का दर्शन किया, उन्होंने देखा कि तीनों जगत् में कुमार का

तेज व्याप्त हो रहा है ।।२१।। उस तेज से व्याप्त होकर यह बालक तपाये हुए सुवर्ण के समान प्रदीप्त हो गया और सूर्य के समान तेजस्वी कुमार की सबने वन्दना की ।।२२।। सब कोई सिर झुकाकर नमस्कार करने लगे और बाँई–दहिनी ओर से कुमार को घेरकर सब कोई खड़े हो गये ।।२३।। मैं, विष्णुजी, इन्द्र तथा दूसरे सब देवता कुमार के चारों ओर स्थित होकर पृथ्वी पर दण्डवत करने लगे ।।२४।। हे मुने! इसी समय अपनी सखियों के सहित आकर गिरिजा ने वह महोत्सव देखा और बड़ी प्रसन्न हुई ।।२५।। वह जगत् के एक मात्र बन्धु अपने पुत्र को देखकर भवानी सहित बड़ी प्रसन्नता को प्राप्त हुए, सर्पराज को धारण किये परेश, साक्षात् सर्वेश्वर अपने गणों के साथ बड़े प्रेम से गद्गद हो गये ।।२६।। तब शक्तिधारी स्कन्दजी पार्वती और शिवजी को देखकर रथ से शीघ्र उतरकर सिर से प्रणाम करने लगे ।।२७।। शिवजी ने प्रेम से कुमार को हृदय से लगा कर सिर सूंघ लिया और परमेशान प्रेम और स्नेह के कारण बड़े प्रसन्न हुए ।।२८।। और पार्वती पुत्र को हृदय से लगा कर बड़े सम्भ्रम को प्राप्त हुईं और स्नेह से व्याप्त होकर पुत्र को दूध पिलाने लगीं ।।२९।। तब स्त्रियों सहित देवताओं ने कुमार का नीराजन किया और जय शब्द से उस समय आकाश गूंज उठा ।।३०।। ऋषि वेदघोष करने लगे, गाने वाले गीत गाने लगे और बहुत से बाजे कुमार की अभ्यर्थनार्थ बजने लगे ।।३१ ।। तब प्रकाश से दीप्तिमान् कुमार को महादेवजी अपनी गोदी में बैठाकर उस समय भवानीपति महा शोभा से प्राप्त हो सब पुत्रवालों में श्रेष्ठ हुए ।।३२।। अपने गणों के साथ शिवजी के मन्दिर में गये, शिवजी की आज्ञा से देवतादि सबने ही महोत्सव किये ।।३३।। शिवा और शिवजी दोनों ही उस समय परमशोभा को प्राप्त हुए और देवता और श्रेष्ठ ऋषि उस समय शिवा–शिव को घेरकर उनकी स्तुति करने लगे ।।३४।। कुमार प्रेम से शिवजी के गोदी में खेलने लगे, शिवजी के कण्ठ में लिपटे हुए वासुकी नाग को अपने हाथ से पीड़ित करने लगे ।।३५।। यह बात देखकर कृपालु शंकरजी, अनेक लीला के स्थान देव कृपादृष्टि से देखकर हंस कर पार्वती से कुमार की यह बात कहने लगे ।।३६।। उस समय भगवान् शंकरजी ने मन्द मुस्काते हुए गिरिजा सहित परम आनन्द माना और वह जगत् के एक बन्धु प्रेम से गद्गद कण्ठ होकर आनन्द से कुछ न बोले, वह सब सर्वव्यापक, सब भुवनों के एक ही स्वामी हैं, भरण–पोषण कर्ता हैं ।।३७।। तब जगत्पति भगवान् शंकरजी ने लौकिक लीला के निमित्त मनोहर रत्नों के सिंहासन पर कुमार को बैठाया ।।३८।। सब तीर्थों से आये हुए जलों को वेदमन्त्रों से पवित्र करके सौ रत्नों के घटों से कार्तिकेय को स्नान कराया और बड़ी प्रसन्नता मानी ।।३९।। अच्छे सार रत्नों से निर्मित किरीट और मुकुट तथा बाजूबन्द, वैजयन्तीमाला और अपना चक्र हरि ने कुमार को दिया ।।४०।। शूल, पिनाक, फरशा, शक्ति, पाशुपत, बाण, संहारास्त्र और परम विद्या शंकरजी ने कुमार को दी ।।४१।।

मैंने यज्ञोपवीत, वेद और वेदमाता गायत्री, कमल, ब्रह्मास्त्र और शत्रुनाशिनी विद्या प्रदान की ।।४२।। इन्द्र ने कुमार के निमित्त वज्र और गजेन्द्र दिया, स्वेतछत्र, रत्नमाला और दूसरी वस्तुएं वरुणजी ने दी ।।४३।। सूर्य ने मन के समान वेगगामी एक रथ और एक बख्तर दिया, यम ने यमदण्ड और सुधानिधि समुद्र ने अमृत का घट दिया ।।४४।। अग्नि ने प्रसन्न होकर अपने पुत्र को महाशक्ति दान की, निऋति ने अपना शस्त्र और पवन ने वायव्यास्त्र दिया ।।४५।। कुबेर ने गदा और ईश ने प्रसन्न होकर शूल दिया, इसी प्रकार दूसरे देवताओं ने भी अनेक शस्त्र और भेंटें दी ।।४६।। प्रसन्न होकर कामदेव ने कामास्त्र दिया, गदा तथा अपनी विद्या परम प्रसन्न होकर दी ।।४७।। क्षीरसागर ने अमूल्य रत्न तथा रत्नों के श्रेष्ठ नूपुर दिये, हिमालय ने भी दिव्य भूषण और वस्त्र दिये ।।४८।। गरुड़ ने चित्रबर्हण नामवाला अपना पुत्र दिया, अरुण ने ताम्रचूड नामवाला बलवान् चरणायुध दिया ।।४९।। पार्वती ने परम ऐश्वर्य युक्त अपने पुत्र को देखा और महाप्रेम से उसे चिरंजीवित्व दिया ।।५०।। लक्ष्मी ने दिव्य सम्पत और मनोहर महाहार दिया और सावित्री ने प्रेम से सम्पूर्ण सिद्धिविद्या प्रदान की ।।५१।। हे मुने! और भी जो देवियां प्रीति से वहां आईं थीं, बालक के पालना के निमित्त यथा शक्ति सब ने दिया ।।५२।। हे मुनिश्रेष्ठ! उस समय वहां महामहोत्सव हुआ और सब प्रसन्न हुए, विशेष कर शिवपार्वती प्रसन्न हुईं ।।५३।। हे मुने! उसी समय महाप्रतापी रुद्र प्रेम से हँसते हुए ब्रह्माजी आदि सब देवताओं से कहने लगे ।।५४।। शिवजी बोले- हे हरे! हे विधाता! सब देवताओं मेरा वचन सुनिये, मैं सर्वथा प्रसन्न हूँ, आप मन इच्छित वर मांगो ।।५५।। ब्रह्माजी बोले- शिवजी के वचन सुनकर विष्णुजी आदि सब देवता सब कोई प्रसन्न होकर पशुपति से बोले ।।५६।। हे प्रभो! तारकासुर को यह कुमार वध करें, उसी निमित्त यह चरित्र हुआ है ।।५७।। इस कारण उसी समय हम तारकासुर के वध के निमित्त गमन करेंगे, आप कुमार को आज्ञा दें कि यह उसे मार कर हमारा मंगल करें ।।५८।। ब्रह्माजी बोले- देवताओं के यह वचन सुनकर विभु ने परम कृपा से देवताओं की प्रीति के निमित्त कुमार को तारकासुर के वध के निमित्त आज्ञा दी ।।५९।। शिवजी की आज्ञा से ब्रह्मा, विष्णु आदि सब देवता कुमार को आगे करके पर्वत से सब चले ।।६०।। कैलास से बाहर होकर त्वष्टा ने विष्णुजी की आज्ञा से पर्वत के निकट ही एक बहुत मनोहर नगर रचा ।।६१।। उसमें एक बड़ा मनोहर अत्यन्त रमणीक परम अद्भुत अधिक निर्मल महल कुमार के निमित्त बनाया और उसमें एक परम अद्भुत सिंहासन भी बिछाया ।।६२।। तब बुद्धिमान् हरि ने परम प्रेम से उसमें मंगल करवायें और देवताओं के सहित सब तीर्थों के जल से वहां कुमार का अभिषेक किया ।।६३।। और सब प्रकार से अलंकृत करके वहां उनको निवास कराया और कार्तिक की विधि से प्रेमपूर्वक उत्सव कराया ।।६४।। और हरि ने प्रेम से उनको ब्रह्माण्ड का अधिपतित्व

दिया और तिलक करके देवताओं सहित उनकी पूजा की ।।६५।। पीछे सब देवता ऋषियों के सहित प्रेम से कुमार को प्रणाम करके उन सनातन शिवरूप को अनेक स्तोत्रों से प्रसन्न किया ।।६६।। श्रेष्ठ सिंहासन पर स्थित होकर कार्तिकेय बड़े शोभित हुए और ब्रह्माण्ड के पालक रूप में स्वामि भाव को प्राप्त हुए ।।६७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
चतुर्थ कुमारखण्डे कुमारोभिषेकवर्णनो नाम पञ्चमोऽध्याय: ।। ५ ।।

*****

छठां अध्याय

ब्रह्माजी बोले- हे नारदजी! तब कार्तिकेय ने वहां सूतिका को दिखाया, उस भक्तिदायिनी कथा को आप प्रेम से सुनिये ।।१।। उसी समय एक नारद नामक ब्राह्मण वहां आया, वह यज्ञ का करनेवाला था, श्रीमान् कुमार की शरण में आकर प्राप्त हुआ ।।२।। वह प्रसन्न मन ब्राह्मण कार्तिकेय के निकट प्राप्त होकर प्रणाम कर सुन्दर स्तोत्रों से स्तुति करके अपना अभिप्राय कहने लगा ।।३।। ब्राह्मण बोला- हे स्वामिन्! मेरे वचन सुनकर मेरा कष्ट निवारण कीजिये, आप सब ब्रह्माण्ड के स्वामी हो, इस कारण मैं आपकी शरण आया हूँ।।४।। मैंने अजमेध यज्ञ का आरम्भ किया है, वह अज बन्धन तोड़ कर मेरे घर से चला गया ।।५।। न जाने वह कहां गया? मैंने उसे बहुत खोजा परन्तु वह बलवान् न मिला, इस कारण मेरा यज्ञ भंग होता है ।।६।। हे विभो! आप स्वामी के रहते मेरा यज्ञ किस प्रकार भंग हो सकता है? हे सबके अधिपति! यह विचारकर मेरी कामना पूर्ण कीजिये ।।७।। हे प्रभो! हे शिवपुत्र! आपको छोड़कर मैं किसकी शरण जाऊं? आप सब ब्रह्माण्ड के स्वामी हो, सब देवता आपकी सेवा करते हैं।।८।। हे दीनबन्धु! हे दयासिन्धु! हे भक्तवत्सल! आप तो सब प्रकार सेवा के योग्य हो, हे परमेश्वर! आपकी तो हरि ब्रह्मादि देवता स्तुति करते हैं।।९।। आप पार्वतीनन्दन स्कन्द परम एक और परम तप हो, आप परमात्मा आत्मज्ञान के देनेवाले स्वामी शरणागत रक्षक हो ।।१०।। हे दीनानाथ! हे महेश! हे हे शंकरजी के पुत्र! हे त्रिलोकीनाथ! हे प्रभो! हे माया के अधिपति! हे प्रिय! मैं आपकी शरण आया हूँ, आप मेरी रक्षा कीजिये, आप सबके स्वामी हो, ब्रह्मादि सब देवता आपको प्रणाम और स्तुति करते हैं, आप माया से अवतार लेते हो, अपने भक्तों को सुख देत हो, रक्षा में तत्पर तथा माया वाले हो ।।११।। आप भक्तों के प्राण, गुणों के आगर, तीनों गुणों से भिन्न हो, शिवजी के प्यारे, कल्याण मय शिवजी के पुत्र, प्रसन्न, सुखदायक,

सत्–चित रूप, महान हो, सर्वज्ञ त्रिपुरघाती शंकरजी के पुत्र, सदा सत्प्रेम के वश में हो, षणमुखवाले साधुओं के प्यारे प्रणोतों के पालक, सर्वेश्वर, कल्याणकारी, साधुओं से द्रोह करनेवाले को मारने वाले शंकरजी आपके गुरु हैं, ब्रह्माण्ड के नाथ प्रभु आपके चरणों की सब देवता सेवा करते हैं, हे सेवाप्रिय! मेरी रक्षा कीजिये ।।१२।। बैरियों को भय देनेवाले, भक्तों का कल्याण करनेवाले, शरण सुखद सुखकारी आपके चरणकमलों को मैं प्रणाम करता हूँ, हे स्कन्द! मेरी प्रार्थना पर आप कान कीजिये, भक्तों के चित्त में सदा अपनी भक्ति दीजिये ।।१३।। बली शत्रु उसका क्या कर सकते हैं? वह दक्ष होकर भी दोनों पार्श्व (ओर) से रक्षित हो सकता है, तक्षक वा आमिष भक्षी उसका क्या कर सकते हैं, चतुरों से माननीय आप जिसके रक्षक हैं ।।१४।। हे देव! देवगुरु बृहस्पति भी आपकी स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं, सो कहिये मैं मन्दबुद्धि आपकी क्या स्तुति करूं, बढ़ाई पूजा करूं? पवित्र अपवित्र जैसा कुछ भी हूँ, हे स्कन्द! आपके चरणकमल के पराग की प्रार्थना करता हूँ ।।१५।। हे सबके ईश्वर! हे भक्तों के ऊपर कृपा करनेवाले! हे दयासिन्धु! मैं आपका दास हूँ, हे प्रभो! आप गणों के पति हो, अपने सेवक के अपराध मत गिनो, हे भक्तों के दुःख दूर करनेवाले! आप जानते हो कि मैंने कभी आपकी भक्ति नहीं की, हे भगवन्! आपके बराबर तो कोई रक्षक नहीं है और मेरे बराबर कोई पामर नहीं है ।।१६।। आप कल्याण के करनेवाले, कलि के पाप नाश करनेवाले, कुबेर के बन्धु, दयामय चित्रवाले, अठारह नेत्रवाले, छः मुखोंवाले हो, हे देव! आप मेरा यज्ञ पूर्ण कीजिये ।।१७।। हे शरणागतवत्सल! आप त्रिलोकी के रक्षक हो, आप यज्ञ के कर्त्ता, यज्ञ के भर्त्ता, विघ्न करनेवालों को हरानेवाले हो ।।१८।। आप साधुजनों के विघ्न निवारण करनेवाले हो, सबकी सृष्टि के करनेवाले हो, हे महेशान पुत्र! आप मेरा यज्ञ पूर्ण कीजिये, आपको नमस्कार है ।।१९।। हे सबके रक्षक स्कन्द! आप सबके ज्ञाता हो, आप सबके ईश्वर, ईशान सबके रक्षक हो ।।२०।। आप संगीत के जाननेवाले, वेद के ज्ञाता, परम प्रभु हो, आप सबकी स्थिति और विधान करनेवाले देव देव, सत्पुरुषों की गति हो ।।२१।। भवानीनन्दन शिवजी के पुत्र वयुन (प्रज्ञानघन) स्वराट्, अपने तेज से आप ही विराजमान हो, आप ही ध्यान करनेवाले आप ही ध्यान योग्य, पितरों के पिता सदात्मा, महात्माओं के कारण हो ।।२२।। ब्रह्माजी बोले– हे देवसम्राट् शिवजी के पुत्र! इस प्रकार से ब्राह्मण के वचन सुनकर वीरबाहू नामक अपने गण को उसके निमित्त भेजा ।।२३।। उनकी आज्ञा से वीरबाहू उसकी खोज करने के निमित्त इच्छा करके स्वामी को प्रणाम करके वह महावीर शीघ्रता से चला ।।२४।। उसने सब ब्रह्माण्ड भर में उसकी खोज की, परन्तु उस अज को कहीं भी नहीं पाया। परन्तु उसका उपद्रव सूना ।।२५।। तब वैकुण्ठ में जाकर उस अज को देखा, जहां गलयूप महाबल उपद्रव करते थे ।।२६।। उस वीर ने ज्यों ही

उसे देखा कि देखते ही उसके सींगों को पकड़कर बड़े वेग से शब्द करते हुए उसे अपने स्वामी के पास ले आया।।२७।। उसे देखते ही भगवान् कार्त्तिकेय जगत्पालक ब्रह्माण्ड का बोझ लेकर उसके ऊपर चढ़ बैठे।।२८।। वह अज मुहूर्तमात्र में सब ब्रह्माण्ड में भ्रमण करके श्रम को प्राप्त होकर फिर उसी स्थान में आकर प्राप्त हुआ।।२९।। तब वह स्वामी उससे उतर कर अपने आसन पर बैठे वह अज वहीं स्थित रहा, हे नारदजी! आपने उससे कहा।।३०।। नारदजी बोले- देवदेवेश! आपको प्रणाम है, हे कृपानिधे! यह मुझे दीजिये, हम आनन्द से यज्ञ करेंगे, आप हम से सखाभाव करिये।।३१।। कार्तिकेय बोले- विप्र! यह अज वध के योग्य नहीं है, हे नारद! आप अपने घर जाइये, आपका यज्ञ पूर्ण होगा, मैं प्रसन्नता से यह वर देता हूँ।।३२।। ब्रह्माजी बोले- यह वचन सुनकर वह द्विज स्वामी प्रेम से आशीर्वाद देकर अपने स्थान को चला गया।।३३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

चतुर्थ कुमारखण्डे षष्ठोऽध्यायः ।। ६ ।।

*****

सातवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले- वे हरि आदि देवता उन विभु के इस प्रकार चरित्र को देखकर विश्वास में मन लगने के कारण बड़े प्रसन्न हुए।।१।। ताल ठोक कर सिंहनाद करने लगे, शिवजी के परम तेज से भावित होकर कुमार को आगे कर तारक असुर को मारने को चले।।२।। महाबली तारकासुर ने भी देवताओं का उद्योग सुनकर बड़ी सेना लेकर देवताओं से युद्ध करने के निमित्त गमन किया।।३।। जब देवताओं ने तारक असुर की महासेना को आते हुए देखा, तब बल से बड़ा सिंहनाद करके दैत्यों को विस्मित कर दिया।।४।। तब उस समय आकाशवाणी हुई, वह शिवजी की प्रेरणा से हरि आदि सब देवताओं को कहने लगी।।५।। आकावाणी बोली- हे देवताओ! इस कुमार को आगे करके आप सब संग्राम कर दैत्यों को जीत कर विजयी होगे।।६।। ब्रह्माजी बोले- सर्व देवता आकाशवाणी को सुनकर बड़ी उत्कण्ठा से वीरशब्द करते हुए निर्भय हो गये।।७।। वेग को प्राप्त होकर वे सब देवता कुमार को आगे करके युद्ध की इच्छा से पृथ्वी सागर के संगम में युद्ध की इच्छा से स्थित हुए।।८।। उसी समय दैत्यों की बड़ी भारी सेना साथ में लेकर वह तारक असुर वहां प्राप्त हुआ, जहां अन्य सब देवता थे।।९-१०।। तारक दैत्य के साथ सब असुर गर्जे, उधर देवता भी गर्जने लगे और चरणों के निक्षेप तथा जंघादि के ताडन से पृथ्वी को कम्पित करने लगे।।११।। वह शब्द सुनकर भी सब देवता निर्भय रहे और एक साथ ही तारक असुर से युद्ध करने के

लिये सन्नद्ध हो गये ।।१२।। स्वयं इन्द्र कुमार को हाथी पर चढ़ाकर आगे-आगे हुए, उस समय उनके साथ महान् देवताओं की सेना तथा लोकपाल थे ।।१३।। उस समय अनेक प्रकार से दुंदुभी तथा भेरी, वीणा, वेणु, मृदंग बजने लगे और गन्धर्व गाने लगे ।।१४।। तब कुमार वह हाथी इन्द्र को देकर आप अनेक आश्चर्य देनेवाले नाना रत्नों से जटित दूसरे यान पर सवार हुए ।।१५।। तब वह महायशस्वी विमान के ऊपर चढ़कर शिवजी के सब गुणों से युक्त होकर परम लक्ष्मी से वह महान् परम शोभा को प्राप्त होकर महाकान्तिवाले चामरों के ढोने से शोभा को प्राप्त होने लगे ।।१६।। प्रचेता सम्बन्धी छत्र बड़ी कान्तिवाला अनेक रत्नों से विराजमान था, जिससे चन्द्रमास सम्बन्धी अनन्त किरणें निकल रहीं थीं, वह कुमार के मस्तक पर धारण किया गया ।।१७।। तब वे इन्द्र आदि सब देवता मिलकर अपनी-अपनी सेना के सहित महाबल से युद्ध की कामना करने लगे ।।१८।। इस प्रकार देवता और दैत्य बड़ी भारी सेना लेकर महा बल से युद्ध करने की इच्छा से पृथ्वी पर स्थित हुए ।।१९।। वह देवता और दैत्य दोनों की सेनायें बड़ी शोभा को प्राप्त हुईं, उस समय बन्दीजन स्तुति करने लगे, सेना परस्पर एक दूसरे को मारने का उद्योग करने लगी ।।२०।। उस समय वह दोनों गर्जने लगे, जो शब्द कायरों को भयंकर और दूसरों को सुखदायक था ।।२१।। इसी समय देवता और दैत्य दोनों ही परस्पर क्रोधित हुए, बल से उन्मत्त होकर क्रोध में अधीर होकर युद्ध करने लगे ।।२२।। वह देवता और दैत्यों का बड़ा भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ, क्षणमात्र में पृथ्वी रुण्ड-मुण्डों से व्याप्त हो गई ।।२३।। क्षणमात्र में सैंकड़ों-हजारों वीरसम्मत बड़े-बड़े योद्धा पृथ्वी पर गिर गये और महाशस्त्रों के लगने से उनके अंग छिन्न-भिन्न हो गये ।।२४।। दारुण खड्ग प्रहार से किसी की भुजा छिन्न-भिन्न हो गई, किन्हीं मानी वीरों की उस युद्ध में ऊरु छिन्न-भिन्न हो गये ।।२५।। किन्हीं के गदा और मुद्गरों से सर्वांग छिन्न-भिन्न हो गये, किन्हीं के पाश और भालों से हृदय विदीर्ण हो गये, जिससे वह निपतित हुए ।।२६।। बरछियों से किन्हीं के पृष्ठभाग विदीर्ण कर दिये गये, कोई ऋषि और अंकुशों से घायल हुए, किन्हीं के सिर कटकर पृथ्वी पर गिर गये ।।२७।। सैकड़ों कबन्ध जंघा ताडन करते हाथ में शस्त्र उठा कर समर भूमि में नृत्य करने लगे ।।२८।। उस समय मांस तथा रुधिर की नदियां उस स्थान पर बहने लगीं, सैकड़ों भूत प्रेतादिक भी वहां आ गये ।।२९।। गीदड़ और गीदड़ी अनेक प्रकार के मांस भक्षण करने लगीं, इसी प्रकार गृध्र, पिशाच, श्येन तथा कौए मांस भक्षण करने के लिये वहां आ गये, मृतक हुए शरीरों का बहुतसा मांस भक्षण करने लगे ।।३०।। इसी समय महाबली तारक दैत्य ने बड़ी सेना लेकर देवताओं से युद्ध करने के लिये गमन किया ।।३१।। युद्ध में दुर्मद तारक दैत्य को देवताओं ने आया हुआ देखा, तब इन्द्रादिक देवता भी उससे युद्ध करने के लिये चले, उस समय

दोनों सेनाओं में बड़ा उल्लास हुआ ।।३२।। उस समय देवता तथा दैत्यों का नाश करनेवाला बड़ा युद्ध हुआ, जिसे देखकर वीर प्रसन्न और कायर भयभीत हुए ।।३३।। दितिपुत्र तारक इन्द्र के साथ संग्राम करने लगा, अग्नि ने संह्लाद और जंभ से स्वयं यमराज का युद्ध होने लगा ।।३४।। महाप्रभु का नैर्ऋत्य के साथ, वरुण का बल के साथ, सुवीर का वायु के साथ, पवमान का कुबेर के साथ युद्ध आरम्भ हुआ ।।३६।। ईशान के साथ रणकुशल शुम्भ का युद्ध होने लगा, शम्भु का शेष से और कुम्भ दानव का चन्द्र के साथ संग्राम होने लगा ।।३६।। महाबली पराक्रमी कुञ्जर का मिहिर के साथ संग्राम होने लगा, यह सब अनेक युद्धों में विशारद परम अस्त्र लेकर युद्ध करने लगे ।।३७।। इस प्रकार वे सुर–असुर महान् द्वन्द्वयुद्ध से निश्चयपूर्वक संग्राम करने लगे ।।३८।। इस प्रकार महाबली देवता और दैत्य परस्पर स्पर्धा करने लगे, उस देवता असुरों के युद्ध में सर्वथा दैत्य दुर्जर हुए ।।३९।। तब उस समय देवता और दैत्यों का महायुद्ध जय के निमित्त हुआ, जो वीर मनस्वियों को सुख दायक और कायरों को भयदायक हुआ ।।४०।। जब इस प्रकार से अनेक सुर–असुर पतित हुए और उनके नष्ट होने से संग्रामभूमि महाभयंकर हो गई तथा कायरों को बड़ी भयंकर और वीरजनों को महा प्रसन्न करनेवाली हुई ।।४१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

चतुर्थ कुमारखण्डे सप्तमोऽध्यायः ।। ७ ।।

*****

आठवाँ अध्याय

हे नारदजी! इस प्रकार आपसे देवता और दानवों की सेना का घोर संग्राम वर्णन किया, अब उनकी उन्नति सुनिये ।।१।। इस प्रकार देव–दानव के क्षयकारक उस तुमुल युद्ध में देवेन्द्र को तारक ने परम शक्ति से ताड़न किया ।।२।। इन्द्र शक्ति से घायल होकर तत्काल ऐरावत से नीचे पृथ्वी पर गिर पड़े और वज्रधारी सुरेश्वर को बड़ी व्याकुलता प्राप्त हुई ।।३।। इसी प्रकार बलवान् असुरों ने सब लोकपालों को महायुद्ध की कौशलता के कारण परास्त कर दिया ।।४।। और दूसरे देवता भी दैत्यों से युद्ध करके पराजित हुए और उनका तेज न सह कर भागने लगे ।।५।। विजयी होकर असुर गर्जने लगे और सिंहनाद करते हुए कोलाहल करने लगे ।।६।। इसी समय वीरभद्र ने महा क्रोध कर वीरगणों से वेष्टित होकर तारक असुर के समीप गमन किया ।।७।। यह बली शिवजी के कोप से उत्पन्न होने के कारण महारोष को प्राप्त हो युद्ध की इच्छा से सब गणों से आगे होकर युद्ध की इच्छा से तारक असुर के सम्मुख हुआ ।।८।। तब वे सब प्रमथ और

दैत्य परम उत्सव से महारण में प्रवृत्त होकर परस्पर युद्ध करने लगे ।।९।। त्रिशूल, ऋष्टि, पाश, खड्ग, परशे, पट्टिश से वे रण करने में कुशल वे परस्पर एक दूसरे पर प्रहार करने लगे ।।१०।। वीरभद्र ने त्रिशूल मार कर तारक को अत्यन्त ताडित किया और क्षणमात्र मूर्छा को प्राप्त होकर तारक पृथ्वी पर मूर्छा खा कर गिर पड़ा ।।११।। फिर दैत्यश्रेष्ठ तारक क्षणमात्र में उठ कर चैतन्य होकर बड़े बल से वीरभद्र पर शक्ति का प्रहार करने लगा ।।१२।। तब महातेजस्वी वीरभद्र ने भी बड़े तीक्ष्ण घोर त्रिशिख बाण से प्रहार किया ।।१३।। तारक ने भी समर में वीरभद्र को शक्ति से प्रहार किया, दैत्यों में अधीश्वर तारक बड़ा प्रबल और सम्मत था ।।१४।। इस प्रकार युद्ध करते हुए वे परस्पर एक दूसरे को प्रहार करने लगे, वे रणविद्या में विशारद दोनों युद्ध में नाना अस्त्र छोड़ने लगे ।।१५।। उस समय उन दोनों महात्माओं का द्वन्द्वयुद्ध होने लगा, उस भयंकर और रोमहर्षण युद्ध को सब कोई देखने लगे ।।१६।। उस समय भेरी, मृदंग, पटह, आनक, गोमुख बजाने लगे, जिसे सुनकर वीर प्रसन्न और कायर व्याकुल होने लगे ।।१७।। प्रहार से जर्जरीभूत होकर वे दोनों युद्ध करने लगे और बुध-मंगल के समान परस्पर दोनों ही बड़े वेग से युद्ध करने लगे ।।१८।। उस प्रकार उनके संग वीरभद्र का युद्ध देखकर शिवजी के प्रिय आप वीरभद्र से कहने लगे ।।१९।। नारदजी बोले- हे वीरभद्र! हे महावीर! तुम गणों में अग्रणीय हो, इस युद्ध से निवृत्त हो, इसका वध तुमको शोभा नहीं देता ।।२०।। गणों में अग्रगामी वीरभद्र नारदजी के यह वचन सुनकर रोष में भर कर हाथ जोड़ कर उस समय आपसे कहने लगा ।।२१।। वीरभद्र बोला- हे मुनिश्रेष्ठ! हे महाभाग! मेरे परम वचन सुनिये, मैं तारक असुर को मारता हूँ, इस समय आप मेरा पराक्रम देखिये ।।२२।। जो वीर स्वामी को रणक्षेत्र में ले आते हैं, वे पापी महानपुंसक रणक्षेत्र में नष्ट हो जाते हैं ।।२३।। और वे असद्गति को प्राप्त होते हैं, उनको नरक की प्राप्ति अवश्य होती है, वीरभद्र से इस प्रकार के वचन फिर न कहना ।।२४।। जो शस्त्र-अस्त्रों से भिन्न शरीर होकर, निर्भय होकर युद्ध करते हैं, वह दोनों लोकों में सम्पत्ति और उत्तम सुख पाते हैं ।।२५।। विष्णुजी आदि से लेकर सब देवता मेरे वचन सुने, आज मैं इस पृथ्वी को दैत्यों के स्वामी तारक से हीन कर दूंगा ।।२६।। इस प्रकार कहकर प्रमथ गणों के साथ शूल धारण किये हुए वीरभद्र मन से शिवजी को स्मरण कर तारक के साथ युद्ध करने लगा ।।२७।। और भी श्रेष्ठ त्रिशूल धारण किये, वृषभ पर चढ़े तीन नेत्रों वाले बड़े वीरों से वह युक्त होकर रणक्षेत्र में शोभित हुआ ।।२८।। सैकड़ों गण निर्भय होकर कोलाहल करते हुए वीरभद्र को आगे करके युद्ध करने लगे ।।२९।। और तारक के आधीन सब दैत्य भी युद्ध करने लगे, वे बल में उत्कट महावीर क्रोध से गणों को मर्दन करने लगे ।।३०।। दैत्यवर्य और देवताओं का विकट संग्राम होने लगा और परम अस्त्र चलाने में पण्डित गण प्रसन्न होकर जय-जय करने लगे ।।३१।। प्रबल

गणों से परास्त होकर वे गण रण से विमुख हो गये, व्यथित और व्यग्र मन होकर फिर परास्त हो गये ।।३२।। इस प्रकार अपनी सेना को व्यथित देखकर उसका पालक असुर तारक बड़े क्रोध से देवताओं को मारने को चला ।।३३।। वह दश सहस्र भुजा करके बड़े वेग से सिंह पर चढ़ कर उन देवता और दैत्यों को रणस्थल में गिराने लगा ।।३४।। गणों में अग्रणी वीरभद्र उसका यह कर्म देखकर उस महाबली ने उसे मारने के निमित्त बड़ा कोप किया ।।३५।। शिवजी के चरणकमलों को स्मरण कर उसने त्रिशिख अस्त्र ग्रहण किया, उसके तेज से सब दिशाएं और आकाश प्रज्ज्वलित हो उठा ।।३६।। तब इस अवसर में वीरबाहु स्वामी ने कौतुक दिखाने की इच्छा से उसे युद्ध से निवारण किया ।।३७।। उनकी आज्ञा से वीरबाहु वीरभद्र रण से निवृत्त हुए और उसी समय असुर नायक तारक ने महा क्रोध किया ।।३८।। तब वह असुर देवताओं पर बाण वृष्टि करने लगा और अनेक अस्त्र–शस्त्र छोड़कर देवताओं को तप्त करने लगा, कारण कि यह रणकर्म में बड़ा चतुर था ।।३९।। इस प्रकार असुरों का पालन करनेवाला तारक दैत्य महाकर्म करके शोभित हुआ, उस बलवालों में श्रेष्ठ के यह कर्म देवताओं को भी अशक्य थे ।।४०।। इस प्रकार से देवताओं को भय से व्याकुल और घात हुए देखकर महाक्रोध करके युद्ध करने के निमित्त विष्णुजी उद्यत हुए ।।४१।। सुदर्शनचक्र, शारंग धनुष और आयुध लेकर उस महादैत्य को मारने के लिये हरि चले ।।४२।। उस समय हरि और तारक असुर का महायुद्ध हुआ, हे मुने! इस लोमहर्षण युद्ध को सब देखने लगे ।।४३।। हरि ने गदा उठाकर बड़े वेग से दैत्य को मारी, महाबली ने त्रिशिख बाण से उसके दो खण्ड कर दिये ।।४४।। तब देवताओं को अभय देनेवाले भगवान् क्रुद्ध हुए, शारङ्ग धनुष पर बाण चढ़ाकर उस असुरनायक मारने लगे ।।४५।। वह शत्रुओं के वीरों को मारनेवाला महाबली तारक भी अपने धनुष पर चढ़ाये बाणों से हरि के बाणों को छेदने लगा ।।४६।। फिर तारक असुर ने शक्ति से मुरारी पर आघात किया, उस प्रहार से मूर्छित होकर विष्णुजी पृथ्वी पर पतित हुए ।।४७।। और क्षणमात्र में उठकर विष्णुजी ने सुदर्शन चक्र ग्रहण किया और वह चक्र अग्नि के समान प्रज्ज्वलित हो उठा, विष्णुजी सिंहनाद करने लगे ।।४८।। उस चक्र से हरि ने उस पर प्रहार किया और उस प्रहार से व्याकुल होकर दैत्य पृथ्वी पर गिर पड़ा ।।४९।। फिर भी वह असुर नायक तारक ने उठ कर बड़े बल से अपनी शक्ति चला कर चक्र का छेद किया ।।५०।। और फिर महाशक्ति से विष्णुजी को ताड़न किया, फिर अच्युत ने नन्दन नामक गदा से उसे ताड़न किया ।।५१।। इस प्रकार से विष्णुजी और वह दैत्य महासंग्राम करने लगे, हे नारदजी! किसी प्रकार भी उनका बल क्षत न हुआ ।।५२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
चतुर्थ कुमारखण्डे युद्धवर्णनं नामाऽष्टमोऽध्यायः ।। ८ ।।

नववाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले- हे देव देव! हे गुह! हे स्वामिन्! हे शंकरपुत्र! हे पार्वतीपुत्र! विष्णुजी और तारक का संग्राम आपको शोभा नहीं देता ।।१।। वह बलवान् तारक विष्णुजी से नहीं मरेगा, कारण कि उनसे वह वध्य नहीं है, मैंने उसे ऐसा ही वर दिया है, यह मैं सत्य-सत्य ही कहता हूँ ।।२।। हे पार्वतीपुत्र! आपके बिना इसे कोई मारनेवाला नहीं है, हे प्रभो! इस कारण आपको हमारे वचन मानने चाहिये ।।३।। आप इस दैत्य को मारने में तत्पर हो जाइये, हे परन्तप! हे शिवापुत्र! इसे मारने के निमित्त ही आप उत्पन्न हुए हो ।।४।। हे महावीर! व्याकुल हुए देवताओं की आप रक्षा कीजिये, आप बालक युवा नहीं, किन्तु सर्वेश्वर प्रभु हो ।।५।। आप देखिये इन्द्र, विष्णुजी और सब देवताओं के गणों को व्याकुल देखकर इस महादैत्य को मार कर इन सबको सुखी कीजिये ।।६।। इसने लोकपालों के सहित पहले इन्द्र को जीता और महावीर विष्णुजी को तप के कारण से जीत लिया था ।।७।। इस दुरात्मा असुर ने त्रिलोकी में सब जीत लिया है, इस समय आपके निकट भी फिर देवताओं ने युद्ध किया है ।।८।। इस कारण आपको इस पापी तारक को मारना चाहिये, हे शंकरात्मज! मेरे वर के कारण यह अन्य किसी से वध्य नहीं है ।।९।। ब्रह्माजी बोले- वह शंकरात्मज कुमार मेरे वचन सुनकर प्रसन्न होकर हँसे और 'ऐसा ही होगा' यह कहा ।।१०।। वह महाप्रभु शंकरजी के पुत्र असुर का वध निश्चय करके विमान से उतरकर पैदल हुए ।।११।। तब वह शिवजी के पुत्र विमान से उतर कर पैदल चलते हुए बड़ी शोभा को प्राप्त हुए और कुमार ने महाउल्का के समान महाप्रकाशमान् शक्ति अपने हाथ में धारण की ।।१२।। उस अत्यन्त प्रचण्ड व्याकुलता रहित अप्रमेय षणमुख को देखकर देवताओं को मारनेवाले दैत्य ने कहा, शत्रुओं पर प्रहार करनेवाला वह कुमार यही है ।।१३।। मैं एक वीर ही इस कुमार के तथा सब दूसरे वीरों के साथ युद्ध करके सम्पूर्ण गण, लोकपाल और हरिनायक को घात कर सकता हूँ ।।१४।। तब यह कहकर वह महाबली कुमार को देखकर युद्ध करने के लिये चला और परम अद्भुतशक्ति को ग्रहण करके वह तारक सब देवश्रेष्ठों से कहने लगा ।।१५।। तारक ने कहा- हे देवताओ! आपने कुमार को मेरे आगे कैसे कर दिया है? हे देवताओ! आप लज्जाहीन हो गये, विशेष कर इन्द्र और विष्णुजी लज्जाहीन हैं ।।१६।। पहले भी इन्होंने वेदमार्ग से विरुद्ध कर्म किया है, वह मैं सब आपसे वर्णन करता हूँ, सुनिये ।।१७।। इनमें विष्णुजी बड़े दोषी, छली और अविवेकी हैं, जिन्होंने पाप और छल करके पहले राजा बलि को छला था ।।१८।।

उन्होंने ही पहले यत्न से मधुकैटभ नामक असुरों को धूर्तता से वेदमार्ग के बाहर होकर सिरहीन कर दिया ।।१९।। फिर जब देवता और दैत्य अमृतपान करने बैठे, तब इन्होंने मोहिनीरूप धारण कर पंक्ति भेद कर वेदमार्ग से रहित होकर देवताओं को अमृत पिलाया ।।२०।। इन्होंने रामरूप होकर ताटका नारी को मारा, वाली को मारा, फिर विश्रवा के पुत्र ब्राह्मण को वेदमार्ग से रहित होकर इन्होंने मारा ।।२१।। फिर बिना अपराध के पाप में रत होकर इन्होंने अपनी स्त्री को त्याग दिया, अपने स्वार्थ के निमित्त इसमें भी वेदमार्ग को ध्वंस कर दिया ।।२२।। फिर परशुराम अवतार में इन्होंने अपनी माता का सिरच्छेद किया, इन्हीं दुरात्मा ने गुरुपुत्र का अपमान किया ।।२३।। कृष्ण होकर इन्होंने कुलधर्म से अनेक नारियों को दूषित कर दिया और वेदमार्ग को छोड़कर इन्होंने अपने विवाह किये ।।२४।। फिर वन में बुद्ध अवतार में इन्होंने वेदमार्ग की निन्दा की और वेदमार्ग से विरोध करके नास्तिक मत स्थापित किया ।।२५।। इस प्रकार वेदमार्ग को त्याग करके जिन्होंने पाप किये हैं, वह युद्ध में किस प्रकार विजय पा सकते हैं और धर्म जाननेवालों में श्रेष्ठ हो सकते हैं? ।।२६।। इसी प्रकार इनके ज्येष्ठ भ्राता इन्द्र भी महा पापी है, इन्होंने भी अपने लिये अनेक पाप किये हैं ।।२७।। इन्द्र ने अपने स्वार्थ के निमित्त दिति का गर्भ खण्डन किया, गौतम की स्त्री को धर्षित कर ब्राह्मण कुमार वृत्र को मारा ।।२८।। ब्राह्मण विश्वरूप जो इसके गुरु का भानजा था, उसका सिर काटकर इन्होंने वेदमार्ग को नष्ट किया ।।२९।। इस हरि और शक्र ने बारंबार पाप करके अपने वीर्य और तेज को नष्ट कर दिया है ।।३०।। इन दोनों के बल से तो आप संग्राम में जय नहीं पा सकते, सो आप मूढ़ता को प्राप्त होकर प्राण त्यागने को कैसे आ गये हो? ।।३१।। यह दोनों तो स्वार्थ से लम्पट मन होकर धर्म को नहीं जानते, हे देवताओ! धर्म के बिना जाने सब कृत्य निष्फल होता है ।।३२।। यह दोनों महा ढीठ हैं, जो इस बालक को इन्होंने मेरे सामने कर दिया है, मैं बालक को मारूंगा, तो इन दोनों को वह पाप भी लगेगा ।।३३।। किन्तु हे बालक! तुम प्राण की इच्छा से इस स्थान से दूर हो, यह कहकर इन्द्र और विष्णुजी के उद्देश्य से वीरभद्र से बोला ।।३४।। पहले तुमने भी दक्ष के यज्ञ में बहुत से ब्राह्मणों का वध किया था, हे निष्पाप! आज उस कर्म का फल मैं तुम्हें दिखाऊँगा ।।३५।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार विष्णुजी और इन्द्र की निन्दा करके उस निन्दा से उसने अपना समस्त पुण्य नष्ट करके युद्ध करनेवालों में श्रेष्ठ तारक ने परम अद्भुत शक्ति को ग्रहण किया ।।३६।। बड़े वेग से कुमार के ऊपर धावमान होते हुए तारकासुर को कुमार के आगे होकर इन्द्र ने वज्र से ताड़न किया ।।३७।। उस वज्र के प्रहार से तारक असुर जर्जर हो गया और निन्दा करने से हतबल होकर वह सहसा पृथ्वी पर गिर गया ।।३८।। गिरने के बाद फिर से उठकर बड़े वेग से इन्द्र पर शक्ति का प्रहार किया और हाथी पर चढ़े इन्द्र को पृथ्वी पर गिरा दिया ।।३९।। इन्द्र के

पतित होने पर देवताओं की सेना में हाहाकार मच गया और देवताओं ने बड़ा क्लेश माना ।।४०।। हे नारदजी ! उस समय तारक ने भी जो धर्म विरुद्ध दुःखदायक कर्म अपने नाश के निमित्त किया, सो आप मुझसे सुनें ।।४१।। गिरे हुए इन्द्र के ऊपर पैर रखकर और उसके हाथ से वज्र लेकर उसने बड़े वेग से ताड़न किया ।।४२।। प्रतापवान् भगवान् विष्णुजी ने इन्द्र को इस प्रकार से तिरस्कृत देखकर अपना चक्र उठा कर तारक पर प्रहार किया ।।४३।। चक्र के लगने से व्याकुल होकर तारक असुर भूमि पर गिर पड़ा और फिर उठकर उस दैत्य नायक ने शक्ति से विष्णुजी को ताड़न किया ।।४४।। उस शक्ति के लगने से भगवान् पृथ्वी पर गिर पड़े, उस समय देवता हाहाकार करके चिल्लाने लगे ।।४५।। ज्यों ही एक निमेष मात्र में जब तक विष्णुजी उठें, तब तक वीरभद्र क्षणमात्र में उस असुर के समीप आ गये ।।४६।। प्रतापी बली वीरभद्र ने अपना त्रिशूल उठाकर बड़े वेग से उस दैत्यपति तारक को मारा ।।४७।। उस त्रिशूल के लगने से महाबली तारक पृथ्वी पर गिर पड़ा परन्तु वह महा तेजस्वी क्षणमात्र में फिर उठ बैठा ।।४८।। फिर सब असुरों के सेनानायक उस वीर ने महा क्रोध करके एक परम शक्ति वीरभद्र की छाती में मारी ।।४९।। उसने महाक्रोध से मारी हुई शक्ति जब छाती में लगी, तब उसके आघात से क्षणमात्र को वीरभद्र पृथ्वी पर गिर गया ।।५०।। तब देवता, गन्धर्व, उरग, राक्षस अपने-अपने गणों के सहित महा हाहाकार करके बारंबार चिल्लाने लगे ।।५१।। फिर एक निमेष मात्र में वह महापराक्रमी शत्रुनाशक वीरभद्र बिजली के समान प्रकाशमान त्रिशूल हाथ में लेकर अपनी कान्ति से विराजमान हुआ ।।५२।। उसकी कान्ति से दिशायें प्रकाशमान हो गईं, सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि के समान मण्डल प्रकाशमान होने लगा, महाप्रभाववाला, वीरों को भयदायक, मानों दूसरा महाकाल महाउज्ज्वल था ।।५३।। इस प्रकार महाबली वीरभद्र जब त्रिशूल लेकर असुर को मारने चला, तब तक उसे कुमार ने निवारण किया ।।५४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

चतुर्थ कुमारखण्डे नवमोऽध्यायः ।। ९ ।।

*****

दसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार शत्रुवीरनाशी वीरभद्र को निवारण करके शिवजी के चरणकमल को स्मरण कर तारक के वध की इच्छा करने लगे ।।१।। तब महाबली, महातेजस्वी, कार्तिकेय ने बड़ा क्रोध किया और क्रोध करते हुए बड़ी सेना लेकर चला ।।२।। उस समय सब देवता अपने गणों सहित जयजयकार करने लगे और देवता, ऋषि श्रेष्ठ वाणी से स्तुति करने लगे ।।३।। तब उस समय तारकासुर और कुमार का सब भूतों को भय उपजानेवाला बड़ा दुस्सह महाघोर संग्राम होने लगा ।।४।। वे दोनों वीर शक्ति हाथ में लेकर परस्पर युद्ध करने लगे, हे मुने! उस समय सब देवता देखकर आश्चर्य करने लगे ।।५।। महा युद्ध करते हुए दोनों के देह शक्ति से छिन्न–भिन्न हो गये और महाबली दो सिंहों के समान परस्पर एक दूसरे पर प्रहार करने लगे ।।६।। वैतालिक और खेचर मत के युद्धशास्त्र का आश्रय करके तथा पाप का आश्रय करके शक्ति से परस्पर एक दूसरे पर प्रहार करने लगे ।।७।। इस प्रकार मन्त्रों से वे दोनों वीर परस्पर युद्ध करने लगे और महाबल पराक्रमवाले एक दूसरे के साधक होकर अद्भुत युद्ध करने लगे ।।८।। परस्पर एक दूसरे के वध की इच्छा से महाबल पराक्रम करने लगे और युद्ध में विशारद शक्तिधारा से परस्पर एक दूसरे को मारने लगे ।।९।। सिर, कण्ठ, ऊरु, जानु, कटितट, छाती, हृदय, पृष्ठ पर परस्पर प्रहार करने लगे ।।१०।। उस समय महाबली एक दूसरे को मारने की इच्छा से युद्ध करते हुए युद्ध में अनेक प्रकार की चतुराई करते हुए वीरशब्द से शब्द करने लगे ।।११।। सब देवता और गन्धर्व परस्पर इस संग्राम को देखने लगे और परस्पर कहने लगे, इस युद्ध में किसकी जय होगी? ।।१२।। उस समय देवताओं को समझाते हुए आकाशवाणी हुई कि, यह कुमार ही इस तारकासुर को मारेगा ।।१३।। हे देवताओ! आप शोक मत करो, सुख से स्थित हो, आपके निमित्त शिवजी पुत्ररूप से स्थित हुए हैं ।।१४।। उस समय आकाश से उच्चारण की हुई इस सुन्दर वाणी को सुनकर अपने गणों के सहित कुमार प्रसन्न हुए और सुखपूर्वक तारकासुर को मारने की इच्छा की ।।१५।। और उन महाबाहु ने तारक की छाती में शक्ति मारी और बड़े क्रोध से पराक्रम के साथ उस पर प्रहार किया ।।१६।। दैत्यश्रेष्ठ तारक ने उस प्रहार का तिरस्कार करके महाक्रोध करते हुए अपनी शक्ति से कुमार पर प्रहार किया ।।१७।। उस शक्ति के प्रहार से शिवजी के पुत्र मूर्छित हो गये और महर्षियों से स्तुति को प्राप्त होकर क्षणमात्र में उठ बैठे ।।१८।। जिस प्रकार मदोन्मत्त होकर सिंह चलता है, इसी प्रकार प्रतापवान् कुमार ने उस असुर पर शक्ति से प्रहार किया ।।१९।। इस प्रकार वह

कुमार और तारकासुर बड़े वेग से युद्ध में चतुरघोर संग्राम करने लगे ।।२०।। और अभ्यास के कारण परस्पर जीतने की इच्छा से घोर युद्ध करने लगे, दोनों ही पैदल युद्ध करनेवाले चित्र रूप बड़े वेगवान् थे ।।२१।। अनेक प्रकार के बल से परस्पर एक दूसरे पर प्रहार करने लगे और अनेक मार्गों से चलते हुए बड़े पराक्रम से गर्जने लगे ।।२२।। देव, गन्धर्व और किन्नर सब खड़े होकर देखने लगे और परस्पर परम विस्मय को प्राप्त हुए और कुछ भी न बोले ।।२३।। उस समय पवन का चलना बन्द हो गया, सूर्य कान्तिहीन हो गया, पर्वत वन कानन के सहित सब पृथ्वी चलायमान हो गई ।।२४।। इसी अवसर में हिमालय को आदि लेकर पर्वत स्नेह से व्याकुल होकर कुमार के समीप आये ।।२५।। तब शंकरजी के पुत्र ने उन सबको आया हुआ देखकर उन सबको समझाते हुए कहा ।।२६।। कुमार बोले– हे महाभागो! आप खेद और चिन्ता मत करें, आप सबके देखते ही मैं इस पापिष्ठ का वध करूंगा ।।२७।। इस प्रकार पर्वत, देवगण, गिरिजा और शंकरजी को प्रणाम करके उन्होंने प्रभावाली शक्ति को ग्रहण किया ।।२८।। वह महाप्रभु हाथ में शक्ति लेकर तारक को मारने की इच्छा से वह शिवजी के बालक महावीर बड़ी शोभा को प्राप्त हुए ।।२९।। तब तेज से भरे हुए कुमार ने लोक को क्लेश करनेवाले उस तारकासुर पर प्रहार किया ।।३०।। उसी समय वह तारक नामक महावीर सब महाबली गणों और असुरों का अधिपति सब अंगों से विदीर्ण होकर तत्काल पृथ्वी पर गिर पड़ा ।।३१।। हे मुने! जब इस प्रकार से वीर तारकासुर को कुमार ने मारा, तब वह सबके देखते–देखते नष्ट हो गया ।।३२।। इस प्रकार बलवान् तारक को मरा हुआ देखकर वीर ने गतप्राण जानकर फिर उस पर प्रहार नहीं किया ।।३३।। उस महाबली तारक दैत्य के नष्ट हो जाने पर देवताओं ने बहुत से असुरों का नाश कर दिया ।।३४।। कोई तो उस युद्ध में डरकर हाथ जोड़ने लगे, कोई छिन्न–भिन्न होकर सहस्रों मर गये ।।३५।। कोई व्याकुल होकर कुमार की शरण में गये और हाथ जोड़कर 'रक्षा करो, रक्षा करो' ऐसा कहने लगे ।।३६।। कितने ही तो मारे गये और कितने ही भाग गये और पलायन होते हुए व्यथित हुए और देवताओं से ताड़ित हुए ।।३७।। और उनमें सैकड़ों अपने जीवन की रक्षा के निमित्त पाताल में प्रविष्ट हुए और भागते हुए उन दैत्यों की सम्पूर्ण आशायें भग्न हो गईं ।।३८।। हे मुनीश्वर! इस प्रकार सब दैत्यों की सेनायें नष्ट हो गईं, देवताओं के भय से कोई भी वहां स्थिति करने को समर्थ न हुए ।।३९।। उस दुरात्मा के मरने से सब निष्कण्टकता हो गई और इन्द्रादिक सब देवताओं को बड़ा सुख प्राप्त हुआ ।।४०।। इस प्रकार से विजय को प्राप्त होकर सब देवता एक साथ ही प्रसन्न हो गये और त्रिलोकी में महा आनन्द छा गया ।।४१।। उस समय शिवजी भी अपने कुमार की विजय को प्राप्त होकर अपने गण और प्रिया के सहित प्रसन्न होकर वहां गये ।।४२।। सूर्य के समान कान्तिवाले कुमार को अपनी

गोदी में लेकर स्नेह से व्याप्त होकर पार्वती लाड करने लगीं ।।४३।। उसी समय अपने पुत्रों के सहित हिमालय भी वहां आये और अपने बन्धुओं के सहित शंकर पार्वती कुमार को प्रशंसा से प्रसन्न करने लगे ।।४४।। उस समय सब देवता गण, मुनि, सिद्ध, चारण शिव–शिवा और कुमार की स्तुति करके उनको प्रसन्न करने लगे ।।४५।। उपदेवता फूलों की बड़ी वर्षा करने लगे, गन्धर्वपति गाने लगे और अप्सरायें नृत्य करने लगीं ।।४६।। उस समय विशेषरूप से बाजा बजने लगे, जय शब्द और नमः शब्द बारंबार ऊँचे स्वर से होने लगा ।।४७।। तब मैं, अच्युत भगवान् भी विशेषरूप से सन्तुष्ट हुए और आदर से शिव, शिवा और कुमार की बढ़ाई की ।।४८।। तब हरि, ब्रह्माजी, इन्द्रादिक देवता कुमार को आगे करके मुनियों सहित उनकी आरती करने लगे ।।४९।। गीत बाजे और वेदध्वनि से तथा कीर्तन करने से वह उत्सव महान् हो गया ।।५०।। हे मुने! गीत बाजे और अञ्जली बांधने से तथा सब देवताओं से जगत्पति शंकरजी स्तुति को प्राप्त होकर बड़े प्रसन्न हुए ।।५१।। तब भगवान् रुद्र सब देवताओं से स्तुति को प्राप्त होकर जगदम्बा और अपने गणों के सहित कैलास पर्वत पर गये ।।५२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
चतुर्थ कुमारखण्डे तारकासुरवधो नाम दशमोऽध्यायः ।। १० ।।

*****

ग्यारहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– हे नारदजी! उसी समय क्रौंच नामक पर्वत बाण नामक दैत्य से पीड़ित होकर कुमार की शरण में आया ।।१।। कुमार का तेज न सह सकने के कारण वह बाण असुर युद्ध से भाग गया था, उसमें दश सहस्र कोटि बल था और वह क्रौंच को बड़ा कष्ट देता था ।।२।। परमभक्ति से कुमार के दोनों चरणों को पकड़कर प्रेमभरी वाणी से क्रौंच बड़े आदर से बोला ।।३।। क्रौंच बोला– हे कुमार! हे स्कन्द! हे देवेश! हे तारकासुर के नाशक! बाण दैत्य से मैं बड़ा पीड़ित हूँ, मेरी रक्षा करें ।।४।। हे महासेन! वह आपके युद्ध से व्याकुल होकर भाग गया है, हे नाथ! हे करुणाकर! अब वह मुझे पीड़ित करता है ।।५।। उस बाण असुर से पीड़ित होकर मैं आपकी शरण आया हूँ, हे शरजन्मा! हे देवेश! उस भागनेवाले से मेरी रक्षा करें ।।६।। हे विभो! उस बाण नामक दैत्य को मारकर मुझे सुखी कीजिये, विशेषकर आप दैत्यों को मारनेवाले, देवताओं के रक्षक, अपने तेज से प्रकाशित हो ।।७।। ब्रह्माजी बोले– जब इस प्रकार से क्रौंच ने कुमार की स्तुति की, तब वह भक्तवत्सल प्रसन्न हुए और शक्ति को हाथ में

धारणकर मन से शिवजी को स्मरण किया ।।८।। और बाण के उद्देश्य से शंकरजी के आत्मज ने उस शक्ति को छोड़ा, उस समय महाशब्द हो उठा और दशों दिशायें प्रज्ज्वलित हो उठीं ।।९।। क्षणमात्र में उस असुर को उसके अनुगामियों सहित वह शक्ति भस्मकर शीघ्र ही कुमार के समीप लौट आई ।।१०।। तब प्रभु कुमार ने पर्वतश्रेष्ठ क्रौंच से कहा- अब आप निर्भय होकर अपने घर जाइये, वह दैत्य नष्ट हो गया है और उसके अनुचर भी मारे गये हैं ।।११।। स्वामी के वचन सुनकर क्रौंच बड़ा प्रसन्न हुआ और कुमार की स्तुति करके अपने धाम को गया ।।१२।। तब वहां प्रसन्न होकर कुमार ने पापों को दूर करनेवाले शिवजी के तीन लिंगों को स्थापित किया ।।१३।। तीनों के नाम प्रतिज्ञेश्वर, कपालेश्वर और कुमारेश्वर हुए, यह तीनों ही सब सिद्धियों को देनेवाले हैं ।।१४।। और उस जयस्तम्भ के समीप सर्वेश्वर लिंग स्थापन किया और एक लिंग स्तम्भेश्वर नाम से उसके समीप में स्थापन किया ।।१५।। फिर विष्णुजी आदि सब देवताओं ने देव देव शंकरजी का लिंग वहां स्थापन किया ।।१६।। वहां सम्पूर्ण लिंगों की अद्‌भुत महिमा हुई जो सब कामनाओं को देनेवाले तथा भक्ति करनेवालों को मुक्ति देनेवाले थे ।।१७।। तब विष्णुजी आदि सब देवताओं ने बड़े प्रेम से पुत्र को आगे करके पर्वतश्रेष्ठ कैलास पर जाने की इच्छा की ।।१८।। उसी समय कुमुद नामक शेषजी का पुत्र दैत्य से पीड़ित होकर कुमार की शरण में आया ।।१९।। इस युद्ध में जो प्रलम्बासुर नामक दैत्य पलायमान हो गया था, वह तारकासुर का अनुगामी वहां जाकर उपद्रव करने लगा ।।२०।। वह शेषजी का पुत्र कुमुद महामति था, गिरिजापुत्र कुमार की शरण में आकर उनकी स्तुति करने लगा ।।२१।। कुमुद बोला- हे देव देव महादेवजी के पुत्र! हे महाप्रभो! मैं प्रलम्बासुर से पीड़ित होकर आपकी शरण में आया हूँ ।।२२।। हे कुमार! हे स्कन्द! हे देवेश! हे तारक के शत्रु! हे महाप्रभो! प्रलम्बासुर से पीड़ित हुए मेरी रक्षा करें ।।२३।। आप दीनबन्धु, करुणासागर, भक्तवत्सल हैं, आप दुष्टों के निग्रहकर्ता, शरणागतवत्सल सत्पुरुषों के गति हैं ।।२४।। जब कुमुद ने इस प्रकार स्तुति कर दैत्य के वध के निमित्त कहा, तब महाप्रभु ने शंकरजी के चरणकमलों को स्मरण करके शक्ति को ग्रहण किया ।।२५।। और गिरिजापुत्र ने उस प्रलम्ब को मारने के उद्देश्य से उस शक्ति को छोड़ा, उस समय महाशब्द होकर आकाश और दिशायें प्रज्ज्वलित हो उठीं ।।२६।। १०००० बल बली असुर को वह शक्ति अनुचरों सहित भस्म करके अप्रतिहत गति से कुमार के समीप आ गई, यह उसका बड़ा विचित्र कर्म हुआ ।।२७।। तब कुमार ने शेषजी के पुत्र कुमुद से कहा- वह असुर अपने अनुचरों सहित मारा गया है, अब आप निर्भय होकर अपने घर को जाइये ।।२८।। तब शेषजी का पुत्र कुमार के यह वचन सुनकर निर्भय होते हुए कुमार की स्तुति कर प्रणाम कर पाताल को गया ।।२९।। हे मुनीश्वर! इस प्रकार आपसे यह कुमार की विजय वर्णन की, यह तारकवध का चरित्र

परम आश्चर्य का करनेवाला है ।।३०।। यह सब पापों को हरनेवाला, मनुष्यों को सब काम देनेवाला, परम दिव्य है, यह परम धन्य यश, आयु और भुक्ति–मुक्ति का देनेवाला है।।३१।। जो मनुष्य इसका कीर्तन करेंगे, उनको बड़े भाग्य की प्राप्ति होगी, कुमार के इस दिव्य चरित्र को सुनने से शिवलोक की प्राप्ति होती होगी ।।३२।। जो मनुष्य श्रद्धा भक्ति से उनकी कीर्ति सुनेंगे, वह यहां परम सुख भोगकर अन्त में दिव्य मुक्ति को प्राप्त होंगे ।।३३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
चतुर्थ कुमारखण्डे एकादशोऽध्यायः ।। ११ ।।

*****

बारहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले– तारक दैत्य को मरा हुआ देखकर विष्णुजी आदि देवता प्रसन्न होकर कुमार की स्तुति करने लगे ।।१।। देवता बोले– हे कल्याणरूप! आपको नमस्कार है, आप विश्व के मंगलरूप हैं, हे विश्व के बन्धु! हा विश्वभावन! आपको प्रणाम है ।।२।। हे बड़–बड़े दानवों को मारनेवाले, प्रलम्बासुर का नाश करनेवाले, पवित्ररूप शंकरसुवन! आपको प्रणाम है ।।३।। आप ही कर्ता और जगत् के भर्ता हो, हे अग्नि से प्रकट होनेवाले! आप प्रसन्न हो, यह सम्पूर्ण लोकों का प्रपंच आपका बिम्ब स्वरूप है; हे दीनबन्धो! हे शम्भु के पुत्र! आपको प्रणाम है ।।४।। हे देवरक्षा करनेवाले स्वामिन्! हे प्रभो! हमारी सदा रक्षा करें, हे देवताओं के प्राणों की रक्षा करनेवाले! हे करुणामय! आप प्रसन्न हो ।।५।। हे विभो! तारक दैत्य को मार कर हमारी रक्षा करें, हे परमेश्वर! आपने विपत्ति से सब देवताओं की रक्षा की है।।६।। ब्रह्माजी बोले– जब इस प्रकार से विष्णुजी आदि देवताओं ने कुमार की स्तुति की, हे मुने! तब कुमार ने सबके निमित्त नये–नये वर दिये ।।७।। पर्वतराज की स्तुति सुनकर गिरिजासुत ने प्रसन्न होकर वर देते हुए इस प्रकार से कहा ।।८।। स्कन्द बोले– आप सब पर्वत तपस्वियों से पूजित हो, आप कर्मकाण्ड के और ज्ञानियों के द्वारा सदा सेवित रहोगे ।।९।। शिवजी के विशिष्ट और लिंग रूप पर्वत होंगे, इस मेरे वचन में सन्देह नहीं है ।।१०।। जो यह पर्वतोत्तम हिमालय मेरे नाना हैं, यह महाभाग मनस्वियों को फल देनेवाले होंगे ।।११।। देवता बोले– असुरपति तारक को आपने मारा और हिमालय को वर दिया है और हम तथा चराचर प्राणियों को आपने सुखी किया है ।।१२।। अब इस समय शिवा–शम्भु अपने माता–पिता के साथ आप कैलास पर चलें ।।१३।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार विष्णुजी आदि सब देवता कहकर महोत्सव करने लगे और कुमार कैलास को चलने

लगे ।।१४।। जिस समय विभु कुमार कैलास को चलने लगे, उस समय महामंगलदायक जय शब्द होने लगा ।।१५।। कुमार ने परम ऋद्धिवाले विमान पर आरोहण किया, जो सब प्रकार से अलंकृत, परम मनोहर तथा सबके ऊपर विराजमान था ।।१६।। मैंने और विष्णुजी ने प्रसन्न होकर कुमार पर चमर धारण किया, हे मुने! इस समय आलस्य रहित हो गुह के मस्तक पर चमर धारण किया गया ।।१७।। इन्द्रादिक सब देवता भी गुह का सेवन करने लगे और यथा योग्य सब देवता उनके चारों ओर गमन करने लगे ।।१८।। 'शिवजी की जय' उच्चारण करते हुए वे शिवजी के पर्वत पर पहुँचे और आनन्द से मंगलध्वनि उच्चारण करते हुए सब ने उसमें प्रवेश किया ।।१९।। विष्णुजी आदि सब देवता शिवा-शिव का दर्शन करके बड़ी शीघ्रता से शक्तिपूर्वक शंकरजी को प्रणाम कर हाथ जोड़कर खड़े हो गये ।।२०।। कुमार ने भी बड़ी नम्रता से विमान से उतरकर सिंहासन पर बैठे हुए शिव-पार्वती को प्रेम से प्रणाम किया ।।२१।। हे नारदजी! तब उस अपने प्राणप्रिय पुत्र कुमार को देखकर वह दोनों देव बहुत ही प्रसन्न हुए ।।२२।। महाप्रभु शंकरजी ने पुत्र को उठाकर गोदी में बैठाया और स्नेह से सिर सूँघकर हाथ से स्पर्श किया ।।२३।। शिवजी ने महाआनन्द में भरकर पुत्र का मुख चुम्बन किया और उस तारक के शत्रु महाप्रभु कुमार का बड़ा स्नेह किया ।।२४।। पार्वती ने भी पुत्र को उठाकर गोदी में लिया और सिर के ऊपर हाथ रखकर मुख चूम लिया ।।२५।। हे नारदजी! उस समय उन दोनों का प्रेम बहुत बढ़ गया, हे तात! इस प्रकार से दोनों स्त्री-पुरुषों ने लौकिक आचार किया ।।२६।। शिवमन्दिर में उस समय अनेक प्रकार का उत्सव होने लगा, सब ओर से जय कार और नमस्कार का शब्द होने लगा ।।२७।। तब विष्णुजी आदि सब देवता और मुनि प्रसन्नता से शिवजी को प्रणाम कर स्तुति से प्रसन्न करने लगे ।।२८।। देवता बोले- हे देव देव महादेव! भक्तों को अभय देनेवाले आपको बहुत प्रकार से नमस्कार है, आप हम पर कृपा करें ।।२९।। हे महादेव! महासुख देने वाली आपकी महालीला सुखदायक है, हे दीनबन्धु! हे महाप्रभो! वह सबको महाकल्याण कारक है ।।३०।। हे प्रभो! हम मूढ़बुद्धि हैं, आपकी अद्भुत सनातन पूजा को नहीं जानते, हमारी गति नहीं है, इस कारण हम आपका आवाहन नहीं जानते ।।३१।। गंगाजल धारण करनेवाले, सबके आधार, गुणों के आत्मा, देवताओं के अधिपति शंकरजी को बारंबार प्रणाम है ।।३२।। वृषध्वज महेश, गणों के अधीश्वर सर्वेश्वर देव, त्रिलोकी के अधिपति के निमित्त नमस्कार है ।।३३।। हे नाथ! अन्त में आप सब का संहार करते हो, आपको बारंबार प्रणाम है, हे देवेश! सनातन से आप इस जगत् के भरण-पोषण करने और रचनेवाले हो, हे भगवन्! आप त्रिगुणों के अधिपति हो ।।३४।। आप संग रहित परेश शिव परमात्मा हो, निष्प्रपंच शुद्ध परम अविनाशी आपको प्रणाम है ।।३५।। दण्डधारी कालरूप, हाथ में पेश धारण करनेवाले, वेदमन्त्रों

में प्रधान शतजिह्व आपको प्रणाम है ।।३६।। भूत, भविष्य, वर्तमान, स्थावर-जंगम जो कुछ यह जगत् है, हे परमेश्वर! यह सर्वथा आपकी देह से उत्पन्न है ।।३७।। हे भगवन्! हे स्वामिन्! हे प्रभो! हमारे ऊपर प्रसन्न होकर सदा हमारी रक्षा करें। हे परमेश्वर! सर्वथा हम आपकी शरण में प्राप्त हुए हैं ।।३८।। शितिकण्ठ रुद्र स्वाहाकाररूप आपको प्रणाम है, अरूप-स्वरूप विश्वरूप आपको प्रणाम है ।।३९।। शिव, नीलकण्ठ, अंग में चिता भस्म धारण करनेवाले नित्य ही नील शिखण्ड श्रीकण्ठ आपको प्रणाम है।।४०।। सब आपको प्रणाम करते हैं, आप संयम से दयालु होते, महादेव सब आप हो, आपके चरणों को सब प्रणाम करते हैं, आपको नमस्कार है ।।४१।। आप सब देवताओं में ब्रह्मा, रुद्रों में नीललोहित, सब भूतों की आत्मा हैं, सांख्यवाले आप ही को पुरुष कहते हैं ।।४२।। पर्वतों में सुमेरु, नक्षत्रों में चन्द्रमा आप ही हो, ऋषियों में वशिष्ट, देवताओं में इन्द्र आप हो ।।४३।। हे महेश्वर! वेदों में आप ॐ कार हो, संसार के रक्षक, लोक के हित के लिये सब प्राणियों की रक्षा करते हो ।।४४।। हे महाभाग महेश्वर! हे सब प्राणियों को शुभाशुभ देखने वाले! हे देवेश! आप हमारी रक्षा करें, हम आपके वचन में स्थित हैं ।।४५।। हे देव देव! आपके करोड़ो और सहस्रों रूप हैं, हम आपके अन्त पाने को समर्थ नहीं हैं, बारंबार आपको प्रणाम करते हैं ।।४६।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार से विष्णुजी आदि सब देवताओं ने स्तुति की और बारंबार प्रणाम कर स्कन्द को आगे कर स्थित हुए।।४७।। देवताओं की स्तुति को सुनकर वह सर्वेश्वर स्वराट् प्रसन्न होकर हँसने लगे ।।४८।। और प्रसन्न होकर विष्णुजी आदि देवताओं से वह दीनबन्धु, परमेशान, सत्पुरुषों की गति, शंकरजी कहने लगे ।।४९।। शिवजी बोले- हे हरे! हे विधे! हे देवताओ! आदर से मेरे वचन सुनिये, सब प्रकार से मैं सत्पुरुषों का रक्षक, देवताओं का रक्षक, कृपा का सागर हूँ।।५०।। मैं दुष्टों को मारनेवाला, त्रिलोकी का अधिपति भक्तवत्सल शंकर हूँ, मैं सबका कर्ता, हर्ता, भर्ता और विकार रहित हूँ।।५१।। हे श्रेष्ठ देवताओ! जब-जब आपको दुःख हो तब-तब सुख प्राप्ति के निमित्त मेरा भजन करो ।।५२।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार से सब देवता और मुनीश्वर भगवान् के वचन सुनकर पार्वती सहित शिवजी और कुमार को प्रणाम कर आनन्द को प्राप्त हुए।।५३।। वे सब शिवा, शिव और कुमार का यश कथन करते हुए परम आनन्द को प्राप्त होकर अपने-अपने स्थानों को गये ।।५४।। हे मुने! अपने गण, कुमार और पार्वती के सहित शिवजी भी प्रसन्न होकर उस पर्वत पर निवास करने लगे ।।५५।। हे मुने! इस प्रकार आपसे कुमार के सब चरित्र कहे, यह शिवजी के भक्तों को परम प्यारे हैं, अब आप और क्या सुनने की इच्छा करते हो ।।५६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
चतुर्थ कुमारखण्डे शिवाशिवचरित्रवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ।। १२ ।।

तेरहवाँ अध्याय

सूतजी बोले– कुमार के यह अद्भुत चरित्र सुनकर नारदजी प्रसन्न होकर परम प्रीति से फिर पूछने लगे।।१।। नारदजी बोले– हे देव देव प्रजानाथ शिव! हे ज्ञान के सागर! मैंने अमृत से भी श्रेष्ठ कार्तिकेयजी का चरित्र श्रवण किया।।२।। अब मैं गणेशजी का चरित्र सुनना चाइता हूँ, उनका जन्मचरित्र बड़ा दिव्य और मंगलों का भी मंगल करनेवाला है।।३।। सूतजी बोले– हे महामुने! इस प्रकार से नारदजी के वचन सुनकर ब्रह्माजी प्रसन्न होकर शिवजी को स्मरण करते हुए बोले।।४।। ब्रह्माजी बोले– कल्पभेद से गणेशजी का जन्म अनेक भाँति है, एक बार शनि की दृष्टि से उनका सिर छेदन हुआ और हाथी का सिर जोड़ा गया।।५।। इस समय हम श्वेतकल्प में हुई गणेश की उत्पत्ति कहते हैं, जिसमें कृपालु शंकरजी ने उनका सिर छेदन किया था।।६।। हे मुने! सृष्टिकर्ता शंकरजी के विषय में यह सन्देह न करना, वह सबके अधिपति शंकरजी सगुण–निर्गुण हैं।।७।। वह लीला से ही जगत् को उत्पन्न, पालन और संहार करते हैं, हे मुने! आदर से उनके चरित्र को सुनिये।।८।। शिवजी के विवाह कर कैलास पर्वत पर चले जाने में कितने एक समय के पश्चात् गणपति का जन्म हुआ।।९।। एक समय जया विजया नामवाली सखियां यह सब पार्वती के साथ मिलकर विचार करने लगीं।।१०।। शिवजी की आज्ञा में उनके सम्पूर्ण गण रहते हैं, यद्यपि वे नन्दी भृंगी को आदि लेकर जैसे उनके हैं, वैसे हमारे नहीं।।११।। वे असंख्यात प्रमथगण हैं, परन्तु हमारे एक भी नहीं हैं, वे शंकरजी की आज्ञा से सब द्वार पर स्थित रहते हैं।।१२।। यद्यपि वे सब हमारे ही हैं, परन्तु हमारा मन उनसे नहीं मिलता, हे पाप रहित भगवती! एक कोई हमारा भी होना चाहिये, सो आप उसकी रचना करें।।१३।। ब्रह्माजी बोले– पार्वतीदेवी सखियों के यह सुन्दर वचन सुनकर इस बात को हित मानकर उसे करने की इच्छा करने लगी।।१४।। एक समय पार्वतीदेवी स्नान करती थी, नन्दी द्वार पर बैठे थे, शिवजी ने उसका निषेध मानकर उसे धुड़ककर भीतर प्रवेश किया।।१५।। शिवजी को आता हुआ देखकर परम सुन्दरी जगदम्बिका लज्जित होकर तुरन्त उठ बैठी।।१६।। तब उस समय पार्वती ने अपनी सखी के वचन को हितकारी जाना और सुखदायक समझा।।१७।। एक समय पर माया परमेश्वरी पार्वती मन में कुछ समय विचार कर कि।।१८।। कोई अत्यन्त श्रेष्ठ मेरा सेवक हो, जो सब कार्य करे, जो मेरी आज्ञा के विना रेखामात्र भी चलायमान न हो।।१९।। यह विचार कर पार्वतीदेवी ने अपने शरीर के मैल से सब लक्षणों से सम्पन्न एक पुरुष निर्माण किया।।२०।। जो शरीरों के सब अवयवों से

निर्दोष, सब अवयवों से सुन्दर, विशाल और सम्पूर्ण शोभा से सम्पन्न महाबली, पराक्रमी था ।।२१।। तब वह अनेक प्रकार के वस्त्र यथा विधि देकर तथा अनेक प्रकार के अलंकार और बहुत से आशीर्वाद देकर ।।२२।। तुम मेरे पुत्र हो, दूसरा कोई यहां नहीं है, इस प्रकार वह पार्वती के प्रति माता कहकर बोला ।।२३।। गणेशजी बोले– आपका क्या कार्य है, मैं आपका क्या करूं ? पुत्र के ऐसा कहने पर पार्वती बोलीं ।।२४।। देवी बोलीं– हे तात ! मेरे वचन सुनो, तुम मेरे द्वारपाल बनो, तुम मेरे पुत्र होने के कारण मेरे हो, दूसरे किसी के नहीं हो ।।२५।। हे पुत्र ! मेरी आज्ञा के बिना कोई मेरे घर के भीतर न आने पावे, चाहे कोई कितनी ही हठ करे, परन्तु आने न देना ।।२६।। ब्रह्माजी बोले– हे मुने ! पार्वती ने ऐसा कहकर एक दृढ़ लकड़ी गणेशजी को दी और गणेशजी का सुन्दर रूप देखकर वह बड़ी प्रसन्न हुईं ।।२७।। और प्रेम से मुख चूमकर पुत्र को आलिंगन किया और गणाधिप को लकड़ी लेकर द्वार पर बैठाया ।।२८।। हे तात ! जब वह गणेशजी द्वार पर स्थित हुए, वह महावीर लकड़ी लेकर पार्वती के हित की कामना से जब बैठे ।।२९।। और शिवा ने अपने पुत्र गणेशजी को जब अपने द्वार पर स्थापन किया, तब आप सखियों के सहित स्नान करने लगीं ।।३०।। इसी अवसर में शिवजी भी द्वार पर आकर स्थित हुए, हे मुनिश्रेष्ठ ! अनेक लीला करने में चतुर वे कौतुकी भगवान् शंकरजी जब भीतर जाने लगे ।।३१।। तब शिवजी को न जानकर वह गणेश्वर कहने लगे, हे देव ! माता की आज्ञा के बिना आप भीतर नहीं जा सकते ।।३२।। माता इस समय स्नान कर रहीं हैं, आप कहां जाते हो ? यहां से जाइये, यह कहकर गणेशजी ने उन्हें रोकने के लिये लकड़ी उठायी ।।३३।। यह देखकर शिवजी बोले– हे मूर्ख ! तू किसको निषेध करता है ? हे बुद्धि रहित ! मुझे नहीं जानता ? मैं शिव हूँ, इसमें अन्यथा नहीं है ।।३४।। यह सुनते ही गणेशजी ने महेश्वरजी को लकड़ी से प्रहार किया और वे बहुत लीला करनेवाले क्रोधकर पुत्र से बोले ।।३५।। शिवजी बोले– हे बालक ! तू मूर्ख है, यह नहीं जानता कि मैं गिरिजापति शंकर हूँ, हे बालक ! मैं अपने घर में ही जाता हूँ, तू मुझे निषेध कैसे करता है ? ।।३६।। यह कहकर जब गणेशजी की परवाह न करके शिवजी भीतर जाने लगे, तब गणेशजी ने फिर से दण्ड का प्रहार किया ।।३७।। तब शिवजी ने क्रोध करके अपने गणों को आज्ञा दी, यह कौन है, यहां क्यों स्थित है ? तुम देखो, अब क्या करें ? ।।३८।। यह कहकर शिवजी महाक्रोध करके घर के बाहर स्थित हुए, इस प्रकार अद्भुत लीला करनेवाले स्वामी संसार की लीला दिखाने लगे ।।३९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
चतुर्थ कुमारखण्डे त्रयोदशोऽध्यायः ।। १३ ।।

*****

चौदहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले- तब वे सब गण क्रोध को प्राप्त होकर शिवजी की आज्ञा से वहां जाकर उस द्वारपाल गिरिजापुत्र से पूछने लगे ।।१।। शिवजी के गण बोले- तुम कौन हो, कहां से आये हो और तुम्हारी क्या करने की इच्छा है? यदि जीने की इच्छा है, तो यहां से दूर चला जा ।।२।। ब्रह्माजी बोले- गणेशजी शिवजी के गणों के इस प्रकार वचन सुनकर निर्भय हो और दण्ड हाथ में लेकर उन द्वाररक्षक गणों से बोले ।।३।। गणेशजी बोले- तुम कौन हो और कहां से आये हो? तुम अच्छे सुन्दर हो, यहां विरोध करने के निमित्त कैसे स्थित हुए हो? ।।४।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार गणेशजी के वचन सुनकर से सब महाबली शिवजी के गण परस्पर हास्य करके, वे आश्चर्य रहित होकर बोले ।।५।। शिवजी के वे पार्षद परस्पर कुछ बोल कर क्रोधित मन से द्वारपाल गणेशजी से कहने लगे ।।६।। शिवजी के गण बोले- सुनो, हम सब श्रेष्ठ द्वारपाल, शिवजी के गण हैं, हम विभु शंकरजी की आज्ञा से तुमको निवारण करने यहां प्राप्त हुए हैं ।।७।। तुम्हें गण मानकर हम ने नहीं मारा, नहीं तो कब का मार दिया होता, दूर हो, स्वत: ही क्यों मृत्यु की इच्छा करते हो? ।।८।। ब्रह्माजी बोले- ऐसा कहने पर भी गिरिजापुत्र गणेशजी निर्भय रहे और शिवजी के गणों को घुड़ककर द्वार नहीं छोड़ा ।।९।। उन शिवजी के सब गणों ने भी गणेशजी के यह वचन सुनकर यह सब वृत्तान्त शिवजी से जाकर निवेदन कर दिया ।।१०।। अद्भुत लीला करनेवाले महेश्वरजी, गणों के यह वचन सुनकर अपने गणों को घुडककर लोक की गति से कहने लगे ।।११।। महेश्वरजी बोले- यह किस का पुत्र वा सेवक है? शत्रु के समान उच्छृंखल यह क्या कहता है? यह असद्बुद्धि क्या करेगा? क्या अपनी मृत्यु की इच्छा करता है? ।।१२।। यह कोई नवीन द्वारपाल है? उसे दूर करो, तुम नपुंसक के समान खड़े होकर उसका वृत्तान्त कैसे कहते हो? ।।१३।। अद्भुत लीला करनेवाले स्वामी शंकरजी के यह वचन सुनकर, वे गण फिर वहां जाकर द्वारपाल गणेशजी से कहने लगे ।।१४।। शिवजी के गण बोले- अरे द्वारपाल तू कौन है और किसने तुम्हें यहां स्थापित किया है? तू हमको कुछ नहीं गिनता, इससे किस प्रकार जीने की इच्छा करता है? ।।१५।। हम सब द्वारपाल हैं, तू अपने को द्वारपाल कैसे कहता है? श्रृगाल सिंहासन को ग्रहण करके कैसे अपना कल्याण चाहता है? ।।१६।। हे मूर्ख! तू उस समय तक गर्जता है, जब-तक गणों का पराक्रम नहीं देखता, तुमने यह पराक्रम अनुभव नहीं किया, अनुभव करते ही पतित हो जायेगा ।।१७।। ऐसे उनके वचन सुनकर गणेशजी

ने क्रोधकर लाठी हाथ में ली और वाचाल गणों को मारना प्रारम्भ किया।।१८।। और सब गणेश्वरों को घुडकाते हुए शिवजी के पुत्र बोले- गणेश्वर के घुडकने से महाबली शिवजी के गण चकित हुए।।१९।। गणेशजी बोले-- जाओ, जाओ, यहां से दूर चले जाओ, नहीं तो मैं तुमको अपना बड़ा उग्र पराक्रम दिखाऊंगा, जिससे तुम उपहास को प्राप्त हो जाओगे।।२०।। गिरिजापुत्र गणेशजी के यह वचन सुनकर वह शिवजी के गण परस्पर कहने लगे।।२१।। शिवजी के गण बोले- अब क्या करें, कहा जांए? अब जाने यह क्या न करे, हम मर्यादा की रक्षा करते हैं, नहीं तो यह क्या करेगा?।।२२।। ब्रह्माजी बोले- तब शिवजी के गणों ने परस्पर विचारकर कैलास से एक कोश दूर स्थित हुए शिवजी के पास जाकर वह सब कह दिया।।२३।। त्रिशूल हाथ में लिये उग्रबुद्धि परेश शिवजी उन वीरसम्मत अपने गणों से कहने लगे।।२४।। अरे गणो! तुम क्लीब ही हो, वीरमानी वीर नहीं हो, मेरे आगे यह बात कहने के लिये योग्य नहीं हो, घुडकने पर क्या फिर कुछ कहा जाता?।।२५।। जाओ, कोई क्यों न हो? उस पर प्रहार करो, बहुत कहने से क्या है? वह दूर करने योग्य है।।२६।। ब्रह्माजी बोले- हे मुनीश्वर! जब देव महेश्वरजी ने उन सब गणों को इस प्रकार से फटकारा, तब वे सब वहां पर गये और जाकर बोले।।२७।। शिवजी के गण बोले- रे रे बालक! सुनो, तू बहुत वल से क्या कहता है? यहां से तू दूर चला जा, नहीं तो तेरी मृत्यु हो जायेगी।।२७।। ब्रह्माजी बोले- तब शिवजी की आज्ञा माननेवाले उन गणों के यह वचन सुनकर गणेशजी यह विचारकर दुःखी हुए कि, अब मैं क्या करूं?।।२९।। इसी अवसर में देवी ने द्वार पर यह कलकल और क्लेश सुनकर सखी से कहा- देखो तो द्वार पर क्या हो रहा है?।।३०।। सखी ने जाकर वहां सब वृत्तान्त जान लिया और क्षणमात्र में सब देखकर प्रसन्न होकर पार्वती के समीप गईं।।३१।। हे मुने! वहां जाकर उस सखी ने जो वृत्तान्त हो रहा था, वह सब पार्वती के आगे वर्णन किया।।३२।। सखी बोली- हे महेश्वरी! जो हमारा गण द्वार पर स्थित हो रहा है, उसे शिवजी के सब गण घुड़क रहे हैं।।३३।। शिवजी और उनके गण बिना अवसर के घर में कैसे प्रवेश कर सकते हैं? यह हमारे लिये शुभदायक नहीं है।।३४।। इस बालक ने बहुत अच्छा किया जो किसी को न आने दिया और यह दुःख तथा तिरस्कार अनुभव कर रहा है।।३५।। अब इनका परस्पर वाणी का विवाद हो रहा है, वाग्वाद होने से फिर कोई घर के भीतर नहीं आ सकेंगे।।३६।। वाग्वाद कर और इसको जीतकर वे सब प्रवेश कर सकते हैं, अन्यथा प्रवेश नहीं कर सकते।।३७।। हमारे इस बालक को घुड़कने से मानो उन्होंने सब ही को घुड़का, इस कारण हे देवि! आपको मान किसी प्रकार छोड़ना चाहिये।।३८।। शिवजी तो सदा आपके आधीन ही हैं, वे अहंकार क्या करेंगे? तुम्हारे अनुकूल ही हो जायेंगे।।३९।।

ब्रह्माजी बोले– क्षणमात्र को शिवजी की इच्छा से पार्वती स्थित हुईं।।४०।। और उस समय वह पार्वती मानिनी होकर मन ही मन में कहने लगीं।।४१।। शिवा बोली– अहो! क्षणमात्र को पुत्र स्थित भी न हुआ कि, यह हठ करने लगे, तो अब मैं विनय वा नम्रता क्या करूं?।।४२।। जो होनहार है, सो होगी अन्यथा नहीं हो सकती, ऐसा कहकर पार्वती ने अपनी सखी को वहां भेजा।।४३।। सखी ने जाकर गणेशजी से वह सब बात कही, जो प्रिया ने कही थी, वह गिरिजापुत्र गणेशजी से इस प्रकार से बोली।।४४।। सखी बोली– हे भद्र! आपने बहुत अच्छा किया, जो बल से प्रवेश न होने दिया, आपके सामने क्या यह गण आपको जीत सकते हैं?।।४५।। कृत–अकृत जो कुछ भी हो आपको अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहिये, जीतने पर भी कोई बैर की बात तो है ही नहीं।।४६।। ब्रह्माजी बोले– गणेश्वर माता के इस प्रकार के वचन सुनकर उत्पन्न महा बल को प्राप्त होकर बड़े आनन्द को प्राप्त हुए।।४७।। कच्छ और पगड़ी बांध कर जांघों पर जांघियां कस कर उन सब गणों से प्रसन्नता से निर्भय वचन बोले।।४८।। गणेशजी बोले– मैं पार्वती का पुत्र और तुम शिवजी के गण हो, वैसी ही समता को प्राप्त होकर अब अपना कर्त्तव्य पालन करें।।४९।। तुम ही द्वारपाल हो, मैं द्वारपाल क्यों नहीं हूँ? जैसे तुम स्थित हो वैसे ही मैं स्थित हूँ।।५०।। तुम्हारी यहां स्थिति जब निश्चित हो जायेगी, तब तुम शिवजी की आज्ञा का पालन करना।।५१।। इस समय तो मैं यहां स्थित होकर पार्वतीजी की आज्ञा का पालन करता हूँ, हे वीर! यह मैं सत्य ही कहता हूँ और मैंने इसका निर्णय कर लिया है।।५२।। इस कारण हे शिवजी के गणो! आदर से तुम मेरे वचन सुनो, हठ वा विनय किसी भी प्रकार से तुम मन्दिर में नहीं जा सकते।।५३।। जब गणेशजी ने ऐसा कहा, तब वे सब गण लज्जित हो गये और शिवजी के समीप जाकर नमस्कार करके उनके आगे स्थित हुए।।५४।। और हाथ जोड़ कर, मस्तक झुकाकर स्तुति करके आगे स्थित होकर सम्पूर्ण अद्‌भुत वृत्तान्त को उन्होंने निवेदन किया।।५५।। अपने गणों से कहे हुए उस सब वृत्तान्त को सुनकर लौकिक दशा को दिखाते हुए शिवजी यह वचन बोले।।५६।। शिवजी बोले– हे सम्पूर्ण गणो! सुनो, अब वह बालक युद्ध के योग्य तो है नहीं, तुम हमारे और गौरी के गण हो।।५७।। और यदि नम्रता से की जाय, तो लोक में इस बात की ख्याति होगी कि, शिवजी सदा स्त्री के वश में हैं, हे गणो! तब भी वह मुझे लज्जा का विषय होगा।।५८।। परनीति के अनुसार इसमें कार्य करना चाहिये, वह अकेला गण बालक क्या पराक्रम करेगा?।।५९।। तुम गण युद्ध में बड़े चतुर हो, सो मेरे होकर युद्ध छोड़ कर लघुता को कैसे प्राप्त होगे?।।६०।। विशेष कर स्त्री पति के आगे हठ करती है, यदि गिरिजा ऐसा करेगी, तो इसका फल अवश्य पायेगी।।६१।। इस कारण सब मेरे वीर आदर से मेरा वचन सुनें, सर्वथा युद्ध करें, जो

होना होगा सो अवश्य होगा ।।६२।। ब्रह्माजी बोले- हे नारदजी! अनेक लीला करने में चतुर भगवान् शंकरजी लौकिकी गति को दिखाते हुए यह कहकर मौन हो गये ।।६३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायांचतुर्थ
कुमारखण्डे चतुर्दशोऽध्यायः ।। १४ ।।

*****

पँदरहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले- जब उन विभु ने इस प्रकार कहा, तब वे सब गण परम निश्चय को प्राप्त होकर सजकर शिवजी के मन्दिर के समीप गये ।।१।। इधर गणेशजी ने भी देखा कि, युद्ध के निमित्त शिवजी के गण आ रहे हैं, तब उनसे इस प्रकार गणेशजी बोले ।।२।। गणेशजी बोले- शिवजी की आज्ञा पालन करनेवाले सब गण आवें, मैं अकेला बालक ही शिवजी की आज्ञा पालन करनेवाला हूँ ।।३।। तो भी देवी पार्वती के पुत्र का बल सब कोई देखें और आज शिवजी के गणों का भी बल देखा जाए ।।४।। आज भवानी और शिवजी के पक्षवालों का बलपूर्वक युद्ध होनेवाला है, युद्ध में चतुर आप लोगों ने तो पहले भी युद्ध किया है ।।५।। मैंने पहले युद्ध नहीं किया, मैं बालक होकर आज ही युद्ध कर रहा हूँ, तो भी गिरिजा और शिवजी आपकी लज्जा रखेंगे ।।६।। मुझे तो इसमें कुछ है नहीं, हमारे विपरीत ही होगा, मेरी और आपकी लज्जा गिरिजा और शिवजी की लज्जा है ।।७।। हे गणेश्वरो! ऐसा विचारकर समर करना चाहिये, आप अपने स्वामी को देखकर और में अपनी माता को देखकर किस प्रकार से युद्ध करता हूँ ।।८।। वह कैसा युद्ध होता है, सो देखना, इस युद्ध के निवारण करने में त्रिलोकी में कोई समर्थ नहीं है ।।९।। ब्रह्माजी बोले- जब इस प्रकार से दण्डपाणि गणेशजी ने उसे फटकारा, तब वे अनेक प्रकार के आयुध लेकर उन पर धावमान हुए ।।१०।। दांतों को घर्षण करते, बारंबार हुँकार शब्द करते और देखो-देखो कहते हुए वे गण वहां आकर उपस्थित हो गये ।।११।। सब से पहले नन्दी ने आकर गणेशजी का चरण पकड़कर खींचा और भृंगी ने आकर दूसरा चरण खींचा ।।१२।। जब तक वे दोनों गण चरण पकड़ें, तब तक गणेशजी ने हाथों से उन पर प्रहार करके अपने पैर छुड़ा लिये ।।१३।। तब वीर देवीपुत्र ने एक बड़ा परिघ ग्रहण करके जितने गण द्वार पर स्थित थे, उन सब पर प्रहार किया ।।१४।। किन्हीं के हाथ टूट गये, किन्हीं की पृष्ठ टूट गई, किन्हीं के सिर और मस्तक टूट गये ।।१५।। किन्हीं की जंघा, किन्हीं के कन्धे भिन्न हो गये और जो सम्मुख आये उन सबके हृदय

पर प्रहार किया ।।१६।। कोई पृथ्वी पर गिर गया, कोई विदिशाओं में चले गये, किन्हीं के चरण छिन्न-भिन्न हो गये, कोई शिवजी के समीप चले गये ।।१७।। उनमें से कोई भी संग्राम में गणेशजी के सम्मुख न ठहर सका, जैसे सिंह को देखकर मृग जिस प्रकार दशों-दिशाओं में भाग जाते हैं ।।१८।। उसी प्रकार वे सैकड़ों सहस्रों गण पलायन कर गये और गणेशजी लौट कर फिर अपने स्थान पर आ गये ।।१९।। जैसे कल्प के अन्त में भयंकर काल दिखाई देता है, इसी प्रकार वह सबको उस समय प्रलय करने के समान दिखाई देने लगे ।।२०।। इसी समय नारदजी की प्रेरणा से विष्णुजी, इन्द्र आदि सब देवता उस युद्ध में आ गये ।।२१।। और शिवजी के हित की कामना से, वे सब कहने लगे और आगे स्थित होकर शिवजी को प्रणाम कर बोले- हे प्रभो! आज्ञा दीजिये ।।२२।। आप सर्वेश परब्रह्म हो, हम सब आपके सेवक हैं, आप सृष्टि के कर्ता, भर्ता, संहर्ता परमेश्वर हो ।।२३।। आप सत, रज, तम से अनेक प्रकार की लीला करते हो, वास्तव में स्वतन्त्र निर्गुण हो, हे प्रभो! इस समय यह क्या लीला रची है? सो आप कहें ।।२४।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार उनके यह वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ महेश्वरजी गणों को छिन्न-भिन्न देखकर उनसे सब बात कहने लगे ।।२५।। हे मुनिराज! तब सबके अधिपति शिवजी महाराज, गिरिजा के पति हँसकर ब्रह्माजी से कहने लगे ।।२६।। शिवजी बोले- हे ब्रह्माजी! सुनिये, हमारे मन्दिर के द्वार पर एक बालक उपस्थित है, वह महाबली लकड़ी लिये हुए है, जो कोई घर में आता है, उसे प्रवेश नहीं करने देता है ।।२७।। वह महाप्रहार करनेवाला मेरे पार्षदों पर भी प्रहार करता है और उनसे प्रहार नहीं खाता है, उसने मेरे गणों को बलपूर्वक पराजित कर दिया है ।।२८।। हे ब्रह्मन्! आप वहां जाकर उस बालक को प्रसन्न कीजिये, हे ब्रह्माजी! जिस प्रकार क्लेश न बढ़े, वही आपको करना चाहिये ।।२९।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार से शिवजी के वचन सुनकर अज्ञान से मोहित हो विशेष बात को न जानकर मैं सब ऋषियों के साथ उस बालक के निकट गया ।।३०।। वह महाबली गणेशजी मुझे आया हुआ देखकर क्रोध करते हुए दौड़ कर मेरी डाढ़ी-मूंछे नोचने लगा ।।३१।। तब मैंने कहा हे देव! क्षमा करें-क्षमा करें, मैं युद्ध करने नहीं आया हूँ, मैं ब्रह्मा हूँ, मेरे ऊपर अनुग्रह करना चाहिये, मैं उपद्रव रहित शान्ति करनेवाला हूँ ।।३२।। हे नारदजी! मैं ऐसा कह ही रहा था कि, तब तक उस महाबली युवाओं के समान पराक्रमी बालक गणेशजी ने परिघ को ग्रहण किया ।।३३।। उस महाबली गणेशजी को परिघ ग्रहण करता हुआ देखकर, मैं उसी समय शीघ्रता से वहां से पलायन कर गया ।।३४।। परिघ से ताड़ित होकर मेरे सब साथी 'चलो-चलो' कहने लगे, कोई स्वयं पतित हो गये और कोई उन गणेशजी के प्रहार से पतित हुए ।।३५।। कोई उसी समय शिवजी के समीप जाकर वह वृत्तान्त शिवजी को सुनाने लगे ।।३६।। इस प्रकार उनकी गति देखकर और इस वृत्तान्त को

सुनकर लीला विशारद शंकरजी को बड़ा क्रोध हुआ ।।३७।। इन्द्रादिक देवता और षणमुख आदि गण, भूत, पिशाच गण सबको ही शिवजी ने आज्ञा दी ।।३८।। वे सब यथा योग्य सब ओर से धावमान हो गये और शिवजी की आज्ञा से आयुध उठाकर गणेशजी को मारने की इच्छा करने लगे ।।३९।। जिस-जिसका जो आयुध था, वह उसने विशेषरूप से बलपूर्वक आकर गणेशजी पर प्रहार किया ।।४०।। उस समय चराचर त्रिलोकी में बड़ा हाहाकार मच गया, त्रिलोकी के सब मनुष्य परम सन्देह को प्राप्त हुए ।।४१।। ब्रह्माजी की आयु समाप्त नहीं हुई, ब्रह्माण्ड किस प्रकार क्षय को प्राप्त होता है ? यह अकाल में निश्चय शिवजी की इच्छा के वश से ही होता है ।।४२।। हे मुने! से षणमुख को आदि लेकर सम्पूर्ण गण व्यर्थ आयुधवाले हो गये, यह देखकर सम्पूर्ण देवता बड़े विस्मय को प्राप्त हुए ।।४३।। इसी समय जगदम्बा देवी भी इस वृत्तान्त को जानकर अपार क्रोध करने लगीं ।।४४।। हे मुनीश्वर! देवी ने उस समय अपने गण की सहायता के निमित्त दो शक्तियां निर्माण कीं ।।४५।। हे महमुने! एक तो महाप्रचण्ड रूप धारण करके वहां स्थित हुई, उसका मुख श्याम पर्वत के कृष्ण गुफा के विवर के समान बड़ा था ।।४६।। और एक बिजली के समान स्वरूपवाली बहुत हाथों से युक्त थी, यह देवी भी बड़ी भयंकर दुष्टों को दण्ड देनेवाली थीं ।।४७।। देवता और गणों ने सब ही प्रकार के आयुधों से प्रहार किया और वे गणेशजी के सम्मुख चलाये ।।४८।। परन्तु उस परिघ के चारों ओर देवताओं के आयुध दिखाई नहीं देते थे, इस प्रकार उन दोनों के आयुधों ने परम अद्भुत चरित्र किये ।।४९।। एक ही बालक ने सम्पूर्ण सेना को विलोड़ित कर डाला, जैसे मन्दर ने पूर्वकाल में समुद्र को विलोड़ डाला था ।।५०।। एक ने ही इन्द्रादिक सब देवताओं को निहत कर दिया, तब उस समय शिवजी के गण व्याकुल हो गये ।।५१।। तब वे सब मिल कर और बारंबार श्वास लेकर गणेशजी के प्रहार से व्याकुल होकर परस्पर कहने लगे ।।५२।। देवगण बोले- क्या करें, कहां जायें ? दशों दिशा दिखाई नहीं देती, केवल बायें-दायें परिघ ही घूमता दीखता है ।।५३।। ब्रह्माजी बोले- इसी समय में श्रेष्ठ अप्सरा पुष्प और चन्दन हाथ में लिये और वह सब ऋषि, मुनि जो युद्ध की लालसा करनेवाले हैं ।।५४।। हे मुनिसत्तम! वे सब उस युद्ध का दर्शन करने के लिये आये, हे नारदजी! उस समय युद्ध-दर्शनवालों से आकाश भर गया ।।५५।। वे इस युद्ध को देखकर महा विस्मय को प्राप्त हुए, कि इस प्रकार का युद्ध तो हमने कभी देखा नहीं ।।५६।। उस समय समुद्र के सहित पृथ्वी कांपने लगी और पर्वत चूर्ण होकर संग्राम की सूचना करने लगे ।।५७।। द्युलोक, ग्रह, तारागण सब संहत होकर व्याकुल होने लगे, उस समय सब देवता और गण पलायमान हो गये ।।५८।। केवल परम विक्रमी कार्तिकेय ही उस स्थान पर स्थित रहे, पलायमान न हुए ।।५९।। उन दोंनों शक्तियों ने उस युद्ध में सबको व्याकुल कर दिया और देवताओं

के चलाये हुए सब अस्त्र निष्फल कर दिये, काट दिये ।।६०।। जो शेष बचे, वे सब शिवजी के समीप चले गये, सब देवता और गण पलायमान हो गये ।।६१।। वे सब मिलकर और शिवजी को प्रणाम करके शीघ्रता से बोले, हे प्रभो! यह कौनसा गण है? ।।६२।। पहले बहुत से युद्धों का वृतान्त हमने सुना है, इस समय बहुत से युद्ध देखे-सुने हैं, परन्तु इस प्रकार का युद्ध न तो कभी देखा, न सुना ।।६३।। हे देव! इसमें कुछ विचार किया जाए, नहीं तो जय न होगी, हे स्वामिन्! ब्रह्माण्ड के तो आप ही रक्षक हो, इसमें सन्देह नहीं है ।।६४।। ब्रह्माजी बोले- यह वचन सुनकर परमकोपन स्वभाव रुद्र महाकोप कर अपने गणों के सहित स्वयं वहां गये ।।६५।। वह सब देवताओं की सेना चक्रधारी विष्णुजी के साथ बड़ा उत्सव करती शिवजी के पीछे चली ।।६६।। इसी समय हे नारदजी! आप देव देव महेश्वरजी को नमस्कार कर हाथ जोड़कर कहने लगे ।।६७।। नारदजी बोले- हे देव देव महादेव! हे विभो! आप मेरे वचन सुनिये, हे स्वामी! आप लीला करने में चतुर सर्वगामी हो ।।६८।। आपने यह महालीला करके गणों का गर्व दूर कर दिया, हे देव! हे शंकर! गणराज को महाबल देकर आपने देवताओं का गर्व चूर्ण किया ।।६९।। हे देव! हे शम्भो! हे सब का गर्व दूर करनेवाले! हे स्वतन्त्र! आपने भुवन में अपना अद्भुत बल प्रत्यक्ष कर दिखाया ।।७०।। हे भक्तवत्सल! इस समय आप यह लीला न करें, अपने गण और देवताओं को सम्मान से बढ़ाइये ।।७१।। हे ब्रह्मपद के देनेवाले! इस समय खेल न करके जय कीजिये, नारदजी ऐसा कहकर वहां से अन्तर्धान हो गये ।।७२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
चतुर्थ कुमारखण्डे गणेशयुद्धवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।। १५ ।।

*****

सोलहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले- हे नारदजी! भक्तों के ऊपर अनुग्रह करनेवाले शिवजी ने आपके वचनों से उस बालक के साथ युद्ध करने की इच्छा की ।।१।। विष्णुजी को बुलाकर, इस विषय में सम्मति करके बड़ी सेना के साथ देव त्रिलोचन उनके सम्मुख गये ।।२।। महाबली बड़े उत्साही शिवजी को दृष्टि से देखे हुए देवताओं ने शिवजी के चरणकमलों का ध्यान करके उससे युद्ध करना आरम्भ किया ।।३।। तब महाबली, बड़े पराक्रमी विष्णुजी उस बालक से युद्ध करने लगे, इस ओर वीरों में श्रेष्ठ साक्षात् शिवरूप प्रवीण बालक महादेवी के आयुध यष्टि को लेकर गणेशजी देवताओं में श्रेष्ठ देवगणों पर प्रहार

करने लगे और शक्ति के दिये हुए आयुध से उस महावीर ने सहसा विष्णुजी के ऊपर यष्टि का प्रहार किया ।।४–५।। हे मुने! जिस समय उस बालक ने यष्टि का प्रहार किया, उस समय विष्णुजी की यह दशा देखकर सब देवताओं का बल ह्रास हो गया और वे युद्ध से पराङ्मुख हो गये ।।६।। हे मुने! शिवजी भी अपनी सेना के सहित चिरकाल तक युद्ध करके उस बालक का विकराल स्वरूप देखकर परम विस्मय को प्राप्त हो गये ।।७।। यह बालक कौशल से ही मृतक हो सकता है, अन्यथा नहीं, ऐसे निश्चय में स्थित होकर शिवजी सेना के मध्य में स्थित हो गये ।।८।। तब निर्गुण और सगुणरूपवाले देव शंकरजी और विष्णुजी को संग्राम में आते हुए देखकर सब देवता और शिवजी के सब गण बड़ी प्रसन्नता को प्राप्त हुए और परस्पर मिलकर उत्सव करने लगे ।।९–१०।। तब शक्ति के पुत्र गणेशजी ने वीरगति को प्राप्त होकर अपनी यष्टि से प्रथम विष्णुजी को पूजा (अर्थात् प्रहार किया) ।।११।। तब विष्णुजी ने शंकरजी से कहा, हे विभो! मैं तो इस बालक को मोहित करता हूँ और आप इसे नष्ट कीजिये, यह बिना कौशल के मर नहीं सकता, कारण कि यह तमोगुण वाला, बड़ा दुर्जय है ।।१२।। इस प्रकार मति करके और शिवजी से सम्मति करके, शैवी आज्ञा को प्राप्त होकर उस समय विष्णुजी मोह को प्राप्त हो गये ।।१३।। विष्णुजी की यह दशा देखकर वे पार्वती द्वारा प्रकट की हुई दोनों शक्तियां लय हो गईं और हे मुने! अपना सब बल उन्होंने गणेशजी को दे दिया ।।१४।। जब इस प्रकार से दोनों शक्तियां लीन हो गईं, तब जहां विष्णुजी थे, गणेशजी ने उन पर परिघ से प्रहार किया ।।१५।। विष्णुजी ने उस समय अपने प्रभु भक्तवत्सल महेश्वर ईशान को स्मरण कर उनकी गति को महायत्न करके वंचित कर दिया ।।१६।। इस ओर शंकरजी भी एक ओर से बालक का मुख देखते हुए क्रोध करते हुए हाथ में त्रिशूल लेकर उस स्थान पर आये ।।१७।। तब महाबली शिवपुत्र ने हाथ में त्रिशूल लिये महेश्वर शिवजी को मारने के लिये आते हुए देखा ।।१८।। तब गणेशजी ने अपनी माता के चरणकमल को स्मरण कर महादेवजी के हाथ पर शक्ति का प्रहार किया, वह महावीर गणेशजी, शिवजी की शक्ति से बढ़े हुए हैं ।।१९।। शक्ति के लगने से परमात्मा शिवजी के हाथ से धनुष गिर पड़ा, तब वह देखकर उन्होंने पिनाक धनुष को धारण किया ।।२०।। गणेश्वरजी ने परिघ के द्वारा उसे भी पृथ्वी पर गिरा दिया और शूल द्वारा शिवजी के पाँच हाथों को गणेशजी ने व्यर्थ कर दिया ।।२१।। तब शिवजी ने लोकाचार से यह बात कही– अहो कितने दुःख की बात है? जब मेरी यह दशा है, तब गणों की क्या दशा न होगी? ।।२२।। इसी समय शक्ति के दिये बल से युक्त होकर गणेशजी ने परिघ से सब गण और देवताओं को ताड़ित किया ।।२३।। परिघ से व्याकुल होकर वे देवता और गण दूर चले गये और उस अद्भुत प्रहार करनेवाले के सम्मुख कोई भी न ठहर सका ।।२४।। तब विष्णुजी ने उस महाबली महाशूर रणप्रिय

गण को देखकर कहा कि, इसको धन्य है ।।२५।। हमने बहुत से देवता, दानव, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस देखे हैं ।।२६।। परन्तु इस गणेश्वर की समता को तो कोई भी प्राप्त नहीं हो सकता, यह सब त्रिलोकी में तेजरूप शूरता आदि के गुणों से युक्त हैं ।।२७।। विष्णुजी ऐसा कह रहे थे, कि इतने में शक्तिपुत्र गणेश्वरजी ने परिघ को घुमाते हुए उससे विष्णुजी पर प्रहार किया ।।२८।। तब शिवजी के चरणकमलों को स्मरण कर, चक्र ग्रहण करके, उस परिघ के खण्ड-खण्ड कर दिये ।।२९।। तब गणेश्वरजी ने उस खण्ड परिघ से ही विष्णुजी के ऊपर प्रहार किया, तब गरुड़जी ने अपने पंखों से उसे ग्रहण करके विफल कर दिया ।।३०।। इस प्रकार महावीर विष्णुजी और गणेश्वरजी को युद्ध करते-करते बहुत समय बीत गया ।।३१।। फिर वीरों में श्रेष्ठ महाबली शक्तिपुत्र ने शिवजी को स्मरण कर, उस अतुल यष्टि को ग्रहण कर, उससे विष्णुजी पर प्रहार किया ।।३२।। विष्णुजी उस प्रहार को न सह कर पृथ्वी पर गिर पड़े और फिर शीघ्रता से उठकर शिवापुत्र के साथ संग्राम करने लगे ।।३३।। इसी अन्तर को प्राप्त होकर शिवजी ने बहुत शीघ्रता से जाकर त्रिशूल से बालक का सिर काट दिया ।।३४।। हे नारदजी! जिस समय बालक का सिर छिन्न हो गया, उस समय देवता और गणों की सेना निश्चल हो गई ।।३५।। हे नारदजी! उसी समय आपने जाकर सब बात देवी से कह दी, हे मानिनी! सुनो, आप अपना मान किसी प्रकार मत त्याग करना ।।३६।। हे नारदजी! कलहप्रिय आप इस प्रकार कहकर अन्तर्धान हो गये, कारण कि आप अविकारी, सदा शिवजी के मन की गति के अनुसार करनेवाले हो ।।३७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
चतुर्थ कुमारखण्डे षोडशोऽध्यायः ।। १६ ।।

*****

सतरहवाँ अध्याय

नारदजी बोले- हे ब्रह्मन्! हे महाप्राज्ञ! आप यह कहिये कि, उस सम्पूर्ण वृतान्त को सुनकर देवी ने क्या किया? सो मैं उसे सुनने की इच्छा करता हूँ ।।१।। ब्रह्माजी बोले- हे मुनिश्रेष्ठ! सुनिये, मैं उस वृतान्त को सम्पूर्ण रूप से कहता हूँ, उस उपरान्त जो जगदम्बा ने चरित्र किया उसे आप सुनिये ।।२।। उस समय शिवजी के गण गणेशजी के मर जाने पर मृदंग-पटह बजाकर महोत्सव करने लगे ।।३।। शिवजी गणराज का सिर छेदन करके जब तक कुछ दुःख पावें, हे मुनीश्वर! तब तक पार्वती को बड़ा क्रोध आ गया ।।४।। मैं क्या करूं, कहां जाऊं? हा हा, मुझे बड़ा दुःख प्राप्त हुआ है, मुझे

जो महान् दुःख है, मेरा यह दुःख किस प्रकार नष्ट हो सकता है ।।५।। सब देवता और गणों ने मेरे पुत्र का नाश कर दिया है, सो मैं भी सबका नाश वा प्रलय कर दूंगी ।।६।। इस प्रकार दुःखी होकर पार्वती ने सहस्रों सौ हजार शक्तियों की रचना कर डाली और सब लोकों की महेश्वरी एक क्षणमात्र में क्रोध में भर गई ।।७।। इस वे निर्मित हुई शक्तियां उस जगदम्बा शिवा को प्रणाम करके तेज से प्रकाशित होकर कहने लगीं, हे मातः! क्या आज्ञा होती है? ।।८।। यह सुनकर क्रोध में भरकर वह शिवजी की शक्ति महामाया उन सब से इस प्रकार कहने लगी ।।९।। देवी बोली– हे शक्तियो! तुम सब देवी अभी मेरी आज्ञा से इस देवसेना में जाकर प्रलय कर डालो, इसमें विचार की आवश्यकता नहीं है ।।१०।। देवता, ऋषि, यक्ष, राक्षस अपने–पराये जो मिलें, इन सबको हठ से भक्षण कर जाओ ।।११।। ब्रह्माजी बोले– पार्वती की आज्ञा से वह सब शक्तियां क्रोध में तत्पर होकर सब देवादि का संहार करने में उद्यत हो गईं ।।१२।। जैसे अग्नि तृणों का संहार करती है, उस प्रकार वह शक्तियां संहार करने के लिये उद्यत हुईं ।।१३।। गणेश, विष्णु, ब्रह्मा वा शंकर, इन्द्र वा यक्षराज वा स्कन्द वा सूर्य ।।१४।। वह सबका ही संहार करने को उद्यत हो गईं, जहां देखो वहां शक्तियां ही दिखाई देती थी ।।१५।। कराली, कुब्जका, खंजा, लम्बशीर्षा इत्यादि अनेक शक्तियां हाथ से देवताओं को पकड़कर मुख में डालने लगीं ।।१६।। हर, ब्रह्मा और हरि, इस प्रकार उस संहार को देखकर इन्द्रादि सब देवता गण और ऋषि ।।१७।। सब कोई जीवन से हताश होकर कहने लगे, क्या देवी अकाल में ही प्रलय कर देगी? इस प्रकार का सबको सन्देह हो गया ।।१८।। सब मिल कर परस्पर विचार करने लगे, अब क्या किया जाय? और परस्पर सब विचार कर बोले ।।१९।। यदि गिरिजादेवी प्रसन्न हो जाय, तभी स्वस्थता हो सकती है, अन्यथा करोड़ उपायों से भी न होगी ।।२०।। लौकिकी गति को दिखाते हुए शिवजी भी दुःख को प्राप्त हुए और वह अनेक लीला करने में चतुर उस समय सबको मोहित करने लगे ।।२१।। सब देवताओं की उस समय कमर टूट गई और क्रोधमयी शिवा के मन्दिर में जाने की इच्छा न की ।।२२।। अपना पराया वा दानव, गण, दिक्पाल, यक्ष, किन्नर, मुनि ।।२३।। विष्णुजी, ब्रह्माजी वा महाप्रभु शंकरजी, हे मुने! उस समय पार्वती के आगे कोई भी ठहरने के लिये समर्थ न हुए ।।२४।। उसके महा प्रकाशित चमकते हुए तेज से सन्तापित होकर, वे सब देवता भयभीत होकर दूर ही स्थित हुए ।।२५।। उसी समय वहां दिव्यदर्शन नारदजी देवताओं के सुख के निमित्त प्राप्त हो गये ।।२६।। मुझ ब्रह्मा, शिवजी, विष्णुजी को प्रणाम कर सबके साथ मिलकर विचार कार्य कहने लगे ।।२७।। सब महात्मा देवता आपके सहित मिलकर विचार करने लगे और वह सब यह कहने लगे कि, इस दुःख की शान्ति किस प्रकार से होगी? ।।२८।। जब तक गिरिजादेवी कृपा नहीं करेंगी, तब तक किसी प्रकार से सुख

की प्राप्ति नहीं होगी, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं ।।२९।। तब आपको आदि लेकर सब ऋषि पार्वती के समीप गये और क्रोध शान्ति के लिये शिवा को सब कोई प्रसन्न करने लगे ।।३०।। बारंबार प्रणाम कर अनेक स्तोत्रों से स्तुति करके सब देवता प्रसन्न करके भगवती से बोले ।।३१।। देवर्षि बोले– हे जगत् की माता! हे शिवा! आपको प्रणाम है, हे चण्डिका! हे कल्याणि! आपको प्रणाम है ।।३२।। आप ही आदिशक्ति और सब सृष्टि करनेवाली हो, आप ही पालन और प्रलय करनेवाली शक्ति हो ।।३३।। हे देवेशि! आप प्रसन्न होकर अब शान्ति करो, हे देवि! आपके कोप से सब जगत् व्याकुल हो रहा है ।।३४।। ब्रह्माजी बोले– जब इस प्रकार से आपको आदि लेकर ऋषियों ने परादेवी की स्तुति की, तब भी क्रोध की दृष्टि से उनकी ओर देखते हुए शिवा ने कुछ भी न कहा ।।३५।। तब सब ऋषियों ने भगवती के चरणकमलों को प्रणाम करके परम भक्ति से हाथ जोड़ कर स्तुति करनी आरम्भ की ।।३६।। ऋषि बोले– हे देवि! क्षमा करो, क्षमा करो, इस समय संहार हुआ जाता है, हे अम्बिके! आपके स्वामी यहां स्थित हैं, उनको तो देखो ।।३७।। और हम ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता आपकी प्रजा हाथ जोड़ कर आपके सम्मुख खड़े हैं ।।३८।। हे परमेश्वरी! अब इन सबका अपराध क्षमा कीजिये, हम सब ही व्याकुल हो रहे हैं, हमारी शान्ति कीजिये ।।३९।। ब्रह्माजी होले– ऐसे कहकर सब देवता बड़ी दीनता से व्याकुल हो गये और हाथ जोड़कर चण्डिका के आगे खड़े रह गये ।।४०।। तब उनके यह वचन सुनकर भगवती प्रसन्न हो गईं और कृपादृष्टि से देखती हुई, मन में करुणा करके उन देवताओं, ऋषियों से बोलीं ।।४१।। देवी बोली– मेरा पुत्र यदि जीवित हो जाये और आप सबके मध्य में वह प्रथम पूज्य हो, तो यह संहार नहीं होगा ।।४२।। यदि आप आज से इसे सबका अध्यक्ष कर सको, तो लोग में शान्ति होगी अन्यथा आपको सुख नहीं मिलेगा ।।४३।। ब्रह्माजी बोले– तब भगवती के ऐसा कहने पर आपको आदि लेकर सब ऋषि उन देवताओं के समीप आकर यह सब वृतान्त निवेदन करने लगे ।।४४।। उन सब देवताओं ने सुनकर शंकरजी से यह बात कही और इन्द्र आदि सब देवता हाथ जोड़कर, दीन होकर खड़े रह गये ।।४५।। देवताओं के यह वचन सुनकर शिवजी बोले– वह बात करनी चाहिये, जिससे सब लोक का मंगल हो ।।४६।। अच्छा, उत्तर दिशा को चले जाइये, वहां पर जो पहले मिले, उसका सिर ला कर इस गणेश्वर के शरीर पर जोड़ देना चाहिये ।।४७।। ब्रह्माजी बोले– तब उन शिवजी की आज्ञा माननेवाले देवताओं ने यह सब कुछ किया, कलेवर को लेकर और उसे विधिपूर्वक प्रक्षालन करके ।।४८।। और उसका पूजन करके, वे उत्तर दिशा को गये, प्रथम उनको एक दान्तवाला हाथी मिला ।।४९।। उन्होंने उसका सिर काटकर लाकर गणेशजी के कन्धर पर सहयुक्त कर दिया, पीछे वे सब देवता ब्रह्मा, विष्णु और

शंकरजी के पास जाकर ।।५०।। प्रणाम करके बोले– हे देव! हमने अपना कार्य सम्पूर्ण कर लिया, अब जो आपको कर्त्तव्य है, सो आप अपना काम करें ।।५१।। ब्रह्माजी बोले– ऐसा कहकर वे सब पार्षद वहां स्थित हुए और शिवजी के कहे सब वचनों का पालन किया ।।५२।। तब वे ब्रह्मा, विष्णु आदि सब देवता अपने प्रभु, निर्गुण ब्रह्म, शंकरजी को प्रणाम कर कहने लगे ।।५३।। जिस कारण की आप महात्मा के तेज से हम सब प्रकट हुए हैं, सो वेदमन्त्रों के योग से वह तेज इसमें आकर प्राप्त हो ।।५४।। इस प्रकार के मन्त्र से जल को अभिमन्त्रित कर शिवजी को स्मरण कर उन देवताओं ने गणेशजी के शरीर पर छिड़का ।।५५।। उस जल के स्पर्शमात्र से ही वह बालक शिवजी की इच्छा से सोते हुए के समान उठ कर बैठा ।।५६।। बहुत सुन्दर वह बालक गजमुख, रक्तवर्ण, प्रसन्न वदन, बड़ी कान्तिवाला, बड़ी सुन्दर आकृतिवाला हुआ ।।५७।। हे मुनीश्वर! उस समय शिवापुत्र उस बालक को जीवित हुआ देखकर सब कोई प्रसन्न हो गये और सबका दुःख क्षय हो गया ।।५८।। और सबने प्रसन्न होकर देवी को दर्शन कराया, पुत्र को जीवित देखकर देवी बहुत प्रसन्न हो गयीं ।।५९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
चतुर्थ कुमारखण्डे गणेशजीवनवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ।। १७।।

*****

अठारहवाँ अध्याय

नारदजी बोले– हे देवेश्वर! जब गिरिजा का पुत्र जीवित हो गया, तब क्या हुआ? सो आप कृपा करके कहिये ।।१।। ब्रह्माजी बोले– हे मुनीश्वर! जब देवी ने देखा कि, उसका पुत्र जीवित हो गया, उस समय जो हुआ, सो मैं आपसे कहता हूँ, उस समय महाउत्सव हुआ ।।२।। जिस समय वे शिवा के पुत्र जीवित हो गये और विकार रहित हुए, तब देवताओं ने गजानन को गणाध्यक्ष के पद पर अभिषिक्त किया ।।३।। शिवादेवी अपने पुत्र को देखकर बहुत प्रसन्न हुई और दोनों भुजाओं से पकड़कर बालक का आलिंगन किया ।।४।। अनेक प्रकार के अलंकार और नाना प्रकार के वस्त्र जगदम्बा ने बड़े प्रेम से अपने पुत्र के निमित्त दिये ।।५।। सब सिद्धियों सहित देवी ने उस बालक को सम्मानित किया और सब दुःख हरनेवाले हाथ से उसका स्पर्श किया ।।६।। इस प्रकार पूजन कर देवी ने अपने बालक का मुख चूमा और कहा– बेटा तुम्हें बड़ा दुःख हुआ, ऐसा कहकर देवी ने बहुत से वर दिये ।।७।। हे पुत्र! तुम धन्य और कृतकृत्य हो, तुम सबके पूज्य होगे, सब देवताओं से पूजित होकर तुम दुःख से वर्जित होगे ।।८।।

तुम्हारे मुख में जो यह सिन्दूर दिखता है, इस कारण सिन्दूर से मनुष्य तुम्हारी पूजा करेंगे ।।९।। पुष्प, चन्दन, सुन्दर गन्ध, मनोहर नैवेद्य और नीराजन के विधान से ।।१०।। ताम्बूल के दान और परिक्रमा से तथा नमस्कार के विधान से जो तुम्हारी पूजा करेगा ।।११।। उसे सब सिद्धियां प्राप्त होंगी, इसमें सन्देह नहीं और तुम्हारे पूजन से निःसन्देह सब विघ्न दूर हो जायेंगे ।।१२।। ब्रह्माजी बोले– ऐसा कहने पर तब देवी महेश्वरी ने अपने पुत्र को नाना प्रकार के अलंकारों से अलंकृत किया और फिर उत्कृष्टता से अर्चना की ।।१३।। हे नारदजी! उस समय देवता और गणों को गिरिजा की कृपा से शान्ति प्राप्त हुई ।।१४।। उसी क्षण में इन्द्रादि सब देवता शिवजी को स्तुति से प्रसन्न कर भक्ति से पार्वती के समीप गये ।।१५।। और सब देवताओं ने उस महेशानी के बालक को तीनों जगत् के सुख के निमित्त शिवजी की गोदी में बैठाया ।।१६।। शिवजी ने भी अपना करकमल बालक के सिर पर धरा और यह मेरा दूसरा पुत्र है, ऐसा सब देवताओं से कहा ।।१७।। और गणेशजी ने भी उठकर शिवजी को प्रणाम कर तथा पार्वती, मुझे और विष्णुजी को नमस्कार कर ।।१८।। तथा नारदजी आदि सब ऋषियों को प्रसन्न करके कहा, मेरा अपराध क्षमा कीजिये, मनुष्यों में मान ऐसा ही होता है ।।१९।। तब मैं, शंकरजी और विष्णुजी यह तीनों देवता एक साथ ही वर देते हुए प्रेम से बोले ।।२०।। हम तीनों देवता जिस प्रकार से त्रिजगत् में पूजनीय हैं, ऐसे ही यह गणनाथ भी सबके पूजनीय होंगे ।।२१।। हम और यह सब मनुष्यों के पूज्य होंगे और यह गणेश विशेषकर विघ्नहर्ता और सब कामनाओं तथा फल देनेवाले होंगे ।।२२।। मनुष्य पहले इनकी पूजा करेंगे, पश्चात् हमारी और जो हमारी सबकी पूजा करेगा, इनकी न करेगा ।।२३।। तो इनकी पूजा न करके दूसरों की पूजा करने पर, उस पूजा का कोई भी फल न होगा, इसमें सन्देह नहीं ।।२४।। ब्रह्माजी बोले– इस प्रकार से कहकर गणेशजी को अनेक प्रकार की वस्तुओं से पहले शिवजी ने पूजा, पीछे विष्णुजी ने पूजा ।।२५।। फिर मैंने और पार्वती ने भी उनकी पूजा की, पीछे सब देवताओं ने परम आदर से उनका पूजन किया ।।२६।। फिर ब्रह्मा, विष्णु, हर आदि सबने मिलकर पार्वती की प्रसन्नता के निमित्त गणेशजी को सर्वाध्यक्ष कहकर उच्चारण किया ।।२७।। फिर शिवजी ने बड़े प्रसन्न चित्त से लोकों को अनेक प्रकार के सुख देनेवाले अनेक वर दिये ।।२८।। शिवजी बोले– हे पार्वतीपुत्र! इसमें सन्देह नहीं कि, मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ और जब मैं प्रसन्न हो जाऊं, तब कोई अप्रसन्न या विरुद्ध नहीं हो सकता ।।२९।। जिस कारण कि, बालकरूप से भी तुम महापराक्रमी हुए, इस कारण तुम तेजस्वी शक्तिपुत्र सदा सुखी होगे ।।३०।। विघ्न हरने में तुम्हारा नाम सदा श्रेष्ठ होगा। तुम मेरे सब गणों के अध्यक्ष और पूजनीय होंगे ।।३१।। इस प्रकार शिवजी ने कहकर अनेक प्रकार की पूजा विधि बताकर बालक को उस समय अनेक प्रकार के आशीर्वाद

दिये ।।३२।। तब देवताओं ने गीत गाये और प्रसन्न होकर अनेक प्रकार के बाजे बजाये और अप्सरायें नृत्य करने लगीं ।।३३।। तब फिर भी प्रसन्न होकर कल्याणकारी महात्मा शिवजी ने उस बालक को वर दिया ।।३४।। हे गणेश्वर! तुम भादों के महीने की चौथ को उत्पन्न हुए हो और कृष्णपक्ष में चन्द्रोदय के समय तुम प्रकट हुए ।।३५।। इस प्रकार रात्रि के प्रथम प्रहर में गिरिजा के मन से तुम्हारा आविर्भाव हुआ है, इस कारण उस दिन तुम्हारा उत्तम व्रत होगा ।।३६।। उस दिन से लेकर प्रसन्नता से इसी तिथि को सब सिद्धियों के लिये प्राणियों को तुम्हारा सुन्दर व्रत करना चाहिये ।।३७।। जब फिर वर्ष के भीतर चौथ आवे, मेरी आज्ञा से वर्ष दिन तक यह व्रत करना चाहिये ।।३८।। जो संसार में अतुल सुख पाने की इच्छा करते हैं, वे चतुर्थी के दिन विधिपूर्वक तुम्हारी पूजाकरें ।।३९।। मार्गशीर्ष (अगहन) के महीने में रमा चतुर्थी करके यह व्रत ब्राह्मण को निवेदन कर दे ।।४०।। दूर्वा से पूजन करके उपवास करे, एक पहर रात बीत जाने पर स्नान करके पूजन करे ।।४१।। धान्य की, मूँगे की, श्वेत अर्क की वा मृत्तिका की गणेशजी की मूत्ति बनावे ।।४२।। और उसकी प्रतिष्ठा करे, यत्नपूर्वक उसकी पूजा करे, अनेक प्रकार की दिव्य गन्ध और चन्दन, फूल दे ।।४३।। दूर्वा तीन काण्डवाली मूल रहित एक विस्तल की हो, इस प्रकार की एक सौ एक दूर्वा दे ।।४४।। अथवा इक्कीस से ही प्रतिमा को पूजे, धूप, दीप अनेक प्रकार के नैवेद्य देकर गणेशजी का पूजन करे ।।४५।। ताम्बूल आदि अच्छे द्रव्य निवेदन करके स्तुति करे, इस प्रकार तुम्हारी पूजाकर बाल चन्द्रमा की पूजा करके अर्घ्य दे ।।४६।। पीछे ब्राह्मणों का पूजन करके मीठा भोजन करावे, पीछे आप भी मधुर भोजन करे, नमक न खाये ।।४७।। पीछे इस अपने नियम को विसर्जन करे और गणेशजी को स्मरण करे, तब यह व्रत सफल होता है ।।४८।। इस प्रकार जब व्रत करते मनुष्य को एक वर्ष बीत जाये, तब व्रत की पूर्ति के निमित्त उद्यापन करे ।।४९।। मेरी आज्ञा से बारह ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये और घड़ा स्थापन कर तुम्हारी मूर्ति की पूजा करनी चाहिये ।।५०।। अथवा वेद की विधि से भूमि पर अष्टदल कमल निर्माण करके वित्त की शठता को छोड़कर होम करना चाहिये ।।५१।। उस समय दो स्त्रियां और दो ब्रह्मचारी इनको मूर्ति के आगे पूजन करके जिमाना चाहिये ।।५२।। रात में जागरण करके सबेरे फिर पूजन करे, पीछे फिर आने के निमित्त गणेशजी का विसर्जन करे ।।५३।। बालकों से आशीर्वाद ग्रहण करावे, उनसे स्वस्तिवाचन करावे, फिर व्रतपूर्ति के निमित्त पुष्पाञ्जलि दे ।।५४।। फिर नमस्कार करके दूसरे कार्य करे, इस प्रकार से जो व्रत करते हैं, उनके सब मनोरथ पूर्ण होते हैं ।।५५।। जो नित्य श्रद्धा के सहित अपनी शक्ति से पूजन करते हैं, हे गणेश! जो सब काम और फल प्राप्ति के निमित्त तुम्हारा पूजन करते हैं ।।५६।। सिन्दूर, चन्दन, केतकी के फूल, चावल तथा अनेक सामग्रियों से तुम्हारा

पूजन करे।।५७।। इस प्रकार से जो भक्तिपूर्वक अनेक सामग्रियों से तुम्हारा पूजन करते हैं, उनके सब विघ्न नाश होकर निश्चय अनेक प्रकार की सिद्धियां होती है।।५८।। यह पूजन सब वर्णों को और विशेषकर स्त्रियों को यह व्रत करना चाहिये तथा उदय की इच्छावाले राजा को विशेषकर यह व्रत करना चाहिये।।५९।। इसे करने से जो-जो कामना हो, वह-वह सब प्राप्त होती है, इससे कामना वाले सदा आपकी पूजा करेंगे।।६०।। ब्रह्माजी बोले- जब इस प्रकार से महात्मा गणेशजी के निमित्त शिवजी ने ऐसा कहा, तब सब देवता और श्रेष्ठ ऋषियों ने कहा 'ऐसा ही होगा'।।६१।। हे मुने! इसी प्रकार से शिवजी के प्रिय सब गणों ने 'ऐसा ही होगा', यह कहकर परम विधान से गणेशजी का पूजन किया।।६२।। तब सब गणों ने गणेशजी को प्रणाम किया और आदर से अनेक वस्तुओं से उनकी विशेष पूजा की।।६३।। हे मुनीश्वर! उस समय जो प्रसन्नता पार्वती को प्राप्त हुई, वह मैं चार मुखों से किस प्रकार कह सकता हूँ।।६४।। देवताओं की दुन्दुभी बजने लगी, अप्सरागण नृत्य करने लगीं, गन्धर्वों में मुख्य गाने लगे और आकाश से फूलों की वर्षा हुई।।६५।। गणेशजी के प्रतिष्ठित होने में जगत् में स्वस्थता प्राप्त हुई, महामहोत्सव हुआ और सब दुःख क्षय हुए।।६६।। हे नारदजी! विशेषकर शिवा-शिव को बड़ी प्रसन्नता हुई और सबको सुखदायक महामंगल हुआ।।६७।। उस समय देवता और ऋषियों के गण जो आये थे, वह सब शिवजी के आज्ञा से अपने-अपने स्थानों पर गये।।६८।। पार्वती और गणेशजी की बारंबार प्रशंसा करते तथा शिवजी की बड़ाई करते हुए कि, किस प्रकार का युद्ध हुआ, यह कहते हुए गये।।६९।। जिस समय देवी पार्वती कोप हीन हो गई, तब शिवजी भी पूर्ववत् पार्वती के समीप प्राप्त होकर।।७०।। लोकों के हित की इच्छा से अनेक प्रकार के सुख करने लगे, स्वात्माराम होकर भी यह सदा भक्तों के कार्य में तत्पर रहते थे।।७१।। मैं और विष्णुजी भी शिवजी से पूंछकर शिवा-शिव को भक्ति से सेवन करके अपने स्थान में आये।।७२।। हे नारदजी! आप भी शिवा-शिव का यश वर्णन करते-करते उनसे पूंछकर अपने स्थान को गये।।७३।। हे नारदजी! जो आपने विघ्नेश्वर का चरित्र पूंछा था, वह मैंने प्रेम से शिवा-शिव के यश के सहित सम्पूर्ण वर्णन किया।।७४।। यह मंगलदायक आख्यान जो नियम से सुनते हैं, वह मंगलों से युक्त मंगल का स्थान होते हैं।।७५।। पुत्रहीन को पुत्र, धनहीन को धन, स्त्री की इच्छावालों को स्त्री और प्रजा की इच्छावालों को प्रजा की प्राप्ति होती है।।७६।। रोगी को आरोग्यता, दुर्भाग्य को सौभाग्य, नष्टपुत्रीवाली को पुत्र, नष्टधनवाले को धन और परदेश गये पतिवाली स्त्री का पति परदेश से आता है।।७७।। इसमें सन्देह नहीं, शोकवाले का शोक छूट जाता है, यह गणेशजी का आख्यान जिसके घर में विद्यमान होता है।।७८।। वह सदा सब मंगलों से युक्त होता है, इसमें सन्देह नहीं, यात्राकाल तथा पवित्र दिन में जो कोई

सावधान होकर इस कथा को सुनता है, वह श्रीगणेशजी के प्रसाद से अपने सब मनोरथों को प्राप्त होता है ।।७९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
चतुर्थ कुमारखण्डे गणेशगणाधिपपदवीवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ।। १८ ।।

*****

उन्नीसवाँ अध्याय

नारदजी बोले- हे तात! हमने गणेशजी का श्रेष्ठ जन्म चरित्र सुना, जो बड़ा दिव्य और पराक्रम से भूषित है ।।१।। हे सुरेश्वर! फिर क्या हुआ? सो आप भली प्रकार से कहिये, यह शिवा-शिव के यश की कथा महाआनन्द देनेवाली है ।।२।। ब्रह्माजी बोले- हे मुनिश्रेष्ठ! हे करुणावाले आपने अच्छी बात पूंछी, हे ऋषिसत्तम! कान लगाकर सुनिये, मैं कहता हूँ ।।३।। हे विप्रेन्द्र! शिवा और शिवजी उन अपने दोनों पुत्रों की लीला देखकर महाप्रसन्न होने लगे ।।४।। माता-पिता के लालन करने से उनका सुख दिन-दिन बढ़ने लगा और वे दोनों सदा महाप्रीति से खेलकूद करने लगे ।।५।। हे मुनीश्वर! उस समय वे दोनों पुत्र भी महाभक्ति से युक्त हो माता-पिता की सेवा करने लगे ।।६।। उन माता-पिता का षणमुख और गणेशजी में शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान दिन-दिन प्रेम बढ़ने लगा ।।७।। हे देवर्षे! एक समय शिवा-शिव प्रेमपूर्वक एकान्त में बैठे हुए विचार कर रहे थे ।।८।। शिवा-शिव बोले- अब यह हमारे दोनों पुत्र विवाह के योग्य हुए, इन दोनों पुत्रों का किस प्रकार से शुभविवाह किया जाय ।।९।। कार्तिकेय और गणेश दोनों ही अधिक प्रिय हैं, इस प्रकार चिन्ता करते लीला का आनन्द देखने लगे ।।१०।। अपने माता-पिता की यह इच्छा जानकर दोनों ही कुमारों ने इच्छा की, हे मुने! दोनों ने ही एक साथ विवाह की इच्छा की ।।११।। दोनों कहने लगे, मैं पहले व्याह करूंगा, इस प्रकार कहकर दोनों परस्पर विवाद करने लगे ।।१२।। वह जगत् के माता-पिता उन दोनों बालकों के वचन सुनकर लौकिकाचार के आश्रय होकर परम विस्मय को प्राप्त हुए ।।१३।। अब क्या करें? किस प्रकार दोनों का विवाह किया जाय? यह विचारकर उन दोनों ने एक अद्भुत युक्ति रची ।।१४।। तब एक समय माता-पिता दोनों अपने दोनों पुत्रों को बुलाकर इस प्रकार कहने लगे ।।१५।। शिवा-शिव बोले, हम ने तुम दोनों के सुख के निमित्त एक नियम किया है, तुम दोनों प्रेम से सुनो, हम उसे यथार्थ कहते हैं ।।१६।। तुम दोनों पुत्र समान भाव से हमें प्रिय हो, इसमें कोई विशेष नहीं, इस कारण तुम दोनों पुत्रों के निमित्त हम ने एक

प्रतिज्ञा की है ।।१७।। जो इस समय सम्पूर्ण पृथ्वी की परिक्रमा करके पहले चला आयेगा, उसी का शुभ लक्षणवाला विवाह पहले किया जायेगा ।।१८।। ब्रह्माजी बोले– उन दोनों माता–पिता के यह वचन सुनकर महाबली कार्तिकेय तत्काल ही पृथ्वी की परिक्रमा करने के लिये मन्दिर से चले ।।१९।। और बुद्धिमान् गणेशजी वहीं स्थित रहे और बारंबार सुबुद्धि से अपने चित्त में सोचने लगे ।।२०।। मैं क्या करूं, कहां जाऊं ? मैं तो जा ही नहीं सकता, मैं एक कोश मात्र भी नहीं जा सकता ।।२१।। फिर इस पृथ्वी की परिक्रमा करना तो बड़ी बात है, यह विचार कर गणेशजी ने जो किया सो सुनिये ।।२२।। यथायोग्य स्नान कर के अपने घर में आकर माता और पिता से उन्होंने कहा ।।२३।। मैं आप दोनों को सिंहासन पर प्राप्त कर के पूजा करना चाहता हूँ, माता–पिता आप दोनों मेरे समीप आकर मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये ।।२४।। ब्रह्माजी बोले– पार्वती परमेश्वर इस प्रकार से उन के वचन सुनकर गणेशजी की पूजा को ग्रहण करने आसन पर बैठे ।।२५।। गणेशजी ने उन दोनों का पूजन करके बारंबार परिक्रमा की, इस प्रकार से उन्होंने सात परिक्रमा की ।।२६।। और बुद्धिसागर गणेशजी हाथ जोड़कर प्रेम में विह्वल माता–पिता की बड़ी स्तुति करने लगे ।।२७।। गणेशजी बोले– हे माता–पिता! आप मेरे वचन सुनिये, शीघ्र ही आप मेरा सुन्दर विवाह कर दीजिये ।।२८।। इस प्रकार महात्मा गणेशजी के वचन सुनकर वे दोनों महाबुद्धिमान् गणेशजी से बोले ।।२९।। शिवा–शिव बोले, तुम भी कानन सहित पृथ्वी की परिक्रमा करो, कुमार गये हैं, तुम भी परिक्रमा करके शीघ्र आओ ।।३०।। ब्रह्माजी बोले– गणेशजी माता–पिता के इस प्रकार के वचन सुनकर कुछेक क्रोध से वचन बोले ।।३१।। गणेशजी बोले– हे माता–पिता! आप दोनों धर्म रूप महापण्डित हो, हे श्रेष्ठो! आप धर्म सहित मेरे वचन को सुनिये ।।३२।। मैंने तो सात बार इस पृथ्वी की परिक्रमा की है, फिर कैसे कहते हो परिक्रमा कर आओ ।।३३।। ब्रह्माजी बोले– गणेशजी के यह वचन सुनकर लौकिकी गति को आश्रय कर महालीला करनेवाले दोनों बोले ।।३४।। शिवा–शिव बोले, हे पुत्र! इस महान् पृथ्वी की तुमने कब परिक्रमा की ? यह तो सात द्वीपवाली समुद्र के अन्त तक महापर्वतों से संयुक्त है ।।३५।। ब्रह्माजी बोले– शिवा और शंकरजी के यह वचन सुनकर उनके महाबुद्धिमान् पुत्र गणेशजी इस प्रकार के वचन बोले ।।३६।। मैंने आप दोनों माता–पिता का पूजन किया है, मैंने तो अपनी बुद्धि से मानो समस्त पृथ्वी की परिक्रमा कर ली ।।३७।। यह वचन वेद, शास्त्र और धर्मसंचय में लिखा है, सो यह बात क्या सत्य है, वा असत्य, सो आप कहें ।।३८।। जो माता–पिता का पूजन करके उनकी परिक्रमा करता है, उसे निश्चय ही पृथ्वी की परिक्रमा का फल होता है ।।३९।। जो माता–पिता को घर में छोड़कर तीर्थ को जाता है, उसे उन्हें मारने का पाप लगता है (इस कारण पूंछ कर जाय) ।।४०।। पुत्र का यही बड़ा तीर्थ है, जो

माता-पिता के चरणकमल की सेवा करे, दूसरे तीर्थ तो दूर जाने से ही प्राप्त होते हैं।।४१।। यह तीर्थ सदा निकट, सुलभ और धर्म का साधन है, पुत्र की स्त्री को घर में यही शोभन तीर्थ है।।४२।। इस प्रकार वेद शास्त्र निरन्तर कहते हैं, सो यही आपको करना चाहिये, नहीं तो शास्त्र असत्य होगा।।४३।। ऐसा न करने से आपका यह रूप भी असत्य हो जायेगा, इसी प्रकार वेद भी असत्य हो जायेंगे, इसमें सन्देह नहीं।।४४।। अब शीघ्र ही मेरा शुभविवाह कर देना चाहिये अथवा वेद-शास्त्र की मर्यादा को निरर्थक कर दीजिये।।४५।। इन दोनों के बीच में जो श्रेष्ठ हो उसे भली प्रकार विचार कर धर्मरूप माता-पिता को यत्नपूर्वक कार्य करना चाहिये।।४६।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार से वह पार्वती के पुत्र प्रसन्न होकर महाज्ञानी, बुद्धिमानों में श्रेष्ठ, मौन हुए।।४७।। तब वे विश्व के माता-पिता पार्वती परमेश्वर गणेशजी के यह वचन सुनकर परम विस्मय को प्राप्त हुए।।४८।। तब शिवा और शिवजी पुत्र की विलक्षण बुद्धि देखकर पुत्र की प्रशंसा कर प्रेम से कहने लगे कि, पुत्र यथार्थ भाषी है।।४९।। शिवा-शिव बोले, हे पुत्र! तुम्हें महात्माओं जैसी निर्मल बुद्धि उत्पन्न हुई है, तुम ने जो वचन कहे हैं, वह वैसे ही हैं, इसमें अन्यथा नहीं है।।५०।। संकट पड़ने पर जिसकी बुद्धि विशेषरूप से बनी रहती है, उसका दुःख नष्ट हो जाता है, जैसे सूर्य के सामने अन्धकार नष्ट हो जाता है।।५१।। जिस को बुद्धि है उसीको ही बल है, निर्बुद्धि को बल कहां है, एक बुद्धिमान् खरगोश ने मदोन्मत्त सिंह को कूप में डालकर नष्ट कर दिया।।५२।। वेद, शास्त्र, पुराणों में जो बालकों का कृत्य वर्णन किया है, वह तुमने सब धर्म का पालन किया।।५३।। हे पुत्र! तुमने जो किया उसे कोई भी नहीं कर सकता, हम दोनों ने वह मान लिया, उसे कोई अन्यथा नहीं कह सकता।।५४।। ब्रह्मजी बोले- इस प्रकार वे दोनों बुद्धिसागर गणेशजी को आश्वस्त कर के उनका विवाह करने की इच्छा करने लगे।।५५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां चतुर्थ कुमारखण्डे एकोनविंशोऽध्यायः।। १९ ।।

*****

बीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी बोले- इसी समय विश्वरूप प्रजापति ने प्रसन्न होकर शिवा-शिव का उद्योग विचार कर सुख माना।।१।। विश्वरूप प्रजापति की दो कन्याएं थीं, वह सिद्धि-बुद्धि नाम से विख्यात, सर्वांग से सुन्दर थीं।।२।। प्रभु शंकरजी ने उन दोनों के साथ गणेशजी का विवाह महोत्सव कराया।।३।। सब देवता सन्तुष्ट होकर उस विवाह में आये, जैसे पहले शिवा-शिव के विवाह में आये थे।।४।। इस प्रकार से प्रेम से विश्वकर्मा ने यह विवाह कराया और ऋषि तथा देवताओं ने इसमें परम प्रसन्नता

मानी, गणेशजी को भी उस समय बड़ा सुख प्राप्त हुआ, हे मुने! वह वर्णन करने के लिये कौन समर्थ हो सकता है? ।।५-६।। कितने समय के उपरान्त गणेशजी की प्यारी स्त्रियों में दो सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुए ।।७।। सिद्धि नामक गणेशजी के स्त्री में क्षेम नामक पुत्र उत्पन्न हुआ और बुद्धि के परम सुन्दर लाभ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ।।८।। इस प्रकार जब गणेशजी अचिन्त्य सुख भोगने लगे, तब कार्तिकेय भी पृथ्वी की परिक्रमा करके आ गये ।।९।। इसी समय महात्मा नारदजी भी कुमार के घर न पहुंचकर बोले- हे कुमार! मैं यथार्थ कहता हूँ, छल वा मत्सर से यह नहीं कहता ।।१०।। तुम्हारे माता-पिता शिवा और शिवजी ने जो किया है, वैसा कोई दूसरा इस लोक में नहीं करेगा, यह मैं सत्य-सत्य कहता हूँ ।।११।। तुमको यत्न करके बहाने से पृथ्वी के कुक्रमण करने के लिये भेज दिया और इधर गणेशजी का परम शोभायमान विवाह कर दिया ।।१२।। गणेशजी का विवाह हो गया और उनके दो स्त्री हैं, वे दोनों विश्वरूप प्रजापति की मनोहर कन्याएं हैं ।।१३।। उन दोनों सुन्दर पत्नियों को दो पुत्र हुए हैं, सिद्धि के क्षेम और बुद्धि के लाभ नामक परम सुन्दर पुत्र हुआ है ।।१४।। इस प्रकार गणेशजी दोनों से दो पुत्र लाभ कर माता-पिता के मत से निरन्तर सुख भोगते हैं ।।१५।। इधर तुमने वन पर्वत सहित यह सारी पृथ्वी खून्द डाली, छल से जो तुमको आज्ञा हुई, उसका तुमको यह फल प्राप्त हुआ है ।।१६।। हे तात! इन माता-पिता के किये हुए फल का विचार करो, अपने स्वामी के लिये विशेष करके कोई क्या नहीं कर सकता? ।।१७।। तुम्हारे माता-पिता ने मेरी समझ में अच्छा नहीं किया, तुमको भी इस पर विचार करना चाहिये, मेरी समझ में तो यह अच्छा नहीं किया ।।१८।। यदि माता विष दे, या पिता बेंच दे और राजा ही सर्वस्व दे दे, तो फिर किससे कहें ।।१९।। जिस कारण कि, यह अनर्थकारी कर्म किया है, हे तात! शान्ति की इच्छावाला बुद्धिमान् उनका मुख कभी न देखे ।।२०।। इस प्रकार से श्रुति और शास्त्र में नीति कही है, वह तुम समझ गये, अब जैसा तुम्हारे मन में आवे, वैसा करो ।।२१।। ब्रह्माजी बोले- हे नारदजी! आप ऐसा कहकर महेश्वरजी के मन की गति को समझा कर मौन हुए ।।२२।। इस ओर कुमार भी अपने माता-पिता को प्रणाम करके कोपाग्नि से प्रज्ज्वलित होकर शिवा-शिव के निषेध करने पर क्रौंच पर्वत पर चले गये ।।२३।। हम निषेध करते हैं, तुम क्यों जाते हो? ऐसा कहकर निषेध करने पर भी कुमार चलने ही लगे और आगे की बात के सिवाय कुछ न कहा ।।२४।। हे तात! अब मैं क्षणमात्र भी यहां नहीं रह सकता, जो मुझे छोड़कर इस प्रकार मुझसे कपट प्रीति की गई है ।।२५।। हे नारदजी! इस प्रकार से कहकर दर्शन से ही सब लोकों के पाप हरनेवाले कुमार वहां से क्रौंच पर्वत पर चले गये और अब तक उसी पर्वत पर विराजते हैं ।।२६।। हे नारदजी! उसी दिन से लेकर शिवपुत्र कार्तिकेय का कुमारत्व प्रतिष्ठित हुआ ।।२७।। उनका नाम लोक में सुखदायक और प्रसिद्ध है, वह

सब पाप हरनेवाला, पुण्यस्वरूप, परम ब्रह्मचर्य का देनेवाला है ।।२८।। हे मुनीश्वर! कार्तिक में सब देवता, ऋषि, मुनि इस तीर्थ में कुमार के दर्शन के लिये जाते हैं ।।२९।। जो कार्तिक में कृत्तिका नक्षत्र के योग में कार्तिकेय का दर्शन करते हैं, उनके सब पाप दूर होकर इच्छित फल की प्राप्ति होती है ।।३०।। स्कन्द के विरह में पार्वती को भी दुःख प्राप्त हुआ और दीन होकर शिवजी से बोली, हे पति! मेरे साथ वहां पर चलिये ।।३१।। उनके सुख के लिये शिवजी अपने अंश से क्रौंच पर्वत पर गये, वहां उनका सुखदायक ज्योतिर्लिंग मल्लिकार्जुन नामवाला हुआ ।।३२।। अब तक वहां पार्वती के सहित शिवजी दिखाई देते हैं, वह सत्पुरुषों की तथा अपने भक्तों की सब कामना पूर्ण करनेवाले हैं ।।३३।। तब कुमार वहां शिव-पार्वती को देखकर विरक्त होकर वहां से अन्यत्र जाने की इच्छा करने लगे ।।३४।। तब देवता, मुनियों की बड़ी प्रार्थना से उस स्थान से तीन योजन (बारह कोस) जाकर कुमार रहे ।।३५।। तथापि पुत्र के स्नेह से आतुर होकर शिवा-शिव पर्व-पर्व में उस अपने पुत्र के अवलोकन के निमित्त जाते हैं ।।३६।। अमावस्या के दिन स्वयं शिवजी वहां जाते हैं, पूर्णमासी के दिन निश्चय पार्वती जाती हैं ।।३७।। हे मुनीश्वर! यह जो आपने कार्तिकेय और गणेशजी का वृत्तान्त पूंछा, सो मैंने आपसे सब वर्णन किया ।।३८।। इस कथा को सुनकर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है और अपने इच्छित सम्पूर्ण श्रेष्ठ कर्मों को प्राप्त होता है ।।३९।। जो इस कथा को पढ़ते-पढ़ाते, सुनते-सुनाते हैं, इसमें सन्देह नहीं, वह सब कामनाओं को प्राप्त होते हैं ।।४०।। ब्राह्मण ब्रह्मतेज से युक्त और क्षत्रिय विजयी होता है, वैश्य धन समृद्धिवाला और शूद्र सत्समता को प्राप्त होता है ।।४१।। रोगी राग से, भयभीत भय से छूटता है, इसे सुनने से मनुष्य भूत प्रेत की बाधा से छूट जाता है ।।४२।। यह आख्यान पाप रहित मनुष्यों को यश और सुख का बढ़ानेवाला है, बड़ी उमर स्वर्ग में बड़े सुख तथा पुत्र पौत्रादि का करनेवाला है ।।४३।। यह मोक्ष और शिवज्ञान का देनेवाला, शिवा-शिव की प्रीति करनेवाला तथा शिवभक्ति का बढ़ानेवाला है ।।४४।। भक्तों को और मुमक्षुओं को कामना रहित होकर सदा सुनना चाहिये, यह शिवजी का अद्वैत ज्ञान देनेवाला सदा कल्याण और शिवमय है ।।४५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहिताऽन्तर्गत चतुर्थ कुमारखण्डे पं. ज्वालाप्रसादमिश्र कृत भाषायां गणेशविवाहवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ।। २० ।।

*****

ॐ नमः शिवाय

****

इति श्रीशिवमहापुराण भाषायां
द्वितीय रुद्रसंहितान्तर्गतचतुर्थ कुमार खण्डः समाप्तः ।



श्री:

द्वितीयरुद्रसंहितान्तर्गत–

पञ्चम युद्धखण्ड

*****

पहला अध्याय

नारदजी बोले– हमने आनन्द प्रदान करनेवाला उत्तम चरित्र श्रवण किया तथा गृहस्थ शिवजी, गणेशजी और स्कन्दजी की सत्यकथा सुनी।।१।। अब आप कृपा करके शिवजी के उन श्रेष्ठ चरित्रों को कहिये, जिनमें शिवजी ने दुष्ट दानवों का वध किया है।।२।। भगवान् शंकरजी ने दैत्यों के नगर किस प्रकार से जलाये और उन महाबली ने एक ही बाण से एक साथ कैसे तीनों पुरों को जलाया ?।।३।। माया से विहार करनेवाले प्रभु ने जो अनेक चरित्र किये हैं, वह शिवजी का सम्पूर्ण चरित्र आप वर्णन कीजिये।।४।। ब्रह्माजी बोले– एक समय ऋषिश्रेष्ठ व्यासजी ने सनत्कुमारजी से यही बात पूंछी थी, उस समय जो सनत्कुमारजी ने कहा, वहीं मैं आपसे कहता हूँ।।५।। सनत्कुमारजी बोले– हे महाविद्वान् व्यासजी! आप शंकरजी के चरित्र सुनिये, जिस प्रकार एक ही बाण से उन्होंने त्रिपुर को भस्म कर दिया।।६।। जब शिवपुत्र स्कन्द ने तारकासुर दैत्य को मार डाला, तब हे मुनीश्वर! उसके तीन दैत्यपुत्र पृथ्वी पर तप करने लगे।।७।। उनमें तारकाक्ष ज्येष्ठ, विद्युन्माली मध्यम और कमलाक्ष सब से छोटा था, वह सब तुल्यबलवाले थे।।८।। जितेन्द्रिय, बल में तत्पर, संयमी और सत्यवादी थे, वह सब दृढ़चित्त महावीर देवताओं के द्रोही थे।।९।। उन्होंने मेरु की गुफा में जाकर तप करना आरम्भ किया, तीनों ने सम्पूर्ण मनोहर भोगों को त्याग दिया।।१०।। वे तारक के पुत्र वसन्त ऋतु में सब कामना तथा गाने बजाने के उत्सवों को त्यागकर महातपस्या करने लगे।।११।। गरमी में सूर्य की कान्ति को जीतकर, चारों दिशाओं में अग्नि जलाकर, उन अग्नि के बीच में आदर से बैठकर अग्नि में आहुति देने लगे।।१२।। महा प्रताप में पतित होकर सब मूर्छित हो जाते थे और वर्षा में भी त्रास रहित होकर सिर पर वर्षा को सहन करने लगे।।१३।। शरतकाल में भी

भोजन त्याग दिया, जो कि मनोहर स्निग्ध (चिकना) स्थित हृदय को हितकारी, जो उत्तम मूल-फल है ।।१४-१५।। इस प्रकार वे महात्मा निराधार हो चारों दिशाओं में स्थित हुए, हेमन्त ऋतु में पर्वत पर आश्रय करके परम धीरता से स्थित होकर ।।१६।। तुषारों को अपनी देह पर धारण करते हुए, जल से गीले कपड़े पहनकर अपनी देह को सुखाने लगे और शिशिर में जल के मध्य स्थित होकर तप करने लगे ।।१७।। इस प्रकार से वे सब व्याकुलता रहित होकर तप को बढ़ाने लगे, इस प्रकार ब्रह्माजी के उद्देश्य से वे तीनों तप करने लगे ।।१८।। वे उग्रतप करने के लिये कठिन नियमों में तत्पर हुए और वे दानवों में उत्तम अपनी देह को तपस्या करके सुखाने लगे ।।१९।। फिर सौ वर्ष तक एक पांव के सहारे से स्थित होकर, भूमि पर स्थित होकर, वे बलवान् तप करने लगे ।।२०।। सहस्र वर्ष तक वे केवल वायु भक्षण करके ही रह गये, वे दुरात्मा इस प्रकार तप करते--करते परंताप को प्राप्त हुए ।।२१।। एक सहस्र वर्ष तक पृथ्वी पर मस्तक टेककर स्थित हुए, सौ वर्ष तक भुजाओं को ऊपर उठाकर स्थित रह गये ।।२२।। इस प्रकार वे दुराग्रह में तत्पर होकर परम दुःख को प्राप्त हुए, इस प्रकार से दिन-रात वे दैत्य आलस्य छोड़कर तप में स्थित हुए ।।२३।। हे मुने! इस प्रकार तपस्या करते हुए उनका बहुत समय बीत गया और मेरी समझ में ब्रह्मात्मा वे तारक के पुत्र जब पूर्ण तपस्वी हुए, तब अपना धर्म जानकर सुरासुर के गुरु महायशस्वी ब्रह्माजी सन्तुष्ट मन से उनको वर देने आये ।।२५।। तब मुनि और देवताओं के साथ आकर सबके पितामह ब्रह्माजी सांत्वनापूर्वक उन सब से यह वचन बोले ।।२६।। ब्रह्माजी बोले- हे महादैत्यो! मैं आपसे प्रसन्न हूँ, मैं आपको सब प्रकार से वर दूंगा, आप अपनी अभिलाषा का वर मांगो ।।२७।। हे दैत्यो! आपने किस निमित्त तपस्या की है, सो कहिये, मैं सबके तपस्या का फल देनेवाला, सबदा सब का कर्ता हूँ ।।२८।। सनत्कुमारजी बोले- वे असुर ब्रह्माजी के इस प्रकार के वचन सुनकर शनैः-शनैः विचार कर ब्रह्माजी को प्रणाम कर बोले ।।२९।। दैत्य बोले- हे देवेश! यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हो, यदि आप हम को वर देने के लिये उद्यत हुए हैं, तो प्राणियों से हमें अवध्य कर दीजिये ।।३०।। हे जगन्नाथ! स्थिर करके हमारे जितने विघ्न हैं, उन सब को दूर करें, जरा को आदि लेकर रोग और मृत्यु किसी प्रकार भी हमें प्राप्त न हो ।।३१।। हम सब अजर-अमर रहें, यही हमारा मत है और हम में ऐसी सामर्थ्य हो, कि हम चाहें तो त्रिलोकी का वध कर सकें ।।३२।। बहुतसी लक्ष्मी, बड़े-बड़े नगर और अनेक भोगस्थान तथा ऐश्वर्यों से क्या काम है?।।३३।। जो यह प्राणि थोड़े ही दिनों में मृत्यु का ग्रास हो जाये, उसका सब कुछ व्यर्थ हो जाता है, यह हम ने निश्चय जान लिया है।।३४।। सनत्कुमारजी बोले- इस प्रकार उन दैत्य तपस्वियों के वचन सुनकर ब्रह्माजी अपने प्रभु गिरिश, महादेवजी को स्मरण कर कहने लगे।।३५।। ब्रह्माजी बोले-

हे असुरो! सब को अमरत्व नहीं हो सकता, आप इस काम से निवृत्त होकर जैसा आपको रुचे वह अन्य वर मांग लो ।।३६।। हे असुरो! कोई भी प्राणी जो प्रकट हुआ हो वह मृत्यु को प्राप्त होगा, लोक में कोई भी अजर–अमर न होगा ।।३७।। काल के काल हरि और भगवान् शंकरजी के सिवाय लोक में कोई भी अमर नहीं है, यह दोनों ही धर्म और अधर्म से परे हैं तथा अव्यक्त और व्यक्तरूप हैं ।।३८।। यदि तप जगत् को पीड़ा देने के लिये किया जाये, तो उसकी सफलता गई जानों, इस कारण श्रेष्ठ तप का अनुष्ठान करो ।।३९।। सो आप स्वयं बुद्धि से विचार करके जो सुर–असुरों को भी करने की सामर्थ्य नहीं, दुर्लभ या दुःसाध्य मृत्यु को छोड़कर वर मांगो ।।४०।। आप सत्त्वगुण के आश्रय होकर मरण में हेतु का कोई वर मांगो, जिससे आपको मृत्यु न आवे, उस हेतु को पृथक्–पृथक् रक्षा करे ।।४१।। सनत्कुमारजी बोले– विधाता के यह वचन सुनकर एक मुहूर्त को ध्यान में स्थित हुए और थोड़ी देर विचार कर समस्त लोकों के पितामह से बोले ।।४२।। दैत्य बोले– हे भगवन्! हमारे पास कोई ऐसा स्थान नहीं है, जिसमें पराक्रमवाले शत्रु प्रवेश न कर सकें और हम वहां सुख से निवास कर सकें ।।४३।। आप हमारे लिये तीन अद्भुत पुर निर्माण कर दीजिये, जिनमें सब सम्पत्ति स्थित हो, धन–धान्य भरे हों तथा देवता जिनको घर्षण न कर सकें ।।४४।। हे लोकेश! हे जगद्गुरो! हम आपकी कृपा से इन तीनों पुरों में स्थित होकर इस समस्त पृथ्वी पर विचरण करेंगे ।।४५।। तारकाक्ष ने कहा– मेरी यह इच्छा है, कि देवताओं से भी अभेद्य हो, ऐसा मेरा सुवर्ण का पुर विश्वकर्मा निर्माण कर दे ।।४६।। कमलाक्ष ने कहा– मेरा चान्दी का पुर ऐसा ही पुर हो और विद्युन्माली ने प्रसन्न होकर कहा– मेरा लोहे का पुर निर्माण करा दीजिये ।।४७।। हे प्रभो! जब कभी यह तीनों पुर मध्याह्न समय में एक स्थान पर स्थित हों, मध्याह्न समय अभिजित् मुहूर्त पर जब कि चन्द्रमा पुष्य नक्षत्र में स्थित हो ।।४८।। और आकाश के ऊपर नीले–नीले पुष्करावर्त्त नामक मेघ छाये हों ।।४९।। सहस्र–सहस्र वर्षों के उपरान्त जब हम परस्पर मिले और तीनों पुर यदि उस समय एकीभाव को प्राप्त हों ।।५०।। सम्पूर्ण देवमय देव भगवान् कुहेला से असम्भव स्थल में स्थित होकर, जिसमें युद्ध की सब सामग्री हों ।।५१।। असम्भावनावाले एक ही समय हमारे नगरों को नष्ट कर दे, तो नष्ट हो, नहीं तो नहीं, हां! शिवजी किसी से बैर नहीं करते हैं, वह नित्य ही हमारे वन्दनीय, पूजनीय हैं, वे हमें कैसे मार सकते हैं? इस प्रकार मन में धारण करके देखते हैं कि, पृथ्वी पर वैसा देव दुर्लभ है ।।५३।। सनत्कुमारजी बोले– लोकपितामह ब्रह्माजी उनके यह वचन सुनकर शिवजी को स्मरण करते हुए बोले– अच्छा, ऐसा ही होगा, शिवजी के हाथ ही आपकी मृत्यु होगी ।।५४।। और मय को ब्रह्माजी ने आज्ञा दी कि, तुम तीन पुर बनाओ, एक सोने का, एक चान्दी का और एक लोहे का ।।५५।।

ब्रह्माजी इस प्रकार मय को आज्ञा देकर उन तारकपुत्रों के देखते-देखते अपने धाम द्युलोक को चले गये ।।५६।। तब मय ने बड़े परिश्रम से तीनों पुरों को निर्माण किया, तारकाक्ष को सुवर्ण का, कमलाक्ष को चान्दी का ।।५७।। और विद्युन्माली को लोहे का पुर दिया, इस प्रकार तीन उत्तम दुर्ग निर्माण किये ।।५८।। उनमें एक स्वर्ग में, एक आकाश में और एक पृथ्वी पर विचरता था, वह तीनों पुर उन असुरों को देकर स्वयं मय भी उनके हित की इच्छा से उनमें प्रवेश कर गया ।।५९।। इस प्रकार वे तारक के तीनों पुत्र उन तीनों पुरों को प्राप्त होकर महाबल पराक्रम से महा भोगों को भोगने लगे ।।६०।। वह पुर कल्पवृक्षों से व्याप्त, गजवाजियों से भरे-पुरे, अनेक महलों से संगठित, मणियों के समूहवाले झरोखों से व्याप्त थे ।।६१।। सूर्यमण्डल के समान अनेक विमान उनमें विद्यमान थे और चन्द्रमा के समान पद्मराग मणियों से शोभायमान थे ।।६२।। बड़े-बड़े महल दिव्य छज्जे कैलास पर्वत के शिखर के समान ऊँचे, गन्धर्व, सिद्ध, चारण और दिव्य स्त्रियां जिसमें निवास करती थीं ।।६३।। प्रत्येक घर में शिवजी के मन्दिर थे, प्रत्येक घर में अग्निहोत्र था, शास्त्र जाननेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मण शिवभक्तों से वह पुर व्याप्त थे ।।६४।। बावड़ी, कुए, तालाब, अल्प सरोवरों से शोभायमान उद्यान और स्वर्ग से आये हुए मानो वन के वृक्षों से शोभायमान थे ।।६५।। नदियां, नद, मुख्य-मुख्य सरितायें जिनमें सदा कमल खिलते, सब समय में फलनेवाले अनेक वृक्षों से व्याप्त और मनोहर थे ।।६६।। मतवाले हाथी और घोड़ों के यूथों से शोभायमान अनेक प्रकार के रथ और पालकियों से अलंकृत ।।६७।। समयादि के क्रीड़ास्थान पृथक्-पृथक् बने हुए तथा वेद के अध्ययन की शालायें पृथक्-पृथक् बनी हुई थीं ।।६८।। जिनको पापी मनुष्य मन, वचन, कर्मों से अवलोकन नहीं कर सकते, अच्छे आचरण करनेवाले महात्मा पुण्यात्मा जहां जा सकते हैं ।।६९।। जिसके सब स्थल पतिव्रता स्त्रियों से पवित्र हैं, जो कुधर्म से विमुख होकर पति का ही दर्शन करती है ।।७०।। उनमें महा भाग्यवाले बड़े शूर दैत्य अपनी स्त्री, पुत्र और ब्राह्मणों के सहित निवास करते थे तथा श्रौतस्मार्त के तत्त्व जाननेवाले अपने धर्म में निरत निवास करते थे ।।७१।। जिनकी चौड़ी दृढ़ छाती, वृषभ जैसे ऊँचे कन्धे, सामयुद्ध के उपायों में कुशल ऐसे शान्त होकर निवास करते तथा समय पर कोप करते, इसी प्रकार कुबड़े और बौनों से व्याप्त ।।७२।। नीलकमल के समान नीले और घुँघराले बालोंवाले यह सब युद्ध की लालसावाले मय ने उसमें रखे ।।७३।। चारों ओर से युद्ध में प्रीतिवाले, ब्रह्मा और शिवजी के पूजन से विशुद्ध वीर्यवाले, सूर्य, मरुत और इन्द्र के समान पराक्रमी, देवताओं को मथन करने में दृढ़ पराक्रमी दैत्यों से सेवित थे ।।७४।। वेद, शास्त्र, पुराणादि में जो धर्म कथन किये हैं, जो धर्म सदा शिवजी के प्रिय हैं, वे सब धर्म उनमें विद्यमान थे ।।७५।। इस प्रकार से वे सब तारकपुत्र शिवजी के धर्मवाले मय के

आश्रित होकर वहां निवास करने लगे ।।७६।। वे तीनों नगर सम्पूर्ण त्रिलोकी को नष्ट करते हुए शिवमार्ग में निरत होकर महद्राज्य करने लगे ।।७७।। इस प्रकार उन पुण्यकर्म करनेवालों को बहुत समय बीत गया, हे मुने! वे वहां सुख और प्रीति से राज्य करने लगे ।।७८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

पश्चम युद्धखण्ड़े प्रथमोऽध्यायः ।। १ ।।

*****

दूसरा अध्याय

व्यासजी बोले- हे ब्रह्मपुत्र! हे महाविद्वान्! हे बोलनेवालों में श्रेष्ठ! आप हमसे कहिये, तब क्या हुआ और देवगण किस प्रकार से सुखी हुए?।।१।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार महा बुद्धिमान् व्यासजी के वचन सुनकर शिवजी के चरणकमल को स्मरण करके सनत्कुमारजी कहने लगे ।।२।। सनत्कुमारजी बोले- तब उसकी प्रभा से दग्ध इन्द्रादिक देवता हीनबल होने लगे, सब परस्पर दुःखी होकर ब्रह्माजी की शरण में गये ।।३।। प्रीति से ब्रह्माजी को प्रणाम करके अवसर देखकर अपना दुःख निवेदन करने लगे ।।४।। देवता बोले- हे विधाताजी! त्रिपुरों के अधिपति मय ने तथा उन तारक के पुत्रों ने सब देवताओं को तापित कर दिया है ।।५।। हे विधाता! इस कारण हम दुःखी होकर आपकी शरण में आये हैं, आप उसके वध का उपाय करें, जिससे हम सब सुखी हों ।।६।। सनत्कुमारजी बोले- जब देवताओं ने ऐसे वचन कहे, तब हँसकर ब्रह्माजी मयदानव से ड़रे हुए सब देवताओं से बोले ।।७।। ब्रह्माजी बोले- हे देवताओ! आप उन दानवों से न डरो, मैं उनके वध का उपाय कहता हूँ, शिवजी उनका संहार करेंगे ।।८।। वह दैत्य मुझ से वृद्धि को प्राप्त हुए हैं, इस कारण मुझसे वध के योग्य नहीं हैं और उस समय त्रिपुर नगर में प्रतिदिन पुण्य की वृद्धि होती है ।।९।। इन्द्रादि के सहित आप समस्त देवता शिवजी की प्रार्थना करो, यदि वे सर्वाधीश प्रसन्न हो जायेंगे, तो वे आपका कार्य करेंगे ।।१०।। सनत्कुमारजी बोले- इस प्रकार से ब्रह्माजी के वचन सुनकर वे सब देवता दुःखी होकर शिवजी के समीप गये ।।११।। वे सब भक्ति से देवेश को प्रणाम करके, हाथ जोड़कर स्थित हुए और कन्धे झुकाकर लोक के कल्याण करनेवाले शंकरजी की प्रार्थना करने लगे ।।१२।। देवता बोले- हिरण्यगर्भ सब सृष्टि के विधान करनेवाले देव को प्रणाम है, स्थिति करनेवाले समर्थ सर्वव्यापक के निमित्त नमस्कार है ।।१३।। आप प्राणियों के संहारकर्ता भूत स्वरूप हो,

आपको प्रणाम है, निर्गुण अमित तेजवाले शिवजी के निमित्त नमस्कार है ।।१४।। अवस्था से रहित निर्विकार कान्तिमान महाभूतों के आत्मा लिंग (चिह्न) रहित निर्लिप्त महात्मा आपको प्रणाम है ।।१५।। सब भूतों के अधिपति, महाभार को सहनेवाले, तृष्णा को हरनेवाले, बैर रहित आकृतिवाले, अमित तेजस्वी को प्रणाम है ।।१६।। महादैत्यों के बन नाश करनेवाले के दाव की अग्निरूप आपको प्रणाम है, दैत्यरूपी वृक्षों को कुठाररूप शूलपाणि आपको प्रणाम है ।।१७।। हे परमेश्वर! महादैत्यों का नाश करनेवाले आपको प्रणाम है, हे सब अस्त्रों के धारक! अम्बिकापति, आपको बारंबार प्रणाम है ।।१८।। हे पार्वतीनाथ! परमात्मन् महेश्वरजी आपको प्रणाम है, नीलकण्ठ रुद्ररूपी, आपको प्रणाम है ।।१९।। वेदान्त से जानने योग्य मार्ग से भी परे, आपको प्रणाम है, गुणस्वरूप, गुणी, गुणवर्जित, आपको प्रणाम है ।।२०।। त्रिलोकी को आनन्द देनेवाले महादेव रूप आपको नमस्कार है; प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, वासुदेवरूप, आपको नमस्कार है ।।२१।। संकर्षण देव, कंस के नाशक, चाणूर का मर्दन करनेवाले, दामोदररूप तथा विष के नाशक, आपको प्रणाम है ।।२२।। इन्द्रियों के अधिपति विभो, सुखदायक शंकरजी, आपको प्रणाम है; अधोक्षज गज की पुकार सुननेवाले, कामशत्रु, विषनाशक, आपको प्रणाम है ।।२३।। नारायणदेव, नारायण, परायण, नारायणस्वरूप, नारायण के शरीर से प्रकट वा अपने शरीर से नारायण को प्रकट करनेवाले ।।२४।। सर्वरूप, महानरक को हरनेवाले, पापहारी, वृषवाहन, आपको प्रणाम है ।।२५।। क्षण आदि कालरूप, अपने भक्तों को बल देनेवाले, अनेक रूप और रूपवाले, दैत्यों के चक्र को मर्दन करनेवाले ।।२६।। ब्राह्मणों के देवता, गो-ब्राह्मणों के हितकारी, सहस्रमूर्ति और सहस्रों अवयवोंवाले, आपको नमस्कार है ।।२७।। धर्मरूप, सत्त्वरूप, सत्त्व के आत्मा दुःख हारी, आपको नमस्कार है, वेद से ही जानने योग्य, वेद्यस्वरूप, वेद के प्रिय, आपको नमस्कार है ।।२७।। वेदस्वरूप, वेदमुख, सदाचार के मार्ग पर जानेवाले, तथा सदाचार के मार्ग से ही प्राप्त होने योग्य, आपको प्रणाम है ।।२९।। विष्टर की बात सुननेवाले, सत्यमय, सत्यप्रिय, सत्य और सत्य से ही प्राप्त होनेवाले, आपको प्रणाम है ।।३०।। आप माया के अधीश्वर, सामगान में परायण ब्रह्म और ब्रह्म से ही प्रकट हो ।।३१।। हे ईश! आप तपरूप, तप के फल देनेवाले, स्तुति के योग्य, सब के स्तुति को प्राप्त, स्तुति से प्रसन्नचित्त होनेवाले ।।३२।। श्रुति के आचार से प्रसन्न होनेवाले, स्तुति के आचार से प्रसन्न होनेवाले, चार प्रकार के स्वरूपवाले, जल-स्थल से प्रकट होनेवाले, आपको प्रणाम है ।।३३।। हे नाथ! यह सब देवता आपकी श्रेष्ठ विभूति हैं, आप देवताओं में इन्द्र, ग्रहों में सूर्य ।।३४।। लोकों में सत्यलोक, नदियों में गंगा, वर्णों में श्वेतवर्ण और सरोवरों में मानसरोवर हो ।।३५।। पर्वतों में हिमालय, गौओं में कामधेनु, समुद्रों में क्षीरसागर तथा धातुओं में सुवर्ण हो ।।३६।।

हे शंकरजी! आप वर्णों में ब्राह्मण और मनुष्यों में राजा हो, मुक्तिक्षेत्रों में काशी और तीर्थों में प्रयाग हो।।३७।। पाषाणों में आप स्फटिक मणि हो, हे महेश्वर! सब फूलों में आप कमल और पर्वतों में हिमालय हो।।३८।। वाणी के व्यवहारों में आप ही और कवियों में भार्गव, पक्षियों में शरभ और हिंसको में सिंह हो।।३९।। हे शंकर! शिलाओं में आप शालिग्राम शिला हो और सब के पूज्य रूप में आप नर्मदालिंग रूप हो।।४०।। पशुओं में वृषभरूप परमेश्वर नन्दीश्वर हो, वेदों में उपनिषद्रूप और यज्ञ करनेवालों में चन्द्ररूप हो।।४१।। प्रतापियों में आप पावक, शैवों में अच्युत (विष्णु), पुराणों में आप भारत और अक्षरों में मकार हो।।४२।। बीजरूपों में आप ओंकार और दारुण वस्तुओं में आप विष हो, व्यापक वस्तुओं में आकाश और सब आत्माओं के परमात्मा हो।।४३।। इन्द्रियों में आप मन, दानों में अभय, पवित्र करनेवालों में जल और जीवन देनेवालों में आप अमृत हो।।४४।। लाभों में पुत्ररूप लाभ, वेगवानों में वायु और सब नित्यकर्मों में आप सन्ध्योपासना हो।।४५।। यज्ञों में आप अश्वमेध यज्ञ और युगों में सत युग, सब धिष्णों (नक्षत्रों) में आप पुष्य हो और तिथियों में अमावस्या हो।।४६।। सब ऋतुओं में आप वसन्त ऋतु, सब पर्वों में संक्रान्ति हो, तृणों में कुश और स्थूल वृक्षों में आप वट हो।।४७।। योगों में व्यतीपात, लताओं में सोमवल्ली और सुहृदों में कलत्ररूप हो।।४८।। हे महेश्वर! पवित्र साधनों में आप प्राणायाम हो, सब ज्योतिर्लिंगों में आप विश्वनाथ हो।।४९।। सब बन्धुओं में आप धर्मरूप हो, आश्रमों में आप संन्यास आश्रम हो, सब वर्गों में आप मोक्ष और रुद्रों में आप नीललोहित हो।।५०।। आदित्यों में वासुदेव, वानरों में हनुमान्, यज्ञों में जपयज्ञ और शस्त्रधारियों में आप राम हो।।५१।। गन्धर्वों में चित्ररथ, वसुओं में पावक, महीनों में अधिक मास और व्रतों में चतुर्दशी हो।।५२।। गजेन्द्रों में ऐरावत, सिद्धों में कपिल, नागों में अनन्त और पितरों में आप अर्यमा हो।।५३।। कलन करनेवालों में काल, दैत्यों में बलि आप हो, बहुत कहने से क्या है? आप इस सम्पूर्ण जगत् को आक्रमण करके।।५४।। एकांश से बाहर–भीतर स्थित हो रहे हो।।५५।। इस प्रकार से सर्व देवता महादेव वृषभध्वजजी की स्तुति करके नाना प्रकार के स्तोत्र पाठ से शूलधारी परमेश्वर को प्रसन्न करने लगे।।५६।। अपने स्वार्थ में वे चतुर देवता दीन होकर अपने स्वार्थ को कहने के लिये इन्द्र को आदि लेकर सब देवता सिर झुकाकर हाथ जोड़कर बोले।।५७।। देवता बोले– हे महादेव! तारक के पुत्रों ने हम इन्द्रादिक सब देवताओं को पराजित कर दिया है।।५८।। उसने सब मुनिश्रेष्ठ और त्रिलोकी अपने वश में करके सब सिद्धों को विध्वस्त कर दिया है और सम्पूर्ण जगत् उत्साहित कर दिया है।।५९।। वह दारुण सब यज्ञ के भागों को स्वयं ही ग्रहण करता है, ऋषियों के निवारण करने से भी उन्होंने अधर्म में प्रवृत्ति की है।।६०।। हे शंकर! वह

तारक के पुत्र सब ही प्राणियों से अवध्य हैं, दूसरे सब उन्हीं की इच्छा से कर्म करते हैं ।।६१।। जब तक त्रिपुरवासियों से यह सम्पूर्ण जगत् विध्वंस नहीं होता है, जब तक कोई नीति का विधान किया जाय, जिससे जगत् की रक्षा हो ।।६२।। सनत्कुमारजी बोले- इस प्रकार से उन इन्द्रादि देवताओं के वचन सुनकर शिवजी उन भाषण करनेवालों से कहने लगे ।।६३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
पञ्चम युद्धखण्डे देवस्तुतिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ।। २ ।।

*****

तीसरा अध्याय

शिवजी बोले- यह त्रिपुर अध्यक्ष इस समय पुण्यात्मा है, जहां पुण्य वर्तता है, कोई बुद्धिमान् उसका वध नहीं करता है ।।१।। हे देवताओ! आपको जो महाकष्ट आकर प्राप्त हुआ है, वह सब मैं जानता हूँ, वे दैत्य बड़े प्रबल हैं, कोई देवता तथा दैत्य उन्हें मारने में समर्थ नहीं ।।२।। वे तारकात्मज इस समय सब पुण्य कर रहे हैं, उन सब पुरवासियों का वध दुस्साध्य है ।।३।। जानबूझकर रण की कर्कशता से कैसे मित्रद्रोह किया जाय? ब्रह्माजी ने स्वयं मित्रद्रोह करने में बड़ा पाप वर्णन किया है ।।४।। शास्त्र में ब्रह्महत्यारे की, सुरा पीनेवाले की, सुवर्ण चुरानेवाले की, व्रत (प्रतिज्ञा) तोड़नेवाले की निष्कृति सत्पुरुषों ने कही है, परन्तु कृतघ्न की निष्कृति नहीं है ।।५।। हे देवताओ! जब कि वे दैत्य मेरे भक्त हैं, तब मैं उनको कैसे मार सकता हूँ? आप धर्मज्ञ हो, इस बात को धर्म के साथ विचारो ।।६।। जब तक मेरी भक्ति वे करते हैं, तब तक मैं उनको मार नहीं सकता, तो भी हे देवताओ! इस बात को आप विष्णुजी से निवेदन करो ।।७।। सनत्कुमारजी बोले- वह इन्द्र को आदि लेकर सब देवताओं ने इस प्रकार से शिवजी के वचन श्रवण करके, हे मुने! पहले तो यह बात ब्रह्माजी से कही ।।८।। तब इन्द्रादिक सब देवता ब्रह्माजी को आगे करके महाशोभा की खान वैकुण्ठ को गये ।।९।। वहां जाकर नारायण को देखकर संभ्रम से प्रणाम करने लगे और सब देवता हाथ जोड़कर महाभक्ति से प्रसन्न करने लगे ।।१०।। तब उन समर्थ विष्णुजी से सब देवताओं ने अपने दुःख का कारण पूर्व के समान निवेदन किया ।।११।। इस प्रकार त्रिपुर द्वारा दिये हुए देवताओं के दुःख को सुनकर और उनका व्रत जानकर विष्णुजी ने उनसे कहा ।।१२।। विष्णुजी बोले- यह सत्य ही बात है, जहां सनातन धर्म है, वहां कभी दुःख नहीं होता, जैसे सूर्य के दर्शन से अन्धकार नहीं रहता ।।१३।। सनत्कुमारजी बोले- यह विष्णुजी

के वचन सुनकर देवताओं को बड़ा दुःख हुआ और उनके मुख मलिन हो गये, वे विष्णुजी से फिर कहने लगे ।।१४।। देवता बोले– फिर क्या किया जाय और किस प्रकार से दुःख दूर हो, कैसे हम सुखी हों और किस प्रकार से स्थिति करें ?।।१५।। फिर त्रिपुर के जीवित रहने से दूसरे धर्म किस प्रकार होंगे ? वे सब ही त्रिपुरवासी निश्चय देवताओं को दुःख देनेवाले हैं ।।१६।। उन त्रिपुरों का किस प्रकार से वध चिन्तन किया जाय ? नहीं तो अकाल में ही देवताओं का नाश होगा ।।१७।। सनत्कुमारजी बोले– वह देवता इस प्रकार से कहकर और बारंबार दुःख करके कहीं अपनी गति और स्थिति को न प्राप्त हुए ।।१८।। इस प्रकार से उन देवताओं को हीन और विनय संयुक्त देखकर श्रीमान् नारायण मन में चिन्ता करने लगे ।।१९।। देवताओं की सहायता के निमित्त मुझे क्या करना चाहिये ? वे तारक के समस्त पुत्र तो शिवजी के बड़े भक्त हैं ।।२०।। समर्थ विष्णुजी ने इस प्रकार से उस समय विचार कर देवताओं के कार्य करने के निमित्त यज्ञों का स्मरण किया ।।२१।। विष्णुजी के स्मरण करते ही वे सब यज्ञ बड़ी शीघ्रता से जहां श्रीपति पुरुषोत्तम थे, वहां आये ।।२२।। तब यज्ञपति पुराण पुरुष श्रीहरि को हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर वे यज्ञ विज्ञप्ति करने लगे ।।२३।। भगवान् उन सनातन यज्ञों को आया देखकर उनसे इन्द्रादि सब देवताओं को दिखाकर अच्युतजी ने कहा ।।२४।। विष्णुजी बोले– हे देवताओ ! इन यज्ञों से आप सदा परमेश्वर का यजन करो, इनसे तीनों जगत् का कल्याण और तीनों पुरों का विनाश होगा ।।२५।। सनत्कुमारजी बोले– देव देव अच्युतजी के यह वचन सुनकर वे सब देवता यज्ञेश की प्रेमपूर्वक स्तुति करने लगे ।।२६।। अनन्तर वे देवता यज्ञपुरुष का यजन करने लगे, हे मुने! वह सविधान से यज्ञपुरुष का विधान करने लगे ।।२७।। तब उस यज्ञकुण्ड से महाकायावाले शूल, शक्ति और गदा हाथ में लिये सहस्रों भूत प्रकट हुए ।।२८।। तब देवताओं ने उन सहस्रों भूतों का अवलोकन किया, जो शूल, शक्ति, गदा हाथ में लिये दण्ड, चाप धारण किये थे ।।२९।। अनेक प्रकार के प्रहारों से युक्त नाना वेष धारण किये, कालाग्नि के समान तथा कालसूर्य के समान थे ।।३०।। जब उन सब ने प्रकट होकर विष्णुजी के आगे प्रणाम किया, तब रुद्र की आज्ञा के पालन करनेवाले श्रीमान् विष्णुजी उनसे कहने लगे ।।३१।। विष्णुजी बोले– हे भूतो ! देवताओं के कार्य के निमित्त उद्यत हुए तुम मेरे वचन सुनो, तुम ,सब बड़े बलवान् त्रिपुर के स्थान को जाओ ।।३२।। वहां जाकर उसके पुरों को तोड़कर, जला कर, विदीर्ण करके फिर अपने कल्याण के निमित्त तुम जहां इच्छा हो चले जाना ।।३३।। सनत्कुमारजी बोले– भगवान् के इस प्रकार के वचन सुनकर वे भूतगण देव–देव को प्रणाम करके जहां त्रिपुर थे, वहां गये ।।३४।। जिस समय वे उसमें प्रवेश करने लगे, तब वह त्रिपुर के तेज से इस प्रकार भस्म हो गये, जैसे अग्नि में शलभ भस्म हो जाते हैं ।।३५।। जो शेष बचे थे,

वे भी सब भाग गये और वहां से निकलकर बड़ी व्याकुलता से हरि के निकट आ गये।।३६।। पुरुषोत्तम भगवान् हरि ने उन्हें देखकर और सब वृत्तान्त सुनकर मन में विचार किया।।३७।। इस समय क्या करना चाहिये? ऐसा विचार कर सब इन्द्रादि देवताओं को सन्तप्त जानकर।।३८।। विचारने लगे, कि किस प्रकार उन दैत्यों के तीनों पुर नष्ट करके देवताओं का कार्य करूं? जब चिन्ता से व्याकुल हुए, तो यह भी सोचा कि।।३९।। धर्मात्माओं का अभिचार से नाश नहीं होता, इसमें सन्देह नहीं, श्रुति के आचार प्रमाण करनेवाले विष्णुजी ने यह कहा।।४०।। वे त्रिपुर के रहनेवाले सब दैत्य बड़े धर्मिष्ठ हैं, हे देवताओ! इस प्रकार से वे अवध्य हैं, इसमें अन्यथा नहीं है।।४१।। महत्पाप करके भी वे शंकरजी की पूजा करते हैं, इस कारण वे सब पातकों से मुक्त हैं, जिस प्रकार जल से पद्मपत्र पृथक् रहता है।।४२।। हे देवताओ! रुद्र का पूजन करने से सब कामना पूर्ण होती है और पृथ्वी से वह अनेक भोग और सम्पत्ति को वशीभूत करते हैं।।४३।। इस कारण लिंगार्चन परायण होकर दैत्य आनन्द भोगते हैं, उन्हें अनेक प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त है और अन्त में मोक्ष भी पावेंगे।।४४।। तो भी मैं अपनी माया से उनमें विघ्न उत्पन्न करके देवकार्य की सिद्धि के निमित्त क्षणमात्र में त्रिपुर का संहार करूंगा।।४५।। इस प्रकार से विचार कर भगवान् पुरुषोत्तम उन दैत्यों के धर्म में विघ्न करने के निमित्त इच्छा करने लगे।।४६।। जब तक वेद के धर्म हैं और जब तक जगत् में शिवजी का पूजन हैं, जब तक उनमें पवित्र कृत्य हैं, तब तक उनका नाश न होगा।।४७।। इस कारण ऐसा करना चाहिये, जो उनमें से वेदधर्म जाता रहे, यह दैत्य लिंगार्चन त्याग देंगे, इसमें सन्देह नहीं है।।४८।। इस प्रकार से विष्णुजी ने विचार कर उन दैत्यों के धर्म में विघ्न उत्पन्न करने के लिये श्रुतिखण्डनरूप उपाय सोचा।।४९।। तब त्रिलोकी के रक्षण के निमित्त शिवजी की ही आज्ञा को प्राप्त होकर देवताओं की सहायता के निमित्त सब देवताओं से विष्णुजी ने कहा।।५०।। विष्णुजी बोले- हे देवताओ! आप सब अपने घरों को जाइये, इसमें सन्देह नहीं, मैं यथामति देवताओं का कार्य करूंगा।।५१।। मैं यत्न करके उन्हें रुद्र से विमुख अवश्यमेव करूंगा और अपनी भक्ति से रहित जानकर शिवजी उन्हें अवश्य भस्म करेंगे।।५२।। सनत्कुमारजी बोले- हे मुने! वे देवता विष्णुजी की आज्ञा को सिर पर धारण करके कुछ निश्चिन्त हुए और ब्रह्माजी के अनुमोदन से प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थानों को गये।।५३।। तब भगवान् विष्णुजी ने देवताओं का हित विचारा, वही सब पापों को दूर करनेवाली कथा विश्वास के साथ सुनिये।।५४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

पञ्चम युद्धखण्डे तृतीयोऽध्यायः।। ३ ।।

*****

चौथा अध्याय

सनत्कुमारजी बोले– तब उन दैत्यों के धर्म में विघ्न उपस्थित करने के निमित्त महातेजस्वी विष्णुजी ने माया से एक महापुरुष प्रकट किया।।१।। शिर मुण्ड़ित, मलिन वस्त्र पहने, गुंफि (काठ) का पात्र हाथ में लिये, हाथ में एक बुहारी लिये, पद–पद पर उनको चलायमान करते।।२।। एक हाथ में वस्त्र लिये, मुख पर वस्त्र लपेटे और विकल वाणी से 'धर्म–धर्म' ऐसा कहते हुए।।३।। वह मुनि विष्णुजी को प्रणाम कर उनके आगे स्थित हुआ और हाथ जोड़कर हरि से कहने लगा।।४।। हे हरिहन्! हे अच्युत! हे पूज्य! मैं क्या करूं? सो आप कहिये, हे देव? मेरे क्या–क्या नाम होंगे? और मेरा स्थान भी आप कहिये।।५।। भगवान् विष्णुजी इस प्रकार से उनके सुन्दर वचन सुनकर प्रसन्न मन से इस प्रकार के वचन बोले।।६।। विष्णुजी बोले– मैंने जिस कारण तुमको निर्माण किया है, सो तुम सुनो, हे महाप्राज्ञ! मेरे अंग से उत्पन्न होने के कारण तुम मेरा ही रूप हो, इसमें सन्देह नहीं।।७।। मेरे अंग से उत्पन्न होने के कारण तुम मेरा कार्य करने के लिये योग्य हो, तुम मेरे हो इस कारण सदा पूज्य होगे, इसमें सन्देह नहीं।।८।। तुम्हारा मुख्य नाम अरिहन् होगा और भी सुन्दर नाम होंगे, पीछे तुम्हारे स्थानों को भी कहूंगा, अब तुम आदर से प्रस्तुत कार्य को सुनो।।९।। हे मायावी! तुम सोलह सहस्र श्लोकों में एक शास्त्र निर्माण करो, जो श्रुति–स्मृति से विरुद्ध और वर्णाश्रम के धर्म से रहित हो।।१०।। वह सब शास्त्र अपभ्रंश शब्दों (धम्मलाभोदु) से युक्त हो, केवल उसमें कर्मवाद हो, उसकी तुम प्रयत्न से रचना करो, आगे उसका विस्तार होगा।।११।। और उसके निर्माण में मैं तुमको सामर्थ्य देता हूं और अनेक प्रकार की माया भी शीघ्र तुम्हारे आधीन हो जायेगी।।१२।। इस प्रकार परमात्मा हरि के वचन सुनकर प्रणाम के वह मायावी जनार्दन से कहने लगा।।१३।। मुण्ड़ी बोला– हे देव! जो मेरा कर्तव्य हो उसे आप शीघ्र कहिये, आपकी आज्ञा से सब कार्य शीघ्र सिद्ध होगा।।१४।। सनत्कुमारजी बोले– यह सुनकर भगवान् ने उसे मायामय शास्त्र पढ़ाया, कि स्वर्ग–नरक सब यहीं हैं, अन्यत्र उसकी प्रतीति नहीं है।।१५।। फिर विष्णुजी ने शिवजी के चरणकमल को स्मरण करके कहा, इस त्रिपुर के रहनेवाले सब ही दैत्यजनों को तुम अपनी माया से मोहित कर दो।।१६।। तुम उन सबको दीक्षित करके यत्न से यह शास्त्र पढ़ाओ, हे महामते! मेरी आज्ञा से इसमें तुमको दोष नहीं लगेगा।।१७।। इसमें सन्देह नहीं, उनमें श्रौतस्मार्त धर्मों का प्रकाश हो रहा है, हे यतिराज! इस विद्या से तुम उन सब धर्मों को उच्छिन्न कर दो।।१८।। हे

मुण्ड़ी! उन त्रिपुरवासियों के नाशार्थ अब तुम गमन करो, उनमें तमोगुणी धर्म का प्रचार करके त्रिपुरा का नाश करो।।१९।। हे महामते! फिर वहां से मरुस्थल में जाकर तुम कलियुग के आने तक स्वधर्म से निवास करना।।२०।। कलियुग के आने पर तुम अपने धर्म का प्रकाश करना और तुम अनेक शिष्य-प्रशिष्यों के साथ अपने धर्म का प्रचार करो।।२१।। मेरी आज्ञा से तुम्हारे धर्म का विस्तार होगा, मेरी आज्ञा में तत्पर रहने के कारण से तुम्हें अवश्य ही मेरी गति मिलेगी।।२२।। इस प्रकार देव-देव महादेवजी की आज्ञा से हृदय में प्रेरित होकर हरि उसके प्रति यह आदेश कर अन्तर्धान हो गये।।२३।। तब मुनि ने हरि की आज्ञापालन के निमित्त अपनी शिष्यमण्ड़ली की कल्पना की और उस चतुर पुरुष ने उस मायामय शास्त्र को यथायोग्य उन शिष्यों को पढ़ाया।।२४।। जैसा वह पुरुष था, उसी प्रकार श्रेष्ठ चार मुण्ड़ी भी उसके शिष्य हुए और परमात्मा हरि को नमस्कार कर वहां स्थित हुए।।२५।। भगवान् ने भी शिवजी की आज्ञापालन के निमित्त उन चार शिष्यों से बड़ी प्रसन्नता से कहा।।२६।। मेरी आज्ञा से तुम जैसे तुम्हारे गुरु हैं, वैसे ही तुम होंगे और तुम धन्य हो, इसमें सन्देह नहीं, तुम सद्गति को प्राप्त होगे।।२७।। तब वे चारों मुनि भी पाखण्ड़ धर्म में स्थित हुए, हाथ में पात्र लिये, नासिका पर वस्त्र लपेटे।।२८।। मलीन वस्त्र धारण किये, थोड़ा बोलनेवाला धर्म का लाभ ही परंतत्त्व है, इस प्रकार प्रसन्नता से कहते हुए।।२९।। छोटे वस्त्रों से बनी बुहारी हाथ में लिये, जीवहिंसा के भय से सहज-सहज पैर धर कर चलने वाले।।३०।। तब वे सब प्रसन्न होकर देव भगवान् को प्रणाम करके उनके आगे स्थित हुए।।३१।। तब भगवान् ने उनका हाथ पकड़कर उन्हें गुरुजी को अर्पण कर दिया और विशेष कर उनके नामकरण प्रेम से किये।।३२।। जैसे तुम हो वैसे ही यह चारों मेरे हैं, इसमें सन्देह नहीं, आदि रूप तुम्हारा नाम है और पूज्य होने से तुम पूज्य भी कहलाओगे।।३३।। ऋषि, यति, कीर्य, उपाध्याय इत्यादि तुम्हारे प्रसिद्ध नाम होंगे।।३४।। और मेरा शुभ नाम भी तुम ग्रहण कर सकोगे, अरिहन् इस पापनाशक नाम को सदा ध्यान करना चाहिये।।३५।। तुम्हें भी लोकों के सुखदायक कार्यों को करना चाहिये, लोक के अनुसार कार्य करने में उत्तम गति प्राप्त होगी।।३६।। सनत्कुमारजी बोले- तब वह मायावी शिष्यों सहित बड़े प्रेम से भगवान् को प्रणाम कर शिवजी की इच्छा करने के निमित्त शीघ्र ही त्रिपुर में गया।।३७।। विष्णुजी की प्रेरणा से वह वशी शीघ्र ही त्रिपुर में प्रवेश करके महा मायावी होने के कारण उसने ऋषिरूप से माया फैलाई।।३८।। नगर के उपवन में जाकर शिष्यों सहित स्थिति की और मायावालों को भी मोहित करनेवाली अपनी माया फैलाई।।३९।। हे मुने! शिवजी के अर्चन के प्रभाव से सहसा वह माया त्रिपुर में न चल सकी, तब यति व्याकुल हो गये।।४०।। तब उत्साह के रहित हो जाने से चित्त व्याकुल होने से हृदय के दुःख से उसने विष्णुजी को स्मरण कर,

हृदय से बड़ी स्तुति की ।।४१।। उसके स्मरण करने से विष्णुजी ने हृदय में शंकरजी को स्मरण किया और उनकी आज्ञा मन में प्राप्त करके नारदजी को स्मरण किया ।।४२।। विष्णुजी के स्मरणमात्र से नारदजी उस स्थान पर उपस्थित हुए और प्रणाम कर, हाथ जोड़कर विष्णुजी के आगे उपस्थित हुए ।।४३।। बुद्धिमानों में श्रेष्ठ विष्णुजी ने नारदजी से कहा, आप लोक के उपकार में निरत सदा देवकार्य करते हो ।।४४।। हे तात! मैं आपसे शिवजी की आज्ञा से कहता हूँ, कि आप शीघ्र ही त्रिपुर में जाइये, वहां एक ऋषि शिष्यों सहित वहां के निवासियों को मोहित करने गये हैं ।।४५।। सनत्कुमारजी बोले– भगवान् के यह वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारदजी शीघ्रता से वहां गये, जहां वह मायावियों में श्रेष्ठ ऋषि थे ।।४६।। इस प्रकार से मायापति भगवान् की आज्ञा से नारदजी भी उस पुर में प्रवेश कर उस मायवी से दीक्षित हुए ।।४७।। तब नारदजी ने त्रिपुरपति के समीप जाकर क्षेमप्रश्न करके राजा से यह सब वृत्तान्त निवेदन किया ।।४८।। नारदजी बोले– धर्म में परायण कोई यति आपके नगर में आया है, वह सब विद्यासम्पन्न तथा परावेद विद्या में तत्पर है ।।४९।। हमने बहुत धर्म देखे, परन्तु इसके समान धर्म नहीं देखा है, हम इसके सनातन धर्म को देखकर इसमें दीक्षित हुए हैं ।।५०।। हे दैत्यसत्तम! यदि उसके धर्म में आपकी इच्छा हो तो, हे महाराज! आप भी उसके धर्म की दीक्षा ग्रहण करे ।।५१।। सनत्कुमारजी बोले– वह दैत्यपति नारदजी के महान् अर्थ से गर्भित वचन सुनकर बड़ा विस्मित हुआ और मोहित होकर वहां गया ।।५२।। जब नारदजी ने दीक्षा ली है, तब हम भी वहां जायेंगे, ऐसा विचार कर त्रिपुराधीश स्वयं ही वहां गये ।।५३।। उन महात्मा को देखकर उनकी माया से मोहित होकर उन महात्मा से नमस्कार कर कहा ।।५४।। त्रिपुराधिपति ने कहा– हे निर्मल आशयवाले ऋषि! आप मुझे दीक्षा दीजिये, मैं आपका शिष्य बनूंगा, यह बात सत्य है, इसमें सन्देह नहीं है ।।५५।। दैत्यराज के इस प्रकार वचन सुनकर वह सनातन ऋषि बोले ।।५६।। हे दैत्यसत्तम! यदि तुम मेरी आज्ञा का सर्वथा पालन करोगे, तो मैं तुमको दीक्षा दूंगा, अन्यथा कोटि यत्न से भी दीक्षा नहीं हो सकती ।।५७।। यह वचन सुनकर राजा तो मायामय हो गया, हाथ जोड़कर शीघ्रता से उन यतिराज से कहने लगा ।।५८।। दैत्यराज बोला– हे भगवन्! तत्त्व विचार के साथ आप जो आज्ञा देंगे, उस आज्ञा का मैं कभी उल्लंघन नहीं करूंगा, यह बात सत्य है, इसमें सन्देह नहीं ।।५९।। सनत्कुमारजी बोले– इस प्रकार से उस त्रिपुराधीश्वर के वचन सुनकर मुख से वस्त्र दूर कर वह ऋषिश्रेष्ठ कहने लगे ।।६०।। हे दैत्येन्द्र! सब धर्मों में परम उत्तम दीक्षा को आप ग्रहण करें, जिस दीक्षा के विधान से तुम कृतार्थ हो जाओगे ।।६१।। सनत्कुमारजी बोले– उस मायावी ने इस प्रकार कहकर विधिविधान से अपने धर्म के अनुसार उस राजा को दीक्षा दी ।।६२।। हे मुने! जिस समय सहज में दैत्यराज को

दीक्षा प्राप्त हो गई, तब सब त्रिपुरवासी भी उसी धर्म में दीक्षित हो गये ।।६३।। हे मुने! उस समय वह त्रिपुर उस महामायावी के शिष्यों–प्रशिष्यों से क्षणमात्र में भर गया ।।६४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

पञ्चम युद्धखण्डे चतुर्थोऽध्यायः ।। ४ ।।

*****

पांचवाँ अध्याय

व्यासजी बोले– जिस समय उस मायावी पुरुष ने दैत्यराज को दीक्षा दे दी, दैत्यराज मोहित हो गया, तब उस मायावी पुरुष ने क्या कहा और दैत्यराज ने क्या किया?।।१।। सनत्कुमारजी बोले– इस प्रकार से जब राजा दीक्षित हो गया और नारदजी को आदि लेकर उनके शिष्यगण मुनिराज के चरणकमल सेवन करने लगे, तब अरिहन् ने दैत्यराज से कहा ।।२।। अरिहन् बोले– हे दैत्यराज! हमारे ज्ञानसम्पन्न वचनों को तुम सुनो, जो वेदान्तसार का सर्वस्व और परमोत्तम रहस्य रूप हैं ।।३।। यह संसार अनादि काल से चला आता है, कर्ता और कर्म से यह रहित है, यह आप ही प्रकट होकर और आप ही लीन हो जाता है ।।४।। ब्रह्माजी से लेकर स्तम्ब पर्यन्त यह जितना देह का बन्धन है, आत्मा ही एक ईश्वर है, इसमें कोई दूसरा समर्थ नहीं है ।।५।। और जो यह ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र नाम हैं, यह देहधारियों के नाम हैं, जैसे हमारे नाम हैं, अनादि तो एक अरिहन् कहलाते हैं ।।६।। जैसे हम सरीखों के देह समय पर लीन हो जाते हैं, ऐसे ही ब्रह्माजी से लेकर मशक पर्यन्त सब अपना समय आने पर विलीन हो जाते हैं ।।७।। यदि इस देह का विचार किया जाय, तो कहीं भी कुछ अधिक नहीं है, आहार, मैथुन, निद्रा यह सर्वत्र समान हैं ।।८।। सब ही देहधारी निराहार के परिणाम को प्राप्त होकर समान ही तृप्ति को प्राप्त होते हैं, इसमें कुछ न्यूनाधिक नहीं है ।।९।। जैसे हम प्यासे होकर जल पीकर प्रसन्न होते हैं, वैसे ही दूसरे प्यासे होते हैं, इसमें थोड़ा विशेष भी अन्तर नहीं है ।।१०।। रूपयौवन सम्पन्न चाहे सहस्रों स्त्रियां क्यों न हों? परन्तु रति के समय एक ही भोगी जाती है ।।११।। चाहे घोड़े भी असंख्य सैकड़ों हो, परन्तु अधिरोहण में एक ही होता है, इस प्रकार एक ही आत्मा है ।।१२।। पलंग पर सोनेवालों को पलंग सोने से जो सुख होता है, वही सुख पृथ्वी पर सोनेवालों को भी प्राप्त होता है ।।१३।। जैसे हम शरीरधारियों को मरण से भय हैं, ब्रह्माजी से लेकर कीट पर्यन्त को सभी को मरण से वैसा ही भय है ।।१४।। यदि बुद्धि से विचार किया जाय, तो सब शरीरधारी समान हैं, ऐसा विचार कर कभी किसी की किसी को हिंसा

न करनी चाहिये ।।१५।। जीवों पर दया करने के समान पृथ्वी पर कोई धर्म नहीं है, इस कारण सब प्रयत्नों से मनुष्य को जीवों पर दया करनी चाहिये ।।१६।। एक जीव की भी रक्षा करने से मानों त्रिलोकी की रक्षा होती है, एक के मारने से घात का दोष लगता है, इस कारण रक्षा करें, मारें नहीं ।।१७।। अहिंसा ही परमधर्म है और आत्मा को पीड़ा देना परमपाप है, पराये आधीन न होना ही मुक्ति है, अभिलषित भोजन की प्राप्ति ही स्वर्ग है ।।१८।। सत् की प्रमाणता से पुराने विद्वानों ने ऐसा कहा है, इस कारण नरक से डरनेवालों को कभी हिंसा न करनी चाहिये ।।१९।। चराचर त्रिलोकी में हिंसा के समान दूसरा पाप कोई नहीं और अहिंसक स्वर्ग को जाता है ।।२०।। दान बहुत हैं, परन्तु उन तुच्छ फलवालों से क्या है ? अभयदान के समान दूसरा दान कोई नहीं है ।।२१।। जो मनीषियों ने चार प्रकार के दान कहे हैं, वह अनेक शास्त्रों में विचार कर दोनों लोकों के कल्याण के देनेवाले हैं ।।२२।। ड़रे हुओं को अभयदान, रोगी को औषधि, विद्यार्थियों को विद्या और भूखे को अन्न देना चाहिये ।।२३।। जो-जो दान बहुत से मुनियों ने कहे हैं, वे जीवों को अभयदान की सोलहवीं कला के समान भी नहीं हैं ।।२४।। मणि, मन्त्र, औषधि प्रभाव को बिना विचारे नाम और अर्थ के उपार्जन के लिये उसको प्रयत्न से अभ्यास करे ।।२५।। बहुतसा धन उपार्जन कर सब ओर के बारह स्थान पूजने चाहिये और दूसरे पूजनों से क्या है ?।।२६।। पांच कर्मेन्द्रिय, पांच ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि यही बारह स्थान हैं ।।२७।। प्राणियों का स्वर्ग-नरक यही है और कहीं नहीं, सुख का ही नाम स्वर्ग और दुःख का नाम नरक है ।।२८।। सुख भोगते-भोगते यदि देह विसर्जन हो जायें, तत्त्व चिन्तकों ने इसीका नाम परममोक्ष कहा है ।।२९।। जिस समय वासना के सहित सब क्लेश नाश हो जायें, अज्ञान का नाश हो जाय, तत्त्व का विचार करनेवालों ने इसीका नाम मोक्ष कहा है ।।३०।। वेदवादी इस श्रुति को प्रमाण देते हैं, कि किसी प्राणी की हिंसा न करनी चाहिये, किसी की हिंसा में प्रवृत्ति न हो ।।३१।। जो अग्निष्टोम में पशु आलम्भन है, वह भ्रम की बात है, वह असतों का कथन है, वह ज्ञानी पुरुषों को पशु का आलम्भन प्रमाण नहीं है ।।३२।। वृक्षों को छेदकर, पशुओं को मारकर रुधिर की कीच करके अग्नि में तिल, घी हवन करके स्वर्ग की अभिलाषा करना बड़ी विचित्र बात है ।।३३।। इस प्रकार से उस असुर नामक के निमित्त यतिराज ने अपना सिद्धान्त कथन कर सब पुरवासियों को भी यही सुनाकर फिर आदर से कहा ।।३४।। प्रत्यक्ष अर्थ में ही विश्वास होना चाहिये, यही एक मात्र देह सुख साधक है, यह धर्म वेद से परे बौद्धशास्त्रों में निर्दिष्ट हुए हैं ।।३५।। आनन्द ही ब्रह्म का रूप है, ऐसा जो श्रुतियों में कहा गया है, वह वैसा ही मानना चाहिये, नानात्व कल्पना मिथ्या है ।।३६।। जब तक यह शरीर स्वस्थ है, जब तक इन्द्रिय निर्बल नहीं हैं, जब तक वृद्धावस्था दूर है, तब तक सुख का

साधन करे।।३७।। जिस समय इन्द्रिय अस्वस्थ होकर व्याकुल हुईं और बुढ़ापा आ गया, फिर सुख की प्राप्ति कहां हो सकती है? इस कारण सुख की इच्छा करनेवालों को तो अर्थी के निमित्त अपना शरीर भी दे देना चाहिये।।३८।। याचना करते हुए को दे-देकर जिस का मन उसकी पीड़ा से दुखी नहीं होता, उसी के बोझ से पृथ्वी दबती है, वृक्ष, पर्वत और समुद्र का उसको भार नहीं है।।३९।। यह देह शीघ्र ही जानेवाला है, संचय क्षय होनेवाले हैं, ज्ञानी ऐसा जानकर अपने देह का सुख साधे।।४०।। यह शरीर कुत्ते, कौए, कीटों का प्रभात समय का भोजन होगा। वेद में ठीक पढ़ा जाता है, कि शरीर अन्त में भस्म होनेवाला है।।४१।। लोकों में यह जाति की कल्पना व्यर्थ है, सामान्यरूप से सब मनुष्यों में कौन अधम और कौन उत्तम है?।।४२।। वृद्ध पुरुष कहते हैं, ब्रह्माजी से आदि लेकर यह सृष्टि है, उनके दश और मरीची पुत्र जन्मे।।४३।। मरीचि के पुत्र कश्यपजी ने दक्ष की सुलोचनी तेरह कन्याएँ धर्ममार्ग से विवाही।।४४।। इस समय अल्पबुद्धि और पराक्रमवाले मनुष्य यह गम्या, यह अगम्या है, ऐसा व्यर्थ विचार करते हैं।।४५।। प्रजापति के मुख, बाहु, जंघा, चरण से चार वर्ण उत्पन्न हुए हैं, यह पूर्वपुरुषों की कल्पना है, विचार से संगठित नहीं होती।।४६।। यदि कोई एक ही पुरुष के शरीर से उत्पन्न हुआ हो, तो उसके चारों पुत्र भिन्न-भिन्न वर्णवाले कैसे हो सकते हैं?।।४७।। इस कारण से यह वर्ण-अवर्ण का विभाग भलीप्रकार का विदित नहीं होता, इस कारण मनुष्य को कभी किसी प्रकार का भेद नहीं मानना चाहिये।।४८।। सनत्कुमारजी बोले- हे मुने! इस प्रकार से वह यति पुरवासी और राजा से इस प्रकार भाषण करके शिष्यों सहित वेदमार्ग को नष्ट करने लगा।।४९।। परम पतिव्रता स्त्रीधर्म का भी उसने खण्डन किया, इसी प्रकार पुरुषों का जितेन्द्रियत्त्व धर्म भी उन्होंने खण्डन किया।।५०।। विशेष करके देवताओं के धर्मशास्त्र के धर्मयज्ञ, धर्मव्रत, तीर्थ, श्राद्ध इस सब का खण्डन किया।।५१।। विशेष कर लिंगाराधनपूर्वक शिवजी की पूजा का खण्डन किया, विधिपूर्वक विष्णुजी, सूर्य, गणेशजी का पूजन।।५२।। सब स्नान दानादि, विशेष कर पर्वकाल, उस मायावी यति ने इन सब का खण्डन किया।।५३।। हे विप्रेन्द्र! बहुत कहने से क्या है? उस त्रिपुर ने यतिराज के कथन से अपने यहां से सम्पूर्ण वेदधर्म दूर कर दिये।।५४।। यतिधर्म के आश्रय होकर वहां की सब स्त्रियां मोहित हो गईं और पतिशुश्रूषा की मति उन्हों ने त्याग दी।।५५।। वशीकरण करनेवाली आकर्षणी विद्या का अभ्यास करके पुरुष परदाराओं में मोहित होकर अपना मनोरथ सफल करने लगे।।५६।। अन्तःपुर की स्त्रियां राजकुमार, पुरवासी पुर की स्त्रियां उन से सब ही मोहित हो गये।।५७।। इस प्रकार से त्रिपुर के रहनेवाले सब ही जब अपने धर्म से पराङ्मुख हो गये और अधर्म फैलने लगा।।५८।। उसी समय देव-देव भगवान् विष्णुजी की आज्ञा से जब सब मोहित हो गये, तब उनकी आज्ञा से अलक्ष्मी त्रिपुर के

स्थान में गई ।।५९।। जो लक्ष्मी उन्होंने बड़ी तपस्या से परमआदर से देवेश्वर से ग्रहण की थी, वह लक्ष्मी प्रभु ब्रह्माजी की आज्ञा से उन को त्याग कर चली गई ।।६०।। और विष्णुजी द्वारा निर्माण किये उस बुद्धि मोह को इस प्रकार क्षणमात्र में देकर नारदजी कृतार्थ हो गये ।।६१।। नारदजी ने भी उस मायावी जैसा रूप धारण कर लिया था, तो भी परमेश्वर के अनुग्रह से उनके मन में विकार नहीं आया ।।६२।। हे मुने! उस समय दैत्यराज की सामर्थ्य कुण्ठित हो गई और शिवजी की इच्छा से मय नामक अपने भाई के सहित सामर्थ्यहीन हो गया ।।६३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

पञ्चम युद्धखण्डे पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

*****

छठवाँ अध्याय

व्यासजी बोले– जब पुरवासियों सहित दैत्यराज मोहित हो गये, हे सनत्कुमारजी! तब क्या हुआ ? सो आप सम्पूर्ण चरित्र कहिये ।।१।। सनत्कुमारजी बोले– जब इस प्रकार से कहने पर दैत्यराज ने शिवार्चन त्याग दिया, सम्पूर्ण स्त्रीधर्म नष्ट हो गया तथा दुराचार प्रवृत्त हो गया ।।२।। तब भगवान् विष्णुजी कृतार्थ के समान होकर यह बात निवेदन कैलास पर गये ।।३।। रमापति, देवताओं के सहित समीप स्थित हुए, उसी समय समाधि में स्थित ब्रह्माजी ने यह बात जान ली ।।४।। वह सर्वज्ञ हरि ब्रह्माजी को मन से आवाहन करने लगे, उसी समय ब्रह्माजी आये और इष्ट वाणी से पुरुषोत्तम शिवजी की स्तुति करने लगे ।।५।। विष्णुजी बोले– महेश्वर देव परमात्मा को नमस्कार है, नारायण, रुद्र, ब्रह्मा, ब्रह्म रूप को नमस्कार है ।।६।। इस प्रकार महादेवजी की स्तुति कर तथा दण्ड़वत–प्रणाम कर दक्षिणमूर्ति से प्रकट रुद्र का मन्त्र जपने लगे ।।७।। और वह प्रभु जल में स्थित हो अपने प्रभु परमेश्वर को मन से स्मरण कर ५०००००० (पचास लाख) मन्त्र जपने लगे ।।८।। उसी मय सब देवता भी मन लगा कर परमेश्वर का जप करने लगे ।।९।। देवता बोले– दु:ख हरनेवा ले सर्वात्मा शंकरजी आपको प्रणाम है, रुद्र नीलकण्ठ, चिद्रूप, प्रचेतारूप आपको प्रणाम है ।।१०।। सब आपत्तियों को दूर करनेवाले आप हमारी सब की गति हो, हे देव! हे अरिसूदन! आप सदा हम सबके नमस्कृत हो ।।११।। आप आदि–अनादि आनन्द और अक्षयरूप प्रभु हो, आप जगत् के प्रभु, साक्षात् प्रकृति पुरुष के भी स्रष्टा हो ।।१२।। जगत् के कर्ता, भर्ता, हर्ता आप ही हो, रज, सत्, तम इन गुणों से आप ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश होते हो ।।१३।।

आप इस जगत् को तारनेवाले सबके अधिपति अविनाशी हो, आप वरदाता वाणीरूप वाच्य-वाचकता से रहित हो ।।१४।। योगीजन योग से मुक्ति के निमित्त आपकी याचना करते हैं, योगियों के हृदयकमल में आप ही स्थित हो ।।१५।। वेद और सन्त आप ही को परब्रह्मरूप कहते हैं, आप ही का तत्त्व तेजोराशी के परे है ।।१६।। हे विभो! इस जगत् में आप ही को परमात्मा कहते हैं, हे संसाररूप! हे शर्व! (संहारक) आप ही सर्वात्मा और त्रिलोक के अधिपति हो ।।१७।। हे विभो! जो कुछ वह देखा, सुना, स्तुति किया जाता है, हे जगत् के गुरु! यह सब आप ही हैं, आपको अणु से अणु और महान् से महान् कहते हैं ।।१८।। आपके हाथ, चरण, नेत्र, सिर, मुख, कान, नासिका सब ओर हैं, आपको प्रणाम है ।।१९।। आप सर्वज्ञ, सब ओर से व्याप्त सबके ईश्वर, कहीं भी आवृत्त न होनेवाले, विश्वरूप, विरूपाक्ष हो, सब ओर से आपको नमस्कार करता हूँ ।।२०।। सब के ईश्वर, संसार के अध्यक्ष, सत्यरूप, श्रेष्ठ, शंकर, कोटिसूर्य के समान प्रकाशमान, आपको सब ओर से प्रणाम करता हूँ ।।२१।। विश्व के देवता, आदि-अन्त रहित छत्तीस गुण सम्पन्न, जिनके ऊपर कोई नहीं, आप सबके ही प्रवृत्त करनेवाले हो, सब ओर से आपको प्रणाम करता हूँ ।।२२।। प्रकृति के भी प्रवृत्त करनेवाले, सब के प्रपितामह, सब के विग्रहों के अधिपति हो, आपको सब ओर से प्रणाम है ।।२३।। श्रुतियां आपको सब का निवासस्थान, स्वयम्भू, श्रुतियों का सार जाननेवाले, श्रुतिसारवित् कहती हैं ।।२४।। जो कुछ आपने लोकों में किया है, वह सबथा हमें अदृश्य है, देवता, असुर, ब्राह्मण और स्थावर-जंगम आप ही को कहते हैं ।।२५।। हे देवताओं के प्रिय! हम त्रिपुर के द्वारा नष्ट हुए जाते हैं, उन असुरों को मारकर आप हमारी रक्षा करें ।।२६।। हे परमेश्वर! वह सब आपकी माया से मोहित हैं; हे प्रभो! विष्णुजी की उक्ति से अब उन्होंने धर्म त्याग दिये हैं ।।२७।। उन्होंने सब वेदधर्मों का त्याग करके बौद्धशास्त्र का आश्रय लिया है, हे भक्तवत्सल! यह बात हमारे ही भाग्य के वश से हुई है ।।२८।। हे शरण देनेवाले! आप सदा ही देवताओं का कार्य करनेवाले हैं, हम आपकी शरण हैं, अब आपकी जो इच्छा हो, सो कीजिये ।।२९।। सनत्कुमारजी बोले- इस प्रकार महेशजी की स्तुति करके देवता आगे स्थित हुए और हाथ जोड़कर, दीनता से सिर झुकाकर रह गये ।।३०।। जब इस प्रकार इन्द्रादि देवताओं ने स्तुति की और विष्णुजी ने जप किया, तब प्रसन्न होकर भगवान् शंकरजी वृषभ पर आरूढ़ होकर वहां आये ।।३१।। और प्रसन्न मन होकर नन्दीश से उतरकर विष्णुजी को आलिंगन किया और नन्दी को हस्त से स्पर्श किये हुए सब देवताओं को देखा ।।३२।। तब शिवजी ने कृपादृष्टि से देवता और विष्णुजी को देखा और प्रसन्न होकर पार्वतीपति ने उनसे गम्भीर वचनों से कहा ।।३३।। शिवजी बोले- हे देवेश्वर! मैंने देवताओं का कार्य जान लिया है तथा विष्णुजी और नारदजी का मायाजाल भी जान लिया है ।।३४।।

हे देवताओं में श्रेष्ठ! उन दैत्यों की अधर्म में निष्ठा को भी मैं भली प्रकार से जान गया हूँ, अब त्रिपुर का विनाश कर दूंगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।३५।। परन्तु वह महादैत्य मन से मेरे भक्त हैं, हे देवताओ! माया से उत्तम धर्म त्यागने के कारण मैं उनका वध करूंगा।।३६।। जिन्होंने धर्म त्यागे हैं, उन दूसरों को विष्णुजी मारेंगे, वे त्रिपुर में रहनेवाले सब ही मेरी भक्ति से रहित हो गये हैं।।३७।। हे मुनि! सब देवता इस प्रकार शिवजी के वचन सुनकर अनमने हो गये और विष्णुजी भी अनमने हो गये।।३८।। जब संसार के करनेवाले ब्रह्माजी ने देवता विष्णुजी को उदास देखा, तब हाथ जोड़कर ब्रह्माजी शिवजी से वचन कहने लगे।।३९।। ब्रह्माजी बोले- हे देव! आपको कोई पाप स्पर्श नहीं कर सकता; कारण कि आप योग जाननेवालों में श्रेष्ठ हो, आप परमेश्वर ब्रह्म सदा देवता और ऋषियों के रक्षक हो।।४०।। आप ही के शासन और प्रेरणा से वे सब मोहित हो गये हैं, जब उन्होंने अपना धर्म और आपका पूजन त्याग दिया, तो भी वह शत्रु वध्य नहीं हैं।।४१।। हे महादेव! हे देवर्षियों के प्राणरक्षक! इस कारण आप साधुओं की रक्षा करने के निमित्त इन म्लेच्छ जातियों का वध करो।।४२।। धर्म से निग्रह करने में राजाओं को कुछ पाप नहीं लगता है, इस कारण से ब्राह्मण, साधुओं की रक्षा करने के निमित्त कण्टकों को शोधन करना चाहिये।।४३।। इस प्रकार से राजा यदि दोनों लोकों में अपने राज्य की रक्षा करे, तो महाफल होता है, राज्य में सब लोकों को प्रभुत्व है, इस कारण आप हमारी शीघ्र रक्षा करें।।४४।। हे देव देवश! मुनियों में श्रेष्ठ यज्ञ सम्पूर्ण वेद तथा मैं और विष्णुजी यह सब प्रजा हैं।।४५।। आप देवताओं के सार्वभौम सम्राट् सर्वेश्वर हो, यह हरि को आदि लेकर सब जगत् आपका परिवार है।।४६।। हरि आपके युवराज हैं, हे अज! मैं ब्रह्मा आपका पुरोहित और आपकी आज्ञा पालन करनेवाला इन्द्र आपका राजकाज करनेवाला हूं।।४७।। हे सर्वेश! दूसरे देवता भी आपकी आज्ञा के वशवर्ती हैं, वे नित्य अपने-अपने कार्य करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है।।४८।। सनत्कुमारजी बोले- इस प्रकार के ब्रह्माजी के वचन सुनकर सुरपति परमेश्वर शंकर प्रसन्न होकर ब्रह्माजी से कहने लगे।।४९।। शिवजी बोले- हे ब्रह्माजी! जो कि आपने मुझे देवराज और सम्राट् कहकर कीर्तन किया है, मेरे पास कोई ऐसा प्रकार नहीं, जो मैं इस पद को ग्रहण करूं।।५०।। हमारे पास महादिव्य रथ नहीं हैं, वैसा ही सारथी भी नहीं है, जिसे लेकर चलें, संग्राम में जय का करनेवाला धनुषबाण भी चाहिये।।५१।। कि जिस रथ पर बैठकर धनुष-बाण ग्रहण करके मन लगाकर मैं प्रबल दैत्यों का भी संग्राम में वध कर सकूं।।५२।। सनत्कुमारजी बोले- प्रभु के यह वचन सुनकर ब्रह्मा, इन्द्र, उपेन्द्रादि सब देवता प्रसन्न हुए और प्रणाम कर महेश्वरजी से कहने लगे।।५३।। देवता बोले- हे महेश्वर! हम उस प्रकार के आपके रथादि रूप में हो जायेंगे, हे स्वामिन्! युद्ध के

लिये हम तैयार हैं।।५४।। यह कहकर सब कोई इकट्ठा होकर शिवजी की इच्छा जानकर प्रसन्न होकर हाथ जोड़कर खड़े ही रहे।।५५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
पञ्चम युद्धखण्डे षष्ठोऽध्यायः।।६।।

*****

सातवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले– सम्पूर्ण देवताओं के इस प्रकार के वचन सुनकर भक्तों पर कृपा करनेवाले शरणागतवत्सल शंकरजी ने इस बात को स्वीकार किया।।१।। हे मुने! उसी समय शिवादेवी अपने पुत्रों को लेकर उस स्थान पर आई, जहां देवताओं के सहित भगवान् शंकरजी थे।।२।। पार्वती को आती हुई देखकर सब विष्णुजी आदि सब देवता नम्र होकर प्रणाम करने लगे और संभ्रम तथा विस्मय को प्राप्त हुए।।३।। हे मुने! सबने सुलक्षण पूर्वक जय के वचन कहे और पार्वती के आगमन के कारण को न जानकर सब मौन हो गये।।४।। जब सब देवताओं ने स्तुति की, तब अद्भुत कुतूहलवाली देवी ने अनेक लीला करने में चतुर अपने स्वामी से कहा।।५।। देवी बोली– हे पुत्रवालों में श्रेष्ठ! आप सूर्य के समान प्रकाशमान अपने षण्मुख पुत्र को खेलते हुए देखिये, जो अनेक भूषणों से भूषित हो रहे हैं।।६।। जब लोकमाता ने इस प्रकार की वाणियों से शंकरजी को संबोधन किया, तब स्कन्द का मुखामृत पान करते हुए शंकरजी तृप्ति को न प्राप्त हुए।।७।। और अपने तेज से निपीड़ित हुए देवताओं को स्मरण न किया, स्कन्द को आलिंगन करके और सूंघकर महेश्वरजी बड़े प्रसन्न हो गये।।८।। अनेक लीला करने में चतुर जगदम्बा भी प्रभु से मन्त्रणा कर कुछ काल तक वहीं स्थित रहीं।।९।। तब नन्दी, कार्तिकेय और गिरिराज कन्या के साथ सब देवताओं से स्तुति को प्राप्त हुए शंकरजी ने अपने मन्दिर में प्रवेश किया।।१०।। हे मुने! उस समय वे सब देवता महाव्याकुल और व्यग्र मन होकर उस महाबुद्धि सम्पन्न देव-देव के द्वार पर ही स्थित हो रहे।।११।। अब क्या करें, कहां जायँ, कौन हम को सुख देनेवाला है, यह क्या हो गया? हां! हम तो मारे गये, इस प्रकार कहने लगे।।१२।। इन्द्रादिक देवता परस्पर एक दूसरे को देखकर बड़े व्याकुल हो गये और अपने प्रारब्ध को धिक्कारते हुए वे सब इस प्रकार कहने लगे।।१३।। कोई बोले हम बड़े पापी हैं, कोई बोले हम अभागी हैं, कोई देवता बोले वे असुर बड़े भाग्यवान् हैं।।१४।। उसी समय उन देवताओं के अनेक प्रकार के कलकल शब्द सुनकर महा तेजस्वी कुम्भोदर नामक

गणपति देवताओं को लकड़ी से मारने लगा ।।१५।। तब सब देवता हाहाकार शब्द करते हुए वहां से भाग निकले, कोई मुनि गिर पड़े, देवसमाज में बड़ी व्याकुलता छा गई ।।१६।। इन्द्र तो बड़े व्याकुल हो जंघा को टेककर पृथ्वी पर बैठ गये, दूसरे देवर्षि भी व्याकुल हो पृथ्वी पर गिर पड़े ।।१७।। तब सब मुनि और देवता परस्पर मिकर बड़ी व्याकुलता से ब्रह्माजी और विष्णुजी के समीप गये ।।१८।। उस समय कश्यपादि ऋषि इस प्रकार से कहने लगे, अहो प्रारब्ध का बल बड़ा विचित्र है, यह बात उन्होंने सब लोकों के भय हरनेवाले हरि से कही ।।१९।। कोई कहने लगे, हे महर्षियो! हमारे अभाग्य को तो देखो, कि हमारा कार्य तो पूर्ण हुआ ही नहीं और विघ्न उपस्थित हो गया, इस प्रकार सब कोई बड़े विस्मित हुए ।।२०।। हे मुने! इस प्रकार कश्यपादि ऋषियों के वचन सुनकर मुनि और देवताओ! को आश्वासन देते हुए विष्णुजी कहने लगे ।।२१।। विष्णुजी बोले– हे देवताओ! आप आदर से हमारे वचन सुनिये, आप किस निमित्त दुःख को प्राप्त हो? सब दुःखों को त्याग कर दो ।।२२।। हे देवताओ! महत्पुरुषों का आराधन सहज नहीं होता है, इस प्रकार आप विचार कर देखिये, हमने ऐसा सुना है, पहले महत्पुरुषों के आराधन में दुःख होता है, हे देवताओ! वह दृढ़ता को जानकर पीछे प्रसन्न होते हैं ।।२३।। शिवजी सब गणों के अध्यक्ष और परमेश्वर हैं, अपने मनों में विचार कर देखिये, वह सहसा कैसे वश में हो सकते हैं? ।।२४।। हे देवताओ! पहले 'ॐ', पीछे 'नमः', पश्चात् 'शिवाय', पीछे 'शुभम्' ।।२५।। पश्चात् 'कुरु कुरु', पीछे 'शिवाय नमः ॐ' अर्थात् 'ॐ नमः शिवाय शुभं कुरु कुरु शिवाय नमः ॐ', हे देवताओ! यदि इस मन्त्र को आप निरन्तर ।।२६।। शिवजी के निमित्त एक कोटि जपोगे, तो शिवजी आपका कार्य करेंगे ।।२७।। हे मुने! जब परमसमर्थ विष्णुजी ने इस प्रकार के वचन कहे, तब देवता फिर शंकरजी की आराधना करने लगे ।।२८।। उस समय विष्णुजी भी शिवजी में मन लगाकर देवता और मुनियों के कार्य सिद्धि के निमित्त शिवमन्त्र का जप करने लगे ।।२९।। धैर्य धारण कर देवता बारंबार 'शिव शिव' ऐसा कहने लगे, हे मुनिसत्तम! इस प्रकार एक कोटि मन्त्र जपकर, वे सब स्थित हुए ।।३०।। उसी समय साक्षात् शंकरजी ने फिर दर्शन दिया, यथोक्त स्वरूप से आकर इस प्रकार वचन कहने लगे ।।३१।। श्रीशिवजी बोले– हे विष्णुजी! हे विधाता! हे श्रेष्ठ व्रत वाले ऋषियो! मैं प्रसन्न हूँ, मन्त्र के प्रभाव से जो आपकी अभिलाषा हो सो कहिये ।।३२।। देवता बोले– हे जगदीश! हे शंकर! यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हो, तो देवताओं को व्याकुल जानकर त्रिपुरों का संहार कीजिये ।।३३।। हे परमेशान! हे दीनबन्धो! हे कृपा करनेवाले! हमारी रक्षा कीजिये, आपने ही सब आपत्तियों से बारंबार देवताओं की रक्षा की है ।।३४।। सनत्कुमारजी बोले– हे मुने! ब्रह्माजी और हरि के तथा देवताओं के इस प्रकार के वचन सुनकर हँस कर शिवजी

उन देवताओं से बोले ।।३५।। महेश्वरजी बोले– हे विधाता! हे विष्णुजी! हे सब देवताओ, मुनियो! आप त्रिपुर को नष्ट हुआ जानकर आदर से मेरे वचन सुनिये ।।३६।। जो आपने रथ, सारथि, दिव्य धनुषबाण देना पहले अंगीकार किया है, उसे शीघ्र ही उपस्थित कीजिये ।।३७।। हे विष्णुजी! हे विधाता! आप त्रिलोकी के अधिपति हो, बहुत शीघ्र यत्न से हमारे सम्राट् पद का प्रकार उपस्थित कीजिये ।।३८।। त्रिपुर को नष्ट हुआ ही जानकर प्रयत्न से सब देवता, सृष्टि पालन के अधिकारी इसमें सहायता कीजिये ।।३९।। जो आपने यह महापुण्यदायक मेरा मन्त्र जपा है, इस से मैं प्रसन्न होता हूँ, यह महाशुभ मन्त्र भुक्ति–मुक्ति का देनेवाला तथा सब कामनाओं को देनेवाला, सब शैवों को सुखी करनेवाला है ।।४०।। यह धन्य यश और आयु को देनेवाला है,स्वर्ग की इच्छा करनेवालों को स्वर्ग और कामना रहितों को मुक्ति और संसार से मुक्ति को प्राप्त हुओं का भोग और मोक्ष देनेवाला है ।।४१।। जो मनुष्य सदा पवित्र होकर इस मन्त्र का कीर्तन करता है, जो सुनता और सुनाता है, वह सब कामनाओं को प्राप्त होता है ।।४२।। सनत्कुमारजी बोले– परमात्मा शिवजी के इस प्रकार के वचन सुनकर हरि और ब्रह्माजी आदि सब देवता प्रसन्न हुए ।।४३।। तब विश्वकर्माजी ने संसार के हित के निमित्त विष्णुजी की आज्ञा से परम सुन्दर सम्पूर्ण देवमय रथ निर्माण किया ।।४४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
पञ्चम युद्धखण्डे सप्तमोऽध्यायः ।। ७ ।।

*****

आठवाँ अध्याय

व्यासजी बोले– हे सनत्कुमारजी! हे सर्वज्ञ! हे शिवजी के भक्तों में श्रेष्ठ! हे महाबुद्धिमान्! हे तात! आपने यह शंकरजी की अद्भुत कथा सुनाई ।।१।। इस समय आप उस देवमय रथ का निर्माण कहिये, जो बुद्धिमान् विश्वकर्माजी ने शिवजी के निमित्त निर्माण किया था ।।२।। सूतजी बोले– वह मुनीश्वर व्यासजी के इस प्रकार वचन सुनकर शिवजी के चरणकमल को स्मरण कर सनत्कुमारजी कहने लगे ।।३।। सनत्कुमारजी बोले– हे व्यासजी! मैं बुद्धि के अनुसार शिवजी के चरणकमल को स्मरण कर कहता हूँ, श्रवण कीजिये ।।४।। विश्वकर्माजी ने जो रुद्रदेव के निमित्त रथ निर्माण किया था, वह दिव्य रथ सब लोकों में परम दिव्य यत्नपूर्वक बनाया गया था ।।५।। वह सर्वभूतमय सुवर्ण का सर्वसम्मत था, उसके दक्षिण पहिये में सूर्य, वाम

पहिये में चन्द्रमा ।।६।। दक्षिण के पहिये में बारह महीने रूप बारह आरे और बाईं ओर के पहिये में कलारूप सोलह आरे थे; हे विप्रेन्द्र! उन बारह आरों में बारह आदित्य लगे थे ।।७।। हे सुव्रत! बाईं ओर चन्द्रमा की बारह कला लगी हुई थीं और बाईं ओर ही अट्ठाइस नक्षत्र लगे हुए थे ।।८।। छहों ऋतु उस रथ की नेमि पुट्ठी, पुष्कर उसका अन्तरिक्ष और रथ की नीड़ मन्दर पर्वत था ।।९।। उदयाचल–असताचल उसका जुआ, मेरु उसका अधिष्ठान और दूसरे पर्वत उसके केशर हुए ।।१०।। सम्वत्सर उसका वेग, उत्तरायण–दक्षिणायन चक्रों के संगम, मुहूर्त उस रथ का बन्धुर (बन्धन बने) और कला उसकी शम्पा (दोनों कील) बनीं ।।११।। कलाओं का तीसवां भाग काष्ठा उसका घोण (जुए का अग्र नासिका रूप) और क्षण उसके अक्षदण्ड हुए, निमेष उस रथ का अनकर्ष (नीचे का काष्ठ) हुआ और लव उसका ईषा (जुए के बीच का काष्ठदण्ड) बना ।।१२।। इस रथ का लोहे का पर्दा द्युलोक बना, स्वर्ग और मोक्ष उसकी दोनों ध्वजा हुईं और जुए के दोनों सिरे उसके भ्रम और कामदुधा बने ।।१३।। व्यक्त उसका ईषादण्ड और बृद्धि उसका नडवल बना, अहंकार उसका कोना और पञ्चमहाभूत उसके बल बने ।।१४।। समस्त इन्द्रिय उसके भूषण और हे मुनिसत्तम! श्रद्धा उस रथ की गति हुई ।।१५।। हे मुनिश्रेष्ठ! षडंग उस समय भूषण बने, पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र यह उपभूषण हुए ।।१६।। सब लक्षणों से संयुक्त वर बल के स्थान बने, उनका घण्टा मन्त्र हुए, वर्णाश्रम चरण बने ।।१७।। सहस्रफणों से भूषित अनन्त सर्प उसका बन्धन बने, दिशा और उपदिशा उस रथ के पाद हुए ।।१८।। सुवर्ण के समान प्रकाशमान रत्नों से भूषित पुष्करादि उस रथ की पताका बनी और चारों सागर उस रथ को ढकने का वस्त्र बने ।।१९।। सब गहनों को धारण करके गंगादि सब श्रेष्ठ नदियां स्त्री रूप धारण करके चमर हाथ में लेकर उपस्थित हुईं ।।२०।। वह उन स्थानों में स्थिति करके रथ को शोभायमान करने लगीं, आवह आदि सात पवन उस रथ की उत्तम सुवर्ण की सीढ़ी बनी ।।२१।। लोकालोक पर्वत उस रथ के इधर–उधर की उपसोपान बने, विषम और बाह्यस्थान शोभायमान मानस आदि हुए ।।२२।। सब वर्षाचल उसके पाश बने, तललोक के रहनेवाले प्राणी उस रथ का तलभाग बने ।।२३।। भगवान् ब्रह्माजी सारथि और सब देवता रश्मि धारण करनेवाले बने, ब्रह्मदेवतावाला ओंकार कोड़ा ।।२४।। अकार ही उसका महाछत्र और मन्दर पार्श्वस्थान का दण्ड धारण करनेवाला बना, शैलराज मेरु उसका धनुष और सर्पराज शेषजी उसका रोदा बने ।।२५।। वेदरूपा सरस्वतीदेवी उस धनुष का घण्टा स्वरूप हुई, महातेजस्वी विष्णुजी उसका बाण, अग्नि उस बाण का शल्य बना ।।२६।। हे मुने! चार वेद उसके चार घोड़े बने, सब ज्योतियाँ उनके भूषण हुए और भी जो कुछ हैं, वे उपभूषण बने ।।२७।। विषसम्मभूत उसकी अनीक हुई, सम्पूर्ण वायु उसके बाजा बजानेवाले हुए,

ऋषि और व्यासजी को आदि लेकर मुख्य ऋषि उसके वहन करनेवाले बने ।।२८।। हे मुने! बहुत कहने से क्या? मैं थोड़े से अक्षरों में कहता हूँ, ब्रह्माण्ड में जो कुछ वस्तुएँ हैं, वह सब उस रथ में विद्यमान थीं ।।२९।। इस प्रकार विश्वकर्माजी ने भलीभांति रथ निर्माण करके ब्रह्माजी और विष्णुजी की आज्ञा से वह रथ प्रस्तुत किया ।।३०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
पञ्चम युद्धखण्डे रथादि युद्धप्रकारवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ।। ८ ।।

*****

नौवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले- इस प्रकार का महादिव्य, अनेक आश्चर्यों से सम्पन्न रथ निर्माण हो गया, तब ब्रह्माजी ने वेदरूपी घोड़े उसमें जोतकर शिवजी को वह निवेदन किया ।।१।। शिवजी को इस प्रकार वह रथ निवेदन करके विष्णुजी आदि देवताओं ने बड़ी प्रार्थना कर उस रथ पर उन्हें चढ़ाया ।।२।। तब अनेक सामग्रियों से सम्पन्न उस दिव्य रथ में महाप्रभु सब देवमय भगवान् शंकरजी आरूढ़ हुए ।।३।। देव, गन्धर्व, किन्नर और ऋषियों से स्तुति को प्राप्त होकर तथा विष्णुजी, ब्रह्माजी और लोकपालों से स्तुति को प्राप्त होकर ।।४।। गीत गान में चतुर गण और अप्सराओं से आवृत्त होकर शिवजी अपने सारथी को अवलोकन करते हुए बड़ी शोभा को प्राप्त हुए ।।५।। जिस समय उस लोकों के धारण करनेवाले रथ पर भगवान् शंकरजी चढ़े, उस समय वेदसम्भव चारों अश्व शिर के बल भूमि पर गिर पड़े ।।६।। पृथ्वी और सम्पूर्ण पर्वत चलायमान हो गये, उसका भार सहने में असमर्थ होकर शेषजी कम्पित हो गये ।।७।। तब पृथ्वी को धारण करनेवाले वृषरूपी भगवान् धर्म ने स्थिर होकर नीचे से क्षणमात्र को रथ उठाया ।।८।। क्षणमात्र में वृषेन्द्र भी जंघाओं के बल से भूमि पर बैठ गये, रथ पर चढ़े हुए महेश्वरजी का तेज सहने में समर्थ न हुए ।।९।। तब कोड़ा हाथ में लेकर ब्रह्माजी ने उन घोड़ों को उठाकर देव के वचनों से उस श्रेष्ठ रथ में नियुक्त किया ।।१०।। तब ब्रह्माजी ने रथ में जुते हुए मन और पवन के समान वेगवाले उन श्रेष्ठ घोड़ों को चलाया ।।११।। और आकाश में स्थित उन तीन पुरों के सम्मुख किया, जब महेश्वरजी उस रथ में बैठ चुके और वेगगामी दानवों की ओर वह रथ चला ।।१२।। उस समय भगवान् शंकरजी देवताओं को देखकर कहने लगे, आप मुझे पशुओं का अधिपति करो, तो मैं इन असुरों को नष्ट कर दूं ।।१३।। हे देवताओ! देवता और दूसरे जनों का पशुत्व पृथक्-पृथक् कल्पना करके दिया जाय, तो वे बली दैत्य मर सकते हैं, अन्य

प्रकार से नहीं ।।१४।। सनत्कुमारजी बोले– इस प्रकार बुद्धिसम्पन्न उन देव–देव के वचन सुनकर पशुपन शंका करके सब देवता परम विषाद को प्राप्त हुए ।।१५।। देव देव अम्बिकापति देवताओं के भाव को जानकर हँसते हुए, कृपा करके उन देवताओं से कहने लगे ।।१६।। शिवजी बोले– हे देवताओ! पशुभाव होने पर भी आपका पात नहीं होगा, सुनिये, पशुभाव का मोक्ष जिस प्रकार होगा ।।१७।। जो दिव्य पशुपतव्रत को करेगा उसका मोक्ष हो जायेगा, पशु होने से ही यह बात होगी, यह आप सावधान हुओं से सत्य बात कही है ।।१८।। और भी जो कोई मेरे पाशुपतव्रत को करेंगे, हे श्रेष्ठ देवताओ! वह पशुत्व से छूट जायेंगे, इसमें सन्देह नहीं ।।१९।। जो निष्ठापूर्वक बारह वर्ष, छः वर्ष वा तीन वर्ष मेरी शुश्रूषा करेगा, वह पशुपाश से छूट जायेगा ।।२०।। हे श्रेष्ठ देवताओ! इस कारण आप इस व्रत को कीजिये, इसमें सन्देह नहीं, आप पशुपन से छूट जाओंगे ।।२१।। सनत्कुमारजी बोले– परमात्मा महेशजी के इस प्रकार के वचन सुनकर हरि, ब्रह्मादि देवताओं ने कहा, 'ऐसा ही होगा' ।।२२।। इस कारण से यह देवता, असुर सब कोई उन प्रभु के पशु हैं और पशुओं का पाश मुक्त करनेवाले शिवजी पशुपति हैं ।।२३।। इस कारण महेश्वरजी का नाम पशुपति भी है, यह नाम सब लोकों में प्रसिद्ध, कल्याण प्रदान करनेवाला है ।।२४।। तब सब देवता और ऋषि प्रसन्नता से जयजयकार करने लगे, तब ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर बड़े प्रसन्न हुए तथा दूसरे भी प्रसन्न हुए ।।२५।। उस समय जैसा उस परमात्मा को अद्‌भुत रूप हुआ, वह सौ वर्ष में भी नहीं हो सकता ।।२६।। उस समय सब जगत् के पति शंकरजी और महेशानी पार्वती सहित सब को सुख देने के निमित्त त्रिपुर को मारने के लिये चले ।।२७।। जिस समय वह देव–देव त्रिपुर को मारने के निमित्त चले, सम्पूर्ण देवता हाथी, घोड़े, सिंह, रथ और वृषभ पर चढ़कर देवताओं में मुख्य इन्द्रादि के साथ चले ।।२८।। हल, भुशुण्डी, शाल, मूशल, जो महापाषाण के समान दृढ़ और पर्वतों के ही समान थे, उन आयूधों को ग्रहण कर उस समय ब्रह्मादिक भी अपने–अपने वाहनों पर चढ़कर चले ।।२९।। अनेक प्रकार के आयुध हाथ में उठाकर परम प्रकाशमान महोत्सव से 'शिवजी की जय' उच्चारण करते हुए उस समय इन्द्र, ब्रह्माजी और विष्णुजी महेश्वरजी के आगे चले ।।३०।। दण्ड हाथ में लिये जटा धारे सब मुनि प्रसन्नता प्रकट करने लगे और आकाश से सिद्ध, चारण फूलों की वर्षा करने लगे ।।३१।। हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! उस समय जो शिवजी के गण उन तीनों पुरों में प्रवेश करने लगे, उनकी संख्या कौन कर सकता है? परन्तु थोड़े से मैं कहता हूँ।।३२।। गणेश्वर और देवता गणों के साथ देवगणों में शंकरजी का भृंगी नामक श्रेष्ठ गणेश्वर विमान में चढ़कर महेन्द्र के समान शोभायमान होकर त्रिपुर नाश करने चला ।।३३।। केश, विगतवास, महाकेश, महाज्वर, सोमवल्ली, सवर्ण, सोमप, सनक ।।३४।। सोमधृक्, सूर्यवर्चा, सूर्यप्रेषणक,

सूर्याक्ष, सूर्य, सुरसुन्दर ।।३५।। प्रस्कन्द, कुन्दर, चण्ड़, कम्पन, अतिकम्पन, इन्द्र, इन्द्रजव, यन्ता, हिमकर ।।३६।। शताक्ष, पंचाक्ष, सहस्राक्ष, महोदर, (शतजित्) वा सतीजुह, शतास्य, रंक, कर्पूरपूतन ।।३७।। द्विशिख, त्रिशिख, हुंकारकारक, अजवक्त्र, अष्टवक्त्र, हयवक्त्र, अर्द्धवक्त्र ।।३८।। इस प्रकार से बहुत से असंख्य गण, लक्ष्यलक्षण से वर्जित होकर शिवजी को घेर कर चले ।।३९।। जिस समय वे पिनाकपाणि महादेवजी को घेर कर चले, उस समय मन से उन्होंने चराचर को दग्ध करने की इच्छा कर ली ।।४०।। वह पिनाकधारी वैसे ही त्रिलोकी को भस्म करने में समर्थ हैं, त्रिपुर को जलाना तो क्या बड़ी बात है? उनको रथ, बाण, गण और देवताओं का प्रयोजन क्या है? ।।४१।। हे व्यासजी! वह जो पिनाकधारी उन दैत्यों को मारने के निमित्त अपने गण और देवताओं को साथ लेकर चले, यह बड़ी अद्भुत बात है ।।४२।। हे ऋषिश्रेष्ठ! जो इसमें कारण है सो मैं आपसे कहता हूँ, पापों का नाश करनेवाला अपना यश त्रिलोकी में विस्तार करने के निमित्त उन्हों ने ऐसा किया ।।४३।। और भी मलिन बुद्धि दुष्टों के विश्वास के लिये यह बात स्पष्ट कर दी कि, सब देवताओं में कोई विशेष नहीं, एक शंकरजी ही प्रधान हैं ।।४४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
पञ्चम युद्धखण्ड़े शिवयात्रावर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ।। ९ ।।

*****

दसवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले– तब महादेव शिवजी सब सामग्री सहित उस रथ पर स्थित होकर दैत्यों के त्रिपुर दग्ध करने के लिये उद्यत हुए ।।१।। शीर्षस्थान में स्थित होकर उत्तम बाण धनुष पर चढ़ाने के निमित्त धनुष सजाकर वीर नामक आलीढ़ आसन से स्थित हुए ।।२।। दृढ़मुष्टि से उस धनुष को धारण कर, दृष्टि में दृष्टि प्रवेश कर निश्चल होकर सौ हजार वर्ष तक शिवजी स्थित हुए ।।३।। परन्तु अंगूठे के अग्रभाग में स्थित होकर गणेशजी उसमें विघ्न करने लगे, इससे शंकरजी के लक्ष्य पुर में प्रविष्ट नहीं होते थे ।।४।। तब मुंजकेश विरूपाक्ष धनुषबाणधारी शंकरजी ने आकाश से वाणी सुनी ।।५।। हे देव! जब तक आप इन गणेशजी का पूजन नहीं करोगे, हे जगत्पति! तब तक आप त्रिपुर को नष्ट न कर सकोगे ।।६।। यह वचन सुनते ही शंकरजी ने गणेशजी का पूजन किया, फिर अन्धकासुर का नाश करनेवाले भगवान् भद्रकाली को बुलाकर गणेशजी का पूजन कर चुके ।।७।। तब प्रेम से पूजा ग्रहण करके गणेशजी

बड़े प्रसन्न हो गये, उस समय भगवान् शंकरजी ने आकाश में ।।८।। उन महात्मा दैत्यों के तीनों पुरों को देखा, जो यथायोग्य युक्त थे, इस स्थल में कोई ऐसा कहते हैं ।।९।। जो परब्रह्म देवेश महेश्वरजी सबके पूजनीय है, उनके कार्य की सिद्धि दूसरों के प्रसाद से हो, यह बात उनमें नहीं घटती ।।१०।। वह परब्रह्म स्वतन्त्र और सगुण-निर्गुणरूप हैं, वह परमात्मा निरंजन स्वामी सबसे अलक्षित हैं ।।११।। वह परमप्रभु पांच देवताओं से उपास्य पंचदेवात्मक हैं, उनको किसीकी उपासना की आवश्यकता नहीं है, वही प्रभु परम उपास्य हैं ।।१२।। परन्तु लीलामात्र से गणेशजी का पूजन उनमें घटता है, उन देव-देव ने लीलाचरित्र में गणेशजी को वरदान दिया था ।।१३।। जब महादेवजी गणेशजी का पूजन करके स्थित हुए कि, उसी समय वह तीनों पुर एक स्थान में आकर स्थित हुए।।१४।। हे मुने! तब त्रिपुर के एकत्र होने पर महात्मा देवताओं को बड़ी प्रसन्नता हुई।।१५।। उस समय सब देवता, सिद्ध और परमऋषि अष्टमूर्ति शंकरजी की स्तुति करते जय-जय करने लगे ।।१६।। उस समय जगत्पति ब्रह्मा और विष्णुजी कहने लगे कि, दैत्यों का वध करने का समय आ गया है ।।१७।। हे महेश्वर! आप देखिये कि तीनों पुर एकत्र हो गये हैं, अब त्रिपुर निवासी तारकपुत्रों को मारकर आप देवकार्य कीजिये ।।१८।। हे देवेश! जब तक इन त्रिपुरों का वियोग न हो, तब तक बाण छोड़कर आप त्रिपुर का नाश करें।।१९।। तब पूज्य शंकरजी ने धनुष को सजाकर उस पर बाण चढ़ा कर, पाशुपत अस्त्र में संयुक्त करके त्रिपुर संहार की इच्छा की ।।२०।। तब अनेक श्रेष्ठ लीला करने में चतुर महादेवजी ने किसी एक कारण से उसको निरादर की दृष्टि से देखा ।।२१।। तब देवता बोले- हे देव! आप देखने से ही त्रिपुर को क्षणमात्र में भस्म करने में समर्थ हैं, आप सत्पुरुषों की गति हैं ।।२२।। हे देवेश! आप देखते ही तीनों जगत् को भस्म कर सकते हो, परन्तु हमारे यश को बढ़ाने के निमित्त आप बाण का प्रहार करें।।२३।। जब विष्णुजी आदि देवताओं ने इस प्रकार शंकरजी की स्तुति की, तब उस बाण से शिवजी ने त्रिपुर के नाश करने की इच्छा की।।२४।। जिस समय वह अभिलषित मुहूर्त आया, उसी समय उन अद्भुत धनुष को आकर्षण करके, ज्यादा शब्द करके स्थित हुए, उस समय वह शब्द सबको दुःसह हो गया।।२५।। तब शंकरजी ने अपना नाम सुनाकर और उन महाअसुरों से संभाषण करके कोटि सूर्य के समान प्रकाशमान उस बाण असुरों पर छोड़ा ।।२६।। उस शीघ्रगामी, अग्नि के शल्यवाले महाप्रज्ज्वलित पापहारी विष्णुमय बाण ने त्रिपुर में स्थित उन तीनों दैत्यों को भस्म कर दिया ।।२७।। फिर चारों सागरों पर्यंत जानेवाले उन तीनों पुरों का भस्म कर दिया और वह तीनों ही भस्म होकर एक साथ भूमि पर गिर पड़े।।२८।। उस बाण की अग्नि से सैकड़ों दैत्य भस्म हो गये, शिवजी की पूजा न करने के कारण वे सब हाहाकार करने लगे ।।२९।। जब भ्राताओं सहित तारकाक्ष भस्म

होने लगा, तब उसने भक्तवत्सल अपने प्रभु शंकर देव का स्मरण किया ।।३०।। महादेवजी को देखकर परमशक्ति से अनेक प्रकार से स्तुति कर विलाप करते हुए मन से कहने लगा ।।३१।। तारकाक्ष बोला– हे शिवजी! हम ने जान लिया, आप हम पर प्रसन्न हो, जो आपने बन्धुओं सहित हमें भस्म किया, तो इसी सत्य से अब फिर कब आप हमें भस्म करेंगे? ।।३२।। जो मरण सुर–असुर सबको दुर्लभ है, वह हमें प्राप्त हुआ है, हमारी जन्म–जन्मान्तर में आप ही के भाव में बुद्धि लगे ।।३३।। हे मुने! इस प्रकार कहते हुए वे दानव अद्भुत शिवजी की आज्ञा से क्षणमात्र मे भस्म हो गये ।।३४।। हे व्यासजी! और भी जो वृद्ध, बालक उन पुरों में रहते थे, वे सब दानव दल शिवजी की आज्ञा से भस्म हो गये ।।३५।। जैसे कल्पान्त की अग्नि कुछ नहीं छोड़ती, उस प्रकार से त्रिपुर के स्त्री–पुरुष वाहनादि सब भस्म हो गये ।।३६।। कोई स्त्री भर्ताओं के कण्ठ में हाथ डाले, कोई सोती, कोई रति से श्रान्त हुई, दग्ध हुई ।।३७।। कोई आधे दग्ध हुए जाकर मोह से घूमते हुए मूर्च्छित हुए, कोई ऐसी सूक्ष्म वस्तु वह न थी, जो त्रिपुर की अग्नि से भस्म न हुई हो ।।३८।। स्थावर–जंगम कुछ भी उसमें भस्म हुए बिना न बचा, एक अविनाशी विश्वकर्माजी मय दैत्य उसमें बचा ।।३९।। वह देवताओं का विरोधी न था, इसी कारण शिवजी के तेज से रक्षित रहा, विपत्काल में भी महेशजी अपने श्रेष्ठ भक्तों की रक्षा करते हैं।।४०।। दैत्य अथवा दूसरे प्राणी भाव–अभाव, कृत–अकृत कैसे भी, यदि देव के समीप प्राप्त हो, तो फिर उनका विनाश नहीं होता है ।।४१।। इस कारण सत्पुरुषों को ध्यान से इस बात में यत्न करना चाहिये, जिससे भक्ति बढ़े, निन्दा से यह लोक क्षीण हो जाता है, इस कारण उस कर्म को न करें।।४२।। जैसे उन त्रिपुरवासियों का फिर संयोग न हुआ, यदि यह मत प्रारब्ध से सब प्राणियों का हो जाये, तो बड़ा भाग्य है।।४३।। उस समय तक भी जिन त्रिपुरवासियों के वहां शिवजी का पूजन होता रहा, वे शिवपूजा के पुण्य के प्रभाव से सब शिवजी के गण हुए। ''यह कथा अध्यात्म गर्भित भी है, स्थूल सूक्ष्म कारण तीन शरीर त्रिपुर हैं, मन भय है, शिव लक्ष्य है, तीनों पुर एक साथ नष्ट होने से मोक्ष होता है'' ।।४४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

पञ्चम युद्धखण्डे त्रिपुरदाहवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ।। १० ।।

*****

ग्यारहवाँ अध्याय

व्यासजी बोले– हे ब्रह्मपुत्र महापण्डित! हे शैवश्रेष्ठ! आप धन्य हैं, आप यह तो कहिये कि, त्रिपुर के सर्वथा नष्ट हो जाने पर देवताओं ने क्या किया? ।।१।। मय कहां गया? त्रिपुरपति कहां गये? यदि यह बात शिवजी की कथा के आश्रित हो, तो आप मुझसे यह सब कहिये ।।२।। सूतजी बोले– व्यासजी के यह वचन सुनकर ब्रह्मपुत्र प्रभावशाली सनत्कुमारजी शिवजी के चरण युगलों को स्मरण करके कहने लगे ।।३।। सनत्कुमारजी बोले– हे महाबुद्धिमान् पराशर पुत्र व्यासजी! परमेश्वर के चरित्र सुनिये। उन लोकलीला करनेवाले शंकरजी के चरित्र परम अद्भुत हैं। जब शंकरजी ने सर्वथा त्रिपुरवासियों का संहार कर दिया, तब सब देवता बड़े विस्मित हो गये ।।५।। वे इन्द्र–उपेन्द्रादि सब देवता महातेजस्वी रुद्र को देखकर कोई भी संभ्रम के कारण न बोल सके ।।६।। उस समय उनके महाभयंकर रौद्रतेज से सम्पूर्ण दिशाएँ प्रज्ज्वलित हो रही थीं, कोटि सूर्य के समान तथा प्रलयकाल की अग्नि के समान वह तेज था ।।७।। उस समय भगवान् शंकरजी और हिमालय की कन्या देवी को देखकर सब देवता व्याकुल होकर मुख नीचे करके खड़े रह गये ।।८।। उस समय देवताओं की सेना को इस प्रकार से भयभीत देखकर महर्षि लोग भी कुछ न कहते हुए प्रणाम करते रह गये ।।९।। उस समय शंकरजी का रूप देखकर ब्रह्माजी भी डर गये और सन्तुष्ट होकर सावधानी से देवताओं सहित शंकरजी की स्तुति करने लगे ।।१०।। उस समय भय पाये हुए विष्णुजी के सहित भव, हर, देव–देव त्रिपुरारी गिरिजापति भक्ताधीन महेश्वरजी का स्तुति करने लगे ।।११।। ब्रह्माजी बोले– हे देव देव महादेव! हे भक्तों पर अनुग्रह करनेवाले! हे परमेशान! हे सब देवताओं के हितकारक! आप हम पर प्रसन्न हो ।।१२।। हे जगत्पति! हे आनन्ददायक! आप प्रसन्न हो; हे शंकर स्वामिन् परमेश्वर! आप प्रसन्न हो ।।१३।। ओंकाररूप आकार, परतारक, सब देवताओं के अधिपति, त्रिपुरनाशक, आप हम पर प्रसन्न हो ।।१४।। आप अनेक नामधारी देव हो, आप श्रेष्ठ प्रतिज्ञावालों के प्रिय हो, अगुण प्रकृति पुरुष परे आपको नमस्कार है ।।१५।। निर्विकार, नित्य, नित्यतृप्त, प्रकाशमान, निरंजन, दिव्य, त्रिगुणरूप, आपको प्रणाम है ।।१६।। सगुणरूप, स्वर्गपति, सदाशिव, शान्तरूप, महेश, पिनाकधारी, आपको प्रणाम है ।।१७।। सर्वज्ञ, शरण देनेवाले, सद्योजात, वामदेव, रुद्र, पुरुषातीत आपको प्रणाम है ।।१८।। अघोर, सेवनीय, भक्तों के अधीन, ईशान, वरण करने योग्य, भक्तों को आनन्द देनेवाले, आपको प्रणाम है ।।१९।। हे महादेवजी! भय पाये हुए हम सब

देवताओं की आप रक्षा कीजिये, आपने त्रिपुर को नष्ट करके सब देवताओं को कृतार्थ कर दिया है।।२०।। इस प्रकार स्तुति करके सब देवता पृथक्-पृथक् ब्रह्माजी को आदि लेकर शिवजी की स्तुति करने लगे।।२१।। तब स्वयं ब्रह्माजी हाथ जोड़कर, सिर नवाकर, नम्र होकर त्रिपुरारी महेश्वरजी की स्तुति करने लगे।।२२।। ब्रह्माजी बोले- हे भगवन्! हे देव देवेश! हे त्रिपुरनाशक शंकर! हे महादेव! आपमें मेरी अनपायिनी पराभक्ति हो।।२३।। हे देवेश शंकरजी! मैं सदा ही आपका सारथी बनूं। हे भव! हे व्यापक! आप सदा मेरे अनुकूल हो।।२४।। सनत्कुमारजी बोले- इस प्रकार उदारबुद्धि ब्रह्माजी भक्तवत्सलता के कारण शिवजी की स्तुति करके हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर मौन हो गये।।२५।। तब जनार्दन भगवान् शंकर महेश्वरजी को प्रणाम करके हाथ जोड़कर परमेश्वर को प्रसन्न करने लगे।।२६।। विष्णुजी बोले- हे महेशान! हे देवताओं के अधिपति! हे कृपा करनेवाले! हे परमेशान! हे नमस्कार करनेवालों के प्रिय! आप कृपा कीजिये, आपको प्रणाम है।।२७।। निर्गुण, फिर सगुण, फिर प्रकृति, फिर पुरुषरूप, आपको प्रणाम है।।२८।। गुण स्वरूप, विश्व के आत्मा, भक्तों के प्रिय, शान्त शिव परमात्मरूप, आपको नमस्कार है।।२९।। सदाशिव, रुद्र, जगत् के पति, आपको नमस्कार है, आपमें मेरी दृढ़भक्ति होकर निरन्तर बढ़ती रहे।।३०।। सनत्कुमारजी बोले- जब शैवों में श्रेष्ठ विष्णुजी वह वचन कहकर मौन हो गये, तब सब देवता प्रणाम करके परमेश्वर से कहने लगे।।३१।। देवता बोले- हे देवताओं के स्वामी! महादेव, करुणामय शंकर, जगत्पति, परमेश्वर, आप हम पर प्रसन्न हो।।३२।। हे सबके कर्ता! आप प्रसन्न होइये, हम आपको प्रेम से नमस्कार करते हैं, आपमें हमारी अनपायिनी दृढ़भक्ति सदा हो।।३३।। सनत्कुमारजी बोले- जब ब्रह्माजी और देवताओं ने शंकरजी की इस प्रकार स्तुति की, तब लोकों के कल्याणकर्ता भगवान् शंकरजी प्रसन्न होकर कहने लगे।।३४।। शिवजी बोले- हे ब्रह्माजी, विष्णुजी, देवताओ! मैं आप पर प्रसन्न हूँ। आप सब विचार करके मनवांछित वर मांगो।।३५।। सनत्कुमारजी बोले- हे मुनिश्रेष्ठ! शिवजी के यह वचन सुनकर सब देवता प्रसन्न होकर बोले।।३६।। देवता बोले- हे भगवन्! यदि आप प्रसन्न हैं और वर देना चाहते हैं, हे देव-देव! यदि हम देवताओं को अपना दास जानते हैं, तो।।३७।। हे देवसत्तम! जिस समय देवताओं को दुःख प्राप्त हो, उस समय आप प्रकट होकर देवताओं का दुःख सदा दूर कीजिये।।३८।। सनत्कुमारजी बोले- जब ब्रह्माजी, हरि और देवताओं ने इस प्रकार भगवान् रुद्र से कहा, तब एक ही बार प्रसन्न होकर उन्होंने कहा कि, 'ऐसा ही होगा'।।३९।। मैं इस स्तोत्र से प्रसन्न हूँ, सर्वदा आपकी अभिलाषाओं को पूर्ण करूंगा, हे देवताओ! मैं पढ़ने-सुननेवालों के भी मनोरथ पूर्ण करूंगा।।४०।। यह कहकर सदा देवताओं के दुःख हरनेवाले

शंकरजी ने प्रसन्न होकर, जो बात सब देवताओं को अभीष्ट थी, वही सब उनको दे दी ।।४१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
पञ्चम युद्धखण्डे देवस्तुतिवर्णनन्नामैकादशोऽध्यायः ।। ११ ।।

*****

बारहवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले– शिवजी को प्रसन्न देखकर उस समय शिवजी की कृपा से जलने से बचा हुआ मय दानव वहां आया ।।१।। और प्रेम से शिवजी तथा दूसरे देवताओं को प्रणाम किया। फिर हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर शंकरजी को प्रणाम किया ।।२।। फिर वह मय दानव उठकर और शिवजी को देखकर प्रेमगद्गद स्वर से भक्ति से पूर्ण होकर शिवजी की स्तुति करने लगा ।।३।। मय बोला– हे देव–देव महादेव! हे भक्तवत्सल शंकरजी! आपमें किसी का पक्षपात नहीं है, आप कल्पवृक्ष के स्वरूप हो ।।४।। ज्योतिरूप, पवित्ररूप, विश्वरूप, पवित्र आत्मा पावनरूप, आपको नमस्कार है ।।५।। चित्ररूप नित्यरूप से परे दिव्यरूप, दिव्य, दिव्य आकृतिवाले, आपको प्रणाम है ।।६।। नम्र हुओं के दुःख दूर करनेवाले, सब कष्ट हरनेवाले, शिवात्मा त्रिलोकी के कर्ता, धर्ता, संहर्ता, आपको प्रणाम है ।।७।। आप भक्तों को भक्ति से ही जानते हो, आप कृपासागर, तप के फल देनेवाले, शिवा के पति, विश्वेश्वर, आपको प्रणाम है ।।८।। हे स्तुतिप्रिय परमेश्वर! मैं आपकी स्तुति करना नहीं जानता, हे सर्वेश! प्रसन्न हो और मुझ शरण आये की रक्षा कीजिये ।।९।। सनत्कुमारजी बोले– हे व्यासजी! मय दानव द्वारा की हुई इस प्रकार की स्तुति को सुनकर परमेश्वर प्रसन्न हुए और आदर से कहने लगे ।।१०।। शिवजी बोले– हे श्रेष्ठ मय दानव! वर मांग, तुझ से मैं प्रसन्न हूँ, जो तेरे मन में अभिलाषा होगी उसे मैं पूर्ण करूंगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ।।११।। सनत्कुमारजी बोले– इस प्रकार वह श्रेष्ठ दानव शिवजी के यह वचन सुनकर प्रभु को प्रणाम करके, हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर कहने लगा ।।१२।। मय बोला– हे देव–देव महादेव! यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हो, यदि मैं वर के योग्य हूँ, तो आप मुझे अपनी सनातनी भक्ति दीजिये ।।१३।। हे परमेश्वर! अपने भक्तों पर सदा सख्यता, दीनों पर सदा दया, और जीव तथा खलों में उपेक्षा होनी चाहिये ।।१४।। हे महेश्वरजी! मैं यही चाहता हूँ, कि कभी मेरा आसुरी भाव न हो, हे नाथ! मैं निर्भय होकर सदा आपके श्रेष्ठ भजन में मग्न रहूँ ।।१५।। सनत्कुमारजी बोले– जब परमेश्वर शंकरजी से इस प्रकार की प्रार्थना की, तब भक्तवत्सल प्रसन्न

होकर मय दानव से कहने लगे ।।१६।। महेश्वरजी बोले– हे दानवश्रेष्ठ! तुम धन्य हो, तुम मेरे विकारहीन भक्त हो, जिनकी तुम को इच्छा है, वह सब वर मैंने तुझे दिये ।।१७।। तुम द्युलोक से भी मनोहर वितललोक को जाओ, मेरी आज्ञा से अपने परिवार सहित वहां जाकर निवास करो ।।१८।। वहां तू भक्ति में तत्पर होकर निर्भय निवास कर, मेरी आज्ञा से तुझ में कभी आसुरीभाव प्रकट न होगा ।।१९।। सनत्कुमारजी बोले– इस प्रकार महात्मा शंकरजी की आज्ञा को सिरपर धारण करके शंकरजी और अन्य देवताओं को प्रणाम करके, मय वितललोक को गया ।।२०।। इसी समय में वे सब मुण्ड़ी भी वहां आकर प्राप्त हुए और शिवजी तथा ब्रह्माजी, विष्णुजी आदि सब देवताओं को प्रणाम किया और बोले ।।२१।। हे देवताओ! अब हम क्या करें, कहां जाये? हम शिवजी की आज्ञा मानने में तत्परों को कुछ आज्ञा दी जाय ।।२२।। हे विष्णुजी! हे देवताओ! जो हम ने शिवभक्ति में तत्पर दैत्यों की शिवभक्ति विनाश कर दी, यह हम ने बड़ा दुष्कर्म किया है ।।२३।। हमारा कोटि कल्पों तक नरक में निवास होगा, शिवभक्तों के विरोधी हमारा उद्धार न होगा ।।२४।। परन्तु हमने वह दुष्टकर्म आपकी इच्छा से किया है, कृपा करके अब इसकी शान्ति कहिये, हम आपकी शरण में आये हैं ।।२५।। सनत्कुमारजी बोले– विष्णुजी, ब्रह्माजी आदि देवता इस प्रकार से उनके वचन सुनकर सामने हाथ जोड़कर खड़े हुए उन मुण्ड़ियों से बोले ।।२६।। विष्णुजी आदि बोले– हे मुण्ड़ियो! आपको किसी प्रकार का भय नहीं करना चाहिये, यह सब चरित्र शिवजी की आज्ञा से ही हुआ है ।।२७।। आपको दुःख देनेवाली कुगति कभी प्राप्त न होगी; कारण कि आप शिवजी के दास, देवता, ऋषियों के हितकारी हो ।।२८।। शंकरजी सुर और ऋषियों के हित करनेवाले हैं, शंकरजी ही सुर, ऋषियों के हित करनेवालों को प्रिय हैं, देवर्षियों के हित करनेवाले मनुष्यों की कभी कुगति नहीं होती ।।२९।। आज से यह मत कलियुग के मनुष्यों में प्रविष्ट होगा, उन्हींकी कुगति होगी, यह सत्य है, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है ।।३०।। आप सब मुण्ड़ी धीर धारण करके हमारी आज्ञा से गुप्तभाव से कलियुग की मरुभूमि में निवास करो ।।३१।। कलियुग के आने पर आप अपने मत की स्थापना करना, कलियुग में मनुष्य मोहित होकर आपका मत स्वीकार करेंगे ।।३२।। हे मुनीश्वर! इस प्रकार से जब सुरेशों ने उन को यह आज्ञा दी, तब वे सब मुण्ड़ी देवताओं को प्रणाम कर अपने आश्रम को गये ।।३३।। इस प्रकार भगवान् रुद्र त्रिपुरवासियों को दग्ध करके वह महायोगी कृतकृत्य होकर ब्रह्माजी आदि से भी पूजित हुए ।।३४।। तब प्रभु अपने सम्पूर्ण गण और पुत्रों और पार्वती सहित देवताओं का यह कार्य करके अन्तर्धान हो गये ।।३५।। जब परिवार सहित शंकरजी अन्तर्धान हुए, तब वह धनुषबाण और सामग्री सहित रथ भी अन्तर्धान हो गया ।।३६।। उस समय ब्रह्माजी, हरि, देव, मुनि, गन्धर्व, किन्नर,

नाग, सर्प, अप्सरा और मनुष्य सब प्रसन्न हुए।।३७।। और शंकरजी का यश वर्णन करते–करते सब अपने–अपने स्थानों को गये और अपने स्थानों में जाकर परमशान्ति को प्राप्त हुए।।३८।। यह आपसे शिवजी का त्रिपुरवध सम्बन्धी तथा महालीला सम्बन्धी चरित्र वर्णन किया।।३९।। यह धन्य, यश, आयु, धन, धान्य, स्वर्ग और मोक्ष देनेवाला है, अब आगे क्या सुनने की आपकी इच्छा है।।४०।। यह परम सुन्दर आख्यान है, जो इसको सदा पढ़ते–सुनते हैं, वे कामनाओं को प्राप्त होकर अन्त में मोक्ष के भागी होते हैं।।४१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
पञ्चम युद्धखण्ड़े द्वादशोऽध्यायः ।। १२ ।।

*****

तेरहवाँ अध्याय

व्यासजी बोले– हे सनत्कुमारजी ! हमने यह बात पहले सुनी है कि, देव शंकरजी ने जलन्धर दैत्य का वध किया।।१।। हे महापण्डित! आप शंकरजी का वह चरित्र विस्तारपूर्वक कहिये, उनका चरित्र सुनकर कौन–कौन तृप्त हो सकता है?।।२।। सूतजी बोले– जब इस प्रकार से महामुनि से व्यासजी ने पूछा, तब वाक्य बोलनेवालों में वह चतुर इस प्रकार से बोले।।३।। सनत्कुमारजी बोले– हे मुने! एक समय बृहस्पति और इन्द्र परमभक्ति से कैलास पर शंकरजी का दर्शन करने गये।।४।। भगवान् शंकरजी ने गुरु और इन्द्र का आगमन जानकर अपने दर्शन में प्रीति करनेवालों के ज्ञान की परीक्षा का विचार किया।।५।। वह दिगम्बर सत्पुरुषों की गति उनके मार्ग को रोककर, शीश पर जटा बांधे, शोभायमान मुख से स्थित हुए।।६।। उस समय बृहस्पति और इन्द्र आनन्द से जा रहे थे, मार्ग में अद्‌भुत आकारवाले भीमपुरुष को देखा।।७।। वह महातेजस्वी, शान्त, मस्तक पर जटा बांधे, महाबाहु, महोरस्थल, गौरवर्ण, भयंकर नेत्र थे।।८।। तब अपने अधिकार से दुर्मद हुए इन्द्र ने उन से पूछा, यह नहीं समझा कि, यह हमारे मार्ग में स्थित हुआ पुरुष शंकरजी ही हैं।।९।। इन्द्र ने कहा– हे पुरुष! तुम कौन हो, कहां से आये हो और तुम्हारा नाम क्या है? शिवजी अपने ही स्थान पर स्थित हैं वा प्रभु कहीं गये हैं?।।१०।। सनत्कुमारजी बोले– इन्द्र के इस प्रकार पूछने पर उस तपस्वी ने कुछ न कहा, इन्द्र ने फिर भी पूछा, परन्तु उस दिगम्बर ने कुछ न कहा।।११।। फिर भी लोकों के अधीश्वर इन्द्र ने उससे पूछा, परन्तु अनेक लीला करनेवाले महाप्रभु महायोगी फिर भी न बोले।।१२।। जब इस प्रकार बारंबार उस दिगम्बर से इन्द्र ने पूछा, परन्तु इन्द्र के ज्ञान की परीक्षा लेने के कारण

भगवान् कुछ न बोले ।।१३।। तब त्रिलोकी के ऐश्वर्य से गर्वित होकर इन्द्र ने क्रोध किया और उस जटाधारी को घुड़ककर कहा ।।१४।। इन्द्र बोले– अरे, मैं पूछता हूँ और तू उसका कुछ उत्तर नहीं देता, इस कारण मैं तुझे वज्र से मारता हूँ, अरे दुर्मति मैं देखूं तेरी कौन रक्षा करता है? ।।१५।। सनत्कुमारजी बोले– इन्द्र ने इस प्रकार से कहकर जब क्रोध में भरकर उसको देखा और उस दिगम्बर को मारने के लिये वज्र हाथ में लिया ।।१६।। तब सदाशिव देव ने इन्द्र को वज्र हाथ में लिये देखकर इन्द्र का हाथ वज्र के सहित स्तम्भित कर दिया ।।१७।। और विकराल नेत्र भर भगवान् रुद्र ने ज्यों ही देखा, तब ऐसा विदित हुआ, कि मानो यह दिगम्बर प्रज्ज्वलित हो उठा है और तेज से जला देगा ।।१८।। जब इन्द्र की भुजा स्तम्भित हो गई, तब क्रोध से इन्द्र इस प्रकार मन में दुःखी हुआ, जिस प्रकार मन्त्रबल से पराक्रम रुद्ध हो जाने पर सर्प दुःखी हो जाता है ।।१९।। ज्यों ही बृहस्पति ने उस पुरुष को तेज से प्रज्ज्वलित होते देखा, तब बुद्धि से उनको शंकरजी जानकर प्रणाम किया ।।२०।। उस समय उदारबुद्धि बृहस्पतिजी हाथ जोड़कर पृथ्वी पर दण्डवत् करके प्रणाम करने लगे ।।२१।। बृहस्पतिजी बोले– हे देवाधिदेव महादेव, आत्मस्वरूप महेश्वर, प्रभु, त्र्यम्बक, जटाजूटधारी ।।२२।। दीनों के नाथ, सर्वव्यापक विभु, अन्धकासुर को मारनेवाले, आपको नमस्कार है। त्रिपुर को मारनेवाले, प्रलय में जगत् को ध्वंस करनेवाले परमेष्ठी ब्रह्मा, आपको नमस्कार है ।।२३।। विरूपाक्ष रुद्र, बहुरूप शम्भु, विरूप, अतिरूप और रूप से परे, आपको प्रणाम है ।।२४।। दक्ष का यज्ञ विध्वंस करनेवाले, यज्ञों का फल देनेवाले मखरूप, दूसरों के कर्म प्रवृत्त करनेवाले आपको प्रणाम है ।।२५।। कालान्तक, काल स्वरूप, कालसर्प धारण करनेवाले परमेश, सर्वत्र व्यापक, आपको नमस्कार है ।।२६।। ब्रह्माजी के शिरहन्ता, ब्रह्मा, चन्द्र से स्तुति को प्राप्त ब्रह्मण्य परमात्मा को बारंबार नमस्कार है ।।२७।। आप ही अग्नि, वायु, आकाश, जल, भूमि, सूर्य, चन्द्रमा और प्रकाशमान ज्योतिश्चक्र हो ।।२८।। आप ही ब्रह्मा, विष्णु, परमेश्वर हो, आप ही मुनि सनकादि तपोधन नारद हो ।।२९।। आप ही सब लोकों के ईश, जगदात्मा, नारद हो, आप में ही सब अन्वय है, आप ही सबसे भिन्न, प्रकृति से परे हो ।।३०।। आप ही विधाता हो, रजोगुण से लोकों की रक्षा करते हो, सत्वगुण से हरि रूप हो, आप सब जगत् की रक्षा करते हो ।।३१।। हे महादेवजी! आप आपही से हरिरूपधारी होते हो, लीला से ही सम्पूर्ण पांचों भौतिक भुवनों की रक्षा करते हो ।।३२।। हे विश्व के करनेवाले आप के ही ध्यानबल से सूर्य तपता है, चन्द्रमा अमृत टपकाता है और पवन बहती है ।।३३।। हे शंकरजी! आप ही के ध्यानबल से मेघ जल वर्षाते हैं, आप ही के ध्यानबल से इन्द्र त्रिलोकी की रक्षा करता है, पुत्रवत्पालता है ।।३४।। आप के ही ध्यानबल से सब देवता और मुनीश्वर आपके भय से चकित होकर अपना अधिकार करते हैं ।।३५।।

आपके चरणकमल की सेवा से ही पृथ्वी पर मनुष्य देवताओं का आदर करते हैं। हे रुद्र! आपकी कृपा से त्रिलोकी की ऐश्वर्य भोगते हैं।।३६।। आपके चरणकमल की सेवा से ही योगियों को सब अगम्य दुर्लभ गति को यह प्राणि प्राप्त होता है।।३७।। सनत्कुमारजी बोले– बृहस्ततिजी ने जब इस प्रकार से लोकों का कल्याण करनेवाले शंकरजी की स्तुति की और इन्द्र को भगवान् शंकरजी के चरणों में पातित किया।।३८।। इस प्रकार जब इन्द्र को सिर नीचा कराकर चरणों पर ड़ाला, तब बड़ी नम्रता से बृहस्पतिजी शिवजी से कहने लगे।।३९।। बृहस्पतिजी बोले– हे दीनानाथ! हे महादेव! यह इन्द्र आपके चरणों पर पड़ा है, नेत्रों की अग्नि से आप शान्त होकर, क्रोध को रोककर इन्द्र का उद्धार कीजिये।।४०।। हे महादेवजी! आप प्रसन्न हो, शरण आये इन्द्र की रक्षा कीजिये, आपके मस्तक के नेत्रों से निकली हुई यह अग्नि शान्त हो।।४१।। सनत्कुमारजी बोले– देव देव महेश्वरजी इस प्रकार बृहस्पतिजी के वचन सुनकर मेघगंभीर वाणी से इस प्रकार बोले।।४२।। शिवजी बोले– हे बृहस्पतिजी! जो यह नेत्रों से क्रोध निकला है, उसे मैं कैसे धारण करूं? त्याग की हुई कैंचली को सर्प फिर कैसे धारण कर सकता है?।।४३।। सनत्कुमारजी बोले– भक्तवत्सल भगवान् शंकरजी ने जब इस प्रकार से कहा, तब बृहस्पतिजी भय व्याकुल मन से फिर क्लिष्ट रूपवाले भगवान् से बोले।।४४।। बृहस्पतिजी बोले– हे देव! हे भगवान्! भक्तों पर सदा ही दया करनी चाहिये, हे शंकरजी! भक्तवत्सल नाम को आप सार्थक करें।।४५।। हे देवेश! आप इस अपने तेज को कहीं अन्यत्र त्याग कीजिये, आप सब भक्तों का उद्धार करनेवाले हो, इस इन्द्र का भी उद्धार कीजिये।।४६।। सनत्कुमारजी बोले– जब भक्तवत्सल भगवान् शंकरजी से इस प्रकार बृहस्पतिजी ने कहा, उस समय दीनों के दुःख दूर करनेवाले भगवान् ने गुरु बृहस्पतिजी से कहा।।४७।। शिवजी बोले– हे तात! मैं आपकी इस स्तुति से प्रसन्न होकर आपको उत्तम वर देता हूँ, आपने इन्द्र को जीवदान दिलवाया है, इस कारण आप जीव नाम से विख्यात होंगे।।४८।। और जो यह इन्द्र को मारनेवाली अग्नि मेरे भाल नेत्र से प्रकट हुई है, इसे मैं दूर ही निक्षेप करता हूँ, जिससे यह इन्द्र को पीडित न करे।।४९।। सनत्कुमारजी बोले– इस प्रकार से भगवान् शंकरजी ने अपने माथे के नेत्र से उत्पन्न हुए अग्निमय तेज को हाथ में धारण करके क्षार समुद्र में त्याग दिया।।५०।। तब महालीला करनेवाले भगवान् रुद्र अन्तर्धान हो गये और इन्द्र तथा बृहस्पतिजी भय से मुक्त होकर परम सुख को प्राप्त हुए।।५१।। जिनके दर्शन के निमित्त जाने की इच्छा की थी, उनका दर्शन पाकर गुरु और इन्द्र प्रसन्नता से अपने स्थान को गये।।५२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

पञ्चम युद्धखण्ड़े शक्रजीवनंनाम त्रयोदशोऽध्याय:।। १३ ।।

चौदहवाँ अध्याय

व्यासजी बोले– हे सनत्कुमारजी! हे सर्वज्ञ! हे ब्रह्मपुत्र! आपको नमस्कार है, मैंने यह महात्मा शम्भुजी की अद्भुत कथा सुनी।।१।। हे तात! जिस समय शिवजी ने अपने माथे के नेत्र का वह तेज क्षारसमुद्र में ड़ाल दिया, उस समय क्या हुआ? सो आप शीघ्र कहिये।।२।। सनत्कुमारजी बोले– हे तात! हे महाभाग! आप महाअद्भुत शिवलीला को सुनिये, जिसे श्रद्धा से सुनकर भक्त योगियों की गति को प्राप्त होते हैं।।३।। जिस समय शिवजी ने अपना वह तेज क्षारसमुद्र में ड़ाल दिया, उस समय वह शीघ्र ही बालक हो गया।।४।। जहां गंगासागर का संगम हुआ है, वहां पर स्थित होकर सब लोकों को भय देनेवाला वह बालक ऊँचे स्वर से रोदन करने लगा।।५।। उसके रोने से पृथ्वी बारंबार कम्पायमान होने लगी, स्वर्ग और सत्यलोक भी उस के शब्द से बहरे हो गये।।६।। उस बालक के रोने से सब लोक व्याकुल हो गये और सब लोकपाल भी मन से व्याकुल हो गये।।७।। हे विप्रेन्द्र! बहुत कहने से क्या है? सब चराचर चलायमान हो गये। हे तात! उस शंकरजी के सुवन के रोदन से सब ब्रह्माण्ड व्याकुल हो गया।।८।। तब वे देवता और मुनि सब व्याकुल होकर लोकगुरु पितामह ब्रह्माजी के शरण में गये।।९।। वहां वे सब देवता, मुनि इन्द्र के समीप जाकर प्रणाम और स्तुति करके ब्रह्माजी से बोले।।१०।। देवता बोले– हे लोक और देवताओं के ईश्वर! हमको बड़ा भय आकर उपस्थित हुआ है, हे महायोगी! उसका नाश कीजिये, यह महाशब्द कहां से उपस्थित हुआ है?।।११।। सनत्कुमारजी बोले– लोकपितामह ब्रह्माजी इस प्रकार उनके वचन सुनकर बड़े विस्मित होकर उस स्थान पर जाने की इच्छा करने लगे।।१२।। हे तात! उस समय ब्रह्माजी सत्यलोक से उतरे और इस बात को जानने के निमित्त भूलोक पर आकर समुद्र के किनारे आये।।१३।। सब लोकों के पितामह ब्रह्माजी जब उस स्थान पर आये, तब उन्हों ने समुद्र के तट पर उस बालक को देखा।।१४।। तब विधाता को आते हुए देखकर देवरूप समुद्र ने सिर झुकाकर प्रणाम करके उस बालक को ब्रह्माजी के गोदी में दिया।।१५।। तब ब्रह्माजी विस्मय को प्राप्त हो समुद्र से बोले– हे सागर! शीघ्र कहो कि, यह अद्भुत पुत्र किस का है?।।१६।। सनत्कुमारजी बोले– ब्रह्माजी के यह वचन सुनकर समुद्र बड़ा प्रसन्न हुआ और नमस्कार तथा स्तुति करके ब्रह्माजी से बोला।।१७।। समद्र ने कहा– हे भगवन्! मुझ को अनजाने में यह बालक मिला है, मैं नहीं कह सकता कि, यह किस का है? हे सब लोकों के पति! यह गंगासागर के संगम में अकस्मात् प्रकट हुआ है।।१८।। हे

जगद्गुरो! इस बालक के जातकर्मादि संस्कार कीजिये, हे विधाता! आप इसके जातक का सब फल वर्णन कीजिये ।।१९।। सनत्कुमारजी बोले- जब सागर ने ऐसा कहा, तब सागरपुत्र ब्रह्माजी के गले में हाथ डालकर बारंबार उन्हें आकर्षित करने लगा ।।२०।। हे व्यासजी! जिस समय वह बालक ब्रह्माजी के गले को पकड़ने लगा, तब पीड़ित हुए ब्रह्माजी के नेत्रों से जल टपकने लगा ।।२१।। फिर किसी प्रकार अपने दोनों हाथों का बल लगाकर ब्रह्माजी ने उस बालक से अपना कण्ठ छुड़ाया और फिर आदर से कहा ।।२२।। ब्रह्माजी बोले- हे सागर! मैं इस तुम्हारे पुत्र का जातक के अनुसार सब फल कहता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो ।।२३।। जिस कारण से कि, इसने मेरे नेत्रों से जल निकाला है, इस कारण इसका विख्यात नाम जलन्धर होगा ।।२४।। इस समय जब कि, वह उत्पन्न होने से ही तरुण हो गया है, इस कारण वह सब शास्त्रों का पारगामी, महापराक्रमी, महा धीरजवाला, महायोद्धा, रण में दुर्मद होगा ।।२५।। और यह युद्धशास्त्र में कार्तिकेय के समान गंभीर होगा, संग्राम में सब को जीतनेवाला और सब सम्पत्ति से विराजमान होगा ।।२६।। यह बालक सब दैत्यों का अधिपति होगा और यह विष्णुजी को भी जीतनेवाला होगा, यह कही नहीं हारेगा ।।२७।। यह रुद्र को छोड़कर सब प्राणियों से अवध्य होगा, जहां से यह उत्पन्न है, वहीं जायेगा ।।२८।। सौभाग्य कोबढ़ाने वाली इसकी स्त्री पतिव्रता होगी, वह सर्वांग से सुन्दरी, परम मनोहर, प्रिय बोलनेवाली, शील का सागर होगी ।।२९।। सनत्कुमारजी बोले- ऐसा कहकर शुक्र को बुलाकर उनके हाथों से उस बालक को दैत्यों के राज्य में अभिषेक कराया और सागर को आमन्त्रण करके ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये ।।३०।। समुद्र उस बालक को देखकर प्रसन्न हुआ, उसके मुख और नेत्र खिल गये और वह प्रसन्नता से उस बालक लेकर अपने घर गया ।।३१।। और प्रसन्न होकर अनेक उपायों से उस बालक को पुष्ट करने लगा, वह सर्वांग से सुन्दर, मनोहर, बड़े तेजवाला था ।।३२।। तब सागर ने कालनेमि नामक महाअसुर को बुलाकर उसकी वृन्दा नामक कन्या को जलन्धर की भार्या के निमित्त मांगा ।।३३।। कालनेमि असुरों में बड़ा विख्यात, बुद्धिमान था, हे मुने! वह अपने कार्यसाधन में बड़ा चतुर था, उसने समुद्र की याचना को उचित समझा ।।३४।। उसने समुद्र से उत्पन्न हुए महावीर जलन्धर के निमित्त अपनी प्राणतुल्य कन्या को ब्रह्मविधान से व्याह दिया ।।३५।। उनके विवाह में उस समय महान् उत्सव हुआ, हे मुने! नद, नदी और सब असुरों को बड़ा सुख हुआ ।।३६।। स्त्री सहित पुत्र को देखकर समुद्र को भी बड़ा सुख हुआ, ब्राह्मण तथा अन्य लोगों को भी बहुत सा दान दिया गया ।।३७।। जो पाताल के रहनेवाले दैत्य पहले देवताओं ने जीते थे, अब वे निर्भय होकर भूमण्डल पर विचरण करने लगे ।।३८।। वे कालनेमि आदिक उस सागर के पुत्र के निमित्त अपनी कन्या देकर बड़े प्रसन्न हुए और देवताओं को जीतने के निमित्त

उसके आश्रित हुए।।३९।। वह भी असुर वीरों में मुख्य समुद्र का पुत्र जलन्धर नामवाला जितेन्द्रिय, बड़ी सुन्दर भार्या को प्राप्त होकर शुक्रजी के प्रभाव से राज्य करने लगा।।४०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
पञ्चम युद्धखण्डे चतुर्दशोऽध्यायः।। १४।।

*****

पन्दरहवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले- एक समय समुद्र का पुत्र जलन्धर अपनी स्त्री वृन्दा के सहित सब असुरों से सम्मान को प्राप्त होकर सभा में बैठा था।।१।। उसी स्थान में बड़ी कान्तिवाले भगवान् भृगुजी प्राप्त हुए, जो मूर्तिमान तेज के समान सब दिशाओं को प्रकाशित कर रहे थे।।२।। उन गुरुजी को आते हुए देखकर सब दैत्य और सागरपुत्र जलन्धर ने भी बड़े आदर से प्रणाम किया।।३।। तेजस्वी भार्गव ने उन सबको आशीर्वाद दिया और मनोहर आसन पर बैठे, उधर वे दैत्य भी पूर्ववत् आसन पर बैठे।।४।। तब वीर सिन्धुपुत्र जलन्धर ने अपनी सभा को देख बड़ी प्रसन्नता प्रकट की, कारण कि उसका श्रेष्ठ शासन कहीं नष्ट नहीं होता था।।५।। उस सागरपुत्र दैत्यराज ने राहु को छिन्न सिर देखकर शीघ्रता से गुरुजी से पूछा।।६।। जलन्धर बोला- हे प्रभो! हे गुरो! राहु का सिर का किसने छेद किया है! हे गुरो! आप यह वृत्तान्त यथायोग्य कहिये।।७।। सनत्कुमारजी बोले- इस प्रकार शुक्रचार्यजी ने समुद्रपुत्र के वचन सुन शिवजी के पदकमल को स्मरण करके यथार्थ वाणी से कहा।।८।। शुक्रजी बोले- हे जलन्धर! हे सब असुरों की सहायता करनेवाले महावीर! इस सम्पूर्ण वृत्तान्त को सुनो, मैं तुम से यथायोग्य कहता हूँ।।९।। पहले विरोचन का पुत्र हिरण्यकश्यप का पोता बलि बड़ा धर्मात्मा राजा हुआ था।।१०।। उससे सब देवता पराजित होकर भगवान् विष्णुजी की शरण में गये और स्वार्थ के साधन करनेवाले ब्रह्मादिकों ने अपना वृत्तान्त कथन किया।।११।। उन की आज्ञा से देवताओं ने दैत्यों के साथ सन्धी कर ली। हे तात! छलकर्म में विचक्षण वे इस कार्य में चतुर हैं।।१२।। तब देवता और दैत्यों ने अमृत के निमित्त समुद्र मन्थन किया और विष्णुजी ने उन देवता और दैत्यों की सहायता की।।१३।। उस समय देवताओं ने रत्नों को स्वयं हरण किया और छल से अमृत भी देवताओं ने ही हरण किया।।१४।। उस समय विष्णुजी की सहायता पाकर और अमृत पान से बली होकर इन्द्रादिक देवताओं ने दैत्यों को परास्त

कर दिया ।।१५।। जिस समय देवसभा में जाकर यह राहु देवरूप से अमृत पान करने लगे, उस समय इन्द्र के पक्षपाती भगवान् विष्णुजी ने राहु के सिर का छेद किया ।।१६।। सनत्कुमारजी बोले- इस प्रकार जब शुक्राचार्यजी ने राहु के सिर छेदन और अमृत के निमित्त समुद्र मन्थन का वृत्तान्त कहा ।।१७।। तथा रत्नों का देवताओं का ग्रहण कर लेना, अमृत का देवताओं को ही पीने को मिलना, जब यह सब विस्तार से ।।१८।। प्रतापवान् जलन्धर ने सुना, तब अपने पिता का मन्थन सुनते ही उसके नेत्र लाल हो गये और बड़ा क्रोध किया ।।१९।। परन्तु उसने घस्मर नामक एक दूत को बुलाकर गुरुजी का कहा हुआ सब वृत्तान्त उस को सुनाया ।।२०।। और उस दूत को इन्द्र के निकट बड़े सम्मान और अभय देकर भेजा, कारण कि वह दूत बड़ा चतुर था ।।२१।। वह बुद्धिमान् दूत बड़ी शीघ्रता से इन्द्रपुरी को गया और वह जलन्धर का दूत सब देवताओं से युक्त ।।२२।। उस इन्द्र की सुधर्मा सभा में प्राप्त होकर बड़े गर्व से देवताओं के अधिपति इन्द्र से बोला ।।२३।। घस्मर बोला- सागर का पुत्र जलन्धर सब दैत्यों का अधिपति है, महाप्रतापी, महाबली है, शुक्रजी उसके सहायक हैं ।।२४।। मैं घस्मर नामवाला उसका दूत हूँ, यथार्थ में घस्मर (भक्षक) नहीं हूँ, उस वीर का भेजा हुआ आपके पास आया हूँ।।२५।। बड़ी बुद्धिवाले जलन्धर की आज्ञा इस समय तक कहीं नहीं रुकी है, उसने सब दैत्यों के शत्रुओं को जीत लिया है, उसने जो कहा है, सो आप सुनिये ।।२६।। जलन्धर ने कहा है, आपने किस कारण मेरे पिता को पर्वत डालकर मन्थन किया, हे देवताओं में अधम! आपने मेरे पिता के सब रत्नों को किस प्रकार से ग्रहण किया है ।।२७।। यह आपने अच्छा नहीं किया, उन रत्नों को शीघ्र मुझे लौटा दो और सब देवताओं सहित मेरी शरण में आकर प्राप्त हो ।।२८।। हे सुरों में अधम! ऐसा न करने से आपको मुझ से बड़ा भय आकर प्राप्त होगा ।।२९।। सनत्कुमारजी बोले- यह दूत के वचन सुनकर इन्द्र बड़ा विस्मित हुआ, भय और रोष के सहित इन्द्र बोला ।।३०।। जब पर्वत मेरे भय से पलायन करने लगे, तब सागर ने अपने में उनको शरण दी और उस सागर ने मेरे शत्रु दैत्यों की रक्षा की है ।।३१।। इस कारण मैंने उसके सम्पूर्ण रत्नों का हरण कर लिया है, मुझ से द्रोह करनेवाले कभी सुख से नहीं बैठ सकते, यह मैं सत्य ही कहता हूँ।।३२।। पहले एक सागरपुत्र शंख नामक असुर ने मुझसे विरोध किया था और मूढ़तावश उसने महात्माओं का संग त्याग कर दिया ।।३३।। उस पापबुद्धिवालें को मेरे अनुज विष्णुजी ने संहार किया, वह सागरपुत्र बड़ा हिंसक, साधुओं को दुःखदाई, पापी था ।।३४।। इस कारण हे दूत! तुम बहुत शीघ्र जाकर उस जलन्धर से सागर मथने के कारण को तत्त्व से सुना देना ।।३५।। सनत्कुमारजी बोले- जब इस प्रकार इन्द्र ने जलन्धर के पास उस बुद्धिमान् दूत को बिदा किया, तब वह घस्मर बहुत शीघ्र ही जलन्धर के पास गया ।।३६।। तब

बुद्धिमान् दूत ने वहां जाकर उस दैत्यराज से इन्द्र के कहे सम्पूर्ण वचनों को निवेदन कर दिया ।।३७।। वह सुनते ही क्रोध से दैत्यपति के होंठ फड़कने लगे और शीघ्र ही उसने सब देवताओं को जीतने का उद्योग किया ।।३८।। उस उद्योग में उस दैत्यराज के समीप दिशा पातालादि स्थानों से कोटि-कोटि दैत्य आकर प्राप्त हुए ।।३९।। तब शुम्भ निशुम्भ आदि कोटियों सेनापतियों को साथ लेकर सागरपुत्र महाप्रताप के साथ चला ।।४०।। और सब सेना के साथ शीघ्र ही इन्द्रपुरी में पहुँचा, जलन्धर ने शंख बजाया और सब वीर सिंहनाद करने लगे ।।४१।। वह दैत्य सब वीरों सहित सिंहनाद करता हुआ इन्द्रपुरी के नन्दनवन में ठहरा ।।४२।। उसकी पुरी को घेर कर स्थित हुई तथा उसके पास बड़ी सेना देखकर देवता भी अमरावती पुरी से युद्ध के निमित्त चले ।।४३।। तब मूसल, परिघ, बाण, गदा, परशु, शक्तियों से देवता और दैत्यों का महायुद्ध होने लगा ।।४४।। परस्पर धावमान होते हुए एक दूसरे पर प्रहार करने लगे, क्षणमात्र में दोनों सेना रुधिर से क्षत-विक्षत हो गईं ।।४५।। हाथी, घोड़े, रथ, पैदलों के गिरने गिराने से वह रणभूमि सन्ध्याकाल के मेघसमूहों के समान व्याप्त हुई ।।४६।। उस युद्ध में मरते हुए दैत्यों को शुक्रजी जीवित करने लगे, वह मृतसंजीवनी विद्या से मन्त्र पढ़कर जल छिड़कते थे ।।४७।। और द्रोणाचल पर्वत से दिव्य औषधी ला कर बृहस्पतिजी मृत देवताओं को जीवित करने लगे ।।४८।। जब युद्ध में देवताओं को पुनर्जीवित होते देखा, तब जलन्धर बड़े क्रोध से शुक्राचार्यजी से कहने लगा ।।४९।। जलन्धर बोला- मुझसे हत हुए यह देवता फिर कैसे जीवित होते हैं? मैंने सुना है, यह संजीविनी विद्या आपके सिवाय कहीं अन्यत्र नहीं है ।।५०।। सनत्कुमारजी बोले- इस प्रकार उस बुद्धिमान् सागरपुत्र के वचन सुनकर, प्रसन्न होकर शुक्रजी जलन्धर से बोले ।।५१।। शुक्रजी बोले- अंगिरा ऋषि द्रोणाचल से दिव्य औषधी लाकर उन्हें जीवित करते हैं, हे तात! यह मेरे वचन सत्य जानो ।।५२।। हे तात! जो तुम जीतने की इच्छा करते हो, तो मेरे इस श्रेष्ठ वचन सुनो, तुम अपनी भुजाओं से द्रोण पर्वत को उखाड़ ड़ालो ।।५३।। सनत्कुमारजी बोले- जब गुरु भार्गवजी ने ऐसा कहते ही वह दैत्य तुरन्त वहां गया, जहां वह पर्वतराज था ।।५४।। तब उस द्रोणाचल को भुजाओं से उखाड़कर शीघ्र ही सागर में ड़ाल दिया, शिवजी के तेज से ऐसा होना विचित्र बात नहीं है ।।५५।। वह महावली सिन्धुपुत्र उस महासमर में फिर आया और उसने बड़ा बल दिखाते हुए, अनेक अस्त्रों से देवताओं का संहार किया ।।५६।। तब देवताओं को मृतक देखकर गुरु द्रोणाचल पर गये, परन्तु वहां जाकर देवपूजित पर्वत को न देखा ।।५७।। दैत्य से उस पर्वत को हरा हुआ जानकर बृहस्पतिजी भय से व्याकुल हुए और आकर व्याकुल मन से देवताओं से कहा ।।५८।। गुरु बोले- हे देवताओ! इस समय सब भाग जाओ, द्रोणाचल दिखाई नहीं देता, विदित होता है, कि सागरपुत्र ने उसे नष्ट कर दिया ।।५९।।

यह जलन्धर दैत्य इस समय नहीं जीता जायेगा, यह रुद्र के अंश से उत्पन्न सम्पूर्ण देवताओं को मारनेवाला है ।।६०।। हे देवताओ! मैंने इसका प्रभाव जान लिया है, जिस प्रकार से यह स्वयं उत्पन्न हुआ है, जो इन्द्र ने शिवजी का अपमान किया था, उसीका यह फल है, सो स्मरण करें ।।६१।। सनत्कुमारजी बोले– सब देवता इस प्रकार से सुराचार्यजी के वचन सुनकर जय की आशा छोड़कर व्याकुल हो गये ।।६२।। इसी अवसर में वे दैत्यराज से सब प्रकार ताड़ित होकर धैर्य त्याग कर दशों–दिशाओं में इन्द्र के साथ पलायन कर गये ।।६३।। उस सागर के पुत्र ने इस प्रकार से देवताओं को भागते हुए देखकर शंख, भेरी, जय का शब्द करते हुए अमरावती में प्रवेश किया ।।६४।। जब जलन्धर अमरावती में प्रविष्ट हुआ, तब देवता उनसे तापित होकर मेरु पर्वत की गुफाओं में निवास करने लगे ।।६५।। हे मुने! तब जलन्धर इन्द्रादि देवताओं के सब अधिकारों पर शुम्भादिक दैत्याधिपतियों को पृथक्–पृथक् स्थापित करके स्वयं मेरु पर्वत की गुफाओं में देवताओं की खोज में गया ।।६६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

पञ्चम युद्धखण्डे पंचदशोऽध्यायः ।। १५ ।।

*****

सोलहवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले– इन्द्रादिक देवताओं ने फिर उस दैत्य को वहां आते हुए देखा, तब भय से कम्पित होकर वहां से भी शीघ्र ही पलायमान किया ।।१।। प्रजापति को आगे करके सब देवता वैकुण्ठ पर गये और प्रजापति सहित सब देवता प्रणाम कर स्तुति करने लगे ।।२।। देवता बोले– हे हृषीकेश! हे महाबाहो! हे भगवन्! हे मधुदैत्य को मारनेवाले! हे सब दैत्यों को मारनेवाले, देवेश! आपको प्रणाम है ।।३।। हे विष्णुजी! आपने मत्स्यावतार लेकर वेदों का उद्धार किया, आपको प्रणाम है, आपने सत्यव्रतवाले राजा सत्यव्रत को प्रलय के जल में विहार कराया है ।।४।। जिस समय देवता और दैत्य मन्दर पर्वत को समुद्र में ड़ालकर सागर मन्थन को उद्यत हुए, उस समय आपने कूर्मरूप धारण करके उस पर्वत को धारण किया, आपको नमस्कार है ।।५।। हे भगवन्! आपके यज्ञवाराहरूप को नमस्कार है, आप अपनी ड़ाढ़ के ऊपर जनों के आधारवाली पृथ्वी को धारण करते हो, आपको नमस्कार है ।।६।। हे विभो! आपने ब्राह्मण शरीर धारण करके उपेन्द्र वामनरूप होकर दैत्यराज बलि को छला, आपको प्रणाम है ।।७।। क्षत्रियों को नष्ट करनेवाले परशुराम अवतार को नमस्कार है, यह अपने माता के हित के

लिये सब किया, क्रोध करके आपने असत्पुरुषों पर प्रहार किया ।।८।। रामलोक के रमानेवाले मर्यादा पुरुषोत्तम, रावण का विनाश करनेवाले सीतापति, आपको नमस्कार है ।।९।। गूढ़ज्ञान सम्पन्न परमात्मा कृष्णरूप, राधा से विहार करनेवाले तथा अनेक लीला करनेवाले, आपको प्रणाम है ।।१०।। गूढ़ देहधारी, वेद की निन्दा करनेवाले योगाचार्य जैन बौद्धरूप लक्ष्मीपति, आपको नमस्कार है ।।११।। म्लेच्छों का नाश करनेवाले कल्किरूप अनन्त शक्तिसम्पन्न सद्धर्म को स्थापित करनेवाले, आपको नमस्कार है ।।१२।। देवहूती में कपिलरूप से उत्पन्न होनेवाले, सांख्ययोग के वक्ता महात्मा सांख्याचार्य, आप प्रभु को नमस्कार है ।।१३।। परमहंसरूप से आत्मा को प्रसन्न करनेवाले, ज्ञान को विधाता के निमित्त कथन करनेवाले ज्ञानरूप, आपको नमस्कार है ।।१४।। वेदव्यासरूप से वेदों के विभाग करनेवाले, सब लोकों के हितकारी पुराण रचनेवाले, आपको नमस्कार है ।।१५।। इस प्रकार मत्स्यादिरूप से भक्तों का हित करनेवाले तथा उत्पत्ति, पालन और प्रलय करनेवाले ब्रह्मरूप, आपको नमस्कार है ।।१६।। अपने दासों के दुःख दूर करनेवाले, सुखद, शुभस्वरूप, पीताम्बरधारी, गरुड़ पर स्थित होनेवाले, आपको, नमस्कार है, आप ही सब क्रियाओं के एक कर्ता हो, शरणागत रक्षक, आपको प्रणाम है ।।१७।। आप दैत्यों से सन्तापित जनों के दुःख दूर करने के लिये वज्र रूप हो, शेषशय्या पर शयन करनेवाले, सूर्य, चन्द्रमारूप नेत्रवाले, आपको नमस्कार है ।।१८।। हे कृपासागर रमानाथ! हम आपकी शरण में आये हैं, हमारी रक्षा कीजिये, जलन्धर ने सब देवताओं को निकाल दिया है।।१९।। अपने स्थानों से सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि को निकाल दिया है, पाताल से धर्मराज और नागराज को निकाल दिया है ।।२०।। वे देवता मनुष्यों के समान मारे-मारे फिरते हैं, उनकी शोभा नहीं होती, हम आपकी शरण में प्राप्त हुए हैं, आप दैत्य के वध का विचार कीजिये ।।२१।। सनत्कुमारजी बोले- भगवान् मधुसूदनजी ने इस प्रकार से देवताओं के दीन वचन सुनकर, करुणा करते हुए, मेघ के समान गंभीर वाणी से कहा ।।२२।। विष्णुजी बोले- हे देवताओ! भय त्याग करो, मैं युद्ध में जाऊंगा और जलन्धर दैत्य से युद्ध करूंगा ।।२३।। यह वचन कहकर दैत्यों के नाशक विष्णुजी ने खिन्न मन से उठकर भक्तवत्सलता के कारण कृपा करके शीघ्र ही गरुड़ पर आरोहण किया ।।२४।। जब इस प्रकार से देवताओं के साथ अपने प्राणपति को जाते हुए देखा, तब नेत्रों में जल भर कर समुद्र से उत्पन्न हुई लक्ष्मीजी भगवान् से बोली ।।२५।। लक्ष्मी बोली- यदि मैं आपकी प्रिय हूं, तो हे कृपानाथ! आप मेरे भ्राता को युद्ध में कैसे मारोगे? ।।२६।। विष्णुजी बोले- मैं जलन्धर दैत्य के साथ युद्ध में पराक्रम करूंगा, देवताओं ने स्तुति की है, इस कारण शीघ्र ही युद्ध में जाऊंगा ।।२७।। रुद्रांश से उत्पन्न होने और ब्रह्माजी के वरदान तथा तुम्हारी प्रीति से मैं अपने हाथ से जलन्धर को नहीं

मारूंगा।।२८।। सनत्कुमारजी बोले- यह कहकर शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण करनेवाले विष्णुजी गरुड़ पर चढ़कर बड़े वेग से इन्द्रादि देवगणों के सहित युद्ध में गये।।२९।। और बहुत ही शीघ्र जलन्धर के समीप प्राप्त हुए, उस समय विष्णुजी के तेज से दर्पित होकर देवता सिंहनाद करने लगे।।३०।। उस समय अरुण के छोटे भ्राता गरुड़जी के पंखों की पवन से पीड़ित होकर दैत्य इस प्रकार भ्रमण करने लगे, जैसे वायु से ताड़ित होकर मेघ घूमते हैं।।३१।। तब वात से पीड़ित हुए दैत्यों को जलन्धर ने देखकर बड़े क्रोध से वचन कहकर विष्णुजी पर आक्रमण किया।।३२।। उसी समय देवता भी हर्ष को प्राप्त होकर युद्ध करने लगे, वे महाबली उस समय विष्णुजी के तेज से पुष्ट हो गये थे।।३३।। उस समय देवताओं की सेना को युद्ध के निमित्त उद्युत देखकर जलन्धर ने युद्ध में दुर्मद दैत्यों को आज्ञा दी।।३४।। जलन्धर ने कहा- हे श्रेष्ठ दैत्यो! तुम महायुद्ध करो, इस समय यह कायर इन्द्रादिक देवता प्रबल हुए जाते हैं।।३५।। मौर्यवंशी एक लक्ष और धूम्र नामक सौ संख्यावाले असुर, एक कोटि संख्यावाले इतने ही कालिकेय असुर।।३६।। कालक, दौर्हद, कंकन यह एक लक्ष संख्या में तथा दूसरे भी दैत्य मेरी आज्ञा से युद्ध को चलें।।३७।। बहुत सेना से संयुक्त होकर सब चलें और अनेक अस्त्र-शस्त्र से संयुक्त संशय रहित निर्भयता से युद्ध करें।।३८।। हे शुम्भ-निशुम्भ सेनापतियो! यह देवता युद्ध में कातर हैं, क्षणमात्र में इन तुच्छों का तुम महाबली विनाश कर दो।।३९।। सनत्कुमारजी बोले- इस प्रकार से युद्धविशारद जलन्धर ने जब दैत्यों को आज्ञा दी, तब वे सब चतुरंग बल से आश्रित होकर युद्ध करने लगे।।४०।। गदा, तीक्ष्ण बाण, शूल, पट्टिश, तोमर, फरशा, शूल इनसे परस्पर संग्राम करने लगे।।४१।। महाबलसंयुक्त होकर अनेक आयुधों से परस्पर प्रहार करने लगे, इधर महाबली देवता विष्णुजी के बल से दर्पित हो गये, वे तीक्ष्ण बाणों से युद्ध करते हुए सिंहनाद करने लगे।।४२।। कोई तीक्ष्ण बाणों से, कोई मूसल तोमरों से, कोई फरशे और शूल से परस्पर प्रहार करने लगे।।४३।। इस प्रकार देवताओं का और दैत्यों का महादारुण संग्राम उपस्थित हुआ, जो मुनि और सिद्धों को भय देनेवाला था।।४४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

पञ्चम युद्धखण्डे देवयुद्धवर्णनं नाम षोड़शोऽध्यायः।। १६ ।।

*****

सतरहवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले– तब महाबली दैत्य शूल, फरशे और पट्टिश लेकर भय से व्याकुल मनवाले सब देवताओं से युद्ध करने लगे ।।१।। दैत्यों के आयुधों से विद्ध होकर सब इन्द्रादिक देवता भय से व्याकुल होकर युद्ध से भागने लगे ।।२।। जब विष्णुजी ने देवताओं को भय से व्याकुल देखा, तब गरुड़ पर चढ़कर युद्ध करने चले ।।३।। उस समय वह भक्तों के अभय करनेवाले सुदर्शनचक्र हाथ में लिये उनकी कान्ति से शोभायमान हाथोंवाले बड़ी शोभा को प्राप्त हुए ।।४।। शंख, खड्ग, गदा, शार्ङ्गधारी, कठोर अस्त्रधारी, महाक्रोध से युक्त होकर महावीर सब प्रकार के युद्ध करने में चतुर भगवान् ने ।।५।। शार्ङ्ग नामक धनुष को चढ़ाकर शब्द किया, हे मुने! उसके नाद से समस्त त्रिलोकी पूर्ण हो गई ।।६।। शार्ङ्गधनुष से छूटे हुए बाणों से सहस्रों दैत्यों के सिर क्रोध करके भगवान् ने काट डाले ।।७।। इसी प्रकार गरुड़जी के पंखों की पवन से पीड़ित होकर आकाश में पवन द्वारा उड़ाये हुए मेघों के समान दैत्य घूमने लगे ।।८।। तब उस महादैत्य जलन्धर ने दैत्यों को वात पीड़ित देखकर देवताओं को भय देने के निमित्त महाक्रोध किया ।।९।। दैत्यों को मर्दित होते हुए देखकर उसके ओठ फड़कने लगे और वह वीर बड़े वेग से हरि के साथ युद्ध करने के लिये चला ।।१०।। उसने देवता तथा असुरों को भय उपजानेवाला बड़ा नाद किया, उस समय दैत्याधिपति के शब्द करने से सुननेवालों के कान बहरे हो गये ।।११।। जिस समय जलन्धर दैत्य ने महानाद किया, उस समय सम्पूर्ण जगत् कम्पित हो उठा ।।१२।। उस समय विष्णुजी और दैत्येन्द्र का महायुद्ध होने लगा, दोनों के बाणों से आकाश में अवकाश न रहा ।।१३।। हे मुने! जिस समय उनका परस्पर संग्राम हुआ, उस समय देवता, असुर, ऋषि और सिद्धों को विस्मय हुआ ।।१४।। विष्णुजी ने अपने बाणों के प्रहार से उस दैत्य के ध्वजा, छत्र, धनुषबाण काटकर एक बाण से उसके हृदय में प्रहार किया ।।१५।। उसी समय दैत्य ने शीघ्रता से गदा हाथ में लेकर उसे गरुड़ के सिरपर मारकर उसे भूमि पर गिरा दिया ।।१६।। और महाक्रोध करके, होंठ फड़कते हुए, उस दैत्य ने एक तीक्ष्ण त्रिशूल विष्णुजी के हृदय में प्रहार किया ।।१७।। विष्णुजी ने हँसते हुए उसकी गदा को खड्ग से काट दिया और दैत्यारि ने शार्ङ्गधनुष चढ़ाकर बड़े तीक्ष्ण बाणों से उसे विद्ध किया ।।१८।। उस समय असुरारि विष्णुजी ने और भी एक भयंकर तीक्ष्ण बाण लेकर महाक्रोध से उस जलन्धर को मारा ।।१९।। महाबली दैत्य ने उस बाण को आते हुए देखकर उस बाण को छेदकर शीघ्रता से अपने बाण से विष्णुजी के हृदय में प्रहार किया ।।२०।। उस समय महाबाहु महावीर केशवजी ने भी उसके छोड़े हुए

बाण को अपने बाणों से तिल के समान काटकर बड़ा नाद किया ।।२१।। फिर क्रोध से कम्पित होकर उसने दूसरे बाण को चढ़ाया, उसे भी विष्णुजी ने काट ड़ाला ।।२२।। फिर वासुदेवजी ने उस दैत्य का नाश करने के निमित्त क्रोध करके धनुष पर बाण चढ़ाकर सिंहनाद किया ।।२३।। उस समय दैत्येन्द्र जलन्धर भी क्रोध से अपने होंठों को काटते हुए अपने बाण से विष्णुजी के वैष्णव धनुष का छेद किया ।।२४।। और फिर तीक्ष्ण बाणों से मधुसूदन पर प्रहार किया, वह उग्र पराक्रमवाला देवताओं को भय देनेवाला था ।।२५।। जब लोक की रक्षा करनेवाले भगवान् केशवजी का धनुष छेदित हुआ, तब जलन्धर का नाश करने के लिये उन्होंने अपनी गदा ग्रहण की ।।२६।। जब वह अग्नि के समान प्रकाशमान गदा भगवान् ने उसके ऊपर प्रहार की, वह अमोघ गतिवाली गदा उसके देह में बड़ी शीघ्रता से लगी ।।२७।। उस गदा के लगने से वह महादैत्य कुछ भी चलायमान न हुआ, वह मदोन्मत्त महादैत्य ने उसे पुष्प की माला के समान माना ।।२८।। तब युद्ध में दुर्मद जलन्धर ने महाक्रोध कर देवताओं को भय देनेवाला अग्नि के समान एक त्रिशूल हरि के ऊपर प्रहार किया ।।२९।। तब विष्णुजी ने शिवजी के चरणकमल स्मरण कर नन्दन नामक खड्ग से उसके त्रिशूल को छेद ड़ाला ।।३०।। त्रिशूल के छिन्न होते ही दैत्येन्द्र ने बड़े क्रोध से झपटकर दृढ़ मुष्टि से विष्णुजी के हृदय पर प्रहार किया ।।३१।। महावीर विष्णुजी ने भी उस व्यथा को कुछ न गिनकर उसके हृदय पर दृढ़ मुष्टि से प्रहार किया ।।३२।। तब उन दोनों महाबलियों का बाहुयुद्ध होने लगा, बाहु, मुष्टि, जानुओं के शब्दों से पृथ्वी शब्दायमान होने लगी ।।३३।। इस प्रकार उस असुर के साथ बहुत समय तक युद्ध करके भगवान् बहुत विस्मित हो गये और कुछ परिश्रम माना ।।३४।। तब माया करनेवाले, माया जाननेवालों में श्रेष्ठ भगवान् उस दैत्यराज से मेघ गंभीरवाणी से बोले ।।३५।। विष्णुजी बोले– हे रणदुर्मद दैत्यश्रेष्ठ ! तुम धन्य हो, जो तुम महायुद्ध से तथा श्रेष्ठ आयुधों से भी भय को प्राप्त न हुए ।।३६।। हमने इन आयुधों से बहुत से दैत्यों का संहार किया है, महासंग्राम में इन्हीं आयुधों से छिन्न होकर बहुत से मृत्यु को प्राप्त हुए हैं ।।३७।। हे दैत्य ! मैं इस तुम्हारे युद्ध से प्रसन्न हूँ, मैंने चराचर त्रिलोकी में तेरे समान कोई वीर नहीं देखा ।।३८।। हे दैत्यश्रेष्ठ ! मैं तेरे विक्रम से प्रसन्न हुआ हूँ, जो तेरी इच्छा हो, सो वर मांग, जो तेरे मन में हो, वह अदेय वर भी मैं तुमको दूंगा ।।३९।। सनत्कुमारजी बोले– इस प्रकार महामायावाले विष्णुजी के यह वचन सुनकर महाबुद्धि दैत्यराज जलन्धर बोला ।।४०।। जलन्धर बोला– हे भाव के ज्ञाता, कल्याणमय ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो, तो यह वर दीजिये, कि आप मेरी भगिनी के सहित तथा कुटुम्ब के सहित मेरे घर में निवास कीजिये ।।४१।। सनत्कुमारजी बोले–उस महादैत्य के इस प्रकार वचन सुनकर, कुछ खेदित होकर देवेश विष्णुजी ने कहा 'ऐसा ही होगा' ।।४२।।

तब वहां विष्णुजी ने सब देवताओं सहित जलन्धर नाम पुर में लक्ष्मी सहित जाकर निवास किया ।।४३।। तब जलन्धर अपनी बहिन लक्ष्मी और देवताओं सहित विष्णुजी को वहां आये हुए देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ ।।४४।। और जलन्धर ने देवताओं के अधिकार में दानवों के स्थान पर बड़ी प्रसन्नता से फिर पृथ्वी पर आगमन किया ।।४५।। वह सागरनन्दन देवता, गन्धर्व, सिद्ध जनों के पास जो कुछ रत्न थे, उन्हें लेकर स्थित हुआ ।।४६।। महाबली जलन्धर महाबली निशुम्भ को पाताल में स्थापित करके वहां से शेषादि को भूतल में ले आया ।।४७।। देव, गन्धर्व, सिद्ध, सर्प, राक्षस, मनुष्य इन सबको अपने पुर में लाकर तीनों भुवनों का शासन करने लगा ।।४८।। इस प्रकार जलन्धर सब देवताओं को अपने वश में करके धर्म से और सुपुत्रों के समान प्रजा का पालन करने लगा ।।४९।। उसके धर्मराज्य में रोगी, दुःखी, दुबला और दीन दिखाई नहीं देता था ।।५०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

पञ्चम युद्धखण्डे सप्तदशोऽध्यायः ।। १७ ।।

*****

अठारहवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले– हे मुनीश्वर! इस प्रकार उस महाअसुर के धर्मपूर्वक शासन करने पर भ्रातृभाव से देवता दुःखी हुए ।।१।। वे सब देवता दुःखी होकर शिवजी की शरण में गये, उन देव देव शंकर प्रभु को मन से ही ध्यान किया ।।२।। और महेश्वरजी भगवान् को इष्ट स्तुतियों से प्रसन्न करने लगे, अपने दुःख के निवृत्ति के निमित्त वे सब मनोरथ देनेवाले भक्तवत्सल को प्रसन्न करने लगे ।।३।। भक्तों को सब मनोरथ देनेवाले महादेवजी ने नारदजी को बुलाकर देवकार्य करने की इच्छा से उनको वहां भेजा ।।४।। तब शिवजी के भक्त ज्ञानी देवमुनि सत्पुरुषों की गति शिवजी की आज्ञा से देवताओं का हित करने के निमित्त शिवजी के पुर में गये ।।५।। वे इन्द्रादिक सब देवता व्याकुल थे, वे नारदमुनिजी को आते हुए देखकर शीघ्रता से उठकर खड़े हो गये ।।६।। और प्रणाम करके प्रीतिपूर्वक मुनि को आसन दिया और इन्द्रादिक देवता प्रीति से उत्कण्ठापूर्वक मुनि को देखने लगे ।।७।। सुख से आसन पर बैठे हुए मुनि को प्रणाम करके, वे इन्द्रादिक दीन होकर नारदजी से पूछने लगे ।।८।। देवता बोले– हे मुनिश्रेष्ठ! आप शंकरजी के प्रिय हो, कृपा करके हमारे दुःख सुनिये और सुनकर हमारे दुःख का नाश कीजिये ।।९।। जलन्धर दैत्य ने देवताओं को बड़ा कष्ट दिया है, वह हमारा स्वामी बना है, हम अपने स्थान से तथा अधिकारों से भ्रष्ट हुए हैं, इस कारण

दुःखी और व्याकुल हुए हैं।।१०।। उसने सूर्य, चन्द्र, अग्नि, लोकपाल और धर्मराज को उनके स्थानों से निकाल दिया है तथा दूसरे लोकपालों की भी यही दशा की है।।११।। उस महाबली ने सब देवताओं को पीड़ित किया है, हम बड़े दुःखी होकर आपकी शरण में आये हैं।।१२।। सब देवताओं का मर्दन करनेवाले उस महाबली महादैत्य जलन्धर ने सब देवताओं को अपने वश में करके भगवान् विष्णुजी को भी वशीभूत कर लिया है।।१३।। वर के कारण भगवान् उसके वशीभूत होकर उसके घर में निवास करते हैं, जो हमारा स्वार्थ सिद्ध करनेवाले, वे विष्णुजी लक्ष्मी के सहित उसके घर में निवास करते हैं।।१४।। हे महामतिवाले! आप जलन्धर के विनाश के निमित्त यत्न कीजिये, हमारे सब कार्य सिद्ध करने के लिये आप दैववश से प्राप्त हुए हो।।१५।। सनत्कुमारजी बोले- नारदजी इस प्रकार से उन देवताओं के वचन सुनकर कृपा करके उन देवताओं को समझाते हुए बोले।।१६।। नारदजी बोले- हे देवताओ! मैं जानता हूँ, आप दैत्यराज से पराजित हुए हो, आप दुःखी, पीड़ित और अपने स्थानों से निकाले हुए हो।।१७।। इसमें सन्देह नहीं, मैं अपनी शक्ति से आपका कार्य करूंगा, आपने बड़ा दुःख पाया है, मैं आपके अनुकूल हूँ।।१८।। सनत्कुमारजी बोले- मुनिश्रेष्ठ ने यह कहकर उन दानवों के प्रिय के निकट जाने की इच्छा की और सब देवताओं को समझाकर जलन्धर की सभा में गये।।१९।। जलन्धर ने देवर्षि नारदजी को देखते ही उठकर परमभक्ति से मुनिश्रेष्ठ को आसन दिया।।२०।। उनको विधिपूर्वक पूजकर दानवराज बड़े विस्मय को प्राप्त हो हँसते हुए मुनिश्रेष्ठ नारदजी से बोला।।२१।। जलन्धर बोला- हे ब्रह्मन्! आप कहां से आये हो? कहिये कहीं आपने कुछ देखा? हे मुनिराज! आप जिस निमित्त यहां आये हो, सो आज्ञा दीजिये।।२२।। सनत्कुमारजी बोले- इस प्रकार उस दैत्येन्द्र के वचन सुनकर वह महामुनि नारदजी प्रसन्न होकर जलन्धर से बोले।।२३।। नारदजी बोले- हे सब दानव और दैत्यों के अधिपति महाबुद्धिमान् जलन्धर! आप धन्य हो, हे सब लोकों के अधिपति! रत्नों के भोक्ता आप ही हो।।२४।। हे दैत्यश्रेष्ठ! आप मेरे आगमन का कारण सुनिये, जिस निमित्त मैं यहां आया हूँ, वह मैं सब कहता हूँ।।२५।। हे दैत्यराज! मैं अपनी इच्छा से ही कैलास पर्वत पर गया, जहां दश सहस्र योजनों में कल्पवृक्षों का वन है।।२६।। वहां सैकड़ों कामधेनु हैं, वह चिंतामणि से प्रकाशमान है, जो सब ओर से सुवर्णमय, परम दिव्य और सब प्रकार से अद्भुत शोभावाला है।।२७।। मैंने वहां पार्वती के साथ स्थित हुए शंकरजी को देखा, जो सर्वांग से सुन्दर, गौरवर्ण, त्रिनेत्र, माथे पर चन्द्रमा को धारण किये हैं।।२८।। यह देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, कहीं त्रिलोकी में ऐसी समृद्धि है वा नहीं?।।२९।। हे दैत्येन्द्र! उसी समय मुझे आपकी समृद्धि का स्मरण हुआ, उसे देखने की इच्छा से मैं आपके यहां आया हूँ।।३०।। सनत्कुमारजी बोले- दैत्यपति जलन्धर ने यह बात नारदजी से सुनकर आदर से अपनी

सब समृद्धि उन्हें दिखाई ।।३१।। ज्ञानी नारदजी ने वह सब देखकर देवकार्य साधन करने की इच्छा से तथा प्रभु शंकरजी की प्रेरणा से जलन्धर से कहा ।।३२।। नारदजी बोले– हे वीर! इसमें सन्देह नहीं कि, आपकी बड़ी समृद्धि है, आप त्रिलोकी के पति हो, ऐसा होना कोई विचित्र बात नहीं है ।।३३।। मणिरत्नों के ढ़ेर, हाथी, घोड़े, समृद्ध और सब प्रकार के रत्न आपके घर में शोभा पाते हैं ।।३४।। इन्द्र से तो आप हाथियों में श्रेष्ठ ऐरावत ले आये हैं; हे महावीर! अश्वरत्न सूर्य का उच्चैःश्रवा घोड़ा आपके पास है ।।३५।। कल्पवृक्ष और कुबेर की निधि आपके यहां विद्यमान हैं, आप ब्रह्माजी का हंसयुक्त विमान ले आये हो ।।३६।। हे दैत्यराज! इस प्रकार जो दिव्यरत्न द्युलोक, पृथ्वी और पाताल में हैं, हे दैत्यराज! वे सब आपके घर में विद्यमान हैं ।।३७।। मैं अनेक प्रकार से सम्पूर्ण आपके इस ऐश्वर्य को देखकर जो कि गज, अश्वादि से शोभित है, बड़ा प्रसन्न हूँ ।।३८।। परन्तु हे जलन्धर! आपके यहां कोई स्त्रीरत्न नहीं है, इस कारण आपको स्त्रीरत्न ग्रहण करना चाहिये ।।३९।। हे जलन्धर! जिसके यहां सम्पूर्ण रत्न हों और स्त्रीरत्न न हो, तो उनकी शोभा नहीं होती और सब व्यर्थ विदित होते हैं ।।४०।। सनत्कुमारजी बोले– महात्मा नारदजी के इस प्रकार के वचन सुनकर काम से व्याकुल होकर दैत्यराज बोला ।।४१।। जलन्धर बोला– हे देवर्षि नारदजी! हे महाप्रभो! आपको नमस्कार है, यह आप कहिये, इस समय श्रेष्ठ जायारत्न कहां है?।।४२।। हे ब्रह्मन्! ब्रह्माण्ड में या जहां कहीं वह होगा, मैं सत्य–सत्य कहता हूँ; उसे आपके वचन से ले आऊंगा ।।४३।। नारदजी बोले– अति पवित्र, सब समृद्धि से सम्पन्न कैलास पर्वत पर योगी का रूप धारण करके दिगम्बर शंकरजी विद्यमान हैं ।।४४।। उनकी भार्या बड़ी मनोहर, सब लक्षणों से लक्षित, वह सर्वांग सुन्दरी पार्वती बहुत ही मनोहर है ।।४५।। इस प्रकार का दूसरे में न होनेवाला रूप मैंने कहीं नहीं देखा, वह कुतूहल से भरा हुआ महायोगियों को भी अत्यन्त मोहनेवाला दर्शन योग्य परम ऋद्धि करनेवाला रूप है ।।४६।। यह बात मैं अपने मन में ही कल्पित करता हूँ, कि शिवजी के पास ही जायारत्न है, उनसे अधिक समृद्धिमान् कोई नहीं है, हे जलन्धर! इस बात में वह त्रिलोकी में श्रेष्ठ हैं ।।४७।। जिसकी सुन्दरता के सागर में ब्रह्माजी निमग्न हो गये थे और उनका धैर्य जाता रहा, उसके साथ किस की उपमा हो सकती है?।।४८।। जिनके काम के शत्रु परम विरक्त आत्माराम शंकरजी को भी लीला से अपने वश में कर रखा है।।४९।। हे दैत्यपति! स्त्रीरत्न भोग की समृद्धि जैसी उनकी है, वैसी आपकी नहीं, यद्यपि आपके पास सब रत्न हैं ।।५०।। सनत्कुमारजी बोले– इस प्रकार से लोक में विख्यात देवर्षि नारदजी उस दैत्य से कहकर देवकार्य करने की इच्छा से आकाश मार्ग से चले गये ।।५१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

पञ्चम युद्धखण्डे देवर्षि–जलन्धरसम्वादोनामाष्टादशोऽध्यायः ।। १८ ।।

उन्नीसवाँ अध्याय

व्यासजी बोले- हे सर्वज्ञ सनत्कुमारजी! जब नारदजी द्युलोक को चले गये, तब दैत्यराज ने क्या किया ? सो विस्तारपूर्वक मुझसे कहिये ।।१।। सनत्कुमारजी बोले- जब उस दैत्यराज से पूँछकर नारदजी चले गये, तब जलन्धर भगवती के रूप को स्मरण करते हुए कामज्वर से पीड़ित होने लगा ।।२।। तब उस जलन्धर ने काल के अधीन होने से नष्टबुद्धि होकर सैंहिकेय नामक दूत को बुलाया, उस समय दैत्यपति बड़ा मोहित हुआ था ।।३।। उस दूत को आया हुआ देखकर काम से व्याकुल मन होकर सागरपुत्र जलन्धर उससे कहने लगा ।।४।। जलन्धर बोला- हे दूतों में श्रेष्ठ! हे सबके कार्य सिद्ध करनेवाले! हे महापण्डित! हे सिंहिकापुत्र! तू कैलास पर्वत पर जा ।।५।। वहां एक जटाधारी शम्भु नामक योगी रहता है, सर्वांग में भस्म लगाये, परमविरक्त और जितेन्द्रिय है ।।६।। हे दूत! उस जटाधारी परमविरक्त योगी के पास जाकर निर्भय होकर तुम यह वचन कहना ।।७।। हे योगिराज! हे दयासागर! जब कि तुम वन में रहते हो और भूत प्रेतादि तुम्हारी सेवा करते हैं, तो स्त्रीरत्न से तुम्हारा क्या प्रयोजन है ?।।८।। हे योगिराज! जब कि, हमारे स्वामी भुवनपति विद्यमान हैं, तो तुमको ऐसा करना उचित नहीं है, इस कारण तुम इस जायारत्न को हमें दे दो, कारण कि हम रत्नभोगी हैं ।।९।। त्रिलोकी में जितने रत्न हैं, सब मेरे यहां विद्यमान हैं, चर-अचर सब जगत् को तुम मेरे आधीन जानो ।।१०।। इन्द्र का ऐरावत, उच्चैःश्रवा घोड़ा, श्रेष्ठ रत्न और पारिजात वृक्ष मैंने बलपूर्वक हरण कर लिये हैं ।।११।। मेरे आंगन में ब्रह्माजी का हंसयुक्त विमान विद्यमान है, वह महादिव्य और परम अद्भुत है ।।१२।। महापद्म और दिव्य निधिरत्न कुबेर से ले आया हूँ और वरुण का सुवर्ण वर्षानेवाला छत्र मेरे यहां विद्यमान है ।।१३।। किंजल्किनी नामक महामाला जिसके कमल कभी मलीन नहीं होते, वह मेरे पिता के यहां की माला तथा वरुण का पाश भी मेरे यहां विद्यमान है ।।१४।। मैंने बल से मृत्यु की उत्क्रान्ति देनेवाली शक्ति हरण कर ली है और उसने मुझे कभी मैले न होनेवाले दो वस्त्र दिये हैं ।।१५।। हे योगीन्द्र! इस प्रकार से मेरे यहां सम्पूर्ण ही रत्न विद्यमान हैं, हे जटाधारी! इस कारण तुम भी अपने स्त्रीरत्न को मेरे निमित्त प्रदान करो ।।१६।। सनत्कुमारजी बोले- यह वचन सुनकर दूत चला गया, नन्दी ने उसे भीतर जाने दिया, वह राहु विस्मय से युक्त होकर उस उग्र सभा में गया ।।१७।। वहां जाकर अपने तेज से ही समस्त अन्धकार को दूर करनेवाले, शरीर में भस्म लगाये हुए साक्षात् देव-देव महाप्रभु शंकरजी को देखा ।।१८।। जिनके महाराजाओं का सेवन हो रहा था, ऐसे सर्वांगों से

सुन्दर दिव्य भूषणों से शोभायमान साक्षात् महाप्रभु हर को देखकर ।।१९।। तेज से विक्रान्त गर्वित होकर वह राहुसंज्ञक दूत शिवजी के समीप गया ।।२०।। तब शिवजी के आगे स्थित होकर जब कुछ कहने की इच्छा करने लगा, तब शिवजी की इंगित पाकर इस प्रकार कहने लगा ।।२१।। राहु बोला- दैत्य और सर्पों से सेवित त्रिलोकी के पति जलन्धर ने मुझ दूत को भेजा है, मैं आपके पास आया हूँ ।।२२।। सागरपुत्र जलन्धर सब दैत्यों के अधिपति हैं तथा त्रिलोकी के ईश्वर और सबके नायक हैं ।।२३।। वे बलवान् दैत्यराज देवताओं को काल के समान है, आप योगी को सम्बोधन कर जो उन्हों कहा है, वह सुनें ।।२४।। हे प्रभो! उन दैत्यराज का महाप्रभाव है, हे वृषभध्वज! उन सम्पूर्ण रत्नों के ईश्वर की आप आज्ञा सुनिये ।।२५।। आप नित्य श्मशान में निवास करते हो, आप नित्य अस्थियों की माला धारण करते हो, आप दिगम्बर हो, ऐसी सुन्दर हिमालय की कन्या पार्वती को आप क्यों अपने पास रखते हो ? ।।२६।। मैं रत्नों का अधिपति हूँ और वह स्त्री रत्न संज्ञक है, इस कारण वह मेरे योग्य है, आप भिक्षावृत्ति करनेवाले के योग्य नहीं हैं ।।२७।। तीनों लोक मेरे वश में हैं, यज्ञों का भाग मैं भोगता हूँ, जो त्रिलोकी में रत्न हैं, सो सब मेरे स्थान में हैं ।।२८।। हम रत्नभोगी हैं और आप भिक्षा मांगनेवाले दिगम्बर हो, वह स्त्रीरत्न मुझे दे दो, प्रजा राजा को सुख करनेवाली होती है ।।२९।। सनत्कुमारजी बोले- राहु ने ऐसा कहते ही भगवान् शूलपाणि के भ्रूमध्य से वज्र के समान भयंकर शब्दवाला एक पुरुष प्रकट हुआ ।।३०।। सिंह के समान मुख, चलायमान जिह्वा, प्रज्ज्वलित महान् नेत्र, ऊर्ध्वकेश, सूखा शरीर मानो दूसरा नृसिंह ही है ।।३१।। महाशरीर, महाबाहु, ताल के समान जंघावाला वह बड़ा भयंकर पुरुष बड़ी शीघ्रता से राहु के ऊपर दौड़ा ।।३२।। उसे खाने के लिये आता हुआ देखकर बड़े भय से राहु वहां से भागा, परन्तु उस पुरुष ने उसे पकड़ लिया ।।३३।। राहु बोला- हे देव देव! हे महेशान! मुझ शरण आये की रक्षा कीजिये, आप प्रभु सुर-असुर सबके प्रणाम करने योग्य हो ।।३४।। हे महादेवजी! आप देखें कि, यह मुझ ब्राह्मण को खाने के लिये आता है, हे देव! यह आपका सेवक बड़ा भयंकर है ।।३५।। हे शरणागतवत्सल! इस कारण आप मेरी रक्षा कीजिये, हे देव देव! ऐसा कीजिये कि, जिस प्रकार से यह मुझे न खाये ।।३६।। सनत्कुमारजी बोले- हे मुने! इस प्रकार से उस ब्राह्मण के वचन सुनकर दीनानाथ परमप्रभु ने अपने उस गण से कहा ।।३७।। महादेवजी बोले- हे गणश्रेष्ठ! राहू नामक यह दूत ब्राह्मण है, प्रभु शरण में आया है, इस कारण इसकी रक्षा करनी चाहिये ।।३८।। सनत्कुमारजी बोले- जब शिवजी ने ऐसा कहा, तब ब्राह्मण शब्द सुनकर उस गण ने राहु को छोड़ दिया ।।३९।। जब उस पुरुष ने आकाश में राहु को त्याग दिया, तब वह पुरुष महादेवजी के समीप जाकर बड़ी दीनता से कहने लगा ।।४०।। पुरुष बोला- हे देव देव महादेवजी! हे करुणाकर

शंकरजी ! हे शरणागत वत्सल ! आपने मेरा भक्ष्य त्याग करा दिया ।।४१।। हे स्वामी ! मुझे क्षुधा बाधा देती है, मैं सर्वथा भूख से व्याकुल हूँ, हे प्रभो ! मेरा भक्ष्य क्या है ? सो आप मुझे आज्ञा दीजिये ।।४२।। सनत्कुमारजी बोले– महाप्रभु इस प्रकार से उस पुरुष के वचन सुनकर महाकौतुक के वशीभूत होकर हितकरी वचन कहने लगे ।।४३।। महेश्वरजी बोले– हे पुरुष ! यदि तुझे विशेष भूख बाधा देती है, तो तू शीघ्र ही अपने हाथ पैरों का मांस भक्षण कर ले ।।४४।। सनत्कुमारजी बोले– शिवजी की आज्ञा से शीघ्र ही वह पुरुष अपने हाथ पैरों का मांस भक्षण कर गया, केवल उसका सिर मात्र रह गया ।।४५।। शिरमात्र शेष देखकर शिवजी प्रसन्न हुए और विस्मयपूर्वक उस भीमकर्मा पुरुष से बोले ।।४६।। शिवजी बोले– हे महागण ! मेरी आज्ञा पालन करनेवाले तुम धन्य हो, हे सत्तम ! तेरे इस कर्म से मैं बड़ा प्रसन्न हूँ ।।४७।। तू कीर्तिमुख नामवाला मेरा द्वारपाल होगा, तू महागण महावीर सब दुष्टों को भय देनेवाला होगा ।।४८।। तू मेरा प्रिय होगा और मेरी पूजा के समय मेरे गण सदा तेरी पूजा करेंगे, जो तेरी पूजा न करेंगे, वे मेरे प्रिय न होंगे ।।४९।। सनत्कुमारजी बोले– शिवजी से यह वर पाकर वह पुरुष बहुत प्रसन्न हुआ, उस दिन से शिवजी के द्वार पर कीर्तिमुख स्थित रहने लगा ।।५०।। शिवजी के पूजन के समय इस गण की विशेषरूप से पूजा करनी चाहिये, जो उस गण की पूजा नहीं करते, उनकी पूजा वृथा हो जाती है ।।५१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
पञ्चम युद्धखण्डे एकोनविंशोऽध्यायः ।। १९ ।।

*****

बीसवाँ अध्याय

व्यासजी बोले– हे सर्वज्ञ सनत्कुमारजी ! आपने अद्भुत कथा सुनाई, जिसमें पवित्र करनेवाली महाप्रभु शंकरजी की कथा है ।।१।। हे मुने ! इस समय मेरे ऊपर कृपा करके परमप्रेम से यह कहिये कि, उस समय राहु उस पुरुष से छूटकर कहां गया ? ।।२।। सूतजी बोले– अमित तेजस्वी व्यासजी के यह वचन सुनकर ब्रह्माजी के पुत्र महामुनि प्रसन्न होकर बोले ।।३।। सनत्कुमारजी बोले– जब उस पुरुष से राहु वर्वरस्थान में छूटा, तब वह वर्वर नाम से भूमि पर विख्यात हुआ ।।४।। तब वह छुटकारा पाकर और अपना नया जन्म मानकर गर्व रहित होकर शनैः–शनैः जलन्धर के स्थान में गया ।।५।। हे व्यासजी ! उसने दैत्येश्वर के स्थान में जाकर शंकरजी की सब चेष्टा विस्तारपूर्वक दैत्येश्वर के निकट निवेदन की ।।६।। सनत्कुमारजी बोले– यह बात सुनते ही जलन्धर

महाक्रोधित हुआ, वह दैत्येन्द्र सागरपुत्र महाबली ने महाक्रोध किया।।७।। और क्रोध के वशीभूत होकर सब सेना को सज्जित करने की आज्ञा देते हुए।।८।। जलन्धर बोला– कालनेमि आदिक सब दैत्य युद्ध के लिये तैयार हों, इसी प्रकार शुम्भ–निशुम्भ को आदि लेकर सब वीर तैयार हों।।९।। वीरकुल में उत्पन्न हुए एक कोटि दुहृद नामक और कंबुवंशवाले दौर्हृद, कालक, कालकेय, मौर्यवंशी, धूम्रवंशी सब तयार हों।।१०।। महाप्रतापी सिन्धुपुत्र इस प्रकार से आज्ञा देकर कोटि–कोटि दैत्यों के साथ उस स्थान से निकला।।११।। उसके आगे शुक्र और छिन्नसिर राहु हुआ और उसी समय जलन्धर का मुकुट खसककर पृथ्वी पर गिर पड़ा।।१२।। आकाश मेघों से व्याप्त हो गया और महामृत्यु के भयदायक बहुत से अपशकुन होने लगे।।१३।। उसका यह उद्योग देखकर इन्द्रादिक समस्त देवता अलक्षित भाव से शिवजी के स्थान कैलास पर गये।।१४।। वहां जाकर और शिवजी को देखकर इन्द्रादि सब देवता प्रणाम कर, सिर झुकाकर, हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे।।१५।। देवता बोले– हे देव देव महादेव! हे करुणासागर शंकर! हे महेशान! आपको प्रणाम है, हम शरण आये हुओं की आप रक्षा करें।।१६।। हे प्रभो! जलन्धर के कारण से हम बहुत व्याकुल हो रहे हैं, उसके उपद्रव से देवता स्थानभ्रष्ट होकर पृथ्वी पर प्राप्त हुए हैं।।१७।। हे स्वामिन्! हे प्रभो! आप इन देवताओं की आपत्ति को कैसे नहीं जानते? इस कारण हमारी रक्षा के निमित्त आप जलन्धर को मारिये।।१८।। हमारी रक्षा के लिये जो पहले आपने विष्णुजी को नियुक्त किया था, सो इस कार्य के लिये वे समर्थ नहीं हैं।।१९।। वे जलन्धर के आधीन होकर लक्ष्मी सहित उसके घर में निवास करते हैं और उसकी आज्ञा से सब देवताओं को भी वहीं रहना पड़ता है।।२०।। हे शंकरजी! अलक्षित होकर हम आपके समीप आये हैं, अब बली सागरपुत्र आपसे युद्ध करने के लिये आ रहा है।।२१।। हे स्वामिन्! इस कारण आप बहुत ही शीघ्र उस जलन्दर को युद्ध में मारकर हम शरण आये हुओं की रक्षा कीजिये।।२२।। सनत्कुमारजी बोले– वह इन्द्र के सहित सब देवता प्रभु से ऐसा कहकर और उनको प्रणाम कर महेश्वरजी के चरण देखकर नम्र होकर, स्थित हुए।।२३।। सनत्कुमारजी बोले– देवताओं के यह वचन सुनकर शिवजी हँसकर विष्णुजी को शीघ्रता से बुलाकर यह वचन बोले।।२४।। शिवजी बोले– हे हृषीकेश! हे महाविष्णो! यहां देवता आये हैं और जलन्धर से दुःखी होकर वे सब हमारी शरण में हुए हैं।।२५।। हे विष्णुजी! आपने युद्ध में जलन्धर का संहार क्यों नहीं किया और अपना वैकुण्ठ छोड़कर उसके घर कैसे चले गये?।।२६।। मैंने तो आपको साधु–महात्माओं की रक्षा में नियुक्त किया है तथा खलों के निग्रह में आपको स्वतन्त्रता से इच्छाचारी नियुक्त किया है।।२७।। सनत्कुमारजी बोले– गरुड़ध्वजजी इस प्रकार भगवान् शंकरजी के वचन सुनकर, विनीत होकर, हाथ

जोड़कर शंकरजी से बोले ।।२८।। विष्णुजी बोले- आपके अंश से प्रकट होने से तथा लक्ष्मी के भ्राता होने से मैंने उसे युद्ध में नहीं मारा, आप ही इस दानव का वध करें ।।२९।। हे देवेश! वह दानव महाबली सब देवताओं से अजेय है तथा उसे और कोई नहीं जीत सकता, हे देवेश! मैं यह सत्य ही कहता हूँ ।।३०।। मैंने देवताओं के सहित बहुत समय तक उससे युद्ध किया, परन्तु उस दानवश्रेष्ठ पर मेरा पराक्रम न चला ।।३१।। तब मैंने उसके पराक्रम से सन्तुष्ट होकर उसे वर मांगने के लिये कहा, उसने मेरे वचन सुनकर यह उत्तम वर मांगा कि।।३२।। हे विष्णुजी! आप मेरे वचन से आधीन होकर लक्ष्मी और देवताओं सहित मेरे घर निवास करें ।।३३।। इस कारण मैं उसके घर गया हूँ। सनत्कुमारजी बोले- वह महेश्वर शंकरजी इस प्रकार से उनके वचन सुनकर भक्तवत्सल, दयासागर हँसते हुए इस प्रकार से बोले ।।३४।। महेश्वरजी बोले- हे देवताओं में श्रेष्ठ विष्णुजी! आप आदर से मेरे वचन सुनिये, मैं महादैत्य जलन्धर का वध करूंगा, इसमें सन्देह नहीं ।।३५।। आप और देवता भी सब अपने-अपने स्थानों को जाइये, आप अब निर्भय और सन्देह रहित हो जाइये और दैत्य को मरा हुआ जानिये ।।३६।। सनत्कुमारजी बोले- वह रमापति इस प्रकार से महेश्वरजी के वचन सुनकर देवताओं सहित अपने स्थान को गये और सन्देह रहित हो गये ।।३७।। हे तात! इसी समय महाविक्रमशाली वे दैत्यपति महाबली दैत्यों की सेना लेकर पर्वत के समीप पहुँचा ।।३८।। और महासेना के सहित कैलास पर्वत को घेरकर सिंह के समान शब्द करते हुए काल के समान स्थित हुआ ।।३९।। तब दैत्यों के नाद का महाकोलाहल सुनकर महालीला करनेवाले, दुष्टों को मारनेवाले शंकरजी महाक्रोधित हो गये ।।४०।। और महाकौतुकी हर महादेवजी ने बड़े पराक्रम के साथ अपने नन्दी आदि गणों को युद्ध करने की आज्ञा दी ।।४१।। नन्दी को आदि लेकर सब सेनापति गण शिवजी की आज्ञा से शीघ्र ही युद्धभूमि में चले ।।४२।। वह सब दुर्मद गण बड़े क्रोध से कैलास से चले और रण के निमित्त वह महावीर शब्द करने लगे ।।४३।। उस समय कैलास के समीप महायुद्ध आरम्भ हुआ, प्रमथ और दैत्य अनेक अस्त्र-शस्त्र वर्षाने लगे ।।४४।। भेरी, मृदंग, शंखो के शब्द, वीरों के सिंहनाद, हाथी, घोड़े और रथों के शब्द से शब्दायमान होकर पृथ्वी कांपने लगी ।।४५।। शक्ति, तोमर, बाण, मूसल, प्रास, पट्टिश इनके प्रहारों से आकाश मोतियों से मानो पूर्ण होकर शोभा पाने लगा ।।४६।। हाथी, घोड़े और पैदलों के मरने से पृथ्वी बड़ी शोभित हुई, जैसे इन्द्र के वज्र से आहत होकर पहले पर्वतों से व्याप्त हुई थी ।।४७।। प्रमथों ने दैत्य और दैत्यों ने प्रमथ गणों पर प्रहार किया। वसा, रुधिर और मास की किच से पृथ्वी अगम्या हो गई।।४८।। प्रमथों द्वारा मारे हुए दैत्यों को शुक्राचार्यजी अपनी मृतसंजीविनी विद्या के बल से बारंबार जीवित करने लगे ।।४९।। यह बात देखकर शिवजी के सम्पूर्ण गण

व्याकुल हो गये और शिवजी से यह शुक्राचार्यजी की सब बात कहीं ।।५०।। वह सुनकर भगवान् रुद्र ने बड़ा क्रोध किया और बड़े भयंकर रौद्र रूप से दिशाओं को प्रज्ज्वलित करने लगे ।।५१।। तब रुद्र के मुख से बड़ी भयंकर कृत्या उत्पन्न हुई, जिसकी ताल के समान जांघे थीं और जो स्तनों से वृक्षों को पीड़ित कर सकती थी ।।५२।। हे मुनिसत्तम ! वह बहुत शीघ्र ही युद्धभूमि में आकर प्राप्त हुई और महाअसुरों को भक्षण करती युद्धभूमि में विचरने लगी ।।५३।। और वह युद्धभूमि में बड़े वेग से गमन करती हुई वहां पहुँची, जहां दैत्यश्रेष्ठ के साथ भृगुजी विद्यमान थे ।।५४।। हे मुने ! वह अपने तेज से आकाश और भूमि को व्याप्त करके और शुक्रजी को अपनी योनि में गुप्त करके आकाश में अन्तर्धान हो गई ।।५५।। यह शुक्रजी की दशा देखकर बड़े मलीन मुख होकर दैत्य युद्धभूमि से युद्ध में दुर्मद हुए भी निकले ।।५६।। तब गणों के भय से दैत्यों की सेना छिन्न-भिन्न होने लगी, जैसे वायु के वेग से हत होकर तृण छिन्न-भिन्न हो जाते हैं ।।५७।। इस प्रकार गणों के भय से दैत्यों की सेना छिन्न-भिन्न देखकर शुम्भ-निशुम्भ और कालनेमि सेनापति ने महाक्रोध किया ।।५८।। वह तीनों महाबली गणों की सेना को निवारण करने लगे और वर्षाकाल के मेघ के समान बाणों की वर्षा करने लगे ।।५९।। तब उन दैत्यों के बाणों ने शलभों के समान आकाश और सब दिशाओं को व्याप्त करके गणों की सेना को कम्पित कर दिया ।।६०।। उस समय बाणों से छिन्न-भिन्न होने के कारण गण रुधिर चूसने से वसन्त में टेसू के समान शोभायमान होकर कुछ भी न जानते हुए।।६१।। तब इस प्रकार से अपनी सेना को छिन्न-भिन्न होता हुआ देखकर नन्दी आदि गण, गणेशजी, स्वामि कार्तिकेय महाक्रोध करते हुए बड़ी शीघ्रता से उन दैत्यों को निवारण करने लगे ।।६२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

पञ्चम युद्धखण्डे विंशोऽध्यायः ।। २० ।।

*****

इक्किसवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले- जब उन दानवों ने नन्दी गणेशजी, कार्तिकेयजी आदि गणाधिपतियों को सेना निवारण करते देखा, तब वे बड़े क्रोध से द्वन्द्वयुद्ध के लिये धावमान हो गये ।।१।। नन्दी से कालनेमि, गणेशजी से शुम्भ और कार्तिकेयजी पर निशुम्भ शंकित होकर धावमान हुआ ।।२।। निशुम्भ ने कार्तिकेयजी के मयूर के हृदय में पांच बाणों से प्रहार किया, जिससे वह मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा ।।३।। क्रोध

करके कुमार ने पांच बाणों से उसके रथ, घोड़े और सारथी को विद्ध किया ।।४।। फिर उस महावीर ने एक और तीक्ष्ण बाण लेकर देवताओं के बैरी निशुम्भ पर बड़े वेग से प्रहार करके गर्जना की ।।५।। महावीर्यवान्, महाबली निशुम्भ ने भी गर्जना करके अपने बाण से कार्तिकेयजी पर प्रहार किया ।।६।। जब तक कार्तिकेयजी क्रोध से अपनी शक्ति को ग्रहण करें, तब तक निशुम्भ ने अपनी शक्ति से उनकी शक्ति को निपतित कर दिया ।।७।। हे व्यासजी! इस प्रकार से कार्तिकेयजी और निशुम्भ का महागर्जना पूर्वक घोर संग्राम होने लगा ।।८।। इधर नन्दीश्वर ने बाणों के प्रहारों से कालनेमि को विद्ध किया, सात बाणों से घोड़े, ध्वजा, रथ और सारथी का छेद किया ।।९।। तब कालनेमि ने क्रोध करके नन्दी के धनुष को छेद दिया और अपने धनुष से महातीक्ष्ण बाण प्रहार किये ।।१०।। तब वीर नन्दीश्वर ने महाअसुर कालनेमि के हृदय को शूल से बड़े बल से विद्ध किया ।।११।। वह शूल से हृदय विदीर्ण होने से, घोड़े और सारथी के नष्ट होने से उसने एक पर्वत की शिला उखाड़कर नन्दी पर प्रहार किया ।।१२।। इस ओर शुम्भ ने भी गणेशजी के रथ, मूषक वाहनों को युद्ध करते-करते बाणों से विद्ध किया ।।१३।। तब गणेशजी ने शुम्भ के हृदय में बाण का प्रहार किया और तीन तीक्ष्ण बाण मारकर उसके सारथी को पृथ्वी पर गिराया ।।१४।। तब शुम्भ बहुत विद्ध होकर उसने बाणों की वर्षा से गणेशजी को विद्ध करते हुए तीन बाणों से उनके मूषक को विद्ध करके बड़े वेग से मेघ के समान गर्जना की ।।१५।। बाणों से अंग भिन्न होने से मूषक चलायमान हो गया और गणेशजी गिरने से पैदल हो गये ।।१६।। तब गणेशजी ने शुम्भ के हृदय में परशे से प्रहार किया और उसे पृथ्वी पर गिराकर अपने मूषक पर आरोहण किया ।।१७।। और गणेशजी फिर युद्ध के लिये सन्नद्ध हो गये और हँसकर इस प्रकार से उस पर प्रहार किया, जैसे कोई कोड़े वा अंकुश से हाथी पर प्रहार करे ।।१८।। तब कालनेमि और निशुम्भ वह दोनों महाक्रोध से एक साथ क्रोधित सर्प के समान गणेशजी पर प्रहार करने लगे ।।१९।। महाबली वीरभद्र ने इस प्रकार गणेशजी को पीड़ित देखकर बड़े वेग से असंख्य भूतों को साथ लेकर वहां गमन किया ।।२०।। कूष्माण्ड, भैरव, वेताल, योगिनी, पिशाच और बहुतसी डाकिनियां उसके साथ चलीं ।।२१।। उस समय किलकिला शब्द, सिंहनाद, घर्घर शब्द, वीरों के शब्दों से पृथ्वी कम्पायमान होने लगी ।।२२।। तब दानवों को भक्षण करते हुए भूतगण धावमान होने लगे तथा कूदकर दानवों को गिराकर भक्षण करने और नाचने लगे ।।२३।। हे व्यासजी! इसी समय नन्दी और कार्तिकेयजी संज्ञा को प्राप्त होकर उठकर रणभूमि में गर्जना करने लगे ।।२४।। जब नन्दी और कार्तिकेयजी बड़ी शीघ्रता से आये, तब अपने बाणों से दैत्यों को मारने लगे ।।२५।। दैत्य छिन्न-भिन्न होकर गिरने लगे और भूतगण उन्हें खाने लगे, तब वह सेना व्याकुल होकर विषाद से भर गई ।।२६।। इस

प्रकार से नन्दी, कार्तिकेयजी और गणेशजी, वीरभद्र तथा दूसरे गण युद्धभूमि में गर्जने लगे ।।२७।। उस समय सेनापति शुम्भ, निशुम्भ, कालनेमि और जलन्धर के दूसरे दैत्य पराजित हो गये ।।२८।। जब सागरपुत्र ने इस प्रकार से अपनी सेना को विध्वस्त देखा, तब पताकावाले रथ पर बड़े वेग से आरोहण किया ।।२९।। तब पराजित हए दैत्य भी प्रसन्न होकर उठे। हे व्यासजी! युद्ध के निमित्त तत्पर होकर गर्जना करते उठे ।।३०।। तब जयशील शंकरजी के सब गण भी गर्जने लगे। नन्दी, कार्तिकेयजी, गणेशजी, वीरभद्र आदिक सब गर्जने लगे। हे मुने! ।।३१।। हाथी,घोड़े, रथ, शंख, भेरी तथा दोनों ओर के वीरों के सिंहनाद से पृथ्वी व्याप्त हो गई ।।३२।। जिस समय जलन्धर ने बाणों का प्रहार किया, उस समय कुहरे से व्याप्त हुए आकाश के समान द्युलोक और भूलोक में कुछ अन्तर न रहा ।।३३।। नन्दी को पांच, गणेशजी को पांच और वीरभद्र को बीस बाणों से विद्ध करके उसने मेघ के समान शब्द किया ।।३४।। तब कार्तिकेयजी ने शक्ति से बहुत शीघ्र दैत्य को विद्ध किया, तब महावीर जलन्धर ने बड़े वेग से नाद किया ।।३५।। और नेत्र घूमने से वीर पृथ्वी पर गिर पड़ा, शक्ति से उसका देह भिन्न हो गया था, परन्तु तो भी बड़ी शीघ्रता से उठ बैठा ।।३६।। तब दैत्यश्रेष्ठ जलन्धर ने बड़ा क्रोध करके कार्तिकेयजी के हृदप पर गदा का प्रहार किया ।।३७।। हे व्यासजी! शंकरपुत्र कार्तिकेयजी ने ब्रह्माजी के वरदान के कारण गदा के प्रहार को सफल करने के निमित्त भूमि पर शयन किया ।।३८।। इसी प्रकार गदा के प्रहार से नन्दी भी पृथ्वी पर गिर गये, यह शत्रुनाशी महावीर कुछेक व्याकुल भी हो गये ।।३९।। तब गणेशजी क्रोध करके शिवजी के चरणकमलकों को स्मरण करके बड़े वेग से धावमान होकर उस दैत्य की गदा का परशे से छेद किया ।।४०।। और वीरभद्र ने दानव के हृदय में तीन बाण मारे और सात बाणों से उसके घोड़े, ध्वजा, धनुष और छत्र का छेद कर दिया ।।४१।। तब दैतेन्द्र ने बड़ा क्रोध करके दारुण शक्ति का प्रहार करके गणेशजी को गिराकर स्वयं दूसरे रथ पर सवार हुआ ।।४२।। और वह महाबली दैत्य बड़े वेग से धावमान हुआ और क्रोध से हृदय में वीरभद्र को कुछ न गिना ।।४३।। और एक बड़ा तीक्ष्ण बाण वीरभद्र के हृदय में मारा और दैत्यराज जलन्धर ने बड़े वेग से नाद किया ।।४४।। तब वीरभद्र ने भी महाक्रोध करके एक तीक्ष्ण बाण के प्रहार से उसके बाणों का छेद करके उसको अपने बाणों से विद्ध किया ।।४५।। तब वह सूर्य के समान दोनों बली परस्पर युद्ध करने लगे, नाना शस्त्र-अस्त्रों से उन महावीरों ने चिरकाल तक युद्ध किया ।।४६।। तब वीरभद्र ने अपने बाणों के प्रहार से उसके घोड़ों का छेद किया, रथ की पताका और उसके धनुष का भी छेद किया ।।४७।। तब वह दैत्यराज परिघ हाथ में लेकर दौड़ा और वह महाबली शीघ्र ही वीरभद्र के समीप प्राप्त हुआ ।।४८।। और बड़े वेग से परिघ द्वारा वीरभद्र को मारा, इस प्रकार महाबली जलन्धर वीरभद्र के सिर पर

प्रहार करके गर्जने लगा ।।४९।। महान् परिघ के लगने से वीरभद्र का सिर फट गया और बहुत रुधिर निकलने से व्याकुल होकर वह पृथ्वी पर गिर पड़ा ।।५०।। इस प्रकार वीरभद्र को समरभूमि में गिरा देखकर शिवजी के गण बड़े वेग से शिवजी को पुकारते हुए रणभूमि छोड़कर चले ।।५१।। शिवजी ने गणों का ऐसा कोलाहल सुनकर अपने समीप में स्थित महाबली गणों से पूछा ।।५२।। शिवजी बोले– हमारे गणों का यह कोलाहल कैसा हो रहा है? हे महावरो! शीघ्र विचारो, मैं इसकी अवश्य शान्ति करूंगा ।।५३।। जब तक शिवजी अपने गणों को ऐसा पूछते हैं, कि उसी समय वे गणश्रेष्ठ शिवजी के समीप आ पहुँचे ।।५४।। उनको व्याकुल देखकर प्रभु शिवजी ने उनकी कुशल पूछी और गणों ने विस्तारपूर्वक सम्पूर्ण समाचार दिया ।।५५।। भगवान् रुद्र, महालीला करनेवाले प्रभु ने उनके यह समाचार सुनकर उनका महाउत्साह बढ़ाते हुए उनको अभय दिया ।।५६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
पञ्चम युद्धखण्डे एकविंशोऽध्यायः ।। २१ ।।

*****

बाईसवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले– तब महाप्रभु शिवजी अपने महावीर गणों को साथ लेकर वृषभ पर चढ़कर हँसते हुए संग्रामभूमि में आये ।।१।। शिवजी को संग्रामभूमि में आये हुए देखकर उनके गण जो पराजित होकर संग्रामभूमि से भाग गये थे, वे फिर लौट आये ।।२।। और वे शंकरजी के गण फिर सिंहनाद करने लगे और प्रसन्न होकर आयुध और बाणों से दैत्यों को मारने लगे ।।३।। तब शिवजी की भीषण मूर्ति देखकर सब दैत्य पलायन करने लगे, जैसे शंकरजी के भक्तों को देखकर उनके भय से पाप भागे जाते हैं ।।४।। तब जलन्धर अपने सब दैत्यों को युद्ध से विमुख देखकर सहस्रों बाणों को छोड़ता हुआ, चण्डीश के ऊपर धावमान हुआ ।।५।। निशुम्भ–शुम्भ को आदि लेकर सहस्रों दैत्य क्रोध से होंठ काटते हुए शिवजी पर धावमान हुए ।।६।। महावीर कालनेमि, खड्गरोमा, बलाहक, घस्मर और प्रचण्ड, यह सब शिवजी पर धावमान हुए ।।७।। उन्होंने शीघ्र ही रुद्र के गणों को बाणों से आच्छादित कर दिया, हे मुने! और शुम्भादिक गणों के अंगों का छेद करने लगे ।।८।। तब शिवजी ने अपने गणों को बाणों के अन्धकार से आच्छन्न देखकर उन दैत्यों के बाणों को छेदकर अपने बाणों से आकाश आच्छादित कर दिया ।।९।। और बाणरूपी वात्या से दैत्यों को महापीड़ित किया और प्रचण्ड वात समूहों से पृथ्वी पर गिरा दिया ।।१०।। और परशे

से खड्गरोमा का सिर काटकर गिरा दिया और खट्वांग से बलाह का सिर काट ड़ाला ।।११।। और घस्मर दैत्य को पाश से बांधकर पृथ्वी पर गिरा दिया और मार दिया और त्रिशिखा द्वारा महावीर प्रचण्ड का सिर काट ड़ाला ।।१२।। किसी को शिवजी के बैल ने मारा, कोई बाणों से मारे गये, उस समय सिंह से घबड़ाये हुए हाथियों के समान कोई असुर स्थिर होने में समर्थ न हुए ।।१३।। उस समय दैत्यपति ने महाक्रोध करते हुए युद्ध में शुम्भादि दैत्यों को धिक्कार देकर धैर्य धारण करके, हँसते हुए कहा ।।१४।। जलन्धर बोला– भागते हुए पृष्ठ दिखाने से हत हुए माता के मलरूपों को मारने से क्या है? ड़रे हुओं को मारने की प्रशंसा नहीं है, न शूरमानियों को इस कार्य में स्वर्ग हो सकता है ।।१५।। यदि आपकी युद्ध में श्रद्धा है, यदि हृदय में कुछ साहस है, यदि ग्राम्य सुख में स्पृहा न हो, तो मेरे साथ युद्ध में स्थित हो ।।१६।। युद्ध में मृत्यु ही श्रेष्ठ है, यही सब कामनाओं को पूर्ण करनेवाली है, समर में मृत्यु यश और मोक्ष की देनेवाली है ।।१७।। सूर्यमण्डल को भेदकर परमपद को जायेगा जहां परिव्राट् परमज्ञानी जाते हैं, वहीं युद्ध में सम्मुख यज्ञ करनेवाले जायेंगे ।।१८।। मृत्यु का भय कभी किसी को नहीं करना चाहिये, कारण कि कितने भी उपाय करने से यह निवारण नहीं हो सकती ।।१९।। हे वीरो! मृत्यु तो देहधारियों के साथ ही उत्पन्न होती है, आज या सौ वर्ष में प्राणधारियों को मृत्यु अवश्य है ।।२०।। इस कारण मृत्यु का भय छोड़कर प्रसन्नता से युद्ध करो, इसमें सन्देह नहीं। इससे दोनों लोकों में परम आनन्द प्राप्त होगा ।।२१।। सनत्कुमारजी बोले– ऐसा कहकर उसने बहुत से वीरों को समझाया, परन्तु तो भी उन्होंने धैर्य धारण न किया और युद्ध से शीघ्रता से भाग गये ।।२२।। जब इस प्रकार से जलन्धर ने अपनी सेना को भागते हुए देखा, तब उस महाबली सिन्धुपुत्र ने बड़ा क्रोध किया ।।२३।। और महाक्रोधित होकर जलन्धर ने वज्र के समान शब्द करके युद्ध में शंकरजी को बुलाया ।।२४।। जलन्धर बोला– तुम मेरे साथ युद्ध करो, इन अनुचरों से युद्ध करने का प्रयोजन क्या है? हे जटाधर! जो कुछ तुझमें बल है, सो उसे दिखाओ ।।२५।। सनत्कुमारजी बोले– ऐसा कहकर सत्तर बाणों से शिवजी को विद्ध किया, बहाबली जलन्धर दैत्य ने इस प्रकार अक्लिष्टकर्मा शंकरजी पर प्रहार किया ।।२६।। महादेवजी ने जलन्धर के उन बाणों को प्राप्त न होते–होते हँसते हुए अपने तीक्ष्ण बाणों से उन्हें काट डाला ।।२७।। हे मुने! पीछे उस जलन्धर दैत्य की ध्वजा, छत्र और धनुष का सात बाणों से छेद किया, यह बड़ी विचित्र बात हुई ।।२८।। वह सागरपुत्र धनुष और रथ के छिन्न–भिन्न हो जाने से गदा उठाकर शिवजी के ऊपर दौड़ा ।।२९।। जैसे ही उसने गदा छोड़ी, कि महालीला करनेवाले शंकरजी ने अपने बाणों से उसके दो खण्ड कर दिये ।।३०।। तब वह महाअसुर शिवजी को मारने की इच्छा से घूंसा उठाकर बड़े वेग से दौड़ा ।।३१।। कि

इतने ही में बाण समूहों से शंकरजी ने अपने अक्लिष्ट कर्म से ही उसको एक कोश दूर तक पीछे हटा दिया ।।३२।। तब जलन्धर दैत्य ने रुद्रदेव को अपने से अधिक बली जानकर अपनी बड़ी अद्भुत माया रुद्र को मोहने के लिये बनाई ।।३३।। उसकी माया के प्रभाव से गन्धर्व और अप्सराओं के गण रुद्र को मोहने के लिये रचे, वह अनेक प्रकट हो गये ।।३४।। इसके पीछे गन्धर्व और अप्सराओं के गण नृत्य करने लगे। ताल, वेणु, ताल मृदंग बजाने लगे ।।३५।। यह महा आश्चर्य देखकर गणों के सहित रुद्र मोहित हो गये और हाथ से गिरते हुए अस्त्रों को भी उन्होंने न जाना ।।३६।। दैत्य जलन्धर इस प्रकार शंकरजी को एकाग्रभूत देखकर काम के वेग से मत्त होकर पार्वती के समीप गया ।।३७।। युद्ध के लिये शुम्भ–निशुम्भ दैत्य का स्थापन करके स्वयं दश भुजा, पांच मुख, तीन नेत्र, जटाधारी होकर ।।३८।। महावृषभ पर चढ़कर अपनी आसुरी माया से वह साक्षात् रुद्र बन गया ।।३९।। तब शिवप्रिया पार्वती रुद्र को आये हुए देखकर सखी जनों के मध्य से उठकर उनके सम्मुख उपस्थित हुईं ।।४०।। ज्यों ही उस दैत्येश्वर ने पार्वती को देखा, कि उसका वीर्य पतित हुआ और उसके अंग जड़ीभूत हो गये ।।४१।। गौरी उसी समय उसे दानव जानकर भय से व्याकुल हो गई और बड़े वेग से अन्तर्धान होकर उत्तरमानस में चली गई ।।४२।। उस दैत्य ने क्षणमात्र में विद्युल्लता के समान उसे न देखकर बड़े वेग से महेश्वरजी समीप युद्ध में गमन किया ।।४३।। पार्वती ने मन से महाविष्णुजी को स्मरण किया और उसे अपने समीप देखा ।।४४।। जगन्माता, शिवजी की प्रिया ने विष्णुजी को देखा कि, हाथ जोड़कर प्रणाम कर रहे हैं, प्रसन्न होकर बोलीं ।।४५।। पार्वती बोली– हे विष्णुजी ! जलन्धर दैत्य ने एक बड़ी विचित्र बात की है, क्या उस दुर्मति की चेष्टा आपको विदित नहीं है ।।४६।। भगवान् गरुड़ध्वज ने जगदम्बा के वह वचन सुनकर हाथ जोड़कर, सिर झुकाते हुए प्रणाम करके पार्वती से कहा ।।४७।। श्रीभगवान् बोले– हे देवि ! आपकी कृपा से वह वृत्तान्त मैंने जान लिया है, हे मातः ! जो आप आज्ञा दे, सो मैं करने के लिये उपस्थित हूँ ।।४८।। सनत्कुमारजी बोले– विष्णुजी के यह वचन सुनकर वह जगन्माता धर्मनीति सिखाती हुई बोलीं ।।४९।। पार्वती बोलीं– जो मार्ग उस दैत्य ने खोल दिया है, उसीका अनुसरण उचित है, मेरी आज्ञा से आप उसकी स्त्री का पतिव्रतधर्म नष्ट करो, अब इसमें दोष न होगा ।।५०।। हे रमेश्वर! अन्यथा वह दैत्य मारा न जायेगा, पृथ्वी पर पतिव्रतधर्म के समान दूसरा धर्म नहीं है ।।५१।। सनत्कुमारजी बोले– यह आज्ञा पाते ही विष्णुजी उस आज्ञा को सिर पर धरकर जलन्धर के पुर में वैसा ही छल करने गये ।।५२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
पञ्चम युद्धखण्डे जलन्धरयुद्धवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ।। २२ ।।

तेइसवाँ अध्याय

व्यासजी बोले– हे सर्वज्ञ सनत्कुमारजी! हे बोलनेवालों में श्रेष्ठ! वहां जाकर विष्णुजी ने क्या किया और उस वृन्दा ने धर्म कैसे छोड़ा ? ।।१।। सनत्कुमारजी बोले– विष्णुजी जलन्धर के नगर में जाकर वृन्दा का पतिव्रतधर्म भंग करने की इच्छा करने लगे ।।२।। मायावालों में श्रेष्ठ विष्णुजी ने वृन्दा को स्वप्न दिया और अमृतरूप ने स्वयं उसके उद्यान में स्थित हुए ।।३।। तब जलन्धर की पत्नी पतिव्रता वृन्दादेवी ने रात्रि के समय बड़ा दुःस्वप्न देखा ।।४।। विष्णुजी की माया से स्वप्न में उसने अपने स्वामी को शरीर पर तेल लगाकर भैंसे पर चढ़े हुए नंगा देखा ।।५।। कि काले वर्ण की पुष्पमाला धारण किये गीदड़, भेड़ियों के साथ दक्षिण की ओर अन्धकार से व्याप्त होकर केवल पति का मुण्ड जा रहा है ।।६।। और अपने पुर को अपने सहित समुद्र में डुबा हुआ देखा, इत्यादि बहुत से स्वप्न उसने रात में देखे ।।७।। तत्काल वह बाला जाग उठी और उस स्वप्न का ध्यान करने लगी और उदय होते हुए सूर्य को छिद्र युक्त और आकाश को कान्तिहीन देखने लगी ।।८।। यह सब अनिष्ट जानकर वह भय से व्याकुल हो गई और रोने लगी, छज्जे, अटारी और भूमि पर कहीं भी उसका मन स्थिर न हुआ ।।९।। तब दो सखियों को साथ लेकर नगर के बगीचे में आई, वहां जाकर भी फिर उसने किसी प्रकार का सुख न पाया ।।१०।। तदनन्तर वह जलन्धर की स्त्री उद्विग्न मन होकर वन-वन में घूमने लगी ।।११।। तब उस जलन्धर की स्त्री ने वहां भी सिंह के मुखवाले बड़े भयंकर चमकदार दान्तोंवाले दो राक्षसों को देखा ।।१२।। उनको देखते ही भय से व्याकुल होकर वह भागी और बगीचे में शिष्यों सहित मौन साधे हुए एक तपस्वी को देखा ।।१३।। और व्याकुल होकर उसने मुनि के गले में बाहें डालकर, हे मुनिराज! मेरी रक्षा करें, मैं आपकी शरण हूँ, ऐसा कहा ।।१४।। मुनि ने उसे राक्षसों से इस प्रकार व्याकुल देखकर हुंकार मात्र से उन दोनों राक्षसों को भगा दिया ।।१५।। मुनि के हुंकार भय से उन राक्षसों को भागते हुए देखकर, हे मुने! दैत्येन्द्र की पत्नी अपने मन में बड़ी विस्मित हुई ।।१६।। तब वह भय त्यागकर हाथ जोड़कर उन मुनिनाथ को दण्डवत् करके इस प्रकार बोली ।।१७।। वृन्दा बोली– हे मुनिनाथ दयासागर! हे दूसरों की पीड़ा निवारण करनेवाले! दुष्टों से उत्पन्न भय से रक्षा करें ।।१८।। मैं आपसे कुछ कहने की इच्छा करती हूँ, कृपा करके आप उसे सुन लें ।।१९।। हे प्रभो! मेरे स्वामी जलन्धर रुद्र से युद्ध करने गये हैं, हे सुव्रत! युद्ध में मेरे स्वामी की क्या दशा है? सो आप कहिये ।।२०।। सनत्कुमारजी बोले– मुनि ने उसके वचन सुनकर कपट का

मौन साधा और विधान के जाननेवाले कृपा करके उपर को देखने लगे।।२१।। तब तक दो वानर आये और प्रणाम करके मुनि के आगे स्थित हुए और मुनि के भ्रूक्षेप मात्र से वे आकाश में कूद गये।।२२।। और क्षणमात्र में उस दैत्य का सिर और कबन्ध लेकर वे दोनों वानर उसके आगे स्थित हुए।।२३।। हे मुनीश्वर! अपने स्वामी का सिर और कबन्ध देखकर स्वामी के दुःख से दुःखी होकर मूर्छा खाकर पृथ्वी पर गिर पड़ी।।२४।। वृन्दा बोली- हे प्रभो! पहले जो आप मनोहर वचनों से मुझे सुख देते थे, अब इस निरपराधिनी अपनी प्रिया से आप क्यों नहीं बोलते।।२५।। जिसने विष्णुजी सहित सब देवता और गन्धर्वों को जीत लिया, उस त्रिलोक विजयी को तपस्वी ने कैसे मार दिया।।२६।। रुद्रतत्त्व को न जानकर आपने मेरे वचन न माने, हे दैत्यश्रेष्ठ! मैंने पहले ही कहा था, कि शंकरजी परब्रह्म हैं।।२७।। आपकी सेवा के प्रभाव से मैंने उस तत्त्व को जाना था, आपने कुसंग के तथा अभिमान के वश से मेरी बात न मानी।।२८।। इस प्रकार उसकी प्रिया वृन्दा अपने धर्म में स्थित होकर बहुत प्रकार के विलाप करके महादुःखी हृदय से रुदन करने लगी।।२९।। फिर भी दुःख से गहरे सांस भरती हुई कुछेक धैर्य धारण करके हाथ जोड़कर प्रणाम करके मुनिश्रेष्ठ से कहने लगी।।३०।। वृन्दा बोली- हे कृपासागर! हे मुनिश्रेष्ठ! हे परोपकार करनेवाले साधो! मुझ पर दया करके आप मेरे स्वामी को जीवित करिये।।३१।। हे मुनीश्वर! मेरे मत में आप मेरे स्वामी को जीवित करने में समर्थ हैं, इस कारण आप मेरे प्राणनाथ को जीवित करें।।३२।। सनत्कुमारजी बोले- जब पतिव्रत परायण दैत्यपत्नी ने ऐसा कहा और वह आंसू बहाती हुई मुनि के चरणों पर गिर पड़ी तब।।३३।। मुनि बोले- यह शिवजी से युद्ध में मारा गया है, इस कारण जीवित नहीं होगा, संग्राम में रुद्र से मारे हुए कभी जीवित नहीं होते हैं।।३४।। तो भी कृपा करके में इसे जीवित कर देता हूँ, कारण कि शरण में आये हुओं की रक्षा करना ही सनातन धर्म है।।३५।। सनत्कुमारजी बोले- हे मुनिराज! यह कहकर और उसके पति को जीवित करके मायावी विष्णुजी वहां से अन्तर्धान हो गये, उनके कहने पर सागरनन्दन तुरन्त जीवित होकर उठा और जीवित होते ही उसने आलिंगन करके उसका मुख चूमा।।३६-३७।। और स्वामी को जीवित देखते ही वृन्दा भी बहुत प्रसन्न हुई, सब शोक त्यागकर मरने की बात स्वप्न के समान जानी।।३८।। जब वह प्रसन्न हुई, तब उसको हृदय में शयन कराने की इच्छा की और उसके साथ उसी वन में बहुत दिनों तक रमण करती रही।।३९।। एक समय सुरत के अन्त में विष्णुजी को देखा, तब क्रोध करके घुड़कती हुई विष्णुजी से बोली।।४०।। वृन्दा बोली- हे परदाराभिगामी विष्णु! आपके शील को धिक्कार है, मैंने जाना कि, वह मायावी तपस्वी आप ही थे।।४१।। सनत्कुमारजी बोले- हे व्यासजी! ऐसा कहकर उसने महाक्रोध करके अपना तेज दिखाते हुए पतिव्रतधर्म के प्रभाव से केशव को शाप

दिया ।।४२।। रे महा अधम दैत्यशत्रु! पराया धर्म दूषित करनेवाले हे शठ! सब विषों से तीक्ष्ण मेरे शाप को तू ग्रहण कर ।।४३।। जो आपने माया से दो राक्षस मुझे दिखाये थे, वही दोनों राक्षस होकर आपकी भार्या को हरण करेंगे ।।४४।। आप भी भार्या के निमित्त दुःखी होकर वन में वानरों की सहायता ग्रहण करोगे, वन में भ्रमण करोगे और यह सर्पेश्वर जो आपका शिष्य बना है, यह भी आपके साथ होगा ।।४५।। सनत्कुमारजी बोले– ऐसा कहकर वृन्दा अग्नि में प्रवेश कर गई, विष्णुजी ने निषेध भी किया परन्तु, उसने अपना मन पति में ही लगाया ।।४६।। हे मुने! उस समय ब्रह्मादिक सब देवता आकाश में उसकी सद्गति को देखने के लिये अपनी स्त्रियों सहित वहां आये ।।४७।। तब दैत्येन्द्र की पत्नियों के देखते तथा सब देवताओं के देखते–देखते उसका तेज अदृश्य हो गया ।।४८।। और वृन्दा का तेज पार्वती के शरीर में लीन हो गया और आकाश में स्थित देवताओं में जय--जय शब्द होने लगा ।।४९।। इस प्रकार से कालनेमि की उत्तम कन्या महारानी वृन्दा पतिव्रतधर्म के प्रभाव से परममुक्ति को प्राप्त हुई ।।५०।। तब विष्णुजी वृन्दा को स्मरण करते हुए उसकी चिता भस्म शरीर पर लपेटकर वहीं स्थितं हुए। यद्यपि सुरसिद्धों ने समझाया भी, परन्तु वह शान्ति को प्राप्त न हुए ।।५१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
पञ्चम युद्धखण्डे वृन्दामुक्तिवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ।। २३ ।।

*****

चौबीसवाँ अध्याय

व्यासजी बोले– हे तात! हे विधिसुत! हे प्राज्ञ! यह आपने अद्भुत कथा सुनाई। फिर संग्राम में क्या हुआ और दैत्य कैसे मरा? सो आप कहें ।।१।। गिरिजा के अदृश्य होने पर और दैत्येन्द्र के युद्ध में आने पर, गन्धर्वविद्या के लीन होने पर शिवजी महाराज चैतन्य हुए ।।२।। उस माया को अन्तर्धान हुआ देखकर शिवजी बड़े क्रोधित हुए और लौकिकी गति को आश्रय करके वह संहारकर्त्ता महाक्रुद्ध हो गये ।।३।। तब शिवजी विस्मित होकर महाक्रोध करके फिर जलन्धर से युद्ध करने के लिये चले और उस दैत्य ने शंकरजी को युद्ध में आते हुए देखकर शंकरजी के ऊपर बाणों की वर्षा की ।।४।। तब महाबली शंकरजी ने जलन्धर के सम्पूर्ण अस्त्रजाल को अपने बाणों से शीघ्र ही विनाश कर दिया, तीनों भुवनों के प्रहार करनेवाले में यह कोई अद्भुत वस्तु नहीं है ।।५।। तब जलन्धर ने शिवजी का अद्भुत विक्रम देखकर शिवजी को मोहने के लिये माया की गौरी निर्माण की ।।६।। शिवजी ने उसके रथ पर बैठी रोती हुई पार्वती को

देखा कि, शुम्भ और निशुम्भ दैत्य उसका वध कर रहे हैं।।७।। पार्वती की यह दशा देखकर लौकिकी गति को दिखाते हुए शंकरजी प्राकृत पुरुष के समान उद्विग्नमन हो गये।।८।। उस समय अनेक लीला करने में चतुर शिवजी नीचे मुख करके शिथिल अंग, विषण्णमुख होकर अपना पराक्रम भूलकर स्थित हो गये।।९।। उसी समय तीन बाणों से जलन्धर ने उनको विद्ध किया, वह शिवजी के सिर, हृदय और उदर में पुंखपर्यन्त प्रविष्ट हो गये।।१०।। क्षणमात्र में ही वह महालीला करनेवाले प्रभु ने प्रबुद्ध होकर ज्वालामाला से भयंकर रौद्ररूप धारण किया।।११।। यह महा असुर शिवजी का इस प्रकार महाभयंकर रूप देखकर सम्मुख खड़े होने के लिये समर्थ न हुए और दशों दिशाओं में भाग गये।।१२।। निशुम्भ–शुम्भ भी जो बड़े विख्यात वीर थे, हे मुनीश्वर! वे भी युद्ध में स्थित होने को समर्थ न हुए।।१३।। जलन्धर की माया क्षणमात्र में अन्तर्धान हो गई। उस भयंकर संग्राम में चारों ओर से महान् हाहाकार होने लगा।।१४।। तब शिवजी ने शुम्भ–निशुम्भ को शाप दिया और उनको भागते हुए देखकर धिक्कारते हुए।।१५।। रुद्र बोले– तुम दुष्ट खलों ने मेरा बड़ा अपराध किया है, तुम पार्वती को मारते थे, अब इस युद्ध से भागते हो!।।१६।। भागते हुओं को मारना उचित नहीं है, इसी कारण मैं तुम दोनों का वध नहीं करता हूँ। मेरे युद्ध से तुम बचे, परन्तु युद्ध में गौरी स्वयं तुम्हारा संहार करेगी।।१७।। शिवजी के ऐसा कहने पर समुद्र का बेटा जलन्धर क्रोध से अग्नि के समान प्रज्ज्वलित हो उठा।।१८।। और महावेग से शिवजी के ऊपर बाणों की वर्षा करने लगा, उस समय संग्रामभूमि में बाणों से अन्धकार छा गया।।१९।। जब तक शिवजी उसके बाणों का छेद करते, तब तक उस बली ने वृषभ पर परिघ का प्रहार किया।।२०।। उस प्रहार से वृष रणभूमि से पीछे हटने लगा, शिवजी ने उसे खींचा भी तथापि वह संग्रामभूमि में स्थित न हो सका।।२१।। तब महारुद्र ने इस लोक में अपना दुस्सह तेज सब को दिखाया। हे मुनीश्वर! यह बात सत्य–सत्य है।।२२।। उस समय रौद्र शरीरधारी शंकरजी महाक्रोध करके प्रलयकाल की अग्नि के समान महाभयंकर हो गये।।२३।। आगे मेरुश्रृंग के समान अचल उस दैत्य को खड़ा हुआ समान अचल उस दैत्य को खड़ा हुआ देखकर उसे दूसरों से अवध्य जानकर।।२४।। जगत् के प्रभु ब्रह्माजी के वचन की रक्षा करते हुए स्वयं उसका वध करने को उद्यत हो गये।।२५।। शूलधारी शंकरजी ने महाकोप करके अद्भुत और रौद्ररूप से रथ के पहिये को चरण के अंगुष्ठ से सागर में मग्न किया।।२६।। जब भगवान् ने रथ के पहिये को सागर में डुबाया और यह विचार किया कि, इसने त्रिलोकी को पीड़ा दी है, तब दक्षयज्ञ, अन्धुक, त्रिपुर के हन्ता तथा त्रिलोकी के संहारकर्ता शिवजी हँसते हुए बोले।।२७।। महारुद्र बोले– हे जलन्धर! महासागर में मैंने रथ के पहिये की नेमि चरणांगुष्ठ से डुबा दी है, यदि तू बल से उसका उद्धार कर सके तो संग्राम में स्थित हो, अन्यथा भाग जा।।२८।।

सनत्कुरमारजी बोले– शिवजी के यह वचन सुनकर क्रोध से नेत्र लाल–लाल करके, नेत्रों से मानो शंकरजी को जलाते हुए दैत्य बोला ।।२९।। जलन्धर बोला– हे शंकर! इस रेखा का उद्धार करके तथा गणों सहित तुमको मारकर तथा देवताओं सहित सम्पूर्ण लोकों का संहार करके अपना भाग गरुड़ के समान ग्रहण करूंगा ।।३०।। मैं इन्द्र के सहित चराचर का नाश करने के लिये समर्थ हूँ। हे महेश्वर! त्रिलोकी में कौन मेरे बाणों से भेदित नहीं हो सकता? ।।३१।। ब्रह्माजी को तो बालभाव से मैंने तप से ही जीत लिया है। वह ब्रह्माजी बलिष्ठ होकर देवताओं सहित मेरे स्थान पर विद्यमान हैं ।।३२।। क्षणमात्र में जो त्रिलोकी को भस्म कर सकता है। हे रुद्र! क्या तुमने तपस्या से उनको जीत लिया है? ।।३३।। इन्द्र, अग्नि, यम, वित्तेश, वायु, वरुणादि यह सब मेरे पराक्रम को इस प्रकार न सह सके, जैसे सर्प गरुड़ की गन्ध को नहीं सह सकते ।।३४।। हे शंकर! स्वर्ग वा भूमि कहीं भी मुझे वाहन प्राप्त नहीं हुआ, मैंने समस्त पर्वतों को प्राप्त होकर अनेक गणेश्वरों को घर्षित किया है ।।३५।। गिरिन्द्र, मन्दर, श्रीमान् नीलपर्वत, मेरुपर्वत मैंने अपनी भुजाओं की खुजली मिटाने के लिये बहुत बार घर्षित किये हैं ।।३६।। हिमालय पर्वत में लीला से ही अपनी भुजाओं से गंगा को निरुद्ध किया है और मैंने देवताओं को, जो मेरे बैरी हैं, अपने नौकरों द्वारा उनसे जय प्राप्त कराई है ।।३७।। मैंने अपने हाथ से बड़वा का मुख बन्द कर दिया और उसी समय सम्पूर्ण जगत् क्षणमात्र में एकार्णव हो गया ।।३८।। मैंने ऐरावत आदि हाथियों को सागर के जल के ऊपर ड़ाल दिया और भगवान् इन्द्र को मैंने रथ सहित सौ योजन पर निक्षिप्त कर दिया ।।३९।। गरुड़ को भी मैंने विष्णुजी के सहित नागपाश से बांध लिया और उर्वशी आदिक स्त्रियां भी मेरे कारागृह में विद्यमान हैं ।।४०।। हे रुद्र! त्रिलोकी को जीतनेवाले मुझको तुम नहीं जानते। मैं जलन्धर महादैत्य त्रिलोक विजयी महाबली सिन्धुपुत्र हूँ ।।४१।। सनषत्कुमारजी बोले– सागरनन्दन ने महादेवजी से ऐसा कहकर अचल भाव से स्थिति की और मरे हुए दानवों को स्मरण न किया ।।४२।। और उस दुर्मद अविनीत ने अपनी भुजाओं को भुजाओं से बलपूर्वक ताडन करके बड़े कटु वचनों से महादेवजी का तिरस्कार किया ।।४३।। यह दैत्य के उच्चारण किये हुए अमंगल वचनों को सुनकर महादेवजी हँसे और परम क्रोध किया ।।४४।। जो सुदर्शन नामक चक्र शिवजी ने चरणांगुष्ठ से निर्माण किया था, शिवजी उसे हाथ में ग्रहण करके उस दैत्य को मारने का लिये उद्यत हुए ।।४५।। भगवान् शंकरजी ने सुदर्शनचक्र का उसके ऊपर प्रहार किया, जो कोटि सूर्य के समान तथा प्रलयानल के समान कान्तिमान् था ।।४६।। उसके वेग से भूमि प्रज्ज्वलित होने लगी और बड़े नेत्रोंवाला उसका सिर बड़े वेग से उस चक्र ने हरण कर लिया ।।४७।। और पृथ्वीतल को शब्दायमान करता हुआ उसका सिर पृवी पर गिरा और सागर का पुत्र पृथ्वी पर गिरते ही महान् हाहाकार

हुआ ।।४८।। अंजनपर्वत के समान उसकी देह दो खण्ड होकर पृथ्वी पर गिरी, जैसे वज्र से भिन्न देह होकर पर्वत पृथ्वी पर गिरे थे ।।४९।। उसके रुधिर से संग्रामभूमि व्याप्त हो गई। हे मुनीश्वर! तब सम्पूर्ण पृथ्वी विकृत हो गई ।।५०।। शिवजी की आज्ञा से उसका रक्त और मांस महारौरव में जाकर रक्त का कुण्ड हो गया ।।५१।। उसके शरीर से तेज निकलकर शिवजी के शरीर में प्रवेश कर गया, जिस प्रकार से वृन्दा का तेज गौरी के शरीर में प्रवेश कर गया था ।।५२।। देव, गन्धर्व, सर्प सब जलन्धर को मरा हुआ देखकर प्रसन्न हो गये और साधुवाद देने लगे ।।५३।। देव, सिद्ध, मुनीश्वर सब प्रसन्न हो गये और पुष्पवृष्टि करके ऊंचे स्वर से भगवान् का यश गाने लगे ।।५४।। महामोद से प्रसन्न होकर देवताओं की स्त्रियां नृत्य करने लगीं और बड़े मनोहर शब्दों से गन्धर्वों के सहित गाने लगीं ।।५५।। हे मुने! वृन्दा के पति के मरने से दिशाएँ प्रसन्न हो गईं और शीतल मन्द सुगन्ध इन तीन प्रकार की सुख स्पर्श वायु चलने लगी ।।५६।। चन्द्रमा प्राकृतिक शीतलता को प्राप्त हुआ और सूर्य अपने तेज से तपने लगा, शान्त हुई अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी, आकाश निर्मल हो गया ।।५७।। हे मुने! इस प्रकार से सम्पूर्ण जगत् स्वस्थ हो गया, जिस समय अनन्तमूर्ति ने युद्ध में सागरनन्दन को मारा, तब सब प्रसन्न हो गये ।।५८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

पञ्चम युद्धखण्डे जलन्धरयुद्धवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।। २४ ।।

*****

पचीसवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले– तब ब्रह्मादि सब देवता और मुनि सिर झुकाकर भगवान् शंकरजी की स्तुति करने लगे ।।१।। देवता बोले– हे देव देव महादेव! हे शरणागतवत्सल! आप साधुओं को सुख देनेवाले, सदा अपने भक्तों के दुःख दूर करनेवाले हो ।।२।। आप महाअद्भुत लीला करनेवाले, भक्ति से प्राप्त होनेवाले, दुरासद हो। हे नाथ! आप असतों को दुराराध्य हो, आप सदा प्रसन्नरूप हो ।।३।। आपकी महिमा तत्त्व से वेद भी नहीं जानते, यथामति से सब महात्मा आपके यश को गाते हैं ।।४।। आपके गूढ़ माहात्म्य को प्रेम से शेष आदि गाकर सब अपनी वाणी पवित्र करते हैं ।।५।। हे देवेश! आपकी कृपा से ब्रह्मज्ञानी जड़ हो जाते हैं, आपकी भक्ति से ही मानव मुक्ति को प्राप्त होते हैं, ऐसा वेद कहते हैं ।।६।। आप दीनदयालु और सबत्र व्यापक हैं, सद्भक्ति से आपका आविर्भाव होता है, आप निर्विकार और सत्पुरुषों की गति हैं ।।७।। हे

महेशान! आपकी भक्ति से बहुत से जन सिद्धि को प्राप्त हुए हैं, निर्विकार से दुःखी हुए यही सब प्रकार के सुख भोगते हैं।।८।। पहले यदु दशार्ह आपकी भक्ति करके सिद्धि को प्राप्त हुए हैं। हे प्रभो! उसकी पत्नी कलावती भी आपकी भक्ति करके सिद्धि को प्राप्त हो गई।।९।। इसी प्रकार राजा मित्रसह और उसकी प्रिया मदयन्ती, हे देवेश! आपकी भक्ति से ही परम कैवल्य को प्राप्त हुई।।१०।। केकई की बड़ी बहन सौमिनी नामक उनकी कन्या भी आपकी भक्ति करके योगियों में परम दुर्लभ गति को प्राप्त हुई।।११।। हे प्रभो! विमर्षण नामक राजा ने आपकी सेवा करके सात जन्म तक अनेक भोग भोग कर आपकी कृपा से सद्गति पाई।।१२।। राजा चन्द्रसेन ने आपकी भक्ति से ही अनेक भोग भोगे और सब दुःखों से छूटकर दोनों लोकों में सुख पाया।।१३।। श्रीकर नामवाला गोपी का पुत्र आपकी भक्ति से हा सद्गति को प्राप्त हुआ और महावीर शिष्य होकर दोनों लोकों का सुख पाया।।१४।। हम आपको जानते हैं, कि आप दुःखहर्त्ता और गति को देनेवाले हो, आपने धर्मगुप्त और राजपुत्र को सुखी कर दिया।।१५।। हे महाप्रभो! इसी प्रकार से आपने शुचिव्रत नामक ब्राह्मण का दरिद्र दूर कर दिया, आपकी भक्ति में वर्तने से ज्ञानियों पर कृपा होती है।।१६।। चित्रवर्मा राजा को भी आपकी भक्ति से सद्गति प्राप्त हुई। इस लोक में देवताओं को दुर्लभ सुख उसने भोगे।।१७।। चित्रांगद नामक राजपुत्र अपनी सीमान्तिनी नामक स्त्री के सहित आपकी भक्ति से सब दुःख छोड़कर महासुख को प्राप्त हुआ।।१८।। जो मन्दर नामवाला वेश्यागामी ब्राह्मण महाअधम खल था, वह भी आपकी भक्ति और पूजन करके उसके साथ आपकी गति को प्राप्त हुआ।।१९।। इसी प्रकार भद्रायु नामक राजपुत्र ने आपकी भक्ति करके गति प्राप्त की। हे प्रभो! आपके भक्त आपकी कृपामात्र से श्रेष्ठ गति को प्राप्त होते हैं।।२०।। सब प्रकार से स्त्रियों के भोग में रत होकर सर्वभक्षी दुर्जन भी आपकी सेवा करके विमुक्त हो गया।।२१।। हे शंकरजी! शम्बर नामक पुरुष जो नियम से भस्म धारण करता था, वह भस्म न मिलने से स्त्री के दग्ध शरीर की भस्म लगाकर अपनी स्त्री सहित आपके लोक को गया (यह स्त्री जीवित हो गई थी)।।२२।। हे देव! इसी प्रकार भद्रसेन का पुत्र और मन्त्री का पुत्र यह सुधर्म और शुभकर्म करनेवाले सदा रुद्राक्ष धारण करनेवाले थे।।२३।। आपकी कृपा से यहां अनेक सुख भोगकर पीछे मुक्त हो गये, पूर्वजन्म में जो कीश कुक्कुट रुद्र भूषण थे।।२४।। तथा पिंगला और महानन्दा यह दो वेश्या आपकी भक्ति करके तर गईं। हे नाथ! हे भक्तों का उद्धार करनेवाले!।।२५।। शारदा नामक ब्राह्मण की कन्या जो बालविधवा थी, आपकी भक्ति के प्रभाव से ही पुत्रवती और सौभाग्यवती हो गई।।२६।। बिन्दुग नामक ब्राह्मण जो वेश्याभोगी था और उसकी स्त्री चंचुला आपका यश श्रवण करके परमगति को प्राप्त हुई।।२७।। हे प्रभो! इस प्रकार से बहुत से जीव आपकी भक्ति करके सिद्धि को

प्राप्त हुए हैं, हे दीनबन्धु महेशान! भक्ति के आधीन होकर आप पालते हो, आप कृपा के सागर हो।।२८।। हे देव! आप प्रकृति से परे, पुरुष से परे, ब्रह्म परमेश्वर हो, आप ही निर्गुण तीनों गुणों के आधार ब्रह्मा, विष्णु, हरात्मक हो।।२९।। आप निर्विकार सबके ईश्वर भी होकर नित्य अनेक प्रकार के कर्म करते हो, हे महेश्वर! हम ब्रह्मादिक सब आपके दास हैं।।३०।। हे देवेश! हे शिवजी! आप प्रसन्न होकर सदा हमारी रक्षा कीजिये। हे नाथ! हम आपकी प्रजा हैं और सदा आपके शरण में आये हैं।।३१।। सनत्कुमारजी बोले- इस प्रकार जब ब्रह्मादि और सिद्ध मुनियों ने स्तुति की, तब वे सब शिवजी के चरणकमल को देखकर मौन हो गये।।३२।। तब शिवजी उस पवित्र देवस्तुति को सुनकर देवताओं को अभिलषित वर देकर शीघ्र ही अन्तर्धान हो गये।।३३।। शत्रु के मर जाने से ब्रह्मादि सब देवता प्रसन्न हो गये और शिवजी का यश गाते प्रसन्न होकर सब अपने-अपने स्थानों को गये।।३४।। यह जलन्धर का परम आख्यान महेश चरित्र सम्मिलित होने से महापुण्यदायक तथा सब पापों को दूर करनेवाला है।।३५।। यह पवित्र देवस्तुति भी पुण्यदायक सब पापों का नाश करनेवाली है, यह नित्य सब सुख देनेवाली और नित्य महेशजी को आनन्द देनेवाली है।।३६।। जो इन दोनों आख्यानों को पढ़ता-पढ़ाता है, वह यहां परम सुख को तथा गणपति के अधिकार को प्राप्त होता है।।३७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

पञ्चम युद्धखण्डे देवस्तुतिवर्णनं नाम पंचविंशोऽध्यायः।। २५ ।।

*****

छब्बीसवाँ अध्याय

व्यासजी बोले- हे ब्रह्मपुत्र! आपको नमस्कार है। आप धन्य और शैवों में उत्तम हो, जो आपने यह महादिव्य शिवजी की कथा सुनाई।।१।। हे मुने! अब आप प्रसन्न होकर विष्णुजी का चरित्र कहिये। वृन्दा को मोहित करके उन्होंने क्या किया और वे कहा गये?।।२।। सनत्कुमारजी बोले- हे महापण्डित! हे शैवों में श्रेष्ठ व्यासजी! आप सुनिये। यह विष्णुजी का चरित्र शिवजी के चरित्र से मिला हुआ है।।३।। जब ब्रह्मादिक देवता स्तुति करके मौन हो गये, तब शरणागतवत्सल शंकरजी प्रसन्न होकर कहने लगे।।४।। शिवजी बोले- हे ब्रह्माजी! हे सब देवताओ! यद्यपि जलन्धर मेरा अंश था, परन्तु यह सत्य है, कि मैंने आपके निमित्त उसका वध किया।।५।। हे देवताओ! सत्य कहिये कि, अब भी आप सुख को प्राप्त हुए हो या नहीं? मुझ

निर्विकार की लीला आपही के निमित्त होती है।।६।। सनत्कुमारजी बोले– तब ब्रह्मादिक देवताओं के नेत्र हर्ष से खिल उठे और शंकरजी को सिर से प्रणाम करके विष्णुजी का वृत्तान्त निवेदन किया।।७।। देवता बोले– हे देव देव महादेव! आपने शत्रु के भय से हमारी रक्षा की, परन्तु कुछ एक और बात हुई, उसमें क्या करें?।।८।। हे नाथ! बड़े प्रयत्न से विष्णुजी ने वृन्दा को मोहित किया, वह अग्नि में भस्म होकर परम गति को प्राप्त हुई है।।९।। वृन्दा की सुन्दरता से मोहित होकर विष्णुजी वहीं स्थित हैं और आपकी माया से मोहित होकर उसकी चिता की भस्म धारण करते हैं।।१०।। सिद्ध, मुनि तथा हम ने भी उनको आदर से समझाया, परन्तु आपकी माया से मोहित होकर हरि कुछ नहीं समझते।।११।। हे महेशान! कृपा करके आप विष्णुजी को समझाइये, आपके अधीन यह सम्पूर्ण चराचर प्राकृत हो रहे हैं।।१२।। सनत्कुमारजी बोले– महेश्वरजी देवताओं के यह वचन सुनकर उन हाथ जोड़े हुए देवताओं से स्वच्छन्दता पूर्वक हँसते हुए बोले।।१३।। महेश्वरजी बोले– हे ब्रह्मन्! हे सब देवताओ! आदर से मेरे वचन सुनिये, सब लोकों को मोहनेवाली मेरी माया बड़ी दुस्तर है।।१४।। देवता, मनुष्यों के सहित यह सब जगत् उसीके आधीन है, उसीसे मोहित होकर विष्णुजी काम के आधीन हो गये हैं।।१५।। वह उमा नामवाली महादेवी तीनों देवताओं की जननी है, वही मूल प्रकृति, वही परम मनोहर और वही गिरिजा कहलाती है।।१६।। हे देवताओ! उनका मोह दूर करने के निमित्त आप भगवती के शरण में जाइये, वह शिवा नामक मोहिनी माया शरण्य और सब कामनाओं की देनेवाली है।।१७।। आप मेरी शक्ति के संतोष के निमित्त उसकी स्तुति कीजिये, वह प्रसन्न हो जायेगी तो आपके सब कार्य करेगी।।१८।। सनत्कुमारजी बोले– हे व्यासजी! भगवान् पञ्चमुख हर इस प्रकार से उन सब देवताओं से कहकर अपने गणों सहित शीघ्र ही अन्तर्धान हो गये।।१९।। और शिवजी की आज्ञा से ब्रह्मादिक सब देवता भक्तवत्सला प्रकृति देवी को मन से प्रसन्न करने लगे।।२०।। देवता बोले– जिससे सत, रज, तम तीन गुण प्रकट होकर सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं, जिसकी इच्छा से यह संसार प्रकट और अप्रकट होता है, उस मूलप्रकृति को हम प्रणाम करते हैं।।२१।। जो सम्पूर्ण जगत् में स्थित होकर शब्दादि २१ गुणों की रक्षा करती है, तीनों जगत् में जिसके रूप गुण प्रकट हैं और उस मूल प्रकृति को नहीं जानते, उनको हम प्रणाम करते हैं।।२२।। जिसकी भक्ति से युक्त होकर यह पुरुष दरिद्र मोह से उत्पन्न हुए विकारों को नहीं प्राप्त होते, उस भक्तवत्सला मूल प्रकृति को हम सदा प्रणाम करते हैं।।२३।। हे परमेश्वरी! हम देवताओं का कार्य आप कीजिये। हे शिवे! हे दुर्गे देवि! आप विष्णुजी का मोह दूर कीजिये, आपको प्रणाम है।।२४।। हे शिवे! जिस समय कैलासवासी शंकरजी जलन्धर के साथ युद्ध में प्रवृत्त हुए, तब गौरी की आज्ञा से विष्णुजी ने वृन्दा को

मोहित करने का प्रयत्न किया, वह अपना सतीरूप धर्म नष्ट हो जाने से अग्नि में भस्म होकर श्रेष्ठ गति को प्राप्त हुई।।२५–२६।। जलन्धर युद्ध में मारा गया, शिवजी ने बड़ी कृपा करके हमको भय से छुड़ा दिया, कारण कि, शिवजी भक्तों पर दया करते हैं।।२७।। हे भगवती! उन्हींकी आज्ञा से हम सब आपकी शरण में आये हैं। हे देवि! आप और शंकरजी यह दो ही भक्तों का उद्धार करनेवाले हैं।।२८।। वृन्दा के लावण्य से मोहित हुए विष्णुजी उसी स्थान पर स्थित हैं, उसकी चिताभस्म को धारण करते हुए ज्ञान से रहित और मोहित हो गये हैं।।२९।। हे महेश्वरी! सिद्ध, मुनियों ने उनको समझाया भी, परन्तु आपकी माया से मोहित हुए हरि चैतन्य नहीं होते।।३०।। हे देवि! कृपा करके आप हरि को समझाइये और जिस प्रकार वह चैतन्य होकर अपना कार्य करें, वैसा कीजिये।।३१।। इस प्रकार से स्तुति करके देवता देखने लगे कि, आकाश में तेजोमण्डल के बीच में स्थित, अपनी ज्वाला से दिशाओं को व्याप्त करनेवाली।।३२।। भगवती को उस तेज के मध्य में ब्रह्माजी, इन्द्र आदिक सब देवता देखने लगे। हे व्यासजी! उस समय देवताओं ने आकाश से सब काम की देनेवाली वाणी को सुना।।३३।। आकाशवाणी बोली– मैं ही तीन प्रकार से तीन गुणों से पृथक् होकर स्थित होती हूँ, हे देवताओ! गौरी, लक्ष्मी और ज्योति रज, सत, तमागुण से स्थित होती हूँ।।३४।। सो आप मेरी आज्ञा से अब उन देवियों के समीप जाइये, मेरी आज्ञा से आदरपूर्वक वे आपके मनोरथ पूर्ण करेगी।।३५।। सनत्कुमारजी बोले– जब देवताओं ने यह वाणी सुनी, तब उनके नेत्र खुल गये, प्रसन्नता हो गई, तब वह तेज अन्तर्धान हो गया।।३६।। तब वे सब देवता आदर से यह वचन सुनकर भगवती के वाक्य का आदर करते हुए गौरी, लक्ष्मी और सरस्वती को प्रणाम करने लगे।।३७।। और सब देवता महाभक्ति से उन सब देवियों की प्रार्थना करने लगे और वे ब्रह्मादिक सिर झुकाकर अनेक प्रकार की स्तुति करने लगे।।३८।। हे व्यासजी! तब शीघ्र ही वह तीनों देवियाँ उनके आगे प्रकट हुईं, वे अपने महा अद्भुत तेज से दिशाओं को व्याप्त करने लगीं।।३९।। तब वे सब देवता उन भगवतियों को देखकर प्रसन्न चित्त से प्रणाम करके परमभक्ति से अपना कार्य निवेदन करने लगे।।४०।। तब वे देवियाँ सब देवताओं को इस प्रकार भक्ति से प्रणाम करते हुए देखकर उन देवताओं को कुछ बीज देती हुईं आदर से यह वचन बोली।।४१।। देवियाँ बोलीं– जहां विष्णुजी स्थित हैं, वहां यह बीज ले जाइये और वहां बो दीजिये, तब आपके कार्य सिद्ध हो जायेंगे।।४२।। सनत्कुमारजी बोले– हे मुने! ऐसा कहकर देवियाँ अन्तर्धान हो गईं। वह त्रिगुणात्मक शक्तियाँ रुद्र, विष्णुजी और विधाता की थीं।।४३।। तब ब्रह्माजी, इन्द्रादिक सब देवता प्रसन्न हुए और उन बीजों को लेकर जहां विष्णुजी थे, वहां गये।।४४।। उन देवताओं ने उनको वृन्दा की चिता के नीचे भूमितल में डाल दिया

और हे मुने! शिवजी की शक्तियों को स्मरण करते हुए वे देवता वहां स्थित हुए।।४५।। उन बीजों के डालते ही उनसे तीन वनस्पतियां प्रकट हुईं, हे मुनीश्वर! धात्री (आमलकी), मालती और तुलसी यह तीनों के नाम हुए।।४६।। विधात्री के बीज से धात्री, लक्ष्मी के बीज से मालती और गौरी के बीज से तुलसी प्रकट हुई। यह तम, सत्व और रजोगुणवाली हैं।।४७।। हे मुने! विष्णुजी ने ज्यों ही उन स्त्री रूपवाली वनस्पतियों को देखा कि, उनके विशेष राग विभ्रम से तत्काल उठ बैठे।।४८।। और कामासक्त चित्त से उनको देखकर मोह से याचना करने लगे। इसी प्रकार तुलसी और धात्री उनको प्रेम से देखने लगीं।।४९।। और जो बीज लक्ष्मी ने अपनी माया से अर्पण किया था, उससे उत्पन्न हुई स्त्री इनसे ईर्षा करने लगी।।५०।। इस कारण वह बर्बरी नाम से विख्यात होकर अत्यन्त गर्हितपने को प्राप्त हुई, धात्री और तुलसी प्रेम से उनको प्रीति देनेवाली हुई।।५१।। तब विष्णुजी दुःख भूलकर उन दोनों के साथ देवताओं से नमस्कृत होकर वैकुण्ठ को गये।।५२।। हे व्यासजी! कार्तिक के महीने में तुलसी और धात्री सब देवताओं को प्रिय होती हैं और विष्णुजी को विशेष प्रिय होती हैं।।५३।। हे मुने! उनमें तुलसी विशेष श्रेष्ठ और धन्य है। गणेशजी को छोड़कर अन्य सब देवताओं को प्रीति और कामना की देनेवाली है।।५४।। ब्रह्माजी, इन्द्रादिक देवता वैकुण्ठ में स्थित हरि को देखकर महाविष्णुजी की स्तुति और प्रणाम करके अपने-अपने स्थानों को गये।।५५।। हे मुनिश्रेष्ठ! अपने लोक वैकुण्ठ में स्थित होकर मोह टूट जाने से पूर्ववत् सुखी होकर विष्णुजी शंकरजी का स्मरण करने लगे।।५६।। यह आख्यान मनुष्यों के सब पापों को दूर करके कामनाओं को देनेवाला है, यह सब काम के विकारों को हरनेवाला तथा सब ज्ञान का बढ़ानेवाला है।।५७।। जो भक्ति से इसे नित्य पढ़ते वा पढ़ाते हैं, जो सुनते-सुनाते हैं, वे परमगति को प्राप्त होते हैं।।५८।। जो बुद्धिमान् इस परम आख्यान को पढ़कर वीरता के साथ संग्राम में जाता है, उसकी जय होती है, इसमें सन्देह नहीं।।५९।। यह ब्राह्मणों को ब्रह्मविद्या और क्षत्रियों को जय देनेवाला है, वैश्यों को सब प्रकार के धन और शूद्रों को सुख देनेवाला है।।६०।। हे व्यासजी! यह शिवजी की भक्ति देनेवाला तथा सब के पाप नाश करनेवाला है, इस लोक और परलोक सब में सद्गति देता है।।६१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

पञ्चम युद्धखण्डे षड्विंशोऽध्यायः।। २६ ।।

*****

सत्ताइसवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले- हे मुने! अब प्रेम से आप शंकरजी के दूसरे चरित्र सुनिये, जिसके श्रवणमात्र से शंकरजी में दृढ़ भक्ति होती है ।।१।। शंखचूड नामक वीर दानव जो देवताओं को कण्टकस्वरूप था, शिवजी ने उसका त्रिशूल से जिस प्रकार रणभूमि में वध किया ।।२।। वह शिवजी का पवित्र और पापनाशक दिव्य चरित्र है, हे व्यासजी! प्रेम से सुनिये, मैं आपके स्नेह के कारण कहता हूँ ।।३।। जो विधाता के पुत्र मरीचि के कश्यपजी जन्मे, वह बड़े धर्मात्मा, सृष्टि के कर्ता, विधाता की आज्ञा माननेवाले थे ।।४।। दक्षजी ने प्रसन्न होकर उनको अपनी तेरह कन्याएँ व्याह दी, उनकी बहुत सन्तानें हुईं, जिनको हम विस्तार भय से नहीं कहते ।।५।। जिनसे सम्पूर्ण देवता और चराचर जगत् उत्पन्न हुआ, त्रिलोकी में उसका विस्तार कहने को कौन समर्थ है ?।।६।। उस शिवलीला से संयुक्त वृत्तान्त को आप श्रवण कीजिये, वह भक्ति का बढ़ानेवाला वृत्तान्त मैं अब कहता हूँ ।।७।। उन कश्यपजी की स्त्रियों में एक का नाम दनु था, वह साध्वी महारूपवती पति के सौभाग्य से दर्पित थी ।।८।। उस दनु के भी बहुत से बलवान पुत्र हुए, हे मनु! विस्तार के भय से उन सबके नाम नहीं कहते ।।९।। उनमें एक विप्रचित्ति नामक पुत्र बड़ा बली और पराक्रमी था। इसका पुत्र दम्भ बड़ा धार्मिक, विष्णुभक्त और जितेन्द्रिय था ।।१०।। उस वीर को कोई पुत्र नहीं था, इस कारण उसे बड़ी चिन्ता थी, उसने शुक्राचार्यजी को गुरु करके कृष्णमन्त्र ग्रहण किया ।।११।। और पुष्कर में आकर लक्ष वर्ष तक तप किया, आसन बांधकर बहुत काल तक बराबर तप किया ।।१२।। तब तप करते-करते उसके सिर में बड़ा सर्वत्र फैलनेवाला दुःसह तेज प्रकट हुआ ।।१३।। उससे सब देवता, मुनि और मनु तापित हो गये और इन्द्र को आगे करके सब ब्रह्माजी के शरण में गये ।।१४।। सब सम्पत्तियों के देनेवाले विधाता को प्रणाम करके देवता व्याकुल होकर प्रार्थना करने लगे और सम्पूर्ण वृत्तान्त वर्णन किया ।।१५।। यह सुनकर विधाता उन सबके सहित वैकुण्ठ में गये और यह सब वृत्तान्त विष्णुजी को सुनाने की इच्छा की ।।१६।। वहां सब लोकों की रक्षा करनेवाले विष्णुजी के समीप जाकर प्रणाम करके, सिर झुकाकर सब देवता नम्र होकर स्तुति करने लगे ।।१७।। देवता बोले- हे देव देव! हम नहीं जानते कि, क्या कारण हुआ, हम सब किसके तेज से तप्त हुए हैं? सो कारण आप कहें ।।१८।। हे दीनबन्धु! आप तप्त हुए अपने भक्तों की रक्षा करनेवाले हैं, हे रमानाथ! हम शरण आये हुओं की आप रक्षा करें ।।१९।। सनत्कुमारजी बोले- ब्रह्मादि देवताओं के इस प्रकार के वचन सुनकर

विष्णुजी शरणागतवत्सलता के कारण हँसते हुए बोले ।।२०।। विष्णुजी बोले– हे देवताओ! भय मत करें, स्वस्थ हो जाइये, उपद्रव और प्रलय का समय अभी नहीं है ।।२१।। मेरा भक्त दम्भ नामक दानव तपस्या कर रहा है, उसे पुत्र की इच्छा है, सो वरदान से उसे निवृत्त किये देता हूँ ।।२२।। सनत्कुमारजी बोले– हे मुने! यह सुनकर देवताओं को धीरज हुआ और ब्रह्मादिक वे सब देवता अपने–अपने स्थानों को गये ।।२३।। इस ओर भगवान् भी वरदान देने के निमित्त पुष्कर में गये, जहां वह दम्भ नामवाला दानव तपस्या करता था ।।२४।। वहां जाकर सांत्वना देते हुए भगवान ने वर मांगने के लिये कहा, जहां वह नारायण मन्त्र जप रहा था, वहां भगवान् ने मनोहर वाणी से कहा 'वर मांगो' ।।२५।। यह भगवान् के वचन सुनकर और उनको अपने आगे स्थित हुआ देखकर महाभक्ति से प्रणाम करके दम्भ बोला ।।२६।। दम्भ बोला– हे देव देव! हे कमललोचन! आपको प्रणाम है। हे रमानाथ! हे त्रिलोकेश! आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये ।।२७।। आप महाबली पराक्रमी अपना भक्त पुत्र दीजिये, जो त्रिलोकी को जीतनेवाला वीर, जिसे देवता न जीत सकें ।।२८।। दानवेन्द्र के ऐसा कहनें से नारायण ने वर दिया और उग्र तपस्या करने से उसे विराम दिया और स्वयं अन्तर्धान हो गये ।।२९।। हरि के जाने से दानवेन्द्र ने उस दिशा की ओर नमस्कार कर पूर्ण मनोरथ और सिद्धतप होकर अपने घर को गमन किया ।।३०।। थोड़े ही समय में उसकी पत्नी गर्भवती हुई और अत्यन्त तेज से घर को प्रकाशित करने लगी ।।३१।। सुदाम नाम का गोप जो श्रीकृष्ण का पार्षद है, हे मुने! वह राधा से शापित होकर उसके गर्भ में आया ।।३२।। समय पर साध्वी ने श्रेष्ठ पुत्र को जन्म दिया और पिता ने बहुत से मुनियों को बुलाकर उसका जातकर्म किया ।।३३।। हे व्यासजी! उसके उत्पन्न होने से महान् उत्सव हुआ और पिता ने उसका नाम शंखचूड रखा ।।३४।। और वह पिता के घर में शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान बढ़ने लगा, बालकपन में विद्याभ्यास करके बड़ा दीप्तिमान् हुआ ।।३५।। वह बालक्रीड़ा करके नित्य पिता का आनन्द बढ़ाने लगा और वह अपने सब कुटुम्बियों का प्रिय हुआ ।।३६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

पञ्चम युद्धखण्डे सप्तविंशोऽध्यायः ।। २७ ।।

*****

अट्ठाइसवाँ अध्याय

तब शंखचूड ने जैगीषव्य के उपदेश से पुष्कर में बहुत काल तक तप किया ।।१।। जितेन्द्रिय होकर गुरु ने दी हुई ब्रह्मविद्या का जप करने लगा, वह एकाग्रमन होकर और इन्द्रियों को निग्रह करते हुए तप करने लगा ।।२।। इस प्रकार शंखचूड दानव को पुष्कर में तप करते हुए देखकर लोक के गुरु ब्रह्माजी उसे वरदान देने आये ।।३।। उस समय ब्रह्माजी ने दानवेन्द्र से वर मांगने के लिये कहा, वह बड़ा नम्र होकर अच्छी वाणी से स्तुति करने लगा ।।४।। और ब्रह्माजी से वर मांगा कि, 'देवता मुझे जीत न सकें' और ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर कहा 'ऐसा ही होगा' ।।५।। जगत् को मंगल प्रदान करनेवाला जो श्रीकृष्णजी का दिव्य कवच है, वह सब जगह जय का देनेवाला श्रीकृष्णजी का कवच ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर उसे दिया ।।६।। और कहा कि, तू बदरिकाश्रम में चला जा, जहां कामना सहित तुलसी तपस्या करती है, उससे विवाह कर ।।७।। वह धर्मध्वज की सुता है, ऐसा कहकर विधाता उसके देखते–देखते क्षणमात्र में अन्तर्धान हो गये ।।८।। तब वह तपसिद्ध शंखचूड पुष्कर स्थान में उस महामंगल देनेवाले श्रीकृष्णजी के दिव्य कवच को गले में बांधकर ।।९।। ब्रह्माजी के आज्ञा से तप से सिद्ध मनोरथ होकर प्रसन्नता से बद्रिकाश्रम में आया ।।१०।। वह शंखचूड दानव वहां अपनी इच्छा से ही प्राप्त हुआ, जहां धर्मध्वज की पुत्री तपस्या करती थी ।।११।। वह सुरूपवान सुन्दर हँसनेवाली सूक्ष्मांगी सुन्दर भूषणों से भूषित कटाक्षपूर्वक उस परम पुरुष को देखने लगी ।।१२।। उस ललित मनोहर सुशील सुन्दरी को देखकर उसके समीप जाकर उसने मधुर वचन कहे ।।१३।। शंखचूड बोला– हे सुन्दरी! तुम कौन हो, किसकी कन्या हो? यहां स्थित होकर क्या करती हो? तुम मौनवाली क्यों हो? मुझे अपना दास जानकर सेवा में लो ।।१४।। सनत्कुमारजी बोले– यह वचन सुनकर वह स्त्री उस कामी से बोली ।।१५।। तुलसी बोली– मैं धर्मध्वज की कन्या तपस्विनी हूँ, मैं तपोवन में तप करती हूँ, तुम कौन हो? अपने स्थान में सुखपूर्वक जाओ ।।१६।। यह नारी जाति बड़ी मोहिनी होती है, ब्रह्मादिक को विष के समान होती है, बड़ी निन्दा के योग्य दोष करनेवाली, मायारूप तथा विचारशीलों के लिये शृंखलारूण है ।।१७।। सनत्कुमारजी बोले– तुलसी उससे यह रसीले वचन कहकर मौन हो गई और उसको मुसकाता हुआ देखकर शंखचूड बोला ।।१८।। शंखचूड बोला– हे देवि! तुमने जो कहा वह सब ही अलीक नहीं है, कुछ सत्य और कुछ मर्यादा रहित है, कुछ मुझसे सुनो ।।१९।। पतिव्रता स्त्रियों में तुम अग्रणी हो, मैं पापदृष्टि का कामी नहीं हूँ और तुम भी ऐसी नहीं हो, यह

मेरी बुद्धि है।।२०।। मैं ब्रह्माजी की आज्ञा से तुम्हारे समीप आया हूँ, हे शोभने! गन्धर्वविवाह से तुम मुझे ग्रहण करो।।२१।। शंखचूड नामवाला मैं देवताओं को विद्रावण कर सकता हूँ, हे भद्रे! तू मुझे नहीं जानती; तुने मुझे कभी नहीं सुना।।२२।। मैं दम्भपुत्र दानव दनु के वंश से प्रकट हुआ हूँ, मैं सुदामा नामक गोप नारायण का पार्षद हूँ।।२३।। इस समय मैं राधिका के शाप से दानव हुआ हूँ, मैं कृष्ण के प्रसाद से जातिस्मरण होने से सब जानता हूँ।।२४।। सनत्कुमारजी बोले- शंखचूड ऐसा कहकर उसके सम्मुख मौन हो गया और दानवराज के ऐसा कहने पर तुलसी ने कहा, यह बात सत्य है और सन्तुष्ट होकर हँसती हुई तुलसी कहने लगी।।२५।। तुलसी बोली- तुमने इस समय मुझे विचार में पराजित कर लिया है, वही पुरुष संसार में धन्य है, जो स्त्रियों से पराजित नहीं है।।२६।। जिस पुरुष को स्त्री ने जीत रखा है, वह सत्क्रियावाला होकर भी नित्य अपवित्र है, उसकी देवता, पितर, मनुष्य सब निन्दा करते हैं।।२७।। मृत और सूतक में ब्राह्मण दस दिन में, क्षत्रिय बारह दिन में और वैश्य पन्द्रह दिन में शुद्ध होता है।।२८।। शूद्र एक महीने में शुद्ध होता है, यह वेद की आज्ञा है, परन्तु स्त्रीजित कभी शुद्ध नहीं होता है, चितादाह के बिना उसकी शुद्धि नहीं है।।२९।। पितर उससे इच्छापूर्वक पिण्ड तर्पण ग्रहण नहीं करते और देवता उसके दिये हुए पुष्प फलादिक ग्रहण नहीं करते।।३०।। उनको ज्ञान, तप, जप, होम, पूजन से क्या लाभ है, विद्या और दान से भी क्या लाभ है, जिनका मन स्त्रियों ने हर लिया है।।३१।। विद्याप्रभाव जानने के लिये मैंने तुम्हारी परीक्षा ली थी, स्वामी की परीक्षा करके ही स्त्रियों को स्वामी का वरण करना चाहिये।।३२।। सन्तकुमारजी बोले- तुलसी के ऐसा कहते ही विधाता उसी समय आकर इस प्रकार से बोले।।३३।। ब्रह्माजी बोले- हे शंखचूड! तुम इसके साथ विवाद क्यों करते हो? गन्धर्वविवाह से तुम इसका पाणिग्रहण करो।।३४।। तुम पुरुषों में रत्न और यह तुलसी स्त्रियों में रत्न है, चतुरों का चतुरों के साथ संगम गुणवाला होता है।।३५।। हे राजन्! विरोध रहित दुर्लभ सुख का कौन त्याग कर सकता है? जो विरोध रहित सुख का त्याग करता है, वह पशु है, इसमें सन्देह नहीं।।३६।। हे सती! इस प्रकार के गुणी पति की तुम क्या परीक्षा करती हो? यह देव, असुर, दानव सबका ही मर्दन करनेवाला है।।३७।। इसके संग तू निरन्तर विवाह कर, हे सुन्दरि! सब लोकों के अनेक स्थानों में विहार करके अन्त में यह भी श्रीकृष्ण के गोलोक में प्राप्त होगा, वैकुण्ठ में यह चतुर्भुज होगा, तू इसको प्राप्त होगी।।३९।। सनत्कुमारजी बोले- विधाता इस प्रकार अशीश देकर अपने स्थान को गये और दानव ने उस तुलसी को गान्धर्वविवाह से ग्रहण किया।।४०।। तुलसी से इस प्रकार विवाह करके वह पिता के स्थान को गया और अपने सुन्दर स्थान में तुलसी के साथ रमण करने लगा।।४१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां पञ्चम युद्धखण्डे अष्टविंशोऽध्यायः।। २८ ।।

उनतीसवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले- जब इस प्रकार विवाह करके शंखचूड घर आया और तपस्या करके वर पाया, तब सब दानव प्रसन्न हुए।।१।। और अपने गुरु के सहित अपने लोक से आकर सब दैत्य मिलकर उसके समीप गये।।२।। विनयपूर्वक उसे प्रणाम करके और आदर से स्तुति करके उसे तेजस्वी विभु मानकर आदर से वहीं स्थित हुए।।३।। उस दम्भपुत्र ने भी अपने कुलगुरु को आया देखकर महाभक्ति से साष्टांग प्रणाम किया।।४।। तब कुलगुरु शुक्राचार्यजी ने उस तेजस्वी शिष्य को श्रेष्ठ आशीर्वाद देकर देव, दानवों का वृत्तान्त उसने वर्णन किया।।५।। स्वभाव से ही असुरों का बैर और माहात्म्य तथा उनकी पराजय, देवताओं की विजय, बृहस्पतिजी की उसकी सहायता करना वर्णन किया।।६।। तब उन्होंने परस्पर सम्मति करके दानव और असुरों की आधिपत्य में शुक्राचार्यजी ने अभिषेक किया।।७।। तब प्रसन्न होनेवाले असुरों का उस समय बड़ा उत्सव हुआ और उन्होंने प्रसन्न होकर असुरपति को बहुत भेंटें दीं।।८।। तब दम्भपुत्र प्रतापी शंखचूड ने राज्याभिषेक को प्राप्त होकर बड़ी शोभा पाई।।९।। वह दैत्य दानव राक्षसों की बड़ी सेना लेकर रथ पर चढ़कर बड़े वेग से इन्द्रपुरी जीतने को गया।।१०।। वह दानवेन्द्र जाते हुए और दैत्यों से सेवित होते हए, तारों के बीच में ग्रहपति चन्द्रमा वा ग्रहों के मध्य में सूर्य के समान शोभित हुआ।।११।। राजा इन्द्र ने शंखचूड को युद्ध के निमित्त आया हुआ सुनकर सब देवताओं को साथ लेकर उसके साथ युद्ध करने की इच्छा की।।१२।। उस समय देवता और असुरों का बड़ा भयंकर संग्राम हुआ, जो वीरों को आनन्द करनेवाला और कायरों को भय देनेवाला बड़ा रोमहर्षण संग्राम था।।१३।। युद्ध में वीरों के गर्जने का महाकोलाहल हुआ और वीरता को बढ़ानेवाले बाजे बजने लगे।।१४।। देवता भी बड़े बलवान् होकर क्रोध करके असुरों से संग्राम करने लगे और पराजय को प्राप्त होकर असुर भय से भागने लगे।।१५।। दैत्यों को पलायन करते हुए देखकर स्वयं दैत्यराज सिंह के समान गर्जना करके देवताओं के साथ युद्ध करने लगा।।१६।। और बड़े वेग से देवताओं की सेना को नष्ट करने लगा, देवता उसके तेज को न सहकर भागने लगे।।१७।। जहां-जहां वह दीन होकर पर्वतों की कन्दराओं में स्थित हुए, वहीं-वहीं वह उसके अधीन हो गये, प्रभाहीन और स्वतन्त्रताहीन हो गये, जैसे सागर के पुत्र।।१८।। उस दम्भपुत्र शूर महाप्रतापी दानवराज ने सब लोकों को जीतकर देवताओं के अधिकार ग्रहण किये।।१९।। त्रिलोकी को अपने वश में करके स्वयं यज्ञभाग हरण करने लगा और स्वयं इन्द्र होकर सब जगत् को अपने अधिकार से शासन करने लगा।।२०।। कुबेर, चन्द्र, सूर्य, अग्नि, यम, वायु इनके अधिकारों का

स्वयं अपनी शक्ति से पालन करने लगा ।।२१।। देव, असुर, दानव, राक्षस, गन्धर्व, नाग, किन्नर, रसापति ।।२२।। त्रिलोकी पर और सबका अधीश्वर वह महाबली शंखचूड स्वयं हो गया ।।२३।। इस प्रकार वह शंखचूड राजराजेश्वर होकर स्वयं राज्य करने लगा और बहुत काल तक सब भुवनों का अधिपति रहा ।।२४।। उसके राज्य में दुर्भिक्ष, महामारी और अशुभ ग्रह, आधिव्याधि की पीड़ा नहीं थी, सब ही प्रजा सुखी थी ।।२५।। बिना जोते पृथ्वी अनेक प्रकार के धान्यों को उत्पन्न करती थी, अनेक औषधियां सफल और रसवाली थीं ।।२६।। खानों में मणि और सागरों से रत्न निकलते थे, वृक्षों में सदा फूल फल लगते थे और नदियों में स्वच्छ जल बहता था ।।२७।। देवताओं के बिना अन्य सब जीव बड़े सुखी और विकार रहित थे, चारों वर्ण, चारों आश्रम अपने-अपने धर्मों में स्थित थे ।।२८।। उसके शासनकाल में त्रिलोकी में कोई दुःखी न था, भाई के बैर के कारण केवल देवता ही उससे दुःखी थे ।।२९।। वह कृष्ण का परमसखा शंखचूड गोलोकवासी कृष्ण की भक्ति में निरत साधु था ।।३०।। पूर्वशाप के कारण ही उसे दानवी योनि प्राप्त हुई थी। हे मुनिराज! उसकी दानव सम्बन्धी मति नहीं थी ।।३१।। तब राज्य हरने से पराजित होकर सब देवता ऋषियों सहित यन्त्रणा करके ब्रह्माजी की सभा में गये ।।३२।। वहां विधाता को देखकर प्रणाम और विशेष स्तुति करके व्याकुल होकर ब्रह्माजी से अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया ।।३३।। ब्रह्माजी उस समय सब मुनि और देवताओं को समझाकर उनके सहित सत्पुरुषों को सुख देनेवाले वैकुण्ठलोक को गये ।।३४।। ब्रह्माजी ने देवगणों के साथ किरीट, कुण्डल, वनमाला से भूषित लक्ष्मीपति को देखा ।।३५।। चार भुजाओं में शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये, पीतवस्त्र धारे, सनन्दन आदि सिद्धों से सेवित ।।३६।। विष्णुजी को देखकर ब्रह्मादिक सब मुनि और देवता भक्ति से हाथ जोड़कर प्रणाम करने लगे ।।३७।। देवता बोले- हे देव देव जगन्नाथ! हे वैकुण्ठाधिपति प्रभो! हे श्रीहरि! हे तीनों जगत् के गुरु! हम शरण में आये हुओं की रक्षा कीजिये ।।३८।। आप ही त्रिलोकी के रक्षक, त्रिलोकपति समर्थ हो, हे लक्ष्मीनिवास गोविन्द! हे भक्तों के प्राण! आपको प्रणाम है ।।३९।। इस प्रकार स्तुति करके सब देवता नारायण के आगे रोने लगे और यह सुनकर भगवान् विष्णुजी ब्रह्माजी से इस प्रकार कहने लगे ।।४०।। विष्णुजी बोले- हे ब्रह्माजी! योगियों को दुर्लभ इस वैकुण्ठ में आप किस निमित्त आये हो, आपको क्या कष्ट हुआ है? सो मेरे आगे कहिये ।।४१।। सनत्कुमारजी बोले- नारायण के यह वचन सुनकर बारंबार प्रणाम करके हाथ जोड़कर विनयपूर्वक सिर झुकाकर ।।४२।। विधाता ने शंखचूड का वृत्तान्त सुनाया, जब परात्मा विष्णुजी के सम्मुख देवताओं के कष्ट का आख्यान किया ।।४३।। तब सब प्रकार सम्पूर्ण भावों को जाननेवाले भगवान् यह सब वृत्तान्त सुनकर हँसकर विधाता से इस बात के रहस्य को कहने लगे ।।४४।।

श्रीभगवान् बोले- हे ब्रह्माजी! मैं शंखचूड के सब वृत्तान्त जानता हूँ, वह पूर्व काल का गोप मेरा भक्त बड़ा तेजस्वी है ।।४५।। उसका सब पुरातन वृत्तान्त आप सुनिये, इसमें सन्देह न करना, भगवान् शंकर सब मंगल करेंगे ।।४६।। वह परात्पर शिवलोक में जायेंगे, जहां पर ब्रह्मपरमेश्वर विराजमान हैं ।।४७।। जो तीनों शक्तियों को धारण करनेवाले प्रकृति पुरुष के भी अधिष्ठाता हैं, वही निर्गुण-सगुण परमज्योति स्वरूपवाले हैं ।।४८।। हे ब्रह्माजी! जिनके अंग से तीन सृष्टि के करनेवाले सत्त्वादि गुण विष्णु, ब्रह्मा और हर प्रकट होते हैं ।।४९।। परमात्मा उमा के सहित विहार करते हैं, जो माया से निर्मुक्त नित्य-अनित्य की कल्पनावाले हैं ।।५०।। उनके समीप ही गोलोक और शंकरजी की गोशाला है, उनकी इच्छा से मेरे स्वरूप श्रीकृष्णजी वहां नित्य निवास करते हैं ।।५१।। उनकी आज्ञा से वह गोरक्षा में सदा सुखी रहते हैं और वह सुख को प्राप्त होकर विहार से क्रीड़ा करते हैं ।।५२।। उनकी स्त्री जगदम्बा राधिका प्रकृति की पांचवीं परम मूर्ति वहां निवास करती हैं ।।५३।। उनके अंग सम्भूत वहां बहुत से गोप और गोपियां हैं, वे राधाकृष्ण के अनुवर्ती होकर नित्य विहार करते हैं ।।५४।। शंकरजी की लीला से उसने लीलापूर्वक इसको मोहित किया और दुःखदायक शाप से दानवी योनि को प्राप्त हुआ ।।५५।। भगवान् श्रीकृष्णजी ने रुद्र के त्रिशूल से उसकी मृत्यु विधान की है, फिर यह अपने देह को त्यागकर श्रीकृष्णजी का पार्षद होगा ।।५६।। हे देवेश! ऐसा जानकर आप किसी प्रकार का भय मत कीजिये, शंकरजी की शरण हो जाइये, वह सब का कल्याण करेंगे ।।५७।। हम, आप और सब देवता कष्ट रहित स्थित होते हैं ।।५८।। सनत्कुमारजी बोले- यह कहकर विष्णुजी विधाता के सहित शिवलोक को गये और सर्वेश भक्तवत्सल शंकरजी को मन से स्मरण करने लगे ।।५९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

पञ्चम युद्धखण्डे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।। २९ ।।

*****

तीसवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले- हे व्यासजी! उस समय विधाता और विष्णुजी महादिव्य निराधार अभौतिक शिवलोक को गये ।।१।। विष्णुजी बड़ी प्रसन्नता से भीतर गये, जो अनेक रत्नों से युक्त महाउज्ज्वल था ।।२।। विचित्र गणों से सेवित प्रथम द्वार में प्राप्त होकर देखा कि, वह महाउच्च, अत्यन्त सुन्दर, परम लक्ष्मी से शोभायमान है ।।३।। वहां अनेक रत्नों के सिंहासनों पर स्थित द्वारपालों को देखा, जो श्वेतवस्त्रों से शोभित

रत्नों के गहनों से शोभायमान थे ।।४।। पांच मुख, तीन नेत्र, गौर वर्ण, सुन्दर विग्रहवाले, त्रिशूलादि धारण किये, वीर, भस्म और रुद्राक्ष से शोभायमान ।।५।। ब्रह्माजी और विष्णुजी ने नम्र होकर उनको प्रणाम किया और प्रभु के दर्शन के निमित्त का वृत्तान्त वर्णन किया ।।६।। उन्होंने आज्ञा दी और विष्णुजी ने उनकी आज्ञा से प्रवेश किया, दूसरा द्वार भी महामनोहर विचित्र और परम प्रभाववाला था ।।७।। वहां पर भी प्रभु के समीप जाने के लिये अपना वृत्तान्त निवेदन किया, उनकी आज्ञा पाकर तीसरे द्वार में प्रवेश किया ।।८।। इस प्रकार ब्रह्माजी पन्द्रह द्वारों में प्रवेश कर गये, पश्चात् महाद्वार में जाकर नन्दी को देखा ।।९।। उनकी स्तुति और प्रणाम करके और नन्दी की आज्ञा पाकर विष्णुजी ने शनैः-शनैः मन्दिर में प्रवेश किया ।।१०।। वहां जाकर शंकरजी की महाउच्च सभा देखी, जो अनेक प्रकार के भूषण, वस्त्र धारण किये हुए पार्षदों से भूषित थी ।।११।। वे सब महेश्वरजी का रूप धारण किये दश-दश भुजा, सुन्दर कान्ति, पांच मुख, तीन नेत्र, श्वेत कण्ठ, महाभुजाओंवाले ।।१२।। अच्छे रत्नों से युक्त, रुद्राक्ष और भस्म तथा आभूषणों से भूषित, नवीन चन्द्रमा के समान मण्ड़लाकार और चौकोन बड़ी मनोहर ।।१३।। बड़ी श्रेष्ठ मणि और हीरों से निर्माण किये हारों के सार से शोभायमान अमूल्य रत्नों से रचित पद्मपत्रों से शोभायमान ।।१४।। माणिक्यजाल की माला तथा अनेक चित्रों से विचित्र पद्मरागों में श्रेष्ठ मणियों से रचित शंकरजी की इच्छा से महा अद्भुत ।।१५।। सैकड़ों सोपानों से युक्त, जो स्यमन्तकमणियों के निर्माण किये हुए हैं, स्वर्णसूत्र की ग्रन्थियों से युक्त जिनमें सुन्दर पत्ते लगे हुए थे ।।१६।। इन्द्रनीलमणि के बने स्तम्भों में वेष्टित बड़ी मनोहर थी और सब स्थानों में सुगन्धमय वायु से गन्ध लिये हुए ।।१७।। सहस्र योजन चौड़ी, बहुत से सेवकों से पूर्ण उस सभा में पार्वती सहित शंकरजी को सुरेश्वर विष्णुजी ने देखा ।।१८।। वह उसके मध्य तारों में चन्द्रमा के समान शोभायमान अमूल्य रत्नों से बने विचित्र सिंहासन पर शोभायमान थे ।।१९।। किरीट, कुण्डल और रत्नों की माला से विभूषित, सर्वांग में भस्म लगाये, खेलने का कमल हाथ में लिये ।।२०।। सम्मुख प्रसन्नता से नृत्य देखते हुए दिखाई दिये ।।२१।। शान्त प्रसन्नमन उमापति महाकान्तिमान् महाउल्लास युक्त देवी के दिये हुए सुगन्धित ताम्बूल को सेवन करते हुए ।।२२।। श्वेतचमर लिये हुए परमभक्ति द्वारा गणों से सेवित और भक्ति से सिर झुकाये हुए गणों से स्तुति को प्राप्त ।।२३।। गुणातीत परमईशान तीनों देवों को उत्पन्न करनेवाले विभु, निर्विकल्प, निराकार, अपनी इच्छा से साकार हुए शंकरजी ।।२४।। माया से रहित आज आद्यमाया के अधीश्वर परे से परे प्रकृतिपुरुष से भी परे अपने प्रभु ।।२५।। परिपूर्ण श्रम को देखकर हाथ जोड़कर ब्रह्माजी और विष्णुजी प्रणाम करने लगे ।।२६।। विष्णुजी और ब्रह्माजी बोले- हे देव देव महादेव! हे परब्रह्म! हे सबके ईश्वर! त्रिगुणों से परे व्यग्रता रहित तीनों देवों को उत्पन्न करनेवाले,

हे प्रभो! ।।२७।। हम आपकी शरण हैं, हम दुखियों की आप रक्षा कीजिये, हे परमेश्वर! हम शंखचूड से घबडाये हैं, हम अनाथों के आप ही नाथ हैं।।२८।। यै जो अधिष्टित गोलोक है, उसके अधिष्ठाता श्रीकृष्णजी आप से अधिष्ठित हैं।।२९।। उनके श्रेष्ठ पार्षद सुदामा प्रारब्ध के वशीभूत होकर राधा से शापित होकर शंखचूड नामक दानव हुए हैं।।३०।। हे शम्भो! उस दानव ने पीड़ा देकर सब देवताओं को निकाल दिया है, सब देवता अपने अधिकारों से रहित होकर पृथ्वी में विचरते हैं।।३१।। आपके बिना कोई देवता उसे नहीं मार सकता, हे महेशान! उसे मारकर लोकों को सुखी करें।।३२।। आप ही निर्गुण, अनन्त सत्य और अनन्त पराक्रमी हो, आप सगुण होकर प्रकृतिपुरुष से परे हो।।३३।। सृष्टि के समय आप ही ब्रह्मा होते हो, सत्त्वगुण से पालन करने के लिये आप ही विष्णु होते हो, यों आप त्रिभुवन के करनेवाले हो।।३४।। प्रलय में आपका आश्रय लेकर आप ही जगत् का संहार करते हो, त्रिगुण से परे आपका ज्योतिर्मय शंकर रूप है।।३५।। गोलोक में आपकी दीक्षा से आप ही गौओं के पालक हो, आपकी गोशाला में आकर श्रीकृष्णजी नित्य क्रीड़ा करते हैं।।३६।। हे स्वामी! आप ही सबके स्वामी, कारण विधाता विष्णुजी, सबके ईश्वर हो, आप निर्विकारी सदा साक्षी परमात्मा परमेश्वर हो।।३७।। आप ही दीनानाथ, सबके सहायक, दीनों के पालक हो, दीनबन्धु, त्रिलोकीपति, शरणागतवत्सल हो।।३८।। हे गौरीश! हे परमेश्वर! प्रसन्न हो, हमारा उद्धार कीजिये, हम आपके अधीन हैं, जैसी इच्छा हो वैसा कीजिये।।३९।। सनत्कुमारजी बोले– हे व्यासजी! ब्रह्माजी और विष्णुजी आदि देवताओं ने इस प्रकार कहकर हाथ जोड़कर, नम्र होकर मौन धारण किया।।४०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

पञ्चम युद्धखण्डे त्रिंशोऽध्यायः ।। ३० ।।

*****

इकतीसवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले– तब शिवजी दीन हुए ब्रह्माजी और विष्णुजी के वचन सुनकर हँसते हुए मेघ के समान गंभीर नादवाली वाणी से बोले।।१।। शिवजी बोले– हे वत्स बह्माजी! आप सब प्रकार से भय का त्याग करें, शंखचूड का वध अवश्य ही होगा।।२।। मैं तत्त्व से शंखचूड का सब वृत्तान्त जानता हूँ और यह भी जानता हूँ, वह कृष्णभक्त गोप है।।३।। मेरी आज्ञा से ही हृषीकेश श्रीकृष्णजी का रूप धारण करके मुझसे अधिष्ठित परमरम्य गोलोक में निवास करते हैं।।४।। पहले वह मोह को प्राप्त होकर, मैं

स्वतन्त्र हूँ ऐसा जानकर मोहित होकर स्वच्छन्द के समान बहुतसी क्रिड़ा करने लगे ।।५।। यह देखकर मैंने अपनी माया से उनको मोहित कर दिया और उनकी सद्‌बुद्धि हरण करके फिर उनको शाप दिलवाया ।।६।। इस प्रकार अपनी लीला करके मैंने उस माया का हरण कर लिया, जब वे मोह दूर होने से ज्ञानयुक्त हो गये और बुद्धि हुई ।।७।। तब वे मेरे समीप आकर दीन होकर मुझे प्रणाम करने लगे और हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर मेरी स्तुति करने लगे ।।८।। और लज्जा से व्याकुल होकर सम्पूर्ण वृत्तान्त मुझ से कहा और रक्षा करो, रक्षा करो ऐसे दीनवाणी से बोले ।।९।। तब प्रसन्न होकर मैंने उन सबसे कहा, हे कृष्णादि! आप सब मेरी आज्ञा से भय त्याग करो ।।१०।। मैं आप सबका रक्षक हूँ, आप सबका कल्याण होगा, इसमें सन्देह नहीं, यह सब मेरी इच्छा से ही हुआ है ।।११।। राधिका और पार्षदों के सहित आप अपने-अपने स्थानों को जाइये, वह निःसन्देह भारत में दानव होगा ।।१२।। समय पर मैं आपका शापोद्धार करूंगा, मेरे वचन को आप राधा के सहित सिर पर धारण करो ।।१३।। मेरे वचन सुनकर श्रीकृष्ण बड़े प्रसन्न हुए और मेरे आराधन में तत्पर होकर भयपूर्वक स्थित हुए ।।१४।। सम्पूर्ण जगत् मेरे अधीन जानकर और अपने को अस्वतन्त्र समझने लगे, वह सुदामा राधा के शाप से अस्वतन्त्र दानवराज हुआ ।।१५।। वह देवद्रोही, धर्म में चतुर शंखचूड नामवाला हुआ और वह अब कुबुद्धि करके सब देवताओं को पीड़ा देने लगा है ।।१६।। वह मेरी माया से मोहित होकर दुष्टमन्त्रियों की सहायता को प्राप्त हो रहा है, सो मेरे होते हुए आप भय त्याग कीजिये ।।१७।। सनत्कुमारजी बोले- जब इस प्रकार से हरि और ब्रह्माजी के आगे शिवजी ने कहा, हे मुने! उस समय जो दूसरा चरित्र हुआ उसे आप सुनिये ।।१८।। उसी समय राधिका और श्रेष्ठ पार्षदों के सहित श्रीकृष्णजी शंकरजी को अनुकूलत करने के लिये आये ।।१९।। अच्छी भक्ति से शिवजी को प्रणाम करके और आदर से हरि से मिलकर विधि से सम्मति को प्राप्त होकर प्रेम से शिवजी की आज्ञा से उनके समीप बैठे ।।२०।। फिर शिवजी को प्रणाम करके हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे, श्रीकृष्णजी इस प्रकार मोह से निर्मुक्त होकर शिवजी का तत्त्व जानकर बोले ।।२१।। श्रीकृष्णजी बोले- हे देव देव महादेव! हे परब्रह्म! हे परमेश्वर! सत्पुरुषों की गति मेरा अपराध क्षमा करके मुझ पर प्रसन्न हो ।।२२।। हे शंकरजी! यह सब कुछ आप ही से होता है, हे महेश्वरजी! यह सब कुछ आप में ही है, हे सबके अधीश्वर! सब कुछ आप ही हैं, हे परमेश्वर! आप प्रसन्न हो ।।२३।। आप ही साक्षात्परमज्योति, सर्वव्यापी, सनातन हो, हे गौरीश! आपके नाथ होने से ही हम सब सनाथ हैं ।।२४।। मैं सर्वोपरि अपने को मानकर मोह से विहार करता था, उसका फल मिला, जो स्त्री सहित शाप को प्राप्त हुआ ।।२५।। जो मेरा सुदामा नामक गोप था, हे स्वामिन्! वह राधा के शाप से दानवी योनि को प्राप्त

हुआ।।२६।। हे दुर्गापति परमेश्वर! हमारा उद्धार कीजिये, आप हम पर प्रसन्न होकर हम शरण आये हुओं की रक्षा करके शापोद्धार कीजिये।।२७।। ऐसा कहकर श्रीकृष्णजी राधिका के सहित मौन हो गये और शरणगतवत्सल शंकरजी भी प्रसन्न हो गये।।२८।। श्रीशिवजी बोले– हे कृष्ण! हे गोपिकानाथ! तुम भय त्यगकर सुखी हो, हे तात! यह सब कुछ तुमने मेरे अनुग्रह से ही किया है।।२९।। तुम्हारा कल्याण होगा, अब तुम अपने स्थान को जाओ और सदा सावधान होकर अपने अधिकार में स्थित हो जाओ।।३०।। और मुझे परात्पर जानकर यथायोग्य विहार करो और राधा और पार्षदों के सहित अपना कार्य करो।।३१।। वाराहकल्प में राधिका के सहित प्राप्त होकर शाप का प्रभाव भोगकर फिर अपने स्थान को जाओगे।।३२।। हे कृष्ण! जो यह सुदामा नामक तुम्हारा प्रिय पार्षद है, वह दानवी योनि को प्राप्त हो इस समय जगत् को क्लेश दे रहा है।।३३।। वह देवशत्रु दानव राधिका के प्रभाव से शंखचूड नामवाला होकर दैत्यों का पक्षपाती बन रहा है।।३४।। उसने इन्द्रादि देवताओं को पीड़ा देकर निकाल दिया है, वे अधिकारहीन होने से व्याकुल होकर दशों दिशाओं को चले गये हैं।।३५।। इसी कारण ब्रह्माजी, विष्णुजी मेरी शरण में आये हैं, इसमें सन्देह नहीं, मैं उनका क्लेश दूर करूंगा।।३६।। सनत्कुमारजी बोले– शिवजी महाराज श्रीकृष्णजी से इस प्रकार कहकर फिर आदर से ब्रह्माजी और विष्णुजी से क्लेश नाशक वचन बोले।।३७।। हे ब्रह्माजी! और हे विष्णुजी! आप प्रेम से मेरे वचन सुनिये। आप दोनों देवताओं को आनन्द देने के लिये शीघ्र जाइये, उन्हें निर्भय कर दीजिये।।३८।। मेरा पूर्णरूप कैलासवासी रुद्र है, मैंने ही देवताओं के कार्य के लिये वह पृथक् रूप धारण किया है।।३९।। हे विष्णुजी! इस देवकार्य के निमित्त ही मेरा पूर्णरूप भक्तों के वश होकर कैलास पर्वत पर विराजमान है।।४०।। मुझसे उसका कुछ भेद नहीं है, वह सदा आप दोनों का सेव्य है तथा चराचर, सब देवता, मुनियों का सेव्य है।।४१।। हम दोनों में भेद माननेवाला नरक में जायेगा तथा यहां भी पुत्र–पौत्रों से रहित होकर कष्ट पावेगा।।४२।। शिवजी के ऐसा कहने पर शंकरजी को बारंबार प्रणाम करके श्रीकृष्णजी भी राधा के सहित अपने स्थान को गये।।४३।। हे व्यासजी! इसी प्रकार ब्रह्माजी और विष्णुजी सन्देह रहित होकर अपने स्थान को गये तथा चलते समय शिवजी को बहुत बार प्रणाम करके वैकुण्ठ को गमन किया।।४४।। यहां जाकर वे दोनों देवताओं से सब वृत्तान्त निवेदन करके उन सबको साथ ले ब्रह्माजी और विष्णुजी फिर कैलासपर्वत पर गये।।४५।। वहां पार्वतीवल्लभ महेशान प्रभु को देखा कि, वह देवता और दीनों की रक्षा के लिये सगुणरूप से देहधारण किये हैं।।४६।। तब सब देवता हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर, भक्ति से नम्र होकर गद्गदवाणी से बोले।।४७।। देवता बोले– हे देव देव महादेव गिरिजानाथ! हे शंकर! हम आपकी शरण आये हैं, इन भय से व्याकुल हुए देवताओं की आप रक्षा

कीजिये ।।४८।। देवशत्रु शंखचूड नामक दानव से आप रक्षा कीजिये, उसे मारिये, उसने संग्राम में सब देवताओं को पराजित किया है ।।४९।। वे अधिकार रहित होकर पृथ्वी पर साधारण मनुष्यों के समान विचरण करते हैं, देवलोक उनको अगम्य हो रहा है ।।५०।। हे कृपासागर! हे दीनों का उद्धार करनेवाले! संकट से देवताओं का उद्धार कीजिये। हे महेशान! उस दैत्य को मारकर इन्द्र को भय से छुड़ाइये ।।५१।। भक्तवत्सल शंकरजी इस प्रकार देवताओं के वचन सुनकर हँसते हुए मेघ के समान गंभीरवाणी से बोले ।।५२।। श्रीशंकरजी बोले– हे विष्णुजी! हे विधाता! आप शीघ्र अपने स्थान को गमन करें; मैं उसके सहायकों के सहित शंखचूड का वध करूंगा, इसमें सन्देह नहीं ।।५३।। सनत्कुमारजी बोले– इस प्रकार शंकरजी के अमृत के समान वचन सुनकर वे सब देवता दैत्य को मरा जानकर प्रसन्न हो गये ।।५४।। हरि वैकुण्ठ को और विधाता सत्यलोक को गये और शंकरजी को प्रणाम करके सब देवता अपने-अपने स्थानों को गये ।।५५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
पञ्चम युद्धखण्डे एकत्रिंशोऽध्यायः ।। ३१ ।।

*****

बत्तीसवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले– तब महारुद्र ईशान दुष्टों को कालस्वरूप सत्पुरुषों की गति देवताओं की इच्छा से शंखचूड का वध मन में निश्चय करते हुए ।।१।। तब गन्धर्वों के अधिपति चित्ररथ को अपना दूत बनाकर प्रसन्नता से शीघ्र ही शंखचूड के समीप भेजा ।।२।। सर्वेश्वर की आज्ञा से वह दूत उसके समीप गया, उसका नगर महेन्द्र और कुबेर के भवन के समान था ।।३।। जाकर उस नगर के मध्य में उसने शंखचूड का स्थान देखा, जिसके बाहर द्वार थे और सब पर द्वारपाल स्थित थे ।।४।। उस पुष्पदन्त ने वहां जाकर द्वारपाल से समस्त वृत्तान्त कहा और निर्भय होकर स्थित रहा ।।५।। उस द्वार को आक्रमण करके भीतर गया, जो स्थान बड़ा शोभायमान, मनोहर विस्तारवाला और अलंकृत था ।।६।। वहां जाकर उसने दानवराज शंखचूड को देखा, जो वीरमण्डल के मध्य में स्थित रत्नसिंहासन पर शोभायमान था ।।७।। वह साढ़े तीन कोटि दानवों का अधिपति था, शतकोटि दानव हाथ में शस्त्र लेकर घूमते थे ।।८।। इस प्रकार ऐश्वर्य को देखकर पुष्पदन्त बड़े विस्मय को प्राप्त हुआ और शंकरजी के कहे हुए युद्ध का वृत्तान्त कहने लगा ।।९।। पुष्पदन्त बोला– हे राजेन्द्र! मैं पुष्पदन्त नामवाला शंकरजी का दूत

हूँ, जो कुछ शिवजी ने कहा है, सुनिये मैं कहता हूँ।।१०।। शिवजी कहते हैं कि, आप अभी देवताओं का राज्य और अधिकार दे दो, नहीं तो मेरे साथ युद्ध करो।।११।। मैं देवेश शंकर सत्पुरुषों का रक्षक हूँ, देवता मेरी शरण आकर प्राप्त हुए हैं, मैं महारुद्र क्रोधित होकर अवश्य ही तुम्हारा वध करूंगा।।१२।। मैं हर हूँ, मैंने सब देवताओं को अभय दिया है, मैं शरणागतों की रक्षा करनेवाला तथा दुष्टों को दण्ड देनेवाला हूँ।।१३।। तू राज्य देगा अथवा मेरे साथ संग्राम करेगा? हे दानवेन्द्र! इस बात को विचार करके कह।।१४।। पुष्पदन्त बोला- जो कुछ शंकरजी ने कहा था, सो मैंने तत्त्व से कह सुनाया, हे दानवराज! शंकरजी के वचन कभी मिथ्या नहीं होते।।१५।। मैं शीघ्र ही अपने स्वामी के पास जाने की इच्छा करता हूँ, उनसे जाकर मैं क्या कहूं? सो आप मुझसे कहिये।।१६।। सनत्कुमारजी बोले- इस प्रकार सत्पति के दूत पुष्पदन्त के यह वचन सुनकर राजा ने हँसकर उससे कहा।।१७।। शंखचूड बोला- मैं देवताओं को राज्य नहीं दूंगा, यह पृथ्वी वीरभोग्या है, मैं देवताओं के पक्षपाती रुद्र को युद्ध दूंगा।।१८।। जिसके ऊपर चढ़ाई हो, वह वीर पृथ्वी पर अधम है, इस कारण नि:सन्देह मैं ही रुद्र पर चढ़ाई करूंगा।।१९।। मैं वीरयात्रा के विचार से प्रभात ही उधर गमन करूंगा, तुम जाकर रुद्र से मेरे इस प्रकार के वचन कह देना।।२०।। इस प्रकार के शंखचूड के वचन सुनकर वह शिवजी का दूत पुष्पदन्त हँसता हुआ दानवराज से बोला।।२१।। हे राजेन्द्र! आप शिवजी के किसी गण के आगे भी नहीं ठहर सकते, फिर शिवजी के सम्मुख होना तो क्या है?।।२२।। इस कारण आप देवताओं के सब अधिकारों को दे दो और जीने की इच्छा हो, तो आप शीघ्र ही पाताल को चले जाइये।।२३।। हे दानवराज! आप शंकरजी को सामान्य देवता न जानिये, शंकरजी परमात्मा सबके ईश्वर हैं।।२४।। इन्द्रादिक सब देवता जिनकी आज्ञा सदा मानते हैं, प्रजापति, मुनि, सिद्ध, उरग गण उनके वशवर्ती हैं।।२५।। वह ब्रह्मा-विष्णुजी के भी स्वामी सगुण-निर्गुण स्वरूप हैं, जिसकी भृकुटी फेरने मात्र से प्रलय हो जाती है।।२६।। वह शिवजी पूर्णरूप लोक के संहारकारक हैं, वह सत्पुरुषों की गति दुष्टों को मारनेवाले, निर्विकार, परे से परे हैं।।२७।। वह ब्रह्माजी और हरि के भी अधिपति महेश्वर हैं, हे दानवश्रेष्ठ! उनके शासन की कोई भी अवहेलना नहीं कर सकता।।२८।। हे राजेन्द्र! बहुत कहने से क्या है? मन से विचार करके रुद्र को महेशान, परब्रह्म, चिदात्मा जानो।।२९।। देवताओं का राज्य और उनके अधिकार दे दो। हे तात! इस प्रकार करने से आपकी कुशलता होगी, नहीं तो महाभय होगा।।३०।। सनत्कुमारजी बोले- महाप्रतापी दानवराज शंखचूड यह वचन सुनकर भवितव्य से मोहित होकर शिवजी के दूत से बोला।।३१।। शंखचूड बोला- यह निश्चय है कि, वैसे मैं राज्य और अधिकार को नहीं दूंगा, मैं यह सत्य कहता हूँ, बिना युद्ध किये शंकरजी को कुछ न

दूंगा ।।३२।। यह सब चराचर जगत् काल के आधीन है, काल से ही सब होता है और काल से ही नाश हो जाता है ।।३३।। तुम जाकर रुद्र शंकर से यह मेरा कथन कहना कि, जो इच्छा हो सो करें, बहुत कहने से क्या है? ।।३४।। सनत्कुमारजी बोले– ऐसा सुनकर वह दूत अपने स्वामी के पास गया और हे मुने! उस पुष्पदन्त ने सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदन किया ।।३५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
पञ्चम युद्धखण्डे द्वात्रिंशोऽध्यायः ।। ३२ ।।

*****

तैंतीसवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले– सुरपति शंकरजी उस दूत के वचन सुनकर, क्रोध करके अपने वीरभद्रादि गणों से कहने लगे ।।१।। रुद्र बोले– हे वीरभद्र! हे नन्दिन्! हे वीरभद्रादि गणो! हे सब बलवान् पार्षदो! युद्ध के लिये तैयार हो जाओ ।।२।। मेरी आज्ञा से आप दोनों कुमारों के सहित गमन करो और अपनी सेना के सहित भद्रकाली भी युद्ध के लिये निर्गत हो, शंखचूड के वध के लिये सब कोई शीघ्र चलो ।।३।। सनत्कुमारजी बोले– ऐसा कहकर शिवजी भी अपनी सेना सहित निर्गत हुए और सब वीरगण प्रसन्न होकर उनके साथ चले ।।४।। इसी समय स्कन्द और गणेशजी सब सेना के अधिपति आयुध लेकर प्रसन्नता से शंकरजी के साथ चले ।।५।। वीरभद्र, नन्दी, महाकाल, सुभद्रक, विशालाक्ष, बाण, पिंगलाक्ष, विकम्पन ।।६।। विरूप, विकृति, मणिभद्र, बाष्कल, कपिल, दीर्घदंष्ट्र, विकर, ताम्रलोचन ।।७।। कालंकर, बलीभद्र, कालजिह्व, कुटीचर, बलोन्मत्त, रणश्लाघी, दुर्जय, दुर्गम ।।८।। इत्यादि गणेश और सेनापति चले, मैं उन सबके नाम कहता हूँ, सावधान होकर सुनिये ।।९।। परविमर्दक शंखकर्ण एक कोटि सेना सहित चला, केकराक्ष दश कोटि, विकृत आठ कोटि ।।१०।। विशाख चौंसठ कोटि, पारियात्रिक नौ कोटि, सर्वान्तक छः कोटि, श्रीमान् और विकृतानन छः कोटि ।।११।। जालक बारह कोटि, समद सात कोटि, श्रीमान् दुन्दुभ आठ कोटि ।।१२।। करालाक्ष पांच कोटि, सन्दारक छः कोटि, कन्दुक और कुण्डक एक-एक कोटि ।।१३।। विष्टभ आठ कोटि यह गणेश्वर बड़ा श्रेष्ठ है, पिप्पल और सन्नाद सहस्र कोटि ।।१४।। आवशेन अठारह कोटि, चन्द्रतापन आठ कोटि, महाकेश गणेश्वर सहस्र कोटि ।।१५।। कुण्डी बारह कोटि, पर्वतक बारह कोटि, कालकालक महाकाल सौ कोटि ।।१६।। आग्निक सौ कोटि, अग्निमुख एक कोटि, आदित्य और घनावह आधी कोटि ।।१७।।

सनाह और कुमुद सौ–सौ कोटि, अमोघकोकिल सुमन्त्रक सौ–सौ कोटि।।१८।। काकपाद और संतानक छः–छः कोटि, महाबल नौ कोटि, मधुपिंगल पांच कोटि।।१९।। नील नव्वे कोटि, देवेश और पूर्णभद्र नव्वे–नव्वे कोटि, महाबली चतुवक्र सात कोटि।।२०।। हजारों, सैकड़ों वीसियों कोटियों को साथ लेके बड़े–बड़े वीर युद्ध के निमित्त आये।।२१।। सहस्रों कोटि भूत, तीन कोटि प्रमथ, लोमजों की तीन कोटि इस प्रकार चौंसठ कोटि सहित वीरभद्र।।२२।। सुकेश, वृषभ, काष्ठारूढ़ चौंसठ कोटि, भगवान् सनातन विरूपाक्ष चौंसठ कोटि।।२३।। तालकेतु, षण्मुख तथा प्रतापवान पञ्चमुख, संवर्तक, चैत्र, लंकुलीश, स्वयंप्रभु।।२४।। लोकान्तक, दीप्तात्मा, दैत्यान्तक, प्रभु देवभृंगी, देव देव के प्रिय श्रीमान् रिटि।।२५।। अशनि, भानुक चौंसठ कोटि, कंकाल, कालकंकाल, नन्दी, सर्वान्तक।।२६।। इनको आदि लेकर और भी बहुत से गणपालक असंख्यात महाबली निर्भय होकर शंखचूड के साथ युद्ध करने की इच्छा से चले।।२७।। सब ही सहस्रों हाथवाले जटा मुकुटधारी, माथे पर चन्द्ररेखा धारे, नीलकण्ठ, त्रिलोचन थे।।२८।। सब ही रुद्राक्ष के आभूषण पहने, भस्म धारण किये, हार, कुण्डल, केयूर, मुकुट आदि धारण किये।।२९।। ब्रह्मा–विष्णु–इन्द्र के समान अणिमादि गुणों से सम्पन्न कोटि युद्ध के समान प्रकाशमान युद्ध कर्म में चतुर थे।।३०।। हे मुने! कोई पृथ्वी पर, कोई पाताल में, कोई आकाश में और सात स्वर्ग में विचरनेवाले थे।।३१।। हे देवर्षे! बहुत कहने से क्या है? सब ही लोकों के रहनेवाले शिवजी के सम्पूर्ण गण दानवों से युद्ध करने के लिये आये।।३२।। आठों भैरव, ग्यारहों रुद्र, आठ वसु और बारह आदित्य बड़ी शीघ्रता से आये।।३३।। अग्नि, चन्द्र, विश्वकर्मा, अश्विनीकुमार, कुबेर, यम, निर्ऋति, नलकूबर।।३४।। वायु, वरुण तथा बुध, मंगल आदि ग्रह महाबली कामदेव शंकरजी के समीप आये।।३५।। उग्रदंष्ट, उग्रदण्ड, कोरट, कोरभ तथा सौभुजा धारण करके भद्रकाली देवी स्वयं उपस्थित हो गईं।।३६।। जो रत्नों में श्रेष्ठ रत्न थे, वह भगवती के विमान में जड़े थे, उस पर भगवती विराजमान थी, लाल वस्त्र पहने, लाल ही अनुलेपन लगाये।।३७।। नाचती, हँसती और अच्छे स्वर से गाती हुई अपने भक्तों को अभय और शत्रुओं को भय देती हुई आई।।३८।। एक योजन पर्यंत जिसकी जिह्वा चलायमान होती थी। शंख, चक्र, गदा, पद्म, खड्ग, चर्म, धनुष, बाण धारण किये।।३९।। एक योजन पर्यंत गंभीर गोल खप्पर धारण किये, आकाश स्पर्शी त्रिशूल और एक योजन की शक्ति धारण किये।।४०।। मुद्गल, मूसल, वज्र, खड्ग, भयंकर फलक, वैष्णवास्त्र, वारुणास्त्र, वायव्यास्त्र और नागपाश।।४१।। नारायणास्त्र, गन्धर्वास्त्र, ब्रह्मास्त्र, गारुड़ास्त्र, पार्जन्य, पाशुपत, जृम्भण, पार्वतास्त्र।।४२।। महावीर और काल काल, महानल, महेश्वरास्त्र, याम्य, दण्ड, सम्मोहनास्त्र।।४३।। दिव्य समर्थास्त्र, सौ दिव्यास्त्र इत्यादि अपने हाथों में धारण किये हुए।।४४।। इस प्रकार तीन

कोटि योगिनी और तीन कोटि विकट डाकिनियों को साथ लेकर स्थित हुई।।४५।। भूत, प्रेत, पिशाच, कुष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, वेताल, राक्षस, यक्ष, किन्नर इनके सहित स्कन्द ने आकर शिवजी को प्रणाम किया और पिताजी की आज्ञा से समीप स्थित हुए।।४६-४७।। तब शिवजी महाराज इस प्रकार से अपनी सब सेना साथ लेकर निर्भय होकर शंखचूड के साथ युद्ध करने के लिये चले।।४८।। चन्द्रभागा नदी के किनारे एक मनोहर वटवृक्ष के नीचे देवताओं के निस्तार के निमित्त शिवजी स्थित हुए।।४९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
पञ्चम युद्धखण्डे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः।। ३३।।

*****

चौतीसवाँ अध्याय

व्यासजी बोले- हे विधिपुत्र! हे महाबुद्धिमान् मुनिराज! चिरकाल पर्यन्त जीवित रहो, आपने शिवजी का बड़ा विचित्र चरित्र वर्णन किया।।१।। अब कहिये कि, शिवजी के दूत चले जाने पर महाप्रतापी शंखचूड दानव ने क्या किया? सो आप विस्तारपूर्वक तत्त्व से कहिये।।२।। सनत्कुमारजी बोले- शिवदूत के चले जाने पर महाप्रतापी शंखचूड ने मन्दिर के भीतर जाकर तुलसी से यह समाचार कहा।।३।। शंखचूड बोला- हे देवि! शिवदूत के मुख की वार्ता सुनकर मैं युद्ध करने के निमित्त उपस्थित हुआ हूँ, मैं उनसे युद्ध करने के निमित्त अवश्य जाऊंगा, तुम मुझे समझकर आज्ञा दो।।४।। ऐसा कहकर उस ज्ञानी ने प्रिया को बहुत से बोध के वाक्य कहकर शंकरजी का अनादर करके प्रिया के संग अनेक प्रकार से विहार किया।।५।। दोनों स्त्री-पुरुष क्रीडा करते हुए सुखसागर में मग्न हो गये और अनेक मनोहर वचन और आलापों से रात्रि बिताई।।६।। फिर ब्राह्ममुहूर्त में उठकर प्रातःकाल के सब कृत्य करके तथा नित्यकार्य करके ब्राह्मणों को अनेक दान दिये।।७।। और सब दानवों का राजा अपने पुत्र को करके राजसम्पत्ति और अपनी भार्या को भी पुत्र को समर्पण करके।।८।। उस रोती हुई प्रिया को बहुत समझाकर, जो युद्ध के लिये बारंबार निषेध कर रही थी, उसको अनेक प्रकार से धीरज देकर।।९।। अपने सेनापति वीर को आदर से बुलाकर संग्राम करने के लिये सब सेना को तैयार होने को कहा।।१०।। शंखचूड बोला- हे सेनापति! हमारे सब वीर युद्धशाली हैं, वे सब कार्यों में कुशल वीर अभी तैयार होकर युद्ध के लिये निकलें।।११।। दैत्य-दानव बड़े-बड़े शूरवीरों की छियासी पलटने तथा महाबली कंक की सेना मेरी आज्ञा से निर्भय होकर चले।।१२।। असुरों के पचास कुल

मेरी आज्ञा से चलें तथा एक कोटि असुर, देवताओं के पक्षपाती शंकर से युद्ध करने के निमित्त चलें ।।१३।। धूम्र नामक दैत्यों के सौ कुल युद्ध के लिये तैयार होकर मेरी आज्ञा से शिव के साथ युद्ध करने को चलें ।।१४।। कालकेय, दौर्हृद, मौर्य, कालक ये सब मेरी आज्ञा से तैयार होकर शंकरके साथ युद्ध करने के लिये गमन करें ।।१५।। सनत्कुमारजी बोले– महाबली दानवों का राजा असुरपति इस प्रकार आज्ञा देकर सहस्रों असुरों की सेना लेकर चला ।।१६।। उसका सेनापति भी युद्धशास्त्र में बड़ा पण्डित, महारथी, महावीर रथियों में बड़ा प्रबल था ।।१७।। तीन लाख अक्षौहिणी से युक्त मण्डलीक रूप से चला, इस प्रकार से युद्ध में वह बड़ा भयंकर वीर छावनी से बाहर हुआ ।।१८।। श्रेष्ठ रत्नों के बने हुए विमान पर चढ़कर गुरुजनों को आगे करके युद्ध के लिये चला ।।१९।। पुष्पभद्रा नदी के किनारे जहां श्रेष्ठ अक्षयवट है, जो सिद्धक्षेत्र सब सिद्धियों का देनेवाला है ।।२०।। जो इस पवित्र भारत में कपिलदेवजी का तप का स्थान है, जो पश्चिम सागर के पूर्व में और मलय पर्वत के पश्चिम में है ।।२१।। श्रीपर्वत के उत्तर भाग में और गन्धमादन के दक्षिण में पांच योजन के विस्तार और पांच सौ योजन के लम्बाव में है ।।२२।। वहां शुद्ध स्फटिकमणि के समान पवित्र जल से पूर्ण पुष्पभद्रा सरस्वती मनोहर नदी भारत में विख्यात है ।।२३।। जो क्षारसमुद्र की प्रिय भार्या (अर्थात् क्षारसमुद्र में गिरती है) निरन्तर सौभाग्य से संयुक्त सरस्वती के आश्रित होकर हिमालय से निकली है ।।२४।। गोमान्तक पर्वत को बाईं ओर लिये हुए पश्चिम सागर में मिलती है, वहां जाकर शंखचूड ने शिवजी की सेना को देखा ।।२५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

पञ्चम युद्धखण्डे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।। ३४ ।।

*****

पैतीसवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले– वहां स्थित होकर महान्त दानवेश्वर को दूत बनाकर शंकरजी के पास भेजा ।।१।। दूत ने वहां जाकर शंकरजी को देखा कि, कोटि सूर्य के समान कान्तिवाले वह वट के मूल में स्थित हैं ।।२।। योगासन मारे मुद्रा से बैठे दृष्टि लगाये, हास्य युक्त शुद्ध स्फटिकमणि के समान ब्रह्मतेज से प्रकाशित हैं ।।३।। त्रिशूल, पट्टिश धारण किये, व्याघ्रचर्म के वस्त्र धारण किये, भक्त की मृत्यु को हरनेवाले, शान्त, गौरीपति, त्रिलोचन हैं ।।४।। तपस्याओं के फल देनेवाले, सब सम्पत्तियों को प्रदान करनेवाले, शीघ्र प्रसन्न होनेवाले, भक्तों के अनुग्रह से कातर ।।५।। विश्वनाथ, विश्व

के बीज, विश्वरूप, विश्व उत्पन्न होता है जिनसे ऐसे, विश्व का भरण–पोषण करनेवाले, विश्व को उत्पन्न करनेवाले, विश्व के संहारकर्ता ।।६।। कारण के भी कारण, नरकरूप सागर से पार करनेवाले, ज्ञानदाता, ज्ञान के बीज, ज्ञान में ही आनन्द सनातन शंकरजी को देखकर ।।७।। दानवेश्वर ने रथ से उतरकर सुकुमाररूप शंकरजी को सिर से प्रणाम किया ।।८।। जिनके बाईं ओर भद्रकाली और आगे स्कन्द स्थित हैं, काली, स्कन्द और शंकरजी ने उसे लोकरीति से आशीश दी ।।९।। तब वह परमशास्त्र का जाननेवाला शंखचूड का दूत हाथ जोड़कर शिवजी से श्रेष्ठ वचन बोला ।।१०।। दूत बोला– मैं शंखचूड का दूत आपके पास यहां आया हूँ, हे महेश्वरजी! आपकी क्या इच्छा है? सो आप तत्त्व से कहिये ।।११।। सनत्कुमारजी बोले– शंखचूड के दूत के यह वचन सुनकर प्रसन्न होकर महादेवजी बोले ।।१२।। महादेवजी बोले– हे महापण्डित दूत! मेरे सुखदायक वचन सुन, यह विचारकर विवाद के बिना अपने स्वामी से कह देना ।।१३।। ब्रह्माजी जगत् के पिता, सब धर्मों के जाननेवाले, उनके पुत्र मरीचि, उनके कश्यपजी हुए ।।१४।। दक्ष ने अपनी तेरह कन्याँ कश्यपजी को दीं, उनमें एक पतिव्रता कन्या दनु उनका सौभाग्य बढ़ानेवाली हुई ।।१५।। उनके चार बड़े तेजस्वी दानवपुत्र हुए, उनमें एक विप्रचित्ति महाबली पराक्रमी हुआ ।।१६।। उसका पुत्र परमधार्मिक, बुद्धिमान् दानवराज दम्भ हुआ, उसके पुत्र तुम धर्मात्मा दानवराज हुए ।।१७।। प्रथम तुम श्रीकृष्ण के पार्षद, गोपों में मुख्य थे, अब तुम राधिका के शाप से दानवेश्वर हुए हो ।।१८।। तुम दानव योनि में आये हो, वास्तव में दानव नहीं हो, सो अपना पुराना वृत्तान्त जानकर देवताओं से बैर त्याग दो ।।१९।। उनके साथ द्रोह न करके अपना पद आनन्द से भोगो, इसमें विशेष हानि नहीं ऐसा विचार करके अपना राज्य करो ।।२०।। हे दानव! मेरी प्रीति विचार करके देवताओं को राज्य दे दो, और सुखपूर्वक अपने राज्य में स्थित हो, देवता अपने पद में स्थित हों ।।२१।। प्राणियों ही का विरोध बुरा होता है, फिर देवताओं के विरोधी की कौन कहे? कुलीन और शुद्ध कर्मवाले सब कश्यपजी की सन्तान हैं ।।२२।। जितने ब्रह्महत्यादि पाप हैं, वे सब ज्ञातिद्रोह के पाप की सोलहवीं कला के भी बराबर नहीं हैं ।।२३।। सनत्कुमारजी बोले– इस प्रकार श्रुति–स्मृति के सिद्धान्त की बहुतसी बात करके, फिर भी शंकरजी ने उसे समझाते हुए ज्ञानरूपी सन्देश कहा ।।२४।। तब शंखचूड का समझाया हुआ तर्क का ज्ञाता भवितव्य से मोहित हुआ वह दूत नम्र होकर बोला ।।२५।। दूत बोला– हे देव! जो कुछ आपने कहा वह सब सत्य है, परन्तु मैं जो कुछ कहता हूँ वह मेरा सत्य–सत्य निवेदन आप सुनें ।।२६।। जो आपने ज्ञातिद्रोह रूप महान् पाप कहा है, हे ईश! क्या वह बात असुरों के लिये ही है, देवताओं के लिये नहीं है? ।।२७।। यदि वह सबके लिये है, तो मैं विचार कर कहता हूँ, उसमें निर्णय करके सन्देह भंजन

कीजिये ।।२८।। हे महेश्वरजी! जो ऐसा है, तो फिर दैत्यश्रेष्ठ मधुकैटभ के सिर को चक्र से किस कारण काटा था?।।२९।। फिर त्रिपुरासुर के साथ युद्ध करके उसे भस्म क्यों किया? हे गिरीश! फिर आपने देवताओं की ओर होकर उनका कल्याण क्यों किया?।।३०।। बलि का सर्वस्व हरण करके उसे पाताल में क्यों भेजा? जो कि उसे सुतल भेजकर गदा धार उनके द्वार पर स्थित हैं।।३१।। फिर भाई सहित हिरण्याक्ष को देवताओं ने कैसे मारा? तथा देवताओं द्वारा शुम्भादि दैत्य कैसे मारे गये?।।३२।। पहले समुद्रमन्थन में अमृत देवताओं ने ही भक्षण किया, क्लेशभोगी हम सब हुए और वे केवल फलभोगी हुए।।३३।। परमात्मा काल का यह विश्व खिलौना है, वह जिस समय जिसको देता है, वह ऐश्वर्य उसे प्राप्त होता है।।३४।। देवता–दानवों का बैर सदा किसी न किसी निमित्त से होता है, उनकी हार और जीत काल के आधीन होती है।।३५।। इन दोनों के विरोध में आपका गमन निष्फल होगा, समान बलवालों का विरोध ठीक होता है, आपको विरोध नहीं करना चाहिये।।३६।। सुर–असुर सबके ईश्वर आप महात्मा को यह बड़ी लज्जा की बात है, कि जो हमारे साथ बैर है।।३७।। जिस में जय में अधिक कीर्ति, पराजय में हानि हो, यह बात आपसे विपरीत है, इसे मन से विचार करें।।३८।। सनत्कुमारजी बोले– शिवजी उसके यह वचन सुनकर हँसते हुए यथोचित मधुर वचन दानवराज से बोले।।३९।। महेशजी बोले– मैं भक्तों के आधीन हूँ, स्वतन्त्र नहीं हूँ, उनकी इच्छा से ही हम कर्म करते हैं, किसी के पक्षपाती नहीं।।४०।। पहले विधाता की प्रार्थना से विष्णुजी का प्रलयसागर में मधुकैटभ के साथ युद्ध हुआ था।।४१।। देवताओं की प्रार्थना से विष्णुजी ने प्रह्लाद के निमित्त तथा भक्तों के हित के निमित्त हिरण्यकशिपु का वध किया।।४२।। और देवताओं की प्रार्थना और भक्ति से मैंने त्रिपुर का संहार किया था, यह बात विख्यात है।।४३।। सबके ऐश्वर्य हरनेवाले, देवताओं को कष्ट देनेवाले शुम्भादि का वध भी देवताओं की प्रार्थना से ही किया गया।।४४।। अब भी देवता ब्रह्माजी की शरण में गये और ब्रह्माजी और विष्णुजी मेरी शरण में आये।।४५।। हे दूत! हरि और ब्रह्माजी की प्रार्थना के कारण मैं देवताओं की ओर से युद्ध करने आया हूँ।।४६।। मैं कहता हूँ कि, तुम कृष्ण के उत्तम पार्षद हो, इससे पहले जो दैत्य मारे गये उनमें कोई भी तुम्हारे समान नहीं थे।।४७।। हे राजन्! तुम्हारे साथ युद्ध करने में मुझे क्या लज्जा है? देवकार्य के निमित्त मुझ ईश्वर को उन्होंने विनय से प्रेरित किया है।।४८।। तुम जाकर यह वचन शंखचूड से कहना कि, उनके मन में जो आवे सो करें, मैं देवकार्य करता हूँ।।४९।। ऐसा कहकर महेश्वर शंकरजी मौन हुए और वह शंखचूड का दूत उठकर अपने स्वामी के समीप गया।।५०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां पञ्चम युद्धखण्डे पंचत्रिंशोऽध्यायः।। ३५ ।।

छत्तीसवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले– उस दूत ने जाकर अपने राजा से शिवजी के वचन कहे और विस्तारपूर्वक यथार्थ उनका निश्चय कह सुनाया ।।१।। यह सुनकर महाप्रतापी दानवराज शंखचूड ने प्रेम से युद्ध का स्वीकार किया ।।२।। अपने अमात्यों के साथ शीघ्र ही विमान पर सवार हुआ और अपनी सेना को शंकरजी के साथ युद्ध करने की आज्ञा दी ।।३।। इधर शिवजी ने अपनी सेना और देवताओं को प्रेरित किया और वह सर्वेश्वर लीलापूर्वक स्वयं भी तैयार हुए।।४।। तत्काल युद्ध का आरम्भ हो गया, अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे और वीरों का अनेक प्रकार से कोलाहल होने लगा ।।५।। हे मुने! देवता–दानवों का परस्पर महायुद्ध हुआ और दानव और देवताओं के गण परस्पर धर्मयुद्ध करने लगे ।।६।। महेन्द्र का वृषपर्वा के साथ युद्ध होने लगा, भास्कर का विप्रचित्ति के साथ धर्मयुद्ध होने लगा ।।७।। दम्भ के साथ विष्णुजी का परम युद्ध होने लगा, कालासुर के साथ काल का और गोकर्ण के साथ हुताशन का युद्ध होने लगा ।।८।। कालकेय के साथ कुबेर का और मय के साथ विश्वकर्मा का युद्ध होने लगा, भयंकरके साथ मृत्यु का और संहार के साथ यम का युद्ध हुआ ।।९।। कालम्बिक के साथ वरुण का, चंचल के साथ समीरण का, घटपृष्ठ के साथ बुध का और रक्ताक्ष के साथ शनैश्चर का युद्ध होने लगा ।।१०।। रत्नसार के साथ और वर्चस गणों के साथ जयन्त का, दीप्तिमानों के साथ अश्विनीकुमार का, धूम्र के साथ नलकूबर का ।।११।। धुरन्धर के साथ धर्म का, गणाक्ष के साथ मंगल का, शोभा करके साथ वैश्वानर का, पिपिट के साथ मन्मथ का ।।१२।। गोकामुख, चूर्णखड्ग असुर, धूम्रसंहल, विश्वप्रतापी और पलाश इनके साथ बारह आदित्यों का धर्मयुद्ध होने लगा, इस प्रकार शिवजी की सहायता को प्राप्त होकर देवता दैत्यों से युद्ध करने लगे ।।१३–१४।। ग्यारह महारुद्र महाभयंकर, महाबली, पराक्रमी, ग्यारह असुरों से युद्ध करने लगे ।।१५।। महामणि उग्रचण्ड के साथ, राहु चन्द्र के साथ, बृहस्पति शुक्र के साथ धर्मयुद्ध करने लगे ।।१६।। और नन्दीश्वर आदि सब गण उन सब दानवों से युद्ध करने लगे, विस्तार के भय से पृथक्–पृथक् वर्णन नहीं करते ।।१७।। काली और पुत्र के सहित शिवजी वट की मूल में बैठे रहे, हे मुने! और सब सेना निरन्तर युद्ध करने लगी ।।१८।। इधर रत्नों के मनोहर सिंहासन पर कोटि परिमित दानवों के सहित रत्नों के भूषणों से शोभायमान शंखचूड विराजमान था ।।१९।। वहां देवता–असुरों को प्राणसंहारकर्ता महायुद्ध हुआ, उस महायुद्ध में अनेक प्रकार के दिव्य आयुधों के प्रहार होने लगे ।।२०।। गदा, ऋषि,

पट्टिश, चक्र, भुशुण्डी, प्रास, मुद्गर, निस्त्रिंश, भल्ल, परिघ, शक्ति, सन्मुख, परशे ।।२१।। शर, तोमर, खड्ग, सहस्रों शतघ्नी, भिन्दिपाल आदि शस्त्र वीरों के हाथों में शोभा पाने लगे ।।२२।। वीरगण महापराक्रम से शत्रुओं के सिर छेदने लगे, युद्ध में दोनों ओर की वीरों की सेना गर्जने लगीं ।।२३।। हाथी, घोड़े, रथ, पैदल, सारी वाहादि अनेक प्रकार की सवारियां टूटने लगीं ।।२४।। भुजा, ऊरु, कर, कटि, कान, पैर कटने लगे, ध्वज, बाण, तलवार, वख्तर, भूषण टूटकर गिरने लगे ।।२५।। किरीट-कुण्डल पहने हुए सिरों से तथा हाथियों के सूण्डों से पृथ्वी आच्छादित हो गई ।।२६।। भूषण आयुधों कें सहित भुजा छिन्न-भिन्न होने लगी तथा मधुमक्खी के छत्तों के समान सिरों से व्याप्त हो गई ।।२७।। युद्ध में जोधा धावमान होने लगे, अपने गिरे हुए सिरों के आंखों से देखते हुए आयुध उठाकर धावमान होने लगे ।।२८।। वह वीर परस्पर सिंहनाद करते हुए युद्ध करने लगे और पराक्रमी महाबली अनेक प्रकार के शस्त्र-अस्त्र उठाने लगे ।।२९।। कोई युद्ध में सुवर्ण के पंख लगे हुए बाणों से योद्धाओं को मारने लगे, कोई मेघ के समान गम्भीरवाणी से शब्द करने लगे ।।३०।। सब ओर से बाणों के समूह वीर, रथ, सारथियों को ऐसे ढकने लगे जैसे बादल सूर्य को ढक लेते हैं ।।३१।। द्वन्द्वयुद्धवाले परस्पर एक दूसरे पर प्रहार करने लगे और एक दूसरे के मर्मस्थानों पर ताडन करने लगे ।।३२।। सब ओर से वीर समूह अनेक प्रकार की बाहुध्वजारूप आयुधवाले सिंहनाद करते हुए उस युद्ध में दिखाई देने लगे ।।३३।। बड़े शब्दवाले शंखों को पृथक्-पृथक् बजाने लगे और महावीर प्रसन्न होकर ताडन-वेधन करने लगे ।।३४।। इस प्रकार बहुत समय तक देवता और दानवों का वीरों को प्रसन्न करनेवाला बड़ा विकराल और विकट युद्ध हुआ ।।३५।। यह परमात्मा महाप्रभु शंकरजी की लीला है, जिन्होंने देवता, असुर, मनुष्य सबको मोहित कर रखा ।।३६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

पञ्चम युद्धखण्डे षट्त्रिंशोऽध्यायः ।। ३६ ।।

*****

सैंतीसवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले- तब सब देवता दानवों से पराजित होकर दानवों के शस्त्रों से क्षत-विक्षत होकर भागने लगे ।।१।। और पलायमान होकर वे शंकरजी का शरण में गये और विह्वलवाणी से ''रक्षा करो, रक्षा करो'' इस प्रकार कहने लगे ।।२।। तब भगवान् शंकरजी ने उन देव आदि की पराजय को देखकर और उनके भय के वचन सुनकर बड़ा कोप किया ।।३।। कृपादृष्टि से देखकर देवताओं को अभय दिया और

अपने तेज से अपने गणों में बल बढ़ा दिया ।।४।। तब स्कन्दजी शिवजी की आज्ञा पाकर महावीरता प्रकाश करके निर्भय होकर दानवगणों से युद्ध करने लगे ।।५।। वह तारकान्तक वीरशब्द से महाघोर शब्द करके सैकडों अक्षौहिणी का नाश करने लगे ।।६।। इधर काली समर में दैत्यों का नाश करके उनका रुधिर पान करने लगी और उनके सिर छेदकर सहसा भक्षण करने लगी ।।७।। सब ओर से दानवों का रक्त पान करना आरम्भ किया, सुरों का दानवों के साथ भयंकर युद्ध होने लगा ।।८।। सौ लाख गजेन्द्र, सौ लाख दानव हाथ से पकड़-पकड़कर लीलापूर्वक काली मुख में प्रक्षेप करने लगी ।।९।। सहस्रों कबन्ध रणभूमि पर नृत्य करने लगे, युद्ध में भीरुजनों को भय देनेवाला महान् कोलाहल हुआ ।।१०।। फिर स्कन्दजी ने क्रोध करके बाणों की महावर्षा की और करोड़ों दानवेन्द्रों का नाश कर दिया ।।११।। मरने से बचे हुए शेष दानव कुमार के बाणों से क्षत-विक्षत शरीर होकर पलायन करने लगे ।।१२।। वृषपर्वा, विप्रचित्ति, दण्ड, विकंपन ये क्रम से स्कन्दजी के साथ युद्ध करने लगे ।।१३।। इधर महमारी पराङ्मुख न होकर युद्ध करने लगी और स्कन्द की शक्ति से वे असुर क्षत-विक्षत हो गये ।।१४।। हे मुने! उस समय भगवती और स्कन्दजी की विजय हुई, स्वर्ग की दुन्दुभि बजी और फूलों की वर्षा हुई ।।१५।। स्कन्दजी का महाभयंकर संग्राम देखकर जो प्रकृति कल्प के समान दानवों का क्षय करनेवाला था ।।१६।। और जो उनके क्षय का हेतु महामारी ने उपस्थित किया था, यह देखकर देनवराज बड़ा क्रोध करके स्वयं युद्ध के लिये तैयार हुआ ।।१७।। अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रवाले श्रेष्ठ विमान में चढ़कर, जो सब वीरों को अभय देनेवाला था और जिसमें अनेक प्रकार के शस्त्र-अस्त्र धरे थे ।।१८।। महावीरों के साथ शंखचूड रथ के मध्य में स्थित होकर चला और कानपर्यन्त धनुष को खिंचकर बाणों की वर्षा करने लगा ।।१९।। उसकी वह बाणों की वर्षा बड़ी दुर्निवार हो गई, उस वधस्थान में महाघोर अन्धकार हो गया ।।२०।। नन्दीश्वर को आदि लेकर सब देवता भागने लगे, एक मात्र कार्तिकेयजी ही युद्ध में स्थित रहे ।।२१।। दानवराज ने उस समय पर्वत, सर्प, नाग और वृक्षों की दुर्निवार भयंकर वर्षा की ।।२२।। उस वर्षा से शिवपुत्र स्कन्दजी ताडित होने लगे, जैसे नीहार में भास्कर हो, ऐसे दोनों वीर हो गये ।।२३।। उस समय दानवेश्वर ने मयदानव की अनेक माया की, हे मुनिसत्तम! उस माया को शिवजी के गण और देवता कोई न जान सके ।।२४।। उसी समय महामायावी महाबली उस शंखचूड ने एक दिव्य बाण से स्कन्दजी के धनुष का छेद कर दिया ।।२५।। उनके रथ आदि का भी छेद कर दिया और दिव्य अस्त्र से उनके मोर को जर्जर कर दिया ।।२६।। और सूर्य के समान एक घातक शक्ति का स्कन्दजी की छाती पर प्रहार किया, जिसके प्रहार से वे क्षणमात्र के लिये मूर्च्छित हो गये ।।२७।। फिर स्कन्दजी क्षणमात्र में चेतना को प्राप्त होकर

महारत्नों से निर्मित अपने वाहन पर सवार हुए।।२८।। तब स्कन्दजी ने माता सहित शिवजी के चरणों को स्मरण करके शस्त्र–अस्त्रों को लेकर महासंग्राम किया।।२९।। उसके सर्प, पर्वत, वृक्ष, प्रस्तर यह सब ही अपने दिव्यास्त्रों से छेद कर दिये।।३०।। और मेघास्त्र से उसकी सब अग्नि शान्त कर दी और लीला से ही शंखचूड के रथ और धनुष को छेद कर दिया।।३१।। उनका वख्तर, वाहन, निर्मल किरीट, कुण्डल सब छेदकर वीरशब्द से बारंबार गर्जना की।।३२।। और सूर्य के समान जलती हुई एक शक्ति को उस दानवराज की छाती में मारा, उस प्रहार से वह दैत्य बहुत काल तक मूर्च्छित रहा।।३३।। फिर वह महाबली मुहूर्त मात्र में उस क्लेश को निवारण करके चेतना को प्राप्त होकर उठकर गर्जने लगा।।३४।। और महाबली कार्तिकेयजी पर शक्ति का प्रहार किया और विधाता के वचन सार्थक करने के लिये वह पृथ्वी पर गिर पड़े।।३५।। काली उनको गोदी में उठाकर शिवजी के समीप गई और शिवजी ने लीलापूर्वक अपने ज्ञान से उन्हें जीवित कर दिया।।३६।। और उनको अनन्त बल दिया, जिससे वह महाप्रतापी उठ बैठे और स्कन्दजी ने फिर युद्ध में जाने की इच्छा की।।३७।। उसी समय महाबली वीरभद्रजी शंखचूड के साथ महाबल से युद्ध करने लगे।।३८।। दानवराज ने समर में जितने अस्त्रों की वर्षा की उस वीर ने लीलापूर्वक उन सबका छेद कर दिया।।३९।। दानवेश्वर ने जितने दिव्य अस्त्रों का प्रहार किया, प्रतापी वीरभद्र ने उन सबका छेद कर दिया।।४०।। तब शंखचूड़ महाक्रोध करके एक शक्ति मारकर वीरभद्र को पृथ्वी पर गिरा दिया।।४१।। वह गणेश्वर क्षणमात्र में चेतना को प्राप्त होकर उठ बैठा और गणेश्वर वीरभद्र ने फिर धनुष ग्रहण किया।।४२।। इसी समय काली फिर समरभूमि में आई और कार्तिकेयजी की रक्षा करने और दानवों को भक्षण करने की इच्छा की।।४३।। और नन्दीश्वरादि वीर उसके पीछे चले, सब देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पन्नग उसके साथ आये।।४४।। वाद्य और मधु के सैकड़ों पात्र यह लेकर चले, फिर दोनों ओर के सब वीर तयार हो गये।।४५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

पञ्चम युद्धखण्डे सप्तत्रिंशोऽध्यायः।। ३७।।

*****

अड़तीसवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले– तब उसने संग्रामस्थल में जाकर सिंहनाद किया, देवी के उस सिंहनाद से दानव मूर्च्छित हो गये ।।१।। भगवती ने बारंबार भयंकर सिंहनाद किया और बारंबार मधु पान करके युद्धभूमि में नृत्य करने लगीं ।।२।। बड़े भयंकर डाढोंवाली दण्ड हाथ में लेकर मधु पान करने लगी और देवियां भी उसके साथ स्थित होकर मधु पान करते हुए नृत्य करने लगीं ।।३।। उस समय गण और देवताओं के दलों में महाकोलाहल हुआ और सब देवगण उस शब्द को सुनकर प्रसन्न हुए ।।४।। काली को देखकर शंखचूड शीघ्र ही संग्राम में आया, दानवों ने भय पाया और राजा ने उनको अभय दिया ।।५।। काली ने प्रलयाग्नि के समान अग्नि का प्रहार किया और राजा ने उसे वैष्णवास्त्र से शीघ्र ही शान्त कर दिया ।।६।। तब देवी ने नारायणास्त्र का प्रहार कियां, तब वह दानव को देखकर वृद्धि को प्राप्त होने लगा ।।७।। शंखचूड उसे प्रलयाग्नि के समान देखकर पृथ्वी पर गिरकर बारंबार प्रणाम करने लगा ।।८।। दानवों को नम्र देखकर वह अस्त्र निवृत्ति को प्राप्त हुआ, तब देवी ने मन्त्रपूर्वक ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया ।।९।। उस अस्त्र को प्रज्ज्वलित देखकर फिर दानव पृथ्वी पर उतरकर प्रणाम करने लगा और ब्रह्मास्त्र द्वारा वह दानवराज बच गया ।।१०।। तब दानवराज क्रोध करके बड़े वेग से धनुष चढ़ाकर, मन्त्रपूर्वक देवी पर दिव्य बाणों की वर्षा करने लगा ।।११।। तब देवी मुख फैलाकर सब अस्त्रों को भक्षण कर गई और अट्टहास से गर्जी, जिसे देखकर दानव भय को प्राप्त हुए ।।१२।। तब उसने शतयोजन के विस्तार होनेवाली शक्ति काली पर छोड़ी, देवी ने दिव्यास्त्रों से उसको खण्ड-खण्ड कर डाला ।।१३।। तब उसने चण्डिका पर वैष्णवास्त्र का प्रहार किया, काली ने माहेश्वर अस्त्र से उसको निवारण कर दिया ।।१४।। इस प्रकार दोनों का बहुत काल तक युद्ध होता रहा, सब देव-दानव खड़े होकर युद्ध देखने लगे ।।१५।। तब महादेवी युद्ध में काल के समान क्रोधित हुई और महाक्रोध करके पाशुपतास्त्र को ग्रहण किया और उसे मन्त्र से पवित्र किया ।।१६।। उसके निक्षेप करने से पहले ही आकाशवाणी हुई, हे देवी! इस अस्त्र को शंखचूड पर मत छोढ़ो ।।१७।। हे चण्डिके! यद्यपि यह पाशुपतास्त्र अमोघ है, परन्तु इससे इसकी मृत्यु नहीं है, इस कारण इस वीर शंखचूड के निमित्त कोई दूसरा उपाय करो ।।१८।। यह सुनकर भद्रकाली ने उस अस्त्र को नहीं छोड़ा और लीला से ही सौ लाख दानवों को भक्षण कर गई ।।१९।। और भयंकर वेग से शंखचूड को खाने के लिये दौड़ी, तब दानव ने दिव्य रौद्रास्त्र से निवारण किया ।।२०।। तब

दानवराज ने बड़ा क्रोध करके एक खड्ग का प्रहार किया, जो गरमी के समय के सूर्य के समान तीक्ष्ण धारवाला बड़ा भयंकर था ।।२१।। तब काली उस प्रज्ज्वलित खड्ग को आते हुए देखकर क्रोध से मुख फैलाकर उसे भक्षण कर गई ।।२२।। दानवराज ने और भी बहुत से दिव्यास्त्रों का प्रयोग किया, परन्तु भगवती ने वे सब खण्ड–खण्ड कर दिये ।।२३।। फिर महादेवी बड़े वेग से उसे खाने के लिये दौड़ी, तब वह श्रीमान् दानवराज सब सिद्धों का ईश्वर अन्तर्धान हो गया ।।२४।। तब काली ने दैत्यराज को न देखकर बड़े वेग से अपनी मुष्टि से उसका रथ और सारथी नष्ट कर दिया ।।२५।। फिर उस मायावी ने शीघ्र आकर देवी पर चक्र का प्रहार किया, शंखचूड का वह चक्र प्रलयाग्नि की शिखाओं के समान था ।।२६।। देवी ने लीला से ही उस चक्र को बायें हाथ में लेकर बड़े क्रोध से भक्षण कर दिया ।।२७।। और बड़े कोप और वेग से देवी ने उस पर मुष्टि का प्रहार किया, उससे दानवराज घूम गया और क्षणमात्र को उसे मूर्छा प्राप्त हो गई ।।२८।। फिर वह प्रतापी क्षणमात्र में मूर्छा को प्राप्त होकर भी उठ बैठा, परन्तु मातृबुद्धि से भगवती के साथ बाहुयुद्ध नहीं किया ।।२९।। तब देवी ने उसे पकड़कर और बारंबार घुमाकर महा कोप करके बड़े वेग से ऊपर को फेंक दिया ।।३०।। प्रतापी शंखचूड़ बड़े वेग से ऊपर कूद गया और फिर नीचे आकर भद्रकाली को प्रणाम कर स्थित हुआ ।।३१।। और महाश्रेष्ठ रत्नों के बने विमान पर स्थित होकर भ्रान्ति रहित प्रसन्न होकर युद्ध के निमित्त तैयार हुआ ।।३२।। इधर क्रोध से काली दानवों का रुधिर पान करने लगी, उस समय अशरीरिणी वाणी सुनाई दी ।।३३।। "इस समय युद्ध में एक लक्ष दानवों का रुधिर शेष है, हे ईश्वरि! वे ही उद्धत हैं, उनको शीघ्र ही भक्षण कर जाओ ।।३४।। और संग्राम में राजा को मारने की इच्छा न करो, हे देवि! यह शंखचूड तुमसे अवध्य है, यह निश्चय जानो" ।।३५।। यह वचन सुनकर देवी ने देखा कि, आकाशमण्डल से बहुत से दानवों का रुधिर और मांस निकल रहा है ।।३६।। भद्रकाली उसे भोजन पान करके शिवजी के समीप आई और पूर्वापार के क्रम से युद्ध का वृत्तान्त वर्णन किया ।।३७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
पञ्चम युद्धखण्डे भद्रकालीयुद्ध वर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ।। ३८ ।।

*****

उन्तालीसवाँ अध्याय

व्यासजी बोले– हे महाप्राज्ञ सनत्कुमारजी! भद्रकाली के वचन सुनकर शिवजी ने क्या कहा और क्या किया? सो आप कहिये, इसका मुझे परम कुतूहल है ।।१।। सनत्कुमारजी बोले– परमेश्वर शंकरजी काली के यह वचन सुनकर उसे लीला से समझाते हुए हँसने लगे ।।२।। वह तत्त्वज्ञान में विशारद आकाशवाणी सुनकर अपने गणों को साथ लेकर स्वयं युद्ध में गये ।।३।। वह वृषभ चढ़े वीरभद्रादि से संयुक्त तथा अपने समान भैरव और क्षेत्रपाल को साथ लिये ।।४।। वीररूप धारण करके महेश्वरजी युद्धभूमि में प्राप्त हुए और उस समय शंकरजी काल के समान विराजमान होने लगे ।।५।। शिवजी को देखते ही शंखचूड ने विमान से उतरकर परम भक्ति से शिर से भूमि पर दण्डवत् प्रणाम किया ।।६।। और शंकरजी को प्रणाम करके योगमार्ग से फिर वह विमान पर चढ़ा और वख्तर धारण करके धनुष बाण ग्रहण किया ।।७।। उस समय सौ वर्ष तक शिवजी और दानव का युद्ध होता रहा और वर्षते हुए मेघ के समान बाण वर्षा होती रही ।।८।। महावीर शंखचूड ने बड़े दारुण बाणों की वर्षा की और शंकरजी ने लीलापूर्वक उन सब बाणों को अपने बाणों से छेद कर दिया ।।९।। दुष्टों को दण्ड देनेवाले सत्पुरुषों के गति विरूपाक्ष महारुद्र ने बड़े कोप से उसके अंगों में शस्त्रों का प्रहार किया ।।१०।। तब वेगवान् दानव ने बड़ी शीघ्रता से आकर बड़ा तीक्ष्ण धारवाला खड्ग लेकर शिवजी के वरवाहन के मस्तक पर प्रहार किया ।।११।। जैसे ही उसने ताडन किया कि, शिवजी ने अपने तीक्ष्ण खुरवाले बाण से लीलापूर्वक उसकी ढाल और तलवार का छेद कर दिया ।।१२।। खड्ग का छेद करने से दानव ने शक्ति का प्रहार किया और शिवजी ने अपने बाणों से उसके दो खण्ड कर डाले ।।१३।। तब दानव ने बड़े कोप से चक्र का प्रहार किया और शिवजी ने मुष्टिप्रहार से ही उसे नष्ट कर दिया ।।१४।। तब उसने गदा उठाकर शिवजी के ऊपर चलाई, शिवजी ने उसे भी चूर्ण करके भस्म कर दिया ।।१५।। तब दानवराज ने हाथ में परशा उठाया और बड़े क्रोध से शिवजी के ऊपर दौड़ा ।।१६।। शिवजी ने परशु हाथ में लिये दौड़कर आते हुये उस दैत्य का अपनी बाण वर्षा से सहज ही तुरन्त पृथ्वी पर गिरा दिया ।।१७।। तब वह क्षणमात्र में चेतना को प्राप्त होकर रथ पर चढ़कर दिव्य आयुध धारण करके आकाश में व्यापक होकर स्थित हुआ ।।१८।। इस प्रकार उसे आया हुआ देखकर शिवजी ने डमरू और ज्या का शब्द और धनुष का भयंकर शब्द किया ।।१९।। और प्रभु ने डमरू नाद से सब दिशाओं को पूर्ण कर दिया और असुरों को त्रास देते हुए

शिवजी गर्जने लगे ।।२०।। जिस समय महागर्व से शंकरजी ने नाद किया और वृषेश्वर ने शब्द किया, उस समय उस शब्द से आकाश, पृथ्वी और दिशाएँ व्याप्त हो गई ।।२१।। तब बड़े वेग से महाकाल ने आकर भूमि, आकाश को दोनों हाथों से ताडन किया, उसके शब्द से सब असुर व्याकुल हो गये ।।२२।। इसी प्रकार क्षेत्रपाल ने भयंकर शब्द किया और भैरव ने भी उस युद्ध में महा शब्द किया ।।२३।। उस समय संग्राम में महा कोलाहल होने लगा, गणों के मध्य में चारों ओर से वीर शब्द होने लगा ।।२४।। उन भयदायक तीक्ष्ण शब्दों से सब दानव व्याकुल हो गये, महाबली दानव उन शब्दों को सुनकर महाकोपित हुआ ।।२५।। जब शिवजी ने कहा, अरे दुष्ट! खड़ा रह, खड़ा रह, उसी समय सब देवता और असुरों ने जय–जयकार शब्द उच्चारण किया ।।२६।। तब वह प्रतापवान् दम्भ के पुत्र ने आकर ज्वालमाला से भयंकर शक्ति का रुद्र के ऊपर प्रहार किया ।।२७।। अग्नि की प्रभा के समान उस शक्ति को आते हुए देखकर प्रतापवान् क्षेत्रपाल ने आगे बढ़कर अपने मुख की ज्वाला से नष्ट कर दी ।।२८।। फिर भी शिवजी और दानव का बड़ा घोर संग्राम होने लगा, उस समय द्युलोक, भूमि, पर्वत, सागर कम्पायमान होने लगे ।।२९।। दम्भपुत्र के छोड़े हुए बाणों को शिवजी अपने सहस्रों बड़े उग्र बाणों से छेद करने लगे ।।३०।। तब बड़ा क्रोध करके शिवजी ने उस पर त्रिशूल का प्रहार किया और वह उसको न सहकर मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिरा ।।३१।। और फिर वह असुर क्षणमात्र में चेतना को प्राप्त होकर धनुष चढ़ाकर बड़े–बड़े बाणों से शिवजी पर प्रहार करने लगा ।।३२।। दश सहस्र भुजाओं से शंकरजी को आच्छादित कर दिया और प्रतापी शंखचूड ने एक बार ही सहस्र चक्र छोड़े ।।३३।। तब कठिन दुर्गति के नाश करनेवाले दुर्गापति शंकरजी ने महा क्रोध किया और अपने बाणों से उन सब चक्रों को छेद डाला ।।३४।। तब दानव बड़े वेग से गदा ग्रहण करके बहुत सेना के सहित शिवजी को मारने के लिये दौड़ा ।।३५।। तब शिवजी ने अपनी तीक्ष्ण तलवार से उसकी गदा का छेद कर दिया, इस प्रकार दुष्ट का गर्वहरण किया ।।३६।। अपनी गदा का छेद हो जाने से दानव ने बड़ा क्रोध किया और शत्रुओं को बड़ा भयंकर प्रज्ज्वलित शूल ग्रहण किया ।।३७।। उस दानवेश्वर को सुदर्शन शूल हाथ में लेकर आया हुआ देखकर शिवजी ने वेग से अपने शूल का उसके हृदय पर प्रहार किया ।।३८।। त्रिशूल से भिन्न हृदय होते ही उसमें से एक और पुरुष निकला और वीर्यवान् शंखचूड ने उसे 'खड़े रहो' ऐसा कहा। वीर्यवान् शंखचूड के ।।३९।। निष्क्रमण होकर शब्द करते ही उसका सिर भयंकर तलवार से छेद डाला और वह पृथ्वी पर गिर पड़ा ।।४०।। तब काली ने अपना मुख फैलाकर अपनी डाढ़ों से उसे चबा डाला और क्रोध से मुख फैलाकर बहुत से राक्षसों को भक्षण कर गई ।।४१।। इधर क्षेत्रपाल ने भी क्रोध से बहुत से दैत्यों को भक्षण कर लिया, कोई भैरव अस्त्र से

छिन्न–भिन्न होकर नष्ट हो गये ।।४२।। वीरभद्र ने भी क्रोध से बहुत से वीरों का नाश कर दिया और नन्दीश्वर ने भी बहुत से असुरों को नष्ट किया ।।४३।। इस प्रकार से बहुत से वीर महा कोप करके बहुत से देवद्रोही असुरों को नष्ट करने लगे ।।४४।। इस प्रकार उस दैत्य की बहुतसी सेना नष्ट हो गई और भय से कातर होकर बहुतसे वीर भाग गये ।।४५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

पञ्चम युद्धखण्ड़े शंखचूड़सैन्य वध वर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।। ३९ ।।

*****

चालीसवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले– इस प्रकार से अपनी मुख्य सेना को नष्ट होते हुए देखकर और प्राणसमान वीरों को छिन्न होते देखकर दानव ने बड़ा क्रोध किया ।।१।। और संग्राम में शंकरजी से कहा– मैं तैयार हूँ, आप सावधान हों, इनको मारने से क्या है? आप मेरे सम्मुख युद्ध करो ।।२।। हे मुने! ऐसा कहकर वह दानव युद्ध को तैयार हुआ और निश्चय करके शंकरजी के सम्मुख आया ।।३।। दानव ने महारुद्र पर अनेक दिव्य अस्त्रों का प्रहार किया और जैसे मेघ जल बरसते हैं, उस प्रकार उसने शरवृष्टि की ।।४।। और अदृश्य होकर अनेक माया से भय दिखाने लगा, जिसको देवताओं में कोई भी समझ न सका ।।५।। उसे देखकर शंकरजी भी लीला से अस्त्र प्रहार करने लगे और सब माया का नाश करनेवाले महादिव्य माहेश्वरास्त्र से प्रहार किया ।।६।। उसके तेज से वह माया तत्काल नष्ट हो गई, वह सब दिव्य अस्त्र निस्तेज हो गये ।।७।। तब महाबली महेश्वरजी ने उसके वध के निमित्त युद्ध में तेजस्वियों को दुर्निवार शूल ग्रहण किया ।।८।। उसी समय इस बात का निषेध करने के लिये अशरीरिणी वाणी हुई, ''हे शंकर! अभी शूल को मत छोड़ो, थोड़ी प्रार्थना सुनो ।।९।। आप क्षण में ब्रह्माण्ड नाश करने में समर्थ हो, फिर एक दानव शंखचूड को मारना क्या बड़ी बात है? ।।१०।। तो भी, हे स्वामिन्! आपको वेद की मर्यादा का नाश नहीं करना चाहिये; हे महादेव! उसे सुनकर सत्य से सफल करो ।।११।। जब तक इसके पास हरि का उत्तम कवच है और जब तक इसकी स्त्री पतिव्रता है ।।१२।। हे शंकर! तब तक इसे जरा और मृत्यु नहीं है, हे नाथ! ब्रह्माजी के इस वचन को आप सत्य करें'' ।।१३।। आकाशवाणी सुनकर शिवजी ने वैसा ही किया और विष्णुजी को इस बात की आज्ञा हुई कारण कि, शंकरजी सतपुरुषों के गति हैं, हर की इच्छा से विष्णुजी वहां गये ।।१४।। माया जाननेवालों में श्रेष्ठ विष्णुजी ने बूढ़े ब्राह्मण का वेष बनाया, शंखचूड के समीप जाकर कहा ।।१५।। वृद्ध ब्राह्मण बोला– हे दानवेन्द्र! इस समय आप मुझे भिक्षा दीजिये ।।१६।। सो मैं

पहले नहीं मांगता हूँ, जब आप पहले शपथ कर लेंगे, तब दीनों पर कृपा करनेवाले आपसे कहूंगा ।।१७।। राजा ने प्रसन्नता से प्रतिज्ञा की, तब ब्राह्मण ने छल से कहा- मैं आपका यह कवच चाहता हूँ ।।१८।। यह वचन सुनकर ब्रह्मण्य सत्यभाषी दानवराज ने उसी समय प्राणों के समान प्रिय कवच ब्राह्मण को दे दिया ।।१९।। इस प्रकार हरि ने माया से शंखचूड का कवच ग्रहण कर लिया और फिर शंखचूड के रूप से तुलसी के प्रति गमन किया ।।२०।। माया विशारद हरि ने देवकार्य की सिद्धि के निमित्त उससे अपनी शक्ति से विहार किया ।।२१।। उसी समय शिवजी ने अपना वचन पालन करने के निमित्त शंखचूड को मारने के निमित्त शूल ग्रहण किया ।।२२।। वह परमात्मा शंकरजी का विजय नामक शूल सब दिशाएँ और द्युलोक को प्रकाशमान करने लगा ।।२३।। मध्याह्न के कोटि सूर्य और प्रलयाग्नि की शिखा के समान दुर्निवार, दुर्धर्ष, व्यर्थ न होनेवाला तथा शत्रुनाशक था ।।२४।। तेजों का बड़ा उग्र चक्र सब शस्त्र-अस्त्रों में साधक, सुर-असुर सबको दुःसह, बड़ा भयंकर ।।२५।। जो लीला से ही सब ब्रह्माण्ड को नष्ट करने में समर्थ, सब प्रचण्डता का एक प्रज्ज्वलित होता हुआ तेज ।।२६।। एक सहस्र धनुष लम्बा, सौ हाथ चौड़ा, जीव ब्रह्म का स्वरूप नित्यरूप, जो किसी का निर्माण किया नहीं ।।२७।। क्षणमात्र में शिवजी के हाथ से छूटे हुए उस शूल ने आकाश में भ्रमते हुए शिवजी की आज्ञा से क्षणमात्र में शंखचूड के ऊपर गिरकर उसे भस्म कर डाला ।।२८।। हे मुने! क्षणमात्र में उस दैत्य को मारकर वह शिवजी का त्रिशूल आकाश से होता हुआ मनोवेग से फिर शंकरजी के समीप आ गया ।।२९।। उस समय स्वर्ग में दुन्दुभी बजने लगी, गन्धर्व किन्नर गाने लगे; मुनि, देवता प्रसन्न हुए, अप्सरायें गाने लगीं ।।३०।। शिवजी के ऊपर फूलों की वर्षा हुई, हरि, ब्रह्माजी और इन्द्रादि, मुनि शिवजी की बड़ाई करने लगे ।।३१।। दानवेन्द्र शंखचूड शिवजी की कृपा से शाप से मुक्त होकर अपने पूर्वरूप को प्राप्त हुआ ।।३२।। शंखचूड की अस्थियों से एक प्रकार की शंखजाति प्रकट हुई, शंकरजी पर चढ़ाने के सिवाय शंख का जल सर्वत्र प्रशस्त है ।।३३।। विशेष कर विष्णुजी और लक्ष्मीजी को शंख का जल बहुत प्रिय है, उनके सम्बन्धियों को भी वह जल प्रिय है, हे महामुने! परन्तु शंकरजी को वह प्रिय नहीं है ।।३४।। इस प्रकार शिवजी उसे मारकर प्रसन्नता से वृष पर चढ़े हुए उमा, स्कन्द और अपने गणों के सहित शिवलोक को चले गये ।।३५।। भगवान् वैकुण्ठ को गये और श्रीकृष्णजी भी स्वस्थ हुए और परमानन्द के सहित सब देवता अपने-अपने स्थान को गये ।।३६।। जगत् अत्यन्त स्वस्थता को प्राप्त हुआ और सब प्रकार से निर्विघ्नता प्राप्त हुई, आकाश निर्मल हो गया और पृथ्वी सुमंगला हो गई ।।३७।। यह शंकरजी का सुखदायक चरित्र आपसे वर्णन किया, जो सब दुःखों को हरनेवाला, लक्ष्मी का देनेवाला और सब कामों को पूर्ण करनेवाला है ।।३८।। यह धन्य यश का

देनेवाला, सब विघ्नों का निवारण करनेवाला, भुक्ति-मुक्ति तथा सब कामफल का देनेवाला है ।।३९।। जो कोई इस शंकरजी के चरित्र को नित्य श्रवण करता है और बुद्धिमान् सुनाता है, वा पढ़ता-पढ़ाता है ।।४०।। वह धन-धान्य, पुत्रसुख को प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं। वह सब काम और शिवभक्ति को विशेष प्राप्त करता है ।।४१।। यह अतुल आख्यान सब उपद्रवों का नाश करनेवाला है, परमज्ञान को उत्पन्न करनेवाला तथा शिवभक्ति को बढ़ानेवाला है ।।४२।। ब्राह्मण ब्रह्मतेज से युक्त और क्षत्रिय विजयी होता है, वैश्य धनाढ्य और शूद्र सुनने से श्रेष्ठ होता है ।।४३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
पञ्चम युद्धखण्डे शंखचूडवधोपाख्यानं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४० ।।

*****

इकतालीसवाँ अध्याय

व्यासजी बोले- हे मुने! विष्णुजी ने किस उपाय से तुलसी में अपनी शक्ति का आधान किया? सो आप मुझसे कहिये ।।१।। सनत्कुमारजी बोले- देवताओं के कार्यकर्ता नारायण सत्पुरुषों के गति शंखचूड के रूप से उस रामा के साथ रमते हुए ।।२।। सो आप विष्णुजी का आनन्ददायक चरित्र सुनिये, जिन्होंने शंकरजी और माता पार्वतीजी की आज्ञा का पालन किया ।।३।। देव शंकरजी ने आकाशवाणी सुनकर विष्णुजी को प्रेरित किया, तब विष्णुजी ने उस शंखचूड से कवच ग्रहण करके ।।४।। फिर ब्राह्मणरूप को छोड़कर बहुत शीघ्र माया से शंखचूड का रूप धारण करके तुलसी के घर गमन किया ।।५।। तुलसी के द्वार पर दुन्दुभी का शब्द बजवाया गया और जय शब्द से सुन्दरी को समझाया गया ।।६।। वह सुनकर सुन्दरी बड़े आनन्द में भर गई और बड़े आनन्द से झराखों में से राजमार्ग को देखने लगी ।।७।। ब्राह्मणों को धन देकर उसने मंगलाचार कराया और अपने पति को आया जानकर शीघ्रता से अपना सिंगार किया ।।८।। रथ से उतरकर विष्णुजी देवी के मन्दिर में गये, वह देवकार्य करनेवाले मायावी शंखचूड के रूप से चले ।।९।। अपने स्वामी को आया देखकर वह बड़ी प्रसन्न हुई और पति के चरण धोकर प्रणाम करके रोने लगी ।।१०।। मनोहर रत्नों के सिंहासन पर बैठाकर मंगलाचार कराया और कर्पूरादि से सुवासित ताम्बूल दिया ।।११।। आज मेरा जन्म और जीवन सफल हुआ, जो मैं आज युद्ध से लौटे हुए अपने स्वामी को घर आया देखती हूँ ।।१२।। ऐसा कहकर वह कटाक्ष सहित अपने स्वामी को देखकर हंसती हुई मधुरवाणी से युद्ध का वृत्तान्त पूछने लगी ।।१३।। तुलसी बोली- असंख्य

संसार के संहार के संहार करनेवाले वह देवश्रेष्ठ प्रभु जिनकी आज्ञा में सदा ब्रह्मा-विष्णु आदि देवता रहते हैं ।।१४।। वह तीनों देवताओं को उत्पन्न करनेवाले, त्रिगुणात्मा निर्गुण हरि, ब्रह्माजी के प्रेरक, भक्तों की इच्छा से ही सगुण होते हैं ।।१५।। कुबेर की प्रार्थना से शिवजी ने सगुणरूप धारण किया, वह कैलासवासी गणपति परब्रह्म सत्पुरुषों के गति हैं ।।१६।। जिनके एक पलक मारने में कोटि ब्रह्माण्डों का क्षय होता है, जिनके क्षणमात्र में बहुत से ब्रह्मा-विष्णु व्यतीत हो जाते हैं ।।१७।। हे प्रभो! आप उनके साथ युद्ध करने को गये थे, उन देवों के सहायक के साथ आपका संग्राम किस प्रकार हुआ ?।।१८।। उन परमेश्वर को जीतकर आप कुशलता से कैसे आये ? हे स्वामिन्! आपकी जय कैसे हुई ? सो मुझसे कहिये ।।१९।। तुलसी के यह वचन सुनकर रमापति हँसकर शंखचूड के रूप से अमृतमय वचन बोले ।।२०।। भगवान् बोले- जब मैं समरभूमि में युद्ध के लिये गया, तब बड़ा कोलाहल हुआ और बड़ा भयंकर युद्ध हुआ ।।२१।। जयशील देवदानवों का बड़ा संग्राम हुआ, बल से गर्वित देवताओं ने दैत्यों को जीत लिया ।।२२।। तब मैंने बलवान् देवताओं से महान् युद्ध किया, वे सब हारकर शंकरजी के शरण में गये ।।२३।। रुद्र भी उनकी सहायता के लिये शीघ्र ही रणभूमि में आये, मैंने बलदर्पित होकर उनके साथ बहुत काल तक युद्ध किया ।।२४।। हे कान्ते! हम दोनों का समर पूर्ण एक वर्ष तक होता रहा, हे कामिनि! उसमें सब असुरों का नाश हो गया ।।२५।। ब्रह्माजी ने आकर दोनों में प्रीति करा दी, मैंने ब्रह्माजी के कहने से देवताओं को अधिकार दे दिये ।।२६।। मैं अपने घर चला आया और शिवजी शिवलोक को गये, सबको स्वस्थता हुई और उपद्रव दूर हुए ।।२७।। सनत्कुमारजी बोले- जगत्पति ने ऐसा कहकर शयन किया और रमापति ने उसके साथ विहार किया ।।२८।। तब वह साध्वी उस सर्वात्मारूप आकर्षणवाले रमण को देखकर तर्कना करने लगी और बोली- आप कौन है ?।।२९।। तुलसी बोली- आप कौन है ? *सत्य कहिये, आपने माया से मुझे भोगा है, आपने मेरा सतीपन दूर किया है, मैं आपको शाप देती हूँ।।३०।। सनत्कुमारजी बोले- हे व्यासजी! तुलसी के वचन सुनकर शाप के भय से हरि ने लीला से अपनी मनोहर मूर्ति धारण की ।।३१।। तुलसी ने वह रूप देखकर और चिह्न से उन्हें जानकर अपना पतिव्रतधर्म भंग होने के कारण क्रोध करके कहा ।।३२।। तुलसी बोली- हे विष्णुजी! आप में दया नहीं है, आपका मन पाषाण के समान है, पतिव्रतधर्म भंग करके आपने मेरे स्वामी का वध कराया है ।।३३।। आप पाषाण के समान दयाहीन

*- इस कथा से वैष्णव तत्त्वपर परस्त्री विहार की शंका नहीं उठ सकती, कारण कि वह सर्वात्मा हैं, सबके आत्मा में विराजमान है, अणु-अणु में व्यापक है, तब उसमें विहार का दोष नहीं, तुलसी ने इस तत्त्व को न जाना, इस कारण अपने में दोष माना, विष्णुजी में दोष नहीं, इस कारण उसके स्पर्श से वैकुण्ठ मिला और एक के अपकार में यदि जगत्‌भर का उपकार हो, तो उस कार्य में दोष नहीं, फिर इन पतिव्रताओं को वैकुण्ठ मिला है।

कर्म रहित हो, इस कारण मेरे शाप से आप पाषाण हो जाओगे ।।३४।। जो आपको दयासागर कहते हैं, वे निश्चय भ्रान्ति में पडे हैं, इसमें सन्देह नहीं, आपके विना अपराध आपने दूसरे के निमित्त भक्त को कैसे मारा ?।।३५।। सनत्कुमारजी बोले– वह शंखचूड की प्रिया सती तुलसी इस प्रकार कहकर शोक के मारे अत्यन्त रोने और विलाप करने लगी।।३६।। उसे रोती हुई देखकर परमेश्वर विष्णुजी ने शंकरजी का स्मरण किया, जिन्होंने सब जगत् को मोहित कर रखा है।।३७।। तभी भक्तवत्सल शंकरजी वहां प्रकट हुए और हरि ने उनको विनयपूर्वक प्रणाम किया।।३८।। हरि को शोकाकुल और उस प्रिया को रोती हुई देखकर शंकरजी ने उस दुःखिया को समझाया।।३९।। शिवजी बोले– हे तुलसी! तू मत रो, सब कोई कर्मों का फल भोगते हैं, इस कर्मसागर संसार में सुख–दुःख देनेवाला कोई नहीं है।।४०।। अब तुम दुःख दूर होने की ठीक बात सुनो, हरि भी सुनें, जो दोनों को सुख देनेवाली बात है, मैं तुम्हारे सुख के निमित्त कहता हूँ।।४१।। हे भद्रे! तुमने जो तपस्या की थी, उसी तप का जो फल प्राप्त होना है, वह अन्यथा कैसे हो कसता है? ।।४२।। इस शरीर को त्याग और दिव्य देह धारण करके नित्य हरि के साथ विहार करो, यही तप का फल है।।४३।। तेरे इस छोडे हुए शरीर से एक नदी होगी और भारत में वह गण्डकी नाम से विख्यात होगी और पुण्यरूपा होगी।।४४।। हे देवि! देवपूजन के साधने से कितने काल के उपरान्त तुम मेरे वर से प्रधानरूपा तुलसी होगी।।४५।। स्वर्ग, मर्त्य, पाताल तीनों लोकोंमें तुम सदा हरि के समीप रहोगी, हे सुन्दरी! तुम सब फूल और वृक्षों में श्रेष्ठ तुलसी का वृक्ष बनोगी।।४६।। हे देवि! तुम वृक्ष की अधिष्ठात्री होकर वैकुण्ठ में दिव्यरूप धारण करके रहोगी, हरि के साथ रहकर नित्य क्रीड़ा करोगी।।४७।। नदी की अधिष्ठात्री देवी जो भारत में अनेक पुण्य देनेवाली है, वहां भी तुम हरि के अंश क्षारसागर की पत्नी होगी।।४८।। और गण्डकी नदी के किनारे यह हरि तेरे शाप से भारत में पाषाणरूप से स्थिति करेंगे।।४९।। वहां भी तीक्ष्ण डाढ़ों (दांतों) वाले कोटियों किट उस शिला को भेद करके उसमें चक्र करेंगे।।५०।। इस प्रकार की शालिग्राम शिला बड़े पुण्य की देनेवाली है, यह चक्र के भेद से लक्ष्मीनारायणादि नामवाली होगी।।५१।। हे तुलसी! विष्णुजी की शालिग्राम शिला से तुम्हारा संगम बहुत पुण्य देनेवाला होगा।।५२।। जो शालिग्राम से तुलसीपत्र का विच्छेद करेगा, हे भद्रे! जन्मान्तर से उसे स्त्री का वियोग होगा।।५३।। शंख को छोड़कर जो तुलसीपत्र का विच्छेद करेगा, वह स्त्रीविहीन होकर सात जन्म तक रोगी रहेगा।।५४।। शालिग्राम, तुलसी और शंख यह एक स्थान पर जो महाज्ञानी रखता है, वह हरि का प्रिय होता है।।५५।। तुम शंखचूड की प्रिया एक मन्वन्तर तक रही, शंख के साथ तेरा भेद केवल तुझको ही दुःख देनेवाला होगा।।५६।। सनत्कुमारजी बोले– यह कहकर शिवजी ने फिर शालिग्राम शिला और तुलसी का

पुण्यदायक बहुत माहात्म्य वर्णन किया ।।५७।। इस प्रकार हरि और तुलसी को समझाकर सत्पुरुषों की गति कल्याणदायक शंकरजी अन्तर्धान हो गये ।।५८।। शिवजी के यह वचन सुनकर तुलसी प्रसन्न हुई और उस देह को त्यागकर दिव्य देह को प्राप्त हुई ।।५९।। और उसके साथ कमलापति वैकुण्ठ को गये और उसकी पूर्वदेह से गण्डकी नदी बह निकली ।।६०।। और उसके किनारे सत्पुरुषों को पुण्य देने के लिये विष्णुजी शालिग्राम हुए। हे मुने! उस शिला में कीट अनेक प्रकार के छेद करते हैं ।।६१।। जो शिला जल में गिरती है, वह बड़ी पुण्यदायक है, जो स्थल की है, वह पिंगला है और ताप देनेवाली है ।।६२।। आपके प्रश्न के अनुसार मनुष्यों को सब कामना देनेवाला शिवजी का यह पुण्यदायक चरित्र वर्णन किया ।।६३।। यह विष्णुजी के माहात्म्यसंयुक्त आख्यान भुक्ति-मुक्ति और पुण्य देनेवाला है। अब आगे आपकी क्या सुनने की इच्छा है ।।६४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
पञ्चम युद्धखण्डे शंखचूड़वधोपाख्याने तुलसीशापवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४१ ।।

*****

बयालीसवाँ अध्याय

नारदजी बोले- शंखचूड का वध सुनकर और शिवजी महाराज के चरित्र सुनकर मैं इस प्रकार से तृप्त नहीं होता, जैसे कोई मनुष्य अमृत पीकर तृप्त नहीं होता ।।१।। हे ब्रह्माजी! जो उन महात्मा महेशजी के चरित्र हैं, जो उन्होंने माया के आश्रित होकर भक्तों को आनन्द देनेवाली लीला की है, सो आप कहिये ।।२।। ब्रह्माजी बोले- सत्यवती के पुत्र व्यासजी शंखचूड का वध सुनकर ब्रह्मपुत्र मुनीश्वर से यही बात पूछने लगे ।।३।। तब सनत्कुमारजी ने सत्यवती के पुत्र व्यासजी से यही बात कही और प्रशंसा करके मंगल के देनेवाले शिवजी के चरित्र कहने आरम्भ किया ।।४।। सनत्कुमारजी बोले- हे व्यासजी! शंकरजी के मंगलदायक चरित्र सुनिये, जैसे अन्धक दैत्य ने महात्मा शंकरजी के गाणपत्यपद को प्राप्त किया ।।५।। हे मुनीश्वर! पहले तो उसने शंकरजी से बड़ा संग्राम किया, पीछे सत्यभाव से बारंबार उनकी प्रार्थना की ।।६।। शरणागत की रक्षा करनेवाले शिवजी का बड़ा माहात्म्य है, वह अनेक लीलाओं से विहार करनेवाले, शरणागतवत्सल हैं ।।७।। यह भगवान् शंकरजी का माहात्म्य सुनकर सत्यवती के पुत्र व्यासजी भक्ति से मुनीश्वर को प्रणाम करके उन मुनीन्द्र ब्रह्मसुत से कहने लगे ।।८।। व्यासजी बोले- हे भगवन्! वह अन्धक कौन था, किसके वंश में

उसने इस पृथ्वी पर जन्म लिया, वह किस वीर्यवान से महात्मा प्रधान बलवान हुआ, वह अन्धक किसका पुत्र था!।।९।। आप यह सम्पूर्ण रहस्य सहित मुझसे वर्णन कीजिये। ब्रह्मपुत्र को प्रसन्नता से मैंने बड़े बोधवाले महेशजी के पुत्र से यह बात भली प्रकार जान ली।।१०।। परम तेजस्वी शिवजी के प्रसाद से उसने गणाधीश्वरपन प्राप्त किया, वह अन्धक धन्य है, जो गणेश्वर हो गया।।११।। ब्रह्माजी बोले– व्यासजी के यह वचन सुनकर ब्रह्मपुत्र उस समय कहने लगे, जिस प्रकार से उस दैत्य ने महेश्वरजी से परमलक्ष्मी प्राप्त की, वह बात सुनने की इच्छावाले व्यासजी कहने लगे।।१२।। सनत्कुमारजी बोले– एक समय अपने गण और पार्वती को साथ लेकर भक्तों पर कृपा करनेवाले देवताओं के चक्रवर्ती काशीजी में आये।।१३।। काशीपुरी को अपनी राजधानी विधान करके उसे मनुष्यों को सुखदायक बनाकर और भैरव नामक वीरों को उसका रक्षक नियत करके बहुत से पर्वतों पर विचरने लगे।।१४।। तब एक समय वह मन्दराचल नामक पर्वत पर गये, कारण कि उसे वर दे दिया था; शंकरजी, पार्वती तथा अनेक मुख्य गणों के संग विहार करने लगे।।१५।। जिस समय प्रचण्ड पराक्रमी शिवजी मन्दर पर्वत की पूर्व दिशा में विराजमान थे, उस समय हँसी से पार्वती ने उनके दोनों नेत्र मूँद लिये।।१६।। जिस समय मूँगे सुवर्ण के कमल की प्रभावाले दोनों हाथों से पार्वती ने शिवजी के दोनों नेत्र मूँद लिये, उस समय शिवजी के नेत्र मूँदने पर महाअन्धकार हो गया।।१७।। महेश्वरजी के शरीर स्पर्श करने से पार्वती के हाथों से मद का जल निकलने लगा, कारण यह कि, शिवजी के माथे की अग्नि से तप्त होकर बहुत से जल के बिन्दु टपकने लगे।।१८।। उसी समय बड़ा करालमुख, भयंकर क्रोधपरायण एक पुरुष, जो की अन्धा, विरूप, जटाधारी, कृष्णवर्ण, विकृत तथा बहुत से रोगोंवाला, मनुष्यों से कुछ इतर उत्पन्न हुआ।।१९।। वह गाने, हँसने, नाचने, रोने, जीभ से चाटने और महा घोर शोर करने लगा, उस अद्‌भुत दर्शन के उत्पन्न होते ही गौरी को आश्चर्यपूर्वक देखकर शिवजी हँसते हुए बोले।।२०।। श्रीमहेशजी बोले– आँखें मींचकर जो कर्म किया है, हे गौरी! फिर तुम अब उससे क्यों ड़रती हो? गौरी ने शिवजी के यह वचन सुनकर हँसते हुए नेत्रों से हाथ उठा लिये।।२१।। प्रकाश होने पर वह घोररूप अन्धकार से भी विशेष प्रतीत हुआ, इस प्रकार से उस प्राणी को देखकर उस पुरुष के विषय में पार्वती शिवजी से पूंछने लगीं।।२२।। गौरी बोली– हे भगवन्! हम दोनों के आगे यह घोर पुरुष कौन उत्पन्न हुआ है? आप सत्य कहिये, इसे आपने किस कारण उत्पन्न किंया है? अथवा किसी अन्य ने इसे उत्पन्न किया है? तो यह किसका पुत्र है?।।२३।। सनत्कुमारजी बोले– अनेक दुःखों को हरनेवाले, अनेक लीलाकारी, सृष्टिकर्ता भगवान् शंकरजी त्रिजगत् की जननी के यह वचन सुनकर कुछेक हँसते हुए बोले।।२४।। शिवजी बोले– हे चण्डिके! हे अद्‌भुत चरित्र करनेवाली!

यह अद्‌भुत पराक्रमी उत्पन्न हुआ है, तुमने जो मेरे नेत्र मूँद लिये, सो उस पसीने के पड़ने से यह अन्धक नामक पुरुष उत्पन्न हुआ है ।।२५।। हे कल्याणी! तुमने ही इसको रचा है, तुमको सखियों सहित दया करनी चाहिये, तुम बुद्धि से इसकी रक्षा का उपाय करके जो उचित हो, सो करो ।।२६।। तब इस प्रकार से गौरी ने उनके वचन सुनकर सखियों के सहित करुणा के भाव से अनेक प्रकार के उपायों से उसकी रक्षा का विधान किया ।।२७।। इस प्रकार से शिशिर ऋतु का समय आकर प्राप्त हुआ कि, हिरण्यनेत्रवाले दैत्य पुत्र की कामना से अपने ज्येष्ठ बन्धु के यहां पुत्र देखकर प्रिया के कहने से वन में आया ।।२८।। यह कश्यपपुत्र असुर वन में आकर पुत्र के निमित्त तप करने लगा, रोष और दोष जीतकर काष्ठ के समान स्थित होकर महेश्वरजी के दर्शन करने के निमित्त वहां स्थित हुआ ।।२९।। हे व्यासजी! भगवान् शंकरजी इनकी तपस्या से प्रसन्न हो गये और उसे वरदान देने के निमित्त गये, उसके स्थान में प्राप्त होकर भगवान् शंकर महादेवजी उस दैत्येश्वर से कहने लगे ।।३०।। महेशजी बोले- हे दैत्यनाथ! इन्द्रिय समूह का पात मत करो, तुमने यह व्रत किस निमित्त किया है, सो तुम अपनी अभिलाषा हम से कहो, जो तुम्हारी इच्छा होगी वह मैं सब तुमको दूंगा ।।३१।। वह हिरणाक्ष्य दैत्य शिवजी के यह वचन सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ, हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर विविध प्रकार से शंकरजी की स्तुति और प्रणाम करके कहने लगा ।।३२।। हिरण्याक्ष बोला- हे चन्द्रशेखर! मेरा कोई पुत्र नहीं है, जो वीर्यवान् दैत्यकुल के अनुरूप हो, उसीके निमित्त मैं इस व्रत में स्थित हुआ हूँ, हे देवेश! आप मुझे वीर्यवान् पुत्र दीजिये ।।३३।। जिस कारण से कि, मेरे भाई के अनन्त वीर्यवाले प्रह्लाद से आदि लेकर पांच पुत्र हैं, परन्तु मेरा कोई पुत्र नहीं है, मेरा राजवंश ही नहीं है, तो यह मेरा राज्य कौन भोगेगा? ।।३४।। जो अपने बल से दूसरे का राज्य हरण करके अथवा अपने पिता के देखे हुए को ही भोगता है, वह यह पुत्र कहा है और उसी कारण परलोक में पिता पुत्रवाला कहलाता है ।।३५।। धर्म को जाननेवाले महर्षियों ने पुत्रवालों की ऊर्ध्वगति कही है, सब प्राणी इसी निमित्त पुत्र चाहते हैं, नहीं तो मरने पर पशुओं में अपना तेज प्रविष्ट हो जाता है ।।३६।। सन्तानहीनों को श्रेष्ठ लोकों की प्राप्ति नहीं होती, इस कारण यह मनुष्य देवताओं के चरणकमलों का आराधन करके एक पुत्र की इच्छा करते हैं ।।३७।। सनत्कुमारजी बोले- शिवजी महाराज दैत्य के यह वचन सुनकर कृपा करके उस दैत्येश्वर से प्रसन्न होकर बोले- हे दैत्यराज! तुम्हारे भाग्य में तुम्हारे वीर्य से कोई पुत्र नहीं है, तो भी मैं तुमको देता हूँ ।।३८।। मेरा एक अन्धक नामवाला पुत्र, तेरे तुल्य वीर्य और पराक्रमवाला है, तू सब दुःख छोड़कर यदि उस पुत्र की इच्छा करे, तो उस पुत्र को मांग ले ।।३९।। सनत्कुमारजी बोले- यह वचन कहकर प्रसन्न होकर, भूतों के आदिनाथ, त्रिपुर के उग्र शत्रु गौरी सहित शंकरजी ने प्रसन्नता से उसे पुत्रदान किया ।।४०।। तब वह दैत्य

शिवजी से पुत्र को पाकर, उनकी प्रदक्षिणा करके और अनेक स्तोंत्रों से उनकी स्तुति करके अपने राज्य को चला गया ।।४१।। तब वह प्रचण्ड पराक्रमी शिवजी से पुत्र को प्राप्त होकर उसने सब देवता और पृथ्वी, तथा पातालवासियों को जीतकर इस पृथ्वी को अपने अधीन किया ।।४२।। उस समय देवता, मुनि, सिद्धों ने सर्वात्मक यज्ञमय कराल वराहरूप प्रधान विष्णुदेव का आराधन किया ।।४३।। तब उन्होंने अपनी घोर तुण्डप्रहार से पृथ्वी को विदीर्ण करते हुए पाताल में प्रवेश करके और अपने तुण्ड के प्रहार से सैकड़ों दैत्यों का विनाश करके और अखण्डित डाढ़ों के अग्रभाग से ।।४४।। तथा वज्र के समान चरणों के प्रहार से निशाचरों की सेना को मथित करके पीछे अद्‌भुत तेजवाले कोटि सूर्य के समान प्रकाशमान प्रचण्ड तेजवाले सुदर्शनचक्र से ।।४५।। प्रज्ज्वलित हिरण्याक्ष का सिर छेद डाला और दुष्टों दैत्यों का भी वध किया, पश्चात् दैत्येन्द्र के उस राजसिंहासन पर अन्धक का अभिषेक किया ।।४६।। तब महात्मा भगवान् विष्णुजी पृथ्वी को कराल डाढ़ों पर धारण करते हुए प्रसन्नता से पाताल से लाकर जल के ऊपर स्थापन कर उसमें अपनी शक्ति देकर उसकी रक्षा करने लगे ।।४७।। तब देवता, मुनि और ब्रह्माजी उनकी स्तुति करने लगे, तब देवताओं के कायकर्ता उग्रकार्यवाले हरि भगवान् वाराह यह कार्य करके अपने लोक को गये ।।४८।। इस प्रकार वाराहरूप भगवान् ने जब हिरण्याक्ष को मारा, तब देवता, मुनि और दूसरे जीव परमसुख को प्राप्त हुए ।।४९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
पञ्चम युद्धखण्डे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४२ ।।

*****

तैंतालीसवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी से व्यासजी बोले– हे सनत्कुमारजी! हे सर्वज्ञ! जिस समय वह दैत्य मारा गया, तब उसके ज्येष्ठ भ्राता महाअसुर ने क्या किया ? ।।१।। हे मुनीश्वर! यह वात सुनने का मुझे बड़ा कौतूहल है, हे ब्रह्मपुत्र! आपको नमस्कार है, कृपा करके मुझे आप वह सुनाइये ।।२।। ब्रह्माजी बोले– वह मुनीश्वर सनत्कुमारजी व्यासजी के ऐसे वचन सुनकर शिवजी के चरणकमलों को स्मरण करके कहने लगे ।।३।। सनत्कुमारजी बोले– यज्ञवाराह से अपने भ्राता को इस प्रकार निहत हुआ सुनकर हिरण्यकशिपु शोक से व्याकुल हो गया ।।४।। तब उसने नारायण के प्रति वैर करने की इच्छा से हिंसाप्रिय वीर दैत्यों को प्रजाओं के नाश करने की आज्ञा दी ।।५।। तब वे असुर अपने स्वामी की आज्ञा सिर पर धारण करके हिंसाशील होने के कारण देवता और प्रजाओं का कदन

करने लगे ।।६।। जब उन दुष्ट मनवालों ने लोगों का नाश करना आरम्भ किया, तब देवता स्वर्ग को त्यागकर अलक्षितभाव से पृथ्वी पर विचरने लगे ।।७।। हिरण्यकशिपु अपने भाई की मृत्यु से दुःखी होकर उसे जलदानादि करके उसकी स्त्री आदि की सांत्वना की ।।८।। तब वह दैत्यराज अजर-अमर के समान अपने को अजेय और अप्रतिद्वन्द्व जानकर एक राज्य में स्थित हुआ ।।९।। उसने चक्रवर्ती पद की प्राप्ति के निमित्त मन्दराचल पर्वत के स्थान पर भुजा ऊपर उठाकर, आकाश में दृष्टि लगाकर, पैर के अंगूठे पर स्थित होकर परम कठिन तप करना आरम्भ किया ।।१०।। उसके तपस्या करने में बलसम्पन्न सब देवता सब दैत्यों को जीतकर फिर अपने स्थानों को प्राप्त हुए ।।११।। उस दैत्य के बहुत काल तक तपस्या करने से तपोमयी अग्नि धूम सहित निकलने लगी, वह तिरछे ऊँचे सब लोकों को चारों ओर से तपाने लगी ।।१२।। उसके ताप से तापित होकर देवता स्वर्गलोक को छोड़कर ब्रह्मलोक को चले गये और उसके तप से व्याकुल होकर विधाता से यह सम्पूर्ण बात सुनादी ।।१३।। हे व्यासजी! जब उन सब देवताओं ने ऐसा कहा, तब ब्रह्माजी भृगु और दक्ष आदि को साथ लेकर उस दैत्येश्वर के आश्रम में गये ।।१४।। इस प्रकार से सब लोकों को तपाकर उसने वर देने को आते हुए ब्रह्माजी को देखा और पितामह ब्रह्माजी ने उससे कहा- जो तेरी इच्छा हो, सो वर माँग ।।१५।। हिरण्यकशिपु बोला- हे विधाता! हे पितामह! मैं यही चाहता हूँ, कि मुझे मृत्यु का भय कभी न हो। शस्त्र, अस्त्र, पाश, वज्र, सूखावृक्ष, गिरीन्द्र, जल, अग्निसम्बन्धी किसी शत्रु का प्रहार मुझे न व्यापे ।।१६।। हे प्रजापति! देवता, दैत्य, मुनि, सिद्ध किसी भी आपकी सृष्टि के जीव से मैं न मरूं, बहुत कहने से क्या है? स्वर्गमें, पृथ्वीपर, दिन-रात में, ऊपर-नीचे कहीं भी न मरूं ।।१७।। सनत्कुमारजी बोले- उस दैत्य के ऐसे वचन सुनकर ब्रह्माजी ने कहा- हे दैत्येन्द्र! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ, तू वह सभी वर ग्रहण कर और विष्णुजी को स्मरण करके दयायुक्त होकर ब्रह्माजी कहने लगे ।।१८।। अब तप करने की आवश्यकता नहीं है, तू पूर्णकाम हुआ, सहस्र वर्ष तक तपस्या की है, उठ और दानवों का राज्य कर, यह वाणी सुनकर वह ब्रह्माजी के सम्मुख हुआ ।।१९।। तब पितामह ने उसे त्रिलोकी के राज्य में अभिषेक करा दिया, तब उसने त्रिलोकी के विनाश की इच्छा की और प्रमत्त होकर संग्राम में सब देवताओं को जीतकर सम्पूर्ण धर्मों का नाश कर दिया ।।२०।। तब इन्द्रादि सब देवता भय से व्याकुल होकर, सब कोई पितामह की आज्ञा को प्राप्त होते हुए, दैत्य के पराक्रम से व्याकुल होकर क्षीरसागर में गये, जहां भगवान् विष्णुजी शयन करते थे ।।२१।। उन्होंने बड़े सुखदायक वचनों से विष्णुजी का आराधन किया और जब विष्णुजी प्रसन्न हो गये, तब उन सबने अपना-अपना दुःख विष्णुजी से निवेदन किया ।।२२।। उनके सम्पूर्ण दुःख सुनकर भगवान् ने प्रसन्न होकर उनको वर दिये और

उपेन्द्र ने आसन से उठकर अपने अनुरूप अनेक वचनों से ।।२३।। सब देवता और मुनियों को समझाकर अग्नि के समान प्रकाशमान होकर कहा– हे देवताओ! आप सब प्रसन्न होकर अपने–अपने स्थानों को जाइये, मैं उस दैत्य को अवश्य मारूंगा ।।२४।। भगवान् के यह वचन सुनकर वे इन्द्रादि सब देवता प्रसन्न होकर अपने–अपने स्थानों को गये, हे मुनीश्वर! उस समय उन्होंने यह समझ लिया कि, अब वह दैत्य हिरण्याक्ष का भ्राता मानो मारा गया ।।२५।। तब विष्णुजी महाजटावाला, कराल डाढ़ोंरूप आयुधवाला, तीक्ष्णनख, महानासिका, नारसिंहरूप मुख फैलाये प्रकट हुए, जिनका प्रकाश कोटि सूर्य के समान था ।।२६।। युगान्त कालाग्नि के समान प्रभाववाले, जगन्मय, बहुत कहने से क्या है? वह महात्मा सूर्य के अस्त होने के समय दैत्यों की नगरी में गये ।।२७।। और उन दैत्यों के साथ घोर युद्ध करके और उन दैत्येश्वरों को ग्रहण करके बहुतों का वध कर डाला और उनको लेकर घूमने लगे और उन सबको नष्ट कर डाला ।।२८।। जब दैत्यों ने उस अतुल प्रभाववाले को देखा, तब वे सब युद्ध करने लगे, तब उस दैत्येश्वर के पुत्र प्रह्लाद ने उस सर्वमय नृसिंह को देखकर राजा से कहा– क्या यह मृगेन्द्र जगन्मय तो नहीं है?।।२९।। प्रह्लाद बोले– यह अनन्त भगवान् नृसिंह रूप से यहां प्रविष्ट होकर आये हैं, हे राजन्! युद्ध से निवृत्त होकर आप शरण में जाओ, मैं नृसिंह की कराल मूर्त्ति देखता हूँ।।३०।। इनके बराबर संसार में कोई योद्धा नहीं देखता हूँ, आप इनकी विनय करके प्रार्थना करें, पुत्र के यह वचन सुनकर वह दुरात्मा बोला– हे पुत्र! क्या तू ड़र गया है? ।।३१।। उस दैत्यराज ने यह कहकर बड़े–बड़े दैत्यों को आज्ञा दी कि, हे दैत्यश्रेष्ठो! इस नृसिंह को ग्रहण करो और तीक्ष्ण भ्रुकुटी से भय मत करो ।।३२।। तब वे दैत्यश्रेष्ठ उसकी आज्ञा से नृसिंह को ग्रहण करने की इच्छा करने लगे, परन्तु वे सब दैत्य उनके समीप जाते ही ऐसे दग्ध हो गये, जिस प्रकार अग्नि के समीप जाने से पतंग नष्ट हो जाते हैं।।३३।। दैत्यों के नष्ट हो जाने पर स्वयं राजा ने फिर उस मृगराज के साथ संग्राम किया। अस्त्र, शस्त्र, शक्ति, ऋषि, पाश, अंकुश, पावकादि के साथ घोर संग्राम हुआ ।।३४।। हे व्यासजी! उन शस्त्रधारियों को युद्ध करते–करते एक ब्राह्मदिन बीत गया, वे दोनों वीर क्रोधयुक्त चित्त से परस्पर गर्जन करते–करते वीर शब्द करने लगे ।।३५।। तब उस दैत्य ने नृसिंहजी को महायुद्ध करता देखकर और उनकी बहुतसी भुजाओं को देखकर सहसा युद्ध का घोररूप से आरम्भ किया ।।३६।। तब वह युद्ध अस्त्र–शस्त्रों से महा अगम्य हो गया और वह दैत्यश्रेष्ठ महायुद्ध करता हुआ नृसिंह को देखकर शूल धारण करके धावमान हुआ ।।३७।। तब नृसिंहजी ने उसे पर्वत के समान बलवाली भुजाओं से पकड लिया और उसे भुजाओं के अन्तर में लेकर जंघाओं पर धारण करके मर्मस्थानों को अपने नखों से विदीर्ण किया ।।३८।। अपने नखरूपी अस्त्रों से हृदयरूपी कमल को उसके जीवन के सहित उखाड़कर उसके नष्ट

हो जाने पर काष्ठ के समान उसे त्यागकर, बारंबार उसके अंग चूर्ण कर दिये ।।३९।। उस देवशत्रु के नष्ट हो जाने पर प्रह्लाद के आमन्त्रण और प्रणाम करने पर अद्‌भुत वीर्यवाले विष्णुजी ने प्रह्लाद को राज्य पर अभिषेक करके अपनी अलक्ष्य गति को गमन किया।।४०।। हे व्यासजी! तब सब देवता प्रसन्न होकर और उस दिशा को प्रणाम करके उन स्तुति योग्य विष्णुजी की स्तुति करते हुए अपने-अपने स्थानों को गये।।४१।। यह हम ने प्रसंग से रुद्र से अन्धक का जन्म, वराह से हिरण्याक्ष की मृत्यु तथा नृसिंहजी से उसके भाई का नाश तथा प्रह्लाद के राज्य की प्राप्ति वर्णन की ।।४२।। हे व्यासजी! अब ब्रह्माजी से अन्धक को जो प्रभाव प्राप्त हुआ तथा शिवजी से उसका युद्ध और उसे गणाधिपता की प्राप्ति जैसे हुई, सो श्रवण कीजिये ।।४३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
पञ्चम युद्धखण्डे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४३ ।।

*****

चौतालीसवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले- एक समय विहार में तत्पर हुए, क्रीडा में युक्त मद से अन्धे हुए हिरण्याक्ष के पुत्र से उनके भाइयों ने कहा- हे अन्ध! अब तुम्हारा राज्य से क्या काम है? ।।१।। तुम्हारा पिता हिरण्याक्ष मूर्ख था, जिसने बड़े कठिन तप से शिवजी को प्रसन्न करके कलिप्रिय, नेत्रहीन, विकारवाले, कुरूप तुम जैसे पुत्र को पाया।।२।। इस कारण ऐसे तुम राज के भागी नहीं हो सकते। दूसरों से उत्पन्न हुआ पुरुष भी राज्य को प्राप्त नहीं हो सकता है, तुम ही यह विचार कर देखो, हम ही राज्य के भागी हैं, यह सत्य जानो।।३।। सनत्कुमारजी बोले- उन भाइयों के ऐसे वचन सुनकर वह अन्धक स्वयं अपनी बुद्धि से विचार कर दीन होकर उनको अनेक वचनों से शान्त करके रात्रि में निर्जन वन में चला गया।।४।। वहां एक पैर पर खड़े होकर, निराहार रहकर नियम से दोनों भुजाओं को उठाकर देवता तथा राक्षसों को भी करने में अशक्य इस प्रकार दस हजार वर्ष पर्यन्त कठिन तप करने और मन्त्र जपने लगा।।५।। अग्नि को जलाकर रक्त सहित अपने शरीर के मांस को शरीर से शस्त्र द्वारा काट-काट कर वर्ष पर्यंत प्रतिदिन मन्त्र सहित अग्नि में डालकर होम करने लगा।।६।। तब नस और अस्थिमात्र शेष रहे शरीर में से सम्पूर्ण रुधिर नष्ट हो गया और जब उसके शरीर में मांस न रहा, तो उसने शरीर को अग्नि में फेंकने की इच्छा की।।७।। उस समय सम्पूर्ण देवताओं ने बड़े विस्मय के साथ भयभीत होकर उसे देखा, फिर उन देवताओ ने शीघ्र ही ब्रम्हाजी को

स्तोत्रों से स्तुति करके प्रसन्न किया ।।८।। तब ब्रह्माजी उसे निवार करके यह बोले- हे दानव! अब तुम वर मांगो, सम्पूर्ण लोकों में जिस वर को पाने की इच्छा हो उस दुर्लभ वर को भी ग्रहण करो ।।९।। वह दैत्य ब्रह्माजी का ऐसा वचन सुनकर दीन और नम्र होकर बोला- जिन निष्ठुर भाइयों ने मेरा राज्य छीन लिया है, वे प्रह्लाद आदि सब मेरे भृत्य होवें ।।१०।। तथा मुझ अन्धे के दिव्य नेत्र हो जायें। इन्द्रादि सब देवता मुझे कर देनेवाले हों और देवता, दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, सर्प, मनुष्य किसी से भी मेरी मृत्यु न हो ।।११।। तथा नारायण से वा दैत्येन्द्र के शत्रु से, सब मनुष्य तथा सर्वव्यापी शिवजी से भी मेरी मृत्यु न होवे, ऐसा उनका कठिन वचन सुनकर ब्रह्माजी शंकित होकर उससे बोले ।।१२।। ब्रह्माजी बोले- हे दैत्येन्द्र! तेरे सब अन्य मनोरथ पूर्ण होंगे, परन्तु किसी विनाश हेतु को ग्रहण कर, कारण कि ऐसा कोई न हुआ है, न होगा, जिसका काल के मुख में प्रवेश न हुआ हो ।।१३।। आप सरीखे पुरुष बहुत समय से जीवन को त्याग, ऐसे ब्रह्माजी के नीति सहित वचन सुनकर वह दैत्य फिर बोला ।।१४।। अन्धक बोला- तीनों कालों में जो श्रेष्ठ, मध्य तथा कनिष्ठ स्त्रियां होती हैं, उनमें से जो सबकी शिरोमणि हो और वह मुझे उत्पन्न करनेवाली जननी के समान हो ।।१५।। काया, वाणी, मन से भी न प्राप्त होनेवाली मृत्युलोकवासियों को दुर्लभ हो, जब मैं दैत्येन्द्रभाव से उसकी इच्छा करूं, तब भगवान् स्वयम्भू से मृत्यु प्राप्त हो ।।१६।। उसका वचन सुनकर ब्रह्माजी आश्चर्य में होकर शिवजी के चरणकमलों को स्मरण करने लगे, तब शीघ्र ही शम्भुजी की आज्ञा पाकर अन्धक से बोले ।।१७।। ब्रह्माजी बोले- हे दैत्यश्रेष्ठ! तू जो अभिलाषा करता है, सो सब कामना सहित तेरा वचन पूर्ण होगा, हे दैत्येन्द्र! उठ, इच्छा को प्राप्त कर और वीरों के साथ युद्ध कर ।।१८।। हे मुनीश्वर! ब्रह्माजी के ऐसे वचन सुनकर स्नायु और अस्थिमात्र शरीरवाला हिरण्याक्ष का पुत्र भक्ति से ब्रह्माजी को प्रणाम करके यह बोला ।।१९।। अन्धक बोला- हे विभो! वैरी के बल के सामने मैं इस शरीर से कैसे युद्ध करूंगा ? क्योंकि केवल स्नायु, अस्थि शेष रहे इस देह को अब अपने हाथ से स्पर्श कीजिये और मुझे मांस से पुष्ट कीजिये ।।२०।। सनत्कुमारजी बोले- उस दैत्य का वचन सुनकर ब्रह्माजी ने अपने हाथ से उसके शरीर को स्पर्श करके मुनि-सिद्धों से पूजित होकर इन्द्र के सहित अपने स्थान को चले गये ।।२१।। वह दैत्य स्पर्श करते ही सम्पूर्ण पुष्ट और बलवान् हुआ तथा नेत्रों सहित शोभायमान और प्रसन्न होकर अपने नगर में आया ।।२२।। तब प्रह्लाद आदि सब दैत्यों ने उसे वरदान पाया जानकर सम्पूर्ण राज्य को छोड़ उसके आने पर उसके वशीभूत होकर भृत्यवत् हो गये ।।२३।। तब वह अन्धक अपने भृत्यों समेत सेना सहित स्वर्ग को जीतने गया, वहां सब देवताओं को जीतकर सब को तथा इन्द्र को कर देनेवाला किया ।।२४।। उस दैत्य ने नागों को, पक्षियों को (गरुड़ को), राक्षसों को, गन्धर्व, यक्षों को तथा मनुष्यों को,

पर्वत वृक्षों को तथा समस्त सिंह आदि चौपाये जीवों को युद्ध में जीत लिया ।।२५।। फिर उसने चर–अचर तीनों लोकों को अपनी शक्ति से वश में किया और सुन्दर रूपवाली अनुकूल सहस्रों स्त्रियों से गमन करके ।।२६।। रसातल (पाताल), भूमि तथा स्वर्ग में जो सुन्दर रूपवाली स्त्रियां थीं, उनके सहित पर्वतों पर तथा रमणीक नदियों के समीप रहनेवाली स्त्रियों से रमण करने लगा ।।२७।। क्रीडा करते हुए वह दैत्य उनके मध्य में स्थित होकर उनके पीने से बचे हुए दिव्य, मनुष्योपयोगी मदिरादि रसों को पीकर उनके साथ रमण करने लगा ।।२८।। और भी जो दिव्य रस तथा सुगन्धि सहित फल मूल, (पान) वाहन, उत्तम गृह थे, सो सम्पूर्ण मय दैत्य ने निर्माण किये ।।२९।। पुष्प, अर्घ्य, धूप, मिष्टान्न, लेपन (अंगराग) आदि से तथा सुन्दर दर्शनों से क्रीडा करते हुए उस अन्धक दैत्य को दश हजार वर्ष इसी भाँति बीत गये ।।३०।। वह दैत्य ऐसे किसी पुण्य को नहीं जानता था, जो परलोक में अपने सुखदायक होते हैं, सदा ही वह दैत्यपति अन्धक अहंकार से शून्यबुद्धि होकर दुष्टों का संग करने लगा ।।३१।। तब वह प्रमत्त होकर सब मुख्य पुत्रों को कुतर्कवादों से तिरस्कार करके सम्पूर्ण वैदिक धर्मों का नाश करके दैत्यों के साथ विचरने लगा ।।३२।। उसने धन के गर्व से तिरस्कृत होकर वेदों, ब्राह्मणों, देवताओं, गुरुओं को नहीं माना, दैववश दुर्व्यसनों से अवस्था को बिताता हुआ क्रीडा करने लगा ।।३३।। इसी प्रकार करोड़ों वर्षों तक हर्ष से पृथ्वी पर निवास करता हुआ वह सेना सहित मन्दराचल पर्वत पर गया ।।३४।। वहां सुवर्ण के समान शोभायमान भूमि को देखकर अभिमान से उन्मत्त होकर सेना सहित भ्रमण करने लगा, विहार के निमित्त उस श्रेष्ठ पर्वत पर प्राप्त होकर वहीं निवास करने के मोह से बुद्धि की ।।३५।। वहां वह दैत्य अपने प्रभाव से दृढ़ नगर निर्माण करके आनन्द से रहने लगा, फिर क्रम से उसने पर्वत के शिखर पर सुन्दर गृह बनवाया ।।३६।। एक समय उस दैत्यपति के दुर्योधन, वैधस और हस्ति नामवाले मन्त्री जनों ने कभी उस पर्वत के स्थल में परम सुन्दरी एक स्त्री को देखा ।।३७।। तब उन शीघ्रगामी दैत्यों ने हर्ष से भरकर शीघ्र ही उस दैत्यराज के समीप जाकर जैसा देखा था, वैसा अतिप्रीति से उस शूरवीर अन्धक से उस स्त्री का वृत्तान्त कहा ।।३८।। मन्त्री बोले– हे दैत्येन्द्र! गुहा के भीतर ध्यान से नेत्र मूँदे, सुन्दर रूपवान, माथेपर अर्द्धचन्द्रकला को धारण किये, कमर में व्याघ्रचर्म बांधे हुए ,एक मुनि स्थित हैं ।।३९।। वह शेषराज (सर्पों) से सम्पूर्ण शरीर ढके हुए तथा कपालों (खोपडियों) की माला धारण किये, जटाधारी, त्रिशूल हाथ में लिये, बाण तथा तर्कस बांधे, महाधनुष धारण किये हुए, यज्ञोपवीत पहने हैं ।।४०।। खड्ग धारे, त्रिशूल धारण किये तथा लकुट लिये, जटाजूट धारे, चार भुजा, अति गौर शरीर, भस्म से लिप्त, विलास करते दिव्य तेजवाले, तेजस्वियों में श्रेष्ठ, सम्पूर्ण वेष से अद्भुत आकारवाले हैं ।।४१।। उनके समीप भयानक मुख, भयंकर

वारनवत् एक पुरुष सम्पूर्ण शस्त्रों को लिये रूखे हाथोवाला रक्षा कर रहा है और उनके समीप एक शुक्लवर्ण वृद्ध बैल बंधा हुआ है ।।४२।। उनके ऊपर बैठे हुए उन तपस्वी के समीप स्थित हुई परम सुन्दरी एक युवती मनोहर रत्न पहने उनके समीप बैठी है ।।४३।। मूंगे, मोती, मणि, सुवर्ण, रत्न, वस्त्रों से भूषित, शुभ माला धारण किये, उसने जिसे देखा है, वही दृष्टिमान् है, इस लोक में और को देखने से उसे क्या प्रयोजन है ।।४४।। हे दिव्य रत्नों के भोगनेवाले दैत्येन्द्र! पुण्यवान् मुनि महेश्वर की वह माननीय सुन्दरी भार्या प्रिय स्त्री है, उसे बुलाकर आप भली भाँति देखें, आप रत्नभोक्ता हैं, आप उसे देखने योग्य हैं ।।४५।। सनत्कुमारजी बोले– इस प्रकार उन दैत्यों के वचन सुनकर उस दैत्य ने काम से व्याकुल और सम्पूर्ण शरीर कम्पायमान होकर उन मुनि के समीप दुर्योधन आदि मन्त्रियों को शीघ्र भेजा ।।४६।। तब राजनीति में चतुर वे दुर्योधनादि उसके मन्त्री उस बड़े व्रतवाले, तेजस्वी मुनी के समीप जाकर उन मुनि को प्रणाम करके अपने स्वामी की आज्ञा कहने लगे ।।४७।। मन्त्री बोले– हिरण्याक्ष के पुत्र, दैत्यों के अधिपति, महात्मा अन्धक नामवाले, त्रिलोकी के राजा, शिवजी की आज्ञा से वर पाकर आज विहार करते हुए यहां बैठे हैं ।।४८।। हे तपस्विन्! हम अंग से बलवान् हुए उनके मन्त्री हैं और उन्होंने आपके पास भेजा है, इस कारण आपके पास प्राप्त हुए हैं, आपके लिये जो सन्देशा कहा है, उसे आप ध्यान देकर सुनिये ।।४९।। हे बुद्धिमान्! हे मुनीन्द्र! आप किस के पुत्र हो, किस लिये यहां सुख से बैठे हो, यह सुन्दर रूपवाली किस की शुभ स्त्री है! इसको दैत्यराज के समीप देना योग्य है ।।५०।। यह आपका भस्म से लिप्त हुआ शरीर तथा खोपडियों की मालाधारी, कुरूप तर्कस, श्रेष्ठ धनुष, बाण, खड्ग, भुशुण्डि, त्रिशूल, वज्र, तोमर व्यर्थ हैं ।।५१।। कहां जटाओं के आगे यह पवित्र गंगाजी, कहां यह चन्द्रमा, कहां मुर्दों की अस्थियों के खण्ड, कहां विष की अग्नि, कहां दीर्घमुख सर्प और कहां पुष्ट स्तनवाली स्त्री ।।५२।। कहां बूढ़े बैल (नादिये) पर चढ़ना, यह आपकी प्रशंसा के योग्य नहीं, कहां यह क्षमा, इससे आप दर्शन के योग्य नहीं, कहां यह सन्ध्या का प्रमाण धर्म और कहां लोकों से विरुद्ध भोजन ।।५३।। हे मूर्ख! मुझे शान्तिपूर्वक इस स्त्री को दे, इस स्त्री के साथ तप क्यों करते हो? आप में सब ही बातें अयोग्य और विरुद्ध हैं और जिसके कि मैं तीनों लोकों का राजा हूँ।।५४।। पहले शस्त्रों को त्यागो, पीछे से शुद्ध तप करो, यह इस समय मैंने कह दिया, मेरी इस कठिन आज्ञा का उल्लंघन करने से आपके शरीर का नाश होगा ।।५५।। तब लौकिकभाव में तत्पर हुए जगत् प्रधान शिवजी, दूत के पूर्ण वचनों को सुनकर अन्धक दैत्य को दुष्ट बुद्धिवाला जानकर उस दैत्य से कुछ हँसते हुए यह वचन बोले ।।५६।। शिवजी बोले– हे दैत्य! जब कि मैं रुद्र हूँ, तो मेरा क्या हो सकता है, तू क्यों यह सब मिथ्या कहता है? तुमको ऐसा कहना योग्य नहीं है, मेरे

प्रभाव को सुन।।५७।। मैं कहीं भी अपने माता–पिता को स्मरण नहीं करता और कुरूप, अतिमूढ़ होकर पर्वत की गुहा में स्थित होकर, औरों को दुर्लभ ऐसा पाशुपत व्रत करता हूँ।।५८।। मूल रहित यह सब जगत् त्यागने के अयोग्य मुझमें ही प्रसिद्ध है तथा यह सब मेरा ही है, यह सर्वदा तरुणी, सुन्दर रूपवाली, सब कुछ सहनेवाली, साक्षात् सिद्धिरूप, सर्वव्यापिनी मेरी स्त्री है।।५९।। हे राक्षस! इस समय जो–जो तुझे उचित हो, सो सब ग्रहण कर, ऐसा उनके आगे कहकर तपस्वी वेषधारी शिवजी मौन हो गये।।६०।। सनत्कुमारजी बोले– ऐसा गौरव सहित वचन सुनकर वे दैत्य उनको सिर से प्रणाम करके त्रिलोकी का नाश करने की प्रतिज्ञा करनेवाले, हिरण्याक्ष के पुत्र अन्धक दैत्य के समीप गये।।६१।। महापराक्रमी वे सब वहां जाकर उन्मत्त हुए दैत्यपति अन्धक राजा को प्रणाम करके, 'जय हो, जय हो' कहकर जो कुछ शिवजी ने हँसकर कहा था, सो सब कहने लगे।।६२।। मन्त्री बोले– पराक्रम धैर्य से चलायमान, कृपण, सत्त्वहीन, क्रूर, कृतघ्न, सदा पापी वह निशाचर सूर्य के पुत्र से क्यों डरता है? ।।६३।। हे राजन् इस प्रकार बड़े तेजस्वी वीर, तपस्वी उस मुनि ने अपनी बुद्धि से तीनों लोकों को तृणवत्(तुच्छ) मानकर हंसते हुए सब दैत्यों के स्वामी आपसे यह कहा है।।६४।। कहां मैं, कहां मेरे कठिन शस्त्र, कहां मृत्यु को त्रास देनेवाला युद्ध, कहां वानर के समान मुखवाला मेरा वीर और कहां बुढ़ापे से शिथिल शरीरवाला।।६५।। यह मेरा स्वरूप, कहां मन्दभाग्यवाला वह दैत्य, कहां तुम्हारी सेना आदि का बल, कहां मेरा वीरुधास्त्र, यदि सामर्थ्य है, तो मेरे साथ युद्ध करने को आ और चाहे कुछ प्रयत्न कर।।६६।। वज्राशनि के समान आप सरीखे दैत्यों का नाश करनेवाले यह घोर शस्त्र हैं। कहां तो कोमल कमल के समान तुम्हारा शरीर और कहां मेरे अस्त्र, ऐसा विचार कर जो अच्छा लगे सो करो।।६७।। मन्त्री बोले– हे दैत्यपति! इस प्रकार उस तपस्वी मुनि ने कल्याणकारी वचन कहे हैं, हे राजन्! अब उनके साथ आपका युद्ध करना योग्य नहीं, इस प्रकार हँसते हुए मुनि ने आपसे कहा है।।६८।। यदि आप असार वस्तु से शून्य हुए हमारे वचनों को जानते हैं, तो तप करते हुए तपस्वी के इन वचनों को पीछे से स्मरण करोगे।।६९।। सनत्कुमारजी बोले– उस समय मन्त्रियों के वचन सुनकर वह मूढ़बुद्धि दैत्य क्रोध से जल उठा और उनके वह हितकारी सत्य वचन भी घृत से सींचे हुए अग्नि के समान कुटिल और तीखे लगे।।७०।। तब दैव के प्रतिकूल होने से वह वरदान से उन्मत्त होकर खड्ग लेकर पवन के समान बड़े वेग से तथा कामदेव के बाणों से विंधा हुआ वहां जाने के लिये उद्यत हुआ।।७१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
पञ्चम युद्धखण्डे अन्धकगाणपत्यलाभोपाख्याने दूतसंवादो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः।। ४४ ।।

*****

पैंतालीसवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले– तब मदिरा पान करके नेत्रों को घुमाता हुआ, मतवाले हाथी के समान गतिवाला, बड़ा प्रतापी, बहुत सेना लेकर महापराक्रम से युक्त होकर, वीर योद्धाओं के सहित वह दैत्य अन्धक चला ।।१।। तब कामदेव के बाणों से विंधे हुए उसने शिवजी के वीरों से रुके हुए मार्गवाली गुफा को देखा, जिस प्रकार पतंग तेल से पूर्ण जलते हुए दीपक को प्राप्त होकर उसे देखता है ।।२।। उसी प्रकार बारंबार देखकर शंकरजी के गणों से पीड़ित हुआ वह मूढ़ अन्धक दैत्य कामाग्नि से भस्मीभूत शरीर होकर मूढ़ हो गया ।।३।। पाषाण, वृक्ष, वज्र, जल, अग्नि, सर्पो तथा शस्त्र–अस्त्रों के आघातों से उस दैत्य को ऐसा पीड़ित किया, कि ऐसा कभी पीड़ित न हुआ था, फिर उस वीर ने इससे पूछा, कि तू कौन है, कहां से आया है?।।४।। ऐसा उस वीर का वचन सुनकर अपना मत प्रकाश करके उस वीर के साथ युद्ध करने लगा, थोड़ी देर में उस वीर ने अन्धक दैत्य को जीत लिया ।।५।। तब विस्मय रहित भूख प्यास से शुष्क कण्ठवाला वह दैत्य अपने खड्ग के टूट जाने से व्याकुल होकर संग्राम में सिर को बचाकर भाग गया ।।६।। उस समय प्रह्लाद आदि प्रधान दैत्यों ने उस वीर के साथ संग्राम (युद्ध) किया और अति कठिन भी वे दैत्य अनेक शस्त्रों से युद्ध करके पराजित और लज्जित हुए ।।७।। विरोचन, बलि, बाणासुर, सहस्रबाहु, भजि, कुंभज, शंबर और वीर्यवान् वृत्रादिकों ने भी महायुद्ध किया ।।८।। चारों ओर से युद्ध करते हुए उनको वीर ने जीत लिया और कितनों को मारकर खण्ड–खण्ड कर डाला, जब थोडे से दैत्य रहे तब सिद्धगण जय–जयकार करने लगे ।।९।। उस मेदा (चर्वी), मांस, पी के मध्य में गीदड़ आनन्द करने लगे और उस रुधिर की कीच में गृध्रगण अपना उत्सव करने लगे ।।१०।। दैत्यों का नाश करके भगवान् शिवजी ने अपना घोर पाशुपत व्रत पूर्ण किया और अपनी प्रिया दाक्षायंणी को शान्त करके यह कहा, हे प्रिये! मैंने जो पहले प्रतिज्ञा की, सो व्रत पूर्ण हुआ ।।११।। शिवजी बोले– हे देवि! जो मर्त्यधर्मवालों से मृत्यु रहितों का समागम हुआ है; इससे मेरा बल नष्ट हुआ, हे देवि! रात–दिन तुम्हारे प्रसंग से पुण्य के क्षय करनेवाला यह दिन हुआ ।।१२।। हे सुन्दरि! मैं वन में गमन करके दिव्य, परम अद्भुत, अति भयंकर वर को प्राप्त करके निर्भय, शोक रहित हो जाऊं, इस कारण घोर पाशुपत व्रत करता हूँ ।।१३।। सनत्कुमारजी बोले– इस प्रकार कहकर उग्र और दीप्तिमान् महात्मा शंकरजी ने अपना शब्द करके पवित्र घोर वन में जाकर पाशुपत व्रत का प्रारम्भ किया ।।१४।। जो व्रत सहस्रों वर्ष तक देवता तथा दानव भी

करने में समर्थ नहीं होते, ऐसा व्रत करने लगे, शिवजी के आगमन की प्रतीक्षा करनेवाली पार्वती मन्दराचल पर्वत पर स्थित हुई ।।१५।। पतिव्रता अच्छे स्वभाव और गुणोंवाली, अकेली वह पार्वती गुहा के भीतर अति दुःखी हुई, उस समय भगवती की वीरक पुत्र रक्षा करता था ।।१६।। उस समय वह दैत्य वरदान से उन्मत्त होकर, धैर्य को छोड़कर उन प्रह्लाद आदि मुख्य योद्धाओं के सहित पवनवेग से प्रेरणा किये हुए भौंरों के समान कामदेव के बाणों से ताड़ित होकर उस गुफा में आया ।।१७।। और सेना के सहित क्रोधित हुए उस दैत्य ने भोजन पान, निद्रा को त्यागकर पांच सौ पांच दिन, रात–दिन उस वीरक के साथ युद्ध किया ।।१८।। खड्ग, बरछे, भिन्दिपाल, गदा, भुशुण्डी आदि तथा तीक्ष्ण प्रकाशमान बाणों तथा आधे चन्द्रमा के समान मुखवाले हाथभर प्रमाणवाले कूर्म (कछुए) के समान मुखवाले ।।१९।। मुख्य बाणों से तथा तीक्ष्ण त्रिशूलों से, परशु, तोमर, मुद्गरों खण्डों से, गुडों (हस्तिसन्नाह) पर्वत, वृक्षों तथा दिव्य अस्त्रों से अनेक दैत्यों ने युद्ध किया ।।२०।। गुफा के द्वार पर दैत्यों में प्रहार किये हुए उन शस्त्रों से भेदित शरीर होकर कोई भूमि पर गिरे, कोई मूर्च्छित हुए, इससे गुफा का सम्पूर्ण द्वार घिर गया और पीछे वीरक भी मूर्च्छित हो गया ।।२१।। सम्पूर्ण दैत्यों तथा उनके शस्त्रों से चारों ओर से घिरे हुए उनके बीच में से निकलने को असमर्थ हुए वीरक तथा भयंकर दैत्यों को देखा ।।२२।। पार्वती ने सखियों के सहित भय से गुफा के मध्य में स्थित होकर ब्रह्मा, विष्णु और अपने बलवान् वीरगणों की सेना को स्मरण किया ।।२३।। उस समय पार्वती के स्मरण करते ही ब्रह्माजी, भगवान् विष्णुजी, इन्द्रादि देवताओं की सेना सहित स्त्रियों का स्वरूप धारण करके आ गये ।।२४।। बड़े प्रतापवाले मुनिगण, सिद्ध, नाग, गुह्यक आदि सम्पूर्ण स्त्रियों का रूप धारण करके गुहा के भीतर प्रवेश करके पार्वती के समीप पहुंचे ।।२५।। कारण कि, श्रेष्ठ राज्यों के आसनों पर बैठे हुए राजाओं के अन्तःपुर (खवास) में जाना विरुद्ध है, इस कारण स्त्रियों के अनेक समूह बनकर वे सब आ गये ।।२६।। वे स्त्रियां वीर के कार्य करनेवाली पार्वती के निमित्त सुन्दर अद्भुत रूपों को धारण करके गुफा में अति प्रसन्न हुईं ।।२७।। तब पार्वतीजी ने अनेक स्त्रियों के सहित संग्राम में विजय देनेवाले, प्रलयकाल के मेघ के समान घोर शब्द करनेवाले बाजे, शंख आदि बजाये ।।२८।। उसी समय प्रचण्ड बलवाले वीरक की मूर्छा छूटी, तत्काल उसने आगे स्थित होकर महारथों के शस्त्रों को ग्रहण करके उन्हीं शस्त्रों से उन दैत्यों को मारा ।।२९।। तब दण्ड हाथ में लिये तथा क्रोध से व्याप्तचित्त गौरी; शंख, गदा, चक्र, धनुष धारण करके तथा बाहुदण्ड से पूर्ण हुई नारायणी ।।३०।। लांगलदण्ड हाथ में लेकर सुवर्ण के समान वर्णवाली व्योमालका; बड़े वेग से सहस्र धाराओं को अवलम्बन करके वज्र हाथ में लिये इन्द्राणी ।।३१।। युद्ध में निश्चल होनेवाली, सहस्रनेत्रा; सैकड़ों दैत्यों से परास्त न होनेवाली, अप्रगल्भ वैश्वानरी; क्रूर

मुखवाली, शक्ति हाथ में दण्ड उठाकर उग्र याम्या देवी ।।३२।। तीक्ष्ण खड्ग हाथ में लिये घोर धनुषवाली नैर्ऋति देवी आई; वारुणपाश को हाथ में लिये तोयालिका देवी युद्ध करने की इच्छा से प्राप्त हुई ।।३३।। प्रचण्ड पवन की देवता की स्त्री देवी भी कुशा हाथ में लिये भूख से व्याकुल हुए शरीर को धारण करके आई; कुबेर से उत्पन्न हुई देवी भी हाथ में प्रलयकाल की अग्नि के समान गदा धारण करके आई ।।३४।। तीक्ष्ण मुखवाली याक्षेश्वरी तथा कुस्मा नखाश्च धारिणी, नागभयंकरी इत्यादि देवियां तथा और भी सैकड़ो देवियां भयंकर संग्रामभूमि में प्राप्त हुईं ।।३५।। वे अद्भुत वर्णवाली अति विस्मित भय से व्याकुल और चकित हुई उस दैत्य की अपार सेना को देखकर हृदय में दुःखी (साहसहीन) हो गईं ।।३६।। तब विधाता की मुख्य शक्ति से सम्पूर्ण देवताओं की स्त्रियों के मन को सावधान करके पार्वती की सम्मति से अति पराक्रमी वीरक को सेनापति बनाया ।।३७।। तब वे वरदान से बली हुए मुख्य दैत्य बुद्धि को स्थिर करके, आज या तो जय होगी, या मृत्यु होगी ऐसा विचार कर अपूर्व युद्ध करने लगे और स्त्रियों के मध्य में कूदे ।।३८।। उस संग्रामभूमि में पार्वती ने अद्भुत वीर्यवाले घोर पराक्रमी वीरक को सेनापति बनाकर अपनी सखियों के सहित अच्छी प्रकार युद्ध किया ।।३९।। अतिपराक्रमी हिरण्याक्ष का पुत्र अन्धक राजा ने भी महाव्यूह की रचना की और विष्णुजी को देखकर दक्षिण दिशा की ओर बड़े पराक्रमी गिल नामवाले दैत्य को नियुक्त किया ।।४०।। ब्रह्माजी की सेवा से इस दैत्य का मुख कराल हो गया था। इस कारण उसे मारने के निमित्त भगवान् आये, उन प्रलयकाल के सहस्रों सूर्यों के समान कान्तिवाले व्याघ्रचर्मधारी ने महा क्रोध किया ।।४१।। एक सहस वर्ष बीतने पर उन महेश्वरजी को आया हुआ देखकर उन स्त्रियों ने वीरक सहित प्रसन्न होकर अति युद्ध किया ।।४२।। उस समय पार्वती ने अपने स्वामी को अति शूरता दिखाकर मस्तक से शिवजी को प्रणाम करके फिर प्रसन्नतापूर्वक युद्ध किया, तब शिवजी ने पार्वती को ।।४३।। हृदय से लगाकर गुहा में प्रवेश किया तथा उन अनेक स्त्रियों को विसर्जन किया, पार्वतीजी को अनेक प्रकार के सम्मानों से पूजकर गुफा के द्वार पर अपने वीरक को नियुक्त किया ।।४४।। उस समय राजनीति में निपुण दैत्य ने वहां पार्वती तथा शिवजी को न देखकर शिवजी के समीप अपना दूत भेजा ।।४५।। उस संग्राम में देवताओं के प्रहार किये शस्त्रों से जर्जरीभूत (घायल) शरीर हुए दूत ने वहां प्रवेश कर मस्तक से शिवजी को प्रणाम कर उनसे अभिमान के सहित यह कठोर वचन कहे ।।४६।। दूत बोला- अन्धक दैत्य से भेजा हुआ मैं इस गुहा में प्रवेश हुआ हूँ, अन्धक ने आपको यह कहा है, कि आप को इस स्त्री से कुछ कार्य नहीं, इस कारण सुन्दर रूपवाली इस युवती स्त्री का त्याग कीजिये ।।४७।। विशेष करके आप तपस्वी हो, इस कारण अन्तर्यामी परमात्मा का भजन करें, मैंने ऐसी इच्छा की है, कि मुनि के साथ विरोध

करना न चाहिये, आप तपस्वी नहीं हो, किन्तु मेरे शत्रु हो ।।४८।। हे धूर्त तपस्वी! आप दैत्यों के बड़े विरोधी हो, मेरे साथ मुँह फेर करके वेग से युद्ध करो, मैं आपको पाताल के समान यमराज की क्षयनगरी को ले चलूंगा ।।४९।। सनत्कुमारजी बोले- दूत के मुख से ऐसे वचन सुनकर कपालमालाधारी, दीन नेत्रवाले, सत्पुरुषों के गति दुष्टों के मद का नाश करनेवाले शिवजी शोकाग्नि से प्रज्ज्वलित होकर बड़े क्रोध से बोले ।।५०।। शिवजी बोले- हे उग्र दैत्य! तेरा अति कठोर वचन सब जान लिया, अब तू शीघ्र जाकर यह कह कि, यदि सामर्थ्य है, तो अपने बल से मेरे साथ तेरा स्वामी बलात्कार से युद्ध करें ।।५१।। जो पुरुष पृथ्वी पर असमर्थ होता है, उसे धन तथा मनोहर स्त्रियों से क्या फल है? बल से उन्मत्त हुए दैत्य आवें, युद्ध करें, मैंने ऐसा विचार किया है ।।५२।। बिना सामर्थ्यवले मनुष्य की शरीर यात्रा भी नहीं होती, उन्होंने जो-जो विचारा हो, वह-वह करें, मुझे भी जो कुछ करना है, सो मैं करूंगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं ।।५३।। सनत्कुमारजी बोले- उन शिवजी के कहे हुए पूर्वोक्त वचनों को सुनकर विधस दैत्य प्रसन्न हुआ और शिवजी उसी समय गर्जते तथा हुंकार करते हुए उस दैत्यपति के समीप युद्ध करने गये ।।५४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

पञ्चम युद्धखण्डे प्रारम्भदूतसंवादवर्णनं नाम पंचत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४५ ।।

*****

छयालीसवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले- उस समय शिवजी की चेष्टा को जाननेवाला वह दैत्यराज गदा लेकर सेना सहित शीघ्र ही युद्ध करने को चला और गिल नामवाले बली देवताओं से अभेद्य दैत्य को आगे करके युद्ध करने की इच्छा की ।।१।। शिवजी की गुहा के द्वार पर पहुँचकर उसने वज्र के समान शस्त्रों से शिवजी को भेदन किया तथा कितनेक दैत्यों ने वीर पर तथा कितनेकों ने पार्वती पर बाणों को वर्षाया ।।२।। किसी ने गुहा का सुन्दर द्वार तोडा तथा पुष्पों और पत्रों को नष्ट किया, किसी ने फल-फूलों तथा मनोहर जल को नष्ट किया और वन के मार्गों को खण्डित किया ।।३।। किसी ने प्रसन्न होकर पर्वत के प्रकाशमान शिखरों को तोड डाला, तब त्रिशूलधारी शिवजी ने क्रोधित होकर अपनी सेना को बुलाया ।।४।। दारुण भूतगणों को तथा सेना के सहित विष्णुजी आदि देवताओं को बुलाया, वे सब स्मरणमात्र से गणों सहित सेना, रथ, हाथी, घोड़े, बैल, गाय आदि के सहित ।।५।। ऊँट, गधे (खच्चर), पक्षियों के सहित, भूतगणों समेत, व्याघ्र, मृग, सूकर, सारसों, मत्स्य(मछली), शिशुमार(नाकों) के वाहनों

सहित सम्पूर्ण देवता गण आये ।।६।। और भी अनेक प्रकार के तीक्ष्ण जीवों के सहित श्मशानों से प्रकाशित सर्पों से तथा सैकड़ों प्रेत, पिशाचों और दिव्य विमान तथा कमल की खनों के सहित ।।७।। नदी, नाले, पर्वत, वाहनों सहित सब देवता आये और हाथ जोड़कर, प्रणाम करके शिवजी के समीप शोक रहित होकर स्थित हुए, तब वीरक को सेनापति करके ।।८।। पिनाकी शिवजी ने थकित वाहनवाले उन देवताओं को तथा युद्ध में निश्चल विजय पानेवाले प्रधान को भी भेजा ।।९।। उस समय उन सब देवताओं ने दैत्यसेना सहित गिलदैत्य के साथ मर्यादा रहित प्रलयकाल के समान घोर युद्ध किया, तब क्रोध से उस दैत्य ने सब देवताओं को निगल लिया ।।१०।। उस समय युद्ध करते हुए ब्रह्माजी, इन्द्र, विष्णुजी, सूर्य, चन्द्रमा आदि समस्त देवताओं को विधस दैत्य ने निगल लिया और अपनी सेना के निगल जाने पर वह वीरक ।।११।। तब संग्रामभूमि छोड़कर उस गुफा में प्रवेश करके शिवजी को सिर झुकाकर प्रणाम करके, वक्ताओं में श्रेष्ठ वह वीरक दुःखी होकर महादेवजी से वह वृत्तान्त कहने लगा ।।१२।। हे भगवन्! विधस दैत्य ने आपकी समस्त सेना निगल ली तथा तीनों लोकों के गुरु, दैत्यों का नाश करनेवाले विष्णुजी को निगल लिया तथा चन्द्रमा, सूर्य, इन्द्र, यम, वरुण, पवन, कुबेर सम्पूर्ण देवताओं को निगल लिया ।।१३।। केवल मैं ही अकेला शेष रहा हूँ, अब मुझे क्या करना उचित है ? यह दैत्येन्द्र अजेय है, ऐसा प्रसन्न होकर वीरक ने कहा ।।१४।। भयभीत मन होकर पवन के समान वेग गति से आप अजेय के समीप प्राप्त हुआ हूँ, भक्तों के वश हुए भगवान विष्णुदेव ने कश्यप के पुत्र हिरण्यकशिपु को तीव्र नखों से विदीर्ण करके मुख फैलाकर त्रिलोकी को भक्षण करने की इच्छा की थी ।।१५।। तब भुवनपति वशिष्ठादि सप्तऋषियों ने उन्हें शाप दिया कि, तुम फिर भी बहुत समय तक दैत्यों के सहित युद्ध करोगे ।।१६।। उस समय विष्णुजी ने अपने हितकरी अधीनता के वचनों से उन ऋषियों से कहा कि, हे मुनिश्रेष्ठो ! कब इस घोरपाश से मेरा छुटकारा होगा ? तब क्रुद्ध हुए मुनियों ने कहा कि, युद्ध के समय विधस दैत्य के हरण करने से जब आप तीव्र बाणों तथा मुष्ठियों से विदीर्ण करने से उसके मुख में प्रविष्ट होगे ।।१७।। तब बदरिकाश्रम नामक हरिगृह से पवित्र नगरी में अपने आत्मा की स्थिति करके शाप रहित होकर परमरूप को प्राप्त होगे, तब से उनके वचन यह दैत्याचार्य गिलन युद्ध की क्षुधा से व्याकुल होकर आनन्द में पूर्ण होकर युद्धस्थल में भ्रमण करता रहता था ।।१८।। जैसे जगत् में उदय हुए सूर्य, चन्द्रमा को राहु-केतु व्याकुल करते हैं, उसी प्रकार देवताओं से मारे हुए पराक्रमी दैत्यों को परमशत्रु शुक्रजी संजीवनी विद्या से सैकड़ों घावों से पूरित (रहित) करके जीवित करते हैं ।।१९।। संग्राम के समय में आपको और मुझे प्राण त्याग करने योग्य हैं, साक्षीभूत हुए आप क्षणभर को इस कार्य करने में तत्पर हो ।।२०।। सनत्कुमारजी बोले- प्रमथपति ने इस प्रकार वीरक के वचन सुनकर बड़ा

क्रोध किया और उन त्रिभुवनपति ने चिरकाल तक विचार कर सामदेव का उत्तम गान किया। फिर सूर्य के समान प्रकाशित शरीर से हास्य किया, तब उस अट्टहास से समस्त अन्धकार दूर हो गया ।।२१।। तब उस वीरक मुनि ने प्रकाश होने से संग्राम के बीच में विकृत मुखवाले दैत्यों के साथ फिर भी बड़ा युद्ध किया, शिलोञ्छचूर्ण का भोजन करके जिसे श्रेष्ठमुनि ने उत्पन्न किया तथा पहले जिसने पुर को भी जीता था, फिर वह वीरक संग्राम करने लगा ।।२२।। उसी समय उस दैत्य ने महारुद्र तीक्ष्णबाण, त्रिशूल, खड्गधारी, योधाओं में मुख्य सैकड़ों मुनियों में श्रेष्ठ, विद्याओं के भण्डार, शम-दम, महाधैर्य धारण करनेवाले नन्दी को भी निगल लिया ।।२३।। तब कपर्दी भगवान् सदाशिवजी ने यह देखकर वृषभ पर चढ़कर युद्ध की इच्छा की और विधस दैत्य के सम्मुख स्थित होकर निगले हुओं को उगलने के विधानवाले दिव्यमन्त्र को जपते हुए वज्र के समान तीव्रबाणों और प्रत्यंचा सहित धनुष को तैयार किया ।।२४।। तब उस विधस नामक दैत्य के मुख से वह वीरक मुनि अपने अतुल बल को ग्रहण करके विष्णुजी के सहित ब्रह्माजी, इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य आदि सब देवता निकले, इससे सब सेना अति प्रसन्न होकर फिर भी बड़े युद्ध करने लगी ।।२५।। शत्रु के जीतने पर शुक्राचार्यजी युद्ध में मारे हुए दैत्यों को अपनी संजीवनी विद्या के बल से फिर भी जीवित करने लगे, तभी गणों ने उनको बांधकर शिवजी के समीप उपस्थित किया, तब उन त्रिपुर महादेवजी ने उस दैत्य के गुरु शुक्रजी को निगल लिया ।।२६।। उस समय शुक्रजी के नष्ट होने पर वह सब दैत्यों का समुदाय हारकर जीर्ण हो गया, तब देवताओं ने उन्हें बहुत व्याकुल किया, दैत्यों ने शरीरों को भक्षण करनेवाले अनेकों भूतों से व्याप्त होकर रणभूमि में तीक्ष्ण बाण, शक्ति आदि से हाथ, सिर कटे रुण्ड नाचने लगे ।।२७।। प्रमत्त हुए वेताल, अतिदृढ़ हाथ मुखवाले पक्षियों तथा शवों (मुर्दों) के मांस के ग्रासों से पूर्ण मुखवाले भेडिये आदि अनेक जीवों से संग्राम में व्याप्त होनेपर वह हिरण्यकशिपु के वंश में उत्पन्न हुआ दैत्य बहुत समय तक युद्ध करके विष्णुजी, शिवजी, महेन्द्र से हार गया ।।२८।। जिस समय पराजित होकर वह दैत्य पर्वत, समुद्र और पाताल के रन्ध्रो में प्रवेश कर गये और दैत्यश्रेष्ठ अन्धक की सब सेना क्षीण हो गई और देवताओं ने महाक्रोध करके उन दैत्यों का नाश किया और घोर गदा घातों से हरि ने उस दैत्य का मद चूर्ण कर दिया ।।२९।। पर तो भी उस दैत्य ने संग्राम का त्याग नहीं किया, तब इन्द्र न घोर अस्त्रों से उसको पीड़ित किया, तब उसने बड़े-बड़े शस्त्रों तथा वृक्ष, पर्वत, जलों के प्रहार से देवताओं को जीतने की इच्छा से घोर शब्द किया और प्रमथपति को शनैः-शनैः बुलाकर ।।३०।। सैकड़ों शस्त्रों का प्रहार करते हुए युद्ध में खड़ा रहा, जब वह सब क्षीण हो गये, तब गिरिजा और रुद्र को पीड़ा देने लगा, वृक्ष, सर्प, शस्त्र और अनेक प्रकार के वज्र के समान शस्त्रों तथा शम्बर की सैकड़ों माया तथा

कपट रचना से युद्ध करने लगा ।।३१।। तब महाबली बुद्धिमान् त्रिपुर के समान इस वीर ने शिवजी के जीतने के निमित्त एक माया की, कारण कि सैकड़ों वरों से और देवताओं से अवध्य होने से यह उन्माद को प्राप्त हो गया था, परन्तु अनेक शस्त्र-अस्त्रों के प्रभाव से उसका शरीर शीघ्र ही जर्जर हो गया ।।३२।। उस समय उसकी माया से अन्धक गण संग्राम की भूमि में व्याप्त होकर उसके समान घोर मर्दन करने लगे, तब प्रलयकाल की अग्नि के समान घोर शरीर धारण करके शिवजी ने अपने त्रिशूल से उस दैत्य को बहुत प्रकार से विदीर्ण कर दिया ।।३३।। जब शिवजी के त्रिशूल के प्रहार से तथा सेना के आघात से उसकी देह में से रुधिर का प्रवाह बहने लगा, तब उससे भी बहुत से दैत्य प्रकट होकर युद्ध करने लगे, तब बुद्धिमान् विष्णुजी ने योग द्वारा प्रमथपति शंकरजी को बुलाकर बड़ा उग्ररूप धारण किया, जिनका मुख बड़ा विकृत और स्त्रियों में मन लगानेवाले जिसको जीत नहीं सकते ।।३४।। बड़ा कराल मुख, सूखा आकार, बहुतसी भुजारूप लताओं से व्याप्त वह भगवान् गणों के अधिपति शिवजी के कर्ण से प्रकट हुए ।।३५।। वह देवीरूपा रण में स्थित होकर अपने चरणों से भूमि को शोभायमान करने लगी, देवता स्तुति करने लगे, फिर शंकरजी से प्रेरित होकर क्षुधा से व्याकुल हुई वह दैत्यपति की सेना का निकला हुआ रुधिर उस रणभूमि में पान करने लगी, जहां मांस की कीच हो गई थी ।।३६।। तब रुधिर के सूख जाने से एक मात्र वह दैत्य शेष रह गया, तब वह वज्र के समान तलों के जानु चरणों के तथा वज्र के समान नखों के तथा मुख, भुजा और सिर के आघातों से प्रहार करता हुआ अपने कुल का सनातन क्षात्रधर्म स्मरण करता हुआ शंकरजी पर प्रहार करने लगा ।।३७।। तब शिवजी ने क्रोध करके अपने त्रिशूल से उसके हृदय में छेद करके ऊपर को उठाकर स्थाणु के समान आकाश में धारण कर लिया, यह होते ही युद्ध शान्त हो गया, तब सूर्य की किरणों से उसकी काया सूखने लगी और शरीर जर्जर हो गया और पवन से प्रेरित जल वर्षानेवाले मेघ भी उसके शरीर को जलों से पीड़ित करने लगे ।।३८।। एक ओर सूर्य की किरणें उसे पीड़ित करती थीं, एक ओर से हिमखण्ड उसे विदीर्ण करते थे तथापि उस दैत्यश्रेष्ठ के प्राण नहीं निकले, तब करुणासागर परमदयालु शंकरजी ने उसकी स्तुति से प्रसन्न होकर उसे अपना गणपतिपद प्रदान किया ।।३९।। तब युद्ध समाप्त हो जाने पर वे भुवनों के पति हरि तथा ब्रह्माजी को आदि लेकर सब देवता शंकरजी की विधिपूर्वक पूजा करके प्रेम से मस्तक झुकाकर अनेक प्रकार के मनोहर स्तोत्रों से तथा सारगर्भित स्तुतियों से शंकरजी को प्रसन्न कर परम प्रेम से जय-जय उच्चारण करने लगे ।।४०।। और भगवान् भूतपति अनेक प्रकार की सामग्री द्वारा उनसे पूजित होकर और उनको सत्कार के सहित बिदा कर उस पर्वत की गुहा में पार्वती के साथ प्रसन्न होकर प्रेम से क्रीड़ा करने लगे और विधस के मुख से अपने पाप रहित

वीरक पुत्र के निकलने से बड़े प्रसन्न हुए और अपना अंश वहां स्थापन कर शंकरजी ने पार्वती सहित परम प्रसन्नता प्राप्त की ।।४१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
पञ्चम युद्धखण्डे अन्धकवधोमाख्याने अन्धकयुद्धवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४६ ।।

*****

सैंतालीसवाँ अध्याय

व्यासजी बोले– उस बड़े लोमहर्षण संग्राम में शिवजी ने दैत्यों के आचार्य विद्वान् शुक्रजी को भक्षण कर लिया ।।१।। यह मैंने संक्षेप से सब सुना, अब फिर विस्तार से कहिये कि, शिवजी के पेट में स्थित हुए महायोगी शुक्राचार्यजी ने क्या किया ? ।।२।। और शिवजी की उदराग्नि ने उन शुक्रजी को क्यों नहीं भस्म किया ? और प्रलयाग्नि के समान प्रदीप्त काल के समान तेजस्वी शुक्रजी ।।३।। हे बुद्धिमान्! शिवजी के उदर–पिंजर से वह किस प्रकार निकले और उन्होंने कितने समय तक किस प्रकार उनकी आराधना की ? ।।४।। फिर उन्होंने मृत्यु को शान्त करनेवाली परमविद्या कैसे प्राप्त की ? हे तात ! वह कौनसी विद्या है, जिससे मृत्यु का निवारण होता है ? ।।५।। और देवों के देव, मुनिलीला करनेवाले शिवजी के त्रिशूल से नष्ट होकर अन्धक दैत्य ने किस प्रकार गणपति की पदवी पाई ? ।।६।। हे धीमन ! हे तात ! यह सब मेरे ऊपर कृपा करके शिवजी की लीलारूपी अमृत भरे इतिहास को मुझसे वर्णन कीजिये ।।७।। ब्रह्माजी बोले– अति तेजस्वी उस व्यासजी का ऐसा वचन सुनकर सनत्कुमारजी बोले– हे व्यासजी ! हे महाबुद्धे ! शिवजी का अमृतरूपी चरित्र सुनिये, आप धन्य हो तथा शैवों में मुख्य हो, मुझे आनन्द के देनेवाले हो ।।९।। विना भेदन करने योग्य दैत्यों के व्यूह के स्वामी अन्धक और देवताओं की सेना के अध्यक्ष शिवजी के परस्पर युद्ध होने पर ।।१०।। हे मुने ! पहले तो अति बलवान् दैत्यों की विजय हुई, फिर पीछे से शिवजी के प्रभाव से देवताओं की विजय हुई ।।११।। यह सुनकर अन्धकासुर महादैत्य दुःखी होकर इस प्रकार विचार करने लगा कि, मेरी विजय किस प्रकार होगी ? ।।१२।। तब युद्ध से भागकर वह अतिबुद्धिमान् अन्धकवीर अकेला शुक्रजी के समीप गया ।।१३।। वह दैत्य रथ से उतरकर अपने गुरु शुक्राचार्यजी को प्रणाम करके नीति में प्रवीण हो हाथ जोड़कर विचार के उनसे यह वचन बोला ।।१४।। अन्धक बोला– हे भगवन् ! आपको प्राप्त होकर हम गुरुभाव को धारण करते हैं और निरन्तर विजय पानेवाले भी हम पराजय को प्राप्त हुए ।।१५।। आपके प्रभाव से हम सदैव विष्णुजी आदि समस्त देवताओं को भृत्यों सहित तृण के समान तुच्छ मानते हैं ।।१६।। आप ही के प्रभाव से सम्पूर्ण देवता

हम से इस प्रकार भय करते हैं, जैसे सिंहों से हाथी और गरुड़ से सर्प डरते हैं ।।१७।। आपके अनुग्रह ही से दैत्य और दानवों ने अनिर्भेद्य सम्पूर्ण देवताओं की सेना व्यूह को कंपायमान करके उसमें प्रवेश किया है ।।१८।। हे शुक्राचार्यजी! हम सब आपकी शरण में आकर सदा भूमि के समान निश्चल हुये संग्राम में फिरते हैं ।।१९।। हे विप्र! अपनी शरण में आये हुए वीर शत्रुओं से मरते हुए दैत्यों की चारों ओर से रक्षा करें ।।२०।। भयंकर पराक्रमवाले, मृत्यु को भी नाश करनेवाले, देवताओं से पीड़ित गिराये हुए, हुण्ड आदि मेरे शेष गणों को देखिये ।।२१।। पहले आपने सहस्रों वर्षपर्यन्त कणों के धुएँ को पीकर जो वरदान तथा विद्या पाई है, अब उसका समय आ गया है ।।२२।। हे शुक्राचार्यजी! जब सब देवता आपकी विद्या के फल को देखेंगे, कृपा करके सम्पूर्ण दैत्यों को जीवित कीजिये ।।२३।। सनत्कुमारजी बोले– इस प्रकार उन शुक्राचार्यजी ने अन्धक दैत्य के वचन सुनकर व्याकुल हुए चित्त से यह विचार किया ।।२४।। इस समय मुझे क्या करना योग्य है, किस प्रकार मेरा कल्याण हो? मुझे संजीवनी विद्या का प्रयोग करना किसी प्रकार उचित नहीं है ।।२५।। क्योंकि वह विद्या शंकरजी से प्राप्त की है, उन्हींके गुणों में इसे युक्त करना उचित है, शंकरजी के अनुगामी वीर प्रमथों से मारे हुओं के ऊपर प्रयोग करूंगा ।।२६।। तब सब प्रकार श्रेष्ठ शरणागत धर्म को अपनी बुद्धि से हृदय में विचार के शुक्रजी ने उसका वचन स्वीकार किया ।।२७।। उस समय कुछ हास्य करके वह शुक्राचार्यजी शिवजी के चरणकमलों को स्मरण करके स्वस्थचित्त से उस दैत्यराज से बोले ।।२८।। शुक्रजी बोले– हे तात! जो आपने कहा, सो सब सत्य है, मैंने इस सम्पूर्ण विद्या का उपार्जन दैत्यों के लिये ही किया है ।।२९।। अति कठिन कणों के धूम को पीकर सहस्र वर्षों में यह विद्या मैंने शिवजी से पाई है, यह सदा भाई-बन्धुओं को सुख देनेवाली है ।।३०।। मैं इस विद्या से संग्राम में देवताओं से मारे हुए दैत्यों को ऐसे जीवित करूंगा, जिस प्रकार मलीन हुए धान्यों को मेघ उठाता है ।।३१।। आप थोड़े ही समय में उन दैत्यों को व्रण (घाव) रहित, रोगहीन स्वस्थ हुए, सो कर फिर उठे हुए के समान जीवित हुए देखेंगे ।।३२।। सनत्कुमारजी बोले– ऐसा अन्धक से कहकर उन शुक्राचार्यजी ने आदर से शिवजी को स्मरण करके प्रत्येक दैत्य को जीवित करने के लिये संजीवनी विद्या का प्रयोग किया ।।३३।। विद्या की आवृत्तिमात्र से वे समस्त शस्त्र धारे दैत्य-दानव वीर सोते हुए के समान खड़े हुए ।।३४।। जिस प्रकार निरन्तर अभ्यास किये हुए वेद तथा जिस प्रकार युद्ध में मेघ और जैसे आपत्ति में ब्राह्मणों को श्रद्धा से दिया हुआ दान फलवाला होता है ।।३५।। उसी प्रकार उन हुण्डादि दैत्यों को जीवित हुआ देखकर असुरों ने जल से पूर्ण हुए मेघों के समान शब्द किया ।।३६।। फिर गर्जते हुए विकट शब्दों को करते हुए महाबली और महापराक्रमी दैत्य निर्भय होकर देवताओं के साथ संग्राम में उद्यत हुए ।।३७।। उन दैत्य-दानवों को शुक्राचार्यजी

से जीवित हुए देखकर युद्ध में अभिमानी नन्दी आदि देवता विस्मित हो गये ।।३८।। यह सम्पूर्ण समाचार देवों के स्वामी शिवजी को सूचित करना चाहिये, इस प्रकार उन बुद्धिमानों ने विचार करके परस्पर कहा ।।३९।। उन देवताओं के आश्चर्यजनक युद्धरूपी यज्ञ में शुक्राचार्यजी के अद्‌भुत कर्म को देखकर क्रोधित हुए शिलाद के पुत्र नन्दी शिवजी के समीप गये ।।४०।। 'जय हो, जय हो', ऐसा कहकर नन्दी स्वर्ण के समान स्वच्छ विजय देनेवाले शिवजी से बोले- हे देव! इन्द्र आदि देवताओं सहित गणेश्वरों का जो कठिन संग्राम हुआ है ।।४१।। हे ईश्वर! वह हमारा सब कार्य आज शुक्रजी ने निष्फल कर दिया, जो मृतसंजीवनी विद्या का प्रयोग करके बिना ही परिश्रम मरे हुए शत्रुओं को जीवित कर दिया ।।४२।। यमराज के मार्ग से फिर लौटे हुए तुहुण्ड, हुण्ड, कुम्भ, जम्भ, विपाक, पाक आदि महादैत्य देवताओं का नाश करते हुए फिरते हैं ।।४३।। हे महेश्वर! यदि शुक्राचार्यजी मरे हुए दैत्यों को बार-बार जीवित करेंगे, तो किस प्रकार हमारी विजय होगी और गणेश्वरों को शान्ति कहां? ।।४४।। सनत्कुमारजी बोले- इस प्रकार प्रथमेश्वर नन्दी से कहे हुए वचन सुनकर प्रथमेश्वरेश शिवजी, देव देव हँसकर उन गणों के स्वामी नन्दी से यह वचन बोले ।।४५।। शिवजी बोले- हे नन्दिन्! अभी बहुत शीघ्र जाओ और दैत्यों के मध्य में शुक्राचार्यजी को इस प्रकार पकड़कर लाओ, जैसे बाज लवा पक्षी को पकड़ता है ।।४६।। सनत्कुमारजी बोले-शिवजी के ऐसा कहने पर वह नन्दी (बैल) सिंह के समान शब्द करने लगे तथा सेना को तैयार करके वहां शीघ्र पहुँचे, जहां शुक्राचार्यजी उपस्थित थे ।।४७।। बलवान् नन्दी ने पाश, खड्ग, वृक्ष, पाषाण, पर्वत हाथ में लेकर सम्पूर्ण दैत्यों से रक्षित उन शुक्रजी को दैत्यों के बीच में जिस प्रकार सिंह का बालक हाथी को पकड़ता है, उस प्रकार हरण किया ।।४८।। वस्त्रों से शून्य, नष्ट आभूषणवाले, बिखरे हुए बालों सहित बली नन्दी से पकड़े हुए शुक्रजी को छुड़ाने के निमित्त राक्षसों ने बड़ा सिंहनाद किया ।।४९।। और दैत्यों ने नन्दीकेश्वर के ऊपर वज्र, त्रिशूल, खड्ग, परशु, तीक्ष्ण चक्र, पाषाण, कंपन (शस्त्रों) की मेघों के समान भयंकर वर्षा की ।।५०।। उन शुक्रजी को पकड़कर वह गणेश्वर नन्दी अपने मुख की अग्नि से सैकड़ों शस्त्रों को भस्म करके नष्ट हुए देवासुर संग्राम में शत्रुओं के पक्ष को व्याकुल करते हुए शिवजी के समीप आये ।।५१।। हे भगवान्! यह वही शुक्र है, इस प्रकार शिवजी से शीघ्र ही निवेदन किया, तब देवों के देव शिवजी ने पवित्र मनुष्य से भेंट किये हुए उपहार के समान उन शुक्र को ग्रहण किया ।।५२।। प्राणियों की रक्षा करनेवाले शिवजी ने कुछ न कहकर ऊँचे स्वर से हा़हाकार करते हुए सम्पूर्ण दैत्यों के छूटने पर भी शुक्रजी को फल के समान अपने मुख में रख लिया ।।५३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

पञ्चम युद्धखण्डे अन्धकयुद्धे शुक्रनिगीर्णनवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४७ ।।

अड़तालीसवाँ अध्याय

व्यासजी बोले- हे महामुने! शिवजी ने शुक्राचार्यजी को निगलने पर अन्धकादि बलवान् दैत्यों ने क्या किया ? सो आप कहिये ।।१।। सनत्कुमारजी बोले- शिवजी द्वारा शुक्रजी को निगल जाने पर सम्पूर्ण दैत्य इस प्रकार जय की आशा से हीन हुए, जिस प्रकार हाथों से रहित मनुष्य तथा सींगों से हीन गाय-बैल होते हैं ।।२।। जिस प्रकार सिर के बिना शरीर, जैसे बिना पढ़ा ब्राह्मण और उद्यम के बिना बल तथा बिना भाग्य के पुरुषार्थ ।।३।। पति के बिना स्त्री, बिना पंखों के पक्षी, विना पुण्यों के अवस्था और विना व्रतों के शास्त्र हो ।।४।। जिस प्रकार वैभव (ऐश्वर्य) शक्ति के बिना समस्त कार्य अपने फलों से हीन होते हैं तथा जैसे पराक्रम हीन क्षत्रिय तथा सत्य के बिना समस्त धर्म होता है ।।५।। उसी प्रकार नन्दी ने पकड़े हुए शुक्रजी को शिवजी द्वारा निगलने पर संग्राम में प्रयत्न करनेवाले सब दैत्य दुःख को प्राप्त हुए ।।६।। उन तुहुण्ड, हुण्ड आदि सब दैत्यों को उत्साह रहित देखकर महाधीर पराक्रमवाला अन्धक दैत्य बोला ।।७।। अन्धक बोला- पराक्रम से शुक्राचार्यजी को पकड़नेवाले नन्दी ने हमें वंचित किया, आज हम सबों को बिना प्राण के शरीर के समान कर दिया ।।८।। अकेले शुक्रजी के हरने पर हमारा धैर्य, पराक्रम, गति, कीर्ति, बल, तेज, पौरुष आदि सब एक साथ हरा गया ।।९।। हम सबको धिक्कार है, कि जिन्होंने कुलपूज्य, वंश में श्रेष्ठ, सब में समर्थ, रक्षा करनेवाले एक गुरु की भी आपत्ति में रक्षा न की ।।१०।। इस कारण हे त्रीरो! गुरुजी के चरणकमलों को स्मरण करके तुम सब विलम्ब न करके इन शत्रुवीर देवताओं के साथ युद्ध करो ।।११।। गुरु शुक्राचार्यजी के सुखदायक चरणकमलों को स्मरण करके मैं नन्दी के सहित समस्त देवताओं को व्याकुल करूंगा ।।१२।। आज मैं इन्द्रादि देवताओं के सहित इन नन्दी आदि सबों को मार के इस प्रकार शुक्रजी को छुड़ाऊंगा, जैसे योगी अपने कर्म से जीव को छुड़ाता है ।।१३।। यदि वे शुक्रजी भी योगी और योग में स्वयं समर्थ हैं, तो हमारे पालन करने के लिये उन शिवजी के शरीर में से निकलेंगे ।।१४।। सनत्कुमारजी बोले- ऐसा अन्धक का वचन सुनकर मेघ के समान शब्द करते हुए निर्दयी होकर तथा मरने पर निश्चय करते हुए दैत्य बोले ।।१५।। देवतागण आयु रहते हुए कभी भी अपने बल से समर्थ नहीं हैं, फिर आयु नष्ट होने पर युद्ध में स्वामी को छुड़ाने की तो क्या बात है ? ।।१६।। जो मनुष्य अधिक मान करते हुए अपने स्वामी को छोड़कर भाग जाते हैं, वे अन्धतामिस्र नामक नरक में पड़ते हैं ।।१७।। वे युद्धस्थल से भागते हुए दुष्कीर्ति को पाकर प्रसिद्धि को मलीन करके

इस लोक में तथा परलोक में भी सुखी नहीं होते ।।१८।। दानों से क्या लाभ है तथा तपों और तीर्थों में स्नान करने से भी क्या फल ? जैसा फल पुनर्जन्मरूपी मल को नाश करनेवाले युद्धरूपी तीर्थ में स्नान करने से प्राप्त होता है ।।१९।। इस प्रकार उसके वचन को स्वीकार करके उन दैत्य तथा दानवों ने युद्ध में संग्राम की दुन्दुभी बजाकर देवताओं को पीड़ित किया ।।२०।। वहां पर बाण, खड्ग, वज्रों तथा कठिन शिलीमुखों से भुशुण्डि, भिन्दिपाल तथा शक्ति, परशु ।।२१।। खट्वांगों और पट्टिश, त्रिशूल, लकड़ी मूसलों से परस्पर ताड़न करते हुए बड़ा भयंकर युद्ध करने लगे ।।२२।। खैंचे हुए धनुषों पर बाणों का प्रयोग होने तथा टूटती हुई भिन्दिपालों का बड़ा शब्द होने लगा ।।२३।। संग्राम के बाजों के शब्द से तथा हाथियों के चिंघाड़ने, घोड़ों के हिनहिनाने के शब्दों से बड़ा कोलाहल मचा ।।२४।। उस समय भूमि और आकाश के बीच में बड़ा शब्द गूंज उठा। भीरु और वीरों के रोयें खड़े करनेवाला परस्पर महारोमहर्षण युद्ध हुआ ।।२५।। हाथी घोड़ों के महानाद तथा प्राणियों के प्रकट हुए शब्दों का भयंकर युद्ध हुआ। ध्वजा-पताका नष्ट हो गई, शस्त्र नष्ट हो गये ।।२६।। रुधिर के प्रवाहों से विचित्र, घोड़े, हाथी, रथों से शून्य सेना दोनों दलों में मूर्छित हो गई ।।२७।। हे मुने! तब उन शूर नन्दी आदि देवताओं ने बल से दैत्यों को मारा और विजय पाई ।।२८।। उस समय चारों ओर से अपनी सेना को देवताओं से विनाश की हुई देखकर अन्धकदैत्य स्वयं रथ पर चढ़कर शिवजी के गणों के ऊपर दौड़ा ।।२९।। तब बाणों की वर्षा करके देवताओं को इस प्रकार नाश करने लगा, जिस प्रकार वज्रपातों से पर्वतों तथा अस्त्रों से जलहीन मेघों को नष्ट करते हैं ।।३०।। अन्धक ने जाते हुए तथा आते हुए, दूर स्थित हुए और समीप में स्थित हुए प्रत्येक को बाणों से रोम-रोम में बींध दिया ।।३१।। बलवान् अन्धक दैत्य से नाश होती हुई सेना को देखकर स्वामिकार्तिक, गणेशजी, नन्दीश्वर तथा सोमनन्दी आदि ।।३२।। शूरवीर देवता और महाबली शंकरजी के गणों ने अति क्रोध करके अद्भुत युद्ध किया ।।३३।। गणेशजी, स्कन्द, नन्दी, सोमनन्दी तथा वीर नैगमेय, बलवान् वैशाख ।।३४।। इत्यादि गणों ने अन्धक दैत्य को त्रिशूल, शक्ति, बाणों की वर्षा करके अन्धा कर दिया ।।३५।। उस समय देवता और दैत्यों की सेना में बड़ा कोलाहल हुआ, उस बड़े शब्द से शिवजी के पेट में स्थित हुए शुक्राचार्यजी ।।३६।। छिद्र को खोजते हुए चारों ओर फिरने लगे, जिस प्रकार आधार रहित पवन बहता है और उन्होंने शिवजी के शरीर में सातों लोकों को और पातालों को देखा ।।३७।। ब्रह्माजी, नारायण, इन्द्र, सूर्य सहित अप्सराओं के विचित्र भुवन तथा प्रमथासुर के युद्ध को देखा ।।३८।। उन शुक्रजी ने सौ वर्ष पर्यन्त शिवजी के उदर में चारों ओर भ्रमण करते हुए उसमें इस प्रकार वह कोई रन्ध्र (छेद) नहीं देखा, जैसे खल पुण्यात्मा में दोष देखता है, तो भी नहीं देख पाता ।।३९।। फिर वह भार्गव शिवजी के दिये योग से इस मन्त्र को जपकर शिवजी वीर्यरूप में शिवजी के उदरपंजर

से ।।४०।। लिंग मार्ग से निकले और शिवजी को प्रणाम किया, तब पार्वती ने उनको पुत्ररूप से ग्रहण किया और विघ्न रहित किया ।।४१।। लिंग में से वीर्यरूप निकले हुए शुक्र को देखकर दयासागर शिवजी हँसकर बोले ।।४२।। शिवजी बोले– हे भृगु के पुत्र! जिस कारण कि तुम मेरे लिंग से वीर्यरूप में निकले हो, इस कर्म से तुम शुक्र नामवाले मेरे पुत्र हुए, अब जाओ ।।४३।। सनत्कुमारजी बोले– शिवजी के ऐसा कहनेपर वह सूर्य के समान कान्तिवाले शुक्रजी हाथ जोड़कर शिवजी की स्तुति करने लगे ।।४४।। शुक्रजी बोले– हे शिवजी! आप अनन्त पादवाले अनन्तमूर्ति हो, अनेक मस्तकवाले, अनेक हाथोंवाले, अनेक भुजावाले, अनेक रूपवाले स्तुति योग्य हो, आपकी किस प्रकार सिर से प्रणाम करके स्तुति करूं ।।४५।। आप अष्टमूर्ति, अनन्तमूर्ति, देवता और दैत्यों के मनोरथ सिद्ध करनेवाले, अमंगलों का नाश करनेवाले वेष में स्थित हो, आपकी किस प्रकार स्तुति करूं ।।४६।। सनत्कुमारजी बोले– शुक्रजी ने इस प्रकार शिवजी की स्तुति करके नमस्कार किया और शिवजी की आज्ञा से दैत्यों की सेना में प्रवेश किया, जैसे मेघमाला में चन्द्रमा प्रवेश करता है ।।४७।। इस प्रकार युद्ध के बीच में शिवजी से शुक्र के निगलने का वर्णन किया। अब उस मन्त्र को भी सुनिये जिसे शुक्रजी ने शिवजी के उदर में जपा था ।।४८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
पञ्चम युद्धखण्डे शुक्रनिगीर्णनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४८ ।।

*****

उनतालीसवाँ अध्याय

मन्त्र– सनत्कुमारजी बोले– ''ॐ नमस्ते देवेशाय सुरासुरनमस्कृताय'' इत्यादि मन्त्रों को जपकर शुक्रजी शम्भुजी के उत्कट वीर्य के समान शिवजी के उदरस्थल से लिंगमार्ग से निकले ।।१।। तब पार्वतीजी ने उन्हें पुत्र के समान ग्रहण किया और संसार के ईश्वर शिवजी ने श्रीमान् अजर–अमर मानो दूसरे शंकरजी के समान शुक्रजी को किया ।।२।। तीन सहस्र वर्षों के बीतने पर फिर वह वेदपाठी शुक्रजी पृथ्वी पर शिवजी से उत्पन्न हुए ।।३।। शिवजी के त्रिशूल पर सूखते हुए, धैर्य सहित तपस्वी अन्धक दैत्य को शंकरजी का ध्यान करते हुए देव देव ने देखा ।।४।। महादेव, विरूपाक्ष, मस्तक पर अर्द्धचन्द्र को धारे तथा अमृत, सनातन, स्थाणु, पिनाक धनुषधारी ।।५।। वृषभाक्ष, महाज्ञेय पुरुष, सब कामना को देनेवाले, कामदेव के शत्रु, काम को भस्म करनेवाले, कामरूपी, कपर्दी ।।६।। विरूप, गिरीश, भीम, स्रग्वी, रक्तवास, योगी, कालदहन, त्रिपुरासुर का नाश करनेवाले, कपाली ।।७।। गूढ़व्रत, गुप्तमन्त्र, गंभीर भावगोचर,

अणिमा आदि सिद्धियों के आधाररूप, तीनों लोकों को ऐश्वर्य देनेवाले ।।८।। वीर वीरहरण, घोर, विरूप, मांसलपटु, महामांसभोजी, उन्मत्त, भैरव महेश्वर ।।९।। त्रिलोकी का नाश करनेवाले, लुब्ध, लुब्धक, यज्ञसूदन, कृत्तिकाओं के पुत्रों से युक्त हुए, उन्मत्त, मृगचर्मधारण करनेवाले ।।१०।। हस्तीचर्म को धारण करनेवाले, क्षुब्ध, सर्पों के भूषण पहने, दत्तालम्ब, वेताल, घोर, शाकिनी से पूजित ।।११।। अघोर, भयंकर दैत्यों को नष्ट करनेवाले, वनस्पतिरूप, भस्मांगी, जटाधारी, शुद्ध, सैकड़ों रुण्डो से भूषित हुए ।।१२।। भूतेश्वर, भूतनाथ, पंचभूताश्रित, खग, क्रोधित, निष्ठूर, चण्ड, चण्डिश, चण्डिका के प्रिय ।।१३।। चण्ड, तुंग, गरुत्मन्त, नित्य आसवभोजी, लेलिहान, महारौद्र, मृत्यु के अगोचर ।।१४।। मृत्यु के भी मृत्यु, महासेन, श्मशान वन में निवास करनेवाले, राग, विराग, रागान्ध, सैकड़ों विरक्तों से पूजित ।।१५।। सत्त्व, रज, तमोगुणों के धारणकर्त्ता, अधर्म वा सबके अनुज, सत्य, असत्य, सद्रूपी तथा असत् रूपवाले, अहेतुक ।।१६।। अर्द्धनारीश्वर, भानु, सैकड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान, यज्ञपति, रुद्र, ईशान, वर देनेवाले, शिव ।।१७।। इस प्रकार शिवजी की एक सौ आठ परमा मूर्तियों का ध्यान करके अन्धक दैत्य उस महाभय से मुक्त हो गया ।।१८।। फिर दिव्य अमृत की वर्षा से शिवजी ने उसका अभिषेक किया और प्रसन्न होकर उसे त्रिशूल के ऊपर से उतारा ।।१९।। फिर महादेवजी ने महादैत्य अन्धक से शान्तिपूर्वक सब कहा, जो कुछ उन महात्मा शिवजी ने किया था ।।२०।। शिवजी बोले– हे दैत्येन्द्र! हे सुव्रत! मैं तेरे दम, नियम, शूरता, धीरज से प्रसन्न हुआ हूं, तू वर मांग ।।२१।। हे महादैत्यों में श्रेष्ठ! तुमने सब पापों से रहित होकर शिवजी की नित्य आराधना की, इससे मैं नित्य वर देने योग्य हूं, तू वर पाने के योग्य हो ।।२२।। प्राणों को धारण करने से लेकर तीन सहस्र वर्षों तक जो कुछ तेरा पुण्यफल हुआ है, उससे तेरी निवृत्ति होगी ।।२३।। सनत्कुमारजी बोले– यह सुनकर अन्धक हाथ जोड़कर कांपता हुआ, भूमि पर दोनों गोड़ों को टेक उमापति शिवजी से बोला ।।२४।। अन्धक बोला– हे भगवन्! युद्धक्षेत्र में मैंने जो दीन से दीन, अधिक से अधिक वचन हर्ष गद्गद वाणी से कहे हैं ।।२५।। हे प्रभो! और जो–जो मैंने मूर्खता से संसार में निन्दित कर्म किये हैं तथा जो बिना जाने आपको कहा है, सो आप मन में न रखें ।।२६।। हे महादेवजी! कामदोष से मैंने पार्वतीजी के विषय में जो कहा सो क्षमा करें, मैं कृपया अति दुःखी हूं ।।२७।। दुःखित, अतिकृपण, दीन, भक्ति में युक्त हुए मुझ पर आपको नित्य दया करना उचित है ।।२८।। दीन होकर भक्ति में लगा हुआ मैं आपकी शरण में आया हूं, दुःखी हुए मुझ पर आपको विशेष दया करनी चाहिये, मैंने अंजलि बांधी है ।।२९।। यह जगज्जननी देवी पार्वतीजी सदा मेरे ऊपर सन्तुष्ट होकर सम्पूर्ण क्रोध को त्याग करके, प्रसन्न होकर मुझे देखें ।।३०।। हे चन्द्रशेखर! कहां उन देवी का क्रोध और कहां मैं कृपण (मूर्ख) दैत्य हूं, इस कारण हे चन्द्रशेखर! हे महेश्वर!

वह सब मेरा वचन आप महेश्वरजी को सहन करना चाहिये ।।३१।। कहां परम उदार आप और कहां मैं काम–क्रोधादि दोषों से बुढ़ापे में मृत्यु से वशीभूत हुआ हूं ।।३२।। यह आपका पुत्र युद्ध में निपुण, महाबली वीरक, मुझ मूर्ख को देखकर क्रोध के वशीभूत न हो ।।३३।। हिम, हार, चन्द्रमा, शंख, माघपुष्प, चन्द्रमा इनके समान श्वेतवर्णवाले, हे शिवजी! इन पार्वती माताजी को गौरव से नित्य देखूँ ।।३४।। आप दोनों शिव–पार्वतीजी का भक्त होकर देवताओं के साथ वैरभाव से रहित, शान्तचित्त, योग को विचरता हुआ मैं सदा गणों के साथ निवास करूं ।।३५।। हे शिवजी! मैं अब से आगे आपकी कृपा से दैत्यभाव से उत्पन्न हुए विरुद्धकर्म को कभी न करूं, ऐसा वरदान दें ।।३६।। सनत्कुमारजी बोले– ऐसा वचन कहकर वह दैत्येन्द्र चुप रहा और देव देव शिवजी तथा माता पार्वतीजी को देखकर उनका ध्यान करने लगा ।।३७।। तब उसे शिवजी ने प्रसन्नता की दृष्टि से देखा, उसने अपने अद्भुत जन्म तथा पूर्व वृत्तान्त को स्मरण किया ।।३८।। पूर्व वृत्तान्त के स्मरण होने पर वह मनोरथों से पूर्ण होकर माता–पिता को प्रणाम करके कृतकृत्य हुआ ।।३९।। बुद्धिमान् शिवजी ने तथा पार्वती ने उसके मस्तक को सूंघा और उसने प्रसन्न हुए शिवजी से इच्छित वर को पाया ।।४०।। महादेवजी के प्रसाद से अन्धक दैत्य का सब सुख देनेवाला पुरातन गाणपत्य सम्बन्धी सब वृत्तान्त कहा ।।४१।। और मृत्यु का नाश करनेवाला, मृत्युंजय नामक मन्त्र भी बताया। इसे यत्न से पढ़ना उचित है, यह सब मनोरथों और सिद्धियों को करनेवाला है ।।४२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

पञ्चम युद्धखण्डे अन्धकगणजीवितप्राप्तिवर्णनं नामैकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ।। ४९ ।।

*****

पचासवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले– हे व्यासजी! जिस प्रकार शुक्रमुनि ने मृत्युंजय नामक शिवजी से मृत्युशमनी विद्या प्राप्त की, वह सब सुनिये ।।१।। पहले यह भार्गव(शुक्रजी) वाराणसी नगरी में जाकर प्रभु विश्वनाथजी का ध्यान करते हुए बहुत समय तक तप करने लगे ।।२।। हे वेदव्यासजी! वहां परमात्मा शिवजी का ज्योतिर्लिंग स्थापन करके उसके आगे सुन्दर रमणीक कूप खुदवाया ।।३।। और एक द्रोण ३२ सेर पंचामृत से शिवजी को लक्ष बार स्नान कराके फिर बहुत से सुगन्धित द्रव्यों से स्नान कराया ।।४।। और शिवजी को अगर, तगर, कस्तूरी, कंकोल, पीसकर सहस्र बार स्नान कराके सुगन्धित पदार्थों को प्रीति से लेपन किया ।।५।। रागपंचक (अमलदास),धतूरा, कनेर,

कमल, चमेली, कर्णिकार, कदम्ब, बकुल (बौलश्री), उत्पल (कमल) ।।६।। मल्लिका (मोंगरा), शतपत्री (सौंफ, कमल, मोंगरा), सिन्धुवार (समालु), ढ़ाक, बन्धूकपुष्प (गुल दुपहरी), पुन्नाग (केसर), नागकेसर तथा केसर के पुष्पों से ।।७।। नवमल्ली (बेलमोंगरा), चिबिलिक (रक्तदला), कुन्द (माघपुष्प), मुचुकुन्द (मेचकन्द), मन्दार (आक), बेलपत्रों से द्रोण (गुम्मा), मरुबक (मनफल), वृक (धूप), ग्रन्थिपर्ण (भटेरा), दमनक तथा मनोहर आम के पत्तों से ।।८।। तुलसी, देवगन्धारी (पुष्प विशेष), बृहत्पत्री (कुशाओं के अंकुरों) से नंद्यावर्त (नान्दरूख), अगस्त्य (पुष्प विशेष), साल तथा देवदारु से ।।९।। कांचनार (कचनार), कुरबक (लालकुरण्टा), दूर्वांकूर (दूबकेनार), कुरण्टक (पीला कुरण्टा) इनके प्रत्येक पुष्पों से तथा पल्लवों से ।।१०।। अनेक प्रकार के मनोहर पत्रों तथा सुन्दर कमलों से उन्होंने सावधान चित्त होकर प्रीति से शिवजी को पूजा ।।११।। गीत, नृत्य, उपहारों से तथा स्तुतिपूर्वक शिवसहस्रनाम तथा और स्तोत्रों से शिवजी को सन्तुष्ट किया ।।१२।। शुक्रजी ने इसी प्रकार पांच सहस्र वर्ष पर्यन्त अनेक प्रकार विधि से शिवजी की पूजा की ।।१३।। जब शिवजी को कुछ भी वर देने में उन्मुख न देखा तब शुक्रजी ने अति कठिन दूसरे घोर नियम को ग्रहण किया ।।१४।। भावना (भक्ति) रूपी जलों से अतिचंचल महामलीन चित्त को इन्द्रियों के सहित बारंबार शुद्ध करके ।।१५।। पश्चात् निर्मल करके इस चित्तरूपी रत्न को शिवजी को अर्पण करके वह शुक्रजी सहस्रों वर्षों तक, कण तथा धूम को पान करने लगे ।।१६।। इस प्रकार दृढ़ मन से घोर तप करते हुए शुक्रजी को देखकर शिवजी प्रसन्न हो गये ।।१७।। और सहस्रों सूर्यों के समान प्रकाशमान वे शिवजी उस लिंग से प्रकट हुए और उन विरूपाक्ष, साक्षात् दाक्षायणीपति ने शुक्रजी से यह कहा ।।१८।। शिवजी बोले– हे तपोनिधे! हे महाभाग! हे महामुने! हे भृगुपुत्र! तुम्हारे इस तप से मैं अति प्रसन्न हुआ हूं ।।१९।। हे भार्गव! मन से इच्छित हुए समस्त वरों को मांगो, मैं प्रीति से तुझे सब पदार्थों को दूंगा, तुझको कुछ भी अदेय नहीं है ।।२०।। सनत्कुमारजी बोले– शिवजी का ऐसा महासुखदायक श्रेष्ठ वचन सुनकर शुक्रजी अति प्रसन्न हो गये और आनन्द के समुद्र में डूब गये ।।२१।। कमलनेत्रवाले शुक्रजी ने आनन्द बढ़ने से पुलकायमान शरीर होकर प्रसन्नता से शिवजी को प्रणाम किया ।।२२।। सन्तुष्ट होकर खिले हुए नेत्रांचलवाले शुक्रजी ने सिर में अंजलि बाँधकर जय–जय उच्चारण कर शिवजी की स्तुति की ।।२३।। शुक्रजी बोले– हे भगवन्! आप अपने इस तेज से सम्पूर्ण अन्धकार को दूर करके सकल राक्षसों के अभिमान को नष्ट करते हो, हे दिवमणे! हे जगदीश्वर! आप तीनों लोकों का हित करने के लिये आकाश में प्रकाशित होते हो, ऐसे आपको नमस्कार है ।।२४।। लोक में अत्यन्त अन्धकार को देखकर अनेक अन्धकारों का नाश करने के निमित्त आपने पृथ्वी और आकाश में सब लोकों का नेत्र चन्द्रमा को रचा है, वह

अमृत की किरणों से युक्त हे अमृतमय! आपको नमस्कार है ।।२५।। हे सर्वव्यापिन! आप पुण्यमार्ग में सदा सुन्दर गतिवाले पवन हैं, हे संसार को जिवानेवाले! आपकी कृपा बिना कौन पुरुष इस संसार में जी सकता है? हे सर्पों के कुलों को सन्तुष्ट करनेवाले! आप निश्चय वायु से सब प्राणियों को बढ़ानेवाले हैं, ऐसे आपको नमस्कार है ।।२६।। हे संसार के पावक एकमात्र पालनकर्ता! हे अग्नि के समान एक शक्तिवाले! आपके बिना मरण शील जन्तुओं को दिव्य मोक्ष देनेवाला कोई नहीं है, हे जगत् के अन्तर्यामी! दिव्य कार्य करनेवाले आप इस जगत् में प्राणियों में शान्ति देनेवाले तथा प्रतिपद में पावक हैं, आपको नमस्कार है ।।२७।। हे जलरूप! हे परमेश! हे जगत् को पवित्र करनेवाले! आप अद्भुत चरित्र करते हैं, हे विश्वनाथ! आप इस संसार को अपने दर्शनरूपी स्नान से निर्मल तथा पवित्र करनेवाले हो, सो आपको नमस्कार है ।।२८।। हे आकाश के समान रूपवाले! हे दयालो! हे ईश्वर विश्वेश्वर! बाहर-भीतर अवकाश देने से प्रकाशित हुआ यह संसार आप से ही सदा श्वास लेता है और आप में ही संकोच को प्राप्त हो जाता है, ऐसे आपको प्रणाम करता हूं ।।२९।। हे विश्वम्भरात्मक! हे सर्वव्यापक! हे विश्वनाथ! हे सर्पों के भूषण धारण करनेवाले! आपके बिना कौन प्रकाशक इस संसार को पालन और धारण कर सकता है। आप अन्धकार दूर करनेवाले हो, हे स्तुति से परे! आप मेरे अन्धकार को दूर करें। परे से भी परे आपको मैं नमस्कार करता हूं ।।३०।। हे आत्मस्वरूप शिवजी! हे सर्वान्तर्यामी! हे परमात्मजन! हे प्रत्येक रूप के रूप! हे अष्टमुर्ते! आपके रूप की परंपरा से यह चर-अचर संसार फैला है, ऐसे आपको नमस्कार करता हूँ ।।३१।। हे समस्त जनों के हितकारी मूर्तिवाले! हे नम्रों के पालनकर्ता! हे सर्वार्थ सार्थ परमार्थ!!! आप अपनी इन आठों मुर्तियों से संसार बन्धनों से युक्त करते हो, ऐसे विस्तारवाले आपको प्रणाम करता हूं ।।३२।। सनत्कुमारजी बोले- इस प्रकार अष्टमूर्ति के अष्टक से शिवजी की स्तुति करके शुक्रजी ने भूमिपर साष्टांग दण्डवत करके बारंबार प्रणाम किया ।।३३।। इस प्रकार अति तेजस्वी शुक्रजी से स्तुति किये हुए शिवजी उन नम्र हुए ब्राह्मणों को अपनी भुजाओं से पृथ्वी से उठाकर आलिंगन करके ।।३४।। मेघ के समान गंभीर, मधुर वाणी से प्रीतिपूर्वक अपने दान्तों की कान्ति से सब ओर प्रकाशित करते हुए बोले ।।३५।। महादेवजी बोले- हे ब्राह्मण श्रेष्ठ शुक्र! हे तात! तुम मेरे अति पवित्र भक्त हो, कुटुम्बियों सहित किये हुए इस कठिन तप से ।।३६।। तथा ज्योतिर्लिंग के पुण्य लिंग प्रतिमा के आराधन तथा पवित्र, निश्चल चित्त के उपहार देने से ।।३७।। अविमुक्त नामक क्षेत्र में पवित्र आचरण करने से मैं तुम्हें दया के नेत्र से देखता हूं, तुम्हारे लिये कोई अदेय वस्तु नहीं है ।।३८।। तुम इसी शरीर से मेरे पेटरूपी गुहा में प्राप्त होकर मेरे इन्द्रिय मार्ग से निकलकर पुत्र भाग्य को प्राप्त होगे ।।३९।। अब विष्णुजी के पार्षदों को भी दुर्लभ श्रेष्ठ वर को मैं तुझे देता हूं,

जिसे मैंने ब्रह्माजी से भी छिपाया था ।।४०।। मृतसंजीविनी नामक जो मेरी निर्मल विद्या है, वह मैंने ही अपने तपोबल से निर्माण की है ।।४१।। हे महाशुचे ! मन्त्ररूपवाली उस विद्या को तुम्हें देता हूं, हे पवित्र तपोनिधे ! तुम्हारी उस पवित्र विद्या की योग्यता है ।।४२।। जिस किसी कार्य का उद्देश्य करके नियम से इस विद्या को जपोगे, तो इस सत्येश्वरी विद्या से अवश्य प्राणियों को जीवित कर सकोगे ।।४३।। सूर्य तथा अग्नि को अतिक्रमण करके आकाश में तारकरूप से प्रकाशमान श्रेष्ठ ग्रह होगे ।।४४।। जो स्त्री वा पुरुष तुम्हारे सन्मुख यात्रा करेंगे, वह तुम्हारी दृष्टिपात से उनके सब कार्य नष्ट होंगे ।।४५।। हे सुव्रत ! तुम्हारे उदय होने पर विवाह आदि शुभकार्य होंगे तथा मनुष्यों के सम्पूर्ण धर्मसम्बन्धी कार्य सफल होंगे ।।४६।। सम्पूर्ण नन्दातिथि तुम्हारे संयोग से शुभ होगी, तुम्हारे भक्त बड़े वीर्यवाले तथा अधिक सन्तानवाले होंगे ।।४७।। तुमने यह शुक्रेश नामक ज्योतिर्लिंग स्थापित किया है, जो मनुष्य इसका पूजन करेंगे उनकी सिद्धि होगी ।।४८।। जो मनुष्य रात-दिन व्रत में तत्पर होकर वर्षभर प्रतिक्षण शुक्र के दिन शुक्रकूप में जलक्रिया करेंगे और शुक्रेश शिवजी को पूजेंगे, उनके फल को सुनो, वे मनुष्य निर्बन्ध वीर्यवाले तथा पुत्रवाले, अतिपराक्रमी होंगे ।।५०।। वे सम्पूर्ण मनुष्य मनुषत्व, सौभाग्य सम्पन्न, विद्या को प्राप्त करनेवाले, सुख के भागी होंगे ।।५१।। इस प्रकार वरों को देकर देव देव शिवजी उस पार्थिवलिंग में लय हो गये और शुक्रजी प्रसन्न होकर अपने स्थान को गये ।।५२।। हे व्यासजी ! जिस प्रकार मृत्युंजय नामक विद्या तपोबल से शुक्रजी ने पाई, सो तुमसे कही, अब क्या सुनने की इच्छा है? ।।५३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

पञ्चम युद्धखण्डे मृतसंजीविनीविद्याप्राप्तिवर्णनं नाम पंचाशत्तमोऽध्यायः ।। ५० ।।

*****

इकावनवाँ अध्याय

व्यासजी बोले- हे सनत्कुमारजी ! हे सर्वज्ञ ! आपने प्रीति तथा दया करके शिवजी के अनुग्रहवाली अद्भुत कथा सुनाई ।।१।। अब मैं शिवजी के उस चरित्र को सुनना चाहता हूं, जिस प्रकार प्रीति से शिवजी ने बाणासुर को गणपति किया ।।२।। सनत्कुमारजी बोले- हे व्यासजी ! आप परमात्मा शिवजी की उस कथा को श्रवण करें, जैसे प्रीति से बाणासुर को गाणपत्य प्रदान किया ।।३।। इसी विषय में महाप्रभु शंकरजी का चरित्र तथा बाणासुर के ऊपर अनुग्रह करनेवाले भगवान् शिवजी का कृष्णजी के साथ युद्ध भी है ।।४।। अब मुझसे शिवजी की लीला से युक्त महापवित्र मन और कानों को सुखदायक सुन्दर इतिहास सुनिये ।।५।। ब्रह्माजी के पुत्र, बड़े बुद्धिमान्,

सब पुत्रों में ज्येष्ठ, मरीचि मुनि नामक श्रेष्ठ प्रजापति हुए।।६।। उनके पुत्र महात्मा कश्यपमुनि, सृष्टि को बढ़ानेवाले तथा पिता ब्रह्माजी के अतिभक्त हुए।।७।। हे व्यासजी! उन कश्यपमुनि की सुशील पतिव्रता तेरह स्त्रियां दक्ष की कन्याएँ थीं।।८।। उनमें ज्येष्ठा दिति थी, उसके पुत्र दैत्य हुए और शेष कन्याओं से चर-अचर सहित समस्त देवता उत्पन्न हुए।।९।। पहले ज्येष्ठा दिति स्त्री से दो महाबली पुत्र उत्पन्न हुए, उनमें हिरण्यकशिपु ज्येष्ठ तथा हिरण्याक्ष कनिष्ठ था।।१०।। हिरण्यकशिपु से दैत्यों में ह्लाद, अनुह्लाद, संह्लाद, प्रह्लाद नामक चार पुत्र हुए।।११।। उन चारों में प्रह्लाद विष्णुजी का बड़ा भक्त जितेन्द्रिय हुआ, जिसको नाश करने में कोई दैत्य समर्थ न हुआ।।१२।। प्रह्लाद का पुत्र विरोचन बड़ा दानी हुआ, जिसने ब्राह्मणरूप से मांगते हुए इन्द्र को अपना सिर दे दिया था।।१३।। उनका पुत्र बलि, महादानी, शिवजी का भक्त हुआ, जिसने वामन अवतारधारी विष्णुजी के समस्त पृथ्वी दान कर दी।।१४।। उन बलि का औरस पुत्र बाणासुर, शिवजी का भक्त हुआ, जो माननीय, दाता, बुद्धिमान्, सत्यवादी, सहस्रों को दान देनेवाला था।।१५।। उसने पूर्व शोणित नामवाले नगर में निवास करके अपने बल से त्रिलोकी के राजाओं को जीतकर राज्य किया।।१६।। शिवजी के प्रसाद से सम्पूर्ण देवता उन शिवजी के भक्त हुए बाणासुर के दास हो गये।।१७।। उसके राज्य में देवताओं को छोड़कर कोई प्रजा दुःखी नहीं थी, वे दूसरे धर्म में प्रवृत्त हुए देवता शत्रुभाव से दुःखी थे।।१८।। एक समय उस दैत्य ने सहस्रभुजाओं के वाद्य से तथा ताण्डवनृत्य से शिवजी को प्रसन्न किया।।१९।। भक्तवत्सल शिवजी ने उसके नृत्य से सन्तुष्ट होकर प्रसन्नता से तथा कृपादृष्टि से उसे देखा।।२०।। सब लोकों के स्वामी शरणागतवत्सल, भक्तों की कामना पूर्ण करनेवाले भगवान् शिवजी ने उस बाणासुर दैत्य को वरदान देने की इच्छा करके कहा।।२१।। शिवजी ने जब कहा, तब बलि का पुत्र श्रेष्ठ भक्त बुद्धिमान् बाणासुर शिवजी को प्रणाम कर उनकी स्तुति करने लगा।।२२।। बाणासुर बोला- हे देवों के देव! हे महादेव! हे शरणागतवत्सल! हे महेशान! हे विभो! यदि आप मेरे ऊपर सन्तुष्ट हो।।२३।। तो हे प्रभो! नगर के अधिपति होकर मेरे समीप रहकर मेरी प्रीति करनेवाले तथा मेरी रक्षा करनेवाले होकर पुत्र और गणों के सहित निवास करें।।२४।। सनत्कुमारजी बोले- वह शिवजी की माया से मोहित हुआ बलि का पुत्र बाणासुर मुक्ति के देनेवाले, दुराराध्या निश्चल शिवजी से यह वर मांगने लगा।।२५।। तब भक्तवत्सल शिवजी ने उसे इन वरों को देकर गणों और पुत्रों के सहित प्रीति से वहा निवास किया।।२६।। एक समय उन शिवजी ने बाणासुर के शोणितपुर नामक मनोहर नगर में नदी के तट पर देवताओं तथा दैत्यों के साथ क्रीड़ा की।।२७।। उस समय गन्धर्व, अप्सरायें नाचने और हँसने लगीं, मुनिगण उनको प्रणाम करके पूजने और स्तुति करने तथा जयजयकार करने लगे।।२८।। सब देवता प्रसन्न हुये, ऋषि होम

करने लगे, सब सिद्धगण आ गये और शंकरजी की क्रीड़ा देखने लगे ।।२९।। कुतर्क करनेवाले तथा नष्ट आचारवाले, कुमार्ग पर चलनेवाले, नाश होने लगे, उस समय सब चण्डिकादि देवियां सम्मुख आईं, समस्त भय नष्ट हो गये ।।३०।। शिवजी के भक्तों के सांसारिक दोष दूर हो गये तथा शिवजी के दर्शन करने से सम्पूर्ण प्रजा अतिप्रीति को प्राप्त हो गई ।।३१।। मुनि, सिद्धगण स्त्रियों की अद्‌भुत चेष्टा को देखकर प्रसन्न हो गये और सब ऋतु वहां अपने-अपने प्रभाव को पुष्ट करने लगीं ।।३२।। कोमल पुष्पों की धूलि से व्याप्त पवन चलने लगी, वृक्षों के मदों में तत्पर हुए पक्षियों के समूह शब्द करने लगे ।।३३।। कोयलें पुष्पों के भार से झुके हुए वृक्षों पर, वनों में, बागों में कामोत्पादक मधुर शब्द करने लगीं ।।३४।। उस समय क्रीड़ा के विहार में उन्मत्त हुए बिना जीते कामदेव से देखे हुए शिवजी ने नन्दी से कहा।।३५।। शिवजी बोले- हे नन्दी! तुम यहां से कैलास पर्वत पर जाकर श्रृंगार की हुई पार्वती से मेरा सन्देशा कहकर उसे शीघ्र ले आओ ।।३६।। सनत्कुमारजी बोले- उन नन्दी ने, 'बहुत अच्छा' ऐसी प्रतीज्ञा करके हाथ जोड़कर वेग से गमन किया ।।३७।। नन्दीश्वर बोले- हे देवि! देवों के देव शिवजी सिंगार किये हुए आपको देखना चाहते हैं, मुझे सन्देशा कहकर भेजा है ।।३८।। सनत्कुमारजी बोले- हे मुनिश्रेष्ठ! तब उन नन्दी के वचन से पतिव्रताधर्म में तत्पर हुई वह पार्वतीजी आदर से सुन्दर वेष बनाने लगीं ।।३९।। हे नन्दिन्! मैं आती हूँ, इस प्रकार तुम मेरी आज्ञा से जाकर प्रभु शिवजी से कहो, यह सुनकर मन के समान गतिवाले वे नन्दी शिवजी के समीप गये ।।४०।। तब वे शिवजी फिर नन्दी से बोले- हे तात! फिर जाओ और पार्वती को शीघ्र ले लाओ ।।४१।। 'बहुत अच्छा' ऐसा कहकर वह नन्दी वहां जाकर सुन्दर नेत्रवाली पार्वतीजी से बोला कि- आपके पति मनोहर वेष बनाये हुए, आपको देखना चाहते हैं ।।४२।। हे देवि! शिवजी अनेक प्रकार से विहार करने की प्रतीक्षा कर रहे हैं, इस प्रकार काम से व्याकुल हुए पति के कारण शीघ्र चलें, देर मत करें तथापि पार्वतीजी ने देर की ।।४३।। तब सम्पूर्ण अप्सराओं ने परस्पर सम्मति करके, काम में ग्रसित हुए, पार्वतीजी को शीघ्र देखने में उत्कण्ठित, शिवजी के प्रति विचारा कि ।।४४।। यह कामदेव के शत्रु शिवजी जिस स्त्री को वरण करेंगे, वह स्त्री निश्चय ही समस्त दिव्य स्त्रियों की रानी होगी ।।४५।। हम पार्वतीजी का रूप धारण करके काम के विलासों के संग क्रीड़ा करें, इस समय कामदेव शिवजी को मोहित किये है, तब वे इस प्रकार परस्पर आदर से बोलीं कि, जो स्त्री दाक्षायणी के बिना शंकरजी को स्पर्श करने में समर्थ हो, वह वहां जाए और निःसन्देह शिवजी को मोहित करे ।।४७।। तब कुभाण्ड की पुत्री चित्रलेखा ने शिवजी को स्पर्श करने का उत्साह किया और पार्वतीजी का रूप धारण करके चित्रलेखा ने कहा ।।४८।। चित्रलेखा बोली- पहले परमार्थ से भगवान् विष्णुजी ने दैत्यों को मोहित करने की इच्छा से वैष्णव

योग को आश्रय करके जो मोहिनीरूप धारण किया था, मैं उसी योग से रूप धरती हूँ।।४९।। उस समय उर्वशी ने अपना रूप बदला था, यह देखकर घृताची ने कालिका, विश्वाची ने चण्डिका का, रम्भा ने सावित्री का, मेनका ने गायत्री का, सहजन्या ने जया का, पुंजिकस्थली ने विजया का रूप धरा था।।५०-५१।। तथा अन्य अनेक अप्सराओं ने अन्य अनेक देवियों का रूप अपनी विद्या से यत्नपूर्वक बनाया था।।५२।। तब उन सबों के रूपों को देखकर कुम्भाण्ड की पुत्री (चित्रलेखा) ने अपने वैष्णव योग से सब भाव जानकर अपने रूप को छिपा लिया।।५३।। सुन्दर योग में निपुण हुई ऊषा नामवाली बाणासुर की पुत्री ने पार्वतीजी के सुन्दर रूप को धारण किया।।५४।। उसके चरण लाल कमल के समान अनुपम कान्तिवाले तथा दिव्य लक्षणों से सम्पन्न मन के अभीष्टों को देनेवाले थे।।५५।। उस कन्या के रमण करने के संकल्प को जानकर सब कुछ जाननेवाली, सर्वान्तर्यामिनी पार्वतीजी बोली।।५६।। हे मानिनि! हे सखि! हे ऊषे! समय प्राप्त होने पर काम से तुमने मेरा स्वरूप धारण किया।।५७।। तू इसी कार्तिक मास में ऋतुधर्मवाली होगी और वैशाख शुक्ला द्वादशी को अतिरात बीतने पर।।५८।। व्रत करनेवाली, अन्तःपुर (रनवास) में सोती हुई तुझसे जो कोई मनुष्य भोग करेगा, देवताओं ने उसीको तेरा पति नियत किया है, उसीके साथ तू रमण करेगी।।५९।। कारण कि, तू बाल्यावस्था से निरालस्य विष्णुजी की भक्ता है, 'ऐसा ही हो', यह कहकर वह लज्जित मुख हो बैठ गई।।६०।। तब वह देवी पार्वतीजी कौतुक के भेष से शोभित होकर शिवजी के समीप आकर उनके साथ क्रीड़ा करने लगी।।६१।। हे मुने! उस समय सुरत के पश्चात् भगवान् शिवजी स्त्रियों तथा गणों और देवताओं के सहित अन्तर्धान हो गये।।६२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

पञ्चम युद्धखण्डे ऊषाचरित्रवर्णनं शिवशिवाविहार वर्णनं नामैपंचाशत्तमोऽध्यायः।। ५१ ।।

*****

बावनवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले- परमात्मा शिवजी के भक्तों की दया से मिश्रित तथा परम आनन्द देनेवाले और चरित्र को सुनिये।।१।। एक समय प्रारब्ध के दोष से गर्वित हुए बाणासुर दैत्य ने ताण्डवनृत्य करके शिवजी को सन्तुष्ट किया।।२।। पार्वतीजी के प्रिय शिवजी को सन्तुष्ट मन जानकर वह बाणासुर कन्धों को झुकाकर, अंजलि बाँधकर शिवजी से बोला।।३।। बाणासुर बोला- हे देवों के देव! हे महादेव! हे सर्व देवों के शिरोमणि! आपके प्रसाद से मैं बली हूं, आप मेरा वचन सुनिये।।४।। हे शिवजी!

आपने मुझे सहस्रभुजाएँ दीं, परन्तु वह मुझे भार मात्र हुई हैं, त्रिलोकी में आपके समान कोई योद्धा नहीं है।।५।। हे देव! मैं इन सहस्रभुजाओं से क्या करूं? हे शिवजी! युद्ध के बिना पर्वत के समान इन भुजाओं से क्या लाभ है?।।६।। मैं इन पुष्टभुजाओं की खुजली मिटाने के लिये दिग्गजों से युद्ध करने की अभिलाषा करके गया और नगरा तथा पर्वतों को चूर्ण करने की इच्छा से गया, तो वे डर से भाग गये।।७।। मैंने यम को युद्ध करनेवाला, अग्नि को बड़ा कार्य करता बनाया है, वरुण को गोपाल (गौओं का पालन करनेवाला) किया है।।८।। कुबेर को हाथियों का अध्यक्ष, निवृति को सैरन्ध्री, बालों को संभारनेवाला किया और इन्द्र को जीतकर कर देनेवाला किया है।।९।। अब आप मुझे उस युद्ध का आगमन बताइये, कि जिस युद्ध में मेरी यह भुजाएँ शत्रु के हाथों से प्रहार किये शस्त्र और अस्त्रों से जर्जरीभूत हों।।१०।। हे महेश्वर! यह सहस्र बाहु शत्रुओं के हाथ से गिरें अथवा शत्रुओं को गिरावें, इस मेरे मनोरथ को पूर्ण करें।।११।। सनत्कुमारजी बोले- यह सुनकर भक्तों की बाधा दूर करनेवाले शिवजी क्रोधित होकर बड़ा अट्टहास करके बोले।।१२।। शिवजी बोले- हे अहंकारी! सब दैत्यों के कुल में नीच! तुझे सब प्रकार धिक्कार है, भक्त बलि के पुत्र, तुझे ऐसा वचन कहना उचित नहीं है।।१३।। शीघ्र ही तू इस अहंकार की शान्ति को प्राप्त होगा, मेरे समान किसी बली के साथ अकस्मात् तेरा बड़ा प्रचण्ड युद्ध होगा।।१४।। उसमें पर्वत के समान तेरी भुजाएँ आककाष्ठ के समान शस्त्रों-अस्त्रों से खण्डित होकर भूमि पर गिरेंगी।।१५।। हे दुष्टात्मन्! यह जो तेरी मनुष्य के सिरवाली तथा मोर सहित ध्वजा है, जब इसका पतन होगा।।१६।। तेरे स्थापित शस्त्रों के स्थान में जब वात से उत्पन्न हुआ भय होगा, तब महाघोर युद्ध प्रारम्भ होगा, ऐसा चित्त में।।१७।। विचार कर सम्पूर्ण सेना के सहित घोर संग्राम में जाना, अब उस घर में जा, जहां शिवजी विद्यमान हैं।।१८।। हे दुष्टबुद्धे! वहां उन बड़े घोर उत्पातों को तू देखेगा, यह कहकर, अभिमान का नाश करनेवाले, भक्तों पर दया करनेवाले शिवजी मौन हो गये।।१९।। सनत्कुमारजी बोले- यह सुनकर बाणासुर दिव्य पुष्पों से शिवजी का पूजन और प्रणाम कर अपने घर को गया।।२०।। और कुभाण्ड के पूछने पर हर्षित होकर सब वृत्तान्त कहा, तब वह बाणासुर उत्कण्ठित होकर उस योग को सदा विचारने लगा।।२१।। एक समय दैवयोग से वह बाणासुर उस ध्वजा को स्वयं भग्न हुआ देखकर प्रसन्न होकर युद्ध करने की इच्छा से चला।।२२।। वह अपनी सेना को बुलाकर आठ गणों के सहित, युद्ध सम्बन्धी यज्ञ करके संग्राम के मधु को देखकर।।२३।। सम्पूर्ण दिशाओं में पूर्ण मंगल विचार कर, वह अति उत्साही, बड़ा पराक्रमी, महारथी, बलिपुत्र बाणासुर युद्ध के लिये उद्यत हो गया।।२४।। और हृदय में यह विचारने लगा कि, संग्रामप्रिय अनेक शस्त्र-अस्त्रों में पारगामी योद्धा कहां से आयेगा।।२५।। जो मेरी सहस्र भुजाओं को आक के काष्ठ के

समान काटेगा, मैं युद्ध में महातीव्र शस्त्रों से अनेकों का छेद करूंगा ।।२६।। इसी अन्तर में शिवजी से प्रेरित होकर काल वहां गया, जहाँ वह बाणासुर की पुत्री सुन्दर वेष बनाकर मंगल किये उपस्थित थी ।।२७।। वह वैशाख मास की महारात्रि में विष्णुजी का पूजन करके, स्त्रीभाव (सूरत) में प्राप्त होकर गुप्त अन्तपुर में सो रही थी ।।२८।। तब दिव्यमाया से वशीभूत तथा अनाथ के समान रोती हुई उस कन्या को पार्वतीजी से भेजे हुए कृष्ण के पौत्र ने भोगा ।।२९।। कि उस कन्या को बलात्कार से भोगकर वह पार्वतीजी की सखियों के दिव्ययोग से पलभर में द्वारकापुरी में आ गया ।।३०।। तब दूषित हुई वह उठकर रोने लगी, सखियों को अनेक कुवाक्य कहते शरीर त्यागने को उद्यत हो गई ।।३१।। हे व्यासजी! फिर उसे सखी ने अपने दोष को स्मरण कराया, तो वह पहले वृत्तान्त को स्मरण करने लगी ।।३२।। हे मुने! तब वह बाणासुर की पुत्री ऊषा कुम्भाण्ड की पुत्री चित्रलेखा से मधुरवाणी में बोली ।।३३।। ऊषा बोली- हे सखि! पार्वतीजी से भेजा हुआ वह मेरा गुप्तपति किस उपाय से मुझे प्राप्त हो सकता है? ।।३४।। वह किस कुल में उत्पन्न हुआ है, जिसने मेरा मन हरण किया? इस प्रकार ऊषा का वचन सुनकर सखी चित्रलेखा ने उससे कहा ।।३५।। चित्रलेखा बोली- हे देवि! तूने स्वप्न में जिस पुरुष को देखा है, मैं उसे किस प्रकार लाऊं? वह मेरा जाना हुआ नहीं है ।।३६।। ऐसा चित्रलेखा के कहने पर वह दैत्यकन्या प्रेम में मग्न हो गई, मरने में उद्यत हुई, परन्तु पहले दिन चित्रलेखा ने उसकी रक्षा की ।।३७।। हे मुनिश्रेष्ठ! वह कुम्भाण्ड की पुत्री बुद्धिमती चित्रलेखा फिर बाणासुर की कन्या ऊषा से यह बोली ।।३८।। चित्रलेखा बोली- यदि त्रिलोकी में भी तेरे मन को हरनेवाला पुरुष हो तो बता, उसे लाकर तेरे दुःख को दूर करूं ।।३९।। सनत्कुमारजी बोले- ऐसा कहकर उसने वस्त्र के ऊपर देवता, दैत्य, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, नाग तथा यक्षादिकों का चित्र खींचा ।।४०।। मनुष्यों का, यादवों का, शूर, राम, कृष्ण, प्रद्युम्न तथा मनुष्यों में श्रेष्ठ अनिरुद्धजी का चित्र लिखा ।।४१।। अनिरुद्ध के चित्र को देखते ही उस ऊषा ने लज्जित होकर मुख नीचे कर लिया और मन में अतिप्रसन्न हुई ।।४२।। तब ऊषा बोली- हे सखि! यह पुरुष मैंने पाया, जिसने रात्रि में मेरे चित्तरूपी रत्न को चुराया है ।।४३।। हे भामिनि! जिसके स्पर्श मात्र से ही मैं मोहित हो गई, उसे जानने की इच्छा करती हूं, सो अब सब विवरण कर ।।४४।। कि- यह किसके वंश में उत्पन्न हुआ है? तथा इसका नाम क्या है? ऐसा सुनकर वह योगिनी उसके वंश को कहने लगी ।।४५।। हे मुनिश्रेष्ठ! उसके कुलादि का सब वृत्तान्त सुनकर वह कामिनी बाणासुर की पुत्री उत्कण्ठित होकर इस प्रकार बोली ।।४६।। ऊषा बोली- हे सखि! इसी समय उस पति के प्राप्त होने के निमित्त प्रीति से वह उपाय कर, जिस उपाय से उस प्राणप्रिय (कान्त) पति को प्राप्त करूं ।।४७।। हे सखि! जिस पति के बिना मैं क्षणभर नहीं जी सकती,

हे सखि! किसी यत्न से तू यहां ला और मुझे सुखी कर।।४८।। सनत्कुमारजी बोले– हे मुनिश्रेष्ठ! बाणासुर की कन्या से इस प्रकार कही हुई वह मन्त्री की कन्या चित्रलेखा विस्मित होकर विचार करने लगी।।४९।। तब मन के वेगवाली वह चित्रलेखा अपनी सखी ऊषा से कहकर उन कृष्ण के पौत्र को जान, द्वारका में जाने में उद्यत हो गई।।५०।। ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशी को, तीसरे दिन, प्रातःकाल के समय वह चित्रलेखा द्वारकापुरी में प्राप्त हो गई।।५१।। क्षणमात्र में आकाशमार्ग से वह दिव्य योगिनी वहां पहुँची, तब उसने अन्तःपुर के बाग में प्रद्युम्न के पुत्र 'अनिरुद्ध' को देखा।।५२।। उन्हें स्त्रियों के साथ क्रीडा करते तथा माधवी लताओं के मद्य को पान करते, सर्वांग से सुन्दर, श्यामवर्ण, नवीन यौवनवाले तथा अतिविस्मित हुए पाया।।५३।। तब वह खाटपर स्थित हुए उन अनिरुद्धजी को अन्धकार पटवाले तामस योग में आच्छादन करके।।५४।। उस खाट को अपने मस्तकपर रखकर क्षणमात्र में शोणितपुर में आ गई, जहां बाणासुर की कन्या उपस्थित थी।।५५।। उस समय वह काम से उन्मत्तचित्त होकर अनेक भावों को कर रही थी, उस समय पति को आते हुए देखकर वह भयभीत सी हो गई।।५६।। और अतिगुप्त अन्तःपुर में उस नवीन समागम में जब क्रीडा करना आरम्भ किया, तभी सबों ने जान लिया।।५७।। अन्तःपुर के द्वारपर स्थित हाथों में बेंत धारण करनेवाले द्वारपालों ने इंगित अनुमानों से कन्या के दुःशील को जान लिया।।५८।। और वहां उन्होंने दिव्य शरीरधारी नवयुवक, साहसी, युद्धप्रिय उन अनिरुद्धजी को भी देखा।।५९।। तब उस महावीर कन्या के अन्तःपुर के ड्योढीवानों ने यह सब दृश्य देखकर बलि के पुत्र बाणासुर से कह दिया।।६०।। द्वारपाल बोले– हे देव! न जाने किस पुरुष ने अन्तःपुर में आकर आपकी कन्या का बलात्कार से भोग किया है?।।६१।। हे दैत्यों के स्वामी! हे महाबाहो! वहां चलकर उस पुरुष को देखें, जो कुछ उचित हो सो करें, हम दोषी नहीं हैं।।६२।। सनत्कुमारजी बोले– हे मुनिश्रेष्ठ! ऐसा उनका वचन और कन्या का व्यभिचार सुनकर वह महाबली दैत्येन्द्र बड़ा विस्मित हो गया।।६३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

पञ्चम युद्धखण्डे ऊषाचरित्रवर्णनं नाम द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः।। ५२।।

*****

तिरपनवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले– तब क्रोधित हुए बाणासुर ने वहां जाकर सुन्दर लीला करके शरीर धारण करनेवाले, पूर्व अवस्था में स्थित हुए उन अनिरुद्धजी को देखा ।।१।। उस विस्मित चरित्र को देखकर क्रोध से व्याकुल होकर, युद्ध में चतुर वह दैत्य हँसता हुआ सा यह बोला ।।२।। अहो! यह सुन्दर रूपवाला, साहसी, धैर्यवान्, आसन्न मृत्यु, दुष्टभाग्यवाला, महामूर्ख कौन पुरुष आया है? ।।३।। जिसने मेरी पुत्री को दूषित कर कुल को दूषित किया, उसको तुम सब क्रोधित होकर शीघ्र ही तीव्र शस्त्रों से मार डालो ।।४।। हे वीरो! इस दुराचारी को मारकर वा बांधकर घोर कारागृह में बहुत समय तक बन्द रखो ।।५।। न जाने यह कौन निर्भय, घोर पराक्रमी तथा बुद्धिमान् है? इस प्रकार वह दैत्य सन्देह करने लगा ।।६।। तब पापबुद्धिवाले दैत्य ने उस वीर को मारने के लिये दश सहस्र सेना को आज्ञा दी ।।७।। तब उसकी आज्ञा पाकर वे बली योद्धा 'काटो मारो' ऐसा कहते हुए चारों ओर से शीघ्र ही अन्तःपुर को घेरने लगे ।।८।। उस समय शत्रु की सेना को गर्जती हुई देखकर अनिरुद्धजी गर्ज कर अन्तःपुर के द्वारपर स्थित हो गये, विकट परिघ को ग्रहण करके ।।९।। वज्र हाथ में लेकर काल के समान उस अन्तःपुर के गृह से निकले और उस परिघास्त्र से उन सेवकों को मारकर फिर अन्तःपुर में प्रवेश किया ।।१०।। हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार क्रोध से लाल नेत्रवाले, शिवजी के तेज से बढ़े हुये, उन्होंने दश सहस्र सेना को मारा ।।११।। पीछे लक्ष योद्धाओं का दल नाश हो जानेपर क्रोध से बाणासुर ने युद्ध में प्रवीण मन्त्री कुम्भाण्ड दैत्य को बुलाया ।।१२।। दोनों ओर के द्वन्द्व संग्राम में महाबुद्धिमान् प्रद्युम्न के पुत्र शिवजी के तेज से प्रज्ज्वलित शरीरवाले अनिरुद्धजी रक्षित प्रतीत होने लगे ।।१३।। तब अनिरुद्धजी ने युद्ध में प्राप्त हुए दैत्येन्द्र के खड्ग से ही बाणासुर की दश सहस्र सेना तथा घोड़े रथों का नाश किया ।।१४।। उस दैत्य को मारने के लिये, कालाग्नि के समान शक्ति लेकर अनिरुद्धजी ने उससे उसे मारा ।।१५।। तब उस शक्ति से रथ के ऊपर स्थित वह बाणासुर ताड़ित होकर उसी समय घोड़ों के सहित वहां अन्तर्धान हो गया ।।१६।। बिना पराजित हुए उस दैत्य के अन्तर्धान हो जाने पर अनिरुद्धजी सम्पूर्ण दिशाओं को देखते हुए पर्वत के समान स्थिर रहे ।।१७।। तब कपट बुद्धिवाला वह दैत्य अन्तर्हित होकर उन्हें अनेक शस्त्रों से बारंबार ताडन करने लगा ।।१८।। फिर महाबली, शूरवीर, शिवजी के भक्त उस बलि पुत्र दैत्य ने छल से अनिरुद्धजी को नागपाश से बांधा ।।१९।। उन्हें बांधकर पिंजर में बन्द कर युद्ध से विश्रान्त हुआ वह बाणासुर क्रोधित होकर महाबली, सारथी

के पुत्र से बोला ।।२०।। बाणासुर बोला– हे सूतपुत्र! इस दुष्ट पुरुष का शिर काट डालो, जिस दुरात्मा ने मेरा पवित्र कुल दूषित किया, इस बलात्कार का उसे फल दो ।।२१।। अरे! इसके सम्पूर्ण शरीर को काटकर राक्षसों को दे दो और इसके रुधिर तथा मांस को क्रव्याद (गिद्ध आदि पक्षी) भक्षण करें ।।२२।। हे सूतपुत्र! इस पापी को तृणों से व्याप्त हुए गहरे कूप में डाल दो, बहुत करने से क्या है? यह सब प्रकार मारने के योग्य हैं ।।२३।। सनत्कुमारजी बोले– इस प्रकार उसका वचन सुनकर वह धर्मबुद्धिवाला मन्त्री कुम्भाण्ड दैत्य बाणासुर से बोला ।।२४।। कुम्भाण्ड बोला– हे देव! विचार कर देखें, ऐसा कर्म करना उचित नहीं है, कारण कि इसे मार डालने पर आत्मा का हनन होगा, ऐसी मेरी बुद्धि है ।।२५।। हे देव! यह तो पराक्रम में विष्णुजी के समान तथा शिवजी के तेज से बढ़ाया हुआ दीखता है ।।२६।। और शिवजी के साहस से पुरुषार्थ में भरा हुआ यह इस अवस्था को प्राप्त हुआ है ।।२७।। यह महाबली कृष्ण का पौत्र, शिवजी के प्रसाद से बलात्कार सर्पों से ड़सा हुआ भी हम सबों को तृण के समान समझता है ।।२८।। सनत्कुमारजी बोले– इस प्रकार बाणासुर से कहकर राजनीति जाननेवाला वह दैत्य अनिरुद्धजी से बोला ।।२९।। कुम्भाण्ड बोला– हे वीर! हे दुराचारी! हे मनुष्यों में नीच! तू कौन है, किसका पुत्र है, कौन तुझे यहां लाया? यह सब मेरे सामने सत्य–सत्य कह ।।३०।। और तू हाथ जोड़कर 'मैं हार गया' ऐसे दीन वचन बार–बार कहकर वीर दैत्येन्द्र को नमस्कार कर और स्तुति कर ।।३१।। ऐसा करनेपर तेरा छुटकारा होगा, नहीं तो बन्धनादि होगा, ऐसे उस दैत्य के वचन सुनकर अनिरुद्धजी यह वचन बोले ।।३२।। अनिरुद्धजी बोले– है दैत्य के मित्र! हाथ से दी आजीविका से जीनेवाले! हे निशाचर! हे दुराचारी! हे कुम्भाण्ड! तू शत्रुधर्म को नहीं जानता है ।।३३।। दीन होना तथा युद्ध से भागना शूर को मरने से भी अधिक है, यह प्रतिकूल और शल्य के समान दुःखदायक होता है, ऐसी मेरी मति है ।।३४।। वीरमानी क्षत्रिय का संग्राम के सम्मुख होकर मर जाना श्रेष्ठ है और दीन हो हाथ जोड़ भूमि पर रहना श्रेष्ठ नहीं ।।३५।। सनत्कुमारजी बोले– इस प्रकार अनेक वाक्य उस दैत्य से कहे, यह सुनकर बाणासुर सहित वह कुम्भाण्ड अतिविस्मित होकर क्रोध करने लगा ।।३६।। उसी समय सम्पूर्ण वीर अनिरुद्धजी तथा मन्त्री के आगे उस बाणासुर को समझाने के निमित्त आकाशवाणी हो गई ।।३७।। आकाशवाणी बोली– हे महावीर बाणासुर! हे सुमते! हे शिवभक्त! तुमको क्रोध करना उचित नहीं हैं, विचार करो ।।३८।। शिवजी सबके ईश्वर कर्मों के साक्षी, परमेश्वर हैं, उनके अधीन यह चर–अचर संसार है ।।३९।। वे ही सत्त्वगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी शिवजी, ब्रह्मा, विष्णु, शिवरूप से संसार को उत्पन्न, पालन तथा नाश कर्ता हैं ।।४०।। वे सबके अन्तर्यामी, स्वामी, सबके प्रेरक, सबसे परे, निर्विकार, अविनाशी, नित्य माया के अधिपति, निर्गुण हैं ।।४१।। हे बाणासुर! हे महामते! उनकी

इच्छा से निर्बल को भी बलवान् जानो, ऐसा मन में जानकर सावधान हो ।।४२।। अभिमान का नष्ट करनेवाले, भक्तों का पालन करनेवाले, अनेक लीला करने में चतुर, भगवान् सदाशिवजी अभी तुम्हारा अभिमान नष्ट करेंगे ।।४२।। सनत्कुमारजी बोले– हे महामुने! ऐसा कहकर आकाशवाणी शान्त हो गई, तब उसके वचन सुनकर बाणासुर ने अनिरुद्धजी को नहीं मारा ।।४५।। उसने अपने अन्तःपुर (रनिवास) में जाकर श्रेष्ठ मदिरादि का पान किया और मेरे वाक्य को भूलकर प्रतिकूल बुद्धिवाले ने उस अनिरुद्धजी को बन्द किया ।।४५।। उस समय विष भरे नागपाशों से बंधे प्रिया के बिना अतृप्त चित्तवाले अनिरुद्धजी ने दुर्गादेवी का स्मरण किया ।।४६।। अनिरुद्धजी बोले– हे शरण्ये! हे देवि! हे यशोदे! हे चण्डरोषिणी! मैं बन्धा हूं तथा सर्पों से भस्म हो रहा हूं, आप शीघ्र आइये और मेरी रक्षा करें ।।४७।। हे शिवभक्ते! हे महादेवि! हे शिवे! आप जगत् की सृष्टि, स्थिति, प्रलय करनेवाली हो, आपके बिना कोई रक्षा करनेवाला नहीं है, इस कारण आप मेरी रक्षा करें ।।४८।। सनत्कुमारजी बोले– अनिरुद्धजी से इस प्रकार स्तुति को प्राप्त होकर विदीर्ण हुए अंजन पर्वत के समान कालीजी जेष्ठ कृष्ण चतुर्दशी की घोर रात्रि में प्रकट हो गईं ।।४९।। अपनी बड़ी मुष्टि के प्रहारों से उस पींजरे को तोड़कर तथा उन भयानक सर्परूपी बाणों को भस्म करके अनिरुद्धजी को छुड़ाया और उन्हें अन्तःपुर में प्रवेश कराकर वह दुर्गादेवी वहीं अन्तर्धान हो गईं ।।५१।। हे मुनीश्वर! इस प्रकार अनिरुद्धजी देवी के प्रसाद से तथा शिवजी के भक्ति से दुःख से छूट गये और सुखी होकर निर्द्वन्द्व हो गये ।।५२।। तब अनिरुद्धजी ने शिवजी की भक्ति से विजय पाकर तथा बाणासुर की कन्या को पाकर प्रसन्नता प्राप्त की और वह पानीय पदार्थों का पान कर सुखी हुए और लाल नेत्रवाले वे अनिरुद्धजी अपनी प्रिया बाण की कन्या के साथ पहले के समान विहार करने लगे ।।५३–५४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
पञ्चम युद्धखण्डे अनिरुद्धोषाविहारवर्णनं नाम त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ।। ५३ ।।

*****

चौवनवाँ अध्याय

व्यासजी बोले– हे मुनिश्रेष्ठ! कुम्भाण्ड की पुत्री करके श्रीकृष्णजी के पोते अनिरुद्धजी के चले जानेपर श्रीकृष्णजी ने क्या किया? यह सब कहिये ।।१।। सनत्कुमारजी बोले– हे मुनिसत्तम! अनिरुद्धजी के चले जानेपर उन स्त्रियों के रोने के शब्द को सुनकर श्रीकृष्णजी अति दुःखी हो गये ।।२।। अनिरुद्धजी को बिना देखे उनकी स्त्रियों तथा श्राकृष्णजी को शोक करते हुए वर्षा के चार महीने बीत गये ।।३।। तब नारदजी से उनकी वार्ता तथा बन्ध जाने के समाचार को सुनकर सब यादवगण तथा श्रीकृष्णजी अति दुःखी हो गये ।।४।। श्रीकृष्णजी उस सम्पूर्ण वृत्तान्त को सुनकर युद्ध करने की इच्छा से उसी समय गरुड़जी को बुलाकर शोणितपुर को गये ।।५।। उस समय प्रद्युम्नजी, युयुधान, साम्ब, सारण, नन्द, उपनन्द, भद्र आदि राम–कृष्णादि के अनुवर्ती सब चले ।।६।। हे ऋषियो! बारह अक्षौहिणी सेना के सहित चारों ओर से यादवों ने बाणासुर के नगर को घेर लिया ।।७।। नगर, वन, प्राकार, अटारी, गोपुर आदि को ध्वंस होता देखकर क्रोध से व्याप्त होकर उतनी ही सेना के सहित बाणासुर चला ।।८।। बाणासुर की रक्षा करने के निमित्त भगवान् सदाशिव अपने पुत्र तथा गणों के सहित नन्दी वृषभपर चढ़कर युद्ध करने के लिये गये ।।९।। वहां बाणासुर के रक्षक रुद्र आदि से श्रीकृष्णजी आदि का अति अद्भुत रोमहर्षक युद्ध हुआ ।।१०।। श्रीकृष्णजी और शिवजी का, प्रद्युम्न और गुह का, कूष्माण्ड और कूपकर्ण का बलपूर्वक परस्पर द्वन्द्वयुद्ध होने लगा ।।११।। बाणपुत्र के साथ साम्ब का तथा बाण के साथ सात्यकि का, गरुड़ के साथ नन्दी का, औरों के साथ औरों का युद्ध होने लगा ।।१२।। उस समय ब्रह्माजी आदि देवता तथा मुनि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सराएँ अपने वाहन तथा विमानों से देखने के लिये आये ।।१३।। हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ! रेवती आदि प्रमथों के साथ बड़ा भयानक युद्ध हुआ ।।१४।। भाई बलरामजी तथा बुद्धिमान् प्रद्युम्न के सहित श्रीकृष्णजी ने शिवजी के गणों से बड़ा युद्ध किया ।।१५।। वहां अग्नि, यम, वरुण आदि देवताओं से विमुख त्रिपाद, ज्वर और गुह से युद्ध हुआ ।।१६।। तथा और अनेक गणों से उन यादवों का अति विकट भयंकर रोमहर्षण युद्ध होने लगा ।।१७।। बहुतसी विभीषिकाओं से, कोटरियों से तथा निर्लज्जता से प्रबल स्त्रियों से पद–पद में युद्ध होने लगा ।।१८।। तब श्रीकृष्णजी ने शिवजी के अनुचर भूत, प्रमथ, गुह्यकों को अपने शार्ङ्गधनुष से छोड़े हुए तीक्ष्णाग्र भागवाले बाणों से पीड़ित किया ।।१९।। इस प्रकार युद्ध के उत्साही प्रद्युम्न आदि वीर भी शत्रु की सेना को नाश करते हुए महावीर

युद्ध करने लगे ।।२०।। अपनी सेना को छिन्न-भिन्न देखकर असह्य होकर शिवजी ने क्रोध करके बड़ा गंभीर शब्द किया ।।२१।। यह सुनकर वे शिवजी के गण महाशब्द तथा युद्ध करने लगे तथा शिवजी के तेज से बढ़ाये हुए प्रत्येक योद्धा को चूर्ण करने लगे ।।२२।। तब उन्होंने शार्ङ्गधनुषपर रखकर नाना प्रकार के अस्त्रों को शिवजी के ऊपर प्रहार किया, तब विस्मित न होकर महादेवजी ने प्रत्यक्ष रूप से अस्त्रों को शान्त कर दिया ।।२३।। ब्रह्मास्त्र को ब्रह्मास्त्र से, वायव्यास्त्र को पार्वतास्त्र से, आग्नेयास्त्र को पर्जन्यास्त्र (वारुणास्त्र) से इस प्रकार नारायण के अस्त्रों को अपने अस्त्रों से शान्त किया ।।२४।। प्रत्येक योद्धा से जीती हुई श्रीकृष्णजी की सेना नष्ट होने लगी, हे व्यासजी! वह सेना शिवजी के सम्पूर्ण तेज से युद्ध में न ठहर सकी ।।२५।। हे मुने! अपनी सेना के पलायन करने पर परम तपस्वी श्रीकृष्णजी ने वरुण देवता सम्बन्धी अपने शीतलाख्य ज्वरवाले अस्त्र को छोड़ा ।।२६।। हे मुने! श्रीकृष्णजी की सेना के पलायन करनेपर वह श्रीकृष्णजी का शीतलज्वर दशों दिशाओं को भस्म करता हुआ उन शिवजी के समीप प्राप्त हुआ ।।२७।। उस शीतलज्वर को आया हुआ देखकर महादेवजी ने अपना ज्वर छोड़ा, उस समय शिवजी का ज्वर तथा विष्णुजी का ज्वर यह दोनों परस्पर युद्ध करने लगे ।।२८।। तब उस विष्णुजी के ज्वर ने शिवजी के ज्वर से पीड़ित होकर महाशब्द किया और कहीं अपनी रक्षा न देखकर शिवजी की स्तुति करने लगा ।।२९।। तब विष्णुजी के ज्वर से स्तुति किये हुए, शरणागत वत्सल भगवान् सदाशिवजी शीतज्वर से बोले ।।३०।। शिवजी बोले- हे शीतज्वर! मैं तुझसे प्रसन्न हूं, तुझे मेरे ज्वर से भय न होगा, जो कोई हम दोनों के संवाद को स्मरण करेगा, उसे भी ज्वर से भय न रहेगा ।।३१।। सनत्कुमारजी बोले- ऐसा कहनेपर वह विष्णुजी का ज्वर शिवजी को नमस्कार करके चला गया, इस चरित्र को देखकर श्रीकृष्णजी भयभीत होकर विस्मय करने लगे ।।३२।। प्रद्युम्न के बाणसमूहों से पीड़ित होकर क्रोध करके स्कन्द ने अपनी शक्ति से प्रद्युम्न को आहत किया ।।३३।। तब स्वामी कार्तिकेय की शक्ति से ताड़न किये हुए बलवान् प्रद्युम्न अपने शरीर से रुधिर बहाते हुए संग्राम छोड़कर गये ।।३४।। तथा कुम्भाण्ड और कूपकर्ण के अनेक अस्त्रों से ताड़न किये हुए बलि बलभद्रजी भी युद्ध में स्थित न रह सके ।।३५।। गरुड़जी ने सहस्रों काया रखकर महासागर के जल को पान करके मेघों के समान जल छोड़कर सहस्रों का नाश किया ।।३६।। तब शिवजी के वाहन नन्दी ने गरुड़जी को वेग से सींगों से विदीर्ण किया ।।३७।। सींगों के आघात से आहत शरीर होकर गरुड़जी बड़े विस्मित हो गये और भगवान् को त्यागकर शीघ्र ही संग्राम से चलपड़े ।।३८।। ऐसा चरित्र होनेपर भगवान् श्रीकृष्णजी शिवजी के तेज से विस्मित होकर शीघ्र ही अपने सारथि से यह बोले ।।३९।। श्रीकृष्णजी बोले- हे सारथी! मेरे वचन को सुनो, मेरे रथ को शीघ्र ही

हांको, जिससे मैं महादेवजी के समीप स्थित होकर कुछ वचन कहूं।।४०।। सनत्कुमारजी बोले- इस प्रकार भगवान् के कहने पर वह अपने गुणों में मुख्य दारुक सारथि शीघ्र ही उस रथ को शिवजी के ओर चलाने लगा।।४१।। तब श्रीकृष्णजी ने वहां पहुँचकर हाथ जोड़कर भक्तवत्सल, प्रसन्नमन, शरणागत रक्षक शिवजी से प्रार्थना की।।४२।। श्रीकृष्णजी बोले- हे देवों के देव! हे महादेव! हे शरणागत वत्सल! आप अनन्त शक्तिवाले सबके आत्मरूप परमेश्वर हो, आपको मैं नमस्कार करता हूं।।४३।। संसार की उत्पत्ति, स्थिति, नाश के कारण, सद्ज्ञप्तिमात्र, ब्रह्मलिंग, परमशान्त, केवल परमेश्वर।।४४।। काल, दैव, कर्म जीव, स्वभाव, द्रव्य, क्षेत्र, प्राण, आत्मा, विकार इनके समुदायवाले।।४५।। हे संसार के स्वामिन्! बीजरोह, प्रवाहरूपी यह आपकी माया है, इस कारण आप बन्धनहीन परमेश्वर के शरण में मैं प्राप्त हुआ हूं।।४६।। अनेक भावों को स्वीकार करने से देवता आदि को लीला से संसार में पोषण करते हो तथा बुरे मार्ग में जानेवालों को आप स्वभाव से नाश करते हो।।४७।। आप ही वाङ्मय (शब्दमय) ब्रह्म, परब्रह्म, ज्योतिःस्वरूप हो, जिस निर्मल आत्मा को योगी केवल आकाश के समान देखते हैं।।४८।। आप ही आदिपुरुष, अद्वितीय, तूर्य, आत्मा के नेत्र, ईश, हेतु, अहेतु, विकारी, प्रतीयमान होते हैं।।४९।। हे प्रभो! हे भगवान्! हे महेश्वर! आप अपनी माया से सम्पूर्ण गुणों की प्रसिद्धि के निमित्त सबों से मिले हुये तथा सबसे भिन्न हो रहे हो।।५०।। हे प्रभो! जिस प्रकार सूर्य छायारूपों को तिरस्कार करके अपनी छाया से प्रकाश करता है, उसी प्रकार परम नेत्रवाले आप सर्वत्र प्रकाश कर रहे हैं।।५१।। हे सर्वव्यापक! हे श्रेष्ठ! हे भूमन्! हे शंकर! आप गुणों से बिना ढ़के हुए भी अपने गुणों से समस्त गुणों को दीपक के समान प्रकाशित करते हो।।५२।। आपकी माया से पुत्र, स्त्री, गृह आदि में मोहित हुए मनुष्य संसाररूपी समुद्र में आसक्त होकर डूबते हैं और उछलते हैं।।५३।। जो अजितेन्द्रिय के प्रारब्ध से दिये फल को पानेवाला यह संसार है, ऐसा कहकर आपके चरणों का आदर नहीं करते, वही शोक करने योग्य आत्मा के वंचक हैं।।५४।। हे भगवन्! मैं आपकी आज्ञा से बाणासुर की भुजाओं को छेद करने के लिये आया हूं, अभिमान को नाश करनेवाले आपसे शाप दिया हुआ यह बाणासुर गर्वित हो रहा है।।५५।। हे देव! हे प्रभो! आम संग्राम से लौट जायें, आपका शाप वृथा न हो और आप मुझे बाणासुर को मारने की आज्ञा दें।।५६।। सनत्कुमारजी बोले- श्रीकृष्णजी का ऐसा वचन सुनकर मुनीश्वर, शिवजी श्रीकृष्णजी की स्तुति से प्रसन्न होकर यह बोले।।५७।। शिवजी बोले- हे तात! आपने सत्य कहा, मैंने उस बाणासुर को शाप दिया है, मेरी आज्ञा से आप बाणासुर की भुजाओं को काटने के लिये आये हो।।५८।। हे रमानाथ! हे विष्णो हे वीर! मैं क्या करूं? मैं सदा भक्तों के आधीन हूं, मेरे सम्मुख बाणासुर की

भुजाओं का छेद किस प्रकार होगा? ।।५९।। इस कारण आप मेरी आज्ञा से जृम्भणास्त्र से मुझे जृम्भण(जम्भाईवाला) करो, तब अपना यथेष्ठ कार्य करके सुखी होओ ।।६०।। सनत्कुमारजी बोले– शिवजी के ऐसा कहने पर श्रीकृष्णजी अतिविस्मत हो गये और अपने युद्धस्थान में आकर प्रसन्न हो गये ।।६१।। हे व्यासजी! उस समय अनेक अस्त्रों में कुशल भगवान् श्रीकृष्णजी ने शिवजी के ऊपर शीघ्र ही जृम्भणास्त्र को धनुषपर चढ़ाकर छोड़ा ।।६२।। उस जृम्भणास्त्र से जृम्भित हुए शिवजी को मोहित करके खड्ग, गदा, ऋष्टियों से बाणासुर की भुजाओं का छेद किया ।।६३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
पञ्चम युद्धखण्डे बाणासुररुद्रकृष्णादियुद्धवर्णनं नाम चतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः ।। ५४ ।।

*****

पचवनवाँ अध्याय

व्यासजी बोले– हे मुने! हे सर्वज्ञ! हे ब्रह्मपुत्र! हे सनत्कुमारजी! आपको नमस्कार है, आपने मुझे यह अद्भुत कथा सुनाई ।।१।। युद्ध में श्रीकृष्णजी के जृम्भणास्त्र से शिवजी के मोहित होनेपर दैत्य बाणासुर ने भुजा छेदित होनेपर क्या किया? सो कहिये ।।२।। सूतजी बोले– इस प्रकार अति तेजस्वी उन व्यासजी का वचन सुनकर ब्रह्माजी के पुत्र मुनीश्वर प्रसन्न होकर बोले ।।३।। सनत्कुमारजी बोले– हे बुद्धिमान्! हे व्यासजी! हे तात! संसार मे लीला करनेवाले, श्रीकृष्णजी तथा शिवजी की सुन्दर कथा को सुनिये ।।४।। शिवजी के पुत्रों तथा गणों सहित लीला से सो जानेपर वह दैत्यराज बाणासुर श्रीकृष्णजी के साथ युद्ध करने के लिये आया ।।५।। कुम्भाण्ड मन्त्री से घोड़ा मंगाकर वह महबली दैत्य अनेक शस्त्र-अस्त्रों को धारण करके भयंकर युद्ध करने लगा ।।६।। उस महाबली दैत्येन्द्र बाणासुर ने अपने बल को नष्ट हुआ देखकर सहन न करके (क्रोधित होकर) बड़ा भयानक युद्ध किया ।।७।। उस संग्राम में शिवजी से बड़ा बल पाकर महावीर, श्रीकृष्णजी बाणासुर को तृण के समान मानकर ऊंचे स्वर से गर्जने लगे ।।८।। हे मुनीश्वर! शेष बची हुई शत्रु की सेना को त्रास दिखाकर अपने अद्भुत शार्ङ्ग नामक धनुष की टंकार करने लगे ।।९।। उस धनुष की टणकार से उत्पन्न हुए बड़े शब्द से भूमि और आकाश का मध्यभाग व्याप्त हो गया ।।१०।। उसी समय श्रीकृष्णजी ने क्रोधित होकर धनुष को कानों तक चढ़ाकर बाणासुर के ऊपर सर्पों के समान अनेक बाणों को छोड़ा ।।११।। उस बलिपुत्र बाणासुर ने युद्ध में आकर उन बाणों को आता देखकर अपने धनुष से छोड़े हुए बाणों से

अपने समीप न आनेपर ही काट ड़ाला ।।१२।। फिर वह चारों ओर से शत्रुओं का नाश करता हुआ गर्जने लगा, तब वहां सम्पूर्ण यादव श्रीकृष्णजी का स्मरण करते हुए मूर्च्छित हो गये ।।१३।। अहंकारी महाबली बलि के पुत्र बाण ने शिवजी के चरणकमलों को स्मरण करके अति शूर श्रीकृष्णजी के ऊपर अपने बाण छोड़े ।।१४।। तब महादैत्यों के शत्रु श्रीकृष्णजी ने भी शिवजी के चरणारविन्दों को स्मरण करके उन बाणों दूर से ही काट दिया ।।१५।। संग्राम में बलराम आदि सब यादवों ने क्रोध में व्याकुल होकर प्रत्येक योद्धा को मारा ।।१६।। इस प्रकार वहां उन दोनों बली पुरुषों का बहुत समय तक भयानक युद्ध होता रहा, जो सुननेवालों को भी विस्मय देनेवाला था ।।१७।। संग्राम में उस समय गरुड़जी ने अति क्रोध करके अपने पंखों के प्रहारों से बाणासुर की सब सेना को चूर्ण कर दिया ।।१८।। अपने बल को नाश करनेवाले गरुड़ को देखकर शैवों में श्रेष्ठ, उस बलवान् दैत्य ने उनके ऊपर अति क्रोध किया ।।१९।। और सहस्र भुजावाले दैत्य ने महादेवजी के चरणारविन्दों को स्मरण करके शत्रुओं को असह्य अपना पौरुष दिखाया ।।२०।। वहां वीरों को नष्ट करनेवाले उसने एक साथ श्रीकृष्णादि समस्त यादवों पर तथा गरुड़ के ऊपर पृथक्–पृथक् बाणों का प्रहार किया ।।२१।। हे मुने! उस बलवान् दैत्य ने एक बाण से गरुड़ को, एक बाण से श्रीकृष्णजी को, एक बाण से बलरामजी को, एक बाण से अन्य सबों को ताड़ित किया ।।२२।। उस समय दैत्यों का नाश करनेवाले, बड़े पराक्रमी, विष्णुजी के अवतार रूप, सबके ईश्वर श्रीकृष्णजी उस युद्ध में क्रोधित होकर गर्जना करने लगे ।।२३।। और एक साथ शिवजी को स्मरण करके अतिउग्र पराक्रमवाले उस दैत्य को अपने छोड़े हुए बाणों से ताड़ित किया ।।२४।। और भगवान् श्रीकृष्णजी ने व्याकुल न होकर उसके धनुष आदि को शीघ्र ही काट दिया और उसके घोड़ों को अपने बाणों से मारकर गिरा दिया ।।२५।। महावीर बाणासुर अतिक्रोध करके गर्जा और उसने अपनी गदा से श्रीकृष्णजी को ताड़न किया, जिससे वे महात्मा पृथ्वी पर गिर पड़े ।।२६।। हे देवर्षि! तब श्रीकृष्णजी ने लोक में लीला करने के कारण शीघ्र ही भूमि से उठकर शस्त्र लेकर उस शिवभक्त शत्रु के साथ युद्ध किया ।।२७।। इस प्रकार उन दोनों में बहुत समय तक बड़ा संग्राम होता रहा, भगवान् श्रीकृष्णजी शिवरूप तथा वह बली बाणासुर शिवजी के भक्तों में श्रेष्ठ था ।।२८।। मुनीश्वर वीर श्रीकृष्णजी ने बहुत देर तक बाणासुर के साथ युद्ध करके फिर शिवजी की आज्ञा से बल प्राप्त करके अति क्रोध किया ।।२९।। तब शत्रुओं के वीरों का नाश करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णजी ने शिवजी की आज्ञा से शीघ्र ही अपने सुदर्शनचक्र से बाणासुर की भुजाओं को छेद डाला ।।३०।। उस समय उसकी श्रेष्ठ चार भुजायें शेष रह गईं और भगवान् श्रीकृष्णजी शिवजी के प्रसाद से निर्द्वन्द्व हो गये ।।३१।। जिस समय बाणासुर शिवजी के स्मरण से हीन हुआ, तभी

वीरता को प्राप्त हुए श्रीकृष्णजी उसका सिर काटने के लिये उद्यत हो गये, उस समय शिवजी उठकर बोले ।।३२।। शिवजी बोले– हे भगवन्! हे देवकी के पुत्र! मैंने पहले जो आपको आज्ञा दी थी, सो हे वीर! मेरी आज्ञा के पालक आपने वह सब कार्य पूर्ण किया ।।३३।। अब आप बाणासुर के सिर को मत काटो, मेरी आज्ञा से अपने सुदर्शनचक्र को लौटा लो, मेरे भक्त के ऊपर सदा यह चक्र निष्फल होगा ।।३४।। हे गोविन्द! संग्राम में मैंने आपको यह अनिवार्य सुदर्शनचक्र दिया है, इस कारण इस चक्र को संग्राम में लौटाओ ।।३५।। हे लक्ष्मीश! पहले आपने यह सुदर्शनचक्र दधीच, वीर रावण तथा तारका आदि के ऊपर मेरी आज्ञा के बिना नहीं छोड़ा था ।।३६।। हे जनार्दन! आप तो साक्षात् परमात्मा योगीश्वर हो, समस्त प्राणियों के हित में तत्पर होकर यह अपने मत से विचारो ।।३७।। मैंने इसे यह वर दिया है कि, तुझे मृत्यु का भय न होगा, सो मेरा यह वचन सदा सत्य होगा, मैं आपसे सन्तुष्ट हूं ।।३८।। हे हर! पहले इसने भुजाओं को खुजाकर अपनी गति को भूलकर गर्वित होकर मुझसे यह वर मांगा, कि मुझे युद्ध दो ।।३९।। तब मैंने उसे शाप दिया, कि थोड़े ही समय में कोई तेरी भुजाओं को काटनेवाला आयेगा, तब तू अभिमान रहित होगा ।।४०।। मेरी आज्ञा से तेरी भुजाओं का छेद करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णजी प्राप्त हुये, इस कारण अब तुम संग्राम में लौटकर सुन्दर वधू के सहित अपने स्थान को जाओ ।।४१।। ऐसा कहकर शिवजी ने उन दोनों की मित्रता कराके उनको आज्ञा देकर अपने गणों तथा पुत्रों के सहित अपने लोक को गमन किया ।।४२।। सनत्कुमारजी बोले– इस प्रकार भगवान् शिवजी के वचन सुनकर अपने सुदर्शनचक्र को हरण करके अक्षत शरीर विजय पानेवाले श्रीकृष्णजी ने अन्तःपुर में प्रवेश किया ।।४३।। भार्या सहित अनिरुद्ध को आश्वासन देकर बाणासुर से प्रदान किये हुए अनेक रत्नसमुदाय को ग्रहण कर ।।४४।। उसकी सखी परमयोगिनी चित्रलेखा को लेकर शिवजी की आज्ञा से कृतकृत्य हुए श्रीकृष्णजी अति प्रसन्न हो गये ।।४५।। तब श्रीकृष्णजी अपने चित्त से शिवजी को प्रणाम करके बाणासुर से बिदा लेकर कुटुम्ब सहित अपने नगर को गये ।।४६।। मार्ग में प्रतिकूल हुए वरुण को अनेक प्रकार से जीतकर आनन्द सहित द्वारकापुरी में आये ।।४७।। उस समय गरुड़जी को विसर्जन कर अपने मित्रों से हास्यपूर्वक संभाषण करते द्वारकापुरी को देखकर इच्छानुसार भ्रमण करने लगे ।।४८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
पञ्चम युद्धखण्डे बाणभुजकृन्तनगर्वापहारवर्णनं नाम पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ।। ५५ ।।

*****

छप्पनवाँ अध्याय

नारदजी बोले- हे महामुने! भार्या के सहित अनिरुद्धजी के तथा श्रीकृष्णजी के द्वारकापुरी में चले जाने पर फिर बाणासुर ने क्या किया? सो आप यथार्थ रूप से कहिये ।।१।। सनत्कुमारजी बोले- भार्या सहित अनिरुद्धजी तथा श्रीकृष्णजी के द्वारका जाने पर बाणासुर अपने मन से अपने अज्ञान को स्मरण कर अतीव दुःखी हुआ ।।२।। तब शिवजी के गण नन्दी ने दुःखी हुए, रुधिर से भीजे शरीरवाले, सन्ताप करते हुए बाणासुर दैत्य से कहा ।।३।। नन्दीश्वर बोले- हे शिवजी के भक्त बाणासुर! तुम दुःख मत करो, भगवान् शिवजी भक्तों के ऊपर दया करनेवाले भक्तवत्सल नामधारी हैं ।।४।। हे भक्तों में श्रेष्ठ! उनकी इच्छा से जो कुछ हुआ, ऐसा चित्त से मानकर बारंबार शिवजी का स्मरण करो ।।५।। उन शिवजी में मन लगाकर नित्य भक्तों पर दया करनेवाले महादेवजी का बारंबार उत्सव करो ।।६।। तब द्वेष से शून्य हुआ वह बाण दैत्य नन्दी के वचन से महोत्साह करते हुए धैर्य धारण करके शिवजी के स्थान को गया ।।७।। वहां जाकर प्रभु को नमस्कार करके अति व्याकुल होकर गर्व के लेश से शून्य हुआ, प्रेम से पूर्णमन होकर बाणासुर रोने लगा ।।८।। अनेक स्तोत्रों तथा स्तुतियों से नमस्कार करता हुआ, यथोचित चरण न्यास कर हाथों को चलाता हुआ ।।९।। अनेक प्रकार के आलीढ़ आदि स्थानों तथा प्रत्येक आलीढ़ादि से शोभित होकर ताण्डवनृत्य करने लगा ।।१०।। सहस्रों मुखों के बाजाओं को बजाने, भौं चलाने, सिर के कंपाने तथा सहस्रों प्रकार के अंग चलाकर ।।११।। शनैः-शनैः अनेक प्रकार के नृत्यों को दिखाकर रुधिर की धाराओं से भूमि को सींचकर ।।१२।। उस महाभक्त, अपनी गति तथा अहंकार से भूले हुए उस बाणासुर ने चन्द्रशेखर शिवजी को प्रसन्न किया ।।१३।। तब भक्तवत्सल, नृत्य-गीत में प्रिय, भगवान् शिवजी प्रसन्न होकर सुन्दर नृत्य करनेवाले बाणासुर से यह बोले ।।१४।। शिवजी बोले- हे तात! हे बलि के पुत्र! हे दैत्येन्द्र! मैं तुम्हारे इस नृत्य से प्रसन्न हूं, तेरे मन में हो सो वरदान मांगो ।।१५।। सनत्कुमारजी बोले- हे मुने! तब ऐसे शिवजी के वचन सुनकर उस दैत्येन्द्र बाणासुर ने, अपने घाव के भरने के निमित्त वर मांगा ।।१६।। बाहुओं के युद्ध की क्षमा तथा अक्षय गणपति का भाव तथा उस शोणित नामक नगर में ऊषा के पुत्र का राज्य मांगा ।।१७।। ज्ञानियों से, देवताओं से तथा विशेष कर विष्णुजी से निर्वैरता, रजोगुण-तमोगुण से युक्त दुष्ट दैत्यता का विनाश मांगा ।।१८।। हे मुने! विशेष कर शिवजी की निर्विकार भक्ति, शिवजी के भक्तों में स्नेह तथा समस्त प्राणियों में दया ।।१९।। उस बलिपुत्र बाण दैत्य ने यह सब वर शिवजी से मांगे और प्रेम से नेत्रों में आंसू भरकर हाथ जोड़कर शिवजी को सन्तुष्ट किया ।।२०।।

बाणासुर बोला– हे देवों के देव! हे महादेव! हे शरणागत वत्सल! हे महेश्वर! हे दीनबन्धो! हे दयानिधे ! मैं आपको नमस्कार करता हूं ।।२१।। हे शंकर! हे कृपासागर! हे प्रभो! आपने मुझ पर बड़ी कृपा की, आपने प्रसन्न होकर मेरा गर्व नष्ट किया ।।२२।। आप ब्रह्म, परमात्मा हों, सर्वव्यापी, अखिलेश्वर, ब्रह्माण्डरूपी शरीरवाले, विराट्, सबों में व्याप्त, सब से परे हों ।।२३।। हे प्रभो! आपकी नाभि आकाश, अग्नि मुख, जल वीर्य है, दिशायें कान हैं, द्युलोक मस्तक है, पृथ्वी चरण हैं, चन्द्रमा मन है ।।२४।। सूर्य नेत्र हैं, ऋद्धि पेट है, इन्द्र भुजायें हैं, ब्रह्मा बुद्धि, प्रजापति विसर्ग (दान) हैं तथा धर्म आपका हृदय है ।।२५।। हे नाथ! आपके रोम औषधि हैं, आपके केश मेघ हैं, तीनों गुण आपके तीनों नेत्र हैं, आप सर्वात्मा पुरुष हो ।।२६।। आपका मुख ब्राह्मण है, क्षत्रिय भुजा हैं, वैश्य जंघा हैं, चरणों में उत्पन्न शूद्र है ।।२७।। हे महेश्वर! आप ही नित्य समस्त जीवों की उपासना करने योग्य हों, मनुष्य आपको भजकर निश्चय ही परम मुक्ति को पाते हैं ।।२८।। जो पुरुष आत्मा के प्रिय ईश्वर आपका त्याग करके विपरीत इन्द्रियों के विषयों में लगे रहते हैं, मानो वह अमृत को छोड़कर विष खाते हैं ।।२९।। विष्णुजी, ब्रह्माजी, निर्मल आशयवाले पण्डित, मुनि, आप प्रिय ईश्वर को सब आत्मा से प्राप्त होते हैं ।।३०।। सनत्कुमारजी बोले– ऐसा कहकर वह बाणासुर प्रेम से प्रफुल्लित अंग होकर शिवजी को प्रणाम करके मौन हो गया ।।३१।। अपने भक्त बाणासुर का ऐसा वचन सुनकर भगवान् सदाशिवजी ''तुम सब वरों को प्राप्त करोगे'' ऐसा कहकर वहां ही अन्तर्धान हो गये ।।३२।। तब शिवजी के प्रसाद से महाकालत्व को प्राप्त होकर वह शिवजी का अनुचर बाणासुर बड़ा प्रसन्न हुआ ।।३३।। यह सब गुरुजनों के गुरु, शूलपाणि, समस्त पृथ्वी के मध्य में क्रीड़ा करनेवाले, कानों के सुखदायक शिवजी के तथा बाण के सुन्दर वृत्तान्त को आपसे वर्णन किया ।।३४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

पञ्चम युद्धखण्डे बाणासुरगाणपत्यप्राप्तिवर्णनं नाम षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ।। ५६ ।।

*****

सत्तावनवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले– हे व्यासजी! शिवजी के चरित्र को प्रेम से सुनिये, जिस प्रकार महादेवजी ने दानवेन्द्र गजासुर को त्रिशूल से मारा ।।१।। देवताओं के हित के निमित्त युद्ध में देवी ने जब महिषासुर को मारा और देवता सुख से अपने–अपने स्थानों को चले गये ।।२।। हे मुनीश्वर! देवताओं की प्रार्थना से किये हुए पिता के वध को स्मरण करके उसका पुत्र महावीर गजासुर ।।३।। उस बैर को लेने के लिये तप करने

को वन में गया और ब्रह्माजी के उद्देश्य से प्रीतिपूर्वक बड़ा तप करने लगा।।४।। मैं काम से वशीभूत हुए, स्त्री तथा पुरुषों से अवध्य हूं, ऐसा मन में विचार के तप में तत्पर हुआ।।५।। तब वह हिमालय पर्वत की गुफा में भुजाओं को ऊपर की ओर उठाकर, आकाश में दृष्टि लगाकर, पैर के अंगूठे से पृथ्वीपर खड़े होकर परम दारुण तप करने लगा।।६।। वह बड़ा बुद्धिमान् महिषासुर का पुत्र गजासुर जटाओं के भार सहित कान्ति से प्रलय के सूर्य के समान प्रकाशित हुआ।।७।। उसके मस्तक से उत्पन्न हुई तपोमय धूपाग्नि, तिरछे, ऊपर तथा नीचे के लोकों को चारों ओर से संसार को तपाने लगी।।८।। मस्तक से प्रकट हुई अग्नि से नदी समुद्र सूख गये, ग्रहों सहित तारे गिरने लगे तथा दशों दिशाएं प्रज्ज्वलित हुईं।।९।। उस अग्नि से तप्त हुए समस्त इन्द्रादि देवता स्वर्गलोक को त्याग कर ब्रह्मलोक को गये और ब्रह्माजी से कहने लगे कि, समस्त पृथ्वी चलायमान हुई।।१०।। देवता बोले– हे ब्रह्माजी! गजासुर के तप से दुःखी हुए हम व्याकुल हैं, स्वर्ग में स्थित होने में समर्थ नहीं हैं, इस कारण आपकी शरण में आये हैं।।११।। आप कृपा करके औरों के प्राण रखने के निमित्त उस दैत्य की शान्ति कीजिये, नहीं तो सम्पूर्ण लोक नष्ट हो जायँगे, यह हम सत्य–सत्य कहते हैं।।१२।। इस प्रकार इन्द्र आदि-देवताओं तथा भृगु, दक्ष आदि से प्रार्थना किये हुए ब्रह्माजी दैत्य के आश्रम को गये।।१३।। जिस प्रकार आकाश में मेघों की घटा हो, उसी प्रकार उसके तप से लोकों को तपाता हुआ देखकर विस्मित हुए ब्रह्माजी हँसकर बोले।।१४।। ब्रह्माजी बोले– हे दैत्येन्द्र! हे गजासुर! हे तात! उठ, उठ, तेरा तप सिद्ध हुआ, मैं तुझे वर देने आया हूं, अपनी इच्छा के अनुकूल वर मांग।।१५।। सनत्कुमारजी बोले– वह दैत्येन्द्र गजासुर उठकर अपने नेत्रों से विभु ब्रह्माजी को देखकर गद्गद वाणी से उनसे बोला।।१६।। गजासुर बोला– हे देव देवेश! आपको नमस्कार है, यदि आप मुझे वर देते हैं, तो काम से वशीभूत किये हुए स्त्री–पुरुषों से मैं अवध्य होऊं।।१७।। हे विभो! महाबलवान्, महावीर्यवान्, सदा देवादिकों से अजय सम्पूर्ण लोकपालों की समस्त सम्पत्ति को भोगनेवाला होऊं।।१८।। सनत्कुमारजी बोले– इस प्रकार उस दैत्य से वरण किये हुए ब्रह्माजी ने उसके तप से प्रसन्न होकर अति दुर्लभ वरदान दिया।।१९।। इस प्रकार वह महिषासुर का पुत्र गजासुर वर पाकर अति प्रसन्न होकर अपने स्थान को गया।।२०।। उस दैत्य ने सम्पूर्ण दिशाओं को, तीनों लोकों को, देवता, असुर, मनुष्य, इन्द्र, गन्धर्व, गरुड़, सर्पों को जीतकर।।२०।। सबों को अपने वश में किया, फिर संसार को जीतनेवाले दैत्य ने आठों लोकपालों के स्थानों के उनके तेज सहित हरण किया।।२१।। उसने देवोद्यान (नन्दनवन) से शोभायमान साक्षात् विश्वकर्माजी से निर्माण किये स्वर्गस्थित महेन्द्रगृह में निवास किया।।२३।। उस महाबली, महामनवाले, लोकों को जीतनेवाले ने पीड़ित किये

देवताओं से अपने दोनों चरणों में प्रणाम कराया और प्रचण्ड आज्ञा देकर महेन्द्र के उस घर में क्रीड़ा करने लगा ।।२४।। इस प्रकार जीती हुई दिशाओं का एक मात्र स्वामी जितेन्द्रिय वह दैत्य प्रिय विषयों को लोलुपता से भोगता हुआ तृप्त न हुआ ।।२५।। इस प्रकार ऐश्वर्यवान्, अहंकारी, शास्त्रों को उल्लंघन करनेवाले उस दैत्य को बहुत समय बीतने पर पाप बुद्धि उदय हुई ।।२६।। तथा वह देवताओं को पीड़ा देनेवाला महिषासुर का पुत्र पृथ्वीपर तपस्वी ब्राह्मणों को अति क्लेश देने लगा ।।२७।। वह दुष्ट पहले बैर को स्मरण करके देवताओं को, मनुष्यों को, गणों को, विशेष कर धर्मात्माओं को अति क्लेश देने लगा ।।२८।। हे तात! एक समय यह महाबली गजासुर दैत्य शिवजी की राजधानी को गया ।।२९।। हे मुने! उस समय दैत्येन्द्र के आनेपर नन्दनवन में निवास करनेवालों का, 'रक्षा करो, रक्षा करो' ऐसा बड़ा शब्द होने लगा ।।३०।। जिस समय अपने वीर्य और मद से उन्मत्त हुआ महिषासुर का पुत्र (गजासुर) सब देवगणों को पीड़ा देता हुआ कशी नगरी में आया ।।३१।। उसी समय गजासुर से पराजित हुए इन्द्रादि सब देवता शिवजी के शरण में गये और उन्होंने आदर से प्रणाम करके स्तुति की ।।३२।। और उस दैत्य का काशी में आना तथा विशेष कर वहां रहनेवाले उनके नाथों का अति दुःख भी निवेदन किया ।।३३।। देवता बोले– हे देवों के देव! हे कृपानिधे! हे महादेव! आपकी (काशी) नगरी में प्राप्त हुआ दैत्य आपके भक्त पुरुषों को कष्ट देता है ।।३४।। इस कारण आप उसे मारें, वह भूमि पर जहां-जहां चरण धरता है, वहां अचल हुई पृथ्वी को अपने भार से चलायमान करता है ।।३५।। उसके जंघा के वेग से वृक्ष गिरते हैं, भुजादण्ड के आघात से शिखरों सहित पर्वत चूर्ण होते हैं ।।३६।। जिसके मुकुट के संघर्ष से मेघ आकाश को त्याग करते हैं और उसके बालों के सम्पर्क से उत्पन्न हुए नीलेपन को अब तक भी नहीं छोड़ते ।।३७।। जिसके विश्वास के भारों से ऊंची तरंगोंवाले महासागर तथा नदियां भी जलजन्तुओं के सहित बड़ी किलोल करती हैं ।।३८।। जिसके शरीर की ऊंचाई नौ सहस्र योजन माया से हो जाती है तथा उस मायावी दैत्य का विस्तार (चौड़ाई का घेरा) भी उतना ही हो जाता है ।।३९।। जिसके नेत्रों की पीतता तथा चंचलता को बिजली भी नहीं धारण कर सकती, वही दैत्य बड़े वेग से यहां आ गया है ।।४०।। वह असह्य दैत्य जिस-जिस दिशा को जाता है, काम से जीते हुए स्त्री-पुरुषों से मैं अवध्य हूं, ऐसा कहकर भय दिखाता है ।।४१।। हे देवताओं के स्वामी! इसी प्रकार उस दैत्य की चेष्टा आपसे निवेदन की, आप काशी की रक्षा में तत्पर हों, आप भक्तों की रक्षा करें ।।४२।। सनत्कुमारजी बोले– इस प्रकार देवताओं द्वारा प्रार्थना करने पर, शिवजी उस दैत्य के वध की कामना से बड़ी शीघ्रता से काशी में आये ।।४३।। त्रिशूल हाथ में लेकर गर्जते हुए उन भक्तवत्सल शिवजी को देखकर वह गजासुर गर्जने लगा ।।४४।। तब अति शब्द करते हुए उन दोनों का अनेक

अस्त्र तथा शस्त्रों के सन्तापों से दारुण युद्ध हुआ ।।४५।। तब अति तेजस्वी महाबली गजासुर ने दैत्यों का विनाश करनेवाले शिवजी को तीव्र बाणों से ताड़ित किया ।।४६।। हे मुने! उस समय भयंकर शरीरवाले शिवजी ने अपने अति तीव्र बाणों से समीप न आते-आते तिल के समान उसके बाणों को काट डाला ।।४७।। तब खड्ग हाथ में लेकर 'अब तुमको मारता हूं' इस प्रकार ऊँचे स्वर से गर्जकर क्रोधित हुआ गजासुर शिवजी के ऊपर दौड़ा ।।४८।। तब त्रिशूलधारी शिवजी ने उस दैत्य को आता हुआ देखकर तथा अन्य किसीसे न मारने योग्य जानकर उसे अपने त्रिशूल से मारा ।।४९।। त्रिशूल से छेदित हुआ वह गजासुर दैत्य अपने को शिवजी का छत्ररूप मानता हुआ शिवजी को स्मरण करने लगा ।।५०।। गजासुर बोला- हे देव देव! हे महादेव त्रिशूलिन्! हे देवताओं के स्वामी! सब प्रकार में मैं आपका भक्त हूं, मैं, कामदेव का नाश करनेवाले आपको ही जानता हूँ ।।५१।। हे महेशान! हे त्रिपुरासुर का नाश करनेवाले! हे सर्वव्यापी अन्धकार। आपके हाथों से मेरा वध कल्याणकारी हुआ ।।५२।। हे कृपालो! हे मृत्यु को जीतनेवाले! मैं कुछ जताना चाहता हूं, वह सुनिये, सत्य ही कहूंगा, असत्य नहीं कहूंगा, सो आप विचार कर देखें ।।५३।। संसार में आप ही एक मात्र वन्दना के योग्य हो, तथा संसार के ऊपर स्थित हों। काल से तो सब को मरना है, परन्तु ऐसी मृत्यु कल्याण के निमित्त होती है ।।५४।। सनत्कुमारजी बोले- इस प्रकार उसका वचन सुनकर दया के सागर शिवजी हँसकर महिषासुर के पुत्र गजासुर से बोले ।।५५।। ईश्वर बोले- हे महापराक्रमी! हे दानवोत्तम! हे श्रेष्ठ मतिवाले! हे गजासुर! मैं तुझ पर प्रसन्न हूं, अपने इच्छित वर को मांग ।।५६।। सनत्कुमारजी बोले- वर देनेवाले शिवजी का ऐसा वचन सुनकर दैत्यों का स्वामी गजासुर प्रसन्न होकर इस प्रकार बोला ।।५७।। हे महेशान! हे दिगम्बर! यदि आप प्रसन्न हों, तो अपने त्रिशूल की अग्नि से पवित्र हुई मेरी इस देह के चर्म को अपना आच्छादन करें ।।५८।। अपने प्रमाणवाली, कोमल स्पर्शवाली, युद्ध में समर्पित हुई, देखने योग्य, महादिव्य, निरन्तर सुखदायक ऐसी मेरी खाल को धारण करें ।।५९।। यह मेरी चर्म सदा सुगन्धयुक्त, अति कोमल, सदा निर्मल तथा अति शोभायमान हो ।।६०।। हे सर्वव्यापक! बड़ी घाम तथा अग्नि की लपट को बहुत देर तक प्राप्त होकर भी पवित्र सुगन्धिवाली मेरी यह देहचर्म भस्म न हो ।।६१।। हे दिगम्बर! यदि मेरी यह चर्म पुण्यवाली नहीं थी, तो आपके साथ युद्धस्थल में किस प्रकार इसका संग हुआ? ।।६२।। हे शिवजी! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हों, तो अन्य वर मुझे दीजिये की, आज से आपका नाम कृत्तिवास हो ।।६३।। सनत्कुमारजी बोले- ऐसा उस दैत्य का वचन सुनकर भक्तवत्सल शिवजी अति प्रसन्न होकर भक्ति से निर्मल मनवाले उस गजासुर दैत्य से बोले ।।६४-६५।। शिवजी बोले- मुक्ति के साधन इस क्षेत्र में यह तेरा पवित्र

शरीर सबों को मुक्तिदायक ऐसा मेरा ज्योतिर्लिंग होगा।।६६।। महापापों का नाश करनेवाला, समस्त पार्थिवलिंगों में शिरोभूत, मुक्ति का देनेवाला, कृत्तिवासेश्वर नामक ज्योतिर्लिंग यहां स्थापित होगा।।६७।। ऐसा कहकर उन दिगम्बर, देवों के स्वामी, शिवजी ने उस गजासुर की विस्तृत चर्म को ग्रहण करके अपना आच्छादन किया।।६८।। हे मुनीश्वर! उस दिन महामहोत्सव हुआ, काशी निवासी सब मनुष्य तथा प्रमथ प्रसन्न हुए।।६९।। उस समय हर्षपूर्ण मनवाले विष्णुजी, ब्रह्माजी आदि देवताओं ने हाथ बांधकर उन शिवजी को नमस्कार करके स्तुति पढ़ी।।७०।। दानवों के स्वामी, महिषासुर के पुत्र उस गजासुर के मर जानेपर देवताओं ने अपने स्थान को पाया और संसार स्वस्थता को प्राप्त हुआ।।७१।। यह भक्तोंपर दया सूचक स्वर्ग, कीर्ति, आयु का देनेवाला, धन-धान्य को बढ़ानेवाला, शिवजी का चरित्र कहा।।७२।। जो मनुष्य इस इतिहास को पवित्रता के साथ प्रीति से सुनता है, अथवा सुनाता है, वह बड़ा सुख पाकर मोक्ष को पाता है।।७३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां

पञ्चम युद्धखण्डे गजासुरवधो नाम सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ।। ५७ ।।

*****

अठावनवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले- हे व्यासजी! सुनिये, मैं शिवजी के चरित्र को कहता हूं, कि जिस प्रकार महादेवजी ने दिति के पुत्र दून्दुभिनिर्ह्लाद को मारा।।१।। समय पाकर भगवान् विष्णुजी से दिती के पुत्र महाबली हिरण्याक्ष दैत्य के मारनेपर दिति को बड़ा दुःख हुआ।।२।। तब देवताओं को दुःख देनेवाले प्रह्लाद के मामा दून्दुभिनिर्ह्लाद नामक दुष्ट दैत्य ने दुःखी होकर दुःखी हुई दिति को आश्वासन वाक्यों से शान्त किया।।३।। तब उस छली दैत्यराज दून्दुभिनिर्ह्लाद ने दिति को धैर्य देकर किस प्रकार देवताओं को सुगमता से जीता जाए, ऐसा उपाय विचारा।।४।। इन्द्र सहित विष्णुजी ने छल में तत्पर होकर देवताओं के बैरी हिरणाक्ष को मारा है।।५।। उन देवताओं का क्या बल, क्या आहार और क्या आधार है? मैं उनको कैसे जीतूंगा? इस प्रकार उपाय सोचने लगा।।६।। ऐसा बहुत विचार के, निश्चित तत्त्व को जानकर इस विषय में ब्राह्मण ही आदि कारण हैं, यह उसने विचारा।।७।। तब देवताओं के शत्रु महादुष्ट दून्दुभिनिर्ह्लाद दैत्य ने बारंबार ब्राह्मणों को मारने की इच्छा की।।८।। कारण कि, देवता याग के भोजी हैं, यज्ञ वेदों से उत्पन्न हैं, वे वेद ब्राह्मण के आधार में हैं, इसमें ब्राह्मण ही देवताओं का बल है।।९।। सम्पूर्ण वेद तथा इन्द्रादि देवता ब्राह्मणों के आधार और

बलवाले हैं, यह निश्चित है, इसमें कुछ विचार करना उचित नहीं है ।।१०।। यदि ब्राह्मण नष्ट हो जायें तो वेद स्वयं नष्ट होंगे, उन वेदों के नष्ट हो जाने से देवता स्वयं नष्ट हो जायंगे ।।११।। यज्ञों के नष्ट हो जाने से देवता भोजन से रहित होकर निर्बल हो जाने से सुगमता से जीते जायेंगे और देवताओं को जीतने पर ।।१२।। मैं ही तीनों लोकों में माननीय हो जाऊंगा, तथा देवताओं की अक्षय सम्पत्ति को हरण करूंगा ।।१३।। और निष्कण्टक राज्य करके सुख भोगूंगा, ऐसा निश्चय करके वह दुर्बुद्धि खल फिर विचारने लगा ।।१४।। कि ब्रह्मतेज से युक्त वेदों के अध्ययन करनेवाले, तप और बल से पूर्ण हुये अधिक ब्राह्मण कहां हैं? ।।१५।। बहुत से ब्राह्मणों का स्थान निश्चय ही काशीपुरी है, पहले उसे ही जीतकर फिर दूसरे तीर्थों में जाऊंगा ।।१६।। फिर जिन–जिन तीर्थों में तथा आश्रमों में, जो ब्राह्मण है उन सबको भक्षण कर जाऊंगा ।।१७।। ऐसी अपने कुल के योग्य मति ठानकर वह दुराचारी, छली दून्दुभिनिर्ह्लाद नामक दैत्य काशी में आकर ब्राह्मणों को मारने लगा ।।१८।। समिधा ता कुशाओं को लाने के लिये जहां ब्राह्मण जाते, उस वन में ही दुष्टात्मा उन सबों को भक्षण कर लेता ।।१९।। जिससे कोई न जाने, इस प्रकार छिपा रहता, वन में भीलरूप से तथा जलाशयों में जलजन्तु रूप से विचरता था ।।२०।। इस प्रकार अदृश्य रूपवाला वह मायावी, देवताओं को भी अगोचर होकर दिन में मुनियों के मध्य में मुनि के समान ध्यान में तत्पर रहता ।।२१।। रात्रि में व्याप्त रूप से पर्णशालाओं के प्रवेश तथा निकास को देखता हुआ वह दैत्य बहुत से ब्राह्मणों को भक्षण करता था ।।२२।। इस प्रकार निःसन्देह होकर भक्षण करता कि, अस्थि तक को भी नहीं छोड़ता, इस प्रकार उस दुष्ट ने बहुत से ब्राह्मणों को मार डाला ।।२३।। एक समय शिवरात्रि में एक शिवभक्त देवों के देव शिवजी की पूजा करके ध्यान में लीन हुआ ।।२४।। तब बल से गर्वित हुए उस दैत्येन्द्र दून्दुभिनिर्ह्लाद ने व्याघ्र का रूप धारण करके उसे भक्षण करने की इच्छा की ।।२५।। तब ध्यान करते हुए शिवजी के अवलोकन में दृढ़चित्त हुए, अस्त्र (कवच) मन्त्रों के विन्यास करनेवाले उस भक्त को भक्षण करने में वह समर्थ न हुआ ।।२६।। तब सर्वव्यापी शिवजी ने उसके आशय को जानकर दुष्ट रूप दैत्य का वध करने की इच्छा की ।।२७।। जब ही उसने व्याघ्र रूप से उसे ग्रहण करना चाहा, तब ही संसार की रक्षा रूप मणि, तीन नेत्रवाले, भक्तों की रक्षा करने में प्रवीण शिवजी प्रकट हुए ।।२८।। भक्त से पूजित उस लिंग से प्रकट हुए शिवजी को देखकर वह दैत्य फिर उसी रूप से पर्वत के समान हो गया ।।२९।। जब ही सर्वज्ञ शिवजी को तिरस्कार सहित आता हुआ देखा, तब उस दैत्य ने उनकी कोख में प्रहार किया ।।३०।। उसी समय उन भक्तवत्सल शिवजी ने वज्र से भी अति कठोर मुष्टि से उस व्याघ्र को ताड़न किया ।।३१।। उस मुष्टि के आघात से तथा कक्षा (काख) के मर्दन होने से दुःखी हुआ वह व्याघ्र अति नाद करके मर गया ।।३२।।

उसके रोदन के बड़े शब्द से व्याकुलचित्त हुए तपस्वी लोग उसके शब्द के साथ ही रात्रि में आये ।।३३।। वहां मृग को कोख में करनेवाले शिवजी को देखकर वे सब नम्र होकर जयजयकार करके स्तुति करने लगे ।।३४।। ब्राह्मण बोले– हे जगद्गुरो! हे ईश्वर! इस कठिन उपद्रव से रक्षा करें, रक्षा करें और दया करके इस ही स्थान में स्थिति करें ।।३५।। हे महादेव! आप इस ही स्वरूप से व्याघ्रेश नाम से यहां स्थित होकर इस उत्तम स्थान की रक्षा करें ।।३६।। हे गौरीश! दुष्टों का नाश करके हम तीर्थवासियों की अन्य अनेक उपद्रवों से रक्षा करें और भक्तों को अभयदान दीजिये ।।३७।। सनत्कुमारजी बोले– इस प्रकार अपने भक्तों का वचन सुनकर वे भक्तवत्सल शिवजी 'तथास्तु' कहकर फिर यह बोले ।।३८।। महेश्वरजी बोले– जो मनुष्य श्रद्धा से मुझे इस रूप से देखेगा, उसके दुःख को मैं अवश्य दूर करूंगा ।।३९।। मेरे इस चरित्र को स्मरण करके तथा मेरे पार्थिव लिंग को अपने हृदय में स्मरण करके, जो मनुष्य युद्ध में प्रवेश करेगा, वह निःसन्देह विजय को प्राप्त होगा ।।४०।। इसी अवसर में इन्द्रादि समस्त देवता उत्सवपूर्वक जयजयकार करते हुए वहां आये ।।४१।। सब देवताओं ने अंजलि बांधकर, कन्धे झुकाकर प्रेम से शिवजी को प्रणाम करके भक्तवत्सल महादेवजी की मधुर वाणी से स्तुति की ।।४२।। देवता बोले– हे देवों के स्वामी! हे प्रभो! प्रणतों के दुःख हरनेवाले आपने इस दून्दुभिनिर्ह्लाद के वध से हम सब देवताओं की रक्षा की ।।४३।। हे भक्तवत्सल! हे देवेश! हे सर्वेश्वर! हे प्रभो! आपको सदा भक्तों की रक्षा करनी चाहिये तथा दुष्टों का वध करना चाहिये ।।४४।। ऐसा उन देवताओं का वचन सुनकर 'ऐसा ही होगा' यह कहकर प्रसन्न होकर परमेश्वर उस लिंग में प्रवेश कर गये ।।४५।। तब विस्मय करनेवाले देवता आनन्द से अपने–अपने स्थान को पधारे तथा सम्पूर्ण ब्राह्मण भी बड़े हर्ष के साथ यथेष्ट स्थान को चले गये ।।४६।। जो मनुष्य व्याघ्रेश्वर सम्बन्धी इस बड़े इतिहास को सुनता है वा सुनाता है, पढ़ता है वा पढ़ाता है ।।४७।। वह अपने मन से चाही हुई सम्पूर्ण कामनाओं को पाता है, तथा निर्द्वन्द्व होकर मोक्ष को प्राप्त होता है ।।४८।। यह अनुपम शिवलीला के अमृताक्षरवाला इतिहास स्वर्गदायक, कीर्ति का बढ़ानेवाला तथा पुत्र–पौत्र का भी बढ़ानेवाला है ।।४९।। अति भक्ति देनेवाला, शिवजी की प्रीति का देनेवाला, कल्याणकारी, परमज्ञान देनेवाला परम मनोहर है और अनेक विकारों को दूर करनेवाला है ।।५०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
पञ्चम युद्धखण्डे दून्दुभिनिर्ह्लाददैत्यवधवर्णनं नामाष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ।। ५८ ।।

*****

उनसठवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले- हे व्यासजी! प्रीति से शिवजी के चरित्र को सुनिये, कि जिस प्रकार शिवजी ने संकेत से दैत्य को बताकर अपनी प्रिया से उस दैत्य को मरवाया।।१।। पहले विदल, उत्पल नामक दो महाबली दैत्य थे, वे दोनों ही ब्रह्माजी के वर से मनुष्यों से वध न होने का वर पाकर बड़े पराक्रमी, अति अभिमानी हो गये थे।।२।। हे ब्रह्मन्! उन दोनों दैत्यों ने अपनी भुजाओं के बल से तीनों लोकों को तृणवत् (तुच्छ) कर दिया तथा संग्राम में सम्पूर्ण देवताओं को जीता।।३।। उन दैत्यों से पराजित हुए सब देवता ब्रह्माजी के शरण में गये और आदर से उनको विधिपूर्वक प्रणाम करके कहने लगे।।४।। तब ब्रह्माजी ने उनसे कहा कि यह दोनों दैत्य निश्चय ही पार्वती से मारे जायँगे, आप सब पार्वती सहित शिवजी को भलीभाँति स्मरण करके धैर्य धारण करें।।५।। कारण कि, देवी सहित वह शिवजी भक्तवत्सल हैं, कल्याण करनेवाले हैं, वह परमेश्वर बहुत शीघ्र ही आपका कल्याण करेंगे।।६।। सनत्कुमारजी बोले- उन देवताओं से ऐसा कहकर ब्रह्माजी शिवजी को स्मरण करके मौन हो गये और वे देवता भी प्रसन्न होकर उसी समय अपने-अपने लोक को चले गये।।७।। तत्पश्चात् शिवजी की प्रेरणा से देवर्षि नारदजी ने उस दैत्य के घर जाकर पार्वती की सुन्दरता का वर्णन किया।।८।। तब नारदजी का वचन सुनकर वे दोनों दैत्य माया से मोहित हुए और विषयों से पीड़ित होकर पार्वतीजी के हरण करने की इच्छा करनेवाले।।९।। उन दोनों ने मन में विचारा कि, प्रारब्ध के उदय होने से हम दोनों को वह पार्वती कब कहां मिलेगी?।।१०।। एक समय शिवजी अपनी लीला से विहार करने लगे, उसी समय पार्वती भी कौतुक से गेंद की क्रीडा करती हुई।।११।। अपनी सखियों के साथ प्रीति से शिवजी के समीप खेलने लगीं।।१२।। ऊपर को गेंद फेंकती अपने अंगों की लघुता को विस्तार करती श्वास की सुगन्ध से प्रसन्न हुए भौरों से घिरने के कारण चंचल नेत्रवाली।।१३।। केशपाश से माला टूट जाने के कारण मानो अपने रूप की भूमिका की है, पसीना आने से उसके कणों से कपोलों की पत्र रचना व्यस्त हो रही है।।१४।। प्रकाशमान चोलांकुश (कुर्ती) के मार्ग से निकलती हुई अंग की कान्ति से व्याप्त तथा शोभायमान गेंद के ताड़न करने से लाल हुए करकमलोंवाली।।१५।। गेंद के पीछे दृष्टि देने से कम्पायमान भौ रूपी लता के अंचलवाली जगत् की माता पार्वती खेलती हुई दीखीं।।१६।। आकाश में विचरते हुए दोनों दैत्यों को कटाक्षों से देखा, मानो मृत्यु ने ही दोनों को गोदी में ले लिया।।१७।। ब्रह्माजी के वरदान से अभिमानी

हुए उन विदल और उत्पल नामक दोनों दैत्यों ने अपनी भुजाओं के बल से तीनों लोक तृण के समान किये थे।।१८।। पार्वतीदेवी को हरने की इच्छावाले वे कामदेव के बाणों से पीड़ित हुए दोनों दैत्य शीघ्र ही शाम्बरी माया करके आकाश से उतरे।।१९।। गणसम्बन्धी माया को धारण करके (अर्थात् गण बनकर) अति दुराचारी, अति चंचल मनवाले वे दोनों पार्वती के समीप आये।।२०।। तभी दुष्टों को नाश करनेवाले शिवजी ने क्षणमात्र में चंचल नेत्रों से उन दोनों को जान लिया और मन में अवज्ञा की।।२१।। और सर्वस्वरूपी महादेवजी ने संकट को दूर करनेवाली पार्वती की ओर देखा (नेत्रों के संकेत से बताया) कि, यह दोनों दैत्य हैं, गण नहीं हैं।।२२।। उस समय पार्वतीजी महाकौतुकी, कल्याणकारी परमेश्वर, अपने पति शिवजी के नेत्र के संकेत को जान गई।।२३।। उस नेत्र की संज्ञा को जानकर शिवजी की अर्द्धांगिनी पार्वती ने सहसा उसी गेंद से उन दोनों को ताड़न किया।।२४।। तब महादेवी पार्वती की गेंद से ताड़ित हुए वे दोनों महाबलवान् दुष्ट घूम-घूमकर चक्कर खाकर गिर पड़े।।२५।। जिस प्रकार ताड़ के वृक्ष के गुच्छे (बन्धन) से पके हुए फल तथा वज्र से छेदन किये हुए सुमेरु पर्वत के दो शिखर गिरते हैं, ऐसे वह गिर पड़े।।२६।। कुत्सित कर्म में प्रवृत्त हुए उन दैत्यों को मारकर वह गेंद पार्थिवलिंग स्वरूप को प्राप्त हुई।।२७।। तब ही वह ज्योतिर्लिंग कन्दुकेश्वर नाम से प्रसिद्ध हो गया, ज्येष्ठेश्वर के समीप सब दुष्टों को निवारण करनेवाला पार्थिवलिंग पूजनीय हुआ।।२८।। उसी समय शिवजी को प्रकट हुआ जानकर विष्णुजी, ब्रह्माजी आदि सब देवता तथा ऋषिगण वहां आ गये।।२९।। सम्पूर्ण देवता तथा काशी निवासी ब्राह्मण शिवजी से वरों को पाकर प्रसन्न होकर उनकी आज्ञा से अपने लोकों को गये।।३०।। पार्वती सहित महादेवजी का दर्शन करके उन्होंने अंजलि बांधकर प्रणाम करके भक्ति और आदरपूर्वक मनोहर वाणी से स्तुति की।।३१।। हे व्यासजी! पार्वती सहित शिवजी विहार और क्रीडा करके भक्तवत्सलता दिखाकर गणों सहित प्रसन्न होकर अपने लोक को चले गये।।३२।। काशीपुरी में कन्दुकेश्वर नामक पार्थिवलिंग दुष्टों को शान्त करनेवाला, भोग और मोक्ष देनेवाला तथा निरन्तर सत्पुरुषों की कामना का देनेवाला है।।३३।। जो मनुष्य इस अद्भुत चरित्र को प्रसन्नता सहित सुनता है अथवा सुनाता है, या पढ़ता है, उसे दुःख और भय कहां?।।३४।। वह इस लोक में सब प्रकार के उत्तम सुखों को भोगकर परलोक में देवताओं से भी दुर्लभ सुन्दर गति (मुक्ति) को पाता है।।३५।। हे तात! भक्तों की कृपालुता का सूचक, सज्जनों का कल्याणकारी, परम अद्भुत ऐसा शिवपार्वतीजी का यह चरित्र वर्णन किया।।३६।। ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार शिवजी के चरित्र कहकर और उन व्यासजी को आमन्त्रण करके उनसे प्रेरित होकर आकाशमार्ग से मेरे पुत्र शीघ्र ही काशी को गये।।३७।। हे मुनिश्रेष्ठ! यह रुद्रसंहिता के मध्य में युद्धखण्ड सब कामनाओं और

सिद्धियों का करनेवाला है, यह सब मैंने आपसे कहा ।।३८।। यह शिवजी को सन्तुष्ट करनेवाली, भुक्ति–मुक्ति फल की देनेवाली सम्पूर्ण रुद्रसंहिता आपसे वर्णन की ।।३९।। जो मनुष्य शत्रुबाधा को निवारण करनेवाली इस रुद्रसंहिता को नित्य पढ़ता है, वह सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त होकर पश्चात् मुक्ति को प्राप्त होता है ।।४०।। सूतजी बोले– इस प्रकार ब्रह्माजी के पुत्र नारदजी अपने पिता से शिवजी के यश को तथा शतनामों को सुनकर कृतार्थ और शिवानुगामी हुए ।।४१।। मैंने यह ब्रह्माजी और नारदजी का संवाद आपसे कहा, शिवजी सम्पूर्ण देवताओं में प्रधान हैं, अब आपकी और क्या सुनने की इच्छा है? ।।४२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीया रुद्रसंहितायां भाषायां
पञ्चम युद्धखण्डे विलोदत्पलदैत्यवधवर्णनं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ।। ५९ ।।

*****

शिवाभवानी पदकमल, प्रेमसहित शिरनाय।
रुद्रसंहिता को तिलक, भाषा लिख्यो बनाय।।१।।
वसत रामगंगा निकट, नगर मुरादाबाद।
भजन करत शिव को तहां, द्विज ज्वालापरसाद।।२।।

***

समाप्तेयं द्वितीया रुद्रसंहिता ।। २ ।।

*****

इति श्रीशिवमहापुराण भाषायां
द्वितीया रुद्रसंहिता समाप्ता

*****
***
*



ॐ

श्रीकृष्णद्वैपायनमहर्षिवेदव्यासविरचित

शिवमहापुराणभाषा

(शतरुद्रसंहिता ३)

***

कात्यायनगोत्रोद्भव मुरादाबाद निवासी श्रीयुत पंडित
ज्वालाप्रसादजी मिश्र ने संस्कृत से अत्युत्तम
देवनागरी में भाषांतर किया

मुद्रक एवं प्रकाशकः
खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बम्बई-४०० ००४



ॐ

श्रीकृष्णद्वैपायनमहर्षिवेदव्यासविरचित

शिवमहापुराणभाषा

(शतरुद्रसंहिता ३)

कात्यायनगोत्रोद्भव मुरादाबाद निवासी श्रीयुत पंडित ज्वालाप्रसादजी मिश्र ने संस्कृत से अत्युत्तम देवनागरी में भाषांतर किया

मुद्रक एवं प्रकाशकः
खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बम्बई-४०० ००४

(शतरुद्रसंहिता ३)



ॐ

अथ

शिवमहापुराणभाषा

***

तृतीय शतरुद्रसंहिता प्रारभ्यते

पहिला अध्याय

दोहा–

गौरि गिरा गणपति सुमरि, सकल सुमंगलखान।
शतरुद्रिय शिवसंहिता, भाषा कहूं बखान।।१।।

बड़े आनन्द देनेवाले, अनन्त लीला युक्त सर्वव्यापी महेश्वर महान्, पार्वती के पति, स्वामिकार्तिक और गणेशजी को उत्पन्न करनेवाले आदिदेव शंकरजी को नमस्कार करता हूं।।१।।

शौनकजी बोले– हे व्यासशिष्य! हे महाभाग! हे ज्ञान और दया के सागर सूतजी! आप शिवजी के अवतारों को कहिये, जिन अवतारों के द्वारा सत्पुरुषों का कल्याण हुआ है।।१।। सूतजी बोले– हे मुने! हे शौनकजी! आप जितन्द्रिय होकर भक्तिपूर्वक चित्त देकर सुनिये, आप मुनि से मैं शिवजी के अवतारों को कहता हूं।।२।। यही बात पहले सनत्कुमारजी ने साक्षात् शिवमूर्ति, सत्पुरुषों के गति, नन्दीश्वर से पूछी थी, हे मुने! तब शिवजी को स्मरण करके नन्दीश्वर कहने लगे।।३।। नन्दीश्वर बोले– सर्वव्यापक शंकरजी के प्रत्येक कल्पों में अवतार हैं, वे अनन्त हैं, परन्तु मैं बुद्धि के अनुसार वर्णन करता हूं।।४।। श्वेतलोहित नामक जो उन्नीसवां कल्प है, उसमें पहला सद्योजात अवतार कहा है।।५।। उस कल्प में उस परब्रह्म का ध्यान करते हुए ब्रह्माजी के शिखायुक्त श्वेतलोहित कुमार उत्पन्न हुये।।६।। ब्रह्माजी उस पुरुष को देखकर, उन्हें ब्रह्मरूपी ईश्वर

जानकर हृदय में ध्यान करके, अंजलि बाँधकर नमस्कार करने लगे ।।७।। सद्योजात शिवजी को जानकर ब्रह्माजी प्रसन्न हुए और बारंबार सद्बुद्धि से उस परम पुरुष का चिन्तन करने लगे ।।८।। तब इनके ध्यान करने से श्वेतवर्ण, यशस्वी, परम विज्ञानी, परब्रह्म स्वरूपी बहुत से कुमार उत्पन्न हुए ।।९।। सुनन्द, नन्दन, विश्वनन्दन, उपनन्दन यह उनके नाम थे। यह सब महात्मा के शिष्य हुए, कि जिन्होंने उस परब्रह्म को जाना ।।१०।। सद्योजात शम्भुजी ने ब्रह्माजी को ज्ञान दिया और उन ही परमेश्वर ने प्रसन्न होकर उनको सृष्टि उत्पन्न करने की शक्ति भी दी ।।११।। (इति सद्योजातावतारः १) उसके पीछे बीसवां कल्प रक्त नामक हुआ, जिसमें महातेजस्वी ब्रह्माजी ने रक्त (लाल) वर्ण धारण किया ।।१२।। जब ब्रह्माजी ने ध्यान किया तब पुत्र की कामना करनेवाले ब्रह्माजी के रक्तमाला तथा रक्तवस्त्र धारे, लाल नेत्रवाला रक्तभूषण पहना हुआ, एक पुत्र उत्पन्न हुआ ।।१३।। वह ब्रह्माजी उस महात्मा कुमार को देखकर ध्यान करने लगे और उनको वामदेव शिवजी जानकर अंजलि बांधकर प्रणाम करने लगे ।।१४।। तब लालवस्त्र धारण करनेवाले उनके चार पुत्र उत्पन्न हुए; विरज, विवाह, विशोक, विश्वभावन ।।१५।। उन वामदेव शम्भुजी ने ब्रह्माजी को ज्ञान दिया और प्रसन्न होकर उन परमेश्वर ने सृष्टि करने की भी सामर्थ्य दी ।।१६।। (इति वामदेवावतारः २) इक्कीसवां पीतवासा नामक कल्प प्रसिद्ध हुआ, उसमें महाभाग्यवान् ब्रह्माजी पीले वस्त्रधारी हुये ।।१७।। जब ब्रह्माजी पुत्र की कामना से ध्यान करने लगे, तब उनके पीताम्बरधारी, प्रौढ़ अवस्था का महा तेजस्वी, दीर्घ भुजावाला, कुमार उत्पन्न हुआ ।।१८।। उसे देखकर ध्यान करके उस पुरुष को शिवजी का अवतार जाना और प्रणाम करके ब्रह्माजी बुद्धि से शिवगायत्री को जपने लगे ।।१९।। उस सर्वलोकों से नमस्कार की हुई महादेवी गायत्री को ध्यानपूर्वक चित्त से जपने से महादेवजी प्रसन्न हुए ।।२०।। तब इनके समीप से बहुत से दिव्य कुमार प्रकट हुए, जो सम्पूर्ण पीत वस्त्रधारी और योगमार्ग के प्रवर्तक थे ।।२१।। (इति तत्पुरुषावतारः ३) उसके पश्चात् स्वयम्भू के पीतवर्ण कल्प के बीतने पर फिर दूसरा शिव नामवाला कल्प प्राप्त हुआ ।।२२।। समस्त स्थानों पर जल ही जल था, तब दिव्य सहस्र वर्ष के बीतने पर प्रजा को रचने की इच्छावाले ब्रह्माजी दुःखी होकर विचारने लगे ।।२३।। महातेजस्वी ब्रह्माजी ने कृष्णवर्ण, बड़े पराक्रमी, अपने तेज से प्रकाशित एक कुमार को प्रकट हुए देखा ।।२४।। काले वस्त्र और पगिया को धारे तथा काले यज्ञोपवीत को पहने और कृष्णमुकुट धारण किये तथा काले गन्ध अनुलेपन किये ।।२५।। वह ब्रह्माजी अघोर और घोर पराक्रमी कृष्णपिंगलवर्ण अद्भुत देवदेवेश को देखकर प्रणाम करने लगे ।।२६।। तब ब्रह्माजी उन अघोर ब्रह्मरूप का चिन्तन करने लगे और भक्तवत्सल, अविनाशी उस शिवावतार की प्रियवाणी से स्तुति करने लगे ।।२७।। तब उनके समीप कृष्णगन्धानुलेपन किये

कृष्णवर्ण चार महात्मा कुमार प्रकट हुए।।२८।। कृष्ण, कृष्णशिख, कृष्णास्य, कृष्ण–कण्ठधारी इस प्रकार अव्यक्त नामवाले तेजस्वी शिव स्वरूप हुए।।२९।। इस प्रकार के वे महात्मा ब्रह्माजी की सृष्टि बढ़ाने के कारण बड़े अद्भुत घोर नामक योग को करने लगे।।३०।।(इति अघोरावतारः ४) हे मुनीश्वरो! तब ब्रह्माजी का दूसरा कल्प हुआ, वह परम अद्भुत विश्वरूप नाम करके विख्यात हुआ।।३१।। जब पुत्र की इच्छा करते हुए ब्रह्माजी मन से शिवजी का ध्यान करने लगे, तब बड़े नाद (शब्द) करनेवाली विश्व रूपा सरस्वती प्रकट हुई।।३२।। उसी प्रकार के वेष धारे वह परमेश्वर भगवान् ईशान शुद्ध स्फटिकमणि के सम्पूर्ण आभूषणों से अलंकृत, प्रकट हुए।।३३।। ब्रह्माजी उन अज विभु शिवजी को देखकर प्रणाम करने लगे, जो सर्वान्तर्यामी, सब कुछ देनेवाले, सब स्वरूप और रूप वर्जित हैं।।३४।। उन विभु ईश्वर ने भी ब्रह्माजी को सन्मार्ग की आज्ञा देकर अपनी शक्ति से चार शुभ बालक उत्पन्न किये।।३५।। जटी (जटाधारी), मुण्डी (मुण्डित केशवाला), शिखण्डी (शिखाधारी) तथा अर्द्धमुण्डी इस प्रकार चार बालक प्रकट हुए, योग के द्वारा सत्धर्म का अनुष्ठान करके वे योग की गति को प्राप्त हुए।।३६।। (इति ईशानावतारः ५) हे सर्वज्ञ सनत्कुमारजी! इस प्रकार सद्य आदि शिवजी के अवतारों को संक्षेप से लोकों के हितकामना के निमित्त वर्णन किया।।३७।। हे महापण्डित! उन्हींका यथा योग्य त्रिलोकी का हितकारी व्यवहार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में फैल गया।।३८।। ईशान पुरुष अघोर तथा वामसंज्ञक और ब्रह्म नामवाली, इस प्रकार शिवजी की पांच मूर्तियां संसार में विख्यात हैं।।३९।। ईशान शिवजी का रूप महान् और पहला कहा है, वह साक्षात् प्रकृति के भोगनेवाले, क्षेत्रज्ञ को अधिकार करके स्थित हो रहा है।।४०।। और दूसरा शिवजी का तत्पुरुष नामक स्वरूप है, जो गुणों के आश्रयवाले भोगों को भोगनेवाला सर्वज्ञ होकर स्थित हो रहा है।।४१।। और जो तीसरा अघोर नामक स्वरूप कहलाता है, वह शिवजी के निज अंग से संयुक्त धर्म के निमित्त बुद्धि का तत्त्व है।।४२।। और जो चौथा वामदेव नामक शिवजी का रूप है, वह अहंकार का अधिष्ठान होकर सदा बहुत कार्य करनेवाला है।।४४।। ईशान नामक जो पांचवां शिवजी का स्वरूप है, वह श्रोत्र इन्द्रिय का तथा वाक् इन्द्रिय का विभु और आकाश का अधिष्ठान है।।४४।। त्वचा, हाथ, स्पर्श, वायु का अधिष्ठातृ देवता जो ईशान शिवजी का रूप है, उसे विचार के जाननेवाले बुद्धिमान् पुरुष नामक शिवजी का अवतार कहते हैं।।४५।। शरीर का, रस का, रूप का तथा अग्नि का अधिष्ठातृ देवता अघोर नामक शंकरजी का रूप है, बुद्धिमान् ऐसा कहते हैं।।४६।। जिह्वा, गुदा, रस तथा जलों का अधिष्ठाता वामदेव नामक शिवजी का स्वरूप कहा है।।४७।। नासिका, उपस्थेन्द्रिय, गन्ध और भूमि का सद्योजात नामक ईश्वर शंकरजी का रूप कहा है।।४८।। यह शम्भुजी के रूप यत्नपूर्वक वन्दना करने योग्य है, यही

एक कल्याण चाहनेवाले पुरुषों का नित्य कल्याण करनेवाले हैं।।४९।। जो मनुष्य सद्य आदि की उत्पत्ति को पढ़ता अथवा सुनता है, वह सम्पूर्ण भोगों को जाननेवाले परमगति को प्राप्त होता है।।५०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
पंचावतारवर्णनं नाम प्रथमोऽध्याय: ।। १ ।।

*****

दूसरा अध्याय

नन्दीश्वर बोले– हे प्रभो! हे तात! हे मुने! शिवजी के बड़े अवतारों को सुनिये, जो लोक में सम्पूर्ण कार्यों को करनेवाले और सबको सुख देनेवाले हैं।।१।। उन ईश्वर शिवजी की आठ मूर्तिवाला यह समस्त संसार है, जैसे कि सूत्र में मणियों का समुदाय गुथा होता है, वैसे ही उसमें व्याप्त होकर सम्पूर्ण विश्व स्थित है।।२।। शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव यह आठ मूर्तियां विख्यात हैं।।३।। भूमि, जल, अग्नि, पवन, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य और चन्द्रमा यह शिवजी के शर्व आदि आठों रूपों से अधिष्ठित है।।४।। शंकर महेशजी का विश्वम्भरात्मक रूप चर–अचर संसार को धारण करता है, ऐसा शास्त्र का निश्चय है।।५।। और संसार को जिवानेवाला जलात्मक उन परमात्मा शिवजी का भव रूप ऐसा कहा है।।६।। हे प्रभो! जो स्वयं बाहर और भीतर स्थित होकर संसार का पालन करता है और चलाता है, वह शिवजी का उग्र नामक रूप है, ऐसा सत्पुरुष कहते हैं।।७।। सबको अवकाश देनेवाला, सर्वव्यापक, आकाशात्मक, भीम रूप, शिवजी का भीम नामक रूप है, जो राजाओं के समुदाय का भेद करनेवाला है।।८।। जो सब आत्माओं का अधिष्ठातृ देव है और समस्त क्षेत्रों का निवासस्थान है, वह शिवजी का पशुपति नामक रूप है, जो पशुजीवों के पाशों को काटनवाला है।।९।। जो सूर्यात्मक होकर समस्त संसार को प्रकाशित करनेवाला है, वह शिवजी का ईशान नामक रूप आकाश में फैल रहा है।।१०।। जो अमृत रूप किरणोंवाला (चन्द्रमा) संसार को तृप्त करता है, वह शिवजी का महादेव नामक रूप कहा है।।११।। और उन परमात्मा शिवजी का आत्मा नामक रूप आठवाँ है और मूर्त–अमूर्त सब में व्यापक होने से यह सब संसार शिव रूप है।।१२।। जैसे वृक्ष की जड़ को सिंचन करने से सब शाखाएँ पुष्ट होती हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण संसार उन शिवजी का शरीर है और शिवजी के अर्चन करने से सब विश्व पुष्ट होता है।।१३।। जिस प्रकार संसार में सब पुत्र, पौत्र आदि की प्रसन्नता से पिता स्वयं प्रसन्न होता है,

उसी प्रकार सम्पूर्ण संसार के साथ प्रीति करने से वे शिवजी प्रसन्न होते हैं ।।१४।। यदि किसी देहधारी प्राणी का निग्रह (बन्धन) किया, तो मानो शिवजी की अष्टमूर्तियों का अनिष्ट किया, इसमें संशय नहीं ।।१५।। शिवजी अष्टमूर्ति रूप आत्मा से संसारभर में अधिष्ठित होकर स्थित हो रहे हैं, इस कारण उन परमकारण, रुद्र रूप शिवजी का सब भाव से भजन करना चाहिये ।।१६।। हे सनत्कुमारजी! जो विख्यात आठ रूप सब के उपकार करने में तत्पर हैं, सो आपसे कहे, कल्याण की इच्छा करनेवाले पुरुषों को इनकी सेवा करनी चाहिये ।।१७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
शिवाष्टमूर्तिवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।। २ ।।

*****

तीसरा अध्याय

नन्दीश्वर बोले– हे महाप्राज्ञ! हे तात! विधाता की कामनाओं को पूर्ण करनेवाला, अर्द्धनारीनर नामवाला शिवजी का श्रेष्ठ रूप वर्णन करता हूं, सुनिये ।।१।। जब ब्रह्माजी की रची हुई सम्पूर्ण प्रजा नहीं बढ़ी, तब वे दुःख से व्याकुल होकर चिन्ता करने लगे ।।२।। उस समय आकाशवाणी हुई कि, ''मैथुनी सृष्टि को उत्पन्न करो'' यह सुनकर ब्रह्माजी ने मैथुनी सृष्टि के निर्माण करने का निश्चय किया ।।३।। कारण कि पहले स्त्रियों का कुल शिवजी से प्रकट नहीं हुआ था, इस कारण ब्रह्माजी मैथुनवाली सृष्टि करने को समर्थ न हुए ।।४।। बिना शिवजी के प्रभाव से प्रजा नहीं उत्पन्न होगी, इस प्रकार विचारते हुए ब्रह्माजी तप करने को उद्यत हुए ।।५।। पार्वतीरूप परमशक्ति से युक्त परमेश्वर का हृदय में प्रीति से ध्यान करके परम तप करने लगे ।।६।। तीव्र (कठिन) तप में संयुक्त हुए ब्रह्माजी के थोड़े समय में ही शिवजी शीघ्र ही सन्तुष्ट हो गये ।।७।। और पूर्ण चिद्रूप ईश्वर ने अपनी काम की देनेवाली मूर्ति में प्रवेश करके आधी नारी और आधे पुरुषरूप होकर ब्रह्माजी के समीप गमन किया ।।८।। ब्रह्माजी उन शंकरजी को परम शक्ति से युक्त हुआ देखकर दण्डवत् प्रणाम करके हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे ।।९।। तब देवों में उत्तम शिवजी, विश्व को उत्पन्न करनेवाले महेश्वर प्रसन्न होकर मेघ के समान गम्भीर वाणी से ब्रह्माजी से बोले ।।१०।। ईश्वर बोले– हे वत्स, मेरे पुत्र ब्रह्माजी! हे महाभाग! मैंने तत्त्व से आपके मनोरथ को जान लिया ।।११।। कि प्रजा के बढ़ने के लिये आपने अब तप किया है, उस तप से सन्तुष्ट होकर आपको ईप्सित वर देता हूं ।।१२।। इस प्रकार परम उदार स्वभाव से मधुर वचन

कहकर शिवजी ने अपने शरीर के भाग से शिवादेवी को पृथक् किया ।।१३।। उस परमशक्ति को शिवजी से पृथक् हुआ देखकर विनीतात्मा ब्रह्माजी प्रणाम करके उससे प्रार्थना करने लगे ।।१४।। ब्रह्माजी बोले- हे शिवे! देवों के देव आपके पति ने मेरी रचना की है और सारी प्रजा भी परमात्मा शिवजी ने ही सृजी है ।।१५।। हे शिवे! मैंने सम्पूर्ण देवता मन से बनाये हैं, बारंबार सृजे हुये भी वृद्धि को प्राप्त नहीं होते हैं ।।१६।। इसके आगे मैथुन से उत्पन्न होनेवाली सृष्टि को उत्पन्न करके बढ़ाने की इच्छा है, यह सारी मेरी प्रजा है ।।१७।। पहले आपसे नारियों का अविनाशी कुल नहीं प्रकट हुआ, इस कारण नारी कुल अति श्रेष्ठ है, इसमें मेरी शक्ति नहीं है ।।१८।। सब शक्तियों की आपकी शक्ति से ही उत्पत्ति है, इस कारण सब की ईश्वरी आप परमाशक्ति की प्रार्थना करता हूं ।।१९।। हे शिवे! मुझे नारी कुल रचने की शक्ति दीजिये, आपको नमस्कार है। हे मात:! हे शिवप्रिये! चर-अचर संसार के कारण शिवजी को जानिये ।।२०।। हे वरदेश्वरि! और भी एक वर आपसे मांगता हूं, सो उसे मुझे कृपा करके दीजिये। हे जगत् की माता! आपको नमस्कार है ।।२१।। हे सर्वगे! हे संसार की माता! हे शिवे! एक ही सामर्थ्य से चर-अचर संसार की वृद्धि के निमित्त आप मेरे पुत्र दक्ष की पुत्री होओ ।।२२।। इस प्रकार ब्रह्माजी से याचना की हुई परमेश्वरी देवी ने 'ऐसा ही हो,' इस प्रकार वचन कहकर उस शक्ति को ब्रह्माजी के निमित्त दिया ।।२३।। जगन्मयी शिवादेवी ने उस शक्ति से भ्रू के मध्यभाग से अपने समान कान्तिवाली दूसरी शक्ति निर्माण की ।।२४।। उस शक्ति को देखकर देवताओं में श्रेष्ठ, कृपासिन्धु, लीला करनेवाले शिवजी ने हँसकर जगत् की माता से कहा ।।२५।। शिवजी बोले- हे देवि! परमेष्ठी ब्रह्माजी से तप के द्वारा आराधना की हुई प्रसन्न हो और उनके सब मनोरथों को सिद्ध करो ।।२६।। उस देवी ने शिवजी की आज्ञा मस्तक पर धारण करके ब्रह्माजी के वचन से दक्ष की पुत्री होना स्वीकार किया ।।२७।। हे मुने! वह शिवा, ब्रह्माजी को अतुल शक्ति देकर शिवजी के शरीर में प्रविष्ट हो गई और महासमर्थ शिवजी भी अन्तर्धान हो गये ।।२८।। उस दिन से इस संसार में स्त्री का भाग देना कल्पित हुआ, तब ब्रह्माजी बड़े आनन्द को प्राप्त हो गये और मैथुनी सृष्टि का आरम्भ हो गया ।।२९।। हे तात! यह शिवजी का अतिश्रेष्ठ रूप आप से कहा, यह अर्द्धनारी, नरार्द्धरूप सत्पुरुषों को बड़े मंगल का देनेवाला है ।।३०।। जो पुरुष इस पुण्य के देनेवाली इस कथा को पढ़ता है, या सुनता है, वह सम्पूर्ण भोगों को भोगकर परमगति (मोक्ष) को प्राप्त होता है ।।३१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
शिवस्यार्द्धनारीनरावतारवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ।। ३ ।।

*****


देवळालकर

चौथा अध्याय

नन्दीश्वर बोले– हे सर्वज्ञ सनत्कुमारजी! रुद्र से कहा हुआ शंकरजी का चरित्र ब्रह्माजी को निरन्तर सुख देनेवाला है ।।१।। शिवजी बोले– कि, सातवें मन्वन्तर के वाराहकल्प में कल्पेश्वर भगवान्, सब लोकों के प्रकाश करनेवाले ।।२ ।। तुझ मनु वैवस्वत के परपोते होंगे, तब हे ब्रह्माजी! उस मन्वन्तर में चारों युग होंगे ।।३।। लोकों के अनुग्रह के निमित्त और ब्राह्मणों के हित के निमित्त द्वापर युग के अन्त में, हे विधे! हे ब्रह्मन्! मैं उत्पन्न होऊँगा ।।४।। हे ब्रह्माजी! तब युग की प्रवृत्ति से उस प्रथम युग में जब पहला द्वापर होगा और व्यासजी स्वयं प्रभु होंगे ।।५।। तब मैं ब्राह्मणों के हितार्थ उस कलियुग के अन्त में शिवा युक्त श्वेत नामक महामुनि होऊँगा ।।६।। ब्रह्माजी हिमालय के मनोहर शिखर पर पर्वतोत्तम छागल में उस समय मेरे शिखायुक्त शिष्य होंगे ।।७।। श्वेत, श्वेतशिख, श्वेताश्व, श्वेतलोहित यह चारों, ध्यानयोग से मेरे पुत्र को प्राप्त होंगे ।।८।। तब तुझ अव्यय को तत्त्व से जानकर और भी मेरे बहुत भक्त होंगे और जन्म, मरण, वृद्धावस्था से रहित होकर परब्रह्म में समाधि लगानेवाले होंगे ।।९।। हे पितामह! मनुष्यों को बिना ध्यान के मैं नहीं दिख सकता, केवल दान, धर्म आदि कर्म के हेतु साधनों से प्राणी मुझे देख सकते हैं ।।१०।। दूसरे द्वापर में सत्य नामक प्रजापति व्यास होंगे, तब मैं कलियुग में सुतार नाम से विख्यात होऊँगा ।।११।। उस युग में भी मेरे शिष्य वेद के जाननेवाले ब्राह्मण होंगे, वे दुन्दुभि, शतरूप, हृषीक, केतुमान नामवाले होंगे ।।१२।। वे चारों ध्यान, योग से मेरे पुर को प्राप्त होंगे और मुझ अव्यय को तत्त्व से जानकर मुक्त होंगे ।।१३।। तीसरे द्वापर में जब भार्गव व्यासजी होंगे, तब मैं पुर के समीप दमन नाम से विख्यात होऊँगा ।।१४।। वहां मेरे चार पुत्र होंगे। विशोक, विशेष, विपाप और पापनाशन ।।१५।। हे चतुरानन! व्यासजी के शिष्यों की सहायता करूंगा और कलियुग में दृढ़ निवृत्ति (मोक्ष) मार्ग को बताऊंगा ।।१६।। चतुर्थ द्वापर में जब अंगिरा व्यासजी होंगे, उस समय मैं सुहोत्र नाम से प्रकट होऊंगा ।।१७।। उस युग में भी मेरे चारों पुत्र योगसाधक महात्मा होंगे, हे विधे ! उनके नाम कहता हूँ।।१८।। सुमुख, दुर्मुख, दुदर्भ, दुरतिक्रम; हे विधे! उस समय भी मैं व्यासजी के शिष्यों की सहायता करूंगा ।।१९।। पंचम द्वापर में सविता व्यास होंगे, तब कंक नामक योगी महातपस्वी होऊँगा ।।२०।। उस युग में भी चारों पुत्र योग के साधक महात्मा होंगे, उनके नाम सुनिये ।।२१।। सनक, सनातन और समर्थ सनन्दन और विभु, निर्मल चित्त अहंकार रहित सनत्कुमार यह चार पुत्र होंगे ।।२२।। हे ब्रह्माजी! वहां मैं कंक नाम से होकर सविता व्यासजी की सहायता करूंगा और निवृत्तिमार्ग बढ़ानेवाला होऊंगा ।।२३।।

फिर जब छठा द्वापर युग आवेगा, तब लोक के करनेवाले वे वेदविभाग के कर्त्ता मृत्यु नामवाले व्यासजी होंगे ।।२४।। उस समय मैं लोकाक्षि नामवाला होऊँगा और व्यासजी की सहायता के निमित्त निवृत्तिमार्ग को बढ़ाऊंगा ।।२५।। वहां भी मेरे चार शिष्य दृढ़व्रतवाले होंगे। सुधामा, विरजा, संजय तथा विजय उनके नाम होंगे ।।२६।। सातवें द्वापर के प्रवृत्त होने में जब इन्द्र व्यासजी होंगे, हे विधाता! तब मैं सर्वज्ञ जैगीषव्य होऊँगा ।।२७।। महायोग में निपुण होकर मैं योग को दृढ़ करूंगा, काशीजी में गुफा के भीतर दिव्य स्थान में कुशाओं के ऊपर स्थित होकर ।।२८।। शतक्रतु व्यासजी की सहायता करूंगा, हे विधाता! भक्तों का संसार के भय से उद्धार करूंगा ।।२९।। उस युग में भी चार पुत्र होंगे; सारस्वत, योगीश, मेघवाह और सुवाहन ।।३०।। आठवें द्वापर में मुनि वशिष्ठ ऋषि वेदव्यास होंगे, यही मुनिश्रेष्ठ उस समय वेदविभाग के कर्त्ता होंगे ।।३१।। उस युग में मेरा दधिवाहन नाम होगा, हे योग जाननेवालों में श्रेष्ठ ! उस समय व्यासजी की सहायता करूंगा ।।३२।। कपिल, आसुरि, पंचशिख, शाल्वल यह चार योगीपुत्र मेरे समान होंगे ।।३३।। हे विधाता! जब नवम द्वापर आएगा तब मुनिश्रेष्ठ सारस्वत नामवाले व्यास होंगे ।।३४।। और उन व्यासजी के ध्यान करते हुए निवृत्तिमार्ग बढ़ाने के निमित्त उस समय मैं ऋषभ नाम से प्रकट होऊँगा ।।३५।। पराशर, गर्ग, भार्गव तथा गिरिश यह चार श्रेष्ठ योगी मेरे शिष्य होंगे ।।३६।। हे प्रजापते! उनके साथ मैं योगमार्ग को दृढ़ करूंगा। हे श्रेष्ठमुनि! और मैं वेदव्यासजी की सहायता करूंगा ।।३७।। हे विधाता! मैं उस रूप से बहुत दुःखी हुए भक्तों का और आपका उद्धार करूंगा ।।३८।। वह अवतार मेरा ऋषभ नामक सुयोग करनेवाला होगा और सारस्वत व्यासमुनि की सहायता करनेवाला तथा अनेक कल्याण करनेवाला होगा ।।३९।। कि जिस मेरे अवतार ने भद्रायु नामक राजा का बालक जो क्ष्वेड (छींक) के दोष से मर गया था और जिसे उसके पिता ने त्याग दिया था, उसे जिलाया ।।४०।। फिर जब वह राजपुत्र सोलह वर्ष का हुआ, तब उसके घर मेरी आत्मा रूप ऋषभजी गये ।।४१।। उस राजा ने कृपानिधि, शोभायमान रूपवाले उन मुनि का सत्कार किया, हे प्रजापते! उन्होंने राजयोगवाले धर्मों का उस राजा को उपदेश दिया ।।४२।। तब ऋषभजी ने प्रसन्न होकर उस राजा को सब शत्रुओं का नाश करनेवाला दिव्य कवच, शंख, प्रकाशमान खड्ग दिया ।।४३।। दीनों के ऊपर दया करनेवाले उन महात्मा ने उस राजा के अंग में भस्म लगाई और उसे बारह सहस्र हाथियों का बल दिया ।।४४।। इस प्रकार माता सहित उस भद्रायु को भली प्रकार समझाया, धीरज देकर उन माता, पुत्रों से पूजित होकर वह ऋषभमुनि अपने इच्छित स्थान को गये ।।४५।। हे ब्रह्माजी! वह राजर्षि भद्रायु भी शत्रुओं को जीतकर कीर्तिमालिनी नामवाली कन्या से विवाह करके धर्मपूर्वक राज्य करने लगा ।।४६।। इस प्रकार मेरे ऋषभ अवतार का प्रभाव है, यह सत्पुरुषों को गति

देनेवाला, दीनों का बन्धु, नौवां अवतार आपसे कहा ।।४७।। यह ऋषभ चरित्र परम पवित्र करनेवाला है, स्वर्ग प्राप्ति करानेवाला तथा यश और आयु को बढ़ानेवाला है, इसे यत्नपूर्वक सुनना चाहिये ।।४८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
ऋषभचरित्रवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ।। ४ ।।

*****

पांचवाँ अध्याय

शिवजी बोले– दशवें द्वापर में त्रिधामा नाम मुनि व्यास होंगे, हिमालय पर्वत के मनोहर भृगुतुंग नामक ऊँचे शिखर पर ।।१।। वहां भी मेरे भृगु आदि पुत्र वेदानुगामी बलबन्धु, नरामित्र, केतुशृंग, तपोधन नामवाले होंगे।।२।। ग्यारहवें द्वापर में जब–जब त्रिवृत मुनि व्यास होंगे, तब मैं कलि में गंगा के द्वार में तप नामवाला होऊँगा ।।३।। वहां भी लम्बोदर, लम्बाक्ष, केशलम्ब, प्रलम्बक यह चार पुत्र दृढ़व्रतधारी होंगे ।।४।। और बारहवें द्वापर में वेद विभाग कर्ता शततेजा मुनि व्यास होंगे, तब भी मैं द्वापर के अन्त में कलियुग में प्रकट होऊँगा ।।५।। अत्रि नामवाला सुवर्ण का बख्तर पहने हुए व्यासजी की सहायता के निमित्त निवृत्तिमार्ग का प्रचार करूंगा ।।६।। सर्वज्ञ, समबुद्धि, साध्य और शर्व ये सुयोगी चार पुत्र होंगे ।।७।। तेरहवें युग में धर्मनारायण व्यास होंगे, तब मैं बलि नामवाला महामुनि होऊँगा ।।८।। बालखिल्य के आश्रम में उत्तम गन्धमादन पर्वत पर सुधामा, काश्यप, वशिष्ठ, विरज नामवाले यह श्रेष्ठ पुत्र होंगे ।।९।। जब चौदहवें कल्प में रक्ष नामवाले व्यास होंगे, तब मैं आंगिरस वंश में गौतम नाम से प्रकट होऊँगा ।।१०।। उस समय कलियुग में मेरे पुत्र अत्रि, दवशद, श्रवण, श्रविष्टक होंगे ।।११।। जब पन्द्रहवें द्वापर में त्रय्यारुणि व्यास होंगे, तब मैं वेदशिरा वेदशिर नामक मुनि होऊँगा ।।१२।। वेदशिर नामक उनका अस्त्र महातेजस्वी होगा और हिमालय पर्वत के पृष्ठ पर वेदशीर्ष पर्वतखण्ड में जो सरस्वती के उत्तर तट पर है, वहाँ उनका निवास होगा ।।१३।। वहां भी मेरे चार दृढ़ ज्ञानी पुत्र होंगे, कुणि, कुणिबाहु, कुशरीर, कुनेत्रक यह नाम होंगे ।।१४।। सोलहवें द्वापर में देव नामक मुनि व्यास होंगे, तब योग प्रदान करने के लिये मैं गोकर्ण नाम से प्रकट होऊँगा ।।१५।। वहीं परम पवित्र गोकर्ण नामक वन है, वहां भी मेरे परम योगी चार पुत्र, जल के समान निर्मल मन होंगे ।।१६।। काश्यप, उशना, च्यवन और बृहस्पति यह नाम होंगे, यह पुत्र भी उसी मार्ग से शिवजी के स्थान को प्राप्त होंगे ।।१७।। सतरहवें द्वापर के अन्त में देवकृतंजय व्यास होंगे,

तब मैं हिमालय के रमणीक शिखर पर गुहावासी नाम से प्रकट होऊँगा ।।१८।। बड़े ऊंचे, महा आलयवाले तथा शिवक्षेत्र हिमालय पर्वत पर तथ्य, वामदेव, महायोग, महाबल यह चार पुत्र होंगे ।।१९।। जब अठारहवें द्वापर में ऋतंजय नामक व्यास होंगे, तब मैं शिखण्डी नाम से उस हिमालय की मनोहर शिखर पर प्रकट होऊँगा ।।२०।। बड़े पवित्र सिद्ध क्षेत्र में शिखण्डी नामवाला पर्वत है और उसी स्थान में शिखण्डी वन में जहां सिद्ध लोग निवास करते हैं ।।२१।। उस समय वाच:श्रवा, रुचीक, स्यावास्य, यतीश्वर नामक यह पुत्र महा तपस्वी होंगे ।।२२।। उन्नीसवें द्वापर में भरद्वाज मुनि व्यास होंगे, तब मैं जटामाली नाम से प्रकट होऊँगा ।।२३।। वहां हिमालय के शिखर पर समुद्र के सम्मत मेरे चार पुत्र हिरण्यनामा, कौशल्य, लोकाक्षि, प्रधिमि होंगे ।।२४।। बीसवें द्वापर में गौतम व्यास होंगे, तब मैं अट्टहास नाम से होऊँगा और मनुष्य अट्टहास प्रिय होंगे ।।२५।। उसी स्थल में हिमालय पर्वत के पृष्ठ पर अट्टहास नामक बड़ा पर्वत है, जो देवता, मनुष्य, यक्ष, इन्द्र, सिद्ध, चारणों से सेवित है ।।२६।। वहां मेरे चार पुत्र बड़े विद्वान् योगी; सुमन्तु, बर्बरी, कबन्ध, कुशिकन्धर होंगे ।।२७।। इक्कीसवें द्वापरान्त में वाच:श्रवा व्यास होंगे, तब मैं दारुक नाम से प्रकट होऊँगा, मेरा प्रकट स्थान सुन्दर दारुका वन होगा ।।२८।। वहां पर मेरे सुयोगी चार पुत्र प्लक्ष, दार्भायणि, केतुमान, गौतम नामवाले होंगे ।।२९।। बाइसवें द्वापर में जब शुष्मायण व्यास होंगे, तब मैं वाराणसी में महामुनि होऊँगा ।।३०।। वहां मेरा नाम लांगलीभीम होगा, इन्द्र आदि देवता कलियुग में मुझे हलायुध भगवान् के रूप में दर्शन करेंगे ।।३१।। वहां भी मेरे धार्मिक भल्लवी, मधु, पिंग, श्वेतकेतु यह चार पुत्र होंगे ।।३२।। तेइसवें द्वापर युग में जब तृणबिन्दु मुनि व्यास होंगे, तब मैं कालंजर पर्वत पर श्वेत नामवाला प्रकट होऊँगा ।।३३।। वहां भी मेरे परम तपस्वी उशिक, बृहदश्व, देवल, कवि नामवाले चार पुत्र होंगे ।।३४।। चौबीसवें द्वापर युग में जब यक्ष नाम व्यासजी होंगे, तब उस युग में नैमिषारण्य में शूली नामक योगी होऊँगा ।।३५।। वहां भी मेरे परम तपस्वी शालिहोत्र, अग्निवेश, युवनाश्व, शरद्वसु नामवाले चार शिष्य होंगे ।।३६।। जब पचीसवें द्वापर में शक्ति नामक व्यास होंगे, तब मैं महायोगी, दण्डी, मुण्डीश्वर नामवाला होऊँगा ।।३७।। वहां भी मेरे परम तपस्वी छगल, कुण्डकर्ण, कुम्भाण्ड, प्रवाहक नामवाले चार पुत्र होंगे ।।३८।। जब छब्बीसवें द्वापर में योगी पराशर व्यास होंगे, तब मैं भद्रवट पुर में सहिष्णु नामवाला होऊँगा ।।३९।। वहां पर भी मेरे परम तपस्वी उलूक, विद्युत, शम्बूक, आश्वलायन नामवाले चार शिष्य होंगे ।।४०।। सत्ताइसवें द्वापर युग में जब जातुकर्ण्य व्यास होंगे, तब मैं प्रभासी तीर्थ में सोमशर्मा होऊँगा ।।४१।। वहां पर भी मेरे परम तपस्वी अक्षपाद, कुमार, उलूक, वत्स नामवाले चार पुत्र होंगे ।।४२।। अट्ठाइसवें द्वापर में जब पराशर के पुत्र द्वैपायन व्यासजी होंगे ।।४३।। तब छठे अंश से पुरुष श्रेष्ठ कृष्णजी वसुदेव के पुत्र

वासुदेव होंगे ।।४४।। तब भी मैं योगमाया से योगात्मा नामक, संसार को विस्मय करने के निमित्त ब्रह्मचारी शरीर से प्रकट होऊँगा ।।४५।। फिर ब्राह्मणों के हित के निमित्त इस अपने निरोगी शरीर को श्मशान में त्याग करके योगमाया से प्रविष्ट होऊँगा ।।४६।। हे ब्रह्मन्! उस समय मैं आपके सहित पवित्र और दिव्य मेरु की गुफा में स्थित होऊँगा, उस समय मेरा नाम लंकुली होगा ।।४७।। यह मेरा कायावतार सिद्धक्षेत्र में होगा और जब तक भूमि रहेगी, तब तक विख्यात होगा ।।४८।। वहां भी वही मेरे चार शिष्य कुशिक, गर्ग, मित्र, कौरुष्य नामवाले महा तपस्वी होंगे ।।४९।। वे योगी वेद के पारगामी ब्राह्मण, ब्रह्मचारी माहेश्वर योग को प्राप्त होकर शिवलोक को जायँगे ।।५०।। हे सुव्रत! वैवस्वत मन्वन्तर में प्रत्येक द्वापर के आने में सम्यक् प्रकार परमात्मा शिवजी ने योगेश्वर के अवतार कहे ।।५१।। हे विभो! यह व्यासजी के अट्ठाइस अवतार प्रत्येक द्वापर युग में कहे और प्रति कलि के आरम्भ में योगेश्वर का अवतार होता है ।।५२।। प्रत्येक योगेश्वर के अवतारों में योगमार्ग को बढ़ानेवाले चार शिष्य महाशैव, अविनाशी होते हैं ।।५३।। यह शिवजी के शिष्य पाशुपत व्रत करनेवाले, शरीर पर भस्म लगाये, रुद्राक्षमाला धारे, माथे पर त्रिपुण्ड्र लगानेवाले होते हैं ।।५४।। सम्पूर्ण शिष्य धर्म में तत्पर और वेद–वेदांग के पारगामी, नित्य बाहर–भीतर से प्रीति सहित लिंगार्चन करने में तत्पर होते हैं ।।५५।। और मुझ में भक्ति करनेवाले योग के द्वारा ध्यान में स्थित जितेन्द्रिय होते हैं, अट्ठाइस द्वापरों में इनकी संख्या एक सौ बारह होती है ।।५६।। यह मैंने मनु से आदि लेकर कृष्ण पर्यन्त अट्ठाइस युगों के क्रम से अवतारों का लक्षण कहा ।।५७।। इस कल्प में जब कृष्णद्वैपायन व्यास होंगे, उस समय श्रुतियों से युक्त ब्रह्मलक्षणवाला वेदान्तशास्त्र कहेंगे ।।५८।। ब्रह्माजी से ऐसा कहकर और कृपा दृष्टि से उनको देखकर महेश्वर देवेश्वर वहीं अन्तर्धान हो गये ।।५९।।'

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां

शिवावतारोपाख्याने एकोनविंशतिशिवावतारवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः ।। ५ ।।

*****

छठवाँ अध्याय

(अब नन्दीश्वर अवतार कहते हैं।) सनत्कुमारजी बोले- कि हे नन्दीश्वर! आप महादेवजी के अंश से कैसे उत्पन्न हुए हो, आपने शिवत्व किस प्रकार प्राप्त किया है? हे प्रभो! यह सब मैं सुनना चाहता हूं, आप कहिये ।।१।। नन्दीश्वर बोले- हे सर्वज्ञ सनत्कुमारजी! आप सावधान होकर सुनिये कि, जिस प्रकार शिवजी के अंश से उत्पन्न होकर मैं शिवत्व को प्राप्त हुआ ।।२।। एक समय शिलाद ऋषि को जब सन्तान की इच्छा हुई, तब आदर से उनके पितरों ने उद्धार की इच्छा से उनकी भक्ति देखकर कहा कि तुम पुत्र के निमित्त उद्योग करो, तो हमारा उद्धार हो ।।३।। महावीर्यवान् धर्मात्मा शिलाद नीचे को दृष्टि किये, मुनिवृत्ति धारण किये, मन से शिवलोक को गया ।।४।। और इन्द्र के उद्देश्य से वह निश्चल आत्मावाला शिलाद बहुत समय तक कठिन तप करता रहा ।।५।। उसके तप करने से इन्द्र सन्तुष्ट हुए और उस समय सब देवताओं के स्वामी इन्द्र उसे वर देने को गये ।।६।। इन्द्र प्रीतिपूर्वक उस शिलाद से बोले- हे अनघ! मैं तुझसे प्रसन्न हूँ; इस कारण हे मुनिश्रेष्ठ! तुम वर मांगो ।।७।। तब इन्द्र को प्रणाम करके और आदरपूर्वक स्तोत्रों से स्तुति करके वे मुनिशार्दूल शिलाद हाथ जोड़कर उनसे बोले ।।८।। शिलाद बोले- हे देवेश! हे इन्द्र! हे प्रभो! यदि आप मुझसे सन्तुष्ट हुए हो, तो मैं बिना योनि से उत्पन्न हुए मृत्युहीन पुत्र की इच्छा करता हूं।।९।। इन्द्र बोले- हे पुत्र की इच्छा करनेवाले! मैं मृत्युसंयुक्त, योनि से उत्पन्न होने वाले पुत्र दे सकता हूं, अन्यथा नहीं दे सकता, क्योंकि मृत्युहीन कोई नहीं है ।।१०।। हे महामुने! मृत्युहीन अयोनिज पुत्र तुझे नहीं दे सकता, क्योंकि भगवान् विष्णुजी, ब्रह्माजी तक सब मृत्युवाले हैं, और की तो क्या कथा है?।।११।। यह दोनों शिवजी के अंग से उत्पन्न हुए हैं और मृत्यु सहित हैं और उनकी आयु का प्रमाण भी शास्त्रों में कहा है ।।१२।। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! इस कारण मृत्युहीन अयोनिज पुत्र प्राप्त होने का प्रयत्न और आशा का त्याग करो, हे विप्रेन्द्र! अपने समर्थ पुत्र को ग्रहण करो ।।१३।। हां यदि देवेश्वर रुद्र प्रसन्न हो जाएँ, तो आपको ऐसा दुर्लभ, मृत्युहीन, अयोनिज पुत्र दे सकते हैं ।।१४।। हे महामुने! मैं तथा भगवान् विष्णुजी और ब्रह्माजी भी अयोनिज, मृत्युहीन पुत्र नहीं दे सकते ।।१५।। इस कारण ऐसे पुत्र की इच्छा से उन महादेव शिवजी का आराधन करो, वह सर्वेश्वर महासमर्थ शिवजी ही तुम्हें पुत्र देंगे ।।१६।। नन्दीश्वर बोले- हे मुने! इस प्रकार वह इन्द्र उस ब्राह्मण से कहकर और उसके ऊपर दया करके देवताओं सहित इन्द्र अपने लोक को गये ।।१७।। इन्द्र के चले जाने पर वह शिलाद

महादेवजी की आराधना करते हुए शिवजी को तप से सन्तुष्ट करने लगे ।।१८।। तब इस प्रकार रात–दिन तप करने में लगे हुए उन ब्राह्मण के दिव्य सहस्र वर्ष एक क्षण के समान बीत गये ।।१९।। बांबी से उनका शरीर ढँप गया और वज्रसूची मुखवाले (दीमक) रुधिर भोजी लाखों कीड़ों से उनका शरीर व्याप्त हो गया ।।२०।। मांस और रुधिरहीन त्वचामात्र शेष रहे, शरीर रूप बिल में स्थित हुये शिलाद के शरीर में अस्थिमात्र शेष रहे ।।२१।। तब प्रसन्न हुए शिवजी ने उन्हें दिव्य गुणों से युक्त परम दिव्य, कुटिल बुद्धिवालों को अप्राप्त अपना शरीर दिखाया ।।२२।। दिव्य सहस्र वर्ष तक तप करते हुए उन शिलाद से सब देवताओं के स्वामी शिवजी ने ''मैं वर देने आया हूं'' इस प्रकार कहा ।।२३।। उस समय बड़ी समाधि में लीन हुए शिलाद मुनि ने भक्ति से अधीन हुए शिवजी की वाणी को नहीं सुना ।।२४।। हे मुनिश्रेष्ठ! तब शिवजी ने उन मुनि को हाथ से स्पर्श किया, तो उसी समय मुनि की तप की समाधि टुट गई ।।२५।। हे मुने! तब मुनि नेत्रों को खोल कर उमा सहित शम्भुजी को देखकर शीघ्र ही आनन्दपूर्वक प्रणाम करके उनके चरणों पर गिर पड़े ।।२६।। हर्ष से गद्‌गदवाणी और कन्धे झुकाकर, हाथ जोड़कर वे प्रसन्नात्मा शिलाद शिवजी की स्तुति करने लगे ।।२७।। तब देवदेवेश त्रिलोचन भगवान् शिवजी ने मुनिश्रेष्ठ शिलाद से कहा– ''मैं वर देने आया हूं ।।२८।। हे महामते! इस तप से तुम्हारा क्या कार्य है? तुम्हें सर्वज्ञ तथा सब शास्त्रों में पारगामी पुत्र देता हूं?'' ।।२९।। वचन सुनते ही शिलाद उन चन्द्रमौलेश्वर शिवजी को प्रणाम करके हर्ष से गद्‌गद हुई वाणी से बोला ।।३०।। शिलाद बोले– हे महेश्वरजी! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हो और वर देनेवाले हो, तो आपके समान मृत्युहीन अयोनिज पुत्र चाहता हूं ।।३१।। नन्दीश्वर बोले– त्र्यम्बकदेव शिवजी उन मुनि के वचन सुनकर प्रसन्न होकर मुनिश्रेष्ठ शिलाद से बोले ।।३२।। शिवजी बोले– हे तपोधन विप्र! पहले ब्रह्माजी ने मेरी आराधना की थी, अन्य देवताओं ने तथा मुनियों ने भी अवतार के निमित्त आराधना की थी ।।३३।। मैं तुम्हारे यहां नन्दी नामक अयोनिज पुत्र रूप से प्रकट होऊँगा, हे मुने! तुम मुझ लोकत्रयी के पिता के भी पिता होओगे ।।३४।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार कहकर प्रणाम करते हुए मुनि को देखकर दयालु शिवजी ''ऐसा ही होगा'' इस प्रकार उसे आज्ञा देकर पार्वती सहित वहां ही अन्तर्धान हो गये।।३५।। उन महादेवजी के चले जाने पर शिलाद मुनि ने अपने आश्रम में जाकर ऋषियों से यह वृत्तान्त कहा ।।३६।। कुछ समय बीतने पर पिता शिलादजी यज्ञ करने के निमित्त यज्ञ के आंगन को खोदने लगे ।।३७।। उसी समय उनकी आज्ञा से मैं उनका पुत्र रूप होकर प्रलयाग्नि के समान देदीप्यमान प्रकट हुआ ।।३८।। उस समय देवताओं ने फूल वर्षाये और आकाश में स्थित किन्नर, गन्धर्व, सिद्ध, साध्य गण गान करने लगे, मेरे शिलाद के पुत्रत्व होने पर ऋषिगण भी चारों ओर से पुष्पों की वर्षा करने लगे ।।३९।। उस समय

सम्पूर्ण ब्रह्मादि देवता तथा देवताओं की स्त्रियां और प्रीति से विष्णुजी, शिवजी, अम्बिका आदि उन स्थान पर आये ।।४०।। और बड़ा उत्सव हुआ, अप्सरायें नाचने लगीं, वे सब प्रसन्न होकर मेरी तथा लिंगमूर्ति की पूजा करते हुए प्रसन्न हुए ।।४१।। वे सब देवता शिलाद मुनि की प्रशंसा करके तथा शिव–पार्वती की स्तुति करके अपने–अपने स्थानों को गये और शिव–पार्वती भी पधारे ।।४२।। शिलाद ने भी मुझे प्रलयकाल के सूर्य और अग्नि के समान प्रकाशित तीन नेत्रवाला, चतुर्भुज, जटा–मुकुट धारी बालक देखकर ।।४३।। त्रिशूल आदि शस्त्र धारे दीप्तिमान सब प्रकार से रुद्र रूपी प्रणाम करने योग्य मुझे देखकर आनन्द से प्रणाम किया ।।४४।। शिलाद बोला– हे सुरेश्वर! जो कि, आपने मुझे महा आनन्द दिया है, इस कारण आपका नाम नन्दी हुआ, आप देवताओं को आनन्द देनेवाले जगदीश्वर को नमस्कार करता हूं ।।४५।। नन्दीश्वर बोले– मुझ सहित पिता प्रसन्नचित्त होकर महेश्वरजी को प्रणाम करके शीघ्र ही अपनी पर्णकुटी में गये और ऐसे प्रसन्न हुए कि जिस प्रकार कोई निर्धन पुरुष धन को पाकर प्रसन्न होता है ।।४६।। हे महामुने! जब मैं शिलाद मुनि की कुटी में गया, तब मैंने उस प्रकार का रूप त्यागकर मनुष्य शरीर धारण किया ।।४७।। उस समय मनुष्य शरीर देखकर मेरे लोकपूजित पिता अपने कुटुम्बियों के सहित अति दुःखी होकर विलाप करने लगे ।।४८।। पुत्र पर प्रेम करनेवाले शालंकायन के पुत्र शिलाद ने मेरे सम्पूर्ण जातकर्म आदि संस्कार किये ।।४९।। उन मेरे पिता ने पांच वर्ष की अवस्था में ही मुझे सम्पूर्ण सांगोपांग वेदों को तथा अन्य दूसरे शास्त्रों को भी पढ़ाया ।।५०।। सातवें वर्ष के समाप्त होने पर मित्रा–वरुण संज्ञक दो मुनि शिवजी की आज्ञा से मुझे देखने आये ।।५१।। तब मेरे पिता से सत्कार को प्राप्त होकर, वे मुनि अच्छी प्रकार बैठे और मुझे बारंबार देखकर, वे महात्मा बोले ।।५२।। मित्रा–वरुण बोले– कि, हे तात! यह आपका पुत्र नन्दी थोड़ी अवस्थावाला है, सम्पूर्ण शास्त्रों में पारगामी ऐसा कोई नहीं देखा, इसकी एक वर्ष की आयु होगी ।।५३।। उन ब्राह्मणों के ऐसा कहने पर वे पुत्रवत्सल शिलाद अपने पुत्र को आलिंगन करके दुःखी होकर ऊँचे स्वर से रोने लगा ।।५४।। मृतक के समान गिरे हुए पिता को देखकर प्रसन्नात्मा वह बालक शिवजी के चरणकमलों को स्मरण करके अपने पिता से बोला ।।५५।। हे तात! आप किस दुःख से कांपते हुए रोते हैं, आपको कहां से दुःख प्राप्त हुआ ? यह तत्त्वपूर्वक जानना चाहता हूं ।।५६।। पिता बोले– हे पुत्र! तुम्हारी अल्पमृत्यु के दुःख से दुःखी हूं, मेरे इस दुःख को कौन दूर करेगा ? मैं किसकी शरण में जाऊं ? ।।५७।। पुत्र बोला– देवता, दानव, यमराज, काल तथा अन्य मनुष्य भी यदि मुझे मारें ।।५८।। तब भी मेरी अपमृत्यु नहीं होगी, इस कारण आप दुःखी मत हो, हे पिताजी! मैं सत्य कहता हूं, आपकी शपथ (सौगन्ध) खाता हूं ।।५९।। पिता बोले– हे पुत्र! कौन सा तप, कौन सा ज्ञान

और वह कौन सा योग है? तुम्हारा कौन प्रभु है? जिससे तुम मेरे कठिन दुःख को दूर करोगे।।६०।। पुत्र बोला– हे तात! मैं तप से वा विद्या से मृत्यु को दूर न करूंगा, केवल महादेवजी के भजन करके मृत्यु को जीतूंगा, इसमें सन्देह नहीं है।।६१।। नन्दीश्वर बोले– हे मुने! इस प्रकार कहकर पिता के चरणों कों सिर से प्रणाम और उनकी प्रदक्षिणा करके मैं श्रेष्ठ वन को चला गया।।६२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
नंदिकेश्वरावतारवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः।। ६ ।।

*****

सातवाँ अध्याय

नन्दीकेश्वर बोले– हे मुने! वहां जाकर मैं धीरतापूर्वक एकान्त स्थल में स्थित होकर श्रेष्ठ मुनियों को भी दुर्लभ ऐसा अतिकठिन तप करने लगा।।१।। अपने हृदयकमल में त्र्यम्बकदेव, तीन नेत्र, दशभुजा, शान्त, पंचमुख सदाशिवजी का ध्यान करके।।२।। परम ध्यान में मग्न होकर रुद्र के मन्त्र को पवित्र नदी के उत्तरभाग में एकाग्र चित्त से सावधान होकर जपने लगा।।३।। उस जप में स्थित हुए मुझसे चन्द्रशेखर, परमेश्वर, सदाशिव पार्वती सहित सन्तुष्ट हो गये और बोले।।४।। शिवजी बोले– हे शिलाद के पुत्र! इस तुम्हारे तप से सन्तुष्ट होकर मैं तुझे वर देता हूं, हे धीमन्! तुमने बहुत श्रेष्ठ तप किया है, जो तुम्हारे मन में हो, सो कहो।।५।। इस प्रकार शिवजी के कहने पर अपने सिर को उनके चरणों में झुकाकर जरा, शोक से नाश करनेवाले शिवजी की मैं स्तुति करने लगा।।६।। तब परम भक्ति से युक्त तथा आंसुओं से पूर्ण नेत्रवाले, चरणों में मस्तक झुकाये मुझ नन्दी को।।७।। उठाकर दुःखहर्ता परमेशान वृषभध्वज ने दोनों हाथों से मुझे पकड़कर स्पर्श किया।।८।। गणपतियों को और देवी पार्वती को तथा मुझे कृपा कटाक्ष से देखकर जगतपति बोले।।९।। हे वत्स नन्दिन्! हे महाप्राज्ञ! तुम्हें मृत्यु से भय कहां? उन दोनों ब्राह्मणों को मैंने ही भेजा था, तुम मेरे समान हो, इसमें कुछ संशय नहीं है।।१०।। तुम पिता और सुहृद्जनों के सहित अजर–अमर, दुःख रहित, अविनाशी, अक्षय और मेरे प्रिय होगे।।११।। मेरे बलवाले तथा मेरे समीप प्राप्त हुए, रात–दिन मेरे प्रिय होगे, मेरी प्रसन्नता से जरा–मृत्यु तुम्हें प्राप्त न होगी।।१२।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार कहकर अपनी कुशेशमयी सिरों की माला कृपानिधि शिवजी ने खोलकर शीघ्र ही मेरे कण्ठ में बांध दी।।१३।। हे विप्र! उस सुन्दर माला को कण्ठ में पहनते ही तीन नेत्र, दश भुजाओंवाला मानो दूसरा शिव ही हो गया।।१४।। तब

परमेश्वर ने मुझे हाथ से ग्रहण करके कहा, कहो अब तुम्हें क्या श्रेष्ठ वर दूं?।।१५।। तब वृषभध्वजजी ने अपनी जटाओं से हार के समान निर्मल जल ग्रहण करके, 'नन्दी हो' ऐसा कहकर उसे मेरे ऊपर छिड़का।।१६।। उस जल से पांच शुभ नदियों से निर्मल और बड़े वेग वाला दिव्य रूप जल बहने लगा।।१७।। जटोदका, त्रिस्रोता, वृषभध्वनि, स्वर्णोदका, जम्बुनदी यह पांच नदियां कहीं।।१८।। हे मुने! यह पंचनद नामक परम पवित्र शिवजी का पृष्ठदेश, जपेश्वर के समान वर्तमान है।।१९।। जो पुरुष पंचनद पर प्राप्त होकर स्नान कर वहां जप करके जपेश्वर शिवजी का पूजन करता है, वह शिवजी की सायुज्य मुक्ति को प्राप्त होता है, इसमें कुछ संशय नहीं।।२०।। शिवजी पार्वतीजी से बोले– कि नन्दी को गणेश्वरपद में अभिषेक करता हूं, मैं इसे गणेन्द्र करूंगा, तुम्हारी इसमें क्या संमति है?।।२१।। पार्वती बोली– हे देवेश! हे परमेश्वर! नन्दी को मुझे दीजिये, हे नाथ! वह शिलादपुत्र आज से मेरा महाप्रिय पुत्र हुआ।।२२।। नन्दीश्वर बोले– इसके उपरान्त परम स्वतन्त्र, परम ईश, भक्तवत्सल शंकरजी ने अपने श्रेष्ठ गणों को स्मरण किया।।२३।। शिवजी के स्मरण करते ही वे शंकरजी के आकृति वाले असंख्यात गणेश्वर बड़े आनन्द से आये।।२४।। उन गणेशों ने उन शिवजी तथा आदिदेवी पार्वती को प्रणाम करके, हाथ बांधकर, सिर झुकाकर शुभ वचन कहे।।२५।। गणाध्यक्ष बोले– हे प्रभो! हमें किस निमित्त स्मरण किया है? आज्ञा दीजिये, हे त्रिपुरार्दन! हे कामद! हम सब आपके सेवक आयें हैं।।२६।। कहें तो समुद्रों को सुखा डालें अथवा सेवकों सहित यमराज को मार डालें, मृत्यु, महामृत्यु वा वृद्ध ब्रह्माजी का संहार कर दें।।२७।। अथवा देवताओं सहित इन्द्र को वा पार्षदों सहित विष्णुजी को बांधकर ले आवें, या दानवों सहित क्रोधित दैत्यों को पकड़ लावें।।२८।। आज आपकी आज्ञा से किसे घोर दण्ड दें अथवा किसी कामना की सिद्धि के निमित्त आज किसी का उत्सव करें।।२९।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार उन वीरवादी गणों का वचन सुनकर शिवजी उन गणपतियों की प्रशंसा करके उनसे बोले।।३०।। शिवजी बोले– यह नन्दीश्वर मेरा पुत्र, सब गणों का अधिपति तथा प्रिय गणों में मुख्य हुआ, ऐसा सबों को मेरा वचन पालन करना चाहिये।।३१।। तुम सब प्रीतिपूर्वक मेरे गणाध्यक्ष, इस नन्दी को स्नान कराओ और आज से यह नन्दी तुम सबों का स्वामी हुआ।।३२।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार शिवजी से कहे हुए वे सम्पूर्ण गणपति 'बहुत अच्छा' ऐसा कहकर सब सामग्री लाये।।३३।। तब इन्द्र सहित सम्पूर्ण देवता तथा नारायण और सम्पूर्ण मुनि प्रसन्न होकर सब लोकों से आये।।३४।। शिवजी के नियोग से भगवान् ब्रह्माजी ने सावधान होकर नन्दी का अभिषेक किया।।३५।। तब विष्णुजी ने, फिर इन्द्र ने, उनके पीछे लोकपालों नें स्नान कराया और ऋषिगण तथा ब्रह्मादि देवता बड़े प्रसन्न होकर स्तुति करने लगे।।३६।। तब उन सबके स्तुति

करने पर सम्पूर्ण जगत् के पति विष्णुजी हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर स्तुति करने लगे।।३७।। और हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर जय शब्द किया, तब सम्पूर्ण गणाधिप, देवता तथा असुर ।।३८।। और ब्रह्माजी से आदि लेकर देवता स्तुति करने लगे, इस प्रकार अभिषेक को प्राप्त होकर मुझ नन्दीश्वर ने ब्रह्माजी की आज्ञा से ।।३९।। अपना विवाह किया। विष्णुजी और ब्रह्माजी आदिकों ने प्रीति से बड़ा उत्सव किया ।।४०।। सुयशा नामवाली परम मनोहर देवी, मरुत की कन्या, मन और नेत्रों को आनन्द देनेवाली, परम दिव्य रूपवती मेरी पत्नी हुई ।।४१।। परम शोभायमान चन्द्रमा के समान कान्तिमान छत्र लिया और दूसरी स्त्रियों ने चामरों को ग्रहण किया ।।४२।। इस प्रकार परम मनोहर सिंहासन पर उनके साथ बैठा और महालक्ष्मीजी ने मुकुट आदि सुन्दर भूषणों से मुझे सजाया ।।४३।। देवी ने अपने कण्ठ का दिव्य हार मुझे दिया, श्वेत वृषभ, हाथी तथा सिंह की ध्वजा ।।४४।। हे मुने! रथ चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब के समान स्वच्छ सुवर्ण का हार तथा अन्य अनेको वस्तुएँ भी मुझे मिलीं ।।४५।। हे महामुने! इस प्रकार उस पत्नी से मेरा विवाह होने पर, मैंने पार्वती, ब्रह्माजी तथा विष्णुजी के चरणों को नमस्कार किया ।।४६।। उस प्रकार सपत्नीक मुझसे भक्तवत्सल त्रिलोकेश शिवजी परमप्रीति से बोले ।।४७।। शिवजी बोले– हे सत्पुत्र! तुम पति और यह तुम्हारी सुयशा स्त्री है और तुम्हें प्रसन्न होकर वहीं दूंगा जो तुम्हारे मन में हो ।।४८।। हे गणेश्वर! हे नन्दीश्वर! मैं तुझसे निरन्तर सन्तुष्ट हूं, तुम मेरे सदा प्रिय होगे, हे वत्स! देवी सहित मेरे इस वचन को सुनो ।।४९।। अच्छे मनोरथ तथा परम ऐश्वर्य सहित महायोगी, महा धनुषधारी तुम्हारे पितामह समेत ।।५०।। अजेय तथा सबको जीतनेवाला महाबली होकर सदा पूजनीय होगा, जहां मैं होऊँगा, वहां तुम होगे, जहां तुम होगे, वहां मैं होऊँगा ।।५१।। हे पुत्र! यह बड़े ऐश्वर्य सहित तुम्हारा पिता महाबली मेरा भक्त, गणों का अध्यक्ष होगा ।।५२।। हे वत्स! तुम्हारा पितामह भी वैसा ही होगा, ऐसा नियम रहेगा, मुझसे वरदान प्राप्त हुए वे सब मेरे समीप जायँगे ।।५३।। नन्दीश्वर बोले– तब महाभागा देवी नन्दी को वरदान देने की इच्छा से बोली– हे पुत्र! मुझसे इच्छित वर मांगो ।।५४।। तब पार्वतीजी के वचन सुनकर मैं हाथ जोड़कर उस समय बोला– हे देवि! आपके चरणों में मेरी नित्य भक्ति हो, यह वरदान दीजिये ।।५५।। मेरे वचन को सुनकर देवी ने कहा कि, 'ऐसा ही हो'। तब पार्वती सुयशा नाम नन्दी की स्त्री से दया से अच्छी प्रीतिपूर्वक बोली ।।५६।। पार्वती बोली– हे वत्से! यथेष्ट वर को ग्रहण करो। त्रिनेत्रा, जन्म वर्जिता तुम्हारी पुत्र–पौत्रादि सहित मुझमें तथा पति में भक्ति हो ।।५७।। नन्दीश्वर बोले– उस समय ब्रह्माजी, विष्णुजी तथा सम्पूर्ण देवताओं ने प्रसन्न होकर शिवजी की आज्ञा से उन दोनों को वर दिये ।।५८।। तब सम्बन्धी बान्धवों सहित, मुझे कुटुम्ब सहित लेकर शिवजी बैल पर चढ़कर देवी के सहित अपने गृह को पधारे ।।५९।।

विष्णुजी आदि सम्पूर्ण देवता भी उसकी प्रशंसा करते और प्रीति सहित शिवजी की स्तुति करते हुए अपने-अपने स्थानों को गये ।।६०।। हे वत्स! हे महामुने! इस प्रकार अपना अवतार आपसे कहा, जो पुरुषों को सदा आनन्द देनेवाला और शिवजी की भक्ति बढ़ानेवाला है ।।६१।। जो पुरुष इस नन्दी के जन्म तथा मेरे वरदान को और अभिषेक तथा विवाह को सुनता और सुनाता है ।।६२।। तथा श्रद्धा-भक्ति सहित जो पढ़ता है अथवा पढ़ाता है, वह इस संसार में सम्पूर्ण सुखों को भोग कर परलोक में सुन्दर गति को प्राप्त होता है ।।६३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
नन्दिकेश्वरावताराभिषेकविवाहवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ।। ७ ।।

*****

आठवाँ अध्याय

नन्दीकेश्वर बोले- हे सर्वज्ञ सनत्कुमारजी! अब आप भैरवी कथा को सुनिये कि, जिसके श्रवणमात्र से शिवजी की भक्ति होती है ।।१।। भैरवजी परमात्मा शंकरजी का पूर्ण रूप हैं, शिवजी की माया से मोहित हुए मूर्खजन उनको नहीं जानते हैं ।।२।। हे सनत्कुमारजी! महेश्वरजी की महिमा को चतुर्भुज विष्णुजी तथा चतुर्मुख ब्रह्माजी भी नहीं जानते हैं ।।३।। इसमें कुछ आश्चर्य नहीं, क्योंकि शम्भुजी की महिमा कठिनता से जानी जाती है, उससे मोहित हुए बहुत लोग परमेश्वर को नहीं पूजते हैं ।।४।। यदि वह ही परमेश्वर अपनी आत्मा जानता है, तब वे जानते हैं और अपनी इच्छा से कोई उसे नहीं जान सकते ।।५।। सब जगह स्थित हुए भी महेश्वरजी मूर्खबुद्धियों से नहीं जाने जाते, जो मन और वाणी से परे हैं, सो देववत् संसार में जाने जाते हैं ।।६।। हे परमर्षे! इस विषय में पुराने इतिहास को कहते हैं, हे तात! परम ज्ञान के कारण उस इतिहास को श्रद्धा से सुनिये ।।७।। सुमेरु पर्वत के मनोहर शिखर पर बैठे हुये परमेश्वर, ब्रह्माजी के समीप देवता तथा ऋषिगण श्रेष्ठ तत्त्व जानने की इच्छा से गये ।।८।। वे सब मुनीश्वर वहां जाकर ब्रह्माजी को नमस्कार करके बड़े आदर से अंजलि बांधे, कंधे झुकाकर उनसे पूछने लगे ।।९।। देवर्षि बोले- हे देव देव! हे प्रजानाथ! हे सृष्टिकर्ता! हे लोकनायक! आप हम से सत्य कहिये, कि एक अविनाशी तत्त्व क्या है?।।१०।। नन्दीश्वर बोले- कि, महेश्वरजी की माया से मोहित हुए ब्रह्माजी परमभाव को न जानकर उस भाव को कहने लगे ।।११।। ब्रह्माजी बोले- हे ऋषियो! हे देवताओ! मन लगाकर अच्छी बुद्धि से सुनिये, मैं परम अविनाशी तत्त्व को यथार्थ रूप से कहता

हूं।।१२।। मैं ही एक संसार का उत्पन्न करनेवाला तथा धारण करनेवाला, स्वयं प्रकट होनेवाला, अज, एकमात्र ईश्वर, अनादि भोक्ता हूं, ब्रह्म तथा एक निरंजन आत्मा हूं।।१३।। संसार को प्रवृत्त करनेवाला मैं ही हूं, हे देवताओ! कोई भी देवता मुझसे अधिक प्रवर्तक नहीं है।।१४।। नन्दीश्वर बोले– हे मुने! ब्रह्माजी ऐसा कह रहे थे और विष्णुजी वहां स्थित थे, माया से मोहित होकर हँसते हुए क्रुद्ध वाणी से बोले।।१५।। हे ब्रह्मन्! आप योग में युक्त हो, आपको ऐसी मूर्खता उचित नहीं है, आप परम तत्त्व को न जानकर ऐसा वृथा ही कहते हैं।।१६।। सम्पूर्ण लोकों के कर्त्ता, परम पुरुष, परमात्मा, यज्ञ, नारायणदेव, मायाधीश, परम गति हैं।।१७।। हे ब्रह्मन्! मेरी आज्ञा से ही आप इस सृष्टि को करते हो, संसार में मेरा अनादर करके जीवन नहीं हो सकता।।१८।। इस प्रकार प्रकृति से मोहित होकर, परस्पर विजय की इच्छा करते हुए ब्रह्माजी और विष्णुजी अपने प्रमाण में वेदों को, शास्त्रों को कहने लगे।।१९।। कि विशेष कर इन चारों वेदों से पूछना चाहिये, वे चारों वेद मूर्ति धारण किये हुए स्थित हैं, वे ही इस बात का प्रमाण जानते हैं।।२०।। ब्रह्माजी और विष्णुजी बोले– हे वेदो! सर्वत्र आप का प्रमाण है, आपकी प्रतिष्ठा बड़ी है, आप विश्वास योग्य कहिये, कि अविनाशी एक तत्त्व क्या है?।।२१।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार उन ब्रह्मा, विष्णुजी के वचन सुनकर वे, ऋक्, यजु आदि चारों वेद, परेश, प्रभु शिवजी को स्मरण करते हुए तत्त्व से बोले।।२२।। हे विभो! हे सृष्टि की स्थिति करनेवाले देवताओ! यदि हम माननीय हैं, तो आपके सन्देह को दूर करनेवाले प्रमाण को कहते हैं।।२३।। नन्दीश्वर बोले– वेदों से कही विधि को सुनकर वे दोनों ब्रह्मा, विष्णुजी वेदों से बोले, कि जो कुछ आप कहोगे, हम प्रमाण करेंगे, आप सम्यक् प्रकार कहिये।।२४।। ऋग्वेद ने कहा– जिनके भीतर सम्पूर्ण भूत हैं तथा जिनसे सब कुछ प्रवृत्त होता है और जिनको परमतत्त्व कहते हैं, वह एक रुद्र ही हैं।।२५।। यजुर्वेद ने कहा– जो ईश्वर सम्पूर्ण यज्ञों से तथा योग से यजन किये जाते है, जिनके द्वारा हमारा प्रमाण होता है, वह सबके देनेवाले शिवजी हैं।।२६।। सामवेद बोले– जिनके द्वारा सब जीव संसार में भ्रमते हैं, जिन्हें योगीजन ढूंढ़ते हैं, जिनकी कान्ति से सम्पूर्ण संसार प्रकाशित हो रहा है, वही एक त्र्यम्बक शिवजी हैं।।२७।। अथर्ववेद बोले– जिन देवेश्वर को भक्तजन भक्ति के द्वारा साक्षात्कार करते हैं, वही एक कैवल्य, दुःखों से परे शंकरजी हैं।।२८।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार वेदों के वचन सुनकर बड़ी माया से मोहित हुए ब्रह्मा, विष्णुजी विस्मित, विचेतन होकर उन वेदों से बोले।।२९।। हे वेदो! आप ज्ञान रहित होकर यह क्या कहते हो? आज आपको क्या हुआ? क्या सब विचार नष्ट हो गया? कुरूप वेषधारी, जटा बढ़ाए, बैल पर चढ़नेवाले, सर्पों के भूषणधारी, निस्संग शिवजी परब्रह्म कैसे हो सकते हैं?।।३२।। इस प्रकार उन दोनों के वचन सुनकर सब स्थानों में

स्थित, अमूर्त और मूर्तिमान् ओंकार प्रीतिपूर्वक उन दोनों से बोला ।।३३।। ओंकार बोला– लीलारूपधारी भगवान् रुद्र शिवजी अपनी शक्ति के बिना रमण नहीं कर सकते हैं ।।३४।। वह परमेश्वर शिवजी स्वयं सनातन ज्योति स्वरूप हैं और उनकी आनन्दरूपा शक्ति आगन्तुकी नहीं, किन्तु नित्य है ।।३५।। नन्दीश्वर बोले– उस समय ओंकार के इस प्रकार कहने पर भी शिवजी की माया से मोहित होने के कारण ब्रह्मा, विष्णुजी का अज्ञान नाश को प्राप्त न हुआ ।।३६।। तब उन दोनों के बीच में बड़ी ज्योति प्रकट हुई, जो अपने प्रकाश से भूमि, आकाश को पूर्ण कर रही थी ।।३७।। उस ज्योति समूह के मध्य में स्थित अद्‌भुत शरीरधारी एक पुरुष को ब्रह्माजी और विष्णुजी ने देखा ।।३८।। तब क्रोध से ब्रह्माजी का पांचवां सिर जलने लगा, कि हम दोनों के मध्य में यह पुरुषाकार कौन धारण किये हैं ?।।३९।। जब तक ब्रह्माजी विचार करें, कि तब तक वह त्रिलोचन महापुरुष नीललोहित शिवजी क्षणमात्र में दिखाई दिये ।।४०।। त्रिशूल हाथ में लिये भाललोचन, सर्प और चन्द्रमा के भूषण धारे शंकरजी को देखकर मोहित हुए ब्रह्माजी बोले ।।४१।। ब्रह्माजी बोले– हे नीललोहित! हे चन्द्रशेखर! हे रुद्र! भय मत करें, मैं आपको जानता हूं, मेरे माथे से आप पहले प्रकट हुए थे ।।४२।। और रोने के कारण मैंने ही आपका रुद्र नाम रखा था, हे पुत्र! मेरी शरण में आओ, मैं आपकी रक्षा करूंगा ।।४३।। नन्दीश्वर बोले– हे मुने! तब शिवजी ने इस प्रकार अहंकार भरी ब्रह्माजी की वाणी सुनकर बड़ा क्रोध किया, मानों प्रलय ही कर देंगे ।।४४।। तब परमेश्वर ने क्रोध से एक भैरव पुरुष को उत्पन्न किया और क्रोध से प्रज्ज्वलित हुए उस पुरुष से महेश्वरजी कहने लगे ।।४५।। ईश्वर बोले– हे कालभैरव! पहले तुम इन कमल भव ब्रह्माजी को शासन करो, तुम साक्षत् काल के समान शोभित हो, इस कारण कालराज नाम से विख्यात होगे ।।४६।। संसार का पालन करने में तुम समर्थ हो, भीषण होने से भैरव हो, तुम से काल भी डरता है, इस कारण तुम कालभैरव हो ।।४७।। तुम रुष्ट होकर दुष्टात्माओं को नष्ट कर सकोगे, इस कारण तुम आमर्दक नाम से सर्वत्र प्रसिद्धि को प्राप्त होगे ।।४८।। जिस कारण कि, तुम भक्तों के पाप तत्काल नाश करोगे, उस कारण तुम्हारा पापभक्षण नाम होगा ।।४९।। हे कालराज! मेरी मुक्तिपुरी काशी सब पुरियों से बड़ी है, तुमको सदा उसका आधिपत्य प्राप्त रहेगा ।।५०।। उस पुरी में जो पापी पुरुष हैं, उनको तुम दण्ड देनेवाले होगे, वहां के शुभ और अशुभ कर्म को चित्रगुप्त लिखेंगे ।।५१।। नन्दीश्वर बोले– इन वीरों को ग्रहण करके कालभैरव ने तत्क्षण बाईं अंगुलियों के नखाग्र भाग से ब्रह्माजी का सिर काट लिया ।।५२।। जो अंग अपराध करता है, उसे ही दण्ड देना चाहिये, इस कारण जिसने निन्दा की उसी पांचवें सिर को काट दिया ।।५३।। तब ब्रह्माजी के सिर को कटा हुआ देखकर विष्णुजी भयभीत हो गये, शतरुद्रिय के मन्त्रों के पाठ से भक्तिपूर्वक

शिवजी की स्तुति करने लगे ।।५४।। भयभीत हुए ब्रह्माजी भी शतरुद्रिय मन्त्र जपने लगे, हे मुने! उस समय वे दोनों अहंकार शून्य हुए ।।५५।। परब्रह्म शिवजी ही साक्षात् सच्चिदानन्द स्वरूप हैं, परमात्मा हैं, गुणों से परे हैं, ऐसा ज्ञान उन दोनों को प्राप्त हुआ ।।५६।। हे सर्वज्ञ सनत्कुमारजी! मेरे परम शुभ वचन को सुनिये, जब तक अहंकार रहता है, तब तक ज्ञान छिपा रहता है ।।५७।। पुरुष अभिमान का त्याग करके परमेश्वर को जानता है, वह विश्वपति गर्व करनेवाले को नष्ट करते हैं, क्योंकि अहंकार के विनाशक हैं ।।५८।। तब परमेश्वर ब्रह्माजी और विष्णुजी को अहंकार रहित जानकर प्रसन्न हुए और महादेवजी ने उन दोनों को अभयदान दिया ।।५९।। भक्तवत्सल महादेवजी प्रसन्न होकर उन दोनों को ढांढस बंधाते हुए अपनी कपर्दिनी भैरव मूर्ति से बोले ।।६०।। महादेवजी बोले– तुम इन विष्णुजी तथा ब्रह्माजी का मान करते हो, हे नीललोहित! तुम इस ब्रह्माजी के कपाल को धारण करो ।।६१।। संसार में ब्रह्महत्या के दूर करने के निमित्त तुम व्रत धारण करो और कपालव्रत को आश्रय करके भिक्षावृत्ति करो ।।६२।। यह कहकर उनके देखते ही एक ब्रह्महत्या नामक कन्या को उत्पन्न करके तेजोरूप शिवजी बोले ।।६३।। जब तक यह कन्या दिव्य वाराणसीपुरी में पहुँचे, तब तक भयंकर रूप धारण करके तुम उसके आगे ही चले जाओ ।।६४।। उससे कहना, कि केवल वाराणसीपुरी को छोड़कर और सब जगह तेरा प्रवेश रहेगा, जभी वाराणसी में जायगी, उसी समय तू मुक्त हो जायगी ।।६५।। नन्दीश्वर बोले– महाअद्भुत, परमप्रभु शिवजी उस समय ब्रह्महत्या को इस प्रकार प्रवृत्त कराके अन्तर्धान हो गये ।।६६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां

भैरवावतारवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ।। ८ ।।

*****

नववाँ अध्याय

नन्दीकेश्वर बोले– हे सर्वज्ञ सनत्कुमारजी! भैरव की दूसरी कथा प्रीतिपूर्वक सुनिये, जो महादोषों को हरनेवाली और भक्ति की बढ़ानेवाली हैं ।।१।। शंकरजी की समीपता से भैरवजी काल के भी काल हुए और उन्होंने महादेवजी की आज्ञा से कापालिक व्रत धारण किया ।।२।। वह विश्वात्मा कपाल हाथ में लेकर तीनों लोकों में विचरने लगे और उस कठिन ब्रह्महत्या ने कहीं भी उनका पीछा न छोड़ा ।।३।। वे प्रत्येक तीर्थ में भी भ्रमण करते हुए तथापि ब्रह्महत्या से न छूटे, इस कारण शिवजी की महिमा अद्भुत जाननी चाहिये ।।४।। एक समय प्रमथों से सेवित हुए शिवजी विहार

करते-करते कापालिक वेष धारे स्वतन्त्र होकर नारायण के स्थान को गये ।।५।। उस समय महाकाल, तीन नेत्र, सर्पों के कुण्डल धारे, महादेवजी के अंश से उत्पन्न, पूर्णाकारवाले भैरवजी को आते हुए देखा ।।६।। भगवान् विष्णुजी ने उनको दण्डवत किया, देवता, मुनि और देवस्त्रियां चारों ओर से उनके समीप आईं ।।७।। तब लक्ष्मीजी के स्वामी विष्णुजी ने उनको प्रणाम करके मस्तक पर अंजलियुक्त हाथ करके अनेक स्तुतियों से सन्तुष्ट किया ।।८।। उस समय आनन्दसहित प्रसन्नात्मा विष्णुजी ने क्षीरसागर के मथने से उत्पन्न हुई कमलालया लक्ष्मीजी से कहा ।।९।। विष्णुजी बोले- हे प्रिये! हे कमलनयने! हे अनघे! हे सुभगे! तुम धन्य हो; हे देवि! हे सुन्दरश्रोणिवाली! मैं धन्य हूं, जो हम दोनों ने जगत्पति शिवजी का दर्शन किया ।।१०।। यह लोकों के धारण करनेवाले विधाता, प्रभु, ईश्वर हैं, अनादि, शरण, शान्त, छब्बीस तत्त्वों से सम्मिलित हैं ।।११।। यही सर्वज्ञ, सब योगियों में ईश्वर, सब भूतों के एक स्वामी, सब प्राणियों के अन्तर्यामी, सबों को सदा सब कुछ देनेवाले हैं ।।१२।। हे देवि! जिनको निद्रा त्यागकर, श्वास रोककर, शान्त समाधिवाले, ध्यान में तत्पर योगीजन बुद्धि के द्वारा अपने हृदय में देखते हैं, यह वहीं हैं, इनको देखो ।।१३।। जिन्हें वेदतत्त्व के जाननेवाले योगी स्थिर मन से जानते हैं, वही सर्वव्यापक, रूप रहित, सगुण रूप धारण करके यहां प्राप्त हुए हैं ।।१४।। अहो! उन देव की विचित्र चेष्टा है, कि जिनके चरित्र वर्णन करनेवाले मनुष्य को फिर देह धारण करना नहीं पड़ता ।।१५।। उनके दर्शन करके मनुष्य फिर पृथ्वी पर जन्म नहीं लेता, वही यह चन्द्रशेखर, त्र्यम्बक, भगवान् शिवजी आज पधारे हैं ।।१६।। आज मेरे कमल के समान दीर्घ नेत्र सफल हुए, हे लक्ष्मी! जिन नेत्रों से साक्षात् महादेवजी का दर्शन किया ।।१७।। उन देवताओं के पद को धिक्कार है, कि जिन्होंने शंकरजी को नहीं देखा, जिनसे निर्वाण (शान्ति) प्राप्त होती है और जो समस्त दुःखों को नाश करनेवाले हैं ।।१८।। जो देवेश शिवजी को देखकर मुक्ति प्राप्त न की, तो देवलोक में इससे अशुभ और क्या होगा?।।१९।। इस प्रकार कहकर पुलकायमान शरीरवाले प्रसन्न भगवान् विष्णुजी उन शिवजी से बोले ।।२०।। विष्णुजी बोले- हे विभो! हे देवों के देव! हे सर्वज्ञ! हे सब पाप के हरनेवाले! हे अविनाशी! आप यह भ्रमण क्यों करते हो?।।२१।। हे त्रिलोचन! हे महामते! यह आपकी क्रीड़ा किस कारण हुई है? हे कामारी! हे विरूपाक्ष! यह क्या आपकी चेष्टा है?।।२२।। हे भगवन्! हे शम्भो! हे शक्तपते! आप किस कारण भिक्षा मांगते फिरते हो? हे त्रिलोकी के राज्य देनेवाले! हे जगन्नाथ! यह मुझे अति सन्देह है ।।२३।। नन्दीश्वर बोले- जब इस प्रकार से विष्णुजी ने कहा तब भगवान् भैरवजी हँसकर इस अद्भुत कथा को फिर विष्णुजी से कहने लगे ।।२४।। भैरवजी बोले- अंगुली के नखाग्र से ब्रह्माजी का सिर काटा था, उस पाप को दूर करने को इस शुभ व्रत का अनुष्ठान करता हूं ।।२५।। नन्दीश्वर बोले-

इस प्रकार लक्ष्मीपति विष्णुजी से भैरव महेश्वरजी ने कहा, तब फिर कुछ स्मरण करके सिर झुकाकर विष्णुजी बोले ।।२६।। विष्णुजी बोले– हे सब विघ्नों को दूर करनेवाले भैरवजी! आपकी जैसी इच्छा हो, वैसी क्रीड़ा करें, हे महादेव! पर मुझे अपनी माया से मोहित मत कीजिये ।।२७।। हे विभो! प्रत्येक कल्प में आपके नाभिकमल से सत्ययोग द्वारा करोड़ों ब्रह्माण्ड प्रकट हुए हैं ।।२८।। हे देव! इस अपनी माया को त्याग करें, यह अकृतात्माओं को बड़ी कठिन है, आपकी माया से ब्रह्मादि सब देवता मोहित हो रहे हैं ।।२९।। हे सबके ईश्वर! हे सत्पुरुषों की गति! हे पार्वतीपति! मैं आपके ही अनुग्रह से आपकी चेष्टा को यथावत् जानता हूं ।।३०।। संहारकाल के प्राप्त होने पर सब देवता और मुनियों को लोक और वर्णाश्रमियों को जब आप हरण करेंगे ।।३१।। हे महादेव! उस समय क्या ब्रह्मवध आदि पाप आपको लगेगा? हे शिवजी! आप पराधीन नहीं हैं, आप स्वतन्त्रता से क्रीड़ा करते हैं ।।३२।। अर्घी के समान ब्रह्माजी की अस्थि की माला आपके कण्ठ में विराजित है, हे पाप रहित शिवजी! तो भी आपके पीछे ब्रह्महत्या लगी है ।।३३।। पाप करके भी जो मनुष्य आपको स्मरण करता है, हे संसार के आधार! उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं ।।३४।। जिस प्रकार सूर्य के समीप अन्धकार नहीं रहता, उसी प्रकार जो आपका भक्त होता है, उसका पाप नाश को प्राप्त होता है ।।३५।। जो पुण्यात्मा आप के चरणाम्बुजों का स्मरण करता है, उसके किये गये ब्रह्महत्यादि पाप भी नष्ट हो जाते हैं ।।३६।। हे जगत्पते! जिस मनुष्य की वाणी आपके नाम में अनुरागवाली होती है, उसे पहाड़ के कूट के समान पाप भी बाधा नहीं दे सकता ।।३७।। हे परमात्मन्! हे परमधाम! हे अपनी इच्छा से शरीर धारण करनेवाले! हे ईश्वर! हे दयामय! यह आपका कुतूहल मात्र है ।।३८।। हे देवेश! आज मैं धन्य हूं, जिसको योगीजन भी नहीं देख सकते, उस जगन्मूर्तिरूप अविनाशी परमेश्वर को मैं देखता हूं ।।३९।। आज मुझे परम लाभ और आज मेरा परम मंगल है, जो आपके अमृत रूपी दर्शन करके स्वर्ग और अपवर्ग तृण के समान विदित होते हैं ।।४०।। इस प्रकार गोविंद, विष्णुजी के कहने पर उस निर्मल लक्ष्मीजी ने मनोरथवती नामक भिक्षा उनके पात्र में समर्पित की ।।४१।। वह भैरवरूपधारी महादेवजी भी परम प्रसन्न होकर भिक्षाटन करने के निमित्त अन्यत्र चले गये ।।४२।। विष्णुजी ने उनके पीछे जानेवाली ब्रह्महत्या को देखकर उसे बुलाकर प्रार्थना पूर्वक कहा, कि हे ब्रह्महत्ये! तू शिवजी को छोड़ ।।४३।। ब्रह्महत्या बोली– कि इस ही बहाने से मैं शिवजी की सेवा करती हूं और शिवरूप भैरवजी का दर्शन करके मोक्ष के निमित्त अपने आपको पवित्र करूंगी ।।४४।। नन्दीश्वर बोले– जब भगवान् विष्णुजी के कहने पर भी उस ब्रह्महत्या ने भैरवजी का पीछा न छोड़ा, तब हास्यमुख से शंकररूप भैरवजी विष्णुजी से बोले ।।४५।। भैरवजी बोले– हे लक्ष्मीपते! हे मान देनेवाले! मैं आपके अमृतरूपी वचनों से सन्तुष्ट हुआ हूं,

आप कहते हैं, यह सज्जनों का स्वभाव ही है ।।४६।। हे गोविन्द! हे पापरहित! आप वर मांगो, मैं वरदान देनेवाला हूं; हे हरे! आप मेरे भक्तों में अग्रणी हुए और विकार रहित हुए ।।४७।। भिक्षुक लोग अति संस्कार की हुई भिक्षा से वैसे प्रसन्न नहीं होते, कि जिस प्रकार वे भिक्षाटन रूपी पीड़ावाले, मान रूपी अमृत के पान करने से प्रसन्न और तृप्त होते हैं ।।४८।। नन्दीश्वर बोले– विष्णुजी इस प्रकार परमात्मा भैरवजी के सुनकर बड़े प्रसन्न होकर महेश्वरजी से बोले ।।४९।। विष्णुजी बोले– मेरा यही वर प्रशंसा के योग्य है, कि समस्त देवताओं के स्वामी मन, वाणी से परे आपका दर्शन करता हूं ।।५०।। यह मेरी अमृतमयी निर्मल दृष्टि हुई, कि जिससे मुझे बड़ा उत्सव हुआ, हे शिवजी! आपका दर्शन सत्पुरुषों के निमित्त बिना यत्न ही निधि का लाभ है ।।५१।। हे देव! आपके चरणयुगल से मेरा कभी वियोग न हो, मुझे यही वर दीजिये, हे शम्भो! इसके सिवाय मुझे और कुछ वर नहीं चाहिये ।।५२।। भैरवजी बोले– हे तात! जो आपने कहा है वैसा ही होगा, आप समस्त देवताओं को वर देनेवाले होंगे ।।५३।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार ब्रह्माजी, इन्द्र आदि लोकों में विचरनेवाले भैरवजी विष्णुजी के ऊपर कृपा करके अविमुक्त क्षेत्र वाराणसी को चले गये ।।५४।। महाभयंकर आकारवाले भैरवजी के काशी में पहुँचते ही ब्रह्महत्या हाहाकार करके उसी समय पाताल में प्रवेश कर गई ।।५५।। तत्काल ब्रह्माजी का सिर भैरवजी के हाथ से छूटकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और वहां 'कपालमोचन' तीर्थ विख्यात हुआ ।।५६।। रुद्र ने ब्रह्माजी के सिर को सबके सामने हाथ से गिरा देखकर बड़े आनन्द से नृत्य किया ।।५७।। जो ब्रह्माजी का सिर भ्रमण करते नहीं गिरा, कारण कि वह हाथ में दृढ़ता से चिपट रहा था, परन्तु काशी में प्रवेश करते ही क्षणमात्र में गिर पड़ा ।।५८।। जो भैरवजी की ब्रह्महत्या कहीं नष्ट न हुई, वह काशी में क्षणमात्र में नष्ट हो गई, इस कारण काशी सदा सेवन करने योग्य है ।।५९।। जो मनुष्य काशी में कपालमोचन तीर्थ का स्मरण करते हैं, उनके इस जन्म और पर जन्म के पाप शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ।।६०।। इस तीर्थ में आकर विधिपूर्वक स्नान करके, पितृ और देवताओं का तर्पण करके मनुष्य ब्रह्महत्या से छूट जाता है ।।६१।। भैरवजी ने कपालमोचन तीर्थ को निर्माण करके भक्तों के पापसमूहों को नष्ट करते हुए वहीं निवास किया ।।६२।। मार्गशीर्ष मास की कृष्णाष्टमी को सत्पुरुषों के प्रिय भैरवात्मा परमेश्वर प्रकट हुए ।।६३।। जो मनुष्य अगहन कृष्णाष्टमी को कालभैरवजी के समीप स्थित होकर व्रत सहित जागरण करता है, वह महापापों से छूट जाता है ।।६४।। तथा अन्य स्थान में स्थित होकर भी जो मनुष्य भक्ति से उनके व्रत को जागरण सहित करेगा, वह पापों से छूटकर श्रेष्ठ गति को प्राप्त होगा ।।६५।। प्राणियों ने जो अनेक जन्मों में सहस्रों पाप किये हैं, कालभैरवजी के दर्शनमात्र से वह सब नाश हो जाते हैं ।।६६।। जो पुरुष कालभैरवजी के भक्तों का पाप करते हैं, वह मूर्ख पुरुष दुःखी होकर कुगति को प्राप्त

होते हैं ।।६७।। जो शिवजी की भक्ति करे, कालभैरवजी की भक्ति न करें, काशी में वे बड़े दुःख को प्राप्त होते हैं ।।६८।। काशी में निवास करके जो मनुष्य भैरवजी को नहीं भजता, उसके पाप शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान बढ़ते हैं ।।६९।। जो मनुष्य काशी में रहकर कृष्णाष्टमी या मंगल के दिन कालराज को नहीं सेवन करता, उसके पुण्य कृष्णपक्ष के चन्द्रमा के समान क्षीण हो जाते हैं ।।७०।। इस ब्रह्महत्या के दूर करनेवाले 'भैरवोत्पत्ति' नामक पवित्र इतिहास को सुनकर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ।।७१।। कारागार में स्थित हुआ अथवा इससे भी अधिक विपत्ति में पड़ा हुआ मनुष्य 'भैरवोत्पत्ति' नामक कथा कों सुनकर सब कष्टों से छूट जाता है ।।७२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
भैरवावतारलीलावर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ।। ९ ।।

*****

दसवाँ अध्याय

नन्दीकेश्वर बोले– हे प्रभो! दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करनेवाला वीरभद्र नामक परमात्मा शिवजी का अवतार जानना चाहिये ।।१।। सो उनका चरित्र सतीचरित्र में सम्पूर्ण कहा है और आपने बहुत प्रकार सुना है, इस कारण वह यहां बहुत विस्तार से नहीं कहा ।।२।। हे मुनिश्रेष्ठ! इसके आगे शार्दुल नामक शिवजी का अवतार सुनिये, मैं आपके स्नेह से कहता हूं ।।३।। सदाशिवजी ने देवताओं के हित के निमित्त जलते हुए अग्नि के समान कान्तिवाला अद्‌भुत शरभ रूप धारण किया ।।४।। हे मुनिश्रेष्ठो! भक्तों के हित करनेवाले शिवजी के अवतार अनेक हुए हैं, उनकी संख्या करने को कोई भी समर्थ नहीं है ।।५।। आकाश के तारागणों की तथा पृथ्वी की रेणुका की और मेघों के धारा की कदाचित् बहुत कल्पों में ।।६।। कोई बुद्धिमान् पुरुष बहुत जन्मों में संख्या कर ले, परन्तु शिवजी के अवतारों की संख्या नहीं है, यह मेरा वचन सत्य जानिये ।।७।। तथापि मैं अपनी बुद्धि के अनुसार जैसा सुना है, परम ऐश्वर्यसूचक दिव्य शारभ चरित्र कहता हूं।।८।। जिस समय आपने जय–विजय नामक द्वारपालों को शाप दिया, हे मुने! तब वे दोनों दिति के पुत्र कश्यपजी से हुए।।९।। पहला पुत्र हिरण्यकशिपु, दूसरा पुत्र बली, हिरण्याक्ष दिति से उत्पन्न हुआ। यह देवर्षि पार्षद शाप से दैत्य उत्पन्न हुए ।।१०।। पहले ब्रह्माजी ने पृथ्वी के उद्धार के निमित्त विष्णुजी से प्रार्थना की, जब विष्णुजी ने वाराह रूप धारण करके हिरण्याक्ष को मारा ।।११।। उस वीर तथा प्राणों के समान भाई हिरण्याक्ष को मरा हुआ सुनकर हिरण्यकशिपु ने भगवान् विष्णुजी के ऊपर अति क्रोध

किया।।१२।। और उसने दश सहस्र वर्ष तक तप करके ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त किया कि, आपकी सृष्टि में मुझे कोई भी न मारे।।१३।। शोणित नामक नगर में जाकर चारों ओर से देवताओं को बुलाकर त्रिलोकी को अपने वश में करके अकण्टक (निर्द्वन्द्व) राज्य करने लगा।।१४।। हे मुने! वह हिरण्यकशिपु देवता और ऋषियों को दुःखी करता तथा सब धर्मों का लोप करनेवाला, द्विजों को पीड़ा देनेवाला, बड़ा पापी था।।१५।। विष्णुजी के भक्त प्रह्लाद नामक अपने पुत्र से उस दैत्यराज ने द्वेष किया, कारण कि वह हरि का बड़ा बैरी था।।१६।। हे मुने! उस समय विष्णुजी सभास्तम्भ से सन्ध्या के समय क्रोध में भरकर नृसिंह शरीर धारण करके प्रकट हुए।।१७।। हे मुनिश्रेष्ठ! उन नृसिंहजी का शरीर सब प्रकार विकराल, अति भय देनेवाला, दैत्यों को त्रास देता हुआ अति प्रज्ज्वलित हुआ।।१८।। तब नृसिंहजी ने सम्पूर्ण दैत्यों को उसी क्षण में मार डाला, तब हिरण्यकशिपु ने कठिन युद्ध आरम्भ किया।।१९।। हे मुनिश्रेष्ठ! थोड़ी देर तक उन दोनों का घोर, विकराल, भय देनेवाला, सबों का लोमहर्षक युद्ध हुआ।।२०।। सायंकाल के समय परमेश्वर नृसिंह भगवान् ने आकाश से देवताओं के देखते-देखते उस दैत्य हिरण्यकशिपु को देहली पर खिंच लिया।।२१।। और उसको गोद में डालकर उसका पेट अपने नाखूँनों से शीघ्र फाडकर देवताओं के देखते-देखते मार डाला।।२२।। नृसिंह भगवान् के द्वारा हिरण्यकशिपु के मरनेपर संसार स्वस्थता को प्राप्त हुआ, परन्तु देवता स्वस्थ न हुए।।२३।। देवताओं की दुन्दुभी बजने लगी, प्रह्लाद विस्मय को प्राप्त हुआ, विष्णुजी का अद्भुत रूप देखकर लक्ष्मीजी भी विस्मय को प्राप्त हुईं।।२४।। यद्यपि दैत्येन्द्र मारा गया तथापि परमसुख न हुआ, देवता चले गये, परन्तु नृसिंहजी की वह ज्वाला शान्त न हुई।।२५।। फिर उस कोपाग्नि से सम्पूर्ण जगत् व्याकुल हुआ, देवता दुःख को प्राप्त हुए कि, अब क्या होगा?।।२६।। इस प्रकार कहते हुए वह भय से दूर जाकर स्थित हुए नृसिंहजी की ज्वाला से व्याकुल हुए ब्रह्माजी आदिकों ने।।२७।। उनकी शान्ति के निमित्त नृसिंहजी के निकट प्रह्लादजी को भेजा, तब सबों से मिलकर प्रह्लादजी गये और प्रार्थना की।।२८।। कृपानिधि नृसिंहजी ने उस प्रह्लाद को हृदय से लगाया, हृदय तो ठण्डा हुआ, परन्तु क्रोधाग्नि दूर न हुई।।२९।। जब उन भगवान् की कोपाग्नि शान्त न हुई, तो दुःखी हुए देवता शंकरजी के शरण में गये।।३०।। ब्रह्माजी आदि देवता व मुनि सब वहां जाकर संसार के सुख के निमित्त शिवजी की स्तुति करने लगे।।३१।। देवता बोले- हे देव देव! हे महादेव! हे शरणागतवत्सल! हम शरण आये हुए सब देवताओं की तथा संसार की रक्षा करें।।३२।। हे सदाशिव! आपके निमित्त नमस्कार हो, नमस्कार हो; पहले जब हम दुःखी हुए थे, तो आपने हमारी रक्षा की थी।।३३।। समुद्र मथा रत्नों का विभाग देवताओं को दिया, तो हे शम्भो! आपने विष ग्रहण किया।।३४।। हे नाथ! उस समय हमारी रक्षा की, तबसे आपकी नीलकण्ठ

ऐसी प्रसिद्धि हुई, यदि आप विष का पान नहीं करते, तो सब भस्म हो जाते ।।३५।। हे प्रभो! यह प्रसिद्ध है कि, जब जिसको दुःख उत्पन्न होता है, तब आपके नाम से सारा दुःख नष्ट हो जाता है ।।३६।। हे सदाशिव! अब सब नृसिंहजी की ज्वाला वे पीड़ित है, उसको हे देव! आप शान्त करने को समर्थ हैं ।।३७।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार स्तुति करने पर भक्तवत्सल शंकरदेव परम अभय देकर प्रसन्न होकर यह बोले ।।३८।। शिवजी बोले– आप ब्रह्माजी आदि समस्त देवता निर्भय होकर अपने स्थानों को जाइये, जो दुःख है, उसे मैं शान्त करूंगा, मेरा यह व्रत है ।।३९।। जो मेरे शरण में आया, उसका दुःख नाश हो गया, मेरी शरण में आया हुआ मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय है, इसमें संशय नहीं ।।४०।। नन्दीश्वर बोले– यह वचन सुनकर समस्त देवता परम आनन्द को प्राप्त होकर जहां से आये थे वहां पर आनन्दपूर्वक शिवजी को स्मरण करते हुए चले गये ।।४१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
नृसिंहचरितवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ।। १० ।।

*****

ग्यारहवाँ अध्याय

नन्दीकेश्वर बोले– इस प्रकार देवताओं से प्रार्थना किये हुए महातेजस्वी कृपालु परमेश्वर नृसिंहजी के हरण करने की बुद्धि करने लगे ।।१।। तब ऊपर से रुद्र ने महाबली वीरभद्र का स्मरण किया और अपने प्रियकारक भैरवरूप से बोले ।।२।। तब शीघ्र ही गणों में अग्रणी भैरवजी हँसते हुए अट्टहास करते इधर–उधर से घेरे हुए गणों के सहित आये ।।३।। नृसिंहरूपधारी, अति उग्र, कोटि गणों से वेष्टित, चारों ओर से उन्मत्त वीरों से घिरे तथा आनन्द में नाचते हुए ।।४।। गेंद के समान ब्रह्माजी आदि महावीरों से क्रीड़ा करने लगे। जिन्हें पहले कभी नहीं देखा ऐसे वीरों से वन्दित, वे भैरवजी ।।५।। प्रलयकाल की अग्नि के समान प्रज्ज्वलित, शोभायमान तीन नेत्रोंवाले, बिना शस्त्र धारण किये, जटाओं से घिरे, बालचन्द्रमा के समान प्रकाशित ।।६।। बालचन्द्रमा के वलय के आकारवाली, तेज दाढ़ के दोनों अंकुर, इन्द्र के धनुष के समान देदीप्यमान, टूटे धनुष रूप भ्रूलता से संयुक्त हुए ।।७।। बड़ी प्रचंड हुंकार से दिशाओं के मुख को बधिर करते हुए, नीले मेघ अञ्जन पर्वत के समान काले, भयंकर दाढ़ी मूछोंवाले ।।८।। अखण्ड भुजाओं से वाद्य खण्ड को घुमाते हुए, तीन शिखाओं को धारे, वीर शक्ति से संयुक्त भगवान् वीरभद्र ।।९।। स्वयं शिवजी के समीप जाकर बोले– हे देव! मुझे किस

कारण स्मरण किया ? हे स्वामिन्! आज्ञा दीजिये, मुझ पर प्रसन्नता कीजिये ।।१०।। नन्दीश्वर बोले- इस प्रकार खलों को दण्ड देनेवाले शिवजी वीरभद्र के वचन को आदर से सुन-देखकर प्रीति से वचन बोले ।।११।। शंकरजी बोले- हे भैरव! बिना समय देवताओं को भय उत्पन्न हुआ है, वह नृसिंहाग्नि प्रज्ज्वलित हुई है, उस कठिन कोपाग्नि को शान्त करो ।।१२।। पहले तो शान्ति पूर्वक कहो कि, आप क्यों शान्त नहीं होते ? जब न माने तो फिर मेरे परम भाव भैरव रूप को दिखाओ ।।१३।। सूक्ष्म को सूक्ष्म तेज के द्वारा तथा स्थूल को स्थूल तेज के द्वारा हरण कर, हे वीरभद्र! मेरी आज्ञा से श्रेष्ठ आकृति को प्राप्त कराओ ।।१४।। नन्दीश्वर बोले- इस प्रकार सुनकर वह गणाध्यक्ष शान्त शरीर धारण करके वेग से वहां पहुंचे, जहां नृसिंहजी थे ।।१५।। तब वीरभद्र शिव ईश्वर उन नृसिंहजी को समझाते हुए इस प्रकार वाक्य बोले, जैसे पिता औरस पुत्र से बोलते हैं ।।१६।। वीरभद्र बोले- हे माधव! आपने संसार के सुख के लिये अवतार लिया है, स्थिति के लिये आप ब्रह्माजी की प्रेरणा से प्रकट हुए हो ।।१७।। पहले आपने मत्स्य रूप से अपनी पूँछ में नौका बांधकर प्रलय के समुद्र में मनुजी को घुमाया था ।।१८।। कूर्म रूप से सबका पालन करने को पृथ्वी को धारण किया तथा वाराह रूप से पृथ्वी का उद्धार किया और इस नृसिंह रूप से हिरण्यकशिपु को मारा ।।१९।। और वामन अवतार लेकर पराक्रम करते हुए आपने राजा बली को बांधा, आप ही सब प्राणियों के उत्पन्न करनेवाले तथा स्वामी और अविनाशी हैं ।।२०।। जब-जब संसार को कुछ दुःख प्राप्त होता है, तब-तब आप अवतार लेकर दुःख दूर करते हो ।।२१।। हे हरे! आपसे अधिक और आपके समान कोई नहीं है, हे शिवध्यान में तत्पर! आपने वेद तथा धर्म, सब शुभमार्ग स्थापित किये हैं ।।२२।। जिस निमित्त यह नृसिंह अवतार लिया है, सो दानव हिरण्यकशिपु को मार डाला और प्रह्लाद की रक्षा की ।।२३।। हे नरसिंह! हे भगवन्! हे विश्वात्मा! यह आप का बड़ा ही घोर शरीर है, उसे आप मेरे समीप ही संहार कीजिये।।२४।। नन्दीश्वर बोले- इस प्रकार वीरभद्र ने नृसिंहजी से शांत और नम्र वाणी से कहा, तब उससे भी अधिक उन नृसिंहजी ने क्रोध किया ।।२५।। हे मुने! और बड़े पराक्रमी वीरभद्र से दांत मिसमिसाते हुए महाघोर कठिन वचन बोले ।।२६।। नृसिंहजी बोले- हे वीरभद्र! जहां से आये हो वहां जाओ, मुझसे हित के वचन मत कहो, मैं अभी चर-अचर संसार को हरण करूंगा ।।२७।। मुझ संहार करनेवाले का स्वयं अथवा दूसरे से संहार नहीं हो सकता, सर्वत्र मैंने ही शासन किया है और कोई शासन करनेवाला नहीं है ।।२८।। मेरे प्रभाव से यह चर-अचर सब संसार अभय होता है, मैं ही सब शक्तियों को प्रवृत्त करनेवाला तथा दूर करनेवाला हूं ।।२९।। हे गणाध्यक्ष! जो-जो विभूतिवाला सत्त्व वा शोभायमान तेज है, सो-सो सब मेरे तेज से प्रेरित किया हुआ है ।।३०।। देवतागण मुझे ही परमार्थ के जाननेवाले कहते हैं और

मेरे अंश तथा शक्ति के सम्पन्न ब्रह्माजी, इन्द्र आदि सब देवता हैं।।३१।। पहले मेरे ही नाभिकमल से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए जगत् को करते हैं, सब से अधिक स्वतन्त्र हरण करनेवाले तथा उत्पन्न करनेवाले सब के स्वामी हम हैं।।३२।। यह मेरा परम तेज है, क्या और कुछ सुनना चाहते हो ? अब तुम मेरी शरण में आकर निर्द्वन्द्व हो जाओ।।३३।। हे गणेश्वर! मुझे परम भाव जानो, मेरा ही देवता, असुर, मनुष्य सहित सम्पूर्ण संसार है।।३४।। मैं ही काल हूं, मैं संसार के विनाश का कारण हूं, मैं लोकों के संहार करने के लिये प्रवृत्त हूं और मुझे मृत्यु का मृत्युरूप जानो। हे वीरभद्र! मेरे ही प्रसाद से यह देवता जीते हैं।।३५।। नन्दीश्वर बोले– वीरभद्रजी ने इस प्रकार अहंकार सहित विष्णुजी के वचन सुनकर होंठ कंपाते हुए तिरस्कार सहित हँसकर यह वचन कहे।।३६।। वीरभद्र बोले– क्या आप संसार के ईश्वर, संहार करनेवाले पिनाकी शिवजी को नहीं जानते, केवल आप में असत्य वादविवाद विनाश के निमित्त है।।३७।। आपके परस्पर के अवतार अब कौन शेष हैं, किस–किस अवतार ने क्या–क्या किया ? उनकी कथा शेष हो जायगी।।३८।। उस दोष को कहिये कि, जिससे आप इस अवस्था को प्राप्त हुए हो, संसार में निपुण हुए आपको शिवजी से दक्षिणा प्राप्त होगी।।३९।। आप प्रकृति हो, रुद्रपुरुष हो, आप में वीर्य सींचा है, आपकी नाभिकमल से पंचमुखवाले ब्रह्माजी हुए हैं।।४०।। उन ब्रह्माजी ने तीन लोक सृजन करने के निमित्त नीललोहित शंकरजी को ललाट में ध्यान किया और उग्र तप में स्थित हुए।।४१।। उनके ललाट से शिवजी प्रकट हुए और सृष्टि के निमित्त भूषणरूप हुए, इस कारण भैरवरूप देव देव के द्वारा।।४२।। मैं आपका संहार करने में विनय और बल से नियुक्त हुआ हूं, उन देव–देव, सब के स्वामी रुद्र की प्रेरणा से मैं आया हूं।।४३।। आपने उनकी शक्ति कला से युक्त होकर ही एक राक्षस को विदीर्ण करके मारा है और तत्त्व न जानकर अहंकार के लेप से गर्जते हो।।४४।। साधुओं का उपकार निश्चय सुख के लिये माना गया है और दुष्टों का उपकार केवल हानि के लिये ही होता है।।४५।। हे नृसिंहजी! यदि आप शिवजी को फिर जन्म धरनेवाला मानते हो, तो आप सब प्रकार से अज्ञानी महाअभिमानी और विकारी हो।।४६।। हे नृसिंहजी! न आप सृजनवाले, न संहार करनेवाले, न पोषण करनेवाले हो, आप केवल मूढात्मा, पराधीन हो, स्वतन्त्र कहीं भी नहीं हो।।४७।। आप कुम्हार के चाक के समान महादेवजी की शक्ति से प्रेरणा किये गये हो, हे हरे! उनके अधीन हुए अनेक अवतारों को धारण करते हो।।४८।। अब तक भी कूर्म रूपधारी आपका कपाल शंकरजी की अस्थिमाला में दग्ध हुआ भी विद्यमान है और कोई भी उसे धारण नहीं कर सका।।४९।। क्या आप भूल गये, जो उन तारकासुर के शत्रु के अंश से वारह रूपधारी आपकी डाढ़ को पीड़ा दी गई और उनकी कृपा से आपके विघ्न दूर हुए।।५०।। विष्वक्सेन के छल से आप महादेवजी की त्रिशूलाग्नि से

दग्ध हुए थे और मुझ तेजरूपधारी ने दक्ष के यज्ञ में यज्ञरूप आपका सिर काटा ।।५१।। अब भी आपके पुत्र ब्रह्माजी का पाँचवां सिर काटा गया, सो फिर नहीं जमा, क्या यह आप भूल गये ?।।५२।। और सिर खुजाते-खुजाते आप को मरुद्गणों सहित दधीच ने संग्राम में जीता सो, क्या आप भूल गये ?।।५३।। हे चक्रपाणे ! सुदर्शनचक्र घुमाते हुए तुम्हारा प्रिय किसने किया ? यहप्रयचक्र आपको किसने दिया ? क्या वह गी भूल गये ? ।।५४।। मेरे सब लोकों के ग्रहण करनेपर आप समुद्र के बीच में निद्रा परवश हुए सोते हों, तो आप किस प्रकार सब गुणी हो ?।।५५।। आपको आदि लेकर स्तम्ब पर्यन्त शिवजी की शक्ति फैली है, उसीसे आप शक्तिमान् होकर भी चारों ओर तेज से मोहित हो रहे हो ।।५६।। उन शिवजी के तेज रूप माहात्म्य को कोई भी पुरुष देखने को समर्थ नहीं है, जो सूक्ष्म बुद्धिवाले हैं, वे ही उस व्यापक के परम पद को देखते हैं ।।५७।। आकाश, भूमि, इन्द्र, अग्नि, यम और वरुण को उत्पन्न करके अन्धकार और चन्द्रमा में भी वह परमेश्वर व्यापक हैं ।।५८।। आप काल हो, तो परमेश्वर सदाशिवजी महाकाल और काल के भी काल हैं, इस कारण आप उनकी बड़ी कला से मृत्यु की मृत्यु हो ।।५९।। वह स्थिर, अक्षर, वीर, विश्व के रक्षक, प्रभु, दुःख का नाश करनेवाले, भीम, मृग, पक्षी, हिरण्यमय तथा शेष हैं और जगत् के शासन करनेवाले हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं ।।६०-६१।। इस प्रकार सब विचार करके अपनी आत्मा का हरण करें, हे नृसिंहजी ! हे अबुध ! यदि आप अपनी आत्मा को न छिपा लेंगे ।।६२।। तो इसी समय महा भैरवरूपी क्रोधवाले स्थाणु शंकरजी का बड़ा वज्र मृत्यु के समान आप पर पड़ेगा ।।६३।। नन्दीश्वर बोले- ऐसा कहकर अभय शिवजी की क्रोधमूर्ति वीरभद्रजी नृसिंहजी का अभिप्राय जानने के निमित्त मौन हो गये ।।६४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
शरभावतारवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ।। ११ ।।

*****

बारहवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले- हे महाप्राज्ञ नन्दीश्वर ! इसके उपरान्त क्या हुआ ? उन दोनों का वृत्तान्त जो हो, उसे मुझ पर कृपा करके प्रीतिपूर्वक आप कहें ।।१।। नन्दीश्वर बोले- इस प्रकार वीरभद्र से कहे हुए नृसिंहजी क्रोध से व्याकुल होकर बड़े वेग से शब्द करते हुए उनको ग्रहण करने को उद्यत हुए ।।२।। इसी अवसर में बड़ा घोर प्रत्यक्ष में भय करनेवाला आकाश में व्याप्त कठिन शिवजी का तेज प्रकट हुआ ।।३।। उस समय

वीरभद्र का रूप क्षणमात्र को अदृश्य हो गया, वह अदृश्य रूप हिरण्यमय चन्द्रमा के समान अथवा सूर्य अग्नि से प्रकट नहीं था।।४।। न बिजली, न चन्द्रमा के समान केवल उपमा रहित अद्भुत था, उस समय उन शिवजी में समस्त तेज लय को प्राप्त हो गये।।५।। वह महातेज आकाश में भी न समाया, वह केवल विकृताकार रुद्र का साधारण चिह्न था।।६।। जय–जय आदि मंगलाचरण करते हुए समस्त देवताओं के देखते–देखते वह परमेश्वर संहार रूप से प्रकट हुए।।७।। सहस्रों भुजाधारी, जटा रखे, अर्द्ध चन्द्रमा को मस्तक पर धारण किये, भयंकर शरीर से युक्त, पंखों से तथा चोंच से शोभायमान।।८।। अति तीक्ष्ण डाढोंवाला, वज्र के समान नखरूप शस्त्र धारे, कण्ठ में नील, दीर्घ भुजावाले, चार चरण सहित, अग्नि के समान।।९।। प्रलय करने में मानो तत्पर, भयंकर तथा गंभीर शब्द करते हुए, महाकोपाग्नि से भरे तीन नेत्रवाले।।१०।। स्पष्ट डाढ अधर ओंठवाले, हुंकार करते हुए इस प्रकार के विकट रूप से शंकरजी नृसिंहजी के आगे प्रकट हुए।।११।। उनके दर्शनमात्र से ही नृसिंहजी का पराक्रम बल नष्ट हो गया, जैसे सूर्य के तेज से पटवीजने का तेज नष्ट हो जाता है।।१२।। तब अपने पक्षों से घुमाकर नाभि और चरणों को विदीर्ण करते हुए तथा पूँछ से पैरों को और दोनों भुजाओं से नृसिंहजी की भुजाओं को बांधकर।।१३।। भुजाओं से हृदय को भेद करते हुए शिवजी ने उन नृसिंह रूपधारी विष्णुजी को ग्रहण किया और देवता तथा महर्षियों के देखते–देखते आकाश को चले गये।।१४।। तब भैरवजी ने सहसा अभय होकर विष्णुजी को ऐसे पकड़ लिया, जैसे बाज सर्प को पकड़–पकड़कर गिरावे, इस प्रकार पकड़कर गिरा–गिराकर।।१५।। उड़–उड़कर भगवान् शिवजी ने पक्षों से विष्णुजी को व्याकुल कर दिया, तब विष्णुजी वृष के नीचे प्रविष्ट हुए।।१६।। उनके पीछे जाते शिवजी को देखकर समस्त देवतागण नमस्कार की वाणी से उन्हें सन्तुष्ट करने लगे, ब्रह्माजी आदि मुनीश्वर सब आदर सहित प्रेम से प्रणाम करने लगे।।१७।। शिवजी से गृहीत हुए परवश विष्णुजी दीनमुख होकर हाथ जोड़कर उन शिवजी की मनोहर दीन वचनों से स्तुति करने लगे।।१८।। और आठ सौ रुद्रमन्त्रों से उन शिवजी की स्तुति करके फिर नृसिंहजी ने शरभेश्वर शिवजी की प्रार्थना की।।१९।। हे परमेश्व! जब–जब मेरी मति अहंकार से दूषित होवे, तब–तब आपको ही वह मति दूर करनी चाहिये।।२०।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार शिवजी से प्रीतिपूर्वक प्रार्थना करके नृसिंहजी महेश्वरजी से पराजित होकर नमस्कार करके दीन हुए।।२१।। उसी समय वीरभद्र ने उनके मुख तथा सम्पूर्ण देह को अन्य शक्ति के सहित अपने शरीर के मध्य में प्रवेश कर लिया।।२२।। नन्दीश्वर बोले– तब ब्रह्माजी आदि देवता शारभ रूपधारी, सब लोकों के कल्याण करनेवाले शंकरजी को देखकर स्तुति करने लगे।।२३।। देवता बोले– हे महेश्वर! ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, चन्द्रमा आदि देवता तथा सब महर्षि और दिति

के पुत्र आदि सब आपसे उत्पन्न हुए हैं ।।२४।। ब्रह्मा, विष्णु, महेन्द्रों को और सूर्य आदि देवता तथा असुरों को आप ही उत्पन्न करते हो और हे सकलेश्वर! आप ही रक्षा करते हो ।।२५।। कारण कि- आप संसार को हरण करते हो, इस कारण विद्वान् आपको हर कहते हैं, जो कि आपने हरि को विग्रह किया, इससे आप हर कहलाते हैं ।।२६।। जिससे कि आप आठ प्रकार के शरीर का विभाग करके सकल संसार का पालन करते हो, हे भगवन्! इसी कारण देवताओं के मनोरथों सहित हमारी रक्षा कीजिये।।२७।। आप महापुरुष शम्भु सर्वेश्वर, सुरनायक, निःस्वात्मा, निर्विकारात्मा परब्रह्म, सत्पुरुषों की गति हो ।।२८।। दीनबन्धु तथा दया के सागर, अद्भुत आत्मा से परे देखनेवाले, प्राज़, विराट, विभु, सत्य, सच्चिदानन्द लक्षण हो ।।२९।। नन्दीश्वर बोले- परमेश्वर ने इस प्रकार देवताओं के वचन सुनकर, उन पुरातन देवता और महर्षियों से कहा ।।३०।। जिस प्रकार जल में जल, दूध में दूध, घी में घी मिलता है, उसी प्रकार यह विष्णुजी शिव में लीन हुए हैं, इसमें संशय नहीं ।।३१।। एक विष्णुजी नृसिंहात्मा महाबली अहंकारी उक्त रूप धारण करके संसार के संहार करने में प्रवृत्त हुए हैं ।।३२।। वे मेरे भक्तों से नमस्कार करने योग्य हैं और प्रार्थना करने योग्य हैं, मेरे भक्तों को वर देनेवाले हैं ।।३३।। नन्दीश्वर बोले- इस प्रकार महाबली भगवान् पक्षिराज नृसिंहजी से कहकर समस्त देवताओं के देखते-देखते अन्तर्धान हुए।।३४।। गणाध्यक्ष महाबली भगवान् नृसिंह शरीर को आकर्षित करके उसे लेकर पर्वत पर चले गये।।३५।। उस दिन से शिवजी नृसिंह कृत्ति पहनते हैं, उनके मुख को मुण्डमाला में मुख्य रूप से रखते हैं ।।३६।। तब देवता निर्भय होकर इस कथा को कहते हुए विस्मय हर्ष से खिले नेत्रोंवाले होकर जहां से आये थे, वहां चले गये ।।३७।। जो पुरुष इस वेदरस से भरे हुए परम पवित्र इतिहास को पढ़ता है तथा सुनता है, वह मनोरथों को प्राप्त होता है ।।३८।। यह धन्य, यश देनेवाला, आयु देनेवाला, आरोग्य और पुष्टि को बढ़ानेवाला है, सब विघ्नों को शान्त करनेवाला, सब व्याधियों को दूर करनेवाला ।।३९।। दुःखों को नष्ट करनेवाला, वांछा सिद्धि को देनेवाला, मंगल का स्थान, अकाल मृत्यु को हरण करनेवाला, बुद्धि देनेवाला, शत्रु का विनाश करनेवाला ।।४०।। ऐसा यह पिनाकी शिवजी का शरभाकार परम रूप शिवजी के चर और भक्तों में प्रकाशित करना चाहिये ।।४१।। और उन हीं शिवात्माओं को पढ़ना चाहिये और सुनना चाहिये, नौ प्रकार की भक्ति देनेवाला और अन्तःकरण बुद्धि का देनेवाला यह माहात्म्य है ।।४२।। शिवजी सम्पूर्ण के उत्सवों में तथा चौदश, अष्टमी को प्रतिष्ठा के समय जो इसे पढ़ता है, वह शिवजी के समीप पहुंचता है।।४३।। चोर, भय, व्याघ्र तथा नृसिंह आत्मकृत राजा के भय में तथा भूकंप, डाकू आदि अतिवृष्टि, अवृष्टि आदि दूसरे उत्पातों में ।।४४।। उल्कापात होने पर, बड़ी आन्धी में, वृष्टि के न होने पर जो शिवभक्त विद्वान्

दृढ़व्रत में तत्पर होकर इसे पढ़ता है ।।४५।। अथवा कामना रहित होकर ईश्वर के व्रत को सुनता है, वह रुद्र लोक को प्राप्त होकर शिवजी का सेवक होता है ।।४६।। और रुद्रलोक को प्राप्त होकर व रुद्र के साथ ही आनन्द करता है, हे मुने! शिवजी की कृपा से उनके ही पद को पाता है ।।४७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां

शरभावतारवर्णनं नाम द्वादशमोऽध्यायः ।। १२ ।।

*****

तेरहवाँ अध्याय

नन्दीकेश्वर बोले– हे ब्रह्मपुत्र! शिवजी के चरित्र को प्रीति से सुनिये कि, जिस प्रकार उन्होंने विश्वानर के घर अवतार लिया ।।१।। हे मुने! अग्निलोक का पति गृहपति नामक अग्नि के समान तेजस्वी, सर्वात्माओं में श्रेष्ठ था ।।२।। नर्मदा नदी के किनारेपर नर्मपुर नामक नगर में शिवजी के भक्त पुण्यात्मा विश्वानर मुनि रहते थे ।।३।। वे ब्रह्मचार्याश्रम में स्थित, निरन्तर ब्रह्मयज्ञ(वेदाध्ययन) में तत्पर शाण्डिल्य गोत्रवाले, पवित्र, ब्रह्मतेजस्वी, जितेन्द्रिय ।।४।। सब शास्त्रों के अर्थ को जाननेवाले, सदाचारी, शैवों के आचार में निपुण, लौकिक आचार में चतुर थे ।।५।। वह विश्वानर अपने चित्त में शुभ स्त्री के गुणों को विचार कर अपने उचित काल में एक कन्या से विधि विधान सहित विवाहित हुए ।।६।। अग्निहोत्र करने में तत्पर तथा पंचयज्ञों में परायण छह कर्मों में तत्पर हुए, नित्य देवता, पितृ, अतिथियों में प्रिय ।।७।। उस ब्राह्मण के इस प्रकार बहुत समय बीतने पर उसकी शुचिष्मती नामक पतिव्रता स्त्री अपने पति से बोली।।८।। हे नाथ! आपके प्रसाद से स्त्रियों के भोगने योग्य सम्पूर्ण भोग, आनन्द मैंने आपको पाकर भोगे ।।९।। हे नाथ! इस प्रकार की प्रार्थना बहुत काल से मेरे हृदय में है, जो गृहस्थियों के योग्य भी है, सो आप देने के योग्य हैं ।।१०।। विश्वानर बोले– हे सुश्रोणि! हे प्रिय हितैषिणी! हे महाभागे! तुमको कुछ भी अदेय नहीं है, तुम कहो, मैं तुमको शीघ्र ही दूंगा ।।११।। शिवजी की प्रसन्नता से मुझे कुछ भी दुर्लभ नहीं है, हे कल्याणि! सबका कल्याण करनेवाले मुझे इस लोक में तथा परलोक में कुछ दुष्प्राप्य वस्तु नहीं ।।१२।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार वह पतिव्रता स्त्री अपने पति का वचन सुनकर प्रसन्न मुख से हाथ बांधकर नम्र होकर बोली ।।१३।। शुचिष्मती बोली– हे नाथ! यदि मैं वर पाने के योग्य हूं, तो यह वर मुझे देना चाहिये, कि शिवजी के समान पुत्र दीजिये, अन्य वर नहीं चाहती ।।१४।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार उसके वचन सुनकर वह पवित्र व्रती ब्राह्मण

क्षणभर समाधि में स्थित होकर हृदय में विचारने लगे ।।१५।। अहो! मेरी स्त्री ने क्या अति दुर्लभ प्रार्थना की, जो मनोरथ के मार्ग से दूर है अथवा वही सब कुछ करनेवाले हैं ।।१६।। उन्होंने ही इसके मुख में वाणी रूप से स्थित होकर कहा है, उनकी इच्छा को कौन अन्यथा करने का उत्साह कर सकता है?।।१७।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार एक पत्नीव्रत में स्थित उस उदार बुद्धिवाले विश्वानर ने विचार कर थोड़ी देर में अपनी पत्नी से कहा ।।१८।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार अपनी स्त्री को ढाढ़स बंधाकर वह मुनि तप करने चले गये, जहां पर विश्व के ईश्वर साक्षात् काशीनाथजी स्थित थे ।।१९।। शीघ्र ही वाराणसी में प्राप्त होकर वहां मणिकर्णिका का दर्शन करके सैकड़ों जन्म के इकट्ठे किये तीनों प्रकार के तापों का त्याग किया ।।२०।। और वहां विश्वेश्वर आदि सम्पूर्ण लिंगों का दर्शन करके कुण्ड, बावड़ी, कूप, सरोवर सब में स्नान करके ।।२१।। सब विनायक, गौरी, शिवजी को नमस्कार और पूजन करके पाप भक्षणकारी कालराज भैरवजी का भी पूजन करके ।।२२।। दण्डनायक मुख्य गणों की स्तुति कर आदि केशव मुख्यों को तथा केशव को सन्तुष्ट करके ।।२३।। और लोलार्कमुख सूर्य आदि को बारंबार प्रणाम करके तथा सब तीर्थों में आलस्य रहित होकर पिण्डदान करके ।।२४।। सहस्रों प्रकार मे भोजन आदि से मुनियों को तथा ब्राह्मणों को तृप्त करके भक्ति पूर्वक महापूजा योग्य उपचारों से सब लिंगों को पूजकर ।।२५।। बारंबार यह विचारा कि, क्या यह लिंग शीघ्र सिद्धि का देनेवाला है? जिसमें पुत्र की कामना से तप निश्चलता से प्राप्त होता है ।।२६।। इस प्रकार बुद्धिमान् मुनि विश्वानर ने क्षणमात्र विचारकर पुत्र के देनेवाले वीरेश लिंग की प्रशंसा की ।।२७।। असंख्यात सहस्रों सिद्ध इसके पूजन करने से सिद्धि को प्राप्त हुए हैं, इस कारण यह 'वीरेश्वरलिंग' प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ है ।।२८।। वीरेश्वरलिंग को एक वर्ष भक्ति पूर्वक पूजकर आयु तथा मनोरथ और पुत्रादिक को प्राप्त होते हैं ।।२९।। मैं भी यहां वीरेश की तीनों समय आराधना करके शीघ्र ही वैसे पुत्र को प्राप्त होऊँगा, जैसी कि स्त्री ने अभिलाषा की है ।।३०।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार धीर कृती विश्वानर ब्राह्मण ने मति करके चन्द्रकूप के जल में स्नान करके व्रत और नियम धारण किया ।।३१।। महीने में एक बार भोजन किया तथा एक मास तक रात्रि में एक बार भोजन किया और एक मास तक बिना मांगे जो मिला सो भोजन किया तथा एक महीने तक निराहार रहे ।।३२।। और एक मास पयोव्रत किया, एक मास शाक भोजन किया, एक मास एक मुट्ठी तिल खाकर रहे और एक मास पानी भोजन किया ।।३३।। एक मास पंचगव्य भोजन किया, एक मास चान्द्रायण व्रतधारी, एक मास कुशा के अग्रभाग का जल पीकर, एक मास वायु भक्षण करके रहे ।।३४।। इस प्रकार उन्होंने एक वर्ष तक अद्भुत तप किया और उत्तम वीरेश लिंग को तीनों कालों में भक्तिपूर्वक पूजा ।।३५।। तब तेरहवें महीने में त्रिपथगा गंगा के जल में नहाकर प्रातःकाल वह

ब्राह्मण वीरेशलिंग के पूजन के लिये आये कि ।।३६।। उन तपोधन ने उस लिंग के मध्य में विभूति से शोभित आठ वर्ष की अवस्थावाले एक बालक को देखा ।।३७।। कानों तक विशाल नेत्रोंवाले, सुन्दर लाल होंठोवाले तथा मनोहर पीली जटा, मौली (मुकुट) लगाये, नग्न, हँसते हुए, मुख सहित ।।३८।। बालकों के योग्य वेष धारे, चितिधारी तथा श्रुतिसूक्तों को पढ़ते हुए अपनी लीला से हँसते हुए ।।३९।। उस बालक को देखकर आनन्द को प्राप्त होकर रोमांचित शरीरवाले मुनि अपने हृदय से 'नमोस्तु' इस प्रकार आलाप करते हुए बोले ।।४०।। वह कृती विश्वानर अभिलाषा के देनेवाले आठों पद्यों से उन बाल रूपी परमानन्द शम्भुजी को सन्तुष्ट करते हुए।।४१।। विश्वानर बोले– एक ब्रह्म ही अद्वितीय है, वही सत्य है, सम्पूर्ण मैं उसके सिवाय और कुछ यहां नहीं है, इस कारण आप एक महेश्वरजी की मैं शरण में प्राप्त हुआ हूं ।।४२।। हे शम्भो! आप सब संसार के करनेवाले तथा हरण करनेवाले हो, अनेक रूपों में एकरूप होकर भी विना रूपवाले हो, जिस प्रकार सनातन धर्म एक होता हुआ भी अनेक है, उसी प्रकार आप महेश्वरजी के बिना मैं दूसरे की शरण नहीं प्राप्त करता हूं ।।४३।। जिस प्रकार रस्सी में सांप तथा सीप में चांदी तथा मृगतृष्णा में जल भासता है, उसी प्रकार चारों और माया का प्रपंच फैला है, सो जिसके जलने पर सब जाना जाता है, मैं उसकी शरण में प्राप्त हुआ हूं।।४४।। हे शम्भो! जल में ठण्डक तथा अग्नि में जलाने की शक्ति, सूर्य में सन्ताप, चन्द्रमा मे आह्लादकता और पुष्प में सुगन्ध तथा दूध में घी है, वैसे ही सब में ही आप ही हैं, ऐसे आपको प्राप्त होता हूं ।।४५।। आप कानों के बिना शब्द को ग्रहण करते हो, नासिका के बिना सूंघते हो, बिना चरण के दूर से आते हो, बिना नेत्र के देखते हो बिना जिह्वा के स्वाद जाननेवाले हो, ऐसे आपको अच्छी प्रकार कौन जान सकता है? आपकी मैं शरण होता हूं ।।४६।। हे ईश्वर! आप को साक्षात् वेद भी नहीं जानते और न विष्णुजी, न ब्रह्माजी और न योगी और न इन्द्रादि देवता जान सकते हैं, केवल आपको भक्त ही जानते हैं, ऐसे मैं आपकी शरण में प्राप्त होता हूं ।।४७।। न आपके गोत्र है, न शरीर है, न आप जन्म लेते, न आपका नाश होता है, न रूप है, न शील है, न आपका देश है इस प्रकार होते हुए भी आप त्रिलोकी के मनोरथ को पूर्ण करते हो, अतः आपको सेवन करता हूं ।।४८।। हे स्मरारे! आपसे सब हैं और आप सब में हैं, आप पार्वती के पति हो, आप नग्न हो तथा अतिशान्त हो, आप ही वृद्ध हो और आप ही युवा, आप ही बालक हो, संसार में ऐसा पदार्थ क्या है जो आप से भिन्न हो? ऐसे आपको नमस्कार करता हूं ।।४९।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार हाथ बाँधकर, ब्राह्मण स्तुति करके जभी भूमि पर दण्डवत्प्रणाम करने लगा, तभी वह सब वृद्धों में वृद्ध बालक अतिप्रसन्न होकर उस मुनि ब्राह्मण से बोला ।।५०।। बालक बोला– हे मुनिश्रेष्ठ! हे विश्वानर! हे ब्राह्मण! आपसे सन्तुष्ट किया हुआ मैं प्रसन्न हुआ हूं, जैसी इच्छा हो वैसे

श्रेष्ठ वर मांगो ।।५१।। तब वह मुनि विश्वानर उठकर प्रसन्न होकर उन बालरूपधारी शिवजी से इस प्रकार बोले ।।५२।। विश्वानर बोले– हे महेश्वर! हे प्रभो! आप सर्वज्ञ को क्या अज्ञान (न जाना हुआ) है? हे भगवन्! आप सबके अन्तर्यामी सब कुछ देनेवाले, सर्व (हरण–पोषण कर्तारूप) हो ।।५३।। मांगने में लगे हुए मुझे क्या दीन वचनवाली याचना को कहते हो, हे महेशान! इस प्रकार जानकर जैसी इच्छा हो वैसा करें ।।५४।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार उन पवित्र व्रतधारी विश्वानर का वचन सुनकर, वह बालक रूप पवित्र देवता कुछेक हँसकर बोले ।।५५।। हे पवित्र विश्वानर! आपने शुचष्मती में पुत्र होने की जो अभिलाषा की है, वह बहुत शीघ्र ही निःसन्देह पूर्ण होगी ।।५६।। हे महामते! शुचष्मती स्त्री में आपका पुत्र मैं होऊँगा, गृहपति नाम करके प्रसिद्ध तथा पवित्र और देवताओं का प्रिय होऊँगा ।।५७।। यह आपसे कहा हुआ अभिलाषाष्टक नामक पवित्र स्तोत्र एक वर्ष तीनों काल पढ़ने से शिवजी के समीप से सब मनोरथ प्राप्त होते हैं ।।५८।। इस स्तोत्र का पाठ करना पुत्र, पौत्र तथा धन का देनेवाला है, सब शान्ति का करनेवाला और सम्पूर्ण आपत्तियों का नाश करनेवाला है ।।५९।। स्वर्ग, मोक्ष और सम्पत्ति का करनेवाला है, सब स्तोत्रों के समान सम्पूर्ण कामनाओं को देनेवाला है, इसमें कुछ सन्देह नहीं ।।६०।। प्रातःकाल उठकर अच्छी प्रकार स्नान करके शिवलिंग की पूजा करके वर्षभर इस स्तोत्र को जपे तो इस लोक में पुत्रवान् होगा ।।६१।। इस अभिलाषाष्टक स्तोत्र को जिस किसी के लिये नहीं देना चाहिये, यत्न पूर्वक छिपाना चाहिये, यह महावन्ध्या स्त्री को भी सन्तान देनेवाला है ।।६२।। स्त्री अथवा पुरुष नियमपूर्वक शिवलिंग के समीप एक वर्ष तक यह स्तोत्र जपें, पुत्रादि की सब इच्छा पूर्ण होती है, इसमें सन्देह नहीं ।।६३।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार कहकर वह बालक रूपधारी सत्पुरुषों को गति देनेवाले शिवजी अन्तर्धान हुए और वह विश्वानर ब्राह्मण भी प्रसन्न होकर अपने घर को गये ।।६४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
गृहपत्यवतारवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।। १३ ।।

*****

चौदहवाँ अध्याय

नन्दीश्वर बोले– कि उस ब्राह्मण ने अपने घर में आकर बड़े हर्षपूर्वक उस सम्पूर्ण वृत्तान्त को अपनी स्त्री से कहा ।।१।। उसे सुनकर वह शुचिष्मती नामक ब्राह्मण की स्त्री आनन्द को प्राप्त हो गई और अत्यन्त प्रेमसहित अपने प्रारब्ध की प्रशंसा करने लगी ।।२।। तब समय पाकर वह स्त्री गर्भवती हुई, उस ब्राह्मण ने गर्भाधान संस्कार विधि पूर्वक किया ।।३।। तथा गृहसूत्र की विधि के अनुसार तेज की वृद्धि के निमित्त पुंसवन संस्कार किया ।।४।। और आठवें महीने में गर्भ रूप की वृद्धि करनेवाला सीमन्तोन्नयन संस्कार उस दया के जाननेवाले ब्राह्मण ने सुख से सन्तान होने के निमित्त किया ।।५।। उसके उपरान्त शुभ नक्षत्र में बृहस्पति के केन्द्रस्थान में होने पर शुभ लग्न में अच्छे ग्रह तथा सुन्दर योग में ।।६।। चन्द्रमा के समान मुखवाले तथा सूतिकागृह में दीपक के तेज को भी शान्त करनेवाला, सब दुःखों का नाश करनेवाला पुत्र उस शुचिष्मती के उत्पन्न हुआ।।७।। जो कल्याण स्वरूप सब भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक निवासियों को सम्पूर्ण सुखों का देनेवाला था, उस समय वायु द्वारा चलाये हुए, मेघ दिशा रूपी वधुओं के मुख की गन्ध लेकर चले ।।८।। देवतागण इच्छित सुगन्धित फूलों की वर्षा करने लगे, देवताओं की दुन्दुभी बजने लगी, चारों ओर से दिशायें निर्मल हो गईं।।९।। चारों ओर से नदियां प्राणियों के मनों के सहित स्वच्छ हो गई, अन्धकार दूर हो गया, धूलि भी मानो धूल रहित हो गई ।।१०।। सत्त्वगुण सहित सब मंगलमयी अमृत की वर्षा होने लगी और सब मनुष्यों की वाणी प्यारी और कल्याण करनेवाली हो गई ।।११।। रम्भा आदि अप्सरायें मंगलमय द्रव्यों को हाथ में लेकर विद्याधरी किन्नरी तथा सहस्रों किन्नरी।।१२।। गन्धर्व, उरग (नाग), यक्षों की सुन्दर स्वरवाली स्त्रियां मंगल गीत को गाती वहां आई ।।१३।। मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त, क्रतु, अंगिरा, वसिष्ठ, कश्यप, अगस्त, विभाण्ड, माण्डवी का पुत्र ।।१४।। लोमश, लोमचरण, भरद्वाज, गौतम, भृगु, गालव, गर्ग, जातूकर्ण्य, पराशर ।।१५।। आपस्तम्ब, याज्ञवल्क्य, दक्ष, वाल्मीकि, मुद्गल, शातातप, लिखित, शिलाद, शंख, उच्छभुक् ।।१६।। जमदग्नि, संवर्त, मतंग, भरत, अंशुमान, व्यास, कात्यायन, कुत्स, शौनक, सुश्रुत, शुक ।।१७।। ऋष्यशृंग, दुर्वासा, शुचि, नारद, तुम्बरु, उत्तंक, वामदेव, पवन, असित, देवल ।।१८।। सालंकायन, हारीत, विश्वामित्र, भार्गव, मृकण्ड, अपने पुत्र सहित पर्वत, दारुक।।१९।। धौम्य, उपमन्यु, वत्स आदि मुनि और मुनिकन्या उस पुत्र की शान्ति के निमित्त प्रशंसा योग्य विश्वानर के आश्रम पर आये ।।२०।। बृहस्पति सहित ब्रह्माजी तथा विष्णुजी,

नन्दी और भृंगीगणों सहित तथा पार्वती सहित शिवजी ।।२१।। महेन्द्र आदि देवता तथा पातालवासी नाग अनेक प्रकार के रत्न आदि लेकर नदियों सहित समुद्र ।।२२।। और अनेक स्थावर पर्वतादि, जंगम रूप धर के आए, उस महोत्सव में बिना समय के भी चान्दनी सी हो गई ।।२३।। और उस बालक का जातकर्म संस्कार स्वयं ब्रह्माजी ने किया, श्रुति को विचार कर उसके रूप के अनुसार उसका नाम गृहपति ।।२४।। ग्यारहवें दिन रखा और नामकर्म संस्कार के विधान से श्रुतियों का उच्चारण करके ।।२५।। चार वेदों के मत से आशीर्वाद देकर हंस पर चढ़कर सबके पितामह ब्रह्माजी ।।२६।। लौकिक गति (लोकाचार) का आश्रय करके बालक की उचित रक्षा को कर, शिवजी भी विष्णुजी के सहित अपने-अपने वाहनों पर चढ़कर अपने-अपने धाम को गये ।।२७।। अहो! कैसा रूप, कैसा तेज, कैसा सब अंग का लक्षण, कैसी भाग्यवती शुचिष्मती है, जिसके साक्षात् शिवजी प्रकट हुए ।।२८।। अथवा शिवभक्त पुरुषों में क्या? यह आश्चर्य की बात है कि, उन भक्तों से अर्चित रुद्र स्वयं प्रकट हो गये ।।२९।। इस प्रकार स्तुति करते हुए वे परस्पर प्रसन्न चित्त हुए, सब विश्वानर से पूँछकर जहां से आये थे वहां चले गये ।।३०।। इस कारण सब गृहस्थाश्रमवासी पुत्र को चाहते हैं, पुत्र से लोकों को जीतता है, यह सनातनी श्रुति है ।।३१।। बिना पुत्रवाले का घर सूना है तथा बिना पुत्रवाले का अर्चन करना वृथा है, अपुत्र का तप खण्डित है, अपुत्र से घर पवित्र नहीं होता है ।।३२।। पुत्र से बढ़कर कोई लाभ नहीं, न पुत्र से अधिक सुख और न पुत्र से अधिक मित्र इस लोक में, न परलोक में हैं ।।३३।। चौथे महीने में पिता ने निष्क्रमण संस्कार किया और छठे महीने में अन्न प्राशन व चूड़ाकर्म संस्कार कर दिया ।।३४।। पश्चात् उस कर्मकाण्डी पिता ने श्रवण नक्षत्र में कर्णवेध संस्कार किया, ब्रह्मतेज की वृद्धि के निमित्त पांचवें वर्ष में यज्ञोपवीत व्रत दिया ।।३५।। और उपाकर्म करके वेदों को पढ़ाया, एक वर्ष में विधि पूर्वक सांग, पदक्रम पूर्वक वेदों को ।।३६।। तथा सम्पूर्ण विद्याओं को साक्षीमात्र होकर गुरु के मुख से विनय, भक्ति आदि गुणों को प्रकाशित करते हुए ग्रहण किया ।।३७।। तब नवें वर्ष में माता-पिता की सेवा में तत्पर हुए विश्वानर के पुत्र गृहपति को देखने के निमित्त नारदजी आये ।।३८।। कौतुकी देवर्षि नारदजी ने उस वैश्वानर की पर्णशाला में प्राप्त होकर क्रम से आधा आसन ग्रहण करके कुशल पूंछी ।।३९।। और उनके सम्मुख उसके भाग्य को और पुत्र के धर्म को शिवजी के चरणकमलों का स्मरण करके विश्वानर से वर्णन किया ।।४०।। नन्दीश्वर बोले- इस प्रकार नारदजी के कहने पर वह बालक माता-पिता की आज्ञा पाकर नारदजी को प्रणाम करके भक्तिपूर्वक बैठ गया ।।४१।। नारदजी ने कहा- हे विश्वानर! आओ, मेरी गोद में बैठो, मैं आपके लक्षणों की परीक्षा करता हूं, दाहिने हाथ को दिखाओ ।।४२।। तब नारदजी ने तालु, जिह्वा आदि सब अंग देखकर शिवजी की प्रेरणा से विश्वानर से

कहा ।।४३।। नारदजी बोले– हे मुने, विश्वानर! सुनिये, पुत्र के लक्षण आदर से कहता हूं, सब अंगों में शुभ लक्षणवाला यह पुत्र है ।।४४।। सब गुणों से पूर्ण, सब लक्षणों से युक्त, सम्पूर्ण निर्मल कला सहित इसे ब्रह्माजी चन्द्रमा के समान पालन करेंगे ।।४५।। अतः सब यत्नों सहित इस बालक की रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि विधाता के टेढ़े होने पर गुण भी दोषपने को प्राप्त होते हैं ।।४६।। बारहवें महीने में इसे बिजली और अग्नि से भय है, यह कहकर नारदजी जैसे आये थे वैसे देवलोक को चले गये ।।४७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
गृहपत्यवतारोपाख्याने गृहपत्यावतारवर्णनं नामचतुर्दशोऽध्यायः ।। १४ ।।

*****

पंद्रहवाँ अध्याय

नन्दीश्वर बोले– विश्वानर ने अपनी स्त्री सहित नारदजी का वचन सुनकर ऐसा दुःख माना, कि मानो अति कठिन वज्रपात हो गया हो ।।१।। हा शोक से मारा गया, ऐसे वचन कहकर हृदय को ताडन किया, पुत्र के शोक से व्याकुल होकर बड़ी मूर्छा को प्राप्त हुआ ।।२।। शुचिष्मती भी दुःख से व्याकुल होकर महारुदन करती हुई बड़े शब्द से हाहाकार करके व्याकुल हुई ।।३।। विश्वानर भी इस प्रकार दुःख के शब्द को सुनकर मोह को त्यागकर उठकर बोला, "यह क्या हुआ? क्या हुआ?" इस प्रकार ऊँचे स्वर से कहने लगा, कि वह बाहर स्थित प्राणों का प्राण, सम्पूर्ण इन्द्रियों का स्वामी मेरा पुत्र गृहपति कहां है?।।४।। तब अपने पिता को महाशोक में व्याकुल देखकर शंकरजी के अंश से उत्पन्न हुआ वह गृहपति हँसकर बोला ।।५।। गृहपति बोला– हे माता! हे पिता! क्या हुआ? सो कारण बताइये, आप किस लिये रोते हो, ऐसा भय आप दोनों को कहां से प्राप्त हुआ है?।।६।। आपकी चरण की धूलि से शरीर धारण किये मुझ को काल भी मारने को समर्थ नहीं है, अन्य विघ्न क्या दुःख दे सकते है!।।७।। हे माता–पिता! मेरी प्रतिज्ञा को सुनिये, यदि मैं आपका पुत्र हूं, तो ऐसा करूंगा, कि जिससे मृत्यु से रक्षा होगी।।८।। मैं मृत्यु को जीतनेवाले मन्त्र को सर्वज्ञ सत्पुरुषों को सब कुछ देनेवाले महाकाल रूप शिवजी की आराधना करके जपूंगा।।९।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार उसका वचन सुनकर, सन्तप्त हुए वे दोनों स्त्री–पुरुष बिना समय अमृत की वर्षा से दुःख रहित होकर बोले ।।१०।। द्विज स्त्री–पुरुष बोले– हे पुत्र! फिर कहो, फिर तो कहो कैसे हैं, काल भी मारने को समर्थ नहीं फिर वह तुच्छ बिजली तो क्या है?।।११।। हम दोनों के दुःख दूर करने के लिये

तुमने बड़ा उपाय कहा, मृत्युंजय नामक शिवजी की आराधना रूप लक्षणवाला उपाय है ।।१२।। उनके समान कोई नहीं और न उन शम्भुजी से परे कोई है, वे मनोरथ के मार्ग को प्रकट करनेवाले तथा पाप हरण करनेवाले हैं ।।१३।। हे तात! क्या यह पहले आपने नहीं सुना, कि पहले श्वेतकेतु कालपाश से बाँधा गया और शिवजी ने रक्षा की ।।१४।। विश्व को आनन्द देनेवाले नन्दी नामक शिलाद के आठ वर्ष के पुत्र को पुत्र को मृत्यु ग्रसित देखकर शिवजी ने अपना जन किया ।।१५।। क्षीरसागर के मथने से उत्पन्न हुई प्रलयकाल की अग्नि के समान घोर हलाहल विष को पान करके तीनों लोकों की रक्षा की ।।१६।। और जिन शिवजी ने बड़े अहंकारी, त्रिलोकी की सम्पदा हरण करनेवाले जलन्धर दैत्य को रुचिर अंगूठे की रेखा से प्रेरणा किये हुए चक्र से मारा ।।१७।। जिन्होंने एक छूटे बाण से उत्पन्न अग्नि से त्रिलोकी के ऐश्वर्य छीननेवाले त्रिपुरासुर को भस्म किया ।।१८।। त्रिलोकी के विजय करनेवाले कामदेव को जिन्होंने दृष्टिनिक्षेप मात्र से अज आदि के देखने पर भी अनंग पदवी प्राप्त कराई ।।१९।। हे पुत्र! उन ब्रह्माजी आदि के एक मात्र कर्ता, मेघ वाहनवाले, अविनाशी, विश्व की रक्षारूप मणि, शिवजी की शरण में जाओ ।।२०।। नन्दीश्वर बोले– तब वह गृहपति अपने माता–पिता की आज्ञा पाकर उनके चरणों की वन्दना करके बहुत धीरज देकर चला गया ।।२१।। ब्रह्माजी तथा नारायण आदि को भी दुष्प्राप्य तीनों प्रकार के सन्ताप हरण करनेवाली विश्वेश (शिवजी) से पालन की हुई काशीजी में आया ।।२२।। जो काशी नगरी गंगाजी के कण्ठरूप भूमि में हारयष्टि के समान शोभायमान तथा अद्भुत गुणवती पार्वतीजी से विराजमान है ।।२३।। वह गृहपति उस काशीजी में आकर पहले मणिकर्णिका को गया, वहां विधि पूर्वक स्नान करके ।।२४।। अंजलि बांधकर सिर झुकाकर बड़ा आनन्दित हुआ, उसने वह तीनों लोकों के प्राणों की रक्षा करनेवाले शिवजी को नमस्कार किया ।।२५।। उस लिंग को बारंबार देख–देखकर हृदय में बड़ा सन्तुष्ट हुआ, जो कि परम आनन्दकन्द रूप साक्षात् प्रकाशित है, इसमें कुछ संशय नहीं ।।२६।। अहो! चर–अचर रूप त्रिलोकी में मुझसे अधिक कोई धन्य नहीं है, जो आज विश्वेश्वर प्रभु का मैंने दर्शन किया ।।२७।। मेरे भाग्य के उदय होने के लिये महर्षि नारदजी ने पहले जो कहा, सो मैं कृतकृत्य हूं ।।२८।। नन्दीश्वर बोले– कि आनन्द रूपी अमृतरस से पारणा करके शुभ दिन में सब का हित करनेवाले लिंग की स्थापना करके ।।२९।। उन घोर नियमों को ग्रहण किया, जो अकृतात्माओं को अति कठिन हैं, एक सौ आठ गंगाजल के घड़ों से ।।३०।। वस्त्र से छने, पवित्र जलवाले घटों से पवित्र होकर प्रतिदिन शिवजी को स्नान कराके नित्य नीले कमलों की माला समर्पण करता था ।।३१।। एक सहस्र आठ फूलों से बनाई माला को चढ़ाकर पक्ष में अथवा महीने में कन्द, मूल, फल खाकर ।।३२।। और छः महीने सूखे पत्ते खाकर, वह धीरव्रत

करता हुआ और छः महीने पवन का भक्षण करके तथा छः महीने जल की बून्द पान करके तप करने लगा।।३३।। इस प्रकार उस महात्मा का एक वर्ष बीता, केवल शिवजी को ही चित्त में धारण करके तप करने लगा।।३४।। जन्म से बारहवें वर्ष में नारदजी के वचन को सत्य करने को वज्रधारी इन्द्र उसके समीप गये।।३५।। और बोले– वर मांग, जो तुम्हारे मन में स्थित है, हे विप्र! मैं इन्द्र तुम्हारे शुभव्रतों से प्रसन्न हूं।।३६।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार वह मुनि का पुत्र इन्द्र के वचन सुनकर मधुर अक्षरों से कीर्तन करता हुआ मधुर धीर स्वर से बोला।।३७।। गृहपति बोला– हे वृत्रासुर के शत्रु! हे इन्द्र के कुलिशपाणि! मैं आपको जानता हूं, आपसे वर को नहीं चाहता, मुझे शिवजी वर देनेवाले हैं।।३८।। इन्द्र बोला– हे शिशो! मुझसे अधिक शंकर नहीं हैं, मैं देवताओं का स्वामी हूं, तुम लड़कपन को छोड़कर मुझसे वर मांगो।।३९।। गृहपति बोला– हे अहल्यापते! हे साधो! हे इन्द्र! आप जाइये, मैं शिवजी से अतिरिक्त किसी देवता की प्रार्थना नहीं करता हूं।।४०।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार वचन सुनकर क्रोध से लाल नेत्रवाला इन्द्र घोर वज्र को निकालकर बालक को डराने लगा।।४१।। वह बालक वज्र को देखकर जो बिजली की अग्नि से व्याप्त था। और नारदजी के वाक्य को स्मरण करता हुआ भय से व्याकुल होकर मूर्च्छित हो गया।।४२।। तब अन्धकार दूर करनेवाले पार्वती के पति साक्षात् शिवजी प्रकट हुए और अपने हाथ से स्पर्श करके संजीवन करते हुए बोले– हे पुत्र! उठो, उठो।।४३।। तब गृहपति ने दिन बीत जानेपर मानों सोने से उठकर नेत्रों को खोलकर देखा, कि सैकड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान शंकरजी स्थित हैं।।४४।। भाल पर नेत्र, कण्ठ में काल, बैल पर चढ़े, बाईं ओर स्थित पार्वती, माथे पर शोभायमान चन्द्र।।४५।। जटाजूट से शोभायमान, त्रिशूल, पिनाक धनुषधारी, चमकते हुए कपूर के समान गौर शरीरवाले, हाथी के चर्म को धारण किये।।४६।। गुरुवाक्य तथा आगम प्रमाण से ऐसे रूपवाले को महादेवजी जानकर हर्ष के आंसुओं से रुके कण्ठवाले (गद्‌गदवाणी से) रोमांचित शरीर होकर।।४७।। क्षणमात्र में पर्वत चित्रकूट और त्रिपुर के समान अचल होकर स्थित हो गया।।४८।। जब वह न स्तुति करने को और न नमस्कार करने को तथा न कुछ जताने को समर्थ हुआ, तब शिवजी उससे हँसकर बोले।।४९।। शिवजी बोले– हे शिशो! हे गृहपते! मैंने तुमको वज्रहाथ में लिये हुए इन्द्र से डरा जाना, सो अब भय मत करो, यह मैंने तुम्हारी परीक्षा की थी।।५०।। मेरे भक्त को न इन्द्र, न काल, न वज्र मारने को समर्थ हैं, मैंने ही इन्द्र का रूप धारण करके तुम को भय दिखाया था।।५१।। हे भद्र! मैं तुमको वरदान देता हूं, कि तू अग्निपद का भागी और समस्त देवताओं को वर देनेवाला होगा।।५२।। हे अग्नि! तू सब प्राणियों का अन्तर्यामी हो और धर्मराज तथा इन्द्र के मध्य में दिशाओं का ईश्वर होकर राज्य को प्राप्त हो।।५३।। तुमने यह लिंग स्थापन

किया है, इस कारण तेरे नाम से यह 'अग्नीश्वर' प्रसिद्ध होगा और सब तेजों का तिरस्कार करनेवाला होगा।।५४।। अग्नीश्वर महादेवजी के भक्तों को बिजली तथा अग्नि से भय नहीं होता है और न कहीं अकाल मृत्यु तथा अजीर्णता का भय होता है।।५५।। मनुष्य काशी में सब सम्पत्तियों के देनेवाले अग्नीश्वर महादेवजी की पूजा करके यदि काशी में न भी मरे, तो भी वह अग्निलोक में प्राप्त होता है।।५६।। नन्दीश्वर बोले–ऐसा कहकर उसके भाई--बन्धुओं को तथा माता–पिता को बुलाकर उनके देखते ही अग्नीश्वर को दिशाओं के पति के राज्य में स्थापित करके उस लिंग में शिवजी प्रवेश कर गये।।५७।। इस प्रकार मैंने आपसे यह परमात्मा शंकरजी का गृहपति अग्नि का अवतार वर्णन किया।।५८।। रमणीक सुख देनेवाली, श्रेष्ठ प्रकाशवती चित्रहोत्रपुरी नामक नगरी है, वहां पर अग्नीश्वर के भक्त निवास करते हैं।।५९।। जो जितेन्द्रिय तथा दृढ़ सत्त्ववाले पुरुष तथा सत्यसम्पन्न स्त्रियां अग्नीश्वर के स्थान में प्रवेश करती हैं, वे सब अग्नि के समान तेजस्वी होते हैं।।६०।। अग्निहोत्र में तत्पर ब्राह्मण तथा ब्रह्मचारी और इसी प्रकार पंचाग्नि तपानेवाले यह सब अग्निलोक में अग्नि के समान तेजस्वी होकर स्थित होते हैं।।६१।। जो मनुष्य जाड़ों में शीत के दूर होने के लिये इन्धन के बोझों को दान करता है अथवा ईंटों से अग्निकुण्ड को बनवाता है, वह अग्निलोक में निवास करता है।।६२।। जो अनाथ प्रेत का अग्निसंस्कार श्रद्धा से करता है अथवा अशक्त होने पर दूसरे से करा देता है, वह अग्नि के लोक में पूज्य होता है।।६३।। तीनों द्विजातियों का एक अग्नि ही परम कल्याण करनेवाला है तथा अग्नि ही गुरु, देवता, व्रत, तीर्थ है, जो कुछ है सब अग्नि ही है, ऐसा निश्चय है।।६४।। सम्पूर्ण अपवित्र वस्तु भी अग्नि के संग से क्षणभर में पवित्र हो जाती है, इस कारण वह पावक कही गई है।।६५।। यह अग्नि साक्षात् अन्तर्यामी रूप से प्रकट है और निश्चय शीघ्र ही सुखानेवाली है और कुक्षि में मांस ग्रासों को पकाती है और स्त्रियों की पेशी को पकानेवाली नहीं है।।६६।। स्त्रियों के शरीर में तेजवाली दहनात्मिका शिवजी की मूर्त्ति प्रत्यक्ष है, वही उत्पन्न करनेवाली, विनाश करनेवाली और पालन करनेवाली है, इसके बिना क्या कुछ दीखता है?।।६७।। यह साक्षात् शिवजी का तीसरा नेत्र है और विचित्र अग्नि है, अन्धकार से व्याप्त हुए इस संसार में इस अग्नि के बिना कौन प्रकाश करनेवाला है?।।६८।। सर्व देवता आकाश में स्थित हुए धूप, दीप, नैवेद्य, दूध, दही, घी, मिष्ठान्न यह सब अग्नि में हवन करने पर ही सेवन करते हैं।।६९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां

गृहपत्यावतारवर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः।। १५।।

*****

सोलहवाँ अध्याय

नन्दीश्वर बोले– हे मुनीश्वर! अहंकारी तथा अभिमानी जनों के अहंकार को नष्ट करनेवाले तथा सत्पुरुषों की भक्ति बढ़ानेवाले शिवजी के यक्षेश्वरावतार को सुनिये ।।१।। पहले बड़े बली देवता और दैत्य अपनी–अपनी भलाई और स्वार्थ में तत्पर होकर, संधि करके अमृत निकालने के निमित्त क्षीरसागर को मथने लगे ।।२।। देवता तथा दैत्यों से अमृत के निमित्त क्षीरसागर के मथे जाने पर सबसे पहले उसमें से कालाग्नि के समान अग्नि से प्रादुर्भूत विष निकला ।।३।। हे तात! उस विष को देखकर समस्त देवता तथा दैत्य भयभीत हुए और दौड़कर शीघ्र ही वे शिवजी के शरण में गये ।।४।। विष्णुजी सहित मस्तक झुकाये हुए सब देवता उन समस्त देवताओं के सिरमौर शिवजी को देखकर प्रणाम करके भक्ति से स्तुति करने लगे ।।५।। तब भक्तों के ऊपर दया करनेवाले भगवान् शिवजी ने देवता तथा देवगणों को पीड़ा देनेवाला वह महाघोर विष को पान किया ।।६।। पान किये हुए उस विष को कण्ठ में धारण किया, इस कारण वे विभु शोभायमान तथा 'नीलकण्ठ' नामवाले हो गये ।।७।। तब देवता तथा दैत्यों ने फिर उस समुद्र को मथा, वे सम्पूर्ण देवता शिवजी के अनुग्रह से विष के दाह से मुक्त हुए ।।८।। हे मुने! फिर उसमें से अनेक रत्न निकले, तो अमृत पदार्थ उन दोनों में से ।।९।। केवल देवताओं ने ही विष्णुजी की कृपा से पिया, तब निकले हुए बड़े–बड़े रत्नों को परस्पर बांट करने के निमित्त ।।१०।। हे मुने! उन देवता और दैत्यों का बड़ा द्वन्द्व युद्ध हुआ, वहां राहु के भय से चन्द्रमा पीड़ित होकर भागे ।।११।। भय से व्याकुल होकर शिवजी के स्थान में गये और प्रणाम करके ''मेरी रक्षा करें, रक्षा करें'' यह कहकर शिवजी की स्तुति की ।।१२।। तब सत्पुरुषों को अभय देनेवाले भक्तवत्सल विभु शिवजी ने उस शरण आये चन्द्रमा को अपने मस्तक पर धारण किया ।।१३।। उसके उपरान्त राहु आया और उन सबके स्वामी शिवजी को आदरपूर्वक प्रियवाणी से प्रणाम करके उनकी स्तुति की ।।१४।। शिवजी ने उसके मत को जानकर पहले विष्णुजी से काटे हुए केतुसंज्ञक सिरों को रुण्डमाला के साथ गले में धारण किया ।।१५।। तब युद्ध में सब दैत्य देवताओं से पराजित हुये, महाबली सर्व देवता अमृत पीकर विजय को प्राप्त हुए ।।१६।। विष्णुजी से आदि लेकर सब देवता अति अभिमानी हुए और शिवजी की माया से मोहित होकर अपने–अपने बल की सराहना करने लगे ।।१७।। हे मुने! तब वह गर्व का नाश करनेवाले सर्वाधीश शिवजी यक्ष होकर शीघ्र ही वहां आये, जहां सब देवता स्थित थे ।।१८।। तब यक्षपति शिवजी ने विष्णुजी आदि देवताओं को

देखकर अहंकार विनाश करने के निमित्त बड़े अहंकारयुक्त मन से कहा ।।१९।। यक्षेश्वर बोले- आप सब देवता आपस में मिलकर किस कारण यहां स्थित हुए हो ? सो सब ठीक-ठीक कहिये, उसका कारण मैं पूँछता हूं ।।२०।। देवता बोले-हे देव ! यहां पर बड़ा भयंकर युद्ध हुआ था, सब दैत्य नष्ट हुए, शेष बचे हुए भागकर चले गये ।।२१।। हम सब बड़े पराक्रमी तथा दैत्यों को मारनेवाले बड़े बली हैं, हमारे आगे वे तुच्छ बलवाले दैत्य क्षुद्र होने से क्या वस्तु हैं ? ।।२२।। नन्दीश्वर बोले- इस प्रकार उन देवताओं का अहंकार भरा वचन सुनकर गर्वनाश करनेवाले यक्षरूपधारी महादेवजी यह वचन बोले ।।२३।। यक्षेश्वर बोले- हे सकल देवताओ ! आप सब मेरे वचनों को आदर से सुनिये, सबों का गर्व नाश करनेवाला यथार्थ वचन कहता हूं, असत्य नहीं कहता ।।२४।। इस विषय में अभिमान मत करो, निर्माण करनेवाला तथा हरण करनेवाला स्वामी दूसरा है, उस महादेवजी को आप भूल गये, वृथा अपने बल को कहते हो ।।२५।। हे देवताओ ! यदि आपका वह घमण्ड है, तो अपने बल की परीक्षा करो कि मुझसे स्थापन किये इस तिनके (तृण) को अपने उन अस्त्रों से काटो ।।२६।। नन्दीश्वर बोले- यह कहकर सत्पुरुषों को गति देनेवाले यक्ष रूप महादेवजी ने उन सब देवताओं के आगे एक तिनका फेंका और सब मद दूर किया ।।२७।। तब वीर अभिमानी विष्णुजी आदि सब देवताओं ने पुरुषार्थ करके उसके ऊपर अपने-अपने अस्त्र चलाये ।।२८।। देवताओं के प्रहार किये वे अस्त्र निष्फल हो गये, उनमें गर्व को हरण करनेवाले शिवजी का प्रभाव पड़ा अर्थात् तृण को न काट सके।।२९।। उसके उपरान्त देवताओं के विस्मय को दूर करनेवाली आकाशवाणी हुई, कि ''यह यक्ष सब गर्वों के विनाशक शंकरदेव हैं ।।३०।। यह परमेश्वर ही कर्ता, विनाशकर्ता तथा पालनकर्ता हैं, इनके बल से ही सम्पूर्ण जीव बली होते हैं, अन्य प्रकार से नहीं ।।३१।। इनकी माया के प्रभाव से मोहित होकर आपने मद के कारण अपने प्रभु शिवजी के शरीर को अब तक भी नहीं जाना'' ।।३२।। नन्दीश्वर बोले- इस प्रकार आकाशवाणी सुनकर विस्मय रहित हुए उन देवताओं ने उन ईश्वर को जाना और यक्षेश्वर को प्रणाम करके सन्तुष्ट किया ।।३३।। देवता बोले- हे देव देव महादेव ! हे सब का अभिमान नाश करनेवाले ! हे यक्षेश्वर ! हे प्रभो ! हे महा लीलावाले ! आपकी माया बड़ी अद्‌भुत है।।३४।। आप यक्ष रूपधारी शिवजी की माया से अब तक मोहित होकर गर्व सहित वचन कहते हुए हम आपके आगे पृथक् हैं ।।३५।। हे प्रभो ! अब आपकी ही कृपा से ज्ञान हुआ; हे शंकर ! इस जगत् के कर्ता, हर्ता तथा पालनकर्ता आप ही हो, दूसरा नहीं ।।३६।। आप सब शक्तियों के तथा सब जीवों को प्रेरणा करनेवाले हो तथा निवृत्त करनेवाले सबके ईश, परमात्मा, अव्यय, अद्वैत हो ।।३७।। आपने यक्षेश्वर का स्वरूप धारण करके हमारा अभिमान दूर किया, सो हे कृपालु ! हम आपका उपकार तथा अनुग्रह करना मानते हैं ।।३८।। तब

वे यक्षनाथ समस्त देवताओं को कृपा पूर्वक अनेक वचनों से समझाकर वहां ही अन्तर्धान हुऐ।।३९।। इस प्रकार सुख देनेवाला, यक्षेश्वर नामक, सत्पुरुषों को सुखी करनेवाला तथा सन्तुष्ट और अभय करनेवाला शिवजी का अवतार वर्णन किया।।४०।। यह निर्मल इतिहास सबके अभिमान का नाश करनेवाला तथा सज्जनों को शान्ति देनेवाला और मनुष्यों को नित्य भुक्ति और मुक्ति का देनेवाला है।।४१।। जो बुद्धिमान् पुरुष इसे भक्ति से सुनता है अथवा सुनाता है, वह सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त होकर अन्त समय परमगति को प्राप्त होता है।।४२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
यक्षेश्वरावतारवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः।। १६।।

*****

सतरहवाँ अध्याय

हे मुने! अब भक्ति से उपासना काण्ड को सेवन करनेवाले महाकाल आदि दश संख्यक शिवजी के अवतारों को सुनिये।।१।। उनमें पहला महाकाल नामक अवतार सत्पुरुषों को भोग्य तथा मुक्ति का देनेवाला हुआ और उसकी महाकाली शक्ति भक्तों के इच्छित फल की देनेवाली हुई।।२।। और दूसरा तारक नामक अवतार तथा तारा नामकी शक्ति हुई, वे दोनों अपने सेवकों को सुख देनेवाले और भुक्ति–मुक्ति के दाता हैं।।३।। बाल नामक भुवनेश का तीसरा अवतार है, उसकी बाला भुवनेशी नामक शक्ति सत्पुरुषों को सुख देनेवाली है।।४।। चौथा षोडश नामक श्री विद्येश और उसकी श्रीविद्या षोडशी शक्ति है, वह भक्तों को सुख और मुक्ति देनेवाली हैं।।५।। पांचवां भैरव नामक अवतार सर्वदा भक्तों की कामनाओं का पूर्ण करनेवाला है, उसकी भैरवी गिरजा नाम्नी शक्ति श्रेष्ठ उपासकों की कामना पूर्ण करनेवाली है।।६।। छठां छिन्नमस्तक अवतार हुआ है, और उसकी छिन्नमस्तका गिरिजा भक्तों के मनोरथ सिद्ध करनेवाली है।।७।। सातवां धूमवान् नामक शम्भुजी का अवतार सब कामनाओं का देनेवाला हुआ, उसकी धूमावती नाम की शक्ति सज्जन उपासकों को फल देनेवाली है।।८।। आठवां बगलामुख नामक सुख का देनेवाला शिवजी का अवतार हुआ, उसकी महाआनन्द देनेवाली बगलामुखी शक्ति हुई।।९।। नवां मातंग नामक शिवजी का अवतार कहा है, उसकी मातंगी नाम की शर्वाणी सब कामना और फल की देनेवाली कही है।।१०।। कमल नामक भुक्ति तथा मुक्ति का देनेवाला दशवां शिव अवतार हुआ, उसकी कमला गिरिजा नाम की भक्तों को पालन करनेवाली शक्ति हुई।।११।।

यह शिवजी के दश अवतार सर्वदा सज्जन भक्तों को सुख देनेवाले तथा भुक्ति और मुक्ति देनेवाले हैं।।१२।। यह महात्मा शंकरजी के दशों अवतार नित्य अनेक प्रकार के सुख देनेवाले हैं, इनकी निर्विकारता से सेवा करनी चाहिये।।१३।। हे मुने! यह दश अवतारों का माहात्म्य वर्णन किया, सो कामनाओं का देनेवाला तन्त्रशास्त्रों संयुक्त जानना चाहिये।।१४।। हे मुने! इन शक्तियों की भी अद्भुत महिमा है, यह भी सब इच्छा पूर्ण करनेवाली और तन्त्रशास्त्रों से गर्भित हैं।।१५।। शक्ति शत्रु के मारण आदि कार्य में अधिक मानी गई हैं, दुष्टों को नित्य दण्ड देनेवाली तथा ब्रह्म तेज को बढ़ानेवाली हैं।।१६।। हे ब्रह्मन्! शिवजी के इस प्रकार शुभ महाकाल आदि दशों शक्तियों सहित दश अवतार मैंने कहे।।१७।। जो मनुष्य शिवजी के पर्वों में इस निर्मल इतिहास को भक्ति पूर्वक पढ़ता है, वह शिवजी का अत्यन्त प्रिय होता है।।१८।। यदि ब्राह्मण पढ़ता है, तो ब्रह्मतेजस्वी होता है और क्षत्रिय हो तो विजयी होता है, वैश्य धन का अधिपति होता है और शूद्र हो तो सुख को पाता है।।१९।। यदि शिवजी के भक्त अपने धर्म में स्थित होकर इस चरित्र को सुनते हैं, तो सुखी और विशेष कर शिवजी की भक्तिवाले होते हैं।।२०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
शिवदशावतारवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः।। १७।।

*****

अठारहवाँ अध्याय

नन्दीश्वर बोले- शिवजी के ग्यारह श्रेष्ठ अवतारों को सुनिये, जिन्हें सुनने से असत्य आदि दोषों से उत्पन्न हुई बाधा नहीं सताती है।।१।। पहले दैत्यों से पराजित हुए इन्द्र आदि सब देवता भय से अपनी अमरावती पुरी को छोड़कर भाग गये।।२।। दैत्यों से पीड़ित होकर सब देवता कश्यपजी के निकट गये और हाथों को बांधकर, कन्धों को झुकाकर, भय से व्याकुल होकर उनको प्रणाम किया।।३।। सब देवताओं ने प्रणाम करके आदर से प्रार्थना करके अपने अत्यन्त पराजयरूप दुःख को निवेदन किया।।४।। हे तात! तब उनके पिता शिवजी में आसक्त बुद्धिवाले कश्यपजी उस देवता सम्बन्धी वचन को सुनकर अधिक दुःखी नहीं हुए।।५।। हे मुने! उन शान्तबुद्धि कश्यप मुनि ने उनको आश्वासन देकर धैर्य धारण कराके प्रसन्नतापूर्वक काशी में विश्वेश्वरपुरी को गमन किया।।६।। और गंगाजी में स्नानकर आदर से नैमित्तिक विधि को समाप्त करके पार्वती सहित सबके ईश्वर प्रभु विश्वेश्वर महादेवजी का पूजन किया।।७।। शिवजी के

लिंग की स्थापना करके देवताओं के हित की इच्छा से प्रीतिपूर्वक शिवजी के उद्देश्य से अत्यन्त तप किया।।८।। हे मुने! शिवजी के चरणकमलों में धैर्य पूर्वक मन लगा कर तप करते–करते उनको बहुत समय बीत गया।।९।। तब उस अपने चरणों में मन लगाये हुए ऋषि को वर देने के निमित्त दीनबन्धु, सत्पुरुषों को गति देनेवाले शिवजी प्रकट हुए।।१०।। और प्रसन्न हुए भक्तवत्सल महेश्वरजी ने ''वर को ग्रहण करो'' ऐसे उन मुनिश्रेष्ठ अपने भक्त कश्यपजी से कहा।।११।। तब उन शिवजी को देखकर प्रसन्न होकर, अंजलि बांधकर श्रेष्ठ बुद्धिवाले कश्यपजी उनको प्रणाम करके स्तुति करने लगे।।१२।। कश्यपजी बोले– हे देव देव महादेव! हे शरणागतवत्सल! आप सर्वेश्वर हो, परमात्मा हो, ध्यान से पाने योग्य हो, आप अद्वैत और अविनाशी हो।।१३।। हे महेश्वर! आप बल को रोकनेवाले तथा सज्जनों को गति देनेवाले, दीनबन्धु, दया के समुद्र और भक्तों की रक्षा करने में निपुण हो।।१४।। हे प्रभो! यह देवता आपके हैं तथा विशेष कर आपके भक्त हैं, दैत्यों द्वारा पराजित किये गये हैं, अतः इनकी रक्षा कीजिये।।१५।। असमर्थ हुए विष्णुजी भी आपको दुःख ही देते हैं, इस कारण बारंबार देवता भी दुःखी होकर मेरी शरण में आकर अपना दुःख कहते हैं।।१६।। हे देव देवेश! हे देवताओं के दुःख नाश करनेवाले! यह मनोरथ पूर्ण करने को आपकी प्रसन्नता के निमित्त मैंने तप का अनुष्ठान किया है।।१७।। हे महेश्वर! हे स्वामिन्! मैं सब प्रकार आपकी शरण में आया हूं, मेरी कामना को पूर्ण करें और देवताओं के दुःख को नाश करें।।१८।। हे देवेश! हे ईश! मैं विशेष कर पुत्रों के दुःख से दुःखी हुआ हूं, मुझे सुखी करें, आप देवताओं के सहायक हो।।१९।। हे नाथ! हे शम्भो! मेरे पुत्र होकर इन महाबली दैत्यों से पराजित हुए देवता, यक्षों को आप आनन्द देनेवाले हो।।२०।। हे महेशान! हे प्रभो! आप समस्त देवताओं के सहायक हो, जिस प्रकार देवताओं को दैत्यों से की हुई बाधा न पीड़ा दे, ऐसा कीजिये।।२१।। नन्दीश्वर बोले– कश्यपजी के ऐसा कहनेपर ''ऐसा ही होगा'' यह कहकर उनके देखते–देखते भगवान् शिवजी वहां ही अन्तर्धान हो गये।।२२।। कश्यपजी भी बड़े प्रसन्न होकर शीघ्र ही अपने स्थान को आये और उन्होंने आदरपूर्वक देवताओं से सब वृत्तान्त कहा।।२३।। तब वह शंकरजी शर्व अपना वचन सत्य करने के लिये ग्यारह रूप धारण करके कश्यपजी से सुरभि में प्रकट हुए।।२४।। उस समय बड़ा उत्सव हुआ, मानो सब शिवरूप हो गया, सब देवता कश्यपजी से बड़े प्रसन्न हुए।।२५।। कपाली, पिंगल, भीम, विरूपाक्ष, विलोहित, शास्ता, अजपाद्, अहिर्बुध्न्य, शम्भु, चण्ड तथा भव नामवाले।।२६।। यह ग्यारह रुद्र सुरभी के पुत्र कहे हैं, यह देवताओं के कार्य करने के निमित्त प्रकट हुए हैं, यह शिवरूप साक्षात् सुख के स्थान हैं।।२७।। इन महाबली और पराक्रमी वीर कश्यपजी के पुत्र देवताओं की सहयता करनेवाले ग्यारह रुद्रों ने संग्राम में दैत्यों को

मारा ।।२८।। तब उन रुद्रों की कृपा से देवताओं ने निर्भय होकर दैत्यों पर विजय पाकर इन्द्र आदि देवताओं के सहित स्वस्थचित्त होकर राज्य किया ।।२९।। आज तक भी शिवजी के स्वरूप वे सब महारुद्र देवताओं की रक्षा करने के निमित्त निरन्तर द्युलोक में विराजते हैं ।।३०।। वे भक्तवत्सल तथा नाना प्रकार की लीलाओं में चतुर ईशान दिशा में निवास करते हुए वहां सदा रमण करते हैं ।।३१।। उनके अनुचर करोड़ों रुद्र हैं, जो तीनों लोक में सर्वत्र चारों ओर स्थित हैं ।।३२।। हे तात! यह शिवजी के ग्यारह रुद्र अवतार आपने वर्णन किये, जो सबको सुख देनेवाले हैं ।।३३।। यह निर्मल इतिहास सब पापों को दूर करनेवाला, धन और यश को बढ़ानेवाला, आयु वृद्धिकारक तथा सब मनोरथों को पूर्ण करनेवाला है ।।३४।। हे तात! जो पुरुष सावधान होकर इसे सुनता अथवा सुनाता है, वह इस लोक में सब सुखों को भोगकर अन्त समय मुक्ति को प्राप्त होता है ।।३५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
एकादशावतारवर्णनं नामाष्टादशोऽध्याय: ।। १८ ।।

*****

उन्नीसवाँ अध्याय

नन्दीश्वर बोले– हे महामुने! अब शिवजी का अन्य चरित्र प्रीति से सुनिये, जिस प्रकार धर्म के कारण शिवजी ने दुर्वासा रूप धारण किया ।।१।। तप करनेवाले अति ब्रह्मवेत्ता अनसूया के पति बुद्धिमान् तथा ब्रह्माजी की आज्ञा का पालन करनेवाले ब्रह्माजी के पुत्र अत्रि हुए ।।२।। वह ब्रह्माजी के कहने से पुत्र की इच्छा के कारण स्त्री सहित तप करने के निमित्त त्र्यक्ष नामक पर्वत पर गये ।।३।। और उन मुनि ने विन्ध्याचल पर्वत के समीप नदी के किनारे विधि पूर्वक प्राणों को रोककर निर्द्वन्द्व होकर सौ वर्ष तक बड़ा कठिन तप किया ।।४।। जो एकमात्र ईश्वर तथा अविकारी कोई महाप्रभु हैं, वे मुझे श्रेष्ठ पुत्र देंगे, ऐसा मन में ठान लिया ।।५।। कठिन तप करते-करते उनको बहुत समय बीत गया, तो उनके सिर से पवित्र बड़ी तीक्ष्ण अग्नि की ज्वाला प्रकट हुई ।।६।। उस ज्वाला से सम्पूर्ण लोक तथा मुनीश्वर, ऋषि, इन्द्र आदि देवता सब भस्म होने लगे और पीड़ा पाने लगे ।।७।। हे मुने! तब इन्द्र आदि देवता, मुनि आदि सब उस अग्नि से अति पीड़ित होकर शीघ्र ही ब्रह्माजी के स्थान को गये ।।८।। हे तात! देवताओं ने नमस्कार और स्तुति करके ब्रह्माजी से अपना दु:ख निवेदन किया, तब ब्रह्माजी सब देवताओं सहित विष्णुलोक को गये ।।९।। हे मुने! वहां जाकर ब्रह्माजी ने देवताओं के साथ लक्ष्मी सहित विष्णुजी को बारंबार नमस्कार करके

उनके निकट अपने दुःख को कहा।।१०।। और विष्णुजी उन ब्रह्माजी तथा उन देवताओं के सहित शीघ्र ही शिवजी के स्थान को गये, वहां परमेश्वर शिवजी को प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे।।११।। बहुत स्तुति करके उन व्यापक शिवजी से अत्रि के परम तप के अग्नि से उत्पन्न होनेवाले अपने दुःख को निवेदन किया।।१२।। हे मुने! तब उस स्थान में ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर तीनों मिलकर आपस में संसार के हित करने के निमित्त सम्मति करने लगे।।१३।। हे देव! उस समय ब्रह्माजी आदि तीनों देवता उन अत्रि ऋषि को वर देने के निमित्त उनके आश्रम में शीघ्रता से गये।।१४।। उन अत्रि मुनि ने उन सबको अपने-अपने चिह्नों से अंकित देखकर आदर से प्रियवाणी के द्वारा प्रणाम किया और स्तुति की।।१५।। तब वह विनीतात्मा ब्रह्माजी के पुत्र अत्रि ब्राह्मण विस्मित होकर उन ब्रह्मा, विष्णु, शिवजी से हाथ जोड़कर बोले।।१६।। अत्रि बोले- हे ब्रह्मन्! हे विष्णो! हे शिव! आप संसारभर के पूजनीय माने गये हैं तथा प्रभु, ईश्वर सृजन, रक्षा और विनाश करनेवाले हैं।।१७।। केवल एक शिवजी का ही पुत्र के कारण मैंने स्त्री सहित ध्यान किया था, जो ईश्वर संसार में प्रसिद्ध हैं।।१८।। हे वर देनेवालों में श्रेष्ठ! आप तीनों देवता किस हेतु से आये हो? मेरे इस संशय का छेद करके इच्छित वर दीजिये।।१९।। हे मुने! ऐसा उनका वचन सुनकर वे तीनों देवता बोले- हे मुनिराज! जैसा आपने संकल्प किया है, वैसा ही होगा।।२०।। हम तीनों ब्रह्मा, इशान तथा विष्णु समान वर देनेवाले हैं, इस कारण हमारे अंश से उत्पन्न होनेवाले तुम्हारे तीन पुत्र होंगे।।२१।। जो संसार विदित होकर माता-पिता की कीर्ति बढ़ानेवाले होंगे, ऐसा कहकर वे तीनों देवता प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थानों को चले गये।।२२।। हे मुने! वह अत्रि मुनि भी वर पाकर आनन्द के साथ अपने स्थान को गये और अनसूया सहित प्रसन्न तथा ब्रह्मानन्द के देनेवाले हुए।।२३।। तब उस अनसूया स्त्री से ब्रह्मा, विष्णु, शिव तीनों पुत्र रूप से प्रसन्न तथा अनेक लीलाओं के प्रकाश करनेवाले उत्पन्न हुए।।२४।। अनसूया में अत्रि के द्वारा ब्रह्माजी के अंश से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, जो देवताओं के निक्षेप करने पर समुद्र में प्रकट हुआ।।२५।। और विष्णुजी के अंश से अनसूया में अत्रिऋषि के द्वारा दत्त भगवान् उत्पन्न हुए, जिन्होंने संन्यास की बड़ी पद्धति बढ़ाई।।२६।। हे मुनिसत्तम! शिवजी के अंश से धर्म का प्रवर्तक श्रेष्ठ दुर्वासा मुनि उस स्त्री में उत्पन्न हुआ।।२७।। उन शिवजी ने ब्रह्मतेज बढ़ानेवाले दुर्वासा रूप से प्रकट होकर, दयालु होकर बहुतों की धर्मपरीक्षा की।।२८।। हे मुनीश्वर! सूर्यवंश में उत्पन्न हुए अम्बरीष नामक राजा की परीक्षा भी इन दुर्वासाजी ने की, उसे आप सुनिये।।२९।। वह अम्बरीश राजा सात द्वीप की भूमि का स्वामी था, उसने एकादशी के व्रत में दृढ़ नियम किया।।३०।। कि मैं एकादशी का व्रत करके द्वादशी को पारण करूंगा, ऐसा उस राजा ने दृढ़ संकल्प किया।।३१।। मुनिश्रेष्ठ शंकरजी के अंश से

उत्पन्न हुए उन दुर्वासाजी ने उसके नियम को जानकर अपने अनेक शिष्यों सहित उसके समीप गमन किया ।।३२।। उस राजा ने पारणा के समय थोड़ी द्वादशी जानकर तब तक भोजन करने की तैयारी की, उसी समय दुर्वासाजी आये और राजा ने उनको निमन्त्रण दिया ।।३३।। तब दुर्वासाजी अपने शिष्यों सहित स्नान करने चले गये और मुनि ने वहां उसकी परीक्षा के निमित्त बहुत विलम्ब किया ।।३४।। तब उस राजा ने धर्म में विघ्न जानकर शास्त्र की आज्ञा से जल को पान करके उन दुर्वासाजी के आने की इच्छा से स्थिति की ।।३५।। इसी अवसर में वहां दुर्वासा ऋषि आये और राजा को भोजन किया जानकर परीक्षा के निमित्त रुष्ट होकर ।।३६।। धर्म की परीक्षा के कारण उस राजा के ऊपर अति क्रोध किया, वे शिवजी के अंश से उत्पन्न हुए दुर्वासा मुनि उससे कठोर वचन बोले ।।३७।। दुर्वासाजी बोले– हे अधम! हे राजन्! मुझे निमन्त्रण देकर बिना भोजन कराये, जल पी लिया, उसका फल दिखाता हूं, क्योंकि मैं दुष्टों को दण्ड देनेवाला हूं।।३८।। ऐसा कहकर क्रोध से नेत्र लाल करके ऋषि उस राजा को भस्म करने के लिये उद्यत हुए, तब शीघ्र ही उसकी रक्षा के निमित्त उस राजा में स्थित हुआ ईश्वर का सुदर्शनचक्र प्रकट हुआ ।।३९।। शिवजी की माया से मोहित होकर, उनको शिवरूप न जानकर, मुनि को जलाने को वह सुदर्शनचक्र प्रज्ज्वलित हुआ ।।४०।। इस ही अन्तर में उस ब्रह्मभक्त तथा वैष्णव, महात्मा अम्बरीष से बिना शरीरवाली आकाशवाणी बोली ।।४१।। व्योमवाणी बोली– ''हे नृप! अब दुर्वासाजी के निमित्त प्रज्ज्वलित हुए, विष्णुजी के लिये शिवजी से दिये हुए सुदर्शनचक्र को शान्त करो ।।४२।। हे नृपोत्तम! वह दुर्वासाजी साक्षात् शिवजी हैं, उन्होंने यह सुदर्शनचक्र विष्णुजी को अर्पण किया है, इन दुर्वासाजी को साधारण मुनि न जानो ।।४३।। यह मुनीश्वर तुम्हारी परीक्षा के निमित्त आये हैं, उनकी शरण जाओ, नहीं तो प्रलय होगी'' ।।४४।। नन्दीश्वर बोले– हे मुनीश्वर! यह कहकर आकाशवाणी विश्राम को प्राप्त हुई और उस अम्बरीष राजा ने शिवजी के अंशरूप दुर्वासा ऋषिजी की स्तुति की ।।४५।। अम्बरीष बोले– यदि मुझे वर दिया है अथवा मैंने अपना धर्म अनुष्ठान किया है, यदि हमारा कुल ब्राह्मण तथा देवताओं का भक्त है, भगवान् विष्णुजी का अस्त्र शान्त हो जाना चाहिये ।।४६।। यदि मुझ भक्त पर मेरे भक्तवत्सल भगवान् प्रसन्न हैं, तो विशेष कर यह सुदर्शनचक्र शान्त हो जाय ।।४७।। नन्दीश्वर बोले– हे बुद्धिमान्! इस प्रकार उन शिवजी के आगे स्तुति करने पर वह शिवजी का दिया सुदर्शनचक्र सब प्रकार उन्हें शिवजी का अंश जानकर शान्त हो गया ।।४८।। उसके उपरान्त उस अम्बरीष राजा ने अपनी परीक्षा के निमित्त आये हुए उन दुर्वासा मुनि को शिवजी का अवतार जानकर प्रणाम किया ।।४९।। तब वे शिवजी के अंश से उत्पन्न हुए दुर्वासा मुनि बड़े प्रसन्न हुए और उसके घर भोजन करके अपने इच्छित स्थान को गये ।।५०।। हे मुनीश्वर! हम ने अम्बरीष की परीक्षा के

विषय में दुर्वासाजी का चरित्र कथन किया, अब और भी उन दुर्वासा मुनि का चरित्र सुनिये।।५१।। हे मुने! फिर उन मुनिरूपधारी दुर्वासाजी ने नियम से रामचन्द्रजी की परीक्षा की, हे मुने! कालरूप मुनि से रामचन्द्रजी ने जो नियम किया था, कि हमारे तुम्हारे संवाद करने में कोई न आने पावे।।५२।। तब ही उन मुनि ने हठ से लक्ष्मण को भेजा और रामचन्द्रजी ने अपने प्रण के वश होकर शीघ्र ही उस लक्ष्मण भाई को त्याग दिया।।५३।। संसार में मुनियों से बहुधा कही हुई वह कथा प्रसिद्ध है, इस कारण मैंने विस्तार से नहीं कही, क्योंकि वह सब प्रकार विद्वानों की जानी हुई है।।५४।। उन रामचन्द्रजी के बड़े दृढ़ नियम को देखकर दुर्वासा मुनि अति प्रसन्न हुए और उन रामचन्द्रजी को वरदान दिया।।५५।। हे मुनिश्रेष्ठ! उन्होंने श्रीकृष्णजी के नियम की परीक्षा की, उस कथा को कहता हूं, आप उसे श्रवण करें।।५६।। ब्रह्माजी की प्रार्थना से भगवान् विष्णुजी भूमि का भार उतारने के निमित्त साधुओं की रक्षा के निमित्त वसुदेवजी के पुत्र हुए।।५७।। और उन श्रीकृष्णजी ने महापापी दुष्टों को तथा ब्रह्मद्रोही खलों को मारकर सम्पूर्ण साधुओं तथा ब्राह्मणों की रक्षा की।।५८।। और वे वसुदेवजी के पुत्र श्रीकृष्णजी ब्राह्मणों की अत्यन्त भक्ति करते थे और अनेकों ब्राह्मणों को नित्य सुन्दर रसवाले भोजन जिमाते थे।।५९।। हे मुने! श्रीकृष्णजी विशेष ही ब्रह्मभक्त हैं, ऐसी प्रसिद्धि को देखकर उनकी परीक्षा करने को दुर्वासा मुनि श्रीकृष्णजी के समीप गये।।६०।। और रुक्मिणी सहित श्रीकृष्णजी को अपने रथ में जोड़कर उसमें बैठकर प्रसन्न होकर उनसे बोले।।६१।। मुनि ने रथ से उतरकर उस परम दृढ़ता को देखकर उन श्रीकृष्णजी से प्रसन्न होकर उनको वज्र के समान अंग हो जाने का वरदान दिया।।६२।। हे मुने! एक समय कौतुकी मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाजी नग्न होकर गंगाजी में स्नान करने से परम लज्जित हुये।।६३।। वहां पर स्नान करती हुई द्रौपदी ने उनको लज्जित जानकर आदरपूर्वक अपने वस्त्र को फाड़कर उनको देकर लज्जा को दूर किया।।६४।। तब मुनि दुर्वासाजी ने जल के प्रवाह से बहकर अपने निकट को आते हुये उस वस्त्र को लेकर उन्होंने अपने गुह्यस्थान को ढँककर द्रौपदी से प्रसन्न होकर उसे।।६५।। वस्त्र को बढ़ने का वर दिया, उस वरदान से द्रौपदी ने पाण्डवों को सुखी किया।।६६।। कोई हंसडिम्भ नामक दुष्ट राजा अपना अभिमान करनेवाले थे, उनको इन प्रभु दुर्वासाजी ने विष्णुजी का सन्देश देकर नष्ट कर दिया।।६७।। और विशेष कर उन्होंने ब्रह्मतेज को पृथ्वी पर विस्तार किया तथा शास्त्रों की विधि के अनुसार संसार की पद्धति का भी विस्तार किया।।६८।। और अपने शुभ उपदेशों से बोधन करके बहुतों का उद्धार किया, विशेष कर बहुतों को ज्ञान देकर मुक्त कर दिया।।६९।। इस प्रकार उन दुर्वासाजी ने बहुत अद्भुत चरित्र किये, वह सुननेवालों के धन के बढ़ानेवाले, यश बढ़ानेवाले, आयु बढ़ानेवाले तथा सम्पूर्ण कामनाओं के देनेवाले

हैं ।।७०।। जो पुरुष इस दुर्वासाजी के चरित्र को भक्ति पूर्वक आनन्द के साथ सुनता है अथवा सुनाता है, वह इस लोक में तथा परलोक में भी सुखी होता है ।।७१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
दुर्वासश्शरित्रवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ।। १९ ।।

*****

बीसवाँ अध्याय

नन्दीश्वर बोले– हे मुने! इसके आगे हनुमानजी का चरित्र सुनिये, जिस प्रकार हनुमानजी के रूप से शिवजी ने सुन्दर लीला की है ।।१।। हे प्रिय! परमेश्वर शिवजी ने प्रीति करके रामचन्द्रजी का परम हित किया है, उस सब सुखों को देनेवाले चरित्र को सुनिये ।।२।। एक समय गुणयुक्त लीला करनेवाले प्रभु शिवजी ने विष्णुजी का मोहिनी रूप देखा ।।३।। तो कामदेव के बाण से ताडित हुए शिवजी ने अपने आपको काम से व्याकुल किया और रामचन्द्रजी के कार्य के अर्थ अपना वीर्य गिराया ।।४।। तब आदर से रामचन्द्रजी के कार्य के निमित्त मन से शिवजी के द्वारा प्रेरणा किये हुए उन सप्तऋषियों ने उस वीर्य को पत्ते पर स्थापित किया ।।५।। उन महर्षियों ने वह शिवजी का वीर्य गौतम की पुत्री में कर्ण के द्वारा तथा अंजनी में रामचन्द्रजी के कार्यार्थ प्रवेश कराया ।।६।। उस समय उस वीर्य से महाबली तथा पराक्रम युक्त वानर के शरीरवाले हनुमान नामक शिवजी उत्पन्न हुए ।।७।। वह महाबली वानर हनुमान बालकपन में ही सूर्य को लघुफल जानकर सूर्यमण्डल को खाने को उद्यत हुए ।।८।। और देवताओं की प्रार्थना से सूर्य को त्याग दिया, तब देवता तथा ऋषियों ने महाबली शिवजी का अवतार जानकर उनको वरदान दिये ।।९।। तब वह हनुमानजी अति प्रसन्न होकर अपनी माता के निकट गये और उससे आदरपूर्वक वह सब वृत्तान्त (वर पाने का) कहा ।।१०।। अपनी माता की आज्ञा से धीर कपि ने बिना यज्ञ के सम्पूर्ण विद्या सूर्य के द्वारा उनके निकट जाकर पढ़ी ।।११।। वह शिवजी के अंश से उत्पन्न वानरश्रेष्ठ माता की आज्ञा पाकर सूर्य की आज्ञा से सूर्य के अंश से उत्पन्न हुए सुग्रीव के समीप गये ।।१२।। छोटे भ्राता सुग्रीव की स्त्री भोगनेवाले बाली नामक बड़े भाई से निरादर को प्राप्त होकर सुग्रीव ऋष्यमूक पर्वत पर उन हनुमानजी के सहित रहने लगे ।।१३।। तब वह शिवांश से उत्पन्न हुए बुद्धिमान् हनुमान सुग्रीव के मन्त्री हुए और सुग्रीव का सब प्रकार से हित करते थे ।।१४।। भार्या जानकी के हरण होने से दुःखी होकर भाई लक्ष्मण सहित रामचन्द्रजी के वहां आने पर उनके साथ सुख पूर्वक उनकी मित्रता हुई ।।१५।। रामचन्द्रजी ने भाई की स्त्री भोगनेवाले

पापी, वीर, अभिमानी बाली नामक वानरराज को मार डाला।।१६।। हे तात! तब वह बुद्धिमान् वानरेश्वर हनुमानजी रामचन्द्रजी की आज्ञा से बहुत वानरों के सहित सीताजी की खोज में गये।।१७।। उन हनुमानजी ने जानकीजी को लंका में गयी हुई जानकर औरों से तरने के अयोग्य समुद्र को भी शीघ्र ही लांघकर वहां लंकापुरी को गमन किया।।१८।। वहां उन्होंने पराक्रम सहित बड़ा अद्भुत चरित्र किया और जानकीजी को उनके स्वामी रामचन्द्रजी का समाचार दिया।।१९।। उन कपियों के स्वामी वीर हनुमानजी ने जानकीजी के प्राणों की रक्षा करनेवाले, रामचन्द्रजी के वृत्तान्त को सुनाकर सीताजी का शोक शीघ्र ही दूर किया।।२०।। सीताजी का समाचार लेकर रावण की वाटिका को उजाड़कर, बहुत से राक्षसों को मारकर रामचन्द्रजी के समीप जाने की इच्छा की।।२१।। उस समय वहां बहुत से राक्षसों सहित रावण के पुत्र को मारकर निर्भय होकर बल के साथ अत्यन्त उपद्रव किये।।२२।। हे मुने! जब बड़े बली रावण ने तेल से सने हुए वस्त्रों को पूँछ पर लपेटकर दृढ़ता से जलाया।।२३।। तब महादेवजी के अंश से उत्पन्न हुये उन हनुमानजी ने कूद–कूदकर कौतुक से सम्पूर्ण लंका को भस्म किया।।२४।। तब बिभीषण के घर को छोड़कर वह वानरश्रेष्ठ सम्पूर्ण लंका को जलाकर समुद्र में कूद पड़े।।२५।। वहां अपनी पूँछ को बुझाकर समुद्र के दूसरे पार पर पहुँचे और शिवजी के अंश से उत्पन्न वे हनुमानजी निर्द्वन्द्व होकर रामचन्द्रजी के निकट आए।।२६।। कपिश्रेष्ठ हनुमानजी ने बड़े वेग से शीघ्र ही रामचन्द्रजी के पास आकर सीताजी के सिर की मणि श्रीरामचन्द्रजी को दी।।२७।। फिर रामचन्द्रजी की आज्ञा से वीरबली हनुमानजी ने अन्य वानरों सहित बहुत से पर्वतों को लाकर समुद्र में सेतु बांधा।।२८।। तब वहां पार जाने की इच्छावाले रामचन्द्रजी ने जाकर विजय की इच्छा से शिवलिंग की प्रतिष्ठा करके पूजन किया।।२९।। शिवजी से विजय का वरदान प्राप्त करके रामचन्द्रजी ने समुद्र को लांघकर वानरों के साथ लंका को घेरकर राक्षसों के साथ युद्ध किया।।३०।। तब वहां वीर हनुमानजी ने दैत्यों को मारा, रामचन्द्रजी की सेना की रक्षा की और शक्ति से घायल हुए लक्ष्मण को संजीवनी बूटी से जीवित किया।।३१।। महादेवजी के अंशवाले प्रभु हनुमानजी ने सब प्रकार लक्ष्मण सहित रामचन्द्रजी को सुखी किया और सब सेना की रक्षा की।।३२।। महाबल ग्रहण करनेवाले हनुमानजी ने कुटुम्ब सहित रावण को नष्ट किया और परिश्रम रहित होकर देवताओं को सुखी किया।।३३।। महीरावण नामक राक्षस को मारकर उस स्थान की रक्षा करके उस स्थान से लक्ष्मण सहित रामचन्द्रजी को ले आये।।३४।। वह कपिश्रेष्ठ सब प्रकार रामचन्द्रजी का कार्य शीघ्रता से करते हुए दैत्यों को मारकर अनेक प्रकार की लीला करने लगे।।३५।। सीताजी तथा रामचन्द्रजी को सुख देनेवाले वानर ने स्वयं भक्त होकर भूलोक पर रामचन्द्रजी की भक्ति को स्थापित किया।।३६।। भगवान्

शिवजी का अवतार, भक्तों का उद्धार करनेवाला तथा लक्ष्मण को प्राणदान करनेवाला तथा सब देवताओं के मद का नाश करनेवाला है ।।३७।। दैत्यों को नष्ट करनेवाले, भक्तों के ऊपर दया करनेवाले वह रामदूत नामक महावीर हनुमानजी सदा रामकार्य करनेवाले हैं ।।३८।। हे तात! यह धन का देनेवाला, यश बढ़ानेवाला, आयु बढ़ानेवाला, सब कामनाओं के फल देनेवाला हनुमानजी का चरित्र आपसे कहा ।।३९।। जो मनुष्य सावधान होकर इसे भक्ति से सुनता है, वह इस लोक में सब मनोरथों को भोगकर अन्त में मोक्ष को पाता है ।।४०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
हनुमदवतारचरित्रवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ।। २० ।।

*****

इक्कीसवाँ अध्याय

नन्दीश्वर बोले- कि, हे मुने! हे ब्रह्मपुत्र! अब शिवजी के दूसरे परम अवतार को प्रीति से सुनिये, जो सुननेवालों को सब कामनाओं का देनेवाला है ।।१।। हे मुनिशार्दुल! एक समय पार्वती और शिवजी अपनी इच्छा से विहार करने की इच्छा करने लगे ।।२।। भैरव को द्वारपाल नियत करके भीतर आये, तब उन दोनों की सुशील सखियां प्रीतिपूर्वक सेवा करने लगीं ।।३।। हे मुने! वहां पर स्वतन्त्र हुए वे दोनों शिव-पार्वती अनेक लीला करके प्रसन्न हुए ।।४।। तब उन्मत्त आकारवाली तथा लीला से स्वतन्त्र हुई पार्वतीदेवी द्वार पर प्रभु शिवजी की आज्ञा से आई ।।५।। तब वह द्वारपाल भैरव उस देवी पार्वती को स्त्री की दृष्टि से देखकर उसके रूप से मोहित होकर बाहर जाने से उनको निषेध करने लगा ।।६।। हे मुने! जब भैरव ने उस देवी को नारी की दृष्टि से देखा, तभी क्रोधित हुई उस माता पार्वती ने उस भैरव को शाप दिया ।।७।। शिवा बोली- हे पुरुषाधम भैरव! जो तू मुझको स्त्री की दृष्टि से देखता है, इस कारण तू भूमि पर मनुष्यपन को प्राप्त होगा ।।८।। नन्दीश्वर बोले- हे मुने! इस प्रकार जब भैरव पार्वती से शाप दिये गये, तो बड़ा भारी हाहाकार मचा और लीला से उन भैरव ने बड़ा दुःख पाया ।।९।। हे मुनीश्वर! तब अनेक आश्वासन वाक्यों में प्रवीण हुए शिवजी वहां आकर भैरव को आश्वासन (ढांढ़स) करने लगे ।।१०।। हे मुने! उस देवी के शाप से शिवजी की इच्छा से भैरव पृथ्वी पर मनुष्य योनि में वैताल संज्ञक उत्पन्न हुए ।।११।। उनके स्नेह से पार्वती सहित शिवजी भी लौकिक गति को आश्रय करके शोभन लीला करने लगे, विभु शिवजी ने भी भूमि पर अवतार लिया ।।१२।। हे मुने! शिवजी तो महेश नामक हुये और पार्वती शारदा हुई, इस प्रकार अनेक लीलाओं में निपुण वे

दोनों प्रीति से सुन्दर लीला करने लगे ।।१३।। हे तात! यह शिवजी का श्रेष्ठ चरित्र आपसे कहा, यह धन देनेवाला, यश देनेवाला तथा सब कामनाओं के फल देनेवाला है।।१४।। जो मनुष्य सावधान चित्त से भक्ति पूर्वक इस चरित्र को सुनता है अथवा सुनाता है, वह सब भोगों को भोगकर अन्त में मोक्ष को पाता है ।।१५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां

महेशावतारवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ।। २१ ।।

*****

बाईसवाँ अध्याय

नन्दीश्वर बोले– हे ब्रह्मसुत! हे मुनीश्वर! हे प्राज्ञ! श्रेष्ठ लीलायुक्त तथा विष्णुजी के अभिमान को नष्ट करनेवाला, वृषेश नामक शिवजी का अवतार सुनिये ।।१।। पहले सब देवता तथा दैत्य, जरा–मृत्यु के भय से व्याकुल होकर आपस में मिलकर रत्नों को लेने की इच्छा करने लगे ।।२।। हे मुनिनन्दन! तब वे सब देवता तथा दैत्य क्षीरसागर को मथने के लिये उद्यत हुए ।।३।। हे ब्रह्मन्! यह समुद्र किस के द्वारा मथा जाय? इस प्रकार वे सब अपने कार्य सिद्धि होने के लिये शोक चिन्ता में व्याकुल मनवाले हुए ।।४।। तब शिवजी की आज्ञा से देवता तथा दैत्यों को आश्वासन देनेवाली, मेघ केसमान गंभीर शब्द करनेवाली आकाशवाणी हो गई ।।५।। आकाशवाणी बोली– ''हे देवताओ! हे दैत्यो! आप दोनों क्षीरसागर को मथो, आपकी बुद्धि से यह कार्य हो जायेगा, इसमें कुछ संशय नहीं है ।।६।। मन्दराचल पर्वत की मथानी (रई) बनाओ और वासुकि की रस्सी बनाओ और आदर सहित देव–दानव दोनों परस्पर मिलकर मथो'' ।।७।। नन्दीश्वर बोले– हे मुनिसत्तम! तब आकाशवाणी को सुनकर सब देवता तथा दैत्य सब सामग्री इकट्ठी करने का उद्योग करने लगे।।८।। वे दोनों मिलकर सुवर्ण के समान कान्तिवाले, सरल, अनेक प्रकार की शोभायुक्त उस मन्दराचल पर्वत के समीप गये ।।९।। उस पर्वत को अच्छी भान्ति प्रसन्न करके उसकी आज्ञा पाकर समुद्र के मथने की इच्छा से वे दोनों देव–दानव बल से उस पर्वत को समुद्र में ले जाने के लिये उखाड़ने लगे ।।१०।। हे मुने! वे सब उस पर्वत को अपनी भुजाओं से उखाड़कर क्षीरसागर में ले गये, वहां पर वे उस पर्वत को लाने में असमर्थ हुये और बल शून्य हुए ।।११।। उनकी भुजाओं से छूटा हुआ वह बड़ा भारी मन्दराचल पर्वत अकस्मात् देवता और दैत्यों के ऊपर गिरा ।।१२।। इस प्रकार साहस हीन, उद्यम शून्य हुए वे देवता और दैत्य क्षण में चेतना पाकर जगदीश्वर शिवजी की स्तुति करने लगे ।।१३।। उन

शिवजी की इच्छा से उद्यत हुए सब देवता व दैत्यों ने फिर उस पर्वत को उठाकर क्षीरसागर के जल में ले जाकर समुद्र के उत्तर तट पर डाला।।१४।। तब देवता तथा राक्षसों ने वासुकि को रस्सी बनाकर रत्नों को लेने की इच्छा से उस क्षीरसागर को मथा।।१५।। क्षीरसागर के मथने पर उस समुद्र से देवलोक की महेश्वरी भृगुजी की पुत्री लक्ष्मी निकली।।१६।। धन्वन्तरि, वैद्य, चन्द्रमा, पारिजात कल्पवृक्ष, उच्चैःश्रवा घोड़ा तथा ऐरावत हाथी।।१७।। मदिरा, हरि का धनुष (शार्ङ्ग), शंख, कामधेनु, कौस्तुभमणि तथा अमृत यह सब निकले।।१८।। फिर मथने पर प्रलयकाल की अग्नि के समान प्रज्ज्वलित, देवता और राक्षसों को भय देनेवाला कालकूट महाविष निकला।।१९।। अमृत निकलते समय जो उसकी बून्दें बाहर निकलीं, उनसे बहुत सुन्दर स्वरूपवाली स्त्रियां उत्पन्न हुईं।।२०।। जो शरदऋतु के पूर्ण चन्द्रमा के समान मुखवाली, बिजली और सूर्य तथा अग्नि के समान कान्तिवाले हार, बाजूबन्द, कंकण तथा सुन्दर रत्नों से शोभायमान थीं।।२१।। वे सब स्त्रियां लावण्य (सुन्दरता) रूप अमृतजल से दशों दिशाओं को सींचती हुई तथा भौं के चढ़ाने में चौड़े नेत्रवाली, संसार को उन्मत्त कराती हुईं।।२२।। करोड़ों स्त्रियां उस अमृत से निकली, फिर जरा-मृत्यु को निवारण करनेवाला अमृत उत्पन्न हुआ।।२३।। लक्ष्मी, शंख, कौस्तुभ तथा खड्ग को विष्णुजी ने ग्रहण किया और उच्चैःश्रवा नामक घोड़े को आदर से सूर्य ने लिया।।२४।। देवताओं के स्वामी इन्द्र ने बड़े आदर पूर्वक पारिजात कल्पवृक्ष तथा ऐरावत हाथी लिया।।२५।। भक्तवत्सल शिवजी ने कालकूट विष अपने कण्ठ में तथा चन्द्रमा को देवताओं की रक्षा करने के निमित्त अपनी इच्छा से अपने मस्तक में धारण किया।।२६।। हे व्यासजी! शिवजी की माया से मोहित हुए दैत्यों ने रमण करनेवाली मदिरा को लिया और सब मनुष्यों ने धन्वन्तरि वैद्य को ग्रहण किया।।२७।। सब मुनीश्वरों ने कामधेनु को ग्रहण किया और वे सामान्य स्त्रियां मोहिनी रूप होकर स्थित रहीं।।२८।। तब अमृत के निमित्त मलीन चित्त हुए तथा विजय चाहनेवाले देवता और राक्षसों में परस्पर बड़ा युद्ध हुआ।।२९।। हे व्यासजी! प्रलय की अग्नि तथा सूर्य के समान तेजस्वी बलि आदि दैत्यों ने बलपूर्वक देवताओं को जीतकर अमृत हरण कर लिया।।३०।। हे तात! बलात्कार से दैत्यों से पीड़ित हुए वे इन्द्र आदि सब देवता शिवजी की माया से मोहित होकर शिवजी के समीप आ गये।।३१।। हे मुने! शिवजी की आज्ञा से विष्णुजी ने यत्न पूर्वक माया से स्त्री रूप धारण करके दैत्यों से वह अमृत छीन लिया।।३२।। मायावियों में श्रेष्ठ विष्णुजी ने मोहिनी स्त्री का रूप धारण करके, सब दैत्यों को मोहित करके, वह अमृत देवताओं को पिलाया।।३३।। सब दैत्य उस मोहिनी के निकट जाकर बोले-''हम को भी इस अमृत को पिलाओ, पंक्ति में भेद न हो''।।३३।। यह कहकर शिवजी की माया से मोहित हुए उन सब दैत्य और दानवों ने अमृत बांटने के लिये कपट रूपधारी विष्णुजी को

दिया ।।३५।। इसी अवसर में उन दैत्यों ने अमृत से उत्पन्न हुई उन स्त्रियों को देखकर सुखपूर्वक अपने–अपने स्थानों पर स्थिति की ।।३६।। उन स्त्रियों के नगर स्वर्ग से भी सौ गुने सुन्दर, घोर यन्त्रों से अच्छी प्रकार गुप्त शिवजी की माया से बने हुए थे ।।३७।। उन सबों को सुरक्षित करके युद्ध करने के लिये गये और जिन्होंने उनका वक्षःस्थल भी न छुआ था, ऐसे दैत्यों ने उनकी रक्षा की ।।३८।। यदि हम को देवता जीत लेंगे, तो हम इन स्त्रियों को स्पर्श नहीं करेंगे, ऐसा कहकर युद्ध की इच्छा करनेवाले वे सब महावीर दैत्य मिलकर ।।३९।। सिंहनाद करते हुए पृथक्–पृथक् शंखों को बजाने से मानो आकाश को गुंजारने और मेघों को तृप्त करने लगे ।।४०।। तब देवताओं का दैत्यों के साथ भयंकर युद्ध अतुल देवासुर संग्राम तीनों लोकों में प्रसिद्ध हुआ ।।४१।। तब विष्णुजी से रक्षा किये सब देवताओं ने विजय पाई और वहां देवता तथा विष्णुजी के हाथ से बहुत से दैत्य मारे गये, शेष भाग गये ।।४२।। देवताओं ने तथा महात्मा विष्णुजी ने सब दैत्यों को मोहित किया और जो मारने से बचे वह पाताल के विवरों में प्रवेश कर गये ।।४३।। चक्र हाथ में लेकर महाबली विष्णुजी उन डरे हुए, पाताल में स्थित हुए दैत्यों के पीछे गये ।।४४।। इसी अवसर में विष्णुजी ने अमृत से उत्पन्न हुई, पूर्ण चन्द्रमा के समान मुखवाली, दिव्य सौंदर्य से गर्वित स्त्रियों को देखा ।।४५।। काम के बाणों से मोहित हुए विष्णुजी ने सुन्दर स्त्रियों के साथ क्रीड़ा विहार करके निवृत्ति (शान्ति) प्राप्त की ।।४६।। विष्णुजी ने उन स्त्रियों से श्रेष्ठ पराक्रमवाले, अनेक प्रकार के युद्धों में चतुर पुत्रों को उत्पन्न किया, वे सारी पृथ्वी को कंपाने में समर्थ थे ।।४७।। तब महाबल और पराक्रमवाले वे विष्णुजी के पुत्र स्वर्गलोक में तथा भूलोक में बड़ा दुखदाई उपद्रव मचाने लगे ।।४८।। मुनियों ने तथा देवताओं ने उन पुत्रों का संसारभर में उपद्रव देखकर ब्रह्माजी से प्रणाम करके निवेदन किया ।।४९।। यह सुनकर ब्रह्माजी उनको लेकर कैलास पर्वत पर गये, वहां देव देव शिवजी को देखकर बारंबार प्रणाम करने लगे ।।५०।। नाना प्रकार के स्तोत्रों से स्तुति करते हुए कन्धों को झुकाकर तथा हाथ जोड़कर ब्रह्माजी बोले– हे सर्वस्वामिन्! हे देव महादेव! हे प्रभो! सम्पूर्ण लोकों की रक्षा कीजिये, पाताल में स्थित हुए विकारी, विष्णुजी के पुत्रों से किये उपद्रव को शान्त कीजिये ।।५१–५२।। हे विभो! अमृत से उत्पन्न हुई स्त्रियों में मन लगाये विकारवाले विष्णुजी अब पाताल में स्थित हैं और वहां रमण करते हैं ।।५३।। नन्दीश्वर बोले– ऋषि तथा देवताओं के सहित ब्रह्माजी से इस स्तुति को प्राप्त होकर शिवजी लोक की रक्षा करने के निमित्त तथा पाताल से विष्णुजी को लाने को प्रसन्न हुए ।।५४।। और उन कृपासिन्धु भगवान् महेश्वरजी ने उस उपद्रव को जानकर बैल का रूप धारण किया ।।५५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
विष्णूपद्रव वृषावतारवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ।। २२ ।।

तेईसवाँ अध्याय

नन्दीश्वर बोले– तब बैल रूप से गर्जते हुए शिवजी ने भयंकर शब्द करते हुए उस पाताल के विवर में प्रवेश किया।।१।। उनके उस घोर शब्द से पुर तथा नगर सब गिरने लगे और नगरवासियों में हलचल मच गई।।२।। तब वह वृषभ रूपधारी शिवजी, महेश्वरजी की माया से मोहित होकर बल पराक्रमवाले संग्राम में धनुष पकड़े हुए विष्णुजी के पुत्रों के सम्मुख गये।।३।। हे मुनिसत्तम! तब वे वीर विष्णुजी के पुत्र क्रोध करते हुए, गर्जना करते हुए शिवजी के सम्मुख धावमान हो गये।।४।। तब वृषभ रूपी महादेवजी भी आये हुए उन विष्णुजी के पुत्रों को खुर और सींगों से मारने लगे तथा उनके ऊपर क्रोध करने लगे।।५।। शिवजी द्वारा घायल अंग किये हुए, विष्णुजी के पुत्र प्राणों से रहित होकर तथा मूर्छित होकर शीघ्र ही नष्ट हो गये।।६।। उन पुत्रों के मर जाने पर बलवानों में श्रेष्ठ विष्णुजी पाताल के विवर से निकलकर शीघ्र ही शिवजी के निकट आये।।७।। और विष्णुजी के पुत्रों को मारनेवाले वृषभ रूपी शिवजी को जाते हुए देखकर, विष्णुजी उनको दिव्य अस्त्रों से ताडन करने लगे।।८।। तब महाबली वृषभ रूपधारी महादेवजी ने कुपित होकर पर्वत के ऊपर विष्णुजी के सम्पूर्ण अस्त्र काट डाले।।९।। हे मुने! तब वे वृषभावतारी महादेवजी महाक्रोध करके तीनों लोकों को कंपाते हुए महाघोर शब्द करने लगे।।१०।। क्रोधी, मूढ़ विष्णुजी को वे हरि हैं, ऐसा न जानकर वेग से कूद–कूद कर खुर और सींगों से उनको विदीर्ण कर दिया।।११।। तब वह माया से मोहित, शिथिल शरीरवाले विष्णुजी उसके प्रहार को न सहकर शीघ्र ही घायल हो गये।।१२।। अभिमान रहित, मूर्छित तथा चेतना रहित होने पर विष्णुजी ने बैलरूप से विहार करते हुए शिवजी को जाना।।१३।। तब वृषभ रूप धारण करके आये हुए शिवजी को जानकर, कन्धे झुकाकर, हाथ जोड़कर गंभीर वाणी से विष्णुजी बोले।।१४।। भगवान् बोले– कि, हे देव देव! हे महादेव! हे करुणासागर! हे प्रभो! हे महेशान! आपकी माया से मैं मूर्खबुद्धि मोहित हो रहा हूं।।१५।। हे प्रभो! हे स्वामिन्! मेरे स्वामी आप ईश्वर ने जो मेरे साथ युद्ध किया है, सो मेरे ऊपर कृपा करके मेरे इस अपराध को सहन करें, क्षमा करें।।१६।। नन्दीश्वर बोले– हे मुने! विष्णुजी के दीन वचन सुनकर भक्तों के ऊपर दया करनेवाले भगवान् शंकरजी विष्णुजी से बोले।।१७।। हे विष्णो! हे महाबुद्धे! आपने मुझे क्यों नहीं जाना और मेरे साथ युद्ध किया, कैसे आपका सब ज्ञान जाता रहा?।।१८।। क्या आप मुझसे अधीन पराक्रम युक्त अपने को नहीं जानते हो? और आप इन स्त्रियों में रमण

मत करें, इस खोटे कर्म से निवृत्त होइये ।।१९।। हे देवेश! आप स्त्रियों के साथ आसक्त होकर विहार करते हो, यह आपको उचित नहीं है, काम के अधीन होकर संसार के तारण करने का ज्ञान किस प्रकार रहता है?।।२०।। तब आदर से कहे हुए ज्ञान के देनेवाले शिवजी के वचन सुनकर, विष्णुजी अपने मन से अपने को लज्जित करते हुए शिवजी से यह वचन बोले ।।२१।। विष्णुजी बोले– मैं अपने सुदर्शन चक्र को लेकर आपकी आज्ञा का पालन करके अपने लोक को जाता हूं।।२२।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार शिवजी विष्णुजी के वचन सुनकर, फिर वृषात्मा तथा वृषभों की रक्षा करनेवाले महादेवजी भगवान् विष्णुजी से बोले ।।२३।। हे हरे! आपको विलम्ब नहीं करना चाहिये, शीघ्र ही मेरी आज्ञा से यहां से जाओ, और चक्र को यहां ही रहने दो ।।२४।। सन्तान तथा सूर्य के संस्थान तथा कल्याणी वचन के कहने से मैं अति भयंकर हूं, इस कारण मैं आपको दूसरा चक्र देता हूं ।।२५।। नन्दीश्वर बोले– यह कहकर शिवजी ने कालाग्नि के समान देदीप्यमान, प्रदीप्त, सब दुष्टों का नाश करनेवाला दूसरा दिव्य चक्र निकाला ।।२६।। भयंकर, सूर्य के समान कान्तिवाले चक्र को सब देवता तथा मुनियों की रक्षा करने के निमित्त महात्मा विष्णुजी को दिया ।।२७।। परम दीप्तिवाले दूसरे सुदर्शन चक्र को लेकर बुद्धिमानों में श्रेष्ठ विष्णुजी वहां देवताओं से बोले ।।२८।। हे सब देवताओ! आप सब आदर सहित मेरे वचन सुनिये और उसी प्रकार शीघ्रता से उनको करें, तब आपका कल्याण होगा ।।२९।। पाताल लोक में यौवन से उन्मत्त दिव्य स्त्रियां हैं, उनके साथ जिसकी इच्छा हो वह–वह महाक्रीड़ा करे ।।३०।। यह विष्णुजी के वचन सुनकर विष्णुजी के सहित वे शूर देवता पाताल में प्रवेश करने की इच्छा करने लगे ।।३१।। तब भगवान् शिवजी ने उन देवताओं के विचार को जानकर आगे देव योनियों को क्रोध करके घोर शाप दिया ।।३२।। शिवजी बोले– मेरे अंश से उत्पन्न हुए मुनियों को तथा दैत्यों को छोड़कर जो कोई भी पाताल के स्थान में प्रवेश करेगा, उसी समय उसकी मृत्यु हो जायगी ।।३३।। मनुष्यों के हित को बढ़ानेवाला यह घोर शाप सुनकर शिवजी से तिरस्कार किये हुए देवता अपने–अपने स्थानों को गये ।।३४।। हे व्यासजी! इस प्रकार स्त्रियों में आसक्त हुए विष्णुजी को शिवजी ने शासन किया, तब वे देवलोक को गये और संसार स्वस्थता को प्राप्त हुआ ।।३५।। भक्तवत्सल, वृषेश्वर, भगवान् शिवजी इस प्रकार देवताओं का कार्य करके अपने कैलास पर्वत पर गये ।।३६।। शिवजी का वृषेश्वरावतार तो वर्णन किया, जो विष्णुजी के अज्ञान को हरनेवाला, कल्याण रूप, त्रिलोकी के सुख का कारण है ।।३७।। यह पवित्र कथा शत्रुओं की परम बाधा हरनेवाली, स्वर्ग को देनेवाली तथा सत्पुरुषों को यश, आयु, भोग्य मुक्ति देनेवाली है ।।३८।। जो इसे भक्ति के साथ सावधान होकर सुनता है अथवा सुनाता

है, वह समस्त कामनाओं को भोगकर अन्त समय मोक्ष को प्राप्त होता है तथा जो इसे स्वयं पढ़ता है, वह भी पूर्वोक्त फल पाता है ।।३९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
वृषेश्वरशिवावतारवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ।।२३।।

*****

चोबीसवाँ अध्याय

नन्दीश्वर बोले– हे महाप्राज्ञ! भक्ति का बढ़ानेवाला, पिप्पलाद नामक शिवजी का परम अवतार कहता हूं, आप प्रीति से सुनिये ।।१।। जो पहले महाशैव, बड़े प्रतापी, च्यवन नामक भृगुवंश में उत्पन्न दधीचि मुनि हो गये हैं ।।२।। क्षुव ऋषि के सहित जिन्होंने विष्णुजी को पराजित किया और शिवजी की सहायता से जिन्होंने देवताओं सहित विष्णुजी को शाप दिया ।।३।। उनकी सुवर्चा नामवाली स्त्री बड़ी भाग्यवती, महापतिव्रता साध्वी थी, जिन्होंने देवताओं को शाप दिया ।।४।। उससे नाना लीलाओं में निपुण, तेजस्वी महादेवजी पिप्पलाद नामक उत्पन्न हुए ।।५।। सुतजी बोले– इस प्रकार नन्दीश्वरजी का अद्भुत वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ सनत्कुमारजी सिर झुकाकर, अंजलि बांधकर उनसे बोले ।।६।। सनत्कुमारजी बोले– हे महाप्राज्ञ! हे नन्दीश्वर! हे तात! आप साक्षात् शिवजी के रूपधारी हो, धन्य हो, सत्पुरुषों में बड़े हो, आपने यह अद्भुत कथा सुनाई ।।७।। हे शिलाद के पुत्र! हे तात! क्षुव के साथ संग्राम में युद्ध करते हुए विष्णुजी की पराजय मैंने सुनी, उसे आप ब्रह्माजी ने मुझसे पहले कहा था ।।८।। अब मेरी सुवर्चा से देवताओं को दिये शाप को सुनने की इच्छा है और तत्पश्चात् मंगल का देनवाला पिप्पलाद का चरित्र सुनूंगा ।।९।। सूतजी बोले– इस प्रकार शैलादि ने ब्रह्माजी के पुत्र का शुभ वचन सुनकर प्रसन्न होकर शिवजी के चरणकमलों को ध्यान करके यह वचन कहे ।।१०।। नन्दीश्वर बोले– हे मुनीश्वर! एक समय इन्द्र आदि समस्त देवता वृत्रासुर को सहाय्य करनेवाले दैत्यों से पराजित हुए ।।११।। दधीचि मुनि के आश्रम में अपने-अपने सब अस्त्रों को फेंककर सहसा सम्पूर्ण देवता पराजित हुए ।।१२।। तब वे इन्द्र सहित देवता तथा ऋषिगण ताडित होकर शीघ्र ही ब्रह्मलोक को गये और उस अपने दुःख को ब्रह्माजी से कहा ।।१३।। तब संसार के पितामह ब्रह्माजी देवताओं का वचन सुनकर त्वष्टा के करने की इच्छा को तत्त्व से कहने लगे ।।१४।। महातेजस्वी वृत्रासुर सब दैत्यों का स्वामी है, यह दैत्य त्वष्टा ने तप करके आपको मारने के लिये उत्पन्न किया है ।।१५।। हे प्राज्ञ! अब जिस प्रकार इसका

वध हो, उस उपाय को सुनिये, मैं आपसे धर्म के निमित्त कहता हूं।।१६।। पहले उन तपस्वी महामुनि जितेन्द्रिय, दधीच ऋषि ने शिवजी का आराधन करके, वज्र की हड्डियों का वर पाया है।।१७।। उनसे अस्थियों को मांगो, वह अवश्य दे देंगे, इसमें कुछ सन्देह नहीं है, उनके द्वारा दण्ड वज्र को बनाकर वृत्रासुर को निःसन्देह मारो।।१८।। नन्दीश्वर बोले– देवता तथा गुरु सहित इन्द्र ने ब्रह्माजी का वचन सुनकर देवताओं सहित दधीचि मुनि के श्रेष्ठ आश्रम को गमन किया।।१९।। वहां इन्द्र ने मुनि को अपनी स्त्री सुवर्चा के सहित देखकर गुरु सहित तथा देवताओं सहित नम्र होकर, हाथ जोड़कर आदर पूर्वक उनको प्रणाम किया।।२०।। उन विद्वानों में श्रेष्ठ मुनि दधीचि ने उनके अभिप्राय को जानकर सुवर्चा नामक अपनी स्त्री को आश्रम के भीतर भेजा।।२१।। तब वह देवताओं सहित स्वार्थ को सिद्ध करनेवाला इन्द्र अर्थशास्त्र में तत्पर होकर उन मुनि से यह वचन बोला।।२२।। इन्द्र बोला– हम सब त्वष्टा (विष्णुजी) से दुःखी हुए देवता तथा ऋषिगण दानी महाशैव, शरणागत वत्सल, आपकी शरण में आये हैं।।२३।। हे विप्र! अपनी वज्र की बनी हुई अस्थियां दीजिये, उन अस्थियों से अपना दण्ड वज्र बनाकर देवताओं का शत्रु उस वृत्रासुर को मारूंगा।।२४।। ऐसा कहने पर उन दधीचि मुनि ने परोपकार करने में तत्पर होकर अपने स्वामी शिवजी का ध्यान करके अपने शरीर को त्याग दिया।।२५।। वह मुनि बन्धन रहित होकर शीघ्र ही ब्रह्मलोक को गये तथा फूलों की वर्षा हुई और सब विस्मय को प्राप्त हो गये।।२६।। तब इन्द्र ने कामधेनु को बुलाकर शीघ्र ही अस्थियां निकलवाई और उन अस्थियों से अस्त्र बनाने के निमित्त त्वष्टा को आज्ञा दी।।२७।। उससे आज्ञा दिये हुए विश्वकर्मा ने शिवजी के तेज से बड़ी पुष्ट वज्रमय उन अस्थियों के द्वारा सम्पूर्ण अस्त्र बनाये।।२८।। उसके वंश से उत्पन्न हुआ वज्र तथा ब्रह्माजी के सिर का बाण हुआ और हड्डियों से बहुत पराये अस्त्र बनाये।।२९।। हे मुने! इन्द्र उस वज्र को उठाकर शिवजी के तेज से सम्पन्न होकर क्रोध से वृत्रासुर के समीप शिवजी के समान दौड़ा।।३०।। तब उद्यत होकर उस वज्र को लेकर अपने बल से शीघ्र ही वृत्रासुर को पर्वत के शिखर के समान काट डाला।।३१।। हे तात! उस समय देवताओं में बड़ा उत्सव हुआ, सब देवता सन्तुष्ट हुए, इन्द्र के ऊपर फूलों की वर्षा हुई।।३२।। हे तात! यह वृत्रासुर का चरित्र प्रसंग से आपको सुनाया, अब आप आदर से मुझसे शिवजी के पिप्पलाद नामक अवतार को सुनिये।।३३।। वह सुवर्चा नामक महात्मा दधीचि की पतिव्रता स्त्री, आज्ञा को प्राप्त होकर अपने आश्रम के भीतर गई।।३४।। और उस तपस्विनी ने पति की आज्ञा से घर के सब काम करके, फिर लौट करके अपने पति को वहां न देखा।।३५।। हे मुनिश्रेष्ठ! फिर वहां आई और देवताओं को न देखकर बहुत कुशकुनों को देखकर वह सुवर्चा बड़ी विस्मित हो गई।।३६।। वह साध्वी यह सर्व देवताओं के कृत्य को अर्थात् पति के अस्थि लेने रूप समाचार को

जानकर अति क्रोधित हुई और रुष्ट होकर सुवर्चा नाम ऋषि दधीचि की स्त्री ने उन देवताओं को शाप दिया ।।३७।। सुवर्चा बोली– हे देवताओ! आप बड़े दुष्ट हो, तथा सब अपने कार्य में चतुर हो, लुब्धक हो, इस कारण इन्द्र सहित आप सब देवता पशु होंगे ।।३८।। इस प्रकार उस मुनि की स्त्री तपस्विनी सुवर्चा ने इन्द्र सहित उन सब देवताओं को शाप दिया ।।३९।। तब वह पतिव्रता पति के लोक को जाने की इच्छा करने लगी और उस बुद्धिमती ने अति पवित्र काष्ठों से चिता बनाई ।।४०।। तब शिवजी से प्रेरणा की हुई, सुख की देनेवाली तथा ढांढ़स बंधाती हुई आकाशवाणी उस मुनि की सुवर्चा नामक स्त्री से बोली ।।४१।। आकाशवाणी बोली– हे प्राज्ञे! ऐसा साहस मत कर, मेरे परम वचन को सुन, तेरे पेट में गर्भ रूप में मुनि का तेज स्थित है, उसे यत्न से उत्पन्न कर ।।४२।। हे देवि! बालक उत्पन्न करने का अपनी इच्छानुसार (सती) कार्य करना, गर्भ सहित तू अपने शरीर को मत जला, ऐसी ब्रह्माजी की आज्ञा है ।।४३।। नन्दीश्वर बोले– हे मुनीश्वर! ऐसा कहकर वह आकाशवाणी मौन हुई, उसे सुनकर वह मुनि की स्त्री उस समय विस्मित हुई ।।४४।। और उस महासाध्वी, पतिव्रता, पतिलोक की इच्छावाली ने बैठकर पत्थर से अपने पेट को फोड़ा ।।४५।। तब उसके पेट में से महासुन्दर शरीर, दीप्तिमान, दशों दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ, उन दधीच मुनि का गर्भ रूप बालक निकला ।।४६।। हे तात! यह साक्षात् शिवजी दधीचि ऋषि के उत्तम तेज से लीला करने के लिये आप ही प्रकट हुये ।।४७।। मुनि के प्राप्ति की कामना करनेवाली सुवर्चा ने शिवजी के अवतार रूप उस अपने पुत्र को देखकर मन से जानकर ।।४८।। हे मुनीश्वर! वह महासाध्वी बड़ी प्रसन्न हुई और शीघ्र ही प्रणाम करके स्वरूप को अपने हृदय में रखकर ।।४९।। विमल दृष्टिवाली पतिलोक में जाने की इच्छा करती हुई वह सुवर्चा माता हँसकर उस पुत्र से बोली ।।५०।। सुवर्चा बोली– हे तात! हे परमेशान! हे महाभाग! बहुत समय तक इस वट के वृक्ष के समीप निवास करो और सबों को सुख देनेवाले हो ।।५१।। और अब मुझे प्रीति सहित पतिलोक में जाने की आज्ञा दो, वहां स्थित होकर मैं पति के शिव रूपधारी तुम्हारा ध्यान करूंगी ।।५२।। नन्दीश्वर बोले– कि, इस प्रकार उस सुवर्चा ने अपने पुत्र से कहा और उस साध्वी ने परम समाधि लगाकर (सती होकर) पति के पीछे गमन किया ।।५३।। हे मुने! इस प्रकार वह दधीचि की स्त्री पति के संग सती हो गई और शिवलोक को प्राप्त होकर आनन्द पूर्वक शिवजी को सेवन करने लगी ।।५४।। हे तात! इसी अवसर पर मुनियों सहित सब देवता बुलाये हुए के समान शीघ्र ही प्रसन्न होकर आये ।।५५।। भूमि पर दधीचि के सुवर्चा में उत्पन्न हुए शिवजी को देखकर अतिप्रीति से विष्णुजी तथा ब्रह्माजी अपने-अपने गणों सहित वहां गये ।।५६।। वहां मुनि के पुत्र रूप में अवतार लेकर आये हुए शिवजी को देखकर सब देवताओं ने हाथ जोड़कर प्रणाम

किया ।।५७।। हे मुनिसत्तम! उस समय देवताओं का बड़ा उत्सव हुआ और सब स्तुति करने लगे, दुन्दुभि बाजे बजने लगे और नाचनेवाली आनन्द से नाचने लगीं ।।५८।। गन्धर्व के पुत्र गाने लगे, बाजों को बजानेवाले किन्नर बाजे बजाने लगे और देवताओं ने फूलों की वर्षा की ।।५९।। पिप्पलाद नामक शिवजी के पिता के उस पुत्र का विधि पूर्वक संस्कार करके विष्णुजी आदिक सब देवता सन्तुष्ट हुए ।।६०।। ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर उसका नाम पिप्पलाद रखा, हे देवेश! "प्रसन्न हो" ऐसा विष्णुजी ने देवताओं सहित ।।६१।। कहकर उसकी आज्ञा पाकर ब्रह्मा, विष्णु तथा देवता, बड़े उत्सव को करके अपने-अपने स्थानों को गये ।।६२।। तब महाप्रभु पिप्पलाद नामक शिवजी, पीपल केवृक्ष केनीचे संसार के हित की इच्छा से बहुत समय तक तप करते रहे ।।६३।। इस प्रकार लोकचर्या के अनुसरण करनेवाले उस सुन्दर तप करनेवाले पिप्पलाद ऋषि के सम्मुख बड़ा समय बीत गया ।।६४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
पिप्पलादावतारवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।। २४ ।।

*****

पचीसवाँ अध्याय

नन्दीश्वर बोले– हे सन्मुने! उन शिवजी ने संसार में निवास करके धर्म के स्थापन की इच्छा से जो बड़ी लीलाएँ की हैं, उन चरित्रों को सुनिये ।।१।। एक समय वह पिप्पलाद मुनीश्वर पुष्पभद्रा नदी में स्नान करने गये, वहां उन्होंने शिवजी के अंश से उत्पन्न हुई मनोहर पद्मा नामक युवती को देखा ।।२।। उसे पाने की इच्छा से लोक के तत्त्वों में प्रवीण, भुवनों में फिरनेवाले वह मुनि उस कन्या के पिता अनरण्य राजा के स्थान को गये ।।३।। मनुष्यों के राजा ने इनको देखकर भयभीत होकर प्रणाम करके मधुपर्क आदि देकर उनका भक्तिपूर्वक पूजन किया ।।४।। मुनि ने स्नेहपूर्वक सब वस्तुओं को ग्रहण करके उस कन्या को मांगा, यह सुनकर वह राजा चुप हो गया, कुछ भी कहने को समर्थ न हुआ ।।५।। मुनि ने राजा से कहा कि, मुझे भक्तिपूर्वक अपनी कन्या दो, नहीं तो तुझ सहित तुम्हारा सम्पूर्ण राज्य भस्म कर दूंगा ।।६।। हे महामुने! तब उस समय दधीचि के पुत्र पिप्पलाद नामक मुनि के तेज से राजा के सब पुरुष व्याकुल हो गये ।।७।। तब राजा ने भय से व्याकुल होकर बारंबार विलाप करके, वह अलंकृत की हुई कन्या पद्मा उन वृद्ध मुनि को दी ।।८।। तब वह मुनि पिप्पलाद, शिवा के अंश से उत्पन्न हुई पद्मा नामक राजा की कन्या से विवाह करके उसे लेकर प्रसन्नता पूर्वक

अपने घर गये ।।९।। वहां जाकर वह अवस्था से अति वृद्ध तपस्वी अति सौम्य मुनिश्रेष्ठ अपनी स्त्री के सहित निवास करने लगे ।।१०।। तब अनरण्य की कन्या भक्तिपूर्वक उन मुनि की कर्म, मन, वाणी से सेवा करने लगी, जैसे नारायण की सेवा लक्ष्मी करती है ।।११।। इस प्रकार शिवांश, मुनिश्रेष्ठ पिप्पलाद अपनी लीला से युवा होकर उस युवती का साथ रमण करने लगे ।।१२।। उन तपस्वी पिप्पलाद मुनि के समान पद्मा को सुख देनेवाले दश महात्मा पुत्र उत्पन्न हुए ।।१३।। यह महाप्रभु शिवजी का पिप्पलाद रूप में लीलावतार हुआ, जो अनेक प्रकार की लीला का करनेवाला था ।।१४।। जिस दयालु पिप्पलाद ने संसार में सबों से निवारण न होनेवाली शनैश्चर की पीडा को देखकर प्रीतिपूर्वक मनुष्यों को वरदान दिया ।।१५।। कि– जन्म से लेकर सोलह वर्ष पर्यन्त शिवजी के भक्तों को शनैश्चर की पीड़ा नहीं होगी, यह मेरा वचन सत्य है।।१६।। यदि मेरे वचन का अनादर करके शनि कहीं पर मनुष्यों को पीड़ा देगा, तो भस्म हो जायगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं ।।१७।। हे तात! इस प्रकार उसके भय से विकृत होकर शनैश्चर ग्रह उनको कभी भी अपनी पीड़ा नहीं करता ।।१८।। हे सन्मुने! यह पिप्पलाद की मनुष्य लीला तथा सुन्दर चरित्र आपसे कहा, जो सब कामनाओं के फल को देनेवाला है ।।१९।। गाधि, कौशिक तथा पिप्पलाद यह तीन महामुनि, शनैश्चर से की हुई पीड़ा को नष्ट करते हैं ।।२०।। जो मनुष्य इस पद्मा के चरित्र सहित पिप्पलाद के चरित्र को भक्तिपूर्वक पृथ्वी पर पढ़ता है अथवा सुनता है ।।२१।। तथा शनि की पीड़ा दूर करने के निमित्त इस उत्तम चरित्र को जो पढ़ता है अथवा सुनता है, वह सब मनोरथों को पाता है ।।२२।। वह ज्ञानी महाशैव सत्पुरुषों का प्रिय मुनिश्चर दधीचि धन्य है, कि जिसका पुत्र पिप्पलाद नामक साक्षात् शिव हुआ ।।२३।। हे तात! यह इतिहास पुण्य तथा स्वर्ग का देनेवाला, कुत्सित ग्रहों के दोषों को हटानेवाला, सब इच्छाओं को पूर्ण करनेवाला और शिवजी की भक्ति को बढ़ानेवाला है ।।२४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
पिप्पलादावतार चरित्रवर्णनं नाम पंचविंशोऽध्यायः ।। २५ ।।

*****

छबीसवाँ अध्याय

नन्दीश्वर बोले– हे तात! हे मुने! परमात्मा शिवजी के वैश्यनाथ नामक, परम आनन्द देनेवाले अवतार को वर्णन करता हूं।।१।। पहले कोई नन्दीग्राम में महानन्दा नामवाली शिवभक्ता, अति सुन्दर, प्रसिद्ध वेश्या स्त्री रहती थी।।२।। वह बड़े ऐश्वर्य से पूर्ण, बड़ी धनाढ्य, उज्ज्वल वर्णवाली, अनेक प्रकार के रत्नजटित शृंगार रस से भरी हुई।।३।। सम्पूर्ण गानविद्याओं में निपुण, अति मनोहर थी, उस वेश्या के गाने से सब राजा और रानी प्रसन्न होती थीं।।४।। वह शिवनाम जपने में तत्पर तथा भस्म और रुद्राक्ष धारण करनेवाली वेश्या सदैव पार्वती सहित शिवजी का पूजन करती थी।।५।। वह शिवजी का पूजन करके नित्य जगदीश्वरजी को सेवन करती शिवजी के सुन्दर यश को गाती हुई परम भक्ति से नृत्य करती थी।।६।। वह वेश्या एक बन्दर और एक मुर्गे को रुद्राक्ष से शोभित करके हाथ के ताल (खडताल बाजे) से गीतों के साथ नचाती थी।।७।। तब शिवभक्ति में लगी हुई वह वेश्या सब सखियों से युक्त होकर उस बन्दर और मुर्गे को नाचता हुआ देखकर अतिप्रेम से उच्च स्वर पूर्वक हँसती थी।।८।। रुद्राक्षों से बनाये बाजूबन्द, कानों के गहनों (करनफूलों) से शोभित हुआ वानर सिखाने से उसके आगे बालक के समान नाचता था।।९।। जिसकी शिखा (चोटी) में रुद्राक्ष बंधा था, ऐसा मुर्गा भी बन्दर के साथ नाचने में चतुर होकर नाचता था और देखनेवालों को प्रसन्न करता था।।१०।। वह शिवभक्ति में तत्पर हुई महा आनन्द में पूर्ण वेश्या आदर से इस कौतुक को करती थी।।११।। हे मुनिसत्तम! शिवजी की भक्ति करनेवाली उस वेश्या का बड़े सुख से बहुत समय बीत गया।।१२।। एक समय उस वेश्या के घर शिवजी स्वयं वैश्य बनकर शुभव्रत धारण करके उसके भाव की परीक्षा करने के लिये आये।।१३।। त्रिपुण्ड्र से शोभायमान माथेवाले, रुद्राक्ष के आभूषण धारण किये, शिवनाम जपने में आसक्त, जटावाले तथा शिवजी के वेष को धारण किये हुए।।१४।। वह वैश्य अंग पर भस्म लगाये, हाथ में सुन्दर कंकण पहने, बड़े रत्नों से शोभायमान, दूसरों को कौतुक दिखानेवाले होकर शोभित हुए।।१५।। उनको आते हुए देखकर उस सुन्दरी वेश्या ने बड़े आनन्द के साथ उनका सत्कार करके उन्हें आदर सहित अपने स्थान में बैठाया।।१६।। उनके हाथ में अति मनोहर सुन्दर कंकण को देखकर उसमें शोभित तथा विस्मित हुई वह वेश्या उस वैश्य से बोली।।१७।। महानन्दा बोली– आपके हाथ में स्थित हुआ यह स्त्रियों के आभूषण में उचित रत्नजटित दिव्य कंकण शीघ्र ही मेरे मन को लुभाता है।।१८।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार नवीन रत्नों से युक्त

उस हाथ के भूषण में उसकी इच्छा देखकर वह गंभीर बुद्धिवाला वैश्य हँसकर उससे बोला ।।१९।। वैश्यनाथ बोला– यदि इस दिव्य श्रेष्ठ रत्न में तुम्हारा मन लुभा गया है, तो इसे तुम ही प्रीति से इसे धारण करो, पर इसका मूल्य क्या दोगी ?।।२०।। वेश्या बोली– हम व्यभिचारिणी वेश्या हैं, पतिव्रता नहीं हैं, व्यभिचार करना ही हमारे कुल का धर्म है, इसमें कुछ संशय नहीं ।।२१।। यदि यह हाथ का भूषण आप मुझे दोगे, तो मैं तीन दिन–रात आपकी स्त्री रहूंगी ।।२२।। वैश्य बोला– हे वीरवल्लभे! बहुत अच्छा, यदि तेरा वचन सत्य है, तो अपना रत्नों का कंकण तुझे देता हूं, तुम तीन रात मेरी स्त्री हो ।।२३।। हे प्रिये! इस व्यवहार में चन्द्रमा तथा सूर्य प्रमाण हैं, तीन वचनों से सत्य वचन कहकर मेरे हृदय को स्पर्श कर ।।२४।। वेश्या बोली– हे प्रभो! तीन दिन तथा तीन रात आपकी भार्या होकर आपके साथ विषय करूंगी, इसमें कुछ संशय नहीं है ।।२५।। नन्दीश्वर बोले– यह तीन बार कहकर सूर्य और चन्द्रमा को साक्षी करके महानन्दा ने प्रसन्नता पूर्वक उस वैश्य के हृदय को स्पर्श किया ।।२६।। तब वह वैश्य उस वेश्या को रत्नजडित कंकण देकर उसके हाथ में रत्नमय शिवलिंग को देकर कहने लगा ।।२७।। वैश्यनाथ बोला– हे कान्ते! यह रत्नजडित शिवजी का लिंग मेरे प्राणों से भी अधिक प्रिय है, तू इसकी रक्षा करना और इसे यत्न से छिपाना ।।२८।। नन्दीश्वर बोले– ''ऐसा ही होगा'', इस प्रकार कहकर वह रत्नजडित लिंग लेकर नाट्यशाला (नाचने के घर) के मध्य में रखकर उसने घर में प्रवेश किया ।।२९।। तब वह वेश्या उस विटधर्मी वैश्य के साथ रात्रि में मिलकर कोमल तकिये–गद्दियों से शोभायमन, फेन से पलंग पर सुखपूर्वक सोई ।।३०।। हे मुने! तब रात्रि के समय उस वैश्य की इच्छा से नृत्यमण्डप में से अकस्मात् वाणी हुई ।।३१।। हे तात! तेज पवन की सहायतावाला अग्नि अत्यन्त प्रज्ज्वलित होकर उस नाचभवन को एक साथ ले उड़ा है अर्थात् नाट्यशाला चारों ओर से जलने लगी है ।।३२।। मण्डप के जलने पर उस वेश्या ने एक साथ उठकर बन्धन से बन्दर को खोला ।।३३।। बन्धन से खुला वह बन्दर उस मुर्गे के साथ बहुत से आग की चिनगारियों को दूर करके भय से दूर भाग गया ।।३४।। खम्भो के सहित वह लिंग जलकर खण्ड–खण्ड हो गया, यह दुश्चरित्र देखकर वह वेश्या तथा वैश्य दोनों महादुःखी हो गये ।।३५।। उस समय वैश्यपति ने अपने समान शिवलिंग को जला हुआ देखकर उस वेश्या के चित्त के भाव जानने के निमित्त मरण की इच्छा की ।।३६।। नाना लीला करनेवाले महेश्वरजी, कौतुक करने के लिये मनुष्य शरीरधारे, वह वैश्यपति महादुःखी होकर उस दुःखित हुई वेश्या से बोले ।।३७।। वैश्यपति बोला– मेरे प्राणों से भी प्रिय शिवलिंग के जल जाने पर मैं जीने का उत्साह नहीं करता, यह सत्य–सत्य कहता हूं, इसमें कुछ संशय नहीं है ।।३८।। हे भद्रे! अपने श्रेष्ठ नौकरों से बहुत ही शीघ्र चिता बनवाओ, मैं शिवजी में मन लगाकर चिता में प्रवेश करूंगा ।।३९।। हे भद्रे!

यदि मुझे यहां आकर ब्रह्मा, विष्णु आदिक देवता भी निषेध करें, तो भी इस समय अग्नि में प्रवेश करूंगा और प्राणों का त्याग कर दूंगा।।४०।। नन्दीश्वर बोले– उसका ऐसा दृढ़संकल्प जानकर दुःखित हुई उस वेश्या ने अपने नौकरों से अपने स्थान से बाहर चिता बनवाई।।४१।। तब उस सुन्दर कौतुक करनेवाले तथा संगति के प्रेम की परीक्षा करनेवाले, वैश्य रूपधारी, धीर, एकमात्र शिवजी ने जलती हुई अग्नि की परिक्रमा करके मनुष्यों के देखते–देखते अग्नि में प्रवेश किया।।४२।। हे मुनिसत्तम! वह युवती, महानन्दा नामक वेश्या उस गति (चरित्र) को देखकर विस्मित होकर अति खेद को प्राप्त हो गई।।४३।। और उस दुःखी हुई वेश्या ने सुन्दर निर्मलधर्म का स्मरण करके सब कुटुम्बी पुरुषों को देखकर करुणा से दीनता के वचन कहे।।४४।। महानन्दा बोली– मैंने इस वैश्य से रत्नकंकण लेकर सत्य वचन कहा और तीन दिन इस वैश्य की पत्नी हुई।।४५।। मेरे इस कर्म से यह शिवव्रतधारी वैश्य मरा है, इस कारण मैं भी इस वैश्य के साथ अग्नि में प्रवेश करूंगी।।४६।। सत्य बोलनेवाले गुरुओं ने ''यह स्वधर्म आचरण करनेवाली होगी'' ऐसा हम से कहा है, इससे प्रसन्न होकर ऐसा करने से सत्य हमारे बीच में नष्ट न होगा।।४७।। सत्य का आश्रय ही परम धर्म है, सत्य से परमगति होती है, सत्य से ही स्वर्ग और मोक्ष मिलते हैं, सत्य में ही सब प्रतिष्ठित है।।४८।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार कहकर सत्यलोक में तत्पर हुई तथा दृढ़ संकल्प को बांधे हुए वह वेश्या नारी अपने भाई–बन्धुओं से निषेध करने पर भी प्राणों को त्यागने की इच्छा करने लगी।।४९।। और अपना सर्वस्व धनादि पदार्थ मुख्य ब्राह्मणों को दान करके, सदा शिवजी का ध्यान करके उस अग्नि की तीन बार परिक्रमा करके उसमें प्रवेश करने लगी।।५०।। जलती अग्नि में गिरती हुई तथा अपने चरणों में मन अर्पण करती हुई उस वेश्या को देखकर विश्वात्मा साक्षात् शिवजी ने प्रकट होकर उसे निवारण किया।।५१।। वह वेश्या उन सब देवताओं के अधिपति, तीन नेत्रवाले, चन्द्रमा की कला से शोभित, कोटि चन्द्रमा तथा सूर्य अग्नि के समान प्रकाशवाले, उन शिवजी को देखकर निश्चल होकर भीत के समान स्थित हुई।।५२।। तब व्याकुल हुई, बड़ी त्रासवाली, कांपती हुई, जडी भूत, आंसूभरे नेत्रोंवाली उस वेश्या के हाथों को पकड़कर शिवजी यह वचन बोले।।५३।। शिवजी बोले– तेरे सत्य धर्म तथा मुझ में निश्चल हुई भक्ति की परीक्षा करने के निमित्त मैं तेरे समीप वैश्य बनकर आया था।।५४।। मैंने अपनी माया से अग्नि को प्रदीप्त करके तेरा नाट्यमण्डप जला दिया और रत्नलिंग को दग्ध करके मैं अग्नि में प्रविष्ट हुआ।।५५।। जो कि तू सत्य का अनुसरण करके मेरे साथ अग्नि में प्रविष्ट हुई, इस कारण तुझे देवताओं को भी दुर्लभ भोगों को देता हूं।।५६।। हे सुश्रोणि! तू जो–जो इच्छा करे, वह–वह तुझे देता हूं, तेरी भक्ति से मैं प्रसन्न हूं, तुझे अदेय कोई वस्तु नहीं है।।५७।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार कल्याण करनेवाले भक्तवत्सल

शिवजी के कहनेपर वह महानन्दा वेश्या शंकरजी से बोली।।५८।। वेश्या बोली- मेरी भूमि, स्वर्ग तथा पाताल के भोगों में इच्छा नहीं है, आपके चरणकमलों के स्पर्श के बिना और कुछ नहीं चाहती।।५९।। जो मेरे भृत्य और दासियां तथा और जो मेरे बांधव हैं, वे सब आपके दर्शनों में तत्पर हुये और आप ही में चित्त की वृत्तियां लगाये हुये हैं।।६०।। मेरे सहित इन सबों को अपने परम पद को प्राप्त कराके पुनर्जन्म रूप घोर भय से छुड़ाइये, आप को नमस्कार है।।६१।। नन्दीश्वर बोले- इसके उपरान्त शिवजी ने उस वेश्या के वचन को प्रमाण करके उसके सहित उन सबों को अपने परम पद को भेज दिया।।६२।। वैश्यनाथ का परम अवतार आपसे वर्णन किया, जो महानन्दा वेश्या को सुख देनेवाला तथा भक्तों को आनन्द देनेवाला है।।६३।। यह परम पवित्र तथा सत्पुरुषों को शीघ्र ही सब कुछ देनेवाला, महानन्दा वेश्या को परम सुख देनेवाला, सुन्दर शिवजी का अवतार रूप वैश्यनाथ का दिव्य चरित्र वर्णन किया।।६४।। जो पुरुष इस चरित्र को भक्ति सहित सावधान होकर सुनता है अथवा सुनाता है, वह अपने धर्म से पतित नहीं होता, परम लोक में उत्तम गति को प्राप्त होता है।।६५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
वैश्यनाथाह्वयशिवावतार वर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः।। २६ ।।

*****

सत्ताइसवाँ अध्याय

(अब द्विजेश्वर अवतार कहते हैं।)

नन्दीश्वर बोले- हे तात! कल्याण करनेवाला, सत्पुरुषों को सुख देनवाला, परमात्मा शिवजी का द्विजेश्वरावतार आपसे कहता हूं, सो सुनिये।।१।। हे तात! जो पहले भद्रायु नामक राजा का वर्णन किया, जिस पर ऋषभ रूप धारण करके शिवजी ने कृपा की।।२।। उस भद्रायु के धर्म की परीक्षा करने को फिर भी द्विजेश्वर रूप से शिवजी प्रकट हुए, उस चरित्र को मैं कहता हूं।।३।। हे तात! ऋषभ के प्रभाव से संग्राम में प्रभु ने शत्रुओं को जीतकर राज्य सिंहासन प्राप्त करके भद्रायु को उत्पन्न किया।।४।। हे ब्रह्मन्! चन्द्रांगद राजा की सीमन्तिनी नामक स्त्री से उत्पन्न हुई, शुभ अंगोंवाली, बड़ी सौम्य कीर्तिमालिनी नाम कन्या उस राजा की स्त्री हुई।।५।। हे मुने! एक समय वह भद्रायु अपनी प्रिया के साथ वसन्त के समय में विहार करने घने वन में गया।।६।। तब उस रमणीक वन में वह राजा, शरण में आये हुओं का पालन करनेवाली उस अपनी स्त्री के साथ विहार करने लगा।।७।। तब उस राजा के धर्म की दृढ़ता की

परीक्षा करते हुये शिवजी पार्वतीसहित वहां लीला करने लगे ।।८।। वह दोनों पार्वती और शिवजी ब्राह्मण स्त्री-पुरुष के रूप से अपनी लीला से माया के व्याघ्र को बनाकर प्रकट हो गये ।।९।। और वे दोनों स्त्री-पुरुष, व्याघ्र के पीछे-पीछे धावमान होने से भय से व्याकुल, रोते चिल्लाते राजा के समीप आये ।।१०।। हे तात! शरणागत वत्सल, क्षत्रियों में उत्तम उस भद्रायु राजा ने उन दोनों को बिंधा हुआ देखा ।।११।। हे मुनिशार्दुल! तब वह मायारूप द्विज स्त्री-पुरुष भय से व्याकुल होते हुए भद्रायु राजा से बोले ।।१२।। ब्राह्मण स्त्री-पुरुष बोले- हे महाराज! हे महाप्रभो! हे धर्मवित्तम्र! हम दोनों की रक्षा करें, यह सिंह हम दोनों को खाने को आता है ।।१३।। हे धर्मवित्तम! यह सब प्राणियों में भयंकर काल रूप हिंसक सिंह जब तक हम दोनों को प्राप्त करके नहीं खाता है, तब तक आप रक्षा करें ।।१४।। नन्दीश्वर बोले- महावीर राजा ने इस प्रकार उन दोनों का रोना सुनकर जब तक धनुष लिया कि ।।१५।। तब तक माया के सिंह ने शीघ्रता के साथ बीच में से उस ब्राह्मण की स्त्री को ग्रहण कर लिया ।।१६।। हे नाथ! हे कान्त! हा शम्भो! हे जगद्गुरो! यह कहकर रोती हुई उस स्त्री को भयंकर सिंह ने खा लिया ।।१७।। तब तक वह राजा तीक्ष्ण बाणों से व्याघ्र को ताडन करने लगा, परन्तु वह उन भालों की वर्षा से ताडित पर्वत के समान कुछ भी व्यथा को प्राप्त न हुआ ।।१८।। राजा से स्वतन्त्रा पूर्वक व्यथा को प्राप्त न होनेवाले बड़े पराक्रमी सिंह ने शीघ्र ही बलात्कार से उस स्त्री को खिंचकर पलायन किया ।।१९।। व्याघ्र से हरण की हुई स्त्री को देखकर अतिविस्मित हुआ वह ब्राह्मण लौकिकी गति को आश्रय करके बारंबार अधिक रोने लगा।।२०।। वह मायेश्वर ब्राह्मण बहुत काल तक रोते हुए भद्रायु राजा से अभिमान नष्ट करनेवाले यह वचन बोला ।।२१।। द्विजेश्वर बोला- हे राजन्! आपके बड़े-बड़े अस्त्र कहां हैं और महा धनुष की रक्षा कहां गई और बारह हजार हाथियों का बल कहां गया ?।।२२।। आपके खड्ग से क्या फल है और शंख से तथा मन्त्र और अस्त्रविद्या से क्या फल हुआ और बड़े अस्त्रों के सत्त्व (पराक्रम) से तथा अधिक प्रभाव से क्या फल हुआ?।।२३।। और जो कुछ गुण आप में स्थित हैं, सो सब निष्फल हो गये, आप वन में रहनेवाले हिंसक जीवों के घात के निवारण करने को भी समर्थ नहीं हो ।।२४।। दुःख से रक्षा करना क्षत्रियों का परमधर्म है, उस कुल के धर्म नष्ट होने पर आपके जीने से क्या फल है?।।२५।। धर्म जाननेवाले राजा लोग शरण में आये हुये दुःखी पुरुषों के दुःख की अपने प्राण और धन के द्वारा रक्षा करते हैं, इसके बिना मरे हुये के समान हैं।।२६।। दुःखियों की रक्षा से शून्य हुये मनुष्यों के जीने से मरना श्रेष्ठ है, दानहीन धनियों के गृहस्थाश्रम की अपेक्षा भिकारी होना श्रेष्ठ है ।।२७।। अनाथों की, दीनों की रक्षा न करने से कृपण मनुष्यों को विष खाना तथा अग्नि में प्रवेश करना बुद्धिमानों ने श्रेष्ठ कहा है ।।२८।। नन्दीश्वर बोले- इस प्रकार

अपने वीर्य की निन्दा रूप उस ब्राह्मण का विलाप सुनकर राजा शोक से अपनी आत्मा में यह विचार करने लगा ।।२९।। अहो शोक! आज प्रारब्ध के उलटे होने से मेरा पुरुषार्थ नष्ट हुआ, आज मेरी कीर्ति भी नष्ट हुई, भयंकर पातक हम को लगा ।।३०।। दुर्मती मन्दभागी जो मैं हूं, मेरा कुलोचित धर्म भी नष्ट हुआ, इससे निश्चय मेरी सम्पत्ति, राज्य, आयु सब नाश को प्राप्त होगा ।।३१।। आज मैं इस मृत स्त्रीवाले शोक से व्याकुल ब्राह्मण को अपने अतिप्रिय प्राणों को देकर शोक रहित करूंगा ।।३२।। उस भद्रायुराजा ने मन से यह निश्चय करके उसके चरणों में गिरकर उसे शान्त करते हुए कहा ।।३३।। भद्रायु बोला- हे ब्रह्मन्! बल से गिरे हुये मुझ क्षत्रबन्धु पर कृपा करके अपने शोक का त्याग करो, मैं आप को वांछित वस्तु दूंगा ।।३४।। यह राज्य, रानी तथा मेरा शरीर सब आपके आधीन हैं, आपकी क्या अभिलाषा है? सो कहिये ।।३५।। ब्राह्मण बोला- अन्धे को दर्पण से क्या लाभ तथा भिक्षुक को घर से क्या काम, मूर्ख को पुस्तक से क्या फल और स्त्री रहित मनुष्य को धन से क्या लाभ है?।।३६।। इस कारण मृत स्त्रीवाला मैं कोई भोग नहीं भोगना चाहता, केवल इस आपकी मुख्य स्त्री की इच्छा करता हूं, उसे दे दो ।।३७।। भद्रायु बोला- दान करनेवाला पुरुष, गुण, घी आदि रस पर्यन्त धन का तथा अपने राज्य, हाथी, घोड़ों का और अपने शरीर का दान कर सकता है परन्तु स्त्री का दान कोई नहीं कर सकता ।।३८।। दूसरे की स्त्री के साथ भोग करने से जो पाप एकत्रित होता है, वह सैकड़ों प्रायश्चित्त करने से भी नहीं जाता ।।३९।। ब्राह्मण बोला- ब्रह्महत्या तथा मदिरा का सेवन रूप घोर पाप भी अपने तप के द्वारा मैं भस्म कर दूंगा, फिर परस्त्री भोग विषयक पाप क्या वस्तु है?।।४०।। इस कारण मुझे इस स्त्री को दे दो, अन्य दूसरी इच्छा नहीं है, भयभीत हुओं की रक्षा न करने से निश्चित आप नरक में जाओगे ।।४१।। नन्दीश्वर बोले- ऐसी ब्राह्मण की वाणी से डरा हुआ राजा विचारने लगा कि, रक्षा न करने से महापाप होगा, उससे पत्नी को देना श्रेष्ठ है ।।४२।। अतः अपनी स्त्री को इस ब्राह्मण के अर्थ देकर निष्पाप होकर शीघ्र ही अग्नि में प्रवेश करूंगा, तो मेरी कीर्ति विस्तृत होगी ।।४३।। ऐसा मन से निश्चय करके अग्नि को प्रज्ज्वलित करके उस ब्राह्मण को बुलाकर जल सहित स्त्री का दान किया ।।४४।। स्वयं स्नान करके पवित्र होकर सब विद्वानों को प्रणाम करके उस अग्नि की तीन-चार परिक्रमा करके सावधान होकर शिवजी का ध्यान कर ।।४५।। उस अग्नि में गिरते हुए तथा अपने चरणों में मग्नचित्त उस राजा को द्विजेश्वर रूपधारी शिवजी ने प्रकट होकर निषेध किया ।।४६।। उन पांच मुख, तीन नेत्रवाले, पिनाकधारी, चन्द्रमा की कलाओं से शोभायमान तथा लम्बायमान पीली जटाओं को धारे, मध्याह्नकाल के करोड़ों सूर्य के समान तेजस्वी, उन ईश्वर को ।।४७।। तथा कमलदण्डी के समान गौरवर्ण, हाथी का चर्म ओढे, गंगाजी की तरंगों से धुलते हुए

मौलिस्थानवाले, सर्पराजों के हार समूह भूषण से शोभायमान कण्ठवाले तथा मुकुट, कांची, बाजूबन्द, कंकण से देदीप्यमान।।४८।। त्रिशूल, खड्ग, खट्वांग, कुठार, मृगचर्म, अभय रूप आठ अंगों से युक्त पिनाक हाथ में लिये तथा बैल के (नादिया के) ऊपर चढ़े हुए, विष के कण्ठ भूषण धारे आगे प्रकट होते हुए शिवजी को उस राजा ने देखा।।४९।। तब शीघ्र ही आकाश से फूलों की दिव्य वर्षा हुई, देवताओं के बाजे बजने लगे तथा देवस्त्रियां नाचने और गाने लगीं।।५०।। तथा स्तुति करते हुए विष्णजी, ब्रह्माजी और इन्द्र आदि देवता तथा नारद आदि मुनि यह सब वहां आ गये।।५१।। उस समय वहां भक्ति से नम्र तथा अंजलि बांधे हुये राजा के सम्मुख भक्ति को बढ़ानेवाला बड़ा उत्सव हुआ।।५२।। उन शिवजी के दर्शन के आनन्द से प्रकट आशयवाला, बड़े आँसू रूप जल से गीले हुए शरीरवाला, हर्ष से रोमांचित शरीर, गद्गद वाणी से अंजलि बांधकर राजा स्तुति करने लगा।।५३।। तब परमेश्वर दयासागर भगवान् शिवजी राजा से स्तुति को प्राप्त होकर पार्वती सहित प्रसन्न होकर राजा से बोले।।५४।। हे राजन्! तुम्हारी भक्ति से तथा तुम्हारे धर्म से मैं अति सन्तुष्ट हुआ हूं, स्त्री सहित वर मांगो, मैं निःसन्देह दे दूँगा।।५५।। मैं तुम्हारे भाव (प्रेम) की परीक्षा करने ब्राह्मण बनकर आया हूं और व्याघ्र ने जो स्त्री पकड़ी थी वह साक्षात् मेरी स्त्री पार्वती थी।।५६।। जो तुम्हारे बाणों से घायल नहीं हुआ वह व्याघ्र माया का था, मैंने तुम्हारी धीरता देखने की इच्छा से तुम्हारी स्त्री को मांगा।।५७।। नन्दीश्वर बोले– वह भद्रायु राजा इस प्रकार प्रभु शिवजी का वचन सुनकर फिर प्रणाम और स्तुति करके हाथ नीचे किये हुये स्वामी से बोला।।५८।। भद्रायु बोला– हे नाथ! मेरा एक यह ही वर है कि, आप परमेश्वर, संसार के दुःखों से पीड़ित हुये मेरे दर्शनपथ को प्राप्त हुये।।५९।। हे नाथ! यदि फिर भी अपनी कृपा से मुझे वर देते हो, तो हे वरदानियों में श्रेष्ठ! आपसे अन्य वर छोड़कर यह वर मांगता हूं।।६०।। हे महेश्वर! हे नाथ! मेरा वज्रबाहुवाला पिता स्त्री सहित तथा मैं भी अपनी स्त्री सहित आपके चरणों का सेवक हूं।।६१।। हे महेशान! पद्माकर नामक वैश्य उसका पुत्र सनय इन सबों को आप अपने निकटवासी कीजिये।।६२।। नन्दीश्वर बोले– तब उसकी कीर्तिमालिनी नामक स्त्री प्रमत्त हुई भक्ति से शिवजी को प्रसन्न करके उत्तम वर को मांगने लगी।।६३।। रानी बोली– हे महादेव! मेरे पिता चन्द्रांगद तथा माता सीमन्तिनी इन दोनों का आपके निकट वास होना, प्रसन्न होकर मांगती हूं।।६४।। नन्दीश्वर बोले– भक्तवत्सल, पार्वती के पति शिवजी "ऐसा ही होगा" यह कहकर उन दोनों स्त्री–पुरुषों को इच्छित वरदान देकर क्षणमात्र में अन्तर्धान हो गये।।६५।। भद्रायु राजा ने भी प्रीतिपूर्वक शिवजी की प्रसन्नता पाकर कीर्तिमालिनी स्त्री के सहित अनेक विषयों को भोगा।।६६।। और विना नष्ट हुए पराक्रम सहित दस सहस्र वर्ष राज्य करके फिर अपने पुत्र को राज्य समर्पण

करके शिवजी की समीपता को प्राप्त हुआ ।।६७।। और वह राजर्षि चन्द्रांगद तथा वह रानी सीमन्तिनी यह दोनों भक्ति से शिवजी का पूजन करके शम्भुजी के पद को प्राप्त हुये ।।६८।। हे प्रभो! मैंने आपसे द्विजेश्वर नामक शिवजी का परम अवतार वर्णन किया, जो भद्रायु नामक राजा को परम आनन्द देनेवाला है ।।६९।। जो मनुष्य पवित्र कीर्तिवाले शिवजी के परम अवतार द्विजेश्वर का परमपवित्र बड़ा अद्भुत चरित्र सुनता है अथवा पढ़ाता है, वह शिवजी के पद को प्राप्त होता है ।।७०।। इस कथानक को जो ब्राह्मण के मुख से ध्यानपूर्वक सुने वा लोगों को सुनावे, वह अपने धर्म से कभी रहित नहीं होता और परलोक में सद्गति पाता है ।।७१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
द्विजेशशिवावतार वर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।। २७ ।।

*****

अट्ठाइसवाँ अध्याय

नन्दीश्वर बोले– हे प्राज्ञ! हे मुने! सुनिये, पहले जो आनन्ददायक यतिनाथ नामक परमात्मा शिवजी का अवतार हुआ है, उसे कहता हूं ।।१।। हे मुनीश्वर! अर्बुदाचल नामक पर्वत के निकट भील के वंश में उत्पन्न हुआ आहुक नाम एक भील रहता था ।।२।। आहुका नामक उसकी स्त्री बड़ी पतिव्रता थी, वह दोनों महाशैव शिवजी का पूजन करनेवाले थे ।।३।। हे मुने! किसी समय शिवजी की भक्ति में तत्पर हुआ वह भील अपनी स्त्री का भोजन लाने के लिये दूर गया ।।४।। इसी अवसर में उस भील के घर शिवजी संन्यासी का रूप धारण करके सायंकाल को उसकी परीक्षा के निमित्त आए ।।५।। उसी समय वह गृहस्थ आहुक अपने घर पर आ गया और उस बुद्धिमान् ने प्रेम से संन्यासी का सत्कार किया ।।६।। उसके प्रेम की परीक्षा करने को महा लीलाकारी संन्यासी का रूप धारण किये हुए शिवजी प्रीति से डरते हुए दीन वचन बोले ।।७।। यतिनाथ बोले– हे भिल्ल! आज मुझे निवास के लिये अपना स्थान दे, प्रातःकाल मैं चला जाऊँगा, तेरा निरन्तर कल्याण हो।।८।। भील बोला– हे स्वामिन्! आपने सत्य कहा, मेरा वचन सुनिये, मेरा स्थान बहुत छोटा है, वह आपका निवास कैसे हो सकेगा ?।।९।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार उस भील के कहने पर वह संन्यासी जाने की इच्छा करने लगा, तभी भीलनी ने विचार करके अपने स्वामी से मीठे वचनों से कहा ।।१०।। भीलनी बोली– हे स्वामिन्! इस संन्यासी को स्थान दो, अतिथि को विमुख (निराश) मत करो, गृहस्थधर्म को विचारो अन्यथा धर्म का क्षय होगा ।।११।।

आप सुख पूर्वक संन्यासी के साथ घर के भीतर रहना, मैं बड़े बाणों सहित बाहर स्थिति करूंगी।।१२।। नन्दीश्वर बोले– उस भीलनी स्त्री का यह धर्मयुक्त कल्याणकारी वचन सुनकर उस भील ने अपने मन में विचारा।।१३।। स्त्री को बाहर निकालकर मैं घर में किस प्रकार रहूँगा? और संन्यासी का दूसरी जगह जाना भी मेरे अधर्म का करनेवाला होगा।।१४।। सब प्रकार गृहस्थियों को यह दोनों बातें भी उचित नहीं हैं, जो होनहार है सो होगी, मैं घर से बाहर रहूँगा।।१५।। इस प्रकार आग्रह करके उन दोनों को घर के भीतर आनन्द के साथ रखकर तथा अपने अस्त्रों को भी भीतर रखके वह भील बाहर स्थित हुआ।।१६।। रात्रि में उस भील को हत्यारे क्रूर पशुओं ने पीड़ा दी, तब उसने भी अपनी शक्ति के अनुसार बड़ा यत्न किया।।१७।। इस प्रकार यत्न करता हुआ वह बलवान् भील प्रारब्ध से प्रेरणा किये हुये हत्यारे जीवों से बलात्कार से भक्षित हो गया।।१८।। प्रातःकाल उठकर उस संन्यासी ने सिंहादि से भक्षण किये उस वनचारी भील को देखकर अत्यन्त दुःख माना।।१९।। उस संन्यासी को दुःखी देखकर वह भीलनी भी दुःखी हुई, धैर्य से दुःख को धारण करके यह वचन बोली।।२०।। भीलनी बोली– हे संन्यासिन्! आप किस निमित्त दुःख करते हो? अब बहुत कल्याण हुआ, यह धन्य है और कृतकृत्य है, जो ऐसी मृत्यु हुई।।२१।। हे यते! मैं भी अग्नि में भस्म होकर इनके साथ सती हो जाऊँगी, प्रीति के साथ चिता को बनाऊंगी, क्योंकि, यह स्त्रियों का सनातन धर्म है।।२२।। ऐसा उसका वचन सुनकर, उसका हित मानकर स्वयं संन्यासी ने चिता रचवाई और वह उसमें प्रवेश कर गई।।२३।। इसी अवसर में आगे से साक्षात् शिवजी प्रकट हुए, हे धन्ये! हे धन्ये! इस प्रकार प्रीति से प्रशंसा करते हुये उससे शिवजी बोले।।२४।। शिवजी बोले– हे अनघे! मैं तुम्हारे आचरण से प्रसन्न हूं, वर मांग, तुझे कुछ भी वस्तु अदेय नहीं है, मैं विशेष कर तुम्हारी भक्ति से वशीभूत हूं।।२५।। नन्दीश्वर बोले– यह शिवजी का वचन सुनकर जो परम आनन्द का देनेवाले थे, उसने विशेष सुख पाया और कुछ स्मरण नहीं रहा।।२६।। उसकी ऐसी गति देखकर प्रभु शिवजी बड़े प्रसन्न हो गये और उससे इस प्रकार बोले– "वर मांग"।।२७।। शिवजी बोले– यह मेरे रूपवाला संन्यासी हंस रूप में होगा और दूसरे जन्म में तुम दोनों स्त्री–पुरुषों को प्रीति से संयोग करायेगा।।२८।। और यह भील वीरसेन राजा के नैषध नामक नगर में नल नामक पुत्र होगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है।।२९।। हे अनघे! तुम विदर्भ नगर में भीमराज के गणों से पूर्ण दमयन्ती नामक कन्या होगी।।३०।। तुम दोनों मिलकर बड़े विस्तारवाले राज्य के भोगों को भोगकर योगियों को भी दुर्लभ मुक्ति पाओगे।।३१।। नन्दीश्वर बोले– शिवजी स्वयं ऐसा कहकर लिंग रूप हो गये, वे धर्म से चलायमान न हुए, इस कारण आप वह 'अचलेश' नाम से प्रसिद्ध हुए।।३२।। हे तात! वह आहुक नामक भील नैषध नगर में वीरसेन का पुत्र नल नामवाला राजा

हुआ ।।३३।। और वह आहुका नामक भीलनी वैदर्भ नगर में राजा भीम की पुत्री दमयन्ती नाम से प्रसिद्ध हुई ।।३४।। और वह यतिनाथ नामक शिवजी हंस रूप हुए और उस हंस ने दमयन्ती का नल के साथ विवाह कराया ।।३५।। प्रभु शंकरजी पहले सत्कार रूपी महा पुण्य के कारण हंस के रूप को धारण करके उन दोनों नल-दमयन्ती को सुख देते हुए ।।३६।। शिवजी अनेक वार्ता करने में निपुण हंस का अवतार लेकर दमयन्ती तथा राजा नल को परम आनन्द देनेवाले हुए ।।३७।। यह हंस नामक पवित्र कीर्तिवाले शिवजी के अवतार का तथा यतीश नामक अवतार का परम पवित्र, मुक्ति देनेवाला बड़ा अद्भुत चरित्र है ।।३८।। जो मनुष्य शुभ यतीश तथा ब्रह्महंस अवतार का चरित्र सुनता है अथवा सुनाता है, वह परम गति को प्राप्त होता है ।।३९।। यह निष्पाप सब कामनाओं को देनेवाला, यश और आयु का देनेवाला तथा भक्ति को बढ़ानेवाला चरित्र है ।।४०।। संन्यासी और हंस रूपधारी शिवजी का चरित्र सुनकर इस लोक में सब सुखों को भोगकर अन्त समय में शिवजी के पुर को जाता है ।।४१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
यतिनाथ ब्रह्महंसाह्वय शिवावतारचरित्रवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ।। २८ ।।

*****

उनतीसवाँ अध्याय

नन्दीश्वर बोले- हे सनत्कुमारजी! नभग के ज्ञान का देनेवाला कृष्णदर्शन नामक शिवजी का परम अवतार सुनिये ।।१।। जो इक्ष्वाकु आदि श्राद्धदेव के पुत्र हुए हैं, उस वंश में नौवीं पीढ़ी में नभग हुआ तथा उसका पुत्र नाभाग हुआ ।।२।। उसका अम्बरीष नामक पुत्र विष्णुजी का भक्त हुआ, जिसके ऊपर ब्रह्मभक्ति से दुर्वासा ऋषि प्रसन्न हुए थे ।।३।। हे मुने! अम्बरीष का पिता यह जो नाभाग नामक कहा है, उसका चरित्र सुनिये कि, जिसे शिवजी ने ज्ञान दिया था ।।४।। मनु के नभग नामक बुद्धिमान् पुत्र ने पढ़ने के लिये जितन्द्रिय होकर बहुत समय तक गुरुकुल में निवास किया ।।५।। इसी समय में उन इक्ष्वाकु आदि पुत्रों ने उस नभग के भाग को बिना कल्पना किये ही क्रमशः अपने भागों को विभाग कर लिया ।।६।। हे महाभाग! वह बुद्धिमान् पिता की आज्ञा से अपने-अपने भागों को ग्रहण करके निर्द्वन्द्व होकर उत्तम राज्य भोगने लगे ।।७।। पीछे से वह ब्रह्मचारी नभग क्रमशः सम्पूर्ण सांगोपांग श्रुतियों (वेदों) को पढ़कर गुरुकुल से लौट आया ।।८।। हे मुने! वह नभग अपने सब भाइयों को विभाग के किये हुए देखकर अपने भाग की इच्छा से उन इक्ष्वाकु आदि भाइयों से स्नेह पूर्वक बोला ।।९।। नभग

बोला– हे भाइयो! आप सबों ने विभाग कर लिया है, सो अपने दाय के लेने के लिये आये हुए मुझे प्रीति सहित यथोचित दाय को विभाग करके दो ।।१०।। वह भाई बोले– कि विभाग करते समय हम भूल गये, अब पिता ही को हम ने तुम्हारा विभाग नियत किया है, उसे तुम लेना, इसमें सन्देह नहीं ।।११।। भाइयों का यह वचन सुनकर नभग अपने पिता के समीप प्राप्त होकर उनसे बोला ।।१२।। नभग बोला– हे पिता! उन सब भाइयों ने मुझे छोड़कर राज्य का विभाग कर लिया, मैं ब्रह्मचारी गुरुकुल में पढ़ने के लिये चला गया था ।।१३।। फिर आकर अपने दाय के निमित्त मैंने उनसे आदर पूर्वक पूछा, तो उन्होंने आपको विभाग करने के निमित्त बताया, इस लिये मैं आया हूं ।।१४।। नन्दीश्वर बोले– हे मुने! यह उसका वचन सुनकर उसके पिता श्राद्धदेव विस्मित होकर सत्य तथा धर्म में तत्पर हुए उस नभग को धीरज देकर यह वचन बोले ।।१५।। मनुजी बोले– हे तात! उनके वचन का आदर मत करो, क्योंकि बहाना करनेवाला उनका वचन है, मैं सर्वथा भोग के साधन रूप परम दाय को प्राप्त नहीं मानता हूं ।।१६।। तो भी उन प्रपंचियों ने मुझे दायभाव से तुझको दिया है, तो मैं तेरे जीवन के उपाय को बताता हूं, तत्त्व से श्रवण कर ।।१७।। आज बुद्धिमान् आंगिरस ब्राह्मण यज्ञ कर रहे हैं, उस यज्ञकर्म में प्रति छठवें–छठवें दिन मोह को प्राप्त होते हैं ।।१८।। हे नभग! हे महाकवे! वहां तुम जाओ और उनको अच्छी प्रकार शिक्षा दो और दो वैश्यदेव सूक्त पढ़ने से उस यज्ञ की शुद्धि होगी।।१९।। उस कर्म (यागकर्म) के समाप्त होने पर वे ब्राह्मण स्वर्ग को जायंगे और वे सन्तुष्ट होकर शेष धन तुझे दे जायेंगे ।।२०।। नन्दीश्वर बोले– पिता का यह वचन सुनकर वह सत्य सारवाला नभग वहां प्रीति सहित गया, जहां पर उत्तम यज्ञ हो रहा था ।।२१।। हे मुने! उस बुद्धिमान् मनुपुत्र ने उस यज्ञकर्म में दो वैश्यदेव सूक्त स्पष्ट उच्चारण के साथ बोले ।।२२।। उस यज्ञकर्म के समाप्त होने पर वे आंगिरस ब्राह्मण अपने–अपने यज्ञ से शेष बचे हुए धन को उस नभग को देकर स्वर्ग को प्राप्त हुये ।।२३।। उस समय शुभ यज्ञ से बचे हुए धन को स्वीकार करते हुए जान कर सुन्दर रक्षा करनेवाले शिवजी शीघ्र ही प्रगट हो गये ।।२४।। जो सर्वांग से सुन्दर शोभा युक्त कृष्णदर्शन नामक पुरुष थे, उसके परम भाव जानने को तथा परम भाग देने के अर्थ प्रकट हो गये ।।२५।। उसके उपरान्त वह परीक्षा करनेवाले, कल्याणकारी शम्भुजी उस मनुपुत्र नभग के आगे प्राप्त होकर उससे बोले ।।२६।। ईश्वर बोले– कि–"हे पुरुष! तू कौन है? मेरा यह वास्तु सम्बन्धी धन तू कैसे ग्रहण करता है, तुझे किसने भेजा है? यह सब मेरे आगे तू सत्य–सत्य कह" ।।२७।। नन्दीश्वर बोले– हे तात! वह कवि नभग उनका वह वचन सुनकर विनीत होकर उन कृष्णदर्शन पुरुष से बोला ।।२८।। नभग बोला– हे कृष्णदर्शन! ऋषियों से दिया हुआ यज्ञ में प्राप्त हुआ यह मेरा धन है, इसे ग्रहण करते हुए मुझे आप क्यों निषेध करते हो?।।२९।। नन्दीश्वर बोले– यह नभग का कहा सत्य वचन सुनकर

वह प्रसन्नात्मा कृष्णदर्शन नामक पुरुष कहने लगे ।।३०।। कृष्णदर्शन बोले– हे तात! हम दोनों के इस विवाद में तुम्हारे पिता प्रमाण है, जाओ उनसे पूछो, वह इसके प्रमाण को सत्य–सत्य कहेंगे ।।३१।। नन्दीश्वर बोले– हे मुने! उनका यह वचन सुनकर वह कवि नभग पुरुष पिता के पास आकर प्रीति से पूछने लगा ।।३२।। वह श्राद्धदेव मनु, पुत्र के कथन को सुनकर शिवजी के चरणकमलों का ध्यान करके, स्मृति को प्राप्त करके उस पुत्र से बोले ।।३३।। मनुजी बोले– हे तात! मेरे वाक्य को सुनो, वह पुरुष शिवजी देवता है, यह सम्पूर्ण और विशेष कर यज्ञ में शेष रही वस्तु उनकी ही है ।।३४।। यज्ञ के समाप्ति में शेषवस्तु रुद्र का भाग है, यह भी बुद्धिमानों का कथन कहीं पर उनकी इच्छा से होता है ।।३५।। हे विभो! वह ईश्वर! देवयज्ञ में शेष बची सब वस्तु लेने के योग्य है, इसमें कुछ संशय नहीं, उनकी इच्छा से दूसरे पुरुष क्या वस्तु हैं?।।३६।। हे नभग! तेरे ऊपर अनुग्रह करने के लिये वह शिवप्रभु उस रूप से प्रकट हुये हैं, वहां तू जा और सत्य कहकर उनको प्रसन्न कर ।।३७।। और अपने अपराध को क्षमा करा और प्रणाम करके स्तुति कर, वह सब के प्रभु अखिलेश्वर शिवजी यज्ञ के अधिपति हैं ।।३८।। हे तात! विष्णुजी तथा ब्रह्माजी आदि देवता, सिद्ध और सब ऋषि उनके अनुग्रह से सब कर्मों में समर्थ होते हैं ।।३९।। हे श्रेष्ठ आत्मज! बहुत कहने से क्या प्रयोजन है? तुम वहां जाओ, देर न करो, सब प्रकार से सब के ईश्वर महादेवजी को प्रसन्न करो ।।४०।। नन्दीश्वर बोले– यह कहकर वह श्राद्धदेव मनुजी ने शीघ्र ही अपने पुत्र को शिवजी के समीप भेजा और वह नभग उनको प्राप्त होकर ।।४१।। प्रणाम करके अंजलि बांधकर, माथा झुकाकर, प्रसन्नचित्त होकर बड़ी बुद्धिमानी पूर्वक विनय से बोला ।।४२।। नभग बोला– हे ईश! जो कुछ तीनों लोकों में है, सो आपकी ही वस्तु है, फिर यज्ञ में शेष हुई की तो क्या? इस प्रकार मेरे पिता ने निश्चय कहा है ।।४३।। हे नाथ! मैंने बिना जाने जो वचन आपको भ्रम से कहे हैं, उस अपराध को आप क्षमा करें, मैं सिर से आपको प्रसन्न करता हूं ।।४४।। यह कहकर हाथ जोड़कर नम्र होकर वह दीनबुद्धि नभग उन कृष्णदर्शन शिवजी की स्तुति करने लगा ।।४५।। और उसके पिता बुद्धिमान्, शुद्धात्मा नम्र हुए श्राद्धदेव भी उन प्रभु को सन्तुष्ट करने लगे और नमस्कार करके अपने अपराध को क्षमा कराने लगे ।।४६।। इसी अवसर में वहां बुद्धिमान् विष्णुजी, ब्रह्माजी तथा इन्द्र आदि सब सिद्ध और मुनि आये ।।४७।। सब हाथ बाँधे हुये महा उत्सव करने लगे और नृत्य करनेवाले पृथक्–पृथक् भक्ति से प्रणाम करके नृत्य सहित स्तुति करने लगे ।।४८।। तब वह शिव रूप कृष्णदर्शन प्रसन्न होकर उन सबों को कृपादृष्टि से देखकर प्रीति सहित हँसते हुये नभग से बोले ।।४९।। कृष्णदर्शन बोले– तेरे पिता ने धर्मयुक्त जो वाक्य कहा है, सो तो उसी प्रकार है और तू ने भी सत्य कहा, तू साधु है, इसमें कुछ सन्देह नहीं ।।५०।। इस कारण मैं तेरे दृढ़व्रत से सब प्रकार

प्रसन्न हूं और कृपा करके तुझे सनातन ब्रह्मज्ञान देता हूं ।।५१।। हे नभग! तू शीघ्र ही महाज्ञानी होकर कृपापूर्वक मुझसे दी हुई सब वस्तुओं को अब ग्रहण कर ।।५२।। हे महामते! इस संसार में सब सुखों को निर्विकार भोग और मेरी कृपा से तू सुन्दर गति को प्राप्त होगा ।।५३।। नन्दीश्वर बोले– हे तात! यह कहकर सत्यवादियों पर दया करनेवाले वह भगवान् शिवजी उन देखनेवालों के आगे वहां पर ही अन्तर्धान हो गये ।।५४।। हे मुनिसत्तम! विष्णुजी, ब्रह्माजी तथा इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता प्रीति सहित आनन्द से उसे नमस्कार करके अपने–अपने धामों को चले गये ।।५५।। अपने पुत्र नभग सहित वह श्राद्धदेव भी प्रसन्नता से अपने स्थान को गये और अनेक भोगों को भोगकर अन्त में शिवलोक को प्राप्त हुए ।।५६।। हे ब्रह्मन्! इस प्रकार कृष्णदर्शन नामक शिवजी का अवतार आपसे कहा, जो नभग को आनन्द देनेवाला है ।।५७।। यह पापों को नष्ट करनेवाला तथा सत्पुरुषों को भोग, मोक्ष देनेवाला और पढ़ने तथा सुननेवालों को सब कामनाओं के फल देनेवाला चरित्र है।।५८।। जो मनुष्य इस चरित्र को प्रात:काल तथा सायंकाल स्मरण करता है, वह बुद्धिमान् कवि तथा मन्त्रों को जाननेवाला होता है और अन्त में परम गति को पाता है ।।५९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
कृष्णदर्शनशिवावतारवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ।। २९ ।।

*****

तीसवाँ अध्याय

नन्दीश्वर बोले–कि हे ब्रह्माजी के पुत्र! इन्द्र के गर्व का नाश करनेवाला, अवधूतेश्वर नामक शिवजी का अवतार सुनिये ।।१।। हे मुने! पहले बृहस्पतिजी सहित सब देवता और इन्द्र शिवजी के दर्शन करने के निमित्त कैलास पर्वत पर गये ।।२।। तब शिवजी अपने दर्शन में प्रीति करते हुये उन दोनों बृहस्पतिजी तथा इन्द्र को आये जानकर उनके प्रेम की परीक्षा करने के लिये ।।३।। नाना प्रकार की लीला करनेवाले प्रभु बड़े भयंकर, जलती हुई अग्नि के समान कान्तिवाले शिवजी अवधूत स्वरूप से प्रकट हो गये ।।४।। वह सद्गति अवधूत रूप होकर उनके मार्ग को रोककर, लम्बायमान वस्त्रयुक्त, शोभन आकार धारण करके स्थित हुये ।।५।। तब शिवजी के समीप जाते हुए, बृहस्पतिजी तथा इन्द्र ने मार्ग के मध्य में अद्भुत आकारवाले भयंकर पुरुष को देखा ।।६।। हे मुने! तब अपने अधिकार से अभिमानी इन्द्र ने मार्ग के मध्य में स्थित हुये उस पुरुष से, शिवजी न जानकर पूंछा ।।७।। इन्द्र बोले– तू कौन है, दिगंबर तथा अवधूत आकारवाला तू

कहां से आया है, तेरा क्या नाम है? शीघ्र ही मुझसें सत्य-सत्य कह ।।८।। शिवजी अपने स्थान पर स्थित हैं अथवा इस समय और कहीं गये हैं, मैं बृहस्पतिजी सहित उनके दर्शन को जाता हूं ।।९।। नन्दीश्वर बोले- इन्द्र ने ऐसा पूंछनेपर लीला से शरीर धारण किये, मद के नाश करनेवाले, प्रभु, शंकर रूपधारी वह पुरुष कुछ न बोले ।।१०।। इन्द्र ने उससे फिर पूँछा, तो भी वह दिगंबर उससे नहीं बोला, जो महाकौतुककारी शिवजी अविज्ञात गति में स्थित थे, सो मौन हो रहे ।।११।। फिर त्रिलोकी के स्वामी इन्द्र ने उससे पूँछा तब भी प्रकाशमान, महालीला करनेवाले महायोगी वह अवधूत चुप ही रहे ।।१२।। इस प्रकार बारंबार पूँछने पर भी भगवान दिगंबर इन्द्र के अभिमान को नाश करने की इच्छा से कुछ नहीं बोले ।।१३।। तब त्रिलोकी के ऐश्वर्य से गर्वित वह इन्द्र क्रोध करता हुआ और क्रोध से उस जटाधारी को ललकार के यह वचन बोला ।।१४।। इन्द्र बोला- हे मूढ़! हे दुर्मते! पूंछने पर भी तूने उत्तर नहीं दिया, इस कारण तुझे वज्र से मारता हूं, देखूं कौन तेरी रक्षा करता है?।।१५।। ऐसा कहकर इन्द्र ने क्रोध से उसे देखा और उस दिगंबर को मारने के निमित्त वज्र उठाया ।।१६।। वज्र हाथ में लिये इन्द्र को देखकर शिवजी ने उसके वज्रपात को स्तम्भित कर दिया अर्थात् इन्द्र का वज्र उनके ऊपर न चल सका ।।१७।। तब वह पुरुष क्रुद्ध होकर, नेत्र लाल करके, भयंकर तेज से हुये के समान शीघ्र ही प्रज्ज्वलित हुआ ।।१८।। इन्द्र अपनी भुजाओं के रुकने से उत्पन्न हुये क्रोध से मन्त्रों से रुके पराक्रमवाले सर्प के समान भीतर ही भीतर जलने लगा ।।१९।। बृहस्पतिजी ने उस पुरुष को अपने तेज से प्रज्ज्वलित होते हुये देखकर बुद्धि से उसे शिवजी जानकर शीघ्र ही प्रणाम किया ।।२०।। तब उदारबुद्धि बृहस्पतिजी हाथ बांधे हुए दण्डवत् प्रणाम करके भक्ति से उनकी स्तुति करने लगे ।।२१।। बृहस्पतिजी बोले- हे देव देव! हे महादेव! हे शरणागतवत्सल! हे गौरीश! हे सर्वेश्वर! आप प्रसन्न हों, आपको नमस्कार है ।।२२।। सब ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता आपकी माया से मोहित हो रहे हैं, आपको नहीं जानते हैं, आपके अनुग्रह से आपको तत्त्व द्वारा जानते हैं ।।२३।। नन्दीश्वर बोले- उन बृहस्पतिजी ने इस प्रकार प्रभु शंकरजी की स्तुति करके इन्द्र को उन शिवजी के चरणों में गिराया ।।२४।। हे तात! तब उदारबुद्धि, देवताओं के आचार्य बृहस्पतिजी प्रेम से नम्र होकर यह वचन बोले ।।२५।। बृहस्पतिजी बोले- हे दीनों के नाथ! हे महादेव! मैं आपके चरणों में पड़ा हूं, मेरा उद्धार कीजिये और क्रोध को शान्त कीजिये ।।२६।। हे महादेव! आप प्रसन्न हो, आपके माथे के नेत्र से उत्पन्न हुई यह अग्नि आती है, इससे शरण में प्राप्त हुए इन्द्र की रक्षा कीजिये।।२७।। नन्दीश्वर बोले- ऐसा बृहस्पतिजी का वचन सुनकर अवधूत आकारवाले, करुणासागर, श्रेष्ठ रक्षा करनेवाले प्रभु शिवजी बोले ।।२८।। अवधूत बोले- क्रोध से अपने द्वारा निकाले तेज को किस प्रकार फिर धारण कर सकता हूं? क्या सर्प अपने कंचुकी को त्यागकर फिर

धारण कर सकता है।।२९।। नन्दीश्वर बोले– ऐसा शिवजी का वचन सुनकर बृहस्पतिजी हाथ जोड़े हुये, भय से व्याकुल चित्त होकर बोले।।३०।। बृहस्पतिजी बोले– हे देव! हे भगवान! हे शंकर! निरन्तर, भक्तजन अनुकम्पा (दया) के योग्य होते हैं, आप अपने भक्तवत्सल नाम को सत्य कीजिये।।३१।। हे देवेश! अपने तीक्ष्ण तेज को अन्य जगह स्थापित करने को योग्य हो, आप भक्तों का उद्धार करनेवाले हैं, इससे इन्द्र का उद्धार करें।।३२।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार बृहस्पतिजी से कहे हुये, भक्तवत्सल नाम को भजनेवाले, प्रसन्नात्मा, नम्र हुओं के दुःख का नाश करनेवाले, शिवजी बृहस्पतिजी से बोले।।३३।। शिवजी बोले– हे सुराचार्य! आप से प्रसन्न हुआ मैं, आपको श्रेष्ठ वर देता हूं, आप इन्द्र को जीवदान करने से 'जीव' नाम से विख्यात होंगे।।३४।। यह जो माथे के नेत्र से उत्पन्न हुई देवताओं को भी असह्य अग्नि है, उसे मैं दूर फेंकता हूं, जिससे यह इन्द्र को पीड़ा न देवे।।३५।। नन्दीश्वर बोले– यह कहकर शिवजी ने माथे से उत्पन्न हुई तेज रूप से अद्‌भुत अग्नि को लवण समुद्र में फेंक दिया।।३६।। तब माथे के नेत्र से उत्पन्न समुद्र में फेंकी हुई अग्नि तत्काल बालक रूप हो गई।।३७।। वही जलन्धर नामक दैत्य, सिन्धु का पुत्र हुआ, उसको देवताओं की प्रार्थना से शिवजी ने मारा।।३८।। लोकों का कल्याण करनेवाले शिवजी अवधूत रूप धारण कर इस प्रकार सुन्दर चरित्र करके फिर अन्तर्धान हो गये।।३९।। सब देवता सुखी तथा निर्भय हो गये, बृहस्पतिजी और इन्द्र भय से मुक्त होकर उत्तम सुख को प्राप्त हो गये।।४०।। जिस कारण वे दोनों गये थे, उन शिवजी के दर्शन को प्राप्त होकर बृहस्पतिजी तथा इन्द्र आनन्द पूर्वक अपन–अपने स्थानों को चले गये।।४१।। यह मैंने आप से अवधूतेश्वर नामक परमेश्वर का परम आनन्द देनेवाला अवतार कथन किया।।४२।। यह पवित्र इतिहास यश तथा स्वर्ग का देनेवाला और भोग तथा मुक्ति का देनेवाला, सब दिव्य मनोरथों को पूर्ण करनेवाला है।।४३।। जो मनुष्य इसे नित्य सुनता है, वह इस लोक में सब सुखों को भोगकर अन्त में शिवजी की पदवी को प्राप्त होता है।।४४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
अवधूतेश्वरशिवावतारवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः।। ३०।।

*****

इकतीसवाँ अध्याय

नन्दीश्वर बोले- हे मुनिश्रेष्ठ! हे विप्र! शिवजी के अवतार को सुनिये, कि अपने भक्त के ऊपर दया करके स्त्री के सन्देह को दूर किया ।।१।। विदर्भनगर में धर्मात्मा, सत्यवादी, शैवों का प्रिय सत्यरथ नामक एक राजा था ।।२।। हे मुने! उस राजा का सुन्दर धर्म से भूमिका पालन करते तथा शिवधर्म सेवन करते हुये सुखपूर्वक बहुत समय बीत गया ।।३।। एक समय उसके नगर रोकनेवाले, बहुत सेना सहित, बल से प्रौढ़ शत्रुओं के साथ उस राजा का बड़ा भारी युद्ध हुआ ।।४।। वह विदर्भ राजा उनके साथ घोर संग्राम करके दैवयोग से जंघा के बल से शून्य होकर उन शत्रुओं से मारा गया ।।५।। शाल्वों के साथ उस संग्राम में सत्यरथ राजा के मरने पर शेष बची हुई सेना भय से व्याकुल होकर मन्त्रियों के सहित भाग गई ।।६।। हे मुने! तब शत्रुओं से घिरी हुई उस राजा की गर्भवती पटरानी रात के समय अपने नगर से बाहर चली गई ।।७।। निकलकर शोक से दुःखी हुई वह राजा की स्त्री शिवजी के चरणकमलों को स्मरण करती हुई धीरे-धीरे पूर्व दिशा को गई ।।८।। तब प्रातःकाल उस रानी ने मार्ग में दूर पहुँचकर शिवजी की दया से एक निर्मल सरोवर देखा ।।९।। तब राजा की गर्भवती दुःखी स्त्री ने अपने निवास के निमित्त वहां एक छायावाले वृक्ष का आश्रय किया ।।१०।। रानी ने दैववश वहां सुन्दर ग्रहों से युक्त शुभ मुहूर्त में सब लक्षणों से युक्त दिव्य पुत्र को जन्म दिया ।।११।। उसके पश्चात् प्रारब्धवश उसकी माता, वह रानी प्यास से व्याकुल होकर जल पीने को सरोवर में गई, उसे वहां नाके ने भक्षण किया ।।१२।। तत्काल का उत्पन्न हुआ वह पुत्र भूँख-प्यास से अत्यन्त पीड़ित हुआ तथा माता-पिता से हीन होकर वह पुत्र बहुत रोने लगा ।।१३।। हे मुने! उस वन में क्षणमात्र में उत्पन्न हुये पुत्र के रोने पर वह रक्षा करनेवाले अन्तर्यामी शिवजी दया से आर्द्र हो गये ।।१४।। तब दुःख दूर करनेवाले ईश्वर से प्रेरित हुई एक भिखारिन अपने मन से भ्रमण करती हुई एकाएकी वहां आई ।।१५।। वह विधवा अपने एक वर्ष के बालक को लिये हुए वहां आई और उसने रोते हुए अकेले अनाथ बालक को वहां देखा ।।१६।। हे मुने! वह ब्राह्मण की स्त्री उस निर्जन वन में उस बालक को देखकर हृदय में चिन्ता करती हुई बड़ी विस्मित हो गई ।।१७।। अहो! मैं सर्वथा मन वाणी से न कहने योग्य तथा यह बड़ा असम्भव आश्चर्य देखती हूं ।।१८।। इस बालक का अभी तक नाल भी नहीं कटा है और अकेला रोता हुआ तेजस्वियों में श्रेष्ठ यह पुत्र माता से हीन होकर रो रहा है ।।१९।। इसके माता-पिता आदिक कोई सहायक यहां नहीं हैं, क्या कारण है?

अहो! दैवबल बड़ा प्रबल है।।२०।। न जाने यह किसका पुत्र है, इसको जाननेवाला यहां कोई नहीं, कि जिससे इसके जन्म को पुँछू, इसके ऊपर मुझे बड़ी दया उत्पन्न होती है।।२१।। इस बालक को औरस (हृदय से उत्पन्न) पुत्र के समान पालन करने की इच्छा करती हूं, परन्तु इसके कुल, जन्म आदि को बिना जाने छूने की इच्छा नहीं होती।।२२।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार चिन्ता करती हुई उस ब्राह्मण की स्त्री पर भक्तों पर दया करनेवाले शिवजी ने बड़ी दया की।।२३।। महालीलाकारी, सब प्रकार भक्तों को सुख देनेवाले, उपाधि रहित महेश्वर शिवजी ने स्वयं भिक्षुक का रूप धारण किया।।२४।। वह भिक्षुक परमेश्वर सहसा वहां आये, जहां जानने की इच्छा करनेवाली वह ब्राह्मण की स्त्री विद्यमान थी।।२५।। वे अविज्ञातगति, दयासागर प्रभु भिक्षुक का रूप धारण करके हँसकर उस ब्राह्मण की स्त्री से बोले।।२६।। भिक्षुक बोले– हे विप्रभामिनी! अपने चित्त में सन्देह और खेद मत करो, इस पवित्र बालक की अपने पुत्र के समान रक्षा करो।।२७।। इस बालक के द्वारा अति शीघ्र ही तू परम कल्याण को प्राप्त होगी, इस महातेजस्वी बालक का सब प्रकार पोषण कर।।२८।। नन्दीश्वर बोले– ऐसा कहते हुये उन भिक्षुक रूपधारी दयासागर शिवजी से ब्राह्मण की स्त्री प्रीतिपूर्वक आदर के साथ पूँछने लगी।।२९।। ब्राह्मण की स्त्री बोली– आपकी आज्ञा से मैं इस बालक की रक्षा करूंगी तथा अपने पुत्र के समान पालन करूंगी, इसमें सन्देह नहीं, मेरे भाग्य से आप यहां आये हो।।३०।। तथापि विशेष कर सत्य–सत्य जानना चाहती हूं कि,– यह बालक कौन है, किस का पुत्र है और आप कौन है, कहां से आये हो?।।३१।। हे भिक्षुकवर! हे प्रभो! बारंबार मुझे ज्ञान प्राप्त होता है, कि आप साक्षात् दयासागर शिवजी हैं और यह आपका पहला भक्त है।।३२।। किसी कर्म के दोष से यह इस दशा को प्राप्त हुआ है, सो आपके अनुग्रह से सुख भोगकर परम कल्याण को प्राप्त होगा।।३३।। आपकी माया से मोहित हुई मैं, मार्ग से भ्रष्ट हुई, इसकी रक्षा करने के लिये आपसे भेजी हुई मैं इधर आई हूं।।३४।। नन्दीश्वर बोले– भिक्षुक रूपधारी शिवजी, विशेष कर जानने की इच्छा करती हुई, शिवजी के दर्शन से विज्ञान प्राप्त करनेवाली ब्राह्मण स्त्री से बोले।।३५।। भिक्षुकवर्य बोले– हे ब्राह्मण की स्त्री! हे अनघे! प्रीति से सुनो, इस बालक के विषय में सब वृत्तान्त प्रीति से कहता हूं।।३६।। यह शिवजी के भक्त, बुद्धिमान्, अपने धर्म में तत्पर, विदर्भ नगर के राजा सत्यरथ का पुत्र है।।३७।। सुनो, सत्यरथ राजा युद्ध में शाल्व शत्रुओं द्वारा मारा गया, उसकी स्त्री भय से व्याकुल होकर रात में शीघ्रता से अपने घर से निकल गई।।३८।। और इस वन में आकर इस पुत्र को जन्म दिया। प्यास के मारे सरोवर में उतरी, तो दैववश उसे नाके ने निगल लिया।।३९।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार उसकी उत्पत्ति तथा उसके पिता का संग्राम में मरण और उसकी माता का नाके द्वारा मर जाना यह सब वृत्तान्त उससे

वर्णन किया ।।४०।। हे मुनीश्वर! तब वह ब्राह्मणी अति विस्मित होकर उन ज्ञानी, सिद्धरूप भिक्षुक से फिर पूँछने लगी ।।४१।। ब्राह्मणी बोली– हे भिक्षो! इस राजपुत्र का पिता श्रेष्ठ भोगों को भोगता हुआ किस कारण अपने शत्रु, स्वल्प इच्छावाले शाल्वों से मारा गया?।।४२।। किस हेतु से इस पुत्र की माता नाके से उसी समय भक्षण की गई तथा क्यों यह पुत्र जन्म से बन्धु रहित अनाथ हुआ?।।४३।। हे भिक्षो! क्यों यह भिक्षुक, निर्धन, यहां मेरा पुत्र हुआ और कैसे इन दोनों पुत्रों को सुख होगा? सो सब कहिये ।।४४।। नन्दीश्वर बोले– उस ब्राह्मणी का ऐसा वचन सुनकर वह भिक्षुक परमेश्वर प्रसन्नचित्त हँसकर उससे बाले ।।४५।। भिक्षुक बोले– हे ब्राह्मण की पत्नि! तुम्हारे सब प्रश्नों को विशेष कर कहता हूं, तू सावधान होकर इस उत्तम चरित्र को सुनो ।।४६।। इस बालक का पिता वह विदर्भ का राजा पहले जन्म में पाण्डु राजा हुआ ।।४७।। वह शैव तथा धर्मात्मा सब उपद्रवों को दूर करनेवाला राजा सम्पूर्ण भूमि का पालन करता हुआ अपनी प्रजा को प्रसन्न करता था ।।४८।। कभी इस राजा ने त्रयोदशी के दिन निराहार होकर तथा दिन–रात व्रत करते हुए सबके ईश्वर शिवजी का सन्ध्या के समय पूजन किया ।।४९।। प्रदोषकाल में उस राजा के शिवपूजन करने पर नगर में बड़ा विकट भयानक शब्द हुआ ।।५०।। उस शब्द को सुनकर वह राजा शिवजी का पूजन छोड़ शत्रुओं के आने की शंका से अपने मन्दिर के बाहर गया ।।५१।। इसी अवसर पर वह महाबली शस्त्र धारण किये मन्त्री सामन्तों को साथ लेकर राजा के निकट आया ।।५२।। उसे देखकर शत्रु को मनुष्य जानकर, महाक्रोध से व्याकुल होकर बिना विचारे ही राजा ने उसका सिर कटवाया ।।५३।। अपवित्र, नष्टबुद्धि, मंगल से हीन राजा ने शिवजी की पूजा बिना समाप्त किये ही रात्रि में भोजन किया ।।५४।। इस जन्म में वह शिवव्रती राजा विदर्भ में जन्मा और शिवपूजा के समाप्त न करने से सुखों के मध्य में शत्रुओं से मारा गया ।।५५।। जो पहले जन्म में इसका पिता सत्यरथ था, वह ही इस जन्म में शिवजी की पूजा के व्यतिक्रम से ऐश्वर्य रहित पुत्र रूप में हुआ है ।।५६।। इसकी माता ने अपने पहले जन्म में सौत का छल से हरण किया (मार दिया) था, उस पाप से इस जन्म में उस नाके ने खा लिया ।।५७।। इन सबों के चरित्र मैंने तुमसे कहे, मनुष्य शिवजी की भक्ति के बिना वा बिना भक्ति के शिवजी का पूजन करने से दरिद्रता को प्राप्त होते हैं ।।५८।। यह तेरा पुत्र पहले जन्म में ब्राह्मण था, नित्य प्रतिग्रह कर इसने अपनी अवस्था बिताई, परन्तु यज्ञादिक शोभन कर्मों से नहीं ।।५९।। हे द्विजभामिनी! इस कारण तेरा पुत्र दरिद्रता को प्राप्त हुआ, उस दोष के दूर होने के निमित्त शिवजी की शरण में जा ।।६०।। इन दोनों बालकों के सहित शिवजी की पूजा कर, यज्ञोपवीत के पश्चात् शिवजी कल्याण करेंगे ।।६१।। नन्दीश्वर बोले– ऐसा उसे उपदेश देकर उन भिक्षुक रूपधारी भक्तवत्सल शिवजी ने उसे अपने प्रकट रूप को

दिखाया।।६२।। वह ब्राह्मण की स्त्री उन प्रभु शंकरजी को जानकर प्रणाम कर गद्‌गद वाणी से प्रेमपूर्वक स्तुति करने लगी।।६३।। तब वह भिक्षुक रूपधारी भगवान् शम्भुजी, शीघ्र ही ब्राह्मण की स्त्री के देखते ही देखते वहां अन्तर्धान हो गये।।६४।। तब उन भिक्षुक के चले जाने पर वह विश्वास युक्त हुई ब्राह्मणी उस पुत्र को लेकर अपने पुत्र के सहित निज स्थान को गई।।६५।। और एक चक्र नामक सुन्दर नगर में निवास कर अपने पुत्र तथा राजा के पुत्र को सुन्दर अन्नों से पालने लगी।।६६।। ब्राह्मणों जैसे संस्कारित तथा उपनयन किये हुए वे दोनों पुत्र शिवजी के पूजन में तत्पर होकर अपने घर में पढ़ने लगे।।६७।। हे तात! वे दोनों शाण्डिल्य मुनि की आज्ञा से नियम में स्थित होकर प्रदोष में शुभव्रत करके शिवजी का पूजन करते थे।।६८।। किसी समय ब्राह्मण के पुत्र के बिना वह राजपुत्र नदी में नहाने को गया, वहां धन से भरा हुआ एक सुन्दर कलश पाया।।६९।। इस प्रकार शिवजी को पूजते हुये दोनों राजा तथा ब्राह्मण के पुत्र के चार महीने सुख से बीत गये।।७०।। और इसी रीति से फिर भी शिवजी का पूजन करते हुए उन दोनों का उस गृह में परम आनन्द के साथ एक वर्ष बीत गया।।७१।। हे मुने! हे विभो! वर्ष बीतने पर वह राजा का पुत्र शिवजी की दया से ब्राह्मण के पुत्र के साथ वन के मध्य में जाकर।।७२।। शिवजी की कृपा से अकस्मात् आई हुई, उसके पिता से दी गई गन्धर्व की कन्या से विवाह करके अकण्टक (निर्द्वन्द्व) होकर राज्य करने लगा।।७३।। जिस ब्राह्मण की स्त्री ने अपने पुत्र के समान इसका लालन पालन किया था, वह ही उसकी माता और ब्राह्मण का पुत्र भाई हुआ।।७४।। इस प्रकार शिवजी का आराधन करके वह धर्मगुप्त विदर्भ देश में उस रानी के सहित भोग करने लगा।।७५।। यह मैंने तुमसे भिक्षुक रूप शिवजी का अवतार, जो धर्मगुप्त नामक राजपुत्र को सुख देने के निमित्त हुआ था, सो वर्णन किया।।७६।। यह निष्पाप चरित्र अतिपवित्र है, औरों को पवित्र करनेवाला; धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के साधन तथा सब मनोरथों को पूर्ण करनेवाला है।।७७।। जो इसे नित्य सुनता है अथवा सावधान होकर सुनाता है, वह यहां सब इच्छित भोगों को भोगकर अन्त में शिवपुर को जाता है।।७८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां

भिक्षुवर्यशिवावतारचरित्रवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः।। ३१ ।।

*****

बत्तीसवाँ अध्याय

हे तात! धौम्य के बड़े भाई को सुख देनेवाला परमात्मा शिवजी का सुरेश्वर नामक अवतार वर्णन करता हूं, सुनिये ।।१।। बुद्धिमान्, सत्पुरुषों का प्रिय उपमन्यु नामक व्याघ्रपाद का पुत्र जन्मान्तरों से सिद्ध होकर मुनि के कुमारपन को प्राप्त हुआ ।।२।। वह बालक अपनी माता सहित मामा के घर रहता था, वह व्याघ्रपाद का पुत्र उपमन्यु दैववश से अतिदरिद्री था ।।३।। उसने कभी अपने मामा के आश्रम में थोड़ा बहुत दूध पिया था, अतः दुग्ध की इच्छा करनेवाला वह बारंबार प्रीतिपूर्वक माता से दूध मांगता ।।४।। यह पुत्र का वचन सुनकर उसकी तपस्विनी माता ने घर के भीतर प्रवेश करके एक उपाय को विचारा ।।५।। उञ्छवृत्ति (कणों के बीनने) से इकट्ठे किये बीजों को पीसकर उनको जल में मिलाकर कृत्रिम दूध बालक को पिलाया, इस प्रकार अपने पुत्र का लालन-पालन करने लगी ।।६।। वह बालक माता से दिया वह कृत्रिम दूध पीकर माता से बोला कि, यह दूध नहीं है, यह कहते हुए रोने लगा ।।७।। अपने पुत्र का रोना सुनकर दुःखी होकर, पुत्र के नेत्रों को अपने हाथ से पोंछती हुई कमल के समान आकारवाली वह माता अपने पुत्र से बोली ।।८।। माता बोली- सदा हमारे वन में रहते हुये यहां दूध कहां है? शिवजी की प्रसन्नता के बिना दूध की प्राप्ति नहीं होती है ।।९।। हे पुत्र! पूर्वजन्म में शिवजी का उद्देश्य करके जैसा कर्म किया, वैसा ही प्राप्त होता है, इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये ।।१०।। ऐसा माता का वचन सुनकर माता की दया करनेवाला वह व्याघ्रपाद का शोकाकुल पुत्र बालक अपनी माता से बोला ।।११।। हे मातः! हे महाभागे! शोक मत कर, यदि शंकरजी कल्याण करनेवाले हैं, तो शोक को त्याग, अवश्य कल्याण होगा ।।१२।। हे मातः! आज मेरा वचन सुनो, यदि कहीं महादेवजी हैं, तो शीघ्र या देर में उन दूध के देनेवालों को साध लूंगा ।।१३।। नन्दीश्वर बोले- यह कह वह बालक शिवजी मेरा कल्याण करेंगे, ऐसा कहकर माता को प्रणाम करके बिदा होकर तप करने को चला गया ।।१४।। हिमालय पर्वत पर जाकर सावधान चित्त होकर, वायु भक्षण करते हुए, आठ ईटों से भवन तथा मृत्तिका का लिंग बनाकर ।।१५।। उस बालक ने पार्वती सहित शिवजी का आवाहन करके, ''नमः शिवाय'' इस पंचाक्षर मन्त्र से, वन के पत्र तथा पुष्पों से पूजन किया ।।१६।। पार्वती सहित शिवजी का ध्यान करके पंचाक्षर मन्त्र जपते हुए, बहुत समय तक-पूजन करके परम तप करने लगा ।।१७।। हे मुने! उस महात्मा उपमन्यु बालक के तप से सम्पूर्ण चरा-अचर लोक प्रज्ज्वलित हो गये ।।१८।। इसी

अन्तर में विष्णुजी आदि देवताओं से प्रार्थना किये प्रभु शिवजी ने उस बालक की भक्ति की परीक्षा करने को इन्द्र का रूप धारण किया ।।१९।। और पार्वती शची (इन्द्राणी) हो गयी और उनके सब गण देवता रूप में हो गये तथा नान्दिया ने ऐरावत हाथी का रूप धारण किया, वह सब चले ।।२०।। तब पार्वती तथा गणों के सहित शिवजी इन्द्र का रूप धारण करके उपमन्यु के ऊपर दया करने को उसके आश्रम में गये ।।२१।। हे मुनीश्वर! वह इन्द्र रूपधारी शिवजी उसकी भक्ति की परीक्षा करने को उस बालक से गंभीरवाणी से बोले ।।२२।। इन्द्र बोले– हे सुव्रत! मैं तेरे इस तप से सन्तुष्ट हुआ हूं, वर मांग, तेरे सब इच्छित वरों को देता हूं, इसमें कुछ संशय नहीं ।।२३।। उन इन्द्ररूप शिवजी के इस प्रकार कहने से हाथ जोड़कर वह बालक बोला, कि मैं शिवजी में भक्ति होने का वरदान चाहता हूं ।।२४।। यह सुनकर इन्द्र बोला– मुझ त्रिलोकी के स्वामी, देवताओं के पति तथा सब देवताओं से नमस्कृत इन्द्र को तुम नहीं जानते हो?।।२५।। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! तू मेरा भक्त होकर निरन्तर मुझे ही पूज, मैं ही तुझे सब कल्याण दूंगा, निर्गुण शिवजी का त्याग कर ।।२६।। निर्गुण शिवजी की भक्ति से पृथक् हो, उनसे तेरा क्या कार्य होगा ? वे तो देवजाति से निकाले जाकर पिशाचपन को प्राप्त हुए हैं ।।२७।। नन्दीश्वर बोले– यह सुनकर मुनिपुत्र धर्म में विघ्न को जानकर पंचाक्षर मन्त्र को जपता हुआ उस आये हुए इन्द्र से बोला ।।२८।। उपमन्यु बोला– इस प्रकार शिवजी की निन्दा में तत्पर हुए आपने प्रसंग से देवों के देव शिवजी का निर्गुणपन वर्णन किया ।।२९।। देवदेवेश्वर ब्रह्मा, विष्णु, महेश इनको उत्पन्न करनेवाले तथा प्रकृति से परे उन रुद्र को क्या आप नहीं जानते हो ?।।३०।। ब्रह्मवादी लोग जिनको सत्–असत् तथा व्यक्त–अव्यक्त, नित्य, एक–अनेक कहते हैं, उनसे मैं वर मांगूंगा ।।३१।। तत्त्व को जाननेवाले जिनको हेतुवाद से रहित तथा सांख्ययोग के अर्थ देनेवाले कहते हैं, मैं उन्हींसे वरदान वरण करूंगा ।।३२।। विभु शम्भुजी से परे कोई तत्त्व नहीं है, वे सब कारणों के कारण तथा ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं में श्रेष्ठ और गुणों से परे हैं ।।३३।। मैं न आपसे वर मांगता हूं, न विष्णुजी से, न ब्रह्माजी से और न किसी देवता से, केवल शंकरजी ही मुझे वर देनेवाले हों ।।३४।। अब बहुत कहने से क्या है ? मैं अपने मत को सत्य–सत्य कहता हूं, कि शिवजी के अलावा देवता आदि की इच्छा नहीं करता ।।३५।। हे इन्द्र! मेरे भाव को सुनिये! मैंने आज यह अनुमान किया है, कि यदि शिवजी की निन्दा सुनी, तो जन्मान्तर में पाप किया है ।।३६।। शिवजी की निन्दा को सुनकर उसी समय अपने शरीर को त्याग दे, तो अपने देह को नष्ट करके शीघ्र ही शिवलोक की प्राप्ति होती है ।।३७।। हे सुराधम! चाहे मेरी दूध पीने की इच्छा रह जाय, पर आपको शिवजी के अस्त्र से मारकर अपने शरीर का त्याग करूंगा ।।३८।। नन्दीश्वर बोले– ऐसा कहकर उपमन्यु ने स्वयं मरने की इच्छा करके और दूध की

इच्छा का त्याग करके इन्द्र को मारने को तैयार हुआ।।३९।। उस मुनि ने उस आधार से भस्म लेकर और उसे अघोर अस्त्र से अभिमन्त्रित करके इन्द्र के ऊपर उसे त्यागकर बड़ा शब्द किया।।४०।। और उपमन्यु ने इष्टदेव के चरणयुगल को स्मरण करके अपने शरीर को दग्ध करने की इच्छा से अग्नि की धारणा करके स्थिति की।।४१।। इस प्रकार ब्राह्मण के स्थित होने पर इन्द्र रूपधारी भगवान् शिवजी ने सौम्य रूप से उस योगी की धारणा को निवारण किया।।४२।। उस नन्दीश्वर के नियोग से शंकरजी के प्रिय उस अघोर अस्त्र को छोड़ने पर नन्दीश्वर ने उसे मध्य में ही ग्रहण किया।।४३।। तब भगवान् शिवजी ने अपने रूप को धारण करके बाल चन्द्रमा को सिर पर धारण करके ब्राह्मण को दर्शन दिया।।४४।। उन प्रभु ने सहस्रों दूध के समुद्र, दही के समुद्र तथा भक्ष्य और भोज्य पदार्थों के समूहों को उसे दिखाया।।४५।। इस प्रकार उन शिवजी ने पार्वती के सहित, बैल पर चढ़े गणों के सहित त्रिशूल आदि सुन्दर-सुन्दर अस्त्रों से शोभायमान अपना रूप दिखाया।।४६।। स्वर्गलोक में दुन्दुभि बजी और पुष्पों की वर्षा हुई, विष्णु, ब्रह्माजी आदि देवताओं से दशों दिशा पूर्ण हुईं।।४७।। तब आनन्दसागर की लहरों से पूर्ण हुआ उपमन्यु भक्ति से नम्र होकर चित्त से दण्डवत् करते भूमि पर लेट गया।।४८।। इसी समय वहां मुस्कुराते हुए भगवान् शिवजी 'आओ, आओ,' इस प्रकार बुलाकर मस्तक को सूंघकर वरदान देते हुये।।४९।। शिवजी बोले- हे वत्स! हे उपमन्यो! हे विप्रर्षे! मैं तुम्हारे सुन्दर आचरण से सन्तुष्ट हूं, तू दृढ़ भक्त है, मैंने तेरी परीक्षा की।।५०।। निरन्तर भाई-बन्धुओं सहित अपनी इच्छानुसार भक्ष्य, भोज्यों को भोग और सदा निर्द्वन्द्व होकर सुखी हो तथा मेरी भक्ति करने में तत्पर हो।।५१।। हे उपमन्यो! हे महाभाग! यह पार्वती तुम्हारी माता है, आज मैंने तुझे अपना पुत्र माना और तुम निरन्तर कुमारपन को प्राप्त होगे।।५२।। दूध, दही, घी, शहद (मिष्ठान्न) इनके सहस्रों समुद्र तथा भक्ष, भोज्य आदि वस्तुओं के सम्पूर्ण समुद्र।।५३।। हे महामुने! हे दक्ष! यह मैंने तुझे दिये, तू प्रसन्नता सहित ग्रहण करके देवतापन को तथा गण की पदवी को प्राप्त हो।।५४।। तेरा पिता मैं साक्षात् महादेव हूं और माता पार्वती है, प्रसन्नता सहित मन से अभिलषित हुये वरों को ग्रहण कर।।५५।। तू अजर-अमर, दुःख से रहित तथा यशस्वी, सुन्दर तेजस्वी, दिव्यज्ञानी महाप्रभु हो।।५६।। इस प्रकार शिवजी ने प्रसन्न होकर उसके परम तप को स्मरण करके उपमन्यु मुनि को दिव्य दश वर दिये।।५७।। पशुपति सम्बन्धी व्रत तथा ज्ञान और व्रतयोग कथन शक्तित्व तथा पटुता और अपना स्थान यह उसको दिया।।५८।। इस प्रकार महादेवजी ने उसे वरदान देकर हाथों से उसे ग्रहण कर मस्तक को सूंघकर पार्वती से कहा कि,- यह तेरा पुत्र है।।५९।। प्रीति से सुनकर पार्वती ने मस्तक पर अपना हस्तकमल रखकर उसे अक्षय कुमारपद दान किया।।६०।। साकार क्षीरसागर

तथा क्षीर के समान स्वादयुक्त समुद्र पिण्डरूप से निकट में स्थित होकर उस मुनि के लिये दिया।।६१।। अविनाशी, योगैश्वर्य तथा सनातनी ब्रह्मविद्या तथा परम समृद्धि को सन्तुष्ट चित्त होकर उसके लिये प्रदान किया।।६२।। वह मुनि उन शिव–पार्वती से दिव्य वर तथा कुमारपद को पाकर प्रसन्न हुआ।।६३।। तब प्रसन्नचित्त होकर मुनि हाथ जोड़कर प्रणाम करके देवों के देव महादेवजी से यह वरदान मांगने लगा।।६४।। उपमन्यु बोला– हे देवदेवेश! हे परमेश्वर! 'प्रसन्न होओ, प्रसन्न होओ,' अपनी नष्ट न होनेवाली परम दिव्य भक्ति आप मुझे दीजिये।।६५।। हे महादेव! अपने सम्बन्धियों में मेरी श्रद्धा और सदा अपना दास पद और परम स्नेह तथा अपनी निकटता मुझे दीजिये।।६६।। नन्दीश्वर बोले– ऐसा कहकर वह ब्राह्मण उपमन्यु प्रसन्न होकर हर्ष से गद्गद वाणी द्वारा उन महादेवजी की स्तुति करने लगा।।६७।। इस प्रकार सबके सुनते हुये प्रभु, प्रसन्नात्मा, सबके ईश्वर शिवजी उपमन्यु से कहने लगे।।६८।। शिवजी बोले– हे वत्स! हे उपमन्यो! हे अनघ! तू धन्य है और मेरा का अतिभक्त है, जो तुमने मांगा है, सो सब मैंने दिया।।६९।। तू अजर–अमर होकर तथा दुःखों से छूटकर सबों से पूजनीय, निर्विकारी, भक्तों में श्रेष्ठ होगा।।७०।। हे द्विजश्रेष्ठ! तेरे बांधव, कुल और गोत्र अक्षय होगा और मुझ में सदैव भक्ति रहेगी।।७१।। हे मुने! हे वत्स! मैं नित्य तेरे आश्रम के समीप रहूँगा और तू अपनी इच्छानुसार चाहे जहां स्थित हो, उत्कण्ठा नहीं होगी।।७२।। नन्दीश्वर बोले– ऐसा कहकर भगवान् शिवजी उसे सुन्दर वर देकर पार्वती सहित तथा अपने गणों सहित उसी समय अन्तर्धान हो गये।।७३।। और प्रसन्न हुए उपमन्यु ने शिवजी के श्रेष्ठ वरदान को प्राप्त करके अपनी माता के स्थान पर जाकर माता से सब वृत्तान्त वर्णन किया।।७४।। यह सब समाचार सुनकर उसकी माता बड़े हर्ष को प्राप्त हो गई और सबसे सत्कृत होकर अधिक सुख को प्राप्त हुई।।७५।। हे तात! इस प्रकार परमात्मा शिवजी का सर्वदा सज्जनों को सुख देनेवाला सुरेश्वर नामक अवतार आपसे वर्णन किया।।७६।। यह इतिहास निष्पाप तथा सब मनोरथों का देनेवाला और सत्पुरुषों को स्वर्ग, यश, आयु, भोग्य और मुक्ति देनेवाला है।।७७।। जो पुरुष सावधान चित्त होकर इसे भक्ति से सुनता है अथवा सुनाता है, वह इस लोक में सम्पूर्ण सुखों को भोगकर अन्त समय में शिवलोक को प्राप्त होता है।।७८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां

सुरेश्वराख्यशिवावतारचरित्रवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः।। ३२ ।।

*****

तैंतीसवाँ अध्याय

नन्दीश्वर बोले– कि, हे सनत्कुमारजी! सर्वव्यापक परमात्मा शिवजी का जटिल नामक बड़ा पवित्र अवतार प्रीति के साथ सुनिये ।।१।। पहले सती, अपने पिता द्वारा अनादर की हुई दक्ष की कन्या पार्वती, पिता के यज्ञ में अपने शरीर को त्यागकर हिमालय पर्वत से मेना में उत्पन्न हुई ।।२।। अपने पति शिवजी की इच्छा करती हुई वह पार्वती सखियों के सहित सघन वन में जाकर बड़ी निर्मल तपस्या करने लगी ।।३।। तब अनेक प्रकार की लीला में निपुण शिवजी ने उस पार्वती के तप की परीक्षा करने के निमित्त तप के स्थान में सप्तऋषियों को भेजा ।।४।। वे मुनि वहां जाकर यत्नपूर्वक आदर से उसकी परीक्षा करने लगे, परन्तु यथार्थ परीक्षा करने में समर्थ न हुए ।।५।। फिर लौटकर शिवजी को नमस्कार करके सब वृत्तान्त निवेदन करके शिवजी की आज्ञा पाकर स्वर्गलोक को चले गये ।।६।। उत्पत्ति करनेवाले प्रभु शंकरजी ने उन मुनियों के अपने स्थान पर चले जाने पर स्वयं पार्वती के भाव की परीक्षा करने की इच्छा की ।।७।। तब प्रसन्न हुए तपस्वी प्रभु शिवजी ने अपनी इच्छा रूप शान्ति के कारण अद्भुत ब्रह्मचारी का स्वरूप धारण किया ।।८।। बड़े बूढ़े तथा ब्राह्मण शरीर को धारण करके अपने तेज से प्रज्ज्वलित मन से प्रसन्न, दण्ड और छत्र धारण किये बड़े उज्ज्वल भेष ।।९।। जटिल रूप को धारण करके अति प्रीति सहित भक्तवत्सल, कल्याणकारी शम्भुजी पार्वती के वन को गये ।।१०।। वहां पर सखियों से घिरी हुई, वेदी के ऊपर, शुद्ध चन्द्रमा की कला के समान स्थित हुई पार्वती को देखा ।।११।। ब्रह्मचारी का स्वरूप धारे भक्तवत्सल शिवजी उत्कण्ठित होकर उस पार्वती को देखकर उसके समीप गये ।।१२।। उसने तेज से अद्भुत, अंगों में रोमवाले, शान्त स्वरूप, दण्ड तथा चर्म से युक्त हुये उस ब्राह्मण को आते हुए देखा ।।१३।। जो कि ब्रह्मचर्य धारण किये वृद्ध, जटिल, कमण्डलु लिये थे, देखकर परम प्रीति से सब पूजा की सामग्री द्वारा उनका सत्कार किया ।।१४।। और उस देवी पार्वती ने पूजा में तत्पर होकर आनन्दपूर्वक आदर सहित उन ब्रह्मचारी से कुशल पूँछी ।।१५।। हे वेद जाननेवालों में श्रेष्ठ! आप ब्रह्मचारी के रूप में कौन हो और कहां से आये हो ? जो इस वन को प्रकाशित करते हो ।।१६।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार पार्वती ने पूँछने पर वह ब्रह्मचारी ब्राह्मण पार्वती की परीक्षा के कारण शीघ्र ही प्रीति सहित बोला ।।१७।। ब्रह्मचारी बोला– मैं अपनी इच्छानुसार फिरनेवाला ब्रह्मचारी ब्राह्मण, तपस्वी, सुख देनेवाला और दूसरों का उपकार करनेवाला हूं ।।१८।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार वह ब्रह्मचारी भक्तवत्सल

शंकरजी अपने रूप को छिपाते हुये पार्वती के निकट स्थित हुए।।१९।। ब्रह्मचारी बोले– हे महादेवि! क्या कहूं? कहने योग्य नहीं है, बड़ा अनर्थकारी महाविकृत वृत्तान्त दीखता है।।२०।। सुन्दर भोगों के साधन रूप, सुख के कारण बाकी नवीन अवस्था तथा महाउपचारवाले सुन्दर भोगों से छूटी हुई तुम वृथा ही तप करती हो।।२१।। तुम कौन हो? किस लिये निर्जनवन में जितन्द्रियनियों के समान कठिन तप कर रही हो?।।२२।। नन्दीश्वर बोले– ऐसा उनका वचन सुनकर हँसती हुई पार्वती ब्रह्मचारी से प्रेमपूर्वक यह श्रेष्ठ वचन बोली।।२३।। पार्वती बोली– हे विप्र! हे ब्रह्मचारिन्! हे मुने! मेरे सब समाचार सुनिये, अब मेरा जन्म हिमालय के घर में हुआ है।।२४।। पहले दक्ष के घर उत्पन्न हुई सती शंकरजी की स्त्री थी, मेरे पति शिवजी की निन्दा करनेवाले पिता के यहां मैंने योग द्वारा शरीर त्याग दिया था।।२५।। हे द्विज! इस जन्म में बड़े पुण्य से प्राप्त होकर शिवजी मुझे त्यागकर कामदेव को भस्म करके चले गये।।२६।। शिवजी के चले जानेपर दुःख के कारण लज्जित हुई मैं पिता के घर से गुरु के वचन नियम करके इस वन में तप करने आई हूं।।२७।। मन, वचन, कर्म से साक्षात् शिव रूप पति के प्रेम के कारण मेरा तप है, मैं सत्य कहती हूं, इसमें असत्य कुछ नहीं, इसमें शिवजी साक्षी हैं।।२८।। मैं जानती हूं कि, दुर्लभ वस्तु मुझे किस प्रकार प्राप्त हो सकती है, तो भी मन की उत्कण्ठा से अब मैं तप करती हूं।।२९।। मैं इन्द्र आदि देवताओं तथा विष्णुजी और ब्रह्माजी को छोड़कर केवल पिनाकधारी शिवजी को पति पाने की इच्छा करती हूं।।३०।। नन्दीश्वर बोले– हे मुने! ऐसा पार्वती का निश्चित वचन सुनकर जटिल रुद्र हँसकर यह वचन बोले।।३१।। जटिल बोले– हे हिमाचल की पुत्री! हे देवि! तू ने कैसी बुद्धि स्वीकार की? देवताओं को छोड़कर शिवजी के निमित्त कठिन तप करती है।।३२।। मैं उस रुद्र को जानता हूं, सुन तुझसे कहता हूं, वह रुद्र बैल पर चढ़नेवाले विकारी आत्मा और जटाधारी हैं।।३३।। सदा एकाकी रहते, विशेष कर वैरागी हैं, इस कारण तुझको उन शिवजी में मन लगाना उचित नहीं है।।३४।। हे देवि! तुम्हारे शिवजी का रूप आदि सब विरुद्ध हैं, सो मुझे अच्छा नहीं लगता, आगे जैसी तेरी इच्छा हो वैसा कर।।३५।। नन्दीश्वर बोले– ऐसा कहकर फिर भी ब्रह्मचारी रूपधारी शिवजी ने उसकी परीक्षा करने की इच्छा से उसके आगे अनेक प्रकार से अपनी निन्दा की।।३६।। यह न सहने योग्य ब्राह्मण का वचन सुनकर देवी पार्वती क्रोधित होकर उस शिवजी की निन्दा में तत्पर हुये ब्राह्मण से बोली।।३७।। इतना मैंने समझा कि, तू कोई मारने के योग्य है, परन्तु सब प्रकार जान लिया कि, इस समय तू अवध्य है।।३८।। हे मूढ़! तू ब्रह्मचारी का रूप धारण करके कोई धूर्त आया है, तूमने शिवजी की निन्दा की, इससे मुझे बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ है।।३९।। तू शिवजी को नहीं जानता है और शिवजी से बहिर्मुख है, मैंने जो तेरी पूजा

की, इस कारण मुझे सन्ताप है।।४०।। जो मनुष्य तत्त्व को न जानकर शिवजी की निन्दा करता है, उसका जन्मभर का इकट्ठा हुआ पुण्य भस्म होता है।।४१।। शिवजी का द्वेष करनेवाले को छूने पर प्रायश्चित्त करना चाहिये।।४२।। हे दुष्ट! हे दुष्ट! तूमने कहा कि, मैं शिवजी को जानता हूं, सो निश्चय ही तू शिवजी को नहीं जानता, शिवजी ही बड़े स्वामी हैं।।४३।। जैसे-तैसे हो रुद्र माया से बहुत रूपवाले हैं तथा मेरे मनोरथों को देनेवाले निर्विकार सत्पुरुषों के प्रिय हैं।।४४।। नन्दीश्वर बोले- यह कहकर देवी पार्वती ने उस शिवतत्त्व का वर्णन किया, जिसमें ब्रह्मरूप से रुद्र निर्गुण, अविनाशी कहे जाते हैं।।४५।। वह ब्रह्मचारी ब्राह्मण पार्वती के वचन को सुनकर जब ही फिर कुछ कहने को उद्यत हुआ।।४६।। तभी शिवजी में आसक्त चित्तवाली, शिवनिन्दा से रहित पार्वती अपनी सखी विजया से शीघ्रता से बोली।।४७।। पार्वती बोली- हे सखि! यह नीच ब्राह्मण निवारण करने योग्य है, जो कि फिर कहने को उद्यत हुआ, यह अब शिवजी की निन्दा न करने पावे।।४८।। केवल शिवजी की निन्दा करनेवाले मनुष्य को ही पाप नहीं होता है, किन्तु जो उनकी निन्दा सुनता है, वह भी पाप का भागी होता है।।४९।। सब प्रकार शिवजी की निन्दा करनेवाला पुरुष, शिवजी के दासों से मारने योग्य है, यदि वह ब्राह्मण हो, तो छोड़ देने लायक है, जहां निन्दा होती है, उस स्थल से शीघ्र ही चला जाना चाहिये।।५०।। यह दुष्ट फिर शिवजी की निन्दा करेगा, ब्राह्मण होने से अवध्य है और त्यागने योग्य है तथा सब प्रकार न देखने लायक है।।५१।। मैं इस स्थल को त्यागकर शीघ्र ही अन्य स्थान पर जाती हूं, जिससे शीघ्र ही इस मूर्ख के साथ फिर संभाषण न होवे।।५२।। नन्दीश्वर बोले- हे मुने! ऐसा कहकर पार्वती जब स्थान त्यागने लगी, तब शिवजी ने स्वयं उसके वस्त्र को धारण किया।।५३।। जैसा कि, पार्वती ध्यान करती थीं, वैसा ही दिव्यस्वरूप धारण करके शिवजी ने उसे दर्शन दिया और नीचे मुख करके स्थित हुई पार्वती से बोले।।५४।। शिवजी बोले- हे शिवे! हे अनघे! तू मुझे त्यागकर कहां जाती हो, तू मुझसे नहीं त्यागने योग्य हो, मैंने तेरी परीक्षा ली, तू दृढ़ भक्तिवाली है।।५५।। मैंने ब्रह्मचारी का स्वरूप धारण करके तेरे भाव जानने के निमित्त तेरे समीप आकर अनेक वचन कहे।।५६।। हे पार्वती! मैं विशेष कर तेरी दृढ़भक्ति से प्रसन्न हूं, अपने चित्त से चाहे हुये वर को मांग, तुझे अदेय कोई वस्तु नहीं है।।५७।। हे प्रेमनिर्भरे! आज से लेकर मैं तेरे तप से तेरा दास हुआ हूं, तेरी सुन्दरता निहारे बिना एक क्षणभर भी युग के समान बीतता है।।५८।। हे प्रिये! अब तुझे लज्जा त्याग करनी चाहिये, तुम मेरी सदैव की पत्नी हो। यहां आ, तेरे साथ शीघ्र ही अपने कैलास पर्वत को जाऊंगा।।५९।। ऐसा देवेश शिवजी के कहनेपर वह पार्वती अतिआनन्द को प्राप्त हुई और शीघ्र ही तप का दुःख त्याग दिया।।६०।। तब प्रसन्न हुई पार्वतीजी शिवजी के दिव्य रूप को देखकर लज्जा से

नीचे मुख किये करके प्रीति से उन शिवजी से बोली ।।६१।। पार्वती बोली– हे देवेश! यदि आप प्रसन्न हों और मेरे ऊपर कृपा करते हैं, तो आप मेरे पति हों, ऐसा पार्वती ने शिवजी से कहा ।।६२।। तब वह शिवजी उन पार्वती के सहित विधिपूर्वक पाणिग्रहण (संस्कार) करके कैलास पर्वत को गये और पार्वती ने उन पति को पाकर देवताओं का कार्य किया ।।६३।। हे तात! यह ब्रह्मचारी स्वरूपवाला तथा पार्वती के भाव की परीक्षा करनेवाला शिवजी का अवतार मैंने आपसे कहा ।।६४।। मेरी कही हुई इस पाप रहित उत्तम कथा को जो कोई प्रीति से सुनेगा, वह सुखी होकर अच्छी गति को प्राप्त होगा ।।६५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
ब्रह्मचारीशिवावतारचरित्रवर्णनं नाम त्रयत्रिंशोऽध्यायः ।। ३३ ।।

*****

चौतीसवाँ अध्याय

नन्दीश्वर बोले– हे सर्वज्ञ! हे सनत्कुमारजी! परमात्मा शिवजी का नर्तकनट नामक अवतार कहता हूं, श्रवण कीजिये ।।१।। जब वह हिमाचल की पुत्री कालिकादेवी पार्वती वन में जाकर शिवजी की प्राप्ति के निमित्त निर्मल तप करने लगी ।।२।। हे मुने! तब उसके कठिन तप से शिवजी प्रसन्न हुये और उसके भाव की परीक्षा के लिये आनन्द से वर देने के लिये वन में गये ।।३।। हे मुने! और प्रसन्न चित्त होकर पार्वती को अपना स्वरूप दिखाया और 'वर मांगो' ऐसे उस पार्वती से शिवजी ने कहा ।।४।। यह शिवजी के वचन सुनकर, उनके उत्तम रूप को देखकर पार्वती बड़ी प्रसन्न हुई और उनसे प्रणाम करके बोली ।।५।। पार्वती बोली– हे देवेश! हे ईशान! यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं और यदि मेरे लिये वर देने योग्य हैं, तो मेरे पति होकर मेरे उपर कृपा कीजिये ।।६।। हे प्रभो! हे नाथ! मैं आपकी आज्ञा से अच्छी प्रकार पिता के घर जाती हूं और आपको मेरे पिता के समीप जाना चाहिये ।।७।। और भिक्षुक होकर शुभ यश को विस्तार पूर्वक कहते हुए आप पिता से मुझे मांगिये और मेरे पिता का सब गृहाश्रम सफल कीजिये ।।८।। हे प्रभो! हे महेशान! फिर शास्त्रोक्त विधि के अनुसार आप देवताओं के कार्य सिद्ध होने के लिये मेरे साथ विवाह करने के योग्य हैं।।९।। हे विभो! आप मेरे मनोरथ को पूर्ण कीजिये, आप सदा निर्विकार हैं, आपका भक्तवत्सल नाम हैं, मैं आपकी भक्ता हूं।।१०।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार पार्वती से कहे हुये वह भक्तवत्सल महेश्वर शिवजी ''बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा'' यह कहकर अन्तर्धान होकर अपने कैलास पर्वत को

चले गये ।।११।। और फिर पार्वती भी प्रीति सहित सखियों के साथ सार्थक रूप करके अपने पिता के घर गई ।।१२।। मेना स्त्री सहित हिमाचल ने पार्वती का आना सुनकर परिवार सहित आनन्द के साथ अपनी पुत्री पार्वती को देखने को गये ।।१३।। उस प्रसन्न मुखवाली पुत्री को देखकर वे दोनों बड़े आनन्द को प्राप्त हुए उसे अपने घर लाये और प्रीति से महाउत्सव कराया ।।१४।। मेना तथा हिमाचल ने ब्राह्मण, याचक आदि को धन दिया और आदर से वेदध्वनि पूर्वक मंगलाचार कराये ।।१५।। तब अपनी कन्या पार्वती सहित उन दोनों ने अपने स्थान में निवास किया, एक दिन वह मेना और हिमाचल दोनों गंगाजी में स्नान करने के लिये गये ।।१६।। इसी अवसर में भक्तवत्सल, सुन्दर लीलाकारी शम्भुजी नर्तकनट (नाचनेवाले) का रूप धारण करके मेनका के समीप गये ।।१७।। बायें हाथ में शृंग (सींग), दाहिने हाथ में डमरू को धारण किये, पीठ पर गुदड़ी डाले, लाल कपड़े पहने, नाचने गाने में निपुण होकर ।।१८।। नट का रूप धारण करके शिवजी बड़े आनन्द के साथ मेनका के आंगन में अनेक प्रकार के नृत्य तथा अतिमनोहर गान करने लगे ।।१९।। सींग तथा डमरू की बड़ी ध्वनि के साथ बजाने लगे और अनेक प्रकार मनोहर लीलाओं को प्रीतिपूर्वक करने लगे ।।२०।। उस कौतुक को देखने नगर के पुरुष तथा स्त्रियां, बालक, वृद्ध सब ही एक साथ आ गये ।।२१।। हे मुने! सुन्दर गीत सुनकर तथा सुन्दर मनोहर नाच देखकर सहसा मोहित हो गये और उस समय मेना प्रसन्न हुई ।।२२।। तब मेना उस कौतुक से प्रसन्न होकर शीघ्र ही स्वर्ण के पात्र में रत्नों को रखकर उसके लिये प्रीतिपूर्वक देने लगी ।।२३।। उनको उस नट ने ग्रहण न करके उस पार्वती की भिक्षा को मांगा और फिर भी सुन्दर नृत्यगानरूप कौतुक करने को उद्यत हुआ ।।२४।। मेना ने उसका वचन सुनकर अतिविस्मित होकर उस पर क्रोध किया और उसने उस भिक्षुक को ललकारा और बाहर करने की इच्छा की ।।२५।। इसी अवसर में वहां पर गंगाजी में स्नान करके हिमाचल आये और आंगन में स्थित हुए मनुष्य आकारवाले भिक्षुक को देखा ।।२६।। और उन्होंने मेना के मुख से उस सब वृत्तान्त को सुनकर क्रोध किया और उस भिक्षुक को बाहर करने की सेवकों को आज्ञा दी ।।२७।। हे मुनिसत्तम! बड़ी अग्नि के समान जलते हुए, स्पर्श करने के अयोग्य प्रज्ज्वलित होते हुए उस नट को कोई भी निकालने को समर्थ न हुआ ।।२८।। हे तात! तब अनेक लीला करने में निपुण उस भिक्षुक ने हिमालय को अपना अनन्त महाप्रभाव दिखाया ।।२९।। शैल ने उसको शीघ्र ही विष्णुरूप धारे हुए वहां देखा, फिर ब्रह्मस्वरूप, थोड़ी देर में सूर्यरूप से देखा ।।३०।। हे तात! थोड़ी देर पीछे उसको महाअद्भुत रुद्र रूप धारे पार्वती के सहित मनोहर हँसते हुए सुन्दर तेज से युक्त देखा ।।३१।। इस प्रकार उन्होंने उसके बहुत रूप देखे, तब शीघ्र ही परम आनन्द और पूर्ण विस्मय युक्त हो गये ।।३२।। तब उत्पत्ति करनेवाले भिक्षुक

ने उस हिमाचल तथा मेना से पार्वती को ही भिक्षा में मांगा और कुछ नहीं मांगा ।।३३।। तब वे भिक्षुक रूपधारी शिवजी, पार्वती के वाक्य से प्रेरणा किये हुये, शीघ्र ही अपने स्थान को गये ।।३४।। उस समय मेना और शैल हिमाचल को ज्ञान उत्पन्न हो गया कि, विभु शिवजी हम दोनों को ठग कर अपने स्थान को चले गये ।।३५।। उनको यह तपस्वी कन्या देनी चाहिये, ऐसा विचार करके दोनों की शिवजी में बड़ी भक्ति उत्पन्न हुई ।।३६।। तब लीला करनेवाले रुद्र ने अपने भक्तों का उद्धार करके विधान सहित प्रीति के साथ पार्वती से विवाह किया ।।३७।। हे तात! यह मैंने सुनर्तक नट नामक तथा पार्वती के वाक्य को पूर्ण करनेवाला, शिवजी का अवतार कहा ।।३८।। यह बड़े पापों का नाशक बड़ा चरित्र मैंने आप से कहा, जो मनुष्य प्रीति से इस चरित्र को सुनता है, वह सुखी होकर सुन्दर गति को प्राप्त होता है ।।३९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
सुनर्तकनटाह्वशिवावतारवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।। ३४ ।।

*****

पैतीसवाँ अध्याय

नन्दीश्वर बोले- हे सर्वज्ञ! हे सनत्कुमारजी! विभु परमात्मा शिवजी का साधुवेष द्विज नामक अवतार कहता हूं, सुनिये ।।१।। शिवजी में मेना और हिमालय की बड़ी भक्ति जानकर सब देवताओं ने बड़ी चिन्ता की और आदर से सम्मति की ।।२।। यदि एकान्त भक्ति से हिमालय पर्वत शिवजी को अपनी कन्या देंगे, तो निश्चय ही शीघ्र शिवजी की निर्वाणता (परमपद) को प्राप्त होंगे।।३।। यदि अनन्त रत्नों का आधार रूप यह पर्वत मोक्ष को प्राप्त हो जाएगा, तो रत्नगर्भा भूमि मिथ्या ही होगी ।।४।। अपने स्थावर रूप को त्यागकर दिव्य रूप धारण करके, वह अपनी कन्या पार्वती को शिवजी के निमित्त देकर शिवलोक को जायगा ।।५।। शम्भुजी के अनुग्रह से महादेवजी के सादृश्य को प्राप्त करके, वहां सब भोगों को भोगकर, अन्त में मोक्ष को प्राप्त होगा ।।६।। हे मुने! ऐसा विचार करके सब देवता बृहस्पति गुरु के स्थान को गये, वे स्वार्थ को सिद्ध करनेवाले देवता वहां जाकर बृहस्पतिजी से निवेदन करने लगे ।।७।। देवता बोले- हे गुरु! हमारे कार्य सिद्ध करने के निमित्त हिमालय के घर जाइये और शिवजी की निन्दा करके उनके चित्त से शिवजी की भक्ति को दूर कीजिये ।।८।। हे गुरो! वह अपनी श्रद्धा से कन्या शिवजी को देकर यहां ही मुक्ति को प्राप्त हो जाय और पृथ्वी पर ही स्थित रहे ।।९।। देवताओं का ऐसा वचन सुनकर अपने चित्त में विचार कर

बृहस्पतिजी उनसे बोले ।।१०।। बृहस्पतिजी बोले– हे देवताओ! आपके मध्य में से कोई एक शैल के समीप जाए और अपने मनोरथ को साधे, मैं यह करने को असमर्थ हूं।।११।। अथवा इन्द्र से आदि लेकर सब देवता ब्रह्मलोक को जाओ और ब्रह्माजी से अपना समाचार कहो, वह आपका कार्य करेंगे ।।१२।। नन्दीश्वर बोले– यह सुनकर वे सब देवता विचार कर ब्रह्माजी की सभा में गये और वहां सम्पूर्ण वृत्तान्त ब्रह्माजी के आगे निवेदन किया ।।१३।। इस प्रकार देवताओं के वचन सुनकर ब्रह्माजी विचार कर उनसे बोले कि,– मैं दुःख देनेवाली, सदा कलहकारिणी उनकी निन्दा नहीं करूंगा ।।१४।। हे देवताओ! आप कैलास पर जाओ और शंकर महादेवजी को सन्तुष्ट करो तथा उनको हिमालय के घर भेजो ।।१५।। वह शिवजी वहां जाकर हिमाचल से अपनी निन्दा करें, क्योंकि दूसरे की निन्दा विनाश के लिये होती है और अपनी निन्दा यश के लिये मानी गई है ।।१६।। नन्दीश्वर बोले– तब वे सम्पूर्ण देवता शीघ्र ही कैलास पर्वत पर गये और शिवजी को प्रणाम करके भक्ति से उनकी स्तुति करने लगे और उस वृत्तान्त को कहा ।।१७।। तब शिवजी ने यह देवताओं का वचन सुनकर यह बात स्वीकार की और हँसकर धीरज दिया, तब वे अपने-अपने स्थानों को गए।।१८।। तब वह महेश, भक्तवत्सल, अविकारी, माया के ईश्वर, भगवान् शिवजी हिमाचल के समीप जाने की इच्छा करने लगे ।।१९।। दण्ड तथा छत्र धारण किये, सुन्दर वस्त्र पहने, उज्ज्वल तिलक लगाये, हाथ में स्फटिक की माला, गले में शालिग्राम को धारण किये ।।२०।। भक्ति से भगवान् विष्णुजी के नाम को जपते हुए, साधु का वेष धारे ब्राह्मण के रूप में भाई, बन्धुवर्ग से, संयुक्त हुए हिमालय के समीप शीघ्र गये ।।२१।। उनको देखते ही अपने समुदाय सहित हिमालय उठे और भूमि पर साष्टांग दण्डवत करके विधिपूर्वक प्रणाम किया ।।२२।। तब वह शैलेश उस ब्राह्मण से बोले कि, आप कौन हैं? तब उस विप्रेन्द्र योगी ने शीघ्र ही उस पर्वत से अति आदर के साथ कहा ।।२३।। साधु ब्राह्मण बोला– हे शैल! मैं साधु द्विज नामक, परमार्थ को देखनेवाला, परोपकारी, सर्वज्ञ, गुरु के बल से सर्वज्ञ जाननेवाला वैष्णव हूं।।२४।। हे शैलसत्तम! मैंने अपने स्थान पर ही विज्ञान से जान लिया, पाखण्ड को त्यागकर तुमसे प्रीतिपूर्वक कहता हूं, सो सुनो ।।२५।। तुम अपने से उत्पन्न हुई अपनी लक्ष्मी रूप मनोहर कन्या को कुलशील बिना जाने शिवजी के निमित्त देना चाहते हो ।।२६।। हे शैलेन्द्र! हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ! हे नारायण कुल में उत्पन्न! यह तुम्हारी बुद्धि मंगल की देनेवाली ठीक नहीं है ।।२७।। हे शैलाधिप! तुम देखो कि, उन शिवजी के कोई भाई-बन्धु नहीं है, तुम अपने परिवार से तथा अपनी स्त्री मेना से पूछो ।।२८।। हे शैल! पार्वती के बिना मेना आदि सब बन्धुओं से पूछो, रोगी को औषधि अच्छी नहीं लगती, सदा कुपथ्य ही अच्छा लगता है ।।२९।। पार्वती के दानकर्म में तुम्हें योग्यपात्र

नहीं मिला ? पार्वती के सुनने मात्र से कोई सुन्दर मुखवाला महापुरुष उसका वर हो जायेगा ।।३०।। वह शिवजी आश्रय (स्थान) रहित, सदा असंग (अकेला), कुरूप, निर्गुण, अव्यय, मर्घट निवासी, भयंकर आकारवाले, साँपों को पकड़नेवाले, नग्न, भस्म से शोभित, सर्पों से मस्तक लपेटे हुए, सब आश्रमों से रहित तथा सदा अविज्ञात गति हैं ।।३१-३२।। ब्रह्माजी बोले- अनेक लीला करने में तत्पर शिवजी इस प्रकार अपनी निन्दा में प्रवृत्त होकर सत्य-सत्य वचन कहकर शीघ्र ही अपने स्थान का चले गए ।।३३।। यह ब्राह्मण का वचन सुनकर उन दोनों के शरीर विपरीत अनर्थ करने में तत्पर हो गये और सोचने लगे, कि हम क्या करें ?।।३४।। तब रुद्र ने भक्तों का उद्धार करनेवाली लीला करके पार्वती से विवाह कर देवताओं के कार्य किये ।।३५।। हे तात ! हे प्रभो ! मैंने देवताओं के कार्य करनेवाला साधु वेषधारी द्विज नामक शिवजी का अवतार आपसे कहा ।।३६।। यह इतिहास पापों का नाश करनेवाला, स्वर्ग और आयु को देनेवाला है, जो इसे पढ़ता है तथा सुनता है, वह सुखी होकर सुन्दर गति को प्राप्त होता है ।।३७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
साधु द्विजशिवावतारवर्णनं नाम पंचत्रिंशोऽध्यायः ।। ३५ ।।

*****

(८६ अवतार समाप्त हुए)

छत्तीसवाँ अध्याय

नन्दीश्वर बोले- हे सर्वज्ञ ! हे सनत्कुमारजी ! सर्वव्यापक परमात्मा शिवजी का अश्वत्थामा नामक परम अवतार सुनिये ।।१।। हे मुने ! महाबुद्धिमान् देवर्षि ब्रहस्पतिजी के अंश से भरद्वाज द्वारा अयोनिज द्रोण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ।।२।। जो धनुषधारियों में श्रेष्ठ, शूर, विप्रर्षि, सब शास्त्रों को जाननेवाला, बड़ी कीर्तिवाला, महातेजस्वी, सब अस्त्रों का जाननेवाला था ।।३।। बुद्धिमान्, बाणविद्या का पारगामी, वेदों में निपुण, वरिष्ठ विचित्र कर्म करनेवाला, अपने कुल को बढ़ानेवाला, द्रोण नाम से प्रसिद्ध था ।।४।। हे द्विज ! वह बलवान द्रोण कौरवों के आचार्य तथा और छहों महारथियों में विख्यात थे ।।५।। उस ब्राह्मणोत्तम द्रोणचार्य ने कौरवों की सहायता के लिये पुत्र के निमित्त शिवजी के उद्देश्य से बड़ा तप किया ।।६।। हे मुनिसत्तम ! तब भक्तवत्सल भगवान् शंकरजी प्रसन्न होकर द्रोणाचार्य के आगे प्रकट हुए ।।७।। उनको देखकर उस द्रोणाचार्य ब्राह्मण ने हृदय में महाप्रसन्न होकर नम्रता से हाथ बांधकर शीघ्र ही

उनको प्रणाम किया ।।८।। उनकी स्तुति से तथा तपस्या से भक्तवत्सल प्रभु शंकरजी प्रसन्न होकर उस द्रोणचार्य से बोले कि, 'वर मांगो'।।९।। यह शिवजी का वचन सुनकर नम्र होकर द्रोणाचार्य बोले, कि महाबली, सबसे अजेय, अपने अंश से उत्पन्न एक पुत्र को दीजिये ।।१०।। हे मुने! हे तात! यह द्रोणाचार्य का वचन सुनकर शिवजी बोले- ''ऐसा ही होगा,'' यह कहकर कौतुक करनेवाले सुखकारी शिवजी अन्तर्धान हो गये ।।११।। तब संशय रहित द्रोणाचार्य बड़े प्रसन्न होकर अपने धाम को गए और वह सब वरदान का समाचार अपनी स्त्री से प्रीतिपूर्वक कहा।।१२।। तब अवसर को पाकर, सबके संहार करनेवाले प्रभु शिवजी अपने अंश से द्रोण के बड़े बलवान् पुत्र उत्पन्न हुए।।१३।। हे मुने! वह वीर कमलपत्र के समान नेत्रवाले तथा शत्रुपक्ष का नाश करनेवाले, शंकर अश्वत्थामा नाम से विख्यात हुए ।।१४।। जिन महाबली विख्यात अश्वत्थामा ने महाभारत संग्राम में अपने पिता की आज्ञा पाकर कौरवों की सहायता की थी ।।१५।। जिस महावीर अश्वत्थामा को आश्रय करके बड़े पराक्रमी कौरव भीष्म पितामह आदि देवताओं से भी अजेय हो गये ।।१६।। जिसके भय से बड़े शूर, विद्वान् पाण्डव कौरवों को जीतने में असमर्थ हुए और नष्टप्राय हो गये ।।१७।। श्रीकृष्णजी के उपदेश से शिवजी की अति कठिन तपस्या करके अर्जुन ने शिवजी से अस्त्र पाकर उन कौरवों को जीता ।।१८।। हे मुने! अश्वत्थामा ने शिवजी के अंश से उत्पन्न होकर महावीर कौरवों की भक्ति के वशीभूत होकर अपने प्रताप को दिखाया ।।१९।। यत्नपूर्वक शिक्षित भी पाण्डवों के पुत्रों को मारकर महावीर श्रीकृष्णजी आदि शत्रुओं से भी उसके बल का निवारण न हुआ ।।२०।। पुत्रशोक से व्याकुल होकर रथ पर चढ़कर धावमान होते श्रीकृष्णजी के सहित अर्जुन को देखकर वह अश्वत्थामा भागा ।।२१।। और अश्वत्थामा ने अर्जुन के ऊपर ब्रह्मसिर नामक अस्त्र का प्रहार किया, जिससे सब दिशाओं में प्रचण्ड तेज प्रकट हुआ ।।२२।। तब प्राणों पर आपत्ति देखकर अर्जुन ने क्लेश पाकर भयभीत तथा व्याकुल होकर श्रीकृष्णजी से कहा ।।२३।। अर्जुन बोला- हे कृष्ण! हे कृष्ण! यह क्या है और कहां से यह दुस्सह तेज चारों ओर से चला आता है? सो मैं नहीं जानता ।।२४।। नन्दीश्वर बोले- इस प्रकार अर्जुन का वचन सुनकर वह शैव, पार्वती सहित शिवजी का ध्यान करते हुए आदर से श्रीकृष्णजी अर्जुन से बोले ।।२५।। श्रीकृष्णजी बोले- तुम जानते हो, यह द्रोणाचार्य के पुत्र का तीव्र ब्रह्मास्त्र है, इसके समान कोई दूसरा घातक अस्त्र नहीं है ।।२६।। तुम शीघ्र ही अपने प्रभु तथा भक्तों की रक्षा करनेवाले शिवजी का स्मरण करो, कि जिन्होंने सब कार्य करनेवाला अपना बड़ा अस्त्र तुम्हें दिया है ।।२७।। और उस शैव अस्त्र के तेज के द्वारा तुम इस अस्त्र के तेज को दूर करो, ऐसा कहकर श्रीकृष्णजी स्वयं उसके निमित्त शिवजी का ध्यान करने लगे ।।२८।। हे मुने! इस प्रकार श्रीकृष्णजी के वचन सुनकर

अर्जुन ने अपने हृदय में शिवजी स्मरण कर उनको प्रणाम करके, जल के स्पर्श करके, उस शैवास्त्र को छोड़ा ।।२९।। हे महामुने! यद्यपि ब्रह्मसिर अस्त्र निष्फल क्रियावान् नहीं था, तथापि शैव अस्त्र के तेज से उसी समय वह शान्त हो गया ।।३०।। यह सब विचित्र लीला करनेवाले शिवजी के विषय में आश्चर्य मत मानो, जो अजित अपनी शक्ति से सम्पूर्ण संसार को उत्पन्न करते तथा नष्ट करते हैं ।।३१।। हे मुने! तब शिवजी के अंश से उत्पन्न शिवजी की इच्छा से सन्तुष्ट हुए उस अश्वत्थामा ने वृत्तान्त को जानकर शैव अस्त्र का किञ्चिन्मात्र भी छेद न किया ।।३२।। तब द्रोणाचार्य के पुत्र ने इस सम्पूर्ण संसार को पाण्डव रहित करने की इच्छा से उत्तरा के गर्भगत बालक का नाश करने की मन में इच्छा की ।।३३।। तब अश्वत्थामा ने बड़े कान्तिवाले अन्य अस्त्रों से निवारण के अयोग्य ब्रह्मास्त्र को उत्तरा के गर्भ पर प्रहार किया ।।३४।। तब उस अस्त्र से जलती हुई वह व्याकुल मनवाली जयशील, अर्जुन पुत्र की भार्या उत्तरा लक्ष्मी के पति श्रीकृष्णजी की स्तुति करने लगी ।।३५।। तब श्रीकृष्णजी ने हृदय से शिवजी का ध्यान करके स्तुति तथा प्रणाम करके यह जाना, कि पाण्डवों का विनाश करनेवाला यह अश्वत्थामा का अस्त्र है ।।३६।। अपनी रक्षा के निमित्त इन्द्र के दिये बड़े तेजवाले सुदर्शन चक्र से श्रीकृष्णजी ने शिवजी की आज्ञा पाकर उस उत्तरा की रक्षा की ।।३७।। यह चरित्र जानकर शिवजी की आज्ञा से शैववर श्रीकृष्णजी ने गर्भ को अपना रूप कर लिया, तब वह अस्त्र धीरे–धीरे शान्त हो गया ।।३८।। तब वह महाशैव श्रीकृष्णजी ने प्रसन्न होकर सम्पूर्ण पाण्डवों को उस अश्वत्थामा की प्रसन्नता के निमित्त उसके चरणकमलों में गिरवाया ।।३९।। तब वह द्रोणाचार्य का पुत्र अश्वत्थामा प्रसन्न हुआ और प्रीति सहित पाण्डवों पर तथा श्रीकृष्णजी पर अनुग्रह करके अनेक वर दिये।।४०।। हे तात! हे मुनिसत्तम! इस प्रकार प्रभु शिवजी ने पृथ्वी पर अश्वत्थामा रूप से अनेक लीलाएँ कीं ।।४१।। महाबल और पराक्रमवाले अश्वत्थामा नामक शिवजी का अवतार तीनों लोकों को सुख देनेवाला अब तक भी गंगाजी के किनारे पर स्थित है ।।४२।। आपसे अश्वत्थामा नामक शिवजी का अवतार वर्णन किया, वह सब सिद्धियों का करनेवाला और भक्तों के मनोरथों को सिद्ध करनेवाला है ।।४३।। जो मनुष्य इस चरित्र को सावधान चित्त से सुनता है वा भक्ति से कीर्तन करता है, वह मनोरथों की सिद्धि को पाता है और अन्त समय में शिवलोक को प्राप्त होता है ।।४४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां

अश्वत्थामाख्यशिवावतारवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ।। ३६ ।।

*****

सैतीसवाँ अध्याय

नन्दीश्वर बोले-हे प्राज्ञ! शिवजी के किरात नामक अवतार को सुनिये, जिन्होंने प्रसन्न होकर मूक को मारा और अर्जुन को वरदान दिया।।१।। सुयोधन से जीते हुए वे श्रेष्ठ पाण्डव जब द्रौपदी के साथ द्वैतवन में गये।।२।। वहां वे पाण्डव उस समय सूर्य से प्राप्त की हुई स्थाली का आश्रय करके सुखपूर्वक अपना समय बिताते थे।।३।। हे विप्रेन्द्र! उस दुर्योधन द्वारा कपट से भेजे हुए मुनि दुर्वासा पाण्डवों के निकट आदर से आये।।४।। और दशसहस्र विद्यार्थियों सहित आकर उन छात्रों के लिये पाण्डवों से इच्छा के अनुसार भोजन मांगा।।५।। तब उस समय उन पाण्डवों ने स्वीकार करके तपस्वी मुनि दुर्वासा आदिकों को स्नान करने के निमित्त भेजा।।६।। हे मुनीश्वर! तब वे सब पाण्डव अन्न के अभाव से दुःखी हुए और प्राणों को त्याग करने की इच्छा की।।७।। तब द्रौपदी के स्मरण करते ही श्रीकृष्णजी उसी समय आए और आकर स्वयं शाक का पत्ता भक्षण करके उन सब की तृप्ति करा दी।।८।। तब दुर्वासा मुनि उन शिष्यों को तृप्त हुए जानकर चले गये, उस समय श्रीकृष्णजी की कृपा से पाण्डव कष्ट से छूटे।।९।। तब वे पाण्डव श्रीकृष्णजी से पूंछने लगे, कि हे प्रभो! अब क्या होगा? बलवान् शत्रु उत्पन्न हो गया, अब क्या करना चाहिये? सो कहिये।।१०।। नन्दीश्वर बोले- हे मुने! उन पाण्डवों के ऐसा पूछने पर श्रीकृष्णजी शिवजी के चरणकमलों को स्मरण करके पाण्डवों से बोले।।११।। श्रीकृष्णजी बोले- हे श्रेष्ठ पाण्डवो! सुनो, मेरे वृत्तान्त को सुनकर, विशेष कर शिवजी की सेवा करनी चाहिये।।१२।। मैंने अपने शत्रुओं को जीतने की इच्छा से द्वारका में जाकर महात्मा उपमन्यु के उपदेशों को विचार कर।।१३।। सात महीने वटुक पर्वत पर प्रसन्नात्मा परमेश्वर शिवजी की आराधना तथा सेवा की।।१४।। साक्षात् संसार के स्वामी शिवजी ने स्वयं प्रकट होकर मुझे इच्छित मनोरथों को दिया, उनके प्रभाव से मैंने सम्पूर्ण उत्तम सामर्थ्य पाये।।१५।। अब भी भोग और मुक्ति के फल देनेवाले शिवजी की सेवा करता हूं, तुम भी सब सुखों को देनेवाले शिवजी का सेवन करो।।१६।। नन्दीश्वर बोले- यह कहकर और पाण्डवों को धैर्य देकर श्रीकृष्णजी अन्तर्धान हो गये और शीघ्र ही शिवजी के चरणकमलों को स्मरण करते हुए द्वारका को चले गये।।१७।। तब पाण्डवों ने उस दुर्योधन के गुणों की तथा बल की परीक्षा करने के निमित्त भील को भेजा।।१८।। वह भील भी वहां जाकर दुर्योधन के श्रेष्ठ गुणों के उदय को जानकर फिर उन पाण्डवों के समीप आया।।१९।। हे मुनीश्वर! उसका कथन सुनकर पाण्डव दुःखी हुए और वे दुःखित पाण्डव परस्पर

कहने लगे ।।२०।। हम सबों को युद्ध में क्या करना चाहिये? हम सब सामर्थ्यवान् होकर सत्यपाश से बँधे हैं ।।२१।। नन्दीश्वर बोले– इसी समय में भस्म से भूषित मस्तकवाले, रुद्राक्ष को धारण किए, जटाओं से शोभायमान व्यासजी आ गये ।।२२।। वह 'नमः शिवाय' इस पंचाक्षर मन्त्र को जपते हुए शिवजी के प्रेम में मग्न स्वयं तेजस्वी, साक्षात् दूसरे धर्म के समान थे ।।२३।। उनको देखकर पाण्डव प्रसन्न होकर उठकर आगे स्थित हुए और व्यासजी को कुशा तथा मृगछाला का शोभायमान आसन देकर ।।२४।। हर्षित होकर अनेक प्रकार की स्तुति करके, अपने भाग्य को सहारते हुए उन व्यासजी का पूजन किया ।।२५।। हे प्रभो! हमारा सुन्दर तप, अनेक दान, यह सब सफल हुआ, आपके दर्शन से हम तृप्त हुए ।।२६।। हे पितामह! आपके दर्शन से हमारा दुःख दूर हुआ, क्रूर कर्म करनेवाले दुष्टों ने हमें बड़ा दुःख दिया है ।।२७।। आपका दर्शन होने पर वह दुःख जाता रहा, अन्यथा वह हमारा दुःख भी नहीं जाता, यह निश्चय है ।।२८।। सब कर्मों में समर्थ हुए बड़े पुरुषों के घर पर आने से यदि दुःख दूर न हो, तो इसमें प्रारब्ध ही कारण है ।।२९।। बड़े पुरुषों के आने से दुःख का कारण दारिद्र निश्चय ही दूर हो जाता है, यह बड़े पुरुषों का स्वभाव ही कल्पवृक्ष के समान माना गया है ।।३०।। हे प्रभो! उनके गुणों को ही बड़ी वस्तु समझे कि जिनके आश्रय से ही मनुष्य को वे गुण प्राप्त होते हैं ।।३१।। इसमें छोटे–बड़ेपन का विचार नहीं करना चाहिये, क्योंकि उत्तम पुरुषों का यह स्वभाव ही है, कि वे दोनों का पालन करते हैं ।।३२।। संसार निर्धनता का लक्षण अत्यन्त कल्याण माना गया है, क्योंकि इस एक को दूसरों का यत्नपूर्वक रक्षण और श्रेष्ठपुरुषों का सेवन यह ही रहता है ।।३३।। हे स्वामिन्! इसके आगे भाग्य है, उसे दोष नहीं देना चाहिये, इस कारण से आपके दर्शन से मैं मंगल मानता हूं ।।३४।। आप के आगमन मात्र से हमारे मन सन्तुष्ट हुए, आप हमें कुछ उपदेश दें, कि जिससे शीघ्र ही हमारा दुःख नष्ट हो ।।३५।। नन्दीश्वर बोले– यह पाण्डवों के वचन सुनकर महामुनि व्यासजी प्रसन्नचित्त होकर यह वचन बोले ।।३६।। हे पाण्डवो! आप कष्ट करने के योग्य नहीं हो, आप धन्य हो और कृतकृत्य हो कि आपने सत्य का लोप नहीं किया ।।३७।। सत्पुरुषों का यह श्रेष्ठ स्वभाव ही है, कि प्राणों के चले जाने पर भी सुन्दर फल के देनेवाले सच्चे धर्म को नहीं त्यागते ।।३८।। हमें तो आप और वे कौरव दोनों ही समान हो, तो भी बुद्धिमानों का धर्मात्माओं में पक्षपात होता ही है ।।३९।। पहले से ही दुष्ट, नेत्रहीन धृतराष्ट्र ने स्वयं लोभ से अपना धर्म त्यागा, कि जो आप का राज्य छीन लिया ।।४०।। उस धुतराष्ट्र के आप पाण्डव तथा वे कौरव पुत्र ही हैं, इसमें संशय नहीं, पिता के मरने पर महात्माओं को बालकों के ऊपर दया ही करनी चाहिये ।।४१।। और पीछे उसने अपने पुत्र दुर्योधन को भी अनर्थ से निवारण नहीं किया, यदि ऐसा करता, तो यह अनर्थ कभी न होता ।।४२।। इसके आगे जो कुछ हुआ सो, तो हुआ ही, वह

अन्यथा हो ही नहीं हो सकता, यह धृतराष्ट्र दुष्ट है, आप सब धर्मात्मा सत्यवादी हो ।।४३।। इस कारण अन्त में उसका ही निश्चय नाश होगा, जो बीज उसने बोया है, वह यहां अवश्य उपजेगा ।।४४।। इस कारण आपको किसी प्रकार दुःख नहीं करना चाहिये, आपका शुभ होगा, इसमें कुछ संशय नहीं ।।४५।। नन्दीश्वर बोले- इस प्रकार व्यासजी ने कहकर उन युधिष्ठिर आदि सब पाण्डवों को प्रसन्न किया और वे फिर यह वचन बोले ।।४६।। पाण्डव बोले- हे नाथ! आपने सत्य कहा, दुष्ट लोग हमें निरन्तर वन में भी बारंबार दुःख देते हैं ।।४७।। हे विभो! मेरे अशुभ को नष्ट कीजिये और मुझे कुछ शुभ दान दीजिये, पहले श्रीकृष्णजी ने कहा था कि, सदैव शिवजी की आराधना करनी चाहिये ।।४८।। सो हमने असावधानी से उनका वचन शिथिल किया, उस देवमार्ग का अब फिर उपदेश कीजिये ।।४९।। नन्दीश्वर बोले- यह वचन सुनकर व्यासजी बड़े प्रसन्न हुए और प्रीति सहित शिवजी के चरणकमलों को स्मरण करके पाण्डवों से बोले ।।५०।। व्यासजी बोले- हे धर्मबुद्धिवाले पाण्डवो! मेरा वचन सुनिये, श्रीकृष्णजी ने सत्य ही कहा है, मैं भी शिवजी को सेवन करता हूं ।।५१।। और आपको भी प्रेम सहित उनका सेवन करना चाहिये, आपको अधिक सुख होगा, शिवजी की सेवा न करने से सब दुःख होता है ।।५२।। नन्दीश्वर बोले- तब मुनि व्यासजी ने उन पांचों पाण्डवों में से शिवजी के पूजन में अर्जुन को योग्य विचारा और कहा ।।५३।। इस प्रकार वह मुनि व्यासजी तप के स्थान को विचार कर सत्यधर्म में स्थित होकर पाण्डवों से यह वचन बोले ।।५४।। व्यासजी बोले- हे पाण्डवो! सुनिये, आपका हित कहता हूं, सत्पुरुषों की गति, परब्रह्म, सबसे परे शिवजी को देखकर ।।५५।। तथा ब्रह्म से लेकर त्रिपरार्ध संख्या तक जो कुछ संसार दीखता है, सो सब ही शिव रूप है और वह सदा पूजने योग्य तथा ध्यान करने योग्य है ।।५६।। इन दुःखों को दूर करनेवाले शिवजी की सबको सेवा करनी चाहिये, शिवजी भक्ति से थोड़े ही समय में प्रसन्न होते हैं ।।५७।। अति प्रसन्न हुए महेश्वर अपने भक्तों को सब कुछ देनेवाले हैं, भोग तथा मुक्ति को इस लोक और परलोक में निश्चय ही देते हैं ।।५८।। इस कारण भोग और मुक्ति के चाहनेवालों को सदा ही शिवजी की सेवा करनी चाहिये, शंकरजी साक्षात् पुरुष हैं और दुष्टों का नाश करनेवाले सत्पुरुषों की गति हैं ।।५९।। परन्तु पहले दृढ़मन होकर इन्द्रविद्या को जपना चाहिये, परम प्रसिद्ध क्षत्रिय को यह ही धारण करनी चाहिये ।।६०।। इस कारण अर्जुन को दृढ़ होकर पहले इन्द्र की विद्या जपनी चाहिये, प्रथम वह इन्द्र परीक्षा करेगा, तब सन्तुष्ट होगा ।।६१।। अतिप्रसन्न होकर निरन्तर सब विघ्नों को दूर करेगा, फिर इसी प्रकार शिवजी के श्रेष्ठ मन्त्र को देगा ।।६२।। नन्दीश्वर बोले- व्यासजी ने यह कहकर अर्जुन को बुलाकर इन्द्र सम्बन्धिनी विद्या का उपदेश दिया और तीव्र बुद्धिवाले अर्जुन ने पूर्व की ओर मुख करके तथा स्नान करके उसे ग्रहण किया ।।६३।। व्यासजी ने अर्जुन को

पार्थिव का विधान बताया, तब उदारबुद्धि व्यासजी उस अर्जुन से फिर बोले ।।६४।। व्यासजी बोले– हे अर्जुन! अब इस सुन्दर शोभावाले इन्द्रकील पर्वत पर गंगाजी के किनारे स्थित होकर अच्छी प्रकार तप करो ।।६५।। यह अदृश्य विद्या सदा तेरा हित करनेवाली होगी, इस प्रकार मुनि व्यासजी ने अर्जुन को आशीर्वाद दिया, तब उन पाण्डवों से कहा ।।६६।। हे नृपसत्तम! आप सब धर्म के ऊपर स्थित होकर रहो, आपको सब प्रकार श्रेष्ठ सिद्धि होगी, इसमें संशय नहीं है ।।६७।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार मुनीश्वर व्यासजी उन पाण्डवों को आशीर्वाद देकर शिवजी के चरणकमलों को स्मरण करके उसी समय अन्तर्धान हुए ।।६८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
किरातावतारवर्णनप्रसंगेऽर्जुनाय व्यासोपदेशवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।। ३७ ।।

*****

अड़तीसवाँ अध्याय

नन्दीश्वर बोले– उस समय शिवरूप मन्त्र से अर्जुन का तेज अधिक बढ़ने लगा और प्रकाशित हुआ दीख पड़ा ।।१।। उन सब पाण्डवों ने अर्जुन को देखकर निश्चय किया कि, निःसन्देह अब हमारी विजय हुई, क्योंकि बड़ा तेज प्राप्त हुआ है ।।२।। हे अर्जुन! व्यासजी के वचन से यह कार्य तुम्हें साधना चाहिये, आप शोभित होते हैं, और हमारा जीवन सफल करें ।।३।। ऐसा कहकर वियोग के दुःख से व्याकुल हुए भेजने की इच्छा न होने पर भी पाण्डवों ने अर्जुन को उस पर्वत पर आदर सहित भेजा ।।४।। उस समय पतिव्रता द्रौपदी दुःखी हुई, नेत्र के आँसुओं को रोककर बिदा के समय यह शुभ वचन बोली ।।५।। द्रौपदी बोली– हे राजन्! व्यासजी ने आपको जो उपदेश दिया है, उसे प्रयत्न से पूर्ण करना चाहिये, आपका मार्ग शुभ का देनेवाला हो और शिवजी आपका कल्याण करनेवाले हों ।।६।। वे सब पांचों पाण्डव आदर सहित अर्जुन को बिदा करके अति दुःखी हुए और सब मिलकर वहां रहने लगे ।।७।। हे ऋषिसत्तम! सुनिये, वे वहां स्थित होकर परस्पर में कहते थे, कि दुःख के समय में प्रिय का संग हो, तो दुःख के लिये नहीं होता है ।।८।। उसके वियोग में नित्य दूना दुःख होता है, उस समय धैर्य रखनेवाले का भी धैर्य किस प्रकार रह सकता है? अर्थात् प्रिय के वियोग में धैर्यधारी का भी धीरज टूट जाता है ।।९।। नन्दीश्वर बोले– उस समय पाण्डवों के दुःख करने पर मुनीश्वर, कृपासिन्धु ऋषिवर्य व्यासजी आये ।।१०।। तब आदर सहित उनका सत्कार करके तथा प्रणाम करके आसन देकर, दुःखी हुए पाण्डव हाथ बांधकर यह वचन

बोले ।।११।। पाण्डव बोले– हे ऋषभश्रेष्ठ! हे प्रभो! हे मुने! आज आपके दर्शन पाकर हम लोग दुःख से रहित होकर आनन्द को प्राप्त होते हैं।।१२।। हे प्रभो! हमारे दुःख नष्ट होने के लिये कुछ समय यहां निवास करें, आप ब्रह्मर्षि का दर्शन करने से हमारे सब दुःख नष्ट होते हैं।।१३।। नन्दीश्वर बोले– ऐसा उनके कहने पर ऋषिश्रेष्ठ व्यासजी ने सुख के निमित्त निवास किया और उस समय अनेक प्रकार की कथाओं से उन पाण्डवों का दुःख दूर किया।।१४।। हे सन्मुने! उन व्यासजी के साथ वार्ता करने पर विनीतात्मा धर्मराज प्रणाम करके बोले।।१५।। युधिष्ठिर बोले– हे ऋषिश्रेष्ठ! हे प्रभो! हे महाप्राज्ञ! मेरा दुःख शान्त होता है, मैं आपसे जो पूछता हूं, सो कहिये।।१६।। सो पहले ऐसे दुःख को कभी और भी कोई प्राप्त हुआ है, या मैं ही इस बड़े दुःख में पड़ा हूं? क्या और कोई ऐसे दुःख को नहीं प्राप्त हुआ?।।१७।। व्यासजी बोले– पहले निषध देश के स्वामी महात्मा राजा नल को आपसे अधिक दुःख हुआ है।।१८।। और राजा हरिश्चन्द्र ने भी बड़ा दुःख भोगा है, वह परम शोक देनेवाला दुःख विशेष करके अनिर्वचनीय है।।१९।। हे पाण्डव! उसी प्रकार श्रीरामचन्द्रजी को बड़ा दुःख हुआ है, जिसे सुनकर स्त्री–पुरुषों को बड़ा भारी मोह होता है।।२०।। इस कारण उस चरित्र का वर्णन करने में, मैं समर्थ नहीं हूं, यह शरीर दुःखों का समूह है, यह जानकर तुम्हें दुःख त्यागना चाहिये।।२१।। जिसने यह जगत् धारण किया है, वह ही व्याप्त हो रहा है, इसमें कुछ सन्देह नहीं, पहले तो माता के गर्भ में जन्म ही दुःख का कारण है।।२२।। फिर कौमार अवस्था में बालकों को लीला सम्बन्धी महादुःख है, उसके पश्चात् युवा अवस्था में दुःख रूपी कामनाओं के भोगते हुए दुःख होता है।।२३।। अनेक प्रकार के कार्य में आसक्त हुए दिनों के बीतने पर नित्य आयु नष्ट होती जाती है और मनुष्य उसको नहीं जानता है।।२४।। उसके पीछे अन्त में मरण रूप महादुःख होता है, फिर मूर्ख मनुष्यों को अनेक प्रकार के नरक की पीड़ा भोगनी पड़ती है।।२५।। इस कारण यह सब संसार अनित्य है, तुम सत्य का आचरण करो, जिस प्रकार शिवजी सन्तुष्ट हों, मनुष्य को वही करना चाहिये।।२६।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार उन सब भाइयों ने मनोरथ के मार्गवाले अनेक प्रकार के संभाषणों से समय को बिताया।।२७।। दृढ़व्रत अर्जुन ने भी स्वयं इन्द्रकील पर्वत पर जाकर किसी यक्ष को पाकर उसके द्वारा अनेक डाकू, राक्षसों को नष्ट किया।।२८।। मन में प्रसन्न होकर उत्तम पर्वत को गमन किया, वहां जाकर गंगाजी के समीप सुन्दर स्थल पाया।।२९।। जहां अशोकवन उत्तम स्वर्ग के समान है, यहां गंगाजी में स्नान कर श्रेष्ठ गुरु को नमस्कार करके स्थित हुआ।।३०।। जैसा उपदेश दिया था, उसी प्रकार वेष आदि स्वयं किया, इन्द्रियों को वश में करके मन लगाकर स्थित हुआ।।३१।। फिर समान सूत्रवाले सुन्दर पार्थिवलिंग को बनाकर उस अर्जुन ने उसके आगे श्रेष्ठ तेज के समूह शिवजी का ध्यान किया।।३२।। तीनों

कालों में स्नान कर बारंबार शिवजी का अनेक प्रकार पूजन करके उपासना की ।।३३।। तब उस अर्जुन के सिर से तेज निकलने लगा, उसे देखकर चर भय मानने लगे कि, यह तेज कब प्रवेश होगा ?।।३४।। फिर उन्होंने यह विचारा कि, इन्द्र से कहना चाहिये, यह कहकर वे वेग से इन्द्र के निकट गये ।।३५।। चर बोले– हे देवेश! कोई देवता अथवा ऋषि या सूर्य तथा अग्नि वन में तप करता है, हम उसे नहीं जानते हैं ।।३६।। उसीके तेज से तापित होकर हम आपके निकट आये हैं, सो सब समाचार हमने निवेदन किया, जो उचित हो सो कीजिये ।।३७।। नन्दीश्वर बोले– दूतों के ऐसा कहने पर इन्द्र ने अपने पुत्र की इच्छा को जानकर अपने परिवार को छोड़कर वहां जाने की इच्छा की ।।३८।। हे विप्रेन्द्र! वह इन्द्र वृद्ध ब्रह्मचारी ब्राह्मण का रूप धारण करके अर्जुन की परीक्षा करने गए।।३९।। उनको आते हुए देखकर अर्जुन ने उनकी पूजा की और स्तुति करके उनके आगे खड़े होकर कहा कि, इस समय आप कहां से आये हो? सो कहिये ।।४०।। ऐसा अर्जुन के कहने पर इन्द्र ने उसे धैर्य देने के निमित्त प्रीतिपूर्वक परीक्षा से गर्वित वचन कहे ।।४१।। ब्राह्मण बोले– हे तात! इस समय तू नई अवस्था में क्यों तप करता है, यह तप मुक्ति के निमित्त है अथवा विजय के निमित्त है?।।४२।। नन्दीश्वर बोले– ऐसा पूछने पर उस अर्जुन ने सब वृत्तान्त कहा, यह सुनकर वह ब्राह्मण फिर बोले ।।४३।। ब्राह्मण बोले– हे वीर! सुख को पाने के लिये क्षत्रियधर्म से तप करते हो सो ठीक नहीं है, मुक्ति के निमित्त तप करो ।।४४।। हे श्रेष्ठ! इन्द्र सुख का देनेवाला है, मुक्ति का दाता नहीं है, इस कारण तुम्हें सब प्रकार श्रेष्ठ तप करना चाहिये ।।४५।। नन्दीश्वर बोले– ऐसा उस ब्राह्मण का वचन सुनकर दृढ़व्रत, नम्र स्वभाववाले अर्जुन ने क्रोध करके उसका निरादर करके कहा ।।४६।। अर्जुन बोला– आप क्यों ऐसा कहते हो? हम न राज्य के लिये, न मुक्ती के लिये, किन्तु व्यासजी के वचन से ही ऐसा तप करते हैं ।।४७।। हे ब्रह्मचारिन्! इधर को जाइये, आप मुझे गिराने की इच्छा ना करें, आप ब्रह्मचारी को इससे क्या प्रयोजन है?।।४८।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार कहने पर इन्द्र प्रसन्न हुए और सब के उपकार करने योग्य सुन्दर रूप को दिखाया।।४९।। तब इन्द्र के रूप को देखकर अर्जुन लज्जित हो गया, उसे इन्द्र ने ढांढ़स देकर फिर कहा ।।५०।। इन्द्र बोला– हे तात! हे धनंजय! हे महामते! यदि तुम मन की इच्छित अभिलाषा को चाहते हो, तो वर मांगो, तुम्हें कुछ भी अदेय नहीं है।।५१।। उस समय इन्द्र का वचन सुनकर अर्जुन बोला– हे तात! शत्रुओं से दुःखी हुए मुझे सब प्रकार विजय प्रदान करें ।।५२।। इन्द्र बोले– तुम्हारे शत्रु दुर्योधन आदि बड़े बली हैं, द्रोण तथा भीष्म, कर्ण निश्चय ही यह सब जीतने को अशक्य हैं ।।५३।। अश्वत्थामा नामक द्रोणाचार्य का पुत्र शिवजी का अंश है, वह बड़ा दुर्जय है, वे मुझसे भी असाध्य हैं, पर तुम सब प्रकार अपने हित को सुनो।।५४।। हे वीर! इसके जय करने को कोई भी समर्थ नहीं है, कारण कि,

वह शिव है, इस कारण शिवजी का जप करने से कार्य होगा।।५५।। शिवजी सम्पूर्ण लोकों के स्वामी हैं तथा चर-अचर के पति स्वयं प्रकाशवान हैं, वे सब कहने को समर्थ हैं तथा भोग और मुक्ति फल के देनेवाले हैं।।५६।। मैं और ब्रह्माजी आदि सब वर देनेवाले विष्णुजी तथा और जो विजय चाहनेवाले हैं, वे सब शिवजी को पूजते हैं।।५७।। आज से लेकर इस इन्द्र के मन्त्र को त्यागकर भक्ति से शिवजी को भजो, पार्थिव के विधान तथा ध्यान से शिवजी का पूजन करो।।५८।। हे भारत! अनेक उपचारों सहित प्रेम से तुम्हारी अटल सिद्धि होगी, इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये।।५९।। नन्दीश्वर बोले- ऐसा कहकर इन्द्र ने सब चरों को बुलाकर यह कहा कि, आपको इस अर्जुन की रक्षा करने में सावधानी पूर्वक रहना चाहिये।।६०।। इस प्रकार इन्द्र अपने चरों को अर्जुन के रक्षण आदि में समझाकर दया से पूर्ण होकर फिर अर्जुन से बोले।।६१।। इन्द्र बोले- हे परन्तप! हे भद्र! तुम राज्य को प्रमाद से कभी न करना, यह विद्या तुम्हारे कल्याण के लिये होगी।।६२।। तुम साधक को सब प्रकार धैर्य धारण करना चाहिये, शिवजी रक्षा करनेवाले हैं, सम्पत्तियों के तुल्य फल को देंगे, इसमें कुछ सन्देह नहीं है।।६३।। नन्दीश्वर बोले- इस प्रकार उस अर्जुन को वरदान देकर इन्द्र शिवजी के चरणकमलों को स्मरण करते हुए अपने धाम को गये।।६४।। बड़े पराक्रमी अर्जुन भी शिवजी को प्रणाम करके संयम चित्त से उसी प्रकार शिवजी के उद्देश्य से तप करने लगा।।६५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
किरातावतारप्रसंगेऽर्जुनतपोवर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः।। ३८ ।।

*****

उन्तालीसवाँ अध्याय

नन्दीश्वर बोले- तब अर्जुन ने विधिपूर्वक स्नान तथा यथाविधि न्यास आदि करके श्रेष्ठ भक्ति के सहित व्यासजी के कहने के अनुसार शिवजी का ध्यान किया।।१।। एक पाद के तलुवे पर मुनि के समान स्थित होकर सूर्य में एक दृष्टि लगाकर, मन्त्र को जपता हुआ स्थित रहा।।२।। मन से शिवजी को स्मरण करता, मन से ही शिवजी का सर्वोत्तम पंचाक्षर मन्त्र जपता हुआ, प्रीति से तप करने लगा।।३।। उसके तप का तेज इस प्रकार फैला कि, देवता भी विस्मित हो गये और वे देवता शिवजी के समीप जाकर सावधान होकर बोले।।४।। देवता बोले- हे प्रभो! हे सर्वेश! एक मनुष्य आपके अर्थ तप करता है, वह मनुष्य जो इच्छा करता है, सो आप क्यों नहीं देते?।।५।। नन्दीश्वर

बोले– ऐसा कहकर वे देवता अनेक प्रकार की स्तुति करने लगे और स्थित समाधि लगाये हुए शिवजी के चरणों में नेत्र लगाकर वहां स्थित हुए।।६।। महाप्रभु, उदारबुद्धि, प्रसन्नात्मा शिवजी उन देवताओं के वचन को सुनकर हँसते हुए उनसे बोले।।७।। शिवजी बोले– आप देवता अपने–अपने स्थानों को जाइये, सब प्रकार मैं आपका कार्य करूंगा, इसमें कुछ संशय नहीं।।८।। नन्दीश्वर बोले– यह शम्भुजी का वचन सुनकर परम निश्चय को प्राप्त हुए, वे सब देवता अपने स्थानों को गए।।९।। इसी अवसर में दुष्टात्मा दुर्योधन से भेजा हुआ मूक नामक दैत्य सूकर (सूअर) का रूप धारण करके आया।।१०।। हे विप्रेन्द्र! कपट करनेवाले दुर्योधन ने उसे अर्जुन के समीप भेजा, जहां अर्जुन स्थित था, उसी मार्ग से वह निकला।।११।। वह अपने वेग से पर्वतों को तोड़ता, अनेक वृक्षों को उखाड़ता हुआ तथा अनेक प्रकार के शब्द करता हुआ अति वेग से चला।।१२।। उस समय अर्जुन मूक नामक उस दैत्य को देखकर शिवजी के चरणकमलों को स्मरण करते हुए विचारने लगा।।१३।। अर्जुन बोला– यह कौन है, कहां से आता है? यह क्रूर कर्म करनेवाला दीखता है, निःसन्देह यह मेरा अनिष्ट करने आता है।।१४।। मेरे मन में यह आता है कि, शत्रु ही है, इसमें सन्देह नहीं, मैंने पहले अनेक दैत्य मारे हैं।।१५।। उनका कोई सम्बन्धी बैर साधने को आया है अथवा कोई दुर्योधन का हित करनेवाला मित्र आया है।।१६।। जिसे देखने पर अपना मन प्रसन्न हो, वह निश्चय ही हितकारी है तथा जिसे देखने पर मन व्याकुल हो, वह शत्रु ही है।।१७।। आचरण ही कुल को कहता है और शरीर भोजन को कहता है, वचन शास्त्र को कहता है और नेत्र स्नेह को कहते हैं।।१८।। बाहरी आकृति, गति और चेष्टा तथा सम्भाषणों से नेत्र और मुख के विकार से भीतरी मन की बात जानी जाती है।।१९।। उज्ज्वल, सरस, टेढ़े और चारों ओर से लाल, यह चार प्रकार के नेत्र हैं, पण्डितों ने इनके पृथक्–पृथक् भाव कहे हैं।।२०।। मित्र के मिलने पर नेत्र उज्ज्वल होते हैं और पुत्र के दर्शन में सरस तथा स्त्री के योग में बाँके और शत्रु को देखने पर सब ओर लाल हो जाते हैं।।२१।। इसे देखने पर मेरी इन्द्रियां व्याकुल होती हैं, इससे यह शत्रु ही है और निःसन्देह मारने योग्य है।।२२।। और यह मेरे गुरु का वचन भी है, कि हे राजन्! तुम सब प्रकार दुःख देनेवाले को मार डालना, उसमें कुछ विचार न करना।।२३।। इसी कारण मेरे पास यह शस्त्र है, इसमें सन्देह नहीं, ऐसा विचार करके बाण निकालकर अर्जुन स्थित हुआ।।२४।। इसी अवसर में वहां अर्जुन की रक्षा के निमित्त तथा उसकी भक्ति की परीक्षा करने को भक्तवत्सल शिवजी।।२५।। गणों के सहित उस दैत्य का नाश करने के निमित्त चतुर भील के बड़े अद्भुत रूप को तत्काल धारण करके आये।।२६।। कच्छ बाँधे वस्त्रों से बंधी हुई शिवजी की ध्वजावाले शरीर में श्वेतरेखा, स्वयं धनुषबाण धारण किये हुए।।२७।। पीठ पर बाणों के तर्कस को धारण किये,

गणों के सहित शिवजी भीलों के राजा बने ।।२८।। तब वह भील अनेक शब्दों को करते हुए चला और उस सूकर का शब्द भी दशों दिशाओं में फैल गया ।।२९।। उस भील के शब्द से अर्जुन व्याकुल हो गया और उन शब्दों से पर्वत आदिक सब व्याकुल हुए ।।३०।। अहो! यह क्या हुआ? शंकरजी मंगल करेंगे, मैंने पहले श्रीकृष्णजी के मुख से सुना था ।।३१।। तथा व्यासजी ने भी कहा था और देवताओं ने भी स्मरण करके कहा था, कि- शिवजी मंगलकारी हैं, शुभ करनेवाले तथा सुख देनेवाले हैं ।।३२।। मुक्तिदान करने से वे स्वयं 'मुक्तिद' नामवाले कहे हैं, उनके नाम स्मरण करने से निश्चय ही मनुष्यों का कल्याण होता है ।।३३।। उनके भजन करनेवालों को स्वप्न में भी दुःख नहीं होता है, जब कभी होता है, तो वह कर्म से उत्पन्न जानना चाहिये ।।३४।। होनहार ही बहुत और थोड़ी हो जाती है, इसमें कुछ संशय नहीं है अथवा विशेष कर प्रारब्ध का दोष जानना चाहिये ।।३५।। अथवा शिवजी ही अधिक वा न्यून भोगों को दूर करके अपनी इच्छा से उसका दुःख दूर करते हैं ।।३६।। समर्थ शिवजी विष को अमृत कर सकते हैं तथा अमृत को विष कर सकते हैं, जो-जो इच्छा करते हैं, उन्हें कौन निषेध कर सकता है?।।३७।। ऐसा विचार करके पुरातन तथा भावी भक्तों ने शिवजी में मन स्थिर किया है ।।३८।। लक्ष्मी चली जाय अथवा रहे, मृत्यु निकट हो अथवा युगान्तर में हो, चाहे मनुष्य निन्दा अथवा दुःख संक्षय रूप स्तुति करे ।।३९।। पुण्य तथा पापों के कारण ही शिवजी निरन्तर सुख-दुःख देनेवाले होते हैं अथवा कभी-कभी परीक्षा करने के लिये दुःख देते हैं ।।४०।। अन्त में दयालुता भाव होने से सुख देते हैं, इसमें कुछ संशय नहीं, जैसे शुद्ध किया सुवर्ण शुद्धि को प्राप्त होता है, ऐसे वे परीक्षा से भक्त को शुद्ध करते हैं ।।४१।। मैंने पहले इस प्रकार मुनि के मुख से सुना था, इस कारण उनके भजन से ही मैं उत्तम सुख को पाऊंगा ।।४२।। वह अर्जुन जब ऐसा विचार कर रहा था, उसी समय वह सूकर वहां आया और उसी समय अर्जुन ने बाण चढ़ाया ।।४३।। इधर शिवजी भी उस सूकरके पीछे लगे आये, तब उन दोनों के बीच में वह सूकर अद्भुत पर्वत के शिखर के समान दिखाई दिया ।।४४।। अर्जुन ने शिवजी का माहात्म्य कहा, तो भक्तवत्सल, कल्याणकारी शिवजी अर्जुन की रक्षा के लिये शीघ्र ही वहां प्राप्त हुए ।।४५।। इसी अवसर में उन दोनों अर्जुन और शिवजी ने एक साथ बाण छोड़े, तो शिवजी का बाण पूंछ में तथा अर्जुन का बाण मुख में लगा ।।४६।। शिवजी का बाण पूंछ में प्रवेश करके शीघ्र ही मुख में से निकलकर भूमि में प्रवेश कर गया और अर्जुन का बाण मुख में प्रवेश करके पूंछ से निकलकर निकट में गिरा और वह शूकर दैत्य उसी समय मर गया और भूमि पर गिर पड़ा ।।४७-४८।। देवता परमहर्ष को प्राप्त हुए और उन्होंने बारंबार प्रणाम करके जय शब्दपूर्वक स्तुति करके फूलों की वर्षा की ।।४९।। शिवजी सन्तुष्ट हुए और अर्जुन सुख को प्राप्त हुआ, उस समय उन दोनों ने

दैत्य का भयंकर रूप देखा ।।५०।। अर्जुन ने अतिप्रसन्नचित्त से कहा, कि क्या आश्चर्य है ? कि यह दैत्य है, इसका रूप परम अद्भुत है ।।५१।। यह शूकर रूप में मुझे मारने के लिये आया था, तब शिवजी ने मेरी रक्षा की , ईश्वर ने आज मुझे बुद्धि दी, इसमें कुछ सन्देह नहीं ।।५२।। ऐसा विचार करके अर्जुन ने वहां शिव! शिव! जप किया और शिवजी को प्रणाम करके वारंवार स्तुति की ।।५४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
किरातावतारवर्णने मूकदैत्यवधो नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।। ३९ ।।

*****

चालीसवाँ अध्याय

नन्दीश्वर बोले– हे सर्वज्ञ! हे सनत्कुमारजी! परमात्मा शिवजी की भक्तवत्सलता से युक्त उनमें दृढ़भक्ति करनेवाली लीला सुनिये ।।१।। उन शिवजी ने भी शीघ्र ही अपने सेवकों को भेजा और उसी समय वहां अर्जुन भी बाण लेने को आया ।।२।। एक ही समय में बाण लेने को शिवजी का गण तथा अर्जुन दोनों ही प्राप्त हुए, तब अर्जुन ने उस गण को ललकार के अपना बाण ले लिया ।।३।। गण बोला– कि तुम किस कारण लेते हो ? हे ऋषिसत्तम! यह दोनों बाण हमारे हैं, इनको छोड़ दो ।।४।। उस प्रकार वह मुनिश्रेष्ठ अर्जुन भील के गण के वचन सुनकर शिवजी को स्मरण करके उससे यह वचन बोला ।।५।। अर्जुन बोला– हे वनेचर! तू बिना जाने क्या कहता है ? हे मूर्ख! बाण तो मैंने छोड़ा है, तेरा किस प्रकार हो सकता है ?।।६।। यह रेखा रूप पिच्छ मेरे नाम से अंकित है, तेरा कैसे हो सकता है ? तेरा स्वभाव ही लुटेरों का है ।।७।। नन्दीश्वर बोले– ऐसा अर्जुन का वचन सुनकर वह गणेश्वर भील हँसकर उस ऋषि रूप अर्जुन से बोला ।।८।। हे तापस! तू कुछ तप नहीं करता, तूमने छल से तपस्वी वेष धारण किया है, यथार्थ में तपस्वी नहीं है ।।९।। तू तपस्वी मनुष्य होकर क्यों मिथ्या भाषण करता है ? तू मुझ भील को अकेला मत जानो ।।१०।। बहुत से वन के भीलों सहित हमारे स्वामी खड़े हैं, सो सब प्रकार विग्रह तथा अनुग्रह करने में समर्थ है ।।११।। उनका ही यह बाण है, जो अब तूमने लिया है, यह बाण तेरे पास कभी भी नहीं रह सकेगा ।।१२।। हे तापस! तू तप का फल क्यों त्यागना चाहता है ? चोरी से, छल करने से, पीड़ा देने से, विस्मय से तथा सत्य का त्याग करने से ।।१३।। मनुष्य अपने तप से नष्ट होता है, यह मैंने सुना है, इस कारण तेरे तप का फल कहां से होगा ?।।१४।। इस कारण तू बाण को न छोड़ने से कृतघ्नी होगा, मेरे ही स्वामी ने निश्चय यह बाण तुझे

बचाने को छोड़ा है ।।१५।। उस बाण से तेरा शत्रु मारा गया और तूमने बाण भी रख लिया, तू अत्यन्त कृतघ्न है और तेरे तब के विषय में अशुभ होनेवाला है ।।१६।। तू सत्य नहीं बोलता, क्या इससे सिद्धि की इच्छा करता है ? यदि तेरा बाण से प्रयोजन है, तो मेरे स्वामी से मांग ।।१७।। वे स्वयं ऐसे बहुत से बाण देने में समर्थ हैं, वह हमारे राजा हैं, उनसे तू क्यों नहीं मांगता ?।।१८।। उपकार को छोड़कर अपकार की इच्छा करता है, तुझे अब यह करना योग्य नहीं है, चपलता का त्याग कर ।।१९।। नन्दीश्वर बोले– ऐसा उस गण का वचन सुनकर अर्जुन उस समय क्रोध करके शिवजी का स्मरण करते परिमित वचन कहने लगा ।।२०।। अर्जुन बोला– हे भील! हे वनेचर! सुन, जो मैं कहता हूं, तेरा कहना सत्य नहीं है, जैसी तेरी जाति है, वैसा ही तुझे जानता हूं।।२१।। मैं राजा हूं, तुम चोर हो, युद्ध किस प्रकार ठीक है ? मुझे बलवानों के साथ युद्ध करना चाहिये, अधर्मियों के साथ कभी न करना चाहिये ।।२२।। इस कारण तेरा स्वामी भी तुझ सा ही होगा, हम लोग दाता कहे गये हैं, तुम भील चोर हो ।।२३।। हे वनेचर! मैं भीलों के राजा से कैसे याचना कर सकता हूं ? तू ही मुझसे बाण क्यों नहीं मांगता ?।।२४।। मैं ऐसे अनेकों बाणों को तुझे दे सकता हूं, तेरा राजा ग्रहण करे, वह ऐसे बाण नहीं दे सकता है ।।२५।। हे वनेचर! बहुत क्या है ? मैं ऐसे अनेक बाण दे सकता हूं, यदि तेरे स्वामी की इच्छा हो, तो मांगने को तेरा स्वामी क्यों नहीं आता है ?।।२६।। तेरा स्वामी ही मेरे पास क्यों न आये अथवा यह क्यों कहूं वह आकर मेरे साथ युद्ध करके मुझे जीते?।।२७।। तब तेरा स्वामी भीलों का राजा, इस बाण को लेकर अपने स्थान को सुख से चला जाय, देर क्यों करता है?।।२८।। नन्दीश्वर बोले– शिवजी की कृपा से सुन्दर बल प्राप्त करनेवाले अर्जुन का यह वचन सुनकर वह भील बोला ।।२९।। भिल्ल बोला– तू मूर्ख है, ऋषि नहीं है, क्यों मरने की इच्छा करता है ? बाण दे और सुख से रह, नहीं तो क्लेश का भागी होगा ।।३०।। नन्दीश्वर बोले– शिवजी की शक्ति से शोभायमान उस भील से इस प्रकार कहा हुआ पाण्डव अर्जुन, शिवजी का स्मरण करके उस गण से बोला ।।३१।। अर्जुन बोला– हे वनेचर! हे भिल्ल! तत्त्वपूर्वक मेरे वचन को सुन, जब तेरा स्वामी आयेगा, तब इसका फल दिखाऊंगा ।।३२।। तेरे साथ युद्ध नहीं करूंगा, तेरे स्वामी के साथ युद्ध करूंगा, सिंह और गीदड़ का युद्ध हँसी करनेवाला होता है ।।३३।। हे भिल्ल! तू ने मेरा वचन सुना, अब महाबल को भी देखेगा, तू अपने स्वामी के समीप जा और जैसी इच्छा हो, वैसा कर ।।३४।। नन्दीश्वर बोले– हे मुने! अर्जुन से इस प्रकार कहा हुआ भील वहां गया, जहां पर शिवजी का अवतार रूप भिल्लराज था ।।३५।। वह अर्जुन का वचन भील की आत्मावाले भीलों के राजा से सब विस्तार पूर्वक निवेदन किया ।।३६।। वह वचन सुनकर किरातेश्वर शिवजी हर्ष को प्राप्त होकर भील का रूप धारण किये अपनी सेना

के सहित वहां आये ।।३७।। पाण्डव अर्जुन भी किरात की सेना को देखकर बाण सहित धनुष लेकर उनके सम्मुख हुआ ।।३८।। तब किरात ने भी अपने दूत को भेजा और दूतमुख से महात्मा अर्जुन से यह वचन कहा ।।३९।। किरात बोला– हे तपस्विन्! सेना को देखो और अब भी बाण दे दो, इस समय थोड़े कार्य के निमित्त क्यों मृत्यु की इच्छा करते हो?।।४०।। तुम्हारे भाई दुःख से व्याकुल हैं और स्त्री भी अति दुःखी है और पृथ्वी भी तेरे हाथ से चली जायेगी, यह मैं जानता हूं।।४१।। नन्दीश्वर बोले– सब प्रकार अर्जुन की रक्षा के निमित्त रूप धारण किये हुये, सब के स्वामी शिवजी ने अर्जुन की दृढ़ परीक्षा के कारण ऐसा कहा ।।४२।। ऐसा कहकर गणों सहित शम्भुजी से वहां आकर विस्तार पूर्वक सब वृत्तान्त अर्जुन से निवेदन किया ।।४३।। यह सुनकर उस आये हुए दूत से फिर अर्जुन ने कहा कि, भिल्लराज से कहना कि, सब उलटा ही होगा ।।४४।। यदि मैं तुझे अपना बाण दूंगा तो मेरे कुल को दोष (पराजय रूप) होगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है।।४५।। निश्चय ही हमारे भाई दुःख से व्याकुल हों और विद्या भी निष्फल हो, पर वह भील अवश्य ही युद्ध को आवे ।।४६।। मैंने सिंह को गीदड़ से डरा हुआ कभी नहीं सुना, इसी प्रकार वनेचर (भील) से राजा कभी नहीं डरता है ।।४७।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार पाण्डव अर्जुन से कहा हुआ भील अपने स्वामी के पास जाकर उस अर्जुन के कहे सम्पूर्ण वृत्तान्त को विशेष कर वर्णन करने लगा ।।४८।। तब किरात नामक महादेवजी यह वचन सुनकर सेना सहित अर्जुन के समीप आये ।।४९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
किरातावतारवर्णने भिल्लार्जुनसंवादो नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४० ।।

*****

इकतालिसवाँ अध्याय

अर्जुन ने उनको आया देखकर शिवजी का ध्यान करके उनके सम्मुख जाकर उनके साथ अति घोर युद्ध किया ।।१।। तब भिल्लराज ने अनेक गणों सहित तीव्र शस्त्रों से अर्जुन को पीड़ा दी, उससे पीड़ा को प्राप्त हुआ अर्जुन अपने स्वामी शिवजी का स्मरण करने लगा ।।२।। और अर्जुन ने उसके बाण समुदाय को काट डाला और जब युद्ध में बाण छोड़े, तो शिवजी ने सहन कर लिये ।।३।। अर्जुन से पीड़ा दिये हुए वे गण दशों दिशाओं में भागने लगे और निवारण करने पर भी वे गणाध्यक्ष अपने स्वामी के समीप नहीं गये ।।४।। महाबल तथा पराक्रमवाले शिवजी और अर्जुन अनेक प्रकार के शस्त्रों से परस्पर युद्ध करने लगे ।।५।। शिवजी मन से दया करके अर्जुन के समीप गये, उस

समय वहां अर्जुन ने उन पर बड़ा दृढ़ प्रहार किया ।।६।। तब शिवजी ने अर्जुन के सब अस्त्रों को काट डाला तथा कवच काट दिया, केवल अर्जुन का शरीर मात्र स्थित रह गया ।।७।। तब अर्जुन ने शिवजी का स्मरण करके मल्लयुद्ध किया और वह उस भिल्लराज से भय मानकर क्लेशित होते हुए भी वह अर्जुन धैर्यवान् रहा ।।८।। उस संग्राम में समुद्र सहित सब पृथ्वी कांपने लगी, देवता दुःख को प्राप्त हुए कि, अब क्या होगा ?।।९।। इसी अवसर में शिवजी आकाश में स्थित होकर युद्ध करने लगे, तब उसी प्रकार अर्जुन भी वहीं स्थित होकर युद्ध करने लगा ।।१०।। वे दोनों शिवजी और अर्जुन उड़-उड़कर युद्ध करते थे, उस समय अद्‌भुत संग्राम देखकर देवता विस्मय को प्राप्त हुए ।।११।। तब अर्जुन उसको अधिक जानकर शिवजी के चरणकमलों को स्मरण करके उनके ध्यान से श्रेष्ठ बल को प्राप्त कर उनके चरणों को पकड़ लिया ।।१२।। शंकरजी के चरणों को पकड़कर उसने घुमाया, तब भक्तवत्सल, लीला करनेवाले महादेवजी हँसे ।।१३।। हे मुने! भक्त के वश में हुए शिवजी ने अर्जुन को अपना दासत्व प्रदान करने के निमित्त यह चरित्र किया, अन्यथा ऐसा कभी नहीं होता ।।१४।। इसके पश्चात् शंकरजी ने अपने भक्त के वशीभूत होकर सहसा हँसकर अपना अद्‌भुत सुन्दर रूप दिखाया ।।१५।। जैसा वेद और शास्त्रों में कहा है और पुराणों में पुरुषोत्तम रूप कहा है तथा जैसा अर्जुन के ध्यान के लिये व्यासजी ने उपदेश किया था, वह रूप दिखाया, जो सब सिद्धियों का देनेवाला है ।।१६।। ध्यान से प्राप्त हुए शिवजी के उस सुन्दर रूप को देखकर अर्जुन अतिविस्मित होकर स्वयं लज्जित हो गया ।।१७।। अहो शोक! यह तो कल्याणकारी शिवजी हैं, जो मेरी प्रभुता से पूर्ण हैं, जो स्वयं साक्षात् त्रिलोकी के ईश्वर हैं, इस समय मैंने क्या किया ?।।१८।। उन प्रभु की माया बड़ी बलवान् है, माया करनेवालों को भी मोहनेवाली है, क्या किया जो प्रभु ने अपना रूप छिपाकर मुझे छला ?।।१९।। अपनी बुद्धि से ऐसा विचार कर हाथ बांधकर, माथा झुकाकर उन प्रभु शिवजी को प्रणाम किया और उस समय दुःखी मन से कहा ।।२०।। अर्जुन बोला- हे देव देव! हे महादेव! हे करुणाकर! हे शंकर! हे सर्वेश! आपको मेरा अपराध क्षमा करना चाहिये ।।२१।। हे प्रभो! यह आपने क्या किया जो अपने रूप को छिपाकर मुझे छला ? आप स्वामी के साथ युद्ध करनेवाले मुझे धिक्कार है ।।२२।। नन्दीश्वर बोले- इस प्रकार वह पाण्डव अर्जुन पश्चात्ताप करने लगा और महाप्रभु शिवजी के चरणों में गिर पड़ा ।।२३।। तब भक्तवत्सल महेश्वरजी प्रसन्न होकर उसे अनेक प्रकार आश्वासन देते हुए अर्जुन से बोले ।।२४।। शिवजी बोले- हे पार्थ! तू खेद मत कर, तू मेरा विशेष भक्त है, आज मैंने तुम्हारी परीक्षा की, तू शोक त्याग दे ।।२५।। नन्दीश्वर बोले- ऐसा कहकर प्रभु शिवजी ने अर्जुन को अपने हाथों से उठाकर अपने गणों से उसे लज्जा रहित कराया ।।२६।। फिर भक्तवत्सल, कल्याण

करनेवाले शिवजी वीरों के माननीय पाण्डव अर्जुन को प्रसन्न करते हुए बोले।।२७।। शिवजी बोले– हे पार्थ! हे पाण्डवश्रेष्ठ! मैं प्रसन्न हूं, वर मांग, आज मैंने तेरे प्रहारों से तथा ताडन से पूजन (सत्कार) माना है।।२८।। इस समय अपनी इच्छा से तूमने मेरा अपराध नहीं किया, तेरे लिये कुछ भी अदेय नहीं है, जो इच्छा हो, सो मांग।।२९।। शत्रुओं में तेरा यश, राज्य स्थापन करने के लिये यह कल्याण किया, इसका दुःख नहीं करना चाहिये, तू सम्पूर्ण खेद को त्याग दे।।३०।। नन्दीश्वर बोले– इस प्रकार उन प्रभु शंकरजी ने अर्जुन से कहा, तब वह सावधानी से भक्तिपूर्वक शिवजी से बोला।।३१।। अर्जुन बोला– हे सुप्रभो! हे सदाशिव! हे देव! आप भक्तों के प्रिय हो, आप शम्भुजी की चेष्टा मुझसे क्या वर्णन हो सकती है? आप कृपालु हैं।।३२।। ऐसा कहकर अर्जुन उन महाप्रभु शंकरजी की स्तुति करने लगा तथा वेदसम्मत सद्भक्ति करने लगा।।३३।। अर्जुन बोला– आप देवों के देव को नमस्कार है, कैलासवासी आपको नमस्कार है, हे सदाशिव! आपको नमस्कार है तथा पांच मुखवाले आपको नमस्कार है।।३४।। आप कपर्दी को नमस्कार है तथा तीन नेत्रवाले आपको नमस्कार है, प्रसन्नरूप आपको नमस्कार है तथा सहस्र वदनवाले, आपको नमस्कार है।।३५।। हे नीलकण्ठ! हे वृषभध्वज! आपको नमस्कार है, सद्योजात रूप आपको नमस्कार है, जिनके वाम अंग में पार्वती स्थित हैं, ऐसे आपको नमस्कार है।।३६।। हे दश भुजाओंवाले आपको नमस्कार है, आप परमात्मा को नमस्कार है, डमरू तथा कपाल हाथ में लिये आपको नमस्कार है, मुण्डमालाधारी आपको नमस्कार है।।३७।। हे शुद्ध स्फटिक मणि के समान प्रकाशित कपूर के समान शरीरवाले! आपको नमस्कार है, पिनाकपाणी आपको तथा त्रिशूलधारी आपको नमस्कार है।।३८।। बाघंबर ओढ़े हुए आपको नमस्कार है, हस्ती के चर्मधारी आपको नमस्कार है, अंगों में सर्प धारण करनेवाले आपको नमस्कार है, हे गंगाजी को धारण करनेवाले! आपको नमस्कार है।।३९।। हे सुपाद! आपके निमित्त नमस्कार है तथा लाल चरणोंवाले आपको नमस्कार है, नन्दीगण आदि के सेव्य आपको नमस्कार है, गणेश रूप आपको नमस्कार है।।४०।। गणेश रूप आपको नमस्कार है तथा कार्तिकेय के अनुगामी आपको नमस्कार है, भक्तों को भक्ति देनेवाले आपको नमस्कार है, मुक्ति देनेवाले आपको बारंबार नमस्कार है।।४१।। अगुण रूप आपको तथा सगुण रूप आपको नमस्कार है, अरूप आपको तथा सरूप आपको नमस्कार है, कला सहित आपको तथा बिना कलावाले आपको नमस्कार है।।४२।। किरात रूप आपको तथा मेरे अनुग्रह करनेवाले आपको तथा युद्धप्रिय आपको, वीरों को अनेक लीला दिखानेवाले आपको नमस्कार है।।४३।। जो कुछ रूप दीखता है, वह आपका ही तेज है, आप तीनों लोकों में चिद् (ज्ञान) स्वरूप होकर अन्वय के भेद से रमण करते हो।।४४।। आपके गुणों की संख्या नहीं है, जैसे भूमि के कण,

आकाश के तारे, वर्षा के जलकणों की गणना नहीं है।।४५।। हे नाथ! ऐसे ही आपके गुणों की गणना करने के लिये वेद भी समर्थ नहीं है, तो फिर मैं मूढ़बुद्धि किस प्रकार वर्णन कर सकता हूं।।४६।। हे महेशान! हे महेश्वर! आप जो हैं, सो ही हैं, आपको नमस्कार है, आप मेरे ऊपर कृपा करने के योग्य हैं, मैं आपका दास हूं, आप मेरे स्वामी हैं।।४७।। नन्दीश्वर बोले- ऐसा उस अर्जुन का वचन सुनकर प्रभु शिवजी प्रसन्न होकर हँसते हुए अर्जुन से फिर बोले।।४८।। शिवजी बोले- हे पुत्र! बहुत कहने से क्या प्रयोजन है? मेरा वचन सुनो, शीघ्र ही वर मांगो, मैं तुझे सब कुछ देता हूं।।४९।। नन्दीश्वर बोले- इस प्रकार शिवजी के वचन सुनकर अर्जुन ने सदाशिवजी को प्रणाम करके अंजलि बांधकर नम्र होकर प्रेम से गद्‌गद होकर कहा।।५०।। अर्जुन बोला- हे विभो! मैं क्या कहूं? आप सबों के अन्तर्यामी हैं, तो भी आप आज मेरी प्रार्थना सुनिये।।५१।। जो कुछ शत्रुओं का संकट था, सो अब आपके दर्शन से दूर हुआ, जिस प्रकार मैं इस लोक की सिद्धि को पाऊं, सो करें।।५२।। नन्दीश्वर बोले- ऐसा कहकर कन्धे झुकाकर, हाथ बांधे वह अर्जुन उन भक्तवत्सल शिवजी को नमस्कार करके बैठ गया।।५३।। स्वामी शिवजी भी पाण्डव अर्जुन को अपना परमभक्त जानकर बड़े सन्तुष्ट हुए।।५४।। अपना पाशुपत अस्त्र जो सब से दुर्जेय था, वह अर्जुन को दिया और शिवजी यह वचन बोले।।५५।। शिवजी बोले- मैंने अपना अस्त्र (पाशुपतास्त्र) तुम्हें दिया, इससे तू दुर्जेय होगा, इस अस्त्र से सब शत्रुओं पर विजय को प्राप्त हो।।५६।। और मैं श्रीकृष्णजी से कहुँगा वह तुम्हारी सहायता करेंगे, वह मेरे भक्त तथा आत्मा हैं और कार्य करनेवाले हो।।५७।। हे भारत! मेरे प्रभाव से तू निष्कण्टक (बिना उपद्रव) राज्य कर और निरन्तर भाइयों से अनेक प्रकार के धर्म करो।।५८।। नन्दीश्वर बोले- ऐसा कहकर अर्जुन से सत्कार किये हुए शंकरजी (शिवजी) उस अर्जुन के सिर पर हाथ धर के अन्तर्धान हो गये।।५९।। और अर्जुन प्रसन्न होकर शिवजी के सुन्दर अस्त्र को पाकर भक्ति से मुख्य शिवगुरु को स्मरण करता हुआ अपने आश्रम को आया।।६०।। उससे मिलकर वे सब भाई बड़े प्रसन्न हुए, जैसे प्राण आ गये और पतिव्रता द्रौपदी ने बड़ा सुख पाया।।६१।। वे सब युधिष्ठिर आदि पाण्डव शिवजी को परम सन्तुष्ट हए जानकर तथा सम्पूर्ण वृत्तान्त को सुनकर बड़े हर्ष को प्राप्त हुए और उस हर्ष से तृप्त न हुए।।६२।। उन महात्मा पाण्डवों के आश्रम में मंगल के निमित्त चन्दन से युक्त हुई फूलों की वर्षा हुई।।६३।। शिवजी को धन्य है, यह कहकर आनन्द के साथ नमस्कार किया और अवधि को आया जानकर, उन्होंने विजय की इच्छा की।।६४।। इसी अवसर में श्रीकृष्णजी अर्जुन को आया सुनकर उनसे मिलने को आये और बड़े सुख को प्राप्त हुए।।६५।। और बोले, इसी कारण मैंने कहा था कि, शंकरजी सब दुःखों को नष्ट करनेवाले हैं, वह मुझसे सेवन किये जाते हैं, आप भी

उनका नित्य सेवन करें ।।६६।। इस प्रकार किरात नामक शिवजी का अवतार आपसे कहा, उसे सुनकर तथा सुनाकर मनुष्य सब मनोरथों को प्राप्त होता है ।।६७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
किरातावतारवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४१ ।।

*****

(८८ अवतार समाप्त हुए)

बयालीसवाँ अध्याय

नन्दीश्वर बोले– हे मुने! सर्वव्यापक शिवजी के अनेक लीला करनेवाले, ज्योतिर्लिंग स्वरूप बारह संख्यावाले परम अवतारों को सुनिये ।।१।। सौराष्ट्र में 'सोमनाथ', श्रीशैल में 'मल्लिकार्जुन' अवतार तथा उज्जयिनी में 'महाकाल', ओंकार में 'अमरेश्वर' ।।२।। हिमालय पर्वत पर 'केदार' तथा डाकिनी में 'भीमशंकर', काशी में 'विश्वनाथ' तथा गौतमी के तट पर 'त्र्यम्बक' ।।३।। चिताभूमि में 'वैद्यनाथ', दारुकवन में 'नागेश', सेतुबन्ध में 'रामेश' तथा शिवालय में 'घुश्मेश' अवतार है ।।४।। हे मुने! यह परमात्मा शिवजी के बारह अवतार हैं, मनुष्यों को दर्शन करने तथा स्पर्श करने से परम आनन्द देनेवाले हैं ।।५।। हे मुने! उनमें से पहला सोमनाथ चन्द्रमा के दुःख का नाश करनेवाला है, उसका पूजन करने से क्षय तथा कुष्ठ आदि रोगों का नाश होता है ।।६।। सोमेश (सोमनाथ) नामक शिवजी का अवतार सुन्दर सौराष्ट्र देश में लिंग रूप से स्थित है, उसे पहले चन्द्रमा ने पूजा था ।।७।। वहां चन्द्रकुण्ड है, जो सब पापों का नाश करनेवाला है, बुद्धिमान् पुरुष वहां स्नान करके सब रोगों से छूट जाता है ।।८।। शिवजी के आत्मा स्वरूप सोमनाथ महालिंग का दर्शन करके मनुष्य पापों से छूटता है और भुक्ति तथा मुक्ति को प्राप्त होता है ।।९।। हे तात! शिवजी का दूसरा श्रीगिरि पर्वत पर मल्लिकार्जुन नामक अवतार है, जो भक्तों को मनोवांछित फल देनेवाला है ।।१०।। हे मुने! पुत्र के दर्शन के हेतु लिंग के रूप से स्तुति किये गये थे, वहां से शिवजी बड़ी प्रसन्नता पूर्वक अपने कैलास पर्वत को गये थे ।।११।। हे मुने! यह दूसरा ज्योतिर्लिंग है, उसका दर्शन करने से बड़ा सुख प्राप्त होता है और अन्त समय निःसन्देह मुक्ति का देनेवाला है ।।१२।। हे तात! उज्जयिनी नगरी में अपने परिवार की रक्षा के निमित्त शिवजी का महाकाल नामक अवतार हुआ है ।।१३।। जिसने उज्जयिनी में प्राप्त हुए ब्राह्मणों के द्वेषी, महानाशक, वेदधर्म नष्ट करनेवाले दूषण नामक दैत्य को ।।१४।। जो वेदप्रिय के पुत्र को मारने आया था, जो वेदप्रिय का पुत्र शिवजी

का ध्यान करता हुआ रत्नमाल देश में रहता था, वहां उस राक्षस को हुंकार मात्र से शिवजी ने उसी समय नष्ट कर दिया ।।१५।। तब महाकाल नामक ज्योतिर्लिंग के स्वरूप से उस दैत्य को मारकर अपने भक्तों का पालन करनेवाले देवताओं से प्रार्थना किये हुए शिवजी वहां स्थित हुए ।।१६।। इस महाकाल नामक लिंग का दर्शन करके तथा यत्नपूर्वक पूजन करके, सब कामों को प्राप्त होकर अन्त में श्रेष्ठ गति को प्राप्त होता है ।।१७।। ओंकार नामक शिवजी का चौथा अवतार है, वह भक्तों के इच्छित फल का देनेवाला है ।।१८।। हे मुने! अपने पार्थिवलिंग के अनुसार भक्ति सहित विधिपूर्वक स्थापित महादेवजी प्रकट हुए और विन्ध्य के मनोरथ सिद्ध किये ।।१९।। वहां देवताओं से प्रार्थना किये हुए दो रूप धारण करके स्थित हुए भक्तवत्सल लिंग रूप शिवजी भोग और मुक्ति के देनेवाले हैं ।।२०।। हे मुनीश्वर! प्रणव में ओंकार नामक उत्तम लिंग है, वहां परमेश्वर नामक पार्थिव रूप हुए ।।२१।। हे मुने! जिनके दर्शन तथा पूजन करने से भक्तों को अभीष्ट फल मिलते हैं, हे महामुने! यह महादिव्य ज्योतिर्लिंग आपसे वर्णन किया ।।२२।। पांचवां केदारेश नामक अवतार ज्योतिर्लिंग स्वरूप से केदार में स्थित है ।।२३।। हे मुने! जो नरनारायण नामक भगवान् विष्णुजी के अवतार हैं, केदार व हिमालय पर्वत पर उनसे प्रार्थना किये हुए शिवजी ।।२४।। उन दोनों से पूजन किये गये केदारेश्वर नाम से प्रसिद्ध हुए हैं और दर्शन तथा पूजन करने से भक्तों को अभीष्ट फल देनेवाले हैं ।।२५।। हे तात! वह शिवजी का अवतार सबका ईश्वर तथा सब कामनाओं का देनेवाला और इस खण्ड का स्वामी है ।।२६।। महाप्रभु शिवजी का भीमशंकर नामक छठां अवतार बड़ी लीला करनेवाला, भीम असुर को नाश करनेवाला हुआ ।।२७।। जिसने भक्तों को दुःख देनेवाले उस अद्भुत दैत्य को मारकर सुदक्षिण नामक कामरूप देश के राजा की रक्षा की ।।२८।। वह भीमशंकर नाम से प्रसिद्ध होकर डाकिनी में स्वयंलिंग स्वरूप से स्थित हुए और सुदक्षिण भक्त ने उनकी बड़ी स्तुति की ।।२९।। हे मुने! विश्वेश्वर नामक सातवां अवतार काशी में हुआ, जो सब ब्रह्माण्ड का स्वरूप और भुक्ति तथा मुक्ति देनेवाला है ।।३०।। उनकी पूजा विष्णु आदि समस्त देवताओं ने की, वह कैलासपति और भैरवरूप से ।।३१।। तथा ज्योतिर्लिंग स्वरूप से वहां पर स्थित हैं और मुक्ति के देनेवाले स्वयं सिद्ध रूप तथा अपनी पुरी में स्वामी हैं।।३२।। काशी और विश्वनाथ को भक्ति से पूजनेवाले तथा उनके नाम को जपनेवाले अपने कर्मों से रहित होकर कैवल्य (मोक्ष) पद के भागी होते हैं ।।३३।। त्र्यम्बक नामक आठवां अवतार गौतमी के किनारे हुआ है, जो गौतम की प्रार्थना से प्रकट हुए हैं ।।३४।। शशिमौलि गौतम की प्रार्थना से ज्योतिर्लिंग सहित वहां अचल होकर उन मुनि की प्रीति और कामना से वहां स्थित हुए हैं ।।३५।। उन शिवजी के दर्शन तथा स्पर्श करने से सब इच्छाएँ पूर्ण होती हैं, पश्चात् मुक्ति प्राप्त होती है ।।३६।। वहां शिवजी के

अनुग्रह से गौतम की प्रीति के निमित्त गौतमी गंगा के नाम से प्रसिद्ध पवित्र करनेवाली नदी स्थित है ।।३७।। वहां पर नौवां वैद्यनाथ नामक अवतार कहा है, जहां पर अनेक लीला करनेवाले प्रभु शिवजी रावण के निमित्त प्रकट हुए थे ।।३८।। उस समय शिवजी को रावण लिये जाता था, वहां बहाना करके ज्योतिर्लिंग स्वरूप से चिताभूमि में स्थित हुए ।।३९।। और तीनों लोकों में वैद्यनाथेश्वर नाम से प्रसिद्ध हुए, वह दर्शन तथा भक्ति पूर्वक पूजन से भक्ति तथा मुक्ति देनेवाले हैं ।।४०।। हे मुने! वैद्यनाथेश्वर शिवजी इस माहात्म्य तथा अनुशासन को पढ़ने तथा सुननेवालों को भुक्ति और मुक्ति देनेवाले हैं ।।४१।। दसवां नागेश्वर नामक अवतार कहा है, जो अपने भक्तों को दुष्टों को निमित्त दण्ड देने के लिये प्रकट हुए हैं ।।४२।। जिन्होंने धर्म के नाशक दारुक नामक राक्षस को मारकर सुप्रिय नामक अपने भक्त वैश्य की रक्षा की ।।४३।। अनेक लीला करनेवाले शम्भुजी पार्वती सहित संसार के उपकार के निमित्त ज्योतिर्लिंग रूप धारण करके वहां स्थित हुए ।।४४।। हे मुने! उस नागेश्वर नामक शिवजी के लिंग का दर्शन तथा पूजन करके महापातकों के समूह शीघ्र ही नष्ट होते हैं ।।४५।। हे मुने! शिवजी का ग्यारहवां रामेश्वर नामक अवतार हुआ है, जो रामचन्द्रजी का प्रिय करनेवाला तथा रामचन्द्रजी से स्थापित हुआ है ।।४६।। ज्योतिर्लिंग स्वरूप भक्तवत्सल भगवान् शिवजी ने रामचन्द्रजी से सन्तुष्ट होकर उन्हें जय का वरदान दिया ।।४७।। हे मुने! रामचन्द्रजी से प्रार्थना किये हुए तथा रामचन्द्रजी से अति सेवा किये हुए ज्योतिर्लिंग स्वरूप से सेतुबन्ध में स्थित हुए हैं ।।४८।। पृथ्वी पर रामेश्वर की महिमा बड़ी अद्भुत है, वे भोग तथा मुक्ति देनेवाले और भक्तों की कामना पूर्ण करनेवाले हैं ।।४९।। जो मनुष्य उन रामेश्वर महादेवजी को श्रेष्ठभक्ति पूर्वक गंगाजल से स्नान कराता है, वह जीवन्मुक्त होता है ।।५०।। इस संसार में देवताओं से भी दुर्लभ सम्पूर्ण भोगों को भोगकर पीछे परमज्ञान को प्राप्त होकर कैवल्य मोक्ष को पाता है ।।५१।। शिवजी का घुश्मेश्वर नामक बारहवां अवतार है, जो भक्तों के ऊपर दया करनेवाला और घुश्मा को आनन्द देनेवाला है ।।५२।। हे मुने! दक्षिण दिशा में देवशैल के समीप सरोवर में घुश्मा के प्रिय करनेवाले प्रभु महादेवजी प्रकट हुए ।।५३।। हे मुने! जिन भक्तवत्सल शम्भुजी ने सुदेह्या दैत्य से मारे हुए घुश्मा के पुत्र को उसकी भक्ति से सन्तुष्ट होकर रक्षा की ।।५४।। उससे प्रार्थना किये हुए कामना देनेवाले प्रभु घुश्मेश्वर नामक शिवजी वहां सरोवर में ज्योतिर्लिंग स्वरूप से स्थित हुए ।।५५।। उस शिवलिंग का दर्शन तथा भक्ति से पूजन करके मनुष्य इस लोक में सब सुखों को भोगकर पश्चात् मुक्ति को प्राप्त होता है ।।५६।। यह भुक्ति–मुक्ति देनेवाली दिव्य बारह संख्यावाली ज्योतिर्लिंगावलि मैंने आपसे कही ।।५७।। जो मनुष्य इस ज्योतिर्लिंग कथा को पढ़ता अथवा सुनता है, वह सब पापों से छूटता है और भोग तथा मुक्ति को प्राप्त होता है ।।५८।। मैंने यह शतरुद्र नामक संहिता वर्णन की,

जो सौ अवतारों की सुन्दर कीर्ति रूप है और सम्पूर्ण कामनाओं के फल की देनेवाली है।।५९।। जो मनुष्य सावधान होकर शतरुद्र संहिता को पढ़ता अथवा सुनता है, वह कामनाओं को प्राप्त होता है, तत्पश्चात् निश्चय ही मुक्ति को प्राप्त होता है।।६०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीया शतरुद्रसंहितायां भाषायां
सनत्कुमारनन्दीश्वरसंवादे द्वादशज्योतिर्लिंगावतार वर्णनं नाम
द्विचत्वारिंशोऽध्यायः।। ४२ ।।

*****

।। समाप्तेयं तृतीया शतरुद्रसंहिता ।।

*****

दोहा–

शिवा भवानी के सहित, शंकर देव मनाय।
शतरुद्रिय शुभ संहिता, टीका लिखी बनाय।।१।।
बसत रामगंगा निकट, नगर मुरादाबाद।
भजन करत शिव को तहां, द्विज ज्वालापरसाद।।२।।

*****

ॐ

श्रीकृष्णद्वैपायनमहर्षिवेदव्यासविरचित

शिवमहापुराणभाषा

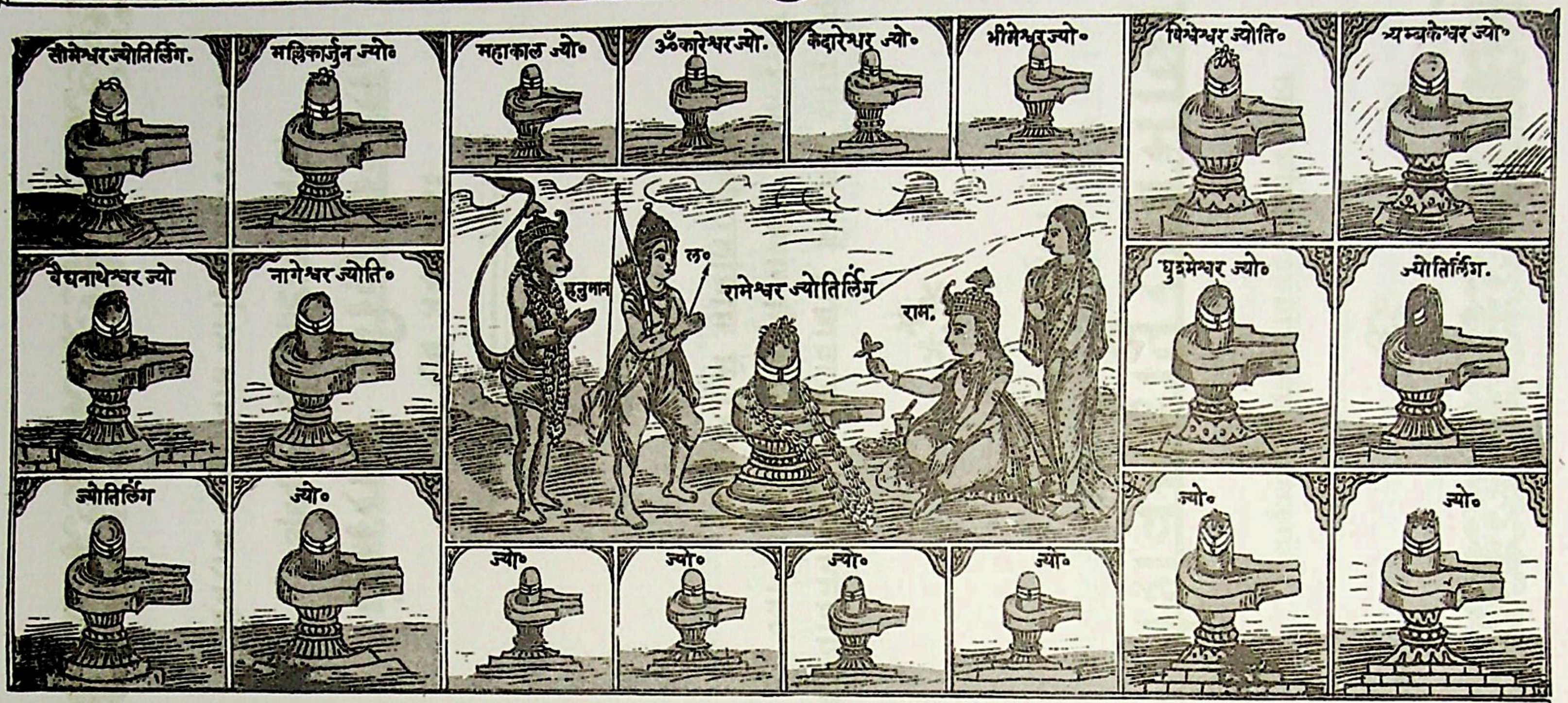
(कोटिरुद्रसंहिता ४)

***

कात्यायनगोत्रोद्भव मुरादाबाद निवासी श्रीयुत पंडित
ज्वालाप्रसादजी मिश्र ने संस्कृत से अत्युत्तम
देवनागरी में भाषांतर किया

मुद्रक एवं प्रकाशकः
खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बम्बई-४०० ००४

(कोटिरुद्रसंहिता ४)



सोमेश्वर ज्योतिर्लिंग.
मल्लिकार्जुन ज्यो०
महाकाल ज्यो०
ॐकारेश्वर ज्यो.
केदारेश्वर ज्यो०
भीमेश्वर ज्यो०
विश्वेश्वर ज्योति०
त्र्यम्बकेश्वर ज्यो०
वैद्यनाथेश्वर ज्यो
नागेश्वर ज्योति०
हनुमान
ल०
रामेश्वर ज्योतिर्लिंग
राम.
घुश्मेश्वर ज्यो०
ज्योतिर्लिंग.
ज्योतिर्लिंग
ज्यो०
ज्यो०
ज्यो०
ज्यो०
ज्यो०
ज्यो०
ज्यो०

ॐ

अथ

शिवमहापुराणभाषा

***

चतुर्थ कोटिरुद्रसंहिता प्रारभ्यते

पहिला अध्याय

दोहा–

पूर्ण सच्चिदानन्द घन, शंकरदेव महेश।
तिनके पद वन्दन करहुं, काटैं कठिन कलेश।।

जो सम्पूर्ण विकारों से रहित अपनी माया से सम्पूर्ण भुवनों को धारण किये हुए हैं, जिनके करुणा कटाक्ष से स्वर्ग और अपवर्ग के ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं, पूर्ण बोध सुख जिनको योगीजन सदा हृदय में देखते हैं, ऐसे पार्वती को अर्द्धाङ्ग में धारण करनेवाले तेजस्वरूप शंकरजी को सदा प्रणाम करता हूं।।१।। कृपा की मनोहर दृष्टिवाले, कुछ हास्य से मनोहर मुखकमल वाले चन्द्रमा की कला के समान उज्ज्वल, आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक तीनों घोर तापों को शान्त करनेवाले, स्फुरायमाण परम सुखदायक सच्चिदानन्द रूप शरीरवाले, पार्वती की भुजाओं से आलिंगित शंकरजी का शरीर हमारा मंगल करे।।२।। ऋषि बोले– हे सूतजी! आपने लोकों के हित की कामना से बहुत अच्छी बात कही, अब अनेक आख्यानों सहित शिवजी के अवतारों के माहात्म्य को।।३।। फिर हम से कहिये। हे तात! लिंग सम्बन्धी शिवजी का उत्तम माहात्म्य प्रेम से कहिये, शिवजी के भक्तों में आप धन्य और उत्तम हैं।।४।। हे प्रभो! आपके मुखकमल से निकले हुए अमृतरूपी मनोहर यश को सुनते हुए हम तृप्त नहीं होते, इस कारण उसे फिर कहिये।।५।। पृथ्वी के प्रत्येक तीर्थों में जितने शुभ लिंग हैं

वा दूसरे स्थलों में जितने प्रसिद्ध लिंग हैं।।६।। वह-वह परमेश्वर के दिव्य लिंग आप जानते हैं, हे व्यासजी के शिष्ये! लोकों के हित की कामना से आप वर्णन करें।।७।। सूतजी बोले- हे मुनिश्रेष्ठ! लोकों के हित की कामना से आपने अच्छी बात पूछी, हे ब्राह्मणो! आपके स्नेह से मैं संक्षेप में कहता हूं।।८।। हे मुने! शिवजी के सम्पूर्ण लिंगों की तो कोई संख्या नहीं कर सकता, यह भूमि और यह सम्पूर्ण जगत् लिंगमय है।।९।। सब तीर्थ लिंगमय हैं, सब कुछ लिंग में ही प्रतिष्ठित है, उनकी संख्या नहीं हो सकती, तो भी मैं उन दिव्य ज्यातिर्लिंगों को आपसे कहता हूं।।१०।। जो कुछ देखने योग्य वस्तु दीखती है, वर्णन की जाती है तथा जिसका वर्णन करते हैं और स्मरण करते हैं, वह सब शिवजी का स्वरूप है और कुछ नहीं है।।११।। हे श्रेष्ठ ऋषियो! तथापि पृथ्वीपर जितने दिव्य लिंग हैं, जैसा मैंने सुना है, वैसा उनका वर्णन करता हूं, आप प्रीति से सुनें।।१२।। पाताल में तथा स्वर्ग में और पृथ्वीपर शिवजी के ज्योतिर्लिंग हैं, देवता, असुर तथा मनुष्यों से सब जगह शिवजी की पूजा होती है।।१३।। हे ऋषिश्रेष्ठ! देवता, मनुष्य तथा दैत्यों सहित तीनों लोक महादेवजी से व्याप्त हैं और वह शिवजी संसार के अनुग्रह के निमित्त लिंग रूप से स्थित हैं।।१४।। शिवजी लोकों के अनुग्रह के हेतु सब तीर्थों में तथा और स्थलों में अनेक प्रकार के लिंग धारण करते हैं।।१५।। जहां-जहां पर जब-जब शिवजी के भक्तों ने भक्ति सहित शिवजी को स्मरण किया है, उसी समय वहां-वहां पर अवतार लेकर उनके कार्य करने के लिये स्थित हुए हैं।।१६।। और लोकों के उपकार के निमित्त अपने लिंग को प्रकट किया है, उस लिंग प्रतिमा को पूज कर मनुष्य सिद्धि को प्राप्त होता है।।१७।। हे द्विजो! पृथ्वी पर जितने लिंग हैं, उनकी गणना नहीं है, तो भी मैं मुख्य ज्योतिर्लिंगों को कहता हूं।।१८।। प्रधान स्थानों में जो मुख्य-मुख्य लिंग प्रतिमा हैं, उनको कथन करता हूं, कि जिनको सुनकर मनुष्य उसी समय पापों से छूट जाता है।।१९।। हे सत्तमे! जितने-जितने मुख्य-मुख्य शिवजी के ज्योतिर्लिंग हैं, मैं उनका अब वर्णन करता हूं, उनको सुनकर प्राणी पाप से छूट जाते हैं।।२०।। सौराष्ट्र में सोमनाथ, श्रीशैल में मल्लिकार्जुन और उज्जयिनी में महाकाल तथा ओंकार में परमेश्वर हैं।।२१।। हिमालय पर्वत पर केदार नामक, डाकिनी में भीमशंकर महादेवजी हैं और वाराणसी में विश्वेश्वरनाथ, गोमती के किनारे त्र्यम्बक हैं।।२२।। चिताभूमि में वैद्यनाथ, दारुकावन में नागेश और सेतुबन्ध में रामेश तथा शिवालय में घुश्मेश नाम वाले महादेवजी हैं।।२३।। जो पुरुष प्रातःकाल उठकर इन पूर्वोक्त बारह नामों का पाठ करता है, वह सब पापों से छूट कर सम्पूर्ण सिद्धि को पाता है।।२४।। हे मुनिश्वरो! मनुष्यश्रेष्ठ जिस-जिस मनोरथ को उद्देश्य करके इसका पाठ करेंगे, वे उसी-उसी मनोरथ को इस लोक में तथा परलोक में प्राप्त होंगे।।२५।। और जो शुभ आशय वाले मनुष्य बिना इच्छा से उनको पढ़ेंगे, उनका माता के गर्भ

में निवास नहीं होगा।।२६।। इन ज्योतिर्लिंगों का पूजन करने से ही सब वर्णों के दुःख का नाश होता है, इस लोक में तथा परलोक में निश्चय ही मुक्ति होती है।।२७।। इन ज्योतिर्लिंगों पर चढ़ी हुई नैवेद्य (मिष्ठान्न) ग्रहण करना चाहिये और यत्नपूर्वक भोजन करना योग्य है, ऐसा करनेवालों के सम्पूर्ण पाप उसी समय भस्म होते हैं।।२८।। हे ब्राह्मणो! इन ज्योतिर्लिंगों के विशेष फल कहने को ब्रह्माजी आदि देवता भी समर्थ नहीं है, दूसरों की तो क्या कथा है?।।२९।। जो पुरुष निरन्तर छः मास पर्यन्त एक ज्योतिर्लिंग का पूजन करता है, उसे माता के कोख में आने का दुःख नहीं होता है।।३०।। निकृष्ट योनि में यदि उत्पन्न होने वाला भी शिवलिंग का दर्शन करे, तो उसका जन्म शुद्ध तथा श्रेष्ठकुल में होता है।।३१।। वह सुन्दर कुल में जन्म को प्राप्त होकर, धनाढ्य और वेद में पारङ्गत होकर श्रेष्ठ कर्म करने से अविनाशिनी मुक्ति को प्राप्त होता है।।३२।। हे मुनीश्वरो! म्लेच्छ तथा अन्त्यज अथवा नपुंसक कोई क्यों न हो, शिवजी के पूजने से दूसरे जन्म में द्विज होकर मुक्त होता है, इस कारण महादेवजी का दर्शन करना योग्य है।।३३।। हे ऋषिश्रेष्ठो! मैंने ज्योतिर्लिंगों के फल कहें, अब उसके उपलिंगों के फलों को कहता हूं, आप सुनें।।३४।। पृथ्वी और सागर के संयोग में सोमेश्वर का उपलिंग अन्तकेश नामवाला कहा है।।३५।। भृगु कक्ष में मल्लिकार्जुन से प्रकट हुआ, सुखदायक, रुद्रेश्वर नामक उपलिंग कहा है।।३६।। नर्मदा नदी के किनारे पर महाकाल ज्योतिर्लिंग से उत्पन्न हुआ दुग्धेश नामक उपलिंग प्रसिद्ध है और वह सब पापों को हरण करनेवाला कहा है।।३७।। ओंकार से उत्पन्न हुआ कर्दमेश नामक उपलिंग बिन्दु सरोवर में प्रसिद्ध है और सब कामनाओं और फलों को देनेवाला है।।३८।। यमुना के तट पर केदारेश्वर लिंग से उत्पन्न हुआ भूतेश नामवाला उपलिंग है, उसके दर्शन तथा पूजन करनेवालों के महापाप दूर होते हैं।।३९।। भीमशंकर से प्रकट हुआ भीमेश्वर नामक उपलिंग सह्य पर्वतपर प्रसिद्ध है, वह बड़े बल को बढ़ानेवाला है।।४०।। मल्लिका सरस्वती के किनारे नागेश्वर महादेव से प्रकट हुआ भूतेश्वर नामक शिवलिंग है, जिसके दर्शन से सब पाप दूर होते हैं।।४१।। रामेश्वर से प्रादुर्भूत हुए गुप्तेश्वर तथा घुश्मेश शिवजी से उत्पन्न हुए व्याघ्रेश्वर शिव कहे हैं।।४२।। हे द्विजातियो! मैंने यह–यह ज्योतिर्लिंगों के समीप के लिंगो का वर्णन किया, जिनके दर्शन करने से सब पाप दूर होते हैं और सब मनोरथ सिद्ध होते हैं।।४३।। हे ऋषिश्रेष्ठो! यह वर्णन किये हुए उपलिंग बड़े प्रसिद्ध हैं, अब और भी प्रसिद्ध हुए लिंगों का वर्णन करता हूं, सुनिये।।४४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां
ज्योतिर्लिंगतदुपलिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः।। १।।

*****

दूसरा अध्याय

सूतजी बोले– गंगाजी के तट पर बड़ी प्रसिद्ध हुई और मुक्ति की देनेवाली काशी नगरी है, वह लिंगमयी और शिवजी के निवास की भूमि कही है ।।१।। वहां मुक्ति की देनेवाली शिवजी की मुख्य प्रतिमा है, कृत्तिवास नामक शिवजी भी वहां हैं, वहां निवास करनेवाला वृद्ध तथा बालक साक्षात् शिवजी के तुल्य हो जाता है ।।२।। वहां तिलभाण्डेश्वर तथा दशाश्वमेध नामक शिवजी हैं और गंगासागर के संगम में संगमेश नामवाले महादेवजी हैं ।।३।। भूतेश्वर नामक तथा नारीश्वर नाम से प्रसिद्ध जो निरन्तर अपने भक्तों को सब वस्तुओं को देनेवाले शिवजी हैं, वह कौशिकी नदी के समीप विराजमान हैं ।।४।। गण्डकी नदी के तट पर वटुकेश्वर महादेवजी हैं और फल्गु नदी के समीप सुखदायी पूरेश्वर नामक हैं ।।५।। तथा उत्तर नगर में सिद्धनाथेश्वर हैं, जो दर्शन मात्र से मनुष्यों को सिद्धि देनेवाले हैं और वहां पर ही दूरेश्वर नामक शिवजी हैं ।।६।। दधीचि को संग्राम भूमि में प्रसिद्ध हुए शृङ्गेश्वर तथा वैद्यनाथ नामक और जप्येश्वर नाम से प्रसिद्ध हैं ।।७।। गोपेश्वर तथा रङ्गेश्वर, वामेश्वर और नागेश कामेश विमलेश्वर नामवाले हैं ।।८।। व्यासेश्वर, सुकेश तथा भाण्डेश्वर, हुंकारेश नामक शिवजी की प्रतिमायें हैं ।।९।। सुरोचन, भूतेश्वर तथा संगमेश नाम से प्रसिद्ध ज्योतिर्लिंग है और यह बड़े पापों का नाश करनेवाले हैं ।।१०।। तप्तका नदी के तट पर कुमारेश्वर, सिद्धेश्वर तथा सेनेश नाम से प्रसिद्ध हैं ।।११।। रामेश्वर, कुम्भेश तथा नन्दीश्वर, पुञ्जेश, पूर्णा में पूर्णक हैं ।।१२।। और पहले प्रयाग में दशाश्वमेध तीर्थ पर ब्रह्माजी द्वारा स्थापित किये ब्रह्मेश्वर धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के फल देनेवाले हैं ।।१३।। और वहां पर सम्पूर्ण आपत्तियों को दूर करनेवाले सोमेश्वर हैं और ब्रह्मतेज के देनेवाले भरद्वाजेश्वरजी हैं ।।१४।। शूलटङ्केश्वर महादेवजी साक्षात् कामनाओं के देनेवाले हैं और वहां पर शिवभक्तों की रक्षा करनेवाले माधवेश्वर हैं ।।१५।। हे द्विजो! साकेत (अयोध्या) में नागेश नाम से प्रसिद्ध हैं, यह सूर्यवंश में उत्पन्न हुए मनुष्यों को विशेष सुख देनेवाले हैं ।।१६।। पुरुषोत्तमपुरी में भुवनेशजी प्रसिद्ध हैं, लोकेश नाम महालिंग सम्पूर्ण आनन्द देनेवाला है ।।१७।। शिवजी का कामेश्वर नामक ज्योतिर्लिंग है तथा गङ्गेशजी परम शुद्धि करनेवाले हैं और शक्रेश्वर तथा शुक्रसिद्धजी लोकों के हित की इच्छा से स्थापित हुए हैं ।।१८।। वटेश्वर नाम से प्रसिद्ध हुए शिवजी सब कामनाओं के फल देनेवाले हैं और सिन्धु नदी के तीर पर कपालेश्वर, वक्रेशजी सब पापों को हरनेवाले हैं ।।१९।। साक्षात् शिव स्वरूप धौतपापेश्वरजी, भीमेश्वरजी तथा सूर्येश्वर नाम से प्रसिद्ध हैं ।।२०।। संसार से पूजित हुए

नन्देश्वरजी ज्ञान देनेवाले हैं, नाकेश्वरजी महापुण्य देनेवाले है और रामेश्वर भी महापुण्य फलदायक हैं।।२१।। विमलेश्वर नामक तथा कण्टकेश्वर और धर्तुकेशजी पूर्णसागर के संयोग के निकट हैं।।२२।। चन्द्रेश्वरजी चन्द्रमा की कान्ति के फल देनेवाले कहे हैं, सिद्धेश्वर सब मनोरथों को सिद्ध करनेवाले हैं।।२३।। बिल्वेश्वर तथा अन्धकेशजी विख्यात हैं, जहां पहले अन्धक दैत्य को मारा था।।२४।। शिवजी ने अपने अंश से यही स्वरूप धारण करके यहां स्थिति की है और शरणेश्वर नाम से प्रसिद्ध होकर संसार को नित्य सुखदायक हुए हैं।।२५।। कर्दमेश तथा कोटीश नामवाले और अर्बुद पर्वत पर अचलेश विख्यात हैं और सदा लोकों के लिये सुखदायक हैं।।२६।। कौशिकी नदी के समीप नागेश्वरजी नित्य विराजमान हैं तथा अनन्तेश्वरजी कल्याण के शुभपात्र हैं।।२७।। योगेश्वरजी तथा वैद्यनाथजी और कोटीश्वरजी, सप्तेश्वरजी विख्यात हैं।।२८।। और भद्र नामक साक्षात् शिवजी भद्रेश्वर नाम से प्रसिद्ध हैं और चण्डीश्वर तथा संगमेश्वर नाम से विख्यात हैं।।२९।। पूर्वदिशा में विराजमान हुए जो शिवजी के ज्योतिर्लिंग हैं तथा अन्य भी जो सामान्य मूर्तियां हैं, उन सब को आपसे वर्णन किया।।३०।। अब दक्षिण दिशा की ओर जितने ज्योतिर्लिंग हैं, हे मुनिश्रेष्ठ! उन सबका वर्णन आप से करता हूं।।३१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां
शिवलिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः।। २ ।।

*****

तीसरा अध्याय

सूतजी बोले कि- ब्रह्मपुरी में चित्रकूट पर्वत पर ब्रह्माजी द्वारा स्थापित किया हुआ, सब कामनाओं को पूर्ण करनेवाला मत्तगजेन्द्र नामक ज्योतिर्लिंग है।।१।। और उसके पूर्व दिशा में सब वरों को देनेवाला कोटीश लिंग है और गोदावरी नदी के पश्चिम की ओर पशुपति नामक लिंग है।।२।। और दक्षिण दिशा में अत्रीश्वर महादेवजी संसार के उपकार करने के निमित्त तथा अनसूया को सुख देने के अर्थ स्वयं प्रकट हुए।।३।। और साक्षात् शिवजी ने अपने अंश से रूप धारण करके वर्षा के अभाव में सब मनुष्यों को जिलाया।।४।। ऋषि बोले- हे बड़े भाग्यवान् सूतजी! हे सुन्दर व्रतधारिन्! यहां किस प्रकार परम दिव्य स्वरूप अत्रीश्वर नामक शिवजी प्रकट हो गये, सो ठीक-ठीक कहिये।।५।। सूतजी बोले- हे श्रेष्ठ ऋषियो! आपने बहुत श्रेष्ठ प्रश्न किया है, मैं सुन्दर कथा कहता हूं, जिस कथा को सुनकर मनुष्य निश्चित ही सब पापों से छूट जाता है।।६।। दक्षिण दिशा की ओर चित्रकूट पर्वत के समीप कामद नामक बड़ा वन है, वह श्रेष्ठ

तपस्वियों को सुख देनेवाला है ।।७।। वहां ब्रह्माजी के पुत्र अत्रि ऋषि स्वयं अनसूया के सहित अति कठिन तप करते थे ।।८।। हे मुने! वहां एक समय दैवयोग से जीवों को दुःखदायक भयानक, सौ वर्ष की अनावृष्टि हुई ।।९।। हे ऋषियो! सम्पूर्ण वृक्ष, सब पत्ते और फल सूख गये, कहीं नाममात्र भी जल नहीं दीखता था ।।१०।। ठण्डी हवा कहीं नहीं चली, दशोंदिशाओं में गरम पवन चलने लगी, सम्पूर्ण पृथ्वी पर अति दुःखदायक बड़ा हाहाकार मच गया ।।११।। प्राणियों के उस सब हाहाकार को देखकर अत्रि ऋषिजी की पतिव्रता स्त्री अपने स्वामी (अत्रि ऋषि) से बोली, कि हे मुने! अब अनावृष्टि का दुःख सहा नहीं जाता ।।१२।। यह सुनकर उस समय मुनिश्रेष्ठ अत्रिजी तीन बार प्राणायाम करके, स्वयं आसन बांधकर समाधि में स्थित हो गये ।।१३।। और ज्ञानी मुनिश्रेष्ठ अत्रिजी ने अपनी आत्मा में स्थित परम ज्योतिस्वरूप निर्विकार शिवजी का आत्मा से ध्यान किया ।।१४।। स्वामी अत्रिजी के ध्यान करने पर अन्न के बिना दुःखी होकर उनके शिष्य अपने गुरु अत्रि मुनिजी को छोड़कर अन्यत्र चले गये ।।१५।। तब वह पतिव्रता अनसूया अकेली रह गई ।।१६।। और नित्य ही उन मुनिश्रेष्ठ की आनन्द के साथ सेवा करती थी और सुन्दर पार्थिवलिंग बना कर मन्त्रों से विधिपूर्वक ।।१७।। मानस उपचारों से शिवजी को पूजती थी और उनकी बारंबार सेवा करके भक्ति से स्तुति करती थी ।।१७-१८।। हाथ बांधकर स्वामी शिवजी की प्रदक्षिणा करके दण्डवत् प्रणाम करती थी ।।१९।। वह मुनि अत्रिजी की श्रेष्ठ आचरणवाली स्त्री इस प्रकार शिवजी की भक्ति करती थी, उस समय सम्पूर्ण दानव, दैत्य उस सुन्दरी अनसूया को देखकर ।।२०।। जिस प्रकार अग्नि को देखकर दूर रहते हैं, उसी प्रकार उसके तेज से व्याकुल होकर दूर चले गये ।।२१।। उसे देखकर कोई दैत्य भी समीप न आया, अत्रिजी तप और अनसूया शिवजी का सेवन करने लगी ।।२२।। हे विप्रेन्द्रो! उस समय तक वह देवी मन,वाणी तथा काया सहित शिवजी की विशेष सेवा करती थी ।।२३।। जब तक कि वह मुनि प्राणायाम में तत्पर रहते थे, इस प्रकार उस समय वे दोनों वहां अपने-अपने कार्य से चित्त लगाये हुए स्थित रहे ।।२४।। हे मुनिश्रेष्ठ! उस समय और कोई वहां स्थित न रहा, इसी प्रकार कुछ समय बीतने पर अत्रि ऋषिजी ।।२५।। परम ध्यान में ऐसे मग्न हुए कि, मानो कुछ भी चेतना नहीं और वह साध्वी अनसूया भी स्वामी शिवजी का सेवन करती रही ।।२६।। वह पतिव्रता ऐसी सेवा करती थी कि, मानो और कुछ भी नहीं जानती हो, उन अत्रिजी की तप से तथा उस अनसूया के शिवार्चन से ।।२७।। समस्त देवता तथा ऋषि, गंगा आदि नदियां यह सब परम प्रीति से उन दोनों के दर्शन करने आये ।।२८।। उनके तप तथा शिवजी की सेवा को देखकर बड़े आश्चर्य को प्राप्त हो गये और अत्रिजी तथा अनसूया के श्रेष्ठ अद्भुत भजन को देखकर परस्पर कहने लगे ।।२९।। कि, अत्रिजी के तप तथा अनसूया का भजन इन दोनों में किस का

तप वा भजन विशेष है?।।३०।। तब उन सब ने सम्मति करके भजन को ही विशेष कहा, यद्यपि पूर्व ऋषियों ने भी कठिन तपस्या की है।।३१।। परन्तु इस प्रकार का तप किसी ने नहीं किया, ऐसा सब ने कहा, यह अत्रि ऋषिजी और अनसूया दोनों ही धन्य हैं।।३२।। यह दोनों स्त्री–पुरुष परम प्रेम से कठिन तपस्या कर रहे हैं, यह इनका तप बड़ा श्रेष्ठ और दुष्कर है।।३३।। त्रिलोकी के ऐसा तप आज तक किस ने किया यह बात नहीं जानी जाती, उन दोनों की इस प्रकार प्रशंसा करके वे सब यथायोग्य।।३४।। अपने स्थानों को गये, परन्तु गंगाजी नहीं गई, वह गंगाजी उस साध्वी से शिवभजन करने के कारण प्रसिद्ध हो गई और मोहित होकर वहां रह गई।।३५।। हे मुनिश्वरो! गंगाजी ने कहा कि, मैं अनसूया का उपकार करके जाऊंगी और इधर शिवजी अत्रि मुनि के ध्यान से वहां स्थित रह गये।।३६।। हे ऋषिश्रेष्ठो! इस प्रकार वहां पूर्ण अंश से स्थित होकर स्वयं कैलास को गये, इस प्रकार वहां पर चौअन।।३७।। वर्ष बीत गये और वर्षा न हुई और तब तक अत्रिमुनिजी उसी प्रकार ध्यान में समाधि लगाये रहे।।३८।। अनसूया ने भी विचार किया कि, जब तक स्वामी समाधि में ध्यान लगाये रहेंगे, तब तक जल ग्रहण नहीं करूंगी, इस प्रकार ऋषिजी के तप में स्थित होने और अनसूया के भजन करने पर जो हुआ सो सुनिये।।३९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां

अनसूयातपोवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः।। ३ ।।

*****

चौथा अध्याय

सूतजी बोले– किसी समय जब वह वेद के जाननेवाले श्रेष्ठ ऋषि अत्रिजी समाधि से जागे, तब अपनी प्रिया से बोले, कि जल लाओ।।१।। तत्काल साध्वी अनसूया कमण्डलु को ग्रहण करके बन को चली और विचारने लगी, जल कहां से लाऊं।।२।। मैं क्या करूं, कहां जाऊं, किधर से जल लाऊं? इस प्रकार विस्मय को प्राप्त हुई अनसूया को गंगाजी ने दर्शन दिया।।३।। इस प्रकार से अनसूया के पीछे–पीछे जाती हुई, सुन्दर शरीर धारण किये हुए, नदियों में श्रेष्ठ गंगाजी ने अनसूया से कहा।।४।। गंगाजी बोली– हे देवि! मैं तुम पर प्रसन्न हूं, अब तुम कहां जाती हो? यह बतावो, हे सुभगे! तुम धन्य हो, सत्य ही मैं तुम्हारी आज्ञा का पालन करूंगी।।५।। सूतजी बोले– हे ब्राह्मणो! उस समय उसका वचन सुनकर अत्रि ऋषिजी की तपस्विनी स्त्री चकित होकर प्रीति से यह बोली।।६।। अनसूया बोली– हे कमलपत्र के समान नेत्रवाली! तुम कौन हो

और कहां से आई हो ? सो अब कृपा करके कहो, इस प्रकार उस साध्वी पतिव्रता ने कहा ।।७।। सूतजी बोले– हे मुनीश्वरो ! यह उस ऋषिपत्नि के कहनेपर दिव्य रूपवाली, नदियों में श्रेष्ठ गंगाजी फिर बोली ।।८।। गंगाजी बोली– हे साध्वी ! तुम्हारे पति की सेवा तथा परमात्मा शिवजी की भक्ति और तुम्हारे धर्म को देखकर तुम्हारे समीप स्थित हुई हूं ।।९।। हे पवित्र हास्य वाली ! मैं गंगा नदी तुम्हारे भजन से वशीभूत होकर यहां प्राप्त हुई हूं, जो इच्छा हो सो वर मांगो ।।१०।। सूतजी बोले– गंगाजी के ऐसा कहने पर वह साध्वी प्रणाम करके हाथ जोड़कर आगे खड़ी होकर बोली, यदि तुम प्रसन्न हो, तो जल दो ।।११।। ऐसा उसका वचन सुनकर गंगाजी ने कहा कि, एक गढ़ा खोदो, यह सुनकर शीघ्र ही उसने गढ़ा खोदा और क्षणमात्र में गंगाजी ने उसमें गढ़े में प्रवेश किया ।।१२।। और वह प्रवेष करते ही उसी समय जलरूप हो गई, तब अनसूया बड़े आश्चर्य को प्राप्त होकर उसमें से जल लेने लगी ।।१३।। अत्रि मुनि की स्त्री अनसूया संसार के सुख के कारण उन दिव्य रूपवाली गंगाजी से यह वचन बोली ।।१४।। अनसूया बोली– हे गंगे ! यदि तुम मुझ पर प्रसन्न हो और मुझ पर कृपा है, तो तुम तब तक ऐसे ही स्थित रहो, जब तक मेरे स्वामी न आयें ।।१५।। सूतजी बोले– सत्पुरुषों को सुख देनेवाले अनसूया के वचन को सुनकर अतिप्रसन्न होकर गंगाजी बोली– हे निष्पापे ! तू मुझे अत्रिजी को देना ।।१६।। ऐसा कहकर गंगाजी ने अपना जल नाश रहित किया, अनसूया वह दिव्य जल अपने स्वामी अत्रिजी को देकर आगे स्थित हो गयी ।।१७।। और उन ऋषि ने प्रीति से विधिपूर्वक आचमन करके, उस दिव्य गंगाजल का पान किया और सुख पाया ।।१८।। आश्चर्य है कि, नित्य जो जल पीते थे, यह वैसा नहीं है और ही प्रकार का है, ऐसा उन ऋषिजी ने विचार कर चारों ओर देखा ।।१९।। सूखे वृक्षों को तथा सब दिशाओं को अति रूखा (जल रहित) देखकर ऋषिश्रेष्ठ, अनसूया से बोले कि, वर्षा अब भी नहीं हुई ।।२०।। उनका वचन सुनकर, प्रिया ने कहा कि, वर्षा नहीं हुई, फिर ऋषिजी ने अपनी स्त्री से कहा कि, तुमने जल कहां प्राप्त किया ?।।२१।। हे मुनीश्वरो ! ऐसा ऋषिजी के कहनेपर उस समय बड़े विस्मय को प्राप्त हुई अनसूया अपने मन में चिन्ता करने लगी ।।२२।। कि यदि मैं निवेदन कर दूं, तो मेरी अधिकता होगी और यदि नहीं बताती हूं, तो मेरा पातिव्रत्य भंग होगा ।।२३।। और यह दोनों बातें तो नहीं हो सकती, अब मेरा निवेदन करना योग्य है, ऐसा वह विचार ही कर रही थी कि, फिर ऋषिजी ने बारंबार पूंछा ।।२४।। तब शिवजी के अनुग्रह से बुद्धि पाकर वह पतिव्रता बोली कि,– हे स्वामिन् ! सुनिये, जिस प्रकार हुआ, सो सब वृत्तान्त आपसे कहती हूं ।।२५।। अनसूया बोली कि महादेवजी के प्रताप से तथा पुण्यों से यहां पर गंगाजी प्राप्त हो गई, उन ही का यह जल है ।।२६।। सूतजी बोले– उस समय यह सुन्दर वचन सुनकर ऋषिजी विस्मय चित्त होकर शिवजी

को मन से स्मरण करके प्रीति से अपनी स्त्री के प्रति बोले ।।२७।। अत्रिजी बोले– हे प्रिये ! हे सुन्दरी ! क्या तुम निःसन्देह सत्य वचन कहती हो ? मैं ठीक नहीं मानता हूं कारण कि, यह बात अति दुर्लभ है ।।२८।। हे शुभे ! यह बात योगियों को तथा देवताओं को भी निरन्तर दुर्लभ है, सो आज यह किस प्रकार हुआ ? मुझे बड़ा आश्चर्य है ।।२९।। मैं इस प्रकार यदि देख लूंगा, तो ही मानूंगा अन्य किसी प्रकार नहीं मानूंगा. ऐसा उनका वचन सुनकर वह अनसूया अपने पति से बोली ।।३०।। अनसूया बोली– हे महामुने ! हे नाथ ! यदि नदियों में श्रेष्ठ गंगाजी को देखने की इच्छा हो, तो आप मेरे साथ चलिये ।।३१।। सूतजी बोले– ऐसा कहकर वह पतिव्रता अपने पति को साथ लेकर शिवजी को स्मरण करती हुई शीघ्र ही वहां पहुँची, जहां निर्मल गंगाजी बह रहीं थीं ।।३२।। तब उस पतिव्रता ने पति को वहां गढ़े में बहती हुई साक्षात् दिव्य स्वरूप धारिणी गंगाजी का दर्शन कराया ।।३३।। मुनिश्रेष्ठ अत्रिजी वहां जाकर ऊपर तक जल से पूर्ण सुन्दर गढ़े को देखकर 'धन्य है' ऐसा बोले ।।३४।। क्या यह मेरा तप है अथवा अन्य किसी का ? ऐसा कहकर उस समय भक्ति से गंगाजी की स्तुति की ।।३५।। और वहां मुनिजी ने उस निर्मल जल में अच्छी प्रकार स्नान किया और फिर आचमन करके बारंबार स्तुति की ।।३६।। अनसूया ने भी उस समय उस निर्मल जल में स्नान किया, इस प्रकार वह मुनि तथा अनसूयाजी दोनों ही नित्यकर्म गंगाजी में करने लगे ।।३७।। तब गंगाजी अनसूया से बोली कि– मैं अपने स्थान को जाती हूँ, यह सुनकर उस पतिव्रता ने फिर गंगाजी से कहा ।।३८।। अनसूया बोली– हे देवेशि ! यदि तुम मुझ पर प्रसन्न हो और मुझ पर तुम्हारी कृपा है, तो हे देवि ! इस तपोवन में तुम निश्चल होकर निवास करो ।।३९।। बड़ों का यह स्वभाव होता है कि, किसी को अंगीकार करके कभी नहीं छोड़ते, ऐसा कहकर हाथ जोड़कर बारंबार स्तुति करने लगी ।।४०।। ऋषिजी ने भी उसी प्रकार प्रार्थना की कि– हे सरिद्वरे ! तुम यहां निवास करो, हे देवि ! हमें सानुकूल होकर सनाथ करो ।।४१।। उन मुनिजी तथा अनसूया का ऐसा मनोहर वचन सुनकर प्रसन्न होकर, नदियों में श्रेष्ठ गंगाजी अनसूया से कहने लगी ।।४२।। गंगाजी बोली कि, यदि तुम अपने स्वामी के शिवार्चन रूप एक वर्ष के श्रेष्ठ फल मुझे दो, तो मैं देवताओं के उपकार के निमित्त यहां स्थित रहूंगी ।।४३।। इस प्रकार मेरी सन्तुष्टि न दान से, न तीर्थ से, न तीर्थ में स्नान करने से और न यज्ञों से, न योग से होती है, जिस प्रकार मैं पतिव्रत धर्म से सन्तुष्ट होती हूं।।४४।। हे सति ! पतिव्रता को देखकर जैसा मेरा मन प्रसन्न होता है, वैसा किसी अन्य उपायों से नहीं होता, यह मैं सत्य कहती हूं।।४५।। पतिव्रता स्त्री को देखकर मेरा पाप नष्ट होता है, पतिव्रता स्त्री पार्वती के समान पवित्र है।।४६।। इस कारण यदि तुम कल्याण की इच्छा करती हो, तो अपने पतिव्रत पुण्य के वर्षभर के फल को संसार के हित के लिये दान करो तो,

मैं यहां स्थिर रहूँगी ।।४७।। सूतजी बोले– ऐसा वचन सुनकर उस पतिव्रता अनसूया ने अपने वर्षभर के सब पुण्य गंगाजी को दिये ।।४८।। बड़े पुरुषों का यह स्वभाव ही है कि, वे दूसरों का हित करते हैं, (यहां पर सुवर्ण, चन्दन, गन्ने के रस का दृष्टान्त है) ।।४९।। अनसूया का यह बड़ा पतिव्रत कर्म देखकर प्रसन्न होकर पार्थिवलिंग में प्रकट हो गये ।।५०।। शिवजी बोले– हे साध्वी ! हे पतिव्रते ! मैं तेरा कर्म देखकर प्रसन्न हुआ हूं, हे प्रिये ! तू वर मांग कारण कि, तू मुझे अधिक प्यारी है ।।५१।। तब वह दोनों स्त्री–पुरुष सुन्दर आकारवाले तथा पांच मुखों सहित शिवजी को देखकर बड़ा आश्चर्य करने लगे ।।५२।। और महाभक्ति में तत्पर होकर उनको नमस्कार करके तथा हाथ जोड़कर स्तुति करके संसार के कल्याण करनेवाले महादेवजी की पूजा करके कहने लगे ।।५३।। वे स्त्री–पुरुष बोले– हे देवों के ईश्वर ! यदि आप प्रसन्न हो, तो प्रसन्न हुई जगत् की माता पार्वती के सहित इस तपोवन में निवास करें और संसार को सुख दें ।।५४।। उस समय प्रसन्न हुई गंगाजी तथा प्रसन्न हुए शिवजी इन दोनों देवताओं ने वहां स्थिति की, जहां वह ऋषिजी रहते थे ।।५५।। दूसरों के दुःख नष्ट करनेवाले शिवजी वहां अत्रीश्वर नाम से प्रसिद्ध हुए और वहां गंगाजी भी अपनी माया से उस गढ़े में स्थित हो गई ।।५६।। उस दिन से लेकर वह अविनाशीरूप से स्थित हुआ जल हाथ भर के गढ़े में मन्दाकिनी नाम से प्रसिद्ध हुआ ।।५७।। हे द्विजो ! वहां पर वे दिव्य ऋषि अपनी स्त्रियों सहित प्रत्येक तीर्थों से आये, जो कि– पहले चले गये थे, वे सब भी प्राप्त हो गये ।।५८।। यज्ञ यागों में तत्पर ऋषिजनों ने यव और व्रीहि लेकर वहां होम किया ।।५९।। हे मुनीश्वरो ! उस समय उन कर्मों से सन्तुष्ट हुए मेघों ने वर्षा की और संसार में परम आनन्द होने लगा ।।६०।। यह अत्रीश्वर नामक शिवजी का माहात्म्य आपसे कहा, जो सुख देनेवाला तथा भुक्ति और मुक्ति का देनेवाला, सब मनोरथों को पूर्ण करनेवाला और भक्ति को बढ़ानेवाला है ।।६१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां
अत्रीश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ।। ४ ।।

*****

पांचवाँ अध्याय

सूतजी बोले– कालिञ्जर नामक सुन्दर पर्वत पर नीलकण्ठ महेश्वर लिंगरूप से सदा स्थित रहते हैं और भक्तों को आनन्द देनेवाले हैं ।।१।। उनकी महिमा परमदिव्य वेद और शास्त्रों में कहीं है, वहां पर नीलकण्ठ नाम से प्रसिद्ध तीर्थ है, जहां स्नान करने से सब पाप नष्ट होते हैं ।।२।। हे सुन्दर व्रतवाले ! रेवा नदी के तट पर जितने शिवजी

के ज्योतिर्लिंग हैं उनकी संख्या नहीं है, वे सब सुख देनेवाले हैं।।३।। वह शिवजी के समान रेवा नदी दर्शन से पापों को हरण करनेवाली है, उसमें शिवस्वरूप से जो पाषाणमूर्ति हैं, हे मुनीश्वरो! उनको भी कहता हूं तथा भुक्ति–मुक्ति के देनेवाले दूसरे भी प्रधान लिंग हैं, उनका भी वर्णन करता हूं।।५।। आर्तेश्वर नामक ज्योतिर्लिंग पाप हरनेवाला है तथा परमेश्वर सिंहेश्वर नाम से प्रसिद्ध है।।६।। और वहां शर्मेश, कुमारेश्वर, पुण्डरीकेश्वर, मण्डपेश्वर नामक लिंग हैं।।७।। नर्मदा नदी के किनारे पर तीक्ष्णेश नामक शिवजी दर्शन मात्र से पाप नाश करनेवाले हैं तथा धुन्धेश्वर नामवाले पापनाशक शिवजी हैं।।८।। शूलेश्वर नामक, कुम्भेश्वर, कुबेरेश्वर तथा सोमेश्वर नाम से प्रसिद्ध हैं।।९।। नीलकण्ठ, मंगलेश नामक शिवजी बड़े मंगल के स्थान हैं, कपीश्वरदेव का स्थापन हनुमानजी ने किया था।।१०।। नन्दिकदेवजी करोंड़ों हत्याओं के पाप को नष्ट करनेवाले हैं, सब कामनाओं को सिद्ध करनेवाले तथा मोक्ष देनेवाले कहे हैं।।११।। जो पुरुष नन्दिकेश शिवजी को बड़ी प्रीति से पूजता है, नित्य उसकी सम्पूर्ण सिद्धि होती है, इसमें कुछ सन्देह नहीं।।१२।। हे श्रेष्ठ मुनियो! उनके समीप रेवा नदी में जो स्नान करते हैं, उनकी सब इच्छायें पूर्ण होती हैं और सम्पूर्ण पाप दूर हो जाते हैं।।१३।। ऋषि बोले– हे बड़ी बुद्धिवाले! इस प्रकार अब आप कृपा करके नन्दिकेश शिवजी के माहात्म्य को कहिये, कि किस प्रकार उनकी वहीं स्थिति हुई।।१४।। सूतजी बोले– आपने बहुत श्रेष्ठ प्रश्न किया है, हे शौनक आदि मुनियो! जैसा मैंने सुना है, आपसे कहता हूं, आदर से श्रवण कीजिये।।१५।। पहले युधिष्ठिर ने मुनिश्रेष्ठ व्यासजी से यही पूछा था, जैसे उन्होंने कहा था, सो आपके स्नेह से मैं कहता हूं।।१६।। रेवा नदी के पश्चिम की ओर शोभायमान तथा चारों वर्णों से सेवित कर्णिकी नामवाली नगरी वर्तमान है।।१७।। वहां किसी उत्तम वंश में उत्पन्न हुए ब्राह्मण श्रेष्ठ ने अपनी स्त्री को दोनों पुत्रों को सौंपकर काशी को गमन किया।।१८।। और काशी में वह ब्राह्मण मर गया, फिर दोनों पुत्रों ने यह वृत्तान्त सुना और उसके श्राद्ध आदि सब कृत्य किये।।१९।। अपने पुत्रों के हित करनेवाली उसकी स्त्री ने दोनों बालकों का लालन–पालन किया और कुछ धन को छोड़कर बाकी धन उसने पुत्रों में बांट दिया।।२०।। कुछ अपना धन मरने के हेतु बचाये रखा, थोड़ी दिनों के बाद वह ब्राह्मण की स्त्री भी मरने लगी।।२१।। हे ब्राह्मणो! अनेक प्रकार के पुण्य करने पर भी दैवयोग से उस ब्राह्मणी के प्राण न निकल सके।।२२।। जब उनकी माता ने प्रारब्धवश प्राण न छोड़े, तब माता के कष्ट देखकर वे दोनों पुत्र बोले।।२३।। पुत्र बोले– हे मातः! क्या और कुछ शेष रहा है, जो तुमको इस समय बड़ा कष्ट हो रहा है? उस व्रत को हमें बताओ, हम प्रीति से करेंगे।।२४।। सूतजी बोले– यह पुत्रों का वचन सुनकर उसने कहा कि– थोड़ा बहुत व्रत शेष रहा है, यदि वह करोगे तो सुख से मरण होगा।।२५।।

उसका जो बड़ा पुत्र था, उसने माता से कहा– हे मातः! जो तुम बताओगी, वह मैं अवश्य करूँगा, माता ने कहा।।२६।। ब्राह्मण की स्त्री बोली– हे पुत्र! प्रीति से मेरा वचन सुनो! पहले काशीजी में जाने की इच्छा थी, परन्तु बिना गये ही मरती हूं।।२७।। हे पुत्र! तू निरालसी होकर मेरी अस्थियों को गंगाजल में सिरा देना, तब तेरा कल्याण होगा, इसमें कुछ संशय नहीं है।।२८।। सूतजी बोले– इस प्रकार माता के कहने पर वह माता की भक्ति करनेवाला पुत्र शुभव्रत करनेवाली, मरने में तत्पर हुई अपनी माता से बोला।।२९।। पुत्र बोला– हे मातः! निःसन्देह तुम सुख से प्राणों को छोड़ो, मैं पहले तुम्हारा काम करूंगा, फिर अपना काम करूंगा।।३०।। ऐसा कहकर हाथ से जल छोड़कर जभी वह घर में गया तभी उसकी माता शिवजी का स्मरण करती हुई मर गई।।३१।। उसका जो कुछ कृत्य है, सो सब करके तथा महीने भर का सब कृत्य समाप्त करके वह काशी में जाने के लिये उद्यत हुआ।।३२।। दोनों में श्रेष्ठ जो सुवाद नाम से प्रसिद्ध बड़ा पुत्र था, वह उसकी अस्थियों को लेकर तीर्थ की कामना से।।३३।। सेवकों को लेकर अपनी स्त्री तथा पुत्रों को धैर्य देकर, माता का हित करने की इच्छा से बाहर चला।।३४।। श्राद्ध, दान आदिक ब्राह्मण भोजन और उत्तम मंगलाचरणों को विधिपूर्वक करके वह ब्राह्मण अपने घर से चला।।३५।। उस दिन बीस योजन चलकर, सूर्य अस्त हो जाने पर शुभग्राम में किसी ब्राह्मण के घर निवास किया।।३६।। फिर उस ब्राह्मण ने विधिपूर्वक सन्ध्या आदि नित्यकर्म किये और वहां अद्भुत कर्मवाले शिवजी की स्तुति की।।३७।। उस समय सेवक के सहित उस ब्राह्मण को वहां रहते हुए दोपहर-रात बीत गई।।३८।। हे मुने! इसी अवसर में वहां एक आश्चर्य हुआ, सो आप आदर से सुनिये, मैं आपसे कहता हूं।।३९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां
नन्दिकेश्वरमाहात्म्ये ब्राह्मणीमरणवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः।। ५ ।।

*****

छठवाँ अध्याय

सूतजी बोले– उस आंगन में वहां एक सुन्दर गाय बंधी थी, उस समय वह ब्राह्मण रात में बाहर आया।।१।। और गाय को आंगन में खड़ी हुई देखकर अपनी स्त्री से बोला, हे मुनीश्वरो! उस समय वह गाय के न दुहने से खेद युक्त होकर उसे दुहना चाहता था।।२।। हे प्रिये! तेरी गाय दुही नहीं, ऐसा उसने कहने पर वह स्त्री बछड़े को ले आई, तब उस ब्राह्मण ने गाय को दुहने के लिये शीघ्र ही अपनी स्त्री को बुलाया।।३।। हे

मुनीश्वरो! वह घर का मालिक ब्राह्मण दूध की लालसा से उस बछड़े को खूँटे में बांधने का यत्न करने लगा।।४।। हे शुभव्रत वाले! उस कूदते हुए बछड़े ने लात मारकर उसके पैर को पीड़ित किया, तब वह ब्राह्मण को कष्ट प्राप्त हुआ।।५।। उसके चरण के प्रहार से वह क्रोध से व्याकुल होकर रस्सी से बड़े वेग से उस बछड़े को मारने लगा।।६।। उस ब्राह्मण से पीड़ित हुआ वह बछड़ा भी कुछ काल में शान्त हुआ, गाय दुह ली, परन्तु क्रोध से उसने बछड़े को न छोड़ा।।७।। उस समय वह गाय दूध पिलाने को प्रीति से बड़ा रुदन करने लगी, अपनी माता का डकारना सुनकर बछड़ा यह वचन कहने लगा।।८।। बछड़ा बोला– हे मातः! तू क्यो रो रही है? तुझे क्या दुःख उपस्थित हुआ है? सो प्रीतिपूर्वक मुझसे कह, यह सुनकर गाय बोली।।९।। हे पुत्र! सुन, मैं कुछ नहीं कह सकती, उस दुष्ट ने तुझे मारा, इस कारण मुझे भी दुःख हुआ है।।१०।। सूतजी बोले– अपनी माता का वचन सुनकर उस बछड़े ने उसे समझाया और प्रारब्ध के ऊपर सन्तोष करके अपनी माता से बोला।।११।। क्या करें, कहां जायें? कारण कि, हम कर्मों से बँधे हुए हैं, जैसा पहले कर चुके हैं, वैसा अब भोगते हैं।।१२।। हँसकर कर्म किया जाता है और रोकर भोगा जाता है, कोई किसी को दुःख देनेवाला नहीं और न कोई सुख देनेवाला है।।१३।। सुख और दुःख अपने कर्म के अनुकूल दूसरा ही देता है, ऐसी मेरी कुबुद्धि है और मैं भी यह मिथ्या ज्ञान करता हूं, जो सब कहा जाता है।।१४।। अपने कर्म से दुःख होता है तथा उसी कर्म से सुख होता है, इस कारण कर्म ही पूजा जाता है, सब कुछ कर्म से ही स्थित है।।१५।। तू मेरी माता, मैं तेरा पुत्र, ये जो जीवादि हैं, वे सब कर्म से बंधे हैं, इससे तुझे शोक नहीं करना चाहिये।।१६।। सूतजी बोले– वह गाय इस प्रकार अपने पुत्र का ज्ञान से युक्त वचन सुनकर पुत्रशोक से व्याकुल तथा दीन होकर यह वचन बोली।।१७।। गौ बोली– हे वत्स! मैं सब जानती हूं कि– सब प्रजा कर्म के आधीन हैं, तो भी माया से फँसी हुई मैं दुःख को प्राप्त होती हूं।।१८।। और अत्यन्त रोदन करने पर भी मेरे दुःख की शान्ति नहीं हुई, ऐसा माता का वचन सुनकर फिर बछड़ा उससे बोला।।१९।। बछड़ा बोला– यदि तू ऐसा जानती हो, फिर क्यों रोती हो? कर्म करके बिना भोगे कुछ साधन नहीं, अतः अब दुःख का त्याग कर।।२०।। सूतजी बोले– ऐसा पुत्र का वचन सुनकर उसकी माता वह गाय अति दुःखी होकर गहरी साँस लेकर बछड़े से यह बोली।।२१।। गौ बोली– मेरा दुःख तो उस समय जाएगा, जब वैसा ही दुःख उस ब्राह्मण को होगा, यह मैं सत्य–सत्य कहती हूं।।२२।। हे पुत्र! प्रातःकाल मैं उसको सींगों से मारूंगी, जिससे शीघ्र ही विदीर्ण किया हुआ वह तत्काल प्राणों से छूट जाएगा, इसमें कुछ संशय नहीं।।२३।। बछड़ा बोला– पहले जो कुछ कर्म किया है, सो अब भोग रहे हैं, हे मातः! इस ब्रह्महत्या का फल क्या पाओगी?।।२४।।

पुण्य तथा पापों के समान होने पर इस संसार में जन्म होता है, हे मातः! और पाप पुण्य दोनों के भोग नाश होने पर मुक्ति प्राप्त होती है।।२५।। किसी कर्मों का नाश तथा कभी भोग होता है, इस कारण तू ऐसा कर्म करने में उद्यत न हो।।२६।। मैं तेरा पुत्र कहां और तू मेरी माता कहां? मातापन तथा पुत्रत्व में वृथा अभिमान है; अर्थात् न कोई किसी की माता, न कोई किसी का पुत्र है, ऐसा विचार।।२७।। कौन माता है? कौन पिता? कौन स्वामी है? कौन स्त्री है? कोई भी किसी का नहीं है, यह सब अपने-अपने किये कर्मों को भोगते हैं।।२८।। हे माता! ऐसा जानकर तुझे यत्न से दुःख त्यागना चाहिये और परलोक के सुख की इच्छा से अच्छे आचरण करना चाहिये।।२९।। गौ बोली- हे पुत्र! मैं जानती हूँ, परन्तु मुझे माया नहीं छोड़ती, तुझे दुःख देने के बदले उसे घोर दुःख दूंगी।।३०।। तत्पश्चात् जहां ब्रह्महत्या का नाश होता है, वहां मैं जाऊंगी, वह स्थान मैंने देखा है, इससे मेरी ब्रह्महत्या नष्ट होगी।।३१।। सूतजी बोले- हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ! उस समय अपनी माता का ऐसा वचन सुनकर उस बछड़े ने मौन धारण किया और कुछ भी न कहा।।३२।। हे मुनीश्वरो! उन दोनों माता पुत्रों का वचन सुनकर वह यात्री ब्राह्मण विस्मित होकर अपने हृदय में सोचने लगा।।३३।। कि- मैं प्रातःकाल इस अद्भुत समाचार को देखकर जाऊंगा तथा ब्रह्महत्या विनाशक स्थान को भी अवश्य जाऊंगा।।३४।। सूतजी बोले- हे द्विजो! वह माता का भक्त ब्राह्मण ऐसा अपने हृदय में विचार करके अपने सेवक सहित अतिविस्मित होकर सोता रहा।।३५।। प्रातःकाल होने पर वह गृह का स्वामी उठा और उस पथिक को जगाने लगा और बोला।।३६।। ब्राह्मण बोला- हे पथिक! तुम क्यों सो रहे को? पूर्ण प्रातःकाल हो गया, अपनी यात्रा करो, जहां तुम्हारी जाने की इच्छा हो, उस देश को जाओ।।३७।। उस पथिक ने कहा- हे ब्रह्मन्! सुनो, मेरे शरीर में तथा मेरे सेवक के शरीर में कुछ व्यथा (पीड़ा) है, इससे कुछ काल यहां ठहरकर थोड़ी देर बाद जाऊँगा।।३८।। सूतजी बोले- इस प्रकार बहाना करके उस विस्मयदायक अद्भुत चरित्र जानने की इच्छा से उस समय वह पुरुष सोता रहा।।३९।। तब गाय दुहने के समय उस ब्राह्मण ने कहीं कार्य के निमित्त जाने की इच्छा से अपने पुत्र से कहा।।४०।। पिता बोला- हे पुत्र! मैं तो कार्यवश अन्यत्र जाता हूं, हे वत्स! तू यह अपनी गाय सावधानी से दुह लेना।।४१।। सूतजी बोले- ऐसा कहकर वह ब्राह्मणश्रेष्ठ कहीं को चला गया और उस समय पुत्र ने उठकर गाय दुहने के लिये बछड़े को खोला।।४२।। उसकी माता भी स्वयं गाय दुहने को आई, तब उस ब्राह्मण के पुत्र ने कील से खिन्न हुए बछड़े को ताड़न किया।।४३।। दूध दुहने की इच्छा से गाय के समीप बांधने को लाया, तब क्रोधित हुई गाय ने उस बालक को सींगों से ताड़न किया।।४४।। वह भी मर्मस्थान में वेधित होकर मूर्च्छा को प्राप्त होकर गिर पड़ा, त्यों ही सब लोग

आ गये और कहने लगे कि, गाय ने बालक को मार दिया ।।४५।। हाय हाय ! करते हुए वे वहां गये, जहां उसके पिता स्थित थे, जब तक कुछ यत्न करते, तब तक वह बालक मर गया ।।४६।। उस बालक के मरने पर वहां बड़ा हाहाकार मचा, उसकी माता दुःखी होकर बारंबार रुदन करने लगी ।।४७।। मैं क्या करूं ? कहां जाऊं ? मेरा दुःख कौन दूर करेगा ? ऐसा कहकर उसने रोकर उस गाय को ताड़न करके खोल दिया ।।४८।। उस समय वह श्वेत वर्णवाली गाय शीघ्र ही श्याम वर्णवाली हो गई, क्या आश्चर्य है ? ऐसा सब देखनेवाले मनुष्य परस्पर कहते थे ।।४९।। उस समय वह पथिक ब्राह्मण यह दृश्य देखकर आश्चर्य को प्राप्त हो गया, जहां गाय जाने लगी, वहां ही उसके पीछे–पीछे वह ब्राह्मण चला गया ।।५०।। उस समय वह गाय पूँछ ऊपर करके शीघ्र ही नर्मदा नदी के समीप गई, नन्दिकेश्वर महादेवजी के निकट उस नर्मदा के जल में ।।५१।। तीन बार गोता मारा और स्नान करते ही श्याम वर्ण से श्वेत वर्ण को प्राप्त हो गई और जिस स्थान से आई थी फिर वहां ही चली गई, यह लीला देखकर ब्राह्मण आश्चर्य को प्राप्त हो गया ।।५२।। अहो! यह ब्रह्महत्या को निवारण करनेवाला यह तीर्थ धन्य है। वह ब्राह्मण उसमें सेवक के सहित स्नान करने लगा ।।५३।। वे दोनों उस नर्मदा नदी में स्नान करके मार्ग में उस नदी की प्रशंसा करते हुए चले गये, तब मार्ग में उन्हें कोई भूषण धारे स्त्री मिली ।।५४।। उसने उस ब्राह्मण से कहा– हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! हे पथिक! विस्मय से युक्त होकर तुम कहां जाते हो ? सो कपट त्याग कर मेरे आगे सत्य कहो ।।५५।। सूतजी बोले– उस समय ऐसा वचन सुनकर ब्राह्मण ने ठीक–ठीक कह सुनाया, फिर उस ब्राह्मण से वह स्त्री बोली कि, तुम यहां स्थित रहो ।।५६।। तब उसका वचन सुनकर वह स्थित रहा और नम्र स्वभाव वाले उस ब्राह्मण ने स्त्री से कुछ कथन करने के लिये कहा ।।५७।। तब वह स्त्री कहने लगी कि, जो स्थल तुमने देखा है, वहीं पर माता की अस्थियों को सिराओ और कहां जाते हो ? ।।५८।। हे श्रेष्ठ पथिक ! ऐसा करने से तेरी माता साक्षात् दिव्य शरीर धारण करके शीघ्र ही शिवलोक में मुक्ति को प्राप्त होगी ।।५९।। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! वैशाखमास में शुक्ल पक्ष की सप्तमी के दिन वहां निरन्तर गंगाजी आती हैं ।।६० ।। सो आज सप्तमी है, यहां गंगा विद्यमान है, हे मुनीश्वरो ! इस प्रकार कहकर वह गंगा रूपवाली देवी स्त्री अन्तर्धान हो गई ।।६१।। और उस ब्राह्मण ने लौटकर अपनी माता की अस्थियां जभी वस्त्र खोलकर वहां सिराईं, तभी यह विचित्र दृश्य हुआ, कि ।।६२।। उसकी माता दिव्य शरीर धारण करके यह कहती हुई दीखी, कि हे पुत्र ! तू धन्य है, कृतकृत्य है, तू ने अपने कुल को पवित्र किया ।।६३।। तेरा धन–धान्य तथा आयु वृद्धि को प्राप्त हो, ऐसी बारंबार अपने पुत्र को आशिष देकर उसकी माता स्वर्ग को प्राप्त हो गई ।।६४।। वहां अधिक समय तक बड़े सुख को भोगकर शिवजी के प्रसाद से श्रेष्ठ गति को प्राप्त हो गई ।।६५।।

उसका पुत्र ब्राह्मण अपनी माता की अस्थियां सिरा कर प्रसन्न चित्त तथा शुद्ध आत्मा होकर अपने घर चला गया।।६६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां
नन्दिकेश्वरलिंगमाहात्म्यवर्णने ब्राह्मणीस्वर्गतिर्नाम षष्ठोऽध्यायः।। ६ ।।

*****

सातवाँ अध्याय

ऋषि बोले– हे प्रभो! हे सूतजी! वैशाख शुक्ल सप्तमी को नर्मदा नदी पर गंगाजी किस प्रकार आती है? सो वर्णन करें।।१।। हे बड़ी बुद्धिवाले! नन्दिकेश नाम से ईश्वर किस प्रकार प्रसिद्ध हुए, यह समाचार भी प्रीति से कहें।।२।। सूतजी बोले– हे श्रेष्ठ ऋषियो! आपने नन्दिकेश सम्बन्धी अच्छा प्रश्न किया, सो मैं अब उसे वर्णन करता हूं, जो सुनने मात्र से पुण्य बढ़ानेवाला है।।३।। ऋषिका नामवाली ब्राह्मणी, किसी ब्राह्मण की कन्या, शास्त्र के विधान सहित एक ब्राह्मण को विवाही गई।।४।। हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ! पूर्व कर्म के प्रभाव से वह ब्राह्मण की पतिव्रता स्त्री बाल्यावस्था में विधवा हो गई।।५।। तब वह विप्र की पत्नी ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके पार्थिव पूजन के सहित बड़ा कठिन तप करने लगी।।६।। उसी समय मूढ़ नामक एक बड़ा मायावी बली दुष्ट दैत्य काम के बाण से पीड़ित होकर उस स्थान में गया।।७।। और तप करती हुई उस अत्यन्त कामिनी तथा सुन्दर रूपवाली स्त्री को देखकर उसने अनेक प्रकार के लोभ दिखाकर उसके साथ भोग करने की प्रार्थना की।।८।। हे मुनीश्वरो! तब शुभ व्रत करनेवाली, शिवजी के ध्यान में तत्पर हुई उसने काम की दृष्टि से उसकी ओर नहीं देखा।।९।। तप करने में लगी हुई उस ब्राह्मणी ने उस दैत्य का कुछ मान नहीं किया और शिवजी के ध्यान में मग्न होकर अत्यन्त तप करने लगी।।१०।। तब उस स्त्री द्वारा तिरस्कार किया हुआ, वह मूर्ख दैत्यपति उसके ऊपर क्रोध करने लगा और पीछे अपना रूप दिखाया।।११।। और वह दुष्टात्मा राक्षस उस ब्राह्मण की पत्नी को भय (त्राह) दिखाते हुए भयंकर दुर्वचन कहने लगा।।१२।। और उस समय उस कृशांगी ब्राह्मण की स्त्री ने भयभीत होकर प्रीति से अनेक बार शिवजी के आश्रय होकर 'शिव शिव' उच्चारण किया।।१३।। और भय से अत्यन्त व्याकुल होकर शिवनाम जपते हुए, अपने धर्म का रक्षा करने के कारण शिवजी की शरण में गमन किया।।१४।। शरणागत की रक्षा के निमित्त श्रेष्ठ व्रत धारण करनेवाले शंकरजी उस स्त्री के सुख के निर्मित्त उसी समय प्रकट हए।।१५।। और भक्तवत्सल शिवजी ने काम से व्याकुल उस मूढ़ नामक दैत्यपति को उसी समय भस्म कर दिया।।१६।। उस समय भक्तों की

रक्षा करने में चतुर बुद्धिवाले शिवजी ने उसे कृपादृष्टि से देखकर, 'वर मांग' ऐसा कहा ।।१७।। वह ब्राह्मण की पतिव्रता स्त्री महादेवजी के वचन सुनकर आनन्द के उत्पादक शिवजी के सुन्दर रूप को देखने लगी ।।१८।। कन्धे झुकाये हुए, शुभ आशयवाली उस स्त्री ने सुखदायक परमेश्वर शिवजी को प्रणाम किया तथा हाथ जोड़कर उनकी स्तुति की ।।१९।। ऋषिका बोली– हे देव देव! हे शरणागतवत्सल! आप दीनों के बन्धु तथा नित्य भक्तों की रक्षा करनेवाले हों ।।२०।। आपने मूढ़ नामक दैत्य से मेरा धर्म बचाया तथा संसार की रक्षा करनेवाले आपने इस दुष्ट को मारा ।।२१।। हे नाथ! अपने चरणों में मेरी अविनाशी भक्ति प्रदान करें, यही वरदान मैं चाहती हूं, इससे अधिक और क्या कहूं?।।२२।। हे विभो! हे महेश्वर! मेरी इस प्रार्थना को भी सुनिये कि– आप लोकों के उपकार के निमित्त यहां विराजमान होइये ।।२३।। सूतजी बोले– इस प्रकार महादेवजी की स्तुति करके व शुभव्रतवाली ऋषिका मौन हो गई, तब दयालु शिवजी कहने लगे ।।२४।। शिवजी बोले– हे ऋषिके! सुन्दर चरित्रवाली तू विशेषकर मेरी भक्ता है, जो–जो वरदान तू ने मांगे, सो–सो मैंने सब तुझे दिये ।।२५।। इसी अवसर में शिवजी को प्रकट हुए जानकर विष्णुजी, ब्रह्माजी आदि सब देवता प्रसन्नापूर्वक वहां आ गये ।।२६।। उन सबों ने प्रीति से शिवजी को प्रणाम करके उनका पूजन किया तथा नम्र हुए सुन्दर चित्तवाले देवताओं ने हाथ जोड़कर स्तुति की ।।२७।। उसी समय पर मधुर स्वरवाली साध्वी गंगाजी उसकी प्रशंसा करती हुई प्रसन्न मन से उसके समीप आकर उस ऋषिका से बोली ।।२८।। गंगाजी बोली– वैशाख के महीने में एक दिन तुम मेरे समीप स्थिति करने का वचन दो अर्थात् वैशाख में तुझको एक दिन मेरे समीप स्थिति करनी चाहिये ।।२९।। सूतजी बोले– गंगाजी का इस प्रकार वचन सुनकर, वह श्रेष्ठव्रत करनेवाली साध्वी लोकों के हित के कारण 'बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा,' यह वचन बोली ।।३०।। उसके आनन्द के अर्थ अति प्रसन्न हुए शिवजी उस पार्थिवलिंग में पूर्ण अंश से लय हो गये ।।३१।। अति प्रसन्न होकर शिवजी की तथा उस साध्वी की प्रशंसा करते हुए ब्रह्माजी आदि सब देवता और गंगाजी अपने–अपने स्थानों को चले गये ।।३२।। उस दिन से लेकर इस प्रकार वह उत्तम पवित्र तीर्थ हो गया और सम्पूर्ण पापों का नाश करनेवाले नन्दिकेश नामक शिवजी प्रसिद्ध हो गये ।।३३।। हे द्विजो! गंगाजी भी जो मनुष्यों के पाप निवारण करती हैं, उन अपने पापों को धोने के निमित्त प्रति वर्ष अपने शुभ की इच्छा से यह वैशाख सप्तमी को आती है ।।३४।। मनुष्य यहां स्नान करके और भली प्रकार नन्दिकेश शिवजी को पूजकर ब्रह्महत्या आदि समस्त पापों से छूट जाता है ।।३५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां

नन्दिकेश्वरशिवलिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ।। ७

आठवाँ अध्याय

सूतजी बोले- हे ब्राह्मणो! पश्चिम दिशा की भूमि पर जो-जो लिंग प्रसिद्ध हैं, उन सम्पूर्ण शिवजी के पार्थिवलिंगों को श्रेष्ठ भक्ति से सुनिये।।१।। कपिला नामवाली नगरी में कालरामेश्वर नामक परम दिव्य शिवलिंग है, जिसका दर्शन करने से पाप दूर होता है।।२।। पश्चिम सागर की ओर महासिद्धेश्वर पार्थिवलिंग प्रसिद्ध है, यह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को देनेवाला है।।३।। पश्चिम के समुद्र के तीर पर गोकर्ण नामक उत्तम क्षेत्र है, जो ब्रह्महत्या आदि पापों का नाश करनेवाला है तथा सब कामनाओं को सिद्ध करनेवाला है।।४।। गोकर्ण में कोटियों पार्थिवलिंग हैं तथा पद-पद में असंख्य तीर्थ हैं।।५।। बहुत कहने से क्या है? शिवजी के प्रत्यक्ष हुए सब ज्योतिर्लिंग तथा तीर्थ रूप जल सब गोकर्णनाथ में स्थित हैं।।६।। हे तात! गोकर्ण में सब तीर्थों की तथा पार्थिवलिंगों की महिमा महर्षियों ने पुराणों में वर्णन की है।।७।। वह साक्षात् लिंग सत्ययुग में श्वेत वर्ण, त्रेता में अतिरक्त वर्ण, द्वापर में पीत वर्ण तथा कलियुग में श्याम वर्ण होगा।।८।। सात रसातल गुहाओं में आक्रमण करनेवाले बड़े बली गोकर्णजी घोर कलियुग के होने पर कोमलता को प्राप्त होंगे।।९।। गोकर्णनाथ में उन महापराक्रमी लिंगरूप शिवजी को पूजकर बड़े-बड़े पाप करनेवाले भी साक्षात् शिवजी के पद को प्राप्त होंगे।।१०।। हे मुनियो! गोकर्ण में जाकर पवित्र नक्षत्र में तथा दिन में जो मनुष्य भक्तिपूर्वक शिवजी की पूजा करते हैं, वे शिवरूप ही होते हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं।।११।। अथवा जब कभी जो मनुष्य गोकर्ण में जाकर शिवलिंग को पूजता है, वह ब्रह्माजी के पद को प्राप्त होता है।।१२।। वहां पर शिवजी ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं के हित की इच्छा से महाबल नाम से प्रसिद्ध होकर सदा निवास करते हैं।।१३।। राक्षस रावण ने घोर तप से प्राप्त करके हुआ उनका लिंग गोकर्ण में गणनायकरूप से स्थापित किया है।।१४।। विष्णु, ब्रह्मा, महेन्द्र, विश्वदेव तथा मरुद्गण, आदित्य, वसु, अश्विनीकुमार तथा तारागणों के सहित चन्द्रमा।।१५।। यह विमान से आये हुए पार्षदों के सहित देवता उनकी प्रीति के कारण पूर्व के द्वार को सेवन करते हैं।।१६।। यम, मृत्यु, चित्रगुप्त तथा अग्नि यह देवता साक्षात् पितरों और रुद्रों सहित दक्षिण के द्वार पर निवास करते हैं।।१७।। नदियों के स्वामी वरुण देवता, गंगा आदि नदियों के सहित पश्चिम के द्वार को आश्रय करके महाबल शिवजी का सेवन करते हैं।।१८।। कुबेर तथा वायु, देवेशी भद्रकालिजी, चण्डिका आदि माताओं के सहित उत्तर द्वार को आश्रय करके उन शिवजी का सेवन करते हैं।।१९।। सम्पूर्ण देवता, गन्धर्व, पितर,

सिद्ध, चारणों सहित और विद्याधर, किंपुरुष, किन्नर, गुह्यक, खग आदि ।।२०।। अनेक पिशाच तथा वेताल महाबली दिति के पुत्र (दैत्य) तथा नाग, शेष आदि सम्पूर्ण सिद्ध तथा समस्त मुनिगण ।।२१।। उन महाबल नामक शिवजी को सदा प्रणाम करते हैं और अभिलषित मनोरथों को पाते हैं तथा सुखपूर्वक रमण करते हैं ।।२२।। अनेक पुरुषों ने सुन्दर तप किया है तथा उन सर्वव्यापी शिवजी को पूजकर इस लोक में तथा परलोक में सुख देनेवाली परमसिद्धि को प्राप्त किया है ।।२३।। हे द्विजो! गोकर्णनाथ में शिवलिंग को मोक्ष का द्वार कहा है, उन महाबल नामक शिवजी की पूजा तथा स्तुति होती है ।।२४।। माघ मास की कृष्णा चतुर्दशी को महाबली की पूजा करने से समस्त पापियों को भी विशेषकर मुक्ति प्राप्त होती है ।।२५।। इस शिवतिथि (चतुर्दशी) के दिन महोत्सव देखने की इच्छा से अनेक देशों से चारों वर्णों के मनुष्य यहां आते हैं ।।२६।। चारों आश्रमवाले, स्त्रियां, बालक, वृद्ध यहां आकर देवेश महाबल नामक शिवजी का दर्शन करके सफलता को प्राप्त होते हैं ।।२७।। उन शिवजी के पार्थिवलिंग को पूजकर एक चाण्डाली महाबल के प्रताप से उसी समय शिवलोक को प्राप्त हुई थी ।।२८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां
महाबलमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ।। ८ ।।

*****

नववाँ अध्याय

ऋषि बोले– हे सूतजी! हे महाभाग! हे विभो! आप धन्य हैं, वह चाण्डाली कौन थी? आप उसकी कथा को कहिये ।।१।। सूतजी बोले– हे द्विजो! उस परम अद्‌भुत, शिवजी की महिमा वाली, सुननेवालों को भक्ति बढ़ानेवाली कथा को सद्‌भक्ति से श्रवण कीजिये ।।२।। वह चाण्डाली पहले जन्म में सब लक्षणों से शोभित, चन्द्रमा के समान मुखवाली सौमिनी नामवाली ब्राह्मण की कन्या थी ।।३।। हे द्विजो! तब युवा होने पर उस सौमिनी कन्या का उसके पिता ने किसी ब्राह्मण के पुत्र के साथ विधिपूर्वक विवाह कर दिया।।४।। हे ब्राह्मणश्रेष्ठो! तब नवीन यौवनवाली पतिव्रता सौमिनी अपने पति को प्राप्त होकर कुछ समय तक उसके साथ रमण करने लगी ।।५।। हे द्विजो! तब उसका पति, वह युवक ब्राह्मण रोग से पीड़ित होकर काल के योग से मृत्यु को प्राप्त हो गया ।।६।। अपने पति के मर जाने पर वह स्त्री अति दुःखी हो गई और व्याकुल चित्त, श्रेष्ठ स्वभाव वाली अच्छे आचरण सहित उस सौमिनी ने कुछ समय

तक अपने घर में निवास किया ।।७।। फिर वह विधवा कामदेव के बाणों से पीड़ित होकर युवावस्था की विशेषता से व्यभिचारिणी हो गई ।।८।। उसके कुल को दूषित करनेवाले कुत्सित कर्म को जानकर उसके कुटुम्बी परस्पर में सम्मति करके बाल पकड़कर दूर ले जाकर उसे छोड़ आये ।।९।। अपनी इच्छा से (स्वतन्त्र) वन में फिरती हुई उस स्त्री को देखकर किसी शूद्र ने उसे अपनी स्त्री बनाया और घर ले आया ।।१०।। तब वह नित्य मांस खाती, मदिरा पीती थी और मैथुन में तत्पर हुई उसने उस शूद्र से एक कन्या को जन्म दिया।।११।। कभी उस व्यभिचारिणी सौमिनी ने अपने पति के कहीं चले जाने पर मदिरा पान करके मांस खाने की इच्छा की ।।१२।। उस समय बाहर गोठ में गायों के साथ मेष (मेंढ़े) बंधे हुए थे, वहां रात्रि के गाढ अन्धकार में वह तलवार लेकर चली गई ।।१३।। तब मांस चाहती हुई उस अति दुर्भगा ने मद्य (नशे) के चढ़ाव से बिना जाने मेष बुद्धि से एक चिल्लाते हुए गाय के बछड़े को मारा ।।१४।। वह स्त्री उस मरे हुए पशु को घर में लाकर, उसे गाय का बछड़ा जानकर किसी पुण्यकर्म से भयभीत होकर 'शिव शिव' ऐसा कहने लगी ।।१५।। उस मांस की अभिलाषा करनेवाली ने क्षणमात्र शिवजी का ध्यान करके उस गाय के बछड़े को काटकर अभिलषित भोजन किया ।।१६।। हे द्विजो! इस प्रकार बहुत दिन बीतने पर वह सौमिनी काल के वशीभूत होकर मृत्यु को प्राप्त हो गई ।।१७।। यमराज ने भी उसके पूर्वजन्म के कर्म तथा धर्म को देखकर नरकवास से निवृत्त करके उसे चाण्डाल जाति में बनाया ।।१८।। वह यमपुर से लौट कर चाण्डाली के गर्भ में प्राप्त हो गई और नेत्रों की ज्योति न मिलने से जन्म से अन्धी उत्पन्न हो गई ।।१९।। जन्म से अन्धी तथा बालकपन में माता-पिता के नष्ट हो जाने से उसे किसी ने नहीं पाला, न विवाही और बड़े कुष्ठरोग से पीड़ित हो गई ।।२०।। तब भूख से व्याकुल तथा दीन, नेत्र हीन, लकड़ी हाथ में लेकर चलनेवाली वह चाण्डालों के जूंठे भोजन से अपनी भूख शान्त करती थी ।।२१।। ऐसे बड़े कष्ट से अपनी बड़ी अवस्था को काट कर बुढ़ापे में अति दुःख को प्राप्त हो गई ।।२२।। किसी समय उस चाण्डाली ने शिवजी के उत्सव के दिन महाजन यात्रियों को गोकर्ण में आता-जाता हुआ जाना ।।२३।। तब वह चाण्डाली वस्त्र भोजन की तृष्णा से उन यात्री महाजनों से मांगने के निमित्त शनैः-शनैः (धीरे-धीरे) फिरने लगी ।।२४।। और वहां जाकर वह चाण्डाली हाथ जोड़कर दीन वचन बोलती हुई, वैश्यों से मांगती हुई, इधर-उधर घूमने लगी ।।२५।। इस प्रकार प्रार्थना करती हुई चाण्डाली के फैले हुए हाथों में किसी पुण्यात्मा पथिक ने बेल की मंजरी फेंक दी ।।२६।। उसने बेल की मंजरी को अंजलि में गिरी हुई देखकर बारंबार विचार कर व्याकुल होकर उसे अभक्ष्य मान कर दूर फेंक दिया ।।२७।। उसके हाथ से छूटी हुई वह बेल की मंजरी रात्रि में किसी शिवलिंग के मस्तक पर गिर गई ।।२८।। उस

चाण्डाली ने चतुर्दशी के रात्रि में पथिकों से बारंबार मांगने पर भी दैवयोग से कुछ भोजन भी नहीं पाया।।२९।। इस प्रकार चतुर्दशी को अज्ञान से निराहार पवित्र व्रत हो गया और परम आनन्द देनेवाला जागरण हुआ।।३०।। तब प्रात:काल वह स्त्री बड़े शोक से व्याकुल और दु:खी होकर धीरे–धीरे केवल अपने घर लौटी।।३१।। बहुत दिनों के उपवास से थकित हुई, पद–पद में गिरती हुई, उतनी वह भूमि को लांघकर मूर्छित हो गिरकर मर गई।।३२।। तब शिवजी की कृपा से शीघ्र ही शिवगणों ने सुन्दर विमान पर चढ़ाकर उसे महादेवजी के परमपद को प्राप्त कराया।।३३।। हे ब्राह्मणो! पहले इस व्यभिचारिणी चाण्डाली स्त्री ने जो अज्ञान से शिवजी के नाम का उच्चारण किया था, उसी ही पुण्य से फिर दूसरे जन्म में वह महाबल शिवजी के दिव्य स्थान को प्राप्त हुई।।३४।। गोकर्ण में शिवतिथि (चतुर्दशी) को उपासना करके तथा शिवजी के समीप जागरण करके रात में बिल्वपत्र से पूजन किया।।३५।। बिना इच्छा (अज्ञान) से किये हुये पुण्य का यह फल है कि– अब तक भी वह स्त्री महाबल के प्रसाद से भोगों को भोगती है।।३६।। इस प्रकार शिवजी का महाबल नामक महालिंग तत्काल सब पापों को हरण करनेवाला तथा परम आनन्द देनेवाला है।।३७।। हे ब्राह्मणो! इस प्रकार मैंने आपसे महाबल नामक शिवलिंग का बड़ा माहात्म्य कहा।।३८।। अब और भी उनका अद्‌भुत माहात्म्य कहता हूं कि, जिसे सुनने मात्र से शीघ्र ही शिवजी में भक्ति उत्पन्न होती है।।३९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां
चाण्डाली सद्‌गतिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः।।९।।

*****

दसवाँ अध्याय

सूतजी बोले– शोभायमान इक्ष्वाकुवंश में बड़ा धर्मात्मा तथा सब धनुषधारियों में श्रेष्ठ मित्रसह नामक एक राजा था।।१।। उस राजा की धर्मवती पतिव्रता स्त्री राजा नल की सती दमयन्ती के समान मदयन्ती नाम से प्रसिद्ध हुई।।२।। एक समय वह मित्रसह राजा शिकार खेलने की इच्छा से बड़ी सेना के सहित आखेट को सघन वन में गया।।३।। वहां विहार करते हुए उस राजा ने साधुओं को पीड़ा देनेवाले महा दुष्ट, क्रूर कमठ नामक राक्षस को मारा।।४।। तब उस राक्षस का पापी भाई राजा को कपट से जीतने के निमित्त छल से राजा के समीप आया।।५।। उस नम्र आकारवाले उस राक्षस को नौकरी करने के लिये आया हुआ देखकर राजाने उसे अज्ञान से रसोई का

अध्यक्ष बनाया ।।६।। और उस वन में कुछ समय तक भ्रमण करके राजा शिकार खेलकर वन से लौटकर आनन्द से अपने नगर में आया ।।७।। राजा ने पिता के क्षयाह (मृत्यु का दिन) प्राप्त होने पर अपने गुरु वसिष्ठजी को निमन्त्रण देकर अपने घर बुलाकर भक्तिपूर्वक भोजन कराया ।।८।। उस समय उस कपटरूपी राक्षस ने वसिष्ठजी के सामने मनुष्यों के मांस मिला हुए शाक परोसा, तब गुरु ने यह देखकर कहा ।।९।। गुरुजी बोले-- हे राजन्! तुझे धिक्कार है, कपट करनेवाले दुष्ट, तू ने मेरे आगे मनुष्य का मांस परोसवाया, इस कारण तू राक्षस होगा ।।१०।। तब उन गुरु वसिष्ठजी ने यह सब कौतुक राक्षस ने किया हुआ जानकर, फिर विचार करके उस शाप को बारह वर्ष तक का किया ।।११।। वह राजा अनुचित शाप को जानकर क्रोध के कारण व्याकुल होकर जल की अंजलि भरकर गुरुजी को शाप देने को उद्यत हुआ ।।१२।। उस समय उसकी धर्मवाली पतिव्रता मदयन्ती स्त्री ने उस राजा के चरणों में पड़कर उस शाप को निवारण कराया ।।१३।। तब अपनी स्त्री के वचनों से शाप हटाकर राजा ने अपने चरणों पर जल छोड़ा, तो वे चरण काले हो गये ।।१४।। हे मुनीश्वरो! उस दिन से लेकर इस लोक में वह राजा उस गिराये हुए जल के प्रताप से कल्मषपाद नाम से प्रसिद्ध हुआ ।।१५।। इस प्रकार मित्रसह राजा अपने गुरु वसिष्ठ ऋषिजी के शाप से वन में घोर हत्यारा राक्षस हुआ ।।१६।। वह राक्षस के रूप को धारण करके काल के समान वन में फिरता हुआ, मनुष्य आदि अनेक जीवों को खाने लगा ।।१७।। उस काल के समान भयंकर राक्षस ने कभी वन में भ्रमण करते हुए किशोर अवस्थावाले नवोढ मुनि स्त्री–पुरुषों को देखा ।।१८।। वह मनुष्यों का भोजन करनेवाला राक्षस शाप से दुःखी होकर बाल्यावस्थावाले मुनि के पुत्र को खाने इस प्रकार दौडा, जैसे व्याघ्र मृग के बच्चे को पकड़ता है ।।१९।। उस मुनि की स्त्री ने अपने स्वामी को दैत्य से कोख में पकड़ा हुआ देखकर भयभीत होकर गिड़गिड़ा के उस राक्षस को मधुर वचन कहकर प्रार्थना की ।।२०।। अनेक वार प्रार्थना करने पर भी वह नराहारी निर्दयी राक्षस उस ब्राह्मण के पुत्र का सिर फाड़कर खा गया ।।२१।। तब उस दीन साध्वी स्त्री ने अति दुःखी होकर विलाप करके अपने पति की अस्थियां इकट्ठी करके श्रेष्ठ चिता बनाई ।।२२।। अपने पति के पीछे जानेवाली उस ब्राह्मणी ने अग्नि में प्रवेश करके राक्षस आकारवाले राजा को शाप दिया ।।२३।। ''कि आज से लेकर तू जब स्त्रियों में संगम करेगा, तभी तेरी मृत्यु होगी'' ऐसा कहकर वह सती अग्नि में प्रवेश कर गई ।।२४।। वह राजा भी बारह वर्ष की अवधि पर्यन्त गुरु वसिष्ठजी के शाप को भोगकर फिर अपने पूर्व रूप प्राप्त होने पर प्रसन्न होकर अपने घर गया ।।२५।। उस समय मदयन्ती ने ब्राह्मणी के शाप को जानकर विधवा हो जाने के भय से संगम करने में प्रवृत्त हुए पति को निवारण किया ।।२६।। सन्तान रहित राजा राज्यभोग में शान्त (प्रसन्न) न हुआ और

सब राजपाट त्याग करके वन में चला गया ।।२७।। वहां उसने अपने पीछे आती हुई भयंकर आकारवाली, बारंबार डाटती हुई, अति दुःख देनेवाली उस ब्रह्महत्या को देखा ।।२८।। उस ब्रह्महत्या से छूटने की इच्छा से व्याकुल चित्त राजा ने जप, व्रत, यज्ञ आदि अनेक उपाय किये ।।२९।। हे ब्राह्मणो! जब अनेक उपायों से तथा तीर्थों में स्नान करने से उस राजा की ब्रह्महत्या नष्ट न हुई, तब वह राजा मिथिलापुरी को गया ।।३०।। उस ब्रह्महत्या की परम चिन्ता में व्याकुल हुए तथा बाहर वन में गये हुए उस राजा ने गौतम ऋषिजी को आते हुए देखा ।।३१।। उस राजा ने निर्मल आकारवाले गौतम मुनिजी के समीप जाकर उनके दर्शन से कुछ शान्ति को प्राप्त होकर उन्हें बारंबार प्रणाम किया ।।३२।। तब उन ऋषि से कुशल पूंछा हुआ राजा उनकी कृपादृष्टि से सुख पाकर गहरी तथा गरम श्वास लेकर उनसे बोला ।।३३।। राजा बोला– हे मुने! यह कठिन ब्रह्महत्या दूसरों न दीखती हुई, पद–पद में ताड़न करती हुई मुझे बाधा देती है ।।३४।। कारण कि शाप से वशीभूत होकर मैंने ब्राह्मण के पुत्र को भक्षण किया, इसे सहस्रों प्रायश्चित्त करने से भी उस पाप की शान्ति नहीं होती है ।।३५।। हे मुने! उस पाप के दूर होने के कारण मैंने भ्रमण करते–करते अनेक उपाय किये, तो भी मुझ पापी की ब्रह्महत्या नष्ट नहीं हुई ।।३६।। आज मेरा जन्म सफल हुआ, इस प्रकार मैं जानता हूं, कि आप के दर्शन मात्र से मुझे परम आनन्द प्राप्त हुआ है ।।३७।। हे महाभाग! आज अपने चरण कमलों की शरण में आये हुए मुझे इस महापाप से दूर कीजिये, जिससे मैं सुख पाऊं ।।३८।। सूतजी बोले– इस प्रकार राजा द्वारा प्रार्थना किये हुए, दयालु गौतम मुनि ने घोर पापों को दूर करनेवाला श्रेष्ठ उपाय बताया ।।३९।। गौतमजी बोले– हे साधो! हे राजेन्द्र! तू धन्य है, महापापों से भय को त्याग, कारण कि शिवजी के शासन करते हुए शरण के अभिलाषी भक्तों को भय कहाँ? ।।४०।। हे महाभाग! हे राजन्! सुनो, महा पातकों का नाश करनेवाला गोकर्ण नामक शिवजी का स्थानरूप क्षेत्र है ।।४१।। वहां बड़े से बड़े पापों की भी स्थिति नहीं रह सकती, वहां महाबल नाम से प्रसिद्ध हुए शिवजी स्वयं स्थित है ।।४२।। वे महाबल, सम्पूर्ण शिवलिंगों के सम्राट (अध्यक्ष) हैं तथा चारों युगों में चारों वर्णों के सब पाप हरण करनेवाले हैं ।।४३।। पश्चिम समुद्र के समीप गोकर्ण नामवाला उत्तम तीर्थ है, वहां महापापों को दूर करनेवाला शिवजी का ज्योतिर्लिंग है ।।४४।। महापापी भी वहां जाकर तीर्थों में सम्यक् प्रकार से स्नान करके, महाबल को पूज कर शिवजी के पद को प्राप्त होता है ।।४५।। हे राजेन्द्र! उसी प्रकार तू भी गोकर्ण नामवाले उस शिवजी के स्थान में जाकर महाबल लिंग को पूजकर सफलता को प्राप्त हो ।।४६।। वहां तू भी तीर्थों में स्नान करके महाबल शिवजी का पूजन करके सम्पूर्ण पापों से छूटकर शिवलोक को प्राप्त हो ।।४७।। सूतजी बोले– इस प्रकार महात्मा गौतम मुनिजी से आज्ञा

दिया हुआ वह राजा प्रसन्न मन होकर गोकर्ण को गया ।।४८।। वहां तीर्थों में स्नान करके महाबल को पूजकर सम्पूर्ण पापों से छूटकर शिवजी के परमपद को प्राप्त हो गया ।।४९।। जो मनुष्य इस प्रिय महाबल की कथा सुनता है, वह इक्कीस पीढ़ीयों सहित शिवलोक को प्राप्त होता है ।।५०।। इस प्रकार मैंने महाबल नाम वाले शिवलिंग का समस्त पाप हरण करनेवाला परम अद्‍भुत माहात्म्य आपसे कहा ।।५१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां
महाबलाह्वशिवलिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ।। १० ।।

*****

ग्यारहवाँ अध्याय

ऋषि बोले– हे महाभाग! हे सूतजी! शिवजी में तत्पर बुद्धिवाले आप धन्य हैं, आपने महाबल लिंग की सुन्दर कथा सुनाई ।।१।। हे पाप रहित! उत्तर दिशा की ओर जो–जो शिवजी के ज्योतिर्लिंग हैं, उनके पापनाशक माहात्म्य को आप वर्णन कीजिये ।।२।। सूतजी बोले– हे ब्राह्मणो! आप आदर से सुनिये। मैं उत्तर दिशा में स्थित शिवलिंगों के माहात्म्य को संक्षेप से कहता हूं ।।३।। महापातक नाश करनेवाला दूसरा गोकर्ण नामक क्षेत्र है, वहां अतिविस्तारवाला बड़ा पवित्र वन है ।।४।। वहां शिवजी का चन्द्रभाल नामक श्रेष्ठ ज्योतिर्लिंग है, वह सुन्दर भक्ति से रावण ने स्थापित किया है और सम्पूर्ण सिद्धियों को देनेवाला है ।।५।। हे मुनीश्वरो! सब संसार के हित के निमित्त दया के समुद्र उन चन्द्रभाल शिवजी की वहां वैद्यनाथजी के समान स्थिति है ।।६।। गोकर्ण में स्नान करके चन्द्रभाल शिवजी का पूजन करके शिवलोक को प्राप्त होते हैं, यह सत्य है, इसमें कुछ सन्देह नहीं ।।७।। भक्तों के ऊपर स्नेह करनेवाले चन्द्रभाल शिवजी की महिमा बड़ी अद्‍भुत है, जो व्यासजी से भी वर्णन नहीं की जा सकती है ।।८।। चन्द्रभाल महादेवजी के ज्योतिर्लिंग की महिमा तो बड़ी है, तथापि किंचित् सामर्थ्य के अनुसार वर्णन करता हूं, सुनिये ।।९।। मिश्र ऋषिवर (मिश्रर्षि) तीर्थ पर दाधीच नामक शिवलिंग है, उसे दाधीच मुनीश ने परमप्रीति से स्थापन किया है ।।१०।। वहां जाकर विधिपूर्वक अच्छी प्रकार स्नान करके दाधीचेश्वर नामवाले शिवलिंग को आदर से पूजना चाहिये ।।११।। वहां पर शीघ्र ही तीर्थयात्रा के फल चाहनेवालों को विधिपूर्वक शिवजी की प्रसन्नता के निमित्त दाधीच ऋषि की मूर्ति को पूजना चाहिये ।।१२।। हे मुनिश्रेष्ठो! ऐसा करने पर मनुष्य कृतकृत्य होता है, इस लोक में पूर्ण सुख को भोगकर परलोक में सद्गति को प्राप्त होता है ।।१३।। नैमिषारण्य में तो सब ऋषियों द्वारा स्थापित किया हुआ ऋषीश्वर नामक

सुखदायक ज्योतिर्लिंग प्रसिद्ध है।।१४।। हे मुनीश्वरो! उसका दर्शन करने से पापी मनुष्यों को भी इस लोक तथा परलोक में भुक्ति–मुक्ति प्राप्त होती है।।१५।। हत्याहरण तीर्थ पर पापनाशक, पूजनीय, विशेषकर कोटि हत्याओं के पाप का नाश करनेवाला शिवलिंग है।।१६।। देवप्रयाग तीर्थ में ललितेश्वरं नामक सब पापों को दूर करनेवाले शिवलिंग की पूजा सब पुरुषों को करनी चाहिये।।१७।। नयपाल नामक प्रसिद्ध पुरी में पशुपतिश नामक प्रसिद्ध तथा सब कामनाओं को सिद्ध करनेवाला ज्योतिर्लिंग है।।१८।। वह शिवलिंग सिर के भाग स्वरूप से स्थित है, उसकी कथा केदारेश्वर के इतिहास में वर्णन करूँगा।।१९।। उसके समीप मुक्तिनाथ नामक शिवलिंग बड़ा अद्‌भुत है, उनके दर्शन तथा पूजन करने से भुक्ति–मुक्ति प्राप्त होती है।।२०।। हे मुनीश्रेष्ठो! यह चारों दिशाओं में उत्तम लिंगों का वर्णन आपसे किया, अब और क्या सुनना चाहते हो?।।२१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां
चन्द्रभालपशुपतिनाथलिंगमाहात्म्यवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः।। ११ ।।

*****

बारहवाँ अध्याय

ऋषि बोले– हे सूतजी! आप व्यासजी के प्रसाद से सब वस्तुओं को जानते हैं, आपको कुछ अज्ञात नहीं है, इस कारण हम आपसे पूछते हैं।।१।। संसार में उन लिंगों की पूजा होती है, जो आपने पहले बताये। सो उसका कारण वही है, क्या इसका कोई अन्य कारण है?।।२।। हे सूतजी! लोक में शिवजी की प्रिया पार्वती, जो बाण रूपा कही जाती हैं, सो इसका क्या कारण है? आपने जैसा सुना है, वैसा कहिये।।३।। सूतजी बोले– हे ब्राह्मणो! हे श्रेष्ठ ऋषियो! मैंने व्यासजी से जो कल्प भेद की कथा सुनी है, उसीको आज आपसे कहता हूं, सो सुनिये।।४।। पहले दारुवन में ब्राह्मणों का जो वृत्तान्त हुआ, सो अब अच्छी प्रकार सुनिये, जैसा मैंने सुना है, वैसा कहता हूं।।५।। हे ऋषि सत्तम! जहां दारु नामक श्रेष्ठ वन है, वहां नित्य शिवजी के ध्यान में तत्पर हुए शिवभक्त ऋषि गण रहते थे।।६।। वे मुनीश्वर तीनों कालों में निरन्तर शिवजी का पूजन करते थे तथा अनेक प्रकार के स्तोत्रों से स्तुति करते थे।।७।। वे शिवजी के ध्यान में परायण, शैव द्विजर्षि गण समिधाओं को लेने के निमित्त कभी दारुवन में आये।।८।। इसी अन्तर में साक्षात् नीललोहित शंकरजी विकट रूप धारण करके उनकी परीक्षा लेने के निमित्त प्राप्त हो गये।।९।। साक्षात् दिगम्बर, अतितेजस्वी, विभूति भूषण से शोभायमान, कामियों के समान चेष्टा करते, हाथ में ज्योतिर्लिंग धारण

किये ।।१०।। स्वयं भक्तों से प्रसन्न हुए शिवजी मन से उन वनवासी मुनियों की भलाई करने को प्रसन्नता से उस वन में प्राप्त हो गये ।।११।। उनको देखकर ऋषिपत्नी परमत्रास को प्राप्त होकर व्याकुल हुई तथा कोई विस्मित होकर वहां आई ।।१२।। तथा कोई हाथ पकड़ के परस्पर आलिंगन करने लगी, इस प्रकार वे स्त्रियां परस्पर आलिंगन करने से अति प्रसन्न हो गयी ।।१३।। इसी अवसर में वे श्रेष्ठ ऋषि भी आ गये, उनके विरुद्ध रूप को देखकर वे दुःखी तथा क्रोध से व्याकुल हो गये ।।१४।। उस समय दुःखित हुए वे ऋषि शिवजी के माया से मोहित होकर आपस में बोले कि- ''यह कौन है? यह कौन है?'' इस प्रकार कहने लगे ।।१५।। जिस समय वह अवधूत दिगम्बर कुछ न बोले, तो वे परम ऋषि उन भयंकर पुरुष से कहने लगे ।।१६।। तुम वेदमार्ग को लोप करनेवाले, विरुद्ध कार्य को करते हो, इस कारण तुम्हार यह लिंग भूमि पर गिर पड़े ।।१७।। सूतजी बोले- ऐसा उन ऋषियों के कहने पर उन अवधूत अद्भुत रूप धारी शिवजी का लिंग उसी क्षण गिर पड़ा ।।१८।। और वह लिंग आगे स्थित होकर अग्नि के समान जलने लगा और जहां-जहां वह जाता वहां-वहां जलाता था ।।१९।। वह लिंग पाताल में, स्वर्गलोक में भी उसी प्रकार प्रज्ज्वलित होकर भ्रमण करने लगा, कहीं पर भी स्थिर न हुआ ।।२०।। सम्पूर्ण लोक व्याकुल हो गये तथा वे ऋषि दुःखित हो गये, कोई देवता तथा ऋषि कल्याण को प्राप्त नहीं हुए।।२१।। जिन्होंने शिवजी को नहीं जाना वे सम्पूर्ण देवर्षि दुःखित होकर परस्पर मिलकर तत्काल ब्रह्माजी के शरण में गये ।।२२।। वहां जा कर वे समस्त ऋषि आदि ब्रह्माजी को नमस्कार करके तथा उनकी स्तुति करके ब्रह्माजी से वह वृत्तान्त कहने लगे ।।२३।। ब्रह्माजी उनके वचन सुनकर शिवजी की माया से मोहित हुए ऋषिश्रेष्ठों को जानकर शिवजी को प्रणाम करके उनसे बोले ।।२४।। ब्रह्माजी बोले- हे ब्राह्मणो! जाननेवाले आप लोग भी ऐसे निन्दित काम को करते हैं, यदि बिना जाननेवाले ऐसा करें तो कोई कहने की बात नहीं है ।।२५।। इस प्रकार शिवदेव से विरोध करके कौन पुरुष अपनी कुशलता चाहता है? जो मनुष्य मध्याह्न समय में प्राप्त हुए अभ्यागत का सत्कार नहीं करता है ।।२६।। तो वह अतिथि उसके पुण्य लेकर तथा अपने पाप देकर लौट जाता है, यदि साक्षात् शिवजी आवें तो फिर क्या है?।।२७।। मैं आपसे यह सत्य कहता हूं कि, जब तक तीनों लोकों में यह शुभ लिंग कहीं स्थिर नहीं होता है ।।२८।। तब तक आप ऐसे उपाय करें कि, जिससे इस लोक में स्वास्थ्य हो, हे ऋषियो! शिवजी के ज्योतिर्लिंग को मन से ध्यान करें ।।२९।। सूतजी बोले- इस प्रकार कहे हुए वे ऋषि ब्रह्माजी से बोले- हे ब्रह्मन्! अब हमें क्या करना उचित है? सो आप आज्ञा कीजिये ।।३०।। उन मुनीश्वरों के ऐसा कहने पर वह सब लोकों के पितामह ब्रह्माजी उस समय उन ऋषियों से स्वयं बोले ।।३१।। ब्रह्माजी बोले- हे देवताओ! देवी पार्वती की आराधना करके

पश्चात् शिवजी की प्रार्थना करें, यदि पार्वती साक्षात् योनिरूपा हो जाए, तो ज्योतिर्लिंग स्थिरता को प्राप्त हो ।।३२।। हे ऋषिसत्तम! मैं उस विधि को इस समय कहता हूं, आप सूनें और इसी विधि को करें, तब वह पार्वतीजी प्रसन्न होंगी ।।३३।। एक घट को स्थापन करके उत्तम आठ दल करके दूर्वा, जौ के अंकुरों सहित उसमें तीर्थों के जल को भरें ।।३४।। तत्पश्चात् वेदमन्त्रों से उस कलश को सेचन करके, शास्त्रोक्त विधि से शिवजी का स्मरण करके, उसकी पूजा करें ।।३५।। हे ऋषियो! शतरुद्रीय मन्त्रों से उस कलश के जल से उस लिंग को स्नान कराके उक्त मन्त्रों से मार्जन करके शान्ति को प्राप्त हो ।।३६।। फिर योनिरूपवाली गिरिजा तथा बाण को स्थापन करके वहां उसी लिंग का स्थापन और मार्जन करें ।।३७।। और सुगन्ध तथा चन्दनों से, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि पूजा से परमेश्वर शिवजी को सन्तुष्ट करें ।।३८।। प्रणाम तथा पुण्यस्तुतियों से बाजे गानों से धूमकर मंगलाचरण करें, तत्पश्चात् जय का उच्चारण करें ।।३९।। यह प्रार्थना करें कि,– हे देवेश! हे संसार को प्रसन्न करनेवाले! आप प्रसन्न हों, आप संसार के कर्ता हैं तथा पालन करनेवाले हैं, आप ही अविनाशी, संहार करनेवाले हो ।।४०।। हे महेश्वर! आप संसार के आदि हो तथा सब जगत् को उत्पन्न करनेवाले, संसार के अन्तर्यामी हो, आप शान्त हो, सम्पूर्ण लोकों का पालन करें ।।४१।। इस विधि के करने पर निःसन्देह स्वास्थ्य होगा, तीनों लोकों में विकार (उत्पात) न होगा, किन्तु सुख होगा ।।४२।। सूतजी बोले– ऐसा सुनकर वे देवता तथा ऋषि ब्रह्माजी को प्रणाम करके सम्पूर्ण लोकों के सुख की इच्छा से उन शिवजी के शरण को प्राप्त हो गये ।।४३।। उस समय परमभक्ति से पूजित और सत्कार किये हुए शिवजी अति प्रसन्न होकर उन ऋषियों से बोले ।।४४।। महादेवजी बोले– हे सम्पूर्ण देवताओ! हे ऋषियो! आप सब मेरा वचन आदर से सुनें, यदि मेरा ज्योतिर्लिंग योनि रूप से धारण किया जाय तो सुख होगा ।।४५।। बिना पार्वती के और कोई मेरे ज्यातिर्लिंग को धारण करने के लिये समर्थ नहीं है, उन देवी पार्वतीजी से धारण किया हुआ मेरा लिंग शीघ्र ही शान्ति को प्राप्त होगा ।।४६।। सूतजी बोले– हे मुनीश्वरो! यह सुनकर देवता तथा ऋषियों ने ब्रह्माजी को ग्रहण करके उस समय पार्वतीजी की प्रार्थना की ।।४७।। पार्वतीजी तथा शिवजी को प्रसन्न करके पूर्वोक्त विधि के अनुसार श्रेष्ठ ज्योतिर्लिंग की स्थापना की ।।४८।। मन्त्रों में कही हुई विधि के अनुसार देवता तथा ऋषियों ने अपने धर्म के हेतु पार्वती तथा शिवजी को प्रसन्न किया ।।४९।। ब्रह्मा, विष्णुजी तथा सब देवर्षि, त्रिलोकी के चर–अचर सहित सबों ने शिवजी की विशेष पूजा की ।।५०।। उस समय शिवजी प्रसन्न हुए और जगत् की माता पार्वतीजी सन्तुष्ट हुई और उन्होंने उस रूप से उस लिंग को धारण किया ।।५१।। उस योनि रूप पार्वती में लिंग स्थापित होने पर उस समय बड़ा आनन्द होने लगा और हे द्विजो! वह ज्योतिर्लिंग तीनों लोकों में प्रसिद्ध

हो गया ।।५२।। वे पार्वती तथा शिवजी की प्रतिमा हाटकेश नाम से प्रसिद्ध हो गई, उनके पूजन करने से सब प्रकार लोकों को सुख होता है ।।५३।। इस लोक में सम्पूर्ण समृद्धि अति सुखदाई होती है और परलोक में परम मुक्ति प्राप्त होती है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है, वहां शिवजी पुरुष और पार्वतीजी प्रकृति हैं ।।५४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां
लिंगरूपकारणवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ।। १२ ।।

*****

तेरहवाँ अध्याय

सूतजी बोले- हे ब्राह्मणो! जिस प्रकार तीनों लोकों में ज्योतिर्लिंग रूप शिवजी पूजनीय हुए, सो आपसे प्रीतिपूर्वक कहा, अब क्या आपकी और सुनने की इच्छा है?।।१।। ऋषि बोले- हे प्रभो! अन्धकेश्वर नामक शिवजी की तथा शिवजी के अन्य ज्योतिर्लिंगों की महिमा को आप प्रीति से कहें ।।२।। सूतजी बोले- समुद्र के गर्त का आश्रय करके अन्धकासुर नामक दैत्य ने निवास करके देवताओं को पीड़ा देकर तीनों लोकों को अपने वश में कर लिया ।।३।। बड़े पराक्रमवाले उस दैत्य ने उस गढ़े से निकलकर सब प्रजा को पीड़ा देकर फिर उस ही गर्त में प्रवेश किया ।।४।। उस समय हे मुनीश्वरो! समस्त देवताओं ने दुःखी होकर बारंबार शिवजी की प्रार्थना करके शिवजी से अपने सब दुःखों को निवेदन किया ।।५।। सूतजी बोले- तब उन देवताओं के वचन सुनकर दुष्टों का नाश करनेवाले, सत्पुरुषों को गति देनेवाले परमेश्वर सन्तुष्ट होकर यह बोले ।।६।। शिवजी बोले- हे देवताओ! मैं देवताओं को पीड़ा देनेवाले उस अन्धक दैत्य को मारूंगा, आप सेना को लेकर चलें, मैं भी गणों के सहित आता हूं ।।७।। उस गढ़े से देवता तथा ऋषियों के द्वेषी भयंकर दैत्य के निकलने पर उन देवताओं ने उस गर्त में प्रवेश किया ।।८।। दैत्यों ने तथा देवताओं ने परस्पर बड़ा भयंकर युद्ध किया, उस समय शिवजी के अनुग्रह से देवता प्रबल हो गये ।।९।। देवताओं से पीड़ित हुआ वह अन्धक दैत्य जभी उस गढ़े में प्राप्त हुआ, तभी परमात्मा शिवजी ने अपने त्रिशूल से उसका छेद कर लिया ।।१०।। तब उस दैत्य ने शिवजी का ध्यान करके उनकी प्रार्थना की, हे शिवजी! अन्तकाल में आपका दर्शन करने पर तत्काल मनुष्य आपके सदृश हो जाता है ।।११।। उस समय इस प्रकार स्तुति किये हुए शिवजी प्रसन्न होकर यह वचन बोले, "तू वर मांग, मैं देता हूं" ।।१२।। ऐसा वचन सुनकर वह दैत्य बल तथा भक्ति में प्राप्त होकर शिवजी को प्रणाम तथा उनकी स्तुति करके फिर बोला ।।१३।। अन्धक बोला- हे देवताओं के स्वामी! यदि आप प्रसन्न हों, तो मुझे अपनी शुभ भक्ति दें और

विशेष कृपा करके यहां स्थित हो जाइये ।।१४।। सूतजी बोले– उस दैत्य के ऐसा कहने पर शिवजी ने उसे उस गर्त में डाल दिया और स्वयं संसार के निमित्त वहां लिंगरूप से स्थित हो गये ।।१५।। उस अन्धकेश नामवाले ज्योतिर्लिंग को जो मनुष्य नित्य पूजता है, छः मास में ही उसकी इच्छा सिद्धि होती है, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ।।१६।। जो द्विज संसार के हित करनेवाले ज्योतिर्लिंग को अपनी वृत्ति के निमित्त छः मास पूजन करता है, वह देवलक (पुजारी) कहलाता है ।।१७।। जिस प्रकार देवलक है, उसी प्रकार वह वहां होता है, देवलक जो कहा है, उसमें द्विज का अधिकार नहीं है ।।१८।। ऋषि बोले– हे बड़े बुद्धिमान्! देवलक किसे कहते हैं और उसका क्या कार्य है ? सो आप संसार के उपकार के निमित्त कहें ।।१९।। सूतजी बोले– दधीचि नामवाला एक ब्राह्मण था। धर्मात्मा, वेदों में पारंगत, नित्य शिवजी की भक्ति में तत्पर तथा शिवजी के शास्त्रों में परायण था ।।२०।। उसका पुत्र भी अपने पिता के समान गुणी, सुदर्शन नाम से प्रसिद्ध था, उसकी स्त्री दुष्टकुल में उत्पन्न हुई दुकूला नाम से प्रसिद्ध थी ।।२१।। उसका पति उसके वशीभूत था और उसके चार पुत्र थे, वह नित्य शिवजी का पूजन करता था ।।२२।। एक समय जातिवालों के उत्सव के कारण दधीचि को दूसरे गांव में निवास करना पड़ा और उसे कुटुम्बियों ने आग्रह से नहीं आने दिया ।।२३।। तब वह शैवों में श्रेष्ठ दधीचि अपने पुत्र से कहकर कि, तुम प्रतिदिन शिवजी की भक्ति में तत्पर होकर पूजन करना, प्रमाद न करना, ऐसा समझाकर चले गये ।।२४।। उसके पुत्र सुदर्शन ने भी शिवजी का पूजन किया, हे मुनीश्वरो! इस प्रकार बहुत समय बीत गया ।।२५।। होते–होते कभी शिवरात्रि आई, उस दिन सबों ने व्रत किया ।।२६।। उस समय दैववशात् वह सुदर्शन पूजा करके घर जाकर शिवरात्रि को स्त्री प्रसंग करके फिर पूजागृह में आया ।।२७।। उस रात्रि में उसने बिना स्नान किये शिवजी का पूजन किया, उस कर्म के करने से शंकरजी क्रोधित होकर बोले ।।२८।। हे दुष्ट! शिवरात्रि को तू ने स्त्री के साथ प्रसंग किया और फिर विवेक रहित तू ने बिना स्नान किये मेरा पूजन किया ।।२९।। कारण कि जानकर तू ने ऐसा पाप किया, इस कारण तू जड़ता को प्राप्त होकर मुझे स्पर्श अयोग्य हुआ, तू दूर से दर्शन कर ।।३०।। सूतजी बोले– इस प्रकार शिवजी द्वारा शाप दिया हुआ वह दधीचि का पुत्र सुदर्शन शीघ्र ही शिवजी की माया से मोहित होकर जड़ता को प्राप्त हो गया ।।३१।। हे ब्राह्मणो! इसी अवसर में वह शैवों में श्रेष्ठ दधीचि ग्रामान्तर से आये और उस वृत्तान्त को सुना ।।३२।। वह भी शिवजी के धिक्कारने से अति दुःखित होकर रोने लगे और बोले, ''हाय पुत्र! कर्म रूप दुःख से मैं नष्ट हुआ'' ।।३३।। वह सत्पुरुषों में माननीय दधीचि इस प्रकार बारंबार कहते थे, कि इस कुपुत्र ने मेरा उत्तम कुल नष्ट कर दिया ।।३४।। उस दुराचारी पुत्र ने अपनी स्त्री को शीघ्र ही व्यभिचारिणी कर दिया, तब उसके पिता ने पश्चाताप करके उसे

धिक्कारा ।।३५।। और उसके पिता ने वहां अपने पुत्र के सुधार के निमित्त भली प्रकार अति भक्ति से, सुन्दर विधियों से पार्वती की पूजी की ।।३६।। तथा सुदर्शन ने भी स्वयं चण्डी के पूजन के विधान सहित महाभक्ति से शुभस्तोत्रों सहित गिरिजा का पूजन किया ।।३७।। इस प्रकार उन दोनों पिता-पुत्रों ने भक्तवत्सला देवी पार्वती को अनेक उपायों से तथा सुन्दर भक्ति से प्रसन्न किया ।।३८।। हे मुने! उस समय उन दोनों की सेवा के प्रभाव से देवी चण्डिका प्रसन्न हो गई और सुदर्शन को अपना पुत्र बनाया ।।३९।। देवी चण्डिका ने स्वयं उस पुत्र सुदर्शन के निमित्त शिवजी को प्रसन्न किया और उस पुत्र से क्रोधित हुईं भी चण्डीजी अक्रोधित होकर प्रसन्न हुईं ।।४०।। और उन वृषभध्वज महेशजी को प्रसन्न हुए जानकर उन्हें नमस्कार करके स्वयं शिवी के आगे गोद में उसको समर्पण किया ।।४१।। और पार्वती ने उस पुत्र को स्वयं धृत से स्नान कराके, एक ग्रन्थी से युक्त तीन तार का यज्ञोपवीत धारण कराया ।।४२।। उस समय अम्बिका ने प्रीति से उस सुदर्शन पुत्र को यज्ञोपवीत दिया तथा सोलह अक्षरों से युक्त शिवगायत्री का उपदेश दिया ।।४३।। उस समय उस बालक ने श्रीशब्दपूर्वक ''ॐ नमः शिवाय'' इस मन्त्र से सोलह बार संकल्प तथा पूजा की ।।४४।। स्नान से आदि लेकर प्रणाम पर्यन्त मन्त्रों तथा बाजों सहित ऋषियों के निकट शिवजी का पूजन किया ।।४५।। प्रसन्न हुई चण्डिका ने उस समय अनेक मन्त्रों का पाठ कराया, तब प्रसन्नात्मा शिवजी बोले ।।४६।। हे पुत्र! मुझे अर्पण किया हुआ जो कुछ धन-धान्यादिक है, वह सम्पूर्ण तुम्हें ग्रहण करना चाहिये, इससे कुछ दोष नहीं होगा ।।४७।। मेरे कार्य में और विशेषकर देवी के कृत्य में तुम मुख्य रहना अर्थात् पूजन में आलस्य न करना, मुझे अर्पण किये हुए घृत, तेल आदिक सम्पूर्ण वस्तुओं को तुम ग्रहण करो ।।४८।। यदि प्राजापत्य व्रत होवे तो उसमें तू मुख्य होगा और उस समय पूजा सम्पूर्ण होगी, नहीं तो सब पूजन निष्फल होगा ।।४९।। और तुम सदा वर्तुलाकार (गोल) तिलक लगाना तथा नित्य स्नान करना, तुमको शिवजी की सन्ध्या तथा शिवजी की गायत्री जपनी योग्य है ।।५०।। पहले मेरी सेवा करना, फिर अपने कुलोचित कार्य करना योग्य है, ऐसा करने से तेरा कल्याण होगा, मैंने तुम्हारे सब दोष निवारण किये ।।५१।। सूतजी बोले- ऐसा कहकर परमात्मा शिवजी ने उस समय उसके चारों पुत्रों को चारों दिशाओं में अभिषिक्त किया अर्थात् उनका राज्यतिलक किया ।।५२।। चण्डी ने पुत्र सुदर्शन को अपने निकट स्थापन करके उसे और पुत्रों को अनेक वरदान देकर यह प्रेरणा दी ।।५३।। देवी बोली- तुम दोनों के मध्य में यह जो मेरा बटुक (भक्तबालक) है, उसकी नित्य विजय होगी, इसमें कुछ विचार न करना ।।५४।। हे पुत्र! जिसने तुझे पूजा मानो उसने मुझे पूजा, तुझे निरन्तर अपना कर्म करना योग्य है ।।५५।। सूतजी बोले- इस प्रकार शिव-पार्वती ने उस महात्मा सुदर्शन को पुत्रों सहित अनेक वरदान दिये ।।५६।। कारण कि शिव-पार्वती

ने उन्हें स्थापित किया है, इस कारण वे बटुक कहे गये, तपोभ्रष्ट होने से वे तपोधम कहलाये ।।५७।। वे सब शिव–पार्वती की कृपा से बहुत विस्तार को प्राप्त हुए उन सबों में भी उस महात्मा की परम पूजा हुई ।।५८।। इस कारण उन्होंने जब तक शिवजी की पूजा न की हो, तब तक अन्य पूजा नहीं करनी चाहिये, यदि अन्य पूजा की जाय तो शुभदायक नहीं होगी ।।५९।। शुभकार्य हो अथवा अशुभ हो, बटुक को त्याग न करे कारण कि, प्राजापत्य भोज्य में केवल बटुक को ही विशेष कहा है ।।६०।। तथा शिव–पार्वती के कार्य में एक बटुक ही विशेष दीखता है, सो हे बुद्धिमान्! हे निष्पाप! जैसे मैं तुमसे कहता हूं, सो सुनो ।।६१।। उस श्रेष्ठ राजा के नगर में अन्धकेश के समीप प्राजापत्य के नित्य भोजनवाले नियम में ।।६२।। शिवजी के अनुग्रह के कारण जो अद्भुत वृत्तान्त हुआ, सो अब प्रीति से सुनिये, जैसा मैंने सुना है, वैसा कहता हूं ।।६३।। सन्तुष्ट हुए शिवजी ने उस राजा को एक ध्वजा प्रदान की और उन देवों के स्वामी शिवजी ने कृपा करके राजा से कहा ।।६४।। हे राजन्! मेरे प्राजापत्य यज्ञ के सम्पूर्ण होने पर रात्रि को ध्वजा गिरेगी और प्रातःकाल को बढ़ेगी ।।६५।। अन्यथा मेरी यह ध्वजा रात्रि में स्थिर होगी, ऐसे राजा से कहकर प्रसन्न हुए कृपासागर शिवजी अन्तर्धान हो गये ।।६६।। हे महामुने! उस राजा का उसी प्रकार नियम हुआ तथा शिवजी की पूजा के विधान से प्राजापत्य (ब्रह्मभोज) किया ।।६७।। और जब सम्पूर्ण कार्य समाप्त हो गया, तब प्रातःकाल वह ध्वजा स्वयं बढ़ी तथा सायंकाल में वह गिर पड़ी ।।६८।। एक समय वहां बटुक का कार्य पहले हो गया, तो ब्रह्मभोज के बिना ही वह ध्वजा गिरी ।।६९।। उस समय यह चरित्र देखकर राजा ने पण्डितों से पूछा कि, अब यहां ब्राह्मण भोजन करते हैं, परन्तु ध्वजा तो नहीं उठी ।।७०।। हे ब्राह्मणो! वह ध्वजा क्यों इस प्रकार गिर गई? सो सत्य–सत्य कहो, इस प्रकार पूछने पर वे श्रेष्ठ पण्डित ब्राह्मण उस समय बोले ।।७१।। हे महाराज! इस ब्रह्मभोजन में पहले चण्डी के बटुक को कराया, अतः शिवजी सन्तुष्ट हुए, इस कारण पहले ही ध्वजा गिरी ।।७२।। यह सुनकर वह राजा तथा और भी सम्पूर्ण मनुष्य विस्मित हो गये और वहां उनकी प्रशंसा करने लगे ।।७३।। इस प्रकार शिवजी ने उनकी महिमा को बढ़ाया, इसी कारण पहले विद्वानों ने बटुक को श्रेष्ठ कहा है ।।७४।। उन बटुकों से ही पहले शिवजी की पूजा करनी चाहिये, अन्यथा सफल नहीं होती, शिवजी के वचन से इसमें और किसी का अधिकार नहीं है ।।७५।। उत्तारण करना योग्य है, जिससे कि– पूजा पूर्ण होवे, उनका इतना ही कार्य है और कुछ कार्य नहीं ।।७६।। हे मुनीश्वरो! जो आपने मुझसे पूछा, सो मैंने आपसे कह दिया, जिसे सुनकर मनुष्य पूजा के फल को प्राप्त होता है ।।७७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां

बटुकोत्पत्तिवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।। १३ ।।

चौदहवाँ अध्याय

ऋषि बोले- अब ज्योतिर्लिंगों के माहात्म्य को तथा उनकी उत्पत्ति को, जैसे आपने सुना है, उसी प्रकार वर्णन कीजिये ।।१।। सूतजी बोले- हे ब्राह्मणो! सुनिये, ज्योतिर्लिंगों के माहात्म्य को तथा उत्पत्ति को संक्षेप से अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूं, जैसा कि, मैंने अपने सद्गुरु से सुना है ।।२।। हे मुनीश्रेष्ठो! इन शिवलिंगो के माहात्म्य को सौ वर्षों में भी कहने की सामर्थ्य नहीं होती, तथापि मैं आपसे कहता हूं ।।३।। हे मुने! उन ज्योतिर्लिंगों में से सोमनाथ प्रथम कहे हैं, सो आप पहले उन्हींके माहात्म्य को सावधानी से सुनिये ।।४।। हे मुनीश्वरो! महात्मा दक्ष ने चन्द्रमा को अश्विनी आदि सत्ताइस कन्याओं का दान किया ।।५।। वह कन्याएँ, स्वामी चन्द्रमा को प्राप्त होकर अधिक शोभित हुईं और चन्द्रमा भी उन कन्याओं को पाकर निरन्तर शोभित हुआ ।।६।। जैसे सुवर्ण की मणि से शोभा होती है, तथा मणि से सुवर्ण शोभित होता है, इसी प्रकार वे परस्पर शोभित हुए, उनका जो वृत्तान्त हुआ सो सुनिये ।।७।। चन्द्रमा को उन सम्पूर्ण स्त्रियों में रोहिणी नामवाली पत्नी जैसी प्रिय थी, वैसी और कोई प्रिय नहीं थी ।।८।। और शेष वे कन्याएँ दुःखी होकर अपने पिता के शरण में गईं, जाकर उनसे अपना दुःख निवेदन किया ।।९।। उस समय उनका वह दुःख सुनकर दक्षजी दुःखी हो गये, हे ब्राह्मणो! तब दक्षजी चन्द्रमा के समीप जाकर उससे शान्ति से यह वचन बोले ।।१०।। दक्षजी बोले- हे चन्द्रमा! आप पवित्र कुल में उत्पन्न हुए हो, अपने सब आश्रितों में आपकी न्यूनता और अधिकता कैसी?।।११।। यदि आपने ऐसा कृत्य किया है, तो अब फिर ऐसा कार्य न करना। न्यूनता, अधिकता के साथ व्यवहार करने से नरक का देनेवाला कहा है ।।१२।। सूतजी बोले- दक्षजी के इस प्रकार स्वयं अपने जामाता चन्द्रमा से प्रार्थना करके, अति निश्चय को प्राप्त होकर अपने घर को चले गये ।।१३।। चन्द्रमा ने भी उस शिवमाया के प्रभाव से मोहित होकर दक्ष के वचनों पर ध्यान नहीं दिया, कारण कि जिस माया से सम्पूर्ण संसार मोहित हो रहा है ।।१४।। जिस समय जिसका शुभ होनेवाला है, उसका शुभ अवश्य होता है तथा जिसका अशुभ होनहार होता है, उसका शुभ किस प्रकार हो सकता है?।।१५।। चन्द्रमा ने भी बलवान् भावी वशीभूत होकर उनका वचन नहीं माना और रोहिणी में आसक्त होकर और किसी स्त्री का आदर न किया ।।१६।। यह सुनकर फिर भी वह विद्वान् दक्षजी दुःखित होकर चन्द्रमा से बड़ी नीति के साथ प्रार्थना करने लगे ।।१७।। दक्षजी बोले- हे चन्द्रमा! सुनो, मैंने जो आपसे अनेक प्रकार प्रार्थना की, तो भी आपने नहीं मानी, इस कारण आप क्षयी

हो ।।१८।। सूतजी बोले– उन दक्ष के ऐसा कहते ही वह चन्द्रमा क्षणमात्र में नाश हो गये और चन्द्रमा के नाश को प्राप्त होने पर बड़ा हाहाकार होने लगा ।।१९।। हे मुने! उस समय समस्त देवता तथा ऋषि कहते थे कि, हाय! अब कैसे कार्य होगा ? इस प्रकार दुःखित तथा अति व्याकुल हो गये ।।२०।। तब चन्द्रमा से प्रेरणा लिये हुए सम्पूर्ण इन्द्र आदि देवता, तथा वशिष्ठ आदि ऋषि ब्रह्माजी के शरण में गये ।।२१।। हे मुने! उस समय वहां जाकर अति व्याकुल हुए देवता और ऋषियों ने ब्रह्माजी से वह सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदन किया ।।२२।। ब्रह्माजी उनका वचन सुनकर बड़े आश्चर्य को प्राप्त हो गये तथा शिवमाया की अति प्रशंसा करके उनको सुनाते हुए यह बोले ।।२३।। ब्रह्माजी बोले– अहो! यह सब संसार को दुःखदायक बड़ा कष्ट उपस्थित हो गया, दक्षजी के शाप से नितान्त ही चन्द्रमा दूषित (क्षयी) हुआ ।।२४।। हे देवताओ! हे ऋषियो! उस दूषित चन्द्रमा ने ऐसे अनेक कर्म किये हैं, सो तुम चन्द्रमा के पहले कर्मों को सुनिये ।।२५।। उस दुष्ट ने बृहस्पति के घर जाकर उनकी स्त्री तारा का हरण किया, फिर वह दैत्यों के समीप उपस्थित हो गया ।।२६।। दैत्यों के समीप जाकर उनका देवताओं से युद्ध कराया, मेरे तथा अत्रिजी के आग्रह करने पर उसने बृहस्पति को तारा दी ।।२७।। तारा को गर्भवती देखकर बृहस्पति ने कहा कि, मैं इसे नहीं ग्रहण करता हूं, तब हमारे निवारण करने पर बृहस्पतिजी ने बड़ी कठिनता से तारा को स्वीकार किया ।।२८।। हे मुनिश्रेष्ठ! यदि यह गर्भ को त्याग करेगी तो, मैं इसे ग्रहण करूंगा, यह बृहस्पति ने कहा, फिर मैंने उसके गर्भ को त्याग कराया ।।२८।। फिर उससे पूंछा कि, यह किसका गर्भ है, तब वह बोली कि, चन्द्रमा का गर्भ है, पीछे उन्होंने मेरे कहने से उसे ग्रहण किया ।।३०।। इस प्रकार चन्द्रमा के अनेक दुष्ट चरित्र वर्णन किये, फिर भी वह उन चरित्रों को अब भी करता है ।।३१।। जो हो गया सो, तो हो ही गया, अन्यथा नहीं हो सकता, अब मैं इसके आगे आपसे उपाय कहता हूं, आप आदर से सुनिये ।।३२।। प्रभास नामक शुभ क्षेत्र में चन्द्रमा को देवताओं सहित जाना योग्य है, वहां जा कर मृत्युञ्जय के विधान से शिवजी की आराधना करनी चाहिये ।।३३।। वहां शिवजी की प्रतिमा को स्थापित करके उनके आगे नित्य तप करे, पश्चात् शिवजी प्रसन्न होकर उसे अक्षय करेंगे ।।३४।। सूतजी बोले– इस प्रकार वे देवर्षि उन ब्रह्माजी का वचन सुनकर वहां से लौटकर वहां आये, जहां दक्ष और चन्द्रमा स्थित थे ।।३५।। तब वे देवता चन्द्रमा को ग्रहण करके दक्ष को आश्वासन देकर वे समस्त ऋषि प्रभास तीर्थ में जाकर वहां शिवार्चन करने लगे ।।३६।। और सरस्वती आदि तीर्थवरों का आवाहन करके उस समय पार्थिव तथा मृत्युञ्जय विधि के अनुसार पूजन किया ।।३७।। वे सब देवता तथा ऋषि शुद्धचित्त होकर चन्द्रमा को प्रभास क्षेत्र में स्थापित करके प्रसन्नता से अपने–अपने धाम को पधारे ।।३८।। चन्द्रमा ने छः मास पर्यन्त निरन्तर तप किया और मृत्युञ्जय मन्त्र से

शिवजी का पूजन किया ।।३९।। चन्द्रमा ने दश करोड़ संख्या के मन्त्रों का पाठ करके निश्चल मन से मृत्युञ्जय मन्त्रपूर्वक शिवजी का ध्यान करते वहां स्थिति की ।।४०।। तब उनको देखकर स्वामी, देव देव शिवजी प्रसन्न हुए और भक्तों के ऊपर दया करनेवाले महादेवजी प्रकट होकर अपने भक्त चन्द्रमा से यह बोले ।।४१।। शिवजी बोले- हे चन्द्रमा! आपका कल्याण हो, आपने जो मन से चाहा है, वह वर मांगो, मैं प्रसन्न हूं, आपको सम्पूर्ण उत्तम वरदान दूंगा ।।४२।। चन्द्रमा बोले- हे देवताओं के स्वामी! हे शंकर! यदि आप मुझसे प्रसन्न हों, तो मुझे क्या अप्राप्य (दुर्लभ) है ? तथापि मेरे शरीर के क्षय को निवारण कीजिये ।।४३।। आप मेरे अपराध को क्षमा करें, निरन्तर मेरा कल्याण करें। चन्द्रमा के ऐसा कहने पर शिवजी यह वचन बोले ।।४४।। शिवजी बोले- हे चन्द्रमा! एक पक्ष में तुम्हारी कला नित्यप्रति नष्ट होगी, फिर एक पक्ष तक वही कला दिन-दिन बढ़ेगी ।।४५।। सूतजी बोले- हे ब्राह्मणो! ऐसा कहने पर उस समय हर्ष से प्रफुल्लित मनवाले समस्त देवता और ऋषि शीघ्रता से आये ।।४६।। तब वे आ कर चन्द्रमा को आशीर्वाद देने लगे तथा हाथ जोड़ कर शिवजी को नमस्कार करके उनसे आदर के साथ प्रार्थना करने लगे ।।४७।। देवता बोले- हे देवों के देव! हे महादेव! हे परमेश! हे शम्भो! हे स्वामिन्! आपको नमस्कार है, आप पार्वती के सहित यहां स्थित हों ।।४८।। सूतजी बोले- उस समय प्रथम चन्द्रमा ने श्रेष्ठभक्ति से शंकरजी की स्तुति की, तो वे निराकार प्रभु शिवजी साकार रूपधारी हो गये ।।४९।। और देवताओं से प्रसन्न होकर क्षेत्र के माहात्म्य के कारण, चन्द्रमा की कीर्ति प्रसिद्ध करने के निमित्त, शिवजी वहां चन्द्रमा के नाम से विख्यात हो गये ।।५०।। तीनों लोकों में सोमेश्वर नाम से विख्यात हो गये। हे द्विजो! उनका पूजन करने से क्षय, कुष्ठ आदि रोगों का नाश होता है ।।५१।। चन्द्रमा धन्य हैं तथा कृतकृत्य हैं, कि जिनके नाम से साक्षात् शंकरजी स्वयं विख्यात् होकर संसार को पवित्र करते हुए स्थित हैं ।।५२।। वहां पर उनके कुण्डों की भी उन समस्त देवताओं ने प्रतिष्ठा की और शिवजी तथा ब्रह्माजी ने उन कुण्डों का विभाग नहीं किया ।।५३।। पृथ्वी पर पापों का नाश करनेवाला, चन्द्रकुण्ड भी प्रसिद्ध है, जो मनुष्य वहां स्नान करता है, वह सम्पूर्ण पापों से छूटता है ।।५४।। सम्पूर्ण क्षय आदि जो असाध्य रोग हैं, वे सब वहां छः मास स्नान करने से नाश को प्राप्त होते हैं ।।५५।। जो पवित्र आत्मा प्रभास तीर्थ की परिक्रमा करता है, उसे समस्त भूमि की परिक्रमा का फल प्राप्त होता है और वह मृत्यु को प्राप्त होकर स्वर्ग में जाता है ।।५६।। मनुष्य सोमनाथ लिंग का दर्शन करके सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है और मनोवांछित फल पाकर मरने के पश्चात् स्वर्गलोक को प्राप्त होता है ।।५७।। मनुष्य जिन-जिन फलों की कामना से इस उत्तम तीर्थ को करता है, उन-उन सम्पूर्ण फलों को प्राप्त होता है, इसमें कुछ संशय नहीं ।।५८।। इस प्रकार

के फल को देखकर वे समस्त देवता तथा ऋषि आनन्द के साथ शिवजी को नमस्कार करके, क्षय रहित चन्द्रमा को लेकर गये।।५९।। और उस तीर्थ की परिक्रमा करके सोमनाथ की प्रशंसा करते हुए अपने–अपने धाम को पधारे और चन्द्रमा भी अपने पुरातन कार्य करने लगे।।६०।। हे मुनीश्वरो! मैंने यह सब सोमनाथ की उत्पत्ति कही कि, जिस प्रकार सोमनाथ नामक ज्योतिर्लिंग उत्पन्न हुए।।६१।। जो मनुष्य इनकी उत्पत्ति को सुनता है अथवा औरों को सुनाता है, वह सब कामनाओं को प्राप्त होता है तथा सम्पूर्ण पापों से छूट जाता है।।६२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां
सोमनाथज्योतिर्लिंगोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।। १४ ।।

*****

पन्द्रहवाँ अध्याय

सूतजी बोले– अब इसके आगे मल्लिकार्जुन की उत्पत्ति कहता हूं कि, जिसे सुनकर भक्तिमान् बुद्धिमान् पुरुष सम्पूर्ण पापों से छूट जाता है।।१।। जिसको पूर्व में कह दिया है, ऐसे समस्त पापों को नष्ट करनेवाले सुन्दर कुमार (स्वामी कार्तिक) के चरित्र का फिर वर्णन करता हूं।।२।। जिस समय पार्वती के पुत्र तथा तारक के शत्रु महाबली असुरकुमार पृथ्वी की परिक्रमा करके फिर कैलास पर्वत को प्राप्त हुए।।३।। उस समय देवर्षियों ने उनके समीप आकर उनको अपनी बुद्धि से भ्रम कराके उनसे गणेश्वर के विवाह आदि का सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा।।४।। यह वृत्तान्त सुनकर वह स्वामी कार्तिक अपने माता–पिता के निवारण करने पर भी उन दोनों माता–पिता को प्रणाम करके क्रौंचपर्वत को चले गये।।५।। जिस समय उनकी माता पार्वती कुमार वियोग से दुःखी हो गई, उस समय शुभज्ञान देनेवाले शिवजी उनसे बोले।।६।। हे प्रिये! हे पार्वती! हे सुभ्रू! तुम क्यों दुःखी होती हो ? दुःख मत करो, तुम्हारा पुत्र अवश्य आयेगा, तुम इस कठिन दुःख का त्याग करो।।७।। जब वह पार्वती उनके कहने से न मानी और अत्यन्त दुःखी हुईं, तब शिवजी ने देवर्षियों को कुमार के समीप भेजा।।८।। गणों के सहित वे बुद्धिमान् देवता तथा ऋषि प्रसन्न होकर कुमार को लाने के निमित्त क्रौंचपर्वत पर गये।।९।। वहां वे जाकर कुमार को प्रणाम करके अनेक प्रकार से उनको विज्ञापना देकर आदर से उनसे प्रार्थना करने लगे।।१०।। उस समय बड़े अभिमान से युक्त हुए कुमार ने शिवजी की आज्ञा से व्याप्त हुई उन देवता और ऋषियों का प्रार्थना को न माना।।११।। इसके पीछे वे सब वहां से लौटकर शिवजी के समीप गये, फिर शिवजी

की आज्ञा पाकर उनको नमस्कार करके अपने-अपने लोकों को गये ।।१२।। उस समय कुमार के न आनेपर देवी पार्वती पुत्र के विरह को प्राप्त हो गईं और शिवजी भी बड़े दुःख को प्राप्त हुए ।।१३।। तब बड़े दुःखी तथा दीन हुए लोकाचार करनेवाले वे दोनों शिव-पार्वती बड़े स्नेह से वहां गये, जहां पुत्र कुमार स्थित थे ।।१४।। वह पुत्र स्वामी कार्तिक अपने माता-पिता के आगमन को सुनकर अप्रसन्न होकर क्रौंचपर्वत से तीन योजन दूर को चले गये ।।१५।। उन पुत्र स्वामी कार्तिक के क्रौंचपर्वत से दूर चले जाने पर, वे दोनों शिव-पार्वती ज्योतिरूप को आश्रय करके वहां स्थित हुए ।।१६।। पुत्र के स्नेह से वे व्याकुल हुए दोनों शिव-पार्वती अपने पुत्र कुमार को देखने के निमित्त प्रत्येक पर्व में जाते हैं ।।१७।। अमावस्या के दिन वहां साक्षात् शिवजी स्वयं जाते हैं, पौर्णमासी के दिन निश्चय ही वहां पर पार्वतीजी जाती हैं ।।१८।। उस दिन से लेकर मल्लिकार्जुन से उत्पन्न हुआ शिवजीका ज्योतिर्लिंग तीनों लोकों में प्रसिद्ध हुआ ।।१९।। जो मनुष्य उस ज्योतिर्लिंग का दर्शन करता है, वह सम्पूर्ण पापों से मुक्त होता है और सब मनोरथों को प्राप्त होता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं ।।२०।। उसका दुःख दूर हो जाता है और अति सुख प्राप्त होता है और माता के गर्भ का दुःख उसे फिर नहीं प्राप्त होता ।।२१।। और उसके धन-धान्य की वृद्धि तथा प्रतिष्ठा, आरोग्य, मनोरथों की सिद्धि भी प्राप्त होती है, इसमें कुछ संशय नहीं ।।२२।। दूसरा मल्लिकार्जुन नामक ज्योतिर्लिंग है, जो दर्शन से सम्पूर्ण सुखों को देनेवाला है, यह सब लोकों के हित के कारण आपसे कहा ।।२३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां
मल्लिकार्जुनद्वितीयलिंगवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।। १५ ।।

*****

सोलहवाँ अध्याय

ऋषि बोले- हे सूतजी! व्यासजी के प्रसाद से आप सब कुछ जानते हैं, ज्योतिर्लिंगों की कथा सुनकर हमारी तृप्ति नहीं होती है ।।१।। हे स्वामिन्! इस कारण आप अति अनुपम कृपा करके इस समय हमें तीसरे ज्योतिर्लिंग की कथा कहिये ।।२।। सूतजी बोले- हे ब्राह्मणो! हे श्रीमान्! आप ऋषियों की संगति को प्राप्त हुआ मैं, धन्य तथा कृतकृत्य हूं, कारण कि, सज्जनों की संगति बड़ाई के योग्य होती है ।।३।। इससे मैं अपने सौभाग्य को मानकर पवित्र करनेवाली तथा पापों का विनाश करनेवाली दिव्य कथा कहता हूं, आप आदर से श्रवण करें ।।४।। एक अवन्ती नामवाली शिवजी की

प्रिय, बड़ी पवित्र, संसार को पवित्र करनेवाली तथा सब मनुष्यों को मुक्ति देनेवाली रमणीक नगरी है ।।५।। वहां शुभ कर्मों को करनेवाला, वेदाध्ययन में तत्पर, नित्य वैदिक कर्मों का अनुष्ठान करनेवाला श्रेष्ठ ब्राह्मण रहता था ।।६।। वह अग्निहोत्र में तत्पर, सदा शिवजी के पूजन में लगा हुआ ब्राह्मण प्रतिदिन पार्थिव मूर्ति का पूजन करता था ।।७।। सदा वेदों के पढ़ने में संयुक्त तथा भलीभांति ज्ञान में परायण वह ब्राह्मण सम्पूर्ण कर्मों के फलों को प्राप्त होकर सत्पुरुषों की गति को प्राप्त हुआ ।।८।। हे मुनिश्रेष्ठो! उसके चार पुत्र भी उसी प्रकार नित्य शिवजी की पूजा में तत्पर, सदा माता–पिता की आज्ञा माननेवाले थे ।।९।। उन चारों में बड़ा पुत्र देवप्रिय, तथा उससे छोटा मेधाप्रिय था, तीसरा सुकृत, चौथा धर्मात्मा सुव्रत ।।१०।। उनके पुण्यप्रताप से भूमि पर नित्य इस प्रकार सुख बढ़ता था, जैसे शुक्ल पक्ष में नित्य चन्द्रमा वृद्धि को प्राप्त होता है ।।११।। उसी प्रकार उन चारों के सुखदायक गुण वहां दिन–दिन बढ़ते थे। उस समय वह नगरी ब्रह्मतेजवाली हो गई ।।१२।। हे द्विजश्रेष्ठो! इसी अवसर में वहां जो उत्तम चरित्र हुआ सो सुनिये, जैसे मैंने सुना है, वैसा कहता हूं।।१३।। रत्नमाला नामवाले पर्वत पर निरन्तर धर्म का नाश करनेवाला, बलवान् दूषण नामक दैत्यों का राजा रहता था ।।१४।। उसने ब्रह्माजी के वरदान से संसार भर को तुच्छ समझा और देवताओं को पराजित करके उन्हें स्थान से निकाल दिया ।।१५।। उस दुष्ट ने पृथ्वी पर वेदों का धर्म तथा सम्पूर्ण स्मृतियों का धर्म जैसे दुष्ट सिंह से खरगोश नष्ट होते हैं, उसी प्रकार नष्ट किया ।।१६।। जितने वैदिक धर्म थे, वे सब दूर कर दिये, प्रत्येक तीर्थों में तथा क्षेत्रों में भी धर्म को दूर किया ।।१७।। वहां एक अवन्ती नामक रमणीक नगरी बची थी, ऐसा विचार उस दैत्य ने जो किया, उसे सुनिये।।१८।। वह दूषण नामवाला दैत्यराज बड़ी सेना के सहित वहां स्थित होकर ब्राह्मणों के ऊपर चढ़ गया ।।१९।। वहां आकर वह ब्राह्मणों का द्रोही महादुष्ट दैत्येन्द्र, चार दैत्यपतियों को बुलाकर यह वचन बोला ।।२०।। दैत्य बोला– यह सब दुष्ट ब्राह्मण मेरे वचनों को क्यों नहीं पालन करते ? वेदधर्म में तत्पर हुए इन सबों को मेरे मत में दण्ड देना चाहिये ।।२१।। हे श्रेष्ठ दैत्यो ! मैंने संसार में सब देवताओं को तथा राजाओं को पराभूत किया है, क्या, यह ब्राह्मण वश में नहीं हो सकते ?।।२२।। यदि इनकी जीने की इच्छा हो, तो यह शिव सम्बन्धी धर्म को तथा वैदिक परम धर्म को त्याग दें, तब वे सुख के भागी होंगे ।।२३।। नहीं तो इनके जीवन में संशय होगा, यह मैंने सत्य कह दिया, तुम निर्भय होकर मेरे इस वचन का पालन करो ।।२४।। सूतजी बोले– ऐसा निश्चय करके वे चारों दैत्य चारों दिशाओं में प्रचण्ड प्रलय की अग्नि के समान प्रदीप्त हुए ।।२५।। शिवजी के ध्यान में परायण हुए वे ब्राह्मण उन दैत्यों के वैसे उद्यम को सुनकर कुछ भी दुःख को न प्राप्त हुए ।।२६।। उस समय धैर्य को प्राप्त हुए वे ब्राह्मण शिवजी के परम ध्यान से

रेखामात्र भी न टले, कारण कि शिवजी के आगे वे नीच दैत्य क्या वस्तु थे?।।२७।। इसी अवसर में उन दैत्यों से वह शुभनगरी व्याप्त हो गई और उनसे पीड़ित हुए मनुष्य उन ब्राह्मणों के समीप में आये।।२८।। लोक बोले– हे स्वामिन्! अब क्या करना उचित है? यह दुष्ट आ गये, इनसे पीड़ित हुए हम बहुत लोग आपके समीप में प्राप्त हुए हैं।।२९।। सूतजी बोले– उन पुरुषों का वचन सुनकर वे वेदप्रिय के, सदाशिवजी में विश्वास करनेवाले चारों पुत्र उनसे बोले।।३०।। ब्राह्मण बोले– हे लोको! सुनिये, हमारे पास दुष्टों को भय देनेवाला बल नहीं है तथा वैसे शस्त्र नहीं हैं, जिससे उनको निराश करें।।३१।। सामान्य के भी आश्रित का अपमान (निरादर) नहीं होता है, फिर सर्व समर्थ शिवजी के आश्रितों की तो क्या बात है? अर्थात् शिवजी के आश्रय से कदापि हमें दुःख न होगा।।३२।। स्वामी शिवजी इस समय दैत्यों के भय से रक्षा करेंगे कारण कि, संसार में भक्तवत्सल शिवजी के बिना कोई शरण नहीं है।।३३।। सूतजी बोले– इस प्रकार वे ब्राह्मण, धैर्य धारण करके पार्थिव पूजन करके भलीभांति शिवध्यान में तत्पर हो गये, उस समय बलवान् दैत्यों ने जभी उनको देखा।।३४।। तब दूषण दैत्य ने यह वचन कहा कि, "इनको मारो, मारो!" तब शिवजी के ध्यान में परायण हुए वेदप्रिय के पुत्र उन ब्राह्मणों ने दैत्यों के वचनों को न सुना।।३५।। तत्पश्चात् जब उस दुष्टात्मा ने उन ब्राह्मणों को मारने की इच्छा की, तब ही पार्थिव स्थान से शब्द के सहित गढ़ा हुआ।।३६।। उस गढ़े से विराट् रूपधारी महाकाल नाम से प्रसिद्ध, दुष्टों को मारनेवाले तथा सत्पुरुषों के रक्षक शिवजी प्रकट हो गये।।३७।। हे दुष्ट दैत्य! मैं तुम दुष्टों को मारने के निमित्त महाकाल नाम से प्रकट हुआ हूं, तू इन ब्राह्मणों के समीप से दूर भाग।।३८।। यह कहकर उस समय महाकाल रूपधारी शिवजी ने सेना सहित उस दूषण दैत्य को अपनी हुंकार से शीघ्र ही भस्म कर दिया।।३९।। उन परमात्मा शिवजी ने कुछेक सेना मारी तथा कुछ स्वयं भाग गई तथा दुष्ट दूषण को मारा।।४०।। जिस प्रकार सूर्य को देखकर चारों ओर से अन्धकार नष्ट होता है, उसी प्रकार शिवजी को देखकर वह सेना नष्ट हो गई।।४१।। उस समय देवताओं की दुंदुभि बजी तथा पुष्पों की वर्षा हुई, ब्रह्माजी, विष्णुजी आदि सम्पूर्ण देवता वहां प्राप्त हो गये।।४२।। उस समय ब्राह्मणों ने अंजलि बांध कर भक्ति से उस संसार के कल्याण करनेवाले शंकरदेव को प्रणाम करके अनेक स्तोत्रों से स्तुतियां कीं।।४३।। तब महाकाल महेश्वर साक्षात् शिवजी स्वयं प्रसन्न होकर उन ब्राह्मणों को धैर्य देकर 'वर मांगो' ऐसा बोले।।४४।। यह सुनकर वे सब ब्राह्मण हाथ जोड़ते हुए मस्तक झुकाकर शिवजी को प्रणाम करके भक्ति से बोले।।४५।। ब्राह्मण बोले– हे महाकाल! हे महादेव! हे दुष्टों को दण्ड देनेवाले! हे प्रभो! हे शिवजी! आप हमें संसाररूपी मुक्ति प्रदान करें।।४६।। हे शिवजी! हे शम्भो! हे प्रभो! आप संसार की रक्षा के निमित्त यहां

स्थिति करें तथा नित्य अपने दर्शन करनेवाले भक्त मनुष्यों का तारण करें।।४७।। सूतजी बोले– उन ब्राह्मणों के ऐसा कहने पर उन शिवजी ने उन सबों को सुन्दर गति देकर भक्तों की रक्षा के निमित्त वहां शोभायमान गढ़े में निवास किया।।४८।। मुक्ति को प्राप्त हुए वे ब्राह्मण शिवलोक को गये और चारों दिशाओं में कोस भर तक ज्योतिर्लिंगों के रूप में स्थित हो गये।।४९।। हे ब्राह्मणो! महाकालेश्वर नामक शिवजी पृथ्वी पर प्रसिद्ध हो गये, उनका दर्शन करके स्वप्न में भी कोई दुःख को प्राप्त नहीं होता।।५०।। जो मनुष्य जिस–जिस कामना से उस ज्योतिर्लिंग का सेवन करता है, वह उस–उस मनोरथ को प्राप्त होता है, अन्त समय मोक्ष की प्राप्ति होती है।।५१।। हे शोभन व्रतवाले! मैंने यह सब महाकाल शिवजी की उत्पत्ति तथा माहात्म्य वर्णन किया, अब क्या सुनने की इच्छा है?।।५२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां
महाकालज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः।। १६ ।।

*****

सतरहवाँ अध्याय

ऋषि बोले– हे अधिक बुद्धिवाले! भक्तों की रक्षा करनेवाले, महाकाल नामक ज्योतिर्लिंग की महिमा को फिर से वर्णन कीजिये।।१।। सूतजी बोले– हे ब्राह्मणो! भक्तों की रक्षा करनेवाले, महाकाल नामक शिवलिंग की भक्ति बढ़ाने वाले माहात्म्य को आदर से सुनिये।।२।। उज्जयिनी नगरी में सम्पूर्ण शास्त्रों के अर्थ तथा तत्त्वों को जाननेवाला शिवजी का भक्त बड़ा जितेन्द्रिय चन्द्रसेन नामक राजा रहता था।।३।। हे द्विजो! उस राजा का मणिभद्र नामक सब लोकों में नमस्कृत महेश्वरजी का मुख्य गण, मित्र हुआ।।४।। एक समय उस उदार बुद्धि गणाध्यक्ष, मणिभद्र ने प्रसन्न होकर उस राजा को बड़ी सुन्दर चिन्तामणि प्रदान की।।५।। कौस्तुभमणि के समान वह मणि सूर्य के समान प्रकाशित हुई उसका ध्यान करने, दर्शन करने तथा सुनने से निश्चय ही कल्याण होता था।।६।। उस मणि की कान्ति को स्पर्श करके कांसी, तांबे, रांग, पाषाणादि की वस्तु सुवर्ण हो जाती थी।।७।। वह शिवजी का भक्त राजा चन्द्रसेन, चिन्तामणि को अपने कण्ठ में धारण करके देवताओं के बीच में सूर्य के समान अत्यन्त शोभित हुआ।।८।। उन राजाओं में श्रेष्ठ, चिन्तामणि ग्रीवावाले राजा चन्द्रसेन को सुनकर सम्पूर्ण राजा, तृष्णा से लोभित हृदयवाले हुए।।९।। वे सब इर्ष्या करनेवाले मूर्ख राजा, देवताओं से प्राप्त हुई उस मणि को चन्द्रसेन से अनेक उपायों करके मांगने

लगे ।।१०।। हे ब्राह्मणो! महाकाल के दृढ़ भक्त उस राजा चन्द्रसेन ने उन समस्त राजाओं की प्रार्थना को निष्फल किया ।।११।। तब राजा चन्द्रसेन ने तिरस्कार किये हुए सब देशों के राजा क्रोधित हुए ।।१२।। और वे राजा चतुरंग बल (सेना) के सहित राजा चन्द्रसेन को संग्राम में जीतने को उद्यत हुए ।।१३।। सेना सहित किये हुए संकेतों को जाननेवाले उन सब एकत्रित हुए राजाओं ने उज्जयिनी के चारों द्वारों को घेर लिया ।।१४।। उस समय राजा चन्द्रसेन समस्त राजाओं से घिरी हुई अपनी नगरी को देखकर उन्हीं महाकालेश्वर शिवजी की शरण में गया ।।१५।। विकल्प शून्य, निराहारी, दृढ़ निश्चयवाले तथा और किसी देवता की उपासना करनेवाले उस राजा चन्द्रसेन ने रात-दिन महाकाल का पूजन किया ।।१६।। तब प्रसन्न हुए महाकाल नामक भगवान् शिवजी ने जो उस राजा की रक्षा करने का उपाय किया, उसे आदर से श्रवण कीजिये ।।१७।। हे ब्राह्मणो! उस समय कोई बालक सहित उस नगरी में भ्रमण करती हुई गोपी महाकाल शिवजी के निकट प्राप्त हुई ।।१८।। वह विधवा गोपी पांच वर्ष के बालक को लिये राजा से की हुई महाकाल शिवजी की पूजा आदर से देखने लगी ।।१९।। वह गोपी राजा द्वारा किया हुआ, बड़ा आश्चर्य वाला शिवजी का पूजन देखकर शिवजी को प्रणाम करके फिर अपने स्थान को चली गई ।।२०।। यह सम्पूर्ण चरित्र देखकर उस गोपी के पुत्र ने उत्कण्ठा से शिवजी का पूजन करने की इच्छा की ।।२१।। उसने सूने शिबिर के मध्य में रमणीक पाषाण लाकर अपने दल के समीप शिवलिंग की भक्ति से पूजा की ।।२२।। गन्ध, आभूषण, वस्त्रों से तथा धूप, दीप, अक्षत आदि से कृत्रिम पदार्थों से शिवजी का पूजन करके नैवेद्य चढ़ाया ।।२३।। मनोहर बिल्वपत्र तथा पुष्पों से बारंबार पूजन करके, अनेक नृत्य वाद्य करके बारंबार प्रणाम किया ।।२४।। उसी समय गोपी ने शिवजी की भक्ति में आसक्त चित्तवाले उस पुत्र को नम्रता से भोजन करने के लिये बुलाया ।।२५।। जब शिवपूजन में लगे हुए उस बालक ने बहुत बुलाने पर भी भोजन की इच्छा न की, तब उसकी माता स्वयं वहां गई ।।२६।। उस पुत्र को शिवजी के आगे नेत्र मून्दे बैठा हुआ देख उसे हाथ पकड़कर खींचा तथा क्रोध से ताड़न किया ।।२७।। जब खींचा हुआ तथा ताड़न किया हुआ उसका पुत्र भोजन को न गया, तो उसने शिवलिंग को दूर फेंककर उस पूजा को नष्ट किया ।।२८।। और क्रोधित हुई उस गोपी ने हाहाकार करते हुये दुःखी हुए अपने पुत्र को ललकार के फिर अपने घर में प्रवेश किया ।।२९।। वह बालक शिवदेव की पूजा को माता से नष्ट किया हुआ देखकर "हे देव! हे देव!" ऐसे कहता हुआ भूमि पर गिरा ।।३०।। वह एक साथ मूर्छित होकर शोक में व्याकुल हुआ, तब क्षणमात्र में चैतन्य होकर उसने नेत्रों को खोला ।।३१।। जो उसी समय महाकाल नामक शिवजी का सुन्दर शिबिर बन गया, वहां उस बालक ने शीघ्र ही शिवजी के अनुग्रह से उसे देखा ।।३२।। जिसके स्वर्णमय बड़े-बड़े द्वार तथा

सुन्दर कपाट बन्दनवार थे, बड़ी सुन्दर स्वच्छ इन्द्रनील मणि की वेदियों से शोभायमान था।।३३।। अनेक अद्भुत तप्त सुवर्ण के कलशों के सहित तथा प्रकाशमान मणियों के स्तम्भों के सहित स्फटिक मणियों से जटित भूमितलों से सुशोभित था।।३४।। तब गोपी के पुत्र ने अपने किये हुए पूजन सहित कृपा के सागर शिवजी के रत्नजटित ज्योतिर्लिंग को उस मन्दिर के बीच में देखा।।३५।। वह बालक यह चरित्र देखकर एक साथ उठकर विस्मितचित्त होकर क्षणमात्र को परम आनन्दरूपी समुद्र में डूब गया।।३६।। उस समय वह बालक शिवजी की स्तुति करके तथा बारंबार प्रणाम करके सूर्य अस्त होनेपर उस शिवालय से अपने घर को गया।।३७।। तत्पश्चात् वहां जाकर अपने स्थान को इन्द्र के नगर के समान तथा तत्क्षण सुवर्ण से बना हुआ अद्भुत बड़ा शोभायमान देखा।।३८।। वह सायंकाल के समान सम्पूर्ण शोभावाले मणियों के समुदाय तथा सुवर्ण से आच्छादित भवन (घर) के भीतर प्रवेशित हुआ।।३९।। वहां उसने दिव्य लक्षणोंवाली रत्नों के आभूषणों से दीप्यमान अंगोंवाली तथा साक्षात् देववधू के समान स्थित सोती हुई अपनी माता को देखा।।४०।। हे ब्राह्मणो! उस समय उस बालक ने सुख से पूर्ण होकर शिवजी के दया को प्राप्त हुई अपनी माता को वेग से उठाया।।४१।। वह उठ कर सब अद्भुत अपूर्व चरित्र को देखकर बड़े आनन्द में मग्न हुई तथा उसने अपने पुत्र को आलिंगन किया।।४२।। पुत्र के मुख से गिरिजापति शिवजी की प्रसन्नता को सुनकर स्वामी शिवजी की प्रार्थना करने लगी, जो रात–दिन शिवजी को भजता है, वह ऐसा ही सुखी होता है।।४३।। उस राजा ने भी नियम समाप्त करके रात्रि में वहां आकर गोपी के पुत्र के शिवजी को प्रसन्न करनेवाला प्रभाव देखा।।४४।। मन्त्री तथा पुरोहितों के सहित स्थित हुए उस राजा ने यह सम्पूर्ण चरित्र देखा और वह धैर्य रहित तथा परम आनन्द सागर में मग्न हुआ।।४५।। वह चन्द्रसेन राजा प्रेम से आंसु बहाता हुआ शिवजी के नाम का उच्चारण करता हुआ प्रीति से उस बालक को आलिंगन करने लगा।।४६।। हे द्विजो! उस समय वहां बड़ा सुन्दर उत्सव हुआ, सब मनुष्यों ने हर्ष से पूर्ण होकर शिवजी का कीर्तन किया।।४७।। इस प्रकार उस अद्भुत चरित्र से तथा शिवमाहात्म्य को देखने से नगरवासियों की वह रात्री आश्चर्य से क्षणमात्र में बीत गई।।४८।। जब प्रात:काल युद्ध करने के निमित्त सब राजा उस नगर को घेर कर स्थित हुए, वहां उन्होंने दूतों के मुख से यह चरित्र सुना।।४९।। जो–जो वहां आये थे, उन सब राजाओं ने मिलकर वह वृत्तान्त सुनकर अति आश्चर्य करके यह कहा।।५०।। राजा बोले– यह अव्याकुल राजा चन्द्रसेन शिवजी का भक्त है, महाकाल की नगरी उज्जयिनी का स्वामी होने से जीतने के अयोग्य है।।५१।। जिसके नगर में ऐसे शिवजी का व्रत करनेवाले बालक हैं, तो वह राजा चन्द्रसेन तो महेश्वरजी का सेवक है।।५२।। निश्चय ही इस राजा के साथ विरोध करने से शिवजी क्रोध करेंगे और उनके

क्रोध करने से हम सबका विनाश होगा ।।५३।। इस कारण इस राजा के साथ अवश्य मिलाप करना योग्य है, ऐसा करने से शिवजी हमारे ऊपर परम कृपा करेंगे ।।५४।। सूतजी बोले– ऐसा निश्चय करके उन सब राजाओं ने बैर को त्याग करके सुमति ठानी, सब प्रसन्न हो गये और उन्होंने हाथों से अस्त्र–शस्त्रों का त्याग किया ।।५५।। और उन्होंने महाकाल राजा की नगरी में प्रवेश किया तथा चन्द्रसेन राजा से प्रसन्न होकर महाकाल शिवजी की पूजा की ।।५६।। तत्पश्चात् वे राजा उसके भाग्य की प्रशंसा करते हुए दिव्य तथा बड़े उदयवाले गोपी के गृह को गये ।।५७।। तब राजा चन्द्रसेन ने अभ्युत्थान करके उनकी पूजा की और वे बड़े सुन्दर आसन पर बैठे हुए अति विस्मित होकर अधिक प्रसन्न हुए ।।५८।। गोपी के पुत्र के प्रसाद से प्रकट हुए शिवालय को, शिवलिंग को देखकर शिवजी में परम बुद्धि लगाई ।।५९।। तम उन प्रसन्न हुए तथा शिवजी की कृपा की अभिलाषा करनेवाले समस्त राजाओं ने उस गोप के पुत्र को अधिक वस्तुयें प्रदान कीं ।।६०।। समस्त राजाओं ने सम्पूर्ण देशों में जो–जो अधिक गोप स्थित थे, उनमें उसी को राजा बनाया ।।६१।। तब इसी अवसर में सब देवताओं से पूजित हुए वानराधिपति तेजस्वी हनुमानजी प्रकट हुए ।।६२।। उन हनुमानजी के प्रकट होने से आश्चर्य को प्राप्त हुए वे राजा भक्ति से नम्रीभूत होकर उठ कर प्रणाम करने लगे ।।६३।। उन सबों के मध्य में बैठे हुए पूजित, वानरों के स्वामी, हनुमानजी उस गोप के पुत्र को आलिंगन करके राजा को देखकर यह बोले ।।६४।। हनुमानजी बोले– हे समस्त राजाओ! हे मनुष्यो! तुम सब मेरे कल्याणकारी वचन को सुनो, शिवजी के बिना मनुष्यों की अन्य कोई गति नहीं है ।।६५।। इस प्रकार गोप का पुत्र स्वभाव से शिवजी के पूजन को देखकर बिना मन्त्रों से ही कल्याणकारी शिवजी को पूजकर उन्हें प्राप्त हुआ ।।६६।। यह गोपों की कीर्ति को बढ़ानेवाला शिवजी का श्रेष्ठ भक्त यहां सम्पूर्ण भोगों को भोग कर अन्त समय में मोक्ष को प्राप्त होगा ।।६७।। इसके वंश की आठवीं पीढ़ी में महा यशस्वी नन्द नामक पुरुष उत्पन्न होंगे, उनके पुत्ररूप में स्वयं नारायण कृष्ण उत्पन्न होंगे ।।६८।। आज से लेकर यह गोपी का पुत्र इस संसार में श्रीकर नाम से लोक में अधिक प्रसिद्धि को प्राप्त होगा ।।६९।। सूतजी बोले– ऐसा कहकर अंजनी के पुत्र, शिवजी के अवतार हनुमानजी ने सब राजाओं को तथा राजा चन्द्रसेन को कृपा दृष्टि से देखा ।।७०।। और उस बुद्धिमान् गोप के पुत्र श्रीकर को बड़ी प्रीति से शिवप्रिय शिवसम्बन्धी आचार का उपदेश दिया ।।७१।। हे ब्राह्मणो! तब अति प्रसन्न हुए वे हनुमानजी राजा चन्द्रसेन के तथा गोप पुत्र श्रीकर आदि सब मनुष्यों के देखते–देखते अन्तर्धान हो गये ।।७२।। पूजित और प्रसन्न हुए राजा चन्द्रसेन का सत्कार करके अपने–अपने स्थानों को चले गये ।।७३।। हनुमानजी से उपदेश किये हुए श्रीकर ने महा तेजवाले धर्मात्मा ब्राह्मणों के सहित शिवजी का पूजन किया ।।७४।।

महाराजा चन्द्रसेन तथा श्रीकर दोनों ने बड़ी प्रीति से महाकाल को सेवन किया ।।७५।। वह श्रीकर तथा राजा चन्द्रसेन समय पर महाकाल का आराधन करके मोक्ष को प्राप्त हुए ।।७६।। इस प्रकार महाकाल शिवजी का ज्योतिर्लिंग सत्पुरुषों को सुन्दर गति देनेवाला, सब प्रकार दुष्टों को मारनेवाला तथा भक्तों के ऊपर दया करनेवाला है ।।७७।। यह बड़ा पवित्र गोपनीय तथा सब सुख देनेवाला, स्वर्ग तथा शिवभक्ति बढ़ानेवाला इतिहास आपसे वर्णन किया ।।७८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां महाकालज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ।। १७ ।।

*****

अठारहवाँ अध्याय

ऋषि बोले– हे महाभाग! हे सूतजी! आपने निजभक्तों की रक्षा करनेवाले महाकाल नामक शिवजी के ज्योतिर्लिंग की कथा सुनाई ।।१।। हे जाननेवाले! अब कृपा करके सम्पूर्ण पापों को दूर करनेवाले ओंकार शिवजी के चौथे ज्योतिर्लिंग का वर्णन कीजिये ।।२।। सूतजी बोले– हे द्विजो! हे परम ऋषियो! ओंकार में परमेश नामवाला ज्योतिर्लिंग जिस प्रकार कहा है, उस प्रकार आपसे प्रीति से कहता हूं, आप सुनें ।।३।। किसी समय यहां पर परम भक्तिवाले मुनि भगवान् नारदजी ने गोकर्ण नामक शिवजी के समीप जाकर उनकी सेवा की ।।४।। फिर वह मुनिश्रेष्ठ नारदजी विन्ध्याचल पर्वत पर गये, वहां उन्होंने बहुत मानपूर्वक शिवजी की पूजा की ।।५।। मुझ में सब कुछ है, किसी प्रकार की न्यूनता नहीं है, ऐसा अहंकार करके वह विन्ध्याचल पर्वत नारदजी के आगे स्थित हुआ ।।६।। उस समय अहंकार का नाश करनेवाले नारदजी ने ऐसा वचन सुनकर उसका निरादर करके वहां स्थिति की, तो विन्ध्याचल इस प्रकार बोला ।।७।। विन्ध्य ने कहा– आपने मुझ में क्या न्यूनता देखी, जो निश्वास लिया, यह सुनकर महामुनि नारदजी यह वचन बोले ।।८।। नारदजी ने कहा– हां, तुम में तो सब ही गुण हैं, परन्तु सुमेरु पर्वत सब से ऊँचा है तथा उसका देवताओं में विभाग है, उनमें तुम्हारी गणना नहीं है ।।९।। सूतजी बोले– ऐसा कहकर नारदजी वहां से अपने स्थान को चले गये, विन्ध्याचल अपने मन में इस प्रकार दुःखी हुआ कि, मेरा जीवन आदि धिक्कार योग्य है ।।१०।। विश्वेश्वर शिवजी का आराधन करके मैं तप करूँगा, ऐसा अपने मन में निश्चय करके शंकरजी की शरण में प्राप्त हुआ ।।११।। और बड़ी प्रीति से वहां गमन किया, जहां ओंकार नामक शिवजी स्थित थे, वहां पर उसने पार्थिव शिवजी की मुर्त्ति

बनाई।।१२।। उस समय छः मासपर्यन्त नित्य शिवजी का आराधन करके शिवजी के ध्यान में लीन होकर उस तप के स्थान से चलायमान न हुआ।।१३।। इस प्रकार विन्ध्य के तप को देखकर शिवजी प्रसन्न हुए तथा योगियों को भी दुर्लभ अपने शरीर को दिखाया।।१४।। और अति प्रसन्न हुए शिवजी बोले– तू मनोवांछित वर मांग, मैं तेरे तप से प्रसन्न हूं कारण कि, मैं भक्तों की कामना सिद्ध करनेवाला हूं।।१५।। विन्ध्याचल बोला– हे देवताओ ईश्वर! हे शम्भो! यदि आप प्रसन्न हों, तो मुझे अपने मनोवांछित कार्य को सिद्ध करनेवाली बुद्धि प्रदान कीजिये, आप सदा भक्तवत्सल हैं।।१६।। सूतजी बोले– यह सुनकर भगवान् शिवजी ने बहुत देर तक अपने हृदय में विचारा कि, यह मूर्ख विन्ध्याचल दूसरों को दुःख देनेवाले वर की इच्छा करता है।।१७।। अब क्या करूं? कि जिससे इसका शुभ वरदान हो जाय कारण कि, मेरा दिया हुआ वरदान दूसरे को दुःख देने के निमित्त नहीं होता है।।१८।। सूतजी बोले– यह सोचते हुए भी शम्भुजी ने उसे वरदान दिया कि, हे पर्वतों के राजा विन्ध्याचल! जैसी तुम्हारी इच्छा हो, वैसा करो।।१९।। इसी प्रकार वहां श्रेष्ठ बुद्धिवाले समस्त देवता तथा ऋषियों ने शिवजी को पूजकर, आप यहां स्थित होवें, इस प्रकार कहा।।२०।। ऐसा देवताओं का वचन सुनकर प्रसन्न हुए शिवजी ने संसार के सुख के हेतु वहां उसी प्रकार स्थिति की।।२१।। वहां पर ओंकार लिंग था, वह दो रूप में किया और वह सदाशिवजी प्रणव में ओंकार नामवाले हुये।।२२।। हे ब्राह्मणो! पार्थिव में जो प्रकट हुए परमेश्वर नाम से प्रसिद्ध हुए, यह दोनों ज्योतिर्लिंग भक्तों को अभीष्ट देनेवाले तथा भुक्ति–मुक्ति देनेवाले हुये।।२३।। और देवता तथा ऋषियों ने उसकी पूजा की और शिवजी को पूज कर, स्तुति करके अनेक वरदान पाये।।२४।। हे द्विजो! वे सब देवता अपने–अपने स्थानों को चले गये। विन्ध्यपर्वत ने भी अधिक प्रसन्न होकर अपने कार्य को साधा तथा दुःख का त्याग किया।।२५।। जो यहां पर शिवजी का पूजन करता है, वह माता के गर्भ में फिर निवास नहीं करता तथा जो अभीष्ट फल हैं, उन्हें प्राप्त होता है, इसमें कुछ संशय नहीं है।।२६।। सूतजी बोले– यह सब ओंकार का माहात्म्य आपसे कहा, अब इसके आगे केदार नामक श्रेष्ठ लिंग का वर्णन करता हूं।।२७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां
ओंकारेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः।। १८ ।।

*****

उन्नीसवाँ अध्याय

सूतजी बोले– हे द्विजो! नरनारायण नामवाले जो विष्णुजी के अवतार हुये, उन्होंने भरतखण्ड में बदरिकाश्रम में तप किया ।।१।। पूजन करने के निमित्त उन दोनों द्वारा प्रार्थना किये हुए शिवजी भक्तों की अधीनता से नित्य पार्थिवलिंग में विराजमान होते थे ।।२।। इस प्रकार शिवजी का पूजन करते हुए शिवजी के भक्त, धर्मपुत्र, विष्णुजी के अवतार नरनारायण को बहुत समय बीत गया ।।३।। एक समय वहां प्रसन्न हुए शिवजी यह बोले कि, मैं तुम से प्रसन्न हूं, मुझ से वर मांगो ।।४।। उस समय शिवजी के ऐसा कहनेपर स्वयं नरनारायण ने संसार के हित की कामना से वहां यह वचन कहा ।।५।। नरनारायण बोले– हे देवेश! हे शंकर! यदि आप हम से प्रसन्न हों और हमें वर देना चाहते हों, तो आप स्वयं अपने रूप से पूजा के निमित्त यहां स्थित होवें ।।६।। सूतजी बोले– उन दोनों के ऐसा कहनेपर हिम से आश्रित केदार में साक्षात् महेश्वरजी, ज्योतिःस्वरूप होकर स्वयं स्थित हुए ।।७।। उन दोनों से पूजित हुए, सम्पूर्ण संकट और भय को दूर करनेवाले शिवजी लोकों के उपकार के निमित्त तथा भक्तों के दर्शन करने के निमित्त वहां पधारे ।।८।। केदारेश्वर नाम से प्रसिद्ध स्वयं स्थित हुए शिवजी दर्शन करने से तथा पूजन करने से अपने भक्तों के मनोरथ सिद्ध करनेवाले हैं ।।९।। जो–जो देवता तथा पुरातन ऋषि उनकी पूजा करते, वे सब प्रसन्न हुए शिवजी से मनोवांछित फल प्राप्त करते हैं ।।१०।। शिवजी का नित्य अर्चन करने से बदर्याश्रम में रहनेवाले सब स्ववांछित फल पाते थे कारण कि, महेश्वरजी सदा भक्तों को अभीष्ट फल देनेवाले हैं ।।११।। उस दिन से लेकर जो भक्ति से केदारेश्वर का दर्शन करते हैं, उनको स्वप्न में भी दुःख नहीं होता ।।१२।। पाण्डवों को देखकर यहां देव देव ने महिष का रूप धारण किया था और माया को करके उनके सामने से पलायमान हुए ।।१३।। तब पाण्डवों ने उस महिष रूप की पूंछ पकड़ ली, तब यह नीचे को मुख करके स्थित हुए, तब इनकी बारंबार प्रार्थना की ।।१४।। तब यह भक्तवत्सल भगवान् उसी रूप से वहां स्थित हो गये और उस रूप का शिरोभाग नयपाल में प्रकट हो गया ।।१५।। तब वहां नित्य उनका पूजन करने से उनकी आज्ञा पाकर पाण्डवों ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और शिवजी उनसे पूजित होकर उन्हें वर देकर वहां स्थित हुए ।।१६।। शंकरजी का पूजन करके वे पाण्डव प्रसन्न होकर वहां से गये और सब दुःखों से रहित उन्होंने अपना मन इच्छित फल पाया ।।१७।। उस केदार क्षेत्र में शंकरजी नित्य स्थित हैं और भारतवासी सदा उनका पूजन करते हैं ।।१८।। जो शिवजी की प्रीति के निमित्त वहां

कंकन देते हैं, वह शिवजी के समीप जाकर शिवरूप होते हैं ।।१९।। वहां शंकरजी का रूप देखकर प्राणी सब पापों से छूट जाता है, बदरीवन जानेवाले जीवन्मुक्त हो जाते हैं ।।२०।। यहां नरनारायण का दर्शन करके और केदारेश्वर शंकरजी का दर्शन करके मनुष्य अवश्य ही मुक्ति का भागी होता है ।।२१।। जो भक्त केदारेश्वर के मार्ग में मृत्यु को प्राप्त हो जायँ, वे भी मुक्त हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं ।।२२।। जो वहां जाकर प्रेम से केदारेश्वर का पूजन करते हैं तथा जलपान करते हैं, उनका पुनर्जन्म नही होता ।।२३।। हे ब्राह्मणो! इस भरत खण्ड में नरनारायण तथा केदारेश्वर को परमभक्ति से पूजकर तथा भक्ति करके सब जीव मुक्त होते हैं ।।२४।। यह सर्वेश विशेष करके इस भूखण्ड के स्वामी हैं, केदारेश्वर शंकरजी सब कामनाओं के देनेवाले हैं, इसमें सन्देह नहीं ।।२५।। हे मुनीश्वरो! जो कुछ आपने पूँछा, सो आपसे सब कह दिया, इसे सुनने से सब पाप दूर हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं ।।२६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां
केदारेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ।। १९ ।।

*****

बीसवाँ अध्याय

सूतजी बोले- अब इसके आगे भीमशंकर महादेव माहात्म्य को कहता हूं, जिसके सुनने मात्र से मनुष्य सम्पूर्ण अभीष्ट को प्राप्त होता है ।।१।। कामरूप देश में लोकों की कामना के निमित्त साक्षात् कल्याण और सुख देनेवाले शिवजी स्वयं प्रकट हा गये ।।२।। हे मुनीश्वरो! संसार का कल्याण करनेवाले शंकरजी ने जिस कारण यहां अवतार लिया है, सो आदर से सुनिये, मैं कहता हूं ।।३।। हे ब्राह्मणो! पहले सब प्राणियों को दुःख देनेवाला, सदा धर्म का नाश करनेवाला भीम नामक बड़ा वीर राक्षस था ।।४।। वह महाबली राक्षस कुम्भकर्ण से कर्कटी राक्षसी से उत्पन्न हुआ था और उसने अपनी माता के सहित सह्यपर्वत पर निवास किया ।।५।। संसार में भय करनेवाले कुम्भकर्ण को जब रामचन्द्रजी ने मारा, तब उस राक्षसी ने अपने पुत्र सहित स्वयं सह्यपर्वत पर निवास किया ।।६।। हे द्विजो! एक समय बालकपन में उस दुष्ट ने लोकों को दुःख देनेवाले, भयंकर पराक्रम वाले भीम ने अपनी कर्कटी माता से पूँछा ।।७।। भीम बोला- मेरा पिता कौन है तथा कहां है और तु क्यों अकेली स्थित हुई है? यह सब ठीक-ठीक जानने की इच्छा है, सो तू कह ।।८।। सूतजी बोले- इस प्रकार उस पुत्र के पूछने पर वह दुष्ट राक्षसी अपने पुत्र से बोली कि, मैं सब वर्णन करती हूं ।।९।।

कर्कटी बोली- तेरा पिता रावण का भाई कुम्भकर्ण था, उस महाबली को भाई सहित रामचन्द्रजी ने मार डाला ।।१०।। हे पुत्र! एक समय वह राक्षस कुम्भकर्ण यहां आया था और उस बलवान ने बलात्कार से मेरे साथ रमण किया ।।११।। और वह महाबली कुम्भकर्ण मुझे यहां ही त्यागकर लंकापुरी को चला गया। मैंने वह लंका नहीं देखी, मैं यहीं पर निवास करती हूं ।।१२।। मेरा पिता कर्कट नामवाला है और माता पुष्कसी है, विराध नामक मेरे पति को रामचन्द्र ने पहले ही मार दिया था ।।१३।। अपने प्रिय स्वामी के मर जाने पर मैं अपने माता-पिता के समीप रहने लगी, फिर मेरे माता-पिता को ऋषि ने भस्म करके मार दिया ।।१४।। तपस्वी अगस्त्य के शिष्य को भक्षण करने को मेरे माता-पिता गये, तब क्रोधित हुए उन तीव्र प्रतापवाले महात्मा ऋषि ने अपने तपोबल से उनको भस्म कर दिया ।।१५।। तब से मैं अकेली दु:खी होकर आश्रय तथा सहायता रहित पहले से इस पर्वत पर रहती थी ।।१६।। उसी समय में यहां आकर रावण के भाई कुम्भकर्ण ने मेरे साथ भोग करके वह मुझे छोड़कर चला गया ।।१७।। उसके पश्चात् तू महाबली, पराक्रमी उत्पन्न हुआ, तब से तुझे अवलम्बन करके मैं समय बिताती हूं ।।१८।। सूतजी बोले- ऐसा वचन सुनकर प्रबल पराक्रमी भीम भगवान् के ऊपर बड़ा क्रोधित हुआ और चिन्ता करने लगा कि, मैं अब क्या करूं?।।१९।। रामचन्द्र ने मेरे पिता को, नाना को और विराध को भी, इसी प्रकार हम को भी बड़ा दु:ख दिया ।।२०।। यदि मैं कुम्भकर्ण का पुत्र हूं, तो हरि को अवश्य पीड़ा दूंगा, ऐसी मति करके वह दैत्य भीम परमतप करने चला गया ।।२१।। तब उसने ब्रह्माजी के उद्देश्य से मन से ध्यान में मग्न होकर सहस्र वर्ष पर्यन्त बड़ा तप किया ।।२२।। वह भीम राक्षस का पुत्र भुजाओं को उपर उठाकर, एक पैर पर खड़ा होकर सूर्य में दृष्टि लगाकर स्थित हुआ ।।२३।। उसके मस्तक पर परम भयानक तेज उत्पन्न हुआ, तब उस तेज से भस्म हुए समस्त देवता ब्रह्माजी के शरण में गये ।।२४।। उन इन्द्र आदि देवताओं ने ब्रह्माजी को प्रणाम करके अनेक स्तोत्रों से ब्रह्माजी की स्तुति की और उनसे अपना दु:ख निवेदन किया ।।२५।। देवता बोले- हे ब्रह्माजी! राक्षस का तेज संसार को पीड़ा देने के निमित्त उद्यत हुआ है, सो हे विधे! जो वह दुष्ट राक्षस प्रार्थना करता है, आप उस वर को दीजिये ।।२६।। नहीं तो अब उसके प्रचण्ड तेज से भस्म हुए हम सब नाश को प्राप्त होंगे, इस कारण उसकी प्रार्थना स्वीकार कीजिये ।।२७।। सूतजी बोले- इस प्रकार उन देवताओं का वचन सुनकर लोकपितामह ब्रह्माजी उसे वर देने को चले और उससे यह वचन बोले ।।२८।। ब्रह्माजी बोले- ''मैं प्रसन्न हूं, वर मांग, जो तेरे मन में अभिलाषा हो, सो कहो'' तब ऐसे ब्रह्माजी का वचन सुनकर वह राक्षस कहने लगा ।।२९।। भीम बोला- हे देवताओं के स्वामी! हे ब्रह्माजी! यदि आप मुझ से प्रसन्न हों तथा मुझे वर देना चाहते हों, तो मुझे बड़ा बल दें ।।३०।। सूतजी बोले- यह कहकर उस राक्षस

ने ब्रह्माजी को नमस्कार किया, उस समय ब्रह्माजी भी उसे वरदान देकर अपने स्थान को गये ।।३१।। तब वह राक्षस ब्रह्माजी से अतिबल प्राप्त कर अपने घर जाकर अपनी माता को प्रणाम करके अभिमान से यह बोला ।।३२।। भीम बोला- हे माता! अब मेरे बल को देखना, इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओं की विष्णुजी तथा उनके सहायकों की महाप्रलय करता हूं।।३३।। सूतजी बोले ऐसे कहकर बड़े पराक्रमी उस भीम राक्षस ने पहले इन्द्र आदि समस्त देवताओं को जीता और उन्हें अपने-अपने स्थानों से निकाल दिया ।।३४।। फिर उस देवताओं से स्तुति को प्राप्त होनेवाले विष्णु भगवान् को युद्ध में जीता, फिर आनन्द से रसातल को जीतने का प्रारम्भ किया ।।३५।। पहले दक्षिण दिशा में कामरूप के स्वामी को जीतने गया, उस राजा के साथ भयंकर युद्ध हुआ ।।३६।। तब भीम राक्षस ने ब्रह्माजी के प्रताप तथा वर के प्रभाव से बड़े वीर, शिवजी के आश्रय वाले उस महाराजा को युद्ध में जीता ।।३७।। भयंकर पराक्रमी भीम ने उस कामरूपेश्वर प्रभु को जीतकर बांध लिया और उसे ताड़न किया ।।३८।। हे ब्राह्मणो! उस दुष्ट भीम राक्षस ने शिवजी के दास कामरूप देश के राजा का कोश सहित सर्वस्व छीन लिया ।।३९।। धर्मात्मा शिवजी के भक्त धर्मप्रिय उस राजा को भी बन्धन (बेड़ी) से बांधकर एकान्त में रखा ।।४०।। वहां कारागार में उस राजा ने उत्तम पार्थिवमूर्ति को बनाकर अपने कल्याण की इच्छा से शिवजी का भजन प्रारम्भ किया ।।४१।। उस समय उस राजा ने गंगाजी की बहुत स्तुति की, मानसिक स्नानकर्म आदि करके शिवजी का पूजन किया ।।४२।। उस राजर्षि ने पार्थिव पूजन के विधान से शंकरजी की आराधना की और जैसा शास्त्रों में वर्णन किया है, उसी प्रकार विधिपूर्वक ध्यान किया ।।४३।। मुद्रा, आसन सहित उपचार तथा स्तोत्रों से सब प्रकार आनन्द से शिवजी की सेवा की ।।४४।। ओंकार के सहित पंचाक्षरवाले (ॐ नमो शिवाय) इस मन्त्र को जपने लगा, उस समय उसने और किसी कार्य को करने का अवसर नहीं पाया ।।४५।। उसी समय उस राजा की प्रिय पतिव्रता दक्षिणा नामक स्त्री ने प्रीति से पार्थिव विधान को किया ।।४६।। उन दोनों स्त्री-पुरुषों ने वहां नित्य शिवजी के आराधन में तत्पर होकर भक्तों का कल्याण करनेवाले शंकरजी की एक भाव से सेवा की ।।४७।। उस राक्षस ने वरदान के अभिमान से मोहित होकर सम्पूर्ण यज्ञ कर्म धर्मों का लोप करके 'सब मुझे ही दो' ऐसा प्रचार किया ।।४८।। हे श्रेष्ठ ऋषियो! दुष्टात्मा राक्षसों की सेना के सहित उस राक्षस ने सम्पूर्ण पृथ्वी अपने वश में कर ली ।।४९।। वेद के धर्म, शास्त्रों के धर्म, स्मृतियों के धर्म और पुराणों के धर्मों को सर्वथा लोप करके स्वयं स्वतन्त्र होकर भोग भोगने लगा ।।५०।। हे ब्राह्मणो! उसने इन्द्र आदि देवता तथा ऋषियों और ब्राह्मणों को पीड़ा दी और अति दुःख को प्राप्त हुए उन्हें अपने-अपने लोकों से निकाल दिया ।।५१।। तब व्याकुल हुए सब इन्द्र आदि देवता तथा ऋषि ब्रह्माजी

तथा विष्णुजी को लेकर शिवजी की शरण में गये ।।५२।। और अनेक स्तोत्रों से स्तुति करके उन्होंने महाकोशी नदी के समीप लोकों के कल्याण करनेवाले शंकरजी को प्रसन्न किया ।।५३।। पार्थिव मूर्त्ति को बना कर विधान सहित पूजन करके अनेक स्तोत्रों से तथा क्रम से नमस्कार आदि उपचारों से पूजन किया ।।५४।। इस प्रकार देवताओं की स्तुति आदि से सन्तुष्ट हुए शिवजी उन देवताओं से यह बोले ।।५५।। शिवजी बोले– हे विष्णो! हे देवताओ! हे सब ऋषियो! मैं आपसे प्रसन्न हूं, आप सब वर मांगो, मैं आपका क्या कार्य करूं?।।५६।। सूतजी बोले– हे ब्राह्मणो! इस प्रकार शिवजी के कहने पर देवता हाथ जोड़ कर प्रणाम करके शिवजी से बोले ।।५७।। देवता बोले– हे देवेश! आप सब के मन की बात जानते हो, आप सब के अन्तर्यामी हो, आपको कुछ अज्ञात नहीं है ।।५८।। हे नाथ! तो भी सुनिये, हम अपना दुःख कहते हैं, हे महादेव! आपकी आज्ञा से हम निवेदन करते हैं, आप कृपादृष्टि से देखें ।।५९।। कुम्भकर्ण से उत्पन्न हुआ कर्कटी का पुत्र, बली राक्षस ब्रह्माजी के दिये वरदान से रात–दिन देवताओं को पीड़ा देता है ।।६०।। हे प्रभो! हे महेश्वर! आप उस दुःख देनेवाले भीम राक्षस को मारकर हम पर कृपा कीजिये, विलम्ब करना योग्य नहीं ।।६१।। सूतजी बोले– इस प्रकार सम्पूर्ण देवताओं के कहने पर भक्तवत्सल शिवजी बोले, मैं उस दैत्य का वध करूंगा, यह कहकर फिर देवताओं से बोले ।।६२।। शिवजी बोले– हे देवताओ! आप कामरूपेश्वर नामक राजा से, जो मेरा बड़ा भक्त है, कहो कि, तुम्हारा काम शीघ्र होगा ।।६३।। हे सुदक्षिण! हे महाराज! हे कामरूपेश्वर! हे प्रभो! तू मेरा विशेष भक्त है, प्रीति से मेरा भजन कर ।।६४।। ब्रह्माजी से वरदान पानेवाले, तुम्हारा तिरस्कार करनेवाले उस दुष्ट भीम नामक राक्षस को अवश्य मारूंगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं ।।६५।। सूतजी बोले– तब वे सब देवता प्रसन्न होकर, वहां जाकर उस कामरूपेश्वर महाराजा से जो कुछ शम्भुजी ने कहा था, सो सब कह दिया ।।६६।। उससे सब वृत्तान्त कहकर देवता हर्ष को प्राप्त हुए तथा सम्पूर्ण महर्षियों के सहित शीघ्र ही अपने–अपने आश्रम को पधारे ।।६७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां

भीमेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्यं भामासुरकृतोपद्रववर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ।। २० ।।

*****

इक्कीसवाँ अध्याय

सूतजी बोले– हित की कामना से शिवजी अपने गणों के साथ वहां गये और उसकी रक्षा के निमित्त अपने भक्त के निकट गुप्तरूप से रहे ।।१।। इसी अवसर में वहां उस समय कामरूपेश्वर ने पार्थिवलिंग के आगे अत्यन्त ध्यान करना प्रारम्भ किया ।।२।। तब किसी ने वहां जाकर राक्षस से निवेदन किया, कि राजा इस प्रकार तुम्हारे लिये धारण क्रिया का प्रयोग करता है ।।३।। सूतजी बोले– यह सुनकर वह राक्षस अति क्रोधित होकर उस राजा को मारने की इच्छा से तलवार ग्रहण करके राजा के समीप गया ।।४।। वहां राक्षस ने पार्थिवलिंग आदि को स्थित हुआ देखकर तथा राजा कुछ कर रहा है, ऐसा उसका स्वरूप देखकर विचारने लगा ।।५।। यह प्रयोग तो करता है, आज कुटुम्ब सहित इस राजा को बलात्कार से मारूंगा, ऐसा मन में ठानकर वह राक्षस महाक्रोध करता हुआ उस राजा से बोले ।।६।। भीम बोला– हे दुष्टात्मा! हे राजन्! तू इस समय क्या कर रहा है? तू सत्य–सत्य कह,तुझे मैं नहीं मारूंगा, अन्यथा मैं निश्चय ही तुझे मारूंगा ।।७।। सूतजी बोले– ऐसा उस राक्षस का वचन सुनकर शिवजी के विश्वास में पूर्ण हुए उस कामरूपेश्वर राजा ने अपने मन में तत्काल विचारा ।।८।। जो होनहार है, वह तो अवश्य होगा, उस होनी का निवारण करनेवाला कोई नहीं है, यहां सब कुछ प्रारब्ध ही के अधीन है और शिवजी ही को प्रारब्ध कहते हैं ।।९।। वह दया करनेवाले शिवजी इस पार्थिवलिंग में निश्चय ही उपस्थित है, क्या वे मेरे लिये कुछ न करेंगे? फिर यह राक्षस क्या है?।।१०।। वह शिवजी अपने अनुकुल प्रतिज्ञा को सत्य करेंगे कारण कि, भगवान् शिवजी सत्य प्रतिज्ञावाले है, ऐसा शास्त्रों में सुना है।।११।। जब कोई मेरे भक्त को अति कठिन पीड़ा देता है, तब मैं उसकी रक्षा के लिये उस दुष्ट को मारता हूं, यह प्रतिज्ञा है, इसमें कुछ संशय नहीं ।।१२।। इस प्रकार धैर्य धारण करके शंकरदेव का ध्यान करके बड़ी भक्ति से उस राजा ने मन से प्रार्थना की ।।१३।। हे महाराज शिवजी! मैं आपका ही हूं, जैसी आपकी इच्छा हो वैसा करें, मैं सत्य वचन कहता हूं, आप मेरा हित करें ।।१४।। इस प्रकार सत्य के पाश में बंधा हुआ वह राजा मन में ध्यान करके उस राक्षस का तिरस्कार करता हुआ यह वचन बोला ।।१५।। राजा बोला– अपने भक्तों का पालन करनेवाले, सम्पूर्ण चर और अचर जगत् के स्वामी, निर्विकार शिवदेव को भजता हूं ।।१६।। सूतजी बोले– ऐसा उस कामरूपेश्वर राजा का वचन सुनकर वह भीम राक्षस क्रोध से कम्पायमान शरीर होकर यह वचन बोला ।।१७।। भीम बोला– तेरा शिव तेरा जाना हुआ है, वह मेरा

क्या करेगा ? जिसको मेरे पिता के भाई रावण ने दास के समान रखा था ।।१८।। उसके बल को आश्रय करके तू जीतने की इच्छा करता है, तब तो तू सब ही जीत चुका, इसमें सन्देह नहीं ।।१९।। जब तक तेरा पालन करनेवाले शिवजी को मैं नहीं देखता, तब तक तू उसको स्वामी मानकर सेवा करता है, मेरे देखने पर तू पूजन नहीं कर सकता ।।२०।। हे राजा ! मुझ से देखने पर वह सब प्रकट हो जायगा, इस कारण तू इस शिवजी के रूप को दूर कर ।।२१।। नहीं तो तुझे बड़ा दण्ड होगा, इसमें कुछ संशय नहीं, भयंकर विक्रमवाला मैं तुम्हारे स्वामी को तीव्र भेंट दूंगा ।।२२।। सूतजी बोले– ऐसा उस राक्षस का वचन सुनकर शिवजी में दृढ़ विश्वास करके कामरूपेश्वर राजा ने उससे यह वचन कहा ।।२३।। राजा बोला– मैं नीच तथा दुष्ट हूं, परन्तु शिवजी के पूजन को नहीं छोडूंगा, मेरे स्वामी सब से ऊंचे हैं, वे भी मुझे कभी नहीं त्यागेंगे ।।२४।। सूतजी बोले– तब इस प्रकार उस शैवराज का वचन सुनकर शीघ्र ही उस राजा से हँसकर वह भीम राक्षस यह वचन बोला ।।२५।। वह उन्मत्त हुआ नित्य भीख मांगता है, इससे वह क्या अपनी आकृति को जान सकता है ? भक्तों का पालन करने में योगियों की क्या सामर्थ्य है ?।।२६।। यह बुद्धि में विचार करके तू उससे सब प्रकार दूर हो, मैं तेरे स्वामी के साथ युद्ध करूँगा ।।२७।। सूतजी बोले– ऐसा कहने पर वह शिवजी का भक्त दृढ़व्रतवाला श्रेष्ठ राजा निर्भय होकर संसार सदा दुःख देनेवाले भीम राक्षस से बोला ।।२८।। राजा बोला– हे राक्षस! हे दुष्टात्मन्! मैं ऐसा नहीं कर सकता हूं, तू ऐसा कर सकता है, कारण कि, तू शक्तिमान् है ।।२९।। सूतजी बोले– ऐसा कहने पर वह राक्षस सेना को लेकर उस राजा को धिक्कार कर उस समय राजा पर तीक्ष्ण तलवार का प्रहार करने लगा ।।३०।। अब तू भक्तों को सुख देनेवाले अपने स्वामी के बल को देख, इस प्रकार वह महाबली राक्षसों के सहित हँसकर बोला ।।३१।। हे ब्राह्मणो! जब तक तलवार ने उस पार्थिवलिंग को स्पर्श नहीं किया, तभी उस पार्थिवलिंग से साक्षात् शिवजी स्वयं प्रकट हुये ।।३२।। और बोले, कि देखो मैं भीमेश्वर इसकी रक्षा के निमित्त प्रकट हुआ हूं, मेरा पहला नियम है कि, सदा अपने भक्त की रक्षा करता हूं।।३३।। इससे मेरे भक्तों को सुख देनेवाले बल को शीघ्र ही देखो, ऐसा कहकर पिनाक अस्त्र से उस तलवार के दो खण्ड कर दिये ।।३४।। फिर उस राक्षस ने उनके ऊपर अपना त्रिशूल फेंका, तो शिवजी ने उस दुष्ट के त्रिशूल के सौ खण्ड कर दिये ।।३५।। हे ब्राह्मणो! तब उस दैत्य ने शम्भुजी के ऊपर शक्ति का प्रहार किया, उसको भी शिवजी ने अपने बाणों से शीघ्र ही लाखों टुकड़े कर दिये ।।३६।। फिर उसने महादेवजी के ऊपर पट्टिश अस्त्र का प्रहार किया, उसे क्षणमात्र में उन्होंने अपने त्रिशूल से तिल के समान खण्ड–खण्ड किया ।।३७।। तत्पश्चात् शिवजी के गणों का तथा राक्षसों का, देखनेवालों को बड़ा भय देनावाला बड़ा भयंकर युद्ध हुआ ।।३८।।

उस समय सम्पूर्ण पृथ्वी व्याकुल हो गई और पर्वतों सहित सब समुद्र चलायमान हो गये ।।३९।। समस्त देवता तथा ऋषि अति व्याकुल हुए और आपस में कहने लगे कि, व्यर्थ ही शिवजी की प्रार्थना की ।।४०।। तब नारदजी ने वहां जाकर अंजलि बांधकर, मस्तक झुकाकर दुःख दूर करनेवाले शिवजी की प्रार्थना की ।।४१।। नारदजी बोले– हे नाथ! हे विभ्रम कारक! आप क्षमा करें, एक तृण पर क्या कुठार का प्रयोग होता है? आप उसे शीघ्र ही मारिये ।।४२।। ऐसी प्रार्थना करने पर उन प्रभु शिवजी ने उन सम्पूर्ण राक्षस गणों को हुंकाररूपी अस्त्र से भस्म किया ।।४३।। हे मुने! शिवजी ने क्षणमात्र में ही उन राक्षसों को भस्म किया, वहां सब देवताओं के देखते–देखते ही वे तत्काल नष्ट हो गये ।।४४।। जिस प्रकार दावाग्नि सब वन को भस्म करती है, उसी प्रकार क्रोधित हुए शिवजी ने क्षणमात्र में राक्षसों का बल नष्ट कर दिया ।।४५।। उस समय भीम नामक राक्षस की कौनसी भस्म है, यह किसी ने नहीं जाना, वह राक्षस अपने परिवार सहित भस्म हो गया, नाम भी कहीं सुनाई नहीं दिया ।।४६।। तब शिवजी की कृपा से सब मुनीश्वर शान्ति को प्राप्त हो गये, इन्द्र आदि सब देवताओं सहित सम्पूर्ण संसार स्वास्थ को प्राप्त हुआ ।।४७।। महेश्वरजी की क्रोधानल एक वन से दूसरे वन में निकली, राक्षसों के शरीर की भस्म सम्पूर्ण वन में व्याप्त हुई ।।४८।। उस भस्म से अनेक कार्य सम्पादन करनेवाली औषधियां उत्पन्न हुईं और उससे मनुष्यों के रूप तथा अनेक भेष जन्मान्तर में बने ।।४९।। हे द्विजो! उसके लेप से भूत, प्रेत, पिशाच आदि सब दूर होते हैं, ऐसा कोई कार्य नहीं है, जो उस भस्म से न होता हो ।।५०।। उन देवताओं ने तथा मुनियों ने शिवजी की विशेष प्रार्थना की कि, हे स्वामी! आपको संसार को सुख देने के कारण यहां निवास करना उचित है ।।५१।। यह युद्ध न करनेवालों को दुःख देनेवाला कुत्सित देश है और आपका दर्शन करके लोगों का कल्याण होगा ।।५२।। सब कुछ सिद्ध करनेवाले सदा भीमशंकर नाम से प्रसिद्ध होंगे, यह ज्योतिर्लिंग सब आपत्तियों को निवारण करनेवाला तथा पूजनीय होगा ।।५३।। सूतजी बोले– लोकों का हित करनेवाले, स्वतन्त्र, भक्तों के ऊपर दया करनेवाले शिवजी ने ऐसी प्रार्थना सुनकर प्रीति से वहां निवास किया ।।५४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां
भीमेश्वरज्योतिर्लिंगोत्पत्तिमाहात्म्यवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ।। २१ ।।

*****

बाईसवाँ अध्याय

सूतजी बोले– हे श्रेष्ठ ऋषियो! इसके आगे बड़े पापों का नाश करनेवाले विश्वेश्वर के माहात्म्य को कहता हूं, आप सुनें।।१।। इस संसार में जो कुछ यह वस्तुमात्र दीखती है, वह सब निर्विकार सनातन चिदानन्द स्वरूप है।।२।। और जब उस ही कैवल्यरति (ज्ञान स्वरूप) परमेश्वर की दूसरे होने की इच्छा उत्पन्न हुई, तब वही सगुण रूप से शिव कहलाये।।३।। वह शिवजी ही पुरुष तथा स्त्री के भेद से दो प्रकार के रूपवाले हुये हैं, उनमें जो पुरुष हैं, सो शिवजी हैं तथा स्त्री रूपा शक्ति के नाम से प्रसिद्ध हैं।।४।। हे मुनिसत्तमो! तब उन दोनों अदृश्य हुए चिदानन्द स्वरूपों के स्वभाव से प्रकृति तथा पुरुष प्रकट हुए, हे द्विजो! जब उन्होंने जगत् के माता–पिता को न देखी।।५–६।। तब वे प्रकृति और पुरुष बड़े संशय को प्राप्त हुए, उस समय निर्गुण परमात्मा से यह वाणी प्रकट हुई कि, ''तप करना योग्य है, उस तप से ही उत्तम सृष्टि होगी''।।७।। प्रकृति पुरुष बोले– हे स्वामी! हे शिवजी! तप करने को कोई स्थल नहीं है, अब हम दोनों कहां स्थित होकर आपकी आज्ञा से तप करें?।।८।। तब सम्पूर्ण तेजों के सार रूप, पांच कोश पर्यन्त सब साधनों के सहित शोभायमान, सुन्दर नगर।।९।। निर्गुण शिवजी ने निर्माण करके अपनी प्रेरणा से अन्तरिक्ष (आकाश) में पुरुष के समीप स्थित किया।।१०।। फिर वहां स्थित होकर विष्णुजी ने सृष्टि रचने की कामना से शिवजी का ध्यान करके बहुत समय तक तप किया।।११।। तब उनके परिश्रम से अनेक जल की धाराएं प्रकट हुईं, उनसे वह शून्य व्याप्त हुआ, उस समय उसके सिवाय और कुछ नहीं दीखता था।।१२।। तब विष्णुजी ने देखा कि, यह क्या अद्भुत सा दीखता है? इस प्रकार आश्चर्य से देख सिर को कंपाया।।१३।। सिर के कंपाने से विष्णुजी के कान से एक मणि गिर पड़ी, वह मणिकर्णिका नाम से बड़ा तीर्थ प्रसिद्ध हो गया।।१४।। वह मणिकर्णिका जल रूप से बहती हुई जब पंचक्रोशी (पांच कोश तक) विस्तार वाली हुई, तब निर्गुण शिवजी ने तत्काल उसको त्रिशूल पर धारण किया।।१५।। विष्णुजी ने वहां ही अपनी स्त्री के सहित शयन किया, शिवजी की आज्ञा से उनकी नाभिकमल से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए।।१६।। उन ब्रह्माजी ने शिवजी की आज्ञा पाकर अद्भुत सृष्टि रचनी प्रारम्भ की और उस ब्रह्माण्ड में चौदह लोक रचे।।१७।। मुनियों ने पचास करोड़ योजन के प्रमाण से ब्रह्माण्ड का विस्तार वर्णन किया है।।१८।। ब्रह्माण्ड में अपने–अपने कर्मों से बंधे हुए प्राणी मुझे किस प्रकार प्राप्त होंगे? ऐसा विचार करके यह पंचक्रोशी उनसे पृथक् रखी है।।१९।। यह पंचक्रोशी लोक में कल्याण देनेवाली तथा कर्मों का नाश करनेवाली है, यही काशी मोक्ष की प्रकाश करनेवाली, ज्ञान देनेवाली।

है, मेरी प्रिय नगरी है।।२०।। परमात्मा शिवजी ने मुक्ति देनेवाले ज्योतिर्लिंग को स्वयं स्थापित किया और कहा, हे मेरे अंशवाले ज्योतिर्लिंग यह क्षेत्र तुम्हें कदापि न त्यागना चाहिये।।२१।। ऐसा कहकर शिवजी ने स्वयं अपने त्रिशूल से उतार के उस काशी को मर्त्यलोक में स्थापित किया।।२२।। ब्रह्मा का दिन पूर्ण होने पर भी वह नाश को नहीं प्राप्त होती, हे मुनियो! प्रलय काल में भी शिवजी उसे त्रिशूल पर धारण करते हैं।।२३।। हे द्विजो! फिर ब्रह्माजी से सृष्टि रचने पर काशी को स्थापित करते हैं, कर्मबन्धनों के आकर्षण करने से 'काशी' कही जाती है।।२४।। काशी में अविमुक्तेश्वर लिंग सदा स्थित रहता है, वह महापाप करनेवाले मनुष्य को भी मुक्ति देनेवाले हैं।।२५।। हे मुनीश्वरो! काशी में अन्यत्र जीवों को सारूप्यादि मुक्ति प्राप्त होती है, परन्तु यहां प्राणियों को सायुज्य उत्तम मुक्ति प्राप्त होती है।।२६।। जिन प्राणियों की कहीं गति न हो, उनकी वाराणसीपुरी में गति होती है, महा पुण्यदायक पंचक्रोशी कोटि हत्याओं के पाप नाश करनेवाली है।।२७।। यहां सब देवता भी मरण की इच्छा करते हैं, औरों की तो बात ही क्या है? यह सर्वदा शिवजी की प्रिय तथा भुक्ति-मुक्ति की देनेवाली है।।२८।। ब्रह्मा, विष्णु, सिद्ध, योगी तथा मुनि और त्रिलोकी के मनुष्य भी सदा काशीजी की प्रशंसा करते हैं।।२९।। मैं काशीजी की महिमा सौ वर्षों में भी वर्णन करने को समर्थ नहीं हो सकता, तो भी यथाशक्ति वर्णन करता हूं।।३०।। भीतर सत्त्वगुण और बाहर तमोगुणवाले निर्गुण और अनेक गुणवान् कैलासपति कालाग्नि नाम से प्रसिद्ध रुद्र ने अनेक प्रकार की प्रार्थना से इस प्रकार शंकरजी से कहा था।।३१।। रुद्र बोले- हे विश्व के स्वामी, महादेवजी! हे महेश्वर! मैं आपका दास हूं, इसमें संशय नहीं, आप माता पार्वती सहित मुझ पुत्र पर कृपा करें।।३२।। हे जगत् के स्वामी! हे जगत्पते! आप सदा लोकों के हित की कामना से यहां ही निवास करें और सब को तारें, ऐसी प्रार्थना करता हूं।।३३।। सूतजी बोले- इस प्रकार बुद्धिसम्पन्न रुद्रजी अविमुक्त क्षेत्र में उन शिवजी की बारंबार प्रार्थना करके नेत्रों से आसुओं को बहाते, प्रसन्नता से उनसे बोले।।३४।। अविमुक्त बोले- हे देवों के देव! हे कालरूपी रोग की औषधी! हे तीनों लोकों के पति! आप ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं से निश्चय ही सेवन करने योग्य हैं।।३५।। हे देव! आप काशीपुरी में राजधानी (निवासस्थान) स्वीकार करें, मैं अचिन्त्य सुख के कारण ध्यान करता हुआ यहां स्थित रहूंगा।।३६।। आप ही मुक्ति देनेवाले तथा कामनाओं को देनेवाले हैं और कोई नहीं, इस कारण आप संसार के उपकार के निमित्त सदा पार्वती के सहित निवास करें।।३७।। हे सदाशिव! आप सम्पूर्ण जीवों का भवसागर से निरन्तर उद्धार कीजिये तथा भक्तों के कार्यों को कीजिये, हे शिवजी! ऐसी हम बारंबार प्रार्थना करते हैं।।३८।। सूतजी बोले- इस प्रकार उन विश्वनाथ से प्रार्थना किये हुए सब के राजा शिवजी ने लोकों के उपकार के निमित्त

वहां निवास किया।।३९।। जिस दिन से शिवजी काशीजी में पधारे तभी से वह काशीनगरी सब से श्रेष्ठ हो गई।।४०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां
विश्वेश्वरमाहात्म्ये काश्यां रुद्रागमनवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः।। २२ ।।

*****

तेईसवाँ अध्याय

ऋषि बोले– हे प्रभो सूतजी! यदि यह वाराणसी नगरी ऐसी पवित्र है, तो उसका प्रभाव तथा अविमुक्त ज्योतिर्लिंग का माहात्म्य हमसे कहिये।।१।। सूतजी बोले– हे मुनीश्वरो! मैं वाराणसी का माहात्म्य तथा विश्वाश्वर शिवजी की सुन्दर महिमा संक्षेप से सम्यक् प्रकार वर्णन करता हूं, आप सुनें।।२।। एक समय देवी पार्वती ने बड़े आनन्द से संसार के हित के निमित्त काशी तथा अविमुक्त लिंग के माहात्म्य को शिवजी से पूछा।।३।। पार्वती बोली– हे शिवजी! आप लोकों के हित कामना से मेरे ऊपर कृपा करके इस क्षेत्र के सम्पूर्ण माहात्म्य का वर्णन कीजिये।।४।। सूतजी बोले– ऐसा पार्वती का वचन सुनकर देवों के देव, संसार के स्वामी शिवजी जीवों के उपकार के हेतु पार्वती से बोले।।५।। शिवजी बोले– हे भद्रे! तुमने संसार को सुख देनेवाला मंगलकारी सुन्दर प्रश्न किया, सो मैं अविमुक्त शिवजी के माहात्म्य को यथार्थ रूप से कहता हूं।।६।। यह वाराणसी नामक मेरा क्षेत्र सदा गोपनीय है और सब प्रकार सम्पूर्ण प्राणियों को मुक्ति देनेवाला है।।७।। इस मेरे क्षेत्र में सिद्धगण सदा मेरे व्रत का आश्रय करते हैं तथा अनेक लोकों के उपकार की इच्छा करनेवाले नाना प्रकार के चिह्न धारण करते हैं।।८।। कोई जितेन्द्रिय होकर आत्मा को वश में करके महायोग का अभ्यास करते हैं, भुक्ति तथा मुक्ति फल का देनेवाले और (श्रुतियों में कहे) परम पाशुपत योग में तत्पर होते हैं।।९।। हे महेश्वरि! जिस कारण से मुझे सदा वाराणसी में निवास अच्छा लगता है, सब विघ्नों को छोड़कर उसे निश्चय कर सुन।।१०।। जो मेरे भक्त तथा विज्ञानी हों, वे दोनों ही मुक्ति के भागी हैं, उन दोनों में तीर्थों के जाने की अपेक्षा नहीं है, तीर्थ करने वा न करने उन्हें दोनों ही समान हैं।।११।। वे जीवन्मुक्त हैं, जहां कहीं भी वे मरते हैं, तत्काल ही मोक्ष को प्राप्त होते हैं, यह तुम मेरे इस वचन को निश्चयरूप से जानो।।१२।। हे देवि! हे परम शक्ति! इस परम उत्तम अविमुक्त नामक तीर्थ में विशेषता है, सो चित्त देकर सुनो।।१३।। सब वर्ण तथा आश्रमवाले बालक, युवा, वृद्ध कोई भी इस काशीपुरी में मृत्यु को प्राप्त हो, तो निःसन्देह मुक्त हो जाते हैं।।१४।। अपवित्र अथवा पवित्र कन्या हो या विवाही, विधवा हो वा वन्ध्या

या रज के दोषवाली हो।।१५।। हे द्विजो! प्रसूता हो या कोई बिना संस्कारवाली हो, चाहे जैसी क्यों न हो, यदि इस क्षेत्र में मरती है, तो मोक्ष की भागी होती है, इसमें कुछ संशय नहीं है।।१६।। जिस प्रकार इस क्षेत्र में स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज वा जार से उत्पन्न हुआ जीव मर कर मोक्ष पाता है, उस प्रकार और कहीं मुक्त नहीं होता।।१७।। हे देवि! इस क्षेत्र में न ज्ञान की अपेक्षा है, न भक्ति की अपेक्षा है, न कर्म की अपेक्षा है, न दान की अपेक्षा है।।१८।। न यहां संस्कार की अपेक्षा है, न किसी ध्यान की अपेक्षा है, न नाम की अपेक्षा है, न श्रेष्ठ जाति की अपेक्षा है।।१९।। मोक्ष देनेवाले मेरे क्षेत्र में जो कोई भी मरता है, वह निश्चय ही मोक्ष को प्राप्त होता है।।२०।। हे प्रिये! यह मेरा दिव्यपुर अतिगोपनीय है, हे पार्वती! इस माहात्म्य को ब्रह्मा आदि कभी नहीं जानते।।२१।। कारण कि, यह क्षेत्र सब से बड़ा है, इससे अविमुक्त नाम से प्रसिद्ध है, मरने के उपरान्त नैमिषारण्य आदि तीर्थों से अधिक मोक्ष को देनेवाला है।।२२।। पण्डितों ने यह क्षेत्र धर्म का स्थान, मोक्ष का स्थान, क्षेत्र तथा तीर्थों का स्थान कहा है।।२३।। मनुष्य चाहे भोजन करता हो, सोता हो, क्रीड़ा करता हो तथा अनेक क्रियाओं को करता हो, वह अविमुक्त शिवजी के समीप प्राणों को छोड़ते ही अवश्य मोक्ष का भागी होता है।।२४।। सहस्रों पापों को करके मनुष्यों का पिशाच हो जाना श्रेष्ठ है, परन्तु स्वर्ग के निमित्त काशीपुरी के बिना अनेक यज्ञों का करना श्रेष्ठ नहीं है।।२५।। इस कारण मुनिजन सम्पूर्ण यत्नों से काशी का सेवन करते हैं, तथा अव्यक्त लिंगरूपी सदाशिवजी का ध्यान करते हैं।।२६।। हे प्रिये! मनुष्य जिस-जिस फल के निमित्त यहां पर तप करते हैं, मैं उन्हें निश्चय ही सम्यक प्रकार उस-उस फल को देता हूं।।२७।। तत्पश्चात् अपने सायुज्य (मुक्ति) को तथा अभिलषित स्थान को देता हूं, यहां पर शरीर छोड़नेवालों को कहीं भी कर्मबन्धन नहीं होता है।।२८।। देवता तथा ऋषियों के सहित ब्रह्माजी, विष्णुजी, सूर्य तथा अन्य समस्त महात्मा भी यहां मेरी उपासना करते हैं।।२९।। विषयों में प्रवृत्त अधर्म रुचिवाला पुरुष भी यदि इस क्षेत्र में मरता है, तो फिर संसार में प्रवेश नहीं करता।।३०।। फिर अभिमान रहित इन धैर्य वाले ईर्ष्या रहित पुण्यात्मा पापकर्म न करनेवाले पुरुषों की तो क्या कथा है? यह सब मुझ में लय होते हैं।।३१।। योगी पुरुष सहस्रों जन्मों में मोक्ष पाते हैं, परन्तु यहां प्राण त्यागने से परम मोक्ष को प्राप्त होते हैं।।३२।। हे पार्वति! यहां काशी क्षेत्र में भक्तों ने अनेक लिंगों को स्थापन किया है और वे शिवलिंग सब कामनाओं को देनेवाले तथा मोक्ष देनेवाले हैं।।३३।। यह क्षेत्र चारों दिशाओं में पांच कोश तक विस्तृत है, इसमें कहीं भी प्राणी मरे, तो यह क्षेत्र उसे अमृत देनेवाला है।।३४।। जो पाप रहित मनुष्य यहां मरता है, वह शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त होता है तथा जो पापी यहां मरे तो, वह कायव्यूह को पाकर।।३५।। उससे यातना को भोगकर शीघ्र ही मोक्ष

को प्राप्त होता है, जो मनुष्य इस अविमुक्ति नामक क्षेत्र में निश्चय करके पाप करता है।।३६।। हे सुन्दरि! वह भैरवी यातना को प्राप्त होकर पाप को भोगकर दश सहस्र वर्ष में फिर मोक्ष को प्राप्त होता है।।३७।। इस प्रकार यहां पाप करने से जिस प्रकार गति होती है, सो तुम से सब कही, यह जानकर मनुष्य यहां अविमुक्त क्षेत्र का सेवन करते हैं।।३८।। कोटि सौ कल्पों में भी किया हुआ कर्म क्षय को प्राप्त नहीं होता, शुभाशुभ कर्म अवश्य ही भोगना पड़ता है।।३९।। केवल अशुभ (बुरा) कर्म नरक भोगने को होता है और शुभ स्वर्गप्राप्ति के निमित्त होता है और शुभ–अशुभ दोनों प्रकार के कर्मों से मनुष्य का जन्म होता है।।४०।। पुण्य–पाप के न्यूनाधिक होने में अच्छे अथवा बुरे स्थान में जन्म होता है, हे पार्वति! दोनों के क्षय होने पर निश्चय ही मुक्ति होती है।।४१।। हे महेश्वरि! कर्मकाण्ड में तीन प्रकार के बन्धनों में डालनेवाले कर्म कहे हैं, वे संचित, क्रियामाण और प्रारब्ध नामवाले हैं।।४२।। पूर्वजन्म में किये हुए कर्मों को संचित कहते है और जो शरीर से फलरूप में भोगे जाते हैं, वह प्रारब्ध कहलाते हैं।।४३।। हे देवेशि! इस जन्म में जो शुभ और अशुभ कर्म इस समय किये जाते हैं, उनको पण्डित क्रियामाण कहते हैं।।४४।। उनमें प्रारब्ध कर्म का विनाश केवल भोग से ही होता है और किसी प्रकार नहीं हो सकता। संचित, क्रियमाण इन दोनों कर्मों का क्षय पूजन आदि उपायों से होता है।।४५।। काशी के बिना सम्पूर्ण कर्मों का नाश नहीं हो सकता, सब तीर्थ सुलभ हैं परन्तु काशीपुरी दुर्लभ है।।४६।। यदि पूर्वजन्म में आदर से काशीजी का दर्शन किया हो, तो काशीजी में आकर मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होता है, अन्य प्रकार से काशी में मरण नहीं हो सकता।।४७।। जो पुरुष काशी में जा कर गंगाजी में स्नान करता है, तो क्रियामाण तथा संचित कर्म का विनाश हो जाता है।।४८।। प्रारब्ध कर्म बिना भोग किये नाश नहीं होता, ऐसा निश्चय है, यदि यहां मृत्यु हो जाय, तो उस कर्म का क्षय हो सकता है।।४९।। यदि पहले काशी का सेवन किया हो, पश्चात् पाप करे, तो उस काशी सेवन के बीज से बलात्कार फिर काशीजी प्राप्त होती है।।५०।। उस समय सम्पूर्ण पाप भस्म हो जाते हैं, इस कारण मनुष्य कर्मबन्धन को काटनेवाली काशीजी को निश्चय ही सेवन करें।।५१।। हे प्रिये! जिसने एक भी ब्राह्मण को काशीजी में वास कराया, वह काशीवास को पाकर मुक्ति को प्राप्त होता है।।५२।। जो मनुष्य काशी में मृत्यु को प्राप्त होता हुआ, उसका जन्म नहीं होता, कामना और फल के उद्देश्य से रहकर प्रयाग में मृत्यु को प्राप्त हुए मनुष्य का पुनर्जन्म नहीं होता।।५३।। और यदि काशी में कामना और फल के उद्देश्य से मृत्यु को प्राप्त हुआ है, तो उसे काशी का फल प्राप्त न होगा और यदि तीर्थराज प्रयाग में कामना और फल के उद्देश्य को छोड़कर साधारण रीति पर मृत्यु को प्राप्त हुआ है, तो उसे तीर्थराज का फल नहीं होता।।५४।। इस कारण मेरी आज्ञा से साक्षात् विष्णु

भगवान् मन के उद्देश्य की हुई नवीन सृष्टि को रचकर निश्चय ही सिद्धि को प्राप्त हुए।।५५।। सूतजी बोले– हे मुनिश्रेष्ठो! इस प्रकार काशीजी का बहुत माहात्म्य है तथा सत्पुरुषों को भुक्ति–मुक्ति देनेवाले विश्वेश्वर महादेवजी का भी बड़ा माहात्म्य है।।५६।। अब मैं इसके आगे त्र्यम्बकदेव का माहात्म्य वर्णन करता हूं, जिसको सुनकर मनुष्य क्षणमात्र में सम्पूर्ण पापों से छूटता है।।५७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां
काशीविश्वेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ।। २३ ।।

*****

चौबीसवाँ अध्याय

सूतजी बोले– हे श्रेष्ठ ऋषियो! मैं पापों का नाश करनेवाली कथा कहता हूं, सो आप सुनें। जैसा कि, मैंने श्रेष्ठ गुरु व्यासजी से सुना है, सो आपसे वर्णन करता हूं।।१।। पहले गौतम नाम से प्रसिद्ध श्रेष्ठ ऋषि रहते थे, उनकी अहल्या नामवाली स्त्री बड़ी धार्मिक थी।।२।। दक्षिण दिशा की ओर जो ब्रह्म नामक पर्वत है, वहां उन ऋषि ने दक्ष सहस्र वर्ष तप किया।।३।। हे शोभन व्रतवाले ऋषियो! एक समय वहां सौ वर्ष तक भयानक अनावृष्टि हुई, उससे सब लोग दुःख को प्राप्त हुये।।४।। पृथ्वी पर गीलापन तथा पत्ता भी नहीं दीखता था और जीवों के प्राणों का आश्चर्यरूप जल भी कहीं दिखाई नहीं देता था।।५।। उस समय वहां के निवासी मुनि, मनुष्य, पशु, पक्षी और मृग आदि सब चारों ओर को चले गये।।६।। ऐसी भयंकर अनावृष्टि को देखकर ऋषि तथा ब्राह्मण प्राणायाम में तत्पर हुए, कोई–कोई ध्यान से कठिन समय को बिताने लगे।।७।। गौतमजी ने भी वहां प्राणायाम में तत्पर होकर वरुण देवता के प्रसन्न होने के निमित्त छः मासपर्यन्त शुभ तप किया।।८।। तब प्रसन्न हुए वरूणजी उनको वर देने आये, ''मैं प्रसन्न हूं, वर मांगो, वरदान दूंगा'' ऐसा वचन बोले।।९।। हे द्विजो! उस समय गौतमजी ने वर्षा होने की प्रार्थना की, तब वरुणजी उन मुनियों से बोले।।१०।। वरुणजी बोले– मैं देव की आज्ञा को लांघकर वर्षा किस प्रकार करूं? आप चतुर हैं, कुछ अन्य प्रार्थना करें, उसे मैं पूर्ण करूंगा।।११।। सूतजी बोले– इस प्रकार उन महात्मा वरुणजी का वचन सुनकर परोपकारी गौतम मुनि यह वचन बोले।।१२।। गौतमजी बोले– हे देवताओं के स्वामी! यदि आप मुझसे प्रसन्न हों और वर देना चाहते हो, तो मैं प्रार्थना करता हूं, उसे वैसा ही पूर्ण करें।।१३।। हे सब देवताओं के स्वामी! कारण कि, आप जलराशि के स्वामी हैं, इससे मुझे जल देवें, कारण कि जलदान करना नित्य अक्षय तथा दिव्य फल देनेवाला है।।१४।। सूतजी

बोले– इस प्रकार उन गौतमजी द्वारा प्रार्थना किये हुये वरुणजी ने उनसे यह वचन कहा कि, आप एक गढ़ा खोदो ।।१५।। ऐसा कहने पर गौतमजी ने हाथभर गहरा गढ़ा किया, तब उन दिव्य वरुणजी ने उसमें जल भर दिया ।।१६।। तव जल के स्वामी वरुण देवता ने परोपकार करनेवाले मुनिश्रेष्ठ गौतम मुनि से यह कहा ।।१७।। वरुणजी बोले– हे महामुने! आपका यह गर्त अक्षय जलवाला तीर्थ होगा तथा पृथ्वी पर यह तीर्थ तुम्हारे नाम से विख्यात होगा ।।१८।। यहां पर किया हुआ दान, हवन तथा तप, देवताओं का पूजन तथा पितरों का किया हुआ श्राद्ध, सब ही फल देनेवाला होगा ।।१९।। सूतजी बोले– इस प्रकार उन महर्षि से स्तुति किये हुये वरुणजी ऐसा वर देकर अन्तर्धान हो गये। गौतम मुनि ने भी औरों का उपकार करके सुख पाया ।।२०।। बड़े पुरुषों का आश्रय मनुष्यों को गौरव प्राप्ति का हेतु होता है, इस कारण महात्मा लोग बड़ों के स्वरूप को देखते हैं और नीच पुरुष सज्जनों की संगति नहीं करते ।।२१।। यह प्राणी जैसे मनुष्य को सेवन करता है, वैसे ही फल को पाता है, बड़ों की सेवा से बड़ापन तथा नीचों की सेवा से नीचता प्राप्त होती है ।।२२।। सिंह के मन्दिर की सेवा करनी मोतियों को देनेवाली होती है, गीदड़ के स्थान की सेवा करनी अस्थियों का लाभ करनेवाली कही है ।।२३।। उत्तम पुरुषों का यह स्वभाव होता है, कि वे दूसरों के दुःख को नहीं सह सकते, अपने आप दुःख पाना अच्छा मानते हैं और दूसरों का दुःख दूर करते हैं ।।२४।। वृक्ष, बाजार, चन्दन, गन्ना तथा यह सब पृथ्वी पर दूसरों के निमित्त ही बने हैं और कोई नहीं ।।२५।। दया करनेवाले, अभिमान न करनेवाले तथा उपकारी, जितेन्द्रिय इन चारों पुण्य के स्तम्भों से भूमि धारण हो रही है ।।२६।। उस समय गौतमजी ने वहां बड़ी कठिनता से जल पाकर विधिपूर्वक नित्य–नैमित्तिक शौचस्नानादि कर्म किया ।।२७।। तत्पश्चात् मुनीश्वर ने वहां व्रीहि (जौ) मुनि अन्न आदि अनेक प्रकार के धान्यों को हवन करने के निमित्त बुलाया ।।२८।। तब वहां पर अनेक प्रकार का अन्न तथा नाना प्रकार के वृक्ष, भिन्न–भिन्न प्रकार के पुष्प, फल इत्यादि अनेक वस्तुएं हो गईं ।।२९।। यह सुनकर वहां और भी सहस्रों ऋषि आये तथा अनेक पशु, पक्षी और अन्य जीव भी प्राप्त हुये ।।३०।। भूमण्डल में वह वन अति सुन्दर हुआ, क्षय न होनेवाले जल के संयोग से उत्पन्न हुई धान्य–फलादि सम्पत्ति से वहां के निवासियों को अनावृष्टि दुःख देनेवाली नहीं हुई ।।३१।। उस वन में श्रेष्ठ कर्मों में तत्पर हुए अनेकों ऋषि अपने शिष्य तथा भाई, पुत्रों सहित वहां निवास करने लगे ।।३२।। अपने समय काटने के निमित्त अन्न को बोने लगे, गौतमजी के प्रभाव से उस वन में बड़ा आनन्द होने लगा ।।३३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां
त्र्यम्बकेश्वरमाहात्म्ये गौतमप्रभाववर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।। २४ ।।

पचीसवाँ अध्याय

सूतजी बोले– हे ब्राह्मणो! किसी समय गौतम मुनि ने अपने शिष्यों को जल लाने के निमित्त भेजा, तब वे कमण्डलु (पात्र) हाथ में लिये भक्ति से गर्त पर गये।।१।। उस समय वहां जल लेने के निमित्त आईं हुईं अनेक ऋषियों की स्त्रियों ने जल के समीप गये हुये उन शिष्यों को देखकर जल लेने का निषेध किया।।२।। पहले हम ऋषिपत्नी जल भर लें, पीछे तुम दूर से जल लेना, इस प्रकार उन्हें ललकारने लगीं।।३।। तब उन शिष्यों ने वहां से लौटकर सब वृत्तान्त ऋषि की स्त्री से निवेदन किया, फिर गौतम की स्त्री उन सबों को धैर्य देकर स्वयं उनके साथ जल लेने गई।।४।। उस तपस्विनी ने जल लेकर उन गौतम मुनि को दिया, इसी प्रकार वह श्रेष्ठ ऋषि नित्य उस जल से निर्वाह करने लगे।।५।। उन पूर्वोक्त ऋषि पत्नियों ने क्रोध करके उस गौतम की स्त्री को ललकारा और वे सब दुष्ट स्त्रियां लौटकर अपनी–अपनी पर्णशाला में गईं।।६।। तब उन कुटिल चित्तवाली स्त्रियों ने वह सब वृत्तान्त अपने–अपने स्वामियों के आगे विरुद्ध (उलटा) निवेदन किया।।७।। तब भावी कर्म के वश में होकर वे सब ऋषि अपनी–अपनी स्त्रियों के वचन सुनकर गौतम के ऊपर क्रोधित हुए।।८।।
और क्रोधित हुए उन कुबुद्धिवाले ऋषियों ने गौतमजी के विघ्न के निमित्त अनेक पूजा के उपचारों सहित गणेशजी का पूजन किया।।९।। तब प्रसन्न होकर गणेशजी प्रकट हुए और भक्तों के अधीन होकर फल देनेवाले गणेशजी यह वचन बोले।।१०।।
गणेशजी बोले– "मैं तुमसे प्रसन्न हूं, तुम वर मांगो, तुम्हारा क्या कार्य सिद्ध करूंगा?" उनका ऐसा वचन सुनकर वे ऋषि बोले।।११।। ऋषि बोले– यदि आप वर देना चाहते हों, तो ऋषियों से धिक्कार दिलाकर गौतम को इस स्थान से बाहर निकालें, इसी वर को आप पूर्ण करें।।१२।। सूतजी बोले– इस प्रकार उन ऋषियों से प्रार्थना किये हुए वह गणेशजी हँसकर बोले, और सत्पुरुषों के गति देनेवाले गजानन प्रीति से उनको समझाने लगे।।१३।। गणेशजी बोले– हे समस्त ऋषियो! सुनो, इस समय तुम उचित नहीं करते हो, अपराध के बिना उनसे क्रोध करने में हानि है।।१४।। जिन्होंने पहले (अनावृष्टि काल में) बड़ा उपकार किया है, उनको दुःख देना हितकारी नहीं है, यदि उनको दुःख दिया जायगा, तो यहां तुम्हारा नाश होगा।।१५।। श्रेष्ठ पुरुष इस प्रकार का श्रेष्ठ तप करके उत्तम फल प्राप्त करते हैं, उससे विपरित तुम स्वयं शुभ फल त्यागकर अपना अहित साधते हो।।१६।। सूतजी बोले– ऐसा गणेशजी का वचन सुनकर वे मुनिश्रेष्ठ उस समय बुद्धि के अज्ञान में प्राप्त हुए, फिर भी इस प्रकार बोले।।१७।। ऋषि

बोले– हे स्वामिन्! आप इसी वचन को पूर्ण कीजिये, हम और कुछ नहीं चाहते। यह सुनकर गणेश देवता यह वचन बोले ।।१८।। गणेशजी बोले– दुर्जन पुरुष सज्जनता को तथा सज्जन पुरुष दुष्टता को कदापि नहीं प्राप्त होते, ऐसा ब्रह्माजी ने कहा है, सो निश्चय जानो ।।१९।। प्रथम जिस समय तुम सबों को बिना भोजन से दुःख हुआ, उस समय महर्षि गौतमजी ने तुम्हें सुख दिया ।।२०।। इस समय आप सब उनको दुःख देते हो, संसार में यह सब प्रकार योग्य नहीं है, विचार कर देखो ।।२१।। तुम सब स्त्री के बल से मोहित हो, इस कारण मेरा वचन नहीं मानते, उन गौतम का यह भी हित ही होगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं ।।२२।। फिर भी वह मुनिश्रेष्ठ आपको निश्चय ही सुख देंगे, अतः उनको दुःख देना उचित नहीं है, अन्य वरदान मांगो ।।२३।। सूतजी बोले– यद्यपि महात्मा गणेशजी ने उन ऋषियों से यह वचन कहा, तो भी उन्होंने न माना ।।२४।। उस समय भक्ति की अधीनता से वशीभूत हुए शिवजी के पुत्र गणेशजी उन दुष्टत्मा ऋषियों से उदासीन मन से बोले ।।२५।। गणेशजी बोले– आप जो प्रार्थना करते हों, मैं निश्चय ही उसी प्रकार करूँगा, पीछे से जो होनहार है, सो होगा, यह कहकर फिर अन्तर्धान हो गये ।।२६।। वह गौतमजी उन मुनियों के कपटभेद को नहीं जानते थे, आनन्द से अपनी स्त्री के साथ नित्यकर्म करते थे ।।२७।। हे मुनीश्वरो! इसके पश्चात् उन दुष्ट ऋषियों के प्रभाव से वरदान के कारण जो चरित्र हुआ, सो सुनिये ।।२८।। गौतम के केदारतीर्थ के किनारे जो व्रीहि (जौ) जमे थे, वहां पर गणेशजी दुर्बल गाय बन के गये ।।२९।। हे मुनिसत्तम! उस वर के योग से कांपती हुई वह गाय वहां जाकर जौ तथा व्रीहि (धानों को) भक्षण करने लगी ।।३०।। दैववश इसी अवसर में वहां गौतमजी आ गये और उन दयालु मुनि ने उस गाय को तृण के स्तम्ब से निवारण किया ।।३१।। उस तृण के स्तम्ब से स्पर्श की हुई वह गाय पृथ्वी पर गिर गई और उस ऋषि के देखते ही देखते उसी समय मर गई ।।३२।। तब कपट से गुप्त रूपवाले वे ऋषि तथा उनकी दुष्ट ऋषिपत्नियां सब परस्पर मिलकर कहने लगीं, कि गौतमजी ने यह क्या किया ?।।३३।। हे ब्राह्मणो! गौतमजी भी अहल्या को बुला कर विस्मित होकर दुःखी चित्त से यह बोले ।।३४।। गौतमजी बोले– हे देवि! क्या हुआ ? क्यों शिवजी कुपित हो गये ? अब क्या करना चाहिये ? कहां जाय ? यह गौ की हत्या लगी ।।३५।। सूतजी बोले– इसी अवसर में उन ऋषियों ने गौतमजी को ललकारा तथा उनकी स्त्रियों ने अहल्या को खोटे वचनों से दुःख दिया ।।३६।। उनके दुष्टात्मा शिष्य तथा ऋषियों के पुत्रों ने गौतमजी को ललकार के तथा बारंबार धिक्कार के यह वचन कहे ।।३७।। ऋषि बोले– तुम्हारा मुख देखना योग्य नहीं है, यहां से चले जाओ, गोहत्या करनेवाले मनुष्य का मुख देखने पर तत्क्षण सचैल स्नान करना चाहिये ।।३८।। जब तक तुम आश्रम में रहोगे, तब तक देवता तथा पितर हमने दिये हुये बलि, तर्पण आदि

कुछ भी ग्रहण नहीं करेंगे ।।३९।। हे गोहत्यारूप पाप करनेवाले गौतम! इस कारण तुम परिवार सहित यहां से दूसरी जगह चले जाओ, देर मत करो ।।४०।। सूतजी बोले- यह कहकर उन सबों ने उनको पाषाणों से ताड़न किया तथा गौतमजी और अहल्या को कठोर वचनों से दुःख दिया ।।४१।। तब उन दुष्टों द्वारा ताड़न किये हुए गौतम मुनि बोले, कि हे मुनियो! मैं यहां से जाता हूं, अन्य जगह निवास करूंगा ।।४२।। उस समय यह कहकर गौतमजी उस स्थान से निकल गये और उनके कहने से जाकर एक कोस दूर पर आश्रम बनाया और वहां रहने लगे ।।४३।। जब तक हमें शाप रहेगा, तब तक कुछ नहीं करना योग्य है, दैविक तथा पितर सम्बन्धी वैदिक कर्म में कुछ अधिकार नहीं है ।।४४।। अर्द्ध मास वहां काटकर फिर उस दुःख से व्याकुल हुए मुनिश्रेष्ठ गौतमजी ने उन मुनियों से प्रार्थना की ।।४५।। गौतमजी बोले- आप मेरे ऊपर कृपा करें और आप ऐसा उपाय बतायें कि, जिस प्रकार मेरा पाप दूर हो, उसे मैं पूर्ण करूं ।।४६।। सूतजी बोले- ऐसा कहने पर वे ब्राह्मण आपस में मिल कर कुछ न बोले, फिर उन्होंने इकट्ठे होकर मिले हुए उन ऋषियों से अत्यन्त सेवा से पूछा ।।४७।। गौतमजी ने दूर स्थित होकर उन ऋषियों को नमस्कार करके विनय के साथ उनसे पूंछा, कि अब मुझे क्या करना योग्य है ।।४८।। उन महात्मा गौतम मुनि के ऐसा कहने पर वे सब मुनि मिलकर यह वचन बोले ।।४९।। ऋषि बोले- प्रायश्चित्त के बिना कदापि शुद्धि नहीं होती, इस कारण तुम देह शुद्धि के निमित्त अवश्य प्रायश्चित्त करो ।।५०।। अपने पाप को प्रकाश करके तीन बार सम्पूर्ण पृथ्वी की परिक्रमा करके फिर यहां आकर महीने भर तक व्रत करो ।।५१।। और इस ब्रह्मा के पर्वत की एक सौ एक बार परिक्रमा करके तुम्हारी शुद्धि होगी ।।५२।। अथवा गंगाजी को तप से लाकर गंगास्नान करो और कोटि संख्या के पार्थिवलिंगों को बनाकर शिवदेव का पूजन करो ।।५३।। पहले एक सौ एक बार उक्त पर्वत की परिक्रमा करो, फिर गंगा में स्नान करके शुद्धि होगी ।।५४।। तथा सौ घडों से पार्थिवलिंग को स्नान कराके तब निष्कृति (शुद्धि) होगी, इस प्रकार उन ऋषियों के कहने पर 'बहुत अच्छा' यह गौतमजी ने कहा ।।५५।। हे मुनीश्रेष्ठो! मैं आपकी आज्ञा से पार्थिव पूजा तथा पर्वत की परिक्रमा करूँगा ।।५६।। यह कहकर उन श्रेष्ठ गौतम ऋषि ने पर्वत की परिक्रमा करके पार्थिवलिंगों का निर्माण करके पूजन किया ।।५७।। फिर उस पतिव्रता अहल्या ने वह सब पूजनादि किया, उस समय उनके शिष्य तथा शिष्यों के शिष्य, उन दोनों की सेवा करने लगे ।।५८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां
गौतमव्यवस्थावर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ।। २५ ।।

*****

छब्बीसवाँ अध्याय

सूतजी बोले- हे द्विजो! उस समय स्त्री के सहित गौतमजी के ऐसा करने पर प्रसन्न हुए शिवजी अपने गणोंसहित प्रकट हो गये ।।१।। तब प्रसन्न हुए शिवजी ने कहा- "हे मुने! वर मांग, मैं तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हूं" इस प्रकार दया के सागर महादेवजी बोले ।।२।। तब वह मुनि महात्मा शम्भुजी के उस सुन्दर स्वरूप को देखकर उन्हें भक्ति से प्रणाम करके प्रसन्न होकर स्तुति करने लगे ।।३।। स्तुति करके तथा शिवजी को प्रणाम करके हाथ जोड़कर स्थित हुये गौतमजी बोले- "हे देव! मुझे पापरहित करें" इस प्रकार उन ऋषिजी ने कहा ।।४।। सूतजी बोले- इस प्रकार महात्मा गौतम ऋषि का वचन सुनकर बड़ी प्रसन्नता से आतुर हुए शिवजी यह वचन बोले ।।५।। शिवजी बोले- हे मुने! तुम धन्य हो, कृतकृत्य हो तथा सब प्रकार पापरहित हो, इन दुष्टात्मा पापी ऋषियों ने तुम्हारे साथ कपट किया है ।।६।। तुम्हारे दर्शन से लोग निष्पाप होते हैं, फिर सदा मेरी भक्ति में तत्पर हुए तुम पापी कैसे हो सकते हो ?।।७।। हे मुने! जिन दुष्टात्माओं ने तुम्हारे साथ उपद्रव किया है, वे ही पापी हैं तथा दुराचारी हैं, वे ही हत्यावाले हैं ।।८।। उन्हें देखने से दूसरे लोग पापी तथा कृतघ्न हुए हैं, उनका कहीं प्रायश्चित्त नहीं है ।।९।। सूतजी बोले- हे विप्रो! उस समय सत्पुरुषों को तारनेवाले, दुर्जनों को दण्ड देनेवाले प्रभु शिवजी ने उन गौतमजी से उन कपट मुनियों के बहुत दुश्चरित्र कहे ।।१०।। वह गौतम मुनि शिवजी के वचन सुनकर विस्मित होकर, हाथ जोड़कर भक्ति से शिवजी को प्रणाम करके फिर बोले ।।११।। गौतमजी बोले- हे महेश्वर! उन ऋषियों ने मुझ पर बहुत उपकार किये हैं, यदि वे ऐसा न करते, तो आपका दर्शन कैसे होता ?।।१२।। वे ऋषि जिन्होंने मेरा अतिकल्याण किया, उन्हींके दुःस्वभाव (कर्म) से मेरा बड़ा स्वार्थ हुआ ।।१३।। सूतजी बोले- ऐसा उनका वचन सुनकर शिवजी अति प्रसन्न होकर शीघ्र ही गौतमजी को कृपादृष्टि से देखकर यह बोले ।।१४।। शिवजी बोले- हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ऋषे! तुम धन्य हो तथा ऋषियों में श्रेष्ठ हो, मुझे प्रसन्न जानकर उत्तम वर मांगो ।।१५।। सूतजी बोले- गौतम मुनि ने अपने चित्त में यह विचारा कि, संसार में ऐसा मेरा पाप प्रसिद्ध हो गया है, वह दूर नहीं हो सकता है, इस कारण जो मैंने सबों के सामने कहा है, उसे पूर्ण करना चाहिये ।।१६।। शिवजी की भक्ति करनेवाले मुनिश्रेष्ठ गौतमजी ऐसा मन में निश्चय करके हाथ जोड़कर, माथे को झुकाकर शिवजी से यह वचन बोले ।।१७।। गौतमजी बोले- हे स्वामी! आप सत्य कहते हैं, तो भी जो पञ्चों ने कह दिया वैसा ही होता है, अन्यथा नहीं होता, अब जो कुछ हो गया है, सो जाने दें।।१८।। हे देव! यदि आप प्रसन्न हों, तो मुझे गंगाजी दीजिये और संसार

का उपकार करें, आपको नमस्कार है, नमस्कार है ।।१९।। सूतजी बोले– ऐसा वचन कहकर उनके चरणकमलों को पकड़कर गौतमजी ने संसार के उपकार की इच्छा से देवों के स्वामी शिवजी को प्रणाम किया ।।२०।। तब उन शंकरदेव ने जो पृथ्वी तथा स्वर्गलोक के सार को निकचलकर पहले रखा था ।।२१।। तथा विवाह में जो ब्रह्माजी ने दिया था, वह जो कुछ शेष गंगाजल बचा था, सो सब भक्तवत्सल शिवजी ने उस मुनि को प्रदान किया ।।२२।। उस समय वहां गंगाजल परम सुन्दर स्त्री के स्वरूप में प्रकट हुआ, तो श्रेष्ठऋषि गौतमजी ने उनकी स्तुति करके प्रणाम किया ।।२३।। गौतमजी बोले– हे गंगे! तुम धन्य हो, कृतकृत्य हो, तुमने सब लोकों को पवित्र किया है, नरक में गिरे हुये मुझे भी निश्चय पवित्र करो ।।२४।। सूतजी बोले– उस समय सबों के हितकारी शिवजी बोले– हे गंगे! सुनो, तुम मेरी आज्ञा से इन गौतम मुनिजी को पवित्र करो ।।२५।। सूतजी बोले– ऐसा उन गौतमजी तथा शिवजी का वचन सुनकर पवित्र करनेवाली शिवभक्ति सहित गंगाजी शिवजी से यह वचन बोलीं ।।२६।। गंगाजी बोली– हे स्वामिन्! मैं परिवार (कुटुम्ब) सहित गौतम मुनिजी को पवित्र करके अपने स्थान को चली जाऊँगी, यह सत्य–सत्य वचन कहती हूं ।।२७।। सूतजी बोले– ऐसा गंगाजी का वचन सुनकर भक्तवत्सल शिवजी लोकों के उपकार के निमित्त फिर गंगाजी से बोले ।।२८।। शिवजी बोले– हे देवि! जब तक कलियुग रहे और अट्ठाइसवां वैवस्वत नामक मनु हो, तब तक तुम यहां निवास करो ।।२९।। सूतजी बोले– स्वामी शंकरजी का ऐसा वचन सुनकर लोकों को पवित्र करनेवाली नदियों में श्रेष्ठ गंगाजी फिर बोली ।।३०।। गंगाजी बोली– हे स्वामिन्! हे महेश्वर! यदि मेरा माहात्म्य सबों से अधिक होगा, हे त्रिपुरान्तक! तो मैं पृथ्वी पर निवास करूँगी ।।३१।। हे प्रभो! हे स्वामिन्! और भी सुनिये, मेरे समीप अपने गणों के सहित तथा पार्वती के सहित आप सुन्दर शरीर से स्थित रहें ।।३२।। सूतजी बोले– ऐसा उनका वचन सुनकर भक्तवत्सल शिवजी संसार के उपकार करने के निमित्त फिर गंगाजी से बोले ।।३३।। शिवजी बोले– हे गंगे! तुम धन्य हो, मैं तुमसे भिन्न नहीं हूं तथापि मैं यहां तुम्हारे साथ स्थित रहूँगा ।।३४।। सूतजी बोले– स्वामी शिवजी का ऐसा वचन सुनकर प्रसन्न मनवाली गंगाजी ने उनकी पूजा की ।।३५।। इसी अन्तर में देवता, पूर्वज, ऋषि, पुराने तीर्थ, अनेक क्षेत्र आदि सब रूप धारण करके वहां आये ।।३६।। वहां आकर सबों ने गौतमजी, गंगाजी तथा शिवजी की 'जय हो, जय हो' इस प्रकार कह–कहकर उन सबों की आदर से पूजा की ।।३७।। तब उन सब देवताओं ने प्रसन्नता से उन तीनों की स्तुति की, तब ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता हाथ जोड़कर अपने कन्धे झुकाकर पूजने लगे ।।३८।। उस समय उन देवताओं से प्रसन्न हुई गंगाजी तथा शिवजी यह बोले– हे देवों में श्रेष्ठो! तुम वर मांगो, प्रिय कामना से हम सब कुछ देंगे ।।३९।। देवता बोले– हे देवों के स्वामी!

हे शिवजी! हे गंगे! यदि आप दोनों प्रसन्न हों, तो हमारे कल्याण के निमित्त तथा मनुष्यों के उपकार के निमित्त कृपा करके यहां निवास करें।।४०।। गंगाजी बोली- तुम सब संसार के उपकार के निमित्त यहां क्यों नहीं निवास करते ? मैं गौतम मुनि को पवित्र करके अपने स्थान को चली जाऊंगी।।४१।। हे देवताओ! जिस प्रकार आप सबों में मेरा विशेष मान होवे, सब अधिक जानें, उस प्रकार यदि प्रमाण करो तो, मैं निःसन्देह यहां निवास करूँगी।।४२।। सब देवता बोले- जब-जब सबों की सहायता करनेवाले बृहस्पतिजी सिंह राशि में स्थित होंगे, तब तक (सिंह की बृहस्पति में) हम सब यहां आयेंगे, इसमें कुछ संशय नहीं।।४३।। हे गंगाजी! जब ग्यारह वर्ष तक सम्पूर्ण संसार का पाप धुलने से हम मलिन होंगे।।४४।। हे प्रिय गङ्गे! हे महादेवि! उस पाप का सब प्रकार विनाश करने के निमित्त आदर से तुम्हारे पास सब आयेंगे, यह सत्य जानो।।४५।। हे गंगाजी! संसार के ऊपर दया करने के कारण तथा हमारी भलाई करने के निमित्त तुम्हें तथा शिवजी को यहां निवास करना उचित है।।४६।। जब तक बृहस्पति सिंह राशि पर रहेंगे, तब तक हम यहां निवास करेंगे, तीनों काल तुझमें स्नान करेंगे और शिवजी का दर्शन करेंगे।।४७।। हम सब स्नानादि करके निःसन्देह अपने सम्पूर्ण पापों को छुड़ावेंगे, फिर तुम्हारी आज्ञा से अपने-अपने स्थानों को चले जायेंगे।।४८।। सूतजी बोले- इस प्रकार उन देवताओं तथा महर्षि गौतमजी द्वारा प्रार्थना करने पर शिवजी तथा गंगाजी वहां स्थित हुये।।४९।। वह गंगाजी गौतमी नाम से प्रसिद्ध हो गईं और वह लिंग त्र्यम्बक नाम से विख्यात हुआ, उसका सेवन करने से महापाप नाश हो जाते हैं।।५०।। उस दिन से लेकर सिंह की बृहस्पति में समस्त देवता तथा तीर्थ वहां आते हैं।।५१।। उस गौतमी के तट पर पुष्कर आदि सरोवर तथा गंगा आदि नदियां, वासुदेव आदि अनेक देवता निवास करते हैं।।५२।। जब तक पूर्वोक्त देवता आदि गौतमी गंगाजी के समीप स्थित रहते हैं, तब तक उनको फल नहीं मिलता, जब अपने-अपने स्थल में आते हैं, तो फल मिलता है।।५३।। यह त्र्यम्बक नामक ज्योतिर्लिंग विख्यात है, गौतमी गंगाजी के किनारे पर स्थित है और सम्पूर्ण पापों का नाश करनेवाला है।।५४।। जो मनुष्य त्र्यम्बक नामवाले ज्योतिर्लिंग का भक्ति से दर्शन करता है, स्तुति करके प्रणाम करता है, उनकी पूजा करता है, वह सम्पूर्ण पापों से छूट जाता है।।५५।। गौतम मुनि ने इन ज्योतिर्लिंग की पूजा की है, यह इस लोक में सब कामनाओं को सिद्ध करनेवाले हैं, परलोक में मुक्ति के देनेवाले हैं।।५६।। हे मुनीश्वरो! जो आपने पूछा, सो सब मैंने आपसे कह सुनाया, अब क्या और कुछ सुनना चाहते हो ? उसे हम कहेंगे, इसमें कुछ सन्देह नहीं है।।५७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां
त्र्यम्बकेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः।। २६ ।।

सत्ताईसवाँ अध्याय

ऋषि बोले– हे स्वामिन्! गंगाजी कहां से जलरूप होकर निकलीं ? हे प्रभो! उनका माहात्म्य कहां से विशेष हुआ ? सो सब आप कहें ।।१।। हे व्यास गुरुवाले सूतजी! जिन दुष्टात्माओं ने गौतम मुनि को दुःख दिया, उनको क्या फल मिला ? सो सब कहिये ।।२।। सूतजी बोले– हे ब्राह्मणो! उस समय गौतमजी द्वारा इस प्रकार प्रार्थना की हुई गंगाजी स्वयं उस ब्रह्मगिरि से शीघ्र ही निकलीं ।।३।। गूलर की शाखा से उनका प्रवाह निकला, वहां प्रसिद्ध हुए गौतम मुनि ने आनन्द से स्नान किया ।।४।। गौतम ऋषि के शिष्यों ने तथा मुनियों ने वहां आकर प्रसन्नता से स्नान किया ।।५।। हे मुनीश्रेष्ठो! उस समय उसका गंगाद्वार नाम प्रसिद्ध हुआ, वह रमणीय क्षेत्र दर्शन करने से सम्पूर्ण पापों को हरण करता है ।।६।। गौतमजी के साथ द्वेष करनेवाले वे ऋषि भी स्नान करने वहां आये, उन्हें देखकर गंगाजी शीघ्र ही अन्तर्धान हो गईं ।।७।। तब वहां गौतमजी ने हाथ जोड़कर माथा नम्र करके बारंबार गंगाजी की स्तुति करके "ऐसा मत करो, मत करो" इस प्रकार शीघ्रता से कहा ।।८।। गौतमजी बोले– यह मुनि अभिमान और मद में अन्धे हुए साधु हैं अथवा असाधु हैं, परन्तु इस (मेरे) पुण्य के प्रभाव से तुम इनको दर्शन दो ।।९।। सूतजी बोले– हे ऋषिश्रेष्ठो! उस समय आकाश मण्डल से गंगाजी की यह वाणी हुई, सो गंगाजी का वह उत्तम वचन श्रवण करें ।।१०।। यह ऋषि अति दुष्ट हैं, कृतघ्नी हैं, स्वामी से द्रोह करनेवाले धूर्त हैं, पाखण्डी हैं, यह सदा दर्शन के भी अयोग्य हैं ।।११।। गौतमजी बोले– हे माता! सुनो, यह तो बड़ों की वाणी है, इस कारण तुम्हें भगवान् शिवजी का सत्य वचन पालन करता उचित है ।।१२।। जो मनुष्य अपकार करनेवालों पर उपकार करता हैं, मैं उससे पवित्र होता हूं, ऐसा भगवान् का वचन है ।।१३।। सूतजी बोले– महात्मा गौतमजी का ऐसा वचन सुनकर फिर भी आकाश मण्डल से गंगाजी की वाणी निकली ।।१४।। हे गौतम मुने! तुम सत्य ही कल्याणकारी वचन कहते हो, तो भी ये अपने पापों को दूर करने के निमित्त प्रायश्चित्त करें ।।१५।। तुम्हारी आज्ञा से तथा विशेष कर तुम्हारे अधीन होकर इन सबों को एक सौ एक बार पर्वत की परिक्रमा करनी चाहिये ।।१६।। हे मुने! तब इन दुष्टात्माओं को मेरे दर्शन करने का विशेष अधिकार होगा, यह मैंने सत्य-सत्य कहा ।।१७।। सूतजी बोले– ऐसा गंगाजी का वचन सुनकर उन सब मुनियों ने दीन होकर गौतमजी की प्रार्थना की और कहा कि, हमारा अपराध क्षमा करें ।।१८।। उनकी आज्ञा से उन्होंने उसी प्रकार किया, तब गौतम मुनिजी ने गंगाद्वार से नीचे के स्थान का कुशावर्त्त नाम प्रसिद्ध किया ।।१९।। फिर उन गौतमजी

की प्रसन्नता के कारण वह गंगाजी वहां से प्रकट हुईं, तब वह श्रेष्ठ तीर्थ कुशावर्त्त नाम से विख्यात हुआ।।२०।। जो मनुष्य वहां स्नान करता है, वह समस्त पापों को दूर करके दुर्लभ विज्ञान को प्राप्त होकर मोक्ष का अधिकारी होता है।।२१।। जो पहले कृतघ्नी थे, वे ऋषि जब गौतमजी से आपस में मिले, तब बड़े लज्जित हुए।।२२।। ऋषि बोले– हे सूतजी! हमने और प्रकार सुना है, सो वर्णन करते हैं, कि क्रोधित हुए गौतमजी ने उन ऋषियों को शाप दिया था, ऐसा जानो।।२३।। सूतजी बोले– हे ब्राह्मणो! हे शोभन व्रतवाले! वह भी कल्पभेद के आश्रय से सत्य है, मैं वह कथा भी विशेष करके वर्णन करता हूं।।२४।। गौतमजी ने उन ऋषियों को अकाल से पीड़ित हुये देखकर, महात्मा वरुणजी का परम तप किया।।२५।। तब उन्होंने वरुणजी की दया से अविनाशी जल को प्राप्त किया और वह अधिक जौ तथा धान्यों को बुवाया।।२६।। हे श्रेष्ठ मुनियो! इस प्रकार उन परोपकारी गौतमजी ने अपने तपोबल से उन बोये हुए धान्यों से उन ऋषियों के निमित्त भोजन की कल्पना की।।२७।। किसी समय ऋषियों की स्त्रियां जल लेने के निमित्त गईं, वह वहां से तिरस्कार को प्राप्त हुईं, तब वह दुष्ट स्त्रियां क्रोधित होकर अपने–अपने पतियों से गौतमजी के ईर्ष्याकारी वचन बोलीं।।२८।। तब कुटिल आशयवाले तथा विपरीत बुद्धिवाले ब्राह्मणों ने कृत्रिम गाय को बनाकर उसे गौतमजी के धान्यों में छोड़ दिया।।२९।। तब गौतमजी ने गाय को अपने धान्यों को भक्षण करने में प्रवृत्त देखकर शनैः–शनैः उसे निवारण करते हुए तृण से ताड़न किया।।३०।। हे ब्राह्मणो! वह गौ तृण के स्पर्शमात्र से ही भूमि पर गिर गई और भावी कर्म के वश से उसी समय मर गई।।३१।। तब उन कपट बुद्धि ऋषियों ने वहां के निवासी ऋषियों के साथ इकट्ठे होकर यह प्रसिद्ध किया कि, गौतम ने गौ मार डाली।।३२।। तब गौतमजी भयभीत हुए, शोक है, गौ मर गई! इस प्रकार विस्मय करने लगे और उन शैव गौतमजी ने अपनी स्त्री अहल्या तथा शिष्यों के सहित अति आश्चर्य किया।।३३।। फिर गौतमजी ने उस कपट की गाय को जान कर क्रोध किया और उन मुनिश्रेष्ठ ने उन सब ऋषियों को शाप दिया।।३४।। गौतमजी बोले– तुम सब वेद से विमुख हो, दुष्ट आत्मावाले हो, जो निरन्तर मुझ शिवजी के भक्त को विशेष कर दुःख दिया।।३५।। आज से लेकर तुम्हारी वैदिक कर्म में तथा विशेष कर मुक्ति के देनेवाले शैवमार्ग में श्रद्धा–भक्ति न होगी।।३६।। आज से लेकर तुम्हारी खोटे मार्ग में श्रद्धा होगी और मोक्षमार्ग से रहित वेदोक्त धर्म से विमुख पथ में रुचि होगी।।३७।। अब से आगे तुम सबों के मस्तक मृत्तिका से लिप्त होंगे, हे ब्राह्मणो! तुम माथे पर मृत्तिका के लेपन करने से नरक में पड़ोगे।।३८।। और तुम सब एक शिवदेवता के उपासक न होगे, उन अद्वितीय शिवजी को औरों के समान मानोगे।।३९।। तुम्हारी शिवजी की पूजा आदि कर्म में प्रीति न होगी तथा शिवजी की निष्ठा वाले भक्तों में शिवजी के पर्वों में भक्ति न रहेगी।।४०।। आज

मैंने जितने दुःखदायक शाप दिये हैं, वे सर्वदा तुम्हारी सन्तान को प्राप्त होंगे ।।४१।। हे ब्राह्मणो! तुम्हारे पुत्र–पौत्र आदि सब शिवजी की भक्ति से विमुख होंगे, तुम सब अपने पुत्रों सहित निश्चय ही नरक में रहोगे ।।४२।। तुम सदैव ही चाण्डाल, दुःख दारिद्र से पीड़ित, मूर्ख, निन्दा करनेवाले तथा सम्पूर्ण तप्त मुद्रा से चिह्नित होगे ।।४३।। सूतजी बोले– इस प्रकार सम्पूर्ण मुनियों को शाप देकर गौतम मुनिजी अपने आश्रम को गये और अति पवित्र होकर शिवजी की भक्ति करने लगे ।।४४।। उसके पीछे वे शाप दिये हुए सब ऋषि दुःखी मन से शिवसम्बन्धी धर्म से निराश होकर कांचीपुरी में निवास करने लगे ।।४५।। और उनके सब पुत्र शैवधर्म से हीन होकर इसके आगे कलियुग में उनके पौत्रादि बहुत मनुष्य इसी प्रकार दुष्ट होंगे ।।४६।। हे मुनिसत्तमो! हे बुद्धिमानो! इस प्रकार मैंने उनका सब वृत्तान्त कह सुनाया और सबों ने उनका पहला वृत्तान्त भी आदर से सुना ।।४७।। यह सब गौतमी गंगा की उत्पत्ति तथा सम्पूर्ण पापों को हरण करनेवाला श्रेष्ठ माहात्म्य भी मैंने आपसे वर्णन किया ।।४८।। यह त्र्यम्बक ज्योतिर्लिंग का माहात्म्य कहा, जिसे सुनकर मनुष्य सम्पूर्ण पापों से छूटता है, इनमें कुछ सन्देह नहीं ।।४९।। इसके आगे वैद्यनाथ नामवाले शिवलिंग के पाप नाशक माहात्म्य को सुनिये, मैं वर्णन करता हूं ।।५०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां
त्र्यम्बकेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।। २७ ।।

*****

अट्ठाईसवाँ अध्याय

सूतजी बोले– राक्षसों में श्रेष्ठ, अभिमानी, सम्मान पानेवाले रावण ने कैलासपर्वत पर भक्ति से शिवजी की आराधना की ।।१।। जब कुछ काल तक आराधना करने पर शिवजी प्रसन्न न हुए, तब उसने शिवजी प्रसन्न होने के निमित्त और तप किया ।।२।। जब श्रीमान् पौलस्त्य रावण ने सिद्धि के स्थानवाले हिमालय पर्वत के दक्षिण वृक्ष खण्डों में तप किया ।।३।। हे ब्राह्मणो! वहां उसने भूमि में गढ़ा खोदकर उसमें अग्नि स्थापन करके उसके समीप में शिवजी को पधारके हवन किया ।।४।। ग्रीष्म ऋतु में पंचाग्नि के मध्य में स्थित हुआ, वर्षा में भूमि पर शयन करता हुआ शीत काल में जल के मध्य में स्थित रहा, इस प्रकार उसने तीन प्रकार का तप किया ।।५।। इस प्रकार उस रावण ने बहुत तप किया, तो भी परमात्मा शिवजी प्रसन्न न हुए, कारण कि वे दुष्टों को दुष्प्राप्य हैं ।।६।। तब उस दैत्यों के स्वामी महात्मा रावण ने अपने सिरों को काटकर

बलिदानपूर्वक शिवजी का पूजन करना प्रारम्भ किया ।।७।। उसने विधिपूर्वक शिवजी के पूजन में एक–एक सिर काटा, इसी प्रकार रावण ने क्रमानुसार अपने नौ सिर काटे ।।८।। तब एक सिर के शेष रहने पर शिवजी प्रसन्न हो गये और भक्तवत्सल महादेवजी सन्तुष्ट होकर वहां प्रकट हुए ।।९।। प्रभु सदाशिवजी ने उसके शिरों को पहले के समान पूर्ण करके उसको अतुल बल तथा मनोरथों को प्रदान किया ।।१०।। वह राक्षस रावण उन शिवजी की प्रसन्नता को पाकर हाथ जोड़कर, कन्धे झुकाकर, नम्र होकर कल्याणकारी शिवजी से बोला ।।११।। रावण बोला– हे देवों के स्वामी! आप प्रसन्न हों, मैं आपको लंकापुरी को ले जाऊंगा, ऐसी मेरी इच्छा पूर्ण कीजिये, मैं आपकी शरण में प्राप्त हूं ।।१२।। सूतजी बोले– उस समय रावण के ऐसा कहने पर शिवजी विमन होकर, संकट में प्राप्त होकर बोले ।।१३।। शिवजी बोले– हे राक्षस श्रेष्ठ! तुम सारवाले मेरे वचन को सुनो, श्रेष्ठ भक्ति से मेरे उत्तम ज्योतिर्लिंग को अपने घर ले जाओ ।।१४।। यदि तुम कहीं बीच में मेरे इस लिंग को भूमि पर स्थापन करोगे, तो यह वहीं स्थित रहेगा, इसमें जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो ।।१५।। सूतजी बोले– इस प्रकार उन शिवजी से कहा हुआ वह राक्षसेश्वर रावण उसी प्रकार ज्योतिर्लिंग लेकर अपने घर चला ।।१६।। मार्ग में शिवजी की माया से रावण को लघुशंका की इच्छा हुई और वह पौलस्त्य रावण उस मूत्र के वेग को रोकने को समर्थ न हुआ ।।१७।। उसने वहां एक गोप को देखकर उसे प्रार्थना करके ज्योतिर्लिंग दे दिया और लघुशंका करने लगा, तब एक मुहूर्त बीतने पर वह गोप शिवलिंग के भार से व्याकुल हुआ ।।१८।। और उसने उसके भार से पीड़ित होकर उसे वहां भूमि पर स्थापित किया, तब वज्रसार से उत्पन्न हुआ वह ज्योतिर्लिंग वहां ही स्थित हो गया, यह दर्शन करने से सब पापों को दूर करनेवाला तथा सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करनेवाला है ।।१९।। हे मुने! वह लिंग वैद्यनाथेश्वर नाम से प्रसिद्ध हुआ, तीनों लोकों में विख्यात है, सत्पुरुषों में भुक्ति तथा मुक्ति को देनेवाला है ।।२०।। भुक्ति को बढ़ानेवाला उत्तम और दिव्य श्रेष्ठ इस ज्योतिर्लिंग के दर्शन और पूजन से सब पाप दूर होते हैं ।।२१।। सब लोकों के हित के निमित्त वैद्यनाथेश्वर लिंग के वहां स्थित हो जाने पर अतिश्रेष्ठ वर पाकर रायण ने अपने घर जाकर सुखपूर्वक सब वृत्तान्त अपनी स्त्री से कहा ।।२२।। यह सुनकर इन्द्र आदि समस्त देवता तथा निर्मल बुद्धिवाले शिवभक्ति में स्थित हुए सम्पूर्ण मुनियों ने परस्पर में सम्मति की ।।२३।। हे मुने! उस समय ब्रह्मा, विष्णु आदि समस्त देवता वहां आये और उन्होंने विशेष प्रीति से पूजा की ।।२४।। शिवजी को प्रत्यक्ष हुए देखकर उन देवताओं ने प्रतिष्ठा करके वैद्यनाथ ऐसे कहकर नमस्कार तथा स्तुति करके स्वर्ग को गमन किया ।।२५।। ऋषि बोले– हे सूतजी! वहां उस वैद्यनाथ ज्योतिर्लिंग के स्थित होने पर तथा रावण के घर चले जाने पर क्या चरित्र हुआ? सो सब विस्तारपूर्वक कहिये ।।२६।। सूतजी बोले– रावण ने अपने घर

जाकर श्रेष्ठ वर पाने का वृत्तान्त अपनी स्त्री से कहा और वह अति प्रसन्न हुआ ।।२७।। हे मुनियो! यह सुनकर इन्द्र आदि सर्व देवता तथा मुनि दुःखित होकर परस्पर में कहने लगे ।।२८।। देवता आदि बोले– यह दुष्टात्मा देवताओं का द्वेषी, खल, कुत्सित बुद्धिवाला रावण शिवजी से वरदान पा कर हम को अति दुःख देगा ।।२९।। अब क्या करें, कहां जाये? आगे कौन जाने क्या होगा? यह दुष्ट रावण प्रवीणता को प्राप्त होकर हमारे निमित्त क्या–क्या न साधेगा?।।३०।। इस प्रकार दुःख से आतुर हुये इन्द्रादि देवता तथा मुनियों ने व्याकुल होकर नारदजी को बुलाकर यह पूंछा ।।३१।। देवता बोले– हे मुनिश्रेष्ठ! हे देवर्षे! तुम सब काम करने में समर्थ हो, देवताओं के दुःख करने के निमित्त कोई उपाय करें ।।३२।। यह महादुष्ट रावण आगे क्या–क्या न करेगा? हम सब दुःख से पीड़ित हैं, अब यहां से कहां जायँ?।।३३।। नारदजी बोले– हे देवताओ! दुःख को त्यागो, मैं जाता हूं, शिवजी की कृपा से युक्ति करके देवताओं के कार्य को करूँगा ।।३४।। सूतजी बोले– ऐसा कहकर वह देवर्षि नारदजी रावण के स्थान को गये, वहाँ सम्पूर्ण सत्कार को प्राप्त होकर रावण से प्रीतिपूर्वक बोले ।।३५।। नारदजी बोले– हे राक्षसोत्तम रावण! तुम धन्य हो, शैवों में श्रेष्ठ हो, तपस्वी हो, आज तुमको देखकर मेरा मन बड़ा प्रसन्न हुआ ।।३६।। शिवजी की आराधना सम्बन्धी अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त कहो, इस प्रकार नारदजी के पूछने पर वह रावण यह वचन बोला ।।३७।। रावण बोला– हे महामुने! मैंने तप करने के लिये कैलासपर्वत पर गया और बहुत काल तक अति कठिन तप किया ।।३८।। हे मुने! तब भी शिवजी सन्तुष्ट नहीं हुये, तो वहां से लौटकर मैंने वृक्ष खण्ड में आकर फिर तप किया ।।३९।। ग्रीष्म ऋतु में पंचाग्नि में तपा, वर्षा में भूमि पर सोया, शीतकाल में जल के मध्य में स्थित रहा, इस प्रकार तीन प्रकार का तप किया ।।४०।। हे मुनीश्वर! मैंने इस प्रकार वहां बड़ा कठिन तप किया, तो भी शिवजी मुझसे कुछ प्रसन्न न हुए ।।४१।। तब मैंने क्रोधित होकर भूमि में गढ़ा खोदकर उसमें अग्नि का आधान करके वहां पार्थिवलिंग स्थापित किया ।।४२।। गन्ध, चन्दन, अनेक धूप, दीप तथा नैवेद्य और आर्तिक्य के विधान से शिवजी की पूजा की ।।४३।। प्रणाम से, पवित्र स्तुतियों से, गीत और नृत्य से, बाजों से तथा मुख में अंगुली समर्पण करके शंकरजी को सन्तुष्ट किया ।।४४।। हे मुने! और भी अनेक उपायों से नाना प्रकार के शास्त्रोक्त विधानों से भगवान् शिवजी का पूजन किया ।।४५।। तब भी सन्तुष्ट होकर भगवान् सदाशिवजी सम्मुख नहीं हुये, तब मैं तप के श्रेष्ठ फल को न पाकर अति दुःखी हुआ ।।४६।। मेरे शरीरबल को धिक्कार है तथा मेरे तप करने को भी धिक्कार है, यह कहकर मैंने उस स्थापित की हुई अग्नि में बहुत हवन किया ।।४७।। फिर मैंने यह विचार किया कि, अग्नि में अपने शरीर को त्याग करूंगा, यह सोचकर उस पवित्र प्रज्ज्वलित हुये अग्नि में अपने सिरों को काटकर चढ़ाया।।४८।। सम्यक् प्रकार छेदन

करके प्रत्येक को शुद्ध करके नौ सिरों को शिवजी को अर्पण किया ।।४९।। हे ऋषिश्रेष्ठ नारदजी! जैसे ही दशवें मस्तक को काटना प्रारम्भ किया, तब हीं ज्योतिस्वरूप शिवजी अपने आप वहां प्रकट हो गये ।।५०।। ''ऐसा मत करो, ऐसा मत करो'' उस प्रकार प्रीति से शीघ्र ही भक्तवत्सल शिवजी बोले, ''वर मांगो, मैं प्रसन्न हूं, तुमको मनोवांछित फल दूंगा'' ।।५१।। उनके ऐसा कहने पर उस समय मैंने शिवजी का दर्शन किया और हाथ जोड़कर भक्ति से, प्राणों से स्तुति की ।।५२।। तब मैंने यह वर मांगा कि, हे देवेश! यदि आप प्रसन्न हों, तो मुझे अतुल बल दीजिये, जिससे मुझे कुछ भी दुर्लभ न हो ।।५३।। सन्तुष्ट हुए कृपालु शिवजी ने 'तथास्तु' ऐसी वाणी कहकर मुझे सब मनोवांछित वर दिये ।।५४।। तब परमात्मा शिवजी ने वैद्य के समान अपनी अमोघ दृष्टि से देखकर मेरे सिरों को जोड़कर मिला दिया ।।५५।। ऐसे करने पर वह मेरा शरीर पहले के समान हो गया और उनकी प्रसन्नता से मैंने सब फल प्राप्त कर लिया।।५६।। तब मेरी प्रार्थना से वह शिवजी यहां पधारे और तीनों लोकों में वैद्यनाथ के नाम से प्रसिद्ध हुए।।५७।। दर्शन करने तथा पूजन से ज्योतिर्लिंग स्वरूप शिवजी संसार में भुक्ति और मुक्ति के देनेवाले तथा सबों के हित करनेवाले हैं।।५८।। मैं उस ज्योतिर्लिंग को विशेष पूजकर तथा प्रणाम करके तीनों लोकों को जीतने के लिये यहां आया हूं।।५९।। सूतजी बोले– ऐसा रावण का वचन सुनकर आश्चर्य में प्राप्त हुए नारदजी अपने मन में हँसकर रावण से बोले।।६०।। नारदजी बोले– हे राक्षसों में श्रेष्ठ रावण! सुनो, तुम्हारे हित के कारण कहता हूं, जो मैं कहूं उसी प्रकार तुम करो और कहीं किसी प्रकार मत करना ।।६१।। मैं तुमको हितकारी उपदेश देता हूं, शिवजी ने जो कुछ तुमसे कहा है, उसे तुम किसी प्रकार सत्य मत मानना ।।६२।। विकार को (उन्माद को) प्राप्त हुए शिवजी क्या–क्या नहीं कहते? परन्तु वह एक भी बात सत्य नहीं होती, यह तुमने कैसे जाना कि, वह मेरे प्रिय हैं ।।६३।। इस कारण तुम जाकर पहले उनका अहित करके फिर कार्य सिद्ध करो और तुम कैलास पर्वत को उखाड़ने का यत्न करो ।।६४।। यदि यह कैलासपर्वत उखाड़ेगा, तब ही सब सफल होगा, इसमें कुछ संशय नहीं ।।६५।। तुम परम निश्चय को प्राप्त होकर उसे उखाड़ और फिर पहले के समान उसे स्थापित करके सुख से यहां आओ, आगे जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो ।।६६।। सूतजी बोले– ऐसा नारदजी का कहा हुआ रावण विधिवश मोहित हुआ, अपने हित को मान कर उसी समय नारद मुनि के वाक्य को सत्य मानकर कैलासपर्वत पर गया ।।६७।। वहां जाकर उस कैलासपर्वत को कंपित करने लगा, वहां स्थित हुए सब पदार्थ परस्पर उलट–पलट हो गये ।।६८।। तब शिवजी कैलास को कंपित देखकर, यह क्या हुआ? इस प्रकार बोले, पार्वतीजी भी हँसकर महादेवजी से बोली ।।६९।। पार्वतीजी बोली– सुन्दर शिष्य का यह फल मिला, शिष्य करने से अच्छा फल प्राप्त हुआ, आप शान्तात्मा ने बड़े

पराक्रमी रावण को जो अतुल बल दिया है, उसका यह परिणाम है।।७०।। सूतजी बोले– इस प्रकार पार्वतीजी के अपेक्षा का वचन सुनकर शिवजी ने बल से अहंकारवाले उस रावण को कृतघ्न जानकर शाप दिया।।७१।। महादेवजी बोले– हे दुर्भक्त, दुष्ट बुद्धिवाले रावण! अभिमान मत करो, शीघ्र ही तुम्हारे भुजाओं के अहंकार का नाश करनेवाला कोई उत्पन्न होगा।।७२।। सूतजी बोले– उस समय वहां जो हुआ, सो नारदजी ने सब सुना और रावण भी प्रसन्न होकर वहां से अपने स्थान को चला गया।।७३।। तब वह बली रावण परम निश्चय करके बल से मोहित होकर शत्रुओं का दर्प चूर्ण करके जगत् को वश में करने लगा।।७४।। शिवजी की आज्ञा से प्राप्त हुए दिव्य, बड़े तेजस्वी अस्त्र से रावण को कोई भी योद्धा जीतने में समर्थ नहीं हुआ।।७५।। इस प्रकार यह वैद्यनाथेश्वर का माहात्म्य वर्णन किया, इस माहात्म्य को सुननेवाले मनुष्यों का पाप भस्म हो जाता है।।७६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां
वैद्यनाथेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ।। २८ ।।

*****

उनतीसवाँ अध्याय

सूतजी बोले– अब इसके उपरान्त परमात्मा शिवजी का नागेश नामक परमश्रेष्ठ ज्योतिर्लिंग का वर्णन करता हूं।।१।। पार्वतीजी से वर पाकर दारुका नामक राक्षसी बड़ी बल से दर्पित हो गई और उसका दारुक नामक पति बड़ा बलवान् था।।२।। उस समय वह अनेक राक्षसों को साथ लेकर सत्पुरुषों को दुःख देता हुआ लोकों के यज्ञ का विध्वंस तथा धर्म का नाश करने लगा।।३।। उसका वन पश्चिम के समुद्र के समीप चारों ओर सोलह योजन विस्तारवाला सम्पूर्ण सम्पत्तियों से शोभायमान था।।४।। दारुका राक्षसी अपने आनन्द के निमित्त सुन्दर भूमि से शोभित सबों के उपकार योग्य उस वन में भ्रमण करती थी।।५।। देवी ने वह वन दारुका को दिया था, वह राक्षसी अपने पति के सहित स्वतन्त्रता से उस वन में फिरती थी।।६।। तब उस दारुका स्त्री के सहित स्थित हुआ वह दारुक राक्षस सबों को भय दिखाने लगा।।७।। तब पीड़ित हुए वे सब लोग और्व ऋषि के शरण में गये और उनको विशेष प्रीति से नमस्कार करके अपने-अपने सिर झुकाकर उनसे बोले।।८।। वे मनुष्य बोले– हे महर्षे! हम सब दुष्ट राक्षसों से सताये हुए हैं, हमको शरण दीजिये, आप सब कुछ करने में समर्थ हैं और अपने तेज से प्रकाशमान हैं।।९।। आपके सिवाय पृथ्वी पर हमें ऐसा कोई नहीं दीखता, जिसकी

शरण में जाएं तथा जिसके समीप में स्थित होकर हम सुख पावें ।।१०।। आपको देखकर सब राक्षस दूर से ही भागते हैं, आपसे सदा ही शिवजी का तेज अग्नि के समान प्रकाशित होता है।।११।। सूतजी बोले– उन सम्पूर्ण मनुष्यों ने इस प्रकार और्व ऋषि की प्रार्थना की, तब शरणागतवत्सल वह मुनिश्रेष्ठ शोच करते हुए उनकी रक्षा के निमित्त यह वचन बोले ।।१२।। और्व मुनि बोले– यदि भूमि पर बलवान् राक्षस प्राणियों को मारेंगे, तो वे स्वयं ही मारे जायेंगे ।।१३।। जब वे यज्ञों का विध्वंस करेंगे, तो वे सम्पूर्ण राक्षस अपने प्राणों से वियुक्त होंगे, मैं यह सत्य कहता हूं।।१४।। सूतजी बोले संसार को सुख देनेवाले और्व मुनि ने उन लोगों से यह कहकर और प्रजा को धैर्य देकर तप किया ।।१५।। तब देवताओं ने उसके शाप का कारण जानकर राक्षसों के साथ युद्ध करने का उद्योग किया ।।१६।। उस समय वहां युद्ध करने के निमित्त इन्द्र आदि समस्त देवता अनेक शस्त्रों को धारण करके सब प्रयत्नों के सहित रणभूमि में उपस्थित हो गये ।।१७।। वहां उन देवताओं को देखकर वे सम्पूर्ण दुष्ट राक्षस विचारने लगे और परस्पर एकत्रित होकर यह सम्मति करने लगे।।१८।। राक्षस बोले– अब हम क्या करें ? कहां जायें ? बड़े संकट में पड़ गये है, यदि युद्ध करेंगे, तो भी मरते हैं, यदि युद्ध नहीं करें तो भी नाश होंगे ।।१९।। यदि वैसे ही (बिना उपद्रव के) रहें, तो परस्पर क्या भक्षण करेंगे? अब सब प्रकार दुःख प्राप्त हुआ, कौन इस दुःख को दूर करेगा?।।२०।। सूतजी बोले– ऐसा सोचकर वे दारुक आदि सम्पूर्ण राक्षस किसी उपाय को न जानकर दुःख को प्राप्त हुए ।।२१।। तब ऐसा दुःख प्राप्त हुआ देखकर उस राक्षसी ने उन राक्षसों से पार्वतीजी का दिया हुआ वर प्रकाशित किया ।।२२।। दारुका बोली– मुझसे आराधना की हुई पार्वतीजी ने पहले वरदान दिया है, कि तू अपने राक्षसों को वन के सहित लेकर निःसन्देह भ्रमण कर, जहां तेरी जाने की इच्छा हो जा ।।२३।। मैंने ऐसा वर पाया है, फिर क्यों दुःख सहते हो, तुम सब राक्षस जल और वन को लेकर सुख से निवास करो ।।२४।। सूतजी बोले– उस समय उस दारुका राक्षसी का वचन सुनकर सब राक्षस हर्ष को प्राप्त हुए, निर्भय होकर परस्पर मिलकर यह बोले ।।२५।। यह दारुका राक्षसी धन्य है, कृतकृत्य है, इस रानी ने हम को स्वयं जिलाया, वे सब उसे प्रणाम करके आदर से कहने लगे ।।२६।। हे देवि ! तुम्हारी वहां जाने की शक्ति हो तो जाना उचित है, विचार क्या करती हो ? वहां जाकर नित्य ही जल के स्थान में सुखपूर्वक निवास करेंगे ।।२७।। इसी अवसर में वे सब मनुष्य देवताओं के साथ उन राक्षसों के साथ युद्ध करने आये, जिन राक्षसों ने पहले बड़े दुःख और पीड़ा दी थी ।।२८।। तब उन पार्वतीजी के बल को आश्रित हुई वह राक्षसी जल तथा स्थल सहित सम्पूर्ण नगर को ले गई ।।२९।। और जय–जय ऐसा कहकर स्तुति करके फिर पंखों सहित पर्वतों के राजा हिमालय के समान वह उड़ी ।।३०।। वह शिवभक्तिवाली दारुका समुद्र के मध्य में निर्भय होकर

सम्पूर्ण परिवार के सहित अति प्रसन्नता से स्थित हुई ।।३१।। तब वे विलासी राक्षस उस सिन्धुनगर में स्थित होकर सुख पाने लगे और निर्भय होकर विहार करने लगे ।।३२।। और्व मुनि के शाप के भय से वे राक्षस भूमि पर कदापि नहीं आते, केवल जल में ही भ्रमण करते थे ।।३३।। तब वे राक्षस उस नगर में नाव पर स्थित हुए नागरिक मनुष्यों को पकड़कर अपने बन्धनगृह में बन्द करते तथा किसी को मार भी डालते थे ।।३४।। तब भवानी के वरदान से निर्भय हुए वे राक्षस वहा स्थित होकर मनुष्यों को पीड़ा देते थे ।।३५।। हे मुनीश्वरो! जिस प्रकार वहां स्थल में मनुष्यों को भय था, उसी प्रकार उनको जल में निकल के स्थित हुए राक्षसों से निरन्तर भय रहा था ।।३६।। किसी समय वह राक्षसी जल से स्थल में जाकर मनुष्यों को पीड़ा देने के निमित्त मार्ग को रोककर स्थित हुई ।।३७।। इसी अन्तर में वहां सब ओर से मनुष्यों से पूर्ण हुई अनेक शुभ नावें उधर आईं ।।३८।। उन भरी हुई नावों को देखकर वे दुष्ट राक्षस बड़े हर्ष को प्राप्त हुए और अतिशीघ्र ही जाकर उनमें स्थित हुए मनुष्यों को वेग से पकड़ने लगे ।।३९।। तब उन सब मनुष्यों को पकड़कर उन महाबली राक्षसों ने अपने नगर में लाकर दृढ़ बन्धनों से बांधकर कारागार में बन्द किया ।।४०।। तब बैरियों से बंधे कारागार में पड़े हुये, बारंबार राक्षसों से डाटे हुए वे मनुष्य बड़े दुःख को प्राप्त हुए ।।४१।। उनके मध्य में जो उनका स्वामी सुप्रिय नामवाला वैश्य था, वह शिवजी का बड़ा भक्त, श्रेष्ठ आचरणवाला, सज्जन शैव था ।।४२।। सब प्रकार शिवधर्म का पालन कर्ता, भस्म रुद्राक्ष धारण करनेवाला, वह सुप्रिय वैश्य किसी समय भी शिवजी के पूजन के बिना नहीं रहता था ।।४३।। जब तक शिवजी की पूजा न हो, तब तक वह भोजन नहीं करता था, इस कारण वह वैश्य वहां (कारागार में) भी शिवजी का पूजन करता था ।।४४।। वह कारागार में स्थित होकर बहुतों को शिक्षा देता था, हे श्रेष्ठ ऋषियो! वह उन्हें शिवजी का मन्त्र तथा पार्थिवपूजा सिखलाता था ।।४५।। तब वे सब बन्धन में पड़े हुए मनुष्य अपनी कामना को पूर्ण करनेवाली शिवपूजा को विधिपूर्वक करते थे, जैसा कि उन्होंने देखा तथा सुना था ।।४६।। उनमें से कोई वहां उत्तम आसन बांधकर शिवजी के ध्यान में स्थित होते, कोई प्रसन्नता से मानसिक शिवपूजन करते थे ।।४७।। हे मुनीश्वरो! उनके स्वामी सुप्रिय ने वहां प्रत्यक्ष ही पार्थिव की विधि से शिवजी का पूजन किया ।।४८।। और जो मनुष्य अधिक विधान तथा स्मरण कीर्त्तनादि नहीं जानते थे, वे 'नमः शिवाय' इस शिवजी के मन्त्र से शिवजी के ध्यान में स्थित हुये ।।४९।। सुप्रिय नामक जो वैश्यवर्य है, वह मन से शिवजी का ध्यान करता हुआ वहां शिवजी का पूजन करता था ।।५०।। शास्त्रोक्त रूपवाले शिवजी भी प्रत्यक्ष होकर सभी उपहारों को ग्रहण करते थे, वह वैश्य भी स्वयं नहीं जानता, कि शिवजी उपहार को ग्रहण करते हैं ।।५१।। हे मुनीश्वरो! इस प्रकार उस वैश्य को शिवपूजन करते-करते

विघ्न रहित छः महीने बीत गये ।।५२।। हे मुनिश्रेष्ठो ! इसके आगे शिवजी का जो चरित्र हुआ, सो सब सावधान चित्त से सुनिये ।।५३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां
नागेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्ये दारुकावनराक्षसोपद्रववर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ।। २९ ।।

*****

तीसवाँ अध्याय

सूतजी बोले– किसी समय उस दुष्टात्मा दारुक राक्षस के सेवक ने उस वैश्य के आगे शिवजी का सुन्दर रूप देखा ।।१।। तब उसने कौतुक सहित वह अद्‌भुत चरित्र यथार्थ रूप से राक्षसों के राजा उस दारुक से निवेदन किया ।।२।। उसी समय राक्षसों का राजा वह बलवान् दारुक व्याकुल होकर वहां जाकर शीघ्र ही उस वैश्य से पूंछने लगा ।।३।। दारुक बोला– हे वैश्य ! तू क्या ध्यान करता है ? मेरे आगे सत्य–सत्य कह, सत्य–सत्य बताने से तेरी मृत्यु नहीं होगी, नहीं तो मार डालूंगा ।।४।। सूतजी बोले– तब उस वैश्य ने कहा, मैं कुछ नहीं जानता; ऐसा सुनकर वह दारुक क्रोधित हुआ और उसने राक्षसों को भेजा और कहा कि इस वैश्य को मारो ।।५।। उसके कहने पर वे राक्षस शीघ्र ही अनेक शस्त्रों को धारण करके शिवजी में आसक्त चित्त वाले उस वैश्यश्रेष्ठ को मारने गये ।।६।। तब उन राक्षसों को आते हुए देखकर भय से नेत्र मून्दे हुए वह वैश्य प्रीति से शिवजी को स्मरण करने लगा और बारंबार उनके नामों का कीर्तन करने लगा ।।७।। वैश्यपति बोला– हे शंकर ! रक्षा कीजिये, हे देवेश ! पालन कीजिये, हे शम्भो ! हे शिवजी ! हे दुष्टों का नाश करनेवाले ! हे भक्तवत्सल ! हे त्रिलोकेश ! इन दुष्ट राक्षस से रक्षा कीजिये ।।८।। हे देव ! इस समय आप ही मुझे सर्वस्व हो, हे प्रभो ! मैं आपके अधीन हूं तथा आपका हूं, सर्वदा आपका प्राण हूं ।।९।। सूतजी बोले– ऐसी प्रार्थना करने पर वह शिवजी चार द्वारवाले उत्तम भवन के सहित उस विवर से प्रकट हो गये ।।१०।। उन्होंने सिंहासन के मध्य में ज्योतिःस्वरूप शिवजी के रूप को परिवार सहित अद्‌भुत आकार से देखकर पूजन किया ।।११।। तब पूजित हुए सदाशिवजी स्वयं प्रसन्न होकर उसे अपना पाशुपतास्त्र देकर राक्षसाधिपों को मारने लगे ।।१२।। उन सब राक्षसों को कुटुम्ब और सेना सहित शीघ्र ही मार डाला, अपने भक्त की रक्षा के कारण वे सदाशिवजी दुष्टों को मारनेवाले हैं ।।१३।। उस समय अति अद्‌भुत चरित्र करनेवाले, अपनी इच्छा से शोभित शरीर धारण करनेवाले शिवजी ने उस वन के उन समस्त राक्षसों को मारकर, उस वन को वरदान दिया ।।१४।।

कि इस वन में सदा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यह चारों वर्ण अपने-अपने धर्मों में तत्पर होंगे ।।१५।। हे मुनिश्रेष्ठो! यह निरन्तर शिवजी की भक्ति में तत्पर होकर शिवधर्म का उपदेश करनेवाले होंगे तथा तमोगुणी न होंगे ।।१६।। सूतजी बोले- उसी समय उस दीन मनवाली दारुका नामक राक्षसी ने देवी पार्वतीजी की स्तुति की ।।१७।। तब प्रसन्न हुई पार्वतीजी उससे बोली- कि मैं क्या कार्य करूं? यह सुनकर वह राक्षसी बोली, कि तुम मेरे वंश की रक्षा करो ।।१८।। तेरे वंश की रक्षा करूंगी, यह मैं सत्य-सत्य कहती हूं, यह कहकर पार्वतीजी ने शिवजी से विग्रह किया ।।१९।। तब वर के वशीभूत हुए प्रभु सदाशिवजी क्रोधित हुए पार्वतीजी को देखकर बड़ी प्रीति से यह बोले, ''जैसी तुम्हारी इच्छा हो, वैसा करो'' ।।२०।। सूतजी बोले- इस प्रकार अपने पति शिवजी का वचन सुनकर प्रसन्न हुई पार्वतीजी हँसकर यह वचन बोली ।।२१।। पार्वतीजी बोली- तुम्हारा वचन युग के अन्त में सत्य होगा, तब तक तामसी (तमोगुणवाली) सृष्टि उत्पन्न हो, ऐसा मेरा मत है ।।२२।। हे शिवजी! हे स्वामी! यदि मेरे कहने के अनुसार न होगा तो प्रलय होगी, मैंने सत्य-सत्य कहा है, मेरा वचन प्रमाण कीजिये, मैं आपकी ही हूं तथा आपके ही आश्रय में हूं ।।२३।। यह जो दारुका देवी राक्षसी है, वह मेरी ही शक्ति है, राक्षसियों में बलिष्ठ होकर वह राक्षसों में राज्य करेगी ।।२४।। यह सम्पूर्ण राक्षसों की स्त्रियां अपने पुत्रों को उत्पन्न करेंगी, वे सब मिलकर वन में निवास करेंगे, ऐसी मेरी सम्मति है ।।२५।। सूतजी बोले- प्रभु सदाशिवजी ऐसा अपनी स्त्री पार्वतीजी का वचन सुनकर प्रसन्न चित्त होकर यह वचन बोले ।।२६।। शिवजी बोले- हे प्रिये! यदि तुम ऐसा कहती हो, तो मेरा वचन सुनो, मैं भी अपने भक्तों का पालन करने के निमित्त प्रीति से इस वन में निवास करूँगा ।।२७।। यहां पर जो मनुष्य अपने-अपने वर्णों के धर्म में स्थित होकर प्रीति सहित मेरा दर्शन करेगा, वह चक्रवर्ती होगा ।।२८।। अन्यथा कलियुग की समाप्ति में, सतयुग की आदि में वीरसेन नाम से प्रसिद्ध हुआ अधिक सेना युक्त राजा होगा ।।२९।। वह मेरी भक्ति से बढ़ा हुआ वीरसेन मेरा दर्शन करके चक्रवर्ती राजा होगा ।।३०।। सूतजी बोले- हे ब्राह्मणो! इस प्रकार वे दोनों शिव-पार्वती परस्पर हास्य करके बड़ी लीला करनेवाले साक्षात् गिरिजा और शिवजी वहां स्थित हो गये ।।३१।। ज्योतिर्लिंग स्वरूप नागेश्वर नाम से शिवजी तथा पार्वतीदेवी नागेश्वरी नाम से प्रसिद्ध हुई ।।३२।। ऋषि बोले- हे बड़ी बुद्धिवाले सूतजी! वह वीरसेन उस दारुका वन में कैसे जाएगा और किस प्रकार शिवजी को पूजेगा? सो सब वर्णन कीजिये ।।३३।। सूतजी बोले- वह शिवजी की भक्ति करनेवाला महासेन का पुत्र वीरसेन राजा निषध नाम वाले सुन्दर देश में क्षत्रियों के कुल में उत्पन्न हुआ ।।३४।। उस वीरसेन ने पार्थिव शिवपूजा करके बारह वर्षपर्यन्त बड़ा कठिन तप किया ।।३५।। तब देवताओं के स्वामी प्रसन्न हुए, सदाशिवजी प्रत्यक्ष होकर बोले- हे वीरसेन! रांगा

धातू से लेपन की हुई काष्ठ की मछली बनाकर ।।३६।। उसमें योगमाया करके वह तुझे दूंगा, उसे ग्रहण करके मनुष्यों के साथ उस विवर में प्रवेश हो ।।३७।। तब तू वहां जाकर मुझसे किये हुए विवर में प्रवेश होकर नागेश्वर का पूजन करके ।।३८।। और पाशुपत अस्त्र को पाकर उन राक्षसियों का विनाश करना, उस समय मेरा दर्शन करने पर तुम्हें किसी प्रकार की न्यूनता न होगी ।।३९।। तब पार्वती का बल भी सम्पूर्ण होगा और जो उस वन में म्लेच्छ रूप राक्षस हैं, वे सब सदाचारी हो जायेंगे ।।४०।। सूतजी बोले– भक्तों के दुःख दूर करनेवाले प्रभु सदाशिव, वीरसेन राजा से ऐसा कहकर उसके ऊपर बड़ी कृपा करके वहां अन्तर्धान हुए ।।४१।। इस प्रकार परमात्मा शिवजी से वर प्राप्त करनेवाला वह वीरसेन सब कुछ करने में समर्थ हुआ, इसमें कुछ सन्देह नहीं ।।४२।। इस प्रकार तीनों लोकों की कामना पूर्ण करनेवाले ज्योतिर्लिंगों के स्वामी लिंग स्वरूप नागेश्वरदेव उत्पन्न हुए ।।४३।। जो मनुष्य इस नागेश की उत्पत्ति को नित्य श्रवण करता है, वह बुद्धिमान् सब पापों से छूट कर सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त होता है ।।४४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां
नागेश्वरज्योतिर्लिंगोद्भवमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ।। ३० ।।

*****

इकतीसवाँ अध्याय

सूतजी बोले– अब इसके आगे रामेश्वर नामक ज्योतिर्लिंग का वर्णन करता हूं, कि वह जिस प्रकार पहले उत्पन्न हुआ। हे ऋषियो! सो सब आदर से सुनिये ।।१।। पहले त्रेतायुग में सत्पुरुषों के रक्षक भगवान् विष्णुजी ने पृथ्वी पर रामावतार लिया ।।२।। तब हे ब्राह्मणो! बड़ी माया वाले रावण ने उनकी स्त्री जानकीजी का हरण किया और सीताजी को अपने घर लंकापुरी ले गया ।।३।। उस समय रामचन्द्रजी जानकीजी को ढूंढ़ते हुए किष्किन्धा पुरी गये, वहां सुग्रीव के हितकारी मित्र होकर उन्होंने वाली को मारा ।।४।। सीताजी को खोजने में लगे हुए रामचन्द्रजी ने वहां कुछ दिन निवास करके सुग्रीव, हनुमान् आदि वानरों के सहित भाई लक्ष्मण के साथ विचार किया ।।५।। तब उन राजपुत्र रामचन्द्रजी ने जानकीजी को खोजने के निमित्त हनुमान आदि वानरों को चारों ओर भेजा ।।६।। इसके पश्चात् कपिश्रेष्ठ हनुमानजी के मुंह से जानकी को लंका में प्राप्त हुई जानकर सीताजी की चूडामणि लेकर वह रामचन्द्रजी अति प्रसन्न हुए ।।७।। हे ब्राह्मणो! तब वे रामचन्द्रजी हनुमान्जी तथा लक्ष्मण सहित अति बलवान्, पवित्र,

अठारह पद्म संख्यक सुग्रीव आदि वानरों के सहित दक्षिण में खारे समुद्र के तीर पर पहुँच गये ।।८-९।। वहां पहुँचकर शिवभक्ति वाले रामचन्द्रजी समुद्र के तट पर स्थित होकर छोटे भाई लक्ष्मणजी तथा अनेक वानरों से सेवित हुए ।।१०।। हा शोक! जानकी कहां चली गई ? जाने कब मिलेगी ? यह कैसा गहरा समुद्र है ? यह वानरों की सेना इसे पार करने में असमर्थ है ।।११।। वह महाबली तथा पराक्रमी, पर्वत उखाड़कर धारण करनेवाला रावण है, इन्द्र को जीतने वाला (मेघनाद) उस रावण का पुत्र है, इस प्रकार लंका नामक बड़ा कठिन गढ़ है ।।१२।। ऐसा विचार करके उन रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण सहित समुद्र के तट पर स्थित होकर वन में निवास करनेवाले अंगद आदि ने धैर्य देकर आश्वासन दिया ।।१३।। इसी अवसर में शैवों में श्रेष्ठ रामचन्द्रजी जल पीने के निमित्त अपने भाई लक्ष्मण से प्रीति से बोले ।।१४।। रामचन्द्रजी बोले– हे वीरों के स्वामी, भाई लक्ष्मण मैं प्यासा हूं, जल की इच्छा है, इससे शीघ्र ही किसी वानर से जल मंगाकर पिलाओ ।।१५।। सूतजी बोले– यह सुनकर वे वानर वहां से जल लेने दशों दिशाओं में गये और जल लाकर वे सब आगे स्थित होकर प्रणाम करके बोले ।।१६।। वानर बोले– हे स्वामिन्! जल ग्रहण करें, हम आपकी आज्ञा से जल ले आये हैं, यह जल बड़ा श्रेष्ठ है, अति स्वादिष्ट, शीत तथा प्राणों को तृप्त करनेवाला है ।।१७।। सूतजी बोले– यह सुनकर रामचन्द्रजी ने बड़े प्रसन्न होकर उन वानरों को कृपादृष्टि से देखकर स्वयं जल ग्रहण किया ।।१८।। जब ही उन शैव रामचन्द्रजी ने वह जल पीना प्रारम्भ किया, तब उनको शिवजी की इच्छा से यह स्मरण हुआ ।।१९।। कि अपने स्वामी परेश, सम्पूर्ण आनन्द के देनेवाले, सदाशिवजी का दर्शन नहीं किया, फिर जल कैसे पीऊं ?।।२०।। ऐसा कहकर उस समय रामचन्द्रजी ने जल पिया, पीछे से रघुनाथजी ने पार्थिव पूजन किया ।।२१।। विधिपूर्वक आवाहनादि सोलह उपचारों की कल्पना करके प्रीति से शंकरदेवजी की पूजा की ।।२२।। प्रणामों से तथा दिव्य स्तोत्रों से यत्न पूर्वक शिवजी को सन्तुष्ट करके बड़ी भक्ति से आनन्द सहित शंकरजी की प्रार्थना की ।।२३।। रामचन्द्रजी बोले– हे स्वामी! हे शम्भो! हे महादेव! हे भक्तवत्सल! हे दीन मनवाले! शरण में प्राप्त हुए मुझ अपने भक्त की सदा रक्षा करें ।।२४।। हे भवसागर से तारनेवाले! यह समुद्र का जल बड़ा अगाध है और बड़ा बलवान् पराक्रमी रावण बड़ा प्रबल राक्षस है ।।२५।। और युद्ध की साधन रूप वानरों की सेना चंचल है, मनोरथ प्राप्त होने के निमित्त मेरा कार्य किस प्रकार सिद्ध होगा ।।२६।। हे सुव्रत! हे देव! इस युद्ध में आप मेरी सहायता करें, हे स्वामी! आपकी सहायता के बिना मेरा कार्य दुर्लभ है ।।२७।। आपके दिये हुए वर के कारण अभिमानी, बड़ा पराक्रमी, तीनों लोकों को जीतनेवाला आपका रावण सभी को सब प्रकार से दुर्जय है ।।२८।। हे सदाशिवजी! मैं आपका दास हूं तथा सब प्रकार आपके अधीन हूं, ऐसा विचार मेरा पक्षपात करना

योग्य है ।।२९।। सूतजी बोले- ऐसी प्रार्थना करके तथा बारंबार नमस्कार करके, हे शंकरजी! आपकी सदा जय हो, जय हो, ऐसे बड़े ऊँचे स्वर से कहा ।।३०।। इस प्रकार मन्त्र तथा ध्यान में तत्पर हुए रामचन्द्रजी वहां शिवजी की स्तुति करके और फिर पूजा करके स्वामी शिवजी के आगे नृत्य करने लगे ।।३१।। प्रेम से आर्द्र हुए मन से जब गल्लनाद (बडबड ऐसा मुंह का शब्द) किया, तब हीं शंकरदेव अति प्रसन्न हुए ।।३२।। तब हीं अंगों तथा परिवार सहित ज्योति:स्वरूप महेश्वरजी शास्त्रोक्त निर्मल स्वरूप को धारण करके शीघ्र ही प्रकट हुए ।।३३।। तब रामचन्द्रजी की भक्ति से सन्तुष्ट हुए शिवजी बोले- ''हे रामचन्द्र! तुम्हारा कल्याण हो, वर मांगो'' ऐसा कहने लगे ।।३४।। उस समय उनका स्वरूप देखकर सम्पूर्ण लोग स्वयं पवित्र हुए और शिवधर्म में तत्पर हुए रामचन्द्रजी ने उनकी पूजा की ।।३५।। अनेकों स्तुति तथा प्रीति से शिवजी को प्रणाम करके रावण के संग्राम में अपनी विजय की प्रार्थना की ।।३६।। उस समय रामचन्द्रजी की भक्ति से प्रसन्न हुए महेश्वरजी बोले- ''हे महाराज! तुम्हारी जय हो'' ऐसा प्रीति से कहने लगे ।।३७।। शिवजी के दिये विजय वर तथा आज्ञा को पाकर फिर रामचन्द्रजी ने माथा झुकाकर, हाथ जोड़कर प्रार्थना की ।।३८।। रामचन्द्रजी बोले- हे स्वामिन्! हे शंकर! यदि आप प्रसन्न हों, तो संसार को पवित्र करने के लिये, दूसरों के उपकार करने के निमित्त आप यहां निवास करें ।।३९।। सूतजी बोले- ऐसा सुनकर शिवजी वहां पर लिंगरूप हो गये और रामेश्वर नाम से प्रसिद्ध हो गये ।।४०।। रामचन्द्रजी ने शिवजी के प्रताप और बल से समुद्र को पार करके शीघ्र ही रावण आदि राक्षसों को मारकर उन जानकीजी को प्राप्त किया ।।४१।। भूमि पर रामेश्वर की महिमा अति अद्‌भुत है, वे सदा भुक्ति-मुक्ति देनेवाले तथा भक्तों को कामना देनेवाले हैं ।।४२।। जो मनुष्य दिव्य गंगाजल से रामेश्वर शिवजी को सुन्दर भक्ति से स्नान कराता है, वह जीवमुक्त होता है ।।४३।। इस लोक में देवताओं को भी दुर्लभ हुए सम्पूर्ण भोगों को भोगकर अन्त में परमज्ञान को पाकर निश्चय ही कैवल्य मोक्ष को प्राप्त होता है ।।४४।। इस प्रकार शिवजी के रामेश्वर नामक दिव्य ज्योतिर्लिंग का वर्णन आपसे किया, जो इसका श्रवण करते हैं, उनके पाप हरण होते हैं ।।४५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां

रामेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ।। ३१ ।।

*****

बत्तीसवाँ अध्याय

सूतजी बोले- हे मुनिश्रेष्ठो! पहले जो घुश्मेश नामक ज्योतिर्लिंग कहा है, उसके ही माहात्म्य को अब इसके आगे वर्णन करूँगा, आप सुनें।।१।। दक्षिण दिशा की ओर देव नामवाला बड़ी शोभा से युक्त नित्य सुन्दर दर्शनवाला श्रेष्ठ पर्वत शोभित हो रहा है।।२।। उसके निकट में कोई भारद्वाज कुल में उत्पन्न हुआ, वेद जाननेवाला सुधर्मा नामवाला ब्राह्मण रहता था।।३।। उसकी स्त्री शोभायमान शरीरवाली, शिवधर्म में तत्पर हुई, नित्य पति की सेवा करनेवाली, घर के कार्यों में प्रवीण थी।।४।। और वह सुधर्मा ब्राह्मण श्रेष्ठ देवता, अतिथियों को पूजनेवाला, वेदमार्ग में तत्पर, नित्य अग्निहोत्र करने में तत्पर रहता था।।५।। तीनों काल की सन्ध्या करनेवाला, सूर्य के समान कान्तिवाला,शिष्यों को पढ़ानेवाला, वेदशास्त्रों में निपुण था।।६।। धनवान्, दूसरों को दान देनेवाला, सज्जनों के गुणों का पात्र, शिवकर्मों में रुचि वाला तथा नित्य शैवपुरुषों का सत्कार करनेवाला शैव था।।७।। धर्म करते हुए उसकी बहुत आयु बीत गई, उसे कोई पुत्र नहीं हुआ, उसकी स्त्री का ऋतुकाल निष्फल गया।।८।। इस कारण पदार्थ ज्ञान में तत्पर हुए उस ब्राह्मण ने दुःख नहीं माना, कारण कि आत्मा ही आत्मा को तारनेवाला तथा पवित्र करनेवाला है।।९।। ऐसा मन में विचार करके उस समय उसने दुःख नहीं किया, परन्तु उसकी स्त्री सुदेहा ने पुत्र न होने का दुःख माना।।१०।। वह नित्य ही सम्पूर्ण विद्याओं में पण्डिता अपने स्वामी से पुत्र उत्पन्न करने के निमित्त प्रयत्न करने की प्रार्थना करती थी।।११।। वह अपनी स्त्री को ललकार के यह कहता कि, पुत्र का क्या करेगी? कौन माता है, कौन पिता है तथा कौन पुत्र है, कौन भाई है, कौन प्रिय (मित्र) है?।।१२।। हे देवि! तुम इस त्रिलोकी में यह सब स्वार्थ में विशेष ही तत्पर जानो, इसमें कुछ संशय नहीं है, इस कारण अपनी बुद्धि से चिन्ता मत करो।।१३।। हे देवि! हे शुभव्रते! इस कारण निश्चय ही तुम दुःख का त्याग करो और नित्य मुझसे पुत्रोत्पादन के उपाय को कहना योग्य नहीं है।।१४।। इस प्रकार उस स्त्री को निवारण करके भगवान् शिवजी के धर्म में तत्पर हुए तथा परम सन्तुष्ट हुए उस ब्राह्मण ने दुःखद्वन्द्व को त्यागा।।१५।। किसी समय उसकी स्त्री सुदेहा प्रिय सखियों की गोष्ठी में पड़ोसियों के घर गई, वहां विवाद होने लगा।।१६।। तब सुधर्मा की स्त्री सुदेहा की वहां की स्त्रियों ने नारी स्वभाव से भर्त्सना की और उस ब्राह्मण की स्त्री सुदेहा से दुर्वचन कहे।।१७।। द्विज स्त्री बोली- हे अपुत्रिणि! तू क्यों अभिमान करती है? मैं पुत्रवाली हूं, मेरे धन को मेरा पुत्र भोगेगा, तेरे धन को कौन भोगेगा?।।१८।।

निश्चय ही तेरे धन को राजा हरण करेगा, इसमें संशय नहीं। हे बांझ! तुझे धिक्कार है तथा तेरे धन को, तेरे मान को भी धिक्कार है।।१९।। सूतजी बोले– इस प्रकार उन स्त्रियों से ललकारी हुई वह अपने घर में आकर अति दुःखी होकर, उन्होंने कहे हुए सम्पूर्ण वृत्तान्त को आदरपूर्वक अपने स्वामी से कहने लगी।।२०।। यह सुनकर उस बुद्धिमान् ब्राह्मण ने मन में कुछ दुःख नहीं किया और कहा कि, हे प्रिये! कहने दो, जो होनी है वह होगी।।२१।। इस प्रकार उस ब्राह्मण ने उसे बारंबार आश्वासन (धैर्य) दिया, तो भी उसने दुःख नहीं त्यागा और फिर भी आग्रह करने लगी।।२२।। सुदेहा बोली– हे देहधारियों में श्रेष्ठपते! जिस किसी उपाय से आप पुत्र उत्पन्न कीजिये, आप मेरे प्रिय हो, नहीं तो मैं अपना शरीर त्याग करूँगी।।२३।। सूतजी बोले– उसका ऐसा वचन सुनकर उसके आग्रह से व्याकुल हुए उस ब्राह्मणश्रेष्ठ सुधर्मा ने मन से शिवजी का स्मरण किया।।२४।। तब आलस्य रहित उस ब्राह्मण ने अग्नि के आगे दो फूल फेंके और उस दक्षिण पुष्प को पुत्र की कामना देनेवाला है, ऐसा मन से जाना।।२५।। ऐसा प्रण करके वह ब्राह्मण अपनी स्त्री से बोला कि, तू पुत्र के फल पाने के निमित्त इन दोनों पुष्पों में से एक पुष्प ग्रहण कर।।२६।। उसने ऐसा अपने मन में विचारा कि, मुझे पुत्र हो, फिर यह सोचा, जो पुष्प स्वामी ने धारण किया है, वह पुष्प मुझे प्राप्त हो।।२७।। ऐसा कहकर उस स्त्री ने शिवजी तथा अग्नि को प्रणाम और प्रार्थना करके एक पुष्प ग्रहण किया।।२८।। उस सुदेहा स्त्री ने शिवजी की इच्छा से उत्पन्न हुए मोह से स्वामी ने जो पुष्प लेना सोचा था, सो नहीं लिया।।२९।। यह देखकर उस ब्राह्मण ने दीर्घ श्वास ली और शिवजी के चरण कमलों को स्मरण करके अपनी स्त्री से बोला।।३०।। सुधर्मा बोला– जो ईश्वर ने रचा है, वह अन्यथा नहीं हो सकता, हे प्रिये! अब तू आशा को त्यागकर प्रभु शिवजी की सेवा कर।।३१।। ऐसा कहकर वह ब्राह्मण स्वयं आशा को त्यागकर धर्मकार्यों में तत्पर तथा शिवजी के ध्यान में प्रवृत्त हो गया।।३२।। परन्तु उस सुदेहा ने पुत्र की इच्छा से आग्रह नहीं छोड़ा और हाथ जोड़कर, माथा नवाकर प्रेम से अपने पति से कहा।।३३।। सुदेहा बोली– मुझमें पुत्र उत्पन्न नहीं होगा, मेरी आज्ञा से आप दूसरी स्त्री से विवाह करें, उससे निश्चय ही पुत्र उत्पन्न होगा, इसमें संशय नहीं।।३४।। सूतजी बोले– उस समय अपनी स्त्री के प्रार्थना करने पर शैवों में श्रेष्ठ धर्म में तत्पर हुए उस ब्राह्मण ने अपनी स्त्री से कहा।।३५।। सुधर्मा बोला– हे प्रिये! तेरा और मेरा सम्पूर्ण विघ्न दूर हुआ, इस कारण निश्चय ही अब तू धर्म में विघ्न मत डाल।।३६।। सूतजी बोले– इस प्रकार निवारण करने पर वह उस समय अपनी बहिन को घर लाकर अपने पति से बोली, आप इससे विवाह कीजिये।।३७।। सुधर्मा बोला– हे प्रिये! इसी समय तू ऐसा कह रही है, इसके पश्चात् जब यह मेरी स्त्री होगी और जब पुत्रवती होगी, तब ईर्ष्या करने लगोगी।।३८।। सूतजी बोले– हे ब्राह्मणो!

पति के ऐसा कहने पर उसकी स्त्री सुदेहा हाथ जोड़कर फिर अपने पति सुधर्मा से बोली ।।३९।। हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! मैं इस बहिन से किसी प्रकार ईर्ष्या नहीं करूँगी, आप अवश्य पुत्र उत्पन्न होने के निमित्त इससे विवाह कर लें, मैं आज्ञा देती हूं, इस प्रकार उस स्त्री के प्रार्थना करने पर उस सुधर्मा ब्राह्मण ने विवाह की विधि से उस घुश्मा कन्या से विवाह किया ।।४०।। और उसे व्याह के पूर्व स्त्री से बोला– हे प्रिये! हे अनघे! यह तेरी छोटी बहिन है, इसका अवश्य पालन–पोषण करना उचित है ।।४१।। ऐसा कहकर वह धर्मात्मा शैवों में श्रेष्ठ सुधर्मा यथायोग्य अपने धर्म का संग्रह करने लगा ।।४२।। उस स्त्री ने अपनी छोटी बहिन के साथ दासी के समान बर्ताव किया और विरोध भाव को छोड़कर रात–दिन उसकी सेवा की ।।४३।। जो कनिष्ठा स्त्री थी, वह अपनी बहिन की आज्ञा पाकर शीघ्र ही नित्य एक सौ एक पार्थिवलिंग बनाने लगी ।।४४।। और वह घुश्मा शास्त्रोक्त विधान सहित सोलह उपचारों से उनका पूजन करके समीप में स्थित हुये सरोवर में सिरा देती थी ।।४५।। इस प्रकार वह नित्य विसर्जन करके फिर आवाहन करके उनकी पूजा विधि से अपनी इच्छा पूर्ण करनेवाली शिवजी की अर्चना करती थी ।।४६।। इस प्रकार नित्य शंकरजी का पूजन करते हुए उसे बहुत समय बीत गया और सम्पूर्ण कामनाओं के फल देनेवाली लक्ष संख्या पूर्ण हुई ।।४७।। तब शिवजी की कृपा से उसे सर्वांग सुन्दर, भाग्यवान्, कल्याण और गुणों का पात्र श्रेष्ठ पुत्र हुआ ।।४८।। उस पुत्र को देखकर बहुत प्रसन्न होकर भी वह धर्मात्मा सुखों में आसक्त न हुआ, ज्ञान और धर्म में परायण वह ब्राह्मण बड़ा आनन्दित हुआ ।।३९।। तबसे वह सुदेहा उस घुश्मा से बड़ी ईर्ष्या करने लगी, जो उसका हृदय पहले शीतल था, वह फिर तलवार के समान हो गया ।।५०।। हे मुनीश्वरो! इसके आगे जो दुःखदाई कुत्सित कर्म हुआ, उसे सावधान मन से श्रवण कीजिये ।।५१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां
घुश्मेश्वरमाहात्म्ये सुदेहासुधर्मचरितवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ।। ३२ ।।

*****

तैंतीसवाँ अध्याय

सूतजी बोले– कनिष्ठा (छोटी बहिन) के पुत्र को देखकर बड़ी बहिन बड़ी दुःखी हुई और उसके सुख को न सहनकर वह उसके साथ विरोध करने लगी ।।१।। निरन्तर सब मनुष्य उस पुत्रवती घुश्मा की प्रशंसा करते, उस समय वह उसकी प्रशंसा तथा पुत्र के रूपादि को न सह पाती ।।२।। माता–पिता के श्रेष्ठ गुणों के पात्ररूप उस अति

प्रिय पुत्र को देखकर उसका हृदय प्रज्ज्वलित हुई अग्नि के समान हो गया ।।३।। इसी अवसर में उसके बड़े होने पर वहां के ब्राह्मण उसे अपनी कन्या देने आये, तब सुधर्मा ने उसका विवाह विधिपूर्वक वहां ही किया ।।४।। वह सुधर्मा उस घुश्मा स्त्री के साथ बड़े आनन्द को प्राप्त होकर सम्पूर्ण सम्बन्धी उस घुश्मा का सन्मान करने लगे ।।५।। तब उसे देखकर वह सुदेहा मन में जलती हुई अति दुःख को प्राप्त हुई। हां शोक! मैं मरी ऐसा कहने लगी ।।६।। सुधर्मा ने घर आकर बहू को तथा विवाहित पुत्र को देखकर अपनी स्त्री सहित हर्ष करके उत्साह दिखाया ।।७।। उस समय घुश्मा अति प्रसन्न हुई और सुदेहा बड़े दुःख को प्राप्त हुई, उसके सुख को न सहकर दुःख करके वह भूमि पर गिरी ।।८।। तब घुश्मा ने उससे कहा कि, यह दोनों बहू–बेटे तुम्हारे ही हैं, मेरे नहीं हैं और वह बहू तथा बेटा भी प्रीति से उसको सास, माता मानते हैं ।।९।। स्वामी सुधर्मा भी उस ज्येष्ठा को प्यारी मानता था, कनिष्ठा को नहीं मानता, तो भी वह ज्येष्ठा अपने हृदय में द्वेष सहित रहती ।।१०।। एक दिन दुःखी हुई ज्येष्ठा सुदेहा ने यह अपने मन में सोचा की, दुःखों की शान्ति किस प्रकार होगी ?।।११।। सुदेहा बोली– मेरे हृदय की अग्नि दुःख से उत्पन्न हुये घुश्मा के आंसुओं से निश्चय ही शान्त होगी और कोई उपाय नहीं ।।१२।। इस कारण आज मैं मधुर भाषण करनेवाले उसके पुत्र को मारूँगी, आगे जो होनी है सो होगी, ऐसा मेरा दृढ़ संकल्प है ।।१३।। सूतजी बोले– हे ब्राह्मणो! कपटी पुरुषों का विचार, कर्तव्य–अकर्तव्य में नहीं होता है, कारण कि सापत्न (सौत) भाव विशेष कर कठोर तथा आत्मघात करनेवाला होता है ।।१४।। एक दिन उस ज्येष्ठा ने छुरी लेकर रात्रि में बहू के साथ सोते हुए उस पुत्र के अंगों को छेदन करके उसे मारा ।।१५।। और उस अहंकारिणी महा अबला ने रात्रि में घुश्मा के पुत्र के सम्पूर्ण अंगों को खण्ड–खण्ड कर दिया और उसी समय सरोवर पर ले जाकर वहां फेंक दिया ।।१६।। जहां घुश्मा ने नित्य ज्योतिर्लिंगों को सिराती थी, वहां ही उसे फेंककर लौट आई और सुख से सो गई ।।१७।। प्रातःकाल घुश्मा ने उठकर नित्य कर्म किये तथा श्रेष्ठ सुधर्मा ने भी स्वयं नित्य कर्म किये ।।१८।। इसी अवसर में आनन्द सहित हृदय की अग्नि शान्त होनेपर वह ज्येष्ठा घर के कार्य करने लगी ।।१९।। प्रातःकाल उठकर वह बहू रुधिर से सनी तथा देह खण्डों से युक्त हुई खाट को देखकर बड़े दुःखी हो गयी ।।२०।। उसने अपनी सास से निवेदन किया कि, आपका पुत्र कहां गया ? शय्या रुधिर में सनी है और वहां देह के खण्ड दीख पड़ते हैं ।।२१।। हे पवित्र व्रतवाली! हाय! हाय! मैं मर गई, यह ऐसा दुष्ट कार्य किसने किया ? ऐसा कहकर वह उसकी स्त्री अति विलाप करके रोने लगी ।।२२।। उस समय ज्येष्ठा भी दुःखी होकर बोली, हा शोक! मैं नष्ट हुई, इस प्रकार वह बाहर से दुःख करती तथा मन में प्रसन्नता को प्राप्त हुई ।।२३।। तब उस वधू के दुःख को सुनकर वह घुश्मा नित्य के पार्थिव

पूजन रूप उस व्रत से चलायमान न हुई ।।२४।। उसका मन थोड़ा भी पुत्रशोक में उत्कण्ठित नहीं हुआ तथा उसका पति भी वैसा ही स्थित रहा, जब तक व्रत की विधि समाप्त हुई ।।२५।। पूजन करने के पश्चात् मध्याह्न काल में उस भयानक शय्या को देखा, तो भी उस घुश्मा ने कुछ दुःख नहीं किया ।।२६।। यह विचारा की जिसने उसे दिया है, वह ही उसकी रक्षा करेगा, कारण कि वह भक्तों पर दया करनेवाले तथा काल के काल सत्पुरुषों के गति हैं, ऐसा विख्यात है ।।२७।। यदि हमारी रक्षा करनेवाले ईश्वर प्रभु एक मात्र वह शम्भुजी हैं, तो क्या चिन्ता है ? कारण कि वह सदाशिवजी माली के समान जिसको लगाते हैं, उसको अलग भी करते हैं ।।२८।। अब मेरे चिन्ता करने से क्या फल ? ऐसा तत्त्व विचार के उस समय शिवजी के विषे धैर्य करके कुछ दुःख नहीं किया ।।२९।। पहले के समान स्वस्थ चित्त होकर वह पार्थिवलिंगों को लेकर शिवजी के नामों का उच्चारण करती सरोवर के तट पर गई ।।३०।। वहां पर पार्थिवलिंगों को चढ़ा कर जब वह छोटी लौटी, तब ही उसने तालाब के किनारे स्थित हुए पुत्र को देखा ।।३१।। पुत्र बोला– हे माता ! आओ, मैं मिलूंगा, तुम्हारे पुण्य के प्रताप से तथा सदाशिवजी की कृपा से अब मैं जीवित हो गया ।।३२।। सूतजी बोले– हे ब्राह्मणो ! उस पुत्र को जीवित हुआ देखकर उसकी माता घुश्मा न प्रसन्न हुई, न दुःखी हुई, किन्तु जैसे पहले थी उसी प्रकार रही ।।३३।। इसी समय वहां ज्योतिःस्वरूप महेश्वरजी सन्तुष्ट होकर शीघ्र ही प्रकट हुए और बोले ।।३४।। शिवजी बोले– हे वरानने ! मैं प्रसन्न हूं, वर मांग । उस दुष्टा सुदेहा ने इस पुत्र को मारा था, उसे मैं त्रिशूल से मारूंगा ।।३५।। सूतजी बोले– तब घुश्मा ने सिर नवाकर शिवजी को प्रणाम करके वर मांगा कि, हे स्वामी ! उस मेरी बहिन सुदेहा की रक्षा कीजिये ।।३६।। शिवजी बोले– उसने तेरा अपकार किया, फिर तू उसका उपकार क्यों करती है ? कारण कि वह दुष्टा सुदेहा मारने योग्य है ।।३७।। घुश्मा बोली– हे सदाशिव ! आपके दर्शन मात्र से पाप दूर होता है, इस समय आपको देखकर उसका पाप भस्म हो जायगा ।।३८।। जो पुरुष हानि करनेवालों के साथ भलाई करता है, उसके दर्शन मात्र से पाप नष्ट हो जाता है ।।३९।। हे देव ! हे सदाशिव ! ऐसा मैंने भगवान् का सुन्दर वचन सुना है, इस कारण जिसने ऐसा किया है, तो करने दें ।।४०।। सूतजी बोले– उस घुश्मा के ऐसा कहने पर अति प्रसन्न हुए दयासागर, भक्तवत्सल महेश्वरजी यह वचन बोले ।।४१।। शिवजी बोले– हे घुश्मे ! और कोई वर मांग, तेरे मनोवांछित फल दूंगा, मैं तेरी भक्ति से तथा विकारहीन स्वभाव से अति प्रसन्न हूं ।।४२।। सूतजी बोले– इस प्रकार शिवजी का वचन सुनकर वह बोली, हे नाथ ! यदि आप मुझे वर देना चाहते हो, तो आप संसार की रक्षा के निमित्त मेरी प्रार्थना से यहां ही निवास करें ।।४२।। उस समय वहां अति प्रसन्न हुए शिवजी बोले, तुम्हारे नाम से (घुश्मेश नाम से) प्रसिद्ध होकर, मैं यहां

निवास करूँगा ।।४४।। यह मेरा घुश्मेश नामक शुभ ज्योतिर्लिंग प्रसिद्ध हो जायेगा तथा यह सरोवर सदा ज्योतिर्लिंगों का स्थान होगा ।।४५।। इस कारण यह सरोवर शिवालय नाम से तीनों लोकों में प्रसिद्ध होगा और दर्शन करने से सम्पूर्ण कामनाओं का देनेवाला होगा।।४६।। हे सुव्रते! तुम्हारे वंश में एक सौ एक पीढ़ी तक ऐसे ही श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न होंगे, इसमें कुछ संशय नहीं है ।।४७।। तथा सुन्दर स्त्रीवाले, अतिधनी, बड़ी अवस्थावाले, बड़े प्रवीण विद्यावाले, बड़े उदार पुत्र, भुक्ति–मुक्ति के फल के भागी होंगे ।।४८।। एक सौ एक पीढ़ी तक अधिक गुणी सन्तान होंगी, इसी प्रकार तेरे शोभायमान वंश का विस्तार होगा ।।४९।। सूतजी बोले– ऐसा कहकर शिवजी वहां लिंगस्वरूप हुए और घुश्मेश नाम से विख्यात हुए तथा वह सरोवर शिवालय नाम से विख्यात हुआ ।।५०।। उस समय सुधर्मा तथा घुश्मा, सुदेहा यह सब वहां आये और एक सौ एक बार शिवजी की प्ररिक्रमा की ।।५१।। शिवजी का पूजन करके तथा परस्पर मिलकर वहां मन की मलिनता को त्याग करके परमसुख को प्राप्त हुये ।।५२।। उस समय वह सुदेहा पुत्र को जीवित हुआ देखकर बड़ी लज्जित हुई। हे विप्रो! उसने उन दोनों से क्षमा मांगकर अपने पापों को दूर करनेवाला व्रत (प्रायश्चित्त) किया ।।५३।। हे मुनीश्वरो! इस प्रकार घुश्मेश नामक ज्योतिर्लिंग उत्पन्न हुआ, उनके दर्शन तथा पूजन करके सदा सुख की वृद्धि होती है ।।५४।। हे ऋषियो! इस प्रकार मैंने बारह संख्यावाली ज्योतिर्लिंगावली आपसे कही, यह सम्पूर्ण मनोरथों को देनेवाली तथा भोग और मुक्ति को देनेवाली है ।।५५।। जो मनुष्य ज्योतिर्लिंग सम्बन्धी इस कथा को पढ़ता है अथवा सुनता है, वह सब पापों से छूटकर भुक्ति तथा मुक्ति को प्राप्त होता है ।।५६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां
घुश्मेशज्योतिर्लिंगोत्पत्तिमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयत्रिंशोऽध्यायः ।। ३३ ।।

इति द्वादश ज्योतिर्लिंगमाहात्म्यं समाप्तम् ।।

*****

चौतीसवाँ अध्याय

व्यासजी बोले– ऐसा सूतजी का वचन सुनकर मुनीश्वर लोकों के हित की कामना से सूतजी की प्रशंसा करके उनसे यह वचन बोले ।।१।। ऋषि बोले– हे सूतजी! हे प्रभो! आप सब कुछ जानते हो, इस कारण हम पूंछते हैं, अब आप हरीश्वर नामवाले ज्योतिर्लिंग के माहात्म्य को कहिये ।।२।। हे तात! शिवजी की आराधना से पहले विष्णुजी ने सुदर्शनचक्र प्राप्त किया है, उसकी विशेष कथा सुनाइये ।।३।। सूतजी

बोले- हे ऋषिश्रेष्ठो! हरीश्वर की शुभ कथा सुनिये, जिन शंकरजी से विष्णुजी ने पूर्व में सुदर्शनचक्र प्राप्त किया था।।४।। एक समय दैत्य अति बलवान् हो गये और वे सब मनुष्यों को पीड़ा देने लगे तथा धर्म का लोप करने लगे।।५।। तब उन महाबलि पराक्रमी दैत्यों से पीड़ित हुये देवताओं ने उनकी रक्षा करनेवाले विष्णुजी से अपना दुःख कहा।।६।। देवता बोले- हे प्रभो! आप दया करें, हमें दैत्यों ने अति पीड़ित किया है, कहां जायँ? क्या करें? अपनी शरण में प्राप्त हुए।।७।। दुःखी हुए देवताओं का इस प्रकार वचन सुनकर शिवजी के चरणकमलों का स्मरण करके विष्णुजी यह वचन बोले।।८।। विष्णुजी बोले- हे देवताओ! मैं शिवजी की आराधना करके आपका कार्य करूँगा, यह बलवान् शत्रु उद्योग से अवश्य ही जीतने योग्य है।।९।। सूतजी बोले- तब सामर्थ्यवान् भगवान् विष्णुजी के ऐसा कहने पर वे समस्त देवता उन दुष्ट दैत्यों को मरा जानकर अपने-अपने स्थानों को चले गये।।१०।। विष्णुजी भी देवताओं के विजय लाभ के निमित्त समस्त देवताओं के स्वामी, सबके साक्षी, अविनाशी शिवजी का भजन करने लगे।।११।। विष्णुजी स्वयं कैलासपर्वत के समीप जाकर वहां कुण्ड खोदकर अग्नि को स्थापन करके उसके आगे तप करने लगे।।१२।। पार्थिव विधान के सहित तथा अनेक मन्त्रों से, अनेक स्तोत्रों से प्रसन्नतापूर्वक शिवजी का भजन करने लगे।।१३।। हे मुनीश्वरो! वहां विष्णुजी मानसरोवर में उत्पन्न हुए कमलों से शिवजी को पूजने लगे और आसन बांधकर स्वयं स्थित हुए।।१४।। शिवजी के प्रसन्न होने तक मैं सर्वथा यहां स्थित रहूंगा, ऐसा निश्चय करके विष्णुजी सदाशिवजी की पूजा करने लगे।।१५।। हे ब्राह्मणो! जब वह शिवजी विष्णुजी से सन्तुष्ट नहीं हुए, तब भगवान् विष्णुजी विचार में तत्पर हुए।।१६।। और मन में विचार कर अनेक प्रकार सेवा की, तो भी लीला करनेवाले प्रभु शिवजी प्रसन्न न हुए।।१७।। तब अधिक भक्ति में तत्पर और अति विस्मित हुए विष्णुजी ने प्रीति से शिवजी के सहस्रनामों को पढ़कर सदाशिवजी को सन्तुष्ट किया।।१८।। एक-एक नाम मन्त्र का उच्चारणकर एक-एक कमल चढ़ाकर शरणागत वत्सल शिवजी की पूजा करने लगे।।१९।। तब विष्णुजी के प्रेम की परीक्षा के निमित्त सदाशिवजी ने उन सहस्र कमलों में से एक कमल हरण कर लिया।।२०।। उस समय विष्णुजी ने यह मायारूपी अद्‌भुत चरित्र नहीं जाना, एक कमल को न्यून जानकर वे उसे ढूँढ़ने लगे।।२१।। उन अचल व्रतधारी विष्णुजी ने उस कमल को ढूंढ़ने के लिये समस्त पृथ्वी पर भ्रमण किया और जब उसे न पाया, तब शुद्ध चित्त होकर अपना नेत्र चढ़ा दिया।।२२।। यह देखकर सम्पूर्ण दुःख दूर करनेवाले सदाशिवजी प्रसन्न हो गये और वहां प्रकट होकर विष्णुजी से यह वचन बोले।।२३।। शिवजी बोले- हे विष्णो! मैं आपसे प्रसन्न हूं, आप मनोवांछित वर मांगे, आपको इच्छा के अनुसार वरदान दूंगा, आपको अदेय वस्तु कुछ नहीं है।।२४।।

सूतजी बोले– ऐसा शिवजी का वचन सुनकर भगवान् विष्णुजी बड़े आनन्द को प्राप्त हुए और हाथ जोड़कर शिवजी से बोले ।।२५।। विष्णुजी बोले– हे नाथ! आपके आगे क्या कहने योग्य है? आप सबके अन्तर्यामी होकर स्थित है, तो भी आपकी आज्ञा के गौरव से मैं कहता हूं ।।२६।। हे स्वामिन्! हे सदाशिव! दैत्यों ने सम्पूर्ण संसार को पीड़ित किया है, इससे मुझे सुख नहीं है। दैत्यों का नाश करने में मेरा शस्त्र समर्थ नहीं है ।।२७।। हे परमेश्वर! मैं क्या करूं, कहां जाऊं? मेरा और कोई रक्षा करनेवाला नहीं है, इस कारण मैं आपकी शरण में आया हूं ।।२८।। सूतजी बोले– ऐसा कहकर परमात्मा शिवजी को नमस्कार कर दैत्यों से पीड़ित हुए विष्णुजी स्वयं शिवजी के आगे स्थित हुए ।।२९।। सूतजी बोले– ऐसा विष्णुजी का वचन सुनकर देवों के देव महेश्वरजी ने विष्णुजी को तेज के समूहवाला अपना सुदर्शनचक्र दिया ।।३०।। उस चक्र को पाकर भगवान् विष्णुजी ने उससे बिना परिश्रम के ही उन सम्पूर्ण बलवान् दैत्यों का विनाश किया ।।३१।। सम्पूर्ण संसार स्वास्थ्य को प्राप्त हुआ, देवता सुखी हुए, भगवान् विष्णुजी सुदर्शनचक्र को प्राप्त होकर बड़े सुखी हुए ।।३२।। ऋषि बोले– हे सूतजी! वह कौनसा शिवसहस्रनाम है? उसे कहिये, जिससे सन्तुष्ट होकर शिवजी ने विष्णुजी को वह सुदर्शनचक्र दिया ।।३३।। उस माहात्म्य को शिवजी के संवादपूर्वक कहिये, जो विष्णुजी के ऊपर शिवजी की दया का भाव उत्पन्न करनेवाला है ।।३४।। व्यासजी बोले– सावधान चित्तवाले उन मुनियों का ऐसा वचन सुनकर शिवजी के चरणकमलों का स्मरण करके सूतजी यह वचन बोले ।।३५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां
विष्णुसुदर्शनचक्रलाभवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।। ३४ ।।

*****

पैंतीसवाँ अध्याय

इस शिवसहस्रनाम में सब शब्दों की व्याख्या प्राचीन टीकाकारों के अनुसार की है, जहां दो शब्दों की किसी अंश में समानता पाई जाती है, वहां प्राचीनों के मतानुसार उन दोनों की एकता कर दी है और कोई शब्द जो नाम से, कोई अर्थ से एक से प्रतीत होते हैं, इसमें पुनरुक्ति की शंका करनी नहीं, कारण कि प्रवृत्ति निमित्त की एकता में कहीं शब्दभेद से और कहीं शब्द की एकता में उनकी प्रवृत्ति के निमित्त भेद से पुनरुक्ति नहीं हो सकती, जहां पुल्लिंग शब्द का प्रयोग है, वहां शिवदेवता वाचक है, जहां स्त्रीलिंग का प्रयोग है वहां शिवादेवता वाचक है, कारण कि देवता शब्द स्त्रीलिंग है,

जहां नपुंसकलिंग का प्रयोग है, वहां ब्रह्म का विशेषण जानना, इन सबके मंगल के निमित्त प्रथम (शिव) इस मंगलयुक्त नाम का ही प्रारम्भ करते हैं। सूतजी बोले- हे ऋषिश्रेष्ठो! सुनिये, जैसा सुना है, वह आपके प्रति कहता हूं, जिस प्रकार विष्णुजी की प्रार्थना से शिवजी सन्तुष्ट हुए, वह हम पवित्र सहस्रनाम श्रवण कराते हैं।।१।। भगवान् श्रीविष्णुजी बोले- (शिवः) मंगल करनेवाले अथवा त्रिगुण रहित होने से 'शिव' हैं (हरः) सृष्टि के अन्त में संहार करने से 'हर' हैं (मृडः) सुख दायक हैं (रुद्रः) प्रजान्त समय में उनको संहार करने से रुवाते हैं अथवा दुःख दूर करने से 'रुद्र' नाम हैं अथवा दुष्टों को दुःख देने से 'रुद्र' नाम हैं (पुष्करः) पुष्टि करते हैं (पुष्पलोचनः) पुष्प के समान नेत्रवाले (अर्थिगम्यः) स्वर्ग मोक्षादि कामनावालों के उपासनीय (सदाचारः) सत्पुरुषों जैसे आचरण करनेवाले (शर्वः) सब प्रजा के अन्तकारक (शम्भुः) भक्तों के सुखदाता (१०); (महेश्वरः) परमेश्वर 'यः परः स महेश्वर इति श्रुतेः'।।२।। (चन्द्रापीडः) चन्द्रमा जिनके सिर का भूषण है (चन्द्रमौलिः) जिनके मस्तक पर चन्द्रमा है (विश्वम्) परब्रह्म स्वरूप (विश्वामरेश्वरः) संसार और समस्त देवताओं के स्वामी (वेदान्तसारसन्दोहः) वेदान्तसार के पूर्णज्ञाता (कपालीः) कपालधारी (नीललोहितः) नील और लाल जटावाले।।३।। (ध्यानाधारः) योगियों के ध्यान में आनेवाले (अपरिच्छेद्यः) देश, काल, परिच्छेद शून्य (२०) (गौरीभर्ता) पार्वतीपति (गणेश्वरः) प्रमथादि गणों के नियन्ता (अष्टमूर्तिः) आकाशादि अष्टमूर्ति में स्थित (विश्वमूर्तिः) जिनकी जगत्मूर्ति है (त्रिवर्ग-स्वर्गसाधनः) धर्म, अर्थ, काम अचिन्त्य सुखसाधक।।४।। (ज्ञानगम्यः) वेदान्त के अर्थज्ञान मात्र से जानने योग्य (दृढप्रज्ञः) नित्य ज्ञानयुक्त (देवदेवः) देवताओं के देवता वा सामर्थ्य देकर उनको प्रकाश और आनन्द देनेवाले (त्रिलोचनः) तीन नेत्रवाले अथवा तीन लोक, तीन गुण, तीन वेद में जिनका ज्ञान है वा अकार, उकार, मकार तीन अक्षर जिनके नेत्र हैं, यद्वा, शास्त्र, आचार्य और ध्यान निदर्शन साधन ही जिनके तीन नेत्र हैं; यही अर्थ महाभारत के टीकाकर नीलकण्ठजी ने लिखा है। (वामदेवः) दुष्टों का मद निकालनेवाले अथवा लोग के विपरीत और सुन्दर होने से वाम हैं अथवा कर्मफलों के विभाग करने से वाम है (३०) (महादेव) पूजनीय वा ब्रह्मादिकों के भी पूजनीय (पटुः) दुःखनाश कर्ता अथवा भक्तों का कल्याण करने में चतुर (परिवृढः) जगत् के स्वामी (दृढः) बलवान्।।५।। (विश्वरूपः) सर्व जगत्स्वरूप (विरूपाक्षः) विषमनेत्र (वागीशः) वेदवाणी के पति (शुचिसत्तमः) त्रैगुण्य रहित होने से शुद्ध (सर्वप्रमाण-संवादीः) सब वेदादि के प्रमाण के ज्ञाता (वृषाङ्कः) वृष चिह्नधारी अथवा धर्मयुक्त (४०) (वृषवाहनः) नन्दी वाहनवाले।।६।। (ईशः) सर्व जगत् के स्वामी (पिनाकी) पिनाक धनुषधारी (खट्वाङ्गीः) खट्वांगायुध युक्त (चित्रवेषः) अनेक प्रकार के वेष कार्यानुसार धारण करनेवाले (चिरन्तनः) त्रिकालाबाध्य (तमोहरः) अविद्या के नाशकर्ता

(महायोगी) अष्टाङ्ग योग के तत्त्व जाननेवाले (गोप्ता) रक्षा करनेवाले (ब्रह्मा) सब कुछ उत्पन्न करनेवाले महान् गुण पूर्ण (५०) (धूर्जटिः) भारभूत जिनकी जटा है अथवा गंगाजी जिनकी जटा में हैं ।।७।। (कालकालः) मृत्यु और यम की भी संख्या करनेवाले (कृत्तिवासाः) चर्म के वस्त्र वाले ''पिनाकहस्तः कृत्तिवासा इति श्रुते'': (सुभगः) सुन्दर ऐश्वर्य वाले (प्रणवात्मकः) ओंकार स्वरूप ''ओमित्येकाक्षरं ब्रह्मेति, श्रुतेः'' (उन्नध्रः) पापियों को पाश से बांधने वाले (पुरुषः) सबके शरीर में व्याप्त होने वा शयन करने से उन्हें पुरुष कहते हैं वा परिपूर्ण होने से (जुष्यः) मन, वचन, कर्म से सेवनीय (दुर्वासाः) वल्कलादि वस्त्र धारण करनेवाले अथवा दुर्वासा नामक अत्रि के पुरुषरूप से अवतार लेनेवाले (पुरशासनः) त्रिपुरासुर को मारनेवाले (६०)।।८।। (दिव्यायुधः) पिनाकादि आयुध धारी (स्कन्दगुरुः) षडानन के पिता (परमेष्ठी) अपनी महिमावाले आकाश में स्थित होनेवाले (परात्परः) अव्यक्त से भी परे (अनादि-मध्यनिधनः) काल देश से अपरिच्छिन्न (गिरीशः) मेरु आदि के भी ईश (गिरिजाधवः) उमा के स्वामी ।।९।। (कुबेरबन्धुः) कुँबेर के भाई (श्रीकण्ठः) शोभा अथवा वेद जिनके कण्ठ में हैं ''ऋचःसामानि यजूंषि सा हि श्रीरमृतासतामिति श्रुतेः''(लोकवर्णोत्तमः) लोक जिनके भास्वद्रूप को देखते हैं अथवा जो लोक में ब्राह्मणादिकों से श्रेष्ठ ।।७०।। (मृदुः) भक्तों में सौम्यरूप (समाधिवेद्यः) अभ्यास किये योग से जानने योग्य (कोदण्डी) धनुर्युक्त (नीलकण्ठः) विषपान से नीला हैं कण्ठ जिनका (परस्वधीः) भक्तों को अपना धन देकर पुष्ट करनेवाले अथवा भक्तों में अपनी बुद्धि करनेवाले ।।१०।। (विशालाक्षः) बड़े नेत्रोंवाले (मृगव्याधः) मृग पशुजीव के संहार करने में व्याधरूप अथवा अर्जुन पर अनुग्रह करने के लिये व्याधरूप रखने वाले (सुरेशः) देवताओं के ईश (सूर्यतापनः) दुर्जनों को सूर्य के समान ताप देनेवाले अथवा सूर्य को भी भय देनेवाले ''भीषोदेति सूर्य इति श्रुतेः'' (धर्मधामः) वर्णाश्रमादि धर्मों के स्थान (८०) (क्षमाक्षेत्रम्) क्षमा के उत्पत्ति स्थान (भगवान्) छः गुणों के ऐश्वर्य युक्त (भगनेत्रभित्) दक्ष के यज्ञ में भगदेवता के नेत्र उखाड़नेवाले ।।११।। (उग्रः) सर्व के संहार करने से उग्र (पशुपतिः) पशु जीवों के पालक (तार्क्ष्यः) कश्यपरूप (प्रियभक्तः) भक्तों के प्यार करनेवाले (परन्तपः) शत्रुओं को ताप देनेवाले, कहीं 'प्रियंवदः' ऐसा भी पाठ है। (दाताः) भक्तों को ऐश्वर्य के देनेवाले (दयाकरः) भक्तों का उद्धार करनेवाले (९०) (दक्षः) जगत् रूप से वृद्धि को प्राप्त होकर सब कर्मों को शीघ्र करनेवाले (कर्मन्दी) संन्यासी कर्मन्दी मुनि कृत भिक्षुसूत्र के ज्ञाता अथवा कर्मन्दी रूप से प्रकट होकर ज्ञान प्रकाश करनेवाले (कामशासनः) कामदेव के हन्ता ।।१२।। (श्मशाननिलयः) श्मशान में निवास करनेवाले (सूक्ष्मः) शब्दादि स्थूल कारण रहित होने से सूक्ष्म ''सर्वगतं सुसूक्ष्ममिति श्रुतेः''(श्मशानस्थः) श्मशान में रहनेवाले (महेश्वरः) महान् ईश्वर

(लोककर्ता) जगत् के उत्पादक (मृगपतिः) मृगजीव पशुओं के रक्षक (महाकर्ता) पंचमहाभूतों को भी निर्माण करनेवाले ''विश्वस्य कर्ता भुनवस्य गोप्तेत्यादय आगमाः'' (१००) यहां सहस्रनाम में प्रथम शतक पूर्ण हुआ।। (महौषधिः) व्रीहि यवादि रूप अथवा संसार रोग को छुड़ानेवाले ।।१३।। (उत्तरः) जन्म संसार-सागर से उतारने में सर्वोत्कृष्ट ''विश्वस्मादिन्द्र उत्तर इति श्रुतेः'' (गोपतिः) स्वर्ग, पृथ्वी, पशु, वाणी, रश्मी और जल के स्वामी (गोप्ता) सब भूतों को पालनेवाले (ज्ञानगम्यः) केवल कर्म से ही नहीं किन्तु कर्म से चित्त शुद्धि कर ज्ञानवैराग्य से प्राप्त होने योग्य (पुरातनः) काल से अपरिच्छिन्न होने से पुरातन (नीतिः) दण्ड योग्यों में दण्ड प्रणयन रूप (सुनीति) सुन्दर नीति अर्थात् मोक्षादि प्राप्त करनेवाले (शुद्धात्मा) निर्मलचित्त (सोमः) चन्द्र रूप से औषधियों को पुष्ट करनेवाले अथवा उमा के सहित रहनेवाले (११०) (सोमरतः) चन्द्र, अमृत वा सोमरस में प्रीति करनेवाले (सुखी) आनन्दयुक्त भक्तों को सुख देनेवाले ''एष ह्येवानन्दयतीति श्रुतेः''।।१४।। (सोमपः) यज्ञों में देवता रूप से सोमपान करनेवाले अथवा धर्म मर्यादा दिखाते हुए यजमान रूप से सोमपान करनेवाले (अमृतपः) अपनी आत्मा का अमृत पान करनेवाले (सौम्यः) भक्तों में सौम्यरूप (महातेजाः) जिनके तेज से सूर्य आदि तेजस्वी तपते हैं ''येन सूर्यस्तपति तेजसेद्ध इति श्रुतेः'' (महाद्युतिः) महान् द्युतिवाले ''स्वयंज्योतिरिति श्रुतेः'' ''महानीतिर्महामतिः'' ऐसा भी पाठ है। (तेजोमयः) विश्व को प्रकाशनेवाले अथवा तेजयुक्त (अमृतमयः) मरणरहित अथवा जलमय ''अमृतं वा आप इति श्रुतेः'' अष्टमूर्ति के अन्तर्गत जलस्वरूप अथवा मोक्षानन्दमय (अन्नमयः) अन्न स्वरूप ''अन्नमय आत्मा'' ''अन्नं ब्रह्मेति श्रुतेः''(१२०) (सुधापतिः) देवताओं को पिलाने के लिये अमृत के रक्षक ।।१५।। (अजातशत्रुः) आप ही सबके शासन करनेवाले होने से शत्रु रहित (आलोकः) स्वप्रकाश रूप (सम्भाव्यः) सब देव असुरादि के माननीय (हव्यवाहनः) अग्निस्वरूप से देवताओं की हवि पहुँचानेवाले ''देवेभ्यो हव्यवाहनः'' ''प्रजानन्निति श्रुतेः''(लोककरः) लोकों के कर्ता (वेदकरः) ऋगादि वेदों के प्रकाशक (सूत्रकारः) सूत्रकर्ता व्यासादि रूप होनेवाले (सनातनः) सदा होनेवाले ।।१६।। (महर्षिकपिलाचार्यः) सम्पूर्ण वेदों के देखने-जानने से महर्षि और वेद का एक देश जाननेवाले ऋषि कहलाते हैं, सांख्य द्वारा शुद्ध आत्मा के जाननेवाले कपिलाचार्य रूप से होनेवाले ''ऋषिं प्रसूतं कपिलं महान्तमिति श्रुतेः'' (१३०) (विश्वदीप्तिः) जिनकी दीप्ति संसार है ''यस्य भासा सर्वमिदमिति श्रुतेः'' (त्रिलोचनः) तीन नेत्रोंवाले (पिनाकपाणिः) पिनाक धनुष वा शूल धारण करनेवाले (भूदेवः) पृथ्वी पर दुर्वासा आदि ब्राह्मणरूप से उत्पन्न होनेवाले (स्वस्तिदः) भक्तों को मंगल देनेवाले (स्वस्तिकृत्) पृथ्वी पर भक्तों का मंगल करनेवाले (सुधीः) श्रेष्ठ ज्ञानयुक्त ।।१७।। (धातृधामा) विश्व को धारण करने में समर्थ तेजवाले (धामकरः) सूर्यादि तेज के कर्ता

वा सब प्राणियों के देह के कर्ता (सर्वगः) सर्वव्यापी (१४०) (सर्वगोचरः) सब जगत् का प्रत्यक्ष करनेवाले (ब्रह्मसृक्) ब्रह्मा वा वेद के स्रष्टा (विश्वसृक्) संसार बनानेवाले (सर्गः) सृष्टिरूप (कविः) सब कुछ जाननेवाले "कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूरिति श्रुतेः" "नान्योऽतोस्ति द्रष्टेत्यादि श्रुतेः"।।१८।। (शाखः) इस नाम के ऋषिरूप (विशाखः) विशाख ऋषि वा स्कन्दरूप (गोशाखः शिवः) वेदों की शाखा जिनमें रहती हैं वा जिनमें जगत् सोता है अथवा त्रिगुण रहित होने से शिव "स ब्रह्मा स शिव इति श्रुतेः" यह दो शब्दों का एक नाम है। (१५०) (भिषक्) धन्वन्तरिरूप से रोग का नाश करनेवाले वा संसार रोग के नाश कर्ता "भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमीति श्रुतेः" (अनुत्तमः) जिनसे अधिक श्रेष्ठ कोई नहीं "यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चिदिति श्रुतेः" (गंगाप्लवोदकः) भागीरथ के प्रवाह के तुल्य (जनतारकः) जिनमें जल है (भव्यः) सर्व कल्याणयुक्त (पुष्कलः) सर्वव्यापी (स्थपतिःस्थिरः) अनन्त ब्रह्माण्डों का स्रष्टा अथवा माया कंचुकी। यह दो शब्द एक वाचक हैं।।१९।।(विजितात्मा) आत्मा को जितनेवाले (विषयात्मा) सर्व जगत् प्रपंच जिनकी आत्मा है अथवा जिनकी आत्मा प्रत्यक्षादि के अगोचर है "विधेयात्मा" ऐसा भी कहीं पाठ है। (भूतवाहनसारथिः) जीवों को कर्मफल प्राप्त करानेवाले ब्रह्मा जिनके सारथि (सगणः) प्रमथादि गण युक्त।।१६०।। (गणकायः) गण ही जिनका शरीर है अथवा जिनकी काया अपरिच्छेद्य है (सुकीर्तिः) जिनकी सुन्दर कीर्ति है (छिन्नसंशयः) सर्वज्ञ होने से संशय रहित।।२०।। (कामदेवः) धर्मादि पुरुषार्थों की इच्छा करनेवाले (कामपालः) कामियों की कामना पूर्ण करनेवाले (भस्मद्धूलितविग्रहः) शरीर पर भस्म लगाये हुए (भस्मप्रियो भस्मशायी) भस्म प्रिय होने से शयन करनेवाले, यह भी दो शब्द एक वाची हैं। (कामी) पूर्ण कामवाले "सोऽकामयतेति श्रुतेः" (कान्तः) मनोहर अथवा द्वितीय परार्द्ध में ब्रह्मा के भी अन्तकर्ता (कृतागमः) श्रुति, स्मृति आदि आगमरूप लक्षण को प्रकट करनेवाले (१७०)।।२१।। (समावर्तः) संसार चक्र को घुमानेवाले (अनिवृत्तात्मा) सब स्थानों में विद्यमान होने से अनिवृत्त आत्मावाले (धर्मपूञ्जः) धर्म के ढेर (सदाशिवः) सदा कल्याणस्वरूप (अकल्मषः) नित्य शुद्ध (चतुर्बाहुः) विष्णुस्वरूप (दुरावासः) समाधि में भी कठिनता से योगियों के चित्त में आनेवाले "सर्वावासः" ऐसा भी पाठ है। (दुरासदः) दुःख से प्राप्त होने योग्य।।२२।। (दुर्लभः) दुर्लभ भक्ति से प्राप्त होनेवाले (दुर्गमः) कठिनता से जानने योग्य (१८०) (दुर्गः) दुःख से प्राप्त होने योग्य (सर्वायुध-विशारदः) सम्पूर्ण अस्त्र विद्याओं में विशारद (अध्यात्मयोगनिलयः) असम्प्रज्ञात समाधि जिनका स्थान है (सुतन्तुः) जिनसे श्रेष्ठ प्रपंच का विस्तार हुआ है (तन्तुवर्द्धनः) संसार को बढ़ाने वा छेदन करनेवाले।।२३।। (शुभाङ्गः) श्रेष्ठ अंगवाले (लोकसारङ्गः) सारंग के समान लोक का सार ग्रहण करनेवाले वा लोकसार ओंकार से जानने योग्य

(जगदीशः) जगत् के नियन्ता (जनार्दनः) जगत् के संहार कर्ता (भस्मशुद्धिकरः) भस्म से शुद्धि को उत्पन्न करनेवाले (१९०) (मेरुः) सुमेरुपर्वतस्वरूप (ओजस्वी) आत्मा के बलवाले (शुद्धिविग्रहः) चिदात्मक।।२४।। (असाध्यः) दुश्चरित्रों को प्राप्त न होनेवाले (साधुसाध्यः) साधुजनों को प्राप्त होनेवाले (भृत्यमर्कटरूपधृक्) हनुमान् रूपधारी (हिरण्यरेताः) अग्निस्वरूप (पौराणः) सब पुराणों में ब्रह्मरूप से प्रतिपाद्य (रिपुजीवहरः) शत्रु के प्राण हरनेवाले (बलः) सर्वशक्तिमान् (२००) यहां दूसरा शतक पूर्ण हुआ।।२५।। (महाह्रदः) जिसमें योगी विश्राम लेकर सदानन्द में रहते हैं (महागर्तः) दुरत्यय मायावाले अथवा महारथवाले (सिद्धवृन्दारवन्दितः) सिद्ध और देवताओं के समूह द्वारा स्तुति किये हुए (व्याघ्रचर्माम्बरः) व्याघ्रचर्म के वस्त्रवाले (व्यालीः) वासुकि आदि सर्पों के भूषणधारी (महाभूतः) कालत्रय में अवच्छिन्न महत्तत्त्वरूप अथवा जिनसे महान् विराट् उत्पन्न हुआ है ''यो ब्राह्मणं विदधाति पूर्वमिति श्रुतेः'' (महानिधिः) जिनमें सब प्राणी समा जाते हैं।।२६।। (अमृताशः) स्वात्मानन्द अमृत रस के पान करनेवाले (अमृतवपुः) मरण रहित शरीरवाले ''अजरोमर इति श्रुतेः'' (पाञ्चजन्यः) पञ्जजनों में होनेवाले अग्निरूप ''अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः इति श्रुतेः'' कहीं ''पञ्चयज्ञ'' ऐसा भी पाठ है, वहां यह समझना कि, जिनसे यज्ञ उत्पन्न हुए हैं।(२१०) (प्रभञ्जनः) भक्तों के मायारूपी आवरण का नाश करनेवाले अथवा वायुरूप (पञ्चविंशतितत्त्वस्थः) प्रकृति आदि पचीस तत्त्वों में स्थित ''तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशदिति श्रुतेः'' (पारिजातः) कल्पवृक्षस्वरूप (परावरः) ब्रह्म और जगद्रूप।।२७।। (सुलभः) पत्र-पुष्पादि समर्पण करने से ही भक्तों को प्राप्त होनेवाले (सुव्रतःशूरः) शोभनव्रत अर्थात् भक्तों की रक्षा का व्रत करनेवाले वा नियताहार अथवा भोजन करनेवाले; शूर अथवा सूर्यरूप, यह दोनों एक हैं। (ब्रह्मवेदनिधिः) वेद के प्रादुर्भाव के स्थान ''अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेद्यदृग्वेद इत्यादि श्रुतेः'' ''वाङ्मयैकनिधि'' ऐसा भी पाठ है। योगियों से स्थापित (वर्णाश्रमगुरुः) ब्राह्मण आदि वर्ण और ब्रह्मचर्यादि आश्रमों के उपदेशक वा उत्पन्नकर्ता (वर्णीः) ब्रह्मचारीस्वरूप (२२०) (शत्रुजिच्छत्रुतापनः) देवताओं के शत्रुओं को जीतनेवाले और उनको ताप देनेवाले, यह भी दो शब्द एक हैं।।२८।। (आश्रमः) आश्रम के समान संसार में भ्रमण करनेवालों को विश्राम देनेवाले (क्षपणः) भक्तों के पापक्षय करनेवाले (क्षामः) प्रलय में प्रजा के क्षीण करनेवाले (ज्ञानवान्) नित्य ज्ञानयुक्त (अचलेश्वरः) पृथ्वी पर्वतादिकों के स्वामी (प्रमाणभूतः) जिनसे प्रत्यक्षादि प्रमाण उत्पन्न हुए हैं (दुर्ज्ञेय) अति परिश्रम से जानने योग्य (सुपर्णः) धर्माधर्म रूप पक्षयुक्त वा गरुडरूप अथवा सबके उत्पादक ''सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं संतं बहुधा कल्पयन्तीत्यादि श्रुतेः'' अथवा छन्दरूप पणवाले (वायुवाहनः) वायु जिनके रथ की सोपान है अथवा जिनके भय से वायु प्राणियों को वहन करती

है ''भीषास्माद्वात: पवते इति श्रुते:'' (२३०)।।२९।। (धनुर्द्धरोधनुर्वेद:) पिनाकधारी जिनसे धनुर्वेद प्रकट हुआ है। यह दो शब्द एक वाचक हैं। (गुणराशिर्गुणाकर:) जिनसे योगादि गुणों का संघात होता है; योग, सांख्य, तप, विद्या, विधि, क्रिया, ऋतु, सत्य, दया, अहिंसा, श्रेष्ठमति, क्षमा, ध्यान, ध्येय, दम, शान्ति, विद्या, मति, धृति, कान्ति, नीति, प्रथा, मेधा, लज्जा, दृष्टि, सरस्वती, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, प्रसाद, प्रतिष्ठितता आदि गुणों की खान, यह भी दो एक हैं। (सत्य:सत्यपर:) साधुओं में सत्यस्वरूप यथार्थ कथन में निष्ठावान्, यह भी दो एक हैं। (दीन:) बाह्यदृष्टिवालों को श्मशानादि में वास करने से दारिद्ररूप दीखनेवाले अथवा अदीन अर्थात् सदा सन्तुष्ट रहनेवाले (धर्माङ्गोधर्मसाधन:) यज्ञादिक जिनके अंग हैं, वाराह मूर्तिरूप जैसा कि, हरिवंश में लिखा है– वेदरूप चरण, यज्ञ स्तम्भरूप दाढ, यज्ञरूप हाथ, चितिरूप मुख, अग्निरूप जीभ, डाभरूप रोम, ब्रह्मरूप सिर, दिन–रात्रिरूप नेत्र, दिव्य वेदान्त और श्रुतिरूप भूषण, धृतरूप नासिका, स्रुवारूप तुण्ड, सामवेदरूप शब्द, धर्म सत्यरूप शोभा, कर्म–विकर्म सत्क्रियायुक्त प्रायश्चित्तरूप नख, घोर पशुरूप जानु और भुजा, उग्रतायुक्त होमरूप लिंग, फलबीज महौषधि वायु से संयुक्त अन्तरात्मावाला वेदरूप स्फिचों से विकृत हुआ सोमरूप रुधिर, वेदीरूप स्कन्ध, हविरूप गन्ध, हव्यकव्यरूप वेगवान्, प्राग्वंशरूप शरीर, अनेक प्रकार की दीक्षाओं से पूजित, दक्षिणारूप हृदय योगी और महायज्ञयुक्त उपकर्मरूप ओष्ठ और प्रवर्गावर्तरूप भूषण तथा नानाप्रकार के वेदरूप गमन, गुप्त उपनिषद्रूप आसन, छाया पत्नी सहाययुक्त, मेरुशृंग के सदृश ऊँचा वाराहरूप है (हरिवंश प्रथम पर्व ४१ अध्याय में) धर्म के साधन करनेवाले, यह भी दो एक हैं।।३०।। (अनन्तदृष्टि:) असंख्य दृष्टिवाले (आनन्द) अत्यन्त सुखस्वरूप ''आनन्दं ब्रह्मेति श्रुते:'' (दण्डोदमयिता) दमन करनेवालों को भी दण्डरूप इन्द्रादि रूप से प्रजा दमन करनेवाले, यह दो एक हैं। (दम:) इन्द्रिय निग्रहस्वरूप (अभिवाद्योमहामाय:) सुर–असुरों से नमस्कार किये हुए, मायाविकों को भी मोहनेवाले, यह दो एक हैं। (२४०) (विश्वकर्मा विशारद:) विश्व के करने और सब कलाओं में चतुर अर्थात् जिनसे श्रेष्ठ सरस्वती प्रादुर्भूत हुई है, यह भी दो एक हैं।।३१।। (वीतराग:) जिनसे भक्तों के राग–द्वेष दूर हो जाते हैं (विनीतात्मा) जिन्होंने भक्तों का स्वभाव नम्र कर दिया है (तपस्वी) तपयुक्त (भूतभावन:) प्राणियों को बढ़ानेवाले (उन्मत्तवेष: प्रच्छन्न:) दिग्वासादि युक्त होने से गूढ़रूप, यह भी दो एक। (जितकाम:) कामदेव को जितनेवाले (अजितप्रिय:) विष्णुजी के प्रीतिमान् ''जितरोचि: प्रिया कवि:'' ऐसा भी पाठ है।।३२।। (कल्याणप्रकृति:) श्रेष्ठ स्वभाववाले (कल्प:) सबके आदि कारण (२५०) (सर्वलोकप्रजापति:) सर्व लोक और प्रजा के पालक (तरस्वी) भक्तों की रक्षा में वेगवान् (तारक:) भवसागर से तारनेवाले (धीमान्) श्रेष्ठ

ज्ञानयुक्त (प्रधानप्रभुः) प्रकृति के स्वामी (अव्ययः) नाशरहित।।३३।। (लोकपालः) लोकों के पालक (अन्तरात्मा) माया से अपना रूप छिपाये (कल्पादिः) शास्त्र के आदि करण (कमलेक्षणः) कमल नेत्र अथवा जिनकी दृष्टि में लक्ष्मी निवास करती है (२६०) (वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः) वेदशास्त्र के अर्थ और तत्त्व के ज्ञाता अथवा जिनसे मुनि वेदशास्त्र के अर्थ और तत्त्व को जानते हैं (अनियमः) सबके शिक्षक, स्वयंशिक्षा रहित (नियताश्रमः) सब जगत् के आश्रयभूत ।।३४।। (चन्द्रः) प्रसन्न करने से चन्द्ररूप (सूर्यः) कर्म में लोकों को प्रेरनेवाले आदित्यस्वरूप (शनिः) शनिरूप (केतुः) केतु वा धूमकेतुरूप (वराङ्गः) शोभन अंगवाले ''विरामः'' ऐसा भी पाठ है। (विद्रुमच्छविः) मूंगे के समान कान्तिवाले मंगलरूप (भक्तिवश्यः) भक्ति से वश में होनेवाले (२७०) (परब्रह्म) परब्रह्मस्वरूप (मृगबाणार्पणः) मृग के ढूंढ़ने में जिनसे भक्तों को मनरूप बाण का अर्पण होता है (अनघः) पापरहित।।३५।। (अद्रिः) सुमेरु आदिरूप (अद्र्यालयः) कैलास पर निवास करनेवाले (कान्तः) मनोरम अथवा ब्रह्मा जिनके सारथि हैं (परमात्मा) सर्वव्यापक होने से सर्वोत्कृष्ट आत्मावाले, सर्वत्र विद्यमान (जगद्गुरुः) जगत् को हित का उपदेश देनेवाले (सर्वकर्मालयाः) नित्यनैमित्तिक कर्मों के अर्पण स्थान (तुष्टः) परमानन्दैकरूप होने से नित्य सन्तुष्ट (मङ्गल्यो मङ्गलावृतः) भक्तों के मंगल में हित, मंगलों से युक्त, यह दो शब्द एक हैं। (२८०)।।३६।। (महातपाः) संसार उत्पन्न करने में जिनका तप है ''यस्य ज्ञानमयं तप इति श्रुतेः''(दीर्घतपाः) अजर-अमर होने से दीर्घ तप करनेवाले (स्थविष्ठः) अतिस्थूल (स्थविरः) वृद्धरूप (ध्रुवः) निश्चल (अहः) प्रकाशस्वरूप (सम्वत्सरः) वर्षात्मक कालरूप (व्याप्तिः) सर्वत्र विद्यमानता स्वरूप (प्रमाणः) प्रमित स्वयं प्रमाणरूप ''प्रज्ञानं ब्रह्मेति श्रुतेः''(परमम्) परम शोभायुक्त अथवा जिनसे मुक्तिरूप लक्ष्मी होती है (२९०) (तपः) ऋतु सत्य आदि रूप ''ऋतं तप इत्यादि श्रुतेः''।।३७।। (संवत्सरकरः) कालचक्र के प्रवर्तक अथवा प्रभवादि वत्सरों के उत्पादक (मन्त्रप्रत्ययः) ऋग्यजुःसाम लक्षणवाले मन्त्रों से प्रतीत होने योग्य (सर्वदर्शनः) सब कुछ प्रत्यक्ष करनेवाले ''विश्वतश्चक्षुर्विश्वाक्षमित्यादि श्रुतेः'' (सर्वेश्वरः) ईश्वरों के भी ईश्वर ''एष सर्वेश्वर इति श्रुतेः'' (सिद्धः) नित्य निष्पन्न रूप (महारेताः) महावीर्यवान् ''ऊद्धरेतं विरूपाक्षमिति श्रुतेः'' (महाबलः) महा पराक्रमी।।३८।। (योगी योग्यः) नित्य योगयुक्त योग में प्रवृत्त होनेवाले, यह दोनों एक हैं। (३००) यहां तीसरा शतक पूर्ण हुआ।। (महातेजाः) महाप्रभावयुक्त अथवा दुष्टों को न सहनेवाले (सिद्धिः) अनन्तकालरूप होने से सिद्धि (सर्वादिः) सबके आदि कारण (अग्रहः) अपुण्यकारियों से जानने को अशक्य (वसुः) जिनमें सब प्राणी वसते हैं (वसुमनाः) राग-द्वेषादि से अकलुषित चित्तवाले (सत्यः) अवितथरूप होने से सत्य ''सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्मेति श्रुतेः'' (सर्वपापहरो हरः) कायिकादि सकल पातकों

के हर्ता, यह भी दो एक हैं।।३९।। (सुकीर्तिः) सुन्दर यशयुक्त (शोभनः) अनेक ऐश्वर्यों से शोभित (३१०) (श्रीमान्) ऐश्वर्य लक्षण सामग्रीयुक्त (अवाङ्मनसागोचरः) चक्षु आदि क्या वाणी से मन से भी परे ''यतोवाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सहेति श्रुतेः'' (अमृतः शाश्वतः) अमर''अजरोऽमृत इति श्रुतेः'' नित्य, यह भी दो एक हैं। (शान्तः) इच्छा रहित होने से तरंगहीन सागररूप (बाणहस्तः प्रतापवान्) त्रिपुरादि के नाश करनेवाले, बाण हाथ में रखनेवाले, महाप्रतापी, शूर; यह भी दो एक हैं।।४०।। (कमण्डलुधरः) कमण्डलु धारण करनेवाले (धन्वी) धनुष धारण करनेवाले (वेदाङ्गः) वेदबोधक अंगरूप (वेदविन्मुनिः) वेद जाननेवाले मुनि (भ्राजिष्णुः) एक रस प्रकाश स्वरूप (३२०) (भोजनम्) माया ही जिनका भोजन है (भोक्ता) पुरुषरूप भोगनेवाले (लोकनाथः) लोक के शासक (दुराधरः) दैत्यादिकों से आराधना करने को अशक्य।।४१।। (अतीन्द्रियो महामायः) शब्दादि रहित होने से इन्द्रियों के अविषय ''अशब्दमस्पर्शमित्यादि श्रुतेः'' मायावालों पर भी माया करनेवाले, यह दोनों एक हैं। (सर्ववासः) सब में वास करनेवाले (चतुष्पथः) जिनका मार्ग चार पदार्थों का साधक है (कालयोगी) कर्म के पाक समय में प्राणियों को भोग में प्रेरणा करनेवाले (महानादः) गंभीर ध्वनिवाले (महोत्साहः) जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करने को उद्यत (३३०) (महाबलः) बलियों के भी बली।।४२।। (महाबुद्धिः) बुद्धिमानों में भी बुद्धिमान् (महावीर्यः) महान् के उत्पत्ति कारणरूप जिनका वीर्य है (भूतचारी) पिशाचादिकों के साथ चलनेवाले (पुरन्दरः) त्रिपुर को विदारण करनेवाले (निशाचरः) सायंकाल में संचार करनेवाले (प्रेताचारी) प्रेतों के साथ चलनेवाले (महाशक्तिर्महाद्युतिः) महासामर्थ्य और महाज्योति ''ज्योतिषां ज्योतिरित्यादि श्रुतेः'' यह भी दो एक है।।४३।। (अनिर्देश्यवपुः) जिनका शरीर इस प्रकार है, इसे कोई नहीं जानता (श्रीमान्) ऐश्वर्ययुक्त (३४०) (सर्वाचार्यमनोगतिः) सब आचार्यों के मन में जिनके द्वारा ज्ञान होता है (बहुश्रुतः) जिनसे अनेक शास्त्र हुए हैं (महामायः) जिनसे बड़ी माया हुई हैं (नियतात्मा ध्रुवः) नित्य आत्मस्वरूप निश्चल (अध्रुवः) जिनसे ध्रुव नहीं।।४४।। (ओजस्तेजो द्युतिधरः) प्राण, बल, शौर्यादि गुण दीप्ति धारण करनेवाले (नर्तकः) ताण्डव नृत्य करनेवाले (सर्वशासकः) सबके नियन्ता ''अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानां सर्वात्मेति श्रुतेः'' (नृत्यप्रियो नृत्यनित्यः) नाच के प्रिय होने से नित्य उनके निकट भक्तों द्वारा नृत्य होता है, यह दो एक हैं। (प्रकाशात्मा प्रकाशकः) प्रकाशात्मा होने से सबके प्रकाशक, यह दो शब्द एक हैं।(३५०)।।४५।। (स्पष्टाक्षरः) ओंकार लक्षणवाले (बुधः) सर्वज्ञ (मन्त्रः) ऋक् यजुः साम लक्षणयुक्त (समानः) विषमता निघृणता रहित (सारसंप्लवः) वेदान्तरूप संसार-सागर को तारने में साधन (युगादिकृद्युगावर्त्तः) युगादि भेद करनेवाले, कालात्मा होने से युगादि के आवर्तन करनेवाले, यह भी दो

एक हैं। (गम्भीरः) ज्ञानैश्वर्यबलादिकों से गंभीर (वृषवाहनः) जिनका नन्दी वाहन है।।४६।। (इष्टः) परमानन्दात्मक होने से प्रिय अथवा यज्ञ से पूजित (विशिष्टः) सबसे उत्कृष्ट (३६०) (शिष्टेष्टः) पण्डितों के प्रिय अथवा शिष्टों से पूजित (शलभः) सर्वत्र गमनशील (शरभः) शरभावतारी (धनुः) पिनाक धनुषधारी (तीर्थरूपः) सर्व विद्यास्वरूप (तीर्थनामा) संसार को तारने के लिये गंगादि तीर्थों को लाने वाले (तीर्थादृश्यः) गंगादि तीर्थों से दुष्प्राप्य (स्तुतः) ब्रह्मा, विष्णु आदिकों से नमस्कृत (अर्थदः) पुरुषार्थ देनेवाले।।४७।। (अपांनिधिः) सागररूप (३७०) (अधिष्ठानम्) जिनमें उपादान कारण से सब प्राणी रहते हैं (विजयः) ज्ञानवैराग्यादि ऐश्वर्य गुणों से संसार को जीतनेवाले (जयकालवित्) असुरादिकों का नाश और देवताओं के जय के समय को जाननेवाले (प्रतिष्ठितः) अपनी महिमा में स्थित ''स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नीति श्रुतेः'' (प्रमाणज्ञः) प्रत्यक्षादि और सब प्राणियों के प्रमाण को जाननेवाले (हिरण्यकवचः) सुवर्णकवचधारी ''नमो हिरण्य बाहवे, हिरण्यवर्णाय रूपायेति श्रुतेः'' (हरिः) सब पाप हरनेवाले।।४८।। (विमोचनः) तीनों दुःखों के नाशक (सुरगणः) सर्व देवात्मक (विद्येशः) सब विद्याओं के प्रवर्तक (३८०) (बिन्दुसंश्रयः) प्रणव के आत्मा (बालरूपः) ब्रह्मा के ललाट से उत्पन्न (बलोन्मत्तः) बल से सब शत्रुओं को मारनेवाले (विकर्ता) विचित्र भवन के कर्ता (गहनः) जिनकी सामर्थ्य और चेष्टा कोई जानने को समर्थ नहीं (गुहः) माया से स्वरूप छिपानेवाले।।४९।। (करणम्) जगत् की उत्पत्ति में साधक (कारणम्) उपादान और निमित्त कारणरूप (कर्ता) स्वतन्त्र (सर्वबन्धविमोचनः) ज्ञानदान से सब प्रकार अविद्या बन्धन छुड़ानेवाले (३९०) (व्यवसाय) सच्चिन्मात्रस्वरूप (व्यवस्थानः) वर्णाश्रमादि धर्म के विभाग करनेवाले (स्थानदः) सबके निमित्त कर्मानुसार स्थान देनेवाले (जगदादिजः) हिरण्यगर्भ के रूप से जगत् की आदि में होनेवाले।।५०।। (गुरुदः) शत्रुओं को अधिक खण्डन करनेवाले (ललितः) सर्व सुन्दररूप (अभेदः) अद्वैत स्वरूप (भावात्मात्मनि संस्थितः) पांच भौतिक आदि देह और जीवात्मा में अन्तर्यामीरूप से स्थित (वीरेश्वरः) शूरों के पति (वीरभद्रः) वीरभद्र नामक गणस्वरूप। (४००) यहां चौथा शतक पूर्ण हुआ ।। (वीरासनविधिः) वीरों के आसन में जिनका विधान है (विराट्) सर्व जगत्स्वरूप।।५१।। (वीरचूडामणिः) वीरों के शिरोरत्न (वेत्ता) सर्वज्ञ (तीव्रानन्दः) अत्यन्त आनन्दस्वरूप (नदीधरः) गंगा को धारण करनेवाले सागर रूप (आज्ञाधारः) अविच्छिन्न सन्ततिरूप जगत् नियम है जिनका (त्रिशूली) त्रिशूल आयुध धारण करनेवाले (शिपिविष्टः) यज्ञ में विष्णु रूप से स्थित ''यज्ञो वै विष्णुः पशवः शिपिर्यज्ञ एव पशुषु प्रविश्य तिष्ठतीति श्रुतेः'' अथवा रश्मि में रहनेवाले (शिवालयः) कल्याणयुक्त स्थानवाले (४१०)।।५२।। (वालखिल्यः) वालखिल्य

ऋषिरूप (महाचापः) बड़ा विदेह राजा का पूजनीय जिनका धनुष है (तिग्मांशुः) सूर्यरूप (बधिरः) श्रोत्र इन्द्रियरहित (खगः) अन्तरिक्षचारी (अभिरामः) जिससे सब प्रकार योगी रमण करते हैं (सुशरणः) दुःखी पुरुषों को शरणरूप सुन्दर स्थानवाले (सुब्रह्मण्यः) सब वेद, ज्ञाति, ज्ञान वेत्ता के हित करनेवाले (सुधापतिः) अमृत के स्वामी।।५३।। (मधवान् कौशिकः) इन्द्रस्वरूप। यह दोनों एक हैं।(४२०) (गोमान्) जिनके संसाररूप गौ हैं, लिंगपुराण में इसकी कथा है। (विरामः) जिनमें प्राणियों का अवसान होता है (सर्वसाधनः) जिनके सब पुरुषार्थ के देनेवाले साधन हैं (ललाटाक्षः) मस्तक में नेत्रवाले (विश्वदेहः) जगत् जिनका शरीर है (सारः) प्रलय में भी स्थिर रहनेवाले (संसारचक्रभृत्) सम्पूर्ण प्रपंच धारण करनेवाले।।५४।। (अमोघदण्डः) सफल दण्डवाले (मध्यस्थः) न्याय में स्थित पक्षपातरहित (हिरण्यः) सुवर्ण अथवा तेजरूप (४३०) (ब्रह्मवर्चस्वी) जिनसे ब्रह्माजी का प्रकाश है अथवा ब्रह्माजी की दीप्तिवाले (परमार्थः) जिनसे मोक्षरूप अर्थ सिद्ध होता है (परो मायी) उत्कृष्ट मायावाले, यह दोनों एक हैं। (शम्बरः) जिनसे उत्कृष्ट कल्याण होता है अथवा जलस्वरूप (व्याघ्रलोचनः) क्रूर नेत्रवाले।।५५।। (रुचिः) दीप्तिरूप (विरञ्चिः) ब्रह्मास्वरूप (स्वर्बन्धुः) सस्वर्गलोक में बन्धुरूप से फल देनेवाले (वाचस्पतिः) विद्याओं के स्वामी "इशानः सर्वविद्यानामिति श्रुतेः" (अहर्पतिः) सूर्यरूप (४४०) (रविः) रस ग्रहण करनेवाले (विरोचनः) अग्नि अथवा सूर्यरूप (स्कन्दः) अमृतरूप से स्रव और वायुरूप से शोषनेवाले (शास्तावैवस्वतो यमः) शासना करने को सूर्यपुत्र यम के समान, यह तीन शब्द एकवाची हैं।।५६।। (युक्तिरुन्नतकीर्तिः) अष्टाङ्ग योगयुक्त अथवा न्यायरूप महा कीर्तिवाले, यह दो एक हैं। (सानुरागः) भक्तों में प्रीतिमान् (परञ्जयः) शत्रुओं को जीतनेवाले (कैलासाधिपतिः) कैलास के स्वामी (कान्तः) मनोहर (सविताः) सब जगत् के उत्पन्न करनेवाले (४५०) (रविलोचनः) सूर्य रूपी नेत्रवाले "अग्निमूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्याविति श्रुतेः"।।५७।। (विद्वत्तमः) अतिशय ज्ञानवाले (वीतभयः) संसार के भय से रहित (विश्वभर्ता) संसार के पोषक (अनिवारितः) कर्मफल देने में किसी से भी निवारण न होनेवाले (नित्यः) उत्पत्ति नाशरहित, (नियतकल्याणः) अखण्डित कल्याण करनेवाले (पुण्यश्रवणकीर्तनः) जिनका पवित्र श्रवण और कीर्तन है।।५८।। (दूरश्रवाः) जिनसे दूर देश में भी श्रवण होता है (विश्वसहः) संसार के सहनेवाले (४६०) (ध्येयः) विचारने के योग्य (दुःस्वप्ननाशनः) होनेवाले दुःस्वप्नों का नाश करनेवाले (उत्तारणः) संसार से पार करनेवाले (दुष्कृतिहा) पापकारियों को मारनेवाले (विज्ञेयः) विशेषता से जानने योग्य (दुःसहः) दुःख से भी असुरादि जिनको नहीं मार सकते (अभवः) जन्मरहित।।५९।। (अनादिः) सबके कारण होने से आदि रहित (भूर्भुवो लक्ष्मीः) भूर्भुव लोक की लक्ष्मी शोभा जिनकी आत्मविद्या है (किरीटी)

किरीटधारी (४७०) (त्रिदशाधिप:) देवताओं के स्वामी (विश्वगोप्ता) जगत् के रक्षक (विश्वकर्ता) जगत् को उत्पन्न करनेवाले (सुवीर:) अनेक प्रकार की गतिवाले (रुचिराङ्गद:) सुन्दर बाजूबन्द भुजाओं में धारण करनेवाले ।।६०।। (जनन:) प्राणियों को उत्पन्न करनेवाले (जनजन्मादि:) प्राणियों के जन्म के आदि कारण (प्रीतिमान्) नित्य प्रीतियुक्त (नीतिमान्) नित्य नीतियुक्त (धव:) सबके स्वामी (४८०) (वसिष्ठ:) प्रलयकाल में भी विद्यमान (कश्यप:) कश्यप ऋषिरूप (भानु:) प्रकाशमान् ''तमेव भान्तमनु भाति सर्वमिति श्रुते:'' (भीम:) दुष्टों के कारण (भीमपराक्रम:) असुरादिकों को भय देने के लिये भय के पराक्रमवाले ।।६१।। (प्रणव:) ओंकाररूप (शिव-अथर्वशीर्ष में लिखा है, ''अथकस्मादुच्यते प्रणवो यस्मादुच्चार्यमाण एवर्चो यजूंषि सामान्यथर्वाङ्गिरसश्च यज्ञे ब्रह्म ब्राह्मणेभ्य: प्रणमयति तस्मादुच्यते प्रणव इति'') (सत्पथाचार:) सन्मार्ग में चलनेवाले (महाकोश:) अन्नमयादि महाकोशवाले (महाधन:) अपरिमित ऐश्वर्यवाले (जन्माधिप:) जन्मउत्पत्ति के स्वामी (४९०) (महादेव) सब भावों को छोड़े आत्मज्ञान ऐश्वर्य में प्राप्त होने से महादेव (सकलागम-पारग:) सव वेदों के अन्त जाननेवाले ।।६२।। (तत्त्वम्) ब्रह्मस्वरूप (तत्त्ववित्) स्वरूप को यथावत् जाननेवाले (एकात्मा) एक आत्मा ''आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीदिति श्रुते:'' (विभु:) सर्वव्यापक (विश्वभूषण:) जगत् जिनका भूषण है वा जिनसे जगत् भूपित है (ऋषि:) परोक्ष अथवा इन्द्रिय अगोचर के दर्शक ''विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिरिति श्रुते:'' (ब्राह्मण:) उत्तम वर्णरूप (ऐश्वर्यजन्ममृत्युजरातिग:) ऐश्वर्य से जन्मादि छ: विकारों का अतिक्रमण करनेवाले (५००) यहां पांचवां शतक पूर्ण हुआ ।।६३।। (पञ्चयज्ञसमुत्पत्ति:) देवादि पंचयज्ञों की जिनसे उत्पत्ति है (विश्वेश:) सब जगत् के ईश्वर (विमलोदय:) जिनसे मंगल का उदय होता है (आत्मयोनि:) सबके कारणरूप (अनाद्यन्त:) आदि-अन्त रहित (वत्सल:) सबके प्यारे (भक्त-लोकधृक्) भक्तजनों के धारण करनेवाले ।।६४।। (गायत्रीवल्लभ:) शिवगायत्री प्रियावाले (प्रांशु:) जिनकी सुषुम्नादि किरणें प्रकृष्ट हैं (विश्वावास:) संसार में व्याप्त (५१०) (प्रभाकर:) अत्यन्त दीप्ति करनेवाले (शिशु:) बालरूप, यह कथा लिंगपुराण में पार्वती स्वयंवर में प्रसिद्ध है। (गिरिरत:) कैलास के प्रिय (सम्राट्) सवके अधिपति व नियन्ता (सुषेण: सुरशत्रुहा) जिनकी सुन्दर गणरूप सेना है, जो देवताओं के शत्रु के नाशकर्ता हैं, यह दो एक हैं।।६५।। (अमोघोऽरिष्टनेमि:) स्तुति करने से सब फल देनेवाले ''सत्यसङ्कल्प इति श्रुते:''। शुभाशुभ फलदानरूपी चक्र के मध्य में स्थित, यह भी दोनों एक हैं। (कुमुद:) भार दूर करके पृथ्वी को प्रसन्न करनेवाले ''मुकुन्दो मुक्तिद:''ऐसा भी पाठ है।(विगतज्वर:) जिनसे सब ताप पृथक् हैं (स्वयंज्योतिस्तनुज्योति:) स्वप्रकाशात्मक सूक्ष्म तेज स्वरूपवाले, ''नीवारशूकवत्तन्वी पीता भास्वत्यणूपमा।

तस्याः शिखाया मध्ये च परमात्मा व्यवस्थित इति श्रुतेः'' यह भी दो एक हैं। (आत्मज्योतिः) आत्मारूप ज्योतिवाले ''येन सूर्यस्तपति तेजसेद्ध इत्यादि श्रुतेः'' (५२०) (अचञ्चलः) स्थिर ''वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठतीत्यादि श्रुतेः''।।६६।। (पिङ्गलः) व्याघ्रचर्मादि धारण करने से पिंगलवर्ण (कपिलश्मश्रुः) पिंगलवर्ण श्मश्रु, डाढ़ी, मूछ धारण करनेवाले (भालनेत्रः) मस्तक में तीसरा नेत्र धारण करनेवाले (त्रयीतनुः) वेदमय शरीरवाले (ज्ञानस्कन्दो महानीतिः) ज्ञान प्रदान करने से भक्तों को देनेवाले, संसार–सागर के शोषक जगत् यन्त्र की निर्वाह साधनी नीतिवाले (विश्वोत्पत्तिः) जिनसे जगत् की उत्पत्ति है (उपप्लवः) जिनसे दुष्ट पीड़ित होते हैं।।६७।। (भगोविवास्वानादित्यः) भगविवस्वानादित्य देवतारूप, यह तीनों एक हैं। (योगपारः) योग की सम्पूर्णता करनेवाले ''योगाधारः'' ऐसा भी पाठ है। (५३०) (दिवस्पतिः) इन्द्रस्वरूप (कल्याणगुणनामा) जिनके शिव, शम्भु आदि मंगलयुक्त नाम हैं (पापहा) भक्तों के पाप नाश करनेवाले (पुण्यदर्शनः) पवित्र–पुण्यरूप दर्शनवाले।।६८।। (उदारकीर्त्तिः) पूजनीय कीर्त्तिवाले (उद्योगी) सृष्टि आदि करने में उद्योगशील (सद्योगी) नित्य योगयुक्त (सदसन्मयः) जगत्स्वरूप (नक्षत्रमाली) आकाशरूप में नक्षत्र ही जिनके मालारूप हैं (नाकेशः) स्वर्ग के पति ''लोकेश'' ऐसा भी पाठ है। (५४०) (स्वाधिष्ठानपदाश्रयः) अपने स्वरूप में लय स्थानवालों के आधारभूत।।६९।। (पवित्रः पापहारी) पवित्र और भक्तों के पाप दूर करनेवाले (मणिपूरः) रत्नादिकों से भक्तों के मनोरथ पूर्ण करनेवाले (नभोगतिः) अन्तरिक्ष में विचरनेवाले (हृत्पुण्डरीकमासीनः) योगियों के हृदयकमल में रहनेवाले (शक्रः) इन्द्र स्वरूप (शान्तः) सदा शान्ति युक्त (वृषाकपिः) धर्म की स्थिरता के कारण।।७०।। (उष्णः) हलाहल पान करने से उष्णता युक्त (गृहपतिः) सब गृहों के पालक (५५०) (कृष्णः) कृष्णकण्ठ अथवा कृष्णगोचर स्वरूप (समर्थः) सब कार्यों में समर्थ (अनर्थनाशनः) संसार के दुःख हरनेवाले (अधर्मशत्रुः) पापियों को शासन करनेवाले (अज्ञेयः) योगियों को अगम्य (पुरुहूतः पुरुश्रुतः) बहुतों से उपासित, ''पुरुहूतपुरुष्टुतः'' ऐसा भी पाठ है। बहुत गुरुओं से श्रवण होनेवाले। यह दोनों एक।।७१।। (ब्रह्मगर्भः) जिनके गर्भ में वेद स्थित हैं (बृहद्‌गर्भः) जिनके महान् ब्रह्माण्ड में गर्भ है (धर्मधेनुः) धर्मोत्पत्ति के स्थानभूत (धनागमः) जिनसे सब प्रकार के धन का आगम होता है (५६०) (जगद्धितैषी) लोक के कल्याण की इच्छावाले (सुगतः) मोहने के निमित्त बुद्धावतार लेनेवाले (कुमारः) बालस्वरूप अथवा जिनके सम्मुख कामदेव पराजित हुआ (कुशलगमः) कल्याण दाता।।७२।। (हिरण्यवर्णो ज्योतिष्मान्) हिरण्यवर्ण होने से कान्तिमान् ''नमो हिरण्यवर्णायेतिश्रुतेः'' यह दोनों एक। (नानाभूतरतः) पिशाचादिकों में रमण करनेवाले (ध्वनिः) नादात्मक (अरागः) राग शून्य (नयनाध्यक्षः)

सब लोकों के चक्षु में वर्तमान होने से चक्षु के प्रवर्तन करनेवाले (विश्वामित्रः) विश्वामित्र ऋषिस्वरूप (५७०) (धनेश्वरः) कुबेररूप ।।७३।। (ब्रह्मज्योतिः) सबके प्रकाशक ब्रह्म स्वरूप (वसुधामा) धनरूप तेजवाले (महाज्योतिरनुत्तमः) महातेजस्वी होने से सबसे उत्कृष्ट, यह दो एक हैं। (मातामहः) जगत् की माता के पिता (मातरिश्वानभास्वान्) वायुस्वरूप (नागहार-धृक्) नागमय हारादि भूषण धारक ।।७४।। (पुलस्त्यः) पुलस्त्यस्वरूप (पुलहः) पुलह ऋषिस्वरूप (अगस्त्यः) अगस्त्य नामक ऋषिस्वरूप (५८०) (जातूकर्ण्यः) जातूकर्ण्य ऋषिस्वरूप (पराशरः) पराशर ऋषिस्वरूप (निरावरणनिर्वारः) मायाबन्ध रहित होने से वारण करने को अशक्य ''निवारण विज्ञानः'' ऐसा भी पाठ है। (वैरंच्यः) ब्रह्माजी के पुत्र स्वरूप (विष्टरश्रवाः) विष्णु स्वरूप ।।७५।। (आत्मभूः) स्वयंप्रकाश (अनिरुद्धः) किसी भी प्रादुर्भाव में निरुद्ध न होनेवाले (अत्रिः) अत्रि ऋषिस्वरूप (ज्ञानमूर्तिः) ज्ञानस्वरूप ''सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मेति श्रुतेः'' (महायशाः) अपार कीर्त्तिमान् (५९०) (लोकवीराग्रणीः) लोक के वीर विष्णुजी आदि से श्रेष्ठ (वीरः) महाशूर (चण्डः) दुष्टों पर महाक्रोध करनेवाले (सत्यपराक्रमः) सफल शक्ति ।।७६।। (व्याला कल्पः) सर्पों का भूषण धारण करनेवाले (महाकल्पः) महा समर्थ (कल्पवृक्षः) भक्तों के मनोरथ पूर्ण करनेवाले (कलाधरः) भक्तजनों को प्रसन्न करने से चन्द्रस्वरूप (अलङ्करिष्णुः) विशेष कान्तिमान् (अचलः) स्थिर (६००) यहां छठा शतक पूर्ण हुआ। (रोचिष्णुः) दीप्तिमान् (विक्रमोन्नतः) अनेक पराक्रमयुक्त होने से सबसे बड़े ।।७७।। (आयुःशब्दपतिः) सब प्राणियों की आयु और वेदवाणी के नियन्ता (वेगीप्लवनः) शीघ्रता से भक्तों के मनोरथ पूर्ण करनेवाले, यह दो एक। (शिखिसारथिः) अग्निसहायवान् (असंसृष्टः) माया के संसर्ग से रहित (अतिथिः) भक्तों की अतिथिरूप से पूजा ग्रहण करनेवाले (शक्रप्रमाथी) असुर सेना के विलोडे में समर्थ (पादपासनः) वृक्ष के समीप में आसन लगानेवाले ।।७८।। (वसुश्रवाः) मधुर जिना श्रवण है (६१०) (हव्यवाहः) देवताओं के हवि पहुँचानेवाले अग्निस्वरूप (प्रतप्तः) कठिन तप करनेवाले (विश्वभोजनः) संसार को पालनेवाले (जप्यः) उपासना करने योग्य (जरादिशमनः) जरादि पीड़ा को शान्त करनेवाले (लोहितात्मा तनूनपात्) रक्तवर्ण भक्तों के शरीर को न गिरानेवाले अग्निस्वरूप, यह दो एक हैं ।।७९।। (बृहदश्वः) बड़ा अश्व सहित जिनका वाहन है (नभोयोनिः) सबके कारण, आकाश के भी कारण (सुप्रतीकः) सुन्दर अवयववाले (तमिस्रहा) अज्ञान दूर करनेवाले (६२०) (निदाघस्तपनः) ग्रीष्मरूप, यह दो एक हैं। (मेघः) मेघस्वरूप (स्वक्षः) सुन्दर नेत्रयुक्त (परपुरञ्जयः) शत्रुओं के पुर को जीतनेवाले ।।८०।। (सुखानिलः) जिनसे सुखदायक वायु होता है (सुनिष्पन्नः) जिनसे सुन्दर जगत् उत्पन्न हुआ (सुरभिः शिशिरात्मकः) अत्यन्त प्रसन्नता देनेवाले, शिशिर ऋतुरूप, यह दो एक। (वसन्तो माधवः) वसन्त

ऋतुरूप मकरन्द युक्त (ग्रीष्मः) सब रस शोषने से ग्रीष्म ऋतुरूप (नभस्यः) श्रावण में होनेवाली वर्षा ऋतुरूप (६३०) (बीजवाहनः) धान्य प्राप्त करनेवाले शरद्धेमन्त ऋतु रूप ।।८१।। (अंगिराः) ऋषिरूप (गुरुरात्रेयः) दत्तात्रेय स्वरूप, यह दोनों एक हैं (विमलः) शुद्ध (विश्ववाहनः) जगत् के निर्वाहक (पावनः) पाप नाश करनेवाले (सुमतिर्विद्वान्) श्रेष्ठ बुद्धि, सब कुछ जाननेवाले, यह दो एक। (त्रैविद्यः) ऋगयजुः साम के ज्ञाता (नरवाहकः) कुबेररूप ।।८२।। (मनोबुद्धिः) मनसहित बुद्धिरूप (६४०) (अहङ्कारः) अहंकार तत्त्व स्वरूप (क्षेत्रज्ञः) लिंग शरीर के जाननेवाले (क्षेत्रपालकः) सिद्ध स्थानों के रक्षक (जमदग्निः) जमदग्नि ऋषिस्वरूप (बलनिधिः) सब शक्तियों के अधिष्ठान स्वरूप (विगालः) विशेष करके मोक्षरूपी अमृत के स्रवानेवाले (विश्वगालवः) संसार में गालव ऋषिरूप से स्थित ।।८३।। (अघोरः) घोरता रहित अभयंकर (अनुत्तरः) जिनसे अधिक कोई नहीं (यज्ञः) ज्योतिष्टोमादि यज्ञस्वरूप (६५०) (श्रेयः) कल्याणस्वरूप (निःश्रेयसां पथः) कल्याणों के मार्गरूप (शैलः) शिला में होनेवाले नर्मदा में लिंगस्वरूप (गगनकुन्दाभः) जिनकी गगनकुन्द के फूल के समान कान्ति है (दानावारिः) दानवों के नाशकर्ता (अरिन्दमः) भक्तों के शत्रुओं के नाशक ।।८४।। (रजनीजनकः) कालरात्रि शक्ति के उत्पन्नकर्ता (चारुविशल्यः) सूक्ष्म बुद्धिमान्, जिनसे दुःख रहित होते हैं (लोककल्पधृक्) लोकों के उत्पत्ति आदि प्रकार धारण करनेवाले, ''लोकशल्यहृत्'' ऐसा भी पाठ है। (चतुर्वेदः) जिनसे चारों वेद हुए हैं (६६०) (चतुर्भावः) जिनसे धर्मादि चारों भाव हुए हैं (चतुरश्चतुरप्रियः) कुशल होने से चतुरों से प्रेम करनेवाले, यह दो एक ।।८५।। (आम्नायः) वेदस्वरूप (समाम्नायः) वेद के भी प्रमाणभूत अथवा जिनसे सबके प्रमाणरूप वेद हुआ है, अथवा जिनके तुल्य वेद है (तीर्थदेवशिवालयः) तीर्थों के देवताओं के कल्याण स्थान (बहुरूपः) असंख्य रूपवाले (महारूपः) जिनके पूजनीयरूप हैं (सर्वरूपः) जिनका जगत्रूप है (चराचरः) अस्थिरा लक्ष्मी जिनमें स्थित रहती है ।।८६।। (न्यायनिर्मायको न्यायी) सत्पक्ष के निर्वाह करनेवाले नीतिमान्, यह दो एक हैं (६७०) (न्यायगम्यः) नीति से जानने योग्य (निरन्तरः) भेद रहित (सहस्रमूर्धाः) असंख्य सिरवाले (देवेन्द्रः) देवताओं के पति (सर्वशस्त्रप्रभञ्जनः) सब शस्त्रों को ताड़नेवाले ।।८७।। (मुण्डः) लुंचितमेशरूप (विरूपः) सबसे श्रेष्ठ रूपवान् (विक्रान्तः) अतिशय विक्रमवान् (दण्डी) कालदण्ड धारण करनेवाले (दान्तः) जितेन्द्रिय (६८०) (गुणोत्तमः) जिनके श्रेष्ठ गुण हैं (पिङ्गलाक्षः) पिंगल वर्ण नेत्रोंवाले (जनाध्यक्षः) जनों के अधिपति (नीलग्रीवः) नीले रंग की गरदनवाले (निरामयः) सब रोग रहित ।।८८।। (सहस्रबाहुः) असंख्य भुजाओंवाले (सर्वेशः) सब लोकों के पति (शरण्यः) शरणदाता (सर्वलोकधृक्) भूरादि सब लोकों को धारण करनेवाले (पद्मासनः) हृदयकमल में आसन करनेवाले (६९०)

(परंज्योतिः) सबसे अधिक तेजमान् (परम्पारः) संसार दुःख से अत्यन्त पार लगानेवाले (परम्फलम्) परम पुरुषार्थस्वरूप ।।८९।। (पद्मगर्भः) जिनके गर्भ में संसार है अथवा हृदयकमल की कर्णिका में उपासना करनेवालों के निमित्त स्थित (महागर्भः) जिनका विराट् रूप महा पूजनीय है (विश्वगर्भः) जगत् जिनके गर्भ में स्थित है (विचक्षणः) विशेष करके वेदादिकों को कहनेवाले (चराचरज्ञः) सर्वज्ञ (वरदः) भक्तों को वर देनेवाले (वरेशः) वर देनेवालों में श्रेष्ठ (७००) सातवां शतक पूर्ण हुआ।। (महाबलः) जिनसे सब शक्तियां हुई हैं।।९०।। (देवासुरगुरुर्देवः) देवासुरों को उपदेश करनेवालों के भी गुरु, यह दो एक हैं। (देवासुरमहाश्रयः) देवता-असुरों के महा आधाररूप (देवादिदेवः) देवताओं के आदि ब्रह्मादिक जिनसे हुए हैं (देवाग्निः) जिनसे प्रकाशमान् अग्नि हुए हैं (देवाग्निसुखदः प्रभुः) देवताओं को अग्नि द्वारा सुख देनेवाले, स्वतन्त्र, यह दो एक हैं।।९१।। (देवासुरेश्वरः) देवता-असुरों के स्वामी (दिव्यः) अलौकिक स्वरूप (देवासुरमहेश्वरः) देवता और असुरों के पूजनीय (देवदेवमयः) देवताओं के भी देवता ब्रह्मादिरूप (७१०) (अचिन्त्यः) चिन्ता करने में न आनेवाले (देवदेवात्म-सम्भवः) ब्रह्मादिकों के भी देव, जिनसे जीवों का प्रादुर्भाव हुआ है।।९२।। (सद्योनिः) वस्तुमात्र के कारण (असुरव्याघ्रः) असुरों के ऊपर व्याघ्र के समान (देवसिंहः) देवताओं में सिंह (दिवाकरः) दिन के करनेवाले (विबुधाग्रचरःश्रेष्ठः) इन्द्र से श्रेष्ठ, ब्रह्माजी से भी श्रेष्ठ (सर्वदेवोत्तमोत्तमः) सर्व देवताओं में श्रेष्ठ ब्रह्माजी से भी श्रेष्ठ।।९३।। (शिवज्ञानरतः) अपने स्वरूप के ज्ञान में तत्पर (श्रीमान्) त्रिवर्ण सम्पत्ति युक्त (७२०) (शिखिश्रीपर्वतप्रियः) चूडावान् कुमार के निमित्त श्री पर्वत से प्रेम करनेवाले, यह कथा ज्योतिर्लिंग माहात्म्य में देखें। (वज्रहस्तः) इन्द्रस्वरूप (सिद्धिखड्गी) सब सिद्धियुक्त खड्ग धारण करनेवाले (नरसिंह निपातनः) शरभरूप से नृसिंह का गर्व दूर करनेवाले।।९४।। (ब्रह्मचारी) वेद में शीलवान् (लोकचारी) भूरादि लोकों में फिरनेवाले (धर्मचारी) धर्म करनेवाले (धनाधिपः) सब धनों के स्वामी (नन्दी) नन्दी नामक गणरूप (नन्दीश्वरः) नन्दियों को ईश्वर (७३०) (अनन्तः) देशकालादि परिच्छेद रहित (नग्नव्रतधरः) दिगम्बर सब भूत वेषधारी (शुचिः) दोषों से रहित।।९५।। (लिंगाध्यक्षः) बाणादि लिंगरूप में अध्यक्ष अथवा लिंग देह में अधिष्ठित (सुराध्यक्षः) देवताओं के स्वामी (योगाध्यक्षः) योगशास्त्र के प्रवर्तक (युगावहः) सतयुगादिकों की समयपर प्राप्ति करानेवाले (स्वधर्मा) जगत् उत्पन्न करने का जिनका धर्म (स्वर्गतः) स्वर्ग में रहनेवाले (स्वर्गस्वरः) स्वर्गलोक में जिनकी पवन है (७४०) (स्वरमयस्वनः) षड्जादि सात स्वर जिनसे होते हैं।।९६।। (बाणाध्यक्षः) बाणासुर के स्वामी (बीजकर्ता) शुक्र उत्पन्न करनेवाले (धर्मकृद्धर्मसम्भवः) पुण्यात्माओं का धर्म जिनसे प्रादुर्भूत होता है (दम्भः) भक्तों की परीक्षा के निमित्त माया से रूप बनानेवाले (अलोभः) लोभ

रहित (अर्थविच्छम्भुः) वेदादि के अर्थ जाननेवालों की संभावना करनेवाले (सर्वभूत–महेश्वरः) सब प्राणियों के अधिपति ।।९७।। (श्मशाननिलयः) सम्पूर्ण मृतकों का महा अधिष्ठानभूत प्रलय उसका भी जिनसे नाश हो जाता है, वह स्थान जिनका (त्र्यक्षः) त्रिनेत्र (७५०) (सेतुः) संसार सागर के तारने को सेतुरूप (अप्रतिमाकृतिः) जिनकी उपमाशून्य आकृति है (लोकोत्तरस्फुटालोकः) नेत्रों के ग्रहण करने योग्य वही आत्म स्वरूप जिनका (त्र्यम्बकः) जिनके तीन नेत्र हैं (नागभूषणः) जिनके शेषनागादि भूषण हैं।।९८।। (अन्धकारिः) अन्धक दैत्य को मारनेवाले (मखद्वेषी) दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करनेवाले (विष्णुकन्धरपातनः) दक्ष के यज्ञ में विष्णुजी का कन्धर गिरानेवाले (हीन दोषः) जिनमें वैषम्यादि दोष नहीं हैं (अक्षयगुणः) जिनके नाश शून्य गुण हैं (७६०) (दक्षारिः) दक्ष प्रजापति के शत्रु (पूषदन्तभित्) पूषा के दांत तोड़नेवाले ।।९९।। (धूर्जटिः) जिनके केश सबसे श्रेष्ठ हैं (खण्डपरशुः) जिनका परशु सबका छेद करनेवाला है (सकलः) चन्द्रमा की कला के सहित (निष्कलः) निर्गुण (अनघः) पापरहित (अकालः) मृत्युरहित (सकलाधारः) सम्पूर्ण जगत् के आधार (पाण्डुराभः) श्वेत कान्तिवाले (७७०) (मृडः) सबको सुख देनेवाले (नटः) चित्ररूप ।।१००।। (पूर्णः) सब कलाओं से सम्पूर्ण (पूरयिता) सबको सम्पत्ति से पूर्ण करनेवाले (पुण्यः) स्मरण करने से ही पाप दूर करनेवाले (सुकुमारः) जिनका स्कन्द नामक सुन्दर पुत्र है (सुलोचनः) सुन्दर नेत्रवाले (सामगेयप्रियः) साम गानेवालों के प्रिय (अक्रूरः) क्रूरता रहित (पुण्यकीर्तिः) जिनकी कीर्ति पाप नाश करनेवाली है (७८०) (अनामयः) रोग रहित।।१०१।। (मनोजवः) भक्तों के दुःख दूर करने में मन के तुल्य वेगवान् (तीर्थकरः) शास्त्रों के निर्माण करनेवाले (जटिलः) जटाजूट युक्त (जीवितेश्वरः) सब प्राणियों को प्राण देनेवाले (जीवितान्तकरो नित्यः) सब प्राणियों का संहार करनेवाले नित्य (वसुरेताः) सुवर्णवर्ण के वीर्यवाले (वसुप्रदः) भक्तों के निमित्त रत्न देनेवाले ।।१०२।। (सद्गतिः) जिनसे अव्यभिचारिणी गति प्राप्त होती है अथवा ब्रह्मादि सन्तों को प्राप्त करनेवाले ''सन्तमेनं ततो विदुरिति श्रुतेः''(सत्कृतिः) जगद्रक्षण युक्त आकृतिवाले (७९०) (सिद्धिः) सम्पूर्ण वस्तुओं में सच्चिद्रूप अथवा अत्यन्त फलरूप (सज्जातिः) जिनसे साधुओं की जाति का जन्म हुआ है (कालकण्टकः) काल का भी वेध करनेवाले (कलाधरः) शिल्पादि चौसठ कलाओं को धारण करनेवाले (महाकालः) काल के भी काल (भूतसत्यपरायणः) प्राणियों के परमाश्रय ।।१०३।। (लोकलावण्यकर्ता) लोक की सुन्दरता निर्माण करनेवाले (लोकोत्तरसुखालयः) सर्वोत्कृष्ट सुख को अधीन रखनेवाले (चन्द्रसञ्जीवन) चन्द्रमा के सजीवन लोकपीड़ा नाशक (शास्ता) दुर्जनों के शिक्षक (८००) आठवां शतक पूर्ण हुआ ।। (लोकगूढः) जनों के बुद्धिरूप गुहाश्रय होने से अप्रत्यक्ष (महाधिपः) महान् ईश्वर ।।१०४।। (लोकबन्धुः) लोक के

बन्धकृत्य को श्रुति–स्मृति लक्षण हिताहित उपदेश करनेवाले (लोकनाथः) चौदह भुवनों के ईश्वर (कृतज्ञः) प्राणियों के किये पुण्यापुण्य कर्म को जाननेवाले (कीर्ति–भूषणः) जिनसे यशरूपी भूषण होता है (अनपायोक्षरः) नाशरहित होने से अक्षर नित्यस्वरूप, यह दोनो एक। (कान्तः) यम के भी नाशक (सर्वशस्त्रभृतां वरः) सर्व शस्त्र धारण करनेवालों में श्रेष्ठ ।।१०५।। (तेजोमयोद्युतिधरः) अत्यन्त तेजमय कान्ति धारण करनेवाले (८१०) (लोकनामग्रणीः) सर्व लोकों में श्रेष्ठ (अणुः) अत्यन्त सूक्ष्म, ''एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्य इति श्रुतेः'' (शुचिस्मित) ईषद्हास्य युक्त (प्रसन्नात्मा) प्रसाद युक्त स्वभाववाले (दुर्जेयः) महाशत्रुओं को भी जीतने न आनेवाले (दुरतिक्रमः) भय के कारण सूर्यादि भी जिनका भय करते हैं, ''भयादस्माद्वातः पर्वते भयात्तपति सूर्यः भयादिन्द्रश्चाग्निश्च मृत्युर्धावति पञ्चम इति श्रुतेः''।।१०६।। (ज्योतिर्मयः) तेजःपुंज (जगन्नाथः) अनन्त ब्रह्माण्ड के स्वामी (निराकारः) निर्गुण (जलेश्वरः) भौतिक जल वा गंगा के पति(८२०) (तुम्बवीणः) तुम्बीफल की वीणावाले (महाकोपः) संहारकाल में महाक्रोध करनेवाले (विशोकः) परमानन्दरूप होने से शोक रहित (शोकनाशनः) भक्तों के शोक हर्ता ।।१०७।। (त्रिलोकपः) त्रिलोकी के पालक (त्रिलोकेशः) त्रिलोकी जिनकी आज्ञा से अपने कर्म में वर्तती है (सर्वशुद्धिः) जिनसे सब प्राणियों की शुद्धि होती है (अधोक्षजः) इन्द्रियजन्य ज्ञान जिनसे नीचे पतित होता है (अव्यक्त लक्षणो देवः) जिनके अस्पष्ट लिंग है, ऐसे प्रकाश तेजःस्वरूप, यह दो एक। (व्यक्ताव्यक्तः) गुण उपाधि से व्यक्त होकर भी निर्गुणरूप होने से अव्यक्त (८३०) (विशाम्पतिः) सकल प्रजा के पालक।।१०८।। (वरशीलः) जिनमें श्रेष्ठ शील है अथवा जिनसे श्रेष्ठ शील होता है (वरगुणः) सबसे श्रेष्ठ गुणवाले (सारोमानधनः) अति बलि दुष्टों का नाश करने के मानवाले, यह दो एक। (मयः) सुखस्वरूप (ब्रह्मा) अपनी विभूति चतुराननस्वरूप (विष्णुः प्रजापालः) व्यापक होकर प्रजापालन करने से विष्णु, यह दो एक। (हंसः) अज्ञाननाशक परमात्मा स्वरूप (हंसगतिः) योगियों की गति (वयः) पक्षि रूप, ''एकः सुपर्णः स समुद्रमाविवेश स इदं विश्वभुवनं विचेष्टे। द्वासुपर्णेत्याश्रुतेः'' (८४०) ।।१०९।। (वेधा विधाता धाता) जगत् के उत्पन्न करने से वेधा, कर्म और उनके फल दान करने के विधाता, अनेक रूप से संसार के धारण करनेवाले होने से धाता, यह तीनों एक। (स्रष्टाः) जगत् के उत्पन्न करनेवाले (हर्ता) संहार करनेवाले (चतुर्मुखः) हिरण्यगर्भ स्वरूप (कैलासशिखरवासी) कैलास शिखर पर रहनेवाले (सर्वावासी) सब में निवास करनेवाले (सदागतिः) सब पुरुषों के गति दायक ।।११०।। (हिरण्यगर्भः) हिरण्यगर्भ के उत्पादक अथवा हिरण्यमय अण्ड में व्याप्त होने से हिरण्यगर्भ अथवा ब्रह्मा जिनकी आत्मा है, ''हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्र इति श्रुतेः'' (द्रुहिणः) ब्रह्मास्वरूप (भूतपालः) प्राणियों के पालक (८५०) (भूपतिः)

पृथ्वी के स्वामी (सद्योगी) सत्कर्म की योजना करनेवाले (योगविद्योगी) योग जाननेवालों के भी योग के प्रवर्तक (वरदः) वर देनेवाले (ब्राह्मणप्रियः) जिन्हें ब्राह्मण प्रिय है अथवा ब्राह्मणों को प्यारे ।।१११।। (देवप्रियः) देवताओं के प्यारे वा जिन्हें देवता प्यारे हैं (देवनाथः) देवताओं के स्वामी (देवज्ञः) जिनसे देवता ज्ञानी होते हैं (देवचिन्तकः) देवता भी जिनके चिन्तक हैं (विषमाक्षः) त्रिनेत्र (८६०) (विशालाक्षः) बड़े नेत्रवाले (वृषदो वृषवर्द्धनः) उपदेश रूप से धर्म बढ़ानेवाले, जिनसे धर्म वृद्धि को प्राप्त होता है, यह दो एक।।११२।। (निर्ममः) ममतारहित (निरहङ्कारः) अहंकार रहित (निर्मोहः) मोह रहित (निरुपद्रवः) उपद्रव रहित (दर्पहादर्पदः) सबका अभिमान नष्ट करनेवाले शत्रुओं के अभिमान नाशक, यह दो एक। (दृप्तः) अपनी आत्मा के अमृतास्वाद से नित्य प्रसन्न रहनेवाले (सर्वर्तुपरिवर्तकः) सब ऋतुओं के भ्रमण करनेवाले ।।११३।। (सहस्रजित्) अनन्तों के जीतनेवाले (८७०) (सहस्रार्चिः) असंख्यात दीप्तिवाले (स्निग्धप्रकृतिदक्षिणः) स्वभाव से ही सरल (भूतभव्यभवन्नाथः) भूत, भविष्य, वर्तमान् के स्वामी (प्रभवः) जिनसे प्रकृष्टता से संसार होता है (भूतिनाशनः) शत्रुओं की सम्पत्तियों के नाशक ।।११४।। (अर्थः) सबके प्रार्थनीय (अनर्थः) प्रयोजन रहित (महाकोशः) महाधनी (परकार्यैकपण्डितः) मोक्षकार्य में एक पंडित (निष्कण्टकः) कामादि क्षुद्र शत्रुरहित (८८०) (कृतानन्दः) अच्छिन्न आनन्द युक्त (निर्व्याजो व्याजमर्दनः) स्वयं कपट रहित होकर दूसरे का कपट नष्ट करनेवाले, यह दो एक।।११५।। (सत्त्ववान्) शौर्यावीर्यादि युक्त (सात्त्विकः) सत्त्वगुण प्रधान (सत्यकीर्तिः) यथार्थ कीर्तिमान् (स्नेहकृतागमः) भक्तों के स्नेह से शास्त्रों को प्रकाशित करनेवाले (अकम्पितः) निश्चल (गुणग्राही) अपने भक्तों के गुण ग्रहण करनेवाले (नैकात्मानैककर्मकृत) अनेक स्वरूप और सब कर्म के करनेवाले ।।११६।। (सुप्रीतः) श्रेष्ठ प्रसाद युक्त (८९०) (सुमुखः) संसार उत्पादक श्रेष्ठ मुखवाले (सूक्ष्मः) सब में प्राप्त, ''सर्वगतं सुसूक्ष्ममिति श्रुतेः''(सुकरः) वर देने से सुन्दर हाथ वाले (दक्षिणानिलः) आनन्द करने से मलयाचल वायुरूप (नन्दिस्कन्धधरः) नन्दी से कंधे पर धारण हुए (धुर्यः) सम्पूर्ण प्राणियों के जन्मादि लक्षण को धारण करनेवाले (प्रकटः) सूर्यादि रूप से सबको प्रत्यक्ष होनेवाले, ''उतैनं गोपा अदृशन्नदृशन्नुदहार्य इति श्रुतेः'' (प्रीतिवर्द्धनः) जिनमें भक्तों का प्रेम बढ़ता है अथवा भक्तों की प्रीति बढ़ानेवाले ।।११७।। (अपराजितः) शत्रुओं से न हारनेवाले (सर्वसत्त्वः) जिनसे सब प्राणी होते हैं (९००) नववां शतक पूर्ण हुआ।। (गोविन्दः) स्वर्ग अथवा गौ भक्तों को देनेवाले (सत्त्ववाहनः) जिनके द्वारा मोक्ष उपयोगी पराक्रम होता है (अधृतः) अनन्यधार (स्वधृतः) अपनी आत्मा से ही धारण किये हुए (सिद्धः) सब सिद्धियुक्त (पूतमूर्तिः) शुद्ध मूर्तिवाले (यशोधनः) यशरूपी धनवाले ।।११८।। (वाराह शृङ्गधृक्छृङ्गी) वाराह

का दन्तशिखर शृंग धारण करनेवाले शृंगी, यह दो एक। (बलवान्) सर्व शक्ति युक्त (एकनायकः) अद्वितीय स्वामी (९१०) (श्रुतिप्रकाशः) वेदों से प्रकाशित होनेवाले ''तन्त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामिति श्रुतेः'' (श्रुतिमान्) नित्य वेद युक्त (एकबन्धुः) अद्वितीय बन्धु (अनेककृत्) अपनी आत्मा को अनेक करनेवाले ''बहुस्यां प्रजायेयेति तदात्मानं स्वयमकुरुतेत्यादिश्रुतेः'' ।।११९।। (श्रीवत्सल शिवारम्भः) विष्णुजी के मंगल के निमित्त आरम्भ करनेवाले (शान्तभद्रः) जिनसे सत्पुरुषों का मंगल होता है (समोयशः) सब प्राणियों में तुल्य अथवा सर्वेश्वर्य लक्ष्मी सहित है यश जिनका, यह दो एक। ''समंजसः'' ऐसा भी पाठ है। भूमि पर शयन करनेवाले (भूपणः) जिनसे सब भूषित होते हैं (भूतिः) सर्वसम्पत्स्वरूप (९२०) (भूतकृत्) सब प्राणियों को उत्पन्न करनेवाले (भूतभावनः) प्राणियों का निर्वाह करनेवाले ।।१२०।। (अकम्पः) स्थिर (भक्तिकायः) भक्ति ही जिनका शरीर है (कालहा) काल के भी नाशक (नीललोहितः) कण्ठ में नील होने से भी लोहित वर्ण (सत्यव्रतमहात्यागी) सत्यव्रत को सब पुरुषार्थ देनेवाले (नित्शान्तिपरायणः) त्रिकालाबाध्य शान्ति के स्थान ।।१२१।। (परार्थवृत्ति-र्वरदः) दूसरे प्राणियों को कर्मफल देने ही को जिनका वर्त्तना है और माया के आवरण खण्डन करनेवाले अथवा वरदाता, यह दो एक। ''तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशदिति श्रुतेः'' अथवा भक्तों के हृदय में प्रवेश की इच्छा करनेवाले (९३०) (विशारदः) सम्पूर्ण विद्या, कलाओं में निपुण (शुभदः) भक्तों को शुभ देनेवाले (शुभकर्ता) भक्तों के कल्याण उत्पादक (शुभनामाशुभः) शुभ नामवाले होने से स्वयमेव कल्याण युक्त, यह दो एक हैं ।।१२२।। (अनर्थितः) याचना रहित (अगुणः) निर्गुण (साक्षीह्यकर्ता) सर्व जगत् के द्रष्टा होने से अकर्ता, मायोपाधिक होने से ईश्वर में जगत् का कर्तापन माना है, वस्तुतः अकर्ता है, यह दो एक। (कनकप्रभः) सुवर्ण सदृश कान्तिवाले (स्वभावभद्रः) अपने भक्तों के भाव के निमित्त ही जिनसे मंगल होता है (मध्यस्थः) ब्रह्मा, विष्णु के मध्य में स्थित (९४०) (शीघ्रगः) भक्तों के कार्य के निमित्त शीघ्र आने वाले (शीघ्रनाशनः) भक्तों के दुःख शीघ्र नाश करनेवाले ।।१२३।। (शिखण्डी कवची शूली) चूडा, कवच और त्रिशूल धारण करनेवाले, यह तीनों एक। (जटी मुण्डी कुण्डली) जटाजूट युक्त मुण्डित सिर और सर्पों के कुण्डल धारण करनेवाले, यह तीन एक। (अमृत्युः) मृत्यु रहित (सर्वदृक्सिंहः) सबके द्रष्टा और दुष्टों का नाश करने में सिंह रूप, यह दो एक। (तेजोराशिर्महामणिः) तेज स्वरूप होने के कारण महामणि कौस्तुभादि रूप, यह दो एक ।।१२४।। (असंख्येयो प्रमेयात्मा) अपार और अपरिच्छेद स्वरूपवाले (वीर्यवान्वीर्यकोविदः) वीर्य युक्त और सब पराक्रमों में चतुर (वेद्यः) मुमुक्षुओं के जानने योग्य (९५०) (वियोगात्मा) विशिष्ट योगयुक्त आत्मावाले (परावरमुनीश्वरः) पर अवर मुनियों के भी ईश्वर ।।१२५।। (अनुत्तमोदुराधर्षः) जिनसे

कोई श्रेष्ठ नहीं, इसी कारण से दुराधर्ष (मधुरप्रियदर्शनः) सौम्यरूप और सबको प्यारा जिनका दर्शन है (सुरेशः) देवताओं के अधिपति (शरणम्) सकल जगत् के रक्षक (सर्वः) विश्वरूप (शब्दब्रह्म सताङ्गतिः) वेदस्वरूप और साधुओं की गति, यह दो एक।।१२६।। (कालपक्षः) काल ही सृष्टि में जिनका सहाय है (कालकारी) काल के उत्पादक (९६०) (कङ्कणीकृतवासुकिः) जिन्होंने वासुकी का कंकण धारण किया है (महेष्वासः) अक्षय धनुषवाले (महीभर्ता) जगत् के धारक (निष्कलङ्कः) अविद्या रहित (विशृङ्खलः) मायाबन्धन से रहित।।१२७।। (द्युमणिस्तरणिः) सूर्यरूप होकर संसार–सागर से तारनेवाले (धन्यः) कृतकृत्य (सिद्धिदः सिद्धिसाधनः) अणिमादि सिद्धि देनेवाले, जिनके पुरुषार्थ के साधन है, यह दो एक। (विश्यतः संवृतः) सब ओर माया से आच्छादित रूप (स्तुत्यः) देवासुरों के भी स्तुति करने योग्य (९७०) (व्यूढोरस्कः) विस्तीर्ण छातीवाले (महाभुजः) दीर्घ भुजावाले।।१२८।। (सर्वयोनिः) सब जगत् के कारण (निरातङ्कः) संसार रोग अथवा तान रहित (नरनारायणप्रियः) जिनको नरनारायण मुनि प्यारे हैं (निर्लेपो निष्प्रपञ्चात्मा) कर्म सम्बन्ध से रहित होने से पञ्चभूतादि समुदायरूप प्रपञ्च रहित देहवाले, यह दोनों एक। (निर्व्यङ्गः) जिनसे विशिष्ट अंग प्राणी उत्पन्न हुए हैं (व्यङ्गनाशनः) व्यंग कर्मों के नाशकर्ता।।१२९।। (स्तव्यः) स्तुति करने के योग्य (स्तवप्रियः) स्तुति प्रिय (९८०) (स्तोता) प्रेम से भक्त जिनकी स्तुति करते हैं (व्यासमूर्तिः) व्यास महर्षि जिनकी मूर्ति हैं (निराङ्कुशः) माया रूप अंकुश से रहित (निरवद्यमयोपायः) अनिन्द्य साधनरूप मोक्षवाले (विद्याराशिः) सर्व विद्याओं की राशि (रसप्रियः) जिनको भक्ति रस प्रिय हैं।।१३०।। (प्रशान्तबुद्धिः) प्रशान्त बुद्धि (अक्षुण्णः) दूसरों से तिरस्कार न होनेवाले (सङ्ग्रही) भक्तजनों के संग्रह में युक्त (नित्यसुन्दरः) सब कलाओं में सुन्दर (९९०) (वैयाघ्रधुर्यः) व्याघ्रचर्म धारण करनेवाले (धात्रीशः) पृथ्वी के स्वामी (शाकल्यः) शाकल्य ऋषिरूप (शर्वरीपतिः) रात्रियों के स्वामी।।१३१।। (परमार्थगुरुः) मोक्ष के गुरु तारक मन्त्र उपदेष्टा (दृष्टिः) चक्षु अभिमानी देवतास्वरूप (शरीराश्रितवत्सलः) शरीराश्रित जीवों पर अत्यन्त दया करनेवाले (सोमः) उमा सहित (रसज्ञो रसदः) हलाहल स्वाद के जाननेवाले वा वीर्य देनेवाले (सर्व सत्त्वावलम्बनः) सब प्राणियों के आश्रयभूत (१०००) सहस्रनाम पूर्ण हुए।।१३२।। इस प्रकार सहस्रनाम सहित भगवान् विष्णुजी ने शिवजी की स्तुति की और कमलों से पूजन करके उनकी प्रार्थना की।।१३३।। हे ब्राह्मणो! उस समय उन लीला करनेवाले शिवजी ने जो महा अद्भुत चरित्र किया उसे आदर से सुनिये।।१३३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां

शिवसहस्रनामवर्णनं नाम पंचत्रिंशोऽध्यायः।। ३५ ।।

*****

छत्तीसवाँ अध्याय

सूतजी बोले– तब विष्णुजी ने निर्माण किये परम नामों से भूषित अपने सहस्रनाम के स्तोत्र को सुनकर शिवजी प्रसन्न हुए।।१।। लोकों के स्वामी ईश्वर महेश्वर ने विष्णुजी की परीक्षा के निमित्त उन सहस्र कमलों में से एक कमल हरण कर लिया।।२।। तब उन सहस्र कमलों में एक कमल न्यून हो गया, तब भगवान् विष्णुजी शिवजी के पूजन में व्याकुल हो गये, तब विष्णुजी ने अपने मन में विचारा कि– कमल कहां गया? यदि चला गया, तो सुख से जाने दो, क्या मेरे नेत्र कमल नहीं है?।।३–४।। विष्णुजी ने ऐसा जानकर नेत्र उखाड़कर अनेक सत्त्वों के अवलंबयुक्त शिवजी का स्वभाव से पूजन करके उनकी स्तुति की।।५।। तब उस प्रकार हरि को स्तुति करते हुए देखकर जगत् गुरु महादेव शिवजी ''ऐसा मत करो, मत करो'' कहते हुए प्रकट हुए।।६।। विष्णुजी से प्रतिष्ठित हुए अपने पार्थिवलिंग के मण्डल से शिवजी शीघ्र ही प्रकट हुए।।७।। वह विष्णुजी शास्त्रोक्त स्वरूप को धारण किये तेज से राशीभूत प्रकट हुए शम्भुजी को नमस्कार करके आगे स्थित होकर विशेष रूप से स्तुति करने लगे।।८।। तब प्रसन्न हुए महादेवजी हाथ जोड़कर स्थित हुए विष्णुजी को देखकर हँसते हुए बोले।।९।। शिवजी बोले– हे विष्णो! जो आपके मन में स्थित है, वह सम्पूर्ण वृत्त मैंने जान लिया, देवताओं के कार्य में तत्पर हुए आत्मावाले आपको देवताओं का कार्य करना है।।१०।। देवताओं के कार्य सिद्ध होने के लिये तथा बिना परिश्रम दैत्यों का नाश करने के लिये आपको सुदर्शन नामवाला शोभन चक्र देता हूं।।११।। हे देवेश! हे विष्णो! आपने सम्पूर्ण लोकों को सुख देनेवाला जो रूप देखा है, उसे निश्चय ही ध्यान करना, आपका हित होगा।।१२।। उस रूप का रणभूमि में यदि स्मरण किया जाय, तो देवताओं का दुःख दूर होता है, यह सुदर्शनचक्र यह रूप तथा यह सहस्रनाम स्तोत्र महाफल देनेवाला है।।१३।। हे सुव्रत! जो मनुष्य सदा उसे भक्ति से सुनते हैं, उनको मेरे प्रसाद से सम्पूर्ण मनोरथों की अविनाशिनी सिद्धि होती है।।१४।। सूतजी बोले– ऐसा सुनकर सहस्रों सूर्यों के समान कान्तिवाला, अपने चरण से उत्पन्न हुआ, सम्पूर्ण शत्रुओं का नाश करनेवाला सुदर्शनचक्र देव ने दिया।।१५।। उस समय विष्णुजी ने उत्तर की ओर मुख करके भली प्रकार संस्कार के सहित चक्र को ग्रहण किया और महादेवजी को नमस्कार करके विष्णुजी यह वचन बोले।।१६।। विष्णुजी बोले– हे देव! हे प्रभो! हे लोक के कल्याण करनेवाले! सुनिये, मेरे ध्यान करने योग्य क्या है? तथा पढ़ने योग्य क्या है? सो सब आप दुःखों के नाश करने के निमित्त मुझसे कहिये।।१७।। सूतजी बोले– उन विष्णुजी के ऐसा पूँछने पर सन्तुष्ट हुए शिवजी

मन में प्रसन्न होकर देवताओं की सहायता करनेवाले विष्णुजी से यह वचन बोले।।१८।। शिवजी बोले– हे विष्णो! सम्पूर्ण उपद्रवों के शान्त होने के लिये मेरे रूप का ध्यान करना तथा अनेक दुःखों का नाश होने के निमित्त सहस्रनाम पढ़ना।।१९।। हे विष्णो! सम्पूर्ण कामनाओं के सिद्धि के लिये सदा मेरा चक्रों में श्रेष्ठ सुदर्शनचक्र प्रयत्न से धारण करना चाहिये।।२०।। और जो मनुष्य इस शिवसहस्रनाम स्तोत्र को सदा पढ़ेंगे तथा पढ़ावेंगे उन्हें स्वप्न में भी दुःख नहीं होगा, इसमें कुछ संशय नहीं।।२१।। यदि राजाओं से संकट प्राप्त हो, तो जो मनुष्य विधिपूर्वक अंगन्याससहित सहस्रनाम की सौ आवृत्ति पाठ करे, तो कल्याण को प्राप्त होता है।।२२।। यह स्तोत्र रोगों का नाश करनेवाला, विद्या तथा धन देनेवाला है, सम्पूर्ण मनोरथों को देनेवाला तथा निरन्तर पवित्र शिवभक्ति देनेवाला है।।२३।। मनुष्य जिस श्रेष्ठ फल के उद्देश्य से इस लोक में पढ़ेंगे, सत्य ही वह श्रेष्ठ फल को प्राप्त होंगे, इसमें कुछ संशय नहीं।।२४।। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर मेरी पूजा करके, नित्य मेरे सम्मुख शिवसहस्रनाम का पाठ करता है, उससे सिद्धि दूर नहीं है।।२५।। जो शिवसहस्रनाम का पाठ करता है, वह इस लोक में सम्पूर्ण कामनाओं को सिद्ध करनेवाली सम्पत्ति पाता है, अन्त में सायुज्य मुक्ति को प्राप्त होता है, इसमें कुछ संशय नहीं है।।२६।। सूतजी बोले– ऐसा विष्णुजी से कहकर प्रसन्नमन होकर शंकरजी भगवान् विष्णुजी को दोनों हाथों से स्पर्श करके फिर बोले।।२७।। शिवजी बोले– हे देवों में श्रेष्ठ विष्णो! मैं आपको वर देता हूं, आप मनोभिलषित वरों को स्वीकार करें, हे शोभनव्रतवाले! भक्ति से इस स्तोत्र को पढ़ने से निश्चय ही शिवजी वशीभूत होते हैं।।२८।। सूतजी बोले– इस प्रकार देवों के देव शिवजी के कहने पर उन देव देव सदाशिवजी को नमस्कार करके प्रसन्न हुए विष्णुजी हाथ जोड़कर यह वचन बोले।।२९।। विष्णुजी बोले– हे नाथ! हे प्रभो! जैसी अब आपने कृपा की है, इसी प्रकार दयालु होने के कारण इसके आगे भी आपको वैसी ही कृपा करनी उचित है।।३०।। हे महादेव! आप में मेरी भक्ति रहे, यही उत्तम वर चाहता हूं, आप प्रसन्न हों और भक्तों को दुःख न हो, यही इच्छा करता हूं और कुछ इच्छा नहीं करता हूं।।३१।। सूतजी बोले– इस प्रकार विष्णुजी का वचन सुनकर अत्यन्त दयावान् चन्द्रशेखर शिवजी ने उनके अंगों को स्पर्श किया तथा यह वचन बोले।।३२।। शिवजी बोले– हे विष्णो! आपकी मुझमें अविनाशी भक्ति रहेगी और संसार में आप देवताओं से वन्दना करने योग्य तथा पूजनीय होंगे।।३३।। हे देवताओं में श्रेष्ठ विष्णो! मेरे प्रसाद से सम्पूर्ण पापों को नाश करनेवाला आपका विश्वंभर नाम प्रसिद्ध होगा।।३४।। सूतजी बोले– हे मुनीश्वरो! ऐसा कहकर सब देवताओं के स्वामी प्रभु सदाशिवजी उन विष्णुजी के सम्मुख वहां से अन्तर्धान हो गये।।३५।। शिवजी के वचन से भगवान् विष्णुजी ने भी शुभ चक्र पाकर अपने चित्त में अति हर्ष किया।।३६।।

और वे शिवजी का ध्यान करके शिवसहस्रनाम स्तोत्र निरन्तर पढ़ने और पढ़ाने तथा भक्तों को उसीका उपदेश देने लगे ।।३७।। हे श्रेष्ठो! जो आपने पूँछा सो मैंने सब कहा, सुननेवालों के पापों को दूर करनेवाला यह माहात्म्य है। अब आप इसके आगे क्या पूँछना चाहते हो?

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां
शिवसहस्रनामस्तोत्रफलवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ।। ३६ ।।

*****

सैंतीसवाँ अध्याय

ऋषि बोले– हे महाभाग! हे सुव्रत! हे सूतजी! आप बड़े ज्ञानी हो, इससे आप शिवजी के चरित्र को विस्तार से कहिये ।।१।। पहले राजाओं ने तथा ऋषि, देवताओं ने उन ही देवों में श्रेष्ठ शिवजी का आराधन किया है ।।२।। सूतजी बोले– हे ऋषिश्रेष्ठ! आपने अतिश्रेष्ठ प्रश्न किया है, मैं आपसे मनोहर तथा श्रवण कर्ताओं को भुक्ति–मुक्ति देनेवाले शिवजी का चरित्र वर्णन करता हूं, सुनिये ।।३।। यह ही नारदजी ने पहले ब्रह्माजी से पूँछा था, प्रसन्न हुए ब्रह्माजी ने मुनिश्रेष्ठ नारदजी से कहा ।।४।। ब्रह्माजी बोले– हे नारदजी! प्रीति से सुनो, आपके स्नेह से महापातकों का नाश करनेवाला शिवजी का श्रेष्ठ चरित्र कहता हूं।।५।। लक्ष्मीजी के सहित विष्णुजी ने शिवजी का पूजन किया, उस समय महादेवजी की कृपा से वे मनोरथों को प्राप्त हुए ।।६।। हे तात! शिवजी का पूजन करनेवाला मैं ब्रह्मा भी उन्हींकी कृपा से संसार की सृष्टि करता हूं।।७।। हे श्रेष्ठ ऋषियो! मेरे पुत्र नित्य ही शिवजी का पूजन करनेवाले हैं और भी जो ऋषि हुए हैं, वे भी शिवपूजन करनेवाले हुए हैं ।।८।। हे नारदजी! तुम भी विशेष करके शिवजी का पूजन करनेवाले हो, वसिष्ठादि जो सप्तऋषि हैं, वे भी शिवजी का पूजन करनेवाले हैं ।।९।। बड़ी पतिव्रता अरुन्धती तथा लोपमुद्रा, गौतमजी की स्त्री अहल्या भी शिवजी का पूजन करनेवाली है ।।१०।। दुर्वासा, विश्वामित्र, शक्ति, दधीच, गौतम, कणाद, भार्गव, बृहस्पति, वैशंपायन ।।११।। यह समस्त मुनि शिवजी का पूजन करनेवाले हैं और पराशर, व्यासजी निरन्तर शिवजी का पूजन करनेवाले हैं ।।१२।। उपमन्यु भी परमात्मा शिवजी के महाभक्त थे, याज्ञवल्क्य, जैमिनी तथा गर्ग भी महाशैव थे ।।१३।। शुक्र तथा शौनक आदि ऋषि भी शिवजी का पूजन करनेवाले हैं; हे मुनिश्रेष्ठो! और भी बहुत से ऋषि हैं, वे शिवजी के उपासक हैं ।।१४।। देवताओं की माता अदिति ने अपनी बहू के सहित प्रेम में तत्पर होकर प्रीति से पार्थिव शिवजी की पूजा की ।।१५।। इन्द्र आदि लोकपालों ने तथा आठ वसु और देवताओं

ने महाराजिक गण देवताओं ने, साध्यों ने शिवजी का पूजन किया।।१६।। गन्धर्व, किन्नर आदिक तथा दैत्य महात्मा भी शिवजी के उपासक माने गये हैं।।१७।। हे मुने! हिरण्यकशिपु दैत्य भी अपने भाई तथा पुत्र सहित नित्य शिवजी का पूजन करनेवाला था, विरोचन भी शिवजी की पूजा करता था।।१८।। हे तात! बाणासुर तथा हिरण्याक्ष के पुत्र वृषपर्वा, दनु दैत्य, दनु के पुत्र यह सब शिवजी का पूजन करनेवाले हुए हैं।।१९।। शेषजी, वासुकि तथा तक्षक और भी सर्पजाति के बड़े नाग, गरुड़ आदि पक्षी भी शिवजी के भक्त हुए हैं।।२०।। हे मुनीश्वर! सूर्य तथा चन्द्रमा यह दोनों देवता पृथ्वी पर अपने–अपने वंश के चलानेवाले हुए हैं, वे अपने वंश के सहित शिवजी की सेवा करनेवाले हैं।।२१।। हे मुने! स्वायम्भुव आदि जो मनु हैं, वे शिववेष धारण करके शिवजी का विशेष पूजन करते थे।।२२।। राजा प्रियव्रत तथा उसके पुत्र, उत्तानपाद के पुत्र और उसके वंश में जो राजा हुए हैं, वे भी शिवजी का पूजन करनेवाले थे।।२३।। ध्रुव, ऋषभ, भरत, नौ योगी तथा और जो–जो उनके भाई हैं, वे भी शिवजी के भक्त थे।।२४।। वैवस्वत मनु के पुत्र तार्क्ष्य तथा इक्ष्वाकु आदि राजा भी शिवपूजन में प्रेम करनेवाले तथा निरन्तर सुख के भोगनेवाले हुए हैं।।२५।। कुकुत्स्थ, मातान्ध, राजा सगर, मुचुकुन्द, राजा हरिश्चन्द्र, कल्माषपाद भी महाशैवों में श्रेष्ठ हुए हैं।।२६।। भगीरथ आदि अनेक राजा शिवजी का वेष धारण करनेवाले तथा शिवजी का पूजन करनेवाले हुए हैं।।२७।। महाराजा खट्वांग जो देवताओं की सहायता करनेवाले हैं, उन्होंने विधिपूर्वक शिवजी की पार्थिव मूर्ति बनाकर सदा महादेवजी का पूजन किया है।।२८।। उनके पुत्र दिलीप भी निरन्तर शिवजी का पूजन करनेवाले हुए तथा उनके पुत्र रघु शैव होकर प्रीति से शिवजी का पूजन करते थे।।२९।। रघु के पुत्र अज, जो धर्म से युद्ध करनेवाले थे, वे भी शिवजी के परम भक्त थे, फिर उनके पुत्र महाराजा दशरथ विशेष कर शिवजी के उपासक थे।।३०।। उन राजा दशरथ ने शिवजी की पार्थिव मूर्ति बनाकर पुत्र उत्पन्न होने के निमित्त वसिष्ठ मुनि की आज्ञा से विशेष कर महादेवजी का पूजन किया।।३१।। और भक्तिवाले उन राजा दशरथ ने ऋष्यशृंग मुनि की आज्ञा प्राप्त करके पुत्रेष्टि यज्ञ किया।।३२।। उनकी स्त्री कौशल्या रानी ने आनन्द से शिवजी की पार्थिव मूर्ति बनाकर ऋष्यशृंग मुनि के वचनों से पुत्र पाप्ति के हेतु महादेवजी का पूजन किया।।३३।। हे मुनिश्रेष्ठ! सुमित्रा ने तथा राजा की प्रिया कैकयी ने भी श्रेष्ठ पुत्र की प्राप्ति के निमित्त शिवजी का पूजन किया।।३४।। हे मुने! उन सब स्त्रियों ने शिवजी के प्रसाद से महाप्रतापी, वीर, अच्छे मार्ग में तत्पर हुये, कल्याणकारी अपने–अपने पुत्रों को प्राप्त किया।।३५।। तब शिवजी की आज्ञा से भगवान् विष्णुजी दशरथ राजा के द्वार पर चतुर्भुजी मूर्ति से रामचन्द्र के रूप में प्रकट हुए।।३६।। रानी कौशल्या के पुत्र रामचन्द्रजी, सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण और शत्रुघ्न,

कैकयी के भरतजी उत्पन्न हुए।।३७।। वह रामचन्द्रजी स्वभाव से नित्य पार्थिव शिवजी का पूजन करते थे और भस्म, रुद्राक्ष धारण करके विरक्त मार्ग में स्थित हुए।।३८।। हे मुने! वंश में जो अनुगामी सहित राजा उत्पन्न हुए हैं, वे सब शिवजी के पार्थिवलिंग को पूजते थे।।३९।। हे मुने! ऋषि पुत्र परम शैव महाराजा सुद्युम्नु शिवजी के शाप से अपनी स्त्री तथा सेवकों सहित स्त्री हुए।।४०।। फिर पार्थिव शिवजी का पूजन करने से वे पुरुष हो गये, एक मास पर्यन्त स्त्री तथा एक मास तक पुरुष रहते थे, इस प्रकार वे स्त्रीत्व से निवृत्त हो गये।।४१।। तत्पश्चात् अपने राज्य को छोड़कर शिवजी के धर्म में तत्पर होकर शिववेष धारण करके भक्ति से दुर्लभ मोक्ष को प्राप्त हुए।।४२।। राजा पुरूरवा तथा उनका पुत्र भी शिवजी का पूजन करनेवाले हुए और शिवजी के पूजन के प्रभाव से सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त हुए।।४३।। राजा भरत सदा ही शिवजी की महापूजा करते थे तथा महाशैव राजा नहुष भी निरन्तर शिवजी के पूजन में तत्पर रहते थे।।४४।। राजा ययाति भी शिवजी की पूजा के प्रभाव से सब इच्छाओं को प्राप्त हुए तथा उन्होंने शिवधर्म में तत्पर होनेवाले पांचों पुत्रों को उत्पन्न किया।।४५।। यदुवंशियों में मुख्य उनके पांचों पुत्र शिवजी का पूजन करनेवाले हुए और महादेवजी के पूजन के प्रभाव से समस्त कामनाओं को प्राप्त हुए।।४६।। हे मुने! और भी जो महा भाग्यवान् राजा हुए उन्होंने भी शिवजी को पूजा, उनके वंश में उत्पन्न होनेवाले तथा दूसरे वंशों में उत्पन्न होनेवाले राजाओं ने भुक्ति और मुक्ति देनेवाले शिवजी को पूजा है।।४७।। महात्मा श्रीकृष्णजी ने बदरी पर्वत पर सात महीने तक स्वयं शिवजी का पूजन किया।।४८।। तब भगवान् श्रीकृष्णजी ने प्रसन्न हुए शिवजी से अनेकों दिव्य वरदानों को पाकर सम्पूर्ण जगत् को वश में किया।।४९।। हे तात! उनके पुत्र प्रद्युम्नजी सदा शिवजी की पूजा करते थे और जो श्रीकृष्णजी के वंश में उत्पन्न हुए साम्ब आदिक वे सब शिवजी के भक्त थे।।५०।। महाशैव राजा जरासंध तथा उनके वंश के मनुष्य शैव राजा निमि, जनक तथा उनके पुत्र भी शिवजी के उपासक थे।।५१।। वीरसेन के पुत्र राजा नल ने भी शिवजी की पूजा की, जो नल पहले जन्म में वन के भील होकर मार्ग की रक्षा करनेवाले थे।।५२।। उसने पूर्व काल में शिवजी के समीप स्थित हुए किसी संन्यासी की रक्षा की और स्वयं दैववशात् रात्रि में व्याघ्र आदिकों को भक्षण करने से मर गया।।५३।। उस ही पुण्य के प्रभाव से वह दूसरे जन्म में राजा नल हुआ और वह चक्रवर्ती महाराजा दमयन्ति के प्रिय पति हुए।।५४।। हे तात! हे पापरहित! आपने जो पूँछा सो शिवजी का दिव्य चरित्र आपसे वर्णन किया। अब आप क्या पूछना चाहते हो?।।५५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां

देवर्षिनृपशैवत्ववर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः।। ३७ ।।

अड़तीसवाँ अध्याय

ऋषि बोले– हे तात! हे सुतजी! आप धन्य हैं, आपका जीवन सफल है, जिससे कि आप महेश्वरजी की शुभ कथा सुनाते हैं।।१।। हे सूतजी! यद्यपि हमने बहुत ऋषियों से अतिश्रेष्ठ उपाख्यान सुने हैं तथापि हमारा संशय नहीं गया, इस कारण आपसे पूँछते हैं।।२।। कौन से व्रत से सन्तुष्ट हुए शिवजी सच्चे सुख को देते हैं? सो कहिये, कारण कि आप शिवकृत्य में कुशल हैं, इससे हम पूँछते हैं।।३।। हे व्यासजी के शिष्य सूतजी! जिस व्रत को करने से मनुष्य भुक्ति तथा मुक्ति प्राप्त करता है, उसे आप विस्तार से कहिये, आपको नमस्कार है।।४।। सूतजी बोले– हे ऋषिश्रेष्ठो! आप सभी दयालुओं ने अच्छा प्रश्न किया, जैसा मैंने सुना है, सो सब शिवजी के चरणकमलों को स्मरण करके कहता हूं।।५।। जिस प्रकार आपने पूँछा है, उसी प्रकार ब्रह्माजी, विष्णुजी और पार्वतीजी ने भी शिवजी से पूँछा था।।६।। किसी समय उन सबों ने परमात्मा शिवजी से यह पूँछा कि, हे शिव! किस व्रत से सन्तुष्ट होकर आप भुक्ति और मुक्ति को देते हैं?।।७।। उस समय उन सबों के तथा भगवान् विष्णुजी के पूछने पर जैसे शिवजी ने कहा था, उसी प्रकार श्रोताओं के पापा हरनेवाले उपाय को वर्णन करता हूं।।८।। शिवजी बोले– भोग तथा मुक्ति देनेवाले मेरे अनेक व्रत हैं, परन्तु उनमें दश मुख्य हैं।।९।। वेदों में पारगामी जाबाल आदि मुनियों ने दश ही व्रत कहे हैं, वे दश व्रत द्विजातियों को यत्नपूर्वक सदा करने चाहिये।।१०।। हे विष्णो! प्रत्येक अष्टमी को यत्न से रात्रि में भोजन करना चाहिये, विशेष कर कालाष्टमी के दिन रात भोजन का त्याग करना चाहिये।।११।। हे विष्णो! शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन भी भोजन त्यागना उचित है, हे हरे! कृष्ण पक्ष की एकादशी के दिन मेरा पूजन करके रात्रि में भोजन करे।।१२।। शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी को रात्रि में भोजन कर ले और यदि कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी हो तो, शिवव्रतधारियों को कदापि भोजन न करना चाहिये।।१३।। हे विष्णो! दोनों पक्षों में सोमवार के दिन शिवव्रत करनेवालों को रात्रि में ही यत्न से भोजन करना चाहिये।।१४।। हे द्विजश्रेष्ठो! इन सम्पूर्ण व्रतों में शैवों को यथा शक्ति व्रत के समाप्त होने के कारण भोजन करना उचित है।।१५।। हे द्विजो! यह सम्पूर्ण व्रत द्विजातियों को नियम से करने उचित हैं, जो इन व्रतों का त्याग करते हैं, वे दूसरे जन्म में चोर होते हैं।।१६।। मुक्ति के मार्ग पर जाननेवालों को यह व्रत नियम से करने चाहिये कारण कि, यह चारों बातें मुक्ति देनेवाली कहीं हैं।।१७।। शिवजी का पूजन, रुद्रजप तथा शिवालय में उपवास करना, काशी में मरण इनसे सनातनी मुक्ति होती है।।१८।। कृष्ण पक्ष में

सोमवार की अष्टमी तथा सोमवार की चौदस हो, तो यह दोनों शिवजी को प्रसन्न करनेवाली होती हैं, इसमें कुछ चिन्ता नहीं करनी चाहिये ।।१९।। हे भगवन्! पूर्वोक्त चारों बातों से भी शिवरात्रि का व्रत बलवान् कहा है, इस कारण भुक्ति-मुक्ति के फल पानेवालों को यह अवश्य करना चाहिये ।।२०।। इस व्रत से अधिक और कोई व्रत मनुष्यों को हितकारक नहीं है, यह व्रत सम्पूर्ण मनुष्यों के उत्तम धर्म का साधन है ।।२१।। हे विष्णो! कामना रहित तथा कामना करनेवाले चारों वर्णों तथा चारों आश्रमों के सब मनुष्यों तथा स्त्री, बालकों को धर्म का साधन यह व्रत कहा है ।।२२।। यह श्रेष्ठ व्रत सब दास-दासियों के सम्पूर्ण देवता आदि सब देहधारी मनुष्यों का हित करनेवाला है ।।२३।। माघ के कृष्ण पक्ष में त्रयोदशी किसी और तिथि से मिली हुई तथा रात्रि में व्याप्त होनेवाली हो, तो उसे ग्रहण करना उचित है, वह अतिश्रेष्ठ कही है, कोटि हत्याओं के पापों का नाश करनेवाली है ।।२४।। हे केशव! उस दिन प्रातःकाल से लेकर जो-जो करना चाहिये, उसे ध्यान देकर प्रीति से सुनिये, मैं आपसे कहता हूं ।।२५।। बुद्धिमान् को प्रातःकाल परम आनन्दसहित उठकर आलस्यरहित होकर स्नान आदि नित्यकर्म करने चाहिये ।।२६।। फिर शिवालय में जा कर विधिपूर्वक पूजन करके शिवजी को नमस्कार करके पश्चात् भली प्रकार संकल्प करे ।।२७।। हे देवों के देव! हे महादेव! हे नीलकण्ठ! हे देव! आपको नमस्कार है, मैं आपका शिवरात्रि का व्रत करने की इच्छा करता हूं ।।२८।। हे देवेश! आपके प्रभाव से यह व्रत निर्विघ्न समाप्त हो और काम, क्रोध आदि शत्रु मुझे पीड़ा न दें ।।२९।। इस प्रकार संकल्प करके पूजा की वस्तुओं को लावे, फिर शास्त्रों में प्रसिद्ध हुए ज्योतिर्लिंग को सुन्दर स्थान में स्थापन करे ।।३०।। रात्रि में वहां स्वयं जाकर विधि को सम्पादन करके शिवजी के दाहिनी ओर वा पश्चिम भागवाले शुभस्थल में ।।३१।। पूजा के निमित्त उन द्रव्यों को शिवजी के समीप रखकर फिर वहां व्रती मनुष्य विधिपूर्वक स्नान करे ।।३२।। भीतर के वस्त्रसहित शुभ वस्त्र पहनकर तीन बार आचमन करके पूजा प्रारम्भ करे ।।३३।। जिस मन्त्र का जो द्रव्य हो, उसी मन्त्र से पूजा करे, बिना मन्त्र के शिवजी का पूजन नहीं करना चाहिये ।।३४।। गीत, बाजे तथा नृत्य के सहित भक्तिभाव से पण्डित पहले पहर में पूजन करके "ॐ शिवाय नमः" इस मन्त्र को जपे ।।३५।। तब मन्त्र जपते हुए श्रेष्ठ पार्थिवलिंग निर्माण करे, पश्चात् नित्य क्रिया करके पार्थिवलिंग को पूजे ।।३६।। पहले पार्थिवलिंग बना कर फिर स्थापन करे और अनेक प्रकार के स्तोत्रों से शिवदेव को सन्तुष्ट करे ।।३७।। फिर बुद्धिमान् भक्त व्रत सम्बन्धी माहात्म्य को पढ़े और व्रत की समाप्ति की इच्छा से माहात्म्य को सुने ।।३८।। चारों पहरों में आवाहन के क्रम से विसर्जन पर्यन्त शिवजी की चारों मूर्तियों का पूजन करे ।।३९।। महा उत्सवपूर्वक प्रीति से जागरण करना उचित है, प्रातःकाल फिर स्नान

करके शिवजी की स्थापना करके उनका पूजन करे ।।४०।। तत्पश्चात् कंधे झुकाकर, नम्र होकर, हाथ जोड़कर सदाशिवजी की प्रार्थना करे, सम्पूर्ण व्रत को समाप्त करके फिर उनको बारंबार नमस्कार करके कहे ।।४१।। हे स्वामिन्! हे महादेव! आपकी आज्ञा से मैंने जो नियम किया था, वह श्रेष्ठ व्रत समाप्त हुआ, अब मैं आपको विसर्जित करता हूं ।।४२।। हे देवेश! हे सर्वाद्य! यथाशक्ति किये हुए इस व्रत से सन्तुष्ट हों और मेरे ऊपर कृपा करें ।।४३।। शिवजी को पुष्पों की अंजलि देकर विधिपूर्वक दान देवे और शिवजी को नमस्कार करके उस नियम को विसर्जन करे ।।४४।। शैव ब्राह्मणों को और विशेष कर संन्यासियों को अपनी शक्ति के अनुसार भोजन कराके उन्हें सन्तुष्ट करके, स्वयं भोजन करे ।।४५।। हे विष्णो! श्रेष्ठ भक्तों को जिस प्रकार प्रत्येक पहर में शिवरात्रि के दिन विशेष पूजन करना उचित है, उस पूजन को आपसे कहता हूं ।।४६।। हे विष्णो! प्रथम पहर में स्थापन किये हुए पार्थिवलिंग का अनेक उपचारों सहित परम भक्ति से पूजन करे ।।४७।। पहले पांच द्रव्यों से शिवजी को पूजे, उस–उस वस्तु के मन्त्रों से पृथक् द्रव्यों को समर्पण करे ।।४८।। और उस द्रव्य को समर्पण करके जल की धारा चढ़ावे, पश्चात् विद्वान् व्रती जलधारा से द्रव्यों को उतारे ।।४९।। वहां एक सौ आठ बार ''ॐ नमः शिवाय'' इस मन्त्र को पढ़कर जलधारा से निर्गुण तथा सगुण शिवजी को पूजे ।।५०।। गुरु के दिये हुए मन्त्र से शिवजी का पूजन करे अथवा नाममन्त्र से सदाशिवजी को पूजे ।।५१।। सुन्दर चन्दन तथा अखण्डित चावलों और काले तिलों से परमात्मा शिवजी की पूजा करनी चाहिये ।।५२।। कमलों से तथा सौंफ और कनेर के पुष्पों से शिवजी की अर्चना करे और शिवजी के आठों नाममन्त्रों से उन्हें पुष्प चढ़ाये ।।५३।। भव, शर्व, रुद्र, पशुपति, उग्र, महान्, भीम, इशान यह आठ नाम हैं ।।५४।। श्रीपूर्वक चतुर्थ्यन्त नामों से ''ॐ भवाय नमः'' इत्यादि नामों से शिवजी को पूजे, उसके पश्चात् धूप, नैवेद्य चढ़ावे ।।५५।। पहले पहर में पण्डित पक्वान्न सहित नैवेद्य अर्पण करे, अर्घ श्रीफल, बेल, नारियल चढ़ाकर ताम्बूल अर्पण करे ।।५६।। तत्पश्चात् नमस्कार, ध्यान, गुरुमन्त्र तथा मेरे मन्त्र का जप करे अथवा पंचाक्षरमन्त्र से शिवजी को सन्तुष्ट करे ।।५७।। धेनुमुद्रा को दिखाकर निर्मल जल से शिवजी को तृप्त करे, अपनी शक्ति के अनुसार पांच ब्राह्मणों को भोजन करावे ।।५८।। और जब तक समय हो महोत्सव करे, इसके अनन्तर सम्पूर्ण पूजा के फलों को देकर विसर्जन करे ।।५९।। फिर दूसरे पहर के प्रारम्भ में अच्छी प्रकार संकल्प करे अथवा एक ही बार संकल्प करके पहले के समान पूजन करे ।।६०।। उसी प्रकार पहले द्रव्यों से करके जल की धारा समर्पण करे, पहले की अपेक्षा दूने मन्त्रों का उच्चारण करके शिवजी को पूजे ।।६१।। पहले रखे हुए तिल, जौ, चावल, कमलों से शिवजी का पूजन करे और विशेष कर बेलपत्रों से सदाशिवजी को पूजे ।।६२।। बीजापूर (बिजौरे नीम्बू)

का अर्घ्य तथा खीर की नैवेद्य अर्पण करे, हे विष्णो! पहले से दूने मन्त्रों का पाठ करे।।६३।। इसके पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन कराने का संकल्प करे और सब पूजन दूसरे पहर की समाप्ति पर्यन्त पहले के समान करे।।६४।। फिर तीसरे पहर में पहले के समान पूजन करे, यवों के स्थान में गेहूं तथा आक के फूल चढ़ावे।।६५।। हे विष्णो! वहां विविध प्रकार की धूप, अनेक प्रकार के दीपों से तथा पुये के नैवेद्य तथा अनेक प्रकार के शाकों से।।६६।। शिवजी का पूजन करके कपूर से आरती करे, अनार का अर्घ्य देकर पूर्व की अपेक्षा दूना जप करे।।६७।। फिर दक्षिणा सहित ब्राह्मणों के भोजन का संकल्प करे और तृतीय पहर की समाप्ति पर्यन्त पूर्व के समान उत्सव करे।।६८।। चौथे पहर के प्रारम्भ होते ही उनका विसर्जन करे, फिर आवाहनादि करके विधिपूर्वक पूजन करके।।६९।। उडद, कंगनी, मूंगे से अथवा सात धान्यों से शंखी, पुष्प, बेलपत्र से परमेश्वर का पूजन करे।।७०।। फिर शिवजी पर अनेक प्रकार के मिष्टान्न नैवेद्यों चढ़ावे अथवा उडद के बने पक्वान्न से सदाशिवजी को सन्तुष्ट करे।।७१।। हे हरे! केले की फली की अर्घ्य दे अथवा ऋतु के अनेक फलों से शिवजी को अर्घ्य दे।।७२।। फिर विद्वान् व्रती मनुष्य पहले से दूना मन्त्र का जप करे, फिर यथाशक्ति ब्राह्मणों के भोजन का संकल्प करे।।७३।। भक्ति सहित गीत वाद्यों से तथा नृत्यों से भक्तजनों सहित बड़े उत्सवों से अरुण के उदय पर्यन्त इसी प्रकार समय को बितावे।।७४।। सूर्य के उदय होने पर फिर स्नान करके शिवजी का अर्चन करे, फिर अनेक प्रकार की पूजा योग्य भेटों से अपना अभिषेक करे।।७५।। अनेक प्रकार के दान तथा विविध प्रकार का भोजन पहरों की संख्या के अनुसार ब्राह्मणों को तथा संन्यासियों को संकल्पानुसार करावे।।७६।। फिर शिवजी को नमस्कार करके पुष्पों की अंजलि ग्रहण करके बुद्धिमान् इन मन्त्रों से स्तुति करके प्रार्थना करे।।७७।। हे कृपानिधे शिवजी! मैं आपका हूं तथा आपके प्राणवाला हूं, सदा आपके चित्तवाला हूं, ऐसा जानकर जैसा योग्य हो, सो कीजिये।।७८।। हे भूतनाथ! मैंने अज्ञान से वा ज्ञान से जो जप, पूजन आदि किया है, उससे दयालु होने के कारण आप मुझसे प्रसन्न होवें।।७९।। इस व्रत से जो फल होता है, उससे सब सुखदायक आप शंकरदेव प्रसन्न हो।।८०।। हे महादेव! मेरे कुल में आपका नित्य भजन होता रहे, उस कुल में मेरा जन्म न होवे जहां शिवदेव का कीर्तन न होता हो।।८१।। इस प्रकार पुष्पों की अंजलि को समर्पण करके ब्राह्मणों से आशीर्वाद के तिलों को ग्रहण करे, तत्पश्चात् शिवजी को विसर्जन करे।।८२।। इस प्रकार जिसने व्रत किया उससे शिवजी दूर नहीं होते, उसका फल मैं नहीं कह सकता, ऐसे भक्त को मुझे कुछ अदेय नहीं है।।८३।। यदि बिना परिश्रम से भी यह श्रेष्ठ व्रत किया हो, उसको भी मुक्ति बीज होता है, इसमें कुछ संशय नहीं।।८४।। मनुष्यों को भक्ति से प्रत्येक मास में यह व्रत करना योग्य है, पीछे से उद्यापन करके पूर्णांग फल प्राप्त

करे ।।८५।। यह व्रत करने से निश्चय ही मैं शिव, समस्त दु:खों को दूर करता हूं तथा भुक्ति-मुक्ति और सम्पूर्ण वांछित फलों को देता हूं।।८६।। सूतजी बोले- भगवान् विष्णुजी ऐसा शिवजी का हितकारी वचन सुनकर अद्‌भुत तेज को प्राप्त हुए, तत्पश्चात् उन्होंने अपने हितकारी मनुष्यों के समीप यह श्रेष्ठ व्रत किया।।८७।। किसी समय भगवान् विष्णुजी ने भुक्ति-मुक्ति देनेवाले इस दिव्य शिवरात्रि के व्रत को नारद से कहा था।।८८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां

व्याधेश्वरमाहात्म्ये शिवरात्रिव्रतमहिमा निरूपण नामाष्टत्रिंशोऽध्याय: ।। ३८ ।।

*****

उन्तालीसवाँ अध्याय

ऋषि बोले- शिवरात्रि व्रत की उद्यापन विधि को कहिये, जिसे करके साक्षात् शिवदेवता निश्चय ही प्रसन्न होते हैं।।१।। सूतजी बोले- हे ऋषियो! भक्ति से आदर सहित शिवरात्रि के उद्यापन को सुनिये, जिसके करने से वह व्रत निश्चय ही पूर्ण होता है।।२।। शुभ शिवरात्रि का व्रत चौदह वर्षपर्यन्त करना चाहिये, त्रयोदशी के दिन एक आवृत्ति भोजन करे और चौदस को उपोषण करे।।३।। शिवरात्रि के दिन नित्य की विधि को समाप्त करके शिवजी के मन्दिर में जाकर विधिपूर्वक पूजन करके।।४।। तत्पश्चात् वहां शिवजी के समीप में यत्नपूर्वक दिव्य मण्डल करावे, जो मण्डल गौरी तिलक नाम से तीनों लोकों में प्रसिद्ध है।।५।। उसके मध्य में सुन्दर लिंगतोभद्रमण्डल बनावे अथवा मण्डप के भीतर सर्वतोभद्रचक्र को निर्माण करे।।६।। वहां पर प्राजापत्य नाम से वस्त्रों, फलों और दक्षिणा सहित शुभघड़ों को स्थापन करे।।७।। मध्य में सुवर्ण का एक कलश अथवा दूसरा कलश भी स्थापन करे, इस प्रकार उस मण्डल के समीप में कलश यत्न से स्थापन करने चाहिये।।८।। वहां व्रती एक पलभर अथवा आधे पल की वा जैसी सामर्थ्य हो, पार्वती सहित शिवजी की सुवर्ण की मूर्ति बनावे।।९।। आलस्यरहित होकर बाई ओर पार्वती की प्रतिमा स्थापन करके दाहिनी ओर शिवजी की मूर्ति स्थापन करके रात्रि में पूजन करे।।१०।। वहां ऋत्विजों के सहित पवित्र आचार्य को वरण करे, उनकी आज्ञा से भक्तिपूर्वक शिवजी का पूजन करे।।११।। प्रत्येक पहर में पूजा करते हुए रात्रि को जागरण करे, इस प्रकार व्रती गीत, नृत्य आदि से सम्पूर्ण रात्रि को बितावे।।१२।। इस प्रकार विधिपूर्वक पूजन करके शिवजी को सन्तुष्ट करके प्रात:काल फिर पूजन करके विधिपूर्वक होम करे।।१३।। यथाशक्ति प्राजापत्य व्रत का विधान करे, फिर प्रीति से ब्राह्मणों का भोजन कराके भक्ति से दान दे।।१४।। ऋत्विजों

(यज्ञ करनेवालों) को स्त्री सहित वस्त्र, आभूषणों से सजाकर विधिपूर्वक पृथक्-पृथक् उन्हें दान दे।।१५।। गाय को बछड़े सहित तथा सम्पूर्ण वस्तुओं के सहित विधान से 'शिवजी मुझसे प्रसन्न हो' ऐसा कहकर आचार्य को दे।।१६।। उसके पश्चात् कलशों और वस्त्रों सहित वृषभपर स्थित हुई शिवजी की मूर्ति को समस्त आभूषणों तथा वस्त्रों सहित आचार्य को देवे।।१७।। फिर महाप्रभु सदाशिव देव देव की प्रीति से हाथ जोड़, कंधे झुकाकर गद्गदवाणी से इस प्रकार प्रार्थना करे।।१८।। ''हे देवों के देव महादेव! हे शरणागत वत्सल! हे देवेश! इस व्रत से मेरे ऊपर कृपा करे।।१९।। हे शिव! मैंने भक्ति को अनुसरण करके यह आपका व्रत किया है, सो हे शंकर! न्यून भी यह व्रत आपकी प्रसन्नता से सम्पूर्णता को प्राप्त होवे।।२०।। हे शंकर! मैंने अज्ञान से अथवा ज्ञान से जो कुछ जप, पूजन आदि किया है, सो सब आपकी कृपा से सफल होवे''।।२१।। इस प्रकार पुष्पाञ्जलि देकर फिर परमात्मा शिवजी को नमस्कार करे, फिर प्रार्थना करे।।२२।। इस प्रकार जिसने व्रत किया, उसके व्रत में न्यूनता नहीं होती और वह मन से इच्छा की हुई सिद्धि को प्राप्त होता है, इसमें कुछ संशय नहीं।।२३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां
शिवरात्रि-व्रतोद्यापनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः।। ३९ ।।

*****

चालीसवाँ अध्याय

ऋषि बोले- हे सूतजी! आपका वचन सुनकर हम परम आनन्द को प्राप्त हुए, उस ही श्रेष्ठ व्रत को प्रीति से विस्तारपूर्वक कहिये।।१।। हे सूतजी! यहां पहले किसने यह श्रेष्ठ व्रत किया और अज्ञान से भी व्रत करके क्या श्रेष्ठ फल प्राप्त होता है?।।२।। सूतजी बोले- हे सम्पूर्ण ऋषियो! मैं सम्पूर्ण पापों का नाश करनेवाले निषाद का प्राचीन इतिहास वर्णन करता हूं।।३।। पहले वन में एक गुरुद्रुह नाम से प्रसिद्ध कुटुम्बी बलवान् दुष्ट हत्या आदि बुरे कर्मों में तत्पर भील रहता था।।४।। वह नित्य वन में जाकर मृगों (पशुओं) को मारता था और वहां वन में रहकर अनेक चोरी करता था।।५।। उसने बालकपन से लेकर कुछ भी शुभ कर्म नहीं किया, इसी प्रकार वन में निवास करते हुए उस दुष्टात्मा व्याध को बहुत समय बीत गया।।६।। वहां निवास करते हुए उसे शोभायमान शिवरात्रि प्राप्त हुई, परन्तु उस दुष्टात्मा ने उस बड़े वन में निवास करते हुए यह नहीं जाना।।७।। उसी समय उसकी माता, पिता, स्त्री ने उस भील से प्रार्थना की, हे वनचर! हम भूख से व्याकुल हुए हैं, हमें भोजन दो।।८।। ऐसी प्रार्थना सुनकर वह भील धनुष लेकर शीघ्र ही मृग को मारने को गया और सम्पूर्ण वन में फिरा।।९।। दैवयोग

से उस समय उसने कुछ भी नहीं पाया, उस समय सूर्य अस्त हो गये, इससे वह दुःखी हुआ ।।१०।। क्या करूं? कहां जाऊं? आज मुझे कुछ भी भोजन नहीं मिला, मेरे घर में जो बालक हैं, उनको तथा माता–पिता को क्या भोजन कराऊंगा?।।११।। मेरी जो स्त्री है, उसके कुछ सन्तान होनेवाली है, उसके निमित्त भी कुछ भोजन ले जाना उचित है, बिना भोजन लिये नहीं जाऊंगा।।१२।। ऐसा विचार करके वह भील सरोवर के समीप जा कर जहां जल का घाट था, वहां जाकर स्वयं स्थित हुआ।।१३।। अवश्य ही इधर कोई जीव आयेगा, उसे मारकर कृतकार्य होकर आनन्द से अपने घर जाऊंगा।।१४।। ऐसा जानकर वह भील जल लेकर एक बेल के वृक्ष पर चढ़कर स्थित हुआ।।१५।। कब कोई जीव आवे, कब मैं उसे मारूं? ऐसा मन में विचार करके भूखा–प्यासा वह व्याध स्थित रहा।।१६।। तब रात्रि के पहले पहर में एक हिरनी प्यास से व्याकुल हो चकित हुई हांफती (किलोल करती) वहां आई।।१७।। हे विष्णो? उस मृगी को देखकर उस भील ने उसे मारने के लिये प्रसन्न होकर शीघ्र ही अपने धनुष पर बाण चढ़ाया।।१८।। इस प्रकार उसके करने से जल तथा बेलपत्र नीचे गिरा, वहां शिवजी का ज्योतिर्लिंग था।।१९।। इस प्रकार पहले पहर की महादेवजी की पूजा हुई, उसके प्रताप से उसके समस्त पाप नष्ट हो गये।।२०।। उसके धनुष के शब्द को सुनकर वह हिरनी भील को देखकर भय से व्याकुल होकर यह वचन बोली।।२१।। हिरनी बोली– हे व्याध! क्या करने की इच्छा है? तुम मेरे आगे सत्य–सत्य कहो, ऐसा मृगी का वचन सुनकर वह भील कहने लगा।।२२।। व्याध बोला– आज मेरा कुटुम्ब भूखा है, तुझे मारकर मैं अपने कुटुम्ब को तृप्त करूंगा, ऐसा उसका वचन सुनकर उस कठिन दुष्ट को देखकर वह हिरनी सोचने लगी।।२३।। मैं क्या करूं? कहां जाऊं? कोई उपाय रचती हूं, ऐसा मन में विचार करके वह यह बोली।।२४।। मृगी बोली– अनर्थ करनेवाले मेरे शरीर के मांस से यदि तुम को सुख होवे, तो इससे अधिक और क्या पुण्य है? मैं निःसन्देह धन्य हूं।।२५।। इस लोक में उपकारी जीवों को जो पुण्य होता है, वह पुण्य सौ वर्ष तक भी वर्णन नहीं हो सकता।।२६।। परन्तु आज मेरे सब बालक अपने स्थान में हैं, उन्हें बहिन को अथवा स्वामी को सौंपकर तुम्हारे पास आऊंगी।।२७।। हे वनचर मेरा वचन झूंठ मत मानो, मैं अवश्य ही तुम्हारे समीप आऊंगी, इसमें कुछ सन्देह नहीं।।२८।। सत्य से भूमि स्थित है, सत्य से ही समुद्र तथा सत्य से ही जल की धारा है, सत्य में सब कुछ स्थित है।।२९।। सूतजी बोले– उस मृगी के ऐसा कहने पर भी उस व्याध ने उसका वचन न माना, तो विस्मित होकर भयभीत हुई वह हिरनी फिर यह बोली।।३०।। मृगी ने कहा– हे व्याध! मैं जो कुछ कहती हूं उसे सुनो, मैं शपथ करती हूं, यदि अपने घर जाकर तुम्हारे समीप नहीं आऊं तो।।३१।। वेद के बेचनेवाले तथा तीनों काल सन्ध्या न करनेवाले ब्राह्मण को जो पाप होता है तथा कामों में आसक्त

हुई स्त्रियों को अपने पति की आज्ञा उल्लंघन करने से जो पाप होता है।।३२।। तथा कृतघ्नी को जो पाप होता है और शिवजी से विमुख हुए मनुष्य को जो पाप लगता है, जो द्रोही को पाप होता है, जो धर्म को तोड़नेवाले को पाप होता है।।३३।। तथा जो विश्वासघात करनेवाले, छल करनेवाले को पाप होता है, मैं उस पाप की भागी होऊं, यदि मैं फिर यहां न आऊं।।३४।। इत्यादि अनेक शपथों को करके वह हिरनी जब स्थित हुई, तो वह भील विश्वास करके 'जा' ऐसा वचन बोला।।३५।। जब तक वह हिरनी प्रसन्न होकर जल पीकर अपने स्थान को गई, तब तक पहला पहर उस व्याध को बिना निद्रा के बीत गया।।३६।। तब उस मृगी की बहिन दूसरी हिरनी उत्कण्ठित होकर उसकी खोज करती-करती जल पीने को वहीं आई।।३७।। उस हिरनी को देखकर भील ने स्वयं धनुष खींचा, तब पहले के समान फिर जल और बिल्वपत्र शिवजी के ऊपर गिरे।।३८।। उससे दूसरे पहर का भी महात्मा शिवजी का पूजन व्याध को सुख देनेवाला हुआ।।३९।। तब वह हिरनी उस भील को देखकर बोली, हे वनचर! क्या करते हो? उस भील ने पहले के समान कहा, यह सुनकर वह मृगी फिर बोली।।४०।। हिरनी बोली- हे व्याध! सुनो, मैं धन्य हूं, मेरा देह धारण करना सफल हुआ, कारण कि इस अनित्य शरीर से उपकार होगा।।४१।। परन्तु मेरे बाल-बच्चे घर पर हैं, उन्हें अपने स्वामी को सौंपकर फिर आऊंगी।।४२।। भील बोला- तेरा कहना मैं नहीं मानूंगा, तुझे अवश्य मारूँगा, इसमें संशय नहीं। हे हरे! यह सुनकर वह हिरनी सौगन्ध करती हुई बोली।।४३।। मृगी बोली- हे भील! सुनो, यदि मैं फिर न आऊं, तो वाणी के विचलने से मेरा पुण्य दूर हो जाय।।४४।। जो मनुष्य विवाहिता स्त्री को छोड़कर दूसरी स्त्री से भोग करता है तथा जो वेदधर्म का उल्लंघन करके कल्पित हुए मार्ग में जाता है।।४५।। जो विष्णुजी की भक्ति में लगकर शिवजी की निन्दा करता है तथा माता-पिता के क्षयाह (मरण के दिन) को ब्राह्मण भोजन बिना खाली जाने देता है।।४६।। दूसरे को दुःख देकर फिर पीछे से मीठे वचन बनाता है, मैं उस पाप से लिप्त होऊं, यदि लौटकर मैं यहां न आऊंगी।।४७।। सूतजी बोले- वह भील इस प्रकार मृगी के कहने पर 'तू जा' ऐसा मृगी से वचन बोला, तब वह हिरनी प्रसन्न होकर जल पीकर अपने घर को गई।।४८।। तब तक उस भील को बिना नीन्द के दूसरा पहर भी बीत गया, उस समय तीसरे पहर के आने पर।।४९।। उनके आने में विलम्ब जानकर वह व्याध चकित होकर उनकी खोज में तत्पर हुआ, तब ही उसने उस पहर में जलमार्ग में आता हुआ एक मृग देखा।।५०।। उस हृष्टपुष्ट हिरन को देखकर वह भील धनुष पर बाण चढ़ाकर उसे मारने को उद्यत हुआ।।५१।। हे विष्णो! उस समय उसके ऐसा करने पर कुछ एक बेलपत्र उसके प्रारब्धवश शिवजी के ऊपर गिरे।।५२।। उनसे उस रात्रि में उस भील के भाग्य से तीसरे पहर की शिवजी की पूजा हो गई,

इस प्रकार शिवजी ने उसके ऊपर कृपालुता दिखाई।।५३।। वहां उस शब्द को सुनकर वह मृग बोला– हे भील! तुम क्या करते हो? तब वह व्याध बोला– कि मैं अपने कुटुम्ब के निमित्त तुझे मारता हूं।।५४।। ऐसा भील का वचन सुनकर वह हिरन प्रसन्न मन होकर शीघ्र ही उस व्याध से यह वचन बोला।।५५।। मृग बोला– मैं आज धन्य हूं, पुष्टिवान् हूं, जिससे तुम्हारी तृप्ति होगी, जिसका अंग दूसरे के उपकार के निमित्त नहीं होता, उसका सब कुछ निष्फल गया।।५६।। जो प्राणी सामर्थ्य होकर भी परोपकार नहीं करता, उसकी सामर्थ्य व्यर्थ होती है, वह परलोक में नरक को जाता है।।५७।। परन्तु मैं अपने बाल–बच्चों को उनकी माता को सौंपकर और उन सब को धैर्य देकर फिर यहां आऊँगा।।५८।। ऐसा मृग के कहने पर वह व्याध अपने चित्त में विस्मित हुआ, थोड़ा मन शुद्ध होने और पाप समूह नष्ट होने से वह भील यह वचन बोला।।५९।। व्याध बोला– जो–जो जीव यहां आये, वे सब तेरे समान कहकर चले गये, वे ठग अभी तक भी नहीं लौटे।।६०।। हे मृग! तू भी संकट में प्राप्त होकर झूँठ से समय को बितायेगा, मेरा जीवन आज किस प्रकार होगा?।।६१।। मृग बोला– हे व्याध! जो मैं कहता हूं, सो सब सुनो, मैं झूँठ नहीं कहता, सत्य से यह चर–अचर ब्रह्माण्ड स्थित हो रहा है।।६२।। जिसकी वाणी असत्य होती है, तत्क्षण उसका पुण्य नष्ट होता है, तो भी हे भील! मेरी सच्ची प्रतिज्ञा को सुनो।।६३।। सन्ध्या के समय मैथुन करने तथा शिवरात्रि को दिन में भोजन करने से, झूँठी गवाही देने, धरोहर मारने में तथा सन्ध्या न करनेवाले ब्राह्मण का जो पाप होता है।।६४।। जिसका मुख शिवभजन रहित है, जो समर्थ होकर भी उपकार करनेवाला नहीं है, पर्व के दिन बेल तोड़ने, अभक्ष्य के भक्ष करने।।६५।। शिवजी को बिना पूजे भोजन करने तथा भस्म रहित अंग से रहने से जो पाप होता है, इन सबों का पाप मुझे लगे, यदि मैं फिर लौटकर न आऊं।।६६।। शिवजी बोले– ऐसा उस मृग का वचन सुनकर ''जाओ, शीघ्र आना'' ऐसा व्याध ने कहा, तब वह हिरन जल पीकर अपने घर को चला गया।।६७।। तब वे सब अपने आश्रम में मिले और एक दूसरे को प्रणाम करके परस्पर उस सब वृत्तान्त को भली प्रकार सुनकर बोले।।६८।। निश्चय ही वहां जाना उचित है, इस प्रकार वे सत्य के पाश से बंधे हुए बालकों को धीरज देकर वहां जाने को तैयार हुए।।६९।। उनमें से जो बड़ी हिरनी थी, वह अपने स्वामी से यह बोली– हे मृग! तुम्हारे बिना ये बालक यहां कैसे रहेंगे?।।७०।। हे स्वामिन्! पहले मैंने वहां प्रतिज्ञा की है, इस कारण मुझे वहां जाना योग्य है, तुम दोनों यहां ही रहो।।७१।। ऐसा उसका वचन सुनकर कनिष्ठा (छोटी हिरनी) यह वचन बोली– मैं तुम्हारी टहलनी अब जाती हूं, तुम यहां स्थित रहो।।७२।। यह सुनकर वह मृग बोला– मैं जाता हूं, तुम दोनों यहां स्थित रहो कारण कि, माता से ही बालक की रक्षा होती है।।७३।। अपने स्वामी का वचन सुनकर वे

दोनों हिरनी अपने धर्म को देखकर उस बात को न मानती हुई अपने पति से प्रेमपूर्वक यह वचन बोली कि, वैधव्य (विधवापन) में जीना धिक्कार है ।।७४।। तब वे सब बालकों को धैर्य देकर उन्हें पड़ोसियों को सौंपकर शीघ्र ही वहां गये, जहां वह श्रेष्ठ व्याध था ।।७५।। वे सब बालक भी यह देखकर उनके पीछे-पीछे चल दिये, इन माता-पिता की जो दशा होगी, वह दशा हमारी भी होगी ।।७६।। तब उन सबों को देखकर वह भील प्रसन्न होकर धनुष पर बाण चढ़ाने लगा, तब भी फिर शिवजी के ऊपर जल तथा बेलपत्र गिरे ।।७७।। इससे शिवजी का चौथे पहर का शुभ पूजन हो गया, उस समय उसका सब पाप भस्म हो गया ।।७८।। तब वे दोनों मृगी तथा मृग शीघ्र ही यह बोले- हे व्याधसत्तम! तुम हमारे शरीर को सार्थक (सफल) करो और हमारे ऊपर कृपा करो ।।७९।। शिवजी बोले- ऐसा उन सबों का वचन सुनकर वह भील विस्मय को प्राप्त होकर शिवपूजन के प्रभाव से दुर्लभ ज्ञान को प्राप्त हुआ ।।८०।। यह परस्पर मिले हुए ज्ञानरहित मृग धन्य हैं, जो अपने शरीर से परोपकार करने में तत्पर हैं ।।८१।। अब मनुष्य जन्म पाकर मैंने क्या फल पाया? जो दूसरों के शरीर को पीड़ा देकर अपना शरीर पाला ।।८२।। नित्य ही अनेकों पाप करके अपना कुटुम्ब पाला, हाय! ऐसे-ऐसे पाप करके मेरी क्या गति होगी? ।।८३।। मैं किस गति को पाऊँगा? जो मैंने जन्म से पाप किये हैं, इस समय ऐसी चिन्ता करता हूं, मेरे जीवन को धिक्कार है, धिक्कार है ।।८४।। इस प्रकार ज्ञान में भरा हुआ वह बाण को निवारण (निकाल) करके यह बोला, हे मृगश्रेष्ठो! तुम धन्य हो, अपने स्थान को जाओ ।।८५।। शिवजी बोले- तब उस भील के ऐसा कहने पर शिवजी प्रसन्न हुए और उन्होंने पूजनीय शास्त्रसम्मत अपना स्वरूप दिखाया ।।८६।। उस समय कृपा से उस भील को स्पर्श करके प्रीति से यह बोले, ''हे भील! मैं इस व्रत करने से प्रसन्न हूँ, तू वर मांग'' ।।८७।। वह व्याध भी शिवजी के स्वरूप को देखकर क्षणमात्र में मुक्त होकर, ''मैंने सब कुछ प्राप्त कर लिया'' ऐसे कहता हुए शिवजी के चरणों में गिरा ।।८८।। अति प्रसन्न हुए शिवजी ने भी उसे 'गुह' ऐसा नाम देकर तथा कृपादृष्टि से देखकर दिव्य वरदान दिये ।।८९।। शिवजी बोले- हे व्याधर्षे! सुन, तू मनोवांछित दिव्य भोगों को प्राप्त हो तथा श्रृंगवेरपुर में परम राजधानी को प्राप्त होकर वहां निवास कर ।।९०।। हे व्याध! तुम्हारे वंश की वृद्धि अविनाशिनी होकर देवताओं से भी प्रशंसनीय होगी और तुम्हारे घर साक्षात् रामचन्द्रजी निश्चय ही पधारेंगे ।।९१।। और वे मेरे भक्तों के ऊपर स्नेह करनेवाले रामचन्द्र तुम्हारे साथ मित्रता करेंगे और तुम मेरी सेवा में चित्त लगाकर, दुर्लभ मोक्ष को प्राप्त होगे ।।९२।। इसी अवसर में वे सब मृग शिवजी का दर्शन करके तथा शिवजी को प्रणाम करके मृगयोनि से सुन्दर मुक्ति को प्राप्त हुए ।।९३।। उस समय वे दिव्य शरीर धारण करके विमान पर चढ़ कर, शिवजी के दर्शनमात्र से शाप से छूट

कर स्वर्गधाम को सिधारे ।।९४।। तब अर्बुदाचल पर्वत पर वे व्याधेश्वर नामक शिवजी प्रसिद्ध हुए, वे दर्शन से तथा पूजन से तत्क्षण भोग और मोक्ष देनेवाले हैं ।।९५।। हे देवताओं में श्रेष्ठ! वह भील भी उस दिन से लेकर सम्पूर्ण भोगों को अनुभव करके रामचन्द्रजी की कृपा को प्राप्त होकर शिवजी की सायुज्य मुक्ति को प्राप्त हुआ ।।९६।। वह भील अज्ञान से शिवजी के व्रत को करके सायुज्य मुक्ति का प्राप्त हुआ, यदि भक्ति करनेवाले मनुष्य शुभ मुक्ति को पाते हैं, तो क्या आश्चर्य है ? ।।९७।। सम्पूर्ण शास्त्रों को तथा अनेक धर्मों का विचार करके यह सब से अधिक शिवरात्रि के व्रत को कहा ।।९८।। इस संसार में अनेक प्रकार के व्रत हैं, अनेक तीर्थ हैं, अनेक दान हैं तथा विविध यज्ञ हैं ।।९९।। तप भी बहुत हैं तथा जप भी अनेकों हैं, परन्तु इस शिवरात्रि के व्रत की तुल्यता को प्राप्त नहीं होते ।।१००।। इस कारण अपना हित चाहनेवालों को यह अति श्रेष्ठ, दिव्य, सदा भुक्ति–मुक्ति देनेवाला शिवरात्रि का व्रत अवश्य करना चाहिये ।।१०१।। यह शुभ शिवरात्रिव्रत सम्पूर्ण कहा, यह सम्पूर्ण व्रतों में श्रेष्ठ (व्रतराज) प्रसिद्ध है। अब और क्या सुनना चाहते हो ?।।१०२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां
व्याधेश्वरमाहात्म्ये शिवरात्रिव्रतमाहात्म्य वर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४० ।।

*****

इकतालीसवाँ अध्याय

ऋषि बोले– आपने जो मुक्ति कही उसमें क्या होता है ? वहां कैसी अवस्था होती है ? यह सब हम से कहिये ।।१।। सूतजी बोले– चार प्रकार की मुक्ति होती है, सुनिये, आपसे कहता हूं, वह संसार के क्लेश को हरण करनेवाली परम आनन्द की देनेवाली है ।।२।। सारूप्य, सालोक्य, सान्निध्य और चौथी सायुज्य कही है, जो शिवजी के व्रत से प्राप्त होती है ।।३।। हे मुनिश्रेष्ठो! मुक्ति के देनेवाले केवल शिवजी ही कहे हैं, वे ब्रह्मा, विष्णु आदि मुक्ति के दाता नहीं हैं, वे केवल धर्म, अर्थ, काम इन त्रिवर्गों को देनेवाले हैं ।।४।। ब्रह्मादिक तीनों गुणों के अधीश्वर हैं और शिवजी तीनों गुणों से परे हैं, निर्विकार परब्रह्म तुर्य (चौथे) प्रकृति से परे हैं ।।५।। वे महादेवजी ज्ञानस्वरूप, अविनाशी, साक्षी, ज्ञानगम्य स्वयं अद्वैत कैवल्य मुक्ति के देनेवाले तथा त्रिवर्ग (धर्मादि) के देनेवाले हैं ।।६।। हे ऋषिश्रेष्ठो! पांचवीं कैवल्य नामक मुक्ति है, वह सब प्रकार से मनुष्यों को दुर्लभ है, अब मैं उसका लक्षण कहता हूं, श्रवण कीजिये ।।७।। जिससे सब जगत् उत्पन्न होता है तथा जिससे यह जगत् पालन होता है और जिसमें लय हो जाता है, जिसने यह सब कुछ विस्तार किया है ।।८।। हे मुनीश्वरो! वह ही शिवरूप

कहे जाते हैं, वे कला सहित तथा कला रहित दो प्रकार से वेद में वर्णन किये गये हैं ।।९।। उनको विष्णु, ब्रह्माजी ने नहीं जाना और न उन्हें कुमार आदि ने जाना, न नारदजी ने जाना है ।।१०।। और न व्यासजी के पुत्र शुकदेवजी ने, न मुनीश्वरों ने, न उनसे पहले सम्पूर्ण देवताओं ने और न वेदशास्त्रों ने उनको जाना है ।।११।। सत्य, ज्ञान, अनन्त, सत्, चित्, आनन्दस्वरूप हैं तथा निर्गुण, निरुपाधि, अव्यय, शुद्ध, निरंजन हैं ।।१२।। वह परमात्मा न रक्त हैं, न पीत हैं, न श्वेत, न नील, न ह्रस्व, न दीर्घ, न स्थूल, न सूक्ष्म हैं ।।१३।। जहां से वाणी मन के सहित प्राप्त होकर लौटती है, वह ही शिवसंज्ञक परब्रह्म कहा है ।।१४।। जिस प्रकार आकाश सर्वव्यापक है, उसी प्रकार यह भी सर्वव्यापक हैं, माया से परे हैं, पर आत्मा तथा द्वन्द्वरहित, मत्सर हीन हैं ।।१५।। हे द्विजो! इस लोक में शिवज्ञान के उदय होने से अथवा शिवजी के भजन करने से वा सज्जनों की सूक्ष्म मति से उनकी प्राप्ति होती है ।।१६।। हे मुनिसत्तमो! संसार में ज्ञान कठिन है, भजन सुगम माना गया है, इस कारण मुक्ति पाने के निमित्त शिवजी को भजें ।।१७।। शिवजी भजन के आधीन हैं, ज्ञान की आत्मा और मोक्ष के देनेवाले तथा पर हैं, बहुत से सिद्ध भक्ति से ही आनन्द सहित परम मुक्ति को प्राप्त हुए हैं ।।१८।। शिवजी की भक्ति ज्ञान की माता तथा नित्य भुक्ति-मुक्ति देनेवाली है, जिसके प्रसाद से सुलभ होती है, उसमें सत्य प्रेम के अंकुर की लक्षणा कही है ।।१९।। हे द्विजो! वह भक्ति सगुण और निर्गुण रूप से अनेक प्रकार की जाननी, जो-जो वैधी और स्वाभाविकी है, वहीं श्रेष्ठ और अधिक है ।।२०।। और वह नैष्ठिकी-अनैष्ठिकी इन भेदों से दो प्रकार की कही है, उसमें छः प्रकार की नैष्ठिकी जाननी और अनैष्ठिकी एक ही प्रकार की कही है ।।२१।। फिर पण्डित लोग विहिता-अविहिता इन भेदों से अनेक प्रकार की कहते हैं, उन दोनों में भी अनेक प्रकार होने से विस्तार वर्णन नहीं किया जाता ।।२२।। वे दोनों श्रवणादिक के भेद से नौ-नौ अंगवाली हैं, यह शिवजी के प्रसाद के बिना अति कठिन है और उनकी प्रसन्नता से सुगम है ।।२३।। हे द्विजो! भक्ति और ज्ञान परस्पर भिन्न नहीं हैं, ऐसा शिवजी ने वर्णन किया है, इस कारण भक्ति तथा ज्ञान के करनेवाले को नित्य सुख होता है, उन दोनों में भेद मानना उचित नहीं है ।।२४।। हे द्विजो! भक्ति के विरोधी को विज्ञान नहीं होता, शम्भुजी की भक्ति करनेवाले को शीघ्र ही ज्ञान का उदय होता है ।।२५।। हे मुनीश्वरो! इस कारण महेश्वरजी की भक्ति अवश्य करनी चाहिये, उसीसे सब कुछ सिद्ध होगा, इसमें संशय नहीं ।।२६।। जैसा आपने मुझसे पूँछा, उसी प्रकार मैंने सब कह दिया। मनुष्य इसको सुनकर सम्पूर्ण पापों से छूट जाता है, इसमें संशय नहीं ।।२७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां

मुक्ति निरुपणं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४१ ।।

बयालीसवाँ अध्याय

ऋषि बोले– शिवजी कौन हैं और विष्णुजी कौन हैं, रुद्र कौन हैं तथा ब्रह्मा कौन हैं? इन सबों में निर्गुण कौन हैं? हमारे इस सन्देह को दूर करें।।१।। सूतजी बोले– आदिसृष्टि में जो निर्गुण परमात्मा से उत्पन्न हुए हैं, वेद और वेदान्त के ज्ञाताओं ने उनको ही शिव नामवाला कहा है ।।२।। हे ज्ञानी! उन शिवजी से प्रकृति पुरुष के सहित उत्पन्न हुई, वहां उन दोनों प्रकृति पुरुषों ने मूल में स्थित हुए जल में तप किया ।।३।। वह पंचकोशी नाम से विख्यात हुई, सबों को जो काशी अत्यन्त प्रिय है, उसका जल सम्पूर्ण संसारभर में व्याप्त हो गया ।।४।। यह जान कर वह विष्णुजी माया के सहित उस जल में सो गये, वह हरि नारायण नाम से विख्यात हुए और प्रकृति नारायणी नाम से प्रसिद्ध हुई ।।५।। उनकी नाभिकमल में जो उत्पन्न हुए वह ब्रह्माजी कहलाये, उन्होंने जिनको तप से देखा, वह विष्णुजी हैं ।।६।। हे पण्डितो! निर्गुण शिवजी ने उन दोनों ब्रह्मा, विष्णु के विवाद को शान्त करने के निमित्त जो रूप दिखाया, वह महादेव नाम से प्रसिद्ध हुआ ।।७।। उन्होंने कहा– मैं शम्भु, ब्रह्माजी के मस्तक से प्रकट होऊँगा, तब लोकों के अनुग्रह करनेवाले वे शम्भुजी रुद्र नाम से विख्यात हुए ।।८।। वह भक्तों के ऊपर दया करनेवाले साक्षात् शिवरूप रहित होकर भी सबों के ध्यान के निमित्त रूपवान् हुए ।।९।। तीनों गुणों से हीन शिवजी में तथा सगुण रुद्र में यथार्थ में कुछ भेद नहीं, जैसे स्वर्ण में और उसके भूषण में कुछ अन्तर नहीं होता ।।१०।। वे दोनों ही समानरूप और कर्मवाले समान ही भक्तों को गति देनेवाले हैं, सभी के तुल्य ही सेवन करने योग्य हैं तथा अनेक लीला के करनेवाले हैं ।।११।। अति पराक्रमवाले रुद्र सब प्रकार शिवरूप ही हैं, वे ब्रह्मा, विष्णु की सहायता करनेवाले भक्तों के कार्य करने के निमित्त उत्पन्न हुए ।।१२।। और जो उत्पन्न हुए हैं, वे क्रमानुसार सब लय को प्राप्त होते हैं, उस प्रकार रुद्र नहीं लय होते, वे केवल शिवजी में ही लय होते हैं ।।१३।। वे सब सामान्य होकर रुद्र में मिलकर लय हो जाते हैं, परन्तु वह रुद्र उन विष्णुजी आदि में मिलकर लय को प्राप्त नहीं होते हैं, यह शास्त्र की आज्ञा है ।।१४।। वे सब रुद्र को भजते हैं, परन्तु रुद्र किसी को भी नहीं भजते, परन्तु कभी–कभी भक्तों की दया के कारण अपने आप भजते हैं ।।१५।। हे विद्वानो! जो नित्य अन्य देवता को भजते हैं, वे उसीमें लय होकर बहुत समय में रुद्र को प्राप्त नहीं होते हैं ।।१६।। परन्तु जो कोई रुद्र के भक्त हैं, वे उसी समय शिवजी के भाव को प्राप्त होते हैं, उन रुद्र को और किसी देवता की अपेक्षा नहीं होती, यह सनातनी श्रुति है ।।१७।। हे द्विजो! अज्ञान तो

अनेक प्रकार का है, विज्ञान अनेक प्रकार का नहीं होता, उसके भेद को मैं कहता हूं, आप आदर से सुनिये ।।१८।। इस लोक में ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त जो कुछ दीखता है, वह सब शिवरूप ही है, अनेक प्रकार की कल्पना मिथ्या है ।।१९।। सृष्टि होने से पहले शिवजी ही हैं तथा सृष्टि के मध्य में भी शिवजी ही कहे हैं और सृष्टि के अन्त में भी शिवजी ही होते हैं, सर्वशून्य होने पर भी सदा शिवजी जानो ।।२०।। हे मुनीश्वरो! इससे शिवजी चार गुणवाले हैं, वह दो प्रकार के होने पर भी सर्वशक्तिमत्ता से सगुण ही हैं, ऐसा जानो ।।२१।। जिनसे विष्णुजी को सम्पूर्ण सनातन वेदों का उपदेश अनेक वर्ण और मात्राओं सहित तथा अपना ध्यान और पूजन बताया है ।।२२।। इससे शम्भुजी सम्पूर्ण विद्याओं के अधिपति, वेदों के निर्माण करनेवाले, वेदों के पति कहे हैं ।।२३।। वह साक्षात् शिवजी ही सब के अनुग्रह करनेवाले, उत्पन्न करनेवाले, पालन करनेवाले, विनाश करनेवाले, साक्षी, निर्गुण हैं ।।२४।। और सबों के समय का प्रमाण है, पर काल की कलना न हि वह स्वयं महाकाली से सेवन किये हुए साक्षात् महाकाल हैं ।।२५।। ब्राह्मण लोग रुद्र तथा काली को ही कहते हैं, उन दोनों ने सत्य लीलासहित इच्छा से सब कुछ प्राप्त किया है ।।२६।। उनका उत्पन्न करनेवाला, पालन करनेवाला, विनाश करनेवाला कोई नहीं है, किन्तु वे स्वयं सब के कारण हैं, विष्णु आदि समस्त देवता कार्यभूत हैं ।।२७।। वे स्वयं कार्य और कारणरूप हैं, उनका कारण और कोई नहीं है, वे एक भी अनेकता को प्राप्त होते हैं तथा अनेक भी एकता को प्राप्त होते हैं ।।२८।। एक बीज बाहर होकर फिर वह बीज होता है, बहुत होने पर भी सब कुछ वस्तुरूप से स्वयं शिवरूपी महेश्वर हैं ।।२९।। हे ऋषीश्वरो! यह अतिश्रेष्ठ शिवज्ञान यथार्थ रूप से कह दिया, इसको ज्ञानी पुरुष ही जानते है और कोई नहीं जान सकते ।।३०।। मुनि बोले– ज्ञान को लक्षण सहित वर्णन कीजिये कि, जिसको जान कर शिवरूप को प्राप्त होते हैं, किस प्रकार वह शिवजी सब कुछ हैं और किस प्रकार सब वस्तु शिव स्वरूप हैं ।।३१।। व्यासजी बोले– यह सुनकर पौराणिकों में श्रेष्ठ सूतजी शिवजी के चरणकमलों को स्मरण करके उन मुनियों से यह वचन बोले ।।३२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां भाषायां

सगुण–निर्गुण भेद वर्णनं नाम द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४२ ।।

तैतालीसवाँ अध्याय

सूतजी बोले– हे ऋषियो! परम गोपनीय, परम मुक्तिस्वरूप शिवजी का ज्ञान जैसा मैंने सुना है, वैसा कहता हूं, आप श्रवण करें।।११।। शौनक, नारद, स्वामी कार्तिकेय तथा व्यासजी, कपिलदेवजी इन सबों के समुदाय में उन्होंने सब शास्त्रों से निश्चय करके कहा है।।२।। यह सम्पूर्ण जगत् शिवमय है, ऐसा ज्ञान निरन्तर जाने तथा सर्वज्ञ विद्वान् को शिवजी को सब जगत्मय जानना चाहिये।।३।। ब्रह्म से लेकर तृणपर्यन्त जो कुछ यह संसार दीखता है, वह सम्पूर्ण शिव ही है, ऐसा वह शिवदेव कहलाता है।।४।। जिस समय उनकी इच्छा होती है, तभी यह संसार रच देते हैं, वे ही सबको जानते हैं, परन्तु उनको कोई भी नहीं जानता।।५।। इस जगत् को रचकर स्वयं उसमें प्रवेश होकर भी दूर स्थित रहते हैं, वे उसमें प्रवेश नहीं होते और बिना लिप्त हुए केवल ज्ञान स्वरूपवाले हैं।।६।। जिस प्रकार जल में अग्नि आदि तेज की परछाई भान होती है, यथार्थ में उसका प्रवेश नहीं है, उसी प्रकार साक्षात् शिवजी स्वयं भान होते हैं, लिप्त नहीं है।।७।। यथार्थ में वह शुभ परब्रह्म स्वयं सब को आक्रमण करके भासते हैं, बुद्धि का भ्रम ही अज्ञान है, उसमें और दूसरा कुछ नहीं है।।८।। सम्पूर्ण दर्शनों में मति का भेद दीखता है, परन्तु वेदान्ती नित्य परमेश्वर को अद्वैत ही कहते हैं।।९।। अपने भी अंश का यह जीवात्मा अविद्या से मोहित होकर विवश होकर ''मैं और हूं'' ऐसा जानता है, परन्तु शिवजी उस अविद्या से रहित हैं।।१०।। साक्षात् सर्वव्यापी शिवजी को व्याप्त करके सब जीवों में स्थित हैं और वे चेतन–अचेतन के स्वामी साक्षात् कल्याण करनेवाले हैं।।११।। जो पण्डित मनुष्य उन शिवजी के दर्शन के निमित्त उपाय करता है, वह वेदान्तमार्ग को आश्रय करके उनके दर्शन के फल को पाता है।।१२।। जिस प्रकार अग्नि प्रत्येक काष्ठ में व्याप्त होकर स्थित हो रहा है, जो उस काष्ठ को घिसता है, वह निःसन्देह उस अग्नि को देख लेता है।।१३।। जो विद्वान् मनुष्य भक्ति आदि साधनों को करता है, वह अवश्य ही उन शिवजी को देख लेता है, इसमें कुछ संशय नहीं।।१४।। शिव ही हैं, शिव ही हैं और सर्वत्र शिव ही हैं और कुछ नहीं, शंकरजी भ्रान्ति से नाना स्वरूप से निरन्तर भासते हैं।।१५।। जिस प्रकार समुद्र, मृत्तिका, सुवर्ण उपाधि से अनेक भावों को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार शिवजी भी उपाधि से अनेक हैं।।१६।। वास्तव में कार्य और कारण में कुछ भेद नहीं है, केवल बुद्धि की भ्रान्ति (अज्ञान) से अन्तर दीखता है, उस बुद्धि की भ्रान्ति के नाश होने पर वह भेद दूर होता है।।१७।। बीज से वृक्ष अनेकता को प्रकाशित करता है, अन्त में

बीज ही शेष रहता है, उसका वृक्ष नष्ट हो जाता है।।१८।। ज्ञानी जीव बीज है, विकृति (प्रकृति) वृक्ष माना है, फिर भी उसकी निवृत्ति में ज्ञानी ही होता है, इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये।।१९।। सब जगत् शिव है तथा शिव ही में सब जगत् है, इन दोनों में कुछ भेद नहीं है, किस प्रकार अनेक प्रकार का दीखता है और फिर किस प्रकार एकता ही दीखती है।।२०।। जिस प्रकार मनुष्यों को जल आदि में एक सूर्य के अनेक सूर्य दीखते हैं, उसी प्रकार वह शिवजी एकदा भ्रान्ति से अनेक भासते हैं।।२१।। जैसे आकाश सब जगह व्यापक होकर भी स्पर्शता में नहीं बद्ध होता, उसी प्रकार सर्वव्यापक होकर भी वह परमात्मा कहीं भी नहीं बद्ध होता।।२२।। जीव अहंकार सहित है, शिवजी स्वयं अहंकार से मुक्त हैं, जीव तुच्छ तथा कर्म को भोगनेवाला है, शंकरजी महान् और निर्लिप्त हैं।।२३।। जिस प्रकार एक सुवर्ण चांदी आदि से मिल कर स्वल्प मूल्यवाला हो जाता है, उसी प्रकार शुद्ध जीव अहंकार सहित हो जाता है।।२४।। जिस प्रकार सुवर्णादि खार (तेजाब, अग्नि) आदि से शोधित किये शुद्ध होकर पहले के समान मूल्य को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार संस्कार करने से अहंकारी जीव भी शुद्ध हो जाता है।।२५।। पहले श्रेष्ठ गुरु को पाकर भक्तिभाव के सहित शिवबुद्धि से पूजन तथा ऊँचे स्वर से उनका स्मरण करे।।२६।। ऐसी बुद्धि करने से देह से सम्पूर्ण पाप आदि मल दूर होते हैं, तो अज्ञान नष्ट हो जाता है, जिस समय जीव ज्ञानवान् होता है।।२७।। तब जीव अहंकार से छूटकर निर्मल बुद्धिमान् होता है, फिर शिवजी के प्रसाद से शिवभाव को प्राप्त होता है।।२८।। जिस प्रकार दर्पण में अपना स्वरूप दीखता है, उसी प्रकार शिवजी को सर्वत्र व्यापक जानते हैं, यह निश्चय जानो।।२९।। वह जीव जीवन्मुक्त होकर देह से रहित होकर शिवजी में मिल जाता है, देह प्रारब्ध के वश से प्राप्त होता है, परन्तु ज्ञानी शरीर से रहित माना गया है।।३०।। प्रियवस्तु को पाकर जो हर्ष नहीं करता और अप्रिय को प्राप्त होकर क्रोध नहीं करता है, जिसकी सुख-दुःख में समानता होती है, वह ज्ञानवान् कहलाता है।।३१।। मुक्ति चाहनेवाला पुरुष आत्मा के योग से अथवा तत्त्वों के विचार से अपने शरीर से शरीर को त्यागता है।।३२।। जो सदाशिवजी में लीन होता है, वह व्यथाओं से मुक्त होकर ज्ञानमूल अध्यात्म को प्राप्त होता है और फिर उन शिवजी की भक्ति मिलती है।।३३।। भक्ति से प्रेम और प्रेम से श्रवण होता है, श्रवण से सत्संग प्राप्त होता है, सत्संग से विद्वान् गुरु मिलता है।।३४।। गुरु से ज्ञान प्राप्त होने पर निश्चय ही मुक्त होता है, जो नित्य शिवजी को भजता है, वह इसी प्रकार ज्ञानवान् हो जाता है।।३५।। जो मनुष्य अतिभक्ति के सहित शिवजी का भजन करता है, वह अन्त में मुक्ति को प्राप्त होता है, इसमें कुछ संशय मत जानो।।३६।। उन शंकरदेव से अधिक कोई देवता मुक्ति के प्राप्त होने के निमित्त नहीं है, जिनकी शरण में आ कर संसार से छूट जाते हैं।।३७।। हे ब्राह्मणो! मैंने ऋषियों के समागम से निश्चय करके यह अनेक

ज्ञान के वाक्य कहे, वे सब आपको यत्न से बुद्धि में धारण करने चाहिये।।३८।। पहले शिवजी ने अपने ज्योतिर्लिंग के सम्मुख विष्णुजी को यह ज्ञान दिया, फिर विष्णुजी ने ब्रह्माजी को उपदेश किया, ब्रह्माजी ने सनकादि ऋषियों को दिया।।३९।। फिर वह ज्ञान सनकादिकों ने नारदजी से कहा, नारदजी ने व्यासजी को बताया, कृपालु व्यासजी ने मुझे उपदेश दिया।।४०।। मैंने आप सबों से कहा, आप सबों को संसार के कारण यत्नपूर्वक इसको रक्षित करना चाहिये, यह ज्ञान शिवजी की प्राप्ति करानेवाला है।।४१।। हे मुनीश्वरो! जैसे आपने पूँछा सो सब मैंने आपसे कह दिया, इसे यत्न से छिपाना चाहिये। अब क्या सुनने की इच्छा है?।।४२।। व्यासजी बोले– यह सुनकर वे सम्पूर्ण ऋषि परम हर्ष को प्राप्त हुए और हर्ष से गद्गद वाणी सहित नमस्कार करके बारंबार स्तुति करने लगे।।४३।। ऋषि बोले– हे व्यासजी के शिष्य! हे सूतजी! आप शैवों में श्रेष्ठ, धन्य हो, आपने हम सबों को परमतत्त्वरूपी शिवज्ञान को सुनाया।।४४।। आपकी कृपा से चित्त की भ्रान्ति दूर हो गई, आपसे मुक्ति के देनेवाले शिवजी में ज्ञान को पाकर हम सन्तुष्ट हो गये।।४५।। सूतजी बोले– हे द्विजो! यह इतिहास नास्तिक से तथा श्रद्धा रहित शठ (दुष्ट) से तथा शिवजी की भक्ति से रहित तथा सुनने की इच्छा न करनेवालों से कदापि नहीं कहने योग्य है।।४६।। इतिहास तथा पुराणों को वेद और शास्त्रों को बारंबार विचार कर उनका सारांश निकालकर व्यासजी ने मुझसे कहा है।।४७।। इसे एक बार सुनकर सम्पूर्ण पाप भस्म होते हैं, यह जो भक्त नहीं उसकी भक्ति तथा भक्त की भक्ति बढ़ाता है।।४८।। दो बार सुनने से श्रेष्ठ भक्ति मिलती है, फिर सुनने से मुक्ति हो जाती है, इस कारण भोग तथा मुक्ति के चाहनेवाले मनुष्यों को इसे बारंबार सुनना चाहिये।।४९।। अधिक फल को उद्देश्य करके इसकी पांच आवृत्ति करनी चाहिये, जो ऐसा करते हैं, वे मुक्ति को पाते हैं, इसमें संशय नहीं, ऐसा व्यासजी ने कहा है।।५०।। जिसने यह उत्तम इतिहास सुना, उसको कुछ दुर्लभ नहीं, इसको पांच आवृत्ति पाठ करने से शिवजी का दर्शन प्राप्त होता है।।५१।। पहले राजा तथा ब्राह्मण, वैश्य इस बुद्धि से पांच बार सुनकर परम सिद्धि को प्राप्त हुए हैं।।५२।। अब भी जो मनुष्य भक्ति में तत्पर होकर इसको सुनेगा वह शिवसंज्ञक विज्ञान को, भुक्ति और मुक्ति को प्राप्त होगा।।५३।। व्यासजी बोले– ऐसा उनका वचन सुनकर वे ऋषि परम आनन्द को प्राप्त होकर आदर सहित अनेक वस्तुओं से सूतजी का पूजन करने लगे।।५४।। और सन्देह रहित हुए सन्तुष्ट होकर स्वस्तिवाचनपूर्वक नमस्कारों से तथा आशीर्वादों से बढ़ाने लगे।।५५।। वे बुद्धिमान् ऋषि तथा सूतजी आपस में शिवदेवता को अधिक मानकर उन्हें नमस्कार करने तथा भजने लगे।।५६।। यह शिवजी का विज्ञान शिवजी को अति प्रसन्न करनेवाला, भुक्ति–मुक्ति देनेवाला तथा दिव्य भक्ति को बढ़ानेवाला है।।५७।। यह अति पवित्र कोटिरुद्र नामवाली शिवपुराण की चौथी

संहिता परम आनन्द देनेवाली, मैंने कही ।।५८।। जो मनुष्य सावधान होकर भक्ति से इसे सुनता है, वह सम्पूर्ण भोगों को भोगता है, अन्त समय परमगति (मोक्ष) को प्राप्त होता है ।।५९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां चतुर्विंशतिसाहस्र्यां संहितायां

वैयासिक्यां तदन्तर्गततायां चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितायां

ज्ञाननिरूपणं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४३ ।।

*****

ॐ

श्रीकृष्णद्वैपायनमहर्षिवेदव्यासविरचित

शिवमहापुराणभाषा

(पञ्चमी उमासंहिता ५)

***

कात्यायनगोत्रोद्भव मुरादाबाद निवासी श्रीयुत पंडित
ज्वालाप्रसादजी मिश्र ने संस्कृत से अत्युत्तम
देवनागरी में भाषांतर किया

मुद्रक एवं प्रकाशकः
खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बम्बई-४०० ००४

(पञ्चमी उमासंहिता ५)



ॐ

अथ

शिवमहापुराणभाषा

***

पञ्चमी उमासंहिता प्रारभ्यते

पहिला अध्याय

दोहा–

शिवा शम्भु गणपति सुमिरि, गुरुपद रज हियलाय।
उमासंहिता की कथा, भाषा करत सुहाय।। १।।

जो परमात्मा सत्वगुण के आश्रय से सातों लोकों को धारण तथा पालन करते हैं, रजोगुण से जो उत्पन्न करते, तमोगुण से संहार करते तथा जो गुणमयी माया से भी परे स्थित हैं, उन सत्‌चित्‌ आनन्दरूप, अनन्त बोधवाले निर्मल ब्रह्मा, विष्णु आदि नामों को धारण करनेवाले, नित्य सत्व की प्राप्ति से ही प्राप्त होनेवाले, परिपूर्ण शिवजी का ध्यान करते हैं।।१।। ऋषि बोले– हे महाभाग सूतजी! हे व्यासजी के शिष्य! आपको नमस्कार है, आपने चौथी कोटि रुद्रसंहिता हमें सुनाई।।२।। अब अनेकों आख्यानों से युक्त पार्वती सहित शिवजी के चरित्रों से परिपूर्ण पांचवी उमासंहिता वर्णन करें।।३।। सूतजी बोले– हे शौनकादि महर्षियो! आप उस भुक्ति–मुक्ति प्रदान करनेवाले शंकरजी का दिव्य चरित्र सुनिये।।४।। ऐसे ही पहले मुनिश्रेष्ठ व्यासजी ने यह पवित्र प्रश्न सनत्कुमारजी से किया था, तब उन्होंने उनसे शिवजी का परम चरित्र कहा था।।५।। सनत्कुमारजी बोले– हे व्यासजी! महर्षि उपमन्युजी ने जो श्रीकृष्णजी से कहा था, वही मैं शंकरजी का चरित्र आपसे कहता हूं।।६।। पहले वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्णजी पुत्र के निमित्त शिवजी का तप करने के लिये कैलास पर गये।।७।। वहां पर्वत के उत्तम श्रृंग पर महर्षि उपमन्युजी को तप करते हुए देखकर, प्रणाम करके, हाथ जोड़कर श्रीकृष्णजी पूँछने लगे।।८।। श्रीकृष्णजी बोले– हे महाबुद्धिमान्, शैवों में श्रेष्ठ सम्मति उपमन्युजी! मैं पुत्र प्राप्ति के निमित्त इस पर्वत पर शंकरजी का तप करने आया हूं।।९।। हे मुने!

आप आनन्द देनेवाला शिवजी का माहात्म्य सुनाइये, जिसे सुनकर मैं भक्ति से शंकरजी का उत्तम तप आरम्भ करूं।।१०।। सनत्कुमारजी बोले– हे व्यासजी! ऐसा उन बुद्धिमान् श्रीकृष्णजी का वचन सुनकर वे प्रसन्न चित्त उपमन्यु ऋषि शिवजी को स्मरण करके कहने लगे।।११।। उपमन्युजी बोले– हे श्रीकृष्ण! हे महाशैव! आप शिवजी की महिमा सुनिये, जिस भक्ति बढ़ानेवाली महिमा को मैंने देखा है, सो कहता हूं।।१२।। तप करते हुए मैंने शिवजी को तथा उनके शस्त्रों और परिवार और विष्णुजी आदि देवताओं का दर्शन किया।।१३।। ब्रह्मादि तीनों अंशों से शोभायमान, नित्य सुखदायक, अविनाशी, एक चरण धारी, बड़ी दंष्ट्रावाले, अग्नि के लपटों से व्याप्त मुखों से शोभित हुए।।१४।। दो सहस्र किरणों की कान्ति से विराजमान, सम्पूर्ण सुन्दर अस्त्रों को धारण किये, अनेक नेत्रोंवाले, सहस्र चरणधारी, जो प्रलय के समय में निश्चय संसार का विनाश करते हैं, जिनके लिये चर–अचर सहित तीनों लोकों में कोई अवध्य नहीं है।।१५–१६।। जिन महेश्वरजी ने भुजाओं से उत्पन्न चर–अचर सहित इस त्रिलोक जगत् को आधे पल में निःसन्देह शीघ्र भस्म किया था।।१७।। इस प्रकार शिवजी के समीप स्थित होकर, तप में मग्न हुए मैंने उन अविनाशी शम्भुजी को तथा उनके गोपनीय दिव्य अस्त्रों को देखा, जिनके समान अथवा अधिक अस्त्र किसी जगह नहीं था।।१८।। जो सब लोकों में त्रिशूल नाम से प्रसिद्ध है, जो अति प्रचण्ड सम्पूर्ण शस्त्र–अस्त्रों का नाश करनेवाला विजयास्त्र है।।१९।। जो समस्त भूमण्डल को विदीर्ण करता है तथा जो समुद्रों को सुखाता है और सम्पूर्ण तारागणों को गिराता है, इसमें कुछ संशय नहीं।।२०।। जिस त्रिशूलास्त्र ने प्रथम यौवनाश्व तथा अतिबली, चक्रवर्ती, महातेजस्वी, तीनों लोकों को जीतनेवाले माधान्ता राजा को मारा।।२१।। तथा जिस अस्त्र ने युद्ध में चारों ओर से शत्रुओं को मारनेवाले राजाओं को बुलाकर अभिमानी हैहय तथा लवणासुर को गिराया।।२२।। उस दैत्य के मारे जाने पर वह तीक्ष्ण अग्रभाग युक्त, भय देनेवाला प्रबल त्रिशूल शिवजी के हाथ में गया।।२३।। तीन शिखाओंवाली भृकुटी को धारण करके डांटते हुए के समान स्थित हुए, धुंए रहित अग्नि के समान तथा चढ़ते सूर्य के उदय होने के समान सूर्य को हाथ में लिये भगवान् विष्णुजी के समान, पाश (फांसा) हाथ में लिये यमराज के समान, तीन धार वाले तथा सर्प आदिकों से शोभायमान, परशु अस्त्र के समान।।२४–२५।। तथा जो प्रलयकाल में दहनाकारवाला और जो परशुराम के संग्राम में क्षत्रियों को मारनेवाला है।।२६।। पहले शिवजी के दिये हुए जिस बल को आश्रय करके मुनि परशुरामजी ने प्रसन्न होकर इक्कीस बार क्षत्रियों को भस्म किया।।२७।। ऐसे सुदर्शनचक्र को तथा सहस्र मुखवाले सर्वव्यापक दो सहस्र भुजाओं सहित पुरुष के आकारवाले शिवदेव को देखा।।२८।। जो दो सहस्र नेत्रोंवाले प्रकाशित, एक सहस्र चरणों से युक्त तथा करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशवाले, तीनों

लोकों को भस्म करने में समर्थ ।।२९।। बड़े उज्ज्वल, सौ पर्वतों के समान तीक्ष्ण वज्र को तथा बड़ी कान्तिवाले, महाधनुष को तर्कसों के सहित सुन्दर पिनाक को ।।३०।। शक्ति तथा खड्ग, पाश, बड़ी दीप्तिवाले अंकुश को और बड़ी शोभायमान गदा को तथा और अनेक अस्त्रों को धारे देखा ।।३१।। और लोकपालों के जो अनेक शस्त्र थे, उन सबों को भगवान् शिवजी के समीप देखा ।।३२।। शिवजी के दाहिनी ओर साक्षात् लोकपितामह ब्रह्माजी अपने मन के अनुकूल हंस के सहित दिव्य विमान में चढ़कर आये ।।३३।। और उनके बांई ओर शंख, चक्र, गदाधारी साक्षात् नारायण गरुड़ पर चढ़कर आये ।।३४।। स्वायम्भुव आदि मनु तथा भृगु आदि ऋषि और इन्द्र आदि सब देवता भी उनके साथ आये ।।३५।। और स्वामि कार्तिक घण्टा सहित मोर पर चढ़कर शक्ति को लेकर आये, दूसरी अग्नि के समान देवी पार्वती के समीप स्थित हुए ।।३६।। नन्दी त्रिशूल लेकर शिवजी के आगे उपस्थित हुए तथा सम्पूर्ण भूतगण और चण्डिका आदि अनेक माताएं स्थित हुईं ।।३७।। उस समय उन देवताओं ने चारों ओर से महादेवजी को घेरकर उन्हें नमस्कार करके अनेक स्तोत्रों से स्तुति की ।।३८।। इस संसार में जो कुछ दीखता है अथवा सुना जाता है, वह सब मैं भगवान् शिवजी के समीप देखकर अति विस्मित हुआ ।।३९।। और बड़ा धैर्य धारण करके, अनेक स्तुतियों के साथ हाथ जोड़कर बड़े आनन्द में मग्न हुआ ।।४०।। अपने सम्मुख शिवजी को देखकर मैंने भक्ति-श्रद्धा के सहित आंसुओं के कारण गद्गद (हीन स्वर) वाणी से विधिपूर्वक पूजन किया ।।४१।। तब परमेश्वर शंकरजी अतिप्रसन्न होकर प्रेमसहित मधुर वाणी में हँसते हुए के समान मुझसे बोले ।।४२।। हे ब्राह्मण! तुम मुझसे पृथक् होने को समर्थ नहीं हो, मैंने तुम्हारी बारंबार परीक्षा कर ली, तुम्हारा कल्याण हो, तुम अटल भक्ति से युक्त हो ।।४३।। हे सुव्रत! इस कारण मैं तुमसे प्रसन्न हूं, सब देवताओं में दुर्लभ वर मांगो, तुम्हें देने के अयोग्य कोई वस्तु नहीं है ।।४४।। तब मैं उन शिवजी के प्रेम युक्त वचनों को सुनकर हाथ बांधकर, भक्तों के ऊपर दया करनेवाले शिवजी से बोला ।।४५।। उपमन्युजी बोले- हे भगवन्! यदि आप मुझसे सन्तुष्ट हैं तथा मुझ में आपकी भक्ति स्थिर है, तो उस सत्य से मेरा ज्ञान तीनों काल के विषयवाला हो ।।४६।। और आपमें में नष्ट न होनेवाली अति गाढ़ भक्ति प्रदान करें तथा वंश के सहित मुझे नित्य प्रति दूध भात प्राप्त होवे ।।४७।। तथा हे विभो! मुझे आपके आश्रय की समीपता तथा निरन्तर आपके भक्तों में मेरी परस्पर प्रीति होवे ।।४८।। मेरे ऐसा कहने पर परमेश्वर शिवजी हँसते हुए मुझे कृपा दृष्टि से देखकर मुझसे शीघ्र ही बोले ।।४९।। शिवजी बोले- हे मुने! हे उपमन्यो! हे तात! तुम जरा-मरण के दोषों से पृथक् तथा स्वेच्छाचारी बनोगे ।।५०।। मुनियों में पूजनीय तथा यश और धन से पूर्ण शील रूप गुण ऐश्वर्यवान् तथा क्षण-क्षण में प्रसन्नता युक्त होंगे ।।५१।। हे मुने! तुम्हें क्षीरसागर की समीपता प्राप्त होगी, जहां तुम

जाना चाहोगे, वहां वहां नित्य प्राप्त हो जाओगे ।।५२।। जब तक वह अमृतमय क्षीरसागर रहेगा, तब तक इस वैवस्वत कल्प को अपने भाई-बन्धु सहित देखोगे ।।५३।। मेरे प्रसाद से तुम्हारा गोत्र अक्षय (अविनाशी) हो, हे महामुने! मैं तुम्हारे आश्रम में निकटता को प्राप्त होऊँगा।।५४।। हे वत्स! सदा मेरी भक्ति अति स्थिर होगी, नित्य मैं तुमको दर्शन दूंगा तथा तुमसे स्मरण करने पर प्रकट होऊँगा और तुम सब प्रकार मेरे प्रिय होगे ।।५५।। तुम कामना के अनुसार सुख से रहो, किसी प्रकार की उत्कण्ठा नहीं करोगे, तुम्हारा चाहा हुआ सब मनोरथ पूर्ण होगा, इसमें कुछ संशय नहीं ।।५६।। उपमन्युजी बोले- ऐसा कहकर कोटिसूर्य के समान कान्तिवाले वे भगवान् सदाशिव ईशान मुझे वरदान देकर वहीं ही अन्तर्धान हो गये ।।५७।। हे श्रीकृष्णजी! इस प्रकार मैंने भुक्ति-मुक्ति प्रदान करनेवाले परमेश्वर शंकरजी को परिवार सहित देखा ।।५८।। और जो उन बुद्धिमान् देव देव परमेश्वर ने समाधि कहा सो सब मुझे प्राप्त हुआ ।।५९।। प्रत्यक्ष उपस्थित हुए गन्धर्व, अप्सरायें तथा ऋषि तथा विद्याधरों और सिद्धों को देखा ।।६०।। चिकने पत्रों सहित सुगन्धिवाले, सम्पूर्ण ऋतुओं के पुष्पों सहित तथा निरन्तर पुष्प और फलों से परिपूर्ण हुए मनोहर वृक्षों को देखा ।।६१।। हे महाबाहो! यह सम्पूर्ण भाव सहित संसारमात्र उन देव देव महात्मा शिवजी के प्रसाद से उत्पन्न हुआ है ।।६२।। और महादेवजी के प्रसाद से मुझे सम्पूर्ण ज्ञान है। भूत, वर्तमान, भविष्यत् सबको ठीक-ठीक जानता हूं ।।६३।। इन्द्रादि देवता भी बिना आराधना किये जिनको नहीं देख सकते हैं, उन महेश्वर देव को भी मैंने देख लिया, इस कारण मुझसे अधिक धन्य कौन है?।।६४।। छब्बीस परम सनातन तत्त्व हैं, ऐसा प्रसिद्ध है, इस प्रकार विद्वान् परम अक्षर ब्रह्म का ध्यान करते हैं ।।६५।। सम्पूर्ण तत्त्वों के विधान जाननेवाले तथा समस्त तत्त्वों के अर्थ को देखनेवाले वही भगवान् सदाशिव प्रधान पुरुषेश्वर हैं ।।६६।। जिन्होंने अपने दाहिने भाग से लोक के कारण ब्रह्माजी को तथा बायें भाग से संसार की रक्षा के निमित्त विष्णुजी को रचा है ।।६७।। प्रलय प्राप्त होने पर अपने हृदय से शिवजी को उत्पन्न किया, तत्पश्चात् उन्होंने सम्पूर्ण स्थावर-जंगम सहित जगत का विनाश किया ।।६८।। वही महादेवजी प्रलयकाल के समय प्रलयाग्नि के समान सम्पूर्ण प्राणियों को भक्षण करते हुए स्थित हैं ।।६९।। सर्वज्ञ, सर्वभूतात्मा, सर्वतोद्भव, समस्त देवताओं से देखने योग्य वह सदाशिवजी हैं ।।७०।। इस कारण आप पुत्रप्राप्ति के निमित्त शिवजी का आराधन करें, वह भक्तवत्सल शिवजी आपसे शीघ्र ही प्रसन्न होंगे ।।७१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां
स्वगतिवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ।। १ ।।

*****

दूसरा अध्याय

सनत्कुमारजी बोले- महात्मा उपमन्यु मुनि का ऐसा वचन सुनकर महादेवजी में भक्ति उत्पन्न करके वह श्रीकृष्णजी उन उपमन्यु मुनि से बोले ।।१।। श्रीकृष्णजी बोले- हे मुने! हे उपमन्यु! हे तात! मुझ पर कृपा करें, जिन-जिन भक्तों ने शिवजी की आराधना करके अपनी कामना पाई हैं, उनको कहिये ।।२।। सनत्कुमारजी बोले- ऐसा सुनकर उन कृपानिधि, शैवों में श्रेष्ठ महात्मा उपमन्यु मुनि ने श्रीकृष्णजी की प्रशंसा करके यह कहा ।।३।। उपमन्युजी बोले- हे श्रीकृष्ण! जिन-जिन भक्तों ने शिवजी की आराधना से अपने हृदय की कामना पूर्ण की उन-उन भक्तों के नाम बताता हूं, आप सुनिये ।।४।। पहले हिरण्यकशिपु ने चन्द्रशेखर महादेवजी की आराधना से दश लक्ष वर्षों में सब देवताओं का ऐश्वर्य प्राप्त किया ।।५।। उसका पुत्र नन्द नाम से विख्यात हुआ, उसने शिवजी के पूजन से दश हजार वर्ष में इन्द्र को नीचे किया ।।६।। हे श्रीकृष्ण! बड़े युद्ध में विषतरुजी को घोर सुदर्शनचक्र तथा इन्द्र का वज्र भी उसके शरीर में लगने से टूट गया ।।७।। संग्राम में अति बलवान् उस बुद्धिमान् दैत्य के आगे अंग में चक्र, वज्रमुख आदि शस्त्र पीड़ा नहीं देते थे ।।८।। उस बली दैत्य से पण्डित, ब्राह्मण पीड़ित हुए तथा देवताओं से वर पाये हुए दैत्यों ने सब देवताओं को मारा ।।९।। सम्पूर्ण लोकों के स्वामी शिवजी ने शत-सहस्र वर्षों में प्रसन्न होकर बिजली के समान कान्तिवाले उस दैत्य को तीनों लोकों का आधिपत्य दिया ।।१०।। शिवजी ने दश सहस्र पुत्रों को प्रदान किया और मेरा यह नित्य अनुचर रहेगा, ऐसा कहा ।।११।। और भगवान् शिवजी ने उस कुशद्वीप में शुभ राज्य दिया, हे कृष्ण! वे शंकरजी प्रीति के सहित उस पर प्रसन्न हुए ।।१२।। फिर ब्रह्माजी ने सौ वर्ष पीछे उस दैत्य को शतमुख नाम से उत्पन्न किया, तब उसने तप करके शिवजी से सौ पुत्र पाये ।।१३।। वेदों में प्रसिद्ध हुए याज्ञवल्क्य नामक मुनि ने भी महादेवजी की आराधना करके उत्तम ज्ञान पाया ।।१४।। और जो वेदव्यास नाम से विख्यात हैं, उन्होंने बहुत यश पाया और उन्होंने शिवजी की पूजा करके तीनों काल का ज्ञान पाया ।।१५।। इन्द्र से तिरस्कार किये हुए वालखिल्य ऋषियों ने शिवजी के प्रभाव से सबों से दुर्जय सोमरस को हरनेवाले गरुड़ को पाया ।।१६।। शिवजी के पूर्व क्रोध से सम्पूर्ण जल नष्ट हो गये, तब देवताओं ने समकपाल से यज्ञ करके जल प्रवृत्त किया ।।१७।। और अत्रि की भार्या अनसूया ने तीन सौ वर्ष तक निराहार मूसलों पर सो कर उन शिवजी की कृपा से अपना पुत्र पाया ।।१८।। दत्तात्रेय मुनि, चन्द्रमा तथा दुर्वासा ऋषि को प्राप्त किया तथा चित्रकूटपर्वत से गंगा को

प्रकट किया ।।१९।। हे श्रीकृष्ण! विकर्ण ने भी भक्तों को सुख देनेवाले महादेवजी को प्रसन्न करके बड़ी सिद्धि पाई ।।२०।। तथा अटल भक्तिवाले राजा चित्रसेन ने शम्भुजी को प्रसन्न करके सम्पूर्ण राजाओं के भय से बचकर, बड़ा अभय पाया ।।२१।। श्रीकर नामक गोपिका के पुत्र ने राजा की पूजा देखने मात्र से महादेवजी में भक्ति उत्पन्न करके परम सिद्धि प्राप्त की ।।२२।। हे श्रीकृष्ण! सीमन्तिनी रानी का पति राजा चित्रांगद यमुना में डूबने पर भी शिवजी के अनुग्रह से नहीं मरा ।।२३।। और वह श्रेष्ठ व्रतवाले राजपुत्र सर्पों के स्थान को जाकर उनके साथ मित्रता करके प्रसन्न होकर अनेक धन, सम्पत्ति से भरपूर होकर अपने घर आये ।।२४।। हे श्रीकृष्ण! सोमव्रत में तत्पर हुई उसकी भार्या ने शिवजी की दया से बड़ा उत्तम सौभाग्य पाया ।।२५।। कभी उस सोमव्रत में एक ब्राह्मण के पुत्र ने लोभ के कारण कपट से स्त्री का आकार बनाया और उसके प्रभाव से वह स्त्रीपन को प्राप्त हो गया ।।२६।। पहले कोई दुष्टा व्यभिचारिणी चंचुका ने गोकर्ण में ब्राह्मण से धर्मकथा सुनकर शिवजी की भक्ति से बड़ी सुन्दर गति पाई ।।२७।। बिन्दु में प्राप्त हुआ पापी चंचुकापति भी अपनी स्त्री की कृपा से शिवपुराण को सुनकर शिवलोक पहुँचा ।।२८।। पिंगला नामक वेश्या और मदर नामक नीच ब्राह्मण दोनों शिवजी को पूजकर श्रेष्ठ गति को प्राप्त हुए ।।२९।। महानन्दा नामवाली कोई वेश्या शिवजी के चरणों में तत्पर होकर दृढ़ भक्ति से शिवजी को प्रसन्न करके शुभगति को प्राप्त हुई ।।३०।। कैकयी नामवाली ब्राह्मण की पुत्री तथा सादरा नाम की शिवव्रत करनेवाली विप्रकन्या महादेवजी का व्रत धारण करने से बड़े सुख को प्राप्त हुई ।।३१।। विमर्षण नामक राजा ने भी पहले शिवभक्ति करके शिवजी की कृपा से परमगति पाई ।।३२।। शिवजी की आराधना से दुर्जन, पापी, बहुत स्त्रियों में तत्पर दुष्ट राजा सम्पूर्ण कर्मों में लिप्त न होकर शिवजी को प्राप्त हुआ ।।३३।। शिवव्रत करनेवाला शंकर तथा शम्बर नामक पुरुष अपनी स्त्री के सहित भक्ति से चिताभस्म लेपन करके उत्तम गति को प्राप्त हुआ ।।३४।। हे श्रीकृष्ण! सौकिनी नाम की चाण्डाली ने अज्ञान से शिवजी को पूजकर महादेवजी की अति कृपा से शिवसम्बन्धी गति पाई ।।३५।। महाकाल नामक दूसरों को मारनेवाला व्याध (भील) भक्ति से शिवजी को पूजकर श्रेष्ठ गति को प्राप्त हो गया ।।३६।। पहले मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाजी ने शिवजी के अनुग्रह से संसार में मुक्ति देनेवाली शिवजी की भक्ति तथा अपने मत को फैलाया ।।३७।। विश्वामित्रजी भी लोकों के कल्याण करनेवाले शिवजी को पूजकर मानो दूसरे ब्रह्मा के समान क्षत्रिय ब्राह्मण हुए ।।३८।। हे श्रीकृष्ण! शैवों में श्रेष्ठ ब्रह्माजी भी भक्ति से शिवजी को पूजकर सब लोकों के पितामह तथा सृष्टि उत्पन्न कर्ता हुए ।।३९।। हे श्रीकृष्ण! मार्कण्डेय मुनि भी शिवजी के अनुग्रह से चिरंजीवी महाप्रभु तथा शिवभक्तों में श्रेष्ठ शोभायमान हुए ।।४०।। हे श्रीकृष्ण! पहले सब देवताओं के स्वामी इन्द्र ने शिवजी के अनुग्रह से

तीनों लोकों को भोगा।।४१।। महाशैव बलि का पुत्र शिवजी के अनुग्रह से जितेन्द्रिय हुआ, तब सबों के स्वामी बाणासुर ब्रह्माण्ड नायक हुआ।।४२।। विष्णुजी, शक्ति, दधीचि तथा रामचन्द्रजी (परशुराम) भी शिवजी के अनुग्रह से महाशैव हुए।।४३।। काणाद, भार्गव, गुरु गौतम यह सब राजा शिवजी की भक्ति से बड़े तथा सबके स्वामी हुए।।४४।। हे श्रीकृष्ण! प्रशंसनीय आत्मावाले शाकल्य ऋषि ने नौ सौ वर्ष मनोयज्ञ से शिवजी का आराधन करके।।४५।। उन्हें सन्तुष्ट किया, तो भगवान् शिवजी बोले– हे वत्स! तू ग्रन्थों का कर्ता होगा तथा तीनों लोकों में तेरी अटल कीर्ति होगी।।४६।। हे ऋषिश्रेष्ठ! और तेरा पुत्र कुल ऋषियों से शोभायमान तथा अक्षय होगा और तुम सूत्रकार बनोगे।।४७।। हे यदुनन्दन! इस प्रकार उस मुनिश्रेष्ठ ने शिवजी से वरदान पाया और तीनों लोकों में विख्यात और पूजनीय हो गया।।४८।। सत्युग में सावर्णि नाम से प्रसिद्ध ऋषि ने इसी स्थान में साठ सौ वर्ष तप किया।।४९।। तब भगवान् शिवजी उनसे बोले– हे अनघ! मैं तुमसे सन्तुष्ट हुआ, तुम ग्रन्थ कर्ता और लोक में विख्यात अजर–अमर होगे।।५०।। इस प्रकार पहले के बल पूजित हुए महादेवजी मनोवांछित शुभकामनाओं को पूर्ण करते हैं।।५१।। भगवान् शिवजी के जो गुण हैं, उनका एक मुख से वर्णन करने को मैं सौ वर्ष में भी समर्थ नहीं हो सकता।।५२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां
उपमन्यूपदेशो नाम द्वितीयोऽध्यायः।। २ ।।

*****

तीसरा अध्याय

सनत्कुमारजी बोले– ऐसा उन उपमन्यु ऋषि का वचन सुनकर श्रीकृष्णजी अति विस्मय को प्राप्त होकर शान्तचित्त महामुनि से कहने लगे।।१।। श्रीकृष्णजी बोले– हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ! आप धन्य हो, कौन आपकी स्तुति करने में समर्थ है? जिन आपके आश्रम के समीप आदिदेव महादेवजी निवास करते हैं।।२।। हे मुनिश्रेष्ठो! वे भगवान् शिवजी मुझे भी दर्शन देवें तथा मेरे ऊपर भी प्रसन्न हों।।३।। उपमन्यु बोले– हे पुरुषोत्तम! थोड़े ही समय में उनकी कृपा से आप महादेवजी का दर्शन कर लोगे, इसमें सन्देह नहीं।।४।। हे हरे! और सोलह महीने में आप पार्वती सहित शिवजी से श्रेष्ठ वरदान पाओगे, वह शिवजी आपको वर क्यों न देंगे?।।५।। हे अच्युत! आप सब देवताओं से पूजने योग्य तथा गुणों में प्रशंसनीय हो, मैं श्रद्धा युक्त जपने योग्य मन्त्र आपसे कहता हूं।।६।। उस जप के प्रभाव से सत्य ही आप शिवजी का दर्शन कर लोगे तथा शिवजी

से अपने बल के समान पुत्र पाओगे ।।७।। हे हरे! 'ॐ नमः शिवाय' यह जपने योग्य, सम्पूर्ण कामनाओं का देनेवाला, भुक्ति-मुक्ति प्रदान करनेवाला, दिव्य मन्त्रों में श्रेष्ठ मन्त्र है ।।८।। सनत्कुमारजी बोले- हे तापस! इस प्रकार महादेवजी सम्बन्धी कथा कहते-कहते उनको आठ दिन एक मुहूर्त्त के समान बीत गये ।।९।। नववें दिन उन मुनि ने उनको दीक्षा दी तथा अथर्वशीर्षस्थ शिवजी का महामन्त्र बताया ।।१०।। और वे जटाधारी मुण्डी सावधान चित्त होकर भुजाओं को ऊपर उठा कर, पैर के अंगूठे पर सम्पूर्ण शरीर का भार रखकर तप करने लगे ।।११।। सोलहवें महीने के प्राप्त होने पर पार्वती के सहित साक्षात् महादेवजी ने श्रीकृष्णजी को दर्शन दिये ।।१२।। तीन नेत्रोंवाले चन्द्रशेखर, ब्रह्मादि देवताओं से स्तूयमान, कोटि सिद्धों से पूजित, पार्वती सहित शिवदेव को ।।१३।। सुन्दरमाला तथा वस्त्रधारी, भक्ति से नम्र हुए, देव, असुरों से विशेषता पूर्वक नमस्कार किये गये तथा अनेक भूषणों से शोभायमान ।।१४।। सम्पूर्ण आश्चर्यवाले कान्त महेश, अज, अविनाशी, अनेक गणों से व्याप्त, सन्तुष्ट, दोनों पुत्रों के सहित प्रभु ।।१५।। ऐसे शंकरजी को देखकर विस्मय से विकसित नेत्रवाले श्रीकृष्णजी ने हाथ जोड़कर, प्रसन्न होकर ।।१६।। कन्धे झुकाकर अनेक प्रकार की स्तुतियों से वाङ्मय सहस्रनाम से देवताओं के स्वामी शिवजी को सन्तुष्ट किया ।।१७।। तत्पश्चात् गन्धर्वों सहित देवता तथा विद्याधर महोरग इन्होंने अपने मन के अनुकूल श्रेष्ठ स्तोत्रों को तथा पुष्पवृष्टि को किया ।।१८।। पार्वती का मुख देखकर भक्तवत्सल भगवान् रुद्र प्रसन्न होकर श्रीकृष्णजी से बोले ।।१९।। महादेवजी बोले- हे कृष्ण! मैं तुमको अपना भक्त जानता हूं, तुम मेरे दृढ़व्रत के धारण करनेवाले हो, तीनों लोकों में दुर्लभ पवित्र वरों को मुझसे ग्रहण करो ।।२०।। सनत्कुमारजी बोले- ऐसा उनका वचन सुनकर श्रीकृष्णजी आदरपूर्वक अंजलि बांधकर सबके स्वामी शिवजी को बारंबार प्रणाम करके यह बोले ।।२१।। श्रीकृष्ण बोले- हे देवों के देव! हे महादेव! हे नाथ! हे महेश्वर! मैं आपसे प्रतिज्ञा किये हुए आठ वरों को मांगता हूं ।।२२।। नित्य आपके धर्म में मति तथा अटल यश, आपकी समीपता, आप में सदा स्थिर भक्ति हो ।।२३।। दश पुत्र हों तथा संग्राम में बल से अभिमानी हमारे शत्रुओं का नाश हो ।।२४।। हे प्रभो! शत्रुओं से मेरा कहीं भी तिरस्कार न हो और मैं सब योगियों में अतिप्रिय होऊं ।।२५।। हे देवों के स्वामी! यह आठ वर मुझे प्रदान करें, आपको नमस्कार है, आप सबके ईश्वर तथा विशेष कर मेरे प्रभु हो ।।२६।। सनत्कुमारजी बोले- श्रीकृष्ण! का ऐसा वचन सुनकर भगवान् शिवजी उनसे यह बोले, कि सब वर पूर्ण होंगे ।।२७।। तुम्हारा पुत्र साम्ब नामवाला बली, बड़ा पराक्रमी, घोर प्रलय के सूर्य के समान प्रकाशित, सम्वर्तक नाम सूर्य ही मुनियों से शाप दिया हुआ होगा ।।२८।। तू मनुष्य होगा, इस प्रकार मुनियों के शाप से वह सूर्य तुम्हारा पुत्र होगा, जो कुछ तुमने इच्छा की सो सब प्राप्त करोगे ।।२९।।

सनत्कुमारजी बोले– इस प्रकार महादेवजी से सम्पूर्ण वरों को पाकर श्रीकृष्णजी ने अनेक प्रकार की बड़ी स्तुतियों से शिवजी को सन्तुष्ट किया ।।३०।। तब उन महात्मा शिवजी के भक्त तपस्वी श्रीकृष्णजी से सन्तुष्ट हुई भक्तवत्सला पार्वती बोली ।।३१।। पार्वती ने कहा– हे महाबुद्धे! हे वासुदेव! हे कृष्ण! हे अनघ! मैं तुमसे प्रसन्न हूं, पृथ्वी में दुर्लभ मुझ से दिये सुन्दर वरों को ग्रहण करो ।।३२।। सनत्कुमारजी बोले– ऐसा उन पार्वती का वचन सुनकर वह श्रीकृष्णजी प्रसन्न होकर भक्तिसहित चित्त से यह बोले ।।३३।। श्रीकृष्णजी बोले– हे देवि! यदि आप मुझसे प्रसन्न हो और इस मेरे सत्य तप से मुझे वरदान देती हो, तो मेरा ब्राह्मणों से कदापि द्वेष न हो ।।३४।। और मैं सदा ब्राह्मणों को पूजूं तथा मुझसे माता–पिता (शिव–पार्वती) सन्तुष्ट रहें ।।३५।। और आपके दर्शन से मेरी जहां–तहां जाने पर सब प्राणियों में अनुकूलता रहे तथा मेरी योग्य कुल में उत्पत्ति हो ।।३६।। और मैं सदा सुरेन्द्र आदि देवताओं को तथा सहस्रों संन्यासीयों और अतिथियों को सैकड़ों यज्ञों से तृप्त करूं ।।३७।। सदा उन्हें श्रद्धा से पवित्र भोजन कराऊं और नित्य कुटुम्बियों के साथ मेरी प्रीति हो ।।३८।। हे देवि! हे शांकरि! आपके प्रसाद से मैं सहस्रों स्त्रियों का प्राणप्रिय होऊँ तथा उनमें मेरी अटल प्रीति हो ।।३९।। हे पार्वति! इनके पिता लोक में सत्यवादी होंवे, इत्यादि सब वर आपके प्रसाद से प्राप्त हों ।।४०।। सनत्कुमारजी बोले– श्रीकृष्णजीका ऐसा वचन सुनकर विस्मित हुई सनातनी, सम्पूर्ण कामनाओं की देनेवाली देवी पार्वती ने 'ऐसा ही हो' यह उनसे कहा ।।४१।। श्रीकृष्णजी के ऊपर कृपा करके उनको सम्पूर्ण वरदान देकर वे शिव–पार्वती वहां ही अन्तर्धान हो गये ।।४२।। हे मुनीश्वर! उस समय श्रीकृष्णजी ने अपने आपको कृतार्थ माना और वे शीघ्र ही उपमन्यु मुनि के श्रेष्ठ आश्रम में गये ।।४३।। जब वहां श्रीकृष्णजी ने उन उपमन्यु मुनि को सिर से प्रणाम करके उनसे सब वृत्तान्त कह सुनाया ।।४४।। तब वह मुनि उनसे बोले– हे जनार्दन! उन शिवदेव से अधिक संसार में महादानी तथा क्रोध में अति दुस्सह और कौन है? ।।४५।। हे गोविन्द! हे देव! ज्ञान में, तप में, शूरता में वा पद में उनसे अधिक कोई नहीं, अब आप शिवजी के ऐश्वर्य तथा कीर्ति को श्रवण करें ।।४६।। यह सुनकर वह श्रीकृष्णजी श्रद्धा से युक्त शिवजी की भक्ति में तत्पर होकर शिवजी के माहात्म्य को पूँछने लगे, तब वह मुनीश्वर बोले ।।४७।। उपमन्यु बोले– पहले ब्रह्मलोक में महात्मा ब्रह्मयोगी दण्डी ने सहस्रनाम से भगवान् शिवजी की स्तुति की ।।४८।। सांख्य के जाननेवाले निघण्ट के समान विस्तृत मनुष्यों के दुर्ज्ञानवाले सांख्य के गीत को पढ़ते है, परन्तु शिवजी का स्तोत्र सब कामनाओं प्रदान करनेवाला है ।।४९।। हे तात! हे श्रीकृष्ण! उसका नित्य स्मरण करके आप शंकरजी के भाव को प्राप्त होओगे और सदा घर में सुखी तथा शिवभक्तों के समुदाय में मुख्य होओगे ।।५०।। ऐसा कहने पर श्रीकृष्णजी उन मुनि को नमस्कार करके मन

से शिवजी को स्मरण करके द्वारकापुरी गये ।।५१।। सनत्कुमारजी बोले– हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार श्रीकृष्णजी संसार के कल्याण करनेवाले शिवजी की आराधना करके सबों से अजेय तथा कृतकृत्य हुए ।।५२।। हे मुनिश्रेष्ठ! दशरथ के पुत्र रामचन्द्रजी भी भक्ति से शिवजी का पूजन करके कृतार्थ तथा सबों को जीतनेवाले हुए ।।५३।। हे मुने! पहले रामचन्द्रजी ने पर्वत पर अति कठिन तप करके शिवजी से ज्ञान तथा धनुषबाण प्राप्त करके ।।५४।। समुद्र पर सेतु बांधकर रावण को कुटुम्ब सहित मारकर जानकी को लेकर अपने घर लौटे और सम्पूर्ण पृथ्वी को भोगा ।।५५।। परशुरामजी ने तप से सर्वव्यापी शिवजी का पूजन करके क्षत्रियों द्वारा नष्ट किये हुए अपने पिता को देखकर अति दुःखित होकर ।।५६।। शिवजी से तीक्ष्ण परशु पाया और शिवजी के प्रसाद से उस फरसे द्वारा उन क्षत्रियों को इक्कीस बार भस्म किया ।।५७।। अब तक भी वे तपस्वी परशुरामजी अजेय अमर ज्योतिर्लिंग के पूजन में तत्पर होकर सिद्ध चारणों के सहित ।।५८।। महेन्द्रपर्वत पर तप करने में स्थित हैं और प्रलय काल के पीछे फिर भी वह ऋषि के स्थान को पायेंगे ।।५९।। पहले असित के भ्राता ने अति पीड़ा से तप किया और मूलग्राह से विश्वास करके देवल नामक तपस्वी ।।६०।। जो इन्द्र से शाप दिया गया था, उसने कामना को पूर्ण करनेवाले ज्योतिर्लिंग को पूजकर अधर्म योग्य कार्य करके भी धर्म पाया ।।६१।। चाक्षुषमनु का पुत्र मरुस्थल देश में वसिष्ठजी के शाप से मृग होकर दण्डकारण्य में अकेला विचरता ।।६२।। अपने मन में भक्ति से ओंकारसहित शिवजी को स्मरण करने लगा, तब उससे मृग के मुखवाला तथा मृत्यु मुख आकारवाला गण उत्पन्न हुआ ।।६३।। फिर शिवजी ने उसका शाप दूर करके उसे अजर–अमर बनाया और प्रीति से गणेशजी का अनुगामी किया ।।६४।। और स्वेच्छाचारी महा सम्पत्तिवाले शिवजी ने गार्ग्य को भूमि पर दुर्लभ महाक्षेत्र, मोक्ष तथा कालज्ञान ।।६५।। चतुष्पाद तथा निरन्तर सरस्वती के पारगामी होना और जिनके तुल्य और कोई नहीं था, ऐसे सहस्र पुत्र दिये ।।६६।। प्रसन्न हुए शिवजी ने पराशरजी को जरा–मृत्यु रहित योगीन्द्र वेदव्यास पुत्र दिया ।।६७।। और शंकरजी ने माण्डव्य को जीव देकर फिर विसर्जन किया, तथा दश लक्ष वर्ष तक त्रिशूल के अग्रभाग पर रखा ।।६८।। पहले कोई निर्धन गृहाश्रमी ब्राह्मण अपने पुत्र गालव को गुरु के घर फेंककर ।।६९।। मुनिशाला में गुप्त हो गया, कारण उसके घर कई भिक्षुक आया करते थे, उस ब्राह्मण ने अपनी स्त्री से कहा कि– जो कोई निर्धन भिक्षुक आवे ।।७०।। तो उससे तू यह कहना कि, मेरा पति यहां नहीं दीखता है, अतिथि के आने पर मैं अपने घर में रहकर उसे क्या दूंगा?।।७१।। किसी समय भूँख–प्यास से व्याकुल कोई अतिथि आया और उस स्त्री से यह बोला कि– तेरा पति कहां गया ।।७२।। तब वह स्त्री उससे बोली कि– इस समय मेरे पति यहां नहीं दीखते, यह सुनकर उस भिक्षुक ऋषि ने दिव्यनेत्र से जानकर यह कहा ।।७३।।

कि वहां घर में छिपा हुआ तेरा पति मरा पड़ा है, तब विश्वामित्रजी से जताया हुआ उसका पुत्र गालव ।।७४।। अपने घर आकर माता से अति कठिन शाप सुनकर शंकरदेव की आराधना करके तथा शिवजी की पूजा करके ।।७५।। वह अपने हृदय से शंकरजी को स्मरण करके अपने घर से निकल गया, तब जाते हुए उस पुत्र को देखकर उसके पिता ने अंजलि बांध कर उससे कहा ।।७६।। मैं महादेवजी के प्रसाद से कृतकृत्य तथा धनवान् और पुत्रवान् हुआ हूँ और मर कर फिर जीवित हुआ हूँ।।७७।। इस प्रकार मैंने आपसे संक्षेप में शिवजी का चरित्र कथन किया, मैं विस्तार से कहने में मैं समर्थ नहीं हूं, कारण कि विस्तारपूर्वक शिवजी के गुण वर्णन करने में शेषजी के मुख भी समर्थ नहीं हैं ।।७८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पञ्चम्यामुमासंहितायां
शिवमाहात्म्यवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ।। ३ ।।

*****

चौथा अध्याय

मुनि बोले- हे तात! हे महाभाग! हे महामते! आप धन्य हो, आपने परमभक्ति देनेवाली शिवजी की अद्‌भुत कथा सुनाई ।।१।। व्यासजी के प्रश्नों के अनुसार फिर शिवजी की कथा कहिये, आप सर्वज्ञ हो, व्यासजी के शिष्य हो, शिवतत्त्व में प्रवीण हो ।।२।। सूतजी बोले- ऐसे ही मेरे गुरु व्यासजी ने ब्रह्मदेव के पुत्र सर्वज्ञ शिवभक्त मुनीश्वर सनत्कुमारजी से पूँछा था ।।३।। व्यासजी बोले- हे सर्वज्ञ! हे सनत्कुमारजी! आपने अनेक लीला विहार करनेवाले महेश शंकरजी की यह शुभ कथा सुनाई ।।४।। हे तात! फिर विस्तारपूर्वक महादेवजी की महिमा को वर्णन कीजिये, वह सुनने में मेरी बड़ी श्रद्धा उत्पन्न होती है ।।५।। अनेक लीला से विहार करनेवाले महिमा तथा माया ने संसार में जिन-जिन को ज्ञान का हरण करके मोहित किया, सो सब कहिये ।।६।। सनत्कुमारजी बोले- हे महाबुद्धिमान् व्यासजी! शिवजी की सुख दायक कथा सुनिये, जिसे सुनने मात्र से शिवजी में भक्ति उत्पन्न होती है ।।७।। शिवजी सबके स्वामी देव, सब के आत्मा, सबों को देखनेवाले हैं, उनकी महिमा से सम्पूर्ण संसार व्याप्त हो रहा है ।।८।। ब्रह्मा, विष्णु, ईश्वर सम्बन्धी तीनों लिंगों के स्वरूपवाली सब प्राणियों को आत्मभूत नामक वह शिवजी ही परामूर्ति है ।।९।। देवताओं की योनि आठ तथा नौवीं मानुष योनि है और पक्षियों की पांच योनियां हैं, इस प्रकार पन्द्रह योनियां होती हैं ।।१०।। वर्तमान, भूत, भविष्य आदि सब प्रपंच शिवजी से ही प्रकट होते हैं और

वृद्धि को प्राप्त होकर शिवजी में ही लय हो जाते हैं।।११।। ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, चन्द्रमा, देवता, दैत्य, सर्प, गन्धर्व, मनुष्यों के तथा और सबों के भी।।१२।। बन्धु, मित्र, आचार्य, रक्षक, नेता तथा अर्थ बतानेवाले गुरु, कल्पवृक्ष व भ्राता, माता, पिता शिवजी ही हैं।।१३।। शिवजी ही पुरुषों में सर्वान्तर्यामी, स्वयंवेद्य, पर से भी पर, जो वाणी से कहने में असमर्थ तथा पर अनुपर हैं।।१४।। हे मुने! उनकी परम दिव्य माया सर्वत्र व्याप्त हो रही है, देवता, दैत्य, मनुष्यों सहित सम्पूर्ण जगत् उनकी माया के आधीन है।।१५।। उनके सहाय प्रबल मन से उत्पन्न होनेवाले कामदेव ने वीर विष्णुजी आदि प्रबल देवताओं को भी वशीभूत किया।।१६।। हे मुनीश्वर! शिवजी की माया के प्रभाव से भगवान् विष्णुजी ने काम में मोहित होकर अनेक बार परस्त्री प्रसंग किया।।१७।। इन्द्र देवताओं का स्वामी होकर गौतमजी की स्त्री पर मोहित होकर पाप करने लगे, तो उस दुष्टात्मा को गौतम मुनि ने शाप दिया।।१८।। जगत् में श्रेष्ठ अग्नि भी शिवजी की माया से मोहित होकर गर्व से काम के वशीभूत हुए और फिर शिवजी ने ही उनका उद्धार किया।।१९।। हे व्यासजी! जगत् के प्राण विष्णुजी भी शिवजी की माया से मोहित होने से काम के वशीभूत होने से परस्त्री में प्रेम करने लगे।।२०।। तीव्र किरणोंवाले सूर्य भी शिवजी की माया से मोहित होकर काम में व्याकुल होकर घोड़ी को देखकर शीघ्र ही घोड़े का रूप धारण करनेवाले हुए।।२१।। शिवजी की माया से मोहित हुए काम से व्याकुल चन्द्रमा ने भी गुरुपत्नी का हरण किया और शिवजी ने ही उनका उद्धार किया।।२२।। पहले घोर तप में प्रवृत्त हुए मित्र और वरुण नामक दो मुनि भी शिवजी की माया से मोहित होकर।।२३।। तरुण (युवती) उर्वशी अप्सरा को देखकर वे दोनों काम से पीड़ित हुए, तब मित्र ने घड़े में अपना वीर्य छोड़ा और वरुण ने जल में छोड़ा।।२४।। तब उस कुम्भ से मित्र के पुत्र वशिष्ठजी उत्पन्न हुए, वरुण से वडवानल के समान कान्तिवाले अगस्तजी उत्पन्न हुए।।२५।। शिवजी की माया से मोहित हुए ब्रह्माजी के पुत्र दक्ष भी अपने भाइयों सहित वाणी के साथ भोग करने की इच्छावाले हुए।।२६।। और ब्रह्माज़ी ने अनेक बार शिवजी की माया से मोहित होकर आसक्त हुई अपनी पुत्रियों से भोग करने की इच्छा की।।२७।। शिवमाया से मोहित हुए महायोगी च्यवन ऋषि ने भी काम में आसक्त होकर अपनी कन्या में आसक्ति की।।२८।। शिवमाया से मुग्ध होकर कश्यपजी ने भी काम के वश में होकर अज्ञान से धन्वा राजा की कन्या मांगी।।२९।। मुग्ध हुए गरुड़ ने शाण्डिली की कन्या को लेने की इच्छा की, फिर उस कन्या के ज्ञात होने पर उनके पक्ष भस्म हो गये।।३०।। विभाण्डक मुनि भी स्त्री को देखकर काम के वशीभूत हुए, ऋष्यशृंग का पुत्र शिवजी की आज्ञा से हिरनी में पैदा हुआ।।३१।। शम्भुजी की माया से मुग्ध हुए गौतम मुनि ने भी शारद्वती को नग्न देखकर काम से व्याकुल होकर उसके साथ रमण किया।।३२।। फिर तपस्वी ने निकले हुए

अपने वीर्य को दोने में रखा, तो उस कलश से शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्यजी उत्पन्न हुए।।३३।। शिवजी की माया से मोहित हुए महायोगी पराशरजी ने दास की कन्या कुमारी मत्स्योदरी से विहार किया*।।३४।। विश्वामित्र मुनि ने भी शिवजी की माया से मोहित होकर काम के वश में होने से वन में मेनका के साथ विहार किया।।३५।। चेतना रहित होकर उन्होंने वसिष्ठजी से विरोध किया, फिर वह शिवजी के प्रसाद से ब्राह्मण हुए।।३६।। शिवमाया के वश में रावण वैश्रवा ने कामी होकर कुबुद्धि से सीता को हरण किया और वह मृत्यु को प्राप्त हुआ।।३७।। शंकरजी की माया से मोहित हुए मुनिश्रेष्ठ बृहस्पतिजी ने कामवश होकर भ्राता की स्त्री से रमण किया, उससे भरद्वाजजी उत्पन्न हुए।।३८।। हे व्यासजी! मैंने यह महात्मा शिवजी की माया का प्रभाव वर्णन किया। अब और क्या सुनने की इच्छा है।।३९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां
शिवमायाप्रभाववर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ।। ४ ।।

*****

पांचवाँ अध्याय

व्यासजी बोले– हे भगवन्! हे ब्रह्मपुत्र! जो पापी महानरक के कारण जीव हैं, उनका वर्णन कीजिये, आपको नमस्कार है।।१।। सनत्कुमारजी बोले– जो जीव पापों में तत्पर तथा महानरक के अधिकारी हैं, उन्हें संक्षेप से वर्णन करता हूं, आप सावधान होकर सुनिये।।२।। दूसरों का धन तथा स्त्री की इच्छा तथा चित्त से बुरा विचार करना, बुरे काम का विचार तथा अभिनिवेश यह चार प्रकार के मानसिक कर्म हैं।।३।। बिना संगत संभाषण करना, असत्य, अप्रिय बोलना, पीछे में पिशुनता (चुगलखोरी) यह चार प्रकार के वाचिक कर्म हैं।।४।। अभक्ष्य का भक्षण करना, हिंसा, झूठे कार्य करना, दूसरों के धन का हरण करना यह चार प्रकार के शारीरिक कर्म हैं।।५।। यह कायिक, वाचिक, मानसिक बारह प्रकार के कर्म कहे हैं, अब आगे उनके भेदों का वर्णन करता हूं कि। जिसके अनन्त फल होते हैं।।६।। जो मनुष्य संसाररूपी समुद्र से तारनेवाले महादेवजी की निन्दा करते हैं, उनको नरक के समुद्र में जाने योग्य महापाप होता है।।७।। जो उन्मत्त मनुष्य शिवगाथा के करनेवाले तपस्वी तथा गुरु, पितरों की निन्दा करते हैं, वे नरक में जाते हैं।।८।। शिवनिन्दा तथा गुरु की निन्दा, शिवज्ञान का दूषण, द्विजों के द्रव्य का नाश करना।।९।। तथा जो मूर्ख शिवज्ञान की पुस्तक को हरण करते

* शिवजी की श्रेष्ठता दिखाने के लिये यह कथन है।

हैं, यह छः अनन्त फलदायक पातक कहे हैं ।।१०।। जो मनुष्य शिवपूजा को कल्पित हुआ देखकर हर्षित नहीं होते हैं तथा शिवजी के पार्थिवलिंग को पूजित होते देखकर उनको नमस्कार नहीं करते, स्तुति नहीं करते हैं ।।११।। जो अपनी अभिलाषा के अनुकूल निःसन्देह स्थित रहते तथा रमण करते हैं और शिवजी के आगे और गुरु के निकट उपचार से भ्रष्ट होकर ।।१२।। जो पर्वों में स्थान और संस्कार की पूजा नहीं करते हैं और कर्मयोग में व्यवस्थित होकर विधिपूर्वक गुरुओं की पूजा नहीं करते ।।१३।। तथा शिवाचारवाले शिवजी के भक्तों से जो द्वेष करते हैं और शिवज्ञान को बिना पूजे पढ़ते वा लिखते हैं ।।१४।। अन्याय से दान करते, सुनते, उच्चारण करते तथा लोभ से कुत्सित ज्ञान के नियम से बुरी क्रीड़ा करते हैं ।।१५।। तथा अपनी इच्छा के अनुसार बिना संस्कार किये स्थानों में सुनाते हैं, जो शिवजी की ज्ञानकथा में आक्षेप करके और कुछ कहते हैं ।।१६।। तथा जो सत्य नहीं बोलते, प्रदान नहीं करते और स्वयं पवित्र हो वा अपित्र स्थान में कहते हैं वा सुनते हैं ।।१७।। और जो गुरुपूजा किये बिना ही शास्त्रों को सुनना चाहते हैं तथा गुरु की भक्ति प्रेम से शुश्रूषा तथा आज्ञा पालन नहीं करते हैं ।।१८।। और उनके वाक्य का आदर नहीं करते और उत्तर देते हैं और गुरु के कार्य में असाध्य है, ऐसा कहकर उसकी उपेक्षा करते हैं ।।१९।। जो पापी गुरु, रोगी (दुःखी) असमर्थ तथा परदेश में स्थित हुए वा बैरियों से तिरस्कार किये हुए को मनुष्य छोड़ देते हैं ।।२०।। और जो उनकी स्त्री, पुत्र, मित्रों का तिरस्कार करते हैं तथा श्रेष्ठवक्ता धर्म के दिखानेवाले गुरु की भार्या, पुत्र, मित्र में अवज्ञा करते हैं ।।२१।। हे मुनिश्रेष्ठ! यह सम्पूर्ण कर्म शिवजी की निन्दा के समान महापाप कहे हैं ।।२२।। ब्रह्महत्या करनेवाला, मदिरा पीनेवाला, चोरी करनेवाला, गुरुपत्नी से गमन करनेवाला तथा पांचवां इसके साथ मेल करनेवाला, यह महापापी हैं ।।२३।। क्रोध से, भय से, द्वेष से जो ब्राह्मण के वध में मर्मभेदी महादोषों को कहें, वह ब्रह्महत्यारा होता है ।।२४।। जो ब्राह्मण को बुलाकर दान दे कर फिर ले लेता है तथा जो निर्दोषी को दोष लगावे, वह भी ब्रह्महत्यारा कहलाता है ।।२५।। जो मनुष्य अपनी विद्या के अभिमान से उदासीन श्रेष्ठ ब्राह्मण को निस्तेज करता है, वह भी ब्रह्महत्यारा होता है ।।२६।। जो झूठे गुणों से बलात्कार अपने गुणों को प्रकट करके आप उन्नति के भाव को प्राप्त होता है, वह भी ब्रह्महत्यारा कहा है ।।२७।। बैल आदि से तिरस्कृत हुईं गायों का तथा गुरु सहित ब्राह्मणों का विघ्न करता है, उसे ब्रह्महत्यारा कहा है ।।२८।। जो मनुष्य देवता, ब्राह्मण, गायों के निमित्त प्रदान की हुई भूमि को समय पाकर नष्ट होने पर भी हरण करता है, उसको भी ब्रह्महत्यारा कहते हैं ।।२९।। देवता, ब्राह्मण का धन हरण करना तथा जो धन अन्याय से उत्पन्न किया है, वह भी ब्रह्महत्या के समान पाप जानना, इसमें कुछ सन्देह नहीं ।।३०।। जो मूर्ख ब्राह्मण वेद पढ़कर शिवजी के ब्रह्मज्ञान का

त्याग करता है, वह मदिरापान के समान पाप कहा है ।।३१।। जिस किसी व्रत को, नियम को तथा यज्ञ को ग्रहण करके पंचमहायज्ञ का त्याग करना मदिरापान के समान कहा है ।।३२।। माता–पिता को त्यागना, झूठी गवाही देना, ब्राह्मण से झूठ बोलना, शिवभक्तों को मांस सेवन कराना, अभक्ष्य का भक्षण करना ।।३३।। तथा वन में बिना अपराधवाले जन्तुओं को मारना और जो साधु, ब्राह्मण के निमित्त और धर्म के लिये प्राण नहीं त्यागता है ।।३४।। गायों के मार्ग में, वन में, गांव में जो अग्नि लगाते हैं, यह ब्रह्महत्या के समान घोर पाप कहे हैं ।।३५।। दीन का सर्वस्व हरण करना तथा पुरुष, स्त्री, हाथी, घोड़ों का तथा गौ, भूमि, चांदी, वस्त्र, औषधि रसों का ।।३६।। चन्दन, अगर, कपूर, कस्तूरी, पट, वस्त्रों का विक्रय जो द्विजातियों ने ज्ञान से किया ।।३७।। हाथ से रखी हुई धरोहर का मार लेना, सुवर्ण के चुराने के समान कहा है तथा वर योग्य कन्याओं का समान वर के विषय में प्रदान न करना ।।३८।। पुत्र तथा मित्र की स्त्रियों में, बहिनों में गमन करना, कुमारी के साथ बलात्कार से गमन करना, घोर मद्य पीनेवाली स्त्री से प्रसंग करना ।।३९।। सवर्णा से गमन करना, गुरुपत्नी के प्रसंग के समान कहा है, यह महापाप कहे हैं। अब आप उपपातकों को सुनिये ।।४०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां
महापातकवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः ।। ५ ।।

*****

छठाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले– ब्राह्मण का द्रव्य हरण करना, दूसरे का भाग न देना, अति अहंकार करना तथा अति क्रोध करना, पाखण्ड करना, कृतघ्नता ।।१।। अत्यन्त विषयों में प्रवृत्ति, कृपणता, सज्जनों से इर्ष्या करना, दूसरों की स्त्री से गमन करना तथा श्रेष्ठों की कन्याओं में दोष लगाना ।।२।। परिवित्ति, परिवेत्ता तथा जिसके द्वारा जाना जाता है, उन दोनों में कन्या का दान करना तथा उन दोनों को यज्ञ कराना ।।३।। जो शिवजी के आश्रम में स्थित हुए वृक्षों का तथा पुष्पों के बागों का नाश करना, आश्रम में स्थित हुए मनुष्यों को थोड़ी भी पीड़ा देता है ।।४।। भृत्य परिवार सहित पशु, धान्य तथा धन का दाय, धान्य तथा पशुओं को चुराना और जल अपवित्र करना ।।५।। यज्ञ, बाग, सरोवर का तथा स्त्री और सन्तान को बेचना, तीर्थयात्रा तथा उपवासों का व्रत उपनयन करनेवालों का बेचना ।।६।। तथा जो स्त्रीधनों से वृत्ति करते हैं तथा स्त्रियों से अत्यन्त जीते हुए हैं तथा स्त्रियों की रक्षा न करना, छल से स्त्री का सेवन करना ।।७।।

समय पर आये हुए को न देना, धान्यवृद्धि का सेवन करना, निन्दित से धन को लेना, व्यापार में कूट जीवन ।।८।। विषम वनों के पत्रों को तोड़ना, बैलों का वाहन, उच्चाटन, मारण का प्रयोग करना, धान्य लेना, वैद्यक करना ।।९।। तथा जिह्वा की कामना के भोग के अर्थ जिसकी सुकर्म करने में प्रवृत्ति हो, जो वेदज्ञान आदि को मूलमात्र पढ़ानेवाला है ।।१०।। ब्राह्म आदि व्रत का त्याग करना, दूसरों के आचार का सेवन करना, बुरे शास्त्रों का पढ़ना, शुष्क (निरर्थक) तर्क का अवलम्बन करना ।।११।। देवता, अग्नि, गुरु, साधुओं की, ब्राह्मणों की, चक्रवर्ती राजाओं की प्रत्यक्ष वा पीछे से निन्दा ।।१२।। पितृयज्ञ, देवयज्ञ त्यागनेवाले तथा जो अपने कर्म को त्यागनेवाले तथा दुराचारी, नास्तिक, पापी, सदा झूंठ बोलनेवाले हैं ।।१३।। पर्व के समय दिन में, जल में, वियोनियों में तथा पशु की योनि में वा रजस्वला की योनि में जो मैथुन करता है ।।१४।। जो स्त्री, पुत्र, मित्रों के प्राप्त होने पर आशा के तोड़नेवाले हैं, मनुष्यों से अप्रिय (कटु) भाषण करनेवाले, क्रूर, समय को न जाननेवाले हैं ।।१५।। तालाब, कूपों का, संक्रयों का तथा रसों का जो भेद करनेवाला है और जो एक पंक्ति में स्थित होनेवालों के भोजन में भेद करता है ।।१६।। इन पूर्वोक्त पापों से स्त्री तथा पुरुष उपपातकी कहलाते हैं। जो इन पापों से युक्त तथा और भी जो पापी हैं, उनका आपसे वर्णन करता हूं, सुनिये ।।१७।। जो गौ, ब्राह्मण, कन्याओं के स्वामी, मित्र, तपस्वियों के कार्यों को बिगाड़ते हैं, वे नरक के अधिकारी कहे हैं ।।१८।। जो दूसरों की स्त्रियों से दुःखित होते हैं तथा जो पराये द्रव्य के सूचक हैं तथा नित्य दूसरे का द्रव्य हरनेवाले, मिथ्या तोल करनेवाले हैं ।।१९।। जो ब्राह्मणों को दुःख देनेवाले तथा जो प्रहार करनेवाले हैं, जो द्विज, शूद्र स्त्री को सेवन करते हैं और काम से मदिरा को बाँधते हैं ।।२०।। जो पापकर्म में तत्पर हैं, क्रूर तथा जो मनुष्य हिंसा करनेवाले हैं और जो अपनी आजीविका के लिये दान यज्ञ आदि करते हैं ।।२१।। गोशाला, (व्रज) अग्नि, जल, गलियों में वृक्ष की छाया तथा पर्वतों पर और बाग, घरों में (शौचालय के अतिरिक्त) जो विष्ठा करते हैं वा फेंकते हैं ।।२२।। जो लज्जा के आश्रम तथा महलों पर मद्यपान करनेवाले, छिद्र के ढूंढ़ने में तत्पर हुए क्रीड़ा करनेवाले सर्पों के समान है ।।२३।। जो बांस, ईंट, पत्थर, लकड़ियों से सींग और कीलों से रास्ते को रोक लेते हैं तथा दूसरे की सीमा (हद) को हरण करते हैं ।।२४।। जो कपट से शिक्षा करनेवाले, छल के कर्म और व्यापार में तत्पर हैं, कपट के पाक अन्न तथा वस्त्रों का छल से व्यवहार करनेवाले हैं ।।२५।। जो धनुष का तथा शस्त्र शल्यों को बनानेवाला वा क्रय-विक्रय करनेवाला है, जो भृत्यों में बड़ा निर्दयी है, जो पशुओं को मारनेवाला है ।।२६।। जो झूंठी बात को धीरे-धीरे सुनाता है, स्वामी, मित्र, गुरु इनका जो द्रोही है, कपटी चपल ठग है ।।२७।। जो अपने स्त्री, पुत्र, मित्रों को बालक, वृक्ष, दुर्बल रोगियों को, भृत्य अतिथि बांधवों को भूखा

छोड़कर स्वयं भोजन करते हैं ।।२८।। जो अपने आप मिष्ठान्न खाता और ब्राह्मणों को नहीं देता है, उसे वृथा पाक और ब्रह्मवादियों में निन्दित जानना चाहिये ।।२९।। जो स्वयं नियमों को स्वीकार करके जितेन्द्रिय न होकर उनका त्याग करते हैं, जो संन्यासी होकर घर में निवास करनेवाले हैं और शिवप्रतिमा का भेद करनेवाले हैं ।।३०।। जो क्रूर पुरुष गाय को ताडन करते हैं तथा बारंबार दमन करते हैं, जो दुर्बलों का पोषण नहीं करते हैं तथा उन्हें निरन्तर त्याग देते हैं ।।३१।। तथा अतिभार से पीड़ा देते हैं और सहन न करते हुए को जोतते हैं तथा बिना भोजन करनेवाले पशुओं को जोतकर बँधे हुओं को नहीं खोलता है ।।३२।। जो भार से घायल तथा रोगी, भूखे, गाय, बैलों को यत्नपूर्वक नहीं पालते हैं, वे गौहत्यारे पापी नरक के गामी होते हैं ।।३३।। जो पापी बैलों के अण्डकोशों को कटवाते हैं तथा वन्ध्या गौ को जोतते हैं, वे पुरुष महा नरकगामी होते हैं ।।३४।। अपनी आशा से प्राप्त हुए भूख, प्यास, श्रम से व्याकुल हुए अभ्यागत और अनाथों को घर पर आये हुए स्वतन्त्रों को ।।३५।। अन्न की इच्छा करनेवाले वा दीनों को, बालक, वृद्ध, दुर्बल रोगियों पर जो मूर्ख दया नहीं करते हैं, वे नरक सागर में पड़ते हैं ।।३६।। घर में धन पडे रह जाते हैं, भाई बन्धु भी श्मशान से लौट आते हैं, जीव पुण्य और पाप का अनुगामी होकर जाता है ।।३७।। बकरी तथा भैंस का क्रय–विक्रय करनेवाला, समुद्र पर रहनेवाला, शूद्रा का पति शूद्र के समान क्षत्रिय वृत्ति करनेवाला नीच ब्राह्मण नरक गामी होता है ।।३८।। शिल्पी, बढ़ई, वैद्य, सुनार, राजा की पताका बनानेवाला, कपट छल से नौकरी करनेवाला यह सब नरक गामी कहे हैं ।।३९।। जो (योग्य) शास्त्र को उल्लंघन करके अपनी इच्छा से कर (महसूल) हरण कर लेता है तथा जो दण्ड की रुचिवाला मनुष्य है, यह नरक में दुःख भोगता है ।।४०।। जिस राजा के राज्य में प्रजा घूस लेनेवाले, अपनी इच्छानुसार क्रय करनेवाले तथा तस्करों से पीड़ित होती है, वह राजा भी नरक में पड़ता है ।।४१।। जो ब्राह्मण अन्याय में स्थित हुए राजा का दान ग्रहण करते हैं, वे घोर नरक में जाते हैं, इसमें कुछ संशय नहीं ।।४२।। जो राजा प्रजा से अन्याय से धन लेकर ब्राह्मणों को देता है, वह राजा भी नरक में पड़ता है ।।४३।। पराई स्त्रियों से विषय तथा चोरी करनेवाले प्रचण्ड पुरुषों को तथा नित्य पराई स्त्री में तत्पर हुए राजा को भी बड़ा पाप होता है ।।४४।। जो राजा बिना चोर को चोर के समान और चोर को बिना चोरी करनेवाला देखता है, बिना विचार के मारता है, वह राजा नरक में जाता है ।।४५।। घी, तेल, अन्न, पीने की वस्तु, मधु, मांस, शराब, अर्क, गुड़, ईख (गन्ना), शाक, दूध, दही, मूल, फल ।।४६।। घास, काष्ठ, पत्र, फूल, औषधि, अपना भोजन, जूता, छाता, गाड़ी, आसन, कमण्डल (लोटा) इनको ।।४७।। तांबा, सीसा, रांगा, शस्त्र तथा शंख आदि से जल से उत्पन्न हुई वस्तु को वैद्य लकड़ी और जो घर कि वस्तु है ।।४८।। ऊनी, सूती, रेशमी रामवास आदि

व छाल के बने मोटे बारीक वस्त्रों को जो लोभ से चुरा लेते हैं।।४९।। इत्यादि और भी अनेक प्रकार के द्रव्य हैं, उनको थोड़ा भी हरण करके निश्चय ही नरक में जाते हैं।।५०।। जो कुछ भी हो सर्सों मात्र भी पराई वस्तु को चुराकर मनुष्य नरक में पड़ते हैं, इसमें कुछ संशय नहीं।।५१।। मनुष्य इन पापों से नरक भोगने के पश्चात् शरीर के कष्ट उठाने के निमित्त सम्पूर्ण आकार को पाता है।।५२।। पूर्वोक्त पापी शरीर के द्वारा मेरी आज्ञा से बड़े भयानक यम के दूतों से पकड़कर ले जाये हुए अति दुःखित होकर यमराज के लोक को जाते हैं।।५३।। अधर्म करनेवाले, देवता, पक्षी, मनुष्यों को अनेक भयानक वधों से धर्मराज को दण्ड देनेवाला कहा है।।५४।। नियम सदाचार में तत्पर हुए अज्ञान से गिरे जीवों को अनेक प्रायश्चितों से गुरु ही शिक्षा देनेवाले हैं, ऐसे जीवों की शिक्षा देने को पण्डितों ने यमराज को नहीं कहा।।५५।। पराई स्त्रियों से प्रसंग करनेवाले तथा चोरी, अन्याय से व्यवहार करनेवालों को दण्ड देनेवाला राजा कहा है और गुप्त पाप करनेवालों का धर्मराजा है।।५६।। इस कारण किये हुए पाप की शुद्धि के निमित्त प्रायश्चित्त करना उचित नहीं, तो बिना भोगे कोटि कल्पों में भी पापों का नाश नहीं हो सकता।।५७।। जो मनुष्य स्वयं कर्म करता है वा कराता है अथवा अनुमोदन करता है, उसके शरीर से, मन से, वाणी से पापों का फल मिलता है।।५८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां

पापभेदवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः।। ६ ।।

*****

सातवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले– सम्पूर्ण मनुष्य चार प्रकार के पापों से त्रास उत्पन्न करनेवाले भयंकर यमराज के लोक को विवश होकर जाते हैं।।१।। गर्भ में स्थित होकर उत्पन्न होनेवाले बालक, युवा, मध्यम, स्त्री, पुरुष, नपुंसक आदि समस्त जीवों को यह जानना चाहिये।।२।। कि चित्रगुप्त आदि तथा वशिष्ठ आदि मुनियों से सम्पूर्ण जीवों का शुभ वा अशुभ कर्म विचारा जाता है।।३।। ऐसे कोई भी प्राणी नहीं हैं, जो यमलोक को नहीं प्राप्त होते हैं, अपना किया हुआ कर्म अवश्य ही भोगने योग्य होता है, ऐसा समझना चाहिये।।४।। उनमें से जो शुभकर्म करनेवाले सौम्यचित्त कृपालु मनुष्य हैं, वे यमलोक में सौम्यमार्ग से पूर्वद्वार को जाते हैं।।५।। और जो पापकर्म करनेवाले पापी, दानशून्य पुरुष हैं, वे घोर दक्षिण के मार्ग से यमराज के लोक को जाते हैं।।६।। छियासी सहस्र योजन कोसों को लांघकर, अनेक रूपों में स्थित हुआ वैवस्वत पुर

जानना चाहिये ।।७।। यह नगर पुण्यात्माओं को अति निकट हुए के समान प्रतीत होता है और पापी मनुष्यों को अति दूर में स्थित हुआ ज्ञान होता है और वे भयंकर मार्ग से जाते हैं ।।८।। तीखे काँटो से व्याप्त तथा शर्करा से रचित हुए, कहीं छुरे के धार के समान तीव्र पाषाणों से विरचित मार्ग से ।।९।। कहीं बड़ी कीचड़ से व्याप्त, कहीं उरुतोक पापों से, कहीं लोहे के सुई के तुल्य कुशाओं से व्याप्त हुए मार्ग से ।।१०।। तथा कहीं तटप्राय प्रदेशों से अति कठिन पर्वत और वृक्षों से व्याप्त हुए, कहीं तपे हुए अंगार से युक्त मार्ग से दुःखित होकर यमलोक को जाते हैं ।।११।। कहीं कठोर गढ़ों से, कहीं अति कठिन टेलों से, खूब तपी हुई बालू से तथा तीक्ष्ण कीलों से ।।१२।। कहीं अनेक शाखाओं से विस्तृत बांस के वनों से, कहीं कष्टदायक अन्धकार से तथा कहीं मार्ग में अनेक आधारों से ।।१३।। कहीं लोहे के तेज सिंघाडों से, तथा कहीं दावानल से, कहीं तप्त शिलाओं से, कहीं बर्फ से व्याप्त ।।१४।। कहीं कण्ठ पर्यन्त प्रवेश करने योग्य परितप्त बालू से व्याप्त, कहीं दूषित जल से व्याप्त, कहीं करीज के अग्नि से व्याप्त ।।१५।। कहीं सिंह, भेडिये, व्याघ्र, अति भयंकर मच्छरों से, कहीं बड़ी जोकों से तथा कहीं अजगरों से व्याप्त ।।१६।। कहीं भयानक मक्खियों से, कहीं विषैले सर्पों से, कहीं मतवाले बल में उन्मत्त हुए प्रमाथी हस्तियों से ।।१७।। मार्ग को खोदते हुए तीक्ष्ण दाडोंवाले सूकरों से, कहीं पैने सींगों के भैंसों से, कहीं सम्पूर्ण हिंसक जन्तुओं से ।।१८।। कहीं बिकट डाकिनियों से तथा विकराल राक्षसों से तथा अति घोर व्याधियों से पीड़ित होकर जाते हैं ।।१९।। बड़ी धूली से व्याप्त, बड़े प्रचण्ड पवन से, कहीं बृहत् पाषाण की वर्षा से निराश्रय हो पीड़ित होकर ।।२०।। कहीं बिजली के गिरने से जलते हुए जाते हैं, कहीं चारों ओर से बड़े बाणों की वर्षा से पीड़ित होकर ।।२१।। गिरते हुए वज्रपातों से तथा अति दारुण उल्काग्निपात से और प्रदीप्त अंगारों की वर्षा से भस्म होते हुए ।।२२।। बड़ी धूलि की वर्षा से पूर्यमाण होकर रोते हैं, कहीं घोर मेघों से बारंबार भयभीत होते हैं ।।२३।। तथा सब ओर से तीक्ष्ण शस्त्रों की वर्षा से भेदित हुए तथा कहीं महा खारी समुद्र की धाराओं से सिंचित हुए जाते हैं ।।२४।। बड़ी ठंढी, रूखी, कठोर पवन से चारों तरफ से बाधित होकर सूखते और सिकुड़ते हैं ।।२५।। इस प्रकार भयंकर चबेना रहित, आधारहीन, कठिन, सब ओर से जल शून्य मार्ग से ।।२६।। बड़े विषम, निर्जन, आश्रय हीन अन्धकाररूपी कष्ट से, सम्पूर्ण दुष्टों के आश्रय से ।।२७।। जो पापी, मूर्ख प्राणी है, वे यमराज के आज्ञाकारी महाघोर यम के दूतों से बलात्कार से ले जाये जाते हैं ।।२८।। अकेले, पराधीन होकर मित्र, बन्धुओं से रहित, कर्मों को सोचते हुए बारंबार रोते हुए ।।२९।। प्रेत होकर वस्त्ररहित, कण्ठ, ओष्ठ, तालु से शुष्क हुए, बिना सौम्य भयभीत हुए, दह्यमान क्षुधा से व्याकुल हुए ।।३०।। कोई शृंखलों से बँधे हुए, कोई पैरों को ऊपर करके प्रबल यम के दूतों से खींचकर ले जाये जाते हैं ।।३१।। तथा कोई

हृदय से नीचे को मुख किये घसीटे हुए, अति दुःखित बालपाशों से बँधी हुई रस्सी से खींचे जाते हैं।।३२।। और कोई उत्तान जीव अंकुश से माथे पर विदीर्ण हुए दुःखित होते हैं और काटों के मार्ग से कहीं अंगारों के मार्ग से जाते हैं।।३३।। पश्चात् भुजाओं से बँधे हुए उदर से पीड़ित हुए शृंखलाओं से पूरित दोनों हाथों में कील ठुकी हुई।।३४।। तथा कोई ग्रीवा पाश (गर्दन के फांसे) से खींचे जाते हैं और दुःखित होकर जाते हैं और जिह्वांकुश प्रवेशवाली रस्सी से खींचे जाते हैं।।३५।। तथा नासिका भेदवाली रस्सी से खींचे जाते हैं, कोई कपोलों में तथा ओष्ठों में रस्सी से भेदित होकर खींचे जाते हैं।।३६।। आगे के पैर हाथों से छिन्न हुए, कोई कान, ओष्ठ, नासिका से छेदित तथा लिंग, अण्डकोशों से छेदित तथा अंगों के जाड़ों से छिन्न-भिन्न हुए।।३७।। अलकों से आभिद्यमान हुए तथा बाणों से विदीर्ण हुए इधर-उधर को दौड़ते हुए तथा निराश्रय होकर रोते हुए।।३८।। कोई बारंबार मुद्गरों से लोहे के दण्डों से बारंबार ताडन किये तथा घोर जलते-जलाते हुए सूर्य के समान कान्तिवाले अनेक काँटों से पीड़ित हुए।।३९।। भिन्दिपालों से भेदित किये जाते हैं, रुधिर से मवाद टपकते हुए, विष्ठा के कीड़ों से नीचे हुए मनुष्य विवश होकर ले जाये जाते है।।४०।। जल तथा अन्न मांगते हुए भूखे और छाया की प्रार्थना करते, शीत से व्याकुल अग्नि को चाहते हुए।।४१।। दानहीन मनुष्य इस प्रकार प्रार्थना करते हुए दुःख से यमराज के घर को जाते हैं, जो दानरूपी चबेने को ग्रहण करनेवाले हैं, वे सुख से यमलोक को जाते हैं।।४२।। इस प्रकार न्याय से कष्टपूर्वक जब प्रेतपुर को प्राप्त होते हैं, तो दूतों द्वारा जताये हुए यमराज के सम्मुख खड़े किये जाते हैं।।४३।। उनमें जो शुभकर्म करनेवाले प्राणी हैं, उनका यमराज स्वागत आसन देने, पाद्य, अर्घ्य, प्रेम आदि से सन्मान करते हैं।।४४।। शास्त्र के अनुकूल कर्म करनेवाले आप महात्मा धन्य हो, जिन आप लोगों ने दिव्य सुख के लिये पुण्य किया।।४५।। दिव्य विमान पर चढ़कर दिव्य स्त्रियों के भोग से भूषित, सम्पूर्ण कामनाओं को देनेवाले निर्मल स्वर्ग को जाओ।।४६।। वहां महा भोगों को भोगकर अन्त में पुण्य के नष्ट होने पर जो कुछ थोड़ा पाप हो, तो फिर यहां भोगोगे।।४७।। जो धर्मात्मा मित्रभूत ऐसी आत्मावाले पुरुष हैं, वे धर्मराज के यहां सौम्य सुख को देखते हैं।।४८।। और जो क्रूर (बुरे) कर्म करनेवाले हैं, वे भयानक दंष्ट्रा और विकराल मुख वाले, भृकुटी से कुटिल दृष्टिवाले।।४९।। ऊपर केश युक्त बड़ी दाढ़ी मूछोंवाले, ऊपर को कम्पायमान अधरवाले, अठारह भुजाओंवाले, क्रुद्ध नीलअंजन के समुदाय के समान।।५०।। सम्पूर्ण शस्त्रों से घिरे हुए हाथोंवाले, सब प्रकार के दण्ड से डांटते हुए, बड़े भैंसे पर चढ़े हुए, जलती हुई अग्नि के समान नेत्रवाले।।५१।। रक्तमाला और वस्त्रधारी सुमेरुपर्वत के समान ऊँचे, प्रलय काल के मेघ के समान शब्द करनेवाले, समुद्र को पीते के समान स्थित हुए।।५२।। हिमालयपर्वत को निगलते हुए के समान,

अग्नि को उगलते हुए के समान स्थित यमराज को तथा कालानल के समान कान्तिवाले, मृत्यु जिनके समीप स्थित है ।।५३।। अंजन के समान काल, भयानक यमराज, मारी तथा उग्र महामारी तथा दारुण कालरात्रि ।।५४।। अनेक प्रकार व्याधि अनेक रूप से भयानक कुष्ठादि शक्ति, त्रिशूल, अंकुश धारी, पाश, चक्र, खड्ग हाथों में लिये ।।५५।। वज्र तथा तुण्ड धारी, रुद्र छुरे, तर्कस, धनुष धारण करनेवाले अनेक शस्त्रों को धारण करनेवाले, सब महावीर, भयंकर ।।५६।। असंख्यात महावीर कालाञ्जन के समान कान्तिवाले, समस्त शस्त्रों से व्याप्त हाथोंवाले भयानक यमराज के दूत ।।५७।। इस परिवार से घिरे हुए, भयंकर दर्शनवाले, उन यमराज को तथा भयानक चित्रगुप्त को पापी लोग देखते हैं ।।५८।। और उन पाप कर्म करनेवाले जीवों को यमराज अत्यन्त ललकारते हैं और भगवान् चित्रगुप्त धर्मवाक्यों से बोधन करते हैं ।।५९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां
यमलोकमार्ग यमदूतस्वरूपवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ।। ७ ।।

*****

आठवाँ अध्याय

चित्रगुप्त बोले- अरे! अरे! पापकर्म करनेवाले, दूसरे का द्रव्य हरनेवाले, रूप और वीर्य से गर्वित होकर दूसरों की स्त्री से प्रसंग करनेवाले ।।१।। जो तुमने यह कर्म किया है, वह अब भोगते हो, सो तुमने अपनी पीड़ा के निमित्त क्यों पाप किया ?।।२।। अब तुम अपने कर्मों से पीड़ित हुए क्यों आलाप करते हो ? अपने कर्मों के फलों को भोगो, इसमें किसी का दोष नहीं हैं ।।३।। सनत्कुमारजी बोले- इसी प्रकार अपने घोर दुष्कर्मों से दुष्कर्म तथा बल में वे अभिमानी राजा उनके समीप प्राप्त होते हैं ।।४।। क्रोध सहित महाप्रभु धर्मात्मा चित्रगुप्त यमराज की आज्ञा से उन राजाओं को शिक्षा देते हैं ।।५।। चित्रगुप्त बोलते हैं,- हे दुराचारी! हे प्रजा का नाश करनेवाले राजाओ! तुमने थोड़े समय के राज्य के लिये क्यों पाप किया ?।।६।। हे राजाओ! तुमने जो राज्य भोगने के कारण मोह से, बल से, अन्याय से प्रजा को दण्ड दिया है, अब उसका फल भोगो ।।७।। वह राज्य और स्त्री कहां हैं ? जिसके लिये तुमने पाप किया उन सबको त्यागकर तुम अकेले स्थित हो ।।८।। अब मैं तुम्हारा वह बल नष्ट हुआ देखता हूं, कि जिससे प्रजा को विध्वंस किया हुआ यम के दूतों से बांधे गये हो, अब कैसे हो ? सनत्कुमारजी बोले- यमराज के इस प्रकार अनेक वचनों से प्राप्त हुए वे राजा लोग मौन होकर अपने कर्मों को सोचते हैं ।।१०।। धर्मराज यमराज राजाओं के उन कर्मों को उद्देश्य करके

उनके पापरूपी कीचड़ के शुद्ध होने के निमित्त दूतों से यह कहते हैं।।११।। यमराज बोलते हैं– हे चण्ड! हे महाचण्ड! तुम बलात्कार से इन राजाओं को पकड़कर क्रम से नरकाग्नि में गिराकर नियम से शुद्ध करो।।१२।। सनत्कुमारजी बोले– उनकी आज्ञा से शीघ्र ही उन राजाओं को पकड़कर दोनों पैरों को जोर से घुमाकर ऊपर को लेके फिर नीचे फेंककर।।१३।। सबों से बड़े अत्यन्त तपे हुए शिलातल पर वज्र से महावृक्षों के समान बड़े वेग से ताडन करते हैं।।१४।। तब कानों से रुधिर टपकता है, उस समय प्राणी जर्जर होकर चेतना रहित हो जाता है।।१५।। तब वह वायु से स्पर्श हुआ और उनसे जिलाया हुआ पाप की शुद्धि के लिये नरकों में फेंका जाता है।।१६।। सात करोड़ अट्ठाइस योजन पृथ्वी के नीचे सातवें तल के अन्त में घोर अन्धकार में स्थित होता है।।१७।। प्रथम कोटि घोर नामक है, उसके नीचे सुघोर है, अतिघोर, महाघोर पांचवीं घोररूप हैं।।१८।। छठीं तलातल नामक, सातवीं भयानक, आठवीं कालरात्रि, नौवीं भयोत्कटा।।१९।। उसके नीचे दशवीं चण्ड, उससे नीचे महाचण्ड और चण्डकोलाहल तथा प्रचण्ड नामक।।२०।। पद्मा, पद्मावती, भीता, भीमा, भीषणनायिका, कराला, विकराला, बीसवीं वज्रा कही हैं।।२१।। त्रिकोणा, पंचकोणा, सुदीर्घा, अखिलार्त्तिदा, समा, भीमबला, आभोग्रा तथा आखिर की दीप्तप्राया।।२२।। इस प्रकार आपसे घोर नरक कोटि नाम से कहें, यह अट्ठाइस पापों की यातना हैं।।२३।। उनमें से क्रम से पांच–पांच नायक यातना जाननी, इनमें से सब कोटियों में प्रत्येक नाम से प्रसिद्ध हैं।।२४।। उनमें से पहला रौरव है, जहां प्राणी रोते हैं, महा रौरव की पीड़ा से बड़े पुरुष भी रुदन करते हैं।।२५।। तब शीत और उष्ण पांच आद्य नायक हैं, सुघोर, सुमहातीक्ष्ण तथा संजीवन कहा हैं।।२६।। महातम, विलोम, विलोप, कण्टक, तीव्रवेग, कराल, विकराल, प्रकम्पन।।२७।। महावज्र, काल, कालसूत्र, प्रगर्जन, सूचीमुख, सुनेति, खादक, सुप्रपीडन।।२८।। कुम्भीपाक, सुपाक, क्रकच, अतिदारुण, अंगार राशिभवन, मेरु, असृक्प्रहित।।२९।। तीक्ष्णतुण्ड, शकुनि, महासंवर्तक, क्रतु, तप्तजन्तु, पंकलेप, प्रतिमांस, त्रपूद्भव।।३०।। उच्छ्वास, सुनिरुच्छ्वास, सुदीर्घ, कूटशाल्मलि, दुरिष्ट, सुमहावाद, प्रवाह, सुप्रतापन।।३१।। और मेघ, वृष, शाल्म, सिंह, व्याघ्र, हाथी के मुखवाले; श्वान, सूकर, बकरे, भैंस, घूंस, कोयल, भेड़ियों के मुख वाले।।३२।। मगर, कुम्भीन, नक्र नामवाले; सर्प, कच्छप, काग नामक; गिद्ध, उल्लू, हलौक नाम वाले; गीदड, ऊंट, कैकडे नामवाले।।३३।। मेंडक, पूतिवक्त्र, रक्ताक्ष, पूतिमृत्तिका, कणधूम्र, अग्नि, कृमि, गन्धि, वपु।।३४।। अग्नीघ्र, अप्रतिष्ठ, रुधिराभ, श्वभोजन, लालाभक्ष, अन्त्रभक्ष, सर्वभक्ष, सुदारुण।।३५।। कण्टक, सुविशाल, विकट, कटपूतन, अम्बरीष, कटाह, कष्टदायक वैतरणी नदी।।३६।। सुतप्तलोह शयन, एकवाद, प्रपूरण, असितालवन, घोर, अस्थिभंग, सुपूरण।।३७।। विलातस, असुयन्त्र,

कूटपाश, प्रमर्दन, महाचूर्ण, असुचूर्ण, तप्तलोह मय ।।३८।। पर्वत, क्षुरधारा, यमलपर्वत, मूत्र, विष्ठा,आसुओं का कूप, क्षारकूप,शीतल ।।३९।। मूसल, ऊखलयन्त्र, शिलाशकट, लांगल, तालपत्र, असिगहन, महाशकट, मण्डप ।।४०।। संमोह, अस्थिभंग, तप्त, चल मय, गुड, बहुदुःख, महाक्लेश, कश्मल, समल, मलात ।।४१।। हालाहल, विरूप, स्वरूप, यमानुग, एकपाद, त्रिपाद, तीव्र अचीवर, तम ।।४२।। यह क्रम से सात सौ नरक हैं और प्रति कोटि में से पांच–पांच नायक हैं ।।४३।। रौरव के सौ नरक कहे हैं, चालीस सौ महानरक मण्डल कहा है ।।४४।। हे व्यासजी! इस प्रकार मैंने आपसे नरकों की स्थिति संख्यापूर्वक कहीं, वैराग्य और उसकी पापगति को भी सुनिये ।।४५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां

नरकलोकवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ।। ८ ।।

*****

नववाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले– इन नरकों में पापी लोग गिराये जाते हैं, अनेक प्रकार की यातनाओं से अपने कर्मों के नाश होने तक अत्यन्त नरकाग्नियों में सुखाये जाते हैं ।।१।। जिस प्रकार धातुओं को अपने मल को दूर करने के निमित्त अग्नि में रखते हैं, उसी प्रकार पापी मनुष्यों को उनके पापों के नाश होने के निमित्त उनके कर्मानुसार नरकों में गिराते हैं ।।२।। यम के दूत पापियों के हातों को शृंखला से दृढ़ बांधकर तत्पश्चात् महावृक्ष की शाखाओं में लटकाते हैं ।।३।। तब वे सब यत्न से यम के किंकरों से फेंके हुए कांपते हैं, अति वेग से काँपते हुए चेतना रहित योजनों तक जाते हैं ।।४।। फिर महाबली यम के दूत आकाश में स्थित हुए उनके पैरों में सौ भार लोहा बांधते हैं।।५।। उस बड़े भार से अत्यन्त ताडन किये हुए मनुष्य अपने कर्मों को स्मरण करते हैं और निश्चल मौन स्थित रहते हैं ।।६।। फिर उन पापियों को घोर किंकर चारों तरफ से अंकुशों से अग्नि के समान दारुण लोहे के दण्डों से मारते हैं ।।७।। तत्पश्चात् बारंबार अतिदीप्त अग्नि के तीव्र अंगारों से सब शरीर में लिप्त किये जाते हैं ।।८।। अत्यन्त लिप्त होने से अंग से छेदित और जर्जरीकृत फिर क्रम से सिर आदि अंगों को विदीर्ण करके ।।९।। पक्वान्न के समान तपे हुए लोहे के कड़ाहों में पकाये जाते हैं और विष्ठा से पूर्ण कूप में तथा कीड़ों के समूह में ।।१०।। फिर मेद (चर्बी), लोहू, पीव से पूर्ण हुई बावडी में उनको फेंकते हैं और वे तीक्ष्ण कीड़ों तथा लोहे की चोंच वाले कागों से खाये जाते हैं ।।११।। कुत्ते, डांस, भेडिये ता भयानक विकृत मुखवाले व्याघ्रादि जीवों से काटे जाते

हैं और जलते अंगारों के ढेर में मछली के समान पकाये जाते हैं।।१२।। मनुष्य पापकर्म से अतितीक्ष्ण त्रिशूल से छेदित होकर अपने घोर कर्मों से कोल्हू में डालकर।।१३।। जैसे चक्र (कोल्हू) में तिलों को वैसे मनुष्यों के शरीर पीसे जाते हैं, फिर तप्त घाम में तथा अनेक प्रकार लोहे के बर्तनों में भूजे जाते हैं।।१४।। तेल से भरे हुए गरम कड़ाहों में बारंबार हृदय में, पैरों में पीड़ा देकर जिह्वा को पकाते हैं।।१५।। इस प्रकार शरीर की बड़ी यातना है और पापी मनुष्य सम्पूर्ण नरकों में क्रम से जाते हैं।।१६।। हे व्यासजी! सब नरकों में यम की यातना विचित्र और अतिकष्ट देनेवाली है, वहां यम के दूतों से सब अंगों में कष्ट दिया जाता है।।१७।। जलते हुए अंगारों को लेकर मुख में भरकर ताडन किया जाता है, तत्पश्चात् दीप्त अंगारों (राख) से तथा तांबे से जलाया जाता है।।१८।। फिर अत्यन्त तपाये हुए घृत से तथा तेल से उसका मुख भरके इधर-उधर से पीड़ा देकर मारा जाता है।।१९।। कहीं-कहीं विष्ठा और कृमि (कीड़ों) से भरे हुए अतिउग्र प्रदीप्त लोह शाल्मली को लिपटाते हैं।।२०।। फिर जलते हुए बड़े घनों से पृष्ठदेश में ताडन किये जाते हैं, बड़े दांतोंवाले, अति कण्ठवाले बलवान आरों से।।२१।। अपने घोर कर्मों के कारण उनके मांस खाये जाते हैं और रुधिर पिया जाता है, इस प्रकार पापी जन पीड़ित होते हैं।।२२।। अपनी आत्मा के ही पोषण करनेवाले जिन्होंने कभी अन्नदान नहीं किया, वे मुद्‌गरों से कूटे हुए ईख के समान पेरे जाते हैं।।२३।। फिर घोर असितल वन में खण्ड-खण्ड होकर छेदित होते हैं और सुइयों से सब अंग भिन्न होते हैं तथा तपाये हुए त्रिशूल पर रखे जाते हैं।।२४।। वे बहुत चलाये हुए क्लेशित होते हैं, परन्तु मरते नहीं और उनके शरीर सुख-दुःख के सहने योग्य होते हैं।।२५।। बलवान् दन्तुर आकारवाले घोर दूतों द्वारा मुद्‌गरों से देह से मांस उखाड़कर भेदन किये जाते हैं।।२६।। निरुच्छ्वास नामक नरक में बिना श्वास के स्थित होते हैं और उच्छ्वास में मनुष्य बालू के घर में ताडित किये जाते हैं।।२७।। और रौरव नरक में रोते हुए मनुष्य अनेक बंधों से पीड़ित होते हैं, महा रौरव की पीड़ा से बड़े पुरुष भी रुदन करते हैं।।२८।। पैरों में, मुख में, गुदा में, सिर में, नेत्रों में, मस्तक में तीक्ष्ण घनों से तथा अतितप्त हुई लोहशंकु (लोह की कीलों) से ताडन किये जाते हैं।।२९।। और अतितप्त रेत में बारंबार गिराये जाते हैं, अत्यन्त तपे हुए जन्तु पंक में फेंके हुए मनुष्य स्वर हीन होकर रोते हैं।।३०।। हे मुने! कुम्भीपाक नरकों में सब प्रकार असह्य तपाये हुए तेल में क्रूरकर्म करनेवाले पापियों को पकाते हैं।।३१।। और उन पापियों को अति दुःखदायक लालाभक्ष नरकों में तथा अनेक स्थान के नरकों में बारंबार गिराते हैं।।३२।। पुण्य हीन पापी मनुष्य महा क्लेशदायक सूचीमुख नामक नरक में यम के दासों से गिराया जाता है और ताडन किया जाता है।।३३।। लोककुम्भ में गिराये हुए शनैः-शनैः सांस लेते हुए मनुष्य अपने पापों से महाअग्नि द्वारा पकाये जाते हैं।।३४।। रस्सी आदि से दृढ़ बांधकर शिलाओं

पर ताडन किये जाते हैं तथा अन्धकूप में फेंके जाते हैं और भ्रमरों से अत्यन्त डँसे जाते हैं।।३५।। कीड़ों से सब अंगों में विदीर्ण हुए सैकड़ों जगहों से घायल हो तत्पश्चात् अतितप्त राख के कूपों में फेंके जाते हैं।।३६।। और इस महाज्वाल नरक में पापी दुःखी होकर रोते हैं और उसकी लपट से भस्म हुए इधर-उधर दौड़ते हैं।।३७।। और मुखों द्वारा पीठ पर ला कर कन्धे पर रखकर बाहु तथा पृष्ठ से वा दोनों के मध्य भाग से अति वेग से खींचकर।।३८।। पापरज्जु से अत्यन्त बांधे हुए सब पापी महाज्वाल नरक में बद्धपिण्ड हुए सब यातनाओं को देखते हैं।।३९।। रस्सियों से बांधे हुए और किचड़ से लिपटे हुए अन्ने उपलों की व भूसी की अग्नि में पकाये जाते हैं पर मरते नहीं।।४०।। और वे कठोर शिलाओं पर बड़ी जोर से जाते हुए सैकड़ों स्थानों में ताडन करके तृण के समान भूंजे जाते हैं।।४१।। शरीर के भीतर गये हुए अनेक तीव्र मुखवाले कीड़ों से अपने देह के नाश होने के कारण अत्यन्त भक्षण किये जाते है।।४२।। और कृमी (कीड़ों) के समूह में फेंके हुए तथा पीव, मांस, अस्थि के ढेर में डाले हुए दुःखी मन से रहते हैं।।४३।। और तपे हुए वज्रलेप से शरीर लिप्त होता है और नीचे मुख तथा ऊपर पैर करके अग्नि से तपाये जाते हैं।।४४।। वे मुख के भीतर डाली हुई अति तप्त लोहे की गदा को बेबस होकर खाते हैं और यमदूतों के मुद्गरों से ताडन किये जाते हैं।।४५।। हे व्यासजी! इस प्रकार बुरे कर्म करनेवाले नरकों में दुःख भोगते हैं, अब मैं पापी पुरुषों के तत्त्व को वर्णन करता हूं।।४६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां
सामान्यतोनरकगतिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः।। ९ ।।

*****

दसवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले- झूठे शास्त्र में प्रवृत्त हुआ पुरुष द्विजिह्वाख्य नरक में जाता है और जिह्वा के समान आधे कोस तक फैले हुए हलों से पीड़ित होता है।।१।। जो क्रूर मनुष्य अपने माता, पिता, गुरु को ललकारता है, वह कीड़ों से मिली हुई विष्ठा से मुख भरकर मारा जाता है।।२।। और जो शिवजी के मन्दिर, बाग, बावडी, कूप, सरोवरों को तथा जहां मनुष्य रमण करते हैं, ऐसे ब्राह्मण के स्थान को तोड़ते हैं।।३।। जो मनुष्य काम के निमित्त मद में डूबे हुए उद्वर्तन, उखटन, स्नान, पान, जल, भोजन, क्रीड़ा, मैथुन, द्यूत को करते हैं।।४।। वे अनेक प्रकार के घोर कोलू आदि के पीडन से दुःखी किये जाते हैं और प्रलयकाल पर्यन्त नरकाग्नियों में पड़ते हैं।।५।। और दूसरों

की स्त्रियों से प्रसंग करनेवाले पुरुष भी उसी रूप से ताडन किये जाते हैं और वे तपे हुए लोहे की बनी स्त्री को जोर से आलिंगन करके पीड़ित होते हैं ।।६।। पहले के समान आकारवाले पुरुष सब ओर से जलते हैं और व्यभिचारिणी स्त्री को वेग से आलिंगन करके रोते हैं ।।७।। जो सत्पुरुषों की निन्दा करते हैं, उनके अग्नि के समान तप्त लोहे की कीलों से तथा ताम्बे की कीलों से कान भरे जाते हैं ।।८।। और फिर रांग, सीसा, आरकूट (पीतल) गलाकर जल से, दूध से वा तपे हुए तेज तेल से अथवा वज्रलेप से ।।९।। क्रमानुसार कानों को भरके सम्पूर्ण नरकों में क्रम से यह यातना (वेदना) चारों ओर से प्राप्त कराई जाती है ।।१०।। और सब इन्द्रियों के पापों से तथा प्रत्येक शरीर के किये हुए पापों से क्रमानुसार कड़ी यातना मिलती है ।।११।। जो मूढ़ स्पर्श दोष से परस्त्री को स्पर्श करते हैं, उनका हाथ अग्नि के समान लाल धूलि से अत्यन्त पूर्ण किया जाता है ।।१२।। और उनका शरीर सम्पूर्ण तप्त राख आदि से लेपन किया जाता है और सब नरकों में बड़ी कष्टदायक पीड़ा मिलती है ।।१३।। जो मनुष्य माता–पिता को भ्रुकुटी, हाथ, आँख दिखाते हैं, उनके मुख पर तक कीलों से दृढ़ भरे जाते हैं ।।१४।। जिन इन्द्रियों से मनुष्य पराई स्त्री को दूषित करते हैं, उनकी वही इन्द्रिय विकार को प्राप्त होती है ।।१५।। जो लोभी चंचल नेत्र से दूसरे की स्त्रियों को देखते हैं, आग के समान लाल हुईं सुइयों से तथा गरम राख आदि से उनका नेत्र पूर्ण होता है ।।१६।। हे मुनिश्रेष्ठ! यहां पर क्रम से यमराज की यातना प्राप्त होती है, यह सत्य है, इसमें कुछ संशय नहीं ।।१७।। जो पुरुष देवता, अग्नि, गुरु, ब्राह्मण को बिना दिये खाते हैं, उनकी जिह्वा तथा मुख लोहे की सैकड़ों कीलों से पूर्ण किया जाता है ।।१८।। जो मनुष्य देवता और बाग का फूलों को हाथ में लेकर सूंघते हैं, फिर सिर पर धारण करते हैं ।।१९।। उनका सिर तप्त लोहे के कीलों से ठोका जाता है और उसकी नासिका बहुत राख आदि से अत्यन्त भरी जाती है ।।२०।। जो मनुष्य महात्मा, धर्मात्मा, उपदेशक को तथा देवता, अग्नि, गुरु, भक्तों को तथा सनातन धर्मशास्त्र की निन्दा करते हैं ।।२१।। उनके हृदय, कण्ठ तथा जिह्वा में और दांतों की संधियों में, तालु में, ओठों में, नासिका में, मस्तक तथा सब अंगों के जोड़ में ।।२२।। आग के समान लाल तपी हुई तीन शिखावाली लोहे की कीलें मुद्गरों से ठोंकी जाती हैं ।।२३।। फिर पीछे से जलती हुई राख से सब अंग में लेप किया जाता है और सब शरीर में यातना प्राप्त होती हैं ।।२४।। पराया धन लेते हैं तथा पैरों से ब्राह्मण को छूते हैं, वे क्रम से सम्पूर्ण नरकों में जाते हैं ।।२५।। और जो शिवजी के पूजा सम्बन्धी वस्तु को तथा गाय और ज्ञान के लेख (पुस्तक) को पैरों से छूते हैं, उनके हाथ, पैर आदि कीलों से ठोके जाते हैं ।।२६।। और उनको सम्पूर्ण नरकों में बहुत कष्ट दायक हाथ, पैरों की कड़ी पीड़ा प्राप्त होती है ।।२७।। जो पापी शिवजी के मन्दिर की सीमा में, देवताओं के बाग में

कहीं पर विष्ठा या मूत्र करते हैं ।।२८।। उनके उपस्थेन्द्रिय अण्डकोष सहित लोहे की मुद्गरों से पीसी जाती हैं तथा अग्नि के समान लाल सुइयों से पूर्ण की जाती हैं ।।२९।। तब उस पापी की गुदा में और लिंग में बड़ी गरम राख तथा खारी वस्तु भलीभान्ति से पूर्ण की जाती है ।।३०।। और ऐसी वेदना प्राप्त होती है, जिससे मन तथा सम्पूर्ण इन्द्रियों को दुःख होता है, जो मनुष्य धन होने पर भी अति तृष्णा से दान नहीं करते ।।३१।। समय पर घर में आये हुए अतिथि (अभ्यागत) का तिरस्कार करते हैं, इस कारण वे पाप को पाकर अपवित्र नरक में जाते हैं ।।३२।। जो कुत्ते और कौंवों को बलि न देते हुए भोजन करते हैं, उनका कण्ठ और मुख दो कीलों से ताडित होता है ।।३३।। और कीड़ों से तथा हिंसक जन्तुओं से तथा लोहे की चोंचवाले काकों से तथा अनेक प्रकार के उग्र उपद्रवों से पीड़ित होता है ।।३४।। श्याम और शबल नामवाले यमराज के मार्ग को रोकनेवाले जो दो श्वान हैं, मैं उन दोनों को बलि देता हूं, वे दोनों इस बलि को ग्रहण करें ।।३५।। और जो पश्चिम के, वायव्य दिशा के तथा उत्तर और नैर्ऋत्य के पुण्यात्मा काक हैं, वे मेरी बलि को ग्रहण करें ।।३६।। और जो यत्नपूर्वक शिवजी को पूजकर विधिपूर्वक अग्नि में हवन करके शिवजी के मन्त्रों से बलिदान करते हैं, वे यमराज को नहीं देखते हैं ।।३७।। और स्वर्गलोक को जाते हैं, इस कारण प्रतिदिन चार हाथ का मण्डल करके गन्ध अक्षतादि से सुगन्धित करके ।।३८।। ईशान दिशा में धन्वन्तरि वैद्य को तथा पूर्व में इन्द्र के निमित्त डाले, उत्तर में यम को, पश्चिम में सुदक्षोम को तथा दक्षिण में पितरों को ।।३९।। प्राच्य दिशा में अर्यमा (सूर्य) को भाग दे, द्वार देश में धाता और विधाता को भाग दे ।।४०।। श्वानों के लिये तथा श्वपतियों के निमित्त तथा पक्षियों के निमित्त भूमि पर रख दे, देवताओं से पितर और मनुष्यों से प्रेत और भूतों से, गुह्यकों से ।।४१।। पक्षी, कृमि, कीटों से गृहस्थी मनुष्य उपजीवित होता है, स्वाहाकार, स्वधाकार, तीसरा वषट्कार ।।४२।। तथा हन्तकार, यह चारों गऊ के स्तनों में हैं, स्वाहाकार स्तन में है, इस स्तन में देवता स्वाहाकार को, पितर स्वधा को पान करते हैं ।।४३।। वषट्कार को अन्य देवता तथा भूतेश्वर और हन्तकार को मनुष्य निरन्तर पान करते हैं ।।४४।। जो मनुष्य आनुपूर्विक इस गाय को श्रद्धा से निरन्तर समय पर स्वभोजन देता है, वह साग्नित्व के लिये कल्पना किया जाता है।।४५।। और जो उस गाय को त्यागता है, वह अस्वस्थ होकर तामिस्र नरक में डूबता है, इस कारण उन सबों को बलि देकर क्षणमात्र द्वार पर स्थित होकर विचारे ।।४६।। और यथा शक्ति अपने भोजन में से भूखे अभ्यागत को वा एक ग्राम में निवासी मनुष्य को विधिपूर्वक श्रेष्ठ अन्न से भोजन करावे ।।४७।। जिसके घर से अभ्यागत आशा हीन होकर लौट जाता है, वह उसको पाप देकर और पुण्य लेकर चला जाता है ।।४८।। तत्पश्चात् वह मनुष्य स्वादिष्ट भोजन करता हुआ बहुत समय तक शृंखला युक्त जिह्वा के वेग से विन्धा हुआ रहता है ।।४९।।

और जिह्वा के मांस को उचेलकर तिलमात्र प्रमाण से जन्तुओं को खाने दिया जाता है और उनके रुधिर को भेदन करके ।।५०।। सम्पूर्ण शरीर क्रमानुसार कोड़ों से पीड़ित होता है और वह प्राणी भूख प्यास के अति कष्ट से चला जाता है ।।५१।। इस प्रकार पापियों की अनेक यातना हैं और अन्त में जो उनको प्राप्त होता है, उसे संक्षेप सुनिये ।।५२।। जो पुरुष बड़े पाप को तथा थोड़े धर्म को करता है अथवा बहुत धर्म को करता है, उन दोनों की उस अवस्था को सुनिये ।।५३।। बड़े पाप के प्रभाव से पुण्य का फल नहीं मिलता, उस पाप से वह बहुत भोगों में फँसा हुआ भी उनमें सुख नहीं पाता है ।।५४।। और दुःखित हुआ तथा जलता हुआ वह भोजन योग्य पदार्थों से सुख नहीं मानता है और अपने को उनका अभाव मानकर दूसरों के आगे देखकर दुःख पाता है ।।५५।। जो बहुत धर्म करनेवाला है, वह मनुष्य उपवासी गृहस्थी के समान धनवान् होकर नियम में स्थित होकर अपनी पीड़ा को नहीं जानता है ।।५६।। ऐसे अति घोर पाप है, जिनसे मनुष्य पृथ्वी पर वज्र से ताडित हुए पर्वत के समान सैकड़ों प्रकार से भेद को प्राप्त होता है ।।५७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां
नरकगतिभोगवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ।। १० ।।

*****

ग्यारहवाँ अध्याय

व्यासजी बोले– हे प्रभो! पापी मनुष्य बड़े दुःख से पीड़ित हो यम के मार्ग में जाते हैं, और जिनसे सुखपूर्वक यममार्ग से जाते हैं, उन धर्मों को कहिये ।।१।। सनत्कुमारजी बोले– जो शुभ वा अशुभ कर्म किया है, वह निश्चय ही भोगा जाता है, अब मैं सुख देनेवाले उन धर्मों को कहता हूं।।२।। इस संसार में जो श्रेष्ठ कर्म करनेवाले सौम्य चित्त दयालु पुरुष हैं, वे सुख से भयंकर यममार्ग को जाते हैं।।३।। जो श्रेष्ठ ब्राह्मण को जूता, खडांऊ देता है, वह मनुष्य बड़े घोड़े पर चढ़कर सुख से यमलोक को जाता है ।।४।। और छाते के दान करने से मनुष्य छाते से यममार्ग को जाते हैं और पालकी प्रदान करने से रथ से सुखपूर्वक जाता है ।।५।। और शय्या, आसन के प्रदान करने से विश्राम करके सुख से जाते हैं, बाग की छाया करनेवाले प्राणी मार्ग में वृक्षों की छाया से, धूप में बिना कष्ट के यमराज के लोक को जाते हैं ।।६।। और पुष्पों के बाग बनानेवाले मनुष्य पुष्पक विमान से जाते हैं, देवताओं के मन्दिर बनानेवाले घर के भीतर क्रीड़ा करते हैं ।।७।। तथा जो संन्यासियों के आश्रम को तथा अनाथों के घर बनानेवाले हैं, वे

मण्डपों के भीतर खेलते हैं।।८।। देवता, अग्नि, गुरु, ब्राह्मणों तथा माता–पिता को पूजनेवाले मनुष्य पूज्यमान होकर सुखपूर्वक यथेच्छित मार्ग से यमलोक को प्राप्त होते हैं।।९।। और दीपक दान करनेवाले सम्पूर्ण दिशाओं को प्रकाशित करते हुए जाते हैं, और क्वाथ के रसादि के दान करने से नीरोग होकर सुख से जाते हैं।।१०।। गुरु की शुश्रुषा करनेवाले मनुष्य विश्राम करते हुए जाते हैं, दुःखी अनाथ ब्राह्मणों को देनेवाले सुख से घर के समान जाते हैं।।११।। और गौ देनेवाले सब कामनाओं से पूर्ण हुए मार्ग से जाते हैं, वहां पर मनुष्य मार्ग में अपने दिये हुए अन्नपानों को पाता है।।१२।। पाद्य प्रदान करने से प्राणी जलवाले मार्ग से जाते हैं, जो पैरों की मालिश (उबटन) करता है वह घोड़े की पीठ पर जाता है।।१३।। हे व्यासजी! पाद्य, अभ्यंग, दीप, अन्न, समीप गमन इनको जो दान करता है, उसे यमराज का कष्ट नहीं प्राप्त होता है।।१४।। सुवर्ण और रत्न प्रदान करने से दुर्गों (किलों) को तरता हुआ जाता है और चांदी आदि के प्रदान करने से सुख से यमलोक को जाता है।।१५।। इन दोनों से मनुष्य सुखपूर्वक यमलोक को जाते हैं और स्वर्ग में सदा अनेक प्रकार के भोगों को प्राप्त होते हैं।।१६।। सब दानों में अन्नदान को श्रेष्ठ कहा है, निरन्तर प्रीति करनेवाले, मनोहर, बलबुद्धि बढ़ानेवाला है।।१७।। हे मुनिश्रेष्ठ! अन्नदान के समान और कोई दान नहीं है, अन्न से प्राणी उत्पन्न होते हैं और उसके अभाव में मर जाते हैं।।१८।। रक्त, मांस, चर्बी, वीर्य यह क्रम से अन्न से बढ़ते हैं और वीर्य से सब प्राणी होते हैं, इस कारण यह संसार अन्नमय है।।१९।। सुवर्ण, रत्न, घोड़ा, हाथी, स्त्री, माला, चन्दन आदि समस्त पदार्थों के प्राप्त होने पर भी भूख से व्याकुल होकर रमण नहीं कर सकते।।२०।। गर्भाशय में स्थित तथा उत्पन्न हुए बालक, वृद्ध, मध्यम, देवता, दानव, राक्षसादि सब भोजन चाहते हैं।।२१।। क्षुधा सम्पूर्ण रोगों में प्रबल व्याधि कही है, वह निःसन्देह अन्नरूपी औषधि के लेप करने से नष्ट होती है।।२२।। क्षुधा के समान कोई दुःख नहीं, क्षुधा के समान कोई रोग नहीं और नीरोग के समान सुख नहीं तथा क्रोध के समान कोई शत्रु नहीं है।।२३।। इसी कारण अन्नदान में बड़ा पुण्य कहा है, कारण कि क्षुधाग्नि से तप्त हुए सम्पूर्ण प्राणी मर जाते हैं।।२४।। अन्न का देनेवाला शास्त्रों में प्राणदाता कहा है और प्राणदाता सर्वस्व दान करनेवाला कहा है, इस कारण अन्न प्रदान करने से सब दानों का फल मिलता है।।२५।। जिसके अन्नपान से पुष्ट हुआ शरीर पुण्य करता है, वह आधा पुण्य अन्न के दाता का तथा करनेवाले का होता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं।।२६।। तीनों लोकों में भोग स्त्री वाहनादि जितने रत्न हैं, उन सबों को अन्नदाता इस लोक में तथा परलोक में पाता है।।२७।। यह शरीर धर्म, अर्थ, काम, मोक्षों का परम साधक है, इस कारण अन्नपान से सदा अपने शरीर का पोषण करे।।२८।। सब लोग सब में प्रतिष्ठित हुए अन्न की ही प्रशंसा करते हैं कि, अन्न के समान और कोई

दान न हुआ, न होगा ।।२९।। हे मुने! अन्न से यह सारा विश्व जगत् धारण किया जाता है और लोक में अन्न ही बलदायक है और अन्न में ही प्राण प्रतिष्ठित हैं ।।३०।। अपने ऐश्वर्य की इच्छा से अपने कुटुम्ब को पीड़ा देकर भी भिक्षुक तथा महात्मा ब्राह्मण को अन्न देना उचित है ।।३१।। जो मनुष्य याचक, ब्राह्मण तथा दुःखी के निमित्त अन्नदान करता है, वह अपने परलोक सम्बन्धी श्रेष्ठ निधि को देता है ।।३२।। अपनी भूति को चाहनेवाला गृहस्थ भोजन के समय प्राप्त हुए वृत्ति के निमित्त मार्ग में विश्राम करते हुए अपने घर पर आये हुए ब्राह्मण को पूजे ।।३३।। हे व्यासजी! जो सुशील ईर्ष्या से रहित भोजन देनेवाला उत्पन्न हुए क्रोध का त्याग करके पूजता है, वह यहां तथा स्वर्ग में बड़ा सुख पाता है ।।३४।। प्राप्त हुए जीव की किसी प्रकार निन्दा न करे और न ललकारे, श्वपाक में और कुत्ते में भी किया हुआ अन्नदान नष्ट नहीं होता है ।।३५।। जो मनुष्य विश्रान्त होकर पहले कभी न दीखे हुए तथा मार्ग में स्थित हुए को बिना क्लेश के अन्न देता है, वह समृद्धि पाता है ।।३६।। हे महामुने! जो पितरों को, देवताओं को, ब्राह्मणों को, अभ्यागतों को भोजन से सन्तुष्ट करता है, उसे बड़े पुण्य का फल मिलता है ।।३७।। अन्नपान शूद्र तथा ब्राह्मण में विशेष फलदायक होता है, उस समय गोत्र, चरण, स्वाध्याय तथा देश को नहीं पूंछना चाहिये ।।३८।। जो मनुष्य ब्राह्मण के मांगने पर भोजन देता है, वह प्रलयकाल पर्यन्त परम स्वर्ग को प्राप्त होता है ।।३९।। अन्नदान कर्ता को इस लोक में वृक्ष सब कामना के अनुसार फल देनेवाले होते हैं, उसी प्रकार स्वर्ग में हर्ष युक्त ब्राह्मण सब काम फल देनेवाले होते हैं ।।४०।। हे मुने! हे महामुने! अन्नदान करने से स्वर्ग में जो दिव्यलोक रचे हैं, उनको सुनिये ।।४१।। उन महात्माओं के अनेक स्थानों से विचित्र तथा अनेक प्रकार की कामनाओं से युक्त गृह स्वर्ग में शोभित होते हैं ।।४२।। तथा भवन में स्थित हुए वृक्ष सब कामानुसार फल देनेवाले होते हैं, सुवर्ण के बाउडी तथा शुभकूप सब ओर दीर्घिका (झीलें) होती हैं ।।४३।। और सहस्रों स्थानों से जल शब्द करते हैं तथा भक्ष्य भोज्यमय, शैल वस्त्र, आभूषण ।।४४।। तथा दूध के प्रवाहवाली नदी, घी के पर्वत, श्वेतवर्णवाले महल, सुवर्ण के समान दीप्यमान शय्या होती हैं ।।४५।। अन्नदान कर्ता ऐसे लोकों को जाते हैं, इस कारण जो इस लोक में तथा परलोक में अपने ऐश्वर्य को चाहे, वह अन्नदानी होवे ।।४६।। अन्न देनेवाले पुण्यात्माओं को यह बड़ी कान्तिवाले लोक प्राप्त होते हैं, इस कारण मनुष्यों को विशेष कर निश्चय ही अन्नदान करना चाहिये ।।४७।। अन्न साक्षात् ब्रह्मा तथा अन्न ही विष्णु, अन्न स्वयम् शिवजी हैं, इस कारण अन्न के समान कोई दान न हुआ, न होगा ।।४८।। जो मनुष्य बड़े पाप करने के उपरान्त अन्नदान करता है, वह सब पापों से छूटकर स्वर्गलोक में जाता है ।।४९।। अन्न, पान, अश्व, गौ, वस्त्र, शय्या, छत्र, आसन यह आठ दान प्रेतलोक में अति प्रशंसनीय कहे हैं ।।५०।। मनुष्य

इन दानों को करने से विमान के द्वारा धर्मराज के नगर को प्राप्त होता है, इस कारण अवश्य दान करना उचित है ।।५१।। जो मनुष्य अन्नदान के प्रभाववाले निष्पाप इस इतिहास को पढ़ता है अथवा औरों को पढ़ाता है, वह धनवान् होता है ।।५२।। हे महामुने! जो श्राद्ध में अक्षय्य अन्नदान की महिमा को सुनता है अथवा ब्राह्मणों को सुनाता है, वह पितरों के समीप प्राप्त होता है ।।५३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां
अन्नदानमाहात्म्यवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ।। ११ ।।

*****

बारहवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले– पानी का दान सब दानों में बड़ा तथा श्रेष्ठ है, सर्वदा सम्पूर्ण जीवों को तृप्त करनेवाला, जिलानेवाला कहा है ।।१।। इस कारण अतिस्नेह से गौ का दान करना उचित है और जलाश्रयों का बनाना बड़ा आनन्द देनेवाला है ।।२।। इस लोक में तथा परलोक में आनन्ददायक होता है, यह सत्य–सत्य है, इसमें कुछ सन्देह नहीं, इस कारण मनुष्य को बावडी तथा कुओं को बनवाना चाहिये ।।३।। जल से भरा हुआ कूप नित्य पापकर्म में प्रवृत्त हुए मनुष्य के आधे पापों को हरण करता है ।।४।। जिसकी झील (गुफा) अथवा सरोवर में गाय, ब्राह्मण, साधु, मनुष्य सदा जल पीते हैं, उसका वंश तर जाता है ।।५।। गरमी के समय में जिसका बिना वर्जित पानी स्थित रहता है, वह बड़े दुःख तथा घोर कठिनता को कभी भी नहीं प्राप्त होता है ।।६।। बनवाये हुए सरोवरों के जो गुण कहे हैं, उनका मैं वर्णन करता हूं। जो तालाब बनानेवाला मनुष्य है, वह तीनों लोकों में सर्वत्र पूजित होता है ।।७।। अथवा मित्र के घर में मित्र के दुःख रहित मैत्री तथा कीर्त्ति को फैलानेवाला तालाबों का बनाना अति श्रेष्ठ कहा है ।।८।। जिसने अपने शुभ कार्य में सरोवर बनवाया है, उसका अनन्त पुण्य होता है, बुद्धिमान् पुरुष धर्म, अर्थ, कामों को इससे ही सब सफल कहते हैं ।।९।। सरोवर चार प्रकार के भूतों का परम आश्रय है, तडाग आदि सब जलाशय उत्तम लक्ष्मी को प्रदान करते हैं ।।१०।। देवता, मनुष्य, गन्धर्व, पितर, नाग, राक्षस, स्थावर, भूत (प्राणी) आदि सब जलाशय को आश्रय करते हैं ।।११।। जिसके सरोवर में वर्षाकाल में जल रहता है, उसको अग्निहोत्र के समान फल होता है, ऐसा ब्रह्माजी ने कहा है ।।१२।। जिसके सरोवर में शरद ऋतु में जल रहता है, उसको सहस्र गौ देने का फल मिलता है, इसमें संशय नहीं ।।१३।। और जिसके सरोवर में हेमन्त तथा शिशिर ऋतु में जल ठहरता है, वह बहुत

सुवर्णदान के यज्ञ का फल पाता है।।१४।। तथा वसन्त और ग्रीष्म ऋतु में जिसके सरोवर में पानी रहता है, उसे बहुत रात्रियों के अश्वमेध का फल बुद्धिमान् कहते हैं।।१५।। हे मुने! हे व्यासजी! मैंने जीवों को सन्तुष्ट करनेवाले जलाशय का फल कह दिया, अब वृक्षों को लगाने के गुणों को सुनिये।।१६।। जो वन में वृक्ष लगाता है, वह बीते हुए तथा आनेवाले सम्पूर्ण पितृवंशों को तारता है, इस कारण अवश्य ही वृक्षों को लगवाना चाहिये।।१७।। यह लगाये हुए वृक्ष दूसरे जन्म में उसके पुत्र होते हैं, इसमें संशय नहीं और वह भी मृत्यु को प्रात होकर अक्षय लोकों को प्राप्त होता है।।१८।। पुष्पों से समस्त देवगणों को तथा फलों से पितरों को, छाया से अतिथियों को इस कारण वृक्ष सबों को पूजते हैं।।१९।। किन्नर, सर्प, राक्षस, देवता, गन्धर्व, मनुष्य तथा ऋषिगण यह सब वृक्षों से आश्रय प्राप्त करते हैं।।२०।। लोक में पुष्पित हुए तथा फले हुए वृक्ष मनुष्यों को तृप्त करते हैं, इससे वे इस लोक तथा परलोक में धर्म के पुत्र कहे हैं।।२१।। सरोवर बनानेवाला, बाग लगानेवाला, पंचयज्ञ करनेवाला जो द्विज है तथा जो सत्यवादी पुरुष है, वह स्वर्ग से कदापि नहीं गिरता।।२२।। सत्य ही परब्रह्म है, सत्य ही परम तप है, सत्य ही परम यज्ञ है और सत्य ही परम शास्त्र है।।२३।। सत्य ही सोते हुओं में जागता है, सत्य ही परम पद है, सत्य ने ही पृथ्वी धारण की है, सत्य में ही सब कुछ स्थित है।।२४।। तप, यज्ञ, पुण्य, देव, ऋषि, पितरों का पूजन, जल, विद्या आदि सब सत्य में ही प्रतिष्ठित हैं।।२५।। सत्य ही यज्ञ, तप, दान, ब्रह्मचर्य है और सत्य ही ओंकार है और सत्य ही मन्त्रवाली देवी सरस्वती है।।२६।। सत्य से ही पवन चलता है, सत्य से सूर्य तपता है, सत्य से अग्नि जलता है, सत्य से स्वर्ग मिलता है।।२७।। सब वेदों का पालन तथा सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान करना आदि सब सत्य से मिलता है, इसमें कुछ संशय नहीं।।२८।। सहस्रों अश्वमेध तथा लक्षों दूसरे यज्ञों को तराजू में एक ओर रखो और एक ओर सत्य को रखो, तो सत्य ही में विशेष होगा।।२९।। सत्य से देवता, पितर, मनुष्य, सर्प राक्षस आदि चर-अचर सहित सम्पूर्ण लोक सत्य से ही प्रसन्न होते हैं।।३०।। सत्य ही परम धर्म कहा है, सत्य ही परम पद कहा है और सत्य ही परब्रह्म कहा है। इस कारण सदा सत्य बोले।।३१।। सत्य में तत्पर हुए मुनि अतिकठिन तप करके तथा सत्यरूपी धर्म में प्रवृत्त हुए सिद्ध यह सब स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं।।३२।। अप्सराओं से प्रविष्ट हुए विमानों सहित परिमाताओं को सदा सत्य कहना चाहिये; कारण कि सत्य से अधिक कोई धर्म नहीं है।।३३।। अगाध बड़े सिद्ध पवित्र ह्रद सत्यरूपी तीर्थ में मन के सहित स्नान करना चाहिये, वह परम स्थान कहा है।।३४।। जो मनुष्य अपने लिये वा पराये के लिये भी झूठ नहीं बोलते हैं, वे मनुष्य स्वर्ग के गामी होते हैं।।३५।। वेद, यज्ञ तथा मन्त्र यह असत्यवादी ब्राह्मणों में शोभा नहीं देते हैं, इस कारण नित्य सत्य बोले।।३६।। व्यासजी बोले- हे तपोधन! सब वर्णों के तथा ब्राह्मणों

के तप का फल मुझ से फिर कहिये ।।३७।। सनत्कुमारजी बोले– सम्पूर्ण काम, अर्थ का साधक द्विजातियों को कठिनता से करने योग्य तप के अध्याय को कहता हूं, सो कहते हुए मुझसे सुनिये ।।३८।। तप ही बड़ा कहा है, तप से ही अतिफल मिलता है, जो नित्य तप में प्रवृत्त हैं, वे देवताओं सहित आनन्द करते हैं ।।३९।। तप से स्वर्ग मिलता है और तप ही से यश मिलता है, तप से काम प्राप्त होता है, तप ही समस्त अर्थों का साधन है ।।४०।। तप से मोक्ष प्राप्त होता है, तप से ज्ञान तथा विज्ञान की सम्पत्ति मिलती है, तप से सौभाग्य और रूप मिलता है ।।४१।। मनुष्य तप से अनेक प्रकार की वस्तुओं को पाता है, बहुत क्या ? जो–जो मन से इच्छा करता है, सो सब तप से मिल जाता है ।।४२।। बिना तप से कदापि ब्रह्मलोक को नहीं जा सकते, बिना तप से परमेश्वर शिवजी भी नहीं प्राप्त हो सकते ।।४३।। मनुष्य जिस कार्य के उद्देश्य से तप करता है, वह सब इस लोक में तथा परलोक में प्राप्त होता है ।।४४।। मदिरा को पान करनेवाला, पराई स्त्री से प्रसंग करनेवाला, ब्रह्महत्या करनेवाला, गुरुपत्नी से गमन करनेवाला भी तप से तर जाता है और सब पापों से छूट जाता है ।।४५।। सबों के स्वामी शिवजी तथा सनातन विष्णु, ब्रह्मा, अग्नि, इन्द्र और जो कोई तप से युक्त हैं ।।४६।। उर्ध्वरेत वाले जो अठासी सहस्र मुनि हैं, वे सब तप से ही देवताओं के सहित स्वर्गलोक में आनन्द करते हैं ।।४७।। तप से राज्य मिलता है और तप से सुरेश्वर इन्द्र ने प्रतिदिन सब का पालन किया है ।।४८।। सब लोकों का हित करनेवाले सूर्य और चन्द्र, देव, नक्षत्र और ग्रहादि तप से ही प्रकाशित होते हैं ।।४९।। संसार में ऐसा कोई सुख नहीं है, जो बिना तप के प्राप्त होता है, तप से ही सब सुख मिलता है, इस प्रकार वेद जाननेवाले कहते हैं ।।५०।। ज्ञान, विज्ञान, आरोग्य तथा रूपवत्ता, सौभाग्य, सुखादि तप से निरन्तर प्राप्त होते हैं ।।५१।। तप से ब्रह्माजी बिना परिश्रम के संसार को रचते हैं तथा विष्णुजी रक्षा करते हैं और शिवजी संहार करते हैं, शेषजी सम्पूर्ण पृथ्वी को धारण करते हैं ।।५२।। हे महामुने! तप से ही गाधि के पुत्र विश्वामित्रजी क्षत्रिय ब्राह्मण हुए और तीनों लोक में प्रसिद्ध हो गये ।।५३।। हे महाप्राज्ञ! यह तप का उत्तम माहात्म्य आपसे कहा, अब तप से भी अतिश्रेष्ठ अध्ययन के माहात्य को श्रवण कीजिये ।।५४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पञ्चम्यामुमासंहितायां

तपोमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ।। १२ ।।

*****

तेरहवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले– हे मुने! जो वन में कन्दमूल, फल खाकर वन में तप करता है, उसके समान एक ऋचा पढ़ने से वह फल प्राप्त होता है।।१।। श्रेष्ठ ब्राह्मण वेद पढ़ने से जो पुण्य प्राप्त करता है, उसे पढ़ने से दूना फल प्राप्त करता है।।२।। हे मुने! जिस प्रकार बिना सूर्य और चन्द्रमा के जगत् प्रकाशरहित हो जाता है, उसी प्रकार बिना पुराण के सम्पूर्ण संसार प्रकाशहीन होता है, इस कारण सदा पुराण का अध्ययन करना चाहिये।।३।। सदा अज्ञान से तपे हुए लोक को शास्त्र से समझता है और उनके अज्ञान का निराकरण करता है, इसी कारण पुराणवक्ता पूजनीय है।।४।। समस्त पात्रों के मध्य में पुराणवेत्ता अतिश्रेष्ठ है, पतन से रक्षा करता है, इस कारण इसे पात्र कहा है।।५।। पुराण जाननेवाले में मनुष्य बुद्धि कदापि नहीं करनी चाहिये, कारण कि पुराणवेत्ता सर्वज्ञ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गुरु होता है।।६।। परलोक में तथा इस लोक में कल्याण के निमित्त धन, धान्य, सुवर्ण, अनेक वस्त्र आदि पुराण जाननेवाले को देना चाहिये।।७।। जो सज्जन पुराण जानने वाले सुपात्र को श्रेष्ठ पदार्थ बड़े प्रेम से अर्पण करता है, वह परमगति को प्राप्त होता है।।८।। जो पुरुष सुपात्र के निमित्त भूमि, गौ, रथ, शोभन घोड़ों को देता है, उसके पुण्य का फल सुनिये।।९।। वह मनुष्य परलोक तथा इस जन्म में अक्षय सब मनोरथों को और अश्वमेध यज्ञ का फल पाता है।।१०।। जो जुती हुई तथा शुभ फल देनेवाली भूमि को देता है, वह अपने दश पहले तथा दश अगले वंशों को तारता है।।११।। और इस लोक में सम्पूर्ण भोग के अन्त में सुन्दर शरीर पाकर दिव्य विमान से वह शिवलोक को पाता है।।१२।। सब देवता इस प्रकार प्रोक्षणयुक्त यज्ञों से तथा भेंटों से पुष्प पूजा से सन्तुष्टि को नहीं प्राप्त होते हैं, कि जिस प्रकार पुस्तक बांचने से प्रसन्न होते हैं।।१३।। जो शिवजी के मन्दिर में अथवा विष्णुजी के मन्दिर में वा सूर्य अथवा किसी देवता के मन्दिर में धर्म पुस्तक बँचवाता है, उसका भी फल सुनिये।।१४।। वह मनुष्य राजसूय, अश्वमेध यज्ञों के फल को प्राप्त होता है और वह सूर्यलोक का भेद करके ब्रह्मलोक को जाता है।।१५।। वह वहां सैकड़ों कल्पों तक रहकर पृथ्वी पर राजा होता है और निष्कण्टक होकर भोगों को भोगता है, इसमें कुछ संशय नहीं।।१६।। सैकड़ों अश्वमेधों का जो फल कहा है, उसके समान वह फल पाता है, जो देवताओं के आगे जप करता है।।१७।। शिवजी के शुभ मन्दिर में इतिहास और पुराणगाथा के बिना शिवजी तथा अन्य देवताओं को प्रसन्न करने का और कोई उपाय नहीं।।१८।। इस कारण सब यत्न से पुराण की पुस्तक पढ़ना तथा प्रेम से उसका श्रवण

करना चाहिये, वह सब कामनाओं का फल देनेवाला है ।।१९।। शिवजी का पुराण सुनने से मनुष्य निष्पाप होता है और अति भोगों को भोगकर शिवलोक को प्राप्त होता है ।।२०।। राजसूय यज्ञ से तथा अग्निष्टोम यज्ञ करने से जो पुण्य होता है, वह पुण्य शिवजी की कथा सुनने से मिलता है ।।२१।। हे मुने! सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान करने से तथा कोटि गायों के दान करने से जो पुण्य होता है, मनुष्य वह पुण्य शिवजी की कथा सुनने से पाता है ।।२२।। जो मनुष्य लोकों को पवित्र करनेवाली शिवजी की कथा सुनते हैं, वे वास्तव में मनुष्य नहीं मानने चाहिये, किन्तु रुद्र ही हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं ।।२३।। शिवजी की सुन्दर कीर्त्ति के सुननेवाले तथा कहने वालों के चरणकमलों की धूलि को ही मुनिगणों ने तीर्थ कहा है ।।२४।। जो मनुष्य कल्याण करनेवाले स्थान को जाना चाहते हैं, वे सदा भक्ति से शिवपुराण की कथा सुनें ।।२५।। यदि सदा पुराण की कथा सुनने में असमर्थ हों, तो प्रतिदिन जितेन्द्रिय होकर मुहूर्त्त (क्षण) मात्र सुने ।।२६।। हे मुने! यदि मनुष्य प्रतिदिन सुनने में असमर्थ हो, तो पुण्यमास आदि में शिवजी की कथा सुने ।।२७।। हे मुनीश्वर! जो मनुष्य शिवजी की कथा सुनता है, वह कर्म रूपी बड़े वन को भस्म करके संसार से तर जाता है ।।२८।। जो पुरुष मुहूर्त्त मात्र वा आधे मुहूर्त्त वा क्षणभर शिवजी की कथा भक्ति से सुनते हैं, उनकी कदापि दुर्गति नहीं होती है ।।२९।। हे मुने! जो सम्पूर्ण दानों में वा सब यज्ञों में पुण्य होता है, वह फल शम्भुजी के पुराण सुनने से निश्चय होता है ।।३०।। हे व्यासजी! विशेष कर कलियुग में पुराण के श्रवण के बिना मनुष्यों को मुक्ति ध्यान में तत्पर और कोई परम धर्म नहीं कहा ।।३१।। मनुष्यों को शिवजी का पुराण सुनना तथा नामकीर्तन करना कल्पवृक्ष के फल के समान मनोहर कहा है, इसमें कुछ सन्देह नहीं ।।३२।। कलियुग में धर्म आचार को त्यागने वाले, दुर्बुद्धिवाले मनुष्यों का हित करने के लिये शिवजी ने पुराण नामक अमृतरस का विधान किया है ।।३३।। अमृत पीकर एक ही मनुष्य अजर-अमर होता है, परन्तु शिवजी की कथारूपी अमृत पान करने से सब कुल ही अजर-अमर हो जाता है ।।३४।। हे तात! पुण्यात्माओं की तथा यज्ञ करनेवाले और तपस्वियों की जो गति होती है, वह गति एक साथ पुराण सुनने से प्राप्त होती है ।।३५।। जब ज्ञान की प्राप्ति न हो, तो यत्नपूर्वक योगशास्त्रों को पढ़ना चाहिये और पुराणशास्त्र सुनना चाहिये ।।३६।। पुराण के सुनने से पाप दूर होता है, नित्य धर्म बढ़ता है, इस कारण ज्ञानी फिर संसार को प्राप्त नहीं होता है ।।३७।। इसी कारण धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षमार्ग की प्राप्ति के निमित्त यत्नपूर्वक पुरोणों को सुनना चाहिये ।।३८।। यज्ञों से, दानों से, तपों से तथा तीर्थ सेवा से जो फल मिलता है, वह फल पुराण श्रवण से मनुष्य पाता है ।।३९।। यदि धर्ममार्ग दिखानेवाले पुराण न होते, तो यहां इहलौकिक तथा पारलौकिक कथा सुनानेवाला व्रती रहता ।।४०।। जो छब्बीस पुराणों में से एक को भी सुनता है अथवा

भक्तिसहित पढ़ता है, वह निःसन्देह मुक्त होता है।।४१।। और कोई सुख देनेवाला मार्ग नहीं देखा, पुराण का मार्ग सदा श्रेष्ठ है, बिना शास्त्र के यह संसार इस प्रकार नहीं शोभित होता, जिस प्रकार बिना सूर्य के जीवलोक नहीं शोभा पाता।।४२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां
पुराणमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः।। १३ ।।

*****

चौदहवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले- घोर बड़े दान जो कहे हैं, महादान नित्य श्रेष्ठ पात्र को देने चाहिये, वे अपने को तारते हैं।।१।। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! सुवर्णदान, गोदान, भूमिदान यह पवित्र दान करनेवाले तथा लेनेवाले दोनों को भी तारते हैं।।२।। सुवर्णदान, गोदान, पृथ्वीदान इन श्रेष्ठ दानों को करे, तो मनुष्य पापों से छूट जाता है।।३।। गोदान, पृथ्वीदान सरस्वती (विद्या) दान तथा तुला दान यह प्रशंसनीय दान कहे हैं, उनमें दो दान समान फलदायक हैं और सरस्वती अधिक कही है।।४।। नित्य दुहनेवाली गाय, छत्र, वस्त्र, जूता, अन्नपान आदि सब दान मांगनेवालों को देने चाहिये।।५।। जो संकल्प किया हुआ धन ब्राह्मणों को बिना पीड़ित हुए याचकों को दिया जाता है, मनुष्य उस दान से बुद्धिमान् होता है।।६।। सुवर्ण, तिल, हाथी, कन्या, दासी, गृह, रथ, मणि तथा कपिला गायें ये दश महादान हैं।।७।। ज्ञानी ब्राह्मण सदा इन सबों को ग्रहण करके शीघ्र ही दाताओं को तथा अपने आपको तारता है, इसमें कुछ संशय नहीं।।८।। जो मनुष्य शुद्धचित्त से सुवर्ण दान करते हैं, देवता उनको सब कुछ चारों ओर से देते हैं, ऐसा मैंने सुना है।।९।। अग्नि सब देवतामय कहा है और सुवर्ण अग्नि है, इस कारण सुवर्ण देकर मानो सब देवता दिये।।१०।। पृथ्वी का दान महाश्रेष्ठ तथा सब कामनाओं के फल देनेवाला है, उसमें भी विशेष कर सुवर्ण की भूमि का दान अति श्रेष्ठ है, जिसे पहले राजा रघु ने किया था।।११।। जो मनुष्य दान की हुई सुवर्णवती पृथ्वी को देखते हैं, वे सम्पूर्ण पापों से छूटकर परमगति को प्राप्त होते हैं।।१२।। हे मुने! अब मैं सर्वोत्तम दान को कहता हूं, कि जिससे यमराज के अति दुःखदायक वन को नहीं देखते हैं।।१३।। न्याय से पैदा किये हुए धन से खरीद वित्त शाठ्य से वर्जित होकर शुद्ध मन से विधिपूर्वक वन का दान करे।।१४।। सब गुणों सहित सेर भर तिलों की गाय बना कर सुन्दर तथा सब लक्षणों से लक्षित गाय बछड़ा सुवर्ण की।।१५।। आठ दल के कमल को बनाकर उसमें कुंकुम आकशुभ अक्षतों से रुद्र आदि सब देवताओं को भक्ति

से पूजे ।।१६।। इस प्रकार रत्न सहित, सुवर्ण सहित, सब आभूषणों से भूषित उस धेनु को अपनी शक्ति से पूजकर ब्राह्मण को देवे ।।१७।। फिर पीछे से रात्रि में भोजन करे और विस्तारपूर्वक दीपों को देवे, कार्तिक की पूर्णिमा को विशेष कर यह दान करना चाहिये ।।१८।। जो मनुष्य इस प्रकार अपनी शक्ति के अनुसार सम्यक् विधि से यह दान करता है, वह यममार्ग के भय तथा घोर नरक को नहीं देखता है ।।१९।। हे व्यासजी! और वह कुटुम्बसहित तथा मित्रों सहित सम्पूर्ण पापों को करके भी जब तक चौदह इन्द्र हैं, तब तक स्वर्ग में क्रीड़ा करता है ।।२०।। हे व्यासजी! इस लोक में विधिपूर्वक गौ का दान करना सब दानों में श्रेष्ठ कहा है, उसके समान और कोई दान नहीं कहा ।।२१।। जो मनुष्य बछड़े सहित सोने के सींगों से युक्त कांस्य पात्रवाली तथा चांदी के खुरवाली सब लक्षणों से अलंकृत कपिला गौ का दान करता है ।।२२।। हे व्यासजी! उन–उन गुणों से वह गौ कामनाओं को पूर्ण करनेवाली होकर परलोक तथा इस जन्म में उस दाता को प्राप्त होती है ।।२३।। संसार में जो इष्टतम पदार्थ हैं तथा जो घर में प्रिय वस्तु है, वह सब अक्षयलोक की अभिलाषा से गुणवान् ब्राह्मण को देनी चाहिये ।।२४।। तुलापुरुष का दान सब दानों में उत्तम है, अतः जो अपना कल्याण चाहे, तो तुला आरोहण अवश्य करे ।।२५।। जिस तुलादान को करके मनुष्य वध सम्बन्धी पापों से छूट जाता है, तुलादान बड़े पुण्य का देनेवाला और सब पापों को दूर करनेवाला है ।।२६।। सम्पूर्ण पापों को करके भी जो मनुष्य तुलादान करता है, वह सब पापों से मुक्त होकर निःसन्देह स्वर्ग को जाता है ।।२७।। दिन में, रात में वा दोनों सन्ध्याओं में वा दोपहर में अथवा रात्रि के अन्त में, तीनों कालों में शरीर, मन, वाणी से जो पाप किया हो, तुलापुरुष उस पाप को दूर कर देता है ।।२८।। बालक, वृद्ध वा युवा मैंने जागते हुए वा ज्ञान में तत्पर होकर जो पाप किया हो, मेरे उस पाप को तुला पुरुष शिवजी हरण करें ।।२९।। मैंने आज प्रमाणपूर्वक तुला में रखा हुआ जो धन सुपात्र में अर्पण किया है, उसके सहित मेरा सम्पूर्ण पाप अथवा बिना किया हुआ पाप है, वह भी चला जावे ।।३०।। सनत्कुमारजी बोले– ऐसा उच्चारण करके वह धन ब्राह्मणों को देवे, तो सर्वदा हित होता है, इससे अनेकों को देवे, एक को ही नहीं देना चाहिये, उससे विस्तार नहीं होता ।।३१।। हे व्यासजी! जो मनुष्य इस प्रकार उत्तम तुलापुरुष को देता है, वह पाप को नष्ट करके जब तक चौदह इन्द्र रहते हैं, तब तक स्वर्गलोक में वास करता है ।।३२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पञ्चम्यामुमासंहितायां
दानवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।। १४ ।।

*****

पंधरहवाँ अध्याय

व्यासजी बोले– जिस एक दान करने से सबों का फल मिलता है, सब दानों में श्रेष्ठ ऐसे दान को मनुष्यों के हित के लिये मुझसे कहिये ।।१।। सनत्कमारजी बोले– सुनिये, समय पर दिये हुए एक दान से भी मनुष्य सब दानों के फल पा लेते हैं, वह मैं आपसे कहता हूं ।।२।। मुक्ति की कामना करनेवाले मनुष्यों को संसार से तरने के निमित्त उत्तम ब्रह्माण्ड दान करना चाहिये ।।३।। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड देने पर मनुष्य जो फल पाता है, उसी प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के एक भाव से सातों लोकों का स्वामी होता है ।।४।। जब तक आकाश में चन्द्रमा, सूर्य हैं तथा जब तक पृथ्वी स्थिर है, तब तक यह ब्रह्माण्ड दाता मनुष्य अपने कुटुम्ब सहित देवताओं के स्थान में सब मनोरथों सहित हर्ष से क्रीड़ा करता है, पश्चात् देवताओं से भी दुर्लभ भगवान् विष्णुजी के पद को प्राप्त होता है ।।५।। व्यासजी बोले– हे भगवन्! जितने प्रमाणवाला ब्रह्माण्ड है तथा जितना और जिस आधारवाला और जिस प्रकार का है, सो सब कहिये, जिससे मुझे विश्वास हो ।।६।। सनत्कुमारजी बोले– हे मुने! सुनिये, ब्रह्माण्ड जितने विस्तारवाला और परिमाणवाला है, सो सब मैं संक्षेप से कहता हूं, जिसे सुनकर मनुष्य पापों से छूटता है ।।७।। जो उसका कारणरूप अव्यक्त, व्यक्त, अनामय, शिव है उनसे काल से दो प्रकार होकर ब्रह्माजी उत्पन्न होते हैं ।।८।। हे तात! जैसे ब्रह्माजी चौदह भुवनवाले ब्रह्माण्ड को रचते हैं, मैं उसका क्रम संक्षेप से कहता हूं, यत्न से सुनिये ।।९।। जल के मध्य में स्थित होकर उसका उचाव दूना है, सात पाताल हैं तथा उसके ऊपर सात भुवन हैं ।।१०।। उस ब्रह्माण्ड के आधार में शेषजी स्थित हैं, वह विष्णु कहे हैं, वह ब्रह्माजी के वचन से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को पालते हैं ।।११।। उन शेषजी के गुणों का वर्णन करने में देवता तथा दानव भी समर्थ नहीं हैं, जो सिद्धों से देवता, ऋषिगणों से पूजित होकर अनन्त कहे जाते हैं ।।१२।। वह शेषजी सहस्र फणों से युक्त सब दिशाओं को प्रकाशित करते हुए कल्याणकारी निर्मल आभूषणों सहित ।।१३।। मद से घूमते हुए नेत्रोंवाले, अग्निसहित पर्वत के समान शोभित, मालाधारी मुकुट सहित सदैव एक कुण्डल धारण किये विराजते हैं ।।१४।। जो सन्ध्याकाल में गंगा के प्रवाह से श्वेतपर्वत पर शोभित नीलवस्त्र धारे मद से व्याप्त मानो दूसरे कैलास के समान स्थित ।।१५।। पूँछ में हस्ताग्र को लगाये उत्तम मूसल को धारण किये, स्वर्ण के समान कान्तिवाली नागकन्याओं से आदरपूर्वक पूजे जाते हैं ।।१६।। संकर्षणात्मक रुद्र विषाग्नि के समान उज्ज्वल हैं, कल्पान्तर में मुखों से बारंबार अग्नि की लपटें निकलती हैं और तीनों लोकों को भस्म करके शान्त होती हैं,

ऐसा सुनते हैं।।१७।। पाताल के मूल में स्थित हुए भूतेश सब गुणों से पूजित, जो शेषजी भूमण्डल को अपने पीठ पर धारण करनेवाले हैं।।१८।। उनके वीर्य का प्रभाव वर्णन करने को तथा अपना रूप बताने को जानने की आकांक्षा सहित देवता भी समर्थ नहीं हैं।।१९।। जिसकी फनों पर मणिशिला की लालिमा से युक्त यह सम्पूर्ण पृथ्वी पुष्पों की माला के समान स्थित है, उनके पराक्रम को कौन कह सकता है?।।२०।। जिस समय मद से नेत्र घुमाते हुए शेषजी जम्भाई लेते हैं, उस समय पर्वत, समुद्रों सहित यह पृथ्वी चलायमान होती है।।२१।। हे मुनिसत्तम! प्रत्येक पाताल दश सहस्र योजनवाले हैं; अतल, वितल, सुतल, रसातल।।२२।। तल, तालातल तथा सातवां पाताल माना है, भूमि के नीचे यह सात लोक पण्डितों को जानने चाहिये।।२३।। इनकी उँचाई दूनी है, सब लोकों की भूमि तथा प्रासाद रत्नमय हैं और आंगन सुवर्णमय है।।२४।। उनमें दानव तथा दैत्यों की जाति और महानाग, राक्षस, दैत्य आदि निवास करते हैं।।२५।। स्वर्ग के सभामण्डप के मध्य में स्वर्गलोक से भी अति मनोहर यह पाताल नारदजी ने कहे हैं, उनसे फिर स्वर्ग में आता है।।२६।। जहां अनेक भूषणों से शोभायमान दीवारों में बड़ी कान्तिवाली मणि हैं, निर्मल आह्लादक ऐसा पाताल है, उसके समान और कौन हो सकता है?।।२७।। इधर–उधर से देवकन्याओं से शोभित पाताल में किसकी रुचि नहीं होती है?।।२८।। जहां पर दिन में सूर्य की किरणें और रात्रि में चन्द्रमा की कान्ति नहीं होती और न शीत घाम होता है, वहां केवल मणि तेज होता है।।२९।। हे मुनिसत्तम! वहां भक्ष्य, भोज्य, अन्नपान, आनन्द से भोगे जाते हैं, ऐसे आनन्द में समय बीतता हुआ भी नहीं जाना जाता है।।३०।। जहां भ्रमरों से गूँजते हुए कमल तथा कमल से युक्त नदियां तथा मनोहर सरोवर हैं।।३१।। हे द्विज! अति निर्मल भूषण गन्धसहित अनुलेपन वीणा, वेणु, मृदंगों के गेय स्वर।।३२।। तप से दैत्य, सर्प, दानव, सिद्ध, मनुष्यों के सहित पाताल में मनुष्य सुखों को भोगता है।।३३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पञ्चम्यामुमासंहितायां

ब्रह्माण्डकथने पाताललोकवर्णनं नाम पञ्चशोऽध्यायः।। १५ ।।

*****

सोलहवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले– हे मुनिवर श्रेष्ठ! उन लोकों के ऊपर जो नरक हैं, उनको मुझसे सुनिये, जहां पर पापीजन दुःख भोगते हैं।।१।। रौरव, शूकर, रोध, ताल तथा विवसन, महाज्वाल, तप्तकुम्भ, लवण, विलोहित।।२।। वैतरणी, पूयवहा, कृमी, कृमिभोजन, घोर, असिपत्र वन, दारुण लालाभक्ष।।३।। तथा पूयवह, बहिर्ज्वाल, अधश्शिर, सदंश, कालसूत्र, तमश्शावी, चिरोधन।।४।। श्वभोजन, रुष्ट महारौरव, शाल्मलि इत्यादि, वहां अनेक दुःखदायक नरक हैं।।५।। हे व्यासजी! उनमें जो पापी पुरुष डाले जाते हैं, मैं उनको क्रम से कहता हूं, आप सावधान होकर सुनिये।।६।। जो मनुष्य बिना ब्राह्मण तथा बिना देवता और गौओं के कूटसाक्ष (झूंठी गवाही) अताहद झूंठ बोलता है, वह रौरव नरक में जाता है।।७।। भ्रूणहत्या करनेवाला, सुवर्ण चुरानेवाला, गाय को रोकनेवाला, विश्वघातक, मदिरा पीनेवाला, ब्रह्महत्या करनेवाला, दूसरे का द्रव्य हरनेवाला।।८।। हे व्यासजी! तथा जो इनका संग करनेवाला है, ये सब तथा गुरु के वध से और बहन, माता, गौ, पुत्री के वध से, तप्तकुम्भ नामक नरक में जाते हैं।।९।। साध्वी स्त्री को बेचनेवाला, वार्द्ध की (व्याज लेने वाला) केशों को बेचनेवाला तथा जो भक्तों को त्यागता है, वे सब तप्तलोह नामक नरक में पड़ते हैं।।१०।। जो गुरुओं का तिरस्कार करनेवाला, पीछे भोजन करनेवाला, मनुष्यों में नीच देवताओं को दूषित करनेवाला तथा देवताओं का विक्रय करनेवाला है।।११।। हे द्विज! तथा जो अगम्य के साथ गमन करनेवाला है, अन्त में सप्तबल में जाता है, चौर गोहत्या करनेवाला, पतित तथा जो मर्यादा तोड़नेवाला।।१२।। देव, ब्राह्मण, पितरों से द्वेष करनेवाला तथा जो रत्नों में मेल करनेवाला है, वह कृमिभक्ष नरक को जाते हैं और वहां कीड़ों को खाते हैं।।१३।। जो नीच मनुष्य पितर, देवताओं, अतिथियों के बिना खाता है तथा जो शस्त्रकूट है, वह लालाभक्ष नामवाले नरक में जाता है।।१४।। जो ब्राह्मण अन्त्यज के साथ सेवन करनेवाला, दुर्जनों से ग्रहण करनेवाला, बिना याज्यों को यज्ञ करानेवाला तथा अभक्ष्य का भक्षण करनेवाला।।१५।। तथा जो सोमरस को बेचने वाले हैं, वह सब रुधिरौघ नरक में जाते हैं। मधु का हरण करनेवाला, ग्राम की हत्या करनेवाला, क्रूर वैतरणी नदी को जाता है।।१६।। जो नवीन यौवन में उन्मत्त तथा मर्यादा तोड़नेवाले अपवित्र हैं तथा जो स्त्री से आजीविका करनेवाले हैं, वे कृत्य नामक नरक में जाते हैं।।१७।। जो वृथा वृक्षों को काटनेवाला है, वह असिपत्रवन को जाता है, जो क्षुरभ्रक और मृगों को मारनेवाले व्याध हैं, वे वह्निज्वाल नरक में जाते हैं।।१८।। हे द्विज! जो ब्राह्मण वा

क्षत्रिय अथवा वैश्य आचार से भ्रष्ट है तथा श्वपाक में जो आग देनेवाला है, वह सब अन्त में पूर्वोक्त नरकों में जाते हैं।।१९।। जो व्रत को लोप करनेवाले तथा जो अपने आश्रम से भ्रष्ट हुए हैं, वह सब अतिकठोर संदंश यातना के मध्य में पड़ते हैं।।२०।। जो ब्रह्मचारी मनुष्य स्वप्न में वीर्य को स्खलित करते हैं तथा जिन्होंने अपने पुत्र को नहीं पढ़ाया, वे श्वभोजन नामक नरक में पड़ते हैं।।२१।। यह पूर्वोक्त तथा और सैकड़ो-सहस्रों नरक हैं, कि जिनमें पापी मनुष्य यातनाओं में प्राप्त होकर पड़ते हैं।।२२।। यह तथा और भी सहस्रों पाप हैं, जिनको नरकों में पड़कर मनुष्य भोगते हैं।।२३।। जो मनुष्य कर्म से तथा मन से और वाणी से वर्ण तथा आश्रम के विरुद्ध कर्म करते हैं, वे नरक में पड़ते हैं।।२४।। और वे नरकवासी पुरुष देवताओं से स्वर्ग में नीचे किये हुए सिरों से देखे जाते हैं और नरकवासी जन नीचे को मुख करनेवाले सब देवताओं को देखते हैं।।२५।। जिस प्रकार स्थावर कृमिपाक, पक्षी, मृग हैं, इसी प्रकार क्रम से धार्मिक स्वर्ग मोक्षवाले जीव हैं।।२६।। जितने जन्तु स्वर्ग में हैं, उतने ही नरक में स्थित हैं, प्रायश्चित्त से विमुख पापीजन नरक में जाते हैं।।२७।। स्वायम्भुव मनु ने बड़े पापों के बड़े प्रायश्चित्त तथा छोटे पापों के छोटे प्रायश्चित्त कहे हैं।।२८।। उनमें जितने कर्म कहे हैं, उन सबों के समस्त प्रायश्चित्त हैं, परन्तु शिवजी का स्मरण करना सब प्रायश्चित्तों से बड़ा है।।२९।। इस प्रकार जिस पुरुष का प्रायश्चित्त होता है, पाप करने पर शिवजी का स्मरण करना कहा है।।३०।। जो मनुष्य प्रातःकाल वा रात्रि में अथवा सन्ध्या में या मध्याह्न आदि काल में शिवजी का स्मरण करता है, वह पाप से छूट जाता है।।३१।। वह उन उमापति शिवजी के स्मरण करने से सब दुःखों से दूर होकर स्वर्ग को तथा मुक्ति को प्राप्त होता है।।३२।। हे विप्रेन्द्र! हे मुनिश्रेष्ठ! तीनों लोंकों में कहीं पर पापों का प्रायश्चित्त जप, होम, अर्चन आदिक कुछ नहीं होते हों और शिवजी में मति लगी हो, तो उसे जप, होम, अर्चन आदि में जो पुण्य होता है, सो सब तथा देवेन्द्रपद का फल मिलता है।।३३-३४।। हे मुने! जो मनुष्य रात-दिन भक्ति से शिवजी को स्मरण करता है, वह नरक में नहीं जाता और पापों से रहित होता है।।३५।। हे द्विजोत्तम! यह पाप और पुण्य नरक और स्वर्ग के नाम के लिये हैं, इन दोनों में पाप दुःख के लिये और पुण्य सुख के निमित्त होता है।।३६।। और वहीं पुण्य प्रीति के निमित्त होकर फिर दुःख के लिये होता है, इस कारण न कुछ दुःख देनेवाला है और न कुछ सुख देनेवाला है।।३७।। यह मन का परिणाम ही दुःख-सुख का लक्षण है, इससे ज्ञान ही परब्रह्म है और ज्ञान ही तत्त्व के निमित्त कल्पना किया जाता है।।३८।। हे मुने! यह चर-अचर सहित सम्पूर्ण संसार ज्ञानात्मक है, परन्तु विज्ञान से अधिक और कुछ नहीं है।।३९।। इस प्रकार मैंने सम्पूर्ण नरकों का समुदाय कह दिया, अब आगे भूमण्डल का वर्णन करता हूं।।४०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पञ्चम्यामुमासंहितायां ब्रह्माण्डवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ।। १६ ।।

सतरहवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले– हे व्यासजी! सात द्वीप आदि के सहित भूमि के मण्डल को सम्यक् प्रकार मुझसे सुनिये, मैं संक्षेप से कहता हूं।।१।। जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक सातवां पुष्कर, यह सातों द्वीप सात समुद्रों से घिरे हैं।।२।। लवण, इक्षुरस, घी, दही, दूध के समुद्र हैं, इन सबों के मध्य में जम्बूद्वीप है।।३।। हे व्यासजी! उसके मध्य में सुमेरु कनक पर्वत है, वह सोलह योजन नीचे धँसा है और चौरासी योजन ऊँचा है।।४।। तथा बत्तीस योजन शिखर में विस्तार है, यह पर्वत भूमि के ऊपर स्थित है, इस प्रकार विस्तार चारों ओर से है।।५।। मूल में सोलह सहस्र योजन कली के आकार से स्थित है, इसके दक्षिण में हिमालय हेमकूट निषध नामक पर्वत है।।६।। तथा उत्तर में नील, श्वेत, शृंगी नामवाले पर्वत हैं, यह सब दश सहस्र योजन तथा रत्नों सहित और अरुण के समान कान्तिवाले हैं।।७।। एक सहस्र योजन चौड़ाई तथा सहस्र योजन विस्तृत हैं, पहला भारतवर्ष है, उसके पीछे किंपुरुष कहा है।।८।। हे मुने! उसके आगे सुमेरु पर्वत के दक्षिण ओर हरिवर्ष है, उसके उत्तर की ओर रम्यक तथा उसके बराबर हिरण्मय है।।९।। हे मुनिश्रेष्ठ! और उत्तर में कुरुदेश है, जिस प्रकार भारतवर्ष है, उसी प्रकार इन सबों का विस्तार भी नौ सहस्र योजन कहा है।।१०।। उसके मध्य में इलावृत्त तथा इसके मध्य में मेरुपर्वत स्थित है, सुमेरु पर्वत के चारों तरफ वहां नौ सहस्र विस्तारवाला इलावृत है।।११।। हे ऋषिश्रेष्ठ! वहां चार पर्वत सुमेरुपर्वत से विष्कम्भ (बुर्जीरूप) हैं और उससे मिले हुए तथा सुमेरुपर्वत के समान ऊँचे हैं।।१२।। पूर्व में मन्दराचल तथा दक्षिण में गन्धमादन और पश्चिम भाग में विपुल तथा उत्तर में सुपार्श्व नामक पर्वत है।।१३।। कदम्ब, जामुन, पीपल, बड आदि पर्वत के ध्वजारूप ग्यारह सौ योजन में विस्तृत हैं।।१४।। हे महामुने! जम्बुद्वीप नाम के हेतु को सुनिये, वहां बड़े वृक्ष शोभित होते हैं, उनके स्वभाव को आपसे कहता हूं।।१५।। उस जामुन के फल बड़े हाथी के समान पर्वत पर गिरते हैं और पर्वत के चारों ओर फैले हैं।।१६।। वहां उन फलों के रस से जम्बुनदी विख्यात है और उस पर्वत के चारों तरफ बह रही है, वहां के निवासियों से पान की जाती है।।१७।। वहां उस नदी के पास में स्थित हुए जीवों को पसीना, दुर्गन्धि, बुढ़ापा तथा इन्द्रिय पीड़ा नहीं होती है।।१८।। मुखवायु (सांस) से सुखाई हुई तीर की मृत्तिका के स्नान को प्राप्त होकर जाम्बुनद नामक सिद्धों का भूषणरूप सुवर्ण होता है।।१९।। हे मुनिश्रेष्ठ! सुमेरु के पूर्व में भद्राश्व तथा पश्चिम में केतुमाल नामक दोनों वर्ष हैं, उन दोनों के मध्य में इलावृत वर्ष है।।२०।। पूर्व में चैत्ररथ वन है तथा दक्षिण में गन्धमादन नामक वन है और पश्चिम में विभ्राज और उसके उत्तर में नन्दनवन है।।२१।। अरुणोद, महाभद्र, शीतोद, मानस

नामवाले ये चार सरोवर देवताओं के भोगने योग्य हैं ।।२२।। शीताञ्जन, कुरुङ्ग, कुरर तथा माल्यवान् यह एक–एक मेरु के पूर्व में स्थित हैं ।।२३।। त्रिकूट, शिशिर, पतंग, रुचक, निषध, कपिल आदिक केसराचल यह दक्षिण में हैं ।।२४।। सिनी, वास, कुसुम्भ, कपिल तथा नारद, नागादि यह पर्वत पश्चिम में हैं ।।२५।। शंखचूड, ऋषभ, हंस, काल तथा जराद्य ये पर्वत उत्तर में हैं ।।२६।। सुमेरु के ऊपरि मध्य में शान्तकौंभ नामक ब्रह्माजी का नगर है, वह चौदह सहस्र योजन विस्तारवाला है ।।२७।। और उसके चारों ओर क्रम से आठों लोकपालों के प्रत्येक दिशा के अनुसार तथा रूप के अनुसार आठ नगर विद्यमान हैं ।।२८।। उस ब्रह्माजी की पुरी में चन्द्रमण्डल को गिराकर विष्णुजी के चरण से निकली हुई गंगाजी गिरी हैं ।।२९।। तथा वहां सीता, अलकनन्दा, चक्षुभद्रा यह क्रम से गिरी हैं और चारों दिशाओं में व्याप्त हुई हैं ।।३०।। पूर्व की ओर सीता तथा पर्वत के दक्षिण में अलकनन्दा, पश्चिम में चक्षुर्नदी, उत्तर की ओर भद्रा नदी बहती है ।।३१।। तीन ओर को जानेवाली वह गंगाजी सम्पूर्ण पर्वतों को लांघकर तथा चारों दिशाओं में समुद्र को मिलती हुई वहां से गई है ।।३२।। सुनील, निषध नामक जो दो पर्वत और माल्यवान् गन्धमादन है, उनके मध्य में प्राप्त हुआ सुमेरु पर्वत कली के आकार से शोभित हो रहा है ।।३३।। भारत, केतुमाल, भद्राश्व तथा कुरु मर्यादा लोक पर्वत यह लोकरूपी कमल के पत्र हैं ।।३४।। दक्षिण तथा उत्तर के आयाम में जठर, देवकूट और पूर्व तथा पश्चिम की ओर गन्धमादन तथा कैलास पर्वत हैं ।।३५।। सुमेरु के पूर्व–पश्चिम की ओर निषध नीलपर्वत दक्षिण और उत्तर की ओर प्राप्त हुए हैं तथा कली के भीतर स्थित हैं ।।३६।। मेरु से आगे जठर आदिक हैं, जिनमें दो–दो पर्वत व्यवस्थित हैं, यह श्वेत आदिक मनोहर पर्वत हैं ।।३७।। और पर्वतों के उत्तर में नदियों में सिद्ध गुह्यकों से सेवित द्रोणी (डोंगी) हैं और उनमें मनोहर नगर तथा वन हैं ।।३८।। सम्पूर्ण देवताओं के तथा यक्ष, गन्धर्व, राक्षसों के समूह तथा देवता और दैत्य इन पर्वतों पर रात–दिन क्रीड़ा करते हैं ।।३९।। यह भूमि तथा स्वर्ग में स्थित धर्मात्माओं के स्थान कहे हैं, इनमें पापीजन नहीं जाते, न कहीं कुछ देख सकते हैं ।।४०।। हे महामुने! जो कि पुरुष आदिक नगर हैं, उनमें आठ वर्ष तक न शोक, न आपत्ति, न उद्वेग, न क्षुधामय आदिक होता है ।।४१।। स्वस्थ निर्द्वन्द्व सब दुःखों से रहित प्रजा दश–बारह सहस्र वर्ष तक स्थिर आयुवाली होती है ।।४२।। वहां सतयुग और त्रेता, द्वापर ही वर्तते हैं और चारों तरफ भूमि सम्बन्धी जल बहते हैं, उन स्थानों में मेघ नहीं वर्षते केवल कल्पना होती है ।।४३।। इन सातों द्वीपों में सुन्दर (निर्मल जलवाली) स्वर्ण की बालुका सहित नदि तथा सैकड़ों छोटी नदियां होती हैं, उनमें पुण्यात्मा मनुष्य क्रीड़ा करते हैं ।।४४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां
ब्रह्माण्डकथने जम्बुद्वीपवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ।। १७ ।।

अठारहवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले– अब मैं हिमालयपर्वत के दक्षिण में भारतवर्ष को कहता हूं, जहां समुद्र के उत्तर में भारती सृष्टि है।।१।। हे महामुने! इसका विस्तार नौ सहस्र योजन है, इसे पण्डितों ने स्वर्ग और अपवर्ग की कर्मभूमि कहा है।।२।। यहां से मनुष्यों को स्वर्ग तथा नरक मिलता है, भारतवर्ष के नौ भेद मैं आपसे कहता हूं।।३।। इन्द्रद्युम्न, केसरु, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान् तथा नागदीप, सौम्य तथा गन्धर्व और वारुण।।४।। उनमें से यह सागर से उत्पन्न हुआ नवमा द्वीप है, यह सहस्रों योजन दक्षिण से उत्तर को विस्तारवाला है।।५।। जिसके पूर्व में किरात हैं तथा दक्षिण में यवन स्थित हैं, पश्चिम में और उत्तर में तपस्वी लोग निवास करते हैं।।६।। और मध्य में अनेक ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य, शूद्र यज्ञ, वाणिज्य और सेवा आदि अपने कर्मों में स्थित होकर निवास करते हैं।।७।। वहां महेन्द्र, मलय, सह्य, सुदामा, ऋक्षपर्वत, विन्ध्य, पारियात्र यह सात कुल पर्वत हैं।।८।। हे मुने! वेद, स्मृति, पुराण आदि पारियात्र स्थान से उत्पन्न हुए हैं, वे दर्शन से तथा स्पर्श से सब पापों को हरनेवाले हैं।।९।। नर्मदा, सुरसा आदि के सात तथा और भी सहस्रों विन्ध्याचल से उत्पन्न हुईं सम्पूर्ण पापों को हरनेवाली श्रेष्ठ महानदी है।।१०।। गोदावरी, भीमरथी, तापी आदि नदियां ऋक्ष पर्वत से निकली हैं और पाप और भय को शीघ्र ही हरण करनेवाली हैं।।११।। कृष्णा, वेणी, आदिक नदियां सह्यपर्वत के चरण से उत्पन्न हुई तथा कृतमाला, ताम्रपर्णी आदिक नदियां मलयाचल से उत्पन्न हुईं हैं।।१२।। त्रियामा, ऋषिकुल्या आदि नदियां महेन्द्रपर्वत से निकली हैं और ऋषिकुल्या, कुमार आदिक शुक्तिमत् पर्वत के पाद से उत्पन्न हुईं हैं।।१३।। और इन मण्डलों में अनेक नगर बसते हैं, इन नदियों के तथा अनेक सरोवरों के पानी पीते हैं।।१४।। हे महामुने! भारतवर्ष में सतयुग आदि चारों युग रहते हैं, इस प्रकार दूसरे द्वीपों में नहीं हो सकते।।१५।। यहां पर पुण्यात्मा याज्ञिक दान देते हैं और संन्यासी परलोक के निमित्त आदर से तप करते हैं।।१६।। हे महामुने! जम्बुद्वीप में यह भूमि कर्मभूमि है, यहां पर भी भारतवर्ष श्रेष्ठ है, यहां से अतिरिक्त और सब भोग की भूमि हैं।।१७।। हे मुनिश्रेष्ठ! यहां पर मनुष्य सहस्रों जन्मों के पुण्यसंचय से मनुष्य जन्म पाता है।।१८।। स्वर्ग अपवर्ग स्थान के मार्गभूत भारतभूमि भाग में वे देवता गीतों को गाते हैं और फिर वे देवता पुरुष होते हैं।।१९।। और कभी मनुष्य के शरीर को पा कर तथा कभी शिवजी के परमात्मा रूप में विहार करके समस्त कर्म के फलो को प्राप्त होते हैं, मैं उनके शरीरत्व को प्राप्त होऊं, जिससे भजन करके मोक्ष को प्राप्त हो

जाऊँ।।२०।। सुखों से युक्त शुभकर्मों में प्रविष्ट हुए वे मनुष्य धन्य हैं, कि जिनका जन्म भारतवर्ष में होता है कारण कि, वे स्वर्ग, मोक्ष दोनों का लाभ देनेवाले हैं।।२१।। लक्ष योजन विस्तृत समस्त परिमण्डल क्षारसागर से घिरा हुआ जम्बुद्वीप मैंने कह दिया।।२२।। हे ब्रह्मन्! क्षार (खारी) सागर को लपेटकर शत–सहस्र योजन परिमित जम्बूद्वीप से दूना प्लक्षद्वीप कहा है!।२३।। गोमन्त, चन्द्र, नारद तथा दर्दुर, सोमक, सुमन तथा वैभ्राज नामक श्रेष्ठ पर्वत हैं।।२४।। इन मनोहर वर्षाचलों में निरन्तर देवता, गन्धर्व सहित प्रजा निवास करती हैं।।२५।। वहां पर मनुष्यों को आदि–व्याधि कहीं भी नहीं है, वहां पर मनुष्य दश सहस्र वर्ष तक जीते हैं।।२६।। और वहां अनुतप्ता, शिखी, पापघ्नी, त्रिदिवा, कृपा, अमृता, सुकृता यह सात नदियां हैं।।२७।। वह छोटी नदी तथा सहस्रों पर्वत हैं, वे नगरवासी उन निर्मल जलवाली नदियों के जल पीते हैं।।२८।। हे महामुने! वहां भी सातों स्थानों में चारों युगों की अवस्था नहीं, किन्तु निरन्तर त्रेतायुग के समान काल रहता है।।२९।। हे मुनिश्रेष्ठ! वहां ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र रहते हैं, उसके मध्य में कल्पवृक्ष के समान बड़ा वृक्ष है।।३०।। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! वह वृक्ष पिलखन का है, इस कारण प्लक्षद्वीप नाम से प्रसिद्ध हुआ है, वहां पर लोक शंकर भगवान् शिवजी के लिये यज्ञ करते हैं।।३१।। और भगवान् विष्णुजी तथा ब्रह्माजी वैदिक यन्त्र–मन्त्रों से यज्ञ करते हैं, अब आप संक्षेप से शाल्मलि द्वीप को सुनिये।।३२।। वहां सात पर्वत हैं, मुझसे उनके नाम सुनिये। श्वेत, हरित, जीमूत तथा रोहित।।३३।। हे मुने! वैकल, मानस और सातवां सुप्रसभ है, यहां सेमल के वृक्ष से शाल्मलि नामक द्वीप प्रसिद्ध हुआ।।३४।। यह द्विगुण समुद्र से निरन्तर घिरा हुआ है और पर्वतों से उत्पन्न हुई नदियां हैं, उन नदियों के नाम मुझसे सुनिये।।३५।। शुक्ला, रक्ता, हिरण्या, चन्द्रा, शुभ्राल विमोचना, निवृत्ति, उनमें सातवीं पवित्र जलवाली सुशीतला नदी है।।३६।। और सात पर्वत तथा चारों वर्ण वहां निवास करते हैं, सदा भगवान् शिवजी को अनेक यज्ञों से प्रसन्न करते हैं।।३७।। इस मनोहर द्वीप में देवताओं की अति समीपता है, यह द्वीप सुरोद नामवाले समुद्र से घिरा हुआ है।।३८।। इस द्वीप से दूना कुशद्वीप है, वहां मनुष्यों सहित दानव, दैत्य निवास करते हैं।।३९।। तथा देवता, गन्धर्व, यक्ष, किंपुरुष आदि तथा चारों वर्ण अपने–अपने कर्मानुष्ठान में तत्पर हैं।।४०।। और वहां कुशलद्वीप में ब्रह्माजी और विष्णुजी को तथा सब कामनाओं को पूर्ण करनेवाले शिवजी को यजन करते हैं।।४१।। कुशेशय, हरि, द्युतिमान् तथा पुष्पवान्, मणिद्रुम, हेमशैल, सातवां मन्दराचल है।।४२।। और सात नदियां हैं, उनके नाम तत्त्व से सुनिये। धूतपापा, शिवा, पवित्रा तथा संमिति।।४३।। विद्या, दम्भा, मही आदि यह सब पापों को हरने वाली नदियां हैं तथा अन्य भी निर्मल जलवाली सुवर्ण की बालु सहित सहस्रों नदियां हैं।।४४।। कुशद्वीप में कुशों का स्तम्भ है, यह द्वीप घृतोद नामक समुद्र से घिरा है।

हे महाभाग ! अब दूसरा क्रौंचद्वीप सुनिये ।।४५।। यह दूने दधिमण्ड नामक समुद्र से घिरा है। हे महाबुद्धे ! जो इसके निकटवर्ती पर्वत हैं, उनके नाम मुझसे सुनिये ।।४६।। क्रौंच, वामन, तीसरा अन्धकार, दिवावृत्ति, मन, पुण्डरीक, दुन्दुभि नामक हैं ।।४७।। सब ओर सुवर्ण से मनोहर हुए उन वर्ष पर्वतों में मित्र देवगणों सहित प्रजा निर्भय होकर रहती हैं ।।४८।। वहां पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र परस्पर मिलकर स्वकर्मनिष्ठ होकर निवास करते हैं, सात महानदियां और सहस्रों नदियां हैं ।।४९।। गौरी, कुमद्वती, सन्ध्या, रात्रि, मनोजवा, शान्ति, पुण्डरीका नामवाली, जिनका निर्मल जल सब मनुष्य पीते हैं ।।५०।। वहां पर योगरुद्र स्वरूपवाले भगवान् शिवजी पूजे जाते हैं और दधिमण्डोदक समुद्र उससे द्विगुण शाकद्वीप से घिरा है ।।५१।। वहां सात पर्वत हैं, उनके नाम सुनिये। उसके पूर्व में उदयगिरि है और उसके पश्चिम में जलधारा पर्वत है ।।५२।। पीछे अस्तगिरि, अवकेश, केशरी नामवाले हैं, वहां शाक नामक महावृक्ष सिद्ध और गन्धर्वों से सेवित है ।।५३।। वहां पर चारों वर्णों सहित पवित्र नगर है और बड़ी पवित्र, सम्पूर्ण पापभयों को दूर करनेवाली नदियां हैं ।।५४।। सुकुमारी, कुमारी, नलिनी तथा वेणुका, इक्षु, रेणुका, सातवीं गभस्ति नामवाली है ।।५५।। हे महामुने ! और भी वहां हजारों क्षुद्र नदियां हैं तथा सैकड़ों-हजारों पर्वत हैं ।।५६।। उनमें धर्म की हानि नहीं होती, यहां पर मनुष्य स्वर्ग से आकर उन पर्वतों पर आपस में विहार करते हैं ।।५७।। शाकद्वीप में सदा संयम में तत्पर हुए शास्त्रोक्त कर्म करनेवाले नगरवासी प्रीति से सूर्य भगवान् का यजन करते हैं ।।५८।। यह शाकद्वीप द्विगुण क्षीरसागर से घिरा हुआ है। हे व्यासजी ! यह क्षीरसागर पुष्कर नामवाले द्वीप से घिरा है ।।५९।। और वहां दूना महावर्ष है और यहां मानसरोवर विख्यात है और जो पांच हजार योजन (कोस) उंचाई पर है ।।६०।। और लक्ष योजन चारों तरफ से कंकड के आकारवाला है, पुष्कर द्वीप का घेरा मध्य से विभाग करता है ।।६१।। इससे ही द्वीप वर्ष के समान वलयाकार है, वहां पर मनुष्य दशसहस्र वर्ष तक जीते हैं ।।६२।। हे मुने ! वे व्याधि रहित, शोक हीन तथा राग-द्वेष से वर्जित हैं, उनमें अधर्म, वध, बन्धन आदि नहीं होता ।।६३।। और न उनमें असत्य, झूंठ रहता है, उस द्वीप की वसति तुल्य वेषवाली रहती है और मनुष्य सुवर्ण के समान कान्तिवाले होते हैं ।।६४।। हे कालेय ! यहां स्वर्ग के समान भौम वर्ष है तथा इसमें सबको सुख देनेवाला जरारोग वर्जित समय होता है ।।६५।। हे महामुने ! पुष्कर में धातकी खण्ड में महावीत में न्यग्रोध नामक ब्रह्माजी का उत्तम स्थान है ।।६६।। उस स्थान में देवता तथा दैत्यों से पूज्यमान हुए ब्रह्माजी निवास करते हैं और पुष्करद्वीप स्वादूदक नामक समुद्र से घिरा हुआ है ।।६७।। इस प्रकार सात द्वीप सातों समुद्रों से घिरे हुए हैं, द्वीप और समुद्र भी समान कहे हैं ।।६८।। और उन समुद्रों में यह अधिकता है, कि उनका जल थोड़ा कदापि नहीं होता है ।।६९।। हे मुनिश्रेष्ठ ! जिस प्रकार अग्नि के

संयोग से जल ऊपर जाता है, उसी प्रकार चन्द्रमा के बढ़ने पर समुद्रों का जल निश्चय ऊपर को उफनता है ।।७०।। चन्द्रमा के उदय और अस्त होने पर समुद्र के जल बढ़ते तथा घटते हैं, इस कारण शुक्ल और कृष्ण पक्ष में वृद्धि और न्यूनता होती है ।।७१।। हे मुनिश्रेष्ठ! सम्पूर्ण (एक सौ दश) समुद्रों की वृद्धि और क्षय आपके आगे कहे ।।७२।। हे विप्र! पुष्कर द्वीप में प्रजा अपने आप प्राप्त हुए भोजन को सदा करती हैं ।।७३।। अपने अंग का देनेवाला तथा जिसके आगे लोक की स्थिति नहीं है, वह स्थान सब जन्तुओं से वर्जित है, सुवर्ण की द्विगुणी भूमि है ।।७४।। और वहां लोकलोक पर्वत सहस्र पर्वतों के समान ऊँचा और दश सहस्र योजन विस्तृत है ।।७५।। हे महामुने! यह सब द्वीपों सहित तथा पर्वतों सहित पृथ्वी, द्वीप और पर्वतों सहित पचास कोटि योजन विस्तारवाली है ।।७६।। और सबों की आधारभूत गुणों से अधिक सब लोकों को धारण करनेवाली इला है ।।७७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पञ्चम्यामुमासंहितायां
ब्रह्माण्डकथने सप्तद्वीपवर्णनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ।। १८ ।।

*****

उन्नीसवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले– जहां तक सूर्य और चन्द्रमा की किरणें प्रकाशित होती हैं, वहां तक पृथ्वी है और वह भूलोक कहा जाता है ।।१।। भूमि से लक्ष योजन की दूरी पर सूर्यमण्डल सहस्र योजन के अन्तर में (घेरे में) स्थित है ।।२।। चन्द्रमा के प्रमाण का वर्णन करते हैं, कि सूर्य के ऊपर लक्ष योजन की दूरी पर चन्द्रमा है ।।३।। और चन्द्रमा के ऊपर दश सहस्र योजन पर चारों ओर नक्षत्रों सहित सम्पूर्ण ग्रहों का मण्डल स्थित है ।।४।। और उसके आगे बुध, फिर उसके आगे शुक्र, उससे ऊपर मंगल का मण्डल है, उसके ऊपर बृहस्पति, बृहस्पति के ऊपर शनैश्चर की स्थिति है ।।५।। उसके ऊपर एक लाख योजन पर सप्तर्षियों का मण्डल विराजमान है और सप्तर्षियों से शत सहस्र योजन पर ध्रुव का ग्रह ।।६।। यह सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल के मेढीभूत होकर (वेण्याकार से) स्थित हैं, भूमि से ऊपर और ध्रुव से नीचे भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक यह तीन लोक जानने चाहिये ।।७।। जहां पर एक कोटि योजन पर वे कल्पवासी ऋषि निवास करते हैं और ध्रुव से ऊपर महर्लोक है, जहां यह वक्ष्यंमाण ब्रह्माजी के सात पुत्र निवास करते हैं ।।८।। सनक, सनन्दन, सनातन, कपिल, आसुरि, वोढु तथा पंचशिख ।।९।। इनसे ऊपर दो लक्ष के अन्तर पर शुक्र स्थित है और शुक्र से दो लक्ष योजन नीचे बुध

स्थित है।।१०।। हे मुने! बुध से दश लक्ष योजन ऊपर मंगल स्थित है और मंगल से दो लक्ष योजन पर बृहस्पति स्थित है।।११।। और बृहस्पति से दो लक्ष योजन ऊपर शनैश्चर स्थित है, यह सातों ग्रह अपनी-अपनी राशि पर स्थित हुए हैं।।१२।। उनसे ग्यारह लक्ष योजन ऊपर सप्तऋषि स्थित हैं और तेरह लक्ष योजन ऊपर ध्रुव की स्थिति कही है।।१३।। जनलोक से आगे चतुर्गुणोत्तर अर्द्ध में (अर्द्धमार्ग में) तपलोक की स्थिति कही है, जहां पर वैराज तथा दाह रहित देवता स्थित हैं।।१४।। तपोलोक से छः गुना सत्यलोक वर्तमान है, उसे ब्रह्मलोक जानना चाहिये, जहां पर निर्मल चित्त।।१५।। सत्य और धर्म में तत्पर ज्ञानी, ब्रह्मचारी भूलोक से जानेवाले मनुष्य निवास करते हैं।।१६।। और भुवर्लोक में मुनि, देवता, सिद्ध निवास करते हैं, स्वर्गलोक में देवता, बारह आदित्य, मरुत्, आठ वसु, अश्विनीकुमार निवास करते हैं।।१७।। वहां पर विश्वेदेव, रुद्र, साध्य, नाग, पक्षी आदिक नवग्रह पापरहित ऋषिगण निवास करते हैं।।१८।। हे व्यासजी! यह सात महालोक आपसे कहे। सात पाताल हैं, इस प्रकार ब्रह्माण्ड का विस्तार कहा।।१९।। जिस प्रकार कैथा का फल ऊपर है और उसकी बाड नीचे है, उसी प्रकार अण्डकटाह से सब ब्रह्माण्ड चारों ओर से घिर रहा है।।२०।। यह ब्रह्माण्ड दशगुनें जल से तथा अग्नि, वायु, आकाश तथा अन्धकार से सब ओर से व्याप्त हो रहा है।।२१।। और बड़े महत्तत्त्व आदि से दशगुण अधिक घिरा हुआ है, प्रधान महत्तत्त्व को व्याप्त होकर पुरुष स्थित हैं।।२२।। और उन अनन्त परमात्मा पुरुष की संख्या और नाप नहीं है, इसी कारण वे अनन्त नाम से प्रसिद्ध हैं।।२३।। हे मुने! वह सम तथा कारणभूत हैं और उनकी वह प्रकृति है, सहस्रों अण्डों के सैकड़ों सहस्र।।२४।। अनेक समुदाय उस अव्यक्त पुरुष से उत्पन्न हुए हैं, जिस प्रकार काष्ठ में अग्नि, तिलों में तेल, दूध में घी स्थित है।।२५।। उसी प्रकार यह अपने आपको जाननेवाले परमात्मा सब ब्रह्माण्ड को व्याप्त होकर स्थित है और आदिबीज से उत्पन्न होते हैं, तब उनसे पीछे अण्डज होते हैं।।२६।। अण्डजों से पुत्र, फिर और सबों के बीज, इनसे महत् आदि विशेष, फिर देवता आदि होते हैं।।२७।। जिस प्रकार बीज वे वृक्ष है, वृक्ष से बीज है यही वृक्ष का प्रकट होना और अभाव कहा जाता है तथा सूर्य से सूर्यकान्तमणि, उससे अग्नि की उत्पत्ति होती है।।२८।। उसी प्रकार ब्रह्मसत्ता से सृष्टि उत्पन्न होती है, उस विषय में शिवजी कामना नहीं करते हैं, शिवजी और शक्ति के संयोग से देवता आदि उत्पन्न होते हैं।।२९।। उसी प्रकार वे अपने-अपने एक कर्म से प्रादुर्भाव को प्राप्त होते हैं और वह शिवजी ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र नामों से प्रसिद्ध होते हैं।।३०।। उनसे सब जगत् प्रकट होता है और उनमें ही लय हो जाता है, वह शिवजी सम्पूर्ण क्रियाओं के कर्ता कहे जाते हैं।।३१।। व्यासजी बोले- हे सर्वज्ञ! हे मुने! हे सनत्कुमारजी! आप मेरे सन्देह को निवृत्त कीजिये, इस ब्रह्माण्ड के ऊपर और लोक हैं या नहीं?।।३२।।

सनत्कुमारजी बोले- हे मुनीश्वर! ब्रह्माण्ड के ऊपर जो लोक हैं, उनको विस्तारपूर्वक सुनिये, मैं आपसे वर्णन करता हूं।।३३।। ब्रह्माजी के लोक से परे वैकुण्ठलोक है, जहां साक्षात् विष्णुजी बड़ी शोभा के साथ निवास करते हैं।।३४।। उसके ऊपर बड़ा अद्भुत कौमारलोक है, जहां पर सुन्दर कान्तिवाले शिवजी के पुत्र स्वामि कार्तिकजी निवास करते हैं।।३५।। उसके आगे (ऊपर) परम दिव्य उमालोक विराजमान है, जहां पर तीनों देवताओं को उत्पन्न करनेवाली शिवाशक्ति शोभित होती है।।३६।। वह रजोगुण, सत्त्वगुण, तमोगुणवाली प्रकृति पर से भी पर, निर्गुण, स्वयं देवी, निर्विकार, शिवात्मिका है।।३७।। उस लोक के ऊपर सनातन शिवलोक है, यह सदा अविनाशी परम रमणीक महाशोभा से युक्त रहता है।।३८।। जहां पर तीनों देवताओं को उत्पन्न करनेवाले सब के स्वामी त्रिगुण से परे, परब्रह्म शम्भु महेश्वरजी विराजमान हैं।।३९।। उसके ऊपर और कोई लोक नहीं है, शिवलोक के समीप गोलोक है, वहां शिवप्रिय सुशीलाख्य गोमाता निवास करती हैं।।४०।। वहां शिवजी की आज्ञा से उनको पालन करनेवाले श्रीकृष्णजी विराजमान हैं, स्वतन्त्र शिवजी ने तथा शक्ति ने वह लोक स्थापित किया है।।४१।। हे व्यासजी! इस प्रकार शिवलोक अद्भुत, निराधार, मनोहर, अनिर्वचनीय और अनेक वस्तुओं से शोभायमान है।।४२।। और उसके अधिष्ठाता सब देवताओं के शिरोमणि विष्णुजी, ब्रह्माजी शिवजी से सेवन करने योग्य परमात्मा निरंजन शिवदेव हैं।।४३।। हे तात! इस प्रकार आपसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की स्थिति कही, उससे ऊपर जो लोक स्थित हैं, उनको क्या और सुनने की इच्छा है?।।४४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां
लोकवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः।। १९ ।।

*****

बीसवाँ अध्याय

व्यासजी बोले- हे सर्वज्ञ! हे सनत्कुमारजी! हे सत्तम! आप उसकी प्राप्ति का वर्णन कीजिये, जहां से प्राप्त होकर शिवजी की भक्ति में तत्पर हुए मनुष्य नहीं लौटते हैं।।१।। सनत्कुमारजी बोले- हे पराशरजी के पुत्र व्यासजी! शुभगति को तथा शुद्ध भक्तों के और तपस्वियों के पवित्र व्रत को प्रेम से सुनिये।।२।। जो शुद्ध कर्म करनेवाले, शुद्ध तप में युक्त होकर मनुष्य शिवजी को पूजते हैं, वे सदा सब प्रकार से वन्दना करने योग्य हैं।।३।। हे महामुने! बिना तप करनेवाले नीरोग शिवलोक को नहीं जाते हैं, शिवजी के अनुग्रह का आदिकारण तप ही कहा हं।।४।। तप से देवतागण प्रत्यक्ष होकर स्वर्ग में

आनन्द करते तथा ऋषि–मुनि भी हर्ष करते हैं, यह मेरा वचन सत्य जानिये ।।५।। जो अतिकठिन, दुराराध्य, धुरधारी, अतिकठिनता से अतिक्रमण करने योग्य है, सो सब तप से साधनीय होता है, केवल तप ही दुःसाध्य है ।।६।। तप में ब्रह्माजी स्थित हैं तथा तप में विष्णुजी और शिवजी प्रवृत्त हैं तथा सम्पूर्ण देवता और देवियों ने दुर्लभ फल तप से पाया है ।।७।। जिस–जिस भाव में होकर तप किया जाता है, उन–उन को यह फल उस लोक में प्राप्त होता है, इसमें कुछ संशय नहीं ।।८।। हे व्यासजी! सात्त्विक, राजस, तामस यह तीन प्रकार का तप जानना चाहिये, तप ही सबका साधन कहा है ।।९।। देवताओं का तथा संन्यासियों का और ब्रह्मचारियों का सत्त्वगुणी तप कहा है, दैत्यों और मनुष्यों का रजोगुणी तप होता है, राक्षसों का तथा दुष्टकर्म करनेवाले मनुष्यों का तमोगुणी तप कहा है ।।१०।। तत्त्वदर्शी मुनियों ने तीन प्रकार का तप का फल कहा है, जप, ध्यान तथा भक्ति से देवताओं का शुभ अर्चन करना ।।११।। वह सात्त्विक तप सम्पूर्ण फलों का साधक कहा है, वह इस लोक में तथा परलोक में मनोवांछित को सिद्ध करनेवाला होता है ।।१२।। कामना फल को उद्देश्य करके देह शोषण तपों से अपने शरीर को पीड़ित करके जो किया जाता है, वह राजस तप कहलाता है ।।१३।। जो मनोरथ सिद्ध होने के निमित्त किया जाता है, वह तामस तप कहा है ।।१४।। सात्त्विक तप को उत्तम जाने, निश्चय हुई धर्म की बुद्धि, स्नान, पूजा, जप, होम, शुद्ध, शौच, हिंसा न करना ।।१५।। व्रत, उपवास, चर्या, मौन, इन्द्रियों का निरोध, बुद्धि, विद्या, सत्य, अक्रोध, दान, क्षान्ति, दम, दया ।।१६।। बावडी, कूप, सरोवर आदि का तथा महल बनाना, कृच्छ्र, चान्द्रायण यज्ञ, श्रेष्ठ तीर्थ और आश्रम ।।१७।। हे व्यासजी! यह (इतने) धर्म के स्थान हैं, बुद्धिमानों को सुख देनेवाले हैं, यह बड़ा श्रेष्ठ धर्म है और शिवभक्ति का कारण है ।।१८।। संक्रान्ति विषुवत् योग नादमुक्त में प्रयोग करना चाहिये, तीनों कालों में ध्यान ज्योति उन्मनी भाव यह धारणा है ।।१९।। रेचक, पूरक, कुम्भक यह तीन प्रकार के प्राणायाम कहे हैं, नाडीसंचार का जानना तथा प्रत्याहार का रोकना ।।२०।। चौथा अणिमा आदि आठ सिद्धियों सहित अधोबुद्धि यह पूर्वोत्तम परमज्ञान का साधन कहा है ।।२१।। काष्ठावस्था, मृतावस्था, हरितावस्था यह तीन अवस्था कहीं हैं, यह नाना प्रकार की उपलब्धि और समस्त पापों के नाश करनेवाली कही है ।।२२।। नारीशय्या तथा पान, वस्त्र, धूप, लेपन, ताम्बूल भक्षण यह पांच राजैश्वर्य विभूति हैं ।।२३।। हेम भार तथा ताम्र, गृह, रत्न, धेनु, वेदशास्त्रों का पाण्डित्य, गीत, नृत्य, आभूषण ।।२४।। शंख, वीणा, मृदंग, गजेन्द्र, छत्र, चामर यह भोग रूप हैं, इनमें आसक्त हुआ अनुराग को प्राप्त होता है ।।२५।। हे मुने! जो संसारी है, वह दर्पण के समान तथा तेल के निमित्त तिलों के समान पेला जाता है, भ्रमण को प्राप्त होकर इस प्रकार इसको ज्ञान से मोहित करता है ।।२६।। जानता हुआ भी इस संसार में घड़ी के यन्त्र के समान

भ्रमण करता है, स्थावर चर आदि सब योनियों में दुःखी होकर पर्यटन करता है ।।२७।। इस प्रकार सम्पूर्ण योनियों में भ्रमण करके कालान्तर के वश से अति दुर्लभ मनुष्य जन्म को प्राप्त होता है ।।२८।। व्युत्क्रम से भी पुण्य के गौरव से मनुष्य जन्म पाता है, कर्मों के बड़े और छोटे पन से अति अद्‌भुत गति कही है।।२९।। जो पुरुष स्वर्ग मोक्ष के साधक मनुष्य जन्म को पाकर अपना कल्याण नहीं करता है, वह मरकर बहुत काल तक शोचता है ।।३०।। सम्पूर्ण देवता और असुरों में मनुष्य जन्म अति दुर्लभ है, उस मनुष्य जन्म को पाकर ऐसा करना चाहिये कि, जिससे नरक में न जावे ।।३१।। यदि दुर्लभ मनुष्य जन्म को पाकर स्वर्ग और अपवर्ग के लाभ के लिये उद्यम नहीं होता है, तो वह मनुष्य जन्म वृथा कहा है ।।३२।। हे व्यासजी! सम्पूर्ण धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का आदिकारण मनुष्य जन्म कहा है, इस कारण उसे प्राप्त होकर धर्म से यत्नपूर्वक उसका पालन करना चाहिये ।।३३।। यदि सब पदार्थों के साधन करनेवाले धर्म के मूल मनुष्य जन्म को पाकर अपने लाभ के निमित्त प्रयत्न होवे तो स्वयं भूल को रक्षा करे ।।३४।। मनुष्य जन्म में भी जो दुर्लभ ब्राह्मणत्व पाकर अपना कल्याण नहीं करता है, उससे अधिक जड़ कौन है?।।३५।। सम्पूर्ण द्वीपों में यह कर्मभूमि कही जाती है, यहां से अर्जित होकर स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त होता है ।।३६।। इस भारतवर्ष में अस्थिर मनुष्य जन्म पाकर यदि अपना कल्याण नहीं किया जाता, तो उसने अपनी आत्मा को वंचित किया (ठगा) ।।३७।। हे विप्र! यह कर्मभूमि कही है और यह फलभूमि कही है, यहां पर जो कर्म किया जाता है, वह स्वर्ग में भोगा जाता है ।।३८।। जब तक शरीर की स्वस्थता होवे, तब तक धर्म करे, क्योंकि बिना स्वस्थ हुआ औरों की प्रेरणा से कुछ भी नहीं करने का उत्साह करता है ।।३९।। जो मनुष्य बिना निश्चल शरीर से निश्चलधर्म को सिद्ध नहीं करता है, उसका ध्रुव (उपस्थित) नष्ट हो गया और अध्रुव (अनुपस्थित) जो नष्ट ही है ।।४०।। आयु के खण्ड–खण्ड होकर उसके आगे नष्ट होते चले जाते हैं, फिर भी दिन और रात्रि के उपदेश से क्यों नहीं जागते?।।४१।। जब यह नहीं मालूम है, कि कब मृत्यु होगी, अकस्मात् मरण होने पर फिर कौन ऐश्वर्य को ढूंढता है? ।।४२।। जब सब धनादि का त्याग करके अकेला यह प्राणी निश्चल चला जायगा, तो क्यों पाथेय (मार्गभोजन) के निमित्त यह धनदान नहीं करता है?।।४३।। जिसने दानरूपी चबेना बांधा है, वह सुख से यमलोक को जाता है, नहीं तो प्राणी पाथेय (चबेना) रहित मार्ग में दुःखी होता है ।।४४।। हे व्यासजी! जिन पुरुषों के पुण्य सब ओर से परिपूर्ण हैं, स्वर्गलोक में जानेवाले उन मनुष्यों को पद–पद में लाभ होता है ।।४५।। यह जानकर मनुष्य सदा पुण्य करे और पाप को त्यागे, पुण्य से देवतापन को प्राप्त होता है, पाप से नरक को जाता है ।।४६।। जो मनुष्य कुछ भी शिवजी की शरण में प्राप्त होते हैं, वे भी यमराज को तथा घोर नरक को नहीं देखते हैं ।।४७।। पापों से और महामोह के

कारण थोड़े समय तक शिवजी की आज्ञा से नरक में निवास करते हैं, तत्पश्चात् शिवलोक को प्राप्त होते हैं ।।४८।। और जो सम्पूर्ण भावों से शिवजी को प्राप्त होते हैं, वे जल से कमलपत्र के समान पाप से लिप्त नहीं होते हैं ।।४९।। जिन्होंने शिवजी का नाम 'हरहर' ऐसा नाम कहा है, हे मुनिसत्तम! उनको नरकों से और यमराज से कुछ भय नहीं रहता ।।५०।। परलोक का 'चबेना' निरामय मोक्ष का उपाय पुण्यसमूह का एकमात्र स्थान 'शिव' यह दो अक्षर कहे हैं ।।५१।। यह शिव नाम ही संसार के महारोगों का एकमात्र शान्त करनेवाला है, अन्य कोई उपाय मैंने संसाररोग को शान्त करनेवाला नहीं देखा ।।५२।। पहले सहस्रों ब्रह्महत्या करके 'शिव शिव' ऐसा निर्मल नाम सुनकर मोक्ष को प्राप्त हुए हैं ।।५३।। इस कारण विद्वान् निरन्तर शिवजी के विषय में भक्ति को बढ़ाये; हे महाप्राज्ञ! मनुष्य शिवभक्ति से भुक्ति और मुक्ति दोनों को पाता है ।।५४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां
मनुविशेषकथनं नाम विंशोऽध्यायः ।। २० ।।

*****

इक्कीसवाँ अध्याय

व्यासजी बोले– ब्राह्मण का जन्म दुष्प्राप्य है, ईश्वर के मुख से ब्राह्मण होता है और भुजाओं से क्षत्रिय तथा जंघाओं से वैश्य ।।१।। और चरणों से शूद्र उत्पन्न हुए हैं, इस प्रकार उसके मुख से सुना गया है, नीचे के स्थान से क्यों स्थिति को प्राप्त होते हैं? सो वर्णन कीजिये ।।२।। सनत्कुमारजी बोले– हे व्यासजी! पाप से मनुष्य अपने स्थान से गिर जाते हैं, इस कारण प्रवीण मनुष्य श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त होकर उसकी रक्षा करता है ।।३।। जो पुरुष ब्राह्मणत्व से क्षत्रिय योनि में उत्पन्न होता है, वह ब्राह्मणत्व से भ्रष्ट होकर क्षत्रियत्व को सेवन करता है ।।४।। उसी प्रकार मूर्ख मनुष्य अधर्म के सेवन से सहस्रों जन्मों में घूमता है और अन्धकार में प्रवेश करता है ।।५।। इस कारण मनुष्य अधिक स्थान को प्रमाद (असावधानी) से नाश नहीं करे, दुःखों को प्राप्त होकर भी निरन्तर अपने स्थान की रक्षा करे ।।६।। जो मनुष्य श्रेष्ठ ब्राह्मणजन्म पाकर ब्राह्मण्य को तिरस्कार करता है वा जो भोज्य और अभोज्य को नहीं जानता, वह मनुष्य क्षत्रिय होता है ।।७।। बुद्धिमान् शूद्र जिस कर्म से वैश्य होता है, यह सब आपसे कहता हूं कि जिससे उत्तम वर्ण हो जाता है ।।८।। जिस प्रकार शूद्रकर्म बताया है, उसे शूद्र होकर करना चाहिये, तीनों वर्णों में नित्य विधिपूर्वक सेवा को ।।९।। चाहने वाला शूद्र भी वैश्य की योनि को पाता है और जो वैश्य अपने धन से विधिपूर्वक करके ।।१०।। अग्निहोत्र कर्म कराया

शेषान्न का भोजन करनेवाला है, वह वैश्य क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं ।।११।। जो क्षत्रिय संस्कारयुक्त दक्षिणा सहित यज्ञों को करके स्वर्ग की इच्छा से सदा त्रेताग्नि की शरण में अध्ययन करता है ।।१२।। और गीले हाथ पैरोंवाला क्षत्रिय धर्म से नित्य भूमि को पालता है और धर्म में तत्पर होकर ऋतुकाल में अपनी स्त्री से प्रसंग करता है ।।१३।। सब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादिक आतिथ्य करता है, भूतों को तथा गौ, ब्राह्मण, आत्मा के निमित्त प्रदान करता है तथा संग्राम में नष्ट होता है ।।१४।। इस कर्म से अग्नि मन्त्र से पवित्रात्मा वह क्षत्रिय ब्राह्मण हो जाता है और विधिविधान से ब्राह्मण होकर याजक (यज्ञ करानेवाला) होता है ।।१५।। नित्य अपने कर्मों में आरुढ़ सत्यवादी जितेन्द्रिय होकर देवताओं को भी दुष्प्राप्य ऐसा विपुल स्वर्ग पाता है ।।१६।। हे मुनीश्वर! ब्राह्मणत्व अति दुर्लभ है, यह मनुष्यों को कठिनता से मिलता है और ब्राह्मणत्व से सब कुछ मोक्षपर्यन्त भी प्राप्त होने योग्य है ।।१७।। इस कारण ब्राह्मणधर्म में तत्पर होकर सब यत्नों से सब वर्गों के साधन श्रेष्ठ ब्राह्मणत्व की रक्षा करे ।।१८।। व्यासजी बोले- हे मुनिश्रेष्ठ! यह माहात्म्य आपने कहा, अब मैं संग्राम के माहात्म्य को सुनना चाहता हूं, हे वक्ताओं में श्रेष्ठ! आप विस्तार से वर्णन करें ।।१९।। सनत्कुमारजी बोले- क्षत्रिय अत्यन्त दक्षिणावाले अग्निष्टोम आदि यज्ञ करके भी उस फल को नहीं पाता, जो फल संग्राम में प्राप्त करता है ।।२०।। तत्त्व के जाननेवाले यज्ञकर्म वेत्ताओं ने ऐसा कहा है, सो सब शस्त्रजीवियों के फल को आपसे वर्णन करता हूं।।२१।। शूर सेना में प्रवेश करके युद्ध करनेवाला क्षत्रिय है, वह जो कुछ इच्छा करता है, सो धर्मलाभ, अर्थलाभ, यशोलाभ आदि सब को पाता है ।।२२।। जो मनुष्य अपने सम्मुख दानादि देकर युद्ध के वाहन पर चढ़ता है, उसे धर्म, अर्थ, काम तथा दक्षिणा सहित यज्ञ का फल प्राप्त होता है ।।२३।। जो युद्ध में पराजित नहीं होता है, वह विष्णुलोक को प्राप्त होता है और अश्वमेधों के फलों को पाता है ।।२४।। जो क्षत्रिय शस्त्रों को बिना छोड़े सेना के मुख में सम्मुख होकर मर जाता है, वह शूर स्वर्ग से नहीं गिरता है ।।२५।। राजा हो वा राजपुत्र हो अथवा सेनापति हो, जो शूर क्षत्रिय से मारा गया उसे अक्षय लोक प्राप्त होता है ।।२६।। बड़े युद्ध में अस्त्रों से उसके जितने रोम भेदित होते हैं, सब कामनाओं के देनेवाले उतने अक्षय लोकों को प्राप्त होता है ।।२७।। हे व्यासजी! वीरासन, वीरशय्या, वीरस्थान स्थिति सर्वदा इस लोक में तथा परलोक में स्थिर होती है ।।२८।। जो मनुष्य गौ के निमित्त, ब्राह्मण के निमित्त तथा स्थान और स्वामी के निमित्त मरते हैं, वे इस प्रकार सुख को प्राप्त होते हैं, जिस प्रकार पुण्यात्मा पाते हैं ।।२९।। जो कोई बाह्मण को भी युद्ध में मारकर अपने पति के युद्ध में प्राणों को छोड़ता है, वह स्वर्ग से पतित नहीं होता है ।।३०।। युद्ध में राक्षस आदि से तथा हाथियों से मारे हुए की भी उत्तम गति होती है, यदि द्विज, गौ, स्वामी के निमित्त प्राण

त्याग किया जाय, तो अक्षय गति होती है।।३१।। सामर्थ्यवान् मनुष्य इस संसार में सैकड़ों यज्ञ करने में समर्थ हो सकता है, परन्तु युद्ध में अपने शरीर का त्याग करना बड़ा कठिन है।।३२।। सम्पूर्ण वर्णों का और विशेष कर क्षत्रिय का युद्ध पुण्य देनेवाला, स्वर्ग देनेवाला, रूपज्ञ और सर्वतोमुख कहा है।।३३।। अब मैं सनातन युद्ध धर्म को विस्तार से कहता हूं कि, जैसे को प्रहार करना चाहिये और जैसे को छोड़ना चाहिये।।३४।। युद्ध के सम्मुख आते हुए मारने की इच्छा करनेवाले वेदान्ती आततायी ब्राह्मण को भी मार डाले, उसे मारने से ब्रह्महत्यारा नहीं होता।।३५।। हे व्यासजी! जो पानी मांगता हो, ऐसे मारने योग्य मनुष्य को भी नहीं मारना चाहिये, संग्राम में रोगियों को मारनेवाला पुरुष ब्रह्महत्यारा होता है।।३६।। व्याधिग्रसित दुर्बल, बालक, स्त्री, अनाथ, कृपण, निश्चल जिसका धनुष टूटा हो अथवा प्रत्यञ्चा टुटी हो, ऐसे पुरुष को जो संग्राम में मारता है, वह ब्रह्महत्यारा होता है।।३७।। ऐसा विचार के जो बुद्धिमान् पुरुष प्रीति से संग्राम प्रिय होता है, वह अपने जन्म के फल को पाकर इस लोक में तथा परलोक में आनन्द करता है।।३८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां रणफलवर्णनं

नामैकविंशोऽध्यायः।। २१ ।।

*****

बाईसवाँ अध्याय

व्यासजी बोले– हे मुनीश्वर! हे तात! इस समय जीव के जन्म को तथा जीव की गर्भ में स्थिति का वैराग्य के निमित्त विधिविधान से वर्णन कीजिये।।१।। सनत्कुमारजी बोले– हे व्यासजी! सुनिये, संक्षेप से सब शास्त्रों के साररूप वैराग्य का वर्णन करता हूं, जो मुमुक्ष के भवसागर के बन्धन काटनेवाला है।।२।। पाकपात्र के मध्य में अन्न पृथक् है और जल पृथक् है, अग्नि के ऊपर जल और जल के ऊपर वह अन्न स्थापन करने योग्य है।।३।। जल के नीचे स्थित हुआ अग्नि शनैः–शनैः जल को फूँकता है और वायु से फूँका हुआ अग्नि जल को अत्यन्त गरम कर देता है।।४।। फिर वह भोजन गरम जल से सब ओर से पकता है, तब वह पककर दो भागों में होता है, मैल पृथक् और रस पृथक् हो जाता है।।५।। वह किट्ट (फोकस) बारहों मलों से विभक्त होकर शरीर से बाहर हो जाता है और रस देह में फैल जाता है, उसीसे शरीर पुष्ट होता है।।६।। कान, नेत्र, नासिका, जिह्वा, दांत, लिंग, गुदा, नख, मलाश्रय, कफ, पसीना, विष्ठा, मूत्र यह बारह मल कहे हैं।।७।। हृदयकमल में चारों तरफ से समस्त नाड़ियां बंधी हुई

हैं, हे मुने! वे नाड़ियां रस को वहन करनेवाली हैं, उसकी विधि वर्णन करता हूं।।८।। प्राणवायु उन नाडियों के मुख में उस सूक्ष्म रस को स्थापन करता है, फिर उस रस से वह नाड़ियां प्राणवायु को पूरण करती हैं।।९।। फिर वह सब नाड़ियां चारों ओर देह में जाती हैं, तत्पश्चात् वह रस नाड़ियों के मध्य में स्थित होकर शरीर और आत्मा से पकाया जाता है।।१०।। पकने के पीछे फिर दो पाक बनते हैं, पहले त्वचा, जिससे सब शरीर लिपटता है और फिर रुधिर होता है।।११।। लोहू, रोम, मांस , मांस से बाल, स्नायु, स्नायु से अस्थियां, मज्जा और अस्थि से नख उत्पन्न होते हैं।।१२।। मज्जा कारण वैकल्य होता है और शुक्र (वीर्य) प्रसवात्मक होता है, इस प्रकार बारह प्रकार का भोजन का परिपाक कहा।।१३।। अन्न से वीर्य और वीर्य से देह बनता है, जब दोषरहित योनि में पड़ा हुआ ऋतुकाल में।।१४।। वायु से स्पर्श किया हुआ वीर्य स्त्री रक्त की ऐक्यता को प्राप्त होता है, वीर्य के त्यागन काल में जीव कारण से युक्त होकर।।१५।। अपने कर्मों से लगाया हुआ योनि में प्रवेश करता है, तो वह शुक्र और रज एक में स्थित होकर एक दिन में कलिल (वीर्य और रज का समुदायरूप) हो जाता है।।१६।। फिर वह कलिल पांच रात्रि में बुद्बुद के आकार को प्राप्त होता है, फिर वह बुद्बुद सात रात्रि में मांसपेशी होती है।।१७।। गरदन, सिर, दोनों कन्धे, पीठ, वक्ष, पेट तथा हाथ, पैर, दोनों पार्श्व, कमर, गात्र।।१८।। यह सब दो महीने के भीतर क्रम से हो जाते हैं और तीन महीने में सब अंकुरों की सन्धि हो जाती है।।१९।। चार महीने में यथाक्रम सब अंगुलियां होती हैं और पांच महीने में मुख, नासिका, कान हो जाते हैं।।२०।। और फिर दन्तों की पंक्ति तथा गुह्य, नख प्रकट होते हैं और छः महीने के भीतर कानों में छिद्र हो जाते है।।२१।। सात महीने में गुदा, मेह, उपस्थेन्द्रिय तथा नाभि अंगों में सन्धि हो जाती हैं।।२२।। हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार जीव अंग और प्रत्यंग से पूर्ण हुआ परिपक्व होकर माता के पेट में जेर में लिपटा हुआ स्थित रहता है।।२३।। फिर वह माता के भोजन से चुराने योग्य छः प्रकार के रसों से नाभिनाल में बंधा हुआ प्रतिदिन बढ़ता है।।२४।। तत्पश्चात् वह जीव इस शरीर के सम्पूर्ण हो जाने पर स्मृति को प्राप्त होता है, सुख और दुःख को तथा निद्रा और स्वप्न को और पहले किये हुए कर्म को जानता है।।२५।। मरकर मैं फिर पैदा हुआ और पैदा होकर फिर मरा, इस प्रकार मैंने अनेक योनियों में देखा हैं।।२६।। अब मैं उत्पन्न होते ही संस्कार को प्राप्त होते मात्र ही इस शरीर से ऐसे कल्याण करूँगा कि, जिससे फिर गर्भ में न आना पड़े।।२७।। इस प्रकार गर्भ में स्थित होकर विचारता है, कि मैं गर्भ से निकल कर संसार से लौटनेवाले शिवजी के ज्ञान का अन्वेषण करूँगा।।२८।। इस प्रकार कर्मवश बड़े गर्भ के दुःख से पीड़ित हुआ वह जीव जीवात्मा मोक्ष के उपाय को विचारता हुआ।।२९।। जिस प्रकार पर्वत से दबा हुआ कोई पुरुष दुःख से स्थित होता है, उसी प्रकार जेर से लिपटा हुआ जीव दुःख

से स्थित रहता है ।।३०।। जैसे समुद्र में गिरकर व्याकुल दुःखी होता है, वैसे गर्भ के जल से सिक्तांग होकर निरन्तर व्याकुल होता है ।।३१।। जिस प्रकार लोहे के कलशे में रखा हुआ पदार्थ अग्नि से पकाया जाता है, उसी प्रकार गर्भ के कुम्भ में पड़ा हुआ जीवात्मा पेट की अग्नि से पकाया जाता है ।।३२।। अग्नि से तपी हुई सुइयों से नित्य छेदे हुए को जो दुःख होता है, उसी प्रकार गर्भाशय में स्थित हुए जीव को दुःख प्राप्त होता है ।।३३।। मनुष्यों को गर्भवास से अधिक कष्ट, दुःख कहीं नहीं मिलता, यह दुःख अति घोर तथा अति संकट देनेवाला होता है ।।३४।। यह पापियों का बड़ा दुःख आपसे कहा। धर्मात्माओं का केवल सात मास में जन्म होता है ।।३५।। हे व्यासजी! पापियों को योनियन्त्र के पीड़न करने से गर्भ से अति कठिन दुःख प्राप्त होता है, परन्तु धर्मात्माओं को नहीं होता है ।।३६।। कोनयन्त्र से सब ओर ईख के समान पीड़ित किये हुए के समान पाप मुद्गर से सिर में ताडन किये हुए के समान ।।३७।। तथा जैसे कोल्हू से पेले हुए तिल निस्सार हो जाते हैं, उसी प्रकार योनियन्त्र के पीडन करने से शरीर निस्सार हो जाता है ।।३८।। अस्थि, पाद, तुला, स्तम्भ, स्नायु बन्धन से बंधा हुआ, रक्त, मांस, मृत्तिका से लिप्त हुआ, विष्ठा, मूत्र, द्रव्य का पात्र ।।३९।। बाल, रोम, नखों से ढके हुए रोम के स्थान आतुर मुख ही एक महाद्वारवाले गवाक्ष अष्टक से शोभायमान ।।४०।। दोनों ओंठरूपी कपाटवाले तथा जिह्वारूपी अर्गला (धन्ना) सहित भोग तृष्णारूपी रोग से ग्रसित मूढ़ राग-द्वेष के वश में पड़े हुए ।।४१।। अंग और प्रत्यंगों से युक्त जेर से लिपटे बिना प्रकट हुए संकट से योनिमार्ग से निकले हुए ।।४२।। विष्ठा, मूत्र से सिक्तांग विकोशिक से उत्पन्न हुए अस्थिपंजर से विख्यात हुए शरीर को जानना चाहिये ।।४३।। तीन सौ पैंसठ पेशी तथा चारों ओर से साढ़े तीन करोड़ रोंगटों से व्याप्त हुआ ।।४४।। शरीर स्थूल और सूक्ष्म साढ़े तीन करोड़ नाड़ियों से दृश्य और अदृश्य कहा है ।।४५।। बिना स्वेद मधुवाली नाड़ियों के मध्य में स्थित होकर जीव बाहर निकलता है, इसके बत्तीस दांत और बीस नख कहे हैं ।।४६।। इस शरीर में पित्त एक कुडव (पावभर), कफ का सार एक आढक (चार सेर), चरबी बीस पल (१६० तोले), दश पल कपिलत्व होता है ।।४७।। मेद नामक चरबी का भार साढ़े पांच तुला और दश पल (सौ पल की एक तुला होती है) तीन पल, इस शरीर में महारक्त, मज्जा इससे चौगुनी अर्थात् बारह पल जाननी ।।४८।। वीर्य इसमें आधा कुडव, यही बीज और देहधारियों का बल है, इस देह में सहस्र पल मांस का परिमाण कहा है, यह पूर्ण शरीर का विवरण है ।।४९।। सौ पल इसमें रक्त होता है, हे मुनिश्रेष्ठ! चार-चार अंजलि इसमें विष्ठा, मूत्र जानना ।।५०।। इस प्रकार नित्य विशुद्ध आत्मा को यह अपवित्र अनित्य शरीररूपी गृहकर्म बन्धन से बना है ।।५१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां देहोत्पत्तिवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ।। २२ ।।

तेइसवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले– हे महाबुद्धे! हे मुने! हे व्यासजी! सुनिये, मैं देह की अपवित्रता को और स्वभाव के महत्त्व को संक्षेप से वर्णन करता हूं।।१।। कारण कि, यह शरीर वीर्य और रज के संयोग से उत्पन्न होता है और नित्य विष्ठा तथा मूत्र से परिपूर्ण होता है, इसी से यह अपवित्र कहा है।।२।। जिस प्रकार भीतर विष्ठा से पूर्ण हुआ घड़ा बाहर से शुद्ध नहीं हो सकता, उसी प्रकार यह शुद्ध किया हुआ शरीर भी अपवित्र कहा है।।३।। अति पवित्र पंचगव्य तथा हवि आदि भी जिसको प्राप्त होकर क्षणमात्र में अपवित्रता को प्राप्त हो जाते हैं, उससे अधिक और क्या अपवित्र है?।।४।। हृदय के योग्य मनोहर अन्नपान भी जिसको प्राप्त होकर शीघ्र ही अपवित्र हो जाते हैं, उससे अपवित्र और क्या है?।।५।। हे मनुष्यो! क्या आप नहीं देखते हो कि, जो प्रतिदिन अपने शरीर से मलमूत्रादि निकलता है, उसका आधार कैसे पवित्र हो सकता है?।।६।। पंचगव्य तथा कुशाओं के जलों से शोधन किया हुआ भी शरीर घिसे हुए अंगारे के समान निर्मल नहीं हो सकता।।७।। पर्वत के समान जिस शरीर से कफ, मूत्र, विष्ठा आदि के स्रोत निरन्तर बहते हैं, वह शरीर किस प्रकार शुद्ध हो सकता है?।।८।। सम्पूर्ण अपवित्रता के कोष शरीर का कोई स्थान भी विष्ठा और मूत्र के, चर्म के समान पवित्र नहीं है।।९।। अपने देह के मल के स्रोतों से मल को निकालकर हाथ मिट्टी तथा जल से शुद्ध किया जाता है, तो भी यह इस शरीर का अवयवरूप कर अपवित्रता के पात्र (शरीर) से अलग नहीं होता है।।१०।। यत्नपूर्वक श्रेष्ठ गन्ध, धूप आदि से भलीभांति संस्कार किया हुआ भी यह देह नमाई हुई कुत्ते की पूंछ के समान अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता है।।११।। जिस प्रकार जाति से काली वस्तु किसी उपाय से श्वेत नहीं हो सकती, उसी प्रकार शुद्ध की हुई भी यह मूर्ति निर्मल नहीं हो सकती।।१२।। यह संसार अपनी दुर्गन्धि को सूंघकर और अपने मल को देखकर भी नासिका को पीड़ा दे कर भी वैराग्य को नहीं प्राप्त होता।।१३।। आश्चर्य है, अज्ञान का यह माहात्म्य है कि, जिसने यह संसार आच्छादन कर लिया है कि, अपने शरीर के दोष को देखकर भी वैराग्य को नहीं प्राप्त होता।।१४।। जो मनुष्य अपने शरीर की दुर्गन्धि से वैराग्य को नहीं प्राप्त होता, उसके विराग का कारण और क्या उपदेश किया जाय?।।१५।। संसार में सब मनुष्यों का शरीर ही अपवित्र है, उसके मल के अवयव स्पर्श से पवित्र वस्तु भी अपवित्र हो जाती है।।१६।। गन्ध लेप के दूर करने से देह की पवित्रता कही है और दोनों के नाश हो जाने से शुद्धि होती है, शुद्ध वस्तु के स्पर्श होने से पवित्र हो

जाता है ।।१७।। गंगाजी के जल से पर्वत के समान मृत्तिका के भार से भी मृत्युपर्यन्त चाहे शौच करे, परन्तु स्वभाव से दूषित हुआ मनुष्य कदापि शुद्ध नहीं होता है ।।१८।। दुष्टात्मा तीर्थस्नानों से अथवा तपों से कदापि शुद्ध नहीं हो सकता, क्या तीर्थ में धोई हुई कुत्ते की पूंछ शुद्धि को प्राप्त हो सकती है?।।१९।। अतः स्वभाव से दुष्ट हुए पुरुष का अग्नि में प्रवेश होने पर न तो स्वर्ग मिलता है, न अपवर्ग मिलता है, केवल देह भस्म हो जाता है ।।२०।। भाव से दुष्ट हुआ मनुष्य सम्पूर्ण गंगाजल से अथवा मृत्तिका के पर्वत से भलीभांति जन्मभर स्नान करे, परन्तु वह कदापि शुद्ध नहीं हो सकता, ऐसा हम कहते हैं ।।२१।। स्वभाव से दुष्ट हुआ मनुष्य चाहे अग्नि को जलाकर, घी वा तेल से सींचे और कई बार प्रदक्षिणा करके उसमें प्रवेश करके भस्म हो जाय, परन्तु धर्म अथवा अन्य किसी श्रेष्ठ फल को नहीं पाता ।।२२।। गंगा आदि तीर्थों में मत्स्य आदि रहते हैं, देवालय में नित्य पक्षीगण निवास करते हैं, ऐसे ही भावहीन पुरुष तीर्थस्नान से तथा दान से कुछ फल नहीं पाते हैं ।।२३।। सम्पूर्ण कर्मों में भाव की शुद्धि परम शौच कही है, जिस प्रकार भाव से स्त्री को अन्य प्रकार से आलिंगन करते हैं और पुत्री को और भाव से आलिंगन करते हैं ।।२४।। अभिन्न वस्तुओं में भी चित्त की वृत्ति भेद को प्राप्त होती है, जिस प्रकार स्त्री पुत्र को अन्य प्रकार से तथा पति को अन्य प्रकार से विचारती है ।।२५।। इस भाव की महिमा को सब प्रकार से देखो कि, चाहे स्त्री से चिपटा हुआ भी हो, परन्तु स्त्रीभाव से रहित पुरुष को कामना नहीं होती ।।२६।। यदि काम, क्रोध, लोभ की चिन्ता मन में विद्यमान हो, तो अनेक भोज्य तथा मनोहर भोजन भी नहीं खाये जाते ।।२७।। उस भाव से ही मनुष्य कामादि तीनों में प्रवृत्त होता है और भाव से ही छूट जाता है, भाव से शुद्ध आत्मा स्वर्ग और मोक्ष को प्राप्त होती है ।।२८।। केवल एक भाव से शुद्ध जीव जलाता हुआ, होम करता हुआ, स्तुति करता हुआ मर जावे, तो ज्ञान की प्राप्ति से शीघ्र ही अति याज्ञिकों के लोकों को प्राप्त होकर ।।२९।। ज्ञानरूपी निर्मल जल से तथा श्रेष्ठ वैराग्यरूपी मृत्तिका से मनुष्यों की अविद्या रागरूपी विष्ठा, मूत्र, लेप दुर्गन्धि की शुद्धि होती है ।।३०।। इस प्रकार यह शरीर स्वभाव से ही अपवित्र कहा है, केवल निस्सार केले के समान चिकनी त्वचामात्र सार है ।।३१।। इस प्रकार दोषयुक्त देह को जानकर जो बुद्धिमान् शिथिल होता है और देह के भोगों के उत्पन्न हुए भाव से शान्तचित्त और प्रसन्न होता है ।।३२।। वह संसार का उल्लंघन करता है और जीवमुक्त हो जाता है और संसाररूपी केले के सार को ग्रहण करके स्थित होता है ।।३३।। इस प्रकार मनुष्यों को अज्ञान के दोष से तथा अनेक कर्म के वश से महा कष्टदायक जन्म का दुःख कहा है ।।३४।। करोड़ो ग्रन्थों में जो कहा है, सो आधे श्लोक में कहता हूं, 'मेरा है' यह अत्यन्त दुःख का मूल है, 'मेरा नहीं' यह परमसुख है ।।३५।। ममताहीन अनेकों सहस्रों बंधे हुए राजा इस से ही परमधाम को प्राप्त हो

गये ।।३६।। योनियन्त्र की पीड़ा से मूर्च्छित हुए दुःख से गर्भ में स्थित हुए जीव की जो स्मृति थी, सो नष्ट हो जाती है ।।३७।। जन्म से ही इस प्राणी को बाहर की वायु के तथा मोह संग के स्पर्शमात्र से घोर ज्वर उत्पन्न होता है ।।३८।। फिर उस बड़े ज्वर से मोह उत्पन्न होता है, उससे मूढ़ के शीघ्र ही स्मृति का नाश होता है ।।३९।। और स्मृति के नाश हो जाने से उस जीव को अपने पूर्वकर्मों की स्मृति नहीं रहती और शीघ्र ही उसी जन्म में प्रीति हो जाती है ।।४०।। अनुरक्त हुआ मूढ़ इस संसार के सुकार्य (कर्त्तव्यों) में प्रवृत्त नहीं होता है और न अपने आपको न परदैवत को जानता है ।।४१।। हे सन्मुने! कानों के होने पर भी अपने कल्याण को नहीं सुनता है और समर्थ नेत्र के होने पर भी परमकल्याण को नहीं देखता है ।।४२।। समान मार्ग में शनैः-शनैः जाता हुआ भी पद-पद में स्खलित होता है, पण्डितों से जताया हुआ भी तथा बुद्धि होने पर भी नहीं जानता है ।।४३।। गर्भ में स्मरण हुए उस पाप से गर्भ के लोभवश होकर बुद्धि से भ्रष्ट हुआ पुरुष संसार में क्लेश को प्राप्त होता है ।।४४।। इस प्रकार शिवजी ने तप के कथन के निमित्त बड़ा श्रेष्ठ शास्त्र कहा है, जो स्वर्ग और मोक्ष का साधन है ।।४५।। जो मनुष्य सम्पूर्ण मनोरथों के साधनेवाले यह शिवज्ञान होने पर भी अपना कल्याण नहीं कर पाते, सो यह बड़ा आश्चर्य है ।।४६।। बाल्यावस्था में इन्द्रियवृत्ति के प्रकट न होने से बड़ा दुःख है, कारण कि इच्छा करते हुए भी कुछ कहने और दुःख निराकरणार्थ उपाय करने में नहीं समर्थ होता है ।।४७।। दांतों के निकलने में बड़ा कष्ट तथा थोड़े रोग से और बालग्रह तथा अनेक प्रकार के बालरोगों से अति पीड़ा होती है ।।४८।। कहीं भूख-प्यास से व्याकुल शरीर हुआ, कहीं रो-रोकर स्थित हुआ वह बालक अज्ञान से विष्ठा, मूत्र आदि का भक्षण करता है ।।४९।। कौमार अवस्था में कानों की पीड़ा में माता-पिता के साधनों से तथा अक्षराभ्यास करने आदि से अनेक दुःख होते हैं ।।५०।। बाल्यावस्था में दुःख भोग कर भी यह सब देखता हुआ मूर्खजन जो अपने कल्याण को नहीं करता है, यह बड़ा आश्चर्य है ।।५१।। इन्द्रियवृत्ति के प्रकट होने से कामरोग में पीड़ित होने के कारण उसके न प्राप्त होने पर भी दुःख होता है, इससे यौवन में भी कहां सुख है ?।।५२।। मोह से अनुरक्त हुए युवा मनुष्य को ईर्षा से बड़ा दुःख होता है, कुपित हुए नेत्र के समान त्यागनेवाला केवल दुःख के लिये होता है।।५३।। रात्रि में कामाग्नि से व्याकुल होकर निद्रा को नहीं पाता और दिन में धन के संग्रह करने की चिन्ता से कहां सुख है ?।।५४।। स्त्रियों में मन लगाये हुए मनुष्य की जो वीर्य की बिन्दु है, वे सुख के निमित्त नहीं मानी हैं, वे स्वेदज के समान है ।।५५।। जिस प्रकार कीड़ों से कुरेदी हुई कुष्ठी वानर की खुजली के सन्ताप से जो दशा होती है, उसी प्रकार स्त्रियों में आसक्त होनेवाले की दशा होती है ।।५६।। कपोल में दुर्गन्धि के दूर होने से वा मुख शुद्धि में जैसा सुख माना गया है, वैसा सुख स्त्रियों में मानना चाहिये,

उनमें अधिक सुख नहीं है ।।५७।। विष्ठा और मूत्र के त्याग करने से जैसा सुख होता है, वैसा सुख स्त्रीप्रसंग में जानना चाहिये, परन्तु मूर्खों ने अन्य प्रकार से कल्पना की है ।।५८।। कुवस्तुवाली समस्त दोषों की पात्र स्त्रियों में अणुमात्र भी सुख नहीं है, ऐसा पंचचूडा ने कहा है ।।५९।। सन्मान तिरस्कारों से, वियोग प्रिय संगति से और यौवन बुढ़ापे से ग्रस्त है, फिर निर्द्वन्द्व सुख कहां ?।।६०।। बली श्वेतकेश सिर हिलने आदि से शिथिल देह युक्त हुए सम्पूर्ण कार्यों में सामर्थ्य हीन मनुष्य को बुढ़ापे ने शिथिल किया ।।६१।। जो स्त्री-पुरुषों का मनोहर यौवन पहले परस्पर प्रिय था, वह बुढ़ापे में उन दोनों को भी प्रिय नहीं होता ।।६२।। जो मनुष्य बुढ़ापे से अपने आपको अपूर्व के समान परिवर्तित हुआ देखकर भी अनुराग करता है, उससे मूर्ख और कौन है ?।।६३।। बुढापे में ग्रस्त हुआ मनुष्य पुत्र, भाई, बन्धु आदि में आसक्त होने से कठोर भृत्यों से भी तिरस्कार पाता है ।।६४।। अति बुढ़ापे में ग्रस्त हुआ मनुष्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि के साधने में असमर्थ होता है, इस कारण युवा अवस्था में ही धर्म करना चाहिये ।।६५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां
संसारचिकित्सायां देहशुचित्वबाल्याद्यदुःखवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ।। २३ ।।

*****

चौबीसवाँ अध्याय

व्यासजी बोले- हे मुने! स्त्रियों के जो दोष पंचचूडा अप्सरा ने कहे हैं, वे सब मुझे संक्षेप से कहिये, यदि आप मुझसे सन्तुष्ट हैं ।।१।। सनत्कुमारजी बोले- हे ब्राह्मण! सुनिये, मैं स्त्रियों के स्वभाव का विधिपूर्वक वर्णन करता हूं, जिसके श्रवणमात्र से ही उत्तम वैराग्य उत्पन्न हो जाता है ।।२।। हे मुने! हल्के चित्तवाली स्त्रियां दोषों के मूल हैं, इससे तन्द्रारहित मोक्ष चाहनेवालों को स्त्रियों में आसक्ति नहीं करनी चाहिये ।।३।। इस विषय में व्यभिचारिणी पंचचूडा से कहे हुए नारदजी के संवादरूप पुराने इतिहास का वर्णन करता हूं ।।४।। पहले सब लोकों में फिरते हुए बुद्धिमान् देवर्षि नारदजी ने बाला सुन्दर पंचचूडा नामवाली अप्सरा को देखा ।।५।। तो मुनिश्रेष्ठ नारदजी ने उस सुन्दर भौ वाली अप्सरा से यह पूछा, हे सुमध्यमे! मेरे मन में कुछ सन्देह है, उसे निवृत्त करो ।।६।। ऐसा कहने पर वह सुन्दर अप्सरा उस ब्राह्मण से बोली, यदि मुझे समर्थ जानते हो, तो विषय हो जाने पर कहूंगी ।।७।। नारदजी बोले- हे भद्रे! मैं तुझे किसी अविषय में किसी प्रकार प्रवृत्त नहीं करूंगा, हे सुमध्यमे! तुमसे स्त्रियों के स्वभाव को सुनना चाहता हूं ।।८।। सनत्कुमारजी बोले- इस प्रकार उन देवर्षि नारदजी का वचन

सुनकर वह सुन्दर अप्सरा उन मुनिश्रेष्ठ देवर्षि मुनीश नारदजी से बोली ।।९।। पंचचूडा बोली- हे मुने! सुनिये, कोई स्त्री सती स्त्री की निन्दा करने में समर्थ नहीं है, वे स्त्रियां जैसे स्वभाववाली हैं, सो सब विदित है ।।१०।। हे देवर्षे! मुझे ऐसे प्रश्न में प्रवृत्त करने को योग्य नहीं हो, ऐसा कहने पर वह सुन्दर अप्सरा मौन हो गई ।।११।। तब देवर्षि श्रेष्ठ नारदजी उसका वह उत्तम वचन को सुनकर लोकों के हित की कामना से फिर उससे बोले ।।१२।। नारदजी बोले- हे सुमध्यमे! झूंठ बोलने में दोष होता है, सत्य में दोष नहीं होता है, ऐसा तू जान, इस कारण सत्य-सत्य कह ।।१३।। सनत्कुमारजी बोले- ऐसा कहने पर वह निश्चितबुद्धि, सुन्दर हास्य करनेवाली अप्सरा वेग से सनातन स्त्रीदोषों को सत्य-सत्य कहने लगी ।।१४।। पंचचूडा बोली- हे नारदजी! कुलीन, नाथवाली, रूपवाली स्त्रियां भी मर्यादा में नहीं रहती हैं, यह स्त्रियों में दोष है ।।१५।। स्त्रियों से अधिक पापी और कोई नहीं, स्त्रियां पापों का मूल हैं, ऐसा आप जानिये ।।१६।। स्त्रियां जाने हुए धनवाले, प्रत्येक रूपवाले यथेप्सित यतियों (संन्यासियों) के समीप प्राप्त होकर भी प्रतीक्षा करने में समर्थ नहीं होती ।।१७।। हे प्रभो! हम स्त्रियों का यह बड़ा बुरा धर्म है, कि पापी मनुष्यों को भी लज्जा का त्याग करके भजती हैं ।।१८।। जो मनुष्य स्त्री को चाहता है तथा उनके समीप जाता है, थोड़ी भी सेवा करता है, स्त्रियां उसी को चाहती हैं ।।१९।। मनुष्यों के बिना अर्थी होने से तथा पतियों के डर से बिना मर्यादावाली स्त्रियां स्वामी की मर्यादा में ठहरती हैं ।।२०।। इन स्त्रियों को कोई अमान्य नहीं और इनमें अवस्था का निश्चय नहीं है, सुरूप वा कुरूप मनुष्य को भोगती हैं ।।२१।। न तो भय से, न चिल्लाने से अथवा न अर्थ के निमित्त तथा न ज्ञाति, कुल सम्बन्ध से पति की मर्यादा में स्थित रहती हैं ।।२२।। कुलीन स्त्रियां यौवन में वर्तमान हुईं यथेच्छित आभूषण, वस्त्र पानेवाली व्यभिचारिणी स्त्रियों की संगति की अभिलाषा करती हैं ।।२३।। जो नित्य बहुत मानी हुईं प्रिय स्त्रियां रक्षा की जाती हैं, वे स्त्रियां भी कुब्जे, अन्धे, जड, बौने, लंगडे मनुष्यों में आसक्त होती हैं ।।२४।। हे देवर्षे! हे मुने! और भी जो कुत्सित मनुष्य हैं, उनमें आसक्त हो जाती हैं, इससे संसार में स्त्रियों को कोई अगम्य नहीं है ।।२५।। हे ब्रह्मन्! यदि किसी प्रकार मनुष्यों की गति नहीं होवे, तो स्त्रियां परस्पर आसक्त हो जाती हैं, अपने पतियों में प्रवृत्त नहीं होती हैं ।।२६।। पुरुषों के न मिलने से, कुटुम्ब के भय से तथा वध और बन्धन के भय से स्त्री हताश रहती हैं ।।२७।। चंचल स्वभाववाली, दुश्चेष्टावाली स्त्रियां उस प्रकार भाव से दुर्ग्राह्य होती हैं, जैसे बुद्धिमान् पुरुष के रति के ग्रहण करने से वश में होती हैं ।।२८।। काष्ठों से अग्नि नहीं लिप्त होती है, नदियों से समुद्र नहीं तृप्त होता तथा काल सब प्राणियों से नहीं तृप्त होता और स्त्रियां पुरुषों से तृप्त नहीं होती हैं ।।२९।। हे देवर्षे! सम्पूर्ण स्त्रियों का यह और भी रहस्य है, कि मनुष्य को देखकर शीघ्र ही स्त्री की योनि गीली हो जाती है ।।३०।। अच्छी प्रकार

स्नान किये तथा सुगन्धि युक्त निर्मल मनुष्य को देखकर फूटे बर्तन से जल के समान स्त्रियों की योनि बहने लगती है।।३१।। स्त्रियां शरीर को सुख देनेवाले मान और शान्ति के करनेवाले, परम रक्षा करनेवाले स्वामी को भी सहन नहीं करती हैं।।३२।। न काम भोग से तथा न अलंकार धन के संचय करने से उस प्रकार का हित मानती हैं, जिस प्रकार रति परिग्रह से हित मानती हैं।।३३।। काल शान्त करनेवाला मृत्यु, पाताल, बडवानल, अग्नि, क्षुरधारा, विष, सर्प, अग्नि यह एक ओर तथा एक तरफ स्त्री है।।३४।। हे नारदजी! ब्रह्माजी ने जहां से पंचमहाभूत उत्पन्न किये तथा जहां से लोक उत्पन्न किये, जहां से पुरुष तथा स्त्री निर्माण की, परन्तु वहां स्त्रियों में सदा दोष ही विधान किये हैं।।३५।। सनत्कुमारजी बोले– ऐसा उसका वचन सुन नारदजी सन्तुष्ट चित्त होकर, सब सत्य मानकर स्त्रियों में विरक्त हो गये।।३६।। हे व्यासजी! इस प्रकार पंचचूडा ने कहा हुआ स्त्री स्वभाव आपसे आदर से कह दिया, क्या कुछ वैराग्य का कारण सुनना चाहते हो?।।३७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां

स्त्रीस्वभाववर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।। २४ ।।

*****

पचीसवाँ अध्याय

व्यासजी बोले– हे सर्वज्ञ! हे सनत्कुमारजी! हे मुने! आपके समीप मैंने प्रेम से स्त्रियों का स्वभाव सुना, अब मुझसे कालज्ञान को कहिये।।१।। सनत्कुमारजी बोले– यही पहले पार्वतीजी ने शिवजी को प्रणाम करके अनेक प्रकार की दिव्य कथाओं को सुनकर शिवजी से पूंछा था।।२।। पार्वतीजी बोलीं– हे भगवन्! आपके प्रसाद से मैंने सब कुछ जान लिया, हे देव! जिस प्रकार यन्त्रों और मन्त्रों से विधिपूर्वक आपका पूजन होता है, सो सब कहिये।।३।। हे प्रभो! हे देव! मुझे अब भी कालचक्र के विषय में एक संशय है, कि जैसे मृत्यु का चिह्न तथा आयु का प्रमाण होता है, सो कहिये।।४।। हे स्वामी! यदि मैं आपकी प्रिया हूं, तो मुझसे कहिये, इस प्रकार उस देवी से पूछे हुए शिवजी कहने लगे।।५।। शिवजी बोले– हे प्रिये! हे देवेशि! मैं तुझसे उस शास्त्र का वर्णन करता हूं, कि जिससे मनुष्यों का काल जाना जाता है।।६।। दिन, पक्ष, महीना, ऋतु, अयन, वत्सर आदि बाहरी तथा भीतरी, स्थूल वा सूक्ष्म चिह्नों से जैसे मृत्युचिह्न जाना जाता है।।७।। हे सुन्दरी! हे पार्वती! ठीक–ठीक सुनो, मैं अब लोकों के उपकार के निमित्त तथा वैराग्य के निमित्त तुमसे कहता हूं।।८।। हे प्रिये!

यदि अकस्मात् चारों ओर से पीला शरीर ऊपर को लाल हो जाय तो छः मास के भीतर मृत्यु जाने ।।९।। हे प्रिये! और जब मुख, कान, आँख, जिह्वा स्तम्भन होवे, तो भी छः मास के भीतर मृत्यु होती है ।।१०।। हे भद्रे! यदि जनसमूह से की हुई ध्वनि को शीघ्र न सुन सके तो, कालवेत्ताओं को छः मास के भीतर मृत्यु जाननी चाहिये ।।११।। और जो सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि के संयोग से प्रकाश को नहीं देख सके और सब वस्तु काली–काली दीख पड़े, तो छः महीने जीवन शेष जाने ।।१२।। हे प्रिये! हे देवि! जो बायाँ हाथ एक सप्ताह तक फड़कता रहे, तो उसका जीवन एक महीने तक शेष है, इसमें कुछ सन्देह नहीं ।।१३।। जब सब गात्र टूटते हैं और तालु सूखता है, तब उसका एक मास का जीवन शेष जाने, इसमें संशय नहीं ।।१४।। त्रिदोष में (वात, पित्त, कफ के दोष में) जिसकी नासिका बहती है, तो एक पक्ष जीवन है, यदि मुख, कण्ठ सूखता है तो छः मास की आयु शेष जाने ।।१५।। हे भामिनी! हे द्विजो! जिस मनुष्य की जिह्वा स्थूल हो जाय और दांत एक साथ कोट को प्राप्त हो जाये, तो इन लक्षणों से छः मास में मृत्यु जाने ।।१६।। जल, तेल, घी अथवा स्वच्छ दर्पण में यदि अपने आपको न देख सके वा अपनी मूर्ति विकृत हुई दीखे ।।१७।। तो कालचक्र के जाननेवाले को उसकी छः मास की आयु जाननी चाहिये, हे देवेशि और भी मृत्युचिह्नों को सुनो, जिससे मृत्यु जानी जाती है ।।१८।। जो मनुष्य अपनी छाया को बिना सिर की देखे अथवा अपनी परछाई न देख सके, तो वह एक मास भी नहीं जी सकता ।।१९।। हे पार्वती! हे भद्रे! यह अंग सम्बन्धी मृत्यु के चिह्न मैंने कहे, अब बाहरी चिह्नों को कहता हूं, सुनो ।।२०।। हे देवि! जब चन्द्रमा और सूर्य का मण्डल किरणों से हीन लाल आकारवाला दीखे, तो वह आधे महीने में मरता है ।।२१।। जो अरुन्धती महायान नागवीथी चन्द्रमा तथा तारागण को न देख सके, वह एक महीने तक जीता है ।।२२।। ग्रहों के दीखने पर भी दिशाओं का मोह हो जाय तो छः महीने में मृत्यु होती है, यदि उतथ्य वा ध्रुव सूर्य मण्डल को न देख सके ।।२३।। और रात्रि में धनुष देखे वा मध्याह्न काल में उल्कापात दीखे तथा गिद्ध और काकों से लिपटता दीखे, तो वह निश्चय छः मास में मर जाता है ।।२४।। यदि स्वर्ग मार्गवाले ऋषिगण आकाश में न दीख पड़े, तो कालवेत्ता पुरुषों को उसकी आयु छः मास की जाननी चाहिये ।।२५।। जो एकाएकी राहु से ग्रस्त हुए सूर्य अथवा चन्द्रमा को देखता है, वह निश्चय छःमास में अथवा दिशाओं के चक्र को भ्रान्ति सहित दीखता है, वह निश्चय छः मास में मर जाता है ।।२६।। जो मनुष्य नीलवर्णवाली मक्खियों से अकस्मात् व्याप्त होता है, उसकी एक मास की आयु जाननी चाहिये ।।२७।। जब गिद्ध, काक, कबूतर यह सिर पर आक्रमण करके बैठते हैं, तो निःसन्देह वह प्राणी एक मास में शीघ्र मर जाता है ।।२८।। इस प्रकार मनुष्यों के हित के निमित्त बाहरी मृत्यु का भेद तुमसे कहा, अब मैं संक्षेप से

वर्णन करता हूं।।२९।। हे देवि! जिस प्रकार बायें वा दाहिने दोनों हाथों के मध्य में काल प्रत्यक्ष होता है, सो कहा।।३०।। हे सुरसुन्दरि! इस प्रकार वे दोनों पक्ष स्थित हैं, उस समय पवित्र होकर शिवदेव को स्मरण करता हुआ भलीभांति स्नान करके तथा जितेन्द्रिय होकर।।३१।। हाथ धोकर दूध वा अलक्त से केश मले, गन्ध और पुष्पों से हाथ पूर्ण कर, शुभ तथा अशुभ का चिन्तवन करे।।३२।। हे प्रिये! कनिष्ठिका से ले कर अंगुष्ठपर्यन्त दोनों हाथों में तीन पर्व के क्रम से।।३३।। प्रतिदिन तिथि को गिनकर पूर्व की ओर मुख करके सम्पुट आकारवाले हाथों से।।३४।। एक सौ आठ बार नवात्मक (नौ अक्षर का) मन्त्र जपे और प्रत्येक पर्व में यत्नपूर्वक हाथों को देखे।।३५।। जिस पर्व (पोरी) में भौंरों के समान वह रेखा दीख पड़े, हे प्रिये! कृष्ण पक्ष में अथवा शुक्ल पक्ष में उसी तिथि में मृत्यु जाननी चाहिये।।३६।। हे प्रिये! अब नाद से प्रकट हुए काल लक्षण को संक्षेप से कहता हूं, सुनो, गमन–आगमन को जानकर कर्म करना चाहिये।।३७।। हे सुश्रोणि! आत्मविज्ञान चार प्रकार यत्न से जाने अर्थात् क्षण, त्रुटि, लव, निमेष, काष्ठकालिका।।३८।। मुहूर्त्त, दिन, रात्र, पक्ष, मास, ऋतु, वत्सर, अब्द, युग, कल्प, महाकल्प।।३९।। आदि इस परिपाट से वह सदाशिवजी काल (समय) हरण करते हैं। वाम, दक्षिण के मध्य यह तीन मार्ग कहे हैं।।४०।। पांच दिनों से प्रारम्भ कराके पच्चीस दिनों तक वामचारगति में नाद होता है, यह नादप्रमाण तुमसे कहा।।४१।। हे सुन्दर वर्णवाली! भूत, रन्ध्र, दिशा, ध्वजा, रूप, नाद कालवेत्ता को वामचार गति में जानना चाहिये।।४२।। हे भामिनी! यदि उसमें ऋतु के विकारभूत गुण प्रतीत हो, तो प्राणवेत्ताओं ने दक्षिण प्रमाणवाला नाद कहा है।।४३।। और जब भूत संख्यक इडा आदि नाड़ि प्राणों को वहन करती है, तो वर्ष के भीतर उसकी मृत्यु हो जाती है, इसमें संशय नहीं।।४४।। दस दिन तक बराबर चलने से वह वर्षभर जीता है और पन्द्रह दिन तक चलने से एक वर्ष तक आयु शेष जाने।।४५।। और बीस दिन के प्रवाह से छः मास की आयु शेष जाने, यदि पच्चीस दिन तक वाम नाड़ी वहन करती है।।४६।। तो उसका जीवन तीन महीने गतायु जाने और छब्बीस दिन के मान से दो मास जीवन शेष कहा है।।४७।। और जो बाईं ओर में सत्ताइस दिन तक अविश्रान्त नाड़ी चलती हो, तब एक मास का जीवन कहा है।।४८।। इस प्रकार वाम वायु के प्रमाण से नाद का प्रमाण जानना चाहिये और दाहिनी ओर क्रम से चार दिन तक जीवन जाने।।४९।। हे देवि! चार स्थानों में नाड़ी स्थित होती है, सो सब यह सोलह नाड़ियां कही हैं, अब मैं उनका ठीक–ठीक प्रमाण कहता हूं।।५०।। छः दिवस से लेकर विधिपूर्वक संज्ञा तक इसके अन्तर्गत दिनों में वाम रन्ध्र में प्राण प्रकाशित होता है।।५१।। जब छः दिन तक नाद प्राण चढ़ा रहे, तो वह मनुष्य दो वर्ष आठ महीने और आठ दिन तक जीता है।।५२।। और जो सत्रह दिन तक प्राण आरूढ़ रहे, तो वह वर्ष भर सात महीने और

छः दिन तक जीता रहता है, इसमें सन्देह नहीं है ।।५३।। और आठ दिन बराबर चलने से वह दो वर्ष चार महीने और चौबीस दिनों तक जीता है ।।५४।। और जब नौ दिन इधर ही प्राणवायु चले, तो पांच महीने और बारह दिन इधर ही बाण चले, तो दो महीने तक जीवन होता है ।।५५।। जो प्राण पहले के समान कहे हैं, उनका काल पहले के समान कहा है और जो अन्तर्गत दिन कहे हैं, उससे मास कहते हैं ।।५६।। ग्यारह दिन इधर चलने पर वह एक वर्ष और नौ महीने तथा आठ दिन तक जीता है ।।५७।। बारह दिन इधर चलने पर एक वर्ष और सात महीने छः दिन तक जीता है ।।५८।। जब तेरह दिन तक इधर नाड़ी चलती है, तो उसकी आयु एक वर्ष चार महीने ।।५९।। और चौबीस दिन की शेष जानो, इसमें संशय नहीं, जब वाम में चौदह दिन प्राण वहन करते हैं, तो ।।६०।। उसका एक वर्ष छः मास चौबीस दिन तक जीवन शेष होता है, इसमें संशय नहीं ।।६१।। और पन्द्रह दिन के प्रवाह से वह नौ महीने और चौबीस दिन जीता है, ऐसा कालवेत्ताओं ने कहा है ।।६२।। और सोलह दिन के प्रवाह से दस महीने चौबीस दिन जीवन शेष रहता है ।।६३।। हे साधकेश्वरि! सत्रह दिन प्रवाह से नौ महीने और अठारह दिन तक जीवन शेष कहा है ।।६४।। हे देवि! जब अठारह दिनों तक वामचार होता है, तो आठ महीने बारह दिन जीवन शेष रहता है ।।६५।। हे देवि! जब तेइस दिन तक प्राण प्रवाह होता है, तो चौबीस दिनों तक जीवन शेष रहता है, यह निश्चय जानो ।।६६।। और चार महीने तथा छः दिन अधिक कहे हैं और चौबीस प्रवाह से वह तीन महीने अठारह दिन तक जीता है ।।६७।। इस प्रकार प्राण के संचार से अवान्तर दिन में जो काल होता है, सो तुमसे कहा ।।६८।। वाम संचार तो कहा, अब दक्षिण संचार को सुनो। जो अट्ठाइस प्रवाह से दक्षिण संचार हो, तो पन्द्रह दिनों तक जीता है ।।६९।। दस दिन के प्रवाह से दस दिन में मर जाता है और तीस दिन के प्रवाह से पांच दिन में मरता है ।।७०।। हे देवि! इकतीस दिन नित्य प्राण चलते हैं, तो निःसन्देह तीन दिन तक उसका जीवन शेष जानो ।।७१।। और जब सूर्य बत्तीस संख्या को वहन करता है, तो उसका जीवन दो दिन शेष रहता है, इसमें सन्देह नहीं ।।७२।। दक्षिण प्राण तो तुमसे कहा, अब मध्यस्थ प्राण का वर्णन करता हूं। जब वायु का प्रवाह एक भाग से मुख मण्डल में ।।७३।। दौड़ते हुए प्रवाह से होता है, तो वह एक दिन जीता है, पूर्ववेत्ताओं ने यह कालचक्र कहा है ।।७४।। हे देवि! गतायु पुरुषों का यह कालचक्र लोकों के हित के निमित्त वर्णन किया। क्या और कुछ सुनना चाहती हो?।।७५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां
कालज्ञानवर्णनं नाम पंचविंशोऽध्यायः ।। २५ ।।

*****

छब्बीसवाँ अध्याय

पार्वतीजी बोलीं- हे देव! आपने कालज्ञान का तो यथार्थ वर्णन किया, अब योगीकाल का वचन विधिपूर्वक कहिये ।।१।। जिस प्रकार काल सब प्राणियों में निकट हो जाता है और उस आये हुए काल को मृत्यु कैसे वंचित करती है? ।।२।। हे देव! यह सब मेरे ऊपर प्रेम करके कहिये, हे सबों को सुख देनेवाले! आप योगियों के हित के निमित्त वर्णन कीजिये ।।३।। शिवजी बोले- हे देवि! हे शिवे! सुनो, जो तुमने पूछा, सो सब मनुष्यों के हितार्थ मैं संक्षेप से कहता हूं।।४।। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश इन तत्त्वों का संयोग ही पांच भौतिक शरीर कहा है ।।५।। आकाश सर्वव्यापी तथा सबों में स्थित है, आकाश में ही सब लय हो जाते हैं और आकाश से ही प्रकट होते हैं ।।६।। हे सुन्दरि! उस आकाश के वियोग से सदा अपने धाम को प्राप्त होते हैं और उस सन्निपात की स्थिरता नहीं है ।।७।। वे सम्पूर्ण ज्ञानी मनुष्य वहां तप और मन्त्र के बल से सब कुछ जान लेते हैं, इसमें संशय नहीं ।।८।। पार्वतीजी बोलीं- उन आपसे जो आकाश नष्ट होता है तथा आपने स्वर्ग का एक स्वामी घोररूपी कराल काल भस्म किया और आपने स्तोत्रों द्वारा स्तुति करने पर सन्तुष्ट होकर फिर उसे अपनी प्रकृति को प्राप्त कराया ।।९।। और आपने उस काल से अनेक कथाएं वर्णन की और यह कहा कि, तुम अदृश्य (गुप्त) रूप होकर मनुष्यों का प्रचार करोगे और उस काल में आपने बड़ा प्रभाव देखा, वह काल आपके वर से फिर उठ खड़ा हुआ ।।१०।। हे काल! यहां ऐसी कोई वस्तु है, जिससे यह काल मारा जाता है, अब यह सब मुझसे कहिये। हे महेश! आप योगियों में श्रेष्ठ तथा प्रभु अपने आधीन परोपकार से शरीरधारी हैं ।।११।। शिवजी बोले- यह काल श्रेष्ठ देवताओं से तथा दैत्य और यक्ष, राक्षस, सर्प, मनुष्यों से भी नहीं मारा जा सकता, जो ध्यान समाधि में तत्पर हुए योगीजन देहधारी होते हैं, वे सुख से काल को मार सकते हैं ।।१२।। सनत्कुमारजी बोले- तीनों लोकों के स्वामी शिवजी का यह वचन सुनकर पार्वतीजी हँसकर बोलीं कि; हे नाथ! सत्य-सत्य कहिये जिससे काल मारा जाता है, तब शिवजी शीघ्र ही उनसे कहने लगे- हे चन्द्रमा की किरणों के समान मुखवाली! जो योगी कालरूपी सर्प को नष्ट करते हैं। हे अनघे! यह सब एकचित्त होकर सुनो ।।१३।। शिवजी बोले- हे वरारोहे! पंचभूतात्मक शरीर सदा उनके गुणों से युक्त होकर उत्पन्न होता है और फिर यह पार्थिव शरीर उन-उन में लय होता है ।।१४।। आकाश से वायु उत्पन्न होता है और वायु से अग्नि और अग्नि से जल, जल से पृथ्वी होती है ।।१५।। पृथ्वी आदि पंचभूत क्रम से आगे को प्राप्त हो

जाते हैं, उनमें पृथ्वी पांच गुनी और जल चार गुणा कहा है ।।१६।। तथा तेज तिगुना, वायु दुगुना और आकाश केवल शब्दगुणवाला और पृथ्वी आदि में व्यापक कहा है ।।१७।। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, पांचवां गन्ध यह जब अपने–अपने गुणों का त्याग करते हैं, तब प्राणी मर जाता है ।।१८।। और जब अपने गुणों को स्वीकार करते हैं, यह प्रकट होना कहलाता है, हे देवेशि! इस प्रकार पंचमहाभूतों को जानो ।।१९।। हे देवि! इस कारण काल के जीतने की इच्छा करनेवाले योगी को यत्नपूर्वक अपने–अपने काल में अंशों से उत्पन्न हुए गुण विचारने चाहिये ।।२०।। देवी बोली– हे योगवेत्ता! कौन ध्यान से अथवा कौन मन्त्र से काल जीता जाता है? यह सब मुझसे कहिये ।।२१।। शिवजी बोले– हे देवि! सुनो, योगियों के हितार्थ मैं कहता हूं, यह ज्ञान का कथन जिस किसी को नहीं देना चाहिये ।।२२।। हे भामिनि! श्रद्धावाले, भक्ति करनेवाले, बुद्धिमान्, जो नास्तिक न हो, ऐसे शुद्ध धर्मात्मा पुरुष को इसका उपदेश देना चाहिये ।।२३।। योगी श्रेष्ठ श्वास रोककर सुन्दर आसन पर बैठकर योग का प्रयोग करे और जब लोग सो जाँय, दीपक बुझाकर अन्धकार में योग को धारण करे ।।२४।। एक मुहूर्तभर तक कानों को तर्जनी अंगुली से ढके रहे, उससे अग्नि से प्रेरित हुआ शब्द सुनाई देता है ।।२५।। इस प्रकार उस शब्द के संयम से भुक्त हुए क्षणमात्र नष्ट हुए शब्द को ध्यान करनेवाला शीघ्र ही ज्वर उपद्रव आदि सम्पूर्ण रोगों को नाश करता है ।।२६।। जो मनुष्य नित्य इस प्रकार दो घड़ी तक आकार को देखता है, शब्द सुनता है, वह इच्छानुसार मृत्यु को जीतकर यहां अपनी अभिलाषा से भ्रमण करता है ।।२७।। वह सर्वज्ञ सर्वदर्शी होकर सम्पूर्ण सिद्धि को प्राप्त होता है, जिस प्रकार वर्षाकाल में मेघ आकाश में शब्दनाद करते हैं, ऐसा वह शब्द है ।।२८।। उसे सुनकर योगी शीघ्र ही संसार के बन्धन से छूट जाता है और वह नित्य योगों से सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म हो जाता है ।।२९।। हे देवि! यह शब्दब्रह्मविधि का क्रम तुमसे कहा, जैसे धान्य का इच्छुक मनुष्य कूड़े–कर्कट को छोड़ देता है, तैसे योगी सम्पूर्ण बन्धन को त्याग देता है ।।३०।। जो कोई शब्दब्रह्म को पाकर भी अन्य की इच्छा करते हैं, वे मानो अपनी मुट्ठी से आकाश का भेद करते हैं और क्षुधा तथा तृष्णा को चाहते हैं ।।३१।। परम सुख के देनेवाले मुक्ति के कारण अबाह्य अक्षर (अविनाशी) सम्पूर्ण उपाधि से रहित इस शब्द ब्रह्म को जानकर सुख पाते हैं ।।३२।। काल की फांसों से मोहित हुए तथा मृत्यु के वशीभूत हुए जो मनुष्य शब्दब्रह्म को नहीं जानते हैं, वे पापी और जड़बुद्धि हैं ।।३३।। तभी तक संसार में भ्रमते हैं, जब तक परमधाम को नहीं ढूंढ़ते, परमतत्त्व के विदित होने पर जन्मरूपी बन्धन से छूट जाते हैं ।।३४।। निद्रा–आलस्यरूपी महाविघ्नकारी शत्रु को यत्न से जीतकर सुखपूर्वक आसन पर बैठा हुआ योगी नित्य शब्दब्रह्म का अभ्यास करे ।।३५।। सौ वर्ष की आयुवाला मनुष्य अपनी आयुपर्यन्त अभ्यास करे,

तो वायु की वृद्धि, आरोग्यता, मृत्युञ्जय शरीर की स्तम्भता को प्राप्त होता है ।।३६।। वृद्धजनों में भी इस बात का विश्वास दीखता है, फिर युवा पुरुष की तो बात ही क्या है? इसमें न ओंकार है, न मन्त्र है, न कोई बीज है और न अक्षर है ।।३७।। हे प्रिये! हे देवि! यह अनाहत उच्चारण में न आनेवाला परम कल्याणदायक शब्दब्रह्म है, योगीजन यत्नपूर्वक शुभबुद्धि से इसका निरन्तर ध्यान करते हैं ।।३८।। प्राणवेत्ताओं से जाने हुए नौ शब्द उससे निकलते हैं, उनको तथा नादसिद्धि को यत्न से कहता हूं, सुनो ।।३९।। घोष, कांस्य (कासा) शब्द, शृंग, घण्टा, वीणा, बांसुरी से उत्पन्न होनेवाले तथा दुन्दुभि, शंख और नौवां मेघ की गर्जना यह शब्द हैं ।।४०।। इन नौ शब्दों को त्यागकर तुंकार का अभ्यास करे, इस प्रकार सदा ध्यान करता हुआ योगी पुण्य और पापों से लिप्त नहीं होता ।।४१।। हे देवि! जब योगाभ्यास से सुनता हुआ भी नहीं सुनता है, मृत्यु के समीप आने पर अभ्यास करनेवाला योगी रात-दिन इसी प्रकार स्थित हो ।।४२।। तो उससे सात दिनों में मृत्यु को जीतनेवाला शब्द उत्पन्न होता है और वह नौ प्रकार का कहा है, उसका यथार्थरूप से वर्णन करता हूं ।।४३।। पहला घोषनाद होता है, वह परम आत्मा को शुद्ध करनेवाला तथा सम्पूर्ण व्याधियों को हरनेवाला, वशी आकर्षण करनेवाला उत्तम नाद कहा है ।।४४।। द्वितीय कांस्यनाद होता है, वह प्राणियों की गति को रोकता है, विष को तथा सम्पूर्ण भूतग्रहों को बांधता है, इसमें सन्देह नहीं ।।४५।। तीसरा श्रृंगनाद होता है, वह आभिचारिक है, उसे शुक्र के उच्चाटन में तथा शुक्र के मारण में प्रयोग करे ।।४६।। चौथा घण्टानाद है, इसे शिव कहते हैं, यह सम्पूर्ण देवताओं का आकर्षण करनेवाला तथा भूमि पर मनुष्यों को वश में करनेवाला है ।।४७।। और योगी को उससे आकृष्ट हुई यक्ष और गन्धर्वों की कन्या यथोच्छित महासिद्धि देती है ।।४८।। पांचवां वीणानाद, योगियों से सुना जाता है, हे देवि! उस नाद से दूरदर्शन उत्पन्न होता है ।।४९।। वंशनाद को ध्यान करने से सब तत्त्वों को जान लेता है, दुन्दुभि को ध्यान करनेवाला जरा-मृत्यु से रहित होता है ।।५०।। हे देवेशि! शंख शब्द से इच्छानुसार रूप को प्राप्त होता है और मेघनाद से योगी को विपत्ति का संगम नहीं होता है ।।५१।। हे वरानने! जो एक मन से नित्य ब्रह्मरूपी तुंकार को ध्यान करता है, उसे इच्छानुसार कुछ असाध्य नहीं रहता है ।।५२।। वह सर्वदर्शी तथा कामरूपी होकर भ्रमण करता है और कभी विकारों से युक्त नहीं होता, वह साक्षात् शिव ही होता है, इसमें सन्देह नहीं ।।५३।। हे परमेशानि! यह नौ प्रकार का शब्दब्रह्म स्वरूप तुमसे कहा। अब क्या सुनना चाहती हो? ।।५४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां

कालवचनवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ।। २६ ।।

*****

सत्ताइसवाँ अध्याय

पार्वतीजी बोली- हे प्रभो! यदि आप प्रसन्न हों, तो योगाकाश से प्राप्त हुए वायु के पद को जैसे योगी प्राप्त होता है, सो सब मुझसे कहिये ।।१।। शिवजी बोले- पहले मैंने योगियों के हित की कामना से सब कहा, अब जैसे योगी काल को जीतकर वायु का लिंग होता है ।।२।। सो कहता हूँ, हे सुन्दरि! उससे दिन को जानकर जो योगी प्राणायाम में तत्पर होता है, वह आधे महीने में ही आये हुए काल को जीतता है ।।३।। हृदय में स्थित हुआ वायु सदा अग्नि को प्रदीप्त करनेवाला है, वह अनुपावक सर्वव्यापी बड़ा वायु बाहर-भीतर व्याप्त हो रहा है ।।४।। ज्ञान, विज्ञान, उत्साह यह सब वायु से उत्पन्न होते हैं, जिसने यहां वायु को जीता उसने सम्पूर्ण जगत् को जीत लिया ।।५।। योगी जरा, मृत्यु के विनाश की इच्छा से सदा धारण में स्थित होवे और भलीभाँति योग में तत्पर होकर धारणा और ध्यान में प्रवृत्त होवे ।।६।। हे मुने! जिस प्रकार लुहार अपने मुख से धौंकनी को भर के वायु से सब कर्म को साधता है, उसी प्रकार योगी अभ्यास करे ।।७।। तो सहस्र मस्तकवाला, सहस्रों नेत्र, पैर, हाथोंवाला वह योगी सब ग्रन्थियों को मेटकर दश अंगुल आगे स्थित होता है ।।८।। सिर के सहित व्याहृतिपूर्वक गायत्री को जपे, तीन बार प्राणों का रोकना प्राणायाम कहा जाता है ।।९।। चन्द्रमा और सूर्यादि ग्रह जाते, आते, लौटते हैं, परन्तु योग और ध्यान में तत्पर होनेवाले योगी आज तक भी नहीं लौटे ।।१०।। हे देवि! सौ वर्ष तप कर के जो द्विज कुशा के अग्रभाग के समान जल पीता है, तो ब्राह्मणों के एक प्राणायाम के समान फल को पाता है ।।११।। जो ब्राह्मण प्रातःकाल उठ कर एक प्राणायाम भी करता है, वह सम्पूर्ण पापों को नष्ट कर के शीघ्र ही ब्रह्मलोक को जाता है ।।१२।। जो सदा आलस्यरहित हो कर एकान्त में प्राणायाम करता है, वह जरा-मृत्यु को जीतकर वायु में प्राप्त होनेवाला तथा आकाशाचारी होता है ।।१३।। वह सिद्ध के रूप तथा कान्ति, बुद्धि, पराक्रम को और शूरता को प्राप्त करता है, वह वायु के समान गति को पाता है और सुख श्लाघा तथा परम सुख को पाता है ।।१४।। हे देवेशि! जिस प्रकार योगी वायुसिद्धि को प्राप्त होता है, सो सब तुमसे कह दिया और जैसे उसके तेज से सिद्धि मिलती है, यह सब तुमसे कहता हूं ।।१५।। मनुष्यों की बोलचाल से रहित अपने सुख के आसन पर सोते हुए और मध्यदेश में जहां चन्द्रमा तथा सूर्य के मिले हुए तेज का प्रकाश होता हो ।।१६।। वहां आलस्य रहित योगी अग्नि के तेज को भ्रूमध्य में प्रकाशित कर देखे, जैसे दीपकों से अन्धकार वर्जित होकर लोक में निःसन्देह प्रकाश होता है ।।१७।। और योगी नेत्रों को अंगुलियों से कुछ एक मसल कर तारों को देखकर उनको एक भाव से आधे मुहूर्त्त

तक ध्यान करे।।१८।। उसके पीछे अन्धकार में ईश्वर की श्वेत, रक्त, पीत, कृष्ण तथा इन्द्र के धनुष के समान कान्ति को देखता है।।१९।। भौं के मध्य में, ललाट में स्थित हुए बाल सूर्य के समान तेज को जानकर कामांगी योगी कामरूपधारी हो कर क्रीड़ा करता है।।२०।। कारण कि शान्त कर के प्रवेश को तथा दूसरे के शरीर में प्रवेश को अणिमा आदि गुणों की प्राप्ति तथा मन से सब कुछ देख लेना।।२१।। दूर से सुनने के विज्ञान को तथा स्वयं अदृश्य हो जाना, अनेक रूपधारी होना तथा निरन्तर अभ्यास योग में आकाश में विचरने के भाव को प्राप्त होता है।।२२।। शास्त्रों के अध्ययन करनेवाले अनेक शास्त्रों में निपुण ज्ञानी लोग भी पूर्व कर्मों के वश से मोहित होते हैं।।२३।। पाप से मोहित हुए मूढ़ लोग लोक में देखते हुए भी नहीं देखते, सुनते हुए जैसे बहिरे और अन्धे होते हैं, तैसे रहते हैं।।२४।। उन बड़े सूर्य के समान दीप्त अन्धकार से परे परमात्मा पुरुष को मैं जानता हूं, इस प्रकार उनको जानकर मृत्यु से छूट जाता है, मोक्ष होने के लिये इससे अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है।।२५।। हे देवि! यह तेज की उत्तम विधि तुमसे कही कि जिस प्रकार योगी काल को जीतकर अमरपन को प्राप्त होता।।२६।। हे देवि! और फिर वर्णन करता हूं, जैसे मृत्यु नहीं होती है, सावधान हो एकाग्र चित्त होकर सुनो।।२७।। हे देवि! भूतों की तथा योगियों की ध्यान करनेवालों की तुरीया (चौथी) गति होती है। स्थिर चित्तवाला योगी सुखासन पर यथा स्थान पर स्थित होकर।।२८।। उन्नत शरीरवाला वह योगी कर सम्पुट को बांधकर चोंच के समान आकारवाले मुख से धीरे-धीरे वायु का पान करे।।२९।। क्षणमात्र में जीव को देनेवाले तालु में स्थित हुए जल टपकते हैं, उस अमृत के समान शीतल जल को वायु से लेकर सूँघे।।३०।। इस प्रकार प्रतिदिन पान करता हुआ योगी मृत्यु के वश में नहीं होता, सुन्दर शरीरवाला, महा तेजस्वी, प्यास और भूख से वर्जित होता है।।३१।। बल में हाथी के समान, वेग में घोड़े के समान, दृष्टि में पक्षी के समान, दूर से श्रवण यह सब प्राप्त होता है, तैसे कुण्डली से लेकर कृष्ण केशों को सिकोड़ता हुआ गन्धर्व विद्याधर के समान वर्ण वाला होता होकर।।३२।। बुद्धि में बृहस्पति के समता को पाकर वह मनुष्य देवताओं के सौ वर्ष तक जीता है, इस प्रकार सुख से सदा स्वेच्छाचारी होकर आकाशचारी भाव को प्राप्त होता है।।३३।। हे वरानने! अब और दूसरी विधि का वर्णन करता हूं, जो देवताओं से भी छिपा हुआ है, सो सब यत्न से सुनो।।३४।। योगी अपनी जीभ को तालु में सिकोड़कर लगाने का अभ्यास करे, तो थोड़े काल के पश्चात् वह क्रम से लम्बायमान हो जाती है।।३५।। तब स्पर्श की हुई वह जिह्वा शीतल अमृत को टपकाती है, उस अमृत को जो योगी नित्य पान करता है, वह अमर हो जाता है।।३६।। रेफाग्र तथा लम्बकाग्र सहित जैसे हाथ से निचोड़ने से रस टपकता है, ऐसे निर्मल कमल की बिन्दु से खींचा हुआ वह देवताओं का आनन्द

करनेवाला अमृत परपद में गिरता है, संसार से तारनेवाले, पापों का नाश करनेवाले, काल से तारनेवाले साररूपी अमृत से जिसने यह शरीर पवित्र किया, देवताओं को आनन्द देनेवाला वह क्षुधा और प्यास से रहित और अमर होता है ।।३७।। हे पार्वति ! उन चारों योगियों से युक्त हुई यह पृथ्वी ही क्या ? किन्तु सम्पूर्ण संसार मात्र सुख पाने के लिये होता है, योग से ही संसार धारण होता है, प्राणी स्वप्न में भी जो कुछ दुःख स्वर्ग में अथवा भूमि पर पाता है, वह इन चारों को मानकर समर्थ होता है और दुःख से निवृत्त होता है ।।३८।। इस कारण मन्त्रों से, तप से, व्रत और नियमसहित औषधियों ने नीति विनययुक्त धर्मात्मा मनुष्यों से क्रमानुसार रक्त हुई और योग से प्रयुक्त हुई यह धात्री श्रेष्ठ फल देती है और भूतों के आदिदेव शिवजी चारों से युक्त होकर चलायमान नहीं होते हैं, इस कारण विधि सहित शिव नामक छायापुरुष को कहता हूं, जो साक्षात् शिवरूप है ।।३९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां

कालवचनशिवप्राप्तिवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।। २७ ।।

*****

अठाइसवाँ अध्याय

पार्वतीजी बोलीं- हे देवों के देव! हे महादेव! आपने काल को दूर करनेवाले ब्रह्मस्वरूप उत्तम योग लक्षण का संक्षेप में वर्णन किया ।।१।। अब छायापुरुष के श्रेष्ठ ज्ञान को योगियों के हित की कामना से विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ।।२।। शिवजी बोले- हे देवि! सुनो, अब छायापुरुष के लक्षण कहता हूं, जिसे भलीभाँति जानकर मनुष्य सम्पूर्ण पापों से छूट जाता है ।।३।। हे सुन्दर वर्णवाली! सूर्य वा चन्द्रमा को पीछे कर, श्वेतवस्त्र धारण कर, माला पहन के, गन्ध, धूपादि से सुगन्धित होकर ।।४।। सब मनोरथों को सिद्ध करनेवाले मेरे नौ अक्षरवाले "ॐ नमो भगवते रुद्राय" इस महामन्त्र को स्मरण करे और अपनी छाया को देखे ।।५।। श्वेतवर्ण स्वरूपी उस छाया को देखकर फिर आकाश में एक भाव होकर आदिकारण शिव को देखे ।।६।। तो उसे ब्रह्म की प्राप्ति होती है और वह ब्रह्महत्या आदि पापों से छूट जाता है, इसमें संशय नहीं, ऐसा कालवेत्ताओं ने कहा है ।।७।। यदि उस छाया को सिर हीन देखे, तो छः मास में उसका नाश होता है, सम्पूर्ण ही उस योगी का जैसे वाणीमय शास्त्र होता है, वैसा फल होता है ।।८।। उसके शुक्लवर्ण होने पर धर्म की वृद्धि जानकर कृष्णवर्ण में पाप कहा है और रक्तवर्ण में बन्धन और पीतवर्ण दीखे तो शत्रु को प्राप्त जाने ।।९।।

बिना नासिका की छाया होने पर विवाह और बन्धु का नाश तथा क्षुधा का भय होता है, कमर हीन होने पर भार्या नष्ट होती है, जंघारहित होने पर धन नष्ट होता है ।।१०।। चरणों के अभाव में विदेश होता है, हे महेश्वरि ! यह सब छायापुरुष का फल मैंने कहा, यह मनुष्य को यत्न से विचारना चाहिये ।।११।। हे महेश्वरि ! उस छायापुरुष को भलीभाँति देखकर आत्मा से आत्मा में प्रवेश करके अपने हृदय में मेरा नवात्मक मन्त्र जपे ।।१२।। एक वर्ष के बीतने पर मन्त्र जपनेवाले को ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसे वह सिद्ध नहीं कर सकता और अणिमा आदि आठों सिद्धियों को तथा खेचरत्व को प्राप्त होता है ।।१३।। अब और दुष्प्राप्य शक्तिज्ञान का वर्णन करता हूं, जिससे ज्ञानियों को लोक में आगे स्थित हुआ सा प्रत्यक्ष दीखता है ।।१४।। सर्पाकार की कुण्डली जो जानने के योग्य नहीं है, सो लिखते हैं, वह मार्ग में स्थित हुई मात्र दीखती है, किन्तु पढ़ी नहीं जाती ।।१५।। ब्रह्माण्ड के मस्तक (आकाश) में व्याप्त हुई नित्य वेदों में स्तुति की हुई सम्पूर्ण विद्याओं को उत्पन्न करनेवाली गुप्तविद्या नाम से कही जाती है ।।१६।। वह आकाश में स्थित हुए सब प्राणियों में स्थित होनेवाली दृश्य तथा अदृश्य हुई अचल नित्य व्यक्त और अव्यक्त सनातनी कही जाती है ।।१७।। बिना वर्णवाली तथा वर्ण से संयुक्त बिन्दुमालिनी कही है, योगी उसे भलीभाँति निरन्तर देखकर कृतकृत्य होता है ।।१८।। सब तीर्थों पर स्नान करने से तथा दान देने से जो फल होता है तथा सब यज्ञों का फल होता है, सो फल मालिनीरेखा देखने से प्राप्त होता है ।।१९।। सब तीर्थों में स्नान कर के सब दानों को देकर जो फल मिलता है, सो सब निःसन्देह प्राप्त होता है, यह मैंने सत्य-सत्य कहा ।।२०।। हे महेशानि ! हे देवि ! मनुष्य सब यज्ञों के करने से जो फल पाता है, सो इससे मिलता है, बहुत कहने से क्या है ? इससे मनुष्य सब मनोरथों को पाता है ।।२१।। इस कारण बुद्धिमान् योग के ज्ञान का नित्य अभ्यास करे, अभ्यास से सिद्धि उत्पन्न होती है और अभ्यास से योग बढ़ता है ।।२२।। अभ्यास से ज्ञान मिलता है, अभ्यास से मोक्ष प्राप्त होता है, अतः बुद्धिमान् को मोक्ष के निमित्त निरन्तर योगाभ्यास करना चाहिये ।।२३।। हे देवि ! यह भुक्ति-मुक्ति के फल देनेवाले योगाभ्यास को तुमसे कहा, अब किस तत्त्व को पूँछती हो ? सो सत्य-सत्य कहूंगा ।।२४।। सूतजी बोले- हे मुनीश्वरो ! परमार्थ के देनेवाले ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारजी के ऐसे वचन सुनकर पराशरजी के पुत्र व्यासजी प्रसन्न हो गये ।।२५।। व्यासजी ने अतिसन्तुष्ट होकर सर्वज्ञ, ब्रह्माजी के पुत्र, कृपालु सनत्कुमारजी को बारंबार प्रणाम किया ।।२६।। तब उन देव, विज्ञान के सागर सनत्कुमारजी की मुनियों ने तथा कालेय मुनि व्यासजी ने स्तुति की ।।२७।। व्यासजी बोले- हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं कृतार्थ हुआ, आपने मुझे ब्रह्मत्व को प्राप्त कराया, आपको नमस्कार है ।।२८।। सूतजी बोले- इस प्रकार वह व्यासजी महामुनि ब्रह्मपुत्र की स्तुति कर के परमानन्द में अति प्रसन्न हो कर मौन हो गये ।।२९।। वह

सनत्कुमारजी और उन्हें आमन्त्रण कर के उन व्यासजी से पूजे गये और अति प्रसन्न हो कर वे सनत्कुमारजी तथा व्यासजी अपने-अपने लोक को चले गये ।।३०।। हे ब्राह्मणो! यह सुखदायक, परमार्थ युक्त ज्ञान बढ़ानेवाला सन्तकुमारजी और व्यासजी का संवाद आपसे कहा ।।३१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां
छायापुरुषदर्शनवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ।। २८ ।।

*****

उन्तीसवाँ अध्याय

शौनकजी बोले- परमार्थ प्रदान करनेवाला सनत्कुमार और व्यासजी के संवाद का बड़ा इतिहास जो आपने कहा, सो मैंने सुना ।।१।। अब मैं यह सुनना चाहता हूं, कि जैसे ब्रह्माजी की सृष्टि उत्पन्न हुई है, सो व्यासजी से जो आपने सुना है, वह मुझसे कहिये ।।२।। सूतजी बोले- हे मुने! मुझसे वक्ष्यमाण अति अद्भुत शास्त्र के विस्तारवाली, बहुत अर्थवाली, सब पापों को दूर करनेवाली सुन्दर कथा सुनिये ।।३।। जो मनुष्य इसे पढ़ता है अथवा आद्योपान्त सुनता है, वह अपने वंश को धारण कर के स्वर्गलोक में जाता है ।।४।। जो नित्य सत्-असत् स्वरूप प्रधान पुरुष हैं, वह लोकों को उत्पन्न करनेवाले प्रधान पुरुष हो कर सृष्टि को उत्पन्न करने लगे ।।५।। हे मुनिश्रेष्ठ! सब प्राणियों को उत्पन्न करनेवाले नारायण में तत्पर अतुल तेजवाले उन ब्रह्माजी को जानो ।।६।। हे मुनिश्रेष्ठ! जिनसे सब प्रकाशित होते हैं, उन स्वयम्भू मुनि को नमस्कार है ।।७।। उन ईश्वर हिरण्यगर्भ पुरुष को नमस्कार कर के फिर श्रेष्ठ सृष्टि की उत्पत्ति को कहता हूं ।।८।। प्रत्येक समय के प्राप्त होने पर ब्रह्माजी उत्पन्न करनेवाले, विष्णुजी रक्षा करनेवाले, शिवजी संहार करनेवाले हैं, उस सृष्टि को कोई उत्पन्न करनेवाला अन्य कोई नहीं है ।।९।। उन भगवान् स्वयम्भू ने अनेक प्रजा को सृजने की इच्छा से पहले जलों को उत्पन्न किया और जलों में वीर्य को डाला ।।१०।। जल ही नार नाम से कहे हैं, जल ही नर के पुत्र हैं, जिसका उन जलों में स्थान है, उसे नारायण कहते हैं ।।११।। जल में स्थित हुआ वह अण्डा सोने के समान कान्तिवाला हो गया, वहां ब्रह्माजी ने स्वयं यज्ञ किया, तो वे स्वयम्भू नाम से विख्यात हुए ।।१२।। वहां भगवान् हिरण्यगर्भ ने एक वर्ष निवास कर के उस अण्डे को दो खण्डों में कर के आकाश और भूमि को बनाया ।।१३।। और प्रभु ने नीचे के आधे भाग में चौदह भुवन प्रयुक्त किये और उन दोनों खण्डों के मध्य में आकाश को रचा ।।१४।। जलों के ऊपर स्थित हुई भूमि को

तथा स्वर्ग में, आकाश में दश दिशाएं बनाईं और उसी समय में मन, वाणी, काम, क्रोध आदि तथा रति को बनाया ।।१५।। मरीचि, अत्रि, अंगिरा ऋषियों को तथा पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ आदि महा तेजस्वी सप्तऋषियों को उत्पन्न किया ।।१६।। पुराण में यह सात ब्राह्मण नाम से निश्चय प्रसिद्ध हैं, तत्पश्चात् ब्रह्माजी ने क्रोध से ग्यारह रुद्रों को उत्पन्न किया ।।१७।। सब के पूर्वज सनत्कुमार ऋषि को तथा सप्तऋषि और रुद्रों को उत्पन्न किया ।।१८।। इस कारण सनत्कुमारजी संक्षिप्त तेज से स्थित होकर उन सात देवर्षियों के पूजित महावंश विख्यात हुए ।।१९।। वे क्रिया करनेवाले तथा महर्षियों से शोभायमान हुए, फिर बिजली, अशनि, मेघों को तथा रोहित इन्द्र के धनुष को ।।२०।। तथा आदि में जलों को उत्पन्न किया, फिर मेघों को उत्पन्न किया, तत्पश्चात् यज्ञ की सिद्धि के निमित्त ऋक्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद को बनाया ।।२१।। उन वेदों से पूज्य देवताओं का यजन किया, ऐसा नित्य सुनते हैं, मुख से देवताओं को उत्पन्न किया और वक्षःस्थल से पितरों को, जंघा से मनुष्यों को तथा जघन (जंघा के नीचे के भाग) से दैत्यों को उत्पन्न किया।।२२।। उनके शरीरों से ऊँचे जीवों को उत्पन्न किया, जल सम्बन्धी प्रजा रचना करते हुए ब्रह्माजी से ।।२३।। उत्पन्न हुई प्रजा जब नहीं बढ़ी, तब अपने शरीर को स्त्री और पुरुष रूप से दो भागों में किया ।।२४।। तब अपनी महिमा के संसार को व्याप्त कर के सम्पूर्ण प्रजा को उत्पन्न किया, विराट को उत्पन्न किया, वह विष्णुजी विराट पुरुष हो गये।।२५।। और दूसरे उन मनु को जानो, मनु के पश्चात् उन प्रभु वैराज पुरुष ने सब प्रजा को उत्पन्न किया ।।२६।। नारायण की रची हुई अमैथुनी प्रजा आयुवाली, कीर्तिवाली, प्रशंसनीय हुई ।।२७।। हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार मैंने आपसे आदिसृष्टि की रचना को कहा, मनुष्य इस आदिसर्ग को जानकर मनोवांछित गति को प्राप्त होते हैं ।।२८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां
आदिसृष्टिवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ।। २९ ।।

*****

तीसवाँ अध्याय

सूतजी बोले– प्रजा रचने पर आप प्रजापति पुरुष ने अयोनिज शतरूपा नामवाली भार्या को पाया ।।१।। आकाश को व्याप्त करके स्थित होनेवाले प्रजापति की महिमा से धर्म में वह महात्मा तथा शतरूपा उत्पन्न हुई ।।२।। वह सौ वर्ष तक अति कठिन तप करके दीप्त तपस्वी पति को प्राप्त हो गयी ।।३।। वह पुरुष स्वायंभुवमुनि से उत्पन्न

हुए और मनु कहलाये, उनकी इकहत्तर युगवाली मन्वन्तर संज्ञा कही जाती है ।।४।। उन विराटपुरुष से वीरा शतरूपा उत्पन्न हुई और वीरका में प्रियव्रत तथा उत्तानपाद उत्पन्न हुए ।।५।। कर्दम प्रजापति से काम्यानाम महाभागा उत्पन्न हुई, काम्या से सम्राट्, साक्षि, अविट्प्रभु नामवाले तीन पुत्र उत्पन्न हुए ।।६।। प्रभु उत्तरपाद ने इन्द्र के समान पुत्रों को उत्पन्न किया और अति तेजस्वी, अपने आनन्द देनेवाले सुन्दर ध्रुव नामक पुत्र को भी उत्पन्न किया ।।७।। सुन्दर कमरवाली धर्म की कन्या सुनीति नाम से विख्यात हुई, वह धर्म से उत्पन्न हुई और ध्रुव की माता हुई ।।८।। उस दिव्य बालक ध्रुव ने तीन सहस्र वर्ष तक अविनाशी स्थान की याचना से वन में तप किया ।।९।। तब प्रभु ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर उनको सप्तर्षियों के आगे अपने समान अचल स्थान दिया ।।१०।। फिर उन ध्रुव से पुष्टि तथा धान्य नामवाले दो पुत्र उत्पन्न हुए, पुष्टि ने समुत्था स्त्री से पापरहित ।।११।। रिपु, रिपुंजय, विप्र, वृकल, वृपतेजस नामवाले पांच पुत्रों को उत्पन्न किया, रिपु की स्त्री ने चाक्षुष नामवाले सब दिशाओं में प्रसिद्ध पुत्र को उत्पन्न किया ।।१२।। चाक्षुषमनु ने पुष्करिणी स्त्री में वरुण को उत्पन्न किया, मनु से नड्वला स्त्री में बड़े तेजस्वी दस पुत्र उत्पन्न हुए ।।१३।। हे मुनिश्रेष्ठ! उस कन्या में वैश्योत्पन्न प्रजापति से पुरु, मास, शतद्युम्न, तपस्वी सत्यवित्, कवि ।।१४।। अग्निष्टोम, अतिरात्र, अतिमन्यु, सुयश नामवाले दश पुत्र उत्पन्न हुए, पुरु से आग्नेयी कन्या ने बड़ी कान्तिवाले छः पुत्रों को उत्पन्न किया ।।१५।। अंग, सुमनस्, ख्याति, स्मृति, अंगिरस, गय नामवाले यह पुत्र हैं। फिर अंग से सुनीथा स्त्री ने एक वेन नामक पुत्र को उत्पन्न किया ।।१६।। वेन के दुराचार से उन मुनियों को बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ और उन धर्मात्मा ऋषियों ने वेन को हुंकार से मार दिया।।१७।। तब सुनीथा ने सन्तान होने के निमित्त उन ऋषियों से प्रार्थना की, तब ज्ञानी मुनियों ने उसके दाहिने हाथ को मथा ।।१८।। वेन के हाथ को मथने पर उससे पृथु उत्पन्न हुए, वह धनुषधारी कवच पहने हुए, तेज से सूर्य के समान हुए ।।१९।। वह विष्णुजी का अवतार प्रजापालन के कारण तथा धर्म की रक्षा करने के निमित्त और दुष्टों को दण्ड देने के निमित्त हुआ ।।२०।। वेन के पुत्र क्षत्रपूर्वज पृथु ने पृथ्वी की रक्षा की, वह राजसूय यज्ञ करनेवालों में पहला राजा हुआ ।।२१।। हे मुनिश्रेष्ठ! उससे ज्ञानी सूत तथा मागध नामवाले दो पुत्र उत्पन्न हुए, उस राजा ने सबके हित के निमित्त इस पृथ्वी को दुहा ।।२२।। वह राजा देवता, ऋषि, दैत्य, राक्षस, मनुष्य आदि सबों की आजीविका देनेवाला तथा सौ यज्ञ करनेवाला हुआ ।।२३।। पृथु के विजिताश्व, हर्यक्ष नामवाले धर्मात्मा पृथ्वी पर विख्यात बड़े पराक्रमी, शास्त्रों को जाननेवाले दो पुत्र उत्पन्न हुए ।।२४।। शिखण्डिनी ने प्राचीनबर्हिष पुत्र को उत्पन्न किया, उसके पृथ्वीतल पर भ्रमण करनेवाला प्राचीनाग्र कुशा नामवाला पुत्र उत्पन्न हुआ ।।२५।। उसने समुद्र की पुत्री को धर्म से विवाहा, तब

महाप्रभु राजा स्त्री को प्राप्त होकर अत्यन्त शोभित हुए ।।२६।। तब अनेक यज्ञ करनेवाले प्राचीनबर्हिष राजा के समुद्र की कन्या से दस दिव्य पुत्र उत्पन्न हुए ।।२७।। वे सब प्राचेतस नामवाले धनुर्वेद पारगामी अपने-अपने धर्माचरण में तत्पर हुए और उन्होंने बड़ा तप किया ।।२८।। वे दश सहस्र वर्ष तक समुद्र के जल में शयन करके शिवजी के मन्त्र को जपते हुए शिवजी के ध्यान में तत्पर हुए ।।२९।। पृथ्वी पर तप करने पर वहां वृक्ष उत्पन्न हो गये, तब बिना रक्षा की हुई पृथ्वी पर प्रजा का क्षय होने लगा ।।३०।। उन वृक्षों को देखकर वे सब श्रेष्ठ वरों को प्राप्त होकर तप करने से निवृत्त हो गये, हे मुनिश्रेष्ठ! तब तप के बलवाले उन वृक्षों को जलाने की इच्छा करनेवाले वे क्रोध करने लगे ।।३१।। और उन प्राचेतसों ने अपने मुखों से अग्नि, पवन को उत्पन्न किया, तब वायु ने उन वृक्षों को उखाड डाला, अग्नि ने उनको भस्म किया ।।३२।। तत्पश्चात् वृक्षों का विनाश देखकर कुछेक वृक्षों के शेष रहने पर प्रतापी सोमराजा उनके समीप जाकर यह बोले ।।३३।। सोम बोले- हे प्राचीनबर्हिष के पुत्रो! कोप का दमन करो, यह वरवर्णिनी नामवाली वृक्षों की कन्या अनुभव की हुई है ।।३४।। भविष्य को जाननेवाले मैंने उसको गर्भ में पोषण किया, सो हे महाभाग! यह सोमवंश को बढ़ानेवाली तुम्हारी भार्या होवे ।।३५।। इसमें सृष्टिकर्ता महातेजस्वी पुरातन ब्रह्मपुत्र विद्वान् दक्ष प्रजापति उत्पन्न होंगे ।।३६।। तुम्हारे आधे तेज से तथा मेरे इस तेज से ब्रह्म तेजोमय राजा प्रजा को बढ़ावेगा ।।३७।। तब सोम के वचन से उन प्राचेतों ने वृक्षों से उत्पन्न हुई उस वरवर्णिनी भार्या को प्रीतिपूर्वक धर्म से ग्रहण किया ।।३८।। उस कन्या से उन प्राचेतों के दक्ष नाम प्रजापति उत्पन्न हुए, हे मुने! वह महा तेजस्वी सोम के अंश से उत्पन्न हुए ।।३९।। तब दक्ष ने मन से अचर तथा चर दो पैरवाले तथा चौपाये जीवों को उत्पन्न करके मैथुनी सृष्टि की रचना का प्रारम्भ किया ।।४०।। तब दक्ष ने वीरण प्रजापति की वीरणी नामवाली पतिव्रता कन्या को धर्म से विधिपूर्वक विवाहा ।।४१।। उस कन्या से उन्होंने पुण्यात्मा दस सहस्र पुत्रों को उत्पन्न किया, वे सब नारदजी के उपदेश से विरक्त हो गये ।।४२।। यह सुनकर फिर उन्होंने उसी कन्या में सुबलाश्व नामवाले सहस्र पुत्रों को उत्पन्न किया ।।४३।। वे सब भी नारदमुनि के उपदेश से अपने भाइयों के मार्ग में गये अर्थात् विरक्त हो गये, विरक्त भिक्षुक होकर अपने पिता के समीप में नहीं गये ।।४४।। यह सुनकर क्रोधित होकर दक्ष ने मुनि नारदजी को यह शाप दिया, हे कलहप्रिय! तुम कहीं भी स्थिति को नहीं पाओगे ।।४५।। हे मुनीश्वर! तत्पश्चात् ब्रह्माजी से शान्त किये हुए दक्ष ने अपने गुणों से महा ज्वाला स्वरूप वाली स्त्रियों को उत्पन्न किया ।।४६।। और उन्होंने दस स्त्रियों को धर्म को दिया और तेरह कश्यप को, ऐसे ही दो ब्रह्माजी के पुत्र को तथा दो अंगिरा को ।।४७।। हे मुनिश्रेष्ठ! प्रभु दक्ष ने दो कन्या विद्वान् कृशाश्व मुनि को दीं और श्रेष्ठ चन्द्रमा को नक्षत्र

नामवाली सत्ताइस कन्यायें प्रदान कीं।।४८।। तब उन दक्ष की कन्याओं से प्रसिद्ध हुए देवता, असुर आदि बहुत पुत्र उत्पन्न हुए, उनसे यह संसार पूर्ण हो गया।।४९।। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! तब से लोक में मैथुनी सृष्टि उत्पन्न हुई। संकल्प से, दर्शन से, स्पर्श से पहली सृष्टि कही है।।५०।। शौनकजी बोले- हे महातपस्वी! पहले आपने यह कहा कि, ब्रह्माजी के अंगूठे से दक्ष उत्पन्न हुए, फिर उन्होंने प्राचेतस भाव को कैसे प्राप्त किया?।।५१।। हे सूतजी! मेरे इस सन्देह को निवारण करने को योग्य हो, यह आश्चर्य है, कि वह किस प्रकार सोम के श्वसुर हुए?।।५२।। सूतजी बोले- हे मुने! प्राणियों की उत्पत्ति और निषेध नित्य होता रहता है और प्रत्येक कल्प में सम्पूर्ण दक्ष आदि यह मुनि होते हैं।।५३।। जो मनुष्य दक्षप्रजापति की चर और अचर सहित इस सृष्टि को जानता है, वह सन्तान युक्त आयु से पूर्ण होकर स्वर्गलोक में जाता है।।५४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां

सर्गवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः।। ३०।।

*****

इकतीसवाँ अध्याय

शौनकजी बोले- हे सूतपुत्र! देवताओं की तथा दैत्यों की, गन्धर्व, सर्प, राक्षसों की इस सृष्टि को शीघ्र ही मुझसे विस्तारपूर्वक कहिये।।१।। सूतजी बोले- जब वीरण प्रजापति की प्रजा न बढ़ी, तो सृष्टि के कारण तप में प्रवृत्त हुई कन्या को बुलाया।।२।। हे महाप्राज्ञ! तब उसने मैथुन के धर्म से अनेक प्रजा को उत्पन्न किया, सुनिये, मैं संक्षेप में वर्णन करता हूं।।३।। दक्ष प्रजापति ने उस वीरिणी के आश्रय से वीर्यवान् पांच सहस्र पुत्रों को उत्पन्न किया।।४।। उनको उत्पन्न हुए देखकर नारदजी उनसे बोले- सब उत्पन्न हुई मनुष्यों की सृष्टि ब्रह्माजी से अथवा कश्यपजी से दक्ष की कन्याओं में उत्पन्न होगी, ऐसा सुना है, यह उन सबों से कहा।।५-६।। तुम सब बालक हो, बिना जाने कैसे सृष्टि को करोगे? किसी दिशा को नहीं जानते हो, इस कारण उस पृथ्वी भर को जानो।।७।। ऐसा कहने पर वे सब बल से सम्पूर्ण दिशाओं को जानने के लिये चले गये, पृथ्वी के अन्त को न पाकर फिर वे अपने पिता के घर लौट कर नहीं आये।।८।। ऐसा जानकर फिर दक्ष ने पांच सौ पुत्रों को उत्पन्न किया, उनसे भी सब कुछ देखनेवाले नारदजी बोले।।९।। नारदजी ने कहा- तुम सब भूमि के मान को नहीं जानते हो, तो सृष्टि को किस प्रकार करोगे? तुम सब बालक किस प्रकार सृष्टि को रचने में उद्यत हो।।१०।। सूतजी बोले- वे सब भी उनके वचन को सुनकर सब दिशाओं में चले गये,

जैसे सुबलाश्व और हर्यश्व नामवाले दक्ष के पुत्र पहले निकल गये थे ।।११।। अनन्त पुष्कर को प्राप्त होकर वे भी तिरस्कार को प्राप्त हुए और समुद्रों से जैसे नदियां, तैसे अब तक भी नहीं लौटे ।।१२।। हे मुने! उस दिन से लेकर भाई अपने भाई के खोजने में प्रवृत्त होकर चला जाय, तो और नष्ट हो जायगा, सो सृष्टि का कार्य न हुआ ।।१३।। उन पुत्रों को नष्ट हुआ जानकर उन दक्ष प्रजापति ने क्रोध से महात्मा नारदजी को शाप दिया ।।१४।। हे कलहप्रिय! तुम कहीं भी स्थित नहीं हो पाओगे और लोक में तुम्हारी समीपता से सदा कलह होगा ।।१५।। तब दक्ष प्रजापतिजी ब्रह्माजी द्वारा शान्त किये गये, फिर उन्होंने साठ कन्याओं को वीरणी में उत्पन्न किया, ऐसा हम ने सुना है ।।१६।। तब उन्होंने दस कन्याएँ धर्म को दीं, तेरह कश्यपजी को तथा सत्ताईस सोम को और चार कन्याएँ अरिष्टनेमि को दीं ।।१७।। इसी प्रकार दो कन्याएँ ब्रह्मपुत्र को तथा दो अंगिरा को और दो विद्वान् कृशाश्व को दीं, उन कन्याओं के नाम मुझसे सुनिये ।।१८।। हे मुने! अरुन्धती, वसुयामि, लम्बा, भानु, मरुत्वती, संकल्पा, मुहूर्त्ता, सन्ध्या, विश्वा ।।१९।। हे मुने! यह तो धर्मपत्नी हैं और इनकी सन्तान को सुनिये, विश्वा के विश्वेदेवा तथा साध्या के साध्यगण उत्पन्न हुए ।।२०।। मरुत्वती से मरुत्वान् तथा वसु से अष्टवसु, भानु से द्वादश भानु और मुहूर्त्ता से मुहूर्त्तज उत्पन्न हुए ।।२१।। लम्बा से घोष, यामिजा से नागवीथी और अरुन्धती से पृथ्वी विषम उत्पन्न हुए ।।२२।। संकल्पा से सत्यवादी संकल्प हुए, हे शौनकजी! अयादि आठ वसु के जो पुत्र हुए उनके नाम सुनिये ।।२३।। अय, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष, प्रभास नामवाले यह आठ वसु कहे हैं ।।२४।। अय के पुत्र वैतण्ड तथा श्रम और शान्तमुनि हुए और ध्रुव का पुत्र संसार में विख्यात सर्वोत्पादक भगवान् काल हुआ ।।२५।। सोम के पुत्र भगवान् वर्चा जिससे वर्चस्वी होता है, धर के पुत्र द्रविण तथा हुतहव्य हुए ।।२६।। मनोहरा से शिशिर, प्राण, रमण पुत्र उत्पन्न हुए और अनिल की शिवा नामवाली भार्या थी, जिसका पुत्र पुरोजव नाम से विख्यात हो गया ।।२७।। तथा अनिल के और भी दो पुत्र अविज्ञात गति से श्रियावृत, सरकण्डों के वन में अग्निपुत्र कुमार नामवाले हुए ।।२८।। उनके शाख, विशाख तथा पीछे से नैगमेय पुत्र हुए तथा कृत्तिका की सन्तान कार्तिकेय हुए ।।२९।। और प्रत्यूष के पुत्र देवल ऋषि नाम से हुए तथा देवल के भी बुद्धिमान् प्रजावाले दो पुत्र उत्पन्न हुए ।।३०।। तब बृहस्पति की बहिन ब्रह्मचारिणी सुन्दर स्त्री योगसिका सम्पूर्ण संसार में चारों ओर भ्रमण करने लगी ।।३१।। हे महाभाग! वसुओं में आठवें प्रभास की स्त्री ने विश्वकर्मा प्रजापति पुत्र को उत्पन्न किया ।।३२।। वह सहस्रों शिल्पों को करनेवाला तथा देवताओं का कारीगर सम्पूर्ण आभूषणों को बनाने वाला शिल्पवानों में श्रेष्ठ हुआ ।।३३।। जिसने सब देवताओं के विमानों को बनाया तथा जिन महात्मा के शिल्प से सम्पूर्ण मनुष्य जीते हैं ।।३४।। दूसरा मत कहते

हैं। रैवत, अज, भव, भीम, वाम, उग्र, वृषाकपि, अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, बहुरूप, महान।।३५।। हे मुने! सरूपा से उत्पन्न हुए पुत्र की स्त्री ने कोटि रुद्र को उत्पन्न किया, परन्तु उनमें ग्यारह मुख्य हुए, उनके नाम मुझसे सुनिये।।३६।। अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, त्वष्टा, रुद्र, वीर्यवान्, हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित।।३७।। वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी, रैवत यह ग्यारह तीनों लोकों के स्वामी रुद्र कहे हैं।।३८।। हे मुनिसत्त! इस प्रकार अति तेजस्वी रुद्रों की सौ संख्या कही, अब कश्यप की पत्नियों के नाम सुनिये।।३९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां
सर्गवर्णनं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ।। ३१ ।।

*****

बत्तीसवाँ अध्याय

सूतजी बोले- अदिति, दिति, सुरसा, अरिष्टेला, दनु, सुरभि, विनता, इला, ताम्रा, क्रोधवशा।।१।। कद्रू, मुनि यह नाम कहे, हे विप्रेन्द्र! उनसे जो सन्तान हुई उनके नाम सुनिये। पहले श्रेष्ठ मन्वन्तर में बारह संख्यक तुषित नामवाली देवता हुईं।।२।। वे सब आपस में बोले कि, वैवस्वत मन्वन्तर के उपस्थित होने पर तथा यशस्वी चाक्षुषमनु के अन्तर में।।३।। सब लोकों के हित के निमित्त परस्पर मिलकर आते हुए उनसे प्रवेश हो, यह बोले।।४।। हम सब अदिति के गर्भ में प्रवेश होकर मन्वन्तर में उत्पन्न होंगे, तो सत्पुरुषों का कल्याण होगा। ऐसा कहकर वे सब चाक्षुषमनु के अन्तर में।।५।। वे सब मरीचि के पुत्र कश्यपजी से अदिति में उत्पन्न हुए और फिर दस कन्याओं से विष्णुजी, इन्द्र भी उत्पन्न हुए।।६।। अर्यमा, धात्रा, त्वष्टा तथा पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्रावरुण।।७।। अंश, भग तथा अति तेजस्वी बारह सूर्य हुए और चाक्षुष मन्वन्तर में जो पहले तुषिता नामवाले देवता हुए थे।।८।। चाक्षुषमनु के अन्तर में वही पहले बारह आदित्य कहे हैं, हे शौनकजी! यह क्रम से अदिति की सन्तानें कही हैं।।९।। जो श्रेष्ठ व्रतवाली सत्ताइस सोमपत्नी कहीं हैं, उनकी अति तेजस्वी दीप्ति नामक सन्तान कही है।।१०।। और अरिष्टनेमि की स्त्रियों के सोलह पुत्र हुए, विद्वान् बहुपुत्र की जो चार कन्याएं कही हैं।।११।। हे देवर्षे! हे मुने! कृशाश्व के देव प्रहरण कहे हैं तथा अर्चिष भार्या में धूम्रकेश हुए।।१२।। उनकी स्वधा और सती दो स्त्रीयाँ हुईं, उनमें स्वधा ज्येष्ठा और सती कनिष्ठा थी, स्वधा ने पितरों को उत्पन्न किया और सती ने वेद और अंगिरा को उत्पन्न किया।।१३।। यह सर्व देवताओं के निकाय तैंतीस कामनाओं से उत्पन्न होनेवाले सहस्र युग के अन्त में उत्पन्न होते हैं।।१४।। जैसे यहां सूर्य का उदय और अस्त

सदा होता है, वैसे वे देव निकाय भी प्रत्येक युग में उत्पन्न होते हैं ।।१५।। कश्यपजी से दिति में दो पुत्र उत्पन्न हुए, जो हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष नामवाले महा पराक्रमी थे, ऐसा हमने सुना है ।।१६।। विप्रचित्ति से सिंहिका कन्या उत्पन्न हुई, हिरण्यकशिपु के चार पुत्र अतितेजस्वी हुए ।।१७।। अनुह्लाद, ह्लाद, संह्लाद और प्रह्लाद नामवाले हुए, उनमें प्रह्लाद विष्णुजी का भक्त हुआ ।।१८।। सूर्या से अनुह्लाद के पुलोमा, महिष हुए, ह्लाद के धमनि भार्या से वातापि और इल्वल पुत्र उत्पन्न हुए ।।१९।। संह्लाद की कृति स्त्री ने पंचजन नामक पुत्र को उत्पन्न किया, प्रह्लाद के पुत्र विरोचन तथा उनके पुत्र बलि हुए ।।२०।। हे मुनीश्वर! बलि के अशना से सौ पुत्र उत्पन्न हुए, वह बली महाशैव तथा शिवजी की भक्ति में तत्पर ।।२१।। दानशील, उदार, पवित्र कीर्तिवाले तपस्वी हुए बलि का ज्येष्ठ पुत्र बाणासुर जो शैव और बुद्धिमान् था, जिसने भलीभांति शिवजी को सन्तुष्ट करके गणपति का पद प्राप्त किया ।।२२।। महात्मा बाणासुर की वह कथा आपने पहले ही सुन ली है, कि जिस वीर ने युद्ध में श्रीकृष्णजी को प्रसन्न किया था ।।२३।। हिरण्याक्ष के पांच पुत्र पण्डित, महाबली, कुकुर, शकुनि, भूतों का सन्ताप देनेवाला ।।२४।। महानाद, विक्रान्त, कालनाभ नामवाले हुए, हे मुने! अब दिति के पुत्रों को तथा दनु के पुत्रों को सुनिये ।।२५।। दनु के सौ पुत्र तीव्र पराक्रमवाले हुए। अयोमुख, शम्बर, कपोल तथा वामन ।।२६।। वैश्वानर, पुलोमा, विद्रावण, महाशिर, स्वर्भानु, वृषपर्वा, वीर्यवान् विप्रचित्ति ।।२७।। यह सब दनु के पुत्र कश्यपजी से उत्पन्न हुए, हे मुने! हे निष्पाप! सुनिये, मैं प्रसंग से उन पुत्रों का वर्णन करता हूं ।।२८।। स्वर्भानु की प्रभा नामवाली कन्या हुई तथा पुलोमा की शची पुत्री उपदानवी हयसिरा शर्मिष्ठा यह वृषपर्वा की कन्या हुई ।।२९।। पुलोमा और पुलोमिका यह दोनों वैश्वानर की पुत्रीयाँ हुईं और दोनों के मारीचि से बड़ी पराक्रमी अनेक सन्तानें हुईं ।।३०।। फिर उन दोनों के साठ सहस्र पुत्र दानवों को आनन्द देनेवाले बड़े तप से मरीचि से उत्पन्न हुए ।।३१।। दानवों के महाबली पौलोम कालखंज पुत्र हुए, देवताओं के अवध्य हिरण्यपुरवासी पुत्र हुए ।।३२।। जिनको पितामह के प्रसाद से अर्जुन ने मारा था और विप्रचित्ति के सिंहिका से अनेक पुत्र हुए ।।३३।। वे दैत्य और दानव के संयोग से अतिपराक्रमी महाबली सैंहिकेय नाम से तेरह पुत्र उत्पन्न हुए ।।३४।। सुबलि, राहु, शल्य, बल, महाबल, वातापि, नमुचि, इल्वल तथा स्वसृप ।।३५।। अजिक, नरक, कालनाभ, शरमाण, शरकल्प यह वंश को बढ़ानेवाले पुत्र हुए ।।३६।। इनके दनुवंश को बढ़ानेवाले बहुत पुत्र तथा पौत्र उत्पन्न हुए, विस्तार होने के कारण नहीं वर्णन किये ।।३७।। संह्लाद के कुल में दैतेय निवातकवच हुए और उसी कुल में तप से शुद्धात्मा मरुत हुए ।।३८।। ताम्रा से महासत्ववाले षणमुख आदि पुत्र कहे हैं तथा काकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी तथा शुकी ।।३९।। गृद्ध्रकाश्वी, उलूकी यह ताम्रा कन्या से कहे हैं,

काकी ने काकों को उत्पन्न किया तथा उलूकी ने प्रत्येक उलूकों को उत्पन्न किया।।४०।। तथा श्येनी ने श्येनों को और भासी ने भासों का, गृद्धी ने गृद्धों को और शुकी ने शुकों को, सुग्रीवी ने शुभपक्षियों को उत्पन्न किया।।४१।। कश्यपजी की स्त्री ताम्रा ने घोड़े, ऊंट, गधों को उत्पन्न किया, इस प्रकार यह ताम्रा का वंश वर्णन किया।।४२।। विनता के अरुण तथा गरुड ये दो पुत्र उत्पन्न हुए, सुपर्ण धर्मात्मा पक्षियों में श्रेष्ठ हुए, अरुण अपने क्रम से उत्तम नहीं हुए।।४३।। सुरसा के अतितेजस्वी सहस्र सर्प हुए और वे अनेक फनवाले, आकाशाचारी महात्मा हुए।।४४।। जिनके शेष, वासुकि, तक्षक, ऐरावत, महापद्म तथा कम्बल और अश्वतर यह दोनों प्रधान राजा हुए।।४५।। ऐला के पद्म, कर्कोटक, धनंजय, महानील, महाकर्ण, धृतराष्ट्र, बलाहक।।४६।। कुहर, पुष्पदन्त, दुर्मुख तथा सुमुख, बहुश, खररोमा, पाणि आदिक पुत्र हुए।।४७।। क्रोधवशा के अनेक गण सब दंष्ट्रावाले जीव तथा अण्डज, पक्षी, जल-जन्तु हुए, वराही के पशु हुए।।४८।। अनायुषा के पचास महाबली पुत्र हुए, वह बल, वृक्ष, विक्षर तथा बृहत् हुए।।४९।। सुरभि ने शशा तथा भैंसों को उत्पन्न किया, इला ने वृक्षों, बेलों तथा सम्पूर्ण तृणजाति को उत्पन्न किया।।५०।। खशा ने यक्ष, राक्षसों को तथा अप्सरस मुनि को उत्पन्न किया, अरिष्टा ने प्रभाव से मानवोत्तम सर्पों को उत्पन्न किया।।५१।। हे मुनीश्वरो! यह कश्यपजी के कुलवाले आपसे वर्णन किये, जिनके पुत्र-पौत्र सैकड़ों-सहस्रों* हुए।।५२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां

कश्यपवंशवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ।। ३२ ।।

*****

तैतीसवाँ अध्याय

सूतजी बोले- हे तात! स्वारोचिष मन्वन्तर में जो सृष्टि हुई सो कही, वैवस्वत मनु के बड़े वारुणयज्ञ के विस्तार होने पर।।१।। हवन करते हुए ब्रह्माजी की रचना कहते हैं। पहले उत्पन्न हुए सात मानस जिन ब्रह्मर्षियों को।।२।। साक्षात् ब्रह्माजी ने अपने पुत्र कल्पना की और उन देवता तथा दैत्यों के विरोध में।।३।। दिति अपने पुत्रों का नाश हो जाने पर कश्यपजी के समीप गई, कश्यपजी प्रसन्न होकर उससे आराधना

*- यह उत्पत्ति कश्यपजी की प्रजापति के सामर्थ्य से है कारण कि, ब्रह्माजी ने उनको यह सामर्थ्य दी है "कश्यपः कस्मात् पश्यको भवतीति निरुक्तः" वह ज्ञानमार्ग से सब जीवों के उत्पन्न होने के कारण को जानते थे, इससे जिस-जिस में उनकी सामर्थ्य पड़ी वही-वही उनकी स्त्री कहलाई, इसलिये इस कथा में शंका का अवकाश न जानना चाहिये।

किये गये ।।४।। और उसे वर से छला, तब उस दिति ने यह वर मांगा कि, इन्द्र का वध करने के निमित्त सामर्थ्य युक्त अति तेजस्वी पुत्र होवे ।।५।। तब महा तपस्वी ने प्रार्थना करने पर उसे वर दिया और सौ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य आदि नियमों को कहा ।।६।। तब पवित्र सुन्दर वर्णवाली उसने गर्भ धारण किया और ब्रह्मचर्यादि नियम का पालन किया ।।७।। तत्पश्चात् वह प्रशंसनीय व्रतवाले कश्यपजी दिति में गर्भ धारण करके प्रसन्न मन होकर तप करने को चल दिये ।।८।। तब इन्द्र उसके अन्तर में प्राप्त होने की इच्छा करने लगे, फिर इन्द्र ने निन्यानवें वर्ष में उसका अन्तर देखा ।।९।। वह दिति पैरों की पवित्रता न करके नीचे को सिर किये, होनेवाले अर्थ के गौरव से निन्द्रा को प्राप्त हुई ।।१०।। इसी अवसर में इन्द्र ने उसके गर्भ में प्रवेश करके उस गर्भ के सात खण्ड किये ।।११।। वज्र से काटा हुआ वह गर्भ रोने लगा, रोते हुए उन सात खण्डों को देखकर उनसे इन्द्र बोला कि, ''मत रोओ'', इन्द्र के काटने पर भी वे न मरे ।।१२।। हे मुने! तब गिराये हुए वह सब हाथ जोड़कर इन्द्र से बोले, ''हे इन्द्र! आप हमें मारने की इच्छा न करें, हम मरुत आपके भाई हैं'' ।।१३।। हे विप्रेन्द्र! तब इन्द्र ने उनको भ्रातृत्व से स्वीकार किया और उन्होंने शिवजी की इच्छा से दैत्य भाव का त्याग किया ।।१४।। वे महाबली मरुत नामवाले आकाशगामी, इन्द्र के सहायक उश्वास पवन देवता हुए ।।१५।। उन बढ़े हुओं को प्रजापति ने क्रम से उतने राज्य पृथक्-पृथक् दिये, उसको सुनिये ।।१६।। अरिष्ट, पुरुष, वीर, कृष्ण, जिष्णु, प्रजापति, पर्जन्य, धनाध्यक्ष, उनका यह सब जगत् है ।।१७।। हे महामुने! यह भूतसर्ग आपसे भलीभांति कहा, अब क्रम से राज्यों का विभाग सुनिये, मैं वर्णन करता हूं ।।१८।। ब्रह्माजी ने पृथुवैन्य को अधिराज्य में स्थापित करके क्रम से राज्यों का देना प्रारम्भ किया ।।१९।। ब्राह्मणों का, वृक्षों का तथा नक्षत्र और ग्रहों का, यज्ञों का तथा तपों का राजा सोम को किया ।।२०।। जलों के राज्य में वरुण को अभिषिक्त किया, राजाओं के आधिपत्य में प्रभु वैश्रवण को स्थापित किया, आदित्यों के राज्य में विष्णुजी को, वसुओं के राज्य में पावक को ।।२१।। प्रजापतियों के राज्य में दक्ष को, मरुतों के राज्य में इन्द्र को, दैत्यों के तथा दानवों के राज्य में अतितेजस्वी प्रह्लाद को ।।२२।। पितरों के राज्य में वैवस्वत को तथा यम को नियुक्त किया, माताओं के तथा व्रतों के, मन्त्रों के और गौओं के ।।२३।। यक्षों के तथा राक्षसों के पार्थिवों के तथा सम्पूर्ण भूत-पिशाचों के राज्य में शूलपाणि शिवजी को नियुक्त किया ।।२४।। शैलों के राज्य में हिमालय को, नदियों के राज्य में समुद्र को, मृगों के राज्य में सिंह को, गाय-बैलों के राज्य में गोवृष को ।।२५।। वनस्पति और वृक्षों के राज्य में वट को नियुक्त किया, इस प्रकार क्रम से ब्रह्माजी ने सर्वत्र राज्य दिया ।।२६।। सर्वव्यापक, सबके अन्तर्यामी विश्वपति ने पूर्व दिशा में वैराज्य प्रजापति के पुत्र को स्थापित किया ।।२७।। हे मुनिश्रेष्ठ! दक्षिण

दिशा में कर्दम प्रजापति के पुत्र सुधन्वा को स्थापित किया ।।२८।। और पश्चिम दिशा में रजस के पुत्र अच्युत को और महात्मा केतुमन्त को ।।२९।। तथा पर्जन्य प्रजापति के पुत्र हिरण्यरोम को भी राज्य दिया और उत्तर दिशा में राजा दुर्धर्ष को अभिषिक्त किया ।।३०।। हे शौनक! यह उन पृथुवैन्य का वर्णन किया, यह स्थान बड़ा ऋद्धिवाला प्राचीन कहा है ।।३१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां
सर्गवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।। ३३ ।।

*****

चौतीसवाँ अध्याय

शौनकजी बोले- सम्पूर्ण मन्वन्तरों को विस्तार से वर्णन कीजिये, जितने मनु हैं, उन सबों को मैं सुनना चाहता हूं।।१।। सूतजी बोले- स्वायम्भुव मनु तथा स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष ।।२।। हे मुनिश्रेष्ठ! यह छः मनु आपसे कहे, हे मुनिश्रेष्ठ! अब वैवस्वत मनु को कहते हैं।।३।। सावर्णि, मनु उसके पीछे रौच्य तथा ब्रह्मसावर्णि यह चार मनु हैं।।४।। और धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि और इन्द्रसावर्णि कहे हैं।।५।। बीते हुए तथा वर्त्तमान और बिना आये हुए जो मनु मैंने सुने हैं, वे सब आपसे कहे।।६।। हे मुनि! तीनों कालों के यह चौदह मनु कहे, जिनका सहस्र युगपर्यन्त कल्प निर्माण किया जाता है ।।७।। हे शौनक! उनके ऋषि तथा पुत्र देवगणों आदि यशस्वियों को क्रम से वर्णन करता हूं, प्रीति से सुनिये ।।८।। मरीचि, अत्रि, भगवान् अंगिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त, वसिष्ठ यह सात ब्रह्माजी के पुत्र हैं।।९।। हे मुने! उत्तर दिशा में सप्तर्षि तथा स्वावम्भुव मन्वन्तर में यामा नामवाले देवता भी निवास करते थे।।१०।। आग्नीध्र तथा अग्निबाहु, मेधा, मेधातिथि, वसु, ज्योतिष्मान्, धृतिमान्, हव्य, सवन, शुभ्र।।११।। हे मुनिश्रेष्ठ! यह महात्मा स्वायम्भुव मनु के दश पुत्र कहे हैं, उनमें इन्द्र यज्ञ नामवाला है।।१२।। हे तात! पहला दिव्य मन्वन्तर कहा, अब दूसरा मन्वन्तर वर्णन करता हूं, उसे ठीक-ठीक सुनिये ।।१३।। ऊर्जस्तम्भ, परस्तम्भ, ऋषभ तथा वसुमान्, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, सातवां रोचिष्मान ।।१४।। यह महर्षि जानने के योग्य हैं, उनमें रोचन नामक इन्द्र है और स्वारोचिष मन्वन्तर में तुषित नामवाले देवता कहे हैं।।१५।। हरि, सुकृति, ज्योति, अयोमूर्त्ति, अयस्मय, प्रथित, मनुस्य, नभ, सूर्य ।।१६।। हे मुनिश्रेष्ठ! यह महात्मा स्वारोचिष मनु के दस पुत्र बड़े वीर्य और पराक्रमवाले कहे हैं।।१७।। हे मुने! यह दूसरा मन्वन्तर आपसे कहा, अब तीसरा

मन्वन्तर आपसे कहता हूं, उसको विधिपूर्वक सुनिये ।।१८।। वसिष्ठ नामवाले सात वसिष्ठजी के पुत्र हैं, ऊर्ज नामवाले महा तेजस्वी देव हिरण्यगर्भ के पुत्र कहे हैं ।।१९।। हे ऋषिश्रेष्ठ! मैं यह ऋषि वर्णन करता हूं, आप सुनिये, उत्तम दश मनु के पुत्र कहे हैं ।।२०।। वे इष, ऊर्जित, ऊर्ज, मधु, ''माधव'' शुचि, शुक्रवह, नभस्, नभ ।।२१।। ऋषभ आदि हैं, उनमें स्तयवेद श्रुत आदि देवता हुए, हे मुने! उस समय सत्यजित नामक तीनों लोकों का स्वामी इन्द्र हुआ ।।२२।। यह तीसरा मन्वन्तर कहा, हे मुने! अब आपसे चौथा मन्वन्तर कहता हूं, सुनिये ।।२३।। गार्ग्य, पृथु, वाग्मी, जन्य, धाता, कपीनक, कपीवान्, इसमें यह सात ऋषि कहे हैं ।।२४।। हे मुने! उनमें त्रिशिख नामवाले इन्द्र कहे हैं, अब मनु के पुत्रों को सुनिये; द्युतिपोत, सातपस्य, तप, शूल, तापन ।।२५।। तपोरति, अकल्माष, धन्वी, खड्गी, महानृषि, यह महाव्रतवाले तामस के दस पुत्र कहे हैं ।।२६।। यह मैंने चौथे तामस मन्वन्तर का वर्णन किया, हे तात! अब पाँचवां मन्वन्तर सुनिये ।।२७।। देवबाहु, जय, वेदशिर, हिरण्यरोमा, पर्जन्य, ऊर्ध्वबाहु, सोमप ।।२८।। यह सत्यनेत्रवाले दूसरे सप्तर्षि कहे हैं, और भूत, रज, तप, प्रकृति यह देवता हैं ।।२९।। उस विभु नामक तीनों लोकों के स्वामी इंन्द्र कहे हैं और तामस के सहोदर भाई रैवत नामवाले मनु हैं ।।३०।। हे मुने! अर्जुन, पंक्तिविन्ध्य यह दया के पुत्र बड़े तप से युक्त हुए सुमेरु पर्वत के ऊपर निवास करते हैं ।।३१।। छठा मन्वन्तर कहते हैं, रुचि प्रजापति के पुत्र रौच्य नाम मनु कहे गये हैं, इसके भूति नामक स्त्री में भौत्य नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ।।३२।। यह आपसे अनागत सात मनु इस कल्प में वर्णन किये, इसी प्रकार अनागत महर्षि भी द्युलोक में सात हैं ।।३३।। सातवें मन्वन्तर में कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, भरद्वाज, यह सप्तर्षि हैं ।।३४।। आगे होनेवाले जमदग्नि के पुत्र परशुराम, आत्रेय, व्यास, बहुश्रुत, भरद्वाज, वंशीदीप्तिमान्, महा तेजस्वी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ।।३५।। गौतमसुत शरद्वान्, कृपाचार्य, कौशिकवंशी गालव, काश्यपवंशी रुरु ।।३६।। हे मुनिश्रेष्ठ! आगे यह सात महात्मा ऋषि होनेवाले हैं, इनमें स्वायम्भुव ने तीन ही अनागत देवता माने हैं ।।३७।। वे मरचिसुत महात्मा कश्यपजी के पुत्र होंगे, विरोचन पुत्र बलि उनका इन्द्र होगा ।।३८।। विषांग, अवनीवान्, सुमन्त, धृतिमान्, वसु, सूरी, सुरा, विष्णु, राजा, सुमति ।।३९।। हे शौनक! यह सावर्णिमनु के दस पुत्र होंगे, यह आठवां मन्वन्तर कहा, अब नौवां सुनिये ।।४०।। सुनिये, पहले दक्षसावर्णि मनु को कहता हूं। पुलस्त्यवंशी मेधातिथि, कश्यपवंशी वसु ।।४१।। भृगुवंशी ज्योतिष्मान्, बुद्धिमान् अंगिरा, वशिष्ठवंशी सवन, अत्रिवंशी हव्य ।।४२।। और पुलह यह सप्तऋषि रोहित मन्वन्तर के अन्तर में होंगे। हे महामुने इनमें देवताओं के तीन गण हैं ।।४३।। वे दीक्षापुत्र प्रजापति रोहित के पुत्र होंगे, धृष्टकेतु, दीप्तिकेतु, पंचहस्त, निराकृति ।।४४।। पृथुश्रवा, भूरिद्युम्न, ऋचीक, बृहत, गय

यह प्रथम सावर्णि के नौ पुत्र महातेजस्वी होंगे ।।४५।। जब दूसरे मनु के अन्तर में दसवां मनु होगा, उसमें पुलहवंशी हविष्मान्, भृगुवंशी प्रकृति ।।४६।। अत्रिवंशी आयोमुक्ति, वशिष्ठवंशी अव्यय, पुलस्त्यवंशी प्रयति, काश्यपवंशी भामार।।४७।। अंगिरावंशी अनेनस यह सात परमर्षि होंगे, इसमें द्विप्मन्त नामवाले देवताओं के गण होंगे।।४८।। उनके इन्द्र साक्षात् शम्भु होंगे, अक्षत्वान्, उत्तमौजा, वीर्यवान्, भूरिषेण ।।४९।। शतानीक, निरामित्र, वृषसेन, जयद्रथ, भूरिद्युम्न, सुवर्चा, अर्चि यह मनु के दश पुत्र होंगे।।५०।। जब तीसरे के अन्तर में ग्यारहवां मनु होगा, उसमें से सात ऋषि आपसे कहता हूं ।।५१।। कश्यपवंशी हविष्मान्, वरुणवंशी वपुष्मान्, अत्रिवंशी वशिष्ठ, अंगिरावंशी अनय ।।५२।। पुलस्त्यवंशी चारुधृश्य, निस्वर और तेजस अग्नि यह सात ऋषि और तीन देवताओं के गण होंगे ।।५३।। यह ब्रह्माजी के पुत्र वैधृत कहलायेंगे, सर्वग, सुशर्मा, देवानीक, क्षेमक।।५४।। दृढेषु, खण्डक, दर्श, कुहू, बाहू, यह मनुपुत्र होंगे, यह तीसरे सावर्णिमनु के नौ पौत्र होंगे ।।५५।। चतुर्थ सावर्णि के ऋषि सुनिये, वशिष्ठपुत्र द्युति, अत्रिगोत्री सुतपा ।।५६।। तपोमूर्ति अंगिरा, तपस्वी कश्यप, तपोधन पौलस्त्य, तपोरति पुलह ।।५७।। और सातवें तपोनिधि भार्गव, यह सप्तर्षि जानने, ब्रह्माजी के मानसी पुत्र पांच इसमें देवता जानने ।।५८।। त्रिलोकी का राज्य करनेवाला ऋतधामा नामक इन्द्र होगा, फिर बारहवें रौच्य नाम मन्वन्तर में ।।५९।। धृतिमान् अंगिरा, हव्यवान्, पौलस्त्य, तत्त्वदर्शी पौलह, निरुत्सव, भार्गव ।।६०।। प्रपंचरहित आत्रेय, निर्देह कश्यप, वशिष्ठवंशी सुतपा, यह सप्तर्षि होंगे ।।६१।। स्वायम्भूव ने इसमें देवताओं के तीन गण कहे हैं, इनके इन्द्र का नाम दिवस्पति होगा, विचित्र, चित्र ।।६२।। नय, धर्म, सुनेत्र, क्षत्र, वृद्धक, निर्भय सुतपा, द्रोण यह रौच्य मनु के पुत्र होंगे ।।६३।। *चौदहवे सत्यमनु के पर्याय में कश्यपवंशी आग्नीध्र, पुलस्त्यवंशी मागध ।।६४।। भृगुवंशी अतिवाह्य, शुचिनामा अंगिरस, अत्रिगोत्री युक्त वशिष्ठजी के पोते ।।६५।। अजित और पुलह यह अन्त के मन्वन्तर में सात ऋषि होंगे, पवित्र को आदि लेकर चाक्षुष देवता होंगे, इस मन्वन्तर में शुचि नामक इन्द्र होगा ।।६६।। इन अतीत अनागत महर्षियों को जो सदा प्रातःकाल उठकर कीर्तन करते हैं, वे सुख पाते हैं ।।६७।। हे महामुने! इस चौदहवें मनु में देवताओं के पांच गण होंगे और तुरंगभीरु, बुध्न, तनुग्र, अनूग्र ।।६८।। अति मानी प्रवीण, विष्णु संक्रन्दन तेजस्वी सबल, यह सत्यमनु के पुत्र होंगे ।।६९।। भौम मनु के अधिकार में पूर्वकल्प पूर्ण हो जाता है, यह मैंने आपसे भूत और भविष्य के मनु कीर्तन किये ।।७०।। यह सनत्कुमारजी ने व्यासजी के प्रति कीर्तन

*- यहां एक मन्वन्तर किसी प्रकार छूट गया है, सो हमने ग्रन्थान्तर से त्रुटि पूर्ण की है, तेरहवां मनु आत्मज्ञानी सावर्णि होगा, चित्रसेन विचित्र आदि उसके पुत्र होंगे ।।१।। सुकर्म, सुत्राम नामवाले देवता और दिवस्पति नामवाला इन्द्र होगा, निर्मोक तत्त्वदर्शी आदि सप्तऋषि होंगे ।।२।।

किये हैं, जो व्यासजी महातेजस्वी हैं, यह मनु अपने धर्म से सहस्र युगों तक पालन करते हैं।।७१।। पीछे तप से युक्त प्रजा के सहित वे ब्रह्मलोक को जाते हैं, सत्तर चौकड़ी और एक चौकड़ी युग तक मन्वन्तर की स्थिति रहती है।।७२।। यह आपसे कीर्त्ति बढ़ानेवाले चौदह मनु कहे हैं, सब मनुओं के संहार के अन्त में फिर सृष्टि होती है।।७३।। सौ वर्ष में भी उनका अन्तर कोई नहीं कह सकता, सौ हजार युग की पूर्ति में कल्प समाप्त होता है।।७४।। उस समय सूर्य की किरणों से सब प्राणी दग्ध होने लगते हैं, हे मुने! तब सत्, आदित्य आदि ब्रह्माजी को आगे करके।।७५।। सुरों में श्रेष्ठ हरि नारायण में प्रवेश कर जाते हैं, यह कल्पान्त में सब भूतों को बारंबार उत्पन्न करते हैं।।७६।। फिर भी कालस्वरूप भगवान् शिवजी कल्पान्त में संहार करनेवाले हैं, अब वैवस्वत मन्वन्तर को वर्णन करूंगा।।७७।। इस प्रकार यह मन्वन्तरों की उत्पत्ति सहित प्रशंसनीय, कुल को बढ़ानेवाला विसर्ग सम्बन्धी पवित्र इतिहास आपसे कहा।।७८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां

सर्वमन्वन्तरानुकीर्तनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः।। ३४ ।।

*****

पैंतीसवाँ अध्याय

सूतजी बोले– महर्षि कश्यपजी से दाक्षायणी में विवस्वान् (सूर्य) उत्पन्न हुए, उनकी स्त्री त्वाष्ट्री सुरेणुका देवी हुई।।१।। हे मुने! वह रूप यौवन की विस्तार करनेवाली अपने पति के महादुस्सह तेज से सन्तुष्ट नहीं हुई।।२।। अति तेजस्वी सूर्य के तेज को न सहनेवाली सुन्दरवर्ण युक्त वह संज्ञा दह्यमान होकर उद्वेग करने लगी।।३।। हे ऋषे! उस समय सूर्य ने इस संज्ञा में तीन सन्तानें को उत्पन्न किया, पहले मनु श्राद्धदेव प्रजापति।।४।। तथा यम और यमुना यह दोनों एक साथ उत्पन्न हुए, इस प्रकार उसमें सूर्य से तीन सन्तानें उत्पन्न हुईं।।५।। संज्ञा ने सूर्य के उस गोलाकार स्वरूप को देखकर न सह कर अपनी शुभ छाया का निर्माण किया।।६।। वह मायारूपी छाया भक्तिपूर्वक संज्ञा से बोली– हे शुभे! हे शुचिस्मिते! तेरा क्या कार्य करूं? सो सब कह।।७।। संज्ञा बोली– मैं अपने पिता के घर जाती हूं, तेरा कल्याण हो, तुम यहां बिना विकार से निवास करो।।८।। ये मेरे दोनों श्रेष्ठ बालक तथा यह मध्यमा कन्या भी सुख से पालनी चाहिये, यदि तू मेरा हित चाहती है।।९।। छाया बोली– हे देवि! केश ग्रहण पर्यन्त मैं कठिनाई को सहूंगी और तेरा रहस्यवृत्त सूर्य से न कहूंगी, हे देवि! तू सुख से जा।।१०।। सूतजी बोले– ऐसा कहकर वह संज्ञा देवी लज्जित होकर पिता के समीप

चली गई, तब पिता से बारंबार ललकारी हुई वहीं जाने को नियुक्त की गई ।।११।। तब अपने स्वरूप को छिपाकर घोड़ी बनकर उत्तर कुरु देशों में प्राप्त होकर मनुष्यों के मध्य में विचरने लगी ।।१२।। सूर्य ने संज्ञा को मानकर उस छाया में सावर्णिमनु नामवाले सुन्दर पुत्र को उत्पन्न किया ।।१३।। संज्ञा से प्रार्थना की हुई वह छाया अपने पुत्र में नित्य अधिक स्नेह करती थी, उतना स्नेह पहले पुत्रों में नहीं करती थी ।।१४।। छोटा भाई तो असमर्थ था, अत: यम उसको नहीं सहता था, बाल्यावस्था से तथा अर्थ के गौरव होने से क्रोधित होकर ।।१५।। जब वैवस्वत यम ने छाया को धिक्कारा तो क्रोधित हुई छाया ने उसे शाप दिया ।।१६।। कि अत्यन्त रोषित हुआ तेरा यह चरण गिर जाय, उसके पीछे यम ने हाथ जोड़कर अपने पिता से सब निवेदन किया ।।१७।। शाप के भय से अति दु:खित हुआ तथा संज्ञा के वाक्यों से चेष्टित होकर यम ने कहा, सम्पूर्ण पुत्रों में माता को समान स्नेह से वर्तना चाहिये ।।१८।। वह माता हम से स्नेह हटा कर छोटे भाई को पालती है, इस कारण मैंने चरण का प्रहार किया, उसे आप क्षमा करने के योग्य हैं ।।१९।। हे देवेशि! हे तपस्वियों में श्रेष्ठ! मुझे माता ने शाप दिया; हे गोपते! आपके प्रसाद से मरा चरण नहीं गिरेगा ।।२०।। सूर्य बोले- हे पुत्र! इसमें नि:सन्देह बड़ा कारण होगा, जिससे तुझ धर्मात्मा सत्यवादी को क्रोध आ गया ।।२१।। और तुम्हारी माता का वचन मिथ्या करने को नहीं शक्य है, अवश्य ही कृमि कीड़े चरण के मांस को लेकर पृथ्वी पर जायँगे ।।२२।। हे तात! हे प्रभो! वह शाप सत्य होगा और तू रक्षित होगा, अब नि:सन्देह अपने मन को सावधान करो ।।२३।। सूतजी बोले- हे मुनीश्वर! इस प्रकार सूर्य ने यम नामक अपने पुत्र से कहकर अपनी स्त्री छाया से क्रोधित होकर कहा ।।२४।। सूर्य बोले- हे कुबुद्धि! हे चण्डि! हे प्रिये! यह तू ने क्या किया? क्यों तेरा इनमें अत्यन्त प्रेम है? यह कहने के योग्य है ।।२५।। सूतजी बोले- वह छाया सूर्य का यह वचन सुनकर सब ठीक-ठीक निवेदन करने लगी ।।२६।। सूतजी बोले- उस छाया का यह वचन सुनकर सूर्य त्वष्टा के समीप गये और उससे पूंछने लगे कि, संज्ञा कहां है? तब त्वष्टा बोले ।।२७।। त्वष्टा कहने लगे, कि आपके अति तेज से जलती हुई उसको यह रूप शोभित नहीं हुआ, अत: आपको सहन न करती हुई वह संज्ञा तृणयुक्त वन में निवास करती है ।।२८।। हे गोपते! हे देवेश! योग को प्राप्त होकर योग बल से प्राप्त हुई संज्ञा श्लाघा करने योग्य है, अपने मत को कहकर अनुकूल हो जाओ ।।२९।। उस पर कृपा करो, आज्ञा दो, अब आपके रूप को मैं ऐसे निर्वर्तन करूंगा कि, जिससे आपका रूप मनोहर हो जायगा, सूतजी बोले- यह सुनकर सूर्य भगवान् का क्रोध दूर हो गया ।।३०।। तब मुनि ने भ्रमियन्त्र (शान धरने का गोल पहिया) आरोपण करके सूर्यदेव का विकट तेज छील दिया, तब उस तेज के कम हो जाने से सूर्यदेव का रूप शोभा पाने लगा ।।३१।। इस प्रकार परम मनोहर रूप हो जाने

से सूर्यदेव बहुत शोभित होने लगे और फिर योग में स्थित होकर अपनी भार्या को देखा ।।३२।। कि, वह अपने नियम और तेज से सब प्राणियों से अदृश्य हो रही है, तब मैथुन की इच्छा से सूर्य अश्वरूप धारण करके वहां गये ।।३३।। तब उसने परपुरुष की इच्छा से यह न होने दिया, उस समय सूर्य का वीर्य उसकी नासिका पर दो खण्ड होकर गिरा ।।३४।। उससे देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमार युगुल जन्मे, उनमें नासत्य और दस्र दोनों के नाम हुए ।।३५।। उन दोनों को सूर्य ने अपने परम मनोहर रूप से दर्शन दिया, तब वह संज्ञा अपने पति को देखकर परम प्रसन्न हुई ।।३६।। और प्रसन्न होकर वह सती पति के सहित घर आई और दोनों स्त्री-पुरुष पूर्व से भी अधिक प्रसन्न होकर वहां रहने लगे ।।३७।। यमराज उस कर्म से मन में पीड़ित होकर धर्म से प्रजा को प्रसन्न करने लगे ।।३८।। इस कर्म से धर्मराज को महाकान्ति प्राप्त हुई, उनको पितरों का आधिपत्य तथा लोकपालत्व प्राप्त हो गया ।।३९।। और तपोधन सावर्णिमनु को प्रजापति का पद मिला, वह इस कर्म से मनुसावर्णि के अन्तर में भाव्य मनु होंगे ।।४०।। वह इस समय सुमेरुपर्वत पर घोर तप कर कहे हैं, इन सूर्य की जो छोटी श्रेष्ठ कन्या यमी थी ।।४१।। वह लोकों को पवित्र करनेवाली यमुना हुई, लोक में इनको मनु वा सावर्णिमनु कहते हैं ।।४२।। जो इन देवताओं के जन्म को सुनता वा धारण करता है, उसकी आपत्ति दूर होकर उसे यश मिलता है ।।४३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां
पंचस्त्रिंशोऽध्यायः ।। ३५ ।।

*****

छत्तीसवाँ अध्याय

सूतजी बोले- वैवस्वतमनु के पश्चात् नौ पुत्र उनके समान महोन्नत, धीर, क्षत्रिय धर्म में तत्पर हुए ।।१।। उनके नाम इक्ष्वाकु, शिबि, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, करूष, प्रियव्रत ।।२।। हे मुनिश्रेष्ठ! पुत्र की कामना से मनु प्रजापति ने यज्ञ किया और पुत्रेष्टि में पुत्रों के न उत्पन्न होने पर ।।३।। उस यज्ञ से सुन्दर वस्त्र धारण किये तथा सुन्दर आभूषणों से सुशोभित दिव्य आसन पर विराजमान, इला उत्पन्न हुई ।।४।। तब दण्डधारी मनु ने उस इडा से कहा कि, यहां मत आओ, तब उनसे इडा बोली ।।५।। इडा ने कहा, हे वक्ताओं में श्रेष्ठ ! यह वाक्य धर्म युक्त है, पुत्र की कामना करनेवाले प्रजापति के मित्रावरुण के अंशों से मैं उत्पन्न हुई हूं ।।६।। मैं उनके समीप जाती हूं, मेरी इस धर्म में रुचि न होगी, ऐसा कहकर वह सती मित्रावरुण के समीप

जाकर अंजलि बांधकर यह वचन बोली, हे महामुने! मैं मनु के यज्ञ में आपके अंशों से उत्पन्न हुई हूं।।७–८।। आप दोनों के समीप आई हूं, मुझे बताइये क्या करूं? हे विभो! और पुत्रों को उत्पन्न करें, उनसे आपका वंश चलेगा।।९।। सूतजी बोले– ऐसा कहती हुई साध्वी मनु के यज्ञ में उत्पन्न हुई उस इडा से वे दोनों मित्रावरुण नामवाले मुनि आदर से कहने लगे।।१०।। मित्रावरुण बोले– हे धर्मज्ञे! हे सुश्रोणि! हे सुन्दरवर्णवाली! तुम्हारी इस दीनता से तथा दम से, सत्य से हम दोनों प्रसन्न हुए।।११।। हे महाभागे! तुम हम दोनों की प्रसिद्धि को पाओगी और तुम ही मनुवंश चलानेवाला पुत्र होगी।।१२।। सुद्युम्न नाम से विख्यात, तीनों लोकों में प्रसिद्ध, संसार के प्रिय धर्मशील मनु के वंश को बढ़ानेवाले होओगे।।१३।। सुतजी बोले– ऐसा सुनकर लौटी हुई, पिता के समीप जाती हुई वह बुध से अन्तर पाकर मैथुन के लिये प्रवृत्त हुई।।१४।। तब उसमें सोमपुत्र (बुध) से पुरूरवा नामवाला अति सुन्दर बुद्धिमान्, श्रेष्ठ उर्वशी का पति पुत्र उत्पन्न हुआ।।१५।। वह वहां पुरूरवा पुत्र को उत्पन्न करके शिवजी के प्रसाद से फिर सुद्युम्न भाव को प्राप्त हुई।।१६।। सुद्युम्न ने दायाद पुत्र तीन परम धार्मिक उत्कल, गय और विनताश्व हुए।।१७।। हे मुनिश्रेष्ठ! उत्कल के उत्कल ब्राह्मण तथा विनताश्व के पश्चिमी ब्राह्मण, गय के पुर्विये गये नाम से प्रसिद्ध हुए।।१८।। हे तात! मनु के दिवाकर के शरीर में प्रवेश करने पर मनु ने पृथ्वी को दस क्षेत्ररूपों में विभक्त किया।।१९।। इक्ष्वाकु नामक श्रेष्ठ दायाद ने मध्यदेश को पाया और महात्मा वसिष्ठजी के वचन से बड़ी प्रतिष्ठा को पाया।।२०।। फिर सुद्युम्न ने उन पुरूरवा को धर्मराज्य की पदवी दी और वहां का राज्य दिया।।२१।। हे मुनिश्रेष्ठ! और जो स्त्री–पुरुष के लक्षणवाले प्रभु नरिष्यन्त थे, उनसे शक, नभग के पुत्र हुए।।२२।। अम्बरीष वाह्लेय ने वाह्लक क्षेत्र को पाया, शर्याति ने मिथुन को पाया और आनर्त्त नाम से विख्यात हुए।।२३।। और सुकन्या पुत्री च्यवन ऋषि की पत्नी हुई, आनर्त्त के दायाद रैभ्य रैवत नाम से विख्यात हुए।।२४।। जिनकी कुशस्थली नामवाली पुरी आनर्त्त विषय में बसी, जो बड़ी सुन्दर तथा सातों पुरियों में सातवीं मानी गई है।।२५।। उनके सौ पुत्र हुए, उनमें ककुद्मी सबसे बड़ा और श्रेष्ठ, तेजस्वी, अति बली, पारगामी, धर्मात्मा, ब्राह्मणों का पालन करनेवाला हुआ।।२६।। ककुद्मी के रेवती नामवाली कन्या हुई, जो बड़ी रूपवती माना दूसरी लक्ष्मी थी।।२७।। सर्वाधीश ककुद्मी राजा अपनी कन्या के सहित वर के अन्वेषण करने ब्रह्मलोक में ब्रह्माजी के समीप गये।।२८।। उस समय वहां गन्धर्व लोग गा रहे थे, यह अवसर पाकर क्षणमात्र में स्थित हो गये और ब्रह्माजी के समीप में गाना, नाच देखने–सुनने लगे।।२९।। उस समय क्षणमात्र के समान बहुत युग बीत गये कि, ककुद्मी राजा ने कुछ नहीं जाना।।३०।। तब उन्होंने ब्रह्माजी को नमस्कार करके, हाथ जोड़कर, विनीत होकर, परमात्मा चतुरानन से अपना अभिप्राय निवेदन किया।।३१।।

उनके अभिप्राय को सुनकर ब्रह्माजी हँसकर महाराज ककुद्मी से बोले ।।३२।। ब्रह्माजी बोले– हे राजन्! हे रैभ्य के पुत्र पृथ्वीपते! हे ककुद्मिन्! मेरा वचन प्रीति से सुनो, मैं सत्य–सत्य कहता हूं ।।३३।। जो वर तुम चाहते हो, वे काल ने हरण कर लिये, वहां उनका गोत्र भी नहीं रहा, कारण कि, काल सबका भक्षक है ।।३४।। हे राजन्! पुण्यजनों (राक्षसों) ने तुम्हारी पुरी भी नष्ट कर दी, अट्ठाइसवें द्वापर में अब फिर श्रीकृष्ण ने पुरी निर्माण की है ।।३५।। उस द्वारावती नामवाली अनेक द्वारोंवाली मनोहर, गुप्त पुरी को वासुदेव आदि भोज, वृष्णि, अन्धक के वंशियों ने बनाया है ।।३६।। हे राजन! वहां प्रसन्न मन से जाओ और अपनी कन्या बलदेव को प्रदान करो ।।३७।। सूतजी बोले– ऐसी आज्ञा पाकर वह राजा ब्रह्माजी को नमस्कार करके उस कन्या को लेकर उस पुरी को गये, बहुत युगों को बीता जानकर कन्या के विषय में विस्मित हुए ।।३८।। तब उसने उस युवती रेवती नामवाली अपनी कन्या को विधिविधान से श्रीकृष्णजी के भाई बलराम को प्रदान किया ।।३९।। तब महाप्रभु वह राजा सुमेरुपर्वत के सुन्दर शिखर पर गये और वहां तप में स्थित होकर शिवजी का आराधन करने लगे ।।४०।। ऋषि बोले– वहां ब्रह्मलोक में बहुत युगों तक स्थित हुए वह रेवती युवा ही मर्त्यलोक को प्राप्त हुए, यह मुझे बड़ा संशय है ।।४१।। सूतजी बोले– हे मुनीश्वरो! वहां ब्रह्माजी के समीप जरा, क्षुधा, प्यास वा विकार तथा किसी की अकाल मृत्यु आदि कुछ नहीं होती ।।४२।। इस कारण वह राजा तथा कन्या जरा और मृत्यु को नहीं प्राप्त हुए और वह अपनी श्रेष्ठ कन्या को साथ लेकर युवा ही वहां से आये ।।४३।। और श्रीकृष्णजी से रची द्वारापुरी सुन्दर पुरी में जाकर बलराम के साथ अपनी कन्या का विवाह कराया ।।४४।। तब उन महाप्रभु बलराम के सौ पुत्र उत्पन्न हुए और श्रीकृष्णजी के अनेक स्त्रियों से बहुत पुत्र हुए ।।४५।। वहां उन दोनों महात्माओं का बड़ा वंश चला, बड़े धर्मात्मा क्षत्रिय हृष्ट होकर सब दिशाओं में चले गये ।।४६।। हे द्विजो! इस प्रकार शर्याति का वंश कहा, अब और मनुष्यों के वंश को संक्षेप से कहता हूं, आप आदर से सुनिये ।।४७।। नाभाग दिष्ट के पुत्र हुए और ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए, अपने क्षत्रिय वंश को स्थापन करके ब्राह्मणों के कर्मों में प्रवृत्त हुए ।।४८।। धृष्ट से धार्ष्ट हुए, वे भूमि पर ब्रह्मत्व की अधिकता से क्षत्रियत्व हीन होकर करूष के युद्ध करनेवाले कारूष क्षत्रिय हुए ।।४९।। मनु का पुत्र नृग हुआ, वह महादानी अनेक धनों को तथा गौओं को ब्राह्मणों के निमित्त प्रीति से देनेवाला था ।।५०।। जो गोदान के व्यत्यय (बदल) से अपनी कुबुद्धि से तथा पाप से गिरगिट हुआ और उसका श्रीकृष्णजी ने उद्धार किया ।।५१।। उसके प्रयाति नामक धर्मात्मा श्रेष्ठ एक पुत्र हुआ, ऐसा मैंने जो व्यासजी से सुना, सो संक्षेप से कहा ।।५२।। वृषघ्न नामक मनुपुत्र को गुरु ने गोपाल बनाया और वह वीरासन बांधकर रात्रि में गायों का पालन करने लगा ।।५३।। वह बली किसी

समय गायों को मारने के निमित्त गोशाला में आये हुए व्याघ्र को देखकर, गायों के रुदन को सुनकर, जागकर उसे मारने खड्ग धारण करके गया।।५४।। और सिंह के भ्रम से बिना जाने बभ्रु (गाय के बछड़े) का सिर काट दिया, तब उन खड्गधारी प्रभु को देखकर वह व्याघ्र भयभीत होकर बाहर निकल गया।।५५।। वे व्याघ्र को मरा हुआ जानकर अपने स्थान को आये, उस रात्रि में वर्षा पवन से बुद्धि नष्ट हो गई तथा भ्रम में पड़ गये।।५६।। वह रात्रि के बीतने पर उठकर उस गोष्ठ में गया और उसने बभ्रु को मरा देखकर तथा व्याघ्र को न मरा हुआ देखकर अति दुःख किया।।५७।। उस वृत्तान्त को सुनकर गुरु ने उस अपराधी को शाप दिया, अकाम से बिना विचार के काम करने से तू शूद्र होगा, क्षत्रिय नहीं रहेगा।।५८।। इस प्रकार कुलाचार्य गुरु ने उसे शाप दिया, तब वृषघ्न निकलकर सघनवन में चला गया।।५९।। और वह कष्ट से व्याकुल होकर योग धारण करता हुआ विरक्त हो गया और वन की अग्नि में शरीर को भस्म करके परमगति को प्राप्त हुआ।।६०।। और वह शिवजी की दया से मनु का पुत्र कवि बुद्धिमान् हुआ, इस लोक में दिव्य सुख को भोगकर दुर्लभ मुक्ति को प्राप्त हुआ।।६१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां
मनुनवपुत्रवंशवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ।। ३६ ।।

*****

सैंतीसवाँ अध्याय

सूतजी बोले- मनु की नासिका से इक्ष्वाकु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ और इक्ष्वाकु के अत्यन्त दक्षिणा देनेवाले सौ पुत्र हुए।।१।। हे द्विजो! उनके आगे आर्यावर्त में अनेक राजा हुए, उनमें सबसे बड़ा विकुक्षि अयोध्या का राजा हुआ।।२।। उसके कर्म को प्रीति से सुनिये, जो ब्रह्माजी के वंश में हुआ है, श्राद्धकर्म के बिना करने पर ही।।३।। यह शीघ्र खरगोश को भक्षण करके शशादत्व को प्राप्त हुआ, तब इक्ष्वाकु से त्यागे हुए शशाद ने वन में प्रवेश किया।।४।। इक्ष्वाकु के स्थित होने पर वसिष्ठजी के वचन से वह राजा हुआ और उसके शकुनि आदि पन्द्रह पुत्र।।५।। उत्तरापथ देश के रक्षा करनेवाले राजा हुए और अयोध का पुत्र वीर्यवान् ककुत्स्थ नामवाला हुआ।।६।। ककुत्स्थ का पुत्र अरिनाभ और पृथु का पुत्र विष्टराश्व हुआ, उससे इन्द्र प्रजापति हुआ।।७।। इन्द्र के युवनाश्व, उसके श्राव प्रजापति हुए, बुद्धिमान् श्रावस्तक उत्पन्न हुए, जिसने श्रावस्ती नगरी रची, श्रावस्त के दायाद महायशस्वी बृहदश्व हुए।।८।। उनके पुत्र युवनाश्व, उनके पुत्र कुवलाश्व, जो धुन्धु के वध से धुन्धुमार राजा नाम से प्रसिद्ध हुए।।९।। कुवलाश्व के

धनुषधारी सौ पुत्र हुए, तब पिता ने राज्य में कुवलाश्व को नियुक्त किया ।।१०।। पुत्र को राज्यलक्ष्मी का भार सौपकर राजा बन को जाने लगा, तब उस राजर्षि के उत्तंक ने निवारण किया ।।११।। उत्तंक बोले– हे राजन्! आपको धर्म से पृथ्वी की रक्षा करनी चाहिये, आप महात्मा से पालन की हुई पृथ्वी ।।१२।। निर्द्वन्द्व होगी, इससे आप वन में जाने के योग्य नहीं हो, मेरे आश्रम के समीप मरुधन्व नामक हिमों पर ।।१३।। समुद्र की बालू के पूर्ण होने पर बल से दर्पित, देवताओं से अवध्य, बड़े शरीरवाला महाबली दानव ।।१४।। भूमि के मध्य में बालू के भीतर स्थित हुआ मधु राक्षस का पुत्र दारुण धुन्धु नामक ।।१५।। कठिन तप करके लोकों का नाश करने के निमित्त शयन करता है, वह वर्ष भर के पश्चात् जब अपनी श्वास को छोड़ता है ।।१६।। तो पर्वत, वन, कानन सहित सम्पूर्ण पृथ्वी हिलती है, स्फुलिंग सहित, अंगारों सहित, धूम सहित आग के समान चिनगारी उड़ती है ।।१७।। हे महाबाहो! हे राजन्! इस कारण मैं उस आश्रम में रहने को समर्थ नहीं हूं, इससे लोकों के हित की कामना से उसे निवारण (दूर) कीजिये ।।१८।। हे पृथ्वीपते! अब उसे मारने पर लोक स्वस्थ होंगे, आप ही उस दैत्य को मारने में समर्थ हो ।।१९।। हे अनघ! पहले युग में विष्णुजी ने आपको बड़ा वरदान दिया है, इससे भगवान् विष्णुजी अपने तेज से आपके तेज को परिपूर्ण करेंगे ।।२०।। इस लोक में ऐसा कोई धर्म नहीं दीखता है जैसा कि प्रजा के पालन करने में महा धर्म है, वन जाने की आपकी बुद्धि न हो ।।२१।। हे राजेन्द्र! ऐसा कोई भी, कहीं भी धर्म नहीं है, जैसा प्रजा का पालन करने में पहले राजर्षियों ने किया है ।।२२।। इस प्रकार महात्मा उत्तंक ने कहने पर उस राजर्षि ने धुन्धुदैत्य को निवारण करने के लिये उनको अपना पुत्र दिया ।।२३।। हे भगवन्! हे द्विजश्रेष्ठ! मैंने शस्त्र त्याग दिये हैं, यह मेरा पुत्र निःसन्देह धुन्धुदैत्य को मारनेवाला होगा ।।२४।। ऐसा कहकर अपने पुत्र को दैत्य को मारने की आज्ञा देकर वह राजा तप करने को चला गया, उत्तंक सहित कुवलाश्व भी धुन्धुदैत्य को मारने गया ।।२५।। उस समय प्रभु भगवान् विष्णुजी ने उत्तंक के नियोग से लोकों के हित की इच्छा से अपने तेज से उसमें प्रवेश किया ।।२६।। उस दुर्द्धर्ष कुवलाश्व के जाने पर आकाश में बड़ा शब्द हुआ कि, ''यह श्रीमान् राजपुत्र धुन्धुमार होगा'' ।।२७।। तब उसके ऊपर देवताओं ने दिव्यमालाओं की चारों ओर से वर्षा की और ''जय जीव'' ऐसा कह–कहकर उसकी प्रशंसा की ।।२८।। जीतनेवालों में श्रेष्ठ उस राजा ने अपने पुत्रों सहित वालुका के मध्य में समुद्र को खोदा ।।२९।। ब्रह्मर्षि नारायण के तेज से व्याप्त हुआ वह राजा महातेजस्वी बल से युक्त हुआ ।।३०।। हे ब्रह्मन्! खोदते हुए उसके पुत्रों ने पश्चिम दिशा को आश्रय करके बालू के भीतर स्थित हुए उस धुन्धुदैत्य को प्राप्त किया ।।३१।। क्रोध से मुख की अग्नि से लोकों को व्याकुल करता हुआ, चन्द्रमा के उदय में समुद्र के समान वेग से जल टपकाने लगा ।।३२।।

उसकी अग्नि से वे सौ पुत्र नष्ट हो गये, हे मुनीश्वर! उनमें से तीन पुत्र ही शेष रहे ।।३३।। हे विप्रेन्द्र! तब उस राजा ने महाबली, ब्रह्मणों का नाश करनेवाले उस धुन्धु राक्षस को पाया ।।३४।। उस महा तेजस्वी राजा ने उसके जलवाले वेग को अग्निबाण से पान करके जलबाण से अग्नि को शान्त किया ।।३५।। अपने बल से बड़े शरीरवाले उस जल के राक्षस को मारकर राजा ने उत्तंक के विहित कर्मों का निरीक्षण किया ।।३६।। हे महामुने! उत्तंक ने उस राजा को वर दिया तथा अक्षय धन हो, शत्रुओं से कभी पराजय न हो ।।३७।। तथा धर्म में निरन्तर मति हो तथा स्वर्ग में अक्षय वास हो, जो पुत्र राक्षसों से मारे गये हैं, उन्हें अक्षय स्वर्गलोक का वास हो, यह वर दिया ।।३८।। उसके तीन पुत्र शेष रहे, उनमें दृढ़ाश्व बड़ा और हंसाश्व, कपिलाश्व पुत्र छोटे थे ।।३९।। धुन्धुमार के पुत्र दृढ़ाश्व हुए, उनके पुत्र हर्यश्व, हर्यश्व के पुत्र निकुम्भ, जो सदा धर्म में तत्पर थे ।।४०।। निकुम्भ के पुत्र युद्ध में निपुण संहताश्व हुए, संहताश्व के पुत्र अक्षाश्व, कृताश्व नामवाले हुए ।।४१।। उसके सत्पुरुषों से माननीय वृषद्वती हेमवती कन्या तीनों लोकों में विख्यात हुई और उसका पुत्र प्रसेनजित हुआ ।।४२।। प्रसेनजित ने गौरी नामक पतिव्रता भार्या को पाया, उसे भर्ता ने शाप दे कर बाहुदा नामवाली नदी बनाया ।।४३।। उसका पुत्र युवनाश्व बड़ा राजा हुआ, युवनाश्व का पुत्र मांधाता तीनों लोकों में विख्यात हुआ ।।४४।। उसकी चैत्ररथी स्त्री शशबिन्दु की पुत्री हुई, वह पतिव्रता दश सहस्र भाइयों में सब से बड़ी थी ।।४५।। तब उससे मांधाता ने धर्मात्मा पुरुकुत्स तथा मुचुकुन्द नामवाले दो पुत्र उत्पन्न किये ।।४६।। पुरुकुत्स का पुत्र विद्वान् कवि त्रय्यारुणि नामवाला हुआ, उसका पुत्र महाबली सत्यव्रत नामक हुआ ।।४७।। उसने महात्माओं के साथ पाणिग्रहण के मन्त्रों में विघ्न किया है, उसने दूसरे से विवाही हुई एक स्त्री का हरण किया ।।४८।। बल से, काम से, मोह, हर्ष तथा मद की अधिकता से तथा इच्छा से किसी नगरवासी की कन्या को हर लिया ।।४९।। त्रय्यारुणि राजा अधर्म करनेवाले उस पुत्र से 'चला जा' ऐसा, क्रोध से बारम्बार कहने लगा ।।५०।। तब उस मुक्त ने अपने पिता से यह कहा कि, मैं कहाँ जाऊँ? तब राजा ने उससे कहा, तू कुत्तों के खानेवालों के निकट बस ।।५१।। धर्म से पालन करनेवाले अपने पिता राजा से छोड़ा हुआ वह सत्यव्रत श्वपाक स्थान के निकट बसने लगा ।।५२।। तब त्रय्यारुणी राजा अपने पुत्र के कर्म से विरक्त होकर सब कुछ छोड़कर शिवजी का तप करने को वन में चला गया ।।५३।। हे विप्रर्षे! उस समय उसके राज्य में उस अधर्म से बारह वर्ष तक मेघ नहीं वर्षा ।।५४।। महातपस्वी विश्वामित्रजी अपनी स्त्री को त्यागकर सागर के समीप कठिन तप करने लगे ।।५५।। उनकी पत्नी ने मध्यम औरस पुत्र को गले में बांध कर शेष पुत्रों का पोषण करने के निमित्त उसे सौ गायों को लेकर बेचा ।।५६।। गले में बंधे हुए अपने पुत्र को बेंचती हुई उस स्त्री को देखकर उस समय

धर्मात्मा सत्यव्रत ने उस महर्षि के पुत्रों को छुड़ाया ।।५७।। विश्वामित्रजी के सन्तुष्टि के निमित्त महा बाहु सत्यव्रत ने उसका पालन किया ।।५८।। उस दिन से लेकर वह विश्वामित्रजी का पुत्र गलबन्धन से गालव नामवाला बड़ा तपस्वी हुआ ।।५९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां

सप्तत्रिंशोऽध्याय: ।। ३७ ।।

*****

अडतीसवाँ अध्याय

सूतजी बोले– उस समय सत्यव्रत अपनी भक्ति कृपा और प्रतिज्ञा से विश्वामित्रजी की स्त्री का पोषण करने लगा ।।१।। हे मुने! वह मृग, वराह, वनचर, महिष आदि जीवों को मारकर विश्वामित्रजी के आश्रम के समीप उनके मांस रखकर आता ।।२।। इधर मुनि वसिष्ठजी उनके पिता के तीर्थस्थान गौरात्र अन्त:पुर (रनिवास) की याजक और उपाध्यायों के सहित रक्षा करने लगे ।।३।। सत्यव्रत के वचन से वा होनेवाले कार्य के बल से वसिष्ठजी ने उस क्रोध को अपने मन में ही धारण किया ।।४।। जिस समय पिता ने पुत्र को अपने राज्य से बाहर निकाला, तब कारणवश वसिष्ठजी ने उसका निवारण न किया ।।५।। जो कि पाणिग्रहण के मन्त्रों की सातवें पद में निष्ठा होती है, सत्यव्रत ने उस बात का लेश भी न जाना ।।६।। तब अपने पिता के परितोष के निमित्त वहां स्थित हुआ कि, कुल की निष्कृति कैसे होगी ?।।७।। पिता के त्यागने पर वसिष्ठजी ने उसे निवारण नहीं किया, मैं इसके पुत्र को अभिषेक करूंगा, ऐसा कहने पर भी मुनि न बोले ।।८।। उस बली ने बारह वर्ष तक उस दीक्षा धारण की, जब एक समय उसको कहीं मांस न मिला, तो महात्मा वसिष्ठजी की ।।९।। सब कामनाओं को देनेवाली गौ को उस राजकुमार ने देखा, तब वसिष्ठजी पर क्रोध होने तथा लोभ, मोह और क्षुधा के कारण ।।१०।। चाण्डाल धर्म को प्राप्त होकर उसने उसको हत किया *उसके मांस को स्वयं भी तथा विश्वामित्रजी की सन्तान को खिला दिया, यह जान कर वसिष्ठजी महाक्रोधित हुए और महा क्रोध करके वसिष्ठजी ने उसके प्रति कहा ।।११-१२।। वसिष्ठजी बोले– मैं तेरे ऊपर बड़े कठिन लोहमय शंकु गिराऊंगा, चाहे पहले यह दो शंकु गिर जायँ ।।१३।। पर पिता को दु:ख देने और गोवध करने, अप्रोक्षित मांस खाने से तुमने तीन अपराध किये हैं ।।१४।। इससे तू त्रिशंकु होगा, यह कहते ही वह त्रिशंकु

*– वशिष्ठजी और विश्वामित्रजी के वैर के कारण यह अधर्म कार्य अन समक्षों ने किये हैं, यह गौ ऋषि वशिष्ठजी की पुण्यरूपा थी न कि लौकिक गाय थी।

हो गया, जो कि उसने विश्वामित्रजी की दाराओं को पाला था, जब वे आये ।।१५।। तव विश्वामित्रजी ने त्रिशंकु को वर दिया और उसने उनके कहने से यह वर मांगा कि शरीरसहित स्वर्ग को जाऊं ।।१६।। बारह वर्ष की अनावृष्टि बीतने पर विश्वामित्रजी ने उस त्रिशंकु को राज्य पर बैठाकर यज्ञ कराया ।।१७।। देवता तथा वसिष्ठजी के निवारण करने पर भी महर्षि विश्वामित्रजी ने उसे शरीरसहित स्वर्ग को चढ़ाया ।।१८।। उसकी सत्यरथा नामक केकय के वंश में उत्पन्न होनेवाली स्त्री ने निष्पापी हरिश्चन्द्र नामक पुत्र को उत्पन्न किया ।।१९।। वह राजा हरिश्चन्द्रजी त्रैशंकव कहलाये और राजसूय यज्ञ के करनेवाले चक्रवर्ती विख्यात हुए ।।२०।। हरिश्चन्द्रजी के पुत्र रोहिताश्व नामक हुए रोहित के पुत्र वृक और वृक से बाहु उत्पन्न हुए ।।२१।। उस राजा को हैहय और तालजंघ ने निकाल दिया, वह धर्मात्मा विप्र केवल अपने लिये ही धर्म में तत्पर नहीं हुआ, किन्तु औरों के लिये भी धर्म में प्रवृत्त हुआ ।।२२।। बाहु के गर के सहित सगर नामक पुत्र को भृगुवंशी और्व के आश्रम में भार्गव से रक्षित होकर उत्पन्न किया ।।२३।। उस सगर राजा ने भार्गव से आग्नेयास्त्र लेकर हैहय सहित तालजंघ को मारकर पृथ्वी को जीता ।।२४।। और शक नामवाले बहूदक, पारदा, तगण, खश आदि देशों में अपने धर्म को स्थापित किया और पृथ्वी की धर्म से पालना करने लगा ।।२५।। शौनकजी बोले- हे सूतजी! वह गर के सहित उस क्षत्रिय से कैसे उत्पन्न हुआ और सबों को कैसे जीता? यह सब विस्तार से कहिये ।।२६।। सूतजी बोले- हे मुने! जिस प्रकार परीक्षित के पूँछने पर वैशम्पायन मुनि ने कहा था, सो सब मैं कहता हूं, आप एक मन से सुनिये ।।२७।। परीक्षितजी बोले- हे मुने! वह राजा सगर के सहित किस प्रकार उत्पन्न हुए और उन्होंने कैसे बहुतों को मारा? यह आपके कहने के योग्य हो ।।२८।। वैशम्पायनजी बोले- हे तात! हे विशांपते! शकों के सहित हैहय और तालजंघों ने व्यसनवाले राजा बाहु का सब राज्य हरण कर लिया ।।२९।। यवन, पारद, काम्बोज तथा पाह्लव, बहूदक नामवाले राक्षसों के पांच गण कहे हैं ।।३०।। हे राजन! राक्षसों के यह पांच गण हैं, इन्होंने अति पराक्रम करके बाहु का राज्य हैहयों को दे दिया ।।३१।। राज्य नष्ट हो जाने से वह राजा बाहु पत्नी के सहित दुःखी होकर वन को चला गया और वहां उसने प्राणों को त्याग दिया ।।३२।। उसकी यादवी नामक गर्भिणी स्त्री उसके साथ चली, वह उसकी सौत ने ईर्ष्या से उसे गर (विष) दे दिया ।।३३।। हे राजन्! वह भार्या पति की चिता बनाकर सती होने लगी, तब ही दया से भार्गव और्व ने उसे निवारण किया ।।३४।। तब वह गर्भ की रक्षा करने के निमित्त उन भार्गव के आश्रम में स्थित हुई और वह रानी हृदय से शिवजी का ध्यान करके उन मुनिश्रेष्ठ की सेवा करने लगी ।।३५।। एक समय श्रेष्ठ मुहूर्त्त में, शुभलग्न में, पांच उच्च के ग्रह स्थित होने पर गर के सहित उससे बालक का जन्म हुआ ।।३६।। हे मुनिश्रेष्ठ! सब प्रकार प्रबल

हुई उस लग्न में महाबाहु सगर नामक राजा उत्पन्न हुआ ।।३७।। और्व ने उन महात्मा के जातकर्मादि संस्कार करके क्रमशः वेदशास्त्रों को पढ़ाकर तत्पश्चात् अस्त्रों को सिखाया ।।३८।। तब वह महाभाग राजा सगर देवताओं से दुर्लभ आग्नेयास्त्र को विधिसहित प्रीति से सीखने लगा ।।३९।। उसने अस्त्र के बल से तथा बल से प्रौढ़ होकर क्रोध करके शीघ्र ही हैहय राजाओं को नष्ट किया ।।४०।। कीर्त्तिमानों में श्रेष्ठ सगर ने लोकों में कीर्त्ति फैलाई और पृथ्वी पर धर्म स्थापन किया ।।४१।। तब ताडन किये हुए वे शक, यवन, काम्बोज, पाह्लव वसिष्ठजी की शरण में गये ।।४२।। समय पा कर कान्तिमान् वसिष्ठजी ने वंचना करके उन राजाओं को अभय देकर सगर का निवारण किया ।।४३।। सगर ने अपनी प्रतिज्ञा तथा गुरु के वचन को सुनकर उन राजाओं का धर्म नष्ट किया तथा केशच्छेदन कराया ।।४४।। शकों के आधे सिर को तथा यवन और काम्बोजों के सम्पूर्ण सिर को मुण्डन कराके विसर्जन किया ।।४५।। उस महात्मा ने पारदों के केश मुण्डन करके और पाह्लवों को डाढ़ी, मूछ धरा के निकाल दिया ।।४६।। हे तात! उस राजा ने सब पृथ्वी को जीता तथा उन राजाओं के धर्म को जीता और वे सब क्षत्रिय धर्म हीन कर दिये ।।४७।। उस धर्मविजयी राजा ने इस पृथ्वी को जीतकर वाजिमेध यज्ञ करने के लिये घोड़ा छोड़ा ।।४८।। हे मुने! उस राजा सगर के साठ हजार पुत्रों के सहित छोड़ा हुआ वह घोड़ा पूर्व-दक्षिण समुद्र की ओर गया ।।४९।। तब स्वार्थ साधक देवराज इन्द्र ने उस घोड़े को समुद्र के किनारे हर लिया और भूमि में प्रवेशित किया ।।५०।। तब महाराजा सगर ने उस घोड़े को खोजने के लिये चारों ओर से उस स्थान को पुत्रों से खुदवाया ।।५१।। तब वहां बड़े समुद्र के खोदने पर उन्होंने पुरुष विश्वरूपी कपिलदेवजी को पाया ।।५२।। उनके नेत्रों की अग्नि से वे साठ हजार पुत्र भस्म हुए, केवल चार पुत्र शेष रहे ।।५३।। हर्षकेतु, सुकेतु तथा धर्मरथ और शूर पंचजन यह उसके वंश चलानेवाले राजा हुए ।।५४।। तब भगवान् हरि ने स्वयं राजा सगर को पांच वर दिये, वंशवृद्धि, मेधा, कीर्त्ति, समुद्र का पुत्र और धन ।।५५।। वह उस कर्म से समुद्र के भाव को प्राप्त हुए और उस अश्वमेध के घोड़े को समुद्र से पाया ।।५६।। वह महा यशस्वी सौ अश्वमेधों के फल को प्राप्त हुआ और वहां सुव्रतवाले देवताओं को तथा शिवजी की विभूतियों को यजन करने लगे ।।५७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां
सत्यव्रतादिसगरपर्यन्तवंशवर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ।। ३८ ।।

*****

उन्तालीसवाँ अध्याय

शौनकजी बोले- वीर महाबली विक्रान्त सगर के साठ हजार पुत्र किस विधि से उत्पन्न हुए? सो सब कहिये ।।१।। सूतजी बोले- तप से भस्म हुए हैं पाप जिनके, ऐसी सगर की दो स्त्रियां थीं, उन दोनों को मुनिश्रेष्ठ और्व ने सन्तुष्ट होकर वरदान मांगने को कहा ।।२।। एक ने वेगवाले साठ हजार पुत्रों का वर मांगा, दूसरी ने वंशकर्त्ता एक सुन्दर पुत्र मांगा ।।३।। तब उसने घर आकर उन अनेक शूर पुत्रों से युक्त बीजों में पूर्ण हुए एक तोम्बे को उत्पन्न किया और फिर पृथक् किया, उसमें बीजरूप से सब बालक थे ।।४।। प्रीति के बढ़ानेवाले वे कुमार क्रम से घृत से पूर्ण हुए घड़ों में रखे गये और अपनी धाइयों से बढ़ने लगे ।।५।। वहां कपिलदेव की अग्नि से भस्म हुए उन महात्माओं में एक पंचजन नामक पुत्र राजा हुआ ।।६।। तब उनसे वीर्यवान् अंशुमान् हुए, उनके पुत्र दिलीप हुए, उनके वंश में भागीरथ हुए ।।७।। जिन प्रभु ने नदियों में श्रेष्ठ गंगाजी को उतारा और समुद्र ने मानकर इन गंगाजी को अपनी पुत्री माना ।।८।। भगीरथ के पुत्र राजा श्रुतसेन हुए, उनके परम धर्मात्मा नाभाग नामक पुत्र हुए ।।९।। नाभाग के पुत्र अम्बरीष, उनके पुत्र सिन्धुद्वीप हुए, सिन्धुद्वीप के दायाद वीर्यवान् अयुताजित् हुए ।।१०।। अयुताजित् के पुत्र महा यशस्वी ऋतुपर्ण हुए, वह दिव्याक्ष हृदय के जाननेवाले राजा नल के मित्र हुए ।।११।। ऋतुपर्ण के पुत्र कान्तिमान् अनुपर्ण हुए, उनके पुत्र कल्मषपाद मित्रसह हुए ।।१२।। कल्मषपाद के पुत्र सर्वकर्मा नाम से प्रसिद्ध हुए, उनके पुत्र अनरण्य हुए ।।१३।। अनरण्य के पुत्र विद्वान् मुण्डिद्रुह हुए, उनके पुत्र निषध, रति, खड्वांग हुए ।।१४।। हे अनघ! जिसने स्वर्ग से इस लोक में आने पर जीवन रघु के पुत्र अज, उनसे दशरथ हुए ।।१६।। दशरथ से धर्मात्मा यशस्वी रामचन्द्रजी उत्पन्न हुए, वह विष्णुजी के अंश महाशैव थे, जिन्होंने रावण को मारा ।।१७।। उन रामचन्द्रजी का जीवन चरित्र अनेक पुराणों में तथा विशेष कर रामायण में प्रसिद्ध है, इस कारण विस्तार से नहीं कहा ।।१८।। रामचन्द्रजी के पुत्र कुश हुए, कुश से अतिथि उत्पन्न हुए, उनके पुत्र निषध हुए ।।१९।। निषध के पुत्र नल हुए, नल के पुत्र नभ हुए, नभ के पुत्र पुण्डरीक, उनके पुत्र क्षेमधन्वा हुए ।।२०।। क्षेमधन्वा के पुत्र प्रतापी देवनीक और उनसे अहीनगु नामक पुत्र हुए ।।२१।। अहीनगु के दायाद सहस्वान्, उनके पुत्र वीरसेन, जो इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न हुए ।।२२।। वीरसेन के दायाद पारियात्र हुए, उनके पुत्र बलाख्य, उनके पुत्र स्थल हुए ।।२३।। उनके सूर्य के अंश से उत्पन्न हुआ प्रतापी यक्ष नामक पुत्र हुआ, उनका पुत्र अगुण, उनसे विधृति ।।२४।। उनका पुत्र हिरण्यनाभ,

उनका पुत्र योगाचार्य, वह जैमिनि मुनि का शिष्य और आत्मविद्या में प्रवीण हुआ।।२५।। जिन राजा से हृदय की ग्रन्थि का छेद करनेवाले अध्यात्मयोग को कौशल्य याज्ञवल्क्यजी ने प्राप्त किया।।२६।। उनका पुत्र पुष्य नामक हुआ, फिर उनका पुत्र ध्रुवसंज्ञक, उनका पुत्र अग्निवर्ण, उनका शीघ्र नामक पुत्र हुआ।।२७।। उनका पुत्र मरुत हुआ, उनका पुत्र योगसिद्ध हुआ, वह स्वामी अब भी कलापग्राम में स्थित है।।२८।। कुलयुग के अन्त में वह कलापग्राम निवासी मुनियों के साथ नष्ट हुये सूर्यवंश का फिर से उद्धार करेगा।।२९।। उसका पुत्र पृथुश्रुत, उसका पुत्र सन्धि तथा उनका पुत्र अमर्षण, उनका पुत्र मरुत्वान् हुआ।।३०।। उनका पुत्र विश्व, उनका पुत्र प्रसेनजित् हुआ, उनका पुत्र तक्षक, उनका पुत्र बृहद्वल।।३१।। यह बीते हुए इक्ष्वाकु वंशीय कहे, अब धर्मात्मा आगामी वंशियों को सुनिये।।३२।। बृहद्वल का पुत्र बृहद्रण होगा, उनका पुत्र उरुक्रिय होगा।।३३।। उनका पुत्र वत्सवृद्ध, उनका पुत्र प्रतिव्योम, उनका भावी पुत्र भानु दिवाकर वाहिनीपति होगा।।३४।। उनका पुत्र सहदेव महावीर होगा, उनका पुत्र बृहदश्च, उनका पुत्र भानुमान्।।३५।। भानुमान् का भावी पुत्र प्रतीकाश्च, उनका पुत्र सुप्रती के राजर्षि होगा।।३६।। उनका पुत्र मरुदेव, उनका पुत्र सुनक्षत्र होगा, उनका पुत्र पुष्कर, उनका पुत्र अन्तरिक्ष।।३७।। उनका पुत्र सुतप, उनका पुत्र वीर, उनका पुत्र मित्रजित्, उनका पुत्र बृहद्भोज, उनका पुत्र बर्हिर्नामक।।३८।। उनका पुत्र कृतंजय, उनका पुत्र रणंजय, उनका मय, उनका पुत्र शाक्य।।३९।। उनका पुत्र शुद्धोद, उनका पुत्र लांगल, उनका पुत्र प्रसेनजित्, उनका पुत्र शूद्रक।।४०।। उनका पुत्र रुणक, उनका पुत्र सुरथ, उनका पुत्र सुमित्र होगा, वह वंशनिष्ठा को समाप्त करनेवाला होगा।।४१।। सुमित्र के पश्चात् इक्ष्वाकुवंश के विचित्र वीर्य वाले, धर्मात्मा, शुभकर्म करनेवाले राजाओं की समाप्ति होगी।।४२।। उनका शुभ वंश सुमित्र राजा को प्राप्त होकर कलियुग में विश्राम को प्राप्त होगा, फिर ब्राह्मसतयुग में बढ़ेगा।।४३।। यह वैवस्वतवंश में अति दक्षिणावाले इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न हुए राजा विशेष करके वर्णन किये।।४४।। आदित्य विवस्वान् की तथा प्रजा को पुष्टि देनेवाले देव श्राद्धदेव की पवित्र सृष्टि वर्णन की।।४५।। जो मनुष्य सूर्य की इस सृष्टि को पढ़ता है अथवा सुनता है, वह सन्तानवाला होकर सायुज्य परमसुख भोगता है।।४६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां
वैवस्वतवंशोद्भवराजवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः।। ३९ ।।

*****

चालीसवाँ अध्याय

व्यासजी बोले- इस प्रकार श्राद्धदेव उत्तम सूर्यवंश को सुनकर मुनिश्रेष्ठ शौनकजी से आदर से पूछने लगे ।।१।। शौनकजी बोले- हे चिरञ्जीव! हे व्यासजी के शिष्य! हे सूतजी! आपको नमस्कार है, आपने परमदिव्य, अतिपवित्र करनेवाली कथा सुनाई ।।२।। आपने जो शुभवंश को बढ़ानेवाला श्राद्धदेव सूर्य कहा, उसमें मुझे सन्देह हुआ, सो आपके आगे मैं कहता हूं ।।३।। आदित्य विवस्वान् को श्राद्धदेवत्व कहां से मिला? यह मैं प्रीति से सुनना चाहता हूं, मेरे इस सन्देह को दूर कीजिये ।।४।। हे प्रभो! श्राद्ध के माहात्म्य को और उसके फल कहिये, जिससे प्रसन्न हुए पितर उसको कल्याण से युक्त करते हैं ।।५।। हे महामते! यह पितरों की उत्पत्ति सुनना चाहता हूं, आप अति कृपा करके मुझसे कहिये ।।६।। सूतजी बोले- हे शौनकजी! वह सम्पूर्ण पितरों की उत्पत्ति प्रीतिसहित आपसे कहता हूं, जो मार्कण्डेयजी ने भीष्मजी से कही है ।।७।। और जो सनत्कुमारजी ने बुद्धिमान् मार्कण्डेयजी से कही है, वह सब कामनाओं का फल देनेवाली उत्पत्ति आपसे वर्णन करता हूं ।।८।। युधिष्ठिर से पूछे हुए धर्मात्माओं में श्रेष्ठ, शरशय्या पर स्थित हुए भीष्मजी ने जो कुछ कहा, सो मैं आपसे कहता हूं ।।९।। युधिष्ठिर बोले- पुष्टि चाहनेवाले पुरुषों को किस प्रकार पुष्टि प्राप्त होती है और क्या कर्म करके मनुष्य दुःखी नहीं होता? यह सब सुनना चाहता हूं ।।१०।। सूतजी बोले- युधिष्ठिर से पूँछे हुए उस प्रश्न को सुनकर धर्मात्मा वह भीष्मजी सब सुननेवालों से यह वचन बोले ।।११।। भीष्मजी बोले- हे युधिष्ठिर! जो मनुष्य प्रेम से श्राद्धों को करते हैं, तो उन श्राद्धों से, पितरों के प्रसाद से सब प्रसन्न होते हैं ।।१२।। श्रेष्ठ फल चाहने वाले मनुष्य सदा पिता और पितामह और प्रपितामह की तीन पिण्डों में श्राद्ध करते हैं ।।१३।। पितर धर्म की कामना करनवाले तथा सन्तान की इच्छा करनेवाले मनुष्य को प्रजा तथा धर्म को नित्य देते हैं ।।१४।। हे युधिष्ठिर! पुष्टि की इच्छा करनेवाले को पुष्टि देते हैं ।।१५।। युधिष्ठिर बोले- किसी के पितर स्वर्ग में तथा किसी के नरक में होते हैं, मनुष्यों को नित्य ही कर्मानुसार फल मिलता है ।।१६।। उन पितरों को दिये हुए पिण्ड, श्राद्ध आदि किस प्रकार पहुँचते हैं और वे नरकों में स्थित हुए पितर फल देने में कैसे समर्थ होते हैं?।।१७।। देवता भी स्वर्ग में पितरों को पूजते हैं, ऐसा सुना है, यह मेरी सुनने की इच्छा है, मुझसे विस्तार से कहिये ।।१८।। भीष्मजी बोले- हे अरिन्दम! इस विषय में तुमसे कहूंगा, जैसा मैंने सुना है और जिस प्रकार दूसरे लोक में प्राप्त हुए मेरे पिता ने कहा है ।।१९।। श्राद्ध के समय मैंने अपने पिता को पिण्डदान

किया, तो पिता ने मेरे हाथ से पिण्डभेदन करके हाथ में पिण्ड मांगा ।।२०।। ऐसी कल्प की विधि नहीं देखी, ऐसा निश्चय करके मैंने बिना विचारे वह पिण्ड कुशाओं पर ही दिया ।।२१।। तब सन्तुष्ट हुए मेरे पिता मुझसे मधुरवाणी से बोले, हे अनघ! हे भारतश्रेष्ठ! मैं सन्तुष्ट हुआ ।।२२।। हे पुरुषोत्तम! तुम धर्मात्मा, विद्वान् से मैं भाग लेनेवाला हूं और तारा गया हूं, ऐसी मेरा जिज्ञासा है कि ।।२३।। राजा जिस प्रकार धर्माचरण से प्रमाण करता है, उस प्रकार प्रमाण के अनुसार आचरण से प्रजा पीछे चलती है ।।२४।। हे भारतश्रेष्ठ! हे पुत्र! तुम सनातन वेदधर्मों को सुनो, तुमने वेदधर्म का प्रमाण सम्पादन किया ।।२५।। इस कारण मैं तुमसे प्रसन्न हुआ और प्रीति से उत्तम तीनों लोकों में दुर्लभ वर देता हूं, स्वीकार करो ।।२६।। जब तक तुम जीने की इच्छा करोगे, तब तक तुम्हारी मृत्यु न होगी और तुम्हारी आज्ञा पाकर मृत्यु होगी ।।२७।। और जो तुम इच्छा करते हो, सो उत्तम वर दूंगा, हे भारतश्रेष्ठ! जो तुम्हारे मन हो सो कहो ।।२८।। ऐसा उनके कहने पर अभिवादन करके हाथ जोड़कर कृतकृत्य हुआ मैं यह बोला, हे मादन! आपके प्रसन्न होने पर मैं एक प्रश्न पूछता हूं, उसको आप स्वयं कहिये ।।२९।। तब वे मुझसे बोले, जो तुम चाहते हो वह मैं दूंगा, मेरे पूछने पर वह राजा यह कहने लगे ।।३०।। शन्तनु बोले– हे तात! सुनो, मैं तुम्हारे प्रश्न को ठीक–ठीक कहता हूं, सम्पूर्ण पितृकल्प मैंने मार्कण्डेयजी से पहले सुना है ।।३१।। हे तात! जो तुम मुझसे पूछते हो, वह ही पहले मैंने महामुनि मार्कण्डेयजी से पूछा था, तब वे धर्मात्मा मुझसे कहने लगे ।।३२।। मार्कण्डेय मुनि बोले– हे राजन्! सुनो, कभी आकाश को देखते हुए मैंने पर्वत के अन्तर से आते हुए बड़ा विमान देखा ।।३३।। उस विमान कें प्रत्यक्ष जलते हुए अंगार समान प्रज्ज्वलित हुए अनुपम, मनोहर, महातेजस्वी ।।३४।। शयन करते हुए प्रदीप्त तेजवाले, अग्नि में रखी हुई अग्नि के समान अंगुष्ठमात्र पुरुष को मैंने देखा ।।३५।। तब मैंने उन प्रभु को सिर से प्रणाम करके यह पूंछा, हे प्रभो! मैं आपको कैसे जानूं?।।३६।। तब वह धर्मात्मा मुझसे बोले, हे मुने! ऐसा कोई तप नहीं है, जिसमें तुम ब्रह्माजी के पुत्र मुझको जानोगे ।।३७।। मुझको सनत्कुमार नामवाला जानो, मैं तुम्हारा क्या कार्य करूं? ब्रह्माजी के और जो पुत्र हैं, वे मेरे छोटे भाई हैं।।३८।। हमारे सात दुर्धर्ष भाई हैं, जिनके वंश प्रतिष्ठित हैं, हम सब आत्मा में आत्मा को स्थिर करके यतिधर्म करनेवाले हैं।।३९।। हे मुने! जब मैं उत्पन्न हुआ, तब से कुमार नाम से प्रसिद्ध हुआ हूं, इस कारण मेरा सनत्कुमार नाम विख्यात हुआ ।।४०।। मेरे दर्शन की इच्छा से तुमने जो तप किया इससे मैंने दर्शन दिया, तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम्हारा क्या मनोरथ पूर्ण करूं?।।४१।। ऐसा कहते हुए उनसे मैंने कहा, हे प्रभो! सुनिये, पितरों के आदि सर्ग को यथार्थ कहिये ।।४२।। ऐसा कहने पर वह मुझसे बोले, हे तात! सुनो, मैं तुमसे सम्पूर्ण सुखदायक पितृसर्ग को ठीक–ठीक कहता हूं ।।४३।।

सनत्कुमारजी बोले- पहले ब्रह्माजी ने देवताओं को उत्पन्न किया और उनसे यह बोले कि, आप मुझे पूजो, तब फल के चाहनेवाले देवताओं ने ब्रह्माजी को त्यागकर आत्मा (अपने) का यजन किया।।४४।। तब उन्हें ब्रह्माजी ने यह शाप दिया कि, आप चेतना से हीन होंगे, इससे नष्टसंज्ञ होवे, ब्रह्माजी को कुछ न जानते हुए।।४५।। और नम्र हुए सब बोले, हे ब्रह्माजी! हम पर दया करें, ऐसा सुनकर ब्रह्माजी ने उनसे प्रायश्चित्त के लिये कहा।।४६।। तथा यह कहा कि, आप सब अपने पुत्रों से पूंछो तो ज्ञान को पाओगे, ऐसा सुनकर नष्टसंज्ञावाले वे सब अपने पुत्रों से पूंछने लगे।।४७।। हे अनघ! तब उनके पुत्रों ने यह कहा, हे पुत्रो! चेतना से युक्त होकर तुम प्रायश्चित्त के निमित्त जाओ।।४८।। तब शाप दिये हुए उन देवताओं ने पुत्रों की इच्छा से ब्रह्माजी से पूछा कि, हमारे पुत्रों ने हम को 'पुत्र' ऐसा सम्बोधन क्यों किया?।।४९।। तब सन्देह करनेवाले उन देवताओं से ब्रह्माजी ने कहा, हे सब देवताओ! सुनिये, आप ब्रह्मवादी नहीं हो।।५०।। इस कारण आपके ज्ञानी पुत्रों ने जो कुछ कहा उसे निःसन्देह मानो, अन्यथा न करो, उनके ज्ञान में आप बालक हो।।५१।। आप सब आपस में अति प्रेम से सम्पूर्ण कामनाओं के देनेवाले देवता और पितरों का पूजन करो।।५२।। सनत्कुमारजी बोले- हे मुनिश्रेष्ठ! तब वे ब्रह्माजी के वचन से सन्देह रहित होकर परस्पर प्रीति करनेवाले सुख दायक हुए।।५३।। तब देवताओं ने उनसे कहा, जो कि, आपने हम को पुत्रक ऐसा कहा है, इससे आप पितर होवोगे, इसमें कुछ संशय नहीं।।५४।। पितृश्राद्ध में कोई भी मनुष्य क्रिया को न छोड़ेगा, श्राद्धों से तृप्त हुए सोम लोकों को तृप्त करेंगे।।५५।। समुद्र, पर्वत, वन, स्थावर-जंगमों में व्याप्त होकर जो मनुष्य पुष्टि के कामना से श्राद्ध करेंगे।।५६।। प्रसन्न किये हुए पितर उनको सदा पुष्टि को देंगे, जो श्राद्ध में नाम, गोत्र से तीन पिण्डों को दान करेंगे।।५७।। तो सब जगह वर्तमान हुए निरन्तर श्राद्धदान से तृप्त किये हुए सर्व व्यापक पितर प्रपितामह आदि श्राद्धकर्ता की सब कामनाओं को पूर्ण करते हैं।।५८।। यह सुनकर उन्होंने कहा इनका वचन सत्य हो, हम सब देवता परस्पर में पुत्र और पितर हुए।।५९।। इस प्रकार वे पितर देवता धर्म से पुत्रभाव को प्राप्त हुए और परस्पर संसार में पितर नाम से प्रसिद्ध हुए।।६०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां

श्राद्धकल्पे पितृप्रभाववर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४० ।।

*****

इकतालीसवाँ अध्याय

सनत्कुमारजी बोले– हे तपस्वियों में श्रेष्ठ! स्वर्ग में वे सात पितृगण कहे हैं, उनमें चार मूर्तिवाले तथा तीन बिना मूर्तिवाले हैं ।।१।। आद्य देवगण तथा ब्राह्मण उनको पूजते हैं, तब वे पितर पहले योगबल से सोम को तृप्त करते हैं ।।२।। इस कारण चांदी के पात्र तथा चांदी सहित श्राद्ध का दान विशेष कर योगियों को देना उचित है ।।३।। श्राद्ध में पुरोहित को प्रदान किया हुआ स्वधा पितरों को तृप्त करता है, अग्नि तथा सोम और यम का आह्वान (बुलाना) करके ।।४।। अग्नि के अभाव में जल में उदगायन करके जो मनुष्य भक्ति से पितरों को सन्तुष्ट करता है, तो पितर उसे सन्तुष्ट करते हैं ।।५।। प्रसन्न हुए पितर पुष्टि, अधिक सन्तान, स्वर्ग, आरोग्य, वृद्धि तथा और भी इच्छित पदार्थ देते हैं ।।६।। हे मुने! देवकार्य से भी पितरों का कार्य विशेष कहा है, तुम पितरों के भक्त हो, इससे अजर–अमर होओ ।।७।। हे महामुने! वह गति योग से भी नहीं मिलती, जो गति पितृभक्ति की होती है, इससे विशेष कर पितृभक्ति करनी चाहिये ।।८।। मार्कण्डेयजी बोले– ऐसा कहकर वह देवताओं के स्वामी देवताओं से भी दुर्लभ विज्ञान सहित नेत्र देकर योग की गति को प्राप्त हुए ।।९।। हे भीष्म! सुनो, पहले भारद्वाज के पुत्र ब्राह्मण योगधर्म को प्राप्त होकर दुराचार से फिर भ्रष्ट हो गये ।।१०।। वे वाग्दुष्ट, क्रोधन, हिंस्र पिशुन कवि, स्वसृष्ट पितृवर्ती नामवाले थे तथा नाम के अनुसार कर्म करनेवाले थे ।।११।। हे तात! विश्वामित्रजी के पुत्र और गर्गजी के शिष्य हुए पिता के मर जाने पर सब प्रवास करनेवाले हुए ।।१२।। गुरु के विनियोग से समान वत्सरवाली दोहन शील कपिला* गौ को पालते हुए वे सब अन्याय को प्राप्त हुए ।।१३।। हे भारत! मार्ग में मूर्खता से, मोह से वा उस समय भूख से व्याकुल होकर उस गाय को मारने की दुष्टबुद्धि उत्पन्न हुई ।।१४।। कवि तथा स्वसृष ने उस गौ को उनसे मांगा, पर उन्होंने न दी और वे उनको निवारण करने में समर्थ न हुए ।।१५।। उनमें से जो नित्य श्राद्ध आह्निक करनेवाला था वह पितृवर्त्ती था, वह पितरों की भक्ति में तत्पर हुआ सबों से क्रोध से बोला ।।१६।। यदि और करने में असमर्थ हो, तो पितरों को उद्देश्य करके यह कार्य साधन करो, तुम सब सावधान होकर श्राद्ध करो ।।१७।। इस प्रकार यह गौ निःसन्देह धर्म को प्राप्त होगी, धर्म से पितरों को पूजकर तुमको अधर्म नहीं होगा ।।१८।। हे भारत! ऐसा कहने पर उन सबों ने उस गाय को स्नान कराके पितरों

*– यह गौ ऋषि के पुण्य की निर्मिति थी, इन गौओं की समान थी उस पुण्य को इन्हों ने अन्याय से मुक्त किया।

को समर्पण करके कार्य साधा।।१९।। पश्चात् सबों ने उन गुरु से निवेदन किया कि, सिंह ने वन में गाय मार डाली, आप इस बछियें को ग्रहण करें।।२०।। तब उस दुःखित वत्स को ब्राह्मण ने ग्रहण किया, मिथ्या उपचार से उन सब को गौहत्या करने का पाप लगा।।२१।। हे तात! तब कुछ समय के बीतने पर काल के धर्म में प्राप्त हुए वे सातों भाई आयु के विनाश में प्राप्त हुए।।२२।। अपनी दुष्टता से वे सब हत्या करने से तथा अपनी दुर्जनता से बड़ी हिंसा विहार करनेवाले सगे सात भाई हुए।।२३।। दशार्ण देशों में वे सातों बली बुद्धिमान् लुब्धक के पुत्र धर्म में प्रवीण व्याधे हुए।।२४।। अपने धर्म में तत्पर मोह वर्जित उद्वेग से युक्त वे सातों मृगों के समान कालञ्जरपर्वत पर विहार करने लगे।।२५।। तब उस मरणात्मक ज्ञान को स्मरण करके वे वनचर निर्द्वन्द्व होकर शान्त हो गये।।२६।। वे सब व्याधे शुभ कर्म करनेवाले अधर्माचरण से हीन जातिस्मरण वाले हो गये।।२७।। पूर्वजन्म में गुरुकुलों में जो धर्म सुना था, उसी प्रकार संसार से निवृत्त होने की बुद्धि में स्थित हुए।।२८।। और उन्होंने तपस्वियों से पर्वतों में भोजन पाकर वहां ही प्राणों को त्यागा, हे भारत! उन पतित व्याधों के जो स्थान हैं।।२९।। हे राजन्! वह स्थान अब भी कालञ्जरपर्वत पर दीखते हैं, वे उस कर्म से शुभ और अशुभ से वर्जित हुए।।३०।। पश्चात् हिरन हुए, फिर शुभ तथा अशुभ के होने से चकवे की योनि को प्राप्त हुए, फिर शुभ देश में शरद्वीप में सातों जलजीव (चकवे) बने।।३१।। धर्माचरण करनेवाले, निसंग, ममतारहित, शान्त, निर्द्वन्द्व, निष्परिग्रही वे मुनि सहचरी धर्म को छोड़कर।।३२।। निवृत्ति से निवृत्त होकर धर्माचारी वे शकुन नामवाले पक्षी ब्रह्मचारी हुए।।३३।। वे सात वृद्ध ब्रह्मचारी एक स्थान में स्थित होकर तथा सदा निर्विकारी हुए।।३४।। ब्राह्मण की योनि में गुरु के विषय में जो मिथ्या अपचार किया उससे पक्षी की योनि में जन्म हुआ, फिर श्राद्ध करने से उन्होंने ज्ञान पाया।।३५।। और उन्होंने व्यवस्थित चित्त होकर पितरों के कार्य के निमित्त श्राद्ध किया, तो क्रम से ज्ञान और जातिस्मरण के उत्तम गुण को प्राप्त किया।।३६।। पूर्वज आदि गुरुकुलों में जो ब्रह्मज्ञान सुना था, उसी प्रकार ज्ञान उनमें स्थित रहा, इस कारण ज्ञान का अभ्यास करना उचित है।।३७।। वे सुमना, सुवाक्, शुद्ध पंचम छिद्र दर्शक, स्वतन्त्र, सुयज्ञ, कुलीन नामवाले हुए।।३८।। हे महामुने! वन में फिरनेवाले धर्मात्मा उन पक्षियों का जिस प्रकार उत्तम आचरण हुआ, उसे सुनिये।।३९।। नीप देशों का स्वामी प्रभावशाली, शोभायमान अन्तःपुर से युक्त राजा उस वन में एक समय आया।।४०।। सुखीराज्य से युक्त शोभा से जाते हुए उस राजा को देखकर स्वतन्त्र चकवे ने यह इच्छा की।।४१।। यदि कोई पुण्य वा तप, नियम है, जो निश्चल तप से, उपवास से व्याकुल हुआ मैं।।४२।। उस सब के पूर्ण फल से ऐसा सौभाग्य का पात्र हो जाऊँ।।४३।। मार्कण्डेयजी बोले– तत्पश्चात् दोनों चकवे सहचारी बोले, कि हम दोनों आपके प्रिय हितैषी मन्त्री

होवें ।।४४।। ऐसा हो यह कहने से उसकी योगात्मा से वैसी गति हो गई, तब वे दानों चकवे इस प्रकार अपने वचनों को कहने लगे ।।४५।। जो कुछ कर्म करके आपने योगधर्म को प्राप्त किया है, फिर ऐसी बात कहते हो, इससे मेरा वचन सुनो ।।४६।। हे तात! आप उत्तम काम्पिल्य नगर के राजा होंगे और योग के व्यभिचार के कारण वह दोनों चकवे आपके मन्त्री होंगे ।।४७।। तीनों ने राज्य विषयक मन लगाने के कारण जब कुछ न कहा, तब उनका चतुर सहचारी फिर बोला, और उस सुमना ने उन पर प्रसन्नता प्रकट की ।।४८।। भो आपका शाप मिट जायगा, आप फिर योग को प्राप्त होगे, सर्व सत्ववाला यह सुयज्ञ फिर योग को प्राप्त होगा ।।४९।। पितरों के प्रसाद से आपको पुण्य की प्राप्ति रहेगी, जो कि आपने गौ को प्रोक्षण करके धर्म से पितरों के निमित्त अर्पण किया था ।।५०।। हम सबको ज्ञान का संयोग योग का साधन प्राप्त हुआ, इस कार्य के लिये उदाहरण में एक श्लोक होगा ।।५१।। किसी पुरुष से उस श्लोक को सुनकर आप फिर पूर्व योग को प्राप्त होगे, यह कहकर सुमन नामवाला पण्डित विहंग मौन हो गया ।।५२।। मार्कण्डेयजी बोले– हे तात! हे शन्तनु के पुत्र! लोकों के कल्याण के निमित्त यह मैंने चरित्र कहा। अब क्या सुनना चाहते हो?।।५३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां
व्याधगतिवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४१ ।।

*****

बयालीसवाँ अध्याय

भीष्मजी बोले– हे महाप्राज्ञ! हे पितृभक्तों में श्रेष्ठ! हे मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेयजी! उसके पश्चात् क्या हुआ? सो कृपा करके कहिये ।।१।। मार्कण्डेयजी बोले– वे सातों धर्मयोग में तत्पर होकर मानस सरोवर में विचरते हुए निरन्तर पवन जल को भक्षण करके अपना शरीर सुखाने लगे ।।२।। जिस प्रकार इन्द्र नन्दनवन में विहार करते हैं, इस प्रकार वह राजा वहां क्रीड़ा करके अपने अन्तःपुर की स्त्रीजनों के सहित अपने नगर को गया ।।३।। उसका अनूह नामक परम धर्मात्मा पुत्र था, उसे राज्य पर बैठाकर वैभ्राज राजा वन को चला गया ।।४।। और जहां वे सहचारी थे वहां तप करने लगा, इस प्रकार वायु भक्षण करके महातप किया ।।५।। उस राजा के तप से प्रकाशित हुआ वह विभ्राजित नाम से प्रसिद्ध हुआ और योग सिद्धि का देनेवाला हुआ ।।६।। वहीं योगधर्मवाले उन चारों पक्षियों ने तथा योग से भ्रष्ट हुए उन तीनों पक्षियों ने अपनी देह त्यागकर दी ।।७।। ब्रह्मदत्त को आदि लेकर विगत हो गया है पाप जिनका, ऐसे वे सातों महात्मा काम्पिल्य

नगर में उत्पन्न हुए।।८।। उनमें वे चार तो स्मृतिवाले हुए और तीन मोहित हुए महातेजस्वी ब्रह्मदत्त स्वतन्त्ररूप से हुआ।।९।। छिद्रदर्शी और सुनेत्र वेद वेदांग के पारगामी हुए, यह पूर्व जाति में साथ रहने के कारण श्रोत्रिय के पुत्र हुए।।१०।। पश्चाल बहुऋच् होकर आचार्यत्व करने लगा, द्विवेद और पुण्डरीक छन्दोगा और अध्वर्यु हुए।।११।। इस ओर राजा ने अपने पुत्र ब्रह्मदत्त को पापरहित देखकर उसे राज्य में अभिषेक करके परम गति प्राप्त की।।१२।। इधर पंचाल पुण्डरीक ने अपने दोनों पुत्रों को मन्दिर में स्थापन करके वन में जाकर परम गति पाई।।१३।। हे भारत! ब्रह्मदत्त की भार्या का नाम सन्नति था, वह एक भाव को प्राप्त होकर भर्ता के साथ नित्य रमण करने लगी।।१४।। हे राजन्! शेष चक्रवाक उसी काम्पिल्य नगर में दरिद्री श्रोत्रिय कुल में जन्मे।।१५।। धृतिमान्, महात्मा, तत्त्वदर्शी, निरुत्सुक यह चारों वेदाध्ययन सम्पन्न तथा छिद्रदर्शी हुए।।१६।। वे चारों योगसिद्ध परस्पर शंकरजी को आमन्त्रण करके और उनके चरणकमलों को प्रणाम कर युक्त रूप होकर चले गये अर्थात् पूर्वजाति का स्मरण होने से वे चारों चले गये।।१७।। चलते समय वे चारों अपने पिता से बोले, हम आपकी आजीविका का विधान किये जाते हैं, जिससे आपका निर्वाह हो जाय।।१८।। बड़े अर्थ वाला यह श्लोक मन्त्रियों के सहित राजा को सुनाना, तो प्रसन्न होकर पापरहित ब्रह्मदत्त आपको ग्राम और बहुत से भोग्य पदार्थ देगा, यह कहकर वे सब अपने गुरु की पूजा करके योगधर्म को प्राप्त होकर मोक्ष हो गये।।१९-२०।। इन महात्मा चारों ब्राह्मणों का पिता पुत्र से वह श्लोक पढ़कर कृतकृत्य हो गया।।२१।। वह श्लोक जाकर उसने राजा और राज्य मन्त्रियों को सुनाया कि, दशार्ण देश में सात व्याधे हुए, कालिञ्जर पर्वत पर सात हिरन हुए।।२२।। शरद्वीप में चक्रवाक मानस सरोवर में सात हंस हुए, वही कुरुक्षेत्र में वेदपारगामी ब्राह्मण हुए।।२३।। उनमें चार दीर्घ मार्ग मोक्ष को चले गये, आप कैसे दुःख पाते हो, यह सुनते ही राजा ब्रह्मदत्त मोह को प्राप्त हो गया।।२४।। पुण्डरीक और पांचाल इसके मन्त्री भी मोह को प्राप्त हुए, तब उस सरोवर को स्मरण कर योग को प्राप्त होकर।।२५।। ब्राह्मणों को बहुत सा धन दान कर अपने विष्वक्सेन पुत्र को राज्य में अभिषेक कर।।२६।। ब्रह्मदत्त स्त्री सहित वन को चला गया और योगबल से वहां उत्तम गति को प्राप्त हुआ।।२७।। धर्मात्मा पुण्डरीक भी उत्तम सांख्ययोग को पाकर उस कर्म से शुद्ध होकर योगगति को प्राप्त हुआ।।२८।। इसी क्रम से पांचाल भी उत्तम शिक्षा को पाकर महातप से यश और योग की गति को प्राप्त हुआ।।२९।। जो शूर मोक्ष होने की इच्छा से शिवजी को स्मरण करते हैं, वे शिवजी के परम पद को प्राप्त हो जाते हैं।।३०।। हे मुने! इस अध्याय का पाठ करने से वचन, मन, शरीर से किया हुआ पाप नष्ट हो जाता है, जो श्रद्धा से पढ़ते हैं।।३१।। शिवनाम के कीर्तन करने से ही सब पाप दूर हो जाते हैं, इस कारण उन देवदेव का सदा उच्चारण करे।।३२।। जैसे

जल में कच्चा बर्तन नष्ट हो जाता है, ऐसे शिवनाम से सब पाप दूर हो जाते हैं, इस कारण सञ्चित और समान पापों में ।।३३।। पाप शान्ति के लिये शिवनाम अवश्य जपना चाहिये । हे मुने! श्रद्धालु मनुष्यों को सब कामफल की प्राप्ति के लिये यह नाम जपना चाहिये ।।३४।। जो पुष्टि के लिये इस अध्याय को पढ़ता और सुनता है, वह सब पापों से रहित होकर मोक्ष को जाता है, इसमें सन्देह नहीं ।।३५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां
द्विचत्वारिंशोऽध्याय: ।। ४२ ।।

*****

तैंतालीसवाँ अध्याय

शौनकजी बोले– हे सूतजी! हे व्यासजी के शिष्य! अब आचार्य के पूजन को कहिये तथा ग्रन्थ सुनने के उपरान्त क्या करना चाहिये? यह भी कहिये ।।१।। सूतजी बोले– परम कथा को सुनकर भक्ति से विधिपूर्वक आचार्य को पूजे और प्रसन्न होकर ग्रन्थ के अन्त में आचार्य को विधिपूर्वक दान दे ।।२।। तत्पश्चात् पुराणवक्ता को प्रणाम करके विधिपूर्वक हाथ, कानों के भूषण से तथा रेशमी, सूती आदि के वस्त्रों से पूजकर ।।३।। शिवजी के पूजन की समाप्ति में ब्राह्मण को वत्स सहित गाय देवे और वस्त्र सहित पल भर सोने के आसन को बना कर ।।४।। उस पर मनोहर अक्षरों से लिखे हुए शुभ ग्रन्थ को स्थापित करे और आचार्य को दे, तो संसार के बन्धनों से मुक्त होता है ।।५।। हे मुने! ग्राम, राज्य, घोडा आदि तथा यथाशक्ति अन्य पदार्थ भी महात्मा वाचक को देने चाहिये ।।६।। हे शौनक मुने! यह पुराण विधिपूर्वक सुनने से सफल होता है, सो सब मैंने सत्य-सत्य कहा ।।७।। हे मुने! इसलिये भक्तिपूर्वक विधान से सुनना चाहिये, यह पुराण शास्त्र के अर्थों से युक्त पुण्य प्रदान करनेवाला तथा मनोहर कहा है ।।८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां
व्यासपूजनप्रकारो नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्याय: ।। ४३ ।।

*****

चवालीसवाँ अध्याय

मुनि बोले- हे महाबुद्धे! हे प्रभो! हे दयासागर! हे सूतजी! हे स्वामिन्! व्यासजी की उत्पत्ति वर्णन करें और हमें अपनी परमकृपा से कृतार्थ करे ।।१।। व्यासजी की माता सत्यवती नामवाली कही है, वह देवी राजा शन्तनु से विवाही थी ।।२।। उसमें पराशरजी से महायोगी व्यासजी कैसे उत्पन्न हुए? इस विषय में मुझे बड़ा सन्देह उत्पन्न हुआ, उसे आप छेद करने योग्य हैं ।।३।। सूतजी बोले- एक समय तीर्थयात्रा को जाते हुए योगी पराशरजी अपनी इच्छा से यमुना के सुन्दर मनोहर तीर पर प्राप्त हुए ।।४।। तब वे महात्मा भोजन करते हुए निषाद से बोले, तुम मुझे शीघ्र ही नाव से यमुना के पार ले चलो ।।५।। इस प्रकार उन मुनि के कहने पर वह निषाद (मल्लाह) मत्स्यगन्धा नामक अपनी पुत्री से बोला, हे बाले! उन मुनि को शीघ्र ही नाव से पार ले जा ।।६।। हे महाभागे! दृश्यन्ती के गर्भ से उत्पन्न हुए धर्म के सागर, चारों वेदों के पारगामी यह तपस्वी पराशरजी पार होने की इच्छा करनेवाले हैं ।।७।। इस प्रकार पिता से जताई हुई मत्स्यगन्धा नौका में बैठे हुए, सूर्य की कान्तिवाले महामुनि पराशरजी को पार कराने लगी ।।८।। समय योग से महामुनि उस कन्या में कामातुर हो गये, जो अप्सराओं के रूप को भी देखकर कदापि नहीं मोहित हुए ।।९।। ग्रहण करने की इच्छावाले उन मुनि ने उस मनोहर कन्या के दक्षिण हाथ को अपने दक्षिण हाथ से स्पर्श किया ।।१०।। तब विशाल नेत्रवाली कन्या ने कुछ हँसकर यह वचन कहा कि, यह सत्पुरुषों से निन्दित कर्म क्यों करते हो?।।११।। हे महापते! आप वसिष्ठजी के मनोहर कुल में उत्पन्न हुए हो, हे ब्रह्मन्! मैं निषाद से उत्पन्न हुई हूँ, हम दोनों का संग कैसे होगा? ।।१२।। हे मुनिश्रेष्ठ! प्रथम तो मनुष्य का जन्म दुर्लभ है, उसमें विशेष कर ब्राह्मणत्व, फिर उसमें तपस्वी होना अति दुर्लभ है ।।१३।। विद्या से, सुन्दर शरीर से, वाणी से, कुल तथा शील से युक्त होकर भी कामबाणों के वश में हुए, बड़ा आश्चर्य है ।।१४।। दुष्कर्म करने में प्रवृत्त हुए भी योगी इन मुनि के शाप के भय से इनको निवारण करने को कोई भी मनुष्य समर्थ नहीं है ।।१५।। ऐसा अपने मन में विचार के उन महामुनि से बोली, हे स्वामिन्! जब तक मैं आपको पार न करूं, तब तक धैर्य धारण करें ।।१६।। सूतजी बोले- ऐसा उस कन्या का वचन सुनकर योगिराज पराशरजी ने वेग से हाथ को छोड़ा और वे सिन्धु के पार गये ।।१७।। फिर काम से पीड़ित हुए मुनि ने उस कन्या को ग्रहण किया, तब कांपती हुई वह कन्या उन करुणासागर पराशरजी से बोली ।।१८।। हे मुनिश्रेष्ठ! मैं दुर्गन्धि युक्त, काले वर्णवाली, निषाद (मल्लाह) से उत्पन्न हुई हूं और

आप परमोदार, विचारशील, योगियों में श्रेष्ठ हो ।।१९।। कांच और सुवर्ण के समान हम दोनों का संग नहीं घटता है, समान जाति, आकारवालों की संगति सुख की देनेवाली होती है ।।२०।। ऐसा उस कन्या के कहने पर क्षणमात्र में उन मुनि ने उस कन्या को मनोहर, सुन्दर रूपवाली तथा एक योजन का सुगन्धियुक्त कामिनी बनाया ।।२१।। काम से पीडित हुए मुनि ने फिर उसे पकड़ा, तब ग्रहण करने की इच्छावाले मुनि को देखकर वासवी बोली ।।२२।। रात्रि में मैथुन करना चाहिये, दिन में कदापि विषय न करना उचित है, ऐसा वेद में कहा है, दिन के प्रसंग में बड़ा दोष तथा बड़ी निन्दा होती है ।।२३।। इस कारण तब तक प्रतीक्षा करें, जब तक रात्रि होवे, कारण कि यहां मनुष्य देखेंगे और मेरे पिता भी तट पर स्थित है ।।२४।। उस कन्या ने कहे हुए वचन सुनकर उन मुनिश्रेष्ठ ने अति शीघ्र ही पुण्य के बल से कोहरे की कल्पना की ।।२५।। रात्रि के समान अन्धकार से युक्त कोहरे के प्रकट होने पर विषय से चकित हुई वह कन्या फिर उन मुनि से बोली ।।२६।। हे योगिन्! हे स्वामिन्! यदि सफल वीर्यवाले आप मुझे भोगकर चले जाओगे, तब गर्भ रह जाने पर मेरी क्या गति होगी ?।।२७।। हे महाबुद्धे! मेरा कन्याव्रत नष्ट होगा और लोक हँसेंगे, तब मैं मेरे पिता से क्या कहूंगी ?।।२८।। पराशरजी बोले– हे बाले! हे प्रिये! काम से उत्पन्न हुए रसों के सहित मेरे साथ स्वतन्त्र होकर रमण कर और अपनी अभिलाषा को कह, मैं अभी पूर्ण करूंगा ।।२९।। मेरी आज्ञा से सत्य करने से तू सत्यवती नामवाली तथा सम्पूर्ण योगी और देवताओं से वन्दनीय होगी ।।३०।। सत्यवती बोली– यदि मेरे माता–पिता तथा पृथ्वी पर अन्य मनुष्य न जाने तथा मेरा कन्याधर्म नष्ट न होवे तो, मुझे स्वीकार करें ।।३१।। हे नाथ! मुझे अद्भुत शक्तिवाला, आपके समान पुत्र होवे और मेरे अंग में नित्य सुगन्ध तथा नित्य नवीन–नवीन यौवन होवे ।।३२।। पराशरजी बोले– हे प्रिये! सुनो, तुम्हारे सब मनोरथ पूर्ण होंगे और तुझे विष्णुजी के अंश से युक्त महायशस्वी पुत्र उत्पन्न होगा ।।३३।। इसमें कुछ कारण जान, जिससे मैं काम से पीड़ित हुआ हूं, अप्सराओं के रूप को देखकर भी मेरा मन कभी भी मोहित नहीं हुआ ।।३४।। हे मत्स्यगन्धा! तुझे देखकर मोह के वश में प्राप्त हुआ हूं, हे बाले! मस्तक पर लिखा हुआ ब्रह्माजी का लेख मिथ्या नहीं होता है ।।३५।। हे वरारोहे! तेरे पुराणों का कर्ता, वेदशाखा के विभाग का करनेवाला, तीनों लोकों में प्रसिद्ध कीर्त्तिवाला पुत्र उत्पन्न होगा ।।३६।। हे महामुने! ऐसा कहकर उस मनोहर अंगवाली को भोगकर योग में प्रवीण मुनि पराशरजी शीघ्र ही यमुना के जल में स्नान करके चले गये।।३७।। उसने भी शीघ्र ही बाहर आत्मा (सूर्य) के समान कान्तिवाले गर्भ को धारण किया और सूर्यजा द्वीप में कामदेव के समान पुत्र उत्पन्न किया ।।३८।। जो बायें हाथ में कमण्डल तथा दहिने हाथ में उत्तम दण्ड धारण किये, पीतवर्णवाली जटाओं से विराजमान् साक्षात् तेजों के समूह युक्त था ।।३९।। वह तेजस्वी

उत्पन्न होते ही अपनी माता से बोला, हे माता! तुम भी यथेच्छ जाओ, इसके पीछे मैं भी यथा काम जाऊंगा।।४०।। हे माता! जब तेरा कोई मनोवंछित कार्य होगा, तो तुम्हारी इच्छा पूर्ण करने के निमित्त स्मरण करते ही मैं आऊंगा।।४१।। ऐसा कहकर वह तपोनिधि माता के चरणों को प्रणाम करके तप करने के लिये पापों को दूर करनेवाले तीर्थ को चले गये।।४२।। और वह उनकी माता भी पुत्र के स्नेह में व्याकुल हुई, अपने पुत्र के चरित्र को स्मरण करती हुई तथा अपने भाग्य का वर्णन करती हुई, अपने पिता के समीप चली गई।।४३।। कारण कि, वह बालक द्वीप में उत्पन्न हुआ, इससे द्वैपायन नाम हुआ, वेदशाखा के विभाग को करने से वेदव्यास कहलाये।।४४।। पहले तो धर्म, काम, अर्थ, मोक्ष देनेवाले तीर्थराज (प्रयाग) को नैमिषारण्य को, कुरुक्षेत्र को, गंगाद्वार को तथा अवन्तिकापुरी को गये।।४५।। अयोध्या, मथुरा, द्वारिकापुरी, अमरावती, सरस्वती, सिन्धुगंगा, गंगासागर के संगम को गये।।४६।। काञ्ची, त्र्यम्बक, सप्त गोदावरी के तट को, कालञ्जर को, प्रभास को तथा बद्रिकाश्रम को।।४७।। महालय और ओंकार क्षेत्र को तथा पुरुषोत्तम को, गोकर्ण, भृगकच्छ, भृगुतुंग, पुष्कर।।४८।। श्रीपर्वत आदि तीर्थों को तथा धारातीर्थ को जाकर वहां परम तप करने लगे।।४९।। इसी प्रकार अनेक देशों में स्थित हुए अनेक तीर्थों में भ्रमण करते हुए व्यासजी वाराणसी पुरी में प्राप्त हुए।।५०।। जहां साक्षात् विश्वेश्वरनाथ तथा महेश्वरी अन्नपूर्णा यह दोनों कृपा के सागर भक्तों को अमृत देने को विराजते हैं।।५१।। वाराणसी तीर्थ को प्राप्त होकर मणिकर्णिका के दर्शन करके उन मुनीश्वरजी ने कोटिजन्मों के अर्जित हुए पापों को त्यागा।।५२।। विश्वेश आदि सम्पूर्ण ज्योतिर्लिंगों का दर्शन करके समस्त कुण्डों में तथा वापी, कूप, सरोवरों में स्नान करके।।५३।। सम्पूर्ण विनायकों को प्रणाम करके तथा समस्त गौरियों (देवियों) को नमस्कार करके कालराज, पापभक्षण करनेवाले भैरवजी को पूजकर।।५४।। दण्डनायकादि मुख्य गणों की यत्न से अस्तुति करके, आदि केशव, मुख्य केशवों को सन्तुष्ट करके।।५५।। लोलार्क मुख्य सूर्यों को बारंबार दण्डवत् करके तथा आलस्य हीन होकर सम्पूर्ण तीर्थों में पिण्डदान करके।।५६।। उन पुण्यात्मा वेदव्यासजी ने व्यासेश्वर नामक ज्योतिर्लिंग को स्थापन किया। हे विप्रो! जिनके दर्शन करने से मनुष्य सम्पूर्ण विद्याओं में बृहस्पति के समान हो जाता है।।५७।। विश्वेश आदि ज्योतिर्लिंगों को भक्ति से पूजकर वे बारंबार विचारने लगे कि, कौनसा लिंग शीघ्र सिद्धि का देनेवाला है?।।५८।। जिन महादेवजी का आराधन करके मैं सम्पूर्ण विद्याओं को प्राप्त करूं तथा जिनके अनुग्रह से मुझमें पुराण बनाने की शक्ति उत्पन्न हो।।५९।। श्रीमान् ओंकारनाथ को वा कृत्तिवासेश्वर को, केदारेश्वर को, कामेश वा चन्द्रेश, त्रिलोचन को।।६०।। कालेश को, वृद्धकालेश वा कलशेश्वर को, ज्येष्ठेश, जम्बुकेश वा जैगीषव्येश्वर को।।६१।। दशाश्वमेध शिवजी को,

द्रुमिचण्डेश को, दृक्केश, गरुडेश, गोकर्णेश, गणेश्वर ।।६२।। प्रसन्न वदनेश वा धर्मेश, तारकेश्वर को, नन्दिकेश, निवासेश, पत्रीश, प्रीतिकेश्वर।।६३।। पर्वतेश, पशुपति, हाटकेश्वर, बृहस्पतीश्वर वा तिलभाण्डेश ।।६४।। भारभूतेश्वर, महालक्ष्मीश्वर, मरुतेश, मोक्षेश, गंगेश, नर्मदेश्वर ।।६५।। कृष्णेश शिव को, रत्नेश्वर, यामुनेश, लांगलीश श्रीमद्विश्वेश्वर प्रभु को ।।६६।। अविमुक्तेश्वर, विशालाक्षीश, व्याघ्रेश्वर, वराहेश, विद्येश्वर ।।६७।। वरुणेश, विधीश, हरिकेश्वर, भवानीश, कपर्दीश, कन्दुकेश, अजेश्वर।।६८।। विश्वकर्मेश्वर, वीरेश्वर, नादेश, कपिलेश, भुवनेश्वर।।६९।। वाष्कुलीश महादेव को वा सिद्धिश्वर, विश्वदेवेश्वर, वीरभद्रेश, भैरवेश्वर ।।७०।। अमृतेश, सतीश, पार्वतीश्वर, सिद्धेश्वर, मतङ्गेश, भूतीश्वर ।।७१।। आषाढीश तथा कोटिरुद्रेश्वर, मदालसेश्वर, तिलपर्णेश्वर ।।७२।। हिरण्यगर्भेश वा श्रीमध्यमेश्वर इत्यादि कोटिलिंगों के मध्य में किन की उपासना करूं।।७३।। इस प्रकार चिन्ता में मग्न हुए व्यासजी शिवभक्ति में प्रेम करते हुए क्षणमात्र में ध्यान से स्थितचित्त होकर यह सोचने लगे ।।७४।। अहो ! जान लिया, मैं भूल गया था, अब मेरा मनोरथ सिद्ध हो गया, सिद्धों से पूजित तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष देनेवाला यह (मध्यमेश्वर) लिंग है ।।७५।। जिसके दर्शन, स्पर्शन करने से चित्त निर्मलता को प्राप्त होता है, जहां स्वर्ग का द्वार सदैव खुला है ।।७६।। अविमुक्त नामक महाक्षेत्र में जहां मध्यमेश्वर नामक परम लिंग है ।।७७।। काशी में मध्यमेश्वर लिंग से अधिक और कोई लिंग नहीं है, जिनके दर्शन करने के निमित्त सम्पूर्ण देवता प्रत्येक पर्व में आते हैं ।।७८।। इस कारण मध्यमेश्वर नामक महादेवजी सदा ही सेवनीय हैं। हे विप्रो ! उनके आराधन करने से अनेक मनुष्य सिद्धि को प्राप्त हुए।।७९।। जो मध्यमेश्वर नामक शिवजी अपनी नगरी के सुख के निमित्त काशी के मध्य में प्रधानता से स्थित रहते हैं ।।८०।। तुम्बरु नामक गन्धर्व तथा देवर्षि नारदजी उन महादेवजी का आराधन करके गानविद्या में प्रवीण हो गये ।।८१।। और इन्हींका आराधन करके भगवान् विष्णुजी मोक्ष के दाता हो गये और इन्हींकी कृपा से ब्रह्मा, विष्णु, महेश सृष्टि के उत्पन्नकर्त्ता, पालनकर्त्ता, संहारकर्त्ता हुए ।।८२।। धनाधीश कुबेर, वामदेव, शैवराट् तथा खट्वांग नामक यह राजा सन्तान हीन भी सन्तान वाले हुए ।।८३।। अपने भाव से नाचती हुई चन्द्रभामा नामवाली, कोयल के समान गानेवाली अप्सरा अपने देह सहित लिंग के मध्य में लय को प्राप्त हुई ।।८४।। श्रीकर नामक गोपिका के पुत्र ने मध्यमेश्वर को सेवन करके दयालु शिवजी के गाणपत्य को पाया ।।८५।। भार्गव और बृहस्पति, देवता तथा दैत्यों से पूजित यह दोनों देवता महादेवजी की कृपा से विद्या में पारंगत हुए।।८६।। मैं भी यहां मध्यमेश्वर शिवजी को पूजकर निश्चय वेग से पुराणों को रचने की शक्ति को प्राप्त होऊंगा ।।८७।। ऐसी बुद्धि ठानकर उन धीर सत्यवती के पुत्र व्रती व्यासजी ने गंगाजी के जल में स्नान करके नियम ग्रहण किया ।।८८।। कहीं

तो पत्तों को भक्षण करके तथा कहीं फल शाक का भोजन करके तथा कहीं पवन का भक्षण कर तथा कहीं जल का आहार कर तथा कहीं निराहार व्रती रहने लगे।।८९।। इत्यादि नियमों से वह धर्मात्मा योगी तीनों कालों में अनेक वृक्षों के फलों से मध्यमेश्वर शिवजी को पूजने लगे।।९०।। इस प्रकार बहुत दिन बीतने पर व्यासजी गंगाजी के जल में स्नान करके जब ही मार्ग में आये।।९१।। तब हीं उन पुण्यात्मा ने भक्तों को मनोवांछित वर देनेवाले मध्यमेश्वर शिवजी को ज्योतिर्लिंग के मध्य में देखा।।९२।। पार्वती से भूषित वामांगवाले, व्याघ्रचर्म के वस्त्रधारी, जटाजूट में चलायमान गंगा की तरगों से मनोहर शरीरयुक्त।।९३।। शोभायमान शरद ऋतु के बाल चन्द्रमा की किरणों से विराजमान, भस्म से सर्वांग लिप्त होनेवाले, कर्पूर के समान श्वेत शरीरवाले।।९४।। कानोंपर्यन्त विशाल नेत्रवाले, मूँगों के समान लाल होंठोंवाले, पांच वर्ष के आकारवाले, बालकों के योग्य भूषण पहने हुए।।९५।। कोटि कामदेव के दर्प को नाश करनेवाली शरीर की छबिवाले नग्न, खिले हुए कमल के समान मुखवाले, लीला से सामवेद गाते हुए।।९६।। करुणा के अपार समुद्र भक्तवत्सल नामवाले, शीघ्र सन्तुष्टि करनेवाले, पार्वती के पति, प्रसाद से सुन्दर मुखवाले साक्षात् शिवजी को।।९७।। योगियों को भी अगम्य दीनबन्धु, चिदात्मक, उनका दर्शन करके प्रेम से गद्‌गद हुई वाणी से स्तुति करने लगे।।९८।। वेदव्यासजी बोले- हे देवों के देव! हे महाभाग! हे शरणागत वत्सल! हे वाणी, मन, कर्म से भी दुर्लभ! हे योगियों के भी अगोचर!।।९९।। हे उमापते! वेद भी आपकी महिमा को नहीं जानते हैं, आप हीं संसार के उत्पादक, पालक तथा विनाश करनेवाले हो।।१००।। हे सदाशिव! आप सब देवताओं में प्रथम हो, सच्चिदानन्द ईश्वर हो, सर्वज्ञ हो और आपका नाम, गोत्र कुछ नहीं है।।१०१।। आप ही परब्रह्म माया के फांसे से निवृत्त करनेवाले हो, जैसे जल से कमलपत्र, तैसे आप तीनों गुणों से लिप्त नहीं हो।।१०२।। न आपका जन्म है, न शील और देश, न आपका कुल है, इस प्रकार के ईश्वर होकर भी आप त्रिलोकी के मनोरथ पूर्ण करते हो।।१०३।। आप न ब्रह्मा हो, न विष्णु हो और न इन्द्र सहित देवता हो और न योगीन्द्र ही आपके तत्त्व को जानते हैं, फिर किस प्रकार आपकी उपासना करें?।।१०४।। आपसे सब हैं तथा आप ही सम्पूर्ण, आप हीं पुरान्तक शिव हो, आप ही बालक तथा युवा तथा वृद्ध हो, आपको मैं अपने हृदय में धारण करता हूं।।१०५।। उन महेश भक्तों से ध्यान करने योग्य शम्भु, पुराण पुरुष शंकर परमात्मा आपको नमस्कार है।।१०६।। ऐसी स्तुति करके वे व्यासजी दण्डवत् करके भूमि पर गिर पड़े, तब हीं बालक प्रसन्न होकर वेदव्यासजी से बोले।।१०७।। हे योगिन्! जो तुम्हारे मन में हो सो वर अंगीकार करो, मुझे कुछ अदेय नहीं है, कारण कि मैं भक्तों के अधीन हूं।।१०८।। प्रसन्नात्मा महा तपस्वी मुनि व्यासजी उठकर बोले- हे प्रभो! हे सर्वज्ञ! आपको क्या अज्ञात

है ?।।१०९।। आप सर्वान्तरात्मा भगवान् शर्व, सब कुछ देनेवाले हो, आप दैन्यकारिणी याञ्चा में मुझे क्यों प्रयुक्त करते हो ?।।११०।। इस प्रकार निर्मल चित्तवाले उन व्यासजी का वचन सुनकर वह बालरूपधारी महादेवजी पवित्र हास्य करके बोले ।।१११।। बालक बोले- हे ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ ! तुमने जो अभिलाषा अपने मन में की है, वह अति शीघ्र पूर्ण होगी, इसमें संशय नहीं है ।।११२।। हे ब्रह्मन् ! मैं अन्तर्यामी ईश्वर तुम्हारे कण्ठ में स्थित होकर इतिहास, पुराणों को निर्माण कराऊँगा ।।११३।। यह पुण्य अभिलाषाष्टक स्तोत्र तुमने कहा, यह शिवजी के स्थान में एक वर्ष तीनों काल पढ़ने से सब कामनाओं का देनेवाला होगा ।।११४।। इस स्तोत्र का पाठ मनुष्यों की विद्या तथा बुद्धि को बढ़ानेवाला, सम्पूर्ण सम्पत्ति प्रदान करनेवाला, धर्म और मोक्ष देनेवाला कहा है ।।११५।। प्रातःकाल उठकर भलीभांति स्नान करके शिवजी के ज्योतिर्लिंग को पूजकर वर्षभर इस स्तोत्र को पढ़े, तो मूर्ख भी बृहस्पति हो जाता है ।।११६।। स्त्री वा पुरुष नियम से पार्थिवलिंग के समीप वर्षभर इस स्तोत्र को जपे, तो उसकी विद्या, बुद्धि बढ़ती है ।।११७।। ऐसा कहकर वह बालक महादेवजी पार्थिवलिंग में लय हो गये, व्यासजी भी आसुओं को छोड़ते हुए शिवजी के प्रेम में तत्पर हुए ।।११८।। इस प्रकार मध्यमेश्वर महादेवजी से वर पाकर व्यासजी अपनी लीला से अठारह पुराणों को निर्माण करके ।।११९।। ब्राह्म, पाद्म, वैष्णव, शैव तथा भागवत, भविष्य, नारदीय, मार्कण्डेय ।।१२०।। आग्नेय, ब्रह्मवैवर्त, लैङ्ग, वाराह, वामनाख्य, कौर्म, मात्स्य, गरुड ।।१२१।। स्कान्द तथा ब्रह्माण्ड नामक पुराण कहे हैं, यह शिवजी के यश को सुननेवाले मनुष्यों को कीर्त्ति तथा पुण्य के देनेवाले कहे हैं ।।१२२।। सूतजी बोले- हे वेदवित्तम ! आपने पहले जो अठारह पुराणों के नाम कहे, अब उन सबों का निर्वचन कीजिये ।।१२३।। व्यासजी बोले- यही प्रश्न ब्रह्माजी के पुत्र तण्डी ने नन्दिकेश्वरजी से किया था, उन्होंने कहा है, सो मैं वर्णन करता हूं ।।१२४।। नन्दिकेश्वर बोले- हे तण्डी मुने ! जिसमें साक्षात् चतुर्मुख ब्रह्माजी वक्ता है, इस कारण पहला 'ब्राह्मपुराण' कहा है ।।१२५।। जिसमें पद्मकल्प का माहात्म्य कहा है, इस कारण दूसरा 'पाद्मपुराण' कहा है ।।१२६।। पराशरजी ने विष्णुजी को बोधन करानेवाला पुराण कहा है, पुत्र और पिता के भेद से व्यासजी का कहा जाता है, इसी कारण वह 'वैष्णवपुराण' कहा जाता है ।।१२७।। जिसके पहले और उत्तर खण्ड में शिवजी का बहुत चरित्र है, इसे 'शैवपुराण' कहते हैं ।।१२८।। जिसमें भगवती दुर्गा का चरित्र है, वह 'देवीभागवत पुराण' कहा है, इसमें देवीपुराण की गणना नहीं है ।।१२९।। नारदजी से कहा हुआ 'नारदीयपुराण' कहा जाता है, जिस प्रकरण में मार्कण्डेय महामुनि वक्ता हुए ।।१३०।। वह सातवां 'मार्कण्डेय पुराण' कहलाया, अग्नियोग से आग्नेय, भविष्य उक्ति होने से 'भविष्यपुराण' कहा है ।।१३१।। ब्रह्माजी के विवर्तन से 'ब्रह्मवैवर्तपुराण'

कहलाता है, ज्योतिर्लिंग के चरित्र कहने से 'लिंगपुराण' कहा जाता है ।।१३२।। हे मुने! वराह का चरित्र होने से बारहवां 'वारहपुराण' कहा जाता है। जिसमें स्कन्द श्रोता है और साक्षात् महेश्वरजी स्वयं वक्ता हैं ।।१३३।। वह 'स्कान्दपुराण' कहा है, वामन के अवतार का वर्णन होने के कारण 'वामन' तथा कूर्म के अवतार होने से 'कौर्म', मत्स्य से कीर्तन हुआ 'मात्स्यपुराण' कहा जाता है ।।१३४।। जिसको स्वयं गरुडजी कहनेवाले हैं, वह 'गरुडपुराण' है, ब्रह्माण्ड के चरित्र कहने से 'ब्रह्माण्डपुराण' कहा है ।।१३५।। सूतजी बोले- यह ही प्रश्न मैंने बुद्धिमान् व्यासजी से किया, तो मैंने सब पुराणों का निर्वचन सुना था ।।१३६।। इस प्रकार सत्यवती में पराशरजी से व्यासजी उत्पन्न हुए और उन्होंने 'पुराण संहिता' तथा उत्तम 'महाभारत' रचा ।।१३७।। हे ब्रह्मन्! पराशरजी से तथा फिर शन्तनुजी से सत्यवती का संयोग हुआ, इसमें संशय करने योग्य नहीं है ।।१३८।। यह आश्चर्य करानेवाली कारण सहित उत्पत्ति कही, बड़े पुरुषों के चरित्र में बुद्धिमानों के गुणों का ग्रहण करना चाहिये ।।१३९।। जो मनुष्य इस परम रहस्य को सुनता है तथा पढ़ता है, वह सब पापों से छूट कर ऋषिलोक में जाता है ।।१४०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां
व्यासोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४४ ।।

*****

पैंतालीसवाँ अध्याय

मुनि बोले- मनुष्यों को भुक्ति-मुक्ति देनेवाली अनेक इतिहासों से पूर्ण, अनेक अवतारों से संयुक्त, शिवजी की मनोहर कथा सुनी ।।१।। हे ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ! इस समय भगवती जगदम्बा का मनोहर चरित्र आपसे सुनना चाहता हूं ।।२।। परब्रह्म महेश्वरजी की आद्य (पहली) सनातनी शक्ति त्रिलोकी को उत्पन्न करनेवाली पार्वती कही हैं ।।३।। दूसरी सती हैमवती हैं, यह उन गौरी के दो अवतार सुने हैं, हे महामते! हे सूतजी! अब आप अन्य अवतारों को कहिये ।।४।। गुणश्रवण कर्म में कौन बुद्धिमान् विराग को प्राप्त होता है? जितने ज्ञानी हैं, वे कदापि श्रीमाता की कथा को नहीं त्यागते हैं ।।५।। सूतजी बोले- आप महात्मा धन्य हो तथा नित्य कृतकृत्य हो, जो पराम्बा पार्वती के बड़े चरित्र को पूँछते हो ।।६।। मुनियों ने इस कथा को सुननेवाले तथा पूछनेवाले तथा बांचनेवालों के चरणकमलों की रज को तीर्थ कहा है ।।७।। वे धन्य हैं, उनकी सन्तान तथा कुल धन्य है, जिनका चित्त श्रीदेवी के संवाद में प्रवृत्त होता है ।।८।। जो मनुष्य समस्त कारणों की कारण देवी की स्तुति नहीं करते हैं, वे माया के गुणों से मोहित हतभाग्य होते है,

इसमें कुछ संशय नहीं ।।९।। जो करुणासागरमयी महादेवी को नहीं भजते हैं, वे संसार रूपी अन्धकूप में पड़ते हैं ।।१०।। जैसे गंगाजी को छोड़कर तृप्ति के निमित्त मरुस्थल के जल में जाता है, वैसे ही देवी को छोड़कर उससे भिन्न अन्य देवताओं के निकट जाता है ।।११।। जिसके स्मरणमात्र से चारों पदार्थ बिना परिश्रम के प्राप्त होते हैं, कौन पुरुष ऐसी देवी को त्यागता है ?।।१२।। पहले यह ही महात्मा सुरथ ने मेधा से पूछा था, तो मेधा ने जैसे कहा, सो सब आपसे कहता हूं, सुनिये ।।१३।। पहले स्वारोचिषमनु के अन्तर में विरथ नामक राजा हुआ, उसका पुत्र सुरथ महाबल और पराक्रमयुक्त हुआ ।।१४।। वह दान में निपुण, सत्यवादी, अपने धर्म में कुशल, कृतीदेवी का भक्त, दयासागर, प्रजा का पालन करनेवाला हुआ ।।१५।। इन्द्र के समान तेजवाला उस राजा के पृथ्वी के शासन करने पर नवीन राजा उसका राज्य लेने में तत्पर हुए ।।१६।। उन्होंने उस राजा की कोला नामवाली राजधानी को घेर लिया, तब उन राजाओं के साथ बड़ा भयंकर युद्ध होने लगा ।।१७।। उन प्रबल शत्रुओं ने उस राजा को जीत लिया और उसका सम्पूर्ण राज्य हरण कर के उसे कोला से निकाल दिया ।।१८।। तब वह राजा अपने नगर को प्राप्त होकर अपने मन्त्रियों के सहित राज्य करने लगा, वहां भी महापक्षवाले शत्रुओं ने उसे पराजित किया ।।१९।। दैववशात् शत्रुभाव को प्राप्त हुए मन्त्री आदि गणों ने कोश में स्थित हुआ सब धन अपने अधीन कर लिया ।।२०।। तब वह असहाय राजा आखेट के बहाने घोड़े पर चढ़कर, सघन वन में निकल गया ।।२१।। वहां इधर-उधर जाते हुए राजा ने चारों ओर से पुष्पवाटिका से शोभायमान मुनि का वह आश्रम देखा ।।२२।। वेदध्वनि से गुञ्जारित, शान्त प्राणियों से व्याप्त, शिष्य, प्रशिष्य तथा उनके शिष्यों से सब ओर घिरा वह आश्रम था ।।२३।। हे महामते ! मुनि के प्रभाव से उस आश्रम में महा वीर्यवान् व्याघ्र आदि थोड़े बलवाले जीवों को पीड़ा नहीं देते थे ।।२४।। वहां परम दयालु निपुण राजा ने निवास किया, तब सुन्दर भोजनपान से मुनिनाथ ने उसका सत्कार किया ।।२५।। किसी समय वह महाराजा बड़ी कठिन चिन्ता को प्राप्त हुआ कि, अहो भाग्यहीन, दुर्बुद्धि, तेज हीन ।।२६।। मेरा सम्पूर्ण राज्य मद में प्रगल्भ शत्रुओं ने हरण किया, मेरे पूर्वजों से रक्षित हुआ राज्य अब शत्रुओं से भोगा जाता है ।।२७।। इस चैत्रवंश में मुझ सरीका कोई राजा नहीं हुआ, अब मैं क्या करूं ? कहां जाऊं ? किस प्रकार राज्य को पाऊं ? ।।२८।। और मेरे सनातन अमात्य और मन्त्री हैं, वे न जाने किस राजा को प्राप्त होकर स्थित हैं ।।२९।। और राज्य को नष्ट करके अब न जाने कौन गति को प्राप्त हैं ? संग्राम भूमि में बड़े उत्साहवाले शत्रुवर्ग को छेद करनेवाले ।।३०।। मेरे जो महासूर भट हैं, वे और राजा को भजते हैं, पर्वत के समान हाथी तथा पवन के समान वेगवाले घोड़े वे भी ।।३१।। तथा पूर्व पूर्वजों से अर्जित हुआ कोश भी वे अब पालते हैं या नहीं ? इस प्रकार वह परम धर्मात्मा राजा मोह के

वश में प्राप्त हुआ।।३२।। इसी अवसर में वहां कोई वैश्य प्राप्त हुआ, तब राजा ने उससे पूछा कि तुम कौन हो? किस लिये यहां आये हो?।।३३।। इस समय तुम क्यों दुःखित मन ज्ञात होते हो? यह मुझसे कहो, ऐसे राजा के मनोहर वचन सुनकर।।३४।। तब समाधि नामक वैश्यश्रेष्ठ अपने नेत्रों से आंसुओं को गिराता हुआ, प्रणय से नम्र हुई वाणी से बोला।।३५।। वैश्य बोला– हे राजन्! मैं समाधि नामक वैश्य हूं और धनी के वंश में उत्पन्न हुआ और धन के लोभ से पुत्र, स्त्री आदि से त्यागा हुआ हूँ।।३६।। हे राजन्! अपने कर्म से दुःखित होकर वन में आया हूं, वह मैं पुत्र तथा पौत्रों की तथा स्त्रियों की।।३७।। हे करुणासागर प्रभो! भाइयों की और भाइयों के पुत्रों की तथा मित्रों की भलीभांति कुशल नहीं चाहता हूं।।३८।। राजा बोला– जिन दुराचारी, धनलोभी पुत्र आदि ने तुमको निकाल दिया, उनमें तुम मूर्ख जन्तु के समान क्यों प्रीति करते हो?।।३९।। वैश्य बोला– हे राजन्! तुम ने भलीभांति सारगर्भित वचन कहा तथापि स्नेहपाश से मेरा मन अत्यन्त ही मोहित होता है।।४०।। हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार मोह में व्याकुल हुए वे दोनों वैश्य और राजा मुनिवर्य मेधस के निकट गये।।४१।। उस वैश्यराज सहित प्रतापी, धीर, राजा ने मस्तक झुकाकर योगीराज को प्रणाम किया।।४२।। तब अंजलि बांध कर वह राजा मुनि से यह वचन बोला– हे भगवन्! इस समय आप हम दोनों के संशय का छेद करने के योग्य हो।।४३।। मैं राज्यलक्ष्मी से छूटा हुआ सघन वन में आया, तो भी राज्य के हरण होने पर भी मुझे सन्तोष नहीं होता है।।४४।। और यह वैश्य अपने कुटुम्बियों आदि के द्वारा घर से निकाला गया है, तो भी इसकी ममता दूर नहीं हुई।।४५।। इसमें क्या कारण हैं? सो कहिये, कि हम दोनों ज्ञानियों का भी मन मोह से व्याकुल हुआ, यह अतिमूर्खता है।।४६।। ऋषि बोले– महामाया, जगत् को धारण करनेवाली, सनातनी शक्तिरूपा देवी सबों के मनों को आकर्षित करके मोहित करती है।।४७।। हे प्रभो! जिसकी माया से मोहित हुए ब्रह्मादि सम्पूर्ण देवता भी परमतत्त्व को नहीं जानते हैं, फिर मनुष्यों की क्या कथा है?।।४८।। वह देवी सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न तथा पालन करती है और वह तीनों गुणधारी परमेश्वरी समय पाकर विनाश करती है।।४९।। हे नृपसत्तम! वह वर देनेवाली कामरूपिणी देवी जिसके ऊपर प्रसन्न होती है, वह ही मोह को दूर करता है अन्य प्रकार से मनुष्य मोह को नहीं दूर कर सकता है।।५०।। राजा बोला– हे मुने! वह महामाया नामक कौनसी देवी है, जो सबों को मोहित करती है? वह देवी किस प्रकार उत्पन्न हुई? यह सब कृपा करके मुझसे कहिये।।५१।। ऋषि बोले– जगत् के एकार्णव (प्रलय) होने पर जब योगिराट् भगवान् केशव योगनिद्रा को प्राप्त होकर शेष को आस्तरण करने लगे।।५२।। उस समय विष्णुजी के कर्णकमल से पृथ्वी पर विख्यात मधु–कैटभ नामवाले दो दैत्य उत्पन्न हो गये।।५३।। प्रलयकाल के सूर्य के समान घोर महा काय ठोंडीवाले, द्रंष्ट्रा से

भयंकर मुखवाले, लोकों को भक्षण करते हुए ।।५४।। हे भगवन्! नाभिकमल में भगवान् को देखकर, अरे तू कौन है? ऐसा कहकर नारायण को मारने के निमित्त उद्यत हुए ।।५५।। उन दैत्यों को देखकर ब्रह्माजी ने समुद्र में शयन करते हुए नारायण को तथा परमेश्वरी को सन्तुष्ट किया ।।५६।। ब्रह्माजी बोले– हे महामाये! हे शरणागतवत्सले! हे जगदम्बिके! इन भयंकर स्वरूपवाले दैत्यों से रक्षा करो ।।५७।। महामाया, योगनिद्रा, पार्वती, सती, कालरात्रि, महारात्रि, मोहरात्रि, परा–से–परा तुमको नमस्कार करता हूं ।।५८।। तीनों देवताओं को उत्पन्न करनेवाली, नित्य भक्तों को मनोवांछित फल देनेवाली, सब देवताओं का पालन करनेवाली, करुणा–वरुणालया को नमस्कार करता हूं ।।५९।। तुम्हारे प्रभाव से मैं ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव संसार को उत्पन्न करते, रक्षा करते तथा प्रलयकाल में संहार करते हैं ।।६०।। हे माता! तुम स्वाहा हो, तुम स्वधा, तुम लज्जा, तुम ही निर्मूल बुद्धि हो, तुम ही शान्ति, क्षान्ति, क्षुधा और तुम ही दया हो ।।६१।। हे माता! तुम ही विष्णुजी की माया, तुम ही चेतना, तुम ही शक्ति, तुम ही परम लज्जा, तुम ही तृष्णा हो ।।६२।। तुम ही भ्रान्ति हो, तुम ही स्मृति तथा तुम ही माता के रूप से स्थित हुई हो, पुण्याचार में प्रवृत्त होनेवाले मनुष्यों के गृह में लक्ष्मी हो ।।६३।। तुम जाति हो, तुम वृत्ति और व्याप्तिरूपा हो, तुम हीं चिति रूप से सब जगत् में व्याप्त होकर स्थित हो ।।६४।। हे अम्बिके! हे जगत्योने! वह तुम इन प्रगल्भ दैत्यों को मोहित करो तथा अज, विभु, नारायण को जगाओ ।।६५।। ऋषि बोले– वह महाविद्या, जगद्धात्री, सर्वविद्याधि देवता, देवी ब्रह्माजी से प्रार्थित हुई मधु–कैटभ का नाश करने में प्रवृत्त हुई ।।६६।। तब फाल्गुन मास की शुक्ला द्वादशी को वह उत्पन्न हुई और महाकाली नाम से प्रसिद्ध, त्रिलोकी को मोहनेवाली शक्ति विख्यात हुई ।।६७।। उसके पश्चात् आकाशवाणी हुई कि, ''हे ब्रह्मन्! मत डरो, अब मैं आज मधु–कैटभ दैत्यों को मारकर आपके दुःख को दूर करूंगी'' ।।६८।। ऐसा कहकर वह मायादेवी विष्णुजी के नेत्र, मुख से निकलकर अब्जजन्मा ब्रह्माजी के दर्शन को प्राप्त हुईं ।।६९।। और देवों के देव भगवान् जनार्दन उठे और उन्होंने मधु–कैटभ नामक दैत्यों को आगे देखा ।।७०।। तब उन दैत्यों के साथ अतुल तेजवाले विष्णुजी का युद्ध हुआ, पांच सहस्र वर्ष बाहुयुद्ध हुआ ।।७१।। तब महामाया के प्रभाव से वे दानवोत्तम मोहित हुए और विष्णुजी से बोले कि, मनोवांछित वर ग्रहण करो ।।७२।। नारायण बोले– यदि तुम दोनों मुझसे प्रसन्न हो, तो यह वर दो कि, तुम दोनों मुझसे मारने योग्य होओ, मैं तुमसे और वर नहीं मांगता हूं ।।७३।। ऋषि बोले– एक समुद्रवाली पृथ्वी को देखकर विष्णुजी से यह वचन बोले, जहां भूमि जल से व्याप्त न हो, वहां तुम हम दोनों को मारो ।।७४।। ''ऐसा ही हो'' यह कहकर भगवान् ने उज्ज्वल सुदर्शनचक्र को उठाकर उन दैत्यों को अपनी जंघा पर स्थापित करके उनके सिरों को काट डाला ।।७५।। हे

महामते! हे राजन्! इस प्रकार तुमसे कालिका की उत्पत्ति वर्णन की, अब आप महालक्ष्मी की उत्पत्ति सुनो ।।७६।। निर्विकार, साकार, निराकार, देवी पार्वती देवताओं के दु:खों का होने के निमित्त प्रत्येक युग में प्रकट होती हैं ।।७७।। उन देवी का शरीर धारना सब इच्छा का वैभव है और वह लीला से भक्तों के गुण वर्णन करने के निमित्त होता है ।।७८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां

मधुकैटभवधे महाकालिकावतारवर्णनं नाम पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४५ ।।

*****

छयालीसवाँ अध्याय

ऋषि बोले– दैत्यवंश में शिरोमणि रम्भासुर नामक दैत्य हुआ, उससे महातेजस्वी महिषासुर नामक दैत्य उत्पन्न हुआ ।।१।। उस दैत्यराज ने संग्राम में सम्पूर्ण देवताओं को जीतकर स्वर्गलोक में इन्द्र के आसन पर बैठकर राज्य किया ।।२।। तब पराजित हुए देवता ब्रह्माजी की शरण में गये, ब्रह्माजी भी उन देवताओं को लेकर वहां गये, जहां विष्णुजी, शिवजी थे ।।३।। वहां जा कर सब देवताओं ने शिव, केशव को प्रणाम करके क्रम से विधिपूर्वक अपना वृत्तान्त कहा ।।४।। हे भगवन्! दुष्टात्मा महिषासुर ने युद्धभुमि में जीतकर हम सबों को स्वर्गलोक से निकाल दिया ।।५।। हम सब इस मर्त्यलोक में फिरते हैं, परन्तु कहीं भी शान्ति नहीं पाते हैं, हम इन्द्र आदि देवता कौन दुर्दशा को नहीं प्राप्त हुए ?।।६।। सूर्य, चन्द्रमा, वरुण, कुबेर, यम, इन्द्र, अग्नि, पवन, गन्धर्व, विद्याधर, चारण ।।७।। इन देवताओं के तथा और भी देवताओं के कर्त्तव्य कर्म को वह दैत्यपक्ष को अभय देनेवाला पापात्मा महिषासुर स्वयं करता है ।।८।। हे प्रभो! इस कारण आप शरण में प्राप्त हुए हम देवताओं की रक्षा करने योग्य हो और आप दोनों उस दैत्य को मारने के उपाय को विचारो ।।९।। ऐसा देवताओं का वचन सुनकर क्रोध से नेत्र घुमाते हुए विष्णुजी, शिवजी अति क्रोध करने लगे ।।१०।। तब अति क्रोध में पूर्ण हुए विष्णुजी तथा शिवजी के मुख से तथा और देवताओं के भी शरीर से तेज निकला ।।११।। दुर्गा के ध्यान में तत्पर हुए सब देवताओं ने दसों दिशाओं में प्रज्ज्वलित हुए अति तेज के समूह को देखा ।।१२।। सब देवताओं के शरीरों से उत्पन्न हुआ वह अति भयंकर तेज एकत्रित होकर महिषासुर को मारनेवाली साक्षात् स्त्रीरूप में हो गया ।।१३।। उन देवी का कान्तिमान् मुख शिवजी के तेज से उत्पन्न हुआ, यम के तेज से बाल तथा विष्णुजी के तेज से भुजा हो गईं ।।१४।। और चन्द्रमा के तेज

से उसके दोनों स्तन हुए, इन्द्र के तेज से मध्यभाग तथा वरुण के तेज से दोनों जंघा हुईं ।।१५।। पृथ्वी के तेज से नितम्ब तथा ब्रह्माजी के तेज से दोनों चरण हुए, सूर्य के तेज से चरणों की अंगुली, इन्द्र के तेज से हाथ की अंगुली हुईं ।।१६।। कुबेर के तेज से नासिका, प्रजापति के तेज से दांत, अग्नि के तेज से तीनों नेत्र, सन्ध्या के तेज से दोनों भौंहें ।।१७।। पवन के तेज से दोनों कान तथा अन्य देवताओं के तेज से भी वह पद्मालया परमेश्वरी उत्पन्न हुई ।।१८।। तब सम्पूर्ण देवताओं के तेजपुंज से उत्पन्न हुई उस देवी को देखकर सब देवता हर्ष को प्राप्त हुए ।।१९।। शस्त्र हीन उसे देखकर ब्रह्माजी आदि देवताओं ने शस्त्र युक्त करने की मन में ठानी ।।२०।। तब शिवजी ने महेशानी को त्रिशूल समर्पित किया, भगवान् श्रीकृष्ण ने शंख, सुदर्शनचक्र और वरुण ने पाश दिया ।।२१।। अग्नि ने शक्ति, पवन ने धनुष दिया, इन्द्र ने बाणों से पूर्ण तर्कस तथा वज्रघण्ट भी दिये ।।२२।। यम ने कालदण्ड तथा ब्रह्माजी ने अक्ष की माला दी, ब्रह्माजी ने कमण्डलु दिया, सूर्य ने रोमरश्मियों को दिया ।।२३।। काल ने खड्ग तथा उज्ज्वल फलक दिया, क्षीरसागर ने सुन्दर हार, अजर, अम्बर ।।२४।। चूडामणि तथा कुण्डल, कटक, अर्द्धचन्द्र, केयूर, मनोहर नूपुर दिये ।।२५।। ग्रीवा के आभूषण तथा सब अंगुलियों के आभूषण दिये, विश्वकर्मा ने उसे मनोहर परशु प्रदान किया ।।२६।। समुद्र ने अनेक अस्त्र तथा अभेद्य कवच, सुरम्य सरस माला और कमल दिये ।।२७।। हिमालय ने सिंह तथा अनेक प्रकार के रत्न दिये और कुबेर ने उसे मदिरा से पूर्ण हुए पात्र को सौंपा ।।२८।। सर्पों के राजा शेषजी ने सुन्दर रचना से युक्त, अनेक सुन्दर मणियों से गुंफित नागहार दिया ।।२९।। इन पूर्वोक्त तथा और भी देवताओं से प्रदान किये हुए आभूषणों से तथा शस्त्रों से सत्कृत हुई देवी ने ऊँचे स्वर से बारंबार अट्टहास किया ।।३०।। उसके भयंकर शब्द से पूर्ण हुई आकाशस्थली पूरित हो गई और बड़ी प्रतिध्वनि हुई, तब तीनों लोक व्याकुल हुए ।।३१।। चारों समुद्र चलायमान हुए तथा भूमि भी कांपने लगी तब महिषासुर से पीड़ित हुए देवताओं ने जयजयकार किया।।३२।। फिर सब देवताओं ने महालक्ष्मी स्वरूपिणी अम्बिका पराशक्ति को गद्गदवाणी से सन्तुष्ट किया ।।३३।। लोकों को व्याकुल हुआ देखकर शस्त्रों को ग्रहण करके देवताओं के विरोधी तैयार हुए, सैनिक उठ खड़े हुए ।।३४।। महिषासुर भी उस शब्द को सुनकर क्रोध करता हुआ दौड़ा, तब उसने देवी को अपनी कान्ति से तीनों लोकों को व्याप्त करती हुई देखा ।।३५।। इसी अवसर में वहां महिषासुर से पालित महावीर शस्त्रधारी करोड़ो योद्धा आए ।।३६।। चिक्षुर, चामर, उदग्र, कराल, बाष्कल, ताम्र, उग्रास्य, उग्रवीर्य, बिडाल, अन्धक ।।३७।। दुर्धर, दुर्मुख, त्रिनेत्र, बड़ी ठोंडीवाले यह तथा और भी युद्ध में निपुण अनेक शूर आए ।।३८।। और संग्राम में शस्त्र-अस्त्रों के सहित देवी के साथ युद्ध करने लगे, इस प्रकार युद्ध करते हुए उनका समय बीता ।।३९।। शत्रुवर्ग के

हाथ से फेंके हुए अनेक शस्त्र और अस्त्रों के समूह महामाया के प्रभाव से क्षणमात्र में निष्फल हो गये ।।४०।। तब उस देवी ने चिक्षुर आदि शत्रुओं को उनके गणोंसहित गदा, बाणों से तथा त्रिशूल, शक्ति, परशुओं से मारा ।।४१।। इस प्रकार उस महिषासुर ने अपनी सेना के मरने पर देवी के श्वास से उत्पन्न हुए उन गणों को ताडन किया ।।४२।। किसी को खुरों से ताडन करने लगा, किसी को दोनों सींगों से मारने लगा तथा किसी को पूंछ से और किसी को बारंबार नासिका के भेदन करने लगा ।।४३।। इस प्रकार देवी के गणों को मारकर वह दैत्यराज महिषासुर देवी के सिंह को मारने दौड़ा, तब वह देवी क्रोधित हुई ।।४४।। वह भी महापराक्रमी अपने खुरों से पृथ्वी को कूटकर तथा सींगों से पर्वत को उखाड़कर फेंकने लगा और शब्द करने लगा ।।४५।। हे नृपसत्तम! उस दैत्य ने बड़े वेग से चारों ओर भ्रमण करके बड़े–बड़े पहाड़ आकाश से पृथ्वी पर फेंके ।।४६।। सींगों से विदीर्ण हुए समुद्र खण्ड–खण्ड हो गये और पूंछ से ताड़ित हुआ समुद्र चारों तरफ से किनारों से टूट–फूटकर बहने लगा ।।४७।। इस प्रकार क्रोधित हुए उस महिषासुर को देखकर देवताओं को अभय देनेवाली अम्बिका ने उस दैत्य को मारने के उपाय को सोचा ।।४८।। तब ईश्वरी पाश को उठाकर उसके ऊपर फेंक कर महिषासुर को बांधने लगी, तब उसने अपने महिषासुर के रूप का त्याग किया ।।४९।। तब वह छली शीघ्र ही सिंह हो गया, अम्बिका जब ही उसके सिर को काटने लगी, तब हीं वह खड्ग हाथ में लेकर खड़ा हो गया ।।५०।। तब देवी ने ढाल तलवार लिये उसको बाणों से ताडन किया, तब वह हाथी बनकर सूंड से छेदन करने लगा ।।५१।। तब देवी ने अपनी महा खड्ग से उसके हाथ को काटा, तब फिर उस राक्षस ने अपना रूप बदल लिया ।।५२।। और चर–अचर सहित तीनों लोकों को क्षोभित किया, तब मानविक्रमा महामाया चण्डिका क्रोधित हुई ।।५३।। और घूर्णित नेत्रोंवाली देवी बारंबार मधुपान करती हास्य करने लगी और बल, वीर्य, मद से प्रगल्भ वह दैत्य गर्जने लगा ।।५४।। और पर्वतों को उखाड़कर उसके ऊपर फेंकने लगा और वह देवी बाणों की पंक्ति के घात से उन दैत्यों को शीघ्रता से चूर्ण करने लगी ।।५५।। मधु के मद से उत्पन्न हुए मुख राग वाली, व्याकुल इन्द्रियवाली वह देवी मेघ के समान गम्भीरवाणी से बोली ।।५६।। देवी बोली– हे मूर्ख! अरे नष्टबुद्धे! तू मेरे आगे व्यर्थ क्यों हठ करता है? मेरे आगे तीनों लोकों में कोई देवता नहीं ठहर सकते ।।५७।। ऋषि बोले– ऐसा कहकर सर्व कलाओं से पूर्ण देवी ने कूदकर दैत्य को पैरों से कुचलकर उसके कण्ठ का तीव्र त्रिशूल से भेद किया ।।५८।। तब देवी के चरणों से आक्रमण हुआ, अपने भैंसेरूप मुख से आधा निकला हुआ वह दैत्य देवी केवीर्य से घिर गया ।।५९।। आधे निकले हुए, युद्ध करते हुए, महानीच उस दैत्य को देखकर महा खड्ग से उसका सिर काटकर देवी ने पृथ्वी पर गिराया ।।६०।। तब नीचे मुख करके त्राहि–त्राहि ऐसा

कहते हुए संग्राम से डरे हुए उस दैत्य के गण हाहाकार मचाकर भाग निकले ।।६१।। उस समय इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओं ने देवी को सन्तुष्ट किया, गन्धर्वों ने गीत गाये, नर्तकों ने नृत्य किया ।।६२।। हे राजन्! इस प्रकार तुमसे महालक्ष्मी की उत्पत्ति कही, अब स्वस्थ चित्त से सरस्वती की उत्पत्ति सुनो ।।६३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां
महिषासुरवधोपाख्याने महालक्ष्म्यावतारवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४६ ।।

*****

सैंतालीसवाँ अध्याय

ऋषि बोले– प्रतापी शुम्भासुर तथा निशुम्भ दैत्य हुए, उन दोनों के तेज से चर–अचर सहित तीनों लोक व्याकुल हो गये ।।१।। तब उन दैत्यों से पीड़ित हुए देवता हिमालय के समीप गये और सब प्राणियों को उत्पन्न करनेवाली, कामनाओं को पूर्ण करनेवाली पार्वतीजी को नमस्कार किया ।।२।। देवता बोले– हे दुर्गे! हे महेशानि! हे आत्मीय जन प्रिये! आपकी जय हो, त्रिलोकी की रक्षा करनेवाली आप पार्वतीजी को नमस्कार है ।।३।। मुक्ति की देनेवाली पराम्बा को नमस्कार है, हे सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, विनाश करनेवाली! आपको नमस्कार है ।।४।। हे कालिकारूपसम्पन्ने! हे ताराकृते! आपको नमस्कार है, छिन्नमस्तास्वरूपी तथा श्रीविद्या को प्रणाम है ।।५।। हे भुवनेशि! हे भैरवाकृते! आपको नमस्कार है, बगलामुखी को नमस्कार है, धूमावती को नमस्कार है ।।६।। त्रिपुरा सुन्दरी को नमस्कार है, मातंगी आपको नमस्कार है तथा अजितारूप आपको नमस्कार है, विजया को नमस्कार है ।।७।। जया, मंगला, विलासिनी आपको नमस्कार है, हे दोग्ध्रीरूपे! आपको नमस्कार है, हे घोराकृते! आपको नमस्कार है ।।८।। हे बिना पराजित आकारवाली! आपको नमस्कार है, हे नित्याकारे! आपको नमस्कार है, शरणागत को पालन करनेवाली रुद्राणी आपको नमस्कार है ।।९।। वेदान्तवेद्या को नमस्कार है, आप परम आत्मा को नमस्कार है, अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों की नायिका आपको नमस्कार है ।।१०।। इस प्रकार देवताओं से स्तुति की हुई शिवा पार्वती प्रसन्न और वर देनेवाली होकर सब देवताओं से बोली कि, आप सब किस कारण स्तुति करते हो ?।।११।। तब पार्वतीजी के शरीर से एक कन्या प्रकट हुई और उन देवताओं के सम्मुख शिवशक्ति से बोली ।।१२।। हे माता! प्रबल हुए निशुम्भ तथा शुम्भ दैत्यों से पीड़ित हुए सम्पूर्ण स्वर्गवासी देवता मेरी स्तुति करते हैं ।।१३।। उस देवी के शरीरकोश से जो निकली, इस कारण वह शुम्भ दैत्य का

नाश करनेवाली देवी कौशिका नाम से प्रसिद्ध हुई।।१४।। और वही उग्रतारिका कही है तथा वही महोग्रतारिका कही है, कारण कि, वह प्रकट हुई इस कारण पृथ्वी पर मातंगी कहलाई।।१५।। और वह सब देवताओं से बोली कि, आप सब निर्भय होकर रहें, मैं स्वतन्त्र होकर बिना आश्रय के आपका कार्य पूर्ण करूंगी।।१६।। ऐसा कहकर वह देवी तत्क्षण अन्तर्धान हो गई और उन दोनों दैत्यों के चण्ड–मुण्ड नामवाले सेवकों ने उस देवी को देखा।।१७।। नेत्रों को सुख देनेवाले देवी के मनोहर रूप को देखकर चेतनारहित, मोहित हुए वे दोनों भूमि पर गिर पड़े।।१८।। और राजा के निकट जाकर आद्योपान्त सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा, हे राजन! हम ने एक मनोहर, अपूर्व स्त्री देखी है।।१९।। हिमालय के मनोहर शिखर पर स्थित हुई, सिंह के वाहनवाली, हाथ जोड़े हुए देवकन्याओं से सब ओर से सेवित हुई है।।२०।। कोई देवकन्या पैर दबाती है और कोई बालों को काढ़ती–मलती है, कोई हाथ मलती है तथा कोई आँखों में सुरमा लगा रही है।।२१।। कोई अपने हाथ में शीशा लेकर मुख दिखला रही है और एक स्त्री लौंग आदि से युक्त पान दे रही है।।२२।। कोई सखी पीकदान को हाथ में लेकर आगे खड़ी है और कोई आभूषण, वस्त्रों से सब अंगों को भूषित कर रही है।।२३।। केले के स्तम्भ के समान जंघावाली, तोते के समान नासिकावाली तथा सर्प के समान भुजाओंवाली, शब्दायमान मंजीरे के समान चरणोंवाली, सुन्दर मेखला से युक्त।।२४।। सुन्दर कस्तूरी के समान सुगन्धवाली, मोतियों के हार से चलायमान स्तनोंवाली, ग्रीवा के आभूषणों से शोभायमान गर्दनवाली, बिजली के समान कान्ति से दीप्यमान।।२५।। आधे चन्द्रमा को धारण करनेवाली देवी, मणिजटित कुण्डलों को धारण करनेवाली, सुन्दर वेणीवाली, विशाल नेत्रोंवाली, तीन नेत्रों से भूषित।।२६।। साक्षरा माला से शोभायमान, कंकण से शोभायमान हाथोंवाली, स्वर्ण की कान्ति से विराजमान अंगुलीवाली, पारिहार्य से भूषित करोंवाली।।२७।। सुन्दर वस्त्रों से आच्छन्न गौरी, पद्मासन पर विराजमान केशर की बिन्दु सहित तिलक धारे, चन्द्रमा से शोभायमान मस्तकवाली।।२८।। बिजली के समान कान्तिवाली, महामूल्यवाले वस्त्र तथा चोली से भूषित कुचोंवाली, ऊंची, आठ भुजाओं से सुन्दर शस्त्रों को धारण करती हुई है।।२९।। ऐसी न कोई आसुरी हैं, न कोई नागकन्या है, न कोई गान्धर्वी, न दानवी तीनों लोकों में है, जैसी वह मनोहर (सुन्दर) है।।३०।। हे प्रभो! इस कारण उस कन्या को भोगने योग्य आप ही हो; कारण कि, वह स्त्रीरत्न है और आप पुरुषरत्न हो।।३१।। ऐसा चण्ड–मुण्ड दैत्यों के वचन सुनकर उस दैत्यराज ने उस देवी के पास सुग्रीव नामक दूत को भेजा और कहा।।३२।। हे दूत! हिमालयपर्वत पर जाओ, वहां कोई सुन्दरी है, मेरा वचन मानकर यत्न से उसे लेकर आओ।।३३।। इस प्रकार समझाया हुआ वह दैत्यों में श्रेष्ठ सुग्रीव हिमालयपर्वत पर जाकर महेश्वरी जगदम्बा से बोला।।३४।। दूत

बोला– हे देवि! शुम्भासुर दैत्य तथा उसका छोटा भाई निशुम्भ महाबल पराक्रम से तीनों लोकों में विख्यात है।।३५।। हे देवेश्वरि! उससे भेजा हुआ मैं तुम्हारे निकट आया हूं और उसने जो कुछ कहा है, उसे अब सुनो।।३६।। मैंने संग्राम में इन्द्रादि देवताओं को जीतकर उनके रत्नों का हरण किया और यज्ञ में देवादि से दिये हुए देवभाग को मैं स्वयं भोगता हूं।।३७।। मैं तुम स्त्रीरत्नों को सब रत्नों से श्रेष्ठ जानता हूं, वह तुम मेरे छोटे भाई को अथवा मुझे काम से उत्पन्न हुए रसों से भजो।।३८।। इस प्रकार शुम्भ के सन्देशवाले दूत के वचन को सुनकर शिवजी की प्राणप्रिया महामाया वह देवी बोली।।३९।। देवी बोली– हे दूत! तू सत्य कहता है, इसमें कुछ असत्य नहीं है, परन्तु मैंने पहले जो प्रतिज्ञा की है, उसे सुनो।।४०।। ''जो मेरे अहंकार को दूर करेगा और जो मुझे युद्ध में जीतेगा, मैं निश्चय ही उसे पति करना चाहती हूं, अन्य को नहीं''।।४१।। सो तुम मेरा ऐसा वचन शुम्भ और निशुम्भ दैत्य से कहो, इसमें जैसा उचित हो, वैसा वह करे।।४२।। ऐसा देवी का वचन सुनकर सुग्रीव नामक दैत्य ने वहां से जाकर विस्तार से राजा से कह दिया।।४३।। तब दूत का वचन सुनकर भैरव शासना करनेवाला शुम्भ दैत्य क्रोधसहित बली सेनापति धूम्राक्ष से बोला।।४४।। हे धूम्राक्ष! हिमालयपर्वत पर कोई सुन्दरी है, वहां शीघ्र ही जाकर जैसे वह आवे वैसे उस स्त्री को लाओ।।४५।। हे दैत्यों में श्रेष्ठ! उसे लाने में कुछ भय मत करना, यदि वह युद्ध करने की इच्छा करे, तो यत्न से युद्ध करना चाहिये।।४६।। इस प्रकार जताया हुआ धूम्रलोचन संज्ञक दैत्य हिमालय पर जा कर पार्वतीजी के अंश से उत्पन्न हुई तीनों लोकों की स्वामिनी देवी से बोला।।४७।। हे नितम्बिनी! मेरे स्वामी के समीप चल, नहीं तो मैं साठ सहस्र दैत्यों के सहित तुझे नष्ट करूंगा।।४८।। देवी बोली– हे दैत्यराज के भेजे हुए वीर दूत! यदि मुझे तू मार डालेगा, तो मैं तेरा क्या करूंगी? परन्तु संग्राम के बिना वहां जाना असाध्य मानती हूं।।४९।। ऐसा सुनकर वह धूम्रलोचन उसके ऊपर दौड़ा, तब महेश्वरी देवी ने अपनी हुंकार से ही उसे भस्म कर दिया।।५०।। उस दिन से लेकर वह देवी संसार में धूमावती नाम से विख्यात हुई और अपने भक्तों से आराधना की हुई शत्रुवर्ग का नाश करनेवाली है।।५१।। देवी से धूम्राक्ष दैत्य के मारने पर अति क्रोध करनेवाले उसके वाहन (सिंह) ने सब राक्षसों को भक्षण किया और शेष भाग गये।।५२।। इस प्रकार देवी से मारे हुए दैत्यों को सुनकर प्रतापी शुम्भ दैत्य दोनों ओठों को मिसमिसाता हुआ बड़ा क्रोध करने लगा।।५३।। और क्रम से चण्ड–मुण्ड, रक्तबीज दैत्यों को भेजा, वे आज्ञा दिये हुए दैत्य वहां गये, जहां देवी स्थित थी।।५४।। सिंह पर चढी हुई, अणिमादि सिद्धियों से आश्रित, अपनी कान्ति से सब दिशाओं को प्रकाशित करती हुई भगवती को देखकर वे दैत्य बोले।।५५।। हे देवि! अति शीघ्र शुम्भ निशुम्भ दैत्यों के चरणों में जा, नहीं तो गणों और वाहन से युक्त तुझ को मार डालेंगे।।५६।। हे वामे! आठ

लोकपाल आदि से स्तुति किये हुए उस पति को वरण कर, देवताओं से भी दुर्लभ हुए बड़े आनन्द को प्राप्त होगी ।।५७।। ऐसा वचन सुनकर वह देवी परमेश्वरी कुछ हँस कर सत्य तथा मधुर वचन बोली ।।५८।। देवी बोली– अद्वितीय महेशान परब्रह्म वह सदाशिवजी हैं, जिनके भेद को वेद भी नहीं जानते हैं, फिर विष्णुजी आदि देवताओं की तो क्या कथा है ?।।५९।। मैं उन परमात्मा की परम सूक्ष्म प्रकृति हूं, अन्य पति को किस प्रकार वरण करूं, काम से पीड़ित हुई सिंही गीदड को नहीं वरण कर सकती ।।६०।। हथनी गधे को और गैंडे की स्त्री खरगोश को नहीं करती, हे मृत्युरूपी सर्प से बंधे हुए दैत्यो! तुम मिथ्या बोलते हो ।।६१।। तुम पाताल को जाओ और यदि शक्ति हो तो युद्ध करो, ऐसा क्रोध युक्त वचन सुनकर वे आपस में बोले ।।६२।। हम अपने मन में तुझे अबला जानकर नहीं मारते हैं, अब जो तेरे मन में इच्छा हो तो स्थिर होकर मृत्यु के मुख में आ ।।६३।। इस प्रकार उनके विवाद करते हुए कलह बढ गई और संग्राम में दोनों दलों में तीक्ष्ण बाण वर्षने लगे ।।६४।। इस प्रकार उन दैत्यों से युद्ध करके परमेश्वरी देवी ने लीला से चण्ड–मुण्ड दैत्यों के साथ रक्तबीज नामक महादैत्य को मार दिया ।।६५।। उस भगवती में द्वेष बुद्धि करके भी यह देवताओं के लोक को प्राप्त हुए, जिस लोक को उनके भक्त जाते हैं ।।६६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां

धूम्रलोचन–चण्ड–मुण्ड–रक्तबीजवधो नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४७ ।।

*****

अड़तालीसवाँ अध्याय

हे भगवन्! देवताओं को पीड़ा देनेवाले शुम्भ दैत्य ने धूम्राक्ष, चण्ड, मुण्ड तथा रक्तबीज दैत्य को देवी से मारा हुआ सुनकर ।।१।। हे ब्रह्मन्! फिर उसने क्या किया ? यह जगत् की उत्पन्न करनेवाली देवी का पाप नाशक चरित्र सुनने की इच्छा करनेवाले मुझसे सब कहिये ।।२।। ऋषि बोले– हे राजन्! महापराक्रमी दैत्यराज ने इन पूर्वोक्त दैत्यों को नष्ट हुआ सुनकर दुर्धर्ष संग्राम के नाम लेते ही उत्पन्न हुए मदवाले अपने गणों को जताया ।।३।। बल से युक्त मेरी आज्ञा से परस्पर मिले हुए, विजय चाहनेवाले, कालकेय वंश में उत्पन्न हुए, असुर मौर्य, दौहृद नामवाले तथा और भी दैत्य युद्ध करने को जावें ।।४।। उन दैत्यों को आज्ञा देकर निशुम्भ–शुम्भ दैत्य रथ पर चढ़कर चले और वे दैत्य सबल उन दोनों की आज्ञा से विनाशवाले पतंगों के समान उठ खड़े हुए ।।५।। उस समय मृदंग, मर्दल, भेरिका, डिण्डिम, झर्झर, आनक आदि बाजे बजने लगे,

संग्राम प्रिय योद्धा युद्ध स्थल में हर्ष करने लगे और जिन्हें अपने प्राण प्रिय थे, वे युद्ध से लौटने लगे।।६।। कवच से आच्छादित बिना पापवाले शस्त्र-अस्त्रों को ग्रहण किये हुए विजय की इच्छा से परस्पर कवचों को पहनाते हुए, वे सम्पूर्ण योद्धा संग्राम भूमि को प्राप्त हुए।।७।। हाथियों पर चढ़े हुए तथा घोड़ों पर चढ़े हुए तथा कोई दैत्य रथों पर चढ़े हुए अपने और दूसरे मनुष्यों को आनन्द से देखते हुए दैत्यों के युद्ध में चारों ओर से फिरने लगे।।८।। उस समय बारंबार बन्दूकों के शब्द होने लगे, उस नाद से सब देवता मिलकर तैयार हुए, तब आकाश में बड़ा अन्धकार हो गया और सूर्य का मण्डल भी नहीं दीखता था।।९।। अतिमानी, विजय की इच्छा करनेवाले करोड़ों पैदल और अनेक कोटि रथी सवार तथा हाथी पर चढ़े हुए आये।।१०।। काले पर्वतों के समान मतवाले हाथी संग्राम में चिंघारने लगे, छोटे पर्वतों के समान ऊँट गलगल शब्द करने (बलबलाने) लगे।।११।। श्रेष्ठ देशों में उत्पन्न हुए विशाल कण्ठ के आभूषणवाले गति के जाननेवाले घोड़े हिनहिनाने लगे, हाथियों के मस्तक पर पैरों को रखते हुए आकाश मार्ग में पक्षियों के समान शीघ्रता से दौड़ने लगे।।१२।। इस प्रकार शत्रु के बल को देखकर उस समय उस देवी ने आक्रमण किया और धनुष को प्रत्यंचा सहित किया तथा शत्रु को दुःख देनेवाली घण्टा बजायी और सिंह भी बड़े केशों को कंपाता हुआ गर्जने लगा।।१३।। उस समय निशुम्भ हिमालयपर्वत पर स्थित हुई, सुन्दर आभूषण तथा शस्त्रों को धारण करनेवाली देवी को देखकर विलासिनी स्त्री के भाव में प्रवीण पुरुष के समान अति मधुर वाणी से बोला।।१४।। हे महेशि! तुम सरीकों के मनोहर शरीर में लिप्त हुआ मालती का दल (पत्ता) हम को दुःख देता है और तुम सुगन्ध से लिप्त हुए मनोहर शरीर से क्यों भयंकर युद्ध का विस्तार करती हो?।।१५।। ऐसा वचन कहकर वह दैत्यराज चुप रहा, तब उससे देवी चण्डिका बोली- हे मूर्ख दैत्य! वृथा क्या कहता है? युद्ध कर अन्यथा नागलोक को जा।।१६।। तब अति रुष्ट हुआ महारथ दैत्य युद्ध में अद्भुत बाणों की वर्षा करने लगा और संग्राम भूमि में जैसे मेघ जल को वर्षाते हैं, तैसे बाणों को वर्षाया, तब वर्षा के समान समय हो गया।।१७।। तीव्र बाणों से, त्रिशूल से, परसे शस्त्रों से, भिन्दिपाल, परिघ, धनुषों से, तापे, प्रास, क्षुर नामक बड़ी खड्गों से मद में प्रगल्भ होकर युद्ध करने लगा।।१८।। उस युद्धस्थल में गण्डस्थल से भिन्न हुए काले पर्वतों के समान बड़े हाथी भ्रमण करने लगे, चलायमान पवन से स्वच्छ तथा काली शुम्भ और निशुम्भ की पताका फहराने लगी।।१९।। देह से भिन्न हुए दैत्य मछली के समान और कंधों से शून्य हुए भयंकर घोड़ों के समूह को संग्राम में कालिका ने परास्त किया तथा अवशिष्ट हुए दैत्यों को सिंह ने परास्त किया।।२०।। और उन मारे हुए दैत्यों के मध्य से रक्त गिरने लगा और रक्त को बहानेवाली नदियां बहने लगीं और योद्धाओं के केश जल नील (काई) के समान थे और उनके वस्त्र श्वेत

फेनों के समान थे ।।२१।। घोडों पर चढ़नेवाले घोड़ों पर चढ़नेवालों से और हाथी पर चढ़े हुए हाथी पर चढ़नेवालों से तथा रथी रथारोहियों से, पैदल चलनेवाले प्यादों से इस प्रकार परस्पर घमासान लडाई होने लगी ।।२२।। उस समय निशुम्भ दैत्य अपने हृदय में विचारने लगा कि, अब यह बड़ा भयंकर काल प्राप्त हो गया, इस विपरीत काल से दरिद्री बड़े धनी तथा महाधनी दरिद्री हो गये ।।२३।। जड़ मनुष्य तीव्र बुद्धिवाला होता है तथा बड़ी बुद्धिवाला मूर्ख तथा हत्यारा, अनेक मानियों से प्रशंसित होता है तथा संग्राम में महाबली पराजय को प्राप्त होते हैं और दुर्बल विजय को प्राप्त होते हैं ।।२४।। मनुष्यों की जीत तथा हार परमेश्वर की इच्छा से विना परिश्रम के होती है, कमल से उत्पन्न होनेवाले ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव भी समय को लांघकर नहीं जी सकते ।।२५।। युद्ध के सम्मुख जाकर वीर अपने हृदय में भागना श्रेष्ठ नहीं मानते हैं, परन्तु युद्ध में इस देवी से मेरी विजय कैसी होगी कि, जिसने मेरी सब सेना नष्टकर दी ।।२६।। यह देवी निश्चय ही देवताओं के कार्य सिद्ध करने और दैत्यबल को नाश करने के लिये आई हैं और यह पुराणमूर्त्ति, पराप्रकृति शिवा हैं, यह लौकिकी स्त्री नहीं हो सकतीं ।।२७।। युद्ध रस को पानेवालों से स्त्री से किया हुआ वध भी दुष्कीर्त्ति करनेवाला कहा जाता है और युद्ध को विना किये दैत्यराज के समीप मुख दिखावेंगे ।।२८।। वह महारथ ऐसा विचार कर सारथि से प्रेरणा किये हुए बड़े रथ को ठहराकर वहां शीघ्र ही गया, जहां देवांगनाओं से प्रार्थित यौवन में प्राप्त हुई साक्षात् पार्वतीजी थीं ।।२९।। वहां जाकर वह यह बोला– हे महेशि! इन वेतन से जीने वाले योद्धाओं को मारने से क्या फल है? यदि तेरी युद्ध करने की इच्छा है, तो कवचों को उतारकर हम दोनों का युद्ध होना चाहिये ।।३०।। तब वह कौशिकी काली से बोली– देखो इन दोनों का दुराग्रह अच्छे और बुरे मार्ग में प्रवृत्त करानेवाला काल विपत्ति के आने पर विपरीत मति को करता है ।।३१।। उस समय निशुम्भ चण्डिका को तथा कालिका को सहस्रों बाणों से ताडन करने लगा, तब पार्वतीजी ने दैत्यों से फेंके हुए बाणों के सहस्रों खण्ड किये ।।३२।। उसके पश्चात् उस दैत्य ने उज्ज्वल खड्ग को तथा ढाल उठा कर कण्ठीरव के मस्तक पर मार दिया, तब अम्बिका ने इस प्रकार महा खड्ग से उसका भेद किया, जैसे वृक्ष काटनेवाला कुल्हाडे से वृक्ष को काटता है ।।३३।। खड्ग टूट जाने पर उसने बाण फेंका, वह बाण भी देवी के वक्षःस्थल में लगा, फिर उसने हृदय में त्रिशूल मारा, उसे भी देवी ने मुष्टि से मारकर तोड़ दिया ।।३४।। फिर मरण में तत्पर हुआ वह महारथी गदा ले कर देवी के ऊपर दौड़ा, तब देवी ने उसे भी त्रिशूल की धारा से चूर्ण किया, फिर उसके त्रिशूल को दूसरी धारा से तोड़ा ।।३५।। तब देवी भयंकर सर्पों के समान तथा शत्रुओं का रुधिर चूसनेवाले अपने शिलीमुख तामविष से बुझे हुए तीक्ष्ण बाणों से निशुम्भ को मारकर भूमि पर लाई ।।३६।। मानबल से युक्त छोटे भाई के मरने पर वह

दैत्यराज क्रोध से पूर्ण होकर रथ पर स्थित हुआ, आठों भुजाओं से संयुक्त शुम्भदैत्य वहां गया, जहां पर शिवजी की प्रिया थी ।।३७।। और उस समय शत्रुओं का दमन करनेवाला शंख बजाया और धनुष का दुःसह शब्द किया, उसी समय सिंह भी बड़े केशों को कंपाकर शब्द करने लगा, तब आकाश तीनों के नाद से गूंज गया ।।३८।। तत्पश्चात् जगदम्बिका ने अट्टहास किया, उससे सम्पूर्ण दैत्य त्रास करने लगे, उस समय देवताओं ने जयजयकार किया, तब अम्बिका ने कहा कि, तू संग्राम में स्थिर हो ।।३९।। तब उस दैत्यराज ने प्रदीप्त अग्निवाली बड़ी शक्ति को छोड़ा, उसे देवी ने नष्ट किया शुम्भ से फेंके हुए बाणों का पार्वती ने भेद किया और पार्वती से छोड़े हुए सहस्रों बाणों को उस दैत्य ने काट डाला ।।४०।। तब चण्डिका ने त्रिशूल उठा कर उस महादैत्य को मारा, तब वह मूर्छित होकर ऐसे गिर पड़ा, जैसे इन्द्र से पक्ष छेदन किया हुआ पर्वत स्वर्गलोक तथा समुद्रों सहित पृथ्वी को कंपाता हुआ गिरता है ।।४१।। तब वह महाबली त्रिशूल के दुःख को सह कर दश सहस्र भुजा कर देवताओं का नाश करनेवाले चक्रों से कालिका को तथा सिंह से युक्त महेश्वरी को ताडित करने लगा ।।४२।। उसके चक्रों को लीला से भेद करके और त्रिशूल उठाकर देवी ने उस दैत्य को मार दिया, तब पार्वती के लोकपावन करकमलों से मृत्यु पाकर वे दोनों दैत्य परमधाम को सिधारे ।।४३।। उस महापराक्रमी निशम्भु के तथा भयंकर विक्रमयुक्त शुम्भदैत्य के भी मरने पर सम्पूर्ण देवताओं ने स्वर्गलोक में प्रवेश किया ।।४४।। और शेष दैत्यों को काली तथा सिंह आदि ने भक्षण किया और कुछ दैत्य भयभीत होकर दशों दिशाओं में भाग गये ।।४५।। उस समय नदियां स्वच्छ जलवाली तथा ठीक स्थान में बहनेवाली हुईं, सुखदायक पवन चलने लगी, आकाश निर्मल हो गया ।।४६।। देवताओं ने तथा ब्रह्मर्षियों ने फिर यज्ञ आरम्भ किया और इन्द्रादि समस्त देवता सुखी हो गये ।।४७।। हे प्रभो! जो मनुष्य पार्वती के परमपवित्र, दैत्यराज के वध सहित पुण्य चरित्र को श्रद्धा से श्रवण-पठन करता है ।।४८।। वह इस लोक में देवताओं से भी दुर्लभ सम्पूर्ण भोगों को अनुभव कर परलोक में महामाया के प्रसाद से पार्वती के स्थान को जाता है ।।४९।। ऋषि बोले- हे राजन! इस प्रकार शुम्भ-निशुम्भासुर को मारनेवाली साक्षात् पार्वती के अंश से उत्पन्न हुई देवी सरस्वती उत्पन्न हुई, यह चरित्र आपसे कह दिया ।।५०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां

निशुम्भ-शुम्भ वधोपाख्याने सरस्वती प्रादुर्भाववर्णनं नाम अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४८ ।।

*****

उनचासवाँ अध्याय

मुनि बोले- सम्पूर्ण अर्थों को जाननेवाले, हे सूतजी! भुवनेशानी पार्वती के अवतार को कहिये कि, जिससे सरस्वती उत्पन्न हुई।।१।। जो देवी परब्रह्म, मूलप्रकृति ईश्वरी, निराकार तथा साकार, नित्य आनन्दमयी सती कहलाती है।।२।। सूतजी बोले- हे तपस्वियो! देवी के परम चरित्र को प्रेम से सुनिये, जिसे जानने मात्र से मनुष्य परमगति को प्राप्त होता है।।३।। एक समय देवता और दैत्यों में परस्पर बड़ा युद्ध हुआ, उस समय महामाया के प्रभाव से देवताओं की विजय हुई।।४।। तब गर्वित हुए देवता अपनी प्रशंसा करने लगे कि, हम धन्य हैं, हम धन्यवाद के योग्य हैं, दैत्य हम सबों का क्या करेंगे?।।५।। जो दैत्य हमारे दुःसह प्रताप को देखकर 'भागो, भागो' ऐसा कहकर भयभीत होकर नागलोक को चले गये।।६।। हम सब देवताओं का बल दैत्यवंश का नाश करनेवाला तेज धन्य है, भाग्य धन्य है, इस प्रकार सब आपस में कहने लगे।।७।। उसके पीछे उस समय कूटरूप अपूर्व तेज प्रकट हुआ, उसे देखकर सब देवता विस्मित हुए।।८।। उस परम श्याम मानकर तोड़नेवाले तेज को न जानकर यह क्या है? यह क्या है? ऐसा कण्ठ से रुक-रुककर कहने लगे।।९।। तब देवताओं के स्वामी इन्द्र ने देवताओं को आज्ञा दी कि, आप जाकर वह क्या है? उसकी यथार्थ परीक्षा करें।।१०।। देवेन्द्र से भेजे हुए पवन उस तेज के समीप गये, तब वह तेज उनसे बोला कि, तुम कौन हो?।।११।। उस प्रतितेज के ऐसा पूंछने पर वह वायु अभिमान के सहित बोला कि, मैं जगत् का प्राण वायु हूँ।।१२।। यह सब स्थावर-जंगमरूप जगत् सर्वाधार रूप मुझ में ही ओतप्रोत हो रहा है और मैं ही सब जगत् को चलाता हूं।।१३।। तब वह तेज बोला- हे वायो! यदि तुम जगत् को चलाने में समर्थ हो, तो इस धरे तृण को अपनी इच्छा से चलाओ।।१४।। यह सुनकर वायु ने सब यत्न से परिश्रम किया और जब वह तृण अपने स्थान से न चला, तब वह लज्जित हुए।।१५।। उस समय वायु मौन होकर इन्द्र की सभा में गये और अपने तिरस्कार का सम्पूर्ण समाचार कहा।।१६।। कि, हम सब अपनी आत्मा में वृथा ही सर्वेशत्व को मानते हैं, परन्तु क्षुद्रवस्तु में भी कुछ नहीं कर सकते।।१७।। तब वायु ने समस्त देवताओं को वहां भेजा, जब वे सब देवता जानने में समर्थ न हुए, तब इन्द्र स्वयं वहां गये।।१८।। इन्द्र को आते हुए देखकर वह अति दुःसह तेज तत्क्षण अन्तर्धान हो गया, तब इन्द्र विस्मित हुए।।१९।। जिसका ऐसा चरित्र है, उसके शरण में जाता हूं, इस प्रकार इन्द्र बारंबार सोचने लगा।।२०।। उसी अन्तर में वहां निर्व्याज करुणा के शरीरवाली पार्वती उनके ऊपर दया करने तथा अभिमान दूर करने के लिये।।२१।। चैत्र शुक्ला नवमी को मध्याह्न काल में सच्चिदानन्द रूपिणी साक्षात्

पार्वतीदेवी प्रकट हुईं ।।२२।। तेज के मध्य में शोभायमान अपनी कान्ति से दशोंदिशाओं को प्रकाशित करती हुई ''मैं ही ब्रह्म हूँ'' इस प्रकार प्रत्यक्ष सब देवताओं को जताती हुई ।।२३।। चारों हाथों में सुन्दर पाश–अंकुशादि को धारण करती हुई, वेदों से सेवित, मनोहर नवयौवन से गर्वित ।।२४।। लाल वस्त्र धारण करनेवाली, रक्तसुगन्ध लगाये कोटि कामदेव के समान, कोटि चन्द्रमा के समान कान्तिवाली ।।२५।। सर्वान्तर्यामि रूपिणी, सब प्राणियों की साक्षिणी, परब्रह्म स्वरूपिणी महामाया यह बोली ।।२६।। पार्वतीजी बोली– मेरे आगे अभिमान (गर्व) करने को न ब्रह्मा, न विष्णु, न संहारक शिव ही समर्थ हैं, फिर अन्य देवताओं की क्या कथा है ?।।२७।। मैं ही परब्रह्म, परमज्योति, प्रणवद्वन्द्व रूपिणी हूं, मैं ही सब कुछ हूं, मुझसे भिन्न और कोई नहीं है ।।२८।। निराकार भी साकार तथा सर्वतत्त्व स्वरूपिणी तर्कना के अयोग्य गुणवाली, नित्य कार्य और कारण के रूपवाली हूँ ।।२९।। कभी स्त्री के आकारवाली होती हूं तथा कभी पुरुष के आकार में हो जाती हूं, कभी दोनों आकार युक्त होती हूं, इस प्रकार सब आकारवाली महेश्वरी हूँ ।।३०।। सृष्टि के कर्त्ता ब्रह्मा मैं हूँ, जगत् के रक्षक विष्णु मैं हूँ, संहारकर्त्ता शिव भी मैं हूँ, सब जगत् को मोहनेवाली मैं ही हूँ ।।३१।। कालिका, कमला, वाणी आदि सम्पूर्ण शक्ति तथा यह सब कलायें मेरे ही अंश से उत्पन्न हुई हैं ।।३२।। और मेरे ही प्रभाव से आपने सब दैत्यों को जीता है, ऐसी मुझे न जानकर आप सब वृथा ही अभिमान करते हो ।।३३।। जिस प्रकार ऐन्द्रजालिक काठ की स्त्री (पुतली) को नचाता है, उसी प्रकार मैं परमेश्वरी, सम्पूर्ण प्राणियों को नचाती हूँ ।।३४।। मेरे भय से पवन चलता है, अग्नि जलता है तथा लोकपाल निरन्तर अपने–अपने कर्मों को करते हैं ।।३५।। मैं स्वतन्त्र होकर अपनी लीला से देवताओं को जिता देती हूँ, कभी दैत्यों को जिता देती हूँ ।।३६।। वेद, शास्त्र मेरे ही उस रूप को अविनाशी, परंधाम, मायातीत, परे–से–परे वर्णन करते हैं ।।३७।। मेरा सगुण और निर्गुण भेद से दो प्रकार का रूप कहा है, एक माया से युक्त, दूसरा माया से रहित कहा है ।।३८।। हे देवताओ! ऐसी मुझे जानकर अपने–अपने गर्व को त्यागकर, नम्र होकर मुझ सनातनी प्रकृति को भजो ।।३९।। ऐसा दया से युक्त देवी का वचन सुनकर देवतागण भक्ति से कन्धों को नम्र करके परमेशानी देवी की स्तुति करने लगे ।।४०।। हे जगदीशानि! क्षमा करो, हे परमेश्वरि! हे माता! प्रसन्न होकर हम पर दया करो, हमारा ऐसा गर्व कभी न होगा ।।४१।। उस दिन से लेकर वे देवता सावधान होकर गर्व को त्यागकर विधिपूर्वक पहले के समान पार्वतीजी की आराधना करने लगे ।।४२।। हे ब्राह्मणो! मैंने आपसे यह पार्वती की उत्पत्ति कही, जिसे सुनने मात्र से परमपद प्राप्त होता है ।।४३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां
उमाप्रादुर्भाववर्णनं नामैकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ।। ४९ ।।

पचासवाँ अध्याय

मुनि बोले- हे महाबुद्धिमान्! हम सब क्रमशः दुर्गा के चरित्र को सुनना चाहते हैं, अब हम से दूसरे अद्भुत तत्त्व का वर्णन कीजिये ।।१।। हे समस्त अर्थों के वेत्ता! हे सूतजी ! आपके मुखकमल से अमृत के समान अनेक कथाओं को सुनने से हमारा मन तृप्त नहीं होता है ।।२।। सूतजी बोले- महाबली रुरु के दुर्गम नामक पुत्र ने ब्रह्माजी के वरदान से चारों वेदों को पाया ।।३।। तथा वह पृथ्वी पर देवताओं से अजेय बल को पाकर अनेक उपद्रवों को करने लगा, उससे स्वर्ग में देवता भी कांपने लगे ।।४।। वेदों के नष्ट हो जाने पर सम्पूर्ण क्रिया नष्ट होने लगीं और देवताओं सहित ब्राह्मण दुराचारी हो गये ।।५।। उस समय न दान होता था, न उग्र तप होता, न याग होता तथा न हवन होता था और पृथ्वी पर सौ वर्ष की अनावृष्टि हुई ।।६।। तीनों लोकों में हाहाकार मच गया, सब लोग दुःखित और भूख-प्यास से अत्यन्त पीड़ित होने लगे ।।७।। नदी, समुद्र तथा बावडी, कूप, सरोवर भी जल से शून्य हो गये और वृक्ष और लतायें सूख गईं ।।८।। ऐसे दीन प्रजा के महादुःख को देखकर सब देवता योगमाया महेश्वरी की शरण में गये ।।९।। देवता बोले- हे महामाये ! अपनी सम्पूर्ण प्रजा की रक्षा करो और तुम निश्चय ही क्रोध को दूर करो, नहीं तो लोक नष्ट हो जायंगे ।।१०।। जिस प्रकार शुम्भदैत्य और महाबली निशुम्भासुर को मारा तथा जैसे धूम्राक्ष, चण्ड, मुण्ड, महाबली रक्तबीज ।।११।। तथा मधुकैटभ दैत्य, महिषासुर आदि दैत्यों को मारा है; वैसे, हे कृपासिन्धो! हे दीनबन्धो! इस दैत्य को शीघ्र मारो ।।१२।। बालकों से अपराध पद-पद में होता है, तो संसार में केवल माता के बिना कौन पुरुष सह सकता है ?।।१३।। जिस-जिस समय देवताओं तथा ब्राह्मणों को दुःख होता है, उस-उस समय तुम अवतार लेकर मनुष्यों को सुखी करती हो ।।१४।। ऐसा उन देवताओं का दीन वचन सुनकर करुणामयी पार्वतीजी ने अपना अनन्त अक्षमय रूप दिखाया ।।१५।। चारों हाथों में धनुषबाण तथा पद्म और अनेक प्रकार के मूल धारण करती हुई, प्रसन्न मुखकमलवाली ।।१६।। दुःखित प्रजा को देखकर दया से पूरित नेत्रवाली, वह पार्वती व्याकुल होकर नौ दिन तथा नौ रात रोई ।।१७।। और उसने नेत्रों से सहस्रों जल की धार छोड़ी, उनसे लोकों को तृप्त किया, उससे सम्पूर्ण औषधियाँ तथा अगाध जलवाली नदी, समुद्र बहने लगे और भूमि पर शाक, फल, मूल उपजे ।।१८-१९।। पुण्यात्माओं के निमित्त सुन्दर फल तथा पशुओं के निमित्त औरों के अर्थ भी मनोहर तृण विस्तृत हुए ।।२०।। तब समस्त देवता ब्राह्मणों सहित सन्तुष्ट हुए। उस समय देवी ने कहा, अब

तुम्हारा और क्या कार्य करूं ?।।२१।। उस समय सब देवता एकत्रित होकर बोले कि, हे देवि ! तुमने सम्पूर्ण मनुष्यों को सन्तुष्ट किया, अब कृपा करके दुर्गम से हरण किये हुए वेदों को दिलवाओ।।२२।। ''ऐसा ही होगा'' यह कहकर ''अपने स्थानों को जाओ'' इस प्रकार बोली, मैं तुम्हारे वेदों को अति शीघ्र ही दिलाऊँगी।।२३।। तब प्रसन्न हुए देवता जगत् को उत्पन्न करनेवाली, खिले हुए कमल के समान नेत्रवाली देवी को प्रणाम करके अपने-अपने स्थानों को चले गये।।२४।। उस समय स्वर्ग, आकाश तथा भूमि पर बड़ा कोलाहल मच गया, उस शब्द को सुनकर उस दैत्य ने चारों ओर से नगरी को घेर लिया।।२५।। तब शिवादेवी देवताओं की रक्षा करने के निमित्त तेजोमय चक्र को धारण करके स्वयं नगर से बाहर गई।।२६।। उसी समय देवी और दैत्य दोनों में युद्ध होने लगा, युद्ध में शरीर का छेद करनेवाले तीव्र बाणों को वर्षाया।।२७।। इसी अवसर में उस देवी के शरीर से सुन्दर मूर्त्तियां प्रकट हुई- काली, तारा, छिन्नमस्ता, श्रीविद्या, भुवनेश्वरी।।२८।। भैरवी, बगला, धूम्रा, श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी, मातंगी यह दशों महाविद्या देवी शस्त्र सहित निकली।।२९।। तत्पश्चात् वे असंख्यात दिव्य मूर्तिवाली मातायें हो गईं, यह सब चन्द्रमा की लेखा को धारण करनेवाली, बिजली के समान कान्तिवाली थीं।।३०।। सब मातृगणों से अति भयंकर युद्ध होने लगा, उन देवियों ने दैत्यों के सौ अक्षौहिणी दलों को नष्ट किया।।३१।। तब उसने दुर्गम दैत्य को त्रिशूल धारा से मारा, वह दैत्य जड़ से खुदे हुए के समान भूमि पर गिर पड़ा।।३२।। इस प्रकार दुर्गमासुर नामक दैत्य को मारकर उससे चारों वेद लेकर देवी ने उन देवताओं को प्रदान किये।।३३।। देवता बोले- हे अम्बिके! हमारे लिये तुमने अनन्ताक्षिमय रूप धारण किया, इस कारण मुनिगण तुमको 'शताक्षी' कहेंगे।।३४।। अपनी देह से उत्पन्न हुए शाक से सब लोकों का पालन किया, इससे तुम्हारा 'शाकम्भरी' नाम प्रसिद्ध होगा।।३५।। हे शिवे! जिस कारण कि, तुमने दुर्गम नामवाले दैत्य को मारा, अतः मनुष्य तुमको 'दुर्गा भगवती' कहेंगे।।३६।। हे योगनिद्रे! हे महाबले! हे ज्ञान की देनेवाली! तुम्हारे लिये नमस्कार है, नमस्कार है, लोकों की माता रूप तुमको नमस्कार है।।३७।। जो आदिवाक्यों से बोधन की जाती है, वह परमेश्वरी तुम हो, अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड नायिका तुमको नमस्कार है।।३८।। हे माता! तेरे प्रभाव को न जाननेवाले हम वाणी, मन, देह से दुष्प्राप्य सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि के समान नेत्रवाली तुम्हारी स्तुति करने को समर्थ नहीं हो सकते।।३९।। हम सरीखे देवताओं को देखकर सुरेशानी शताक्षी माता को छोड़कर और कौन ऐसी दया कर सकता है ?।।४०।। तीनों लोक कभी बैरियों की बाधा से तिरस्कार को न पावें, इस प्रकार हमारे शत्रुओं का नाश करने में तुमको यत्न करना चाहिये।।४१।। देवी बोली- जिस प्रकार बछड़ों को देखकर गायें व्यग्र होकर दौड़ती हैं, उसी प्रकार तुमको देखकर मैं व्याकुल होकर दौड़ता

हूं।।४२।। तुमको बालकों के समान देखनेवाली तथा अपने प्राणों को देनेवाली मुझे तुमको बिना देखे एक क्षण युग के समान बीतता है।।४३।। भक्ति के करनेवाले तुमको तुम्हारे दुःखों को दूर करनेवाली मुझ देवी के स्थित होने पर कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिये।।४४।। जिस प्रकार पहले दैत्यों को मारा है, उसी प्रकार अब दैत्यों को मारूंगी, इसमें कुछ सन्देह नहीं करना चाहिये, मैं सत्य–सत्य कहती हूँ।।४५।। जिस समय शुम्भ और निशुम्भ दैत्य होंगे, उस समय मैं नन्द की भार्या यशोदा के रूप में।।४६।। योनिजरूप को धारण करके गोकुल में गोपों के यहाँ उत्पन्न होऊँगी और उन दोनों दैत्यों को मारूँगी, इस कारण सब मुझे 'नन्दजा' कहेंगे।।४७।। भ्रमररूप को धारण करके अरुण को मारूँगी, इस कारण लोक में मुझे 'भ्रामरी' कहेंगे।।४८।। फिर मैं भीमरूप धारण करके राक्षसों को भक्षण करूँगी, इस कारण मेरा नाम 'भीमादेवी' विख्यात होगा।।४९।। जब–जब पृथ्वी पर दैत्यों की बाधा उत्पन्न होगी, तब–तब मैं अवतार लेकर निःसन्देह कल्याण करूँगी।।५०।। जो देवी शताक्षी है, वही शाकम्भरी देवी कही है, वही दुर्गा तथा तीनों लोकों में एक व्यक्ति कही है।।५१।। शताक्षी के समान पृथ्वी पर और कोई दयालु देवता नहीं है, जिसने दुःखित तथा रोती हुई प्रजा को देखकर सम्पूर्ण दुःखों को शान्त किया।।५२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां
शताक्ष्याद्यवतारवर्णनं नाम पंचाशतमोऽध्यायः।। ५०।।

*****

एक्कावनवाँ अध्याय

मुनि बोले– हे व्यासजी के शिष्य! हे महाभाग! हे पौराणिकोत्तम! हे सूतजी! हम शिवजी के इतिहास को सुनना चाहते हैं।।१।। सनत्कुमारजी ने महात्मा व्यासजी से जो जगदम्बा पार्वतीजी का श्रेष्ठ क्रियायोग कहा है, उसको सुनना चाहते हैं।।२।। सूतजी बोले– आप महात्मा धन्य हो तथा देवी के भक्ति में दृढ़व्रत हो, अब पराशक्ति के परमगुप्त रहस्य को आदर से सुनिये।।३।। व्यासजी बोले– हे सनत्कुमारजी! हे सर्वज्ञ! हे ब्रह्मपुत्र! हे महामते! पार्वतीजी के अति सुन्दर क्रियायोग को सुनना चाहता हूं।।४।। उसका क्या लक्षण है? तथा उसके करने पर क्या फल होता है? जो पराम्बा का अतिप्रिय है, वह सब वर्णन कीजिये।।५।। सनत्कुमारजी बोले– हे व्यासजी! जो आप रहस्य को पूछते हो, हे महाबुद्धे! सो सब सुनिये, मैं वर्णन करता हूं।।६।। ज्ञानयोग, क्रियायोग तथा भक्तियोग यह श्रीमाताजी के तीन मार्ग भुक्ति और मुक्ति के देनेवाले कहे हैं।।७।।

चित्त का आत्मा से संयोग होता है, वह ज्ञानयोग कहलाता है और जो बाहर के अर्थों का संयोग है, वह क्रियायोग कहलाता है।।८।। देवी तथा आत्मा का जो एक हो जाना है, वह भक्तियोग कहा गया है, वह तीनों योगों को क्रियायोग कहलाता है।।९।। कर्म से भक्ति उत्पन्न होती है और भक्ति से ज्ञान होता है, ज्ञान से मुक्ति होती है, ऐसा शास्त्रों में निश्चय है।।१०।। हे मुनिश्रेष्ठ! योग ही मुक्ति का प्रधान कारण है और क्रियायोग योग का परम ध्येय साधन है।।११।। प्रकृति को माया जाने, सनातन ब्रह्म को मायावी जाने, उन दोनों के अभिन्न शरीर को जानकर संसार बन्धन से मुक्त हो जाता है।।१२।। हे व्यासजी! जो मनुष्य पाषाण तथा काष्ठ का अथवा मृत्तिका से देवी का मन्दिर बनवाता है, उसके पुण्यफल को सुनिये। प्रतिदिन योग के यजन करने से जो महाफल प्राप्त होता है।।१३।। उस फल को वह प्राप्त करता है, जो देवी के मन्दिर को बनवाता है, श्रीमाता के धाम को बनानेवाला धर्मात्मा अपने आगामी सहस्र कुलों को तथा बीते हुए सहस्र कुलों को तारता है।।१४।। थोड़े अथवा बहुत कोटि जन्म के किये हुए पाप श्रीमाता के मन्दिर बनवाने के प्रारम्भ करने से ही नष्ट हो जाते हैं।।१५।। जैसे नदियों में गंगाजी और जैसे सब नदों में शोण तथा क्षमा में पृथ्वी और गम्भीरता में जैसे समुद्र है।।१६।। जिस प्रकार सम्पूर्ण ग्रहों में सूर्य विशेष कहा है, उसी प्रकार समस्त देवताओं में पराम्बा अधिक कही है।।१७।। जो सब देवताओं में मुख्य है, ऐसी देवी का मन्दिर जो बनवाता है, वह जन्म-जन्म में प्रतिष्ठा को पाता है।।१८।। वाराणसी में, कुरुक्षेत्र में, प्रयाग और पुष्कर में तथा गंगा, समुद्र के तीर पर, नैमिषारण्य में, अमरकण्टक में।।१९।। महापवित्र श्रीपर्वत पर, गोकर्ण में तथा ज्ञान पर्वत पर, मथुरा में, अयोध्या में, द्वारवती में।।२०।। इत्यादि पवित्र स्थानों पर अथवा जिस किसी स्थल पर भी हो, माता का मन्दिर बनानेवाला मनुष्य बन्धन से मुक्त हो जाता है।।२१।। जितने वर्ष ईंटों की चुनाई रहती है, उतने सहस्र वर्ष वह मणिद्वीप में निवास करता है।।२२।। जो पुरुष सब लक्षणों से युक्त देवीजी की प्रतिमा बनवाता है, वह निर्भय होकर पार्वती के परम लोक को प्राप्त होता है।।२३।। शुभ ऋतु और ग्रह तथा नक्षत्र में देवी की मूर्ति को प्रतिष्ठित करके मनुष्य योगमाया के प्रसाद से कृतकृत्य होता है।।२४।। उस कुल में जो होंगे तथा जो मनुष्य कल्प से लेकर हो चुके हैं, देवी की शोभन मूर्ति स्थापित करके मनुष्य उन सबों को तार देता है।।२५।। हे मुनिश्रेष्ठ! त्रिलोकी के स्थापन करने से जो पुण्य होता है, उससे करोड़ गुणा पुण्य श्रीदेवी के स्थापन करने से होता है।।२६।। जो मनुष्य मध्य में देवी को स्थापन करके चारों दिशाओं में पंचायतन (गणेश, गौरी आदि) देवताओं को स्थापन करता है, उसका पुण्य नहीं गिना जा सकता है।।२७।। चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहण में विष्णुजी के कोटि नाम जपने से जो फल मिलता है, उससे सौ कोटि गुण अधिक फल है।।२८।। जो फल शिवनाम के जपने से मिलता है, उससे करोड़ गुना

अधिक फल श्रीदेवी के नाम जपने से मिलता है ।।२९।। देवी के प्रसाद बनाने से भी पुण्य मिलता है, जिसने तीनों देवमयी जगन्माता देवी को स्थापित किया ।।३०।। श्रीमाता की कृपा से उसे कुछ दुर्लभ नहीं होता, उसके पुत्र, पौत्र आदि बढ़ते हैं और सम्पूर्ण पाप नष्ट होते हैं ।।३१।। जो मन से भी उत्पन्न मूर्ति स्थापन करने की इच्छा करते हैं, वे भी मुनियों से दुर्लभ पार्वती के लोक को जाते हैं ।।३२।। जो पुरुष बने हुए मन्दिर को देखकर अपने चित्त से विचारता है कि, जब मुझे सम्पत्ति प्राप्त हो जायेगी, तो मैं भी देवी का मन्दिर बनवाऊँगा ।।३३।। इस प्रकार शीघ्र ही उसका कुल स्वर्गलोक को जाता है, इसमें संशय नहीं है और महामाया के प्रभाव से तीनों लोकों में क्या दुर्लभ है?।।३४।। जो मनुष्य जगत् को उत्पन्न करनेवाली श्रीपराम्बा का केवल आश्रय करते हैं, उनको मनुष्य नहीं मानना चाहिये, किन्तु वे साक्षात् देवी के गण हैं ।।३५।। जो मनुष्य जागते हुए, सोते हुए वा रात–दिन स्थित होते हुए भी 'उमा' यह दो अक्षर के नाम को उच्चारण करते हैं, वे शिवा के गण होते हैं।।३६।। जो नित्य के तथा नैमित्तिक कर्म में पुष्पों से तथा धूप से और दीपक से परा शिवादेवी को पूजते हैं, वे पार्वतीजी के स्थान को जाते हैं ।।३७।। जो मनुष्य नित्य देवी के मण्डप को गोबर से अथवा मृत्तिका से लीपते तथा मार्जन करते हैं, वे उमा के लोक को प्राप्त होते हैं ।।३८।। जिन्होंने देवीमाता का रमणीक, सुन्दर मन्दिर बनवाया है, ऐसे कुलीन मनुष्यों को माता अनेक आशीर्वाद देती है ।।३९।। मुझसे प्रेम करनेवाले मनुष्य सौ वर्ष बिना आपत्ति के जीवें, इस प्रकार श्रीमाता रात–दिन आशीश देती हैं ।।४०।। जिसने महादेवी पार्वती की शुभमूर्ति बनवाई, दश सहस्र वर्षपर्यन्त उसके कुल के मनुष्य मणिद्वीप में निवास करते हैं ।।४१।। महामाया की मूर्ति को स्थापित करके भलीभांति पूजकर साधक जिस–जिस मनोरथ को करता है, उस–उस को निश्चय पाता है ।।४२।। जो मनुष्य श्रीमाता की उत्तम मूर्ति को स्थापन करके उसे घी से अथवा शहद आदि से स्नान कराता है, उसके फल को कौन गिन सकता है?।।४३।। चन्दन, अगर, कपूर, जटामांसी, नागरमोथा आदि से युक्त जल से अथवा एक वर्णवाली गायों के दूध से परमेश्वरी देवी को स्नान करावे ।।४४।। फिर अठारह वस्तु मिश्रित धूप से उत्तम आहुति देवे और घी तथा कपूर की बत्तियों से देवी की आरती करे ।।४५।। कृष्ण पक्ष की अष्टमी को तथा नवमी को वा अमावस्या को अथवा पंचदिक्पालों (लोकपालों) की तिथि में गन्ध, पुष्पों से जगत् की धारण करनेवाली देवी को विशेष पूजे ।।४६।। देवीसूक्त को अथवा श्रीसूक्त को पढ़कर अथवा मूल मन्त्र (*नवार्ण) को पढ़कर ।।४७।। विष्णुक्रान्ता तथा तुलसी के पुष्पों को छोड़कर सम्पूर्ण पुष्प देवी की प्रीति के करनेवाले हैं, विशेष कर कमलों को चढ़ावे ।।४८।। जो देवी को स्वर्णपुष्प अर्पण करता है अथवा चांदी के पुष्प समर्पण करता है, वह कोटि सिद्धों

*ओं३म् "ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे" यह मन्त्र है।

के सहित परमधाम को जाता है।।४९।। पूजनं की समाप्ति में दासों को सदा पाप क्षमापन करना उचित है कि, हे परमेशानि! हे जगदानन्ददायिनि! प्रसन्न हो।।५०।। मन्त्र पढ़नेवाला इन वाक्यों से स्तुति करके देवी की भक्ति में तत्पर होकर मयूर पर आरूढ़ हुई, वर देनेवाली, अभय करनेवाली देवी का ध्यान करें।।५१।। इस प्रकार भक्तों के इच्छित फलों को देनेवाली महेशानी को ध्यान करके अनेक प्रकार के पके हुए फलों को तथा नैवेद्य को अर्पण करे।।५२।। जो मनुष्य परमात्मा शम्भुशक्ति के नैवेद्य को भक्षण करता है, वह सम्पूर्ण पापरूपी कीचड़ को धोकर निर्मलचित्त हो जाता है।।५३।। जो पुरुष चैत्र शुक्ला तृतीया को भवानी का व्रत करता है, वह संसार के बन्धन से छूटकर परम पद को प्राप्त होता है।।५४।। और पूर्वोक्त तृतीया को निपुण दोलोत्सव करे और जगत् की धारण करने वाली शिवसहित पार्वती को पूजे।।५५।। पुष्पों से, कुंकुम से, वस्त्रों से तथा कर्पूर, अगर, चन्दन से, धूप, दीप, नैवेद्य से तथा और भी सुन्दर गन्धों से पूजन करे।।५६।। तत्पश्चात् महामाया, महेश्वरी, श्रीगौरी, शिवजी से युक्त सब कल्याणों की करनेवाली देवी को आन्दोलन करे।।५७।। जो मनुष्य इस तिथि में प्रतिवर्ष नियम से व्रत तथा आन्दोलन करता है, पार्वतीजी उसे सब अभीष्ट देती हैं।।५८।। वैशाख के शुक्ल पक्ष में जो अक्षय तृतीया होती है, उस दिन जो आलस्यरहित होकर जगदम्बा का व्रत करता है।।५९।। मल्लिका, मालती, चम्पा, जपा, बन्धूक, कमलों से तथा पुष्पों से शिवजी के सहित पार्वती को पूजता है।।६०।। वह करोड़ जन्म के किये हुए मन, वाणी, देह से उत्पन्न हुए पापों को दूर करके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि चारों अक्षयवर्गों को प्राप्त होता है।।६१।। जो मनुष्य ज्येष्ठ शुक्ला तृतीया को महेश्वरी के व्रत को करके परमप्रीति से देवी को पूजता है, उसे कुछ असाध्य नहीं रहता।।६२।। आषाढ़ के शुक्ल पक्ष की तृतीया के दिन देवी के अतिप्रिय रथोत्सव को अपने वित्त के अनुसार करे।।६३।। पृथ्वी को रथ जाने और चन्द्रमा, सूर्य को रथांग (पहिये) जाने, वेदों को घोड़े तथा ब्रह्माजी को सारथी जाने।।६४।। अनेक मणिगणों से व्याप्त पुष्पमाला से विराजित हुए रथ को इस प्रकार कल्पना करके उसमें पार्वतीजी को स्थापित करे।।६५।। लोकों की रक्षा करने को तथा लोकों के देखने के लिये पराम्बिका देवी रथ के मध्य में स्थित हुई है, बुद्धिमान् पुरुष ऐसी भावना करे।।६६।। रथ के धीरे-धीरे चलने पर "जय! जय!!" शब्द उच्चारण करे, हे देवि! हे दीनवत्सले! हम शरणागत जनों की रक्षा करो।।६७।। इस प्रकार वाक्यों से तथा अनेक बाजों के शब्दों से भगवती को सन्तुष्ट करे और रथ को सीमा के अन्त तक ले जाकर वहां रथ को पूजे।।६८।। फिर अनेक स्तोत्रों से स्तुति करके उन देवी को अपने घर लावे और सैकड़ों प्रणाम करके जगदम्बिका की प्रार्थना करे।।६९।। जो विद्वान् इस प्रकार पूजन, व्रत, रथोत्सव करता है, वह इस लोक में सम्पूर्ण भोगों

को भोगकर अन्त में देवी के पद को पाता है ।।७०।। और इसी प्रकार श्रावण और भाद्रपद की शुक्ला तृतीया को जो माता का व्रत और विधिपूर्वक पूजन करता है ।।७१।। वह पुत्र,पौत्र आदि से तथा धन आदि से सदा आनन्द करता है और अन्त में सब लोकों के ऊपर स्थित हुए उमालोक को जाता है ।।७२।। आश्विन मास के शुक्ल पक्ष में नवरात्रि का व्रत करना चाहिये, जिसे करने से सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होते हैं, इसमें कुछ संशय नहीं ।।७३।। नवरात्रि व्रत के प्रभाव वर्णन करने को न ब्रह्माजी, न पंचानन (शिव) तथा न स्वामि कार्त्तिक, न और कोई देवता समर्थ हैं ।।७४।। हे मुनिश्रेष्ठो! नवरात्रि का व्रत करके विरथ के पुत्र राजा सुरथ ने अपने हरण किये हुए राज्य को पाया ।।७५।। और इसीके प्रभाव से बुद्धिमान् ध्रुवसन्धि के पुत्र अयोध्या के स्वामी राजा सुदर्शन ने भी छीने हुए राज्य को पाया ।।७६।। और इस श्रेष्ठ व्रत को करके, महेश्वरी की आराधना करके संसार बन्धन से मुक्त होकर वह समाधि वैश्य मुक्ति का भागी हुआ ।।७७।। जो मनुष्य तृतीया तथा पंचमी में तथा सप्तमी वा अष्टमी को, नवमी अथवा चतुर्दशी को देवी का पूजन करता है ।।७८।। और आश्विन के शुक्ल पक्ष में विधान से व्रत करता है, उसकी सब मनोकामनाएं देवी भगवती नित्य पूर्ण करती है ।।७९।। जो कार्त्तिक के वा मार्गशीर्ष के, पौष के, वैशाख के कृष्ण पक्ष की तृतीया को व्रत करता है ।।८०।। और लोहित, करवीर आदि के पुष्पों से, पुष्प, धूप, सुगन्धों से मंगलादेवी का पूजन करता है, वह सम्पूर्ण मंगल को पाता है ।।८१।। यह महाव्रत सौभाग्य की प्राप्ति के निमित्त सदा स्त्रियों को करना चाहिये और विद्या, धन, पुत्रों की प्राप्ति के लिये मनुष्यों को भी करना चाहिये ।।८२।। इसी प्रकार और भी उमामहेश्वर आदि व्रत भी जो देवी को प्रिय हैं, वे भी मुक्ति चाहनेवालों को भक्ति से करने चाहिये ।।८३।। यह शिवभक्ति को बढ़ानेवाली, अनेक इतिहासों से पूर्ण, भोग्य और मोक्ष को देनेवाली महापुण्यदायक संहिता है ।।८४।। जो मनुष्य इस संहिता को भक्ति से सुनता है अथवा सुनाता है, पढ़ता है वा पढ़ाता है, वह परमगति को प्राप्त होता है ।।८५।। जिसके घर में यह सुन्दर अक्षरों से लिखी हुई संहिता स्थित हो और विधिपूर्वक पूजित होती है, वह सम्पूर्ण कामनाओं को पाता है ।।८६।। और उसे भूत, प्रेत, पिशाच आदि दुष्टों से कुछ भी भय नहीं होता, पुत्र, पौत्र आदि सम्पत्ति विस्तृत होती है, इसमें कुछ संशय नहीं ।।८७।। इस कारण शिवभक्ति के चाहनेवालों को यह महापुण्य मनोहर 'उमासंहिता' नित्य सुननी चाहिये और पढ़नी चाहिये ।।८८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पंचम्यामुमासंहितायां

क्रियायोगनिरूपणं नामैकपंचाशत्तमोऽध्यायः ।। ५१ ।।

*****

।। शुभमस्तु ।।

दोहा–

श्रीशंकरके पदकमल, प्रेमसहित मनलाय।
उमासंहिता को तिलक, भाषा लिखों बनाय।।१।।
वसत रामगंगा निकट, नगर मुरादाबाद।
भजन करत हरि को तहां, बुध ज्वालापरसाद।।२।।

*****

ॐ

श्रीकृष्णद्वैपायनमहर्षिवेदव्यासविरचित

शिवमहापुराणभाषा

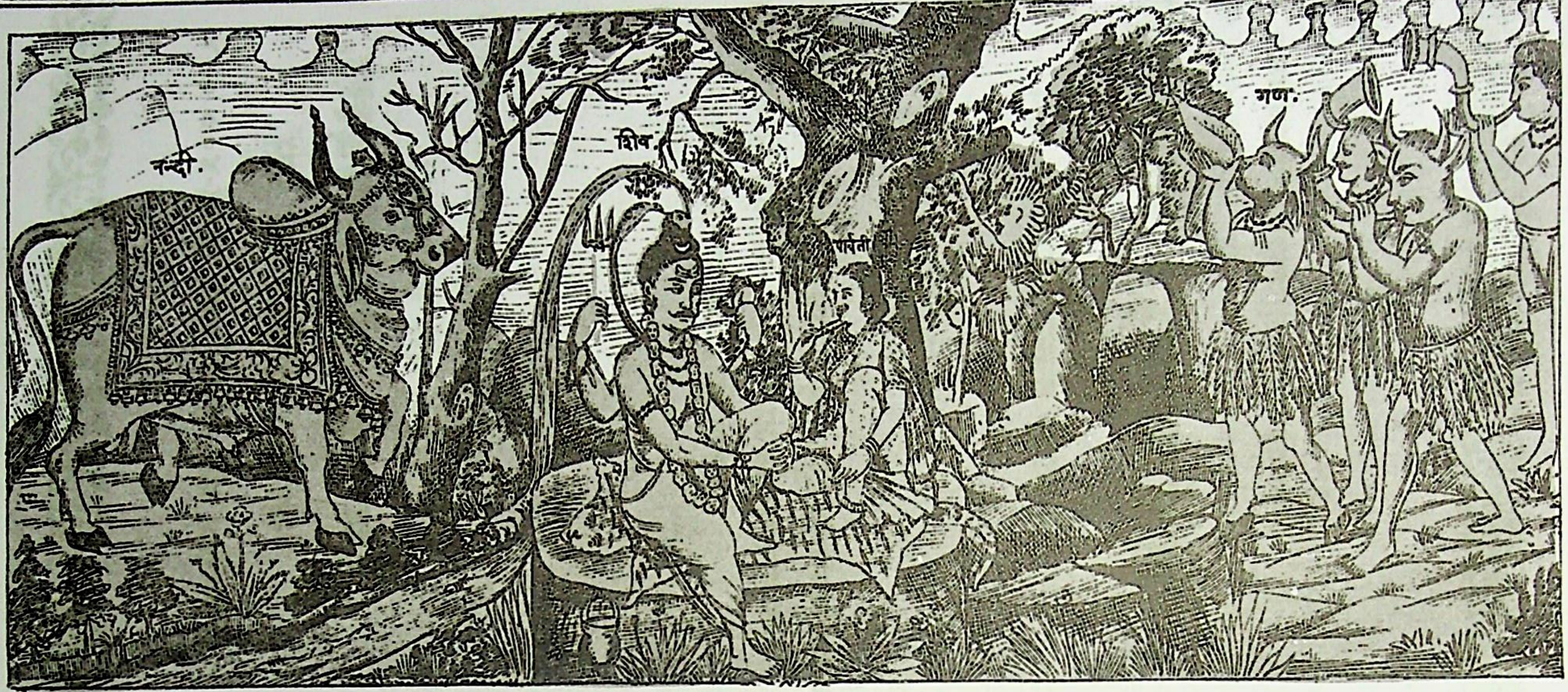
(षष्ठी कैलाससंहिता ६)

***

कात्यायनगोत्रोद्भव मुरादाबाद निवासी श्रीयुत पंडित
ज्वालाप्रसादजी मिश्र ने संस्कृत से अत्युत्तम
देवनागरी में भाषांतर किया

मुद्रक एवं प्रकाशकः
खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बम्बई-४०० ००४

(षष्ठी कैलाससंहिता ६)



ॐ

अथ

शिवमहापुराणभाषा

***

अथ षष्ठी कैलाससंहिता प्रारभ्यते

पहिला अध्याय

दोहा–

शुद्ध सच्चिदानन्दमय, निर्गुण सगुण स्वरूप।
सो ज्वालापरसाद पर, कृपा करहु सुरभूप।।१।।
सुमिरि भवानी शंकरहि, गणपति शारद ध्याय।
छठी संहिता की सुभग, भाषा लिखत बनाय।।२।।

मंगल के देनेवाले विशुद्ध स्वरूप, आदिमाया शक्ति सहित पार्षद गजानन और स्कन्द सहित प्रकृतिपुरुष के ईश, सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय के कारण, शिवजी को नमस्कार है।।१।। ऋषि बोले– हमने परममनोहर अनेक आख्यानों से युक्त 'उमासंहिता' सुनी, अब आप शिवतत्त्व को बढ़ानेवाली 'कैलाससंहिता' कथन कीजिये।।२।। व्यासजी बोले– हे पुत्र! प्रेम से आप कैलाससंहिता सुनिये। आपके स्नेह से मैं परमदिव्य शिवतत्त्व को बढ़ानेवाली कथा कहता हूं।।३।। एक समय हिमालय पर्वत पर स्थित होकर तप करते हुए मुनियों ने काशीपुरी में जाने की इच्छा की।।४।। उस पर्वत से चलकर वे मुनि काशी में प्राप्त हुए और स्नान करने की इच्छा से मणिकर्णिका को आकर देखा।।५।। वहां स्नान करके देवता और गंगाजी को तर्पण करके, वे मुनि देवेश्वर विश्वेश्वर का दर्शन करने गये।।६।। वहां पहुंचकर परमभक्ति से उन्होंने शिवजी को नमस्कार किया और शतरुद्रिय मन्त्रों से उन वेदपारगामी ऋषियों ने शिवजी की स्तुति की।।७।। इस प्रकार उन्होंने अपनी आत्मा को कृतार्थ माना, शिवभक्ति में तत्पर होकर पूर्ण अर्थवाले शिवजी में मन लगाकर स्थित हुए।।८।। उसी समय पंचक्रोशी को देखने की इच्छा से सूतजी को आये हुए देखकर

प्रसन्न होकर ऋषियों ने उनको प्रणाम किया।।९।। वह सूतजी भी साक्षात् विश्वेश्वर देव देव उमापति को नमस्कार करके उन ऋषियों सहित मुक्तिमण्डप में आये।।१०।। जब वहां सूतजी बैठे, तब उन महात्माश्रेष्ठ, पुराण जाननेवाले सूतजी का अर्घ्यादि से सब मुनीश्वर पूजन करने लगे।।११।। तब सूतजी ने प्रसन्नता से उन मुनियों की ओर देखा, जो सुन्दर व्रत से युक्त थे, उनसे कुशल पूछी, तब उन्होंने अपनी कुशल उनको सुनाई।।१२।। वे सब मुनीश्वर सूतजी को देखकर प्रसन्न हुए और प्रणव का अर्थ जाननेवाले प्रस्तावना के वचन बोले।।१३।। मुनि बोले– हे महाभाग! हे व्यासशिष्य! हे पुराण जाननेवालों में श्रेष्ठ! आप धन्य हो, शिवजी के भक्त हो, सब विज्ञान के समुद्र हो।।१४।। आपको सबके गुरु भगवान् व्यासजी ने पुराणों में अभिषेक करके, पुराणज्ञाता गुरु कर दिया है।।१५।। इस प्रकार पौराणिकी कथा आपके हृदय में स्थित है और सम्पूर्ण पुराण वेदार्थ को ही कथन करते हैं।।१६।। वेद ओंकार से है और ओंकार रूप शिवजी से है, इस कारण महेश्वरजी का स्थान आपसे प्रतिष्ठित है।।१७।। आपके मुखकमल से निकला हुआ कथा रूपी मनोहर मकरन्द अपूर्व अमृत है, उसे पान करके हम ज्वर रहित हो जायेंगे।।१८।। विशेष कर आपके सिवाय हमारे कोई गुरु नहीं है, आप कृपा करके महेश्वरजी का परमज्ञान कहिये।।१९।। यह उनके वचन सुनकर व्यासजी के प्रिय सूतजी, गणेशजी, स्वामि कार्त्तिक, पार्वती, महेश।।२०।। शिलादतनय देव नन्दीश, सुयशा के पति सनत्कुमारजी आदि व्यासजी को प्रणाम करके बोले।।२१।। सूतजी बोले– हे पाप रहित मुनियो! आप भाग्यशाली और धन्य हो, जो आपकी ऐसी दृढ़ मति है, यह दुष्कर्मचारियों की नहीं होती।।२२।। हमारे गुरु व्यासजी ने नैमिषारण्यवासी मुनियों को जो उपदेश दिया है, सो मैं आपसे कहता हूं।।२३।। जिसे सुनने से मनुष्यों की शिवजी में भक्ति होती है, आप सावधान होकर प्रसन्नता से सुनिये।।२४।। स्वारोचिष मन्वन्तर के अन्त में दृढ़व्रत तपस्या करनेवाले ऋषि, सर्व सिद्धि के दाता, नैमिषारण्य में।।२५।। यज्ञपति रुद्र का सहस्र वार्षिक यज्ञ करने लगे और ऐश्वर्य जानने की इच्छा से परमभाव से प्रणाम करते हुए।।२६।। व्यासजी के दर्शन की इच्छा से, वे सब उस स्थान में रहने लगे और शिवभक्ति में तत्पर होकर भस्म, रुद्राक्ष नित्य धारण किया।।२७।। भगवान् व्यासजी उनकी प्रीतिभाव को देखकर, वे नारायण के अंश से उत्पन्न हुए, साक्षात् सब जगत् के गुरु पराशर ऋषि के तप के फल, सर्वात्मा प्रकट हुए।।२८।। उनको देखकर सब मुनियों के मन और नेत्र प्रसन्न हो गये और अगौनी आदि करके सम्पूर्ण उपचारों से उनका पूजन किया।।२९।। और व्यासजी के निमित्त सोने का आसन दिया, जिस समय वह उस सोने के आसन पर सुखपूर्वक बैठ गये, तब महामुनि व्यासजी ने गम्भीरवाणी से उनसे कहा।।३०।। व्यासजी बोले– आपके इस यज्ञ में कुशल है?

क्या आपने यज्ञपति का सम्यक् प्रकार से पूजन किया है ?।।३१।। आपने इस यज्ञ में परमेश्वर को किस निमित्त भक्तिभाव से पूजा है ? जो पार्वती सहित संसार के भय को छुड़ानेवाले हैं ।।३२।। आपकी प्रवृत्ति शुश्रूषा पूर्व ही से मुझे विदित होती है, जो मुक्ति के निमित्त परमभाव से शिवजी का आराधन किया है ।।३३।। जिस समय महातेजस्वी व्यासजी ने ऐसा कहा, तब नैमिषारण्यवासी महापराक्रमी ऋषि थे ।।३४।। उन महातेजस्वी पराशरजी के पुत्र शिवजी के प्रेम में तत्पर व्यासजी महात्मा को प्रणाम करके बोले ।।३५।। ऋषि बोले– हे भगवन्! हे मुनिशार्दूल! हे नारायण के अंश से उत्पन्न! हे कृपासागर! हे महाप्राज्ञ! हे सब विद्याओं के अधिपति! हे प्रभो! ।।३६।। आप सब जगत् के स्वामी महादेवजी, सृष्टिकर्ता के माया, शक्ति और गणों के सहित प्रसाद के सागर हो ।।३७।। आपके चरणकमलों के मकरन्द के स्वाद में भ्रमर रूप मतवाले आपके चरणकमलों के दर्शन करने से हम कृतकृत्य हो गये हैं ।।३८।। आपके चरणकमलों का दर्शन पापियों को दुर्लभ है, हम आज उसे प्राप्त होकर कृतकृत्य हुए हैं ।।३९।। हे महाभाग! इस नैमिषारण्य महाक्षेत्र में ओंकार का अर्थ प्रकाश करनेवाले दीर्घयज्ञ का अनुष्ठान करते हैं ।।४०।। परमेश्वर को सुनना–जानना चाहिये, ऐसा निश्चय करके परस्पर महेश्वरजी का परमभाव विचारते हैं ।।४१।। हे प्रभो! परन्तु हम उनको नहीं जानते, इस कारण आपकी शरण हुए हैं, आप हम अल्पबुद्धिवाले सब के मन के सन्देह दूर करने के योग्य हो ।।४२।। आपके सिवाय त्रिलोकी में इस सन्देह को दूर करनेवाला कोई नहीं है, आप इस कारण अपार भ्रम के सागर में डूबते हुए हम को ।।४३।। हे दयानिधे! आप शिवज्ञान रूपी नौका से तार दीजिये, शिवभक्ति के तत्त्व जानने में हमारी श्रद्धा है ।।४४।। जब उन वेद के जाननेवालों ने इस प्रकार व्यासजी की प्रार्थना की, तब सम्पूर्ण वेदार्थ के जाननेवालों में मुख्य, शुकदेवजी के तात, महामुनि व्यासजी, वेदान्त के सारसर्वस्व ओंकार रूप परमेश्वर ।।४५।। संसार को छुड़ानेवाले को पार्वती सहित हृदयकमल में ध्यान करके, प्रसन्नमन होकर वह तपोनिधि कहने लगे ।।४६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां

प्रथमोऽध्यायः ।। १ ।।

*****

दूसरा अध्याय

व्यासजी बोले– हे महाभाग्यवान् ब्राह्मणो! आपने बहुत अच्छी बात पूंछी, प्रणव के अर्थ को प्रकाशित करनेवाला शिवजी का ज्ञान बड़ा दुर्लभ है।।१।। जिनके ऊपर त्रिशूलधारी भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं, उन्हींको प्रणव के अर्थ का प्रकाशक शिवज्ञान प्राप्त होता है, इसमें सन्देह कि, शिवभक्ति हीनों को नहीं प्राप्त होती, ऐसी श्रुति है, यह निश्चय है।।२–३।। आपने दीर्घयोग से भगवान् अम्बिकापति की उपासना की है, यह मैंने निश्चय देख लिया।।४।। इस कारण मैं आपसे पुरातन इतिहास कहता हूं, हे आस्तिको ! यह परमपवित्र उमा–महेशजी का संवाद है।।५।। पूर्वकाल में जगन्माता सती दाक्षायणी ने पिता के यज्ञ में अपने शरीर को, शिवजी की निन्दा सुनकर त्याग दिया।।६।। और तप के प्रभाव से हिमालय के यहां जन्म लिया और नारदजी के उपदेश से शिवजी के निमित्त तप किया।।७।। उन हिमालय ने स्वयंवर के विधान से शिवजी को व्याह दिया, विवाह के उपरान्त देवी–देव ने महासुख पाया।।८।। एक समय महादेवी पति के साथ बैठी थी कि, उस समय महाशैल पर बैठे हुए देव से कहने लगी।।९।। महादेवी बोली– हे देव! हे परमेश! हे पंचकृत्य विधायक! हे सर्वज्ञ! हे भक्तिसुलभ परम अमृत स्वरूप!।।१०।। आपकी निन्दा के कारण, मैं दाक्षायणी शरीर का त्याग करके हिमालय की पुत्री हुई हूँ।।११।। हे महेशान! मन्त्रदीक्षा के विधान से आप मुझको विशुद्ध तत्त्व में स्थित कीजिये।।१२।। जब शशिभूषण शंकरजी से इस प्रकार देवी पार्वतीजी ने कहा, तब शिवजी ने बड़े प्रसन्नता से देवी से कहा।।१३।। शिवजी बोले– यदि तुम्हारी ऐसी मति है, तो तुम धन्य हो, मैं कैलास शिखर पर जाकर तुम्हें विशुद्ध तत्त्व में स्थित करूंगा।।१४।। तब हिमालय से शिवजी कैलास पर्वत पर गये, वहां दीक्षा–विधान के क्रम से प्रणवादि के महामन्त्रों को।।१५।। देवी से वर्णन कर और शुद्ध आत्मा में स्थित करके देवी के साथ महादेवजी देवोद्यान में गये।।१६।। तब सुमालिनी आदि देवी की मुख्य सखियों ने कल्पवृक्ष से उत्पन्न हुए नवीन खिले हुए पुष्प लाकर।।१७।। देवी को अलंकृत किया, तब शिवजी पार्वती को अपनी गोदी में लेकर उनका सुन्दर मुख देखकर महाप्रसन्न हुए।।१८।। तब पार्वती परमेश्वर से प्रिय कथा पूछने लगी, जो कथा सब लोकों की हितकारिणी और श्रुति के अर्थ से युक्त थी।।१९।। तब सब जगत् की माता अपने स्वामी के अंक में स्थित होकर और मुख देखकर कहने लगी।।२०।। पार्वतीजी बोली– हे देव! आपने ओंकार सहित मन्त्र उपदेश दिये, इस कारण प्रथम मैं प्रणव का अर्थ जानने की इच्छा करती हूं।।२१।।

प्रणव किस प्रकार से उत्पन्न हुआ और वह किस प्रकार प्रणव कहा जाता है? उसकी कितनी मात्राएं है और किस प्रकार वेद के आदि में कहा जाता है?।।२२।। उसके कितने देवता हैं और किस प्रकार वेदादि की भावना की जाती है? कितने प्रकार की क्रिया हैं और व्याप्त व्यापकता किस प्रकार है?।।२३।। इन मन्त्रों में अनुक्रम से पांच ब्रह्म किस प्रकार स्थित रहते हैं, कितनी कलाएं हैं और प्रपंचात्मकता क्या है?।।२४।। वाच्य-वाचक का सम्बन्ध और स्थान किस प्रकार है? हे शिवजी! इसका अधिकारी कौन है, इसका विषय क्या है?।।२५।। क्या इसका सम्बन्ध और क्या प्रयोजन है? इसका उपासक कैसा है और उपासना का स्थान क्या है?।।२६।। उपास्य वस्तु किस प्रकार की है? उपसना करनेवाले को क्या फल मिलता है? इसके अनुष्ठान की विधि और पूजा का स्थान क्या है?।।२७।। पूजा के मण्डल और उनके ऋषि आदिक क्या हैं? उनके न्यास की विधि का क्या क्रम है?।।२८।। हे शिवजी! यदि आपकी मेरे ऊपर कृपा है, तो यह सब वर्णन कीजिये, मैं तत्त्व सुनने की इच्छा करती हूं।।२९।। जब देवी ने इस प्रकार पूछा, तब पार्वतीजी की प्रशंसा करके शिवजी कहने लगे।।३०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पष्ठ्यां कैलाससंहितायां

द्वितीयोऽध्यायः ।। २ ।।

*****

तीसरा अध्याय

शिवजी बोले- हे देवि! जो कुछ तुमने मुझसे पूछा है, वह मैं तुमसे कहता हूं, जिसके श्रवणमात्र से जीव साक्षात् शिव हो जाता है।।१।। प्रणवात्मक के अर्थ को जानना ही मेरा ज्ञान है, वह प्रणवात्मक मन्त्र सब विद्याओं का बीज है।।२।। वह वटवृक्ष और उसके बीज के समान महासूक्ष्म और बहुत स्थूल है, वही वेद का आदि, वेद का सार, मेरा रूप है।।३।। वही देव तीनों गुणों से परे सर्वज्ञ और सबका करनेवाला 'ॐ' इस एकाक्षर मन्त्र में सर्वगत शिवजी विद्यमान हैं।।४।। जो कुछ यह वस्तु है, वह सब गुण और प्रधान के संयोग से समस्त समष्टि रूप विराट्व्यस्त व्यष्टि रूप स्थावर-जंगमात्मक प्रणवार्थ ही है।।५।। इस कारण वह एक अक्षरब्रह्म ही सम्पूर्ण अर्थ का साधक है, इसी सर्वार्थ साधकता से 'ॐ' ऐसे आकार युक्त प्रणव से शिवजी प्रथम सब जगत् का निर्माण करते हैं।।६।। शिव प्रणव रूप और प्रणव शिव रूप है, वाच्य और वाचक में कुछ भेद नहीं होता है।।७।। इस कारण मुझे ब्रह्मऋषि एकाक्षर रूप

कहते हैं; वाच्य–वाचक की एकता माननेवाले विद्यावानों को ही मैं प्राप्त होता हूं।।८।। हे परमेश्वरि! इस कारण प्रणव को सबका कर्ता जानो। मुमुक्ष, मुक्त, निर्गुण परमेश्वर को निर्विकार जानते हैं।।९।। हे देवि! सब मन्त्रों के शिरोमणि इस ओंकार को ही मैं प्राण त्याग करनेवाले जीवों की मुक्ति के निमित्त काशी में देता हूं।।१०।। हे अम्बिके! आदि में प्रणवोद्धार वर्णन करता हूं, जिसके विज्ञानमात्र से परम सिद्धि होती है।।११।। प्रथम अकार के आश्रित निवृत्ति कला का उद्धार करे, उकार में ईंधन कला का, मकार में काल कला का, नाद में दण्ड और बिन्दु में ईश्वर कला का उद्धार करे।।१२।। इस प्रकार पांच वर्ण रूप प्रणव का उद्धार होता है, यह तीन मात्रा और बिन्दु नादात्मा जपनेवालों को महामुक्ति देनेवाला है।।१३।। ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त सम्पूर्ण प्राणियों का यह प्राण है, इसी कारण इसे प्रणव कहते हैं।।१४।। अकार, उकार, मकार क्रम से ये तीन मात्राएँ और पीछे आधी मात्रा है, इस प्रकार 'ओम्' होता है।।१५।। हे पार्वति! यह जल के समान दक्षिण–उत्तर में स्थित है। हे मुनिश्रेष्ठ! मध्य में मकार है, इस प्रकार ओंकार की स्थिति है।।१६।। अकार, उकार, मकार ये तीन मात्राएं हैं, इनके पीछे आधी मात्रा है।।१७।। हे महेशानि! वह आधी मात्रा ही नादबिन्दु स्वरूपवाली है, वह साक्षात् वर्णन नहीं हो सकती, केवल ज्ञानी ही उसे जान सकते हैं।।१८।। हे पार्वति! यह आधी मात्रा बिन्दु और नाद के स्वरूपवाली है, ''ईशानः सर्वविद्यानां ईश्वरः सर्वभूतानाम्'' और ''यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं'' इत्यादि श्रुति हैं। यह सब मुझसे ही होता है, वेदों ने यह वार्ता सत्य कही है।।१९।। इस कारण वेद के आदि में ओंकरात्मक भी मैं ही विद्यमान हूं, ओंकार मेरा वाचक होने से वेद की आदि में कहा जाता है।।२०।। अकार इसका महान् बीज है, इसीके रजोगुण से ब्रह्मा होते हैं, उकार उसकी प्रकृति योनि है, सत्त्वगुण का पालन करनेवाले हरि हैं।।२१।। मकार पुरुषबीज है, इसके तमोगुण युक्त संहारकर्ता शिवजी हैं, बिन्दु रूप साक्षात् महेश्वर देव है, उनसे तिरोभाव होता है।।२२।। और नाद रूप सबके अनुग्रह करनेवाले साक्षात् शिवजी हैं, नाद को मस्तक में विचार के ही शिवजी वहां ध्यान करने के योग्य हैं, यह परे से परे मंगल रूप।।२३।। सर्वज्ञ, सबके कर्ता, सर्वेश, निर्मल, अविनाशी, अद्वैत हैं। निर्देश करने के अयोग्य सत् आसन से परे साक्षात् परब्रह्म हैं।।२४।। अकारादि सब वर्णों में क्रम से व्यापक हैं, अकार की अपेक्षा ओंकार व्यापक है, उकार से अकार वर्ण नीचे भाग में व्याप्त है, इसी प्रकार इन वर्णों में भी भावना करे।।२५।। अकारादि पांच वर्णों में जो पांच ब्रह्म स्वरूप सद्य, वामदेव, घोर, पुरुष ईशान हैं, वह क्रम से मेरी मूर्त्ति ही हैं।।२६।। सद्यस् से होनेवाले अकार रूप शिवजी में आठ कलाएँ वर्णन की हैं, उकार में वामदेव रूप तेरह कलाएँ हैं।।२७।। मकार में अघोर रूपिणी आठ कलाएँ स्थित हैं, बिन्दु में पुरुषगोचर चार कलाएं हैं।।२८।।

नाद में ईशान रूप पांच कलाएँ स्थित हैं। आगे कहे हुए छः पदार्थों की एकता के अनुसन्धान से प्रणव की प्रपंचात्मकता होती है ।।२९।। मन्त्र, यन्त्र, देवता, विश्व, गुरु और शिष्य ये छः पदार्थ हैं। हे प्रिये! इनका अर्थ सुनो ।।३०।। पूर्व कथित प्रणव मन्त्र पांच वर्णों की समष्टि है, वही यन्त्रता को प्राप्त होता है, उसके मण्डल का क्रम कहते हैं।।३१।। यन्त्र देवता रूप है, देवता विश्व रूप है और विश्व रूप गुरु है और शिष्य गुरु का ही शरीर है।।३२।। 'ओमितीदं सर्वम्' अर्थात् यह सब ओंकार रूप ही है, ऐसी श्रुति कहती है। वाच्य-वाचक के सम्बन्ध का यही अर्थ है ।।३३।। अवस्थान कहते हैं- आधार, मणिपूर, हृदय, विशुद्धि चक्र, आज्ञा चक्र, शक्ति और शान्त कला क्रम से यह स्थान कहे हैं। शान्त्यातीत को ही परात्पर कहते हैं, जिसे दृढ़ वैराग्य हो, वही इसमें अधिकारी है ।।३४-३५।। हे देवि! मैं ही इसका विषय हूं, जीवब्रह्म की एक भावना करे। हे देवि! विषय तो कहा, अब सम्बन्ध सुनो ।।३६।। जीवात्मा की मेरे सहित प्रणव की एकता होती है, बोध्य, बोधकभाव अर्थात् जीव ब्रह्म की एकता का बोधक प्रणव है, यह ही सम्बन्ध है ।।३७।। व्रतादि में निरत शान्त तपस्वी जितेन्द्रिय, पवित्र आचरण करनेवाला ब्राह्मण और वेद में निष्ठा युक्त ।।३८।। विषयों से विरक्त, इस लोक-परलोक की इच्छा से दीन, देवता, ब्राह्मणों में भक्तिवाला शिवजी का व्रतधारी ।।३९।। सम्पूर्ण शास्त्र के अर्थ और तत्त्व को जाननेवाले वेदान्तज्ञान के पारगामी यति बुद्धिमानों में श्रेष्ठ आचार्य के पास जाकर ।।४०।। दीर्घदण्ड के तुल्य प्रणामादि से यत्नपूर्वक सन्तुष्ट करके शान्त्यादि गुणों से युक्त शीलवान्, शक्ति आदि गुणों से युक्त शिष्य ।।४१।। बुद्धिमान् ऐसा जाने कि, जो गुरु हैं सो शिव हैं और जो शिव हैं सो गुरु हैं, ऐसा मन में निश्चय करके उनसे अपना विचार निवेदन करे।।४२।। गुरु की आज्ञा से बारह दिन तक पयोव्रत (जलपान मात्र) करे, समुद्र के किनारे अथवा पर्वत वा शिला में ।।४३।। शुक्ल पक्ष की पंचमी अथवा एकादशी के दिन बुद्धिमान् को उचित है कि, पवित्रचित्त से प्रातःकाल नित्य क्रिया के उपरान्त स्नान करे।।४४।। और गुरु को बुलाकर विधिपूर्वक नान्दीश्राद्ध करके बगल और उपस्थ को छोड़कर क्षौर कर्म करे ।।४५।। केश, डाढ़ी, मूँछ, नखों को दूर करे, जितेन्द्रिय होकर स्नान करके, सायंसन्ध्या करके ।।४६।। सक्तु (सत्तु) का भोजन करके, फिर स्नान करके सन्ध्या करे, इस प्रकार गुरु सहित ब्राह्मण सन्ध्याकाल की उपासना करके शिव रूप गुरु के निमित्त वस्त्र और दक्षिणा दे ।।४७।। अपने सूत्र की विधि से होम का द्रव्य लेकर विधिपूर्वक लौकिकादि भेद से अग्न्याधान करे।।४८।। जो अहिताग्नि प्रजापत्य यज्ञ के अनुसार हवन करता है, उसे उचित है कि, वह सर्वस्व धन की दक्षिणा देकर इस वेदोक्त वैश्वानर अग्नि को ।।४९।। आत्मा में धारण करके ब्राह्मण घर से निकलकर संन्यासी हो जाए, समिधा अन्न, धृतयुक्त चरु लेकर ।।५०।। पुरुषसूक्त के एक मन्त्र से हवन करे, फिर अपने सूक्त के विधान से

स्विष्ट कृत सम्बन्धिनी आहुतियों से हवन करे ।।५१।। तन्त्र के आगे उत्तर की ओर आसन पर स्थित होकर, अजिन वस्त्र धारण करके कुश पर बैठे, जब तक ब्राह्ममुहूर्त्त रहे, तब तक दृढ़मन करके गायत्री का जप करे ।।५२।। फिर स्नान करके चरु निर्माण करके पुरुषसूक्त से लेकर विरजा होम पर्यन्त आहुति दे ।।५३।। वामदेव अथवा शौनक मन्त्र से हवन करे, इनसे वामदेव का मत श्रेष्ठ है, कारण कि वह गर्भ में स्थित होकर जीवन्मुक्त विचरता है ।।५४।। शेष हवन को समाप्त करके फिर प्रातःकाल की उपासना का हवन करे, फिर अग्नि को आत्मा में आरोपण करके प्रातःकाल सन्ध्या करके ।।५५।। सूर्य के उदय होने पर क्रम से गायत्री का जप करे, लोकेषणा, पुत्रेषणा, वित्तेषणा इन तीनों का त्याग करके क्रम से प्रेष का उच्चारण करे ।।५६।। शिखा और उपवीत त्यागकर कटिसूत्रादि त्याग करके पूर्व अथवा उत्तर की ओर गमन करे ।।५७।। लोकवृत्ति के निर्वाह के निमित्त दण्ड और कौपीन ग्रहण करे और जो विरक्त हो, लोकवृत्ति कठिन हो, ऐसा विचार करके यह भी ग्रहण न करे ।।५८।। गुरु के समीप जाकर दण्ड के समान तीन प्रणाम करे, फिर उठकर गुरु के चरणों के निकट बैठे ।।५९।। तब गुरु विरजा अग्नि से उत्पन्न हुई श्वेतभस्म उस शिष्य को विधिपूर्वक मलकर ।।६०।। "अग्निरिति भस्म, वायुरिति भस्म०" इत्यादि मन्त्रों से तिलक धारण करावे और हृदयकमल में तुम्हारे सहित मेरा (शिव-पार्वती का) ध्यान करे ।।६१।। प्रसन्नमन से शिष्य के मस्तक पर हाथ धरकर ऋषि आदि स्मरण करके उसके दक्षिण कर्ण में मन्त्र उच्चारण करे ।।६२।। सूक्ष्म आदि पूर्वोक्त तीन प्रकार के प्रणव और उसके अर्थ को उपदेश करे, फिर शिष्य छः प्रकार के प्रणव के अर्थ जानने के लिये दण्डवत् करे ।।६३।। बारह प्रकार से गुरु को प्रणाम करे और सदा गुरु के अधीन रहकर नित्य वेदान्त का अभ्यास करे ।।६४।। और अपने आत्मा में नित्य ही मुझ परमात्मा का ध्यान करे, जो विशुद्ध, निर्विकार, शुद्ध, अविनाशी हैं ।।६५।। शम-दमादि धर्म में निरत, वेदान्त के ज्ञान के पारगामी, अभिमान रहित यति है, वही पुरुष इसमें अधिकारी है ।।६६।। हृदय पुण्डरीक में विराजमान, स्वच्छ, शोक रहित, उज्ज्वल अष्टपत्र कमल के समान, मकरन्द युक्त कर्णिका से शोभायमान ।।६७।। हृदयकमल के मध्य में आधारशक्ति से आरम्भ करके मणिपूरक हृदय के तत्त्वान्तमय आधार को विचार कर दहर आकाश की भावना करे ।।६८।। 'ॐ' यह एकाक्षर उच्चार तुम्हारे सहित मेरा उत्कण्ठा से स्मरण करता हुआ उस दहराकाश के बीच में नित्य मेरा स्मरण करे ।।६९।। हे प्रिये ! इस प्रकार उपासना करनेवाले को मेरे लोक की गति होती है, मुझ से ज्ञान को प्राप्त होकर मेरे ही सायुज्य को प्राप्त हो जाता है ।।७०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां तृतीयोऽध्यायः ।। ३ ।।

*****

चौथा अध्याय

शिवजी बोले– अब मैं संन्यास और आह्निक कर्म कहता हूं। हे महादेवी! तुम्हारे आग्रह से मैं सम्प्रदाय के अनुसार कहता हूं।।१।। हे प्रिये! ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर यति अपने सिर में सहस्र दलवाले श्वेतकमल में बैठे हुए गुरु का ध्यान करे।।२।। शुद्ध स्फटिक के समान दो नेत्रोंवाले वरदायक अभयदाता शिवजी के समान साधुभाव को धारण करनेवाले अति मनोहर भावना से युक्त।।३।। अनेक भावों से गन्धादि द्वारा उनका पूजन करे और हाथ जोड़कर गुरु को नमस्कार करे।।४।। प्रातः से सन्ध्या तक और सन्ध्याकाल से प्रातःकाल तक जो कुछ मैं करता हूँ, हे जगन्नाथ! वह आपका पूजन ही है।।५।। ऐसा गुरु से कहकर उनकी आज्ञा लेकर, प्राण रोककर, जितेन्द्रिय होकर आसन पर बैठे।।६।। मूल से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त छः चक्रों का ध्यान करे, जो करोड बिजली के समान सर्वतेजोमय है।।७।। उसके मध्य में मुझ सच्चिदानन्द निर्गुण ब्रह्म सदाशिव अनामय का चिन्तन करे।।८।। फिर वह मतिमान वह मैं हूं, ऐसा विचार कर, ध्यान करके, फिर बाहर दूर जहां तक इच्छा हो चला जाए।।९।। फिर नासिका को वस्त्र से आच्छादित कर, देह को विधिपूर्वक शोधन कर पृथ्वी पर तृण रखकर।।१०।। मल त्याग करे, फिर पीछे शिश्न को ग्रहण करके उठे और सरोवर के निकट जाकर जल से विधिपूर्वक शुद्ध करे।।११।। विधिपूर्वक शौच करके हाथ–पैर धोये, दो बार आचमन करे और मौन धारण करके उत्तर दिशा की ओर मुख करके दन्त धावन करे।।१२।। एकादशी और अमावस को छोड़कर तृण और पर्णों में सदा दन्त धावन करे, फिर बारह कुल्लों से मुख शुद्ध करे।।१३।। फिर मिट्टी से हाथ धोकर दो आचमन करे, कटि शौच करके अरुणोदय के समय मृत्तिका सहित स्नान करे।।१४।। गुरु को और मुझे स्मरण करके स्नान और सन्ध्यादि करे। विस्तार के भय से विशेष नहीं कहा, यत्न से पद्धतियों में देखो।।१५।। और शंखमुद्रा बांधकर ओंकार से अभिषेक करे, सिर पर बारह, छः वा तीन बार जल छिड़के।।१६।। फिर किनारे पर आकर कौपीन प्रक्षालन करके दो बार आचमन करे और ओंकार से ही वस्त्र तथा अंग का मार्जन करे।।१७।। अंगोछे से पहले मुख पोंछकर पीछे सिर पोंछे, फिर सब देह को गुरु के निकट ही वस्त्र से पोंछे।।१८।। फिर मौनी होकर दूसरी कौपीन को बांधे, फिर भस्म धारण करे। हे प्रिये! उसकी विधि कहते हैं।।१९।। और दो आचमन करके सद्योजातादि मन्त्र से भस्म धारण करे और 'अग्निरितिभस्म०' इस प्रकार के मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर शरीर स्पर्श करे।।२०।। 'आपो वा इदं सर्वं०' इस मन्त्र से भस्म में जल मिलावे 'ॐ आपो

ज्योति॰' ऐसा कहकर 'मानस्तोके॰' इत्यादि मन्त्रों से ।।२१।। जल मिलाकर दो कमल मिलावे, उसके पांच भाग करके, हे परमेश्वरि! सिर, मुख, गुह्य, हृदय, चरण ।।२२।। इन स्थानों में ईशान से लेकर सद्योजात के पांच मन्त्रों तक उस कमल को शरीर में लगाकर प्रणव से अभिषेक करे ।।२३।। फिर सम्पूर्ण अंग और हाथों को प्रक्षालन करके दूसरी भस्म धारण करे, उसे पूर्ववत् शरीर में लगाकर त्रिपुण्ड्र धारण करे ।।२४।। 'त्र्यायुषं जमदग्नेः॰' इत्यादि 'त्र्यम्बकं यजामहे॰' इत्यादि प्रणव अथवा शिवनामक मन्त्रों से शिर, ललाट, वक्षस्थल, स्कन्ध, ।।२५।। नाभि, दोनों भुजा, संधि तथा पृष्ठस्थान में क्रम से लगावे, फिर हाथ धोकर आचमन करे ।।२६।। पंचाक्षर उच्चारण करके अपने गुरु की भावना करे, आगे कहे हुए प्रकार से छः प्राणायाम करे ।।२७।। फिर आगे कही हुई विधि के अनुसार ऋषि आदि का स्मरण करके दाहिने हाथ में जल लेकर बायें हाथ से नासिकादि द्वारों को रोककर बारह बार प्रणव से अभिमन्त्रित करे ।।२८।। इस प्रकार जल को तीन बार अभिमन्त्रित करके सिर पर छिड़ककर फिर पान करे और सावधान मन होकर ओंकार रूपी ईश्वर का ध्यान करे ।।२९।। सूर्यमण्डल में स्थित सम्पूर्ण तेजोमय परम आठ भुजा युक्त चार मुख अर्द्धांग में नारी अद्भुत रूप है ।।३०।। सम्पूर्ण आश्चर्य के गुणों से युक्त सम्पूर्ण अलंकारों से शोभित शिवजी का इस प्रकार विधिपूर्वक ध्यान करके तीन अर्घ्य दे ।।३१।। एक सौ आठ मन्त्र जपकर बारह बार तर्पण करे, फिर आचमन करके तीन प्राणायाम करे ।।३२।। और मौन होकर विधिपूर्वक ऋषि आदि को स्मरण करे, फिर पूजास्थान में आकर मौन हो, पैर धोकर ।।३३।। विधिपूर्वक दो आचमन करे और पूजामण्डप में जाने के लिये प्रथम दक्षिण चरण उठावे, पीछे मण्डल की रचना करे ।।३४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां

चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

*****

पांचवाँ अध्याय

शिवजी बोले– गन्धर्व रसादि से पृथ्वी की विधिपूर्वक परीक्षा करके मनोभिलषित मनोहर वितान (चन्दोवा) ताने ।।१।। और पृथ्वी को लीपकर दर्पण के समान चिकनी कर दे, दो अरत्नी (हाथ भर) के चार अस्त्र (चौकान) स्थान के मण्डप की कल्पना करके ।।२।। तालपत्र लेकर उसीके समान लम्बे और चौड़े स्थान में बराबर तेरह भाग करे ।।३।। उस चतुरस्र मण्डल में उस पत्र को रखकर पश्चिम की ओर मुख करके बैठे, उसके पूर्वभाग में कलावा लेकर ।।४।। पूर्व से दक्षिण–उत्तर के क्रम से चौदह डोरे रखे।

हे देवाशि! ऐसा करने से उस कोठे में एक सौ उनहत्तर कोठे हो जायंगे ।।५।। उन कोष्ठों के बीच की जो कर्णिका है, उससे आठ कोष्ठक के बाहर उस मध्यकोष्ठ का दलाष्टक होता है।।६।। श्वेतवर्ण के दल श्यामाग्र कल्पना करे, उसकी कर्णिका पीली करके लाल और पीली भी रंगे ।।७।। हे सुरेश्वरी! कमल के दलों को लाल और पीला करके क्रम से दन्तसन्धि को लाल और काली करे।।८।। कर्णिका में प्रणवअर्थ का प्रकाशयन्त्र लिखे, नीचे पीठ और ऊपर श्रीकण्ठ लिखकर।।९।। उसके ऊपर अमरेश, मध्य में महाकाल और महाकाल के मस्तक के समीप दण्ड लिखकर फिर ईश्वर को लिखे।।१०।। श्याम रंग से सिंहासन, पीत रंग से श्रीकण्ठ को चित्रित करे, अमरेश को लाल और महाकाल को कृष्णवर्ण।।११।। दण्ड को धूम्रवर्ण, ईश्वर को धवल करे, इस प्रकार लाल यन्त्र लिखकर सद्योजात मन्त्र से आच्छादित करे।।१२।। हे ईश्वरि! उससे उठे हुए नाद से ईशान को भेद करे, आग्नेयादि क्रम से उसकी बाह्यपंक्ति को ग्रहण करे।।१३।। हे सुन्दरी! उसके कोन को चार कोटों का श्वेत और लाल धातु से रंग करके।।१४।। चार द्वार कल्पना करे, उसके इधर–उधर के कोष्ठ पीत रंग से परिपूर्ण करे।।१५।। आग्नेय दिशा के कोष्ठ के आगे चार अस्त्र (चौकोन) प्रमाण में आठ दलों का कमल लिखे, इसकी लाल पंखुरी करके पीली कर्णिका बनावे।।१६।। मध्य में बिन्दु युक्त हकार लिखे, फिर कमल के नैऋत्य की ओर के कोष्ठ में चार अस्त्र के मध्य से।।१७।। आठ दलों का कमल बनावे, उसे लाल रंगे, कर्णिका पीली करे, श वर्ग का तीसरा अक्षर (स) छठे स्वरसंयुक्त (सू) लिखे।।१८।। चौदहवां स्वर (औ) बिन्दु नाद से युक्त (औं) यह बीज है। हे भद्रे! इसीको पद्ममध्य में लिखे।।१९।। इसी प्रकार कमल के ईशान कोष्ठ में लिखे, क वर्ग का तीसरा अक्षर (ग) पंचम स्वर उकार सहित (गु) लिखे।।२०।। उस ईशान दिशा के कमल के कण्ठभाग में बिन्दु लिखे, इसकी जो तीन बाहर पंक्ति है, उनमें पूर्व दिशा के क्रम से।।२१।। हे पार्वति! पांच कोष्ठ करके उनमें मध्यकोष्ठ को पीला करे और शेष वृत्त को रक्तवर्ण करे।।२२।। विधि का जाननेवाला कमलदलों को लाल बनावे और दल के बाहर छिद्रों को कृष्णवर्ण से रंगे।।२३।। और अग्निदिशा के चार कोष्ठ शुक्ल रंग से पूर्ण करे, पूर्व की ओर छः बिन्दुओं के सहित षट्कोण कृष्णवर्ण से लिखे।।२४।। दक्षिण की ओर उत्तर तक तीन कोनों में लाल रंग और श्वेतकान्तियुक्त अर्द्धचन्द्रकार पीतवर्ण पश्चिम कोन में रंगे।।२५।। चारों बीजों को क्रम से नौ कोन के प्रमाण से क्रम से लिखे, पूर्व की ओर शुभ्र बिन्दु लिखे, दक्षिण में कृष्णवर्ण।।२६।। उत्तर की ओर रक्तवर्ण उकार, मकार, पश्चिम की ओर लिखे अकार को पीतवर्ण करे, इस प्रकार चारों वर्ण करके।।२७।। हे सुन्दरी! नीचे की पंक्ति से प्रारम्भ करके सब ऊपर की चारों पंक्तियां पीली, श्वेत, लाल और कृष्णवर्ण की करे।।२८।। उसके नीचे श्वेत, श्याम, पीत, रक्त रंग से रंगे,

नीचे के त्रिकोण में लाल, शुक्ल और पीत रंग करे।।२९।। हे ईश्वरी! इस प्रकार दक्षिण से प्रारम्भ करके सोमान्त तक करे, उसकी बाह्य पंक्ति में पूर्वादि मध्यरात्र में विचित्र करे।।३०।। पीला, लाल, कृष्ण, श्याम, श्वेत, पीत रंग आग्नेय दिशा से प्रारम्भ करे, रक्त, श्याम, श्वेत।।३१।। और लाल, कृष्ण, लाल यह छः रंग भरे। हे महेशानि! यह दक्षिण से आदि लेकर पूर्व तक करना चाहिये।।३२।। हे ईश्वरी! नैऋत्य दिशा से लेकर आग्नेय दिशा पर्यन्त और वरुण दिशा से दक्षिण दिशा पर्यन्त।।३३।। हे महादेवि! वायव्य से लेकर नैऋत्य दिशा तक, हे परमेश्वरी! पूर्वादि से पश्चिम।।३४।। और ईशान से लेकर वायव्य तक यह करे। हे पार्वति! यह मैंने तुमसे मण्डल की विधि कही।।३५।। मण्डल लिखने के पश्चात् ब्रह्म में तत्पर होकर सूर्य की पूजा करे।।३६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां
पंचमोऽध्यायः ।।५।।

*****

छठाँ अध्याय

शिवजी बोले– दक्षिणमण्डल में सुन्दर व्याघ्रचर्म बिछाकर अस्त्रमन्त्र से शुद्ध जल से प्रोक्षण करे।।१।। पहले प्रणव, फिर आधार का उद्धार करे, पीछे शक्तिकमल का उद्धार करे, यह सब चतुर्थी विभक्ति के रहित अन्त में 'नमः' लगाकर उच्चारण करे।।२।। 'शक्तिकमलाय नमः' इत्यादि इसको उच्चारण करके।।३।। 'अग्निरितिभस्म॰' इत्यादि मन्त्रों से भस्म को धारण करे, गुरु को सिर से नमस्कार करके मण्डल की रचना करे।।४।। बाहर की ओर त्रिकोण वृत्त, क्रम से चार अस्त्र (चौकोन) प्रमाण करे 'ओम् अर्चन॰' इस मन्त्र से पीठ को धारण करके शंख की पूजा करे।।५।। प्रणव से शुद्ध सुगन्धित जल को अभिमन्त्रित करके सात बार गन्ध–पुष्पादि से, ओंकार से पूजन करे।।६।। इस प्रकार अभिमन्त्रित करके धेनुमुद्रा दिखावे। इसी प्रकार अस्त्रमन्त्र से शंखमुद्रा दिखावे।।७।। स्वयं आत्मा को गन्ध–पुष्पादि पूजा की सामग्री से शुद्ध करके तीन प्राणायाम करके ऋषि आदि का स्मरण करे।।८।। इस श्रीसौरमन्त्र का देवभाग ऋषि, गायत्री छन्द, सूर्य महेश्वर देवता हैं।।९।। 'ह्रां ह्रीं ह्रूं' इत्यादि बीजमन्त्रों से छहों अंगों में न्यास करके फिर अस्त्रमन्त्र से अग्निकोण के कमल को प्रोक्षण करे।।१०।। उस आग्नेय दिशा के कमल को विद्वान् महाउज्ज्वलतापूर्वक सारवस्तु से आराधना कर पूर्वादि दिशा में पूजन करे।।११।। कालाग्नि रुद्र, आधारशक्ति, अनन्त पृथ्वी, रत्नद्वीप।।१२।। संकल्प, वृक्ष का बगीचा, मणिमय गृह और चरणों में

मन लगाकर रक्तपीठ का पूजन करे ।।१३।। धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य इन चारों को और अधर्म अज्ञानादि को अग्निकोण के कोने में पूजन करे ।।१४।। माया से नीचे के भाग को आच्छादित और विद्या से ऊर्ध्वभाग का आच्छादित करके और रज, तम इनका विधिपूर्वक पूजन करे ।।१५।। पूर्वादि दिशाओं के मध्य में दीप्तिमान सूक्ष्म जयदायक भद्रानाम उज्ज्वल सफल विद्युत सम्बन्धी प्रकाश युक्त है उसे ।।१६।। तथा सब ओर मुखवाली संज्ञा, कन्दनाल, सुषिर (छिद्र), तन्तु, कण्टका ।।१७।। मूल सहित किंजल्क, सम्पूर्ण आत्मा का प्रकाश, पंचग्रन्थी की कर्णिका और इसके पीछे दल ।।१८।। केसर से ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र अपने आत्मा तथा अन्तरात्मा को भी पूजन करके ज्ञान स्वरूप परमात्मा में आत्मा द्वारा पूजन करे ।।१९।। इस प्रकार पूजन करके सौर नामक योगपीठ की पूजा करे, सिंहासन के ऊपर मूलमन्त्र से मूर्ति स्थापन करे ।।२०।। फिर मूलमन्त्र से ही मूलाधार में प्राण रोककर आसन से बैठ, पिंगला नाड़ी के प्रभाव से आधारशक्ति को उठावे ।।२१।। मण्डल में स्थित प्रकाशमान सिन्दूरवत् अरुण देहधारी पार्वती सहित भगवान् को पुष्पांजलि करे ।।२२।। जो देव रुद्राक्ष की माला पहने, पाश, खट्वांग, कपाल, अंकुश, कमल, शंख धारण किये हुए, चार मुख और बारह ।।२३।। नेत्रों से शोभित हैं, उनके हृदयकमल के मध्य में प्रथम प्रणव का उद्धार करके पीछे 'ह्रां ह्रीं सः' ।।२४।। फिर 'प्रकाशशक्ति के सहित सूर्य को आवाहन करता हूं' यह कहकर 'नमः' लगाकर आवाहन करे ।।२५।। मुद्रा आदिक स्थापन करके फिर मुद्रा को दिखावे और अंगों में 'ह्रां ह्रीं ह्रूं' इन बीजों से अन्त के मन्त्र से न्यास करे ।।२६।। पंचोपचार कर, संकल्प करके मूलमन्त्र से तीन बार पूजन करे। हे महेश्वरी! पद्म के केसरों में और छहों अंगों में ।।२७।। अग्नि, ईश्वर, राक्षस, वायु आदि चारों की मूर्तियों को दूसरे आवरण में क्रम से पूजन करे ।।२८।। हे पार्वति! पूर्व से आदि लेकर उत्तर तक कमलदल के मूल में आदित्य, भास्कर, भानु, रवि को क्रमानुसार।।२९।। सूर्य, ब्रह्मा, रुद्र, विष्णु और ईशानादि को तीसरे आवरण में पूजे ।।३०।। सोम, मंगल, बुध, महाबुद्धिमान् बृहस्पति, तेजस्वी शुक्र, शनैश्चर, भयंकर राहु, केतु इनको पूर्वादि दल के मध्य से चारों ओर पूजे ।।३१।। अथवा दूसरे आवरण में बारह आदित्यों का पूजन करे, तीसरे आवरण में बारह राशियों का पूजन करे ।।३२।। सात समुद्र, गंगाजी को इसके बाहर तथा देवता, ऋषि, गन्धर्व, पन्नग, अप्सराओं के गण ।।३३।। ग्रामणी यक्ष, यातुधान (राक्षस), सप्त छन्द में वालखिल्य ऋषि को लिखकर पूजन करे ।।३४।। इस प्रकार तीन आवरणवाले दिवाकर देव को पूजन करके पीछे सावधानी से चतुरस्र (चौकोन) मण्डल लिखे ।।३५।। जिसमें सेर भर जल आ जाय, इस प्रकार का एक ताम्रपात्र स्थापन करके कुंकुमादि वस्तुओं को सुगन्धित करके उसमें जल भरे ।।३६।। गन्ध पुष्पादिकों से पूजन करके जंघाओं के बल पृथ्वी पर बैठकर अर्घ्यपात्र लेकर

भौंहों के मध्य तक ले जाकर ।।३७।। पश्चात् सूर्य का यह मन्त्र जो भुक्ति-मुक्ति-सिद्धि देनेवाला है, पढ़कर अर्घ्य दे ।।३८।। सिन्दूर के समान वर्णवाले सुन्दर मण्डल से शोभित हीरे आदि के आभूषणवाले आपको नमस्कार है। कमल के समान नेत्रवाले, पंकजभू (ब्रह्मा), इन्द्र और नारायण के भी कारण, आपको नमस्कार है ।।३९।। लाल रंग के चूर्ण के समान सुन्दर रंग की जल, माला, कुंकुम, कुश, पुष्प यह सब सुवर्ण के पात्र में लेकर मैं अर्घ्य देता हूं, हे भगवन्! आप प्रसन्न हो ।।४०।। ऐसा कहकर सूर्यमूर्त्ति भगवान् को अर्घ्य देकर और इस अगले मन्त्र को पढ़कर सावधानी से नमस्कार करे ।।४१।। पार्वती, गणों के सहित संसार के आदिकारण शिवजी को नमस्कार है, रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य मूर्त्तिरूप आपको नमस्कार है ।।४२।। ऐसा कहकर नमस्कार करके, अपने आसन पर स्थित होकर, ऋषि आदि को स्मरण करके हाथों को जल से शुद्ध करके ।।४३।। पूर्वोक्त विधान से फिर भस्म धारण करे, शिवभक्ति के निमित्त अंगन्यास, करन्यासादि करे ।।४४।। और बुद्धिमान् को उचित है कि, सिर से नम्र होकर गुरु को पंचोपचार से पूजन करे, 'ओं' श्रीपूर्वक अन्त में 'नमः' उच्चारण करके चतुर्थी अन्त में लगाकर 'ॐ श्रीगुरवे नमः' इस प्रकार उच्चारण करे ।।४५।। पंचवर्षात्मक बिन्दु युक्त पंचम स्वर उकार सहित और वहीं बिन्दु सहित पंचम स्वर से रहित ।।४६।। पंचम स्वर के सहित, बिन्दु सहित मन्त्रीश को उद्धार करके बिन्दु सहित क्षकार का उच्चारण करे ।।४७।। क्रम से बीजों को उद्धार करके क्रम से भुजा और दोनों जंघाओं में देवताओं को प्रणाम ध्यान करे, भुजा में गुरु और गणपति को और दोनों उरू में ।।४८।। दुर्गा और क्षेत्रपाल को प्रणाम करे, हाथ जोड़कर 'ॐ अस्त्राय फट्' यह उच्चारण करके, षडङ्गन्यास करके हाथों को छः बार शुद्ध करे ।।४९।। 'अपसर्पन्तु०' यह मन्त्र उच्चारण करके फिर प्रणव उच्चारण करके 'अस्त्राय फट्' कहकर पृथ्वी पर तीन पार्ष्णिघात (ताडन) करके ।।५०।। भूमि के विघ्नों को दूर करके और तीन तालीयां बजाकर अन्तरिक्ष में प्राप्त हुए विघ्नों को देखकर तथा स्वर्ग के विघ्नों को देखकर दूर करे ।।५१।। प्राण रोक कर स्थित होकर हंसमन्त्र का उच्चारण करता हुआ, हृदय में स्थित जीव चैतन्य को सुषुम्णा नाड़ी द्वारा परमेश्वर से मिलावे ।।५२।। द्वादश कमल हृदय में स्थित उज्ज्वल सहस्र दलोंवाले महपद्म में चिदात्मक चन्द्रमण्डल में स्थित चिद्रूप परमेश्वर का ध्यान करे ।।५३।। अब भूतिशुद्धि कहते हैं,- रेचक आदि के क्रम से शोष और दाह दूर करके सोलह, चौसठ अथवा बत्तीस अकारादि वर्णों से ।।५४।। वायु, अग्नि, जल के क्रम से अकारादि वर्णवाले अपने वेदमन्त्रों से सावधान होकर विधिपूर्वक प्राणायाम करे और ब्रह्मरन्ध्र तक जानेवाली कुण्डली को जगावे ।।५५।। बारह कमल और सहस्र कमल में उसको ले जाए, जहां चन्द्रमण्डल से अमृत की धारा निकलती है ।।५६।। उसमें शरीर को नहलाकर, देह शुद्ध करके, अपने हृदयकमल में

वह मैं हूं ऐसी भावना करे ।।५७।। आत्मा से ही आत्मा को अमृतीकरण करके संसृति धार से विधिपूर्वक प्राणप्रतिष्ठा करे और सावधान रहे ।।५८।। इस प्रकार योगी एकाग्र मन से अन्त की मात्रा को प्रणव से सम्पुटित करके उस पूर्वोक्त मात्रा को बहिर्भाग में स्थित करे ।।५९।। फिर प्राणदृष्ट्यादिकों को रोककर चित्त में शंकरजी को स्मरण करते हुए मात्सर्य को छोड़कर न्यास करे ।।६०।। फिर ऋषि आदि का स्मरण करके प्रणाम करे, प्रणव का ब्रह्मा ऋषि, देवी गायत्री छन्द, सदाशिव परमात्मा देवता है ।।६१।। अकार बीज, उकार शक्ति है, मकार कीलक है, मोक्ष के निमित्त प्रयोग किया जाता है ।।६२।। दोनों अँगूठे लेकर हथेली तक शुद्ध करके, हे देवेशि! फिर 'ओम' ऐसा कहकर करन्यास करे ।।६३।। दक्षिण हस्त के अँगूठे से प्रारम्भ करे, बायें हाथ की कनिष्ठिका तक दक्षिण हस्त की तर्जनी आदि को क्रम से न्यास करे ।।६४।। ओंकार, उकार और बिन्दु सहित मकार सब में 'नमः' अन्त में लगाकर हृदय में न्यास करे ।।६५।। पहले अकार का उद्धार करके ब्रह्म आत्मा उच्चारण करे, ''अं ब्रह्मात्मने नमः'' इस प्रकार चतुर्थी के एक वचन से अन्त में 'नमः' लगाकर हृदय में स्पर्श करे ।।६६।। और उकार का विष्णु सहित ध्यान करके शिरदेश में विनय योग करे। रुद्र इन्द्र सहित मकार को शिखादेश में ।।६७।। इस प्रकार ''अं ब्रह्मात्मने नमः'' इत्यादि क्रम से कहकर कवचादि का विधान करे, नेत्रों में अस्त्रमन्त्र से ।।६८।। हे देवि! सावधान होकर चित्त लगाकर, अंग, मुख, कला के भेद से पांच ईशानादि का न्यास करे। उन पूर्वोक्त ईशानादि का सिर, वदन, हृदय, गुह्य और चरणों में न्यास करे ।।६९।। ईशान की पांच कलाओं को क्रम से शरीर के पांचों स्थानों में न्यास करे, फिर पूर्वादि दिशा के योग से चारों मुखों में पूर्वादि क्रम से पुरुष की ।।७०।। चारों कला स्थित करनी चाहिये। हृदय, कण्ठ, कन्धा, नाभि, कोष, पीठ, छाती ।।७१।। इन स्थानों में अघोर की आठ कला स्थित करे, पीछे पायु में जानु (जंघा) ।।७२।। स्फिक् (कूला), कमर, पसवाड़ों में वामदेव की तेरह कला की भावना करे, सद्योजात की आठ कला यथाक्रम से नेत्रों में कल्पना करे ।।७३।। इन कलाओं की हस्त, चरण, प्राण, सिर, बाहु में कल्पना करे ।।७४।। इस प्रकार अट्ठाइस कलाओं का न्यास करके पीछे बुद्धिमान् प्रणव का ध्यान करे ।।७५।। दोनों बाहु, कूर्पर (कौनी) तथा मणिबन्ध, पार्श्व, उदर, जंघा, पाद और पीठ में ।।७६।। बुद्धिमान् इस प्रकार प्रणव को न्यास करके फिर परमात्मा के बोध करानेवाला हंसन्यास करे ।।७७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां

षष्ठोऽध्यायः ।। ६ ।।

*****

सातवाँ अध्याय

ईश्वर बोले– अपने वाम ओर चतुरस्र (चौकोन) मण्डल की कल्पना करे और 'ओम्' इस प्रकार से अर्चना कर शंखअस्त्र से अर्थात् अस्त्रमन्त्र से शोधित कर ।।१।। उसे आधार पर रखकर प्रणव से पूजन करे और चन्दनादि सुगन्धिवाले जल से पूर्ण करके।।२।। प्रणव से सात बार गन्ध, धूप, पुष्पों से पूजन करे, इस प्रकार अभिमन्त्रित कर उसमें धेनुमुद्रा दिखावे ।।३।। उसके आगे चौकोन शंखमुद्रा की कल्पना करे, उसके अन्तर में अर्द्धचन्द्र और उसके अन्तर में त्रिकोण ।।४।। इस प्रकार षट्कोण मण्डल की कल्पना करे, उसके मध्य में ओंकार से ही गन्ध, पुष्पादि द्वारा पूजा करे ।।५।। फिर उस आधारवाले अर्घ्यपात्र को स्थापन करके गन्ध आदि से पूजन करे और पवित्र जल से पूर्ण करके उस पात्र में डाले ।।६।। कुशा के अग्रभाग, अक्षत, यव, व्रीहि, तिल, घृत, श्वेतसरसों के पुष्प और भस्म ।।७।। हे वरानने! सद्योजातादि मन्त्र षडंग और प्रणव से गन्ध, पुष्पादि से अभिमन्त्रित करके कवचमन्त्र से अभिमन्त्रित करे ।।८।। अस्त्रमन्त्र से उसे संयुक्त करके रक्षा के निमित्त धेनुमुद्रा दिखावे और अस्त्रमन्त्र से ही धेनुमुद्रा को प्रोक्षण करे ।।९।। अपनी आत्मा में गन्ध, पुष्पादि पूजा की सामग्री से अस्त्रमन्त्र द्वारा प्रोक्षण करे और कमल के ईशान ओर की दिशा में कमल में ओंकार उच्चारण पूर्वक ।।१०।। "गुरुआसनाय नमः" इस प्रकार कहकर आसन की कल्पना करे और गुरु उपदेश के अनुसार वहां गुरुमूर्ति की कल्पना करे ।।११।। 'प्रणवं गुं गुरुभ्यो नमः' इस प्रकार गुरु के प्रति कहकर दक्षिण दिशा के सम्मुख स्थित होकर आवाहन करके ध्यान करे ।।१२।। सुन्दर प्रसन्न मुख, सौम्य शुद्ध स्फटिक के समान निर्मल, वरदायक, अभय हाथवाले, दो नेत्रयुक्त शिवशरीर ।।१३।। गुरु को ध्यान करके क्रम से गन्ध, पुष्प आदि से पूजन करे और उस पद्म के नैर्ऋत्य की ओर के पद्म पर स्थित गणेशजी के आसन के ऊपर ।।१४।। 'गणानांत्वा०' इत्यादि मन्त्रों से मूर्ति कल्पित करके देवता को आवाहन करके, एकाग्र मन से ध्यान करे ।।१५।। लालवर्ण, महाशरीरवाले, सब गहनों से संयुक्त, पाश, अंकुश इष्टदर्शन करकमल में धारे हुए हैं ।।१६।। इस प्रकार सब विघ्नों के नाश करनेवाले अस्त्र रूप प्रभु गणेशजी का ध्यान और षोडशोपचारों से पूजन करके ।।१७।। केले की फली, नई वस्तु, नारियल, आम, लड्डू और नैवेद्य समर्पण करके गणेशजी को नमस्कार करे ।।१८।। कमल के वायुकोण के पद्म में स्कन्द का आसन कल्पित करे, उस पर स्कन्द की मूर्ति कल्पना करके स्कन्द का आवाहन करे ।।१९।। स्कन्द गायत्री उच्चारण करके, कुमार का आवाहन करके

उदय होते हुए सूर्य के समान कान्तिमान्, मयूर के वाहनवाले ।।२०।। चार भुजा, उदार शरीर, मुकुट आदि से विभूषित, वर और अभयदाता, शक्ति तथा मुकुट धारण करनेवाले ।।२१।। स्कन्दजी को इस प्रकार ध्यान करके गन्धादि पुष्पों से विधिपूर्वक पूजा करके पूर्वद्वार की शाखा में स्थित ।।२२।। और अन्तःपुर के अधिप साक्षात् नन्दीश्वर की पूजा करके, जो सुवर्ण के समान सम्पूर्ण आभूषणों से ।।२३।। भूषित हैं, बालचन्द्रमा का मुकुट, सौम्यमूर्ति, तीन नेत्र, चार भुजा, दीप्तिमान् शूल, मृगी, टंक और सुवर्ण का वेत्र धारण किये सर्वज्ञ ।।२४।। चन्द्रमण्डल के समान मुख अथवा सिंह के समान मुखवाले नन्दी को और उत्तर की ओर मरुतों की कन्या उनकी भार्या ।।२५।। सुयशा नामवाली, शोभन व्रतवाली पार्वतीजी के चरण मण्डल में तत्पर होकर, चन्दन, पुष्पादि उपहारों से पूजन करे ।।२६।। पीछे उस कमल को अस्त्रमन्त्र सहित शंखोदक की बिन्दुओं से प्रोक्षण करे, पीछे यथाविधि आधारादि आसन कल्पना करे ।।२७।। आधारशक्ति श्याम स्वरूप कल्याण रूप को नीचे पृथ्वी में ध्यान करे, उसके आगे ऊर्ध्वकण्ठ में कुण्डलाकार अनन्त को ध्यान करे ।।२८।। जो श्वेतशरीर, पांच फणिमण्डल से युक्त आकाश को चाटते हुए उनके समीप सिंह जैसे आकारवाले, चार पांव युक्त ।।२९।। धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य के चरणों को आसन पर कल्पित करे, आग्नेयी आदि दिशा श्वेत, पीत, रक्त, श्यामवर्ण ।।३०।। और अधर्मादिकों को पूर्वादि दिशा के अनुक्रम से पधरावे, राजावर्तमणि (उपरत्न का भेद) आदि की इनके शरीर में भावना करे ।।३१।। पीछे नीचे और ऊंचे में इस रत्न से इन अनन्त का आच्छादन कल्पना करे, पीछे स्कन्द को नालकण्टक कमल के दल और कर्णिका की भावना कर क्रम से पूजन करे ।।३२।। दलों में सिद्धि की कल्पना करे और केसरों में शक्ति की कल्पना करे और रुद्र तथा वामादि आठ शक्तियों की पूर्वादि दिशा में कल्पना करे ।।३३।। कर्णिका में वैराग्य और बीजों में नवशक्ति की कल्पना करे, वामादिक शक्तियों को पूर्वादि दिशा में कल्पना करे, पीछे मनोन्मनी शक्ति को ।।३४।। कन्द में, शिवात्मक धर्मनाल में, शिवाश्रयज्ञान कर्णिका के ऊपर आग्नेय मण्डल चन्द्र-सूर्य सम्बन्धि का ध्यान करे ।।३५।। आत्मविद्या, ज्ञान, शिवब्रह्मात्मक तीन तत्त्व इससे परे हैं, सम्पूर्ण आसनों पर सुखपूर्वक विचित्र उज्ज्वल पुष्प स्थित करे ।।३६।। और दहर विद्या से महाउज्ज्वल आसनमूर्ति कल्पना करके पुष्प रखे ।।३७।। आधारशक्ति से आरम्भ करके शुद्ध विद्या से आसन पर्यन्त 'ॐ कार' सहित चतुर्थी विभक्ति से अन्त में 'नमः' लगा कर ।।३८।। विद्वान् सब स्थानों में विधिपूर्वक पूजन करे। अंग, मुख और कला के भेद से उन ईशानादि पांच ब्रह्म को पूर्ववत् ।।३९।। उनकी मूर्ति में स्थित करके मुद्रा दिखावे, फिर पुष्पाञ्जलि ग्रहण करके देवताओं का आवाहन करे ।।४०।। 'सद्योजातं प्रपद्यामि०' यहां से आरम्भ करके 'शिवोमे अस्तु सदाशिवोम्' यहां तक उच्चारण करे, मूलाधार से उठे हुए नाद

बारह चक्र की ग्रन्थी तोड़कर ।।४१।। ब्रह्मरन्ध्र से उच्चारण करके ओंकार गोचर परमेश्वर का ध्यान करे, शुद्ध स्फटिकमणि के समान कला रहित अक्षर ।।४२।। दिव्य स्वरूप, सब लोकों के कारण, सम्पूर्ण देवमय, पर अन्तर–बाहर सर्वत्र व्याप्त अणु, महान् ।।४३।। भक्तों को बिना प्रयत्न ही दीखनेवाले ईश्वर, अविनाशी, ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, रुद्र आदि देवताओं को भी अगोचर ।।४४।। वेदसार और विद्वानों को प्राप्त होने योग्य; आदि, मध्य, अन्त रहित, भवरोगियों को औषधि स्वरूप ।।४५।। सावधान मन से परमेश्वर का ध्यान करे। आवाहन, स्थापन, सन्निरोध, दर्शन ।।४६।। और नमस्कार हाथ जोड़कर करे और पृथक्–पृथक् मुद्रा बांधे साक्षात् निष्कल देव शिवजी का ध्यान करे ।।४७।। शुद्ध स्फटिकमणि के समान प्रसन्न, शीतल कान्तियुक्त बिजली के वलय के समान जटाओं के मुकुट से शोभित ।।४८।। शार्दूल चर्म का वस्त्र ओढ़े, मुखकमल में हास्य करते हुए, लालकमल के समान हाथ, चरण और अधरवाले ।।४९।। सम्पूर्ण लक्षणों में सम्पन्न, सम्पूर्ण गहने पहने, श्रेष्ठ दिव्य आयुधों से युक्त, दिव्य गन्ध का लेप लगाये ।।५०।। पांच मुख, दश भुजा, शिखामणि में चन्द्रखण्ड धारण किये हुये, पूर्व का मुख महासौम्य, बालसूर्य के समान कान्तिमान् ।।५१।। त्रिलोचन कमल के समान शोभायमान बालचन्द्रमा मस्तक पर शोभित दक्षिण का मुख, नीलमेघ के समान कान्तिमान् ।।५२।। टेढ़ी भृकुटी, घोर लाल नेत्र, कराल डाढ़ें, दुष्प्रेक्ष फड़कते हुए होठ ।।५३।। उत्तर का मुख मूंगे के समान नील अलोकों से शोभित, सुन्दर विलास युक्त तीन नेत्र, अर्द्धचन्द्र मस्तक पर शोभित हैं ।।५४।। पश्चिम का मुख पूर्ण चन्द्रमा के समान तीन उज्ज्वल नेत्रों से शोभित, चन्द्ररेखा धारण करनेवाले, सौम्य मन्द हास्य से मनोहर है ।।५५।। पांचवां मुख स्फटिक के समाम चन्द्ररेखा से समुज्ज्वल, अत्यन्त मनोहर खिले तीन नेत्रों से सुन्दर ।।५६।। दक्षिणभाग में शूल, परशु, वज्र, खण्ड, अग्नि के समान उज्ज्वल ।।५७।। वाम ओर नाराच, घण्टापाश और अंकुश से उज्ज्वल, जानु पर्यन्त निवृत्या नाम कला और नाभि में प्रतिष्ठित नाम कला से ।।५८।। कण्ठपर्यन्त विद्या और ललाट पर्यन्त शान्ता नाम कला और इससे ऊपर शान्त्यतीत पराकला से युक्त ।।५९।। पांच स्थानों में व्यापक होने से निवृत्यादि पंच कलामय शरीर है, ईशान देव मुकुट पुरुष पुरातन मुख है ।।६०।। अघोर हृदय है, वामदेव गुह्य है, सद्योजात चरण है, इस प्रकार अड़तीस कलामय उसकी मूर्ति है ।।६१।। ईशान मातृका मय है तथा पंचब्रह्म मय है, ओंकारमय तथा हंसन्यासमय है ।।६२।। यह देव पंचाक्षरमय तथा षडक्षर है, छः अंगमय और जाति से युक्त है ।।६३।। इस प्रकार से ध्यान करे, फिर मेरे वामभाग में आप मनोन्मनी रूप गौरी को 'गौरीमिमाय०' मन्त्र और 'ॐ कार' सहित ध्यान करे ।।६४।। हे ईश्वरि! आवाहन करके पूर्ववत् नमस्कार करे, फिर हे देवि! सावधान मन मौन होकर तुम्हारा ध्यान करे ।।६५।। फूले कमल के समान कान्तियुक्त,



विस्तीर्ण नेत्रवाली, पूर्णचन्द्रमा के समान मुख, नील कुंचित केश ।।६६।। नीलकमल के दल के समान अर्द्धचन्द्र मस्तक पर धारे, चौड़े, घने, ऊंचे और स्निग्ध पयोधर से शोभित ।।६७।। सूक्ष्मकटि, पुष्ट श्रोणीभाग, पीत और बारीक वस्त्र धारे, सम्पूर्ण गहने पहने, माथे पर उज्ज्वल तिलक धारे ।।६८।। विचित्र पुष्पों से शोभित केशपाश, सब प्रकार गुणों से भरी, कुछेक लज्जा से नीचा मुख किये ।।६९।। दक्षिण हाथ में क्रीड़ा के निमित्त सुवर्ण का कमल लिये, दूसरा हाथ सिंहासन पर धारे ।।७०।। हे देवि! जो इस प्रकार मन लगाकर मेरा और तुम्हारा ध्यान करता है और शंख के जल से स्नान कराकर 'ॐ कार' से प्रोक्षण करता है, वह सिद्ध होता है ।।७१।। 'भवेभवेनातिभवे०' इस मन्त्र से पाद्य और 'वामदेवाय नमः' यह पढ़कर आचमन देवे ।।७२।। 'ज्येष्ठाय नमः' ऐसा कहकर शुभ्र वस्त्र दे, 'श्रेष्ठाय नमः' कहकर यज्ञोपवीत दे ।।७३।। 'रुद्राय नमः' ऐसा कहकर आचमन करावे, 'कालाय नमः' कहकर सुन्दर गन्ध दे ।।७४।। 'कलविकरणाय नमः' कहकर अक्षत्, 'बलविकरणाय नमः' कहकर पुष्प समर्पण करे ।।७५।। 'बलाय नमः' ऐसा कहकर धूप दे, 'बलप्रमथनाय नमः' कहकर दीप दे ।।७६।। ब्रह्म षडंग और मात्रा सहित प्रणव शिव और शक्ति सहित क्रम से ।।७७।। मुझे और तुम्हें मुद्रा दिखावे, पहले मेरे निमित्त पूजन करे, फिर तुम्हारे निमित्त ।।७८।। जब तुम्हारी पूजा करे, तब स्त्रीलिंग लगा दे, इतना ही भेद है और नहीं ।।७९।। इस प्रकार यथाविधि ध्यान और पूजन करके बुद्धिमान् मेरी आवरणपूजा का विधान करे ।।८०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां

सप्तमोऽध्यायः ।। ७ ।।

*****

आठवाँ अध्याय

शिवजी बोले– हे महादेवि! यही पांच आवरण हैं, सो यथाक्रम से पांच आवरण पूजा का आरम्भ करे ।।१।। जहां प्रथम पूजा की है, वहीं क्रम से बुद्धिमान् जंघादिक से गणेश और कार्तिकेय का पूजन करे ।।२।। फिर पंचब्रह्म के क्रम से पूजा करे, ईशान देश, नैर्ऋत्य, पूर्व, दक्षिण और उत्तर में, सदा ।।३।। पश्चिम और षडंग में पूजा करे। आग्नेय, ईशान, नैर्ऋत्य, वायव्य ।।४।। मध्य में नेत्र, अस्त्र और इसी प्रकार से पूर्वादि क्रम से अस्त्रों की प्रतिष्ठा करे। यह प्रथम आवरण कहा, अब दूसरा आवरण सुनो ।।५।। अनन्त को पूर्व दिशा के पत्र में, सूक्ष्म को दक्षिण दिशा के, शिवोत्तम को पश्चिम के और एक नेत्र को उत्तर के ।।६६।। एक रुद्र को ईशान के, त्रिमूर्ति को आग्नेय दिशा के,

श्रीकण्ठ को नैऋत्य और शिखण्डी को वायव्य में पूजन करे।।७।। दूसरे आवरण में उन चक्रवर्त्तियों की पूजा करनी चाहिये, पूर्वद्वार के मध्य में वृष और ईशान का पूजन करे।।८।। दक्षिण की ओर नन्दी और महाकाल को उत्तर की ओर पूजन करे, मृगीश को दक्षिण और पश्चिमद्वार में पूजे।।९।। उसके पूर्वकोष्ठ में गन्धादि से गणेशजी का पूजन करे, पश्चिमोत्तर के कोष्ठ में वृषभ को और दक्षिण में गुह (स्कन्द) को पूजे।।१०।। उत्तर और पूर्वद्वार में प्रदक्षिण के विधान से आठ नामों से पूजे, सो कहते हैं।।११।। भव, शर्व, ईशान, रुद्र, पशुपति, उग्र, भीम, महादेव को पूजे, यह तीसरा आवरण है।।१२।। जो वेद के आदि में स्वर स्वरूप है, उस महेश्वर को आवाहन करके पूर्व दिशा के भाग में कमल की कर्णिका के ऊपर पूजन करे।।१३।। ईश्वर को पूर्व दिशा के पत्र पर, विश्वेश को दक्षिण के पत्र पर, परमेश को सौम्य पूर्व के पत्र पर, सर्वेश को पश्चिम के पत्र पर।।१४।। और दक्षिण के पत्र पर 'आवो राजानाम्०' इस ऋचा से रुद्र का पूजन करे, कर्णिका के दलों में आवाहन करके।।१५।। गन्ध, पुष्पादि से शिवजी को पूर्व, हर को दक्षिण और शिवजी को उत्तर, भव को पश्चिम दिशा के पत्र में यथाक्रम से पूजन करे।।१६।। उत्तर में विष्णुजी को आवाहन करके गन्ध, पुष्पादि से पूजन करे, 'प्रतद्विष्णुः' ऐसा मन्त्र उच्चारण करके कर्णिका के दलों में।।१७।। पूर्वभाग में वासुदेव, दक्षिण में अनिरुद्ध, उत्तर में संकर्षण, पश्चिम में प्रद्युम्न को पूजन करे।।१८।। पश्चिम की ओर के पद्म में ब्रह्माजी को आवाहन करके उनका पूजन करे, 'ॐ हिरण्यगर्भः समवर्तता०' इस मन्त्र से हिरण्यगर्भ को पूर्व में।।१९।। विराज पुरुष को दक्षिण में, उत्तर में पुरुष को और पश्चिम में काल का पूजन करे।।२०।। और पूर्वादि प्रदक्षिण के विधान से ऊर्ध्वपंक्ति में सबका यजन करे, उन स्थानों में क्रम से लोकपालों का यजन करे।।२१।। 'ओं रां, ओं यां, ओं ज्ञां, ओं लां' और अवर्ण पूर्वक 'अं ओं औं षां, ओं सां' और वेद के आदि में 'ओं श्रींबीज'।।२२।। इन दश बीजों द्वारा क्रम से लोकपालों का पूजन करे (शिवार्चन चन्द्रिका और तन्त्रसार से 'ओं लां इन्द्राय, ओं रां अग्नये' इस क्रम से 'ओं मां, ओं क्षां, ओं वां, ओं यां, ओं सां, ओं हां', यह आठ बीज आठ लोकपालों की पूजा कहे हैं।) नैऋत्य और उत्तर में पूजन करे, इसी प्रकार ईशानदेव का दक्षिण में।।२३।। और ब्रह्माजी तथा विष्णुजी का विधिपूर्वक षोडशोपचार से पूजन करे, देवेशि को बाह्य रेखा में पांचवें आवरण में यजन करे।।२४।। श्रीमान् त्रिशूल को ईशान में, वज्र को पूर्व दिशा में, परशे को आग्नेय कोण में, बाण को दक्षिण में।।२५।। खड्ग को नैऋत्य दिशा में, पाश को पश्चिम दिशा में, अंकुश को वायव्य में, पिनाक को उत्तर में।।२६।। रौद्र और क्षेत्रपाल को पश्चिम दिशा में यजन करे, शिवजी की प्रीति के निमित्त सब विधि से करे।।२७।। हाथ जोड़कर ध्यान करके और सर्वदा देव-देवी को आदर सहित देखता रहे।।२८।। इस कारण विघ्नशान्ति के

निमित्त आवरण की अर्चा करे, फिर देवेश की अर्चना करके ओंकार युक्त शिवजी को स्मरण करे।।२९।। इस प्रकार गन्धादि उपचारों से विधिपूर्वक शिवजी की पूजा करके विधिपूर्वक नैवेद्य भेंट करे।।३०।। फिर आचमनीय और अर्घ्य पूर्वकाल के समान प्रदान करे, फिर पानीय भोजन की सामग्री और ताम्बूल निवेदन करे।।३१।। नीरांजनादिक करके शेष पूजा को समाप्त करे और देवी–देव का ध्यान करके एक सौ आठ मन्त्र जपे।।३२।। फिर उठकर पुष्पाञ्जलि ले 'यो देवानामिति॰' नारायणीय उपनिषद् की छः ऋचाओं का जप करे।।३३।। 'यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तः' यहां तक जपे; हे परमेश्वरि! फिर पुष्पाञ्जलि देकर तीन प्रदक्षिणा करे।।३४।। फिर परम भक्ति से साष्टांग प्रणाम करे, फिर प्रदक्षिणा करके अनेक प्रकारों से प्रणाम करे।।३५।। आसन पर स्थित होकर पूजन करके शिवमहेश्वरादि देवों के आठ नाम उच्चारण करके कहे, 'हे भगवन्! जो कुछ मैंने अच्छे या बुरे कर्म किये हैं।।३६।। हे भगवन् शम्भो! वह सब आप ही का आराधन किया है,' इस प्रकार शंख के जल को पुष्पों पर दे।।३७।। इस प्रकार पूजा समाप्त करके अर्थ सहित आठ नाम जपे। हे देवेशि! सुनो, वह तुम्हारी भक्ति से कहता हूं।।३८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां

अष्टमोऽध्यायः ।। ८ ।।

*****

नववाँ अध्याय

ईश्वर बोले– शिव, महेश्वर, रुद्र, विष्णु, पितामह, संसारवैद्य, सर्वज्ञ, परमात्मा।।१।। यह मुख्य आठ नाम परमात्मा शिवजी के प्रतिपादक हैं, इसमें पितमह तक पहले पांच नामों में शान्तातीत के क्रम से।।२।। पांच उपाधियों के ग्रहण करने से शिवादि संज्ञा ग्रहण की है, उपाधि के निवृत्त होने से संज्ञा भी निवृत्त हो जाती है।।३।। पद नित्य है और सदाशिवादि मूर्ति अनित्य हैं, पदों का ही विनिमय होता है, इससे मूर्त्ति आदि छूट जाती है।।४।। और पदान्तर की प्राप्ति में फिर उपाधि से उस पद की प्राप्ति होती है, जो यह आदि का पंचक आत्मान्तर के जाननेवाला न हो तो।।५।। दूसरे तीन नामों का जगत् के उपादानकारण प्रकृति आदि के योग से तीन प्रकार की उपाधि कहने के कारण यह तीन नाम भी शिव रूप ही हैं।।६।। अनादि मल के संग के स्वभाव से अर्थात् जिस प्रकार जल स्वच्छ होता है, स्वादिष्ठ होता है, परन्तु देशान्तरों में प्राप्त होने से खारी गंदला हो जाता है, परन्तु स्वभाव से निर्मल है, इसी प्रकार उपाधि रहित

होने से वह एक ही निर्मल, शिव है, उपाधियुक्त होने से अनेक नाम धारण करता है, नामों का अर्थ कहते हैं। अत्यन्त परिशुद्ध आत्मा होने से महादेवजी को शिव कहते हैं।।७।। अथवा सम्पूर्ण कल्याण गुणों के एक आधार होने से, उन ईश्वर को शिवतत्त्व जाननेवाले महात्मा शिव कहते हैं।।८।। महेश्वर का अर्थ कहते हैं, तेइस तत्त्वों से परे प्रकृति है, प्रकृति से परे पच्चीसवां पुरुष है।।९।। जिसे वाच्य-वाचक के भाव से वेद के आदि में 'ॐ कार' कहते हैं, वेद से ही जानने के योग्य आत्म स्वरूप वेदान्त में प्रतिष्ठित।।१०।। वही प्रकृति में उसके भोग के निमित्त लीन है, उस प्रकृति में लीन हुए पुरुष से जो परे हैं, उसी को 'महेश्वर' कहते हैं।।११।। पुरुष और प्रकृति की प्रवृत्ति उसके आधीन है अथवा त्रिगुणतत्त्व की यह अविनाशी माया है।।१२।। माया को प्रकृति और मायी को महेश्वर जानना चाहिये, महेश्वर की प्राप्ति से ही नारायण माया से मोक्ष करते हैं।।१३।। रुत् (दुःख) को अथवा दुःख के कारण को दूर करने से उनका नाम 'रुद्र' है, इसी कारण उनको रुद्र कहते हैं, वही परम कारण शिव हैं।।१४।। शिव के तत्त्वादि पर्यन्त शरीरादि, घटादि इन सब में व्याप्त होकर स्थित होने के कारण शिव को 'विष्णु' कहते हैं।।१५।। जगत् के पितृभूत ब्रह्मादिक और मूर्त्ति आत्मावाले होने से वह सबके 'पितामह' कहलाते हैं।।१६।। जिस प्रकार निदान जाननेवाला वैद्य रोग दूर करने में समर्थ होता है और औषधी उपाय जान सकता है, इसी प्रकार भोग मोक्ष प्रदान के अधिकार से।।१७।। संसार के ईश्वर स्थूलकारण निवृत्त करनेवाले शिवतत्त्व ज्ञाताओं से 'संसारवैद्य' कहे जाते हैं।।१८।। शब्दादि पंचक ज्ञानसिद्धि के निमित्त इन्द्रियों के होने पर भी जो त्रिकाल में होनेवाले सम्पूर्ण स्थूल सूक्ष्म।।१९।। जिसके जीव जानने में समर्थ नहीं होते, कारण कि वे माया से ढके हैं, सम्पूर्ण के होने पर भी सम्पूर्ण इन्द्रियों के सिद्धि पदार्थों में।।२०।। जो जैसी है, उस वस्तु को उसी प्रकार वह शिव बिना यत्न के जानने से 'सर्वज्ञ' कहलाते हैं।।२१।। वह इन सर्वज्ञादि सम्पूर्ण गुणों से युक्त होकर सबके आत्मा परे-से-परे, अपने से और परमात्मा से भी परे होने से स्वयं 'शिवपरमात्मा' कहलाते हैं।।२२।। इस प्रकार प्रणवात्म अविनाशी महादेवजी को प्रणाम करके अपने सम्मुख अर्घ्य देकर ईशान के मस्तक में।।२३।। प्रणव से युक्त देवेश का फिर पूजन करे, अंजलि बांधकर पूजा के फूलों को ग्रहण करके।।२४।। वाम नासापुट के मार्ग में उन्मनी नाड़ी के अन्त तक शिव को ले जाकर और दक्षिण नासापुट के मार्ग से देवी को ले जाकर।।२५।। 'मैं शिव हूं' ऐसा अनुभव करके फिर हृदय में सम्पूर्ण आवरण देवताओं को ध्यान करके।।२६।। पीछे क्रम से विद्या और गुरु की पूजा करे और शंख अर्घ्यपात्र तथा अन्य मन्त्रों को क्रम से हृदय में धारण करे।।२७।। फिर निर्माल्य को चण्डेश के आगे समर्पण कर, फिर प्राणायाम कर, ऋषि आदि का स्मरण करके।।२८।। कैलास का प्रस्तर नामक जो मण्डल कहा है, इसे पक्ष में वा

महीने–महीने में पूजे।।२९।। वा छः महीने में अथवा एक वर्ष में, वा पर्व में पूजे, जो पूजा करने में समर्थ न हो, तो सदा मेरे लिंग की पूजा करे।।३०।। हे देवी! इस क्रम में कुछ विशेष भी है, उपदेश के दिन में गुरु के सहित पूजित लिंग को ग्रहण करके कहे कि।।३१।। 'जब तक शरीर में प्राण रहेंगे, मैं शिवपूजन करूंगा' इस प्रकार गुरु के निकट तीन बार प्रतिज्ञा करके शपथ करे।।३२।। पूर्वोक्त विधि के अनुसार नित्य शिवजी का पूजन करे, अर्घ्यजल के सहित लिंग के ऊपर जल चढ़ावे।।३३।। ओंकार से पूजन करके धूप, दीप करे, ईशान दिशा में चण्ड का आराधन करे और निर्माल्य उनको निवेदन करे।।३४।। फिर वस्त्र से पवित्र किये जल से लिंग और वेदी का प्रक्षालन करके ओंकार उच्चारण करके, लिंग के सिर पर फूल चढ़ावे।।३५।। आधारशक्ति से आरम्भ कर, शुद्ध विद्यासन पर्यन्त सब कुछ मन की कल्पना करके, परमेश्वर को स्नान करावे।।३६।। पंचगव्यादि से अपने ऐश्वर्यानुसार केवल शुद्ध जल अथवा सुगन्धित जल से।।३७।। 'पवमानेन०' इस अनुवाक् से अथवा 'नमस्ते रुद्र०' इस अनुवाक से नीलसूक्त अथवा त्वरिलिंग सूक्तादि सूक्त अथवा अथर्वशिर मन्त्र अथवा ऋक्, साम के मन्त्रों से अथवा सद्योजातादि पांच मन्त्रों से।।३८।। ओंकार से देव–देव शिवजी को स्नान करावे, विशेष कर अर्घ्य के जल और ओंकार से स्नान करावे।।३९।। सुगन्धित पुष्पों को शोधन करके लिंग के ऊपर चढ़ावे और सिंहासन पर लिंग को स्थापन करके सूर्यादि की अर्चा करे।।४०।। आधारशक्ति और अनन्त इन दोनों को सिंहासन के नीचे पूजे, पीछे सिंहासन को उससे ऊँचे पर यथाक्रम से पूजन करके।।४१।। ऊपर की ओर के ढकनेवाले सिंहासन के पाद में लिंग की पूजा करे, लिंग में मूर्ति की कल्पना करके, तुम्हारे सहित मेरी पूजा करे।।४२।। यह सब कार्य यति को मेरे ध्यान में तत्पर होकर सम्यक् भक्ति से करना चाहिये, हे प्रिये! इस प्रकार यह मैंने तुमसे अतिगुह्य पूजाविधि वर्णन की।।४३।। इसे यत्नपूर्वक छिपाकर रखना चाहिये, जिस–तिस को नहीं देना चाहिये, मेरे भक्त, यतिराज, द्वेष रहित को देना चाहिये।।४४।। जो गुरुभक्त शान्त और मेरे उद्योग में तत्पर हो, उसे दे, मेरी आज्ञा का उल्लंघन करके जो मूढ़ अभक्तों को देता है।।४५।। वह मेरा द्रोही नरक में जाता है, इसमें सन्देह नहीं, हे देवेशि! मेरे भक्तों के निमित्त देने से वह पुरुष मेरा प्रिय होता है, वह यहां सब भोगों को भोगकर अन्त में मेरे लोक को जाता है।।४६।। व्यासजी बोले– हे मुनियो! इस प्रकार शिवजी के वचन सुनकर महादेवी परमेश्वरी शिवजी की वेदार्थ भरे हुए अनेक प्रकार के स्तोत्रों से स्तुति करके भगवान् शिवजी के चरणकमलों में बारंबार स्तुति करने लगी, प्रसन्न मन होकर पार्वती महा हर्षित हुई।।४७–४८।। हे ब्राह्मणो! प्रणव के अर्थ का प्रकाशक यह महागुप्त विधान है, यह शिवजी का परमज्ञान दुःख का नाश करनेवाला है।।४९।। सूतजी बोले– हे मुनिश्रेष्ठ! महा तपस्वी व्यासजी इस प्रकार वचन कहकर वेदवादी

मुनियों से परम भक्ति से पूजित होकर ।।५०।। कैलास पर्वत का स्मरण करके, उस तपोवन से चले गये, वे ऋषि भी प्रसन्न मन होकर यज्ञ के अन्त में परमभक्ति से परमेश्वर ।।५१।। चन्द्रशेखर शंकरजी का पूजन करके यमादि योग में मन लगाकर शिवध्यान में परायण हुए ।।५२।। देवी ने यह कथा स्कन्दजी से, स्कन्दजी ने नन्दीजी से, नन्दीजी ने भगवान् सनत्कुमारजी से कही, सनत्कुमारजी ने महातेजस्वी भगवान् व्यासजी से कही ।।५३।। उन महातेजस्वी गुरु व्यासजी से यह पवित्र प्रसंग मैंने प्राप्त किया। हे मुनिश्रेष्ठो!।।५४।। हे मुनियो! मैंने यह गुप्त से गुप्त चरित्र आपको सुनाया और मैंने यह जान लिया कि, आप शिवजी के परम भक्त हो ।।५५।। आपको भी यह प्रणवार्थ प्रकाशक ज्ञान शिवजी के प्रिय को देना चाहिये, शान्तचित्त यति शिवचरणों के भक्त को देना चाहिये ।।५६।। पुराण कहनेवालों में श्रेष्ठ सूतजी, यह वचन कहकर तीर्थयात्रा के प्रसंग से पृथ्वी पर विचरने लगे ।।५७।। सूतजी से वे मुनीश्वर इस गुप्त रहस्य को ग्रहण करके, काशी में वास करके, मुक्त होकर शिवजी के धाम को चले गये ।।५८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां
नवमोऽध्यायः ।। ९ ।।

*****

दसवाँ अध्याय

व्यासजी बोले– सूतजी के चले जानेपर वे सब मुनि महाविस्मय को प्राप्त होकर परस्पर में कहने लगे, यह तो हमने भुला ही दिया, जो वामदेव का मत पूर्वकाल में सूतजी ने वर्णन किया है, वह बड़ा कठिन है ।।१।। न जाने कब हम को मुनिश्रेष्ठ का दर्शन होगा, जो कि संसार–सागर को पार करनेवाला है और हमारी यह इच्छा है, कि महेश्वरजी के आराधन के पुण्यप्रताप से हम को सूतजी का दर्शन हो ।।२।। इस प्रकार चिन्ता करके वे मुनि व्यासजी को हृदयकमल में धारण करके दर्शन की इच्छा से स्थित हुए ।।३।। एक सम्वत्सर के उपरान्त सूतजी फिर काशी में आए, जो शिवभक्ति में तत्पर ज्ञानी, पुराण के अर्थ को प्रकाश करनेवाले हैं ।।४।। सूतजी को देखकर वे ऋषि बहुत प्रसन्न हुए, अभ्युत्थान (आसन) और अर्घ्य से उनकी पूजा करने लगे ।।५।। और सूतजी भी उन मुनिश्रेष्ठों की पूजा से प्रसन्न हुए, उनका अभिनन्दन किया, गंगाजी के परम पवित्र जल में स्नान करके ।।६।। ऋषि, देवता और पितरों को तिल, जौ से तृप्त करके, किनारे पर आकर शरीर पोंछ, कपड़े पहनकर ।।७।। दो आचमन करके सद्योजातादि मन्त्रों से भस्म लगाकर फिर उद्धूलनादि क्रम का विधान करके ।।८।।

रुद्राक्षमाला धारण कर, नित्यक्रिया करके, बुद्धिमान् सूतजी अंगों में विधिपूर्वक त्रिपुण्ड्र लगाकर।।९।। विश्वेश्वर उमापति को पुत्र और गणों सहित पूजन करके, भक्ति से बारंबार नमस्कार करके।।१०।। कालभैरवनाथ को विधिपूर्वक प्रणाम करके, तीन प्रकार से प्रदक्षिणा तथा पांच प्रकार नमस्कार करके।।११।। फिर प्रदक्षिणा कर, पृथ्वी पर दण्डवत् प्रणाम कर, परम भक्ति से भगवान् के चरणों को प्रणाम करके स्तुति की।।१२।। एक सहस्र एक सौ आठ पंचाक्षर विद्या को जपकर महेश्वरजी के सम्मुख स्थित होकर उनसे अपराध क्षमा कराके।।१३।। मुक्तिमण्डप के मध्य में चण्डेश्वर का पूजन करके वेदपारगामी मुनियों के दिये हुए आसन पर बैठे।।१४।। इस प्रकार सब के बैठने पर समन्त्र नमस्कार करके सूतजी भाववृद्धि करनेवाले वचन उनसे बोले।।१५।। सूतजी बोले- हे श्रेष्ठव्रतवाले ऋषियो! आप धन्य हो, मैं आपके निमित्त यहां जिस कारण से आया हूं, वह वृत्तान्त सुनिये।।१६।। जब मैं प्रणव के अर्थ को आपसे उपदेश करके तीर्थयात्रा करने गया, उस वृत्तान्त को आपसे कहता हूं।।१७।। मैं यहां से चलकर दक्षिण सागर के किनारे गया, वहां स्नान करके विधिपूर्वक कन्याकुमारी शिवादेवी का पूजन किया, हे ब्राह्मणो! फिर सुवर्णमुखरी के किनारे गया।।१८।। श्रीकालहस्तिशैल नामक परम अद्भुत नगर में आकर सुवर्णमुखरी के जल में स्नान करके, देवता तथा ऋषियों को।।१९।। विधिपूर्वक तृप्त कर, शिवजी को स्मरण कर, चन्द्रमा की कान्ति के समान प्रभावाले कालहस्तीश को तृप्त कर।।२०।। पश्चिम की ओर को मुख, पांच सिरवाले, परम अद्भुत एक ही बार दर्शन से सब पाप का क्षय करनेवाले।।२१।। सब सिद्धि देनेवाले, भुक्ति-मुक्ति देनेवाले, त्रिगुणेश्वर को परम भक्ति से पूजन करके दक्षिण भाग में स्थित पार्वती को।।२२।। जो ब्रह्मज्ञान रूपी फूल की कली है, उन्हें भक्ति से पूजन करके पंचाक्षरी विद्या को एक सहस्र एक सौ आठ।।२३।। जप करके थोड़ी देर प्रदक्षिणा करके, बारंबार नमस्कार करके।।२४।। परम प्रसन्नता से कालहस्तिशैल को प्रतिदिन प्रदक्षिणा करके, इस प्रकार के नियम में स्थित होकर उस क्षेत्र में निवास करने लगा।।२५।। हे मुनीश्वरो! इस प्रकार चार महीने उस स्थान में बिताये, ज्ञान रूपी मनुष्य की कलिका महादेवी के प्रसाद से तृप्त होकर।।२६।। एक समय कंबल वस्त्र, मृगचर्म, कुश के ऊपर बिछाकर उस आसन के ऊपर इन्द्रिय रोककर स्थित होकर, मन को साधकर।।२७।। परमानन्द, चिदानन्दघन का समाधि में ध्यान करता हुआ, शान्त चित्त हो जाने से परिपूर्ण शिव रूप हो गया।।२८।। इसी समय दयासागर मेरे गुरु (व्यासजी) नीले मेघ के वर्ण, बिजली के समान पीली जटा धारण किये।।२९।। ऊँचे (श्रेष्ठ) दण्ड, कमण्डलु और मृगचर्म धारण किये, सम्पूर्ण शरीर पर भस्म लगाये, सम्पूर्ण लक्षणों से लक्षित।।३०।। मस्तक में त्रिपुण्ड्र लगाये, रुद्राक्ष पहने, कमलदल के समान चौड़े दोनों नेत्र।।३१।। शोभा परिपूर्ण व्यासजी मेरे हृदयकमल में

प्रकट हुए। हे आस्तिक मुनियो! इस प्रकार भगवान् हृदय में प्रादुर्भूत हुए, तब मैं मोहित हो गया ।।३२।। पीछे नेत्र खोलकर मैं विलाप करने लगा, पर्वत के झरने के समान मेरे अश्रुपात होने लगे ।।३३।। इसी समय आकाश में महा अद्भुत अशरीरिणी वाणी सुनी, हे ब्राह्मणो! उसे आदर से सुनिये ।।३४।। हे महाभाग सूतजी के पुत्र! आप काशीपुरी जाइये, वहां पहले आपने जिन मुनियों को उपदेश दिया था, वे अब ।।३५।। विवश होकर आपके शुभागमन की अत्यन्त इच्छा करते हैं और निराहार होकर व्रत करते हैं, ऐसा कहकर आकाशवाणी विराम को प्राप्त हुई ।।३६।। तब शीघ्र ही मैं उठकर देव को भक्तिपूर्वक प्रणाम करके, फिर शिवा-शिव को बारह बार प्रदक्षिणा और दण्डवत् प्रणाम करके।।३७।। गुरु की आज्ञा सुनाकर उस क्षेत्र से चलकर चालीस दिन में ।।३८।। यहां आया हूं। हे मुनिश्रेष्ठ! अब आप मेरे ऊपर कृपा करें, मैं अब क्या कहूं? सो आप मुझसे वर्णन कीजिये ।।३९।। सूतजी के यह वचन सुनकर श्रेष्ठऋषि प्रसन्न मन होकर बारंबार व्यासजी को नमस्कार करके मुनिश्रेष्ठ सूतजी से बोले ।।४०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां

दशमोऽध्यायः ।। १० ।।

*****

ग्यारहवाँ अध्याय

ऋषि बोले- हे महाभाग सूतजी! आप हमारे गुरु हो, इससे हम पर दया करते हो, हम आपसे पूंछते हैं ।।१।। शिष्यों के ऊपर गुरु तो सदा ही कृपा दृष्टि रखते हैं और इसी कारण आपने हमें अपना दर्शन दिया है ।।२।। इस कारण हम आपसे पूछते हैं कि, पूर्वकाल में जो आपने विरजाहोम में जो वामदेव का मत हमसे सूचित किया है, हे मुने! वह हमने विस्तार से नहीं सुना है ।।३।। वही जो परम श्रद्धा और आदर से सुनने की हमारी इच्छा है, हे कृपासागर! सो प्रेम से आप हमसे कहिये ।।४।। उनके यह वचन सुनकर सूतजी प्रसन्न मन रोमांचित होकर गुरुओं के परम गुरु महादेवजी को ।।५।। और तीनों लोकों की जननी को भक्तिपूर्वक नमस्कार करके मुनियों को प्रसन्न करते हुए गम्भीरवाणी से बोले ।।६।। सूतजी बोले- हे मुनियो! आपका मंगल हो, आप सदा सुखी रहो, आप शिवजी के भक्त हो, दृढ़मति सदाशिवजी की भक्ति में तत्पर हो, भक्ति बढ़ानेवाले हो ।।७।। वह बड़ी विचित्र वार्ता मैंने अपने गुरु के मुख से सुनी और इस गुप्तवार्ता के प्रकट होने की शंका से मैंने आज तक किसी के सम्मुख यह नहीं कही ।।८।। आप दृढ़व्रत शिवजी के भक्त होने से महाभागी हो, इसी कारण मैं आपसे

कहता हूं, मन लगाकर सुनिये ।।९।। पहिले रथन्तर कल्प में महामुनि वामदेवजी गर्भ से उत्पन्न होते ही, स्वयं शिवज्ञान जाननेवालों के गुरु हुए ।।१०।। वे वेद, आगम, पुराण और सब शास्त्र के तत्त्व को जानते थे; देव, असुर, मनुष्यादि समस्त जीवों के जन्मकर्म के जाननेवाले थे ।।११।। सम्पूर्ण शरीर में भस्म लगाये, जटामण्डल से मण्डित, निराश्रय, इच्छा रहित, द्वन्द्व और अहंकार हीन ।।१२।। दिगम्बर महा ज्ञानी दूसरे शिव के ही समान शिष्य हुए, बड़े–बड़े मुनियों से युक्त ।।१३।। अपने चरण स्पर्श से पृथ्वी को पवित्र करते हुए विचरते थे और परधाम ब्रह्म में प्रतिदिन मग्न रहते ।।१४।। उन्होंने प्रेम से मेरु के दक्षिण कुमार शिखर नामक श्रृंग में प्रवेश किया, जहां भगवान् शिवजी के पुत्र स्कन्दजी विराजते हैं ।।१५।। ज्ञानशक्ति धारण करनेवाले, सम्पूर्ण असुरों के नाशक वीर स्कन्दजी शक्ति से युक्त सम्पूर्ण देवताओं से नमस्कृत होकर विराजते हैं ।।१६।। वहां स्कन्द नामक सागर के समान एक सरोवर है, उसका ठंडा महा स्वादिष्ट जल है, अगाध और बहुत जलवाला है ।।१७।। सम्पूर्ण आश्चर्य के गुणों से युक्त स्कन्दजी के समीप ही वह सरोवर है, वहां महामुनि वामदेवजी शिष्यों सहित स्नान करके ।।१८।। शिखर के ऊपर बैठे मुनिवृन्दों से सेवित कुमार, जो उदित सूर्य के समान मोर पर स्थित ।।१९।। चार भुजा, उदार अंग, मुकुट आदि से विभूषित, रत्नभूत दो शक्तियों से उपास्य, शक्ति कुक्कुटधारी ।।२०।। वरदायक अभय हाथवाले स्कन्दजी को देखकर वह मुनीश्वर परम भक्ति से पूजन करके स्तुति करने लगे ।।२१।। वामदेवजी बोले– प्रणव के प्रतिपादक, प्रणव के अर्थ के विधायक, प्रणव अक्षर ही के बीजवाले प्रणव रूप आपको नमस्कार है ।।२२।। वेदान्त के अर्थ के स्वरूप विज्ञान करनेवाले (वेदान्त अर्थ के जाननेवाले) आत्मज्ञान के स्वरूप के निमित्त नमस्कार है ।।२३।। सब प्राणियों के अन्तर में स्थित 'यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्निति श्रुतेः' गुह्य–अगुह्य रूप और गुह्य आगम के जाननेवाले आपको नमस्कार है ।।२४।। सूक्ष्म–से–सूक्ष्म और बड़े–से–बड़े और पर–अपर के जाननेवाले परमात्मा स्वरूप आपको नमस्कार है ''अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् इति श्रुतेः'' ।।२५।। स्कन्द को स्कन्द स्वरूप असुर शक्ति के शोषनेवाले सिन्दूर के समान लाल तेजवान् मन्दारमाला का उज्ज्वल मुकुट धारण करनेवाले आपके अर्थ नमस्कार है ।।२६।। शिवजी के शिष्य पुत्र शिवजी का ही कल्याण करनेवाले, शिवजी के प्रिय, शिव–पार्वती के आनन्द सागर के निमित्त नमस्कार है ।।२७।। गंगा के पुत्र कार्तिकेय, ब्राह्मी आदि माताओं के प्रिय उमापुत्र, शरकण्डे के वन में शयन करनेवाले आपको प्रणाम है ।।२८।। छः प्रकार के मन्त्र–तन्त्रादि के शरीरवाले, छः प्रकार के अर्थ विधान करनेवाले, छहों मार्ग से परे, षण्मुख आपके निमित्त नमस्कार है ।।२९।। द्वादशात्मा, बारह नेत्र, बारह हाथ और बारह आयुधधारी द्वादश रूप आपको नमस्कार है ।।३०।।

चतुर्भुज, शान्त, भक्ति कुक्कुट धारण करनेवाले, वरदायक, अभयहस्त, असुरों को मारनेवाले के निमित्त नमस्कार है।।३१।। गजावल्ली (स्कन्दशक्ति) के कुचों में लिप्त कुम्कुम से अंकित हृदयवाले, गजानन को आनन्द देनेवाले, महा आनन्द स्वरूप आपको नमस्कार है।।३२।। ब्रह्मादि देवता, ऋषि, किन्नरों से जिन की गाथा गाई जाती है, विशेष विचित्र कीर्ति के स्थान, देवताओं के निर्मल मस्तक के भूषण और फूलों की माला से पूजित चरण कमलवाले आपको नमस्कार है।।३३।। यह स्कन्दजी का दिव्य स्तोत्र वामदेवजी ने कहा है, जो इसे पढ़ते-सुनते हैं, वह परम गति को प्राप्त होते हैं।।३४।। वह महा बुद्धि को बढ़ानेवाला, शिवजी की भक्ति बढ़ानेवाला, आयु, आरोग्य, धन और सब कामनाओं का करनेवाला है।।३५।। इस प्रकार देवताओं के सेनापति गुह की स्तुति करके वामदेवजी ने तीन प्रदक्षिणा करके पृथ्वी में दण्डवत् किया।।३६।। साष्टांग प्रणाम, प्रदक्षिणा और दण्डवत् करके वह ब्राह्मण विनय से उनके निकट स्थित हुआ।।३७।। परम अर्थ का भरा हुआ वामदेवजी का स्तोत्र सुनकर महेश्वरपुत्र प्रभु स्कन्दजी प्रसन्न हुए।।३८।। स्कन्दजी बोले- कि, मैं आपकी पूजा से प्रसन्न हूं, आपने अच्छी भक्ति से स्तुति की, अब मैं आपका क्या प्रिय करूँ?।।३९।। हे मुनि! आप योगियों में मुख्य, परिपूर्ण और इच्छा रहित हो, आप सरीखों को इस लोक में कुछ प्रार्थनीय नहीं है।।४०।। तो भी आप सरीखे साधु लोकरक्षा के तथा धर्म रक्षा के निमित्त पृथ्वी पर विचरते हैं।।४१।। हे ब्रह्मन्! जो आपकी इच्छा हो, सो कहिये, जो सुनना हो वह कहो, मैं लोकरक्षा के निमित्त उसे कहूंगा।।४२।। यह स्कन्दजी के वचन सुनकर महामुनि वामदेवजी प्रेम से गद्गद होकर मेघगम्भीर वाणी से बोले।।४३।। वामदेवजी बोले- हे भगवन्! आप पर-अपर के स्वामी हो, परावर की विभूति देनेवाले हो, आप सर्वज्ञ, सब के कर्ता, सब शक्तियों को धारण करनेवाले हो।।४४।। हम जीव आपके गुण कहने में असमर्थ हैं, यह आपका अनुग्रह है, जो आप हम से ऐसे कहते हो।।४५।। हे महाभाग! मैं कृतार्थ हूं, आपका लवमात्र विज्ञान से प्रेरित होकर आपसे पूछता हूं, मेरे अतिक्रम को आप क्षमा करे।।४६।। प्रणव ही साक्षात् परमेश्वर का वाचक है, वही देव पशुपति वाच्य हैं, जो पशुओं (जीव) के पापमोचक कहे हैं।।४७।। प्रणव द्वारा बुलाये हुए शिवजी क्षणमात्र में पाप दूर करते हैं, इस कारण शिवजी के प्रति प्रणवोपासन मात्र से ही जीवों के पापमोचन होकर प्रणव की वाचकता की सिद्धि होती है।।४८।। ''ओमिती दण्ड सर्वम्'' अर्थात् यह सब ओंकार ही स्वरूप है, ऐसा सनातन श्रुति कहती है, ''ओमिती ब्रह्म सर्वम्'' इस प्रकार सब को श्रुति ब्रह्म स्वरूप कहती है।।४९।। हे देवसेनापते! देवताओं के पति आपको नमस्कार है, यतियों के पति परिपूर्ण के निमित्त नमस्कार है।।५०।। इस प्रकार इस जगत् की स्थिति में शिवजी के सिवाय कोई दूसरा नहीं है, सब धारण करनेवाले व्यापक स्वामी महेश्वर शिवजी हैं।।५१।। समष्टि-व्यष्टि

के भाव से यह सब प्रणवार्थ ही है, ऐसा मैंने सुना है, हे स्कन्दजी! आपके समान कोई गुरु नहीं मिल सकता है।।५२।। मैंने प्रणवार्थ नहीं सुना, इस कारण आप उपदेश के विधान और सदाचार के क्रम से कृपा करके मुझे इसका अर्थ सुनाइये।।५३।। आप ही सब जन्तुओं के पाश का छेद करने से गुरु हो, इस कारण हे गुरो! कृपा करके वह अर्थ मुझे सुनाइये।।५४।। जब मुनि ने इस प्रकार से पूछा, तब स्कन्दजी ने प्रणव शरीर अडतीस कलाओं से युक्त पार्वती सहित शिवजी को प्रणाम करके मुनि के निमित्त वेदगुह्य ज्ञान कहना प्रारम्भ किया।।५५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां

एकादशोऽध्यायः ।। ११ ।।

*****

बारहवाँ अध्याय

स्कन्दजी बोले- हे महाभाग! हे वामदेव मुनीश्वर! आप धन्य हो, आप शिवजी के परम भक्त हो, शिवज्ञान जाननेवालों में श्रेष्ठ हो।।१।। आपको त्रिलोकी में कुछ भी अविदित नहीं है, तो भी लोकानुग्रह करने हेतु मैं आप से कहता हूं।।२।। इस लोक में जीव अनेक प्रकार के शास्त्रों से मोहित हो गये हैं, परमेश की विचित्र माया से वंचित हैं।।३।। साक्षात् प्रणव अर्थ महेश्वरजी को नहीं जानते, जो सगुण-निर्गुण ब्रह्म तीनों देवों को प्रकट करनेवाला परमदेव है।।४।। मैं दक्षिण भुजा उठाकर सौगन्ध पूर्वक कहता हूं, यह सत्य है और सत्य है।।५।। प्रणव के अर्थ साक्षात् शिवजी ही ने प्रधानता से कहे हैं, श्रुति, स्मृति, शास्त्र, पुराण और आगमों में यह बात कही है।।६।। जहां जाकर मन के सहित वाणी निवृत्त हो जाती है, जिसके आनन्द को प्राप्त करके फिर विद्वान् कहीं से भयभीत नहीं होता।।७।। जिनसे ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र पूर्वक यह सम्पूर्ण जगत् होता है, जो भूतेन्द्रिय सहित इस जगत् को उत्पन्न करते हैं।।८।। वह कहीं से उत्पन्न नहीं होते हैं, जिनमें विद्युत, सूर्य और चन्द्रमा भी प्रकाश नहीं करते।।९।। जिनकी भाषा से यह सब जगत् प्रकाशमान होता है, वह सब ऐश्वर्य से प्राप्त होने से ही महेश्वर कहलाते हैं।।१०।। जो आकाश के मध्य में रहने पर शम्भुजी मुमुक्षुओं से ध्यान किये जाते हैं, जो सर्वव्यापी प्रकाशात्म स्वरूप चिन्मय हैं।।११।। जिस पुरुष की पराशक्ति भाव से जानी जाती है, वह निर्गुण और सगुण और निष्कल तथा शिवा हैं।।१२।। जिनके तीन प्रकार के रूप हैं, स्थूल और सूक्ष्म और उस-से-परे, हे मुने! मुमुक्षुओं को उनका ध्यान करना चाहिये।।१३।। वह सम्पूर्ण देवों के आदिदेव सनातन

है, निष्कल है, जो ज्ञानक्रिया के स्वभाववाले हैं, उन्हें परमात्मा कहते हैं।।१४।। उस देवाधिदेव की मूर्ति साक्षात् सदाशिव हैं, वह देव पंचमन्त्र के शरीरवाले कलापंचक विग्रहवाले हैं।।१५।। शुद्ध स्फटिकमणि के समान प्रसन्न और शीतल कान्तिवाले, पांच मुख, दश भुजा, पंचदश नयन।।१६।। इशानदेव मुकुट करके युक्त, पुरातन पुरुष, अघोर हृदय वामदेव, गुह्यभूत मूर्त स्वरूप।।१७।। सद्य पादतन्मूर्ति साक्षात् सम्पूर्ण निष्कलमूर्ति सर्वज्ञत्वादि, छः शक्ति और छः प्रकार से शरीर का अंगीकार करनेवाले।।१८।। शब्दादि शक्तियों से स्फुरायमान हृदयकमल में विराजित और मनोन्मनी अपनी शक्ति से वाम भाग में विभूषित हैं।।१९।। मन्त्रादि छः प्रकार के अर्थ और उपन्यास के मार्ग समष्टि-व्यष्टि भाव के प्रणवात्मक अर्थ को कहता हूं, श्रवण कीजिये।।२०।। प्रथम उपदेश का क्रम कहा जाता है, सो सुनिये, हे महाराज! इस लोक में चार वर्ण विख्यात हैं।।२१।। इनमें तीन वर्णों को वेद का आचार कहा है, शूद्र को वेद का अधिकार नहीं है, वे केवल सेवा ही करे।।२२।। और अपने आश्रम में रत सब तीनों वर्णों को श्रुति-स्मृति का धर्म ही अनुष्ठान करना चाहिये, दूसरा नहीं।।२३।। श्रुति-स्मृति के ही कहे हुए धर्म से सिद्धि की प्राप्ति होगी, वेदमार्ग के दिखानेवाले परमेश्वर ने ऐसा कहा है।।२४।। वर्णाश्रम के आचार रूपी पुण्य से परमेश्वर का पूजन करे, ऐसा करने से बहुत से मुनिश्रेष्ठ उनकी सायुज्यता को प्राप्त हो गये हैं।।२५।। ब्रह्मचर्य से ऋषि, यज्ञक्रिया के मार्ग से देवता और पितर स्वधा से तृप्त हो गये हैं, ऐसा श्रुति कहती है।।२६।। इस प्रकार तीन ऋणों से मुक्त होकर, वानप्रस्थाश्रम को प्राप्त होकर शीत, उष्णता, सुख, दुःख सहनेवाला जितेन्द्रिय।।२७।। तपस्वी आहार जीतनेवाला यम-नियमादि योग का अभ्यास करे, जिस प्रकार से बुद्धि निश्चल और दृढ़ हो जाय।।२८।। इसी प्रकार शुद्धता के क्रम से सब कर्म करे और सब काम्य कर्मों का त्याग करके ज्ञानमयी पूजा में तत्पर हो जाय।।२९।। यह साक्षात् ज्ञानमयी पूजा शिवजी की ऐक्यता और जीवन्मुक्ति की देनेवाली है, यह सर्वोत्तम विकार रहित यतियों को जाननी चाहिये।।३०।। हे महाप्राज्ञ! आपके स्नेह से मैं कहता हूं, लोक के अनुग्रह से उसका प्रकार कहता हूं, सो सावधान होकर सुनिये।।३१।। सब शास्त्र के अर्थ को जाननेवाले वेदान्त के पारगामी बुद्धिमान् आचार्य के पास बुद्धिसम्पन्न यति जाकर।।३२।। बुद्धिमान् अनेक दण्ड और प्रणाम से उनको सन्तुष्ट करे।।३३।। जो गुरु है वह शिव है, जो शिव है सो गुरु है, ऐसा मन में विचार करके अपना विचार गुरु से निवेदन करे।।३४।। फिर गुरु की आज्ञा पाकर बारह दिन पयोव्रत करे, शुक्लपक्ष की चौथ वा दशमी को विधिपूर्वक।।३५।। स्नान करके, प्रातःकृत्य करके, शुद्ध होकर, विधिपूर्वक गुरु को बुलाकर नान्दीश्राद्ध करे।।३६।। उसमें विश्वेदेवा सत्यवसु संज्ञावाले कहै हैं, हे ऋषि! श्राद्ध में ब्रह्मा, विष्णु और महेश यह तीन कहे हैं।।३७।।

ऋषिश्राद्ध में देवक्षेत्र मनुष्य कहे हैं, द्रव्यश्राद्ध में वसु, रुद्र, आदित्य वर्णन किये हैं।।३८।। मनुष्यश्राद्ध में चार सनकादिक कहे हैं, भूतश्राद्ध में पांच महाभूत कहे हैं।।३९।। चक्षुरादि इन्द्रिय समूह और जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज यह चार प्रकार का भूतसमूह कहा है, पितृश्राद्ध में बाप, दादे, परदादे यह तीन कहे हैं।।४०।। मातृश्राद्ध में माता, दादी, परदादी कही है, आत्मश्राद्ध में अपने पिता, पितामह।।४१।। प्रपितामह सपत्नीक ग्रहण किये हैं, मातामह (नाना) के श्राद्ध में नाना, परनाना, बुड्ढे परनाना का ग्रहण किया है।।४२।। प्रतिश्राद्ध में दो ब्राह्मण जिमावे, उनको बुलाकर स्वयं आचमन करके पवित्र होकर उनके चरण धोवे।।४३।। और इस प्रकार कहे सम्पूर्ण सम्पत्ति की प्राप्ति के कारण, आपत्तियों को दूर करने के लिये अग्नि, अपार संसार–सागर के सेतु, ब्राह्मणों के चरणों की रज मुझे पवित्र करे।।४४।। आपत्ति रूप अन्धकार दूर करने के लिये सूर्य, इच्छित पदार्थ देने को कामधेनु, समस्त तीर्थों के जल की पवित्र मूर्त्ति, ब्राह्मणों के चरणों की रज मेरी रक्षा करे।।४५।। यह जप करके फिर पृथ्वी पर साष्टांग दण्डवत् करे और शिवजी के सम्मुख पूर्व को मुख करके खड़े होकर उनके चरणों का ध्यान करते हुए।।४६।। हाथ पवित्र करके शुद्ध होकर नवीन यज्ञोपवीत धारण करके दृढ़ आसन पर बैठकर तीन प्राणायाम करके तिथ्यादि सुनकर।।४७।। मेरे संन्यास का अंगीभूत जो वैश्वदेवादि है, सो क्रम से करके पूर्वोक्त देवश्राद्ध आदि भेद से मातामह पर्यन्त पार्वणश्राद्ध।।४८।। आपकी आज्ञा से विधिपूर्वक करूंगा, ऐसा संकल्प करके कुशों को उत्तर की ओर त्याग कर दे।।४९।। फिर ब्राह्मणों का हाथ स्पर्श करके वरण का क्रम प्रारम्भ करे, पवित्री को हाथों से स्पर्श करके ब्राह्मणों से कहे।।५०।। विश्वेदेवा के निमित्त आपका वरण किया है, क्षणमात्र को आप स्वीकार कीजिये।।५१।। इस प्रकार सबको प्रसन्न करे, सर्वत्र यही क्रम है, इस प्रकार वरण समाप्त करके मण्डल की रचना रचे।।५२।। उत्तर से लेकर दशों मण्डलों को अक्षतों से पूजन करे, उन मण्डलों पर ब्राह्मणों को बैठाकर उनके चरणों पर अक्षत डाले।।५३।। विश्वेदेवा स्वरूप ब्राह्मणों को सम्बोधन करके उनसे कहे, यह आपके निमित्त पाद्य है, ऐसा कहकर कुश, पुष्प, अक्षत, जल दे।।५४।। फिर पाद्य देकर मुख धुलाकर उत्तर की ओर मुख करके बैठाकर, आचमन कराके उनको श्रेष्ठ आसनों पर बैठावे।।५५।। विश्वेदेवा रूप ब्राह्मणों के निमित्त यह आसन है, ऐसा कहकर कुशा का आसन दे, फिर स्वयं कुश हाथ में लेकर स्थित हो।।५६।। और इस नान्दीमुख श्राद्ध में विश्वेदेवा के निमित्त आप क्षणमात्र स्थित हो जाइये ऐसा कहे।।५७।। आप दोनों स्वीकार कीजिये, हम स्वीकार करते हैं, ऐसा वे दोनों ब्राह्मण कहें।।५८।। कि आपके संकल्प की सिद्धि सम्पूर्णता से हो, तब ब्राह्मणों से प्रार्थना करे कि, आप अनुग्रह कीजिये।।५९।। तब शुद्ध केले के पत्तों में धोकर बनाये हुए अन्नादि

भोजन के पदार्थ परोसकर और पृथक कुश बिछाकर ।।६०।। और जल से छिड़ककर पीछे प्रत्येक पात्र को हाथ में लेकर ।।६१।। आदर से वे पात्र पृथ्वी पर रखकर 'पृथ्वीते पात्रम्०' यह मन्त्र पढ़े, देवता आदि को चतुर्थी विभक्ति उच्चारण करके ।।६२।। अक्षत सहित जल ग्रहण करके 'देवाय स्वाहा' यह कहकर उस अन्न को त्याग दे और 'इदं न मम' अन्त में ऐसा कहे, इस प्रकार सर्वत्र करे ।।६३।। जिनके चरणकमल के स्मरण से जिनके श्रीनाम के जप से न्यून कर्म भी पूर्ण हो जाता है, 'उन महेश्वरजी को अम्बा सहित नमस्कार करता हूं' ।।६४।। ऐसे कहकर उनसे कहे 'जो कुछ मैंने किया है, इन नान्दीमुख श्राद्ध को आप यथायोग्य कहिये' ।।६५।। ब्राह्मण कहे 'ऐसा ही हो,' तब वह उन ब्राह्मण श्रेष्ठों को प्रसन्न करके और अपने हाथ से जल छोड़कर पृथ्वी पर दण्डवत् करके ।।६६।। फिर उठकर कहे कि, 'यह ब्राह्मणों को अमृत स्वरूप हो', और हाथ जोड़कर उदार बुद्धि से परम प्रीति से प्रार्थना करे ।।६७।। 'नमस्ते रुद्र मन्यवे०', 'अग्नाविष्ण सजोषसे०' इत्यादिक ग्यारह अनुवाक (सहस्रशीर्षा) इत्यादि पुरुषसूक्त को वा ईशानादि पांच ब्रह्म के नामों को चित्त में सदाशिवजी का ध्यान करके जप करे ।।६८।। भोजन के अन्त में रुद्रसूक्त को समाप्त करके उन ब्राह्मणों को 'अमृतापिधानमसीति०' इस मंत्र से जल देकर ।।६९।। चरण धोकर, आचमन करके, पिण्ड के स्थान में स्वयं जाकर और मौन होकर पूर्व को बैठकर तीन प्राणायाम करे ।।७०।। और कहे 'अब मैं नान्दीमुख श्राद्ध के अंग रूप पिण्डदान करूंगा,' ऐसा संकल्प करके दक्षिणादि से आरम्भ करके उत्तर तक ।।७१।। नौ रेखा लिखे, उसके आगे क्रम सहित देवादिक पांच स्थानों में दो-दो कुश बिछावे ।।७२।। और मौन हो कर अक्षत सहित क्रम से तीन स्थानों में जल दे, दूसरे स्थान में माताओं को मार्जन करे, उसके उपरान्त ।।७३।। 'यहां पितर स्थित हो' ऐसा कहकर अक्षत, जल समर्पण करे, इसी क्रम से देवताओं के पांचों स्थानों में समर्पण करे ।।७३।। फिर चतुर्थ्यन्त उन-उन देवताओं के नाम लेकर प्रत्येक उन पांच स्थानों में पिण्डदान करे ।।७५।। मौन होकर पित्रादि पंचकस्थानों में जल, चावल चढ़ावे और अपने गृह्यसूत्र के अनुसार पिण्डदान दे, फिर श्रेष्ठगुण के निमित्त जल और चावल चढ़ावे ।।७६।। और हृदयकमल के मध्य में सदाशिवजी का ध्यान करे, 'यत्पादपद्मस्मरणात्०' इत्यादि इस श्लोक को फिर पढ़े ।।७७।। फिर ब्राह्मणों को नमस्कार कर अपनी शक्ति के अनुसार दक्षिणा देकर, क्षमा कराके उनको बिदा करे ।।७८।। पिण्ड को छोड़कर गोग्रास दे अथवा जल में छोड़ दे, फिर पुण्याहवाचन करके इष्टजनों के संग भोजन करे ।।७९।। दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर और नित्यक्रिया व्रत करके बगल और उपस्थ के बालों को छोड़कर क्षौर कर्म करावे ।।८०।। केश, दाढी, मूछ, नाखून को कर्म की विधि में छोड़कर अर्थात् गुह्य के बालों को छोड़कर विधिपूर्वक क्षौर कर्म के विधान से करावे ।।८१।। स्नान करके

शुद्ध धोती पहनकर दो आचमन करके मौन होकर विधिपूर्वक भस्म धारण करके पुण्याहवाचन करे।।८२।। प्रोक्षण करके शुद्ध देह के स्वभाव से होमद्रव्य के निमित्त और आचार्य की प्रदक्षिणा के द्रव्य छोड़कर।।८३।। और सम्पूर्ण द्रव्यजात शिवजी और ब्राह्मणों के निमित्त देकर और भक्तों के निमित्त देकर गुरु रूप शिवजी के निमित्त।।८४।। वस्त्रादि दक्षिणा देकर प्रणाम करके पृथ्वी पर दण्डवत् करे। डोरा, कौपीन वस्त्र, दण्डादि धोया हुआ पवित्र लेकर।।८५।। होम के द्रव्य और समिधादि क्रम से लेकर समुद्र के किनारे, नदी, पर्व, शिवालय।।८६।। वन, कोठ आदि उत्तम स्थानों को विचार करके, आचमन कर, स्थित होकर, मानस जप रूप संजरी को करके।।८७।। ब्रह्ममन्त्र ओंकार सहित और 'नमो ब्रह्मणे०' ऐसा भी तीन बार जप करके 'अग्निमीडे पुरोहितम्०' उच्चारण करे।।८८।। फिर 'महाव्रतमिति०' और 'अग्निर्देवा-नामवमः०' और इसका समाम्नाय 'इषेत्वोजकर्ज्जेत्वा०' ।।८९।। 'अग्नआयाहिवीतये०', 'शन्नोदेवी रभिष्टय०' फिर 'म य र स त ज भ न ल ग' को उच्चारण करके।।९०।। पांच सम्वत्सर मय सहित इनका समान्माय कहा है, फिर शिक्षा को मैं कहूंगा ऐसा कहकर 'वृद्धिरादैच्०' सूत्र कहे।।९१।। फिर 'अथातो धर्मजिज्ञासा०' यह सूत्र उच्चारण करके 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा०' इस ब्रह्मसूत्र को वा केवल वेदों ही को उच्चारण करके जप करे।।९२।। ब्रह्मा, इन्द्र, सोम, सूर्य, प्रजापति,आत्मा, अन्तरात्मा, ज्ञानात्मा।।९३।। परमात्मा इन सबके प्रथम 'ओंकार' पीछे 'नमः' लगाकर चतुर्थी विभक्ति युक्त उच्चारण करके एक मुट्ठी सत्तू ले।।९४।। उन्हें भोजन करके ओंकार सहित दो बार आचमन करके वक्ष्यमाण मन्त्रों से नाभि को स्पर्श करे, उन मन्त्रों में प्रथम 'ओंकार' अन्त में 'नमः' लगावे।।९५।। आत्मा, अन्तरात्मा, ज्ञानात्मा को अपने आत्मा को और प्रजापति को उच्चारण करके।।९६।। 'स्वाहा' अन्त में लगाकर जप करे, पीछे दूध, दही, घृत को पृथक्-पृथक् तीन बार ओंकार से चाटकर दो बार आचमन करके।।९७।। पूर्व की ओर मुख करके दृढ़चित्त होकर स्थिर आसन पर बैठे और विधिपूर्वक तीन प्राणायाम करे।।९८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां

द्वादशोऽध्यायः ।। १२ ।।

*****

तेरहवाँ अध्याय

स्कन्दजी बोले– फिर मध्याह्न समय में प्रसन्न मन होकर स्नान करे, गन्ध, पुष्प, अक्षतादि पूजा के द्रव्यों को लावे ।।१।। नैर्ऋत्य की ओर विधि से देवपूजित विघ्नेश (गणेश) का पूजन करे, (गणानांत्वा०) इस मन्त्र से विधिपूर्वक आवाहन करे ।।२।। लालवर्ण, महाकाय, सम्पूर्ण आभूषणों से भूषित, पाश, अंकुश, अक्ष, श्रेष्ठ हाथ में धारण किये हुए ।।३।। इस प्रकार शिवपुत्र प्रभु श्रीगणेशजी को ध्यान करके क्रम से गन्धादि से अर्चन करके खीर, पुये, नारियल, मिष्ठान्न आदि ।।४।। नैवेद्य से सन्तुष्ट करके ताम्बूल देकर विघ्नेश की प्रार्थना करे और सन्तुष्ट करके नमस्कार करे ।।५।। अपने गृह्यसूत्र की विधि से आज्य के श्रेष्ठभाग को अग्नि में हवन करे, आज्यभाग के हवन में जो अग्निमुख तन्त्र है ।।६।। उसे करके 'भू: स्वाहा' ऐसा कहकर श्रुवे से पूर्णाहुति देकर हवन समाप्त करे और अपराह्न की समाप्ति पर्यंत गायत्री का जप करता रहे ।।७।। फिर स्नान पूर्वक सन्ध्याकाल की सन्ध्या समाप्त करके और सन्ध्या समय का होम करके मौन होकर गुरु की आज्ञा ले ।।८।। समिधा, अन्न, घृत के चरु को एक जगह मिलाकर रुद्रसूक्त अथवा सद्योजातादि पांच मन्त्रों से हवन करे ।।९।। ईशानादि पंचब्रह्ममन्त्रों से उमा सहित महादेवजी का अग्नि में ध्यान करे 'गौरीर्मिमाय०' इस मन्त्र से हवन करके गौरी को स्मरण करता हुआ ।।१०।। फिर 'अग्नयेस्विष्टकृते स्वाहा' इस मन्त्र से एक बार आहुति दे, इस प्रकार हवन करके, तन्त्र को समाप्त करके फिर अग्नि के उत्तर की ओर ।।११।। मौन होकर कुश के आसन वा मृगचर्म पर स्थित होकर जब तक ब्रह्ममुहूर्त हो, तब तक दृढ़मन से गायत्री जपता रहे ।।१२।। फिर स्नान करे और जो जल स्नान में अशक्त हो, तो भस्म स्नान करे, फिर उस चरु को मिलाकर अग्नि पर रखकर ।।१३।। उसका जल पृथक् करके कुश पर बैठकर चरु को घृत से मिश्रित करके व्याहृती का उच्चारण करके रुद्रसूक्त का जप करे ।।१४।। ईशानादि पंचब्रह्म को उच्चारण करके शिवजी के चरणकमलों में मन लगाकर प्रजापति, इन्द्र, विश्वेदेवा ।।१५।। और ब्रह्माजी इनके नाम के अन्त में 'नम:' लगाकर आदि में 'ओं' लगाकर चतुर्थी विभक्ति सहित उच्चारण करके अर्थात् 'ॐ प्रजापतये स्वाहा' इत्यादि इस प्रकार जप पुण्याहवाचन करके ।।१६।। तन्त्र के सम्मुख 'अग्नये स्वाहा' यह कहकर अग्नि के मुख की ओर से निवृत्त होकर पीछे 'प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा०' इत्यादि पांच आहुतियां देकर ।।१७।। और समिधा, अन्न, घृत के भेद से शक्ति सहित हवन करे, पीछे चरु और घृत से 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' यह मन्त्र उच्चारण करके हवन करे,

फिर रुद्रसूक्त और पंचब्रह्म के मन्त्रों का जप करे।।१८।। फिर महेशादि चतुर्व्यूह के मन्त्रों का जप करके अपनी शाखा के मार्ग से महेशादि मन्त्रों से हवन करे।।१९।। तन्त्र के ऊपर उन-ऊन देवताओं के उद्देश्य से हवि दे, इस प्रकार अग्निमुख से कर्मतन्त्र को प्रवृत्त करे।।२०।। फिर अपनी शुद्धि के निमित्त विरजाहवन करे, प्रकृति आदि छब्बीस तत्त्व रूप इस देह में लीन।।२१।। आत्मशुद्धि के निमित्त विरजा होम करके कहे कि, 'मेरे देह के तत्त्व शुद्ध हो जायँ' ऐसा स्मरण करके फिर आत्मशुद्धि के निमित्त तैत्तिरीय आरण्यक के भद्र प्रपाठक में अरुणकेतुक मन्त्र।।२२।। 'अष्टयोनिमष्टपुत्रा०' यहां से 'सप्त पुरुषा०' यहां तक पढ़े, फिर घृत लेकर, मौन होकर शिवजी के चरणकमलों को स्मरण करके।।२३।। पृथ्वी आदि शब्दादि और वागादि पांच तथा श्रोत्रादि पांच इन्द्रिय- सिर, पाद, पीठ, उदर यह चार।।२४।। और जंघा को योजन करके फिर त्वक् आदि सात धातु, फिर प्राणादि पांच, अन्नादि पांच कोश।।२५।। मन, बुद्धि, अहंकार, ख्याति, संकल्प, गुण, प्रकृतिपुरुष।।२६।। पुरुष का भोक्तापन अर्थात् प्रतिपन्न मनुष्य के भोग के निमित्त पांच तत्त्व के भी जो अन्तर में वर्तमान हैं।।२७।। वह पांच तत्त्व कहते हैं, नियति (स्थिति), काल सहित, राग, विद्या, कला पंचक, हे मुनीश्वर! यह माया से ही उत्पन्न हैं।।२८।। श्रुति में प्रकृति को माया ही कहा है, उसी से यह तत्त्व उत्पन्न हुए हैं, यही श्रुति में लिखा है।।२९।। काल स्वभाव का ही नाम नियति है, यह श्रुति में लिखा है, इसी पंचक का नाम पंचकंचुक कहा है।।३०।। इन पांच तत्त्वों के बिना जाने विद्वान् भी मूढ़ ही हो जाता है, प्रकृति के नीचे नियति और ऊपर यह पुरुष है।।३१।।*काकाक्षि न्याय के आश्रित होकर यह पुरुष नियत प्रकृति में वर्तता है, इसी का नाम विद्यातत्त्व है, शुद्ध विद्या महेश्वर।।३२।। सदाशिव, शक्ति और शिव यही पंचक कहलाता है, 'प्रज्ञानंब्रह्म' इस वाक्य से यह शिवतत्त्व ही कहा है।।३३।। हे मुनीश्वर! जो पृथ्वी से आदि लेकर शिवजी तक तत्त्व हैं, अपने कारण प्रकृति में लय के द्वारा इसकी शुद्धि करनी चाहिये।।३४।। ग्यारह मन्त्रों को परमस्मैपद पूर्वक शिवज्योति यहां तक उच्चारण करके।।३५।। 'इदं न मम' यह कहे, इसीका नाम प्रकृति देवता के उद्देश्य से त्याग है, इसके उपरान्त 'विविद्यै स्वाहा', 'कपोतकाय स्वाहा'।।३६।। 'व्यापकाय परमात्मने इदं न मम' ऐसा कहे, शिवा ज्योति यहां चतुर्थी लगाकर और 'विश्वाभूता इदम्०' तथा 'घसनोत्सुकदायेदं०' इस प्रकार चतुर्थी विभक्ति से उच्चारण करे, 'त्रैलोक्यव्यापिने परमात्मने देवाय इदं न मम' ऐसा कहे।।३८।। 'उत्तिष्ठ' इस मन्त्र से 'ॐ विश्वरूपाय पुरुषाय स्वाहा' यह कहे।।३९।। फिर 'त्र्यैलोक्यव्यापिने परमात्मने शिवाय इदं न मम' इस प्रकार कहकर भाग दे।।४०।।

* जिस प्रकार काक की एक चक्षु दोनों गोलक में जाती है और दोनों नेत्रों का कार्य करती है, एक ही का दोनों से सम्बन्ध है, यही काकाक्षि न्याय है।

अपने शाखा में कहे विधान के अनुसार तन्त्रकर्म करके गुरु के निमित्त घृत मिले चरु को किंचित् खवाकर ।।४१।। सुवर्णादि की दक्षिणा उनके निमित्त दे, फिर ब्रह्मा को विदाकर प्रातः उपासना करके हवन करे ।।४२।। 'संमां सिञ्चन्तुमरुतः०' यह मन्त्र जपकर मौन होकर 'याते अग्न०' इस मन्त्र से अग्नि को प्रज्ज्वलित करके ।।४३।। हाथ से अद्वैत तेजवाले अपनी आत्मा में अग्नि को आरोपण करके फिर प्रातःकाल की सन्ध्योपासना करके और सूर्य को नमस्कार करके ।।४४।। नाभि तक जल में प्रवेश करे, पीछे प्रवेश करावे और प्रेम से सावधान होकर उन मन्त्रों को जपता रहे ।।४५।। और जो आहिताग्नि (अग्निहोत्री) प्रजापत्येष्टि करे, वह सम्यक् प्रकार से श्रौत वैश्वानर में हवन करके सब वेद और दक्षिणा सहित सब देकर ।।४६।। अग्नि को आत्मा में आरोपण करके घर चला जाय, संन्यासी हो जाय, सावित्री के पहले पाद का उच्चारण करके ।।४७।। 'सावित्रीं प्रवेशयामि०' ऐसा कहकर 'भूरोम्' उच्चारण करे, फिर गायत्री के दूसरे पाद का उच्चारण करके ।।४८।। 'सावित्रीं प्रवेशयामि०' ऐसा कहकर 'भुवरोम' ऐसा कहे, फिर तीसरे पाद का उच्चारण करके 'सावित्रीं प्रवेशयामि०' ।।४९।। ऐसा कहते हुए 'सुवरोम्' कहे, फिर गायत्री के तीन पाद उच्चरण करके ।।५०।। 'सावित्रीं प्रवेशयामि०' कहकर 'भूभुर्वः सुवरोम्' ऐसा कहे ।।५१।। यह भगवती साक्षात् शंकरजी के आधे शरीरवाली है; पांच मुख, दश भुजा, पन्द्रह नेत्र, उज्ज्वल शरीर ।।५२।। नवरत्न किरीट से प्रकाशित उदित चन्द्रमा के समान लेखावाली, शुद्ध स्फटिक मणि के समान दश आयुध धारण किये ।।५३।। हार, केयूर, खँडुरा, कौंधनी, नुपूरादि से भूषित शरीरवाली दिव्य वस्त्र रत्नों के भूषण धारे ।।५४।। विष्णु, ब्रह्मा, देव, ऋषि, गन्धर्व, दानव और मनुष्यों से सदा सेवनीय, सबकी आत्मा में सदा व्याप्त रहनेवाले ।।५५।। शिवा सदाशिव देव की मनोहर धर्मपत्नी हैं, जो जगन्माता तीनों जगत् की उत्पन्न करनेवाली, त्रिगुणात्मक निर्गुणा है ।।५६।। ऐसा विचार करके बुद्धिमान् गायत्री का जप करे, यह आदि देवी त्रिपदा ब्राह्मणत्व देनेवाली अजा है ।।५७।। जो पापी शिव रूप गायत्री को अन्यथा मानता है, वह कल्प पर्यन्त घोर नरक में पड़ता है ।।५८।। वह व्याहृतियों से उत्पन्न हुई उन्हीं में लय हो जाती है और वे व्याहृति प्रणव से उत्पन्न होकर उसी में लय हो जाती है ।।५९।। प्रणव ही सब वेदों की आदि है, प्रणव ही शिव का वाचक है, यह मन्त्रों का राजा भी महा बीज रूप मन्त्र है ।।६०।। वह प्रणव शिव और शिव ही प्रणव हैं, वाच्य-वाचक में कुछ भी भेद नहीं है ।।६१।। इसी महामन्त्र को काशी में शरीर त्याग करनेवालों को मरते समय उपदेश देकर शिवजी मुक्त करते हैं ।।६२।। इस कारण परमकारण देव एकाक्षर श्रेष्ठ को जो यतिश्रेष्ठ हृदयकमल में पूजते हैं ।।६३।। और जो दूसरे धीर, मुमुक्ष, विरक्त तथा लौकिक पुरुष मन को विषय से निवृत्त करके शंकरजी की उपासना करते हैं ।।६४।। जो गायत्री को शिववाचक ओंकार में लय करके 'अहं

वृक्षस्यरेरिव०' इस अनुवाक को जप करके।।६५।। 'यश्छन्दसामऋषभः०' इस अनुवाक को क्रम से जप करके 'श्रुतं मे गोपाये०' तैत्तिरीय शाखा के उपनिषद् के अनुवाक को जपे पीछे 'उत्थितोहम्०' कहे।।६६।। और तीनों इच्छाओं को त्यागे, पुत्र की इच्छा से मैं पृथक् हुआ हूं, इसी क्रम से धन की इच्छा से भी पृथक् हुआ हूं, ऐसा कहकर लोकेषणा से मैं पृथक् हुआ हूं, ऐसा भी कहे। हे मुने! क्रम से पहले मंद, फिर मध्यम और फिर अधिक शब्द से जपे। पहले प्रणव का उद्धार करके सृष्टि, स्थिति, लय के क्रम से करे।।६७।। उनका क्रम यह है– 'भूः संन्यस्तं भुवः संन्यस्तं सुवः संन्यस्त०' यह कहकर।।६८।। इन सब मन्त्रों के अन्त में 'मया' लगा दे, जैसे 'भुवः संन्यस्तं मया०' पहले प्रणव का उच्चारण करके 'भूर्भुवः स्वः०' यह समष्टि व्याहृति उच्चारण करे।।६९।। 'संन्यस्तं मया०' ऐसा कहकर सदाशिवजी को हृदय में ध्यान करके मंद, मध्यम और ऊंचे स्वर से जपे।।७०।। इस प्रकार सावधान होकर, प्रेषमन्त्र को जपकर मुझ से सब प्राणियों को अभय हो 'अभयं सर्वभूतोभ्यो मत्तः स्वाहा०' ऐसा जप करे।।७१।। पूर्वदिशा में अंजली से जल छोड़ दे, शिखा यज्ञोपवीत को गायत्री द्वारा हाथ से उखाड़कर।।७२।। ग्रहण करके ओंकार सहित 'वह्निजाया स्वाहा०', 'ॐ भूः समुद्रं गच्छ स्वाहा०' यह कहकर जल हाथ में लेकर।।७३।। *प्रेषमन्त्र अर्थात् 'भूः संन्यस्तं मया' उन मन्त्रों से शिखा और यज्ञोपवीत जल में डाल दे, फिर जल से आचमन करके पृथ्वी पर वस्त्रादि त्याग करे।।७४।। उत्तर की ओर अथवा पूर्व की ओर मुख करके सात पग चले, कुछ दूर चलने पर 'ठहरो–ठहरो' ऐसा आचार्य कहे।।७५।। तब लोक के व्यवहार के निमित्त, हे भगवन्! दण्ड, कौपीन स्वीकार कीजिये, ऐसा कहकर आचार्य अपने हाथ से दे।।७६।। आचार्य के वचन सुनकर डोरे सहित कौपीन काषाय वस्त्र से शरीर को ढककर दो बार आचमन करे, फिर आचार्य उस शिष्य से कहे।।७७।। 'इन्द्रस्य वज्रोसि तत्०' इस मन्त्र को जपता हुआ दण्ड की प्रार्थना, 'सखाय मां' ऐसा जपता हुआ दण्ड ग्रहण करे।।७८।। फिर शिवजी के चरणकमल जपता हुआ गुरु के निकट जाकर तीन बार पृथ्वी पर लेटकर प्रणाम करे।।७९।। फिर उठकर प्रेम से गुरु को देखता हुआ और गुरु के चरणों के निकट हाथ जोड़कर स्थित हो।।८०।। कर्मारम्भ से पहले ही गोबर को ग्रहण करके बड़े आमलों की बराबर उसके गोले बनावे और उन्हें सुखावे।।८१।। जब वे सूर्य की किरणों से सूख जायँ, तब उन्हें होमाग्नि के मध्य में रख दे, होम की पूर्णता में उस भाग को लेकर रख छोड़े।।८२।। तब गुरु विरजाग्नि के बने हुए श्वेतपिण्डों की राख को 'अग्निरितीभस्म०' इत्यादि मन्त्रों के क्रम से।।८३।। सब अंगों में लगावे, सिर से चरणों तक और 'ईशानादि' पांच मन्त्रों द्वारा सिर से आरम्भ कर के।।८४।। सब प्रकार शरीर में भस्म मलकर त्रिपुण्ड्र धारण करे। 'त्रियायुषैः०' और 'यम्बकं

* यह संन्यासियों का मन्त्र है।

यजामहे०' इन मन्त्रों से सिर से आरम्भ करके ।।८५।। श्रेष्ठ भक्ति से युक्त श्रेष्ठ शिष्य हृदयकमल में उमा सहित शिवजी का ध्यान करे ।।८६।। फिर गुरु प्रसन्न होकर शिष्य के सिर पर हाथ रखकर ऋषि आदि का उच्चारण करके उसके दाहिने कान में मन्त्र कहे, तीन प्रकार से प्रणव का उच्चारण करे ।।८७।। फिर कृपा करके उसके अर्थ को कहे, गुरु को उचित है कि, अध्याय में कहे हुए छः प्रकार के अर्थ का ज्ञान करावे ।।८८।। तब शिष्य बारह प्रकार से पृथ्वी पर गुरु को प्रणाम करके और सदा अधीन होकर रहे, उनकी आज्ञा के बिना अन्य कार्यों को न आरम्भ करे ।।८९।। और गुरु की आज्ञा से शिष्य सदा वेदान्त के ज्ञान में तत्पर होकर और सगुण-अगुण के भेद से शिवज्ञान में तत्पर होकर ।।९०।। वेदान्तमार्ग के अनुसार नित्यप्रति गुरु के ही अधीन हो और कर्म न करे, श्रवणादि के अंगपूर्वक शिवज्ञान में तत्पर होकर प्रातःकालिक अनुष्ठान जप के अन्त तक गुरु करावे ।।९१।। और कैलास प्रस्तर नामवाले उस मण्डल में शिवजी के कहे मार्गानुसार शिष्य पूजन करे ।।९२।। गुरु पूजित देव के नित्यप्रति पूजन करने में असमर्थ हो, तो स्फटिक के सिंहासन सहित एक ईश्वरीय लिंग ग्रहण करे, यदि प्रतिदिन देव को पूजन करने और गुरुपूजन में अशक्त हो, तो स्फटिकमणि के शिवलिंग को पूजा करे ।।९३।। चाहे प्राणत्याग हो जाय, सिर का छेद हो जाय, परन्तु त्रिलोचन शिवजी की पूजा विना भोजन न करे ।।९४।। इस प्रकार तीन बार गुरु के निकट सौगन्ध करके शिष्य दृढ़मन से शिवजी की भक्ति करता हुआ ।।९५।। उत्कण्ठित मन से नित्य परम भक्ति से उसी लिंग में नित्य प्रसन्न होकर शिवजी को पांच आवरण के मार्ग से पूजे ।।९६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां पष्ठ्यां कैलाससंहितायां

त्रयोदशोऽध्यायः ।। १३ ।।

*****

चौदहवाँ अध्याय

वामदेव बोले- हे भगवन्! हे छः मुखवाले! हे विज्ञान अमृत के समुद्र! हे संसार के समस्त देवताओं के ईश्वर! हे शिवजी के पुत्र! हे दीनों के दुःख दूर करनेवाले! ।।१।। छः प्रकार के अर्थ का ज्ञान क्या है? वह कैसे इष्ट का देनेवाला है? छः प्रकार के अर्थ कौन से हैं और उनका ज्ञान क्या है? ।।२।। इसका प्रतिपाद्य कौन है और उसके ज्ञान का फल क्या है? हे स्कन्दजी! आप इस अर्थ को हमसे कहिये ।।३।। इस अर्थ के विना जाने जीवशास्त्र से मोहित हुआ मैं शिवजी की माया से मोहित हो रहा हूं।।४।।

मैं शिवपद के अद्वैत ज्ञानामृत रसायन को पानकर जिससे मैं मोह रहित हो जाऊं ।।५।। इस प्रकार आप कृपा रूपी अमृत की दृष्टि से मुझे देखकर मेरे ऊपर अनुग्रह कीजिये, मैं आपकी शरण में प्राप्त हुआ हूं ।।६।। इस प्रकार मुनि के वचन सुनकर ज्ञानशक्ति धारण करनेवाले प्रभु शिवशास्त्र से विपरीत माननेवालों को महात्रासदायक वचन कहने लगे ।।७।। स्कन्दजी बोले– हे मुनिशार्दूल! जो कुछ आपने पूंछा है, वह आदरपूर्वक समष्टि–व्यष्टि भाव से महेश्वरजी का ।।८।। प्रणवार्थ परिज्ञान रूप मैं विस्तार से कहता हूं, हे सुव्रत! उस एक ही के परिज्ञान में छः प्रकार का अर्थ कहता हूं ।।९।। पहला मन्त्र रूप, दूसरा यन्त्र रूप, तीसरा देवार्थ, चौथा प्रपंचार्थ ।।१०।। पांचवां गुरु रूप को दिखाया हुआ अर्थ और छठा शिष्य के आत्मानु रूप अर्थ, यह छः प्रकार के अर्थ कहे हैं ।।११।। हे मुनिसत्तम! मन्त्र रूप को श्रवण कीजिये, जिसके विज्ञानमात्र से यह पुरुष ज्ञानी हो जाता है ।।१२।। पहला स्वर अकार, पांचवां उकार और प वर्ग के अन्त का मकार बिन्दु और नाद, ये पांच वर्ण वेद में 'ओंकार' कहे हैं ।।१३।। यह समष्टि रूप ही वेद में ओंकार कहा जाता है, नाद सब की समष्टि है, अकार, उकार, मकार ये बिन्दु के आदि में हैं ।।१४।। व्यष्टि रूप में सिद्ध होकर ओंकार शिवजी की वाचकता में सिद्ध है। हे महामतिवान्! अब यन्त्र रूप सुनिये, वह शिवलिंग स्वरूप है ।।१५।। सबसे नीचे पीठ लिखे, उसके ऊपर अकार को लिखे, फिर उ वर्ण, फिर मकार ।।१६।। उसके मस्तक पर बिन्दु और अर्द्धचन्द्राकार नाद लिखे, यन्त्र में पूर्ण होने से सब काम सिद्ध होते हैं ।।१७।। इस प्रकार यन्त्र लिखकर ओंकार से ही वेष्टित करे, उससे उठे हुए नाद से नाद समाप्ति पर्यन्त भेद करे ।।१८।। हे वामदेव! अब शिवजी का कहा हुआ परम गूढ़ देवतार्थ आपके स्नेह के कारण कहता हूं ।।१९।। ''सद्योजातं प्रपद्यामि शिवोमे अस्तु सदा शिवोम्'' साक्षात् श्रुति ने ब्रह्मपंचक का वाचक ओंकार कहा है ।।२०।। प्रणव ब्रह्मरूपवाले सूक्ष्म पांच देवता हैं, यह सब भी शिवजी की मूर्ति ही हैं, पृथक् नहीं जानने ।।२१।। शिवजी का पंचक मन्त्र शिवजी की मूर्ति का भी वाचक है, मूर्ति और मूर्तिमान् में विशेष भेद नहीं है ।।२२।। 'ईशानो मुकुटोपेतः' यहां से आरम्भ करके यह पांचों शिवजी के शरीर कहे हैं, अब पांचों मुखों को सुनिये ।।२३।। पंचमादि से प्रारम्भ करके सद्योजातादि के अनुक्रम से ऊर्ध्व और ईशान तक शिवजी के पांच मुख कहे हैं।।२४।। यही ईशानदेव के चतुर्व्यूह पद में स्थित हैं, पुरुष से प्रारम्भ करके सद्योजात तक चतुष्ट्य ब्रह्म रूप है ।।२५।। और ईशान नामक विख्यात ब्रह्म मिलकर पंचब्रह्म समष्टि कहलाती है। हे मुने! पुरुष के आदि की व्यष्टि सद्योजात के अन्त तक।।२६।। अनुग्रहमय चक्र कहलाता है, यही पंच अर्थ का कारण है, यही पर ब्रह्मात्मक सूक्ष्म निर्विकार अनामय है ।।२७।। अनुग्रह भी दो प्रकार का है; एक तिरोभाव, एक प्रकट भाव, पहला और दूसरा जीवों को पर–अपर मुक्ति का देनेवाला है ।।२८।। ये सदाशिवजी के दो

कृत्य हैं, अनुग्रह सृष्टि आदि विभु के कृत्यों का पंचक कहलाता है।।२९।। हे मुने! वह सृष्टि आदि कृत पंचक के सद्य आदिदेवता कहे हैं, वह परब्रह्म स्वरूप पांचों कल्याण के देनेवाले हैं।।३०।। अनुग्रहमय चक्र शान्ति से परे कलामय है, वही सदाशिवजी में अधिष्ठित होने से परम पद कहलाता है।।३१।। भावितात्मा यतियों को यह पद प्राप्त होता है, जो सदाशिवजी की उपासना करते हैं, जिनका चित्त ओंकार में आसक्त है।।३२।। वे सदाशिवजी की कृपा से इस पद को प्राप्त होकर, हे मुनीश्वरो! वो ब्रह्म रूप देव के साथ अनेक प्रकार के भोग भोगकर।।३३।। महाप्रलय में शिवजी की साम्यता को प्राप्त हो जाते हैं और वे फिर संसार-सागर में नहीं गिरते।।३४।। ''ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे'' यह श्रुति इसी अर्थ को कहती है, यह सदाशिवजी का ऐश्वर्य समष्टि रूप ही है।।३५।। वही सम्पूर्ण ऐश्वर्य से सम्पन्न है, इस प्रकार अथर्वशीर्ष की श्रुति कहती है, वही सब ऐश्वर्य देता है।।३६।। चमकाध्याय में उसके स्थान से कोई श्रेष्ठ नहीं है, ब्रह्मपंचक के विस्तार का नाम ही प्रपंच कहलाता है।।३७।। ब्रह्म से ही निवृत्ति आदि कलाएं हुई हैं, यही सूक्ष्मभूत स्वरूप होकर कारण में रहती हैं।।३८।। हे सुव्रत! इस स्थूल रूप स्वरूपवाले प्रपंच को पांच प्रकार से स्थित होने से ब्रह्मपंचक कहते हैं।।३९।। पुरुष श्रोत, वाणी, शब्द और आकाश, हे मुनिश्रेष्ठ! यह ईशान रूप ब्रह्म से प्राप्त है।।४०।। हे मुनि! प्रकृति, त्वक्, हाथ, स्पर्श, वायु यह पांच पुरुष रूप ब्रह्म से व्याप्त हैं।।४१।। अहंकार, चक्षु, चरण, रूप और पावक यह पांचों अघोर ब्रह्म से व्याप्त हैं।।४२।। बुद्धि, रसना, पायु, रस, जल यह ब्रह्म वामदेव से नित्य व्याप्त हैं।।४३।। मन, नासिका, उपस्थ, गन्ध और भूमि यह पांचों सद्यब्रह्म से व्याप्त हैं, इस प्रकार पंचब्रह्ममय जगत् है।।४४।। जो शिववाचक ॐ कार यन्त्र रूप से कहा है, यह पांचों वर्णों की समष्टि और बिन्दु आदि चार की समष्टिकला प्रणव शिववाचक है।।४५।। शिवजी के उपदेश किये मार्ग से उसका विचार यन्त्र रूप से करना यही प्रणव मन्त्रराज और शिव रूप है।।४६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां

चतुर्दशोऽध्यायः ।। १४ ।।

*****

पन्द्रहवाँ अध्याय

ईश्वर बोले- इसके उपरान्त अब सृष्टि की उत्तम पद्धति कहता हूं, जो महेशादि चतुष्ट्य और सदाशिवजी से होती है।।१।। आकाश के अधिपति प्रभु समष्टि रूप हैं, महेशादि चार रूप उसीकी व्यष्टि हैं (महेश्वर, रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा)।।२।। सदाशिवजी के सहस्रवें अंश से महेश्वरजी की उत्पत्ति कही है, पुरुष अनन्त रूप होने से वायु का अधिपति है।।३।। वाम में मायाशक्ति से युक्त सम्पूर्ण क्रियाओं का अधिपति है, इसीके ईश्वरादि चतुष्ट्य व्यष्टि रूप हैं।।४।। ईश, विश्वेश्वर, परमेश, सर्वेश्वर ही श्रेष्ठ तिरोभाव चक्र है।।५।। तिरोभाव भी दो प्रकार का है, एक रुद्रादि गोचर है, दूसरा जीव समूह के शरीर रूप से स्थित है।।६।। वह जब तक पुण्य-पाप शरीर में स्थित है, तब तक रहता है, कर्म की साम्यता में एक ही होता है, कारण कि जो विभु अनुग्रह करने में समर्थ है, वह तिरोभाव कर्म की साम्यता में एक ही है।।७।। और ईश्वरादि चारों देवता कहे हैं, वह साक्षात् परब्रह्मात्मक निर्विकल्प निरामय हैं।।८।। तिरोभावात्मक जो चक्र है, सो शान्ति कलामय है, यह उत्तमपद महेश्वरजी से अधिष्ठित है।।९।। महेश्वरजी के चरणों की सेवा करनेवाले इस ही पद को प्राप्त होकर महेश्वरजी के भक्त सालोक्य को प्राप्त होकर क्रम से मुक्त हो जाते हैं।।१०।। महेश्वरजी के सहस्रवें अंश से रुद्र की मूर्ति उत्पन्न हुई है, अघोर वदन के आकारवाले तेज तत्त्व के स्वामी हैं।।११।। वे प्रभु वाम भाग हैं, गौरी शक्ति धारण किये संहार करनेवाले हैं, इसी के व्यष्टि रूप शिवादि चार हैं।।१२।। शिव, हर, मृड, भव यह अद्भुत विदित चक्र है। हे मुनीश्वर! यह संहार नामक महादिव्य चक्र है।।१३।। संहार नामक संहारचक्र नित्य-नैमित्तिक महाप्रलय के भेद से तीन प्रकार का है, नित्य जिसमें जीव सुषुप्ति में रहता है, उसका परब्रह्म में लय रहना नैमित्तिक है।।१४।। और उसका परब्रह्म में लय यहां संसार कहा है, ऐसा वेद कहता है, जन्म के दुःख आदि से शान्त हुए अपने स्वरूपों को न जाननेवाले।।१५।। जीवों के विश्राम और कर्मों के पाप के निमित्त महा तेजस्वी रुद्र ने तीन प्रकार के संहार की कल्पना की है।।१६।। यह तीनों संहारकृत्य रुद्र के ही हैं। संहारकाल में भी विभु के सृष्टि की स्थिति का लय तिरोभाव अनुग्रह रूप पंचक है।।१७।। उसमें भवादिक देवता कहे हैं, यह परब्रह्म स्वरूप लोकों पर अनुग्रह करनेवाले है।।१८।। यह संसारचक्र विद्यारूप कलामय हैं, यह निरामय पद रुद्र रूप से अधिष्ठित है।।१९।। रुद्र के आराधन की इच्छा करनेवाले इस पद को प्राप्त होकर रुद्र के सालोक्य पद को क्रम से प्राप्त होकर सायुज्य को प्राप्त होते हैं।।२०।। रुद्रमूर्ति के सहस्र अंश से विष्णुजी का प्रादुर्भाव हुआ है, वह

वामदेव चक्रात्मा जलतत्त्व के नायक हैं ।।२१।। वाम भाग में रमा शक्ति से युक्त सब की रक्षा करनेवाले यही चार भुजा, कमललोचन, श्यामवर्ण, शंख-चक्रादि धारी हैं ।।२२।। इन्हीं विष्णुजी के वासुदेव, प्रद्युम्नादि चार व्यष्टि रूप हैं, जो उपासक वैष्णवों को मुक्ति देनेवाले हैं ।।२३।। वासुदेव, अनिरुद्ध, संकर्षण, प्रद्युम्न नाम से विख्यात स्थिति चक्र कहा है ।।२४।। सृष्टि की स्थिति जगत् के कर्ता ब्रह्मादि का पालन फलभोगी जीवों के प्रारब्ध कर्म के अन्त तक का भोग ।।२५।। रक्षा करनेवाले विष्णुजी का ही यह कृत्य वर्णन किया है और सृष्टि की आदि स्थिति यह विभु विष्णुजी के पांच कृत्य कहे हैं ।।२६।। उसमें प्रद्युम्नादि देवता वर्णन किये हैं, यह निर्विकल्प निरान्तक मुक्ति के आनन्द का करनेवाला है ।।२७।। हे ब्रह्मन्! यह प्रतिष्ठा रूप स्थिति चक्र हैं, यही जनार्दन से अधिष्ठित परमपद कहा जाता है ।।२८।। विष्णुजी के भक्त वैष्णव इस पद को प्राप्त होते हैं, यह वैष्णवों का चक्र सालोक्यादि पद का देनेवाला है ।।२९।। विष्णुजी के सहस्रवें भाग से पितामह उत्पन्न हुए हैं, जो सद्योजात के मुख आत्मा और पृथ्वीतत्त्व के नायक हैं ।।३०।। उस सृष्टिकर्ता जगत् के प्रभु के वाम ओर सरस्वती देवी स्थित हैं, चार मुख, रक्त वर्ण जो गुण रूप हैं ।।३१।। हिरण्यगर्भादि चार रूप इन्हींके व्यष्टि स्वरूप हैं, हिरण्यगर्भ, विराट् पुरुष, काल ।।३२।। यह सृष्टि चक्र ब्रह्माजी के पुत्र भृगु आदि मुनियों से सेवित है, हे ब्रह्मन्! यह सब कामना का देनेवाला तथा परिवार सुख का देनेवाला है ।।३३।। प्रकृति में लीन हुए जीव के कर्मभोग के निमित्त फिर बाहर से लाकर भोग के साधन पुत्र-कलात्रादि और उनके फल हिरण्यादि ।।३४।। उनसे फल सुख-दुःखादि से संयुक्त करने का नाम सृष्टि है, यह पितामह का कृत्य है, जगत् सृष्टि की क्रिया के ज्ञाताओं को यह व्यूह सुख देनेवाला है ।।३५।। हे मुनि! जगत् की सृष्टि में ईश्वर के यह कृत्य पंचक हैं, उसमें कालादि चार देवता वर्णन किये हैं ।।३६।। पंडित जन इसको निवृत्ति रूप सृष्टिचक्र कहते हैं, यह सुन्दर पद पितामह से अधिष्ठित है ।।३७।। ब्रह्म में मन लगानेवाले इसी पद को प्राप्त होते हैं, यह पितामह के सालोक्यादि मुक्ति का देनेवाला है ।।३८।। क्रम से कहे हुए महेशादि चक्रों के चतुष्क के इस चक्र में गौणी वृत्ति से प्रणव का बोध करनेवाला होता है ।।३९।। जिसे वैभव श्रुति वर्णन करती है, ऐसे इस चक्र को पंचारचक्र कहते हैं, "पंचारचक्रं परिवर्तते पृथु" ।।४०।। शिवशक्ति से युक्त एक ही जगत्चक्र है और सृष्टि के पांच अवयव का नाम पंचार है ।।४१।। अलातचक्र रूप अंगारे के समान लय और हृदय से युक्त चारों ओर से वर्तता है, इसी कारण इसको चक्र कहते हैं ।।४२।। स्थूल-सूक्ष्मादि पृथक्-पृथक् होने से स्थूल देखने में आता है, महापराक्रमी शिवजी के हिरण्यमय रूप का ।।४३।। शक्ति कार्य रूपी यह चक्र हिरण्यमय ज्योतिवाला है, यह जल से व्याप्त है और जल से, अग्नि से व्याप्त है ।।४४।। वह्नि वायु से और आकाश से आच्छादित है, आकाश भूतादि तामसाहंकार

से आवृत है, तामसाहंकार महतत्त्व से आच्छादित है ।।४५।। और प्रकृति से महान् आच्छादित है, ऐसा आस्तिक कहते हैं, हे मुनिश्रेष्ठ! इसी को आचार्य ब्रह्माण्ड कहते हैं।।४६।। इस संसारचक्र की रक्षा में सात आवरण कहे हैं, चक्र से दश गुणा जल ।।४७।। ऊपर नीचे से व्याप्त हो रहा है, हे मुनिश्रेष्ठ! इसीको ब्रह्माण्ड जानना चाहिये ।।४८।। इस ही अर्थ को हृदय में करके चक्र के समीप वर्तने से हिरण्यमय स्वरूप को जल के मध्य में वर्तने से श्रुति ने जल मध्यशायी कहा है ।।४९।। अनुग्रह, तिरोभाव, संहार, स्थिति, सृष्टि से निरन्तर एक शक्ति युक्त शिवलीला कहते हैं।।५०।। हे मुनि! बहुत कहने से क्या है? मैं सार कहता हूं। शिवजी ही सम्पूर्ण शक्तिमान् हैं, यह निश्चय है ।।५१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां

पंचदशोऽध्यायः ।। १५ ।।

*****

सोलहवाँ अध्याय

सूतजी बोले– कि, गुरु के इस प्रकार उपदेश रूप वेदार्थ को सुनकर परम सन्देह करके, मुनिश्रेष्ठ आदरपूर्वक कहने लगे ।।१।। वामदेव बोले– हे ज्ञानशक्ति धारण करनेवाले स्वामिन्! हे परमानन्द स्वरूप! आपके मुखकमल से ॐ कार रूप अमृत का पान किया।।२।। अब मैं दृढ़ज्ञान से युक्त हो गया, इस विषय में मेरा सन्देह निवृत्त हो गया, हे महासेन! अब थोड़ा और पूंछता हूं ।।३।। सदाशिवजी से लेकर कीट तक जगत् के रूप की स्थिति जो है, वह सर्वत्र स्त्री–पुरुष रूप से दीखती है, इसमें सन्देह नहीं ।।४।। इस प्रकार रूपवान् जगत् के वही सनातन देव कारण हैं, सो वह स्त्री, पुरुष वा नपुंसक रूप हैं।।५।। अथवा मिले हुए अथवा किसी और प्रकार के हैं, इसका निर्णय नहीं हुआ है, विद्वान् भी शास्त्रों में मोहित होकर अनेक प्रकार से कहते हैं।।६।। और जगत् की सृष्टि करनेवाली श्रुति जगत् के साथ जैसे एकभाव को प्राप्त हो, जिसको विष्णु, ब्रह्मादिक देवता और सिद्ध नहीं जानते।।७।। यह सब जैसे एक मत हो वह आप कहिये, जानता हूं, करता हूं, यह व्यवहार दीखता है।।८।। यह ज्ञान क्रियात्मक व्यवहार सर्वानुभव सिद्ध है, वह देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार से उत्पन्न है।।९।। अथवा महान् आत्मा का रूप है, इसमें सन्देह नहीं है, इन्हीं दोनों बातों से सब में अद्भुत विवाद होता है ।।१०।। सो आप अज्ञानसम्मभूत संशय रूपी विषवृक्ष को उखाड़कर ऐसा कीजिये, जिससे हमारे चित्त की भूमि शिवजी के अद्वैत कल्पवृक्ष के जन्मयोग हो जाय।।११।। हे देव! इस प्रकार हमें कृपा करके समझाइये, हे देवेश! आपकी कृपा से

मैं दृढ़ ज्ञानी हो जाऊंगा।।१२।। सूतजी बोले- इस प्रकार मुनि से पूछे हुए उपनिषद्गर्भित रहस्य को प्रभु कुछेक हंसते हुए बोले।।१३।। स्कन्दजी बोले- हे मुने! इस गुह्य को शिवजी ने कहा है, हे वामदेव! जिस समय शिवजी अम्बाजी से कहते थे।।१४।। उस समय मैं अम्बाजी का दूध पीता हुआ स्वस्थचित्त था, इससे वह मुझे सब स्मरण है।।१५।। सो मैं आप से दयापूर्वक कहता हूं, हे वामदेवजी! हे पुत्र! वह परम गुप्त रहस्य सुनिये।।१६।। हे मुने! कर्म सत्ता रूप तत्त्व से आरम्भ करके जो सविस्तार शास्त्रवाद है, वह विचारवान् पुरुष को विवेकपूर्वक श्रवण करना चाहिये, कारण यह शास्त्रवाद उनका ज्ञान का देनेवाला है।।१७।। बड़े विस्तार युक्त शास्त्रवाद आपने शिष्यों को उपदेश किये हैं, उसमें आपके समान कौन है? अभी तक वह नीच बुद्धि के प्राणी कपिलादि के शास्त्रों को पढ़कर ईश्वर नहीं है, ऐसा कहते हैं और उसका आशय नहीं जानते।।१८।। जो वह शिवनिन्दा करनेवाले पूर्व में छः मुनियों के द्वारा शापित हुए हैं, जिस कारण से कि वे अन्यथावादी हैं, इस कारण उनकी वार्ता नहीं सुननी चाहिये।।१९।। प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपमेय, निगमन इन पांच अवयवों से युक्त क्षिति अंकुरादि कर्तृजन्य देखने से अनुमान प्रयोग का भी परमेश्वर रूप सिद्धि में अवसर दीखता है।।२०।। जिस प्रकार उपरोक्त पंचावयव धूम के देखने से पर्वत अग्निवाला है, ऐसा कहते हैं, इसी प्रकार प्रत्यक्ष प्रपंच के दर्शन के अवलम्बन से।।२१।। परमेश परमात्मा को भी जानना चाहिये, इसमें सन्देह नहीं। स्त्रीपुरुष रूप यह विश्व प्रत्यक्ष ही दीखता है।।२२।। छः कोशवाले इस शरीर में तीन अस्थि, स्नायु, मज्जा पिता से और त्वचा, मांस, रुधिर माता से होती है।।२३।। इस प्रकार सब शरीर में स्त्री-पुरुषभाव के जाननेवाले पण्डित परमात्मा में ही स्त्री-पुरुषभाव को जानते हैं।।२४।। ''सत्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म'' इत्यादि परमात्मा को सच्चिदानन्द रूप श्रुति प्रतिपादन करती है, प्रपंच की निवृत्ति करनेवाला शब्द सदात्मा कहा जाता है।।२५।। ''सदैव सौम्येदमग्र आसीत् इति श्रुतेः'' और चिच्छब्द से जड़ पदार्थ की निवृत्ति प्रतीत होती है, त्रिलिंगवर्ती भी सच्छब्द का इस ब्रह्म में पुल्लिंग रूप से व्यवहार होता है।।२६।। क्योंकि प्रकाश पदार्थ के पुल्लिंग होने से उसके वाची सच्छब्द के पुल्लिंग होने पर ब्रह्म में उसका व्यवहार करके पुल्लिंग कहा जाता है, ज्ञान शब्द का पर्याय होने से चिच्छब्द स्त्री रूप हो गया।।२७।। प्रकाश और चित् यही दोनों जगत् के कारण को प्राप्त हुए हैं, इसी प्रकार सच्चिदात्मा में जगत् के कारणता को प्राप्त होने में।।२८।। एक शिवजी ही भक्तिभाव को प्राप्त हुए हैं, कहीं तेल और बत्ती के मलीन होने से प्रकाश भी मलीन हो जाता है?।।२९।। मलीनता और अशिवता चिता अग्नि में दीखती है, इसीके विवर्त्तवाद होने से शिवत्व होता है, ऐसा श्रुति ने कहा है।।३०।। यही चित् शक्ति जब जीव में आश्रित होती है, तब दुर्बल हो जाती है, उसके निवृत्त करने के लिये सर्वकालिक चित् शक्तिपन

कहा है ।।३१।। शक्तिमान् बलवान् होता है, वह व्यवहार भी देखने में आता है, हे वामदेवजी! यह बात लोक वेद में प्रसिद्ध है ।।३२।। इस प्रकार शिवत्व और शक्तित्व परमात्मा में दिखाया गया है, शिवशक्ति के ही संयोग से सब आनन्द प्राप्त होता है ।।३३।। इसी उद्देश्य कर के पाप रहित मुनि शिवजी में मन लगाकर शिवजी के अनामय लोक को प्राप्त हुए हैं ।।३४।। उन शिव और शक्ति का सर्व आत्मतत्त्व "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" और 'तद्ब्रह्मेति' उपनिषद् में प्राप्त हुए वाक्यों से बृंहि धात के अर्थवाले ब्रह्म शब्द से कहा है, ऐसा ही शारीरक मीमांसा के भाष्य में कहा है, "अस्ति तावद्ब्रह्म नित्य शुद्धमुक्तस्वभावसर्वज्ञसर्वशक्तिरिति" ।।३५।। बृंहणत्व अर्थात् पूर्व के कहे नित्य शुद्धत्वादिक सर्वव्यापित्व पंचब्रह्ममय सत्नाम शिव विग्रह है, उसी में प्रपंच की प्रतीति ब्रह्मशब्द से व्यवहार की जाती है ।।३६।। प्रतिलोम अर्थात् सोहम् इस प्रकार के एकारवाले हंस में प्रणव की प्राप्ति कहूंगा, हे वामदेवजी! सावधान हो कर सुनिये ।।३७।। और व्यंजन सकार का हकार के वर्जन से ॐ इस प्रकार का स्थूल परमात्मा वाचक सूक्ष्म महामन्त्र होता है, ऐसा तत्त्वदर्शी मुनि कहते हैं, उसका उद्धार मैं आपसे कहता हूं ।।३९।। 'अ अं अः' इन तीनों स्वरों में आदि स्वर अकार के (अ) इस प्रकार की पन्द्रहवीं स्वरूपता को प्राप्त होने पर आदि हकार व्यंजन में 'हं' के स्थित होने पर और उसी प्रकार सोलहवें 'अ' रूप जिसकी आदि सकार हो, तब वह (हंस) होता है और जब इसका उलटा अर्थात् आदि में सकार हो, तब महामन्त्र (सोहम्) होता है, यह उद्धार सूक्ष्म होने से महासूक्ष्म है ।।४०।। हंस ही इसका उलटा हो जाता है और सकार का अर्थ शिव ही है कारण कि, वह सर्वनाम विशुद्ध स्वभाव शिवजी के ही बुद्धि विषय है, यह शक्त्यात्मक महामन्त्र शिवजी का ही वाचक है, यह निर्णय है ।।४१।। गुरु के उपदेशकाल में सोहम् शक्त्यात्मक शिव है, 'शिवोहमस्मीति'। यह महामन्त्र जब जीव पर होता है ।।४२।। तब शक्त्यात्मक और शिवांश पशु शिवजी की एकता से साम्यभाग होता है, शक्त्यात्मक और शिवांग होने से शिवजी की समानता का भागी होता है (प्रज्ञानं ब्रह्म) इस वाक्य में प्रज्ञान का अर्थ दीखता है ।।४३।। प्रज्ञानशब्द निस्सन्देह चेतन का पर्याय है, हे मुने! आत्मा चेतन है, यह शिवसूत्र में लिखा हुआ है ।।४४।। जो चेतन है, जिसमें विश्व का सब ज्ञान और क्रिया स्थित है, ऐसे स्वतन्त्र स्वभाववाला परमात्मा कहा है ।।४५।। इत्यादि शिवसूत्र और वार्तिकों में लिखा है और जीव स्वरूप में ज्ञान और बन्ध यह दो लक्षण रहते हैं ।।४६।। आत्मा की उस विश्व के प्रपंच में जो कुछ ज्ञानक्रियात्मक स्वतन्त्रता है, वही आदि भेद से जीव का लक्षण कहा है ।।४७।। यही दोनों चैतन्य ज्ञानात्मक स्वतन्त्रता मायाशक्ति प्रथम सृष्टि प्रयोजन चेष्टा के रूपता को प्राप्त हुई है, इसीको श्वेताश्वेतरोपनिषद् की शाखावाले पराशक्ति कहते हैं, यथा हि (न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते। परास्य

शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च। ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवास्तु शक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् इति) जानता हूं, करता हूं, यह व्यवहार देह इन्द्रियादि का है अथवा आत्मा का है? अब इस प्रश्न का उत्तर कहते हैं, ज्ञानक्रिया इच्छा रूप ही शम्भुजी की तीन दृष्टि हैं।।४८-४९।। यह शम्भुजी कहीं तीन दृष्टि ही कर्ता के मन के बीच में इन्द्रिय द्वारा गोचर देह में प्रवेश करके जीव रूप होकर, जानती और करती है।।५०।। इसी कारण से यह निश्चय आत्मा का रूप है, अब प्रपंच के साथ जो ओंकार की एकता है, सो कहता हूं।।५१।। (ओमितीदं सर्वम्) यह सनातनी तैतरीय श्रुति में लिखा है (तस्मादा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः) इत्यादि उसीसे जगत् की सृष्टि कही है।।५२।। सुनिये, मैं इस श्रुति का तात्पर्य कहता हूं, हे वामदेवजी! आपके स्नेह से वर्णन करता हूं, जिससे ज्ञान हो।।५३।। शिवशक्ति का योग ही परमात्मा कहा गया है, वह परमात्मा ही आकाशादि रूप से परिणामित होता है, जैसे उपादान कारण मृत्तिका का अपने से अभिन्न घट आरम्भ करता है, वह दूध स्वरूप उपादान दही के आकार से बदलता है, रज्जु रूप उपादान अज्ञान सहित सर्पादि आकार से परिणामित होते हैं, पराशक्ति से चित्शक्ति।।५४।। उससे आनन्दशक्ति और उससे इच्छाशक्ति उत्पन्न हुई है, उससे ज्ञानशक्ति और उससे पांचवीं क्रियाशक्ति उत्पन्न हुई है, हे मुने! इन्हीं शक्तियों से निवृत्ति आदि कला हुई है।।५५।। चिदानन्द शक्तियों से नाद और बिन्दु उत्पन्न हुए हैं, इच्छाशक्ति से मकार और ज्ञानशक्ति से पांचवां स्वर उकार।।५६।। हे मुनीश्वर! क्रियाशक्ति से अकार स्वर हुआ है, यह प्रणव की उत्पत्ति हुई, अब पंचब्रह्म की उत्पत्ति सुनिये।।५७।। शिवजी से ईशान, ईशान से पुरुष की उत्पत्ति हुई है, उससे अघोर, उससे वाम सद्याजात हुए हैं।।५८।। और इन्हीं अकारादिकों की मात्रा से अड़तीस कलाएं हुई हैं, ईशान से शान्त्यतीत कला उत्पन्न हुई हैं, पुरुष से शान्तिकला और अघोर से विद्या उत्पन्न हुई है।।५९।। प्रतिष्ठा और निवृत्ति वामदेव और सद्योजात से उत्पन्न हुई हैं, ईश और चित् शक्ति मुख से शिवजी के मिथुन पंचक हुए हैं।।६०।। अनुग्रह, तिरोभाव, संहार, स्थिति, सृष्टि रूपादि कृत्यों का हेतुपंचक होता है, यह उस बात को जाननेवाले पण्डित मुनियों ने कहा है।।६१।। वाच्य-वाचक के सम्बन्ध से मिथुनपने को प्राप्त होनेवाले कलावर्ण स्वरूपवाले इस पंचक में भूतपंचक।।६२।। आकाशादि क्रम से उत्पन्न हुआ है, हे मुने! ''आद्यामैथुनंइश चित्शक्तिआत्मक'' से आरम्भ करके भूतपंचक को चिच्छक्त्यात्मक कहते हैं।।६३।। आकाश में शब्द गुण और वायु का शब्दस्पर्श गुण होता है, शब्दस्पर्श रूप गुण प्रधानवाली अग्नि हैं।।६४।। शब्दस्पर्श रूप रस गुणवाला जल कहलाता है, शब्दस्पर्श रूप रसगन्ध पृथ्वी का गुण है।।६५।। यह सब गुण क्रम-क्रम से अपने-अपने भूती में व्यापक हो रहे हैं और गन्धादि के क्रम से विपरीतता से व्याप्त हो रहे हैं।।६६।। यही भूतपंचक का रूप कहलाता है और यही

प्रपंच सम्पूर्ण समष्टि आत्मा विराट् से ब्रह्माण्ड कहलाता है ।।६७।। पृथ्वीतत्त्व से लेकर शिवतत्त्व तक तत्त्वों का समुदाय शक्ति सहित परमेश्वर में लय करके जीव रूप विराट् में लीन हो जाता है ।।६८।। और सृष्टि के प्रारम्भ में फिर शक्ति से निर्गत होते हैं और स्थूल प्रपंच रूप से प्रलय पर्यन्त स्थित रहते हैं ।।६९।। अपनी इच्छा से जगत् उत्पन्न करने के निमित्त महेश्वरजी का उद्यत होना है, उस पहले कार्य को ही जो क्रियात्मक होता है, उसे शिवतत्त्व कहते हैं ।।७०।। सब कृत्य के अनुवर्तन होने से यही इच्छाशक्तितत्त्व कहलाता है, ज्ञान और क्रियाशक्ति में ज्ञान अधिक होने से सदाशिवतत्त्व है और ज्ञान की अपेक्षा क्रिया के अधिक होने में ।।७१।। महेश्वरतत्त्व अधिक जानना चाहिये, ज्ञान क्रियाशक्ति के समान होने में विशुद्ध ज्ञान स्वरूप शिवतत्त्व है ।।७२।। और अपने अंग रूप अवयवों में भेदबुद्धि से मायातत्त्व कहलाता है, जिस समय शिवजी अपना परमैश्वर्यरूप अपनी माया से ।।७३।। छिपाकर सम्पूर्ण पदार्थ ग्रहण करते हैं, तब वह पुरुषनाम के सृष्टि (पुरुष एवेद ँ सर्व ँ यत्किंचिच्च जगत्यां जगदित्यादि) और (तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्) यह श्रुति प्रादुर्भूत होती है ।।७४।। यही ईश्वर की माया से मोहित होकर जीव रूप हुआ मूढ़ता से अनेक कर्म कर्ता अपने को सब से भिन्न मानता है ।।७५।। और जगत् को शिवजी से अभिन्न नहीं मानना, इस प्रकार मोहित हो जाता है, जाने तो मोह न हो ।।७६।। जिस प्रकार इन्द्रजाल विद्या जाननेवाले को भ्रम नहीं होता, उसी प्रकार गुरु के ऐश्वर्य से ज्ञानयुक्त होकर शिष्य शिव रूप हो जाता है ।।७७।। सम्पूर्ण कर्तृत्व रूप सर्वज्ञ रूप स्वरूपवाली पूर्णत्व होने से नित्यत्व और व्यापकत्व स्वरूपवाली ।।७८।। शिवजी की पांच शक्ति संकोच युक्त सूर्य रूपवाली हैं, संकोच रूप से नित्य प्रकाश करनेवाली हैं ।।७९।। जीव की कलानाम विद्या राग, काल, नियति, पंचतत्त्व के रूप से कला में होती है ।।८०।। कुछ कर्तापन का कारण कुछ तत्त्व का एक साधन जिसमें हो, उसका नाम विद्या और विषयों में प्रीति कराने का नाम राग है ।।८१।। भाव और अभाव को क्रम से परिच्छेदक होकर वह भूतों का आदि कहा जाता है ।।८२।। यह मुझे कर्तव्य है, यह नहीं, उसीका नाम नियामक है, विभु की शक्ति का नाम नियति है, उसके त्याग से यह जीव पतित हो जाता है ।।८३।। यह पांच इस जीव स्वरूप के आवरण हैं, इसीको पंचकंचुक कहते हैं, यह अन्तरंग साधनेवाले हैं ।।८४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां

षोडषोऽध्यायः ।। १६ ।।

*****

सतरहवाँ अध्याय

वामदेव बोले– हे भगवन्! आपने प्रकृति के नीचे नियति और ऊपर पुरुष हैं, ऐसा पहले कहा है, अब अन्यथा कैसे कहते हो? ।।१।। और हे प्रभु! माया से संकुचित रूप आपने उससे नीचे कहा है, हे नाथ! मेरा यह सन्देह दूर कीजिये ।।२।। स्कन्दजी बोले– यह अद्वैत शैववाद किसी प्रकार द्वैत को नहीं सहता, द्वैत नश्वर और अद्वैत अविनाशी है ।।३।। सर्वज्ञ और सबका कर्ता तीन देवों के उत्पादक एक शिवजी ही सच्चिदानन्द रूपवाला ब्रह्म है ।।४।। वह शिवजी ही अपनी माया से, इच्छा से संकुचित रूप के समान पुरुष हो गये हैं ।।५।। पांच कलादि के होने से यहां भोक्ता है, यही पुरुष प्रकृति में प्रकृति के गुणों को भोगते है ।।६।। इस प्रकार दोनों स्थानों में स्थित होकर भी पुरुष किसी प्रकार का विरोध करनेवाला नहीं है और अपने रूपज्ञानादि संकुचित करता हुआ समष्टिमान् हो ।।७।। सत्वादि गुण साध्यबुद्धि आदि त्रयात्मक चित्त है,सत्वादि के कारण वही चित्त प्रकृति तत्त्व है ।।८।। सात्विकादि भेद से प्रकृति के गुण उत्पन्न होते हैं, गुणों से ही वस्तुओं को निरूपण करनेवाली बुद्धि उत्पन्न हुई है ।।९।। बुद्धि से तीन प्रकार का अहंकार हुआ है, उसका जीवन साधनात्मक वेग रूप अभिमान है, इसका तीन प्रकार का शरीर है, सत्वादि और तेजसादि के भेद से भी तीन प्रकार का है, अहंकार से और तेज से मन, बुद्धि, इन्द्रिय उत्पन्न हुई हैं, मन का रूप संकल्प विकल्पात्मक है ।।१०।। बुद्धि, इन्द्रिय, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, नासिका शब्द रूप, स्पर्श, रस, गन्ध ।।११।। प्रवृत्ति और बुद्धि इन्द्रियों में श्रोत्र के क्रम से कही है, वैकारिक अहंकार से कर्मेन्द्रिय हुई हैं ।।१२।। तत्त्वदर्शी मुनियों ने वे सूक्ष्म कही है और कर्मेन्द्रिय अपने कार्य के सहित हैं ।।१३।। वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ और उनकी क्रिया, बोलना, ग्रहण करना, जानना, त्याग और आनन्द है ।।१४।। भूतादिकों से और अहंकार के क्रम से तन्मात्रा हुई, उन्हींसे शब्दादि रूप हुए हैं, ऐसी स्थिति है ।।१५।। उन्हींसे क्रमपूर्वक आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी उत्पन्न हुई है, हे मुनिश्रेष्ठ! यही पंचभूत कहलाते हैं ।।१६।। अवकाश देना, वहन करना, पचाना, वेग और धारण उनके व्यापार हैं ।।१७।। वामदेवजी बोले– आपने पहले भूतसृष्टि कही है, फिर कलादि कैसे कहते हो? ।।१८।। कि आत्मतत्त्व अकार होता है और विद्यातत्त्व उकार होता है? यह बड़ा सन्देह है, शिवतत्त्व मकार है, हे वामदेवजी! ऐसा विचारो ।।१९।। बिन्दु और नाद सब तत्त्व के अर्थ हैं, हे मुने! अब इनके देवता सुनिये ।।२०।। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, महेश्वर, सदाशिव ये साक्षात् श्रुति प्रसिद्ध शिवजी की मूर्ति हैं ।।२१।। यह आपने पहले कहा, अब कहते हो यह

तन्मात्रा से होती हैं, इसमें मुझे महान् सन्देह है ।।२२।। हे स्कन्दजी! कृपा करके यह सन्देह दूर कीजिये, यह मुनि के वचन सुनकर कुमार कहने लगे ।।२३।। स्कन्दजी बोले– हे मुने! 'तस्माद्वा०' यहां से प्रारम्भ करके भूतसृष्टि के क्रम से जो मैं कहता हूं, सो सब सावधानी से सुनिये ।।२४।। कलाओं में पंचभूत उत्पन्न हुए हैं, यह निश्चय है, स्थूल प्रपंच रूप पांच भूत शिवजी के शरीर हैं ।।२५।। शिवतत्त्व से लेकर पृथ्वी के तत्त्व तक तत्त्वों के क्रम से तन्मात्राओं से उत्पन्न होते हैं, सो क्रम से कहते हैं ।।२६।। भूतों को उत्पन्न करने के धर्म से तन्मात्रा और कला एक ही भूतों का कारण हैं, इनका कोई विरोध जानना नहीं चाहिये, हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ! ।।२७।। इस स्थूल–सूक्ष्मात्मक संसार में चन्द्र, सूर्य आदि ग्रह नक्षत्रों सहित उत्पन्न हुए हैं, इसी प्रकार और भी ।।२८।। ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि देवता, भूतजाति, इन्द्रादि दिक्पाल देवता, पितर, असुर ।।२९।। राक्षस, मनुष्य और अनेक प्रकार के जंगम प्राणी, पशु, पक्षी, कीट, पतंग को भेदवाले ।।३०।। वृक्ष, गुल्म, लता, औषधी, आठों पर्वत, गंगादि नदी, सप्तसागर महर्षि ।।३१।। जो कुछ वस्तुजात है, सो सब इसीमें प्रतिष्ठित है, हे मुनिराज! यह बुद्धि से विचारो ।।३२।। यह स्त्री–पुरुष रूप संसार शिवशक्त्यात्मक है, शिवज्ञान के जाननेवाले आप सरीखे पण्डितों के उपासना करने योग्य है ।।३३।। "सर्वं ब्रह्म सर्वो वै रुद्रः" अर्थात् यह सब कुछ शिवजी ही हैं, ऐसा जानकर उपासना करनी चाहिये, हे मुने! ऐसा श्रुति ने कहा है, इससे सदाशिवजी ही प्रपंचात्मा है ।।३४।। अड़तीस कला के त्याग में सामर्थ्यवाले शिवजी की अद्वैत भावना से "सदाशिवोहं" ऐसी भावना करनेवाले गुरु शिवजी ही हैं ।।३५।। इस प्रकार विचारवान् अच्छे शिष्यवाले गुरु शिवजी ही हैं और प्रपंच, देवता, यन्त्र, मन्त्रात्मा गुरु शिवजी ही हैं, इसमें सन्देह नहीं ।।३६।। इस प्रकार आचार्य की कृपा से सब बन्धन रहित होकर शिष्य शिवपद में आसक्त होकर निश्चय ही पूज्यात्मा हो जाता है ।।३७।। जो कुछ वस्तु है, सब गुण प्रधान योग से समस्त और पृथक् प्रणव के ही अर्थ को कहती है ।।३८।। रागादि दोष से रहित वेदसार यही शिवजी का उपदेश है, यह अद्वैतज्ञान शिवजी का प्रिय है, सो मैंने आपसे कहा ।।३९।। जो अन्यथा करे अथवा मद से गर्वित होकर इस मेरे उपदेश को जो अन्यथा माने, देवता, मनुष्य, सिद्ध, गन्धर्व कोई हो ।।४०।। मैं उस दुरात्मा शत्रु का सिर निश्चय ही कालाग्नि की समान अपनी शक्ति से छेद कर दूंगा, इसमें सन्देह नहीं ।।४१।। हे मुने! आप तो साक्षात् शिवजी के अद्वैतज्ञान के जाननेवाले हो, शिवज्ञान के उपदेश और शिवाचार दिखानेवाले हो ।।४२।। जिसकी देह की भस्म के स्पर्श मात्र से पिशाचत्व को प्राप्त हुए महापापी भी पाप रहित हो जाते हैं तथा आपकी कृपा से उनकी सद्गति होती है ।।४३।। तीन लोक में आप महाऐश्वर्य रूप से शिवयोगी कहलाते हो, आपके कटाक्ष के सम्पर्क से जीव शिव स्वरूप हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं ।।४४।। आपने जो मझसे पूछा यह

लोकशिक्षा के निमित्त है, साधु लोकोपकार को ही विचारते हैं।।४५।। यह परम रहस्य सदा आप में ही प्रतिष्ठित है, आप श्रद्धा-भक्ति से प्रणव में आदर पूर्वक।।४६।। मन को परमेश्वर में लगाकर विभूति रुद्राक्ष सहित शिवाचार को ग्रहण कराओ।।४७।। आप शिवजी के आचरण को ग्रहण करते हुए अद्वैत भाव में हो, लोकरक्षा के निमित्त विचरते हुए अक्षय सुख को प्राप्त हो।।४८।। सूतजी बोले- इस प्रकार स्कन्दजी के कहे वेदान्तयुक्त वचन को सुनकर वामदेव ऋषि नम्र होकर बारंबार पृथ्वी पर प्रणाम करने लगे और उनके चरणाविन्द में विहार करते हुए उनके मकरन्द रूपी रस को प्राप्त हुए अर्थात् परम तत्त्व को जान गये।।४९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां

सप्तदशोऽध्यायः ।। १७ ।।

*****

अठारहवाँ अध्याय

शौनकजी बोले- इस प्रकार वेदान्त के सार और परम रहस्य को सुनकर वामदेवजी ने महेश्वरजी के पुत्र से क्या कहा?।।१।। वामदेव योगी सदा शिवज्ञान में रहनेवाले परम धन्य हैं, जिनके सम्बन्ध से यह दिव्यज्ञान देनेवाली परम पवित्र कथा उत्पन्न हुई है।।२।। इस प्रकार उन मुनियों के प्रेमगर्भित वचनों को सुनकर प्रसन्न होकर महापण्डित सूतजी उन शिवजी में मन लगानेवालों से बोले।।३।। सूतजी बोले- आप महादेवजी के भक्त धन्य हो, लोक के उपकार करनेवाले हो, हे मुनियो! फिर भी उन दानों का संवाद सुनिये।।४।। इस प्रकार स्कन्दजी के द्वैत नाशक वचन सुनकर महामुनि प्रसन्न हुए।।५।। शिवपुत्र कार्तिकेय की बारंबार स्तुति और प्रणाम करके महामुनि विनय से फिर पूछने लगे।।६।। वामदेवजी बोले- हे भगवन्! हे सम्पूर्ण तत्त्व को जाननेवाले! हे षणमुख! हे अमृत स्वरूप! इन पूर्व में कहे हुए आत्मज्ञानियों का गुरुत्व।।७।। और जीवों की भोग, मोक्षादि सिद्धि जिसके कारण से होती है, परन्तु सम्प्रदाय के ज्ञान के बिना इनमें उपदेश की अधिकता नहीं है।।८।। इनके क्षौरकर्म और स्नान इस प्रकार क्यों हैं? सो आप कहिये, मेरा यह सन्देह दूर कीजिये।।९।। स्कन्दजी इस प्रकार सुनकर वामदेवजी के वचनों को स्मरण करके शिवा-शिव को मन में प्रणाम करके कहने लगे।।१०।। स्कन्दजी बोले- अब योगपद कहता हूं, जिससे गुरुतत्त्व की प्राप्ति होती है, हे वामदेवजी! यह परम गुप्त है, आपके प्रेम से कहता हूं, सुनिये।।११।। वैशाख, श्रावण, आश्विन, मार्गशीर्ष, माघ, मास के शुक्ल पक्ष के शुभ दिन में।।१२।। पंचमी

अथवा पूर्णमासी को प्रात:काल की क्रिया करके गुरु की आज्ञा पाकर नियमित होकर स्नान करके ।।१३।। पर्यंक शौच (इसकी विधि संन्यास पद्धति आदि ग्रन्थों में लिखी है) कर वस्त्रों से अंग को पोंछकर, दूने डोरे बांधकर, कपड़े पहनकर ।।१४।। चरण धोकर, दो बार आचमन करके, सद्योजातादि मन्त्रों से भस्म भाल में लगाकर फिर सब शरीर में लगावे ।।१५।। हे मुने! पूर्व की ओर मुख करके अनुकूल गुरु के हाथ में हाथ देकर, फिर हाथ जोड़कर शिष्य ।।१६।। सुन्दर अलंकृत मन्दिर में गुरु के दिये हुए मृगचर्म के आसन पर बैठकर ।।१७।। पीछे आचार्य आधार सहित शंख को अस्त्रमन्त्र से लाकर उसे शोधकर आगे स्थापित करके ।।१८।। फूलों से पूजन करे और कवचमन्त्रों से शोधित जल और आधार सहित शंख को ।।१९।। भरकर षडंग क्रम से उसे पूजन करके फिर सात बार उसे प्रणव से अभिमन्त्रित करे ।।२०।। गन्ध, पुष्पादि से पूजकर धूप, दीप दिखाकर मुद्रा रक्षा करके कवच मन्त्र से ढके ।।२१।। आचार्य धेनु और शंखमुद्रा दिखावे, फिर अपने आगे शंख की दक्षिण ओर पूजा और अर्घ्य के विधान से उत्तम मण्डल करके उसको सुगन्धित पुष्पों से पूजे ।।२२–२३।। आधार को शोधकर उस पर शुद्ध घट रखे, उस पर सूत लपेटे, उसे धूप देकर शुद्ध सुगन्धित जल से भरे ।।२४।। पीपल, पिलखन, जामुन, आम, बड इन पांचों की छाल और इन्हीं पांचों के पत्ते और हाथी, घोड़े, रथ, बांवी और नदी के संगमस्थान की मिट्टी इनमें सुगन्धि मिलाकर कलश में लेपन करे ।।२५।। वस्त्र, आम के पत्ते, कुश का अग्र, नारियल और फूल मिलावे, इस प्रकार और वस्तुओं से उस घट को अलंकृत करे ।।२६।। हे मुनीश्वर! उस घट में पंचरत्न डाले, यदि पंचरत्न न हो, तो भक्ति से सोना ही डाले ।।२७।। नील, माणिक्य, सुवर्ण, मूंगा, गोमेद, ये पंचरत्न हैं ।।२८।। 'नृम्लस्क' प्रथम उच्चारण करके अन्त में 'ग्लूम' उच्चारण करके विधिपूर्वक प्रेम से पूजा करे ।।२९।। आधार शक्ति से आरम्भ करके यज्ञ में कही विधि के अनुसार देव को आवाहन करके पंचावरण के विधान से पूजे ।।३०।। प्रथम प्रकार से खीर और ताम्बूलादि को निवेदन करके आठ नामों से पूजा करने तक उसको अभिमन्त्रित करे ।।३१।। एक सौ आठ ओंकार और ईशानादि पंचब्रह्म सद्योजातादि से ईशान पर्यन्त मन्त्रों से कलश को पूजकर ।।३२।। अस्त्र और कवच के मन्त्रों से आच्छादन करके वस्त्र और धूप–दीप दिखाकर धेनु और योनिमुद्रा दिखावे ।।३३।। कुशों से मस्तक को ढँककर उसके शिरोभाग के ईशान की ओर चौकोन मण्डल की कल्पना करे ।।३४।। उसके ऊपर मनोहर आसन रखकर उस पर अनुकूल शिष्य को बैठाकर ।।३५।। स्वस्तिवाचन पूर्वक कुम्भ को उठाकर गुरु दाहिने हाथ से शिष्य के मस्तक पर अभिषेक करे ।।३६।। पहले ओंकार का उच्चारण करके शंख के जल से पंचब्रह्म और सप्तब्रह्म से युक्त करे ।।३७।। मनोहर दीपक दिखाकर वस्त्र से मार्जन करके नये डोरे, वस्त्र तथा कौपीन धारण करावे ।।३८।। चरण

धोकर दो बार आचमन करके भस्म लगाकर गुरु शिष्य का हाथ अपने हाथ से पकड़कर मण्डप के मध्य ।।३९।। आसन पर बैठाकर जो आसन कि उसीके निमित्त निर्माण किया है, सुख से बैठाकर उसके अंग में भस्म लगाकर ।।४०।। पूर्व को मुख किये अपने बन्धु के समान तत्त्वज्ञान इच्छा करनेवाले अपने शिष्य से अपने आसन पर बैठे हुए गुरु कहे 'अमलात्मा भव' अर्थात् निर्मल आत्मा हो ।।४१।। तब गुरु मैं परिपूर्ण शिव हूं, ऐसी अचल स्थिति से दो घड़ी पर्यन्त मूढ़मन से समाधि में स्थित होकर ।।४२।। पीछे नेत्र उघाड़कर सावधान चित्त होकर हाथ जोड़कर बैठे हुए शिष्य को प्रेम से देखे ।।४३।। और भस्म लगे हुए अपने हाथ को शिष्य के मस्तक पर रखकर दाहिने कान में 'हंसः सोहं' इस मन्त्र का उपदेश दे ।।४४।। उसमें आदिहं के अर्थ शक्ति आत्मा स्वयं हैं, वही मैं शिव हूं, ऐसा अपने को विचारे ।।४५।। 'यइति' अणु के अर्थतत्त्व को उपदेश करके कहे, ब्रह्म के परोक्षज्ञान के कहनेवाले महावाक्यों के तात्पर्य के आदर से कहे ।।४६।। हे ब्रह्मन्! उन वाक्यों को मैं कहता हूं, तुम प्रेम से सुनो, उनको तू चित्त में धारण कर, ऐसा स्पष्ट कहे ।।४७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां

अष्टादशोऽध्यायः ।। १८ ।।

*****

उन्नीसवाँ अध्याय

स्कन्दजी बोले- अब महावाक्य कहते हैं- प्रज्ञान ही ब्रह्म है (१) मैं ब्रह्म हूं (२) वह तू है (३) यह आत्मा ब्रह्म है (४) यह सब जगत् ईश्वर से अधिष्ठित है (५) मैं ही प्राण हूं (६) आत्मा ज्ञान है (७) जो यहां सो वहां, जो वहां सो यहां (८) वह विदित और अविदित से परे है (९) वही तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है (१०) वह जो इस पुरुष में और आदित्य में है, वह एक है (११) परब्रह्म मैं ही हूं (१२) परे से परे वेदशास्त्र का गुरु, सबका ज्ञाता, स्वयं आनन्द लक्षण मैं ही हूं (१३) सर्वभूत स्थित ब्रह्म मैं ही हूं, इसमें सन्देह नही (१४) तत्त्व का प्राण मैं ही हूं, पृथ्वी का प्राण मैं ही हूं (१५) जलों का प्राण मैं ही हूं, तेज का प्राण मैं ही हूं (१६) वायु, आकाश का प्राण मैं ही हूं (१७) त्रिगुण का प्राण मैं ही हूं (१८) सब सर्वात्मक मैं ही हूं, संसारी भूत, भविष्य, वर्तमान सर्वात्मक होने से मैं ही एक अद्वितीय हूं (१९) यह सब ब्रह्म रूप है (२०) मैं सब रूप मुक्त स्वरूप हूं (२१) जो संसारी है, सो मैं हूं, हंस मैं हूं (२२) इस प्रकार सर्वत्र सदा ध्यान करे। इनका अर्थ कहते हैं, प्रज्ञान ब्रह्म इसका अर्थ इसमें

पूर्व में ही कथन कर दिया है, तैतरेय उपनिषद् का यह वाक्य है, प्रज्ञान शब्द भी चैतन्य का वाची है। 'ब्रह्मैष इन्द्र०' यहाँ से लेकर 'सर्वं तत्प्रज्ञानेत्र प्रज्ञाने प्रतिष्ठितं, प्रज्ञानेत्रो लोकः प्रज्ञाप्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्म' ऐसा सुना जाता है अर्थात् यह प्रज्ञान रूप आत्मा ब्रह्म है, यही इन्द्र है, सब ओर से प्रज्ञानेत्रवाले और प्रज्ञान रूप ब्रह्म में उत्पत्ति, स्थिति और लय में भी स्थित है, प्रज्ञा रूप नेत्रवाला लोक है, इससे प्रज्ञा (ब्रह्म) सब जगत् का आश्रय है, इससे प्रत्यागात्मा ब्रह्म है। अब 'अहं ब्रह्मास्मि' का अर्थ कहते हैं, अहं पद का अर्थ शक्त्यात्मा परमेश्वर है।।१।। अकार सब वर्णों में अग्र प्रकाशमान परम शिव स्वरूप है, हकार व्योम रूप शक्त्यात्मक वर्णन किया है।।२।। शिवशक्ति के संयोग से निरन्तर आनन्द होता है, ब्रह्मेति इससे शिव और शक्ति का सर्वात्मकत्व प्रकट है।।३।। फिर पूर्व में उपदेश किये 'सोहमस्मि' अर्थात् वह मैं हूं, इसकी भावना करे, 'तत्त्वमसि' इस वाक्यार्थ में तत्पद का अर्थ भी शक्त्यात्मक जानना चाहिये, इसी प्रकार ब्रह्मास्मि का भी अर्थ ब्रह्म शब्द से लेना।।४।। नहीं तो 'अहं ब्रह्मस्मीति' इस मूल वाक्य में शुद्ध ब्रह्म के अभेद की भावना प्रतीत होती है, उसके विवरण वाक्य में शक्त्यात्मक अभेद भावना का उपदेश है और जो कहो कि, शुद्ध ब्रह्म की अभेद भावना के अभिप्राय से 'अहमस्मि' इस विवरण का तात्पर्य हो, किन्तु शक्त्यात्मक अभेद नहीं है, इस पर कहते हैं कि, अहं पद के अर्थभूत शक्त्यात्मक परमेश्वर है, ऐसा पूर्व कहने से अलिंग भेद के विरोध शब्द मत् होने से अहं पदार्थ का अभेदान्वय नहीं हो सकता, अहं शब्द पुल्लिंग है और तत् नपुंसक है, इस प्रकार एक दूसरे के विरुद्ध होने से दोनों का अन्वय नहीं हो सकता।।५।। कारण कि, नहीं तो स्त्री–पुरुष रूप जगत् का कारण भी अन्यथा हो जायगा, इस कारण यहां तत्पद से शक्त्यात्मक का ग्रहण करना चाहिये, 'तत्त्वमसि' इस वाक्य से और 'स आत्मा' इस वाक्य से उसकी अनुवृत्ति करके सशक्त्यात्मा वही ब्रह्म तू है, इस प्रकार 'तद्ब्रह्मरूपं त्वममसि श्वेतकेतो' इस श्रुति का अर्थ है, छान्दोग्य के छठें अध्याय में उद्दालक ऋषि ने यह सब कुछ श्वेतकेतु के प्रति कहा है।।६।। 'अयमात्माब्रह्म' इस महावाक्य में तो दोनों पद पुल्लिंग हैं, यह माण्डूक्योपनिषद् का पाठ है, सो यह आत्मा ओंकार ही है, शिवजी से रक्षित होने से सम्पूर्ण जगत् ईशावास्यम् कहा जाता है।।७।। 'प्राणोस्मि प्रज्ञानात्मा' इसका अर्थ यह है कि, प्रज्ञानात्मक स्वरूप और प्राणपदार्थ भी मैं ही हूं, इसका कारण यह है कि, प्रतर्दन ने दिवोदास के पुत्र से कहा था, वह कौषीतकी ब्राह्मण के उपनिषद् का वाक्य है, यहां प्राण शब्द से सिद्धान्त पक्ष में परब्रह्म का ही अर्थ है, अन्यथा नही, जो यहां कार्य कारण उपाधि से युक्त चैतन्य संसारधर्म के समान भासमान है, अज्ञानियों को वही अपने आत्मा में स्थित दूसरे लोक में जगत् के कारणत्वमात्र प्राप्त है, ऐसा विचार करे।।८।। जो कार्योपाधि जीव है वही कारणोपाधि ईश्वर है, ऐसा सिद्धान्त वेत्ता कहते हैं। 'यदमुत्र

तदन्विह' इस वाक्य में जो कारणोपाधि युक्त है, वही कार्य उपाधि में जीव रूप से स्थित है, वह अर्थ पण्डितों को पुरुष रूप से सम्मत है और जो शंका करे कि ब्रह्मा से लेकर स्थावर तक जो है, सो उपाधिमान होने से ब्रह्म नहीं, संसारी उससे पृथक् हैं, सो नहीं, जो कार्य कारणोपाधि युक्त संसार धर्म के समान दीखता है, ज्ञानियों को वही अपनी आत्मा में इष्ट है और जो दूसरे लोक में है, वह नित्य विज्ञानघन स्वभाव सब संसार के धर्म से रहित ब्रह्म है, जो वहां इस आत्मा में स्थित वही नाम रूप कार्य कारण युक्त जानना चाहिये और नहीं, यही भाष्यकारों का सम्मत है, वह कार्य और कारण से भी अन्य है ।।९।। अन्य देव इस वाक्य में मुक्ति फल की भी जिस प्रकार विपरीत भावना होती है, सो सुनिये, मैं कहता हूं ।।१०।। 'अन्यदेवेति' इस पूर्ववाक्य में विदित से इति शब्द 'अयथाविदितादिति' अर्थ में अयथार्थता से ।।११।। 'ज्ञानादिति' अर्थ में प्रवृत्ति होती है, इसी प्रकार वाक्यान्तर में 'अविदितादिति शब्दः' अपूर्वविदितादिति अर्थ में पूर्वमविज्ञातादिति अर्थ में जैसे प्रवृत्ति होती है, इसी प्रकार भेदबुद्धि के निवृत्त भाव से विपरीत फल की भावना हो सकती है, यह स्पष्ट है और जो उस विदित (जो जानने में आवे) अविदित (जो जानने में न आवे) से परे शुद्ध कोई और सिद्ध हो, तो उसकी सिद्धि में सम्यक् फल सिद्धि की प्राप्ति नहीं हो सकती, यह निश्चय है, इस कारण वस्तु से कार्य कारणात्मक सब ब्रह्म ही है, उपाधि से भेद व्यवहार है, इससे भेद है बुद्धि के अभाव से फलहानि नहीं हो सकती, यह निर्णय है, यही वाक्य सामदेव के तवलकार उपनिषद् में कहा है, कि वह सत्य ही प्रत्यक्षादि प्रमाणों से नहीं जाना जाता, आगम से ही जाना जाता है। 'अन्यदेवैतद्विदितादथो अविदितादपीति', जो ब्रह्मश्रोत्र का श्रोत्रादि रूप कहा है और तिन का अविषय है, सो ब्रह्मविदित वस्तु से और ही है, जो वस्तु ज्ञान रूप क्रिया से अतिशय व्याप्त होकर ज्ञान रूप क्रिया का विषय हो, सो वस्तु कहीं कुछ किसी पुरुष को विदित होती है, इस प्रकार सब वस्तु विदित ही है, उससे ब्रह्म पृथक् है और विदित से विपरीत अव्याकृत (स्पष्ट और व्याकृत) पूर्वोक्त कार्य के बीज (कारण) अविद्या रूप अविदित वस्तु से भी ब्रह्म परे है, विदित वस्तु परिछिन्न और दुःख रूप है, इससे त्याग के योग्य है, यहां विदित से ब्रह्म पृथक् है, इस कहे हुए ब्रह्म के ग्रहण की अयोग्यता कही, इसी प्रकार अविदित से ब्रह्म पृथक् है, इस प्रकार कहे हुए ब्रह्म की ग्रहण में अयोग्यता कही, इस प्रकार त्याग और ग्रहण की अयोग्यता के निषेध से अपने से भिन्न होने से शिष्य को ब्रह्म की जिज्ञासा उत्पन्न की और विचारवस्तु से देखिये तो अपनी आत्मा से अन्य वस्तु का विदित और अविदित से अन्यपना संभव नहीं, इससे आत्मा ही ब्रह्म है, यह वाक्य का अर्थ है ।।१२।। ''एष ते आत्मेति'' इस बृहदारण्यक के वाक्य का अर्थ करते हैं, यह तेरा अन्तर्यामी अन्तर में स्थित शास्ता, आत्मा, नित्य और स्वयं शिव रूप है, जो पृथ्वी में स्थित होता हुआ पृथ्वी के अन्तर में है, जिसको

पृथ्वी नहीं जानती और जिसका पृथ्वी ही शरीर है, वही तेरा अन्तर्यात्मा अमृत स्वरूप है, अमृत और अन्तर्यामी शब्द से परमात्मा का ग्रहण है, यह सिद्धान्त शारीरिक भाष्य में है ''सयश्चायं पुरुष इति'' इस तैत्तिरीय ब्रह्मवल्ली के अर्थ को कहते हैं, जो आनन्दमय शम्भु आदित्य के देह में स्थित है।।१३।। जो प्रत्यक्ष होकर भी परोक्ष है, वह प्रसिद्ध एक ही है, इसमें पृथक्ता नहीं है, यदि कहो कि सबके अधिष्ठान शम्भु परमात्मा पुरुषादि अधिष्ठान नहीं हो सकता, उस पर कहते हैं, पुरुषाधिष्ठित और आदित्याधिष्ठित स्वरूप दो उपाधि सहित होने से इस वाक्य का अर्थ आरोप से कहते हैं।।१४।। कारण कि, उस शिवजी को श्रुति (एषोन्तेरादित्ये हिरण्यमयः पुरुषः नमो हिरण्यबाहवे, हिरण्यवर्णाय, हिरण्यपतये) इत्यादि हिरण्यमय कहती हैं, वास्तव में निर्गुण शिवजी को हिरण्यत्व नहीं हो सकता, यदि कहो कि, हिरण्यबाहवे इसमें बाहुमात्र में हिरण्य शब्द कहा है, यह सर्वांग का उपलक्षण है।।१५।। हिरण्यपति कैसे ? तो यह उत्तर है कि, यदि सर्वांग का उपलक्षण न होता तो पतित्व हिरण्यपतित्व उपचारादि से भी सम्भावित न हो सकता, इसमें हिरण्यवर्णाय हिरण्य रूपाय सिद्ध है, यही छान्दोग्य में है ।।१६।। ''य एषोन्तरादित्ये हिरणमयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यशमश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणवात् सर्व एक सुवर्ण इति'' अर्थात् जो यह आदित्य के अन्तर्गत सुवर्ण के समान (न कि सुवर्ण) कारण कि, देव में सुवर्ण विकार नहीं हो सकता, पाप रहित सुवर्ण अचेतन में पाप की प्राप्ति नहीं, फिर निषेध कैसा ? चक्षु के ग्रहण न होने से ज्योतिर्मय का ही अर्थ होता है, इसी प्रकार आगे भी लगा लेना, सबके देह में सहन करने अथवा अपने से जगत् को पूर्ण करने से उसे पुरुष कहते है, वह सावधान चित्तवालों को दीखता है, ब्रह्मचर्यादि साधन करनेवालों को केशादि कृष्ण रहते हैं, इसीसे कहा कि, परमात्मा शिवजी के केशश्मश्रु प्रकाशमय हैं, नख से शिर तक सब ज्योति रूप है।।१७।। नख से प्रारम्भ करके केश के अग्रभाग तक ज्योति रूप तुरीय ब्रह्म परात्पर मैं ही हूं, इस वाक्य का तात्पर्य सुनिये, मैं कहता हूं।।१८।। अहं पद का अर्थ शक्त्यात्मा शिव है, वह मैं हूं, इस योजना से वाक्यार्थ हो जाता है।।१९।। सबसे उत्कृष्ट सब का आत्मा परब्रह्म कहा जाता है, पर-अपर-परात्पर इन तीन भेदोंवाला हैं।।२०।। वही श्रुति ने रुद्र, ब्रह्मा और विष्णु कहे हैं, इन रुद्रादि तुरीय पर शब्द से परब्रह्म का ज्ञान होता है।।२१।। वेदशास्त्र गुरु के वाक्यों के अभ्यास और शिष्य के हृदय में पूर्णानन्दमय शिवजी प्रादुर्भूत होते हैं।।२२।। वही सब प्राणियों में स्थित शम्भु मैं हूं, इसमें सन्देह नहीं, सम्पूर्ण तत्त्वसमूह का एक मैं ही शिव प्राण हूं।।२३।। ऐसा कहकर आत्मविद्या शिवाख्य तीन तत्त्वों का वर्णन करे। हे मुने! 'प्राणोस्मि' इस अर्थ प्रतिपादक वाक्य में।।२४।। पृथ्वी आदि गुणों के अन्तर्ग्रहण से पृथ्वी के प्राण मैं हूं, वहां से आरम्भ करके त्रिगुण का भी प्राण मैं ही हूं, ऐसा कहने से सब आत्मतत्त्व गृहीत होते है, ऐसी भावना करे, फिर आत्मविद्या और शिवतत्त्व का

सब प्रकार ग्रहण करके ।।२५।। मैं सब तत्त्व का प्राण हूं और सर्वात्मक होने से सब मैं ही हूं, संसारी जो कहा है उसका अर्थ कहते हैं, जीव रूप से अन्तर प्रविष्ट होने के कारण अन्तर्यामी होने से मैं जीव और संरक्षणशील हूं ।।२६।। 'यद्भूत' का अर्थ कहते है, उस जीवात्मा का जो अतीत, वर्तमान और भविष्य है, वह सब मैं ही हूं, ''सर्वो वै रुद्रस्तमै चिद्राय नमोस्तु'' ''पुरुषो वै रुद्रः सन्महो नमो नमः'' ''विश्वं भूतं भुवनं चित्रं बहुधा जातं जायमानं च यतः सर्वो ह्यषः रुद्रः'' ।।२७।। साक्षात् शिवजी के मुख से निकली हुई श्रुति यह सब विश्वादि रुद्र ही है, ऐसा कहती है, इससे मुझमय होने से मेरा ही स्वरूप है, सर्वात्मक होने से अद्वितीय हूं, इस अर्थ को कहते हैं ।।२८।। सबसे उत्कृष्ट अन्तर्यामी आदि गुणों से नित्य युक्त होने से सजाति-विजाति भेद शून्य है, इसी कारण अद्वितीय हूं, ''सर्व खल्विदं ब्रह्म'' इस वाक्य का अर्थ पूर्व ही कह दिया है, छान्दोग्य का वाक्य है, जिस प्रकार उस ब्रह्म से तेज, जल आदि उत्पन्न हुए हैं, इसीसे यह तज्ज कहलाते हैं और प्रतिलोम से लय हो जाते हैं, ''इससे तज्जलानि शान्त उपासीतेति'' कहा है ।।२९।। इस प्रकार यह सब जगत् ब्रह्म रूप कहा है और सब पदार्थ रूप होने से पूर्ण है, पशु भी मेरे प्रसाद से मुक्त होकर मेरे भाव को प्राप्त हुए ।।३०।। जो यह है, सो मैं हूं; इसका अर्थ कहते हैं, हे वामदेव! जो शक्त्यात्मा शिव हैं, वह भी मैं ही हूं, हंस शिव मैं हूं 'योसावसौ पुरुषः सोहमस्मीति' यह ईशावास्य की श्रुति है ।।३१।। इस प्रकार गुरु आदर से शिष्य के प्रति श्रुति के अर्थों का शिवपरत्व उपदेश करे ।।३२।। आधार सहित शंख को ले और अस्त्रमन्त्र से युक्त भस्म से शुद्ध करके उसके आगे चौकोन मण्डल में स्थापन करके ।।३३।। ॐ उच्चारण करके गन्धादि से पूजकर अस्त्रमन्त्र और वस्त्र से शुद्ध करके सुगन्धित जल भरकर ॐ इस मन्त्र को पढ़े ।।३४।। फिर ॐ कार से सात बार अभिमन्त्रित करके जो किंचित भी अन्तर करता है, उसे भय होता है ।।३५।। ऐसा श्रुति का आशय है, इससे भेद न करे, हे शिष्य! इस कारण तू दृढ़ात्मा और भय रहित हो, इस प्रकार शिष्य से कहे और देव का ध्यान करता हुआ शिष्य को देव रूप से अर्चन करे ।।३६।। षडध्वविधि के मार्ग से शिष्य के आसन को पूजकर शिवजी के आसन और शिवमूर्ति की कल्पना करे ।।३७।। सिर, मुख, हृदय, गुह्य, पाद तक पंचब्रह्म को स्थित करके मुण्ड और मुख सम्बन्धि प्रणव की ।।३८।। अडतीस ब्रह्म रूप कला शिष्य के देह में स्थित करके उसके मस्तक में शिवजी का आह्वान करके, वे कला स्थापन करे, मुद्रा दिखाकर ।।३९।। षडंगों का न्यास 'सर्वज्ञानीत्यादि' मन्त्रों से आसन पूर्वक षोडष उपचार की कल्पना करे ।।४०।। खीर को निवेदन करे, ''ओंमअग्निजायया- ओं स्वाहा'' इस मन्त्र से खीर निवेदन करके कुल्ला, आचमन, धूप, दीपादि क्रम से दे ।।४१।। आठ नामों दे पूजन करके वेदपाठी ब्राह्मणों के सहित ''ब्रह्मविदामाप्नोति परम्'' इस अध्याय को और ''भृगुर्वै वारुणिः''

इस अध्याय को जपे ।।४२।। ''यो देवानां प्रथमं पुरस्तात्'' यहां से आरम्भ करके ''प्रकृतिलीनो यः परः स महेश्वरः'' यहां तक जपे और श्वेतकमल आदि की बनी हुई ।।४३।। माला को लेकर शिवजी के बनाये हुए पंचमुख स्वरूप प्रतिपादक शास्त्र से स्थित सिद्धाख्य स्कन्ध ।।४४।। ख्याति पूर्णाहूति के अन्त तक शनैः–शनैः जपता हुआ मनोहर सुगन्धि आदि से युक्त जंघा पर्यन्त लम्बी उस माला को कण्ठदेश में पहना दे ।।४५।। तिलक और सर्वांग में चन्दन का लेपन विधिपूर्वक शिष्य करे, जैसी सम्प्रदाय की विधि हो ।।४६।। श्रीपादादि नाम अपनी सम्प्रदाय के अनुसार गुरु करे, छत्र और पादुका दे, दूर्वार्चन का प्रकार ।।४७।। अर्थात् उसका विशेष व्यवस्थापन व्याख्यातृत्व शिवमन्त्रों का कर्म के आरम्भ में गुरु आसन का परिग्रहण है, गुरु उस शिवरूप शिष्य पर अनुग्रह करके कहे ।।४८।। ''शिवोहमस्मि'' मैं सदाशिव हूं, इस प्रकार समाधि में स्थित सदा ध्यान करके इस प्रकार कहकर उसे स्वयं नमस्कार करे ।।४९।। अपने सम्प्रदाय के अनुगुण नमस्कार करे, शिष्य भी उठकर क्रम से गुरु को नमस्कार करे ।।५०।। इस प्रकार नमस्कार करने पर सुशील वाणी रोके हुए विनय से नम्र होकर स्थित हुए शिष्य को ।।५१।। स्वयं गुरु जप कराकर कहे, आज से तुम प्राणियों पर अनुग्रह करते रहना, इस प्रकार एक वर्ष उसकी परीक्षा करके कहे, मेरे वाक्य स्वीकार करते रहना ।।५२।। रागादि दोषों को छोड़कर शिवध्यान में तत्पर रहो, सम्प्रदाय के लोगों का संग करना, दूसरों का नहीं ।।५३।। प्राणसंकट उदय होने पर भी शिवपूजन किये बिना भोजन मत करना, गुरुभक्ति में स्थित होकर सुखी रहना ।।५४।। इस प्रकार श्रेष्ठ ज्ञानसागर दयालु गुरु अनुकूल चित्त से समान भाव से अपने ही तुल्य शिष्य को उपदेश दे ।।५५।। हे मुनीश्वर! हे वामदेवजी! आपके स्नेह से यह परम गुप्त योगपद का प्रकार मैंने कहा है ।।५६।। ऐसा कहकर स्वयं स्कन्दजी ने उनको क्षौर और स्नानविधि का क्रम यतियों पर कृपा करके परम प्रीति से कहना प्रारम्भ किया ।।५७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां

एकोनविंशोऽध्यायः ।। १९ ।।

*****

बीसवाँ अध्याय

स्कन्दजी बोले– हे वामदेव! हे मुने! अब मैं स्नान और क्षौर की विधि कहता हूं, कि जिससे यतियों की परम शुद्धि होती है।।१।। हे मुनीश्वर! योगपद की विधि को प्राप्त होकर जब शिष्य पूर्ण व्रती होकर क्षौर कर्म में उद्यत हो।।२।। गुरु को नमस्कार करके उनकी आज्ञा लेकर सिर धोकर, आचमन करके, वस्त्र पहने क्षौर करावे।।३।। उस कपड़े को मिट्टी और जल से धुलवाये, जो नापित के पास होता है, हाथों को मिट्टी से धोने के निमित्त कहकर उसे मिट्टी दे।।४।। और शिव–शिव उच्चारण करता हुआ दोनों हाथों की अनामिका और अंगूठे को अभिमन्त्रित करके।।५।। नेत्र मूँदकर अस्त्रमन्त्र पढ़कर खोले और उस्तुरे, कैंची आदि की स्वच्छता देखकर अस्त्रमन्त्र से बारह बार अभिमन्त्रित करके प्रोक्षण करे।।६।। और प्रणव से क्षुरे को ग्रहण करके दाहिनी ओर से क्षौर करावे, पहले कुछ आगे के बाल दूर करके पीछे और सब दूर करावे।।७।। एक पत्ता लेकर उसमें बालों को रखकर दूर डाल दे, वैसे ही पृथ्वी पर न डाले, मूँछ मुंडाकर हाथ पर हाथ रखकर नखों को कतरवावे।।८।। फिर बेल, पीपल, तुलसी आदि के नीचे की मिट्टी लेकर बारह बार जल में गोता लगाकर किनारे पर जाकर बैठकर।।९।। तीन भाग करके उस मृत्तिका को शुद्ध देश में रखकर फिर एक के तीन भाग करके उसे प्रोक्षण करके अस्त्रमन्त्र से अभिमन्त्रित करे।।१०।। फिर उसमें से एक भाग मृत्तिका लेकर हाथ से तोड़कर उसे हाथों में बारह बार मलकर जल से धोवे।।११।। फिर एक से पैर, एक डेली से मुख इस क्रम से धोवे, इस प्रकार मृत्तिका लेप जल से धोकर फिर जल में प्रवेश करे।।१२।। फिर दूसरी मृत्तिका का भाग करके बारह बार सिर से मुख पर्यन्त लपेटकर बारंबार गोता लगाकर किनारे पर जाकर सोलह कुल्ले करे और दो बार आचमन करके ॐकार पूर्वक सोलह प्रणायाम करे।।१४।। फिर शेष मृत्तिका को भी लेकर उसके तीन भाग करके उसमें से एक भाग लेकर कटिशौच और पादशौच करके दो आचमन करके।।१५।। ॐ कार सहित सोलह प्राणायाम मौन होकर करे, फिर दूसरे भाग को लेकर ॐ कार पूर्वक जंघा में लगाकर तीन बार प्रणव के प्रोक्षण कर।।१६।। सात बार अभिमन्त्रित करे और अभी रखी हुई पैली मृत्तिका से अपना हाथ तीन बार मांजकर अपनी कक्षा में सूर्य की पवित्र मूर्ति देखकर।।१७।। दाहिने हाथ से बाईं कक्षा और बायें से दाहिनी कक्षा को दृढ़मतिवाला शिष्य हाथ में मिट्टी लेकर जैसे हो वैसे मांजे।।१८।। फिर वह गुरुभक्तिवाला शिष्य दूसरी शुद्ध मृत्तिका को लेकर उस तीसरे भाग की मृत्तिका से सूर्य के सम्मुख सिर से चरणों तक मट्टी मलकर।।१९।। तीसरे भाग की

मिट्टी को लेकर भूतल में से उठकर दण्ड लेकर अपने मन्त्र के देनेवाले गुरु को ज्ञाननिष्ठा से स्मरण करके ।।२०।। पीछे चन्द्रशेखर महेशान सब ऐश्वर्य के पति महेशान शंकरजी को पार्वती सहित भक्तिमान् शिष्य स्मरण करे ।।२१।। फिर गुरु शिवजी का स्मरण करके तीन साष्टांग प्रणाम करे, सिर आदि पांच अंगों से वा एक अंग से फिर उठकर प्रणाम करे ।।२२।। फिर तीर्थ में प्रवेश करके बारंबार गोते लगाकर उस मिट्टी को कन्धे पर रखकर पूर्व कहे अनुसार फिर शरीर में लपेटे ।।२३।। उसमें की शेष बची हुई मिट्टी को लेकर जल में प्रवेश करके उसे मिलाकर सर्वांग में लगावे ।।२४।। फिर तीन बार ओम् कहकर शिवजी के चरणकमल स्मरण करता हुआ स्नान करे, कारण कि शिवजी संसार-सागर से तारनेवाले हैं ।।२५।। फिर आँखमुद्रा से अभिषेक करके बारह बार उच्चारण कर किनारे पर आकर पहले के विभाग किये तीसरे भाग की मिट्टी से हाथ पैर शुद्ध करके फिर हाथ धोकर आचमन करके ॐ स्मरण करते विरजाभस्म मिले हुए जल को ओंकार से अभिषेक करे, फिर अंगों का उपमार्जन करके भस्मस्नान करने के उपरान्त ।।२६।। हे मुने! यथोक्त विधि के अनुसार सावधान होकर सर्वांग में त्रिपुण्ड्र लगाकर ।।२७।। फिर शुद्ध मन होकर मध्याह्न समय की क्रिया करे, महेश्वर, गुरु और तीर्थादि को नमस्कार करके ।।२८।। हे मुने! परम भक्ति से महेश्वरजी को पूजे, यह पार्वती सहित ज्ञान देनेवाले और तीनों लोकों के रक्षक हैं ।।२९।। तब यह दृढ़चित्त यति अपने धर्म में स्थित हुआ ब्राह्मण साधुजनों में भिक्षा के लिये गमन करे ।।३०।। वहां यह शुद्धात्मा पांच रूप से कल्पित भोजन करे और पांच प्रकार के कल्पित मण्डल में भोजन करे, दूषित अन्न न खाय ।।३१।। कारणत्रय से पवित्रित स्नान तथा भिक्षा, सदा एकान्त में रहना ये चार कर्म भिक्षु के कहे, पांचवां नहीं है ।।३२।। अलाबु (तोंबी) बांसपात्र वा काठ वा मिट्टी का पात्र यह चार प्रकार के पात्र हैं, इसमें से कोई पात्र रखे, पांचवां नहीं है ।।३३।। ताम्बूल खाना, धातु का पात्र रखना, वीर्यसेचन, श्वेत वस्त्र धारण, दिन में सोना, रात का भोजन यह छः कर्म यतियों को वर्जित हैं ।।३४।। साक्षर न होने से यति राक्षस ही है, इससे यति कभी विपरीत आचरण न करे ।।३५।। यति शुद्धि के लिये क्षौर, स्नान यत्न से करे, मन से सदा शुद्ध सनातन शिवजी का स्मरण करे ।।३६।। हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार से आपके स्नेह के कारण यह मैंने क्षौर और स्नान की विधि कही, अब क्या सुनने की इच्छा है ? ।।३७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां

विंशोऽध्यायः ।। २० ।।

*****

इक्कीसवाँ अध्याय

श्रीवामदेवजी बोले– जो यति मुक्त हैं, उनका दाहकर्म नहीं है, मैंने सुना है केवल उनको शुद्धभूमि में स्थापन कर देते हैं।।१।। हे गुरो! इसका कारण क्या है? सो आप प्रेम से कहिये, तीनों लोकों में आपके समान वक्ता नहीं है।।२।। जो सर्वज्ञता से परमेश्वर को प्राप्त होकर देहपञ्जर से मुक्त हो गये हैं और जो उपासना के मार्ग से मुक्त होकर परम पद को गये हैं।।३।। हे भगवन्! विशेष कर आप प्रेम से मुझे अपना शिष्य जानकर वह सब कहिये।।४।। सूतजी बोले– असुरनिकन्दन स्कन्दजी यह उनके वचन सुनकर शिवजी से सुने हुए उस परम रहस्य को मुनि से कहने लगे।।५।। स्कन्दजी बोले– हे मुने! यह बड़ी गुह्य बात है, ऋभुनाम शिवयोगी मुनि के पूछने पर पिनाकपाणी सर्वज्ञ साक्षात् शिवजी ने उनसे जो कथा वर्णन की है।।६।। हे ब्रह्मन्! वही हम आपसे कहते हैं, यह ज्ञान जिस किसी को देना नहीं चाहिये, हां! शान्तचित्त, शिवभक्ति से युक्त शिष्य को देना चाहिये।।७।। जो कोई यती समाधि में स्थित होकर शिवभाव से देह को भोगता हुआ महा धैर्यवान् हो, वही परिपूर्ण शिव होता है।।८।। जो अधीरचित्त होकर समाधि को नहीं जानता है, उसके लिये उपाय कहता हूं, सावधान होकर सुनिये।।९।। तीन पदार्थों का ज्ञान अर्थात् ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञातृ लक्षण त्रिपुटी के पदार्थ का ज्ञान, वेदान्त शास्त्रों के वाक्यों से और गुरु के मुख से श्रवण करके यम–नियम के अभ्यास करता हुआ।।१०।। यम–नियम करते हुए शिवध्यान में परायण होकर, हे मुने! नित्य प्रणव में मन लगावे।।११।। देह की दुर्बलता के वश से कदाचित् अधीर होकर अकाम शिव को स्मरण करता हुआ यति यदि प्राण त्याग कर दे।।१२।। वह सदाशिवजी के अनुग्रह से नन्दि से प्रेरति होकर अतिवाहिक प्राण निकलने पर पुण्यात्मा जीवों को अर्चिरादि मार्ग से परलोक में ले जानेवाले पांच देवता।।१३।। अग्नि के और तेजोमात्रा के अभिमानी, कोई दिन के अभिमानी, कोई शुक्ल पक्ष के अभिमानी।।१४।। उत्तरायण के अभिमानी, यह पांचों अनुग्रह में तत्पर होकर धूम्रा तपस्विनी रात्रि कृष्ण पक्ष के अभिमानी पांच देवता हैं।।१५।। दक्षिणायन रूप करके पांच देवता प्रसिद्ध हैं, हे महामुने! सावधान होकर उनकी वृत्ति सुनिये।।१६।। वे पांचों देवता दक्षिणायन रूप कर्म के अनुष्ठान में तत्पर प्राणियों को लेकर उसके पुण्य से स्वर्ग को जाते हैं।।१७।। और पुण्यक्षय होने पर फिर मनुष्यलोक को प्राप्त होकर पूर्वजन्म के समान जन्म लेते हैं।।१८।। वहीं पांचों देवता भूतल से आरम्भ कर पांच प्रकार से मार्ग को विभक्त करके अग्नि आदि के क्रम से ग्रहण करके

यति को सदाशिवजी के स्थान को ले जाकर।।१९।। शिवजी के चरणों को प्रणाम करके उसी कर्म में लगाये हुए वे यति अनुग्रह करनेवाले शिवजी में स्थित होते हैं और वहां स्थित होते हैं।।२०।। देव-देव सदाशिवजी उस यति को आया हुआ देखकर जो विरक्त हुआ तो उसे महामन्त्र का उपदेश करके।।२१।। उसको गणपति के पद का अभिषेक करके अपनी साम्यता देते हैं और सबके अधिपति शंकरजी अनुग्रह करते हैं।।२२।। मृगटंक, श्रेष्ठ त्रिशूल, वरदान से विभूषित तीन नेत्र, चन्द्रखण्ड से शोभित गंगा से युक्त जटाधारी।।२३।। सब काम के देनेवाले, श्रेष्ठ विमान को उनके निमित्त देते हैं और जो ऐसा नहीं है उसको रुद्रकन्या युक्त।।२४।। नृत्य, गीत, मृदंग आदि बाजों से मनोहर दिव्य वस्त्र, माला और आलेपन भूषणों से भूषित।।२५।। दिव्य अमृत के घड़ों से भरा, सुन्दर पलंग से शोभित, करोड़ सूर्य के समान प्रकाशमान, करोड़ चन्द्रमा के समान शीतल।।२६।। मन के समान वेगवान् सब स्थानों में जानेवाला विमान देकर अनुग्रह करते हैं, उनके भी भोगों के भोगने पर भोग कौतूहल के क्षय हो जाने पर।।२७।। यतियों को दुर्गम अपनी महातीव्र प्रकृति आदि (मूलप्रकृति महदादि तत्त्व) का निपातन करके महासंसार के नाश करने की इच्छावाले, प्रलयाग्नि के समान प्रभाववाले महेश्वर।।२८।। अनुग्रह करके महामन्त्र के तात्पर्य को जो कि, पूर्ण अहं भावना रूप शिव मैं हूं, ऐसी निश्चल समाधि का।।२९।। अनुग्रह करके जो अपनी अमृत रूप सूर्यादि जगत्प्रकाशनादि शक्ति रूप सिद्धि है।।३०।। और ब्रह्म की आयु के क्षय होने पर भी पुनरावृत्ति से रहित परम मुक्ति उसको जगत् के गुरु प्रदान करते हैं।।३१।। यही पद है, इसी कारण से सम्पूर्ण समष्टि मान ऐश्वर्य मुक्ति का मार्ग है, यही वेदान्तों का निश्चय है।।३२।। जिस समय यति के प्राणत्याग का समय हो और वह शिथिल हो, उस समय श्रेष्ठ सम्प्रदायवाले यति उसके चारों ओर स्थित होकर।।३३।। क्रम से प्रणवादि महावाक्यों के तात्पर्य को सावधान होकर उपदेश करे।।३४।। जब तक उसके प्राण विहीन हों, तब तक महावाक्यों का ही वर्णन कराना चाहिये, शिवजी का प्रेम से स्मरण करना चाहिये।।३५।। इन सबका यहां संस्कार वर्णन करते हैं, उक्त लक्षणवाले यतियों की संस्कार के अभाव में भी दुर्गति नहीं होती है।।३६।। कारण कि वह सब कर्म छोड़कर शिवपरायण होते हैं, उन असंस्कृत शरीरवाले यतियों के देह को दूषण करनेवाले राजाओं का राज्य नष्ट हो जाता है।।३७।। और उस ग्राम के रहनेवाले महादुःखी होते हैं, इन दोषों को शान्त करने का विधान कहते हैं।।३८।। ''नम इरिण्याय च०'' यहां से आरम्भ करके ''नम आमी वत्केभ्यः'' यहां तक जपता हुआ।।३९।। जप के अन्त में ॐ कार उच्चारण देवतात्मक यति के निमित्त किया हुआ गर्त मिट्टी से पूर्ण करे, हे मुनीश्वर! तब उस दोष की शान्ति होती है।।४०।। उस यति के शरीर को सुगन्धित द्रव्यों से मलकर पुत्रादिक उसका विधिपूर्वक संस्कार करे,

उसकी विधि मैं कृपा करके कहता हूं, मन लगाकर सुनिये ।।४१।। उसकी पूजा और स्नान कराके, शुद्ध जल और पुष्पों से उसको पूजित करके, रुद्रचमकाध्याय और रुद्रसूक्त के क्रम से ।।४२।। शंख को आगे स्थापन करके जल से अभिषेक करके सिर पर फूल धर, ओंकार से मार्जन करे ।।४३।। पुरानी कौपीन त्यागकर नई धारण कराकर कही विधि के अनुसार सर्वांग में भस्म लगाकर ।।४४।। विधिपूर्वक त्रिपुण्ड्र और चन्दन से लिक लगावे, पुष्पों की माला बनाकर उसके शरीर को अलंकृत करके ।।४५।। छाती, कण्ठ, बाहु और प्रकोष्ठ तथा कानों में क्रम से रुद्राक्ष की माला के आभूषण मन्त्रपूर्वक पहनाकर ।।४६।। धूप देकर, उसे उठाकर, शिक्य (छींका वा डोली) के ऊपर रखे, ईशानादि पंचब्रह्मात्मक रथ में स्थापन करके ।।४७।। उस रथ को ॐ आदि पंचब्रह्म के मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके सुगन्धित पुष्प और माला से उसे सब प्रकार अलंकृत करके ।।४८।। नृत्य और बाजे तथा ब्राह्मणों के वेदपाठ से युक्त ग्राम की प्रदक्षिणा कराकर, उसे लेकर चले ।।४९।। ग्राम के पूर्व और उत्तर में पवित्र वृक्षों के निकट वे सब यति ।।५०।। उस देवयजन स्थान को दण्डमात्र प्रमाण से खोदें, ओंकार और व्याहृति से उस स्थान को प्रोक्षण करके ।।५१।। क्रम से शमी के पत्ते उत्तर की ओर अग्रभाग करके बिछावे, फिर कुशा बिछाकर उस पर आसन मृगचर्मादि बिछाकर फिर कुश बिछावे ।।५२।। ओंकार युक्त पंचब्रह्म के मन्त्रों से पवित्र करके पंचगव्य से उसके शरीर को प्रोक्षण करके रुद्रसूक्त और ॐ कार से अभिषेक करे ।।५३।। पीछे शंख का जल छिड़ककर सिर पर फूल रखे शिवजी का स्मरण करता हुआ अनुकूलता से कार्य करे ।।५४।। फिर ॐ कार उच्चारण पूर्वक स्वस्तिवाचन करके उसे उठाकर योगासन युक्त स्थित उस यति को जैसे बने, वैसे पूर्व की ओर मुख करके बैठाये ।।५५।। गन्ध, पुष्प, धूप और गूगल से अलंकृत करे ''विष्णो हव्यं रक्षस्व'' यह कहकर उसे गर्त में स्थापन करके ।।५६।। दक्षिण हाथ में दण्ड, वाम में कमण्डुल देकर 'प्रजापतेनेति०' इस मन्त्र से कमण्डलु ।।५७।। जल सहित वाम हाथ में देकर और 'ब्रह्मंजाज्ञानं प्रथमं०' इस मन्त्र से मस्तक को छूकर रुद्रसूक्त का जप भौं के मध्य में स्पर्श करता हुआ करे ।।५८।। फिर 'मानोमहान्त०' इत्यादि चार मन्त्रों से मस्तक को नारियल से भेदकर गर्त को पूर्ण करे ।।५९।। और पांच ब्रह्ममन्त्रों से स्थल को छूकर उन मन्त्रों का जप करे 'यादेवनां०' यहां से प्रारम्भ करके ''यः परः स महेश्वरः'' ।।६०।। महादेवजी संसार के भेषज शिवजी सर्वज्ञ अपराधीन सबके अनुग्रह करनेवाले परमदेव को उमा सहित जपकर ।।६१।। एक हाथ चौड़े और दो हाथ लम्बे मिट्टी के आसन को बनाकर गोबर से लीप दे ।।६२।। उसके मध्य में चौकोन गन्ध, अक्षत युक्त सुगन्धित पुष्प, बेल और तुलसी के पत्तों से पूजन करे ।।६३।। पीछे ॐ कार से धूप, दीप, दूध, हवि दे। इस प्रकार हवि देकर प्रदक्षिणा करके पांच विधि से नमस्कार करे ।।६४।। बारह बार

ॐ कार को जपकर प्रणाम करे, दिशा-विदिशाओं में क्रम से प्रणव उच्चारण करके ब्रह्मार्घ्य दे ।।६५।। इस प्रकार दस दिन तक करता रहे, अब मुनिश्रेष्ठ यतियों की एकादशाह विधि को सुनिये ।।६६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां

एकविंशोऽध्यायः ।। २१ ।।

*****

बाइसवाँ अध्याय

स्कन्दजी बोले- फिर ग्यारहवें दिन के प्राप्त होने में जो विधि कही है, हे मुनिश्रेष्ठ! मैं आपके स्नेह से कहता हूं, सुनिये ।।१।। वेदी का सम्मार्जन करके उस स्थान को लीपकर पुण्याहवाचन करे और उस स्थान को प्राक्षण करके पश्चिम की ओर से आरम्भ करके पांच मण्डल पूर्व तक बनावे ।।२।। उत्तर की ओर मुख करके मण्डल बनावे, एक वितस्त लम्बे-चौड़े बनावे, उनके मध्य का चौकोन हो ।।३।। शेष मण्डल बिन्दु के आकार, त्रिकोण, षट्कोण और गोल क्रम से बनावे और पूजा के मार्ग से शंख आगे स्थापन करके ।।४।। प्राणायाम और संकल्प करके देवताओं के ईश्वर पूर्वोक्त पांच देवताओं का पूजन करे, वे अतिवाहिक नामवाले पांच देवता पूर्व में कहे हैं ।।५।। फिर उत्तर के दर्भों को छोड़कर जलस्पर्श करे, पश्चिम से आरम्भ करके षट्उत्थान के विधान से ।।६।। उन मण्डलों के भीतर सिंहासन के समान फूल धारण करके 'ॐ ह्रीं' ऐसा उच्चारण करके अग्नि रूप अतिवाहक देवता को ।।७।। 'आवाहयामि नमः' यहां तक ध्यान करके स्थापनादि प्रत्येक मुद्रा क्रम से दिखाकर ।।८।। 'ह्रां ह्रीं' आदि क्रम से इनके अंग करे, पाशांकुश धारण किये, अभीष्ट अभयदायक हाथ और चन्द्रकान्त मणि के समान कान्तिवाले ।।९।। लाल अंगुली की छाया से सम्पूर्ण दिशा मण्डल के रंगानेवाले, लाल वस्त्र धारण किये हुए, कमलवत् हस्त-चरणों से शोभित ।।१०।। तीन नेत्र, सुन्दर प्रकाशित मुख, पूर्ण चन्द्रमा के समान मुकुटों में माणिक्य लगे उस पर चन्द्रमा रेखा की शोभा ।।११।। कुण्डलों से शोभित कपोल, पीन और ऊँचे पयोधर, हार, बाजुबन्द, खडुए, कौंधनी से मनोहर ।।१२।। पतली कमर, भारी नितम्ब, लाल रंग के दिव्य वस्त्र पहने, माणिक्यमय मंजरी से शब्दायमान चरणवाली चरणांगुली की श्रेणी से अधिक मनोहर इनके रूप का ध्यान करे ।।१३।। यदि कहो साक्षात् शिवजी ही क्यों नहीं अनुग्रह करते, इनको क्यों बनाया? इस पर कहते हैं कि, शक्त्यात्मक मूर्ति रहित अनुग्रह से क्या हो सकता है? इस कारण पूर्वोक्त महेशजी के ऐश्वर्य के समान शक्ति आत्मक मूर्ति से सब

सिद्ध हो सकता है ।।१४।। ये पांच मूर्तियां सब के ऊपर अनुग्रह करनेवाले शिवजी ने ही कल्पना की है, यह सब कार्य करनेवाली दिव्य अनुग्रह करने में तत्पर हैं ।।१५।। उन सबका ध्यान करके उन पांचों देवताओं के चरणों में शंखजल के बिन्दुओं से पाद्य दे ।।१६।। हाथ में आचमन और सिर पर अर्घ्य दे और शंख के जल के बिन्दुओं से उनको स्नान कराये ।।१७।। दिव्य लाल वस्त्र, दुपट्टा आदि उनको दे, मुकुट और आभूषण अर्पण करे ।।१८।। सुवासित चन्दन, सुन्दर अक्षत और सुगन्धित मनोहर फल दे ।।१९।। परम सुगन्धित धूप और घृतबत्ती, दीपक 'सर्वं समर्पयामि ॐ ह्रीं' ऐसा कहकर अर्पण करे ।।२०।। और अन्त में नमः उच्चारण करके खीर और शहद देकर घृत, बरा के पुए, केला, गुड़ ।।२१।। प्रत्येक सुगन्धित वस्तु केले के पात्र में रखकर 'ॐ भूर्भुवः स्वः' इस मन्त्र से प्रोक्षणादि करे ।।२२।। 'ॐ ह्रीं स्वाहा' इसको 'वह्निजाया स्वाहा' के साथ उच्चारण करके खीर और नैवेद्य देकर 'पानीयं नमः' कहकर प्रेम से अर्पण करे ।।२३।। नैवेद्य को पूर्वभाग में रख दे, हे मुनिराज! स्थल को शोधकर कुल्ले, आचमन और अर्घ्य दे ।।२४।। ताम्बूल, धूप, दीप, प्रदक्षिणा और नमस्कार करे, यह सब विधान करके प्रेम से शिर में अंजली धरकर प्रणाम करे ।।२५।। और कहे, हे माताओं! आप प्रसन्न होकर शिवपद के चाहनेवाले इस यति को परमेश के चरणकमल में रक्षित करें ।।२६।। इस प्रकार उन सब की प्रार्थना करके बिदा कर दे, उनका प्रसाद लेकर कन्याओं को दे दे ।।२७।। अथवा गौ अथवा जल में डाल दे, कहीं फेंके नहीं, इस देवता के पूजा के स्थान में ही पार्वणश्राद्ध करे, यति का एकोद्दिष्ट श्राद्ध नहीं होता ।।२८।। पार्वणश्राद्ध का नियम मैं कहता हूं, हे मुनिश्रेष्ठ! सावधान होकर सुनिये, जिससे कल्याण होगा ।।२९।। श्राद्ध करनेवाला स्नान कर प्राणायाम कर, यज्ञोपवीत पहनकर, सावधान होकर, हाथ पवित्र कर, अद्येत्यादि संकल्प कर, उच्चारण कर, पुण्यतिथि को नाम ले ।।३०।। कहे कि, मैं पार्वणश्राद्ध करता हूं, अपने उत्तर भाग में ब्राह्मणों के बैठने को कुश दे,जल का स्पर्श करके ।।३१।। मलकर, स्नान किये हुए चार ब्राह्मणों को बुलाकर जो शिवभक्त और दृढ़व्रत हो ।।३२।। उनसे कहे, आप विश्वदेवा के निमित्त होकर प्रसन्नता कीजिये, आत्मा, अन्तरात्मा ।।३३।। परमात्मा के निमित्त आपको प्रसन्नता करनी चाहिये, ऐसा कहकर उनके चरणों में आदर से वरण करे ।।३४।। उनके चरण धोकर पूर्वदिशा की ओर मुख करके बैठावे, गन्धादि से अलंकार करके शिवजी के सम्मुख भोजन करावे ।।३५।। गोबर से लीपकर उस पर कुश रखकर उन्हें बिछाकर मौन होकर उन पर पिण्डदान करता हूं ।।३६।। ऐसा संकल्प करे, पीछे तीनों मण्डलों की पूजा करके अपने परमात्मा और अन्तरात्मा के ।।३७।। पिण्डों को चतुर्थ्यन्त पद उच्चारण करके देना चाहिये, 'आत्मने इदं पिण्ड ददामि' ऐसा कहकर ।।३८।। पिण्डों पर विधिपूर्वक कुशों का जल देकर यह विधान करके उठे और प्रदक्षिणा नमस्कार करे ।।३९।। और

ब्राह्मणों को विधिपूर्वक दक्षिणा देकर उसी स्थल में उसी दिन नारायण बलि करे।।४०।। और सब ओर से रक्षा के निमित्त नारायण की पूजा करे, इस प्रकार विष्णुजी की महापूजा करके पायस अन्न निवेदन करे।।४१।। बारह वेदपाठी ब्राह्मणों को बुलावे, केशवादि बारह नामों से गन्ध, अक्षर से उनकी पूजा करे।।४२।। और उनको उपानद और छत्र दे, और अनेक सत्कार से उनको भक्ति पूर्वक सन्तुष्ट करे।।४३।। फिर पृथ्वी पर पूर्व की ओर अग्रभाग करके कुशा बिछाकर "ओं भूः स्वाहा, ओं भुवः स्वाहा, ओं स्वः" स्वाहा कहकर पायस अन्न की बलि दे।।४४।। हे मुनीश्वर! यह मैंने एकादशाह की विधि कही, अब द्वादशाह की विधि कहता हूं, आदर से सुनिये।।४५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां
द्वाविंशोऽध्यायः ।। २२ ।।

*****

तेइसवाँ अध्याय

सुब्रह्मण्य बोले- फिर बारहवें दिन उठकर प्रातःकालीन कृत्य करके अग्निहोत्र सम्पादन कर शिवजी के भक्त, यति, ब्राह्मण अथवा शिवजी के प्यारों को।।१।। निमन्त्रण किये हुओं को बुलावे, वे स्नान से पवित्र हों, उनको अनेक प्रकार के स्वादिष्ट अन्न भोजन को लावे।।२।। और उस परमेश के निकट उनको बैठाकर पूर्वोक्त पंचावरण के पूजन प्रकार से उनका पूजन करे, तीन प्राणायाम करके उनका पूजन कर वहां बैठावे।।३।। फिर महासंकल्प के अनुसार संकल्प करके 'आप हमारे गुरु हैं, आपकी पूजा करता हूं', ऐसा कहकर कुशों को छूकर।।४।। उनके चरण धोकर, आप मौन हो आचमन करे, पीछे भस्म से शोभित पूर्वमुख उन ब्राह्मणों को आसन पर बैठावे।।५।। शिवमहेश्वरादि के क्रम से ध्यान करे, शेषाचार को परमगुरु, परात्पर गुरु, परमेष्ठी गुरु का ध्यान करके और अपने नाम में अम्बा सहित बुद्धि करके।।६।। 'सदाशिव इदमासनं' ऐसा कहकर उन्हें आसन दे, 'ॐ सदाशिवमावाहयामि नमः' इस प्रकार अपना-अपना नाम ले।।७।। उच्चारण करके अर्घ्य के जल से पाद्य, आचमन, अर्घ्य, वस्त्र, गन्धाक्षत।।८।। देकर पुष्पों से अलंकार करके, ॐ कार पूर्वक नाम में चतुर्थी विभक्ति करके नमः लगावे और सुगन्धित पुष्पों से।।९।। धूप, दीप देकर सम्पूर्ण आराधन करे, 'सम्पूर्णमस्तु' ऐसा कहकर खड़ा होकर नमस्कार करे।।१०।। फिर पात्र और केले के पत्तों को जल से धोकर परोसे और उन पर शुद्ध अन्न, खीर, पुए, सूप, व्यंजन (अनेक प्रकार की मिठाई, शाक, पूरी, कचौरी आदि सब व्यंजन) परोसे।।११।। कदली, नारियल का गोला

मिष्टान्न पदार्थों को देकर भोजनपात्र के नीचे कुश बिछा दे और फिर सब वस्तुओं को देखकर ।।१२।। सब पर जल छिड़कर प्रोक्षण करके (विष्णो हव्यम्) यह कहता हुआ (रक्ष्यस्व) उच्चारण करके हाथ से अन्न स्पर्श कराकर उठे ।।१३।। और जल देकर उन ब्राह्मणों की प्रार्थना करे कि 'आप सदाशिवादि के रूप हो, प्रसन्न होकर मुझे वर दीजिये'' ।।१४।। 'य देवादिव्येकादशाथ' इस मन्त्र को उच्चारण करके चावल छोड़ दे, फिर उठकर नमस्कार करे औरर 'सर्वत्र अमृतमस्तु' अर्थात् सब ओर अमृत हो, ऐसा कहे ।।१५।। और ब्राह्मणों को प्रसन्न करके 'गणानांत्वा०' यहां से आरम्भ कर 'अग्निमिडे पुरोहितम्' वा 'रुद्रचमकाध्यायनमस्ते रुद्रमन्यवे' अथवा 'अग्नाविष्णूसजोषसे' यह ग्यारह अनुवाक् अथवा 'परिणोरुद्रस्य हेतिः' यह छः ऋचा सद्योजातादि पंचब्रह्म के मन्त्र पढ़े ।।१६।। फिर ब्राह्मण भोजन करे, भोजन के उपरान्त शंकरजी के मन्त्रों से ही हाथ मुख धोने को उन्हें जल दे ।।१७।। आचमन कर चुकने पर उन्हें आसन पर बैठावे, फिर शुद्ध जल देकर कर्पूरादि से ।।१८।। मुख सुगन्धित करके दक्षिणा, छत्री और पादुका उनको भेंट करे, व्यजन (पंखा), छोटी चौकी, मूढ़े वा कुरसी और बांस की छड़ी उनको देकर ।।१९।। प्रदक्षिणा और नमस्कार से उन्हें सन्तुष्ट कर उनसे आशीर्वाद ले, फिर प्रणाम करके 'गुरुभक्ति हो' यह उनसे प्रार्थना करे ।।२०।। और कहे, ''आप सदाशिवादि प्रसन्न होकर यथेच्छ गमन कीजिये'', ऐसा कह द्वार तक उनके साथ जाए ।।२१।। जब वे ब्राह्मण कहें ''जाओ-जाओ, घर में बैठो'' तब लौटकर द्वार तक बैठे हुए अतिथि ब्राह्मण बन्धु दीन और अनाथों के सहित भोजन कर सुखपूर्वक स्थित हो ।।२२।। इसमें कोई विपरीत न होय, यह सत्य-सत्य है, इस प्रकार प्रतिवर्ष गुरु का आराधन करता हुआ यहां अनेक प्रकार के भोग भोगकर अन्त में शिवलोक को प्राप्त होता है ।।२३।। सूतजी बोले- देव स्कन्दजी अपने शिष्य वामदेवजी पर इस प्रकार अनुग्रह करके प्रसन्न बुद्धि, ज्ञान में श्रेष्ठ महात्मा, दूसरों पर अनुग्रह करनेवाले फिर बोले ।।२४।। जो कुछ नैमिषारण्य के वासी मुनीश्वरों से पहले व्यासजी ने कहा है, इससे यह व्यासजी आदिगुरु हैं और आप दूसरे गुरु जगत्प्रसिद्ध हैं ।।२५।। और आपके मुख से इसे सनत्कुमारजी सुनकर शिवभक्ति में पूर्ण रहेंगे और व्यासजी से कहेंगे तथा शिवभक्ति में तत्पर व्यासजी श्रीशुकदेवजी से कहेंगे ।।२६।। हे मुनिश्रेष्ठ! एक-एक के चार-चार शिष्य वेद के अध्ययन में सम्पन्न और धर्म स्थापन करनेवाले हैं ।।२७।। वैशंपायन, पैल, जैमिनी और सुमन्तु यह चार तेजस्वी व्यासजी के शिष्य हैं, यजुर्वेद में शिवमन्त्रों की अधिकता होने से शिवशास्त्र का यही प्रधान ग्रन्थ कहा है ।।२८।। वामदेवजी के शिष्य कहते हैं, अगस्त, पुलस्त, पुलह, क्रतु, हे महामुने! वामदेवजी यह आपके शिष्य हैं ।।२९।। और सनक, सनन्दन, सनातन मुनि और सनत्कुमारजी यह योगियों में श्रेष्ठ और शिवजी के प्रिय हैं ।।३०।। यही सनत्कुमारजी के चारों शिष्य

सब वेदार्थ के जाननेवाले हैं, गुरु, परम गुरु, परात्पर गुरु, परमेष्ठी गुरु ये शुकयोगी को पूज्य हैं, औरों की तो बात ही क्या है? ।।३१।। यह ओंकार का ज्ञान शिष्यवर्गों के निमित्त हैं, यह चारों फलों का देनेवाला, सब उत्कृष्ट का देनेवाला, काशी में श्रेष्ठ मुक्ति का दाता है ।।३२।। यह पूर्वोक्त मुनिमण्डल अद्भुत पर शिवजी के अधिष्ठान रूप है और वेदान्त के अर्थ विचारने में बुद्धिमान् यतियों से पूजित और वेदादि के विभाग से कल्पित पंचमहाभूतों से आवृत अर्थात् प्रकृति के विकार युक्त होने से भी शिवजी की कृपा से माया के किये मोह को दूर करने और ज्ञान देने से सन्तोष दायक, जगत् के कल्याणकारक और लक्ष्मी का देनेवाला है ।।३३।। यह रहस्य पर शिवजी का कहा हुआ वेदान्त के सिद्धान्त का परं निश्चय है, हे मुने! मुझसे श्रवण करने के कारण पण्डित इसे वामदेवमत कहते हैं ।।३४।। इस कारण इसी मार्ग से चलते और शिवजी का ध्यान करते हुए 'शिवोहमस्मि' यह कहते हुए यति शिव स्वरूप ही हो जाता है और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि के भजन से उन-उन की साम्यता मुक्ति पाता हुआ मुक्त हो जाता है, जैसे सब नदी सागर में पहुँचती हैं ।।३५।। सूतजी बोले- स्कन्दजी इस प्रकार वामदेवजी को उपदेश करके सब देवताओं से पूजित अपने माता-पिता के चरणकमल स्मरण करके ।।३६।। कुमार स्कन्दजी शिखरों से युक्त कैलास के शिखर को गये (इसीसे इसका नाम कैलाससंहिता है) यह पर्वत परम आश्चर्य युक्त है, यहीं को वह दिव्यज्ञान दाता गुरु गये ।।३७।। और वामदेवजी भी स्कन्द का अनुसरण करते शिष्यों सहित प्रणाम करके परम अद्भुत कैलास के शिखर पर जाकर ।।३८।। वहां शिव-पार्वती के दर्शन करते ही कि जो चरण माया के नाश करनेवाले और मोक्ष देनेवाले हैं ।।३९।। भक्ति से सब अंग पूर्ण हो अपने शरीर का भी स्मरण भूल गये और चरणों मे गिर पड़े और बारंबार नमस्कार कर उठ ।।४०।। वेदशास्त्र के आशय से पूर्ण अनेक प्रकार के स्तोत्रों से स्तुति करके मुनिराज देव-देवी को प्रसन्न करने लगे ।।४१।। देव-देवी के चरणकमल अपने सिर के ऊपर धारण करके उनके पूर्ण अनुग्रह को प्राप्त हो वहीं सुख से रहने लगे ।।४२।। आप भी इस प्रकार प्रणव के अर्थ रूप महेश्वरजी को जानकर यहीं सुख से स्थित हो, यह वेद में गुप्त, भक्तों का सर्वस्वतारक मन्त्र मुक्तिदाता है ।।४३।। आप यहीं सुख से रहो, श्रीविश्वेश्वर के चरणकमल की सायुज्य युक्त उत्तम मुक्ति को भजन करो ।।४४।। और मैं गुरु के चरणकमल की सेवा के निमित्त बद्रिकाश्रम में जाऊंगा, आपसे मेरा समागम हो, हे मुनीश्वरो! जो आपने पूंछा था, सो सब आपसे कह दिया ।।४५।। सम्पूर्ण वेद-वेदान्त का सार और परम तत्त्व शिवजी ही हैं। (ईशानो ज्योतिरव्ययः एकोहि रुद्रो न द्वितीयः यो देवानां प्रभवोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः) इत्यादि श्रुति से एक शिवजी ही अद्वितीय हैं, अथर्वशीर्ष के प्रथम खण्ड में लिखा है, देवताओं ने रुद्र से पूछा, आप कौन हैं? तब उन्होंने कहा, मैं जगत् की उत्पत्ति, पालना करता हूं, मुझसे अधिक कोई

नहीं, इसीके दूसरे तीसरे खण्ड में सब देवता शिवजी की विभूति वर्णन किये हैं, ''यो रुद्रो अग्नौ यो अप्सु य ओषधीषु यो रुद्रो विश्वाभुवनानि विवेश तस्मै रुद्राय नमोस्तु ।।'' (तैत्तिरीय शाखा) जो रुद्र अग्नि, जल, औषधि और सब संसार में व्याप्त है, उनको नमस्कार है, इसी प्रकार रुद्राध्याय में ''मनः स्तुत्याय च'' इस मन्त्र में सब वस्तु में शिवजी का सद्भाव कहा है। ''य एषोन्तर्हृदय आकाश०'' आदि बृहदारण्यक ''यदिद्मस्मिन्निति'' इसमें शिवजी को सर्वेश लिखा है। ''ब्रह्मविष्णवग्निशुक्रार्कजलभूमिपुरोगमाः सुरा सुरासः प्रसूतास्ततः सर्वे महेश्वराः'' यह ब्रह्माण्ड पुराण में है, कि ब्रह्मा, विष्णु, अग्नि, शुक्र, सूर्य, जल, भूमि आदि सब उन्हीं शिवजी से उत्पन्न हुए है, हरिवंश में, कैलास यात्रा में शिवजी ने कहा है, हे गोविन्द! जो आपके नाम हैं, सो मेरे ही हैं। ''शिवं प्रस्तुत्य सर्वाणि हवा एतस्य नामधेयानि'' आश्वलायन में लिखा है, शिवजी की स्तुति करके नामकरण करे, स्कन्दपुराण में लिखा है कि, कोई ब्रह्मा, कोई विष्णु, कोई सूर्यादि की मूर्ति की उपासना करते हैं, परन्तु ''प्रतिपाद्यो महादेवः स्थितः सर्वासु मूर्त्तिषु'' सब मूर्त्तियों में महदेवजी का प्रतिपादन करना चाहिये, वही स्थित है। कूर्म में लिखा है ''गोप्तचैव जगच्छास्ता शक्तः शर्वो महेश्वरः ।। यज्ञायां फलदो देवो महादेवानियोगतः'' शिवजी ही को सब यज्ञों का फलदाता लिखा है। महाभारत के वनपर्व में तीर्थयात्रा में ''ततो गच्छेत्सुवर्णाक्षं त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ।। यत्र विष्णुः प्रसादार्थं रुद्रमाराधयत्पुरा ।। वरांश्च सुबाहून् लेभे दैवतैरपि दुर्लभान्'' अर्थात् फिर सुवर्णाक्षको जाकर जहां विष्णुजी ने शिवजी की आराधना करके अनेक वर पाये हैं। द्रोणपर्व में अश्वत्थामा का लिंगार्चन है, शान्तिपर्व में भीष्मजी ने कहा है ''यं विष्णुरिन्द्रः सूर्यश्च ब्रह्मा लोकपितामहः ।। स्तुवन्ति विविधैः स्तोत्रैर्देवदेवं महेश्वरम् ।। तमर्चयन्ति ये शश्वद्दुर्गाण्यतितरन्ति ते'' जिनकी ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, सूर्य स्तुति करते हैं, उन शिवजी का जो पूजन करता है, उसके सब कष्ट दूर हो जाते हैं, फिर अनुशासन में शिवजी से ब्रह्मा, विष्णुजी की उत्पत्ति लिखी है ''सोसृयद्दक्षिणा दङ्गाद्ब्रह्माणं लोकभावनाम् ।। वामपार्श्वात्तथा विष्णुमादौ प्रभुरथासृजत् ।। अप्रज्ञातं जगत्सर्वं तदाह्येको महेश्वरः'' जब कुछ नहीं था, तब एक शिवजी थे, इत्यादि बहुत स्थलों में महाभारत में शिवजी को सर्वेश्वर कहा है। हरिवंश में श्रीकृष्णजी ने शिवजी की स्तुति करके वर पाया है। वाल्मीकि में ''रौद्राय वपुषे नमः'' उत्तर में ''ते तु रामस्य तच्छ्रुत्वा नकस्कृत्य वृषध्वजम्'' और अश्वमेध में रामचन्द्रजी ने शिवाराधन किया है, यथा ''विशेषाद्ब्राह्मणान् सर्वान् पूजयामासचेश्वरम्'' यज्ञेन यज्ञ हन्तारमश्वमेधेन शंकरम् ।।'' और युद्धकाण्ड में ''अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः'' शिवजी के पूजन की सर्वोत्कृष्टता कही है। भागवत के चौथे स्कन्द में दक्ष के यज्ञ में शिवजी के क्रोधशान्ति की इच्छावाले देवताओं से ब्रह्माजी ने कहा है ''नाहं न यज्ञो न च यूयमन्ये ये देहभाजो मुनयश्च तत्त्वम् ।। विदुः प्रमाणं बल वीर्ययोर्वा तस्यात्मतन्त्रस्य

कथां विधित्से इति।।'' अर्थात् मैं, विष्णु, तुम और ऋषि आदि कोई भी उन शिवजी की महिमा को नहीं जानते। अष्टम स्कन्द में ''न ते गिरित्राऽखिललोकपालविरंचि-वैकुण्ठसुरेन्द्रगमनम्।। ज्योतिः परं यत्र रजस्तमश्च सत्त्वं न यद्ब्रह्म निरस्त भेदमिति'' इसमें विष्णु, ब्रह्मादि से शिवजी की उतकृष्टता सम्पादन की है। स्कन्द में ''एषां त्रयाणामधिकः शिवं परं कारणम्'' इन तीनों देवताओं से अधिक शिवजी है, इसी प्रकार पद्मपुराण में ''यस्यान्तःस्थानि भूतानि यस्मात्सर्वं प्रवर्तते।। यदाहुत्सत्परं तत्त्वं स देवः स्यान्महेश्वरः'' इत्यादि चारों वेदों ने शिवजी की स्तुति की है। विष्णुपुराण में लिखा है ''धिक् तेषां धिक् तेषां धिक् तेषां जन्म धिक् तेषाम्।। येषां न वसति हृदये कुमतिर्यथा विमोश्चको रुद्रः'' जिनके हृदय में शिवभक्ति नहीं, उनको धिक्कार है। ऋग्वेद में ''अन्तरिक्षन्ति तं जने रुद्रं परो मनीषया गृभ्णन्ति जिह्वया ससमिति'' पुरुषसूक्त में भी ''उतामृतत्वस्येशान०'' इससे ईशान पद से शिवजी का ही बोध होता है, इसी प्रकार बौधायन सूत्र में और कात्यायन सूत्र में भी ''रुद्रोह्येवैतत्सर्वं'' और आश्वलायन में ''तस्मै शिवाय महते नमः सूक्ष्माक्षरात्मने'' इससे शिवजी की सर्वोत्कृष्टता सम्पादन की है। पातंजल में भी ''पुरुषविशेष ईश्वरः'' ''तस्य वाचकः प्रणवः'' यहां भी शिवजी का ही बोध है, यही वार्ता वायुसंहिता के सातवें अध्याय में लिखी है। कौमुदीकार ने इसी आशय से सूत्रों को शिवमूलक जानकर शिवजी का विषय स्पष्ट किया है। पद्मपुराण के गीतामाहात्म्य में गीता के अठारह अध्यायों को शिवजी की मूर्त्ति नारायण ने कहा है ''ईश्वरः सर्वभूतानां'' और ''त्वमेव शरणं गच्छ'' यह शिव परतत्त्व है। रसेश्वर मुनि ने भी कहा है ''कल्पान्तरे कदाचित्तु दग्ध्वा लोकान् महेश्वरः। सहसैवासृजद्विष्णुर्ब्रह्माणं च निजेच्छया) शिवजी ने सृष्टि की आदि में ब्रह्मा और विष्णुजी को उत्पन्न किया है। पराशर मुनि ने कहा है, जो और कहीं पुराणों में विष्णु आदि देवताओं की उत्कृष्टता है, वह शिवजी की विभूति की उत्कृष्टता से कही है, जगत् के निमित्त वे चाहें किसी प्रकार से प्रकट हों, परन्तु कुछ भेद नहीं है। सब पुराण शिवजी का ही वर्णन करते हैं ''दश शैवपुराणानि सात्त्विकानि विदुर्बुधाः'' जिनमें दश पुराण शिवजी की महिमा कहने में सात्त्विक हैं, वह ब्राह्मणों को सुनने चाहिये, चार वैष्णव पुराण क्षत्रियों को सुनने चाहिये, ब्रह्म पुराण वैश्यों को मंगल करनेवाला है। ''अद्यापि ब्रह्मविष्णुभ्यां न दृष्टोयं महेश्वरः।। पशूनां पतिरीशोऽयं ब्रह्माद्याः पशवः स्मृताः'' इससे भी शिवजी की सर्वोत्कृष्टता कही है, परन्तु पाशुपतों के दो भेद हैं, एक दो श्रुति के अनुसार चलते हैं, एक स्वच्छन्द वाममार्ग में चलते हैं, स्वच्छन्दचारियों का वेदविरुद्ध होने से प्रमाण नहीं है, जो प्राणी वेदबाह्य होकर नास्तिक हुए जाते थे, उनके मोहने के निमित्त वाम आदि देवताओं ने बनाये हैं। इस प्रकार श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास में शिवजी को ही सर्वेश्वर परंतत्त्व जानकर भजते और नमस्कार करते हैं, इस प्रकार जो कोई इस संहिता

को श्रवण करते हैं, वह यहां सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त होकर अन्त में परम भक्ति को पाकर अवश्य मुक्त हो जाते हैं और जन्मजन्मान्तर में उनकी शिवजी में भक्ति होती है अर्थात् पूर्णशक्ति न होकर जिसका शरीरपात हो जाता है, उसे दूसरे जन्म में सिद्धि होती है, जैसा गीता में लिखा है और शिवगीता में यही लिखा है ''नमो भक्तो विनश्यति'' *इत्यादि ।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां षष्ठ्यां कैलाससंहितायां

त्र्ययोविंशोऽध्यायः ।। २३ ।।

*****

दोहा–

शिवशंकरको ध्यानधर, गिरिजहि शीश नवाय ।
कियो संहिताको तिलक, लखहिं सुजन चित लाय ।।
शशिबाणांकभूम्यब्दे कार्तिके कृष्णपंचमी ।
गुरुवारे शिवं ध्यात्वा व्याख्यापूर्तिः कृता मया ।।१।।

*****

।। शुभमस्तु ।।

*****

*– हमारे किये शिवगीता के टीका में इसका विवरण देख लीजिये, हमने जितनी टीकाएं निर्माण की हैं, किसी प्रकार का पक्षपात नहीं किया है, किन्तु तीनों देवताओं में हमारी एक ही दृष्टि है, हम न्यूनाधिक नहीं मानते हैं, उपासना एक ही देवता की करनी उचित है, वह सब एक ही रूप है, परन्तु उपासक रुचि के अनुसार भजन करते हैं, इसी कारण व्यासजी ने सभी देवताओं की सबसे उत्कृष्ट महिमा वर्णन की है, चाहे वह किसी प्रकार से हो और कहीं–कहीं स्पष्ट कह दिया है कि, यह सब एक है, सो बुद्धिमान् जानते हैं ।।

ॐ

श्रीकृष्णद्वैपायनमहर्षिवेदव्यासविरचित

शिवमहापुराणभाषा

(सप्तमी वायवीयसंहिता पूर्वखंड ७)

***

कात्यायनगोत्रोद्भव मुरादाबाद निवासी श्रीयुत पंडित
ज्वालाप्रसादजी मिश्र ने संस्कृत से अत्युत्तम
देवनागरी में भाषांतर किया

मुद्रक एवं प्रकाशकः
खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बम्बई-४०० ००४

(सप्तमी वायवीयसंहिता पूर्वखंड ७)



ॐ

अथ

शिवमहापुराणभाषा

***

अथ सप्तमी वायवीयसंहिता पूर्वखण्ड प्रारभ्यते

पहिला अध्याय

दोहा–

श्रीमच्छंकर गौरिपति, वेदगम्य भगवान।
जगवंदित तारण तरण, जनरंजन सुखदान।।१।।
कृपासिंधु अशरण शरण, हरण सकल भयशूल।
शिव ज्वालापरसाद पर, सदा रहो अनुकूल।।२।।
विघ्नविदारण सुखकरन, गणपति सिद्धिदातार।
चरणकमल रजको सदा, वंदौ बारंबार।।३।।
नन्दीश्वर गिरिजा गिरिश, गंगाधर सुर ईश।
वानी जगरानी गिरहि, पुनि-पुनि नावहुँ शीश।।४।।
वायुसंहिता को करत, भाषा तिलक विचार।
कृपाकरहिं जन जान मोहिं, अभिमत फलदातार।।५।।

व्यासजी बोले– शिवजी, गणपति, कार्तिकेय, प्रधान पुरुषेश्वर, सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाले शंकरजी को प्रणाम करता हूं।।१।। जिनकी अद्वितीय शक्ति है, सर्वगामी जिनका ऐश्वर्य है, स्वामी और व्यापकता जिनका स्वभाव कहा जाता है।।२।। उन अजन्मा, विश्व के कर्ता, निरन्तर स्थित, अविनाशी, शिव, महादेव, महात्मा शिवजी की शरण होता हूं।।३।। धर्म के स्थान महातीर्थ गंगा-यमुना के संगमवाले तथा ब्रह्मलोक के मार्गवाले प्रयाग तथा नैमिषारण्य में।।४।। सत्यव्रत में परायण शुद्धात्मावाले महातेजस्वी, महाभाग्यवान् मुनियों ने महायज्ञ का आरम्भ किया।।५।। उन अक्लिष्टकर्मा ऋषियों के उस यज्ञ के वृत्तान्त को सुनकर साक्षात् सत्यवतीपुत्र

वेदव्यासजी के ।।६।। शिष्य बुद्धिमान् महात्मा, तीनों लोकों में विख्यात तथा न्यायशास्त्र में कहे पांच अवयव युक्त वाक्य के गुण दोष जाननेवाले ।।७।। साक्षात् बृहस्पति को भी वाक्य में निरुत्तर करनेवाले, सुननेवालों में पदवर्णन में मनोहर सम्पादन करनेवाले ।।८।। कथा कहने में बड़े निपुण वक्ता, काल और नीति के जाननेवाले कवि, पुराण जाननेवालों में श्रेष्ठ सूतजी उस स्थान में आये ।।९।। सूतजी को आये हुए देखकर सब मुनि प्रसन्न हो गये, उनका प्रेमपूर्वक विधि से ऋषियों ने पूजा ।।१०।। मुनियों द्वारा की हुई पूजा को ग्रहण कर आत्मयुक्त सूतजी मुनियों ने दिये हुए आसन पर विराजे ।।११।। तब उन भावितात्मा मुनियों की संगति से सूतजी प्रसन्न हुए और मुनियों का चित्त पुराण सम्बन्धी कथा सुनने के लिये उत्कण्ठित हुआ ।।१२।। तब ऋषि अनुकूल वचनों से सूतजी का सत्कार कर और उनको विशेष कर अपने सम्मुख कर यह वचन बोले ।।१३।। ऋषि बोले– हे सर्वज्ञ रोमहर्षण सूतजी ! आप हमारे भाग्य के कारण ही यहां प्राप्त हुए हो, हे महाभाग, महाबुद्धिमान् शैवराज !।।१४।। आपने समस्त पुराणों की कथा साक्षात् व्यासजी से प्राप्त की है, इस कारण आश्चर्य से भरी हुई समस्त कथाओं के आप पात्र हैं।।१५।। जिस प्रकार समुद्र में बड़े अमूल्य रत्न रहते हैं, उसी प्रकार भूत, भविष्य, वर्तमान जो कुछ वस्तु है ।।१६।। तीनों लोकों में आपको कुछ भी अविदित नहीं है, आप हमारे प्रारब्ध से ही यहां आकर प्राप्त हुए हो, अब आप हमारा कल्याण किये बिना यहां से वृथा नहीं जा सकते ।।१७।। इससे जो अत्यन्त ही सुनने योग्य, पुण्यदायक सत्कथा ज्ञान की संहिता से युक्त वेदान्तसार का सर्वस्व पुराण हमें सुनाइये ।।१८।। जब वेदवादी मुनियों ने सूतजी की इस प्रकार से प्रार्थना की, तब सूतजी परम मनोहर न्याययुक्त सुन्दर वाणी बोले ।।१९।। सूतजी बोले– जब कि, आपने अनुग्रह करके इस प्रकार मेरा सत्कार किया है, तब मैं ऋषि पूजित पुराण को भली प्रकार कैसे नहीं कह सकता ? ।।२०।। महादेवजी, देवी, स्कन्दजी, गणेशजी, नन्दी तथा साक्षात् सत्यवती पुत्र व्यासजी को प्रणाम करके ।।२१।। परम पुण्य देनेवाला, वेदसम्मत, शिवजी के ज्ञान का समुद्र साक्षात् भुक्ति–मुक्ति के फल देनवाला पुराण कहता हूं।।२२।। जो शब्दार्थ न्याय से युक्त वेदार्थ में विभूषित है, तथा पहले वायु ने श्वेतकल्प के प्रसंग में वर्णन किया है।।२३।। पुराणों का अनुक्रम सब विद्याओं का स्थान है, उस कारण मेरे द्वारा आप पुराण की उत्पत्ति सुनिये ।।२४।। चार वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद) छः वेदांग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष) मीमांसा, न्याय, पुराण और धर्मशास्त्र ये चौदह विद्याएं हैं ।।२५।। आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद, अर्थशास्त्र यह चार और मिलाने से अठारह विद्याएं होती हैं ।।२६।। इन भिन्न–भिन्न मार्गवाली अठारह विद्याओं के आदिकर्ता साक्षात् शिवजी हैं, ऐसा श्रुति कहती है ।।२७।। उन सब जगत् के पति ने इस जगत् की उत्पत्ति करने के लिये पहले सनातन पुत्र ब्रह्माजी की रचना की ।।२८।।

उन विश्वयोनि में प्रथम पुत्र ब्रह्माजी के निमित्त ईश्वर ने सृष्टि के निमित्त पहले यह विद्या दी ।।२९।। पालन करने की शक्ति विष्णुजी को दी, यह मध्यम पुत्र विष्णुजी हैं और ब्रह्माजी के भी रक्षक हैं ।।३०।। ब्रह्माजी ने विद्या को प्राप्त होकर प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा से समस्त शास्त्रों के बीच में प्रथम पुराण को प्रकाशित किया ।।३१।। इस उपरान्त उनके मुखों से वेद निर्गत हुए, मत्स्य पुराण में लिखा है, कि एक अरब श्लोकों में प्रथम कल्प में एक ही पुराण था; जिससे त्रिवर्ग साधन होता था, यथा हि "पुराणमेकमेवासीत्तदाकल्पान्तरेऽनघ ।। त्रिवर्गसाधनं पुण्यं कल्पकोटिप्रविस्तरम्" इसके उपरान्त ब्रह्माजी के मुख से सब शास्त्रों की प्रवृत्ति हुई है ।।३२।। जब पृथ्वी में प्रजा इनके विस्तार कथन करने के लिये समर्थ न हुई, तब उन विस्तृत विद्याओं को संक्षिप्त करने के निमित्त, विश्वेश्वर की आज्ञा से ।।३३।। द्वापर के अन्त में सम्पूर्ण जगत्स्वरूप विश्वात्मा भगवान् विष्णुजी पृथ्वी पर अवतार लेकर व्यास नाम से विख्यात हुए ।।३४।। हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार प्रत्येक द्वापर में वेदों का विभाग होता है और दूसरे पुराण निर्मित होते हैं ।।३५।। फिर द्वापर के अन्त में कृष्णद्वैपायन नाम से अरणी में अग्नि के समान यही सत्यवती में जन्मे ।।३६।। फिर वेदों का संक्षेप करके चार प्रकार से विभक्त किया, वेदों का अधिक विस्तार करने से लोक में वेदव्यास नाम से विख्यात हुए ।।३७।। पश्चात् पुराण को संक्षिप्त करके चार लाख श्लोकों में किया, देवलोक में अब भी उन पुराणों का सौ करोड़ विस्तार है ।।३८।। जो ब्राह्मण अंग उपनिषद् सहित चारों वेदों को जानता हो और पुराणों को न जाने, तो वह चतुर नहीं होता ।।३९।। इतिहास और पुराणों से वेदों का विस्तार किये हुए थोड़े पढ़े हुए से वेद डरता है कि, मेरी प्रतारणा करेगा ।।४०।। उत्पत्ति, प्रलय, वंश, मन्वन्तर कथा, वंशानुचरित जिसमें हो, उसे पुराण कहते हैं ।।४१।। तथा अठारह पुराण प्रसिद्ध हैं, बृहत्–सूक्ष्म के भेद से मुनियों ने कहे हैं ।।४२।। ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, भागवत, भविष्य, नारदीय, मार्कण्डेय ।।४३।। अग्नि, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वारह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़ ।।४४।। और ब्रह्माण्डपुराण ये पुराणों के नाम हैं, इनमें चौथा शिवपुराण भक्तों के सब मनोरथों को सिद्ध करनेवाला है ।।४५।। इसके लक्ष श्लोक और बारह संहिताएं हैं, यह साक्षात् शिवनिर्मित है और धर्म प्रतिष्ठित है ।।४६।। इसमें कहे शिवभक्त तीन वर्ण के मनुष्य शिवजी के प्रसाद से हुए ही जन्म में मुक्त हो जाते हैं ।।४७।। इसी कारण मुक्ति की इच्छा करनेवाले शिवजी का ही आश्रय करने से देवताओं की भी मुक्ति हो जाती है, इसमें सन्देह नहीं ।।४८।। जो वेदसम्मत शिवपुराण है, मैं संक्षेप से उसके भेद वर्णन करता हूं, आप श्रवण कीजिये ।।४९।। विद्येश्वर, रुद्र, विनायक, उमा, मातृ संहिता, रुद्रैकादश ।।५०।। कैलास, शतरुद्र, कोटिरुद्र, सहस्रकोटिरुद्र, वायवीय संहिता ।।५१।। धर्म संहिता ये बारह संहिताएँ इस पुराण में हैं, इसमें विद्येश्वर संहिता दशसहस्र ।।५२।।

रुद्र, विनायक, उमा और मातृ संहिता प्रत्येक आठ-आठ सहस्र हैं, रुद्रैकादश ।।५३।। तेरह सहस्र और कैलास संहिता छः सहस्र, शतरुद्र तीन सहस्र, सम्पूर्ण अर्थ ज्ञान से युक्त कोटिरुद्र ।।५४।। नौ सहस्र श्लोक, सहस्रकोटि रुद्रसंहिता ग्यारह सहस्र ।।५५।। वायु संहिता चार सहस्र, धर्म संहिता बारह सहस्र ।।५६।। इस प्रकार शाखा भेद से शिवपुराण के एक लक्ष श्लोक हैं, यह वेदों का सार पुराण भुक्ति-मुक्ति देनेवाला है ।।५७।। व्यासजी ने इसे चौबीस सहस्र श्लोकों में संक्षिप्त किया है, यह शिवपुराण चौथा सात संहिताएँ भेदों से युक्त है ।।५८।। इसमें पहली विद्येश्वर संहिता, दूसरी रुद्र संहिता, तीसरी शतरुद्र, चौथी कोटिरुद्र ।।५९।। पांचवीं उमा, छठीं कैलास संहिता और सातवीं वायु संहिता है ।।६०।। इसमें विद्येश्वर दो सहस्र (२०००), रुद्र संहिता दश हजार पांच सौ (१०५००) ।।६१।। शतरुद्र संहिता दो हजार एक सौ अस्सी (२१८०), कोटिरुद्र संहिता दो हजार दो सौ चालीस (२२४०), उमा संहिता एक हजार आठ सौ चालीस (१८४०) ।।६२।। कैलास संहिता एक हजार दो सौ चालीस (१२४०) वायु संहिता चार सहस्र (४०००) ।।६३।। इस प्रकार संख्या भेद से परम्परा से चौबीस सहस्र श्लोकों का है यह शिवपुराण पुण्यदायक है ।।६४।। और वायु संहिता में जो चार सहस्र श्लोक कहे हैं, उस वायु संहिता के दो भाग हैं, सो आपसे वर्णन करूंगा ।।६५।। यह श्रेष्ठ शास्त्र जो वेदों को न जाननेवाला हो, उसके प्रति न कहना चाहिये, जो श्रद्धा न रखता हो, जो पुराण न जानता हो, उसके सामने कहना उचित नहीं ।।६६।। जो परीक्षा किया हुआ अपना शिष्य हो, जो धर्मात्मा और निन्दा रहित हो, उस शिवधर्मानुरागी शिवभक्त को यह पुराण देना चाहिये ।।६७।। जिसके प्रसाद से यह पुराण संहिता मेरे लिये वर्तमान है, उस महातेजस्वी व्यासजी को नमस्कार है ।।६८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
विद्यावतारकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः ।। १ ।।

*****

दूसरा अध्याय

सूतजी बोले- बहुत समय और अनेक कल्पों के बीतने पर जब यह श्वेतवाराह कल्प उपस्थित हुआ, तब सृष्टि निर्माण कर्म में ।।१।। यह जगत् निर्माण की वार्ता प्रवृत्त होने और प्रजा के ज्ञान युक्त होने में षट्कुलों में उत्पन्न हुए वे मुनि सब परस्पर कहने लगे ।।२।। यह परब्रह्म है, यह नहीं; इस प्रकार का महाविवाद होने लगा, परन्तु ब्रह्म को निरूपण करना कठिन है, इसमें कोई निश्चय न हुआ ।।३।। तब वे सब अविनाशी

ब्रह्माजी को देखने के निमित्त गये, जहां सुर-असुरों द्वारा स्तुति को प्राप्त हुए ब्रह्माजी विद्यमान थे।।४।। मनोहर सुमेरु के श्रृंग में जहां अनेक देव-दानव स्थित हैं, सिद्ध चारणों से युक्त यक्ष-गन्धर्वों से सेवित।।५।। अनेक पक्षियों से भरे मणिमूँगों से युक्त निकुंज, कन्दरा, छोटी गुहा और झरनों से शोभित।।६।। वहां अनेक मृगों से भरापूरा ब्रह्मवन है, जो दश योजन विस्तारवाला और सौ योजन लम्बा है।।७।। जिसमें सुन्दर रस युक्त जलवाले सरोवर हैं, जहां के फूले हुए मनोहर वृक्षों पर मतवाले भौंरे गुञ्जार कर रहे हैं।।८।। वहां लाल सूर्य के समान प्रकाशमान एक महापुर है, जहां बड़े दुर्धर्ष बलशाली दैत्य, दानव, राक्षसों का।।९।। तपाये हुए सोने के समान, ऊँचे प्राकार और तोरण-ध्वजाओं से शोभित खूँटी गोपानसी और सैकड़ों गलियों से शोभित।।१०।। महामोल की चित्र-विचित्र मणियों से आकाश को चाटते हुए, करोड़ों भुवन समूहों से अलंकृत।।११।। उस स्थान पर साध्य देवताओं के सहित ब्रह्माजी निवास करते हैं, वहां आकर लोकपितामह ब्रह्माजी को।।१२।। देवता, ऋषियों से सेवित उन मुनियों ने देखा, जो शुद्ध सुवर्ण के आभूषण पहने हुए थे।।१३।। प्रसन्न मुख सौम्यमूर्ति, कमलपत्र के समान नेत्र, दिव्य कान्ति से युक्त, दिव्य गन्ध का अनुलेपन किये।।१४।। दिव्य श्वेतवस्त्र पहने, दिव्य मालाओं से विभूषित, सुर-असुर, योगीन्द्र जिनके चरणों को नमस्कार करते हैं।।१५।। सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त, हाथ में चमर लिये सूर्य के प्रभा के समान सरस्वती से सेवित।।१६।। इस प्रकार ब्रह्माजी को देखकर सब मुनि प्रसन्नमुख होकर सिर पर अंजलि धरकर ब्रह्माजी की स्तुति करने लगे।।१७।। ऋषि बोले- सृष्टि की उत्पत्ति, पालन, संहार करनेवाले त्रिमूर्त्ति स्वरूप आपको नमस्कार है, पुराणपुरुष परमात्मा ब्रह्माजी के निमित्त नमस्कार है।।१८।। प्रधान देह, प्रधान अर्थात् प्रकृति की विषम अवस्था करनेवाले तेइस महत् विकार करके भी विकार हीन।।१९।। ब्रह्माण्ड के उत्पन्नकर्ता होकर भी ब्रह्माण्ड के मध्य में स्थित होनवाले आपके निमित्त नमस्कार है, उस ब्रह्माण्ड में महाभूतात्मक सृष्टि आदि के कर्ता और अपंचीकृत महाभूत के कर्ता को नमस्कार है।।२०।। सब लोक स्वरूप सब लोक के देखनेवाले आपके निमित्त नमस्कार है, सम्पूर्ण आत्मा देह के संयोगविधि के कारण।।२१।। आप ही ने यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न करके पालन और संहार किया है, हे नाथ! हे पितामह! माया के वशीभूत होकर हम आपको नहीं जानते।।२२।। सूतजी बोले- जब इस प्रकार महाभागी ऋषियों ने ब्रह्माजी की प्रार्थना की, तब मुनियों को प्रसन्न करते हुए ब्रह्माजी गम्भीर वाणी से बोले।।२३।। ब्रह्माजी बोले- हे महापराक्रमी, महातेजस्वी ऋषियो! आप सब मिलकर किस कारण से यहां आये हो?।।२४।। जब देव ब्रह्माजी ने उनकेप्रति ऐसे वचन कहे तब वे ऋषि हाथ जोड़कर विनय युक्त वाणी से बोले।।२५।। मुनि बोले- हे भगवन्! हम सब बड़े भारी अन्धकार से आवृत हो रहे हैं, हम विवाद करके खिन्न हो रहे हैं,

परन्तु हमने अब तक परम तत्त्व को न जाना ।।२६।। आप ही सब जगत् के कर्त्ता, सब के कारण के कारण हो, हे नाथ! आप के लिये इस जगत् में कुछ भी अविदित नहीं है ।।२७।। सब जीवों से पुराना आपके सिवाय और कौन पुरुष है? विशुद्ध परिपूर्ण शाश्वत नित्य परमेश्वर ।।२८।। किस विचित्र कृत्य से प्रथम जगत् को निर्माण करता है? हे महाप्राज्ञ! सन्देह दूर करने के लिये तत्त्व से कहिये और अन्तकाल में यह सब लय हो जाता है, यह सब प्राणी किस के वश में है और इन सब का नियोजक कौन है, उस पुरुष को हम किस प्रकार देख सकते हैं? ।।२९।। जब उन्होंने विस्मय युक्त होकर इस प्रकार ब्रह्माजी से पूछा, तब देवता, दानव और मुनियों के निकट में ।।३०।। ब्रह्माजी उठकर बहुत काल ध्यान करते 'रुद्र' इस प्रकार वाणी उच्चारण करते हुए आनन्द से पूरित शरीर होकर हाथ जोड़कर बोले ।।३१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे

द्वितीयोऽध्यायः ।। २ ।।

*****

तीसरा अध्याय

ब्रह्माजी बोले– जहां मन के सहित वाणी चलकर उसे प्राप्त न होकर लौट आती है, जिसके आनन्द को प्राप्त होकर विद्वान् कहीं से भी भयभीत नहीं होता है ।।१।। जिससे यह सब ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्रादिक हुए हैं और भूतेन्द्रिय के सहित प्रथम उत्पन्न होते हैं ।।२।। जो सृष्टि आदि कारणों का ध्याता नारायण है, जो उनका भी पर कारण है, उसके सिवाय और कोई वस्तु कोई भी किसी से उत्पन्न नहीं होती ।।३।। वह सम्पूर्ण ऐश्वर्य से सम्पन्न स्वयं सर्वेश्वर हैं; सब मुमुक्षओं से ध्यान करने योग्य हृदयाकाश के मध्य में स्थित हैं ।।४।। जो प्रथम मुझ पुत्र को उत्पन्न करके ज्ञान प्रदान करते हैं, जिनके प्रसाद से मैंने यह प्रजापति पद पाया है ।।५।। जो एक ही ईश्वर वृक्ष की नाईं निश्चल आकाश में स्थित है, जिस महात्मा पुरुष से यह सब ब्रह्माण्ड पूर्ण है ।।६।। जो एक ही क्रियाहीन अनेक जीवों से सत्क्रिया करता है अर्थात् प्रेरक है और जो एक ही अनेक बीज रूप कर्मों को कराता है, यही महेश्वर है ।।७।। जो ईश्वर सब जीवों से लोकों को भरकर स्वयं उनका शासक है, वही एक भगवान् रुद्र है, दूसरा कोई नहीं हैं ।।८।। जो सदा भक्तों के हृदय में स्थित होकर भी दूसरों को न दीखता हुआ स्थित होता है ।।९।। जो काल अर्थात् प्रसिद्ध आत्मा और बुद्धि से युक्त अनेक कारणों को आकाशादिक हैं, उनमें वह एक ही अनन्त शक्ति भगवान् स्थित है ।।१०।। सृष्टि उत्पन्न होने के पूर्व

जगत् अन्धकार में था, उस समय दिन, रात, सत्, असत् कुछ नहीं था, केवल एक शिव ही थे, उनके समान वा अधिक नहीं है, उनकी पराशक्ति स्वाभाविकी है और उनमें नित्य ज्ञान और क्रिया रहती है ।।११।। जो कुछ यह सम्पूर्ण भूत है, वह अक्षर कूटस्थ परमात्मा है, वह अव्यक्त है, यद्यपि अक्षर अमृत स्वरूप है, वह अक्षर, आत्मा यह दोनों एक ही महेश्वर देव एक है ।।१२।। जो मनुष्य सत्वभाव से उन शिवजी का ध्यान करता है, तब अन्त समय इस जीव की निवृत्ति हो जायगी और वह मुक्त हो जायगा ।।१३।। जिनमें बिजली, सूर्य, चन्द्रमा कोई भी अपना प्रकाश नहीं करते, जिनकी कान्ति से यह सब जगत् प्रकाश कर रहा है, श्रुति सनातन की है ।।१४।। एक ही महादेवजी देवता जानने के योग्य हैं, उनका परम तत्त्व कुछ भी किसी से जाना नहीं जाता ।।१५।। वही आदि अन्त हीन, स्वभाव से निर्मल है, वही स्वतन्त्र परिपूर्ण चर-अचर को अपनी इच्छा के आधीन किये हुए हैं ।।१६।। इन लक्ष्मीवान् का प्रकृति का शरीर नहीं है, वह लक्ष्य और लक्षण से वर्जित है, स्वयं माया में सम्बद्ध होकर भी यह भक्तों को मुक्ति देनेवाले काल स्वरूप न होकर भी काल के प्रेरक हैं ।।१७।। उनका स्थान सबसे ऊपर है, वे सब में विराजते हैं और सब में निवास करके भी सब के जाननेवाले हैं; आगे कहे हुए छः मार्ग और सम्पूर्ण जगत् के पति हैं ।।१८।। उत्तरोत्तर प्राणियों में भी वह सबसे उत्कृष्ट हैं, उनसे श्रेष्ठ कोई नहीं, वह अनन्त महिमा की भूमि और अपरिछिन्न ऐश्वर्यवाले हैं, शब्दादि विषयों में जो अमोघ अर्थात् शुद्ध बुद्धि है, उससे और भक्तों के निर्मल हितकारी ज्ञान से सब में व्यापक हैं, और आत्मा शक्ति के, आनन्द के, अमृत और प्रमोद के रसिक युवा अवस्था युक्त है, अनन्त आनन्द के पात्र मकरन्द के पान में मधुव्रत ।।१९।। बाल अखण्ड और जगत् के दण्डदान के पिण्डीभाव करने में पण्डित हैं, उदारता, वीरता, गम्भीरता और मधुरता के मकरालय अर्थात् सागर हैं ।।२०।। उनके बराबर न कोई वस्तु है, न कोई उनसे अधिक है, किसी वस्तु से उनकी तुलना नहीं हो सकती, वह राजाओं के राजा होकर स्थित हैं ।।२१।। उन्हीं से चित्र कृत्य के समान यह जगत् प्रथम बनाया जाता है और अन्त समय यह जगत् फिर उन्हीं में लय हो जाता है ।।२२।। उन्हीं के वश में सब हैं और वेही सब को निर्मुक्त करनेवाले हैं, वे परम भक्ति से दीखते हैं, दूसरी प्रकार से नहीं ।।२३।। व्रत और सब दान, तप और नियम यह प्राचीन महात्माओं ने और रुद्र तथा ईश्वर के ध्यान के निमित्त कहे हैं ।।२४।। विष्णुजी तथा दूसरे सुर-असुर बड़े उग्र तप करके अब तक उनके दर्शन की इच्छा करते हैं ।।२५।। वह पतित, मूढ़ और कुत्सित दुर्जनों की दृष्टि में नहीं आते, भक्त उनको भीतर-बाहर पूजन करके उनसे सम्भाषण करते हैं ।।२६।। जो स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्म से भी परे रूप हैं, हम और देवता आदि स्थूल को देख सकते हैं, योगीजन सूक्ष्म रूप का दर्शन करते हैं ।।२७।। इससे आगे जो नित्यज्ञान, आनन्द और अविनाशी लक्षण युक्त है,

उनको उनमें निष्ठा करनेवाले उन्हींमें तत्पर उन्हींका व्रत करनेवाले पाते हैं।।२८।। बहुत कहने से क्या है? जो गुप्त से भी गुप्त पर है, उन शिवजी में भक्ति करनी है; इसमें सन्देह नहीं कि, भक्ति करने से मुक्त हो जाता है।।२९।। ईश्वर के प्रसाद से उनमें भक्ति होती है और भक्ति करने से ईश्वर से प्रसन्नता की प्राप्ति होती है, जैसे अंकुर से बीज और बीज से अंकुर होता है।।३०।। उसी प्रकार प्राणियों को ईश्वर से भक्ति की प्राप्ति होती है, यह सर्वत्र निश्चय है, वह शिवजी सब साधनों से अन्त में साध लिये जाते हैं।।३१।। उनको प्रसन्न करने और साधने का धर्म वेद ने दिखा दिया है, वह वेद के अभ्यासवश से पूर्वजन्म के पाप और पुण्य समान होने से।।३२।। साम्यता होने से प्रसाद की प्राप्ति और धर्म की अधिकता होती है, धर्म की अधिकता से जीव के पाप का नाश होता है।।३३।। इस प्रकार क्रम से बहुत जन्म के किये हुए पापों का नाश हो जाने से साम्ब सर्वेश्वर में ज्ञान पूर्वक भक्ति होती है।।३४।। उनके गुणों का विचार करने से उनमें प्रसाद की प्राप्ति होती है, प्रसाद से कर्म का त्याग होता है, कर्मत्याग का आशय उसके फल से है, स्वरूप से नहीं।।३५।। इस कारण कर्मफल के त्याग करने से शिवधर्म में तत्पर होता है, वह धर्म गुरु की अपेक्षा युक्त और गुरु की अपेक्षा रहित होने से दो प्रकार का है।।३६।। उसमें गुरु की अपेक्षा न करनेवाले से गुरु की अपेक्षा करनेवाला सौ गुणा अधिक है, जो कि गुरु की अपेक्षा से शिवधर्म में तत्पर रहता है, वह शिवज्ञान से युक्त हो जाता है।।३७।। ज्ञान की प्राप्ति होने से पुरुष संसार में दोष देखने लगता है, विषयों में वैराग्य होने से उन शिवजी के प्रेम का साधन होता है।।३८।। भाव सिद्धि युक्त निष्ठा ध्यानकर्म में ज्ञान होने से ज्ञान ध्यान से युक्त पुरुष को योग की प्राप्ति होती है।।३९।। योग से पराभक्ति, इसके उपरान्त प्रसन्नता होती है और उनकी प्रसन्नता से ही यह पुरुष मुक्त होकर शिवजी के समान हो जाता है।।४०।। यह अनुग्रह होने का क्रम कथन किया, जैसी पुरुष की योग्यता होगी वैसे ही उसे प्रसाद की प्राप्ति होगी।।४१।। कोई गर्भ में स्थित ही तथा कोई जन्म लेकर मुक्त हो जाता है, कोई बालक, कोई तरुण तथा कोई वृद्ध होकर मुक्त हो जाता है।।४२।। कोई तिर्यक्योनि में, कोई नरक में जाकर मुक्त हो जाता है, कोई पाप-पुण्य के क्षीण होने से, अपने पद के क्षय होने से उस पद को प्राप्त होकर मुक्त होता है।।४३।। कोई क्षीण पद होकर फिर कर्मभूमि में प्राप्त होकर मुक्त हो जाता है, कोई स्वर्ग में जाकर वहां कुछ दिन रहने के उपरान्त मुक्त हो जाता है।।४४।। इस कारण मनुष्यों की एक प्रकार से मुक्ति नहीं है, ज्ञान तथा भाव के अनुसार शिवजी के प्रसाद से ही अत्यन्त आनन्द होता है।।४५।। इस कारण शिवजी को प्रसन्न करने के निमित्त वाणी तथा मन के द्वेष से हीन होकर सदा शिवजी का ध्यान करते हुए सदा प्रीति करते नीति और अग्निहोत्र करते हुए।।४६।। शिवजी में ही निष्ठा, उन्हीं में तत्पर, उसी में युक्त और शिवजी का ही आश्रय करनेवाले सब क्रियाओं को

करनेवाले मन से शिवजी का ध्यान करनेवाले ।।४७।। आप दिव्य सहस्र वर्ष का दीर्घ यज्ञ का अनुष्ठान करें, यज्ञ के अन्त में मन्त्र पढ़ने से वायु उस स्थान में अवश्य आयेंगे, वही आपके मंगल और कल्याण का उपाय कहेंगे, फिर परमपवित्र पुण्य प्रदान करनेवाली ।।४८।। वाराणसीपुरी में जाना, जहां देवी के सहित पिनाकधारी शिवजी निकास करते हैं ।।४९।। भक्तों के ऊपर अनुग्रह करनेवाले वह श्रीमान् वहां सदा विहार करते हैं ।।५०।। वहां एक बड़ा आश्चर्य देखकर आप मेरे समीप आना, हे ब्राह्मणो! तब मुक्ति का उपाय उस समय आपसे कहूंगा ।।५१।। जिससे एक ही जन्म में आपकी मुक्ति हो जायगी, जो अनेक जन्मों में भ्रमनेवालों को मोक्ष कर देती है ।।५२।। यह मैंने मनोमय चक्र बनाया है, इसे मैं त्याग करता हूं, जहां इसकी नेमि टूट जाय वहीं देश तप करने के योग्य जानना ।।५३।। ऐसा कहकर सूर्य के समान वह मनोमय चक्र देखकर महादेवजी को प्रणाम करके ब्रह्माजी ने चक्र छोड़ दिया ।।५४।। वे ब्राह्मण प्रसन्न होकर ब्रह्माजी को प्रणाम करके उसके पीछे चले, उस चक्र की नेमि जहां टूटी ।।५५।। उस देश में एक शिला के ऊपर वह चक्र गिरा, जिस वन में उज्ज्वल जल था, ऐसे वन में वह पतित हुआ ।।५६।। इसी कारण से वह मुनि पूजित वन नैमिषारण्य नाम से विख्यात हुआ, अनेक यक्ष, गन्धर्व, विद्याधरों से युक्त हुआ ।।५७।। पुरूरवा राजा अठारह द्वीपों पर राज्य करता हुआ विलास के कारण देव से प्रेरित होकर उर्वशी के निकट आया ।।५८।। उसने अज्ञान से धर्म के अतिक्रमण से मुनियों की यज्ञशाला का हरण किया, तब मुनि ने क्रोध करके वहां वज्र के समान कुश निपातित किये थे ।।५९।। और उसी स्थान पर पूर्वसमय में ब्रह्माजी ने सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा से दिव्य यज्ञ का आरम्भ किया; जो कि ब्रह्मज्ञानी और गार्हपत्य अग्निवाले ।।६०।। विद्वान् ऋषि तथा शब्दार्थ और न्याय के पण्डित तथा शक्ति, ज्ञान और क्रियायोग की विधि जाननेवालों से अनुष्ठीयमान है ।।६१।। जहां नित्य वेद के जाननेवाले वेदवाद से बाहर किये नास्तिक पुरुषों को वेदवाद के तथा जल्प के बल से तथा अनेक प्रमाणों से जीतते हैं ।।६२।। जहां स्फटिक मणि के पर्वतों से निकली शिलाओं से अमृत के समान निर्मल जल निकलता है, जहां के वृक्षों पर रसीले फल लगते तथा अनेक जन्तु निवास करते थे, ऐसा नैमिषारण्य मुनियों के तप करने योग्य हो गया ।।६३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्ड

तृतीयोऽध्यायः ।। ३ ।।

*****

चौथा अध्याय

सूतजी बोले– उस देश में वह महाभाग्य ऋषि महादेवजी की पूजा करके यज्ञ आरम्भ करने लगे।।१।। महर्षियों को आश्चर्य करनेवाला वह यज्ञ प्रारम्भ हुआ, उसके सब कृत्य आश्चर्य के थे।।२।। जब बहुत समय बीतने पर वह बड़ी दक्षिणावाला यज्ञ समाप्त हुआ, तब ब्रह्माजी के नियोग से उस स्थान में स्वयं वायुदेवता आये।।३।। जो साक्षात् स्वयंभू देव के शिष्य सबके प्रत्यक्ष इन्द्रियजित जिनकी आज्ञा में ४९ (उनचास) पवन स्थिर रहते हैं।।४।। जो प्राणादि वृत्ति युक्त अपने अंगों को प्रेरित करते हैं, जो प्राणियों के शरीरों को धारण करते हैं।।५।। अणिमादि आठ सिद्धियों के ऐश्वर्य से युक्त तिरछी पड़नेवाली सूर्य की किरणों से संसार को धारण करते हैं।।६।। आकाश से उत्पन्न होनेवाला शब्द और स्पर्श के गुण से युक्त जिनका तत्त्व जाननेवाले अग्न्यादिकों का कारण कहते हैं।।७।। दीर्घ यज्ञ करनेवाले ऋषि वायुदेवता को आश्रम में आये हुए देखकर ब्रह्माजी के वचन स्मरण करके अत्यन्त प्रसन्न हुए।।८।। सब कोई उठकर वायु को प्रणाम करके उनके निमित्त बैठने का सुवर्ण का आसन देते हुए।।९।। उन वायुदेवता ने भी मुनियों से भली प्रकार पूजित हो उन सबके वचनों से प्रसन्न होकर उनसे सबकी कुशल पूंछी।।१०।। वायु बोले– हे ब्राह्मणो! क्या आपके इस यज्ञकार्य में सब कुशल है? हे ब्राह्मणो! यज्ञ बिगाड़नेवाले देवशत्रु दैत्य आपके यज्ञ में विघ्न तो निर्माण नहीं करते?।।११।। कोई प्रायश्चित्त अथवा अरिष्ट तो किस को उपस्थित नहीं हुआ? स्तोत्र और शस्त्रग्रहों से देवताओं को और पितृकर्म से पितरों को प्रीति होती है।।१२।। इस प्रकार आपने अर्चन करके विधि का अनुष्ठान किया है; अब महासत्र के निवृत्त होने में आपकी क्या इच्छा है?।।१३।। जब शिवजी के भक्त वायु ने सब मुनियों से इस प्रकार वचन कहे, तब वे ब्राह्मण प्रसन्न मन से विनय पूर्वक कहने लगे।।१४।। मुनि बोले– आज हमारी कुशल हुई और आज हमारा तप सिद्ध हुआ, जो आप हमारे मंगल के निमित्त इस स्थान पर आये हो।।१५।। इस पुरानी कथा को सुनिये कि, आक्रान्त मनवाले महात्माओं ने और हमने भी ज्ञान के निमित्त प्रजापतिजी की उपासना की थी।।१६।। सो शरण देने में साधु हमें शरण आया हुआ देखकर कृपा करके कहने लगे, हे ब्राह्मणो! रुद्रदेवता हम सबसे अधिक हैं, कारण कि, वही परमकारण स्वरूप हैं।।१७।। उस तर्क रहित को यथार्थता से भक्तिमान ही देख सकते हैं; उनके प्रसाद से भक्ति होती है और उनकी प्रसन्नता से परम सुख होता है।।१८।। इस कारण शिवजी की प्रसन्नता के निमित्त नैमिषारण्य में मन्त्रयोग से आप परमकारण रुद्र का दीर्घ मन्त्र से यजन करो।।१९।। उसके

प्रभाव से यज्ञ के अन्त में वायु उस स्थान में आयेंगे, उनके प्रसाद से ज्ञान की प्राप्ति होगी, इससे आप का मंगल होगा ।।२०।। यह विचार करके हम सबको ब्रह्माजी ने इस स्थान पर भेजा है, हे महाभाग! हम आपके आने की राह देख रहे हैं ।।२१।। हमने दिव्य सहस्र वर्ष तक यहां यज्ञ किया है, इस कारण आपके आगमन के सिवाय हमें और कुछ प्रार्थनीय नहीं है ।।२२।। इस प्रकार दीर्घयज्ञ करनेवाले ऋषियों से वायु प्रसन्न होकर उन मुनियों के बीच में स्थित हो गये ।।२३।। उनके भाव की वृद्धि के निमित्त उन मुनियों ने पूछने पर वायुदेव सृष्टि की उत्पत्ति शिवजी का समास अर्थात् संक्षेप से कहने लगे ।।२४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे

चतुर्थोऽध्यायः ।। ४ ।।

*****

पांचवां अध्याय

सूतजी बोले- नैमिषारण्य के रहनेवाले वे महा भाग्यवान् प्रणाम पूर्वक न्याय से पवनदेवता से पूछने लगे ।।१।। नैमिषारण्यवासी मुनि बोले- आपने ईश्वरगोचर ज्ञान को किस प्रकार से प्राप्त किया है, आप अव्यक्तजन्मा शिवजी के शिष्य किस प्रकार हो? ।।२।। वायु बोले- श्वेतलोहित नामवाले इक्कीसवें कल्प में ब्रह्माजी ने सृष्टि रचना करने की इच्छा से तप किया ।।३।। उस उग्र तप से शिवजी को बड़ा सन्तुष्ट किया, तब वह बोलनेवालों में रूपवालों में श्रेष्ठ दिव्य कौमार अवस्था में स्थित होकर ।।४।। श्वेत नामक मुनि होकर दिव्य वाणी से बोले, देव देव महेश्वरजी ने इस प्रकार उन्हें दर्शन दिया ।।५।। ब्रह्माजी ने उन वेद के पति शिवजी को प्रणाम करके गायत्री के सहित उनसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया ।।६।। तब वह चतुर्मुख विश्वकर्मा ज्ञान को प्राप्त होकर स्थावर-जंगम सब प्राणियों का निर्माण करने लगे ।।७।। यह श्रवण करके ब्रह्माजी के मुख से तत्त्वज्ञान की प्राप्ति हुई, उन्हींके मुख से तपोबल से मैंने ज्ञान की प्राप्ति की ।।८।। मुनि बोले- कि आपने वह अत्यन्त श्रेष्ठ ज्ञान किस प्रकार से प्राप्त किया? जिसके करने से यह पुरुष परमसुख को प्राप्त होता है ।।९।। वायु बोले- पूर्वकाल में मैंने कुछ शिवसम्बन्धी ज्ञान प्राप्त किया है, सुख की इच्छा करनेवाले पुरुष को उसमें अत्यन्त प्रेम करना चाहिये ।।१०।। अज्ञान से उत्पन्न हुआ दुःख ज्ञान से निवृत्त ही हो जाता है, ज्ञान वस्तु परिच्छेद युक्त है और वह वस्तु तीन प्रकार की है ।।११।। अजड जीव जड प्रकृति इन दोनों का वह नियन्ता है, उसको पशु, पाश, पति क्रम से तीन नाम से कहते हैं ।।१२।। अक्षर और क्षर तथा क्षर अक्षर से परे इन्हीं तीनों को तत्त्व को जाननेवाले कहते हैं ।।१३।।

अक्षर का नाम पशु है अर्थात् जीव है और ब्रह्मज्ञान से पाश प्रकृति क्षरण हो जाती है, इससे पाश का नाम क्षर है, जो क्षर-अक्षर से परे हैं उसको पति कहते हैं।।१४।। मुनि बोले- क्षर किसे कहते हैं और अक्षर किसे कहते हैं और उनसे परे क्या है? हे तपोधन! सो आप वर्णन कीजिये।।१५।। वायु बोले- प्रकृति का नाम क्षर है और पुरुष को अक्षर कहते हैं और जो उन दोनों की प्रेरणा करता है, वह परे-से-परे परमेश्वर शिवजी है।।१६।। मुनि बोले- हर प्रकृति क्या है, वह पुरुष कौन है? इनका क्या सम्बन्ध है और इनका प्रेरक कौन है?।।१७।। वायु बोले- माया का नाम प्रकृति और पुरुष माया का आवृत है, मल और कर्म के सम्बन्ध से रहित शिवजी सबके प्रेरक हैं और ईश्वर हैं।।१८।। मुनि बोले- यह माया क्या वस्तु है और माया से ढककर क्या रूप हो जाता है? मल कैसा और कहां से आया, शिवतत्त्व क्या है और शिवजी कौन हैं?।।१९।। वायु बोले- माया शिवजी की शक्ति है, माया से आच्छादित शिवस्वरूप है, मल चित्स्वरूप का आच्छादक है, वह तम स्वयं कल्पना किया हुआ है और तम रहित विशुद्ध शिवस्वरूप है।।२०।। मुनि बोले- यह माया किस कारण से व्यापी को आवृत्त कर लेती है, पुरुष को कैसे आवरण होता है और किस प्रकार से निवृत्त हो जाता है?।।२१।। वायु बोले- व्यापी को आवृत्ति होती है, जिस कारण से कलादि में यह होता है और इसका कारण कर्म है जो भुगाता है, मल के क्षय होने से यह निवृत्त हो जाता है।।२२।। मुनि बोले- वह कलादि क्या है और कर्म क्या है? आदि और अन्त क्या है? उसका फल और आश्रय क्या है?।।२३।। भोग किस के निमित्त है और भोग क्या है? उस भोग का साधन क्या है, मल के क्षय होने का क्या कारण है? क्षीणमल पुरुष कैसा होता है?।।२४।। वायु बोले- रजोगुण से उत्पन्न विषयों के अभिलाष और विद्या का नाम राग है, काल देव शक्ति है जो पुरुष भोक्ता हो उसको कलादि कही गई है।।२५।। कर्म पुण्य और पापात्मक है जिसका फल सुख-दुःख होता है, अनादि मल से जो अविद्या का किया हुआ है, भोग के अन्त तक अज्ञान से अपनी आत्मा में माना जाता है।।२६।। भोगकर्म का नाश करने के निमित्त भोग्य वस्तु को प्रकृति कहते हैं, चक्षुरादि इन्द्रिय बाह्य अन्तःकरण मन इन्द्रियों के द्वार और शरीर यह भोग के साधन हैं।।२७।। और अत्यन्त प्रीति से शिवजी के प्रसाद की प्राप्ति होने से तमोगुण का क्षय होता है, जब मल क्षीण हो जाता है तब यह पुरुष शिवजी के समान हो जाता है।।२८।। मुनि बोले- कलादि पांच तत्त्वों का जो पृथक् कर्म है, वह क्या है? क्या आत्मा भोक्ता नाम से प्रसिद्ध है? जो पुरुष पृथक् है, सो क्या आत्मा है? जिसे भोक्ता कहते हैं।।२९।। वह अव्यक्त क्या आत्मा है? और किस आकार से भोक्ता है? मुक्ति में उसकी शरण क्या है और शरीर क्या है?।।३०।। वायु बोले- पुरुष के ज्ञान उत्पन्न करने की शक्ति विद्या है, और क्रिया की व्यंजक कला है, काल उसका अवच्छेदक है और देवशक्ति उसकी नियन्ता हैं।।३१।। अव्यक्त का

कारण सत्त्व, रज, तम तीन रूप से प्रादुर्भूत होता है, तत्त्वज्ञाता इसी को प्रधान और प्रकृति कहते हैं।।३२।। वह कला क्रियात्मक प्रभु शक्ति की कथन वा प्रकट करनेवाली है, सृष्टि के प्रथम वह अनभिव्यक्त स्वरूप भी सृष्टिदशा में व्यक्त रूप होता है, विमोहित आत्मावाला पुरुष तीन प्रकार से गुणों को भोगता है, सत्त्व, रज, तम यह प्रकृति के तीन गुण हैं, वे सूक्ष्म रूप से प्रकृति में हैं, जैसे तिलों में तेल रहता है।।३३-३४।। सुख और सुख का हेतु यह संक्षेप से सात्त्विक कहा है, दुःख दुःख का हेतु राजस कहा है, प्रवृत्ति निवृत्ति की शून्यता अर्थात् स्तम्भ और मोह तामस कहे हैं।।३५।। रजोगुण को अधोगति कही है और जो मध्यमा गति है उसे राजसी कहते हैं।।३६।। तन्मात्रा शब्द स्पर्शादि पांच और भूतपंचक पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय।।३७।। प्रधान बुद्धि अहंकार और मन यह चारों समास से ही अव्यक्त और विकारी कहलाते हैं।।३८।। उसके कारण दशा में प्राप्त होकर अव्यक्त होता है, कार्य दशा में प्राप्त होकर यह प्रकट होता है, यह शरीर घट आदि के समान प्रत्यक्ष होता है।।३९।। जैसे घटादि कार्य मृत्तिका से भिन्न नहीं है, उसी प्रकार से यह व्यक्त शरीर आदि अव्यक्त से भिन्न नहीं है।।४०।। इस कारण से अव्यक्त ही कार्यों का कारण है, शरीर उसका आधार और भोग्य है, इसमें अन्यथा नहीं है।।४१।। ऋषि बोले- बुद्धि इन्द्रिय शरीर से व्यतिरिक्त विदित होकर यथार्थ में किसी आत्मा शब्द का व्यवहार करते हैं, सो उसकी कहां स्थिति है?।।४२।। वायु बोले- बुद्धि इन्द्रिय और शरीर से अवश्य ही अचल और सर्वव्यापक पृथक् है, उसीको आत्मा कहते हैं, उसका हेतु जानना बड़ा कठिन है, अनेक जन्म की परम्परा से जाना जाता है।।४३।। सत्पुरुषों ने बुद्धि, इन्द्रिय और शरीर में आत्मा नहीं मानी जाती है, स्मृति के विचारने से बुद्धि में स्मरणता का आश्रय होना सम्भव नहीं है, कारण कि स्मृति ही बुद्धि का परिणाम है और आश्रय आश्रयिभाव में भेद है, इन्द्रिय भिन्न होने में सदा एक अज्ञान न रहने का हेतु है, जैसे नेत्र रूप को ग्रहण करता है स्पर्श नहीं और आत्मा तो प्रत्यक्ष योग सब ही को ग्रहण करता है, अथवा इन्द्रिय सन्निकर्ष से ग्रहण करता है, स्वतः नहीं और देह जब तक है तभी तक ज्ञान है और आत्मा तो शरीर नाश होने पर भी अन्य शरीर में जाती है, नहीं तो कर्मभोग किस प्रकार भोग सकता है, इससे देह से भिन्न ही कोई आत्मा है।।४४।। इस कारण बुद्धि आदि से भिन्न कर्मफल का भोक्ता कोई आत्मा है, जो प्राणियों का स्मर्ता सम्पूर्ण जाननेवाला जो वेद और वेदान्त में अन्तर्यामी नाम से गाया जाता है।।४५।। वह सब में है और सबको व्याप्त करके स्थित हो रहा है; तथापि कोई पुरुष उसे प्रत्यक्ष नहीं देख सकता है।।४६।। नेत्र अथवा दूसरी इन्द्रियों से कोई इसे ग्रहण नहीं कर सकता, केवल योगाभ्यास द्वारा मन को क्रोध करके ही महात्मा जान सकते हैं।।४७।। यह स्त्री, पुरुष अथवा नपुंसक नहीं है; ऊपर नीचे और तिरछे में भी नहीं है।।४८।। शरीरों में होकर भी शरीर रहित चलवस्तु में होकर भी अचल

और अविनाशी है, श्रवण आदि के अभ्यास से धीर पुरुष उसे देख सकते हैं।।४९।। बहुत कहने से क्या है? वह पुरुष इस देह से पृथक् है और जो देह से मिला जानते हैं, उनको यथार्थ ज्ञान नहीं।।५०।। जो यह शरीर कहा जाता है यह पुरुष से भिन्न है; वह अवश्य अशुद्ध दुःख रूप और चल है, यदि पुरुष युक्त होता तो इसमें यह दोष न होते।।५१।। विपत्ति के बीज रूप इस शरीर से पुरुष का संयोग है, इस कारण कर्मानुसार सुखी, दुःखी और मूढ जाना जाता है।।५२।। जिस प्रकार पानी देने से खेत में से अंकुर निकल आते हैं, उसी प्रकार अज्ञान रूपी जल से भीजने के कारण देह से अंकुर के समान कर्म उत्पन्न होते हैं।।५३।। यह देह अत्यन्त असुख रूप रोगी और अवश्य मृत्युमुख में पतित होनेवाला है, इसके सहस्रों शरीर हो गये और होंगे।।५४।। यह पुरुष एक शरीर जीर्ण होने से दूसरे में प्रवेश करते हैं, कोई भी एक शरीर में निरन्तर नहीं रहने पाता है।।५५।। यह शरीरों के साथ संयोग को प्राप्त होता है और आकाश में मेघाच्छादित चन्द्रमण्डल के समान कभी प्रकाशित और कभी अप्रकाशित होता है।।५६।। अनेक देहभेद से आत्मा की वृत्ति भिन्न-भिन्न दीखती है, शारिफल तथा सरपाशे के चिह्न के समान एक आकर होकर भी अनेक रूप का दीखता है, जैसे पाशे में एक आकार होकर भी अनेक चिह्न दीखते हैं।।५७।। उस पुरुष का न कोई हुआ है न आगे को कोई होगा, स्त्री और बन्धुओं का संगम मुसाफिरों के समान है।।५८।। जैसे चलते हुए दो काष्ठ समुद्रों की लहरों से मिलते हैं और मिलकर फिर अलग हो जाते हैं, उस प्रकार प्राणियों का समागम है।।५९।। वह जीव शरीर को देखता है, शरीर आत्मा को नहीं देख सकता है और इस जीव और शरीर को कोई और देखता है, परन्तु यह उसको नहीं देख सकते।।६०।। ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त सब की पशुसंज्ञा है, सब पशुओं के ही निमित्त यह दृष्टान्त कहा है।।६१।। जो कि यह पाशों से बँधता है और सुख-दुःख भोगता है, इसीसे यह पशु है, यह ईश्वर के विलास का साधन है, ऐसा विद्वान् कहते हैं।।६२।। यह प्राणी अज्ञानी अनीश और सुख-दुःख का स्थान है, ईश्वर की प्रेरणा से स्वर्ग और नरक में जाता है।।६३।। सूतजी बोले- वायु के यह वचन सुनकर मुनि बड़े प्रसन्न हुए शैवशास्त्र में चतुर वायु से प्रणाम करके कहने लगे।।६४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे

पंचमोऽध्यायः ।।५।।

*****

छठां अध्याय

मुनि बोले– जो यह पशुकथन किया है और जो आपने पाश कथन की है, इनसे विलक्षण पति कौन है ? ।।१।। वायु बोले– हाँ! एक अनन्त रमणीय गुणों का आश्रय विश्व का पति, जगत् को निर्माण करनेवाला, पशु की पाश छुड़ानेवाला है।।२।। उसके बिना यह जगत् की सृष्टि किस प्रकार से हो सकती है ? इन पशु और पाश के अचेतन और अज्ञान होने से।।३।। प्रधान परमाणु आदिक जो कुछ भी अचेतन है, चेतन सम्बन्ध रूप बीज के बिना उसका स्वयं कर्तृत्व किसी ने देखा नहीं है।।४।। यह जगत् कर्तृसापेक्ष है, कर्ता के बिना नहीं हो सकता और कार्य अवयव रूप हैं, जैसे जगत् कर्तावाला है, सावयव कार्यत्व होने से घट के समान है, इस कारण कार्य का कर्तृपन ईश्वर में हैं, पशु और पाश जीव और कर्म में नहीं।।५।। स्वामी ईश्वर की प्रेरणा से जीव में भी कर्तापन देखा जाता है, परन्तु वह कर्त्तापन यथार्थ नहीं है, जैसे अन्धा दूसरे के सहारे से चलता है स्वयं नहीं, इसी प्रकार जीव का कर्तापन है।।६।। अपने आत्मा और प्रेरणा करनेवाले को पृथक् मानकर वह आत्मा उपासना द्वारा उस ईश्वर से अनुग्रहीत होकर अमृत हो जाता है।।७।। पशुपाश और पति का जो तत्त्व से अन्तर है ब्रह्मज्ञानी उसे जानकर योनि से मुक्त हो जाता है।।८।। यह क्षर और अक्षर दोनों मिलकर व्यक्त–अव्यक्त को धारण करते हैं, विश्व का बन्धन छुड़ानेवाले ईश्वर हैं।।९।। भोगनेवाला, भोग्य वस्तु और प्रेरणा करनेवाला यह तीन हैं, जाननेवालों को इनसे परे और के जानने की आवश्यकता नहीं।।१०।। तिलों में जैसे तेल, दही में घृत, स्रोत में जैसे जल, अरणि में जैसा अग्नि है।।११।। उसी प्रकार अपनी आत्मा में आत्मा विलक्षण रूप में स्थित है, सत्य और तपयुक्त होने से दीखता है।।१२।। जो एक ही इन्द्रजाल के समान माया से युक्त ईश्वर वश में करनेवाली अपनी शक्तियों से इन सबको वश करके एक ही स्थित है।।१३।। वह एक ही रुद्र है, दूसरा नहीं है, वही सृष्टि को उत्पन्न करके रक्षा करते हैं और संहार करते हैं।।१४।। सब संसार इसके नेत्र और सब संसार इसका मुख है और संसार की भुजा चरण इस विराट्पुरुष के भुजा चरण हैं।।१५।। द्यौ (स्वर्ग) और पृथ्वी को उत्पन्न करनेवाला वह एक ही देवता है, वही सब देवताओं को उत्पन्न और पालन करनेवाला है।।१६।। जो देवताओं में प्रथम ब्रह्माजी को उत्पन्न करते हैं, यही विश्व के उत्पादक सबसे अधिक रुद्र हैं। ''यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्'' इति ''यो देवानां प्रथमं पुरस्ता–द्विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः'' इति श्रुतेः ।।१७।। मैं इस महान्त अमृत स्वरूप अचल पुरुष को जिसका आदित्य समान वर्ण अन्धकार से परे है, जो प्रभु है, जानता हूं।।१८।।

इस परमात्मा से परे और कुछ भी नहीं है, इससे अधिक सूक्ष्म और स्थूल कोई नहीं है, इसने सब जगत् को पूर्ण कर लिया है।।१९।। वह केवल एक वृक्ष के समान स्तब्ध होकर स्वर्ग में स्थित है, उसके संकल्प से यह चराचर जगत् होता है, सबके मुख, शिर, गर्दन उसके हैं, यह सब प्राणियों के हृदय में स्थित है, वह सर्वव्यापी भगवान् है, इसीसे इनको सर्वगत और शिव कहते हैं।।२०।। सब ओर इन्हीं के हस्त, चरण, नेत्र, मुख, सिर हैं, सब ओर इन्हीं के कर्ण हैं और यह सबको आवरण करके स्थित हैं।।२१।। सम्पूर्ण इन्द्रिय गुणों के अभ्यास रूप और सम्पूर्ण इन्द्रियों से वर्जित हैं, सबके प्रभु ईशान सबके शरणदाता और मित्र हैं।।२२।। जो बिना नेत्र के देखते, बिना कान के सुनते हैं, जो सबको जानते हैं और जिनको जाननेवाला कोई नहीं है, उसीको पुराणपुरुष कहते हैं।।२३।। यह सूक्ष्म से सूक्ष्म, महान् से महान् और अविनाशी है, वही महेश्वर इस प्राणी के हृदयाकाश में स्थित है।।२४।। उस ऋतु हीन तथा यज्ञ स्वरूप, अत्यन्त महिमा से युक्त ईशान देव-देव को उसी परमात्मा की प्रसन्नता से शोक रहित देखते हैं।।२५।। वेद इस सर्वव्यापी परमात्मा को जरा हीन पुराणपुरुष सर्वगामी मानते हैं, ब्रह्मवादी कहते हैं, इसी परमात्मा शिवजी के ध्यान से जन्म-मरण का निरोध हो जाता है।।२६।। वह एक ही अपनी शक्ति से इस त्रिलोकी को विधान करके पीछे संहार करता है।।२७।। वह प्रकृति विश्व को उत्पन्न करनेवाली अजा अर्थात् अनादि सिद्ध है, वही शैवीप्रकृति कहलाती है, वह रजोगुण युक्त होने से लालवर्ण की, सत्वगुण युक्त होने से श्वेत और तमोगुण युक्त होने से कृष्णवर्ण है ''अजामेकां लोहितकृष्णशुक्लाम्'' इति श्रुतेः।।२८।। यह अनेक प्रकार की प्रजा को उत्पन्न करती है, जीव इसको भोगता हुआ शयन करता है और वह अज इसको भोगकर त्याग कर देता है।।२९।। दो सुपर्ण अर्थात् परमात्मा और जीव समान अवस्था के सखा हैं, देह रूपी वृक्ष में समानता से स्थित हैं, एक जीव इसमें कर्मफल को भोगता है अर्थात् इस वृक्ष के फल खाता है और दूसरा परमात्मा देखता है ''द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया'' इति श्रुतेः।।३०।। इस संसारवृक्ष पर यह पुरुष मग्न होकर उसके भोगों को भोगता हुआ मोह से शोच करता है, जब निर्मल होकर ध्यान करता है; तो साक्षात् परमकारण ईश्वर के ज्ञान से।।३१।। अपनी ईश्वर स्वरूपिणी माया को देखकर शोक रहित हो जाता है, तब आनन्द होता है, छन्द, यज्ञ, क्रतु, भूत, भविष्य, वर्तमान जो कुछ भी है।।३२।। इस माया को प्राप्त होकर वह माया निर्माण करता है, माया प्रकृति और मायी साक्षात् महेश्वर हैं।।३३।। इन्हीं के अवयवों से सब जगत् व्याप्त हो रहा है, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म ईशानदेव को गर्भ के मध्य में।।३४।। सब संसार का निर्माण करनेवाला और उसकी चेष्टा करनेवाला शिव ही है, यह जानकर मनुष्य शान्ति को प्राप्त होता है।।३५।। वही परमेश्वर काल स्वरूप है, इसको और संसार का रक्षक संसार का स्वामी जानकर मनुष्य कालपाश से छूट जाता है।।३६।। घृत के परमाणु के समान शिवजी को

परमसूक्ष्म जानकर कि, वह सब प्राणियों के अन्तर में वर्तमान है, ऐसा जानकर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है।।३७।। यह परदेव विश्वकर्मा महेश्वर हैं, उनको हृदय में स्थित जानकर यह प्राणी अमृत हो जाता है।।३८।। जब सम्पूर्ण दिन-रात, सत्-असत् कुछ भी नहीं था, तब केवल एक शिवजी ही थे, जिनसे सनातनी प्रज्ञा होती है।।३९।। ऊँचे, नीचे, तिरछे कोई भी ग्रहण नहीं कर सकता, उनके सदृश कोई भी नहीं है, जिनके नाम का बड़ा-बड़ा यश है, प्रतिमा के और उपमान के अर्थ सादृश्य हैं, मूर्त्ति के यहां पर नहीं है।।४०।। अनेक जन्म से डरनेवाले इस परमात्मा को अजन्मा और एक जानकर रक्षा के निमित्त दक्षिणामुख रुद्र को प्राप्त होते हैं।।४१।। रक्षा का उपाय कहते हैं कि, ब्रह्म में तत्पर दो ही अक्षर हैं, जो अनन्त हैं, वे विद्या और अविद्या में स्थित होकर गूढ़ हो रहे हैं।।४२।। अविद्या से क्षर अर्थात् संसार में पड़ता है और विद्या से अमृत को प्राप्त होता है, इन दोनों का अधिपति महेश्वर।।४३।। एक ब्रह्माण्ड के समान वह एक ही परमात्मा अनेक प्रपंच को उत्पन्न करता है, वह प्रतापी सबको उत्पन्न करके सबका आधिपत्य करते हैं।।४४।। वह ऊपर नीचे दिशाओं में सबका आधिपत्य करके विराजमान होते हैं, जगत् के कारण होने के स्वभाव से वह एक ही श्रेष्ठ स्थित है।।४५।। स्वभावरूप शब्द और अर्थों का परिणाम न करते हुए गुणों के भोग्यत्व और भोक्तृत्व में वह संसार में अधिष्ठित है।।४६।। उस उपनिषद् में गूढ़ परात्पर ब्रह्म जगत् उत्पन्न करनेवाले को प्रथम देवता और ऋषियों ने जाना था।।४७।। वे प्रीति से जाने जाते है, इस संसार का आश्रय है भाव-अभाव अर्थात् संसार की उत्पत्ति, संहार करनेवाले कला और जगत् को उत्पन्न करनेवाले परमात्मा को जो जानते हैं, वे शरीर बन्धन में नहीं पड़ते।।४८।। कोई इसको स्वभाव और कोई काल कहते हैं, परन्तु जानते नहीं मोहित हैं, यह उस देव की महिमा है जिन्होंने इस जगत् को भ्रम में रखा है।।४९।। काल के भी काल रूप जिस परमात्मा ने नित्य जगत् को आवृत कर रखा है, उनसे प्रेरित होकर यह कर्म भूतों के साथ प्रकाश करते हैं।।५०।। वह अनेक प्रकार के कर्म करके फिर लौट करके कलादि तत्त्व और सत्त्वगुण के आश्रित होकर योग को प्राप्त होकर।।५१।। आठ आकाशादि मूर्त्ति, तीन सत्त्वादि गुण, दो विद्या और अविद्या अथवा एक काल से ही अथवा अपने सत्त्वादि गुणों से इस सम्पूर्ण जगत् को।।५२।। गुणों के अनुसार कर्मों को आरम्भ करके स्वभाव में प्राणियों को लगाकर कार्य करते है, उन कर्मों के अभाव में किये हुए कर्मों का भी नाश होता है।।५३।। कर्म क्षय होने से सत्व से फिर जन्म नहीं होता, यह भोक्ता और भोग का आदियोग आपसे वर्णन किया।।५४।। वह परमपुरुष त्रिकाल से अकल अर्थात् निर्गुण है, सबका जाननेवाला तीनों गुणों का अधीश्वर परे-से-परे साक्षात् ब्रह्म है।।५५।। उस विश्व रूप जगत् के उत्पन्न कर्ता शिवजी, प्रजापति, देव-देव, जगत्पूज्य को स्वस्थचित्त होकर उपासना करते हैं।।५६।। कालादिक से भी परे

जिस परमात्मा से यह सब प्रपंच आरम्भ होता है, धर्म के करनेवाले पापहारी, ऐश्वर्य के ईश, विश्व में व्यापक।।५७।। ईश्वरों के ईश्वर परम महेश्वरजी, देवताओं के भी परम देवता, पतियों के पति भुवनेश्वर देव को भजते हैं।।५८।। उनको कार्य और साधन की आवश्यकता नहीं है, जगत् में उनसे अधिक अथवा उनके समान कोई नहीं।।५९।। उनकी पराशक्ति अनेक प्रकार से सुनी जाती है, उनमें ज्ञान, बल और क्रिया है, जिससे यह सारा संसार हुआ है।।६०।। उनका कोई स्वामी अथवा साक्षात् कहनेवाला चिह्न नहीं है, न कोई अधिपति है, कार्य और कारणों के भी वे स्वामी है।।६१।। न कोई उनका उत्पन्न करनेवाला और न कभी उनका जन्म है, न मूल और माया मिले हुए जन्म होने के इसमें कारण है।।६२।। यह एक ही सब प्राणियों में गूढ़ता से व्यापक हो रहे हैं, यही सब प्राणियों की अन्तरात्मा और धर्माध्यक्ष कहलाते हैं।।६३।। सब प्राणियों में रहनेवाले साक्षी चेतन और निर्गुण हैं, यह एक ही बहुत से योगियों को वश में करनेवाले हैं।।६४।। वा विवश आत्मावाले निष्क्रिय पुरुषों को वश करनेवाले हैं, वे एक समय के अनुसार जीवों में प्रजा उत्पन्न करनेवाले बीज को करते हैं, जो मुक्ति की इच्छावाले आत्मा में इसको देखते हैं, उन्हीं महात्माओं को सदा सुख मिलता है, दूसरों को नहीं। यह नित्यों का नित्य और चेतनों का चेतन करनेवाले हैं, वे एक ही स्वयं कामना रहित होकर दूसरों को अनेक काम देते हैं।।६५।। सांख्ययोग से जानने योग्य कारण स्वरूप जगत् के पति शिवजी को इस प्रकार जानकर यह जीव सब कर्मबन्धन से छूट जाते हैं।।६६।। संसार के कर्ता, संसार के ज्ञाता, जीवों के कर्मबीज के ज्ञाता, काल के करनेवाले गुणी, प्रधान और जीवों के पति गुणेश, कर्म छुटानेवाले।।६७।। शिवजी ने प्रथम ब्रह्माजी को निर्माण करके उन्हें वेदों का उपदेश दिया, उस देव को मैं अपनी आत्मा, बुद्धि और उसके प्रसाद से जानकर।।६८।। मुक्ति की इच्छा करनेवाला इस संसार से छूटने के निमित्त शिवजी की शरण होता हूं, जो कला रहित, क्रिया रहित, निरञ्जन, शान्त, निन्दा रहित है।।६९।। जो अमृत की मर्यादा दुःख रूपी ईंधन को अग्नि है, इनके बिना दुःख दूर कराने का उपाय नहीं, जब मनुष्य चर्म के समान आकाश को शरीर में लपेट लेंगे।।७०।। तब शिवजी के बिना जाने भी दुःख का अन्त हो जायगा अर्थात् शिवजी के ज्ञान के बिना दुःख का अन्त नहीं होता।।७१।। तप के प्रभाव और देव के प्रसाद से महर्षि जन संन्यासाश्रम के पवित्र और पापनाशन ज्ञान को।।७२।। जो वेदान्त में परमगुप्त और पूर्वकल्प में कहे हुए हैं, जानते हैं, सो यह मैंने अपने बड़े भाग्य के कारण ब्रह्माजी के मुख से ही श्रवण किया है।।७३।। यह श्रेष्ठ ज्ञान अशान्त पुरुष को देना नहीं चाहिये, अपुत्र असुवृत्त सदाचरण हीन अशिष्य को यह ज्ञान न देना चाहिये।।७४।। जिसकी देव और गुरु में परम भक्ति है, उसी महात्मा के निमित्त यह अर्थ कथन किये हैं, उसी पुरुष को इनका अर्थ प्रकाशित होता है।।७५।।

इस कारण संक्षेप से इसका यह तात्पर्य सुनिये, कि शिवजी प्रकृति से परे पुरुष हैं, वह सृष्टि समय में सब कुछ प्रकट करते हैं और संहारकाल में सब लय कर देते हैं।।७६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्ड

षष्ठोऽध्यायः ।। ६ ।।

*****

सातवां अध्याय

मुनि बोले- काल से ही वस्तु उत्पन्न होती है और काल से ही लय हो जाती है, काल कभी भी कहीं निरपेक्ष नहीं रहता है।।१।। जब यह सारा विश्वमण्डल अन्तर्गत हो जाता है, तब फिर उत्पन्न होता है; यह उत्पत्ति और प्रलय चक्र के समान होती रहती है।।२।। ब्रह्मा, हरि, रुद्र तथा दूसरे देवता जिसके नियम को प्राप्त होकर उसे उल्लंघन नहीं कर सकते।।३।। जो भूत, भविष्य, वर्तमानकाल का विभाग करके प्रजा को जराग्रस्त करता हुआ यह काल स्वच्छन्द और भयंकर रूप से वर्तता है।।४।। सो यह काल क्या वस्तु है, किसके वशवर्ती है और कौन इसके वश में नहीं हो सकता है? हे मुनिश्रेष्ठ! सो आप कहिये।।५।। वायु बोले- कला काष्ठा निमेष कलाओं की वृद्धि काल का शरीर है; यह कालात्मा ही महेश्वरजी का तेज कहलाता है।।६।। जिसको स्थावर-जंगम कोई भी उल्लंघन नहीं कर सकता, यह ईश्वर का नियोग रूप रूपसंसार का रक्षक है।।७।। उसकी अंशमयी शक्ति कालात्मा रूप महात्मा से निकलकर प्रवेश कर गई है, जैसे लोहे में अग्नि प्रविष्ट हो जाती है।।८।। इस कारण काल के वश में संसार है, काल किसी के वश में नहीं, परन्तु वह काल शिवजी के वश में है, शिवजी काल के वश में नहीं।।९।। जिस कारण कि काल में शिवजी का अप्रतिहत तेज प्रविष्ट है; इस कारण महत् से परे काल की मर्यादा कोई नहीं मेट सकता।।१०।। अत्यन्त बुद्धिमानी से भी कोई काल के मेटने को समर्थ नहीं, काल के किये हुए कर्म को कोई नहीं मेट सकता।।११।। जो एकक्षत्र पृथ्वी को पराक्रम से वश करके शासन करता है, वह भी काल की मर्यादा को नहीं मेट सकता, जैसे सागर बेला को।।१२।। जो इन्द्रियसमूह को वश करके सब संसार को जीतते हैं, वह काल को नहीं जीत सकते, किन्तु काल उन्हें जीत लेता है।।१३।। आयुर्वेद और रसायन के जाननेवाले वैद्य भी मृत्यु को नहीं मेट सकते कारण कि, काल दुरतिक्रम है।।१४।। लक्ष्मी, रूप, शील आदि से प्राणी कुछ और ही विचारता है और कालबल से कुछ और ही करता है।।१५।। अप्रिय, प्रिय और भी अचिन्तित वस्तुओं का आना-जाना प्राणियों का

संयोग, वियोग काल ही करता है ।।१६।। जैसे ही कोई दुखी होता है, वैसे ही दूसरा सुखी होता है, काल का स्वभाव और गति दुर्ज्ञेय है ।।१७।। जो युवा है सो वृद्ध होता है, जो बली है सो निर्बल हो जाता है, जो लक्ष्मीवान् है सो लक्ष्मी हीन हो जाता है, काल की गति विचित्र है ।।१८।। जाति, शील, बल, चतुरता यह कार्य के निमित्त पूर्ण नहीं होती, काल ही इसका निरोधक है ।।१९।। जो प्राणी बड़े मनोहर गीत बाजे के शब्दों से स्थित होते हैं और जो अनाथ पराया अन्न खाते हैं, काल का उनमें बराबर व्यवहार है ।।२०।। अकाल में औषधी रसायन अच्छा प्रयोग की हुई औषधी फल नहीं देती है और वही काल से लाई हुई सिद्धि को प्राप्त होकर शीघ्र सुख देती है ।।२१।। न प्राणी काल के बिना मरता है, न जन्म लेता, न पुष्ट होता है, काल के बिना सुख-दुःख नहीं, अकालिक कोई वस्तु समान नहीं है ।।२२।। काल से ही ठण्डी हवा चलती है, काल से ही मेघों से वर्षा होती है, काल से ही गरमी शान्त होती और काल से ही सब सफल होता है ।।२३।। काल ही सब की उत्पत्ति का हेतु है, काल से ही खेती होती और काल से ही नष्ट होती, काल से ही सब लोक जीते हैं ।।२४।। इस प्रकार जो तत्त्व में कालात्मा परमेश्वर का तत्त्व जानता है, वह कालात्मा को अतिक्रमण करके निर्गुण परमात्मा को प्राप्त होता है ।।२५।। न जिसको कालबन्ध मुक्ति है, न जो पुरुषप्रकृति और विश्व स्वरूप है, उस विचित्र रूप शिव परमात्मा पुरुष का निमित्त नमस्कार है ।।२६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे

सप्तमोऽध्यायः ।। ७ ।।

*****

आठवां अध्याय

ऋषि बोले- इस काल में किस प्रमाण से आयु की संख्या कल्पना की जाती है, संख्या रूप काल की परमावधि क्या है ? ।।१।। वायु बोले- आयु का प्रथम मान यह निमेष है, संख्यावाले काल की शान्त्यतीत सीमा होती है ।।२।। जितने समय में पलक लगता है, उसको निमेष कहते हैं, पन्द्रह निमेष की एक काष्ठा होती है ।।३।। तीस काष्ठा की एक कला, तीस कला का मुहूर्त, तीस मुहूर्त का दिन-रात होता है ।।४।। तीस दिन-रात के दो पक्ष का महीना होता है ।।५।। एक महीने की पितरों की दिन-रात होती है, कृष्ण पक्ष रात्रि शुक्ल पक्ष दिन ।।६।। छः महीने का एक अयन, दो अयन का एक वर्ष, यही लौकिकमान से मनुष्यों का वर्ष है ।।७।। मनुष्यों के एक वर्ष का देवताओं का एक

दिन-रात होता है, यह शास्त्र का निश्चय है, दक्षिणायन रात्रि और उत्तरायण दिन है।।८।। देवताओं का एक महीना मनुष्यों के तीस वर्ष का होता है, ऐसे द्वादश महीनों का देवताओं का एक वर्ष होता है।।९।। मनुष्यों के तीन सौ साठ वर्ष का देवताओं का एक वर्ष होता है।।१०।। उसी दिव्य वर्ष से युगसंख्या होती है, भारतवर्ष में विद्वानों ने चार युग माने हैं।।११।। सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग।।१२।। इनमें चार हजार देवताओं के वर्षों का सतयुग, इनमें चार सौ वर्ष की सन्ध्या और चार सौ वर्ष का सन्ध्यांश होता है, युग के पूर्व में सन्ध्या और अन्त में सन्ध्यांश होता है।।१३।। और दूसरे युगों में वर्ष और सन्ध्या एक-एक पाद कमती होती है; अर्थात् त्रेतायुग तीन हजार वर्ष, सन्ध्या-सन्ध्यांश तीन सौ वर्ष, द्वापर दो हजार वर्ष सन्ध्या-सन्ध्यांश एक-एक सौ वर्ष।।१४।। इस प्रकार चारों युग सन्ध्या और सन्ध्यांश के सहित बारह सहस्र वर्ष होते हैं, हजार चतुर्युगी का एक कल्प होता है।।१५।। इकहत्तर चतुर्युगी का एक मन्वन्तर होता है, एक कल्प में चौदह मनु होते हैं।।१६।। इस योग से कल्प और मन्वन्तर सहस्रों बीत गये हैं।।१७।। उन्हें कोई नहीं जान सकता, न उनकी संख्या कर सकता है और क्रम से कोई इनका विस्तार नहीं कह सकता।।१८।। एक कल्प का अव्यक्त से प्रकट होनेवाले ब्रह्माजी का एक दिन होता है, सहस्र कल्प का ब्रह्माजी का एक वर्ष होता है।।१९।। ऐसे आठ सहस्र वर्ष का ब्रह्माजी का एक युग होता है, ब्रह्माजी के सहस्र युग का एक सवन होता है।।२०।। और सहस्र सवन को तीन गुणा करने से अर्थात् तीन सहस्र सवन का परमेष्ठी ब्रह्मा का समय है, इतने दिन की आयु है, ब्रह्माजी के एक दिन में चौदह इन्द्र हो जाते हैं, एक महीने में चार सौ बीस हो जाते हैं।।२१-२२।। एक वर्ष में ५०४० (पांच हजार चालीस) इन्द्र होते हैं, पांच लाख चालीस सहस्र इन्द्र ब्रह्माजी की आयु में हो जाते हैं।।२३।। ब्रह्मा, विष्णु के एक दिन पर्यन्त रहते हैं और रुद्र के एक दिन पर्यन्त विष्णुजी की स्थिति है, ईश्वर के एक दिन तक रुद्र की स्थिति है, जिसको सत् कहते हैं।।२४।। यही साक्षात् शिवजी के किये काल की संख्या है, वही सत् नामवाले शिवजी हैं, इनकी अवस्था में पूर्वोक्त क्रम से पांच लाख चालीस सहस्र रुद्रादिक होते हैं, सो अपनी-अपनी अवस्था में क्रम से जानना।।२५।। परन्तु उस साक्षात् शिवजी में वह काल प्रवृत्त नहीं होता है, हे ब्राह्मणो! जो यह सृष्टि का कालान्तर वर्णन किया है, इतना काल उस परमात्मा का एक दिन है और उस परमेश की इतनी ही रात जाननी।।२६।। दिन में सृष्टि और रात्रि में प्रलय होती है, परन्तु उनको दिन-रात कुछ नहीं है।।२७।। यह व्यवहार लोकों के हित की इच्छा से किया जाता है। प्रजा, प्रजापति, मूर्ति, सुर, असुर।।२८।। इन्द्रिय, इन्द्रियों के अर्थ, पंचमहाभूत, तन्मात्रा, बुद्धि आदि इन्द्रिय और उनके देवता।।२९।। यह उस परमेश्वर के दिन में स्थित रहते हैं और उनके दिन के अवसान में लय हो जाते हैं।।३०।। जो विश्वात्मा है कालकर्म स्वभावादि अर्थ में जिनकी शक्ति का कोई उल्लंघन नहीं कर

सकता, जिनकी आज्ञा के आधीन यह सब संसार है, उन महान् परमात्मा शंकरजी को नमस्कार है ।।३१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे

ब्रह्माद्यायु:कथनं नामाष्टमोऽध्याय: ।। ८ ।।

*****

नववां अध्याय

ऋषि बोले– परमात्मा शिवजी किस प्रकार से इस जगत् का निर्माण कर इसे प्रतिष्ठा करके अपनी शक्ति सहित किस प्रकार से क्रीड़ा करते हैं ? ।।१।। यह जगत् किस प्रकार से पहले उत्पन्न हुआ और किससे विस्मृत है और किसकी महाकोख में अन्त में प्रवेश कर जाता है ? ।।२।। वायु बोले– जिससे शान्त्यतीत पद है प्रथम ऐसी शक्ति उत्पन्न हुई फिर शक्तिमान् शिवजी के समीप से माया उससे अव्यक्त प्रकृति उत्पन्न हुई ।।३।। प्रथम उत्पन्न की हुई शक्ति से परे शान्त्यतीत पद है, उसके आगे शान्तिपद फिर विद्यापद इसके आगे प्रतिष्ठापद ।।४।। और प्रतिष्ठापद के आगे निवृत्तिपद है, यह संक्षेप से ईश्वर प्रेरित सृष्टि वर्णन की है ।।५।। जिस क्रम से यह उत्पन्न होते हैं, उसके प्रतिलोम से संहार होता है, इन पांच पदों का उपदेश सृष्टि के अन्तर की इच्छा नहीं करता ।।६।। जिस कारण से कि यह जगत् पांच कलाओं से व्याप्त है, इससे जो अव्यक्त कारण है, वह आत्मा से अधिष्ठित है, महत् से लेकर विशेष तक उत्पत्ति होती है, किन्तु उसमें अव्यक्त और जीव का कर्तृत्व नहीं है ।।७–८।। प्रकृति के अचेतन होने और जीवात्मा के अज्ञानी होने से प्रधान परमाणु आदि जो कुछ भी अचेतन है ।।९।। बुद्धिमानों ने कारण के बिना उसका स्वयं कर्तापन देखा है, यह जगत् कर्तृसापेक्ष है, कारण कि कार्य सावयव है ।।१०।। इस कारण जो समर्थ स्वतन्त्र सर्वशक्तिमान् और सबका जाननेवाला है, वह अनादि निधन सदा ऐश्वर्य से संयुक्त है ।।११।। वही जगत् के कर्ता महादेवजी महेश्वर है, सबके पालक, सबके हर्ता और सबसे पृथक् है ।।१२।। महदादि का परिणाम करनेवाला है, उस सर्व वृत्त के शासन से ही यह सब प्रवृत्त होता है ।।१३।। यह सत्पुरुषों के मन का दृढ़ निश्चय है, अल्प बुद्धिवाला उस पक्ष का ग्रहण करने में समर्थ नहीं होता ।।१४।। जब तक कार्य का प्रारम्भ हो और जब तक प्रलय होता है, तब तक ब्रह्माजी के सौ वर्ष बीत जाते हैं ।।१५।। अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजी आयु का क्रम है, जो उसके आयु का पहला आधा है, उसको परार्द्ध कहते हैं ।।१६।। जब दो परार्द्ध बीत जाते हैं, तब ब्रह्माजी की आयु समाप्त हो जाती है, अव्यक्त आत्मा कार्य को लेकर आत्मा में स्थित होता है ।।१७।।

जब यह जगत् आत्मा में स्थित होकर विकार युक्त संहृत हो जाता है, तब यह प्रधान और पुरुष साधर्म से स्थित होते हैं ।।१८।। तब और सत्त्वगुण यह दोनों समानता से स्थित होते हैं और सब ओर सबसे परस्पर पोहे हुए के समान वर्तते हैं ।।१९।। गुणों की समानता होकर तमोमय होने के कारण इनका विभाग नहीं हो सकता है, तब यह पवन से शान्त होकर निश्चल जल के समान जाने जाते ।।२०।। उस जगत् की अप्रज्ञात दशा में वह एक महेश्वरजी उस माहेश्वरी रात्रि में स्थिति करके ।।२१।। रात्रि व्यतीत होने पर प्रधान और पुरुष इन दोनों को मायायोग से परमात्मा उसमें प्रविष्ट होकर शोभित करते हैं ।।२२।। पीछे सम्पूर्ण भूतों की उत्पत्ति के उद्देश्य से परमेष्ठी की आज्ञा से अव्यक्त से सृष्टि होती है ।।२३।। जिस परमात्मा के माया के एक ही खण्ड से यह सम्पूर्ण उत्तरोत्तर श्रेष्ठ सृष्टि विचित्र मनोरथों सहित समाप्त हो जाती है, उस परमात्मा को उस मार्ग के जाननेवाले अध्वपति कहते हैं, उन सब प्राणियों में विलक्षण परमात्मा को नमस्कार है ।।२४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे

नवमोऽध्यायः ।। ९ ।।

*****

दसवां अध्याय

वायु बोले- प्रथम ईश्वर की आज्ञा से पुरुष से अधिष्ठित अव्यक्त बुद्धि को लेकर विशेष पर्यन्त क्रम से विकार उत्पन्न हुए ।।१।। उन विकारों से रुद्र, विष्णु, पितामह जगत् के कारण रूप तीन देवता उत्पन्न हुए ।।२।। विश्व में कहीं भी न रुकनेवाली उनकी शक्ति हुई, उनका अप्रतिहत ज्ञान अणिमादि सिद्धियों के सहित हुआ ।।३।। उत्पत्ति, पालन, लय क्रम से तीनों के यह कर्म हुए इन रुद्रादि के प्रभुत्व से शिव महेश्वरजी प्रसन्न होते हैं ।।४।। कल्पान्तरों में फिर भी बुद्धि की और मोह की अस्पर्धा को उत्पत्ति, रक्षा और लय के निमित्त परमेश्वर ने प्रदान किया ।।५।। यह परस्पर उत्पन्न होकर परस्पर शक्तियों को धारण करते हैं और परस्पर स्थित होकर परस्पर शक्तियों को बढ़ाते हैं ।।६।। कहीं ब्रह्मा, कहीं विष्णु, कहीं रुद्र की प्रशंसा होती है, इससे उनका ऐश्वर्य कुछ अधिक और न्यून नहीं होता है ।।७।। और यह पर है, यह श्रेष्ठ है, यह न्यून है, जो अल्पज्ञानी ऐसा कहते हैं, वे निस्सन्देह राक्षस और पिशाच होते हैं ।।८।। वह ब्रह्म काल विष्णु पुरुष रूप महेश्वर चतुर्व्यूह रूप तीनों गुणों से परे हैं, वह सर्वात्मक सर्वाधारशक्ति की उत्पत्ति के कारण हैं ।।९।। सो इन ब्रह्मादिक तीनों देवता और प्रकृति का वह आत्मा है; लीला से ही जगत् की सृष्टि करके ईश्वरता में स्थित हो रहा है ।।१०।। जो परमेश्वर सबसे परे

निष्कल है, यही सबका आधार सर्वात्मा सब में अधिष्ठित है।।११।। इस कारण महेश्वर प्रकृति पुरुष सदाशिव, विष्णु, ब्रह्मा ये सब शिवात्मक हैं।।१२।। प्रधान से पहले बुद्धि, ख्याति और मति उत्पन्न हुई है और महत्व के क्षोभ से तीन प्रकार का अहंकार उत्पन्न हुआ।।१३।। अहंकार से पंचभूत और तन्मात्रा उत्पन्न हुई हैं तथा इन्द्रिय उस अहंकार के विकारी होने से सत्त्वगुण से सत्त्व हुआ।।१४।। वह वैकारिक सर्ग एक सा यही प्रवृत्त होता है, बुद्धि आदि पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय।।१५।। और ग्यारहवां मन, सत्व, रज युक्त होने से उभयात्मक है, तमो युक्त अहंकार से भूतादि तन्मात्रा होती है।।१६।। भूतों का आदिभूत होने से वह भूतों की आदि कहलाता है, भूतादि अहंकार से शब्दमात्रा होती है और उससे आकाश होता है।।१७।। आकाश से स्पर्श और स्पर्श से वायु हुई, वायु से रूप, रूप से तेज और तेज से रस हुआ।।१८।। रस से जल, जल से गन्ध, गन्ध से पृथ्वी हुई और इन पंचमहाभूतों से सब चराचर उत्पन्न हुआ।।१९।। पुरुष के अधिष्ठित होने और अव्यक्त के अनुग्रह से महत् से लेकर विशेष पर्यन्त यह सब अण्ड को उत्पन्न करते हैं।।२०।। जब ब्रह्म का कार्य और कारण सिद्ध हुआ तब इस अण्ड में ब्रह्मसंज्ञावाला क्षेत्र वृद्धि को प्राप्त हुआ।।२१।। यही प्रथम शरीरी और उसी को पुरुष कहते हैं, वही प्राणियों के आदिकर्ता ब्रह्माजी सबसे पहले उत्पन्न हुए।।२२।। उस सृष्टिकर्ता के अभिमानयुक्त ब्रह्मा की उपमा रहित ज्ञान, वैराग्य लक्षण युक्त धर्म और ऐश्वर्य करनेवाली बुद्धि ब्रह्म सम्बन्धी उत्पन्न हुई।।२३।। जो कुछ इसके मन में इच्छा है, वह सब कुछ अव्यक्त से उत्पन्न होती है, वह तीनों गुणों को वश में है जो गुण की उसकी अपेक्षा करते हैं, यह स्वभाव से ही सापेक्ष है।।२४।। अपने आत्मा को तीन प्रकार से विभक्त करके त्रिलोकी में प्रवृत्त होता है, इन्हीं तीन गुणों से उत्पन्न, लय और पालन करता है।।२५।। सृष्टिकर्म में चतुर्मुख, संहार में रुद्र और पालन में वह पुरुष सहस्रशिर कहा जाता है, इस प्रकार तीनों अवस्थाओं में स्वयम्भू रहते हैं।।२६।। ब्रह्मत्व में सत्त्वगुण और रजोगुण, कालत्व में तम और रज है, विष्णुत्व में केवल सत्त्व रहता है, इस प्रकार गुणवृद्धि तीन प्रकार की हैं।।२७।। ब्रह्मत्व में लोकों की रचना होती है, कालत्व में संहार होता है, पुरुषत्व में व्यापारहित अर्थात् केवल दर्शनमात्र से ही पालनकार्य की सिद्धि हो जाती है, इस प्रकार उस विभु के तीन प्रकार के कर्म हैं।।२८।। इस प्रकार तीन प्रकार विभक्त होने से वह ब्रह्म त्रिगुण कहलाता है और चार प्रकार से विभक्त होन से उसे चतुर्व्यूह कहते हैं।।२९।। आदि होने से यह आदिदेव है और अजन्मा होने से अज कहलाता है और प्रजा की रक्षा करने से यह प्रजापति कहलाता है।।३०।। सुवर्ण का जो मेरु पर्वत है, यही उस महात्मा का गर्भाशय है, गर्भ का जल समुद्र और पर्वत जरायु है।।३१।। इस अण्ड में यह सब लोक रहते हैं, इसके अन्तर में विश्व स्थित है, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, ग्रह, वायु सहित स्थित है।।३२।।

यह अण्ड बाहर दशगुणा जल से अधिक व्याप्त है, जल से दशगुणा तेज व्याप्त है।।३३।। तेज से दशगुणा वायु है सो व्याप्त है, आकाश से वायु ढका है और आकाश पंचभूतों से वेष्टित है।।३४।। भूतादि महान् से और महान् प्रकृति से व्याप्त है, इस प्रकार यह ब्रह्माण्ड प्रकृति के सात आवरणों से व्याप्त है।।३५।। इस प्रकार यह आठ प्रकृति परस्पर सापेक्ष हैं, हे द्विजोत्तमो! यही सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं।।३६।। और परस्पर प्रादुर्भूत होकर परस्पर जगत् को धारण करते हैं, आधार और आधेय के भाव से विकार विकारियों में।।३७।। कछुए के शरीर के समान फैलाते और सिकोड़ते हैं, यही व्यक्त (प्रकट) सम्पूर्ण विकारों को उत्पन्न करके फिर संहार करता है।।३८।। यह सब जगत् पूर्वोक्त क्रम से उत्पन्न होकर अव्यक्त से ही प्रकट होता है और प्रलय की प्राप्ति में प्रतिलोम प्रकार से लय हो जाता है।।३९।। काल के वश से ही गुण विषम और सम उत्पन्न होते हैं, गुण के साम्य में लय और विषमता में सृष्टि होती है।।४०।। यही पितामह का कारण घना अण्ड है, ब्रह्म का क्षेत्र होने से इसको ब्रह्मक्षेत्रज्ञ कहते है।।४१।। इस प्रकार के करोड़ों सहस्रों अण्ड हैं, सर्व गत होने से तिर्यक् ऊर्ध्व और नीचे स्थित हैं।।४२।। उन्हीं स्थानों में ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजी स्थित हैं, प्रधान से रचे जाकर शम्भुजी की सन्निधि को प्राप्त होकर जगत् रचते हैं।।४३।। व्यक्त से भी परमेश्वर परे हैं, उसी व्यक्त से अव्यक्त संज्ञक अण्ड उत्पन्न हुआ है, अण्ड से विभु ब्रह्माजी हुए हैं, जिन्होंने यह सब लोक निर्माण किये हैं।।४४।। यह जीवों के आवरण विक्षेप पूर्वक मैंने प्रथम सर्ग का वर्णन किया और अन्तकाल में आत्यन्तिक प्रलय हो जाती है, यह सब चेष्टा ईश्वर की लीलामात्र की है।।४५।। जो कि अप्रमेय कारणभूत ब्रह्म है और प्रधान प्रकृति से प्रादुर्भूत हुआ है, वह आदि हीन, मध्य और अन्त रहित अनन्त वीर्यवान् शुक्ल और लालवर्ण पुरुष से युक्त है।।४६।। रज की वृद्धि होने से लोक की सन्तति की वृद्धि के कारण है, सृष्टि के आदिकाल में आठ विकारों को उत्पन्न करके अन्तकाल में ग्रस लेते हैं।।४७।। प्रकृति से स्थापित किये कारणों की जहां तक स्थिति और जो फिर प्रवृत्ति है, वह शिवजी अप्राकृत के ऐश्वर्य जानने जो यह महेश्वरजी के संकल्पमात्र से उत्पन्न होता है।।४८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
लोकात्पत्तिवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ।। १० ।।

*****

ग्यारहवां अध्याय

मुनि बोले– सब मन्वन्तरों और कल्पों के भेद, उनका आन्तरिक सर्ग और प्रतिसर्ग वर्णन कीजिये ।।१।। वायु बोले– पूर्व जो ब्रह्माजी की आयु का काल वर्णन किया है, उसका आधा परार्द्ध है उतना ही उनका दूसरा समय है, उसके अन्त में संहार होता है ।।२।। उस आदिजन्मा ब्रह्माजी के दिन–दिन में चौदह मनु बीत जाते हैं ।।३।। अनादि, अनन्त और अज्ञेय होने से मन्वन्तर और कल्पों का वर्णन करना अशक्य है ।।४।। जो पूर्व में कहे हैं उनमें एक का वर्णन करता हूं, सब पृथक् कहने से फल भी क्या है ? इस कारण पृथक् नहीं कहते ।।५।। जो अनेक कल्पों में इस समय कल्प वर्तता है, उसी में संक्षिप्त होकर सृष्टि के भीतर सृष्टि वर्तती है ।।६।। और इस समय के वर्तमान कल्प का नाम वाराह है। हे श्रेष्ठद्विजो ! इसमें भी चौदह मनु हैं ।।७।। सात स्वयम्भू आदि और सात सावर्णि आदि, इनमें अब सातवां वैवस्वत मनु वर्तता है ।।८।। सब मन्वन्तरों में उत्पत्ति और संहार समान भाग से होते हैं, यह जाननेवालों का तर्क है ।।९।। जब पहले कल्प में प्रलय हुई तब महापवन से सम्पूर्ण वृक्ष नष्ट हो गये ।।१०।। और त्रिलोकी को तिनके के समान अग्नि के जलाने पर पीछे वर्षा होने से सागर रूप सब जगत् के होने पर ।।११।। महाजल में सब दिशाओं के मग्न होने पर तरंग रूप भुज मण्डल के तैरने से ।।१२।। प्रलय के जल के तीक्ष्ण नृत्य करने पर, ब्रह्मा नारायण रूप में मिलकर सुख से जल में शयन कर गये ।।१३।। अक्षर नारायण के प्रति श्लोक रूप इस मन्त्र को कहते हैं, हे मुनिश्रेष्ठो ! उस अक्षर के आश्रय को सुनिये ।।१४।। जलों को नार कहते हैं, नरसूनु भी जल ही जिस कारण से कि वे जल उनके रहने का स्थान है, इसी कारण उन्हें नारायण कहते हैं ।।१५।। शिवयोग युक्त निद्रा करते हुए उन वैकुण्ठनाथ को जनलोक निवासी देवता हाथ जोड़कर ।।१६।। प्रातःकाल के समय स्तोत्रों से जगाते हैं, जैसे सृष्टि के आरम्भ में श्रुतियां ईश्वर को जगाती हैं ।।१७।। पीछे जल के शयन से प्रातःकाल उठकर योगनिद्रा से आलस्य भरे नेत्रों से वे सब दिशाओं को देखते हैं ।।१८।। जब अपनी आत्मा के सिवाय कुछ दृष्टिगोचर नहीं होता; तब विस्मय को प्राप्त होकर चिन्ता करते हैं ।।१९।। वह मनोहर बड़ी भूमि कहां चली गई ? अनेक प्रकार के महाशैल, नदियां, नगर, वन कहां गये ? ।।२०।। जब ब्रह्माजी ने यह विचार करके पृथ्वी की स्थिति को न जाना, तब अपने पिता त्रिलोचन शिवजी का स्मरण किया ।।२१।। अमित तेजस्वी शिवजी के स्मरणमात्र से ही उन धरणीपति ने जान लिया कि, भगवती पृथ्वी जल में मग्न हो गई ।।२२।। तब प्रजापतिजी ने पृथ्वी के उद्धार की इच्छा से जलक्रीड़ा के उचित दिव्य

वाराह रूप को धारण किया।।२३।। जिनकी महापर्वत के समान देह, महामेघ के समान शब्द, नीलमेघ के समान भयानक दीप्तिमान् शब्द।।२४।। दृढ़ और गोलाकार अंग, घने कंधे, पीन और ऊँचा कमर का भाग, ह्रस्व (छोटा) और भीषण जंघा का अग्रभाग, सुतीक्ष्ण खुरमण्डल।।२५।। पद्मराग मणि के समान गोलाकार बड़े शरीर, स्तब्ध कान, उज्ज्वल कर्ण का स्थान।।२६।। बढ़े हुए श्वास-निश्वास से प्रलयकाल के जल को क्षुभित करते हुए, स्फुरायमान केशों की छटा से कपोल और स्कन्ध से युक्त।।२७।। मणियों से चित्र-विचित्र जिनकी शोभा ऐसी थी, मानो मेघ में बिजली से शोभित हैं।।२८।। इस प्रकार से ब्रह्माजी बड़े वाराह रूप को प्राप्त होकर पृथ्वी के उद्धार के निमित्त पाताल में प्रविष्ट हुए।।२९।। तब वह पर्वत के समान वाराहजी बड़े शोभित हुए मानो लिंगाकार महेशजी के चरणमूल को प्राप्त हुए।।३०।। तब वह पृथ्वी धारण करनेवाले जल में मग्न हुई पृथ्वी को डाढ़ के ऊपर धारण कर सागर से ऊपर आये।।३१।। उनको देखकर जनलोक निवासी मुनि, सिद्ध सब प्रसन्न होकर नृत्य करते हुए उनके मस्तक पर फूल बरसाने लगे।।३२।। वह फूलों से आवृत वाराह का रूप शोभित हुआ, जैसे पटवीजनों से अंजन (काला) पर्वत शोभित होता है।।३३।। तब वाराहजी उस बड़ी पृथ्वी को स्थापन करके अपने स्वरूप में स्थित होकर उसे स्थित करते हुए।।३४।। पृथ्वी को समान करके फिर पृथ्वी पर पर्वतों को स्थापन करके पूर्व के समान सब भू आदि लोकों की कल्पना करते हुए।।३५।। इस प्रकार से यह महापृथ्वी प्रलयकाल के महासमुद्र में से निकाल और इसके ऊपर स्थापित करके उस विश्वकर्मा ने फिर चराचर जगत् की रचना की।।३६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
वाराहरूपवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ।। ११ ।।

*****

बारहवां अध्याय

वायु बोले- इसके उपरान्त आदि में सृष्टि की रचना की इच्छा से ध्यान के समय ब्रह्माजी को तमोमय मोह की प्राप्ति हुई।।१।। वह मोह, महामोह, तामिस्र, अन्धतामिश्र और पांचवीं अविद्या यह वस्तु उस महात्मा से प्रादुर्भूत हुईं।।२।। उनके ध्यान करने से पांच प्रकार से यह जगत् प्रादुर्भूत हुआ और सर्व इस प्रकार अन्धकार से व्याप्त था, जैसे बीज से पूर्ण कुम्भ बीज और अपने अवयवों को आच्छादित करता है।।३।। बाहर और भीतर प्रकाश रहित निश्चल था, इसी कारण उन सृष्टि में उत्पन्न होनेवालों की बुद्धि,

इन्द्रिय, मुख आच्छादित हो रहे थे ।।४।। इसी कारण वे आच्छादित आत्मावाले पर्वत और वृक्ष ही आरम्भ में हुए, कारण यह ब्रह्माजी की प्रथम सृष्टि, सृष्टि के उपयोगी नहीं हुई ।।५।। तब ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर दूसरी सृष्टि की रचना की, तब उसके ध्यान करने से तिरछे चलनेवाले जीवों की सृष्टि प्रवाह आई ।।६।। यह तिरछे चलनेवाले अन्तर ज्ञानवाले हैं, बाहर अज्ञान से आवृत्त हैं, इसी कारण सब को समान देखनेवाले पशु आत्मा हुए, इसी कारण उन्होंने असन्मार्ग ग्रहण किया ।।७।। इनको भी सृष्टि के अनुपयोगी जानकर ब्रह्माजी ने सृष्टि रचना की इच्छा की, तब ऊर्ध्वगामी सत्त्वगुण से देवसर्ग की प्रवृत्ति हुई ।।८।। वे सुखी, प्रसन्न, बाहर–भीतर स्वच्छ, तेजस्वी ज्ञानी हुए ।।९।। फिर प्रधान के ध्यान करने से सात्त्विक संसारी प्रवाह उत्पन्न हुआ, यह मनुष्यों की सृष्टि उत्पन्न हुई, यह अनेक प्रकार दुःख से व्याप्त है ।।१०।। यह बाहर–भीतर के प्रकाशवाले तमोगुण थोड़ा अधिक रजोगुणवाले हैं, यह पांचवां ईश्वर का अनुग्रह रूप सर्ग चार प्रकार से विभक्त हुआ है ।।११।। विरोधभक्ति, तप सामर्थ्य, परमेश्वर के प्रसाद की प्राप्ति, मन्त्रादि साधन से फल की प्राप्ति होनी; इन चार प्रकार के मार्ग ग्रहण करनेवाले सब स्त्री धन आदि के अभिमानी हुए ।।१२।। वे खाने में तत्पर, अशील अर्थात् दुर्वृत्तभूत प्रेत, पिशाचादि वर्णन किया है, परमेष्ठी ब्रह्माजी का यह पहला महान् सर्ग है ।।१३।। और दूसरा तन्मात्रा का भूतसर्ग कहा है और तीसरा वैकारिक ज्ञान कर्मेन्द्रिय रूप सर्ग है ।।१४।। यह प्रकृति का सर्ग जड़ प्रकृति का है, चौथा सर्ग मुख्य है, जिसमें स्थावर मुख्य कहे गये हैं ।।१५।। जो तिर्यक् स्रोत है, यह पांचवीं तिर्यक् योनि है, इसके उपरान्त छठा सर्ग ऊर्ध्वस्रोत है, जो देवसर्ग कहा है ।।१६।। पीछे नीचे चलानेवालों के स्रोत की प्राप्ति हुई, यह सातवां मनुष्यों का स्रोत है, आठवां अनुग्रह सर्ग और नौवां कुमार सर्ग है ।।१७।। प्रकृति के किये वे पहले तीन सर्ग अबुद्धि पूर्वक कहलाते हैं और पांच विकारी सर्ग बुद्धि पूर्वक प्रवृत्त होते हैं ।।१८।। सबसे पहले ब्रह्माजी ने अपने सनक, सनन्दन और सनातन को उत्पन्न किया ।।१९।। ऋभु और सनत्कुमार यह पांचों योगी राग और अभिमान से रहित हैं ।।२०।। यह ईश्वर में मन लगाने के कारण सृष्टि उत्पन्न करने में मन न लगाते हुए, जब वे सृष्टिकर्म में मन न लगाकर चले गये ।।२१।। तब ब्रह्माजी ने सृष्टि रचने की इच्छा से फिर तप किया, उनके उस तप करने से कुछ भी फल न हुआ ।।२२।। तब बहुत समय बीतने के कारण दुःख से क्रोध आ गया, क्रोध से उनके नेत्रों से आंसू झरे ।।२३।। उन आंसूओं की बूँदों से प्रेत उत्पन्न हुए, उन सबको आंसुओं से उत्पन्न देखकर ब्रह्माजी ने अपनी निन्दा की ।।२४।। तब क्रोध और मोह के कारण ब्रह्माजी को तीव्र मूर्च्छा आ गई और महाक्रोध के कारण प्रजापतिजी ने अपना शरीर त्याग दिया ।।२५।। तब प्राणेश्वर भगवान् नीललोहित महाप्रसन्नता करने के निमित्त प्रजापतिजी के मुख से प्रकट हुए ।।२६।। और आप अपने

ग्यारह रूप किये और आप स्वयं उन ग्यारह के प्रति कहने लगे ।।२७।। हे वत्स! आपको मैंने सृष्टि के कारण उत्पन्न किया है, इस कारण सब लोकों के स्थापन और हित करने के लिये ।।२८।। और प्रजा की सृष्टि के निमित्त आप निरन्तर यत्न करें, यह वचन श्रवण करके वे सब रोने और परस्पर भागने लगे ।।२९।। रोदन और द्रावण (पलायन करना) से वे सब रुद्र कहलाये, जो रुद्र हैं वही प्राण हैं, जो प्राण हैं वही महात्मा हैं ।।३०।। तब परमेष्ठी ब्रह्माजी के शरीर त्यागने से दया करके शिवजी ने फिर उनके निमित्त प्राणों को दिया ।।३१।। फिर उनके प्राण शरीर में आ जाने से रुद्र प्रसन्न हुए, तब विश्वेश ब्रह्माजी से वचन बोले ।।३२।। हे जगत् के गुरु महाभाग्यवान् ब्रह्माजी! आप भय मत करो, मैंने आपको प्राण दिये, आप सब सुख से उठिये ।।३३।। स्वप्न के समान इस मनोहर वाक्य को सुनकर फूले हुए नेत्रों से ब्रह्माजी शिवजी को शनैः–शनैः देखने लगे ।।३४।। जब इस प्रकार से प्राण आ गये तब मनोहर और गम्भीरवाणी से हाथ जोड़कर ब्रह्माजी बोले ।।३५।। हे महाभाग! कहिये, आप मेरे मन को आनन्द देते हो, आप कौन हो? क्या आप विश्वमूर्त्ति एकादशात्मा स्थित हो? ।।३६।। उनके यह वचन सुनकर ब्रह्माजी को मुख से स्पर्श करते हुए सुरेश्वर बोले ।।३७।। मैं परमात्मा हूं, आपका पुत्ररूप होकर प्रकट हुआ हूं और यह ग्यारह रुद्र आपकी रक्षा करने आये हैं ।।३८।। इस कारण हमारे अनुग्रह से इस महामूर्छा का त्याग करके जागृत होकर आप सृष्टि की रचना करें ।।३९।। जब शंकरजी ने यह बात कही, तब ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हुए और आठ नामों से परमेश्वर की स्तुति करने लगे ।।४०।। ब्रह्माजी बोले– भगवान् रुद्र सूर्य के समान महातेजवाले के निमित्त नमस्कार है, भवदेव रसगुण स्वरूप जलात्मा के निमित्त नमस्कार है, शर्व पृथ्वी रूप, सदा मनोहर नन्दी रूप ।।४१।। ईश वायु रूप स्पर्शात्मा के निमित्त नमस्कार है, पशु अर्थात् जीवों के पति अग्नि के समान तेजस्वी दैत्यों को भीम रूप शब्दमात्रा युक्त आपको नमस्कार है ।।४२।। उग्र स्वरूप यजमानात्मा के निमित्त नमस्कार है, महादेव, सोम और अमृतमूर्त्ति के निमित्त नमस्कार है ।।४३।। लोकपितामह ब्रह्माजी इस प्रकार से महादेवजी को प्रणाम करके अत्यन्त मनोहर वाणी से विश्वपति की प्रार्थना करने लगे ।।४४।। हे भगवन्! हे भूत, भविष्य, वर्तमान के अधिपति! मेरे पुत्र महेश्वर! हे कामनाशन! आप मेरे शरीर से सृष्टि के निमित्त उत्पन्न हुए हो ।।४५।। हे प्रभो! इस कारण आप मेरे कार्य में जिसमें कि, मैं व्याकुल हूं, आप सहायता कीजिये और प्रजा रचिये।।४६।। जब उन्होंने इस प्रकार त्रिपुरमर्दन की याचना की, तब बहुत अच्छा कहकर शिवजी ने उनके वचन स्वीकार किये ।।४७।। तब भगवान् ब्रह्माजी प्रसन्न होकर उन्हें नमस्कार करके उनकी आज्ञा से दूसरी प्रजा की रचना करने लगे ।।४८।। मरीचि, भृगु, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि, वशिष्ठ इन ऋषियों को मन से उत्पन्न किया, सब सृष्टि के पहले ब्रह्माजी ने धर्म और संकल्प की रचना की ।।४९।। यह बारह ब्रह्माजी

के पुत्र कहे हैं, यह पुराणपुरुष गृहमेधी रुद्र के साथ उत्पन्न हुए हैं ।।५०।। उनके दिव्य देवताओं से पूजित बारह वंश हैं, वे प्रजावाले क्रियावाले महर्षियों से अलंकृत हैं ।।५१।। फिर देवता, असुर, पितर, मनुष्य इन चारों को रुद्र के साथ ब्रह्माजी ने रचने की इच्छा से ।।५२।। सृष्टि के निमित्त समाधान करके अपनी आत्मा को युक्त किया, मुख से देवता और कक्षा से पितरों को उत्पन्न किया ।।५३।। जंघाओं से सब असुरों को और शिश्न स्थान से मनुष्यों को उत्पन्न किया, उनके गुदा स्थान से क्षुधाविष्ट राक्षस उत्पन्न किये ।।५४।। वे पुत्र रज, तम से युक्त और बली निशाचर हैं, सर्प, यक्ष और भूत, गन्धर्व सब उन्हीं से उत्पन्न हो गये ।।५५।। शब्द करनेवाले पक्षी दोनों कक्षाओं से उत्पन्न हुए और दूसरे पक्षी छाती से उत्पन्न हुए, मुख से बकरी तथा पार्श्वस्थान से सर्पों को उत्पन्न किया ।।५६।। पैरों से घोडे, हाथी, शरभ और गवय मृगों को उत्पन्न किया, ऊंट, खच्चर, न्यंकू (बहु शृंगवाले मृग) तथा दूसरी जाति ।।५७।। औषधी, फल, फूल यह सब वस्तु उनके रोमकूपों से उत्पन्न हुईं, गायत्री, ऋग्वेद, त्रिवृत्साम, रथन्तर ।।५८।। और अग्निष्टोम यज्ञों को प्रथम मुख से उत्पन्न किया, यजुर्वेद, त्रिष्टुप् छन्द, पंचदश स्तोम ।।५९।। बृहत्साम के स्थान और उक्थ दक्षिण मुख से उत्पन्न हुए, साम, जगती छन्द, सत्रह स्तोम ।।६०।। वैरूप्य और अतिरात्र पश्चिम मुख से प्रकट हुए, एकविंश (२१) पृष्ठ्य नामक अथर्ववेद, आप्तोर्याम क्रतु ।।६१।। यज्ञविशेष और वैराज साम उत्तर के मुख से प्रकट हुए और भी ऊँचे-नीचे प्राणी उनके शरीर से प्रकट हुए ।।६२।। यक्ष, पिशाच, गन्धर्व और अप्सराओं के गण, नर, किन्नर, राक्षस, वय, पशु, मृग, सर्प ।।६३।। सर्वथा विनाशशून्य जो यह स्थावर-जंगमादि जगत् है उनकी अवस्था और कर्म सृष्टि से पहले उत्पन्न हुए ।।६४।। वे बारंबार जन्म लेकर उन्हीं कर्मों को प्राप्त होते हैं, हिंसक जीव हिंसक में मृदु, क्रूर, धर्म, अधर्म, सत्य, झूंठ में ।।६५।। वे अपने-अपने कर्मानुसार प्राप्त होते हैं, अर्थात् कर्मानुरूप जन्म पाते हैं और उसमें प्रसन्न रहते हैं, महाभूतों में अनेकपन इन्द्रियों के अर्थ और मुक्ति ।।६६।। इनमें स्वयं ब्रह्माजी कर्मानुसार पुरुषों को लगाते हैं, भूतों के नाम, रूप, प्राकृत अर्थात् प्रकृति से उत्पन्न हुओं का पूर्व के अनुसार ही नाम और कर्म विधान किया ।।६७।। ब्रह्माजी यह सब वेदों के वचनों के अनुसार ही बनते थे, गोत्र, नाम और वेदविहित वृत्तियां ।।६८।। ब्रह्माजी की रात्रि प्रलय के अन्त में उत्पन्न हुए प्राणियों को देते हुए। जैसे ऋतु-ऋतु के लिंग सृष्टि के अन्तर में नाना रूप होते हैं ।।६९।। वे वैसे ही युगादिकों में हुआ करते हैं, यह कारण से उत्पन्न हुआ ब्रह्माजी का लोकसर्ग है ।।७०।। महत् से लेकर विशेष तक प्रकृति का किया कार्य है, चन्द्रमा, सूर्य की कान्ति मिलाकर ग्रह, नक्षत्र से मण्डित ।।७१।। नदी, समुद्र, पर्वतों से व्याप्त अनेक पुरों से मनोहर, श्रेष्ठ जनपदों से व्याप्त ।।७२।। ब्रह्म रूपी वन में सर्ववित् ब्रह्म विचरता है, अव्यक्त बीज से उत्पन्न हुआ ईश्वर के अनुग्रह से स्थित है ।।७३।। बुद्धिरूपी महास्कन्ध महाशाखा

इन्द्रिय अन्तर की कोटरा महाभूत प्रमाण विशेष रूपी निर्मल पत्ते ।।७४।। धर्माधर्म रूपी फूलों से भरा सुख-दुःख रूपी फलों को देनेवाला, सर्व भूतों का उपजीवी, यह सनातन ब्रह्म रूपी वृक्ष है ।।७५।। ब्राह्मण कहते हैं, स्वर्ग उसका सिर, आकाश नाभि, चन्द्रमा, सूर्य उसके नेत्र हैं, दिशा कान, पृथ्वी चरण, इस प्रकार वह अचिन्त्यात्मा सब प्राणियों को निर्माण करनेवाला है ।।७६।। ब्राह्मण उसके मुख से, क्षत्रिय भुजाओं से, वैश्य जंघाओं से और शूद्र चरणों से, ऐसे सब वर्ण शरीर से उत्पन्न हुए हैं ।।७७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे

सृष्टिनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः ।। १२ ।।

*****

तेरहवां अध्याय

ऋषि बोले- आपने परमात्मा शिवजी की उत्पत्ति ब्रह्माजी के मुख से कथन की, इसमें हमें महासन्देह है ।।१।। देवताओं में श्रेष्ठ विरूपाक्ष, शूल धारण करनेवाले, कालात्मक भगवान् रुद्र जटाधारी नीललोहित हैं ।।२।। जो शिवजी ब्रह्मा, विष्णु और अग्नि सहित इस लोक को युगान्तर में क्रोध करके संहार करते हैं ।।३।। जिन्हें ब्रह्माजी, विष्णुजी सदा भय से प्रणाम करते हैं, लोक के संकोच करनेवाले इनके वश में ब्रह्माजी और विष्णुजी भी रहते हैं ।।४।। इसी देव ने पूर्वकाल में अपने शरीर से पहले ब्रह्माजी और विष्णुजी को उत्पन्न किया, वही प्रभु इन दोनों का विधान करते हैं ।।५।। फिर वह आदिदेव पुरातन रुद्र भगवान् अव्यक्त जन्मवाले ब्रह्माजी के पुत्र किस प्रकार से हुए? ।।६।। प्रजापति और विष्णुजी यह दोनों रुद्र के अंग से उत्पन्न हुए हैं, ऐसा पहले हम ने सुना है ।।७।। फिर किस प्रकार से सम्पूर्ण गुण पदार्थों को पंचमहाभूतों के प्रादुर्भूत भाव से उत्पन्न हुए हैं? ।।८।। ऐसी कोई वार्ता नहीं जो आपने न पूंछी हो, ऐसी वह बात नहीं जो आपने न सुनी हो; भगवान् के शिष्य होकर आपने सब बात सुनी है ।।९।। जिस प्रकार भगवान् ब्रह्माजी ने आपके प्रति कहा है, सो आप हम से कहिये, हे मारुत! यथायोग्य आप हम से सब वृत्तान्त कहिये, हम श्रद्धालु हैं और ईश्वर का यश सुनना चाहते हैं ।।१०।। वायु बोले- हे ब्राह्मणो! आप पण्डित हो। आपने भली बात पूंछी, यह वार्ता पहले मैंने पितामह से पूंछी थी ।।११।। सो मैं आपसे रुद्र की उत्पत्ति कहूंगा और जिस प्रकार ब्रह्माजी, विष्णुजी की परस्पर उत्पत्ति हुई है ।।१२।। यह तीनों कारणात्मा साक्षात् महेश्वरजी से उत्पन्न हुए हैं, यही चराचर विश्व की उत्पत्ति, पालन, प्रलय के कारण हैं ।।१३।। परम ऐश्वर्य से संयुक्त परमेश्वर से भावित परमेश्वर की

शक्ति से नित्य अधिष्ठित उस कार्य करने में समर्थ हैं।।१४।। परमेश्वर ने इन तीनों को तीन कर्मों में नियुक्त किया है, उत्पत्ति करने लियें ब्रह्माजी, रक्षा करने लियें भगवान् विष्णुजी तथा संहार करने के लिये रुद्र हैं।।१५।। तथापि अन्योन्य अतिशय पराक्रमी होने से एक दूसरे का उत्कर्ष नहीं सहते हैं, तप से अपने पिता परमेश्वर को सन्तुष्ट करके।।१६।। उस परमेश्वर को प्रसन्नता से सर्वज्ञता को प्राप्त होकर ब्रह्माजी और नारायण को पूर्व कल्पान्तर में रुद्र ने प्रकट किया।।१७।। दूसरे कल्प में ब्रह्माजी ने रुद्र और विष्णुजी को उत्पन्न किया, एक कल्प में विष्णुजी ने रुद्र और ब्रह्माजी को उत्पन्न किया है।।१८।। नारायण को ब्रह्माजी, ब्रह्माजी को शिवजी इस प्रकार कल्प-कल्प में ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर।।१९।। परस्पर हित करनेवाले की इच्छा से उत्पन्न होते हैं, उन्हीं कल्पान्तरों के वृत्तान्त को लेकर महर्षियों ने।।२०।। उनके परस्पर उत्पन्न होने का प्रभाव वर्णन किया है, आप इस पाप का नाश करनेवाली कथा को श्रवण कीजिये।।२१।। जो तत्पुरुष कल्प में हुए ब्रह्माजी की नारायण से वार्ता हुई है, पहले मेघवाहन कल्प में नारायण।।२२।। दिव्य सहस्रवर्ष मेघ रूप होकर शिवजी को धारण करते हुए; जगत् के गुरु उन भगवान् विष्णुजी की अत्यन्त भक्ति देखकर।।२३।। सब प्रकार से उनको नाश रहित सामर्थ्य दी, इस प्रकार यह सर्वेश्वर शिवजी से वह शक्ति को प्राप्त होकर।।२४।। ब्रह्माजी के सहित भगवान् विष्णुजी जगत् की रचना करने लगे; ब्रह्माजी ने यह विष्णुजी का ऐश्वर्य देखकर।।२५।। ईर्ष्या परवश हो भगवान् विष्णुजी से यह वचन कहे, हे विष्णु! जाओ, हमने आपकी सृष्टि का कारण जान लिया, इसमें सन्देह नहीं भगवान् रुद्र आपसे अधिक बली हैं।।२६।। उसी देवाधिदेव परमात्मा की सामर्थ्य से आप जगत् को उत्पन्न और पालन करनेवाले परमार्थ से हो।।२७।। मैं त्रिदश देवनायक रुद्र को तप से आराधना करके आपके सहित जगत् की रचना करूंगा, इसमें सन्देह नहीं।।२८।। इस प्रकार ब्रह्माजी ने विष्णुजी के प्रति भर्त्सना के वचन कहकर और समझाकर तप से शिवजी के निकट प्राप्त होकर बोले।।२९।। हे भगवन्! हे देवताओं के ईश्वर! हे विश्वेश्वर! हे महेश्वर! आपके बाँये अंग से विष्णुजी और दक्षिणांग से मैं उत्पन्न हुआ हूं।।३०।। मेरे साथ भगवान् विष्णु ने जगत् उत्पन्न किया है, परन्तु आपके बल के आश्रय होकर मेरा तिरस्कार करते हैं।।३१।। हे महेश्वर! क्या उनकी भक्ति आपके ऊपर मुझसे अधिक है, हम दोनों की आपसे तुल्य उत्पत्ति है?।।३२।। विष्णुजी की भक्ति से जैसे आप ने पूर्व में प्रसन्नता की है, उसी प्रकार, हे महेश्वर! मुझे भी वह सब सामर्थ्य दीजिये।।३३।। जब इस प्रकार भगदेवता के नेत्र हरनेवाले भगवान् की प्रार्थना की, तब कृपानिधि शिवजी ने हँसकर ब्रह्माजी को भी यह सब सामर्थ्य दी।।३४।। तब ब्रह्माजी शिवजी से क्षणमात्र में सर्वात्मा को प्राप्त होकर बहुत शीघ्रता से विष्णुजी के समीप गये।।३५।। जहां सुन्दर क्षीरसागर में सुन्दर सूर्य के समान विमान जिसमें सुवर्ण और रत्न जड़े, मन से ही निर्मित।।३६।।

विष्णुजी के ही बनाये हुए में अनन्त नाग की शय्या पर शयन करते हुए, कमललोचन, चार भुजा, उदार अंग, सम्पूर्ण आभूषणों से विभूषित ।।३७।। शंख, चक्र, गदा धारे, सौम्य चन्द्रमा के बिम्ब के समान मुखवाले, छाती श्रीवत्स से शोभित, प्रसन्न मुख, मधुर हास्य ।।३८।। स्त्री रूपधारी पृथ्वी से जिनके रक्त चरणकमल स्पर्शित हैं, क्षीरसागर में अमृत के समान योगनिद्रा से शयन करते हुए ।।३९।। तमोगुण होने से कालरुद्र, रज से व्याप्त होने से सुवर्ण के अण्ड से सम्भूत हिरण्यगर्भ, सत्त्वगुण होने से सब स्थानों में व्यापक विष्णुजी, निर्गुण रूप से महेश्वर ।।४०।। परमपुरुष को देखकर बड़ी चपलता से ब्रह्माजी कहने लगे, हे विष्णो! जिस प्रकार पूर्व में आपने मुझे ग्रस लिया था, इसी प्रकार मैं आपको ग्रसता हूं ।।४१।। ब्रह्माजी के यह वचन सुनकर भगवान् विष्णुजी जागकर ब्रह्माजी को देखने लगे और वे महाबाहु कुछ हँसे भी ।।४२।। उसी अवसर में ब्रह्माजी ने विष्णुजी को ग्रस लिया, तब वह तत्काल ब्रह्माजी के भौं के बीच से बिना ही यत्न के प्रकट हो गये ।।४३।। उसी अवसर में चन्द्रमौलि भगवान् उन दोनों की शक्ति देखने को रूप हीन होकर भी रूप में स्थित हुए ।।४४।। और पूर्वकाल में वर पाये हुए उन दोनों पर अनुग्रह करने की इच्छा की, जहां वह दोनों स्थित थे, वहीं शिवजी गये ।।४५।। तब इस कौतुक से प्रसन्न और भय को प्राप्त होकर ब्रह्माजी और नारायण शिवजी की स्तुति करने लगे और दूर से बड़े मान से उनको प्रणाम करने लगे ।।४६।। और पिनाकधारी भगवान् शिवजी उन दोनों पर अनुग्रह करके उनको आदर से देखते हुए वहां ही अन्तर्धान हो गये ।।४७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
शेषशायिनारायणवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।। १३ ।।

*****

चौदहवां अध्याय

वायु बोले– प्रत्येक कल्प में रुद्र के आविर्भाव का कारण कहता हूं, जिससे सन्तान विच्छिन्न होने से भी ब्रह्माजी की सृष्टि प्रवृत्त होती है ।।१।। ब्रह्माण्ड से उत्पन्न हुए ब्रह्माजी ने कल्प–कल्प में प्रजा की रचना करके जब देखा, कि प्राणी नहीं बढ़ते, तब मोहित होकर दुःखी हुए ।।२।। उनके दुःख की शान्ति और प्रजावृद्धि के निमित्त उस–उस कल्प में कालात्मा रुद्रागणाधिप ।।३।। परमेश्वर से प्रेरित होकर भगवान् नीललोहित पुत्र रूप होकर ब्रह्माजी पर ब्रह्मानुज होकर अनुग्रह करते हैं ।।४।। वहीं भगवान् ईश्वर तेज की राशि निरामय हैं, अनादिनिधन, सबके निर्माण करनेवाले, जगत् के संकोच करनेवाले,

सर्वव्यापक ।।५।। परम ऐश्वर्य से संयुक्त परमेश्वर से भावित अर्थात् प्रेरित होकर शिवभक्ति और उनके चिह्नों से चिह्नित ।।६।। उसीके नाम पर नामवाले, उसी के रूप, उसी के कार्य करने में समर्थ, उन्हीं के तुल्य व्यवहार और उन्हीं की आज्ञा पालन करनेवाले ।।७।। सहस्र सूर्य के समान, चन्द्रमा के खण्ड के भूषण धारण करनेवाले, सर्पों के हार, बाजूबन्द, कंगन और मुंजमेखला युक्त ।।८।। जलन्धर नामक देवता विरंच इन्द्र इनके कपाल के खण्ड से उज्ज्वल गंगाजी की ऊँची तरंगों से गीले, पिंगल मुख और केश ।।९।। भग्न हुए डाढ रूपी अंगुरों से प्रान्तभाग को आक्रमण किये जिनका रमणीय कैलास पर्वत है; दक्षिण कानन के पार्श्वान्त में मण्डलाकार कुण्डल शोभित हैं ।।१०।। महावृषभ जिनकी सवारी है, महामेघ के समान गम्भीर शब्द, महाअग्नि के समान तेज, महाबली और पराक्रमी ।।११।। इस प्रकार से घोर महा रूप धारण किये वह ब्रह्माजी के पुत्र महेश्वरजी ब्रह्माजी को ज्ञान देकर उनके साथ सृष्टि करते हैं ।।१२।। इस कारण रुद्र की प्रसन्नता से प्रत्येक कल्प में प्रजापति के प्रवाह रूप से नित्यप्रति सृष्टि की प्रवृत्ति होती है ।।१३।। किसी समय प्रजा रचने के निमित्त ब्रह्माजी ने शिवजी की प्रार्थना की, तब प्रभु ने अपनी आत्मा के समान उन सबकी रचना की ।।१४।। जटाजूटधारी निर्भय नीललोहित त्रिलोचन, जरामरण रहित दीप्तिमान् त्रिशूल और श्रेष्ठ आयुध धारण किये रुद्र प्रकट किये ।।१५।। उन्होंने चौदह भुवनों को आच्छादित कर दिया, इस प्रकार से रुद्रों को देखकर उनसे ब्रह्माजी बोले ।।१६।। हे देवदेवेश! आपको नमस्कार है, आप ऐसी प्रजा की रचना मत कीजिये, आपका मंगल हो, आप मरणधर्म युक्त दूसरी प्रजा निर्माण कीजिये ।।१७।। यह सुनकर परमेश्वर हँसते हुए ब्रह्माजी से बोले, मेरी ऐसी प्रजा नहीं हो सकती, ऐसी प्रजा की रचना आप करो ।।१८।। जो महात्मा महाबली हम ने मन से रचे हैं, यह सब सृष्टि मेरे साथ यज्ञ में विचरण करेगी ।।१९।। इस प्रकार संसार के भूतेश्वर शिवजी ब्रह्माजी के प्रति वचन कहकर रुद्रों के साथ प्रजा रचने की इच्छा से निवृत्त हुए ।।२०।। उस दिन से देवाधिदेव ने जरामरण हीन प्रजा की आपने रचना न की और जब तक प्रलय हो तब तक आप अचल ठूँठ के समान ऊर्ध्ववीर्य होकर स्थित हुए ।।२१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे

रुद्रोत्पत्तिर्नाम चतुर्दशदशोऽध्यायः ।। १४ ।।

*****

पन्द्रहवां अध्याय

वायु बोले- जब फिर भी प्रजा रचने से न बढ़ी, तब ब्रह्माजी ने मैथुनीसृष्टि बनाने की इच्छा की।।१।। पूर्वकाल में ईश्वर से स्त्रियों का कुल प्रकट नहीं हुआ था, इस कारण ब्रह्माजी ने भी मैथुनीसृष्टि न की थी।।२।। जब ब्रह्माजी ने स्त्री-पुरुष संयोग रूप मैथुनी सृष्टि की रचना की और विचारा कि, प्रजावृद्धि के निमित्त परमेश्वर से पूछना चाहिये।।३।। उनकी प्रसन्नता के बिना यह प्रजा न बढ़ेगी, यह सोचकर ब्रह्माजी ने तप करने की इच्छा की।।४।। तब आद्या परमशक्ति अनन्त लोकों की करनेवाली सूक्ष्मतर शुद्ध भावगम्य, मनोहर।।५।। निर्गुण प्रपंच रहित, निष्कल उपद्रव रहित, निरन्तर दिव्य और सदा ईश्वर के समीप रहनेवाली जो शक्ति से युक्त है।।६।। उस परमशक्ति युक्त भगवान् त्रिलोचन देव को मन में विचार कर ब्रह्माजी महातप करने लगे।।७।। जब ब्रह्माजी ने महाकठिन तप किया, तब थोड़े ही समय में शिवजी सन्तुष्ट हो गये।।८।। तब किसी एक अपने अंश से कल्पित मूर्त्ति में प्रवेश करके अर्द्धनारी, आधे पुरुष होकर ब्रह्माजी के निकट आये।।९।। उन परमदेव, अन्धकार से परे, अविनाशी, अद्वितीय, जो कहने में न आवे, अनिर्देश्य और अज्ञानियों के दर्शन में न आनेवाले।।१०।। सब लोकों के विधाता, सब लोकों के ईश्वर, सब लोकों को बनानेवाली परमशक्ति से युक्त।।११।। तर्क और आभास ज्ञान रहित पराक्रम से अतुलनीय, अजर स्थाणु निर्गुण शान्त महामहिमा के स्थान।।१२।। सब कुछ देनेवाले, सबको जाननेवाले, व्याप्त, सत्-असत् व्यक्ति से रहित, सम्पूर्ण अपमान से रहित, शरणदाता, निरन्तर कल्याण स्वरूप को।।१३।। देखते ही ब्रह्माजी खड़े हुए और हाथ जोड़कर श्रद्धा, विनय से सम्पन्न सुनने योग्य संस्कार युक्त।।१४।। तथा यथार्थता से जिसमें वेदार्थ भरा है, इस प्रकार सूक्ष्म अर्थों से भरे स्तोत्रों से शिव-पार्वती को सन्तुष्ट करने लगे।।१५।। ब्रह्माजी बोले- हे देव, महादेव, जयेश्वर, महेश्वर! आपकी जय हो। सब गुणों में श्रेष्ठ, सब देवताओं के अधिपति आपकी जय हो।।१६।। हे कल्याणी प्रकृति! आपकी जय हो, हे प्रकृतिनायक! आपकी जय हो, प्रकृति से दूर अंगवाली, स्वभाव से सुन्दरी की जय हो।।१७।। अमोघ महामाया, अमोघ मनोरथ, अमोघ महालीला, अमोघ महाबलिष्ठ की जय हो।।१८।। विश्व और जगन्माता की जय हो, विश्व जगन्माता के निमित्त नमस्कार है, संसार और भुवनों की माता, विश्व और जगत् की सखी।।१९।। निरन्तर ऐश्वर्य से पूर्ण निरन्तर का भी लय करनेवाली शान्ताकार और सदा एक मात्र शाश्वत के अनुमान करनेवाली।।२०।। तीन आत्मा, ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों की रचना

करनेवाली, ब्रह्मादि देवताओं को पालनेवाली और उन्हीं तीनों आत्माओं की संहार करनेवाली, तीनों आत्माओं की स्वामिनी की जय हो।।२१।। जिसके अवलोकन मात्र से ही जगत् के कारण अव्यक्त आदि प्रकट हो गये; निग्रह से युक्त कटाक्ष से उठी हुई अग्नि से जिसने भौतिकतत्त्व को भस्म कर दिया, उसकी जय हो।।२२।। जिसको देवतादिक भी नहीं जानते, आत्मा के दर्शन में जिसके नेत्र उज्ज्वल हैं, स्थूलात्मा शक्ति के अंश से चराचर विश्व में व्याप्त आप की जय हो।।२३।। अनेक प्रकार और एक प्रकार से भी जिन्होंने संसार के तत्त्व को जय कर रखा है, उनकी जय हो, जिनके दोनों चरण राक्षसों के सिरों पर धरे गये हैं।।२४।। उपासना करनेवालों की रक्षा करने में चतुर की जय हो, आप संसार रूपी वृक्ष को अंकुरित होते ही नाश करते हो, आपकी जय हो।।२५।। ऐश्वर्य और शूरता युक्तों के मद के नाशकर्ता आप की जय हो, विश्व से बहिर्भूत अर्थात् पृथक और दूसरे के ऐश्वर्य से हीन आपकी जय हो।।२६।। उत्पन्न किये हुए पंचमहाभूतों के प्रयोग अर्थात् स्थापन में परब्रह्म स्वरूप और पंचमहाभूतों के ज्ञान रूपी अमृतस्रोत बहानेवाली आपकी जय हो।।२७।। अति घोर संसार रूपी महाज्वररोग के औषधी स्वरूप वैद्यराज आपकी जय हो, अनादि काल के अज्ञान मल और अन्धकार का नाश करने को चान्दनी रूपी आपकी जय हो।।२८।। त्रिपुर को कालाग्नि स्वरूप की जय हो, हे त्रिपुरभैरवी! आपकी जय हो, तीनों गुणों में से पृथक् और तीनों गुणों के दूर करनेवाली आपकी जय हो।।२९।। सम्पूर्ण शत्रुओं के नाशक सर्वज्ञ सब को बोधिका की जय हो, दिव्यज्ञान से युक्त आपकी जय हो, मनोवांछादि अर्थ देनेवाली भगवती की जय हो।।३०।। हे देव! कहां तो आपका परमधाम, कहां हम और कहां हमारे वचन हैं; तो भी शक्ति से वचन उच्चारण करनेवाले मुझे आप क्षमा करें।।३१।। विश्वकर्मा चतुर्मुख इस प्रकार श्रेष्ठ सूक्तों से भगवान् की स्तुति करके रुद्र और रुद्राणी को बारंबार नमस्कार करने लगे।।३२।। यह सुन्दर स्तोत्र ब्रह्माजी का कहा हुआ है, यह अर्द्धनारीश्वर स्तोत्र इसमें आधी रुद्राणी की स्तुति है; आधी शिवजी की है, यह शिवजी का आनन्द बढ़ानेवाला है।।३३।। जो किसी मनोरथ की इच्छा से इस स्तोत्र का कीर्तन करता है, वह शिवा-शिव की प्रसन्नता से उस फल को प्राप्त होता है।।३४।। सम्पूर्ण भुवन और प्राणियों को उत्पन्न करनेवाले, जन्म विनाश हीन शरीरवाले श्रेष्ठ नर और युवती के शरीर धारण करनेवाले शिवपार्वती को प्रणाम करता हूं।।३५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे

रुद्रब्रह्मसंवादे पंचदशोऽध्यायः ।। १५ ।।

*****

सोलहवां अध्याय

वायु बोले- तब महादेवजी महामेघ के शब्द के समान मधुर गम्भीर तथा मनोहर वाणी से बोले ।।१।। जिस वाणी के यह अर्थ सम्पन्न थे, जो राजलक्षण से युक्त थी, सम्पूर्ण विषयों के आरम्भ की रक्षा करनेवाली तथा निर्मल करने में चतुर थी ।।२।। उस अत्यन्त मनोहर उदार हास्य पूर्वक वाणी से प्रसन्न होकर वह ईश्वर ब्रह्माजी से बोले ।।३।। ईश्वर बोले- हे वत्स! हे महाभाग! हे मेरे पुत्र ब्रह्माजी! तुम्हारे वाक्य का भेद मैंने सब जान लिया ।।४।। प्रजाओं की वृद्धि के निमित्त तुमने महातप किया है, इस कारण तप से मैं प्रसन्न होकर तुमको यह वर देता हूं ।।५।। इस प्रकार के वचन कहकर वह परमोदार स्वभाव से ही वह मधुर वचन बोलनेवाले अपने शरीर से देव-देवी की रचना करने लगे ।।६।। विद्वान् जिसको ब्रह्म कहते हैं, वह देवी दिव्य गुणों से युक्त है, वह परमात्मा भव शिवजी की परमशक्ति है ।।७।। जिसको जन्म, मृत्यु और जरादिक कुछ नहीं है, जो भवानी शिवजी के अंग से प्रकट हुई है ।।८।। जिसके निकट जाकर इन्द्रिय, मन, वाणी सहित निवृत्त हो जाती है, वह अपने स्वामी के शरीर से प्रकट हुई सी दीखती है ।।९।। जो यह सब जगत् को अपनी महिमा से व्याप्त करके स्थित होती है, शरीरियों के समान वह देवी विचित्र रूप युक्त है ।।१०।। यह सम्पूर्ण जगत् अपनी माया से मोहित करती है, वह परमार्थ से उत्पन्न न होकर भी ईश्वर से प्रकट हुई है ।।११।। जिसके परमभाव को देवता भी नहीं जानते, वह जगत् के स्वामी देवता के अंग से विभक्त हुई है ।।१२।। इस परमेश्वरी, सर्व लोकेश्वरी, सर्वज्ञों में प्राप्त सूक्ष्म, सत्, असत् व्यक्ति से हीन को देखकर ।।१३।। अपनी इस कान्ति से जगत् को प्रकाश करती हुई दीखी, तब महादेवी को प्रणाम करके विराट् ने प्रार्थना की ।।१४।। ब्रह्माजी बोले- हे देवि! मैं सृष्टि के प्रथम उस देव से उत्पन्न किया गया हूं, हे सर्वजगन्मयि! मैं प्रजा सृष्टि में नियुक्त होकर सब जगत् की रचना करता हूं ।।१५।। हे देवी! यह सब देवता मैंने निर्माण किये हैं, परन्तु बारंबार बन करके फिर वृद्धि को प्राप्त नहीं होते हैं ।।१६।। इस कारण अब मैथुनी सृष्टि करने की इच्छा करता हूं, मुझे इस प्रकार अपनी प्रजा को बढ़ाने की इच्छा है ।।१७।। प्रथम तुमसे स्त्रियों का कुल प्रकट नहीं हुआ है, इस कारण नारी कुल उत्पन्न करने की शक्ति मुझ में नहीं है ।।१८।। सब प्रकार की शक्तियों की उत्पत्ति तुमसे ही है, इस कारण सब जगह सब को शक्ति देनेवाली तुम ही हो ।।१९।। हे वरदाता सुरेश्वरी! मैं तुम्हीं वरदान देनेवाली से प्रजावृद्धि के निमित्त प्रार्थना करता हूं, कि अपने एक अंश से चराचर की वृद्धि करो ।।२०।। हे संसार के भय दूर करनेवाली! मेरे अपने अंश से उत्पन्न

किये पुत्र दक्ष की तुम कन्या हो, जब ब्रह्मयोनि ब्रह्माजी ने उनसे यह प्रार्थना की ।।२१।। तब उसने अपनी भ्रू के मध्य से एक अपनी प्रतापशील शक्ति प्रकट की; उसको देखकर देवताओं में श्रेष्ठ शिवजी प्रसन्न होकर बोले ।।२२।। तू अब तपस्या करके ब्रह्माजी की आराधना कर और उनके मनोरथ पूर्ण कर, इस प्रकार परमेश्वर की आज्ञा को वह शक्ति सिर पर धारण करके तप करने लगी ।।२३।। और ब्रह्माजी के वचन से वह देवी दक्ष की कन्या हुई और वह ब्रह्म रूपिणी ब्रह्माजी के निमित्त महान् शक्ति देकर ।।२४।। देव के देह में लय हो गई और देव शिवजी तत्काल अन्तर्धान हुए, उस दिन से इस लोक में स्त्री संभोग प्रतिष्ठित हुआ है ।।२५।। हे देवेन्द्र! मैथुन धर्म से प्रजा की सृष्टि प्रवृत्त हुई है, हे मुनिश्रेष्ठ! इससे ब्रह्माजी ने भी आनन्द और सन्तोष पाया ।।२६।। देवी से शक्ति की उत्पत्ति आपके प्रति सब वर्णन की, यह पुण्य रूप वृद्धि करनेवाली उत्पत्ति की कथा सुनने योग्य है ।।२७।। जो इस देवीरूप शक्ति की कथा को नित्य कीर्तन करता है, उसको सब प्रकार के पुण्य और श्रेष्ठ पुत्रों की प्राप्ति होती है ।।२८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
सृष्टिनिरूपणं नाम षोडशोऽध्यायः ।। १६ ।।

*****

सत्रहवां अध्याय

वायु बोले– इस प्रकार ब्रह्माजी ईश्वर से परे शक्ति को प्राप्त होकर मैथुनी प्रजा करने की इच्छा करने लगे ।।१।। अपने आधे शरीर से नारी और आधे शरीर से पुरुष हो गये, जो नारी रूप था, उससे शतरूपा प्रकट हुई ।।२।। और पुरुष के आधे शरीर से विराट् हुआ, उसको प्रथम पुरुष स्वायम्भुव मनु कहते हैं ।।३।। देवी शतरूपा महातप करके दीप्तिमान महायशस्वी अपने स्वामी को प्राप्त हुई ।।४।। उस शतरूपा से प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए ।।५।। और दो महाभाग्यवान् कन्याएं हुई, जिनसे यह महाभाग्यवती प्रजा उत्पन्न हुई, उनमें एक का नाम आकूति, दूसरी का नाम प्रसूति था ।।६।। स्वायम्भुव मनु ने प्रसूति को दक्ष के निमित्त दिया और रुचि प्रजापति को अपनी कन्या आकूति दे दी ।।७।। आकूति में रुचि प्रजापति से मानसी एक कन्या और एक पुरुष उत्पन्न हुआ, उनका नाम यक्ष और दक्षिणा है, इन्हीं से यह जगत् वृद्धि को प्राप्त है ।।८।। और स्वायम्भुव की प्रसूति कन्या में लोकों की माताएँ चौबीस कन्याएँ प्रकट हुईं ।।९।। श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, पुष्टि, तुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि, कीर्ति ये तेरह कन्याएं ।।१०।। धर्म को व्याही गईं और उनसे छोटी

ग्यारह कन्याएँ।।११।। ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्नति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा, स्वधा।।१२।। यह क्रम से भृगु, शिव, मरीचि, अंगिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य, अत्रि, वशिष्ठ, पावक, पितरों को।।१३।। व्याही गईं, ये मुनि मुनियों में श्रेष्ठ थे, काम, दर्पनिलय, सन्तोष, लाभ, श्रुत, दण्डसमय, बोध, अप्रमाद, विलय, व्यवसाय, क्षेम, सुख और यश तेरह पुत्र।।१४।। धर्म के उत्पन्न हुए और श्रद्धा आदि में उत्पन्न हुए थे और सुख रूप थे और दुःख देनेवाली सन्तान अधर्म के हिंसा में उत्पन्न हुई।।१५।। वे अधर्म के पुत्र निकृति आदि उत्पन्न हुए हैं, विष्णुपुराण में लिखा है कि अधर्म कि हिंसा भार्या में अनृत की उत्पत्ति हुई और निकृति कन्या हुई, उससे भय, नरक प्रकट हुए, इन्हीं के माया और वेद नामक एक जोड़ा उत्पन्न हुआ है, माया से प्राणहारी मृत्यु हुई वेदना से दुःख उत्पन्न किया, मृत्यु के व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा, क्रोध उत्पन्न हुए, यह सब दुःख रूप हैं, इनके भार्या, पुत्र नहीं कारण कि, यह सत्यधर्म से रहित हैं।।१६।। यह अधर्म रूप तामसी सृष्टि है; और जो सती दक्ष की कन्या रुद्र को व्याही गई।।१७।। वह अपने स्वामी की निन्दा सुनकर उसने अपनी देह का त्याग किया, भाई सहित, कुटुम्ब सहित दक्ष और दक्ष की भार्या निन्दा करके शरीर त्याग करके।।१८।। वह हिमालय के यहां मेना स्त्री में पुत्री रूप होकर प्रकट हुई, रुद्र ने उस सती को और अपने समान रुद्रों को देखकर।।१९।। जैसे मैंने अपने समान असंख्य जीव रचे सो आप से पूर्व में कथन कर ही चुके हैं, भृगु ऋषि से ख्याति स्त्री में नारायण की प्रिया लक्ष्मी उत्पन्न हुई।।२०।। धाता और विधाता नामक देवता मन्वन्तर में विचरनेवाले हुए, उनके पुत्र और पौत्रादि अनेक हुए।।२१।। स्वायम्भुवमनु के अन्तर में वे सब भार्गव वंशी कहलाये। मरीचि ऋषि के सम्भूति स्त्री में पौर्णमास पुत्र उत्पन्न हुआ।।२२।। और चार कन्याएं उत्पन्न हुईं, उनका वंश बहुत बड़ा; जिनके वंश में बहुत पुत्रवाला कश्यप उत्पन्न हुआ।।२३।। स्मृति नामक अंगिरा की स्त्री में दो पुत्र आग्नीघ्र और शरभ उत्पन्न हुए और चार कन्या हुईं।।२४।। उनके पुत्र पौत्र भी सहस्रों हुए, पुलस्त्य की प्रीति नामक भार्या में दन्त अग्नि पुत्र हुआ, जो पूर्वजन्म में स्वायम्भुव मन्वन्तर में अगस्त्य हुए थे।।२५।। उसकी बहुत सन्तानें हुई, वे सब पौलस्त्य कहलाती थीं, पुलह प्रजापति की क्षमा स्त्री में।।२६।। कर्दम, आसुरी और सहिष्णु हुए, यह सब त्रेताग्नि के समान हुए, इनका वंश बहुत चला।।२७।। क्रतु की सन्तति ने क्रतु के समान बहुत से पुत्र उत्पन्न किये, इनके भार्या, पुत्र नहीं हुए, यह सब ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी हुए।।२८।। यह साठ हजार वालखिल्य कहलाये, सूर्य को घेरकर यह सब अरुण के आगे चलते हैं।।२९।। अत्रि की भार्या अनुसूया के पांच सन्तानें हुईं, एक कन्या श्रुति नाम जो कि, शंखपद नाम ऋषि की माता हुई।।३०।। सत्यनेत्र, हव्य, आपोमूर्ति, शनैश्चर और सोम यह पांच सन्तानें अत्रि से उत्पन्न हुए।।३१।। उनके पुत्र और पौत्र बहुत हुए,

वे सब आत्रेय कहलाये, स्वायम्भुव मन्वन्तर में यह सैकड़ों बीत गये ।।३२।। उर्जा में वसिष्ठजी के सात पुत्र उत्पन्न हुए और उनकी बड़ी बहन पुण्डरीका हुई ।।३३।। रज, गात्र, ऊर्ध्वबाहु, सवन, अनय, सुतप, शुक्र ये सात सप्तऋषि कहलाये ।।३४।। इन वसिष्ठ वंशियों के नाम से ही उनके गोत्र कहलाये, स्वायम्भुव मन्वन्तर के बीतने में यह सैकड़ों अरब संख्यावाले हुए ।।३५।। यह आपको क्रम से ऋषिसर्ग में श्रवण कराया, यह संक्षेप से कहा है, विस्तार से तो कोई कथन नहीं कर सकता ।।३६।। जो यह रुद्रात्मक अग्नि ब्रह्माजी के मन से उत्पन्न कहा जाता है, उसकी स्वाहा स्त्री में महापराक्रमी तीन पुत्र उत्पन्न हुए हैं ।।३७।। वे पावक, पवमान और शुचि कहलाते हैं, बिना मथी हुई पवमान कहलाती है, बिजली की अग्नि पावक कहलाती है।।३८।। और जो सूर्य में तपती है उसका नाम शुचि और सौर कहा है, हव्यवाह, कव्यवाह, सहरक्षा ये तीन अग्नि हैं ।।३९।। इनके पुत्र क्रम से देवता, पितर और असुर हुए हैं, इनके पुत्र और पौत्र उनचास हैं ।।४०।। काम्य, कर्म, नैमित्तिक कर्म और निरन्तर कर्म में स्थित रहते हैं, यह सब तपस्वी और सब व्रत के धारण करनेवाले हैं ।।४१।। यह सब रुद्रात्मक और रुद्र के भक्त हैं, इस कारण अग्नि के मुख में कोई कुछ भी देते हैं ।।४२।। वह सब रुद्र के उद्देश्य से दिया हुआ कहलाता है, इसमें सन्देह नहीं, यह अग्नि का यथा क्रम से वंश कहा है ।।४३।। हे विप्रो ! सो संक्षेप से कहा है, अब पितरों का वंश कहता हूं, ब्रह्माजी के पितृवर्ष्म अर्थात् पितरों के देह में होने से वसन्त आदि षट्ऋतु अपने पितरों को कहते हैं, ''पितर अथर्तवः प्रजापतिः पितरं पितृयज्ञेनायजन्तेति श्रुतेः'' जिस कारण कि, उन स्थान के अभिमानियों की छः ऋतु स्थान हैं ।।४४।। इस कारण पितरों को ऋतु भी कहते हैं, यह वेद की श्रुति है, ''ऋतवः खलु वै पितर इति श्रुतेः'' जिस कारण कि सब ऋतुओं में स्थावर और जंगम उत्पन्न होते हैं ।।४५।। इस कारण यह पितर भी ऋतु कहलाते हैं, क्योंकि पितरों का यजन ऋतुओं आदि में होता है, इस कारण ऋतु काल के अभिमानी इन पितरों का ।।४६।। ऋतुपन आर्त्तवत्व और पितृत्त्व वर्णन किया है, सब मन्वन्तरों में वे पितर ऐश्वर्य को प्राप्त होकर आकाश के संग को प्राप्त होकर स्थित होते हैं, अग्निष्वात्त अग्निकर्म में तत्पर, बर्हिषद, कुशों पर बैठनेवाले दो प्रकार के पितर हैं ।।४७।। यह अयज्वा यज्ञ न करनेवाले और यज्वा यज्ञकर्त्ता गृहस्थियों के पितर हैं, पितरों की स्वधा के दो पुत्री लोक विख्यात हुईं ।।४८।। मेना और धरणी जिन्होंने विश्व धारण कर रखा है, यह पितरों की कन्या हैं, अग्निष्वात्तों की कन्या मेना और बर्हिषद पितरों की धरणी कन्या है ।।४९।। मेना हिमालय की पत्नी हुई, जिसने मैनाक और क्रौंच नामक दो पुत्र और पार्वती और शिवजी के अंगस्पर्श से पवित्र गंगा को उत्पन्न किया ।।५०।। मेरु की धरणी पत्नी हुई, जिसने दिव्य औषधी से युक्त चित्र-विचित्र कन्दरावाले मन्दर पर्वत को उत्पन्न किया ।।५१।। वही मेरु का पुत्र कान्तिमान्

मन्दराचल तप के बल से साक्षात् श्रीकण्ठनाथ शिवजी के आवास स्थान की संगति को प्राप्त हुआ।।५२।। धरणी के तीन कन्याएं उत्पन्न हुईं, वेला, नियति और आयति।।५३।। आयति, नियति यह दोनों भृगुजी के दो पुत्रों को व्याही गई, स्वायम्भुव मन्वन्तर के पूर्व में भृगुपुत्रों का वंश कहा है।।५४।। सागर से वेला के एक श्रेष्ठ कन्या उत्पन्न हुई, उसका नाम सवर्णा था, वह प्राचीनवर्हि की पत्नी हुई।।५५।। उस समुद्रकन्या के प्राचीनबर्हि से दश पुत्र हुए, उन दशों का नाम प्रचेता हुआ, वे धनुर्वेद के पारगामी हुए।।५६।। जिनका स्वायम्भुव मनु के समय दक्ष पुत्र हुआ था, वे शिवजी के शाप से चाक्षुष नामक मन्वन्तर के समय में हुए थे।।५७।। हे ब्राह्मण! इस प्रकार यह ब्रह्मपुत्र महात्मा धर्मात्माओं का यह वृत्तान्त न तो मैंने बहुत संक्षेप से न बहुत विस्तार से कहा है।।५८।। यह दिव्य देवचरित्र है, क्रियावाले, प्रजावाले महाऋषियों से अलंकृत।।५९।। यह प्रजाओं का सन्निवेश ब्रह्माजी से प्रकट हुआ है, विस्तार से तो कोई सौ करोड़ वर्ष में भी नहीं कह सकता।।६०।। राजाओं का भी वंश दो प्रकार से है, वह पवित्र वंश पृथ्वी पर चन्द्र-सूर्य नाम से विख्यात है।।६१।। इक्ष्वाकु, अम्बरीष, ययाति, नहुषादिक वे पवित्र चरित्रवाले राजा इन वंशों में प्रकट हुए हैं।।६२।। दूसरे राजर्षि अनेक प्रकार के बल वीर्य से युक्त हैं, उनके क्रम से वर्णन करने का क्या प्रयोजन है? कारण कि पूर्व में उनका वर्णन कर चुके हैं।।६३।। और शिवकथा के प्रसंग में जहां-तहां उनका कीर्तन भी हुआ है, सत्पुरुषों के मन न लगने के कारण उन सबको वर्णन करने की इच्छा नहीं है।।६४।। कारण कि, प्रसंग से ईश्वर के प्रभाव प्रकट करने में उनकी कथा आ गई है और प्रसंग से यह सृष्टि आदि का वर्णन किया, अब बहुत विस्तार से क्या है?।।६५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
स्वायंभुववंशकथनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ।। १७ ।।

*****

अठारहवां अध्याय

ऋषि बोले- दक्ष की कन्या देवी सती दक्ष के यज्ञ में अपना शरीर त्याग करके वह मेना में जन्म लेकर किस प्रकार हिमालय की पुत्री हुई?।।१।। महात्मा दक्ष ने रुद्र की क्यों निन्दा की और उसमें क्या निमित्त था, जिसमें रुद्र निन्दित हुए?।।२।। और शिवजी के शाप से दक्ष फिर कैसे उत्पन्न हो गये? हे मारुत! चाक्षुष मन्वन्तर के पूर्व में हुए उस वृत्तान्त का कथन कीजिये।।३।। वायु बोले- आप सुनिये, मैं लघुचित्तवाले दक्ष की कथा कहता हूं, जो उसने पाप और प्रमाद से जगत् के देवता को दूषित करने का

चरित्र किया ।।४।। प्रथम सब सुर, असुर, सिद्ध, परमर्षि शिवजी के दर्शन करने को हिमालय के शिखर पर गये ।।५।। उस समय शिव–पार्वती दिव्य आसन पर विराजमान थे; हे ब्राह्मणो! उन दोनों ने देवता आदि को दर्शन दिया ।।६।। उस समय दक्ष भी देवताओं के सहित वहां गये, उनके मन में भी शिवजी और अपनी कन्या के दर्शन की अभिलाषा थी ।।७।। तब देवी के यहां दक्ष के आने के निमित्त अपने गौरव के कारण विशेष करके किसी देवता ने भी उनका स्मरण न किया ।।८।। तब उस दक्ष ने उसे पुत्री का परमभाव न जानकर शिवजी के विरोध के कारण उस मूर्ख ने अपनी पुत्री से भी बैर माना ।।९।। उसी बैर के कारण दुर्दैव से प्रेरित होकर दक्ष ने यज्ञ में द्वेष के कारण अपनी पुत्री को न बुलाया ।।१०।। दूसरे सब जमाइयों को क्रम से बुलाया और सैकड़ों प्रकार से पृथक्–पृथक् उनकी पूजा की ।।११।। उन सबके मेल को नारदजी से सुनकर पार्वती शिवजी को पूंछकर दक्ष के घर विमान में बैठकर चली गई ।।१२।। तब चारों ओर से निकटवर्ती विमान को देखकर, जो कि लक्षण से युक्त, सुख से आरोहण करने के योग्य अत्यन्त मनोहर थे ।।१३।। तपाये हुए सुवर्ण के समान विचित्र रत्नों से शोभित चन्दोवों में मोती लटकते हुए मालाओं से अलंकृत ।।१४।। तप्त सुवर्ण की खूटियों से संकीर्ण सैकड़ों रत्नों के स्तम्भों से व्याप्त, रत्नों से जड़ी सीढ़ी, मूंगों से स्तम्भ और तोरण जटित हैं ।।१५।। फूल बिछे हुए अनेक सिंहासनों से शोभित जिनमें महारत्न जड़े हैं, जिसके झरोखों में हीरे की किरण पडती है और मणि की रचना से छिद्र रहित हैं ।।१६।। मणिदण्ड से मनोहर महावृक्ष के चिह्न से युक्त जिसके आगे का भाग मेघाकार ध्वजा से शोभित था ।।१७।। रत्नजटित चोल वस्त्र से जिनके अंग रक्षित हैं, चित्र–विचित्र वेष हाथ में लिये गणेश्वरों से भी धर्षण के अयोग्य द्वारपालों से व्याप्त ।।१८।। मृदंग, ताल, गीत, वेणु, वीणा बजाने में चतुर, मनोहर वेष और वचन बोलनेवाली स्त्रियों से व्याप्त ।।१९।। इस विमान पर महादेवी अपनी सखियों के साथ चढ़ी, दण्डी में हीरे जड़े हुए चमर व्यजन ।।२०।। दो रुद्रकन्या ग्रहण करके उनके ऊपर व्यजन करने लगी, तब उन चामरों के बीच में पार्वती का मुख शोभित हुआ ।।२१।। जैसे युद्ध करते हुए दो हंसों के बीच में कमल शोभित होता है, चन्द्रमा के समान छत्र उनके मस्तक के ऊपर सुमालिनी ने धारण किया ।।२२।। वह मोतियों की झालर से युक्त उस छत्र को प्रेम से धारण करने लगी, वह उज्ज्वल छत्र देवी के मस्तक के ऊपर शोभित हुआ ।।२३।। जिस प्रकार अमृत के पात्र के ऊपर चन्द्रमा शोभित होता है और मनोहर हास्य युक्त शुभावती इसके आगे स्थित थी ।।२४।। यह अक्ष अर्थात् पाशे के विनोद से पार्वती को प्रसन्न करने लगी, सुयशा ने रत्नभूषित देवी की पादुका ग्रहण की ।।२५।। दूसरी किसी मनोहर अंगवाली ने दर्पण ग्रहण किया; इस प्रकार स्तनों के अन्तर से उनकी सेवा करने लगी ।।२६।। किसी ने ताल का पंखा और किसी ने पानदान ग्रहण किया,

किसी ने क्रीड़ाशुक को हाथ में लिया।।२७।। किसी ने मनोहर-मनोहर फूल ग्रहण किये, किसी कमलनेत्री ने आभूषणों को धारण किया।।२८।। किसी ने आलेपन और फूलों को धारण किया अन्य दूसरी भी अपने-अपने योग्य काम करती थीं।।२९।। इस प्रकार अपने समय में वे सब देवी की सेवा करने लगी, उनके बीच में वह परमेश्वरी अत्यन्त शोभित होने लगी।।३०।। जिस प्रकार तारों के बीच में शरद ऋतु का चन्द्रमा शोभा पाता है; इसके उपरान्त शंखनाद के पीछे।।३१।। प्रस्थान का बड़ा भारी बाजा बजने लगा; फिर ताल-स्वर से और भी बाजे बजने लगे।।३२।। कालह नाम और भी सैकड़ों बाजे बजने लगे और शिवजी के समान तेजधारी आयुध लिये गणेशों के समूह।।३३।। एक सहस्र आठ सौ आगे चले, उनके बीच में वृषभ पर आरूढ़ हुए हाथी पर चढ़े हुए गुह के समान।।३४।। गणपति सोम बन्दी देवताओं से पूजित होकर चले और आकाश से कर्णों को सुखदायक ऐसे देवताओं के नगाड़े बजने लगे, मेघ गर्जने लगे।।३५।। मुनि नृत्य करने लगे, सिद्ध, योगी प्रसन्न होने लगे, मेघों से विमान के ऊपर पुष्पवर्षा होने लगी।।३६।। तब मार्ग में दूसरे देवताओं से सम्मिलित होकर क्षणमात्र में महेश्वरी पिता के घर पहुँची।।३७।। उसे देखते ही दक्ष ने अपने नाश के निमित्त क्रोध किया, उस सती की दूसरी छोटी बहनों ने भी असत्कार की पूजा का बर्ताव किया।।३८।। तब वह चन्द्रमुखी देवी सभा में बैठे हुए अपने पिता से युक्ति युक्त और कृपणता रहित वचन कहने लगी।।३९।। देवी बोली- ब्रह्माजी से लेकर पिशाच तक जिसकी आज्ञा के वशवर्ती हैं, उन देवाधिदेव की पूजा हमारे पिता ने न की।।४०।। सो हो, परन्तु मुझ ज्येष्ठ पुत्री का सत्कार क्या इस प्रकार होना चाहिये? पिता ने सत्कार करने योग्यों का निरादर करके बड़ा गर्हित कार्य किया है, यह कहने पर दक्षजी क्रोध करके बोले।।४१।। तुझसे श्रेष्ठ और गौरव युक्त मेरी पुत्रियां हैं, उनका मैं सदा सत्कार करता हूं।।४२।। और जो उनके श्रेष्ठ भर्ता हैं, वे भी मेरे सदा मान्य हैं, वे सब तेरे स्वामी शिवजी से गुणों में अधिक हैं।।४३।। और शिवजी तो उद्योग हीन तमोगुण प्रधान हैं, तू उन्हीं की स्त्री है, इसी कारण मैं तेरा भी तिरस्कार करता हूं, कारण कि शिव मेरे प्रतिकूल हैं।।४४।। इस प्रकार कहने पर दक्ष से क्रोधित होकर देवी बोली, उस समय सब सभासद उनके वचन सुनने लगे।।४५।। जो कि सब दोषों से रहित स्वामी साक्षात् लोकमहेश्वरजी की आप वाणी से निन्दा करते हो।।४६।। विद्याचोर, गुरु का द्रोही, देवदेवेश्वर की निन्दा करनेवाला इन पापियों को शीघ्र दण्ड देना चाहिये, यह श्रुति है।।४७।। इस कारण इस पाप का महादण्ड अकस्मात् ही दैव से आपको प्राप्त होगा।।४८।। जिस कारण कि, आपने देव-देव शिवजी का पूजन न किया; इस कारण आप अपने दुष्ट कुल को नष्ट हुआ जानिये।।४९।। यह कहकर अविनाशी सती अपने पिता को त्याग कर और उसके शरीर को भी त्याग करके हिमालय पर्वत को गई।।५०।।

उस श्रेष्ठ पर्वत ने पुण्य प्राप्त होने और श्रेष्ठ कन्या प्राप्त होने के निमित्त महातप किया था ।।५१।। इसी कारण ईश्वरी ने उन पर्वतराज पर कृपा की और योगमाया के आश्रय होकर अपनी इच्छा से उनको पिता किया ।।५२।। जिस समय सती भयविह्वल होकर दक्ष की निन्दा करके चली, उसी समय मन्त्रों की शक्ति हानि होने से यज्ञ विध्वंस हो गया ।।५३।। शिवजी ने देवी का वहां से गमन सुनकर दक्ष और भृगु आदि ऋषियों को क्रोध करके शाप दिया ।।५४।। जिस कारण दक्ष ने मेरे कारण अपनी पुत्री का निरादर करके अपनी दूसरी सब कन्याओं का सत्कार किया है और उनके स्वामीजनों की पूजा की है ।।५५।। इसी कारण वैवस्वत मन्वन्तर में यह तेरे जामाता योनि से उत्पन्न होनेवाले भी जन्म धारण करेंगे ।।५६।। और चाक्षुष मन्वन्तर में दक्ष मनुष्यों का राजा होगा, प्राचीनबर्हिष को पोता और प्रचेता का पुत्र होगा ।।५७।। हे दुर्मते ! उस स्थान में तुझको विघ्न करूंगा, तेरे धर्म, अर्थ, काम में बारंबार विघ्न किया जायगा ।।५८।। जब महातेजस्वी रुद्र ने दक्ष के प्रति ऐसा कहा, तब वह ब्रह्माजी का सम्बन्धी शरीर त्यागकर, दुःखी होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा ।।५९।। फिर चाक्षुष मन्वन्तर में दक्ष प्रचेता के उत्पन्न हुए प्राचीनबर्हिष के पोते, प्रचेता के पुत्र कहलाये ।।६०।। वे भृगु आदि भी वैवस्वत मन्वन्तर में ब्रह्मयज्ञ में वरुण सम्बन्धी शरीर को प्राप्त होकर जन्मे ।।६१।। उस समय दुरात्मा दक्ष जब यज्ञ के निमित्त प्रवृत्त हुआ उस समय वैवस्वत मन्वन्तर में शिवजी ने विघ्न किया ।।६२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
दक्षशाप वर्णनं नामाष्टऽदशोऽध्यायः ।। १८ ।।

*****

उन्नीसवां अध्याय

ऋषि बोले– जब दुरात्मा दक्ष यज्ञ करने में प्रवृत्त हुए, तब महेशजी ने किस प्रकार से विघ्न किया ? यह सुनने की हमारी इच्छा है ।।१।। वायु बोले– संसार और जगत् की माता देवी के तपोबल से घर में आने के कारण हिमालय बहुत प्रसन्न हुए ।।२।। उनके साथ जब शिवजी का विवाह हो गया, तब हिमालय के शिखर पर चले गये, वहां पार्वती के साथ विहार करते हुए जब बहुत समय हो गया ।।३।। तब वैवस्वत मन्वन्तर के प्राप्त होने पर स्वयं प्रचेता के पुत्र दक्ष ने अश्वमेध यज्ञ करने की इच्छा की ।।४।। जब हिमालय के पृष्ठदेश में दक्ष यज्ञ करने लगे, जहां गंगाद्वार है और ऋषि, मुनि, सिद्ध वहां निवास करते हैं ।।५।। तब उनके यज्ञ में ब्रह्मादि समस्त देवताओं ने जाने की इच्छा की ।।६।।

आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, मरुत्, देवता, सोमपान करनेवाले तथा घृतपान करनेवाले पितर, धूमपान करनेवाले ।।७।। अश्विनीकुमार, दूसरे पितर महर्षि यह विष्णुजी सहित सब कोई यज्ञभाग लेने को आये ।।८।। जब शिवजी के विना और समस्त देवता आ गये, तब दधीचि ने क्रोध कर दक्ष से कहा ।।९।। दधीचि बोले– अपूज्यों को पूजने से और पूजने योग्यों को न पूजने से मनुष्य को बड़ा पाप लगता है, इसमें सन्देह नहीं ।।१०।। जहां असत् पुरुषों की सम्मति और सत्पुरुषों का निरादर है, उसके ऊपर शीघ्र ही देव का दिया हुआ दण्ड पतित होता है ।।११।। विप्रर्षि ने यह वचन कहकर फिर दक्ष से कहा, परमपूजनीय पशुपति का आपने पूजन किस कारण से न किया ?।।१२।। दक्ष बोले– हमारे यहां शूल हाथ में लिये जब ग्यारह रुद्र विद्यमान हैं, जो जटाजूट धारण किये हैं, फिर और महेश्वर कौन से हैं ? हम उनको नहीं जानते ।।१३।। दधीचि बोले– इन देवताओं के यज्ञ में पूजने से क्या फल है, जो यज्ञ के राजा महेश्वरजी का पूजन न किया ? ।।१४।। जो प्रभु अविनाशी ब्रह्मा, विष्णु और देवताओं को उत्पन्न करनेवाले हैं, ब्रह्माजी से लेकर पिशाच तक जिसके दास हैं ।।१५।। जो प्रकृति और पुरुष से परे हैं, जिसके योगी और तत्त्वदर्शी ऋषि विचार करते हैं ।।१६।। जो अक्षर परब्रह्म सत्–असत् स्वरूप हैं, अनादि, मध्य, निधन तर्कना रहित सनातन हैं ।।१७।। और जो महेश्वरजी उत्पत्ति, पालन, नाश करते हैं, उन शंकरात्मा के सिवाय यज्ञ में दूसरी वस्तु नहीं देखता हूं ।।१८।। दक्ष बोले– हे भगवन्! यह सुवर्णपात्र में विधिपूर्वक मन्त्र पढ़ी हुई हवि रखी है, यह यज्ञेश महापराक्रमी विष्णुजी का भाग है, सो विभागकर आहुति दीजिये ।।१९।। दधीचि बोले– जिस कारण कि, आपने सब देवताओं के पूजनीय शंकरजी की आराधना नहीं की है, इस कारण से यह आपका यज्ञ न होगा ।।२०।। यह कहकर दधीचि ऋषि महाक्रोध करके उस यज्ञशाला से निकलकर अपने आश्रम को चले गये ।।२१।। मुनि के जाने पर भी देवताओं ने दक्ष का त्याग न किया कारण कि, उन्होंने अवश्य होनहार अनर्थ को जान लिया था ।।२२।। इसी अवसर में यह सब वार्ता ईश्वर से श्रवण कर दक्ष का यज्ञ विध्वंस करने के निमित्त पार्वती ने शिवजी से प्रार्थना की, हे ब्राह्मणो! ।।२३।। जिस समय दक्ष का यज्ञ नष्ट करने को देवी ने कहा, तब शिवजी ने वीरभद्र गणेश्वर को निर्माण किया ।।२४।। उनके सहस्र मुख, सहस्र नेत्रकमल, सहस्र मुद्गर धारण किये, सहस्र बाण हाथ में लिये ।।२५।। शूल, टंक, गदा तथा दीप्तिमान् धनुष धारण किये; चक्र, वज्र धारे, आधा चन्द्रमा सिर पर धारे ।।२६।। वज्र से प्रकाशमान हाथ, बिजली की प्रभा से प्रकाशित सिर, कराल दाढ़ें धारण किये, महामुख और बड़ा पेट ।।२७।। बिजली के समान जीभ, लम्बे ओष्ठ, मेघ और सागर के समान शब्द, व्याघ्रचर्म ओढ़े जिसमें से रुधिर निकलता था ।।२८।। दोनों कपालों के निकट मण्डलाकार कुण्डल धारण किये, श्रेष्ठ देवताओं के समान शोभायमान सिर ।।२९।। शब्दायमान नूपुर और बाजूबन्द धारे

रत्नों के संचय से दीप्तिमान् बड़े हार से व्याप्त हृदय, महाशरभ शार्दूल और सिंह के समान पराक्रमी ।।३०।। बड़े श्रेष्ठ मतवाले हाथी के समान जिनका आलस भरा गमन है ।।३१।। शंख, चामर, कुन्द के फूल, चन्द्रमा और मृणाल के समान कान्तिवाले मानो साक्षात् हिमालय पर्वत ही चलनेवाला हो गया है ।।३२।। मोती के भूषणों की दीप्ति की ज्वालाओं का समूह फैल रहा है और तेज से युगान्त की अग्नि के समान व्याप्त हैं ।।३३।। सो वह वीरभद्र जानुओं से पृथ्वी पर बैठकर हाथ जोड़कर शिवजी को प्रणाम करने लगे और यह गणेश्वर देव के समीप में स्थित हुए ।।३४।। उसी अवसर में देवी ने क्रोध से अपने कर्म की साक्षी के निमित्त भद्रकाली महेश्वरी को उसके साथ जाने के लिये उत्पन्न किया ।।३५।। इस प्रकार कालाग्नि के समान भद्र को देखकर भद्र के सहित शिवजी ने कहा कि, 'तुम्हारा मंगल हो' ।।३६।। तब उसने देवी के सहित महेश्वरजी से कहा, हे महादेव! कहिये, मैं आपका कौनसा प्रिय कार्य करूं ।।३७।। तव त्रिपुर के मारनेवाले शिवजी ने पार्वती के प्रिय की इच्छा से महागम्भीर वाणी से महाबाहु वीरभद्र से कहा ।।३८।। देव देव बोले– तुम प्राचेतस दक्ष का यज्ञ बहुत शीघ्र नाश कर दो, हे गणेश्वर! भद्रकाली के साथ जाकर तुम यह कृत्य करो ।।३९।। मैं भी देवी के साथ रैभ्य आश्रम के समीप से, हे गणेश! तुम्हारा दुःसह पराक्रम देखता रहूंगा ।।४०।। जो कनखल के वृक्ष गंगाद्वार तक स्थित हैं, वे सुवर्णशृंग पर्वत और मेरुमन्दर के समान हैं ।।४१।। उसी स्थान में दक्ष का यज्ञ होता है, उस यज्ञ का नाश तुम बहुत शीघ्र करो ।।४२।। जब इस प्रकार शंकरजी ने कहा, तब हिमालयपुत्री पार्वती ने भद्र और भद्रा को अपने औरस पुत्र के समान देखकर कि, जैसे गो बछड़े को देखती है ।।४३।। आलिंगन करके कार्तिकेय के समान उसका सिर सूंघा और हँसकर मधुर स्वर से कहने लगी ।।४४।। देवी बोली– हे पुत्र! भद्र महाभाग, पराक्रमी, तू प्रिय के निमित्त उत्पन्न हुआ है, इस कारण क्रोध मत शान्त कर ।।४५।। जो कि, इनसे यज्ञेश्वर को बिना बुलाये यज्ञकर्म प्रारम्भ किया है और उससे बैर किया है, इस कारण, हे गणेश्वर! उसका यज्ञ नष्ट कर दो ।।४६।। हे भद्रे! मेरी आज्ञा से यज्ञलक्ष्मी को अलक्ष्मी स्वरूप करके भद्र के साथ जाकर उस यजमान को भी नष्ट कर दो ।।४७।। चित्रकर्मा शिव–पार्वती की उस सम्पूर्ण आज्ञा को मस्तक पर धारणकर, नमस्कार करके भद्र ने जाने की तैयारी की ।।४८।। तब श्मशानवासी भगवान् वीरभद्र ने क्रोध करके देवी के क्रोध को दूर करने की इच्छा की ।।४९।। तब वीरभद्र ने अपने रोम से सहस्रों गणों को उत्पन्न किया और दक्षिण की भुजा से सौ करोड़ गणेश्वरों को उत्पन्न किया ।।५०।। चरण, ऊरु, जंघा, पीठ, पार्श्व मुखवाले गुह्य, गुल्फ, सिर, मध्य कण्ठ, मुख, पेट से ।।५१।। वे गणेश्वर भद्र ने उत्पन्न किये, जिनका पराक्रम भद्र के समान था, उससे उस स्थान का सम्पूर्ण आकाश आच्छादित हो गया ।।५२।। उन सबके सहस्र–सहस्र हाथ, उनमें सहस्र–सहस्र आयुध

लिये, वे सब रुद्र के अनुचर रुद्र ही के समान बली थे।।५३।। शूल, शक्ति और गदा हाथ में लिये टंक, उपल, शिला धारे वे कालाग्नि के समान तीन नेत्र और जटाधारी थे।।५४।। वीरभद्र से उत्पन्न गण मेघ के समान शब्द करने लगे और सिंहों पर चढ़कर आकाश में विचरने लगे।।५५।। कल्याण युक्त भगवान् उन गणों के साथ शोभित हुए, जैसे प्रलय में सैकड़ों कालानल से भैरव शोभित हैं।।५६।। शिवजी उनके बीच में वृष के ऊपर चढ़कर चले और ऐसे शोभित हुए मानो श्वेतमेघ पर जाते हैं।।५७।। इस प्रकार कान्तिमान् वीरभद्र के वृषभ पर चढ़ने से भसितप्रभ ने मोतियों का छत्र उनके ऊपर धारण किया और श्वेतचामर भी ग्रहण किया।।५८।। इस प्रकार वीरभद्र के निकट भसितप्रभ महाशोभित हुआ, जिस प्रकार जगत्गुरु के पार्श्व में पर्वतराज शोभित होता है।।५९।। श्वेतचामर धारण करनेवाले से वीरभद्र इस प्रकार शोभित हुए, जैसे सुन्दर वर्णवाले चन्द्रमा से शिवजी शोभित होते हैं, तब महातेजस्वी भानुकम्प गणेश्वर ने वीरभद्र के आगे शंख बजाया, वह शंख सुवर्ण और रत्नों से अलंकृत था।।६०–६१।। तब आकाश से देवताओं के नगाडे बजने लगे और मेघों से उन सबके सिरों पर फूलों की वर्षा होने लगी।।६२।। मधुवाले फूल फूलने लगे और उनकी सुगन्धि निकलने लगी, शीतल मन्द सुगन्ध पवन मार्ग में बहने लगी।।६३।। तब वे सब गणेश्वर युद्ध के निमित्त मत्त हो गये, तब वे प्रसन्न होकर नाचने, शब्द करने, हँसने और गाने लगे।।६४।। तब वीरभद्र गणेश्वरों के बीच में स्थित होकर भद्रकाली सहित प्रसन्न हुए, जैसे रुद्रगणों के बीच में त्र्यम्बक पार्वती सहित शोभित होते हैं।।६५।। उसी समय दक्ष की सुवर्णमय यज्ञवेदी में अनुचरों सहित वीरभद्र प्रविष्ट हुए।।६६।। तब उस प्रधान गण ने दक्ष के किये हुए यज्ञ की प्रयोगभूमि में प्रवेश किया, जिस प्रकार से रुद्र अन्त में संसार का भस्म करने को प्रवेश करते हैं।।६७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे

दक्षयज्ञकथनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ।। १९ ।।

*****

बीसवां अध्याय

वायु बोले– तब विष्णुजी आदि महातेजस्वी देवताओं का चित्र–विचित्र ध्वजाओं से शोभित महायज्ञ देखा।।१।। सीधे कुशों से आच्छादित प्रज्ज्वलित अग्नि से युक्त सुवर्ण के पात्रों से सब ओर से शोभित।।२।। यज्ञ में कर्म करनेवाले ऋषियों से व्याप्त, वेद के कहे हुए विधान से युक्त।।३।। सहस्रों देवांगनाओं से युक्त, अप्सराओं से शोभित, वेणु, वीणा के शब्दों से वृद्धि को प्राप्त।।४।। दक्ष का यज्ञ देखकर प्रतापवान् वीरभद्र

गम्भीर शब्द से सिंहनाद करने लगा, जैसे मेघ शब्द करता है।।५।। तब आकाश को पूर्ण करता हुआ किलकिला शब्द गणेश्वरों के द्वारा उच्चारण होकर सागर का तिरस्कार करने लगा।।६।। उस शब्द से सब देवता व्याकुल होकर भागने लगे, उस समय उनके भूषण, वस्त्र स्खलित हो गये।।७।। क्या महामेरु भिन्न हो गया, या पृथ्वी विदीर्ण होती है, यह क्या है?।।८।। जैसे सिंहों के शब्द को हाथी गहन वन में सुनकर व्याकुल होते हैं, इस प्रकार शब्द सुनकर भय के मारे अनेक प्राणी अपना जीवन त्यागने लगे।।९।। पर्वत फटने लगे, पृथ्वी कांपने लगी, पवन चलायमान हुए थे, सागर क्षुभित हो गया।।१०।। अग्नियों की दीप्ति जाती रही, सूर्य प्रभाहीन हो गये, ग्रह, नक्षत्र, तारों का प्रकाश जाता रहा।।११।। इसी समय उस उज्ज्वल यज्ञस्थान में वीरभद्र प्राप्त होकर दूसरे गण और काली को साथ लिये आये।।१२।। उनको देखकर दक्ष डरकर भी यथायोग्य स्थित रहा और क्रोध करके बोला, तुम कौन हो और क्या करने की इच्छा है?।।१३।। तब दुरात्मा दक्ष के वचन सुनकर महातेजस्वी वीरभद्र मेघ के समान गम्भीर वाणी से।।१४।। हँसते हुए उस दक्ष और देवता, ऋत्विजों को देखकर अर्थ युक्त सम्भ्रान्ति हीन उचित वचन बोले।।१५।। वीरभद्र बोले– हम सब अमित पराक्रमी शिवजी के अनुचर हैं, अपने भाग की इच्छा से आये हैं, सो आप हमारा भाग दीजिये।।१६।। और जो हमारा भाग इसमें कल्पित नहीं किया है, तो कारण क्या है? यदि भाग न दो तो हमारे साथ युद्ध करो।।१७।। जब वीरभद्र ने ऐसा कहा, तो वे दक्ष को आदि लेकर सब देवता कहने लगे कि यज्ञकर्म के साधन रूप वेदमन्त्र हमको प्रमाण हैं, हम स्वयं यज्ञ में भाग विधान नहीं कर सकते।।१८।। उस समय मन्त्र कहने लगे, हे देवताओ! आप अन्धकार युक्त चित्तवाले हो, जिससे प्रथम भाग के उचित महेश्वरजी का भाग प्रदान नहीं किया।।१९।। जब उन मन्त्रों ने ऐसा कहा, तब अज्ञान को प्राप्त हुए वे देवता वीरभद्र के प्रहार की इच्छा करके भाग न देते हुए।।२०।। जब अत्यन्त श्रेष्ठ सत्यता युक्त मन्त्रों का वाक्य भी वृथा हुआ, तब वे मन्त्र सनातन ब्रह्मलोक को चले गये।।२१।। तब वीरभद्र ने विष्णुजी आदि सब देवताओं से कहा, आपने बल से गर्वित होकर मन्त्रों का प्रमाण न किया।।२२।। जिस कारण से कि, इस यज्ञ में आपने हमारा तिरस्कार किया है, इस कारण जीवन के सहित मैं आपका गर्व नष्ट करूंगा।।२३।। यह कहकर भगवान् क्रोध करके नेत्र की अग्नि से जलाने लगे, वह यज्ञवाट और अन्न के ढेर त्रिपुर के समान भस्म होने लगे।।२४।। तब वे सब गणेश्वर पर्वत के समान शरीरवाले उन स्तम्भों को उखाड़कर हवन करनेवालों के कण्ठ में रस्सी बांधने लगे।।२५।। जितने चित्र–विचित्र यज्ञपात्र थे उन सबको तोड़–फोड़ कर जल में डाल दिया और यज्ञ का अंग (वा अश्व) ग्रहण करके गंगा के स्रोत में डाल दिया।।२६।। और जो दिव्य अन्न और पान के ढेर पड़े थे, दूध की नदी अमृतरस भरी और दधि की कुल्या।।२७।। अनेक प्रकार के मांस

मनोहर सुगन्धिवाले भोज्यपदार्थ, रसयुक्त पीने के पदार्थ, लेह्य और चोष्य पदार्थ ।।२८।। इन सबको वीरभद्र के अनुचर खाने और फेंकने लगे, वज्र, चक्र, महाशूल, शक्ति, प्राश, पट्टिश ।।२९।। मूसल, असि (तलवार), टंक, भिन्दिपाल, परशे उठाये हुए लोकपालादि सहित सब देवताओं को ।।३०।। वे वीरभद्र के अंग से उत्पन्न हुए बली वीर चूर्ण करने लगे। छेदन करो, भेदन करो, नष्ट करो, शीघ्र विदीर्ण करो ।।३१।। हरण करो, प्रहार करो, पाट दो, नष्ट करो, इस प्रकार शूरों के कानों को भयदायक शब्द होने लगे ।।३२।। जहां-तहां समर में गणों के शब्द होने लगे, किसी के फैले हुए नेत्र, दांत, ओठ, तालू टूटे हुए ।।३३।। आश्रमों दे खींचकर तपस्वियों को मारने लगे; स्रुवों को लेकर अग्नि और जल में डाल दिया ।।३४।। कलशों को भेदन-छेदन करके मणिवेदी को नष्ट कर दी। गाते शब्द करते और बारंबार हँसते हैं, रुधिर रूपी सुरा को पान करते हुए वे श्रेष्ठ गण नृत्य करने लगे ।।३५।। इस प्रकार इन्द्र के सहित सब देवताओं को वह वृषेन्द्र हाथी और सिंह के समान पराक्रमवाले पीडित करके अनेक ऐसी चेष्टा करने लगे कि, जिससे रोयें खड़े हो जाते थे ।।३६।। कोई शब्द करते, कोई प्रहार करते, कोई दौड़ते, कोई प्रलाप करते, कोई नाचते, कोई हँसते, कोई गण अपशब्द करते ।।३७।। कोई मद से जलवाले मेघों को सूंघते, कोई सूर्य को पकड़ने को आकाश में कूदते, कोई पवन के साथ चलने की इच्छा करते थे, कोई बड़े भयंकर गण आकाश में स्थित हुए ।।३८।। कोई श्रेष्ठ आयुध धारण करके ऐसे चलते थे, जैसे गरुड सर्पों को लिये जाते हैं, कोई देवताओं को विद्रावित करते घूमने लगे, कोई आकाश मण्डल में पर्वत के समान स्थित हुए ।।३९।। कोई घर उखाड-उखाडकर उनके झरोखे और वेदी नष्ट करने लगे, यह सब वस्तु जलों में डालकर वे प्रलयकाल के मेघ के समान गण शब्द करने लगे ।।४०।। द्वारों के किवाड़, चौकट उखाड़कर दिवाल और शाला विध्वंस करने लगे तथा वलभी (जिससे ढका जाता है) गोपानसी छज्जा और झरोखें सब नष्ट कर दिये, अहो! यज्ञवाट नष्ट किया गया, यह अनाप्तवाक्य के समान सब अर्थशून्य हुआ ।।४१।। हे नाथ! हे तात! हे पिता! हे पुत्र! हे भ्राता! हे माता! हे मातुल! सब ऐसा शब्द करने लगे, जब इस प्रकार से घर तोड़े गये, तो अनेक स्त्रियां अनेक प्रकार से अनाथवत् शब्द करने लगीं ।।४२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे

दक्षयज्ञमथनं नाम विशोऽध्यायः ।। २० ।।

*****

इक्कीसवां अध्याय

वायु बोले– तब विष्णुजी, इन्द्र आदि के सहित वे समस्त देवता सब भय से व्याकुल होकर पलायन करने लगे ।।१।। अनेक अदूषित अंगों से देवताओं को पलायन करता देखकर दण्ड देने योग्यों को दण्डित न देखकर वीरभद्र ने क्रोध किया ।।२।। तब सब शक्ति दूर करनेवाले त्रिशूल को धारण करके ऊपर को दृष्टि किये महाभुजावाले, मुख से आग निकलते हुए ।।३।। देवताओं पर ऐसे दौड़े जिस प्रकार सिंह हाथियों पर दौड़ता है, जिस समय उनके ऊपर चले तो उनका मनोहर गमन ।।४।। मतवाले हाथी के समान देखने योग्य हो गया, तब उस बली ने देवताओं का बल क्षुभित कर दिया ।।५।। जिस प्रकार महाबली मत्त हाथी महासरोवर को मथन करके नील पाण्डुर और लोहित वर्ण कर देता है ।।६।। इस प्रकार व्याघ्रचर्म ओढ़े सुवर्ण के तार लगे हुए छेदन, भेदन, मारन, दारन और नष्ट, भ्रष्ट तथा मथन करते हुए ।।७।। वीरभद्र कांस में लगी हुई अग्नि के समान देवताओं में विचारने लगे, उस–उस स्थान में महावेग से शूल धारण करके विचरते हुए ।।८।। उस एक वीरभद्र को सब देवता सहस्र के समान मानने लगे, इधर भद्रकाली क्रोध करके युद्ध में मत्त हो गई ।।९।। अग्नि निकालते हुए शूल से देवताओं को युद्ध में मारने लगी; उसके साथ शिवजी के क्रोध से उत्पन्न हुए वीरभद्र क्रोधित हुए ।।१०।। धूम से धूम्र हुए युगान्त अग्नि की प्रभा के समान भद्रकाली युद्ध में देवताओं को विद्रावित करती शोभित हुई ।।११।। जिस प्रकार कल्पाग्नि से जगत् नष्ट हो जाता है, जिस प्रकार वह रुद्र के गणों में अग्रणी ने घोड़े सहित सूर्य पर ।।१२।। बायें चरण से खेल से ही सिर में प्रहार किया; तलवार से पावक और पट्टिश से यम को ।।१३।। दृढ़ शूल से रुद्रों को, मुद्गर से वरुण को, परिघ से निर्ऋति को, टंक से वायु को, उस टंकधर ने प्रहार किया ।।१४।। इस प्रकार उस गणेश्वर ने लीला से ही सबको विदीर्ण किया; जो शिवजी से विरोध करनेवाले थे उन सबको नष्ट किया ।।१५।। तब सरस्वती के शोभायमान नासिका के अग्रभाग को और देवताओं की माता अदिति के हाथ के अग्रभाग का छेद कर दिया ।।१६।। इस प्रकार अग्नि की भुजा कुठार से काट डाली और अग्नि की दो अंगुल जिह्वा को छेद कर हवि में डाल दिया ।।१७।। और वीरभद्र ने इसी प्रकार स्वाहादेवी के दक्षिण नासापुट को काट लिया और बायें स्तन का चूचुक काट लिया ।।१८।। और देवताओं के भग कमलपत्र के समान नेत्र बड़े वेग से वीरभद्र ने उखाड़ डाले ।।१९।। और पूषादेवता की मुक्तावली के समान दांतों की पंक्ति धनुष की कोटि से तोड़ डाली, इस कारण वह स्पष्ट वचन बोलने में असमर्थ हो गये ।।२०।। फिर चन्द्रमा देवता को

चरण के अंगूठे से ही लीला से कीट के समान पृथ्वी में घुमाने लगे ।।२१।। और फिर दक्ष का सिर वीरभद्र ने छेद डाला, वैरिणी दक्षपत्नी के हाहाकार करने पर भी उस सिर को भद्रकाली को दिया ।।२२।। उसने तालफल के समान वह सिर लेकर बड़ा आनन्द माना, उस सिर से देवी उस समर में गेंद का खेल करने लगी ।।२३।। तब कुशीला स्त्री के समान दक्ष की स्त्री हाथ और पैरों से गणेश्वरों से ताडित होने लगी ।।२४।। अरिष्टनेमि, सोम, धर्म और प्रजापति को बहुत पुत्रवाले अंगिरस, भृशाश्व, कश्यप इन ऋषियों का ।।२५।। सिंह के समान महावली गण गला पकड़कर वाणी से भर्त्सना करते और सिर में घूंसे से मारने लगे ।।२६।। भूत, वेतालों से धर्षित हुए स्त्री, पुत्र और कुटुम्ब ऐसे व्याकुल हुए जैसे कलियुग में जार बल से कुलस्त्रियों को नष्ट करते हैं ।।२७।। वह कलाओं के टूटने और स्तम्भों के भग्न होने से आनन्द हीन स्थान हो गया, महाशाला जलने लगी, द्वार की तोरण तोड़ डाली गई ।।२८।। देवताओं की सेना छिन्न-भिन्न और तपस्वी ताडित हुए, वेद के शब्द से शान्त मनुष्यों से हीन ।।२९।। आतुर स्त्रियों के क्रन्दन से सम्पूर्ण यज्ञसम्भार हीन वह नष्ट-भ्रष्ट हुआ, यज्ञस्थान शून्य वन के समान हो गया ।।३०।। शूल के वेग से नष्ट होकर किसी की बाहु, किसी की छाती नष्ट हो गई, कोई-कोई सिर टूटने से पृथ्वी पर गिर पड़े।।३१।। इस प्रकार सहस्रों देवताओं के पतित होने में गणेश क्षणमात्र में यज्ञस्थान में आये, जहां अग्नि प्रज्ज्वलित हो गई थी ।।३२।। उन कालाग्नि के समान रुद्र को प्रवेश करता हुआ देखकर यज्ञ मरण के भय से मृग रूप धारण करके पलायन कर गया ।।३३।। तब वह दृढ़ धनुष को धारण करके बाण छोड़ते हुए वीरभद्र उसके पीछे हुए ।।३४।। जिस समय मेघ के समान धनुष कर्ण पर्यन्त खींचा उस शब्द से दिशा और भूमि शब्दायमान हो गई ।।३५।। उस शब्द को सुनकर मैं मरा, यह कहकर यज्ञ विह्वल हो गया, जब वीरभद्र ने अर्द्धचन्द्र बाण से मृग रूप से धावमान होते हुए ।।३६।। महाभय से चरण स्खलित होते कम्पायमान होते कान्ति हीन यज्ञपुरुष का सिर छेद दिया ।।३७।। इस प्रकार तब यज्ञपुरुष की यह प्रथम अवज्ञा देखकर विष्णुजी महाक्रोध करके युद्ध करने को उद्यत हुए ।।३८।। तब उनको सब पक्षियों का राजा सर्पभोजी गरुड़जी बड़े वेग से सिर झुकाकर वहन करने लगे ।।३९।। और इन्द्र आदि देवता जो मरने से शेष रहे थे, वे सब विष्णुजी की प्राणपन से सहायता करने लगे ।।४०।। वीरभद्र ने विष्णुजी के साथ उन देवताओं को देखकर गीदड के समान लघु जानकर निर्भय होकर स्वयं सिंह के समान उनका हास्य किया ।।४१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे

देवदण्डवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ।। २१ ।।

*****

बाइसवां अध्याय

उसी समय आकाश में एक रथ प्रकट हुआ, सहस्र सूर्य के समान उसका प्रकाश सुन्दर वीर वृष की ध्वजा से युक्त ।।१।। दो श्रेष्ठ घोड़े उसमें जुते हुए तीक्ष्ण चार पहिये, अनेक अस्त्रों से भरा और रत्नों से युक्त ।।२।। इस रथ के ऊपर वही ब्रह्माजी सारथि हुए थे ।।३।। ब्रह्माजी शिवजी की आज्ञा से उस रथ को लेकर विष्णुजी के निकट लाकर हाथ जोड़कर वीरभद्र से बोले ।।४।। हे भगवन् वीरभद्र! कल्याण युक्त इन्दुभूषण अविनाशी भगवान् शिवजी ने आपको रथ पर चढने की आज्ञा की है ।।५।। और रैभ्य के आश्रम के समीप पार्वती के सहित शिवजी, हे महाबाहो! आप का दुःसह पराक्रम देखते हैं ।।६।। रणकुंजर वह वीर ब्रह्माजी के यह वचन सुनकर पितामह से अनुगृहीत होकर उस दिव्य रथ पर चढ़े ।।७।। जब उस श्रेष्ठ रथ पर ब्रह्माजी सारथि स्थित हुए, तब वीरभद्र की शोभा त्रिपुरारी के समान बढ़ने लगी ।।८।। तब चन्द्रमा और कुन्द के समान उज्ज्वल अपना दीप्तिमान् शंख महाबली भानुकम्प ने मुख पर रखकर बजाया ।।९।। उस शंख का सागर के समान महाशब्द सुनते ही देवताओं की जठरानल भय से जल उठी ।।१०।। यक्ष, विद्याधर, सर्प, सिद्ध, वह युद्ध देखने के लिये क्षणमात्र में स्थित हुए, जिससे आकाश भर गया ।।११।। तब नारायण ने शार्ङ्गधनुष चढ़ाकर बाणों की धार से उस वीरभद्र को व्याकुल करना प्रारम्भ किया ।।१२।। सैकडों बाण छोड़ते हुए विष्णुजी को आते हुए देखकर वीरभद्र ने सहस्र बाण छोड़नेवाला जैत्र धनुष धारण किया ।।१३।। और उस दिव्य समर में भयंकर रूप धारण करके शनैः-शनैः धनुष को विस्फारण करने लगा, मानो ईश्वर धनुष के समान मेरु धारण करते हैं ।।१४।। उसके धनुष चढ़ाने का महाशब्द हुआ, जिस शब्द से पृथ्वी कांप गई ।।१५।। तब दीप्तिमान् सर्प के समान भयंकर बाण बड़े पराक्रमी श्रीमान् गणराज ने ग्रहण किया ।।१६।। बाण निकालने में उनकी भुजा और तरकस की ओर वीरभद्र का मुख था, तब यह विदित होता था मानो बिल में से महासर्प निकलने की इच्छा करते हैं ।।१७।। वह उस समय उनके हाथ में निकला हुआ बाण महाशोभित हुआ, जैसे बालसर्प महासर्प से पकड़ा हो ।।१८।। रुद्र के समान पराक्रमी वीरभद्र ने महातीक्ष्ण बाण से क्रोध करके विष्णुजी के ललाट में आघात किया ।।१९।। इस प्रकार ललाट में ताडित होकर पूर्व से अवमानित हुए विष्णुजी वीरभद्र पर क्रोधित हुए, जैसे सिंह पर वृषभ क्रोधित हो ।।२०।। तब विष्णुजी ने वज्र के समान कठिन बाण से इन गणराज की भुजंगराज के समान महाभुजाओं में आघात किया ।।२१।। तब वीरभद्र ने भी सूर्य के समान प्रकाशमान अपनी भुजा से

शीघ्रगामी बाण छोड़ा ।।२२।। इस प्रकार विष्णुजी वीरभद्र को और वीरभद्र विष्णुजी को बाणों से परस्पर ताडित करने लगे ।।२३।। इस प्रकार परस्पर महावेग से बाण छोड़ते हुए उनका महाभयंकर रोमहर्षण युद्ध होने लगा ।।२४।। उन दोनों जय की इच्छा करनेवालों का भयंकर युद्ध देखकर आकाशगामी जीवों का महा हाहाकार होने लगा ।।२५।। तब अग्नि और सूर्य के समान तेजवाले बाण से वीरभद्र ने विष्णुजी की छाती में आघात किया ।।२६।। तब विष्णुजी उस बाण के महातीक्ष्ण आघात से दृढ़जीवित होकर भी मोहित होकर पृथ्वी पर गिरे ।।२७।। फिर एक क्षणमात्र में संज्ञा को प्राप्त होकर विष्णुजी उठे और वीरभद्र के ऊपर सब दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करने लगे ।।२८।। वीरभद्र ने विष्णुजी के धनुष से छूटे उन सब अस्त्रों को अपने तीक्ष्ण बाणों से एक साथ निवारण कर दिया ।।२९।। तब विष्णुजी ने अपने नाम से अंकित जो कहीं भी हत न हुआ, ऐसा बाण क्रोध से लाल नेत्र करके वीरभद्र के ऊपर छोड़ा, वीरभद्र ने उस बाण को अपने भद्र नामक बाण से ।।३०।। विदीर्ण करके उसके सौ खण्ड कर दिये और अपने निकट आने न देकर मार्ग में नष्ट कर दिया, फिर एक बाण से शार्ङ्गधनुष, दो बाणों से गरुड को ।।३१।। एक निमेषान्तर में छेदित कर दिया, यह बात अद्भुत हुई, तब भगवान् विष्णुजी ने योगबल से अपने शरीर से बड़े दारुण ।।३२।। शंख, चक्र, गदा धारण किये सहस्रों देवताओं को उत्पन्न किया, जिस प्रकार शिवजी ने त्रिपुर का दाह किया था, इस प्रकार क्षण में वीरभद्र ने ।।३३।। नेत्राग्नि से उनको भस्म कर दिया; तब क्रोध करके भगवान् विष्णुजी ने चक्र धारण किया ।।३४।। और उस वीरभद्र के ऊपर छोड़ने की इच्छा की, उस चक्र को अपने सामने स्थित देखकर ।।३५।। वीरभद्र हँसते हुए यत्न बिना स्थित रहे, वह महाघोर चक्र जिसके समान कोई नहीं था; उसे धारण करते ही विष्णुजी का अंग स्तम्भित हो गया ।।३६।। और इच्छा करके भी उस चक्र को छोड़ने को समर्थ न हुए, शब्द करते हुए, एक भुजा से उस चक्र को उठाये ।।३७।। विष्णुजी आलस युक्त होकर पाषाण के समान निश्चल हुए, जैसे शरीर रहित जीव, श्रृंग रहित बैल ।।३८।। ढाढ रहित जैसे सिंह, इसी प्रकार विष्णुजी स्थित हुए, इन्द्रादि देवता विष्णुजी को ऐसी दशा में देखकर वीरभद्र से ऐसे बद्ध हो गये, जैसे वृषभ सिंह से बद्ध हो जाते हैं ।।३९।। परन्तु क्रोध करके फिर आयुध लेकर वीरभद्र के सम्मुख हुए, इन्हें सिंह के समान वीरभद्र ने क्षुद्र मृगों के समान देखकर ।।४०।। साक्षात् शिवजी के शरीर रूप वीर ने अपने गणों से व्याप्त होकर घोर अट्टाहास से उनको स्तम्भित कर दिया ।।४१।। उस समय वज्र सहित इन्द्र का हाथ वज्र छोड़ने की इच्छा करते ही चित्र के समान हो गया ।।४२।। और सबकी भी भुजाएं आयुध उठाये हुए आलसी पुरुषों के समान स्तम्भित हो गई ।।४३।। इस प्रकार भगवान् वीरभद्र ने उनके ऐश्वर्य नष्ट कर दिये; तब युद्ध में देवता उनके समाने खड़े न हो सके ।।४४।। और स्तब्ध अंग हो जाने से भय से

व्याकुल होकर पलायन करने लगे ।।४५।। महाभुजाओंवाले वीरभद्र ने उनको पलायन करते हुए देखकर उनको तीक्ष्ण बाणों से विद्ध किया, जैसे मेघ वर्षा से पर्वतों को ताडित करता है ।।४६।। उस वीर की परिघ के समान अनेक भुजाएं दीप्त अस्त्रों से प्रकाश करने लगीं; जैसे अग्नि की ज्वाला सहित सर्प हों ।।४७।। वह वीर अनेक अस्त्र, शस्त्र, वर्षा करते शोभित हुए; जिस प्रकार प्रथम सब प्राणियों को उत्पन्न करते ब्रह्माजी शोभित होते हैं ।।४८।। जैसे किरणों से सूर्य पृथ्वी को आच्छादित करता है, उसी प्रकार क्षणमात्र में उस वीर ने दिशाओं को आच्छादित कर दिया ।।४९।। आकाश में उन वीरभद्र के सुवर्णभूषित बाण ऊपर को जाते हुए बिजली के समान शोभित हुए ।।५०।। वे बड़े बाण उनको लगकर इस प्रकार रुधिर पान करके प्राणों से हीन करने लगे, जैसे मेढकों को सर्प भक्षण करते हैं ।।५१।। किसी का मुख, किसी की भुजा, किसी के पार्श्वभाग कटकर पृथ्वी पर गिरने लगे ।।५२।। बाणों से मथित शरीर बाहु और शरीर की संधि भिन्न होने से आँखें फैलाये हुए कोई पृथ्वी पर गिर पड़े, पृथ्वी में प्रवेश करने की इच्छावाले, आकाश में जाने की इच्छावाले ।।५३।। कही अपनी रक्षा न पाने से परस्पर अन्तर्धान हो गये, कोई पृथ्वी में प्रवेश कर गये, कोई पर्वत की गुहा में ।।५४।। कोई आकाश में और कोई जल में प्रवेश कर गये, इस प्रकार देवताओं के अंगों को छेदकर वीरभद्र शोभित हुआ ।।५५।। जिस प्रकार भगवान् भैरव प्रजा संहार करके शोभित होते हैं, अथवा जैसे त्रिपुर को भस्म करके भगवान् शंकरजी शोभित हुए थे ।।५६।। इस प्रकार से देवताओं की सब सेना दीन और भयंकर दर्शनवाली हो गई और गणेश्वर के किये हुए दीन शरीर को धारण किया ।।५७।। तब उन देवताओं के शरीर से प्राणियों को भय देनेवाली घोर रुधिर नदी प्रवाहित हुई ।।५८।। तब यज्ञभूमि रुधिर से व्याप्त हो गई, जैसे शुम्भ को मारकर लाल वस्त्र धारे काली शोभित होती है ।।५९।। उस बड़े भयंकर संग्राम के होने से भय से व्याकुल होकर पृथ्वी चलायमान हो गई ।।६०।। महालहरों में गम्भीर आवर्त से समुद्र भी चलायमान हुआ; उस समय उल्कापात और वृक्षों की शाखाएँ टूटने लगीं ।।६१।। सब दिशाओं सें धूलिमयी और कर्कश पवन चलने लगी, अहो! यह अश्वमेध विधि हीन हुआ ।।६२।। जिसमें स्वयं ब्रह्माजी के पुत्र दक्ष प्रजापति यजमान और धर्मादिक सभासद और भगवान् गरुडध्वज रक्षा करनेवाले साक्षात् इन्द्रादिक देवता भाग के ग्रहण करनेवाले हैं ।।६३।। तथापि यजमान का यज्ञ ऋत्विजों सहित विध्वंस होकर उसका शीघ्र सिर छेद किया गया और अनिष्ट फल मिला ।।६४।। इस कारण अवैदिक और ईश्वर से बहिष्कृत कार्य न करना चाहिये, तथा असतों से युक्त कार्य कभी भी न करना चाहिये ।।६५।। महापुण्य करके अनेक यज्ञों को करके भी महेश्वरजी में भक्ति न होने के कारण उसका फल नहीं मिलता है ।।६६।। जो पाप करने के उपरान्त भी भक्ति से शिवजी का यजन करता है, वह सब पापों से छूट जाता है,

इसमें सन्देह नहीं ।।६७।। बहुत कहने से क्या है ? वह दान और तप वृथा है और होम वृथा है, जिसमें शिवजी की निन्दा होती है ।।६८।। तब नारायण, रुद्र, लोकपाल आदि देवता उस समर में वीरभद्र के महाबाणों से व्यथित होकर पलायन कर गये ।।६९।। कोई चलायमान हुआ; किसी के बाल नुच गये, कोई बैठ गये, किसी के अवयव शिथिल हो गये, कोई भिन्न मुख होकर गिर गये, कोई देववीर नष्ट हो गये ।।७०।। कोई देवता ऐसे व्याकुल हुए कि उनके वस्त्र, आभूषण, अस्त्र, शस्त्र सब गिर गये और दीन होकर गिर पड़े तथा मद, दर्प और बल सब नष्ट हो गया ।।७१।। इस प्रकार कुपथगामी अप्रधृष्य उस दक्ष के यज्ञ को नष्ट करके अक्षत शरीर वीरभद्र गणों के बीच में ऐसे शोभित हुए, जैसे ऋषभों के बीच में सिंह शोभित होता है ।।७२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे

दक्षशिवगणयुद्धवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ।। २२ ।।

*****

तेइसवां अध्याय

वायु बोले- इस प्रकार छिन्न-भिन्न अंग होकर विष्णुजी आदि देवता क्षणमात्र में महाकष्ट को प्राप्त होकर शेष बचे हुए शोक करने लगे ।।१।। इस प्रकार से जब वे वीर व्याकुल हुए तब उन वीरों को देखकर वीरभद्र से प्रेरित हुए प्रमथों ने बड़ा क्रोध किया ।।२।। गण निज-निज अपराधों के अनुसार देवताओं को पकड़कर दृढ़ लोहे की जंजीरों से बांधने लगे; जब हाथ, पैर, कन्धे, उदर बांधे गये ।।३।। तब उस समय ब्रह्माजी ने पार्वती के प्रियकारी वीरभद्र से सारथी होकर प्रिय होने से प्रार्थना पूर्वक यह वचन कहे ।।४।। हे भगवन्! अब क्रोध मत करो, यह देवता नष्ट हो चुके हैं, हे सुव्रत! अपने रुओं से उत्पन्न हुए गणों के सहित प्रसन्न होकर क्षमा करो ।।५।। जब परमेष्ठी ब्रह्माजी ने यह वचन कहे, तब वीरभद्र ब्रह्माजी के गौरव से शान्त हुए ।।६।। और देवता अवकाश पाकर उस देव देव शिवजी के मन्त्री के निमित्त सिर पर अंजलि धारण करके अनेक स्तुतियों से प्रसन्न करने लगे ।।७।। देवता बोले- शान्तस्वरूप यज्ञनाशक त्रिशूलधारी शिवजी के निमित्त नमस्कार है, रुद्र, भद्र, रुद्रों के पति रुद्रमूर्ति ।।८।। कालाग्नि रुद्र रूप काल और कामदेव का शरीर हरनेवाले देवता और दुरात्मा दक्ष का सिर हरनेवाले ।।९।। और दुःसह कर्म करनेवाले, हे वीर! पापी दक्ष के संसर्ग से हम निरपराधियों की आपके द्वारा शासना हुई ।।१०।। और अब हम दग्ध होकर आप से बहुत डर गये हैं, आप ही हमारी गति हो, सो हम शरण में आये हओं की रक्षा करें ।।११।।

वायु बोले– इन देवताओं की स्तुति से प्रसन्न होकर प्रभु ने उनकी जंजीर खोल दी और देवताओं को देव के समीप लाये ।।१२।। उस समय भगवान् देव भी अन्तरिक्ष में स्थित थे, सर्वगामी गणेश्वर सर्व लोकों के पति गणों सहित ।।१३।। विष्णुजी आदि देवता उन परमपुरुष को देखकर प्रसन्न और भयभीत होकर प्रीति पूर्वक नमस्कार करने लगे ।।१४।। दीनों के दुःख दूर करनेवाले उन देवताओं को भयभीत और प्रणत देखकर पार्वती की ओर देखकर महादेवजी हँसते हुए बोले ।।१५।। महादेवजी बोले– हे देवताओं! मत डरो, हमारा अपमान अब जाता रहा, आप हमारी प्रजा हो, आप पर कृपा करके अनुग्रह के निमित्त दण्ड विधान किया है ।।१६।। आप देवताओं का अपराध हम ने क्षमा किया और हमारे क्रोध करने पर आपकी स्थिति और जीवन नहीं हो सकता ।।१७।। वायु बोले– जब महातेजस्वी शिवजी ने ऐसा कहा, तब वे सब देवता भय त्यागकर प्रसन्न होकर नृत्य करने लगे ।।१८।। तब प्रसन्न मन और हर्ष से विह्वल होकर सब देवता शंकरजी की स्तुति करने लगे ।।१९।। देवता बोले– हे देव! आप ही सब लोकों के करनेवाले रक्षक और संहार करनेवाले परमेश्वर हो; सत्, रज, तम इन तीन गुणों को आश्रय करके आप ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र यह तीन मूर्तियां धारण करते हो ।।२०।। हे विश्वभावन! हे परम पवित्र सर्वमूर्ति! आपको प्रणाम है, आप मूर्ति रहित हो, हे सुखदायक! भक्तों के निमित्त ही आप आकृति ग्रहण करते हो ।।२१।। हे शंकर! आपकी कृपा से ही चन्द्रमा रोग रहित हुआ है और निमज्जन करके मृत हुए जाजलि ने आप की कृपा से सुख पाया ।।२२।। हे प्रभो! सीमन्तिनी विधवा हो गई थी, पर आपके पूजन के प्रभाव से अतुल सौभाग्य को प्राप्त हुई और उमादेवी के प्रभाव से उसने पुत्रों की प्राप्ति की ।।२३।। हे देव! आपने श्रीकर को अपना उत्तम पद दिया और राजाओं के भय से आपने सुदर्शन को छुड़ाया ।।२४।। हे कृपानिधि! आपने श्री सहित मेदुर को तारा, विधवा शारदा को कृपा से सधवा किया ।।२५।। आपने भद्रायुष की विपत्ति दूर करके उसे सुख दिया, आपकी सेवा से सौमिनी संसार–सागर से मुक्त हो गई ।।२६।। विष्णुजी बोले– हे शिवजी! आप ही रज, सत्व और तमोगुण से ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर यह तीन मूर्ति धारण करके जनों पर अनुग्रह करने की इच्छा से जगत् की उत्पत्ति, पालन और संहार करते हो ।।२७।। आप सबके गर्व को हरनेवाले, सबके तेजों के विलासी, सब विद्यादिक में गूढ़, सब पर अनुग्रह करनेवाले हो ।।२८।। हे गिरीश्वर! आप ही से सब कुछ है, आप में ही सब स्थित है, रक्षा करें, रक्षा करें, कृपा करके हमारी रक्षा करें ।।२९।। उसी समय ब्रह्माजी प्रणाम करके हाथ जोड़कर, अवसर पाकर शिवजी से कहने लगे ।।३०।। ब्रह्माजी बोले– हे महादेव! दासों के दुःख दूर करनेवाले आपकी जय हो; ऐसे अपराध करने पर आपके सिवाय दूसरा कौन है ? जो प्रसन्न हो सकता है ।।३१।। जो देवता युद्ध में मृतक हुए हैं, वे फिर जी उठें, परमेश्वर के

प्रसन्न होने पर फिर किसको आपत्ति हो सकती है?।।३२।। और हे देव! जो यह देवताओं के अंगों में दूषण हुए हैं, सो आपके अंगीकार के गौरव से मैं इनको भूषण मानता हूँ।।३३।। जब परमेष्ठी ब्रह्माजी ने ऐसा कहा, तब पार्वती के मुख को देखकर हँसते हुए शिवजी ने ब्रह्माजी के पुत्र रूप से प्रार्थना करने से नष्ट हुए देवताओं के शरीरों को फिर पूर्ववत् कर दिया।।३४-३५।। उसी समय वे विष्णुजी, इन्द्रादिक सब देवता अपने पूर्व शरीर को प्राप्त होकर परमेश्वर को प्रणाम करने लगे और वागीशादि देवियां जो दण्डित हुईं थी, उन सबके अंग शिवजी ने पूर्व के समान कर दिये।।३६।। और दक्ष का स्वयं भगवान् ब्रह्माजी ने शिवजी की आज्ञा से बूढ़े छाग के समान मुख कर दिया।।३७।। वह चेतना को प्राप्त होकर उठकर हाथ जोड़ के डर के कारण अनेक वचन कहते हुए परमेश्वर की स्तुति करने लगा।।३८।। दक्ष ने कहा, हे जगत्पति! हे लोकानुग्रह करनेवाले! आपकी जय हो, हे महेशान! कृपा करके मेरे अपराध क्षमा करें।।३९।। हे प्रभो! आप ही जगत् के कर्ता, भर्ता और दुःख हरनेवाले हो, मैंने विशेष कर जान लिया कि, आप विष्णुजी आदि सबके ईश्वर हो।।४०।। आपने ही सब जगत् का विस्तार किया है, आप ही उत्पत्ति और नाश करते हो, वे विष्णुजी आदि आप से कोई विशेष नहीं हैं।।४१।। वायु बोले- इस प्रकार अपराध से व्याकुल और डरे हुए दक्ष को देखकर करुणानिधि शिवजी हँसते हुए बोले- भय मत करो।।४२।। जब इस प्रकार कहा तब दक्ष के पिता ब्रह्माजी के प्रिय की इच्छा से शिवजी ने दक्ष के निमित्त अक्षय गणपतित्व प्रदान किया।।४३।। तब ब्रह्माजी आदि देवता हाथ जोड़कर महादेवजी को प्रणाम करके नम्रवाणी से गिरिजापति महादेवजी की स्तुति करने लगे।।४४।। हे शंकर! हे दीनानाथ! हे महाप्रभो! हे महेशान! कृपा करके हमारे अपराध क्षमा करें।।४५।। हे यज्ञपालक! हे यज्ञ के अधिपति! हे यज्ञ के विध्वंसकर्ता! हे महेशान! कृपा करके हमारे अपराध क्षमा करें।।४६।। हे देव देव! हे परमेशान! हे भक्तों के प्राण पोषण करनेवाले! हे दुष्टों को दण्ड देनेवाले स्वामी! कृपा करें, आपको प्रणाम है।।४७।। हे प्रभो! जो दुष्ट आपको नहीं जानते उनके गर्व आप दूर करते हो और अपने भक्त सत्पुरुषों के विशेषकर आप रक्षक हैं।।४८।। आपकी कृपा से हम ने निश्चय किया है, कि आपके अद्भुत चरित्र हैं, हे दीनवत्सल विभु! आप हमारे सब अपराध नष्ट करें।।४९।। वायु बोले- जब ब्रह्मादि देवताओं ने इस प्रकार प्रभु की स्तुति की, तब करुणासागर भक्तवत्सल स्वामी प्रसन्न हुए।।५०।। और उन ब्रह्मादि देवताओं पर कृपा की और दीनवत्सल शंकरजी ने प्रेम से उनको आया हुआ देखकर हास्यभरी मनोहर वाणी से उनके सब भय दूर करके वचन कहे।।५१-५२।। शिवजी बोले- जो यह चरित्र हुआ है, सो यह दैवाधीनता से हुआ है, क्योंकि प्रारब्ध से यह प्राणी दैव के वश में है, आपको शरण में आया देखकर हमने आपके सब अपराध क्षमा कर दिये।।५३।। परन्तु

आपने यह कर्म मन में बिना विचारे लज्जा रहित होकर किया। विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवता यह सब अपने-अपने स्थानों को प्रस्थान करें।।५४।। इस प्रकार सुरेश्वर देवताओं के प्रति यह वचन कहकर दक्षयज्ञ के सम्बन्ध से रहित होकर गिरिजा तथा दूसरें गणों सहित आकाश में स्थित होकर अन्तर्धान हुए।।५५।। तब वे देवता भी व्यथा रहित होकर तथा यज्ञ भी पूर्ण शरीर होकर भद्र-सुभद्र का पराक्रम कहते हुए शीघ्र ही सुख पूर्वक आकाशमार्ग में प्रसन्नता से गये तथा ब्रह्मा, इन्द्रादि भी गये।।५६।।

इति श्रीशिवमापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे त्रयविंशोऽध्यायः ।। २३ ।।

*****

चौबीसवां अध्याय

ऋषि बोले- जिस समय अनुचरों सहित शिवजी अन्तर्धान हुए, तब कहां गये और क्या करने लगे ?।।१।। वायु बोले- श्रीमान् मन्दर चित्र-विचित्र धातु और कन्दराओं से शोभित है, वह शिवजी के तप करने योग्य उनका निवासस्थान था।।२।। उस पर्वत ने शिवजी के निवास करने के निमित्त बड़ा तप किया, बहुत समय के उपरान्त उसने शिवजी के चरणकमल का स्पर्श पाया।।३।। उस पर्वत की सुन्दरता सहस्रमुखों से भी सौ करोड़ वर्ष में भी नहीं कह सकते।।४।। सुमेरु पर्वत भी इसके सामने सुन्दरता में साधारण है।।५।। परन्तु हां! इतना कह सकते हैं कि, यह पर्वत श्रेष्ठ ऋद्धि और सुन्दरता से परिपूर्ण शिवजी के निवास के कारण हुआ है।।६।। इसी कारण शिवजी ने पार्वती के प्रिय की इच्छा से अत्यन्त सुन्दर यह पर्वत अन्तःपुर रूप किया है।।७।। उसकी मेखला रूप पृथ्वी, श्रेष्ठ पत्थर और वृक्ष हैं, वहां शिवजी सदा निवास करते हैं, इससे वह सम्पूर्ण जगत् का तिरस्कार करते हैं।।८।। जगत् के माता-पिता का स्थान आदि के उपभोग और उनके निवास के पुण्यसंस्कार पानादि देने से वह चारों ओर फैल रहा है।।९।। लघु और शीतल स्पर्शवाले निर्मल जल से मानो पर्वतों के अधिराज्य में अभिषेक किया जाता है।।१०।। रात्रि के समय चारों ओर फैला हुआ यह मन्दर पर्वत चन्द्रमा से शोभित है, मानो साम्राज्य का छत्र धारण किये हैं।।११।। वह पर्वत चंचल हुए चौरी गौओं के चमरों से मानो सम्पूर्ण पर्वत चामरों से साम्राज्य के कारण वीज्यमान होता है।।१२।। प्रातःकाल सूर्य के उदय होने से रत्नों से भूषित वह पर्वत दर्पण में मानो अपने देह के सौभाग्य को अवलोकन कर रहा है।।१३।। वाचाल विहंगों से कूजित लता रूपी भुजाओं से चलायमान होकर सदा फूलों से विमुक्त कोमल पत्तों से युक्त।।१४।। लताओं के समूहों से व्याप्त वृक्षों से तपस्वियों के समान युक्त जय के आशीर्वाद से पूजित होकर मानो

यह पर्वतराज स्थित है ।।१५।। ऊपर नीचे को मुख किये शृंगों से व्याप्त तथा तिरछे शृंगों से युक्त प्रतापित होकर मानो पृथ्वी को पृष्ठ से उठाया है ।।१६।। सब दिशाओं में व्याप्त होकर मानो आकाश में घूम रहा है, इस प्रकार मानो सब जगत् को देखता हुआ सा नृत्य कर रहा है ।।१७।। गुहा रूपी मुख से प्रतिदिन जागृत होकर मानो बड़े उदरों से युक्त है, सदा नवीन सुन्दरता से मानो जंभाई ले रहा है ।।१८।। सम्पूर्ण जगत् को ग्रास करता हुआ सागर को पीता हुआ सा अपने हृदय का अन्धकार मानो उगलता हुआ मेघों से आकाश को भक्षण करता हुआ ।।१९।। उसके निवास की भूमि मानो दर्पण के समान उज्ज्वल है, वृक्षों की छाया मनोहर छाया से श्रम को दूर करनेवाले ।।२०।। नदी, सरोवर, तालाब आदि के सम्पर्क से ठण्डी पवनवाले जिधर-तिधर स्थित हुए, शिवजी से सफल की हुई भूमिवाले ।।२१।। ऐसे इस पर्वतश्रेष्ठ को पार्वती सहित शिवजी स्मरण करके अन्तर्धान हुए ही रैभ्य के आश्रम में गये ।।२२।। देवी के सहित महेश्वरजी उस उद्यान में प्राप्त होकर मनोहर दिव्य अन्तःपुर की भूमि में रमण करने लगे ।।२३।। इस प्रकार समय बीतने से और प्रजा के बढ़ने से शुम्भ-निशुम्भ नामक दो भाई उत्पन्न हुए ।।२४।। ब्रह्माजी ने तपस्या से यह वरदान दिया कि, तुम इस जगत् में सम्पूर्ण पुरुषों से अवध्य होगे ।।२५।। परन्तु जो अम्बिका के अंग से उत्पन्न हुई अयोनिजा कन्या है, जिसने कभी पुरुष का स्पर्श नहीं किया, उसका तुम कभी उल्लंघन नहीं करना ।।२६।। यदि उसकी कामना करोगे, तो युद्ध में मृत्यु को प्राप्त होगे, इस प्रकार ब्रह्माजी के कहने से उन्होंने स्वीकार किया ।।२७।। तब से युद्ध में ब्रह्मादिक देवताओं को जीतकर जगत् को वेद और वषट्कार से रहित कर दिया ।।२८ ।। तब उन दोनों को मारने के निमित्त ब्रह्माजी ने देवेश से प्रार्थना की; कि एकान्त में अम्बा की निन्दा करके जैसे हो वैसे क्रोध उत्पन्न कराओ ।।२९।। उसके वर्ण और कोश की शक्ति से एक कन्या उत्पन्न करके शुम्भ-निशुम्भ को मारने को देवताओं के निमित्त दीजिये ।।३०।। जब भगवान् नीललोहित की इस प्रकार प्रार्थना की, तब हँसकर शिवजी ने अम्बा की निन्दा करते हुए काली ऐसा शब्द रहस्य में उच्चारण किया ।।३१।। तब शिवजी से अपने वर्ण की निन्दा सुनकर देवी बहुत क्रुद्ध हुई और हँसती हुई अपने स्वामी से असमाधेय वाणी से बोली ।।३२।। जो इस प्रकार के मेरे वर्ण में आपकी प्रीति नहीं है, तो इतने महासमय से यह बात क्यों रोक रखी है? ।।३३।। जब मुझ में अरुचि है तो मेरे साथ क्यों रमते हो? हे प्रभो! आपको इस जगत् में तो कुछ अशक्य नहीं है ।।३४।। स्वात्मा में रमण करनेवाले आपको रतिसुख का साधन नहीं है, यही कारण आपने कामदेव को भस्म कर दिया ।।३५।। जो स्त्री सर्वांग सुन्दरी भी हो, यदि स्वामी उससे प्रीति न करे, तो उसके सब दूसरे गुण भी वृथा हो जाते हैं ।।३६।। स्त्रियों को यही इस लोक और परलोक में फलदायक है कि स्वामी प्रसन्न हो, इसके अन्यथा

होने से नारी का जन्म वृथा है ।।३७।। इस कारण जो कि एकान्त में आपने मेरी निन्दा की इस कारण मैं इस शरीर को त्याग करके दूसरे वर्ण को धारण करूंगी अथवा स्वयं न रहूंगी ।।३८।। यह कहकर देवी रोष से व्याप्त होकर अपने आसन से उठकर तप करने की इच्छा से स्वामी से आज्ञा मांगने लगी; कारण कि धर्मशास्त्र की आज्ञा से स्त्री स्वतन्त्र नहीं है ।।३९।। इस प्रकार प्रीति भंग होने से स्वयं शिवजी भीत हुए और चरणों की ओर प्रणाम करते हुए भवानी से कहने लगे ।।४०।। हे प्रिये! क्रीड़ा विलास की वार्ता बिना जाने तुम क्यो क्रोध करती हो? जो तुझ में मेरी प्रीति नहीं है तो किसमें है? ।।४१।। तुम इस जगत् की माता और मैं पिता हूं; फिर तुझ में मेरी प्रीति क्यों न हो? ।।४२।। हमारी तुम्हारी प्रीति क्या काम के निमित्त है? अर्थात् नहीं है, कारण कि काम की उत्पत्ति से पहले ही जगत् की उत्पत्ति हुई है ।।४३।। काम को तो मैंने पृथक् जनों के निमित्त उत्पन्न किया है, सो काम के दाह का तुमने किस प्रकार से मुझे ताना दिया? ।।४४।। कामदेव ने मुझे सामान्य देवता जानकर थोड़ा तिरस्कार ज्यों ही किया, मैंने उसे भस्म कर दिया ।।४५।। हमारा तुम्हारा विहार तो इस जगत् की रक्षा के निमित्त है, इस कारण जगत् की रक्षा के निमित्त मैंने विलासोक्ति कथन की ।।४६।। सो वह कार्य शीघ्र ही प्रकट हो जायगा, हे भगवति! क्रोध मत करो, तुमसे मेरी महान् प्रीति है; इस बात को तुम क्यों नहीं जानती हो? इस प्रकार शिवजी ने पार्वती को प्रसन्न भी किया, परन्तु वह काली शब्द को अपने हृदय में धारण करके क्रोध से यह वचन बोली ।।४७।। देवी बोली– हे भगवन्! मैंने आपकी लगती हुई वार्ता प्रथम ही सुन ली है, जिससे आपने प्रथम वंचित किया है ।।४८।। जो स्त्री भर्ता को अप्रिय होकर अपने प्राणों का त्याग नहीं करतीं वह कुलांगनाओं में और सत्पुरुषों में निन्दा को पाती है ।।४९।। मेरा शरीर गोरा नहीं है, इस कारण आपकी मुझ में प्रीति नहीं है, तो फिर विलासादि में 'काली' यह शब्द कैसे संगत हो सकता है? ।।५०।। स्त्रियों का असत्कार सर्वथा सत्पुरुषों ने निन्दित किया है; इससे तप के योग से इसको बिना त्यागे मैं यहां नहीं रह सकती ।।५१।। शिवजी बोले– जो यही इच्छा है, तो तप करने का क्या प्रयोजन है? हमारी इच्छा वा अपनी इच्छा से तुम अपना दूसरा वर्ण कर लो ।।५२।। देवी बोली– मैं आप से स्वयं अन्यथा वर्णन करने की इच्छा नहीं करती हूं, ब्रह्माजी का तप से आराधन करके गौरी बनूंगी ।।५३।। ईश्वर बोले– हमारी ही कृपा से तो ब्रह्माजी ब्रह्मत्व को प्राप्त हुए हैं, हे महादेवी! तप से उन्हें बुलाकर क्या करोगी? ।।५४।। देवी बोली– सब देवताओं ने आपसे यद्यपि वर पाया है, तो भी आपकी आज्ञा द्वारा तप से ब्रह्माजी का आराधन करके ।।५५।। पहले मैं सती नामक दक्ष की दुहिता हुई थी, तब भी मैंने तप से जगत् के पति आपको ही प्राप्त किया था ।।५६।। इसी प्रकार अब मैं उन्हें तप से सन्तुष्ट करके गौरी होने की इच्छा करती हूं, कहिये इसमें क्या दोष है? ।।५७।। जब

महादेवी ने ऐसा कहा तब महादेवी ने हँसते हुए देवताओं के कार्य की इच्छा से उसका निषेध न किया।।५८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे चतुर्विंशोऽध्यायः ।। २४ ।।

*****

पचीसवां अध्याय

तब पतिव्रता अम्बा ने शिवजी की प्रदक्षिणा करके वियोग के दुःख को रोककर हिमालय को गमन किया।।१।। जहां पहले अपनी सखियों के साथ तपस्या की थी, उसी देश को तप के निमित्त पार्वती ने श्रेष्ठ माना।।२।। तब वहां अपने माता और पिता को देखकर यह समाचार सुनाकर।।३।। फिर तपोवन जाकर सब भूषणों को उतारकर स्नान करके परम पवित्र तपस्विनी का वेष धारण किया।।४।। संकल्प करके महादुश्चर तपस्या करना प्रारम्भ किया और शिवजी के चरणों में मन लगाया।।५।। बाह्य विधान से स्नानादि करके उसी *क्षणिकलिंग के तीनों काल में पुष्प-फलादि से उनकी पूजा करने लगी।।६।। इस प्रकार तप के फल से ब्रह्ममूर्त्ति में शिवजी प्राप्त होकर ब्रह्माजी से मुझ को मन इच्छित फल देंगे।।७।। जब इस प्रकार तप करते-करते बहुत समय बीत गया, तब कोई महाव्याघ्र दुष्ट भाव से उस स्थान में आया।।८।। जब वह दुरात्मा उसके बहुत समीप में गया, तब उसका शरीर चित्र के समान स्तब्ध हो गया।।९।। इस प्रकार दुष्टभाव से आये हुए उस व्याघ्र को देखकर दूसरे मनुष्यों के समान देवी स्वभाव से व्यथित न हुई।।१०।। और वह भूँख से व्याकुल सर्वांग से स्तब्ध होकर यही विचारने लगा कि, इसके सिवाय मेरा दूसरा भोजन नहीं है।।११।। सो रात-दिन देवी को देखता रहता था और आगे खड़ा हुआ उसकी उपासना भी करता रहता था।।१२।। पार्वती के मन में सदा यह बात रहती थी, यह मेरा उपासक है और दुष्ट जीवों से रक्षा करता है, यह जानकर कृपा की।।१३।। पार्वती की कृपादृष्टि से उसके महापाप दूर हो गये, तब उस महाव्याघ्र ने देवी को जाना।।१४।। भूख और अंग का स्तम्भन हो गया, दुरात्मापन जाने से जन्म की सिद्धि और तृप्ति हो गई।।१५।। तब परमभाव से अपने को कृतार्थ जानकर वह सती का उपासक होकर परमेश्वरी की सेवा करने लगा।।१६।। दुष्ट तथा दूसरे जीवों का निवारण करनेवाला होकर मन में विचारने लगा।।१७।। उधर देवी का तप महावृद्धि को प्राप्त होने लगा; तब देवता और दैत्य तप से व्याकुल होकर ब्रह्माजी की शरण में गये।।१८।। शत्रु से पीड़ित होने का अपना दुःख देवताओं ने

*-क्षणिक लिंग- मृत्तिकालिंग।

ब्रह्माजी से निवेदन किया, जैसा कि शुम्भ-निशुम्भ ने वरदान से दुःख दिया है।।१९।। विधाता देवताओं के दुःख सुनकर कृपा करके दैत्यवध के हेतुवाली कथा को स्मरण करके।।२०।। देवताओं से प्रार्थित देवी के तपोवन में गये और दुःख दूर करनेवाले देव को अपने मन में स्मरण करने लगे।।२१।। तब ब्रह्माजी ने तप करने में तत्पर पार्वती को देखा, मानो भवानी परमेश्वरी सब जगत् की प्रतिष्ठा है।।२२।। तब जगत् की और अपनी भी जननी पार्वती की ब्रह्माजी ने वन्दना की, क्योंकि यह रुद्र की प्रियभार्या श्रेष्ठ पर्वतराज की पुत्री हैं।।२३।। जब देवी ने देवताओं के सहित ब्रह्माजी को आते हुए देखा, तब उनके योग्य अर्घ्य और स्वागत से पूजन किया।।२४।। उस पूजा से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी अजान के समान तप का कारण पूंछने लगे।।२५।। ब्रह्माजी बोले- हे देवी! इस तीव्र तप से तुम किस बात की इच्छा करती हो? क्योंकि सब फलों की सिद्धि तो तुम्हारे अधीन है।।२६।। जो परमेश्वर जगत् के स्वामी हैं, सो तुम्हारे भर्ता हैं, ऐसे स्वामी को प्राप्त होकर सब ही तप के फल प्राप्त हैं।।२७।। अथवा यह सब तुम्हारी क्रीड़ा का विलास है; परन्तु यह आश्चर्य की बात है, तुम अपने स्वामी का वियोग किस प्रकार सहन करती हो?।।२८।। देवी बोली- जब कि सृष्टि के आदि में आपकी देव देव से उत्पत्ति सुनी जाती है, इस कारण प्रजाओं में आप मेरे प्रथम पुत्र हो।।२९।। जब फिर प्रजा की वृद्धि की इच्छा हुई, तब आपके मस्तक से शिवजी प्रादुर्भूत हुए हैं, इस कारण श्वशुरभाव से आप मेरे गुरु हो।।३०।। जब कि, यह हिमालय मेरे पिता, आपके पुत्र है, तब हे लोकपितामह! इस रिस्ते से आप मेरे पितामह हो।।३१।। सो इस प्रकार लोकयात्रा विधान करनेवाले आपसे जो वार्ता गुप्त स्वामी से हुई है, वह कैसे कह सकती हूं?।।३२।। बहुत कहने से क्या है? इस मेरे देह में जो कालिमा है, सो यह त्यागकर आपके वचन से गौरी होने की इच्छा करती हूँ।।३३।। ब्रह्माजी बोले- हे देवी! केवल इतनी ही बात के लिये तुमने क्यों तीव्र तपस्या की? अपने आप ही उस रूप को क्यों न धारण किया? अथवा तुम्हारी क्रिड़ा ही इस प्रकार की है।।३४।। हे जगन्मातः! आपकी क्रीड़ा लोक के निमित्त होती है, सो इस क्रीड़ा से कोई हमारा हित करने के लिये कार्य करो।।३५।। निशुम्भ-शुम्भ नामक दो दैत्यों को मैंने वर दिया है, यह मत्त होकर देवताओं को बाधा देते हैं, तुमसे ही उनका वध होगा।।३६।। इसमें देर करने का काम नहीं, क्षणमात्र को स्थिर होकर वह तुम्हारे ही उस शरीर से नष्ट होंगे, तुम्हारी शक्ति से उन दोनों की मृत्यु होगी।।३७।। इस प्रकार से जब ब्रह्माजी ने गिरिनन्दिनी देवी से प्रार्थना की, तब उस पूर्वत्वचा के आवरण को छोड़कर वह तत्काल गौरी हो गई।।३८।। वह त्वचा का कोश देवी ने मन से ही त्याग दिया, तब उससे कौशिका नामवाली काली कालमेघ के समान प्रादुर्भूत हुई।।३९।। वही कन्या मायात्मिका शक्ति तथा वैष्णवी योगनिद्रा रूप शंख,

चक्र, त्रिशूल, बाण, मूशल, घण्टा, लांगल, कार्मुक हाथ में लिये आठ भुजाओं युक्त हुई ।।४०।। सौम्यता और घोरता से युक्त तीन नेत्र और चन्द्रमा सिर पर धारे पुरुषस्पर्श से हीन, घर्षण करने के अयोग्य, महासुन्दरी हुई ।।४१।। तब ब्रह्माजी ने उसे सनातन शक्ति प्रदान की, जो शुम्भ-निशुम्भ महाबली दैत्यों को मारने में समर्थ थी ।।४२।। और प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने उस परम शक्ति के निमित्त प्रबल सिंह वाहन दिया ।।४३।। विन्ध्याचल में रहने को स्थान, आसव, मांस, अनूप मत्स्य यह सब इनकी पूजा के निमित्त ब्रह्माजी ने कल्पित किया ।।४४।। वह शक्ति विश्वकर्मा ब्रह्माजी के सम्मत होकर अपनी माता गौरी और ब्रह्माजी को प्रणाम करके ।।४५।। तथा अपने से उत्पन्न हुई, अपने समान अनेक शक्तियों के सहित उन राक्षसों को मारने के निमित्त विन्ध्याचल में आई ।।४६।। समर करके वहां दोनों दुष्ट दैत्यों का वध किया, उसके बाण और कामबाण से उनके मन और अंग छिन्न-भिन्न हो गये ।।४७।। अन्य पुराणों में वर्णन होने के कारण विस्तार से वह युद्ध यहां नहीं कहा, यह दूसरी जगह देखना, मैं प्रसंग को वर्णन करता हूं ।।४८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे पंचविंशोऽध्यायः ।। २५ ।।

*****

छब्बीसवां अध्याय

वायु बोले- तब गौरी ने कौशिकी नाम अपनी शक्ति उत्पन्न करके ब्रह्माजी के निमित्त कार्य में लगाकर उनके प्रत्युपकार के निमित्त ब्रह्माजी से कहा ।।१।। देवी बोली- क्या आपने मेरी उपासना करनेवाले इस शार्दूल को देखा है? इनसे दुष्ट जीवों से मेरे तपोवन की रक्षा की है ।।२।। यह मुझ ही में मन लगाकर अनन्य बुद्धि से मेरा भजन करता है, इसकी रक्षा के सिवाय मेरा दूसरा प्रियकार्य नहीं है ।।३।। यह हमारे अन्तःपुर में विचरनेवाला होगा; शिवजी प्रसन्न होकर उसके निमित्त गणेश्वर पद देंगे ।।४।। सो मैं इसको आगे करके सखियों के संग जाने की इच्छा करती हूं, आप प्रजापति मुझको इसमें अनुज्ञा दीजिये ।।५।। इस प्रकार वचन सुनकर हँसती हुई देवी को मुग्धा जानकर उस शार्दूल के दुष्ट चरित्र का वर्णन करते हुए ब्रह्माजी बोले ।।६।। हे देवि! कहां तो यह क्रूर मृग और कहां तुम्हारा अनुग्रह, साक्षात् सर्प के मुख में तुम अमृत क्यों सींचती हो? ।।७।। यह व्याघ्र ही नहीं है, किन्तु यह कोई दुष्ट निशाचर है, इसने गो और तपस्वी ब्राह्मणों को भक्षण किया है ।।८।। यहां अनेक काम रूप धारण किये तृप्त होकर विचरता रहता है, सो यह अपने पापों का फल भोगेगा ।।९।। सो ऐसे दुरात्माओं पर कृपा नहीं करनी

चाहिये; इस पापी दुरात्मा ने तुम्हारे साथ ऐसा क्या किया है? ।।१०।। देवी बोली- हे ब्रह्मन्! जो कुछ आपने कहा है, वह सभी सत्य है, तो भी यह मेरी शरण में आया है, उपासक है, इससे मैं इसका त्याग नहीं कर सकती ।।११।। ब्रह्माजी बोले- इसकी भक्ति को बिना जाने हम ने उसका पूर्वचरित्र वर्णन किया है, जो इसमें भक्ति है, तो फिर पापों से क्या है? तुम्हारे भक्तों का नाश नहीं होता ।।१२।। तुम्हारी आज्ञा की अपेक्षा न करके पुण्यकर्म भी क्या कर सकता है? हे परमेश्वरी! तुम ही प्रज्ञा, बुद्धि और पुराणी हो ।।१३।। तुम्हारे अधीन ही सब जगत् की बंध, मोक्ष और स्थिति है, तुम्हारे बिना किस के कर्म में परम सिद्धि प्राप्त हो सकती है? ।।१४।। तुम ही अजन्मा अनेक प्रकार की शक्ति और भावों की भावना करनेवाली हो, तुम्हारे बिना कर्म के करने में आसक्त होकर कर्ता क्या कर सकता है? ।।१५।। विष्णुजी को, मुझे तथा दूसरे देवता, दानव, राक्षसों को तुम्हारी ही आज्ञा से ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है ।।१६।। असंख्य ब्रह्मा, विष्णु, हरि और शिव व्यतीत हो गये हैं और तुम्हारी आज्ञा से आगे भी सैकड़ों होंगे ।।१७।। हे देवेशि! तुम्हारी आराधना के बिना पुरुषार्थ चतुष्ट अर्थात् अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष कोई भी हम देवताओं में प्राप्त नहीं कर सकता ।।१८।। ब्रह्मत्व और स्थावरत्व का वह शीघ्र पति हो जाता है, जो तुम्हें पूजता है सूकृत और दुष्कृति में आपकी ही व्यवस्था होती है ।।१९।। जगत् के स्वामी परमात्मा शिवजी की तुम ही अनादि, मध्य, निधन आदि सनातनी शक्ति हो ।।२०।। सम्पूर्ण लोक की यात्रा के निमित्त किसी मूर्त्ति में प्रवेश करके अनेक प्रकार से तुम क्रीड़ा करती हो, तुम्हें कौन जान सकता है? ।।२१।। इस कारण यह पापिष्ठ व्याघ्र भी तुम्हारे अनुग्रह से परम सिद्धि को प्राप्त होगा, इसमें प्रतिबन्धक कौन हो सकता है? ।।२२।। इस प्रकार योग्यता से अपना परम रूप स्मरण कराकर ब्रह्माजी के कहने से गौरी तप करने से निवृत्त हुईं ।।२३।। तब देवी से पूंछकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हुए, तब देवी ने हिमालय के सहित माता मेना को देखकर ।।२४।। विरह न सहनेवाले माता-पिता को प्रणाम कर और तपोवन के वृक्षों को बड़े प्यार से नम्रीभूत हुए देखकर ।।२५।। जो कि देवी के वियोग में पुष्प रूपी आसूं छोड़ते थे और उनकी शाखा पर बैठे हुए जो पक्षी शब्द करते थे, वही मानो ।।२६।। रुदन करते हैं, और बहुत दीनता से व्याकुल हो रहे हैं, उन्हें देखकर सखियों से कहती हुई और अपने स्वामी के शीघ्र दर्शन प्राप्त होने के निमित्त ।।२७।। निजपुत्र के समान उस व्याघ्र को आगे किये अपनी देह की कान्ति से दशों दिशाओं को प्रकाशमान करती ।।२८।। गौरी मन्दर पर्वत पर गईं, जहां सब जगत् के विधाता, कर्ता, रक्षक तथा संहार कर्ता स्वामी शंकरजी थे ।।२९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे

देवीब्रह्मसंवादे षड्विंशोऽध्यायः ।। २६ ।।

*****

सत्ताईसवां अध्याय

ऋषि बोले– इस प्रकार गिरिजादेवी गौर शरीर करके मन्दर पर्वत पर स्थित स्वामी को जिस प्रकार देखने लगी ।।१।। प्रवेश करने के समय उनके भवन के द्वार पर रहनेवाले गणेशजी ने क्या किया ? सो कहिये ।।२।। वायु बोले– सम्पूर्णतः वह चित्त के आनन्द करनेवाली वार्ता हम नहीं कह सकते; जिस प्रणय युक्तियों से शिवजी ने उनमें मन लगाया ।।३।। देवी के आगमन की उत्कण्ठा करनेवाले देव ने द्वारपालों को नियुक्त कर दिया था, वह सम्भ्रम रहित द्वारपालों से शंकमान प्रवेश करती हुई उन शिवजी को देखने लगी ।।४।। महल के भीतर उन अनेक प्रकार के प्रणय नम्रताभाव वर्तनेवाले गणेन्द्रों से नमस्कृत होकर उसने शिवजी को प्रणाम किया ।।५।। जब तक वह प्रणाम करके उठ न पाई, तब तक शिवजी ने उनको भुजाओं से ग्रहण करके हृदय से लगा लिया ।।६।। यद्यपि वह अपनी गोद में बैठाते थे, परन्तु वह पलंग पर बैठ गईं, हँसती हुई देवी को पलंग पर से बलपूर्वक शिवजी ने गोद में बैठाया ।।७।। हँसते हुए खुले नेत्रों से मानो उनका मुख पान करने लगे, उनसे बात करने को शिवजी ने पूर्व वचन कहे ।।८।। शिवजी बोले– हे सर्वांग सुन्दरी ! क्या वह तुम्हारी पूर्वदशा व्यतीत हो गई ? कोप के कारण जिसके द्वारा कोई समझने का उपाय न हुआ था ।।९।। हे सुभ्रू! अपनी इच्छा से भी 'काली' न कि दूसरे वर्णवाली यह शब्द तुम्हारे स्वभाव से हरण हुए मेरे चित्त की चिन्ता उत्पन्न करता है ।।१०।। अपनी इच्छा के बल से तुमने हमारा परम भाव भुला दिया, जिसके कारण से चित्त में कलुषता के कारण नहीं होते हैं ।।११।। वे साधारण मनुष्यों के समान एक दूसरे के विप्रिय के कारण होते हैं, परन्तु जो हमारा–तुम्हारा प्रेम है, वह चराचर में नहीं है ।।१२।। मैं अग्नि को धारण करनेवाला हूं, तू सोम रूप सिर में स्थित है, इस प्रकार अग्निषोमात्मक जगत् हम से ही स्थित है ।।१३।। हम दोनों स्वेच्छा से शरीर धारण करके जगत् के हित के निमित्त विचरते हैं; हम दोनों के वियोग में जगत् निरालम्ब हो जाता है ।।१४।। इसमें शास्त्र युक्ति से निश्चय किया हुआ दूसरा हेतु है; यह स्थावर–जंगमात्मक जगत् वाणी और अर्थमय अर्थात् नाम रूपात्मक है ।।१५।। तुम साक्षात् अमृतमय वाणी हो और मैं अमृत रूप अर्थ हूं, सो वियोग होने से यह अमृत किसी प्रकार प्राप्त नहीं हो सकता ।।१६।। विद्या के ज्ञान से तुम और तुम्हारे ज्ञान से मैं जाना जाता हूं; विद्या और वेद्य आत्मावाले हम दोनों का वियोग कैसे हो सकता है ? ।।१७।। मैं अपने ही व्यापार से इस जगत् को उत्पन्न और संहार नहीं करता हूं; सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति, प्रलय तुम्हारी आज्ञा से होती है, सो वह आज्ञा रूप तुम हो ।।१८।।

आज्ञा का सार रूप ऐश्वर्य है, उनका लक्षण स्वतन्त्रता है, आज्ञा से वियुक्त होकर ऐश्वर्य क्यों कर प्राप्त हो सकता है?।।१९।। वियोग दशा में हम दोनों किसी प्रकार नहीं रह सकते हैं, तो भी वियोग हुआ, यह कैसी अद्भुत बात है? दूसरों पर अनुग्रह करने के सिवाय इसमें और प्रयोजन नहीं है, यह सृष्टि के प्रवृत्त करने को हमारा विलास वृथा नहीं है, देवताओं के कार्य के कारण लीला से ही मैंने वह वचन कहा था ।।२०।। और तुम्हें भी वह वार्ता विदित थी, फिर किस कारण क्रोध किया, क्या त्रिलोकी की रक्षा के निमित्त ही मेरे ऊपर क्रोध किया था?।।२१।। कारण कि जिसमें प्राणियों का अनर्थ हो वह वस्तु तुझ में नहीं है, इस प्रकार प्रिय बोलनेवाले ईश्वर से ।।२२।। शृंगार भाव की सारभूत स्वाभाविक सुन्दरी परमेश्वरी अपने स्वामी के कहे हुए सत्य वचनों को सुनकर ।।२३।। लज्जा से कौशिकी चरित्र वर्णन के बिना कुछ न बोली, वही मैं कहता हूं, देवी का वर्णन सुनिये ।।२४।। देवी बोली– जो मैंने कौशिकी बनाई है, क्या वह आपने नहीं देखी? वैसी कन्या संसार में न हुई है और न होगी ।।२५।। उसका पराक्रम, बल विन्ध्याचल पर्वत पर विजय और युद्ध में शुम्भ–निशुम्भ का वध है ।।२६।। भजन करनेवाले लोकों को प्रत्यक्ष फल का देना देवताओं की रक्षा में ब्रह्माजी का नियुक्त करना ।।२७।। इस प्रकार कहते हुए देवी की आज्ञा से सखी ने वह व्याघ्र लाकर आगे खड़ा कर दिया ।।२८।। उसे देखकर देवी फिर बोली कि, हे देव! यह मैं भेंट में लाई हूं, इस व्याघ्र को देखिये, इसके समान मेरा कोई उपासक नहीं है ।।२९।। इसने दुष्ट जीवों से मेरी तपोवन में रक्षा की थी, यह मेरा अत्यन्त भक्त और रक्षा करने से निश्चित है ।।३०।। यह अपना देश त्यागकर प्रसन्नता के निमित्त आया है, जो मुझ में प्रीति है और मुझ से प्रेम करते हो, तो ।।३१।। हे ईश्वर! अन्तःपुर के द्वार पर नन्दी की आज्ञा से रक्षा करनेवालों के चिह्नों के सहित यह स्थित हो ।।३२।। वायु बोले– इस प्रकार मधुर और नम्रता भरे देवी के वचन सुनकर 'मैं प्रसन्न हूं' शिवजी ने यह वचन कहे, तब तत्काल उस व्याघ्र को दिखाया ।।३३।। वह सुवर्ण का डंडा लिये रत्नजटित विचित्र कंचुक पहने सर्प के समान छुरी लिये गणेश की रक्षा करने योग्य शरीर धारण कर स्थित हुआ ।।३४।। जिस कारण की इसने उमा सहित महादेवजी को और नन्दी को प्रसन्न किया, इसी कारण इसका नाम सोमनन्दी हुआ ।।३५।। शशिशेखर शिवजी इस प्रकार देवी का प्रिय करके गौरी को दिव्य भूषणों से भूषित करने लगे ।।३६।। इस प्रकार कैलासपति चन्द्रमौलि गिरिजा गौरी को गौरव युक्त और सर्व मनोहारिणी करके अपने पर्यंक में बैठाकर अनेक प्रकार के भूषणों से भूषित करने लगे ।।३७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे

सप्तविंशोऽध्यायः ।। २७ ।।

*****

अट्ठाइसवां अध्याय

ऋषि बोले- देवी का समाधान करने के समय शिवजी ने यह वार्ता क्यों कही, कि यह जगत् अग्निषोमात्मक और वागर्थात्मक है ।।१।। ऐश्वर्य एक आज्ञा के ही सारवाला है, आप आज्ञा स्वरूप हो, सो इस वार्ता को क्रम से सुनने की हमारी इच्छा है ।।२।। वायु बोले- जो रुद्र का घोर तेजस्वी शरीर है, उसीको अग्नि कहते हैं और सोम शक्ति का अमृतमय शरीर है, यही शक्ति शान्तिमय शरीर है ।।३।। उस अमृत में जिसकी प्रतिष्ठा है, वह स्वयं तेज की विद्या, कला है, वे ही रस और तेज, पृथ्वी आदि परमाणुओं में स्थित रहते हैं ।।४।। और दो प्रकार की तेजसी वृत्ति सूर्यात्मा रूप तथा अग्नि की आत्मा रूप है, इसी प्रकार यह वृत्ति सोमात्मक है ।।५।। तेज वैद्युतमय है और रस मधुरादि मय है, तेज और रस के भेद से ही यह चराचर जगत् धारण किया गया है ।।६।। अग्नि से ही अमृत की उत्पत्ति होती है, 'अग्नेराप इति श्रुते' घृत वा अमृत से ही अग्नि की वृद्धि होती है, 'अमृतं वा आज्यमिति श्रुते' इसी कारण अग्नि और सोम देवता की दी हुई हवि जगत् के हित के निमित्त है ।।७।। हवि के निमित्त धान्य की सम्पत्ति होती है, धान्य की वृद्धि के निमित्त वृष्टि होती है, इसी कारण हवि श्रेष्ठ वर्षा के निमित्त है, इसीसे अग्नि सोम द्वारा जगत् धारण किया गया है ।।८।। वह अग्नि ऊपर को प्रज्ज्वलित होता है, जहां तक शान्त अमृत है, जहां तक अग्नि का स्थान है, वहां से सोम से उत्पन्न हुआ अमृत नीचे गिरता है ।।९।। इसी कारण कालाग्नि के नीचे और शक्ति के ऊपर से ऊर्ध्वशक्ति मात्र से उतना ही ऊपर को दहन और नीचे को अमृत द्वारा प्लावन होता है ।।१०।। आधारशक्ति से धारण किया हुआ कालाग्नि ऊर्ध्वगामी है, इसी प्रकार शिवशक्ति के स्थानवाला सोम नीचे को चलता है ।।११।। ऊपर शिव नीचे शक्ति, ऊपर शक्ति नीचे शिव है; इस प्रकार शिवशक्ति से ही सब जगत् व्याप्त है ।।१२।। एक बार ही जो अग्नि से दग्ध होकर यह जगत् भस्म हुआ था, इसीसे यह भस्म अग्नि का वीर्य कहलाता है ।।१३।। जो इस प्रकार भस्म का भाव जानकर भस्म से स्नान करता है और 'अग्निरिति भस्म, वायुरिति भस्म' यह मन्त्र उच्चारण करता है, वह बन्धन से छूट जाता है ।।१४।। अग्नि का वीर्य वह भस्म सोम से प्लावित होकर योग सम्बन्ध के बिना प्रकृति के अधिकार के निमित्त कल्पित होता है ।।१५।। योग युक्ति से वह भस्म सब प्रकार प्लावित होकर अमृत वर्षनेवाले शरीर के अधिकार से निवृत्त होता है ।।१६।। सो यह अमृत का संगम मनुष्यों को मृत्यु के जीतने के निमित्त हैं, शिवशक्ति से अमृत का संग प्राप्त होने से फिर मृत्यु कहां है ।।१७।। जो कोई इस गुप्त अग्नि के प्लावन को जानता है, जो कि शास्त्रोक्त है,

वह अग्निसोममय जगत् को छोड़कर फिर जन्म नहीं लेता ।।१८।। जो शिवाग्नि में शरीर को दग्ध करके शक्ति सोम के अमृत से उसे योगमार्ग दैवशास्त्र के द्वारा प्लावित करे, वह अमृत हो जाता है ।।१९।। इस अर्थ को हृदय में धारण करके शिवजी ने 'यह जगत् अग्नीषोमात्मक है' ऐसा उच्चारण किया ।।२०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डेऽष्टाविंशोऽध्यायः ।। २८ ।।

*****

उन्तीईसवां अध्याय

वायु बोले– अब मैं जगत् की वागर्थात्मकता कहता हूं, जिससे छः मार्गों का ज्ञान हो जाता है, सो विस्तार से न कहकर संक्षेप से वर्णन करता हूं ।।१।। कोई भी शब्द अर्थ रहित नहीं है, संकेत के जानने से सब शब्द सब अर्थ के कहनेवाले हैं; गवादि पद संकेत के बिना गौ आदि का ज्ञान नहीं होता ।।२।। यह प्रकृति का परिणाम शब्दार्थ रूप से दो प्रकार का कहा है, इसी को परमात्मा शिवा–शिव की विभूति वा प्रकृति कहते हैं ।।३।। जो शब्दात्मिका विभूति है, उसे पण्डितों ने तीन प्रकार की कहा है, स्थूल, सूक्ष्म और अपरा जो स्थूल है, सो श्रवण के प्रत्यक्ष गोचर है ।।४।। और सूक्ष्म चिन्तामयी अर्थात् मनमयी कहलाती है, चिन्ता से रहित परा है, सो ही शिवतत्त्व का आश्रय लिये क्रियाशक्ति है ।।५।। ज्ञानशक्ति के योग से ईश्वर की इच्छा के साथ सम्पूर्ण शक्तियों का समष्टि आत्माशक्ति तत्त्व नामवाला है ।।६।। वह सम्पूर्ण कार्य समूह की मूल प्रकृति है, वही विशुद्धमार्ग स्वरूपा कुण्डलिनी माया है ।।७।। वह विभाग स्वरूप है, उसीसे षडध्वात्मा विस्तृत होता है, उसमें तीन मार्ग शब्द के और तीन अर्थों के भी है ।।८।। वे सम्पूर्ण पुरुषों की निज शुद्धि के अनुरूप से लयभोग के विनियोग के निमित्त पूर्ण है, लयभोग के अधिकार सब तत्त्वों के विभाग से है ।।९।। कलाओं से वे तत्त्व यथायोग्य विभक्त हैं, प्रकृति की आदि में परिणाम से ही वे पांच प्रकार के हैं ।।१०।। वह कला, निवृत्ति आदि इसमें पर्याप्त हैं, यह निश्चय है, शब्दाध्वों को कहते हैं, मन्त्राध्व, पदाध्व और वर्णाध्व, (मन्त्राध्व अर्थात् अपने ज्ञान द्वारा मोक्षप्राप्ति का मार्ग) ।।११।। भुवनाध्व चतुर्दश भुवन रूप, तत्त्वाध्व महदादि तत्त्व स्वरूप, कालाध्व निवृत्त्यादि पंचक रूप इन सब शब्दों और अर्थों की परस्पर व्याप्य–व्यापकता कही जाती है ।।१२।। सब मन्त्र पदों से व्याप्त हैं और मन्त्रों का वाक्य स्वरूप होने से और वाक्यों का पद समूह होने से वह पद वर्णों से व्याप्त हैं, वर्णों के समूह का नाम पद विद्वानों ने कहा है ।।१३।। वर्णों से

जगत् व्याप्त होता रहा है, कारण कि उन वर्णों की भुवनों में प्राप्ति है, भुवन भी तत्त्वों के समूह से क्रम से ब्रह्माण्ड के बाहर-भीतर व्याप्त हैं ।।१४।। और वे अपने कारण तत्त्वों से अनेक प्रकार व्याप्त हैं और जो इस ब्रह्माण्ड के अन्तर में ब्रह्माण्ड है ।।१५।। वह शैवशास्त्र पुराणों में प्रतिपादन किये हैं और जो तत्त्व सांख्ययोग में प्रसिद्ध हैं ।।१६।। तथा और जो अनेक शिवशास्त्र में प्रसिद्ध हैं, वे सब तत्त्व निवृत्ति आदि कलाओं से यथावत् व्याप्त हैं ।।१७।। प्रथम पराकृति के आदि में पांच प्रकार के परिणामवाले हैं, वे कला, निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, विशुद्ध रूप हैं ।।१८।। इन कलाओं से परे वह पराशक्ति षडध्वों में अविभक्त होकर व्याप्त हो रही है, परप्रकृति भाव का वह सत्त्वादि शिवतत्त्व रूप से ।।१९।। इन षडध्वों में विद्यमान है, शक्ति को आदि लेकर पृथ्वी तक शिवतत्त्व से प्रकट है, यह सब उसी एक से व्याप्त है, जैसे घटादि में मृत्तिका ।।२०।। जो षडध्व से प्राप्त होता है, वही शिवजी का परम धाम है, शिवजी के स्थान में प्राप्त करनेवाली और व्याप्ति की शक्ति पांच तत्त्वों के शोधने से जानी जाती है ।।२१।। और निवृत्ति कला से रुद्र पर्यन्त अण्ड की स्थिति शोधी जाती है, प्रतिष्ठा कला से उससे ऊपर जहां तक अव्यक्त है, शोधा जाता है ।।२२।। विद्या से ऊपर विद्येश्वर तक शुद्ध होता है, शान्ति से उससे ऊर्ध्व अध्व पर्यन्त और शान्तातीत से विशुद्ध शुद्ध होती है ।।२३।। जिसको परप्रकृति के योग से परम व्योम कहते हैं, इन्हीं पांच तत्त्वों से सब जगत् व्याप्त है ।।२४।। साधकों को उसी में सब देखना चाहिये, अध्वव्याप्ति को बिना जाने जो शुद्धि करने की इच्छा करता है ।।२५।। वह वञ्चित होता है और उसे शुद्धि का फल नहीं मिलता, उसका श्रम वृथा है, केवल अधोयोनि में जाने के निमित्त है ।।२६।। शक्तिपात के योग से तत्त्व के बिना तत्त्व से वह व्याप्ति और विशुद्धि कोई भी जानने को समर्थ नहीं है ।।२७।। शक्ति ही आज्ञा, शिवसम्बन्धिनी चिद्रूपा परमेश्वरी है, जिसके कारण (साधन) भूत होकर सब में शिवजी अधिष्ठित हैं ।।२८।। न आत्मा न माया और न यह विकार है, जो विचारकर देखा जाय, तो न बन्ध है न मुक्ति है और बन्ध मुक्ति का विधान करनेवाली है ।।२९।। सब ऐश्वर्य की पराकाष्ठा शिवजी की अव्यभिचारिणी शक्ति है, विशेषकर शिवजी के उन-उन भावों के समान धर्मिणी है ।।३०।। वह शिवजी उससे गृही (गृहस्थी) और वह शक्ति उनसे सदा गृहिणी है, उनकी सन्तान जो कार्य है, वही परप्रकृति से उत्पन्न हुआ जगत् उनकी सन्तान है ।।३१।। वही कर्ता शिवजी है, शक्ति कारण रूप से कल्पित है, इसीसे वे जगत् के माता-पिता कहे हैं, यदि इतना भेद है, एक ही शिवजी दो प्रकार से स्थित हैं ।।३२।। स्त्री-पुरुष रूप से कोई उसमें भेद कहते हैं, कोई पराशक्ति शिवजी में नित्य मिली कहते हैं ।।३३।। जिस प्रकार सूर्य की प्रभा सूर्य से भिन्न और अभिन्न है, उसी प्रकार वह शक्ति है इस कारण शिवजी ही परमकारण हैं, उनकी आज्ञा वह परमेश्वरी है ।।३४।। उसीसे वह शिवजी की अविनाशिनी मूलप्रकृति

प्रेरित होकर त्रिगुणात्मक होती है, महामाया के भेद से वह प्रकृति त्रिगुणात्मक होकर ।।३५।। कार्य के भेद से तीन प्रकार की हो षडध्वों को प्रकट करती है, वह वाणी और अर्थमय षडध्व है, जिससे सब जगत् व्याप्त है ।।३६।। शास्त्रों में इसीका महाविस्तार कहा है ।।३७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे

षडध्वकथनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ।। २९ ।।

*****

तीसवां अध्याय

ऋषि बोले– शिवजी के चरित्र बड़े विचित्र और गहन हैं, यह देवताओं को जानने को अशक्य हैं, हमारे मन मोहित करते हैं ।।१।। शिवा–शिव के तत्त्वज्ञान में कोई दोष विदित नहीं होता, उन दोनों के चरित्र में विशेषकर प्रकृति सम्भव भाव रहता है ।।२।। यद्यपि ब्रह्मादिक भी लोकों की उत्पत्ति, पालन और प्रलय के कारण हैं, परन्तु वे निग्रह अनुग्रह को प्राप्त होकर शिवजी के वशवर्ती हैं ।।३।। परन्तु शिवजी किसी के निग्रह अनुग्रह के स्थान नहीं हैं, इस कारण शिवजी का ऐश्वर्य किसी के आधीन नहीं यह निश्चय है ।।४।। जो कि यह इस प्रकार का ऐश्वर्य है, यही स्वतन्त्रता का लक्षण है, सो इनका स्थान मूर्तिमान कैसे हो सकता है ? ।।५।। जगत् के कारण होने से स्वतन्त्र की मूर्ति नहीं हो सकती, मूर्ति में कार्यत्व होने से बिना हेतु उसकी सिद्धि हो सकती है ।।६।। सर्वत्र निर्गुण भाव कहा है, दूसरा नहीं, फिर निर्गुण और सगुण एक ही में दो कैसे स्थित हो सकते हैं ? ।।७।। परम परमात्मा का निर्गुण स्वभाव है, फिर वह स्वभाव के विपरीत कैसे हो सकता है ? ।।८।। और स्वतन्त्र की इच्छा से यदि उसका स्वभाव विपरीत हो जाय, तो वह ईशान अपने नित्य स्वरूप को अनित्य क्यों नहीं करता ? ।।९।। मूर्ति आत्मावाला जो कोई सगुण है, वह निर्गुण शिवजी से अन्य है, यह सब कुछ सर्वत्र शिवजी से ही अधिष्ठित है ।।१०।। जब कभी इन शिवजी की मूर्ति में वह मूर्तिमान् परतन्त्र हो सकता है, यह निश्चय है ।।११।। नहीं तो निरपेक्ष की कल्पना मूर्ति किस प्रकार हो सकती है ? इस कारण मूर्ति साध्यफल की इच्छा से मूर्ति का स्वीकार होता है, स्वेच्छा से ही भगवान् मूर्ति धारण करे, तो परतन्त्रता नहीं हो सकती; कारण कि अपनी इच्छा भी पुरुषों को कर्मानुसारिणी होती है ।।१२–१३।। अपनी इच्छा से देह को धारण करने और त्यागने को समर्थ ब्रह्माजी से लेकर पिशाच पर्यन्त है, क्या वे कर्म के वशवर्ती हैं ? ।।१४।। इच्छा से देह का निर्माण इन्द्रजाल के समान है; अणिमादि गुण ऐश्वर्य वशी करने से ।।१५।।

युद्ध करते हुए दधीचि ऋषि के साथ विष्णुजी ने विश्व रूप धारण किया ।।१६।। परन्तु परमात्मा शिवजी का सबसे अधिक ऐश्वर्य होने से यदि शरीर धारण करें, तो हमें वे भी दूसरों के समान विदित होंगे ।।१७।। परमकारण शिवजी को सबका अनुग्रह करनेवाले कहा है; वह देवतादिकों के निग्रह करनेवाले सबके अनुग्राहक किस प्रकार हो सकते हैं? ।।१८।। ब्रह्माजी का पांचवां सिर देव ने भेदन किया, यह भी किसी कल्प की कथा है; पुत्र होकर भी उन्होंने शिवजी की निन्दा की, यह कुमति और हठ की ।।१९।। और विष्णुजी के नृसिंह रूप को शरभ रूप से शान्त किया और चरणों से आक्रमण करके नखों की तीक्ष्णता से उनके हृदय को विदारण किया ।।२०।। देवताओं की स्त्रीयां और देवताओं में दक्ष के यज्ञ के कारण वीरभद्र वीर ने सबको दण्डित किया ।।२१।। किसी को न छोड़ा, स्त्री सहित त्रिपुरदैत्य और वहां के बालकों को क्षणमात्र में उन देवादि देव ने त्रेताग्नि का ईंधन कर दिया अर्थात् भस्म कर दिया ।।२२।। और प्रजाओं की प्रीति के निमित्त स्वयं रतिपति कामदेव को देवताओं का निषेध करते-करते नेत्र के हुताशन में हवन कर दिया ।।२३।। और जो गौ उनके सिर पर दूध डालती थी उनको मी क्रोध से देव ने भस्म कर दिया; अर्थात् अदृश्य कर दिया ।।२४।। जलंधर एक बड़ा असुर था, उसने जल को पैरों से चक्राकार करके अनन्त से बांधकर विष्णुजी को सौ योजन पर फेंक दिया ।।२५।। उसी जलंधर को जिन शिवजी ने त्रिशूल से मार दिया, उसी चक्र को तपस्या से लेकर भगवान् महापराक्रमी हुए ।।२६।। और दैत्यों के कुल को दया रहित होकर नष्ट कर देते हैं, त्रिशूल से अन्धकासुर का हृदय अग्नि के समान तप्त किया ।।२७।। और कण्ठ से काल रूप स्त्री को उत्पन्न करके दारुक को मारा, गौरी की त्वचा से कौशिकी को उत्पन्न कराकर ।।२८।। शुम्भ और निशुम्भ का रण में मरण कराया; स्कन्दपुराण में स्कन्द का महाआख्यान श्रवण किया है ।।२९।। जो कि उन्होंने महाबली तारकासुर का वध किया; ब्रह्माजी की प्रार्थना से देवादि देव मन्दराचल से अन्तःपुर में गये ।।३०।। वहां बहुत दिनों तक विहार कर प्रसंग से अपने आघात से पृथ्वी को रसातल में प्राप्त हुई के समान कर दिया ।।३१।। और अपने बड़े पराक्रम से देवी को वंचित करते हुए अपने अमोघवीर्य को उनमें न त्यागकर अग्नि में हवि से पवित्र अमृत के समान त्याग दिया ।।३२।। और फिर अग्नि द्वारा उसके अंश सहित गंगा में प्राप्त कराया, सो शनैः-शनैः हरण करके थोड़ा-थोड़ा इधर-उधर लेकर ।।३३।। अग्नि की स्त्री स्वाहा द्वारा जो कृत्तिका के रूप से अपने भर्ता से रमण की इच्छा करती थी, स्वीकार किया गया, फिर जो मेरु पर्वत पर शरकण्डों के वन में सुवर्ण के समान रखा गया था ।।३४।। कुछ दिनों में उससे दशों-दिशाएँ प्रदीप्त हो गईं; सब पर्वतों को रंजित करके सुमेरु को सुवर्णमय कर दिया ।।३५।। तब बहुत काल पीछे उस तेज से कुमारों के निदर्शन रूप सुकुमार शरीर कुमार अवस्था को प्राप्त मनोहर शरीरवाला एक बालक उत्पन्न हुआ ।।३६।।

उसका मनोहर शिव रूप देखकर देवासुरादि सब लोक विस्मित और मोहित हो गये ।।३७।। पुत्रदर्शन की इच्छा से स्वयं शिवजी वहां आये देव सहित हास्य मुखवाले उसको गोदी में बैठाकर विवश होकर ।।३८।। अन्तरात्मा से पुत्र के मुख का पान करने लगे, उस समय वीतराग तपस्वियों ने देव का दर्शन करके ।।३९।। अपने हृदय और अंग में कुमार को नृत्य कराकर उसकी क्रीड़ा का अनुभव कर परस्पर वार्ता करके ।।४०।। दूध पीने की आज्ञा दी, तब देवी ने अमृत के समान दूध पिलाकर 'तुम्हारा अवतार जगत् के हित के निमित्त है', ऐसा कहकर ।।४१।। देवी और देव किसी प्रकार से तृप्त न हुए, तब इन्द्र से सम्मति करके जो कि तारकासुर से भयभीत हो रहे थे ।।४२।। देवताओं के सेनापति के पद में उनका अभिषेक करके त्रिपुरहन्ता शिवजी ने पुत्र को अन्तरित करके ।।४३।। अर्थात् युद्ध में कालाग्नि के समान क्रौंच विदारिणी शक्ति देकर, इन्द्र से रक्षित करके स्वयं शिवजी अन्तर्धान हुए ।।४४।। युद्ध में कालाग्नि के समान क्रौंच पर्वत को विदीर्ण करनेवाली उस शक्ति से कुमार ने इन्द्र के भय सहित तारकासुर का सिर छेद डाला और विधाता विष्णुजी आदि विशेष कर उनकी स्तुति करने लगे ।।४५।। इसी प्रकार महाबली रावण ने जब अपनी भुजाओं से पर्वतश्रेष्ठ कैलास उठा लिया ।।४६।। तब शूलधारी शिवजी ने उसका यह अपराध न सहकर चरण के अंगूठे से रावण को पृथ्वी में दाब दिया ।।४७।। कोई ब्रह्मचारी वा मार्कण्डेय उनका भक्त जब आयु हीन हुआ तब शिवजी ने तत्काल आकर बचाया; यम ने उनके चरणों को प्रणाम किया ।।४८।। वृषेन्द्र अपने वाहन को न जानकर वडवानल को ही वृषभ जानकर प्रलय के समय गला पकड़कर ले आये ।।४९।। और वह आनन्ददायक वृत्त जो कि लोक में विदित नहीं हैं, उनमें केवल अंग को चलाने से ही जगत् को चलायमान कर दिया, निर्गुण में यह सब कैसे सम्भव हैं? ।।५०।। जो शान्त होकर शिवजी सदा सबके ऊपर अनुग्रह करते हैं, तो समर्थ होकर सबको एक बार मुक्त क्यों नहीं कर देते? ।।५१।। जो कहो, प्रारब्ध कर्म रहने से सब किस प्रकार मुक्त हो सकते हैं? तो दुःख प्राप्ति में कर्मों का कारण भी तो ईश्वर का कराया होता है ।।५२।। बहुत सी नास्तिकता के हेतु की तर्क से क्या है? जिस प्रकार हमारा सन्देह दूर हो; हे पवनदेव! सो आप कहिये ।।५३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
त्रिंशोऽध्यायः ।। ३० ।।

*****

इकतीसवां अध्याय

वायु बोले– हे ब्राह्मणो! आपने हेतु देकर उचित ही सन्देह किया है; बुद्धि सावधान करने के निमित्त जिज्ञासा है, नास्तिकता नहीं है।।१।। सत्पुरुषों का मोह दूर करनेवाला प्रमाण इसमें कहता हूं, शिवजी की प्रसन्नता के बिना असत्पुरुषों को अन्यथा भाव होता है।।२।। परिपूर्ण स्वभाव शिवजी का परानुग्रह के सिवाय और कुछ भी कर्तव्य नहीं है।।३।। पराये अनुग्रह के कर्म में स्वभाव ही समर्थ है, निःस्वभाव से तो कुछ भी नहीं हो सकता।।४।। यह पशुपाशात्मक जगत् सब उत्तमों के अनुग्रह करने के योग्य है; दूसरों पर अनुग्रह करने के निमित्त ही शिवजी की आज्ञा होती है।।५।। वही पति आज्ञा देनेवाला सदा सब पर अनुग्रह कर्ता है; उन्हींके निमित्त उक्त प्रयोजन के स्वीकार में शिवजी अनुग्रह करने से किस प्रकार परतन्त्र हो सकते हैं?।।६।। जो अनुग्रह में अनपेक्ष हो तो कैसे अनुग्रह हो सकता है? इस कारण स्वतन्त्र शब्द का अर्थ नहीं कि, उसे किसी की अपेक्षा न हो।।७।। और जो अनुग्रह करनेवाले को परतन्त्र कहो तो अनुग्रह के बिना भुक्ति–मुक्ति का भी अन्वय न होगा।।८।। शिवजी की आज्ञा के निवृत्त न होने से मूर्ति आत्मावाले भी अनुग्रह करने के योग्य हैं, इस संसार में ऐसा कोई भी नहीं जो शिवजी की आज्ञा में अधिष्ठित न होगा।।९।। जिस सगुण के द्वारा निर्गुण की हम प्राप्ति करते हैं, वही मूर्ति आत्मावाले शिवजी की मूर्ति कही है।।१०।। यह परम कारण शिवजी निर्गुण ही नहीं हैं; इसके सच्चिदानन्द स्वरूप को तो कोई भी नहीं जान सकता।।११।। उसके स्वरूप का साधक प्रमाणगम्य श्रवण, मनन आदि लभ्य मात्र है, इनमें प्रत्यक्ष दर्शन के अन्तरवाली अपेक्षा बुद्धि न करनी चाहिये।।१२।। कोई साक्षात् आत्मा के उपलक्षणवाली मूर्ति है, तो मूर्ति आत्मावाले शिवजी का मूर्ति उपलक्षण है।।१३।। जैसे कोई काष्ठादि में न आरूढ़ हुई अग्नि नहीं दीखती, उसी प्रकार शिवजी भी मूर्ति में अनारूढ़ हुए नहीं दीखते, यह स्थिति है।।१४।। जैसे 'अग्नि लाओ' कहने पर इस पर जलता हुआ काष्ठखण्ड लाया जाता है; केवल अग्नि कोई नहीं ला सकता, इसी प्रकार मूर्तिवाले शिवजी पूज्य हैं।।१५।। इसी प्रकार पूजा की आदि में मूर्ति आत्मावाले शिवजी का पूजन होता है; मूर्तिआत्मा में किये हुए साक्षात् शिवजी का ही पूजन होता है।।१६।। लिंगादि की प्रतिमा बनाकर उस–उस मूर्ति के भाव में पूजा विशेष से हम शिवजी की उपासना करते हैं।।१७।। जिस प्रकार वह मूर्तिआत्मा परमेश्वर निर्गुण हम पर अनुग्रह करते हैं, उसी प्रकार मूर्तिआत्मा में निष्ठित परमेश्वर की हम जीव उपासना करते हैं।।१८।। शिवजी परमात्मा ने लोकों पर अनुग्रह करने के निमित्त ही सदाशिवादि मूर्तिआत्मा से स्थित हुए हैं, वह मूर्तिआत्मा के भाव से स्वयं अनुग्रह को प्राप्त होकर

शिवजी से अधिष्ठित होकर दूसरी आत्माओं पर अनुग्रह करते हैं।।१९।। आत्मा भोग और मोक्ष के निमित्त विशेष करके है, तत्त्व रूप होने से उन मूर्तिआत्मक स्वरूप में शिवजी की प्राप्ति है।।२०।। भोग कर्मों के विपाक से होता है, वह सुख-दुःख रूप है, जब शिवजी में कर्म नहीं है, तो भोग कैसे हो सकता है?।।२१।। शिवजी सब ही पर अनुग्रह करते हैं, किसी का निग्रह नहीं करते, जो निग्रह के दोष हैं, वे शिवजी में नहीं हैं।।२२।। और जो ब्रह्मादिक में कहीं निग्रह देखा गया है, वह भी शिवजी ने लोक के हित के निमित्त ही किया है।।२३।। शिवजी को इस जगत् का आधिपत्य है, इसमें सन्देह नहीं, श्रीकण्ठ नाम की शिवजी की मूर्ति क्रीड़ा करती हुई जगत् में स्थित है।।२४।। दोष पूर्वक ही देवता ब्रह्मादि को यथायोग्य दण्डित किया था, इससे वे पाप रहित हो गये और प्रजा दुःख रहित हो गयी।।२५।। इस प्रकार निग्रह का पण्डितों को निन्दित नहीं है, इसी प्रकार राजाओं की दण्डयोग्यों में दण्ड करने की प्रशंसा कही है।।२६।। जो सिद्धि ईश्वर के कार्य से नित्य होती है, यदि वह अपनी ईश्वरता न करे, तो जगत् के ईश्वर किस प्रकार कहे जाँय?।।२७।। ईश्वरता विधातापन यह विधि की आज्ञा कही हैं, यह इस प्रकार करो; इसका नाम आज्ञा है; यह मत करो इसका नाम अनुशासन है।।२८।। उसके शासन के अनुसार वर्तना साधुभाव का लक्षण है, विपरीत करने का नाम असाधुपन है, यह बात सब में नहीं दीखती।।२९।। यदि साधुपद की रक्षा करने की इच्छा हो तो विपरीतता छोड़ो और सामादि उपाय के विफल होने से अन्त में दण्ड होता ही है।।३०।। दण्ड के पीछे अनुशासन करना ही हित का लक्षण है, इससे विपरीत करने का ही नाम अहित है।।३१।। सदा सब के हित में रहना यही ईश्वर में दृष्टान्त है, फिर असत्पुरुषों के निग्रह करने से वह किस प्रकार दूषित हो सकता है?।।३२।। अयुक्त करनेवाले अज्ञानी लोक में निन्दित होते हैं, जो कर्म लोक को उत्तेजित करता है, उसे अयुक्त कहते हैं।।३३।। लोक में सबका निग्रह विद्वेष पूर्वक नहीं है, जो पिता पुत्र को निग्रह पूर्वक शिक्षा देता है, वह द्वेषी नहीं कहलाता है।।३४।। दूसरे पक्ष की सहायता छोड़कर मध्यस्थ होकर निग्रह करना अथवा मार्ग से अर्थात् न्याय से निग्रह करना उसमें भी अवश्य कुछ कठोरता रहती है।।३५।। जो निर्घृणता न हो, तो वह दूसरे दोषियों को भी न मारे, वह अत्यन्त मध्यस्थता धारण किये अज्ञों को दण्ड देते हैं।।३६।। इस कारण जो दुःखात्मक हिंसा करता है, वह निर्घृण है, ऐसा कोई नियम कहते हैं, परन्तु दूसरे इस बात को नहीं मानते।।३७।। निदान का जाननेवाला वैद्य रोग का नाश करता हुआ कुछ भी निर्घृणी (कठोर) नहीं हो सकता, प्रत्युत दया ही करता है।।३८।। मारने योग्य प्रतियोगियों पर दया करना गुण नहीं है, शीघ्र ऐसे जीवों में दयावाला भ्रान्ति से दया रहित होकर निर्घृणी होता है।।३९।। रक्षा करने योग्य विरोधियों की उपेक्षा करनी भी दोष है, शक्ति होने पर उपेक्षा करने से रक्ष्य वस्तु शीघ्र नष्ट हो जाती है।।४०।। सर्प के मुख में जाती हुई रक्ष्य

वस्तु को देखकर जो उपेक्षा करता है, दोष देखकर उपेक्षा करनेवाला अवश्य निर्घृणी है।।४१।। इस कारण सर्वथा दया करना गुण है, यह वार्ता सत्य नहीं, कार्य होने पर दया सम्मत है, अन्यथा असम्मत है।।४२।। यह सत्य है कि, मूर्तिआत्मावाले में रागादि दोष होते हैं, परन्तु यह दूसरों में होते हैं, शिवजी में सर्वथा नहीं है, अग्नि में कालिमा सहित तांबा रखा जाय तो।।४३।। ताम्र संसर्ग के कारण से यह अग्नि दूषित नहीं होती, अशुचि सम्पर्क से अग्नि अपवित्र नहीं होती।।४४।। परन्तु अपवित्र वस्तु अग्नि के संयोग से शुद्ध हो जाती है, इस प्रकार आत्मसंसर्ग से शुद्ध करने से शिवजी किसी प्रकार अशुद्ध नहीं हैं।।४५।। शिवसंसर्ग से शोधने से आत्मा शुद्ध हो जाती है, अग्नि में लोहा रखने से अग्नि का दाह होता है, लोहे का नहीं।।४६।। इसी कारण से मूर्तिआत्मा में शिवजी का ही ऐश्वर्य है, अनात्मा का नहीं, काष्ठ ऊपर को नहीं जलता है किन्तु अग्नि ही ऊपर को जलता है।।४७।। काष्ठ में अंगारता है, अग्नि में नहीं; इसी प्रकार ईश्वर में लगा देना चाहिये, इस प्रकार इस जगत् में काष्ठ, पाषाण, मृत्तिका में।।४८।। शिवजी के आवेश से शिवत्व कहा जाता है, मैत्री, क्षमा, चतुरता यह गुण गौण हैं, कारण कि यह चित्त की वृत्ति है।।४९।। उन गुणों से युक्त वे चित्त की वृत्तियां जीवों को गुण और दोष के निमित्त होती हैं, जो गौण और अगौण हैं वह सब अनुग्रह करते हुए शिवजी की गुणवृत्ति रूप मायाविलास का रूप होने से गुण और दोष के निमित्त नहीं होती है।।५०।। संसारमोचन रूप अनुग्रह शब्दार्थ को विद्वान् गौण नहीं कह सकते, किन्तु उसे शिवजी की आज्ञामय जानते हैं।।५१।। उनकी आज्ञा का करना हित है और जो हित है सो अनुग्रह है, इन सबको नियुक्त करते हुए शिवजी सबके अनुग्रह करनेवाले हैं।।५२।। जो उपकारक शब्द का अर्थ है, उसीको अनुग्रह कहते हैं, उसके हित रूप होने से शिवजी सबके अनुग्रह करनेवाले हैं।।५३।। वह चित् अचिदात्मक सदा सबके हित में नियुक्त हैं, वह स्वभाव में प्राप्त हुए प्राणी उस हित को सम रूप से प्राप्त नहीं होते।।५४।। जिस प्रकार सूर्य की किरण से कमल खिलते है, परन्तु वे कमल स्वभाव के अनुसार बराबर नहीं खिलते।।५५।। पदार्थों का स्वभाव ही भावी अर्थ का कारण है, कोई भी स्वभाव से होनेवाले अर्थ को विपरीत नहीं कर सकता।।५६।। जिस प्रकार से अग्नि का संगम सुवर्ण को ही द्रुत करता है, अंगार को नहीं,उसी प्रकार पूर्ण दोषोंवालों को शिवजी त्याग देते हैं, अपक्व मलवालों को नहीं।।५७।। जो जैसे होने को योग्य हैं, वह वैसा स्वयं नहीं होता, बिना चेतन क्रिया के वह कर्ता स्वतन्त्र कैसे हो सकता है?।।५८।। जो निर्मल स्वभाव के समान सबके ऊपर अनुग्रह करनेवाले हैं और जो स्वभाव से मलीन है, उसी आत्मा की जीव संज्ञा है।।५९।। फिर अन्यथा यह अपने नियम से नहीं चल सकते, ईश्वर के विपरीत नहीं कर सकते; इससे शिव स्वरूप कैसे हो सकते हैं? कर्म और माया के होने से इसे संसार नाम से विद्वानों ने कहा है।।६०।। कर्म और माया का अनुबन्ध कारण जीव को ही है

और जीव के स्वभावानुसार मल से होता है, उपाधि से नहीं ।।६१।। और उस आगन्तुक मल की उपाधि भी किसी कारण से अवश्य होती है, जो इसमें कारण है, सो अनेक स्वभावों से विचित्र होती है, कार्य के भेद से कल्पना नहीं हो सकती; जो कर्म और माया का अनुबन्ध है वह स्वभाव से विचित्र है ।।६२।। आत्मा के समान होने में भी कोई बद्ध और मुक्त है, उनमें कोई लय के अधिकार से, कोई भोग के अधिकार से ।।६३।। ऊँच-नीच भाव को आश्रित होकर ज्ञान, ऐश्वर्य आदि विषम तारतम्य को प्राप्त होते हैं, कोई मूर्ति रूपता को और कोई समीपता को प्राप्त होते हैं ।।६४।। कोई मूर्त्यात्मा में मंगल रूप होकर षडध्वज से ऊपर स्थित रहते हैं; मध्य में महेश्वरजी और रुद्र रूप ही उससे नीचे पद में स्थित होते हैं ।।६५।। निकट होने के समावेश में तीन कारण हैं, उसमें भी आत्मा नीचे, अन्तरात्मा मध्य में ।।६६।। और परमात्मा ऊर्ध्व में स्थित है, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर तथा परमात्मा के आश्रित कोई दूसरे इस जीवपद को प्राप्त होते हैं ।।६७।। कोई अन्तरात्मापद में कोई आत्मपद में स्थित हैं, शान्त्यतीतपद में शिवजी के भक्त और शान्ति में माहेश्वर (महेश्वर के उपासक) स्थित होते हैं ।।६८।। विद्या में रौद्र, प्रतिष्ठा में वैष्णव, निवृत्ति में आत्मा, ब्रह्मा और ब्रह्मपुत्र स्थित हैं ।।६९।। आठ देवयोनियां उत्तम हैं, मनुष्ययोनि मध्यम हैं, पशु आदि पांच अधम योनियां हैं (पशु, पक्षी, सर्प, कृमि, दंश) इस प्रकार यह चौहद योनियां हैं ।।७०।। ऊंचे-नीचे योनियों में जाना यह जीव का निज मल सत्वादि गुण है, भोग में पहले वह कर्म आम अर्थात् कच्चे कहे हैं और पीछे भोगने पर पक्वता हो जाती है ।।७१।। मल भी कच्चे और पक्के संसार के कारण होते हैं, कच्चे होने से नीचे और पक्के हो जाने पर क्रम से ऊर्ध्वगति होती है, अर्थात् भोग चुकने पर अधोयोनि नहीं मिलती ।।७२।। पशुआत्मा भी एक मल अर्थात् सत्वप्रधान; द्विमल अर्थात् सत्व, रज प्रधान; त्रिमल अर्थात् सत्त्व, रज, तम प्रधान के भेद से तीन प्रकार के हैं, उनमें एक मलवाले उत्तम, दो मलवाले मध्यम और तीन मलवाले अधम जानने ।।७३।। दो मल और एक मलवाले क्रम से तीन मलवाले अधिष्ठित होते हैं, इस प्रकार जगत् में उपाधिभेद कल्पित है ।।७४।। एक, दो, तीन अर्थात् सब गुणवालों के शिवजी अधिपति हैं, अशिवात्मक भी यह जगत् शिवजी से जैसे अधिष्ठित है ।।७५।। इसी प्रकार अरुद्रात्मक जगत् रुद्र से अधिष्ठित है, अण्ड पर्यन्त यह महाभूमि रुद्र में अधिष्ठित है ।।७६।। माया पर्यन्त यह जगत् देवताओं से अधिष्ठित है, अंगुष्ठ मात्र पुरुषों से चारों ओर से व्याप्त है ।।७७।। महामाया के अवसानवाला स्वर्गभवन के अधिपति वामादि देवताओं से अधिष्ठित है, सम्बन्ध रहित होकर भी पूर्व कहे हुए अध्वा के अन्तर में रहनेवालों से अधिष्ठित है ।।७८।। वे ही साक्षात् स्वर्ग और अन्तरिक्ष में रहनेवाले हैं और पृथ्वी पर रहनेवाले देवता देवताओं के व्रत करनेवालों से स्तुति किये गये हैं ।।७९।। इस प्रकार से कच्चे तीन मलों के पृथक्-पृथक् पकने से कारणभूत संसार में आवागमन

का रोग पुरुषों को प्रवृत्त होता है ।।८०।। इस रोग की औषधी आज्ञा से प्राप्त हुआ ज्ञान है, इसकी आज्ञा देनेवाले वैद्य शिवजी परम कारण हैं ।।८१।। जो बिना प्रयास के शिवजी जीवों के दुःख दूर करने में समर्थ हैं, तो फिर दुःख क्यों करते हैं? इसमें विचार की आवश्यकता नहीं ।।८२।। संसार में सब ही को दुःख है, यह निश्चय है, कारण कि संसार दुःखमय है, फिर स्वभाव के विपरीत दुःख-अदुःख कैसे हो सकता है?।।८३।। वैद्य की औषधी से रोग-अरोग नहीं होता, किन्तु जाता रहता है, परन्तु वैद्य रोग से व्याकुल रोगी को सुख करके रोग दूर करता है ।।८४।। इसी प्रकार स्वभाव से मलीन और स्वभाव से दुःखी जीवों को अपनी आज्ञा की औषधी विधान से शिवजी दुःख से मुक्त कर देते हैं ।।८५।। रोग में वैद्य कारण नहीं, शिवजी संसार के कारण हैं, इस विषमता में भी शिवजी का दोष नहीं है ।।८६।। जिसमें स्वभाव से दुःख है, फिर किस प्रकार इसके कारण रूपी शिवजी स्वाभाविक बलसंयुक्त पुरुषों को इस संसार से पृथक् करे?।।८७।। जो संसार का कारण है वह मल माया और अचेतनता है, वह शिवजी के साक्षी होने से स्वयं प्रवृत्त होती है ।।८८।। जैसे अयस्कान्त (चुम्बक) मणि निकट होने से लोहे को खींचती है और अतिनिकट होने से लोहा चलायमान होता है, इसी प्रकार शिवजी के सान्निध्य से जगत् चलता है ।।८९।। इस सहकारी निकटता को निवृत्त करने को कोई समर्थ नहीं है, अज्ञात हुए शिवजी की इसमें सदा प्रतिष्ठा रहती है ।।९०।। शिवजी के बिना इस जगत् में कुछ भी प्रवृत्त नहीं होता, यद्यपि यह सब उन्हीं की प्रेरणा है, तथापि वे दुःखी नहीं होते ।।९१।। उनकी आज्ञा आत्मिकाशक्ति सब ओर से व्याप्त है, तो भी उसमें कोई दोष नहीं है ।।९२।। जिसमें यह वस्तु प्रथम नहीं, जो सबसे प्रथम सबको वश करनेवाले वे ही ईश्वर है, ईश होने से उनकी आज्ञा है; तथापि वे दूषित नहीं होते ।।९३।। जो अज्ञान से अन्यथा मानता है, वह दुर्मति नष्ट होता है, यह सब उन्हीं की शक्ति का वैभव है, तो भी वह दूषित नहीं है ।।९४।। इसी समय आकाश से वेदवाणी ऋषियों के मध्य में हुई; 'सत्यम् ओम् अमृतं सत्यम्' अर्थात् यह सत्य है, इस प्रकार स्फुट सुनाई दी ।।९५।। तब वे ऋषि परम प्रसन्न हुए, उनके सब सन्देह मिट गये और वे मुनि विस्मित होकर पवनदेव को प्रणाम करने लगे ।।९६।। इस प्रकार पवनदेव मुनियों को सन्देह रहित करके अभी इनको पूर्ण ज्ञान नहीं हुआ यह जानकर बोले ।।९७।। वायु बोले- परोक्ष-अपरोक्ष दो प्रकार का ज्ञान होता है, परोक्ष अस्थिर और अपरोक्ष निश्चल है ।।९८।। हेतु और उपदेश युक्त वाक्य को परोक्ष कहते हैं; अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) ज्ञान श्रेष्ठ अनुष्ठान से होता है ।।९९।। अपरोक्ष ज्ञान के बिना मोक्ष नहीं होता, ऐसा निश्चय करके आप श्रेष्ठ अनुष्ठान की सिद्धि के निमित्त यत्न करें ।।१००।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
शिवतत्त्वकथनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ।। ३१ ।।

बत्तीसवां अध्याय

ऋषि बोले- हे पवनदेव! वह कौनसा अनुष्ठान है, जिससे अपरोक्ष ज्ञान होकर मुक्ति प्राप्त होती है? उसके साधन क्या हैं? सो आप हमसे कहिये।।१।। वायु बोले- शिवजी की उपासना ही परम धर्म है, वही श्रेष्ठ अनुष्ठान कहा है, जिससे मोक्ष के देनेवाले शिवजी अपरोक्ष होते हैं।।२।। यह पांच खण्डों में होने से पांच प्रकार का है, क्रिया, जप, तप, ध्यान और केवल ज्ञान आत्मा से विचार करना।।३।। उन उत्कृष्ट धर्मान्तरों के सहित सिद्ध हुआ धर्म अपरम कहलाता है, जिससे परोक्ष और अपरोक्ष मोक्ष का देनेवाला ज्ञान होता है।।४।। परम और अपरम यह दोनों धर्म वेद में कहे हैं, धर्म में वेद ही हम को परम प्रमाण है।।५।। पाशुपत योग पर्यन्त परम धर्म उपनिषद् भाग में स्थित है और अपरम योगादि धर्म यह श्रुति के मुख अर्थात् अन्तर में स्थित है।।६।। जो परम धर्म है, उसमें मायापाश रहित आत्माओं का अधिकार है और योगादि साधारण धर्म होने से इसमें सबका अधिकार है।।७।। यह अपर धर्म परम धर्म का साधन है; यह धर्मशास्त्रों में अंगों सहित पुष्ट किया है।।८।। उसमें आद्य जो शिवधर्म है, जो श्रेष्ठ अनुष्ठान कहा गया है, इतिहास, पुराणों में कुछ उसका कथन है।।९।। शैवशास्त्रों में इसका सांगोपांग विस्तार है, शिवदीक्षा लेने के संस्कार भी सब वर्णन किये हैं।।१०।। श्रुति और स्मृति के भेद से शैवशास्त्र दो प्रकार का है, वेदशास्त्रमय श्रौत और दूसरा स्वतन्त्र है।।११।। स्वतन्त्र पहले दश और पीछे अठारह प्रकार हुआ, कामिकादि नाम से लेकर सिद्धान्त संज्ञावाला सिद्ध है।।१२।। जो वेदसारमय है, उसका सौ करोड़ विस्तार है; जिसमें पाशुपत व्रत परम ज्ञान कहा जाता है।।१३।। जो युग-युग में योगाचार्य का अवतार लेकर शिवजी जहां-तहां शिष्यवर्गों को लेकर उपदेश करते हैं।।१४।। उसीको संक्षेप करके रुरु, दधीचि, अगस्त और महायशस्वी उपमन्यु ने कहा है।।१५।। वह संहिताओं के प्रवृत्त करनेवाले पशुपति व्रतधारी कहे जाते हैं, उनके सन्तान, गुरुजन सहस्रों हुए।।१६।। उन्होंने चार प्रकार से परम धर्म कहा है, उनमें पाशुपत योग शिवजी के प्रत्यक्ष करने में दृढ़ है।।१७।। इस कारण पाशुपत योग ही श्रेष्ठ अनुष्ठान है, उसका उपाय जो ब्रह्माजी ने कहा सो कहते हैं।।१८।। यह अष्टांग योग शिवजी ही ने कल्पना किया है, उस योग से एक साथ ही शैवी बुद्धि प्रकट होती है।।१९।। उस बुद्धि के होने से शीघ्र ही परम ज्ञान प्राप्त हो जाता है, जिसको यह ज्ञान होता है, शिवजी उसके ऊपर शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं।।२०।। उनके प्रसाद से ही परम योग की प्राप्ति होती है; जो शिवजी को अपरोक्ष कर देता है; शिवजी के

प्रत्यक्ष होने से संसार का कारण छूट जाता है ।।२१।। तब यह संसार से मुक्त होकर शिवजी के समान हो जाता है, ब्रह्माजी ने जो उपाय कहा है, वह पृथक्-पृथक् कहा गया है ।।२२।। शिव, महेश्वर, रुद्र, प्रपितामह, ब्रह्माजी, संसार वैद्य, सर्वज्ञ, परमात्मा यह मुख्य नाम हैं ।।२३।। यह आठ नाम नित्य शिवजी के प्रतिपादक हैं, शिव, महेश्वर, रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा यह पांच और ''शान्त्यातीतपदे शैवाः०'' यहां से लेकर ।।२४।। तीन यह पांच उपाधियों के ग्रहण करने से वह शिवादि की संज्ञा धारण करते हैं, उपाधि दूर होने से सब भेद निवृत्त हो जाता है ।।२५।। वह पद नित्य और पदवाले अनित्य हैं, पद की परिवृत्ति में पदवाले मुक्त हो जाते हैं ।।२६।। परिवृत्ति के अन्तर में उपाधि से फिर पद की प्राप्ति होती है, आदि के पांच नाम आत्मान्तर के नामवाले हैं ।।२७।। और संसारवैद्य, सर्वज्ञ, परमात्मा यह तीन नाम माया के अवलम्बन वश से होते हैं, तीन प्रकार के उपाधि वचन से शिवजी का ही ग्रहण है ।।२८।। अनादि गुण का सम्बन्ध प्रागभाव से और स्वभाव से सम्बन्धवाले अत्यन्त परिशुद्ध आत्मा यह शिवजी ही कहे जाते हैं ।।२९।। अथवा सम्पूर्ण कल्याण गुण का धन जो ईश्वर है, वही शिवतत्त्व के जाननेवाले महात्माओं ने शिव कहा है ।।३०।। तेईस तत्त्वों से प्रकृति परे है और प्रकृति से भी परे वह पच्चीसवां पुरुष है ।।३१।। जिसको वाच्य-वाचक के भाव से वेद के प्रारम्भ में ओंकार कहते हैं, 'ओमित्येकाक्षरंब्रह्म' जो वेद और उपनिषदों में प्रतिष्ठित है, वही प्रकृति में लीन होकर भोग के निमित्त प्रतिष्ठित हुआ है ।।३२।। प्रकृति लीन से जो परे हैं, वही महेश्वरजी हैं, इसीके आधीन प्रवृत्ति है, प्रकृतिपुरुष की वश्यता उसीके आधीन है ।।३३।। अथवा त्रिगुणतत्त्व यह अविनाशी की माया है, माया प्रकृति और मायावाले महेश्वर कहे जाते हैं ।।३४।। माया के विक्षोभ करनेवाले नारायण पुरुष हैं, वह महेश्वरजी के सम्बन्ध से युक्त हैं, वह कालात्मा, परमात्मा आदि स्थूल-सूक्ष्म कहे जाते हैं ।।३५।। रुत् दुःख वा दुःख के हेतु को नाश करने से वह रुद्र कहलाते हैं, वही परम कारण शिवजी हैं, यह सत्पुरुषों ने कहा है ।।३६।। शिवतत्त्व से प्रारम्भ करके भूमि पर्यन्त शरीरादि और घटादि व्याप्त करके शिवजी अधिष्ठित हैं, इसीसे उनको रुद्र कहते हैं ।।३७।। जो मूर्तिआत्मक हैं, जगत् के पितृभूत हैं, वही शिवजी सबके पितृभाव में होने से पितामह कहलाते हैं ।।३८।। जिस प्रकार निदान का जाननेवाला वैद्य रोग का निवर्तक है, अनेक प्रकार औषधी युक्त उपाय करता है, ऐसे ही प्रकृति के कर्म ज्ञान रूप उपायों से मुमुक्षु और कामुकों को क्रम से लय और मोक्ष भोग के अधिकारानुसार प्रवृत्त करता है ।।३९।। इससे ईश्वर नित्य संसार के मूल का निवृत्त करनेवाला है, जगत्पति है, इस कारण सब तत्त्व के ज्ञाता उसे संसारवैद्य कहते हैं ।।४०।। शब्दादि विषयों के दस ज्ञानसिद्धि के अर्थ ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय के होने से भी त्रिकाल में होनेवाले स्थूल और सूक्ष्म भावों को विशेष करके ।।४१।। जीवगण जीवतत्त्व के मल के कारण

को नहीं जान सकते हैं और सम्पूर्ण अर्थों के ज्ञान न होने के हेतु होने पर भी।।४२।। जो वस्तु जिस प्रकार स्थित है, वह उसी प्रकार सदाशिवजी बिना यत्न के यथार्थ जानते हैं, इस कारण उनको सर्वज्ञ कहते हैं।।४३।। वह सर्वात्मा सदा इन परम गुणों से युक्त रहते हैं, अपने से पर आत्माओं का विरह होने से वह शिवजी परम आत्मा हैं अर्थात् अन्य जीवों की आत्मा से पृथक् है।।४४।। आचार्य, गुरु की कृपा से इन आठ नामों को अर्थ सहित प्राप्त करके, शिवादिक पांच नामों से निवृत्ति आदि कल्प ग्रन्थियों को।।४५।। यथाक्रम से छेदन करके और शोधकर अपने अधिष्ठा क्रम से सब कुछ करके इन नामों को आवर्तन करके उद्धात् अर्थात् प्राणवायु से अपानवायु का अभिघात करके मूलाधार से वायु को प्रेरित करके वायु से सिर को ताडन करता अथवा प्राण से प्रेरित होकर यदि अपान पीड़ित होकर सिर तक जाकर निवृत्त हो जाय, उसीका नाम उद्धात् है और उससे रहित का नाम निरुद्धात है।।४६।। इससे हृदय, कण्ठ, तालु, भ्रूमध्य, ब्रह्मरन्ध्र से युक्त इन कला ग्रन्थि रूप भूत, इन्द्रिय, मनोबुद्धि, वासना, कर्मवायु और अविद्या इन पुरी के आकार आठों को भेदन कर मध्य नाडी *सुषुम्ना से।।४७।। द्वादश दल युक्त हृदयकमल में स्थित चन्द्र के ऊपर शिवजी के प्रभाव में अपनी आत्मा को ले जाकर पीछे चाहे उसे उतारे वा न उतारे, अपने कारण में यथायोग्य लय हो जाने से।।४८।। शक्ति की अमृत वर्षा से सींचने पर फिर अपने शरीर में अमृतामृतक आत्मा को हृदय में उतारकर।।४९।। द्वादश दल हृदयकमल में इन्दु (चन्द्र) से ऊपर श्वेतकमल में भक्तवत्सल शंकरजी को स्थित हुए देखे।।५०।। अर्द्धनारीश्वर देव जो निर्मल और मधुर मूर्ति युक्त हैं; शुद्ध स्फटिक मणि के समान प्रसन्न शीतल कान्तिमान् को।।५१।। नामाष्टक से हृदय में ध्यान करके यह मनुष्य स्वस्थचित्त होकर शिवजी के आठों नाम और भक्ति रूप फूलों से पूजा करे।।५२।। फिर यह मनुष्य प्राणों को रोककर विशेष कर चित्त को सावधान करके नामाष्टक का जप करे।।५३।। नाभि में आठ आहुतियों का हवन करके नमस्कार रूप पूर्ण आहुति देकर पीछे आठ पुष्पों के प्रदान से अन्त का पूजन करके।।५४।। हाथ में जल लेकर उसके देने से अपनी आत्मा को निवेदन करे, इस प्रकार करने से पाशुपत ज्ञान शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है।।५५।। और इस व्रत की उत्तम प्रतिष्ठा प्राप्त होती है, पीछे परम योग को प्राप्त होकर मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं।।५६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे

द्वात्रिंशोऽध्यायः ।। ३२ ।।

*****

*– इडा, पिंगला के बीच में सुषुम्ना है, यह मल रहित ब्रह्मस्वरूपिणी है, इसके बाईं ओर इडा, दाहिनी ओर पिंगला नाडी है।

तैत्तीसवां अध्याय

ऋषि बोले- हे भगवन्! हम पाशुपत व्रत के सुनने की इच्छा करते हैं, जिसे करके ब्रह्मादिक भी पाशुपत हो गये ।।१।। वायु बोले- समस्त पापों को दूर करनेवाला रहस्य मैं आपसे वर्णन करता हूं, यह पाशुपत व्रत अथर्वशिरस् उपनिषद् में प्रसिद्ध है ।।२।। काल इसका चैत्र की पूर्णमासी, शिव स्वीकृत देश, क्षेत्र, आराम (बगीचा) श्रेष्ठ लक्षण युक्त इसमें कहा है ।।३।। उसमें पहले त्रयोदशी के दिन स्नानादि करके अग्नि होम के उपरान्त और अपने आचार्य की पूजा के उपरान्त प्रणाम करके उनसे आज्ञा ले ।।४।। विशेष पूजा करके स्वयं शुक्ल वस्त्र धारण करके, शुक्ल यज्ञोपवीत, श्वेत माला, श्वेत चन्दन धारण करके ।।५।। कुशासन पर बैठकर मुट्ठी में कुशों को लेकर उत्तर वा पूर्व को मुख करके तीन प्राणायाम करके देवी और देव को विज्ञापन किये मार्ग से ध्यान करके ।।६।। 'मैं दीक्षित होकर यह व्रत करता हूं' यह संकल्प करे, जब तक शरीरपात हो अथवा बारह वर्ष तक ।।७।। छः वर्ष, तीन वर्ष अथवा बारह मास तक, छः, तीन अथवा एक ही महीने ।।८।। बारह दिन अथवा छः दिन, तीन दिन वा एक ही दिन के व्रत का संकल्प करके ।।९।। विरजाहोम के निमित्त विधि पूर्वक अग्नि को लेकर घी, समिधा और चरु से यथायोग्य हवन करके ।।१०।। पूर्ण आहुति के उपरान्त फिर तत्त्वों की शुद्धि के उद्देश्य से उन समिधा आदि का मूल मन्त्र (पंचाक्षर) से हवन करे ।।११।। और यह तत्त्व मेरे देह के शुद्ध हों, ऐसा स्मरण करता जाय, पंचभूत तन्मात्रा पंच कर्मेन्द्रिय ।।१२।। ज्ञान और कर्म के भेद से इनके पांच-पांच विभाग हैं, त्वचादि सात धातु प्राणादि वायु ।।१३।। मन, बुद्धि, अहंकार, गुण, प्रकृति, पुरुष, राग, विद्या, कला, नियति, काल ।।१४।। माया, शुद्ध विद्या, महेश्वर, सदाशिव, शक्ति और शिवतत्त्व यह क्रम से तत्त्व कहे हैं ।।१५।। इन विरजा (मल रहित) मन्त्रों से हवन करने से हवन करनेवाला पाप रहित हो जाता है, शिवजी के अनुग्रह को प्राप्त होकर ज्ञानवान् हो जाता है ।।१६।। फिर गोबर लाकर उसका पिण्ड करके मन्त्र पढ़कर, सूंघकर उसे अग्नि में रखकर उस दिन व्रती हविष्य अन्न खाये ।।१७।। फिर प्रातःकाल चतुर्दशी के दिन सब पहले दिन का कृत्य करके उस दिन निराहार रहकर शेष समय व्यतीत करे ।।१८।। फिर पर्व के दिन यह सब कृत्य करके होम के पीछे रुद्राग्नि को शान्त करके यत्न पूर्वक भस्म ग्रहण करे ।।१९।। फिर जटा युक्त वा मुण्डित वा केवल शिखामात्र धारण किये हुए

*- इड़ा, पिंगला के बीच में सुषुम्ना है, यह मल रहित ब्रह्मस्वरूपिणी है, इसके बाईं ओर इड़ा, दाहिनी ओर पिंगला नाडी है।

स्नान करके, यदि लोकलज्जा रहित हो तो दिगम्बर हो जाय ।।२०।। अथवा काषाय वस्त्र वा चर्म चीर वस्त्र धारण करे, एक वस्त्र धारण करे, वल्कल वा मेखला दण्ड धारण किये रहे ।।२१।। फिर चरण धोकर दो बार आचमन करके अपने शरीर को उस हवन की भस्म से भूषित करे ।।२२।। 'अग्निरितिभस्म' यह छः अथर्ववेद के मन्त्र हैं, इनसे सिर से लेकर चरण तक स्पर्श करे ।।२३।। फिर इसी क्रम से सर्वांग में भस्म लगावे, ओंकार युक्त शिवजी का उच्चारण करे ।।२४।। फिर 'त्र्यायुषं जमदग्नेः' इस मन्त्र से त्रिपुण्ड्र लगावे, इस प्रकार शिवभाव को प्राप्त होकर शिवयोग का आचरण करे ।।२५।। तीनों सन्ध्याओं में इस पाशुपत व्रत को करे, यह भुक्ति–मुक्ति का देनेवाला पशुत्व दूर करता है ।।२६।। इस पाशुपत व्रत से पशुपन त्याग करे, लिंगमूर्ति सनातन महादेवजी का पूजन करे ।।२७।। आठ दलों का सुवर्ण का कमल, नौ रत्नों से अलंकृत करके कर्णिका और केशर के सहित पद्मासन की कल्पना करे ।।२८।। यह ऐश्वर्य होने पर करे तथा इसके अभाव में लाल, श्वेत कमल स्थित करे, यदि यह भी न हो सके तो केवल भावना का कमल स्थित करे ।।२९।। उस कमल की कर्णिका में स्फटिक एक छोटी लिंगमूर्ति स्फटिक की कर क्रम से पूजन करे ।।३०।। उस लिंग को विधि पूर्वक स्थापन कर और शुद्ध कर पंचमुख के प्रकार से आसन मूर्ति को कल्पना करके ।।३१।। पंचगव्यादि पवित्र विस्तार पूर्वक यथायोग्य सहस्र कलशों से स्नान करावे ।।३२।। गन्ध, द्रव्य, कपूर, चन्दनादि, कुंकुम यह सब वस्तु वेदी सहित लिंग को चढ़ाकर भूषण से भूषित करे ।।३३।। बिल्वपत्र, श्वेतपद्म, रक्तपद्म, नीलकमल तथा दूसरे सुगन्धित पुष्प ।।३४।। पवित्र श्रेष्ठ बिल्वपत्र, चित्रदूर्वा, अक्षत, महापूजा के विधान से यथा लाभ पूजित करके ।।३५।। धूप, दीप, अर्घ्य, नैवेद्य प्रदान करे; इस प्रकार शिवजी को निवेदन करके कल्याण की प्रवृत्ति करे ।।३६।। और जो न्याय पूर्वक उपार्जन की हुई अपने को इष्ट वस्तु हों, वह सब द्रव्य इस व्रत में विशेष कर देने चाहिये ।।३७।। श्रीपत्र, उत्पल और कमल सहस्र चढ़ाने चाहिये अथवा कमती संख्या १०८ चढ़ाने चाहिये ।।३८।। उसमें भी विशेष कर बेलपत्र को न त्यागे; एक ही सुवर्ण का कमल सहस्र कमलों से विशेष है ।।३९।। और नीलोत्पलादि कमल बेलपत्र के समान हैं और दूसरे फूलों में नियम नहीं है; यथालाभ निवेदन करे ।।४०।। अष्टांग अर्घ्य श्रेष्ठ है, विशेष कर धूप देनी; चन्दन लगाना, कृष्ण, अगरु, अघोर नामक मुख में; सद्योजात में मनशिला, वामदेव मुख में; चन्दन, पौरुष में; हरिताल ।।४१।। ईशान में; भस्म इस प्रकार कोई आचार्य आलेपन कहते हैं, कोई धूपान्तर के विधान से धूप नहीं मानते हैं, कि अघोर के मुख में श्वेत अगरु; पुरुष के मुख में काला अगरु ।।४२।। सद्योजात के मुख में गुग्गुल; सौम्य के मुख में सुगन्धि द्रव्य; ईशान में उशीरादि की धूप विशेष करके देनी चाहिये ।।४३।। शर्करा, मधु, कपूर, कपिला गौ के घृत में मिलाकर देनी चाहिये;

चन्दन, अगरु काष्ठादि यह सामान्य कहा है।।४४।। कर्पूर वर्ति घी के दीपक देने चाहिये; इसके उपरान्त प्रत्येक मुख की ओर अर्घ्य और आचमन देना चाहिये।।४५।। प्रथम आवरण से क्रम से गणेश और कार्तिकेय का पूजन करना चाहिये; फिर ब्रह्मा प्रभृति अंगादि का पूजन करे।।४६।। इस प्रकार प्रथम आवरण की पूजा करने पर दूसरे आवरण में चक्रवर्ती विघ्नेश की पूजी करनी चाहिये; तीसरे आवरण में भव आदि अष्टमूर्तियों का पूजन करना चाहिये।।४७।। चौथे आवरण में महादेवादियों की तथा ग्यारह रुद्रों की, सब गणेश्वरों की पूजा करनी चाहिये।।४८।। पद्म के बाहर पांच आवरण के क्रम से अस्त्र और अनुचरों के साथ दश दिक्पालों की पूजा करनी।।४९।। ब्रह्माजी के मानसिक पुत्र और सब ग्रह, समस्त देव-देवी और सर्व आकाशचारी।।५०।। सब पातालवासी और सब मुनीश्वर, सब मुख्य योगीश्वर पांचवें आवरण में मातृकाओं के साथ पूजे।।५१।। गणों के सहित क्षेत्रपाल और यह सब चराचर जगत् शिवजी की प्रीति से शिवजी की विभूति जानकर पूजे।।५२।। आवरण पूजा के अन्त में परमेश्वर को पूजन करके घृत व्यंजन युक्त हवि शाकादि मनोहर वस्तु निवेदन करे।।५३।। मुख सुगन्धि के निमित्त ताम्बूल रोचक द्रव्य के सहित दे, फिर अनेक प्रकार के पुष्प और भूषणों से अलंकृत करके।।५४।। नीराजन के अन्त में पूजा का विस्तार समाप्त करे, फिर सामग्री सहित पानपात्र दे और शयन निवेदन करे।।५५।। चन्द्रमा के समान हार उज्ज्वल शयन स्थान में रखे और भी सब योग्य पदार्थ राजाओं के समान स्थित करे।।५६।। यह कार्य स्वयं करे या ऋत्विजों से कराकर हवन और पूजन के पीछे प्रार्थना, स्तोत्र, जप करके पंचाक्षर विद्या को जपे।।५७।। प्रदक्षिणा करे और परमात्मा की पूजा करे, फिर शिवजी के सम्मुख ही गुरु, ब्राह्मणों का पूजन करे।।५८।। फिर अर्घ्य और आठ फूल देकर देव को लिंग से विसर्जन करके अग्निमन्त्र से अग्नि की रक्षा करके उसे भी विदा करे।।५९।। इस प्रकार से यह सब कृत्य प्रतिदिन करे, फिर सब सामग्री सहित कमल युक्त लिंग।।६०।। अपने गुरु को दे दे अथवा शिवालय में स्थापन करे, फिर वह व्रती अपने दूसरे गुरुजनों का पूजन करके।।६१।। समर्थ हो तो भक्त, ब्राह्मण और दीनों को सन्तुष्ट करे, आप या तो भोजन न करे, अथवा फल, मूल भोजन करे।।६२।। दूध पीवे वा भिक्षा खाय, केवल एक बार भोजन करे, रात्रि में सदा नियत भोजन करे और पवित्र होकर पृथ्वी पर शयन करे।।६३।। भस्म वा तृण पर शयन करे अथवा चीर वा अजिन मृगचर्म पर शयन करे, ब्रह्मचर्य पूर्वक इस व्रत को समाप्त करे।।६४।। रविवार आर्द्रा नक्षत्र के दिन अमावस, पूर्णमासी, अष्टमी और चतुर्दशी को सामर्थ्य हो तो उपवास करे।।६५।। पाखण्ड, पतित, उदक्या, रजस्वला, सूतिका आदि अपवित्रों को मन से भी स्मरण न करे, न वाणी से उच्चारण करे।।६६।। क्षमा, दान, दया, सत्य, अहिंसा और शील युक्त सदा रहे, सन्तुष्ट, शान्त और तप तथा ध्यान में

सदा मन लगावे ।।६७।। तीनों काल स्नान करे अथवा भस्मस्नान करे; मन, वचन, क्रम से विशेष पूजा करे ।।६८।। बहुत कहने से क्य ? व्रती कुछ भी अमंगल बात न करे, प्रमाद हो जाने से आचार में गुरु-लघु का विचार करके ।।६९।। पूजा, होम, यज्ञादि से उसका उचित प्रायश्चित्त करे, जब तक व्रत समाप्त न हो, कुछ भी प्रमाद न करे ।।७०।। गोदान, वृषोत्सर्ग पूजा धन के अनुसार सब कामना से रहित होकर भक्त शिवजी की प्रीति के निमित्त सब करे।।७१।। यह व्रत की विधि संक्षेप से सामान्य कही है; प्रति मास में जो विशेष है, सो क्रम से कहता हूं।।७२।। वैशाख में हीरे का लिंग, आषाढ़ में मोती का, श्रावण में नीलम का।।७३।। भाद्रपद में पद्मराग मणि का, आश्विन में गोमेद का।।७४।। कार्तिक में मूंगे का, अगहन में वैडूर्य का, पौष में पुष्पराग का, माघ में द्युमणि (सूर्यकान्त) का।।७५।। फाल्गुन में चन्द्रकान्त मणि का, चैत्र में भी इसी मणि का अथवा रत्न न मिले तो सब महीनों में सुवर्ण लिंग की पूजा करे।।७६।। उसके अभाव में चांदी, तांबा अथवा शिला के लिंग का पूजन करे, यह भी न हो तो मिट्टी का वा किसी वस्तु का लिंग पूजे।।७७।। सब ही मूर्ति गन्धमय बनावे अथवा जैसी रुचि होवे सो बनावे, व्रत के अन्त में अपना नित्यकर्म समाप्त करके।।७८।। विशेष पूजा और हवन करके सदाचरण युक्त व्रती पुरुष शिव और आचार्य का विशेष पूजन करके।।७९।। आचार्य की आज्ञा से पूर्व वा उत्तर मुख होकर बैठे; कुश का आसन कुशा ही हाथ में लिये प्राण अपान वायु को रोककर।।८०।। शक्ति के अनुसार मूलमन्त्र को जपकर उमा सहित त्र्यम्बक देव का ध्यान करके आज्ञा लेकर हाथ जोड़कर कहे।।८१।। हे भगवन! आपकी आज्ञा से अब इस व्रत का त्याग करता हूं, यह कहकर लिंगमूल के कुशों को उत्तर भाग से विसर्जन करे।।८२।। फिर दण्ड, जटा, चीर, मेखला को भी त्याग करे, फिर विधि पूर्वक आचमन करके पंचाक्षर मन्त्र का उच्चारण करे।।८३।। जो देहान्त तक इस दीक्षा को सावधानी से करता है और इस व्रत को करता है, वह नैष्ठिक व्रती कहलाता है।।८४।। वही सब आश्रमों में श्रेष्ठ महापाशुपत व्रती कहलाता है, वही तपस्वियों में श्रेष्ठ और महाव्रती है।।८५।। उसके समान मुमुक्षुओं में कोई कृतकृत्य नहीं है, जो यति नैष्ठिक हो, वह उत्तम नैष्ठिक है।।८६।। जो बारह दिन तक भोजन न करके इस व्रत को करे वह भी तीव्र व्रत के कारण नैष्ठिक के तुल्य हो जाता है।।८७।। जो घृत शरीर में लगाकर इस व्रत को करता है, दो-तीन दिन भी करता है, वह भी नैष्ठिक है।।८८।। जो कोई निष्काम होकर इस व्रत को करता है और जिसने निरन्तर अपनी आत्मा शिवजी को अर्पण की है, उसके समान कोई दूसरा नहीं है।।८९।। विद्वान् ब्राह्मण भस्म लगाकर महापाप से उत्पन्न हुए पापों से शीघ्र छूट जाता है, इसमें सन्देह नहीं।।९०।। रुद्र अग्नि का जो परम वीर्य है, वही भस्म कहलाता है, इस कारण सब काल में भस्म युक्त वीर्यवान् होता है।।९१।।

जो पुरुष भस्मनिष्ठ हैं, अग्नि के संगम से उनके सब दोष दूर हो जाते हैं, भस्मस्नान से पवित्र हुआ पुरुष भस्मनिष्ठ कहा जाता है ।।९२।। जिसके शरीर में भस्म लगा है और जिसका त्रिपुण्ड्र भस्म से दीप्तिमान् है, भस्मस्नान करने से यह पुरुष भस्मनिष्ठ कहा जाता है ।।९३।। भूत, प्रेत, पिशाच और बड़े-बड़े भयंकर रोग भस्मनिष्ठ के समीप से दूर भाग जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं ।।९४।। कल्मष (पाप) दूर करने से और भासमान होने से यह भस्म कहलाता है, वह विभूति पुरुषों को ऐश्वर्य देनेवाली तथा परम रक्षा करनेवाली है ।।९५।। अधिक भस्म का माहात्म्य क्या कहे? व्रती भस्मस्नान करके स्वयं महेश्वर हो जाता है ।।९६।। यही भस्म परमेश्वरी और शैवों का परम अस्त्र है, इसने उपमन्यु की तप में आपदा निवारण की है ।।९७।। इस कारण सब प्रकार के यत्न से पाशुपत व्रत करना चाहिये, धन के समान भस्म का संग्रह करना चाहिये और भस्मस्नान में प्रीति करनी चाहिये ।।९८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे
पूजाविधिनिरूपणं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।। ३३ ।।

*****

चौतीसवां अध्याय

ऋषि बोले- धौम्य के बड़े भ्राता उपमन्यु ने बालावस्था में दूध के निमित्त तप किया था, उसे शिवजी ने प्रसन्न होकर क्षीरसागर दिया ।।१।। परन्तु उस बालक को शिवशास्त्र की प्रवक्तृता किस प्रकार प्राप्त हुई और वह किस प्रकार शिवजी का सद्भाव जानकर तप में निरत हुआ? ।।२।। तप करने के समय उनको किस प्रकार ज्ञान प्राप्त हुआ और उन्होंने रुद्राग्नि के परम वीर्य भस्म से कैसे रक्षा प्राप्त की? सो कहिये ।।३।। वायु बोले- यह उपमन्यु कोई साधारण बालक नहीं थे, जो ऐसा तप किया था, यह महात्मा व्याघ्रपाद मुनि के पुत्र थे ।।४।। जन्मान्तर में भी सिद्ध थे, परन्तु किसी कारण से अपने प्रारब्ध से भ्रष्ट होकर मुनिकुमारता को प्राप्त हुए ।।५।। इसी कारण महादेवजी के प्रसाद से और होनेवाले भाग्य के बल से दुग्ध की इच्छा से व्याज से तप करके महादेवजी की कृपा के द्वारता को प्राप्त हुए ।।६।। इसी कारण शिवजी ने उनके निमित्त गणेशत्व, कुमारत्व के सहित दुग्ध का सागर प्रदान किया ।।७।। इसीसे शिवजी के अनुग्रह के कारण उनको ज्ञान शास्त्र प्राप्त हुआ और कुमार अवस्था में ही उसे धारण करने की शक्ति प्राप्त हुई ।।८।। इसीसे उनको कुमार अवस्था में शिवशास्त्र की वक्तृता हुई, जैसे ज्ञानसागर कुमार के मुख से नन्दी ने ज्ञान पाया था ।।९।। इसी प्रकार

शिवज्ञान की प्राप्ति में इसका कारण देखा है; दुग्ध के कारण साक्षात् अपनी माता के शोक भरे वचन सुने ।।१०।। किसी समय उसने अपने मामा के आश्रम में बहुत थोड़ा दूध पिया, मातुल के पुत्र से उसने ईर्ष्या की, जो कि क्षीरपान से तृप्त था ।।११।। दूध पीकर मामा के पुत्र को आनन्द से बैठा हुआ देखकर व्याघ्रपाद का पुत्र उपमन्यु प्रेम से माता से बोला ।।१२।। उपमन्यु बोला– हे मातः! हे महाभागे! हे तपस्विनी! मुझे भी गौ का स्वादिष्ट दूध दो, मैं थोड़ासा नहीं पिऊंगा, गरम–गरम ला ।।१३।। वायु बोले– पुत्र के वचन सुनकर उसकी तपस्विनी माता व्याघ्रपाद की स्त्री बड़ी दुःखी हुई ।।१४।। आदर से पुत्र को आलिंगन करके लाडलडाय अपने को निर्धन मानकर दुःख से विलाप करने लगी ।।१५।। इधर महाकान्तिमान् बालक उपमन्यु बारंबार दूध की याद करके बारंबार रोते हुए उससे दूध मांगने लगा ।।१६।। तपस्विनी द्विजस्त्री ने उसके हठ को जानकर उसकी शान्ति के लिये एक उपाय सोचा ।।१७।। जो बीज उञ्छवृत्ति से प्राप्त किये थे उनको देखकर और पीसकर उस मनस्विनी ने उसमें जल मिलाया ।।१८।। 'बेटा आओ, आओ' ऐसा साम पूर्वक कहकर उसे आलिंगन करके दुःख से बनावटी दूध दिया ।।१९।। वह बालक माता के दिये बनावटी दूध को पी कर व्याकुल होकर माता से बोला 'यह दूध नहीं है' ।।२०।। तब वह देखकर पुत्र का सिर सूंघकर दुःखी होकर अपने हाथ से पुत्र के कमल समान नेत्रों के आंसू पोंछकर बोली ।।२१।। माता बोली– सब रत्नों से पूर्ण नदियां स्वर्ग–पाताल में सबको प्राप्त है, पर जो भाग्यहीन और शिवभक्ति रहित हैं, वे उन्हें नहीं देख पाते ।।२२।। राज्य, स्वर्ग, मोक्ष, दूध के भोजन वे प्राणी नहीं प्राप्त कर सकते, जिन पर शिवजी प्रसन्न नहीं हैं ।।२३।। ये सब शंकरजी की कृपा से मिलते हैं, अन्य देवताओं से नहीं, अन्य देवताओं में मन लगानेवाले दुःख से व्याकुल होकर भटकते हैं ।।२४।। हम वनवासियों को दुग्ध कहां प्राप्त हो सकता है? हे पुत्र! कहां तो दूध के साधन और कहां हम वनवासी ।।२५।। सब प्रकार के अभाव होने से, दरिद्रता से मैं भाग्य हीन हूं, जो कि मैंने जल में पिट्ठी डालकर तुझे असत्य दूध बनाकर दिया था ।।२६।। तू ने मामा के घर में औटा हुआ थोड़ा दुग्ध पान किया था, इससे तुझे स्वाद विदित था, उसको स्मरण करके ।।२७।। 'मुझे दूध नहीं दिया' ऐसा कहकर रोता हुआ मुझे दुःखी करता है, बिना शिवजी की कृपा से तुझको दूध की प्राप्ति न होगी ।।२८।। उन्हीं शिवजी के चरणकमल की पार्वती और गणों के सहित आराधना करो; जो उनको भक्ति से कुछ भी समर्पण किया जाय, वह सब सम्पत्तियों का कारण है ।।२९।। हमने धन देनेवाले शिवजी को नहीं पूजा, वह कामनावालों को यथायोग्य फल देते हैं ।।३०।। धन के उद्देश्य से हमने पहले शंकरजी को नहीं पूजा, इससे हम दरिद्री हुए और तुम्हें दूध नहीं मिल सका ।।३१।। हे पुत्र! पूर्वजन्म में शिवजी के उद्देश्य से वा प्रभु विष्णुजी के उद्देश्य से

जो दिया जाता है वही मिलता है ।।३२।। इस प्रकार माता का शोकादि का सूचक सत्य वचन सुनकर बालक होकर भी पश्चात्ताप करते हुए प्रगल्भता से बोला ।।३३।। उपमन्यु बोले– हे मातः! शोक मत करो, यदि साम्बशिव हैं, तो हे महाभागे! शोक त्यागो, सब भला होगा ।।३४।। हे मातः! मेरे वचन सुनो, यदि कहीं महादेवजी हैं, तो शीघ्र वा देर में मैं उन्हें प्रसन्न करके दूध का सागर ले आऊंगा, जो कि कभी घटेगा नहीं ।।३५।। वायु बोले– इस प्रकार उस महामति बालक के वचन सुनकर प्रसन्न होकर उसकी बुद्धिमती माता बोली ।।३६।। माता बोली– हे तात! मेरी प्रीति बढ़ानेवाली शुभवार्ता तुमने विचारी, तू देर मत कर, साम्वशिवजी का भजन कर ।।३७।। परमकारण शिवजी सबसे अधिक हैं, सारा जगत् उन्हींका किया हुआ है, ब्रह्माजी आदि उनके दास हैं ।।३८।। उन्हींकी प्रसन्नता से किये हुए ऐश्वर्य हम उन प्रभु के दास हैं, उन लोक के कल्याण करनेवाले शंकरजी के सिवाय अन्य को मैं नहीं जानतीं ।।३९।। अन्य देवताओं को छोड़कर मन, वचन, कर्म से उन्हीं शिवजी को पार्वती सहित, गणेश सहित परम प्रीति से भजन करना चाहिये ।।४०।। उन देवाधिदेव वरदायी, मंगलदायी शिवजी का 'नमः शिवाय' यही मन्त्र वाचक है ।।४१।। ॐ कार सहित जो सात करोड़ मन्त्र हैं, वह इसीमें लय होकर फिर इसी में से निकलते हैं ।।४२।। अपने अधिकारी अपेक्षा से सुप्रसाद सहित वे मन्त्र हैं, अर्थात् अधिकारियों के अनुसार पृथक्–पृथक् हैं, परन्तु यह मन्त्र ईश्वर की आज्ञा से सबके अधिकार का है ।।४३।। जिस प्रकार शिवजी सम्पूर्ण उत्कृष्ट और निकृष्ट आत्माओं की रक्षा करने में समर्थ होते हैं, उसी प्रकार यह मन्त्र है ।।४४।। यह मन्त्र सब दूसरे मन्त्रों से प्रबल है, यह सबकी रक्षा करने में समर्थ है, इससे परे फिर और इच्छा नहीं करनी चाहिये ।।४५।। इस कारण, हे पुत्र! अन्य मन्त्रों को छोड़कर पंचाक्षरमन्त्र जपने में तत्पर हो; यह मन्त्र जिह्वा के अन्तर्गत होने से फिर कुछ दुर्लभ नहीं रहता ।।४६।। यह शैवों की रक्षा का हेतु परम दुर्लभ अघोरास्त्र है, वह इसीसे उत्पन्न हुआ है, ऐसा जानकर उसमें तत्पर हो ।।४७।। तुम्हारे पिता के समीप में मैंने यह भस्म प्राप्त की है, जो विरजाअग्नि से उत्पन्न होने के कारण सिद्ध और महाआपत्ति को दूर करनेवाली है, इसे लगाओ ।।४८।। यह जो तुझे मैंने मन्त्र दिया है इसको मेरी आज्ञा से ग्रहण कर, इसीके जप करने से तुम्हारी रक्षा होगी ।।४९।। इसी प्रकार माता ने आज्ञा देकर 'शिवस्तु' (तेरा कल्याण हो) ऐसा उच्चारण करके बिदा किया और वह मुनि उसकी आज्ञा सिर पर धारण करके ।।५०।। और प्रणाम करके तप करने के निमित्त चला गया, तब माता ने उसके प्रति वचन कहे कि, 'देवता तेरा मंगल करें' ।।५१।। इस प्रकार माता की आज्ञा से उसने दुश्चर तप करना प्रारम्भ किया, हिमालय पर्वत पर प्राप्त होकर वायु भक्षण करता हुआ ।।५२।। आठ इष्टकाओं (ईटों) का स्थान बनाकर, मृत्तिका का लिंग निर्माण करके, वहां गण

और पार्वती के सहित महादेवजी का आवाहन करके ।।५३।। भक्ति पूर्वक पंचाक्षर मन्त्र से ही वन के उत्पन्न हुए पत्र और पुष्पों से बहुत काल तक पूजा करता हुआ परम तप प्रारम्भ किया ।।५४।। इस प्रकार शिवजी में मन लगाये उपमन्यु ब्राह्मण श्रेष्ठ को अकेले तप करते हुए कृश शरीर (देखकर उस तप करते हुए बालक के तप में) ।।५५।। मरीचि ऋषि के शाप से पिशाच पन को प्राप्त हुए कुछ मुनि राक्षस भाव से पीडित करके उसके तप में विघ्न करने लगे ।।५६।। वह उनसे पीड़ित होकर भी किसी प्रकार से तप करते हुए और सदा 'नमः शिवाय' इस प्रकार आर्तनाद के समान शब्द करने लगा ।।५७।। उस शब्द को श्रवण करके वह तप में विघ्न करनेवाले मुनि पिशाच भाव का त्याग करके उसकी सेवा करने लगे ।।५८।। तब उस महात्मा ब्राह्मण कुमार उपमन्यु के तप से चराचर, मुनि तथा जगत् प्रदीप्त हो गया ।।५९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।। ३४ ।।

*****

पैतीसवां अध्याय

वायु बोले- तब सब देवता प्रदीप्त अंग होकर वैकुण्ठ में नारायण के पास झट गये और प्रणाम करके सब हाल कहने लगे ।।१।। उनके यह वचन सुनकर भगवान् पुरुषोत्तम यह क्या है? इस वार्ता को विचार कर और उसका कारण जान कर ।।२।। शिवजी को देखने की इच्छा से मन्दर पर्वत पर गये और देव को देखकर प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोले, विष्णुजी बोले ।।३।। हे भगवन्! कोई उपमन्यु नामक ब्राह्मण दुग्ध पाने के निमित्त जगत् को दग्ध करता है, तप करते हुए उसे आप निवारण करें ।।४।। विष्णुजी के यह वचन सुनकर देव महेश्वरजी बोले- आप अपने स्थान को जाइये, मैं बालक का निवारण करूंगा ।।५।। शिवजी के वचन सुनकर देववल्लभ विष्णुजी उन सब देवताओं का समाधान करके अपने लोक को गये ।।६।। इसी अवसर पर देव देव शिवजी इन्द्र के रूप से उस स्थान में जाने की इच्छा करने लगे ।।७।। तब शिवजी श्वेत हाथी पर चढ़कर उस ब्राह्मण के आश्रम में गये, इन्द्र वेष का धारण किया; सुर, असुर, सिद्ध, महोरग उनके साथ हुए ।।८।। तब उस विभु के निमित्त बाल व्यजन से वीजित किया गया और वाम हाथ में शची सहित सुरेन्द्र के ऊपर श्वेत छत्र धारण किया गया ।।९।। उमा सहित इन्द्र रूपधारी शिवजी महाशोभित हुए और छत्र, चन्द्रमण्डल से शोभित मन्दर के समान शोभित हुए ।।१०।। इस प्रकार वह परमेश्वर इन्द्र के स्वरूप को

प्राप्त होकर अनुग्रह करने को उपमन्यु के आश्रम में गये ।।११।। उन परम ईशान इन्द्र रूपधारी शिवजी को देखकर महामुनियों में श्रेष्ठ उपमन्यु प्रणाम करके स्वयं बोले ।।१२।। उपमन्यु बोले- हे देवेश्वर! आपने स्वयं आकर मेरा आश्रम पवित्र किया, जो आप जगत्पति देवताओं में श्रेष्ठ इन्द्र प्राप्त हुए हो ।।१३।। इस प्रकार कहकर उपस्थित हुए उस ब्राह्मण को इन्द्र रूपधारी शिवजी मेघगंभीरवाणी से बोले।।१४।। हे सुव्रत! मैं तेरे इस तप से बहुत प्रसन्न हुआ हूं, तू वर मांग, हे महामुने! हे धौम्य के अग्रज! मैं तेरे सब मनोरथ पूर्ण करूंगा ।।१५।। जब इस प्रकार इन्द्र ने कहा, तब वह मुनिश्रेष्ठ 'शिवजी में भक्ति हो' यही हाथ जोड़कर बोला ।।१६।। यह सुनकर इन्द्र बोले- तुम नहीं जानते कि, मैं देवताओं का राजा हूं, तीनों लोकों का अधिपति इन्द्र हूं, सब देवता मुझको नमस्कार करते हैं ।।१७।। हे विप्रऋषि! तू मेरा भक्त हो, सदा मेरी अर्चा कर, तेरा कल्याण हो, मैं ही तुझको सब कुछ दूंगा, तू निर्गुण रुद्र को त्याग दे ।।१८।। निर्गुण रुद्र से तेरा क्या कार्य बनेगा ? जो देवताओं की पंक्ति से बाहर होकर पिशाचपने को प्राप्त हुए हैं ।।१९।। वायु बोले- यह सुनकर पंचाक्षर मन्त्र जपते हुए वह मुनि धर्म में विघ्न मानकर इन्द्र से बोले ।।२०।। उपमन्यु बोले- शिवनिन्दा में तत्पर आपने प्रसंग से महात्मा रुद्र का निर्गुणपन कथन किया ।।२१।। पर सब देवताओं के अधिपति रुद्र को तुम नहीं जानते हो, ब्रह्मा, विष्णु, महेश के भी उत्पादक प्रकृति से परे हैं ।।२२।। जिनको ब्रह्मवादी सत्-असत्, व्यक्त-अव्यक्त रूप से कथन करते हैं तथा नित्य एक अनन्त कहते हैं, उन्हींसे वर मांगूंगा ।।२३।। हेतुवाद से रहित, सांख्य योग के अर्थ देनेवाले परम रूप हैं, ऐसा जानकर जिनकी उपासना की जाती है, उन्हींसे वर मांगूंगा ।।२४।। सब कारण के कारण शिवजी से परे कोई तत्त्व नहीं है, ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं के निर्माता गुण से वह विभु हैं ।।२५।। बहुत कहने से क्या है, यह बात मैंने भली प्रकार जान ली है कि, यदि शिवजी की निन्दा सुनी जाय तो जान लो कि, जन्मान्तर में पाप किये हैं ।।२६।। शिवजी की निन्दा सुनते ही उसको तत्काल मारकर उसी समय अपना देह त्याग दे, तो वह शिवलोक को जाता है ।।२७।। हे सुराधम! मेरी दूध की इच्छा यों ही रहे, मैं तुमको शिवास्त्र से मारकर अपने देह का त्याग करूंगा ।।२८।। वायु बोले- ऐसा कहकर उपमन्यु ने स्वयं प्राणत्याग की इच्छा की और दूध की इच्छा त्यागकर इन्द्र को मारने को उद्यत हुए।।२९।। घोर भस्म लेकर उसको अघोर अस्त्र से अभिमन्त्रित करके इन्द्र के उद्देश्य से मुनि ने बड़ा शब्द करके त्यागा ।।३०।। और शिवजी के चरणकमलों को स्मरण करके अपना देह त्याग करने को उद्यत हुए और उपमन्यु आग्नेयी धारण करके स्थित हुए ।।३१।। जब उपमन्यु इस प्रकार स्थित हुए तो भगदेवता के नेत्रहारी शिवजी ने सौम्यता से उस योगी की धारणा को निवारण किया ।।३२।। और उस छोड़े हुए अघोरास्त्र को शिवजी की आज्ञा से

शिवजी के प्रिय नन्दी ने ग्रहण किया ।।३३।। उसी समय परमेश्वर ने अपने स्वरूप में स्थित होकर उस उपमन्यु को अपना चन्द्रभाल रूप दिखाया ।।३४।। सहस्रों दूध के सागर, अमृत के सागर, दही, घी के सागर ।।३५।। फल भक्ष्य भोज्यों के सागर तथा पूओं के पर्वत प्रभु ने उस बालक को दिखाये ।।३६।। जब उसने शंकरजी को देवी के साथ वृष पर स्थित देखा कि जिनके चारों ओर गणेश्वर स्थित हैं और त्रिशूलादि से युक्त हैं ।।३७।। तब देवताओं की दुंदुभी बजी; फूलों की वर्षा हुई; विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्रादि देवताओं से सब दिशाएं आच्छादित हो गईं ।।३८।। इधर उपमन्यु भी आनन्द के सागर में मग्न होकर, भक्ति से नम्र होकर दण्ड के समान पृथ्वी पर गिर पड़ा ।।३९।। इसी अवसर में भगवान् शंकरजी ने 'यहां आओ, यहां आओ' कहकर हँसते हुए उसे बुलाकर, सिर सूंघकर अनेक वर दिये ।।४०।। शिवजी बोले– हे पुत्र! तुम यथायोग्य भक्ष्य भोज्य अपने बांधवों सहित सदा भोगो, सदा सुखी रहो, दुःखों से रहित होकर मेरी भक्ति में तत्पर हो ।।४१।। हे महाभाग उपमन्यु! यह पार्वती तुम्हारी माता है, मैंने तुमको पुत्र बनाकर क्षीरसागर दिया है ।।४२।। मधु, दही, अन्न, घृत, भात, फल इनके सागर मैंने तुमको दिये ।।४३।। मालपुओं के पर्वत, भक्ष्य, भोज्य सागर मैंने तुम को दिये, हे महामुने! तुम इनको ग्रहण करो।।४४।। तुम्हारे पिता महादेव और माता जगदम्बा हैं, मैंने तुमको अमरत्व और निरन्तर का गाणपत्य दिया ।।४५।। अब तुम प्रसन्न होकर जो–जो मन में हो सो–सो वर मांगो, मैं प्रसन्न होकर दूंगा, इसमें विचार की आवश्यकता नहीं ।।४६।। वायु बोले– महादेवजी ने ऐसा कहकर अपने हाथों से उपमन्यु का आलिंगन करके उसका सिर सूंघकर 'यह तुम्हारा पुत्र है' यों कहकर देवी को निवेदन किया ।।४७।। देवी ने भी अपने कमल जैसे हाथों से प्रेम से कुमार के समान उसका सिर सूंघकर उसको अविनाशी कुमारत्व दिया ।।४८।। क्षीराब्धि भी साकार रूप से स्वादुक्षीर हाथ में धारण किए, वह अविनाशी दूध पिण्डाकार उसके हाथ में समर्पण किया (यह पिण्डाकार दूध के सागर सूक्ष्म सार का था) ।।४९।। योग, ऐश्वर्य, सदातुष्टि, अविनाशिनी ब्रह्मविद्या, परम समृद्धि, सन्तुष्ट मन से उसको प्रदान की ।।५०।। फिर भी प्रसन्न हो शिवजी उसका तप तेज देखकर उपमन्यु मुनि को दिव्य वर देने लगे ।।५१।। व्रत पाशुपत ज्ञान व्रतयोग तत्त्व से देकर निरन्तर वक्तृत्व और चतुरता भी मुनिराज को दी ।।५२।। वह भी दिव्य वर और निरन्तर रहनेवाला कुमारत्व प्राप्त करके उन शिवा–शिव से वर पाकर बड़े प्रसन्न हुए ।।५३।। तब प्रसन्न चित्त होकर, हाथ जोड़कर, प्रणाम करके महेश्वर देव देव से वर मांगने लगे ।।५४।। उपमन्यु बोले– हे देवदेवेश! हे परमेश्वर! प्रसन्न होकर अपनी अव्यभिचारिणी भक्ति मुझको दीजिये ।।५५।। हे महादेवजी! अपने सम्बन्धियों में मुझे सदा श्रद्धा दीजिये, अपने दासों में परम स्नेह और सदा उनकी समीपता दीजिये ।।५६।। यह कहने के उपरान्त प्रसन्न मन होकर वह

ब्राह्मणश्रेष्ठ उपमन्यु सहर्ष गद्गद वाणी से महादेवजी को प्रसन्न करने लगे।।५७।। उपमन्यु बोले– हे देव देव महादेव! हे शरणागतवत्सल! हे करुणासागर! हे साम्ब शंकर! प्रसन्न हो।।५८।। वायु बोले– सबको वर देनेवाले महादेवजी ऐसा कहकर प्रसन्न मन होकर मुनिश्रेष्ठ उपमन्यु से बोले।।५९।। शिवजी बोले– हे पुत्र उपमन्यु! मैं तुझसे प्रसन्न हूं, मैंने तुझे सब दिया, तू मेरा दृढ़ भक्त है, यह मैंने जान लिया।।६०।। तुम दुःख से रहित होकर अजर–अमर हो, महायशस्वी, तेज से युक्त, ज्ञान से युक्त हो।।६१।। तुम्हारे बांधव और कुल तथा गोत्र सदा अक्षय रहेंगे, हे द्विजश्रेष्ठ! तुम्हारी मुझ में निरन्तर भक्ति होगी।।६२।। हे द्विजोत्तम! मैं तुम्हारे आश्रम में नित्य समीपता करूंगा, तुम मेरे समीप सदा आनन्द से विहार करोगे।।६३।। कोटि सूर्य के समान कान्तिवाले भगवान् शिवजी यह कहकर और उसको वर देकर अन्तर्धान हो गये।।६४।। उपमन्यु भी प्रसन्न होकर उनसे वरदान पाकर महासुखी होकर अपनी माता के समीप गये।।६५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां पूर्वखण्डे उपमन्युचरित्रवर्णनं नाम पंचत्रिंशोऽध्यायः ।। ३५ ।।

*****

दोहा–

उन्निससे पैंसठ सुभग, सम्वत् भादों मास।
शुक्लचतुर्थी वार शशि पूरण शंभुविलास।।१।।
पूर्वभाग यह संहिता, वायु ऋषिन् संवाद।
सो सब भाषामें कियो, द्विज ज्वालाप्रसाद।।२।।
साम्बशम्भु निजगणसहित, सदा रहें अनुकूल।
प्रतिदिनकृपाकटाक्षते, वृद्धिसुमंगल मूल।।३।।
मंगलश्रोता के भवन, मंगल वक्तागेह।
जो बाँचे श्रवणन करें, कथा सुसहित सनेह।।४।।
तिन्हें देहिं शिवकृपाकर, नित्यपदारथ चारि।
तासे भजिये शंकरहिं, जगजंजाल विचारि।।५।।

*****

वायुसंहिता का पूर्वखण्ड पूर्ण हुआ।

*****



ॐ

अथ

शिवमहापुराणभाषा

***

अथ सप्तमी वायवीयसंहिता उत्तरखण्ड प्रारभ्यते

पहिला अध्याय

दोहा–

जै गणपति मंगल करन, हरन समल दुख शूल।
द्विज ज्वालाप्रसाद पर, सदा रहो अनुकूल ।।१।।

सम्पूर्ण संसार रूपी चक्र के भ्रमण के कारण भवानी पार्वती के स्तन युगलों के कुंकुम से अंकित वक्षस्थलवाले शंकरजी को नमस्कार है ।।१।। सूतजी बोले– जब कि, वायुदेवता ने शंकरजी से इस प्रकार उपमन्यु के प्रसाद की प्राप्ति वर्णन की और नियम से मध्याह्न के समय वायुदेवता उठे ।।२।। तब नैमिषारण्य के रहनेवाले वे सब मुनि यह बात पूछनी चाहिये ऐसा निश्चय करके ।।३।। प्रतिदिन का पूर्व के समान नियम समाप्त करके फिर वायु को आये हुए देखकर सब उसके समीप उपस्थित हुए ।।४।। तब वायुदेवता भी नियम के पश्चात् मुनियों की सभा में श्रेष्ठ आसन पर बैठे ।।५।। जब लोकनमस्कृत वायु अपने आसन पर उपस्थित हुए, तब भगवान् की विभूति को हृदय में धारण कर यह वचन बोले ।।६।। मैं उन सर्वज्ञ, कहीं पराजय न होनेवाले महादेवजी की शरण होता हूं, जिनकी यह सब चराचर जगत् विभूति है ।।७।। पाप रहित ऋषि इस प्रकार उनकी श्रेष्ठ वाणी सुनकर विभूति का विस्तार सुनने की इच्छा से यह परम वचन बोले ।।८।। आपने महात्मा उपमन्युजी का चरित्र वर्णन किया, गौ के दूध के निमित्त तप करके परमेश्वर से उन्होंने वर पाये ।।९।। और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी ने धौम्यजी के बड़े भ्राता उन उपमन्युजी का दर्शन किया और उनकी आज्ञा से पाशुपत व्रत किया ।।१०।। तथा परम ज्ञान प्राप्त किया, यह हमने पहले सुना है। सो श्रीकृष्णजी को

किस प्रकार से पाशुपत ज्ञान प्राप्त हुआ ? ।।११।। वायु बोले– यद्यपि सनातन वासुदेवजी अपनी इच्छा से प्रकट हुए थे, परन्तु मनुष्य देह की निन्दा जानकर उन्होंने लोक संग्रह के निमित्त देह शुद्धि की ।।१२।। वह पुत्र प्राप्ति के निमित्त उन मुनि के आश्रम में तप करने गये थे, वहां उन्होंने उन मुनि का दर्शन किया ।।१३।। कि जिनके सम्पूर्ण अंग पर भस्म लगी हुई थी, मस्तक पर त्रिपुण्ड्र लगा हुआ था, रुद्राक्षमाला से अलंकृत, जटामण्डल से मण्डित ।।१४।। और अपने मुनि रूप शिष्यों से, शास्त्रों से, वेद के समान शोभायमान थे, शिवजी के ध्यान में तत्पर, शान्त, महाकान्तिमान् उपमन्युजी को देखा ।।१५।। उनको देखते ही श्रीकृष्णजी के रोम खड़े हो गये और प्रणाम करके बड़े आदर से श्रीकृष्णजी ने उनकी तीन प्रदक्षिणा की और हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर, बड़े प्रेम से उनकी स्तुति की ।।१६।। उन मुनिराज के दर्शनमात्र से ही महानुभाव श्रीकृष्णजी का माया और कर्म सम्बन्धी देह का मल दूर हो गया ।।१७।। तब उपमन्युजी ने माया विकार से रहित श्रीकृष्णजी के शरीर को 'अग्निरिति भस्म०' इत्यादि मन्त्रों से भस्म से लिप्त कर ।।१८।। बारह महीने का साक्षात् पाशुपत व्रत कराया और उनको श्रेष्ठज्ञान दिया ।।१९।। उसी दिन से बड़े-बड़े व्रतस्नात, दिव्य पाशुपत ज्ञानवाले मुनि उनके समीप नित्य निवास करने लगे ।।२०।। तब परम शक्तिमान् श्रीकृष्णजी गुरु की आज्ञा से साम्ब पुत्र के निमित्त शिवजी की तपस्या करने लगे ।।२१।। उस तपस्या से एक वर्ष के उपरान्त बड़ी शोभा से युक्त शिवजी ने पार्वती और गणों सहित दर्शन दिया ।।२२।। जब सुन्दर आकृतिवाले शंकरजी वर देने के लिये प्रकट हुए, तब श्रीकृष्णजी ने हाथ जोड़कर उनकी स्तुति की ।।२३।। तब शिवजी ने श्रीकृष्णजी के तप से प्रसन्न चित्त होकर उनको वर दिया और उन्होंने अव्यग्रता से अम्बा और गणों के सहित उनको पुत्र दिया ।।२४।। जिस कारण महादेवजी ने अम्बा सहित उनको पुत्र दिया, इसी कारण उन्होंने जाम्बवन्ती के पुत्र का नाम जाम्ब रखा ।।२५।। यह हम ने आपसे महापराक्रमी श्रीकृष्णजी को महर्षि से ज्ञानलाभ और शंकरजी से पुत्रलाभ की कथा कही ।।२६।। जो इस कथा को नित्य कीर्तन करते हैं और सुनते-सुनाते हैं, वह विष्णुजी के ज्ञान को प्राप्त होकर उनके साथ आनन्द करते हैं ।।२७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे

प्रथमोऽध्यायः ।। १ ।।

*****

दूसरा अध्याय

ऋषि बोले- वह पाशुपत ज्ञान क्या है ? शिवजी को पशुपति क्यों कहते हैं ? महात्मा श्रीकृष्णजी ने उपमन्यु से कैसे प्रश्न किया?।।१।। हे शंकरजी के शरीर वायु ! हमसे सब कहिये, आपके समान त्रिलोकी में इसका कोई समर्थ वक्ता नहीं है।।२।। सूतजी बोले- वायुदेवता इस प्रकार उन ऋषियों के वचन सुनकर ईशान शिवजी का स्मरण करके इस प्रकार कहने लगे।।३।। वायु बोले- प्रथम श्रीमहेशजी ने मन्दर पर्वत पर देवी के निमित्त पाशुपत ज्ञान वर्णन किया।।४।। वही वार्ता विश्वयोनि श्रीकृष्णजी ने पूंछी थी, सुरादि को पशुत्व किस प्रकार है और शिवजी को उनका पतित्व किस प्रकार है ?।।५।। जैसे उपमन्यु मुनि ने श्रीकृष्णजी को यथोक्त उपदेश दिया है, वह मैं संक्षेप में कहता हूं, आप मन लगाकर सुनिये।।६।। एक समय उपमन्युजी बैठे हुए थे कि, कृष्ण रूपधारी विष्णुजी उनको प्रणाम करके न्याय से इस प्रकार के वचन कहने लगे।।७।। श्रीकृष्णजी बोले- हे भगवन्! जो शिवजी ने पार्वती के प्रति दिव्य पाशुपत ज्ञान और उसकी सब विभूति वर्णन की है, वह मैं सुनने की इच्छा करता हूं।।८।। वह देव पशुपति किस प्रकार से हैं और पशु कौन कहलाते हैं, किन पाशों से बांधे जाते हैं और किस प्रकार से मुक्त हो जाते हैं ?।।९।। जब महात्मा श्रीमान् उपमन्युजी से इस प्रकार पूछा गया तब देव-देवी को प्रणाम करके वह प्रसन्न होकर बोले।।१०।। उपमन्युजी बोले- ब्रह्माजी से आदि लेकर देव देव शूलधारी शंकरजी के संसार वशवर्ती सब पशु कहलाते हैं।।११।। उनके पति होने से देव देव पशुपति कहलाते हैं, वह पशुपति मल और मायादिकों के पाशों से उनको बांधते हैं।।१२।। और वही पशुपति उपासना किये जाने पर भक्तों का पाशमोचन करते हैं, यह माया के कर्म और गुण चौबीस तत्त्व के हैं।।१३।। यही विषय कहलाते हैं, जिनसे यह जीव बन्धा हुआ है, ब्रह्माजी से लेकर स्तम्ब पर्यन्त पशुओं को इन पाशों से बांधकर शिवजी जगत् का कार्य कराते हैं, उन महेश्वरजी की आज्ञा से ही वह प्रकृति पुरुषों के उचित बुद्धि को उत्पन्न करती है, उससे अहंकार, दस इन्द्रिय, मन, सूक्ष्म कलात्मक शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, पंचतन्मात्राएं उत्पन्न होती हैं।।१४-१५-१६।। कल्याण दायक शिवजी की आज्ञा से तन्मात्रा भी उसीके महाशासन से होती हैं।।१७।। और यथा क्रम से महाभूत उत्पन्न होते हैं, ब्रह्माजी से लेकर तृण पर्यन्त देहधारियों से देह की संगति है।।१८।। यह शिवजी की आज्ञा से महाभूत सबों को उत्पन्न करते हैं, उसीसे निश्चयात्मक बुद्धि अहंकार कही जाती है।।१९।। वह चित्त को चैतन्य और मन को संकल्प युक्त करती है, श्रोत शब्दादि को पृथक् ग्रहण

करती है ।।२०।। अपने ही बल से न कि, दूसरे से दिव्य देव शिवजी की आज्ञा के बल से जो वागादि इन्द्रिय हैं, वे सब कर्मेन्द्रिय हैं ।।२१।। वे शिवजी की आज्ञा से सब अपने--अपने कर्म को ग्रहण करती हैं; शब्दादिक भी ग्रहण करते और वचनादि किये जाते हैं ।।२२।। शिवजी की आज्ञा को कोई उल्लंघन नहीं कर सकता है और वह सबसे प्रबल हैं, वे ही सब प्राणियों को अवकाश देते हैं ।।२३।। परमेश्वर की आज्ञा से ही आकाश सर्वगामी है; प्राणादि से तथा नामभेद से अन्दर–बाहर जगत् को ।।२४।। शिवजी की आज्ञा से पवन धारण करता है, देवताओं के हव्य और पितरों के कव्य को ले जानेवाला है ।।२५।। और पाकादि करनेवाला अग्नि परमेश्वर की आज्ञा से वर्तता है और उन्हींकी आज्ञा से जल सब जगत् का जीवन करते हैं ।।२६।। यह पृथ्वी उन्हींकी आज्ञा से नित्य जगत् को धारण करती है, देवताओं की रक्षा, असुरों को मारना, त्रिलोकी की रक्षा ।।२७।। उनकी सब देवताओं से अलंघनीय आज्ञा से इन्द्र देवताओं का और वरुण जलों का आधिपत्य करते हैं ।।२८।। जीवों को व्याधियों से पीड़ा और मरे हुए जीवों को यातना और धर्म त्यागनेवालों को अनेक दु:ख शिवजी की आज्ञा से धर्मराज प्रदान करते हैं, विधि हीन कर्म करनेवालों के कर्म निऋति हरण कर लेते हैं, वही शिवजी की आज्ञा से निशाचरों का आधिपत्य करते हैं और परमेश्वर की आज्ञा से बांधने योग्य प्राणियों को पाशों से बांधते हैं और दण्ड देते हैं और यक्षपति कुबेर सबको धन देते हैं ।।२९।। और शिवजी की आज्ञा से जैसा जिसका पुण्य है, वैसा ही उसे द्रव्य देते हैं और बुद्धिमानों को सम्पत्ति और ज्ञान देते हैं ।।३०।। ईशानदेव शिवजी की आज्ञा से असाधुओं का निग्रह करते हैं और शिवजी की आज्ञा से शेषजी पृथ्वी को धारण करते हैं ।।३१।। जिन शिवजी की मूर्ति को अन्तकरी तामसी मूर्ति कहते हैं, जिनकी शासना से ब्रह्माजी सारे जगत् को निर्माण करते हैं ।।३२।। इस प्रकार तीन अपनी मूर्तियों से रक्षा (पालन), उत्पत्ति और संहार करते हैं, शिवजी की आज्ञा से विष्णुजी पालते हैं ।।३३।। ब्रह्माजी उत्पन्न करते और अपने शरीर से उत्पन्न करके ग्रास करते हैं, उन्हींकी शासना से सब जगत् को अन्त में हरण करते हैं ।।३४।। वह विश्वात्मा उत्पन्न करके तीन प्रकार से होकर जगत् की रक्षा करते हैं, यह सब कुछ काल ही करके पश्चात् काल ही संहार करता है ।।३५।। काल काल की शासना से यह काल ही जगत् को पालता है, ग्रहण कर लेता है, यह तीन अंशों से जगत् को धारण करके तेज से ही वृष्टि करते हुए ।।३६।। यही सूर्य रूप से होकर अन्तरिक्ष से वर्षा करता है और शिवजी की आज्ञा मानता है, वह सब औषधियों को पुष्ट और प्राणियों को प्रसन्न करता है ।।३७।। यह चन्द्रमा महादेवजी की आज्ञा से देवताओं से पिया जाता है, आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार, मरुत ।।३८।। खेचर, ऋषि, सिद्ध, सर्प, मनुष्यादि, पशु, पक्षी, कीटादि, स्थावरादि ।।३९।। नदी, समुद्र, पर्वत, वन, सरोवर, अंग सहित वेद शास्त्र, मन्त्र, स्तोमयज्ञ ।।४०।। काल अग्नि से

आदि लेकर शिवजी तक अधिपतियों के सहित भुवन, असंख्य ब्रह्माण्ड और उनके आवरण।।४१।। भूत, भविष्य, वर्तमान सम्पूर्ण होते हैं, दिशा–विदिशा काल के भेद, कलादि।।४२।। जो कुछ इस जगत् में देखा अथवा सुना जाता है, वह सब शिवजी की आज्ञा और बल से स्थित है।।४३।। उन्हींकी आज्ञा के बल से यह धरा स्थित है, यह पर्वत, जलधर और समुद्र स्थित हैं, ज्योतिर्गण इन्द्रादिक देवता, चराचर सब उन्हींके आज्ञा से है।।४४।। उपमन्यु बोले– यह श्रीशिवजी महाराज का चरित्र महाआश्चर्यमय है और उनके अमित अर्थात् अनन्त कार्य, जो कुछ वेदादि शास्त्रों में मैंने श्रवण किये हैं, उन्हें आप सुनिये।।४५।। प्रथम देवताओं ने इन्द्र के सहित दैत्यों को जीतकर परस्पर यह विवाद किया कि, 'हमने जीता, हमने जीता है'।।४६।। तब उनके बीच में अतिश्रेष्ठ वेष को धारण करनेवाले महेश्वरजी ने कहा, जो कि अपने लक्षण से विहीन अंगवाले होकर भी यक्षराज के समान हुए थे।।४७।। तब एक तृण पृथ्वी पर रखकर वे देवताओं से बोले, जो इस तृण को चलायमान कर दे, वही दैत्यों को जीतनेवाला है।।४८।। यक्ष के वचन सुनकर वज्रधारी इन्द्र कुछ हँसकर उस तृण को उठाने का उद्योग करने लगे।।४९।। परन्तु उस तृण को उठाने को मन से भी समर्थ न हुए, तब उसका छेद करने के लिये वज्र छोड़ा।।५०।। वह इन्द्र का वज्र उस तृण रूपी वज्र से तिरस्कृत होकर उसके तेज को न सहता हुए पृथ्वी पर गिरा।।५१।। उसी प्रकार दूसरे महाबली लोकपाल भी उस तृण के ऊपर सहस्रों आयुध त्यागने लगे।।५२।। उस समय महाअग्नि प्रज्ज्वलित हुई और प्रचण्ड पवन चलने लगा और प्रलयकाल के उपस्थित होने के समान समुद्र चलायमान हुआ।।५३।। इस प्रकार उस तृण के उद्देश्य से, हे कृष्ण! वह देवताओं का सब पराक्रम व्यर्थ हो गया।।५४।। तब देवेन्द्र ने असहनशील होकर यक्ष से पूछा, तुम कौन हो? तब वह उन सब के देखते ही अन्तर्धान हो गया।।५५।। उसी समय दिव्य भूषण पहने शोभायमान मन्दमुस्कान से युक्त एक सुवर्णमयी देवी आकाश में प्रादुर्भूत हुई।।५६।। उसे देखकर इन्द्र आदि सब देवता विस्मय को प्राप्त हो गये और उसे प्रणाम करके पूछने लगे, वह यक्ष कौन था?।।५७।। तब वह देवी हास्य करके बोली कि, वह आपकी इन्द्रियों का गोचर नहीं है, वह यह संसार रूपी चराचर युक्त चक्र भ्रमण करता हैं।।५८।। वही आदि में संसार की रचना करके फिर उसका संहार करते हैं, उनका कुछ नियम नहीं है और उनसे सब का नियम होता है।।५९।। यह कहकर वह (जगज्जननी) महादेवी अन्तर्धान हो गई और सब देवता भी प्रणाम करके स्वर्ग को चले गये।।६०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे

द्वितीयोऽध्यायः ।। २ ।।

*****

तीसरा अध्याय

उपमन्युजी बोले– हे कृष्ण ! सुनिये, जिस प्रकार की शिवपरमात्मा की मूर्ति से यह चराचर जगत् व्याप्त हो रहा है ।।१।। वह यह शिवजी अपनी मूर्तियों से अधिष्ठित होकर वह अमित आत्मा जो कुछ भी है, उनको जान रहा है ।।२।। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, महेशान, सदाशिव यह उनकी मूर्तियां हैं, जिनसे सारा जगत् विस्तार को प्राप्त हो रहा है ।।३।। जैसे शिवजी की अन्य पंच ब्रह्ममूर्तियां हैं, उनसे भी सब जगत् व्याप्त है, ऐसा कुछ नहीं जहां कुछ न हो ।।४।। ईशानपुरुष, घोर, वामदेव, सद्योजात यह ईशान नाम की पांच मूर्तियां जगत् में विख्यात हैं ।।५।। जो उनकी पहली ईशान नाम की श्रेष्ठ मूर्ति है, वह प्रकृति की भोक्ता होकर क्षेत्रज्ञ में स्थित है ।।६।। और जो मूर्तिमान् स्थाणु की मूर्ति तत्पुरुष नामवाली है; वह गुणाश्रय होकर भोगती है और अव्यक्त में स्थित है ।।७।। धर्मादि अष्टांग से संयुक्त शिवजी के बुद्धितत्त्व में अत्यन्त पूजित अघोर मूर्ति स्थित रहती है ।।८।। और जो विधाता वा महादेव नामक मूर्ति है, उसे शास्त्र जाननेवाले अहंकार में स्थित रहनेवाली कहते हैं ।।९।। अमित तेजस्वी शंकरजी की जो सद्योजात मूर्ति है; बुद्धिमान् उसे मन में स्थिति करनेवाली कहते हैं ।।१०।। श्रोत्र, वाणी, शब्द की विभु और आकाश की जो सबकी ईश्वरी मूर्ति है, उसे पण्डित 'ईशा' कहते हैं ।।११।। त्वचा, हाथ, स्पर्श वायु की ईश्वरी जो ईश्वरी की मूर्ति है, उसे पुराण के जाननेवाले पुरुष कहते हैं ।।१२।। चक्षु, चरण और अग्नि के रूप में शिवजी की अघोर मूर्ति स्थित है, यह बुद्धिमान् कहते हैं ।।१३।। रसना, वायु, रस और जल की ईश्वरी वामदेव नामक मूर्ति उसे जाननेवालों ने कही है ।।१४।। घ्राण, उपस्थ, गन्ध, पृथ्वी की अधीश्वरी उनकी सद्योजात मूर्ति कही गई है ।।१५।। यह देव की पांच मूर्तियां यत्न से कहनी चाहिये, जो मंगल की इच्छा करनेवाले मनुष्य हैं, उन्हें यह सदा मंगल देनेवाली है ।।१६।। उन देवाधिदेव की यह अष्टमूर्तिमय है और जैसे सूत्रों में मणि पोही हुई है, उस प्रकार उनमें विश्व ओतप्रोत है ।।१७।। शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान, महादेव यह उनकी आठ मूर्तियाँ हैं ।।१८।। भूमि, जल, अग्नि, मरुत्, व्योम क्षेत्रज्ञ, अर्क, निशाकर (चन्द्रमा) यह महेश्वरजी की आठ मूर्तियां कल्पित हैं ।।१९।। यह पृथ्वी चराचरात्मक जगत् को धारण करती है, यह शिवजी की शिवात्मक मूर्ति है, यह शास्त्र का निश्चय है ।।२०।। जलात्मक इस सारे जगत् का जीवन है, उन परमात्मा शिवजी की मूर्ति भावी कहलाती है ।।२१।। बाहर–भीतर जगत् को व्याप्त करके उनकी तेजोमयी शुभ मूर्ति है और घोर रूप उनकी रौद्र मूर्ति है ।।२२।। पवन सारे जगत् को स्पन्दन करता हुआ इसका भरण–पोषण

करता है और उग्र मूर्ति उसकी उग्र कहलाती है ।।२३।। और सबको अवकाश देनेवाली उनकी आकाशात्मक मूर्ति है और सब प्राणियों को भय देनेवाली उनकी भीभमूर्ति है ।।२४।। सब क्षेत्रों के निवासियों के अन्तःकरण में सर्वात्मा से स्थित है, वह जीवों की पाश काटनेवाली शिवजी की पशुपति मूर्ति है ।।२५।। सूर्य नाम से उनकी मूर्ति सारे जगत् को प्रकाश करती है, वह ईशान नामवाली शिवजी की मूर्ति स्वर्ग में चलती है ।।२६।। जो चन्द्रमा किरणों से जगत् को तृप्त करता है, वह चन्द्रमूर्ति है, महादेवजी की वह मूर्ति महादेव संज्ञक है।।२७।। इनमें आठवीं शिवजी की व्यापक मूर्ति है और इतर मूर्तियों से भी व्यापक मूर्ति होने के कारण यह जगत् शिवात्मक है ।।२८।। जैसे वृक्ष की जड़ में सींचने से शाखाएं फूलती–फलती हैं, उसी प्रकार शिवजी की पूजा से इनका शरीर रूपी जगत् पुष्ट होता है ।।२९।। सबको अभय देना प्रधान है और सबका अनुग्रह विधायक और सब उपकार का कारण शिवजी का आराधन कहा है ।।३०।। जिस प्रकार पुत्र और पौत्रादि की प्रीति से पिता प्रसन्न होता है, उसी प्रकार सबकी प्रीति से शंकरजी प्रसन्न होते हैं ।।३१।। जब की कोई किसी देहधारी का निग्रह करते हैं, वे अष्टमूर्ति का निग्रह करते हैं, इसमें सन्देह नहीं ।।३२।। अष्टमूर्ति रूप से सब जगत् को व्याप्त करके स्थित हुए परमकारण रूप शिवजी का सर्वभाव से भजन करो ।।३३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे

तृतीयोऽध्यायः ।। ३ ।।

*****

चौथा अध्याय

श्रीकृष्णजी बोले– हे भगवन्! अमित तेजस्वी परमेश शिवजी ने जिस प्रकार अपनी मूर्तियों से यह विश्व व्याप्त कर लिया है; वह मैंने सुना ।।१।। अब मुझे यह जानने की इच्छा है कि, उन स्त्री–पुरुष रूप से यह जगत् किस प्रकार से अधिष्ठित है ? ।।२।। उपमन्युजी बोले– श्रीशिवजी की विभूति यथायोग्य संक्षेप में कहता हूं और विस्तार से तो स्वयं शिवजी भी कहने को समर्थ नहीं हैं।।३।। शक्ति का नाम महादेवी और महादेवजी शक्तिमान् हैं, उनकी विभूति का लेश ही यह चराचरात्मक विश्व है ।।४।। जो कुछ चैतन्य और जो कुछ जडात्मक है, वे दोनों शुद्ध–अशुद्ध, पर वा अपर ।।५।। जो कि यह अचिच्चक्र के सहित चिच्चक्र भ्रमण करती है; वह अपर अशुद्ध और पर शुद्ध है ।।६।। अपर और पर यह दोनों चित् और अचित् रूप हैं, यह शिव और शिवा के स्वाभाविक तादात्म्य से है ।।७।। शिवजी के वश में संसार है और संसार के वश में शिवजी नहीं हैं,

एषणा करने से शिवा–शिव इसके पति हैं और विश्वेश्वर कहलाते हैं ।।८।। जैसे शिवजी वैसी देवी और जैसी देवी तैसे शिवजी हैं, चन्द्रमा और चान्दनी के समान वे हैं, इनमें अन्तर जानना उचित नहीं है ।।९।। चान्दनी के बिना चन्द्रमा नहीं शोभित होता और चन्द्रमा के बिना चान्दनी नहीं शोभित होती, ऐसे ही बिना शक्ति के शिवजी शोभित नहीं होते ।।१०।। जैसे बिना 'प्रभा' के भानु नहीं विदित होता और 'प्रभा' सूर्य से अत्यन्त शोभित होती है ।।११।। इस प्रकार शक्ति और शक्तिमान् की परस्पर सापेक्ष स्थिति है, शिवजी के बिना शक्ति और शक्ति के बिना शिवजी नहीं ।।१२।। जिसके द्वारा शिवजी समर्थ होकर देहधारियों को भुक्ति–मुक्ति देते हैं, वही आद्या चित्शक्ति परा नामक शिवजी के आश्रय है ।।१३।। जिसको सब जगत् के पति परमात्मा शिवजी की उन–उन गुणों से युक्त समान धर्मिणी शक्ति कहते हैं ।।१४।। वह एक पराचित् शक्ति प्रसव धर्म युक्त है, जो शिवजी की इच्छा से संसार को बहुत प्रकार से विभक्त करती है ।।१५।। वही मूल प्रकृति माया त्रिगुण और तीन प्रकार की कही है, यह सब जगत् उन्हीं शिवा से विस्तृत हो रहा है ।।१६।। एक प्रकार, दो प्रकार, सौ, सहस्र प्रकार व्यवहार से अनेक प्रकार शक्ति भेद को प्राप्त होती हैं ।।१७।। शिवजी की इच्छा से पराशक्ति शिवतत्त्व की एकता को प्राप्त हुई, आदि सृष्टि में इस प्रकार स्फुरायमान होती है, तब क्रिया नामवाली शक्ति शक्तिमान् से प्रादुर्भूत हुई, उस शक्ति के क्षोभ को प्राप्त होने से प्रथम नाद की उत्पत्ति हुई ।।१८–१९।। नाद से बिन्दु और बिन्दु से देव सदाशिवजी हुए, उनसे महेश्वरजी हुए और शुद्ध विद्या महेश्वरजी से ।।२०।। वह वाणी की ईश्वरी शक्ति जो शिवजी की बागीशा शक्ति कहलाती है, वर्ण और स्वरूप से मातृका कहलाती है ।।२१।। फिर अन्य के समावेश से माया से काल की नियति, कला और विद्या की उत्पत्ति हुई और कला से राग तथा पुरुष हुए ।।२२।। और फिर माया से त्रिगुणात्मक अव्यक्त उत्पन्न हुआ, त्रिगुण से व्यक्त और उनसे त्रिगुण विभक्त हुए हैं ।।२३।। सत्, रज, तम जिनसे कि, यह सब जगत् व्याप्त है, गुणों से क्षुभित होने से गणेशजी की तीन मूर्तियां हैं ।।२४।। फिर यथाक्रम से महत् आदि तत्त्व हुए, उनसे शिवजी की आज्ञा से असंख्य अण्ड के पिण्ड हुए, वह चक्रवर्ती अनन्त और विद्येशों से अधिष्ठित हैं ।।२५।। शरीरान्तर के भेद से शक्ति के भेद कहे गये हैं, स्थूल–सूक्ष्म के भेद से वे अनेक रूपोंवाले जानने ।।२६।। रुद्र की रौद्री, विष्णुजी की वैष्णवी, ब्रह्माजी की ब्रह्माणी और इन्द्र की एन्द्री शक्ति कही जाती है ।।२७।। बहुत कहने से क्या है ? जो कुछ यह जगत् है यह शक्ति और आत्मा से व्याप्त है, जैसे देह अन्तरात्मा से ।।२८।। इस कारण यह सब स्थावर–जंगमात्मक जगत् शक्तिमय है, यह परमाशक्ति परमात्मा शिवजी की कला है ।।२९।। इसी प्रकार यह पराशक्ति शिवजी की आज्ञा से वशीभूत चराचर जगत् की रचना करती है, यह निश्चय है ।।३०।। ज्ञानक्रिया की इच्छावाली अपनी तीन मूर्तियों से वा शक्ति से वह शक्तिमान् ईश्वर सदा विश्व को

व्याप्त करके स्थित होते है ।।३१।। यह इस प्रकार है, यह इस प्रकार नहीं है, ऐसी आत्मिका शक्ति है, वह महेशजी की इच्छा शक्ति नित्य कार्य की नियामिका है ।।३२।। ज्ञानशक्ति उसका कार्यकारण करण और प्रयोजन तत्त्व रूप से बुद्धि रूप में स्थित होती है ।।३३।। और क्रिया शक्ति जिसने जगत् को अपने वश में कर रखा है, इच्छित मनोरथों को देती है, संकल्प रूपिणी शक्ति क्षणमात्र में सब कुछ संकल्पित कर लेती है ।।३४।। शक्ति के अनुसार उत्पन्न धर्मवाली शक्ति उनमें शक्ति का उत्थान करती है, यहां परम शक्ति से प्रेरित होकर सब जगत् को उत्पन्न करती है ।।३५।। इस प्रकार शक्ति के योग से शिवजी शक्तिमान् कहलाते हैं, शक्ति से शक्तिमान् शाक्तिक होता है, इसीसे यह शिवसम्बन्धी जगत् शाक्तिक कहलाता है ।।३६।। जैसे कि, पिता–माता के बिना पुत्र नहीं होता, इसी प्रकार शिवा–शिव के बिना यह चराचर जगत् उत्पन्न नहीं होता, स्त्री–पुरुषों से उत्पन्न हुआ यह जगत् स्त्री–पुरुषात्मक है।।३७।। स्त्री और पुरुष की विभूति स्त्री–पुरुषों से अधिष्ठित है, परमात्मा शिव और वह शिवा कहलाती है ।।३८।। शिव सदाशिव कहलाते हैं, वह मनोन्मयी शिवा कहलाती है, शिवजी महेश्वर और शिवा माया कहलाती है ।।३९।। परमेशान पुरुष और परमेश्वरी प्रकृति कहलाती है, महेश्वरजी साक्षात् रुद्र और रुद्रवल्लभा रुद्राणी कहलाती है ।।४०।। विष्णुजी विश्वेश्वर देव शिव हैं और लक्ष्मी विश्वेश्वरी देवी शिवा हैं, ब्रह्माजी शिवजी से प्रकट शिव हैं और ब्रह्माणी ब्रह्माजी की प्रिया शिवा है ।।४१।। भास्कर भगवान् शिव हैं; उनकी प्रभा भगवती शिवा है, महेन्द्र शिव और शची शिवा है ।।४२।। अग्नि महादेव और स्वाहा शिवा है; यम शिव और उनकी प्रिया भवानी रूप है ।।४३।। निर्ऋति शिव और उनकी प्रिया शिवा है; वरुण रुद्र और उनकी प्रिया रुद्राणी है ।।४४।। वायु शिव और उनकी प्रिया शिवा है, यक्ष शिव और ऋद्धि शिवा है ।।४५।। चन्द्रमा शिव और रोहिणी शिवा है; ईशान शिव और उसकी प्रिया शिवा है ।।४६।। अनन्त शिव और उनकी प्रिया शिवा है, कालाग्नि रुद्र शिव और काली शिवा हैं।।४७।। पुरुष नामक मनु शिव और शतरूपा शिवा है, दक्ष साक्षात् महादेव और प्रसूति महादेवी है ।।४८।। रुचि शिव और आकूति को पण्डितों ने भवानी कहा है, भृगु शिव और ख्याति पार्वती है ।।४९।। मरीचि शिव और सम्भूति पार्वती, अंगिरा शिव और स्मृति पार्वती है ।।५०।। पुलस्त्य शिव और प्रीति शिवा है, पुलह शिव और उनकी प्रिया शिवा है ।।५१।। क्रतु शिव और सन्नति शिवा है, अत्रि शिव अेर अनसूया को विद्वानों ने पार्वती कहा है ।।५२।। कश्यप रूप शिव और महेश्वरी देवमाता अदिति है, वसिष्ठ कामारि शिव और अरुन्धती साक्षात् देवी भवानी है ।।५३।। सब पुरुष शंकर हैं और सब स्त्रियां पार्वती हैं, इस कारण सब स्त्री और पुरुष उनकी विभूति हैं ।।५४।। विषयी भगवान् शिव है और विषय परमेश्वरी हैं, उमा रूप सब श्राव्य है और शिव श्रोता रूप हैं ।।५५।। जितनी प्रष्टव्य रूप वस्तुएं हैं, पार्वती वह सब धारण करती हैं और प्रष्टा

वह विश्वात्मा बालचन्द्रमा धारी शिव हैं ।।५६।। दृष्टयोग्य सब वस्तु शिवजी की वल्लभा धारण करती है और चन्द्रमौलि शिवजी सब के द्रष्टा देखनेवाले हैं ।।५७।। सम्पूर्ण रस समूह महादेवी हैं और रस लेनेवाले महाशिव हैं, सम्पूर्ण प्रिय समूह पार्वती और प्रीति रूप शिव हैं ।।५८।। मानने योग्य वस्तु को महादेवी धारण करती है और महादेव विश्वात्मा महेश्वर मन्ता माननेवाले हैं ।।५९।। धारण योग्य सब वस्तुओं को पार्वती धारण करती है और धारण करनेवाले चन्द्रशेखर भगवान् शिव हैं ।।६०।। शिवजी सब प्राणियों के प्राण रूप हैं और जल रूपिणी पार्वती माता प्राणियों की स्थिति हैं ।।६१।। त्रिपुरारी पियारी देवी क्षेत्रता को धारण करती हैं और भगवान् अन्धरिपु क्षेत्रज्ञता को धारण करते हैं ।।६२।। शूलधारी शिवजी दिन तथा रात्रि पार्वती हैं, आकाश शंकर और पृथ्वी उनकी प्रिया है ।।६३।। शिव सागर और पार्वती वेला हैं, वृक्ष शिव और लता उनकी प्रिया पार्वती हैं ।।६४।। पुरारि सब पुल्लिंग को धारण करनेवाले और वह देव प्रिया शिवा सब स्त्रीलिंग को धारण करती हैं ।।६५।। पार्वती सम्पूर्ण शब्दजाल धारण करती हैं और चन्द्रशेखर सब अर्थ रूप को धारण करते हैं ।।६६।। जिस-जिस पदार्थ की जो-जो शक्ति है, वह-वह विश्वेश्वरी और वह-वह पदार्थ शिव हैं ।।६७।। जो परम पवित्र, पुण्य और मंगल रूप है वह सब शिवा-शिव के ही तेज से प्रादुर्भूत है ।।६८।। यथा दीप्तिमान् दीप की शिखा से घर दीप्तिमान् होता है, उसी प्रकार इन दोनों के तेज से व्याप्त होकर जगत् दीप्तिमान् होता है ।।६९।। तृण से लेकर शिवमूर्ति तक वही स्थित हैं, उन्हीं शिवा-शिव के सन्निकर्ष से यह सब चलायमान होता है, ऐसी श्रुति है ।।७०।। यह दोनों सम्पूर्ण आकार युक्त और सम्पूर्ण तेज के विधान करनेवाले हैं, यह पूजनीय नमस्कार योग्य और सदा विचार के योग्य हैं ।।७१।। हे कृष्ण ! जिस प्रकार यह प्राज्ञ परमेश्वरी की याथात्म्यता आपसे वर्णन की है, यह इतना ही नहीं ।।७२।। उन शिवा-शिव का माहात्म्य हम नहीं कह सकते; वह तो ब्रह्मादि के मन से भी परे हैं ।।७३।। जो अनन्य मन है, जिन्होंने मन लगा दिया है, उन्हींकी बुद्धि में यह आरूढ़ होते हैं, औरों के नहीं ।।७४।। जो कही हुई मुक्ति की विभूति है, वह प्रकृति से उत्पन्न और अपरा नामवाली है और गुप्तभेद से जाननेवाले दूसरी को अप्राकृत और मुक्त कहते हैं ।।७५।। जहां मन इन्द्रियों के संग पहुँचकर वाणी निवृत्त हो जाती है, वही परमेश्वर की अप्राकृत विभूति है ।।७६।। वही परम धाम और वही परागति है, वही पराकाष्ठा वही परमेष्ठी की विभूति है ।।७७।। उसके प्राप्त करने को श्वास और इन्द्रिय जीतकर योगी यत्न करते हैं और शरीर के सब छिद्रों को रोककर गर्भ के आकार के समान कर लेते हैं ।।७८।। वह शिवा-शिव की विभूति संसार रूपी सर्प के काटे हुओं की संजीवनी है, उसे प्राप्त करके विद्वान् कहीं से भीत नहीं होता है ।।७९।। जो तत्त्व से पर और अपर विभूति को जानता है, वह अपरा विभूति को उल्लंघन करके परा विभूति को प्राप्त होता है ।।८०।।

हे कृष्ण! यह आप से शिवा–शिव का याथात्म्य वर्णन किया, आप शिवजी के भक्त होने से उनके रहस्य सुनने के योग्य हो ।।८१।। जो शिष्य न हो, शठ हो, अभक्त हो उनके निमित्त ऐसे अर्थों को उच्चारण न करे, यह वेद का अनुशासन है ।।८२।। हे कल्याण स्वरूप! इससे आप यदि किसी से कहो, तो अपने समान वा अधिकारियों से कहना, अन्यथा नहीं ।।८३।। इस शिवजी की विभूति को जो योग्य के निमित्त देता है, वह संसार–सागर से मुक्त होकर सायुज्य को पाता है ।।८४।। इसके कीर्तन से बड़े–बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं और तीन चार बार अभ्यास करने से उससे भी अधिक पाप नष्ट हो जाते हैं ।।८५।। उसके अरिष्ट और शत्रु नाश होकर मित्रगण बढ़ते हैं, शैवीविद्या पढ़कर सत्य में उसकी मति प्रवृत्त होती है ।।८६।। शिवा–शिव में पराभक्ति होती है और कुटुम्ब वर्ग गणादि में स्नेह होता है, जिसका अभिलाष करे सो पूर्ण होता है, इसमें सन्देह नहीं ।।८७।। इसको पवित्र होकर शिवजी में भक्ति करके यदि कीर्तन करे, तो पूर्व जन्म के प्रबल कर्मों के फल भी नष्ट हो जाते हैं, बार–बार अभ्यास करनेवालों को कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता ।।८८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे
शिवतत्त्वकथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ।। ४ ।।

*****

पांचवां अध्याय

उपमन्युजी बोले– यह चराचर विश्व उस देव देव का निग्रह है, जीव पाश बन्धन में पड़ने के कारण उसको नहीं जानते हैं ।।१।। हे यदुनन्दन! उस एक ही को बहुत प्रकार से कहते हैं ।।२।। अपर ब्रह्म रूप ही परब्रह्म है, उसे कोई महादेव अनादि निधन कहते हैं ।।३।। भूत, इन्द्रिय, अन्तःकरण प्रधान विषयात्मक अपर ब्रह्म रूप ही ब्रह्मात्मक है, वही चिदात्मक ।।४।। बृहत् और बृहण होने से वह परम कहलाता है, वे दोनों ब्रह्माजी के अधिपति ब्रह्म के रूप हैं, कोई विद्या–अविद्या स्वरूपा ईश्वर कहते हैं ।।५।। चेतना विद्या और अचेतना अविद्या कहलाती है, यह विश्व के गुरु का विद्या और अविद्यात्मक रूप है ।।६।। इसमें सन्देह नहीं; यह उसी का रूप है और विश्व उसके वश में स्थित है, भ्रान्ति विद्या पर यह सब शिवजी का ही रूप है ।।७।। अर्थों में यथार्थ बुद्धि के न होने का नाम भ्रान्ति है, जो अर्थाकार संवित्ति है उसको विद्या कहते हैं ।।८।। विकल्प रहित तत्त्वपद कहलाता है, इसके विपरीत तत्त्व को वेदवादी असत् कहते हैं ।।९।। सत्पुरुषों ने सत्य और साधु में सत् शब्द का प्रयोग किया है, इससे विपरीत वेदवादियों ने असत्

शब्द को कहा है, यह सद्सदात्मक जगत् उस परमेष्ठी का शरीर है, जो यह सत् और असत् कहा जाता है, उनके पति होने से शिवजी सत्–असत् के पति कहलाते हैं; उनको क्षर–अक्षरात्मक कहा है, वह क्षर–अक्षर से परे भी कहा जाता है ।।१०।। सब प्राणी क्षर अर्थात् नाशवान् हैं, कूटस्थ का नाम अक्षर है (चिदात्मा) यह दोनों रूप उस परमेश के वश में हैं ।।११।। उससे परे शान्त शिवजी क्षर–अक्षर से परे कहे गये हैं; समष्टि व्यष्टि रूप (मिला हुआ और अलग–अलग) समष्टि–व्यष्टि का कारण है ।।१२।। कोई मुनि शिवजी को परमकारण कहते हैं, समष्टि को अव्यक्त और व्यष्टि को व्यक्त कहते हैं ।।१३।। परमेश्वर की इच्छा से यह दोनों उसी के रूप हैं, उनके कारण के अभाव से शिवजी ही परमकारण हैं ।।१४।। कारण अर्थ के जाननेवाले समष्टि–व्यष्टि कारण कहते हैं, कोई कहते हैं ईश्वरजाति और व्यक्ति स्वरूपी हैं ।।१५।। जो पिण्डों में वर्तती है, वह जाति कहलाती है, वह व्यक्ति आवृत्ति रूप सब पिण्डजाति में स्थित है ।।१६।। जाति और व्यक्ति उसीकी आज्ञा से परिपालित हैं, इस कारण से महादेवजी जाति और व्यक्ति स्वरूपवाले कहे गये हैं ।।१७।। प्रधान पुरुष व्यक्त कलात्मा शिव कहा जाता है, प्रधान प्रकृति और क्षेत्रज्ञ पुरुष है ।।१८।। बुद्धिमान् तेइस तत्त्वों का नाम व्यक्त कहते हैं, कालकार्य के प्रपंच के परिणाम करने ही का एक कारण है ।।१९।। यही ईश अधिपति विधाता प्रवर्तन और निवर्तन करनेवाला है, यही आविर्भाव (प्रकट) तिरोभाव (गुप्त) करने का एक कारण है ।।२०।। इस कारण प्रधानपुरुष प्रकट ही काल के स्वरूपवाले हैं, उनका कारण और नेता एक विधाता महेश्वरजी है ।।२१।। कोई विराट् हिरण्यगर्भात्मा (ब्रह्मा) ईश है, ऐसा कहते हैं, कि ब्रह्मलोक का विश्वात्मा विराट् है ।।२२।। कविजन अन्तर्यामी और पर को शिव कहते हैं, कोई प्राज्ञ तेज से विश्वात्मा कहते हैं ।।२३।। कोई उसको तुरीय, कोई सौम्य कहते हैं, कोई माता मान और मेय और मति कहते हैं ।।२४।। कर्ता, क्रिया, कारण करण, कार्य ऐसा कहते हैं, कोई उसको जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति आत्मक कहते हैं ।।२५।। कोई उसे तुरीय और तुर्यातीत कहते हैं, कोई निर्गुण, कोई सगुण कहते हैं ।।२६।। कोई संसारी, कोई असंसारी कहते हैं, कोई स्वतन्त्र, कोई अस्वतन्त्र जानते हैं ।।२७।। कोई घोर, कोई सौम्य जानते हैं, कोई राग युक्त और कोई राग हीन कहते हैं ।।२८।। कोई निष्क्रिय और कोई क्रिया रूप कहते हैं, कोई इन्द्रिय रहित, कोई सेन्द्रिय कहते हैं ।।२९।। कोई अचल और कोई चल कहते हैं, कोई अरूप, कोई रूपवान कहते हैं ।।३०।। कोई अदृश्य, कोई दृश्य कहते हैं, कोई वाच्य, कोई अवाच्य, कोई शब्दात्मक, कोई शब्दातीत कहते हैं ।।३१।। कोई चिन्ता युक्त, कोई चिन्ता रहित, कोई ज्ञानात्मक, कोई विज्ञान स्वरूप कहते हैं ।।३२।। कोई ज्ञेय, कोई अज्ञेय, कोई एक और कोई अनेक रूप कहते हैं ।।३३।। इस प्रकार उस परमेष्ठी की अनेक प्रकार से कल्पना करते हुए; अनेक प्रकार से विश्वास के कारण मुनिजन भी निश्चय नहीं कर सकते हैं ।।३४।।

और जो सर्वभाव से परमेश्वर की शरण हुए हैं; वह बिना यत्न के ही परमकारण शिवजी को जानते हैं ।।३५।। जब तक यह जीव दूसरे ईश रहित कवि पुराण पुरुष संसार के वश करनेवाले परमात्मा को नहीं देखता है, तब तक पाशबद्ध होकर चक्रनेमि के समान संसारदुःख में भ्रमण करता रहता है ।।३६।। जिस समय सबके साक्षात् हिरण्यगर्भ जगत् के कर्ता ईश्वर पुरुष ब्रह्म स्वरूप को देखता है, तब वह पुरुष पुण्य–पाप को दूर करके निरंजन कल्मष रहित शिवजी के तादात्म्य को प्राप्त होता है ।।३७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे

पञ्चमोऽध्यायः ।। ५ ।।

*****

छठा अध्याय

उपमन्युजी बोले– इन शिवजी को बन्धन का लेश नहीं है, प्रकृति, माया, बुद्धि तथा अहंकार का किया हुआ भी नहीं है ।।१।। न इसका मानसी बन्धन, न चित्त का बन्धन, न इन्द्रियात्मक, न तन्मात्रा, न आकाशात्मक बन्धन है ।।२।। न काल, न कला, न अविद्या, न नियति, न राग, न द्वेष यह अमित तेजस्वी शिवजी में है ।।३।। न कोई आग्रह, न कुशल, न अकुशल, कर्म उनका विपाक सुख–दुःख और उनके फल, अति आयु भोग रूप ।।४।। विपाक के समान वासना से इनका कुछ सम्बन्ध नहीं है; भोग भोगों के संस्कार तीन काल के गोचरता उसमें नहीं ।।५।। उसका कारण कर्त्ता आदि, अन्त, मध्य कर्म करण, अकार्य, कार्य कुछ नहीं है ।।६।। इनका बन्धु, शत्रु, नियन्ता, प्रेरक, अति गुरु भ्राता अधिक सम कोई नहीं है ।।७।। इनके जन्म–मरण, कांक्षित–अकांक्षित कुछ नहीं है; विधिनिषेध, मुक्ति, बन्धन कुछ नहीं है ।।८।। जो–जो अकल्याणी वस्तु हैं, वह उसमें कुछ नहीं हैं और परमात्मा शिवजी में सब कल्याण निवास करते हैं ।।९।। वह यह सब कुछ शिवजी ही अपनी शक्ति से अधिष्ठित हैं, कभी च्युत नहीं होनेवाला स्वयं भाव से स्थाणु होकर स्थित है ।।१०।। जिस कारण से कि स्थावर–जंगमात्मक जगत् शिवजी से अधिष्ठित है; वह शिवजी सर्व रूप से स्थित होते हैं, उनको जानकर फिर शोच नहीं करना पड़ता है ।।११।। सर्व रुद्र पुरुष परम महान् के निमित्त नमस्कार है; वह हिरण्यबाहु भगवान् हिरण्यपति ईश्वर हैं ।।१२।। वह अम्बिका के पति, ईशान, पिनाकी, वृषवाहन हैं, एक रुद्र परब्रह्म पुरुष कृष्णपिंगल हैं ।।१३।। वह बालाग्र मात्र हृदय के मध्य दहर स्थान में है, उसको विचारना चाहिये, वह हिरण्यकेश पद्माक्ष अरुण ताम्र रूप हैं ।।१४।। जो यह देव नीललोहित विचरते हैं, सौम्य और घोर रूप मित्र अक्षर,

अमृत, अव्यय ।।१५।। वह विशेष परम भगवान् अन्तक के अन्तक, अचेतन को चेतन करनेवाले मुक्त प्रपंच से परे ।।१६।। लोक में अतिशय ज्ञानैश्वर्य देखने से, उनमें अतिशय शक्ति होने से स्थित होती है, ऐसा विद्वान् कहते हैं ।।१७।। कल्प के आदि उत्पन्न हुए ब्रह्माजी को वही वेद का उपदेश करते हैं ।।१८।। काल के अवच्छेद से युक्त होने से वह गुरुओं के भी गुरु हैं, काल के अवच्छेद से रहित वे सबके ईश है ।।१९।। उनकी स्वाभाविकी सिद्ध अतिशय शक्ति है और अत्यन्त निर्मल ज्ञान उनको सदा प्राप्त है ।।२०।। सजातीय द्वितीयादि रहित उनका ऐश्वर्य है; अत्यन्त सुख और बल है, तेज, प्रभाव, वीर्य, करुणा ।।२१।। यह सृष्टि के आदि में सब प्राप्त है; उनको कुछ प्रयोजन नहीं रहता; पर जीवों के ऊपर अनुग्रह करने को ही उनको कर्मों का फल देते हैं ।।२२।। उन परमात्मा शिवजी का वाचक ॐ कार है, शिवजी रुद्रादि शब्दों का प्रणव (ओंकार) ही पर है ।।२३।। प्रणववाच्य शिवजी की भावना और जप करने से जो सिद्धि है, वहीं परा प्राप्त होती है; इसमें सन्देह नहीं ।।२४।। इस कारण शास्त्रज्ञाता उन्हें एकाक्षर कहते हैं, बुद्धिमान् वाच्य-वाचक की एकता मानते हुए ध्यान करते हैं ।।२५।। इसकी वेद की शिरो रूप चार मात्रा कही हैं; अकार, उकार, मकार और नाद ।।२६।। अकार ऋग्वेद, उकार यजुर्वेद, मकार सामवेद और नाद अथर्ववेद है ।।२७।। अकार महाबीज रजोगुण युक्त चतुर्मुख ब्रह्माजी जगत् के उत्पादक हैं; उकार प्रकृति योनि सत्त्वगुण है, विष्णुजी पालक हैं ।।२८।। मकार पुरुष बीज तम है; उससे संहार कर्ता हर हैं, नाद परपुरुष ईश निर्गुण निष्क्रिय शिवजी हैं ।।२९।। इस प्रकार यह तीन मात्राओं से तीन प्रकार का होकर आधी मात्रा से शिवजी अपनी आत्मा का बोधन करते हैं ।।३०।। उनसे परे कोई नहीं है, अपर कोई नहीं है, उनसे सूक्ष्म और बृहत् कोई नहीं है, वह वृक्ष के समान स्तब्ध एक ही स्वर्ग में स्थित है; उन ही पुरुष ने यह सब पूर्ण कर रखा है ।।३१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे

षष्ठोऽध्यायः ।। ६ ।।

*****

सातवां अध्याय

उपमन्युजी बोले- विद्या विश्व लक्षणवाली उस परमात्मा की स्वाभाविकी शक्ति है, वह एक ही अनेक स्वरूप से प्रकाशित होती है, जैसे सूर्य की कान्ति ।।१।। उसकी इच्छा, ज्ञान, क्रियादिक अनन्त शक्तियां हैं और माया से प्रादुर्भूत होते हैं, जैसे अग्नि से अग्नि के स्फुलिंग प्रकट होते हैं ।।२।। सदाशिव ईश्वरादि और अनेक विश्वेश्वरादि और पुरुष उत्पन्न हुए हैं और परे-से-परे प्रकृति ।।३।। महत् से आदि लेकर विशेष पर्यन्त और

ब्रह्मादिक मूर्ति और भी जो कुछ है वह सब उसीका रूप है, इसमें सन्देह नहीं है ।।४।। वही सर्वगामिनी सूक्ष्मा शक्ति है, प्रबोधानन्द स्वरूपवाली है, वही देव शक्तिमान् शिवजी शीतांशु भूषण धारी हैं ।।५।। जानने योग्य शिव और शिवा विद्या हैं, वही प्रज्ञा, श्रुति और स्मृति है, धृति यही हैं, स्थिति, निष्ठा, ज्ञान, इच्छा, कर्म, शक्ति है ।।६।। आज्ञा उसकी परब्रह्म है, दो विद्याएँ हैं, पर और अपर, शुद्ध विद्या, शुद्ध कला, सर्वशक्ति का किया हुआ है ।।७।। माया, प्रकृति, जीव, विकार, विकृति, असत्, सत् जो कुछ भी है, उससे भी यह सब जगत् विस्तृत हो रहा है ।।८।। उसी देव ने यह चराचर सब ब्रह्माण्ड मोहित कर रखा है और बिना प्रयत्न के लीला ही से मुक्त करते हैं ।।९।। इसी सत्ताइस प्रकारवाली माया से वह देवेश विश्व को व्याप्त करके स्थित हैं, उन्हींसे मुक्ति प्रवृत्त होती है ।।१०।। पूर्वकाल में कोई ब्रह्मवादी मुनि संशय युक्त मन से परस्पर विचार करने लगे ।।११।। किस कारण से हम कहां से उत्पन्न होकर किस प्रकार से जीवित हैं ? किस प्रकार हमारी प्रतिष्ठा और हम किससे अधिष्ठित हैं ? ।।१२।। और सब रात्रियों में हम किसके द्वारा सुख से वर्तते हैं ? वह उल्लंघन करने अयोग्य संसार की व्यवस्था किसने की है ? ।।१३।। कालस्वभाव, नियति (देव) यदृच्छा इसमें युक्त नहीं की जाती है, प्राणियों की योनि पुरुष इनका योग और पर ।।१४।। अचेतन होने से कालादि का और चेतन होने से जीव का सुख-दुःख से आविर्भूत होने से अनीशत्त्व विचार करके ।।१५।। वे ध्यानयोग को प्राप्त होकर उसकी ईश्वरीशक्ति देखने लगे, जो पाश को विच्छेद करनेवाली और अपने गुणों से गुप्त उससे विच्छिन्न पाशबन्धन होवे, सबके कारण के कारण शक्तिमान् महादेवजी को चक्षु से देखने लगे ।।१६-१७।। जो सम्पूर्ण के कारण कालात्मा सहित हैं, वह अप्रमेय हैं, वही एक इस शक्ति के सहित स्थित हैं ।।१८।। फिर प्रसादयोग, परमयोग तथा दृढ़ भक्तियोग से दृढ़ गति को प्राप्त हुए ।।१९।। इस कारण से भक्ति पूर्वक जो शिवजी को हृदय में देखते हैं, उन्हींको निरन्तर शान्ति होती है, दूसरों को नहीं, यह श्रुति है ।।२०।। शक्तिमान् का शक्ति से कभी वियोग नहीं होता है, इस कारण शक्ति और शक्तिमान् के प्रसाद से परम सुख की प्राप्ति होती है ।।२१।। मुक्ति की प्राप्ति में ज्ञान और कर्म का कोई विवक्षित नहीं है; उनके प्रसन्न होने में वह मुक्ति हाथ में स्थित है ।।२२।। देव, दानव, पशु, विहंग, कीट, कृमि सब उनकी प्रसन्नता से मुक्त हो जाते हैं ।।२३।। गर्भ से उत्पन्न हुआ बालक वा तरुण, वृद्ध मृतक होता हुआ स्वर्ग में स्थित वा नरकगामी ।।२४।। पतित, धर्मात्मा, पण्डित, मूर्ख, देव के प्रसाद से तत्काल मुक्त हो जाते हैं; इनमें सन्देह नहीं है ।।२५।। जो अयोग्य है उनके ऊपर करुणा, कृपा करके वह परमेश्वर उनके पाप दूर करके उन पर प्रसन्न हो जाते हैं, इनमें सन्देह नही ।।२६।। प्रसाद से ही वह भक्ति और भक्ति से मुक्ति हो जाती है; अधिकार भेद को देखकर विद्वान् उसमें मोहित नहीं होते हैं ।।२७ ।। प्रसाद पूर्वक वह भुक्ति-मुक्ति की देनेवाली है, वह

मुक्ति एक जन्म में मनुष्यों को प्राप्त नहीं होती है ।।२८।। श्रुति के अनुसार वर्तनेवाले अनेक जन्म में सिद्ध हुए; विरक्त और संसार से जागनेवालों के ऊपर परमेश्वर सन्तुष्ट हो जाते हैं ।।२९।। देवेश के प्रसन्न होने पर यह जीव उस भक्ति में प्रवृत्त होता है, मेरे स्वामी शिवजी हैं; पूर्वकाल में इस सूक्ष्म भक्ति ही के द्वारा ।।३०।। तप से विवश होकर यह मनुष्य शैवधर्म में तत्पर होता है, उसके प्रयोग और अभ्यास से भक्ति में तत्परता होती है ।।३१।। उस परम भक्ति से परम प्रसाद की प्राप्ति होती है, प्रसाद से ही सब पाश बन्धन से मुक्त की मुक्ति और निवृत्ति हो जाती है ।।३२।। जिस मनुष्य का शिवजी में अल्पभाव हो, वह भी तीन जन्म में मुक्त हो जाता है; फिर उसे योनि यन्त्र की पीडा नहीं होती ।।३३।। बाह्य और मन के उपचार सहित जो सेवा है, उसीका नाम भक्ति है; वह मन, वाणी, काया के साधन से तीन प्रकार की है ।।३४।। शिव रूप चिन्तन का नाम मानसी सेवा है, जपादि वाचिकी सेवा है, कर्म पूजा कायिक पूजा कहलाती है ।।३५।। यही त्रिसाधना सेवा शिवधर्म कहलाता है; वह धर्म परमात्मा शिवजी ने पांच प्रकार का कहा है ।।३६।। तप, कर्म, जप, ज्ञान और ध्यान रूप से संक्षेप से कहा है, कर्म पूजा, लिंग की अर्चा आदि तप चान्द्रायणादि ।।३७।। तीन प्रकार का जप यह है, शिवशास्त्र में अभ्यास शिवजी की चिन्ता करना ध्यान है, शिवशास्त्र में कहा जो ज्ञान है, वही यहां ज्ञान शब्द से व्यवहार किया है, जो श्रीकण्ठ शिवजी ने पार्वती के प्रति शास्त्र कहा है ।।३८।। वह उनका दया पूर्वक कहा हुआ शिवभक्तों को एक साधन है ।।३९।। इस कारण परम कारुणिक शिवजी में भक्ति बढ़ानी चाहिये और कल्याण की इच्छा करनेवाले मनुष्य विषयों के संग का त्याग करें ।।४०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डेसप्तमोऽध्यायः ।। ७ ।।

*****

आठवां अध्याय

श्रीकृष्णजी बोले– हे भगवन्! शिवजी का कहा हुआ जों वेदसार ज्ञान है, जो उन्होंने अपने भक्तों की मुक्ति के लिये कहा है, उसको मैं सुनने की इच्छा करता हूं ।।१।। जो अभक्त, अज्ञानी, अयोगी हैं उनको वह ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता; पांच सर्गों से युक्त जिसकी मूढ़ता देखकर वह मूर्ख निन्दा करते हैं ।।२।। कहीं वर्णाश्रम के धर्म से विपरीत और कहीं समान, षडंग वेद और सांख्ययोग से जो सम्पूर्ण ग्रहण किया गया ।।३।। जिस ग्रन्थ की संख्या प्रमाण से सौ करोड़ है; उसको परमेश्वर ने कहा है, हे प्रभो ! उसमें पूजा किस प्रकार कथन की है ? ।।४।। पूजादि में किसका अधिकार है और वह ज्ञान–योगादि

किस प्रकार है ? हे सुव्रत ! सो हम से आप सब विस्तार पूर्वक कहिये ।।५।। उपमन्युजी बोले– जो शिवजी ने शास्त्र कहा है, उसको संक्षेप करके जो कि निन्दा–स्तुतियों से रहित हैं, श्रवण से शीघ्र ही विश्वास होता है ।।६।। जो गुरु के प्रसाद से प्राप्त होता और अनायास से ही जिससे मुक्ति हो जाती है, उसको संक्षेप से कहता हूं, विस्तार से तो कोई नहीं कह सकता ।।७।। जिस समय स्थाणु शिवजी सत्कार्य करण से युक्त होकर सृष्टि रचने की इच्छा करने लगे, तब स्वयं ही प्रकट हुए ।।८।। तब देवाधिदेव शंकरजी ने देवताओं के देवता ब्रह्माजी को उत्पन्न किया ।।९।। तब ब्रह्माजी ने उत्पन्न होकर देवाधिदेव अपने पिता को देखा, तब शिवजी ने उन उत्पन्न हुए ब्रह्माजी को आज्ञा दी ।।१०।। रुद्रदेव से हुए ब्रह्माजी संसार की रचना करने लगे और वर्णाश्रम की व्यवस्था भी उन्होंने पृथक्–पृथक् की ।।११।। यज्ञ के निमित्त सोम की रचना की, सोम से स्वर्ग हुआ, पृथ्वी, वह्नि, सूर्य, यज्ञ, शचीपति इन्द्र ।।१२।। वह सब देवता प्रादुर्भूत होकर रुद्राध्याय से देव को सन्तुष्ट करने लगे, तब वह प्रभु देवताओं के सम्मुख प्रसन्न होकर स्थित हुए ।।१३।। तब महेश्वरजी ने लीला के निमित्त उनके ज्ञान को हरण कर लिया, तब देवता कहने लगे, आप कौन हो ? ऐसे कहकर मोहित हो गये ।।१४।। तब भगवान् रुद्र ने कहा– मैं एक पुरातन देव हूं, हे देवताओ ? सबसे पहले मैं ही था और मैं ही सर्वत्र वर्तमान हूं ।।१५।। और आगे भी मैं ही रहूंगा, मुझसे अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं है, मैं ही अपने तेज से सब जगत् को तृप्त करता हूं ।।१६।। मुझसे अधिक और समान कोई नहीं है, जो ऐसा जानता है, वह मुक्त हो जाता है, भगवान् रुद्र ऐसा कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये, जब विष्णुजी आदि देवताओं ने उनको न देखा तब वह ऊपर को भुजा उठाकर अथर्वशिर के मन्त्रों से तथा साम के मन्त्रों से ।।१७।। उनको सन्तुष्ट करने लगे, अथर्वशिर में कहे हुए पाशुपत व्रत करके सब देवताओं ने अपने शरीर में भस्म लगाई ।।१८।। तब उनको प्रसन्न करने के निमित्त पशुपति ईश्वर ।।१९।। गण और पार्वती सहित उस स्थान में आकर प्राप्त हुए, जिनको निद्रा और श्वास के जीतनेवाले पाप रहित योगी ।।२०।। हृदय में देखते हैं, उन देव देव का दर्शन देवताओं ने किया, जिसको ईश्वर की इच्छा के अनुवर्तनेवाली ईश्वर की परम शक्ति कहते हैं ।।२१।। उस वामलोचना को शिवजी के वामांग में उन्होंने दर्शन किया, जो संसार से विरक्त होकर शैवपद को प्राप्त हुए हैं ।।२२।। जो नित्य सिद्ध हैं, उन गणेश्वरों का भी दर्शन किया, तब देवता देवी के सहित महेश्वरजी से प्रार्थना करने लगे ।।२३।। और शिव सम्बन्धी दिव्य तथा महेश्वर सम्बन्धी पुराण के श्लोकों से स्तुति करने लगे, वृषध्वज देव ने भी कृपा करके देवताओं को देखकर ।।२४।। कहा 'मैं प्रसन्न हूं' यह प्रसन्न होकर स्वभाव से कोमल वाणी से बोले, तब प्रसन्नमन होकर शिवजी को प्रणाम कर उन अधिक प्रार्थनीय देव को देवता आदर से कहने लगे ।।२५।। देवता बोले– हे भगवन्! किस मार्ग से आप पृथ्वी पर पूजे जाते हैं और पूजा में किसका अधिकार है ?

सो आप तत्त्व से कहिये ।।२६।। तब शिवजी हँसते हुए देवीजी को देखकर अपना घोर सूर्यात्मक रूप दिखाने लगे ।।२७।। जो सम्पूर्ण ऐश्वर्य के गुणों से युक्त सर्व तेजोमय अपने सब मूर्ति, ग्रह और देवताओं से युक्त ।।२८।। आठ भुजा, चार मुख, अर्द्धनारी का अद्भुत स्वरूप शिवजी का देखकर विष्णुजी आदि सब देवता ।।२९।। शिवजी को सूर्य और देवी को चन्द्रमा जानकर, सम्पूर्ण चराचर पंचभूत रूप ।।३०।। उनको देखकर अर्घ्य देकर स्तुति करने लगे ।।३१।। सिन्दुर वर्ण मण्डलाकार सुवर्ण और हीरे जड़े आभूषणों से युक्त कमलनेत्र कमलयोनि सहित ब्रह्माजी आदि नारायण के कारण के निमित्त ।।३२।। रत्न और सुवर्ण पूर्ण कुंकुम, कुश, पुष्प मिला जल, सुवर्णपात्र में लेकर भगवान् के निमित्त देकर बोले, 'भगवान प्रसन्न हो' ।।३३।। शिवजी को साम्बगणों के सहित नमस्कार है; रुद्र, विष्णु, ब्रह्म, सूर्य मूर्ति के निमित्त नमस्कार है ।।३४।। जो शिवजी को सूर्य मण्डल में सावधान होकर पूजता है, प्रातःकाल, मध्याह्न और सन्ध्या को अर्घ्य देता है ।।३५।। जो प्रणाम करते हैं वा इस स्तोत्र को पढ़ते सौ बार कहते हैं, उनको कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता और दृढ़ भक्ति होने से मुक्त हो जाते हैं ।।३६।। उस कारण भक्ति से नित्य आदित्य रूप शिवजी का पूजन करे; धर्म, काम, मुक्ति के कारण मन, वचन, कर्म से ऐसा करे ।।३७।। तब मण्डल में स्थित शिवजी देवताओं को देखकर सब शास्त्रों में श्रेष्ठ शास्त्र देकर अन्तर्धान हो गये ।।३८।। उसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों को पूजा का अधिकार जानकर वे देवता प्रणाम करके यथायोग्य स्थान में गये ।।३९।। फिर जब बहुत काल बीतने पर वह शास्त्र छिप गया, तब शिवजी के अंक में बैठी हुई परमेश्वरी ने फिर पूंछा ।।४०।। तब उनकी प्रेरणा से चन्द्रमौलि देव ने उस शास्त्र का सार निकाल कर कहा ।।४१।। परमेष्ठी के नियोग से उसको लोक में वर्णन किया; मैं, गुरु, अगस्त और महर्षि दधीचि ने इसे प्रवृत्त किया ।।४२।। युग के आदि में शिवजी अवतार धारण करके अपने भक्तों को मुक्ति के निमित्त ज्ञान प्रदान करते हैं ।।४३।। ऋभु, सत्य, भार्गव, अंगिरा, सविता, मृत्यु, इन्द्र, धर्म, मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ ।।४४।। सारस्वत, त्रिधाम, त्रिवृत, मुनिश्रेष्ठ शततेज, स्वयं धर्म रूप नारायण ।।४५।। अपने सुन्दर धर्म के रक्षक कृतंजय, मामतेय, भरद्वाज, कविश्रेष्ठ गौतम ।।४६।। वाचःश्रवा मुनि, सूक्ष्मायणि शुचि, तृणबिन्दु मुनि, कृष्ण शक्ति शाक्तेय, उत्तर ।।४७।। जातूकर्ण्य हरि, साक्षात् कृष्णद्वैपायन मुनि, वह व्यास कल्प योगेश्वरों को क्रम से सुनिये ।।४८।। लिंगपुराण के सातवें अध्याय से द्वापर के अन्त में व्यासजी के अवतार और योगाचार्य के अवतार तथा कलियुग में शिवजी का अवतार होता है, वह सब लिखा है।।४९।। प्रत्येक अवतार में विभु के चार-चार शिष्य होते हैं; उनके शिष्य और प्रशिष्य सहस्रों हुए हैं ।।५०।। उनके सम्भाषण से लोक में और आज्ञा करणादि से भाग्यवाले अत्यन्त भक्ति करके मुक्त हो जाते हैं ।।५१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे अष्टमोऽध्यायः ।। ८ ।।

नववां अध्याय

श्रीकृष्णजी बोले– सब युगों के प्रारम्भ में योगाचार्य के छल से शिवजी के अवतार और उनके शिष्यों का वर्णन कीजिये ।।१।। उपमन्युजी बोले– श्वेत, सुतार, मदन, सुहोत्र, कंक, लौगाक्षि, महामाया, जैगीषव्य ।।२।। दधिवाह, ऋषभ, मुनि, उग्र, अत्रि, सुबालक, गौतम, वेदशिरा मुनि ।।३।। गोकर्ण, गुहावासी, शिखण्डी, जटामाली अट्टाहास, दारुक, लांगली ।।४।। महाकाल, शूली, दण्डी, मुण्डी, सहिष्णु, सोमशर्मा, नकुलीश्वर ।।५।। यह सातवें वैवस्वत मनु के अन्तर वाराह कल्प में हुए; युगों के क्रम से अट्ठाइस योगाचार्य हुए हैं ।।६।। एक–एक के शान्त चित्तवाले चार–चार शिष्य हुए हैं, शान्त को आदि लेकर रुष्य तक शिष्यों को यथाक्रम से कहता हूं ।।७।। श्वेतः, श्वेतशिख, श्वेताश्व, श्वेतलोहित, दुन्दुभि, शतरूपा, ऋचीक, केतुमान ।।८।। विकोश, विकेश, विपाश, पापनाशन, सुमुख, दुर्मुख, दुर्दम, दुरतिक्रम ।।९।। सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, सुधामा, विरज, शंखपाद, वैरज ।।१०।। सारस्वत, मेघ, मेघवाह, कपिल, आसुरी, पंचशिखा, बाष्कल ।।११।। पाराशर, गर्ग, भार्गव, अंगिरा, बलबन्धु, निरामित्र, केतु, श्रृंग, तपोधन ।।१२।। लम्बोदर, लम्बाक्ष, लम्बकेश, सर्वज्ञ, समबुद्धि, साध्यबुद्धि ।।१३।। सुधामा, काश्यप, वसिष्ठ, विरज, अत्रि, उग्र, गुरु, श्रेष्ठ, श्रवण, अविष्टक ।।१४।। कुणी, कुणबाहु, कुशरीर, कुनेत्रक, कश्यप, उशना, च्यवन, बृहस्पति ।।१५।। उतथ्य, वामदेव, महाकाल, महानील, वाचश्रया, सुवीर, श्यामाश्व, यतीश्वर ।।१६।। हिरण्यनाभ, कौशल्य, लोकाक्षि, कुथुमि, सुमन्तु, जैमिनी, कबन्ध, कुश, कन्धर ।।१७।। प्लक्ष, दार्भायणि, केतुमान, गौतम, वल्लभी, मधुपिंग, श्वेतकेतु।।१८।। उशिज, बृहदश्व, देवल, कवि, शालहोत्र, सुवेश, शम्बूक, आश्वलायन, शरद्वसु, छगलकुण्ड, कर्णकुम्ब, प्रवाहुक, उलूक, विद्युत, शम्बुक, आश्वलायन ।।१९।। अक्षपाद, कणाद, उलूकवत्स, कुशिक, गर्ग, मित्रक, रुष्य ।।२०।। यह योगाचार्य महेश के शिष्य हैं, इन सबकी संख्या एक सौ बारह होती है ।।२१।। यह सब पाशुपत व्रत युक्त भस्म अंग में लगानेवाले, सर्व शास्त्रार्थ के तत्त्व को जाननेवाले तथा वेदवेदांग के पारगामी ।।२२।। शिवजी के आश्रय से प्रीति करनेवाले, शिवज्ञान परायण, सम्पूर्ण संग से हीन, एक शिवजी में ही मन लगानेवाले ।।२३।। शीतोष्णादि द्वन्द्व सहनेवाले, सर्व भूत के हितकारी, सीधे, मृदु, स्वस्थ, जितक्रोध, जितेन्द्रिय ।।२४।। रुद्राक्ष की माला के आभूषण धारण करनेवाले, मस्तक पर त्रिपुण्ड्र लगाये, शिखामात्र जटाधारी, जटा तथा जटा रहित मुण्डशिर ।।२५।। फलमूल भोजी, प्राणायाम में परायण, शैवमार्ग के अभिमान

में तत्पर, शिवजी के ही ध्यान में तत्पर ।।२६।। संसार रूपी विषवृक्ष के अंकुर नष्ट करनेवाले शिवजी के पुर में जाने को कटिबद्ध हैं ।।२७।। इन श्वेतादि को अपना आचार्य मानकर नित्य शिवजी का अर्चन करे तो वह शिवजी के स्थान को चला जाता है, इसमें सन्देह नहीं है ।।२८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे

नवमोऽध्यायः ।। ९ ।।

*****

दसवां अध्याय

श्रीकृष्णजी बोले– हे भगवन्! हे सर्वयोगीन्द्र! हे गणेश्वर! हे मुनीश्वर! कार्तिकेय के समान बुद्धिमान् सब ज्ञान के निधि हे गुरो!।।१।। प्रायः आप पृथ्वी पर मनुष्यों के कर्मबन्धन नष्ट करने को ही प्रकट हुए हो, आप परमेश्वर ही महर्षि का शरीर धारण करके इस स्थान में स्थित हुए हो ।।२।। नहीं तो इस जगत् में देवता आपके सिवाय चिदात्मक ईश्वर का परम भाव कौन जान सकता है ?।।३।। इस कारण शिवजी के समान साक्षात् आपके मुख से निकले हुए शिवज्ञानामृत का पान करने से मेरा मन तृप्त नहीं होता है ।।४।। साक्षात् जगत्पति की गोद में बैठी हुई परमेश्वरी ने किस प्रकार से प्रश्न किया ? ।।५।। उपमन्युजी बोले– हे कृष्ण ! आपने अच्छी बात पूछी, इनको मैं यथायोग्य वर्णन करता हूं, शिवजी की भक्ति से युक्त होकर आप कल्याण चित्तवाले हो ।।६।। पर्वतों में श्रेष्ठ मन्दर पर्वत में जिसकी सुन्दर कन्दरा है, देवी के सहित महादेवजी दिव्य वन में गये ।।७।। उस समय शोभन हास्यवाली देवी की प्रिय सखी शुभावती फूले हुए मनोहर फूल तोड़कर लाई ।।८।। उस समय शिवजी ने देवी को गोद में बैठाकर उन पुष्पों से अलंकृत करके महाप्रसन्नता प्रकट की ।।९।। तब अन्तःपुर में विचरनेवाली दिव्य भूषणवाली देवी और अन्तरंग गणेन्द्र, सब लोकों की महेश्वरी भगवती ।।१०।। और सब लोकों के महेश्वर परिपूर्ण भर्ता देव शंकर और देवी को चमर हाथ में लेकर सेवा करने लगे ।।११।। तब उन दोनों के विनोद के निमित्त प्रिय कथा प्रारम्भ हुई। जो कि, लोक की रक्षा के निमित्त थी, जो कि शिवजी के शरण में आये थे ।।१२।। उस समय सर्वलोक महेश्वरी समय को देखकर सब लोक के महेश्वर अपने स्वामी से पूछने लगी ।।१३।। देवी बोली– हे महादेव ! मन्द चित्तवाले मनुष्य के वश में किस प्रकार से हो सकते हो ? जो अल्पभक्ति, अल्पशक्ति, अल्पमानसिक बल, अकृत बुद्धि हैं, उनके कैसे वशीभूत हो ?।।१४।। ईश्वर बोले– कर्म, जप, तप, समाधि और ज्ञान से भी बिना श्रद्धा के वशीभूत नहीं हो सकता

हूं ।।१५।। जो पुरुषों की मुझमें श्रद्धा है, तो जिस किसी उपाय से वशी करना, देखना, छूना, सम्भाषण करना हो ।।१६।। तो मुझे वश करने को श्रद्धा करनी चाहिये, श्रद्धा ही अपने धर्म का हेतु है और अपने वर्ण की रक्षा है ।।१७।। जो मनुष्य अपने वर्णाश्रम धर्म के अनुसार वर्तता है उसीकी श्रद्धा मुझमें होगी, दूसरे की नहीं ।।१८।। आश्रमवालों को सम्पूर्ण शास्त्र की सिद्धि ब्रह्माजी ने पूर्वकाल में मेरी ही आज्ञा से कल्पना की है ।।१९।। वह ब्रह्माजी का उपनयन यागादि गायत्री रूप धर्म बहुत वित्त और क्रिया रूप है, उसमें फल तो अधिक नहीं है, परन्तु क्लेश और परिश्रम बहुत है, उस बड़े भारी धर्म से दुर्लभ श्रद्धा को प्राप्त होकर ।।२०।। जो वर्णाश्रमी अनन्य मन से मुझको प्राप्त होते हैं, उनको सुखमार्ग से धर्म कामार्थ की तथा मुक्ति की प्राप्ति होती है ।।२१।। वर्णाश्रम के आचार की मैंने फिर कल्पना की है, उन वर्णाश्रमों में जो मेरी भक्ति करनेवाले हैं ।।२२।। उसमें सबका अधिकार नहीं है, यह मेरी नैष्ठिकी बुद्धि निश्चयवती है, वर्णाश्रम धर्मवाले मेरे उपदेश किये मार्ग से ।।२३।। मेरे प्रसाद से मल-मायादि के पाश से मुक्त हो जाते हैं, फिर आगमन से रहित मेरे पुर को प्राप्त होकर मेरे परम साधर्म्य को प्राप्त होते हैं ।।२४।। यह मेरा कहा हुआ वर्ण धर्म प्राप्तकर अथवा न प्राप्तकर भी मेरा भक्त अपनी आत्मा में आश्रित रहकर अपनी आत्मा का उद्धार करे ।।२५।। अज्ञान में करोड़-करोड़ गुना अधिक धर्म जानकर करने से होता है, इस कारण मेरे मुख से सुनकर धर्म करे ।।२६।। हे शुभे! योगाचार्य के छल से मेरे अवतार सम्पूर्ण मन्वन्तरों में सहस्रों होते हैं ।।२७।। हे सुरेश्वरि! जो अबुद्ध हैं, अभक्त हैं, उनको यह ज्ञान दुर्लभ है, इस कारण यत्न से इस ज्ञान को प्राप्त करना चाहिये ।।२८।। वही हानि, वही महाछिद्र, वही मोह, यही अन्ध और मूर्खता है, जो मोक्षमार्ग के सिवाय दूसरी जगह श्रम करे ।।२९।। हे सुरेश्वरी! ज्ञान, क्रिया, पूजा और याग यह सनातन चतुष्पाद धर्म कहा है ।।३०।। जीवों को कर्मानुसार फल देनेवाले शिवजी का ज्ञान पशुपति ज्ञान है, पूर्वोक्त छः मार्गों शुद्धि की विधि से उसकी क्रिया कही जाती है ।।३१।। वर्णाश्रम से प्रयुक्त हुए मुझसे ही विधान किये हुए मेरे अर्चनादि धर्म की चर्या कहलाती है ।।३२।। मेरे ही कहे मार्ग के अनुसार मुझमें ही चित्त लगाने से अन्य स्थानों में वृत्तियों को न जाने देने का नाम योग है ।।३३।। हे देवी! चित्त का निर्मल होना सौ अश्वमेध यज्ञ से भी श्रेष्ठ है, यही मुक्ति का देनेवाला विषयी पुरुषों को असाध्य है ।।३४।। जिसने यम-नियम करके इन्द्रियों को जीत लिया हैं, वह सब पाप हरनेवाला योग विरक्तों को कहते हैं ।।३५।। वैराग्य से ज्ञान और ज्ञान से योग प्रवृत्त होता है ।।३६।। योग का जाननेवाला पतित भी मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं, सदा दया करनी, अहिंसा, ज्ञान का संग्रह करना ।।३७।। सत्य बोलना, चोरी न करना, आस्तिकपना, श्रद्धा, इन्द्रिय निग्रह, पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना ।।३८।। ध्यान, ईश्वरभाव, सदा ज्ञानशीलता, जो ब्राह्मण इस प्रकार ज्ञानयोग की सिद्धि के निमित्त वर्तता है ।।३९।।

वह शीघ्र ही ज्ञान को प्राप्त होकर योग को जानता है, हे प्रिये! क्षणमात्र में योगी ज्ञानाग्नि से इस देह को भस्म करके।।४०।। मेरे प्रसाद से कर्मयोग को जाननेवाला पाशबन्धन को छोड़ देगा, पुण्य और अपुण्यात्मक कर्ममुक्ति का प्रतिबन्धक रोकनेवाला है, इस कारण योगी पुण्य और अपुण्य से अलग रहे।।४१।। फल की कामना से जो कर्म किया जावे वह बन्धन को प्राप्त करता है, कर्ममात्र का न करना त्याग नहीं, किन्तु कर्मफल के त्याग का नाम कर्मत्याग है।।४२।। हे प्रिये! प्रथम कर्मयज्ञ से बाहर मेरी पूजा करे, फिर ज्ञानयज्ञ में प्रीति करता हुआ योग करे।।४३।। मुझे यथार्थ जानकर देहधारी कर्मयज्ञ द्वारा फिर वे भक्त यजन नहीं करते, उनको मिट्टी कांचन बराबर होता है।।४४।। नित्य युक्त होकर मेरे भक्त ज्ञानयोग में रत होकर मेरे सायुज्य को प्राप्त होते हैं।।४५।। जो विरक्त चित्त, वर्णधर्मी मेरी उपासना करते हैं, ज्ञानचर्या क्रिया करते हैं, वे भी उसे करने के योग्य हैं, वे उसे करें।।४६।। बाहर–भीतर, भीतर–बाहर, वाणी, मन, काया के भेद से तीन प्रकार से मेरा भजन होता है।।४७।। जप, कर्म, तप, ध्यान, ज्ञान, पांच प्रकार से सत्पुरुषों ने कहा है, वही भजन है।।४८।। दूसरे में हमारी अर्चा (पूजा) जो दूसरों से ज्ञात होती है, बाह्य पूजा कहलाती है और जो अपने आप जानता है वह अभ्यन्तर पूजन कहलाता है।।४९।। मनोमय चित्त है उसको मनोमात्र कहते हैं; अर्थात् इतने ही के योग्य मन है, मेरे नाम में जिसकी वाणी निरत है, वही सार्थक है और जो मेरे नाम से रहित है वह कुछ नहीं।।५०।। वह मेरे शासन से आदेश के लिये लिंग और त्रिपुण्ड्रादि से अंकित होकर मेरा भजन करता है, वह काया से पूजन है, दूसरा नहीं।।५१।। मेरी अर्चा करनी यही बाह्य कर्म है, मेरी आज्ञा से रहित यज्ञादि कर्म नहीं, मेरे निमित्त देह को शोषण करना ही तप है, अन्य नहीं।।५२।। जप, पंचाक्षर का अभ्यास, प्राणायाम का अभ्यास, रुद्राध्याय का अभ्यास करना ही अभ्यास है; पंचाक्षरादि रहित वेदाभ्यास कुछ नहीं।।५३।। ध्यान, मेरे रूप की चिन्ता ही समाधि है, आत्मा के निमित्त समाधि नहीं है; मेरे शास्त्र अर्थ का ज्ञान ही ज्ञान है; दूसरे अर्थों का जानना नहीं।।५४।। बाह्य अभ्यन्तर जहां प्रीति हो, हे देवि! पूर्वजन्म के वासना अनुसार वहीं प्रीति करे।।५५।। बाह्य से अभ्यन्तर पूजा सौ गुणा अधिक फल देती है; कारण कि उसमें दोष की प्राप्ति नहीं हो सकती, वहां बाहर के दोष नहीं दीखते।।५६।। जिसके अन्तःकरण में अशुद्धि है, वह पवित्र भी अपवित्र है।।५७।। बाह्य और अभ्यन्तर में जो भाव पूर्वक भजन करना है, वही भजन है, और भाव रहित भजन नहीं है, हे देवि! वह तो विप्रलम्भ का कारण है।।५८।। कृतकृत्य और नित्य तृप्त मनुष्यों से मेरा क्या हो सकता है? जो बाहर–भीतर एक सा हो उसके भाव में ग्रहण करता हूं।।५९।। हे देवि! एकात्मा से भाव करना ही क्रिया है, यही मेरा सनातन धर्म है; मन, वचन, कर्म से कही किसी फल की अपेक्षा न करनी।।६०।। हे देवि! फल के उद्देश्य से मेरा आश्रय लघु कहलाता है, फलार्थी फल के

अभाव से मुझे छोड़ने को समर्थ होता है ।।६१।। जिस फल की इच्छा करनेवाले का मुझमें चित्त स्थित है, हे निन्दा रहित! उसको मैं भाव के अनुसार फल देता हूं।।६२।। और जिनका मन फल की अपेक्षा त्यागकर मुझमें लगा हुआ है और पीछे फल की इच्छा करते हैं, वे भी भक्त मेरे प्रिय हैं।।६३।। जो पहले संस्कार के वश से फलाफल की चिन्ता करके विवश होकर मुझको प्राप्त होते हैं, वे भी मेरे अत्यन्त प्यारे हैं।।६४।। मेरे लाभ से अधिक उनको और कुछ लाभ नहीं है, हे परमेश्वरि! उनके लाभ से अधिक और मुझको भी कुछ लाभ नहीं है।।६५।। जिनका भाव मुझमें है, उन पर मेरी कृपा होती है और मैं अतिबल से उनको निर्वाणपद देता हूं।।६६।। जिन महात्माओं ने मुझमें चित्त लगा रखा है, जो मेरे अनन्य भक्त हैं, उन धर्माधिकारियों के आठ प्रकार के लक्षण हैं।।६७।। मेरे भक्तजनों से प्रीति, पूजा, अनुमोदन, स्वयं अर्चा करनी, मेरे निमित्त ही अगों की चेष्टा करनी।।६८।। मेरे कथा श्रवण में भक्ति, स्वरनेत्र, अंग की विक्रिया मेरे निमित्त करनी, नित्य मेरा ही स्मरण और मेरा ही जो आश्रय करता है।।६९।। इस प्रकार का चिह्न जिस म्लेच्छ में वर्तता है, वही श्रेष्ठ ब्राह्मण मुनि, यति, और पण्डित है।।७०।। मुझे चतुर्वेदी प्रिय नहीं हैं; परन्तु जो मेरा भक्त चाण्डाल है वह श्रेष्ठ है, उसकी दी हुई पूजादि को मैं ग्रहण करता हूं, उसका संस्कार मेरे समान है।।७१।। पत्र, पुष्प, फल, जल जो भी कुछ भी भक्ति से मुझे देता है, उसको मैं नाश नहीं करता।।७२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे

दशमोऽध्यायः ।। १० ।।

*****

ग्यारहवां अध्याय

महादेवजी बोले– हे देवेशि! अधिकारी, भक्त, पण्डित, ब्राह्मणश्रेष्ठों के वर्ण धर्म को समास से कहता हूं।।१।। त्रिकाल स्नान, अग्निकार्य, लिंगार्चन, दान, ईश्वरभाव, सर्वत्र दया करनी।।२।। सत्य, सन्तोष, आस्तिक्य, सब प्राणियों की हिंसा से पृथकता, लज्जा, श्रद्धा, वेदपाठ, योग करना।।३।। व्याख्यान, ब्रह्मचर्य, तप, क्षमा, शौच, शिखा, जनेऊ, पगड़ी, दुपट्टा धारण करना।।४।। निषिद्ध वस्तु को सेवन न करना, भस्म तथा रुद्राक्ष धारण करना, पूर्व में पूजा विशेष कर चतुर्दशी में पूजन करना।।५।। ब्रह्मकूर्च विधि से गव्य का पान विधि पूर्वक महीने–महीने में करना और उसीसे मुझे स्नान कराकर विशेष पूजा करना।।६।। सर्व क्रिया अन्न का त्याग, श्राद्धान्न को छोड़ देना और विशेष कर यावक (कुलथी व्रीहि का भेद) का त्याग करे।।७।। मद्य, मद्य की गन्ध, मेरे अर्पण

की हुई नैवेद्य का त्याग सर्व वर्णों में सामान्य और विशेष करके ब्राह्मणों का धर्म है ।।८।। क्षमा, शान्ति, सन्तोष, सत्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, मेरा ज्ञान, वैराग्य, भस्म का सेवन ।।९।। सबके सग से निवृत्ति, विशेष करके ये दस बातें करनी उचित हैं; योगियों के लिये ये हैं; दिन में भिक्षा मांग लेनी ।।१०।। यह वानप्रस्थ आश्रमों का भी समान ही धर्म है, योगी और यह एक धर्म करते हैं, सब ब्रह्मचारियों को रात्रि में भोजन न करना चाहिये ।।११।। पढ़ाना, यज्ञ कराना, प्रतिग्रह यह क्षत्रियों को करना, विशेष कर वैश्य के लिये मैंने अनुज्ञापन नहीं किया है ।।१२।। सब वर्णों की रक्षा करनी, युद्ध में शत्रुओं का वध, दुष्ट पक्षी मृगों का और दुष्ट मनुष्यों का निग्रह करना ।।१३।। सब जगह अविश्वास, केवल मेरे योग में विश्वास करना, समय पर स्त्री के संग (ऋतुकाल में गमन), सेना का रक्षण ।।१४।। सदा दूत भेजकर लोक का वृत्तान्त जानना; अस्त्र, वस्त्र, कंचुक धारण, भस्म धारण करना ।।१५।। मेरे आश्रम में स्थित राजाओं का यह धर्म है; गोरक्षा, वाणिज्य, कृषि यह कर्म वैश्यों का है ।।१६।। इन तीनों वर्णों की सेवा करनी यह शूद्रों का धर्म है; बाग लगाना, मेरे क्षेत्र का आश्रय ।।१७।। धर्मपत्नी में गमन गृहस्थों को उचित है; ब्रह्मचर्य करना, वन में स्थित यति और ब्रह्मचारी जनों को उचित है ।।१८।। स्त्रीजनों को भर्ता की शुश्रूषा के सिवाय दूसरा धर्म नहीं है, हे कल्याणि ! स्वामी की आज्ञा लेकर स्त्री मेरा पूजन करे ।।१९।। जो नारी भर्ता की शुश्रूषा छोड़कर व्रत करती है, वह स्त्री नरक को जाती है, इसमें सन्देह नहीं ।।२०।। स्वामी से रहित स्त्रियों का धर्म संक्षेप से कहता हूं ! व्रत, दान, तप, शौच, पृथ्वी पर सोना, रात्रि में भोजन ।।२१।। ब्रह्मचर्य से रहना, भस्म वा जल से स्नान करना, शान्ति, मौन, क्षमा, संविभाग, दुष्टों से पृथक् रहना, विधि पूर्वक ।।२२।। अष्टमी, चौदश और पौर्णमासी में विशेष कर एकादशी में विधि पूर्वक मेरा अर्चन करना उचित है ।।२३।। यह संक्षेप से मैंने अपने आश्रम के स्थित होने की विधि कही । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यती, ब्रह्मचारी ।।२४।। उसी प्रकार वानप्रस्थ, गृहस्थ और शूद्र स्त्रियों का यही सनातन धर्म है ।।२५।। हे देवि ! तुम्हें मेरा ध्यान और सदा षडाक्षर का जप करना चाहिये; यही वेदोक्त सब धर्मों का सार है ।।२६।। और जो मनुष्य लोक में अपनी इच्छा से व्रत धारण करनेवाले हैं, अत्यन्त भाव और पूर्व संस्कार से युक्त हैं ।।२७।। जो स्त्रियादि विषयों में विरक्त और अनुरक्त हैं, वे पाप से लिप्त नहीं होते, जैसे पद्मपत्र जल से लिप्त नहीं होता ।।२८।। उन विशुद्ध विवेकियों को आत्मविज्ञान मेरे प्रसाद से प्राप्त होता है, कारण कि, आश्रम, धर्म रक्षण करने कठिन है ।।२९।। उनके निमित्त कृत्य–अकृत्य समाधि परायण विधिनिषेध कुछ नहीं है ।।३०।। जिस प्रकार मुझे परिपूर्ण को कुछ साध्य नहीं है; इसी कारण कृतकृत्य हुओं को कोई कार्य शेष नहीं रहता ।।३१।। मेरे भक्तों ही के हित करने के निमित्त मनुष्य भाव में आश्रित हुए रुद्रलोक से आये हुए मनुष्य रुद्र रूप ही हैं ।।३२।। मेरी जो आज्ञा ब्रह्मादि को प्रवृत्त करनेवाली है;

उसी प्रकार मेरी आज्ञा दूसरे मनुष्यों को भी प्रवृत्त करती है ।।३३।। मेरी आज्ञा का धारण और मुझमें अत्यन्त भाव लगाना जो करते हैं, उनके दर्शन मात्र से ही सब पाप क्षय हो जाते हैं ।।३४।। उन्हें अच्छे फल देनेवाले विश्वास प्रवृत्त होते हैं; मुझमें प्रेम करनेवाले पुरुषों के पहले ही अर्थ विदित हो जाते हैं ।।३५।। कंप, स्वेद, अश्रुपात, कण्ठ और स्वर गद्‌गद आनन्द उपलब्धि अकस्मात् बारंबार होती है ।।३६।। उन सब अव्यभिचारी लिंगों करके मन्द, मध्य, उत्तम भाव से वे मनुष्य श्रेष्ठ जानने चाहिये ।।३७।। जैसे अग्नि युक्त होने से वह लोहा केवल लोहा नहीं रहता है, वैसे ही मेरे निकट होने से; फिर वे केवल मनुष्य ही नहीं किन्तु मेरा रूप हो जाते हैं ।।३८।। हाथ पैर आदि से युक्त रुद्र रूप धारण करनेवाले पुरुषों को साधारण रूप जानकर निन्दा करनी उचित नहीं है ।।३९।। जो मूर्ख चित्तवाले मनुष्य उनका तिरस्कार करते हैं, उनकी आयु, शील, कुल नष्ट होकर नरक की प्राप्ति होती है ।।४०।। ब्रह्मा, विष्णु, महेशों का पद तोला जाय तो लघु हो जाता है, मुझसे सिवाय अनपेक्ष उद्धृत महात्माओं का ।।४१।। अशुद्ध बुद्धि का ऐश्वर्य प्राकृत पुरुषार्थ गुणों की ईशता गुणातीत पद की इच्छा करनेवालों को छोड़नी चाहिये ।।४२।। बहुत करने से क्या है? मंगल की प्राप्ति का एक ही साधन है, कि किसी प्रकार से मुझमें चित्त लगाना ।।४३।। उपमन्युजी बोले– जब इस प्रकार श्रीकण्ठ परमात्मा शिवजी ने ज्ञानार्थ सार संग्रह कहा ।।४४।। विज्ञान संग्रह में इतिहास, पुराण आदि विद्याओं का व्याख्यान कहा है ।।४५।। ज्ञान ज्ञेय जानने योग्य, अनुष्ठान करने योग्य साधन साध्य षडर्थों का यह संग्रह वर्णन किया है ।।४६।। गुरु से प्राप्त हुआ शिवजी का ज्ञान जीवों को जानना उचित है, लिंगार्चनादि का अनुष्ठान भक्तों को करना उचित है ।।४७।। शिवमन्त्रादि का साधन शिवजी को समानता षडर्थ संग्रह के ज्ञान से प्राणी सर्वज्ञ हो जाता है ।।४८।। पहले यज्ञादि कर्म, भक्ति और धन के अनुसार करके पहले बाह्य और फिर शिवजी का अन्तर पूजन करना चाहिये ।।४९।। जिसकी अन्तर पूजन में प्रीति है और बाह्य कर्म में गौरव से नहीं है; उस महात्मा को बाह्य कर्म करने की आवश्यकता नहीं है ।।५०।। जो शिवजी के भक्त ज्ञानामृत से तृप्त हैं, हे कृष्ण! उनको बाहर–भीतर कुछ भी कृत्य नहीं है ।।५१।। इस कारण क्रम से बाह्य और अन्तर को छोड़कर ज्ञान से ज्ञेय पदार्थ को जानकर ज्ञान को भी छोड़ दे ।।५२।। जो शिवजी में एकाग्र चित्त न हो तो कर्म से भी क्या है, जो चित्त एकाग्र हो तो कर्म न करने से भी सब कुछ है ।।५३।। इस कारण अन्तर–बाहर कर्म करके अथवा न करके जिस किसी उपाय से शिवजी में चित्त लगावे ।।५४।। शिवजी में चित्त लगानेवाले बुद्धि से युक्तों को यहां–वहां सर्वत्र निवृत्ति अत्यन्त होती है ।।५५।। 'ॐ नमः शिवाय' इस मन्त्र में; यह सब सिद्धि होती है, इस कारण परावर की विभूति के प्राप्त होने को वह मन्त्र प्राप्त करना चाहिये ।।५६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे एकादशोऽध्यायः ।। ११ ।।

बारहवां अध्याय

श्रीकृष्णजी बोले– हे महर्षियों में श्रेष्ठ! हे सर्वज्ञ, ज्ञान के सागर! मैं पंचाक्षर माहात्म्य को सुनने की इच्छा करता हूं।।१।। उपमन्युजी बोले– पंचाक्षर मन्त्र का माहात्म्य तो सौ करोड़ वर्ष में भी विस्तार से नहीं कह सकते, इस कारण संक्षेप से सुनिये।।२।। वेद और शैवशास्त्र में प्रणव सहित षडक्षर मन्त्र सब लोकों में सबसे श्रेष्ठ है; यह ॐ कार युक्त षडक्षर सबसे सदा उत्तम है, सब शिवभक्तों के सम्पूर्ण अर्थ के प्रकाश करनेवाला है।।३।। इसमें थोड़े अक्षर गम्भीर अर्थ वेद का सार है, मुक्ति का देनेवाला है; आज्ञा सिद्ध सन्देह रहित यह शिवात्मक वाक्य है।।४।। अनेक सिद्धियों से युक्त दिव्य लोक के चित्तों का प्रसन्न करनेवाला निश्चित अर्थ गम्भीर परमेश्वर के वाक्य है।।५।। सम्पूर्ण अर्थ की सिद्धि के निमित्त मुख से सुख पूर्वक वाक्य उच्चारण करना चाहिये; 'ॐ नमः शिवाय' यह सब देहधारियों को सर्वज्ञता दायक है।।६।। यह षडक्षर मन्त्र सब विद्याओं का बीज है, अति सूक्ष्म महान् अर्थवाला वट के वृक्ष के समान जानना उचित है।।७।। वह देव तीनों गुणों से परे हैं 'ओम्' इस एकाक्षर मन्त्र में ही सर्वज्ञ शिवजी स्थित हैं।।८।। ईशानादि सूक्ष्म ब्रह्म के एकाक्षर नाम 'नमः शिवाय' इस मन्त्र में यथायोग्य स्थित है, इस षडाक्षर मन्त्र में पंचब्रह्मद्योतक शरीर युक्त शिवजी।।९।। वाच्य–वाचक के भाव से साक्षात् स्वभाव से स्थित हैं, प्रमेय होने से वाच्य शिव और मन्त्र उनका वाचक है।।१०।। यह वाच्य–वाचक भाव अनादिकाल का है, जिस प्रकार यह घोर संसार–सागर अनादिकाल से है।।११।। इसी प्रकार अनादिकाल से शिवजी संसार के मोचक हैं, जिस प्रकार व्याधि को औषध सदा चली आती है और रोग की शत्रु है।।१२।। इसी प्रकार संसारदोष को दूर करने को शिवजी दृढ़ हैं, इन जगन्नाथ के न होने से अन्धकारभूत संसार हो जाता है।।१३।। जैसे शिवजी के न होने से जगत् की सृष्टि कैसी होती है? क्योंकि प्रकृति अचेतन और पुरुष अज्ञात है, प्रधान परमाणु आदि जो कुछ अचेतन है।।१४।। बुद्धिमानों ने कारण के बिना उसका स्वयं कर्तृत्व नहीं देखा है। धर्माधर्म का उपदेश बन्धमोक्ष विचारणा।।१५।। सृष्टि के आदि में सर्वज्ञ के बिना नहीं हो सकती, जैसे वैद्य के बिना अरोगी आनन्द रहते हैं।।१६।। इसी प्रकार शिवजी के बिना जीव जगत् आनन्द रहित होते हैं, इस कारण शिवजी परिपूर्ण और अनादि सर्वज्ञ हैं, वही नाथ और संसार–सागर से रक्षा करनेवाले हैं।।१७।। वह अनादि, अन्त, मध्य से रहित, स्वभाव से निर्मल प्रभु हैं, सर्वज्ञ परिपूर्ण शिवजी को शास्त्रों में लिखा है।।१८।। उनके अभिधानकता का यह मन्त्र है और वह अभिधेय कहलाते हैं, अभिधान और अभिधेय होने से मन्त्र सिद्ध

और पर शिव हैं ।।१९।। इतना ही शिवजी का ज्ञान और इतना ही परम पद है, जो 'ॐ नमः शिवाय' षडक्षर मन्त्र का ध्यान करे ।।२०।। वह शिवप्रोक्त विधिवाक्य हैं, अर्थवाद नहीं है, जो सर्वज्ञ और स्वभाव से निर्मल है ।।२१।। लोक को अनुग्रह करनेवाले मृषा कैसे हो सकते हैं ? जो वस्तु गुणदोषों से जैसी स्थित है ।।२२।। जितना फल पूर्ण है, सर्वज्ञ को वैसा ही कहता है, जो राग अज्ञानादि दोषों से ग्रस्त होकर असत्य कहता है ।।२३।। वे ईश्वर में नहीं हैं, फिर वह अन्यथा कैसे कह सकता है ? जिस कारण कि, सर्वज्ञ शिवजी से वह दोषों के दोष नहीं हुए हैं, उनमें निर्माण किये निर्मल वाक्य ही प्रमाण हैं, इसमें सन्देह नहीं ।।२४।। इस कारण बुद्धिमान् को ईश्वर के वाक्य में सदा श्रद्धा करनी चाहिये, यथार्थ पुण्य और पाप में श्रद्धा न करनेवाला नरक को जाता है ।।२५।। और जो स्वर्ग और अपवर्ग के निमित्त सुन्दर वचन मुनिजनों ने कहे हैं, उनको ही शोभित कहते हैं ।।२६।। और जो राग, द्वेष, अनृत, क्रोध काम, तृष्णा के अनुसारी वाक्य हैं, जो नरक के हेतु वाक्य हैं; उनको दुर्भाषित कहते हैं ।।२७।। जो सत्कार युक्त, मनोहरता युक्त हैं तो भी उनसे क्या है ? जो अविद्या राग के वाक्य हैं; वह संसारक्लेश के कारण हैं ।।२८।। जिनके सुनने से मंगल होकर और रागादि संक्षय होता है, वह कठिनाक्षर युक्त भी महाशोभित वाक्य हैं ।।२९।। जिस कारण से कि, मन्त्र के बहुत्व होने पर सर्वज्ञ शिवजी ने निर्मल मन्त्र निर्माण किये, जिनके समान कोई भी नहीं है ।।३०।। सांगवेद शास्त्र षडक्षर मन्त्र में स्थित है, इसके बराबर कोई मन्त्र भी नहीं है ।।३१।। सात करोड़ महामन्त्र और भी अनेक प्रकार के मन्त्र षडक्षर भिन्न मन्त्रों में, यह ऐसे–ऐसे प्रोत हैं, जैसे वृत्ति में सूत्र ओतप्रोत रहता है ।।३२।। जितने शिवज्ञान के विद्यास्थान हैं, वह समास से षडक्षर सूत्र के भाष्य हैं ।।३३।। उसके अनेक मन्त्र और शास्त्र के बहुत विस्तार से क्या है ? जिसके हृदय में 'ॐ नमः शिवाय' यह मन्त्र स्थित है ।।३४।। उसने सब शास्त्रादि और कृत्य की पूर्ति कर ली, 'ॐ नमः शिवाय' इस मन्त्र का जिसने दृढ़ अभ्यास कर लिया है ।।३५।। 'नमः' युक्त 'शिवाय' यह तीन अक्षर जिसकी जिह्वा के आगे वर्तते हैं, उसका जीना सफल है ।।३६।। नीच, अधम, मूर्ख वा पण्डित भी पंचाक्षर जप में जो निष्ठावाला है, वह पाप के पंजर से छूट जाता है ।।३७।। यह वचन देवी के पूछने पर शंकरजी ने कहे थे, सम्पूर्ण मनुष्यों के हित के निमित्त और कलियुग में उत्पन्न होनेवालों के हित के निमित्त विशेष कर शंकरजी ने यह वचन कहे हैं, द्विजों के लिये यह विशेष जानने ।।३८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्ड

द्वादशोऽध्यायः ।। १२ ।।

*****

तेरहवां अध्याय

देवी बोली– जो कि कलियुग के दुर्जयकाल प्राप्त होने पर अपुण्य रूपी अन्धकार से आच्छन्न लोक के धर्म से पराङ्मुख होने ।।१।। वर्ण के आचार के क्षीण होने और वर्णसंकर धर्म के उपस्थित होने पर सम्पूर्ण अधिकार के संदिग्ध होने पर और निश्चय के विपरीत होने पर ।।२।। और गुरु, शिष्य के क्रम बिगड़ने पर, उपदेश विधान नष्ट होने पर, हे महेश्वर! आपके भक्त किस प्रकार मुक्त होते हैं?।।३।। महेश्वर बोले– मेरी पंचाक्षरी विद्या को हृदय में धारण कर भक्ति करके भावितात्मावाले पुरुष कलियुग में मुक्त हो जाते हैं।।४।। मन, वाणी, कर्म से उत्पन्न हुए दोष करके जो कहने और स्मरण करने के अगोचर हैं, जो दूषित, कृतघ्न, निर्दयी, दुष्टात्मा हैं।।५।। तथा लोभी जो कुटिल नामवाले मुझमें मन लगाकर भक्ति करते हैं, उनको मेरी संसारभय तारिणी पंचाक्षरी विद्या है।।६।। हे देवि! मैंने पृथ्वीतल पर एक बार प्रतिज्ञा की है कि, कैसा भी पतित हो, मेरा भक्त इस विद्या से मुक्त हो जाता है।।७।। देवी बोली– जो मनुष्य कर्म के योग्य और सर्वथा पतित हो तो वह कर्मयोग्य जो कुछ करता है, वह नरक के ही निमित्त होते हैं, तो पतित इस विद्या से कैसे छूट सकता है?।।८।। ईश्वर बोले– हे सुन्दरी! तुमने पूछा सो बहुत अच्छा पूछा, यह रहस्य की बात है, जो मैंने आज तक तुमसे नहीं कही थी।।९।। मन्त्र पूर्वक मुझको पतित और मोहित भी पूजन करे तो मेरे पंचाक्षर बिना वह नरक को जायगा।।१०।। जल, वायु भक्षण करनेवाले जो व्रत से कर्षित हैं, इन व्रतों से मेरे लोक का समागम नहीं है।।११।। भक्तिपूर्वक पंचाक्षर मन्त्र से जो मेरी पूजा करे, वह एक ही बार की पूजा में इस मन्त्र के गौरव से मेरे स्थान को प्राप्त हो जाता है।।१२।। इस कारण तप, यज्ञ, व्रत, नियम पंचाक्षर से अर्चन करने के कोटि अंश के भी समान नहीं है।।१३।। बन्धा हुआ वा मुक्त हुआ कर्म से मुक्त जो मनुष्य पंचाक्षर से पूजा करता है, वह मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं।।१४।। रुद्रभक्ति रहित अथवा रुद्रभक्ति युक्त जो एक बार पंचाक्षर से मेरी पूजा करता है, वह मूर्ख मनुष्य भी मुक्त हो जाता है।।१५।। हे देवि! षडक्षर वा पंचाक्षर से ब्रह्म रूप मन्त्र से जो मनुष्य मेरा पूजन करता है, वह उस भक्ति, पूजा से मुक्त हो जाता है।।१६।। जो पतित या अपतित इस मन्त्र से मेरा पूजन करे; मेरे क्रोध जीते हुए, गुरुमन्त्र लिये हुए वा उससे रहित।।१७।। बिना गुरुमन्त्र के लिये से गुरुमन्त्र लेकर जप करता है, वह करोड़ गुना अधिक फल होता है; इस कारण, हे देवि! इसको लेकर गुरुमन्त्र से मेरा पूजन करे।।१८।। जो गुरुमन्त्र लेकर मैत्र्यादि गुण युक्त होकर मेरा पूजन करता है; ब्रह्मचर्य युक्त होकर भक्ति से रत होता है; वह मेरे सदृश गुणों को प्राप्त

होता है ।।१९।। बहुत कहने से क्या है ? सब भक्त और अधिकारी मेरे पंचाक्षर मन्त्र में प्रीति करनेवाले जो हैं, वे सब श्रेष्ठ हैं ।।२०।। पंचाक्षर प्रभाव से लोक वेद महर्षि और शाश्वत धर्म तथा सब देवता और यह जगत् स्थित है ।।२१।। जब प्रलय होने पर स्थावर-जंगम जगत् नष्ट हो जाता है, तब प्रकृति को प्राप्त होकर लीन हो जाते हैं ।।२२।। हे देवि! उस समय एक मैं ही स्थित रहता हूं, दूसरा कुछ नहीं रहता; उस समय वेद, शास्त्र और सब वस्तुजात पंचाक्षर में स्थित रहती हैं ।।२३।। उसी अंश से प्राप्त होकर मेरी शक्ति से अनुपालित होकर गुणों की हुई मूर्ति और अवान्तर प्रलय होने से ।।२४।। प्रकृति और आत्मा के भेद से सृष्टि होती है, उस समय मायामय शरीर धारण करके नारायण शयन करते हैं ।।२५।। वे शेषशय्या पर स्थित होकर जब शयन करते हैं; तब उनके नाभिकमल से पंचमुख ब्रह्माजी जन्म लेते हैं ।।२६।। वह त्रिलोकी निर्माण करने को असहाय होने के कारण असमर्थ होते हैं, तब उन्होंने प्रथम मानसी दश मुनियों को उत्पन्न किया ।।२७।। उनकी सिद्धि बढ़ाने के लिये मुझसे ब्रह्माजी बोले, हे महादेव! मेरे पुत्र को आप शक्ति दीजिये ।।२८।। जब ब्रह्माजी ने इस प्रकार मेरी प्रार्थना की, तब मैंने क्रम से ब्रह्माजी के प्रति पंचाक्षर का उपदेश किया ।।२९।। ब्रह्माजी ने पांचों मुखों से उसको ग्रहण किया और वाच्य-वाचक के भेद से मुझे महेश्वर जाना ।।३०।। उसका विविध प्रयोग जानकर सिद्ध मन्त्र युक्त होकर मैंने प्रजापति पुत्रों के निमित्त मन्त्र और उनका अर्थ प्रदान किया ।।३१।। साक्षात् लोकपितामह से वे मन्त्र को प्राप्त होकर उनकी आज्ञा से उसी मार्ग से शिवजी का आराधन करने लगे ।।३२।। मेरु के मनोहर शिखर पर एक मुंजवान् नाम पर्वत है, वह मेरा प्रिय और मेरे भक्तों से आराधित है ।।३३।। उसके निकट वे ऋषि सृष्टि की इच्छा करके तपस्या करने लगे; दिव्य सहस्र वर्ष तक वे वायु भक्षण करके तप करते रहे ।।३४।। उनकी ऐसी भक्ति देखकर मैं शीघ्र प्रत्यक्ष हुआ, ऋषि, छन्द, कीलक, बीज, शक्ति, देवता ।।३५।। न्यास, षडंग, दिग्बन्ध, सम्पूर्ण विनियोग मैंने जगत् सृष्टि की वृद्धि के निमित्त उन आर्यों के प्रति वर्णन किया ।।३६।। तब से बढ़े हुए वे ऋषि मन्त्र के माहात्म्य से देवता, असुर, मनुष्यों की सृष्टि विस्तार करने लगे ।।३७।। इस परम विद्या का स्वरूप इस समय कहा जाता है, पहले 'नमः' पीछे 'शिवाय' कहना चाहिये ।।३८।। यह पंचाक्षरी विद्या सब वेदशास्त्रों के शिरोभूत है और सम्पूर्ण शब्दजात का यह बीज है ।।३९।। पहले मुख से निकलने के कारण यह मेरी वाचक है; सुवर्ण के रंग के समान पीत और ऊँचे पयोधरवाली ।।४०।। चार भुजा, तीन नेत्र, बालसूर्य के समान प्रकाशमान, पद्मदल हाथ में लिये मनोहर वरदायक अभय देनेवाली ।।४१।। सब लक्षणों से सम्पूर्ण गहने पहने, श्वेतपद्म धारे, नीलकुंचित बालों से युक्त ।।४२।। इसके सूर्यमण्डल के समान स्फुरायमान पांच वर्ण हैं; पीत, कृष्ण, धूम्र, स्वर्ण के समान, रक्तवर्ण ।।४३।। यह बिन्दुनाद से पृथक् प्रयुक्त करने चाहिये; अर्द्धचन्द्र के आकार बिन्दु और नाददीप

शिखा के समान है ।।४४।। बीजों में जो मन्त्रों के हैं, इसका दूसरा बीज है, प्रथम दीर्घ और चौथा पांचवां शक्ति जाननी उचित है ।।४५।। इसका वामदेव ऋषि, पंक्ति छन्द और हे वरानने! मैं शिव देवता हूं ।।४६।। हे वरानने! गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, अंगिरा और भारद्वाज क्रम से इन वर्णों के ऋषि हैं ।।४७।। गायत्री, अनुष्टुप, त्रिष्टुप, बृहती, विराट् पांचों के छन्द हैं, इन्द्र, रुद्र, हरि, ब्रह्मा, स्कन्द यह पांच देवता हैं ।।४८।। हे वरानने! मेरे पांच मुख उन पांचों के स्थान हैं, पूर्वादि से लेकर ऊपर तक यथाक्रम से (दक्षिण, पश्चिम, उत्तर) ।।४९।। पहला, चौथा, दूसरा वर्ण (न, वा, म) उदात्त हैं, पांचवां (य) तीसरा (शि) यह अनुदात्त है, नकार, वकार, उदात्त; मकार, यकार, स्वरित; शिकार, अनुदात्त रुद्राध्याय में ऐसा पाठ होने से व्याकरण रीति से ऐसे ही सिद्ध है ।।५०।। मूल, विद्या, शिव और पंचाक्षर सूत्र है, इसके नाम जाने, शिवरूप (कल्याण दायक) मेरा हृदय है ।।५१।। नकार शिव, मकार शिखा, शिकार कवच, वकार नेत्र कहलाते हैं ।।५२।। यकार अस्त्र, नमः स्वाहा, वषट् हुं, वौषट् फट् यह वर्णों के अंग में स्थित हैं ।।५३।। तुम्हारा भी मूल मन्त्र इसमें किंचित भेद से संयुक्त हुआ है, उसमें पांचवां वर्ण बारहवें स्वर (एकार) से भूषित है ।।५४।। इस कारण इस मन्त्र से मन, वाणी, काया के भेद से हमारा अर्चन, जप, होम आदि करना चाहिये ।।५५।। जैसे बुद्धि, श्रद्धा, समय और चतुराई शक्ति सम्पत् योग और जैसी प्रीति हो ।।५६।। जब कभी, जहां कहीं भक्ति से जिस किसी ने पूजा की हो, हे देवी! वह मुक्ति की ले जानेवाली है ।।५७।। हे सुन्दरी! मुझमें मन लगाकर जिसने जो कुछ किया है, मेरा प्रिय शिवतत्त्व क्रम वा अक्रम से किसी ने जाना है ।।५८ ।। तो भी मेरे भक्त जो अत्यन्त विवश नहीं हैं, उनके निमित्त मैंने शास्त्र में यह नियम किया है ।।५९।। सो पहले में मन्त्र ग्रहण की सुन्दर विधि कहता हूं, जिससे बिना जप निष्फल और जिसके करने से सफल होता है, सो कहता हूं ।।६०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे

त्रयोदशोऽध्यायः ।। १३ ।।

*****

चौदहवां अध्याय

ईश्वर बोले– हे वरानने! आज्ञाहीन (उपदेशहीन), श्रद्धाहीन, क्रियाहीन, आज्ञा के निमित्त दक्षिणा से हीन जप किया हुआ सदा निष्फल है ।।१।। आज्ञासिद्ध, श्रद्धासिद्ध जो मेरे आत्मक मन्त्र हैं और दक्षिणा युक्त हैं, वे मन्त्रसिद्ध महाफल के देनेवाले हैं ।।२।। यह ब्राह्मण तत्त्ववेदी गुरु के पास जाकर जो कि जप करने में तत्पर सद्गुण युक्त ध्यानयोग में परायण है ।।३।। उसके भाव शुद्धि से युक्त होकर प्रयत्न से सन्तुष्ट करे। वाणी, मन,

काया तथा धन से सन्तुष्ट करे ।।४।। वह शिष्य सदा प्रयत्न से आचार्य की पूजा हाथी, घोड़े, रथ, रत्न, अनेक प्रकार के क्षेत्र, गृह ।।५।। भूषण, वस्त्र, धान्य, धन ऐश्वर्य होने में यह सब वस्तु गुरु को दान करे ।।६।। जो अपनी सिद्धि की इच्छा हो तो, धन की शठता न करे, पीछे अपने को और अपने परिच्छद को भी निवेदन कर दे ।।७।। इस प्रकार विधि पूर्वक पूजन करके यथा शक्ति वंचना रहित होकर गुरु से मन्त्र और ज्ञान ग्रहण करे ।।८।। इस प्रकार गुरु सन्तुष्ट होकर अपने शिष्य को एक वर्ष तक देखे, जब वर्षदिन तक अहंकार रहित शुश्रूषा करे; पवित्र और व्रती रहे ।।९।। तब उसे शुद्ध होने के निमित्त घृत के पूर्ण घट से स्नान करावे, मन्त्र शुद्ध जल से जो कि, पवित्र द्रव्य युक्त हो ।।१०।। अलंकृत करके, सुन्दर वेष, गन्ध, माला युक्त पुण्याहवाचन करके ब्राह्मणों की पूजा करके ।।११।। समुद्र के तट, नदी, गोष्ठ, देवालय, पवित्र देश या घर में सिद्धि करनेवाले समय और पवित्र तिथि में ।।१२।। शुभयोग, शुभनक्षत्र में सब दोष रहित अनुग्रह करके मेरा ज्ञान विधि पूर्वक दे ।।१३।। एकान्त में अति प्रसन्न मन से इस प्रकार हमारा मन्त्र बारंबार उच्चारण करके ।।१४।। शिव हो, मंगल हो, शुभ हो इस प्रकार गुरु उच्चारण करके आज्ञा दे ।।१५।। इस प्रकार सावधान होकर गुरु से मन्त्र ग्रहण करके पुरश्चरण पूर्वक संकल्प देकर जपे ।।१६।। जीवन पर्यन्त एक सहस्र एक सौ आठ मन्त्र जप करता रहे और अनन्यमन होकर कार्य करने से परम गति का अधिकारी होता है ।।१७।। मन्त्र में जितने अक्षर हैं, उतने ही लक्ष जप करे, जो रात्रि में भोजन करे, संयम करे, वह पुरश्चरणी कहलाता है ।।१८।। जो पुरश्चरण करके नित्य जप करता है, उसके समान लोक में कोई नहीं, वह सिद्ध सिद्धि का देनेवाला है ।।१९।। पवित्र देश में स्नान करके सुन्दर आसन बांधकर तुमको और अपने गुरु को हृदय में विचार करके ।।२०।। उत्तर वा पूर्व को मुखकर मौन धारे एकाग्र मन से दहन प्लवनादि से पंचतत्त्वों को विशुद्ध करके ।।२१।। मन्त्र न्यासादि से सब कला युक्त शरीर करके हमारे तुम्हारे शरीर का ध्यान करता हुआ प्राण–अपान को रोककर ।।२२।। विद्या स्थान अपना रूप ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति वाचक को स्मरण करके पंचाक्षरी विद्या का जप करे ।।२३।। मानस जप उत्तम है; जिसमें होठ हिलते हैं, वह मध्यम और वाचक को जिसमें शब्द निकले उसको जाननेवाले अधम कहते हैं ।।२४।। रुद्रदेवतावाले उत्तम; विष्णुदेवता के मध्यम और ब्रह्मादेवता के मन्त्र अधम होते हैं ।।२५।। ऊँचे–नीचे स्वर से वा शीघ्रता से स्पष्ट अक्षर पद से मन्त्र का उच्चारण करे, यह जप वाचक कहलाता है ।।२६।। जिसमें जिह्वा हिले और किंचित उच्चारण किया जाय, दूसरे जनों को स्पष्ट सुनाई न दे उसको उपांशु जप कहते हैं ।।२७।। जो बुद्धि में ही अक्षर और पद का ध्यान तथा पद अक्षर अर्थ का चिन्तवन किया जाय उसे मानसी जप कहते हैं ।।२८।। वाचिक से एक, उपांशु से सौ, मन से सहस्र गुणा और आदि–अन्त में प्राणायाम से युक्त जप सगर्भ करने से भी सौ गुणा फल होता

है ।।२९।। आदि–अन्त में प्राणायाम जप करने से सगर्भ जप कहलाता है, अगर्भ के भी आदि–अन्त में प्राणायाम करना आवश्यक है ।।३०।। चालीस आवृत्ति करके प्राणायाम करके मन्त्र और मन्त्रार्थ का जाननेवाला बुद्धिमान् शक्ति के अनुसार मन्त्र का जप करे ।।३१।। पांच, तीन वा एक प्राणायाम करे, अगर्भ और सगर्भ मन्त्र में सगर्भ मन्त्र श्रेष्ठ कहा है ।।३२।। सगर्भ में भी सहस्र गुणा ध्यान जप कहा जाता है, इस पांच विधि में शक्ति से कोई एक जप करना चाहिये ।।३३।। उंगली से जप करने से एक गुणा, रेखा से आठ गुणा, जिये पोते से दश गुणा ।।३४।। शंखमणि से सौ गुणा, मूगों से हजार गुणा, स्फटिक से दश सहस्र गुणा; मोतियों से लाख गुणा ।।३५।। कमलगट्टों से दस लाख गुणा, सुवर्ण से करोड़ गुणा, कुशग्रन्थि और रुद्राक्ष से अनन्त फल होता है ।।३६।। तीस दानों की माला जप करने से धन देनेवाली है, सत्ताइस दानों की पुष्टि देनेवाली है ।।३७।। पच्चीस से मुक्ति, पन्द्रह से अभिचार फलसिद्धि होती है ।।३८।। अंगूठे से मोक्ष, तर्जनी से जप करने से शत्रु का नाश, मध्यमा से धन की प्राप्ति और अनामिका शान्ति करनेवाली है ।।३९।। इसमें एक सौ आठ दानों की माला अति उत्तम है, सौ की उत्तम और पचास दानों की माला मध्यम होती है ।।४०।। चौवन रुद्राक्ष की माला हृदय को हितकारी है, इस प्रकार माला से जप कर किसी को न दिखावे ।।४१।। कनिष्ठिका दुःख नाश करनेवाली जप करने में श्रेष्ठ है, अंगूठे के साथ और उँगलियों के सहित जप करना चाहिये ।।४२।। जो अंगूठे के बिना जप है वह निष्फल है, घर में जप समान है, गोठे में सौ गुणा ।।४३।। पुण्यवन अथवा बगीचे में जप करने से सहस्र गुणा फल मिलता है ।।४४।। देवालय में करोड़ गुणा, मेरे निकट अनन्त फल कहा है; सूर्य, अग्नि, रुद्र, चन्द्रमा, दीपक, जल ।।४५।। ब्राह्मण और गौओं के निकट जप करना श्रेष्ठ है; पूर्व मुख होकर वशीकरण, दक्षिण की ओर अभिचार ।।४६।। पश्चिम की ओर धन दायक; उत्तर की ओर शान्ति दायक, सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, देवता, गुरुजनों के निकट ।।४७।। और भी प्रशस्त जनों के निकट विमुख होकर मन्त्र न जपे, पगड़ी, कुरता, नंगा, खुलेबाल, कण्ठ लपेटे हुए ।।४८।। अपवित्र हाथ, अशुद्ध, रोना, क्रोध, मद, छींक, थूकना, जँभाई लेना ।।४९।। कुत्ते तथा नीच आदमियों का दर्शन जप में न करे और जो दर्शन हो जाय तो आचमन करे अथवा मेरा–तुम्हारा स्मरण करे ।।५०।। तारों को देखे वा प्राणायाम करे, बिना बैठे, सोते, चलते हुए ।।५१।। गली, अमंगल स्थान, अन्धकार में जप न करे, पावों को फैलाकर वा कुक्कुटासन से जप न करे ।।५२।। सर्वांग अथवा खाट पर बैठकर, चिन्ता से व्याकुल समर्थ हो तो इन पर भी न जपे, अशक्त हो तो शक्ति के अनुसार जपे ।।५३।। बहुत कहने से क्या है ? संक्षेप में मुझसे सुनिये, सदाचार युक्त शुद्धता से जपता हुआ ध्यान करने से मंगल को प्राप्त होता है ।।५४।। आचार्य ही परम धर्म, आचार्य ही परम धन, आचार्य ही परम विद्या और आचार्य ही परम गति है ।।५५।।

आचारहीन पुरुष लोक में निन्दित होता है, दूसरे लोक में भी सुख नहीं मिलता, इससे पुरुष को आचारवान् होना उचित है ।।५६।। जिसको वेदशास्त्र में जो कर्म विधान कर दिया है, उसको वही कर्म करना चाहिये, दूसरा नहीं ।।५७।। सत्पुरुषों से आचरित होने से सदाचार कहलाता है; सदाचार ही आस्तिक्य का मूल कारण है ।।५८।। आस्तिक्य होकर प्रमादादि से सदाचार से भ्रष्ट हो जाय तो भी वह दूषित नहीं होता, इस कारण आस्तिकता को प्राप्त होना चाहिये ।।५९।। जो सुकृति–दुष्कृति से यहां सुख–दुःख से हो वैसा ही परलोक में होगा, इस मति का नाम आस्तिक्यता है ।।६०।। हे प्रिये! और भी गुप्त रहस्य कहता हूं, यह नास्तिक जीवों को न कहना चाहिये ।।६१।। सदाचारहीन पतित अन्त्यज के रक्षा करने को कलियुग में पंचाक्षर से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं है ।।६२।। चलते, खड़े होते अथवा स्वेच्छा से कर्म करते हुए; अशुचि वा शुचि में भी यह मन्त्र निष्फल नहीं होता ।।६३।। जो पुरुष आचार रहित है, अविशुद्ध षडध्ववालों का यदि गुरु ने उपदेश न दिया हो तो भी यह मन्त्र निष्फल नहीं होता ।।६४।। अन्त्यज, मूर्ख, मूढ़, पतित, निर्मर्याद और नीच पुरुषों को भी यह मन्त्र निष्फल नहीं होता ।।६५।। किसी अवस्था में हो जो मेरी परम भक्ति करता है वह सिद्ध हो जायगा, इसमें सन्देह नहीं, दूसरे किसी को सिद्धि नहीं होगी ।।६६।। हे प्रिये! लग्न, तिथि, नक्षत्र, वार, योगादि से सोते जागते कोई मेरे भक्त को अपेक्षा नहीं है ।।६७।। इसका कोई शत्रु नहीं होता, इसे सुसिद्ध, सिद्ध वा असाध्य कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता ।।६८।। सिद्ध गुरु के आदेश को प्राप्त होकर सुसिद्ध कहलाता है और असिद्ध से भी लिया हुआ स्वयं पढ़ा हुआ साध्य से सिद्ध हो जाता है ।।६९।। असाधित वा साधित इसमें सन्देह नहीं, वह सिद्ध हो जाता है, मुझमें मन्त्र तथा गुरु में जो श्रद्धा से अतिवर्तता है ।।७०।। इस कारण मन्त्रान्तर को छोड़कर वियोग के अनधिकार से हृदय को मनोहर पंचाक्षरी विद्या का आश्रय करे ।।७१।। मन्त्रान्तरों के सिद्ध होने में यह मन्त्र सिद्ध नहीं होता है और इस महामन्त्र के सिद्ध होने में दूसरे सब मन्त्र स्वयं सिद्ध हो जाते हैं ।।७२।। हे महेश्वरि! जिस प्रकार देवताओं के प्राप्त होने पर भी मैं प्राप्त नहीं हूँ, परन्तु मेरे प्राप्त होने में सब स्वयं प्राप्त हो जाते हैं, यह मन्त्रों के लिये समान विधि है ।।७३।। जो अन्य मन्त्रों में दोष हैं वे इसमें नहीं होते हैं, इस मन्त्र के प्रवर्तन से जाति आदि की अपेक्षा नहीं है ।।७४।। तथापि क्षुद्रफल और शत्रुओं में एक साथ इसको नहीं लगाना चाहिये, क्योंकि इसका महाफल है ।।७५।। इस प्रकार शूलधारी महादेवजी ने महादेवी के प्रति जगत् के हित के निमित्त पंचाक्षरी की विधि कही है ।।७६।। जो इसे भक्ति से कीर्तन करता है और श्रवण करता है, वह सब पापों से छूटकर परमगति को प्राप्त होता है ।।७७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे

चतुर्दशोऽध्यायः ।। १४ ।।

पन्द्रहवां अध्याय

श्रीकृष्णजी बोले– हे भगवन्! आपने मन्त्र का माहात्म्य हम से कहा और साक्षात् श्रुतिसम्मत उसके प्रयोग का विधान सुनाया ।।१।। इस समय मन्त्रग्रहण में शिवसंस्कार के सुनने की इच्छा करता हूँ, जो कि आपने सूक्ष्मता से कही है, सो अब विस्तार से कहिये ।।२।। उपमन्युजी बोले– मैं सब कर्मों दूर करनेवाली विधि कहता हूं, वह परम पवित्र संस्कार शिवजी ने कहा है ।।३।। क्योंकि पूजा में मनुष्यों को सब प्रकार से संस्कार करना उचित है; छः मार्ग का शोधन ही संस्कार कहलाता है ।।४।। जिससे विज्ञान होता है और पाश बन्धन क्षय होता है, इस कारण संस्कार को दीक्षा भी कहते हैं ।।५।। शिवशास्त्र में शाम्भवी, शक्ति, मान्त्री (मन्त्र सम्बन्धी) तीन प्रकार की दीक्षा शिवजी ने वर्णन की है ।।६।। गुरु के दर्शनमात्र से, स्पर्श और सम्भाषण करने से तत्काल जन्तु की पाश क्षयकारिणी संज्ञा हो जाती है ।।७।। वही शाम्भवी दीक्षा कहलाती है, सो दो प्रकार की है, सो पाशक्षय के भेद से तीव्रा और तीव्रतरा नामवाली है ।।८।। जिसमें शीघ्र निवृत्ति हो वह तीव्रतरा है और पुरुषों की पाप शोधनेवाली तीव्र दीक्षा है ।।९।। शक्ति ज्ञानवाली वह दीक्षा है कि शिष्य के देह में प्रवेश करके योगमार्ग द्वारा जो गुरु से की जाती है, ज्ञानचक्षु से होती है ।।१०।। क्रियावती मान्त्री दीक्षा कुण्ड मण्डल से पूर्व मन्द और मन्दतर के उद्देश्य से गुरु को बहिर्भाग में करनी चाहिये ।।११।। शक्ति सामर्थ्य के अनुसार शिष्य अनुग्रह के योग्य है; शैवधर्म के अनुसार उसका मूल होने से संक्षेप से योग्य है ।।१२।। जहां शक्ति पतित नहीं होती है, वहां शक्ति नहीं होती; न विद्या, न शिवाचार, न मुक्ति और सिद्धि होती है ।।१३।। इस कारण शक्तिपात के बड़े चिह्नों को देखकर ज्ञान अथवा क्रिया से गुरु शिष्य को शुद्ध करे ।।१४।। जो मोह से नष्ट हो जाता है, इस प्रकार सब प्रकार से गुरु शिष्य की परीक्षा करे ।।१५।। अत्यन्त प्रबोध आनन्द की प्राप्ति न होना शक्तिपात का लक्षण है, कारण कि वह पराशक्ति प्रबोधानन्द रूपवाली है ।।१६।। अन्तःकरण की विक्रिया आनन्दबोध का लिग है; जिससे कि कम्प, रोमाञ्च, स्वर, नेत्रादि के विकार होते हैं ।।१७।। इन शिष्यों के लक्षणों से उसकी परीक्षा करनी उचित है, उसको सम्पर्क से शिवजी का अर्चादिक में अपनी गति वा उसकी गति से परीक्षा करे ।।१८।। शिक्षणीय होने से शिष्य, गौरव के कारण से गुरु कहलाता है, इस कारण सब प्रयत्न से गुरु का गौरव करना चाहिये ।।१९।। जो गुरु है सो शिव है, जो शिव है सो गुरु है, गुरु वा शिव दोनों विद्या हैं और जो विद्या है सोई गुरु है, शिव, विद्या और गुरु के पूजन का बराबर फल है ।।२०-२१।। यह गुरु सब देवात्मक और मन्त्रमय है,

इस कारण सब प्रयत्न से गुरु की आज्ञा सिर पर धारण करे ।।२२।। कल्याण की इच्छा करनेवाला जो गुरु की आज्ञा को मन से भी उल्लंघन नहीं करता और गुरु की आज्ञा का पालन करता है, वह ज्ञानसम्पत्ति को पाता है ।।२३।। चलते, स्थित होते, सोते, भोजन करते तथा दूसरे कर्माचरण करने में सब कार्य गुरु की आज्ञा से करने चाहिये ।।२४।। गुरु के घर वा उनके सम्मुख यथेष्ट आसन पर न बैठे, गुरु साक्षत् देवता है, उनका घर देवमन्दिर है ।।२५।। जिस प्रकार पापियों के संग वा पाप से पतित हो जाता है, उसी प्रकार आचार्य के संग से सब पाप का नाश होकर उसके धर्मफल का भागी होता है, जिस प्रकार अग्नि के सम्पर्क से सोने का मैल त्यागा जाता है ।।२६।। उसी प्रकार गुरु के संग से मनुष्य के पाप दूर होते हैं, जैसे अग्नि के सम्पर्क से घृतकुम्भ लय होता है ।।२७।। उसी प्रकार आचार्य के सम्पर्क से पाप लय हो जाते हैं, जैसे प्रज्ज्वलित अग्नि सूखे काष्ठ को जलाती है ।।२८।। इसी प्रकार सन्तुष्ट हुए गुरु क्षणमात्र में पाप नष्ट कर देते हैं। मन, वचन, कर्म से गुरु को क्रोधित न करे ।।२९।। गुरु के क्रोध से आयु, श्रीज्ञान, सत्क्रिया नष्ट हो जाती है, जो गुरु पर क्रोध करनेवाले हैं, उनके यज्ञ भी निष्फल हो जाते हैं ।।३०।। इसमें सन्देह नहीं, उनके यम–नियम नष्ट हो जाते हैं, गुरु के विरुद्ध वचन मनुष्य कभी न कहे ।।३१।। और जो मोह से कहता है वह नरक को जाता है। मन, वचन, कर्म से गुरु की सेवा बुद्धिमान् करे ।।३२।। और कल्याण की इच्छावाला मिथ्याचार न करे, जो गुरु का एक दुर्गुण विख्यात करता है, उसमें सौ दुर्गुण होते हैं और गुरु के गुण विख्यात करने से सब पुण्यों का फल होता है, गुरु का हित और प्रिय करे, चाहे यह कहें; वा न कहें ।।३३।। सामने वा पीछे उनके हितकारी कार्य करे, इस प्रकार आचारवान् भक्त नित्य श्रेष्ठ मन से ।।३४।। गुरु का प्रिय करता हुआ शिष्य शिवधर्मों को करे, तब शिष्य शैवधर्म के योग्य होता है, गुरु आनन्द दायक विद्वान् हो ।।३५।। तत्त्वज्ञानी शिवभक्त हो तो वही मुक्ति दे सकता है, दूसरा नहीं, ब्रह्मज्ञान का उत्पन्न करनेवाला तत्त्व के परमानन्द से प्राप्त होता है ।।३६।। वह तत्त्व जिसने जाना है वही परमानन्द का दिखानेवाला है, ज्ञान रहित, नाममात्र का गुरु नहीं तार सकता ।।३७।। ऐसे दोनों गुरु शिष्य परस्पर तारने में समर्थ होते हैं, शिला कहीं शिला को तार सकती है ? इसी प्रकार मूर्ख गुरु शिष्य को तार नहीं सकता, उन नाममात्र के ज्ञानियों को नाममात्र ही मुक्ति होती है ।।३८।। और जिन्होंने तत्त्व जाना है वे स्वयं मुक्त हैं और दूसरों को भी मुक्त कर सकते हैं, तत्त्व के बिना ज्ञान कहां ? और ज्ञान के बिना आत्मज्ञान नहीं ।।३९।। आत्मज्ञान के बिना ही तो इसकी पशुसंज्ञा है, पशुओं से प्रेरित होकर इस प्रकार पशुपना निवृत्त नहीं हो सकता ।।४०।। इस कारण तत्त्वज्ञानी ही संसार से मुक्त कर सकता है, सब लक्षणों से संयुक्त सर्वशास्त्रों को जाननेवाला भी ।।४१।। सब उपाय जानकर भी यदि तत्त्वज्ञान से हीन हो तो निष्फल है, जिस गुरु की अनुभव पर्यन्त बुद्धि प्रवृत्त होती है ।।४२।। उसके

दर्शन से परानन्द होता है, इससे जिसके संग से प्रबोधानन्द की प्राप्ति हो ।।४३।। बुद्धिमान् उसीको गुरु करे, दूसरे को नहीं, अच्छे शिष्य को विनयाचार चतुरता से युक्त होकर गुरु की उचित प्रकार से ।।४४।। तब तक सेवा करनी चाहिये, जब तक ज्ञान की प्राप्ति हो, उसके जानने से जो स्थिर भक्ति हो तो उसका आश्रय करे ।।४५।। उस गुरु को न कभी छोड़े, न उपेक्षा करे, जहां थोड़ा भी आनन्द और प्रबोध न हो ।।४६।। तो एक वर्ष के उपरान्त दूसरा गुरु कर ले, दूसरे गुरु के पास जाकर भी पहले गुरु का तिरस्कार न करे; गुरु के भ्राता, पुत्र, बोधक, प्रेरक ।।४७।। उनके पास जाकर वेदपाठी ब्राह्मण, पण्डित, गुरु का आराधन करे, जो कि प्रियदर्शन हो ।।४८।। सब अभय देनेवाले करुणा युक्त मन, वचन, कर्म से ऐसे गुरु को प्रसन्न करे ।।४९।। जब तक वह प्रसन्न हो तब तक शिष्य गुरु की सुश्रूषा करता रहे; उनके प्रसन्न होते ही शिष्य के सब पाप क्षय हो जाते हैं ।।५०।। इस कारण धन, रत्न, क्षेत्र, गृह, भूषण, वस्त्र, शय्या, आसन ।।५१।। परमगति की इच्छा हो तो ये वित्त के अनुसार गुरु को निवेदन करे, धन की शठता न करे ।।५२।। वही माता, पिता, भ्राता, बन्धु, धन, सुख, सखा, मित्र है; उससे सब उन गुरु को निवेदन करे ।।५३।। फिर कुटुम्बादि सहित पीछे उसे अपनी आत्मा को निवेदन कर दे, जल से उनको सब समर्पण करके नित्य उनके वश में रहे ।।५४।। जिस समय उस शिवस्वरूप आचार्य के निमित्त अपनी आत्मा प्रदान कर दी, तब यह शरीरी शिवस्वरूप होता है, फिर इसका जन्म नहीं होता ।।५५।। आचार्य स्वरूप को प्राप्त होकर यह पशु तब सब पापों को छेद करके परम पद को प्राप्त होता है, यह श्रुति है, गुरु अपने शिष्य की एक वर्ष तक परीक्षा करे, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य की क्रम से तीन वर्ष परीक्षा करे ।।५६।। प्राण द्रव्य के प्रदान करने से समासम आदेश से उत्तमों को अधम, अधम को नीच, नीचों को श्रेष्ठ, यथायोग्य कर्म में लगावे ।।५७।। फटकारने से वा ताडन किये हुए विषाद को प्राप्त नहीं होते हैं, वे ही शिवसंस्कार के कर्म में योग्य संयत और शुद्ध हैं ।।५८।। अहिंसा और दया युक्त नित्य उद्युक्त चित्तवाले, मान रहित, बुद्धि सम्पन्न, स्थिर बुद्धि, हितप्रियवादी ।।५९।। सीधे, मृदु, स्वच्छ, विनीत, स्थिर चित्त, शौचाचार युक्त शिवजी के भक्त ब्राह्मण हैं ।।६०।। इस प्रकार वाणी, मन, कर्म से यथायोग्य न्यायपूर्वक शुद्धबोध युक्त होने चाहिये, यह शास्त्र का निश्चय है, उन्हींका संस्कार करे ।।६१।। शिवजी के संस्कारकर्म में स्त्रियों को स्वतः अधिकार नहीं है; ईश्वर में भक्ति स्वामी की आज्ञा से ही करनी चाहिये ।।६२।। यदि स्वामी से हीन हो तो पुत्र की आज्ञा से, कन्या का पिता की आज्ञा से पूजा में अधिकार है; शूद्र, अन्त्यज, विशेष कर पतित ।।६३।। संकर जातियों की अध्व (षडध्व) शुद्धि नहीं कही है, जो वे परम भाव से परमकारण शिवजी में मन लगावें ।।६४।। पादोदक जल प्रदान से ही कर्म बन्धन से छूट जाते हैं, मूर्धावसिक्त ब्राह्मण वा वर्णसंकर जाति जो तीन वर्णों में हो ।।६५।। उनकी माता के कुल के समान

शुद्धि करनी चाहिये, जो कन्या पितादिक ने शिवधर्म में नियुक्त की है ।।६६।। वह शिवभक्त के निमित्त देनी चाहिये, विरोधी के निमित्त नहीं और जो प्रतिकूल को मूल से दे दी जाय, वह अपने पति को समझावे ।।६७।। और जो असमर्थ हो तो उसे त्यागकर मन से धर्माचरण करती रहे, जिस प्रकार से कि अपने पति मुनिश्रेष्ठ अत्रि को छोड़कर पतिव्रता ।।६८।। अनुसूया शंकरजी का आराधना करके कृतकृत्य हुई (मात्र शिवपूजन में त्यागना है, सर्वथा नहीं) जिस प्रकार नारायणदेव को तप से आराधन करके ।।६९।। गुरुजनों से नियुक्त होकर द्रौपदी ने पांच पाण्डव पति पाये, जो अस्वतन्त्रता से दोष हो जाय वह परमार्थ से नहीं होता ।।७०।। शिवधर्म में नियुक्त होकर शिवशासन के गौरव से वह दोष नहीं लगता, बहुत कहने से क्या है ? जो कोई भी शिवजी का आश्रय करे ।।७१।। और उसका संस्कार गुरु के अधीन हो तो संस्कार में भेद नहीं पड़ता हैं; गुरु के दर्शन, स्पर्शन, भाषण से ।।७२।। जिसको प्रज्ञा होती है, उसकी कहीं पराजय नहीं है, जो योगमार्ग से मन से ही संस्कार करता है ।।७३।। वह गुह्य नहीं कहा जा सकता कि, वह क्रिया गुरुमुख में ही क्रियावान् जो कुण्डमण्ड पूर्वक संस्कार करता है, वह संक्षेप से कहते हैं, उसका विस्तार नहीं कर सकते ।।७४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे

पञ्चदशोऽध्यायः ।। १५ ।।

*****

सोलहवां अध्याय

उपमन्युजी बोले– पुण्यदिन में दोष रहित पवित्र देश में जो देशिक (साधक) समयाह्वय संस्कार करे (अर्थात् उसे मन्त्रग्रहणादि से अध्याय के अन्त में प्रकट करेंगे) ।।१।। गन्ध, वर्ण, रसादि से पहले भूमि की परीक्षा करके शिवशास्त्र में कहे विधान से मण्डप की कल्पना करे ।।२।। वेदी बनाकर उसके मध्य में कुण्ड की कल्पना करे, आठ दिशाओं में ईशान दिशा के क्रम से ।।३।। प्रधान कुण्ड बनावे, या पश्चिम ओर से बनावे, उसमें एक प्रधान करके शोभा की कल्पना करे ।।४।। उसमें शामियाना, ध्वजा और मालाओं से कल्पना करे, वेदी के मध्य में एक शुभलक्षण मण्डप बनावे ।।५।। रक्त हेमादि के चूर्ण से ईश्वर का आवाहन करे और निर्धन हो तो सिन्दूर, शालि, नीवार के चूर्ण से आवाहन करे ।।६।। एक हाथ या दो हाथ का चौड़ा श्वेत वा लाल कमल बनावे, उसमें आठ दल कल्पना करे ।।७।। उसके आधे स्थान में केशर और आधे में दल की कल्पना करे ।।८।। अनेक प्रकार की शोभा की कल्पना ईशान की ओर करे, एक हाथ वा आधे हाथ का

वेदी में मण्डल कल्पना करे।।९।। व्रीहि, चावल, सरसों, तिल, पुष्प, कुशा बिछावे; वहां लक्षण संयुक्त शिवघट स्थापन करे।।१०।। वह घट सोने का या चांदी का या ताम्बे का या मिट्टी का होना चाहिये, उसे गन्ध, पुष्प, अक्षत, कुश, दूर्वा के अंकुरों से अर्चना करे।।११।। श्वेतसूत्र को कण्ठ में बांधकर दो नये वस्त्रों से उसे ढाक दे; शुद्ध जल से पूर्ण, कूर्च (दर्भमुष्टि युक्त) पिधान (छादन) द्रव्य।।१२।। झारी, कटोरा, शंख, चक्र और सूत्र के बिना सब वस्तु पद्म के।।१३।। उत्तर दल में उस कमल को कल्पना करे और शिवशास्त्र में कहे हुए विधान से चन्दन के जल से अग्रभाग की ओर से आचमन करे।।१४।। फिर उस मण्डल के पूर्व और पूर्ववत् मन्त्र कुम्भ की पूजा करे, इस प्रकार विधि पूर्वक ईश्वर की महापूजा करे।।१५।। नदी, गोष्ठ, सागर अथवा पर्वत के किनारे देवागार, घर वा मनोहर देश में।।१६।। मण्डपादि के बिना पूर्वोक्त सब विधान करके फिर अग्नि का मण्डल तथा स्थण्डिल करे।।१७।। प्रसन्नमुख गुरुपूजा घर में प्रवेश करके, सब मंगल से संयुक्त होकर यह नित्य विधि करे।।१८।। मण्डल के मध्य में शिवजी की पूजा करके शिवजी के कुम्भ में शिवजी का आवाहन करके पूजा करे।।१९।। यज्ञ रक्षा करनेवाले ईश्वर के पश्चिम मुख से ध्यान करके, ईश्वर के दक्षिण ओर अस्त्र वर्धनी (सनाल पात्र का) पूजन करे।।२०।। मन्त्र को जाननेवाला मन्त्र की मन्त्रकुम्भ में स्थापन करे; सब मुद्रादिक करके मन्त्रयाग को करे।।२१।। फिर वह मुख्य आचार्य शिव अग्नि में हवन करके प्रधान कुण्ड में चारों ओर दूसरे ब्राह्मण हवन करें।।२२।। आचार्य से चतुर्थांश (चौथाई) होम करना चाहिये और फिर प्रधान आचार्य प्रधान कुण्ड में हवन करे।।२३।। दूसरे वेदपाठ और मंगल वाचक का स्तोत्र पाठ करें, शिवभक्त जप विधि पूर्वक करें।।२४।। नृत्य, गीत, बाजे, मंगल और सभाओं में बैठनेवालों का विधान पूर्वक पूजन करे।।२५।। पुण्याहवाचन करके फिर शंकरजी का पूजन करके शिष्य के अनुग्रह की इच्छा कर आचार्य की प्रार्थना करे।।२६।। हे देवदेव! प्रसन्न होकर मेरी देह में प्रवेश कीजिये, हे कृपानिधे! हे ईश! मुझे दुःख से छुड़ाइये।।२७।। तब मैं कहता हूं, इस अनुज्ञा को प्राप्त होकर आचार्य हविष्य भक्षण करनेवाले व्रती शिष्य को बुलाकर एक बार भोजन किये हुए या व्रती प्रातःकाल स्नान करके अपना कृत्य किए हुए।।२८-२९।। पश्चिम द्वार के आगे दक्षिण मण्डल की ओर कुशाओं के आसन पर बैठे हुए उत्तर मुख शिष्य को करके।।३०।। और स्वयं प्राक् (पूर्व दिशा) को मुख करके स्थित होकर ऊँचा शरीर करे, हाथ जोड़े शिष्य को मुद्रा अस्त्र से सिर पर जल से प्रोक्षण करके।।३१।। फूलों के मारने से इनको ताड़न करके तथा नेत्रों को नये अभिमन्त्रित दुपट्टे से बांधकर।।३२।। शिष्य को द्वार की ओर से गुरु प्रवेश करावे और वह शिष्य गुरु की प्रेरणा से शिवजी की तीन प्रदक्षिणा करे।।३३।। फिर सुवर्ण मिली हुई पुष्पांजलि प्रभु को देकर उत्तर-पूर्वमुख होकर प्रणाम करे; दण्डवत् पृथ्वी पर गिर पड़े।।३४।। फिर मूलशस्त्र

गुरु पूर्ववत् शिष्य के सिर को छिडककर और पुष्प ताड़न करके नेत्र बन्धन खोल दे ।।३५।। वह उस मंगल को देखकर शिवजी को दण्डवत् प्रणाम करे, फिर आचार्य शिष्य को दक्षिण मण्डल की ओर बैठा देखकर ।।३६।। और गुरु शिष्य को अपनी दाहिनी ओर कुशापर बैठे हुए महादेवजी की आराधना कराके शिवजी हाथ से उसे स्पर्श करे ।।३७।। शिवजी के तेज युक्त हाथ को शिवमन्त्र का उच्चारण करता हुआ शिवजी के अभिमान संयुक्त होकर शिष्य के मस्तक पर धरे ।।३८।। उसी हाथ से आचार्य सम्पूर्ण अंगों को आलम्बन करे और शिष्य भी आचार्य को ईश्वर जानकर प्रणाम करे ।।३९।। फिर देवालय में देव का विधिपूर्वक पूजन करके, तीन आहुतियों से हवन करके, शिष्य को आगे करके ।।४०।। उसको दर्भ के अग्रभाग से स्पर्श करते हुए आत्मा को विधान करके, महादेवजी को प्रणाम करके नाडीसन्धान करे ।।४१।। शिवशास्त्र के कहे विधान से प्राणायाम करके शिष्य के देह में प्रवेश के निमित्त स्मरण करके मन्त्रों को तृप्त करे ।।४२।। मूलमन्त्र के तृप्त करने का विनियोग करके दस आहुतियां देकर उसी मूलमन्त्र से अंग के देवताओं को उन–उन मूलमन्त्रों से तृप्त करे ।।४३।। फिर आचार्य प्रायश्चित्त की पूर्णाहुति देकर फिर मूलमन्त्र से दस आहुतियां प्रदान करे ।।४४।। फिर आचार्य शिवजी को पूजकर प्रणाम करके, आचमन करके फिर यथायोग्य अपनी जाति वैश्य का उद्धार करे ।।४५।। इसी प्रकार क्षेत्र का उद्धार करे, फिर इसको विप्रत्व उत्पन्न कराकर आचार्य ।।४६।। इसके राजन्य और वैश्यता का उद्धार करके ब्राह्मण होने पर; रुद्रत्व उत्पन्न करे और रुद्र का ही साधन करे ।।४७।। अपने शिष्य को प्रोक्षण और ताडन करके अपनी आत्मा से आत्मा में स्फूर्यमाण होते हुए विस्फुलिंग के समान शिवात्मक को स्मरण करके ।।४८।। मन्त्र से गुरु नाड़ी द्वारा वायु को रेचन अर्थात् निकालता हुआ सुषूम्ना नाडी से निकालकर कुम्भक से प्रवेश कराके शिष्य के हृदय में ।।४९।। मन्त्र प्रवेश कराके, नीलबिन्दु का स्मरण करता हुआ अपने तेज से मल दूर करे, प्रकाश का चिन्तन करे ।।५०।। गुरु इस वायु को इसी नाड़ी के द्वारा लेकर संहारमुद्रा से पूरक से निविष्ट करके आत्मा से आत्मा का एकीभाव करे ।।५१।। फिर कुम्भक नाड़ी से जैसे रेचक किया था वैसे करके उस पवन को शोधकर शिष्य के हृदय में स्थित करे ।।५२।। फिर उस शिष्य को स्पर्श करके शिवजी से ग्रहण किये यज्ञोपवीत को शिष्य को ग्रहण कराके तीन आहुतियों से हवन करके पीछे पूर्णाहुति दे ।।५३।। देव के दक्षिण ओर शिष्य को सुन्दर आसन पर बैठाकर कुशा के फूलों के बिछौने पर उत्तर को मुख करके हाथ जोड़े हुए शिष्य को ।।५४।। स्वस्तिकासन से बैठाकर प्राङ्मुख (पूर्व मुख) बैठकर अच्छे मंगल के मन्त्र पढ़कर सुन्दर आसन पर बिठाये ।।५५।। पहले सिद्ध किये पूर्ण घट को लाकर आचार्य शिवजी का ध्यान करते हुए शिष्य के ऊपर जल छिड़के ।।५६।। फिर स्नान के जल को पोंछकर श्वेतवस्त्र धारण करके सब शरीर से अलंकृत होके शिष्य हाथ जोड़कर मण्डप में जाय ।।५७।। फिर गुरु

उसे यथायोग्य कुशासन पर बैठाकर मण्डल में देव का पूजन कराके न्यास करे ।।५८।। इसके उपरान्त भस्म हाथ में लेकर शिवजी का ध्यान करता हुए आचार्य शिष्य का ग्रहण करके उस बालक शिष्य को शिवजी का उच्चारण करावे ।।५९।। फिर आचार्य शिवाचार्य इस शिष्य को संकलीकरण मातृका न्यास के मार्ग से कराकर ।।६०।। तब शिव नामक आसन को ध्यान करके शिष्य को वह आचार्य न्याय पूर्वक आवाहन करके मन से शिवजी का अर्चन करे ।।६१।। और हाथ जोड़कर शिवजी की प्रार्थना करे, कि 'आप यहां नित्य स्थित रहिये,' ऐसा शिवजी के प्रति कहकर उस महा तेजस्वी रूप को स्मरण करे ।।६२।। फिर शिवजी का पूजन करके शिवात्मक शैवीआज्ञा को प्राप्त होकर शिष्य के कान में शनैः-शनै! शिवमन्त्र का उच्चारण करे ।।६३।। वह शिष्य मन्त्र में मन लगाये हुए शिवमन्त्र को श्रवण करके शिवाचार्य के शासन से शनैः-शनैः उस मन्त्र का उच्चारण करे।।६४।। फिर मन्त्र बोलने में चतुर शक्तिमन्त्र को उच्चारण कराकर सुख पूर्वक शिष्य के निमित्त मंगलाचार करावे ।।६५।। फिर वाच्य-वाचक के योग से मन्त्रार्थ को कई मास तक (आदेशकर) ईश्वर के रूप का वर्णन करके योगासन की शिक्षा करे ।।६६।। तब गुरु की आज्ञा से शिष्य शिवजी, अग्नि, गुरु के निकट महाभक्ति पूर्वक दीक्षावाक्य का उच्चारण करे ।।६७।। चाहे प्राण जाते रहें, चाहे सिर का छेदन हो जाय, परन्तु बिना शिवार्चन किये भोजन करना उचित नहीं ।।६८।। निरन्तर भोग लगानेवाला जब तक उसका मोह दूर हो तब तक उन्हींकी निष्ठा और परायण होकर देव का आराधन करता रहे ।।६९।। तब वह समय नामवाला शिवजी के आश्रम में अधिकारी होगा, सदा गुरु की आज्ञा पालन करके उनके वश में रहे ।।७०।। इनके उपरान्त करन्यास करके अपने हाथ से भस्म लगाकर शिष्य के प्रति उस भस्म को और अभिमन्त्रित रुद्राक्ष को गुरु दे ।।७१।। अथवा देव की प्रतिमा वा लिंगात्मक लेकर पूजा, होम, जप, ध्यान और साधन करे।।७२।। वह शिष्य भी शिवाचार्य से इन वस्तुओं को बहुत मान से लेकर कभी आचार्य की आज्ञा का उल्लंघन न करे ।।७३।। और भक्ति पूर्वक सिर झुकाकर आचार्य से सम्पूर्ण ज्ञान को प्राप्त कर शम्भु को रक्षा करता हुआ मठ अथवा घर में पूजे ।।७४।। तब आचार्य इसको शिवजी का आचार बतावे; भक्ति, श्रद्धा और प्रज्ञा के अनुसार सब करता रहे ।।७५।। जो कहा, जो कुछ आज्ञा दी है वा जो कुछ और कहा है, वह शिवाचार्य के वचन को समय पर सिर से धारण करे ।।७६।। शिवशास्त्र का ग्रहण, बाँचना, श्रवण करना, यह सब आचार्य की आज्ञा से करे, अपनी वा दूसरे की इच्छा से नहीं ।।७७।। यह समय नामक संस्कार संक्षेप से कहा है, यह परम साधन मनुष्यों को साक्षात् शिवपुर की प्राप्ति करानेवाला है ।।७८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे

षोडशोऽध्यायः ।। १६ ।।

सत्रहवां अध्याय

उपमन्युजी बोले– इसके उपरान्त गुरु शिष्य की योग्यता को देखकर सब बन्धन की निवृत्ति के निमित्त षडध्व शुद्धि करे ।।१।। कला, तत्त्व, भुवन, वर्ण, पद, मन्त्र यह संक्षेप से षडध्व वर्णन किया गया है ।।२।। निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, शान्त्यतीत यह पण्डितों द्वारा पंचकला मार्ग कहा जाता है; इन पांच कलाओं करके पांच मार्ग व्याप्त हैं ।।३।। शिवतत्त्व से पृथ्वी तक तत्त्वमार्ग कहा है, यह शुद्ध–अशुद्ध दो भेदों से छब्बीस संख्या युक्त हैं ।।४।। आधारादि उन्मन लोक तक भुवनाध्वा कहलाता है, भेद–उपभेद के बिना यह ६० संख्या से युक्त है ।।५।। ककारादि १५ स्पर्श, यकारादि चार अन्तस्थ, शषसहादि ऊष्मादि यह ५० रुद्र रूप वर्णाध्व कहलाता है, फिर पदाध्व तो अनेक भेदवाला है ।।६।। जो महामन्त्र उपमन्त्रों के अवयवों से युक्त है, वह प्रधान अवयव होने पर पंचपदात्मक (ईशानादि) (पंचमन्त्र रूप) सात करोड़ महामन्त्र कहलाते हैं, परम विद्या से, मन्त्रों से, मन्त्राध्व वर्तमान है, जैसे तत्त्वपति शिवजी की तत्त्व में गणना नहीं होती ।।७।। उसी प्रकार यह मन्त्रपति मन्त्राध्व में नहीं गिने जाते, कलाध्व का व्यापकत्व और व्याप्यत्व तथा दूसरे मार्गों का भी ।।८।। जो तत्त्व से नहीं जानता है, वह अध्वशोधन के योग्य नहीं है, अध्व का रूप छः प्रकार का जो नहीं जानता है ।।९।। उससे व्याप–व्यापकता नहीं जानी जाती, इस कारण अध्वस्वरूप व्याप–व्यापकता ।।१०।। यथायोग्य जानकर अध्वशुद्धि करे, वह पूर्व के समान कुण्डमण्डल तक करके ।।११।। दो हाथ के प्रमाण बनाकर पूर्व की ओर कलश मण्डल धरे, तब शिवाचार्य स्नान करके शिष्य के सहित नित्यक्रिया करके ।।१२।। शिवजी के मण्डल में प्रवेश करके पूर्ववत् पूजा करे, तब चार प्रस्थ से कुछ अधिक चावल से खीर बनाकर ।।१३।। आधी होम के निमित्त रखकर शेष के भाग कल्पना करके अपने आगे वर्णों से मण्डित मण्डल कल्पना करे ।।१४।। पूर्वादि चारों दिशाओं में और एक बीच में ऐसे पांच कलश आचार्य कल्पित करे, उनमें पंचब्रह्म के मूलमन्त्र बिन्दुनाद के सहित ।।१५।। कल्प विधान का जाननेवाला यकार पर्यन्त नमस्कारादि करे, मध्यम के कुम्भ में ईशान, आगे के में पुरुष ।।१६।। दक्षिण की ओर अघोर वाम और वाम पश्चिम में सद्योजात की कल्पना कर, रक्षा कर, मुद्राविधान कर, घड़ों का अभिमन्त्रण करके ।।१७।। और पहले के समान शिवाग्नि में हवन की कल्पना करे, जो पहले आधी खीर होम के निमित्त रखी है ।।१८।। वह हवन करके शेष शिष्य के भोजन के निमित्त कल्पित करे, पूर्व के समान मन्त्रों का तर्पण करके ।।१९।। पूर्णाहुति करके उनको प्रदीप्त करे, ॐकार से परे

हुंकार अर्थात् ''ॐ हुं नमः शिवाय फट् स्वाहा''।।२०।। यह प्रदीपन करके यथाक्रम से अंग करे, दीपन कर्म में उनको तीन आहुतियां दे।।२१।। एक-एक मन्त्र में उन प्रदीप्त मूर्ति का विचार करे, ब्राह्मण की कन्या द्वारा काते हुए सूत को त्रिगुण करके।।२२।। उस सूत्र को सूत्र से अभिमन्त्रित करके उस बालक शिष्य की शिखा के अग्रभाग में बांधे, चरण के अंगुष्ठ पर्यन्त ऊर्ध्व शरीर करके बैठे हुए।।२३।। उसके ताल के मध्य में प्राप्त हुई सुषुम्ना नाड़ी को इस लम्बे किये सूत्र से योजित करे, अर्थात् चरण से लेकर शिखा पर्यन्त ले, फिर मन्त्र का जाननेवाला मूलमन्त्र से शान्तमुद्रा से ग्रहण करके।।२४।। उसके निकट तीन आहुतियों से हवन करके निकटता की प्राप्ति करे और पूर्व के समान पुष्प फेंकने से शिष्य के हृदय को ताडना करके।।२५।। चैतन्य को ग्रहण करके शान्त्यतीत आदि बारह नाम अथवा ग्यारह तत्त्वों के आधार ईश्वर जिसके अन्त में हैं, (एकादश, नव, तीन आदि तत्त्व श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध में लिखे हैं) अथवा ''एकमात्रममात्रं हि द्वादशान्तं व्यवस्थितम्, शिवगीतायाम्'' उसे धारण करके सूत्र को सूत्र से संयुक्त करके अस्त्रवर्म से उसकी रक्षा करके।।२६।। उस शिष्य की देह में उस सूत्र को लपेटकर विचार करे, जाति, आयु, भोग रूप तीन मूलभाग और भोग भोक्तृत्व लक्षणवाले।।२७।। उस शिष्य के विषय इन्द्रिय भोगादि के उत्पन्न की भावना करे, आकाशादि पंचमहाभूतों के रूपवाली जो शान्त्यतीतादि कलाएँ है।।२८।। वह शान्त्यातीत नाम से सूत्र में युक्त करके उनकी पूजा करे, अथवा पूर्व में कहे क्रम से आकाशादि के बीजमन्त्रों से कृत्य करके।।२९।। फिर मलादि के तत्त्वों की व्याप्ति को देखकर कालव्याप्ति को मलादि में हवन करके कला उद्दीप्त करे।।३०।। शिष्य को सिर और देह में सूत्र को यथाक्रम ताडना करके यथाक्रम सब कार्य करे, शान्त्यातीत पद में सूत्र का मन्त्र पढ़ता हुआ चिह्नित करे।।३१।। इस प्रकार क्रम से शान्त्यतीत करता हुआ तीन आहुतियों से हवन करके मण्डल में शिवजी का यजन करे।।३२।। देव के दक्षिण और उत्तर को मुखकर शिष्य को बैठाकर दर्भ सहित मण्डल में होम से बचे हुए चरु को गुरु उसे प्रदान करे।।३३।। और शिष्य गुरु के दिये हुए मंगल पूर्वक उस चरु को सत्कार से लेकर भोजन करके, दो बार आचमन करके शिवमन्त्र का उच्चारण करे।।३४।। तब गुरु दूसरे मण्डल में पंचगव्य दे, वह शिष्य उसे भी भक्ति के अनुसार पान करके दो बार आचमन करके शिवजी का स्मरण करे।।३५।। फिर पूर्व के समान शिष्य को तीसरे मण्डल में बैठाकर शास्त्रोक्त दातौन (दन्तशोधन) करने को दे।।३६।। और उसके आगे मृदुता पूर्वक उत्तर वा पूर्व को मुख करके वाणी को रोककर बैठे हुए शिष्य दांतों को शुद्ध करे।।३७।। फिर दांतों को धोकर, पवन त्यागकर, आचमन करके दांतों को शुद्ध करे और शिवजी का स्मरण करे और हाथ जोड़कर आचार्य की आज्ञा से शिवजी के मण्डल में प्रवेश करे।।३८।। जब कि, गुरु ने दांतों की पवन त्यागे हुए

उसको देख लिया हो, तो पूर्व, उत्तर, पश्चिम के अग्रभाग में शिवजी के बिना वा शिवजी से इतर ।।३९।। अप्रशस्त दक्षिणादि दिशाओं की ओर बैठे तो गुरु उस दोष की शान्ति के अर्थ मूलमन्त्र से सौ वा पचास आहुतियां दे ।।४०।। फिर शिष्य को ग्रहण करके उसके कान में मन्त्र जपकर देव के दक्षिणभाग में शिष्य को बैठावे ।।४१।। जो कि श्रेष्ठ बिछौने बिछे कुशा के शयन से पवित्र हो, उसे मन्त्रित करके अन्तःकरण में शिवजी का ध्यान करता हुआ पूर्व को सिर करके रात्रि में शयन करे ।।४२।। सूत्र से बंधी हुई उसकी शिखा को शिखा के अग्रभाग से बांधकर उस प्रोक्षित वस्त्र से उसे लपेटकर और वर्म से आच्छादित करके ।।४३।। और भस्म, तिल, सरसों से बाह्य की ओर बलि को हरण करे ।।४४।। शिष्य भी बिना भोजन किये सोवे, फिर उठकर शिष्य को जो स्वप्न दीखे, सो गुरु निवेदन करे ।।४५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे

सप्तदशोऽध्यायः ।। १७ ।।

*****

अठारहवां अध्याय

फिर आचार्य की प्रेरणा से सब स्नानादि कृत्य करके शिवमण्डल के स्थान से ध्यान करता हुआ हाथ जोड़कर चले ।।१।। फिर पूर्वदिन में जो किया था वह सब पूजा के बिना करके नेत्रबन्धन तक गरु मण्डल को दिखावे ।।२।। नेत्र बन्धे हुए शिष्य पर फूलों की वर्षा करने पर जहां उसके नाम के पुष्प गिरे वहीं कह दे ।।३।। फिर पूर्व के समान मण्डल में निर्माल्य को प्राप्त करके ईशानदेव को पूजन करके शिवजी की अग्नि में हवन करे ।।४।। और जो दुःस्वप्न देखा हो तो उस दोष की शान्ति के लिये सौ वा पचास आहुतियों से मूलविद्या से हवन करे ।।५।। फिर शिखा में सूत्र को बांधकर जैसे पहले लम्बायमान किया था वैसे करे, आधारपूजा इत्यादि निवृत्तिकला के आश्रय हैं ।।६।। उस वागीश्वरी पूजा तक होम करे, फिर वागीश्वरी को प्रणाम करके जो सती निवृत्ति में व्याप्त हैं ।।७।। मण्डलदेव को पूजन करके तीन आहुतियां देकर एक साथ ही सब योनियों में शिष्य की प्राप्ति प्रार्थना करे ।।८।। फिर शिष्य के सूत्र देह में ताडन, प्रोक्षण आदि करे और आत्मा को सावधान करे, द्वादशान्त में निवेदन करे ।।९।। तब शास्त्र में कही मुद्रा से मूलमन्त्र को ग्रहण करके आचार्य मन से युक्तकर एक साथ सब योनियों में योजित करे ।।१०।। देवताओं की आठ जाति और तिरछे चलनेवाले जीवों की पांच जाति एक मानुषी योनि ।।११।। इन सब में शिष्य को एक साथ ही प्रवेशकर यथायोग्य

शिष्य की आत्मा में वागीश्वरी को निविष्ट करे।।१२।। गर्भप्राप्ति के निमित्त देव को प्रणाम करके पूजन करे, हवन करके न्याय पूर्वक उस गर्भ को स्मरण करे।।१३।। प्राप्त की उत्पत्ति और कर्म की अनुवृत्ति है, सीधापन भोग की प्राप्ति और परम प्रीति करे।।१४।। जाति, आयु, और भोग संस्कार की सिद्धि तथा निष्कृति के निमित्त आचार्य तीन आहुतियों का होम करके प्रार्थना करे।।१५।। भोक्तृत्व विषयसंग मल उसके कार्य को शोधन यह सब विधि करके शिष्य के जाति, आयु, भोग रूप तीन पाशों का छेद करे।।१६।। निकृति के बद्ध और पाश के अत्यन्त भेद से शिष्य को संस्कार करके उसको केवल स्वच्छ जाने और चैतन्य करे।।१७।। फिर अग्नि में पूर्णाहुति करके ब्राह्मणों का पूजन करे, फिर ब्रह्माजी को तीन आहुतियां देकर शिवाज्ञा का स्मरण करे।।१८।। कि, हे पितामह! आपकी कृपा के द्वारा शिवजी के परमपद को जाय, फिर इसका प्रतिबन्धन करे; यह शिवजी की आज्ञा बढ़ी है।।१९।। ऐसी आज्ञा देकर अर्चन करके और विधान पूर्वक विसर्जन करके महादेवजी का पूजन करके तीन आहुतियों से हवन करे।।२०।। और पूर्व के समान निवृत्ति से अपने शिष्य को शुद्ध करके अपनी आत्मा में स्थित करके सूत्र में वागीश्वरी का पूजन करे।।२१।। उसके उपरान्त तीन आहुतियां देकर प्रणाम करके उसे विसर्जन कर प्रतिष्ठा रूप कला के सहित निवृत्ति का संधान करके।।२२।। संधान में एक साथ पूजा और तीन आहुतियों का हवन करे; फिर पूर्व में कही प्रतिष्ठा को आवाहन करके पूर्वोक्त कार्य करे, शिष्य की आत्मा में प्रतिष्ठा के प्रवेश की भावना करे।।२३।। फिर पूर्वोक्त प्रतिष्ठा को आवाहन और शेषकार्य करे, उसमें ही अपनी आत्मा की व्याप्ति और व्यापिका को और वागीश्वरी की भावना करे।।२४।। जो पूर्णचन्द्रमा के समान है, शेषकार्य पूर्ववत करे, शिव परमात्मा की आज्ञा को विष्णुजी के प्रति कहे।।२५।। और महामन्त्र से विष्णुजी का विसर्जन आदि करे और पूर्व के समान उसमें भी प्रतिष्ठा को करके।।२६।। इस विष्णुजी की व्याप्ति और वागीश्वरी को क्रम से चिन्तन करे और पूर्व ही के समान दीप्ताग्नि में हवन करके।।२७।। नीलरुद्र के निकट उपस्थित होकर उनकी पूजादिक करे, यह कृत्य करके पूर्वोक्त मार्ग से शिवाज्ञा को दे।।२८।। फिर नीलरुद्र को भी उद्वासन (विसर्जन) करके उसकी शान्ति के निमित्त विद्याकला में समावेश करके उसकी व्याप्ति का भी अवलोकन करे।।२९।। अपनी आत्मा की व्यापिका और वागीश्वरी की जैसे पूर्वभावना की थी कि, सूर्य के समान प्रकाशमान दशों–दिशाओं को प्रकाश करती हुई का।।३०।। ध्यान करके फिर योग्यतानुसार सब कृत्य करके, महादेव महेश्वरजी का आवाहन, पूजन करके शिवजी की आज्ञा को मन से आदेश करे।।३१।। फिर महेश्वरजी को बिदा करके पहली कही पांच कलाओं को शान्त्यतीत कला को लेकर उसकी व्याप्ति को देखे।।३२।। अपनी आत्मा की व्याप्ति का और वागीश्वरी का चिन्तन करे और नभोमण्डल के समान पूर्ण कला को भी पूर्व के समान।।३३।। शेष कर, विधान से पूजा कर, शिवजी का पूजन

करके उस शिष्य के निमित्त अमितकर्मा महादेवजी की आज्ञा से सुनावे ।।३४।। उसमें भी पूर्व के समान शिवजी को सिर में पूजन करके जो कि, वाणी के पति हैं, प्रणाम करके विसर्जन करे ।।३५।। तब शिवमन्त्र से पूर्व के समान शिष्य के सिर में प्रोक्षण करके शान्त्यतीत कला का लयशक्ति तत्त्व में चिन्तन करे ।।३६।। षडध्व से परे सर्वमार्ग में व्याप्त परा स्वरूपमान करोड़ सूर्य के समान प्रकाश शैवीशक्ति का चिन्तन करे ।।३७।। उसके आगे शिष्य को लाकर शुद्ध स्फटिकमणि के समान निर्मल कैंची को शिवशास्त्र कें अनुसार धोकर ।।३८।। उस सूत्र के सहित आचार्य उसकी शिखा का छेदन करे, फिर उस शिखा को गोबर में रखकर शिवाग्नि में हवन कर दे ।।३९।। अन्त में वौषट् लगाकर मूलमन्त्र से उस कैंची को धोकर दोनों हाथ शिष्य के चैतन्य करने के लिये हृदय पर रखे ।।४०।। फिर स्नानादि कराकर उस शिष्य को स्वस्तिवाचन कराकर मण्डल के समीप प्रवेश करके दण्ड के समान प्रणाम करके ।।४१।। कर्मलोपादि की शुद्धि के निमित्त यथायोग्य पूजा करके वाचक के मन्त्र से तीन आहुतियां दे ।।४२।। उपांशु उच्चारण के योग्य करके तीन आहुतियों से हवन करके फिर मन्त्रविकलता की सिद्धि के निमित्त देवेश का पूजन करे ।।४३।। फिर मन से उच्चारण के योग्य तीन आहुतियां दे, अम्बा के सहित मण्डल में स्थित शिवजी का आराधन करके तीन आहुतियों से हवन करके हाथ जोड़कर गुरु प्रार्थना करे ।।४४।। हे भगवन्! आपके प्रसाद से षडध्वमार्ग की शुद्धि हो, इससे यह आपके अविनाशी परमधाम को प्राप्त हो ।।४५।। इस प्रकार देव के निमित्त कहकर नाड़ी सन्धानपूर्वक पूर्व के समान पूर्णान्त करके फिर पंचमहाभूतों को शोधे ।।४६।। स्थिर में स्थिरा शुद्धि को फिर इसके उपरान्त शीतोष्ण शुद्धि व्याप्ति के एकता के आकार में तथा पंचभूत के शोधन कर्म में ध्यान करे ।।४७।। भूतों की ग्रन्थि विच्छेद करके और उनके स्वामियों सहित त्याग करके योग करके भूतों की स्थिति में परम शिवजी में युक्त करे ।।४८।। इस शिष्य का मुखशोधन कर, मन्त्र से शरीर दग्ध कर, फिर अमृत के कणों से सींचकर अपनी आत्मा को स्नान कराके विशुद्ध अध्वमय शरीर करके ।।४९।। प्रथम शान्त्यतीत व्यापिका अपनी अध्वकला को जो कि, शुद्ध हो चुकी है, उस शुद्ध को शिष्य के सिर में न्यास करे ।।५०।। तथा शान्ति को मुख में, विद्यादि को गले से लेकर नाभि पर्यन्त क्रम से प्रतिष्ठा धारण करावे, उससे अधोभाग जानु में न्यास करके निवृत्ति की भी चिन्तना करे ।।५१।। अपने बीजसूत्र मन्त्र का न्यास कर उस शिवात्मक अंग को जानकर उस हृदयकमल में देव का आवाहन करके पूजन करे ।।५२।। और नित्य समीप में स्थित होकर गुरु शिष्य में शिवजी की आत्मा प्राप्तकर शिवजी के तेजोमय इसका शरीर करके उसके अणिमादि गुणों को भी उसमें प्राप्त करे ।।५३।। अणिमादि प्रसन्न हों, ऐसा कहकर तीन आहुतियां दे, इसी प्रकार फिर भी इसमें गुण प्रतिपादन करे ।।५४।। सर्वज्ञता तृप्ति को और आद्यन्त वर्जित बोध को, जिसकी शक्ति

लुप्त नहीं हुई है, स्वतन्त्र अनन्त शक्ति को स्थापन करके ।।५५।। फिर देव की प्रार्थना करके सद्यादि कलशों से उन देवेश को अभिषेक करके यथाक्रम से ध्यान करते हुए ।।५६।। फिर उस शिष्य को बैठाकर और पूर्ववत् शिवजी की पूजा करके शिवजी से शैवीआज्ञा को प्राप्त करके इस शिष्य के निमित्त शैवीविद्या प्रदान करे ।।५७।। उसमें पहले ओंकार और पीछे नमः लगाकर सम्पुट करे; शिवशक्ति के सहित उसी प्रकार विद्याशक्ति, ऋषि, छन्द, देवता कहकर शिवशक्ति के शिवा-शिव की शिवत्व को तथा शिवजी को पूजा का संग्रह और आसन आदि दे ।।५८-५९।। फिर देवेश का पूजन करके कहे, ''जो मैंने अनुष्ठान किया है, उस सबको सुकृति करे'' यह शिवजी से प्रार्थना करके ।।६०।। शिष्य के सहित गुरु पृथ्वी में देव को दण्डवत् करे, प्रणाम करके उस मण्डल से और अग्नि से विसर्जन करे ।।६१।। फिर सभा में बैठनेवाले यथायोग्य क्रम से पूजने चाहिये ।।६२।। और धन के अनुसार ऋत्विजों के सहित सभावालों का सत्कार करे; जो अपना मंगल चाहे तो धन की शठता न करे ।।६३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे

अष्टदशोऽध्यायः ।। १८ ।।

*****

उन्नीसवां अध्याय

उपमन्युजी बोले- इसके उपरान्त नाममन्त्र, शिवमन्त्र के साधन का विस्तार करता हूं, संस्कारमन्त्र का माहात्म्य कहने में जिसकी मैंने प्रथम सूचना दी थी ।।१।। मण्डल में देव को पूजकर और पूर्व के समान कुम्भ स्थापन कर, हवन करके पगड़ी, टोपी रहित शिष्य को उस स्थान में प्राप्त करे ।।२।। पूर्ववत् पूरा विधान करके सौ आहुतियां देकर श्रेष्ठ आचार्य दशांश से मूल अंशों को तृप्त करके ।।३।। पूर्व कहे अनुसार दीप्ति करके तथा अभिषेक करके श्रेष्ठ मन्त्र प्रदान करे; फिर से सब विद्या के उपदेश पर्यन्त करके पुष्पयुक्त जल से बालक के हाथ में शैवीविद्या को समर्पण करे ।।४-५।। और कहे, यह तुझे यहां-वहां सब सिद्धियों की देनेवाली हो; परमेष्ठी के प्रसाद से यह महामन्त्र सब फल प्रदान करे ।।६।। यह कहकर देव की पूजा करके आचार्य शिवजी से आज्ञा पाकर साधन और विनियोग सब साधक को बतावे ।।७।। यह गुरु का सन्देशा सुनकर मन्त्र का साधक क्रम से आगे विनियोग का मन्त्र साधन करे ।।८।। मूलमन्त्र का साधन पुरश्चरण कहलाता है; क्योंकि विनियोग के कर्म से यह पहले किया जाता है ।।९।। मुमुक्षु को मन्त्रसाधन अवश्य करना चाहिये और करने से यहां-वहां सब जगह उसको

भी शुभ होता है ।।१०।। शुभदिन, शुभदेश, शुभकाल में दोष से रहित श्वेत दान्त कर, नख पवित्र कर, स्नान कर, स्नान के उपरान्त पूर्वकाल की क्रिया करके ।।११।। यथा लब्ध गन्धमाला भूषण से अलंकृत करके उष्णीष उत्तरासंग दुपट्टे सहित सब शुक्ल वस्त्र लिये ।।१२।। देवालय में, घर में वा और किसी रमणीय पवित्र देश में पूर्वासन पर बैठकर सुख से पूजा करके ।।१३।। अपने शरीर को शिवशास्त्र के मार्ग से शैव कर, नकुलीश्वर ईश्वर देवेश का पूजन करके ।।१४।। उनको खीर निवेदन कर पूजा का क्रम समाप्त करके, देव को प्रणाम कर उनके मुख से आज्ञा पाकर ।।१५।। एक करोड़, आधा करोड़, पच्चीस लाख, बीस या दस लाख शिवजी का जप करे ।।१६।। हिंसा रहित, क्षमा युक्त, शान्त और दान्त सदा हो; फिर खीर अथवा खारी नोन रहित अल्पमात्रा में भोजन करे ।।१७।। जो खीर न मिले तो फल–मूल का ही भोजन करे, यह पदार्थ शिवजी ने उत्तरोत्तर श्रेष्ठ कहे हैं ।।१८।। चरु, सत्तु, कण, यावक का भोजन करे; शाक, दूध, दही, घी, मूल, फल और जल का भोजन करे ।।१९।। भक्ष्य–भोज्यादि को मूलमन्त्र से अभिमन्त्रित करके इस साधन में विशेष मौन होकर भोजन करे ।।२० ।। आठ सौ मन्त्र पढ़कर पवित्र किये जल से व्रती स्नान करे; जो नद–नदी का जल हो उसे अपनी शक्ति से प्रोक्षण करे ।।२१।। नित्य तर्पण करके शिवाग्नि में हवन करे; सात, पांच, तीन आहुतियों द्वारा घृत से ।।२२।। आहुति दे, इस प्रकार भक्ति से जो शैव शिवजी की साधना करता है, उसको यहां–वहां प्राप्ति होने में कुछ भी दुर्लभ नहीं है ।।२३।। अथवा एकाग्र मन से प्रतिदिन मन्त्र जपे; बिना सहस्र मन्त्र पढ़े भोजन न करे, तब उसको कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता, न उसको कहीं अशुभ होता है; यहां इस विद्या के आश्रय से सुख को प्राप्त होकर मुक्त हो जाता है ।।२४–२५।। साधन विनियोग, नित्य नैमित्तिक में जल और भस्मस्नान करके मन्त्र जपे ।।२६।। पवित्र होकर शिखा बांधकर, सूत्र (यज्ञोपवीत) पहनकर, हाथ में पवित्री धारण करके त्रिपुण्ड्र धारण करके रुद्राक्ष पहनकर, पंचाक्षरी विद्या का जप करे ।।२७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे

एकोनविंशोऽध्यायः ।। १९ ।।

*****

बीसवां अध्याय

उपमन्युजी बोले– जब इस प्रकार शिष्य संस्कार को प्राप्त होकर पाशुपत व्रत करे, तब योग्य होने पर आचार्य उसका अभिषेक करे, अन्यथा नहीं ।।१।। पूर्ववत् मण्डल बनाकर परमेश्वर का पूजन करके पूर्वादि दिशाओं में चार–चार और मध्य में एक कलश स्थापन करे ।।२।। निवृत्ति कला को आगे और प्रतिष्ठा को पीछे न्यास करके

विद्या, कला को दक्षिण, शान्ति को उत्तर और परा को मध्य में स्थापन करे ।।३।। फिर सब रक्षादि करके धेनुमुद्रा को बांधकर घटों को अभिमन्त्रित करके पूर्णाहुति तक हवन करे; जैसे पहले किया है ।।४।। और पगड़ी रहित शिष्य को मण्डल में प्रवेश कराकर आचार्य पूर्ण होने तक मन्त्रों का तर्पणादि सब करे ।।५।। फिर देवेश को पूजकर पूर्व के समान अनुज्ञा लेकर उस शिष्य को अभिषिक्त करके आसन पर बैठावे ।।६।। उस पंचकला रूपी को ठीक करके मन्त्र युक्त शरीर को करके शिष्य को शिवजी में समर्पण करे ।।७।। फिर निवृत्ति से कुम्भादि को उठाकर क्रम से उन घटों को उठाकर मध्यम घटपर्यन्त शिवमन्त्र से उस शिष्य को अभिषिक्त करे ।।८।। फिर आचार्य शिष्य को शिवजी के हाथ में समर्पण कर उसके सिर को स्पर्श करके शिवभाव को प्राप्त होकर शिवाचार्य उसको आज्ञा दे ।।९।। फिर उन देव को अलंकृत कर शिवमण्डल में आराधना करके एक सौ आठ बार आहुतियां देकर फिर पूर्णाहुति दे ।।१०।। फिर देवेश का पूजन कर पृथ्वी में प्रणाम करके सिर से अञ्जलि बांधकर शिवजी को विज्ञापन करे ।।११।। हे भगवन्! आपके प्रसाद से यह मैंने देशिक किया। हे देव! इसके ऊपर कृपा करके इसे दिव्य आज्ञा प्रदान कीजिये ।।१२।। इस प्रकार कहकर शिष्य के सहित प्रणाम करके शिवजी को और दिव्य शिवशास्त्र को शिवजी के समान गुरुपूजन करे ।।१३।। फिर शिवजी को अनुज्ञप्ति करके शिवज्ञान की पुस्तक वेदों को दोनों हाथों से आचार्य के निमित्त दे ।।१४।। वह उस विद्या को सिर के ऊपर धरकर, विद्या आसन के ऊपर रखकर यथायोग्य प्रणाम करके वन्दन करे ।।१५।। फिर गुरु उस शिष्य को राज्य के उपयोगी आसन, छत्रादि दे। कारण कि, यह आचार्य पदवी को प्राप्त होकर राज्य प्राप्ति के योग्य भी हो सकता है ।।१६।। फिर पूर्वजों से आचरित की हुई आज्ञा को दे; जैसे शिवशास्त्र में लिखा है और जैसा लोकों में पूजा जाता है ।।१७।। शिष्य की यत्न से परीक्षा करके शिवशास्त्र के कहे लक्षणों से संस्कार करके शिवआज्ञा दे, अन्यथा नहीं ।।१८।। शिवजी की प्रतिष्ठा भी यथायोग्य करनी चाहिये। उपदेश ऐसा दे कि, पवित्रता, सहनशीलता, नित्य दया करना, स्पृहता न करना, निन्दा न करना यह यत्न से साधन करे ।।१९।। इस प्रकार उस शिष्य को समझाकर मण्डल से शिवजी को उठाकर शिवघट, अग्नि आदि अन्य सभासदों का भी सत्कार करके ।।२०।। एक साथ ही संस्कारों को गुणी गुरु करे, वहां तीन वा दो प्रयोगों का उपदेश किया है ।।२१।। उस प्रयोग के आदि में मार्ग शुद्धि की तरह कल्पना करे, अभिषेक के बिना सम्पूर्ण समय के संस्कार करके ।।२२।। शिवजी का अर्चन करके मार्ग शुद्ध करके उसकी समाप्ति में फिर देव की पूजा कराये ।।२३।। हवन कर फिर से तर्पण कर, दीप्ति करके ईश्वर की आज्ञा लेकर मन्त्र शिष्य को समर्पण करके शिष्य के हाथ से सब कृत्य पूर्ण करावे ।।२४।। अथवा फिर सब मन्त्र संस्कारों को चिन्तन करके अभिषेक में समाप्त होनेवाली मार्ग शुद्धि को गुरु करे ।।२५।। उसमें

जो शान्त्यतीतादि कलाओं में विधान कहा है; वह तीनों तत्त्वों के शोधने में सब करनी चाहिये ।।२६।। शिवविद्या के तत्त्व कहनेवाले तीन तत्त्व कहलाते हैं, शक्ति में ही शिवजी को जानना चाहिये, उसीकी आत्मा प्रकट हुई है ।।२७।। शिवजी से ही शान्त्यतीतादि मार्ग और उससे परे व्याप्त हैं, विद्या से परिशेष मार्ग सब क्रम से आत्म स्वरूप ।।२८।। शिवजी का मूलमन्त्र दुर्लभ मानकर मूलमन्त्र को विद्वान् महात्मा जो शिवशास्त्र के पारगामी हैं, शक्ति संस्कार कहते हैं ।।२९।। यह संस्कार कर्म का चार प्रकार से सब विधान आपसे कहा है, हे कृष्ण! अब आपको क्या सुनने की इच्छा है? सो आप हमसे कहिये ।।३०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे

विंशोऽध्याय: ।। २० ।।

*****

इक्कीसवां अध्याय

श्रीकृष्णजी बोले- हे भगवन्! शिवशास्त्र के अनुसार वर्तनेवाले जो नित्य नैमित्तिक कर्म है, उन्हें सुनने की इच्छा करता हूं ।।१।। उपमन्युजी बोले- प्रात:काल ही शयन से उठकर उमा सहित शिवजी का ध्यान करके विचार कर अरुणोदय होने पर अपने कर्म के निमित्त घर से निकले ।।२।। उपद्रव रहित देश में आवश्यक शौचादि करके निवृत्त होकर दंतधावन करे ।।३।। दंतधावन के न प्राप्त होने पर (चतुर्दशी, अष्टमी, पौर्णमासी, संक्रान्ति, नन्दा तिथि, नौमी को दंतधावन न करे) इन तिथियों में जल के बारह कुल्ले आत्मा की शुद्धि के निमित्त करने चाहिये ।।४।। फिर विधि पूर्वक आचमन करके वारुण स्नान करे (अवगाहका नाम वारुण स्नान है) कि, मन से भगवान् विष्णुजी का चिन्तन करे। नदी, देवखात (सरोवर), ह्रद वा घर में स्नान करे ।।५।। उसके तट पर स्नान के द्रव्य गोमयादि स्थापन करे, बाह्य मल को दूर करके मिट्टी और गोबर से लीपे ।।६।। बार-बार स्नान करके उस वस्त्र को त्यागकर वा धोकर सम्यक् स्नान करके राजा के समान शुद्ध वस्त्र को धारण करे ।।७।। सुगन्धि आदि स्नान, दांतों की शुद्धि यह ब्रह्मचारी तपस्वी और विधवाओं को नहीं करनी चाहिये ।।८।। यज्ञोपवीत पहने शिखा बांधे जलान्तर में प्रवेश करके उसमें स्नान करके जल में तीन मण्डल के सदृश आकार करे ।।९।। फिर जल में मग्न होकर शक्ति अनुसार शिवजी का स्मरण करता हुआ मन्त्र जपे; फिर आचमन करके उसीसे अपनी आत्मा को अभिषिक्त करे ।।१०।। गोशृंग, कुश, पलाशदल (ढाक के पत्ते) अथवा कमल से वा हाथ से पांच वा तीन बार अभिषेक करे ।।११।।

बगीचे आदि घर, वर्धनी वा कलश करके स्नान के समय जलों का मन्त्रों से अभिषेक करे ।।१२।। और जो वारुण (जल) स्नान करने में असमर्थ हो तो शुद्ध भीगे हुए वस्त्र से अपनी देह को सिर से पैरों तक शोध ले (यह कपिलस्नान है) ।।१३।। भस्म अथवा आपोहिष्ठेत्यादि मन्त्रों से वा शिवमन्त्र के प्रोक्षण से स्नान करे और शिवजी के चिन्तन युक्त आत्मीय स्नान कहलाता है ।।१४।। अपने सूत्र में कहे विधान से मन्त्र तथा आचमन पूर्वक देवादिका तर्पण करके ब्रह्मयज्ञ तक सब कृत्य करे ।।१५।। मण्डल में स्थित महादेवजी का पूजन करके यथाविधि ध्यान करके आदित्य रूपी शिवजी के निमित्त अर्घ्य दे ।।१६।। फिर अपने सूत्रोक्त विधान करके हस्त शुद्धि करे और करन्यास करके सब शरीर को शोधकर ।।१७।। वाम हाथ में प्राप्त हुए जल से गन्ध और सरसों सहित कुश समूह से मूलमन्त्र के सहित प्रोक्षण करके ।।१८।। आपोष्ठिादि मन्त्रों से शेष जल को सूंघकर बांये नासापुट से श्वेत देव की और बाहर स्थित शिला में कृष्णवर्ण का दक्षिण नासापुट से ध्यान करे ।।१९-२०।। फिर विशेष कर देवता और ऋषियों का तर्पण करे, भूत और पितरों के अर्थ यथायोग्य अर्घ्य को दे ।।२१।। लाल चन्दन के जल से हाथ मात्र से सुन्दर भूमि में रत्न चूर्णादि से अलंकृत मण्डल की कल्पना करे ।।२२।। वहां अपने आवरणों के सहित सूर्य का पूजन करे 'स्वखोल्काय०' इस मन्त्र से सब सुख सिद्धि के निमित्त पूजे ।।२३।। फिर मण्डल करके, अंगों की पूजा करके, वहां रखे अन्य सुवर्णपात्र को मगधदेश के सेर (१२८ तोले का) के परिमाण ।।२४।। गन्ध और लाल चन्दन के जल से पूर्ण करे लाल फूल, तिल, कुश, अक्षताओं के सहित ।।२५।। दूर्वा, चिरचिटा, गव्य दूध वा जल से पूर्ण करके जंघा के बल पृथ्वी पर बैठकर मण्डल में देव को प्रणाम करके ।।२६।। उस पात्र को सिर पर करके अर्घ्य दे अथवा कुश सहित मूलविद्या से उस जल को अंजलि में लेकर ।।२७।। आकाश में स्थित सूर्यमूर्ति शिवजी के निमित्त अर्घ्य दे, फिर हाथ धोकर करन्यास करके ।।२८।। ईशान आदि से लेकर सद्योजात पर्यन्त पंचब्रह्ममय शिवजी को जानकर मन्त्रों से भस्म ग्रहण करके अंगों को स्पर्श करे ।।२९।। फिर विपरीत क्रम से सिर, मुख, गुह्य और चरणों में लगावे, फिर मूलमन्त्र से सर्वांग में लगाकर अन्य वस्त्र धारण करे ।।३०।। दो बार आचमन करके ग्यारह मन्त्रों से प्रोक्षण करके वस्त्र पहनकर दूसरे वस्त्र को जल से आच्छादन करके दो आचमन करके शिवजी का स्मरण करे ।।३१।। फिर मन्त्रानुष्ठानी करन्यास करके भस्म से त्रिपुण्ड्र को लिखे, सुगन्ध जल से माथे पर त्रिपुण्ड्र लगाये ।।३२।। दीर्घ वा चार अंगुल से बिन्दु वा अर्द्धचन्द्र के समान माथे पर यथायोग्य त्रिपुण्ड्र को भस्म से लगावे ।।३३।। जैसे माथे पर लगावे वैसे ही भुजा, सिर और छाती पर लगावे, सर्वांग में भस्म लगावे, वह त्रिपुण्ड्र के समान न हो ।।३४।। इस कारण एक त्रिपुण्ड्र को ही भस्म रहित मस्तक में लिखे; रुद्राक्षों को सिर, कण्ठ, हाथ, कानों पर धारण करे ।।३५।। जो सुवर्णवर्ण के समान दूसरे का धारण

किया न हो, वह क्रम से ब्राह्मणादिक को श्वेत, पीला, लाल और श्याम वस्त्र धारण करना चाहिये ।।३६।। उसके न होने पर जो मिल सके वही शुद्ध वस्त्र धारण करना चाहिये; उसमें भी नीच पुरुषों को ऊँचे वर्ण के वस्त्र धारण न करने चाहिये, न ऊँचों को नीचे वर्ण के वस्त्र पहनने चाहिये ।।३७।। अशुचि हो रुद्राक्ष धारण न करे, पूजादि समय में सदा धारण करे, इस प्रकार तीनों सन्ध्या, दोनों अथवा एक सन्ध्या में ।।३८।। शक्ति से रचनादि करके परमेश्वर की पूजा करे, पूजास्थान में आकर सुन्दर आसन बांधकर ।।३९।। देव-देवी को उत्तर वा पूर्व मुखकर ध्यान करे; पूर्व में कहे श्वेत आदि से नकुलीश तक शिष्यों सहित गुरु को प्रणाम करे ।।४०।। फिर अपने गुरुदेव को प्रणाम करके नामाष्टक जपे, शिव, महेश्वर, रुद्र, विष्णु, पितामह, संसार, वैद्य, सर्वज्ञ यह आठ नाम हैं अथवा ग्यारह से अधिक बार एक शिवजी का ही नाम जपे ।।४२।। जिह्वा के अग्रभाग में व्याधि शान्ति के निमित्त उस तेजोराशि का ध्यान करके हाथ धोकर और चन्दन आदि से चर्चित करके न्यास करे, हाथ शोधन पूर्वक करन्यास करे ।।४३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे

एकविंशोऽध्यायः ।। २१ ।।

*****

बाइसवां अध्याय

उपमन्युजी बोले- स्थिति, उत्पत्ति, लय के क्रम से तीन प्रकार का न्यास कहा है, स्थिति न्यास गृहस्थियों का, उत्पत्ति ब्रह्मचारियों का ।।१।। यतियों का संहृतिन्यास और यही वनवासियों का है और यही संहृतिन्यास स्वामिहीन कुटुम्बियों को करना चाहिये ।।२।। फिर कन्या की उत्पत्ति और न्यास का लक्षण कहेंगे, अंगुष्ठ से लेकर कनिष्ठा तक स्थितिन्यास कहा जाता है ।।३।। और दक्षिण अंगुष्ठ से लेकर वाम अंगुष्ठ पर्यन्त उत्पत्तिन्यास कहा है, इसके विपरीत संहृति है ।।४।। वाम अंगुष्ठ से लेकर दक्षिण अंगुष्ठ तक बिन्दु के सहित नकारादिकों को रखकर क्रम से अंगुलियों में शिवजी को न्यास करतल और अनामिका में ।।५।। अस्त्रन्यास करके दस दिशाओं में अस्त्रमन्त्र से निवृत्ति आदि पांच कला पंचभूत स्वरूपवाली ।।६।। पंचभूत अधिपतियों के साथ चिह्नों से युक्त हृदय, कण्ठ, तालु, भ्रूमध्य, ब्रह्मरन्ध्र में आश्रयवाले ।।७।। उस-उस बीजमन्त्र से भावना करके उनके शोधने के निमित्त पंचाक्षरी विद्या का जप करे ।।८।। वाणी को रोककर, प्राणवायु को शोधकर, गुणसंख्या के अनुसार अस्त्र और अस्त्रमुद्रा से भूतग्रन्थि को छेद कर ।।९।। सुषुम्नानाड़ी से प्राणवायु द्वारा आत्मा को प्रेरित करके

जो कि ब्रह्मरन्ध्र के मार्ग से निकलती है; उसको शिवतेज से युक्त करे ।।१०।। फिर वायु से देह को सुखाकर कालाग्नि से जला दे, फिर ऊपर के भाव से कलाओं का संहार करके ।।११।। अधिपतियों सहित विदग्ध कलाओं का स्पर्श करके अमृत से देह को स्नान कराकर यथास्थान में स्थित करे ।।१२।। फिर कलासर्ग के बिना चतुर उसको संहार करके भस्मीभूत हुए उस देह को अमृत से प्लावित करे ।।१३।। फिर उस विद्यामय शरीर में दीपशिखा के आकारवाले शिवजी से निर्गत हुए आत्मा को ब्रह्मरन्ध्र से संयुक्त करे ।।१४।। देह के अन्तर में प्रविष्ट हुए शिवजी को हृदयकमल में ध्यान करके फिर अमृत की वर्षा से विद्यामय शरीर को सींचे ।।१५।। फिर करशोधन पूर्वक करन्यास करे, फिर देहन्यास करके महतीमुद्रा करे ।।१६।। शिवमार्ग से अंगन्यास करके हाथ-पैर की सन्धियों में वर्णन्यास करे ।।१७।। फिर छः जाति युक्त षडंगन्यास करके आग्नेयादि दिशाओं में क्रम से दिग्बन्धन करे ।।१८।। अथवा सिर में पंचांगन्यास करे अथवा भूत शक्ति के बिना षडंगन्यास करके ।।१९।। संक्षेप से आत्मशोधन करके शिवभाव को प्राप्त होकर परमेश्वर का पूजन करे ।।२०।। जिसको अवकाश है और मति का भ्रम नहीं है, वह विस्तीर्ण कला से न्यास क्रम का आचरण करे ।।२१।। प्रथम मातृकान्यास, फिर ब्रह्मन्यास, तीसरा प्रणवन्यास, चौथा सोहंन्यास ।।२२।। पांचवां पंचाक्षरात्मक न्यास, इसमें एक वा अनेक पूजा कर्म में करे ।।२३।। अकार सिर में रखकर आकार मस्तक में, 'इं इ' नेत्रों में, 'उं ऊं' कानों में ।।२४।। 'ऋं ॠं' कपोलों में, 'ऌ ॡँ' दोनों नासापुट में, 'एं ऐं' दोनों ओष्ठों में, 'ओं औं' दांतों की दोनों पंक्तियों में ।।२५।। 'अं' जिह्वा में, 'अः' तालु में यथाक्रम से प्रयुक्त करके 'क' वर्ग को दक्षिण हस्त में, पांचों संधियों में न्यास करे ।।२६।। 'च' वर्ग को वाम हाथ की संधि में न्यास करे, 'ट' वर्ग को और 'त' वर्ग को दोनों चरणों में ।।२७।। 'प फ' को पृष्ठ के पार्श्वभाग में, नाभि में 'ब भ' को, हृदय में 'मकार' को और त्वचा आदि में यथाक्रम से ।।२८।। 'यकार' को आदि लेकर सकार तक सात-सात धातुओं से 'हकार' को हृदय के अन्त में, 'क्षकार' को दोनों भौं के बीच में ।।२९।। इस प्रकार पचास वर्णों को रुद्रमार्ग से प्रवेश करके अंग और मुख में कला के भेद से पांच ब्रह्म में न्यास करे ।।३०।। करन्यासादि भी क्रम से करके वा न करके शिशु के मुख, हृदय, गुह्य, चरणों में इनकी कल्पना करे ।।३१।। फिर ऊर्ध्वमुख पश्चिम पर्यन्त करावे; ईशान की पांच कला इन पांचों मुखों में क्रम से ।।३२।। फिर मुखों में पुरुष की कला भी चार पूर्वादि क्रम से योग से रखनी चाहिये ।।३३।। हृदय, कण्ठ, कन्धे, नाभि, कोख, पीठ, छाती में अघोर की आठ कला क्रम से रखनी चाहिये ।।३४।। पीछे तेरह कला पायु, मेढ्र (लिंग), जानुओं में, जंघा, स्फिक्, कटि और पार्श्वस्थान में वामदेव की भावना करे ।।३५।। सद्योजात की आठ कला पांव और हाथ की, नासिका, सिर और बाहु में कल्प का जाननेवाला कल्पना करे, इस प्रकार

आनुपूर्वी अड़तीस कलाओं का न्यास करके ।।३६।। उसके बाद बुद्धिमान् प्रणवज्ञाता प्रणवन्यास करे, दोनों बाहु, किहुनी, मणिबन्ध (पहुँचा) ।।३७।। पार्श्व, उदर, ऊरु, जंघा, पादपृष्ठ में इस प्रकार न्यास में चतुर प्रणवन्यास को करे ।।३८।। फिर यथाशास्त्र हंसन्यास करे, जैसा शिवशास्त्रों में लिखा है, फिर हंसबीज का विभाग करके नेत्र और घ्राणों को भी ।।३९।। विभाग करके ललाट और नासिका में न्यास करे, कक्ष, स्कन्ध, पार्श्वभाग, स्तन ।।४०।। कटि, पाणि, गुल्फ अथवा पंचांगमार्ग से हंसन्यास करके पंचाक्षरी विद्या का न्यास करे ।।४१।। उस पूर्वोक्त मार्ग से शिवतत्त्व की प्राप्ति होती है। अशिव होकर शिवजी का पूजन न करे, अशिव होकर शिवजी का अभ्यास न करे ।।४२।। अशिव होकर शिवजी का ध्यान न करे, अशिव होकर शिवजी को प्राप्त नहीं हो सकता, इस कारण शैवतनु धारण करके पशुभावना त्याग करके ।।४३।। 'मैं शिव हूं', यह विचार करके शैवकर्म करे; कर्मयज्ञ, तपोयज्ञ, जपयज्ञ, ध्यानयज्ञ, ज्ञानयज्ञ यह क्रम से पांच यज्ञ हैं ।।४४।। कोई कर्मयज्ञ में प्रीति करनेवाले हैं, कोई तपयज्ञ से प्रीति करनेवाले हैं, कोई जपयज्ञ में प्रीति करते हैं, कोई ध्यानयज्ञ में प्रीति करनेवाले हैं।।४५।। कोई ज्ञानयज्ञ में प्रीति करनेवाले है, यह पहले से उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं; काम–अकाम के भेद से कर्मयज्ञ दो प्रकार का है ।।४६।। कामी कामों को भोगकर फिर कामासक्त हो जाता है और कामना रहित रुद्रलोकों में अनेक भोगों को भोगकर फिर उस रुद्रभवन से आकर ।।४७।। तपयज्ञ में प्रीति करनेवाला पृथ्वी पर होता है, इसमें सन्देह नहीं और वह तपस्वी होकर अनेक भोगों को भोगकर वहां से च्युत होकर ।।४८।। पृथ्वी पर जप–ध्यान में प्रीति करनेवाला होता है, इसमें सन्देह नहीं; जप, ध्यान में प्रीति करनेवाला मनुष्य विशिष्टता के वश से ।।४९।। शीघ्र ज्ञान को प्राप्त होकर शिवजी के सायुज्य को प्राप्त होता है, शिवजी की आज्ञा से कर्मयज्ञ भी देहधारियों को मुक्ति में प्राप्त करता है ।।५०।। अकामी होकर कामना करने से बन्धन होता है, इस कारण पांचों यज्ञों में से ध्यानज्ञान में तत्पर होना चाहिये ।।५१।। जिसको ध्यानज्ञान हैं, वह संसार–सागर से तर गया है, वह हिंसादि दोषों से छूटकर विशुद्धचित्त हो जाता है ।।५२।। उससे परे ध्यानयज्ञ अपवर्ग के फल का देनेवाला है और बाह्य कर्म बड़े फल के देनेवाले नहीं होते ।।५३।। नरेन्द्र के भवन में यहां कर्म करनेवाले जैसा ऐश्वर्य देखते हैं, इसी प्रकार ध्यान करनेवालों का शरीर ऐश्वर्ययुक्त सूक्ष्म हो जाता है ।।५४।। जिस प्रकार यहां कर्मियों ने स्थूल मृत काष्ठादि से ग्रहादि कल्पना किया है, इसी प्रकार से ध्यानयज्ञ में प्रीति करनेवाले पाषाणादि मृत्तिका के देवताओं में ।।५५।। शिवजी की यथार्थता से देखने जाने से अत्यन्त प्रीति नहीं करते; अर्थात् वह अन्तर पूजन करते हैं, जो मनुष्य आत्मा में स्थित शिवजी को छोड़ बाह्यपूजा करता है ।।५६।। वह हाथ में स्थित फल को छोड़कर अपनी किहुनी को चाटता है। ज्ञान से ध्यान और ध्यान से ज्ञान प्रवृत्त होता है ।।५७।। इन दोनों से मुक्ति

होती है, इस कारण ध्यान में मन लगावे, द्वादशान्त सिर, ललाट और दोनो भौं के बीच में ।।५८।। नासिका के अग्रभाग में, मुख में वा कन्धे में वा हृदय में, नाभि वा निश्चल स्थान में श्रद्धा युक्त मन से ।।५९।। बहिर्योग के उपचार से देव और देवी का पूजन करे अथवा नित्य लिंग में वा कृतक शिवजी में पूजन करे ।।६०।। अग्नि में, स्थण्डिल में भक्ति पूर्वक वित्त के अनुसार अन्दर-बाहर में परमेश्वर की पूजा करे; जो अन्तरयाग करते हैं वे बाह्यपूजा करें अथवा न करें, उन्हें और आदेश नहीं है ।।६१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे

द्वाविंशोऽध्यायः ।। २२ ।।

*****

तेइसवां अध्याय

उपमन्युजी बोले- पूजाविधान की व्याख्या संक्षेप से कहता हूं, जो शिवशास्त्र में शिवजी ने ही पार्वती के प्रति वर्णन किया है ।।१।। हे अंग ! अभ्यन्तरयाग अग्निकार्य के अन्त तक करे, यह करने के अन्तर बहिर्याग करे वा न करे ।।२।। उसमें द्रव्यों को मन से कल्पित करके और शुद्ध करके विनायकदेव (गणेशजी) का ध्यान करके विधान से पूजन करके ।।३।। दक्षिण और उत्तर में नन्दीश और सुयश का आराधन करके मन से आसन कल्पित करे ।।४।। आराधनादि से युक्त होकर सिंहयोग आसनादिक में निर्मल पद्मासन वा तत्त्वों से युक्त ।।५।। उसके ऊपर शिवजी को उमा सहित मनोहरता युक्त ध्यान करे, जो सब लक्षणों से सम्पन्न सम्पूर्ण अवयवों से शोभित हैं ।।६।। सम्पूर्ण अतिशय से संयुक्त, सम्पूर्ण गहनों से भूषित, लाल मुख हाथ चरण, कुन्द के समान मनोहर हास्य ।।७।। शुद्ध स्फटिकमणि के समान निर्मल, फूले कमल के समान नेत्र, चार भुजा, उदार अंग, उत्तम चन्द्रकला धारण किये ।।८।। वरदायक अभय हाथवाले, मृगटंक घोर प्रलय में संहार करनेवाले, सर्पों के हार के खँडुएवाले, सुन्दर नीले गले से युक्त ।।९।। सम्पूर्ण उपमान से रहित, सेवक, कुटुम्बवर्ग से युक्त उन शिवजी के वामभाग में परमेश्वरी भगवती का चिन्तन करे ।।१०।। फूले कमलपत्र के समान कान्तिवाले विस्तीर्ण नेत्र, पूर्ण चन्द्रमा की कान्ति के समान मुख, नीले घूँघरवाले केश ।।११।। नीलकमल के दल के समान शिखर पर आधा चन्द्रमा धारण किये, चकोर घने ऊंचे स्निग्ध पुष्ट स्तनवाली ।।१२।। मध्यभाग में सूक्ष्म, पुष्ट नितम्ब, सुन्दर सूक्ष्म वस्त्र धारे सम्पूर्ण गहनों से युक्त मस्तक के तिलक से उज्ज्वल ।।१३।। विचित्र फूले गुत्थे बालों के केशपाश से शोभित सब ओर से गुणों से युक्त कुछेक लज्जा से नम्र मुखवाली ।।१४।।

दाहिने हाथ में खिले हुए कमल को धारण किये दण्ड के समान दूसरे हाथ को रखकर महाआसन के ऊपर स्थित ।।१५।। साक्षात् जीवों के कर्मबन्धन का छेद करनेवाली सच्चिदानन्द स्वरूपवाली देवी का और देव का सुन्दर आसन में ध्यान करे ।।१६।। सम्पूर्ण उपचार युक्त भक्तिभाव से फूलों से पूजा करे अथवा कोई उनकी श्रेष्ठमूर्ति कल्पित करके ।।१७।। जो शिवनामवाली हो तथा माहेश्वरी मूर्ति को कल्पना करके जो षड्विंश वह श्रीकण्ठ नामवाली हो उसे स्थापन करके ।।१८।। अपने शरीर में मन्त्र–न्यासादि करके इस मूर्ति में मूर्तिमान् शिवजी को जो कि सत्–असत् से परे है ।।१९।। बाह्यक्रम से ध्यान करके पूजा को निर्वर्तन करे, पीछे नाभि में समिधा, घृत आदि के होम करने की भावना करे ।।२०।। और भौंह के बीच में शुद्ध दीपशिखा के आकार के समान शिवजी का ध्यान करे; इस प्रकार अपने शरीर में स्वतन्त्रता पूर्वक योग–ध्यानादि की प्राप्ति करके ।।२१।। अग्निकार्य समाप्त होने तक सब विधि शरीर में करता रहे, यह चिन्तामय सब आराधन का क्रम समाप्त करके ।।२२।। लिंग, स्थण्डिल अथवा अग्नि में देवी की पूजा करे ।।२३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे

त्रयोविंशोऽध्यायः ।। २३ ।।

*****

चौबीसवां अध्याय

उपमन्युजी बोले– विशुद्धि के निमित्त पूजास्थान को मूलमन्त्र से प्रोक्षण करे, गन्ध, चन्दन, जल के साथ पुष्प उसमें डाले ।।१।। अस्त्र से विघ्नों को दूर करके वर्म से अवगुंठन करके अस्त्र को सब दिशाओं में न्यासकर अर्चना (पूजा) स्थान को कल्पना करे ।।२।। उस पर कुशा बिछाकर जल से प्रक्षालन करे, सब पात्रों को शुद्ध करके द्रव्यशुद्धि करे ।।३।। प्रोक्षणीपात्र, अर्घ्यपात्र, पाद्यपात्र, आचमनीयपात्र यह चारों धोकर प्रोक्षण करके उन्हें देखकर उसमें शुद्ध जल डाले और यथा लाभ हो सके वह पुण्यद्रव्य उसमें सब डाले ।।४–५।। रत्न, चांदी, सुवर्ण, गन्ध, पुष्प, अक्षतादि, फल, पत्ते, दर्भ और अनेक प्रकार के पवित्र द्रव्य ।।६।। स्नान के जल में और पान करने के जल में विशेष कर सुगन्धि डाले; उसमें शीतल और मनोहर फूल डाले ।।७।। उशीर और चन्दन यह पाद्य में कल्पना करे; जायफल, कंकोल, कपूर तथा बहुमूल तमाल ।।८।। इनके चूर्ण करके आचमन के जल में डाले, सब पात्रों में इलायची, कपूर, चन्दन रखे ।।९।। कुशाग्र, अक्षत, व्रीहि, यव, तिल, घृत, सरसौं, भस्म यह अर्घ्यपात्र में रखे ।।१०।। कुश, पुष्प,

जौ, व्रीहि, धान्य, बहुमूल (शतावरी), तमाल और भस्म यह क्रम से प्रोक्षणीपात्र में डाले ।।११।। सब प्रकार मन्त्रन्यास करके बाहर भाग कर्ममन्त्र से आवेष्टित करके फिर अस्त्र से संरक्षित करके धेनुमुद्रा दिखावे ।।१२।। सब पूजा के द्रव्य प्रोक्षणीपात्र के जल से प्रोक्षण करके मूलमन्त्र से तत्त्व पूर्वक शुद्ध करे ।।१३।। पात्रों में एक प्रोक्षणी न हो तो सब कर्मों में उत्तम साधक जल से ही सामान्य अर्घ्य दे ।।१४।। फिर विनायकदेव को क्रम से भक्ष्य-भोज्यादि द्वारा पूजा के विधान से दक्षिण में द्वार की ओर पूजे ।।१५।। फिर अन्त:पुर के स्वामी साक्षात् नन्दि की पूजा करे; जो सुवर्ण पर्वत के समान सब गहनों से भूषित है ।।१६।। बाल चन्द्रमा का मुकुट धारे मनोहर मूर्ति, तीन नेत्र, चार भुजा, दीप्तिमान् शूल लिये, मृगीटंक और तीक्ष्ण नेत्र धारण किये, सब कुछ जाननेवाले ।।१७।। चन्द्रमण्डल के समान कान्तिमान् शरीर, हरि (मर्कट) वदन, उत्तर द्वार के निकट मरुत की कन्या ।।१८।। सुयशा नाम भार्या को, जो सुन्दर व्रत धारे पार्वती के चरण दाबने में तत्पर है, पूजन करके परमेष्ठी के अन्तर में प्रविष्ट करे ।।१९।। उन द्रव्यों से लिंग को पूजन करके निर्माल्य को ऊपर से अलग करके और फूल को धोकर शुद्धि करके सिर पर रखे ।।२०।। फूल हाथ में लेकर शक्ति से विशुद्धि के निमित्त मन्त्र जपे और ईशान दिशा में चण्डदेव की आराधना करके निर्माल्य उन पर से उतार ले ।।२१।। पीछे आराधनादि यथाक्रम से आसन कल्पित करे; कल्याण और आधारशक्ति का पृथ्वी में ध्यान करे ।।२२।। उसके आगे उत्कण्ठ और अनन्त को कुण्डलाकार श्वेतरंग पांच कण से युक्त आकाश को चाटते हुए ।।२३।। उसके ऊपर भद्रासन लिंगाकार चार पादों से संयुक्त धर्म, ज्ञान, वैराग्य यह ऐश्वर्य के पद हैं ।।२४।। आग्नेयादि श्वेत, रक्त, पीत, श्याम इन वर्णों से और अधर्मादि पूर्व से लेकर उत्तर तक अनुक्रम से ।।२५।। राजावर्त श्रेष्ठ जातिविशेष की मणि के समान इनके शरीर में भावना करे; इसके ऊर्ध्वभाग में कमल से आच्छादित सुन्दर श्वेतपद्मासन को विचारे ।।२६।। कि, उसके आठ पात्र अणिमादि आठ गुणा युक्त हैं और वामादि शक्ति के शर है तथा रुद्र वामादि शक्तियों करके ।।२७।। वे ही बीज कहे गये हैं, अपर कर्णिका वैराग्य है, शिवात्मक ज्ञान उनका नाल है ।।२८।। शिवधर्मात्मा रूपी उसका कन्द है; कर्णिका के अन्त में तीन मण्डल और उनके ऊपर तीन तत्त्वादिक आसन हैं ।।२९।। सब आसन के ऊपर सुख पूर्वक विचित्र आसन बिछा हुआ है, शुद्ध विद्या का उज्ज्वल दिव्य आसन कल्पित करे ।।३०।। आवाहन, स्थापन, चित्तवृत्ति का निरोध, निरीक्षण, देखना और पृथक्-पृथक् मुद्राएँ बांधकर नमस्कार करना चाहिये ।।३१।। पाद्य, आचमन, अर्घ्य और इसके उपरान्त गन्ध, पुष्प का अर्चन, धूप, दीप, ताम्बूल देकर शिवजी को अर्चन करे ।।३२।। अथवा आसन और मूर्ति की कल्पना करके मूलमन्त्र से और ब्रह्ममन्त्र से वेद से संकलित करके ।।३३।। परमकारण शिवजी को देवी के सहित आवाहन करे; जो कि देव शुद्ध स्फटिकमणि के समान निश्चल

अक्षस्वरूप ।।३४।। सब लोक के कारण हैं; सर्वलोकमय और सबसे परे हैं; जो अन्तर–बाहर सब में व्याप्त सबसे अणु और महत् हैं ।।३५।। वह अविनाशी भक्तों को बिना प्रयत्न के ही दीखे जाते हैं; ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र आदि देवताओं को भी अगोचर हैं ।।३६।। वेद के सार हैं और विद्वानों को अगोचर हैं, ऐसा हमने सुना है; आदि, अन्त, मध्य रहित संसाररोगियों को औषधी स्वरूप ।।३७।। यही शिवतत्त्व है; मंगल के निमित्त जगत् में स्थित है; पंचोपचार से भक्ति पूर्वक लिंग के मस्तक में पूजा करे ।।३८।। परमात्मा शिवजी की लिंगमूर्ति के स्नानकाल में 'जय' आदि मंगल के शब्द करे ।।३९।। पंचगव्य, घी, दही, मधु आदि पूर्वक फल और फलों के सार, तिल, सरसों के सत्तुओं करके ।।४०।। यवादि के बीजों करके तथा उरद आदि के चरणों करके, प्रथम उबटन करके और पिट्ठी आदि से उबटन करके गरम जल से स्नान करावे ।।४१।। लेप गन्ध की अनुपम पंक्ति के निमित्त बेलपत्रादि से घर्षण करके फिर चक्रवर्ति के उपचार से जलों से स्नान कराय ।।४२।। सुगन्धि युक्त आंमले और हरिद्रा को यथा क्रम से दे, तब जल से बेरलिंग की मूर्ति को शुद्ध करके ।।४३।। कुश और फूल जल के सहित हिरण्य और रत्नों के जल से ही मन्त्र सिद्धि नहवावे ।।४४।। यदि यह द्रव्य न मिल सके तो यथा संभव मन्त्र पढ़कर जलों से श्रद्धा से शिवजी को स्नान करावे ।।४५।। हाथ में लिये कलश, शंख अथवा वर्धिनी युक्त कुश पुष्प के सहित मन्त्र पूर्वक स्नान करावे ।।४६।। पवमानरुद्रमन्त्र, नीलरुद्राख्यमन्त्र और त्वरितमन्त्रों से, लिंगसूक्त, आदिसूक्त, अथर्वशीर्ष ।।४७।। ऋग्, साम के मन्त्र, पंचब्रह्ममन्त्र से, ॐ कार से, देवदेव शिवजी को प्रणाम करे ।।४८।। जैसे शिवजी को उसी प्रकार देवी को प्रणाम करावे, उसमें कुछ विशेष नहीं है; क्योंकि वे दोनों समान हैं ।।४९।। प्रथम देव के उद्देश्यों से स्नानादि क्रिया करके देवदेव की आज्ञा से पीछे देवी की सुश्रूषा करे ।।५०।। अर्द्धनारीश्वर के पूजन में पूर्वापर का विचार है, उन–उन पूजनों का लिंग वा दूसरे स्थान में प्रयोग है ।।५१।। सुगन्धित पवित्र जल से लिंग का अभिषेक करके वस्त्र से पोंछकर यज्ञोपवीत और दूसरे वस्त्र दे ।।५२।। पाद्य, आचमन, अर्घ्य, गन्ध, पुष्प, भूषण, धूप, दीप, नैवेद्य, जल, मुखशोधन के पदार्थ ।।५३।। फिर आचमन, मुख के सुगन्धित पदार्थ देकर, मुकुट, शुभ आसन, सब रत्नों से अलंकृत करके ।।५४।। विचित्र भूषण और अनेक प्रकार के रत्नों की माला, अंजन, चँवर, छत्र, ताल के पंखे, दर्पण ।।५५।। देकर नीराजन करके सब मंगल के बाजों से, मंगल शब्दों से, जय शब्दों से नीराजन करके ।।५६।। सोने, चांदी, तांबे वा मिट्टी के पात्र में क्रम से सुन्दर पुष्प, बीज, दही, अक्षत आदि से ।।५७।। त्रिशूल, शंख, दोनों कमल, नदि, आवर्त और करीष (सूखा गोबर) में उत्पन्न हुए श्रीवत्स, स्वस्तिक, आदर्श (दर्पण), हीरे, अग्नि आदि से चिह्नित ।।५८।। आठ दीपक चारों ओर और एक मध्य में रखकर उसमें वामादिक नौ शक्तियों का ध्यान करके पूजन करे ।।५९।।

कवच से आच्छादन करके अस्त्र से सब ओर रक्षा करके धेनुमुद्रा को दिखाकर हाथ से उस पात्र को उठावे ।।६०।। अथवा पात्र के ऊपर दीपकों को यथा क्रम से रखकर विदिशाओं में और मध्य में एक दीपक क्रम से रखे ।।६१।। फिर उस पात्र को उठाकर लिंगादि के ऊपर क्रम से तीन प्रदक्षिणा के योग से मूलविद्या से घुमावे ।।६२।। फिर सिर के ऊपर अर्घ्य देकर भस्म और सुगन्ध लगावे; फिर पुष्पांजलि करके उपहार निवेदन करे ।।६३।। फिर आचमन और पानी ले और पांच सुगन्धि युक्त ताम्बूल निवेदन करे ।।६४।। प्रोक्षणीय पदार्थों को प्रोक्षण करके गाना और नाट्य आदि करे, लिंगादि में शिवजी का ध्यान करके शक्ति के अनुसार जप करके ।।६५।। प्रदक्षिणा, प्रणाम, स्तुति, आत्मसमर्पण कार्य की विनय पूर्वक विज्ञप्ति करे ।।६६।। अर्घ्य, पुष्पांजलि देकर यथाविधि मुद्रा को बांधकर फिर क्षमा कराके देव को विदा देकर आत्मा में चिन्तन करे ।।६७।। पाद्य आदि मुखसुगन्धि के सब कृत्य करे, अर्घ्यादि सब करे, अथवा संकट हो तो प्रीति से पुष्प मात्र ही चढ़ावे ।।६८।। इतना ही धर्म है, भाव से ही पुण्य हो जाता है, जब तक प्राण रहें शिवजी का पूजन किये बिना भोजन न करे ।।६९।। यदि स्वच्छन्द हो बिना पूजन किये भोजन कर ले, सो फिर उसका निस्तार नहीं होता और जो प्रमाद से खा ले तो उसको वमन कर दे ।।७०।। स्नानादि से दूनी पूजा देव-देवी की करके और स्वयं व्रती होकर ब्रह्मचर्य पूर्वक शिवजी के दश सहस्र मन्त्र जपे ।।७१।। दूसरे दिन शक्ति के अनुसार शिवजी को सुवर्णादि चढ़ाकर व शिवभक्त को देकर महापूजा करने से पवित्र होता है ।।७२।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे

चतुर्विंशोऽध्यायः ।। २४ ।।

*****

पचीसवां अध्याय

उपमन्युजी बोले- और पूजा के क्रम लोप के भय से जो पूर्व में नहीं कहा है, वह भी मैं विस्तार तो नहीं, संक्षेप में कहता हूं ।।१।। हवि के निवेदन के पहले दीपदान के अनन्तर आवरण पूजा करे अथवा नीराजन के प्राप्त होने पर करे ।।२।। फिर ईशान देव से सद्योजात तक हृदय आदि अस्त्र न्यास तक करके शिवा-शिव की प्रथम आवरण में पूजा करे ।।३।। ईशान में पूर्व भाग, दक्षिण और उत्तर में पश्चिम, आग्नेयी ईशान नैर्ऋत्य में ।।४।। वायव्य में ईशान में फिर चारों दिशाओं में मन्त्रों का संघात गर्भ आवरण के नाम से विख्यात है ।।५।। हृदयादि अस्त्र पर्यन्त पूजा करे, उसके बाहर पूर्व में इन्द्र और

यम को दक्षिण में पूजे ।।६।। वरुण को पश्चिम दिशा में, कुबेर को उत्तर में, ईश को ईशान दिशा में, अग्नि को आग्नेय दिशामें, नैर्ऋत्य को नैर्ऋत्य दिशा में पूजन करे ।।७।। मारुत दिशा वायव्य में पवन को, विष्णुजी को नैर्ऋत्य में, ब्रह्माजी को ईशान में पूजे और कमल के बाहर वज्रादिक और कमलादिक पूजे ।।८।। प्रसिद्ध रूपवाले देवताओं को क्रम से सब दिशाओं में पूजे; देवी और देव को देखकर सम्पूर्ण आवरण के देवताओं को ।।९।। हाथ जोड़कर ध्यान करे कि, सुख पूर्वक बैठे हुए हैं, सम्पूर्ण आवरण के देवताओं को अपने नाम और नमस्कार से ।।१०।। फूलों से पूजन करके नमस्कार कर यथा क्रम से स्मरण करके गर्भावरण को भी अपने आवरण के साथ यजन करे ।।११।। योग, ध्यान, जप, होम, बाह्य अभ्यन्तर भेद से छः प्रकार की हवि और शुद्ध अन्न देना चाहिये ।।१२।। पायस, दही मिले गुड और मधु से युक्त इसमें एक वा अनेक नाना व्यंजन से संयुक्त ।।१३।। गुड, खांड से युक्त दही उत्तम देना चाहिये, भक्षण योग्य मुख्य अपूर्व स्वादयुक्त फल ।।१४।। लाल चन्दन, फूल, शीतल पानी, मनोहर तेल में युक्त खांड, पूगीफल ।।१५।। पान के पत्ते, खैर (कत्थे) से युक्त तथा गौरवर्ण सुवर्ण के वर्णवाले पीले मनोहर शैल (शिलाजित) का श्वेत चूर्ण, न रूखा न दूषित ।।१६।। तथा कर्पूर, कंकोल, जाति (चमेली), नये चन्दन का आलेपन, मूलकाष्ठ और रज युक्त अर्थात् इनका चूर्ण करके मर्दन करे ।।१७।। कस्तूरी, केशर युक्त मृगमद नामक रस और मनोहर पवित्र पुष्प ।।१८।। गन्ध रहित उग्र गन्धवाले दूषित और अदूषित, अपने आप गिरे हुए फूलों से शिवार्चन न करे ।।१९।। मृदुल वस्त्र नये और सुन्दर सुवर्ण के तार से युक्त तथा बिजली के समान चमकीले भूषण विशेष करके दे ।।२०।। यह सब और कपूर, गोंद, अगर, चन्दन से धूप दिये हुए और पुष्प समूह से चारों ओर वासना दिये हुए ।।२१।। चन्दन, अगर , कर्पूर, कूट, गुगुल का चूर्ण, घी और मधु की बनाई हुई सिद्ध धूप श्रेष्ठ है ।।२२।। अथवा कपिला गौ के सुगन्धि युक्त घृत करके कपूर युक्त दीपक जलाने से नित्य शोभा होती है ।।२३।। पंचगव्य, मीठा दूध, दही, घृत यह कपिला से उत्पन्न हुई वस्तु शिवजी के स्नान और पान में श्रेष्ठ है ।।२४।। सुन्दर हाथी दांत के बने आसन, सुवर्ण के रत्न जड़े विचित्र बिछौनों से युक्त ।।२५।। ऊंचे–नीचे रमणीय शयन में सुख देनेवाले श्रेष्ठ हैं ।।२६।। समुद्रगामिनी नदी वा नद का लाया हुआ, वस्त्र से छाना हुआ शीतल जल स्नान और पान में श्रेष्ठ है ।।२७।। चन्द्रमा के समान छत्र मोती माला से विराजमान नवरत्नों से जटित सोने के दण्ड के मनोहर।।२८।। और सोने की दण्डी लगे दिव्य चमर राजहंस के आकार के समान दण्डों से शोभायमान ।।२९।। सुन्दर दर्पण अनुलेपन के द्रव्य चारों ओर रत्न और फूलों की माला से शोभित ।।३०।। हंस, कुंद और चन्द्रमा के समान गम्भीर नादवाला शंख मुख और पृष्ठादि स्थानों में रत्न और सोने से जटित ।।३१।। गौ के शृंगों के आकार के समान दिव्य बाजे जिनमें अनेक प्रकार के

शब्द होते हैं और सोने से निर्मित अनेक मोतियों से अलंकृत ।।३२।। भेरी, मृदंग, मुरज तिमिच्छ, पटह, समुद्र के समान शब्दवाले रखने चाहिये ।।३३।। मनोहर भांड और सब पात्र और उनके आधार सोने के बनावे ।।३४।। महेश परमात्मा शिवजी का स्नान शिल्पशास्त्र से बना हुआ, राजाओं की सामग्री से युक्त होना चाहिये ।।३५।। ऊँचे प्रकार से भिन्न पर्वत के समान ऊँचा गोपुर अनेक रत्न से युक्त सुवर्ण के बने द्वारों के किवाड़ों से शोभित ।।३६।। तप्त सुवर्ण के बने हुए रत्न जड़े सौ स्तम्भों से मनोहर मोती माला और वितान से मनोहर विद्रुम (मूंगे) जड़ी द्वार को बन्दनवार से युक्त ।।३७।। सुवर्ण के बने दिव्य मुकुट कुंभ लक्षणों से युक्त, शिरोभाग से अलंकृत अस्त्रराज से चिह्नित ।।३८।। राजाओं के योग्य वस्त्र और राजवीर्य आदि से शोभित श्रेष्ठ और ऊँचे शिखर प्रासाद, महल से व्याप्त ।।३९।। मनोहर स्थानों से युक्त जो दिशा–विदिशाओं में व्याप्त हैं और अन्तर के आवरणों से और प्रान्तभागों से अत्यन्त अलंकृत ।।४०।। नृत्य, गीत के ज्ञाता सहस्रों उत्तम स्त्री और वेणु वीणा में चतुर बहुत से पुरुषों से व्याप्त ।।४१।। रक्षा करनेवाले वीर तथा हाथी, घोड़ों से संयुक्त अनेक फुलवाड़ी और सरोवरों से युक्त ।।४२।। अनेक बावडियों में सम्पूर्ण दिशाओं में विराजमान वेद–वेदांग के जाननेवाले शिवशास्त्र में परायण ।।४३।। शिव आश्रम में प्रीति करनेवाले भक्त जिनमें शिवशास्त्र के लक्षण विद्यमान हैं, शान्त हास्य मुख मनोहर सदाचरण में परायण ।।४४।। शिवमहेश्वरजी के भक्त ब्राह्मणों से सेवित इस प्रकार मन में या बाहर शिवजी की यथाशक्ति कल्पना करके ।।४५।। शिलामय स्थान काष्ठ गजदन्त वा ईंटों का केवल मृत्तिका का पुण्य वन में वा पर्वत में ।।४६।। नदी देवालय अथवा दूसरे सुन्दर देश में वा घर में धनी वा दरिद्री अपनी शक्ति को वंचना न करता हुआ ।।४७।। न्याय से उत्पन्न हुए द्रव्यों से भी जो भक्ति पूर्वक शिवजी का पूजन करे उसको भी प्रत्ययवाय नहीं लगता है; कारण कि, प्रभु भाव के वश हैं ।।४८।। जो द्रव्य न्याय से उत्पन्न किये हों परन्तु उसके द्वारा अभक्ति से पूजन करे तो उसको फल नहीं मिलता, इसमें केवल भक्ति ही कारण है ।।४९।। भक्ति और धन के अनुसार शिवजी के उद्देश्य से जो कुछ किया है थोड़ा या बहुत उसका फल दरिद्री और धनी को बराबर मिलता है ।।५०।। भक्ति की प्रेरणा से थोड़े धनवाला मनुष्य भी जो करे वह बहुत है, भक्तिहीन का महाऐश्वर्य से किया भी कुछ नहीं होता ।।५१।। जो भक्तिहीन होकर सर्वस्व भी देता है तो उसको फल नहीं मिलता है; इसमें भक्ति ही एक कारण है ।।५२।। बड़े–बड़े तप और यज्ञों करके भी शिवजी के पुर को नहीं जा सकता, जो भक्ति से हीन हो ।।५३।। हे कृष्ण ! यह गुप्त से भी गुप्त बात है, कि सर्वत्र परमेश्वर में भक्ति करे, भक्ति से ही युक्त होकर मुक्त हो जाता है ।।५४।। शिवमन्त्र, जप, ध्यान, होम, यज्ञ, तप, वेद श्रवण, दान, वेदपाठ यह सब भाव के ही निमित्त हैं, इसमें सन्देह नहीं ।।५५।। मनुष्य भावहीन होकर सब कुछ करने से

भी मुक्त नहीं होता है और भावयुक्त पुरुष सब न करने से भी मुक्त हो जाता है ।।५६।। सहस्र चान्द्रायण, सौ प्राजापत्य मासों के व्रत तथा और दूसरे व्रत शिवभक्त को क्या फल दे सकते हैं ?।।५७।। अभक्त मनुष्य इस लोक में पर्वतों के गुहा में थोड़े से भोग के निमित्त तप करते हैं, परन्तु भक्त तो भाव से ही मुक्त हो जाता है ।।५८।। सात्त्विक कर्म मुक्ति देनेवाले हैं, योगी सत्त्व में ही स्थित है, रजोगुण से आवृत्त लोग राजसी कर्म करते हैं ।।५९।। असुर और राक्षस तमोगुण से आवृत हैं और दूसरे मनुष्य जो यहां के कार्य के निमित्त शिवजी का भजन करते हैं, वे भी वैसे ही हैं ।।६०।। तामस, राजस, सात्त्विक कोई भी भाव ही के आश्रय होकर पूजा करने से भक्त मंगल को प्राप्त होता है ।।६१।। पाप रूपी सागर से पार करने को भक्ति नौका के समान है, इस कारण भक्ति हो जाने से फिर सत्त्वगुण तमोगुण के भाग से क्या है ?।।६२।। अन्त्यज, अधम, मूर्ख वा पतित कोई हो, हे कृष्ण! शिवजी की भक्ति करते ही वह सुर–असुरों से पूजित हो जाता है ।।६३।। इस कारण सब यत्न से भक्ति पूर्वक शिवजी का पूजन करे, कारण कि अभक्तों को तो कहीं भी फल नहीं है ।।६४।। हे कृष्ण ! महारहस्य कहता हूं, हमारे वचन सुनिये, वेदशास्त्र में वेदवादियों ने विचार करके निश्चय किया है ।।६५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे

पंचविंशोऽध्यायः ।। २५ ।।

*****

छब्बीसवां अध्याय

उपमन्युजी बोले– ब्रह्महत्यारा, मद्य पीनेवाला, चोरी करनेवाला, गुरु की स्त्री से गमन करनेवाला, माता, पिता, वीर और गर्भ को नष्ट करनेवाला ।।१।। चौरादिक कोई भी जो मन्त्र के बिना भक्ति से परमकारण रूप शिवजी का भजन करनेवाला है, वह क्रम से बारह वर्ष में उन–उन पापों से छूट जाता है ।।२।। इस कारण सब प्रयत्नों से पतित पुरुष को भी शिवजी का यजन करना चाहिये, जो भक्त होगा वही मुक्त हो जायगा, दूसरा कोई नहीं, भिक्षा भोजन करनेवाला जितेन्द्रिय ।।३।। जो कोई बड़ा पाप भी कर चुका हो, और भक्ति से पंचाक्षर का जप करे तो, और देवेश का पूजन करे तो सब पापों से छूट जाता है ।।४।। जल और वायु के भक्षण करनेवाले तथा दूसरे प्रकार व्रत से कर्षित हुए इन व्रतों से भी उनको शिवलोक की प्राप्ति नहीं हो सकती ।।५।। भक्ति से पंचाक्षर युक्त होकर जो एक बार भी शिवजी का पूजन करता है, शिवमन्त्र के गौरव से वह भी शिवजी के स्थान को जाता है ।।६।। इस कारण तप, यज्ञ और सब

और सर्वस्व दक्षिणा यह शिवमूर्ति के अर्चन के करोड़ अंश के भी समान नहीं है ।।७।। बद्ध वा मुक्त सब को पंचाक्षर का जप करना ही चाहिये, बन्धन के पश्चात् भी जप करने से पाश से छूट जाता है, इससे पूजन करना चाहिये, कुछ सन्देह न करे ।।८।। अरुद्र वा सरुद्र वा सूक्त वेदमन्त्रों से जो शिवजी का पूजन करे वह मूढ़ वा पतित कैसा भी हो एक बार ही मुक्त हो जाता है ।।९।। नित्य षडक्षर वा पंचाक्षर करके सद्योजातादि मन्त्रों के सहित भक्ति से नित्य वेदमन्त्र पढ़कर शिवजी का भक्त क्रोध को जीते, गुरुयुक्त अथवा गुरुहीन हो ।।१०।। इनमें जो गुरुयुक्त है वही श्रेष्ठ है, इसमें सन्देह नहीं, वह ब्रह्मांग वा हंस के सहित मुक्त हो जाता है ।।११।। इस कारण गुरु से प्राप्त हुए मन्त्र और सूक्त से शिवजी का पूजन करे; एक काल, दो काल वा तीन काल ।।१२।। जो महादेवजी का पूजन करते हैं उनको महेश्वर जानते हैं, अपने सहायकारी ज्ञान से जिन्होंने भगवान् शिवजी का पूजन कहीं किया ।।१३।। वे बहुत काल तक दुःख के सागर इस संसार में भ्रमण करेंगे, जो मूर्ख दुर्लभ मनुष्यदेह पाकर शिवजी का पूजन नहीं करते हैं ।।१४।। उन्हींका जन्म निष्फल है; कारण कि, वह मुक्ति के नहीं हैं; जो दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर शिवजी का पूजन करते हैं ।।१५।। उन्हींका जन्म सफल और वे मनुष्य कृतार्थ हैं, जो शिवभक्तिपरायण और शिवजी को प्रणाम करनेवाले हैं ।।१६।। शिवजी का स्मरण करनेवाले है, वे दुःख के भागी नहीं होते, उनके मनोहर भवन, उत्तम गहने भूषणवाली स्त्रियां ।।१७।। और तृप्ति पर्यन्त धन शिवजी के पूजन करने से प्राप्त होता है, जो महाभाग्य युक्त स्वर्ग में राज्य की इच्छा करते हैं ।।१८।। वे सम्पूर्ण समय शिवजी के चरणविन्द के भजन की इच्छा करते हैं, सौभाग्य, मनोहर रूप, सत्त्व त्याग, आर्द्रभाव ।।१९।। शूरता, जगत् में विख्याति, शिवजी के पूजन करने से होती है; इस कारण सब छोड़कर एक शिवजी में ही मन लगावे ।।२०।। जो अपना कल्याण चाहे तो शिवपूजा विधि को करें; क्योंकि जीवन और यौवन शीघ्रता से जाता है ।।२१।। और व्याधि शीघ्रता से आती है, इस कारण शिवजी का पूजन करना चाहिये; जब तक मरण और बुढ़ापा नहीं आता ।।२२।। जब तक इन्द्रियों में विकलता न हो, तब तक शंकरजी का पूजन करो, तीनों लोकों में शिवजी के पूजन के समान दूसरा धर्म नहीं है ।।२३।। ऐसा जानकर यत्न से सदाशिवजी की पूजा करे, द्वारयाग कोमल वृक्ष समूह लगाना, परिवार बलि क्रिया ।।२४।। और नित्य उत्सव करने चाहिये; यदि मंदिर में पूजा करे तो हवि निवेदन के अनन्तर स्वयं वा सेवक द्वारा ।।२५।। प्रसाद से परिवार के निमित्त यथाक्रम से प्रसाद दे, बाजों के सहित निकलकर उनके सामने स्थित होकर ।।२६।। पुष्प, दूप, दीप, अन्न, जल के सहित देना चाहिये, फिर उत्तर की ओर मुख करके महापीठ आसन पर स्थित होकर बलिपूजा दे ।।२७।। फिर वह जो अन्नादिक पहले देव के निमित्त प्रदान किया है, वह शेष रहा हुआ सब चण्ड के निमित्त दे दे ।।२८।। फिर

विधिपूर्वक हवन करके शेष पूजा समाप्त करे, विधिपूर्वक प्रयोग करके जहां तक मन्त्र का जप हो सके, तहां तक करे ।।२९।। शिवशास्त्र में कहे हुए नित्य उत्तसव को करे, बड़े चांदी वा सोने के पात्र में जो रत्न और पद्म से शोभित है ।।३०।। फिर दिव्य पाशुपतास्त्र को आवाहन करके पूजे, फिर पात्र को अलंकृत करके ब्राह्मण के सिर पर धारण करके ।।३१।। दीप्तिमान् यष्टि धारण करनेवाले, अस्त्र से न्यासयुक्त शरीर करके प्रसाद परिवार के निमित्त बाह्य मंगल के शब्दों में करके ।।३२।। तथा नृत्यगान करके दीप ध्वजादि के सहित न बहुत शीघ्र न बहुत देर से तीन प्रदक्षिणा करे ।।३३।। महासिंहासन के चारों ओर तीन प्रदक्षिणा करे; फिर यजमान हाथ जोड़कर द्वार पर स्थित होवे, पूर्वोक्त आठ फूल लेकर भीतर ले जाकर फिर अस्त्र को उद्वासित(विसर्जन) करे ।।३४।। और पूर्व कही हुई क्रम से प्रदक्षिणा आदि करके उन आठ फूलों को लेकर पूजा समाप्त करे ।।३५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे

षड्विंशोऽध्यायः ।। २६ ।।

*****

सत्ताईसवां अध्याय

उपमन्युजी बोले– कुण्ड वा स्थण्डिल में जो किया जाता है, उस अग्निकार्य को कहता हूं, वेदी से बाहर लोहपात्र अथवा मिट्टी के नये पात्र में ।।१।। विधिपूर्वक अग्नि को धारण करके और संस्कार पूर्वक महादेवजी को आराधन करके होमकर्म प्रारम्भ करे ।।२।। दो हाथ का अथवा एक हाथ का कुण्ड करके गोल वा चौकोन वेदी का मण्डल करे ।।३।। कुण्ड के विस्तार के समान निम्न स्थान में आठ दल का कमल उसमें लिखें; चार अंगुल अथवा दो अंगुल वेदी से ऊँचा रहे ।।४।। दो वितस्त की उसकी ऊँची नाभी करे, मध्यमा अंगुली के मध्य और प्रथम पोरुए की बराबर मध्य कहलाता है ।।५।। इतने प्रमाण को चतुर पुरुषों ने अंगुल कहा है; चौबीस अंगुल का एक हाथ, उसमें तीन मेखला दो अथवा एक करे ।।६।। जैसी शोभा अधिक हो उसी प्रकार मनोहर इष्ट सुन्दर मृत्तिका की बनावे; अश्वत्थपत्र (पीपल के पत्ते) वा हाथी के ओष्ठ के समान उसकी योनि कल्पना करे, कूर्मपृष्ठ के समान दोनों पार्श्वों में अंगुलमात्र ऊँची व हाथी के ओष्ठवत् छिद्रयुक्त योनि सब कुण्डों में बनावे, यह शान्तिसार में लिखा है ।।७।। मेखला के मध्यभाग से पश्चिम और दक्षिण की ओर को शोभायमान अग्रभाग से कुछेक नीची दो प्रांतों से संयुक्त करे ।।८।। अग्रभाग से कुण्ड की ओर को कुछ मेखला छोड़कर वेदी के नियम का उल्लंघन न करके उसे मृत्तिका वा रेती की करे ।।९।।

उसका मण्डल गोबर से करे; उसमें पात्र का मान नहीं कहा है, कुण्ड और मृत्तिका की वेदी को गोबर से लीपे ।।१०।। फिर धोकर पात्र को तपावे अथवा जल से धो डाले, अपने सूत्र के कहे प्रकार से कुण्डादिक लिखे ।।११।। उसे प्रोक्षण करके दर्भ (कुश) और पुष्पों से अग्नि का आसन कल्पित करे, अर्चन और होम के वास्ते सब द्रव्यों की कल्पना करे ।।१२।। धोने की वस्तुओं को धोकर, प्रोक्षण करने की वस्तुओं को प्रोक्षण करके, मणि से उत्पन्न वा काष्ठ से उत्पन्न अथवा ऋत्विक् के अग्न्यागार से आई हुई ।।१३।। अथवा दूसरे निन्दा रहित अग्नि को आधारपात्र में लावे, क्रम से कुण्डादि के ऊपर तीन प्रदक्षिणा कराके ।।१४।। अग्नि बीस (रम्) उच्चारण करके अग्नि को आसन पर स्थापित करे; योनिमार्ग से अथवा अपने सम्मुख से स्थापन करे ।।१५।। योनि के समीप में स्थित हुआ चतुर पुरुष सबको कुण्ड में स्थित करे, अपनी नाभि में स्थित अग्नि को नाभिरन्ध्र से विस्फुलिंग के समान ।।१६।। अग्नि के बाह्य निकलने पर बिम्बाकार चिन्तन करे; संस्कार युक्त घृत आगे धारण करके ।।१७।। मन्त्र जाननेवाले अपने सूक्त और मूलमन्त्र से सब कृत्य करे, शिवमूर्ति का पूजन करके फिर दक्षिण पार्श्व से ।।१८।। मन्त्र से न्यास करके घृत में धेनुमुद्रा को दिखावे, स्रक् और स्रुवा यह धातु के बना ले, परन्तु काँसा, लोहा और शीशे के ग्रहण न करे ।।१९।। देवदारु के अथवा स्मृति वा शिवशास्त्र में जो विधान हो, ढाक आदि के पत्र में अर्थात् दो पत्रों के बीच में जो तीसरा निकला हो और छिद्र रहित हो ।।२०।। उनको कुशों से मार्जन करके वह्नि में तपाकर फिर प्रोक्षण से और शिवमन्त्र से अपने सूत्र से कहे हुए मन्त्रों से प्रोक्षण करके ।।२१।। अग्निसंस्कार की सिद्धि के निमित्त आठ बीजाक्षर मन्त्रों से हवन करे, वह बीज यह हैं-(भ्रुं स्तुं ब्रुं श्रुं पुं डुं द्रुं) ।।२२।। यह सात बीज अग्नि की सात जीभ के निमित्त एक-एक हैं, त्रिशिखा तीन शिखावाली और मध्यमा जिह्वा बहुरूप नामवाली है, उसकी एक शिखा दक्षिण को प्रज्ज्वलित होती है, एक वाम ओर को प्रज्ज्वलित होती है, ईशान की ओर की ज्वाला का हिरण्य नाम, पूर्व की ओर की कनक जिह्वा कहलाती है ।।२३।। आग्नेयी दिशा की रक्त, नैर्ऋत्य की कृष्ण, दूसरी ओर को (दूसरी ओर जो ज्वाला स्थित है वह) सुप्रभा है, अतिरिक्त (वायव्य की) मरुज्जिह्वा (अतिचंचल) अपने गुणानुरूप नामवाली है ।।२४।। बीज के अनन्तर स्वाहा शब्द लगाना चाहिये, एक जिह्वा में मन्त्रों से स्तुति करके क्रम से हवन करे तथा ''भ्रुं ॐ त्रिशिखायै स्वाहा'' इत्यादि ।।२५।। ''रुं वह्नये स्वाहा'', कहकर मध्य में तीन आहुतियां दे, घी वा समिधा करके परिषेचन करे ।।२६।। यह करने से वह शिवाग्नि हो जाती है, वहां शिवजी के आसन का स्मरण करे, वहां आवाहन करके अर्द्धनारीश्वर शिवजी का यजन करे, दीपक पर्यन्त सींचकर समिधा पूर्वक होम करे ।।२७।। वे समिधा पलाश वा यज्ञिय वृक्ष की बारह अंगुल के प्रमाण की होनी चाहिये, टेढ़ी न हो और स्वयं सूखी न हों

अर्थात् गीली तोड़ी हुई, त्वचा सहित, व्रण रहित समान हो ।।२८।। वा दश अंगुल बड़ी और कनुंगुली के समान मोटी हों, यदि ऐसा भी न हो तो प्रादेशमात्र (एक बिलस्तभर) परिमाण वाली हों, उन सबका हवन करे ।।२९।। जो दुर्वादल के समान आकारवाली चार अंगुल परिमाण युक्त हों, उनसे हवन करके पीछे घृत की आहुति देकर सोलह उर्द वा एक–एक ग्रास प्रमाण अन्न ।।३०।। खीलैं, सरसौं, जौ, तिल, घी से युक्त भक्ष्य, लेह्य, चोष्य ।।३१।। पदार्थ से दश, पांच वा तीन आहुतियां दे अथवा शक्ति अनुसार आहुतियां दे अथवा एक आहुति दे ।।३२।। स्रुवे से घी समिधा वा हाथ से वा स्रुवा से शेष हाथ करके देवतीर्थ से वा ऋषितीर्थ से हवन करना चाहिये ।।३३।। और सब द्रव्य न मिल सकें तो एक ही द्रव्य शक्ति के अनुसार हवन करे, प्रायश्चित्त के निमित्त तीन आहुतियों से हवन करे ।।३४।। फिर होम के बचे हुए घृत से स्रुवे को पूर्ण करके उसके आगे फूल रखकर अधोमुख स्रुवे से ।।३५।। उसको दर्भों से आच्छादन करके मूलमन्त्र से अंजलि बांध खड़े होकर यव तुल्य धारा मन्त्र के अन्त में वौषट् लगाकर हवन करे ।।३६।। इस प्रकार पूर्णाहुति करके पूर्ववत् सिंचन करे, फिर देवेश को विदा करके अग्नि की रक्षा करे ।।३७।। अथवा अग्नि को भी विसर्जन कर, नाभी में धारण करके नित्य यजन करे, शिवशास्त्र के कहे मार्ग से अग्नि को लाकर ।।३८।। वागीश्वरी के गर्भोत्पन्न अग्नि को विधिपूर्वक संस्कार करके यजन करे, फिर पहले अग्नि का आधान कर परिधियों को धारण करके ।।३९।। दो–दो पात्रों में रखकर शिवजी का यजन कर प्रोक्षणीपात्र को शुद्ध करके तथा दूसरे जल से धोने योग्यों को धोकर ।।४०।। जल से भरा प्रणीता पात्र ईशान दिशा में धरे, घृत संस्कार तक स्रुवे को शोधन करके ।।४१।। गर्भाधान पुंसवन सीमोन्तोन्नयन पृथक्–पृथक् करके अग्नि उत्पन्न होने की चिन्ता करे ।।४२।। जिसके तीन चरण, सात हाथ, चार श्रृंग, दो शिर, मधु के समान पीछे तीन नेत्र, जटाजूट, माथे पर चन्द्रमा ।।४३।। रक्त और लाल वस्त्र, आलेपन और माला से विभूषित सम्पूर्ण लक्षणों से सम्पन्न यज्ञोपवीत और मेखला से संयुक्त ।।४४।। शक्तिमान् स्रुक और स्रुवे को दक्षिण हाथ में धारण किये तोमर, पंखा, धृतपात्र दूसरे हाथ में लिये ।।४५।। तथा दूसरे पदार्थ हाथ में लिये हैं, इस प्रकार जातकर्म में अग्नि के आकार का ध्यान करे, नालापनयन (नाल का छेद) करके और सूत को संशोधन करके ।।४६।। रुचि नामवाली शिवाग्नि का आहुति पूर्वक शोधन करके माता–पिता को बिदा कर तथा चौल और उपनयनादि कर्म करके ।।४७।। आप्तोर्याम पर्यन्त इसके संस्कार करके आज्यधारादि होम स्विष्टकृत् मन्त्रों से करके ।।४८।। चार बीजों से संस्कार करके सिंचन करे। ब्रह्मा, विष्णु, शिव के ईश्वर तथा लोकेश ।।४९।। और उनके अस्त्रों की पूजा यथाक्रम से करे, धूप, दीपादि की सिद्धि के निमित्त कृत्य का जाननेवाला अग्नि का उद्धार करके ।।५०।। आज्य घृत के सहित सब पात्रों को सिद्ध करके अग्नि में आसन की

कल्पना कर पूर्ववत् आवाहन करके ।।५१।। देव-देवी को पूजन करके पूर्णान्तकार्य करे; अथवा अपने आश्रम में कहे अग्निकर्मण को शिवार्पण करे ।।५२।। यह सब जानकर शिवजी का भक्त करे, इसमें कोई दूसरी विधि नहीं कही है; जो शिवाग्नि अग्निहोत्र से भस्म उत्पन्न हुई है वह ग्रहण करनी चाहिये ।।५३।। और वैवाहिक अग्नि की भस्म भी पद्म और शुचि सुगन्ध युक्त है, कपिला गौ का गोबर करने में पृथ्वी पर न गिरते हाथ में ले लिया है, वह अच्छा है ।।५४।। बहुत पतला न हो; कठिन दुर्गन्ध युक्त न हो, न बहुत सूखा हो, वह अच्छा है और पृथ्वी में पड़ा हो, ऊपर-नीचे की ओर से छोड़कर बीच में से ग्रहण करे ।।५५।। उसे पिण्डीभूत करके मूलमन्त्र से शिवाग्नि में डाल दे, न बहुत पके और न अपक्व रहे ऐसे करके श्वेत हो जाने पर ।।५६।। पवित्र सुगन्धि युक्त लेकर वस्त्र में तोड़कर भस्माधार में रखे, अच्छी प्रकार किये हुए अत्यन्त दृढ़ क्षालित और प्रोक्षण करने पर मन्त्र से उस भस्म को पात्र में रखे, चांदी आदि धातु, काष्ठ, मृत्तिका, पत्थर ।।५७।। अथवा और किसी वस्तु के पात्र में भस्म को रखकर समान और शुद्ध देश में धन के समान भस्म को रखे ।।५८।। और कहीं को जाय तो स्वयं वा अनुचर के संग भस्म लेकर चले, अपवित्र और अयोग्य हाथ में भस्म न धरे, नीचांग के स्पर्श से उपेक्षा और उल्लंघन न करे ।।५९।। उस सेवक से भस्म लेकर मन्त्र से युक्त करके आगे कहे समय के सिवाय कभी अयोग्य के निमित्त न दे ।।६०।। देव को बिदा करने पर भस्म का संग्रह करे, जिस कारण कि उद्वासन (विसर्जन) करने से चण्ड भस्म के होती है ।।६१।। शिवशास्त्र के मार्ग से अग्निकार्य करने के पश्चात् अपने सूत्र में कहे प्रकार से बलिकर्म करे ।।६२।। तब विद्यासन से न्यास करके मण्डल को लीपकर विद्याकोश की प्रतिष्ठा करके क्रम से पुष्पादि से यजन करे ।।६३।। गुरु को भी मण्डल विद्या को आगे करके आसन आदि करके पुष्पों से पूजे, अनेक प्रकार से गुरु की पूजा करे ।।६४।। फिर पूज्यों का पूजन और भूखों को भोजन करावे, फिर सुखपूर्वक शुद्ध अन्न का स्वयं भोजन करे ।।६५।। फिर आत्मा शुद्धि के निमित्त निवेदन श्रद्धापूर्वक करें, लोभ से चण्ड को भी समर्पण करने से बरज दे ।।६६।। और गन्धमाल आदि समर्पण करें, उसमें भी यह विधि कही है और चतुर पुरुष सब कार्यों में अपने को शिव जानकर ।।६७।। भोजन कर आचमन करके शिवजी का ध्यान करे, हृदय में मूलमन्त्र का उच्चारण करें और योग्य शिवशास्त्र की कथा आदि से अपना समय व्यतीत करें ।।६८।। रात्रि के बीतने पर पूर्वांश में मनोहर पूजा करके शिवा-शिव का शयन अतिमनोहर कल्पित करे ।।६९।। भक्ष्य, भोज्य, सुन्दर आलेपन, पुष्पमालादिक यह सब मनोहर कर्म मन से करे ।।७०।। फिर पवित्र होकर आप देव और देवी के चरणों की ओर सोवे और वह गृहस्थ अपनी भार्या को भी वहीं शयन करावे अथवा केवल आप ही शयन करे ।।७१।। फिर प्रातःकाल का समय जानकर आदिमन्त्र का उच्चारण करें, मन से गण सहित अम्बा के

सहित देव को प्रणाम करके ।।७२।। देशकाल उचित कार्य को करके शक्ति से शौचादि करके शंखादि के शब्द से देव–देवी को जगावे ।।७३।। फिर उसी समय के खिले फूलों से जिनमें बहुत सुगन्धि हो, शिवजी की पूजा करके फिर पूर्वोक्त विधान करे ।।७४।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे

सप्तविंशोऽध्यायः ।। २७ ।।

*****

अट्ठाइसवां अध्याय

उपमन्युजी बोले– अब इसके उपरान्त शिवाश्रम के सेवन करनेवालों को शिवशास्त्र के अनुसार नैमित्तिक विधि क्रम से कहता हूं ।।१।। सब महीने और पक्षों में अष्टमी, चतुर्दशी तथा पर्व में क्रम से ।।२।। और तुला, मेष की संक्रान्ति में और विशेषकर ग्रहण में महापूजा करनी चाहिये अथवा अपनी शक्ति से अधिक करें ।।३।। महीने–महीने में बौधायन विधि से कहे संस्कार किये पंचगव्य (ब्रह्मकूर्च) सिद्ध करे; उससे शिवजी को स्नान कराकर शेष व्रती स्वयं पान करे ।।४।। ब्रह्महत्यादि महादोष हैं, उनकी निष्कृति ब्रह्मकूर्च के पान करने से होती जाती है ।।५।। पौष में पुष्य नक्षत्र में शिवजी का नीराजन करना चाहिये और माघ में मघा नक्षत्र में घृत और कम्बल दे ।।६।। उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र युक्त पौर्णमासीवाले फाल्गुन में महोत्सव करें और चैत्र के महीने में चित्रा युक्त पौर्णमासी को विधिपूर्वक दोला (झूला) यन्त्र करे ।।७।। वैशाख में विशाखा युक्त पौर्णमासी को फूलों का महामन्दिर बनावे; ज्येष्ठ में मूलनक्षत्र में शीत कुम्भ का दान करे ।।८।। आषाढ़ मास के उत्तराषाढ़ में पवित्र आरोपण करे; श्रावण में प्राकृत आदि मण्डलों की कल्पना करे ।।९।। श्रवण नक्षत्र में और भाद्रपद नक्षत्र में प्रोक्षण करके पूर्वाषाढ़ नक्षत्र के दिन में जलक्रिड़ा करे ।।१०।। आश्विन में पायस (खीर) और नये चावल दे और शतभिषा नक्षत्र के दिन अग्निकार्य करे ।।११।। कार्तिकी पूर्णमासी को कृत्तिका नक्षत्र के योग में सहस्र दीपक दे, मार्गशीर्ष में आर्द्रा नक्षत्र के दिन घृत से शिवजी को स्नान करावे ।।१२।। और इन समयों में यह करने को असमर्थ हो तो उत्सव ही करे; आस्थान महापूजा अथवा अधिक पूजा करे ।।१३।। प्रशंसनीय कर्मों में जब कि, कल्याण की प्रवृत्ति हो दौर्मनस्य दुराचार वा दुःखस्वप्न दर्शन में ।।१४।। प्रबल उत्पात वा प्रबल रोग वा कुछ और अशुभ हो तो स्नान, पूजा, जप, होम, दानादि क्रिया करे ।।१५।। पुरश्चरण पूर्वक निमित्तों को गुण युक्त करे, शिव अनल का जो विधान कहा है उसके समीप आऊर कृत्य करे ।।१६।। जो इस प्रकार नित्य युक्त शिवधर्म

का अनुष्ठान करे; उसको एक ही जन्म में शिवजी मुक्ति देते हैं ।।१७।। जो नित्य-नैमित्तिक कर्म में यथोत्तर कर्म करते हैं, वे नित्य श्रीकण्ठ आदि स्थान को जाते हैं ।।१८।। वहां सौ करोड़ कल्प तक महाभोगों को भोगकर वह मनुष्य फिर कालान्तर में वहां से आकर और कौमार ।।१९।। विष्णुजी, रुद्र वा ब्रह्माजी के लोक को प्राप्त होता है, वहां बहुत काल तक रहकर यथेच्छ भोगों को भोगकर ।।२०।। फिर पांच स्थानों को उल्लंघन करके ऊर्द्धलोक में जाकर श्रीकण्ठ से ज्ञान को प्राप्त होकर फिर शिवपुर को जाता है ।।२१।। और यथोक्त आधे अनुष्ठान युक्त होकर फिर दो बार करके ज्ञान को प्राप्त होकर शिवजी के सायुज्य को प्राप्त हो जाता है ।।२२।। जिसने आधा अनुष्ठान किया हो वह देही देह के क्षय से अण्ड पर्यन्त बुद्धि से किये दोनों भुवनों को अतिक्रमण करके ।।२३।। गिरिजापति के पौरुष रुद्रस्थान को प्राप्त होकर अनेक सहस्रों युग अनेक भोगों को भोगकर ।।२४।। फिर पुण्यक्षय होने पर बड़े कुल में जन्म पाता है; फिर भी पूर्वजन्म के संस्कार से वह महाद्युतिमान् ।।२५।। पशुधर्म को छोड़कर शिवधर्म में प्रीति करे; उसी धर्म के गौरव से ध्यान करके शिवजी के लोक जायगा ।।२६।। अनेक भोगों को भोगकर विद्येश्वर के स्थान को जायगा; वहां विद्येश्वर के साथ क्रम से बहुत भोगों को भोगकर ।।२७।। ब्रह्माण्ड के अन्तर-बाहर से एक साथ ही फिर लौटता है, फिर शिवज्ञान को प्राप्त होकर परम भक्ति को प्राप्त करके ।।२८।। शिवजी के साथ धर्म को प्राप्त होकर फिर संसार में नहीं लौटता, जो विषयासक्त के चित्त के समान शिवजी में अतीव आसक्त है ।।२९।। वह शिवजी के धाम को करे वा न करे, किन्तु मुक्त हो जाता है। वह मुमुक्षु एक बार, दो बार अथवा तीन बार ।।३०।। शिवधर्म करनेवाला मनुष्य फिर चक्र के समान संसार में नहीं आता, इस कारण जैसे हो तैसे शिवजी के आश्रित रहे ।।३१।। शिवधर्म में बुद्धि करके यदि कल्याण के निमित्त मति करें जो हम किसी करके कुछ भी निर्बन्ध नहीं करते हैं, ऐसा कहे इस स्थान में निर्बन्धन भी पाप से प्रकृति के अर्थ नहीं रुचता है अथवा दूसरों को पुण्यसंस्कार के गौरव से रुचता है ।।३२-३३।। संसार का कारण इनको उस स्थान में प्राप्त करने को समर्थ नहीं होता है ।।३४।। जो अपना कल्याण चाहे तो शिवधर्मों को करें ।।३५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे

अष्टाविंशोऽध्यायः ।। २८ ।।

*****

उन्तीसवां अध्याय

श्रीकृष्णजी बोले– हे भगवन्! आपके मुख से मैंने श्रुति के वचन सुने। जो अपने आश्रितों को नित्य–नैमित्तिक विधि से कही है।।१।। इस समय शिवधर्माधिकारियों का जो काम्यकर्म है, उसे सुनने की मेरी इच्छा है, सो कहिये।।२।। उपमन्युजी बोले– कुछ इस लोक का, कुछ उस लोक का फल है, यहां और वहां का कर्म पांच प्रकार का है।।३।। कुछ क्रियामय, कुछ तपोमय कर्म।।४।। कोई जप ध्यानमय और कोई कर्म सर्वमय है, क्रियामय कर्म भिन्न है; होम दान पूजा के क्रम से।।५।। सम्पूर्ण शक्तिवालों का वा दूसरों का यह कार्य सफल होता है, परमात्मा शिव शक्ति और आज्ञा है।।६।। इस कारण आज्ञाधारी ब्राह्मण काम्यकर्म सदा करता रहे, अब दोनों लोकों में फल देनेवाले काम्यकर्म को कहता हूं।।७।। जो महेश्वरजी के भक्तों को क्रम से अन्तरबाह्य कर्म करने चाहिये, शिव वा महेश्वर इसमें कुछ भेद नहीं है।।८।। इस कारण शिवजी वा महेश्वरजी के भक्त भेद को नहीं प्राप्त होते हैं, शिवजी के आश्रय में रहनेवाले वे ज्ञानयज्ञरत मनुष्य।।९।। कर्मयज्ञ करनेवाले पृथ्वी पर माहेश्वर (शिवभक्त) कहलाते हैं, इस कारण शैव अभ्यन्तर और माहेश्वर बाह्य कर्म करते हैं।।१०।। आगे कहे हुए कर्म के प्रयोग में भेद नहीं है। गन्ध, वर्ण, रसादि से पृथ्वी की विधिपूर्वक परीक्षा करके।।११।। मन के अनुसार मनोहर वितान (चन्दोवा) तानकर दर्पण के समान पृथ्वी को लीपकर।।१२।। शास्त्र की विधि से पहले पूर्व का उत्पादन करें, एक हाथ अथवा दो हाथ का मण्डल कल्पित करे।।१३।। और आठ दलों का कर्णिका युक्त कमल लिखकर यथायोग्य रत्न सुवर्णादि के चूर्णयुक्त।।१४।। पंचावस्था के सहित बहुत शोभा से संयुक्त दलों में सिद्धि और केशरों में शक्ति की कल्पना करनी चाहिये।।१५।। और आठ रुद्र वामदेवादि मूर्तियां पूर्वादि दल के क्रम से स्थापन करे, कर्णिका में वैराग्य और बीजों में नौ शक्तियां कल्पित करे।।१६।। स्कन्द में शिवात्मक धर्म और उसके नाल में शिवात्मक ज्ञान कल्पित करे, कर्णिका के ऊपर आग्नेय मण्डल सूर्य, चन्द्रमा।।१७।। और उस उपरान्त शिवविद्यात्मक तीन तत्त्व तथा सब आसन के ऊपर सुखपूर्वक विचित्र पुष्पों से युक्त।।१८।। पंचावरण के सहित पार्वती सहित देव का पूजन करे, शुद्ध स्फटिकमणि के समान प्रसन्न शीतल कान्ति।।१९।। बिजली के समान जटामुकुट से भूषित शार्दूल के चर्म का वस्त्र धारण किये कुछेक हंसता मुख।।२०।। लालपद्म के दल के समान हाथ–पैरवाले सब लक्षणों से सम्पन्न, सम्पूर्ण गहनों से युक्त।।२१।। दिव्य श्रेष्ठ आयुधों से युक्त दिव्यगन्ध का अनुलेप लगाये, पांच मुख, दश भुजा, चन्द्रखण्डधारे, शिखा में मणि बांधे।।२२।।

इनका पूर्व मुख सौम्य और बालसूर्य के समान कान्तिवाला है, तीन नेत्र कमल के समान मनोहर, सिर पर बालचन्द्रमा ।।२३।। दक्षिण का मुख नीले मेघ के समान कान्तिमान्, जिसकी टेढ़ी भृकुटी घोर तीन लालवर्ण दृष्टि से युक्त हैं ।।२४।। दंष्ट्र तीक्ष्ण से दुर्धर्ष, स्फूर्यमाण अधरोष्ठ (होठ) उत्तर का विद्रुम के समान नीली अलकों से विभूषित ।।२५।। विलास पूर्वक तीन नेत्र, सिर पर चन्द्रमा के आभूषण से संयुक्त पश्चिम का पूर्ण चन्द्रमा के समान उज्ज्वल तीन नेत्रों से शोभित ।।२६।। चन्द्ररेखा धारण किये सौम्यमूर्ति, मन्दहास्य से मनोहर पांचवां स्फटिकमणि के समान चन्द्ररेखा से उज्ज्वल ।।२७।। अत्यन्त प्रिय दर्शनमूर्ति तीन नेत्रों से उज्ज्वल, दक्षिण में शूल, परशु, वज्र, खड्ग, अनल से उज्ज्वल ।।२८।। सव्य हाथ में नाग, नाराच, घण्टा, पाश, अंकुश से युक्त है; निवृत्ति नामक कला जाने और प्रतिष्ठा कला से नाभिबद्ध है ।।२९।। कण्ठ पर्यन्त विद्या करके और ललाट पर्यन्त शान्तिकला से प्रतिष्ठित है; उसके ऊपर शान्त्यतीत कला से परकला से युक्त हैं ।।३०।। उसके आगे पंचाध्व में व्यापी कलापंचक शरीरवाले का ईशान मुकुट पुरातन पुरुष मुख है ।।३१।। अधोमुख हृदय नामक गुह्यस्थान है, महेश्वर और सद्योजात उनके चरण इस प्रकार अड़तीस कला की उनकी मूर्ति है ।।३२।। मातृकामय स्थान तथा पंचमय ब्रह्म, ॐ कार रूपमय तथा हंसशक्ति से युक्त ।।३३।। पंचाक्षरमय देव को छः अंग और छः जाति से युक्त तथा इच्छा आत्मिकशक्ति से जो कमण्डलु में आरूढ़ हैं, दक्षिण की ओर ज्ञानाख्य शक्ति से बाईं ओर क्रियाशक्ति से युक्त ।।३४।। तीन तत्त्वमय साक्षात् विद्यामूर्ति सदाशिवजी को मूर्तिमूल से संकल्प करके कर्म से संकलन करके ।।३५।। अर्घ्य पर्यन्त मूलमन्त्र से यथायोग्य पूजन करके साक्षात् मूर्तिमान् शिवजी को परमशक्ति से ।।३६।। उसमें सत्–असत् व्यक्ति से महादेवजी को आवाहन करके पंच उपकरण करके परमेश्वर का पूजन करे ।।३७।। वेद में कहे षडंगों के मन्त्रों से तथा मातृकान्यास से प्रणवपूर्वक शिव और शक्ति से युक्त क्रम से ।।३८।। शान्त तथा दूसरे वेदमन्त्रों से अच्छी प्रकार परमदेव का पूजन करे अथवा केवल शिवमन्त्रों से पूजन करे ।।३९।। पाद्यादि मुखसुगन्धि पर्यन्त स्नान के बिना करे, फिर यथाक्रम से पंचावरण पूजा का आरम्भ करे ।।४०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे

काम्यवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ।। २९ ।।

*****

तीसवां अध्याय

उपमन्युजी बोले– उसके आदि में शिवजी के पार्श्व में वा दक्षिण वाम के क्रम से गन्ध आदि से पहले गणेश को, कार्तिकेय को देव के सम्मुख पूजन करे ।।१।। फिर पंचब्रह्म चारों ओर से शक्तिपूर्वक सद्योजात पर्यन्त पहले आवरण में पूजा करे ।।२।। फिर षडंगादि न्यास और हृदयादि न्यास क्रम से करे, शिव और शिवा का न्यास करके अग्नि आदि दिशाओं में पूजन करे ।।३।। वहां वामादि आठ देवताओं को आठ शक्तियों के सहित पूजन करे अथवा पीछे पूजन करे, फिर पूर्वादि क्रम से पूजन करे ।।४।। हे यदुनन्दन! यह प्रथम आवरण का वर्णन किया। अब दूसरे आवरण को प्रेम से कहता हूं, सुनिये ।।५।। पूर्व दिशा को पत्र में अनन्त को उनकी शक्ति को वाम ओर से सूक्ष्म को दक्षिण दिशा के पत्र में शक्ति के सहित पूजन करे ।।६।। और पश्चिम दिशा के पत्र में शक्ति सहित शिवजी को पूजे। इसी प्रकार उत्तर ओर के पत्र में एकनेत्र का पूजन करे ।।७।। एक रुद्र उनकी शक्ति को ईशान दिशा के दल में पूजे, त्रिमूर्ति और उनकी शक्ति को अग्निकोण के दल में पूजे ।।८।। श्रीकण्ठ को नैर्ऋत्य पत्र में उनकी शक्ति को वाम ओर में यजन करे, इसी प्रकार वायव्य की ओर पत्र में शिखण्डीश का पूजन करे ।।९।। दूसरे आवरण में सब चक्रवर्तियों का पूजन करे, तीसरे आवरण में शशि सहित आठ मूर्तियों की पूजा करे ।।१०।। आठों दिशाओं में क्रम से पूर्वादि दिशाओं में पूजन करे, भव, शर्व, ईशान, रुद्र, पशुपति ।।११।। उग्र, भीम, महादेव यह आठ मूर्तियां क्रम से हैं, इसके अनन्तर महादेवादिकों को क्रम से एकादशमूर्ति शक्ति के सहित पूजन करना चाहिये ।।१२।। महादेव, शिव, रुद्र, शंकर, नीललोहित, ईशान, विजय, भीम, देवदेव, भवोद्भव ।।१३।। कपालीश यह ग्यारह शक्तियां कही जाती हैं, उसमें आठ आग्नेयादि दिशाओं में क्रम से पूजनी चाहिये ।।१४।। देवदेव का पूर्व पत्र में ईशान और आग्नेयादि दिशा के मध्य में भवोद्भव और कपालीश का पूजन करे, उसके उपरान्त ।।१५।। उस आवरण के आगे की ओर वृषेन्द्र का पूजन करे, उसके दक्षिण में नन्दि और महाकाल को यजन करे ।।१६।। शासन करनेवाले शिवजी को अग्निकोण के पत्र में, मातृकाओं को दक्षिण ओर के पत्र में, गजमुख को नैर्ऋत्य की ओर के पत्र में, षणमुख कुमार को पश्चिम के पत्र में ।।१७।। ज्येष्ठा के वायव्य दल में, गौरी को उत्तर, चण्ड को ईशान, शास्ता और नन्दीश के बीच में मुनीन्द्र और वृषभ का यजन करे ।।१८।। महाकाल के उत्तरभाग में पिंगल का पूजन करे तथा शास्तृमातृसमूह के मध्य में भृंगीश्वर का पूजन करे ।।१९।। मातृका और विघ्नेश के बीच में वीरभद्र का पूजन करे, स्कन्द और गणेश के बीच में सरस्वती देवी का यजन

करे ।।२०।। ज्येष्ठा और कुमार के बीच में शिवपद की अर्चना करनेवाली लक्ष्मी को पूजे, ज्येष्ठागण और अम्बा के बीच में महामोटी का पूजन करे ।।२१।। गण और चण्ड के बीच में दुर्गादेवी को पूजे, फिर इसी आवरण में शिवजी के अनुचरों के समूह ।।२२।। रुद्र के प्रथम भूत नामक अनेक शक्ति और शिवा की सखी वर्ग को पूजे और सावधान होकर सबका ध्यान करे ।।२३।। इस प्रकार विस्तार से तीसरे आवरण के पूजन पर चौथे आवरण का ध्यान करके पहले उसकी बाह्य पूजा करे ।।२४।। पूर्वदल में भानु (सूर्य) और दक्षिण दल में ब्रह्माजी का पूजन करे, रुद्र पश्चिम पत्र में और विष्णुजी को उत्तर के पत्र में पूजे ।।२५।। फिर चारों देवताओं के आवरण उनके छः आदि दीप्तादि शक्तियों के साथ पूजे ।।२६।। दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला क्रम से अमोघा, विद्युता यह पूर्वादि क्रम से स्थित हैं ।।२७।। दूसरे आवरण में क्रम से चार मूर्तियों का पूजन करे, पूर्व से लेकर उत्तर पर्यन्त और उसके उपरान्त शक्ति यथाक्रम से पूजे ।।२८।। आदित्य, भास्कर, भानु, रवि, अर्क, ब्रह्माजी, रुद्र, विष्णुजी, विवस्वत ।।२९।। इनका विस्तार पूर्व दिशा के भाग में और दक्षिण दिशा के भाग में बोधिनी पश्चिम और आप्यायिनी उत्तर भाग में स्थित है ।।३०।। उषा, प्रभा, प्रज्ञा, सन्ध्या इनको ईशानादि कोण में दूसरे आवरण में यजन करे ।।३१।। हे कृष्ण ! चन्द्रमा, मंगल, महाबुद्धिमान् बुध, बुद्धिमानों में सर्वोत्कृष्ट बृहस्पति, तेजसागर शुक्र ।।३२।। शनैश्चर, राहु, भयंकर केतु, इनको चारों ओर तीसरे आवरण में पूजे ।।३३।। अथवा द्वादश आदित्यों को दूसरे आवरण में यजन करे, तीसरे आवरण में बारह राशियों का पूजन करे ।।३४।। उसके बाहर चारों ओर सात-सात गणों को पूजे, ऋषि, देवता, गन्धर्व, पन्नग, अप्सराओं के गण ।।३५।। ग्रामण्य, देवयोनि, यक्ष, यातुधान, हयमुख, सप्तछन्दोमय वालखिल्यों का पूजन करे ।।३६।। इस प्रकार तीसरे आवरण में दिवाकर का पूजन करके तीन आवरणों के सहित पीछे ब्रह्माजी का पूजन करे ।।३७।। पूर्व में हिरण्यगर्भ, दक्षिण में विराज, पश्चिम में काल, उत्तर में पुरुष का यजन करे ।।३८।। हिरण्यगर्भ प्रथम कमल के समान, ब्रह्माजी कालजाति के स्वभाव से अंजन पर्वत के समान कृष्णस्फटिक मणि के पुरुष ।।३९।। राजस, तामस, सात्त्विक तीन गुणों से युक्त यह चार क्रम से पहले आवरण में स्थित हैं ।।४०।। दूसरे आवरण में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन को पूजे ।।४१।। तीसरे आवरण में प्रजापति को पूजे, उसमें पूर्व में हुए आठ जो दक्षादिक हैं, उनको पूर्व आदि देश में पश्चिम से आरम्भ करके अनुक्रम से ।।४२।। दक्ष, रुचि, भृगु, मरीचि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि, कश्यप ।।४३।। वसिष्ठ यह प्रजापति विख्यात हैं, उनकी भार्याओं के साथ उनकी यथाक्रम से पूजा करनी चाहिये ।।४४।। प्रसूति, आकूति, ख्याति, सम्भूति, धृति, स्मृति, क्षमा, सन्नति, अनसूया ।।४५।। देवमाता अदिति और अरुन्धती यह पतिव्रता हैं,

शिवजी के पूजन में नित्य श्रीमान् प्रिय दर्शन है ।।४६।। पहले आवरणों में चार वेदों का पूजन करे, इतिहास, पुराण का दूसरे आवरण में ।।४७।। तीसरे आवरण के पीछे धर्मशास्त्र को आगे करके वैदिक सम्पूर्ण विद्या चारों ओर से पूजित करे ।।४८।। पूर्वादि के अगाड़ी वेद तथा वेदांग और दूसरे भी यथा रुचि आठ या चार प्रकार से पूजा करे ।।४९।। इस प्रकार तीन आवरण से युक्त ब्रह्म को पूजन करके दक्षिण और पश्चिम के पीछे आवरण पूर्वक रुद्र का यजन करे ।।५०।। उसको ब्रह्मषडंग प्रथमावरण कहते हैं, द्वितीयावरण विद्येश्वरमय है ।।५१।। तीसरे आवरण में जो भेद हैं, सो कहते हैं और पूर्वादि क्रम से उनकी चार मूर्तियों का पूजन करे ।।५२।। तीन गुण युक्त सम्पूर्ण देवता प्रथम शिवसंज्ञक हैं; रजोगुण युक्त ब्रह्माजी दक्षिण में पूजित होते हैं ।।५३।। तमोगुण युक्त पश्चिम में संहार करनेवाले शिवजी पूज्य हैं, सत्त्वगुण से युक्त सुख करनेवाले विष्णुजी पूर्व दिशा में तथा विश्वपति शिवजी हैं ।।५४।। इस प्रकार पश्चिम दिशा में शिवजी की छब्बीस शिवमूर्तियों का उत्तर पार्श्व पूजन करके वैकुण्ठ का अर्चन करे ।।५५।। वासुदेव के आगे प्रथम आवरण में यजन करे; दक्षिण की ओर अनिरुद्ध और पश्चिम में प्रद्युम्न ।।५६।। पूर्व में संकर्षण देव और पश्चिम में लौटाकर इनको पूजे, यह पहला आवरण कहा। अब दूसरे आवरण को सुनिये ।।५७।। मत्स्य, कूर्म, वराह, नारसिंह, वामन, राम, कृष्ण, अश्वमुख ।।५८।। इनको तीसरे आवरण के चक्र के पूर्वभाग में अर्चन करे, अव्याहत (नहीं हटनेवाला) नारायण नामक अस्त्र को दक्षिण में पूजे ।।५९।। पश्चिम में पांचजन्य, उत्तर में शार्ङ्गधनु इस प्रकार तीसरे आवरण में विष्णु नामक साक्षात् भगवान् को ।।६०।। महाविष्णु और सदाविष्णु को रक्षण करके पूजन करे, इस प्रकार विष्णुजी के चतुर्व्यूह को क्रम से चार मूर्तियां करके उनकी चारों शक्तियों को क्रम से पूजे ।।६१।। आग्नेय दिशा में प्रभा को और नैर्ऋत्य में सरस्वती को पूजे, गण और अम्बिका को वायव्य में, रौद्र (ईशान) में लक्ष्मी का पूजन करे ।।६२।। इस प्रकार से भानु आदि मूर्ति और उनकी शक्ति का पूजन करके उसी आवरण में यजन करे ।।६३।। इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम, कुबेर पीछे ईशानदेव का पूजन करे ।।६४।। इस प्रकार विधिपूर्वक चौथे आवरण की पूजा करके बाह्यस्थान में महेश्वरजी के आयुधों की पूजा करे ।।६५।। त्रिशूल को ईशान में और वज्र को पूर्व दिशा में यजन करे, परशु को आग्नेयी दिशा में, दक्षिण दिशा में बाण का अर्चन करे ।।६६।। नैर्ऋत्य में खड्ग और पश्चिम में पाश को यजन करे, वायव्य में अंकुश को, उत्तर में पिनाक को यजन करे ।।६७।। पश्चिम में रौद्र स्वरूप क्षेत्रपाल का पूजन करे, पांचवें आवरण को बाहर–भीतर पूज कर ।।६८।। देवताओं को सम्पूर्ण आवरण के बाहर वा पांचवें माताओं के साथ महोक्ष को आगे पूजे ।।६९।। फिर उसके चारों ओर देवयोनि का पूजन करे, आकाश में फिरनेवाले ऋषि, सिद्ध, दैत्य, राक्षस ।।७०।। अनन्तादि नागेन्द्र

और उन-उन कुल में उत्पन्न हुए नाग, डाकिनी, भूत, वेताल, प्रेत, भैरव, नायक ।।७१।। और अनेक योनियों में उत्पन्न हुए पातालवासी नाग, नदी, समुद्र, गिरि, कानन, सरोवर ।।७२।। पशु, पक्षी, वृक्ष, कीटादि क्षुद्र योनि, अनेक आकार के मनुष्य, क्षुद्र योनि के मृग ।।७३।। अन्तर भुवन तथा करोड़ों ब्रह्माण्ड और अण्ड से बाहर जो असंख्य अधिपतियों सहित भुवन हैं ।।७४।। वह ब्रह्माण्ड के धारण करनेवाले दशों दिशाओं में स्थित हैं, जो गौण, जो माया और जो इस शक्ति से परे हैं ।।७५।। जो कुछ चित्-अचिदात्मक शब्द का वाच्य है, वह सब शिवजी के पार्श्व में जानकर सामान्यता से यजन करे ।।७६।। हाथ जोड़कर इन सबका चिन्तन करना योग्य है, यह सब देव और देवी को प्रीति से देखते हुए हैं ।।७७।। इस प्रकार विघ्नशान्ति के निमित्त आवरण की पूजा करके फिर देवेश की अर्चा करके पंचाक्षर उच्चारण करे ।।७८।। फिर शिवा-शिव के निमित्त अमृत के समान सुन्दर व्यजन से युक्त शुद्ध चरु निवेदन करे ।।७९।। बत्तीस आढक अर्थात् तीन मन आठ सेर मुख्य चरु है, कमती आढक का अधम है, यह सब अपने धन के अनुसार साधन करके श्रद्धा से निवेदन करे।।८०।। फिर पानी और ताम्बूल के सहित सामग्री निवेदन करे, फिर नीराजनादि करके पूजा शेष करे ।।८१।। और उस याग के उपयोगी श्रेष्ठ द्रव्यों का साधन करे, ऐश्वर्य हो तो भक्तिमान् प्राणी को धन का लोभ न करना चाहिये, जो शठ श्रद्धा भक्ति की अपेक्षा नहीं करता और व्यंग से अनुष्ठान करता है; उसके कोई काम्य कर्म नहीं फलते; यह सतपुरुषों के वचन हैं ।।८२-८३।। इस कारण शठता और उपेक्षा को छोड़कर सर्वांग योग से काम्यकर्म करे; यदि फलसिद्धि की इच्छा हो तो ।।८४।। इस प्रकार पूजा को समाप्त करके देव-देवी को प्रणाम कर भक्ति से मन समाधान कर पीछे स्तोत्र पढ़े ।।८५।। फिर स्तोत्र जप के अन्त में एक सौ आठ और एक सहस्र पंचाक्षर मन्त्र को मन लगाकर जपे ।।८६।। फिर विद्यागुरु की पूजा यथा क्रम से करके श्रद्धा पूर्वक सभा में बैठनेवालों का भी संस्कार करें ।।८७।। सब आवरणों के सहित देवेश को विदा करके उस यज्ञ की सामग्री यज्ञ के उपकरणों सहित मण्डल गुरु के निमित्त दे ।।८८।। अथवा यथायोग्य शिवजी के आश्रितों को प्रदान करे अथवा शिवजी के निमित्त ही शिवक्षेत्र में समर्पण करे ।।८९।। वा शिवाग्नि में देव के निमित्त हवन करके यथायोग्य सम्पूर्ण आवरणों के देवताओं की पूजा करके ।।९०।। विसर्जन करे। यह याग योगेश्वर नाम से त्रिलोकी में विख्यात है, इससे अधिक याग पृथ्वी में कोई नहीं है ।।९१।। और जगत् में ऐसी कोई वस्तु नहीं जो इससे असाध्य हो, इस लोक का जो कुछ फल है ।।९२।। यह इसका फल नहीं है, यह नहीं कहा जाता सम्पूर्ण श्रेय रूप का यही साधन है ।।९३।। पुरुष को जो इच्छा हो, सो इसीसे होने योग्य है; चिन्तामणि के समान वह फल इसीसे प्राप्त होता है ।।९४।। तो भी क्षुद्रफल के निमित्त इसका प्रयोग करना उचित नहीं, बड़ा कार्य छोटे में प्रवृत्त होने से छोटा ही हो जाता है ।।९५।।

बड़े में महत् या लघु कर्म कोई करो सिद्ध हो जाता है, महादेवजी के उद्देश्य से जो कर्म किया जाता है ।।९६।। वह दूसरे से प्राप्त नहीं होता, शत्रु अथवा मृत्यु के भय होने से दृष्ट–अदृष्ट फल में चतुर पुरुष इसको करे ।।९७।। बड़े पाप और महारोग, भय आदि में तथा दुर्भिक्षादि की शान्ति में इसे करे ।।९८।। बहुत कहने से क्या है ? यह महाव्याधि का निवारण करनेवाला है, महेश्वरजी ने शैवों को यह निज अस्त्र कहा है ।।९९।। इससे अधिक कोई भी अपनी रक्षा करनेवाला नहीं है, ऐसा जानकर इस कर्म के करने से शुभफल पाता है ।।१००।। और जो पवित्र तथा सावधान होकर स्तोत्रमात्र का पाठ करता है; वह अपने अभीष्ट अर्थ के आठवें अंश के फल को प्राप्त होता है ।।१०१।। और जो सावधान होकर उसके अर्थ का विचार करता हुआ जप करता है तो आधे फल को प्राप्त होता है; इसमें सन्देह नहीं; जो विचार करके व्रती होकर पर्व (अष्टमी वा चतुर्दशी आदि) में पाठ करता है वह भी आधे फल को प्राप्त होता है ।।१०२।। जो व्रती अर्थ का अनुसंधान करके पर्वादि में एक महीने स्तोत्र का पाठ करे वह सम्पूर्ण फल को प्राप्त होता है ।।१०३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे

त्रिंशोऽध्यायः ।। ३० ।।

*****

इकतीसवां अध्याय

उपमन्युजी बोले– हे कृष्ण ! पांच आवरणों के मार्ग से मैं आपके प्रति स्तोत्र को कहता हूं, जिससे यह योगेश्वरजी का पवित्र कर्म समाप्त हो जाता है ।।१।। हे जगत् के एकनाथ शिव ! प्रकृति से मनोहर नित्य चित्स्वभाव कलुष के प्रपंच से दूर मन और वचन की गति से परे, तत्त्व से परे ।।२।। स्वभाव से निर्मल शरीर चेष्टावाले आपकी जय हो, अपने तुल्य महाशक्तिमान्, शुद्ध गुण के सागर आपकी जय हो ।।३।। अनन्त कान्ति से सम्पन्न असदृश शरीर अर्थात् जिनका शरीर किसी के समान नहीं; ऐसे आपकी जय हो। अतर्क्य महिमाओं के आधार स्थिर मंगल आपकी जय हो ।।४।। निरंजन, निराधार, निष्कारण, उदय युक्त आपकी जय हो; निरन्तर परानन्द, निवृत्ति के कारण आपकी जय हो ।।५।। परम ऐश्वर्य युक्त आपकी जय हो, अति करुणा के स्थान की जय, स्वतन्त्र सर्वस्व की जय, असदृश ऐश्वर्यवान् आपकी जय हो ।।६।। महाविश्व में व्याप्त की जय, किसी से न ढके हुए आपकी जय हो, समस्त से परे आपकी जय हो,अत्यन्त श्रेष्ठ की जय हो।।७।। अद्भुत की जय, अक्षुद्र की जय, अक्षत रूप की जय, अविनाशी की

जय, अमेयात्मा की जय, अभय और निर्मल स्वरूप की जय हो ।।८।। महाभुज, महासागर, महागुण, महावक्ता, महाबली, महामायी, महारस, महारथ की जय हो ।।९।। परम देव, परम हेतु के निमित्त नमस्कार, शिव शान्त अत्यन्त शिवरूप को नमस्कार है ।।१०।। आपके ही अधीन यह असुर सहित सम्पूर्ण जगत् है, इस कारण आपकी आज्ञा को कौन मेंट सकता है?।।११।। यह आपका भक्त आप ही के आश्रित है, हमारी प्रार्थना स्वीकार करके आप हम पर अनुग्रह करें ।।१२।। हे जगन्माता अम्बिके! सब जगत् में व्याप्त आपकी जय हो; अप्रतिहत ऐश्वर्य और अनुपम शरीर आपकी जय हो ।।१३।। वाणी, मन से परे अविद्या को नाश करनेवाली जन्म और जरा से हीन काल से भी अधिक आपकी जय हो ।।१४।। अनेक प्रकार की अवस्था से युक्त अनेक सुख रूप आपकी जय, अनेक महाबल और अनेक गुणों से बढ़ी हुई आपकी जय हो ।।१५।। अनेक गुणों में स्थित लोकमहेश्वरी की जय हो, विश्व से अधिक आत्मा में स्थित की जय हो, विश्वेश्वर की प्रिया की जय हो, संसार के देवताओं से पूजित, विश्व का विस्तार करनेवाली ।।१६।। मंगल से दिव्य शरीर और मंगल से दीप्तिमान् आपकी जय हो, मंगल के चरित्रवाली और मंगल की देनेवाली ।।१७।। परम कल्याणी, गुणसमूह की मूर्ति आपकी जय हो; शिवजी की प्रिया, विश्वात्मा, पराशक्ति, शिवशक्ति को नमस्कार है; आपसे ही यह जगत् उत्पन्न होकर आप ही में लय हो जाता है ।।१८।। आपके बिना फल देने को ईश्वर भी समर्थ नहीं है; हे देवि! जन्म से लेकर यह सदा आपकी उपासना करता है ।।१९।। सो इस अपने भक्त के मनोरथ सफल करें, पांच मुख, दश भुजा, शुद्ध स्फटिकमणि के समान ।।२०।। प्रणवादि के अन्तर्गत आकाशादि वर्ण ईशानादि में निवृत्ति आदि कलारूप देहयुक्त होकर भी वह निष्कल है; शिवमूर्ति में आरूढ़ शान्त्यतीत सदाशिव हैं, भक्ति पूर्वक मुझसे आराधना की हुई मुझे मनोवाञ्छित पदार्थ दे ।।२१।। और सदाशिवजी के अंक में स्थित शिवा नामक शिवजी की इच्छाशक्ति, सब लोक की जननी मेरे मनोरथों को पूर्ण करे ।।२२।। शिवजी के प्रिय पुत्र गणेश और कार्तिकेय शिवजी के अनुभाव से शिवरूप, शिवजी के ज्ञानामृत पान करनेवाले ।।२३।। शिवा-शिव से नित्य सत्कार पाये हुए तृप्त परस्पर स्नेही, ब्रह्मादि देवताओं से सदा पूजित ।।२४।। सब लोकों की रक्षा करने को सदा उद्यत अपने वंशभेद से अनेक अवतार अपनी इच्छा से करनेवाले ।।२५।। इन दोनों शिवा-शिव के निकट मैंने सदा पूजन किया है, उनकी आज्ञा से वे मेरे मनोरथों को प्रदान करें ।।२६।। शुद्ध स्फटिकमणि के समान ईशान नामक सदाशिव परमात्मा शिवजी की मूर्धाभिमानवाली मूर्ति है ।।२७।। शिवजी के अर्चन में प्रीति करनेवाले शान्त शान्त्यतीत आकाश में स्थित पंचाक्षर के अंतिम बीज पांच कलाओं से युक्त ।।२८।। पहले आवरण में शक्ति के सहित प्रथम पूजित वह पवित्र परब्रह्म मेरी प्रार्थना को पूर्ण करे ।।२९।। बालसूर्य के समान कान्तिमान् पुरातन पुरुष

परमात्मा शिवजी के पूर्वमुख के अभिमान् रूप हैं, शान्ति आत्मा के मरुत में स्थित ।।३०।। शिवजी के पादार्चन में प्रीति करनेवाले शिवजी के बीजों में तुरीय रूप कलाओं में चतुष्कला रूप ।।३१।। पूर्वभाग में मैंने भक्ति और शक्ति सहित शिवजी का अर्चन किया है, वह पवित्र परब्रह्म मेरी प्रार्थना को प्रदान करे ।।३२।। अंजन के समान कान्तिमान् अघोर घोर शरीर से देव का दक्षिणमुख देवदेवपद करके अर्चित ।।३३।। विद्यापाद पर आरूढ़ वह्निमण्डल के बीच में प्राप्त दूसरे शिवजी के बीजों में कलाओं में अष्टकलाओं से संयुक्त ।।३४।। शिवजी दक्षिण दिशा के भाग में शक्ति के साथ पूजित पवित्र परब्रह्म मेरे मन के अभिलाष को प्रदान करे ।।३५।। कुंकुम के क्षोद के समान वाम नामक सुन्दर वेष धारण किया हुआ इनका उत्तरमुख प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित हैं ।।३६।। वारिमण्डल में स्थित महादेवजी के पूजन में प्रीतिमान् शिवबीज में दूसरे तेरह कलाओं से संयुक्त ।।३७।। देवेश को उत्तर दिग्भाग में शक्ति सहित पूजन किया है, वह पवित्र परब्रह्म मेरे मनोभिलाष को प्रदान करे ।।३८।। शंख, चन्द्र और कुन्द के समान श्वेत सद्य नामक मुख सौम्य लक्षण से युक्त शिवजी के पश्चिम मुख को शिवजी के चरणों में प्रीति करनेवाले ।।३९।। निवृत्ति पद की निष्ठावाले पृथ्वी पर स्थित तीसरे शिवबीजों में प्रथम आठ कलाओं से युक्त ।।४०।। देव का पश्चिम दिशा में शक्ति सहित पूजन किया है, वह पवित्र परब्रह्म मनोवांछित प्रदान करे ।।४१।। शिव और शिवा की मूर्ति हृदय में भावित होने पर उनकी आज्ञा से मेरे मनोभिलाष पूर्ण हों ।।४२।। शिव और शिवा की शिखामूर्ति शिवजी के आश्रय होने पर शिवजी की आज्ञा को आगे करके मेरे मनोरथ पूर्ण करे ।।४३।। शिव और शिवा की शिवजी के आश्रित वर्ममूर्ति शिवजी की आज्ञा को आगे करके मेरी अभिलाषा पूर्ण करे ।।४४।। शिव–शिवा की नेत्रमूर्ति शिवभावित होकर शिवजी की आज्ञा को पुरस्कार करके मेरे मनोरथ पूर्ण करे ।।४५।। शिवा–शिव की अस्त्रमूर्ति के नित्य अर्चन में तत्पर होकर शिवा–शिव की आज्ञा को पुरस्कार करके मेरी अभिलाषा को पूर्ण करे ।।४६।। वाम ज्येष्ठ रुद्र कलविकरण बलविकरण बलप्रमथन पर ।।४७।। सर्वभूत को दमन करनेवाली वैसे ही आठ शक्तियां परमेश की आज्ञा से मेरे मनोरथों को पूर्ण करें ।।४८।। फिर अनन्त सूक्ष्म शिवजी एकनेत्र, एकरुद्र, त्रिमूर्ति, श्रीकण्ठ, शिखण्ड ।।४९।। और इसी प्रकार उनकी आठ शक्तियां जो दूसरे आवरण में पूजी हैं, वे शिवा–शिव की आज्ञा से मेरे मनोरथों को पूर्ण करें ।।५०।। भावादिक आठ मूर्तियां और उनकी शक्ति महादेवादिक तथा दूसरी रुद्र की ग्यारह मूर्तियां ।।५१।। शक्ति सहित जो सब तीसरे आवरण में स्थित हैं, वह शिवजी की आज्ञा को आगे करके मेरे मनोरथ पूर्ण करें ।।५२।। वृषराज महातेजस्वी महामेघ के समान शब्दवाले मेरुमन्दर कैलास हिमाद्रि के शिखर के समान ।।५३।। श्वेतमेघ के शिखर के समान अपने कुमुद से शोभित महाभोगीन्द्र के समान पूंछ करके विराजमान ।।५४।। लाल मुख शृंग चरण और लाल नेत्र से युक्त पुष्ट और ऊँचे

सर्वांगवाले सुन्दर गमन से उज्ज्वल ।।५५।। प्रशंसा युक्त लक्षणवाले श्रीमान् प्रज्ज्वलित मणि और भूषण से युक्त शिवजी के प्रिय, शिवजी में आसक्त शिवा-शिव के ध्वजा और वाहन से युक्त ।।५६।। तथा उनके चरणों के न्यास से जिनका अपर शरीर भावित है, गोराज पुरुष श्रीमान् शूल और ज्येष्ठ आयुध धारण किये हुए उनकी आज्ञा को आगे करके यह मेरे मनोरथों को पूर्ण करें ।।५७।। महातेजस्वी नन्दीश्वर, पार्वती के पुत्र गणेश वा कुमार नारायण आदि देवताओं से नित्य नमस्कार किये हुए मेरे मनोरथों को पूर्ण करें ।।५८।। शिवजी के अन्तःपुर के द्वार पर परिजनों के साथ स्थित सर्वेश्वर के समान सब असुरों को मारनेवाले ।।५९।। सम्पूर्ण शिवधर्मों की अध्यक्षता में अभिषेकित, शिवा के प्रिय शिवजी में आसक्त श्रीमान् शूल और श्रेष्ठ आयुध धारण किये ।।६०।। शिवजी के आश्रितों में संसक्त और उन्हींके अनुरक्त शिवा-शिव की आज्ञा का सत्कार करके मनोरथ पूर्ण करें ।।६१।। महाकाल, महाबाहु, महादेवजी के समान दूसरे महादेवजी आश्रितों से नित्य रक्षित ।।६२।। शिवा के प्रिय शिवजी में आसक्त सदा शिवा-शिव के पूजन में तत्पर शिवा-शिव की आज्ञा को पुरस्कार करके मेरे काम पूर्ण करें ।।६३।। सब शास्त्रार्थ के तत्त्व जाननेवाले, सब लोकों के शासन करनेवाले, विष्णुजी का मूर्तिरूप, महाशरीर, महामोह का तनय, मधु, मांस और आसव के प्रिय उनकी आज्ञा को मानकर मेरे अभिलाष पूर्ण करें ।।६४।। ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री तथा चण्डविक्रमा चामुण्डा ।।६५।। यह सात सब लोकों की माताएं हैं, परमेश्वर की आज्ञा से मेरा प्रिय करें ।।६६।। मत्तमातंग के समान गमन करनेवाले गंगा, उमा और शंकरजी के पुत्र आकाश रूपी देह, दिशा रूपी बाहु, सोम, सूर्य और अग्नि के समान नेत्रवाले ।।६७।। नित्य ऐरावतादि दिग्गजों से पूजित, शिवज्ञान के मद से उद्भिन्न, देवताओं को मंगल करनेवाले, असुरों को विघ्न करनेवाले, विघ्नेश्वर ।।६८।। शिवजी से भावित, शिवजी की आज्ञा को आगे करके मेरे मनोरथों को पूर्ण करें ।।६९।। शिवजी से उत्पन्न स्वामि कार्तिक, शक्ति और वज्र को धारण करनेवाले प्रभु अग्निपुत्र देव अपर्णा के पुत्र ।।७०।। प्रभु गंगा के गणों के अम्बा और कृत्तिका के विशाखा, शाखा और नैगमेय से युक्त ।।७१।। इन्द्रजित, चन्द्रसेनानी, तारकासुर को जीतनेवाले, पर्वतों में मेरुमुख्य को अपने तेज से वेध करनेवाले ।।७२।। तप्त सुवर्ण के समान, शतपत्र दल के समान नेत्रवाले कुमार जो कुमारों के रूप और उदाहरण रूप ।।७३।। शिवजी के प्रिय शिवा में आसक्त सदा शिवजी का पूजन करनेवाले हैं, वह शिवा-शिव की आज्ञा को मानकर मेरी अभिलाषा को पूर्ण करें ।।७४।। ज्येष्ठ, वरिष्ठ वर के देनेवाले शिवा-शिव के पूजन में प्रीति करनेवाले उनकी आज्ञा को पुरस्कृत करके मेरे मनोरथों को प्रदान करें ।।७५।। त्रिलोकी से नमस्कृत साक्षात् उल्काकारा गणअम्बिका जगत् की सृष्टि को बढ़ाने को ब्रह्माजी के शिवजी से प्रार्थना करने पर ।।७६।। विभाग को प्राप्त हुए

शिवा के भौंह से निकली हुई दाक्षायणि सती हैमावती उमा ।।७७।। कौशिकी की माता तथा भद्रकाली की जननी अपर्णा और पाटला की जननी ।।७८।। शिवार्चन में नित्यप्रति प्रीति करनेवाली रुद्राणी, रुद्रवल्लभा शिवा–शिव की आज्ञा मानकर मेरे मनोरथ पूर्ण करे ।।७९।। सब गणों के पति शिवजी के मुख से उत्पन्न चन्द्र शिवा–शिव की आज्ञा मानकर मेरे निमित्त मंगल प्रदान करे ।।८०।। वृषभ नामक गणपति वृषवाह (शिव) के चरणों का पूजन करनेवाले शिवा–शिव की आज्ञा मानकर मेरे मनोरथ पूर्ण करे ।।८१।। श्रीमान् पिंगल नामक गणपति शिवजी में आसक्त शिवजी का प्रिय शिवा–शिव की आज्ञा से मेरे मनोरथ पूर्ण करे ।।८२।। शृंगीश नाम गणपति शिवजी के आराधन में तत्पर अपने स्वामी की आज्ञा मानकर मेरे मनोरथ पूर्ण करे ।।८३।। महातेजस्वी वीरभद्र हिमचन्द्र और कुन्द के समान कान्तिमान् भद्रकाली का नित्यप्रिय मातृकाओं से रक्षित ।।८४।। यज्ञ और दुरात्मा यज्ञ का सिर हरनेवाला उपेन्द्र, इन्द्र, यम और देवताओं के अंग को तक्षक (काटनेवाले) श्रीमान् शिवजी के अनुचर शिवजी की आज्ञा का पालन करनेवाले शिवा–शिव की आज्ञा से मेरे मनोरथों को पूर्ण करे ।।८५।। शिवजी के वाणीरूप कमल से उत्पन्न हुई सरस्वती शिवा–शिव के पूजन में नित्य मेरे मंगल को प्रदान करे ।।८६।। विष्णुजी के वक्षःस्थल में स्थित लक्ष्मी शिवा–शिव के पूजन में प्रीति करनेवाली शिवा–शिव की आज्ञा से मेरे मनोरथों को पूर्ण करे ।।८७।। महामोटी महादेवी के चरणकमल पूजनेवाली उन्हीं पार्वती की आज्ञा से मेरे मनोरथों को पूर्ण करे ।।८८।। कौशिकी सिंह के ऊपर चढ़ी हुई पार्वती की परमपुत्री विष्णुजी की निद्रा महामाया महिषासुर का मर्दन करनेवाली ।।८९।। निशुम्भ–शुम्भ को मारनेवाली, मधु, मांस, आसव को प्यार करनेवाली माता देवी की आज्ञा मानकर मेरी मनोकामना पूर्ण करे ।।९०।। रुद्र तथा रुद्र के समान कान्तिमान् महापराक्रमी प्रथम गण तथा भूत नामवाले महाबली गण महादेवजी के समान कान्तिमान् ।।९१।। नित्य मुक्त उपमा रहित निर्द्वन्द्व उपद्रव रहित शक्ति और अनुचरों सहित सब लोकों से नमस्कृत ।।९२।। सब लोकों की सृष्टि और संहार करने में समर्थ परस्पर अनुरक्त और परस्पर अतिस्निग्ध रूप परस्पर नमस्कार किये हुए नित्य शिवजी के प्यारे, शिवजी के लक्षण से लक्षित ।।९४।। सौम्य और घोर दो प्रकार से युक्त विरूप सुन्दर रूप तथा अनेक प्रकार के रूप धारण किये ।।९५।। शिवा–शिव की आज्ञा मानकर मेरा मंगल करे, देवी की प्रिय सखीवर्ग सब देवी के लक्षणों से लक्षित ।।९६।। रुद्रकन्या और अनेक शक्तियों से युक्त तीसरे आवरण में शिवभक्ति से नित्य पूजित ।।९७।। शिवा–शिव की आज्ञा को मानकर मुझे मंगल प्रदान करे, यह सूर्य शिवजी की मूर्ति युक्त दीप्त मण्डलवाला है ।।९८।। निर्गुण गुणों से युक्त गुणमात्र स्वरूप विकार रहित साधारणी जगत् प्रकाश रूपवाली जिसकी विक्रिया है ।।९९।। असाधारण कर्मवाले सृष्टि, स्थिति, लय के क्रम से तीन आवरण चार

अथवा पांच से विभक्त ।।१००।। चौथे आवरण में शम्भुजी के अनुचरों सहित पूजकर शिवप्रिय, शिवजी में आसक्त, शिवजी के चरण अर्चन में प्रीति करनेवाले ।।१०१।। शिवा-शिव की आज्ञा को मानकर मुझे मंगल दें, सूर्य के हृदयादि षडंग आदित्यादि मूर्तियां ।।१०२।। आदित्य, भास्कर, भानु, रवि यह क्रम से हैं, अर्क, ब्रह्मा, रुद्र, विष्णु यह आदित्य की मूर्तियां हैं ।।१०३।। और विस्तरा, सुतरा, बोधिनी, आप्यायिनी, अपरा, उषा, प्रभा, प्राज्ञा, सन्ध्या यह शक्तियां हैं ।।१०४।। और चन्द्रमा से आदि लेकर शिवजी के भावितग्रह शिवा-शिव की आज्ञा से मुझे मंगल प्रदान करें ।।१०५।। अथवा बारह आदित्य, बारह राशि, ऋषि, देव, गन्धर्व, सर्प अप्सराओं के गण ।।१०६।। ग्रामणी योनि, यक्ष, राक्षस, असुर, सात-सात गण, छन्दोमय सूर्य के घोड़े ।।१०७।। वालखिल्य गण और सब शिवजी के चरण पूजक शिवजी की आज्ञा मानकर मुझे मंगल प्रदान करें ।।१०८।। ब्रह्मा देवदेव की मूर्ति भूमण्डल के स्वामी चौंसठ गुणों का ऐश्वर्य जो बुद्धितत्त्व में स्थित है ।।१०९।। निर्गुण गुण से संकीर्ण केवल गणमात्र मूर्ति अविकारात्मक देव उसके उपरान्त दूसरे साधारण ।।११०।। और असाधारण कर्म सृष्टि की लय, स्थिति क्रम से करनेवाले, इस प्रकार चार और पांच प्रकार से विभक्त ।।१११।। चौथे आवरण में शिवजी के अनुचरों के सहित पूजित हुए, शिवजी के प्रिय, शिवजी में आसक्त, शिवजी के चरण पूजन में प्रेम करनेवाले ।।११२।। शिवा-शिव की आज्ञा मानकर मेरे मंगल को दें, ब्रह्माजी, लोकपति, विराट्, कालपुरुष ।।११३।। सनत्कुमार, सनन्दन, सनातन, प्रजापति दक्षादि ब्रह्मपुत्र ।।११४।। ग्यारह सपत्नी सहित धर्म और संकल्प शिवपूजा में प्रीति करनेवाले, शिवभक्ति में परायण ।।११५।। सब शिवजी की आज्ञा से माननेवाले मुझे मंगल प्रदान करे, चार वेद, इतिहास और पुराण के सहित ।।११६।। धर्मशास्त्रादि वेद की विद्याओं के सहित परस्पर अविरुद्ध अर्थवाले एक शिवजी के ही प्रतिपादन करनेवाले ।।११७।। शिवा-शिव की आज्ञा से मुझे मंगल दें, रुद्र, महादेव शिवजी की बड़ी मूर्ति ।।११८।। अग्निमण्डल के अधीश्वर पुरुष ऐश्वर्यवान् प्रभु शिवजी के अभिमान से सम्पन्न निर्गुण त्रिगुणात्मक ।।११९।। केवल राजसिक, सात्त्विक और तामसिक शिवजी के बीच में विकार रहित होकर प्रेम करनेवाले, समान विकारवाले ।।१२०।। असाधारण कर्मवाले, सृष्टि आदिसाधन से पृथक्, ब्रह्माजी के सिर छेदन करनेवाले, उनके जनक और पुत्र ।।१२१।। तथा विष्णुजी के भी पिता, पुत्र, नियामक, उनको नित्य बोध करनेवाले, अनुग्रह करनेवाले प्रभु ।।१२२।। अण्ड के भीतर बाहरवर्ती रुद्रलोक दो के स्वामी शिवजी के प्रिय, शिवजी के चरणार्चन में तत्पर ।।१२३।। शिवजी की आज्ञा को मानकर मेरा मंगल करें, वेदों के षडंग, विद्येशों को अष्टक ।।१२४।। चार मूर्तियों के भेद शिवजी हैं, पूर्व जिसके ऐसे शिवजी के अर्चन करनेवाले शिव, भव, हर, मृड तथा दूसरे शिवा-शिव की आज्ञा मानकर मुझे मंगल दे ।।१२५।। और विष्णु, शिव और महेश के

दूसरे शरीर जलतत्त्व के अधिपति साक्षात् जगत् के कारण में स्थित ।।१२६।। निर्गुण महासत्त्व युक्त केवल गुणमूर्ति अविकाराभिमानी, तीन ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र में समान विकारवाले ।।१२७।। असाधारण कर्म करनेवाले, सृष्टि आदि के करने से पृथक्, दक्षिण अंग में उत्पन्न होनेवोले ब्रह्माजी से स्पर्धमान ।।१२८।। साक्षात् आदि ब्रह्मा जो जगत् के स्रष्टा हैं और उनके स्रष्टा विष्णुजी दोनों लोकों के स्वामी ।।१२९।। असुरों को मारनेवाले (विष्णुजी), इन्द्र के अनुज, भृगुजी के शाप से दस प्रकार से प्रादुर्भूत ।।१३०।। पृथ्वी का भार दूर करने को पृथ्वी पर अवतार लेते हैं, अप्रमेय बल से युक्त मायावाले, माया से जगत् को मोहित करते हुए ।।१३१।। उन महाविष्णुजी की मूर्ति स्वरूप अथवा महाविष्णुजी की मूर्ति जो नित्य वैष्णवों से पूजित है, वह तीनों मूर्तियों से युक्त आसन में स्थित ।।१३२।। शिवजी के प्रिय, शिवजी में आसक्त, शिवजी के पदार्चन में प्रेम करनेवाले, शिवजी की आज्ञा मानकर मुझे मंगल दें ।।१३३।। वासुदेव, अनिरुद्ध, प्रद्युम्न और संकर्षण यह हरि की मूर्तियां हैं ।।१३४।। मत्स्य, कूर्म, वराह, नारसिंह, वामन, राम तीनों तथा कृष्ण, विष्णु, हयग्रीव ।।१३५।। चक्र, नारायण के अस्त्र, पांचजन्य, शार्ङ्ग शिवा–शिव की आज्ञा को मानकर मुझे मंगल प्रदान करें ।।१३६।। प्रभा, सरस्वती, गौरी, लक्ष्मी, शिवजी की भक्तिवाली शिवा–शिव की आज्ञा से मेरे मंगल को प्रदान करें ।।१३७।। इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सौम्य, कुबेर, ईशान, शूलधारी ।।१३८।। सब शिवपूजन में प्रेम करनेवाले शिवजी के सद्भाव से भावित शिवा–शिव की आज्ञा को मानकर मुझे मंगल प्रदान करें ।।१३९।। त्रिशूल, वज्र, परशे, बाण, खड्ग, पाश, अंकुश, श्रेष्ठ पिनाक आयुध ।।१४०।। और भी देव के दिव्य आयुध और देवी के आयुध नित्य ही शिवा–शिव की आज्ञा को मानकर मेरा कल्याण करें ।।१४१।। वृष रूपधारी कामधेनु से उत्पन्न महाबली धर्म वड़वाग्नि को स्पर्धा करनेवाला पांच गोमाताओं से आवृत ।।१४२।। तप से परमेश्वर के वाहनत्व को प्राप्त हुआ, शिवा–शिव की आज्ञा से मेरे मनोरथों को पूर्ण करें ।।१४३।। नन्दा, सुभद्रा, सुरभि, सुशीला, यमुना यह पांच गोमाताएँ शिवलोक में स्थित हैं ।।१४४।। नित्य शिवभक्ति में तत्पर शिवजी के पूजन में परायण शिवा–शिव की आज्ञा से मेरे मनोरथों को पूर्ण करें ।।१४५।। नीले बादल के समान महातेजस्वी क्षेत्रपाल, डाढों से करालमुख स्फुरायमान लाल होठों से उज्ज्वल ।।१४६।। लाल वर्ण के ऊपर उठे हुए बाल श्रीमान् टेढी भौंह से कुटिल देखनेवाले, लाल और गोल नेत्रोंवाले, चन्द्रमा और सर्प के भूषणोंवाले ।।१४७।। नग्न और त्रिशूल, पाश, तलवार, कपाल हाथ में लिये भैरव भय दायक सिद्ध और योगियों से युक्त ।।१४८।। प्रत्येक क्षेत्र में स्थित, सत्पुरुषों की रक्षा में स्थित, शिवजी को ही प्रणाम करनेवाले, शिवजी के सद्भाव से भावित ।।१४९।। विशेष कर शिवजी के आश्रितों को पुत्र के समान रक्षा करते हुए शिवा–शिव की आज्ञा मानकर

मेरा मंगल करें ।।१५०।। ताल, जंघादिक अपने प्रथम आवरण में अर्चित हैं; यह चारों शिवा–शिव की आज्ञा मानकर मेरा मंगल करें ।।१५१।। जो दूसरे भैरवादिक उनके चारों आवरणों से वेष्टित हैं, वे भी शिवा–शिव की आज्ञा से मेरे ऊपर कृपा करें ।।१५२।। नारद को आदि लेकर देवपूजित मुनि, साध्यदेवता और जनलोक निवासी ।।१५३।। विशेष अधिकारवाले महालोक के निवासी तथा दूसरे महर्षि देवताओं के सहित ।।१५४।। सम्पूर्ण शिवार्चन में युक्त शिवजी के आज्ञा के वशवर्ती शिवा–शिव की आज्ञा से मेरे मनोरथ को पूर्ण करें ।।१५५।। गन्धर्वों को आदि लेकर पिशाच पर्यन्त देवयोनि, सिद्ध, विद्याधर तथा जो दूसरे आकाशचारी हैं ।।१५६।। असुर, राक्षस, पातालवासी अनन्तादिक नागेन्द्र, वैनतेयादि (गरुड़) पक्षी ।।१५७।। कूष्माण्ड, प्रेत, वेताल, ग्रह, भूतगण, डाकिनी, योगिनी, शाकिनी आदि ।।१५८।। क्षेत्र, आराम बगीचे, तीर्थस्थान, द्वीप, समुद्र, नदी, नद तथा दूसरे सरोवर ।।१५९।। पर्वत, सुमेरु, कानन आदि चारों ओर पशु, पक्षी, वृक्ष, कृमि, कीटादि मृग ।।१६०।। सब भुवन और भुवनों के अधीश्वर अण्डादि के आवरणों के साथ आशा दस दिग्गज ।।१६१।। वर्ण, पद, मन्त्र, तत्त्व उनके अधिपति ब्रह्माण्ड को धारण करनेवाले रुद्र, दूसरी शक्ति से रहित ।।१६२।। जो कुछ इस जगत् में है, देखा और अनुमान किया हुआ है, वह शिवा–शिव की आज्ञा से मेरे मंगल को प्रदान करें ।।१६३।। आगे शैवीविद्या जो पशुपाश को मुक्त करनेवाली है, पंचब्रह्म रूप होने से दिव्य और पशुविद्या से बहिष्कृत ।।१६४।। शिवजी के धर्मानुसार शास्त्र और उसके उत्तरधर्म से यह शिवधर्म नामक पुराण जो श्रुतिसम्मत है ।।१६५।। जो दूसरे शैवशास्त्र और कामादि चार विद्या है; शिवा–शिव के निमित्त जो सत्कार से पूजित है ।।१६६।। वह उनकी आज्ञा से मेरी अभीष्ट सिद्धि को करें और भली प्रकार अनुष्ठान किये मेरे इस कर्म को वे मानें ।।१६७।। श्वेत आदि को लेकर नकुलीश तक शिष्य गुरु उनके सन्तान को गुरु रूप से विशेषकर मानें ।।१६८।। शैव माहेश्वर ज्ञानकर्म में परायण हमारे इस अच्छी प्रकार अनुष्ठान किये कर्म को मानें ।।१६९।। जो कि सब ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य क्रम से वेद–वेदांग के तत्त्व जाननेवाले सर्वशास्त्रों में पण्डित ।।१७०।। सांख्य, वैशेषिक, योग, नैयायिक, सौर (सूर्य के उपासक) ब्रह्माजी के उपासक, रुद्र, विष्णुजी के उपासक, दूसरे मनुष्य ।।१७१।। यह सब श्रेष्ठ पुरुष शिवजी की आज्ञा माननेवाले मेरे इस श्रेष्ठ कर्म को फल के निमित्त मानें ।।१७२।। शिवजी के भक्त सिद्धान्तमार्ग में स्थित शैव, पाशुपत महाव्रतधारी शैव और कापालिक शिवजी के भक्त ।।१७३।। शिवजी की आज्ञा माननेवाले पूजनीय मेरे ऊपर भी शिवजी की आज्ञा से अनुग्रह करें और फल की सत्क्रिया को प्रदान करें ।।१७४।। दक्षिण ज्ञाननिष्ठ दक्षिण उदार ज्ञानयुक्त के मार्ग में गमन करनेवाले गृहस्थ; इस मेरे मन्त्र के फल देने में एक सम्मति से व्यवहार करें ।।१७५।। नास्तिक, शठ, कृतघ्न, तामस, पाखण्डी, पापी यह मुझसे दूर रहें ।।१७६।। बहुतसी

स्तुति से क्या है? जो कोई भी आस्तिक हैं, वे सब मेरे ऊपर अनुग्रह करें और मंगल प्रदान करें।।१७७।। पुत्र और पार्वती सहित शिवजी को प्रणाम करता हूं, जो पंचावरण रूप प्रपंच में प्राप्त नहीं होता।।१७८।। ऐसा कहकर पृथ्वी पर शिवा-शिव के निमित्त प्रणाम करके एक सौ आठ बार पंचाक्षरी विद्या को जपे।।१७९।। इसी प्रकार शक्ति विद्या को जपकर और समर्पण करके पीछे क्षमा कराकर शेष पूजा समाप्त करे।।१८०।। यह पुण्यतम स्तोत्र शिवा-शिव को अत्यन्त प्रिय है, सबको अभीष्ट देनेवाला, भुक्ति-मुक्ति का एक साधन है।।१८१।। जो इसे नित्य कीर्तन करके सावधान होकर श्रवण करे, वह पापों को दूर करके शिवजी के सायुज्य को प्राप्त होता है।।१८२।। गौ को मारनेवाला कृतघ्न, वीरघाती, गर्भहत्या करनेवाला, शरणागत घाती, तथा मित्र का विश्वासघात करनेवाला।।१८३।। दुष्ट पापी, माता-पिता को मारनेवाला इस स्तुति के जपने से उस-उस पाप से छूट जाता है।।१८४।। दुःस्वप्नादि महाअनर्थ सूचित करनेवाले भयों में जो इसे कीर्तन करता है, वह अनर्थ का भागी नहीं होता है।।१८५।। आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य और भी जो कुछ वांछित है, इस स्तोत्र का जप करने से मनुष्य सम्पूर्ण फल को प्राप्त होता है।।१८६।। शिवजी के स्तोत्र को बिना पूजे जप से ही फल का होना इतना कहा है, परन्तु जो पूजन करके जप करता है, उसका फल कोई भी कहने को समर्थ नहीं है।।१८७।। इस स्तोत्र के कीर्तन करते ही फल की प्राप्ति होती है; इसके पाठमात्र से देवी-देव के सहित स्वर्गलोक में स्थित होता है।।१८८।। इस कारण देवदेव को उमा के सहित आकाश में पूजन करके हाथ जोड़कर खड़ा होकर इस स्तोत्र का उच्चारण करे।।१८९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे

एकत्रिंशोऽध्यायः।। ३१ ।।

*****

बत्तीसवां अध्याय

उपमन्युजी बोले- हे कृष्ण! यह आपके प्रति दोनों लोकों में सिद्धि का देनेवाला स्तोत्र कहा, यह क्रिया, तप, जप, ध्यान का महासमुच्चय है।।१।। अब शैवों को यही फल का देनेवाला पूजा, होम, जप, दानमय महान् कर्म कहते हैं।।२।। मन्त्रार्थ को जाननेवाला प्रथम मन्त्रार्थ की साधना करे; जो देखकर सिद्ध किया मन्त्र है, वह अन्यथा फल नहीं देता।।३।। सिद्ध हुआ मन्त्र भी किसी प्रबल अदृष्ट से प्रतिबन्ध हो जाय तो फिर सहसा न करे।।४।। उस प्रतिबन्ध की निष्कृति हो सकती है, परीक्षा करके

शकुनादि से उसकी निष्कृति करे ।।५।। जो मनुष्य मोह से यहां के फलदायक कर्म को अन्यथा करता है, वह उसका फल न पाकर उस हास्यता का भागी होता है ।।६।। फलांश में विश्वास रहित इष्टफल कर्म को कभी न करे, वह अवश्य अश्रद्धावाला होकर अश्रद्धा के फल को प्राप्त होता है ।।७।। निष्फल कर्म में देव का अपराध नहीं है, यथोक्त कर्म करनेवाले पुरुषों को यही फल मिलता है ।।८।। साधक सिद्धमन्त्र जिसने सब प्रतिबन्ध दूर किये हैं, विश्वासी और श्रद्धावाला कर्म करे यथोक्त फल को प्राप्त होता है ।।९।। अथवा उसकी फलप्राप्ति के निमित्त ब्रह्मचर्य है, रत रहे रात्रि को हविष्य अन्न, खीर वा फल खाये ।।१०।। हिंसादि से निषिद्ध अन्न को मन से भी न स्वीकार करे; सदा भस्म शरीर में लगाकर सुन्दर वेष से पवित्र रहे ।।११।। इस प्रकार आचार युक्त होकर अनुकूल शुभ दिन में पूर्वोक्त लक्षणवाले देश में पुष्पमालाओं से अलंकृत ।।१२।। देश में हाथ के प्रमाण भूमि को गोबर से लीपकर अपने तेज से दीप्तिमान् श्रेष्ठ कमल को लिखे ।।१३।। तप्त सुवर्ण के समान आठ दल और पराग (केसर) से युक्त मध्य में कर्णिका और सम्पूर्ण अलंकृत ।।१४।। अपने ही आकार के समान ताल से युक्त उस प्रकार स्वर्ण के बने हुए कन्द में भली प्रकार से स्थित ।।१५।। वहां उसमें अणिमादि सिद्धियों को मन से संकल्पित करके रत्न, सुवर्ण वा अच्छे लक्षणवाले स्फटिकमणि के लिंग को वेदी के सहित यत्न से स्थापन करके ।।१६।। विधिपूर्वक अविनाशी देव को देवी, गण आदि के सहित आवाहन करके उसमें प्रभु की महेश्वरी मूर्ति की कल्पना करके ।।१८।। चार भुजा, चार मुख, सम्पूर्ण आभूषणों से भूषित शार्दूल चर्म के वस्त्र धारे कुछेक हँसते हुए मुख से युक्त ।।१८।। वरदायक अभय हाथ से युक्त मृगटंक धारे अथवा अष्टभुजा मूर्ति का ध्यान करे, जैसी रुचि हो, वैसा करे ।।१९।। तब त्रिशूल, परशु, खड्ग, वज्र दक्षिण हाथ में और बांए हाथ में पाश, अंकुश, खेट, नाग को धारण किये ।।२०।। बालसूर्य के समान प्रत्येक मुख तीन लोचन उनका पूर्वमुख सौम्य अपने आकार के समान प्रभावाला ।।२१।। और दक्षिण की ओर का मुख नीले मेघ के समान घोरदर्शन, उत्तर का मूंगे के समान नीली अलकों से विभूषित ।।२२।। पश्चिम का मुख पूर्ण चन्द्रमा के समान सौम्य चन्द्रकला को धारण करनेवाला, उनके कमण्डलु में आरूढ़ हुई महेश्वरजी की अपरा शक्ति है ।।२३।। वह महालक्ष्मी श्यामा नाम से प्रसिद्ध सब के मन को हरनेवाली है, इस प्रकार मूर्ति वनाकर संकल्पित करके ।।२४।। मूर्तिमान परमकारण को आवाहन करके उनका पूजन करे, स्नान के निमित्त कपिला गौ के पंचगव्य की कल्पना करे ।।२५।। पंचामृत से पूर्ण बीज विशेष करके आगे रत्नादि के चूर्ण से युक्त मण्डल को करके ।।२६।। कर्णिका में ईशान कलश को स्थापन करके पीछे सद्यादि मूर्तियों के कलशों को उसके चारों ओर कल्पित करे ।।२७।। फिर विद्येश के आठों कलशों को पूर्वदिशा के क्रम से तीर्थों के जल से भरकर पूर्व के समान सूत्र से वेष्टित करके ।।२८।। उसमें मन्त्र और विधान के

सहित पवित्र पुण्य वस्तुओं को डालकर चारों ओर उसे दुकूलादि वस्त्र से आच्छादित करें ।।२९।। और उन मन्त्रों को पढ़कर सर्वत्र मन्त्रन्यास करता हुआ जिस समय स्नानकाल की प्राप्ति हो तब सब मंगल के बाजों के सहित ।।३०।। पंचगव्यादि से परमेश्वर को स्नान करावे, फिर कुशा के जल और दूसरे सुवर्ण रत्नादि ।।३१।। तथा जल, गन्ध, पुष्पादि से सिद्ध किये हुए क्रम से प्रतिमन्त्र से उठाकर परमेश्वर को स्नान कराये ।।३२।। गन्ध, पुष्प, दीपक से पूजाकर्म पूर्ण करे, चार कर्ष का एक पल होता है, ग्यारह पल से कमती उबटन का द्रव्य नहीं होना चाहिये ।।३३।। सुवर्ण, रत्न, पुष्प, सुन्दर सुगन्धि से युक्त नील उत्पल कमल तथा अनेक बेलपत्र ।।३४।। लाल और श्वेत कमल, जो मिल सकें कालीअगर की धूप, कपूर, घी, गुग्गुल ।।३५।। कपिला के घृत से सिद्ध हुए दीपक, कपूर की बत्ती, पंचब्रह्म षडंगादि पूजा के आवरण ।।३६।। और दूध युक्त गुड, घृत का बनाया चरु निवेदन कर लालकमल के पत्रादि से सुगन्धित जल करके ।।३७।। पांच सुगन्धियों से युक्त ताम्बूल, रत्नों से सिद्ध हुए अनेक भूषण ।।३८।। विचित्र सूक्ष्म नये वस्त्र दर्शन के योग्य गान और वाद्यादि के सहित देने चाहिये ।।३९।। और एक लाख संख्या युक्त मूलमन्त्र का जप करना चाहिये, एक बार से अधिक अर्थात् तीन बार से न्यून पूजा न करे, इससे अधिक फल होता है ।।४०।। इससे दस संख्या युक्त होम और प्रति द्रव्य में सौ से अधिक बार घोर रूप शिवजी का स्मरण मारण उच्चाटनादि में करना चाहिये ।।४१।। शिवलिंग और शिवाग्नि में शान्ति और पुष्टि में शान्ति युक्त प्रयोग करे ।।४२।। मारणादि कर्म में लोहे के स्रुवे बनाने चाहिये और शिवाग्नि में तथा अन्य प्रतिमाओं में सौम्य शरीर शंकरजी का स्मरण करे ।।४३।। शान्ति आदि में सुवर्ण के बनावे, दूर्वा, घृत, गौ के दूध में मिले हुए शहद करके घृत युक्त चरु और केवल दूध से ।।४४।। मृत्यु को जीतने के निमित्त हवन करे; रोग शान्ति के निमित्त तेल से हवन करे, घृत, जल अथवा केवल कमलों से ।।४५।। धन की इच्छा करनेवाला शान्ति के निमित्त हवन करे, वशीकरण में घृत और जाती (मालती) पत्तों से हवन करें ।।४६।। आकर्षण में घृत और करवीर (कनेर) फूलों से हवन करे; तेल से उच्चाटन और मधु से स्तम्भन करे ।।४७।। सरसों से भी स्तम्भन करे, लहसन से पातन, खर और ऊँट के रुधिर से ताडन करे ।।४८।। तिल से युक्त रोहि (रोहतक वृक्ष) के बीज में मारण और उच्चाटन करे, लांगल (नारियल) के तेल से विद्वेषण करे ।।४९।। रोहिबीज से बन्धन और सेना का स्तम्भन करे तथा लाल सरसों से मिले हुए सम्पूर्ण द्रव्यों से हवन करे ।।५०।। अभिचार में हाथ से यत्न द्वारा उत्पन्न किये तेल से हवन करे, कद्रूष नाम विशेष अनाज से और कपास की टेंट से ।।५१।। सरसों और तेल मिलाकर अभिचार में हवन करे; दूध से हवन करने से ज्वर की शान्ति और सौभाग्यफल मिलता है ।।५२।। मधु, घृत, दधि से युक्त होम सब सिद्धि का करनेवाला है, दूध, चावल अथवा केवल चरु से ।।५३।।

शान्ति और पुष्टि के निमित्त सात समिधाओं से हवन करे, विशेष द्रव्यों से होम ।।५४।। वशीकरण और आकर्षण श्रीलाभ में करे; बेलपत्र से हवन करने से शत्रु से जय प्राप्त होती है ।।५५।। शान्तिकार्य में ढाक और खैर की समिधा करे, निग्रह में करवीर, आक और कंटकारि की समिधा करे ।।५६।। शान्त होकर शान्ति और पुष्टिकर्म करे, अभिचार कर्म दया रहित और क्रुद्धचित्त होकर करना चाहिये ।।५७।। जो बहुत दुरावस्था में पड़ा हो और कोई प्रतिकार न हो सके तो आततायी (अग्नि देनेवाले, शस्त्रपाणि धनहारी क्षेत्र और स्त्री को हरनेवाले) को मारने में दोष नहीं होता है, इनके उद्देश्य से अभिचार करे, उसमें दोष न माने ।।५८।। परन्तु अपने देश के स्वामी पर अभिचार न करे; जो आस्तिक धर्मिष्ठ अथवा माननीय कोई हो ।।५९।। उसके ऊपर भी अभिचार न करे और आततायी इन गुणों से युक्त हो तो उस पर भी न करे; मन से, वचन से, कर्म से कोई शिवजी के भक्त हैं, उनके आश्रित हैं ।।६०।। तथा अपने राज्य के स्वामी के उद्देश्य से अभिचार करके शीघ्र ही पतित हो जाता है ।।६१।। इस कारण अपने राज्य के पालन करनेवाले और किसी शिवभक्त के ऊपर हिंसादि का उपचार न करे, जो अपना सुख चाहे सो ।।६२।। और भी किसी उद्देश्य से मारणादिक करके पश्चात्ताप से संयुक्त होकर प्रायश्चित्त करे ।।६३।। निर्धन मनुष्य बाणलिंग की मूर्ति को पूजे तो धनी होता है; अथवा स्वयं उत्पन्न हुए लिंग अथवा ऋषियों के स्थापित किये श्रुति प्रसिद्ध लिंग में ।।६४।। सुवर्ण रत्नादि से उनकी पूजा करने की शक्ति न हो तो मन से ही उन द्रव्यों की कल्पना करे ।।६५।। जो किसी अंश में असमर्थ और किसी अंश में समर्थ हो, तो वह अपनी शक्ति के अनुसार भी उस कार्य को करता हुआ उसके फल को प्राप्त होता है ।।६६।। जिस कर्म के अनुष्ठान करने से फल न दीखे तो वह दो या तीन बार करे तो अवश्य फल होगा ।।६७।। पूजा में उपयुक्त जो द्रव्य सुवर्ण रत्नादि हैं, वह सब गुरु को दे और पीछे से दक्षिणा भी दे ।।६८।। और यदि गुरु इच्छा न करे तो शिवजी के निमित्त निवेदन कर दे अथवा शिवजी के भक्तों को दे, दूसरों को न दे ।।६९।। और जो गुरु आदि की अपेक्षा न करके स्वयं कार्य साधन करे, सो भी इसी प्रकार आचरण करे; स्वयं उसको ग्रहण न करे ।।७०।। और जो लोभ से पूजाद्रव्य को स्वयं ग्रहण कर लेता है, वह मूर्ख अपने मनोरथ को नहीं प्राप्त होता, इसमें सन्देह नहीं ।।७१।। और देव (अर्चित किये लिंग) को नित्य स्वयं ग्रहण करे अथवा न करे, जो ग्रहण करे तो उस लिंग को नित्य स्वयं वा दूसरा पुरुष पूजा करता रहे; अर्थात् देवादि से अर्चित ज्योतिर्लिंग के द्रव्य ग्रहण करने में अपनी इच्छा है, ले अथवा न ले; पुरुषार्थ प्रबोध में लिखा है कि, ज्योतिर्लिंग के बिना जो दूसरे लिंग पूजे जाते हैं, उनके नैवेद्य और निर्माल्य भक्षण से तप्तकृच्छ्र व्रत करना चाहिये; बेरलिंग, स्वयं प्रादुर्भूत हुए लिंग अथवा चन्द्रकान्त हृदय के लिंग का नैवेद्य भक्षण करने से चन्द्रायण व्रत करे; स्वयम्भूलिंग, बाणलिंग, रत्ननिर्मित, सिद्धों के स्थापित किये लिंग में चण्ड को अधिकार

नहीं है, जहां चण्ड का अधिकार है, वहां मनुष्यों को भोजन करना उचित नहीं ।।७२।। जो क्लेश रहित इस कर्म को नित्य अनुष्ठान करता है, वह फलहीनता को प्राप्त नहीं होता, इससे उत्तम और क्या वार्ता होगी ?।।७३।। तो भी उद्देश्य से कर्म के द्वारा उत्तम सिद्धि को कहता हूं; शत्रु से आक्रान्त वा अनेक प्रकार की व्याधि युक्त होने से ।।७४।। और मृत्यु के मुख से भी प्राप्त होने से क्लेश रहित होकर छूट जाता है, कृपण राजा और दरिद्री कुबेरवत् हो जाता है ।।७५।। विरूप काम से प्राप्त होता है और वृद्ध तरुण हो जाता है, शत्रु मित्र होता है और विरोधी दास हो जाता है ।।७६।। अमृत विष होता है और विष अमृत हो जाता है, समुद्र स्थल और स्थल समुद्र हो जाता है ।।७७।। पर्वत गर्त और गर्त पर्वत हो जाता है, अग्नि सरोवर और सरोवर अग्नि हो जाता है ।।७८।। उद्यान वन और वन उद्यान हो जाता है, क्षुद्रमृग सिंह और सिंह क्रीड़ामृग हो जाता है ।।७९।। स्त्री स्वयं वश्या और लक्ष्मी सदा स्थिर रहती हैं; स्वच्छन्द जानेवाली वाणी हो जाती है और कीर्ति गणिका रूप हो जाती है अर्थात् सब जगह प्राप्त होती है ।।८०।। बुद्धि स्वच्छन्दचारिणी मन परम कठिन पदार्थ को भी विषय करनेवाला वज्रसूची सदृश हो जाता है, शक्ति महावात के सदृश हो जाती है, बल मत्तगज के सदृश हो जाता है ।।८१।। उद्योग युक्त शत्रु के पक्षवालों की क्रिया शान्त हो जाती है, शत्रुओं के मित्र उनका शत्रु हो जाते हैं ।।८२।। शत्रु मृतक के समान आचरण करते हैं और यही दशा जीते हुए उनके बन्धुओं की हो जाती है, निकट आया हुआ अरिष्ट दूर हो जाता है ।।८३।। सेवन किया अपथ्य भी रस रूप हो जाता है; रात–दिन करने से भी रति नवीन हो जाती है ।।८४।। अनागत वृत्तान्त भी हाथ में स्थित के समान हो जाता है, अणिमादिक सिद्धि इच्छा करते ही फलती है ।।८५।। बहुत कहने से क्या है ? सब कामादि की सिद्धि में इस कार्य के करने पर कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता है ।।८६।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे

ऐहिककर्मवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ।। ३२ ।।

*****

तेतीसवां अध्याय

उपमन्युजी बोले– इसके उपरान्त अब केवल परलोक में फल देनेवाली विधि को कहता हूं, जिसके समान त्रिलोकी में कोई दूसरा कर्म नहीं है ।।१।। अत्यन्त पुण्य से सम्पूर्ण देवताओं द्वारा अनुष्ठान किया विशेष ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र से अनुष्ठित ।।२।। इन्द्रादि लोकपाल, सूर्यादि नवग्रह, विश्वामित्र, वसिष्ठ, ब्रह्मवित् महर्षि ।।३।। श्वेत अगस्त्य, दधीचि तथा हम सरीखे दूसरे शिवभक्त, नन्दीश्वर, महाकाल, चण्डीशादि

गणेश्वर ।।४।। पातालवासी दैत्य, शेषादि महासर्प, सिद्ध, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, भूत, पिशाचों ने ।।५।। अपने–अपने पद प्राप्त होने के लिये इसका अनुष्ठान किया है, इस विधि से सब देवता देवत्व को प्राप्त हुए हैं ।।६।। ब्रह्माजी ब्रह्मत्व और विष्णुजी विष्णुत्व को प्राप्त हुए हैं, रुद्र रुद्रत्व और इन्द्र इन्द्रत्व को प्राप्त हुए हैं ।।७।। गणेशजी गणेशत्व को इसी विधि से प्राप्त हुए, श्वेत चन्दन जल से शिवजी के लिंग और शिवा को स्नान कराके खिले हुए श्वेत कमलों से उनको पूजकर प्रणाम करके ।।८।। उसमें लक्षण युक्त मनोहर पद्मासन करके ऐश्वर्य होने पर सुवर्णादि और रत्नादि वा अपनी शक्ति से ।।९।। केसर समूह के मध्य में कनीयस लिंग को स्थापन करके, अंगुठे के समान मनोहर सर्व गन्धमय मनोहर दक्षिण की ओर स्थापन करके बेलपत्रों से पूजित करे, दक्षिण ओर अगर और पश्चिम में मैनशिल ।।१०–११।। उत्तर में चन्दन और पूर्व की ओर के मुख पर हरिताल चढ़ावे, रम्य और विचित्र सुगन्धित फूलों से पूजन करे ।।१२।। धूप कालाअगर दे और गुगुल और सूक्ष्म विस्तृत उज्ज्वल वस्त्र प्रदान करे ।।१३।। पायस घी मिले घी के दीपक प्रदान करे, मन्त्र से सब निवेदन करके प्रदक्षिणा करे ।।१४।। प्रणाम और स्तुति करके देवेश में क्षमा करावे, सब पूजा की सामग्री लिंग को निवेदन करे ।।१५।। शिवा के निमित्त सब वस्तु शिवमन्त्र से प्रदान करे, दक्षिणामूर्ति का आश्रय करे, इस प्रकार जो नित्य पंचगन्धमय शिवजी का पूजन करता है ।।१६।। वह पाप से मुक्त होकर शिवलोक में जाता है, यह शिवलिंग का महाव्रत अति उत्तम और गुप्त है ।।१७।। आपकी भक्ति से आपको कहा है, यह जिस–तिस को नहीं देना चाहिये, शिवजी के भक्तों को देना चाहिये, ऐसा शिवजी ने कहा है ।।१८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे त्रय त्रिंशोऽध्याय: ।। ३३ ।।

*****

चौंतीसवां अध्याय

उपमन्युजी बोले– नित्य, नैमित्तिक और काम्यव्रत की सिद्धि कीर्तन की, वह सब शिवमूर्ति की प्रतिष्ठा से प्राप्त हो जाती है ।।१।। सब लोक लिंगमय और लिंग में ही सब प्रतिष्ठित है, इस कारण लिंग की प्रतिष्ठा से सब प्रतिष्ठित है ।।२ ।। ब्रह्मा, विष्णु वा रुद्र कोई हो, किसको लिंग की प्रतिष्ठा छोड़कर अपने पद में स्थिति हुई है ? ।।३।। प्रतिष्ठा के प्रति और क्या कारण कहे हैं ? क्योंकि शिवजी ने स्वयं विश्वेश्वरलिंग की प्रतिष्ठा की है ।।४।। इस कारण सब प्रयत्नों से दोनों लोकों के मंगल के निमित्त परमेश्वर की

लिंगमूर्ति स्थापन करे।।५।। श्रीकृष्णजी बोले-- यह लिंग क्या वस्तु है और शिवजी किस प्रकार लिंगी (लिंगयुक्त) हैं ? इसमें किस प्रकार लिंगभाव है और इसमें शिवजी किस प्रकार से पूजे जाते हैं ? ।।६।। उपमन्युजी बोले-- यह लिंग कारणरूप और तीनों गुणों की उत्पत्ति और लय का स्थान है; आदि और अन्त रहित संसार का उपादान कारण है।।७।। यही माया की आकाशात्मिका मूलप्रकृति है, इसीसे यह चराचर जगत् उत्पन्न हुआ है ।।८।। वह अशुद्ध तमोगुणी तिर्यक् पशु, पक्षी आदि, शुद्ध सात्विक देवादि, शुद्ध-अशुद्ध मिले हुए मनुष्य से तीन प्रकार का है और उसमें शिव, महेश्वर, रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा ।।९।। भूत और इन्द्रिय आदि उत्पन्न होकर शिवजी की आज्ञा से लीन हो जाते हैं; इस कारण शिवलिंगी हैं और लिंग को आज्ञा देनेवाले हैं ।।१०।। जिस कारण से कि, उनकी आज्ञा के बिना कोई कार्य करने को समर्थ नहीं होता और जिस कारण से कि, उत्पन्न हुए जगत् में उसीमें लय हो जाता है ।।११।। इसीसे उसकी लिंगता है और किसी प्रकार से नहीं, लिंग शिवजी का देह है; शिवा-शिव से वह अधिष्ठित है ।।१२।। इसी कारण उसमें पार्वती सहित शिवजी पूजे जाते हैं; देवी महादेवी और साक्षात् महेश्वर लिंगरूप हैं ।।१३।। उनके पूजन से उन दोनों का पूजन हो जाता है; परमार्थ से तो उनके लिंग का देह नहीं है ।।१४।। जिस कारण कि, वे दोनों शुद्ध हैं, फिर देह के उपचार से क्या है ? वे केवल पूजन के निमित्त हैं; वह लिंग ही परमात्मा शिवजी की परम शक्ति है ।।१५।। और शक्ति आज्ञा है; जो चराचर जगत् को उत्पन्न करती है, उसकी महिमा कोई सौ वर्ष में भी नहीं कह सकता ।।१६।। जिससे पहले ब्रह्मा और नारायण दोनों मोहित हो गये थे; पूर्व में जब त्रिलोकी की प्रलय हो चुकी थी ।।१७।। जब--जब जल में भगवान् विष्णुजी सुख से शयन करते थे; तब लोकपितामह ब्रह्माजी वहां अपनी इच्छा से आकर प्राप्त हुए।।१८।। और प्रसन्नता से सोते हुए विष्णुजी को देखा, तब ब्रह्माजी शिवजी की माया से मोहित होकर विष्णुजी से बोले ।।१९।। 'तुम कौन हो ?' यह कहकर क्रोध से (विष्णुजी पर प्रहार करके और उठाकर उन्होंने क्षणमात्र में) तीक्ष्ण हाथ के प्रहार से ताडित किया।।२०।। तब विष्णुजी ने शयन से उठकर ब्रह्माजी को देखा और मन में क्रोध करके बाहर बिना क्रोध के समान उनसे विष्णुजी ने कहा ।।२१।। हे वत्स ! तुम कहां से आये और क्यों व्याकुल हो ? यह विष्णुजी के प्रभुत्व गुणसूचक वचन सुनकर ।।२२।। रजोगुण से बैर करते हुए ब्रह्माजी फिर बोले-- मुझे तुम गुरु बनाकर शिष्य के समान वत्स यह कैसे बोलते हो ? ।।२३।। क्या मुझे नहीं जानते ? यह सब सृष्टि मैंने रची है; मैं प्रजापति हूं, अपने शरीर को तीन प्रकार करके मैं पालन करता हूं ।।२४।। और संहार करता हूं, मेरा स्रष्टा जगत् में कोई नहीं; यह कहने पर अविनाशी विष्णुजी ब्रह्माजी से बोले ।।२५।। मैं ही आदिकर्ता, हर्ता और पालन करनेवाला हूँ, तुम भी मेरे अविनाशी शरीर से प्रादुर्भूत हुए हो ।।२६।। मेरी आज्ञा से ही

तुमने अपनी आत्मा को तीन प्रकार से विभक्त करके तीन प्रकार से जगत् उत्पन्न किया; उत्पन्न करके रक्षा करते और फिर संहार करते हो ।।२७।। तुम नारायण जगन्नाथ को भूल गये, तुम अपने उत्पन्न करनेवाले पिता का (मेरा) ऐसा अपमान करते हो ।।२८।। इसमें तुम्हारा अपराध नहीं, तुम मेरी माया से भ्रान्त हो गये हो; मेरे प्रसाद से यह तुम्हारी भ्रान्ति शीघ्र जाती रहेगी ।।२९।। हे ब्रह्मा! तुम सत्य वचन श्रवण करो; मैं सम्पूर्ण देवताओं का ईश्वर हूं, कर्ता, भर्ता, हर्ता मेरे समान कोई समर्थ नहीं है ।।३०।। इस प्रकार ब्रह्मा और विष्णुजी का परस्पर विवाद होने लगा और महाभयंकर रोमहर्षण युद्ध हुआ ।।३१।। रजोगुण से बैर करके परस्पर मुष्टि आदि से युद्ध करने लगे, उन दोनों के अभिमान को दूर करने को ।।३२।। मध्य में ईश्वर का अद्भुत लिंग प्रादुर्भूत हुआ, जो सहस्रों अग्नि की ज्वालाओं से व्याप्त अप्रमेय, उपमा रहित ।।३३।। क्षय-वृद्धि से निर्मुक्त आदि, मध्य, अन्त से वर्जित था, उसकी सहस्रों ज्वालाओं से विष्णुजी तथा ब्रह्माजी मोहित हो गये ।।३४।। और युद्ध छोड़कर कहने लगे कि, यह क्या है ? तब वे दोनों यथार्थता जानने को समर्थ न हुए।।३५।। तब दोनों ने उसके अन्त की परीक्षा करने की इच्छा की ।।३६।। ब्रह्माजी ने हंस का आकार जो सुन्दर पक्षयुक्त था धारण किया और मन के समान वेगगामी होकर आकाश में चले ।।३७।। विश्वात्मा नारायण भी नीलअंजन पर्वत के समान वाराह रूप धारण करके पाताल में गये ।।३८।। इस प्रकार सहस्र वर्ष तक विष्णुजी नीचे को चले गये परन्तु वे उस लिंग का अन्त नहीं देख पाये ।।३९।। और उतने ही समय तक ब्रह्माजी ऊर्ध्वलोक तक चले गये और अन्त न पाया, तब शान्त होकर नीचे चले आये ।।४०।। उसी प्रकार भगवान् विष्णुजी शान्त और चेतनाहीन होकर महाक्लेश से फिर जल के ऊपर चले आये ।।४१।। तब फिर आकर परस्पर एक दूसरे को देखने लगे, शिवजी की माया से मोहित होकर कृत्य-अकृत्य का ज्ञान भूल गये ।।४२।। कभी पीछे, कभी आगे, कभी पार्श्व में स्थित होकर प्रणाम करके विचार करने लगे, कि यह क्या है ? ।।४३।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।। ३४ ।।

*****

पैंतीसवां अध्याय

उपमन्युजी बोले– तब उसमें से एक महाशब्द लक्षण नाद हुआ 'ओम्' एकाक्षर ब्रह्म का प्रतिपादक है ।।१।। परन्तु वह भी ब्रह्मा और विष्णुजी ने न समझा, रजोगुण, तमोगुण से उनका चित्त तिरस्कृत था ।।२।। फिर वह एक ही अक्षर चार प्रकार से विभक्त हुआ, 'अ उ म्' यह तीन और आधी मात्रा देखी ।।३।। इस लिंग के दक्षिण भाग में अकार स्थित था, उत्तर में उकार, मध्य में मकार ।।४।। और अर्द्धमात्रा का नाद लिंग के शिरोभाग में सुनाई दिया, उस प्रकार उस प्रणवरूप परमाक्षर के विभक्त होने पर ।।५।। उन दोनों देवताओं ने विभाग का अर्थ कुछ भी न जाना, वेदात्मा से व्यक्त होकर वह ओंकार विकार को प्राप्त हुआ ।।६।। उसमें अकार ऋग्वेद, उकार यजुर्वेद, मकार सामवेद और नाद अथर्व की श्रुति है ।।७।। समास से अपने आत्मा का अर्थ ऋक् में प्राप्त है, रजोगुण की मूर्ति में ब्रह्माजी की आदि क्रियामूर्ति है ।।८।। और उसकी आदि क्रियाओं में लोक में सृष्टि और उन तत्त्वों में अविनाशी आत्मा पंचब्रह्म में सद्योजात कलादि की और अध्व की निवृत्ति ।।९।। लिंग के दोनों भागों में विद्यमान तथा अधोभाग में बीजयोनि स्वरूप तीन कारणों में बीज स्वरूप है, चौंसठ गुणों के ऐश्वर्य जो अणिमादि में विद्यमान हैं ।।१०।। इस प्रकार दश अर्थों से युक्त ऋचा से यह जगत् व्याप्त है, इसी प्रकार यजु ने यह दस प्रकार से अर्थ को स्थापित किया है ।।११।। गुणों में सत्त्वगुण मूर्ति विष्णुजी, क्रियाओं में आदि क्रिया, लोक में स्थिति; तीनों तत्त्वों में विद्या ।।१२।। अन्तरिक्ष कलाध्व में प्रतिष्ठा और पंचब्रह्म में वामरूप लिंग के भोगों में मध्यभाग तीनों हेतुओं में योनिरूप ।।१३।। और प्राकृत ऐश्वर्य यह सब ऐश्वर्य यजुर्वेदमय हैं। इसी प्रकार साम ने दस प्रकार ने अपना अर्थ स्थापित किया ।।१४।। गुणों में तम, मूर्ति में रुद्र, क्रियाओं में आदि क्रिया, तीनों लोकों में संहार तत्त्वों में शिवतत्त्व ।।१५।। कलाओं में विद्याकला और अघोर तथा पंचब्रह्म में ब्रह्म स्वरूप है, लिंग भागों में पीठ और ऊर्ध्व तीन करण में बीज रूप ।।१६।। पौरुष और ऐश्वर्य इस प्रकार से साम से जगत् स्थित है, अथर्व ने प्रथम आत्मा का निर्गुण ऐश्वर्य कहा है ।।१७।। और महेश्वरी सदा शिवजी की मूर्तियों में कही है, परमात्मा शिवजी की क्रिया में निष्क्रिया ।।१८।। भूतों के ऊपर कृपा दृष्टि है, जिससे सब प्राणी मुक्त हो जाते हैं, लोक में भी जहां मन के रहित वाणी निवृत्त हो जाती है ।।१९।। उसके ऊपर उन्मन लोक से अलौकिक सोम लोक है, जहां सोम लोक में उमा के सहित ईश्वर नित्य निवास करते हैं ।।२०।। उसके ऊपर उन्मन लोक से जहां से जाकर यह प्राणी निवृत्त नहीं होता है; शान्त्यतीत में

शान्तिकलाओं में व्यापिका कला ।।२१।। और पंचब्रह्म में तत्पुरुष और ईशान लिंग के शिरोभाग में और भागों में नाद है ।।२२।। जहां आवाहन करके केवल निष्कल शिवजी आराधन किये जाते हैं, तत्त्वों में बिन्दु के और नाद से पराशक्ति के तत्त्व से भी परे ।।२३।। परमतत्त्व है; वास्तव में परमार्थ से तत्त्व रहित है, माया के कारण से तीनों कारण से परे है ।।२४।। अनन्त से और शुद्ध विद्या से और महेश्वरजी से परे सब विद्याओं के अधीश्वर सदाशिवजी से परे कुछ नहीं है ।।२५।। सब मन्त्रों के शरीरवाले देव तीन शक्तियों से युक्त जो पांच मुख, दश भुजा, साक्षात् कला रहित हैं ।।२६।। उससे परे बिन्दु और उससे परे अर्द्धइन्दू, उससे परे निशाधीश (अर्द्धचन्द्र), उससे परे नाद ।।२७।। उससे परे सुषुम्नेश, उससे परे ब्रह्मरन्ध्रेश्वर, उससे परे शक्ति, उससे परे शिवतत्त्व ।।२८।। उससे परे परमकारण साक्षात् स्वयं निष्कारण परम शिवजी हैं; कारणों के विधान करनेवाले, ध्येय अविनाशी के ध्यान करनेवाले ।।२९।। परम आकाश के मध्य में स्थित सम्पूर्ण ऐश्वर्य से सम्पन्न सर्वेश्वर जिनका कोई ईश्वर नहीं ।।३०।। मायिक ऐश्वर्य और मानुषादि अशुद्धि से पर-अपर से, त्याज्य से, अविशुद्ध मार्ग के गोचर होने से परे ।।३१।। शुद्ध विद्या, उससे परे उन्मना, उन्मादि में परम ऐश्वर्य अनादि है ।।३२।। अपार पराधीनता रहित, समानता रहित साम्य के अतिशय से स्थित दश अर्थों से युक्त अथर्व की श्रुति है ।।३३।। जिससे कि, यह अधिक है, इससे सब जगत् व्याप्त है, सो जानो। ऋग्वेद कहता है, कि मैंने जाग्रद्रूप को कहा है ।।३४।। जिस कारण से कि, मैं आत्मतत्त्व का नित्य कहनेवाला हूं। यजुर्वेद कहता है कि, मैं स्वप्नावस्था को कहता हूं ।।३५।। जिससे कि, भोग आत्मा की परिणति मुझ में सदा रहती है, साम कहता है कि, मैं सुषुप्ति का कहनेवाला हूं ।।३६।। कारण कि, शिवजी द्वारा मेरे तामसी अर्थ से यह कही जाती हैं। अथर्व कहता है कि, तुरीयातीत अवस्था मुझ से कही जाती है ।।३७।। इस कारण मैं अध्वतीत पदरूप हूं, अध्वात्मक जो त्रितयबिंब विद्यात्मक संज्ञावाला है ।।३८।। वह त्रैगुण्यातीत वेदों से साध्य है, पद की इच्छा करनेवालों को शोधन करना चाहिये, अध्वों से परे तुरीयातीत निर्वाण परमपद है ।।३९।। इससे परे निर्गुण होने के इस मार्ग का विशोधन हो जाता है, इन दोनों का प्रमाणक नाद है और नादान्त मेरा रूप ही है ।।४०।। इस कारण मेरे निमित्त स्वतन्त्रता से प्रधान परमेश्वर जो कुछ वस्तु है, वह सब गुण और प्रधान के योग से ।।४१।। सम्पूर्ण व्यस्त यह जगत् ॐ कार के ही अर्थ को कहता है, एक यही ब्रह्म का अक्षर सम्पूर्ण अर्थ का वाचक है ।।४२।। इसीसे सब जगत् का विस्तार करता हूं। इस प्रकार पहले शिवजी करते हैं, यह शिवजी प्रणवरूप और प्रणव शिवरूप है ।।४३।। वाच्य-वाचक का अत्यन्त भेद नहीं है, रुद्र को अभक्तजन ध्यान नहीं कर सकते, यह मन के सहित वाणी के अवाच्य होते हैं ।।४४।। उस वाच्य को प्राप्त न होकर इन्द्रियां निवृत्त होती हैं, वह एकाक्षर अकार ब्रह्माजी की आत्मा कहलाता है ।।४५।।

और एकाक्षर उकार से विष्णु कहलाता है, एकाक्षर मकार से वह शिवजी रुद्र कहलाते हैं।।४६।। महेश के दक्षिण अंग से ब्रह्माजी आत्मसंज्ञक उत्पन्न हुए हैं, वाम अंग से विद्यासंज्ञक विष्णुजी हुए।।४७।। शिवजी के हृदय से शिवसंज्ञक नीलरुद्र हुए हैं, सृष्टि के प्रवृत्त करनेवाले ब्रह्माजी मोहित और पालन करनेवाले विष्णुजी।।४८।। और संहार करने तथा दोनों को नियम में रखनेवाले रुद्र हैं।।४९।। इस कारण वह तीनों जगत् के कारण हैं, इन तीनों कारण के शिवजी परमकारण हैं।।५०।। इस अर्थ को बिना जाने रजोगुण के वशीभूत होकर बैर करके लड़ते हुए आप दोनों को ज्ञान देने को मध्य में लिंग उपस्थित हुआ है।।५१।। इस प्रकार ॐ में जो अथर्व ने कहा था, सो आपसे कहा। ऋक्, यजु, साम तथा उनकी सहस्रों शाखा।।५२।। वेदों में अपने मुख से स्वयं कही हैं, इस प्रकार प्रकट कहने पर भी स्वप्न के समान वाणी से उन वेदों को कुछ निश्चय न हुआ।।५३।। तब उनके ज्ञान देने और अन्धकार के दूर करने के निमित्त लिंग में यह सब बात *मुद्रित (अंकित) हो गई, जैसा कुछ वेदों ने कहा है।।५४।। तब उसको लिंग में मुद्रित देखकर शिवजी की कृपा से उन दोनों देवताओं का मन शान्त हुआ और ज्ञान हुआ।।५५।। तब लिंग के लिंगत्व और लिंगी की लिंगिता और लिंग में सम्पूर्ण जगत् और अपनी भी उत्पत्ति, प्रलय, षडध्व की यथार्थता उससे परे परमधाम और उस धामवाले पुरुष को।।५६।। जो सबसे उत्कृष्ट ब्रह्माजी निष्कल ईश्वर पशुपाश में इस प्रपंच के अधिपति।।५७।। सब ओर से भय रहित, वृद्धि–क्षय से हीन, अविनाशी, बाहर–भीतर व्याप्त, अभ्यन्तर वर्जित।।५८।। सबसे निरस्त निरन्तर, विश्वलोक से विलक्षण निर्देश से रहित वाणी और मन से परे।।५९।। प्रकाश स्वरूप एक रस शान्त प्रसन्न रूप, सदा उदित, सब कल्याण के स्थान, वैसे ही शक्ति से युक्त।।६०।। विरुपाक्ष देव को जानकर ब्रह्माजी और नारायण सिर पर हाथ धर, अंजली बांधकर, भयभीत होकर वचन बोले।।६१।। ब्रह्माजी बोले– हे देव! मैं ज्ञानी अथवा अज्ञानी कैसा ही हूं, आपने ही पहले मुझे निर्मित किया है, इस प्रकार भ्रान्ति को प्राप्त होकर कौन अपराध करेगा?।।६२।। हे प्रभो! आपके निकट होने पर मेरा अज्ञान स्थित रहे और अपने पराये कृत्य को निर्भय होकर कौन भाषण कर सकता है?।।६३।। हे देवदेव! हमारा विवाद भी शोभन है, जिससे फल देनेवाले आपके चरणों को प्रणाम के फल को प्राप्त हुए।।६४।। विष्णुजी बोले– भगवन्! जैसी आपकी महिमा है, उसकी स्तुति करने को हमारी वाणी समर्थ नहीं है, इस कारण आपके आगे मौनभाव करना व्यतिक्रम है।।६५।। इस संकट में अवसर के उचित क्या कृत्य करना है? सो कुछ भी न जानते हुए प्रलय में भी आपको स्मरण करते हैं।।६६।। जो आपने जगत् का कारणत्व दिया था, वह मैं आपकी माया से भूल गया; मोहित होकर जब कार्य किया तब आपने मुझको फिर शासन किया।।६७।।

*– मुद्रण का व्यवहार आदि सृष्टि में भी था, इससे यह सूचित होता है।

हे ईश्वर! बहुत कहने से क्या है? मैं इस समय भयभीत हो रहा हूं; जो मैं अपरिच्छेद्य रूप आपको परिच्छेद करने को युक्त हुआ हूं।।६८।। हे महादेव! आपको भीतों का दुःख दाह करनेवाला कहा है। हे शंकर! उस कारण आप मेरे अपराध दूर कीजिये।।६९।। जब उन दोनों ने शिवजी से इस प्रकार कहा, तब प्रसन्न होकर अनुग्रह करके देव उनसे बोले।।७०।। शिवजी बोले– हे वत्स! ब्रह्मा, विष्णु आप मेरी माया से मोहित हो गये हो, आपने स्वामीपन में अहंकार करके परस्पर बैरभाव किया।।७१।। और आपने युद्ध पर्यन्त विवाद किया कि, हम से अधिक कोई नहीं; इस कारण से जगत् के कारणभूत आपकी प्रजा सृष्टि उच्छिन्न हो गई।।७२।। आप दोनों के अज्ञानमान और विमति से यह हुआ, अब आप दोनों अपना मोह और दर्प दूर करो।।७३।। इस प्रकार लिंग के आविर्भाव की लीला करके आप दोनों को निवारण किया। तब भय, विषाद, लज्जा को सब प्रकार छोड़कर।।७४।। आप अभिमान रहित होकर यथायोग्य कर्म करो; पहले मेरी आज्ञा से सम्पूर्ण ज्ञानसंहिता।।७५।। जो कारणत्व सिद्धि के निमित्त मैंने आपको दी है, उसमें सूत्र नामक मन्त्ररत्न जो पंचाक्षरमय है।।७६।। वह जो मैंने आपको प्रदान किया था, क्या आप उसे भूल गये? परन्तु फिर भी मैं आपको यथापूर्व सब प्रदान करता हूं, मेरी आज्ञा से कार्य करो।।७७।। जिससे कि आप मेरी आज्ञा के बिना सृष्टि रक्षण में समर्थ नहीं, इस प्रकार महादेवजी ने उन ब्रह्माजी तथा नारायण के प्रति कहकर।।७८।। ज्ञानसंहिता के सहित उनको मन्त्रराज दिया, वह महान् और दिव्य महेश्वरी आज्ञा को प्राप्त होकर।।७९।। महार्थयुक्त मन्त्ररत्न और सम्पूर्ण कला को प्राप्त होकर महेश्वरजी के चरणारविन्द में प्रणाम करके।।८०।। आनन्द में मग्न होकर भय रहित हुए, इसी समय चित्ररूप इन्द्रजाल के समान ईश्वर का।।८१।। वह लिंग अन्तर्धान हो गया और उन्होंने न जाना कि, कहां गया? तब हाहाकार कर विलाप करके तत्काल प्रणय के भंग से कहने लगे कि, यह क्या हुआ? क्या असत्य है वा सत्य है? तब शिवजी का अचिन्त्य वैभव विचारकर व्यथा रहित हो गये।।८२-८३।। और परम मित्रता को प्राप्त होकर परस्पर आलिंगन करके जगत् के व्यापार के उद्देश्य से वह दोनों भी चले गये।।८४।। उस दिन से इन्द्रदि सम्पूर्ण देवता और असुर, ऋषि, नर, नाग, नारी विधिपूर्वक लिंग की प्रतिष्ठा और पूजन करने लगे।।८५।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे
लिगाविर्भावकथनं नाम पंचत्रिंशोऽध्यायः।। ३५।।

*****

छत्तीसवां अध्याय

श्रीकृष्णजी बोले– हे भगवन्! मैं पूजा की विधि श्रवण करने की इच्छा करता हूँ, जो बेरलिंग का विधान शिवजी ने कहा है ।।१।। उपमन्युजी बोले– अपने अनुकूल शुक्ल पक्ष का दिन प्राप्त होने पर शिवशास्त्र कें मार्ग में प्रमाण युक्त लिंग बनावे ।।२।। स्थान स्वीकार करके पृथ्वी की परीक्षा का विधान करे, लक्षण उद्धार पूर्वक दशोपचार करे ।।३।। उन दशोपचारों से पहले विनायक को पूजकर स्थान आदि करके लिंग को स्थान आलय में लावे ।।४।। कुंकुमादि से रंगी कंचन की शलाका से लक्षण युक्त चिह्न करके शिल्पशास्त्र के अनुसार लिखे ।।५।। आठ स्थानों की मृत्तिका जल से अथवा पंचामृत से पिंडिका के सहित पंचगव्य से लिंग को शोधकर ।।६।। दिव्य गंगाजलादि को पूजन करके फिर पिंडिका के सहित लिंग को लेकर अधिवासित करे ।।७।। जब स्थान जो सब शोभा से युक्त शुद्ध हो जाय, तब बन्दनबार और दर्भमालाओं से शोभित करे ।।८।। आठ दिग्गजों से सम्पूर्ण मंगल के द्रव्य युक्त होने और मंगलद्रव्य से दिक्पालों के पूजित होने पर ।।९।। धातु अथवा काठ का पद्मासन से अंकित बड़ा पीठकालय मध्य में स्थापन करे, बनावे ।।१०।। उसके चारों ओर भद्रादि द्वारपालों का पूजन करके सुभद्र, विभद्र, सुनन्द, विनन्द ।।११।। को स्नान कराके वेदी के साथ लिंग की पूजा करके चारों ओर वस्त्र के अंगोछे से लपेटकर ।।१२।। सहज में जल को पोंछकर पीठिका के ऊपर शयन करावे; सिर पूर्व की ओर, सूत्र नीचे की ओर, पिंडिका पश्चिम की ओर करके ।।१३।। वहां पर सम्पूर्ण मंगलसंयुक्त लिंग को स्थापित करे; पांच, तीन अथवा एक रात ।।१४।। लिंग की पूजा कर, फिर विसर्जन करके पूर्ववत् उठाकर उत्सव से पूजन करके फिर स्नान के स्थान में लावे ।।१५।। वहां भी मंगल के मध्य से शयन का स्थान करके शुद्ध जल से स्नान करके लिंग का पूजन करे ।।१६।। शुद्ध लिपी हुई पृथ्वी के ईशान की ओर कमल को लिखकर शिवकुम्भ का साधन करके उसमें आवाहन करके शिवजी का पूजन करे ।।१७।। वेदी के मध्य में विधान से श्वेतकमल की कल्पना कर पश्चिम की ओर चण्डिका कमल लिखे ।।१८।। रेशमी आदि वस्त्र, पुष्प वा दर्भ से शयन कल्पित करके सुवर्ण के उसमें पुष्प डाले ।।१९।। उसमें सब मंगल के बाजों से युक्त लिंग को लाकर दो लाल वस्त्र और कूर्च के सहित ।।२०।। चारों ओर से पिंडिका से लपेटकर शयन करावे; उसके दलों में यथाक्रम से आगे कमल लिखे ।।२१।। उसके मध्य में विद्येश्वर के कलशों को रखकर मध्य में शैवी और *वर्द्धनी के चारों ओर तीन

*– वर्द्धनी– नालसहित पात्र।

पद्मों को प्रदक्षिणा करके ब्राह्मणश्रेष्ठ हवन करे ।।२२।। और वे आठ मूर्तियां कल्पना की हुई पूर्वादि के क्रम से स्थित हैं, उनके निकट चार अथवा सब दिशाओं में जप करने और पाठ करनेवाले स्थित हों ।।२३।। वे जो ब्रह्मादिक चार मूर्तियां कल्पित की हैं, वे हवन करें और आचार्य उन सबसे प्रथम उनके आगे ईशान अथवा पश्चिम में ।।२४।। प्रधान होम सात द्रव्यों से यथायोग्य करे; आचार्य से आधे अथवा चौथाई दूसरे ब्राह्मण होम करें ।।२५।। परन्तु प्रधान होम एक आचार्य अथवा गुरु ही करे, पहले पूर्णाहुति से एक सौ आठ आहुतियां घृत की दे ।।२६।। और मूलमन्त्र से शिवजी के मूर्धास्थान में शिव हाथ को रखकर सौ, पचास अथवा पच्चीस आहुतियों से सात द्रव्यों से ।।२७।। हवन करके लिंग और वेदिका को बारंबार स्पर्श करके फिर पूर्णाहुति से हवन कर क्रम से दक्षिणा दे ।।२८।। आचार्य आधी वा चौथाई दक्षिणा दूसरे होताओं को दे और चौथाई शिल्पी को दे वा आधी दे, और उससे आधी यथाशक्ति सभा में दूसरे बैठनेवालों को अपनी शक्ति से दे ।।२९।। फिर श्वभ्र (छिद्रस्थान) में सुवर्ण वृष को बैठाकर अथवा कूर्च (आसन वा कुशमुष्टि) मैं बैठाकर मृत्तिका जल पंचगव्य और पवित्र जल से ।।३०।। शुद्ध करके चन्दन से लिप्त करके उस छिद्रस्थान में ब्रह्मशिला को रखे, फिर नौ शक्तियों के नाम से करन्यास करके ।।३१।। हरितालादि धातु, बीज, गन्ध, औषधि आदि करके शिवशास्त्र के विधान करके ब्रह्मशिला पर सब वस्तु डाले ।।३२।। क्षीर वृक्ष से उत्पन्न हुए प्रतिलिंग को स्थापन करके उसे स्थापन कर उसे स्थित जानकर और ब्रह्मशिला को भी ।।३३।। पहले कुछ जल छिड़ककर मूलमन्त्र से स्थापन करे और शक्ति का मूलमन्त्र उच्चारण करके उसके साथ पिंडिका को जड़कर ।।३४।। सुधादि लेप द्रव्यों से उसका बन्धन करके स्थान को शोधकर अर्घ्य और पुष्प देकर परदा डाल दे ।।३५।। फिर लिंग के सम्मुख यथायोग्य निषेकादि करके उस शयनस्थान से लाकर क्रम से कलशों पर रखे ।।३६।। फिर महापूजा आरम्भ करके दस कलशों का पूजन कर, शिवमन्त्रों को स्मरण करके शिवकुम्भ को जिस में जल भरा है ।।३७।। अंगूठे और अनामिका के योग से लाकर मन्त्र का उच्चारण करे और लिंग के मध्य में, ईशान भाग में मन्त्र का जाननेवाला उसे स्थित करे ।।३८।। उसमें विद्या, शक्ति और विद्येश का क्रम से न्यास करे, लिंग के मूल में शिवजल से लिंग को सींचे ।।३९।। वर्द्धनी पिंडिका से लिंग को फिर विद्येश के कलशों से अभिषेक करके पीछे आधारादि की कल्पना करे ।।४०।। पंचकल्प न्यास करके दीप्तलिंग को स्मरण करता हुआ हाथ जोड़कर पूर्व की ओर मुख करके खड़ा होकर शिवा-शिव को आवाहन करे ।।४१।। वृषराज के ऊपर चढ़कर विमान में वा आकाशमार्ग से देवी और देव को शृंगार करके आता हुआ स्मरण करे, सम्पूर्ण आभूषणों की शोभा से युक्त सम्पूर्ण मंगल के शब्दों से युक्त ।।४२।। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्रादि देवताओं को करके युक्त जिनके कि सम्पूर्ण अंग आनन्द से क्लिन्न हो रहे हैं और हाथ

जोड़े सिर झुकाये हैं ।।४३।। स्तुति, नमस्कार करते नृत्य करते हैं, इस प्रकार ध्यान कर पंचोपचार से पूजा करके समाप्त करे ।।४४।। इस पंचोपचार से अधिक कोई नहीं है, सब प्रतिमाओं की लिंगवत् पूजा करे ।।४५।। लक्षण उद्धार के समय नेत्रोन्मीलन करना चाहिये, जल में और शयन में प्रतिमाओं को अधोमुखी शयन करावे ।।४६।। कुम्भ के उदर में प्राप्त हुए मन्त्रों को उन प्रतिमाओं के हृदय में नियोजित करे, स्थान न बनाने से स्थान बनाना श्रेष्ठ कहा है, उससे प्रतिष्ठा विधि अधिक कही है ।।४७।। जब समर्थ हो तब बनवाकर प्रतिष्ठा विधि करे और जो असमर्थ हो तो लिंगमूर्ति को स्थापन करे वा बेर (मूर्ति) बनावे ।।४८।। पीछे शक्ति के होने पर शिवालय बनावे, ग्रहचर्या में फिर प्रतिष्ठा की उत्तम विधि कहेंगे ।।४९।। छोटा बेर (मूर्ति) अथवा लिंग का लक्षण से युक्त बनाकर उत्तरायण में शुक्ल पक्ष शुभ दिन में ।।५०।। सुन्दर वेदी बनाकर उसमें पूर्व तक कमल लिखे, पुष्पपत्रादि वहां बिखेरकर मध्य में घड़े को रखकर ।।५१।। उसके चारों ओर चारों दिशाओं में चार कलश स्थापन करे, पांच ब्रह्म के नाम उनके बीज पांच-पांच ।।५२।। स्थापित करे और पूजन करके मुद्रा दिखाकर रक्षा करे, मिट्टी जलादि से पूर्ववत् बेरलिंग को शुद्ध करके ।।५३।। उत्तर में स्थित सुन्दर आसन में फूलों से आच्छादित करके स्थित करे, पुष्प को सिर पर रखकर प्रोक्षणी के जल से प्रोक्षण करे ।।५४।। फिर जय शब्दादि फूलों से पूजन करके ईशान से विद्येश्वर तक के कुम्भों से मूलमन्त्र पढ़कर स्नान करावे ।।५५।। फिर पंचकला न्यास और पूर्ववत् पूजा करके वहां देवी सहित त्रिलोचन शिवजी की नित्य आराधना करे ।।५६।। इसी प्रकार मूर्ति से युक्त उस घट को दूसरे कमल में रखकर फिर सब पूजादि करे ।।५७।। और जो अत्यन्त दोष युक्त लिंग हो उसे शोधकर फिर स्थापन करे, दोष युक्त को प्रोक्षण करे और थोड़े दोष युक्त होने से यजन करे ।।५८।। जितने बाणसंज्ञक लिंग स्थापन करने योग्य हैं, वे स्थापित हों वा न हों, वह पहले ही शिवजी से संस्कृत हो चुके हैं ।।५९।। जो बाणवत् देखे जायँ वह भी स्थापन के योग्य हैं; जो लिंग स्वयं प्रादुर्भूत देवता तथा ऋषि द्वारा स्थापित किया हो ।।६०।। यदि पीठ से रहित हो, तो प्रोक्षण करके पीठ पर स्थित कर देना उचित है, उस पर स्थित करके यजन कराना प्रतिष्ठा की विधि करना उचित नहीं ।।६१।। दग्ध, विशीर्ण, क्षत अंगवाले लिंग को जलाशय में डाल देना चाहिये और जो सन्धान (जोड़ने) योग्य हो तो उसे जोड़कर प्रतिष्ठा विधि करे ।।६२।। बेर से वा विकल हुए लिंग से देवपूजा करके उद्वासन (विसर्जन) करके हृदय में संधान वा त्याग यथायोग्य करे ।।६३।। एक दिन पूजा का व्यतिक्रम हो जाय तो दूनी पूजा करे, दो रात होने पर महापूजा करे, फिर प्रोक्षण करे ।।६४।। मास से अधिक अनेक दिन जो पूजा न की जाय तो उसमें किसी ऋषि का मत है कि, प्रतिष्ठा करे, कोई कहते हैं प्रोक्षण करे ।।६५।। लिंगादि प्रोक्षण में देव को पूर्ववत् उद्वासन करके अथवा पांच बार मृत्तिका वा जल से स्नान करके ।।६६।। अथवा गायों के

दूध से वा कुशों के जल से शोधकर प्रोक्षणी के जल द्वारा एक सों आठ मूलमन्त्रों से शुद्ध करके ।।६७।। पुष्प कुशा युक्त हाथ लिंग के मस्तक पर रखकर मूलमन्त्र को पांच बार और एक सौ आठ बार जपे ।।६८।। फिर मूलमन्त्र से मूर्धा आदि पीठ पर्यन्त स्पर्श करे, फिर पूर्ववत् देव का आवाहन करके महापूजा करे ।।६९।। जब कि स्थापित लिंग न मिले तो शिवस्थान में अथवा जल में अग्नि, सूर्य अथवा आकाश में भगवान् शिवजी का पूजन करे ।।७०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे
लिंगवेरप्रतिष्ठासंप्रोक्षणादिविधिकथनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ।। ३६ ।।

*****

सैतीसवां अध्याय

श्रीकृष्णजी बोले– ज्ञान क्रिया और पूजा में संग्रह ग्रन्थों से सार लेकर जो आपने कहा वह वेदसम्मत मैंने श्रवण किया ।।१।। इस समय परम दुर्लभ योग के सुनने की इच्छा करता हूं; उसका सांगोसांग अधिकार, विधि, प्रयोजन ।।२।। जो योगाभ्यास के त्याग से विधिपूर्वक का किया मरण होता है; वह योग से साधन करने को समर्थ होता है, जिससे मनुष्य आत्महा नहीं होता ।।३।। उसके वह कारण और काल के कारण उसके भेद का तारतम्य यथायोग्य कहिये ।।४।। उपमन्युजी बोले– हे कृष्ण! सब प्रश्न के जाननेवाले आपने अच्छा प्रश्न किया, सो मैं क्रम से सब कहता हूं, आप सावधान होकर सुनिये ।।५।। अन्तर की वृत्तियों को रोककर शिवजी में ही निश्चल चित्त लगाने की जो वृत्ति है, उसीका नाम योग है, वह योग पांच प्रकार के हैं ।।६।। मन्त्रयोग, स्पर्शयोग, भावयोग, अभावयोग और महायोग सबसे परे है ।।७।। मन्त्र के अभ्यास से मन्त्र के वाच्यार्थ गोचर होकर जो मन की वृत्ति स्थिर हो जाती है, उसका नाम मन्त्रयोग है ।।८।। प्राणायाम युक्त वही मनोवृत्ति स्पर्शयोग कहलाता है, मन्त्रार्थ विचार अभाव में ही मन्त्र के जपमात्र लक्षणवाले प्राणायाम से रहित भावयोग कहलाता है ।।९।। जिस योग से सारा जगत् तिरोहित रूप हो जाता है, वह अभावयोग कहलाता है, कारण कि इसमें विद्यमान वस्तु का भी भान नहीं होता ।।१०।। एक उपाधि रहित शिवजी के तत्त्वमात्र के चिन्तन करनेवाली मनोवृत्ति जिसमें प्रपंच की उपाधि नहीं है, उसका नाम महायोग है ।।११।। योगाधिकार कहते हैं, देखने योग्य प्रजा, पशु आदि सम्पत्ति की प्राप्ति और वेद में सुने ज्योतिष्टोमादि स्वर्गसाध्य विपर्ययों में जिसका मन विरक्त है; उसीका योग में अधिकार है, दूसरे का नहीं ।।१२।। इस लोक के, परलोक के दोनों विषयों में

दोष को देखकर अर्थात् यहां के सुख भी शीघ्र नष्ट हो जाते हैं और परलोक के सुख भी एक दिन नष्ट हो जाते हैं, ऐसे ईश्वर के नियम विचार करने से मन शीघ्र विरक्त हो जाता है।।१३।। अष्टांग वा षडंग संक्षेप से योग के अंग कहे हैं, यम, नियम और स्वस्तिक आदि आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा, ध्यान और समाधि यह आठ अंग हैं।।१४–१५।। आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि यह संक्षेप से योग के छः अंग हैं।।१६।। शिवशास्त्रों में इनके पृथक्–पृथक् लक्षण कहे हैं, विशेष कर शिवशास्त्र में कामिकादि कर्म में वर्णन किये हैं।।१७।। योगशास्त्र तथा अन्य पुराणों में भी वर्णन किये हैं, इसमें हम संक्षेप से कहते हैं। योगियाज़वल्क्य गीता में लिखा है; यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि ये योग के अंग हैं, यम–नियम दस प्रकार के हैं, आसनों में आठ उत्तम हैं, उनमें तीन उत्तम हैं, प्राणायाम के तीन भेद और प्रत्याहार पांच प्रकार का है। धारणा पांच प्रकार और इसी प्रकार ध्यान है, उसमें तीन श्रेष्ठ हैं, समाधि एकरूप है, ऐसा कोई मुनि कहते हैं, सो विस्तार से सुनिये, हिंसा न करना, सत्य बोलना, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य अपरिग्रह (दान नहीं लेना), दया, ऋतुजा, क्षमा, धारणा परिमित भोजन, शौच करना यह यम कहलाते हैं और मन, वचन, कर्म से सदा सब प्राणियों में जो अहित करना है, वही हिंसा है; जिसमें सब प्राणियों को क्लेश होता है और जो हिंसा वेद में कही है, यदि वह अभिचारकर्म है तो वह हिंसा है, प्राणियों के हित का ही नाम सत्य है, सत्य भाषण ही का नाम सत्य नहीं। मन, वचन, कर्म से सब प्राणियों में सब प्रकार से मैथुन के त्याग का नाम ब्रह्मचर्य आश्रम में स्थित यती नैष्ठिक कहते हैं, ब्रह्मचर्य के होने से वह भी और वनवासी भी एक है, ब्रह्मचर्य विधि गृहस्थों को भी कही है, इस प्रकार करने से राजा और गृहस्थ भी ब्रह्मचारी कहे जा सकते हैं, कोई पण्डित कहते हैं कि, वैश्यावृत्ति करनेवालों को नित्य गुरु की सुश्रूषा करना ही ब्रह्मचर्य है, सब प्राणियों पर अनुग्रह करने का नाम दया है तथा दूसरे विहित कार्यों में मन, वचन, कर्म का प्रवृत्ति में निवृत्ति एकरूप रहने का नाम आर्जव है; जो प्रिय–अप्रिय में समान रहते हैं, वही योगियों ने क्षमा कही है, अर्थ हानि, बन्धुवियोग, सम्पदा की प्राप्ति इनमें सर्वत्र चित्त के स्थापन का नाम धृति है। मुनियों को आठ ग्रास और वनवासियों को सोलह ग्रास, गृहस्थों को और ब्रह्मचारियों को यथेष्ठ खाना चाहिये, बाह्य आभ्यान्तर के भेद से शौच दो प्रकार का है, मृत्तिका जल से बाह्य और भावशुद्धि से अन्तर पवित्रता होती है, धर्म और अध्यात्म विद्या से मन की शुद्धि होती है; तप, सन्तोष, आस्तिक्य, दान, ईश्वर का पूजन, सिद्धान्त श्रवण, लज्जा, बुद्धि, जप, व्रत ये नियम हैं, इनको पृथक्–पृथक् सुनिये। विधि अनुसार कृच्छ्रचान्द्रायणादि करके शरीर को सुखाने का नाम तप है, यदृच्छा लाभ से ही मेरी पूर्ति होगी, ऐसी बुद्धि का नाम ऋषियों ने सन्तोष कहा है, जिसका धर्माधर्म में विश्वास हो उसे आस्तिक कहते हैं, न्याय से

उत्पन्न किया जो दया से किसी को दिया जाता है और अर्थियों को श्रद्धा से दिया जाता है उसका नाम दान है, जो स्वभाव से थोड़ा या बहुत शक्ति अनुसार भक्ति से किया जाये वही ईश्वर पूजन है, जो राग और ममता, दृष्टता आदि हिंसा से रहित कर्म किया जाता है वह तप ईश्वर पूजन है, सिद्धान्त, श्रवण, वेदान्त श्रवण का नाम है, क्षत्रिय को भी ब्राह्मणों के समान सिद्धान्त श्रवण करना उचित है; शील सत्पुरुषों के आचरणवाले वैश्यों को भी यही उचित है, स्त्री और शूद्रों को अपने धर्म में स्थित तपस्वियों के सिद्धान्त सुनना और पुराण सुनना कहा है, वैदिक लौकिक मार्ग में जो कल्पित कर्म हैं, उसमें जो लज्जा है कि मैंने कुछ नहीं किया, यही है, विहित मार्गों में श्रद्धा से मति होती है, यही मति है, जिसमें गुरु का उपदेश भी वेदबाह्य स्वीकार नहीं किया है, विधिमार्ग से मन्त्राभ्यास का नाम जप है, वेद–वेदांग, पुराण, इतिहास पढ़ने पर जो अध्ययन है, वह मन्त्र का अभ्यास जप कहलाता है, जो प्रसन्न होकर गुरु ने उपदेश किया है, उनकी अनुज्ञा से धर्म पूर्वक अपनी सिद्धि का निमित्त उपाय के ग्रहण करने का नाम व्रत है, इस प्रकार औरों के लक्षण भी शिवसंहिता आदि योग ग्रन्थों में देख लेना, हिंसा न करना, सत्य बोलना, चोरी न करना, देह यात्रा के बिना भोग साधन का स्वीकार न करना, इस पंचावयव नव योग को बुद्धिमानों ने यम कहा है ।।१८।। शौच, तुष्टि, जप, तप, ईश्वर अर्पण के निमित्त कर्म का करना। इस प्रकार अपने अंश के भेद से नियम पांच प्रकार के हैं ।।१९।। स्वस्तिक, पद्म, अर्द्धेन्दु, वीरासन, योग प्रसाधित (अत्यन्त अभ्यास किया हुआ) यथेच्छा अपनी इच्छा से, कोई एक आसन का अभ्यास करे। इस प्रकार आसन आठ प्रकार के कहे हैं। जानु, उरु के मध्य में दोनों चरणों के तलुओं को करके सीधा देह करके बैठ जाय वह स्वस्तिकासन है। दाहिने चरणों में बाईं ऊरु को स्थित करके फिर बायें पैर की ऊरु पृथ्वी पर धर के स्थित होने का नाम वीरासन है। अर्द्धेन्दु अर्द्धचन्द्राकृति होता है। वाम ऊरु के ऊपर दक्षिण चरण स्थापन करके बायाँ चरण दक्षिण ऊरु के ऊपर स्थापन करके दक्षिण हाथ पीठ की ओर कर वाम ऊरु के ऊपर स्थित चरण के अंगुष्ठ को ग्रहण कर तथा वाम हाथ को पृष्ठभाग में करके दक्षिण ऊरु के ऊपर स्थित बायें चरण के अंगूठे को ग्रहण कर हृदय के समीप ठोडी धर के नासिका के अग्रभाग को देखे, यह पद्मासन है, इसी प्रकार मयूरासन, सिद्धासन, सिंहासन, भद्रासन के भेद योग के ग्रन्थों में लिखे हैं ।।२०।। अपने देह से उत्पन्न हुई जो वायु श्वास–प्रश्वास रूप है, उसकी गति रोकने का नाम प्राणायाम है, वह रेचक, कुम्भक और पूरक भेद से तीन प्रकार का है ।।२१।। नासिका के एक पुट को (इडा) अंगुली से बन्द करके दूसरे स्वर पिंगला में से उदर की वायु निकालने का नाम रेचक है ।।२२।। और बाह्य पवन से वायु को जो हृदय में दूसरे नासापुट से पूरण करना है, वह पूरक प्राणायाम है ।।२३।। अन्तर और बाहर स्थित वायु को जब न ग्रहण किया जाता है न

त्याग किया जाता है, घट के समान अचल होता है, उसीका नाम कुम्भक है ।।२४।। यह रेचकादि करने में न बहुत विलम्ब करना चाहिये न शीघ्रता करे, क्रमयोग से उद्यत होकर साधक इसका अभ्यास करे ।।२५।। नाडीशोधन पूर्वक रेचकादि के अभ्यास करने में अपनी इच्छा जहां तक हो, वहां तक यह उपक्रम करता रहे, न शीघ्रता करे, न विलम्बता करे, ऐसा योगशास्त्र में कहा है ।।२६।। पहले छोटा फिर बड़ा इस क्रम से प्राणायाम करे, वह मात्रा गुण के विभाग से चार प्रकार का है ।।२७।। सुकृत उद्धात है, (अर्थात् प्राणवायु से अपान के ताडित होने पर नाभिमूल से प्रेरित वा सिर पर्यन्त ताडित होना इसका नाम उद्धात है) यह बारह मात्रावाला है और कनीय प्राणायाम है, इसके विरुद्ध चौबीस मात्रा का मध्यम प्राणायाम होता है ।।२८।। तीन उद्धात युक्त छब्बीस मात्रा का प्राणायाम उत्तम कहलाता है; स्वेद कम्पादिक को उत्पन्न करनेवाला चौथा प्राणायाम है, यही बात पातञ्जल के पाद २ के सूत्र ४९ में कही है; जिसमें श्वास-प्रश्वास वायु के गमन का अभाव हो वह प्राणायाम बाह्य है, जहां वायु के अन्तर्गमन का अभाव हो सो आभ्यन्तर जहां दोनों का स्तम्भ हो उसे स्तम्भवृत्ति कहते हैं, जैसे अग्नि में पड़े उपले पर जल डालने से वह संकुचित होता है; वैसे ही इसमें दोनों का स्तम्भ हो जाता है, सो अभ्यास किये पुरुष से हो सकते हैं; यही उसका विषय है; इसे देशपरिदृष्ट कहते हैं; यही इसका लक्षण है; इसे कालपरिदृष्ट कहते हैं, जितने श्वास-प्रश्वासों का प्रथम उद्धात है; उतने ही ग्रहण किये का दूसरा और उतने ही ग्रहण किये का तीसरा है, ऐसे ही मृदु, मध्य और तीव्र है; जहां ऐसा विचार हो उसे संख्या परिदृष्ट कहते हैं (बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः), जो दीर्घ-सूक्ष्म से भिन्न हो और जिसमें श्वास-प्रश्वास की गति का रोध हो जाय, वह चौथा है ।।२९।। इसमें आनन्द की प्राप्ति, रोमांच, नेत्रों में आंसू निकलना, जल्प भ्रमण, मूर्च्छा आदि योगी को होते हैं ।।३०।। न शीघ्रता से, न देर से, जानु के चारों ओर हाथ घुमाकर जितनी देर में चुटकी बजाई जाय उसका नाम मात्रा है ।।३१।। मात्रा क्रम से उद्धात क्रम जानने चाहिये और प्रथम नाड़ी शोधकर फिर प्राणायाम करे ।।३२।। अगर्भ और सगर्भ भेद से प्राणायाम दो प्रकार का है, जप ध्यान के बिना अगर्भ और जप ध्यान से संयुक्त सगर्भ है ।।३३।। अगर्भ से गर्भ संयुक्त प्राणायाम सौ गुणा अधिक है, इस कारण योगी सगर्भ प्राणायाम कहते हैं ।।३४।। प्राण के विजय से दस वायु जीते जाते हैं प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान ।।३५।। नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय यह दस वायु हैं; प्रयाण करता है, इससे इसको प्राण कहते हैं ।।३६।। जो कुछ भोजन किया जाता है, उसको नीचे ले जाता है, इससे उसको अपान कहते हैं, शरीर के अंग को व्याप्त करता है, इससे उसे व्यान कहते हैं और शेष को बढ़ाता हुआ ।।३७।। मर्मस्थानों को उद्वेजित करता है, इससे उदान कहलाता है, सब अंग को समान करने से समान कहलाता है ।।३८।। मुख से किसी वस्तु को उद्गार करनेवाला नाग, उन्मीलन

में कूर्म खांसी (छींक) में कृकल और जंभाई देवदत्त से होती है ।।३९।। धनंजय पोषक पवन सर्वव्यापी है, वह मृतक को भी त्याग नहीं करता, क्रम से अभ्यास किया हुआ प्रमाण युक्त प्राणायाम ।।४०।। सम्पूर्ण दोष भस्म करके कर्ता के देह की रक्षा करता है, सम्यक् प्रकार से प्राण जय होने पर उनके चिह्नों से देख ले ।।४१।। विष्ठा और मूत्र श्लेष्मा की अल्पता होती है, बहुत भोजन की सामर्थ्य और विलम्ब से श्वास आता है ।।४२।। लघुता, शीघ्रगामीपन, उत्साह, स्वर की मधुरता, सम्पूर्ण रोगों का क्षय, बल तेज स्वरूप ।।४३।। धृति, बुद्धि, तरुणाई, स्थिरता होती है; प्रसन्नता तप पाप का क्षय यज्ञ दान व्रतादिक ।।४४।। यह प्राणायाम की सोलहवीं कला भी तो नहीं है; जिस समय इन्द्रिय प्रसन्न होकर अपने-अपने विषयों में लगें ।।४५।। उनको उन विषयों से हटाकर ग्रहण करने का नाम प्रत्याहार है, मन को आदि लेकर इन्द्रिय ।।४६।। ग्रहण की हुई स्वर्ग और नरक के निमित्त होती हैं, इस कारण सुख की इच्छा करनेवाला बुद्धिमान् ज्ञानवैराग्य में स्थित हा ।।४७।। इन्द्रिय रूपी घोड़ों को रोककर आत्मा से आत्मा का उद्धार करे; चित्त के स्थित करने का नाम धारणा है, योगसूत्र में (देशबन्धश्चि-त्तस्य धारणेति) ऐसा लिखा है ।।४८।। स्थान एक शिवजी ही है, दूसरा नहीं, कारण कि और में दोष हैं, समय की अवधि करके स्थान में मन को स्थिर करके ।।४९।। शिव रूपी लक्ष्य से पृथक न होने दे जो लक्ष्य से भ्रष्ट नहीं होती, वही धारणा है, अन्यथा नहीं, धारणा से प्रथम मन की स्थिरता होती है ।।५०।। इस कारण बुद्धिमान् धारणा अभ्यास के योग से मन को रोके, ''ध्यै-चिन्तायाम्'' धातु से ल्युट् प्रत्यय करने से व्याकरणशास्त्र में ध्यान बनता है, इससे बारंबार शिवजी का ध्यान करे ।।५१।। एकाकार वृत्ति करके शिवजी में स्थित चित्त का प्रत्ययान्तर रहित प्रवाह का नाम ध्यान है, योगसूत्र में (तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानमिति) नाभि आदि स्थानों में देह के अवलम्बन ज्ञान की जो स्थिरता और दूसरे ज्ञान का प्रभाव होता ध्यान है, याज्ञवल्क्य ने कहा है, जगत् के कारण अव्यक्त प्रकाशमान महापराक्रमी उनको मन से देखकर सोहं वृत्ति करना उत्तम ध्यान है, अथवा पर्यंक आसन करके शरीर को शिथिल करके, स्वयं शिवनासा के अग्रभाग में दृष्टि लगाकर निराकार परम शान्त परमात्मा ईश्वर के नीरूप अमृत को भौं के बीच में ध्यान करे और सबको छोड़कर एक कल्याणदायक शिवजी का ही ध्यान करे ।।५२-५३।। ''परः शिवः ध्येयः ।'' परम शिवजी ही ध्यान के योग्य हैं, इस अर्थ में अथर्व श्रुति समाप्त हुई है, वह शिवा-शिव सबके स्वामी सबमें प्राप्त सबमें उदय रूप ।।५४।। सर्वज्ञ निरन्तर ध्यान योग्य अनेक रूप के भेद से अनेक होकर भी एक हैं ।।५५।। विमुक्ति प्रत्ययवाले और अणिमादि प्रत्ययवाले यह दो प्रकार के प्रत्यय के ध्यान के प्रयोजन कहे हैं ।।५६।। ध्याता (ध्यान करनेवाला) ध्यान, ध्येय (जिसका ध्यान किया जाय) और जो ध्यान का प्रयोजन है, यह चारों वार्ता जानकर योग जाननेवाले योग करें ।।५७।। ज्ञानवैराग्य से सम्पन्न, श्रद्धा

क्षमा से युक्त, ममता रहित, सदा उत्साहवान् ध्यान करनेवाला पुरुष होता है ।।५८।। यह ध्यान करनेवाले के लक्षण कहे, जप से थक जाय तो ध्यान करे, ध्यान से थक जाय तो फिर जप करे, जप–ध्यान से युक्त पुरुष को शीघ्र ही योग सिद्ध हो जाता है ।।५९।। बारह प्राणायाम की धारणा और बारह धारणा का ध्यान होता है और बारह ध्यान की समाधि होती है ।।६०।। समाधि योग का अन्तिम अंग है, समाधि से ही सर्वत्र प्रज्ञान का प्रकाश होता है (समाधि का लक्षण कहते हैं) ।।६१।। ध्याता में ध्येय के स्वभाव का आवेश हो जाता है, उसे समाधि कहते हैं, अर्थात् अर्थमात्र स्वभाव से निर्भास नाम होता है और वात रहित सागर के समान स्थित हो जाता है, ध्यान और समाधि में यह भेद है कि, ध्यान में ध्यातृ देह ध्यान की त्रिपुटी का ज्ञान बना रहता है, किन्तु समाधि में नहीं रहता; प्रश्न– तो संप्रज्ञात योग और समाधि में क्या भेद है ? उत्तर– समाधि रूप का अंगांगि योग सम्बन्ध है और संप्रज्ञात योग से साक्षात्कार के उदय होने से समाधि के अगम्य विषय भी प्रतीत होते हैं; योगसूत्र में (तदेवार्थ मात्र निर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः) जिसमें ध्यान का संस्कार मात्र रह जाय और स्वरूपशून्य सा प्रतीत हो उसे समाधि कहते हैं; स्वरूपशून्य के समान भाव होना, जैसे स्वच्छ स्फटिकमणि कुसुम आदि के योग से उसी रूप की प्रकाशित होती है; तद्वत् ध्यायमात्र की स्फूर्ति रहती है और यही दीर्घकाल तक रहने से संप्रज्ञात योग कहलाता है; देहस्फूर्ति शून्य का नाम असंप्रज्ञात है, याज्ञवल्क्य ने कहा है जीवात्मा परमात्मा की एक अवस्था का नाम समाधि है ।।६२।। ध्येय में मन लगाकर स्थित होकर समाधि में स्थित हुआ योगी निर्वाण अग्नि में स्थित के समान हो जाता है ।।६३।। उस समय न वह सुनता है, न सूंघता है, न रस लेता है, न देखता है, न स्पर्श को जानता है, न मन में संकल्प करता है ।।६४।। न कुछ मानता है, काष्ठवत् स्थित होता है, इस प्रकार शिवजी में आत्मा लीन हो जाने से समाधि में लीन हो जाने से समाधि स्थित कहा जाता है ।।६५।। जिस प्रकार पवन रहित स्थान में धरा हुआ दीपक कभी भी कम्पित नहीं होता है, इसी प्रकार समाधि में स्थित हुआ कभी अपने स्थान से चलायमान नहीं हो सकता ।।६६।। इस प्रकार योगी उत्तम योग का अभ्यास करते हैं, तब उसमें अन्तर करनेवाले उनके सब विघ्न शनैः–शनैः नष्ट हो जाते हैं।।६७।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे

त्रयत्रिंशोऽध्यायः ।। ३७ ।।

*****

अडतीसवां अध्याय

उपमन्युजी बोले– आलस्य, तीक्ष्ण व्याधि, प्रमाद, स्थानसंशय, अनवस्थित चित्त होना, अश्रद्धा, भ्रान्ति दर्शन, ।।१।। दुःख, दुर्मनस्कता, विषयों में चंचलता योग करनेवालों को यह दस विघ्न उपस्थित होते हैं ।।२।। आलस्य और शिथिलता मल बल योगियों के देह और चित्त का है, धातु की विषमता से उत्पन्न हुए दोष और कर्म के दोष से व्याधि होती है ।।३।। योग साधना के अभाव का नाम प्रमाद है, वह ध्येय है, अथवा यह इस प्रकार आकार के विरुद्ध दो कोटि के ज्ञान का नाम संशय है ।।४।। मन अप्रतिष्ठा ही का नाम अनवस्थिति है, अश्रद्धा भाव से रची हुई वृत्ति योगमार्ग में ।।५।। विपरीत मति का ही नाम भ्रान्ति है, पुरुषों को अज्ञान से उत्पन्न हुआ दुःख है और चित्त से उत्पन्न हुआ दुःख आध्यात्मिक कहलाता है ।।६।। आधिभौतिक दुःख पूर्वकर्म के अनुसार शरीर से उत्पन्न होता है, शस्त्रविषादि से उत्पन्न हुआ दुःख आधि कहलाता है ।।७।। इच्छा के विघात से उत्पन्न क्षोभ दुर्मनता कहलाती है, विचित्र विषयों में चंचलता का नाम विभ्रम है ।।८।। योगासक्त योगी के इन विघ्नों के शान्त होने पर सिद्धि के सूचक दिव्य प्रतिभादि उपसर्ग होते हैं ।।९।। प्रतिभा (अर्थात् सूक्ष्मादि अर्थों में यथायोग्य स्वरूप का भान) श्रवण, वार्ता, सब वस्तु का दर्शन, आस्वाद, वेदना यह छः उपसर्ग योग के व्यय होने से शक्ति का ह्रास करनेवाले हैं ।।१०।। सूक्ष्म को व्यतीत होने में जब विप्रकृष्टता की प्राप्ति होती है उसको प्रतिभा कहते हैं, जिसमें अर्थ का यथायोग्य प्रकाश होता है ।।११।। सब शब्दों का श्रवण श्रवणत्व के प्रयत्न से होता है, सब देहधारियों की बातों का ज्ञान होने का नाम वार्ता है ।।१२।। और बिना प्रयत्न दिव्य दर्शन का नाम दर्शन है, सम्पूर्ण दिव्य रसों के आस्वाद को स्वाद कहते हैं ।।१३।। सम्पूर्ण स्पर्शों के जानने का नाम वेदना है, इसी प्रकार सम्पूर्ण दिव्य गन्धों के ज्ञान का नाम वेदना है; उस पुरुष को ब्रह्मलोकादिक के अधिपति ।।१४।। प्राप्त होकर अनेक रत्नों को देते हैं, उसके मुख से अनेक प्रकार की स्वच्छन्द और मधुर वाणी प्रवृत्त होती है ।।१५।। सब रसायन और दिव्य औषधियां उसको सिद्ध होती हैं, तथा प्रणाम कर देवांगना रसायनादि देती हैं ।।१६।। योगसिद्धि के एक देश ही देखने पर जिसकी मति मोक्ष में हो जाती है, यह जिस प्रकार मैंने देखा है, उसी प्रकार मुक्ति हो जाती है ।।१७।। कृशता, स्थूलता, बालकपन, वृद्धि, यौवन, नानाजाति का स्वरूप चार विधि से देह धारण करना ।।१८।। और पार्थिव अंश के बिना नित्य मनोहर गन्ध का संग्रह करना, इस प्रकार पिशाच (पिशाचों के अधिपति से भुज्यमान) पार्थिवपद के आठ गुण कथन किये हैं ।।१९।। जल में निवास, भूमि से

निकलना और इच्छा करने से समुद्र के पान करने में भी सामर्थ्य होनी ।।२०।। जहां इस जगत् में जल की इच्छा करे वहीं जल का दर्शन होना, बिना घड़े के हाथ में जल का आ जाना ।।२१।। और जो विरस वस्तु को भी खाने की इच्छा करे तो तत्काल उसमें विलक्षण रस हो जाता है, जल तेज और वायु का देह धारण कर सकता है ।।२२।। अथवा छिद्र रहित पार्थिव शरीर धारण कर सकता है, यह सोलह अद्भुत गुण जल के ऐश्वर्य के हैं ।।२३।। शरीर से अग्नि निकालनी और अग्नि के ताप का भय न होना, जो चाहे तो प्रयत्न के बिना ही जगत् को भस्म कर दे ।।२४।। अग्नि का स्थापन वा अपने हाथ में अग्नि का धारण जगत् को जलाकर फिर ज्यों का त्यों कर देना, मुख में ही अन्नपानादि का पचा जाना, तेज और वायु से शरीर निर्माण करने की सामर्थ्य होनी और ऐश्वर्य युक्त होना ।।२५।। यह चौबीस प्रकार का तेज कहलाता है, सो उसे होता है, मन के समान वेग होना, क्षणमात्र में प्राणियों के अन्तःकरण में प्रविष्ट हो जाना ।।२६।। बिना प्रयत्न के पर्वत का महाभार धारण कर लेना, गुरुत्व लघुत्व हो जाना, हाथ में पवन को धारण कर लेना ।।२७।। अंगुली के अग्रभाग रखते ही पृथ्वी को कम्पित कर देना, एक वायु से ही शरीर धारण करना, भोग और तेज से युक्त होना ।।२८।। यह पवन के बत्तीस गुण ऐश्वर्य बुद्धिमानों ने कहे हैं। आकाश के ऐश्वर्य कहते हैं– छाया की हीनता होनी, विनिष्पति (असमाप्ति), इन्द्रियों का दर्शन न होना ।।२९।। यथेच्छा आकाश में चला जाना, इन्द्रिय का अर्थ में समन्वय करना, आकाशलंघन व अपने देश में उसका निवेश करना ।।३०।। आकाश को पिंडीभूत कर लेना, अशरीरपना पवन के ऐश्वर्य से युक्त महान् चालीस गुण युक्त ।।३१।। इन्द्र का ऐश्वर्य आकाश का ऐश्वर्य कहलाता है। चन्द्र ऐश्वर्य– यथा काम प्राप्ति और यथा काम सिद्धि ।।३२।। सम्पूर्ण गुह्य अर्थों का दर्शन होना, सबका अभिभव होना, कर्म के अनुसार किसी का निर्माण वशिता प्रियदर्शनता ।।३३।। संसार का दर्शन, इन्द्रभोगों के सहित प्राप्ति यह चन्द्रमा का ऐश्वर्य मनोमय गुण से अधिक ४८ गुण हैं ।।३४।। प्रजापति ऐश्वर्य– छेदन, ताडन, बन्ध, मोक्ष, संसार वशवर्ती सब प्राणियों का ग्रहण ।।३५।। सबके ऊपर प्रसन्नता, मृत्यु और काल का जय करना; अभिमान युक्त प्रजापति का कहा है ।।३६।। यह चन्द्रमा के भोगों से छप्पन्न गुण अधिक हैं, संकल्पमात्रा से ही सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और लय कर सकता है ।।३७।। सब प्राणियों के चित्त में अपना अधिकार प्रवृत्त कर सकता है और सबसे पृथक् ही जगत् की उत्पत्ति कर सकता है ।।३८।। शुभ–अशुभ के करने में समर्थ, प्राजापत्य के ऐश्वर्य से संयुक्त है, ६४ गुण युक्त ब्रह्माजी का ऐश्वर्य कहलाता है ।।३९।। इस बुद्धि से किये ऐश्वर्य को प्राकृत ऐश्वर्य कहते हैं, उसीसे परे गुणमय वैष्णवतत्त्व कहा है; उसीका यह तत्त्व भुवनमय स्थित है, यह सम्पूर्ण ब्रह्माजी के गुण जानने को दूसरा समर्थ नहीं है ।।४०।। उनका पुरुषार्थ गुण युक्त है, उससे परे गणेश पद है,

उसे किंचित विष्णुजी जानते हैं, दूसरा कोई नहीं जानता ।।४१।। सम्पूर्ण ज्ञानसिद्धि उपसर्ग युक्त हैं, उनको प्रयत्न और परम वैराग्य से रोकना चाहिये ।।४२।। और जिसका चित्त प्रतिभा आदि अशुद्ध गुणों में लगा है उसको अव्यय सार्वकामिक ऐश्वर्य सिद्ध नहीं होते और निरन्तर भय रहता है ।।४३।। इस कारण गुण और भोग देवता, असुर, राजाओं के तृण के समान त्याग देने से यश योग सिद्धि की प्राप्ति होती है ।।४४।। अथवा जगत् के अनुग्रह की इच्छा हो तो मुनि होकर विचरे, यथाकाम भोगों को भोगकर मुक्ति को प्राप्त होगा ।।४५।। अब योग का प्रयोग मैं कहता हूं, सावधान होकर श्रवण करें। शुभकाल में सुन्दर शिवक्षेत्रादि देश में मनुष्य रहित स्थानों में जन्तुओं के शब्द और बाधा से रहित ।।४६।। अच्छी तरह लिप्त हुए स्थल में गन्ध और धूप से सुवासित रखे हुए फूलों से युक्त वितानादि से विचित्र ।।४७।। कुश, पुष्प, जल, फल, फूल, मूल करके युक्त अग्नि, जल और शुष्क पत्तों की निकटता से रहित ।।४८।। दंश, मशक, सर्प, श्वापद की संकुलता से हीन दुष्ट मृगों से आकीर्ण दुर्जनों के भय से युक्त जो न हो ।।४९।। श्मशान, चौराहा, बमई जीर्ण स्थान, चैत्य, नदी, नद, समुद्रों के किनारे अथवा गली के निकट स्थिति न करे ।।५०।। जीर्ण उद्यान, गोष्ठ, अनिष्ट, निन्दित, अजीर्ण अम्लरस के उद्गार विष्ठा से, मूत्र से दूषित ।।५१।। छर्दि, अतिसार, अतिभोजन श्रम से युक्त, अतिचिन्ता से व्याकुल, अतिक्षुधा प्यास से युक्त तथा अपने गुरु के कार्य में व्यग्र होकर योगाभ्यास न करे ।।५२।। युक्त आहार, विहार और युक्त कर्म में चेष्टा करनी, युक्त समय सोना और जागना, सम्पूर्ण परिश्रम से रहित ।।५३।। मृदु मनोहर आसन और समान पवित्र देश, मृदुचर्म वस्त्र पहने, मधु आदि से युक्त शुभदायक आसन कल्पना करके उसके ऊपर सुख से बैठकर पद्म, स्वस्तिक आसनों का अभ्यास करे ।।५४।। अपने गुरु तथा दूसरों को क्रम से अभिवादन करके सीधी गर्दन, सीधा सिर, छाती, ओष्ठ और नेत्र अधिक श्लिष्टता से रहित ।।५५।। कुछेक सिर झुकाये, दांतों से दांतों को न छुवे ।।५६।। दांत के अग्रभाग में स्थित की हुई जिह्वा को अचल करके पार्ष्णि से वृषण की रक्षा करता हुआ तथा मेढ्र की रक्षा करता हुआ ।।५७।। जंघा के ऊपर यत्न से तिरछी भुजा रखकर दक्षिण हाथ का पृष्ठभाग वामतल के ऊपर रखकर ।।५८।। सहज-सहज को पीठ को उठाकर और आगे की ओर से हृदय को उठाकर अपनी नासिका के अग्रभाग को देखता हुआ दिशाओं को न देखे ।।५९।। प्राण का संचार रोककर पाषाण के समान निश्चल होकर अपने देह के अन्तर पार्वती सहित शिवजी का ध्यान करके ।।६०।। हृदयकमल की पीठिका में ध्यान यज्ञ से शिवजी को पूजे; मूलमन्त्र से नासिका के अग्रभाग से नाभि, कण्ठ वा तालु के रन्ध्रों में ।।६१।। भौं के बीच मूलाधार ललाट में या सिर में उनका ध्यान करे। यथायोग्य शिवा-शिव का परमासन कल्पित करके ।।६२।। उसमें सावरण अथवा निरावरण दो दल, सोलह दल अथवा बारह दल की विधि पूर्वक

कल्पना करके ।।६३।। उस बारह, छः अथवा चार दलों में शिवजी का स्मरण करे, भौ के अन्तर में दो दल युक्त पद्म अथवा बिजली के समान उज्ज्वल ।।६४।। भौ के बीच में कमल के दक्षिण उत्तर ओर बिजली के समान वर्णवाले वर्ण युक्त पर्ण के समान वर्ण युक्त वर्णावसान में ।।६५।। पत्तों के जो सोलह आरे हैं उन्हीं में सोलह स्वर स्थापित करे और कमल की कन्द के मूल से पूर्वादि के क्रम से ।।६६।। ककार को आदि लेकर टकार पर्यन्त वर्णों के पर्णों के अनुक्रम से कल्पना करे और भानुवर्ण युक्त पद्म के चारों ओर युक्त उन अक्षरों को हृदयान्तर में ध्यान करे ।।६७।। वे अक्षर कमल के पर्ण जानने चाहिये और नाभि के ऊपर की ओर से गौ के दूध के समान डकार से लेकर फकार पर्यन्त यथा क्रम से रखे नीचे की ओर कमलदलवाले कमल के छः पत्ते हैं ।।६८।। उसमें अंगार युक्तवाले अक्षर वकार से लेकर लकार पर्यन्त हैं, मूलाधार कमल सुवर्ण के समान कान्तिमान है, उसमें वकार से लेकर सकार पर्यन्त पर्णमय वर्ण हैं ।।६९।। उन कमलों में जहां मन रमण करे वहीं धीरबुद्धि से देव और देवी का स्मरण करे ।।७०।। अंगुष्ठमात्र दीप्तिमान् निर्मल चारों ओर दीप्तिमान् शुद्ध दीपशिखा के समान आकार युक्त अपनी शक्ति से पूर्ण मण्डित ।।७१।। चन्द्ररेखा के समान आकार युक्त तथा तारा रूप नीवार शूक के समान तथा कमलनाल के जन्तु के समान ।।७२।। कदम्ब गोल के समान आकार तुषार कर्णिका के समान उत्तम क्षिति आदि तत्त्वों के विजय रूप ध्यान करनेवाला जो इच्छा करे ।।७३।। उसी–उसी तत्त्व की अधिपति मूर्ति का चिन्तन करे, सदाशिवजी को लेकर ब्रह्मादि जो वह शिवजी की आठ मूर्तियां हैं ।।७४।। वह शिवजी की स्थूल मूर्तियां हैं, ऐसा शिवशास्त्र में निश्चय है; वह मूर्ति घोर मिश्र और प्रशान्त है, उनको मुनीश्वरों ने ।।७५।। फल की अभिलाषा के सहित विचार किया है (कही 'फलाभिलाषरहितैः' पाठ है, वहां वैसा ही अर्थ करना) घोर मूर्ति की चिन्ता से पापरोग का क्षय होता है ।।७६।। सब सिद्धि को देनेवाली मिश्र और प्रशान्त मूर्ति शान्ति दायक है; घोर शरीर में चिन्ता करने से शीघ्र ही सब सिद्धि सिद्ध हो जाती है, मिश्र में दीर्घ कला में सिद्धि सौम्यमूर्ति में न शीघ्रता से न विलम्ब से विशेष कर सौम्य में मुक्ति होती है और शान्ति में प्रज्ञा सिद्ध होती है ।।७७।। क्रम से इससे सिद्धि सिद्ध हो जाती है, इसमें सन्देह नहीं ।।७८।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे

अष्टत्रिंशोऽध्यायः ।। ३८ ।।

*****

उन्तालीसवाँ अध्याय

उपमन्युजी बोले- श्रीकण्ठनाथ को स्मरण करते ही शीघ्र सम्पूर्ण अर्थसिद्धि हो जाती हैं, सब सिद्धियां प्रसिद्ध होती हैं, ऐसा कोई कहते हैं, उनको योगी ध्यान करते हैं ।।१।। कोई मन की स्थिति के निमित्त स्थूल ध्यान करना कहते हैं, जब स्थूल में चित्त निश्चल हो जाय, तब सूक्ष्म में प्राप्त होकर स्थिर होता है ।।२।। शिवजी के चिन्तित करते ही सब सिद्धियां उपस्थित होती हैं और अन्य मूर्तियों में ध्यान करने से शैवी सिद्धि नहीं होती है, इसलिये अन्य मूर्तियों के ध्यान में शिव रूप का ध्यान करे ।।३।। जो रुचि और आभासादि से शिवजी का रूप चिन्तन करता है, मन की स्थिरता को देखता हुआ उनको बारंबार ध्यान करे, प्रथम सविषय फिर निर्विषय ध्यान करे ।।४।। सत्पुरुषों का यह भी सम्मत है कि, निर्विषय ध्यान ही नहीं है बुद्धि की ही किसी सन्तति का नाम ध्यान है ।।५।। इससे निर्विषयवाली बुद्धि केवल निर्विषय में ही प्रवृत्त होती है, इस कारण सविषय ध्यानवान् सूर्य की किरणों के समान आश्रयवाला है ।।६।। सूक्ष्म आश्रय का ही नाम निर्विषय है; इससे अधिक परमार्थ से ही दूसरा नहीं है अथवा सविषय ध्यान साकार के आश्रयवाला है ।।७।। निराकर आत्मा के जानने ही का नाम निर्विषय है, निर्बीज अथवा सबीज जो हो सो ध्यान कहा है ।।८।। निराकार के आश्रय से साकार आश्रय युक्त होता है, इस कारण प्रथम बीज सहित साकार ध्यान करे ।।९।। अन्त में सब सिद्धि के निमित्त बीजहीन, निर्विषय ध्यान करे, प्राणायाम द्वारा क्रम से दिव्य शान्ति आदि सिद्ध होती हैं ।।१०।। शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति और प्रसाद सब आपत्तियों की शान्ति का नाम शम है ।।११।। और अन्तर बाहर अन्धकार के नाश का नाम प्रशान्ति है, बाहर-अन्तर के प्रकाश का नाम दीप्ति है ।।१२।। और बुद्धि स्वस्थता का नाम प्रसाद कहा है, बाह्य अभ्यन्तर सब कारण ।।१३।। बुद्धि के प्रसाद से ही शीघ्र सिद्ध हो जाते हैं, ध्याता ध्यान ध्येय और ध्यान का प्रयोजन यह चारों जानकर ध्याता ध्यान करे ।।१४।। ज्ञानवैराग्य से सम्पन्न नित्य उद्यत मनवाला श्रद्धा युक्त प्रसन्न आत्मा ध्याता सत्पुरुषों ने कहा है ।।१५।। "ध्यै-चिन्तायां" धातु से ध्यान सिद्ध सिद्ध होता है कि शिवजी की चिन्ता बारंबार करनी चाहिये ।।१६।। जैसा थोड़ा योगभ्यास भी पाप का विनाश करता है, ऐसा ही श्रद्धा से परमेश्वर का ध्यान करे तो क्षण में पाप नाश होता है ।।१७।। मन में किसी प्रकार का विक्षेप न हो यही ध्यान है ।।१८।। इस प्रवाह रूप ध्यान का बुद्धि अवलम्बन है, जो ध्येय वस्तु है सो बुद्धिमानों ने अम्बा सहित शिवजी का ध्यान कहा है ।।१९।। कि मुक्ति प्रत्यय के पूर्व अणिमादि ऐश्वर्य हैं, यही शिवध्यान का साक्षात् प्रयोजन कहा है ।।२०।। जिस कारण कि ध्यान से सुख और मुक्ति दोनों प्राप्त होती हैं, इस कारण सब कुछ

छोड़कर मनुष्य ध्यान युक्त हो ।।२१।। बिना ज्ञान के और अयोगी को ध्यान नहीं होता, जिसको ध्यान और ज्ञान है वह भवसागर के पार हो चुका ।।२२।। प्रसन्न एकाग्र चित्त सम्पूर्ण उपाधि से रहित का नाम ज्ञान है, वह योगाभ्यास युक्त योगी को ही सिद्ध होता है ।।२३।। जब सब पाप क्षय होते हैं, तब ध्यान में मति होती है और पाप युक्त बुद्धिवालों को उसकी वार्ता भी दुर्लभ है ।।२४।। जैसे महा दीप्तिमान् अग्नि सूखे गीले काष्ठ को जला देती है, उसी प्रकार शुभाशुभ कर्म को ज्ञान नष्ट कर देता है ।।२५।। जैसे थोड़ा दीपक भी महाअन्धकार को दूर करता है, उसी प्रकार थोड़ा योगाभ्यास भी महापाप को नष्ट करता है ।।२६।। जो क्षणमात्र से भी श्रद्धा पूर्वक परमेश्वर का ध्यान करता है, उससे भी जितना कल्याण होता है उसका अन्त नहीं है ।।२७।। ध्यान के समान तीर्थ, तप, यज्ञ नहीं हैं, इस कारण ध्यान ही करे ।।२८।। जल पूर्ण तीर्थ और मृतपाषाण की मूर्ति में योगीजन इस कारण नहीं स्नान पूजन करते हैं कि उनको आत्मज़ान की प्राप्ति है ।।२९।। योगियों का शरीर सूक्ष्म होकर ईश्वर प्रत्यय हो जाता है; जो योगी नहीं है उनके निमित्त मृत पाषाणादि को मूर्ति कल्पित की जाती है ।।३०।। जिस प्रकार राजा को अन्तरचारी प्रिय बोले हैं, उस प्रकार बाहर के दूत प्रिय नहीं हैं, इसी प्रकार महाकर्मा शिवजी को अन्तर्ध्यान करनेवाले विशेष प्रिय हैं ।।३१।। जिस प्रकार याचना के निमित्त हाथ फैलानेवाले बहुत फल के भागी नहीं होते और नरेन्द्र के घर के पूर्ण फल के भागी होते हैं, उसी प्रकार यहां के भी समझंने ।।३२।। जो अन्तर से ज्ञानयोग के निमित्त प्रवृत्त होते हैं, वे योग के उद्योगमात्र से रुद्रलोक को प्राप्त होते हैं ।।३३।। वहाँ अनेक सुख अनुभव करके योगियों के कुल में जन्म पाते हैं, फिर ज्ञानयोग को प्राप्त होकर संसार से पार हो जाते हैं ।।३४।। जिज्ञासु भी योग की जिस गति को प्राप्त होता है वह गति सम्पूर्ण महायज्ञों से भी नहीं प्राप्त होती ।।३५।। वेदपाठी ब्राह्मणों के कोटि पूजन का जो फल है, वह फल शिवयोगी को भिक्षामात्र प्रदान करने से प्राप्त होता है ।।३६।। जो यज्ञ, अग्निहोत्र, दान में तथा तीर्थ होम में जो फल है, वह समस्त फल योगियों को अन्नदान से मिलता है ।।३७।। जो मूढ़ शिवयोगी की निन्दा करते हैं, वह सुननेवालों के साथ लय पर्यन्त नरक में पड़ते हैं ।।३८।। श्रोता होकर वक्ता से योगी की निन्दा सुने उससे वह श्रोता अधिक पापी है और उसका महान् दण्ड है, जो शिवयोगी का सदा भक्ति से भजन करते हैं ।।३९।। वे महाभोगों को प्राप्त होकर अन्त में शिवयोग को प्राप्त होते हैं, इस कारण भोग और भोगार्थियों को भी शिवयोगी का सत्कार करना चाहिये ।।४०।। उनको रहने को घर देना, अन्न, पान, शय्या, वस्त्रादि से सत्कार करना सार रूपी योगधर्म है, इस कारण यह पाप रूपी मुद्गर से छेदन नहीं होता ।।४१।। जैसे चावल से वज्र नहीं टूटता उसी प्रकार पाप से योगी भेदित नहीं हो सकते, जैसे कमलपत्र जल से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार योगी ताप से लिप्त नहीं होते ।।४२।। जिस देश में नित्य शिवयोग में प्रीति

करनेवाले मुनि निवास करते हैं, वह भी देश पवित्र हो जाता है, फिर वह पवित्र हो तो क्या कहना ? ।।४३।। इस कारण चतुर पुरुष अन्य सब कृत्यों को छोड़कर सब दुःखों को दूर करने को शिवयोग करे ।।४४।। योगफल सिद्ध हो जाने से योगी लोकों के हित की कामना से यथायोग्य भोगों को भोगकर चाहे विहार करे वा साधारण वर्ते ।।४५।। अथवा विषयसुखों को क्षुद्र मानकर उन्हें छोड़कर वैराग्य योग से अपनी इच्छा से कर्म को छोड़ दे ।।४६।। जो मनुष्य योगी अरिष्ट देखकर समीप आई मृत्यु को जाने वह योगारम्भ में निरत होकर शिवक्षेत्र का आश्रय ले ।।४७।। वह उस क्षेत्र में धीरता से, आतुरता से निवास करता हुआ बिना रोगादि के ही प्राणों का त्याग कर दे ।।४८।। विधि पूर्वक अनशन व्रत कर शिवाग्नि में हवन करके वा अवगाहन से शिवतीर्थों में अपनी देह को निक्षेप करे ।।४९।। जो शिवशास्त्र के विधान से अपने प्राणों का त्याग करता है; वह शीघ्र मुक्त हो जाता है, आत्मघाती नहीं होता ।।५०।। अथवा शिवक्षेत्र में आकर रोगादि से विवश होकर मृत्यु को प्राप्त होता है; वह भी मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं। इसमें उत्तर मरण श्रेष्ठ है, निवृत्ति आदि मरण श्रेष्ठ है, निवृत्ति आदि कला की प्रतिष्ठा के वश से देह भूतों में लीन हो जाता है, विशेष कर शिवक्षेत्र में अपनी इच्छा से मरण विशेष कहा है, यही सब मरणों में उत्तम मरण है और उन्मना के पद का देनेवाला है ।।५१।। जिस प्रकार अनशन व्रत से मरना श्रेष्ठ कहा है, उसी प्रकार शास्त्र के अनुसार धीरता से करे व मन से ध्यान करे ।।५२।। शिवनिन्दा करनेवालों को हत करके व उनसे स्वयं पीड़ित होकर जो अपने दुस्त्यज प्राणों का त्याग करता है, उसका फिर जन्म नहीं होता ।।५३।। और जो शिवनिन्दा करनेवालों को मारने में असमर्थ हो, जो स्वयं मृतक हो जाय, वह इक्कीस कुलों के साथ तत्काल ही मुक्त हो जाता है ।।५४।। जो शिवजी व शिवजी के भक्तों के निमित्त प्राणों का त्याग करता है वा शिवजी के आचार व विद्या के निमित्त मृतक होता है, उसके समान कोई प्राणी मुक्तिमार्ग में स्थित नहीं है ।।५५।। इस कारण उसकी संसारमण्डल से शीघ्र मुक्ति हो जाती है, इसमें से किसी एक उपाय को अवलम्बन करके ।।५६।। षडध्व शुद्धि को विधि पूर्वक प्राप्त होकर यदि मृतक हो जाय, उसका पश्वादि जीवों के समान और्ध्वदैहिक कर्म न करे ।।५७।। और उसके पुत्रादिकों को उसका शौच नहीं लगता है, चाहे उसके शरीर को गाड़ दें, चाहे पवित्र अग्नि में जला दें ।।५८।। वा पवित्र जल में डाल दें वा काष्ठ व ढेले के समान फेंक दें और जो उसके उद्देश्य से कोई कर्म करने की इच्छा हो तो मंगल करे और शिवभक्तों को तृप्त करे, जो शैवी सन्तान हो तो उसके धन की भागी हो सकती है, यदि ऐसी न हो तो शिवजी के निमित्त दे दे, पशु सन्तान को धन न दे ।।६०।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे

योगनिरूपणं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।। ३९ ।।

चालीसवाँ अध्याय

सूतजी बोले– इस प्रकार वायु ने श्रीकृष्णजी के प्रति क्रोध रहित उपमन्युजी के वर्णन किये ज्ञानयोग को मुनियों के प्रति वर्णन किया; तब प्रणाम को प्राप्त हुए उन मुनियों से प्रकाशित परमात्मा स्वरूपवाले आकाश में वह वायु सन्ध्या को अन्तर्धान हो गये ।।१।। तब प्रात:काल में नैमिषारण्यवासी तपोधन यज्ञ के अन्त में स्नान करने को आये ।।२।। तब ब्रह्माजी की साक्षात् सरस्वती देवी प्रसन्न जल को बहानेवाली प्रकट हुई ।।३।। सरस्वती नदी को देखकर प्रसन्न चित्तवाले मुनि यज्ञ समाप्त करके उसमें अवगाहन करने लगे ।।४।। उसके सुन्दर जलों से देवादि शिवजी को तृप्त करके पूर्व वृत्तान्त स्मरण करते काशी में आये ।।५।। तब वे हिमालय गिरि से दक्षिण की ओर बहनेवाली उस भागीरथी को देखकर वहां स्नान करके उसके तीर से चले गये ।।६।। तब काशी में प्राप्त होकर वे सब प्रसन्न हुए; वहां उत्तर बहनेवाली गंगा में स्नान करके ।।७।। अविमुक्तेश्वर लिंग को देखकर विधि पूर्वक पूजन करके चले, तो आकाश में एक उज्ज्वल तेज देखा ।।८।। जो कोटि सूर्य के समान प्रकाशमान दिव्य महाअद्भुत तेज जिसने अपने प्रकाश से सम्पूर्ण आकाश को आच्छादित कर लिया था ।।९।। तब सिद्ध पाशुपत व्रतवाले शरीर में भस्म लगाये सैकड़ों मुनि उसमें प्राप्त होकर लीन हो गये ।।१०।। इस प्रकार महात्मा तपस्वियों के लीन होने पर वह तेज शीघ्र ही लीन हो गया, यह बड़ी अद्भुत बात हुई ।।११।। नैमिषारण्यवासी उस महाआश्चर्य को देखकर यह क्या है ? इस बात को न जानकर पूर्वोक्त ब्रह्मवन को गये ।।१२।। उनके जाने से ही पहले लोकपावन पवनदेव नैमिषारण्यवासियों के दर्शन और उनके संवाद को ।।१३।। तथा उनकी शुद्धबुद्धि साम्बशिवजी में देखकर यज्ञ की समाप्ति जो दीर्घकाल से थी ।।१४।। यह सब जगत् के पति ब्रह्माजी से कथन करके अपने कार्य को कहकर अपने पुर को गये ।।१५।। तब ब्रह्माजी के स्थान में तुम्बरु और नारद प्राप्त हुए, जो कि, वे दोनों परस्पर गाने में स्पर्धा करते थे ।।१६।। उनके गाने की स्पर्धा में उनके निर्णय करने को ब्रह्माजी मध्यस्थ हुए, गन्धर्वों और अप्सराओं से सेवित होकर वहां स्थित थे ।।१७।। सो अनवसर में प्राप्त होने से द्वारपालों ने मुनियों को निवारण किया, तब वे मुनि ब्रह्मवन से बाहर के पार्श्वभाग में प्राप्त हुए ।।१८।। तब गाने में नारदजी ने तुम्बरु की समता को प्राप्त होकर सेवकों सहित परमेष्ठी ब्रह्माजी से आज्ञा लेकर ।।१९।। परस्पर स्पर्धा छोड़कर मित्रता को प्राप्त होकर अप्सरा और गन्धर्वों के साथ ।।२०।। नकुलीश्वरदेव की वीणा द्वारा उपासना करने को भवन से निकले, जैसे मेघों से सूर्य निकलता है ।।२१।। मुनियों में श्रेष्ठ नारदजी को वह

त्रिवेणी के षट्कुलों में उत्पन्न हुए ब्राह्मण प्रणाम करके कल्याण विधायि ब्राह्मण परम आदर से जाने का अवसर पूछने लगे ।।२२।। नारदजी बोले– यही अवसर है, जाओ; यह कहकर कार्यान्तर में चित्त लगे होने के कारण नारदजी बहुत शीघ्रता से चले गये ।।२३।। तब द्वारपाल ने ब्रह्माजी के द्वार पर स्थित मुनियों से निवेदन किया, तब वे सब एकत्र मिलकर ब्रह्माजी के भवन में प्रविष्ट हुए ।।२४।। प्रवेश करके दूर से देव को देखकर पृथ्वी में दण्डप्रणाम करके उनकी आज्ञा से समीप में ही स्थित हुए ।।२५।। उनको बैठा देखकर ब्रह्माजी उनकी कुशल पूछकर कहने लगे कि आपका वृत्तान्त मैंने वायु से सुन लिया है ।।२६।। पवन के अन्तर्धान होने के पीछे फिर आपने क्या किया ? यह देवेश के कहने पर मुनियों ने अवभृथ यज्ञ के स्नान के पीछे ।।२७।। गंगातीर्थ जाना; वाराणसी की यात्रा करना; वहां सुरासुर के स्थापित लिंगों को देखना ।।२८।। तथा अविमुक्तेश्वर लिंग का पूजन करना, आकाश में महातेज राशि का देखना ।।२९।। मुनियों का उसमें प्रवेश होना और तेज का अन्तर्धान होना, उसका यथार्थ जानकर विचार करना ।।३०।। यह सब वृत्तान्त विस्तार पूर्वक ब्रह्माजी को बारंबार प्रणाम करके निवेदन कर दिया, विश्वकर्मा चुतुर्मुख ब्रह्माजी मुनियों के वचन सुनकर ।।३१।। कुछेक सिर कंपाकर गंभीर वाणी से बोले, आपको परलोक की सिद्धि निकट वर्तती है ।।३२।। आपने दीर्घसत्र से बहुत काल तक प्रभु का आराधन किया है, अब वह प्रसन्न हुए हैं; ऐसा उस तेज ने आपको सूचित किया है ।।३३।। जो वाराणसी में आपने स्वर्ग में दीप्तिमान् देखा है, वह साक्षात् लिंग संज्ञावाला माहेश्वर परमतेज है ।।३४।। उसमें श्रौत और पाशुपत व्रतवाले मुनि लीन हो गये और नैष्ठिक दग्ध पापवाले मुक्त हो गये ।।३५।। इसी मार्ग के प्राप्त होने से आपकी शीघ्र पाप की मुक्ति हो जायगी । वही वार्ता आपको उस तेज ने सूचित की ।।३६।। सो वह आपका समय दैवयोग से स्वयं प्राप्त हो गया है, आप देवताओं से सेवित मेरु के दक्षिण शिखर पर जाओ ।।३७।। जहां हमारा परम पुत्र परम मुनि सनत्कुमार हैं, वहां भूतनाथ नन्दि के आगमन की प्रतीक्षा करते हैं ।।३८।। पहले सनत्कुमार भी परमेश्वर को अज्ञान से सब योगिन्द्रियों में अपनी आत्मा को देखनेवाले होने के कारण दुर्विनीत होकर ।।३९।। उनके आने पर अभ्युत्थानादि कर्म को न करके निर्भय स्थित रहे, तब इससे शुद्ध हुए नन्दि ने उसको महाउष्ट्र कर दिया ।।४०।। तब उनके निमित्त बहुत समय तक शोक करते हुए मैंने देव–देवी की उपासना कर और नन्दि को प्रसन्न करके ।।४१।। किसी प्रकार बड़े यत्न से सनत्कुमार की उष्ट्रता दूर की, तब सनत्कुमार ने पूर्ववत् शरीर प्राप्त किया ।।४२।। तब महादेवजी हँसते हुए गणाधिपति से बोले कि; हे नन्दि ? हमारी अवज्ञा से आपने नन्दि को ऐसा किया है ।।४३।। हे पाप रहित ! इससे आप हमारी याथात्म्य को इसके निमित्त कथन करें, कारण कि, ब्रह्माजी का पूर्वज पुत्र यह मूढ़ नर है ।।४४।। मैंने इस सनत्कुमार को शिष्यत्व में दिया; इस कारण इसके प्रति

मेरा ज्ञान प्रकाश करें, यह आपको धर्माध्यक्ष का अभिषेक करेंगे ।।४५।। जिस समय सब भूतगणों के अग्रणी नन्दि से यह वचन कहे, तब उन्होंने प्रसन्न होकर पति की आज्ञा सिर से ग्रहण की ।।४६।। और सनत्कुमारजी भी मेरु पर्वत पर मेरी आज्ञा से गणेशजी प्रसन्न होने के निमित्त दुष्कर तपस्या करते हैं ।।४७।। सो गणेशजी नन्दि के समागम से पहले ही आप सनत्कुमार का दर्शन कीजिये, कारण कि, उनके प्रसन्न करने को नन्दि बहुत शीघ्र जायंगे ।।४८।। इस प्रकार विश्वयोनि ब्रह्माजी ने आज्ञा देकर उनको वहां शीघ्र भेजा, तब वे मुनि मेरु के दक्षिण शिखर पर कुमार को देखने को गये ।।४९।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे
नैमिषर्षियात्रावर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्याय: ।। ४० ।।

*****

इकतालीसवाँ अध्याय

सूतजी बोले– वहां सागर के समान मनोहर एक स्कन्द सरोवर है, अमृत के समान स्वादु और ठण्डा अगाध हलका उसका जल है ।।१।। चारों ओर स्फटिकमणि के पर्वतों से युक्त है और सब दिशाओं में फूले हुए फूलों से व्याप्त है ।।२।। सिवार उत्पन्न कमल तारकाओं के समान कुमुद और मेघ के समान तरंगों से मानो आकाश को आच्छादित किये हुए कि पृथ्वी पर ही आकाश आ गया है ।।३।। सुन्दर नीचे ऊपर जाने के मार्ग स्थूल नीलशिला के बने हुए सीढ़ियों से रुचिर आठों दिशाओं को सुन्दर करते हुए हैं ।।४।। जहां–तहां नीचे ऊपर उतरने के अनेक स्थान हैं और स्नान करके शुक्ल यज्ञोपवीत पहने, कौपीन वल्कल धारण किये ।।५।। जटाओं की शिखा से युक्त कोई मुण्डित, कोई त्रिपुण्ड्र से शोभायमान, वैराग्य से उज्ज्वल मुखवाले मुनिकुमारों से युक्त ।।६।। कमलिनी पत्र के दोनों से युक्त, घट तथा श्रेष्ठ कलश तथा दूसरे कमण्डलु और करकादि से युक्त।।७।। अपने–पराये और विशेष कर देवताओं के निमित्त जल लाकर और पुष्प लाकर ।।८।। अन्तर्जल को नीचों के स्पर्श की शंका से शिला में रखे आचारवाले मुनियों से युक्त, भस्म अंग धारणादि से युक्त ।।९।। इधर–उधर जल में मज्जन करते हुए, यजन करने से बचे हुए शिला में प्राप्त तिल, अक्षत्, पुष्प और त्यागे हुए दर्भ और पवित्री से उपलक्षित ।।१०।। कहीं देवता और ऋषि तर्पण कर चुकने के उपरान्त नित्य स्नान किये हुए ब्राह्मणों को निवेदन करके ।।११।। स्थान–स्थान पर अनेक बलिपूजा करने पर पहले सूर्य को अर्घ्य देकर फिर स्थण्डिल में पूजा आदि करके सम्पन्न।।१२।। कहीं निमज्जन करते, कहीं स्नान करके निकलते हुए हाथियों से व्याप्त, कहीं तृष्णा से जाते हुए मृगी और

मृगों से सम्पन्न ।।१३।। कहीं जल पी कर आते हुए मोर और हाथी, कहीं परस्पर वृषभों के तटाघात से युक्त ।।१४।। कहीं कारण्डव पक्षियों के शब्द, कहीं सारस के शब्दों से युक्त, कहीं कोयल और पपीहा और भ्रमरों की झनकार से सम्पन्न ।।१५।। स्नानपानादि के करने से अपनी सम्पत् से जीनेवाले तथा प्रेम से परस्पर सब प्राणियों के वचनों से युक्त ।।१६।। किनारे के वृक्ष आदि पर कोकिला बैठे हुए मानो गरमी से व्याकुल हुए सब जीवों को अपनी ओर बुलाते हैं ।।१७।। उस सरोवर के उत्तर की ओर कल्पतरु के नीचे वज्रशिला की बनी वेदी और कोमल मृगचर्म उस पर बिछा हुआ ।।१८।। उसके ऊपर सदा बालक शरीरधारी सनत्कुमारजी बैठे हुए; वह अचलात्मा समाधि से उसी समय उपराम को प्राप्त हुए ।।१९।। मुनि और योगीन्द्र उनकी उपासना और पूजा करते थे; इस प्रकार नैमिषारण्यवासी मुनियों ने उनको देखा, तो प्रणाम करके उनके निकट उपस्थित हो गये ।।२०।। तब पूछने पर उन्होंने अपने आने का कारण कहा, तब तक बड़ा भारी दुन्दुभि शब्द आकाश में होने लगा ।।२१।। उस समय सूर्य के समान विमान दिखाई दिया जो चारों ओर असंख्य गणेश्वरों से व्याप्त था ।।२२।। अप्सराओं के समूह से संकीर्ण, रुद्रकन्याओं से व्याप्त, मृदंग, मुरज, वेणु, वीणा के शब्दों से सम्पन्न ।।२३।। चित्ररत्न और वितान आदि से युक्त, मुक्तादाम से विराजित, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, चारण, किन्नर आदि से सम्पन्न ।।२४।। नाचते, गाते और चारों ओर से बजाते हुए वीर गो, वृष के चिह्न और दिव्य विक्रम से युक्त लकड़ी लिये हुए ।।२५।। विमान के ऊपर ध्वजा, पताका फहरा रहीं, उस विमान के मध्य में दो चामर स्थित थे ।।२६।। एक पवित्र छत्र जिसकी मणिजटित डंडी लगी थी, दिव्य सिंहासन पर देवी सुयशा के सहित ।।२७।। शरीर की कान्ति से तथा तीनों नेत्रों से सम्पन्न तथा अनेक प्रकार शिवा के कृत्यों का जाननेवाला ।।२८।। मानों जगत् के कर्ता की लंघन के अयोग्य आज्ञा के कहने को आये हुए अथवा साक्षात् सब के ऊपर अनुग्रह करनेवाले शिवजी के साक्षात् आगे स्थित हुए ।।२९।। शिलादपुत्र श्रीमान् साक्षात् नन्दी शूल हाथ में लिये विश्वेश्वर के गणों के अध्यक्ष दूसरे विश्वेश्वर ही के समान स्थित ।।३०।। संसार और विधाताओं के निग्रह अनुग्रह करने में समर्थ, चारभुजा, उदार शरीर, चन्द्ररेखा से विभूषित ।।३१।। कण्ठ के बीच में नाग, माथे पर शोभित चन्द्रमा से अलंकृत मानों ऐश्वर्य का शरीर धारे सत्क्रिया की मानो सामर्थ्य ।।३२।। मुक्ति के समाप्ति रूप अर्थात् प्राप्त हुए सर्वज्ञता को प्राप्त हुए उनको सनत्कुमार महर्षियों के सहित प्रसन्न मुख होकर ।।३३।। हाथ जोड़े उठकर खड़े हो गये और उनके निमित्त अपनी आत्मा को अर्पण करते हुए, जब वह विमान बहुत निकट पृथ्वी पर आ गया ।।३४।। तब दण्डवत् प्रणाम करके देव की स्तुति करके मुनियों की विज्ञप्ति की कि, यह षट्कुलवाले मुनि नैमिषारण्य क्षेत्र में दीर्घसत्र कर चुके हैं; अब सब ब्रह्माजी की आज्ञा से आपकी सेवा करने आये हैं ।।३५।। नन्दी यह ब्रह्मपुत्र के वचन सुनकर दृष्टिमात्र से ही उन सबके बन्धन

छेद करके शिवधर्म ईश्वर सम्बन्धी ज्ञानयोग देकर शिवजी के समीप चले गये ।।३६।। सनत्कुमारजी ने वह सब ज्ञान हमारे गुरु व्यासदेवजी से वर्णन किया है; व्यासजी ने मुझसे और मैंने संक्षेप से आपको सुनाया है ।।३७।। वह वेद के न जाननेवाले को शिवज्ञान पुराणरत्न कहना उचित नहीं है, जो अभक्त हो, शिष्य न हो, नास्तिक हो, उसे न देना चाहिये; यदि किसी को लोभ से दिये तो नरक में जाता है ।।३८।। जिसने सेवानुगत मार्ग से इसको दिया, ग्रहण किया अथवा पढ़ा–सुना है, उन्हींके मुख से सुना हुआ धर्मादिक तीन (धर्म, अर्थ, काम) स्वर्ग को देकर अन्त में मोक्ष देता है ।।३९।। मैंने पौराणिक मार्ग के योग से आपका परस्पर उपकार किया है; इससे पूर्णकामना होकर मैं जाता हूं, आप सबका मंगल हो ।।४०।। जब ऐसा आशीर्वाद देकर सूतजी चले गये, तब वे सब मुनि पूजनीय प्रयाग में अपना यज्ञ पूर्ण करके कलियुग के विषयों से और स्थानों को कलुषित देखकर काशी में निवास करने लगे ।।४१।। तब वे सब पशुपाश से छूटने की इच्छा करके स्वयं अपने किये पाशुपत व्रत के प्रभाव से सम्पूर्ण ज्ञान की समाधि को प्राप्त होकर निन्दा रहित परम मुक्ति को प्राप्त हुए ।।४२।। व्यासजी बोले– इस शिवपुराण को आदर से पढ़ना चाहिये और इसी प्रकार यत्न से सुनना चाहिये ।।४३।। इसको नास्तिक, श्रद्धा हीन, शठ, शिवजी का अभक्त, धर्मध्वजी, पाखण्डी को न देना चाहिये ।।४४।। इसके एक बार सुनने से ही पाप नष्ट हो जाते हैं, अभक्त भक्त होता है और भक्त की समृद्धि बढ़ती है।।४५।। फिर सुनने से सद्भक्ति और फिर सुनने से मुक्ति होती है, इस कारण मुमुक्षुओं को यह बारंबार सुनना चाहिये ।।४६।। श्रेष्ठबुद्धि से इस पुराण की पांच आवृत्ति करे, तब उसको परमफल प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं ।।४७।। पुरातन राजा, ब्राह्मण तथा वैश्य इसकी सात आवृत्ति करके शिवजी का दर्शन पा चुके हैं ।।४८।। जो मनुष्य भक्ति में तत्पर होकर इसे सुनता है, वह यहां अनेक भोगों को भोगकर अन्त में मुक्ति को प्राप्त होता है ।।४९।। यह शिवपुराण शिवजी को अत्यन्त प्रिय है, भुक्ति–मुक्ति का देनेवाला, ब्रह्मसम्मित तथा भक्ति बढ़ानेवाला है ।।५०।। इस शिवपुराण के वक्ता, श्रोता का सदा गणपति, कार्त्तिकेय तथा पार्वती सहित शिवजी मंगल करे ।।५१।।

इति श्रीशिवमहापुराणे भाषायां सप्तम्यां वायवीयसंहितायां उत्तरखण्डे

व्यासोपदेशश्रीशिवमहापुराणमाहात्म्यवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४१ ।।

*****

दोहा–

श्रीशंकर पदकमल युग, उमा सहित हिय लाय।
वायुसंहिता को तिलक, कीन्हों पूर्ण बनाय।।१।।
पढ़ै–सुनै कर प्रेम जो, लहै पदारथ चार।
तातें शिव सुमिरण करहु, जगजंजाल बिसार।।२।।
श्रोता वक्ता के भवन, मंगल होहिं अनेक।
दृढ़भक्ति कर राखिये, शम्भुनाम की टेक।।३।।
उन्नीस सौ पैंसठ सुभग, संवत् आश्विन मास।
शरदपूर्णिमा शुक्ल दिन, पूर्ण कियो सुखरास।।४।।
बसत रामगंगा निकट, नगर मुरादाबाद।
भजन करत नित शम्भु को, द्विज ज्वालापरसाद।।५।।

*****

** शुभमस्तु **

*** समाप्तोऽयं ग्रन्थ ***

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी
व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान :

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर, मुंबई- ४००००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट, पुणे- ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डिंग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र- ४२१ ३०१.
दूरभाष- ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.)- २२१ ००१.
दूरभाष- ०५४२-२४२००७८.

शिवमहापुराण

शैवों का सर्वस्व विधि प्रकार की गाथा, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, विधायक आख्यान, कर्म ज्ञान, उपासना, योग, व्रत, तीर्थ, भूगोल, खगोल, शिव के निर्गुण सगुणरूप का वर्णन, सती चरित्र, गिरजा चरित्र, स्कन्द कथा, त्रिपुरासुरवध, लिंगमाहात्म्य, शिवक्षेत्रकथा, रुद्राक्ष भस्म माहात्म्य, काशी कैलास माहात्म्य, शिवभक्ति की महिमा, पाशुपतयोग आदि अनेक विषयोंसे विभूषित है। चारों वर्ण, चारों आश्रम, इससे धर्म का पूर्ण उपदेश प्राप्त कर सकते हैं। इसके पाठ करने से चित्त शुद्ध होता है और सनातन गूढ इतिहासों का मर्म अवगत होता है, आदि से अन्त तक इसका पाठ करने से विज्ञानात्मा का प्रकाश होता है, बहुत कहने से क्या है ? इसको अवलोकन कर पाठक महाशय इसका गौरव जान सकते हैं।

सकल पुराणन को कह्यो, शिवपुराण में सार ।
पढिये सुनिये प्रेम से, मिलहिं पदारथ चार ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४.

खेश्री

खेमराज श्रीकृष्णदास

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४.